।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 1 से 4



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

– अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति

परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन

श्री हरिपददास अधिकारी

डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार

आवरण व अन्य चित्रों के लिए

Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी

वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत

दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

द्वितीय संस्करण-2000 प्रतियाँ

श्रीरामनवमी, 19 अप्रैल 2013

तृतीय संस्करण-2000 प्रतियाँ

श्रीरामनवमी, 15 अप्रैल 2016

ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की 92 वीं आविर्भाव तिथि

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान : मुद्रण-संयोजन

श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,

वृन्दावन-281121 - मोबाइल : 07500 987654

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 1 से 4

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

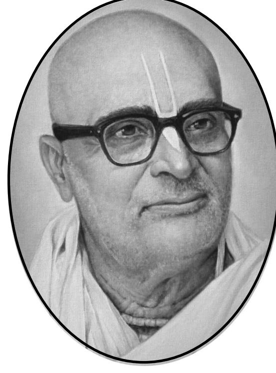
कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मंझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भंवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

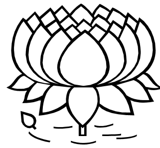
हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।

* * *



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। **"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति"** के चारों भाग का तीसरा व संशोधित संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी—यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार सभी को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा—ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

अतः मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

विषय-सूची

भाग– 1

भाग– 2

भाग– 3

भाग– 4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध दास प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, ''**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग एक से चार का तीसरा संस्करण)**'' सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'**इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति**' नामक पाँचों भाग श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का प्राण है। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? - इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा केवल हरे कृष्ण महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के भाग–एक व भाग–दो के द्वितीय संस्करण की एक विशेषता और भी है कि इसमें श्री अनिरुद्ध दास प्रभु के संक्षिप्त जीवन–चरित्र के साथ–साथ उनके श्रील गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012

एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **3000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **1000 प्रतियाँ**
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2016

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से गत सात वर्षों में बीस हजार (20,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग सत्रह हजार (17,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, बेवसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुंच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम–संख्या में बहुत बढ़ोतरी हुई कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रुप से दर्शन भी हुये हैं। श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के मोबाइल फोन से उनके मोबाइल फोन पर SMS आये, Miss calls आईं जबकि प्रभु जी ने उन्हें न तो SMS किया और न ही Call किया। SMS करना तो उन्हें आता ही नहीं। यह उस नटखट श्रीकृष्ण की ही लीला है।

इन बीस हजार (20,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधा गोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे–ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठ्को! इन पत्रों में कई बातों को बार–बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें। अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रंथों को बार–बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्ण–प्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

"*Arise, awake & stop not, till the goal is reached*"

-Swami Vivekananda

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास
हरिपद दास

शरणागत–भक्त के हृदय में भगवद्–तत्त्व का आविर्भाव होता है। शरणागति से पहले कोई भी क्रिया भक्ति नहीं है। शरणागति ही सब समस्याओं का समाधान और सब क्लेशों के निवारण की राम–बाण औषधि है।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ, श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने इसी वर्ष 13 मार्च से 30 मार्च तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही उन्होंने श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया और उसके तुरन्त बाद वे परमवैष्णव संत पूज्यपाद श्रीमहानिधि स्वामीजी महाराज के दर्शनों के लिये उनकी भजन कुटिया पर पहुँचे।

गत वर्ष कार्तिक, 2012 में वे कई बार पूज्यपाद श्रीमहानिधि स्वामीजी महाराज का दर्शन करके भावविभोर हो चुके थे। अतः इस बार भी श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही वे उनके श्रीचरणों में गिरकर लोटने लगे। उन्हें अपने शरीर की सुध-बुध न रही और वे भावविभोर होकर अश्रु बहाते रहे।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुये। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्‌गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण ● जय महात्मा सूरदास।।

आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
क. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब–अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।
ख. कण्ठ मेरा अति कर्कष वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम–सुधा–रस बरसाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
प. चिनद्म मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
ब. तन–मन में और श्वांस–श्वांस में, रोम–रोम में बस जाओ।
रग–रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।
भ. पुत्र की जीवन नैया के खवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ–आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

Glorifications

It's Amazing

Srila Bhaktivedanta Ashram Maharaja

Jai Gaur



With the greatest of gratitude, I am writing some words of appreciation about Sri Anirudha prabhu. He has revolutionized my chanting of the holy names. In fact, he has totally changed my life. After meeting him and following some of his instructions, I have an eagerness to take shelter of the holy names and I now have a dependence on the holy names that I have never even remotely had for the last 35 years. Anarthas are still there but not as prominent as before and I can feel the purificatory process due to the holy names working very strongly.

To be honest, I find it a bit difficult to understand the intricacies of his position in the spiritual world and his travels within that realm. But I thought , “let me give him the benefit of the doubt”, the result was that the potency that I felt coming from him for chanting the holy names was so immense that I had never experienced anything like it before. As a result of chanting under his guidance, I am having more faith and eagerness to follow my guru-parampara and their line of conceptions. An urgency has arisen within me to take more seriously the processes of sadhu sanga and guru-

seva. In fact, I can say that so far, only good things have come. The truth is that my life has changed in such a wonderful way. The reason is sadhu sanga, guru seva and an increased commitment to Harinam. All I am doing is chanting the holy names? But the scriptures are full of the extraordinary effects and benefits of chanting the holy names in sadhu sanga.

Sri Anirudha prabhu is definitely not in the conventional Gaudiya Rupanuga sanyassa mode. In fact, in one sense,he is not in the traditional grhastha mode, although he is an ideal and exemplary grhastha to the highest degree. He is a living testament that everything can be attained by full dependence on Sri Hari Nama and the instructions of one's guru. He has been living in isolation with his family for the last 30 years or so, totally immersed in the holy Names. In that time. he has had very little association of travelling preachers, he has not studied vastly the Goswami literatures of the Gaudiya Vaishnava sampradaya, all he has had were the instructions of his guru, Nitya lila pravistha Om Visnupada Bhakti Dayita Madhava Goswami Maharaja and the firm conviction that Sri Hari Nama can give all perfection and that absolutely everything is contained within Sri Harinam. And Sri Harinam and his guru's mercy has made him overwhelmingly successful. Up until now he has chanted 500 crores of names(5 billion names)

A devotee with the aspiration to serve in Vraja Dham might feel uncomfortable approaching Sri Anirudha prabhu for guidance or help. His bhava is not Vraja bhava, he is from Dvaraka. In this regard, I onced asked him that I have been initiated, trained and directed towards Vraja bhava but he is a resident of Dvaraka. The scriptures state that one should have association of devotees who are more advanced than you

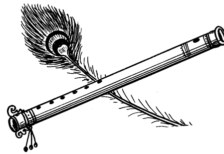
and who are in the same bhava as oneself. His reply was very simple and practical. " You just take from me what help you can along the way" Sri Anirudha is a totally practical person. If one was to think about it. If a devotee is still plagued with anarthas and by good fortune came in the association of personalities like Narada Muni, the four Kumaras, Prahlad Maharaja, Advaita Acarya, Srivas Thakura, Haridas Thakhura, etc, would that devotee be wrong to take advice and guidance from such dear associates of the Lord even though they are not Vraja bhaktas? Obviously not, such devotees can help immensely. Although I am not saying that Sri Anirudha is on the same platform as these aforementioned devotees,(who can judge?) nevertheless, the same principle applies. Ultimately, one aspiring for Vraja bhakti will have to be under the shelter of Vraja bhaktas of one"s specific bhava but along the way, one can get help from devotees situated in other bhavas. There are numerous examples of this, such as Raghunath Dasa Goswami, Sri Shyamananda prabhu, etc

As far as I can see, it does not matter what spiritual line one follows or where your desired spiritual destination is. Sri Anirudha prabhu's teachings are universally beneficial. In fact, they are the teachings of Caitanya Mahaprabhu, "Hari Nama. Hari Nama, Hari Nama eva kevalam............. There is no other way in Kali Yuga than Hari Nama. In this process he is deeply faithful, extraordinarily experienced and supremely confident. Sri Anirudha prabhu never budges an inch from total dependence on Sri Hari Nama, specifically the Maha Mantra. **Hare Krishna, Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare, Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare.** And because of his practical application of this principle, he is able to im-

part such faith onto his hearers according to their eligibility and receptivity.

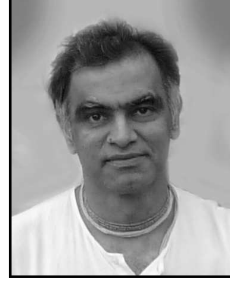
Although Sri Anirudha prabhu’s guidance may not be for everybody. we all have our individual tastes and preferences. I strongly recommend anybody that would like to take exclusive shelter of the holy names to approach, hear and possibly get instructions from Sri Anirudha prabhu. **With his instructions, one can follow one’s specific spiritual line, implement the teachings of one’s specific guru parampara and achieve perfection.** One may have to do some reconciling between one’s guru’s instructions and his, but not much. I have had experience that reconciliation is sometimes needed even between advanced Vaishnavas who are even of the same bhava. Sri Anirudha prabhu just basically tells you to chant the holy name and cry like a baby is crying for his or her mother. He says that everything is in the holy Name, no need to add anything else. (I still chant and sometimes meditate on lilas as I have been trained by my siksha guru) Even if one is in a deviant path, I am having faith that chanting under Sri Anirudha prabhu's guidance, one's position will be rectified and one will be placed in one's proper path, because ultimately, every living entity has their specific path that is inherent for them.

I have not seen the book that these words are going in, so I cannot speak about it. I can only speak of my experiences and convictions that have come from my brief association with Sri Anirudha prabhu. And I must say that I have been overwhelmed by his purity, power,sincerity and sweetness.



Humble offerings to a pure devotee of the Lord

Shri Akhilesh Das Adhikari, Australia



It was only by my great fortune that I was able to come in contact with Sri Anirudha Prabhuji in 2012.

The miraculous influence of Prabhuji in my life started even while I was in Australia, and when I met him in Radha Kunda in the kartik of 2012, my complete life became enriched.

Some devotees ask me what I get from him. All I can say in synopsis to this is that he is the embodiment of humility and full of joy. Just being near him is enough to ensure the smooth flow of my rounds. By his guidance I personally have improved my chanting tremendously. Below I give an example of his mercy.

Once I drove to Delhi from Vrindavan and back again later in the evening, on the same day. The next morning just 2 minutes before my alarm was about to go off at 3 AM, at 2:58 I switched off my alarm as I felt very exhausted and felt I would not be able to chant my rounds that day. Exactly one minute later, at 2:59 I heard my telephone ring and I saw Anirudha Prabhu calling me. He said to me, “Get up Akhileshji its time to chant”. Out of my respect for him I got up and chanted and finished all my rounds in one go that day. That was the first and last day that he has ever called me.

Many such incidents have happened between me and Anirudha prabhuji, some are very confidential and some very elaborate. I sincerely pray to My Gurudev and Thakurji to keep me in his association for this life and the next.

My Gurudev, Nitya lila pravista Bhakti Vedanta Srila Narayan Goswami Maharaj left behind a treasure house of Hari-Katha. But due to my misfortune I could not digest all of it while he was on the planet. Now Anirudha Prabhuji has come to help me in my spiritual life to understand what my Gurudev wanted to give us.

स्वप्न में दर्शन

श्री रवि कुमार, दिल्ली



मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ जो मुझे यह ग्रंथ ('इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति') और इनके लेखक पूजनीय श्री अनिरुद्ध दास महाराज जी का सानिध्य प्राप्त हुआ। मैं हरिनाम पहले से ही कर रहा था पर महाराज जी ने बताया कि इसको कान से सुनना ज़रूरी है। इसमें वैज्ञानिक रहस्य यह है कि जब हम सुनते हैं तो कान के माध्यम से यह हमारे हृदय में प्रवेश कर हमारे अंतःकरण को शुद्ध करता है। इसका परिणाम मैंने देखा कि मेरे स्वप्न बहुत सुन्दर हो गये। स्वप्न में सन्तों, मन्दिर के दर्शन और एक बार ऐसा भी देखा कि मैं हरिनाम का प्रचार कर रहा हूँ। दूसरी बात जो महाराज जी ने बताई कि हरिनाम भगवान् के सुख के लिए करना चाहिए। जैसे जीव भगवान् का नित्य दास है और दास का काम हमेशा भगवान् की सेवा करना है। ऊपर दिये गये ग्रन्थ में जो साधक के लिए सावधानियाँ बताई गई हैं इससे मुझे बहुत लाभ हुआ जो सामान्यतः कोई बताता नहीं है।

महाराज जी बहुत ही सरल स्वभाव के हैं। इनको किसी भी प्रकार का कोई लालच नहीं है। हमेशा हमें एक लाख हरिनाम के लिए प्रेरित करते हैं और अपना कीमती समय निकाल कर टेलिफोन पर भी सत्संग सुना देते हैं जो कि आध्यात्मिक पथ पर इंजेक्शन का काम करता है और हमारी जिज्ञासाओं को शान्त कर देते हैं। मैं उनके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

'आज के युग में महाराज जी जैसा संत मिलना बहुत दुर्लभ है जो स्वयं इस अवस्था में पांच लाख हरिनाम रोज़ करते हैं।'

पूर्ण गुरु, पूर्ण सन्त एवं हरिनाम की महिमा

श्री दीनानाथ दुग्गल, चण्डीगढ़



आज से लगभग 4–5 वर्ष पहले जब श्री अनिरुद्ध प्रभु जी मेरी कुटिया पर पधारे थे तो उन से वह मेरी पहली भेंट थी। वे पूरे गृहस्थी होते हुये भी उच्च कोटि के एक पूर्ण सन्त हैं। वह कई वर्षों से निरन्तर और नित्य प्रति रात को एक बजे उठकर तीन लाख हरिनाम रोज कर रहे हैं। यहाँ ही बस नहीं, कुछ समय से तो वह अब पाँच लाख हरिनाम रोज करने लग गये हैं। इनकी इस समय 85 साल की अवस्था है। इतनी बड़ी–आयु में अर्थात् इतने बुढ़ापे में भी इतना अधिक भजन करना वास्तव में ही अत्यधिक कठिन कार्य है, परन्तु जिन्हें पूर्ण गुरु मिल जायें और पूर्ण गुरु की पूर्ण कृपा प्राप्त हो जाए, उनके लिये कोई भी कठिन से कठिन कार्य अत्यन्त ही सुलभ एवं अत्यन्त ही सुगम हो जाता है।

भारतीय गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य परम पूज्य श्रीतीर्थ महाराज जी के भी गुरुदेव परम पूज्य श्रीमाधव गोस्वामी जी महाराज से श्री अनिरुद्ध प्रभु जी को दीक्षा प्राप्त हुई है। जिन्हें ऐसे पूर्ण गुरु मिले हों तथा जिन्हें ऐसी महान् विभूति की पूर्ण कृपा प्राप्त हुई हो उन पर तो प्रभु की पूर्ण कृपा का बरसना स्वाभाविक ही है।

श्री अनिरुद्ध प्रभु जी से उनके श्रीगुरु महाराज जी ने निरन्तर कई वर्षों तक नित्य प्रति आधी रात को उठा–उठा कर हरिनाम की महिमा पर अब तक 500–600 पत्र लिखवाए हैं। इन बहुमूल्य पत्रों का प्रभुजी ने तीन वर्षों तक अपने मोबाइल द्वारा प्रत्येक रविवार को गर्मी–सर्दी की परवाह न करते हुये सवेरे–सवेरे रोज प्रचार भी किया है। जिनसे अनेक साधकों को बहुत लाभ भी हुआ

है। उपर्युक्त सब बहुमूल्य पत्रों को पुस्तक का रूप देकर एक परम वैष्णव चण्डीगढ़ निवासी श्रीहरिपद दास प्रभु जी के अनथक परिश्रम से, अबतक पाँच भागों में छपवाया भी जा चुका है। इस पुस्तक का शीर्षक श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के परामर्श से '**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति**' रखा गया है।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा निरन्तर कई वर्षों तक हरिनाम की महिमा का प्रचार करने से तथा ऊपर लिखित पाँच पुस्तकों को पढ़ने का परिणाम यह हुआ है कि आज हमारे देश में अनेक साधक तथा विदेशों में कई साधक हरिनाम करने लग गये हैं। एक–एक लाख हरिनाम तो कई वैष्णव करने लग गये हैं, अपितु दो–दो, तीन–तीन लाख तक भी कुछ साधक हरिनाम करने लग गये हैं। इसे आप पूर्ण गुरु का अथवा पूर्ण सन्त का चमत्कार कहें, सब ठीक है, परन्तु मैं तो इसे पूर्ण गुरु एवं पूर्ण सन्त (श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी) दोनों का ही चमत्कार मानता हूँ। देखिये! पूर्ण गुरु की महिमा इसलिये कि वह प्रभु के गोलोक धाम में विराजते हुये भी, उन्होंने उपर्युक्त बहुमूल्य पत्र लिखवा कर अपने शिष्यों तथा साधकों का परलोक सुधारने के लिये कितना महान् कार्य किया है। इसके पश्चात् पूर्ण सन्त अर्थात् श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की महिमा इसलिये कि उन्होंने अपने श्रीगुरुमहाराज जी की आज्ञा को स्वयं अपने आचरण में लाने के पश्चात् ही हरिनाम का प्रचार किया है। तभी तो उनकी बातों पर सभी साधकों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ रहा है। अब जहाँ तक हरिनाम की महिमा का प्रश्न है 'इसकी पुष्टि के लिये तो हमारे धर्म–ग्रन्थों में एक नहीं, अनेकों ही प्रमाण मिलते हैं। और तो क्या, करोड़ों जन्मों के पापों को भस्म करने की शक्ति केवल और केवल मात्र प्रभु के नाम में ही है। श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की आज्ञा से भी जिन वैष्णवों ने हरिनाम किया है। उनमें से कुछ भक्तों के तो कठिन से कठिन रोग भी ठीक हुये हैं तथा कुछ भक्तों की अति कठिन समस्याओं का भी समाधान हुआ है। अतः मुझे भी ऐसे पूर्ण सन्त से मिलकर बहुत ही हार्दिक प्रसन्नता हुई है। इतना

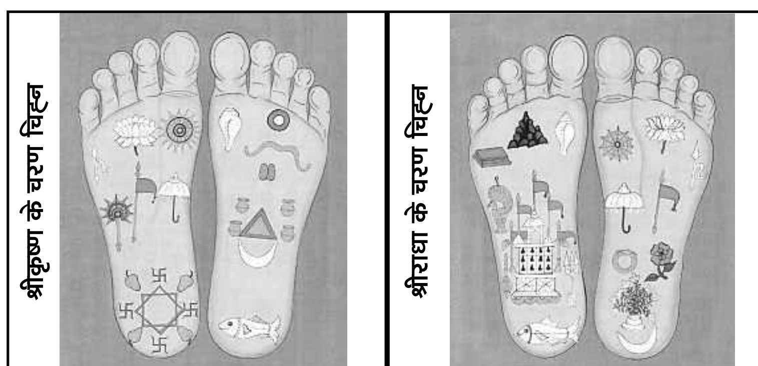
ही नहीं, उनके चरित्र से मुझे भी बहुत कुछ सीखने को मिला है।

अन्त में उन सभी वैष्णवों और भक्तों से, मेरी दो कर जोड़ अति ही विनम्रता से प्रार्थना है कि जो भी '**इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति**' नामक पुस्तक के किसी भी भाग को पढ़ने से प्रभावित होकर हरिनाम करते हैं, उन्हें केवल और केवल मात्र 'भगवद्–प्राप्ति' की ही शुभकामना रखकर हरिनाम करना चाहिये।

तब तो इसी जन्म में भी और इसी जन्म के पश्चात् भी उन्हें भगवद्प्राप्ति का होना बड़ी सुगमता से हो सकता है, परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये उन्हें सभी प्रकार की सांसारिक और पारिवारिक ऐसी सभी कामनाओं का पूर्णतया परित्याग करना पड़ेगा, जो इस मार्ग की प्राप्ति में बाधक बनती हों।

अतः सभी साधकों से मेरा भी दोनों हाथ जोड़कर अति विनम्रता से निवेदन है कि वे सब भी पूरे का पूरा मन श्रीहरि के चरण–कमलों में समर्पित करते हुये, अभी से ही हरिनाम करने में पूरी लगन और तड़प से जुट जाएँ, क्योंकि मरने के पश्चात् केवल और केवल मात्र मेरे प्रभु का अति ही प्यारा एवं अति ही प्रभावशाली नाम ही सब के साथ जाएगा और कुछ भी साथ नहीं जायेगा। अपना शरीर तक भी यहीं जलकर भस्म हो जाएगा।

सभी वैष्णवों एवं सभी प्रभु–भक्तों की चरण–रज और कृपा–दृष्टि का अति ही विनम्र भिक्षुक लेखनी को यहाँ विराम देता हूँ।



Glorification

Go-rakshak **Pundarika Vidyanidhi Dasa**
ISKCON-Goshala, Vrindavan

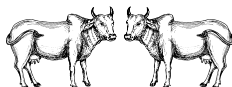


Please accept my humble obeisances. All glories to HDG Aniruddha Prabhu and all glories to all Guruvarga's.

Here by, I your humble servant is presenting a small drop out of oceanic experience with respect to the vital role of HDG Aniruddha Prabhu in my spiritual life is given below.

First of all, I offer my respectful prostrated obeisance's at the cool shade of my eternal Spiritual Master HDG Gopal Krishna Goswami Maharaj, who is always been guide and inspiration at every step of my spiritual life, who is completely absorbed in preaching the glories of holy name through the divine literatures and teachings given by his spiritual master.

When I was in search of a sadhu, who is incessantly chanting the Holy Name of Krsna and crying for Krishna day and night, surprisingly I came across Krishna's eternal associate Srimad Aniruddha Baba. Since then my heart is craving for chanting more and more holy name. Like a contagious decease, a similar miracle happened with many sincere chanters from all around the world. Only an empowered eternal associate of Krsna can inspire devotees to chant daily lakhs of Holy Name. Aniruddha Babaji quotes in his lecture that "By the processing of milk, one can get butter. This butter is the essence of the milk. Krsna tastes butter. Similarly, the essence of all scriptures and essence of teachings of all saints is the Holy Name. Holy Name is non-different from Krishna and so on …" I have presented only a small drop out of oceanic experience with respect to the vital role of my Siksha Guru Srimad Aniruddha Prabhu in my spiritual life. By the causeless mercy of Srimad Aniruddha Prabhu, your humble servant of all vaishnavas have been chanting three lakhs of holy name since 7th November 2014.


एक ही उदाहरण

दासाभास डॉ गिरिराज

एम.ए., पी-एच.डी, साहित्यरत्न, सम्पादक शिरोमणि, प्रधान सम्पादक : श्रीहरिनाम



परम श्रद्धेय, नाम-आश्रयी, नामनिष्ठ, पूज्यवर श्रीअनिरुद्धदासजी अधिकारी, वैष्णव-जगत् के एक अति दुर्लभ सन्त हैं। आप अपनी करुणा एवं श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त शक्तियों-वाक्‌सिद्धि आदि से जीव-जगत् का परम कल्याण साधित कर रहे हैं।

मुझे आपका परिचय कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था। तभी से मन में आपके दर्शन करने की अभिलाषा सुप्त रूप में थी। अचानक एक दिन आप कृपा करके श्रीधाम स्थित मेरे निवास पधारे। मैं गद्‌गद् हो गया। वैष्णवोचित दैन्य इतना कि मेरे लिये एक नवीन उदाहरण था। मैं तो इन्हें प्रणाम करने के प्रयास में ही था, लेकिन बार-बार पुनर्वार ब्रजवासी होने का वास्ता देकर मुझे प्रणाम करने ही नहीं दिया।

ऐसा एक बार नहीं, सदैव होता है। मैं एकबार श्रीराधाकुण्ड में कुछ घण्टे भी आपके साथ रहा। आपका यह दैन्य स्वाभाविक एवं सभी के साथ देखने को मिला। आपके दर्शन को अनेक वैष्णव आते हैं। सभी को श्रीनाम ग्रहण एवं नाम आश्रय का उपदेश, आग्रह आप करते हैं। आपके द्वारा बताने पर वे सारे कार्य सिद्ध भी होते हैं।

मैं भी अनेक समय से बिना संख्यापूर्वक नाम ग्रहण करता था। मैं जब पहली बार आपसे मिला तो मैंने इनसे वही मांगा जो विशेष रूप से आपके पास था। आपने कहा तुम आज-कल से एक निश्चित संख्या से नाम करो। आपकी कृपा से मैं आज तक संख्यापूर्वक नाम का आश्रय ग्रहण करता हूँ एवं नाम प्रारंभ करने से पूर्व आपका-स्मरण चिन्तन-प्रणाम करता हूँ। मैं आपसे जब इसके लिये कृतज्ञता की बात करता हूँ तो सदैव दैन्यतापूर्वक यही उत्तर होता है-आप तो ब्रजवासी हैं। वास्तव में दैन्य ही भक्ति का मापदण्ड है। जिसमें जितनी अधिक भक्ति होगी, उसमें उतना ही अधिक दैन्य होगा। मेरी प्रभु से प्रार्थना है कि आपमें श्रीनाम सदैव विराजमान रहे और आप हम सब जीवों में इसी प्रकार श्रीनाम बांटते रहें और हमारा कल्याण साधित करते रहें। मैं तो आपके श्रीचरणों में यह प्रार्थना करता हूँ कि- ऐसा दैन्य, ऐसी नाम-निष्ठा, ऐसा नाम-आश्रय मुझमें भी किंचित् उत्पन्न हो-ऐसी कृपा हो जाय तो मेरा जीवन सफल हो जाय।

आशा की किरण अब उजाले में बदलने लगी

अनुराधा देवी दासी, न्यूजीलैंड



सबसे पहले मैं अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिवेदांत नारायण गोस्वामी महाराज जी के श्रीचरणकमलों में कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ जिनकी अहैतुकी कृपा से, मुझ जैसी दीन-हीन को हरिकथा सुनने को मिली और श्रीश्रीराधाकृष्णजी के श्रीचरणकमलों में प्रेम उत्पन्न हुआ। उसके बाद मैं उन सभी वैष्णववृन्दों को प्रणाम करती हूँ जिन्होंने मुझे आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। मैं अपने शिक्षागुरु, श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भी शत-शत प्रणाम करती हूँ जिनकी कृपा से मेरा हरिनाम बढ़ता ही गया और मुझे अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली।

अप्रैल 2011 में, मैं श्रीगौरमंडल परिक्रमा पूरी करके भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करने पुरी (उड़ीसा) में गई थी तब मेरी माता जी ने मुझे श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखी दो पुस्तकें पढ़ने को दीं। ये पुस्तकें मेरी माताजी, वृन्दावन के किसी भक्त से लेकर आईं थीं और पढ़ने के बाद इन्हें वापस करना था। पुस्तकों का शीर्षक पढ़कर ही मेरे मन में उन्हें पढ़ने की जिज्ञासा प्रबल हो गई और मैंने उसी दिन काफी पृष्ठ पढ़ भी लिये। इस पुस्तक को पढ़कर मुझे बहुत आध्यात्मिक बल मिला। मुझे लगा कि श्रीनवद्वीप धाम और श्रीजगन्नाथपुरी की परिक्रमा का कई गुणा फल मुझे मिल गया। वह दिन और आज का दिन-मेरा एक लाख हरिनाम उसी दिन से शुरु हो गया। कई बार जब मैं ज्यादा व्यस्त नहीं रहती हूँ तो डेढ़लाख या दो लाख हरिनाम भी हो जाता है।

यह कलियुग का ही प्रभाव है कि जीवों का शारीरिक बल, मानसिक बल और आयु दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। खाने-पीने की चीजों में मिलावट और रासायनिक दवाईयों के छिड़काव से न पानी शुद्ध रहा और न ही हवा शुद्ध है। ऐसे समय में, जब सब और दूषित वातावरण पनप रहा है, ठाकुरजी ने हमारे उद्धार के लिये श्रीअनिरुद्ध

प्रभु जी जैसे महापुरुष को इस धराधाम पर भेजा है। जो कोई भी उनके संपर्क में आता है और उनपर श्रद्धा करता है उसकी हरिनाम में रुचि बढ़ जाती है। श्री अनिरुद्ध प्रभु जी को मिलने के बाद मुझे बहुत से अनुभव हुये हैं, उनमें से कुछेक का संक्षिप्त रूप में, मैं यहाँ वर्णन कर रही हूँ।

मेरे पति श्रीकृष्ण मिरचकर की अपनी शीट मैटल (Sheet Metal) की कंपनी है। वे बहुत व्यस्त रहते हैं पर अनिरुद्ध प्रभुजी की उन पर इतनी कृपा है कि वे हर रोज तड़के साढ़े तीन बजे (3.30AM) जाग जाते हैं और डेढ़ लाख (1,50,000) हरिनाम करते हैं। मंगल आरती, ग्रंथों का अध्ययन तथा रविवार को मठ में जाकर हरिकथा भी सुनाते हैं। यह सब श्री अनिरुद्ध प्रभुजी तथा सभी वैष्णवों की ही कृपा से हो रहा है।

इतना ही नहीं मेरी माता उर्मिला जी की आयु है सत्तर (70) वर्ष। श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी मिलने से पहले वह हर रोज एक लाख हरिनाम करती थीं। क्योंकि प्रभुजी को वाक्सिद्धि प्राप्त है, उनके आशीर्वाद से मेरी माताजी दो लाख हरिनाम प्रतिदिन करने लगीं। जब इससे भी उनकी तृप्ति नहीं हुई और उनकी हरिनाम करने की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी तो वे अनिरुद्ध प्रभु के पास आशीर्वाद लेने गईं। अब तो वे हर रोज तीन लाख हरिनाम कर रही हैं। वे मठ में रहकर हरिकथा भी सुनती हैं और कुछ सेवा के कार्य भी करती हैं। यह बेहद आश्चर्यजनक बात है।

इसीप्रकार मेरे गुरुभाई संजय प्रभुजी दिल्ली में रहते हैं। हम स्काई पे द्वारा उनसे हरिकथा सुनते रहते हैं। उन्हें भी चमत्कारिक अनुभव हुये हैं। जब वे पहली बार अनिरुद्ध प्रभुजी से मिले तो तब वे प्रतिदिन सोलह (16) माला हरिनाम की करते थे। अनिरुद्ध प्रभुजी ने उन्हें कहा कि सोलह माला करने से हरिकथा का लोगों पर प्रभाव नहीं पड़ेगा इसलिये कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करो और फिर हरिकथा करो। एकलाख हरिनाम करने वाले की हरिकथा सुनकर लोगों के हृदय में परिवर्तन होने लगेगा और वे भी हरिनाम करने लगेंगे। अनिरुद्ध प्रभुजी की कृपासे अब संजय प्रभु भी दो लाख हरिनाम हर रोज करते हैं और हरिकथा भी सुनाते हैं। अब तो उनकी हरिनाम करने की लालसा बढ़ती ही जा रही है। उन्हें श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की विशेष कृपा प्राप्त है। एक गृहस्थी होते हुये भी वे नित्यप्रति दो लाख हरिनाम भी कर रहे हैं और अपनी कंपनी भी चलाते हैं। इनके

पास हरिकथा सुनने के लिये आने वाले सभी भक्त कम से कम एक लाख हरिनाम कर रहे हैं और जो नये भक्त जुड़ते हैं उनका भी हरिनाम बढ़ जाता है।

मेरे पति के भाई लिंगराजु अपने परिवार के साथ बेंगलूर में रहते हैं। जब वे अपनी पत्नि के साथ पहली बार अनिरुद्ध प्रभु जी से मिलने गये तो उनके पैर पकड़कर फूट–फूटकर रोये। पता नहीं अनिरुद्ध प्रभु जी के दर्शन करते ही उन्हें क्या हो गया था। एक बहुत बड़ा चमत्कार हुआ। उसी दिन से वे दोनों पति–पत्नि, ब्रह्ममुहुर्त्त में उठते हैं और हरिनाम करते हैं। आज कल दोनों पति–पत्नि डेढ़–डेढ़ लाख हरिनाम कर रहे हैं। यह सब एक नामनिष्ठ संत की कृपा का प्रभाव है।

और भी बहुत से भक्त हैं जिन्होंने प्रभु जी के ग्रंथ पढ़े और उनका हरिनाम बढ़ गया, उनका जीवन ही बदल गया। ऐसे भक्त भी हैं जिन्हें अश्रु पुलकित होता है, विरह होता है जो संभव ही नहीं था। मेरी सभी भक्तों से प्रार्थना है कि वे अनिरुद्ध प्रभुजी के ग्रंथों को पढ़ें, उनका आशीर्वाद प्राप्त करें तभी उनका एक लाख हरिनाम हो सकेगा और उनकी हरिनाम में रुचि दिन–प्रतिदिन बढ़ेगी। उनके जीवन में भी आशा की किरण उजाले में बदल जायेगी और भगवत् प्राप्ति होगी।

दीपक तले अँधेरा



दीपक का प्रकाश चारों दिशाओं को प्रकाशित करके अंधकार को दूर भगा देता है परंतु दीपक के नीचे जो जगह होती है, वहाँ अंधेरा ही रहता है। यद्यपि यह स्थान दीपक के बिल्कुल साथ होता है। जिस प्रकार दीपक के नीचे अंधकार रहता है, प्रकाश नहीं होता ठीक उसी प्रकार भगवद्–भक्तों को न पहचानने के कारण, उनके अत्यन्त निकट के कुछ व्यक्ति उनसे वह ज्ञान व भक्ति प्राप्त नहीं कर पाते और उस परमानन्द से वंचित रह जाते हैं, जिस ज्ञान व भक्ति को प्राप्त करके सौभाग्यशाली जीव का अज्ञानरूपी अंधकार सदा–सदा के लिये समाप्त हो जाता है और उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

हमारा तो जीवन ही बदल गया

श्री बद्रीप्रसाद गुप्ता
श्री पूर्णसिंह शेखावत




सबसे पहले हम अपने श्रीगुरुदेव ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्-भक्तिबल्लभतीर्थ गोस्वामी महाराजजी के चरण-कमलों में कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं। उसके बाद हम अपने शिक्षागुरु श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी को दण्डवत्-प्रणाम करते हैं जिनकी कृपा से हमें परमवैष्णव श्रीगुरुदेव की प्राप्ति हुई। हम लोग तो संसार में बुरी तरह फंसे हुये थे और दुःख पा रहे थे। हमारा काम खाना-पीना, धन कमाना और सोना था। इसके बिना हमें कुछ भी पता नहीं था पर श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने हम पर कृपा कर दी। हमें जीवन के लक्ष्य के बारे में बताया, हमारा मार्ग दर्शन किया। इतना ही नहीं, उन्होंने हमें 'हरे कृष्ण' महामंत्र की महिमा बताई और अब उनकी कृपा से हम खूब हरिनाम कर लेते हैं। हमारा तो जीवन ही बदल गया। घर स्वर्ग बन गया। अब हमारे परिवार में सभी हरिनाम करते हैं। अंत में हम सभी वैष्णवों के चरणों में प्रणाम करते हैं।



इन ग्रंथों को पढ़कर और भी बहुत सारे प्रभु भक्तों ने हमें अपने अनुभव भेजे हैं पर उन सबको छापने से इस ग्रंथ का आकार और बढ़ जाता। हम सभी भक्तों की भावनाओं की कद्र करते हैं और उनके आभारी हैं। हमें इस बात की अति प्रसन्नता है कि इन ग्रंथों को पढ़कर आज हजारों भक्त हरिनाम कर रहे हैं और अपना अमूल्य समय देकर हरिनाम का प्रचार भी कर रहे हैं। ऐसे सभी संतों, आचार्यों, वैष्णवों को शत-शत नमन।

- सम्पादक



अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

इस पुस्तक के लेखक
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय

(श्री हरिपददास अधिकारी)

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे
श्रीहरिगुरु–वैष्णवप्रियमूर्ति, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 83 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्–पूर्णिमा (रास–पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी विरक्त सन्त थे, को अवलंबन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म–स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्री जय सिंह शेखावत हुये। गांव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। बड़े भाई एक कमरा किराये पर लेकर रहते। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस वक्त आपकी उम्र

लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधागोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुंदर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबंधकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों संत–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असंतुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना संभव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्द देवजी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करतालों इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊंचे, लंबे कद एवं अलौकिक सौंदर्य वाला संन्यासी कीर्तन कर रहा था। श्री श्रीराधागोविन्द जी के मंदिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहा था और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहा था। ''ये संन्यासी कौन है ? ये रो क्यों रहा है ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्तआकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति अनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे गुरुदेव! यही हैं मेरे गुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव अनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

अनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो अनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम ?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को अनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र जपकर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाड़ू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्तिसे कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुये हो गया था परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्तहों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक–एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति–अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया–रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन–काल बहुत बढ़िया, बीता। सरकारी नौकरी के साथ–साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। कर्ज ले–लेकर तीनों बच्चों को पढ़ाया। अपनी नेक–कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये श्रील गुरुदेव को भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह–सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी–

"*While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears.*"

यह नाम–संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप से

तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप ही उनके अकेले शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने Voluntary Retirement लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। परम–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गांव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गांव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहां के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतो के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढ़ाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

> **''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बांटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग– राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,**

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध दास प्रभु जी एक अनुभूति–प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों–शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिन्हों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज का संक्षिप्त परिचय

(श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज)

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्री मते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्णचैतन्य-आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिब्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा

असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप–लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृ भक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र–ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते–करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी

हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था–भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुये श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा–

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका तज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोनीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु–निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थित में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख–दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर (आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा

सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुये हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इस में किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

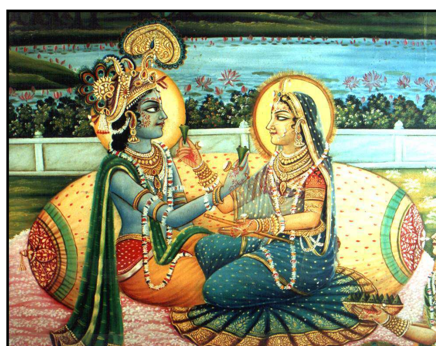
आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

–Srila Prabhupada

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो मिनट का समय लगता



है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ गोविंद ! जब मेरी मौत आवे और मेरे अंतिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और जब मैं भूल जाऊँ, तो मुझे याद करवा देना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! गोविंद! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणीमात्र में आपका ही दर्शन करूँ।''

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।



Chant ...
Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram Ram Ram Hare Hare
... and Be Happy.

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियां हैं, वे गोपियां हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ?

अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की, अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

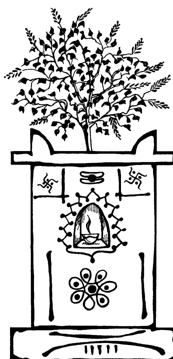
जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। इससे पहले, पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला– झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जाप के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

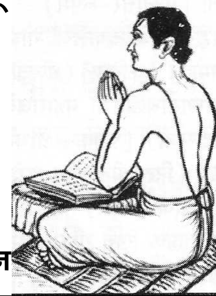
श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।



प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन



प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरुप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी।

आप कहाँ हो ?



हा गौरांग! हा गौरांग !

कहां गौरांग । कहां गौरांग ।

कहां जाऊं ?

कहां पाऊं आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप !

हे दयानिधान ! आप कहां हो ?

मैं आपको ढूंढ रहा हूँ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ।

आप कहां हो ?



कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद।

दर्शन दो स्वामी!

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो!

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

श्रील गुरुदेव प्रणति

नमः ॐ विष्णुपादाय रुपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी–नामिने।।
कृष्णाभिन्न–प्रकाश–श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म–गुरुप्रीति–प्रदर्शिन।
ईशोद्यान–प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार–सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द–सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म–स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्–भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणावरुणालय–स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु–देव–भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु–प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म–स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी–गुरुदेव को नमस्कार है।

।। जय जय श्रीनिताई-गौर ।।

॥ श्रीश्रीनिताई-गौर चालीसा ॥

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा-

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानँद गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
जन्म जन्म सुमिरन करूँ, हरि दासन कौ दास।।

चौपाई-

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2।।
मास फाल्गुन तिथी पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5।।
शिशू रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।10।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।11।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।12।।
मात पिता वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।13।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।14।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।15।।
त्रेता में श्रीराम-लक्षमन। द्वापर में बलराम-कृष्ण बन।।16।।
कलि में गौर-निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्द रूप घन।।17।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध प्रभु घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गरजन कीना। नित्यानन्द हरि वरजन कीना।।21।।
मारण हित नहिं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधू भये जगाई–मधाई। प्रभु किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप धर्‌यौ तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। वचन दिया है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उधारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रताप रुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ती वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़फत प्राण प्रिये बिन हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधी, हरीनाम का सार।।

ग्रंथकार की प्रार्थना.....

हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!



आप कहाँ हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात–दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते–करते आपके नाम की महिमा लिखते–लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ–स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके दुःखों का समुद्र उछलने लगता है। प्राण–विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसूओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद–मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों–संतों की चरण–रज का सेवन करने से, भजन–साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न–बाधा नहीं आती। यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम–संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्–प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

पृष्ठभूमि

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति के पाँचों भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग-अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

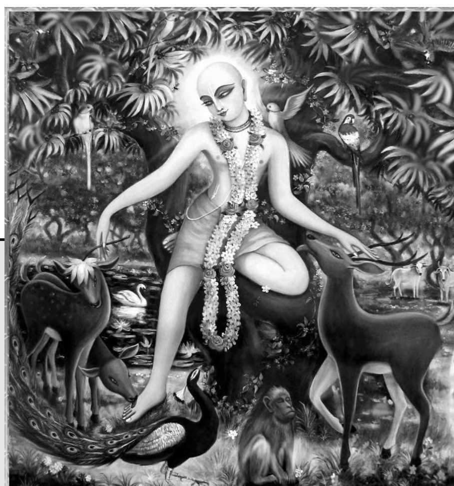
श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' का पाँचवा भाग वर्ष 2012 में छप चुके थे। अब तक हमारे पास पहले चार भाग भी समाप्त हो चुके थे।

अतः पहले व दूसरे भाग को इकट्ठा करके अप्रैल 2013 में श्रीहरिनाम प्रेस ने छापा। मेरी इच्छा थी कि तीसरा व चौथा भाग भी नवम्बर 2013 में छप जाता पर किन्हीं कारणों से यह संभव नहीं हो सका। अब तीसरा व चौथा भाग भी आपके हाथों में है। इस तरह 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के पाँचों भाग अब श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन में उपलब्ध हैं।

ये ग्रंथ अनुपम हैं क्योंकि इन ग्रंथों में मेरे श्रीगुरुदेव की वाणी का अमृत भरा पड़ा है, इन ग्रंथों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी भाषा बड़ी सहज एवं सरल है। कोई भी इन ग्रंथों को पढ़कर, इनमें बताई पद्धति द्वारा हरिनाम करके इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति कर सकता है।

– प्रकाशक



जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा-कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण-कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।

साभार : श्रीहरिनाम

आमुख

परम भागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास अधिकारी (श्री अनिरुद्ध प्रभुजी) ने अपने लेख ''अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे'' के अन्तर्गत **'श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग'** बताया है जो अति गोपनीय था पर उन्होंने सब पर कृपा करके, उस परम गोपनीय रहस्य को उजागर कर दिया है। उन्होंने स्वयं इस रस का कराकर वे आत्यन्तिकी प्रीति के भाजन हो रहे हैं। स्वयं भगवान् श्रीगौर-सुन्दर और उनके निजजन एवं श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी भी उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव एवं अखिल भारतव्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजजी ने अहैतुकी कृपा करके 'श्रीगौर पार्षद' एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत नामक अपने ग्रंथ के रूप में शुद्ध भक्ति प्रार्थी साधकों को एक महान प्रेरणादायक एवं अनमोल उपहार दिया है। इस ग्रंथरत्न में से, मैं कुछ श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस लेख में इसलिये दे रहा हूँ क्योंकि इसका श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के लेख से संबंध है। इन श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की कृपा के बिना श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होना दुर्लभ ही नहीं, असंभव है।

श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी का भजन है-

''शुद्ध भक्त चरण रेणु भजन-अनुकूल
भक्त-सेवा परमसिद्धि प्रेम लतिकार मूल।''

''शुद्ध-भक्तों की चरण रज भजन के अनुकूल है। भक्तसेवा ही सर्वोच्चसिद्धि है एवं प्रेम भक्ति लता का मूल है।''

शुद्ध भक्त–साधु भगवान् का बड़ा प्रिय होता है इसलिये भगवद्–भक्त के जीवनामृत का रसास्वादन श्रीभगवान् की कृपा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। भगवान् अपनी पूजा से अधिक अपने भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं। अपने प्यारे भक्तों का गुणगान सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। भक्तों के गुणों का गुणगान करते हुये वे अपने आपको भूल जाते हैं। जिन पर भक्तवत्सल भगवान् के प्रिय भक्तों की कृपा हो जाती है, उनके हृदय में भगवान् अति शीघ्र अपनी लीला को प्रकाशित कर देते हैं। भक्तकृपा से ही भगवद्–कृपा प्राप्त होती है।

1. श्रीगुरुदेव

श्रीगुरुदेव साक्षात् हरि स्वरूप हैं और वे हरि स्वरूप हैं भी। भक्ति–शास्त्रानुसार श्रीगुरुदेव श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त हैं। श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त होते हुये भी शास्त्रों ने श्री गुरुदेव को श्रीकृष्ण तुल्य ही कहा है। श्री कृष्ण में जैसी प्रीति करनी चाहिये, वैसी ही प्रीति श्रीगुरुदेव में करनी चाहिये, जैसे श्रीकृष्ण पूज्य हैं, श्रीगुरुदेव भी उसी प्रकार पूज्य हैं। इसलिये गुरु भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण–भक्ति करने से ही अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्णमान लेते है और श्रीकृष्ण भक्ति छोड़कर केवल श्रीगुरु भक्ति में लगे रहते हैं, वे भटके जाते हैं। उनके निस्तार में शंका है। गुरु दो प्रकार के हैं– दीक्षा गुरु तथा शिक्षा गुरु। भगवान् का भजन करने के लिये जिनसे मूल मंत्र ग्रहण किया जाये, वे दीक्षा गुरु होते हैं और जो भजन संबंधी शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा गुरु कहलाते हैं। शिक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु में कोई फर्क नहीं है। वास्तव में श्रीकृष्ण की शक्ति ही श्रीगुरुदेव के चित्त में आविर्भूत होकर शिष्य पर कृपा करती है। इसीलिये श्रीगुरुदेव का वैशिष्ट्य है।

2. श्री नृसिंह देव

श्रीमद्भागवत पुराण के सातवें स्कन्ध में भगवान् नृसिंह देव के आविर्भाव का प्रसंग मिलता है। अपने प्रिय भक्त प्रहलाद जी की रक्षा करने के लिये, वे वैशाख की शुक्ला चतुर्दशी को आविर्भूत हुये थे। श्रीनृसिंह देवजी का स्वरूप दो प्रकार का है। अभक्तों के लिये उनका उग्ररूप है और भक्तों के लिये वे वात्सल्ययुक्त हैं, स्नेहपूर्ण हैं। श्रीनृसिंहदेव जी की भक्ति, प्रतिकूल भावों का नाश करके, भक्ति को समृद्ध करती है। अनर्थयुक्त साधकों को भक्ति विघ्न विनाशन श्रीनृसिंह देव की कृपा की आवश्यकता है इसलिये सभी भक्तों की भगवान् नृसिंह देव से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही, रात को सोते समय और सुविधानुसार दिन में दो बार किसी भी वक्त इस प्रार्थना को चार–बार करना चाहिये।

1. इतो नृसिंह : परतो नृसिंहो, यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहों, नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।
2. नमस्ते नरसिंहाय प्रहलाद्–आहलाद् दायिने
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटकं नखालये।
3. वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदय संवित तं नृसिंह महं भजे।।
4. श्री नृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह
प्रह्लाद देसा जय पद्मा मुखा पद्मा भृंग।।

3. श्रीगौरहरि

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीगौरहरि हैं और वे ही कलियुग में श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से अवतीर्ण हुये हैं। कलियुग का युगधर्म हरिनाम है। उस हरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण पीले वस्त्र धारण करके, श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये। उनका शरीर परमोज्जवल सोने के समान सुंदर एवं आकर्षक है। उनकी कण्ठ ध्वनि अति मधुर हैं। उनका मुखचन्द्र भी अति सुंदर

एवं ज्योतिर्मय है। कमल के समान बड़े–बड़े एवं सुंदर उनके नेत्र हैं और उनकी भुजायें लंबी है, नासिका भी बहुत सुंदर है। अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा उठाकर जब वे 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते हैं और अपने प्रेम पूर्ण नेत्रों से जिसे देखते हैं उसी क्षण उस जीव के जन्म–जन्मान्तरों के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है और उस जीव को कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
गदाधर प्राणधन संकीर्तन बिहारी।।
जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी।।
जय शचीनन्दन गौर गुणाकर।
प्रेम पारसमणि भाव रस सागर।।

श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात महाप्रभु ही श्रीगौरहरि हैं। अपनी अहैतुकी कृपा से, अपनी सेवा के अत्यन्त उत्कृष्ट रस को हरिनाम के रूप में प्रदान करने के लिये वे अवतीर्ण हुये। जो साक्षात् कृष्ण होते हुये भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा स्वरूप में प्रकट हुये हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

4. भगवान् श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं तथा वे स्वयं भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। वे स्वयं अनादि हैं किन्तु सबके आदि हैं। वे गोविन्द हैं तथा सब कारणों के कारण हैं। वे ब्रजराज श्रीनन्दराज के पुत्र हैं। उनमें समस्त ऐश्वर्य है, समस्त शक्ति है तथा वे समस्त रसों से पूर्ण रसस्वरूप हैं। वे श्रृंगार रस की मूर्ति हैं इसलिये दूसरों की तो बात ही क्या, वे तो अपने चित्त को भी हरण करने वाले हैं।

श्रीकृष्ण चन्द्र का ऐसा अद्भुत सौंदर्य–माधुर्य है कि वे अपने आपको आलिंगन करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की चरण–सेवा ही जीव

की एकमात्र अभीष्ट वस्तु है और वह प्राप्त होती है हरिनाम करने से। हरिनाम करने में जो सुख है, वह अतुलनीय है, सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है।

5. श्रीराधा

भगवान् श्रीकृष्ण की अनंत शक्तियाँ है, श्रीराधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं। श्रीराधा के महाभाव को अंगीकार करके ही श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से प्रकट हुये हैं। श्रीराधा जी की भावमयी भक्ति में जीव का अधिकार नहीं है। जीव तटस्था शक्ति है, उसका श्रीराधाभाव की आनुगत्यमयी सेवा में ही अधिकार है। उस आनुगत्यमयी सेवा में जो सुख है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्रीराधा दयामयी हैं, कृपामयी एवं करुणामयी है।

श्रीराधाजी की कृपा प्राप्त करने के लिये जरुरी है कि उनके श्रीचरणकमलों में बैठकर उन्हें कृष्णनाम सुनाया जाये। हरे कृष्ण महामंत्र में 'हरे' का अर्थ है– 'श्रीराधा'। जब हम हरे कृष्ण महामंत्र का जप या कीर्तन करते हैं तो सबसे पहले हरे (श्रीराधा) का नाम लेते हैं। 'हरे' शब्द को सुनकर श्रीकृष्ण गद्‌गद् हो जाते हैं और 'कृष्ण' नाम सुनकर श्रीराधा कृपा करती हैं। अतः उच्चस्वर में हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन करने से श्रीराधाकृष्णजी दोनों की कृपा प्राप्त होती है।

जय जय श्रीराधे!

6. भगवान् जगन्नाथ, श्रीबलदेव एवं सुभद्राजी

भगवान् जगन्नाथ ही श्रीकृष्ण हैं एवं भगवान् बलदेव जी उनके बड़े भाई हैं। सुभद्राजी इनकी बहिन हैं। ये तीनों श्रीजगन्नाथ पुरी में, महासमुद्र के किनारे, सुवर्ण के समान सुंदर, नीलाचल के

शिखर में अपने मंदिर में विराजमान हैं। भगवान् जगन्नाथ करुणा के सागर हैं। उनका मुख निर्मल कमल के समान है, उनके नेत्र दिव्य हैं।

भगवान् जगन्नाथ, भगवान् बलदेव एवं सुभद्रा जी, जब ये तीनों विशाल रथों में बैठकर निकलते हैं तो समस्त देवी–देवता उनका स्तुति गान करते हैं। ब्राह्मण–समुदाय के द्वारा पद–पद पर उनकी स्तुति का गान होता है। भगवान् शेष जी के सिर पर अपने चरणों को स्थापित करने वाले भगवान् जगन्नाथ जी का चारु चरित्र शिवजी गाते रहते हैं। श्रीलक्ष्मीजी, शिव–ब्रह्मा, इन्द्र एवं गणेश आदि देवी–देवता उनके श्रीचरण कमलों की पूजा करते हैं। भगवान् जगन्नाथ, श्री बलदेव एवं सुभद्रा जी की कृपा से व्यक्ति सब पापों से रहित होकर, विशुद्ध चित्तवाला होकर आनन्दपूर्वक श्रीहरिनाम कर सकता है।

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतुमे।
भगवान् जगन्नाथ! मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायें।

7. श्री गौर हरि का विलाप

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।।
कहां कृष्ण प्राणनाथ मुरली वदन ?
कहां जाऊँ कहां पाऊँ ब्रजेन्द्र नन्दन ?
काहरे कहिब कथा केबा जाने मोर दुःख।
ब्रजेन्द्र नन्दन बिना फाटे मोर बुक।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने इसी महामंत्र द्वारा नाम संकीर्तन करने का उपदेश दिया है। इसी महामंत्र का रात–दिन कीर्तन करते हुये श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण–विरह सागर में निमग्न रहते थे। श्रीकृष्ण के विरह में ऐसी अद्भुत शक्ति है जो श्रीकृष्ण को भी रुलाती है, भक्त को भी रुलाती है। विरह में भक्त और भगवान् दोनों आंसू बहाते हैं।

8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर

ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः।
प्रह्लादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन्।।

ऋचीक मुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा था, वही प्रह्लाद के साथ जन्म ग्रहणकर अभी हरिदास रूप से आये हैं। एक दिन मुनि कुमार तुलसी पत्र लेने गया। उसने तुलसी पत्र तोड़े और बिना धोये ही अपने पिता को दे दिये जिससे पिता ने उसे यवनकुल में जन्म लेने का शाप दिया था। वही मुनिपुत्र परमभक्त हरिदास के रूप में प्रकट हुये थे।

श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से उनके आविर्भाव से पहले ही आविर्भूत हो चुके थे। नवद्वीप माहात्म्य में लिखा है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बछड़ों और ग्वालों का हरण करके उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। इन सभी गाय, बछड़ों तथा ग्वाल–बालों को ब्रह्माजी ने एक वर्ष तक सुमेरु पर्वत की गुफा में छुपा कर रखा था। बाद में जब उन्हें अपनी भूल का पता चला तो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में क्षमा याचना की और भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा करके ब्रह्माजी को अपना स्वरूप दिखाया था। वही नंदनंदन श्रीकृष्ण जी गौरांग रूप में उत्तीर्ण हुये थे।

नवद्वीप धाम के अन्तर्गत, अन्तर्द्वीप में बैठ, ब्रह्माजी इस बात की चिन्ता कर रहे थे कि जो भूल उन्होंने श्रीकृष्ण के समय की थी, वही गौरावतार में दुबारा न हो जाये। ब्रह्माजी के मन की व्यथा भगवान् श्रीकृष्ण जान गये और उन्होंने गौरांगरूप में ब्रह्माजी को दर्शन दिया और कहा–''गौरांग अवतार के समय तुम यवन कुल में आविर्भूत होकर हरिदास ठाकुर के रूप में नाम–माहात्म्य का प्रचार करके, जीवों का कल्याण करोगे।''

इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ही हरिदास ठाकुर के रूप में अवतीर्ण हुये और नाम–महिमा का प्रचार किया। ''हरिनाम–चिंतामणि'' नामक ग्रंथ में इसका वर्णन है।

श्रील हरिदास ठाकुरजी का चरित्र अद्‌भुत है। जो प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम लेते हैं, जिनके गुण अनंत है, श्रीअद्वैताचार्यजी जिनको श्राद्ध का भोजन करायें, जिनके गुण समूह प्रह्लाद के समान है, यवनों द्वारा पीटने पर जिनका बाल भी बांका नहीं हुआ, उन हरिदासजी महिमा कहने की सामर्थ्य किसमें है ?

श्रील हरिदास ठाकुर निर्जन स्थानों में कुटिया में रहा करते थे। प्रतिदिन तुलसी सेवा और तीन लाख हरिनाम करते। ब्राह्मणों के घरों पर जाकर भिक्षा करते थे। उनकी कृपा से एक वेश्या प्रसिद्ध वैष्णवी–परम महान्ती हो गई। बड़े–बड़े वैष्णव भी उनके दर्शन करने आते थे।

श्रीहरिदास ठाकुरजी के दर्शन से ही अनादिकाल के कर्म–बंधन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। उनका संग ब्रह्माजी–शिवजी को भी वांछनीय है और गंगा मैया भी उनके स्पर्श की कामना करती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वयं अपने मुख से श्रीहरिदासजी की महिमा का कीर्तन किया है। महाप्रभुजी नित्यप्रति उनको मिलने आते थे। उनके शरीर त्यागने पर महाप्रभु जी ने उनकी देह को अपनी गोद में उठाकर, महानन्द के साथ नृत्य किया था।

श्री महाप्रभु जी के अवतार का प्रयोजन है– श्रीहरिनाम–प्रचार। उन्होंने श्री हरिनाम–प्रचार का अपना काम श्रीहरिदास जी के द्वारा करवाया। श्रीहरिदास ठाकुर जी ने श्रीहरिनाम का आचरण एवं प्रचार दोनों कार्य किये अतः वे सबके गुरु हैं तथा समस्त जगत् के पूज्य हैं।

मैं, नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी को मैं प्रणाम करता हूँ एवं उनके प्रभु श्रीचैतन्य देव को नमस्कार करता हूँ।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की जय।

9. श्रीषड् गोस्वामी

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ।।
एइ छय गोसाञिर करि चरण-वंदन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट पूरण।।
एइ छय गोसाञि यबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश।।

श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी इन छः गोस्वामियों की जय हो। मैं इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करता हूँ। इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करने से सभी विघ्नों का नाश हो जाता है तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। इन छः गोस्वामियों ने ब्रज में वास किया और श्रीश्रीराधा–कृष्णजी की नित्यलीलाओं को प्रकाशित किया।

वन्दे रूप–सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव–गोपालकौ।।

मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ तथा उनका संक्षिप्त परिचय देकर उनके चरण कमलों में कृपा–प्रार्थना करता हूँ।

10. श्री रूप गोस्वामी

श्रीधाम वृन्दावन के षड्–गोस्वामियों में और गौरलीला में, श्रीरुपगोस्वामी जी प्रधान हैं। श्रीमती राधारानी की अनुगता मंजरियों में प्रधान हैं– श्रीरूप मंजरी। पूर्वकाल में, वृन्दावन की लीला में श्रीरूप मंजरी के नाम से जो प्रसिद्ध थीं, गौर लीला में वही रूप गोस्वामी के रूप में प्रकट हुये थे।

रामकेलि ग्राम में श्रीकेलि कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के नीचे श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का पहला मिलन हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से रूप–सनातन के हृदय में तीव्र वैराग्य पैदा हो गया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी के माध्यम से वृन्दावन की रसक्रीड़ा के संबंध में और ब्रज–प्रेम प्राप्ति के साधन विषय की शिक्षा प्रदान की है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' नामक ग्रंथ लिखने के लिये श्रीमन्महाप्रभुजी का प्रत्यक्ष निर्देश उन्हें प्रयाग में प्राप्त हुआ था। उन्होंने 'ललितमाधव' और 'विदग्ध माधव' के प्रचार अंक के मंगलाचरण में लिखे दो श्लोकों को सुनकर श्रीराय रामानंद जी ने अपने हजार मुखों से उनकी प्रशंसा की थी।

एत शुनि राय कहे प्रभुर चरणे।
रुपेर कवित्व प्रशंसि सहस्त्रवदने।।
श्रीनरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं–
श्री रूप मंजरी पद, सेई मोर संपद,
सेई मोर भजन–पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आमरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।

''श्रीरूप मंजरी के चरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन–पूजन हैं। वे ही मेरे प्राण धन हैं, वे ही मेरे आमरण हैं। वे ही मेरे जीवन के जीवन हैं।''

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीरूपगोस्वामी जी के चरण कमलों की धूलि को अपना सर्वस्व माना है। वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर के पीछे श्रीरूप गोस्वामीजी का मूल समाधि मंदिर और भजन कुटीर है।

11. श्री सनातन गोस्वामी

जो श्रीकृष्णलीला में, रूप मंजरी की प्रिय रतिमंजरी अथवा लवंग मंजरी थीं, गौर लीला में वही श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अभिन्न तनु श्री सनातन गोस्वामी जी के रूप में अवतरित हुये थे। छोटी उम्र में ही उनका श्रीमद्भागवत शास्त्र में अनुराग था। उनके श्रीगुरुदेव का नाम था– श्रीविद्या वाचस्पति जी।

श्रीसनातन गोस्वामी जी श्रीभक्तिसिद्धान्त के आचार्य तथा संबंध ज्ञान के दाता हैं। उन्होंने जगत्वासियों को जो शिक्षा दी, उसका परमयत्न के साथ चिंतन व पालन करने के लिये श्रील प्रभुपाद जी उपदेश है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीसनातन के प्रति खुश होकर, उनमें शक्ति का संचार किया था। शुद्ध–भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना तथा वैष्णव सदाचार के लिये उन्होंने चार ग्रंथों की रचना की। उन्होंने ब्रजमंडल में लुप्त हो चुके तीर्थों का उद्धार किया और वृन्दावन में श्रीराधामदनमोहन जी के श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश किया। गोकुल महावन में उन्होंने दूसरे गोप बालकों के साथ मदनगोपालजी को क्रीड़ा करते हुये देखा था।

श्रीसनातन गोस्वामी जब गोवर्धन में थे तो अयाचित भाव से प्रतिदिन गिरिराज जी की परिक्रमा करते थे। एक दिन गोपीनाथ जी ने गोपबालक के रूप में उनको दर्शन दिया और श्रीकृष्ण के चरणों से चिन्हित एक शिला देकर कहा–'अब आप बूढ़े हो गये हो। क्यों इतना परिश्रम करते हो? लो! यह गोवर्धन शिला ले लो, इसकी परिक्रमा करने से ही आपकी गिरिराज जी की परिक्रमा हो जाया करेगी।' इतना कहकर वह गोप बालक अन्तर्धान हो गया।

गोप बालक को न देखकर सनातन गोस्वामी जी रोने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी जी द्वारा सेवित वही गोवर्धन शिला आजकल वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर में विराजमान है और भक्तलोग उस शिला का दर्शन करते हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी जी ने नन्दग्राम के पावन सरोवर के तट पर स्थित कुटिया में रहकर भजन किया था वहां भी एक गोपबालक के रूप में उन्हें श्रीकृष्ण ने दूध दिया था। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा श्रीसनातन को खीर का भोजन करवाने की इच्छा करने पर, श्रीमती राधारानी ने एक गोपबालिका के वेष में खीर की सामग्री घी, दूध, चावल व चीनी आदि लाकर दी थी।

पुराने श्रीराधा मदनमोहन मंदिर के पिछवाड़े में श्रीसनातन गोस्वामी जी का समाधि मंदिर है।

12. श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी

''रघुनाथारव्यको भट्टः पुरा या रागमंजरी।
कृत श्रीराधिका-कुण्डकुटीर वसतिः स तु।।''

(गौर गणोद्देश दीपिका)

''श्रीकृष्णलीला में जो रागमंजरी हैं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की लीला की पुष्टि के लिये वे ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के रूप में प्रकटित हुई है।''

श्रीमन् महाप्रभु जी जिस समय बंगला देश में गये थे, उसी समय रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी के पिता श्रीतपन मिश्रजी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था।

श्रीरघुनाथभट्टजी लगभग 28 वर्ष तक घर में रहे। फिर समस्त सांसारिक कार्य परित्याग करके श्रीमन्महाप्रभु से मिलने नीलाचल धाम में चले गये थे। नीलाचल पहुँचकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुजी के दर्शन किये। आठ महीने तक वे नीलाचल में रहे। आठ महीने के

बाद महाप्रभु जी ने उन्हें काशी जाकर वृद्ध वैष्णव माता–पिता की सेवा करने का आदेश दिया और विवाह कराने से मना कर दिया। महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर उनका आलिंगन किया और अपने गले की माला उनके गले में डालकर, फिर नीलाचल आने को कहा।

जब तक रघुनाथ भट्ट जी के माता–पिता प्रकट थे तब तक उन्होंने उनकी खूब सेवा की। उसके बाद वे पुनः नीलाचल में आकर श्रीमन् महाप्रभुजी के पास रहने लगे। वे रसोई बनाने में अत्यन्त निपुण थे। श्रीमन् महाप्रभु जी अपने भक्त द्वारा प्रेम से दिये, अमृत के समान पकाये व्यंजनादि का भोजन करके परम तृप्ति का अनुभव करते थे। तब रघुनाथ भट्टजी को भी महाप्रभु जी का उच्छिष्ट प्रसाद पाने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

आठ महीने पुरी में वास करने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें वृन्दावन में जाकर श्रीरूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी के आश्रय में रहकर नित्य भागवत पाठ और कृष्णनाम करने को कहा। श्रीमन् महाप्रभु जी का प्रेमालिंगन प्राप्त करके और उनके हाथों से भगवान् जगन्नाथ जी की चौदह हाथ लम्बी तुलसी माला एवं प्रसादी पान बीड़ा पाकर श्रीरघुनाथ भट्ट जी प्रेमोन्मत्त होकर गिर पड़े।

श्रीरघुनाथ भट्ट जी का अपूर्व कण्ठस्वर था जब वे समधुर कण्ठ से एक–एक श्लोक का पाठ करते तो भक्तगण उनके प्रति परम आकृष्ट हो उठते थे। श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रंथ में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी की गुण महिमा का वर्णन हुआ है।

13. श्री जीव गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो विलास मंजरी हैं, वे ही गौरलीला की उपशाखा रूप से श्रीजीव गोस्वामी रूप में आविर्भूत हुई हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी की इच्छा से जीव गोस्वामी जी के हृदय में तीव्र वैराग्य

उत्पन्न हो गया था। नाना रत्नों से जड़ित सुखमय सुंदर वस्त्र, आरामदायक बिस्तर, नाना की प्रकार भोजन सामग्री इत्यादि इन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और राज्य आदि की चर्चा तो ये बिल्कुल भी नहीं सुनते थे।

जब श्रीजीव गोस्वामीजी ने स्वप्न में संकीर्तन के मध्य नृत्य अवस्था में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के दर्शन किये तो वे प्रेम में व्याकुल हो उठे। जब इन्होंने भक्त वात्सल्य में व्याकुल, भक्तों के प्राणप्रिय, श्रीनित्यानंद प्रभु के दर्शन किये तो नित्यानंद जी ने अपने पावन चरण कमलों को इनके माथे पर रखा। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु ने उन्हें उठाया और दृढ़ प्रेमालिंगन प्रदान करके अतिशय कृपा की और उन्हें शीघ्र ही व्रज में जाने को कहा।

श्रीमन् नित्यानंद प्रभु की कृपा से इन्होंने नवद्वीप धाम का दर्शन किया। फिर वे काशी चले गये। उसके बाद वृन्दावन जाकर श्रीरूप–सनातन गोस्वामी जी का चरणाश्रय ग्रहण किया। भक्ति रत्नाकर ग्रंथ में जीव गोस्वामी जी के पच्चीस ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। श्रीश्रीराधादामोदरजी के विग्रह जिनकी श्रीजीव गोस्वामी सेवा करते थे, आज भी वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मंदिर में विराजमान हैं। मंदिर के पीछे श्रीजीव गोस्वामी जी का समाधि स्थान है। श्रीराधाकुण्ड के किनारे तथा श्रीललिताकुण्ड के पास इनकी भजन कुटी आज भी है।

14. श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी

श्रीकृष्ण लीला में जो अनंग मंजरी हैं, गौर लीला में वे ही श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के रूप में अवतरित हुई है। श्रीकृष्ण लीला के पार्षद होने के कारण, श्रीगोपाल भट्टजी को यह ज्ञान हो गया था कि नंदनंदन श्रीकृष्ण ही शचीनंदन गौरहरि के रूप में अवतरित हुये हैं। जब वे छोटी आयु के थे तभी उन्हें महाप्रभु जी के चरण कमलों की साक्षात् सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीकृष्ण चैतन्य

महाप्रभु जी की कृपा से उनका सारा परिवार श्रीश्रीराधा कृष्ण जी की सेवा में लग गया था।

श्रीगोपाल भट्ट जी ने अपने चाचा त्रिदण्डि यति श्रीमान् प्रबोधानन्द सरस्वती पाद से दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रीरूप गोस्वामीजी ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को अपने प्राणों के समान प्रिय मानकर, उन्हें श्री राधारमणजी की सेवा में नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी छः गोस्वामियों में से एक बन गये थे। वे अपने आप को बहुत दीन मानते थे। श्रीनिवासाचार्य जी इनके शिष्य थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपालभट्ट जी का स्नेह देखकर ही उनको अपनी डोर कौपीन तथा काली लकड़ी का आसन भेजा था। आज भी वृन्दावन के श्रीराधारमण मंदिर में उस डोर, कौपीन और आसन की पूजा होती है। श्रीराधारमण मंदिर के पीछे उनका समाधि मंदिर है।

15. श्री रघुनाथ दास गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो रसमंजरी हैं, श्रीगौर लीला में वे ही श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई हैं। श्रीरघुनाथ दासजी ने बचपन में ही हरिदास ठाकुर के दर्शन किये थे और श्रीहरिदास जी ने भी उन पर कृपा की थी। उसी कृपा के प्रभाव से उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की प्राप्ति हुई थी। जिस समय महाप्रभु जी संन्यास लेकर शान्तिपुर में आये थे, उस समय श्रीरघुनाथ दासजी को उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का पहला अवसर मिला था। महाप्रभु जी के दर्शन करके, उनके चरणों में लेटकर श्रीरघुनाथजी भावविभोर हो गये थे और जब महाप्रभुजी शान्तिपुर से नीलाचल चले गये तो महाप्रभु के विरह में प्रेमोन्मत्त होकर रघुनाथ दासजी जोर–जोर से रोने लगे थे। पुत्र को व्याकुल देखकर, पिता ने चिन्तित होकर, रघुनाथ जी को महाप्रभु के पास भेज दिया। महाप्रभु का दर्शन करके मानो रघुनाथ जी को दुबारा प्राण मिल गये और

उन्होंने महाप्रभु जी से अपने दुःखों की बात कही और संसार से मुक्ति कैसे होगी ? यह जिज्ञासा की। महाप्रभु ने उन्हें समझाते हुये वापस घर चले जाने को कहा। श्रीमन्महाप्रभुजी के उपदेशों के अनुसार रघुनाथ दासजी घर वापस आ गये और युक्त वैराग्य का सहारा लेकर अंदर से वैराग्य और बाहर से विषयी की भांति रहने लगे।

उनके पिता ने कुछ समय बाद रघुनाथ दास को संसार में बाँधने के लिये उनका विवाह कर दिया। एक साल बीतने पर श्रीरघुनाथ दासजी फिर महाप्रभु जी से मिलने के लिये घर से भाग गये।

श्रील रघुनाथदासजी का वैराग्य मानो पत्थर पर लकीर हो। उनके साढ़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घंटे) कृष्ण–कीर्तन व स्मरण में बीतते थे। आहार और निद्रा आदि के लिये केवल चारदण्ड (डेढ़ घण्टा) का समय ही रखते थे। वे केवल प्राणरक्षा के लिये ही भोजन करते थे और परिधान में केवल एक फटी गुदड़ी ही रखते थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'स्तवावली' के 'चैतन्यकल्पवृक्ष स्तव' में श्रीमन्महाप्रभु जी की करुणा का सजीव वर्णन किया है।

श्रीस्वरूप दामोदर जी के आनुगत्य में रहकर, श्रीरघुनाथ दासजी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तरंग सेवा की थी। श्रीमन्महाप्रभुजी और स्वरूप दामोदर जी के इहलीला संवरण करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी एवं श्रीराधाकृष्ण के विरह में, उन्होंने अन्न और जल त्याग दिया था। वे केवल मात्र थोड़ी सी छाछ पीते थे। वे हजार दण्डवत्, एक लाख हरिनाम, रात–दिन राधाकृष्ण की अष्टकालीन सेवा, महाप्रभुजी का चरित्र–कथन तथा तीनों संन्ध्याओं में राधाकुण्ड में स्नान आदि करके साढ़े सात प्रहर बिताते थे। राधाकुण्ड पर राधारानी का नित्य सानिध्य प्राप्त करके भी, वे थोड़े समय का विरह भी सहन नहीं कर पाते थे। राधाकुण्ड पर ही श्रीदास गोस्वामी जी ने अन्तर्धान लीला की। वहीं पर उनका समाधि मंदिर है।



जिनकी प्रेरणा से, मेरे हृदय में वृन्दावन के इन छः गोस्वामियों का गुणगान करने की शक्ति मुझे प्राप्त हुई, उन श्रीचैतन्य देव श्रीगौरहरि के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ।

संख्यापूर्वक नामगाननतिभिः कालावसानी कृतौ।
निद्राहार-विहारकादि-विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ।।
राधाकृष्ण गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ।
वन्दे रूप सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ।।

''जो अपने समय को संख्यापूर्वक नाम-जप, नाम संकीर्तन एवं संख्यापूर्वक प्रणाम् आदि के द्वारा व्यतीत करते थे, जिन्होंने निद्रा-आहार-विहार आदि पर विजय प्राप्त कर ली थी एवं जो अपने को अत्यन्त दीन मानते थे तथा श्रीश्रीराधाकृष्ण जी के गुणों की स्मृति से प्राप्त माधुर्यमय आनन्द के द्वारा विमुग्ध रहते थे। मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ। मैं उनकी कृपा प्राप्त करने की कामना करता हूँ।

षड् गोस्वामिपाद जी की जय!!

16. श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद

श्रील माधवेन्द्रपुरी पाद जी श्री, ब्रह्म, रुद्र व सनक – इन चारों भुवन-पावन-वैष्णव सम्प्रदायों में से ब्रह्म-सम्प्रदाय के अन्तर्गत गुरु हैं। इन्हीं के अनुशिष्य श्रीचैतन्य देव जी हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादजी का प्रेममय कलेवर था और उनके संगी साथी भी प्रेम में मत्त रहते थे।

कृष्ण रसास्वादन के बिना उनका दूसरा कुछ भी आहार नहीं था। जिनके शिष्य स्वयं अद्वैताचार्य प्रभुजी हों, उनके प्रेम की बड़ाई कौन कर सकता है!

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद भक्तिरस के आदि सूत्रधार हैं- ये बात श्री गौरचन्द्र जी ने बार-बार कही है।

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय।
यार नाम स्मरणे सकल सिद्धि हय।।

(भक्तिरत्नाकर)

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति के रस स्वरूप हैं जिनके स्मरण मात्र से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। माधवेन्द्रपुरी जी नित्यानंद जी को अपना बंधु समझते थे और नित्यानंद जी माधवेन्द्र जी के प्रति गुरुबुद्धि रखते थे। जब नित्यानंद जी ने माधवेन्द्रपुरी जी को देखा था उसी क्षण वे प्रेम में मूर्छित हो गये थे और माधवेन्द्रजी भी नित्यानंद जी को देखकर अपने आपको भूलकर मूर्छित होकर भूमि पर गिर गये थे। माधवेन्द्रपुरीजी ने नित्यानंद को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वे उन्हें कुछ कहना चाहते थे पर प्रेम के कारण गला रुंध गया था। इन दोनों के परस्पर मिलने पर जिस प्रेम का प्रकाश हुआ, वह वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब बालेश्वर रेमुणा में पधारे तो वहां क्षीरचोर गोपीनाथजी के दर्शन करके प्रेमोन्माद में डूब गये थे। अपने श्रीगुरुदेव, श्रीईश्वरपुरीपादजी से उन्होंने श्रील माधवेन्द्रपुरी पादजी के बारे में सुना था कि श्रीगोपीनाथ जी ने कैसे उनके लिये क्षीर चोरी की थी।

एक दिन गिरिराज गोवर्धन की परिक्रमा करके व श्रीगोविंदकुण्ड में स्नान करके, माधवेन्द्रपुरी जी एक वृक्ष के नीचे बैठकर सन्ध्या कर रहे थे कि तभी एक बालक दूध का बर्तन लेकर उनके पास आया और मुस्कराते हुये बोला–''तुम क्या चिंता कर रहे हो ? मांग कर क्यों नहीं खाते ? लो, मैं यह दूध लाया हूँ, पीलो।''

बालक का अद्भुत सौंदर्य देखकर माधवेन्द्रपुरीजी हैरान रह गये और बालक से पूछने लगे–

''तुम कौन हो ? कहां रहते हो ? मैं भूखा हूँ, ये तुम्हें कैसे पता चला ?''

''मैं गोप हूँ। इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई भी भूखा नहीं रहता। कोई मांग कर खा लेता है। जो मांगकर नहीं खाता उसे 'मैं' देता हूँ। अब मेरा गो–दोहन का समय हो गया है और मुझे जल्दी जाना होगा। मैं बाद में आकर दूध का बर्तन ले जाऊँगा–'' इतना कहकर बालक चला गया।

उसी रात माधवेन्द्रपुरी जी ने एक स्वप्न देखा कि वही बालक उनका हाथ पकड़कर एक कुँज में ले गया और कहने लगा– ''मैं इस कुँज में रहता हूँ। मैं यहाँ सर्दी, गर्मी व वर्षा में बहुत दुःख पा रहा हूँ। गाँव के लोगों से मिलकर, पर्वत के ऊपर एक मठ स्थापन करके मुझे वहाँ स्थापित करो और बहुत सारा जल लाकर मेरे अंगों का मार्जन करवाओ। मैं तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा एवं सभी को दर्शन देकर संसार का उद्धार करूँगा। मेरा नाम है **'गोवर्धनधारी गोपाल'**। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र व अनिरुद्ध के पुत्र ने मुझे यहाँ स्थापित किया था। मलेच्छों के डर से, मेरे सेवक, मुझे इस कुंज में रखकर भाग गये थे, तभी से मैं यहाँ हूँ। आप आये हैं, बहुत अच्छा हुआ आप मेरा उद्धार करो।''

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी का स्वप्न भंग हुआ और उस बालक की आज्ञा पालन करने के लिये उन्होंने गाँव के लोगों को इक्ठा किया और स्वप्न की बात बताई। गाँव के लोगों ने परमोल्लास के साथ घास, मिट्टी हटाई तो देखा–महाभारी ठाकुरजी का विग्रह! श्रीमूर्ति प्रकट हुई। महाभिषेक हुआ। बहुत दिनों से भूखे गोपाल जी ने सारी भोग सामग्री ग्रहण की। गाँवों के गाँव गोपालजी के दर्शन करने आते। एक मंदिर भी बन गया, दस हजार गौएँ भी हो गईं। एक दिन गोपालजी ने माधवेन्द्रपुरी जी को स्वप्न में कहा कि उनके अंगों की गर्मी अभी नहीं गयी है इसलिये मलयज चन्दन लाओ और लेप करो। गोपाल जी की आज्ञा पाकर वे चन्दन लेने के लिये पूर्व देश की ओर चल दिये। रास्ते में रेमुणा में गोपीनाथ जी का अपूर्व दर्शन करके वे प्रेम–विह्वल हो उठे। ठीक उसी समय 'अमृतकेलि' खीर का भोग ठाकुर जी को निवेदन किया गया।

आरती करके वे मंदिर से बाहर चले गये और एकांत में बैठकर हरिनाम करने लगे। उनके मन में विचार आया कि यदि थोड़ा खीर प्रसाद मिल जाता तो मैं भी उसका रसास्वादन करता। ठाकुर गोपीनाथ उनके मन की इच्छा जान गये।

जब पुजारी मंदिर बंद करके सो गया तो ठाकुरजी ने स्वप्न में उससे कहा कि मैंने माधवेन्द्रपुरी सन्यासी के लिये एक पात्र खीर रखी हुई है जोकि मेरे आंचल के कपड़े से ढकी हुई है। शीघ्र वह खीर ले जाकर उसे दे दो।

पुजारी ने श्रील माधवेन्द्रपुरी जी को खीर दी, दण्डवत् प्रणाम किया और अपना स्वप्न सुनाया। माधवेन्द्रपुरी जी ने खीर प्रसाद का सम्मान किया और रात्रि समाप्त होते ही प्रतिष्ठा के भय से नीलाचल की ओर प्रस्थान किया। नीलाचल में पहुँचकर जगन्नाथ जी के दर्शन करके वे प्रेमाविष्ट हो उठे। चन्दन लेकर दुबारा रेमुणा में आकर रुके। उसी रात फिर गोपालजी ने स्वप्न में आदेश दिया।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी जगद्गुरु थे। वे अपने शिष्य श्रीईश्वरपुरीजी की सेवा से बहुत प्रसन्न थे और ईश्वरपुरीपादजी को कृष्ण प्रेम दान कर निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुये वे अन्तर्धान हो गये।

अयि दीनदयार्द्रनाथ!
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।।
हृदयं त्वदलोककातरं।
दयितं भ्राम्यति किं करोम्यहम्।। (पद्यावली)

''ओहे दीनदयार्द्र नाथ! ओहे मथुरानाथ! मैं कब आपका दर्शन करूँगा। आपके दर्शन के बिना मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित, मैं अब क्या करूँ ?

इस श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमोन्मत्त हो गये थे तथा नित्यानंद जी ने उन्हें गोद में बिठा लिया था।

ऐसी थी श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादजी की अलौकिक प्रेम-पराकाष्ठा।

पतित पावन, परमाराध्य श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के श्रीपादपद्मों में अनंतकोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

17. श्री ईश्वरपुरी पाद

श्रीईश्वरपुरीपाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद के शिष्य थे। श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद भक्ति रस के आदि सूत्रधार हैं, ऐसा श्रीगौरचन्द्रजी ने बार–बार कहा है। यद्यपि श्रीगौरचन्द्र (श्रीचैतन्य महाप्रभु) स्वयं भगवान् हैं, फिर भी सद्गुरु चरणाश्रय की शिक्षा देने के लिये उन्होंने श्री ईश्वरपुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहण करने की लीला की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी का श्रीकृष्ण–प्रेम प्रकाशित हुआ। श्रीईश्वरपुरीपाद ने जब नवद्वीप में शुभ पदार्पण किया था तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने हाथों से रसोई बनाकर व अपने हाथों से परिवेषण करके, गुरु–सेवा का सर्वोत्तम आदर्श स्थापन किया था।

एकबार श्रीईश्वरपुरीपादजी ने स्वरचित 'श्रीकृष्ण लीलामृत' ग्रंथ की भूल–चूक देखने के लिये निमाई (श्रीगौरहरि) को कहा तो गौरहरि ने कहा–''एक तो भक्त वाक्य फिर उसमें भी श्रीकृष्ण का वर्णन इसमें जो दोष देखेगा, वह पापी ही होगा। इसमें अर्थात् भक्त के लेख में जो दोष देखता है वह दोष स्वयं देखने वाले में होता है। भक्त के वर्णन मात्र से ही कृष्ण का संतोष होता है। इसलिये आपका जो ये प्रेम–वर्णन है इसमें दोष देखने का साहस कौन कर सकता है?''

श्रीईश्वरपुरीपाद जी ने अपने मन, वाणी तथा शरीर द्वारा अपने श्रीलगुरुदेवजी की सेवा करके एवं हर समय कृष्ण नाम व कृष्ण लीलाऐं सुना–सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था।

श्रीईश्वरपुरीपादजी ने अप्रकट होने से पहले अपने दो शिष्यों– काशीश्वर तथा गोविन्द को श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा के लिये

निर्देश किया। ''श्रीगुरुजी की आज्ञा अवश्य पालनीय है'' इस विचार से श्रीमन्महाप्रभु जी ने उन दोनों को सेवक रूप में ग्रहण किया था।

श्री ईश्वरपुरीपादजी मुझ अधम पर कृपा करें ताकि मेरी हरिनाम में रुचि नित्य–निरंतर बढ़ती रहे। उनके श्रीचरणकमलों में शत–शत नमन।

18. देवर्षि नारद जी

देवर्षि नारद जी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और भक्त शिरोमणि हैं। वे सभी गोपनीय रहस्यों को जानने वाले हैं। वे वीणा बजाते हुये और 'नारायण' 'नारायण' नाम का मधुर स्वर में कीर्तन करते हुये तीनों लोकों में स्वछन्द विचरण करते रहते हैं। देवर्षि नारद इसलिये भी धन्य हैं क्योंकि वे शार्ङ्गपाणि भगवान् की कीर्ति का गान करके स्वयं तो आनन्दमग्न रहते हैं और इस जगत् के प्राणियों को भी आनन्दित करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी का दर्शन सभी पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है। जब किसी मनुष्य का भाग्य उदय होता है, तभी उसे नारदजी के दर्शन होते हैं। हरिनाम में हमारी रुचि बढ़े और हमारा हरिनाम तैलधारावत् चलता रहे, इसलिये देवर्षि नारद से प्रार्थना करनी चाहिये।

''देवर्षे! मैं अति दीन हूँ और आप स्वभाव से ही दयालु हैं। इसलिये मुझपर अवश्य कृपा करो। हे करुणानिधान! मैं संसार सागर में डूबा हुआ और बहुत अधम हूँ। आप इस संसार सागर से मेरा उद्धार कीजिये। मैं आपकी शरण लेता हूँ।''

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि।।

'देवर्षे! आपका केवल एकबार का उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रहलाद ने माया पर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुव ने

भी आपकी कृपा से ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमंगलमय और साक्षात् ब्रह्मा जी के पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

19. श्री सनकादिक जी

भगवान् ने कौमार सर्ग में सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ये चारों भाई बड़े योगी, बुद्धिमान और विद्वान् हैं। देखने में तो पाँच–पाँच वर्ष के बालक से जान पड़ते हैं किन्तु हैं पूर्वजों के भी पूर्वज। ये सदा वैकुण्ठ धाम में निवास करते हैं। ये निरंतर हरि कीर्तन में तत्पर रहते हैं। एकमात्र भगवान् का नाम ही इनके जीवन का आधार है। 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) – यह वाक्य सदा उनके मुख में रहता है।

20. श्री ब्रह्मा जी

ब्रह्मा जी को 'स्वयंभू' भी कहते हैं। तीनों लोकों के परमगुरु आदिदेव ब्रह्मा जी का जन्म भगवान् की नाभि से हुआ है। गर्भोदशायी के नाभिकमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्माजी व्यष्टि जीवों की सृष्टि करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं उन्होंने अपने तत्त्व का ज्ञान सबसे पहले, सृष्टि के प्रथम जीव, चतुर्मुख ब्रह्माजी को ही दिया था।

21. श्री शिव जी

शिवजी परम वैष्णव हैं। उन्हें कैलासपति भी कहते हैं। वे हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर है। उनके सिर पर सुंदर गंगा जी विराजमान हैं। उनके ललाट पर द्वितीय का चन्द्रमा और गले में सांप रहते हैं। उनके कानों में विशाल कुण्डल हैं, उनके नेत्र विशाल हैं। वे प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं। वे सिंह चर्म का

वस्त्र धारण करते हैं और मुण्डमाल पहने रहते हैं। वे रुद्ररूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखंड, अजन्मा, कल्याणस्वरूप और हाथ में त्रिशूल धारण किये रहते हैं। वे निराकार, ओंकार के मूल, महाकाल के भी काल, गुणों के धाम तथा कामदेव के शत्रु हैं। शिवजी की कृपा के बिना भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति नहीं हो सकती। भोलेनाथ सबके गुरु और माता-पिता हैं।

''हे शम्भो! मैं न योग जानता हूँ, न पूजा जानता हूँ। मैं तो सदा-सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! मुझे हरिनाम करने की शक्ति प्रदान कीजिये। हे ईश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।''

श्री शिवजी से यही प्रार्थना करनी चाहिये।

22. श्री नित्यानंद प्रभु

जय जय नित्यानंद चरणारविंद।
जाहां हैते पाइलाम श्रीराधागोविन्द।।

''श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की जय हो। जय हो। जिनकी कृपा से मुझे श्रीराधागोविन्द देव के दर्शन प्राप्त हुये।''

श्रीनित्यानंद प्रभु कृपा के अवतार हैं, वे कृपा की प्रकट मूर्ति हैं। श्रीमन्नित्यानंद प्रभुजी 'ईश्वर का प्रकाश' हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानंद में कोई भेद नहीं है। वे एक ही हैं। केवल देह से वे भिन्न-भिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के अवतार हैं। वे स्वयं भगवान् हैं और उन्हीं का दूसरा विग्रह हैं श्रीबलराम। श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण के सहायक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप से नवद्वीप में अवतरित हुये तो बलरामजी नित्यानंद रूप में अवतीर्ण हुये। श्री बलराम संकर्षण के अंशी हैं अथवा मूल हैं। ब्रजलीला में जैसे श्रीबलराम श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं उसी तरह नवद्वीप लीला में नित्यानंद जी भी कभी गुरु, कभी सखा, कभी दास भाव से लीला करते हैं।

त्रेतायुग में श्रीकृष्ण ही श्रीराम रूप में लीला करते हैं और बलराम जी उनके साथ श्रीलक्ष्मण रूप से सहायता करते हैं। श्रीराम जी श्रीकृष्ण का अंश हैं और श्रीलक्ष्मण जी बलराम जी का अंश है। वही श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप में अवतीर्ण हुये तो श्री बलरामजी नित्यानंद रूप से अवतीर्ण हुये।

श्री नित्यानंद जी की महिमा का सिंधु अनंत एवं असीम है। उनके गुणों की महिमा का वर्णन अपार है। शेष भगवान् भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सके।

आईये श्रीनित्यानंद प्रभु के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि दण्डवत् प्रणाम करके, उनसे अपने अपराधों की क्षमा मांगें और प्रार्थना करें कि हरिनाम में हमारी रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे।

जय जय नित्यानंद नित्यानंद राम।
जय जय नित्यानंद जय कृपामय।।

23. श्री अद्वैताचार्य

श्री अद्वैताचार्य प्रभु महाविष्णु हैं। हरि से अभिन्न तत्त्व होने के कारण ही उनका नाम 'अद्वैत' है तथा भक्ति–शिक्षक होने के कारण उन्हें 'आचार्य' कहा जाता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी की अलौकिक प्रेम–चेष्टाएं देखकर ही, श्री अद्वैताचार्य जी ने उनसे दीक्षा ग्रहण की थी। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले ही अद्वैताचार्य जी ने जान लिया था कि कलियुग की प्रथम संध्या में तथा भविष्य में अनाचारों की प्रबलता होगी। सारा संसार श्रीकृष्ण भक्ति शून्य होगा। ऐसी स्थिति में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने से ही जगत् का कल्याण होगा। इसलिये श्रीअद्वैताचार्य जी गंगाजल व तुलसी मंजरी के द्वारा श्रीकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करते हुये, उन्हें अवतीर्ण करवाने के लिये हुंकार भरने लगे। श्री अद्वैताचार्यजी की प्रेम–हुंकार से गोलोकपति श्रीहरि की अवतीर्ण होने की इच्छा हुई और वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुये।

श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है कि महाप्रभु जी कहते हैं– ''श्री अद्वैताचार्य जी के कारण ही मेरा अवतार हुआ है। आज भी मेरे कानों में उनकी हुंकार गूंज रही है। मैं तो बड़े आराम से क्षीर सागर में सो रहा था, इन्हीं अद्वैताचार्य की हुंकार ने मुझे जगा दिया।''

श्री अद्वैताचार्य श्री चैतन्य महाप्रभुजी से अभिन्न शरीर हैं। उनकी कृपा के बिना श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानंद प्रभुजी की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती।

महाविष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः।
तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः।।

मैं भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य ईश्वर का आश्रय ग्रहण करता हूँ। जो महाविष्णु, माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं, उन जगत्कर्ता के ही अवतार हैं– ईश्वर अद्वैताचार्य जी।

एकबार महाप्रभुजी का महाऐश्वर्य दर्शन करके श्रीअद्वैताचार्य स्तम्भित हो गये थे और उन्होंने निम्न मंत्र द्वारा उन्हें प्रणाम किया था–

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो–ब्राह्मण हिताय च।
जगद्–हिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः।।

श्री अद्वैताचार्य जी के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि प्रणाम है। हमारी हरिनाम में रुचि निरंतर बढ़ती रहे, यही कृपा–प्रार्थना है।

24. श्री गदाधर पण्डित

श्रीकृष्ण लीला में जो राधिका हैं, श्रीगौरलीला में वे ही गदाधर पण्डित गोस्वामी हैं। गौर नारायण जी की शक्ति हैं लक्ष्मी प्रिया तथा विष्णुप्रिया और गौर कृष्ण की शक्ति हैं– श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में से सर्वप्रधान भक्त हैं। श्रीराधागोविन्द जी का मधुररस से

भजन करने वाले शुद्ध भक्त, श्रीगदाधरजी का आश्रय ग्रहण करते हैं और इनका आश्रय लेने पर ही उनकी गिनती श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में होती है। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के अन्तरंग पार्षदों के अतिरिक्त, श्रीगदाधरजी की अद्‌भुत गौरांग प्रीति को समझने की और किसी में सामर्थ्य नहीं है।

श्री मन्महाप्रभु जी के अन्तर्धान होने के बाद श्रीगदाधर पण्डित मात्र ग्यारह महीने प्रकट रहे। श्रीगौरांग महाप्रभुजी के विरह में श्रीगदाधर पण्डित जी की जो दारुण अवस्था हुई थी, उसका वर्णन 'भक्ति–रत्नाकर' ग्रंथ में हुआ है।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी आप मुझ दीन पर कृपा करें कि तैलधारावत् मेरा हरिनाम चलता रहे। आपके श्रीचरणों में कोटि–कोटि प्रणाम।

25. श्रीवास पण्डित

श्रीवास पण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।।

श्रीनारद मुनि ही गौरलीला में श्रीवास पण्डित के रूप में अवतरित हुये थे। चैतन्य चरितामृत में लिखा है–

शचीर मंदिरे, आर नित्यानंद नर्तने।
श्रीवास कीर्तने, आर राघव भवने।।
एइ चारि ठाञि प्रभुर सदा आविर्भाव।
प्रेमाकृष्ट–हय, प्रभुर सहज स्वभाव।।

"शचीमाता के भवन में, श्रीनित्यानंदप्रभु के नृत्य में, श्रीवास पण्डित के कीर्तन में तथा श्री राघवजी के भवन में– इन चार स्थानों पर श्रीमहाप्रभु नित्य निवास करते हैं।"

श्रीमन्महाप्रभुजी ने एक साल तक सारी–सारी रात श्रीवास आंगन में संकीर्तन किया था। उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी केवल अपने पार्षदों को लेकर ही संकीर्तन विलास करते थे। एकदिन महाप्रभु जी ने, श्रीवास आंगन में 'महाप्रकाश लीला' प्रकट की थी

और सात प्रहर तक चलने वाली इस लीला में, उन्होंने विष्णु के अवतारों के सभी रूपों को प्रकाशित किया था। श्रीवास आंगन में संकीर्तन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु अपने गणों के साथ गंगा–स्नान के लिये जाया करते थे।

एकदिन श्रीवास आंगन में रात को संकीर्तन के समय, उनका इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र वियोग में घर की स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीवासजी तुरंत घर के अंदर गये और सबको चुप करा दिया। कीर्तन चलता रहा। कुछ देर बाद महाप्रभुजी ने पूछा–

पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है क्या ? महाप्रभुजी की बात सुनकर श्रीवासजी ने कहा–

प्रभु मोर कौन दुःख?
यार घरे सप्रसन्ने तोमार श्रीमुख

''हे प्रभो! जिस घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख हो, वहां भला क्या दुःख हो सकता है।''

जब भक्तों ने बताया कि श्रीवासजी का इकलौता पुत्र आधी रात में गुजर गया था पर आपके कीर्तन में बाधा न हो, इसलिये श्रीवासजी ने आपको बताने से मना कर दिया था तो महाप्रभु रोने लगे और मृत–शिशु के पाकर आकर बोले– अहो बालक! तुमने श्रीवास जैसे भक्त के घर को क्यों त्याग दिया ?

इस पर मृत–शिशु बोला– ''प्रभो! मैं आपका नित्य दास हूँ। आपकी इच्छा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। जितने दिन मुझे इस घर में ठहरना था, उतने दिन मैं यहाँ रहा। अब आपकी इच्छा से मैं यहाँ से जा रहा हूँ। आपका मुझ पर कृपा कीजिये कि मुझे कभी भी, किसी भी अवस्था में आपके चरण–कमलों की विस्मृति न हो''– मृत–शिशु के मुख से ये बातें सुनकर, श्रीवास और उनके परिवारजनों का शोक दूर हो गया और उनको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रीमहाप्रभुजी ने श्रीवासजी ने कहा– '' अब मैं और नित्यानन्द जी तुम्हारे दो पुत्र हैं और हम कभी भी तुम्हें छोड़कर नहीं जायेंगे।''

श्रीवास जी की नित्यानंदजी में दृढ़–निष्ठा देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने इन्हें वर प्रदान किया था कि उनके घर में कभी भी लक्ष्मी का अभाव नहीं होगा और उस घर के कुत्ते–बिल्ली तक की भी श्रीभगवान् में अचला भक्ति होगी।''

वस्तुतः श्रीगौरांग महाप्रभु! श्रीनित्यानंद प्रभु! श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर तथा श्रीवास – इन पंच तत्त्वों में कोई भेद नहीं हैं परन्तु रसास्वादन के लिये, वह विचित्र लीलामय एक ही तत्व पांच भागों में बंटा हुआ है। श्रीगौरांग महाप्रभुजी, श्रीनित्यानंद प्रभु जी तथा श्रीअद्वैताचार्यजी यह तीनों ही विष्णु तत्त्व हैं और भक्तरूप, भक्त स्वरूप एवं भक्तावतार के रूप में प्रकट हुये हैं जबकि श्रीगदाधरजी भक्तशक्ति और श्रीवास जी शुद्ध भक्त हैं।

पंचतत्त्वात्मकं कृष्ण भक्तरूप स्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त शक्तिकम्।।

मैं, पंचतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण को अर्थात् श्रीकृष्ण के भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त और भक्तशक्ति को प्रणाम करता हूँ।

– हरिपद दास

विषयी व्यक्ति का अन्न खाने से चित्त मलिन हो जाता है। चित्त मलिन होने से कृष्ण–स्मृति का अभाव हो जाता है तथा कृष्ण–स्मृति के अभाव में जीवन निष्फल हो जाता है। इसलिये सभी लोगों के लिये यह निषिद्ध है, विशेषतः धर्माचार्यों के लिये तो विशेष रूप से निषिद्ध है।
(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 1



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी



व्रज का खेल कुलेल-मगन-मन।
नदिया का रज-लुण्ठित-तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग-जल-वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल-बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग-बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड़ की ढाणी
5-10-2008

परमाराध्यतम, प्रेमास्पद, भक्तगण तथा शिक्षागुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़कर वैराग्य उदय होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

सच्चे रूप में शत-प्रतिशत रसमय परमानंद से भजन कैसे हो?

यह मानव-जन्म सुकृतिवश भगवत्-कृपा परवश मिला है। इसको व्यर्थ में गंवाना सबसे बड़ा शोचनीय नुकसान है। इसमें मन ही एक मुख्य कारण है। श्रीगुरुदेव बारंबार साधकों को चेता रहे हैं, जगा रहे हैं, अब भी गहराई से विचार द्वारा अपने मन को व्यर्थ के कर्मों में न लगाकर, परमार्थ कर्म में नियोजित करें, यह मानव-जीवन, जो भगवत्-कृपावश बड़ी मुश्किल से उपलब्ध हुआ है, केवल भगवत-प्राप्ति के हेतु मिला है। हरिनाम-स्मरण रूपी सत्संग में लगाकर, अपना यह दुर्लभ जीवन सफल कर लो वरना अब आगे यह सुअवसर हाथ नहीं आने का। 28 प्रकार के नरक भोगकर चौरासी लाख योनियों में, जो दुःखों का सागर है, जाना होगा, कोई बचाएगा नहीं, अपना किया कर्म स्वयं को ही भोगना पड़ेगा।

मैं मार्ग बता रहा हूँ। इस मार्ग से जाने से भगवान के शरणागत् होने पर, भगवान तुम्हें अपना लेंगे। सारा भार आपका स्वयं उठा लेंगे। तुम्हारा पूरा जीवन सुखमय हो जाएगा, भगवान तुम्हारा दर्शन करने स्वयं आएंगे एवं तुमको दर्शन लाभ निश्चय ही हो

जाएगा, जैसे मीरा को, नरसी भक्त को, सनातन, रूप, माधवेन्द्रपुरीपाद आदि को हुआ है। तुमको भी अवश्य होगा। इसमें एक प्रतिशत भी अनिश्चितता नहीं होगी।

निम्न प्रकार से अपना जीवनयापन करना होगाः–

1. एक लाख हरिनाम कान से स्वयं सुनकर व गुरु, संत, हरिदास आदि, माधवेन्द्रपुरी, रूप, सनातन, गौर, निताई, प्रह्लाद, ध्रुव, नृसिंहदेव, बजरंग, नारद जी– कितने ही संत भगवत अवतार हैं, इनके चरणों में बैठकर इनको हरिनाम सुनाते रहो तो तुम्हारा मन एक क्षण इधर–उधर कभी भी भटकेगा ही नहीं।

प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी साधक आज़माकर देख सकता है। अनुभव सदैव ही सभी के लिए शत–प्रतिशत सच्चा होता है।

विराहाग्नि प्रज्ज्वलित होने का एक मात्र उपायः–

अन्तःकरण से पुकारकर बोलो "हा निताई! हा निमाई! कृपा करो! इस अपराधी पर कृपा करो!" यही है विदीर्ण–हृदय की पुकार! यही है इन्जैक्शन! इसी से रोग दूर होगा! आज़माकर देखो। एक लाख हरिनाम जपने से कुछ तो शुद्धनाम अवश्य आविभूत होगा ही। यही शुद्धनाम नामाभास–नाम को अपनी ओर खींचकर अपने शुद्धनाम में नियोजित कर लोग क्योंकि शुद्धनाम में एक अलौकिक शक्ति निहित रहती है, एवं नामाभास इससे कमज़ोर रहता है अतः शक्तिशाली कमजोर को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यह ध्रुवसत्य सिद्धांत है ही। इसी प्रकार से श्रीगौरहरि ने अपने सभी जनों को आदेश दिया है कि जो भी एक लाख हरिनाम नित्य करेगा उसी के घर में मैं प्रसाद पाऊँगा अर्थात् उस घर को छोड़कर मैं कहीं नहीं रहूँगा। कितना सरल सुगम उपाय इस कलियुग में हैं। घर बैठे भगवान मिल जाएँगे। जंगल में भटकना नहीं पड़ेगा, जहां सर्दी, गर्मी, बरसात, खाना–पीना दूभर, कितनी–कितनी तकलीफें सामने आती रहती हैं।

इस सुअवसर को हाथ से निकाल देना कितना अज्ञानता है।

2. कम से कम रात में 3 बजे ब्रह्म मुहूर्त में उठकर हरिनाम करना होगा जैसा कि पिछले गुरुवर्ग ने 2–3 बजे उठकर हरिनाम किया है। जल्दी उठना तब ही हो सकेगा, जब शाम व रात को भोजन नाममात्र का पा सकोगे या दूध पर रह सकोगे वरना आलस्य–शत्रु भजन में बाधा डालेगा। आरंभ में आलस्य आवेगा, एक माह बाद आलस्य आना बंद हो जाएगा।

3. 2 माला हरिनाम की, सोते समय कान से सुनकर करनी होगी ताकि यह नाम रात भर सोते रहने में भी सारे बदन में Circulate होता रहे। एक दिन में ऐसा नहीं होगा, कुछ दिनों बाद में इसका प्रभाव होकर भगवत–संबंधी स्वप्नों में परिवर्तित हो पड़ेगा। कृष्ण, अर्जुन को बारंबार कहते हैं–''अभ्यास से सब होगा।'' प्रत्यक्ष में देखा भी गया है कि Typist बातें भी करता है, Type भी। वाहन चालक बातें भी करता है, Accident से भी बचाता है। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ?

4. नित्य ही समय मिलने पर श्रीमद्भागवत महापुराण, श्रीचैतन्य चरितामृत तथा अन्य हरिनाम संबंधी पुस्तकों से सत्संग करते रहें ताकि हरिनाम को अच्छी खुराक मिलती रहे। यदि शुद्ध संत का समागम हो सके तो उनसे विचार–विमर्श करते रहें तो हरिनाम में रुचि अवश्यमेव होगी ही। इसमें एक प्रतिशत भी विचारने की आवश्यकता नहीं हैं।

5. ब्रह्मचर्य पालन परमावश्यक है। ब्रह्मचर्य का प्रमुख आशय है सभी इन्द्रियों को अपने गोलक में नियोजित रखें। संसार के विषयों की तरफ जाने न देवें। इन ग्यारह इन्द्रियों को आध्यात्मिक विषय में लगाए रहें। ताकि इन पर संसारी विषयों का आवरण नहीं चढ़ सके क्योंकि मन ही सब इन्द्रियों का राजा है। यही सब इन्द्रियों को आदेश देकर संसारी विषयों में नियोजित करता रहता है।

टी.वी., रेडियो, अखबार, मोबाइल, बाहरी वातावरण, बेढंगे–चित्र, पशु–पक्षी–रमण, बेढंगा पहनावा आदि का सबसे अधिक आकर्षण व प्रभाव मन पर पड़ता रहता है। इनसे बचने का उपाय

भी श्रीगुरुदेव बता रहे हैं। टी.वी., रेडियो, अखबार से दूर रहने में कोई आपत्ति नहीं है। अन्य से बचने के लिए आंखों का कंट्रोल परमावश्यक है। आंखें तो स्वाभाविक जावेंगी ही परंतु एक बार जाने पर दूसरी बार न देखो। दूसरी बार देखने पर मन पाजी उसे पकड़ लेता है। फिर तो समस्या काबू के बाहर हो जाती है। फिर मनोहर–भजन कैसे हो सकता है ? यह साधक की कमज़ोरी ही बतानी पड़ेगी। एक बार के स्त्री–संग से पूरा सात्विक भाव समूल नष्ट हो जाता है। हजारों साल की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है। यह श्रीगुरुदेव ही नहीं, शास्त्र की भी वाणी है।

6. ग्राम्य–चर्चा तथा फालतू बातों से मुंह मोड़ लें। हर समय बिना माला भी श्रीहरिनाम का स्मरण करते रहें। दूसरा संकल्प–विकल्प फिर आ ही नहीं सकता। इसमें अभ्यास की बड़ी आवश्यकता है। घर की आसक्ति भी इससे कम होती चली जाएगी तथा भगवत–आसक्ति बढ़ती चली जाएगी। आसक्ति ही तो मूल शत्रु है। इसे ही समूल नष्ट करना है। पर यह सब हरिनाम से ही होगा। पौधे को इस क्यारी से उखाड़ कर दूसरी क्यारी में ही तो लगाना है! क्या मुश्किल है ? केवल इसमें मन ही की कमज़ोरी है।

7. अहिंसावृति का पालन परमावश्यक है। किसी भी जीव को सतायें नहीं। सभी भगवान के पुत्र हैं। क्या पुत्रों को दुःख देने से पिता (भगवान) खुश रहेगा ? कदापि नहीं। सब पर दया करें, हो सके तो तन–मन और वचन से सेवा कर दें, सतावें तो नहीं। सन्मार्ग का उपदेश देकर उनकी भलाई में जीवन यापन करता रहे।

विशेषः–जिसने जीभ पर नियंत्रण कर लिया, उसकी सभी इन्द्रियाँ वश में हो गईं। जीभ का तथा उपस्थ इंद्रिय का सीधा संबंध रहता है। ''रूखा सूखा खावो, भगवत–प्रेम पावो।'' जो भगवान के प्यारे साधुजन हैं, उनकी तो भूल कर भी निन्दा न करें, न ही उनको सतावें, वरना भगवान उसे घोर दंड देगा। पापी चाहे कितना ही पाप करे, उस पर भगवान इतना रुष्ट नहीं होते जितना रुष्ट अपने भक्त को दुःख देने से होते हैं। पापी तो अपने पाप का

फल भोग कर लेगा, उसमें भगवान का क्या जाता है परंतु भक्त को सताने वाला भगवान का भी घोर दुश्मन है। भगवान उसे रौरव नरक में या करोनिक बीमारी देकर घोर दंड देते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है–गोपाल चापाल विप्र, जिनका अपराध श्रीनिवास के प्रति हुआ था। कोढ़ से दंड दिया। अम्बरीष को सताने वाले शिव के अंश से उत्पन्न अत्रि–अनुसूया पुत्र दुर्वासा जी को सुदर्शन चक्र से दुःख भोगना पड़ा।

8. शुद्ध–कमाई का प्रसाद ही भक्ति को बढ़ाता है। अशुद्ध–कमाई से भक्ति नष्ट होती रहती है जैसा कि देखा जा रहा है। जो उपलब्ध हो, उसी में संतोष रखें। हाय–हाय के चक्कर में नहीं फंसे। अधिक वस्तुएं नहीं बटोरें। सभी बाद में संकट में डालती हैं। परिमित वस्तुएं घर में रखें, जितने से जीवन निर्वाह हो जावे। ऊपर की ओर नहीं देखें। नीचे की ओर देखें तो सदा सुख से रह सकोगे वरना जी जलता रहेगा। उसके पास कार है, बंगला है। मेरे पास भी हो, पा नहीं सकता तो दुःखी रहेगा या गलत मार्ग अपनाएगा।

9. प्रसाद पाते हुए नाम–स्मरण करने से दिन भर अष्ट सात्विक धाराएं बहती रहेंगी। ''जैसा अन्न, वैसा मन''। पानी पीते हुए हरिनाम स्मरण करने से भगवान का चरणामृत बनकर पेट में जाएगा तो वचन, वाणी सत्य निकलेगी। झूठ से पाला ही नहीं पड़ेगा। ''जैसा पानी, वैसी वाणी''।

10. मान–सम्मान की चाह न रखें। यदि मान–सम्मान हो तो इसे भगवत् कृपा ही समझें ताकि अहंकार न आ सके। अपनी अहम्–बुद्धि को भगवत–चरणों में चढ़ा दें। अन्तःकरण से गहरा विचार करें कि तू किस लायक है ? तेरे से अच्छे तो पशु–पक्षी ही हैं, जो मर्यादा से चलते हैं, भक्ष्य–अभक्ष्य का ध्यान रखते हैं, नियमों में बंधे हैं। मालिक को पहचान कर प्यार करते हैं। तुम में तो प्रेम का लेशमात्र भी नहीं है। तू अपने माँ–बाप तक का नहीं है, अन्य का तो होने का सवाल ही नहीं है। ऐसा विचार करने से अहम्

समूल नष्ट हो जाएगा। फिर उसका सिर उठाना ही दूभर हो जाएगा।

11. भगवत्–त्योहारों व भक्त–जनों के आविर्भाव–तिरोभाव पर उनको अधिक याद करते हुए उनका जीवन–चरित्र सुनें तथा सुनावें व हरिकीर्तन तथा भक्तों के रचे पद्यों द्वारा दिन का सत्संग करता रहे तो संसारी कामों या चर्चाओं में समय ही कहां मिल सकेगा ? दिन–रात, भगवत–चरणों में ही साधक अपनी साधना में लगा रहेगा। मरने पर उसका अंत प्रशंसनीय होगा। नामनिष्ठ को भगवान् अपने पार्षदों को लेने न भेज कर, स्वयं लेने आते हैं क्योंकि साधक ने दिन–रात अपना जीवन हरिनाम पर ही व्यतीत किया है। हरिनाम तथा भगवान एक ही तो हैं। भगवान ही कलियुग में नामरूप से अवतरित हुए हैं। भगवान ही उस नामनिष्ठ की जिह्वा पर रात–दिन नृत्य करते रहते हैं। भगवान उससे अलग हुए ही कब हैं ? निरंतर उससे चिपके रहते हैं। मरते समय भी कहीं गए थोड़े ही हैं, ले जाने के लिए उसी के पास में चिपके बैठे हैं। अपना स्वयं का उड़नखटोला (विमान) मंगाकर नामनिष्ठ–भक्त को बिठाकर अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं। वहां पर उसका भव्य स्वागत होता है। रमणीय स्थान उसे उपलब्ध होता है। मनवांछा, कल्पतरु तथा चारु चिंतामणि से विभूषित हो जाता है। क्योंकि मन ने ही तो उसे गोलोक धाम में पठाया है। मन की सभी कामनाएं उसे वहां उपलब्ध हो जाती हैं। तब ही तो कहा गया है–''मन ही जीव का मित्र है, मन ही जीव का शत्रु है।''

भगवान से मिलाता है तो मित्र तथा माया में फंसाता है तो शत्रु है। अनन्त जन्मों से, अनन्त युगों से तथा आदिजन्म से इस ने मन जीव को माया में फंसा रखा है।

जब इसे साधुसंग की कृपा उपलब्ध हुई तब यह माया के चंगुल से छूट सका। साधु–कृपा बिना माया से छूटने का कोई अन्य उपाय ही नहीं है। अतः कहा गया है–मन के कहे न चालिए, यदि चाहो तुम कल्याण। यदि मन के कहने पर चलते रहोगे तो कर देगा तुम्हारा संहार। मन भूत है, यदि इसको काम पर नहीं लगाया तो यह तुम्हें ही मार देगा।

उदाहरण से बताया गया है कि किसी ने भूत पाल लिया। जो काम कहे उसे बहुत शीघ्र करके आ जाए और कहे–अब मैं क्या करूँ? उसने कहा–''अब तो काम नहीं है, बाद में बता दूंगा।'' भूत ने कहा–''मैं खाली रह नहीं सकता, यदि काम नहीं बताया तो मैं तुम्हें मार दूंगा।'' अब तो भूत के मालिक पर मुसीबत आ गई। इससे पिंडा कैसे छूटे? मैंने भूत पाल कर अपना ही नाश कर लिया। सबसे पूछता फिरे, मैं कैसे बचूं?

किसी ज्ञानी पुरुष ने कहा–''कोई तुम्हें बचा नहीं सकता है। संत–महात्माओं के पास अनेक उपाय हैं। वे ही तुम्हें बचने का उपाय बता सकते हैं। तुम अमुक साधु के पास जाकर पूछो। वे सिद्ध महात्मा हैं।''

भूत के मालिक ने उस सिद्ध–महात्मा से अपने बचने का उपाय पूछा। महात्मा ने कहा–''यह तो तुम्हें खा जावेगा। इसका कोई उपाय नहीं है।'' सभी आपको सिद्ध महात्मा कहते हैं, भगवान से पूछकर बता सकते हो। उस महात्मा को दया आ गई, उसने कहा–''मैं पूछूँगा, तुम कल अभिजित मुहूर्त में आकर पूछ जाना।'' उसने कहा–''अभिजित मुहूर्त कब होता है?'' महात्मा ने कहा–''पौने बारह बजे से सवा बारह बजे तक में आ जाना।'' उसने कहा–''तब तक तो वह भूत मुझे खत्म ही कर देगा।''

सिद्ध बोला–''कुछ देर ठहरो, मैं भगवान से ध्यान लगाकर पूछता हूँ, वे क्या उपाय बताते हैं? वह अंदर गया और उसने अंदर जाकर क्या किया, मालूम नहीं।'' वह बाहर आकर बोला–''तुम आंगन में एक दस फुट का बांस गाढ़कर भूत से कह दिया करो जब काम न हो इस बांस पर चढ़ो–उतरो, तो काम का अंत ही नहीं होगा।'' उसने कहा–''बहुत ठीक उपाय है, अब तो मैं ही उसे परेशान कर दूंगा।'' यही है मन का भूत! इसको खाली मत छोड़ो वरना खा जाएगा। उक्त नियम पालन करने से भगवत् शरणागति होकर भगवत्–दर्शन हो जाता है। भगवान को स्वयं भक्त का दर्शन करने को बाध्य होना पड़ता है।

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड़ की ढाणी
25-09-2008

प्रेमास्पद, भक्त-प्रवर-गण तथा शिक्षा-गुरुदेव श्री श्री108 श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

इसी जन्म में भगवत्-दर्शनमय अलौकिक प्रेम-प्राप्ति

पढ़ा गया तथा सुना गया है कि भूतकाल के गुरुगण ने हरिनाम की शरणागत होकर अर्थात् नित्य प्रति एक लाख से तीन लाख हरिनाम-स्मरण करके भगवान का दर्शन प्राप्त किया था।

कलिकाल में इस भक्ति-साधना के अलावा कोई भी अन्य साधन है ही नहीं। इस साधन से साधक इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष-चारों पुरुषार्थ उपलब्ध कर लेता है तथा अंत में इस दुःखसागर को पार कर जाता है। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है। इससे साधक को सभी तरह की मन न लगने की असुविधाएं दूर हो जावेंगी तथा ऐसा करने से शीघ्रातिशीघ्र भक्ति-स्तर की उन्नतावस्था अवश्यमेव उपलब्ध होगी ही।

भगवत-चर्चा अर्थात् भगवान का नाम एक ऐसा द्रुतगामी तीर है जो एक गर्भस्थ शिशु पर भी प्रभाव कर देता है। चार माला धीरे-धीरे तथा एक माला उच्चारण से जपना चाहिए। कलि में कीर्तन प्रधान है। मन इसी विधि से रुकता रहता है। मन ही मन जपने से मन भटक जाता है या सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है। प्रत्यक्ष करके देख सकते हो। भक्त को नाम सुनाने से मन रुक जाता है। अनन्त भक्तगण हैं, जिनका कोई अन्त नहीं है। प्रयास

तो स्वयं को ही करना है। प्रयास के अभाव में तो संसारी काम भी विफल हो जाता है।

अनन्त जन्मों की बाधाएं एक जन्म में हट जावेंगी। मुक्ति का द्वार स्वतः ही खुल जावेगा, यदि इसके अनुसार अपना जीवन यापन करता रहा। अपराध का विचार परमावश्यक है। अपराध से तो साधक नीचे स्तर पर आ पहुँचता है।

श्रीगौरहरि के पूछने पर नामाचार्य, श्रीहरिदास जी बता रहे हैं कि माना किसी वैष्णव का जन्म छोटी जाति में हुआ हो और कोई भक्त उसका जाति–दोष देखे या किसी ने श्रीकृष्ण चरणों में पूर्ण–शरणागति लेने से पहले अगर कोई पाप किया हो या कोई उस पाप को याद करवा कर उस भक्त की निंदा करे अथवा अचानक किसी वैष्णव से कोई पाप कर्म हो जावे या कोई वैष्णव ऐसी स्थिति में हो कि पहले पाप करता था परंतु अब वह शरणागत रह कर भजन करता है परंतु थोड़े बुरे संस्कार अभी बाकी हैं, इनको देखकर ही कोई उसकी निन्दा करे या उसका जी दुखाए तो वह अज्ञानी, वैष्णव–निंदक, यमदंड का भागीदार बनता है। वैष्णव के मुख से ही श्रीकृष्ण–माहात्म्य का प्रचार होता है। ऐसे वैष्णव की निंदा को श्रीकृष्ण सहन नहीं करते अतः निंदक को भक्ति–स्तर से गिरना पड़ता है।

नामनिष्ठ–भक्त के निकट कुछ समय बैठ कर उसे हरिनाम सुनावे तो उसके शरीर से श्रीकृष्ण शक्ति निकल कर श्रद्धावान्–भक्त के हृदय से स्पर्श करके, उसके शरीर को कंपा कर, उसके अन्तःकरण में भक्ति उदय करा देती है। जिसके पास में बैठने से मन भगवान की ओर खिंचता है तो समझना होगा कि वह भगवान का प्रियजन है। उसका संग करने पर सारे दुर्गुण बाहर निकल कर सद्गुणों का उद्गम हो पड़ेगा। यदि नामनिष्ठ संत के चरणों में बैठ कर साधक उच्चारणपूर्वक हरिनाम सुनाता रहेगा तो उसके अतंःकरण पर नामनिष्ठ संत की तरंगें (वाइब्रेशनज़) प्रभाव करती रहेंगी। उसका मन स्थिरता उपलब्ध करेगा जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण हरिदास तथा

वेश्या है। सुनाने में हनुमानजी, नारदजी, श्रीगौरहरि, श्रीनित्यानंदजी, प्रह्लादजी, नरसिंह भगवान तथा माधवेन्द्रपुरीपाद आदि के चरणों में बैठकर भी हरिनाम सुनाया जा सकता है।

नामनिष्ठ–भक्त का अन्य जो भी संग करेगा, नामनिष्ठ संत उसे भी नामनिष्ठ बनाकर उसकी संसारी आसक्ति को नष्ट कर देगा। उसका मन नाम में रमने लग जाएगा। प्रेम से उसका हरिनाम होने लगेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए लेकिन ऐसा नामनिष्ठ मिलना बहुत जन्मों के बीतने की बात है। यदि मिल जावे तो उसका लाभ लेना परमावश्यक है। साधु की पहचान है–जो किसी की निंदा न करता हो, जिसमें उग्रता न हो, जिसके पास बैठने से भगवान की ओर मन खिंचता हो व जो निष्किंचन हो। जो इसके विपरीत हो वह साधु कपटी ही है।

हृदय में भगवत्–दर्शन की उक्ति

''मन थिर करि तब शम्भू सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना।।''

एक 10 फुट गहरा पानी का टैंक भरा हुआ है। कोई सज्जन उसकी दीवार के ऊपर बैठकर पानी की ओर पेंदे (तले) में झांक रहा है। हवा बिल्कुल बंद है। ऊपर आकाश से सूर्य की रोशनी उस पानी के ऊपर पड़ रही है। पानी एकदम स्थिर है।

दीवार पर बैठा सज्जन टैंक के पेंदे की ओर देख रहा है। उसे टैंक के पेंदे की सभी वस्तुएं (कंकड़,पत्थर) पानी स्थिर होने के कारण साफ दिखाई दे रहे हैं, यहां तक कि मेंढ़क, मछली भी पेंदे में दिखाई दे रहे हैं।

यही स्पष्ट उदाहरण साधक के अंतःकरण का भी है। साधक अंदर झांक कर देख रहा है। मन के संकल्प–विकल्प रूपी पवन बंद है, अंदर में आत्मा रूपी सूर्य का प्रकाश हो रहा है व साधक को भगवत–दर्शन (श्रीकृष्ण) स्पष्ट नज़र आ रहा है। भगवत्–दर्शन

इतना आकर्षक व मोहक है कि साधक का मन एक क्षण भी इधर–उधर नहीं जा सकेगा। उसे मन की, आनंद की वस्तु उपलब्ध हो गई। इसी प्रकार से साधक हरिनाम रूपी आंखों से गुरुवर्ग के चरणों में बैठकर संत–दर्शन भी कर रहा है एवं नामामृत भी संग–संग पीता जा रहा है। अब इससे उन्नत ध्यान क्या हो सकता है ? मन इसी ठौर चिपक जाएगा। मन के इसी ध्यान में आनंद रस निकल कर आंखों की राह से बाहर टपक पड़ेगा।

कितना सरल व सुगम मार्ग साधक को उपलब्ध हो गया। जो आनंद कोटि जन्मों से प्राप्त न था और जो मन साधक को भटका रहा था, वह अब पिंजरे में बंद हो गया। इसी पिंजरे ने इसे गोलोक धाम का वासी बना दिया। इसी पिंजरे में इसे आदि जन्म का साथी (भगवान) जिससे वह बिछुड़ा हुआ था, सदैव के लिए मिल गया। अब इसे आनंदसिंधु का रसानंद प्राप्त हो गया।

कृष्ण केशव ! कृष्ण केशव ! कृष्ण केशव ! पाहिमाम्।
राम राघव ! राम राघव ! राम राघव ! रक्षमाम्।
राम राघव ! राम राघव ! राम राघव ! त्राहिमाम्।

स्वयं श्रीगौरहरि हरिनाम के बीच–बीच में उपरोक्त पंक्तियों का उच्चारण किया करते थे। इनमें भगवत–शरणागति का भाव ओत–प्रोत है। अतः श्रीहरिनाम की दो–चार माला करने के बाद इन पंक्तियों का उच्चारण करना होगा। इससे मन जगता रहेगा, भटकेगा नहीं।

किसी भी गुरुवर्ग (संत) के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाने से सन्त की वाईब्रेशनज़ (तरंगें) सुनाने वाले के हृदय से टकरा कर हृदय का मैल जलाती रहेंगी। जब पूर्ण मल जल जावेगा तो हृदय रूपी दर्पण एक दम साफ हो जाने से उसमें सद्गुण चमकने लग जायेंगे। यह सद्गुण दूसरों को भी आभायुक्त बनाते रहेंगे। दुःख रूपी अंधकार विलीन होता रहेगा तथा सुख रूपी आभायुक्त वातावरण फैलाता रहेगा।

यही है स्पष्ट, सत्यमय ध्यान की स्थिति। जो भी इस मार्ग से गुज़रेगा, अलौकिक आनंद की उपलब्धि कर पावेगा लेकिन यह मार्ग हरिनाम से ही प्राप्त हो सकेगा। अन्य कोई भी साधन कलि में नहीं है। चार माला मन से धीरे–धीरे करें, एक माला उच्चारण से करते रहें तो मन इधर–उधर भटकना बंद कर देगा तथा सुषुप्ति अवस्था में नहीं जावेगा। कलि में कीर्तन प्रधान–साधन होने से चार माला बाद एक माला उच्चारण से करना परमावश्यक है। इससे मन काबू में आ सकेगा। मन ही मन करने से 30–40 साल में स्थिर नहीं हो सका जिसका कारण है कि उच्चारण से हरिनाम नहीं हुआ। कीर्तन का अभाव रहा। तब ही तो श्रीगुरुदेव ने आदेश किया है–"Chanting Harinam sweetly & listen by ear"

शिव–उक्ति

''सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।''

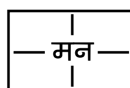
जो साधक प्रेम से हरिनाम करता है उसका सारा जीवन इसी तरह से गुज़र जाता है जिस प्रकार कोई गाय के पैर के ख़ुर से बने खड्डे को उलांघ जाए। एक चार इंच के ख़ुर के खड्डे को उलांघने में क्या परिश्रम होगा ? एक छोटा सा शिशु भी इस खड्डे को उलांघ सकता है। कहने का आशय यही है कि हरिनाम–जापक का पूरा जीवन सुख में बीत जायेगा। ऐसे साधक को किसी भी प्रकार की तकलीफ या दुःख नहीं होगा। भूतकाल में जो भक्त, भक्ति करते थे, उनको दुःख व कष्ट आए परंतु उनको कभी भी छू भी नहीं सके। भगवान ने उनके कष्ट दूर से ही टाल दिये। जैसे–मीरा, द्रौपदी, नरसी भक्त आदि। अंत में भगवान् जापक को अपने साथ गोलोक धाम में ले गए। जब भी भगवान के मन में जीवों के प्रति दया का भाव आता है, इन भक्तों में से किसी भक्त को, किसी भी

ब्रह्मांड में अवतरित करवा कर, जीवों का उद्धार करने को भेजते रहते हैं जैसे– कबीर जी, गुरुनानक जी, श्रीगुरुदेव, श्रीतीर्थ महाराज, श्रीप्रभुपाद जी, भक्ति विनोद ठाकुर जी, इस्कॉन के गुरुदेव ए.सी. भक्तिवेदांत स्वामी जी आदि।

मन को स्थिर करने तथा चतुर्थ पुरुषार्थ से भी ऊपर पंचम पुरुषार्थ–''प्रेम'' प्राप्त करने का एक सरल एवं सुगम उपाय श्रीगुरुदेव लिखवा रहे हैं।

यह तरीका एक नया साधक भी अपना सकता है, यह है चतुर्भुज में मन को रोक देना–

हृदय में भगवत्–दर्शन

भावमयी प्रार्थना  कान से नाम श्रवण

(अपने पास बुला लो) जीभ से नाम उच्चारण

नाम–श्रवण रूपी जल कान में डालने से हृदय रूपी ज़मीन में एक पौधा अंकुरित होगा। वह पौधा होगा– भगवान श्रीकृष्ण का वपु (शरीर)।

उदाहरण–''सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय स्नेह बिसेषे।'' नाम–श्रवण से स्वतः ही रूप प्रगट होगा। जब उक्त प्रकार से साधक–हरिनाम–जापक, नाम की चार माला भी करेगा तो उसे शत्–प्रतिशत् भगवान् के प्रति रोना आ जावेगा क्योंकि जीव–आत्मा की परमात्मा ही आदि–जन्म की मैया है। अतः मैया के लिए भाव उत्पन्न हो जावेगा जैसे दूध पीता शिशु अपनी माँ को रो–रो कर पुकारने लग जाता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं–श्रीभक्ति विनोद ठाकुर। भाव कुछ भी हो सकता है– सखा, सखी, वात्सल्य, पुत्र आदि। अनन्त जन्मों से जो संबंध होता आ रहा है, वह नाता क्षणिक है, अनित्य है। भगवत्–नाता नित्य है। जब तक जीवात्मा को परमात्मा की गोद नहीं मिलेगी तब तक वह दुःख पर दुःख पाते

हुए रोता ही रहेगा। रोने से उसका पिंडा ही नहीं छूटेगा। अतः सज्जनों! मेरे गुरुदेव की लेखनी की ओर ध्यान देकर, अपना मानव जन्म सार्थक बनावें तथा मेरी भी लज्जा रख कर मेरा भी मान रखें। जिस काम के लिए भगवान ने गुरु रूप से आदेश दिया है, उसका भी पालन करें, मेरी भी प्रार्थना सुनें तो मैं आपके चरणों का आभारी रहूँगा। सबसे मेरी चरण–स्पर्श कर बारम्बार प्रार्थना है कि सभी इस पत्र को पढ़कर, नित्य एक लाख हरिनाम, उक्त प्रकार से करते रहें। जो भी इस प्रकार से मेरी प्रार्थना अपनाएगा उसके घर पर श्रीगौर–निताई वास करेंगे जैसा कि श्रीगौरहरि ने एक लाख हरिनाम करने वाले के घर वास करने का प्रण किया है। जहाँ श्रीगौरहरि रहेंगे वहां कलि महाराज कैसे घुस पायेंगे ?

परीक्षित महाराज से कलि महाराज की आपस में बातचीत हुई है कि भक्त के घर में कलि महाराज जाने का भाव रखते ही जलकर राख हो जायेगा, अतः इसी डर से कलि महाराज भक्त के घर की ओर झांकता भी नहीं है। पाठकगण कह सकते हैं कि भक्त पर भी विपत्ति आती नज़र आती है, ऐसा क्यों होता है ?

इसका स्पष्ट उत्तर है कि यह मायामय संसार है। जहाँ बर्फ पड़ेगी, सभी को ठंड महसूस होगी ही परंतु भक्त ने भगवान् की दया रूपी कंबल ओढ़ा हुआ है अतः ठंड नहीं व्याप सकेगी, न गर्मी लग सकेगी क्योंकि भगवत–कृपा रूपी ठंडी बयार उसको व्याप्ति रहेगी। गर्मी उसे छू तक नहीं सकेगी।

इस मायामय संसार में तो स्वयं भगवान् भी नहीं बच सके। उनको भी बारम्बार विपत्ति में से गुज़रना पड़ा लेकिन माया भगवान को प्रभावित नहीं कर सकती। दूसरों को प्रभावित करती रहती है। श्रीराम जी को वनवास में विपत्ति में से गुज़रना पड़ा, श्रीकृष्ण को राक्षसों से विपत्ति झेलनी पड़ी, पांडवों को कौरवों से परेशानी हुई। केवल मात्र भक्तों के लिए भगवान को सब कुछ करना पड़ता है। यह भगवान् की लीला मात्र है। लीला के अभाव में भगवान का मन कुंद रहता है। लीला से ही आनन्दानुभूति महसूस होती है।

भगवान केवल मात्र भक्तों से खेल करने हेतु ही प्रत्येक ब्रह्मांड में अवतरित होते रहते हैं। दुष्टों को तो भगवान् भृकुटि विलास मात्र से ही मार सकते हैं। दुष्टों को मारना तथा भक्तों से खेल करना ही उनकी अनन्त लीलाओं का उद्‌गम मात्र है। मूर्ख और अज्ञानी इस लीला को समझ नहीं सकते। जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वही भगवत्–लीलाओं का रहस्य समझ सकता है। अतः भगवान ने शिवजी को आदेश दे रखा है कि ऐसे शास्त्रों का प्रचलन करो जिससे मानव भ्रमित होता रहे। मेरी भक्ति तक न आ सके। मेरी कृपा से ही कोई मेरे पास आ सकेगा जिसकी सुकृति केवल मात्र साधु–सेवा से बनेगी।

सच्चे रूप में देखा जाए तो हरिनामनिष्ठ ही सर्वोतम सच्चा साधु है। कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, यज्ञनिष्ठादि सच्चे साधु नहीं हैं। यह सभी नाम पर ही आश्रित हैं लेकिन इनका नाम–अवलंबन, अवहेलनापूर्वक है, वास्तविक रूप में नहीं है। सच्चे रूप में देखा जाए तो इनका भाव तो अन्याभिलाषायुक्त ही है।

सच्चा नामनिष्ठ स्वयं को दीन–हीन समझता है। दूसरों को मान देता है। स्वयं मान से संकुचित रहता है। हर क्षण नाम के शरणागत रहता है। निंदा–स्तुति से दूर रहता है। कभी उग्रता धारण नहीं करता। यदि कोई उसकी बुराई करे तो बुरा न मान कर उससे प्रेम की बात कर अपनाता रहता है। नामनिष्ठ समझता है कि इसमें उसका कोई दोष नहीं है, यह दोष इसके पूर्वजन्मों के स्वभावानुसार इसे ढकेलता रहता है। सत्संग से स्वच्छ हो जायेगा।

नामनिष्ठ के मुख से उच्चारित कृष्ण–नाम, दूसरों के हृदयों को श्रीकृष्णप्रेम से प्रकाशित कर सकता है। यज्ञनिष्ठ तथा तपोनिष्ठ से नहीं। नामनिष्ठ के मुख से निकला कृष्ण–नाम, श्रवणकारी, श्रद्धावान्–भक्त को कृष्ण प्रेम में डुबो सकता है।

श्रीकृष्ण–कृपा को प्राप्त करने का नामनिष्ठ साधु के संग के सिवाय और कोई सफल उपाय नहीं हो सकता। इसमें केवल मात्र एक ही रुकावट हो सकती है–वह है नामापराध। नामापराध तो

इतना खतरनाक है कि यह नामापराधकारी को पूरा नास्तिकता की छोर पर पहुंचा सकता है जिससे वह भगवान् के अस्तित्व को मानने को ही तैयार नहीं होता। इससे अधिक कोई नुकसान है ही नहीं। कई युगों तक रौरव नरक में दुःख भोगना पड़ेगा। जो चरमसीमा का कष्ट है। इसके बाद चौरासी लाख कष्टदायक योनियाँ भुगतनी पड़ेंगी। अनन्त युगों के बाद जब भगवान् की कृपा होगी, तब मानुष देह प्राप्त हो सकेगी, वह भी दीन–हीन तथा रुग्णावस्था में होगी और वहां पर भी दुःख पर दुःख भोगना पड़ेगा।

साधु–सम्पर्क के अभाव में, फिर मानव जन्म बेकार कर, उसी दुःख में जा गिरेगा। इसके दुःख का अन्त कभी नहीं हो सकेगा। वर्तमान समय कैसा चल रहा है ? आंखें खोल कर देखो, सभी दुःखी हैं। सुख कब मिलेगा ? जब साधु–संग मिलेगा। वह भी, हरि की कृपा होगी तब ही मिल पावेगा।

अतः प्रियजनों! उक्त लेख में श्रीगुरुदेव जी जो लिखा रहे हैं, उसे बड़े ध्यानपूर्वक पढ़कर गहन विचार करो कि भविष्य में जीवन कितना दुःखदायी होगा। अभी से एक लाख हरिनाम का अवलंबन कर लो वरना गहरे पश्चाताप् की अग्नि में जलना होगा।

श्रीगुरुदेव समझा–समझा कर हैरान हो गए परंतु अब भी समझ में नहीं आया। मेरी सेवा तभी होगी जब एक लाख हरिनाम करोगे। पैसा, कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं की भेंट, मेरी सेवा नहीं है। यह तो अनित्य वस्तुएँ हैं जो मुझे संतुष्ट नहीं करतीं, उल्टा दुःख देती हैं।

जो एक लाख ''**हरिनाम**'' (महामंत्र) नित्य करेगा, वही मेरा, श्रीगुरुदेव तथा भगवान् का प्रिय होगा। वह इसी जन्म में निहाल हो जाएगा। उसको संसार में कुछ पाना बाकी नहीं रहेगा। उसे सभी संपत्ति मिल गई। सभी ओर से धनाढ्य बन गया।

सभी को एक लाख हरिनाम करने का समय मिल रहा है। केवल बहानेबाज़ी है कि समय नहीं है। जब मौत आवेगी तब भी

कह देना कि बाद में आना, अब समय नहीं है। जबरन खिंचते हुए जाना ही होगा।

रात में कम खा कर सोओ ताकि ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाओ, आलस्य से बच जाओ तथा 3.00 बजे उठ कर हरिनाम कर सको। Early to bed & early to rise makes a man healthy wealthy & wise. स्वस्थ, धनाढ्य व बुद्धिमान् तब ही बन पाओगे, जब बह्ममुहूर्त में जागकर एक लाख हरिनाम करोगे वरना दुःख सागर में डूबे रहोगे। कोई बचाने वाला नहीं होगा। अपना कर्म स्वयं भोगोगे। दूसरा इसमें क्या करेगा ? रोते हुए जाओगे और आगे भी रोते रहोगे।

श्रीगुरुदेव प्रत्यक्ष उदाहरण देकर समझा रहे हैं कि नामनिष्ठ का प्रभाव, श्रद्धालु नामनिष्ठ बनने वाले पर कैसे पड़ता हैः–

नामनिष्ठ–भक्त एक प्रकार से चुंबक है। चुंबक लोहे को अपनी ओर आकर्षित करता है। अतः नामनिष्ठ–भक्त, नामनिष्ठ बनने वाले भक्त को ही अपनी ओर आकर्षित करेगा। तपोनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, यज्ञनिष्ठादि को कदापि नहीं कर सकता। चुंबक–चांदी, सोना, पीतल, तांबा, आदि को आकर्षित नहीं कर सकता। क्यों नहीं कर सकता ? इसका खास कारण है कि ये सजातीय नहीं हैं, विजातीय हैं। इसी प्रकार तपोनिष्ठ आदि भी चुम्बक से विजातीय हैं। कबूतर, कबूतर के पास ही जाएगा, कौवे के पास नहीं क्योंकि कौवा विजातीय है।

नामनिष्ठ–भक्त के अन्तःकरण में नाम का प्रकांड प्रकाश फैला हुआ है। इसके बाहर–भीतर के रोम–रोम में हरिनाम गूंज रहा है। अतः जो भी उसके सामने या चरण में रहेगा उसे भी वह अपनी तरंगों (वाईब्रेशनज़) के ज्योर्तिपुंज में ओत–प्रोत कर देगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण अर्जुन हैं। जब श्रीकृष्ण अर्जुन के शयनागार में गए तो पास में बैठकर देखा तथा सुना कि अर्जुन के प्रत्येक रोमकूप से हरिनाम की गूंज निकल रही थी। अर्जुन हर क्षण ''कृष्ण–कृष्ण'' मन ही मन स्मरण किया करता था अतः यही शब्द त्वचा के रोम–रोम में व्याप्त हो गया।

भगवत्–चर्चा अर्थात् भगवान का नाम एक ऐसा द्रुतगामी तीर है जो एक गर्भस्थ–शिशु पर भी प्रभाव कर देता है। जब उसकी माँ भगवत्–कथा, सत्संग करती है तो शिशु पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। जब शिशु ही प्रभावित हो जाता है तो जो सामने बैठकर, हरिनाम निष्ठ भक्तों के चरणों में बैठकर सुनता है, उसका तो कहना ही क्या है!

कलिकाल में श्रीहरिदास जी, जो जाति के मुसलमान थे, तीन लाख नाम नित्य स्मरण किया करते थे। एक लाख नाम उच्चारणपूर्वक, एक लाख उपान्शु (कंठ में) तथा एक लाख मानसिक (मन–मन में) जब उनको बिगाड़ने के लिए उनके पास उस गांव के जमींदार रामचन्द्र खां ने एक प्रवीण वेश्या को भेजा तो वह अपने मन की बात। श्रीहरिदास जी को बोली, तो श्रीहरिदास जी उसकी इच्छा पूरी करने को राजी हो गए। उन्होंने कहा–''तुम्हारी भिक्षा ज़रूर स्वीकार करूँगा लेकिन मैंने हरिनाम का नियम ले रखा है, उसे पूरा करने पर ही मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी कर सकूंगा। अतः तुम्हें तब तक इंतज़ार करना पड़ेगा।'' वेश्या ने कहा–''तैं तुम्हारे पास बैठ जाती हूँ, आप अपना नियम पूरा कर लीजिए।'' यह कह कर वह वेश्या उनका उच्चारण किया नाम बैठ कर सुनती रही। शाम को हर रोज़ नामनिष्ठ को अपने मन की बात कहती रही। श्रीहरिदास जी भी अपना नियम पूरा न होने की बात बताते रहे। तीन दिन तक यही चर्चा चलती रही।

तीसरे दिन, वह वेश्या श्रीहरिदास जी के चरणों में गिरकर ज़ोर–ज़ोर से विलाप करने लगी–''मैं बहुत दुष्टा हूँ! पापिन हूँ! कामुक हूँ। अनन्त अवगुणों की खान हूँ! मुझे क्षमा कर दीजिए! अपनी शरण में मुझे ले लीजिए! आप तो क्षमा की मूर्ति हो! मेरे अन्तःकरण में न जाने क्या हो गया! मेरा मन श्रीकृष्ण ने आकर्षित कर लिया अब मैं श्रीकृष्ण के बिना नहीं रह सकती। मेरा मन संसार से घृणा करने लग गया। आपने मुझ पर क्या जादू कर

दिया? अब मैं एक क्षण भी आपके चरणों से अलग नहीं रह सकती।''

यह है नामनिष्ठ की असीम कृपा का फल। नामनिष्ठ की भगवान् हर दिशा से रक्षा करते रहते हैं तथा नामनिष्ठ हर जीव का मंगल चाहता रहता है। भगवान् से जीव का मंगल करने की प्रार्थना करता रहता है। भगवान् नामनिष्ठ-भक्त की प्रार्थना सुनने को मज़बूर होते रहते हैं। नामनिष्ठता ही सब भक्ति-साधनों में सर्वोत्तम भक्ति-साधना है। कलियुग में ही नहीं, सतयुग, त्रेता, द्वापर में भी हरिनाम ही भक्ति का सर्वोत्तम साधन है।

कृतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होइ सो कलि हरिनाम तें पावहिं लोग।।

कलियुग में घर बैठे भगवान मिल जाते हैं। गर्मी में कूलर, पंखा। सर्दी में हीटर। कितना सुगम-सरल साधन तथा सुगम सत्संग मिल गया। खाने-पीने की, रहने की चिंता नहीं, फिर भी मानव सोता रहता है, कैसी विडंबना है! शर्म आनी चाहिए। पश्चाताप् होना चाहिए। मन को धिक्कारना चाहिए वरना भविष्य में जीवन अत्यंत कष्टदायक मिलेगा।

मैं गुरुदेव जी के आदेश का पालन करते हुए, सभी से चरण पकड़ कर तथा हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरी प्रार्थना भी सुनकर, मार्ग अपनाओ, मैं आप सबका आभारी व कृतज्ञ रहूँगा। प्रेमास्पदो! मुझ पर कृपा करो। मैं झोली फैलाकर आप सबसे भिक्षा मांग रहा हूँ। मुझे अपने द्वार से खाली न भेजना। बस यही मेरी अंतिम प्रार्थना है।

जय जय नवद्वीपचन्द्र शचीसुत।
जय जय नित्यानन्दराय अवधूत।।
श्री नवद्वीप के चन्द्रस्वरूप श्रीशचीनन्दन की जय हो। जय हो।
अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। जय हो।

भगवत्–प्राप्ति में अड़चन

ब्रह्मचर्य–पालन ही भगवत्–प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है। वैसे तो ग्यारह इन्द्रियों को अध्यात्म–मार्ग में नियोजित करना ही विस्तृत रूप में ब्रह्मचर्य पालन है लेकिन इसका एक मोटा अर्थ है अपने शरीर में जो घी (वीर्य) 40 दिन के भोजन से बनता है, वह एक बार के स्त्री–संग से नष्ट हो जाता है। उसकी रक्षा करना भजनानंदी को बहुत ही ज़रूरी है वरना भजन में रस आना बंद हो जाएगा।

शरीर में जो शक्ति है, वह एक अमूल्य वस्तु है, उसे नष्ट करना, शरीर को भूसा तुल्य बनाना है। इससे पूरे–शरीर में दर्द होकर दुखते रहना, बार–बार सर्दी–जुकाम का आक्रमण होना, बीच–बीच में ज्वर आ जाना आदि रोग आकर दबा लिया करते हैं। यदि शरीर में बल (घी) ओत–प्रोत है तो उक्त दुश्मनों का ज़ोर नहीं चलता। यही माया के हथियार हैं जो भक्ति–पथ में जाने से रोकते रहते हैं।

जब भी कोई भक्ति–पथ में उन्नत होता है तो इन्द्र महाराज उस पर कामदेव को भेज कर उसका ब्रह्मचर्य नष्ट करवा देते हैं। इससे उसका भक्ति–मार्ग, जो एकदम खुला रहता है, वह बंद हो जाता है। जब भक्ति का पथ उज्ज्वल रहता है तो कामदेव की शक्ति क्षीण हो जाती है। वह डर की वजह से भाग जाता है। उसे मालूम है कि यदि इसने मुझ पर क्रोध कर दिया तो भस्म हो जाऊँगा। कामदेव, ब्रह्मचर्य को नष्ट करने में समर्थ होने से ही भक्ति–रस को सुखाने में सबसे प्रवीण माने जाते हैं।

श्रीगौरहरि ने इस पर गहरा विचार करके ही अपने भक्तों को स्त्री–सम्भाषण करने से सावधान किया है। स्त्री जाति, माया का अमोघ हथियार है। इससे बचना बहुत ही मुश्किल है। घी एवं आग पास–पास होने से घी अवश्य पिघलेगा। स्वयं को भी विचार कर सावधान रहना होगा। अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हो, फिर कह

रहे हो, हमें बचाओ। कैसी मूर्खता है ? 40–50 साल की उम्र के बाद वीर्य बनता नहीं है। श्रीगुरुदेव मुझे सब कुछ बता देते हैं। कोई मुझसे छिपा नहीं सकता। सभी को इस पत्र की कापी देनी होगी ताकि सभी सतर्क हो जावें। जो भगवान् को सच्चे दिल से चाहेगा, वही सतर्क होगा। जो नहीं चाहेगा, वह नाटकबाज़ है। कोई–कोई चुभने वाली बात भी मुझसे लिखाई जाती है। जो पात्र होगा, वह बुरा नहीं मानेगा। जो अपात्र होगा, वह मुझे गालियाँ देगा। इसमें भला सबका है, चाहे कोई माने या न माने।

दूसरा उदाहरण सामने देख रहे हो। श्रीहरिदास जी, जो तीन लाख हरिनाम नित्य जपते रहते थे। वेश्या उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकी। वेश्या भेजने वाला जानता था कि एक बार का संग, तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति नष्ट कर देगा। फिर तीन लाख हरिनाम का आवेश समाप्त होने से मन नीचे गिर जाएगा। माया का बस चल जाएगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ क्योंकि हरिनाम की शक्ति, वेश्या के भाव की शक्ति से कहीं अधिक थी। अतः मन गिरा नहीं, वरना तो देखते ही मन चंचल हो जाता है। कहां भक्ति, कहां काम का मज़ा ? श्रीहरिनाम ने ही हरिदास जी की रक्षा की थी। उनका मन ज़रा भी गिरा नहीं। वेश्या का मन ही भक्ति की ओर गिर गया।

मैं देख रहा हूँ, सभी काम के वश में हो रहे हैं। ऊपर से नाटक बाज़ी करते रहते हैं। भक्ति–रस आने पर फिर कभी कम नहीं होता। इस काम की वजह से ही रस आने में व्यवधान पड़ जाता है। इसका अन्य कोई कारण नहीं है। अपराध होने से माया ही काम का आक्रमण करा देती है, फिर कामुक मन भरता नहीं है। सीमा तोड़ देता है। जितना भोगोगे, उतनी उग्रता लाएगा। आग में जितना घी डालोगे उतनी भड़केगी। ज्यादा घी डालने पर बुझ जाएगी। ज्यादा संग करने पर शरीर अशक्त होने से काम–शक्ति निर्बल होकर बेहोश हो जाएगी।

इसके बचने का इलाज है–कम खाना, दूर–दूर सोना। इससे होने वाले कष्ट के बारे में आपस में विचार–विमर्श करना। तब ही भक्ति–पथ में आगे बढ़ना होगा वरना दिखावे के अलावा कुछ नहीं होगा। जहां भक्ति–रस प्रेममय होगा, वहां काम आ ही नहीं सकता। जहां उजाला होगा वहां अंधेरे की दाल कैसे गल सकती है ? जहां काम है, वहां सच्चा प्रेम नहीं है, केवल दिखावा है। दिखावा भी सच्चा हो जाता है, यदि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन हो तो।

कृष्ण आकर्षये सर्व विश्वगत जन।
सेइ नित्य धर्मगत कृष्णनाम धन।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण सारे विश्व को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीकृष्ण–नाम रूपी परमधन में भी यह आकर्षण–धर्म नित्य विराजित है।

हरिनाम की संख्या के लिये जो आपने संकल्प लिया है,
उसमें ढीलापन न हो,
इसके लिये बार–बार व खासतौर पर
ध्यान देना होगा।

(नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर)

निरंतर या'र मुखे शुनि कृष्णनाम
सेइ से वैष्णवतर सर्वगुणधाम

– श्री हरिनाम चिंतामणि

जिसके मुख से निरन्तर कृष्ण नाम सुनाई पड़ता है अर्थात् जो निरन्तर श्रीकृष्ण–नाम करता रहता है–वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा वैष्णव सभी गुणों की खान होता है।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28-08-2008

परमाराध्यतम, प्रेमास्पद भक्तगण तथा शिक्षा-श्रीगुरुदेव भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दंडवत् प्रणाम तथा प्रेम-सहित भगवत्-भजन होने की करबद्ध बारम्बार प्रार्थना।

श्रीगुरुदेव की भगवान् से भी अधिक महत्वशील उत्कर्षता

श्रीमद् भागवत् महापुराण में जय-विजय के प्रसंग में पढ़ने को मिलता है। भगवान्, सनकादिक-चारों भाईयों को इंगित करके बोल रहे हैं कि मेरे प्यारे भक्तगणों! मैं आपको सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि भक्त ही मेरे आराध्यदेव हैं। भक्तों के बिना मुझे चैन नहीं मिलता। भक्तों से लीला करने हेतु मैं प्रत्येक ब्रह्मांड में अवतरित होता रहता हूँ। भक्त मेरे हैं और मैं भक्तों का हूँ। ब्रह्मांड में मेरे अवतरित होने का और कोई कारण नहीं है। राक्षसों को तो मैं अपनी भृकुटि मात्र से ही मार सकता हूँ ।

जब भक्त ही भगवान् के सर्वस्व हैं तो श्रीगुरुदेव, जो साक्षात् भगवत्रूप ही हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? शास्त्रों का कथन है-

गुर्रुब्रह्मा, गुर्रुविष्णु, गुर्रुदेवो महेश्वरः।
गुरुसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।।

ध्यान मूलं गुरुमूर्ति, पूजा मूलंगुरुपदम्।
मंत्रमूलं गुरुवाक्यम्, मोक्षमूलं गुरुकृपा।।

श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमरत दिव्य-दृष्टि हिय होती।।

उघरहिं विमल विलोचन हिय के।
मिटहि दोष दुःख भव–रजनी के।।

सूझहिं राम–चरित मनि–मानक।
गुप्त प्रगट जहं जो जेहि खानिक।।

कवच अभेद गुरु–पद पूजा।
एहि सम विजय उपाय न दूजा।।

राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

जो सठ गुरु सन इर्षा करहिं।
रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।

त्रिजग जोनि पुनि धरहिं शरीरा।
अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।

प्रत्यक्ष में साक्षात् देखा व अनुभव किया गया है कि जिस भक्त ने श्रीगुरुदेव से विरोध किया है तथा करता है, वह कभी भी चैन से नहीं रह पाता है। उसके मुख से हरिनाम नहीं आता क्योंकि हरिनाम तो स्वयं भगवत्–अवतार रूप में कलिकाल में प्रगट हैं। उसका तो स्वयं भगवान् से ही विरोध भाव हो गया। उसको तो रौरव नरक में सज़ा होगी ही।

श्रीगुरुदेव तो भगवान् के साक्षात् प्रियजन हैं। भगवान् ही श्रीगुरुदेव के रूप में जीव पर कृपावर्षण करने आते हैं। इनका आदेश–पालन ही शास्त्रों के अनुसार जीवन–यापन करना होता है। जो ऐसा जीवन–यापन करता है, उसे ही भगवत्–दर्शन होता है। वही, भगवान् को खरीद लेता है।

हरिनाम–जापक का हरिनाम–स्मरण से प्रत्यक्ष प्रभाव तब ही होगा जब वह आरंभ में माला हाथ में लेते ही, श्रीगुरुदेव से स्मरण–पूर्वक प्रार्थना करेगा क्योंकि यह हरिनाम श्रीगुरुदेव की कृपा से ही उपलब्ध हुआ है। बाद में कुछ भी स्मरण कर हरिनाम

जप सकता है। अपनी शक्ति से मन हरिनाम में नहीं लगेगा। मन या तो भटकता रहेगा या सुषुप्ति अवस्था में चला जाएगा।

हरिनाम को मानसिक रूप से भक्तों के चरणों में बैठ कर उच्चारण-पूर्वक या मन-मन में जप कर उनको सुनाते रहने से मन स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। 2-4 माला करने के बाद-

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहिमाम।।

बोलकर भगवान् को सुनाते रहना चाहिऐ ताकि शीघ्र भगवत्-कृपा वर्षण होती रहे। उक्त प्रार्थना में साक्षात् शरणागति का भाव ओत-प्रोत है।

स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु रो-रो कर, हरिनाम करते हुए, बीच-बीच में उक्त वाक्य का उच्चारण किया करते थे। "कहां जाऊँ! कहां पाऊँ! ब्रजेन्द्रनन्दन! हे मुरली वदन! हे यशोदा-नन्दन! हे कंसनिकन्दन!" आदि नाम ले-ले कर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते व रोते रहते थे। जापक यदि इन्हीं का अनुसरण करता रहे तो हरिनाम की कम संख्या में भी प्रेमावस्था प्रगट हो सकती है लेकिन उच्चारण, अन्तःकरण से हो तथा अपराधों से बचता रहे तब ही शत-प्रतिशत अवश्यमेव प्रेमावस्था प्रगट होगी ही। यह श्रीगुरुदेव की गारंटी है।

अवहेलनापूर्वक हरिनाम होने पर भी संसार से चौरासी लाख योनियों में जाने से जीव बच जाता है तो शुद्ध-नाम लेने पर तो सारे मार्ग खुले पड़े हैं। उसे कोई रोक ही नहीं सकता। वह भगवत्-धाम में पहुँच जाता है।

भगवत्-धाम कैसा है ? जिह्वा से वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि जिह्वा के पास आंखें नहीं और आंखों के जिह्वा नहीं। ऊपर से कुछ वर्णन करने का श्रीगुरुदेव का आदेश हुआ है। गोलोक धाम कैसा होगा ? जो चिंतन में आता रहता है। श्रीगुरुदेव की शक्ति से वर्णन करने का साहस बटोर कर कह रहा हूँ। भक्तगण आशीर्वाद करें ताकि मैं वर्णन कर बता सकूँ।

वहां की भूमि का एक–एक कण इतना तेज़ चमकता रहता है कि आंखें चुंधिया जाती हैं। वहां के वृक्ष–पौधे अनेक दिव्य अलौकिक रंगों के हैं जो अपनी दिव्य छटा चारों ओर बिखेरते रहते हैं। वहां मनमोहक रंग वाली रोशनी दसों दिशाओं में अपनी सुंदर छटा बिखेरती रहती है।

उस गोलोक धाम में एक ऐसी कानों को आकर्षण करने वाली मीठी, सुरीली ध्वनि गूंजती रहती है कि वहां के निवासियों को मादक–सा रस आने पर निद्रा–सी लाती रहती है। उस परमानंद का जीभ से वर्णन करना असंभव सा ही है। भांति–भांति के पक्षी, डालियों पर बैठ कर राधा–कृष्णमय ध्वनि निकाल कर सुनने वालों को मस्ती में डुबोते रहते हैं।

यह गोलोक धाम इतने विस्तार में फैला है कि इसका नाप बताना, नाप के बाहर की बात है। भांति–भांति के भावों के रसिक अपने–अपने क्षेत्र में राधा–कृष्ण की भांति–भांति की लीलाओं में मस्ती से झूमते रहते हैं।

गिरिराज की छटा ही निराली है। गिरिराज, गगनचुम्बी छटा बिखेरता रहता है जिसमें से अनन्त झरनों का कल–कल शब्द गूंजता रहता है। अनेक भांति की वृक्षावली की छटा निराली ही है, जिन पर भांति–भांति के पक्षीगण अपनी–अपनी बोली में राधा–कृष्ण की लीलाओं के गुण मीठे–स्वर में गाकर, सुनने वाले को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

श्रीगिरिराज की तलहटी में श्रीयमुना जी की आकर्षित करने वाली लहरें किल्लोल करती रहती हैं तथा राधा–कृष्ण के गुणों के रूप में उछल–उछल कर आनंदमग्न होती रहती हैं। किनारों पर वृक्षावली लहराती रहती है जिनसे मीठा मधु चूता रहता है। वहां सूर्य–चंद्र का प्रकाश नहीं है। वहां प्रत्येक वस्तु ही रोशनी फैलाती रहती है।

वहां वही जाता है जिसने श्रीकृष्ण के चरणों में अपने मन को अर्पित कर दिया है। वहां जो भी जाता है, उसको भूख–प्यास, आधि–व्याधि, बुढ़ापा अर्थात् दुःख–कष्ट की गंध भी नहीं रहती है। मन की मस्ती उस पर सदैव छायी रहती है। जहां जाना चाहे, वहीं विमान प्रगट हो जाता है। वहां सभी साधन मनोकल्पितमय हैं। कुछ करना नहीं पड़ता, स्वतः ही प्रगट हो जाता है। इसके परमानंद का कोई अन्त नहीं है। इस परमानंद को कोई जीभ से बता नहीं सकता, केवल अनुभव में ही आता है। न बताने की समर्थ है। कुछ–कुछ लेखनी से लिखा जा सकता है। यहां इस मृत्युलोक में सबकी इन्द्रियां जड़ हैं। यह उस भाव तक नहीं पहुँच सकती। जैसे गूंगा किसी चीज़ का स्वाद बता नहीं सकता, वैसे ही भक्त भी इस लोक की अलौकिकता को बताने में असमर्थ है। जो थोड़ा बहुत जड़ रूप में बताया है, उसे ही पाठकगण अपने अनुभव व बुद्धि से समझ कर अपना लें।

हरिनाम करते हुए इसका भी चिंतन हो सकता है। इससे मन कहीं भटकेगा नहीं। अनेकों भक्तगणों के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाते रहो। भक्तगणों का कोई अन्त नहीं।

श्रीगोलोक–धाम का साक्षात् वर्णन लेखन में आ ही नहीं सकता। अनन्त युगों तक भी लिखा जाए तो इसकी दिव्यता का अन्त नहीं होगा। यह जो भी श्रीगुरुदेव ने लिखवाया, मैंने आपके चरणों में अर्पित कर दिया। यही मेरी सेवा है।

जो कुछ इस जड़ बुद्धि से तथा जड़ जिह्वा से, श्रीगुरुदेवजी ने वर्णन करवाया है वह तो गोलोकधाम की छाया मात्र है, मायिक वर्णन है। जैसी गोलोकधाम की आभा व ध्वनि है उसका तो कोई परमहंस भक्त भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

यह गोलोक धाम तो सभी लोकों से ऊपर, नित्य विराजमान रहता है। इसका कभी नाश होता ही नहीं है। यहां पर जीव सदैव अमर रहता है। भगवान जिस जीव को इन अखिल लोक–ब्रह्मांडों में जीवों के उद्धार हेतु, कृपा परवश होकर भेजते हैं, वही जीव

पार्षद रूप से अवतरित होकर श्रीगुरु रूप में आता है। जो भी जीव उनके संपर्क में आता है, गुरु–दीक्षा देकर, व भक्ति–आचरण करने का आदेश देकर उसका मंगल विधान करते रहते हैं। उस पार्षद में भगवत्–शक्ति निहित रहती है, तब ही उस पार्षद का आचरण देख–सुनकर, साधारण जीव उनकी ओर खिंचता हुआ चला आता है। उस पार्षद में श्रीमद् भागवत् के कथनानुसार, वे अपने आयुधों (शस्त्रों) के चिह्न, हाथ–पैरों में रेखांकित कर देते हैं ताकि साधारण जीव इनका अवलोकन कर उन पर अटूट श्रद्धावान बन सके। जब तक साधक इन आयुधों तथा आचरण को नहीं देखेगा/सुनेगा तब तक उसकी गुरुदेव पर अटूट श्रद्धा नहीं बन सकेगी।

श्रद्धा ही भगवत्–दर्शन करा सकती है। बिना श्रद्धा भजन नीरस ही रहता है। मंदिर–सेवा भी तब ही फलीभूत होती है जब श्रद्धा अन्तःकरण में जमती है वरना तो कठपुतलीवत् सेवा रहती है। इससे भविष्य उज्ज्वल नहीं बन पाता। देखा भी जाता है कि जन्म भर मंदिर की सेवा करते हो गए परन्तु हरिनाम में रुचि उदय नहीं हुई। इसमें केवल श्रद्धा की ही कमी रही। साथ–साथ में हरिनाम होना परमावश्यक है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीगौरहरि ने गांव वालों के पूछने पर बताया कि अर्चन–पूजन भी वैसे तो ज़रूरी है पर यदि न भी हो सके तो दो काम अवश्य करो–पहला हरिनाम और दूसरा–भक्तों की मन, कर्म तथा वचन से सेवा करते रहो तो तुम्हें अंतिम पुरुषार्थ–प्रेम की प्राप्ति हो जाएगी क्योंकि गृहस्थी में समय मिल नहीं पाता। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि एक लाख हरिनाम प्रत्येक साधक को करना परमावश्यक है। मन चाहे लगे, न लगे नामाभास तो होगा ही। नामाभास करते–करते शुद्ध नाम भी उदय हो जायेगा।

नामाभास तो कर्म मार्ग व ज्ञान मार्ग से अनंत गुणा श्रेष्ठतम है। संकेत से, परिहास से, क्रोध से, अवहेलनापूर्वक लिया हुआ नाम तो सभी वेदों के पढ़ने, सभी तीर्थों के करने, दान करने तथा अनेक शुभकर्मों के करने से भी अधिकतम सर्वोत्तम है। तब ही तो

संसार में देखा जाता है। कि आपस में मिलने पर राम–राम सा, जै गोपीनाथ जी की, जय सीया–राम सा आदि नाम आपस में बोला करते हैं। इस आचरण से भी सुकृति बनती रहती है। कई जन्मों के बाद यही सुकृति साधु–संग करा देती है। साधु–संग होने से जीव का शुभ मार्ग खुल जाता है।

भगवान् को कौन चाहता है ? सब माया मोहित रहते हैं। कलि में कोई करोड़ों, अरबों में से एक ही भगवान को चाहने वाला मिलता है क्योंकि सभी साधु–संग से वंचित रहते हैं। यह साधु–संग भी सुकृतिवश, भगवत्–कृपा से ही मिला करता है। भूल से भी साधु–सेवा किसी की बन जाए तो उस पर भगवत्–कृपा स्वतः ही हो जाती है। भगवान् उस जीव का बहुत बड़ा एहसान मानते हैं कि उसने मेरे पुत्र की सेवा कर दी। भगवान् के दो ही पुत्र हैं–एक साधु, दूसरा नास्तिकजन। नास्तिकजन की भगवान् परवाह नहीं करते व आस्तिक जन का हर क्षण ध्यान व रक्षा करते रहते हैं। श्रीनारद जी ने दासी पुत्र होते हुए भी बचपन में साधुओं की जूठन खाई थी। उसी का फल है कि आज वे सारे लोकों में इकतारे की धुन में नारायण–नारायण उच्चारण कर घूमते रहते हैं। साधुओं की सेवा ही सर्वोपरि है। भगवान की सेवा से भी बढ़कर है।

पुन्य एक जग में नहीं दूजा।
मन क्रम वचन साधु–पद पूजा।
तिन पे सानुकूल मुनि देवा।
जो तज कपट करे साधु–सेवा।

दश अपराध छाड़ि नामेर ग्रहण।
इहाइ नैपुण्य हयं साधन–भजन।।
दसों अपराधों को छोड़कर हरिनाम करना ही
भजन–साधना में निपुणता है।

4

छींड की ढाणी
5-7-2008

प्रेमास्पद, भक्त-प्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज के युगल-चरणारविंद में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम करने की प्रार्थना।

ॐ (प्रणव) शब्द में अपार-असीम शक्ति - विवेचन

भगवत-मुखारविंद से प्रणव (ॐ) का आविर्भाव हुआ। इस ॐ से स्वर-अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः तथा व्यंजन-क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ त थ द ध न ट ठ ड ढ ण प फ ब भ म य र ल व श ष स ह का प्राकट्य हुआ।

इन स्वर व व्यंजनों से शब्द का प्राकट्य हुआ तथा शब्द से वाक्य का संचार हुआ। जब वाक्य, कान द्वारा अन्तःकरण में प्रवेश किया तो हृदय को सुख-दुःख का अनुभव हुआ। इस सुख-दुःख ने स्थूल इन्द्रियों में हरकत की जिससे कर्म करने की प्रवृति जागृत हुई जिसने संसार के व्यवहार का संचालन किया।

शब्द के अभाव में अखिल-कोटि ब्रह्मांडों का व्यवहार चल ही नहीं सकता। सभी जीवसमूह, शब्द के माध्यम से कर्म करते रहते हैं। तब ही धर्म-शास्त्र उद्घोष कर रहा हैः-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।

यदि कर्म का विधान न होता तो न तो सृष्टि का प्राकट्य होता और न ही भगवान् का अवतार ही होता। लीलाधारी भगवान् ने लीला रचने हेतु कर्म का विधान रचा। भगवान् का मन भी भक्तों

के अभाव में प्रसन्नता प्राप्त नहीं करता। भगवान् का संसार ही भक्तों से है।

कर्म ही मानव के पीछे लगा हुआ है। मानव यदि शुभ कर्म, जो धर्म–शास्त्रों में अंकित हैं, करता है तो सुखी लोकों में गमन करता है एवं यदि शास्त्रों के विरुद्ध कर्म करता है तो दुःखी लोकों में जाता है। भगवान् के एक लोभ कूप में अनन्त कोटि ब्रह्मांड समाए हुए हैं। अतः लोकों की कोई गिनती नहीं है।

अलौकिक शब्द मिलकर आध्यात्मिक शास्त्रों का उद्भव होता है तथा लौकिक शब्द मिलकर भौतिक शास्त्रों का उद्भव होता है। दोनों ही सुख–दुःख के कारण बनते रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि वह कौन सा अलौकिक शब्द है जो परमानन्द का कारण बना तथा वह कौन सा लौकिक शब्द है जो दुःख सागर में डुबोए रखता है ? लौकिक नाम अज्ञान का द्योतक है। आध्यात्मिक नाम ज्ञान का द्योतक है। भगवत्–नाम ही ज्ञान का द्योतक है जिससे दुःख का समूल नाश हो जाता है। भगवत्–नाम से ही मानव को भगवत्–धाम का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है। सान्निध्य प्राप्त होने के बाद वापस संसार रूपी दुःख सागर में गिरना नहीं पड़ता।

अब भौतिक नाम का प्रभाव भी देखिये। जैसे किसी ने किसी को अपशब्द (गाली) कह दिया। उसने उस शब्द को कान द्वारा सुन लिया। वह शब्द अन्तःकरण में जा पहुंचा। बस फिर क्या था ? उसका हृदय आगबबूला हो गया जिससे क्रोध उदय हो गया और क्रोध से उसकी बुद्धि का ज्ञान चला गया। ज्ञान का लोप होने से उसने कोई विचार नहीं किया, तुरन्त उस पर धावा बोल दिया तथा छुरे से उसका गला ही काट दिया। एक शब्द ने एक जिन्दगी ही समाप्त कर दी। यदि वह मन ही मन में गाली देता तो कान से सुनता नहीं और हृदय में वह शब्द जाता नहीं, फिर यह दुर्घटना नहीं होती। अतः निष्कर्ष यह निकला कि सुनना ही प्रभाव करता है।

इसी प्रकार हरिनाम जब कान द्वारा नहीं सुना जाएगा तो नाम का प्रभाव हृदय में नहीं होगा। अतः नाम को सुनना ही लाभप्रद होगा। नाम को सुनने से इस शब्द का प्रभाव, क्रोध न जगा कर प्रेम उदय करा देगा।

शास्त्रों के अवलोकन से भी जाना जाता है कि शब्दभेदी बाणों से समुद्र सोख लिया जाता था। शब्दभेदी बाणों से प्रचंड ज्वाला भभक उठती थी। शब्दभेदी ज्ञान से, जो दीपक राग कहलाती थी, दीपक जल जाते थे। मेघराग से बरसात हो जाती थी। तानसेन व बैजूबावरा इन रागों के पंडित थे। बिगुल द्वारा शब्दघोष होने पर घमासान युद्ध छिड़ जाता था। मोबाइल द्वारा शब्द पूरी दुनियाँ को हिला रहा है। अतः शब्द में बड़ी शक्ति है। अतः हरिनाम–शब्द को साधकगण को अपनाना होगा तथा कानों द्वारा सुनना होगा।

जब भौतिक नाम दुनियाँ को हिला सकता है तो क्या हरिनाम भौतिक नाम से कम प्रभावशाली है ? इसमें केवल मात्र श्रद्धा–भाव की कमी है। हरिनाम ही कलियुग का पारक मंत्र है।

कान से सुने बिना कोई भी शब्द, चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, प्रभाव करने में सक्षम नहीं होगा। भौतिक शब्द तो स्पष्ट उच्चारण करने पर ही प्रभाव करता है लेकिन हरिनाम शब्द तो अवहेलनापूर्वक लेने पर भी प्रभाव कर देता है।

भौतिक शब्द, जो गाली दी गई थी उस शब्द से तो सामने वाले को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा किन्तु आध्यात्मिक शब्द–हरिनाम लेने पर तो 'अहम्' का गला ही कट जाएगा। अहम् (मैं–मेरा) का गला कटा नहीं कि शरणागति स्वतः ही उदय हो जाएगी।

जिस साधक ने हरिनाम को अपना लिया उसे भगवत् प्राप्ति का सरलतम, सहज व सुगम रास्ता मिल गया। इतना होने पर भी मानव का कितना दुर्भाग्य है कि उसे भगवत्–नाम–शब्द उच्चारण करने में कितना आलस आ रहा है। यह बड़ी शोचनीय बात है। थोड़ा विचार करके तो देखो कि अब भविष्य में मानव जन्म नहीं

मिलने का तथा अनन्त काल तक दुःख सागर में डूबना होगा। इस समय भी ज़रा विचार कर अनुभव करो! क्या अब इस समय सुखी हो? युवक पढ़ने से दुःखी, रोज़गार न होने से दुःखी, गरीबी से दुःखी, राज से दुःखी, पड़ौसी से दुःखी, आपस में स्वभाव न मिलने से दुःखी–सुख का तो लेश मात्र भी नहीं। मानव फिर भी भगवान से, जो सुख के सिंधु हैं, लगाव नहीं करता और रात–दिन रोता रहता है। आगे भी रोयेगा।

मेरी हाथ जोड़कर तथा चरण छूकर प्रार्थना है कि जो भी इस पत्र को पढ़े कृपया, नित्य ही 64 माला हरिनाम की कान से सुनकर करे तो गुरुदेव जी गांरटी ले रहे हैं कि एक लाख हरिनाम करने वाला अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारों पुरुषार्थ प्राप्त करने का अधिकारी बन जायेगा तथा अन्त में भगवत्–धाम में गमन कर जाएगा, जहां परमानन्द का समुद्र लहरें लेता रहता है। उसके दुःखों का सदा के लिए समूल नाश हो जाएगा।

हरिनाम अपनाने वाले को लेने, भगवत् दूत नहीं आते। स्वयं भगवान् अपने नाम के शरणागत को लेने आते हैं। इसी जीवन में उसका संसार सुखमय हो जाएगा। कलि उसकी तरफ झांक भी नहीं सकेगा। इसमें एक प्रतिशत भी संदेह नहीं करना।

जैसा कि शिवजी अपनी धर्मपत्नी उमा को कथा में सुना रहे हैं:–

1. सादर (सुनकर) सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिध गो पद–इव तरहिं।।

2. कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई।।

3. सुनहुं उमा ते लोग अभागी।
हरि तजि होयं विषय अनुरागी।।

4. लाभ कि किछु हरि-भक्ति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराना।।
5. हानि कि जग एहि सम किछु भाई।
भजिए न रामहि नर तन पाई।।

यह मनुष्य-तन ही वैकुंठ जाने का द्वार है। यह द्वार चूक गए तो फिर यह द्वार मिलेगा नहीं। काल का कोई भरोसा नहीं है। एक क्षण में इस द्वार को नष्ट कर देगा। नरक का भोग भोगना होगा जो अकथनीय दुःख पाने का स्थान है। अब भी समझ जावो, यही मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है। मेरा भी भला, आपका भी भला। यदि श्रीगुरु आदेश से एक लाख हरिनाम लिया जावे तो मेरी खुशी का अन्त नहीं होगा।

वैष्णव उत्तम सेइ याहारे देखिले।
कृष्णनाम आसे मुखे कृष्णभक्ति मिले।।

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से जीवों के मुख से श्रीकृष्णनाम उदित हो जाता हो तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति हो, वही उत्तम वैष्णव है।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

एक नाम या'र मुखे वैष्णव से हय।
तारे गृही यत्न करि, मानिबे निश्चय।।

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण-नाम का उच्चारण होता है, उसे वैष्णव समझना चाहिये। गृहस्थ भक्तों को चाहिये कि वे अति यत्न के साथ इस सिद्धांत को मानें।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
एकादशी
01-05-2008

परमाराध्यदेव, भक्त-प्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निश्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में इस नराधम, दासानुदास, अधमाधम, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम भजन रूपी हरिनाम में रुचि हो, ऐसी प्रार्थना।

स्वयं के भजन-स्तर की जांच की कसौटी का दर्पण

(भगवत्-प्रेरित दर्पण-दृष्टिगोचर आख्यान)

1. भगवत्-भजन में मन स्वाभाविक रमण करता है कि नहीं ?
2. कोलाहल में मन स्थिर रहता है कि नहीं ?
3. मान-प्रतिष्ठा से मन दुःखी होता है कि नहीं ?
4. संकट में मन में स्थिरता रहती है कि नहीं ?
5. भजन हेतु उत्साह होता है कि नहीं ?
6. इन्द्रियों में संयम रहता है कि नहीं ?
7. दुःख में भगवान याद आता है कि नहीं ?
8. किसी भी प्राणी को दुःखी देखकर स्वयं को दुःख होता है कि नहीं ?
9. किसी की निन्दा व अपनी स्तुति सुनकर मन में घृणा होती है कि नहीं ?
10. भगवत्-चर्चा सुनकर अधिक सुनने की इच्छा होती है कि नहीं ?

11. प्रत्येक प्राणी का उपकार करने की इच्छा होती है कि नहीं ?
12. सन्त से मिलकर परमानन्द की अनुभूति होती है कि नहीं ?
13. सन्त से बिछुड़ने पर अपार दुःख का अनुभव होता है कि नहीं ?
14. सन्त के चरणों में बैठने से अधिक समय बैठने का मन करता है कि नहीं ?
15. भजनानन्द की भूख पहले से अधिक हो रही है कि नहीं ?
16. भजन का ह्रास होने पर अन्तःकरण दुःखी होता है कि नहीं ?
17. कभी भगवत्, सन्त, मंदिर, तीर्थ के स्वप्न आते हैं कि नहीं ?
18. स्वप्न में अष्ट–विकार कभी आते हैं कि नहीं ?
19. रात में 2–3 बजे भजन हेतु उठने का मन करता है कि नहीं ?
20. भजन से मन में मस्ती की लहर दौड़ती है कि नहीं ?
21. ग्राम्य–चर्चा से घृणा होती है कि नहीं ?
22. इन्द्रियों का वेग पहिले से कम हो रहा है कि नहीं ?
23. सभी कर्म भगवान पर छोड़े हैं कि नहीं ?
24. संसार को दुःख सागर समझा है कि नहीं ?
25. मौत को शीघ्र आने वाली समझा है कि नहीं ?
26. स्वयं से नीचे स्तर के भक्त को भी झुककर सम्मान दिया है कि नहीं ?

27. श्रीगुरुदेव को भगवत् का प्यारा–जन अनुभव कर, सेवा में लीन रहा कि नहीं ?
28. शत्रु का भी उपकार करने का भाव रहा कि नहीं–'तृणादपि सुनीचेन' भाव आया कि नहीं ?
29. अन्य के हक का अधिकार न चाह कर, सच्ची कमाई का पैसा कमाया है कि नहीं ?
30. सीमित आवश्यकताओं का भाव मन में है कि नहीं ?
31. जितना मिल रहा है, उस पर संतोष है कि नहीं ?
32. मंदिर में ठाकुर का भाव से दर्शन होता है कि नहीं ?
33. स्मरण–कीर्तन में अष्ट–सात्विक विकार उदय होते हैं कि नहीं ?

उक्त अवस्थाएं उदय होने पर स्वयं का भजन–स्तर दर्पण की तरह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। यही है भगवत्–शरणागति का असली रूप।



कृष्णनाम, भक्तसेवा सतत करिबे।
कृष्ण–प्रेम–लाभ ता'र अवश्य हइबे।।

हमेशा श्रीकृष्णनाम व भक्त सेवा करते रहें। ऐसा करने पर श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।

ब्रह्मचर्य से भगवत्-प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि

(श्रीगुरु-प्रेरित आदेशानुसार)

1. अग्नि व घी पास में रहने से घी अवश्य पिघल जाता है। (अग्नि=पत्नी+घी=पुरुष शक्ति)।

2. अलग-अलग शैय्या पर सोना श्रेयस्कर होगा।

3. रात में लंगोट लगाना तथा उपस्थ इंद्री को नाभि की ओर मोड़ कर सोना-इससे टेंशन नहीं होगा।

4. हाथ, पैर व मुख ठंडे पानी से धोकर बायीं करवट से सोना।

5. सोने से पहले हरिनाम की एक-दो माला गुरुदेव जी के चरणों में बैठकर सुनाना-इससे हर प्रकार की रक्षा होगी। यही गुरु-कवच है।

6. एक बार के संग से 40 दिन के आहार से भी अधिक शक्ति निरस्त हो जाती है। शरीर का घी जब शीघ्र ही निकलता रहेगा तो कोई भी रोग शरीर पर आक्रमण कर देगा। शीघ्र ही सफेद बाल, नज़र कम, दांत गिरना, एसिडिटि, ब्लड-प्रेशर, दमा, शरीर में दर्द आदि होगा।

7. पर्व त्यौहार, मंगलवार, एकादशी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, संध्या, दिन के समय, मासिक-धर्म के दौरान, रुग्णावस्था में व बेमन से किया हुआ संग-आयुक्षीण, चिन्ता व लक्ष्मी का नाश करता है। देवता नाराज़ हो जाते हैं।

8. रिच मील (गरिष्ठ भोजन) खाने से काम जाग जाता है अतः हरिनाम आश्रित होकर भोजन पावो अर्थात् नाम लेते हुए भोजन करो।

9. इन्द्रियों को जितना भोग दिया जाएगा, वे उतनी ही प्रबल होंगी, न देने से मरेंगी, अतः इन्हें विषय भोग न दो।

10. गुरुवर्ग के आचरण अनुसार चलने पर काम पर विजय होगी। दोनों (दंपति) आंखें खोल कर चलें।

11. दिन में काम–भोग के पद–पद पर दर्शन होने से, एक बार दृष्टि जाने पर दुबारा मन को रोक दो वरना मन पकड़ लेगा तो आपके शरीर का घी, खून से निकल कर, नीचे की ओर बहता रहेगा। अतः सतर्क रहो।

नोटः–भजन में प्रवृत्त रहने वालों को इस लेख को देने से भगवान् का आशीर्वाद मिलेगा। ऐसी शिक्षा कहीं भी प्राप्त नहीं होगी।

अब प्रश्न उठ सकता है कि ब्रह्मचर्य प्रसंग में जो लिखा गया है, वह तो हमें बिल्कुल भी जंचता ही नहीं है। आप सच ही बोल रहे हैं, पर इसका जवाब नीचे हैः–

उत्तरः–धन–वैभव में एक प्रतिशत भी सुख नहीं है, सुख केवल दिखता है। धन–वैभव वालों को पूछकर देखो कि उनके मन का क्या हाल है ? तुम्हें उत्तर मिलेगा–''बहुत बुरा। एक क्षण भी शांति नहीं। केवल प्रतिष्ठा मिल रही है। उसमें क्या शांति होगी ? स्वप्न में भी नहीं। रात में सो नहीं सकते। अनन्त टेंशन (चिंताएं) अंदर भरे पड़े हैं, सोचते–सोचते रात बीत जाती है। भूख कभी लगती नहीं। खाने–पीने की कोई कमी नहीं। अकेले कहीं स्वतंत्रता से जा नहीं सकते, मौत सिर पर सवार रहती है फिर हमें सुख कहां ?''

अब उनके पूछो कि फिर भी तुम ऐसा धंधा क्यों करते हो ? उत्तर मिलता है कि केवल तृष्णा की भूख है, अज्ञान है। इनके यहां जो लक्ष्मी है, वह चाण्डालिनी लक्ष्मी है जो बुरे रास्ते से उनके पास आती है और जो उन्हें नरक भोग कराएगी।

इस कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है कि जो चाण्डालपना करेगा, वही सुखी दिखेगा। जो सज्जनताई (ईमानदारी) से रहेगा, वह दुःखी दिखेगा। लेकिन सुखी तो सज्जन ही होगा और अंत में जीत भी उसी की होगी। कौरव और पांडव इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

धन–वैभव वालों को पिछले जन्मों के कर्मानुसार ही ये भोग मिल रहे हैं, जब पुण्य समाप्त हो जायेगा तो वे रास्ते के भिखारी बन जायेंगे।

धर्म शास्त्र जो बोल रहा है, मानव के सुख का रास्ता दिखा रहा है, इसी रास्ते पर चलना श्रेयस्कर होगा। अतः जो भी ब्रह्मचर्य प्रसंग में लिखा गया है, श्रीगुरुदेव प्रेरित ही लिखा गया है, जो कि शत–प्रतिशत सुख का रास्ता ही दिखा रहा है।

इसको जो सच मानकर जीवन यापन करेगा, वही सुखी रहेगा।

हरे कृष्ण कहिए
सदा प्रसन्न रहिए

Chant Hare Krishna Mahamantra
and Be Happy



6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
25–05–2008

परम श्रद्धेय व परमाराध्यतम् श्रीगुरुदेव तथा भक्त–प्रवरों के चरण–युगलों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमा–भक्ति स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

प्रेमा–भक्ति का शाश्वत, अलौकिक, चिन्मय बीज – केवल मात्र "हरिनाम"

हरिनाम चाहे जैसे भी उच्चारण किया जाए, समय आने पर साधक के अन्तःकरण को एक दम निर्मल बना देता है। यह शत–प्रतिशत सत्य सिद्धांत है। जिस प्रकार अग्नि जाने–अनजाने में छुए जाने पर अपना जलाने का प्रभाव दिखाती ही है, विष व अमृत जाने–अनजाने में पीने से मरने तथा अमर बनाने का प्रभाव करता ही है। सूर्य अपने ताप का तथा चन्द्रमा अपनी शीतलता का प्रभाव सभी जीवों पर करता ही है। किसी भी वस्तु की स्वाभाविक शक्ति इस बात का इन्तज़ार नहीं करती कि इसकी मुझ पर श्रद्धा है कि नहीं, वह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती।

इसी प्रकार साधक को हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा रखकर, उच्चारणपूर्वक, कान के मार्ग से अन्तःकरण में ले जाकर नाम–बीज को अंकुरित करना चाहिए। शास्त्र भी घोषणा कर रहा है। ज़रा ध्यानपूर्वक सुनोः–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह बिसेषे।।

प्यार से नाम उच्चारण करने से नाम में से ही श्रीकृष्ण अंकुरित हो जाएंगे। जब श्रीकृष्ण अंकुरित हो जाएंगे तो उसमें से टहनियाँ,

पत्ते व फूल रूपी भगवान की लीलाएँ–अन्तःकरण रूपी ज़मीन में प्रगट हो जायेंगी। श्रीगौरकिशोर बाबा जी, जो अनपढ़ थे–इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सभी शास्त्र उनके हृदय में प्रगट थे। शास्त्र बोल रहा हैः–

राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त, पुराण उपनिषद् गावा।।
जाना चहिए गूढ़गति जेऊ। जीह नाम जप जानहि तेऊ।।

आदरपूर्वक नाम सुमिरन करने से शीघ्र ही प्रेमावस्था प्रगट हो जायगी। जहां आदर नहीं, वहां सब कुछ निस्सार है, कपट है, दिखावा है।

उपजाऊ, उर्वरा–भूमि में बीज कैसे भी पड़े, अवश्य ही अंकुरित होगा। इसी तरह हरिनाम का कैसे भी उच्चारण हो, पाप का विध्वंस करेगा ही, जैसे अजामिल पापी का हुआ।

सादर सुमरन जो नर करहिं।
भववारिधि गौ पद–इव तरहिं।।

हरिनाम से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं। जिसने भगवत्–नाम को अपने जीवन में अपना लिया उसने तो पृथ्वी की अनन्त कोटि परिक्रमाएँ, तीर्थाटन, यज्ञ, वेद–शास्त्रों का पठन, समस्त सेवाएं, अर्थात् सभी शुभ कर्म कर लिए। ये सभी हरिनाम के सौवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं।

हरिनाम में शुद्धि–अशुद्धि, देश–काल, विधि–विधान कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। केवल जिह्वा से स्पर्श मात्र होना चाहिए। हरि का एक नाम ही इतना शक्तिशाली है कि जीव उतना पाप कर ही नहीं सकता। हरिनाम बार–बार इसलिए करना पड़ता है कि भविष्य में पापवृत्ति जगने की सम्भावना रहती है। पाप तो समाप्त हो जाते हैं परन्तु पापवासना हरिनाम बार–बार लेने पर ही जाती है। नाम से त्रिकालिक–भूत, भविष्य, वर्तमान के पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण कहा गया है कि इंद्रिय–संयम रखना आवश्यक है वरना भविष्य में पाप होंगे ही।

भगवान स्वयं बोलते हैं कि भय, शोक, गिरते, उबासी लेते, छींकते, डर से, किसी भी अवस्था में मेरा नाम तारकब्रह्म है लेकिन प्रेम तो, प्रीति से हरिनाम लेने पर ही प्रगट होगा। एक ब्रह्मदेव ने नरकवासियों का दुःख देखकर ज़ोर से गोविन्द नाम उच्चारण कर दिया तो समस्त नरकवासियों के हेतु विमान आ गए क्योंकि उन्होंने दिल से नाम को ग्रहण किया था। अतः सभी का उद्धार हो गया। भागवत् पुराण में लिखा है–शिवजी स्वयं पार्वती से बोल रहे हैं–''सम्पूर्ण जगत् का स्वामी होने पर भी, मैं विष्णु भगवान् का नाम अहिर्निश जपता रहता हूँ। मुझे नाम से ही सभी 18 सिद्धियाँ तथा आनन्द मिला है। तुम भी मेरे संग हरिनाम जपा करो। पार्वती, कलियुग में भगवत्-प्राप्ति का मार्ग कितना सरल है। इसके लिए देवता भी तरसते रहते हैं कि कलियुग में हमारा जन्म भारतभूमि में हो जावे तो हमारी यह दुःखदायिनी योनि छूट जावे। जब सभी पाप–वासना नष्ट हो जाती है तो स्वतः ही भगवत्–प्रेमावस्था प्रकट हो जाती है। जब पाप–वासना हृदय में रहती है तो प्रेमावस्था आने में देर रहती है। अतः इंद्रिय–संयम परमावश्यक है। इनमें कामप्रवृत्ति रहती है। भगवान् के नाम अर्थवादियों को नरक भोग कराते हैं क्योंकि वह कहते हैं कि नाम की अधिकतम बड़ाई कर दी है।

प्रथम में जब सृष्टि थी तो भगवान् ने आदेश दिया कि सृष्टि का वर्धन करो लेकिन सृष्टि नहीं बढ़ी तो भगवान् ने कहा–''तप करो अर्थात् मुझे स्मरण करो, मेरा नाम करो,'' तब दक्ष ने उनके आदेश का पालन कर हरिनाम किया तब सृष्टि बढ़ने लगी।

जब दक्ष ने भगवान् की भक्ति की तो भगवत्–शक्ति की शक्ति से दस हज़ार पुत्र पैदा किए। बाद में एक हज़ार पुत्र पैदा हुए। नारद जी ने सभी को वैरागी बना दिया।

कहने का आशय यह है कि हरिनाम के अभाव में साधक निःशक्तिवत् रहता है। अपनी शक्ति से जीव कुछ भी नहीं कर

सकता। अतः मैं बार–बार सभी से प्रार्थना करता रहता हूँ कि अधिक से अधिक हरिनाम करने से ही सुखविधान हो सकेगा।

मानव देह बार–बार नहीं मिलेगी। इस सुअवसर को न गंवाओ इससे बड़ा कोई नुकसान नहीं होगा। ऐसा सोचकर मेरी प्रार्थना सुनो। मेरा भी कल्याण, आप सबका भी कल्याण होगा। मेरी प्रार्थना नहीं सुनोगे तो घोर दुःखदायी कष्ट पाना पड़ेगा। मास्टर जी का फोन आया था कि श्रीतीर्थ महाराज आपको याद करते हैं। मेरा तो उद्धार हो गया। इस नीच को याद किया।

माया का सबसे बड़ा शक्तिशाली हथियार है–कामवासना। काम, शक्तिहीन करता है तथा मन को गिरा देता है। संकल्प–विकल्प से इसकी जागृति होती है। यह प्रथम चित्त से जागृत होता है। यदि यहीं इसको नहीं दबाया जाए तो यह मन पर आकर इंद्रियों तक पहुंच जाता है, फिर बेकाबू हो जाता है। अतः संकल्प–विकल्प के समय ही इसकी जड़ काट देनी चाहिए।

काम बुरी चीज़ नहीं है। कामवासना बुरी चीज़ है। काम का तो भक्ति से दमन हो जाता है, परन्तु कामवासना अंतःकरण में रंगी रहती है। जब हरिनाम का बारम्बार उच्चारण होता है तो नाम और जिह्वा का घर्षण होने लगता है। इस घर्षण से विरहाग्नि जगने लगती है। भगवत् के लिए छटपट होने लगती है। जब छटपट होने लग जाती है फिर तो सात्विक अष्टविकार प्रगट होने लग जाते हैं। जब ऐसा होता है तो इन्द्र काम को आदेश देकर उसे गिराने की कोशिश करता है। तब भक्त कामवश होकर स्त्री–संग करता है। इससे जो शक्ति भक्तिरस को बाहर बहा रही थी अर्थात् जो अश्रुपुलक हो रहा था, एकदम वह शक्ति, माया में बह जाती है। गृहस्थ करो परंतु उसमें लिप्त नहीं होओ। गुरुवर्ग सभी भक्त गृहस्थ थे, उनके भक्त–पुत्र प्रगट हुए। वे गुहस्थ में लिप्त नहीं थे। उनमें काम था परन्तु वासना नहीं थी।

श्रीकृष्ण की हर पत्नी के 10 पुत्र, एक पुत्री थी, फिर भी वे योगीराज कहलाए। ब्रह्मा जी की सन्तानों से सारा संसार भर गया।

अंतर केवल इतना ही है कि उन्होंने कर्म किया परन्तु उसमें फंसे नहीं अर्थात् वासना नहीं की। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा था कि यह काम ही सबसे बड़ा शत्रु है। इच्छाओं के बिना संसार चलता ही नहीं है परन्तु इन इच्छाओं में रमो मत, फंसो मत। कमल की तरह जल में रहो। जल में रहकर भी जल का प्रभाव कमल पर नहीं पड़ता।

भगवत्–प्राप्ति करना बहुत दुष्कर नहीं है, केवल जीवन को थोड़ा सा बदलना है। घी और आग जब पास में रहेंगे तो ताप से अवश्य ही घी पिघलेगा। यही शरीर का, मन का बड़ा शक्तिशाली तत्व है। इसे बचाने से मन भक्ति में लग जाता है। भगवान् भक्ति के वश में हैं। श्रीहनुमान जी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मैंने पिछले दिनों एक पत्र लिखा था कि कलियुग के समय में भगवत्–प्राप्ति करना सहज है। जब तक पूर्ण–शरणागति का भाव अन्तःकरण में नहीं आवेगा, तब तक भगवत्–प्रेमावस्था स्वप्न में भी नहीं आ सकेगी।

इस स्थिति को प्राप्त करने हेतु, मुझे अपना महत्वशील पिछला जीवन लिखना पड़ा एवं श्री जौहर महात्मा से प्रार्थना की कि इस पत्र को किसी को नहीं पढ़ाना क्योंकि इस पत्र में मेरे अहम् भाव का खुलासा झलकता है। जब इसे कोई भक्त पढ़ेगा तो उसके हृदय में मेरा अहंभाव दृष्टिगोचर होगा। इस भाव से उसे घोर अपराध हो सकता है। उसकी जो थोड़ी–बहुत हरिनाम में रुचि है, वह समाप्त हो सकती है। इससे मुझे भी अपराध का भागी होना पड़ेगा क्योंकि मेरे द्वारा ही उसकी हरिनाम से रुचि समाप्त हुई है। अतः मैंने यह पत्र दूसरों को पढ़ाने से मना कर दिया था।

मैंने ऐसा अहंभाव का पत्र क्यों लिखा? इसका एक खास कारण है कि मुझ में भक्तों की अधिक श्रद्धा बन जाये और वे मेरे कहे अनुसार हरिनाम में अधिक से अधिक लग जावें। दूसरा कारण है कि श्रीबजरंगबली ने मुझे आदेश दिया था, जब वे मुझे बीकानेर में मिले थे और मेरा हाथ देखा था। उन्होंने कहा था कि तुम्हारे हाथ

में भगवत्–आयुधों के तीन चिह्न हैं, जिसके एक चिह्न भी होता है, वह भगवान् का प्रियजन होता है। भगवत्जन का आदेश मानकर, सभी उसके मार्ग अनुसार चलने लग जाते हैं। ऐसा हो भी रहा है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए। बहुत साधक मेरे कहे अनुसार, अधिक से अधिक हरिनाम रुचिपूर्वक कर भी रहे हैं। इसमें मेरा कोई प्रभाव नहीं है। यह गुरुदेव के आदेश का ही प्रभाव है जो मैं तीन लाख हरिनाम नित्य कर रहा हूँ तथा हमारे घर में हर महीने लगभग साढ़े तीन करोड़ हरिनाम भगवत्–कृपा से हो रहा है।

बड़ाई कौन चाहता है ? वही जिसको तन, मन व धन की सेवा लेनी हो। इनसे तो मैं घोर घृणा करता हूँ। जो कोई जबरन करता भी है तो मुझे बहुत दुःख अनुभव होता है लेकिन अपराध न हो जावे इसलिए लेनी भी पड़ जाती है। श्री निष्किंचन महाराज व श्री जौहर महात्मा जी मेरे मन की पूरी हालत जानते हैं, वे इसे अहंभाव न समझकर, भक्तों को हरिनाम में लगाने का हेतु समझेंगे। जो इस पत्र को पढ़कर मेरी बड़ाई समझ लेंगे तो वे अपराधी बन जाएँगे।

मुझे ऐसा अपना अहंभाव लिखना भी नहीं चाहिए था लेकिन लिखना पड़ गया। इसका कारण सभी भक्त नहीं समझेंगे। इसमें मेरा व उनका अपराध बन सकता है। गहरा विचार करना होगा कि क्या कोई अपनी शक्ति से तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? इसमें अलौकिकता नज़र आती है तभी तो वह दूसरों से एक लाख हरिनाम करवा सकता है। श्रद्धा से लाभ ही है।

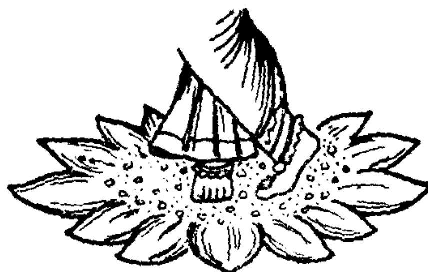
जो भी अहंभाव लिखा है, हुनमान जी के आदेश से लिखा है कि 70 साल की उम्र के बाद सभी को बता देना ताकि तुम्हारे आदेशानुसार सभी भक्त तुम्हारा अनुसरण कर सकें।

मुझे ऐसा मालूम भी नहीं पड़ता कि मैं भगवत्जन हूँ। यह पर्दा भगवान् अपने जन पर रखते हैं। श्रीगौरहरि के सभी पार्षद भगवत्जन थे लेकिन उनको मालूम नहीं था कि हम कृष्ण के समय में कौन थे ? अर्जुन को मालूम नहीं था कि मैं नर हूँ तथा

कृष्ण नारायण हैं। यह भगवान ने ही उनको बताया था कि तुम कौन हो। श्रीहनुमान जी को मालूम नहीं था कि मैं इतना बलशाली हूँ। जामवन्त ने बताया, तब बल–निधान बन गए। यशोदा जी को मालूम नहीं था कि मैं भगवान की माँ हूँ अतः हर वक्त लाला की चिंता करती रहती थी। दाऊ जी को कहती रहती थीं कि बेटा कान्हा की देखभाल रखना, यह भोला–भाला कहीं यमुना में डूब न जावे। कोई राक्षस इसे उड़ाकर न ले जावे। बचपन में इसे भगवान ने ही कई बार बचाया है। वह कन्हैया से कहती थी–''कान्हा वहां मत जाना, हाऊ खा जावेगा।''

कहने का मतलब है कि कोई अपने आपको जान नहीं सकता। कोई जनाता है, तब ही जानता है। कई भक्त कहा करते हैं कि आपसे भेंट होने के बाद से हरिनाम में रुचि होने लगी है, पहले जबरन हरिनाम होता था। नवीन का फोन आया था कह रहा था कि आपके दो दिन के संसर्ग ने मेरी हरिनाम में रुचि पैदा कर दी। पहले भार समझकर हरिनाम करता था। श्री गुरुदेव जी ने अपना जीवन सभी को दर्शाया कि ऐसे–ऐसे मुझे हरिद्वार की पहाड़ियों में आकाशवाणी हुई आदि। इसमें क्या अहं नहीं झलकता है ? अतः इस पत्र को पढ़ कर ही किसी भक्त को मेरे अहंभाव का पत्र पढ़ा सकते हो ताकि झूठ न समझकर सच्चे रूप में मेरी शरणागति से हरिनाम में रुचि कर सके और अधिक से अधिक हरिनाम जप सकें।

मैं किसी को डुबोने नहीं आया हूँ। मैं तो गुरु आदेश से तराने आया हूँ। मुझे सभी क्षमा करें।



7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

एकादशी
31-05-2008

परमाराध्यतम गुरुदेव तथा भक्तप्रवर के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

हरिनाम की शरण लो

हरिनाम की शरण में जाने के बाद ऐसी तीव्र इच्छा जग जाती है कि स्वाभाविक ही नित्य-प्रति एक लाख हरिनाम होने लगता है। जिस प्रकार पक्षी के पंखहीन नन्हें-नन्हें बच्चे, माँ की बाट में फुदकते रहकर चीं-चीं करते रहते हैं, माँ के पास में आते ही मुख खोल लेते हैं, जैसे गाय का भूखा बछड़ा, मां का दूध पीने के लिए आतुर रहता है, जैसे वियोगिनी सति-स्त्री अपने प्रवासी पतिदेव प्रियतम से मिलने के लिए आतुर रहती है, जैसे शराबी, कामी व जुआरी इतना तीव्र आतुर रहता है कि 10 मील दूर अपने गंतव्य स्थान पर सर्दी-गर्मी, बरसात, नदी-नाला की भी परवाह न करके, न रात देखता है न दिन, पहुंच जाता है। इसी प्रकार नाम की शरण हुआ भक्त भी भगवान के दर्शन के लिए रात-दिन विरहाग्नि में झुलसता रहता है। जहां भी उसे भगवत्-चर्चा उपलब्ध होती है, वहां अत्यंत दूर भी पहुंच जाता है। वह किसी भी परेशानी की परवाह नहीं करता है। यही नामनिष्ठ की सच्ची लग्न है।

ऐसे भक्त को देह व गेह की परवाह नहीं रहती। जहां हरिनाम की सरिता बहती है, बस! उसमें गोता लगाने की उसे परवाह रहती है। उसे न तो भूख की और न ही नींद की परवाह होती है। चन्द्रमा की शीतल किरणें भी उसके कलेजे को जलाती रहती हैं। बरसात में मोर, चातक, मैना की बोली उसके लिए असहनीय दुःख का कारण बन जाती हैं। याद पर याद उसे सताती रहती है। संसार उसकी आंखों से ओझल हो जाता है। वह केवल भगवत्चिंतन में ही डूबा

रहता है। जहां भी उसे भगवत् गुणानुवाद उपलब्ध दिखाई देता है, वहीं चिन्तन में डूब कर रोता रहता है तथा वहां जाने के पूरे प्रयास में जुटा रहता है। यही है, सच्चे नामनिष्ठ की पहचान।

उक्त अन्तःकरण की स्थिति, नाम की शरण के अभाव में कभी स्वप्न में भी नहीं होगी। कलि से बचने का यह अमोघ–शस्त्र है।

नोटः– जैसे गर्म लोहा सारे कूड़े–करकट को जलाकर राख कर देता है, पर ठंडा लोहा ऐसा करने में सक्षम नहीं है। वैसे ही भक्तिहीन रूपी ठंडा लोहा संग करने वाले की अशुभ वासनामयी प्रवृति को जलाने में सक्षम नहीं है। इसी प्रकार नामनिष्ठ संत रूपी गर्म लोहे की तपन संग करने वाले की अशुभ वासनाओं की प्रवृति को जलाकर, अंतःकरण को निर्मल बनाने में समर्थ व सक्षम होती है।

श्रीगौर प्रियजनों! इस शस्त्र को बड़ी सावधानी से अपने पास में रख लो, आपका बाल भी बांका नहीं होगा। यह शास्त्र की घोषणा है। चूको मत! नित्य प्रति एक लाख हरिनाम के अभाव में यह शस्त्र उपलब्ध नहीं होगा। इस शस्त्र से यहां भी सुरक्षित तथा परलोक में भी सुरक्षित। शिवजी सभी मानवों को चेतावनी दे रहे हैं कि उन्होंने भी हरिनाम से ही शक्तिमान होते हुए ही, सब कुछ उपलब्ध किया है। काल आ रहा है, यह सभी को खा रहा है। बस! केवल हरिनाम ही बचायेगा। सब कामों को छोड़ो तथा हरिनाम करो।

नाम के प्रभाव से ही हनुमान जी पूजे गए। नारदजी अनन्त कोटि ब्रह्मांडों में जाने का अवसर पा सके। सनकादिक चारों भाईयों ने नाम से अमर पद ले लिया। नाम तो चारों युगों का ही तारक मंत्र है लेकिन कलिकाल में तो विशेषकर प्रभावशाली तारक मंत्र है। कलिकाल में कितना सरल, शुभ अवसर हाथ लगा है। इसे बिसराओगे तो पछताओगे। यहां तक की देवता भी इस अवसर को तरसते रहते हैं कि यदि कभी प्रभु हम पर दया करके, कलियुग में भारतवर्ष में, जन्म दे दें तो हम इस दुःखदायिनी योनि से छुट्टी पा

जावें। सदा के लिए निहाल हो जावें।

सज्जनों! अपनी दुःखदायिनी भटकन, इसी जन्म में हटा लो। यह शुभ, सरलतम अवसर फिर हाथ में नहीं आयेगा। समय बीत जाने के बाद रोना ही रोना हाथ लगेगा। रोना ही है तो अपने परमपिता परमात्मा को याद करके रोवो। सदैव सुखी बन जावोगे। दुःख समूल नष्ट हो जायेगा।

मैं श्रीगुरुदेव को साक्षी कर, गांरटी से कह रहा हूँ कि जो भी एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करेगा, मन चाहे लगे या नहीं, स्मरण करते–करते उसका मन भी भजन में लग जायेगा। गौरहरि इसके साक्षी हैं। क्यों नहीं लगता ? इसका कारण है जन्म–जन्म की मन की भटकन। शनैःशनैः रुचि बन जायेगी, चिंता न करें।

श्रीगुरुदेव की शत–प्रतिशत गारंटी है कि जो उक्त लेखानुसार अपना जीवन–यापन करता रहेगा वह इसी जन्म में पंचम पुरुषार्थ–कृष्ण–प्रेमावस्था को प्राप्त होकर भगवत्–दर्शन की प्राप्ति भी कर सकेगा। जापक का संसार से मन हटेगा एवं भगवत् व भक्तों में मन रमेगा लेकिन यह स्थिति तब ही प्रकट हो सकेगी जब किसी नामनिष्ठ का, भगवत् कृपा–परवश संग उपलब्ध हो सकेगा। स्पेशल सर्जन के संग के बिना कोई मेडीकल विद्यार्थी निपुण सर्जन नहीं बन सकता। यह उपलब्धि भी पूर्व जन्मों की सुकृति से मिल सकती है। यह तो एक भौतिक उपलब्धि है। आध्यात्मिक उपलब्धि को तो अकथनीय उपलब्धि समझें। यह तो किसी अत्यन्त सुकृतिशाली करोड़ों अरबों में से, किसी एक जीव को प्राप्त होती है, जिसका जन्म–मरण रूपी दुःखदायी आवागमन के हटने का समय आता है।

इसलिए ही भगवान किसी जीव को कृपा कर मनुष्य जन्म देते हैं ताकि भटका हुआ जीव अब की बार उनकी गोद में चला जावे। परन्तु अभागा जीव, माया के चक्कर में फंस कर, यह अमूल्य समय बातों व धन्धों में गंवाकर, फिर से अधोगति में चला जाता है। यह जीव से भगवान की गोद से हटा है, तब से लेकर अब तक

स्थायी गोद को उपलब्ध नहीं कर सका। कितना अज्ञान है! इसकी कोई सीमा नहीं है। इस जीव को भगवान ने कृपा कर कई बार मानुष देह अर्पण की, परन्तु वह अज्ञानवश इसका अमूल्य लाभ नहीं ले सका। फिर से भटकन में भटक गया।

जितने भी महाबलशाली राक्षस हुए, जो श्रापवश राक्षस हो गए तथा जितने भी ज्ञानी–भक्त हुए, उन्होंने संसार की कोई मांग नहीं की, केवल जन्म–जन्म में साधु–संग ही मांगा क्योंकि इस संग के अभाव में आज तक कोई भगवत् की प्राप्ति नहीं कर सका, न ही दुःखदायी योनि से छूट सका। यह भी भगवत्–कृपा बिना नहीं मिल सकता। भगवत्–कृपा मिलती है जब पिछले जन्मों की सुकृति पुंजीभूत होती है। सुकृति भी तब ही रहती है जब किसी सन्त का अपराध न बना हो। संत–अपराध, सुकृति को भी समूल नष्ट कर देता है। जब किसी जीव पर संयोगवश, साधु–कृपा बन जाती है तो भगवत्–कृपा उसके पीछे दौड़ती आ जाती है।

अतः सन्त, भगवान के प्यारे आश्रितजन हैं। उनका अपराध होना पूरे कुल का नाश कर देता है। उनकी तन, मन धन व प्राण से सेवा कुल में एक भी जन यदि करता है तो समस्त कुल के जन भगवत्–चरणों में चले जाते हैं।

सन्त के तुल्य कोई भी दयावान नहीं होता। कष्ट देने पर भी वह सबका भला ही चाहता है क्योंकि उसे सच्चा ज्ञान होता है। वह सोचता है कि यह बेचारा जीव अज्ञानी है, अच्छा–बुरा नहीं जानता। यदि इसने मुझे सताया है तो क्या हुआ क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। वह उसे क्षमा कर देता है।

भगवान् का संसार सन्तों से ही है। सन्तों की वजह से ही भगवान् अवतार लेकर पृथ्वी पर आते हैं। सन्तों के बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। अतः वे सन्तों से अनेक लीलाएँ करवा कर जीवों का उद्धार करते हैं। उन लीलाओं का चिंतन करके जीव सन्त श्रेणी में आ जाते हैं। अनन्त योनियों में अन्तिम योनि सन्त की ही होती है। बाद में उसे माया के पिंजरे में आना ही नहीं पड़ता।

अतः पूरी लेखन–सामग्री जो लिखाई गई है, उसका आशय, निचोड़ यह है कि नित्य प्रति एक लाख हरिनाम–स्मरण करना। पाठशाला में छोटा शिशु जाने पर रोता है। उसे किसी तरह का लोभ देकर भेजा जाता है। कई बार वह मार भी खाता है लेकिन कुछ माह बाद वह, रोकने से भी नहीं रुकता क्योंकि पहले उसका मन वहां नहीं लगता था, अब लगने लग गया। साथियों से प्यार हो गया और खेलने का संयोग बन गया।

सज्जनों! इसी प्रकार हरिनाम में मन लगे या नहीं लगे, बेमन से भी नाम लेते रहो, बाद में धीरे–धीरे सतसंग रूपी पाठशाला के बच्चों से संग हो जाने पर हरिनाम में मन अवश्य लगने लगेगा, रुचि बनने लगेगी। बस! अनन्तकोटि जन्मों की मन की भटकन सदा के लिए समाप्त हो जाएगी। इस लेख में श्रीगुरुदेव गांरटी ले रहे हैं। चूको मत! अमूल्य धन लूट लो। निहाल हो जाओगे।

नोटः–सच पूछा जाये तो भगवान को कौन चाहता है, जो चाहते हैं तो वे केवल मात्र एक प्रतिशत हैं। बाकी ९९ प्रतिशत संसार की चाहना रखते हैं। अतः भगवत् से लगाव नहीं है। भैया! करोड़ों में से कोई एक सच्चे दिल से भगवान् को चाहता है। मैं श्रीगुरुदेव के आदेश का पालन कर रहा हूँ। जो करेगा पार हो जायेगा।

"CHANTING HARINAM SWEETLY AND LISTEN BY EAR"

By Order Sri Gurudev in 1966

प्रति घरे–घरे गिया कर एइ भिक्षा।
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण भिक्षा।।

प्रत्येक घर में जाकर यह भिक्षा मांगो कि ‘कृष्ण बोलो, श्रीकृष्ण का भजन करो और श्रीकृष्ण संबंधी शिक्षा ग्रहण करो।

(महाप्रभु की श्रीनित्यानंद जी व श्रीहरिदास जी को आज्ञा)

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
2-6-2008

श्रीयुत शिक्षा गुरुदेव तथा भक्तप्रवर महात्माजन, दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की प्रार्थना।

सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में 'हरिनाम' अमर औषधि की घोषणा

श्रीधन्वन्तरि वैद्य जी ने, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं, हरिनाम की अनन्त कोटि सृष्टियों में घोषणा की है-

अच्युतानन्त गोविंद नामोच्चारण भेषजात् (औषधि)।
नश्यन्ति नश्यन्ति सकला, सत्यम् सत्यम् वदाम्यहम् ते।

जो अपनाएगा, सुख पाएगा, नहीं तो जन्म गंवाएगा। चौरासी लाख योनियों के चक्कर खाएगा। अन्त समय पछताएगा। सर्व रोग कौन से हैं ? जितने भी भवरोग सृष्टि में दिखाई दे रहे हैं, ये सकल रोग हैं। सतो, रजो तथा तमोगुण से ये रोग प्रकट होते हैं। ये सभी हरिनाम-स्मरण से समूल नष्ट हो जाते हैं।

शिवजी उमा को बता रहे हैंः-

जाको नाम लेत जग मांहिं। सकल अमंगलमूल नसाहिं।।
जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ । जीह नामजप जानेउ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
सादर सुमरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद-इव तरहिं।।

स्वयं शिव राम-नाम जपते रहते हैं-

जबते सती जाय तन त्यागा। तब ते शिव मन भयउ विरागा।
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहं तहं सुनहिं राम गुन ग्रामा।

माता सीता जी जप रही हैं-

जेहि विधि कपट कुरंग संग, धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।

महर्षि बाल्मीकि वचन–

राम नाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग व्यापे नहीं महारोग मिट जाय।
सुमरिए नाम रूप बिन देखे आवत हृदय स्नेह बिसेषे।।

हरिनाम का बीज जब कान द्वारा अन्तःकरण में डलेगा तो वह अन्तःकरण में अंकुरित होगा। अंकुरित होकर एक दिन पौधे के रूप में राधा–कृष्ण जी उग जायेंगे। जब राधा–कृष्ण जी के रूप का दर्शन होगा तो सेवा करने की प्रबल इच्छा जागृत हो जायेगी। जब सेवा नहीं हो पायेगी तो इसके लिए छटपटाहट होगी। छटपटाहट होने पर स्वतः ही विरह–ज्वाला प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। जब ज्वाला प्रकट हो जायेगी तो अष्ट–सात्विक विकारों की बाढ़–सी आ जायेगी। जब बाढ़–सी आ जायेगी तो मूल सहित भवरोग का नाश हो जायेगा अर्थात् वैराग्यमय जीवन उदय हो जायेगा। भक्ति, प्रेम–प्राप्ति का यही क्रम है।

श्रीगौरांग महाप्रभु जी ने अपने सभी जनों को क्यों आदेश दिया कि जो 64 माला (एक लाख) नाम करेगा मैं उसी के घर में प्रसाद पाऊँगा। क्या वे नहीं जानते थे कि गृहस्थी एक लाख में कैसे मन लगा सकते हैं अर्थात् नहीं लगा सकते। वे जानते थे कि एक लाख में ज़रूर ही कभी–कभी शुद्धनाम उच्चारण होगा ही। बाद में धीरे–धीरे मन लगने से पूरा हरिनाम ही शुद्ध होने लगेगा।

साधक ऐसा कहा करते हैं कि इससे अच्छा तो थोड़ी माला ही करनी चाहिए। यह बिल्कुल असंगत चर्चा है। मन ऐसा पाजी (दुष्ट) है कि यह कभी आपके कहे अनुसार चलता ही नहीं है। यह एक तरह से भूत है। इसको तो हरिनाम में लगाए रखना ही श्रेयस्कर होगा वरना यह मन (भूत) आपको बुरे विचारों में लगाए रखेगा। कहते हैं–खाली मन शैतान का घर। मन को कभी खाली न छोड़ो। यह तुम्हें मार देगा। इसको काम में लगाए रखना ही सर्वोत्तम होगा। किसी ने कहा, भूत को मैंने काबू में कर लिया। जब काम नहीं हुआ तब एक बांस को गाढ़ कर उससे कहा कि जब काम न

हो तो इस पर चढ़ो–उतरो। भूत ने कहा था यदि मुझे काम नहीं दिया तो मैं तुझे खा जाऊँगा। तब सन्त ने ही यह युक्ति उसे बताई थी। मन तो भूत से भी खतरनाक है। इसे फुर्सत मत दो वरना परेशान कर देगा

अतः जब भी फुर्सत हो मन को हरिनाम में लगाए रखो।

एक लाख नाम तो प्रत्येक गृहस्थी कर ही सकता है। टी. वी. आदि से समय निकाल सकते हैं।

नवद्वीप दरशन करे जेइ जन।
जन्मे जन्मे लभे सेइ कृष्ण प्रेम धन।।
जो व्यक्ति श्रीनवद्वीप धाम का दर्शन करता है,
उसे जन्म–जन्मान्तर में कृष्णप्रेम रूपी धन की प्राप्ति होती है।



9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

4-6-2008

श्रीयुत भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

भगवान से अपने जन हेतु प्रेरणात्मक चिन्मय बहस

मैं हैरान हूँ, बाप! आप मेरी कभी सुनते नहीं। क्या मैं आपका नहीं हूँ? यदि नहीं हूँ तो मुझे आपने क्यों अपनाया? यदि अपनाया है तो मेरी बात सुननी भी पड़ेगी। मैं आपका पुत्र हूँ, आप मेरे बाप हो। पुत्र की बात बाप को सुननी ही पड़ती है। यदि ऐसा नहीं है तो बाप-बेटे का रिश्ता कैसा? फिर तो बाप नकली है। मैं डेढ़-दो साल का शिशु हूँ अतः गोद में रखना तुम्हारा कर्तव्य है तथा गोद में रहना मेरा अधिकार है। रोना मेरा अधिकार है रूठना मेरा अधिकार है। मनाना, राजी करना आपका कर्तव्य है। मेरे से ठिठोलियां करना आपका कर्तव्य है। बात मानना भी बाप का कर्तव्य है। यदि ऐसा व्यवहार बाप-बेटे का नहीं है तो न किसी का बाप न किसी का पुत्र।

भगवान बोले-तुम तो इतनी छोटी उम्र के हो, फिर बोलते कैसे हो? मेरा शरीर मायामय नहीं है। मेरा शरीर चिन्मय है, जैसा चाहूं वैसा बन सकता हूँ। ठीक है, तुम क्या चाहते हो?

जो आपने बोला-मैंने कहा।

क्या बोला-भगवान् ने पूछा।

आपने बोला–''खुद आचरण करो एवं दूसरों से करवाओ। क्या आचरण करूं ?''

''अधिक से अधिक मेरा नाम–स्मरण करो तथा अधिक से अधिक दूसरों से करवाओ।''

मैंने कहा–''कैसे कराऊं ? सभी को कोई न कोई झंझट लगा ही रहता है। सभी कहते रहते हैं कि हम पर कृपा करो। हमारा मन नाम में लगता ही नहीं। और न ही एक लाख हरिनाम पूरा हो पाता है। बीच में कम हो जाता है। हमारा नाम में मन लगाओ। मैं उनका मन नाम में कैसे लगा सकता हूं ? जब झंझट पर झंझट आते रहते हैं। मैं सक्षम नहीं हूँ।''

भगवान ने कहा–तुम्हारी बातें मानने वाली नहीं हैं। सभी को अपने–अपने कर्म भोगने पड़ते हैं। औरों की तो बात ही क्या है, मुझे भी भक्तों ने कर्म–भोग भुगतवाएं हैं। इस मर्यादा को मैं, कभी भी, किसी हालत में हटा नहीं सकता। यदि हटा दूं तो अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों का नाश हो जाय। इसलिए मैं तुम्हारी बातें मानने को तैयार नहीं हूँ। हां, कर्मभोग कम कर सकता हूं। **मेटत अंक कुअंक भाल के**। जगत में किसको झंझट नहीं आए ? सभी को झंझटों से गुज़रना पड़ता है। झंझटों में मंगल ही मंगल–विधान है। झंझट न आने से निखार नहीं आ सकता। सोना तपाने से निखरता है। जो इनमें होकर गुज़रता है वह मुझे प्राप्त करता है। जो इनमें डूब जाता है, वह माया जाल में फंस जाता है।

मैंने कहा–''भक्तों के कहने पर झंझट कम तो कर सकते हो।''

''हां–वह तो करता ही रहता हूं। मैंने तुम्हारे कहने पर किसका नहीं किया ? बोलो, चुप क्यों हो ? सीता का क्या मैंने नहीं किया ? द्रौपदी, नरसी, प्रह्लाद–कितने नाम गिनाऊं ? किसका झंझट मैंने कम नहीं किया। अरे! झंझट आना तो सौभाग्य की जड़ है। इसमें मेरा मंगल–विधान है। इन से गुज़र कर मेरी गोद में बैठ जाता है।

दूसरों को शिक्षा मिलती है। तुम बार–बार किसी भक्त के लिए, किसी सन्त के लिए मुझे हैरान करते रहते हो। इसका ऐसा कर दो। इसका वैसा कर दो। मैं कर भी देता हूँ परन्तु तुम फिर भी चैन नहीं लेने देते।''

मैंने कहा–''ठीक है, आप मुझे तिलांजलि ही दे दो। फिर मैं क्यों कहूंगा ?''

''क्या करूं ? मैं तुमको छोड़ नहीं सकता। तुम मेरे अंतरंग भक्त हो! भगवान बोले!''

''तो मैं छोड़ देता हूं!''

''मैं जब ही तुमको जानूं, तुम छोड़ो। सूर्य की प्रभा सूर्य से अलग नहीं हो सकती। फूल की सुगन्ध फूल से अलग नहीं रह सकती। बेटा! जब ही तुम को जानूं, जब तुम मुझे छोड़ कर तो देखो फिर क्या गुल खिलता है ? अनन्त कोटि ब्रह्मांडों से कर्म बीज को जला दूं या मिटा दूं तो पूरी सृष्टियों का ही अन्त हो जाय। अतः मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार नहीं हूँ। मैं भक्त के कर्म को हल्का बना सकता हूं, बनाता भी हूं, बनाया भी है परन्तु मूल सहित नहीं मिटा सकता। क्या तुम नहीं जानते ? फिर बहस किस बात की ? झंझटों में ही मेरा मंगल–विधान है।''

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जसि करहि सो तसि फल चाखा।।

कहकर मोहर लगा दी।

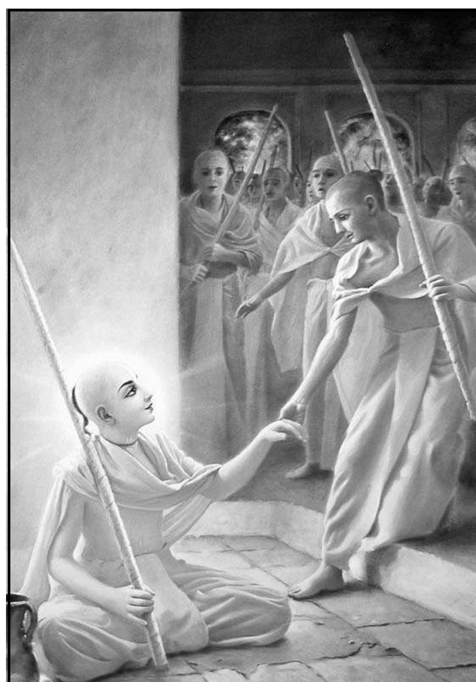
प्रेरणा टूटते ही न जाने मेरी हालत क्या हो गई, बता नहीं सकता। विकारों ने मुझे डुबो दिया। समय देखा रात के ढाई बजे हैं। हरिनाम करने बैठ गया। मन चिपक गया। किस दिव्य लोक का गमन हुआ, भगवान ही जानें।

गोविंद गोपाल राम श्रीनंदनंदन
राधानाथ हरि यशोमत्ती-प्राणधन।
मदनमोहन श्यामसुन्दर माधव
गोपीनाथ ब्रजगोप राखाल यादव।।

उपरोक्त सभी नाम भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य नाम हैं। ये सभी नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। इन मुख्य नामों का कीर्तन करने से श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है।

आइये! हम संकल्प करें कि भगवान् श्रीकृष्ण के उपरोक्त लिखे नामों का कीर्तन कम से कम पाँच मिनट, हम सब सपरिवार, प्रतिदिन अवश्य करेंगे।

हरिबोल



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20–6–2008

परमाराध्यतम, भक्त–प्रवर तथा श्रीगुरुदेव जी के चरण कमलों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन–स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

अमूल्य, अमर वचन

मंत्र को मानसिक (मन से) तथा हरिनाम को जिह्वा से उच्चारण करना सर्वोत्तम है। उदाहरणः–

1. श्रीगुरुदेव आदेश–

Chanting Harinam Sweetly and Listen By Ear

2. ज़ीह नाम जप जागहिं जोगी।
विरत विरंचि प्रपंच वियोगी।।
(मन से नहीं, उच्चारणपूर्वक)

3. जाना चहिए गूढ़ गति जेउ।
जीह नाम जप जानेउ तेउ।। (जीभ से जपना)

4. सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद इव तरहिं।। (उच्चारण से)

5. जाको नाम लेत जग माहिं।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।। (उच्चारण से)

6. भाव कुभाव अनख आलसहूं।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुं।। (उच्चारण से)

7. जपहिं नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होय सुखारी।। (उच्चारण से)

8. जाको नाम मरत मुख आवा।
अधमहुँ मुकुत होय श्रुति गावा।। (उच्चारण से)

9. जासु नाम जप एकहिं बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।। (उच्चारण से)

10. पुलक गात हिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
11. बैठे देख कुशासन जटा मुकुट कृशगात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नैन जल जात।।
12. नाम सप्रेम जपत अनयासा।
भक्त होय मुद मंगल वासा।। (उच्चारण)
13. नाम लेत भव सिंधु सुखाहिं।
करहु विचार सुजन मन माहिं।। (उच्चारण)
14. नाम प्रभाव जान शिव नीको।
कालकूट फल दीन्ह अमीं को।।
15. राम राम कहि जे जमुहाहिं।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहिं।। (उच्चारण)
16. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।। (उच्चारण)
17. उल्टा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीक भए ब्रह्म समाना।। (उच्चारण)
18. बिबसहुं जासु नाम नर कहहिं।
जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।। (उच्चारण)
19. जानि आदि कवि नाम प्रतापू।
भयउ शुद्ध कर उल्टा जापू।। (उच्चारण)
20. शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।
21. राम नाम शिव सुमरन लागे।
जाना सती जगत्पति जागे।। (उच्चारण)
22. श्वपच, शबर, खस जमन अरु, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम होत परम विख्यात।। (उच्चारण)
23. बारक राम कहत जग जेउ।
होत तरण तारण नर तेउ।। (उच्चारण)

24. कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं सो तसि फल चाखा।।
25. कृश तनुशीश जटा एक बेनी।
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेणी।।

शास्त्रों में ऐसे हरिनाम जपने व उच्चारण करने के अनंत उदाहरण हैं। जो भी अपनायेगा, सिद्धि पायेगा।

हरिनाम को जिह्वा से उच्चारण करने से कान व जीभ का घर्षण गर्मी प्रकट कर देता है, जिससे विरहाग्नि उदय हो जाती है। भगवत्–मिलन की इच्छा जागृत हो जाती है। उच्चारण करने से मन इधर–उधर भटकता नहीं है। अन्तःकरण में भगवत् तथा भक्तों की रील (फिल्म) चलती रहती है तो संसार की रील गायब रहती है। इतनी बड़ी रील बनती रहती है कि जिसका कोई ओर–छोर ही नहीं होता।

सर्वप्रथम श्रीगुरुदेव के चरणों का ध्यान उच्चारणपूर्वक आरम्भ करना होगा।

श्रीगुरुपदनख मनि गन जोती।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।
उघरहिं विमल विलोचन हिय के।
मिटहिं दोष दुःख भव–रजनी के।।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक।
गुप्त प्रगट जहां, जो जेहि खानिक।।

श्रीगुरुदेव को हरिनाम सुनाते रहो, कम से कम एक माला। उसके आगे परमगुरुदेवादि, नारदजी, सनकादिक, नृसिंह, कपिल, निताई, गौर, ठाकुर हरिदास जी, शची मां, यशोदा मां, मीरा, पाण्डव–शास्त्रों में अनंत उदाहरण हैं। इनको हरिनाम सुनाते रहो तो संसार हृदय से गायब रहेगा वरना संसार आता रहेगा और भगवत्–प्रेम उदय होने में समय लग जायेगा। हरिनाम मन–मन में जपने से मन भटकता रहता है। थोड़ा–थोड़ा अभ्यास करते रहना चाहिए ताकि थकान न हो। बाद में आदत हो जाती है।

इस जगत में देखा तथा अनुभव किया जाता है कि शब्द में कितनी अपार शक्ति निहित है। इस शब्द की आवाज अन्तःकरण में प्रवेश करते ही अन्तःकरण को उथल–पुथल तथा विकृत कर देती है जैसे किसी ने किसी को अपशब्द बोल दिया तो जिसको वह बोला, उसके क्रोध का पारा आसमान में पहुंच जाता है तथा इतना उग्र रूप धर लेता है कि उस जीव को मौत के घाट उतार देता है।

यदि वह उसे मन ही मन में गाली देता तो उसको न सुनने के कारण उसका अन्तःकरण शान्त ही रहता। शब्द का कान पर खास प्रभाव है। कान के द्वारा ही शब्द मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार में प्रवेश कर जाता है। तब ही शब्द का गहरा प्रभाव पड़ता है। अच्छा या बुरा। सत्संग कान से सुना जाता है। उच्चारण करने से ही कान द्वारा हृदय में पहुंच पाया। अतः हरिनाम का प्रभाव भी उच्चारण करने पर ही हृदय को प्रभावित करेगा। मन ही मन में किया हरिनाम प्रभाव नहीं करता क्योंकि इसका कारण है मन के अंकुश का न होना अंकुश न होने से मन भटक जाता है। मन भटकने पर हरिनाम प्रभाव नहीं करता। इन्द्रियों में कान ही सबसे महत्वशील है। कान ने ही भवसागर दिया है।

हरिनाम मन ही मन करने पर अन्तःकरण सोता रहता है। अतः हरिनाम का प्रभाव दूर चला जाता है। हरिनाम उच्चारण से अन्तःकरण मन, बुद्धि चित्त तथा अहंकार तरंगित होता रहता है। हृदय तरंगित होने से मन को भटकने का अवसर नहीं मिलता अतः केन्द्रित रहता है। मन रुक जाता है। मन रुका नहीं कि हृदय में प्रेम–तरंग उठी नहीं, फिर देर नहीं होती।

अतः साधकों से मेरी चरण छूकर प्रार्थना है कि हरिनाम, उच्चारणपूर्वक अवलम्बन करें ताकि कान और जीभ के घर्षण से शीघ्र प्रेमावस्था उदय हो सके। स्वाभाविक ही अन्तःकरण अकुलाहट व विकलता से भरने लगेगा। विरहाग्नि की प्रज्ज्वलित ज्वालाएं उठने लगेंगी। भगवत्–वियोग का गहरा दुःख अन्तःकरण में कसकने लगेगा।

बस! फिर रोना ही भगवत्–दर्शन कराता रहेगा। इन अश्रु–धाराओं में भगवान बह कर आता रहेगा। भगवान अपनी शक्ति से रुक नहीं सकेंगे। मन कैदखाने में जकड़ जायेगा। संसार विलीन हो जायेगा, जो असत् है। सत् प्रकट हो जायेगा। बस, सारा का सारा दुःख हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि साधक जितना अधिक हरिनाम उच्चारण कर, हरिनाम माला जपेगा उतना ही शीघ्र भजन स्तर बढ़ा सकेगा।

अभ्यास करने पर सब सुलभ है, घबराने की कोई बात नहीं है। जैसा कि अनुभव में भी साधकों के जीवन में देख रहे हैं। बहुत कम भजन–स्तर बढ़ता देख रहे हैं। इसका खास कारण है–मन ही मन में हरिनाम जपना। कान को महत्व देने हेतु श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का आविष्कार किया है।

कोई भी साधक, साधना कर आज़मा सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं रहती। अवश्य ही शत्–प्रतिशत् लाभ होगा ही। संयम में शत्–प्रतिशत् लाभ की उपलब्धि होगी। हरिनाम का उच्चारण सभी गन्दी स्पृहा बाहर निकाल फेंकेगा। अन्तःकरण एकदम निर्मल बन जायेगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा–स्तुति जड़ से उखड़ जायेगी। साधक सिद्धता को प्राप्त कर लेगा। इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं समझना। सभी मित्र बन जायेंगे। हिंसक जीव भी साथ देने लगेंगे–

जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करे सब कोई।।

सुना गया है कि मेघराग, दीपकराग तथा अन्य राग इत्यादि गाने से प्रत्यक्ष फल देने लगते हैं। गाना उच्चारणपूर्वक ही हुआ करता है। मन ही मन में गाने से कुछ नहीं मिलता।

नोटः–उच्चारणपूर्वक जपने पर भी मन भटकता रहता है तो उसको रोकने का एक मात्र उपाय होगा कि आप के मुख से जो

बात निकल रही है, वह आप किस को सुना रहे हो ? उस पर मन टिकाना होगा। जिस प्रकार आप किसी से बात कर रहे हो तो उस समय क्या कोई दूसरा ध्यान या बात आती है ? यदि आवेगी तो पास वाले से बात करने पर बात बिगड़ती जावेगी। वह समझेगा कि पागल है। क्या बोल रहा है ? वह नाराज़ होकर चल देगा। इसी प्रकार भगवान भी चल देते हैं। यह मुझसे नहीं, संसार से नाता जोड़ रहा है। देवता के आने का सवाल ही नहीं। जैसे पहले था वैसा अब भी है। पूरी जिन्दगी बेकार में खो देगा। फिर भवसागर में हमेशा के लिए डूब जायेगा।

अतः प्रेमियों! जितना बन सके, उच्चारणपूर्वक हरिनाम जपने का अभ्यास बनावो। एक माला से 64 माला तक होने में कोई कठिनाई नहीं आती। केवल मात्र अभ्यास की कमी रहती है।

जितना कान को काम में लोगे उतने अनुपात में भगवान के चरण में पहुँच पावोगे। कान ने भवसागर में डाला तथा कान ही भवसागर से पार लगावेगा।

नाम जपने के लिये यह विशेष छूट है कि
शुद्ध, अशुद्ध, प्रातः, सायं, रात्रि, कभी भी,
कहीं भी, रेल में, बस में, नहाकर, बिना नहाये,
हम जप कर सकते हैं कैसे भी करो

हरेकृष्ण हरेकृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप व कीर्तन करते रहो।

11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
08–07–2008

परम पूजनीय, भक्तप्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव, भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा आप सब के चरणारविंद में मेरे से अपराध न हो, इसकी चरण–स्पर्श कर के प्रार्थना।

मार्मिक चर्चा

इस गोविंद–आश्रम में ही हरिभजन करने हेतु कुछ कारण विशेष–

चण्डीगढ़ मठ तथा अन्य मठों में अधिक दिन न रहने के कुछ कारण हैं जिनका उल्लेख नीचे विवशता से कर रहा हूं। भक्तगण, क्षमा करना।

1. यहां के निवासी नहीं चाहते कि मैं कहीं और जाकर भजन–साधन करूँ। इससे यहां के निवासी सत्संग से वंचित रह जाते हैं और उनका भजन कमज़ोर पड़ जाता है।

2. धर्मपत्नि का रोगों में ग्रस्त रहना। अतः मेरा इनके पास रहना परमावश्यक हो गया। रात में गिरने का डर। अचानक तबीयत खराब होने का डर।

3. मुझे भी चलने में असुविधा रहती है। गिरने पर हाथ–पैर टूटने का डर रहता है।

4. भक्तों द्वारा मेरी सेवा करना, खतरे से खाली नहीं। सेवा तन से, मन से तथा धनादि से की जाती है। शास्त्रानुसार यह गृहस्थी के लिए वर्जित है। मठ में मुफ्त का खाना–पीना, बिजली–पानी का खर्चा करता रहता हूं। ठाकुर जी मेरे से कुछ लेते नहीं। अतः दुःख होता है। प्रथम तो मैं इस योग्य हूं भी नहीं, जो

सेवा लेता रहूं। केवल मात्र 3 लाख हरिनाम करने पर क्या मैं महात्मा बन गया ? केवल बिडम्बना ही है! दुर्गुणों से भरा मानव क्या पंडित हो गया ? जो भक्तजन मेरे कहे अनुसार एक लाख हरिनाम कर रहे हैं, यह सब मेरे श्रीगुरुदेव ही करा रहे हैं तथा जो पत्र अब तक लिखे जा रहे हैं उनमें केवल मात्र श्रीगुरुदेव का ही हाथ है। गांव का एक तुच्छ मानव क्या ऐसी कलाकृति कर सकेगा ? यह केवल वहम् है।

5. सबसे खतरे की बात तो यह है कि मेरा तो धर्म है कि मैं संन्यासियों के चरणारविंद में साष्टांग दण्डवत् करूँ पर संन्यासीगण का यह धर्म नहीं कि वे एक तुच्छ गृहस्थी में फंसे मानव को झुककर प्रणाम करें। मेरा अन्तःकरण कांप जाता है। अतः कभी–कभी तो मैं टाल–मटोल कर जाता हूं परन्तु सब करते हैं, अतः करना पड़ जाता है। अकेले में करना और बात है।

6. मैं दस–पन्द्रह दिन के लिए ही आ सकूंगा। बाद में फोन द्वारा भी मेरी उपस्थिति रह सकती है तथा मेरे गुरुदेव जी के पत्रों द्वारा भी मेरी हाज़री होती रहेगी। मेरे गुरुदेव जी के आदेश का पालन भी काफी हो चुका है। मुझे डर है कि 10–15 दिन बाद भी भक्तगण आने नहीं देंगे, फिर मैं कैसे ज़बरदस्ती कर सकूंगा।

7. पत्र फिर भी मेरे से श्रीगुरुदेव लिखाते रहेंगे। जो पत्र होंगे, वे शीघ्र भगवत्–प्राप्ति अथवा पंचम पुरुषार्थ–प्रेमावस्था कैसे प्राप्त हो इसी से सम्बन्धित होंगे। यह पत्र सबको मिलना चाहिए ताकि भक्त–गणों के चरणों में मैं अपराधी न बन सकूं।

पत्र का सार यही है कि जो ठाकुर (गुरु) जी की मर्ज़ी है उसको पलटने में किसकी सामर्थ्य है ?

होई है सोई जो राम रचि राखा।
क्यों करे तर्क बढ़ावहि साखा।।

अधिक लिखना घोर दुःख का कारण बन रहा है। अतः भक्तगण मुझे क्षमा करें।

12

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

एकादशी

14-07-2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव श्री भक्ति सर्वस्व निर्श्किचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ते रहने की हाथ जोड़ कर प्रार्थना।

मन की एकाग्रता बिना कुछ भी संभव नहीं

मन की एकाग्रता के बिना कोई भी भौतिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धि स्वप्न में भी नहीं हो सकती। मन ही प्राणी का शत्रु व मन ही मित्र है। मन कहता है कि यदि मुझे बेकार रखा तो मैं तुझे बर्बाद करके छोड़ूंगा। कुरान-शरीफ ने इसे शैतान बोला है। धर्मशास्त्र ने इसे भूत बोला है। अतः इसे काम पर लगाए रखना चाहिए वरना यह खा जायेगा। मन ही इन्द्रियों को चलाने वाला है। मन ही शुभमार्ग पर ले जाता है। मन ही अशुभ मार्ग पर ले जाता है। **मन के कहे न चालिए, जो चाहे कल्याण।** मन ही भगवान से मिला देगा तथा मन ही दुःख सागर में डुबो देगा। कोई भी साधक मन को बस में कर सकता है यदि इसे लोभ बन जाये, भय बन जाये, बदनामी नज़र आ जाये।

निम्नलिखित उदाहरण मेरे श्रीगुरुदेव लिखा रहे हैं जिनको हृदयंगम करने पर मन वश में हो सकता हैः-

परीक्षार्थी, 3 घंटे मन को एकाग्र करता है। बैंक का कैशियर 4-5 घंटे मन लगाता है। लैक्चरार यदि मन से न पढ़ावे तो विद्यार्थी धज्जियां उड़ा दें। नेता यदि उचित भाषण न दें तो प्रजा भड़क जाये। सन्तगण यदि शास्त्रसम्मत प्रवचन न करें तो कोई भी श्रोता प्रवचन में उपस्थित नहीं होगा। यज्ञ में यदि शुद्ध मंत्र बोलकर आहुति न देवें तो यजमान का नाश हो जायेगा। वाहन चालक का

मन पास में न हो तो दुर्घटना घट जाये। मरते समय यदि भगवत्–चरण में मन न हो तो दुर्गति बन जाये। हलवाई का मन न हो तो सारा किया कराया मिष्ठान–भोजन, धूल में मिल जाये। नमक थोड़ा अधिक हो जाये तो सब भोजन बेकार–ऐसे अनंत उदाहरण हैं। मन के बिना भौतिक मार्ग सब कंटीला बन जाये। इसी प्रकार से आध्यात्मिक उदाहरण हैं। वहां भी मन को रोकना परमावश्यक है वरना अनंत जन्म लेने पर भी भगवत्–प्राप्ति नहीं होगी। मानुष जन्म बारम्बार नहीं मिलता। मिलता है, तो बेकार चला जाता है।

जिस साधक का मन अपने जीवन में रुका है, उसका ही अन्त समय में, मरते समय भी रुकेगा वरना कदापि नहीं। भीष्म पितामह का मन मरते समय कृष्ण–चरण में रुक गया था अजामिल का अपने पुत्र के बहाने ''नारयण'' नाम उच्चारण करने पर रुक गया था। मन तब ही रुकेगा जब किसी चर्चा को कान सुनेगा। यदि कान से नहीं सुना तो मन सो जावेगा। इधर–उधर भटक जायेगा। किसी भी चर्चा को कान से सुनना बहुत ही ज़रूरी है वरना चर्चा समझ में आयेगी ही नहीं। इसी प्रकार सन्त का प्रवचन कान नहीं सुनेगा तो उससे कोई लाभ नहीं होगा। मन साथ में होगा तब ही कान सुन सकेगा। मन साथ में नहीं होगा तो कान सुनेगा ही नहीं।

इसी प्रकार से हरिनाम का जीभ से उच्चारण करना होगा तब ही कान सुनेगा। जब उच्चारण बन्द हो जायेगा तो मन भटक जायेगा या सो जायेगा। इसी कारण संकीर्तन व कीर्तन का श्रीगौरहरि ने आविष्कार किया है। इतना ज़रूर है कि उच्चारण करने पर थकान हो जाती है परन्तु अभ्यास होने पर रसानुभूति होने लगेगी तो थकान महसूस नहीं होगी। ध्रुव ने उच्चारण से भगवान को पुकारा था तो छः माह में भगवान को प्रकट होना पड़ा। यदि साधक इसी प्रकार छः माह तक हरिनाम (1 से 3 लाख) उच्चारणपूर्वक करे तो भगवत–दर्शन शत्–प्रतिशत् होगा ही। किसी को एक लाख में ही हो सकता है लेकिन सन्त अपराध न हो। अपराध

तन–मन–वचन से होता रहता है। ध्रुवजी ने तो एकान्त में भजन किया था तो अपराध से बच गये लेकिन अपराध होने पर भी अगला जन्म ऐसी जगह पर होगा जहां अपराध का डर नहीं रहेगा। रसानुभूति होने पर मन व तन थकता नहीं है।

यदि मन को एकाग्र कर नाम सुना नहीं तो बहुत बड़ी दुर्घटना घट जायेगी जिसका कोई पारावार नहीं। मन पर दुनियाँ कायम है। मन बिगड़ा नहीं कि बम डला एवं दुनियाँ समाप्त। सब मन का खेल–तमाशा है। दुनियाँ दुर्दशा के कारागार पर है, कभी भी नष्ट हो सकती है क्योंकि हर ठौर पर खतरनाक बम छूटने को तैयार है। पाप बढ़ने की कोई सीमा नहीं। भगवान ही किसी को प्रेरणा कर बम छुड़ा देंगे अथवा समुद्र मर्यादा छोड़ देंगे या पृथ्वी हिलाकर भूकम्प करवा देंगे। सुना भी है कि 13 दिसम्बर सन् 2012 को कोई ऐसा खतरनाक विपलव होगा जो पहले कभी नहीं हुआ, जिसमें दुनियाँ का प्राणी बहुत कम बच पायेगा।

अतः हरिनाम की शरण में जो रहेगा उसका बाल भी बांका नहीं होगा। अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र, क्या परीक्षित का बाल भी बांका कर सका ?

जाको राखे साईयां मार सके ना कोय।

अखबार में एक खबर थी कि एक 4–5 साल का बच्चा 16 इंच की बोरिंग में चला गया। हाहाकार मच गया। सरकार को मालूम हुआ तो दूर से सुरंग बनाकर बच्चे के नज़दीक पहुंचे। 5 दिन बाद बच्चा ज़िन्दा निकला। उसको किसने भोजन दिया ? किसने पानी पिलाया ? कैसे सांस आया ? जो सैंकड़ों फीट नीचे पहुंच गया था।

अतः मेरी बात पर विश्वास कर हरिनाम की शरण हो जाओ। जैसा तरीका मैंने बताया उसी तरीके से नाम–जप करो। सब आनन्द का मार्ग खुल जायेगा। अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में केवल मात्र मन का खेल तमाशा है। अतः मन को मित्र बना लो,

इसी में सबसे बड़ी भलाई है वरना पछताना पड़ेगा। कोई काम नहीं आयेगा।

नोटः–जब 5 करोड़ हरिनाम मन सहित, कान से सुनकर उच्चारणपूर्वक पूरा हो जायेगा तो इसके बाद स्मरण में जो उच्चारणपूर्वक नहीं होता है स्वतः ही अभ्यास होने की वजह से मन का टिकाव होने लग जाता है। इसका कारण है मन में आनन्दानुभूति होने लग जाती है। जब मन को किसी ठौर पर आनन्द आने लग जाता है तब वहां मन स्वतः ही टिक जाता है, ऐसा मन का स्वभाव ही है।

मन ही तो जन्म–मरण करवाता रहता है। दुःख सागर में डुबोता रहता है। जिसने मन को समझा लिया तथा वश में कर लिया उसने संसार को वश में कर लिया। पहले स्वयं को वश में करो, तब ही संसार वश में होगा। ब्रह्मचर्य–पालन से मन शीघ्र वश में हो जाता है। नैष्ठिक न सही, संयम तो करो। जिस प्रकार घी का घड़ा सुई के समान छेद होने से खाली हो जाता है। इसी प्रकार संयम न रहने से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। मन कमज़ोर पड़ जाता है। मन कमज़ोर होने से सारा खेल ही बिगड़ जाता है।

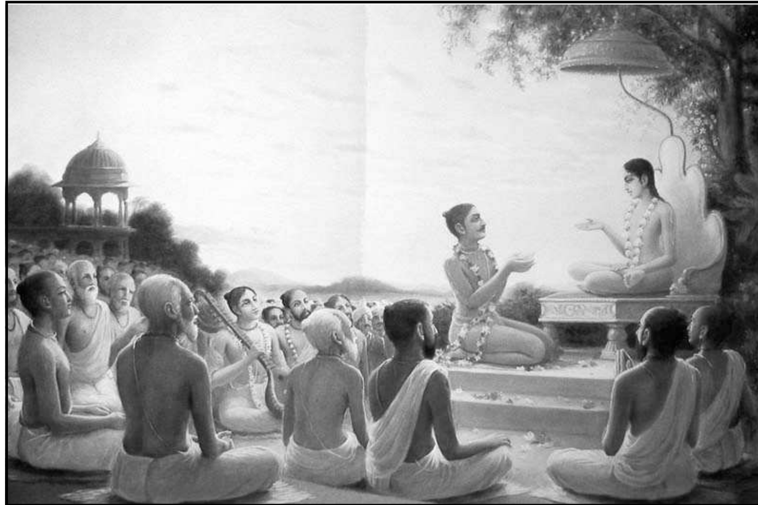
धार्मिक कवियों ने मन को वश में करने के अनंत पद्य रचे हैं क्योंकि मन ही शरीर का राजा है। जब राजा राज़ी, तो सब राज़ी। राजा महाराजा वृद्धावस्था आने पर शीघ्र राजपाट छोड़कर, भजन हेतु जंगल में चले जाते थे। मन बस में नहीं होता तो कैसे जा सकते थे ?

यह कलियुग का समय चल रहा है। इसमें इन्सान में दया नाम की कोई छाया भी नहीं रही, न कोई सौहार्द का निशान रहा। मामूली स्वार्थ पर इन्सान को समाप्त कर दिया जाता है। निर्दोषों की हत्या करना तो एक मामूली बात हो गई। इन्सान ने किसी जीव को नहीं छोड़ा। सबको भोजन बनाकर खा रहा है। न्याय कहीं भी नहीं है, रक्षक कोई नहीं है। पैसे के पीछे सारा अन्याय हो रहा

है। सच्चे का कोई साथी नहीं है अर्थात् सभी मर्यादाएं समाप्त हो चुकी हैं। सब ठौर अन्धेरा ही अन्धेरा हो रहा है। सब जीवों का अन्त हो गया।

इन्सान का यह सब कौतुक भगवान देख रहे हैं। समय आ रहा है। सब ठीक हो जायेगा। 500–550 साल में समय बदलता रहता है। सतयुग की छाया बरतती रहती है। कुछ महापुरुषों का प्राकट्य होता है, जो होने वाला है। सन् 2013 से बदलाव होने वाला है। अतः भजन में लगना उत्तम होगा। सब चीज़ों की बहुतायत होगी। पिछला समय फिर आने वाला है। इन्तज़ार करना होगा। किसी चीज़ की कमी नहीं रहेगी। हर इन्सान पैसे के पीछे दौड़ रहा है। यह दौड़ समाप्त हो जायेगी। चिंता मत करो, सब ठीक हो जायेगा। ऐसा मैंने सुन रखा है। मैं नहीं बता रहा हूँ।

जो व्यक्ति तर्क को जलाञ्जलि देकर केवल साधु और शास्त्रों का आश्रय ग्रहण करता है, वही अतिशीघ्र श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा को प्राप्त कर सकता है।



13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मन को अन्तःकरण में रोकने के विविध, सरलतम, सुगम उपाय–

1. कोई भी वाक्य कान से सुने बिना हृदयगम्य नहीं हो सकता अर्थात् हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है तब ही हृदयगम्य होगा।

2. जिस वाक्य व वस्तु को कान से सुना है वह किस शक्ल का है, उसे हृदय–दर्पण में दर्शन करो। हरिनाम रूपी कृष्ण को स्वयं के हृदय–दर्पण में दर्शन करो। मन रुक जायेगा।

3. उस स्थान का चुनाव करो। वह शक्ल कहां पर है अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण या श्रीगौरहरि का धाम जहां पर है। उस ठौर पर हरिनाम जपते हुए मानसिक रूप से जावो। मन रुक जायेगा।

4. वृन्दावन तथा नवद्वीप में अनेक रमणीय स्थान हैं–जैसे गोवर्धन, यमुना, वंशीवट, गह्वरवन, कालीदह, वृन्दावन की पंचकोसी परिक्रमा, राधाकुण्ड, श्यामकुंड़, कुसुम सरोवर, नारदकुंडादि, गौर जन्म–स्थान, गंगा–किनारा, नृसिंह पल्ली, माधाई घाटादि, वहां जाकर हरिनाम करते रहो, मन रुकेगा।

5. किसी भी मंदिर में दर्शनार्थ जावें, राधा गोविंद, राधा दामोदर, बांके बिहारी, वहां दर्शन करें। परिक्रमा लगावें, तुलसी चरणामृत पान करें। सन्तों के दर्शन करें लेकिन हरिनाम का क्रम न टूटने पाये, मन रुकेगा।

6. अनंत गुरुवर्ग हैं, किसी के भी चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाते रहो। श्रीगुरुदेव से आरम्भ करो। नारदजी सनकादिक तक स्मरण करते हुए हरिनाम करते रहो।

7. भगवत–पार्षदों के चरण में जाकर, जैसे यशोदा मैया, शची मैया, देवहूति मैया, अद्वैताचार्य, आदि रो–रो कर प्रार्थना करो कि मुझे माया–मुक्त करो तथा विरहाग्नि जला दो, प्रेमाभक्ति प्रदान करो।

8. भगवत–चरणों में बैठ कर हरिनाम करो जैसे–राम, कृष्ण, कपिल, नृसिंहदेव आदि।

9. भगवत लीलाएं अनंत हैं। उनका हरिनाम करते हुए ध्यान करना चाहिए, जैसे–कृष्ण की बाल लीलाएं, राम की बाल लीलाएं, समुद्र–मंथन, ब्रह्माजी का मोह, ग्वाल–बछड़े चुरा लेना–यह लम्बी लीला है इसमें कई मालाएं जपी जा सकती हैं। श्रीराम के वनवास की अनेक लीलाएं हैं, उनका ध्यान करके जप करते रहो।

10. मन भटकने पर स्वयं पर क्रोध करना चाहिए। पश्चाताप में जलना चाहिए कि सारी उम्र व्यर्थ चली गई, रही–सही भी जा रही है। यह भाव तब उदय होगा जब भगवान को पाने की सच्ची भूख होगी। रुटीन तो अब तक चल ही रहा है। मन को बोलो–''यदि अब भी नहीं समझा तो तेरा भोजन, पानी, सोना आदि बन्द कर दिया जायेगा। 3 बजे ब्रह्ममुहूर्त में उठकर भजन करना, वरना दंड मिलेगा।"

यदि इस प्रकार से सच्चे हृदय से मन को समझावोगे तो अवश्य भजन–स्तर बढ़ जायेगा। मन कमज़ोर इस वजह से रहता है कि संसार का काम मुख्य समझा जाता है एवं भगवत–भजन को गौण रखा जाता है। अतः भजन में उन्नति नहीं हो पाती। शिकायत यह होती रहती है कि मेरा भजन पहले से गिरता जा रहा है, थोड़ी कृपा तो करो।

कृपा तो प्रथम में स्वयं की होनी चाहिए। बाहर से कृपा मांगना अवहेलनापूर्वक ही है। सरल, सुगम मन को रोकने के तरीके बता दिये फिर भी भजन नहीं हो रहा है। संसार तो झंझटों का घर है। इन आफतों में जो भजन निरन्तर करता रहता है,

उसकी आफतें भगवान टालते रहते हैं। यह शत्–प्रतिशत सही है जैसा कि भक्तों के जीवन में दृष्टिगोचर होता रहता है।

साधक स्वयं में तो कमी ढूंढता नहीं है। बहुत बड़ी शर्म की बात है। स्वयं तो कुछ करे नहीं, अन्य से सहायता मांगे। बिल्कुल बेसिर–पैर की बात है। गहरा विचार कर देखो, किसकी कमी है ? कृपा करने वाले की या स्वयं की। कम सोवो, कम खावो, सुख–सुविधाओं का त्याग करो, आना–जाना कम करो, कम मिलना–भेंटना करो। यही तप है, भजन अवश्य रसमय बनेगा। यदि इतना कन्ट्रोल नहीं किया तो स्वप्न में भी भजन नहीं होगा।

रात होगी तो दिन नहीं होगा। दोनों एक ठौर नहीं मिल सकते। इसी प्रकार या तो भजन (तप) कर लो या आराम कर लो, एक ही की उपलब्धि हो सकेगा। समय जा रहा है, चेत करो। सोवोगे तो खोवोगे। बहुत गया थोड़ा रहा, अब भी समय है। कलियुग में हरिनाम को अपनाना ही सच्ची शरणागति है।

जिस जीव का भगवान् के साथ जैसा नित्य सिद्ध संबंध है, भजन के प्रभाव से वही भाव उसके हृदय में स्फुरित होता है



14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20-07-08

परम-स्नेही प्रेमास्पद-भक्तगणों तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा सभी को श्रद्धा-उपलब्धि की प्रार्थना-

श्रीगुरुदेव आदेश से जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित-

श्रीगुरुदेव आदेश से अनिरुद्ध दास शिष्य श्रीश्री108 श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज जी, इस नराधम को जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित कर रहे हैं ताकि सम्पर्क में आने वालों का उद्धार हो सके।

जो इस जीवन-चरित्र में सन्देह करेगा उसकी भक्ति नष्ट होकर नास्तिकवाद में बदल सकती है। जिसकी सुकृति अधिक नहीं होगी उसका भक्ति रस सूख जायेगा या कम हो जायेगा।

मेरे श्रीगुरुदेव ने स्वप्न-आदेश जून 2000 में दिया था कि तुम स्वयं सन् 2004 से प्रतिदिन 3 लाख हरिनाम करते हो, अतः अन्य से भी एक लाख हरिनाम करावो। इसमें पीछे से मेरी सहायता रहेगी। देखना जब तुम किसी को एक लाख हरिनाम के लिए बोलोगे वह करने लग जायेगा क्योंकि तुम्हारे 3 लाख हरिनाम का प्रभाव अन्य पर पड़ेगा। अपने जीवन में जो भी घटनाएं हुईं तथा जो हो रही हैं, बिल्कुल खोलकर सभी को बता देना, छुपाने में नुकसान होगा। तुम ऐसा मत समझना कि बताने से भजन-स्तर तुम्हारा गिर जायेगा, उल्टा अधिक बढ़ता रहेगा। गौरहरि ने भी कुछ छुपा कर नहीं रखा, सबको बता दिया था।

अतः सबसे मेरी हाथ जोड़ व चरण छूकर प्रार्थना है। कोई भी उक्त लेख में सन्देह नहीं करे वरना भजन कम होने पर मुझे गहरा दुःख महसूस हो जायेगा। आपका नुकसान मेरा नुकसान ही है।

मैं समझता हूँ कि शक होना एक साधारण सी बात ही है क्योंकि किसी ने भी अपने गुण वाला चरित्र अभी तक नहीं लिखा। किसी महापुरुष ने ही उसका आचरण देख दूसरों को बता दिया है कि अमुक भक्त सिद्ध, अलौकिक व महान पुरुष है लेकिन मुझे तो लिखना पड़ रहा है ताकि श्रद्धा होने से भक्त शीघ्र उच्च–स्थिति उपलब्ध कर सकें।

प्रत्यक्ष में हो भी रहा है, किसकी शक्ति पीछे आ रही है ? नित्य से रात में 2 बजे उठकर उच्चारणपूर्वक तीन लाख हरिनाम कर रहा हूँ एवं जिसको एक लाख नाम करने को कह देता हूँ, वही करने भी लग जाता है। श्रीगुरुदेव–प्रेरणा से हरिनाम पर ही लगभग 200 पत्र लिखे जा चुके हैं। ये पत्र एक साधारण व्यक्ति नहीं लिख सकता, वो भी एक विषय पर। हरिनाम जपने का क्या तरीका है ? मन को कैसे हरिनाम में लगाया जाये ? हरिनाम क्यों प्रभाव नहीं करता, हरिनाम स्मरण से क्या रिज़ल्ट निकलेगा ? आदि रसमयी चर्चाएं लिखी गई हैं। किसने लिखवाईं हैं ? क्या मैंने लिखी हैं ? बिल्कुल बे–सिर–पैर की चर्चा होगी, मूर्खता की बातें होंगी।

भागवत में लिखा है कि जिसके हाथ–पैर में भगवत–आयुधों का एक भी चिह्न होगा, वह भगवान का जन होता है (देखें पृथु महाराज का चरित्र), उसे भगवान ने जीवों का उद्धार करने को भेजा है। भगवान उसमें शक्ति–संचार कर दूसरों में श्रद्धा करवा देते हैं। श्रद्धा होने से उसका आदेश सुकृतिशाली अवलम्बन करता है तथा शीघ्र भक्ति लाभ प्राप्त करता है।

इस नराधम के हाथ में शंख, चक्र, वैजयन्तीमाला तथा मच्छ आकृति का चिह्न है।

वैजन्ती माला तथा मच्छ आकृति तो दोनों हाथों में है, जिसको देखने की इच्छा हो, देख सकते हो। इसके देखने पर अटूट श्रद्धा अन्तःकरण में जम जायेगी तो भक्ति–स्तर शीघ्र तेज़ी से बढ़ जायगा। जिनको भगवान भूतल पर भेजते हैं उनको पहचानना बहुत ही टेढ़ी खीर है। कोई महापुरुष ही इनको पहचान सकता है। प्रमुख चर्चा के अतिरिक्त भी बहुत बार अलौकिक भगवत–कृपा का अनुभव हुआ, जो पत्र में लिखना असम्भव है। जैसे–अमरेश को श्रीगुरुदेव ने खिलाया तथा साक्षात् हनुमान दर्शन ढाई साल की उम्र में अमरेश को हुआ, मारण–अभिचार से हनुमान जी ने बचाया, आदि कृपाएं उपलब्ध हुईं।

यशोदा को मालूम नहीं था कि मैं भगवान की मां हूँ। मेरा लाला भगवान है। सदैव लाला की चिंता करती रहती थीं, यहां तक कि लाला की पिटाई भी करती रहती थीं। अर्जुन नहीं जान पाया कि मैं नर–नारायण का जोड़ा हूँ। कृष्ण ने बताया, तब जान पाया परन्तु फिर माया का पर्दा पड़ता रहता है। मैं भी स्वयं नहीं जान पाया कि मैं भगवत् का भेजा जन हूँ। इन लक्षणों से कुछ जान पाया हूँ। बजरंग बली ने मेरी पोल खोली है। उसने बोला था जब उम्र 70 साल हो जावे तब सब चरित्र सबको बता देना तब बहुतों का उद्धार आप द्वारा होगा। अब तो मैं 78 साल का हो गया, इतना जल्दी बताने का मन नहीं किया। श्रीगुरुदेव ने बताने को प्रेरित किया, तब बताना आरम्भ किया।

महत् पुरुष को उसके जीवन–चरित्र, आचरण से भी जाना व पहचाना जा सकता है। वह सबका हित करता रहता है। अहैतुकी दया का खज़ाना होता है। मान–प्रतिष्ठा उसे ज़हर समान लगती है। सदा एकान्त पसन्द करता है। सदैव प्रसन्नवदन रहता है। अपने से निम्न श्रेणी वालों को सम्मान देते हुए मन ही मन नमन करता रहता है। उसे नमन करता है तो शर्माता है। सदैव निर्लोभी होता है। सेवा लेना पसन्द नहीं करता। नमन करने वालों से दूर रहना पसन्द करता है। शरीर की सजावट की ओर ध्यान नहीं देता।

भजन में कमी होने पर दुःखी हो जाता है, मन ही मन रोता रहता है। अन्य का भजन कम होता सुनता है तो भी दुःखी होकर भगवान से उसके लिए प्रार्थना करता है। प्रार्थना ठाकुर जी उसकी सुनकर पूरी करते रहते हैं लेकिन साधक को महसूस नहीं होता। इसका कारण है श्रद्धा की कमी।

गौरहरि के सभी पार्षद श्रीकृष्ण के सखा व सखी थे लेकिन उन्हें स्वयं को मालूम नहीं था कि हम पीछे कृष्ण के क्या थे। तब गौरहरि ही उनको बताते थे कि पिछले जन्म में तुम कृष्ण के अमुक सखा या सखी थे। यह माया का आवरण रहना आवश्यक रहता है वरना लीला में रसानुभूति नहीं होती।

कृष्ण रात–दिन बृजवासियों के साथ रहते थे लेकिन बहुत बृजवासी उनको एक साधारण गोप–बालक जानते थे जबकि कृष्ण ने बहुत सी ऐश्वर्यमयी लीलाएं करके दिखाईं थीं जैसे–नागनाथन, गोवर्धन–धारण, पूतनावध आदि, परन्तु खास वृजवासी, नन्द–यशोदा भी, उसको अपना बालक ही समझते रहे। जिसको स्वयं भगवान अपने को जनावें, वही उनको जान सकता है। योग माया को संग लेकर भगवान लीला रचना करते रहते हैं। यदि ऐसा न करें तो लीलाओं में आनन्द नहीं आवे। पांडव उन्हें भगवान जाने। कौरव एक साधारण ग्वाला जान पाए तभी तो दुर्योधन ने कृष्ण को न मांगा और उनकी सेना मांगी। जब सन्धि कराने कृष्ण गए तो कौरवों ने उनको फटकार सुना दी। कितना अज्ञान का पर्दा पड़ा था।

भगवान जिस जीव पर कृपा करते हैं उसी जीव को ज्ञान का मंत्र प्रदान करते हैं। अपनी शक्ति से कोई भी अलौकिक शक्ति को जान नहीं सकता। श्रीगंगा जी के किनारे रहने वाले गंगा जी को एक साधारण नदी ही समझते हैं जिन पर भगवत् कृपा है वही साक्षात् गंगाजी समझ कर नित्य गोता लगाते रहते हैं। सुकृति बिना कोई भी किसी को जान व मान नहीं सकता।

प्रमुख चर्चा–जो पूरे जीवन में घटित हुई–

1. सर्वोत्तम तिथि 23 नवम्बर 1930 की रात को 10:15 बजे रास पूर्णिमा को मेरा जन्म हुआ है। सन् 1952 में जयपुर में हरिनाम–दीक्षा हुई व सन् 1954 में कोटा में 6 माह में वाक्–सिद्धि प्राप्त हुई, 10 साल तक लुटाता रहा। चीफ इन्जीनियर चेला बन गया।

2. 9 साल की उम्र में, मैं जयपुर में श्री राधा गोविन्द देव जी के दर्शन करने पर विरहांकुर हूँ।

3. 21 साल की उम्र में गुरु की तलाश में जयपुर से वृन्दावन रवाना हुआ।

4. 22 साल की उम्र में पूर्ण दीक्षा श्रीगुरु देव ने मठ से सभी सामग्री देकर दी क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। सभी मेरे विरोधी थे। इनको साधु होने का डर था। क्योंकि मेरी शादी आठवी कक्षा में हो चुकी थी। पत्नी बी. ए. तक पीहर में रही।

5. 23 साल की उम्र में प्रेत–उद्धार श्रीगुरुदेव ने किया। बड़े–बड़े हार गये थे, मौलवी तक। 36 साल की उम्र में एक लाख हरिनाम करने का आदेश प्राप्त हुआ।

6. छदम् रूप में 40 साल की उम्र में हनुमान दर्शन–बीकानेर में–हाथ देखकर भविष्य भी बताया।

7. 42 साल की उम्र में हनुमान का चित्रपट स्वयं प्रकट हुआ बीकानेर में।

8. 58 साल की उम्र में 2 लाख हरिनाम आरम्भ किया।

9. 73 साल की उम्र में 3 लाख हरिनाम उच्चारणपूर्वक शुरु हुआ।

10. 73 साल की उम्र में एक लाख हरिनाम अन्य से कराने का आदेश तथा सब कुछ छुपावो नहीं सभी कुछ सबको बताओ, मैं तुम्हारे पीछे सब कुछ कर दूंगा।

11. सन् 1988 से पत्र लिखना आरम्भ हुआ व श्री भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी की कृपा प्राप्त हुई।

12. 74 साल की उम्र में तीर्थ महाराज की कृपा से वैराग्य धारण हुआ।

13. आसाम से सदेह (शरीर सहित) छींड में ताऊ जी को गुरुदर्शन लाभ हुआ।

परमावश्यक चर्चा– 'श्री हरिनाम चिन्तामणि' को नाम निष्ठ को ध्यानपूर्वक अवश्य पढ़ना है। इसमें हरिदास जी श्रीगौरहरि को नाम के विषय में सुना रहे हैं। हरिनाम का सार–तत्व पूरा है।

भगवान जो करते हैं, मंगल के लिए ही करते हैं। रघुबीर के हाथ का फिर आपरेशन होगा। ऐसे डाक्टर ने कहा है, जब हाथ का एक्सरे किया गया। उसमें दो हड्डियों के बीच में गैप रह गया जो मांस से जुड़ने वाला था पर जुड़ा नहीं। अतः उसको किसी जगह शरीर से हड्डी निकाल कर जोड़ना पड़ेगा।

मुझे अत्यन्त दुःख है कि मैं आप भक्तों का दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप करने में कामयाब न हो सका।

मुझसे ही कोई आपके चरणों में अपराध हो गया है अतः ठाकुर जी ने वहां न आने की सज़ा दी है। सजा देने से मैं स्वच्छ बन जाऊँगा। फिर आने का अवसर मिल जायेगा। आप सब दुःखी न हों, जो होता है मंगल के हेतु ही होता है।

जैसा मेरे आखिरी पत्रों में श्रीगुरुदेव ने लिखवाया है, उसी अनुसार अपना हरिनाम–स्मरण चलाते रहो। मैं अब वृद्धावस्था में चल रहा हूँ। यह मेरी असमर्थता है, अतः आपके चरणों से वंचित रहना पड़ेगा।

फोन द्वारा ही मिलना हो सकेगा। श्री रमेश जी भी न आने से दुःखी हो जायेंगे। मैं क्षमा चाहता हूँ। इस समय मेरा वहां आना

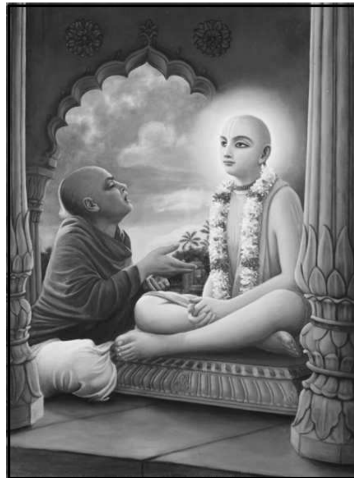
समाज की ओर से भी अनुचित बात होगी। सभी बोलेंगे कि पुत्र का आपरेशन था, बूढ़ा चला गया। यहां पर फिर कोई नहीं हैं। घर वाले भी बिल्कुल भेजना ठीक नहीं समझते।

मेरा अपराध न लेवें तथा खुशी खुशी यहीं रहने की अनुमति देवें।

पत्र सभी को पढ़ा सकते हैं, जब एकादशी का नियम का दिन हो, ताकि सभी मेरी मज़बूरी समझें व मेरा अपराध न बनें।

हर मुसीबत में भगवत–कृपा ही समझनी चाहिए। मैला कपड़ा है तो साबुन से धोकर पहना जाता है इसी प्रकार आत्मा का यह तन कपड़ा है, इसे आपरेशन बिमारी से धोना पड़ता है। फिर नया–तन का कपड़ा भगवान पहनने को दिया करते हैं। दुःख में दुःखी सुख में सुखी होना ही पूर्ण–शरणागति का लक्षण है। बल्कि खुशी होनी चाहिये कि भगवान मुझे अपनी गोद में शीघ्र लेना चाहते हैं। भक्त के लिए जग दुःख सागर नहीं है। सुख–सागर ही है।

इतना विश्वास होना टेढ़ी खीर है लेकिन सिद्ध महात्मा यह भी करा देता है जब गहरा संग मिल जाता है। मन का रंग सफेद होता है। अतः चाहे जैसा रंग शीघ्र चढ़ जाता है।



Clear करके समझाना

भगवान, भक्त को रोगादि व अन्य कष्ट देकर उसके पिछले कुंसंस्कारों की सफाई करते हैं ताकि इसी जन्म में भक्त मेरी गोद में आ सके। इस बात को साधारण भक्त समझ नहीं सकता। भक्त के अन्तःकरण में तब ही यह बात बैठेगी जब कोई सिद्ध महान पुरुष उसको इस बात में ओत–प्रोत करेगा। वरना वह इस चर्चा को एक मामूली बात समझकर हृदय से बाहर निकाल देगा एवं दुःखी होता रहेगा।

श्री जौहर जी इस बात के साक्षी हैं। जब ठाकुर जी से प्रार्थना की गई तब ठाकुर जी ने ही इसे सफाकर श्री जौहर जी को समझवाई, तब श्री जौहर जी इस बात से सहमत हो सके।

अब संसार का उदाहरण देकर उक्त–चर्चा को समझाना पड़ेगा।

जैसे कपड़ा पहनने से गन्दा हो गया, कुर्ता या धोती वगैरह, तो साबुन रूपी रोग से इस कपड़े को रंगा या सादा जाता है, फिर इसे मुक्कों से पीटा जाता है अर्थात् दुःख दिया जाता है, फिर डाक्टर रूपी दवा के पानी से इसे धोया जाता है, फिर धूप रूपी परहेज़ से इसे सुखाया जाता है, तब इसे तन में पहना जाता है।

इसी प्रकार से भगवान, भक्त को दुःख रूपी अग्नि से निखार कर स्वच्छ तन में बदलते रहते हैं। जब स्वच्छता रूपी सुसंस्कारों में ओत–प्रोत हो जाता है तब भगवान गोदी में लेते हैं जिस प्रकार शिशु गन्दा हो जाता है तब मां इसे साफ कर गोद में लेती है। जब तक साफ नहीं करती, गोद में लेती ही नहीं, चाहे शिशु कितना ही चिल्लाता रहे।

इसी प्रकार भक्त कितना ही दुःख में रोता रहे जब तक कुसंस्कार पूर्ण कष्ट द्वारा नहीं जल जाते तब तक भगवान उसकी सुनते ही नहीं। लेकिन यह विश्वास साधारण भक्त को होता ही नहीं है

क्योंकि उसको कोई सिद्ध पुरुष मिला ही नहीं है। सिद्ध पुरुष भी भगवत्–कृपा बिना मिलना टेढ़ी खीर है।

हरिनाम ही भक्त को भगवान से मिला सकता है। अपनी शक्ति से कोई भी कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रख सकता।

नारद को भगवान जब शीघ्र लेना चाहे तब मां को सर्प से डसवा कर नारद का बोझ हल्का कर दिया। साधुओं की जूठन से नारद जी के कुसंस्कार जल कर नष्ट हो गये थे। साधु की जूठन में अकथनीय कुसंस्कार जलाने की शक्ति रहती है क्योंकि भगवान साधु के मुख से खाते हैं तो वह भगवान की साक्षात् जूठन नारद को मिल गई थी। अतः जो अड़चन मां की थी, भगवान ने हटा दी। वैसे भगवान की लीला शिव, ब्रह्मा भी नहीं समझ सकते तो साधारण मानव की तो बात ही क्या है। पत्र सबको एकादशी पर पढ़ावें।

श्री गौरहरि और श्रीकृष्ण में भेद देखने वाले दुष्ट जीवों को कभी भी श्रीकृष्ण सम्बन्ध की प्राप्ति नहीं होती है



15

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

एकादशी

29-07-2008

प्रेमास्पद भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा नाम में श्रद्धा होने की प्रार्थना।

सतर्कता से भजन कब होगा?

1. जो साधक हरिनाम का तथा मानव जीवन का महत्व समझ पायेगा, वही निम्न चर्चा पर आरूढ़ हो सकेगा। तब ही सतर्कता से भजन में लगेगा।

2. रात का भोजन आधा करें। इससे कमज़ोरी नहीं होगी तथा शरीर भी स्वस्थ रहेगा।

3. संसार के काम को महत्व न देकर हरिनाम को अधिक कीमती समझें।

4. प्रातःकाल के समय को स्नान, शौचादि में देकर बाद का समय हरिनाम स्मरण में नियोजित करें। निरन्तर हरिनाम-स्मरण करते रहें।

5. ग्राम्यचर्चा से दूर रहकर हर क्षण हरिनाम का उच्चारण कान से श्रवण सहित करें।

6. मौत को सिर पर मंडराती अनुभव करते रहें। समय को कीमती समझें।

7. मनुष्य की योनि भविष्य में अनंतकोटि युगों के बाद ही मिल सकेगी पर यदि इस योनि का महत्व नहीं समझा तो दण्ड के भागी होंगे। जब भी समय आने पर मानव जन्म मिलेगा तो ऐसा सुअवसर मिलेगा या नहीं। सत्संग का शुभ अवसर जो अभी मिल रहा है, भविष्य में वह सन्देहास्पद है।

8. सुकृति की कमी के कारण मानव जन्म बहुत समय के बाद मिला है, अतः सुकृति का अर्जन करना बहुत मूल्यवान उपलब्धि होगी।

9. वृद्धावस्था आने पर कुछ भी हरिभजन नहीं होगा, अतः चिन्तातुर होकर अभी से समय का सदुपयोग करना श्रेयस्कर होगा।

10. ब्रह्मचर्य पालन का, मन तथा तन पर गहरा प्रभाव रहता है। दोनों बलिष्ठ होने पर भजन में रुचि व उत्साह बना रहता है। पुरुष–स्त्री तथा घी–अग्नि का पास में सम्पर्क होने से महान पुरुष भी पिघल जाते हैं। स्त्रियों से दूर रहो। अतः दृष्टिपात भी न करें।

11. साधुसंग निरन्तर करने से तथा साधु का चिन्तन करने से ही हरिनाम में रुचि तथा प्रोत्साहन मिलता रहता है।

12. किसी भी हरिनामनिष्ठ का संग करके कृपा–प्राप्ति की तीव्र भूख ही हरिनाम में रुचि पैदा कर सकती है वरना जप नीरसता से ही होगा जो सभी साधकों का हो भी रहा है। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए। जिनको श्रीगुरुदेव की शरण हुए बहुत काल व्यतीत हो गया लेकिन हरिनाम में ज़रा सी भी रुचि नहीं हो सकी, उनका हरिनाम भारस्वरूप हो रहा है। स्मरण का तो नामोनिशान ही नहीं है।

13. एकान्त में वास करके ही हरिनाम–स्मरण सुचारु रूप से चल सकता है। एकान्त में संकोच नहीं रहता। मन जैसा चाहे वैसा हो सकता है।

14. सभी साधनों से हरिनाम को मूल्यवान समझ कर ही हरिनाम में रुचि बन सकती है क्योंकि नाम व भगवान एक ही चिन्मय तत्व हैं।

15. हरिनाम परमधन है। अनंत कोटि ब्रह्माण्डों में तथा चारों युगों में हरिनाम ही परम तप स्वरूप है। भवसागर को पार करने

हेतु द्रुत चलने वाली नौका है। मानव जन्म पाकर जो इसमें नहीं बैठता, वह निरा अभागा है।

16. समय पर सोने तथा समय पर जगने वाला ही उक्त साधन का पालन कर सकेगा वरना स्वप्न में भी भगवत–उपलब्धि नहीं हो सकेगी। 5–6 घंटे सोना बहुत आवश्यक होगा वरना आलस्य शत्रु नाश का हेतु होगा।

17. भूतकाल के साधकों की ओर दृष्टिपात करने से उक्त लेखन सामग्री शत्–प्रतिशत् सही उतरकर भजन में उत्तरोत्तर प्रोत्साहन दे सकेगी।

18. दस नामापराध सबसे अधिक खतरानाक हैं। इनसे बचकर ही कुछ बन सकेगा वरना सब व्यर्थ हो जायेगा।

19. अहम् तथा मान–प्रतिष्ठा हृदय में रहने से कुछ भी सद्गुण नहीं रह सकेंगे। अतः यह दोनों महान् शत्रु का काम करते है।

20. सद्गुणों को अपनाने से हरिनाम में स्वतः ही रुचि होकर प्रेमावस्था उपलब्ध हो जाती है। गरिष्ठ भोजन कामवासना जगाता है। पेट को उतना ही भक्षण दो जितने से जीवन चलता रहे।

जो भी साधक–भक्त उक्त विचारों को हृदयंगम कर सकेगा वह इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष प्राप्त कर समूल दुःखों के नाश का भागीदार बनकर, अनंत आनंदसिंधु में तैरता हुआ सदैव के लिए सुखसागर पा सकेगा।

श्रीहरिनाम करते–करते श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से जब जीव का भाग्य उदय होता है, तभी नाम–सेवा से उसकी भाव–सेवा उदित होती है। भक्ति के अन्य सभी साधनों का फल है–अन्त में नाम में प्रेम प्रदान करना–इसलिये नाम–साधक श्रीहरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता है। श्रीहरिनामनिष्ठ किसी दूसरी साधना को नहीं करता। (श्री हरिनाम चिंतामणि)

16

श्रीश्रीगुरु गौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
22–07–2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम के भजनस्तर में उत्तरोत्तर रुचि होने की बारम्बार प्रार्थना।

आत्मा के शरीर रूपी कपड़े की तथा मानव के शरीर रूपी (तन ढकने के) कपड़े की तुलनात्मक चर्चा–

भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्मा को ढकने हेतु शरीर की रचना की। यह शरीर मच्छर से लेकर हाथी तक भोग भोगने हेतु दिया जाता है। मानव शरीर में मानव जैसा शुभ–अशुभ कर्म करता है, वैसा ही उसे शरीर मिलता है। शुभ–कर्म करने पर उच्च योनियों में शरीर उपलब्ध होता है। तथा अशुभ–कर्म करने पर अधोगति योनियों में शरीर उपलब्ध होता है। इन कर्मों का वाचक ही कुसंस्कार तथा सुसंस्कार है।

भगवान् ने धर्मशास्त्रों में मानव को सुख प्राप्त करने हेतु कर्मों की रचना की है। इन कर्मों के विपरीत चलने पर दुःख भोग करना पड़ता है। कारण–शरीर ही अगले जन्म का हेतु होता है। कारण–शरीर (स्वभाव का शरीर) ही मानव को प्रेरित कर शुभ–अशुभ कर्म में संलग्न करता रहता है। अतः कुसंग से दूर रहकर सत्संग को अपनाना चाहिए।

आत्मा का आवरण अनंतकोटि योनियां हैं। मानव के तन का आवरण अनन्तकोटि कपड़ों से है जो तन को ढकने हेतु आवश्यक है। दोनों जीर्ण–शीर्ण होने पर नया धारण कराना पड़ता है।

मानव का कपड़ा गंदा होने पर इसे साबुन लगाकर पानी से धोया जाता है। इसी प्रकार आत्मा का योनि रूपी कपड़ा गन्दा होने पर इसे दुःख रूपी साबुन से नरक रूपी पानी में धोया जाता है। मानव के कपड़े को साबुन–पानी लगाकर मथा तथा पीटा जाता है, इसी प्रकार आत्मा के योनि रूपी कपड़े को नरक रूपी गन्दगी में डालकर हिंसक कीटाणुओं से नोचवाया व कटवाया जाता है। जिस प्रकार कपड़ा जो मानव तन में पहना जाता है की गन्दगी रूपी मैल को साबुन से पानी में डालकर स्वच्छ किया जाता है, इसके बाद ही तन पर पहना जाता है, उसी प्रकार भगवत् की भक्ति का साबुन लगाकर भक्त अपने सूक्ष्म शरीर को स्वच्छ कर स्वयं को भगवान की गोद में डाल देता है।

भगवान् अपने जन–भक्त को दुःख देकर, रोग देकर, परेशानियां देकर कुसंस्कारों को तप रूपी अग्नि में जलाकर अपनी गोद में लेना चाहते हैं। मैले शिशु को मां तब तक गोद में नहीं लेती जब तक उसको स्वच्छ नहीं बना लेती। बच्चा कितना ही रोवे, चिल्लावे, इसका मां ध्यान ही नहीं देती। फोड़ा होने पर डाक्टर से रोने–चिल्लाने की ओर ध्यान न देकर जबरन पकड़कर फोड़े को चिरवा देती है।

इसी प्रकार भक्त कितना ही रोवे, चिल्लावे, प्रार्थना करे, भगवान ध्यान नहीं देते क्योंकि भक्त को भगवान् शीघ्र अपनी गोद में लेना चाहते हैं। जितना अधिक भक्त पर कष्ट आते हैं उतना अधिक भगवान् का ध्यान अपने भक्त की तरफ रहता है। ताकि वह शीघ्र स्वच्छ हो जावे और मैं इसे गोद में चढ़ा लूँ।

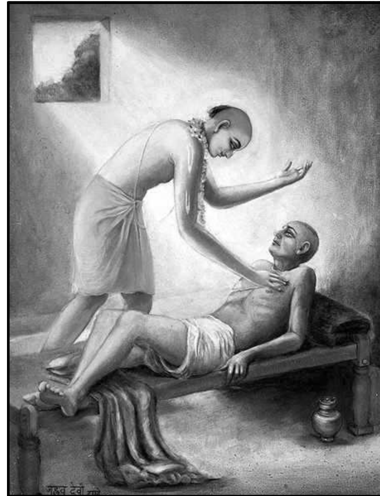
प्रत्यक्ष में देखा भी जाता है कि जो जितना अधिक प्रेमी होगा, उसे भगवान उतना ही अधिक कष्ट में डालते हैं। यही है भगवान् में देखने की कृपा। ऐसा भी देखा जाता है कि ऐसे–ऐसे उच्च श्रेणी के भक्त भी हैं जिनको कुछ होता ही नहीं है। इसका कारण यही है कि वे पिछले जन्म के भ्रष्ट योगी थे। उस जन्म में उन्होंने कष्ट भोग लिए हैं जैसे जड़भरत, तुलसी, सूर, मीरा, कबीर, आदि। इनको कष्ट भोगना ही नहीं पड़ा। ये पिछले जन्म के भ्रष्ट योगी थे। इस

जन्म में राम सुखदास जी, जिनको गले का कैंसर था लेकिन भक्ति के प्रभाव से असर नहीं किया जबकि डाक्टरों ने प्रवचन करने से रोका था। और भी कई महात्माओं को भी डाक्टरों ने प्रवचन करने से रोका है परन्तु इसकी परवाह महात्माओं को नहीं है। ऐसे–ऐसे अनेक उदाहरण सुनने व देखने को मिलते रहते हैं।

अतः दुःख में सुख माने तब तो सच्ची शरणागति है वरना कच्ची है। दुःख में राज़ी हो कि भगवान कितने दयालु हैं। सोना आंच में जलाने से ही चमकता है। फिर पहनने वाले को भी चमका देता है। तप से ही सुख की आवृति होती है।

नोटः–मैंने 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ बड़े ध्यानपूर्वक पढ़कर देखा तो पाया कि नाम के विषय में मैंने जो भी पत्र लिखे हैं वे सभी बातें इस पुस्तक में मिली हैं क्योंकि श्रीगुरुदेव ही तो मुझसे पत्र लिखवा–लिखवा कर भिजवाते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



17

छींड की ढाणी
04-08-2008

परमाराध्यतम, भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उच्चारणपूर्वक हरिनाम होने की बारम्बार प्रार्थना।

चारों युगों में नाम ही केवलमात्र भगवत्-अवतार

नाम के अभाव में अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों का सृजन हो ही नहीं सकता। यदि उक्त ब्रह्माण्डों से हरिनाम हटा दिया जावे तो अज्ञान ही अज्ञान अर्थात् अन्धकार ही अन्धकार सभी ठौर व्याप्त हो जावे तथा नज़र आवे। उक्त ब्रह्माण्डों में सभी चर-अचर नाम-भगवान के सांस से ही प्रकट हुए हैं।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-चारों युगों में सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते रहते हैं। ये सब किनकी प्रेरणा से होते हैं ? केवल मात्र श्रीकृष्ण की प्रेरणा से होते हैं। श्रीकृष्ण ही उक्त तीनों का अवतार धारण कर अलग-अलग नाम से सृजन, पालन तथा संहार करते रहते हैं। हरिनाम के अभाव में सभी चर-अचर निस्तेज हो पड़ें। नाम की शक्ति से ही सभी सजीव बने रहते हैं।

चारों युगों में शिव अवतार धारण कर अपनी संहारणी शक्ति के संग अष्टयाम हरिनाम-स्मरण करते रहते हैं। नाम के अभाव में वह भी निस्सारता को प्राप्त हो जाये।

श्रीनारद जी अपनी वीणा पर हरिनाम की स्वर-लहरी की तानें छेड़कर अबाध गति से जहां चाहें वहीं घुमाई करते रहते हैं। कहीं कोई रुकावट नहीं है। भगवान स्वयं उनसे सृष्टि का हाल पूछते रहते हैं, सब कुछ जानते हुए भी, त्रिकालिक दृष्टि रखते हुए भी।

सनकादिक चारों भाई नाम के प्रताप से सदैव 5 साल के बने रहते हैं। सदा अमरता धारण करते हैं। श्रीगौरकृष्ण स्वयं अपना नाम संख्यापूर्वक रात–दिन माला में जपा करते हैं व सबको नित्य एक लाख नाम करने का आदेश देते रहते हैं। महापापी रत्नाकर (वाल्मीकि) भगवत्–नाम उल्टा जप कर त्रिकालदर्शी हो गया जिसने बाल्मीकि रामायण, श्रीरामावतार होने से हज़ारों साल पहले ही रच दी। श्रीशुकदेव मुनि नाम के प्रताप से अवधूत वेश में फिरते रहते हैं। जड़भरत नाम की मस्ती में कूड़े–कर्कट तथा अपने मल में लिपटे रह कर आनन्द मग्न रहते हैं। शिवजी कभी मरते ही नहीं हैं, नाम ने कालकूट विष को भी अमृत में बदल दिया।

कहां तक कहा जाये ? नाम में न जाने क्या रस है ? क्या आनन्द भरा है ? क्या मस्ती भरी है ? क्या बेफिक्री छिपी है, कोई बता नहीं सकता। जिसने इस नाम–रस का स्वाद चखा है, वही महसूस कर सकता है। बता नहीं सकता। महसूस मन से होता है, मन के पास जीभ नहीं।

श्रीगौरकृष्ण ने कलियुग के जीवों को उद्धार करने हेतु नामसिंधु में डुबो दिया। धर्म–शास्त्रों में अनेक उल्लेख हैं जिनका विस्तृत वर्णन करना असम्भव होगा। इन्हीं दृष्टान्तों को हृदयंगम करने पर मानव अपना जीवन नाम–रससिंधु में डुबोकर सफल बना सकता है।

आगे भविष्य अन्धकारमय है। घोर दुःखसागर में गिर कर असाध्य दुःख भोगना पड़ेगा। अब भी हृदय की आंख खोल कर आगे डग धरो वरना आगे गहरा खड्डा है, गिरना पड़ जायेगा।

जो कुछ ईश्वरीय–प्राप्ति भूतकाल में ऋषि–मुनियों ने की थी केवल नाम शरणागति से की थी। दूसरा कोई भी साधन कहीं भी नहीं है। कुछ काल बाद यहीं पर आकर दुःख भोगना है। त्रिताप पीछे आ रहे हैं। हरिनाम ही बचाएगा।

श्रीहरिनाम के महत्व की उत्कर्षता के शास्त्रीय उदाहरण

श्रीहरिनाम के प्रभाव की शक्ति कोई भी बता नहीं सकता। यदि कोई नाम का प्रभाव देखना चाहे तो–

जाना चहिए गूढ़ गति जेउ । जीह नाम जप जानेउ तेउ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद् गावा।।
नाम प्रभाव शम्भू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशि।।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।
जिन कर नाम लेत जग माहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
बिबसहु जाको नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।
सादर सुमरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद–इब तरहिं।।
सनमुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहूं तबहीं ।।
(नामजप में)
जानि आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ शुद्ध करि उल्टा जापू।।
सगुण उपासक पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।।
ते नर प्राण समान मम् जिनके द्विज पद प्रेम।।
कोटि विप्र वध लागहिं जाहूं। आये शरण तजहूं नहिं ताहूँ।।

चारों युगों में नाम की शरण ही शरणागति है।

कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुण गाई।।

स्वयं भगवान राम भी अपने नाम का उत्कर्ष नहीं बता सकते।

रामचरित सत् कोटि महँ लिए महेश जिय जान।

सौ करोड़ रामायण से शिवजी राम नाम को छांट कर, उमा संग बैठकर जपते रहते हैं। नाम में क्या आनन्द है!

कलियुग केवल नाम आधारा। सुमर–सुमर नर उतरहिं पारा।।

कलिकाल में नाम के अलावा कोई भक्ति–साधन है ही नहीं।।

सुमरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू।।

अपने नाम के पीछे–पीछे भगवान खिंचे चले आते हैं।

वैसे विचार किया जाये तो नाम के पीछे सभी खिंचे चले आते हैं। यह है जगत की बात। स्वयं सीताजी राम नाम जपती रहती हैं–

जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।

स्वयं कृष्ण, शिव रूप धरकर अपना नाम अष्ट प्रहर जपते रहते हैं, फिर कह रहे हैं–

जासु नाम जप एकहिं बारा। उतरहिं नर भव-सिंधु अपारा।।

नाम में कुछ ऐसा ही अलौकिक आनन्दरस है कि जपने वाला ही जानता है, कह नहीं सकता। आनन्द आता है मन को। मन को जिह्वा नहीं। अतः मन इस आनन्द को कहने में सक्षम नहीं है।

नामसिंधु में एक ऐसा अलौकिक स्वादिष्ट रस (अमृत) भरा है कि पीने वाले को मतवाला कर पागल जैसा बना देता है। यह रस का स्वाद जपने वाले को तब ही आयेगा जब उच्चारणपूर्वक कान में उड़ेलता रहेगा वरना रस बाहर बिखर जायेगा तो मन को भिगो नहीं सकेगा। इस रस का एकान्त में ही अधिक मज़ा आता है। सब के बीच में यह रस बेस्वाद हो जाता है। श्रीगौरहरि ने संकीर्तन के लिए बोला है। वह इसलिए बोला है कि उस ठौर का वातावरण हरिमय बन जाता है। कच्चे साधकों के लिए अधिक अनुकूल पड़ता है। पक्कों के लिए एकान्त अधिक अनुकूल पड़ता है।

प्रश्न होता है कि यह नामरस विरले साधकों को ही क्यों आता है ? सभी को आना चाहिए। इसलिए नहीं आ रहा है कि कोई ही इस रस को चाहता है। सभी साधक मायारस के पीछे दौड़ रहे हैं जो केवल महसूस ही होता है, असलीयत इसमें नहीं है। इसे कहना चाहिए–मृगतृष्णा। यह कभी भी शान्त नहीं होगी। जितना भोगोगे उतनी अधिक भड़केगी। आज तक किसी ने इसको शान्त नहीं किया, फिर क्या लाभ ? केवल नासमझी! श्रीगुरुदेव कैसे-कैसे उदाहरण देकर समझाते रहते हैं फिर भी उसी ठौर।

18

श्री श्रीगुरु गौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
07-08-2008

प्रेमास्पद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्-प्रेम प्राप्ति की बारम्बार प्रार्थना।

मन पर मार्मिक महत्वपूर्ण चर्चा

मन पर ही जीवन की नींव खड़ी है। मन के अभाव में जीवन निरर्थक है। हृदय के चार कोष्ठ होते हैं-मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार। अहंकार यदि काबू में आ जावे तो मन स्वतः ही स्थिर हो जावे। यह अहंकार मन की ही एक विशेष-वृत्ति है। अहंकार पर ही यह मन टिका हुआ है। इन दोनों को अलगाव महसूस हो नहीं सकता। यह दोनों एक से ही हैं।

अनन्त जन्मों के संस्कार ही प्रथम चित्त को स्फुरण कर जगाते हैं। चित्त जगकर मन को उकसा देता है। मन, बुद्धि से कर्म को करने की राय लेता है कि अमुक कर्म किया जाये या नहीं। बुद्धि मन को राय देती है-''इस कर्म को करने से नुकसान होगा, करना उचित नहीं है।'' पिछले संस्कारों वश मन उसकी राय न मानकर, बेबस होकर कर्म कर बैठता है, अहंकार उसके पीछे लगकर कर्म करा बैठता है। जब कर्म पूर्ण हो चुकता है तो फिर मन पछताने लगता है कि यह कर्म तेरे करने योग्य नहीं था, नहीं करना चाहिए था। अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।

यह है जीवन में मन का अटपटा खेल, जो साधक को कांटों में फंसाता रहता है। बेचारा मन करे भी क्या ? उसके पिछले जन्मों के शुभ-अशुभ संस्कार उसे प्रेरित कर अहंकारवश कर्म करवाते रहते हैं। यदि पिछले जन्मों के संस्कार शुभ होंगे तो वे ही सुखदायक संग करवा देंगे और यदि अशुभ-संस्कार होंगे तो दुःखदायक संग

करने को प्रेरित करते रहेंगे। सूक्ष्म रूप में अहंकार की छाया इनके साथ–साथ चलती है।

इसी प्रकार से मानव का यह जन्म, जो अनमोल है, बारम्बार जब भी भगवत–कृपा से मिलता रहेगा, व्यर्थ में गंवाता रहेगा। कभी इसके दुःखों का अन्त नहीं होगा। मन स्थिर तो जीवन–स्थिर। मन की स्थिरता केवल मात्र सत् के संग से ही हो सकेगी। अन्य कोई युक्ति या साधन नहीं है। बुरे संग से मन चंचलता की ओर दौड़ लगाता रहता है। वहां स्थिरता स्वप्न में भी कहां हो सकती है ? सत् का संग, बिना सुकृति के, स्वप्न में भी नहीं मिला करता। यह सुकृति भी अच्छे संग से ही उपलब्ध होती है। यह संयोग भी जाने कितने जन्मों के बाद मिल सकता है, इसका कोई अनुमान नहीं है।

मन स्थिर रहता है शान्ति से। जहां अन्तःकरण में शान्ति रस भरा है, वहीं पर मन स्थिरता धारण कर सकता है। जिस अन्तःकरण में अशान्त ज़हरीला रस भरा है, वहां शान्ति कहां रह सकती है ? जहां शान्ति नहीं तो वहां मन स्थिर कैसे रह सकता है ?

अब प्रश्न उठता है कि यह शान्तरस उपलब्ध कैसे हो ? यह शान्तरस जहां भरा हो, वहीं से लिया जा सकता है तो कहां पर यह रस उपलब्ध हो सकता है ? यह शान्तरस केवल मात्र परमहंस महात्माओं के अन्तःकरण में समाहित रहता है। यदि भगवत्–कृपा से इनका संग उपलब्ध हो जावे तो फिर शान्तरस सिंधु की कमी नहीं। अन्य को भी बांट सकता है।

लेकिन इस मार्ग में भी बहुत बड़ा रोड़ा (अड़चन) है। यदि मन या चित्त से भी साधु के प्रति कोई अशुभ स्फुरण उठ जावे तो फिर उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ शान्त साधक इतने गहरे खड्डे में गिर सकता है कि उसका उठना भी बेकाबू हो जाये। साधु तो निरा दयानिधि होता है। वह कोई अपराध मानता ही नहीं है परन्तु उसका इष्टदेव कभी बर्दाश्त करेगा ही नहीं, उसको भक्ति–पथ से दूर फैंक देगा।

अतः साधु के संग में रहना, आग के पास रहने जैसा संग है, जो कभी भी जला सकता है।

यदि ऐसा हो भी जाए तो इसका भी उपाय है–साधु के चरणों में अपने अहंकार की बलि चढ़ा दो तो साधु माफ कर देगा और साधु का इष्टदेव कुछ करने की सामर्थ्य नहीं रखेगा। साधु जीतेगा, इष्ट हारेगा। तुमको स्वतन्त्रता उपलब्ध हो जायेगी भगवान के मन की चाबी साधु के पास रहती है। जब चाहे मन का ताला खोले या बन्द करे। साधु के मन की बात है।

इस सारे लेख का सारांश यही है कि जो साधक अपने जीवन में अपने मन को रोक सकता है, वही मरते समय मन को भगवत–चरणों में रोककर लगा सकेगा जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने भीष्म पितामह को अंत में मरने के समय बोला था कि पितामह चारों ओर से अपने मन को हटाकर अपने मन को भगवत–चरणों में लगा लो।

इस लेख में विशेषकर चर्चा केवल मात्र मन को रोकने की, की गई है।

अब प्रश्न उठता है कि मन को कैसे काबू में किया जाये? जहां अहंकार की वृति होगी, वही मन रुकेगा। अहंकार होगा कि मैं भगवान का हूँ, भगवान ही मेरे हैं। यह संसार तो झूठा, माया का खेल है। यहां कोई अपना नहीं है, सभी पराए हैं। केवल दीखते अपने हैं, जादू का झूठा दिखावा है, सच्चा कुछ भी नहीं है।

मन को काबू करने का एक ही उपाय है–वह है सच्चे परमहंस साधु का संग, जिसने अपने मन को भगवत्–चरणों में लगा कर काबू कर रखा है। साधु, मन को रोकने की विधि बताने का विशेषज्ञ है। वही साधक को, मन को रोकने की ट्रेनिंग दे सकता है। आंख, कान, जीभ तथा नाक आदि के भिन्न–भिन्न विशेषज्ञ हुआ करते हैं। इसी प्रकार मन का, चित्त का, बुद्धि का व अहंकार का विशेषज्ञ–परमहंस साधु होता है। इसका संग करने से मन शत्–प्रतिशत् रुक जायेगा।

लेकिन साधक, ऐसे साधु के पास तब ही जायेगा जब वह अपना ध्येय भगवत प्राप्ति का समझेगा। करोड़ों साधकों में से कोई विरला ही ऐसा साधक हो सकता है। अधिकतर लोग भौतिकवाद की ओर दौड़ रहे हैं। इस कलियुग में आध्यात्मिकवाद का तो केवल नाम–निशान ही रह गया है।

साधु का संग भी दो प्रकार का होता है–एक स्थूलसंग, दूसरा सूक्ष्मसंग। परिस्थिति अनुसार ही यह संग मिल पायेगा। संग करने वाले को अनुकूल परिस्थिति उपलब्ध नहीं है या साधु की उसके संग रहने की परिस्थिति नहीं है। यह परिस्थिति तो भगवत–कृपावश ही मिलती है। अपनी शक्तिवश नहीं मिलती। यदि साधक साधु के पास जाने में मजबूर है तथा साधु साधक के पास जाने में मजबूर है तो प्रत्यक्ष या स्थूल रूप में संग नहीं होगा परोक्ष या सूक्ष्म रूप से हो सकता है। फोन या पत्र द्वारा संग उपलब्ध हो सकता है।

अनंतकोटि अखिल ब्रह्माण्डों का खेल ही मन पर आश्रित है। जिनका मन वश में है, उनका सभी कुछ वश में है। उसके लिए संसार में बेबस कुछ भी नहीं है। जब से यह जीवात्मा भगवान से बिछुड़ा है, तब से ही मन के कारण इधर–उधर भटक रहा है। अभी तक उसे अपना सच्चा घर उपलब्ध नहीं हो सका है। जब तक अपने सच्चे घर में नहीं पहुँच जायेगा तब तक इसकी भटकन स्वप्न में भी नहीं मिटेगी।

इस भटकन को केवल मात्र एक ही व्यक्ति हटा सकता है–वह है भगवान का प्यारा परमहंस साधु। केवल उससे सच्चा नाता जोड़ लो। सहज में ही अपना सच्चा घर पा जावोगे। माया इस मार्ग में बहुत से रोड़े अटकायेगी। इसके लिए श्रीगुरुदेव की शरणागति परमावश्यक है। श्रीगुरुदेव के सामने माया हतप्रभ हो जाती है। श्रीगुरुदेव जी जब केवट बन नौका चलायेंगे तो भवसिंधु पार करने में समय नहीं लगेगा।

श्रीगुरुदेव जी ने बारम्बार लेखों द्वारा समझाया, बारम्बार कृपावर्षण किया। इस कृपा को अंगीकार कर जीवन सफल करना श्रेयस्कर होगा। इति

19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
08-08-08

साधक को हरिनाम में रुचि क्यों नहीं होती ?

हरिनाम स्मरणकारी को हरिनाम में रुचि इस कारण से नहीं होती कि इसका तन, मन वाक् विषयों की तरफ दौड़ता रहता है। जापक यह नहीं जानता कि इन विषयों में हलाहल विष भरा है। जितना भी विषय रस पीवोगे, उतना ही विष का प्रभाव तन, मन, वाक् पर प्रभावित होता जायेगा तथा विषयों की तृष्णा अधिक से अधिक उत्तरोत्तर बढ़ती ही जायेगी।

जहां तन-मन में विष व्याप्त हो जायेगा, वहां अमृतरूपी भगवत् न भक्त-प्रेम का आभास भी नज़र नहीं आ सकता। एक शराब को ही लीजिए। शराबी जब शराब पीने बैठता है तो उसकी कभी शराब से तृप्ति नहीं होती। बोतल की बोतल चढ़ाता जायेगा। अन्त में जब शराब का नशा चढ़ जायेगा तो फिर बेहोश होकर गन्दी नाली में गिर जायेगा। फिर उसको यह नहीं महसूस होगा कि उस पर कुत्ता पेशाब कर रहा है या कोई बुरा-भला कहकर जा रहा है। यही दशा अन्य विषयों की है। जितना भोगा जायेगा, उतनी तृष्णा तीव्र होती जायेगी। काम, क्रोध, लोभ और मोह को ही महसूस कर देखते रहते हो। थोड़ा सा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अन्तःकरण में व्याप्त हो जावे तो इनकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है। कम होने का सवाल ही नहीं है। इससे तन व मन का नाश होना ही है। यह कितनी अज्ञानता है। कुत्ता किसी सूखी हड्डी को मुख में रख कर चूसता रहता है। उस हड्डी में खून कहां ? वह तो अपने मसूड़ों से निकले खून ही का स्वाद लेता रहता है। क्या यह उसकी शुभ समझ है ? इसी प्रकार मानव की दशा है। विषयों को ही अमृत समझ कर उनकी ओर दौड़ता रहता है।

इसी कारण से हरिनाम, भक्त व भगवान से उसका मन जुड़ नहीं पाता। मन उस तरफ जायेगा ही नहीं तो नाम में रुचि होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। फिर बारम्बार शिकायत करते रहते हैं कि हमारा मन हरिनाम से उठ गया ? कैसे नाम में मन लगावें ? कृपा कर आप ही लगावो। बताओ, यह कितनी मूर्खता की बात है।

अरे भैया! तुम्हारे सामने भोजन की, तरह–तरह की मिठाईयों व चटपटी वस्तुओं की, थाली परोसी रखी है, अब खाना तो आपको ही है। हाथ से मुख में तो आपको ही डालना है। खिलावे भी मार्गदर्शक ही, यह क्या हुआ ? यह है साधक की बेपरवाही। ऐसी बेपरवाही से मार्ग तय नहीं हो सकता। केवल बातें ही बना–बना कर अपना अमूल्य समय नष्ट करते रहो। कुछ उपलब्धि होने की नहीं।

प्रेमियों! विषयों में भी रमते रहो! लेकिन जैसा मैं बताऊं, वैसा तो करो! तो यह विषय स्वयं ही आपका पीछा छोड़ देंगे। अब आप बोलोगे क्या करें, दयानिधि ?

कम से कम हरिनाम को कान से तो सुना करो ताकि हरिनाम बीज, जो श्रीगुरुदेव ने कान में बोया है, वह हृदय (अन्तःकरण) रूपी ज़मीन में जाकर जमा होता रहे तो कुछ साल बाद यह बीज अवश्य अंकुरित होगा तथा अंकुरित होकर बड़ा होने लगेगा। बड़ा होकर फल–फूल रूपी गुणों में प्रफुल्लित हो जायेगा तो आपको उस फल–फूल से आनन्द आना आरम्भ हो जायेगा। जब इधर आनंद, आने लगेगा तो माया का, दिखावटी विषयों का, आनंद नष्ट होकर एक दिन विलीन हो पड़ेगा क्योंकि यह आनंद अलौकिक आनंद है। बस आपको आनंद सिंधु की उपलब्धि हो गई। इससे ऊंचा व बड़ा आनंद अनन्त कोटि अखिल ब्रह्मांडों में कहीं पर भी नहीं है।

अब हरिनाम को कान से सुनने पर किस प्रकार इस आनंद की उपलब्धि होती है, प्रेमियों! यह अच्छी तरह से हृदय में धारण करें। जैसे मैंने किसी को कोई भी काम बोला कि भैया! यह मेरा

काम बहुत ज़रूरी है। अमुक ठौर पर कहकर व करके आना। उसने किसी उधेड़–बुन में मन को लगा रखा था। अतः उसने ऊपर से ही कह दिया कि ठीक है, अवश्य करके आ जाऊंगा लेकिन मन किसी और तरफ था अतः ध्यान से सुना ही नहीं। जब वापस लौटने लगा तो चिंता हुई कि उन महाशय ने कोई काम बताया था। मैंने ठीक से सुना ही नहीं, अब क्या करूं ? वे महाशय तो मेरे खास प्रेमी हैं, बड़ी मुश्किल हो गई। यदि उनका काम नहीं किया तो मेरा तो जीवन ही गर्त में चला जायेगा। उनके बिना तो मैं जी भी नहीं सकता।

अब बोलो ? बात न सुनने से उसे कितना बड़ा नुकसान हुआ या भविष्य में होने वाला है। इसी प्रकार से हरिनाम को कान से न सुनने से, मानव जन्म, जो भगवत्–कृपा से अबकी बार मिला है, बेकार हो जाने पर कितना नुकसान होगा, इसका कोई अन्दाज़ा ही नहीं है। कुछ तो जीवन चला गया व रहा–सहा भी जा रहा है।

कान द्वारा हरिनाम सुनने से कुछ काल बाद बीज अंकुरित होकर पौधे के रूप में बाहर आवेगा। वह पौधा होगा–श्रीकृष्ण का वपु। हृदय में श्रीकृष्ण का दर्शन प्रकट हो जायेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आज़माकर देख सकता है। उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हो। संसार का उदाहरण देना ज़रूरी होता है।

एक किसान बीज बोता है तो हल चलाता हुआ बीज एक पाइप (ओटा) में मुट्ठी भर डालता रहता है एवं हल बैलों द्वारा आगे की ओर खिंचता हुआ चलता रहता है। बीज उस पाइप में गिरकर उमरा (खाई) में गिरकर उस पर हिलने से मिट्टी में दबता रहता है। 5–6 दिन में वह सीलन से फूल जाता है तथा उसमें से अंकुरित होकर उमरे (खाई) से बाहर दिखाई देने लग जाता है। 120 दिन के बाद वह 6–7 फुट बढ़कर उस पर शिरा आ जाता है। यह देख कर किसान का मन फूला नहीं समाता। वह नाचने लगता है।

लेकिन जो बीज उस खाई में न गिर कर किनारों पर गिर जाता है, वह अंकुरित नहीं हो पाता क्योंकि उस पर न तो मिट्टी पड़ी, न सीलन उसको मिली। अतः बाहर पड़ा रहने से उसको चींटियां या पक्षी खा जाते हैं। यही हाल हरिनाम का है जो कान में नहीं सुनाई पड़ा, वह भौतिक जगत में फैलकर नष्ट तो नहीं होता लेकिन प्रेम फल न देकर, जो अलौकिक है, लौकिक फल–अर्थ, धर्म और काम दे देगा। भगवत् प्राप्ति न होकर भौतिक कामना की उपलब्धि करा देगा लेकिन जीवन–मरण का अंत नहीं होगा अर्थात् भवसागर पार नहीं होगा।

अतः जब तक कान में कोई शब्द गूंजेगा नहीं तब तक उस शब्द का फल मिलेगा नहीं–चाहे वह शब्द भौतिकता का हो चाहे आध्यात्मिकता का हो। अतः हरिनाम को उच्चारणपूर्वक कान में उड़ेलना पड़ेगा तब ही कुछ शुभ–उपलब्धि हो सकेगी।

उदाहरणस्वरूप, जैसे अमुक, अमुक को गाली देता है तो क्या वह मन–मन में देता है, ज़ोर से उच्चारणपूर्वक ही देता है, तब वह कान द्वारा हृदय में जाकर उथल–पुथल मचा देती है जिससे उसमें क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है और वह आग बबूला होकर सामने वाले को मौत के घाट भी उतार देता है। यह है भौतिक शब्द का प्रभाव तो हरिनाम का प्रभाव तो सोच भी नहीं सकते। अब ज़रा गहरे दिमाग से सोचिए कि एक भौतिक शब्द ने ही इतना बड़ा कर्म कर दिया तो क्या आध्यात्मिक शब्द, जो अलौकिक शक्ति वाला है–वह हरिनाम क्या नहीं कर सकता अर्थात् वहां, क्रोध की उपलब्धि हुई तो यहां किसकी उपलब्धि होगी ? सुपीरियर (श्रेष्ठतम) प्रेम की।

अब स्पष्ट समझ में आ गया होगा कि भगवत्नाम उच्चारणपूर्वक ही कान में जाना चाहिए। थोड़े काल बाद लाभ नज़र आने लगेगा। श्रीगुरुदेव का आदेश 1966 में

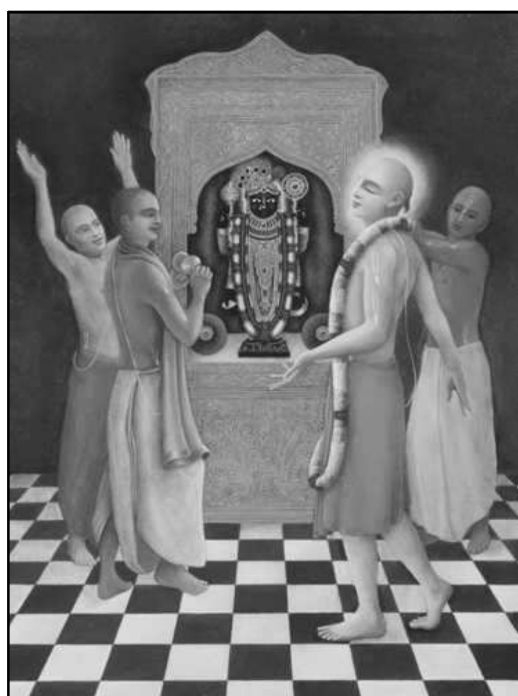
Chanting Harinam Sweetly & Listen by Ear.

सादर सुमरन जे नर करहिं। भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।।

इसी कारण श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का प्रचार करवाया। इति।

श्रीगुरुदेव श्री निष्किंचन महाराज को यह पत्र अवश्य सुनाया जाये।

नोटः–हरि प्रेमियों। ध्यान दो। भगवान् को कोई सच्चे दिल से चाहता ही नहीं है अतः रुचि कैसे हो सकती है ? अभी सच्चा ज्ञान नहीं।



श्रीराधा और श्रीकृष्ण का मिलित स्वरूप श्रीगौराङ्ग महाप्रभु हैं।
युगल विलास में श्रीराधा और श्रीकृष्ण का ऐक्य
स्वाभाविक रूप से अच्छा नहीं लगता अर्थात् युगलविलास
हेतु ही श्रीगौराङ्ग महाप्रभु दो रूप धारण करते हैं।

(श्री नवद्वीप धाम – माहात्म्य)

20

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

चण्डीगढ़
25-10-08
द्वादशी

परमाराध्यतम, प्रातःस्मरणीय, भक्तप्रवर श्रीनिष्किंचन महाराज को इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा एक लाख हरिनाम प्रत्येक भक्तिसाधक को करने की प्रार्थना।

एक लाख हरिनाम-स्मरण करने से ही पूर्ण भगवत्-शरणागति

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सभी अपने जनों को एक लाख हरिनाम करने का आदेश दिया तथा कहा कि जो भी जन एक लाख हरिनाम नित्य ही करेगा उसी के घर पर मैं भोजन कर सकता हूँ। जो नहीं करेगा उसके घर पर मैं जाऊंगा ही नहीं।

सभी भक्तजनों को चिंता हो गई कि एक लाख भगवत् नाम हमसे कैसे हो सकेगा क्योंकि हम गृहस्थी हैं। घर में बहुत काम रहते हैं। इतना समय हम कैसे निकाल सकते हैं ? परन्तु कुछ भी हो, यदि प्रभु का आदेश पालन नहीं करेंगे तो प्रभु जी हमारे घर पर न भोजन करेंगे एवं न घर पर आवेंगे। अतः एक लाख नाम पूर्ण करना परमावश्यक है।

वैसे महाप्रभु जी का कहना वास्तव में ऐसा था कि जो भी एक लाख नाम नित्य करेगा उसे मैं एक क्षण भी कैसे छोड़ सकता हूँ क्योंकि वह मेरे पूर्ण शरणागत है। उसकी ज़िन्दगी की पूरी जिम्मेवारी मेरी है। जो भी किसी वस्तु का अभाव होगा, मैं उसे पूरा करूंगा तथा हर प्रकार से उसका पालन करूंगा तथा रक्षा करता रहूंगा। अन्त में आयु पूर्ण होने पर मैं स्वयं आकर पार्षदों को न भेजकर, उस मेरे प्रिय को अपने गोलोक धाम में ले जाऊंगा। कलिकाल में

अन्य कोई साधन नहीं है। केवल नाम–रूप से मेरा अवतार है। जो इसे अपनाएगा, वही मुझे पाएगा। वह सदैव के लिए दुःखों से मुक्त हो जायेगा। इस कलिकाल में जिसने भी मेरे नाम का सहारा लिया है, वही भवसागर, जो दुःखों का घर है, पार हो जाता है। यह महाप्रभु का वचन है।

जो सभीत आया शरणाई।
ताको राखूं प्राण की नाईं।।

मुझे पता है कि आरम्भ में मेरे नाम में रुचि व मन नहीं लग सकता लेकिन एक लाख बार जब स्मरण करेगा तो कुछ तो शुद्ध नाम मुख से निकलेगा। वही शुद्धनाम, नामाभास (बेमन से किया हुआ हरिनाम) नाम को कुछ समय बाद शुद्ध कर देगा। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार शुद्धनाम थोड़ा होने पर भी नामाभास को शुद्धनाम बना देगा। अतः घबराने की बात नहीं है। नाम–जापक को सात्विक अष्टविकार की उपलब्धि सहज में ही हो जावेगी।

अतः कृपया प्रत्येक साधक हरिनाम की 64 माला नित्य स्मरण करने का अभ्यास बढ़ावे। कुछ समय बाद श्रीगुरुदेव जी की कृपा से अन्तिम पुरुषार्थ–'प्रेम' की उपलब्धि हो जावेगी लेकिन इसमें एक रुकावट आती है, वह है नामापराध तथा प्रतिष्ठा। इससे बचते रहने पर शीघ्र ही चिन्मय स्थिति उपलब्ध हो जावेगी।

हरिनाम को कान से सुनना होगा। कान तब ही सुनेगा, जब मन साथ में होगा। मन साथ में न होने पर कान सुनेगा ही नहीं, श्रीगुरुदेव का आदेश है।

Chanting Harinam Sweetly & Listen by Ear-

सादर सुमरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद–इव तरहिं।।

अतः श्रीगुरुदेव का वचन है कि जो भी एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला मन सहित नित्य करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत–प्रेम उपलब्ध हो जायेगा। इसमें रत्ती भर भी शंका का अवसर नहीं होगा।

अतः मेरी बारम्बार प्रार्थना है कि मेरे प्रेमास्पद भक्तो! एक लाख हरिनाम नित्य करो ताकि यह मनुष्य जन्म सफल हो सके। यदि मेरी उक्त प्रार्थना नहीं सुनी तो अनंत युगों के बाद ही मनुष्य जन्म मिल पावेगा। फिर ऐसा शुभ अवसर नहीं मिल पावेगा। अतः अभी से पत्र को पढ़कर हरिनाम की 64 माला नित्य करने को तैयार हो जावो।

रात का भोजन कम करके, प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में 3 बजे उठकर, बिना स्नान करे, श्रीगुरुजी के चरणों में बैठकर श्रीगुरुदेव को नाम सुनाते रहो तो गुरुदेव जी की नख–ज्योति आपके अज्ञान अन्धकार को पी जावेगी। दिव्य दृष्टि उपलब्ध हो जावेगी–

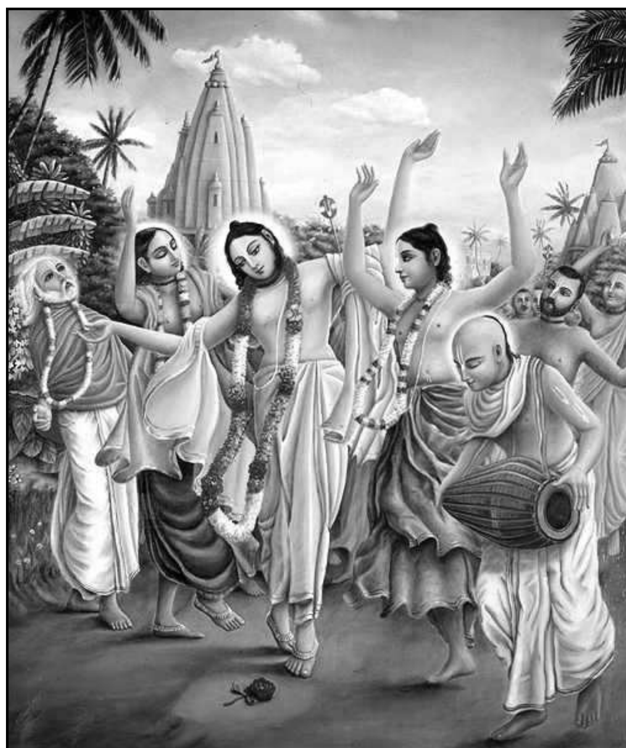
श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहिं बिमल बिलोचन हियके।
मिटहिं दोष–दुःख भव–रजनी के।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

बीच–बीच में ऐसे बोलते रहोः–

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहिमाम्

श्रीमन् महाप्रभु की प्रतिज्ञा

जिस धन को प्राप्त करना ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं इस संसार में सभी को प्रदान करूँगा और इस अवतार में उस (प्रेम) धन को वितरण करने में पात्र–अपात्र का भी विचार नहीं करूँगा। मैं यह भी देखूंगा कि कलि किस प्रकार जीवों का सर्वनाश करता है ? मैं अपने नवद्वीप धाम को प्रकाशित करूँगा और उसी धाम में ही कलि के विषमय दाँतों को तोड़ूँगा तथा कीर्तन करके जीवों को आत्मसात् करूँगा। जितनी दूर तक मेरे नामों का कीर्तन होगा, उतनी दूर तक कलियुग का भी दमन होगा अर्थात् कलियुग उन–उन स्थानों से दूर भागेगा।



तोमार अनन्त नाम, तवानन्त गुणग्राम,
तव रूप सुखेर सागर।
अनंत तोमार लीला, कृपा करि प्रकाशिला
ताई आस्वादये ए पामर।।

हे गौरहरि ! आपके अनंत नाम हैं। आपके गुण भी अनंत हैं और आपका रूप तो सुखों का सागर है। यही नहीं, आपकी लीलाएं भी अनंत हैं। आप मुझ पर कृपा करें। आप अपने चरणों में मुझे स्थान दें तभी मेरे जैसा पामर जीव आपकी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

तुमि कृष्ण स्वयं प्रभो, जीव-उद्धारिते विभो,
नवद्वीप-धामे ते अवतार।
कृपा करि रांगा पाय, राख मोरे गौरराय
तबे चित्त प्रफुल्ल आमार।।

हे प्रभो ! आप तो स्वयं विभु अर्थात् सर्वव्यापक श्रीकृष्ण ही हो एवं जीवों का उद्धार करने के लिये आपने नवद्वीप धाम में अवतार लिया है। हे गौरचन्द्र ! आप अपने इन लालिमा युक्त दिव्य चरणों में कृपा करके मुझे स्थान दीजिये, तभी तो मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 2



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

30.03.2009
चंडीगढ़

परमाराध्यतम, भक्तप्रवर-शिरोमणि तथा शिक्षा-गुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण-युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति-स्तर प्रेमसहित उत्तरोत्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक लाख नाम करने का महा-महात्म्य

आज श्री श्रीराधामाधव जी से प्रार्थना की कि यदि आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दे देवें तो आपकी मुझ पर बड़ी कृपा होगी। मैंने पूछा कि हे मेरे बाप (श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का भगवान से शिशु/पिता का संबंध है। जैसे एक शिशु अपने पिता को बुलाता है उसी प्रकार वे भगवान को बाप कह कर पुकारते हैं) अमुक भक्तों का अगला जन्म कहाँ होगा ?

श्रीभगवान् ने कहा- ''इन भक्तों का जन्म गोलोक में नहीं होगा क्योंकि वह मेरा लोक है। इन भक्तों का अगला जन्म वैकुण्ठ में होगा जहाँ वे एक कल्प तक आनंद भोग कर फिर मृत्युलोक में आयेंगे। अनंतकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में किसी भी ठौर (जगह) मृत्युलोक में उनका आविर्भाव होगा। मेरे प्यारे किसी भी भक्त के यहाँ उनका जन्म होगा।''

मैंने फिर पूछा- ''जिनका नित्यप्रति एक लाख हरिनाम पूरा नहीं होता, उनकी गति क्या होगी ? क्या वे भी वैकुण्ठ जायेंगे ?''

श्री भगवान् ने कहा- ''जो नित्यप्रति एक लाख हरिनाम नहीं करते। उनका जन्म वैकुण्ठ में न होकर सीधा मृत्युलोक में होगा। भले ही उनका जन्म मेरे प्यारे किसी भक्त के घर होगा परन्तु उनको कई कल्पों तक वैकुण्ठादि की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि

उनको मृत्युलोक में ऐसा कलियुग उपलब्ध नहीं होगा जिसमें थोड़े ही समय में भगवद् कृपा प्राप्त हो जाती है। सत्य, त्रेता तथा द्वापर आदि युगों में बहुत समय के बाद मेरी कृपा की प्राप्ति होती है परन्तु यदि कोई एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करता है (मुझे पूरे दिन में एक लाख बार याद करता है) तो मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। एक लाख नाम मुझे आकर्षित कर लेता है।''

''फिर आपका गोलोकधाम उनको कब मिल सकेगा ?'' मैंने पूछा! श्रीभगवान् बोले–''ऐसा भक्त जब संबंध ज्ञान में ओत–प्रोत होगा तब जिस प्रकार की रसानुभूति में उसका मन रंगेगा, उसी रस के मेरे गोलोक में वह आर्विभूत हो सकेगा। मुझे प्राप्त करने का सबसे सरल व सुगम काल केवलमात्र कलियुग ही है जिसके लिए देवता भी तरसते हैं। आप मेरे नाम का विस्तृत रूप से प्रचार करो। ऐसा करने से तुम्हें अमृतमय आनन्द की प्राप्ति होती रहेगी। आप सबको एक लाख हरिनाम करने को बोलो क्योंकि इस कलिकाल में एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। इसी से **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** होगी। एक लाख से कम करने वाला वैकुण्ठलोक से वंचित रह जाएगा। आप सभी को एक लाख हरिनाम करने को बोलो। जिसे भी कहोगे वह करेगा या नहीं करेगा, इसकी चिन्ता न करो। उसकी चिन्ता मुझे है। कई बार भक्त के प्रति अपराध होने से एक लाख हरिनाम नित्य करने का नियम छूट सकता है। नामापराधी की गारंटी मैं नहीं लेता। उसका जन्म कहीं भी हो सकता है। यहाँ तक कि यदि कोई मेरे भक्त के प्रति कोई जघन्य अपराध करता है तो रौरव नाम के नरक में जाना पड़ता है। इसलिये नामापराध से बचकर एक लाख हरिनाम करने के लिये सबको सतर्क करना तुम्हारा कर्तव्य है। इसलिये इस कलियुग में जीवों के उद्धार के लिये ही तुम्हें भेजा है। तुम्हारे तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति उनका मन बदल देगी और इस भवबंधन से उनकी आसक्ति हटा कर, मेरी भक्ति की ओर मोड़ देगी। इसलिये सबको एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करने को बोलो।''

श्रीभगवान् की इस आकाशवाणी को जो कोई भी झूठा या काल्पनिक समझेगा, वह दुःख सागर में गोते खाता रहेगा। अतः अपने मन को काबू में करके इस अमृतमयी वाणी का अवलोकन करें।

प्रार्थी : एक अविज्ञात पथिक

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

बहु जन्म कृष्ण भजि' प्रेम नाहि हय।।
अपराध-पुञ्ज ता'र आछये निश्चय।।

यदि बहुत जन्मों तक श्रीकृष्ण का भजन करने पर भी प्रेम नहीं होता है, तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यक्ति ने अनेकों अपराध किये हैं।

अपराध शून्य हय लय कृष्ण नाम।।
तबे जीव कृष्णप्रेम लभे अविराम।।

यदि जीव अपराध शून्य होकर कृष्णनाम लेता है, तभी वह बिना किसी बाधा के कृष्णप्रेम प्राप्त करता है।

श्रीनवद्वीप धाम माहात्म्य (1.45-46)

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
06.02.2009
एकादशी

श्रीयुत प्रेमास्पद, भक्त–प्रवर तथा शिक्षा–गुरुदेव, भक्तिसर्वस्व निष्किंचन, महाराज जी के चरण–युगल में नराधम, अधमाधम दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमपूर्वक भजन–स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक लाख हरिनाम जप करने का अकथनीय महत्व

शास्त्रीय दृष्टि से मृत्युलोक का क्षेत्रफल भू र्भुवः स्वः तक फैला हुआ है। इसमें अनगिनत मानव जातियाँ अपना कर्मभोग भोगने हेतु जन्म लेती हैं। इनमें बहुत सी भौतिकवादी हैं और बहुत सी आध्यात्मिकवादी हैं, जो दुःखों के घर रूपी अपने मायामय जीवन को काट रही हैं। इनमें से बहुत तो ऐसी हैं जो ईश्वर का अस्तित्व न मानती हैं और न ही जानती हैं। इनमें से भी अधिकतर भूतों एवं देवताओं की आस्था में फंसी पड़ी हैं। देवता तो स्वयं ही भगवान् के पराधीन हैं। इनमें अपनी कोई शक्ति नहीं कि किसी को कुछ दे सकें। ये उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा से मांग कर आस्तिकों की मांग पूरी करते रहते हैं।

ब्रह्मा तक के सभी लोक मायामय हैं, महाप्रलय में समाप्त हो जाते हैं। महाप्रलय में कोई नहीं बचता केवल भगवत् धाम, वैकुण्ठ धाम एवं गोलोक धाम ही बचते हैं। भगवत् भक्त, क्योंकि वे भगवत्–आश्रित रहते हैं, इसलिए उनका बाल भी बांका नहीं होता। अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में कुछ नहीं बचता। भगवान् की रची हुई मायाशक्ति का यही तो खेल–तमाशा है।

इन अखिलकोटि ब्रह्मांडों में कितने हैं जो भगवान् को चाहते

हैं ? इनकी संख्या नगण्य हैं। इस बात को यूं समझना पड़ेगा कि जैसे इस पृथ्वी पर अनगिनत मिट्टी के कण हैं, उसी प्रकार अनगिनत जीवों में से करोड़ों जीवों में कोई एक ही भगवत् की ओर मुड़ पाता है। भगवान् की तरफ मुड़े हुए ऐसे करोड़ों अनगिनत जीवों में कोई एक ही अन्तःकरण से भगवान् को चाहता है। भगवान् को चाहने वाले ऐसे अनेकों जीवों में से कोई एक भगवान् के लिये तड़पता है। भगवान् के लिये तड़पने वालों में से कोई–एक सन्त की शरण लेता है। सन्त की शरण लेने वालों में से कोई विरला भगवत्–नाम की ओर मुड़ पाता है। भगवत् नाम की ओर मुड़ने वालों में कोई–कोई ही अन्तःकरण से नाम में मन को स्थिर कर पाता है। जिसने भी मन को स्थिर करके नाम को अपनाया है, वही अनंतकोटि युगों के दुःखों का अन्त कर पाया है। वही अमर होकर भगवत्–धाम में भगवत्–सेवा उपलब्ध कर पाया है।

ऊपर जितनी भी बातें लिखी गई हैं, उन सभी परेशानियों को भगवान् श्रीगौरहरि के एक आदेश ने समाप्त कर दिया। भगवान् श्रीगौरहरि बोलते हैं कि जो भी साधक नित्य एक लाख हरिनाम कान से सुन–सुन कर उच्चारणपूर्वक करेगा, वह मेरे अमरलोक, गोलोकधाम में सदा के लिये पदार्पण कर पायेगा क्योंकि मेरा नाम और मैं एक ही हैं। नाम लेना अर्थात् मेरे को लेना, एक ही बात है। जब नाम और नामी एक हो जायेंगे तो ध्रुवपद, तुरीयपद, परमहंस–स्थिति स्वयं उपलब्ध कर पायेंगे।

पर यह स्थिति एक लाख से कम हरिनाम करने वालों को प्राप्त नहीं होगी। एक लाख हरिनाम करने में कोई रियायत (छूट) नहीं है। नामाभास ही साधक को गोलोक धाम ले जायेगा। यदि साधक का शुद्ध हरिनाम होता है तो सात्विक अष्टविकार से मेरे में (भगवान् में) पारलौकिक प्रेम की बाढ़ कर देगा। मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी–मेरे नाम को मन से जपने की। अन्य सभी सेवाएं इसमें ही समाई रहती हैं। दुर्गुणों के नाश एवं सद्गुणों की बाढ़ आने से दसों दिशाओं की सेवा बन गई। सबके हित में सब ही सेवा

मौजूद है। अन्ततः निष्कर्ष यह निकला कि केवल हरिनाम से ही अखिललोक ब्रह्मांडों की सारी सम्पति बड़ी सरलता से हाथ लग जाती है, उपलब्ध कर ली जाती है।

अब ज़रा विचार कीजिए कि इन ब्रह्मांडों में एक लाख हरिनाम करने वाले कितने होंगे ? कितने हैं जो हर रोज तीन लाख हरिनाम कर रहे हैं ? अकथनीय है। यदि तीन लाख हरिनाम करने वाले अधिक होंगे तो एक लाख हरिनाम करने वाले भी अधिक ही होंगे। जो स्वयं तीन लाख हरिनाम करता है वही दूसरों को एक लाख हरिनाम करने को कह सकता है। श्री गौरहरि का कहना है कि पहले स्वयं हरिनाम जपने का आचरण करें, फिर दूसरों को नाम जपने के लिये उत्साहित करें। जो स्वयं नाम जपने का आचरण नहीं करता वह दूसरों से भी हरिनाम नहीं करा सकता।

आजकल कितने ही अपधर्म–ध्वजी मानवता को गर्त में ले जा रहे हैं। भोले–भाले लाखों लोगों को प्रवचन कर शिष्य बनाकर पैसा लूट रहे हैं। पैसे के पीछे नरसंहार किये जा रहे हैं। बुरे से बुरे कर्म छुप–छुप कर हो रहे हैं। ऐसे लोग स्वयं तो नरकगामी होंगे ही, भोले–भाले शिष्यों को भी नरकभोग करा रहे हैं। ऐसे लोगों से बचकर रहना चाहिये। यह कलियुग का ज़माना है। सच्चाई कहाँ है ? यहाँ Quantity (संख्या) खूब मिल जायेगी पर Quality (गुणवत्ता) नहीं मिलेगी। धर्म के नाम पर लोग व्यापार कर रहे हैं। साधु के भेष में क्या–क्या बुरा नहीं हो रहा है ? यह कलियुग का तमाशा है। जैसा गुरु, वैसा चेला। अतः बहुत देखभाल कर, गुरु बनाना चाहिए। आजकल तो गुरु कहता है कि मैं ही भगवान् हूँ। दूसरा कोई भगवान् नहीं है। मुझे ही भगवान् मानो। तुम्हें सभी ऋद्धि–सिद्धि मिल जायेगी, मालामाल हो जाओगे। बस ! हर महीने कुछ–कुछ भेंट गुरु जी को चढ़ाते रहो। भेंट से स्वतः (अपने आप) तुम्हें सब कुछ मिलता रहेगा। ऐसे लोग साधु भेष में साक्षात् राक्षस हैं। भक्ति की सच्चाई कहीं दिखाई नहीं देती। ऐसे दुष्टों से वही बच पाएगा जो हरिनाम की शरण में रहेगा। जो भी एक लाख हरिनाम

नित्य जपता है, उसकी रक्षा भगवान् (हरिनाम) स्वयं करते हैं। इतना ही नहीं, टी. वी. ने सभी धर्म मर्यादायें मूल सहित नष्ट कर दी हैं। बच्चों में बुरे संस्कार जमा हो रहे हैं। बड़े होकर वे लड़ाई–झगड़े, लूटपाट करते हैं व अराजकता फैलाते हैं। अतः बच्चों को टी. वी. से दूर रखना ही गृहस्थी के लिये बहुत बड़ा धर्म है।

धर्मशास्त्रों के अनुसार कलियुग का प्रमुख धर्म है–भगवत् प्राप्ति–केवल हरिनाम जपना–जो लोप होता जा रहा है। ऐसी शिक्षा कहीं भी उपलब्ध नहीं हो रही है। पैसा कैसे कमाया जाये ? ऐसी शिक्षा का विस्तार होता जा रहा है इन्द्रियतर्पण ही इस युग का प्रमुख धर्म–कर्म रह गया है। इसलिये रोगों की भरमार, कमजोरी, दयाहीनता, लूटपाट, चोरी–डकैती का विस्तार दसों दिशाओं में देखने व सुनने को मिल रहा है। इनसे रक्षा चाहते हो तो हरिनाम की 64 माला (एक लाख हरिनाम) नित्य जपा करो ताकि शरणागति हो जाये और भगवान् शरणागत की रक्षा व पालन करें। अभ्यास करते–करते तीन घंटे में 64 माला (एक लाख हरिनाम) हो जाती हैं। दिन–रात के 24 घंटों में से कोई भी गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी या संन्यासी बड़ी आसानी से तीन घंटे का समय दे सकता है। इतनी बड़ी महान उपलब्धि के लिये, तीन घंटे का समय दे सकता है अन्यथा तो कलिकाल महाराज की चक्की में पिसाई हो जायेगी। कलिकाल से बचने का एक अमोघ हथियार आपके पास है। कोई भी आपका बाल बांका नहीं कर सकेगा। आनंद से जीवनयापन होता रहेगा।

सारांश यह है कि जिस साधक ने मन को जीत लिया उसने भगवान् को पा लिया। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीगीता जी में अर्जुन को बोलते हैं कि इन इन्द्रियों में मन मुझे ही जान। मन को जीतने वाला तो अखिललोक ब्रह्मांडों का मालिक बन गया। सर्वशक्तिशाली हो गया। उसके लिये फिर कुछ जीतना बाकी नहीं रहा। आपको मन जीतने का तरीका बता दिया है। इसे अपनाओ और परम आनंद की प्राप्ति करो।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
02.12.2009

भगवान् को प्राप्त करना सहज है

श्रीगुरुदेव जी सभी भक्तों को आश्वासन दे रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं। सतयुग में हजारों वर्ष तपस्या करने पर भगवान् दर्शन देते थे। त्रेता में कई प्रकार के यज्ञ करने पर भगवान् यज्ञाग्नि में प्रकट हो जाते थे। द्वापर युग में स्वच्छ-हृदय से भगवान् के विग्रह की अर्चना-पूजन करने पर भगवान् श्री विग्रह से प्रकट हो जाते थे पर कलियुग में तो भगवान् अपने नाम से ही प्रकट हैं। केवल 64 माला प्रतिदिन कान द्वारा सुनकर जिह्वा से उच्चारण कर लें। कहीं पर जाने की आवश्यकता नहीं है। घर के ही किसी कोने में बैठकर भगवत् नाम को कान द्वारा सुन-सुनकर भगवान् का छद्म दर्शन किया जा सकता है। इसमें कोई पैसा नहीं लगता। सर्दी हो तो कंबल ओढ़ सकते हो, गर्मी हो तो पंखा चला सकते हो।

चंडीगढ़ के श्री दुग्गल जी के गुरुदेव रेल को चलाने में गार्ड पोस्ट पर नियुक्त थे। भगवान् का हरिनाम करते-करते उन्हें समय का कुछ भी ध्यान ही नहीं रहा और वे परम-आनंद में डूब गये थे। भगवान् ने स्वयं गाड़ी में उनकी ड्यूटी दी। यह बात लगभग 50 वर्ष पहले की है। इसी प्रकार आज से लगभग 500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग, श्रीरूप-सनातन, श्रीमाधवेन्द्रपुरी, मीरा, नरसीमेहता, कबीर, हरिदास जी आदि ने हरिनाम जपकर ही भगवान् का दर्शन किया है। त्रेतायुग में महाराज खटवांग् ने दो घड़ी में भगवान् का दर्शन किया था।

पर यह भगवत्–दर्शन होगा कैसे ? श्रीकृष्ण अर्जुन को बोल रहे हैं–

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।

(श्रीमद्‌भगवद् गीता 3.37)

''रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही बाद में क्रोध का रूप धारण करता है। यह कभी भी भोगों से न अघाने वाला और बड़ा पापी है। इसको ही तू इस विषय में वैरी (शत्रु) जान।''

इस काम वैरी को मार। इसका अर्थ है–इच्छाओं का दमन। संसार की आसक्ति का न होना। जब संसार की आसक्ति ही मन में नहीं रहेगी तो भगवान् को उपलब्ध करना बहुत सुगम हो जायेगा। ये फंसावट (आसक्ति) ही भगवान् और जीव के बीच में दीवार का काम कर रही है। जब इन इच्छाओं से हृदय रूपी मंदिर खाली हो जायेगा तो भगवान् बड़ी शीघ्र आकर हृदय के सिंहासन पर विराजमान हो जायेंगे।

संसार की यह चल और अचल आसक्ति ही माया की सशक्त बेड़ी है, जो जीव के पैरों में बंधी पड़ी है। इस बेड़ी को खोलने में कोई भी सक्षम नहीं है। माया की इस सशक्त बेड़ी को खोलने में श्रीनृसिंह भगवान् ही सक्षम हैं क्योंकि उनका अवतार भक्तों की हर प्रकार से रक्षा करने हेतु हुआ है। माया इनकी दासी है और इस दासी को दूर करना उनके लिये बहुत आसान है।

हर साधक को चाहिये कि वह भगवान् श्रीनृसिंह के चरणों में बैठकर हरिनाम की कुछ मालाएं उच्चारणपूर्वक, कान से सुनकर करे। यह परमावश्यक है। श्रीनृसिंह भगवान् न केवल हमारे विघ्नों का विनाश करते हैं बल्कि भक्ति मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करके शुद्ध–भक्ति भी प्रदान करते हैं। उनका आविर्भाव ही भक्तों की रक्षा के लिये हुआ है। रात को सोते समय, प्रातः काल उठते ही तथा दिन में दो बार (अपनी सुविधानुसार) श्रीनृसिंहदेव जी की स्तुति अवश्य करें। इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा।

श्रीनृसिंह देव जी की स्तुति

इतो नृसिंहः! परतो नृसिंहो! यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो! हृदये नृसिंहो! नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।।1।।
नमस्ते नृसिंहाय प्रह्लादाह्लाददायिने।
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटंकनखालये।।2।।
वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे।।3।।
श्रीनृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह।
प्रह्लाद्देश! जय पद्मा मुखपद्यम् भृंग।।4।।

इसी प्रकार से श्रीहरिदास जी, श्रीगणेश जी, श्रीमहादेव जी तथा श्रील गुरुदेव के चरणों में बैठकर कुछ मालाएं करना परमावश्यक है। ये सभी नामनिष्ठ हैं। श्रीहनुमानजी भी नामप्रेमी हैं। इनके चरणों में बैठकर श्रीहरिनाम करो। हरिनाम को कान से सुनने से स्वतः ही भगवत्–रूप हृदय में प्रकट हो जायेगा। शास्त्र का उदाहरण है–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।

किसी भी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर, हरिनाम करते हुये यही मूक प्रार्थना करनी चाहिये कि मेरा मन संपूर्ण रूप से हरिनाम में लग जावे। श्रीहनुमान जी सभी संसारिक संकट हरने वाले हैं और हरिनाम करने में जो संकट आते हैं, विघ्न आते हैं, उन्हें श्रीनृसिंहदेव ही हटा सकते हैं क्योंकि माया इनके चरणों की दासी है।

कलियुग में इस धरातल पर भगवान् नाम रूप में पधारे हैं। जो साधक कान से सुनकर नाम बोलता है, वह इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष और पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्ण–प्रेम प्राप्त कर लेता है। नाम–भगवान् से साधक जो कुछ भी मांगता है, नाम–भगवान् उसे वही पदार्थ देते हैं क्योंकि भगवान् का नाम वांछाकल्पतरु है। चारु चिंतामणि है लेकिन नाम, निरंतर हो तथा भक्त–अपराध न हो।

सभी ग्यारह इन्द्रियों को भगवान की सेवा में लगाने से इसी जन्म में भगवान् दर्शन दे देते हैं। प्रश्न उठ सकता है कि इन ग्यारह इन्द्रियों में उपस्थ इन्द्री भी आती है। यह इन्द्री भगवान् की सेवा में कैसे लग सकती है। इसका उत्तर है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से तथा कीर्तन में नृत्य करने से उपस्थ इन्द्री भी भगवान् की सेवा में लग जाती है।

इसकी सेवा तो अन्य दसों इन्द्रियों की सेवा से अधिक हो जाती है। जिह्वा द्वारा पेट को रूखा–सूखा आहार, कम मात्रा में देने से यह इन्द्री भी सेवा में लग जाती है। कम आहार खाने से मन की चंचलता कम हो जाती है तथा शरीर भी स्वस्थ रहता है। यह शरीर मोक्ष का द्वार है। शरीर बिगड़ जाने से साधक मन लगा कर भक्ति–पथ पर नहीं चल सकता। पेट से रसेन्द्रिय का सीधा संपर्क रहता है इसलिये हमारे पूर्व गुरुवर्ग रात में भोजन नहीं करते थे तथा 2–3 बजे रात में जगकर हरिनाम स्मरण किया करते थे। प्रातःकाल 7–8 बजे स्नान करने के बाद ही संध्या–वंदन किया करते थे। साधक को उनके अनुगत में ही अपना जीवन बिताना चाहिये।

जब उपरोक्त प्रकार से भजन–साधन होता है तो शर्तिया अष्ट–विकार होना शुरू हो जाता है। जब अष्ट–विकार होने लग जाता है तो साधक बिलख–बिलख कर रोने लग जाता है तब गुरुदेव तथा भगवान् उसे अपना संबंध ज्ञान करा देते हैं। संबंध ज्ञान दास का, दोस्त (सखा) का, भाई का, माँ–बाप का, शिष्य मंजरी का, आदि–आदि का उस साधक के हृदय में बिठा दिया करते हैं। कोई भी साधक उक्त प्रकार से साधन करके देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती।

अब ध्यान देकर सुनिये। जब आप भगवान् का दर्शन करने के लिये मंदिर जाते हो तो इन चर्म नेत्रों से दर्शन नहीं हुआ करते। इनसे तो जड़ दर्शन ही होते हैं। असली दिव्य दर्शन तो हृदय के भाव–नेत्रों से होते हैं। मूक प्रार्थना ही दिव्य होती है जिससे भगवान्

के नैन चलते हुये तथा मूक प्रार्थना का जवाब देते हुये भक्त को महसूस होता है। जब ठाकुर जी के सामने सभी का नृत्य होता है, वह नृत्य हृदय से नहीं होता, वह शरीर से होता है। अतः किसी को भी पुलक व अश्रुपात नहीं होता। ठाकुर जी की जो सेवा मन से नहीं होती, वह सेवा भी बनावटी होती है। सेवा प्रेम सहित हो तो पल–पल में पुलक होने लगे।

जब किसी साधक की नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला होने लग जाती है तो उसकी सेवा भी रसमयी होती जाती है। साधक को छुप–छुपकर रोने, पुलक का भाव प्रकट होने लग जाता है। जब अधिक भाव से हरिनाम में मन रमने लग जाता है तो हृदय से रोने का विस्फोट हो जाता है। फिर उसे रोका नहीं जा सकता। साधक भाव में तल्लीन हो जाता है। फिर उसे कोई भक्त कहे या अभक्त, उसके बस की बात नहीं रहती क्योंकि उसके मन का तार ठाकुर जी के तार से जुड़ जाता है। फिर तो रोने का तांता लग जाता है। फिर उसे यह संसार सूना–सूना दिखाई देने लग जाता है या संसार में खुशियाँ ही खुशियाँ नज़र आने लगती हैं। वह ऐसी मस्ती में घूमता है जैसे कोई मादक रस पीकर अलमस्त हो जाता है। यह मस्ती अलौकिक हुआ करती है जिसे कोई बता नहीं सकता, अकथनीय है।

जब भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। भक्त भगवान् से पूछता है कि आप क्यों रोते हो? भगवान् जवाब देते हैं कि मैं इसलिये रोता हूँ कि तू मुझे रुलाता रहता है। तेरा मेरा (Connection) संबंध जुड़ा हुआ है। तू नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ। तू मौन धारण करता है तो मैं भी मौन धारण कर लेता हूँ। तू मुझे जो भी आदेश करता है मुझे उस आदेश का पालन करना पड़ जाता है क्योंकि मैं मजबूर हूँ।

मेरे गुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं कि यदि साधक–भक्त 10 दिन उक्त प्रकार से ठाकुर जी का दर्शन लाभ करता है तो वह रोये बिना नहीं रह सकेगा। शर्त यह है कि उससे भक्त अपराध न हुआ हो। भक्त–साधक भगवान् से कहता है कि मेरे प्राणनाथ! मेरी

अहंकार, घमंड, गर्व से रक्षा करना वरना मैं आपके चरणों से दूर हो जाऊँगा। मेरी प्रतिष्ठा होगी तो मेरा पतन हो जायेगा। भगवान् भक्त–साधक को इसका भी जवाब देते हैं।

भगवत्–कृपा से जिसको प्रतिष्ठा ज़हर लगेगी तो वह सबके सामने खुलकर रोवेगा जैसे श्रीगौरहरि सबके सामने ज़ोर–ज़ोर से बिलख–बिलख कर रोते थे। उनके रोने से पशु, पक्षी तथा हिंसक जानवर तक बेहाल हो जाते थे। रोना एक छूत का रोग है। पास वाले को भी लगकर रुला देता है। जो भक्त के रोने को झूठा या बनावटी समझने लगे वह ठाकुर जी का घोर वैरी हो जाता है। उसका लक्षण सबके सामने आ जाता है। उसे कोई बीमारी पकड़ लेती है, हरिनाम में अरुचि हो जाती है। ज्ञानमार्ग या कर्ममार्ग में चला जाता है। घर कलह का स्थान बन जाता है। माँ–बाप, भाई–बहन तथा सगे–संबंधी भी शत्रुता करने लग जाते हैं। इस प्रकार वह सारा जीवन तड़पने में ही व्यतीत करता है। उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती जैसा कि प्रत्यक्ष में हो भी रहा है।

इन्द्र कुलिश मम सूल बिसाला।
कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहिं मरहिं।
साधु द्रोह पावक सो जरहिं।।
जो अपराध भक्त कर करहिं।
राम रोस पावक सों जरहिं।।

यह भगवान् शिव का वचन है। पावक ऐसी आग है जो लोहे को भी पिघलाकर पानी बना देती है। ऐसा अपराधी उसी समय नहीं मरता। जिन्दगी भर अशांति में रहता है। इसलिये कहा गया है कि करोड़ों में से कोई विरला ही भगवान् को प्राप्त करता है। इस मार्ग में कांटे ही कांटे हैं। इनसे पार होना बड़ा मुश्किल है। अतः भक्त–अपराध से बचकर रहना चाहिये। इससे बड़ा कोई अपराध नहीं है। भक्त का थोड़ा सा अपराध भी भगवान् को सहन नहीं होता। भक्त चाहे कितना ही बड़ा हो अपराध होने पर वह भी नहीं

बचेगा। दुर्वासाजी भगवान् शंकर के परम् भक्त थे। वे कोई छोटे–मोटे ऋषि नहीं थे फिर भी अम्बरीष महाराज के प्रति अपराध करने पर उन्हें कितना दुःख उठाना पड़ा। अपनी रक्षा के लिये भगवान् के पास गये तो भगवान् ने यह कह दिया कि मेरा हृदय तो अम्बरीष ने ले रखा है। मेरे पास नहीं है। क्षमा तो हृदय से होती है। अतः तुम अम्बरीष के पास, उसके चरणों में पड़कर क्षमा मांगो तब ही मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारा पीछा छोड़ेगा। इसके बिना तुम्हारे बचाव का और कोई उपाय नहीं है। यह उपाय भी मैंने बेमन से बता दिया है। मैं बताना तो नहीं चाहता था क्योंकि तुम शिवजी के भाई हो, इसलिये बता दिया। जब दुर्वासाजी ने अम्बरीष जी से क्षमा मांगी तब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासाजी का पीछा छोड़ा। इसलिये भक्त–अपराध ा से हमेशा बचो। श्रीभगवान् स्वयं बोल रहे हैं कि यदि मेरा हाथ भी भक्त अपराध कर देवे तो मैं इस हाथ को भी काट दूँगा। इससे ज्यादा कौन क्या कह सकता है ?

मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को चेता (सावधान कर) रहे हैं कि जो शुभ अवसर आपको मिला है, वह फिर भविष्य में नहीं मिलेगा। एक तो कलियुग में जन्म दिया जिसमें भगवत्–प्राप्ति बहुत सरल एवं सुगम है। दूसरा, भारतवर्ष में जन्म दिया जहाँ भगवान् अवतार लेते हैं, जहाँ गंगा, यमुना, राधाकुण्ड व श्यामकुण्ड आदि में स्नान करने से पापों से निवृत्ति होती है। तीसरा, भक्त के घर में जन्म हुआ चौथा श्रीसद्गुरु की प्राप्ति और श्रीगौरहरि की गुरु–परम्परा से जुड़ना और पांचवा शुद्ध–सत्संग का उपलब्ध होना। यह कोई कम शुभ–उपलब्धि नहीं है फिर भी समय को बर्बाद करके, दिल दहला देने वाले नरकों की यातनाओं की ओर जाना। कितने दुर्भाग्य की बात है!

बहुत सारे भक्त पूछा करते हैं कि हमें तो श्रीगुरुदेव जी ने एक लाख (64 माला) हरिनाम करने को नहीं बोला है। इस बात का उत्तर यह है कि श्रीसद्गुरु जानते हैं कि मेरा शिष्य एक लाख (64 माला) नहीं कर सकेगा और मेरे आदेश का पालन न होने से उसे

गुरु की अवज्ञा का अपराध लगेगा और वह घोर अपराधी बन जायेगा। इसलिये सोलह (16) माला जपने के लिये कहा करते हैं और शुरु-शुरु में सोलह (16) माला जपने के लिये ही आदेश दिया करते हैं।

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु, जो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, आज से लगभग 528 वर्ष पहले जब वे इस धरातल पर अवतरित हुये तो उन्होंने सबसे बड़ा आदेश यही दिया कि सभी साधकों को हर रोज़ एक लाख (64 माला) हरिनाम अवश्य करना है। उन्होंने 63 माला जपने की भी इज़ाज़त नहीं दी। 64 माला (एक लाख) हरिनाम नित्य करने से नौवां (9 वां) अपराध नहीं लगेगा जो अनमने मन से जाप होता है और मन कहीं पर जाता रहता है।

श्रवण का अर्थ–कान से सुनना, जिस दिन 64 माला न हो सके तो अगले 5–7 दिन में इस संख्या को पूरा किया जा सकता है परन्तु संख्या में कमी नहीं होनी चाहिये। सभी गुरुवर्ग ने केवलमात्र हरिनाम का ही सहारा लिया और वर्तमान में भी जो मौजूद हैं, वे भी केवल मात्र हरिनाम पर ही निर्भर रहते हैं। मेरे श्रील गुरुदेव, परमाराध्यतम् श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज, इस्कान के संस्थापकाचार्य श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी महाराज, श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी, श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज तथा नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी–सभी ने श्रीहरिनाम का ही सहारा लिया। सिक्खों के सभी गुरुओं ने भी नाम का सहारा लिया। मुसलमान भी अल्लाह के नाम की माला जपते रहते हैं। भगवान् के नाम के बिना तो धर्म का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से श्रील सच्चिदानंद भक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित जो 'श्री हरिनाम चिंतामणि' ग्रंथ प्रकाशित हुआ है, उसके पृष्ठ संख्या 176 पर अंकित है कि साधक को चाहिये कि वह संख्या को बढ़ाने के चक्कर में न पड़े और दिव्य अक्षरों का

स्पष्ट रूप से उच्चारण करता रहे। यह बात बिल्कुल ठीक है परन्तु यह आदेश किसके लिये है ? जो अभी–अभी इस परंपरा से जुड़े हैं या अभी नए शिष्य बने हैं वे नाम को बोझ समझ/भार समझ कर न करें इसलिए उन्हें शुरु–शुरु में नित्य 16 माला जपने का आदेश दिया जाता है। धीरे–धीरे अभ्यास बनने पर स्वतः ही शुद्ध नाम होने लगेगा और समय भी कम लगेगा।

क्योंकि मैं पिछले लगभग 59 वर्ष (सन् 1952) से हरिनाम कर रहा हूँ, इसलिये मेरा स्वयं का अनुभव है। अब मेरा एक लाख नाम (64 माला) केवल तीन घंटे में पूरा हो जाता है और वह भी शुद्धतापूर्वक। श्री जौहर जी, मथुरा के श्री रमेश जी, श्री सपरा जी तथा हरिहरदास जी को सामने बिठाकर मैंने एक लाख (64 माला) हरिनाम तीन घंटे में पूरा किया है। किसी–किसी को तीन या चार घंटे भी लग सकते हैं। चौबीस घंटों में तीन घंटे जाप के लिये कोई भी दे सकता है।

जब अभ्यास हो जायेगा तो इसमें शुद्धनाम भी उच्चारण होगा। धर्म ग्रंथों में लिखा है कि हरिनाम कैसे भी किया जाये। शुद्ध हो या अशुद्ध या खंडित हो या अधूरा हो इसमें कोई नुकसान नहीं होगा। भगवान् तो साधक का भाव देखते हैं। श्रीमद्भागवत् (6–2–14) में वर्णन है।

साकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनाम ग्रहणम शेषाघ हरं विदुः।।

''संकेत, परिहास, स्तोभ या अनादरपूर्वक भी किया हुआ भगवान् विष्णु के नामों का कीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश कर देता है। जैसे अग्नि लकड़ी को जला देती है, उसी प्रकार जाने–अनजाने में भी लिया गया भगवान् पुण्यश्लोक का नाम पुरुष की पापराशि को भस्म कर देता है। अग्नि पुराण में लिखा है कि जो लोग 'हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

का अवहेलनापूर्वक भी उच्चारण करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। इसमें संदेह की कोई गुंजाईश नहीं है।

शुरु-शुरु में साधकों को 64 माला (एक लाख हरिनाम) करने में 8-10 घंटे लग जाते हैं इसलिये साधक कुछ दिन में परेशान हो जाता है और हरिनाम करना छोड़ देता है परन्तु इसमें भ्रमित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् शिव का वचन है–

भाव कुभाव अनख आलसहुं।
नाम जपत मंगल दिशि दसहुं।।

श्रीहरिनाम चिंतामणि में नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी नाम अपराधों को त्यागने का उपाय बता रहे हैं–

अविश्रान्त नामे नाम–अपराध याय।
ताहे अपराध कभु स्थान नाहिं पाय।।

'' नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहने से सारे अपराध चले जाते हैं और निरंतर हरिनाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं रहता।''

जब भक्त–साधक हरिनाम स्मरण कम करेगा तो वह आगे सात्विक अष्ट विकारों की उपलब्धि नहीं कर सकेगा और जब तक उसका अश्रु पुलक नहीं होगा तब तक वह भगवान् से संबंध–ज्ञान उपलब्ध कर ही नहीं सकता। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि राम या कृष्ण का पूरा उच्चारण न भी हो तो केवल 'रा' या 'कृ' बोलने से ही उसका जाप पूरा माना जायेगा। नाम भगवान् केवल भाव देखते हैं, शुद्धि–अशुद्धि नहीं देखते। शिवजी कह रहे हैं–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।

नाम जपते–जपते स्वतः ही युगल जोड़ी भगवान् प्रकट हो जायेंगे। लेकिन याद रखो–नाम को कान से सुनना परमावश्यक

है। इससे मन की चंचलता सरलता से रुक जायेगी। नाम को कोई सहारा चाहिये। नाम कान द्वारा श्रवण करने के साथ-साथ यदि भगवान् की किसी लीला का चिंतन भी हो सके तो लाभ तुरंत दिखाई देगा।

ध्यान दीजिये। रामचरितमानस भगवान् शिवजी के मन से प्रकट हुई है। बाद में वाल्मीकि और तुलसीदास जी ने सरल भाषा में इसका अनुवाद लिख दिया है। यह केवल भगवान् शिव की देन है। भगवान् शिव नित्य-निरंतर, दिन-रात पार्वती के संग बैठकर रामनाम जपते रहते हैं। जिसकी नाम में रुचि बन गई, उसने तो सारे शास्त्र पढ़ लिये। फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नहीं रहा। भक्त ध्रुव एवं भक्तप्रवर प्रह्लाद जी ने नाम से ही भगवान् को प्राप्त किया है। भगवान् की प्राप्ति जिसे भी हुई वह केवल मात्र नाम की कृपा के फल से ही हुई भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि तू नाम कर। यही कारण था कि अर्जुन के रोम-रोम से कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण की आवाज होती थी।

मेरे गुरुदेव, कितने उदाहरण दे-देकर समझा रहे हैं जिनकी कोई सीमा नहीं है। पर अभागा मानव, फिर भी इस मार्ग पर नहीं चलता। श्रीधन्वन्तरि जी बोल रहे हैंः-

अच्युतानन्त गोविंद नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

''अच्युत, अनन्त गोविंद-इन नामों के उच्चारण रूपी औषधि से समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।''

हरिनाम एक अमर-औषधि है जो अदंर-बाहर के सभी रोगों का नाश करती है। इसलिये हे मानव! तू हरिनाम जप।

इस्कान के संस्थापकाचार्य, श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी महाराज ने, श्री श्रीराधादामोदर मंदिर में सौ करोड़ हरिनाम का पुरश्चरण किया था और उन्होंने सब शिष्यों को बोला है कि हो सके तो नित्यप्रति चौंसठ (64) माला हरिनाम की किया करो। आज भी

कई अंग्रेज–भक्त–साधक एक लाख हरिनाम करते रहते हैं जिसे उनके पास वाले भी सुनते रहते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती प्रभुपाद ने सौ करोड़ हरिनाम के पुरश्चरण का नियम लिया था। उन्होंने बोला है कि यदि कोई सौ करोड़ अस्पताल खोल दे या एक जीव को भगवान् में लगा दे तो एक जीव को भगवान् में लगा देना अधिक महत्वशाली होगा। अस्पताल में तो मनुष्य बीमार होने पर बार–बार जाता रहेगा पर जो जीव भगवान् के धाम चला गया, उसका रोग तो सदा–सर्वदा के लिये ही हट गया। वह तो अमर हो गया।

भक्त को भगवान् से मिलने में एक ही बड़ी रुकावट है और वह है भक्त–अपराध। निरंतर नाम लेने से यह अपराध भी नष्ट हो जाता है। जिस भक्त के प्रति अपराध बना हो उसकी चरणरज, चरणजल सीथ (जूठन) प्रसादी छुपकर लेने से भगवान् भक्त–अपराध को क्षमा कर देते हैं। यह भक्त–अपराध इतना सूक्ष्म होता है कि मालूम ही नहीं पड़ता। किसी से साधु या भक्त की निंदा सुनी तो अपराध बन गया। दूर स्थान पर बैठे किसी संत का अपराध बन गया तो मानसिक रूप से वहाँ जाकर अपराध क्षमा करवाया जा सकता है। इसलिये तो बोला गया है कि कोई विरला ही इस दुःखदाई संसार–सागर से पार होगा। सभी बीच में ही अटक जाते हैं–

कोई तन दुःखी कोई मन दुःखी।
कोई धन बिन भयो उदास।
थोड़े–थोड़े सब दुःखी।
नानक सुखी राम का दास।

श्रीगुरुनानकदेव जी कहते हैं कि जिसे नाम का नशा चढ़ जाता है वह फिर उतरता नहीं–

नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन–रात।

जरा विचार करो कि कितने साधक–भक्त ऐसे हैं जिनका उद्देश्य भगवत्–प्राप्ति का है। ज्यादातर साधक–भक्त अपने घर की परेशानियाँ दूर करने के लिये नाम जपते हैं। ऐसे साधक–भक्तों को नाम में रुचि कम ही होगी क्योंकि उनके मन में संसार का महत्व भगवान् से अधिक है।

इस पुस्तक का नाम **'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'** इसीलिये रखा गया है कि हम अपने आप को टटोलें। अपना आत्म–निरीक्षण करें कि क्या हम सचमुच भगवान् को चाहते हैं? भगवान् को जिसने भी सच्चे मन से चाहा, भगवान् स्वयं उसके पास मिलने आये। भगवान् को ढूँढ़ने उसे नहीं जाना पड़ा। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। आज भी भगवान् भक्तों को मिलते हैं, मिल रहे हैं। चंडीगढ़ में एक भक्त हैं–श्रीदीनानाथ दुग्गल जिनकी आयु 76 वर्ष है। वे एक स्कूल में हैडमास्टर थे। उन्होंने पांचवीं कक्षा तक 'कुंवर–कन्हैया' को पढ़ाया है। मैंने स्वयं वह कापियाँ देखी हैं जिसमें भगवान् ने आपने छोटे–छोटे हाथों से, बच्चों की तरह क, ख, ग तथा 1, 2, 3 लिख रखा है। कापी में लकीरें खीचीं हैं तथा अपना नाम 'कन्हैया' हरे रंग में लिखा है। श्री दुग्गल जी (मास्टरजी) का कमरा भगवान् के चित्रों से भरा पड़ा है और इस आयु में भी वे अपने कन्हैया की सेवा में लगे रहते हैं। उनसे मिलकर तथा उनसे 'कुंवर कन्हैया' की बातें सुनकर कोई भी आश्चर्यचकित हो सकता है।

भगवान् आज भी हमसे दूर नहीं हैं पर उन्हें देखने की हमारे में योग्यता नहीं है। कमी हमारी ओर से है, उनकी ओर से नहीं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
27.04.2009

श्री श्रीभक्तप्रवरगण तथा भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल-चरण में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा प्रेमाभक्ति की अहैतुकी प्रेमावस्था का स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् किसको दर्शन देते हैं?

इस कलियुग में विशेषकर भगवान् उसे दर्शन देते हैंः-

1. जो नित्यप्रति एक लाख (64 माला) हरिनाम प्रेम सहित करता है।

2. जो ब्रह्ममुहूर्त में 2-3 बजे जगकर आदरपूर्वक प्रेमसहित हरिनाम नित्य स्मरण, कान से सुनकर करता है।

3. रात में 2-3 बजे वही उठ सकेगा और हरिनाम कर सकेगा जो रात को सूक्ष्म आहार करता है।

4. जो ग्राम्य-वार्ता (फालतू की चर्चा), संसारी-चर्चा, टेलिविजन, समाचार-पत्र इत्यादि तथा व्यर्थ के स्त्री-पुरुषों के वार्तालाप से दूर रहकर, अपने हरिनाम-साधन में रत रहकर जीवनयापन करेगा।

5.जो पूर्णरूप से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये दसों इन्द्रियों को भी साधन में रत रखता है।

6. जो पन्द्रहवीं सदी के भक्त-साधकों के अनुगत होकर अपना जीवन-यापन करता है। इसी साधना से जिन्होंने भगवत्-दर्शन लाभ किया है।

7. जो भक्त व भगवान् से प्रेम का संबंध जोड़कर अपना जीवनयापन करता है।

8. जो नाम और नामी में अंतर नहीं रखता वही हरिनाम को अन्तःकरण में रमा सकता है।

9. जिसका मन भगवत् नाम में रम जाता है, वही अपने साधन में सफल होता है।

10. जो प्रत्येक कर्म को भगवान् का ही समझकर करता रहता है वही हरिनाम में मन को समाहित कर सकता है।

11. जो भक्त–अपराध से बचकर सभी जीवों के हित में लगा रहता है वही अंतिम पुरुषार्थ–श्रीकृष्ण–प्रेम का लाभ उपलब्ध करता है।

12. जो हरिनाम–स्मरण को ही प्राथमिकता देता है, वह अपने साधन में भगवत्–दर्शन लाभ उपलब्ध करता है।

13. जो आहार–विहार तथा निद्रा पर अपना प्रभुत्व रखता है वही प्रेमभक्ति लाभ करता है तथा भगवान् का प्रेमी बन जाता है।

14. जो मान–प्रतिष्ठा से घृणा अर्थात् 'तृणादपि सुनीचेन' (विन्नम बने रहना) श्लोक में स्थित रहता है, वही हरिनाम का प्रेमी बन जाता है।

15. जो दूसरों की कटुवाणी (कड़वे शब्द) सहन करने की शक्ति रखता है, वही त्रिलोक विजयी हो जाता है।

16. जो छोटे भक्तों को मन ही मन तथा अपने से बड़े भक्तों को प्रत्यक्ष में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता है तथा सभी को आदर की दृष्टि से देखता है, वही भक्ति पथ पर आगे बढ़ सकता है।

17. जो भक्त व भगवान् की सेवा में तन, मन और वचन से लगा रहता है, वही भक्ति पथ पर चलने की शक्ति रखता है।

18. जो भगवान् के श्रीविग्रह को साक्षात् भगवान् समझकर तल्लीन होकर भावमय दर्शन तथा वार्तालाप करता रहता है वही भगवान् की प्रेरणात्मक आकाशवाणी सुनता रहता है।

19. जो दूसरों में कोई भी दोष नहीं देखेगा, दोष दर्शन से घृणा करेगा वही हरिनाम में रुचि कर सकेगा।

20. जो निमाई–निताई को स्मरण करते हुये हरिनाम करेगा वही मन को बस में कर सकेगा।

21. जो श्रीनृसिंह भगवान् के चरणों में हरिनाम स्मरण करेगा वही भक्तिपथ की बाधाएँ दूर कर सकेगा।

22. जो श्रीगुरुदेव की अमृतमयी वाणी पर अपना जीवन चलायेगा वही भगवत् चरणों में जा पायेगा तथा जन्म मरण रूपी आवागमन के दारुण दुःखों से स्वतंत्रता लाभ कर पायेगा।

उपरोक्त बातों पर अमल करके देख लो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं। सच पूछो तो संसार की आसक्ति ही मूल है जो हमें भगवान से मिलने नहीं देती। यही आसक्ति सच्चे साधु (सतगुरु) से हो जाये तो सारा दुःख ही समाप्त हो जाये।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



श्रीगौरहरि घोषणा कर रहे हैं कि जो भी साधक एक लाख (64 माला) हरिनाम नित्य करेगा, उसके पास कलियुग आ नहीं सकेगा। यदि आवेगा तो मैं उसके दांत तोड़कर रख दूंगा।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
01.12.2009

पूज्यपाद, भक्तप्रवर तथा शिक्षा गुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा उत्तरोत्तर भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

एक साथ मिलकर प्रत्येक सप्ताह हरिनाम जप करने के महत्व का उत्कर्ष

एक साथ मिलकर जप करने का विधान यह होता है कि कोई भी एक भक्त हरिनाम का उच्चारण करे तथा दूसरे सभी कान द्वारा श्रवण करे। नाम का श्रवण होना परमावश्यक है। नाम हृदय में जाकर जमा होता रहता है अर्थात नाम साध्य को हृदय कमल पर विराजमान करना होता है क्योंकि हृदय ही भगवान् का आसन होता है। नाम साधन भी है और नाम साध्य (भगवान) भी है। नाम का उच्चारण कर श्रवण करना ही साधन है। ऐसा करने से कुछ समय बाद अन्तःकरण में भगवान् का दर्शन होने लगता है। अब मन को स्थिर होने का कारण मिल गया अर्थात भगवान् मिल गये तो मन बाहर कहाँ जायेगा ?

एक साथ हरिनाम का श्रवण करने से भक्तों का **तेज पुंज** आपस में टकरायेगा तो वातावरण शुद्ध बनता जायेगा। जिससे बाहरी वातावरण अंदर नहीं आ सकेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जी श्री निवास जी के घर पर किवाड़ बंद करके हरिनाम श्रवण करते थे। प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है। ऐसा करने से एक दूसरे की तरंगें (Vibrations) आपस में टकराती हैं। एक साधारण सी बात है कि जब एक आदमी को उबासी आती है तो उसके पास बैठे हुये दूसरे

आदमी को भी उबासी आने लगती है। ठीक इसी प्रकार जब एक भक्त को सात्विक–विकार से सुबकियाँ (रोना) आने लगती हैं तो उसके पास में बैठने वालों की भी अश्रुधारा बहने लगती है। यह एक छूत की बीमारी है। यदि अश्रुधारा नहीं भी बहेगी तो भी उस समय मन की स्थिरता अवश्यमेव होगी ही। एक की खुजली, पास बैठे को भी खुजली कर देगी। यह बात शुभ तथा अशुभ दोनों जगह लागू होती हैं।

प्रत्येक सप्ताह मिलकर हरिनाम करने का यह आयोजन यदि एक साल तक चलता रहा और जो भी इस आयोजन में सम्मिलित होगा तो उसका निश्चित रूप से उद्दीपन भाव जागृत हो जायेगा और वह अश्रुधारा में गोता खायेगा। यह मेरे श्रील गुरुदेव की गांरटी है। इसलिये श्री चैतन्य महाप्रभु भक्तों को इकट्ठे करके हरिनाम उच्चारण करवाते रहते थे। भगवान् जगन्नाथ जी के मंदिर तथा गंभीरा (जहाँ महाप्रभु दिन–रात रहते थे) में वे उच्चारण सहित हरिनाम करवाते थे। एक साथ मिलकर हरिनाम करना, द्रुतगति से हरिचरणों में पहुँचना होता है। जहाँ पर ऐसा हरिनाम होता है वहाँ पर कलि महाराज की दाल नहीं गलती। वहाँ कलि का वश नहीं चलता क्योंकि ऐसा हरिनाम शरणागति का प्रतीक है। शरणागति जहाँ हो जाती है, वहाँ माया भी भक्तों की सहायक बनकर स्वयं आयोजन करने में आनंद मानती है। अनुकूल परिस्थितियाँ बनाती रहती हैं। दुःख तो वहाँ से जड़ से खत्म हो जाता है और वहाँ पर शुभ वातावरण का प्राकट्य हो जाता है। दूसरे साधनों से भगवत्–प्राप्ति इतनी जल्दी नहीं होती। इसके ज्वलंत उदाहरण हमारे गुरुवर्ग हैं। नाम के प्रेम के वशीभूत होकर भगवान् को भी भक्तों की खरी–खोटी बातें सुननी पड़ती हैं। वे भी **न्योहारा** खाते रहते थे। भगवान् ने माधवेन्द्रपुरी जी से कहाः– ''मुझे गर्मी लगती हैं चंदन लाकर मेरे तन पर लगाओ।'' और सनातन गोस्वामी से कहाः– ''मुझे अलूणी (बिना नमक की) रोटी नहीं भाती। थोड़ा नमक तो डाल दिया करो। मैं भूखा हूँ। मैं भूख से मर रहा हूँ।''

सनातन गोस्वामी जी कहते हैं "प्रभो! आज नमक माँग रहे हो कल सब्जी और परसों मिष्ठान माँगोगे। प्रभो, मेरी आपसे निभने वाली नहीं है। आपको जहाँ ये सब मिले, जहाँ सुविधा हो, वहाँ चले जाओ पर मुझे भजन करने दो। मेरे भजन में रोड़ा मत बनो।"

यह है हरिनाम का उत्कर्ष प्रभाव नाम के बल पर भगवान् खिंचे आते हैं। वह रह ही नहीं सकते।

हरिनाम का श्रवण होना बहुत जरूरी है। अच्छी तरह श्रवण न करने से जब संसार (लौकिक) के काम बिगड़ जाते हैं तो पारलौकिक काम कैसे सफल हो सकते हैं। श्रवण से ही इस संसार और त्रिलोक का काम होता है। श्रवण के बिना तो सब गर्त में चला जायेगा। शास्त्र का वचन है कि सत्संग श्रवण करो। नाम श्रवण करो। इन्द्रियों में से सबसे महत्वपूर्ण इन्द्री कान ही तो है। इसी ने हमें मायाजाल में फँसा रखा है और यही मायाजाल से निकालकर आगे आनंद सिंधु में डुबो सकता है। उदाहरण से समझना होगा। शौनकादि ऋषियों ने सूत गोस्वामी जी से कथा श्रवण की। देवर्षि नारद जी ने सनकादिक जी से भागवत्–कथा श्रवण की। महाराज परीक्षित ने श्रील शुकदेव गोस्वामी जी से भागवत् कथा श्रवण की। श्री विदुर जी ने मैत्रेय जी से कथा श्रवण की। गरुड़ जी ने काकभुषुण्डि जी से राम कथा श्रवण की। कहाँ तक गिनायें। ऐसे अनंत उदाहरण हैं जहाँ श्रवण से ही उद्धार हुआ है। सारांश यह है कि श्रवण करना ही सर्वोच्च है। देखने से नहीं कान द्वारा किया गया श्रवण ही हृदयगम्य होता है।

श्री हरिनाम का यह साप्ताहिक आयोजन एक प्रकार से तप तथा त्याग का प्रतीक है। इसका मुख्य उद्देश्य केवलमात्र ही नाम जपना है। सामूहिक रूप से मिलकर ही हरिनाम जपना। जो भी भक्त इस आयोजन में शामिल होंगे उन्हें शत–प्रतिशत (100%) लाभ मिलेगा।

कोई भी आयोजन भले ही वह लौकिक हो या पारलौकिक, एक सीमा में ही होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वह एक न

एक दिन बंद हो जायेगा। कोई भी काम जब सीमा से बाहर जाकर किया जाता है तो वह अधिक दिन तक नहीं चलता। अतः इस आयोजन को चलाने वाले भक्तों से मेरी प्रार्थना है कि आप जहाँ तक हो सके, प्रसाद को कम से कम रखें। जो आपने पेट भर कर प्रसाद पाने का नियम लिया है यह नियम अधिक दिन नहीं चलेगा। इसके बहुत सारे कारण हैं जिससे कोई भी इस आयोजन को करवाने में कतरायेगा। किसी के घर में छोटा बच्चा है। किसी के घर में कोई बीमार है। किसी की आस्था में कमी है। किसी के घर में पैसे की कमी है। कोई विद्यार्थी है, वह भरपेट कैसे खिला सकेगा। कोई असमर्थ है। पाँच सौ रूपये से कम में तो प्रसाद पवाना हो ही नहीं सकता। घर की स्त्रियाँ तो प्रसाद बनाने में ही लगी रहेंगी। हरिनाम नहीं कर सकेंगी। उन्हें हरिनाम से वंचित रखना और दुःखी करना भी अपराध है। यदि यह सिस्टम यूँही चलता रहा तो प्रसाद पाना ही मुख्य हो जायेगा तथा नाम जपना गौण हो जायेगा। इसलिये यह आयोजन ऐसा होना चाहिये कि किसी को भी कोई परेशानी न हो, दुःख न हो। यदि यह आयोजन एकादशी के दिन होता है तो उस दिन तो 12 बजे के बाद ही फलाहार होगा। उस दिन पेट भर कर प्रसाद पाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर हर एकादशी को तो छुट्टी नहीं होगी। इसलिये इस आयोजन के लिये रविवार का दिन ही सर्वोत्तम है। उस दिन सबको छुट्टी होती है। शांतिपूर्वक इस आयोजन को किया जा सकता है। एक महीने में चार बार यह आयोजन होता है। इस आयोजन में प्रसाद तो सबको जरूर देना है पर सूक्ष्म हथेली पर देना है जैसे मिश्री भोग, बत्तासे, केला इत्यादि। **प्रसाद तो कणिकामात्र भी वही है, भगवान को भोग लगाना तो जरूरी है।** प्रसाद पाने से मन सुधरता है। हरिनाम का कान से श्रवण ही मन को पकड़ता है। श्रवण के अभाव में मन भटक जाता है। मन की भटकन ही संसार में फँसाती है। कान द्वारा श्रवण ही भगवत्–प्राप्ति कराता है। श्रवण से ही सुख और श्रवण से ही दुःख की प्राप्ति होती है। कान द्वारा गाली श्रवण करने पर

झगड़ा, दंगा–फसाद और कान द्वारा हरिनाम श्रवण से प्रेम का उद्‌गम होता है। भगवान शंकर से श्रीराम कथा का श्रवण करके माँ पार्वती ने अपना जीवन प्रेमानंद में बिताया।

सारा बखेड़ा (झगड़ा) ही श्रवण का है। जिसने इसका महत्व जान लिया, वह माया के पंजे से छूट गया। जब जीभ से हरिनाम का उच्चारण करते हैं और कान से हरिनाम का श्रवण करते हैं, तो घर्षण होता है। उससे विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। कोई भी इसे आजमा कर देख सकता है। यह चमत्कार एक दो दिन में तो नहीं होगा पर निरंतर अभ्यास करने पर एक दो महीने बाद प्रत्यक्ष में होने लगेगा। कितना सरल एवं सुगम उपाय आपको बता दिया पर अभागा मनुष्य, फिर भी इस दुःख सागर से निकलना नहीं चाहता। परवाह नहीं करता। यही विडम्बना है।

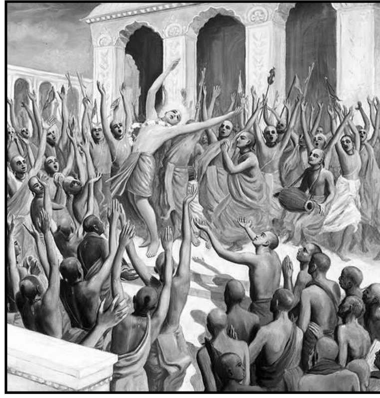
हरिनाम साधन भी है और साध्य भी। अब इस बात को गहराई से मन लगाकर समझना होगा कि यह कैसे हो सकता है।

हरिनाम साधन कैसे हुआ ? जीभ से उच्चारण से यह साधन हुआ जीभ किसे बोलती है ? जिससे अपना कोई मतलब निकालना होता है। वह कौन है ? वह हैं हमारे आराध्यदेव–हरिनाम। अब हरिनाम साध्य कैसे हुआ ? कान से श्रवण से साध्य हुआ। श्रवण किसको किया जाता है ? जिससे अपना मतलब निकालना होता है। इससे स्पष्ट हो गया कि जब तक जीभ हरिनाम का उच्चारण करेगी, तब तक आराध्यदेव हरिनाम का संपर्क होता रहेगा, तो लौकिक अर्थात् संसारी संपर्क समाप्त होता रहेगा। हमारे अन्तःकरण में एक समय में ही संपर्क रह सकता है–या लौकिक या पारलौकिक।

अतः सिद्ध हो गया है कि नाम के श्रवण से आराध्यदेव हरिनाम का संपर्क एक क्षण के लिये भी दूर नहीं होगा। फिर लौकिक संपर्क वहाँ कैसे टिक सकता है, कैसे रह सकता है। यही है आसन सिद्ध होने की स्थिति। इसके बाद आती है हरिनाम की करुणा। उसके बाद इष्टदेव हरिनाम का ध्यान, उसके बाद समाधि–हरिनाम की

तुरीय अवस्था। जब समाधि की स्थिति उपलब्ध हो जाती है तो मन अपने आप ही स्थिरता प्राप्त कर लेता है। इसके पीछे सभी इन्द्रियाँ निष्क्रिया हो जाती हैं। अतः सिद्ध हो गया कि नाम साधन भी है और साध्य भी। यही है अभ्यास तथा वैराग्य का सच्चा प्रतीक।

आपका शुभचिंतक : **अनिरुद्धदास**



श्रीचैतन्य-अवतारे बड़ विलक्षण।
अपराध सत्त्वे जीव लभे प्रेमधन।।47।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार में एक बहुत ही विलक्षण बात है कि अपराध रहने पर भी जीव प्रेम-धन को प्राप्त कर लेता है।

निताई चैतन्य बलि 'जेइ जीव डाके।
सुविमल कृष्णप्रेम अन्वेषये ता' के।।48।।

जो जीव "हा निताई! हा चैतन्य!" कहकर पुकारता है,
सुविमल कृष्णप्रेम उसे ढूँढता-फिरता है।

(श्रीनवद्वीप धाम माहात्म्य)

सार-चर्चा

भगवान् का स्मरण या उन्हें याद करना ही शास्त्रों का मार्गदर्शक है। राक्षस भगवान् को शत्रु समझ कर याद करते थे। पूतना ने कान्हा को मारने के लिये सबसे पहले याद किया कि उस कान्हा को, मैं अपने स्तनों में हलाहल विष लगाकर दूध पिलाऊँगी तो कन्हैया मर जायेगा। शूपर्नखा ने भगवान् श्रीराम को देखा तो सोचा कि राम कितने मनमोहक हैं। यदि इनसे मेरा पाणिग्रहण (विवाह) हो जाये तो कितना अच्छा हो। उसने भी भगवान् राम का स्मरण किया। फलस्वरूप पूरे रावण वंश का उद्धार हो गया। भीलनी हमेशा भगवान् को यह सोचकर याद करती रहती थी कि वे कभी तो मेरी कुटिया पर आयेंगे। और घटना घटी। भगवान् श्रीराम भीलनी की कुटिया पर आये, जब बिछुड़ने लगे तो भीलनी ने भगवत् चरणों में अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। द्रोपदी ने भगवान् गोविंद को याद किया, स्मरण किया, पुकारा तो भगवान् ने भरी सभा में उसकी लाज बचाई। भीष्म पितामह ने अर्जुन को अगले दिन मार देने का प्रण किया तो पाण्डवों ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। भीष्मपितामह अर्जुन का बाल भी बांका न कर सके।

शास्त्रों में ऐसे अनंत उदाहरण हैं जिससे पता चलता है कि माया से बचने का सर्वोत्तम उपाय है–भगवान् को याद करना, उनका स्मरण करना भगवान् तो केवलमात्र भाव ही देखते हैं। वैसे भी, किसी भी भाव से जीव उनको याद तो करे, भगवान् इतने दयालु हैं कि उसे अपना लेंगे। अपना बना लेंगे। शिशुपाल ने तो भगवान् श्रीकृष्ण को सौ गालियाँ दी थीं फिर भी भगवान् ने उसे सद्गति दे दी क्योंकि उसने सौ बार भगवान् को बड़ी तल्लीनता से याद किया। पूतना को तो भगवान् ने अपनी माँ वाली गति प्रदान की। अतः निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् के पास जाने का सर्वोत्तम मार्ग उन्हें स्मरण या याद करना ही है। स्मरण करने से संसारीवृत्ति विलीन हो जाती है और केवल भगवत् याद ही मुख्य रह जाती है। भगवान् का सबसे अधिक स्मरण व याद उनके नाम

लेने से ही हो सकता है। नाम को निरंतर श्रवण करना पड़ता है। श्रवण से निरंतर उनकी याद बनी रहती है। बीच में कोई रुकावट नहीं आती। भगवत्–प्राप्ति का इससे बढ़कर सरल उपाय और कोई नहीं है। भगवान् की याद या स्मरण ही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये बार–बार इसी बात पर जोर दिया जाता है कि हरिनाम को कान से सुनते रहो। ऐसा करने पर माया के पिंजरे से बाहर निकल जाओगे, जन्म–मरण के दारूण दुःख से बच पाओगे–इस बात की शत–प्रतिशत गारंटी है।

सभी शास्त्रों तथा सत्संगों का यही सार है, निचोड़ है। कलियुग में इसके बिना भगवत्–प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है। इसलिये इसे अन्तःकरण में रमाकर इस दुर्लभ मानव जीवन को सार्थक करना चाहिये। यदि इस अवसर से चूक गए या इसे यूंही गंवा दिया तो बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा। इसलिये दृढ़तापूर्वक, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने में जुट जाओ और कान से सुनते रहो। भाव कोई भी हो, मंगल ही मंगल होगा।

भाव–कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

मेरे श्रील गुरुदेव, शिक्षा गुरुओं तथा वैष्णवजनों की कृपा से मेरा एक महीने में लगभग एक करोड़ हरिनाम स्मरण होता रहता है। पूरे परिवार में हर दिन मेरे बिना तीन लाख हरिनाम हो जाता है। कुल मिलाकर छः लाख हरिनाम प्रतिदिन हमारे यहाँ होता रहता है। इस प्रकार एक महीने में एक करोड़ अस्सी लाख हरिनाम स्मरण होता रहता है। सभी परिवार हरिनाम के नियम को अपनायें। यही सर्वोत्तम है। यही मेरी आप सबसे प्रार्थना है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

= श्री हरिनाम की महिमा =

1. एक करोड़ जप से	–	सुस्ती जावे।
2. दो करोड़ जप से	–	रोग न आवे।
3. तीन करोड़ जप से	–	मन लग जावे।
4. चार करोड़ जप से	–	विरह हो जावे।
5. पाँच करोड़ जप से	–	मन अकुलावे।
6. छः करोड़ जप से	–	नींद भाग जावे।
7. सात करोड़ जप से	–	परमानंद पावे।
8. आठ करोड़ जप से	–	दुर्गुण भाग जावे।
9. नौ करोड़ जप से	–	सद्‌गुण आवे।
10. दस करोड़ जप से	–	भाव उपजावे।
11. ग्यारह करोड़ जप से	–	संबंध बन जावे।
12. बारह करोड़ जप से	–	प्रेम उपजावे।
13. तेरह करोड़ जप से	–	दर्शन पावे।
14. चौदह करोड़ जप से	–	आवागमन मिट जावे।
15. पन्द्रह करोड़ जप से	–	गोलोक पठावे।
16. सोलह करोड़ जप से	–	सेवा पावे।
17. सत्रह करोड़ जप से	–	अमर हो जावे।

नोट–

★पर ये हरिनाम नामापराध रहित लेना होगा।

★★मान-प्रतिष्ठा को छोड़कर लेना होगा।

★★★स्मरण सहित लेना होगा।

7

श्रीश्री गुरुगौरांगौ जयतः

10.01.2009
छींड की ढाणी

श्री श्रीभक्तप्रवर, स्नेहास्पद तथा भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरण में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

मन स्थिर क्यों नहीं होता ?

श्री गुरुदेव सभी भक्तजनों पर कृपा करके, मन स्थिर न होने के कई कारण मुझ नराधम से लिखवा रहे हैं।

साधक ध्यान से इन्हें पढ़े। श्रील गुरुदेव द्वारा बताये हुए आदेश का पालन करें। मन अवश्य स्थिर होगा।

1. भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि मन को संसारी आसक्ति से हटा कर आध्यात्मिकता की ओर लगा। बार-बार अभ्यास करने पर कुछ समय बाद मन स्थिर हो जायेगा। आज तक जो मन स्थिर नहीं हुआ, उसका एकमात्र कारण है-सांसारिक आसक्ति। अस्सी वर्ष की आयु हो चुकी, बुढ़ापे ने आकर घेर लिया। एक आसन पर बैठकर हरिनाम स्मरण करना अब बस की बात नहीं रही। शरीर अस्वस्थ हो गया। रोगों ने आक्रान्त कर दिया। मौत सामने मुँह फाड़े खड़ी है। कभी भी निगल सकती है। फिर भी सांसारिक आसक्ति नहीं छूटी। भगवान् के चरणों में मन को नहीं लगाया। इस जन्म का दुरुपयोग किया है। इसका खामियाज़ा (नुकसान) तो भुगतना ही पड़ेगा। मन को खींचते-खींचते सारा जीवन बीत गया पर मन स्थिर नहीं हुआ। अब मन को क्या खींच पाओगे। अब तो मौत ही तुम्हें खींचकर ले जाने वाली है।

2. मन स्थिर हो सकता है। हरिनाम में मन लगता है पर

साधक हरिनाम में मन को लगाना ही नहीं चाहता क्योंकि उसने अभी तक नाम का मूल्य नहीं समझा है। उसकी नाम में पूर्ण श्रद्धा नहीं है। शास्त्र का वचन है–

जाना चाहिये गूढ़ गति जेऊ।
जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।

जब संसार के कामों में मन स्थिर हो सकता है तो हरिनाम में क्यों नहीं हो सकता। अभ्यास करने पर स्वाभाविक ही मन स्थिर हो जायेगा। परीक्षार्थी परीक्षा में तीन घंटे तक मन को स्थिर करके बैठता है। वाहन (ड्राईवर) यदि मन को स्थिर करके गाड़ी न चलाये तो किसी दूसरे वाहन से टकरा जाये। बैंक के कैशियर (खज़ानची) का मन यदि स्थिर न हो तो उसे अपनी जेब से भुगतान करना पड़ जाये। वास्तव में हम हरिनाम में मन लगाना ही नहीं चाहते।

3. सच्चा ज्ञान नहीं है। कपट ज्ञान से बोलता है अतः मन कैसे स्थिर हो सकता है।

4. हरिनाम स्मरण हेतु कम से कम तीन घंटे आसन पर नहीं बैठता। इसलिये मन स्थिर नहीं होता। मन तभी स्थिर हो सकता है जब आसन जीत लिया जाये। ध्यान, धारणा, समाधि, क्रम से हरिनाम स्मरण सुचारु रूप से हो सकता है।

5. अज्ञानता के कारण मनुष्य सोचता है कि भगवान् को प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है। वह दुःख को भी सुख मानकर जीवन–यापन करता रहता है। अतः मन स्थिर नहीं होता। यही माया का खेल है।

6. कुसंग की उपलब्धि तो हर क्षण होती रहती है। पर सत्संग लवमात्र (थोड़े से समय के लिये) भी नहीं मिलता। ऐसे दूषित वातावरण में हरिनाम में मन लगाने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

7. भौतिक चिंताएँ (संसार, घर–परिवार की चिंताएँ) जीव के पीछे लगी रहती हैं। ऐसे में उसे भगवान् कहाँ याद आ सकते हैं ? मन कैसे स्थिर हो सकता है।

8. शरीर को रोगों ने जकड़ लिया है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता वहाँ मन कैसे स्थिर हो सकता है।

9. धन के अभाव के कारण हर समय परिवार को पालने की चिंता लगी रहती है। धन की कमी के कारण परिवार में आपस में लड़ाई–झगड़ा, कलह होता रहता है। वहाँ पर मन कैसे स्थिर हो सकता है।

10. आहार–विहार दूषित होने से मन स्थिर नहीं रह सकता। जैसा खाओ अन्न। वैसा होवे मन। सच्चाई की कमाई ही मन को स्थिर कर सकती है।

11. मन में त्याग की भावना नहीं। कोई तप नहीं। रात को भोजन कम नहीं करता। तीन–चार बजे उठकर हरिनाम स्मरण नहीं करता। इसलिये मन स्थिर नहीं होता।

12. आलस्य व विश्राम भक्ति माँ के शत्रु हैं। मन कैसे स्थिर होगा ?

13. भगवान् के प्रसाद में पूर्ण श्रद्धा नहीं। स्वाद रूप से भोजन होता है इसलिये इंद्रियाँ चंचल रहती हैं। अतः मन स्थिर नहीं रहता।

14. भक्त अपराध तथा ठाकुर सेवा अपराध भी मन को स्थिर नहीं होने देता।

15. श्रील गुरुदेव को हृदय से साक्षात् भगवान् का प्रेमीजन नहीं मानना तथा उनके आदेश की अवहेलना करना। यह भी मन स्थिर नहीं होने देता।

16. तन, मन, धन से साधु सेवा न करना भी मन को स्थिर नहीं होने देता।

17. दूषित वातावरण से दूरी बनाकर रखें तथा इन्द्रियों को कुमार्गगामी न बनायें तो मन स्थिर हो सकता है।

18. सच्चे मन से सदैव मौत को याद रखें–मन स्थिर हो जायेगा।

19. सच्चे मन से यह मान लें कि यह संसार दुःखों का घर है। मन स्थिर न होने से यह जीवन दुःखी हो जायेगा और आवागमन भी नहीं छूटेगा। मन स्वतः ही स्थिर हो जायेगा।

20. भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बोला है कि मन मैं ही हूँ। इसलिये यह मन मुझे दे दो। जो कोई मान–प्रतिष्ठा चाहता है, वह अहंकारी होगा और अहंकार भगवान् का शत्रु है। अहंकारी का मन कैसे स्थिर हो सकता है ?

21. अभ्यास करने से मन स्वतः ही लग जाता है मन को लगाना नहीं पड़ता। सांसारिक आसक्ति को मन से निकालना होगा, तभी मन स्थिर होगा।

22. आत्मा रूप में भगवान् हर जीव में विराजित हैं इसलिये सबके प्रति दया भाव रखो। मन स्वतः ही स्थिरता प्राप्त कर लेगा।

23. जिस साधक का नित्य प्रति एक लाख हरिनाम जप होता है फिर भी मन स्थिर नहीं होता, उसे कोई चिंता नहीं करनी चाहिये। जन्म–मरण से उसका छुटकारा निश्चित है। उसका नामाभास ही हो रहा है इसलिये भगवत्–प्रेम नहीं होगा। श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णन है कि अजामिल नामाभास से ही तर गया। इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने एक लाख (64 माला) से कम हरिनाम करने की छूट किसी को नहीं दी क्योंकि एक लाख (64 माला) से कम करने पर आवागमन नहीं छूटेगा।

मन स्थिर करने से सिद्धि उपलब्ध हो सकेगी। यदि इस जीवन में मन स्थिर नहीं हुआ तो यह दुर्लभ मानव–जन्म व्यर्थ ही चला जायेगा। जिसने भी मन को स्थिर किया, उसने ही सब कुछ पाया है। ध्रुव जी ने मन स्थिर करके मंत्र जाप किया और ध्रुवलोक को प्राप्त किया। प्रह्लाद जी महाराज ने मन स्थिर किया तो उनका

बाल भी बांका नहीं हुआ। ब्रह्मा जी ने मन स्थिर करके तप किया, भगवान् का ध्यान किया तो सृष्टि की रचना कर सके।

भगवान् शिव उमा सहित सदा राम नाम जप करते रहते हैं। हनुमान जी महाराज नाच–नाच कर श्री राम जी के कीर्तन में मग्न रहते हैं। और देखियेः–

1. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाये चले श्री राम।
सो छवि सीता राखि उर, रटति रहति हरिनाम।।
2. मनस्थिर करि तब शंभु सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना।।
3. जब ते सती जाय तन त्यागा।
तब ते शिव मन भयऊ विरागा।।
जपहि सदा रघुनायक नामा।
जहं तहं जाय सुने गुण ग्रामा।।
4. पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जहि नाम जप लोचन नीरू।।(भर)
5. सादर सुमिरन जो नर करहि।
भव वारिध गौपद इवतरहिं।।
6. बैठ देखि कुशासन जटा मुकुट कृशगात
राम राम रघुपति जपत स्त्रवन नैन जल जात।।
7. जपहिं नाम जब आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होय सुखारी।।
8. नाम सप्रेम जपत अनयासा।
भक्त होय मुद मंगलवासा।।
9. मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नैन भए नीरा।
ताकि करूं सदा रखवारी।
जिमि राखहिं बालक महतारी।।
10. मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये जोग जप ज्ञान विरागा।।

सारा खेल ही मन का है। मन न लगे तो कुछ भी उपलब्धि नहीं होगी। न संसारिक (लौकिक) न पारलौकिक। संसारिक आसक्ति न रहने पर पारलौकिक आसक्ति (भक्ति) निश्चित मिलेगी। यह शत्–प्रतिशत् सच्ची बात है। इसलिये संसार में रहो। संसार के कर्म करो परन्तु उनमें फँसो मत। जिस प्रकार कोई कर्मचारी आसक्ति रहित होकर अपना कार्य करता है, उसमें फँसता नहीं। उसी प्रकार गृहस्थी को चाहिये कि वह गृहस्थ के काम करे पर उनमें फँसे नहीं मन स्थिर हो जायेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि इन इन्द्रियों में मन मैं हूँ। जब मन भगवान् हैं तो भगवान् की कृपा बिना, गुरु कृपा बिना, किसी नामनिष्ठ की कृपा बिना, स्थिर कैसे रह सकता है ? मन का स्थिर होना (रुकना) कृपा साध्य है। इस मन ने अनादिकाल से चंचलता धारण कर रखी है। यदि इस जीवन में भी इसे रोका न गया तो मरने के समय यह कैसे रुकेगा ? आवागमन कैसे छूटेगा ?

इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी ने सभी जीवों पर दया करके हमें एक अति सुगम साधन बता दिया है जिससे हमारा आवागमन छूट जायेगा और वह साधन क्या है ? नित्यप्रति एक लाख (64 माला) हरिनाम करना। भले ही कोई गृहस्थी हो, ब्रह्मचारी हो, वानप्रस्थी हो या संन्यासी हो। कोई भी हो। उसे एक लाख हरिनाम नित्य करना ही है ताकि इस कलिकाल में साधक इस घोर दुःखालय से मुक्त हो सके। नामनिष्ठ को लेने भगवान् अपने पार्षदों को नहीं भेजते, स्वयं लेने आते हैं। भगवान् ने कहा कि नामनिष्ठ को अपने गोलोकधाम में मैं स्वयं ले जाऊँगा। यह महाप्रभु की गारंटी है। महाप्रभु जी ने जो अमूल्य पुस्तक लिखी थी और जिसे गंगा जी में सिर्फ इसलिये फैंक दिया था क्योंकि उसे देखकर विश्वविजयी पंडित को दुःख हुआ था। यदि वह पुस्तक उपलब्ध होती तो एक लाख हरिनाम जप की महिमा, हरिनाम जप का मूल्य दृष्टिगोचर होता।

महाप्रभु के समय में कुछ गृहस्थियों ने उनसे प्रार्थना की कि गृहस्थ के कामों में हमें इतना समय नहीं मिलता कि हम एक लाख हरिनाम कर सकें, थोड़ा कम कर दो तो महाप्रभु ने कहा कि एक लाख से कम हरिनाम करने वाले का उद्धार नहीं होगा।

हमारे गुरुवर्ग ब्रह्ममुहूर्त में तीन बजे उठकर हरिनाम करते थे। इसलिये ब्रह्ममुहूर्त में उठकर हरिनाम करो। समय मिलेगा पर यह तभी होगा। जब रात का आहार कम होगा।

जो जीव "हा निताई! हा चैतन्य" कहकर पुकारता है, सुविमल कृष्णप्रेम उसे ढूँढ़ता-फिरता है। अपराध उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। निर्मल कृष्णप्रेम में उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगती है। थोड़े ही समय में अपराध अपने आप दूर भाग जाते हैं। हृदय शुद्ध हो जाता है और उसमें प्रेम की वृद्धि होती है।

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

नवयुवकों के लिए मूल्यवान शुभ संदेश

ब्रह्मचर्य पालन ही अमृत है, ब्रह्मचर्य नष्ट ही मृत्यु है.

इस भगवत् सृष्टि में जिन्होंने अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन किया है, उन्होंने ही जगत में अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष का अर्जन किया है। जिन्होंने इसकी (वीर्य की) रक्षा नहीं की, वह दुःख सागर में जीवन भर भटके हैं। यह अमूल्य धन है। इस धन का उपार्जन करना श्रेयकर है। हनुमानजी, भीष्म पितामह, महावीर आदि ने इसका पालन किया है इसलिये वे आज तक अमर हैं तथा भविष्य में भी अमर रहेंगे।

आजकल के समय का वातावरण इतना दूषित हो गया है कि नवयुवक बेचारे परेशान रहते हैं। खान-पान, पहरावा दूषित है। दूषित विज्ञापन, दूषित चित्र, दूषित गान, दूषित विद्या, गंदे अखबार, अश्लील उपन्यास, गंदी पुस्तकें, ब्लूय फिल्में, कहाँ तक गिनाया जाए कोई सीमा नहीं है। को-एजुकेशन, टी. वी. व मोबाईल ने तो अश्लील की पाठ्शालाएँ ही खोल रखी हैं। इन सबसे बचने का उपाय भगवत् कृपा से लिखा जा रहा है, इसे नवयुवक अपनाएँ तो कुछ बचाव हो सकता है।

असत्-संग का त्याग करते रहें। गरिष्ठ भोजन कम करें। धार्मिक पुस्तकें पढ़ते रहें। मन को समझाते रहें। वीर्यपात से, शक्ति नष्ट हो जाने से रोगों के शिकार बन जाओगे। ये रोग संतान को भी आक्रान्त करते रहेंगे। हर ठौर पर लज्जित होना पड़ेगा। ऊँचा मुख करके बोल नहीं सकोगे। मुख की आभा नष्ट हो जायेगी। गालों में खड्डे पड़ जायेंगे। हस्तमैथुन की आदत जीवन भर नहीं छूटेगी। स्वप्नदोष होने से कमजोर पड़ जाओगे। पेट की अग्नि मंद

होने से भोजन पचेगा नहीं, कब्ज के शिकार रहोगे। स्मरण शक्ति का नाश हो जायेगा, पढ़ने में मन नहीं लगेगा। दिमाग शीघ्र थक जायेगा। कोई काम करने का मन नहीं करेगा। जो चाहोगे, हस्तगत नहीं हो सकेगा। टी. बी. कैंसर, प्रमेह (शक्ति का पेशाब द्वारा निकलते रहना प्रमेह कहलाता है), बार–बार सिरदर्द रहना, चक्कर आना हर समय दुःखी रहना आदि व्याधियों से आक्रान्त रहना पड़ेगा। बार–बार जुकाम, ज्वर रहेगा। अपनी शक्ति (वीर्य) को रोकने से असीम बलशाली बन जाओगे। भक्ति में मन लगेगा। भगवत् प्राप्ति कर सकोगे। जीवन भर कोई रोग नहीं रहेगा। पढ़ने में सबसे आगे रहोगे। दिमाग तेज़ रहेगा, जो एक बार याद हो गया उसे दुबारा देखना नहीं पड़ेगा। सीनियर ऑफिसर से खुल कर निडरता से बात कर सकोगे। ये गुण ब्रह्मचर्य पालन से अनायास ही उपलब्ध कर सकोगे।

12 साल की उम्र से काम–वासना जाग्रत हो जाती है। इसे शुरु में ही दबा के रखा जाए तो फिर भविष्य में कम सतायेगी। यदि इसे दबाकर नहीं रखा तो काबू के बाहर हो जायेगी। इसे जितना भोगोगे, उतनी तेज़ होगी व जितना दबा के रखोगे, मरती रहेगी। भोगने से कभी स्वप्न में भी कम नहीं होगी।

यह (काम–वासना) संकल्प–विकल्प से जगती है। यह प्रथम चित्त में स्फुरित होती है। इस स्फुरणा को उसी समय नष्ट कर दिया जाये तो फिर यह मन तक नहीं आ सकेगी। यदि नहीं दबाया तो मन में आकर आपको परेशान कर देगी। कभी भी, उपस्थ इन्द्रिय की तरफ नज़र भी नहीं करो, लंगोट भी रखना ठीक है। रात में सोते समय कम से कम दो माला हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र)–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।।

ध्यानपूर्वक जप करके तथा गुरुजी को स्मरण करके सोने से रात में सुखपूर्वक नींद ले सकते हो। स्वप्नदोष से बच सकते हो। इधर–उधर नज़र करना बंद रखो। नीची नज़र से घूमते रहो। संत

सदैव नीची नज़र करके रास्ता चलते रहते हैं। ऊपर नज़र रख कर चलने से पशु–पक्षी, अश्लीलता आदि नज़र आ जाती है। काम को तो इशारा चाहिए, बस इतने से ही वह हावी हो जायेगा और आपको नीचे गिरा देगा। जब तक शादी न हो, सतर्कता से जीवन–यापन करते रहो। ऐसी शिक्षा न तो कोई संत देता है, न दे सकता है। अतः गुरु–प्रेरित होकर ठाकुरजी की कृपा से मैंने देना शुरू किया है। भोले–भाले नवयुवक इसके बारे में क्या जानें, अतः देना पड़ा है।

!! हरे कृष्ण !!

कलियुग के जीवों के
अपराध
असंख्य और भीषण हैं,
गौर नाम
के बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता
इसलिये शास्त्र बार–बार उच्च स्वर
से कह रहे हैं कि गौर नाम के
अतिरिक्त कलियुग के जीवों के
उद्धार
का अन्य कोई भी उपाय
दिखाई नहीं देता,
इसलिये सदैव इस महामंत्र
का जप करते रहो –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मन चाही संतान प्राप्त करने का सरल सुगम साधन

प्रेमास्पद प्रिय युवक गण, सबको मेरा प्रेम सहित श्रीराधा–गोविंद।

आज तो श्रीगुरुदेवजी ने सब पर अतुल कृपा करने तथा फिर से राम–राज्य फैलाने हेतु साधु–संतान उपलब्ध कराने हेतु नवयुवकों को सरल, सुगम साधन प्रस्तुत किया, जिसकी मेरे माध्यम से उक्त विषय पर नीचे लिखे लेख के रूप में मार्मिक चर्चा की जा रही है। नवयुवक गण इस पर गहरा विचार कर ध्यान दें ताकि स्वयं का भी भला तथा अन्य सबका भी भला हो सके।

मैंने श्रीगुरुदेवजी से हृदय स्पर्शी प्रार्थना की कि आपने पिछले संतान प्राप्ति के लेख में नवयुवकों के लिए बड़ी समस्या खड़ी कर दी। आपने सौ दिन तक दंपति को ब्रह्मचर्य व संयम से रहने तथा दोनों को आधा–आधा लाख हरिनाम नित्य जपने का आदेश दिया था। ऐसा कठिन आदेश तो नवयुवकों के लिए निभाना असंभव ही जान पड़ता है। इतने दिन तक नर–नारी पास में रहते हुए कैसे ब्रह्मचर्य निभा सकते हैं ? हे गुरुदेवजी कृपा करके इसको सरल–सुगम करने की कृपा करें। यह आपकी असीम कृपा होगी।

श्रीगुरुदेवजी ने कहा कि बात तो ठीक ही है। एक तो कलियुग का समय, जिसमें चारों ओर कामदेव का राज्य फैला हुआ है। अतः दम्पति का संयम से रहना असंभव ही है। अब मैं इसे सरल–सुगम बना देता हूँ।

दम्पति 21 दिन तक तो संयम ब्रह्मचर्य से रह ही सकते हैं। दोनों समय (21 दिन तक) दोनों स्त्री–पुरुष दूध तथा इस्बगोल का सेवन करें तथा अधिकतर गुड़ का सेवन करें तो बच्चा पैदा

करने की शक्ति व वीर्य के शुक्राणु बलशाली बनेंगे। इससे बच्चा हृष्ट–पुष्ट, निरोग व बुद्धिमान होगा। इन 21 दिनों में दोनों आधा–आधा लाख हरिनाम जप/ स्मरण करते रहें ताकि स्वभाव में सात्त्विक वृत्ति ओत–प्रोत हो जावे। इससे बच्चा सद्गुणों से ओत–प्रोत होकर प्रकट होगा। इस कलिकाल में सभी तामस वृत्ति से इन्द्रिय तर्पण करते हैं। कोई भी समय का ध्यान नहीं रखता। अतः राक्षस वृत्ति की संतानें उपलब्ध होती हैं, जो माँ–बाप को व दूसरों को दुःख देती हैं। एकादशी, द्वादशी, मंगलवार, किसी भी पर्व व त्यौहार पर, रुग्ण अवस्था में, क्रोध वृत्ति में, बिना इच्छा के, दिन में, दोनों संध्याओं में, ब्रह्ममुहूर्त में, जन्म–मरण में, निर्लज्जता से, मासिक धर्म के समय में संग करना वर्जित है। यदि ऐसा करोगे तो घोर पापी व राक्षस संतान उपलब्ध होगी। जो आपको व स्वयं को घोर दुःख देगी। पिछले युग में बच्चे गुरु आश्रम में धार्मिक ज्ञान उपलब्ध करते थे इसलिए उनकी वृत्ति सात्विक रहती थी अतः उनकी संतान भी देवताओं के समान सुखकारी होती थी। 21 दिन तक संयम व ब्रह्मचर्य का पालन करने व आधा–आधा लाख हरिनाम जप करने के बाद जब भी मासिक धर्म हो तो शुभ दिन देखकर अर्थात् पंचमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चर्तुदशी व पूर्णिमा की रात में शयनगृह को स्वच्छ बना कर धूप, दीप, अगरबत्ती, इत्र आदि छिड़क कर शुद्ध बना ले व उस कमरे में महात्माओं के चित्र लगा लें।

रात में 10 बजे, 12 बजे व 2 बजे प्रसन्न मन से श्रीगुरुदेव व भगवान् या किसी महापुरुष का चिंतन करते हुए संग करें। पुरुष, प्रत्येक संग के बाद थोड़ा गुड़ खा ले, इससे उनमें पुनः संग करने की शक्ति आ जावेगी। संग करने के बाद स्त्री को पूरी रात्रि दाहिनी करवट से ही सोना है। तीन बार संग करने से गर्भाशय में शुक्राणु स्थिरता धारण कर लेंगे व गर्भ अवश्य ही इसी रात में ठहर जाएगा। यदि पुरुष या स्त्री या फिर दोनों को संग करते समय नारीगण (किसी सती–साध्वी स्त्री जैसे अनुसूया, सावित्री आदि)

का चिंतन हो गया तो पुत्री संतान हो जायेगी और यदि किसी महापुरुष का चिंतन हो गया तो पुत्र संतान होगी। स्त्री को संग करने के पहले ही पेशाब कर लेना चाहिए, बीच में या बाद में पेशाब नहीं करना है। संग के तुरंत बाद यदि स्त्री पेशाब कर ले तो गर्भ नहीं रहेगा। यदि ऐसा करेगी तो गर्भवती नहीं हो सकेगी। पुत्री की कामना हो तो स्त्री, संग करने के बाद रात भर दाहिनी करवट से सोये। जैसा चिंतन होगा वैसी संतान गर्भ में आ जायेगी।

मासिक धर्म आरम्भ होने के 4 दिन बाद स्त्री का गर्भाशय बच्चा पैदा करने के लिए शुद्ध हो जाता है। मासिक धर्म आरंभ होने के बाद छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें दिन संग करने से पुत्र होता है। पांचवें, सातवें, नौवें, ग्याहरवें, तेहरवें दिन संग करने से पुत्री होती है। मासिक धर्म आरंभ होने के 16 दिन बाद कभी भी गर्भ ठहरने की कोई संभावना नहीं है।

प्रातः उठते ही स्त्री यदि नित्य–प्रति अपने पति का, किसी महापुरुष का या भगवान् का मुख दर्शन करे तो इस गुण का प्रभाव उसकी संतान पर भी पड़ेगा। उपरोक्त बताए 21 दिनों में ग्राम्य चर्चा, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि से बचकर रहे वरना संतान खराब स्वभाव की होगी। हरिनाम मन लगाकर ही करें।

श्रीगुरुदेवजी ने केवल खास भजन करने हेतु नवयुवकों को यह प्रेरणा दी है कि शादी करते ही संतान प्राप्त करने की शीघ्रता करें ताकि बच्चे पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो जायें व उनकी शादी करने से आपको निवृत्ति मिल जाये तथा थोड़ी उम्र में (लगभग 50 वर्ष) स्वतंत्रता उपलब्ध करके भजन में लग सको। देर में संतान होने से भजन करने का समय नहीं मिलता तथा व्यक्ति स्वयं भी रोगग्रस्त हो जाता है जिससे ये अमूल्य मानव जन्म बेकार चला जाता है। फिर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ जाता है। अतः यह उपरोक्त आदेश गुरुदेव की असीम कृपा के फल से ही हस्तगत हुआ है।

कहा करते हैं कि पुत्र या पुत्री उपलब्ध होना तो विधाता के हाथ में है, ये बिल्कुल गलत बात है। विधाता अपनी इच्छा से किसी को कुछ नहीं दे सकता। विधाता भी उसके कर्मानुसार ही किसी को कुछ दे सकता है।

श्रीगुरुदेव जी ने कर्म करने का ही आदेश दिया है। जो भी लेख लिखा गया है, ये भी केवल कर्म मात्र ही तो है। मानव अपना भाग्य स्वयं निर्माण करता है। विधाता इसमें क्या कर सकता है ? उदाहरणस्वरूप यदि विद्यार्थी इन्जीनियरिंग पढ़ने के लिए कॉलेज में भर्ती ही न हो तो क्या विधाता उसे इंजीनियर की पदवी दे देगा ? निष्कर्ष ये निकलता है कि कर्मानुसार ही मानव का भाग्य बनता है। कर्म करने में मानव स्वतंत्र है। इसमें कोई भी, यहाँ तक कि भगवान भी हस्तक्षेप नहीं करते। बोए बीज बबूल के तो आम कहाँ से होए ? भक्ति के बिना भगवान कैसे मिल जायेंगे ? यदि ऐसा हो तो कर्म करने का कोई मूल्य ही नहीं रह जाएगा।

भगवान् ने अर्जुन को कर्म करने की आज्ञा दी है। देखा जाए तो कर्म ही भगवान् है–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा
क्यों कर तर्क बढ़ावहिं साखा।

मूल्यवान चर्चा– जगत गुणों से प्रेरित है। कलिकाल तो तामसिक गुणों का भंडार है, अतः तामसिक स्वभाव की राक्षसी संतानों से जगत् भरता जा रहा है, जो सभी ही हिंसा प्रेमी हैं। राजसिक गुणों की संतानें लोभी होती हैं जो लोभ के लिए बुरे से बुरा कर्म करती रहती हैं। तीसरी सात्विक गुण संपन्न स्वभाव की संतानें देवतुल्य स्वभाव की होती हैं जो कुछ–कुछ भगवान् व संतों के संग की ओर मुड़ती रहती हैं। निर्गुण स्वभाव, गुणों से रहित होने से परमहंस, वैरागी स्वभाव की संतानें जन्म से ही भगवान् की ओर मुड़ती रहती हैं लेकिन निर्गुण स्वभाव की संतान करोड़ों में कोई एक ही होती है। जिस स्वभाव में दंपति संग करते हैं, उसी स्वभाव की संतान गर्भ में आकर्षित हो पड़ती है। सतयुग में प्राणियों का

स्वभाव सात्विक था अतः संत–महात्मा व देवता स्वभाव की संतानें प्रकट होती थीं।

पिछले युगों में बच्चा गुरुकुल आश्रम में जाकर 25 साल तक धार्मिक शिक्षा उपलब्ध करता था अतः उसका स्वभाव सात्विक बन जाता था। बाद में गुरु–दक्षिणा देकर कुलीन बालिका से शादी करता था। उनको जवानी में संत–महात्मा संतानों की उपलब्धि होती थी। तामस–राजस वृत्ति के गुण उनमें कैसे रह सकते थे ? वे लोग शीघ्र ही गृहस्थी से निवृत्त होकर भजन–साधन में लग जाते थे व अपने जीवन में ही भक्ति प्राप्त करके भगवान् का साक्षात्कार कर लिया करते थे। श्री गुरु चरणों में रहने से उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाता था। आजकल कलियुग का ऐसा दूषित ज़माना आ गया कि कॉलेजों में को–ऐजुकेशन होने के कारण लड़के–लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं। ऐसे में यदि उनकी वृत्ति खराब न होगी तो और क्या होगा ? टी. वी. व मोबाईल उनको खराब करने के खास माध्यम हैं।

अंतिम निष्कर्षः– संग करते समय यदि दोनों को नर का चिंतन हो गया तो पुत्र गर्भ में आयेगा एवं यदि दोनों को नारी का चिंतन हो गया तो पुत्री गर्भ में आयेगी, वरना उक्त आविष्कार गलत हो जायेगा। ये शास्त्रीय सिद्धान्त है। मानसिक चिंतन का कर्म ही प्रधान है।

ये श्रीगुरुदेव की कृपा का अमूल्य धन मैंने नवयुवकों को बांटा है। इस धन को बड़ी सावधानी से संभाल कर रखें तथा बार–बार इस धन का अवलोकन करते रहें तो सदैव सुखी रहोगे तथा नवयुवकगण श्रीगुरुदेव के इस शुभ संदेश को बार–बार अवलोकन करके अमरता को स्वयं भी उपलब्ध करें तथा अपने मित्रों को भी वितरण करके भगवान् की कृपा तथा श्रीगुरुदेव की सेवा का सुयोग प्राप्त करें। प्रार्थना है कि इसका बार–बार अवलोकन करे व जीवन भर इसे संभाल कर रखें क्योंकि बाद में यह उपलब्ध नहीं हो पायेगा।

10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

एकादशी
22.01.2009

परम पूज्यनीय भक्तप्रवर तथा शिक्षागुरुदेव भक्ति सर्वस्य निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा उत्तरोत्तर भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

नामाभास (अवहेलनापूर्वक) से भी शत-प्रतिशत मुक्ति

जिस प्रकार जाने-अनजाने में कैसे भी कोई अग्नि का स्पर्श करे तो उसका स्वभाव (गुण) है कि वह वस्तु को जला देती है, ठीक उसी प्रकार नाम-नामी हरिनाम का भी स्वभाव है। जाने-अनजाने में कैसे भी मुख से निकल जाये बस, साधक को सुकृति लाभ कर देगा अर्थात् साधु का संग करा देगा। साधुसंग से मानव हरिनाम करने लगेगा। हरिनाम मन से करो या बेमन से करो, मुक्ति का द्वार बना देगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जो असीम दया के अवतार हैं, उन्होंने पापी, अपराधी, पशु-पक्षी, जड़, चेतन, सभी को अपना नाम 'हरि' सुना-सुनाकर भवसागर से पार कर दिया।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने सभी जनों को नित्यप्रति एक लाख हरिनाम

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जपने का आदेश दिया। उन्होंने कहा जो मेरे आदेश का पालन करेगा वह मेरे शरणागत हो जायेगा और जो मेरे शरणागत हो जाता है, मेरे प्रण अनुसार वह मेरा हो जाता है। उसकी सारी ज़िम्मेवारी मैं लेता हूँ। मेरी माया उसके हर कार्य में सहायता

करती है। यदि साधक का मन हरिनाम में नहीं लगता अर्थात् वह बेमन से ही हरिनाम करता है तो भी वह मुक्ति के पथ पर चला जाता है क्योंकि उसने हर रोज़ एक लाख बार भगवान को याद किया है, पुकारा है। श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं कहते हैं कि ऐसे नामनिष्ठ का जब अंतिम समय आता है तो मैं स्वयं उसे अपने धाम में ले जाता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मैं अकृतज्ञ कहाऊँगा। मेरा अवतार ही पतितों के उद्धार के लिये होता है। जब कोई एक लाख बार मुझे पुकारता है तो मेरा मन पिघल जाता है मेरा हृदय पसीज़ जाता है। मैं कठोर हृदय तो हूँ नहीं। मैं तुरंत ऐसे जीव को अपना बना लेता हूँ।

नाम तो कैसे भी लिया जाये–मंगल ही मंगल करेगा। एक शास्त्रीय प्रमाण देखिये–

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

गिरते–पड़ते, उठते–बैठते, जगते–सोते या उबासी लेते, कैसे भी हरिनाम मुख से निकल जाये तो नाम के स्वभावानुसार मुक्ति निश्चित् है।

जाको नाम लेत जग माहि।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।।

वास्तव में देखा जाये तो नामाभास की स्थिति में भी बहुत मंगल होता है। एक तो जीव की सुकृति प्रबल होती जाती है। दूसरे सभी प्रकार के पाप नष्ट होते जाते हैं और मनुष्य के अंदर भरी हुई भोगों की वासनायें, छल–कपट व लड़ाई–झगड़े की भावनायें ही खत्म हो जाती हैं। नामाभास पूरे कुल को पवित्र कर देता है और जीव के सभी रोगों का निवारण हो जाता है। नामाभासी व्यक्ति सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से मुक्त होकर पूर्ण शांति को प्राप्त कर लेता है। नामाभास की महिमा का क्या बखान करें। यक्ष, रक्ष, भूत, प्रेत, ग्रह और अनर्थ सब दूर हो जाते हैं। सभी प्रकार के प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं। सभी वेदों को

पढ़ने, सभी तीर्थों की यात्रा करने तथा अनेक प्रकार के शुभकर्मों को करने से भी अधिक नामाभास का महत्व है। नामाभास इन सभी से श्रेष्ठ है। नामाभास धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों को देने वाला है। कहां तक कहें जिसका किसी तरह से भी कल्याण नहीं हो सकता, उसका नामाभास से कल्याण संभव है। विशेषकर इस कलियुग में तो नामाभास से ही वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। नामाभास भी धीरे–धीरे शुद्ध हरिनाम में परिवर्तित हो जाता है। जब शुद्ध नाम होने लगता है तो निश्चित् रूप से श्रीकृष्ण की प्राप्ति हो जाती है।

एक दिन श्रीचैतन्य महाप्रभु भगवान् श्री जगन्नाथ के मन्दिर में बैठे थे। उनके भक्त जो भगवान् श्री जगन्नाथ जी का दर्शन करने आते थे, आकर उनके पास बैठ गये। महाप्रभु ने कहा–''आप में से किस–किस का एक लाख हरिनाम हर रोज़ हो जाता है ?'' किसी ने कहा कि हमारा तो हो जाता है तो किसी ने कहा कि बड़ी कठिनाई से होता है क्योंकि घर के कामकाज से फुर्सत नहीं मिलती। कुछ ने कहा कि प्रभो! आप तो दयालु हो। यदि आप हरिनाम की संख्या एक लाख से कुछ कम कर दो तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

महाप्रभु बोले कि यदि आपकी इच्छा बार–बार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने की है तो एक लाख से कम कर सकते हो। जिसको दुःख सागर में गिरना है वह एक लाख से कम करे, उसकी जिम्मेवारी मैं नहीं लेता। पर जिसको इस जन्म में आवागमन के चक्कर से मुक्त होना है उसे एक लाख हरिनाम करना ही होगा और जो एक लाख हरिनाम की संख्या पूरी करेगा, उसकी सारी जिम्मेवारी मेरी है। देखो, ध्यान देकर सुनो। नाम और नामी में कोई अंतर नहीं है। नाम साधन भी है और साध्य भी है, जब साध्य (भगवान्) को एक लाख बार नाम सुनाओगे तो क्या भगवान् के चरणों में शरणागति में कोई कसर रह जायेगी। हरिनाम में मन लगे या न लगे, एक लाख बार नाम लेने से शरणागत का उद्धार तो हो ही जायेगा। एक लाख से कम हरिनाम करने पर साधक का

मन शरणागति का भाव, अनंत जन्मों में भी उदय नहीं कर सकता। इसलिये आप सबको सरल व सुगम रास्ता बता दिया है। याद रखो, एक लाख हरिनाम नित्य होना परमावश्यक है।

दूध पीता बच्चा या गाय का बछड़ा जब माँ–माँ करता है तो माँ उसी वक्त उसके पास आ जाती है जो कि माया मिश्रित है, भौतिकता से लिप्त है। जब इस भौतिक संसार की माँ कई बार पुकारने से आ जाती है तो क्या एक दिन में, एक लाख बार बुलाने पर, पुकारने पर, भगवान् का नित्यप्रति एक लाख बार जप करके क्या भक्त भगवान् को नहीं बुला सकेगा ? जब हम हर रोज़ एक लाख बार उस परमदयालु, दया के सागर, कृपासिंधु को बुलायेंगे तो उसे आना ही पड़ेगा। वह रुक नहीं सकता। इस बात को आजमा कर देख लो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। भगवान् को ढूँढने भक्त को नहीं जाना पड़ता। भगवान् अपने भक्त के पास स्वयं आते हैं। भक्त के पीछे–पीछे गिड़गिड़ाते रहते हैं। वह ठाकुर तो प्रेम का भूखा है। वह प्रेम खाता है और प्रेम भगवान् नाम से ही प्रकट होता है। हमारे पिछले गुरुवर्ग ने नित्य एक लाख नाम जप कर ही ठाकुर जी को रिझाया है। यदि श्रील गुरुदेवजी के आदेशानुसार, श्री हरिनाम का अभ्यास किया जाये तो शत्–प्रतिशत् सफलता की गारंटी है।

कपिल भगवान् अपनी माता देवहूति को कहते हैं कि भक्ति करने का सर्वोत्तम फल यही है कि साधक का मन आराध्यदेव में स्थिरता प्राप्त कर ले। जिसने भी मन को बस में कर दिया उसने भगवान् को पा लिया। मन ही जीव का शत्रु है और मन ही मित्र है। माया में फँसाता है तो शत्रु और भगवान् से मिलाता है तो मित्र है।

नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर महाप्रभु जी को कह रहे हैं कि एक लाख हरिनाम नित्य करने पर उस साधक का उद्धार निश्चित है। एक लाख से कम करने की रियायत (छूट) महाप्रभु जी ने नहीं दी। रात को भोजन करके, ब्रह्ममुहूर्त में उठकर हरिनाम करने से

तीन घंटे में एक लाख हरिनाम हो जाता है। शुरू–शुरू में समय ज्यादा लग सकता है पर लगातार अभ्यास होने पर 3 महीने से छः महीने के बीच तक तीन घंटे में एक लाख हरिनाम पूरा होने लगता है। चौबीस घंटे में तीन घंटे निकाल कर कोई भी आवागमन रूपी दारूण दुःख से छूट सकता है।

यदि किसी नामनिष्ठ का संग मिलता रहे तो यह संख्या पूरी करने में समय कम लगता है। नामनिष्ठ का संग करने पर मन स्थिर हो जाता है और मन स्थिर हो जाने पर कृपा दूर नहीं। प्रेमावस्था भी दूर नहीं। भगवत्–दर्शन भी दूर नहीं। सद्गुण आना भी दूर नहीं। आसक्ति दूर होना भी दूर नहीं। अंदर और बाहर के शत्रुओं का संहार होना भी दूर नहीं। वास्तव में सभी मुसीबतों का बखेड़ा ही खत्म हो जाता है। नाम और नामी में फर्क समझने पर समय अधिक लगता है। इसमें श्रद्धा की कमी है।

श्रील गुरुदेव जैसा लिखवा रहे हैं, वैसा ही मैं आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा भी उद्धार और आप सबका भी उद्धार निश्चित् है।

जिस प्रकार सूर्य उदय होने से पहले ही अरुणोदय (पूर्व दिशा में प्रकाश) होने लगता है और हम समझ जाते हैं कि अब सूर्य भगवान् उदय होने वाले हैं उनके दर्शन अवश्यमेव होंगे, ठीक उसी प्रकार जब नाम का आभास (नामाभास) होने लगता है तो समझना पड़ेगा कि नामी (भगवान्) के दर्शन भी अवश्य ही होंगे। नाम ही तो भगवान् है। नाम का आभास ही भगवत्–स्वरूप है। जब सूर्य दृष्टिगोचर हो जाता है तो सब अंधकार दूर भाग जाता है इसी प्रकार जब नामाभास क्रम से करते–करते अन्तःकरण में शुद्धनाम (स्मरण) उदय हो जाता है तब प्रेम रूपी सूर्य (भगवान्) का दर्शन स्पष्टता से होने लग जाता है। जिस प्रकार सूर्य उगने पर सभी चर अचर आनंद में मग्न हो जाते हैं। इसी प्रकार जब प्रेमावस्था रूपी ठाकुर जी का दर्शन होने लग जाता है तो साधक का अन्तःकरण आनंद में प्रफुल्लित हो जाता है।

निष्कर्ष यह निकला कि नामाभास से भगवत् रूपी प्रेमावस्था उपलब्ध हो जाती है। जिस मानव का नामाभास नहीं होता अर्थात जो मायाजाल में फँसा हुआ है, वह चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। ऐसे मनुष्य को सत्संग न मिलने से यह ज्ञान ही नहीं होता कि भगवान् कौन हैं। जीव क्या है ? ऐसे जीव की मुक्ति कैसे होगी ? मुक्ति क्या है ? मुक्ति वह अवस्था है जो सतो, रजो व तमोगुण से ऊपर है। ये तीनों गुण इसे नहीं व्यापते। मुक्त जीवात्माओं का गोलोक धाम अलग है। भगवत् प्रेमरसिकों का गोलोकधाम अलग है।

इस प्रकार अनंत गोलोक धाम हैं। जिस रस का भक्त होता है, उसी रस वाले गोलोक में उसका पदार्पण होता है। रस भी कई प्रकार के होते हैं। सखा, पुत्र, पिता, मंजरी, सखी, भाई, जमाई इत्यादि भावों के भिन्न–भिन्न गोलोक धाम हैं। वहां पर भक्त को अपने इष्टदेव की सेवा का सुअवसर सुचारू रूप से मिलता रहता है और वहां वह अकथनीय आनंदभोग करते रहते हैं।

सभी चर–अचर प्राणियों के माँ–बाप भगवान् हैं क्योंकि भगवान् ने ही सभी को पैदा किया है। क्योंकि मेरा भगवान् से पुत्र–पिता का संबंध है, मैंने पूछा–''पिता जी! आप **पीताम्बर** क्यों धारण करते हो ?''

भगवान् बोले ''बेटा! मेरी प्राणप्रिया श्री राधा की अंग कान्ति पीली आभायुक्त है, स्वर्णमयी है।

तप्तकांचन गौरांगि ! राधे वृन्दावनेश्वरी।

इसलिये मैं पीताम्बर धारण करता हूँ क्योंकि मुझे पीताम्बर ही प्रेम स्वरूप अनुभव होता है। पीताम्बर धारण करके मैं श्री राधा को सदा अपने अंग संग अनुभव करता रहता हूँ। जिस प्रकार मैं पीताम्बर धारण करता हूँ उसी प्रकार श्रीराधा भी नीलाम्बर धारण करना पसंद करती है। क्योंकि मेरी अंग कांति नीले वर्ण की है इसलिये मैं नीलमाधव के नाम से जाना जाता हूँ। नीलाम्बर धारण करके श्री राधा भी मुझे सदैव अपने अंग संग अनुभव करती रहती

हैं। कभी–कभी मेरे पास होकर भी वे वियोग का अनुभव कर लेती हैं और पुकार उठती हैं–''हे श्यामसुन्दर! आप कहां चले गये ?"

जब श्रीराधा की विरहमयी पुकार मेरे कानों में पड़ती है तो मेरा अन्तःकरण रूपी कलेजा चूर–चूर हो जाता है। तब मैं श्री राधा को अपनी गोद में उठाकर सचेत करता हूँ और कहता हूँ हे राधे! मैं तो तुम्हारे पास हूँ। मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं गया। तुम्हें छोड़कर मैं कहां जा सकता हूँ ?

तब श्रीराधा होश में आती हैं और विरह में पागल सी हुई पूछती हैं– ''आप मुझे छोड़कर कहां चले गये थे ? आपने अभी–अभी आकर मुझे संभाला है।''

''राधे! मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? तुम बिन तो मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता।''

''नहीं! आप निर्मोही हो। आप मुझे एक दिन छोड़कर चले जाओगे और मैं मर जाऊँगी।''

'' नहीं राधे! ऐसा कभी नहीं होगा। तुम्हारे बिना मेरा मरण भी निश्चित् है।''

श्री श्री जीव गोस्वामी जी अपने श्रीयुगलाष्टक में श्री श्रीराधामाधव से प्रार्थना करते हैं–

कृष्ण प्रेममयी राधा, राधा प्रेममयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णस्य द्रविणं राधा, राधायाः द्रविणं हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णप्राणमयी राधा, राधा प्राणमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णद्रवमयी राधा, राधाद्रवमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
कृष्णगेहेस्थिता राधा, राधागेहेस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।

कृष्णचित्तस्थिता राधा, राधाचित्तस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
नीलांबर धरा राधा, पीतांबर धरो हरिः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।
वृन्दावनेश्वरी राधा, कृष्णौ वृन्दावनेश्वरः।
जीवने निधने नित्यं, राधाकृष्णौ गतिर्ममः।।

श्रीश्रीगोपालसहस्रनाम में श्री महादेव जी पार्वती को बताते हैं–

संसार सारसर्वस्वं श्यामलं महदुज्ज्वलम्।
एतज्जेतिरहं वन्द्यं चिन्तयामि सनातनम्।।

संसार के सर्वस्व (मूलरूप) अति उज्ज्वलवर्ण (राधा) श्यामलवर्ण (माधव) रूप वन्दनीय सनातन है। इस ज्योति (श्री श्री राधामाधव रूप) को मैं चिन्तवन करता हूँ।

तस्माज्जोतिरभूदद्वेधा राधामाधव रूपकम्

इस प्रकार (भक्त वात्सल्यहेतु से) श्री श्रीराधाकृष्ण रूप एक ही ज्योति (स्वयं प्रकाश) दो रूप से प्रसिद्ध हैं।

राधाकृष्ण स्नेही। एक प्राण दो देही।

एक प्राण होते हुये भी दोनों दो देह धारण करते हैं। उनके अलग होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गौरतेज (श्रीराधा) की पूजा किये बिना मनुष्य श्यामतेज़ (श्रीकृष्णचन्द) की पूजा के लिये अनधिकारी माना जाता है।

कृष्णार्चाया नाधिकारो यतो राधार्चनं बिना।

श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्राणाधिका देवी हैं, इसलिये श्रीराधा का भाव लेकर ही भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीगौरहरि का अवतार लिया है। श्रीराधा मेरे लिये कितनी तड़पती हैं, मेरे विरह में कितनी व्याकुल होती हैं इस भाव को जानने के लिये, उसी आनंद का अनुभव करने के लिये श्रीकृष्ण श्रीगौरहरि बन कर आये।

एक दिन मैंने भगवान् से पूछा– ''पिता जी ! यह बताओ कि इस धरती माता का रंग (प्रकृति, सृष्टि) का रंग हरा क्यों है ? यह

पृथ्वी माता हरे–भरे पेड़ों से ढकी रहती है। हरी–हरी दूब से आच्छादित रहती है ?''

भगवान् बोले– ''बेटा! मेरी सृष्टि का रंग हरा क्यों है इसका कारण यह है कि मेरी अंगकांति नीलवर्ण की है और श्रीराधा की अंगकांति पीतवर्ण की है। जब नीला और पीला दोनों रंग मिल जाते हैं तो हरा रंग बन जाता है। इसलिये सृष्टि का रंग हरा है। इस सृष्टि की चर–अचर हर वस्तु में हम दोनों समाये हुये हैं इसलिये सभी ओर हरा ही हरा रंग दीप्तिमान हो रहा है।''

मैंने पूछा– '' समुद्र का रंग नीला क्यों है ? नीलाचल समुद्र बोला जाता है। जिसका आंचल नीला है, उसे समुद्र कहते हैं। इसी प्रकार आकाश का रंग भी नीला क्यों है ?''

''बेटा! इस पृथ्वी पर तीन भाग समुद्र है तथा एक भाग भूमंडल है। क्योंकि मैं क्षीरसागर में रहता हूँ और मेरी अंगकांति नीली है। मेरी इस नीली अंगकांति के कारण ही समुद्र का पानी नीला दिखाई देता है। तीन भाग समुद्र होने से, समुद्र की परछाई आकाश में जाती है जो नीलवर्ण में समाया हुआ है। समुद्र की इस परछाई के कारण ही आकाश नीला दिखाई देता है। अनन्तकोटि अखिल ब्राह्माण्डों की यही रचना है–ऐसा समझना होगा।''

इति!



11

श्रीश्रीगौरांगौ जयतः

जोधपुर
12.05.2009

पूजनीय भक्तप्रवर तथा शिक्षागुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा भजनस्तर बढ़ने की प्रार्थना।

लौकिक तथा पारलौकिक परीक्षा

राजकीय शासन के शिक्षा विभाग ने एक नियम बना रखा है कि प्रत्येक विषय में अधिकतम अंक 100 (एक सौ) में से 33 (तैंतीस) अंक हर परीक्षार्थी को प्राप्त करने अनिवार्य हैं। तभी उसे उस विषय में पास समझा जायेगा और तभी उसे अगली कक्षा में बैठने का अधिकार प्राप्त होगा। यदि कोई विद्यार्थी किसी विषय में 33 (तैंतीस) अंकों से कम अंक प्राप्त करता है तो उसे फेल कहा जाता है और उसे एक साल तक फिर उसी कक्षा में रख दिया जाता है। परीक्षा में फेल होकर उस विद्यार्थी का न केवल समय बर्बाद हुआ बल्कि अर्थ (पैंसों) का भी नुक्सान हो गया। परीक्षा में फेल होने पर उसे अपने दोस्तों के सामने शर्मिंदा होना पड़ा। मन दुःखी हुआ और परिवार वालों की मेहनत भी बेकार गई।

यदि विद्यार्थी 33 प्रतिशत नंबर लेकर पास हो जाता है तो उसे थर्ड डिवीज़न (तीसरा दर्जा) प्राप्त होता है और यदि वह कम से कम 45 (पैंतालीस) प्रतिशत अंक प्राप्त करता है तो उसे सैंकिड डिवीज़न (दूसरे दर्जे) का सर्टीफिकेट मिलता है। यदि विद्यार्थी कुल अंकों का 60 (साठ) प्रतिशत प्राप्त करता है तो उसे फर्स्ट डिवीज़न (प्रथम दर्जे) का सर्टीफिकेट मिलता है और यदि वह 80 (अस्सी) प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करता है तो उसे Distinction (श्रेष्ठता) का सर्टीफिकेट मिलता है।

जो विद्यार्थी श्रेष्ठता (Distinction) का दर्जा हासिल करता है उसे राजकीय शासन की ओर से शिक्षा विभाग पुरस्कार देता है। यह पुरस्कार उसे किसी भी रूप में दिया जा सकता है। उसकी अगली कक्षा की फीस माफ कर दी जाती है या पुस्तकें पुरस्कार रूप में दे दी जाती हैं। यहाँ तक कि उसकी पढ़ाई का पूरा खर्च भी राजकीय शासन देता है। जब विद्यार्थी अपनी पढ़ाई पूरी कर लेता है तो उसे उच्च पद भी प्राप्त हो जाता है।

उस विद्यार्थी ने मन लगाकर कान से अच्छी तरह सुनकर, समझ कर पढ़ाई की तो खुशियों का खज़ाना उसको मिल गया। सभी लोग उसका सम्मान करते हैं। पैसे की कमी उसे नहीं रहती। कहीं उसका विरोध नहीं होता और उसकी सभी कामनायें पूरी हो जाती हैं। बड़ा होकर वह अपने परिवार को सुचारु रूप से चलाने में सक्षम हो जाता है।

यह लौकिक परीक्षा पास करने का फल है पर यह फल भी नाशवान् है। एक न एक दिन समाप्त होने वाला है। कुछ समय बाद, इस शरीर के नाश होने के साथ-साथ सब कुछ नाश हो जायेगा। कुछ भी नहीं बचेगा।

यह तो था लौकिक परीक्षा का फल और अब पारलौकिक परीक्षा का फल देखिये। यह फल नित्य रहने वाला (शाश्वत्), सुख-शान्ति प्रदान करने वाला है। यह अमर फल है इसलिये एकाग्रचित होकर इसे मनन करो और अपने अन्तःकरण से इसे उतार लो ताकि सम्पूर्ण दुःखों का जड़ से ही नाश हो जाये।

धर्मशास्त्रों में भगवत्-प्राप्ति के अनेकों साधन वर्णित हैं जैसे योग, ध्यान, निष्काम कर्म, तीर्थाटन, यज्ञ आदि। इन सब साधनों को करने से शरणागति भाव उदय नहीं होता क्योंकि भगवान् प्रेम से मिलते हैं और प्रेम भगवत्-नाम उच्चारण करने से ही प्रकट होता है। भगवान् शंकर ने सौ करोड़ रामायणों में एक भगवत् नाम-'राम' निकाला और इसी 'राम' नाम को भोले नाथ उमा के

साथ हर क्षण जपा करते हैं 'राम' का नाम उच्चारण करने से भगवान् के प्रति शरणागति जगकर प्रेम प्रकट हो जाता है। संबंध ज्ञान हस्तगत हो जाता है।

अन्य भक्ति साधनों में भी केवलमात्र भगवत् नाम का ही प्रभाव है। नाम के बिना कोई भी भक्ति साधन हो ही नहीं सकता। चारों युगों में भगवत् नाम का ही प्रताप है और विशेषकर कलियुग में तो भगवत्–नाम के सिवाय कोई साधन है ही नहीं–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम् जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

श्री हरि का नाम ही, नाम ही केवल नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुग में इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।

नाम सबको प्यारा होता है। एक छोटा सा शिशु 'माँ–माँ' बोलकर अपनी माँ को पुकारता है। गाय का बछड़ा 'बां–बां' करके अपनी माँ को अपने पास बुला लेता है। शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। यह समुद्र में आग लगा सकती है। गान विद्या से बादल घिर जाते हैं। वाद्ययंत्र से हिरण खिंचा चला आता है। शिव के तांडव नृत्य के शब्द से प्रलय हो जाती है। नाम (शब्द) के बिना अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों का काम हो ही नहीं सकता। नाम के बिना सब कुछ नाश हो जाये।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु दया के अवतार हैं। महावदान्याय हैं, प्रेमभक्ति के दाता हैं। उनका अवतरण किसी काल में द्वापर युग के बाद हुआ करता है। जो भी सुकृतिशाली जीव इनकी परंपरा से जुड़ गया, इस कड़ी में जुड़ गया, उसका उद्धार निश्चित है। वह भले इस जन्म में हो या फिर अगले 10–12 जन्मों के बाद। परंतु उसका उद्धार अवश्य होगा।

श्री चैतन्य महाप्रभु भाग्यवान् (सुकृतिशाली) जीवों पर दया करने के लिये उस मृत्युलोक में अवतरित होते हैं और सभी को उनका आदेश है कि जो भी साधक 64 माला अर्थात एक लाख हरिनाम नित्य करेगा, उसे '**इसी जन्म में भगवत्-प्राप्ति**' हो जायेगी। यदि वह अनमने मन से भी हरिनाम करता है तो भी नामाभास होने से उसका उद्धार निश्चित है। जब साधक एक लाख बार भगवान् को पुकारेगा, तो भगवान् उसकी ओर खिंचे चले आयेंगे। भगवान् उस भाग्यशाली जीव पर कृपादृष्टि डालते हैं और अपनी कृपा बरसाते हैं। भगवान् बहुत दयालु हैं। वे जीव के अपराध नहीं देखते। वे तो केवल उसके भाव को देखते हैं। वे अवगुण नहीं देखते, केवल जीव के गुण देखते हैं। एक लाख हरिनाम करने पर दस अपराधों में एक नौवां अपराध नहीं होगा।

शुरू–शुरू में साधक का हरिनाम नामाभास पूर्वक ही होगा। उच्चारण सहित एक लाख हरिनाम करने में 6–7 घंटे लग जाते हैं पर 5–6 महीनों के बाद अभ्यास होने पर एक लाख हरिनाम 3–4 घंटों में पूरा हो जाता है। नये साधक को चाहिये कि वह कुछ माला पूर्णशुद्धि से उच्चारणपूर्वक करे और बाद में अभ्यास होने पर अधूरा नाम भी शुद्ध ही माना जायेगा। फिर अशुद्ध उच्चारण होगा ही नहीं।

अर्न्तराष्ट्रीय श्रीकृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) के संस्थापक आचार्य श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने सौ सौ करोड़ हरिनाम करके पूरी दुनिया में श्रीचैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन का प्रचार किया। हमारे सभी गुरुवर्गों ने महाप्रभु के इस आदेश का नित्य पालन किया है और अपने शिष्यों को भी नित्य एक लाख हरिनाम करने का आदेश दिया है।

अतः सज्जनों! आप सभी सुकृतिशाली भक्तों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि प्रत्येक साधक नित्यप्रति एक लाख हरिनाम (64 माला) जपने का नियम बनाओ ताकि इस जन्म में धर्म,

अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के साथ–साथ पंचम पुरुषार्थ–श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो सके जो इस मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

मन लगे या न लगे, नाम का उच्चारण होना परमावश्यक है। श्रीमद्भगवत् में वर्णन है कि गिरते–पड़ते, उबासी लेते, सोते–जागते, खाते–पीते भी यदि भगवत् नाम सहज में ही निकल जाये तो इस जीव का उद्धार हो जाता है। इसका आशय यह है कि इस तरह उसकी सुकृति उसे साधु से मिला देगी। साधु को मिलने पर वह भजन करने लगेगा और फिर एक दिन उसका उद्धार हो जायेगा।

पिछले गुरुवर्गों का जीवन देखने से पता चलता है कि वे रात दिन हरिनाम करते रहते थे। अंत काल रुग्ण अवस्था में भी खटिया में लेटे–लेटे हरिनाम की माला जपते रहते थे। नास्तिक लोग उन्हें रुग्ण अवस्था में देखकर बोलते थे कि सारी उम्र भजन करने से क्या मिला ? भगवान् की शरण लेने के बाद भी अंत समय में रोगग्रस्त जीवन भोग रहे हो।

इसका उत्तर स्पष्ट है कि जिस प्रकार एक दूध पीता बच्चा खेलता हुआ घर के बाहर निकल जाता है और मिट्टी में लेट जाता है तो उसकी माँ उसे उठाकर, मैल झाड़कर, उसे स्नान कराकर साफ करती है तब जाकर उसे गोद में उठाकर दुग्धपान कराती है। मैले–कुचेले बच्चे को गोद में नहीं उठाती।

इसी प्रकार हरिनाम करने से संतजनों के प्रारब्ध कर्म तो समाप्त हो जाते हैं पर क्रियमाण कर्म बचे रहते हैं। नास्तिक मनुष्य के तो प्रारब्ध कर्म समाप्त होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है परन्तु संत की मृत्यु नहीं होती क्योंकि उसने भगवान् की शरण ले रखी है। उनकी इस शरणागति के कारण ही भगवान् उनके क्रियमाण कर्मों का भुगतान करवा कर, उन्हें बिल्कुल स्वच्छ,निर्मल एवं शुद्ध बनाकर स्वयं अपने संग गोलोकधाम में ले जाते हैं। भगवान् का नाम जपने वाले की यही गति होती है। यही है नामनिष्ठ भक्त की उत्कर्षता। इसलिये भक्तों के लिये यही श्रेयस्कर होगा कि वे

नित्यप्रति 64 माला (एक लाख) हरिनाम अवश्य करें। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्हें आनंद का खज़ाना रूपी सर्टीफिकेट मिल जायेगा।

विश्वविद्यालय के नियमानुसार जब तक युनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त नहीं होती तब तक शिक्षा पूरी नहीं मानी जाती। कोई प्राइवेट तौर पर कितनी भी पढ़ाई करे उसे मान्यता नहीं मिलेगी यदि विश्वविद्यालय द्वारा प्रमाणित डिग्री या सर्टीफिकेट उपलब्ध नहीं होता। लौकिक दृष्टि से यह एक नियम है, कानून है। जिस प्रकार लौकिक जगत् के नियम हैं, उसी प्रकार पारलौकिक जगत् के भी नियम हैं। इसके भी कानून हैं। धर्मशास्त्रों में उनका वर्णन हुआ है कि भगवान् की प्राप्ति कैसे हो सकती है। भगवान् से मिलने के लिये पंचम पुरुषार्थ–प्रेम चाहिये। यह प्रेम भक्ति के अन्य साधनों से नहीं मिलेगा। यदि यह मिलेगा तो केवलमात्र हरिनाम करने से, नाम जपने से, हरिनाम का उच्चारण करके कान द्वारा उसे सुनने से। नाम को कान द्वारा सुनाना बहुत आवश्यक है। जीभ से उच्चारण और कान से श्रवण होने पर दोनों का आपस में घर्षण होगा। यह घर्षण ही विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित कर देगा और अष्ट सात्विक विकार उदय हो जायेंगे।

जब भक्त नाम जपता है, भगवान् को पुकारता है तो भगवान् अपना नाम सुनने के लिये उसके पास आकर खड़े हो जाते हैं। भगवान् भक्त से पूछते हैं– ''आपने मुझे क्यों बुलाया ?''

भक्त कहता है– '' हे प्रभो ! आपसे बिछुड़े हुये अनंत युग बीत गये। हे नाथ ! अब तो मुझे अपना लो। अपनी गोद में उठा लो।''

बस ऐसा भाव आते ही, इस करुण पुकार को सुनते ही अपने आप विरहाग्नि प्रज्वलित हो जाती है। यह चमत्कार कैसे होगा ? यह होगा कान द्वारा हरिनाम सुनने से, बिना सुने काम बिगड़ जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु, जो भक्तरूप में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण हैं, उन्होंने सभी को आदेश दिया है कि तैल धारावत् नित्य–निरंतर भगवान् चरणों में करुण पुकार करते रहो। निरंतर हरिनाम करने से ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। पर शर्त यह है कि नित्यप्रति 64 माला (एक लाख) हरिनाम की जरूर पूरी होनी चाहिये। तिरेसठ माला से भी काम नहीं चलेगा क्योंकि 63 माला करने पर भी हरिनाम पूर्ण नहीं होगा और दस नामापराधों का भय भी बना रहता है। पर एक लाख हरिनाम निरंतर करने से नामापराध स्वयं ही विलीन हो जाते हैं। नाम भगवान् अन्तःकरण में विवेक उदय कर देते हैं।

जो साधक हर रोज़ तीन लाख हरिनाम करता है, उसे भक्त अपराध नहीं व्यापता। यही अपराध सबसे बड़ा और खतरनाक है क्योंकि ऐसे साधक गुण ही गुण दृष्टिगोचर होते हैं और वह भगवान् मिलन का छद्म रूप तथा भगवत् प्रेम बड़ी शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं।

जो समीत आया शरणाई।
ताको राखूं प्राण की नाई।।

डर कर भगवान् की शरण में कौन जाता है? भगवान् की शरण में वही जाता है जो भवसिंधु में गिरा होता है। वही अपनी रक्षा के लिये भगवान् को पुकारता है और कहता है–''हे नाथ ! मुझे बचाओ ! मेरी रक्षा करो।'' जब साधक भगवान् को पुकारता है और कहता है–''हे श्री श्रीराधामाधव ! मुझे अपनी शरण में ले लो'' तो भगवान् उसकी करुण पुकार सुनते हैं। जब भक्त दिन में एक लाख बार उन्हें पुकारेगा तो क्या वे नहीं आयेंगे?

यह जीव अनंत युगों से भवसागर में गोते खा रहा है इसमें डूबता हुआ भगवान् से दया की भीख मांगता है, उन्हें पुकारता है तो ऐसे जीव को, भले ही वह कितना पतित हो, पतितपावन भगवान् शत्–प्रतिशत् अपनी शरण में ले लेते हैं। एक लाख बार नाम उच्चारण से पूर्ण शरणागति मिल जाती है जबकि दूसरे किसी भी

साधन से शरणागति नहीं होती। इस भवसागर से पार होने के लिये केवलमात्र हरिनाम एक ऐसी नौका है जिसमें बैठकर मनुष्य पार हो सकता है।

प्यारे सज्जनों! यह अवसर बाद में नहीं मिलेगा। अभी मौका है। सच्ची नौका आपके पास है। जो भगवान् ने अपने भक्तों के लिये भेजी है। इसलिये। उठो और हरिनाम की इस नौका पर सवार हो जाओ। चूको मत अन्यथा पछताओगे।

कृष्ण कृष्ण परिष्वंग सतृष्णं गौर सुन्दरम्।
धन्य कीर्ति सुतानन्यमन्यं चैतन्यमाश्रये।।

श्री गौर सुन्दर कृष्ण धन्य हैं जो अपने आपको श्री राधा मानकर श्रीकृष्ण का आलिंगन करने के लिये सदा लालायित रहते हैं। मैं उन्हीं श्रीकृष्ण चैतन्य की शरण ग्रहण करता हूँ।



नमोऽस्तु नाम रूपाय नमोऽस्तु नामजल्पिने।
नमोऽस्तु नामशुद्धाय नमो नाममयाय च।।

हे नामरूप श्रीकृष्ण चैतन्य, आपको नमस्कार है। हे नाम संकीर्तन कर्ता! आपको नमस्कार है। निज नाम से पावन करने वाले! आपको नमस्कार है तथा हे नाम विग्रह श्रीकृष्ण चैतन्य! आपको नमस्कार है।

हमारे किसी भी मठ में महिलाओं को रात्रि वास करने की व्यवस्था नहीं है। परंतु योग पीठ में, पहले से ही श्रीविष्णुप्रिया-पल्ली व गृहस्थों की कॉलोनी रहने से मैंने इस विषय में बाधा नहीं दी। मिसेस ** कृपा कर वहाँ Hony. Secy. का पद ग्रहण करेंगी यह अच्छी बात है, परंतु मठ में उनका नहीं रहना ही अच्छा है। श्रीयुत ** ये सारी बातें अच्छी तरह से समझते हैं। संन्यासी में थोड़ी सी गल्ती होने या गल्ती नहीं होने पर भी, सीता देवी के कलंक जैसी विभिन्न बातें चल सकती हैं। विद्ध शाक्तगण हमेशा के लिए ही वैष्णव विद्वेषी होते हैं। परंतु

Transcendental Religion
is not meant
for mundane society.

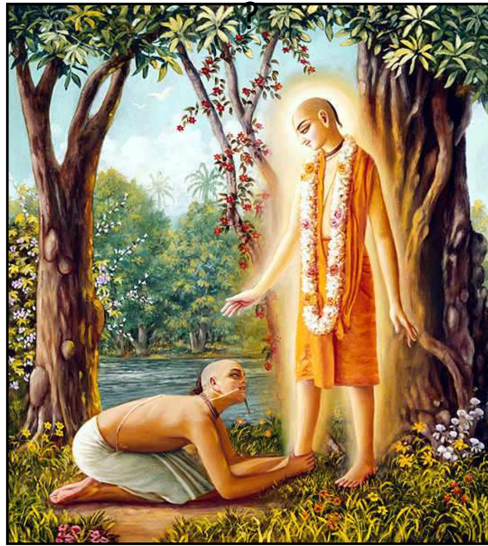
श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती
गोस्वामी प्रभुपाद

(श्रील प्रभुपाद की पत्रावली,
तृतीय खण्ड, सप्तम पृष्ठ से उद्धृत)

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 3



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
5-10-2010

मेरे प्रेमास्पद, भक्तगण,

मुझ अधम का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

भगवान् की अभयवाणी

"मेरे प्रेमास्पद! तू मेरा है। मैं तेरा हूँ। सारा जगत् झूठा है। मैं नामरूप से अवतरित होकर तुझे लेने आया हूँ। तू मेरा नाम ले। तू मेरा नाम ले। तेरा सारा दुःख समाप्त हो जायेगा। तू सदा सदा के लिये आनंद की लहरों में तैरने लग जायेगा। मैं ही तीर्थ हूँ। मैं ही पुण्य हूँ। मेरा नाम ही तपस्या है। मेरा नाम ही परम धर्म है। मेरा नाम ही परमभक्ति है। मेरा नाम ही परमगति है। इसलिये बार-बार तुम्हें एक ही बात कहता हूँ -

मेरा नाम करो। कान से सुनो।"

प्रेमास्पद भक्तगणों! भगवान् की उपरोक्त वाणी पर गंभीरता से विचार करो। भगवान् हमें क्या कह रहे हैं ? सार तत्व क्या है ? इसका मतलब क्या है ?

मेरे गुरुदेव इस बात को समझा रहे हैं! ध्यान से सुनो-"भगवान् कह रहे हैं कि जिसने मेरे नाम का सहारा ले लिया, उसके लिये फिर कुछ करना बाकी नहीं रह गया क्योंकि नाम रूप में भगवान् ही तो साक्षात् विराजमान हैं। नाम और नामी में कोई अन्तर है ही नहीं। जिसने हरिनाम की शरण ले ली, उसे भगवान् की शरण मिल गई और जिसे भगवान् ने अपने चरणकमलों में रख लिया, उसको फिर कुछ भी करना बाकी नहीं रह गया। नाम करने से ही उसे सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।

मेरा नाम करो। कान से सुनो।

इसका मतलब है कि आप –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करो। इसका कीर्तन करो। जब आप जप करो तो मुख से उच्चारण करो। अनुराग से नाम जपो। बड़े प्रेम से जप करो और कानों से सुनो।

Chant Harinam sweetly & listen by ears.

और जब इस महामंत्र का कीर्तन करो तो इसकी ध्वनि से, अपने चारों ओर के वातावरण को कृष्णमय बना दो। सुनने वालों के कान, देखने वालों की आंखें और बोलने वालों का मुख पवित्र हो जाये। सारा वातावरण पावन कृष्ण नाम से गूंज उठे, ऐसा मधुर, मधुरतम्, मधुरातिमधुर कीर्तन करो! इतना मधुर कीर्तन करना, इतना मधुर कीर्तन करना कि सारा संसार उस मधुर रस से सराबोर हो जाये। सारी सृष्टि मधुरतम लगने लगे और उसी माधुर्य रस में हमें अपने प्राणनाथ! अपने प्रियतम्! जीवनधन! प्राणधन! परमधन! श्री श्री राधा गोविंद देव जी की रूपमाधुरी के दर्शन होने लगें।"

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों की रचना से पहले कुछ भी नहीं था। सबसे पहले भगवान् ने अपनी नाभि से एक कमल पुष्प प्रकट किया। उस समय भगवान् क्षीर सागर में शयन कर रहे थे। उस कमल के ऊपर ही ब्रह्मा जी का आविर्भाव (जन्म) हुआ। सृष्टिकर्ता, लोकपाल ब्रह्मा ने देखा कि मेरे चारों ओर जल ही जल है जिसमें बड़ी–बड़ी लहरें उठ रही हैं। तब ब्रह्मा जी ने विचार किया कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? इस बात का पता लगाने के लिये वे कमल की नाल में घुस गये। जहां तक कमल की नाल (डंडी) जा सकती थी, वहाँ तक खोज की पर कुछ भी पता न पा सके। अंत में, वापस आकर कमल के ऊपर बैठ गये और सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? जब वे यह विचार कर रहे थे तभी एक आवाज आई "तप ! तप!"–ब्रह्मा जी ने जब इस आकाशवाणी को

सुना तो समझ गये कि भगवान् मुझे तपस्या करने को कह रहे हैं अर्थात् वह कह रहे हैं कि तू मुझे याद कर।"

तब ब्रह्मा जी ने भगवान् को याद किया और बड़े आर्तभाव से भगवान् के परम, पवित्र, पावन नाम का जप किया। आर्तभाव से, प्रेम से जप करने पर भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने आदेश दिया–"सृष्टि का विस्तार करो।" भगवान् के आदेश का पालन करके, जब ब्रह्मा जी ने सृष्टि का विस्तार करना शुरू किया तो सृष्टि के प्राणी उन्हीं (ब्रह्मा जी) को खाने के लिये दौड़े। तब तो परेशान होकर ब्रह्मा जी पुकारने लगे कि जिसने मुझे पैदा किया है। वह मेरी रक्षा करे। मुझे बचा ले।

तब भगवान् ने ब्रह्मा जी को उस सृष्टि की रचना बन्द करने को कहा और पुनः सृष्टि की रचना करने की आज्ञा दी।

जब ब्रह्मा जी ने बड़ी सोचविचार के बाद पुनः सृष्टि की रचना करनी शुरू की तब उनके मन से नारद जी प्रकट हुये। फिर सप्तऋषियों का प्राकट्य हुआ। इन सप्तऋषियों से सारा संसार भर गया। यहीं से कुल परम्परा का प्रारंभ हुआ। समय के साथ–साथ इन्हीं कुल परम्पराओं का विस्तार होता गया। इन कुल परम्पराओं के अन्तर्गत, यदि कोई अपने कुल में ही शादी–विवाह करता है तो उसे शुद्ध, सात्विक तथा यशस्वी संतान प्राप्त होती है। इसके विपरीत जो दूसरे कुल में विवाह करता है, वह व्यभिचार दोष से आक्रान्त हो जाता है।

सृष्टि के आरंभ में, सृष्टि की रचना मन से हुआ करती थी। कालांतर में स्त्री–पुरुष के संग से संतान की उत्पत्ति होने लगी। इस प्रकार ब्रह्मा जी से कुल परम्परा शुरू हुई। सबसे पहले जो ज्ञान भगवान् ने ब्रह्मा जी को दिया, वही ज्ञान हमें गुरु परम्परा द्वारा आज भी प्राप्त है। ब्रह्मा जी सबसे पहले गुरु हैं। ब्रह्मा जी की इस परम्परा से, जो भी जुड़ जाता है, वह व्यभिचार दोष से बच जाता है। जो इस कड़ी से न जुड़कर दूसरी कड़ी (परम्परा) से जुड़ जाता है, उसे व्यभिचार का दोष लग जाता है। यह शास्त्र का वचन

है। जो इसके अनुसार नहीं चलता, वह दुःख सागर में गोते खाता है।

मानव शांतिमय, सुखी एवं भक्तिमय जीवन जी सके इसलिए श्री भगवान् ने सभी शास्त्रों की रचना अपने मुखारविंद से की है। जो इन शास्त्रों के अनुसार नहीं चलता उसे वर्णशंकरता का दोष लगता है। उसका पतन होने लगता है। ऐसे मनुष्य को कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि विजातीय होने पर सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुख की प्राप्ति तो सजातीय से जुड़ने पर ही हुआ करती है। यदि कोई शास्त्रों की वाणी को न मानकर अपनी मनमानी करता है तो उसे स्वप्न में भी कभी सुख नहीं मिल सकता। विजातीय होना ही दुःख का कारण है।

मेरे श्रील गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट, परमपूज्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज 'विष्णुपाद' ब्रह्मा जी की इसी गुरु परम्परा में आते हैं और मेरे गुरुभ्राता, अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ संस्थान के वर्तमान आचार्य, परम पूज्य ॐ विष्णुपाद 108 त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज, इसी गुरु परम्परा में इस धराधाम पर विराजमान हैं। जो भी साधक इस प्रामाणिक गुरु परम्परा की कड़ी में जुड़ गया, उसका उद्धार अवश्यमेव होगा। वह सदा–सदा के लिये जन्म–मरण के दारुण दुःखों से छूट जायेगा तथा उसे निश्चित् रूप से भगवद्धाम (गोलोकधाम) की प्राप्ति हो जायेगी। यदि कोई प्रामाणिक गुरु–परम्परा में दीक्षित होता है तो पूरी गुरु–परम्परा उसकी रक्षा करती है। उसे शक्ति प्रदान करती है जिसे प्राप्त कर वह अपने जीवन का परमलक्ष्य 'श्रीकृष्ण प्रेम' प्राप्त कर लेता है और अंततः भगवद्धाम को जाता है। पर जो प्रामाणिक गुरु–परम्परा से हट जाता है, जो मुख्य कड़ी से टूट जाता है, उसकी गुरु–परम्परा खंडित हो जाती है। ऐसे मनसुख को सुख की प्राप्ति नहीं होती।

मंदिर बनाने से भगवान् नहीं मिलते। मंदिर तो भगवान् की अर्चना–पूजा का एक दिव्य स्थान है। यदि इन मंदिरों में विराजमान

ठाकुर जी की अर्चना, पूजा प्रेम से नहीं होगी तो अपराध लगता है। भगवान् की पूजा–अर्चना प्रेम से कहाँ होती है? जब तक एक लाख हरिनाम नहीं होगा, कोई भी सेवा या पूजा प्रेममयी व रसमयी नहीं होगी। जब भगवान् ही प्रसन्न नहीं होंगे तो ऐसी पूजा का क्या फायदा! भगवान् हरिनाम से ही प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता का एकमात्र कारण है–हरिनाम। इस कलियुग का एकमात्र धर्म ही प्रेम से हरिनाम करना है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

"कलियुग में हरिनाम, एक मात्र हरिनाम और केवल हरिनाम ही सार है। इसके बिना दूसरी कोई गति नहीं है। नहीं है। नहीं है।"

जब गुरु ही हरिनाम नहीं करेगा तो शिष्यवर्ग की रुचि हरिनाम में कैसे होगी? जब तक स्वयं का आचरण हरिनाम करने का नहीं होगा तब तक शिष्यवर्ग भी हरिनाम का आचरण कैसे करेगा? यदि इस बात को गंभीरता से देखा जाये, इसका सही मूल्यांकन किया जाये, तो सारी तस्वीर सामने प्रकट हो जाये। वास्तव में देखा जाये तो भगवान् को कोई चाहता ही नहीं है। हमारे मनों के भीतर, कंचन (धन–सम्पति), कामिनी (स्त्री–संग) तथा प्रतिष्ठा (नाम कमाने की लालसा) की कामना भरी हुई है। भगवान् के नाम की आड़ में हम अपनी इस छुपी हुई, अत्यन्त सूक्ष्म भावना की ही पूर्ति करते हैं। जो इन तीनों में (कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा) में लिप्त है, वह भगवत् प्रेम से बहुत दूर है। तभी तो भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि करोड़ों में से, कोई एक विरला ही मुझे चाहता है, मुझे प्राप्त करता है। भगवान् की रसमयी सेवा हो, प्रेममयी सेवा हो, इसके लिये सबसे जरूरी बात है कि साधकगण प्रेम से हरिनाम करें, मुख से उच्चारण करें और कानों से सुनें। एक लाख हरिनाम (64 माला) करने के बाद जो भी सेवा होगी, वह रसमयी हो जायेगी और भगवान् ऐसी सेवा पूजा से प्रसन्न हो जाएँगे। मंदिरों का निर्माण इसी उद्देश्य से किया गया

है ताकि अधिक से अधिक लोग हरिनाम में लगें, जो इस मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

श्री हरिनाम की शरण लेने से "इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति" हो सकती है जो कि इस पुस्तक का शीर्षक है। हरिनाम की शरण लिये बिना भगवद् प्राप्ति का दूसरा कोई साधन, इस कलियुग में है ही नहीं। दूध को मथने से ही घी निकलेगा। पानी को जितना चाहो, मथो, घी कभी नहीं निकल सकता। यह ध्रुव सत्य है।

यह जीवन अति दुर्लभ है। संसार के प्रलोभनों में फँसकर, हमें न सुख की प्राप्ति होती है और न ही हम अपने समय का सदुपयोग कर पा रहे हैं। जीवन का एक-एक अमूल्य क्षण बड़ी तेजी से बीतता जा रहा है। हर दिन हम मृत्यु की ओर बढ़ते जा रहे हैं, फिर भी हमें होश नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं –

विषय हलाहले, दिवानिशि हिया ज्वले,
मन कभु सुख नाहिं पाय।

मनुष्य सब कुछ जानता है पर जानकर भी अनजान बना हुआ है। यही उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है। अज्ञानता है। उसका दुर्भाग्य है। भगवान् तो दया के सागर हैं और उन्होंने अपनी सारी शक्ति अपने नाम में रख दी है। इस हरिनाम को करने के लिये कोई शर्त नहीं रखी। कोई नियम नहीं। कोई समय की पाबंदी नहीं।

खाइते-शुइते यथा तथा नाम लय।
देश-काल-नियम नाहिं सर्वसिद्धि हय।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

सकल शक्ति देइ नामे तोहारा
ग्रहणे राखलि नाहि काल विचारा
श्री नाम चिन्तामणि तोहारि समाना।
विश्वे बिलाओलि करुणा निधाना।।
तुया दया ऐछन परम उदारा।
अतिशय मंद, नाथ! भाग हमारा।

(श्रीश्रील भक्ति विनोद ठाकुर)

हमारी गुरु–परम्परा में हमारे गुरुवर्ग ने हमें बार–बार चेताया है, जगाया है–'जीव जागो। जीव जागो।' पर हम फिर भी सोये हुये हैं। हे साधकगणो! बहुत समय बरबाद हो गया। अब तो संभल जाओ। जो समय बीत गया वह तो वापस हाथ नहीं आ सकता पर जो थोड़ा–बहुत बचा है, उसका तो सदुपयोग कर लो। अभी भी यदि हरिनाम की शरण ले लोगे तो बेड़ा पार हो जायेगा।

कई कल्प बीत जाने के बाद, कई ब्रह्माओं की जीवन अवधियाँ समाप्त हो जाने के बाद, भगवान् की अहैतुकी कृपा से यह मनुष्य का शरीर मिलता है। आगे जाकर मनुष्य का यह दुर्लभ शरीर कलियुग में ही मिलेगा इसकी भी कोई गारंटी नहीं है। यदि कलियुग में मिल भी गया तो भारतवर्ष में हो, अच्छे कुल–परिवार में हो, अच्छे सत्संग में हो, इसकी भी कोई गारंटी नहीं। यदि मानव शरीर प्राप्त करके कुसंग में फंस गये, फिर भी जीवन व्यर्थ। मनुष्य जन्म भी मिल गया, भारतवर्ष में पैदा भी हो गये, अच्छा परिवार भी मिल गया, सत्संग भी मिला, और सद्गुरु (वैष्णव गुरु) की प्राप्ति भी हो गई, फिर तो हमारा जीवन सफल हो जायेगा। अन्यथा जो कुछ होगा, जो हो रहा है और जो आगे होगा वह सामने आ जाएगा। प्रामाणिक गुरु की शरण लेकर, उनकी आज्ञानुसार ही भक्ति मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है। मनमानी करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। प्रत्यक्ष में देखने व सुनने में आया है कि जो भी धर्म शास्त्र के विरुद्ध अपना जीवनयापन कर रहे हैं, उनकी दुर्गति आज नहीं तो कल होने वाली है। इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं। मंदिर बनाने वाले कई संत जब भी मिलते हैं तो कहते हैं कि हमने मंदिर तो बना लिये हैं वह हमारा हरिनाम तो होता ही नहीं। हरिनाम करने में मन ही नहीं लगता। हरिनाम में रुचि ही नहीं है। इसका एकमात्र कारण यही है कि मंदिर में रसमयी सेवा नहीं हो रही है, इसलिये वहाँ अपराध पर अपराध हो रहे हैं। ऐसे लोगों से भगवान् कोसों दूर हैं।

यदि हरिनाम में मन लग रहा है, बार–बार हरिनाम करने को मन करता है, भजन करने में आनन्द आता है, अष्टविकार पैदा हो रहे हैं, तो घर ही मंदिर है। मंदिरों का निर्माण सुख पूर्वक हरिनाम करने के लिये हुआ है। मंदिर खाने–पीने, सोने या मस्ती करने के लिये या पैसा बटोरकर आराम फरमाने के लिये नहीं है। यह परम पवित्र स्थान, भगवद्धाम की ही प्रतिमूर्ति हैं। यहां आकर यदि भजन नहीं किया तो फिर घर–परिवार छोड़ने का क्या फायदा? इससे तो अच्छा होता गृहस्थ में रहकर भजन करते, साधु–सेवा करते तो भगवान् घर में ही मिल जाते। भगवान् को ढूँढने के लिये कहीं जाने की जरूरत नहीं है। और यदि ढूँढने जाओगे भी, तो कहाँ ढूँढोंगे उसे? उसे ढूँढ भी सकोगे, इसकी भी क्या गारंटी है? घर में रहकर, अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुये, माता–पिता की सेवा करते हुये, बच्चों का पालन–पोषण करते हुये, अपनी ईमानदारी की कमाई से यथाशक्ति साधु–वैष्णव की सेवा करने से, घर ही स्वर्ग बन जायेगा। सारा परिवार भक्ति में लग जायेगा। जब सारा परिवार भक्ति में लीन होगा तो भगवान् स्वयं अपने भक्तों को ढूँढते–ढूँढते आ जाएंगे। आपको उन्हें ढूँढना नहीं पड़ेगा।

Do not try to see God but work in such a way that God wants to see you.

"भगवान् को देखने की कोशिश न करो बल्कि ऐसे कार्य करो कि भगवान स्वयं तुम्हें देखने आयें।"

भगवान् को प्रसन्न करने की एकमात्र युक्ति है– साधु सेवा। इससे भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक बहुत से गृहस्थी भक्तों को भगवान् मिले हैं। भगवान् ने उनकी रक्षा की है। उनको दुःखों से उबारा है। उनकी लाज बचाई है। भगवान् हम से दूर नहीं है। बेईमानी से धन कमा लिया और इन्द्रियों की संतुष्टि कर ली, विषय–विकारों में जीवन बरबाद कर दिया। ऐसे दुर्भागे को भगवान् कहाँ मिलेंगे?

जयपुर (राजस्थान) के राजा ने मेरे सद्गुरु महाराज को मन्दिर बनाने के लिये बहुत अच्छी जमीन देने की पेशकश की थी पर मेरे गुरुदेव ने जमीन लेने से मना कर दिया था। मना क्यों किया ? उन्होंने राजा से कहा, "भगवान् की प्रेममयी सेवा–पूजा करने के लिये मेरे पास भगवत्–प्रेमी संन्यासी नहीं हैं। इसीलिये मन्दिर बना लेने पर भी सुचारु रूप से रसमयी सेवा–पूजा तो होगी नहीं और मुझे जघन्य अपराध लगेगा। इसलिये मैं जमीन लेकर क्या करूँगा। मुझे आपकी जमीन नहीं चाहिये।"

श्रील गुरुदेव की बात सुनकर राजा ने कहा कि संन्यासी तो जमीन लेने के लिये लालायित रहते हैं और आप मना कर रहे हो। मेरे लिये यह आश्चर्य की बात है। मुझे अचम्भा हो रहा है। तब श्री गुरुदेव ने कहा–"मुझे यहां मन्दिर नहीं बनाना है। आप यह जमीन किसी और महात्मा को दे देना।"

इस समय कलियुग का पूरा प्रभाव है। दया, धर्म तो मूलसहित नष्ट हो गया। पैसा ही मुख्य रह गया। थोड़े से पैसों के लिये मानव का गला घोंट दिया जाता है। किसी का डर नहीं, भय नहीं। रक्षक ही भक्षक बन गये हैं। सब ओर डर ही डर है। पैसे के लिये पुत्र, पिता को और भाई–भाई को मार देता है। शादी–विवाह भी मनमाने ढंग से हो रहे हैं। सजातीय की कमी नहीं है, फिर भी स्वार्थवश, केवल शारीरिक सुंदरता या पैसे के आधार पर स्त्री–पुरुष अपना संबंध बना रहे हैं और पूरी जिंदगी नरक बना रहे हैं। सारा जीवन लड़ाई–झगड़े, मारपीट में बीतता है। तलाक की नौबत आ जाती है। पति–पत्नी का पावन बंधन टूट जाता है। यह सब इसलिये हो रहा है कि हम सजातीय से संबंध नहीं बनाते। कबूतरी का विवाह कौवे से कर दिया जाये तो विजातीय होने से, उन दोनों में प्रेम–संबंध नहीं हो सकता।

राजस्थान में अभी तक कुल परम्परा कायम है। यहां विवाह से पहले लड़के–लड़की की कुण्डली का मिलान किया जाता है तब शादी तय होती है और फिर ऐसा विवाह–बधंन (प्रणय–सूत्र) सदैव

मंगलमयी होता है। ऐसे दम्पति का जीवन आनंदमय बीतता है। सती स्त्रियों का प्राकट्य होता है। मेरे पोते तथा पोती के संबंध को बनाने में तीन साल लग गये। जब कुण्डलियों का मिलान हुआ तो जाकर संबंध पक्का हुआ।

पतिव्रता स्त्री ही पति की सेवा कर सकती है। विजातीय पति–पत्नी के बीच में प्रेम नाममात्र होता है या फिर स्वार्थवश। बड़े–बड़े शहरों तथा गांवों में आज क्या हो रहा है? स्त्री पति का गला घोंटकर मार देती है। पति उसे पशुओं की तरह मारता है, पीटता है। वर्णशंकर बढ़ता जा रहा है। व्यभिचारियों की कोई कमी नहीं है। सहशिक्षा ने सभी मर्यादाओं को तहस–नहस कर दिया है। टेलीविजन पर मनोरंजन के नाम पर जो दिखाया जाता है, उसे देखकर ही शर्म आने लगती है। पैसे कमाने के चक्कर में धार्मिक कार्यक्रम भी दिखाये जाते हैं जिनमें कार्यक्रम कम, विज्ञापन ज्यादा होते हैं। भगवान् के नाम पर जो परोसा जाता है, जो दिखाया जाता है, वह वास्तविकता से मेल ही नहीं खाता फिर भी, हम अपना पैसा, अपना समय बरबाद कर रहे हैं और नरक में जाने की तैयारी कर रहे हैं।

सजातीय और विजातीय के अंतर को श्रील गुरुदेव एक उदाहरण देकर समझा रहे हैं। जब किसी मरीज में खून की कमी हो जाती है या उसका आपरेशन करना होता है तो डाक्टर मरीज के खून से मेल खाने वाला खून ही चढ़ाता है। उसी ब्लॅड ग्रुप का खून मरीज को चढ़ाया जाता है। दूसरे का नहीं। यदि दूसरे ग्रुप का खून चढ़ गया तो मरीज की मृत्यु हो सकती है। इसलिये उसी ग्रुप का खून होना जरूरी होता है। इसी प्रकार सजातीय (एक ही तरह के) में विवाह होने से ही जीवन सुखमय होगा, विजातीय से नहीं।

यह तो रही विवाह–शादी की बात। यही नियम गुरु–शिष्य पर भी लागू होता है। यदि गुरु–परम्परा से संबंध टूट गया हो, भगवान् श्रीकृष्ण से चली आ रही गुरु–परम्परा में, प्रामाणिक–गुरु से दीक्षा–मंत्र नहीं मिला हो तो ऐसे साधक का गुरु–परम्परा से संबंध

न होने से उसका उद्धार होने में संदेह रहता है ऐसा अप्रमाणिक गुरु शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन करता है। वह गुरु–परम्परा की कड़ी से अलग हो गया। ऐसे अप्रामाणिक गुरु के शिष्य को भगवान् अंगीकार नहीं करते क्योंकि उसने भागवत धर्म को माना ही नहीं। यदि ऐसा शिष्य किसी दूसरी परम्परा से जुड़ गया तो उसे व्यभिचारी दोष अर्थात् वर्णशंकरता का दोष लगेगा। जो भी साधक या वैष्णव, अपनी मनमानी कर मन्दिर बना रहे हैं, शिष्य बना रहे हैं, वे भगवान् के पंचम–पुरुषार्थ 'श्री कृष्ण–प्रेम' अर्थात् अष्ट–विकार से वंचित रह जाते हैं। उनका अगला जन्म मनुष्य का होगा, इसमें भी संदेह रहता है। भागवत शास्त्र का उल्लंघन करने से, वे जघन्य अपराधों में फंस जाते हैं। एक दूसरे की निंदा–स्तुति में लग जाते हैं। इन्हीं दुर्गुणों से उनका पतन होने लगता है। ऐसे साधक का उद्धार होना असंभव ही होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है–"सात्विक अष्ट विकारों का न होना" कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा ही उनकी कमाई है। भक्ति तो उनसे बहुत दूर रहती है। ऐसे लोग इसी जन्म में सद्मार्ग से नीचे गिर जाते हैं और उनका पतन हो जाता है।

कलियुग से बचने का एकमात्र सरल साधन केवल हरिनाम ही है। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु जी की वाणी है कि जिसकी हरिनाम में रुचि नहीं, जो हरिनाम नहीं करता उसका उद्धार हो ही नहीं सकता। चारों युगों में नाम की महिमा का ही महत्व है। विशेषकर कलियुग में तो यही एक आधार है–

कलियुग केवल नाम अधारा

नाम के बिना संसार का काम ही नहीं चल सकता। भरत जी ने, माता सीता ने, हमारे गुरुवर्ग ने केवल हरिनाम का ही सहारा लिया। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बताया कि मानव का मुख्य धर्म, खाना–पीना, सोना या इन्द्रिय तृप्ति करना नहीं है। जिसने हमें जन्म दिया है, उसे याद करना, उसका भजन करना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है। यही जीवन का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये मंदिर बनाये गये हैं ताकि वहां वास करने वाले सभी

साधकगण हरिनाम करें, संकीर्तन करें। भगवान् श्री श्री राधा कृष्ण जी, श्री श्री सीता राम जी को जान पायें। महाप्रभु ने कृपा करके, हमें मंदिर के रूप में साधन-भजन करने का एक दिव्य स्थान उपलब्ध करवाया है। इन मंदिरों में रहकर, जो हरिनाम की शरण में रहेगा, उसकी सदा ही जय होगी।

परम विजयते श्री कृष्ण संकीर्तनम्।

(श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक)

श्री चैतन्य चरितामृत के इन शब्दों का कीर्तन करते हुए मैं इस व्यक्तव्य को विश्राम देता हूँ। आओ। आप भी मेरे साथ गाओ।

नाम संकीर्तने हय सर्वानर्थ नाश।
सर्व शुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास
संकीर्तन हैते-पाप-संसार-नाशन।
चित्त शुद्धि, सर्व भक्ति साधन-उद्गम।
कृष्ण प्रेमोद्गम, प्रेमामृत आस्वादन
कृष्ण प्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !
निताई गौर हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !

आपका शुभचिंतक अनिरुद्ध दास

निरंतर या'र मुखे शुनि कृष्णनाम
सेइ से वैष्णवतर सर्वगुणधाम

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से निरंतर कृष्ण-नाम सुनाई पड़ता है अर्थात् जो निरंतर श्रीकृष्ण-नाम करता रहता है – वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा वैष्णव सभी गुणों की खान होता है

2

भ्रूण हत्या घोर अपराध है

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो
कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्

(श्रीमद्भागवतम् 1.8.10)

'हे प्रभु! आप सर्वशक्तिमान् हैं। अग्नि के समान लोहे का एक बाण मेरी ओर तेजी से आ रहा है। हे मेरे प्रभु! यदि आपकी इच्छा हो तो अग्नि के समान लोहे का यह बाण, मुझे जलाकर भले ही राख कर दे पर यह मेरे गर्भ को जलाकर गर्भपात न करे। हे भक्तवत्सल! आप कृपया मेरे लिये इतना अवश्य करें।"

यह घटना महाभारत की है। अभिमन्यु युद्ध में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो चुका है। उसकी विधवा पत्नि उत्तरा चाहती तो अपने पति का अनुसरण करती हुई सती हो जातीं लेकिन उसने ऐसा नहीं किया क्योंकि वह एक महान् राजा की पुत्री, एक वीर की पत्नी और एक महान भक्त की शिष्या थीं। बाद में वह एक महान राजा (परीक्षित) की मां भी बनी। वह सभी प्रकार से भाग्यशाली तो थी ही साथ ही अपने परम धर्म का पालन करना जानती थी। क्योंकि कुरुक्षेत्र के युद्ध में धृतराष्ट्र के सारे पुत्र तथा पौत्र मारे जा चुके थे और द्रोणाचार्य के पुत्र, अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों के सिरों को काट दिया था, अतएव, कुरुवंश का अंतिम पुत्र, उत्तरा के गर्भ में था, इसलिये उत्तरा ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र की हर प्रकार से रक्षा करें। उसे बचा लें। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं तथा परमपूर्ण हैं। उन्होंने अपनी निजी शक्ति से उत्तरा के गर्भ को ढक दिया। अश्वत्थामा द्वारा छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र नष्ट कर दिया और कुरुवंश की अंतिम संतान की रक्षा की। उत्तरा का यह गर्भस्थ शिशु बाद में अत्यन्त बुद्धिमान एवं परमभक्त महाराज परीक्षित के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

महाभारत की यह घटना बहुत महत्वपूर्ण है और सभी माताओं को एक शिक्षा देती है कि अपने मातृ–धर्म को समझें। गर्भ की हर प्रकार से रक्षा करना उनका परम धर्म है। माता के ऊपर यह एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी होती है। अपने शिशु की रक्षा के लिये, अभिमन्यु की पत्नी, उत्तरा ने, भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी बात कहने में जरा भी लज्जा नहीं की, संकोच नहीं किया और वह अपने पुत्र की रक्षा कर पाई और महान राजा, परमभक्त की माँ कहलाई। गर्भ में पल रहा शिशु हमारे लिये, हमारे परिवार के लिये, हमारे कुल, देश एवं विश्व के लिये कितना महत्त्वपूर्ण है, इसका हमें कुछ नहीं पता। कौन जानता है कि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये, अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिये, हम जिस गर्भस्थ शिशु को जीवित ही मार देते हैं, भविष्य में वह कितना महान् हो सकता है।

आजकल भ्रूणहत्या एक फैशन बन गया है। क्या अनपढ़, क्या पढ़े–लिखे, सभी माता–पिता भ्रूण हत्या कर रहे हैं। यह एक जघन्य अपराध है। भ्रूणहत्या से बड़ा जघन्य अपराध कोई नहीं है। यह अपराध इतना बड़ा है कि जो भी इसे करता है या करवाता है, उसे अनंत युगों तक मनुष्य देह की प्राप्ति नहीं होती। भगवान् की अहैतुकी कृपा से चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने के बाद मनुष्य का जन्म मिलता है जो अति दुर्लभ है और जिसे प्राप्त करने में कई कल्प बीत जाते हैं। इतना दुर्लभ अवसर पाकर, जब जीव माता के गर्भ में आता है तो निर्दयी माता–पिता उसे पैदा होने से पहले ही नष्ट कर देते हैं, जन्म से पहले ही मार देते हैं। ऐसे निर्दयी माता–पिता (दम्पति) के लिये भगवान् ने एक विशेष दण्ड निश्चित कर रखा है। उन्हें अनेकों युगों तक रौरव नामक नरक में भेजा जाता है जहां उन्हें अकथनीय, दारुण दुःखों को भोगना पड़ता है। युगों–युगों तक रौरव नामक नरक के दुःख भोगने के बाद जब ऐसी निर्दयी दम्पति, माता–पिता को भगवद्कृपा से पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति होती है तब स्त्री बांझ रहती है, उसके संतान नहीं

होती और पुरुष नपुंसक होता है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी उन्हें शांति नहीं मिलती। कोई न कोई रोग उन्हें लग जाता है। उनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे स्त्री–पुरुष को स्वप्न में भी शांति नसीब नहीं होती।

भगवान् बहुत दयालु हैं। जब कृपा करके वे किसी भी जीव की उत्पत्ति करते हैं तो उसके खाने–पीने एवं रहने की सारी व्यवस्था उसके कर्मानुसार करते हैं। वे जिसको जन्म देते हैं, उसका पालन भी करते हैं। जन्म लेने से पहले ही बच्चे की माता के स्तनों में दूध की व्यवस्था उन्हीं द्वारा की जाती है। यह सब जानते हुये भी हम इतने निर्दयी क्यों बन जाते हैं ? गर्भस्थ शिशु लड़का हो या लड़की, इसकी चिंता न करते हुये, उसकी रक्षा करने की जिम्मेवारी को समझते हुये, हमें अपने कर्तव्य का पालन करना होता है, लेकिन हम अज्ञानतावश उसके भविष्य की चिंता करके, उसे लड़की समझ कर, जन्म लेने से पहले ही मार देते हैं। यह बहुत बड़ी नासमझी है, मूर्खता है, घोर अपराध है। इस घोर अपराध की सजा, इस जघन्य अपराध का भोग, जब भोगना पड़ेगा तो आत्मा काँप उठेगी। उस वक्त कोई भी नहीं बचा पायेगा। इसलिए, अभी भी समय है। संभल जाओ। होश करो। मेरे गुरुदेव सबको समझा रहे हैं। सबको सावधान कर रहे हैं।

कई बार देखने में आता है कि किसी गरीब माँ–बाप के घर दस लड़कियाँ हो जाती हैं, तब भी उनका विवाह अच्छे, सुसंस्कृत एवं सम्पन्न परिवारों में हो जाता है और उनके माँ–बाप सुखी रहते हैं। इसके विपरीत जिनके एक भी कन्या नहीं है, लड़के ही लड़के हैं, ऐसे माता–पिता को रोटी भी नसीब नहीं होती। वे भूखे–प्यासे मरते देखे जाते हैं। कैसी विडम्बना है!

सूअरी के बारह बच्चे होते हैं और कुतिया आठ बच्चों को जन्म देती है फिर भी उनके बच्चों का पालन पोषण तथा रक्षा करती है। समय के साथ वे भी बड़े होते हैं। बैया एक छोटा–सा पक्षी है जो ऐसा सुंदर घोंसला बनाता है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। उस

घोंसले की बनावट इतनी सुंदर होती है कि लोग उसे सजावट के लिये अपने घरों में लगाते हैं। बैया नाम का यह पक्षी, उस घोंसले को कुएं के बीच बनाता है या पेड़ के ऊपर ताकि कोई भी उसके बच्चों को खा न ले। उसके बच्चे कुएं में गिरते भी नहीं हैं, कैसी हैरान करने वाली बात है। उसे ये बुद्धि भगवान् ही तो देते हैं। भगवान् ने सभी प्राणियों को बुद्धि दी है, ज्ञान दिया है जिससे सारी सृष्टि का कार्य चल रहा है पर दुर्भाग्यवश, अज्ञानतावश कुछ माता–पिता इस बुद्धि का दुरुपयोग कर भ्रूण हत्या कर रहे हैं। जीवों की हत्या कर रहे हैं। यह बहुत बड़ी मूर्खता है।

जरा विचार करो कि कितने युगों बाद, चौरासी लाख योनियों में केवल एक बार मनुष्य जन्म मिलता है जिस दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त कर मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। अपने असली घर वापस जा सकता है। अपने प्रियतम भगवान् की गोद में बैठ सकता है पर वह क्या कर रहा है? वह ऐसे–ऐसे घृणित काम करता है, बुरे काम करता है जो कोई दूसरा जीव नहीं करता। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है। उसे मनुष्य का जन्म तो दूसरे जीवों के हित के लिये, उनकी रक्षा के लिये मिला है लेकिन वह दूसरों का अहित करके, उनको सताकर, उनकी हत्या करके सुखी रहने की कल्पना करता है। कितना अज्ञानी है! कितना मूर्ख है! ऐसे इंसान को स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो दूसरों को दुःख देता है, उसे परिणामस्वरूप दुःख ही तो मिलेगा। जैसा करोगे, वैसा भरोगे? जैसा बोओगे वैसा काटोगे।

मनुष्य जो भी साधन करता है या भक्ति करता है, भ्रूण हत्या करने से वह सब जड़ से ही नष्ट हो जाती है। इसलिये यदि किसी को सुख नहीं दे सकते तो कम से कम दुःख भी न दो। एक बीज बोने से जो पौधा उगता है, उससे उसी प्रकार के हजारों बीज प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार दुःख का बीज बोओगे तो हजारों गुणा दुःख की प्राप्ति होगी और यदि सुख का बीज बोओगे तो हजारों गुणा सुख प्राप्त होगा। इसी प्रकार यदि दूसरों के हृदय में हरिनाम का

बीज बोओगे तो उसका अनन्तगुणा फल प्राप्त होगा अर्थात् भगवान् के चरणों में मन अधिक लगेगा। इसलिये सभी का हित करो। अपना भी भला, दूसरों का भी भला। मनुष्य जन्म प्राप्त करके जो कोई भी भ्रूण हत्या करता है या करवाता है, उसे तो स्वप्न में भी हरिनाम में रुचि नहीं हो सकती। हरिनाम क्या है ? साक्षात् श्री कृष्ण ही तो हैं। डॉक्टर जब भ्रूण हत्या करने के लिये तेजधार वाले औजार गर्भ में डालता है तो गर्भस्थ शिशु तड़पता है। उसे कष्ट होता है, अपनी रक्षा वह स्वयं नहीं कर सकता पर उसे पता होता है, उसे ज्ञान होता है कि कोई उसे मार रहा है। वह गर्भ में सिकुड़ जाता है। उसके बचने का कोई उपाय नहीं है। वह बेबस है, असहाय है, लाचार है। कुछ रुपयों के लिये, निर्दयी डॉक्टर गर्भ में पल रहे उस शिशु के शरीर को छोटे–छोटे सैंकड़ों टुकड़ों में काटता है, बड़ी बेरहमी से उसे तड़पाता है और इस प्रकार छटपटाता हुआ, तड़पता हुआ वह असहाय शिशु, खून और मांस के टुकड़ों में काट दिया जाता है। बड़ी मुश्किल से उसके प्राण निकलते हैं। ऐसा कष्ट तो मनुष्य को मृत्यु के समय भी नहीं होता। ऐसे जल्लाद की, ऐसे निर्दयी की, भगवान् के नाम में रुचि कैसे हो सकती है ?

इसलिये साधकगणो! सावधान हो जाओ! भूलकर भी भ्रूण हत्या नहीं करना अन्यथा सारी साधना, सारी भक्ति मिट्टी में मिल जायेगी और भविष्य अंधकारमय हो जायेगा। इस जनम में तो कष्ट भोगोगे ही, अगले हजारों युगों तक, जो कष्ट मिलेगा, उसका अंत नहीं। इसलिये अपने कर्मानुसार जो जीव गर्भ में आता है। वह अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता। उसकी रक्षा करो। उसे जन्म लेने दो। वह कौन सी महान आत्मा है यह कोई नहीं जानता। जो जन्म लेता है उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। गर्मी के मौसम में, जब गर्मी का प्रकोप बढ़ जाता है, नदी–नाले, सरोवरों का पानी भी सूख जाता है और बीहड़ जंगलों में दूर–दूर तक पानी नहीं मिलता। गर्म भट्टी की तरह गर्म लू चलती है। मनुष्य धूप से झुलसने लगता है तब भी जंगल में रहने वाले पशु–पक्षियों की रक्षा भगवान्

करते हैं। पानी के अभाव में भी, रेंगने वाले जानवर, सांप, बिच्छू तथा शेर, बघेरे, भेड़िये, खरगोश इत्यादि पशु भी जीवन धारण करते हैं। भगवान् ही अपनी शक्ति से उन्हें जीवनदान देते हैं।

कहने का आशय यही है कि भगवान् हर जीव की रक्षा करते हैं। जिसको जन्म देते हैं, उसे जीवन धारण करने की शक्ति भी वही प्रदान करते हैं। यदि ऐसा न हो तो सृष्टि का तो अंत ही हो जावे। इसलिये साधको! गर्भस्थ शिशु की चिंता न करो। उसे जन्म लेने दो। उसे हरिनाम सुनाओ। स्वयं भी हरिनाम करो। हरिनाम की शरण लेकर तो देखो! हरिनाम में तथा स्वयं श्री हरि में कोई अंतर नहीं है। नाम और नामी में कोई भेद नहीं है। हरिनाम की शरण लेने वाले का पालन व रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं, यह उनकी घोषणा है। भगवान् की शरण लेने वाले का कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। हिंसक पशु तथा जहरीले जानवर भी उसका कुछ नुकसान नहीं करते क्योंकि उनमें भी वही भगवान् आत्मा रूप में से विराजमान है। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जब वे उत्तर भारत की यात्रा करने निकले तो उन्होंने वृन्दावन तथा उसके निकटवर्ती स्थानों को देखने का निश्चय किया। जब वे झारखंड (मध्यप्रदेश) के जंगल से होकर आगे बढ़ रहे थे तो सारे जंगली पशु उनके हरिनाम–संकीर्तन आंदोलन में शामिल हो गये। जंगली शेर, हाथी, भालू तथा हिरण भी महाप्रभु के साथ चलने लगते और उनके साथ संकीर्तन करते, नाचते। इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि संकीर्तन आंदोलन में जब जंगली पशु तक शांति और मैत्रीपूर्वक रह सकते हैं तो मनुष्य क्यों नहीं रह सकता ? वह तो सभ्य है।

जो दूसरों को कष्ट देता है, उसे भी कष्ट मिलता है। जंगली पशु किसी को नुकसान नहीं पहुंचाते। सांप भी पहले किसी को डंक नहीं मारता। ये सभी जानवर मनुष्य से डरते हैं परंतु जब मनुष्य उन्हें मारता है, दुःख पहुंचाता है तो डर के मारे, अपने जीवन की रक्षा हेतु, वे उस पर धावा बोलते हैं, हमला करते हैं।

भगवान् बड़े दयालु हैं। कृपा करके वह मनुष्य जन्म देते हैं ताकि दुःख के सागर में पड़ा हुआ यह जीव, भजन करके उनकी गोद में चला जाये, उसके दुःखों का नाश हो जाये परंतु अभागा जीव, अज्ञानतावश, इस मनुष्य जीवन को व्यर्थ ही गंवा देता है और माया की गोद में चला जाता है। फिर चौरासी लाख योनियों में भटकता है, दुःख पाता है। इस माया से बचने का एक ही उपाय है जो हमें भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने बताया है। कोई भी यह नहीं कह सकता है कि उसने कोई पाप नहीं किया और वह पापों से मुक्त है। ऐसा कह पाना ही असंभव है। हम सभी पतित हैं और महाप्रभु पतितपावन हैं। वे सभी पापियों को, पतितों को एक शर्त पर स्वीकार करते हैं कि वे सभी प्रामाणिक गुरु से दीक्षा लेने के बाद, अपने पापकर्मों तथा व्यसनों का सदा–सदा के लिये परित्याग कर देंगे। भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को, जो शिक्षाएं दी हैं, उनमें इन निषेधात्मक नियमों का वर्णन है।

संत सेवा से भगवान् की गोद प्राप्त हो सकती है। इसके सिवा श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्त करने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। भगवान् न दान से, न ध्यान से, न तीर्थ–सेवन से और न योग से प्रसन्न होते हैं। वह तो केवल मात्र संतसेवा में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने भी इसी बात की पुष्टि की है–

पुन्य एक जग में नहीं दूजा।
मन, क्रम वचन साधु–पद पूजा।
सानुकूल तिन पर मुनि देवा,
जो तजि कपट, करे साधु सेवा।

श्रीपाद नरोत्तम ठाकुर लिखते हैंः–

"तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर भ्रम,
सर्वसिद्धि गोविंद–चरण।"

अर्थात् तीर्थ यात्रा से पुण्य होता है यह केवल मन का भ्रम है। वास्तव में श्री गोविंद के चरणों की भक्ति ही सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली हैं।

याद रखो, संत की कृपा से ही भगवान् मिलते हैं। इसलिये, हरिनाम की शरण लो। इस कलियुग में केवल मात्र हरिनाम स्मरण ही भगवत् प्राप्ति का सबसे सरल उपाय है, सुगम साधन है। जो साधक इस हरिनाम रूपी नौका में बैठ जाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। शर्त यह है कि वह भगवान् के प्रिय किसी भक्त का अपराध न करे। एक लाख हरिनाम

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यानि 64 माला से अधिक हरिनाम जब होगा तो हरिनाम ही भक्त अपराध को खंडित करता रहता है और भक्त का मार्ग आसानी से तय हो जाता है। उसके जन्म–मरण का आवागमन सदा के लिये मिट जाता है और वह अमरपद प्राप्त कर लेता है।

हरि बोल ! हरि बोल !
निताई गौर ! हरि बोल !

तोमार अनन्त नाम, तवानन्त गुणग्राम,
तव रूप सुखेर सागर।
अनंत तोमार लीला, कृपा करि प्रकाशिला
ताई आस्वादये ए पामर।।

हे गौरहरि! आपके अनंत नाम हैं। आपके गुण भी अनंत है और आपका रूप तो सुखों का सागर है। यही नहीं, आपकी लीलाएं भी अनंत हैं। आप मुझ पर कृपा करें। आप अपने चरणों में मुझे स्थान दें तभी मेरे जैसा पामर जीव आपकी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

3

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर– नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण

श्री अनिरुद्धदास प्रभु जी द्वारा लिखित ग्रंथ इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति कोई कपोल कल्पित या मनगढ़ंत रचना नहीं है और न ही उन भक्तों के लिये इसे लिखा गया है जिनकी नाम में निष्ठा नहीं है। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" में छपे हुए सभी पत्र सर्व साधारण के लिये लिखे ही नहीं गए हैं। ये पत्र तो उन्होंने अपने शिक्षागुरुदेव तथा श्री हरिनामनिष्ठ, त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज को लिखे हैं और इसे गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की है जिस साधक की हरिनाम में निष्ठा नहीं है, श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है, उनके लिए इन पत्रों का कोई औचित्य नहीं। वे इन पत्रों का मर्म नहीं जानने के कारण वैष्णव अपराध तथा नामापराध करेंगे, इसलिये श्री अनिरुद्धदास प्रभुजी ने इन्हें गोपनीय रखने की प्रार्थना की और कई पत्रों में यह भी लिखा है कि जो इस वाणी को काल्पनिक या मनघढ़ंत समझेगा वह घोर अपराध का भागीदार होगा। परमदयालु, परम उदार, सभी का हित चाहने वाले परमपूज्य श्रीमद्निष्किंचन महाराज जी ने सभी के कल्याण के लिये इन पत्रों को प्रकाशित करने का निर्णय लिया ताकि साधकगण श्री हरिनाम के महत्व को समझें और निष्ठापूर्वक श्री हरिनाम करके अपना जीवन सफल करें।

परमादरणीय, प्रातः स्मरणीय, अर्चनीय व वंदनीय, 108 श्री श्रीमद् भक्ति प्रमोदपुरी गोस्वामी जी की वाणी है–

"केवल एक हरिनाम के ही श्रवण में कान लगाओ। उसी को वाणी से बोलो तथा उसी का निरंतर गान करो। हरिनाम मधुर से

भी मधुर, मंगल से भी मंगलमय और पवित्र से भी पवित्र है। भगवन्नाम–महामंत्र का कीर्तन करने पर ही मानव जीवन सार्थक होता है।"

ग्रंथों में निरंतर हरिनाम का कीर्तन और स्मरण ही इस कलिकाल में भजन की एकमात्र पद्धति बताई गई है। 'माधुर्य कादम्बिनी' तथा 'हरिभक्ति विलास' इत्यादि जितने भी वैष्णव ग्रंथ हैं, सभी में निरंतर हरिनाम करने को कहा गया है। यदि एक लाख या तीन लाख हरिनाम करने से भगवद्प्राप्ति, वैकुण्ठ प्राप्ति या गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होती तो हमारे पूर्ववर्ती आचार्य इसे क्यों करते या अन्यों को करने को कहते। नित्यप्रति तीन लाख हरिनाम करने से हरिदास ठाकुर जी 'नामाचार्य' कहलाये। जहाँ तक वैकुण्ठादि की प्राप्ति की बात है, इस कलियुग में तो वह नामाभास से ही हो जाती है –

वैकुण्ठादि – लोकप्राप्ति नामाभासे हय।
विशेषतः कलियुगे सर्वशास्त्र कय।।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि तृतीय परिच्छेद–37)

अब एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करने का शास्त्रीय प्रमाण देखिये। श्रीमद्व्यासावतार, आदिमहाकवि, पूज्यपाद श्रीश्रीमद् वृन्दावनदास ठाकुर विरचित श्रीश्रीचैतन्य भागवत (अन्त्यखण्ड) नवम अध्याय (115–126) में लिखा है।

अद्य–खाद्य नाहि यार दरिद्रेर अन्त।
विष्णुभक्ति थाकिले, सेइ से धनवंत।। 115 ।।
भिक्षा–निमन्त्रण छले प्रभु सवा स्थाने।
व्यक्त करि' इहा कहिया छेन आपने।। 116 ।।
भिक्षा–निमन्त्रणे प्रभु बलेन हासिया।।
"चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया।।117 ।।
तथा भिक्षा आमार, ये हय "लक्षेश्वर"।
शुनिया ब्राह्मण सब चिन्तित–अन्तर।।118 ।।

विप्रगण स्तुति करि' बलेन गोसाञि।
लक्षेर कि दाय, सहस्रेको का'रो नाइ।।119।।
तुमि ना करिले भिक्षा, गार्हस्थ्य आमार।
एखनेइ पुड़िया हऊक छाखार।।120।।
प्रभु बले, "जान, 'लक्षेश्वर' बलि का' रे?।
प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे।।121।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'।
तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर।।122।।
लक्ष नाम लइब प्रभु, तुमि कर भिक्षा।
महाभाग्य, ए मत कराओ तुमि शिक्षा।।124।।
प्रतिदिन लक्षनाम सर्व द्विजगणे।
लयेन चैतन्यचन्द्र भिक्षार कारणे।।125।।
हेनमते भक्तियोग लओयाय ईश्वरे।
वैकुण्ठनायक भक्ति-सागरे विहरे।।126।।

"जिनके पास आज का खाना भी नहीं है, जो दरिद्रता के अन्तिम सोपान पर स्थित हैं, उसके पास यदि विष्णु भक्ति है तो सच्चा धनवान वही है। भिक्षा के लिये, निमंत्रण के छल से, प्रभु ने स्वयं सबके सामने इस बात को कहा है। भिक्षा निमंत्रण के समय प्रभु हंसकर कहते थे-"जाओ! पहले तुम लक्षेश्वर (लखपति) बनो। मैं लखपति के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।" यह सुनकर सभी ब्राह्मण सोचने लगे। सभी स्तुतिपूर्वक प्रभु से कहने लगे, 'हे स्वामी'! लाख तो बहुत दूर की बात है, हमारे पास तो हजार भी नहीं है। हम सब दरिद्र गृहस्थ ब्राह्मण हैं। यदि आप हमारा निमंत्रण स्वीकार नहीं करते हैं तो हमारी गृहस्थी को धिक्कार है! हमारा घर- "गृहस्थ अभी जलकर राख हो जायेगा। इतना कहकर ब्राह्मण मन में दुःखी होकर रोने लगे। तब दयामय प्रभु ने कौतुक छोड़कर अपने मन की बात खोलकर कह दी। उन्होंने कहा-"जानते हो, मैं 'लक्षेश्वर' किसे कहता हूँ? जो नित्यप्रति लक्ष (एक लाख)-नाम ग्रहण करते हैं, उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ

और मैं उन्हीं के घर भिक्षा स्वीकार करता हूँ। किसी और घर नहीं जाता।"

श्री गौरसुंदर ने कहा–"जो नित्यप्रति लक्षनाम ग्रहण करते हैं, उनके घर ही भगवान् सेवित होते हैं। भगवान् उन्हीं के निकट से भोज्य द्रव्यादि ग्रहण करते हैं। जो लक्षनाम ग्रहण नहीं करते, उनके निकट से भगवान् नैवेद्य स्वीकार पूर्वक उन्हें सेवा–सौभाग्य प्रदान नहीं करते हैं। भगवद्भक्तों को नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करना चाहिये, नहीं तो बहुविध विषयों में आसक्त होकर वे भगवत् सेवा करने में असमर्थ हो जायेंगे।"

इसी कारण से श्रीचैतन्यदेव के आश्रित, सभी जन कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति किया करते हैं।

प्रभु की कृपावाणी सुनकर सभी ब्राह्मण चिन्ता छोड़कर मन ही मन महा आनन्दित हो उठे और उन्होंने हाथ जोड़कर प्रभु से निवेदन किया–"हे प्रभु! आप भिक्षा स्वीकार करो, हम एक लाख हरिनाम का जप करेंगे।"

करुणामय प्रभु, करुणा करके कलियुग के जीवों को किस उद्देश्य से जिस प्रकार भक्ति में लगाते थे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस लीला में पाया जाता है। विप्रगण के प्रति इस उपदेश वाणी का यह शुभफल हुआ कि सभी नीलाचल वासियों ने एक लाख हरिनाम जपना शुरू कर दिया। एक तो यह प्रभु का आदेश था, दूसरे ऐसा न करने पर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु उनके घर भिक्षा नहीं करते। प्रभु को जो कोई एक दिन अपने घर भिक्षा करा लेता था, वह अपने को परम सौभाग्यशाली समझता था। इसी प्रकार परमकृपालु, श्री गौरहरि भगवान्, युगधर्म, हरिनाम महामंत्र का प्रचार करके जीवों का उद्धार करते थे। भक्ति चर्चा के सिवा, उनके मुख से कोई बात नहीं निकलती थी। जिनके मुख से वे कृष्ण कथा या भक्तिचर्चा नहीं सुनते थे, उनका मुख भी नहीं देखते थे।

आमतौर पर देखा जाता है कि जब हम बीमार होते हैं तो डॉक्टर के पास जाते हैं और जो दवाई डॉक्टर लिख देता है, उसे

ग्रहण करके हम ठीक भी हो जाते हैं। हम डॉक्टर से यह कभी नहीं पूछते कि जो दवाई आपने लिखी है, यह किस पुस्तक में, किस पृष्ठ पर लिखी है। हम श्रद्धा और विश्वास करके दवाई लेते हैं और ठीक हो जाते हैं। श्री अनिरुद्धदास प्रभु जी की वाणी, गुरुवाणी है! भगवद्वाणी है! श्री चैतन्यमहाप्रभु की वाणी है। जो भी साधक इसमें अटूट श्रद्धा, पक्की निष्ठा रखेगा, उनके कहे अनुसार श्री हरिनाम करेगा, उसे "इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति" होगी, यह उनकी गारन्टी है। उनके गुरुदेव की गारन्टी है महाप्रभु की गारन्टी है। परमवैष्णवों की वाणी पर अश्रद्धा करना, उसमें अविश्वास करना, उसमें संशय करना वैष्णव अपराध तथा नामापराध है।

–हरि बोल–



हिंसक जन्तु–निवारक मन्त्र

श्रील व्यासदेव जी ने जब श्रीमद्भागवत की रचना की तो उनकी इच्छा हुई कि उनके बेटे शुकदेव जी इसको पढ़ें परंतु श्री शुकदेव जी तो बाल्यकाल से ही विरक्त थे। वे अपने पिता श्रील व्यासदेव के पास न रहकर, घोर जंगलों में अवधूतवेश में विचरण किया करते थे।

श्रील व्यास जी के शिष्य उस घोर जंगल में समिधा, कुश तथा फूल–फल लेने जाया करते थे। एक दिन उन्हें रास्ते में एक बाघ मिला। बाघ को देखकर वे सभी डर गये और किसी तरह बाघ से बचकर व्यासदेव के पास आकर कहने लगे–'गुरुदेव! आज के बाद हम उस घोर जंगल में नहीं जायेंगे। आज हमें एक बाघ मिला था और उसको देखकर तो हम सबकी जान ही निकल गई थी।'

घबराये हुये शिष्यों के मुख से यह बात सुनकर भगवान् व्यासदेव जी मुस्कराये और कुछ देर सोचने के बाद बोले–"तुम लोगों को बाघ से डरने की कोई जरूरत नहीं। हम तुम्हें एक ऐसा

मंत्र बता देंगे कि उसके प्रभाव से कोई भी हिंसक–जन्तु तुम्हारे पास नहीं फटक सकेगा।" शिष्यों का श्री गुरुदेव के वाक्य पर पूरा विश्वास था। अगले दिन सभी स्नान–संध्या से निवृत होकर हाथ जोड़कर, गुरुदेव के पास आये और हिंसक–जन्तु निवारक मंत्र के लिये प्रार्थना की। भगवान् व्यासदेव ने श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का पाँचवा श्लोक (10–21–5) बता दिया।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयो कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधर सुधया पूरयन्गोपवृन्दै–
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः।।

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक में जो माधुर्य है, जो रस है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जिस श्लोक का इतना बड़ा महत्त्व है, उसका अर्थ भी समझ लीजिये। मेरे नन्हें से गोपाल, गौएं चराने के लिये वृंदावन की ओर जा रहे हैं। साथ में वे ही पुराने ग्वाल–बाल हैं। आज उन्हें जाने क्या सूझी कि आज वे अपने कनुआ की कमनीय कीर्ति का निरन्तर बखान करते हुये जा रहे हैं। अपने कोमल कण्ठों से सभी श्रीकृष्ण का यशोगान कर रहे हैं और कन्हैया, अपनी मुरली बजाने में इतने मस्त हैं कि उन्हें दीन–दुनिया किसी की भी खबर नहीं। अहा! मेरे श्यामसुंदर की उस निराली छवि को श्रील व्यासदेव जी ने यूँ वर्णन किया है–

"भगवान् श्रीकृष्ण ग्वाल बालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिर पर मयूरपिच्छ (मोरमुकुट) है और कानों में कनेर के पीले–पीले पुष्प लगा रखे हैं। सुंदर शरीर पर सोने की आभा जैसा पीतांबर फहरा रहा है। गले में एक सुंदर नट के समान बड़ा ही मनोहर और चिताकर्षक वेश है। आँखों की भृकुटियों को चढ़ाये हुये, टेढ़े होकर, बाँसुरी के छिद्रों को, वे अपने अधरामृत से भर रहे हैं। विश्व को मोह लेने वाली ध्वनि, उन छिद्रों में से निकल रही है। श्रीकृष्ण की, वह वंशीध्वनि, भगवान् के प्रति प्रेमभाव को,

उनके मिलन की आकांक्षा को, जगाने वाली थी। ब्रज की गोपियों ने जब वंशी की इस मधुर ध्वनि को सुना तो उनका मन हाथ से निकल गया और वे मन–ही–मन वहाँ पहुँच गईं, जहां श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण के पीछे–पीछे ग्वालबाल (यशोदा नंदन की) लोकपावन कीर्ति का गान कर रहे हैं। इस प्रकार मुरली मनोहर अपनी पदरज से वृन्दावन की भूमि को पावन बनाते हुये ब्रज में प्रवेश कर रहे हैं। उनके चरणचिन्हों से वृन्दावन धाम और भी रमणीय बन गया है।"

श्रील व्यासदेव जी के शिष्यों ने, श्रद्धा भक्ति सहित, श्रीमद् भागवत् के इस श्लोक को कण्ठस्थ कर लिया और सभी साथ–मिलकर, जब–जब जंगल को जाते तब–तब इस सुंदर श्लोक को मिलकर, मधुर स्वर में गाते। उनके सुमधुर गान से सुनसान और निर्जन जंगल गूंजने लगता और इस श्लोक की प्रतिध्वनि चिरकाल तक सुनाई पड़ती। एक दिन अवधूतशिरोमणि श्री शुकदेव जी घूमते–घूमते उधर आ निकले। उन्होंने जब इस श्लोक को सुना तो वे मुग्ध हो गये। उन्होंने शिष्यों से पूछा–"तुम लोगों ने यह श्लोक कहाँ से सीखा" शिष्यों ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया–''हमारे कुलपति, भगवान् व्यासदेव ने, हमें इस मंत्र का उपदेश दिया है। इसके प्रभाव से हिंसक–जन्तु पास नहीं आ सकते।"

इस श्लोक के भीतर छिपा हुआ जो अनंत और अमर बनाने वाला रस भरा हुआ था, उसका पान करके श्रील शुकदेव जी पागल से हो गये। अपने अवधूतपने के सभी आचरणों को भुलाकर, वे दौड़े–दौड़े भगवान् व्यासदेव के पास गये और उस श्लोक को पढ़ाने की प्रार्थना की।

भगवान् व्यासदेव ने उन्हें वह श्लोक पढ़ा दिया। अब तो ये घूमते हुये इसी श्लोक को सदा गाने लगे।

"श्रीकृष्ण प्रेम तो ऐसा ही अनोखा आसव है। इसका चसका जिसे तनिक भी लग गया फिर वह कभी त्याग नहीं सकता। यदि उसे छोड़ना भी चाहे तो वह स्वयं उसे पकड़ लेता है।"

पंडित नन्दनाचार्य के घर पर भक्तों को नित्यांनद जी की महिमा दिखाने के लिए महाप्रभु ने श्रीवास पंडित को कोई स्तुति-श्लोक पढ़ने के लिये धीरे से संकेत किया। प्रभु के मनोगत भाव को समझकर, श्रीवास, श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के इसी श्लोक–'बर्हापीडं नटवरवपुः' को सुस्वर गाने लगे। जिस श्लोक को सुनकर अवधूतशिरोमणि शुकदेव जी प्रेम में पागल हो गये, उसे सुनकर सहृदय अवधूत नित्यानंद अपनी प्रकृति में कैसे रह पाते ? श्रीवास पंडित के मुख से इस श्लोक को सुनते ही, वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इनके मूर्छित होते ही प्रभु ने श्रीवास को फिर से श्लोक पढ़ने को कहा। अब तो नित्यानंद प्रभु जोरों से हुँकार देने लगे। उनके दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। प्रेम में उन्मादी की भाँति, वे नृत्य करने लगे। प्रभु ने नित्यानंद को गले से लगा लिया।

सचमुच, प्रेम में कितना आकर्षण है! अहा! जिन्होंने प्रेम-पीयूष का पान कर लिया है, जो प्रेमासव का पान करके पागल बन गये हैं, उसे तो वे प्रेमी भक्त ही अनुभव कर सकते हैं। हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ ?

(श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी द्वारा लिखित श्रीश्री चैतन्यचरितावलि पर आधारित)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

एक नाम या'र मुखे वैष्णव से हय।
तारे गृही यत्न करि, मानिबे निश्चय।।

(श्रीहरिनाम चिंतामणि)

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण-नाम का उच्चारण होता है, उसे वैष्णव समझना चाहिये। गृहस्थ भक्तों को चाहिये कि वे अति यत्न के साथ इस सिद्धांत को मानें।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
30.7.2010

मन की भावना ही मुख्य है

प्रेमास्पद भक्तप्रवर,

नराधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

इस सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने वाली तीन दैवीय शक्तियाँ हैं। श्री ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना करते हैं और उसे बढ़ाते हैं, भगवान् विष्णु जी सृष्टि का पालन तथा रक्षा करने वाले हैं तथा भगवान् शिवशंकर जी सृष्टि को कम करने तथा संहार करने वाले हैं।

ये तीनों शक्तियाँ मनुष्य के कर्मों अनुसार ही उसको फल प्रदान करती हैं, अपनी ओर से किसी को कुछ भी फल प्रदान नहीं करतीं। यदि ऐसा करने लगें तो कर्म करने का महत्व ही समाप्त हो जाये। इस सृष्टि की रचना ही कर्म से होती है। कर्म किये बिना सृष्टि का सृजन हो ही नहीं सकता। सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। शास्त्र उद्घोषणा कर रहा है-

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।

बात स्पष्ट है कि जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। सतयुग में सभी तपस्या करते थे और उनकी आयु हजारों साल होती थी क्योंकि वे सभी भक्ति में लगे रहते थे। अब कलियुग में मानव की भक्ति कम हो गई। फलस्वरूप उसकी आयु भी कम होती जा रही है। पचास-साठ या इससे भी कम वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो जाती है भगवान् की भक्ति करने से आयु बढ़ जाती है। जितनी आयु लिखी होती है, भक्ति करने पर वह उससे अधिक बढ़ जाती

है। मान लो किसी की आयु 60 वर्ष लिखी है। यदि वह भक्ति में रत रहता है, भक्ति में लग जाता है तो उसकी आयु सौ वर्ष या इससे भी अधिक बढ़ सकती है। जो व्यक्ति माँस–मदिरा का सेवन करता है और अंट–संट (तामसी भोजन) खाता है, वह कम उम्र में ही मर जाता है। जो भी शास्त्रमर्यादा का उल्लंघन करेगा, उसे अपने कर्मों के अनुसार उसका भोग भोगना ही पड़ेगा। कोई भी इससे बच नहीं सकता।

काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार ये सब आयु को क्षीण करते हैं और जो इन पर काबू पा लेता है, वह अधिक दिनों तक जीवित रहता है। सार यही है कि जो जैसा कर्म करेगा, उसको उसके कर्मों के अनुसार ही फल भोगना पड़ेगा।

बहुत लोग प्रश्न किया करते हैं कि जीव क्या है ? आत्मा क्या है ? इसका उत्तर यह है कि जो स्वयं (अपने आप) को न जाने, जो भगवान को न जाने तथा भगवान् की माया को भी न जाने, उसे जीव बोला जाता है। मनुष्य के बिना सभी जीव हैं क्योंकि वे न तो स्वयं को जानते हैं, न माया को और न ही भगवान् को, इसलिये ये सब जीव संज्ञा में आते हैं और जो मानव इन तीनों (स्वयं को, माया को तथा भगवान्) को जानता है, वह जीव आत्मा की संज्ञा में आता है और जीवात्मा कहलाता है। पशु–पक्षी इत्यादि जीव, खाना–पीना, सोना या मैथुन करना ही जानते हैं और अपने आपको, भगवान् एवं उनकी माया को नहीं जानते। जो जीव भगवान् को जान गया, उसका उससे (भगवान् से) सम्बन्ध जुड़ गया। वह आत्मा, परमात्मा से मिल गया क्योंकि आत्मा परमात्मा का ही तो अंश है। वास्तव में, मन की भावना ही मुख्य है।

जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

मन में जैसी भावना होगी, वैसा ही मनुष्य कर्म करेगा और उसे फल भी वैसा ही मिलेगा। यदि कोई बुरे कर्म करे तो उसे अच्छे फल की आशा नहीं करनी चाहिए।

बोये पेड़ बबूल के, आम कहाँ से होय।

बबूल (कीकर) का पेड़ बोने पर उससे आम के फल की आशा करना मूर्खता ही तो है। अच्छे कर्म का फल ही अच्छा होगा, बुरे कर्म का फल बुरा ही होगा। इसलिये सद्विचारों (अच्छे विचारों) की भावना करते रहना चाहिये। सद्विचार आयेंगे कहाँ से ? सद्ग्रन्थों का अध्ययन करो। सत्पुरुषों का संग करो। उनके आचरण को देखो। उसका चिन्तन करो, उसे अपने जीवन में धारण करो, सद्विचार अपने आप आ जायेंगे। जीवन की बगिया, रंग–बिरंगे, सुगन्धित फूलों से महक जायेगी। जहाँ भी जाओगे, खुशबू बिखेरोगे। सारी दुनिया सुन्दर लगेगी। सब अपने लगेंगे। स्वयं को जान लेने की इच्छा जागृत होगी। स्वयं को जानने, भगवान् व उसकी माया को जानने की खोज में लग जाओगे प्रत्येक जीव में भगवान् के दर्शन होने लगेंगे। पर यह सब होगा, मन की भावना से ही। मन की भावना जितनी प्रबल होगी, जितनी मजबूत होगी, उतनी ही ज्यादा शक्ति आप अपने अन्दर अर्जित कर सकोगे। श्रीमद्भागवत महापुराण में वर्णन आता है कि कर्दम ऋषि ने देवहूति (अपनी पत्नी) की भावना की। उसकी संतान प्राप्ति की इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने जैसे नौ रूप धारण किये और उन नौ शरीरों से नारी की भावना करके नौ कन्याओं को जन्म दिया। इन नौ कन्याओं का विवाह कर्दम ऋषि ने नौ ऋषियों से किया जिनकी संतानों से यह सारा संसार भर गया। सार यही है कि मन में जैसी भावना लेकर हम कोई काम करते हैं, उस कर्म का फल हमें वैसा ही मिलता है।

मेरे श्रील गुरुदेव ने मनचाही सन्तान प्राप्त करने के बारे में जो लेख लिखाया है। वह शत–प्रतिशत सही है। यह लेख "इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति (भाग–2)" में 'मनचाही सन्तान कैसे प्राप्त करें ? नामक शीर्षक से छपा है। मेरे पास लोगों के फोन आते हैं। जो लोग इस लेख के अनुसार चल रहे हैं, उन्हें अभीष्ट फल की प्राप्ति हुई है और हो रही है। भविष्य में पैदा होने वाले बच्चे अच्छे संस्कार वाले हों, विचारवान् हों, विवेकशील हों, प्रभु भक्त

हों, आज्ञाकारी हो तथा माता–पिता का नाम रोशन करने वाले हों, इसीलिए मेरे श्रील गुरुदेव ने हम सब को मनचाही सन्तान प्राप्त करने का बहुत ही सरल साधन बताया है और अब बारी माता–पिता की है कि वह कैसी संतान चाहते हैं। इसका निर्णय उन्हें स्वयं करना है।

देवहूति ने जब बेटे की इच्छा प्रकट की तो कर्दम ऋषि ने उन्हें भगवान् कपिल के रूप में पुत्र की प्राप्ति करायी। ऐसा पुत्र, जिसने न केवल अपनी माता देवहूति, बल्कि पूरे विश्व को वह ज्ञान दिया जिसे प्राप्त करके मनुष्य जन्म–मरण के चक्कर से छूट जाता है। उसका आवागमन (आना–जाना) सदा के लिये समाप्त हो जाता है। पर यह सब हुआ केवल मात्र मन की भावना से ही ऐसे माता–पिता (कर्दम–ऋषि और माता–देवहूति) तथा ऐसी संतान (भगवान् कपिल) को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम।

हरिनाम बढ़ाने की युक्ति

प्रतिदिन रात को सोते समय तथा सवेरे बिस्तर से उठते समय भगवान् को याद करना और कातर भाव से प्रार्थना करना–

“हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! जब मेरी मृत्यु आये तब अन्तिम साँस में अपना गोविन्द नाम उच्चारण करवा लेना”

हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द, प्रार्थना सुन लीजिये।
दीन, हीन, अनाथ पर, हे नाथ! करुणा कीजिये।।
मौत जब आवे मेरी, तब नाथ अन्तिम साँस में,
तेरा नाम उच्चारण करूँ, मुझे ऐसी शक्ति दीजिये।
आपको बस! इतना ही करना है, बाकी सब
श्री श्री राधा गोविन्द जी जाने
जय जय श्री राधे।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

5

नामनिष्ठ की मरणावस्था का वर्णन

विनिश्चितं वदामि ते न चान्यथा वचांसि मे।
हरि नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।

"मैं खूब सोच-विचार कर, निश्चितरूप से कहता हूँ, मेरे वचनों को मिथ्या मत समझना। मैं कहता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि जो लोग श्री हरि का भजन करते हैं, वे कठिनता से पार होने वाले इस असार संसाररूपी समुद्र को, बात की बात में तर जाते हैं।"

जब किसी नामनिष्ठ महात्मा की अंतिम (मरण) घड़ी आ रही होती है तो उसे एक मीठी रसानुभूति होने लगती है उस अवस्था में उसे एक दिव्य, अलौकिक नींद आने लगती है। साधारण मानव, उसे उसकी बेहोशी समझ लेता है पर उसकी वह अवस्था, बेहोशी की नहीं होती, वह तो उसकी सुषुप्ति की, समाधि की अवस्था होती है जिसमें नामनिष्ठ को रसानुभूत आनंद का अनुभव होता रहता है। उस अवस्था में, उसके हृदय से, शरीर में खून का प्रवाह धीरे-धीरे रुकने लगता है और उसके रोम-रोम में आनंद की लहरें उठती रहती हैं। नामनिष्ठ का मरण परम आनंददायक होता है जबकि पापी को मरते समय बहुत अधिक कष्ट होता है। पापी के रोम-रोम में ऐसा असहनीय दर्द होता है जैसे बिच्छु के डंक मारने से होता है। इस दर्द को सहन न कर सकने के कारण वह बेहोश हो जाता है। संसार की आसक्ति भी उसे पीड़ा देती है और मोह-ममता की फांसी उसका गला घोंटती रहती है। पर जब नामनिष्ठ के मरने का समय आता है तो भगवन् उसके अन्तःकरण में प्रकट होकर, उसे अपना मनमोहक एवं लुभावना दर्शन देकर, उसके मन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उसको परमानंद में सराबोर करते रहते हैं। अंतिम सांस के साथ तन से बाहर निकालकर, अपने उस

प्यारे भक्त को एक दिव्य एवं अलौकिक शरीर प्रदान करके, अपने विमान में बिठाकर, उसके साथ अठ्खेलियां करते हुये, अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं, जहाँ उस नामनिष्ठ का बहुत भव्य एवं आकर्षक स्वागत होता है। ऐसे नामनिष्ठ को गोलोकधाम में वांछाकल्पतरु, चिन्मय शरीर की उपलब्धि होती है। उस उपलब्धि का वर्णन इस जड़ जिह्वा द्वारा नहीं किया जा सकता।

इस लेख को पढ़कर पाठ्कों के मन में कई प्रश्न उठ सकते हैं। एक तो यह कि नामनिष्ठ की मरणावस्था का जो वर्णन, मैंने किया है वह उन्होंने न तो किसी शास्त्र में पढ़ा है और न किसी से सुना है। दूसरा, भगवान् श्रीकृष्ण अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। अपने नामनिष्ठ भक्त को लेने, उन्हें स्वयं आने की क्या जरूरत है ? अपने किसी भी पार्षद को भेजकर, भगवान् यह काम करवा सकते हैं।

इन प्रश्नों का उत्तर मैं देने जा रहा हूँ, ध्यान देकर पढ़ो।

अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं जिनमें भगवान् की अनंत लीलाएँ होती रहती हैं। इन लीलाओं का पार नहीं पाया जा सकता। क्या कोई अपने जीवनकाल में इन सारी लीलाओं को पढ़ सकता है ? उनका अवलोकन कर सकता है ? नहीं न! पर हां, जिस पर श्री गुरुदेव की असीम कृपा हो जाती है, उसके हृदय में दिव्य ज्ञान प्रकाशित हो जाता है। सभी शास्त्र उसके हृदय में स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर महाशय कहते हैं कि श्री गुरुदेव के चरणकमल शुद्ध भक्ति की खान है। उनकी वंदना करने से, उनकी कृपा से ही हृदय में दिव्य ज्ञान प्रकाशित होता है–'दिव्यज्ञान हृदये प्रकाशित'। श्री गुरुदेव, भगवान् के सबसे अधिक प्रियजन हैं। उनकी प्रसन्नता ही भगवान् की प्रसन्नता होती है। श्रीगुरुदेव का स्वरूप, श्री हरि का स्वरूप होता है। यह सभी शास्त्र कहते हैं क्योंकि वे भगवान् को अतिशय प्यारे हैं –

साक्षाद् धरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।

और देखिये –

श्री गुरु पदनख मणिगण ज्योति
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहिं विमल विलोचन हिय के
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित मन मानिक
जो जेहि गुप्त प्रगट जेहि खानिक।

शास्त्र की ये पंक्तियाँ स्पष्ट उद्घोष कर रही हैं कि जो कुछ भी शास्त्रों में वर्णित है, वह सब कुछ और जो शास्त्रों में वर्णित नहीं है, वह सब कुछ भी, श्री गुरुदेव की कृपा से अन्तःकरण में प्रकट हो जाता है। जब कोई भक्त श्री गुरुदेव के चरणकमलों का ध्यान करता है, उनकी वंदना करता है तो भगवान् उसे बुद्धियोग दे देते हैं।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयन्ति ते।।

(भगवद्गीता 10.10)

भगवान् कहते हैं मैं ऐसे भक्त को बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वह मुझ तक आ सकता है।

प्रामाणिक गुरु की संगति आवश्यक है। ऐसे गुरु की कृपा से श्रीकृष्ण उसे अंदर से उपदेश देते हैं ताकि वह सरलता से भगवद् प्राप्ति कर सके। उसे श्यामा-श्याम के दर्शन हो सकें। एक भाव देखिये –

श्री गुरु पदनख चन्द्र ज्योत्सना हरत हिय अघखान।
बिहरत श्यामा-श्याम तहां, नित अपनो गृह जान।।
नित अपनो गृहजान लाडिली सुख बरसावें।
आंख-मिचौली होये कबहूँ, मोहन छिप जावें।।
लेहैं बाँसुरी छीन किशोरी, कहूँ अवसर लख।
रहे सदा आनन्द-कृपा, जहाँ श्री गुरु पदनख।।

पर यह सब होगा गुरु कृपा से, हरिनाम करने से। नाम के बारे में संतों का एक–एक वचन सत्य है। नाम का ही प्रताप है। नाम की ही महिमा है। केवल हरिनाम करके ही इस लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि नाम–बीज में समस्त ब्रह्मांडों की भगवद्वाणी और अनन्त लीलायें ओत–प्रोत रहती हैं। नाम रूपी जल, जब कान द्वारा अन्तःकरण रूपी जमीन को सींचता है तो भगवान् की वाणी, उनकी लीलाएं रूपी पौधा अंकुरित हो जाता है। जैसे वट वृक्ष का बीज देखने में तो राई के दाने से भी छोटा होता है पर उस बीज में एक विशाल वृक्ष छुपा होता है और जब उसे जमीन में बोया जाता है तो उसमें से एक विशाल वृक्ष प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार नाम की शक्ति असीम है! अथाह है! अनन्त है! श्री गुरुदेव ने जो हरिनाम कान में सुनाया है, वह अन्तःकरण में जाकर जापक को निहाल कर देता है। अरे, नाम का प्रभाव देखिये। शिकारी रत्नाकर उल्टा नाम जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गया। राम–राम की जगह मरा–मरा कहते ही उसके मुख से बार–बार राम–राम निकला और इसी नाम के प्रताप से उसने बाल्मीकि नाम से रामायण की रचना कर दी। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम ने इस धराधाम पर आकर जो लीलायें कीं, उन सबका वर्णन वाल्मीकि जी ने हजारों वर्ष पहले ही रामायण में कर दिया था। यह नाम का ही तो प्रभाव था! नामनिष्ठ की अंतिम अवस्था भी दिव्य हुआ करती है। नामनिष्ठ की मरणावस्था का प्रकट उदाहरण है, नामाचार्य श्री हरिदास जी एवं भीष्म पितामह।

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, ब्रह्माजी के अवतार थे पर उनका जन्म म्लेच्छ (यवन) कुल में हुआ था। जन्म के अनाथ, अनपढ़, बेसहारा, संसार द्वारा ठुकराया गया वह अधम, नाम के प्रभाव से नामाचार्य बन गया। बड़े–बड़े श्रोत्रिय ब्राह्मणों ने उनका सम्मान किया। त्रैलोक्यपावन, देवदुर्लभ श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र का वास उन्हें प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कहा है "हरिदास के भक्तिभाव का वर्णन हजार मुख वाले शेषनाग जी भी

अनंत वर्षों में नहीं कर सकते। उनकी सहनशीलता, तपस्या, भगवान् में अनन्यनिष्ठा सभी कुछ अनुकरणीय है।"

ऐसे नामनिष्ठ, नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर की मरणावस्था, कितनी दिव्य एवं अलौकिक थी, उसे जानने से पहले, आइये! उनके बारे में थोड़ा और जान लें। श्रीचैतन्य चरितामृत में वर्णन मिलता है कि एक मुनि का बेटा अपने पिता की आज्ञा से, भगवान् केशव की पूजा के लिये बगीचे से तुलसी पत्र लेने गया। तुलसी पत्र तोड़ने के बाद, उसने बिना धोये ही, उन्हें अपने पिता को दे दिया। इस बात से क्रोधित होकर पिता ने उसे यवनकुल में जन्म लेने का अभिशाप दे दिया वही मुनिपुत्र, परमभक्त, श्री हरिनामनिष्ठ, हरिदास जी के रूप में अवतरित हुये थे।

श्री नवद्वीप धाम महात्म्य में वर्णन आता है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने ब्रज लीला में गोपाल की गौएँ, बछड़े तथा गोपों को चुराकर भगवान् श्रीकृष्ण की परीक्षा लेने करने की गलती की थी। श्रीकृष्ण के चरणों में गिर कर, अपनी उस भूल के लिये, जब ब्रह्मा जी ने क्षमा–याचना की थी, तब भगवान ने उन्हें क्षमा भी कर दिया था और उन्हें अपने स्वरूप का दर्शन कराया था। वही गलती, वही भूल, कलियुग में, श्री गौरांग महाप्रभु (जो साक्षात् नंदनंदन श्रीकृष्ण हैं और श्रीमति राधारानी का भाव एवं कान्ति लेकर नवद्वीप धाम में अवतीर्ण हुये) के चरणों में दुबारा न हो, इसी डर से ब्रह्माजी ने नीचकुल में जन्म ग्रहण किया था।

वैष्णव किसी भी कुल में पैदा हो, सदा सर्वोत्तम होता है। यवनकुल में जन्म लेकर, संसार को शिक्षा देने के लिये, लोगों को नाम की महिमा बताने के लिये, वे इस धराधाम पर आये थे। उनके रोम–रोम में श्री हरि का मधुर नाम रम गया था। उनकी जिह्वा पर श्रीकृष्ण नाम सदा नृत्य करता रहता था। नित्यसिद्ध होते हुये भी, अपने अलौकिक आचरण से, उन्होंने जो शिक्षा इस जगत् को दी, उसका वर्णन श्री हरिनाम चिन्तामणि नामक ग्रंथ में है।

सुधि पाठकगणो! आओ! उस महान विभूति, श्री हरिनामनिष्ठ, नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर की अंतिम अवस्था का दर्शन करें।

दोपहर का समय है। हरिदास जी एक तख्त पर आंखें बंद किये हुये लेट रहे हैं। उनके श्रीमुख से

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

यही आवाज आ रही है। महाप्रभु का सेवक, गोविन्द रोज की तरह महाप्रसाद लेकर उनके पास पहुँचा। उसने देखा कि हरिदास जी आज आसन पर नहीं बैठे थे। गोविंद ने उनका हाल पूछा और महाप्रसाद पाने के लिये प्रार्थना की। उस दिन हरिदास जी की नाम संख्या अभी पूरी नहीं हुई थी। बिना संख्या पूरी किये वे महाप्रसाद नहीं लेते थे और यदि न लेते तो अपराध बन जाता। अतः उन्होंने प्रसाद को प्रणाम किया और उसमें से एक कण लेकर मुख में डाल लिया। गोविंद चला गया और उसने महाप्रभु से सारी बात कह दी।

अगले दिन समुद्र स्नान करने के पश्चात महाप्रभु हरिदास जी के आश्रम में पधारे। कुछ देर बात करने के बाद हरिदास जी ने कहा– "प्रभो! आपके श्रीचरणों में एक निवेदन है। मेरी मनोकामना है कि जब मैं इस नश्वर शरीर का त्याग करूँ, उस वक्त आपकी यह मनमोहिनी मूरत, सलोनी सूरत, मेरी आंखों के सामने हो। मेरी जिह्वा पर, तीनों लोकों को पवित्र करने वाला, आपका मधुरातिमधुर 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम हो। प्रभो! आप परम स्वतंत्र हैं। सब कुछ करने में समर्थ हैं। मुझे यह भिक्षा अवश्य दे दें।"

श्रील हरिदास की प्रार्थना सुनकर महाप्रभु की आँखें भर आईं और उन्होंने गद्गद् कण्ठ से कहा–''हरिदास। जिसमें तुम्हें सुख हो, वही करो।" इतना कहकर प्रभु अपने स्थान को चले गये।

महाप्रभु हरिदास जी को नित्य देखने जाया करते थे। एक दिन वे अपने सभी अन्तरंग भक्तों को साथ लेकर, हरिदास जी के आश्रम पहुंचे। हरिदास जी जमीन पर पड़े–पड़े महामंत्र का जप कर रहे थे। महाप्रभु ने उनका हाल पूछा। सभी भक्त हरिदास जी के चारों ओर बैठकर संकीर्तन करने लगे। कुछ उठकर नृत्य करने लगे। थोड़ी ही देर में वहाँ काफी लोग इकट्ठे हो गये। महाप्रभु ने संकीर्तन बंद करने को कहा और सबको हरिदास जी के गुणों का बखान सुनाया। सभी भक्तों ने हरिदास जी की पदधूलि मस्तक पर धारण की।

हरिदास जी ने बड़े कष्ट से, महाप्रभु को सामने आने का इशारा किया। महाप्रभु उनके सामने बैठ गये। हरिदास जी की, दोनों आँखों के कोरों से, प्रेमाश्रु निकल रहे थे। वे महाप्रभु को टिकटिकी बांधकर देख रहे थे और उनकी रूपमाधुरी का पान कर रहे थे। आज उनकी आँखों की पलकें बंद नहीं होना चाहती थीं और वे धीरे–धीरे 'श्री कृष्णचैतन्य' 'श्री कृष्णचैतन्य' इन नामों का उच्चारण कर रहे थे। देखते ही देखते उनके प्राण इस कलेवर को त्याग कर चले गये। सभी भक्तों ने 'हरि बोल' की ध्वनि की। महाप्रभु उस प्राणहीन शरीर को लेकर नृत्य करने लगे। महाप्रभु ने भगवान् जगन्नाथ का प्रसादी वस्त्र मंगाकर, हरिदास जी के शरीर को लपेटा। उसे एक बड़े भारी विमान पर रखा और सभी संकीर्तन करते हुये समुद्रतट पर पहुंचे। भक्तों ने हरिदास जी के शरीर को स्नान कराया और उन्हें समाधि दी। हरिदास जी के अंगस्पर्श से समुद्र महातीर्थ बन गया। महाप्रभु में स्वयं उनका विजयोत्सव मनाया और कहा–"जिसने भी हरिदास का संग किया, उनका दर्शन किया, उनका पादोदक पान किया, समाधि में बालू दी, विजयोत्सव में प्रसाद पाया है, उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।"

फिर महाप्रभु ने हरिदास जी की जय बुलवाई।

श्री जगन्नाथ पुरी में टोटा गोपीनाथ के रास्ते में, समुद्र के किनारे, अब भी श्री हरिदास जी की सुंदर समाधि है जहां हर वर्ष अनन्त चर्तुदशी के दिन विजयोत्सव मनाया जाता है।

नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम।

"नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, मुझ जैसे अकिंचन, अधमाधम, दीन–हीन पर कृपा करें। श्री हरिनाम रूपी अमृतरस की कुछ बूंदें पिलाकर, मेरे आनंद की वृद्धि करें"–यही प्रार्थना है।

नामनिष्ठों की सूची में एक मुख्य नाम आता है भीष्म पितामह का। हरिदास जी की तरह उन्होंने भी, भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन करते हुये अपना शरीर त्यागा। जब भीष्म पितामह शरशय्या (बाणों की शय्या) पर पड़े हुये थे तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर चढ़कर, सभी पांडवों के साथ उन्हें देखने गये। सभी ने भीष्म पितामह को प्रणाम् किया। अपने हृदय में जगदीश्वर रूप से विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण की बाहर और भीतर, दोनों जगह पूजा करने के बाद, भीष्म ने पाण्डवों से कहा, "ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। अब जबकि मैं अपने प्राणों का त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है। जो लोग भक्तिभाव से, इनके नाम का कीर्तन करते हुये शरीर का त्याग करते हैं, वे इन्हीं को प्राप्त होते हैं। वही कमल के समान नेत्रों वाले, देवदेव भगवान्, मुस्कराते हुये, लाल कमल के समान आँखों वाले, खिले हुए मुख वाले, चतुर्भुज रूप से, जिसका और लोगों को केवल ध्यान में दर्शन होता है तब तक, यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जब तक मैं अपने इस शरीर का त्याग न कर दूं" –

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लस–
न्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः।।

(श्रीमद्भागवतम् 1.9.24)

जब भीष्म ऐसे कह रहे थे तब उन्होंने अपनी वाणी को संयम करके, मन को सब ओर से हटाकर अपने सामने खड़े आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्ण के सुंदर चतुर्भुज विग्रह पर, उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्म जी की आंखें एकटक उसी पर लग गई। इस प्रकार मन, वाणी और दृष्टि से, भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण में अपने आपको लीन कर दिया। उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर त्याग दिया। उस समय देवता और मनुष्य नगाड़े बजाने लगे। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्तों की मरणावस्था ऐसी ही दिव्य एवं अलौकिक हुआ करती है। ऐसे नामनिष्ठ भीष्म पितामह को हमारा कोटि–कोटि नमन।

अपने पत्रों में, मैं जो कुछ भी उल्लेख करता हूँ, वह सब शास्त्र सम्मत होता है। वह सब श्री गुरुदेव की वाणी होती है। इसमें किसी को भी संशय नहीं करना चाहिये। जो इसमें संशय करेगा, वह भक्ति पथ से नीचे गिर जायेगा।

अतः इस लेख को कोई भी काल्पनिक न समझे वरना वह जघन्य अपराध कर बैठेगा। अतः मेरी सभी भक्तजनों से, हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे कृपया मुझ पर पूरा विश्वास व श्रद्धा बनाये रखें ताकि मेरा भी अपराध न बन सके। आप सभी के चरणों में मेरी यही प्रार्थना है ताकि मैं भविष्य में भी, अपने गुरुदेव के आदेश का पालन कर सकूँ। इसमें कोई व्यवधान न हो। केवल श्री हरिनाम से ही सुख का विस्तार होगा, यह बात मैं डंके की चोट से कह सकता हूँ। कलियुग में इसके सिवा दूसरा भक्ति साधन है ही नहीं। शास्त्र घोषणा कर रहा है–

जाना चहिये गूढ़ गति जेऊ।
जीह नाम जप जानहि तेऊ।।
रामनाम का अमित प्रभावा।
संत, पुरान, उपनिषद गावा।।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म
सर्व मंत्रसार नाम एइ शास्त्र मर्म।।
अविश्रान्त नामे नाम अपराध याय
ताहे अपराध कभू स्थान नाहि पाय।।

नाम की महिमा, कहाँ तक कहूँ, जितना भी कहा जाये, थोड़ा है। नामनिष्ठों की मरणावस्था का वर्णन तो आपने जान लिया अब भगवान् अपने नामनिष्ठ भक्त को स्वयं लेने क्यों आते हैं ? अपने पार्षदों को क्यों नहीं भेजते ? एक उदाहरण के माध्यम से समझाने का प्रयास कर रहा हूँ।

एक बार की बात है। राजा अकबर ने बीरबल से कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्यारे भक्त को स्वयं लेने आते हैं, यह बात मेरे गले नहीं उतरती। भगवान् के यहां तो अनंत पार्षद हैं, उन्हें भेजकर वे कोई भी काम करवा सकते हैं। उन्हें स्वयं जाने की क्या जरूरत है। जैसे मेरे यहां हजारों नौकर हैं। मैं उन्हें भेजकर कोई भी काम करवा लेता हूँ। मुझे जाने की क्या आवश्यकता है ?

बीरबल बहुत बुद्धिमान मंत्री था। उसने अकबर से कहा– "जहांपनाह! आपके इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये मुझे थोड़ा वक्त चाहिये। बादशाह हजूर! कुछ दिन बाद मैं आप की बात का उत्तर जरूर दूँगा।"

अकबर ने कहा, "ठीक है। आपको जितना समय चाहिये, ले लीजिये।"

काफी दिन बीत गये। अकबर अपने राज्य के कामों में व्यस्त हो गया। उसे कुछ भी याद न रहा। एक दिन बादशाह अकबर नाव द्वारा एक नदी पार कर रहे थे। उस नदी का पाट काफी चौड़ा था और उसमें पानी भी बहुत था। बादशाह के साथ उनके बहुत सारे नौकर–चाकर भी थे। उनका शहज़ादा (बेटा) भी उनके साथ था।

नदी के बीच जाकर बीरबल ने बादशाह के बेटे को धक्का देकर नदी में गिरा दिया। बादशाह ने जब देखा कि मेरा पुत्र नदी में गिर गया तो वह उसी क्षण नदी में कूद पड़े। उन्होंने अपने किसी भी नौकर या गोताखोर को नहीं बुलाया।

वास्तव में, बादशाह के जिस बेटे को बीरबल ने नदी में गिराया था, वह सचमुच में उनका बेटा न था। वह उसकी शक्ल, सूरत और कद काठ और वस्त्रों से ऐसा लगता था कि असली हो जबकि वह मोम का एक पुतला था।

जब बादशाह अकबर को पता चला तो उसने बीरबल से पूछा– "बीरबल! आपने ऐसा क्यों किया? यदि मैं नदी में डूब जाता तो?"

बीरबल ने कहा–"बादशाह सलामत! नदी पार करते समय आपके साथ कितने ही नौकर चाकर थे, फिर भी आपने उस मुसीबत की घड़ी में किसी को नहीं बुलाया। आवाज नहीं दी और स्वयं ही नदी में छलांग लगा दी।"

"बीरबल! उस वक्त सोचने का वक्त कहाँ था? मेरा बेटा नदी के पानी के तेज बहाव के साथ बह न जाये, यही सोचकर मैं पानी में कूदा था। मैं उसे पकड़ना चाहता था। पर तूने मेरे साथ ऐसा मजाक क्यों किया। देख रहे हो मेरी कीमती पोशाक पानी में भीग कर खराब हो गई। मेरा मुकुट बहते–बहते बच गया।"

बीरबल ने कहा–''महाराज! एक दिन आपने पूछा था कि भगवान् अपने प्रेमी भक्त को लेने स्वयं क्यों आते हैं? यह आपके उसी प्रश्न का जवाब था। इतने नौकर साथ होते हुये भी आपने किसी को नहीं पुकारा। किसी को नहीं कहा कि मेरे शहजादे को पानी से बाहर निकालो। आप स्वयं ही नदी में कूद पड़े। बादशाह हजूर जिस प्रकार इतने नौकर–चाकर साथ रहने पर भी अपने प्रिय बेटे को बचाने के लिये, आपने अपनी जान की भी परवाह नहीं की और नदी में कूद पड़े, उसी प्रकार जो भक्त श्री हरिनामनिष्ठ होता

है, वह भगवान् का अतिप्रिय होता है, उसे लेने भगवान् स्वयं आते हैं। महाराज! अब तो आप समझ गये होंगे कि जब भगवान् के प्रेमी भक्त का अंतिम समय आता है तो वे उसके पास तुरन्त आ जाते हैं।"

प्रेमीजनो! भगवान् बहुत दयालु हैं। उनकी दया का अंत नहीं। इतिहास गवाह है कि जिस जिसने भी भगवान् को सच्चे मन से पुकारा, बुलाया, उसी क्षण भगवान् आ गये। उन्होंने वस्त्र रूप धारण कर भरी सभा में द्रौपदी की लाज बचाई! अपने भक्त गजेन्द्र (हाथियों का राजा) को दुःखी देखकर तथा उसके द्वारा पढ़ी हुई स्तुति सुनकर, सुदर्शन–चक्रधारी, जगदाधार भगवान् गरुड़जी की पीठ पर सवार होकर, तत्काल वहां पहुंच गये थे, जहाँ वह गजेन्द्र उन्हें बुला रहा था। अपने भक्त की पीड़ा देख कर, भगवान् अपने को रोक न सके और गरुड़ को छोड़कर तुरंत उसके पास आये और उसे झील से बाहर निकालकर, सबके देखते–देखते ग्राह (मगरमच्छ) का मुंह अपने चक्र से चीर कर अपने भक्त गजेन्द्र की रक्षा की।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार।
ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम्।।

(श्रीमद्भागवत 8.3.33)

प्रातः स्मरणीय, अर्चनीय एवं वंदनीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने इस श्लोक को अपने शब्दों में बड़ा सुंदर वर्णन किया है।

पीड़ा में उसको पड़ा देख, भगवान् अजन्मा पड़े उतर।
अविलम्ब गरुड़ से फिर कृपया झट खींच सरोवर से बाहर।।
कर गज को मकर–सहित, उसका मुख–चक्रधार से चीर दिया।
देखते–देखते सुरगण के हरि ने गजेन्द्र को छुड़ा लिया।
बोलिये ! भक्तवत्सल भगवान् की जय।।

नंदनंदन श्रीकृष्ण भगवान् हैं, इस बात की पुष्टि श्रीमद्भागवतम् में हुई है –

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भागवतम् 1.3.28)

यह एक विशेष श्लोक है।

इस श्लोक में वर्णन है कि भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं, वे भगवान् के पूर्णांश (अंश) या अशांश (कलायें) हैं पर नंदनंदन श्रीकृष्ण तो आदि भगवान् हैं।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानंद विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।1।।

"गोविंद के नाम वाले नंदनंदन श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं। उनका सच्चिदानंद शरीर है। वे ही सबके मूल उत्सव हैं। उनका कोई उत्सव नहीं है एवं वे ही समस्त कारणों के मूल कारण हैं।"

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.22)

"जो लोग अनन्यभाव से मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुये, निरंतर मेरी पूजा करते हैं, उनकी जो आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूँ।"

भगवान् श्रीकृष्ण का ऐसा भक्त जो हरपल, हरक्षण, हर सांस में उनका चिंतन करता है और श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, वंदन, अर्चन, दास्य, सख्यभाव तथा आत्मनिवेदन के द्वारा उनके चरणकमलों की सेवा में लीन रहता हो, ऐसे भक्त की पूरी जिम्मेवारी भगवान् ने इस श्लोक में ली है।

प्रेमीजनो! मेरे गुरुदेव इसीलिये बार–बार यही बात कह रहे हैं कि मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभ है। इसमें श्री हरिनाम का सहारा लो। जब आप हर रोज कम से कम एक लाख (64 माला)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरिनाम करोगे तो तुम्हें 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' हो जायेगी। अतः मेरी आप सभी से, हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि जो बीत गई सो बीत गई, अब तो संभल जाओ। अमूल्य मनुष्य जीवन का जो समय बचा है, उसको व्यर्थ न गंवाओ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति के प्रकाशन में जिन महानुभावों ने हमें अपना सहयोग दिया है, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

श्री गुरु–वैष्णव पददास,
हरिपद दास

गुरु–वाणी के अमृत बिन्दु

वैष्णवों के आविर्भाव व तिरोभाव तिथि में सबसे बड़ा कर्तव्य होता है–उन्हें याद करना। वैष्णवों को स्मरण करने से सारे विघ्न दूर हो जाते हैं।

•

माँ–बाप के लाडले बच्चे की प्रशंसा करने से जैसे बच्चे के माता–पिता का ध्यान आपकी तरफ आ जाता है, वैसे ही भगवान् के प्यारे भक्तों का गुणगान करने से भगवान् की कृपा–निगाह आपकी ओर आ जायेगी।

•

जो तिथि भगवान् व उनके प्यारे भक्तों की याद करा देती है, वही तिथि ही सर्वोत्तम है।

श्रील भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
30.10.2010

प्रेमास्पद वैष्णवगण के चरणों में नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् को पाने हेतु करबद्ध प्रार्थना।

श्रीमद्भागवत पुराण के दूसरे (2) स्कन्ध के नौवें (9) अध्याय की श्लोक संख्या बत्तीस (32) से श्लोक संख्या पैंतीस (35) में श्री भगवान् ने ब्रह्मा जी को जो ज्ञान किया है, वह अत्यन्त गोपनीय है। प्रेमाभक्ति और साधनों से युक्त, अपने रूप, गुण और लीलाओं का तत्व समझाते हुये श्री भगवान् कहते हैं–

चतुः श्लोकी भागवत

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।32।।
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयते चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।33।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।34।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्–स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।35।।

श्री भगवान् ने कहा–"ब्रह्मा जी, सृष्टि से पहले, केवल मैं था। मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं था। मेरे सिवाय न स्थूल था, न सूक्ष्म था और न ही इन दोनों का कारण ज्ञान था। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ भी मैं ही हूँ और इस सृष्टि के रूप में जो कुछ भी नजर आ रहा है, वह भी मैं ही हूँ।।32।। इसके बिना जो कुछ बाकी बचा रहेगा, वह भी मैं ही हूँ, वास्तव में, न होने पर भी, जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मुझ परमात्मा में दो चन्द्रमाओं की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश

मण्डल में, राहू आदि नक्षत्रों की तरह, प्रतीत नहीं होती वह सब मेरी ही माया है।।33।। जिस प्रकार सभी प्राणियों के पांच भूतों से बने हुये छोटे–बड़े शरीरों में जल, वायु, अग्नि आकाश तथा पृथ्वी–शरीरों के कार्य रूप से बने होने के कारण उनमें प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारण रूप से विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियों की दृष्टि से, मैं उनमें आत्मा के रूप में प्रवेश किये हुआ और आत्मसृष्टि से, अपने सिवाय और कोई भी वस्तु न होने कारण, उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।।34।। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं– इस प्रकार अन्वय की पद्धति से यह बात सिद्ध होती है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं। वही वास्तविक तत्व हैं। जो आत्मा और परमात्मा का तत्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जान लेने की आवश्यकता है।"

श्री भगवान् आदिकाल में अकेले ही थे। जब उनकी इच्छा होती है तो वे अपनी माया का आश्रय लेकर इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने के लिये अपने आपको ही अनेक रूपों में बना देते हैं और क्रीडा करते हैं। उस अनंत की लीलाओं का ही एक रूप है यह सृष्टि।

श्री भगवान् की इच्छा जब सृष्टि रचना करने की हुई तो उन्होंने तीनों लोकों के परमगुरु, आदिदेव ब्रह्माजी को अपनी नाभि से प्रकट किया। उन्हें तप करने को कहा। उनकी तपस्या से श्री भगवान प्रसन्न हो गये। श्री भगवान् ने वर मांगने को कहा। तब ब्रह्मा जी ने कहा "नाथ! मैं आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को जानना चाहता हूँ।" तब श्री भगवान ने उन्हें 'चतुः श्लोकी भागवत' का उपदेश दिया। श्री भगवान् के अन्तर्धान होने पर ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना की।

इस सृष्टि में अनंत कोटि जीवों के रहने के लिये शरीर रूपी मकानों का निर्माण किया गया था। उनके रहने की व्यवस्था की गई थी। चौरासी लाख योनियों में आत्मा रूप में भगवान् स्वयं

विराजमान हुये। इन चौरासी लाख योनियों को चार भागों में रखा गया। पहली सृष्टि थलचर (पृथ्वी पर चलने वाले जीवों) की है। दूसरी जल चर (जल में रहने वाले जीवों की) है, तीसरी नभचर (आकाश में उड़ने वाले जीवों की) है और चौथी अपने ही जैसे आकार वाले मानव की है। चार प्रकार की इस सृष्टि में चौरासी लाख योनियां हैं। इन सभी योनियों में रहने के लिये भगवान् न चौरासी लाख तरह के शरीर रूपी मकान भी बनाये और फिर उन सबमें आत्मा रूप से विराजमान हो गये। यह सब लीला भगवान् अपनी इच्छा से, स्वयं ही स्वयं से खेलने हेतु करते रहते हैं। वे परम स्वतंत्र हैं। कुछ भी कर सकते हैं। जब उनका अकेलेपन में मन नहीं लगा तो उन्होंने यह खेल रच डाला। इस खेल में चौरासी लाख तरह के मकान बना दिये। यह सभी मकान पांच तत्वों के बनाये गये। पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व तथा आकाश तत्व। जब इस शरीर में इन तत्वों की कमी हो जाती है तो शरीर कमजोर हो जाता है, समाप्त हो जाता है। जब इन मकानों में इन तत्वों की कमी हो जाती है तो मकान गिर जाता है और सारे तत्व अपने-अपने तत्वों में जाकर मिल जाते हैं। उसी प्रकार यह शरीर रूपी मकान भी जब मिट जाता है, शरीर में इन पांचों तत्वों की कमी हो जाती है तो वह शरीर भी अपने-अपने तत्वों में मिल जाता है। उसके अंदर रहने वाली आत्मा, जो अविनाशी, अजन्मा, शाश्वत् तथा अव्यय है, शरीर रूपी दूसरे मकान में चला जाता है। यह ठीक उसी प्रकार होता है जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है। उसी प्रकार यह आत्मा पुराने तथा व्यर्थ शरीर रूपी मकान को छोड़कर नये मकान में चला जाता है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.22)

जिस प्रकार पत्थर, चूना, पानी, बजरी और सीमेंट इत्यादि तत्वों से बना हुआ मकान गिर जाता है, ढह जाता है तो ये सभी तत्व अपने अपने तत्वों में जा मिलते हैं पर इनमें रहने वाला मनुष्य दूसरे मकान में चला जाता है। उसका उस पुराने मकान से कोई लेना देना नहीं रहता। उसी प्रकार आत्मा, जो सदा अमर है, निर्लिप्त है, वह भी एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। अपने शुभ–अशुभ कर्मों के आधार पर ही उस जीव को अगला शरीर मिलता है। अपने शुभ–अशुभ कर्मों के अनुसार ही उसे सुख–दुःख की प्राप्ति होती है। अपनी अज्ञानता के कारण ही जीव का इन चौरासी लाख प्रकार के मकानों में आना–जाना लगा रहता है। यदि यह जीव अपने साथ रहने वाली आत्मा, जो परमात्मा का ही अंश है, को पहचान ले, उससे प्रेम बना ले, तो वह भी परमानंद की अनुभूति कर सकता है, आनंद की लहरों में गोते लगा सकता है पर दुर्भाग्यवश, अज्ञानतावश यह जीव अपने साथी या पिता आत्मा स्वरूप परमात्मा को भूल गया इसीलिये जन्म–जन्मांतरों से दुःख के सागर में गोते खा रहा है। यह संसार ही दुःख का सागर है। इससे बाहर निकलना बहुत मुश्किल है और बाहर निकले बिना उसे सुख सागर मिलेगा नहीं। आनंद की प्राप्ति होगी नहीं। फिर यह सब कैसे होगा ?

यदि किसी बहुत बड़े जंगल में आग लग जाये और वह आग विकराल, विराट रूप धारण करने लगे तो उस जंगल में रहने वाले सभी जीव–जन्तु जलकर राख हो जायेंगे। अपनी शक्ति से, अपनी बुद्धि से वे सभी अपना बचाव नहीं कर सकते। इतने बड़े जंगल की आग को बुझाना आदमी के वश की बात नहीं। पर यदि भगवान् कृपा करें, घनघोर बादल आकाश में छा जायें और जंगल में मूसलाधार वर्षा हो जाये तो सभी जीव बच सकते हैं। यह सब होगा भगवद्कृपा से ही।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर लिखते हैं–

संसार दावानल लीढ़ लोक, त्राणाय कारुण्य घनाघनत्वम्
प्राप्तस्य कल्याण गुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्री चरणारविन्दम्।

"जिस प्रकार वन में लगी हुई दावाग्नि पर जल की वर्षा करके मेघ उसे शांत कर देता है, उसी प्रकार श्रील गुरुदेव सांसारिक जीवन की धधकती हुई अग्नि को शांत करके, भौतिक दुःखों से पीड़ित जगत् का उद्धार कर रहे हैं। शुभगुणों के सागर, ऐसे श्रील गुरुदेव के चरणकमलों की मैं सादर वन्दना करता हूँ।"

इसी प्रकार यदि कोई भगवान् का प्यारा, कोई श्रीहरिनाम निष्ठ कृपा कर दे, हमारी अज्ञानता दूर कर दे, हमारे अंधकारमय जीवन में ज्ञान का दीपक जला दे तो हमारा जीवन सदा–सदा के लिये जगमगा उठे। भगवान् का कोई प्यारा, निजजन ही इसकी अनुभूति करवा सकता है। आत्मा को परमात्मा से मिला सकता है। इसके बिना कोई दूसरा उपाय अनंतकोटि ब्रह्मांडों में नहीं है, नहीं है, नहीं है।

श्री भगवान् की लीला बड़ी विचित्र है। हम सब उनके लिये खिलौने हैं। जैसे कोई बच्चा खिलौनों से खेलता है, उन्हें तोड़ता है तो बहुत खुश होता है। ऐसे ही वह सृजनहार, नित्य नये–नये खेल खेला करता है। यह सब उसकी लीला है, उसका खेल मात्र है। उस परम स्वतंत्र भगवान् ने चौरासी लाख योनियों की सृष्टि वाले प्राणियों को उनके कर्मानुसार शरीर दिये। उसकी उस असीम सृष्टि में अनंत कोटि जीव इन योनियों में विचरने लगे। अब भगवान् ने सोचा कि यदि ये जीव मरेंगे नहीं तो कम नहीं होंगे और उनकी संख्या बढ़ते रहने से सारे ब्रह्मांड इन प्राणियों से भर जायेंगे और रहने के लिये जगह ही नहीं बचेगी। इसलिये उनमें खाने की प्रवृति बना दी। जीवो जीवस्य भोजनम् अर्थात जीव ही जीव का भोजन है। ये जीव दूसरे जीवों को खाने लगे। मनुष्य को छोड़कर, जो कोई भी जीव किसी दूसरे जीवन को खाता है, उसे दोष या पाप नहीं लगता। यह इसलिये क्योंकि उन जीवों में अज्ञानता की प्रधानता

है। परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को अपने जैसा आकार दिया, शरीर दिया, उसे बुद्धि दी, ज्ञान दिया जिसके द्वारा वह अपने पिता परमात्मा की गोद में जा सकता है। श्री भगवान् ने मानव को कर्म करने की प्रवृत्ति प्रदान की, स्वतंत्रता दी, जिसके द्वारा वह अच्छा या बुरा कर्म करता है। इन्हीं कर्मों के अनुसार उसे शरीर अर्थात् मकान की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार हर एक आत्मा के ठहरने के लिये एक–एक मकान दे दिया। हाथी, ऊँट, बकरी, गाय, भैंस, सूअर, गधा, घोड़ा, खच्चर, कुत्ता, बाघ, खरगोश, बंदर तथा सिंह इत्यादि जानवर पृथ्वी पर चलकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। पंखों से उड़ने वाले पक्षी, जैसे हंस, मोर, चिड़िया, कबूतर, बगुला, गिद्ध, बटेर, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ तथा उल्लू आदि पंखों या परों से उड़कर जीवन जीते हैं। जल में रहने वाले जलचर मेंढक, मछली, मगरमच्छ, कछुआ इत्यादि तथा पृथ्वी पर रेंगकर चलने वाले सांप, बिच्छू, खटमल, जूँ इत्यादि सभी अपने–अपने शरीर रूपी मकानों में निवास करते हैं।

मनुष्य योनि इन सभी योनियों में सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् ने उसे बुद्धि दी है, विवेक दिया है। अब यदि मानव इन जीवों के शरीर को नष्ट करता है, उनके रहने के मकानों को गिराता है तो उन मकानों में रहने वाले जीवों को दुःख होगा ही। मनुष्य के इस कर्म का उसे फल जरूर मिलेगा। समय आने पर उसे इसका फल भोगना ही पड़ेगा। वह इससे बच नहीं सकता क्योंकि जिस मकान को उसने तोड़ा है, नष्ट किया है, गिराया है, उसका साक्षी उसमें रहने वाली आत्मा है जो परमात्मा का अंश है, परमात्मा का पुत्र है। आत्मा जब उसके कर्म की साक्षी (गवाही) देगा तो वह दण्ड से बच नहीं सकेगा और दारूण दुःखों में फंसता रहेगा। संसार में भटकता रहेगा।

किसी भी जीव को मारना या सताना युक्ति संगत नहीं है। भगवान् की इस रचना में हर जीव को जीने का अधिकार है और

हर जीव जीना भी चाहता है परंतु अज्ञानतावश, दुष्ट प्रकृति परवश होकर, मनुष्य इन जीवों को सताता है, मारता है। अपनी जीभ के स्वाद के लिये उनका मांस भक्षण करता है। कभी-कभी अपनी रक्षा के लिये, बिच्छु, सांप, मच्छर इत्यादि को भी बेरहमी से मारता है। अपनी प्रकृतिवश हर प्राणी अपनी रक्षा करता है, जब मनुष्य इन जीवों को मारता है तो जीव मूकदर्शक बना अपने बचाव में इधर-उधर भागता है पर मनुष्य उस निर्दोष को मार कर ही दम लेता है। आज जिस प्राणी को हम मारते हैं, कल उसी का शरीर हमें धारण करना पड़ेगा। हमें भी सांप, बिच्छु बनना पड़ेगा। इस प्रकार मनुष्य अपने अगले शरीर की, मकान की, रचना स्वयं करता है। यदि वह ऐसा न करे, जीवों को न मारे तो वह इन अध ाम (निम्न) योनियों में जाने से बच सकता है। मानव की योनि में आकर, यह बात हमें याद रखनी चाहिये-

जीयो और जीने दो।

यह मनुष्य का स्वधर्म है। हर प्राणी में भगवान् का निवास है। यदि मनुष्य किसी को सताता है, मारता है तो सीधे तौर पर वह भगवान् को सताता है, दुःख देता है। ऐसे मनुष्य को क्या भगवान् की कृपा मिल सकती है ? कदापि नहीं। यह शरीर रूपी मकान तो एक जड़ चीज है, नश्वर है पर इस शरीर रूपी मकान में रहने वाली आत्मा तो शाश्वत्-अजर है, अमर है। उससे द्वेष करके, उससे शत्रुता करके सुख-शांति की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

श्रीमद्भागवतपुराण के एकादश स्कन्ध के 29वें अध्याय के 19वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रिय उद्धवजी से कहते हैं-

"मैं सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूं कि समस्त प्राणियों और पदार्थों में मन, वाणी और शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि समस्त जीवों में तू मुझे ही देख। इस सृष्टि में मेरे सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। यह हरी-भरी प्रकृति भी मेरा ही स्वरूप है। हरे-भरे पेड़ों को काटना भी पाप है। यदि

कोई ऐसा करता है तो उसे वृक्ष की योनि में जन्म लेना पड़ेगा। श्रीमद्भागवत पुराण के दसवें स्कन्ध के दशवें अध्याय में यमलार्जुन की कथा आती है। धनाध्यक्ष कुबेर के लाड़ले पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव के मद को चूर–चूर करने के लिये, देवर्षि नारद ने उन्हें वृक्षयोनि में जाने का शाप दिया था। साथ ही उन पर अनुग्रह करते हुये कहा कि मेरी कृपा से वृक्षयोनि में जाने पर भी उन्हें भगवान् की स्मृति बनी रहेगी। देवर्षि नारद के शाप से नलकूबर और मणिग्रीव दोनों एक साथ ही अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुये। उस योनि में सौ वर्ष बीत जाने पर उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त हुआ। जब भगवान् श्रीकृष्ण कार्तिक मास (दामोदर मास) में ऊखल–बंधन की लीला कर रहे थे और माता यशोदा ने उन्हें रस्सी से बांध दिया था तो भगवान् ने सोचा कि मुझे इन दो वृक्षों का भी उद्धार करना है। ऐसा मन में आते ही, अपने प्रेमी भक्त देवर्षि नारद के शाप व वरदान को सत्य करने के लिये, भगवान्, ऊखल को धीरे–धीरे घसीटते हुये उस ओर जाने लगे, जहां पर यमलार्जुन वृक्ष थे। भगवान् ने ऊखल को दोनों वृक्षों के बीच फंसा दिया और अपनी कमर में कसकर के बंधी हुई रस्सी को जोर से खींचकर पेड़ों को उखाड़ दिया और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उन दोनों वृक्षों के बीच में से दो सिद्ध पुरुष निकले। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में सिर रखकर प्रणाम् किया और हाथ जोड़कर स्तुति की–

नमः परम कल्याण नमः परम मंगल।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।।

(श्रीमद्भागवतम् 10.10.36)

“परमकल्याण स्वरूप। आपको नमस्कार है। परमशान्त, सबके हृदय में विहार करने वाले यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण को नमस्कार है।”

इस ऐतिहासिक घटना से यह प्रमाणित हो जाता है कि पेड़ों के रूप में देवता भी इस पृथ्वी पर रहते हैं। मैंने संतों से सुना है कि

श्रीराधाकुंड में श्रीश्यामकुंड के किनारे पांचों पांडवों ने वृक्षों के रूप में रहकर तपस्या की थी।

इस कथा का सार यही है कि जैसा भी हम कर्म करेंगे, वैसा ही हमें फल मिलेगा। जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे।

As you saw, so shall you reap.

यदि हम शुभ कर्म करेंगे तो सुख मिलेगा और अशुभ कर्म करेंगे तो दुःख भोगना ही पड़ेगा। शुभकर्म करके मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है और जब उसके पुण्य के फलों की समाप्ति हो जाती है तो उसे फिर इस पृथ्वी पर आना पड़ता है।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।

(श्री भगवद्गीता 9–21)

इसी प्रकार जो लोग बुरे कर्म करते हैं उन्हें भी उनका फल भोगने नरक में जाना पड़ता है और उसके बाद पुनः इस पृथ्वी पर आना पड़ता है। इस प्रकार मनुष्य बार–बार कभी ऊपर, कभी नीचे जाता–आता है। उसका यह चक्र, आवागमन कभी समाप्त नहीं होता। पर यदि मनुष्य चाहे तो वह सच्चिदानन्दमय जीवन जी सकता है और अपने असली घर, भगवद्धाम जा सकता है। पर यह सब होगा भगवान् के किसी प्रियजन, निजजन की कृपा से ही। वही ज्ञान का दीपक जलाकर अज्ञान के अंधकार को भगा सकता है। कोई प्रामाणिक गुरु, जो हमें परम्परा में मिला हो, जिसे गुरु–परम्परा ने अधिकार दिया हो, उसके शरणागत होकर, यदि साधक नाम का सहारा लेकर भगवान् को भजता है तो ऊपर लिखे कर्मों का फल जलकर भस्मीभूत हो जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता के चौथे अध्याय का दूसरा श्लोक–

"एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः"

इस बात की पुष्टि करता है कि हमें परम विज्ञान की प्राप्ति गुरु–परम्परा द्वारा ही हुई है। गुरु परम्परा जब टूट जाती है और कोई गुरु–परम्परा के अनुसार नहीं चलता, तो भगवान् श्रीकृष्ण

उसे स्वीकार नहीं करते। हमें जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है गुरु परम्परा से ही प्राप्त हुआ है। भगवत्–तत्व ज्ञान–प्रवाह की अनादि सनातन चार धाराएं हैं। इन्हीं के अन्तर्गत, रहकर, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" हो सकती है। ये धाराएं भगवान् श्रीकृष्ण से शुरू हुई हैं। ये धाराएँ हैं–

1. श्री ब्रह्मा जी (श्री ब्रह्म सम्प्रदाय)
2. श्री लक्ष्मी जी (श्री सम्प्रदाय)
3. श्री रुद्र जी (श्री रुद्र सम्प्रदाय)
4. श्री सनक जी (श्री सनक सम्प्रदाय)

क्योंकि हमारी गुरु–परम्परा अर्थात् श्री ब्रह्म–मध्व गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की गुरु परम्परा है। इसीलिये जिस क्रम में हमें यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसकी गुरु परम्परा इस प्रकार है–

1. श्रीकृष्ण
2. श्री ब्रह्मा
3. श्री नारद
4. श्री व्यास
5. श्री मध्व
6. श्री पद्मनाभ
7. श्री नरहरि
8. श्री माधव
9. श्री अक्षोभ्य
10. श्री जयतीर्थ
11. श्री ज्ञानसिन्धु
12. श्री दयानिधि
13. श्री विद्यानिधि
14. श्री राजेन्द्र
15. श्री जय धर्म
16. श्री पुरुषोत्तम
17. श्री ब्रह्मण्यतीर्थ

18. श्री व्यासतीर्थ
19. श्री लक्ष्मीपति
20. श्री माधवेन्द्रपुरी
21. श्री ईश्वरपुरी (श्री अद्वैताचार्य, श्री नित्यानंद)
22. श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु (स्वयं भगवान्)
23. श्री रूप (श्री स्वरूप दामोदर)
24. श्री जीव गोस्वामी (श्री रघुनाथ दास गोस्वामी)
25. श्री कृष्णदास कविराज
26. श्री नरोत्तम ठाकुर
27. श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर
28. श्री बलदेव विद्याभूषण
29. श्री जगन्नाथ दास बाबा जी
30. श्रील भक्तिविनोद ठाकुर
31. श्रील गौरकिशोरदास बाबा जी
32. श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद
33. श्री श्री भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
34. श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज
    (अखिल भारतीय श्री चैतन्यमठ के वर्तमान आचार्य)

भगवान्, श्रीकृष्ण ने गीता के अठारवें अध्याय के छियासठवें श्लोक में कहा है–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18.66)

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने, पूरी श्रीमद्भगवद्गीता का सार (निचोड़) बता दिया है। वे कहते हैं अर्जुन! अब तक मैंने जो भी विधियां बताई हैं, तू उन सबका परित्याग करके, केवल एक काम कर। मेरी शरण में आ जा। ऐसा करके तू समस्त पापों से बच जायेगा। मैं तेरा उद्धार कर दूंगा। तू चिंता न कर। डर मत।

बात स्पष्ट है कि पापों से मुक्त होने के लिये कठोर तपस्या करने की जरूरत नहीं। जो कुछ हो गया, सो हो गया पर भविष्य में हम पाप न करें और भगवान् श्रीकृष्ण की शरण गृहण कर लें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण की शरण लेने के बाद फिर कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, ध्यानयोग आदि अनुष्ठान करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। कर्मयोगी, दार्शनिक, योगी तथा भक्त–ये सभी अध्यात्मवादी हैं–पर इन सबसे शुद्ध भक्त ही सर्वश्रेष्ठ है।

पूर्णशरणागत भक्त का एक ही लक्षण है। वह भगवान् के लिये रोयेगा, तड़पेगा। यदि ऐसा लक्षण नहीं है तो समझो, वह पूर्ण शरणागत नहीं है। केवल जुबान (बोलने में) से ही शरणागत हुआ है, दिल से नहीं।

भगवान् की हर लीला रहस्यमयी होती है। वे हर काम अपने प्रिय भक्तों के माध्यम से करते हैं। जैसे यमुलार्जुन की कथा में उन्होंने देवर्षि नारद जी से शाप व वरदान दिलवाकर, अपनी लीला की है। इस प्रकार वैष्णव भक्त ही अग्रगण्य है।

मेरी प्रेमास्पद भक्तगणो! मेरे श्रील गुरुदेव की बात बड़े ध्यान से सुनो।

शुक्लाम्बर–भाग्य बलिवारे शक्ति का'र
गौरचन्द्र अन्न–परिग्रह कैला यार।।

श्रीश्रीचैतन्य भागवत (मध्यखंड 26.57)

"उन शुक्लाम्बर के भाग्य का वर्णन करने की शक्ति भला किसमें है जिनका अन्न गौरचन्द्र ने स्वयं ग्रहण किया है।"

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी एक भिक्षुक थे। वे भगवान् व भक्तों की सेवा करने के लिये मधुकरी मांगकर लाते थे। अपने पेट पालने के लिये नहीं। जगत् के मंगलस्वरुप, श्री गौरचन्द्र एक दिन शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के पास आये और अन्न मांगा।

"तोर अन्न खाइते आमार इच्छा बड़।
किछु भय न करिह, बलिलाङ्ग दृढ़।।''

"तेरा अन्न खाने की बड़ी इच्छा होती है। मैं दृढ़तापूर्वक यह बात कह रहा हूँ। डर मत।"

यह बात एक बार नहीं, बार–बार महाप्रभु ने कही। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी, महाप्रभु के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाता हुआ बोला– "मैं अधम, भिखारी, पापिष्ठ और निंदनीय हूँ। कहाँ आप सनातन धर्म स्वरूप और कहाँ मैं पापी ? प्रभो। मुझे अपने चरणों की छाया प्रदान कीजिये। हे प्रभु! मैं तो कीड़े के समान भी नहीं हूँ।"

प्रभु ने कहा–"बड़ इच्छा बासे मोर तोमार रन्धने।।''

"तुम्हारे हाथ से पका हुआ अन्न भोजन करने की मेरी बड़ी इच्छा है। जाओ। घर में जाकर नैवेद्य तैयार करो। आज दोपहर को मैं अवश्य आऊँगा।"

वास्तव में देखा जाए तो जो सब में भगवान् के दर्शन किया करते हैं, सर्वतोभाव से प्रभु का भजन किया करते हैं, प्रभु उन्हीं का अन्न ढूंढते हैं। इसी भक्ति के वश होकर उन्होंने शुद्र–पुत्र विदुर की पत्नि (विदुरानी) से मांगकर केले के छिलके खाये थे। धन्ने भक्त की सूखी रोटियां खाई थीं। भीलनी के बेर खाये थे। सुदामा के तंदुल खाये थे। द्रौपदी से अक्षयपात्र में लगा हुआ पत्ता मांगकर खाया था।

शुक्लांबर ने स्नान करने के बाद बड़ी सावधानी से स्वयं सुवासित जल गर्म किया। फिर बिना स्पर्श किये उस गर्म जल में तण्डुल (चावल) तथा केले के पेड़ का गूदा (गर्भ–थोड़) डालकर दोनों हाथ जोड़ दिये। डरे तथा सहमे हुये उस निर्धन ब्राह्मण ने प्रार्थना की–

'जय कृष्ण गोविंद गोपाल वनमाली।' और वे श्रीहरिनाम करने लगे। उसी क्षण महा–पतिव्रता, जगन्माता, लक्ष्मीदेवी ने भक्त के अन्न पर दृष्टिपात कर दिया। रमा देवी के दृष्टिपात के कारण सारा अन्न अमृतस्वरूप बन गया। उधर स्नान करने के

बाद प्रभु भी वहां आ गये। नित्यानंद आदि भी उनके साथ थे। श्री शचीनंदन ने स्वयं अपने हाथों से अन्नग्रहण करके विष्णु को निवेदित किया। फिर प्रभु आनंदपूर्वक भोजन करने के लिये बैठ गये। सभी भक्तगण नयन भरकर उन्हें देख रहे थे और उस स्वादिष्ट भोजन की प्रशंसा कर रहे थे। भक्तवत्सल प्रभु बोले–"जब से मेरा जन्म हुआ है, तब से लेकर आजतक मैंने ऐसा स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं खाया। केले के गूदे का स्वाद तो मैं वर्णन ही नहीं कर सकता।"

शुक्लाम्बर पर महाप्रभु की कृपा दृष्टि से भक्तवृन्द गद्‌गद् हो गया और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे।

भक्तजनो! इस कथा को ध्यान से समझो। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी अनेक स्थानों से भिक्षा मांगकर लाते थे। भिक्षा में लाये गये अन्न में स्पर्श आदि का दोष रहता है परंतु भगवान् भक्त के दोष, अपराध नहीं देखते। वे तो भक्त के हृदय की पवित्रता ही देखा करते हैं। भगवान् को धन, जन या पण्डित्य प्रतिभा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे तो भक्तिरस के वशीभूत हैं। भगवान् गीता में कहते हैं–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 9.26)

"यदि कोई प्रेम तथा भक्ति के साथ मुझे पत्र, पुष्प, फल या जल प्रदान करता है तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"



हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद की वाणी स्मृति

23-24 वर्ष पहले की बात है। एकदिन प्रसिद्ध कृष्णदास बाबाजी अपने एक शिष्य के साथ महाप्रभु के घर (श्रीयोगपीठ श्रीमंदिर) आये थे। कृष्णदास बाबाजी, भक्तिविनोद ठाकुर, कृष्णदास बाबाजी का वह शिष्य एवं और भी कुछ लोग महाप्रभु के घर में भण्डार के बरामदे में प्रसाद पाने को बैठे। कृष्णदास बाबाजी ने तो बहुत सम्मान के साथ प्रसाद पाया। उनके शिष्य ने सोचा था कि जब यहाँ पर निमंत्रण हुआ है तो अनेक प्रकार का चर्व्व, चोष्य आदि उत्तम वस्तुएँ खाने को मिलेंगी। वे कहने लगे- इस तरह का सादा प्रसाद! ठाकुरजी के लिए अच्छी-अच्छी रसोई करना चाहिये। कृष्णदास बाबाजी ने शिष्य से कहा, 'महाप्रभु के प्रसाद को ऐसा नहीं कहना चाहिए।' उन दिनों में मोटा चावल और धाम में उत्पन्न (जंगली) तोरई की सब्जी का भोग होता था, और दिनभर हरिनाम-हरिकथा होती थी। जिह्वा के वेग से ही उपस्थ वेग आ जाता है।

जिह्वार लालसे जे इति उति धाय।
शिश्नोदर परायण - कृष्ण नाहि पाय।।

(जीभ के लालच से जो इधर-उधर भागता है ऐसे उदर-उपस्थ परायण व्यक्ति को कृष्ण प्राप्त नहीं होते।)

खूब सादा-सीदा प्रसाद पाना है और दिन भर हरिनाम करना है- हरि सेवा करनी है। पापिष्ठ (पाप में आसक्त) लोग कृष्ण पूजा नहीं करते। स्वल्प विचार परक लोग कृष्ण पूजा करते रहते हैं और बुद्धिमान् लोग कृष्ण-भक्त की पूजा कर यथार्थ रूप से कृष्ण पूजा करते हैं। 'कनिष्ठ अधिकारी' कृष्ण पूजा करते हैं, 'मध्यम अधिकारी' व 'उत्तम भागवत' कृष्ण भक्त की पूजा करते हैं। प्राकृत-सहजिया लोग यह समझ नहीं पाते। वे सोचते हैं कि जो कृष्ण पूजा करता है, वही ज्यादा बड़ा है। यह सोचकर वे अपने को 'वैष्णव' मानकर अभिमान करते हैं। दूसरों से पूजा लेते हैं, स्वयं वैष्णव की पूजा करना छोड़ देते हैं। परंतु जिन्होंने श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीगोस्वामियों की कथा सुनी है, वे जानते हैं कि कृष्ण-भक्त की पूजा द्वारा ही यथार्थ कृष्ण पूजा होती है। कृष्ण भक्त की पूजा छोड़कर कृष्ण पूजा का नाटक करना अर्थहीन है। कृष्ण पूजा-कारी या नाम-भजन करने वाले को पग-पग पर अपराध हो सकता है। नाम भजन करने वाले को 'साधु-निन्दा' रूप अपराध हो सकता है। अपराध रहते हुए कृष्ण-नाम या कृष्ण सेवा नहीं होती। परंतु कृष्ण भक्त की पूजा करने वाले से ही यथार्थ कृष्ण पूजा व 'नाम' होता है। ठाकुर महाशय ने कितने प्रकार से ये सारी बातें कहीं- गोस्वामीगणों ने कितने प्रकार से इन सारी बातों को समझाया, '**छाड़िया वैष्णव सेवा, निस्तार पेयेछे केवा**'। (अर्थात् वैष्णव-सेवा छोड़कर किसी ने भी उद्धार नहीं पाया) ठाकुर महाशय ने अपने ऊपर इन सारी बातों को आरोपित कर कितनी कठोरता के साथ सहजिया सम्प्रदाय को शासन किया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग–4



– अनिरुद्ध दास अधिकारी

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

04.01.11

मन स्थिर कैसे हो?

सभी साधकों की समस्या है कि मन स्थिर यानि एकाग्र कैसे हो। इस समस्या का हल मेरे श्री गुरुदेव सभी साधकों को बता रहे हैं, ध्यान देकर सुनने की जरूरत है।

श्री गुरुदेव बता रहे हैं कि मन स्थिर होने के अनन्त मार्ग हैं जिनसे मन एक पल भी कहीं नहीं जा सकता। हरिनाम स्मरण से मुख तथा तन की थकान होना एक आम बात है। इसके बारे में श्रीगुरुदेव जी बता रहे हैं कि 2-2 या 4-4 माला वाचक पहले जीभ के उच्चारण से शुरू करे। इसे पास में या दूर बैठा व्यक्ति भी सुनता रहता है। जब थोड़ी थकान महसूस हो तो 2 या 4 माला उपांसु अर्थात् कंठ से जाप करे। इस जाप से होंठ हिलते रहेंगे पर पास में बैठा साधक सुन नहीं सकेगा। स्वयं का कान ही सुन पायेगा। इसे जगत् में कानाफूसी के नाम से जाना जाता है। जब कंठ थक जाये तो फिर 2-2 या 4-4 माला मन से स्मरण करता हुआ करे। इस स्मरण से अपने मन का कान ही सुन पावेगा और ऐसा महसूस होगा कि जैसे कोई अन्तःकरण में बोल रहा है। इस स्मरण से कोई नहीं जान पावेगा कि साधक क्या कर रहा है। वह समझेगा कि गुमसुम (चुपचाप) बैठा है। नामनिष्ठ श्री हरिदास ठाकुर जी इसी तरह तीनों प्रकार के जाप करते रहते थे। तीन लाख जाप जीभ उच्चारण से नहीं हो सकता क्योंकि इस से गहरी थकान हो जाती है, मुख सूख जाता है और तन भी थक जाता है।

अब मन को कैसे रोका जाए, इसका उपाय श्रीगुरुदेव जी बता रहे हैं कि मानसिक रूप से किसी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर तीनों जाप करना बहुत जरूरी है। नामनिष्ठ कौन-कौन हैं., कुछ उदाहरण देकर बताया जा रहा है। पाठकों की सुविधा के लिये इस ग्रंथ में नामनिष्ठों के कुछ चित्र भी दिये गये हैं।

सबसे पहले अपने श्रीगुरुदेव के चरणों में बैठकर जितना नाम जप सके, जपे। यह 2 या 4 माला भी हो सकती हैं। इसके बाद नामनिष्ठ शिवजी के चरणों में बैठे। उसके बाद शेषनाग जी, जो 1000 मुखों से हरिनाम जपते रहते हैं। ये शेषनाग जी ही लक्ष्मण, बलदाऊ तथा निताई के अवतारों में प्रगट हुये हैं, इनके चरणों में बैठ कर नाम जपे। फिर श्रीगणेश जी, फिर हनुमान जी फिर हरिदास जी, प्रभुपाद जी, भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद जी तथा और भी जितने नामनिष्ठ इस संसार में प्रगट हुये हैं, उनके चरणों में बैठकर नाम जप कर सकते हैं। श्रीनिताई–गौर तथा श्री श्रीराधाकृष्ण जी, नृसिंह भगवान्, भीष्मपितामह, अर्जुन आदि के चरणों में बैठकर नाम जपा जा सकता है। इसी तरह कभी राधाकुण्ड, कभी गिरिराज जी की परिक्रमा का ध्यान करते हुये, भगवान् की लीलाओं का स्मरण करते हुये मन को हरिनाम में लगाते रहो, फिर मन कहीं जायेगा ही नहीं। जिसका ध्यान करोगे उसका आशीर्वाद तथा कृपा उपलब्ध होगी। तुलसीदास जी ने तो संत–असंत सब की कृपा लेने हेतु प्रार्थना की है।

मन को एकाग्र करने के अनेक मार्ग हैं। यदि कोई हरिनाम करना चाहे तो मन एक पल भी इधर–उधर नहीं जा सकता। पर जो भगवान् को चाहेगा ही नहीं उसे यह स्थिति प्राप्त नहीं होगी। श्रीगुरुदेव साधकों को भगवत् चरणों में लगा–लगा कर थक गये, कभी कभी रोषपूर्ण वाक्य भी बोल देते हैं। जहां अपनापन होगा वहीं पर सजा भी दी जा सकती है क्योंकि अपनी मां ही बच्चे को थप्पड़ लगा सकती है। जिस प्रकार असली चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार असली भक्त प्रेम–अश्रुओं से भगवान् को आकर्षित कर लेगा। जो असली रोवेगा उसका लक्षण है कि वह भगवान् की याद में बार–बार रोता रहेगा। जब भी भगवान् की लीला का कोई मार्मिक प्रसंग आवेगा तो उसका मन सांसारिक कामों में नहीं रह सकता जैसे नरसी भक्त, मीरा, हरिदास, नामदेव आदि भक्त 24 घण्टे ही भगवत चर्चा में मस्त रहते थे।

भगवान् के लिए असली रोना दूसरों को भी प्रभावित कर देता है जबकि नकली रोना किसी पर प्रभाव नहीं करता।

Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare



तुमि कृष्ण स्वयं प्रभो, जीव-उद्धारिते विभो,
नवद्वीप-धामे ते अवतार।
कृपा करि रांगा पाय, राख मोरे गौरराय
तबे चित्त प्रफुल्ल आमार।।

हे प्रभो! आप तो स्वयं विभु अर्थात् सर्वव्यापक श्रीकृष्ण ही हो एवं जीवों का उद्धार करने के लिये आपने नवद्वीप धाम में अवतार लिया है। हे गौरचन्द्र! आप अपने इन लालिमा युक्त दिव्य चरणों में कृपा करके मुझे स्थान दीजिये, तभी तो मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि)

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
29.11.2010

अगला जन्म मनुष्य का ही मिले इसकी कोई गारंटी नहीं

प्रेमास्पद भक्त प्रवरगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

हर समय वैष्णव अपराध होने पर हरिनाम में स्वप्न में भी मन नहीं लग सकता। इस अपराध के कारण चौरासी लाख योनियां भुगतनी ही पड़ेंगी। एक बार नहीं, न जाने कितनी बार चौरासी लाख योनियों में से गुजरना पड़ेगा क्योंकि मनुष्य अपनी जिंदगी में न जाने कितने जीवों का संहार करता रहता है। जिन-जिन जीवों को ये मारता है, वे सभी इसे मारकर बदला लेंगे। जीवों की उम्र भी भिन्न-भिन्न हुआ करती है। एक दिन से लेकर पांच हजार, दस हजार वर्ष तक की होती है। इन जीवों में मानव भी जन्म लेता है जो अन्य जीवों को मारता है। वह यह कभी नहीं सोचता कि उसे इन सब हत्याओं का बदला चुकाना ही पड़ेगा।

मेरे श्रीलगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज सभी साधकों की आंखें खोल रहे हैं और कह रहे हैं कि अब भी समझ जावो। श्री हरिनाम की शरण में चले आवो। नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है और वह भी मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर करना होगा। बिना सुने नाम प्रभाव नहीं करेगा। श्रील प्रभुपाद ने कहा हैः-

All benefits accrue to one who chants the holy name but there is one thing, we must bear in mind, if you are going to chant

you must first listen. Through the worship of holy name, the soul can attain all perfections. - Srila Prabhupad.

जब इस भौतिक जगत् का कोई भी काम बिना सुने बिगड़ जाता है तो भगवत्–नाम बिना सुने कैसे प्रभाव कर सकता है।

रामनाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय
कोई रोग आवे नहीं, महारोग मिट जाय।

कलियुग में केवल हरिनाम से ही वैकुण्ठ मिल जाता है। दूसरा कोई भी साधन करने की जरूरत नहीं है। भगवान् को प्राप्त करने का कितना सरल और आसान मार्ग है पर अभागा मानव फिर भी हरिनाम नहीं करता। वह सोता रहता है और जब मौत आती है तो पछताता है। भगवान् प्रत्येक जीव में विराजमान है पर यह ज्ञान तो सच्चा साधु ही दे सकता है। वही सही रास्ता बता सकता है। इसलिये तो शास्त्र कहता है कि एक पल का साधुसंग ही मानव का जीवन बदल देता है परंतु यह संग किसी सुकृतिशाली मानव को ही मिलता है जिसने जाने–अनजाने में कभी किसी साधु की सेवा की होती है। साधु सेवा के अभाव में सच्चा सत्संग मिलना असंभव है।

कई बार मनुष्य साधु से द्वेष करता है, उसके दोष देखता है और अपराध कर बैठता है। फलस्वरूप उसका पतन होने लगता है और वह और भी नीचे दलदल में फंसता चला जाता है। ऐसे मनुष्य को चौरासी लाख योनियां कितनी बार भुगतनी पड़ेंगी, इसका अंदाजा लगाना ही मुश्किल है।

इन सब दुःखों एवं कष्टों से छूटने का यदि कोई उपाय है तो वह है श्री हरिनाम। श्री हरिनाम करो। श्री हरिनाम करो। श्री हरिनाम करो और कान से सुनते रहो। यह भी केवल कलियुग में ही हो सकता है। जब हम प्रतिदिन एक लाख हरिनाम करेंगे,

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

मुख से उच्चारण करेंगे और कान से सुनेंगे तो हमसे जो भी पाप हो चुके हैं या हो रहे हैं, वे सभी जलकर भस्म हो जायेंगे।

हरिनाम रूपी प्रचण्ड अग्नि उन सबको जलाकर राख कर देगी। जब हमारे पाप कर्म समाप्त हो जायेंगे तो हमारा मन धीरे–धीरे संसार की ओर से हटता चला जायेगा और अपने अनन्य भगवान् के चरण कमलों में लग जायेगा। जब हमारा मन हरिनाम में लग जायेगा तो फिर अष्ट–विकार उदय होने लगेंगे और एक मस्ती, मादकता सी अन्तःकरण में प्रकट होने लगेगी। मन निश्चिंत हो जायेगा। हृदय में आनंद की लहरें उठने लगेंगी।

पर यदि किसी वैष्णव के चरणों में अपराध हो गया या किसी सच्चे साधु के प्रति दोषदृष्टि हो गयी तो सारा किया कराया मिट्टी में मिल जायेगा। इसलिये सावधानी बहुत जरूरी है। इस अपराध से बचने का एक तरीका यह है कि किसी का गुणदोष न देखें, न सुनें, अपने हरिनाम में मस्त रहें तभी मानवजीवन सफल हो पायेगा। इस प्रकार आवागमन से छूट कर भगवत् चरण की प्राप्ति हो जायेगी।

प्रभु प्रेम का मार्ग खंडे की धार है। इस मार्ग में फूंक–फूंक कर पैर रखना पड़ता है। जरा सी असावधानी पैर को लहूलुहान कर सकती है। इस मार्ग में जरा सी लापरवाही होने पर पैर में कांटा लग सकता है।

जरा विचार करो कि हमारा अगला जन्म भारतवर्ष में होगा या नहीं। फिर ऐसा कलियुग जिसमें केवल, हरिनाम से ही भगवद् प्राप्ति हो सकती है, मिलेगा या नहीं। फिर ऐसा सत्संग, ऐसा सुअवसर मिलेगा या नहीं। अब शरीर स्वस्थ है। हरिनाम किया जा सकता है। आगे जाकर यह शरीर स्वस्थ रहेगा या नहीं। ऐसी बहुत सी बातें विचार करने वाली हैं। अब यह जो संयोग मिला है, बड़े सौभाग्य से मिला है। करोड़ों जन्मों के पुण्यों के फल से, इस मनुष्य जीवन की प्राप्ति हुई है, जो दुर्लभ ही नहीं, सुदुर्लभ है। बहुत मुश्किल से मिला है यह मानव जन्म। इसलिये इसे यूं ही बर्बाद न करो। जब तक जीवन है, हरिनाम करो। हरिनाम करो।

हरिनाम करो। जो समय बाकी बचा है, उसे हरिनाम में लगाना ही शुभकर होगा।

मेरे श्रीलगुरुदेव बार–बार इस बात को समझाते रहते हैं। अब भी समझा रहे हैं। इस बात को समझ लेना ही श्रेयस्कर होगा। अभी शरीर स्वस्थ है, बाद में कोई बीमारी लग सकती है। फिर हरिनाम हो या न हो, क्या पता? इसलिये अभी से हरिनाम में लगना ही बहुत जरूरी है। हरिनाम से सभी विपत्तियां, सभी कष्ट दूर होते चले जाएंगे। वैष्णव अपराध से बचकर हरिनाम करते रहो, सब ठीक होता जायेगा।

यह युग कलि महाराज का युग है। इस युग में सब काम कल–पुर्जों से, मशीनों से चला करता है। इस समय लक्ष्मी का दौर चल रहा है। सभी पैसे के पीछे पागल हैं। पैसे के लिये सब कुछ हो रहा है। पर याद रखो, जहाँ लक्ष्मी अकेली आती है, वहाँ श्रीविष्णु नहीं आते। जहाँ विष्णु की पूजा होती है, वहाँ लक्ष्मी अपने आप खिंची चली आती है। जहाँ लक्ष्मी अकेली आती है वहाँ अनाचार होता रहता है। लक्ष्मी की सवारी उल्लू है। उल्लू की आदत दुःखदायिनी होती हैं। लक्ष्मी, लक्ष्मीवान् को उल्लू बनाकर रखती है। पर श्रीविष्णु की सवारी गरुड़ जी हैं जो शुभमति देते हैं। लक्ष्मी के पीछे पागल मनुष्य, हर वक्त और ज्यादा लक्ष्मी इकट्ठा करने में लगा रहता है। वह खाने की वस्तुओं में मिलावट करता है। उन वस्तुओं को खाने से कोई मरे या जीये, उसे इससे कोई मतलब नहीं। उसका काम तो बस पैसा कमाना है। वह यह भूल जाता है कि जो जहर वह दूसरे लोगों को खिला रहा है, वही जहर एक दिन उसका मलियामेट कर देगा। सर्वनाश कर देगा। पर आंखें होने पर भी, वह अंधा बना रहता है और थोड़े दिन के झूठे आनंद के लिये, झूठे दिखावे के लिये, झूठी खुशी के लिये, उसे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। उस वक्त वह सिर धुन–धुन कर पछतायेगा और फिर उसे कोई नहीं बचा सकेगा। उसकी जो दुर्दशा होगी, वह तो उसे बाद में पता चलेगी। इसलिये मेरे गुरुदेव, बार–बार हम सबको चेता रहे

हैं, जगा रहे हैं, समझा रहे हैं। अब भी समझ जाओ। आज से नहीं, अभी से हरिनाम करना शुरू कर दो। अभी भगवान् की शरण में आ जाओ। वे दयालु प्रभु तुम्हें जरूर क्षमा कर देंगे वरना जो दुःख, जो कष्ट तुम्हें भोगना पड़ेगा, वह तुमसे सहन नहीं हो सकेगा।

श्रील गुरुदेव उद्घोष कर रहे हैं कि साधकगण अपने हृदय की गहराई से विचार करें कि उन्हें इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति करनी है या फिर चौरासी लाख योनियों में जाकर बार–बार दुःख भोगना है। हर एक योनि में जन्म लेना और मरना बहुत दुःखदायक है। हर योनि में आयु भी अलग–अलग है। किसी योनि में एक दिन की भी है और किसी योनि में हजारों वर्षों की भी। यदि औसतन एक वर्ष हर योनि में बिताना पड़े तो समझो चौरासी लाख वर्ष तक हमें दुःखों को सहन करना पड़ेगा। यह तो हुई शुद्धिकरण (purification) की बात। इसके बिना जो जीवों की हत्या करता है, दूसरों को सताता है, उसका बदला चुकाने के लिये शरीर धारण करने पड़ेंगे। उनकी योनि में जाना पड़ेगा और भोग भोगना पड़ेगा। अब जरा विचार करो कि मनुष्य के दुःखों का कोई अंत नहीं है। उसके कष्टों की कोई सीमा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस संसार के दुःखों का घर (दुःखालय) कहा है।

यह नश्वर जगत् जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु के क्लेशों से भरा हुआ है। इस जगत् के सारे लोक, सबसे ऊपर के लोक से लेकर, सबसे नीचे के लोक तक, दुःखों के घर हैं, जहां जन्ममरण का चक्कर लगा रहता है। किन्तु हे कुन्तीपुत्र! जो मेरे धाम को प्राप्त कर लेता है, वह फिर कभी जन्म नहीं लेता।

आब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

(गीता 8.16)

इस दुःखों से भरे जगत् से बचने का एक ही उपाय है कि मानव! हरिनाम की शरण में चला जाये। केवल हरिनाम ही इसे

परम आनंद प्रदान कर सकता है। इस कलियुग में इसके सिवाय कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस कलियुग में केवल हरिनाम, केवल हरिनाम और केवल हरिनाम से ही भगवद्प्राप्ति हो सकती है। इसके बिना कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। इसलिये बार–बार हरे कृष्ण महामंत्र, जो कि इस कलियुग का महामंत्र है, का जप व कीर्तन करने की प्रार्थना की जाती है। इस महामंत्र को जपने के लिये कोई नियम भी नहीं है। उठते–बैठते, चलते–फिरते, जब भी चाहो, जैसे भी चाहो, इसको जपते रहो। इस प्रकार अभ्यास करते–करते, मरते समय यही नाम जिह्वा पर आवेगा। अन्त समय में भगवान् का नाम मुख से निकलने से सभी दुःखों का सदा–सदा के लिये अंत हो जायेगा और मनुष्य ऐसे सुखसागर का आनंद लेगा, जहां दुःखों की छाया भी नहीं है। यदि मरते समय संसार की याद बनी रहे तो संसार में बार–बार आना पड़ेगा। यदि अंत समय में भगवान् का नाम याद रहा तो भगवद्–प्राप्ति होगी। यह सुनिश्चित है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैंः–

यं यं वापि समरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता ८.६)

हे कुन्तीपुत्र! शरीर का त्याग करते समय मनुष्य जिस–जिस भाव का स्मरण करता है, वह उस भाव को निश्चित रूप से प्राप्त होता है। हमारे जीवन में अन्त में, हमारे मुख से भगवान् का नाम निकले, इसके लिये–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करना सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् ने सभी प्राणियों को शरीर रूपी धर्मशाला बना कर दी है। सभी जीवात्मायें

भगवान् के पुत्र हैं। हर जीव के शरीर का आकार भी भिन्न–भिन्न है। कोई लंबा, कोई चौड़ा, कोई गोल, कोई छोटा, कोई बड़ा आदि–आदि। साँप का शरीर लंबा होता है, कछुए का गोल, हाथी का मोटा–बड़ा लंबा चौड़ा। पर ये शरीर नाशवान् हैं। भगवान् ने मनुष्य को अपने जैसा शरीर बनाकर दिया है जो पांच तत्वों से बना हुआ है जिसमें जीव और आत्मा दोनों साथ–साथ रहते हैं। जीव अज्ञान प्रधान है और आत्मा ज्ञान प्रधान है। जीव माया में लिप्त रहता है इसलिये बंधन में फंसा है। आत्मा चिन्मय है, उसमें दिव्यशक्ति है। आत्मा निर्लिप्त और नित्यमुक्त है।

भगवान् ने बोला है कि हे मानव! मैने तुम्हें बुद्धि प्रदान की है इसलिये चौरासी लाख योनियों के जीव, जो मेरे पुत्र हैं, उन सबका भरण–पोषण कर। उनकी रक्षा कर। उन सब जीवों में मुझे देख। यदि तू ऐसा न करके, उनको कष्ट देता है तो तुम्हें कभी भी चैन नहीं मिलेगा। कभी शांति नसीब नहीं होगी। हर जीव की एक उम्र निर्धारित होती है, यदि इस अवधि के बीत जाने पर उस शरीर का अंत हो जाता है तो किसी को कोई दोष नहीं परंतु यदि मनुष्य इन शरीरों की आयु पूरी होने से पहले ही नष्ट करता है तो वह पाप का भागी बन जाता है और ऐसे असंख्य पाप मनुष्य अपने जीवन में करता है। अतः उसके दुःखों का अंत नहीं होता।

यह मानव जब से भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, अनंत कोटि कल्प बीत जाने पर भी पुनः भगवान् की गोद को प्राप्त नहीं कर सका है। भगवान् के पास जाने का मार्ग उसे किसी ने बताया ही नहीं है। भगवान् के पास जाने का सही मार्ग कोई सच्चा साधु, कोई भगवान् का प्रेमी साधु ही बता सकता है।

मेरे गुरुदेव इस बात की शत–प्रतिशत (100) गारंटी देते हैं कि जो साधक हरिनाम की चौसठ माला (एक लाख हरिनाम) प्रतिदिन उच्चारणपूर्वक करेगा और कान से सुनेगा तो मौत के समय उसे स्वयं भगवान् लेने पधारते हैं। माला पर संख्या पूरी करें और चलते–फिरते, खाते–पीते, सोते–जागते, बिना माला भी हरिनाम

करता रहे। ऐसे परम भक्त का भगवान् के धाम में भव्य स्वागत होता है और भगवान् उसकी रुचि के अनुसार उसे अपनी सेवा प्रदान करते हैं जहां वह सदा–सदा के लिये परम आनंद में डूबा रहता है।

हरि बोल ! हरि बोल ! हरि बोल !
निताई–गौर ! हरि बोल !



वैष्णव उत्तम सेइ याहारे देखिले।
कृष्णनाम आसे मुखे कृष्णभक्ति मिले।।

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से जीवों के मुख से श्रीकृष्णनाम उदित हो जाता हो तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति की प्राप्ति हो, वही उत्तम वैष्णव है।

(श्रीहरिनाम चिंतामणि)

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.02.2003

सुअवसर हाथ लगा

गौरहरि इस भारत वर्ष में 525 वर्ष बाद जग का कल्याण करने आ रहे हैं। 525 वर्ष पहले फाल्गुन मास की पूर्णमासी को ब्रह्ममुहूर्त में 3.00 बजे चन्द्रग्रहण के समय आविर्भूत (प्रगट) हुए थे। वे दयानिधि हम पर दया करने आज फिर फाल्गुन मास की पूर्णमासी को प्रातः 3.00 बजे चन्द्रग्रहण के समय आकर हमारा जन्म मरण का जघन्य दुःख हटाने आ रहे हैं। वैसे तो भगवान् की लीला हर समय ब्रह्माण्ड में सदैव होती रहती है लेकिन आज सभी को प्रत्यक्ष मिल रही है।

कितना बड़ा सौभाग्य है। आज अवसर हाथ लगा है। सभी भक्तों व मेरे गुरुजनों से चरणों में लिपट कर प्रार्थना कर रहा हूँ कि ऐसे सुंदर अवसर को न गंवा कर आज से ही अपना भजन-स्तर बढ़ाने हेतु हरिनाम जप को कान से सुनकर करना आरंभ कर देना चाहिए। ऐसा शुभ अवसर अगले जन्म में नहीं मिल सकेगा। हरिनाम-महामंत्र का प्रतिदिन एक लाख बार जाप तो अवश्य करना चाहिए।

सभी को श्रीगौर हरि की प्रत्यक्ष कृपा मिल सकेगी। यदि इस अवसर को नष्ट कर दिया तो भविष्य में पछताना पड़ेगा। माया किसी को नहीं बख्शती। माया भजन न करने वाले को अंदर के शत्रुओं से मारती रहेगी। भजन से भगवत् कृपा मिलने से माया भजनानन्दी को हर प्रकार की सुविधा देकर सुख प्रदान करती है। कहते हैं अपना भजन गुप्त रखना चाहिए। बात भी ठीक है, क्योंकि भजन का प्रचार होने से प्रतिष्ठा आयेगी। प्रतिष्ठा अहंकार करा देगी। अहंकार भगवान् का दुश्मन है। अतः गिरावट आ जायेगी।

यदि किसी को दूसरे का हित करने का भाव है तो प्रतिष्ठा न आकर अंहकार आएगा ही नहीं, क्योंकि वह स्वयं में दुर्गुण देखता रहेगा उसका भजन देखकर दूसरों का भी उत्साह बढ़ेगा और उन्हें दुःख भी होगा कि उनका तो इतना भजन नहीं हो रहा है, जितना अमुक का हो रहा है तो पश्चाताप् के कारण वह भी अपने भजन को बढ़ाने की चेष्टा करेगा।



गोविन्द गोपाल राम श्रीनंदनंदन राधानाथ हरि यशोमती-प्राणधन। मदनमोहन श्यामसुंदर माधव गोपीनाथ ब्रजगोप राखाल यादव।।

उपरोक्त सभी नाम भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य नाम है। ये सभी नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। इन मुख्य नामों का कीर्तन करने से श्रीकृष्ण के धाम को प्राप्त करता है।

आइये! हम संकल्प करें कि भगवान् श्रीकृष्ण के उपरोक्त लिखे नामों का कीर्तन कम से कम पाँच मिनट, हम सब सपरिवार प्रतिदिन अवश्य करेंगे।

4

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

दिनांक : 15.02.2003

भजन का अंतिम सार

कीर्तन में जब तक तू मगन न होगा।
तब तक दोष जाने का यत्न न होगा।।
कलिकाल में अन्य साधन कुछ भी नहीं हैं।
न पाएगा प्रेमधन जब तक अश्रुपात न होगा।
जप, पूजा, व्रत, नेम कर ले कितना ही तू।
सब व्यर्थ है जब तक मस्ती से हरिनाम न होगा।।
अन्य साधनों से क्या प्यास बुझेगी?
चातक बन गौरहरि का तो प्रेम से भजन होगा।।
तू तोल कर जो देखे नैनों का प्रभु मोती,
तो एक मोती का वजन सारे साधनों का न होगा।।
मन पतित तोल कर जो देखा,
तो वजन अश्रुपात का अधिक होगा।।

उलाहना

यदि मुझ जैसे पापी अपनाए न जाएंगे।
तो आप गौरहरि दयालु कहाए न जाएंगे।
जो आ चुके हैं चरणों में तो ठुकराए न जाएंगे।
अब हम भी आप का दर छोड़ कहीं न जाएंगे।
जगाई-मधाई के पाप आपने स्वयं ले लिए।
तो मेरे पाप-अपराध, आपसे लिए न जाएंगे।
चुप भी रहूंगा यदि आप यह कह दें।
कि तुम जैसे अपराधी तारे न जाएंगे।
तो मैं भी कह देता हूँ आप संतोष न पाएंगे।
अनिरुद्ध दास के आंसू आपका दिल खींच लाएंगे।

प्रार्थना

बहुत दिनों से सुनकर प्रशंसा तुम्हारी।
शरण आ गया गौर-निताई तुम्हारी।।
जो अब टाल दोगे मुझे अपने दर से।
तो होगी हंसी बाप ! दर-दर तुम्हारी।
सुना है घर-घर जाकर अपनाया सबको।
मुझे अपनाओ ये जिम्मेवारी तुम्हारी।।
यही प्रार्थना है, यही साधना है।
जो कुछ हूँ जैसी हूँ, हूँ मैं तुम्हारी।।
ये अश्रु तुमको खबर दे रहे हैं।
कि है याद दिल में बराबर तुम्हारी।।
यह दासों का दास जो है तुम्हारा।
अपना लो अब तो कर दो 'दया' री।।

प्रेम प्राप्ति की युक्ति

कौन कहता है भगवान् आते नहीं,
आते हैं, अपना बल छोड़ उन्हें कोई बुलाते नहीं।
द्रौपदी ने बल छोड़ा, गज ने बल छोड़ा,
तो भगवान् एक क्षण लगाते नहीं।
विषयों का विष-ज्वाला को कोई बुझाते नहीं।
प्रेम की लोरी सुनाकर उन्हें कोई रिझाते नहीं।
अजी हरिनाम को बोलकर, कान से कोई सुनाते नहीं।।
कान से सुनकर हरिनाम को कोई सुनाता है,
नैनों की अश्रु-बाढ़ में हरि को बहा लाता है।
आनंद के सिंधु में भक्त-गोता लगाता है,
अजी कोई आजमा के देखे, प्रत्यक्ष में कोई प्रमाण नहीं,
अनिरुद्ध दास ने आजमाया, तो प्रेमामृत पाया।

5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

दिनांक : 07.03.2003

अवलम्बन ही सार है

जिस प्रकार अनन्तकोटि अखिल ब्रह्मांडों में अवलम्बन के बिना कोई भी स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकता ठीक उसी प्रकार मृत्युलोक पृथ्वी के बिना स्थिर नहीं रह सकता। एक दूसरे की आकर्षण शक्ति से स्वतः ही स्थिरता प्राप्त हो जाया करती है। कोई भी बेल, पेड़ के बिना ऊपर नहीं चढ़ सकती। जैसे भौतिकता की ओर अवलंबन आवश्यक है, उसी प्रकार आध्यात्मिकता का अवलंबन भी बहुत जरूरी है। भौतिकता का अवलंबन दुःखदायक होता है एवं आध्यात्मिकता का अवलंबन परम सुखदायक होता है।

भगवान् की अहैतुकी कृपा से जब मनुष्य जन्म मिलता है तो श्री भगवान् अपने परम प्रियजन श्रीगुरुदेव का मृत्युलोक में आविर्भाव करवा कर मानव को अपना अवलंबन करवाते हैं। श्री गुरुदेव के अवलंबन से मानव अनन्तकोटि जन्मों की दारूण पीड़ा से मुक्त होकर असीम परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

चारों युगों के भिन्न-भिन्न धर्म-कर्म हुआ करते हैं। इन धर्मों का अवलंबन परमावश्यक होता है। यदि अवलंबन नहीं करता है तो मानव माया के पिंजरे में बंद होकर अनंत दुःख भोग करता रहता है। अब कलियुग का समय चल रहा है जिसमें मानव सहज ही में इन दारुण दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। कलिकाल का धर्म-कर्म है केवल भगवत् नाम-

सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा, मख और योग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।।

हरिनाम का अवलंबन मानव के लिए परम आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि हरिनाम कैसे जपा जाए तो इसका उत्तर है कि

मन को एकाग्र करके जपा जाए। यदि मन एकाग्र नहीं हो रहा है तो अभ्यास द्वारा मन को एकाग्र किया जाए और संसार से धीरे–धीरे ज्ञान के द्वारा लगाव को, आसक्ति को कम किया जाए। यदि संसार से लगाव रहेगा तो मन कभी भी स्थिरता को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

संसार का लगाव अर्थात् अवलंबन कैसे हटे? इसके लिए बुद्धि द्वारा निर्णय करना चाहिए कि एक न एक दिन इस मानव देह को संसार से अलग होना है। हम लोग नित्य प्रत्येक मानव को शमशान में जाते देख रहे हैं। मानव ही नहीं, सभी प्राणी नित्य मृत्यु के मुख में जा रहे हैं। अतः वास्तव में हरिनाम का अवलंबन ही सत्य है, अन्य सभी का अवलंबन असत्य है बुद्धि द्वारा बार–बार ऐसा विचार करते रहने से मन एकाग्र होने लगेगा।

लोमश ऋषि, जिनकी उम्र इतनी थी कि जब उनके सिर का एक बाल झड़ता था तो ब्रह्मा जी का शासनकाल समाप्त हो जाता था अर्थात् ब्रह्मा जी मर जाते थे। उक्त ऋषि की उम्र मनुष्य के अनुमान से बाहर है। एक दिन वह किसी सम्राट के महल के नीचे से जा रहे थे। उनके पास एक कमंडल था एवं उन्होंने एक चटाई, अर्थात् भजन हेतु आसन, सिर पर रखी हुई थी। सम्राट् भगवान् का भक्त था। उसने उन्हें प्रार्थना करके सेवा हेतु महल में बुलाया और पूछा कि महाराज जी! आप कहाँ जा रहे हो ? उन्होंने कहा कि वे कोई एकांत स्थान ढूंढ रहे हैं जहां बैठकर वे भजन कर सकें। सम्राट् ने पूछा कि आप कोई कुटिया बनाकर क्यों नहीं भजन करते तो लोमश जी बोले कि एक दिन तो संसार को छोड़ना ही है, कुटिया बना कर आफत मोल क्यों लूं? उस कुटिया में झाड़ू लगानी पड़ेगी, छप्पर बार–बार बनाना पड़ेगा, कितने ही काम सामने आते रहेंगे तो भजन कब होगा ?

सम्राट् बोला कि लोमश जी! आपकी उम्र तो कराड़ों वर्षों से भी ज्यादा है, आपको तो घर बनाना ही चाहिए। महात्मा बोले, आफत मोल क्यों लूं। भजन ही सार है। भजन बिना जीवन बेकार

है, अतः मुझे तो एक गज जमीन चाहिए जहां एकांत में बैठकर भजन कर सकूं। इससे अधिक बखेड़ा करना दुःख मोल लेना होता है। दुःख कोई चाहता नहीं फिर दुःख मोल क्यों लूं? सुख तो भगवत नाम में ही है। उस सुख का कोई बखान ही नहीं कर सकता। अकथनीय है।

अब विचार कीजिए कि मानव 40 साल, 60 साल, 80 साल, या फिर 100 साल के लिए संसार में रहकर क्या–क्या कुकर्म करके वस्तुएं इकट्ठी करता रहता है। यहां तक कि वह अपनी मानव जाति का गला घोंट कर भी स्वयं सुख की नींद सोना चाहता है। आश्चर्य है! विडंबना है! मूर्खता है! ऐसे अज्ञान की भी कोई सीमा है ? बुद्धि से बार–बार इस प्रकार विचार करते रहने से मन में वैराग्य उदित होता है जो हरिनाम–स्मरण में अत्यंत सहायक होता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो यह पागल मन जापक को मार कर रख देगा। वह माया के चुंगल से छूट नहीं सकेगा। अतः संसार से वैराग्य होना परमावश्यक है।

वैराग्य होने से मन स्वतः ही रुक जाता है क्योंकि अंतःकरण चतुष्टय में एक ही पदार्थ समा सकता है–संसार अथवा भगवान्। संसार रहेगा तो भगवान नहीं रह सकते एवं भगवान् रहेंगे तो संसार नहीं रहेगा। जो मानव अपने जीवन में निरंतर एक लाख हरिनाम करता रहता है, वह आनंदसिंधु में तैरता रहता है। जो नहीं करता, वह दुःखसिंधु में गोता खाता रहता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं–श्री चैतन्य महाप्रभु जी जिन्होंने अपने जनों को एक लाख हरिनाम करने का आदेश देते हुए कहा था कि जो भक्त एक लाख (64 माला) हरिनाम रोज करेगा, उसके घर का प्रसाद मैं ग्रहण करूंगा, जो नहीं करेगा, उसके घर का प्रसाद ग्रहण नहीं करूंगा।

अब प्रश्न उठता है कि एक लाख नाम में किसी का मन लग ही नहीं सकता, क्योंकि 64 माला जपने में 4 से 6 घंटे लग जाते हैं। इतने समय तक श्री भगवान् के प्रति प्रेम हुए बिना मन का लगना अथवा एकाग्र होना बहुत ही कठिन है। लेकिन महाप्रभु जी

जानते थे कि यदि साधकजन इतना अधिक नाम स्मरण जप करते रहेंगे, तो भगवत्–नाम ही उनके मन को लगा देगा एवं यदि उनसे अपराध भी होता रहेगा तो भी उस अपराध का मार्जन भी भगवत् नाम की कृपा से होता रहेगा व एक न एक दिन जापक को पंचम पुरुषार्थ 'प्रेम' अर्थात् नाम जपते हुए पुलक व अश्रुपात इत्यादि उपलब्ध हो जाएगा।

महाप्रभु जी ने इतनी गारंटी क्यों ली ? इसका कारण है मानव को दुःख से मुक्त करना। यदि कोई भक्त 64 माला बिना मन भी करता रहेगा तो महाप्रभु वचनानुसार उसके घर में महाप्रभु का वास होता ही रहेगा। इसमें 1 प्रतिशत भी शक नहीं है।

उक्त लेख जो लिखा गया है, मुझ अल्पज्ञ ने नहीं लिखा, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखवाया गया है। अतः मैं सबसे प्रार्थना करता हूं कि प्रतिदिन 64 माला जप करने का नियम लेवें तो मेरा भी और आपका भी जीवन सुधर जाएगा।

मेरे गुरुदेव का आदेश है कि 'तुम प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करो और अन्य को प्रतिदिन एक लाख कराओ। मैं तुम्हारे पीछे हूं। सभी करने लगेंगे, शक्ति भगवान् देगा।'

प्रति घरे-घरे गिया कर एइ भिक्षा
बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्ण भिक्षा।।

प्रत्येक घर में जाकर यह भिक्षा मांगो कि 'कृष्ण बोलो, श्रीकृष्ण का भजन करो और श्रीकृष्ण संबंधी शिक्षा ग्रहण करो।'

(महाप्रभु की श्रीनित्यानंद जी व श्रीहरिदास जी को आज्ञा)

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 27.03.2003

भौतिक नाम व हरिनाम

भौतिक नामों की तरह आध्यात्मिक नामों को भी कान से सुनने पर ही लाभ होता है। उदाहरणार्थ, जैसे अशोक तुम बाजार जा रहे हो तो बाजार से एक साबुन का पैकेट लेते आना। जब उसका मित्र रमेश, अशोक को जोर से ऐसा बोल रहा था तो अशोक थोड़ा दूर मकान से बाहर था एवं रमेश ने खिड़की में से झांक कर कहा था, इसलिए उसे उच्च स्वर से बोलना पड़ा। अशोक ने कहा, ठीक है, लेता आऊंगा। रमेश ने जब अशोक को यह कहा तब अशोक का मन किसी उधेड़बुन में उलझ रहा था, अतः उसने ऊपरी मन से कह दिया कि ठीक है लेता आऊंगा।

जब अशोक बाजार से गुजर रहा था तो उसको याद आया कि रमेश ने बाजार से कुछ मंगाया था। उसने सोचा, शायद नील का पैकेट मंगाया होगा। जब अशोक ने रमेश को नील का पैकेट सौंपा तो रमेश बोला कि मैंने तो साबुन का पैकेट मंगाया था न कि नील का पैकेट। अशोक ने कहा–"मैंने पैकेट का नाम तो सुना था लेकिन किस वस्तु का पैकेट मंगाया था, पूरा सुन नहीं पाया क्योंकि मेरा बच्चा बीमार था। मैं सोच रहा था कि कौन से डॉक्टर को दिखाऊं। मेरा मन इसी उधेड़बुन में फंस रहा था। अतः मेरा मन पूरा सुन नहीं पाया। मेरा मन कान के पास नहीं था। अतः मैंने सोचा कि नील का पैकेट मंगाया होगा।"

क्या रमेश के कपड़े नील के पैकेट से धुल जायेंगे?

उसने कहा–"कर्म फूटे! यह तूने क्या किया? इसे वापस देकर साबुन का पैकेट लेकर आ क्योंकि मेरे पास साबुन का पैकेट मंगाने को पैसा भी तो नहीं है।"

अशोक बोला–"वह दुकानदार बदमाश है। वह वापस लेगा ही नहीं। मैं तो नहीं जा सकता।"

अशोक द्वारा कान से न सुनने से रमेश का काम बिगड़ गया। कपड़े गंदे थे, उनको धोना आवश्यक था। रमेश की जुबान से उसके कान ने सुना, हृदय (मन) से मनन हुआ था। अशोक के कान ने भी सुना लेकिन मन नहीं होने से पूरा नहीं सुन पाया। शब्द की हरकत तीन जगह हुई परंतु एक जगह न होने से काम बिगड़ गया। न कपड़े धुल सके, न नील का पैकेट वापस हो पाया। बस हरिनाम सुनने का भी शत–प्रतिशत यही निष्कर्ष निकलता है हरिनाम कान से न सुना तो केवल मात्र सुकृति इकट्ठी हो जायेगी, भगवत–प्रेम नहीं मिल सकेगा। सुकृति से अगले जन्म में सत्गुरु की प्राप्ति हो जायेगी। यह मनुष्य जन्म बेकार चला जायेगा।

अब गहरे विचार करने की बात है कि मन के साथ कान से सुने बिना जब भौतिक–कर्म ही सफल नहीं हो पाया तो आध्यात्मिक कर्म कैसे सफल हो सकता है ?

किसान का उदाहरण 100 प्रतिशत सत्य उतरता है। उसका बीज जब उमरे (खाल) के बाहर गिर जाता है तो वह उगता नहीं है। उसे चींटियां, दीमक व चिड़ियां खा जाती हैं।

हरिनाम–बीज, जो गुरुदेव ने कान में दिया है, उसे कान द्वारा ही हृदय–भूमि में गिराना पड़ेगा, जब ही वह हृदय में प्रेम के रूप में अंकुरित हो पायेगा। चार माला के दाने रूपी बीज जब कान से हृदय में गिरेंगे, तब 100 प्रतिशत प्रेम रूपी अंकुर प्रकट हो जायेगा, यदि कोई अपराध न हो अर्थात् 10 नामापराध व मान–प्रतिष्ठा की कामना न हो तो । अन्य रोग तो विरहाग्नि में जल कर ही भस्म हो जायेंगे।

कितने साल नाम जपते हो गये, एक आंसू भी नहीं आया क्योंकि नाम को कान से नहीं सुना। कम से कम एक माला तो सुनकर करे व देखे कि कितना लाभ होता है। गया समय तो चला गया, आगे की सुधि लेवो ताकि यह जन्म सफल हो सके। मरते समय ठाकुर आकर संभालेगा। ठाकुर अगाध दया का समुद्र है।

7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

दिनांक : 11.05.2004

भगवत्-प्राप्ति का अंतिम व सरलतम उपाय

इसे ठाकुर जी ही प्रेरित करके लिखवा रहे हैं-

भगवान् ने जीव के लिए अन्तःकरण चतुष्टय-मन, बुद्धि, चित्त एवं अंहकार बनाया। इसमें जीव संसार को या भगवान् को किसी एक को ही बिठा सकता है। स्टेज इतनी छोटी है कि इस पर केवल एक ही बैठ सकता है। इसमें त्रिगुणों का ताना-बाना है, जो संस्कारों से ओतप्रोत है। संस्कार रूपी धागे इतने सूक्ष्म हैं कि नजर में आने असंभव हैं।

मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म चित्त, चित्त से सूक्ष्म अहंकार है। अहंकार ही जन्म-मरण का कारण है। मैं, मेरा जब तक इस अंतःकरण में रहेगा, जीव ठाकुर जी से दूर ही रहेगा। जब मैं, मेरा (अहंकार) चला जाएगा, तब ठाकुर जी का शीघ्र दर्शन हो जाएगा। तू-तेरा ही शरणागति का जन्म करा देता है-अहंकार इतना सूक्ष्म है कि पकड़ में नहीं आता। भक्त का अहंकार-ठाकुर में नहीं आता। भक्त का अहंकार-ठाकुर को सुहाता नहीं, वे उस अहंकार को शीघ्र समाप्त कर देते हैं। जैसे नारद जी ने जब काम पर विजय की थी तो उनके अहंकार को ठाकुर जी ने शीघ्र समाप्त कर दिया था।

अहंकार को जलाने के लिए बुद्धि में तात्विक-ज्ञान रूपी अग्नि प्रकट करनी पड़ेगी। वह हरिनाम-महामंत्र को सादर (आदर के साथ) कान से सुनने पर ही प्रकट हो सकेगी। जिस प्रकार खेत पर घास के बीज को समाप्त करने के लिए उस जगह पर आग जलानी पड़ती है जिससे वहां पर दबे बीजों को भूना जाता है। भुने हुए बीज अंकुरित कभी नहीं होते हैं।

रामायण की उक्ति–
"सादर सुमिरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गौपद इव तरहीं"
ठाकुर जी की उक्ति–
"बेआदर सुमिरन, जो नर करहिं।
कई जन्म भटकत वो फिरहिं।"

भगवत्–प्राप्ति कठिन इसलिए है कि मैं, मेरा अंतःकरण में रमा रहता है। ये केवल प्रेम से हरिनाम–महामंत्र को जपने से ही जा सकता है। इससे विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होकर अन्तःकरण में छिपे शुभ–अशुभ बीजों के संस्कारों को शीघ्र जला देती है। जब संस्कार ही नहीं रहेंगे, तब शीघ्र ही ठाकुर जी को अन्तःकरण पर विराजित होना पड़ेगा।

अब हम इसे तात्विक विचार से समझने का प्रयत्न करते हैं। आपने देखा होगा कि जमीन में कई प्रकार के घास–झंकार के बीज छुपे रहते हैं जो समय पाकर बरसात में या मौसम आने पर स्वतः ही अंकुरित होकर खाद्य–सामग्री जौ, गेंहू आदि को हानि पहुंचाते रहते हैं। अतः उन अंकुरित पौंधों को खुरपी से उखाड़ कर दूर फैंका जाता है। तब फसल अच्छी हो जाती है। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि उस जमीन पर आग जला दें। इससे भुने हुए बीज जमीन में ही नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म देह अथवा कारण देह अथवा स्वभाव रूपी शरीर में चित्त रहता है जिसमें अनन्त जन्मों के शुभ–अशुभ संस्कार दबे रहते हैं जो संग पाकर बाहर आते रहते हैं। चित्त ही संस्कारों का पुंज है। यदि इन संस्कारों को उठते ही दबा दिया जाये तो ये संस्कार के बीज वहीं पर नष्ट हो जाते हैं।

यदि उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाए तो वे संस्कार मन तक आ जाते हैं। तब इन्द्रियां मन को खींच कर अपना स्वार्थ साध लेती हैं, अतः मन गंदा होकर जीव के दुःख का कारण बन जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि जब भी चित्त में कोई स्फुरण आवे, विचार द्वारा उसे वहीं पर नष्ट कर दिया जाए ताकि वह मन

तक न आ सके। चित्त की स्फुरण यदि गंदी हो तो वह आवागमन (जन्म–मरण) का कारण बन जाती है। यदि यही स्फुरण भगवान् के प्रति हो तो वह जन्म–मरण छुड़ाने में सहायक बन जाती है। स्फुरण ही जमीन में दबे घास के बीज तुल्य है जो समय पाकर बाहर आ जाती है।

जो चित्त की स्फुरण को दबा सकता है, वही जन्म–मरण से छूट सकता है। सूक्ष्म शरीर ही इसमें रहकर आवागमन करता है। यदि सूक्ष्म शरीर ही सत्संग द्वारा चिन्मय शरीर में बदल जावे तो सदा के लिए आवागमन से छुट्टी मिल जावे। चित्त ही आवागमन का व इसे छुड़ाने का मूल है। यदि चित्त के स्फुरण को उखाड़ फेंक दिया जावे तो जीव को सदैव के लिए श्रीकृष्ण–चरण की प्राप्ति हो जावे।

यदि चित्त की स्फुरणा शुभ हो तो उसे मन तक आने दिया जावे। चित्त एक दम सफेद व स्वच्छ होता है। सफेद रंग पर कोई भी रंग जल्दी चढ़ जाता है। जब तक अहंकार, अन्तःकरण पर छाया रहेगा तब तक अन्तःकरण पर मन का राज्य कायम रहेगा। जब अहंकार नष्ट हो जायेगा तो इसके साथ मन भी मारा जाएगा। अहंकार, मन का साथी है। दोनों एक–साथ रहते हैं। जब साथी मर जाएगा तो मन भी मर जाएगा।

कहने का आशय है कि अपने अन्तःकरण को सुधारो। अन्तःकरण में ही शुभ–अशुभ संस्कारों के बीज मौजूद रहते हैं। हरिनाम रूपी चूल्हे में भाव रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित कर अन्तःकरण में विद्यमान त्रिगुणों के शुभ–अशुभ संस्कार रूपी बीजों को जला डालो। जब यह बीज जलकर नष्ट हो जाएंगे तो शीघ्र ही ठाकुर दर्शन हो जाएगा। जब तक संस्कार, अन्तःकरण की Stage पर विराजित हैं तो ठाकुर कहां बैठे? स्थान खाली होते ही ठाकुर आ टपक पड़ेंगे।

अन्तःकरण में या तो संसार रहता है या भगवान् रहते हैं। एक ही रहा करता है। यह सत्य–सिद्धांत है। अहंकार में मन इतना

ओत–प्रोत (रमा) रहता है कि इसका पकड़ना असंभव रहता है। मन ही जन्म–मरण का कारण है एवं मन ही जन्म–मरण से छुट्कारा दिलाने में सक्षम है। अतः भगवत्–दर्शन का सरलतम उपाय (साधन) यही है कि विरहाग्नि जलाकर संस्कारों के बीजों को भस्मीभूत कर दिया जावे। यह होगा केवल हरिनाम–महामंत्र से, जो कलियुग का केवल एकमात्र भगवत्–चरण पकड़ने का निर्दोष साधन–भजन है। दूसरे किसी उपाय से जीवन नष्ट हो जाएगा कुछ मिलने वाला नहीं, मिलेगा केवल पछतावा।

चेतना सार्थक है, सोना निरर्थक होगा। यह ठाकुर जी कह रहे हैं, शीघ्र गौर करना अच्छा होगा। चित्त पर संसारी–आसक्ति रूपी काला रंग बहुत जल्दी पड़ जाता है। हरि भक्त रूपी हरा रंग भी बहुत जल्दी चढ़ जाएगा। भगवान् ने प्रकृति का रंग हरा रचा है, कैसा सुखकारक है ! जहां नजर आती है, हरे–हरे पेड़–पौधे कैसे सुहावने लगते हैं ! काला रंग रूपी रात्रि कैसी दुःखकारक होती है अर्थात् जैसा संग, वैसा रंग। जगत् का संग छोड़कर सन्त का संग करना चाहिए। जगत् का रंग बहुत जल्दी चढ़ जाता है क्योंकि यह रंग कई जन्मों से चढ़ता है। भक्ति का रंग धीरे–धीरे चढ़ता है क्योंकि यह रंग गहरे रंग पर कम चढ़ता है, धीरे–धीरे चढ़ता है।

लेकिन प्रश्न उठता है कि सत्संग कैसे प्राप्त हो ? यह स्वयं के अंदर ही है। वह है–मन लगाकर कान से सुनते हुए हरिनाम महामंत्र का जीभ से उच्चारण तथा संतजनों का स्मरण। कहीं जाने की जरूरत नहीं है। घर बैठे सत्संग हो जाता है। मठ से छपी भजन–गीति में लिखा हैः–

गृहे थाक बने थाक, सदा हरि ब'ले डाक
सुखे–दुःखे भुल ना'क, वदने हरिनाम कर रे।

–श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

अर्थात् आप चाहे घर में रहो या जंगल में रहो, हमेशा हरि को पुकारते रहो। सुख में हो या दुःख में हो, कभी भी उन्हें मत भूलो, मुख से हरिनाम करते रहो। वहीं धाम बन जाएगा। यह भगवत्–चरण

में पहुंचने तथा जन्म–मरण से छूटने का शत–प्रतिशत प्रभावशाली उपाय है।

जो लेख लिखा गया है वह आपके चरणों में बैठकर लिखा गया है, क्योंकि आपके हृदय–कमल पर ठाकुर जी बैठे रहते हैं। उनकी प्रेरणा से ही यह लेख लिखा है। मैं एक तुच्छ जीव हूँ। आप जैसे परमहंस को लेख लिखकर भेजने का अधिकार मुझको हो सकता है क्या ? कदापि नहीं। यदि ऐसा न हो तो मैं महा अपराधी बन जाऊं और ठाकुर जी से विमुख हो जाऊं। आप कुछ भी समझें। जैसा लिखकर कह रहा हूँ, वह ध्रुव सत्य है। मैंने आप गुरुदेव को अपने जीवन की सभी बातें खोलकर बता दीं। आपसे छुपाकर कुछ भी नहीं रखा। गुरु से कुछ भी छुपाकर रखना महा–अपराध है। श्रीराम भरत जी को अपने मन की बात बता रहे हैंः–

"जाते वेगि द्रवहुँ मैं भाई।
भक्ति सो मम भक्त सुखदाई।।"

बस इसी में समझने का सब सार–तत्व है। जैसा प्रभु ने लिखाया, आपके चरणों में भेंट कर रहा हूं। मैंने कुछ नहीं लिखा।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

मानस की कुछ चौपाईयां

(पूज्यपाद अनिरुद्ध दास प्रभु जी, रामचरित मानस की जो चौपाइयां या दोहे इत्यादि प्रायः गुनगुनाया करते हैं व जिनसे उन्हें भजन की प्रेरणा मिलती है, वह पाठकों के हितार्थ यथारूप नीचे दी जा रही हैं। शब्दों में कहीं त्रुटि हो तो कृपया संशोधन कर लेना)।

आप संतों की कृपा व गुरु-भगवान् की कृपा से मैंने रामायण से भक्त-भक्ति-हरिनाम, जप विधि, गुरु-भगवान की कृपा तथा ज्ञान चर्चा के दोहे व चौपाईयां छांट कर एक डायरी में अंकित किए हैं। इनको अवलोकन करने से निश्चय ही हरिनाम में मन लगने लगता है। रामायण शिवजी के मन से ही प्रकट हुई है।

कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी। ते जेहि विधि शंकर कहा बखानी।।
संभू कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा।।
राम चरित मानस मन भावन। विरचेऊ संभू सुहावन पावन।।
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई। राम न सकई नाम गुण गाई।।
गुरु के वचन प्रतीति न जेहि। सपनेहु सुगम न सुख सिद्धि तेहि।।
जो सठ गुरु संग इरषा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
त्रिजुग योनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।
सुनु सुरेश उपदेश हमारा। रामहिं सेवक परम पिआरा। ।
मानत सुख, सेवक सेवकाई। सेवक बैर-बैर अधिकाई।।
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद-पुराण-साधु-सुर साखी।।
सीता पति सेवक सेवकाई। कामधेनु सम सरसि सुहाई।।
परहित बस जिन्ह के मन माहिं। तिन्ह कहुं जग दुर्लभ कछु नाहिं।।
जासु नाप जप एक ही बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
जो सभीत आया सरनाई। राखहुँ ताहि प्राण की नाईं।।
बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा।।

दोहा

मन क्रम वचन कपट तजि जोकर संतन सेव।।
मो समेत बिरचिं सिव बस ताके सब देव।।

पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन भक्त-पद पूजा।।
इन्द्र कुलिस मम् सूल विसाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरहिं। भक्त द्रोह पावक सो जरहिं।।
नाम जीह जप जागहिं जोगी। बिरत बिरंचि प्रपंच वियोगी।।
पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।
राम-नाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा।।
जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
सम्मुख होंहि जीव मोहि जबहिं। कोटि जन्म अघ नासहूं तबहीं।।
जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।
कोऊ न काहू सुख दुःख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता।।
प्रभु ते अधिक गुरु जिय पानी। सकल भाव सेवहिं सबमानी।।

दोहा

राम नाम की औषधी, खरी नियत से खाय।
कोई रोग आवे नहिं, महारोग मिट जाए।।

हरिनाम जप का तरीका

मानव हरिनाम को जपाकर कान से सटाकर।
मन को लगाकर पांच मणियों पर सुनाकर।।
एक माला पूरी कर, इसी तरह नाम को रटाकर।
चार माला सुनाकर, प्रेमामृत निहाल होगा पाकर।।
विरहाग्नि प्रगट कर कुसंस्कार जलाकर।
श्रीकृष्ण को हिय में बिठाकर अपना जन्म सफल कर।।
अनिरुद्ध दास ने सुना तो बताया सभी को गुनाकर।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 01.07.2006

तुच्छ–भेंट

पत्र डालने में मुझे आनंद का अनुभव व आपका चिंतन होने से भजन–कुशलता प्राप्त होती है। आपकी तथा ठाकुर–प्रेरणा से अबकी बार चातुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम करने की इच्छा जाग्रत हुई है। आप कृपा करें। मेरी कामना पूर्ण हो, कोई विघ्न न आने पावे। श्री गुरुदेव के आविर्भाव पर उपस्थित होकर, बाद में, सर्दी में कृष्ण–मंत्र का 18 लाख का 6 मास का पुरश्चरण आपकी कृपा से पूरा होने की कामना है। आप शक्ति प्रदान करें। यदि आप भी यहां आकर मेरा साथ दे देवें तो सोने में सुहागा हो जायेगा। अब भी यदि जुलाई–अगस्त में आकर मुझको कृतार्थ कर दें तो मैं ठाकुर जी की असीम कृपा का अनुभव करूँगा।

पिछली बार आपको गर्मी का कष्ट सहना पड़ा। उसके लिए मैं चरणों में गिरकर क्षमा चाहता हूँ। आपको कष्ट देकर अपराधी बना। अब तो गर्मी बहुत कुछ कम हो गई। अतः भजन आनंद से हो जायेगा। मेरा भी शुभ अवसर आ जावेगा। इस समय कोई उत्सव भी नहीं होवेगा। यदि 15 दिन के लिए भी पधार कर कृपा कर दें तो मैं अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझूँगा। चातुर्मास मेरा सुगंध से भर जायेगा। वैसे आपकी मर्जी है। मैं तो प्रार्थना ही कर सकता हूँ। मेरा बस भी क्या है!

मैंने श्री महाराज जी को भी पत्र दिया था। उनसे मेरा जिक्र कर दें। उनका आने का क्या इरादा है? दस–पांच हजार का योगदान मेरे गुरुदेव के म्यूजियम के लिए देने की प्रेरणा ठाकुर से मिली है। हम गरीब दे भी क्या सकते हैं, लेकिन यदि उनके चरण यहाँ पड़ जावें तो हमारा कितना सौभाग्य होगा। आप साथ में

लेकर आ जावें तो हमारे आनंद की सीमा नहीं रहेगी। फूल उठेगा सारा परिवार। महाराज का पदार्पण हमारे सौभाग्य की बात होगी। उनकी कृपा से परिवार की गाड़ी चल रही है वरना गाड़ी ठप्प ही समझो। मैं तो उनकी चरण–रज–कण की सेवा का अभिलाषी हूँ। आप भी कृपा कर दें तो यह चरण–रज मुझे प्राप्त हो सकती है। वे आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। यह सब आप पर निर्भर है।

आपकी कृपा पर मेरा जीवन चल रहा है। यह जीवन आप पर आश्रित है। अपनावो तो, ठुकरावो तो, आप जानो। भजन है तो सब कुछ है। वरना जीवन बेकार ही है।



10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

संतों के संग से ही जीवन की सार्थकता

आप ही मेरे सर्वस्व हैं। आपके चरणों का चिंतन ही मेरा भक्ति–बल है। आप तो साक्षात् निष्किंचन वृति में सराबोर रहते हैं। ऐसी कृपा करें कि मेरे अंदर भी निष्किंचनता की छाया–मात्र अनुभव होती रहे। मैं तो कामनाओं का पिटारा हूँ।

आपकी कृपा से राधाष्टमी का आयोजन बहुत सुंदर रूप से भजन में गुजरा। श्री राधे जी की असीम कृपा का अनुभव हुआ। अब तो आपको इस भिक्षुक को दर्शन रूपी भिक्षा देने की कृपा करनी चाहिए। मैं मजबूर नहीं कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। आपको खुशी से भिक्षा देने की कृपा करनी चाहिए। मैं मजबूर नहीं कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। आपकी खुशी में ही मेरी खुशी है। परंतु क्या करूँ आपके अभाव में मेरा जी अकुलाता रहता है। यदि आप आ जावें तो मेरा आनंद–सिंधु उमड़ पड़े। मैं अपने आपको परिवार सहित बड़ा भाग्यशाली अनुभव करूँ। मेरा जिया आपके बिना तड़प रहा है। मैं स्वयं अकेला आपके चरणों में आ नहीं सकता।

विरह–सागर में डूबकर ही पैंदे (तल) में हरि–भक्तों के संग में श्री ठाकुर जी के दर्शन हुआ करते हैं। ऐसा मेरा अनुभव कहता है। जब तक जीवन में विरह अंकुर नहीं प्रगटा, तब तक न संसार से वैराग्य होता है, न ठाकुर जी के प्रति प्रेमावस्था का भाव जाग्रत होता है, न ठाकुर जी के प्रति अकुलाहट होती है न ही मोह–माया, प्रतिष्ठा का लोप होता है। मानव–जीवन, जो भगवत्–कृपा से मिला था, बेकार में चला गया। हीरा पाना था, पत्थर को ढूंढता रहा। सारा जीवन रोने व सोने में चला गया।

अब प्रश्न उठता है, विरहाग्नि कैसे प्रज्ज्वलित हो? यह तो अपने बस की बात नहीं। बस की बात तो है परंतु मन चाहता नहीं। क्यों नहीं चाहता, अनन्त जन्मों के संस्कार इसे अपनी ओर खींचते रहते हैं, तो बेचारा क्या करे। लेकिन जब सच्चा संत, ठाकुर–कृपा से मिल जाये, वह भी किसी सुकृति से तो, जीव को आवागमन रूपी दुःख–सागर से छुटकारा मिल सकता है। आजकल तो सच्चा संत मिलना भी मुश्किल है। "बिना हरि कृपा, मिले नहिं संता।" हरि से आतुरतापूर्वक प्रार्थना की जाए। परंतु वह भी अपने बस की बात नहीं। बस की बात है, यदि संसार से वैराग्य हो जावे। अब संसार से वैराग्य कैसे हो? जब मन विचार करे–"अरे यह संसार तो दुःखों का घर है। सुख का तो नामो–निशान ही नहीं। देख नहीं रहे, आस–पास लोग तड़प रहे हैं। किसी को बीमारी, किसी को खाने को भोजन नहीं, किसी को प्रकृति की मार पड़ रही है, आदि आदि। फिर मौत मुंह फाड़े खड़ी है। स्वयं का पुत्र अन्ट–शन्ट बकता रहता है। कोई किसी का नहीं है। केवल स्वार्थ नाच रहा है"–ऐसा विचार करोगे तो वैराग्य प्रकट होने में देर नहीं होगी। सब कुछ संभव है, पर मन सो रहा है। अरे, भगवान् ही अपना है, बाकी सब तो पराए हैं।

"बुढ़ापा बहुत खराब है। हाथ–पैर चलते नहीं। भोजन की इच्छा समाप्त है। साधु के पास जा नहीं सकता। केवल चिंतन का ही सहारा है। पड़ा–पड़ा रोता रहता हूँ। हे मेरे गुरुदेव ! हे मेरे शिक्षागुरु! हे मेरे ठाकुर जी ! अब तो जीने की इच्छा समाप्त हो गयी है। अब तो मेरा यहां पर कोई नहीं है। केवल आपके सहारे से जीवन चल रहा है। अब तो संसार से मन ऊब गया है। रो–रो कर प्रार्थना करना ही बल है। अब मैं ज्यादा जीना नहीं चाहता। अब जल्दी से अपने शिशु को गोद में उठा लो एवं प्यार का लड्डू मेरे हाथ में दे दो। बस यही आपसे अंतिम प्रार्थना है।"–इस प्रकार भगवान् से कातर प्रार्थना करने से ही बल मिलेगा।

खटिया में पड़ा–पड़ा रोना आना किसी सौभाग्यशाली जीव का होता है, जिस पर संतों की असीम कृपा होती है। ठाकुर जी की तो संतों पर असीम कृपा होती है। ठाकुर जी तो संतों के सान्निध्य बिना रह ही नहीं सकते। जहां भक्त भगवान् के लिए रोता है, भगवान् भी भक्त के लिए रोते रहते हैं। इस रोने में भक्त व भगवान् को असीम आनंद–सागर में डूबना होता है।

क्या ही अलौकिक रसानुभूति होती है भक्त व भगवान् को। जिसको यह रस मिल गया, वही जान सकता है पर बता नहीं सकता, क्योंकि अन्तःकरण की जिह्वा नहीं।

यदि रोना नहीं, तो कुछ नहीं। सारी साधना बेकार है। श्री गौरांग महाप्रभु इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, भरत इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। श्री नरोत्तम ठाकुर, श्री भक्ति विनोद ठाकुर, आदि रोने के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। रोना नहीं आता तो इसका खास कारण है–भगवान् के प्यारे भक्तों के चरणों में अपराध। यह अवस्था जल्दी आ सकती है, परंतु इस पर काम हावी रहता है। जो ठाकुर के प्रति प्रेम उमड़ रहा था वह सारा एक बार के स्त्री संग से दब जाता है। हजारों वर्षों की तपस्या (साधना) एक क्षण में समाप्त हो जाती है। विरहाग्नि जलने में पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करना परमावश्यक है। कोई विरला ही स्त्री रूपी माया से बच सकता है। बस वही बच सकता है, जिस पर संतों सहित ठाकुर जी की कृपा हो। जोर–जोर से हरिनाम करना, कान से सुनना विरहाग्नि प्रकट कर देता है। विरह हुआ नहीं कि काम भस्म हुआ नहीं। यही एकमात्र काम से बचने का उपाय है, दूसरा नहीं।

गृहस्थी, स्त्री–रूपी किले में रहता है, अतः बचता रहता है। ऋतुधर्म (मासिक धर्म) के चार दिन बाद संग करने से कोई पाप नहीं लगता, क्योंकि यह पुरुष का धर्म है। विधाता के आदेश का पालन है। दूसरे समय में भजन करने से काम शांत रहता है। बहुत त्यौहार आ जाते हैं, स्वतः ही भजनशील को काम से दूर रहना पड़ता है। लेकिन यह तब ही संभव है जब धर्मपत्नी भी भजनशील

हो। ऐसी पत्नि भी पूर्व जन्म से मिलती है। वैसे तो प्रवचन के साथ काम से बचने की शिक्षा भी बहुत जरूरी है। वह बेचारे क्या करें ? माया–रूपी स्त्री खींच लेती है। इसलिए तो श्री गौरहरि ने छोटे हरिदास जी को ताड़ना दी थी। लकड़ी की स्त्री भी मन को खींच लेती है। लड़कियों से की बात करना, स्वयं को गिराने में सहायक है।

कहते हैं, भजन को छुपाकर रखना चाहिए। बात बिल्कुल ठीक भी है, क्योंकि प्रतिष्ठा आकर भजन–स्तर गिरा देगी। इससे अहंकार प्रकट होगा। लेकिन जिसका अंतर का भाव दूसरे का हित करने का हो, उसे कोई नुकसान नहीं हो सकता। उसको देख–सुनकर प्रेरणा मिलेगी कि मुझ में तो इतना भजन–स्तर नहीं है, पछताएगा तो भजन–स्तर बढ़ेगा।

शास्त्र का वचन–'परहित सरिस धर्म नहीं भाई।'

रामानुजाचार्य जी को इनके गुरुदेव ने मंत्र देकर कहा कि इसे छुपाकर रखना वरना नुकसान होगा। रामानुजाचार्य ने सोचा, इस मंत्र को सबको बताने से उन सबका तो उद्धार होगा, केवल मुझे ही तो नरक–भोग करना होगा। यह सोच कर उन्होंने छत पर जाकर जोर–जोर से मंत्र का उच्चारण कर सबको कहा, इससे जन्म–मरण छूट जाएगा। सब जपा करो। जब गुरु जी को मालूम हुआ कि इसने मंत्र सबको बता दिया तो गुरुदेव ने उसकी भावना से परम खुश होकर आशीर्वाद दिया कि तुझ पर ठाकुर की कृपा सदैव रहेगी।

अब मैं भी बता रहा हूँ–एक लाख नाम, ब्रह्ममुहूर्त में विरह–सागर में गोता लगाकर कर रहा हूँ। मेरा भजन बताने से कभी कम नहीं हुआ, वरन् ज्यादा ही हुआ है, क्योंकि मुझे मान–प्रतिष्ठा शूकर की विष्ठा के समान महसूस होती है। ठाकुर व भक्त कृपा मेरे से दो लाख नाम से भी ज्यादा नित्य करवा रही हैं। मैं बताने से क्यों डरूं ? दूसरों को बताने से उनको लाभ होता है। पांडवों के उदाहरण से पता चलता है कि भगवान् अपने प्यारे भक्त की तरफ

ध्यान दिया करते हैं। अभक्त की तरफ देखते तक नहीं। मैं अपने निजी प्यारे को ही फटकारा जाता है, अन्य को नहीं। मां अपने बच्चे को पीट सकती है क्योंकि वह अपना है, अन्य को नहीं क्योंकि वह पराया है। लेकिन बेटा, बाप को नहीं फटकार सकता क्योंकि वह पूज्य है, केवल इशारे से इंगित कर सकता है। अपने निजी–प्रेमी के लिए यदि वह पूज्य है, तो फटकार लगाने में पूर्ण रुकावट हो जाती है यद्यपि वह गर्त में जा रहा है, लेकिन मजबूर है झिड़कने में। दुःखी तो दिल से बहुत है, परंतु क्या कर सकता है ? इस लेख को गहराई से दिल में विचार करें कि इसका खास आशय क्या है ? रहस्य को प्रकट करना उचित नहीं। तूफान आ रहा है, पेड़ की जड़ उखड़ रही है। तूफान आने पर अवश्यमेव गिरेगा। अब किसका इंतजार है। अंत होने वाला है।

लालसामयी प्रार्थना

हे महाराज !
मुझे अब तो अपना लो।
जन्मों का जो तेरा,
हिये में निष्किंचनता का भाव जगा दो,
बुढ़ापे ने आ घेरा,
तन–मन–बुद्धि हुआ बसेरा,
अब जाने की तैयारी,
हरिनाम में ऐसी लौ लगा दो।
क्षण–क्षण मैं रोता रहूं,
ठाकुर के चरणों को धोता रहूं।
विरह की ज्वाला में झुलसता रहूं,
अपने आपको खोता रहूं।।
आवागमन के भारी दुःख से,
अनिरुद्धदास को बचालो।
हे गुरु महाराज !
मुझे अब तो अपना लो।

11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 17.08.2006

संत-शरण द्वारा ही भक्ति की प्राप्ति

आप ही मेरे जीवन सर्वस्व हैं। मैं सच-सच कह रहा हूँ। मेरा जीवन आपकी कृपा से ही गुजर रहा है। मैं अपने आपको देखता हूं तो अवगुणों का भंडार भरा देखता हूँ। आप मुझमें गुण देखा करते हैं। यह संत का स्वभाव ही होता है। वह गुण ही गुण देखता रहता है। अवगुण तो उसे नजर ही नहीं आता।

पत्र तो न जाने मुझे कौन अदृश्य शक्ति प्रेरित करके लिखवाती रहती है। मुझे भी इसका अचंभा आता है। यह आपकी सेवा का फल हो सकता है क्योंकि हर समय आप मेरे हृदय पटल पर विराजित रहते हैं एवं आपके हृदय-पटल में ठाकुर जी विराजित रहते हैं।

बस यही कारण है कि मेरे पत्र आपको अच्छे लगते हैं। मैंने अच्छी तरह विचार कर देख लिया कि सच्चे संत की शरण ही ठाकुर को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। उसी से हरिनाम करने पर विरहाग्नि जल उठती है। आप मेरे जन्म-जन्म के संगी हैं, अतः सब भूलकर आप पर ही मेरी निगाह टिकी है। मेरे गुरुदेव के बाद, आप व श्री तीर्थ महाराज जी ही मेरे जीवन का आधार हैं। इससे ज्यादा मैं लिखने में असमर्थ हूँ।

भाषण से धर्म-प्रचार नहीं होता।
जो स्वयं भजन करते हैं,
वे ही दूसरों से भजन करवा सकते हैं।

12

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.10.2006

श्री राधा–कृष्ण युगल की पोशाक का रहस्य

आपकी याद में इस गोविंद भगवान् के परिवार का दामोदर–व्रत (कार्तिक–नियम) प्रातः चार बजे से साढ़े 6 बजे तक व रात साढ़े सात बजे से साढ़े नौ बजे तक, आपकी कृपावर्षा से सुचारू रूप से चल रहा है। भविष्य में भी नियमता रहे, ऐसी कृपा करते रहियेगा। प्रातः ठाकुर जी की आरती, तुलसी जी की आरती, राधा–गोविंद कीर्तन, गौर–हरि कीर्तन, तुलसी जी का कीर्तन, श्री गुरुदेव जी की प्रार्थना, गौरहरि कीर्तन, गुरु–परंपरा, गुरुदेवाष्टक, श्रीदेवकीनंदन दास का श्री श्री वैष्णवशरण प्रार्थना–वृंदावनवासी यत वैष्णवेरगण, श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु दया करो मोरे प्रार्थना, नृसिंह देव प्रार्थना, दामोदर अष्टक, जय दाओ जय दाओ की प्रार्थना, अष्टयाम कीर्तन के प्रथम चार याम तक गायन द्वारा कीर्तन करते हैं।

रात्रि में श्रीगुरुदेव–प्रार्थना, गजेन्द्र मोक्ष प्रार्थना, गौर–हरिकीर्तन, हरिनाम–कीर्तन, 5वें से 8वें तक यामकीर्तन, राधे–जय जय माधव दयिते प्रार्थना, श्रीरूप गोस्वामी कृत–देव भवन्तम् वन्दे प्रार्थना, गुरुवर्ग की जय देकर नियम समाप्त कर देते हैं। दिन में नाम जप करता हूँ। 3 लाख हरिनाम बड़ी मुश्किल से हो पाता है लेकिन ठाकुर जी निभा रहे हैं।

एक रोज हरिनाम के जप के समय रात में ठाकुर राधा गोविन्द जी से पूछा कि पिता जी! आप हर समय पीतांबर ही क्यों धारण करते हो एवं माता जी आप नीलांबर ही क्यों धारण करती हो, इसका रहस्य क्या है ? समझना चाहता हूँ।

गोविंद जी बोले,–"मेरी राधा के श्री अंग का रंग पीतांबरी है। निखरे हुए सोने जैसा है। अतः इसकी आभा मुझ पर गिरती रहती है। अतः पीतांबरी रंग की पोशाक मेरे मन को भाती है।"

राधा जी बोलीं, "तेरे बाप का रंग श्याम घटा जैसा नीला है। इस नील की मणि की आभा मेरे गोरे अंग पर पड़ती रहती है। अतः मेरा गोरा रंग नील–झांई से सराबोर रहता है। अतः नीलांबर पोशाक मेरे मन को भाती है। बस यही कारण है कि मुझे नीलांबर जंचता है व प्यारे को पीतांबर जंचता है।"

आप पूछ सकते हो कि भगवान् राधा–कृष्ण के लिये आपका भाव तो माता–पिता का है, जबकि आप एक छोटे से शिशु हो। आपने उनसे वार्तालाप कैसे किया। इसका उत्तर है, ये बातें सुपर नैचुरल दिव्यता लिए हुए होती हैं। ठाकुर–कृपा बिना समझना असंभव है। ठाकुर तो अन्तर्यामी है। मन का भाव उनको पता रहता है। उनकी कृपा से भक्त भी भगवान् के मन की बात जान लेता है, क्योंकि भक्त भी चिन्मय होता है।

मैं भक्त–श्रेणी में नहीं हूँ, लेकिन ठाकुर व संतों की कृपा से दिल के कपाट खुल जाते हैं। संतों की कृपा जिस जीव पर होती रहती है तो उस कृपा के वश होकर वह जीव भी भक्त–श्रेणी में आ जाता है। तब वह मूक वार्तालाप भी ठाकुर से कर लेता है। ठाकुर उसकी मूक बातें सुन लेते हैं और भक्त भी ठाकुर की मूक बातें सुन लेता है क्योंकि दोनों ही चिन्मय होते हैं।

हरिनाम से ही चिन्मयता प्राप्त हो जाती है। लेकिन स्मरण–सहित जाप होना चाहिए। कान तब ही सुन सकेगा, जब मन कान के साथ रहेगा। मन न रहने से कितने ही जोर से पुकारो, कान उस पुकार को पकड़ेगा ही नहीं। स्मरण से ही कुछ मिल सकेगा। बिना स्मरण, सुकृति हो जाएगी जो भगवत् प्रेम लाने में देर कर देगी। स्मरण से इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष व 'प्रेम' मिल जाएगा।

"जाको नाम जपत मन माहिं।
सकल अमंगल मूल नसाहिं।।"

हरिनाम से दुःख की जड़ ही उखड़ जाती है। एक जुगनू सूर्य भगवान् को उजाला दे रहा है, कितनी मूर्खता है? लेकिन करे क्या? एक सजातीय होने से उसकी तरफ दौड़ता रहता है, चाहे जल कर राख ही क्यों न हो जाए। उसको सूर्य खींचता रहता है। मैं जुगनू हूं मेरे श्री गुरु महाराज सूर्य हैं। मैं बेबस हूँ, लिखकर ही मन को शांति प्रदान करता रहता हूँ। लेखन से याद दूनी बढ़ जाती है। संत का स्मरण, ठाकुर–स्मरण से सर्वोत्तम रहता है, ऐसा शास्त्र–वचन है।

श्रीगौरहरि जी ने अपनी मां को श्री अद्वैताचार्य के प्रति अपराध होने पर कितना सावधान किया है, जबकि हम सब वैष्णव/संत को एक साधारण मनुष्य समझते हैं। संत/भक्त/वैष्णव की निन्दा करना व सुनना दोनों ही खतरनाक हैं। इससे जापक नाम करते हुए भी सात्विक–अष्ट–विकारों से वंचित रह जाते हैं। जब शची माता ने श्री अद्वैताचार्य जी की चरण धूलि सिर पर ली तो तुरंत प्रेम–विकार प्रकट हो गया। यह युक्ति भी श्रीगौरहरि ने ही भक्तों द्वारा प्रार्थना करने पर बताई है। अतः समझना होगा कि संत–चरण–रज, जल व अवशेष–प्रसादी का कितना प्रबल प्रभाव है जो कि सात्विक विकार प्रकट होने में सहायक होता है। यह शास्त्रों में जगह–जगह पढ़ने को मिलता रहता है।

कृष्णभक्तिरसभावितामतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते

13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 28.12.06

स्मरणकारी को भगवान् अपना लेते हैं

इस समय आप Ph. D Class में पहुंच चुके हो। एक दिन मैं जब आपके साथ कमरा नंबर 21 में आपके संग में हरिनाम जप कर रहा था, उन दिनों में आप L.K.G, U.K.G Class में बैठे थे, आप मेरे Super natural son, Daughter and grandson (पोता)–भौतिक जगत के रिश्ते से लगते हो। सच्चा पुत्र वही है, जो भगवान् के लिए तड़पता है। अब भगवान् ने मेरी प्रार्थना सुन ली है दूसरे पुत्र हैं जो Super natural पुत्र–पुत्री हैं। उनकी भी भगवान् सुन लेगा। आप पर भगवान् ने असीम् कृपा कर दी है, जो अंतिम Stage विरहाग्नि की होती है, आपको उपलब्ध हो गयी। मुझे इतनी जल्दी की उम्मीद नहीं थी, जो आपको प्राप्त हो गयी। अब इसे भविष्य में बढ़ाते रहें। पर यह होगा केवल हरिनाम कान से सुनकर ही।

शास्त्र कहता है, भजन छुपाकर रखना चाहिए। ठीक है, यह है नीचे–स्तर के भक्त के लिए, क्योंकि हीरे की कीमत जैसे मालिन नहीं जान सकती, जौहरी ही जान सकता है, इसी तरह भजन–स्तर की कीमत, उच्च–स्तर वाला भक्त ही जान सकता है। उच्चस्तर वाला भक्त, उच्चस्तर वाले भक्त से छुपाकर रखने से आगे उन्नत नहीं हो सकेगा। मेरे से छुपाकर रखने से आप आगे बढ़ नहीं सकोगे। रात में मेरा भी विरहाग्नि स्तर बढ़ रहा है। 3 बजे से 6 बजे तक अश्रुधारा भक्तों की कृपा से व ठाकुर कृपा से चलता रहता है। यह बात दूसरों को न बतावें। अपने तक ही रखें।

आपने जो पद्य–रचना की, साक्षात् कृष्ण का बचपन का चित्रण, शीशे के माफिक कर दिया। मुझे पढ़कर असीम आनंद हुआ। कई बार पढ़ा एवं अश्रुपात भी हुआ। भगवान् के प्रति जो पद्य–रचना या लेख होता है, वहां सरस्वती आकर जुबान पर बैठ जाती है। भौतिक

चित्रण से सिर धुनकर पछताती है, जो भक्त के लेख को बुरा कहता है, घोर अपराधी बनकर नास्तिक बन जाता है।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्‌गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"
"ताकी करूं सदा रखवारी।
जिमि बालक राखहिं महतारी।।"

हर प्रकार से भगवान् का भजन करने से भगवान् की शरणागति स्वतः हो जाती है। शरणागत को भगवान अपने हृदय से चिपकाए रहते हैं। पुत्रों को सुरक्षित रखना चाहिए, वरना अपराध के भागी बन जाते हैं। पर जो मेरा प्यारा पुत्र है, उसे मेरे पत्र पढ़ना आवश्यक है। आपके लिए मेरा आदेश है कि अधिक ध्यान ठाकुर जी के नाम की तरफ रखना होगा। कान द्वारा हरिनाम ज्यादा करना होगा। पुत्री को भी कहना, वह भी करे। दोनों के करने से 100 प्रतिशत भगवत्–कृपा मिलती है।

आपके घर का जिम्मा ठाकुर ले रहा है, फिर तुमको क्या फिक्र है। मेरा जिम्मा आपको लेना है, क्योंकि आपको इतनी छोटी आयु में Ph.D स्तर की भक्ति प्राप्त हो गयी है। मैं तो वयोवृद्ध व्यक्ति हूँ। बच्चे को बूढ़े की सेवा करना धर्म है। भगवान् से कह कर मेरा भी भजन–स्तर अर्थात् अधिक विरहाग्नि भड़काने की ठाकुर जी से प्रार्थना करनी होगी। खड़ताल दोनों हाथों से बजा करती है। बचपन में मैंने आपको पाला, अब बुढ़ापे में आपका धर्म है, मुझे शरण देने का। वरना आपको दोष लगेगा। सोच लो, समझ लो कि क्या कह रहा हूँ।

मानुष–जन्म बार–बार नहीं मिलता, अबकी बेर भगवत् कृपा से मिल गया है तो इसे सार्थक करना परमावश्यक है। जो होगा अधिक से अधिक हरिनाम को कान से सुनकर ही होगा।

जपते–जपते हरिनाम से ही भगवत् दर्शन होने लगेगा। 10 करोड़ नाम, कान से सुनने के बाद, हृदय में भगवान् का दर्शन होने लगेगा, लीला स्फूर्ति आदि भी होगीः–

**"सुमरिए नाम, रूप बिन देखे।
आवत हृदय स्नेह विशेषे।।"**

जबरन भगवान् को आना पड़ता है, जब जीव उसे रो–रो कर पुकारता है। भगवान् तो दया के समुद्र हैं। जब जीव जरा भी उसे याद करता है तो वह तुरंत आकर जीव को संभाल लेता है। जब बच्चा रोता है तो संसारी मां दौड़कर उसे गोद में उठा लेती है, तो श्रीकृष्ण तो अखिल ब्रह्मांडों की मां है। वह तो उस मां से अनंतगुणा वात्सल्य रस समूह का भंडार है। अपना भजन कम न हो, बढ़ता ही जावे ऐसा हरिनाम करना। केवल प्रतिष्ठा से बचना।

आपका पद्य क्या था! श्रीकृष्ण की बाल लीला का पूरा चित्रण था। पढ़–पढ़कर बार–बार रोना आता था। वाह रे पद्य रचना करने वाले! मुझे तो आपने निहाल कर दिया। साक्षात् जैसे टी.वी. पर देखते हैं, वैसा का वैसा दृष्टिगोचर हो रहा था।

**दुनियाँ में शिष्य का पैसा हरण करने वाले तो बहुत गुरु हैं
परन्तु जो शिष्य के संतापों को हरण कर ले,
ऐसा गुरु मिलना मुश्किल है।**

**बहुजन्म कृष्ण भजि' प्रेम नाहि हय।
अपराध पुञ्ज ता'र आछये निश्चय।।**

यदि बहुत जन्मों तक श्रीकृष्ण का भजन करने पर भी प्रेम नहीं होता है, तब यह निश्चित है कि ऐसे व्यक्ति ने अनेकों अपराध किये हैं।

14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 28.12.2006

कृपा-प्रार्थना

आपकी याद कभी भूलती नहीं है। यह आपकी कृपा का ही प्रभाव है। यदि आपकी इस प्रकार कृपा बरसती रही तो मेरी भी जीवन-नैया सुचारु रूप से चलती रहेगी और ठाकुर जी तथा संतों का ध्यान बना रह सकता है। संत की याद ही भजन करवा सकती है, ऐसा शास्त्र भी कहता है। मठ में बहुत से भजनशील महात्मा हैं, जिनकी कृपा मुझ पर होती रहे तो जीवन सुखमय चलता रहे। मेरा भी भजन बल बढ़ता रहे व अन्य सबका भी।

आप दोनों तो सबके प्राणप्रिय हो। मेरी ओर भी ध्यान कर लिया करें। भक्तजन जिस प्राणी का ध्यान कर लिया करते हैं, उसका भजन-स्तर बढ़ता रहता है। मैं तो अकेला हूँ। केवल याद करके ही जीवन बिताता रहता हूँ। याद ही मेरा संबल है। मैं तो गृहस्थ का कीट हूँ, कहीं आ-जा नहीं सकता। बुढ़ापे ने घेर रखा था। चलना-फिरना असंभव है। आप सबका मुझे सहारा है। आप मठ की सेवा में तल्लीन रहते हैं। गृहस्थ में भी कई अड़चनें आती रहती हैं, परंतु फिर भी कोई परवाह न कर, मठ में आकर भजन-कीर्तन सबसे करवाते रहते हैं। लेखन-सामग्री भी साथ-साथ में करते रहते हैं। मेरी तो तिल मात्र भी सेवा नहीं होती है।

परिवार भी कहीं भेजना चाहता नहीं। बच्चे भी श्री गुरुदेव के आश्रित होने के कारण मैं जबरन करता नहीं, क्योंकि अपराध होने पर भजन गिरने का डर रहता है। वैसे भी भजन एक छाया मात्र, केवल दिखावे का ही होता है। सच्चा भजन तो कहाँ। किसी भक्त का दर्शन मात्र दुर्लभ है। आप दोनों की कृपा मुझ पर होती रहे, बस यही मेरी प्रार्थना है। कभी-कभी मेरी याद कर लें तो ठाकुर जी की कृपा मेरे पर भी होती रहे। श्री राधामाधव जी को मेरा प्रणाम

बोल दिया करें। भक्त द्वारा ही ठाकुर सुनते हैं। भक्त–कृपा से ही ठाकुर सुनते हैं। भक्त कृपा ही ठाकुर कृपा करवा देती है।

आप जिन महात्माओं की सेवा में हाथ बंटा रहे हैं, ये कोई छोटे–मोटे महात्मा नहीं हैं। भगवान् के भेजे हुए पार्षद हैं जिनका नाम श्री गुरुदेव ने सोच समझ कर ही रखा है। जैसा नाम वैसा ही आचरण। साक्षात् वैराग्य मूर्ति हैं। आप इनकी ही सेवा तो कर रहे हैं। आप बड़े भाग्यशाली हो। आपने ऐसे महात्माओं के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर रखा है। मुझ पर भी इनकी अपार कृपा बरसती रहती है। तभी मेरे गोविंद जी की गृहस्थी की पारिवारिक स्थिति सुचारू रूप से चलती रहती है। मैं तो इनके चरणों की रजमात्र हूँ। इनके चरणों की कृपा से मैं आनंद–सिंधु में तैर रहा हूँ।

मैं चाहता हूँ, इनकी आयु बढ़ती रहे। मैं इनके पहले ही चला जाऊँ वरना तो मेरा जीवन दूभर हो जाएगा। इनकी कृपा बहुत सालों से मुझ पर हो रही है। पहले जन्म का ही नाता नजर आता है। मैं इनके बिना रह नहीं सकता।

मेरे गुरुदेव की इन पर साक्षात् कृपा बरसती रहती है। शरीर इनका स्वस्थ है। इनके बराबर वाले महात्मा कई रोगों से ग्रस्त रहते हैं। अब भी जवानों की तरह भागते रहते हैं। मैं तो सात साल छोटा हूँ परंतु चलना दूभर हो गया है। श्रीतीर्थ महाराज जी ने इनको परमहंस की पद्वी दी है। साक्षात् परमहंस की है। जयपुर में जाकर गोविंद–मंदिर में जो स्थिति बनी, उसने मेरे अंदर आनंदसिंधु लहरा दिया। रास्ते में जो उनकी दशा हुई, सराहनीय है। मुझ पर ऐसी कृपा बरसाने हेतु ठाकुर जी से प्रार्थना करें। जिसकी ऐसी दशा बन जाती है, वह तो मेरा पूजनीय है। मैं तो उसके पैर धोकर पीने में कुशलता मानता हूँ। जो भक्ति में बड़ा होता है, वह उम्र में छोटा होने पर भी पूजनीय होता है। मैं वयोवृद्ध हो गया तो क्या हुआ ?

मेरे मन का भाव श्री जी को कृपा कर बता दें। ऐसे पद्य भगवान् के प्रति रचना करने से ठाकुर जी की असीम कृपा होती है।

पद्य बहुत ही सारे-युक्त तथा भावगम्य है जिससे सब लीलाएं स्फुरित हो पड़ती हैं। ऐसी पद्य रचना अवश्य भजन-स्तर बढ़ने में सहायक है।

श्री गुरुदेव का बताया हुआ हरिनाम जपने का साधन

एक बार मैंने श्री गुरुदेव जी से पूछा कि हरिनाम को कैसे जपना चाहिए ? उत्तर मिला कि जिस प्रकार तुम सत्संग या किसी चर्चा को सुनते हो, इसी प्रकार से तुम हरिनाम को सुना करो। सुनने से ही तो कोई बात हृदयगम्य होती है, हृदय में अंकित होती है। फिर हृदय से बुद्धि में आ जाती है। बुद्धि इसका निर्णय करती है। निर्णय होने पर स्थूल शरीर की इन्द्रियों पर आती है। इंद्रियां इसे करना आरंभ कर देती है। इन्द्रियों द्वारा करने पर वह कार्य सफल हो जाता है। अब हरिनाम के ऊपर इसे आजमाइए।

श्री गुरुदेव से हरिनाम कान से सुना, तब हृदय में बैठा। हृदय से बुद्धि में गया। बुद्धि ने निर्णय किया कि हरिनाम करने से दुःख-निवृति व सुख का प्रादुर्भाव होगा। तब जापक माला को हाथ-इन्द्रिय में लेगा। जिह्वा इसे जपना शुरू करेगी। मन इसे पकड़ेगा। कान इसे सुनने की कोशिश करेगा। लेकिन मन ऊबेगा, सुनना नहीं चाहेगा, क्योंकि अभी इसमें आनंद नहीं आएगा। धीरे-धीरे कुछ दिनों में जब आनंद आने लगेगा, तब मन कहीं नहीं जाएगा, नाम में रुचि आ जावेगी।

धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना। अर्जुन को भगवान् ने अभ्यास के लिए कहा है। मन न लगने से सुकृति होगी। प्रेम नहीं आएगा। सुकृति अगले जन्म में सद्गुरु प्राप्ति करा देगी।

श्री जी का पत्र आया था। उसमें एक पद्य रचना थी। उसमें श्री कृष्ण की बचपन की समस्त लीला वर्णन की थी। भक्तवर ने लिखा

था यदि अनाधिकार चेष्टा की गई हो तो पद्य को फाड़कर फैंक देना। आप उनसे कह देना कि भगवान् के प्रति जो भी लेख लिखा जाता है, वह भगवान् को प्रिय होता है। यदि कोई उसे अनाधिकार चेष्टा मानता है तो वह घोर अपराधी है। इसे लिखने वाला मेरा प्राण–प्रिय है। उसको फड़वाने से तो मैं मायिक हो जाऊँगा। अपराधी बन जाऊँगा। आप उन्हें इस बारे में मेरा मत बता देने की कृपा करें।

माला अलौकिक वस्तु है

श्रील गुरुदेव माला द्वारा जीव का भगवान से नाता जोड़ते हैं। जिस प्रकार विवाह के समय ब्राह्मणदेव पति–पत्नी का गठजोड़ करते हैं अर्थात् पत्नी को उनके पति के सुपुर्द कर देते हैं और वह सारी जिंदगी अपने पति की सेवा में रत रहती है। ठीक उसी प्रकार श्री गुरुदेव माला द्वारा जीव को भगवान् के सुपुर्द कर देते हैं ताकि जीव पूरा जीवन भगवान् की सेवा में, उनके नाम–स्मरण में लगा रहे। श्रील गुरुदेव की अहैतुकी कृपा से जीवात्मा, माया रूपी पीहर (मायके) से भगवत्–चरण रूपी ससुराल में अपना जीवन बिताने के लिये सदा के लिये चली जाती है और भगवत् रूपी पति (परमात्मा) की सेवा में लगी रहती है।

जिस माला का इतना महत्व है, वह कोई साधारण वस्तु नहीं होती। उसे बड़ी सावधानी के साथ रखने और उस पर जप करने संबंधी कुछ बातें सबको ध्यान में रखनी चाहिये। इस बारे में अखिल भारतीय श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी ने कहा है–

"जपमाला" को टांगकर नहीं रखना चाहिये तथा जेब में, विशेष करके निचली जेब में अर्थात् पैंट इत्यादि की जेब में नहीं रखना चाहिये। यात्रा के समय अथवा बाहरी दौरे के कार्यक्रम में, इसे विशेष रूप से गले में लटका कर रखना चाहिये।

माला के संबंध में कुछ जरूरी बातें जो सबको ध्यान रखनी चाहिये, निम्नलिखित हैं :–

1. जब भी हरिनाम करने के लिये, भगवान्–नाम का स्मरण करने के लिये हाथ में माला पकड़ो तो माला को सिर झुका कर प्रणाम करो तथा पुचकार कर प्यार भरा चुंबन देवो क्योंकि माला कोई जड़वस्तु नहीं है। यह एक अलौकिक वस्तु है, भगवान् की प्यारी है। तुलसी के बिना भगवान् कोई भी वस्तु अंगीकार नहीं करते।

2. जब एक माला पूरी हो जावे अर्थात् 108 मनकों (मनियों) पर हरिनाम हो जावे तो माला को फिर से प्रणाम् करे, फिर दूसरी माला शुरू करके 108 मनकों पर हरिनाम करें तो आप देखोगे कि सुमेरू अपने आप ही हरिनाम करने वाले को याद कराने हेतु हाथ में आ जायेगा। सुमेरू को ढूंढना नहीं पड़ेगा। तुलसी माला भक्त के कंठ (गले) का हार होती है। जैसे हम सोने या हीरे के हार को गले में से नहीं निकालते, उसी प्रकार तुलसी माला भी गले में डालकर ही रखना चाहिए।

जब आप माला हाथ में लेकर हरिनाम करते हो तो याद रखो कि किसी भी वैष्णवजन को झुककर प्रणाम नहीं करना। उन्हें सादर हरे कृष्ण, राधाकृष्ण, जय सिया–राम बोलकर प्रणाम् करें। हाथ में माला लेकर झुककर प्रणाम् करने से माला का प्रणाम् हो जाता है जो कि श्रील गुरुदेव की आशीर्वाद की निधि स्वरूप है। भगवान् के सामने श्रीगुरुदेव को प्रणाम् किया जा सकता है। वह भी हाथ से माला को अपने तन से दूर रखकर। भगवान् के सामने, श्रीगुरुदेव को प्रणाम् करना, श्रीगुरुदेव को कष्ट का अनुभव करा देगा। श्री गुरुदेव यह कभी नहीं चाहेंगे कि शिष्य भगवान् के सामने उन्हें झुककर प्रणाम् करें। भगवान् के सामने से हटकर, बगल में होकर प्रणाम् करना श्रेयस्कर होगा अन्यथा श्रीगुरुदेव को प्रणाम् न करने से अपराध हो जायेगा।

3. माला पर हरिनाम करते हुये, किसी वैष्णव या सत्संग के बारे में बातचीत कर सकता है लेकिन संसार के बारे में बातचीत करने से अपराध बन जायेगा। यदि कोई वैष्णव नहीं है तो उसे "जय श्रीकृष्ण" बोलना चाहिये और उससे संसारी वार्तालाप न करना ही उचित होगा।

4. धाम में परिक्रमा करते हुये, यदि पेशाब आ जावे तो माला को पूरी करके या अधूरी छोड़कर, माला को शुद्ध स्थान पर रखकर पेशाब करना युक्तिसंगत है। जहां तक संभव हो तो अपने पास एक छोटी सी शीशी या बोतल में पानी रखना चाहिये। पेशाब करने के बाद हाथ धोकर, मुख को धोकर, फिर जपमाला को हाथ में लेकर जप करना ही ठीक है। यदि माला अधूरी रह गई थी तो उसे गिनती में नही लेना चाहिये। माला पर शुरू से जप करना चाहिये। अधूरी की गई माला की भी अदृश्य रूप से जप में गिनती हो जाती है।

5. भगवत्–प्रसाद पाते समय माला अपने पास इस तरह रखे कि झूठा (जूठा) हाथ स्पर्श न हो सके। कई बार ऐसी जगह भी प्रसाद पाना पड़ता है जहां माला को अपने से दूर रखना परेशानी का कारण बन सकता है जैसे आपने माला कहीं रख दी और बंदर उसे उठा कर ले गया या फिर जल्दी–जल्दी में माला वहीं भूल गये। इसलिये माला को बड़ी सावधानीपूर्वक, संभाल कर रखना चाहिये।

6. जब माला की झोली (beadbag) मैली / गंदी हो जावे तो उसे भगवत्–पर्व के दिन धोना / युक्तिसंगत है। माला झोली को शुद्ध स्थान पर ही सुखाना चाहिये तथा बंदर इत्यादि से बचाकर रखना चाहिये। माला यदि खो जाती है तो जघन्य अपराध बन जाता है। कई लोग जपमाला को कहीं भी जैसे खाने के मेज पर, चारपाई पर, बिस्तर या फिर सोफे पर रख देते हैं, ऐसा करने से माला का अपमान होता है। जिस प्रकार आप अपनी कीमती वस्तुओं (रुपया, पैसा, गहने इत्यादि) को बड़ी सावधानी से संभाल कर एवं सुरक्षित रखते हैं, उसी प्रकार माला को भी संभाल कर

रखना चाहिये। श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला खो जाने पर दुबारा प्राप्त करना असंभव होगा। माला खो जाने से श्री गुरुदेव से नाता टूट जाता है जो भजन में बहुत बड़ी बाधा बन जायेगा। जैसे सबको अपनी जान (जिंदगी) प्यारी होती है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला भी हमें अपनी जी–जान से अधिक प्यारी होनी चाहिये तभी भजन में तीव्रता आवेगी वरना भजन में शिथिलता आ जावेगी। भजन में मन नहीं लगेगा।

7. रात को सोते समय माला को प्रणाम् करके सोना चाहिये। प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर, दूर से ही माला को प्रणाम करने से भक्ति में तीव्रता आ जावेगी। प्रणाम करने के बाद, पेशाब से निवृत होकर, हाथ–पैर और मुंह धोकर, माला को फिर से प्रणाम करके, माला हाथ में लेकर जप शुरू करना चाहिये। ऐसा करने से हरिनाम में मन लगने लगेगा। किसी अंजान भक्त को माला की महिमा बताने से भी हरिनाम में मन लगने लग जावेगा। यही तो सच्चा सत्संग है जिससे भक्ति का आविर्भाव होता है, भक्ति प्रकट होती है। माला के बारे में जो कुछ भी बताया गया है, जापक इसे झंझट न समझें वरना हरिनाम में मन नहीं लगेगा। संसार की बातों में तो हमें झंझट महसूस नहीं होता परंतु जहां हमारे भले की बात हो, जिसमें हमारा कल्याण हो, यदि ऐसी बातों को कोई झंझट समझता है तो यह उसकी मूर्खता होगी, अज्ञान होगा।

8. जिस प्रकार जीवात्मा अपने मन को सदैव साथ रखती है यद्यपि वह जानती है कि उसका यह मन भी पराया है, भगवान् का है, उसी प्रकार भक्त भी माला को यही सोचकर सदैव अपने साथ रखें कि यह मेरे श्रीगुरुदेव की दी हुई है, यह भी पराई है। श्री गुरुदेव द्वारा दी हुई यह माला ही तुम्हें दुःखों से छुड़ाकर सुख के मार्ग पर ले जावेगी। अतः इसे अपने प्राणों से भी प्यारी समझकर संभाल कर रखना होगा।

9. वास्तव में श्रीगुरुदेव ने हम पर अपार कृपा करके, हमें यह माला दी है, यह माया को परास्त करके, जीत लेने का अमोघ

हथियार है जो श्रीगुरुदेव ने हमें सौंपा है। यदि इस हथियार को अपने से दूर रखोगे तो माया कभी भी आक्रमण कर देगी। माया तो हमारी घोर शत्रु है। शत्रु तो मौका मिलते ही आक्रमण कर देगा पर यदि हमारे पास, अपनी सुरक्षा में, श्रीगुरुदेव द्वारा दी हुई माला है तो माया हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। श्रीगुरुदेव ने माला के रूप में, हमें जो यह अमोघ हथियार दिया है, उसमें हरिनाम की अतुलित दिव्यशक्ति समाहित है। अखिल लोक ब्रह्मांडों में कोई भी इस दिव्य शक्ति को परास्त नहीं कर सकता। यहां तक कि ब्रह्मांडों को सृजन करने वाले भगवान् भी इसकी शक्ति के आगे नतमस्तक हो जाते हैं अर्थात् आत्म–समर्पण कर देते हैं। श्री गुरुदेव द्वारा दी गई इस माला पर, जब साधक संख्यापूर्वक, कान से सुनकर, उच्चारणपूर्वक हरिनाम करता है तो उसके हृदय में विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है, फिर भगवान् बेबस हो जाते हैं और उन्हें आना ही पड़ता है।

10. जिसको यह अमोघ हथियार प्राप्त हो जाता है, वह बहुत भाग्यशाली होता है। अखिलकोटि ब्रह्माण्डों में भगवान् भी जिसके आगे नतमस्तक हो जायें, उस माला की महिमा वर्णनातीत है। भगवान् मां यशोदा के डर से थर–थर कांपते हैं, रोते हैं, यहां तक कि डर के मारे उन्होंने पेशाब भी कर दिया। यह सब उस लीलाधर की लीला है। अपने भक्त के लिये वे क्या नहीं कर सकते! जो अहीरों की छोहरियों को छछिया भर छाछ पर नाच सकता है, उसे जब उसका प्यारा भक्त तुलसी (जो भगवान् को अतिशय प्यारी है) माला के मनकों पर नाम ले लेकर प्रेम से पुकारेगा, तो खिंचा हुआ चला नहीं आयेगा क्या ? उसे आना ही पड़ता है–यह उसकी प्रतिज्ञा है।

इस संसार में अनगिनत जीव हैं। उनमें भी अरबों मनुष्य हैं। उन असंख्य मनुष्यों में कितने ऐसे भाग्यशाली जीव हैं जिनके पास श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त यह अमोघ हथियार है। एक ऐसा हथियार

जो माया को परास्त करके इसी जन्म में जन्म–मरण के आवागमन से छुड़ा कर भगवान् के धाम–गोलोकधाम में ले जायेगा।

आजकल लोग माला को गले में डालकर रखने में शर्म महसूस करते हैं, उसे पर्स में या पैंट की जेब में रखते हैं, यह अपराध है यही एक कारण है कि हरिनाम साधकों का भजन में मन नहीं लगता। जब नाम रूपी नैया में साधक की श्रद्धा ही नहीं है, विश्वास ही नहीं है तो साधक उस नैया में बैठकर भवसागर से पार कैसे हो सकेगा ? बिना श्रद्धा और विश्वास के तो मंझधार में ही गोते खाता रहेगा। जहां श्री गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी माला का सम्मान नहीं होता, वहां हरिनाम में रुचि हो ही नहीं सकती। हरिनाम में रुचि हुए बिना कुछ भी नहीं होगा।

परमाराध्य, पतितपावन, परमकरुणामय ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज, जो इस समय अखिल भारतीय चैतन्य गौड़ीय मठ के प्रधानाचार्य हैं, को मैंने हमेशा ही देखा है कि उनकी जपमाला हमेशा उनके गले में ही होती है। जपमाला की वास्वविक महिमा तो वही जानते हैं। हमें भी उनसे यह शिक्षा लेनी चाहिये।

प्रेमीभक्तो ! भगवान् के पास पहुंचने में अनगिनत बाधाएं हैं जो हमारे रास्ते में आती हैं। हम मठ मंदिर में जाते हैं। वहां भी केवल जड़ दर्शन करते हैं। भावदर्शन तो किसी विरले को ही होता है। इसी प्रकार हम तीर्थयात्रा या धाम–परिक्रमा करने जाते हैं पर बिना भाव से, केवल मात्र परिश्रम करके वापस आ जाते हैं। तीर्थ–यात्रा, जड़–भ्रमण बन कर रह जाता है और हम तीर्थ अपराध या धाम–अपराध लेकर घर वापस आ जाते हैं। बिना भावदर्शन के सब कुछ व्यर्थ है, मन का भ्रम हैं यह मैं नहीं, श्रील नरोत्तम दास महाशय ने कहा है–

तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर–भ्रम,
सर्वसिद्धि गोविंद–चरण।

सुदृढ़ विश्वास करि, मद–मात्सर्य परिहरि,
सदा कर अनन्य–भजन।
कृष्ण भक्त अंग हेरि, कृष्ण भक्त संग करि,
श्रद्धान्वित श्रवण–कीर्तन।
अर्चन, स्मरण, ध्यान, नवभक्ति महाज्ञान
एई भक्ति परम कारण।।

(श्री प्रेमभक्ति चन्द्रिका 17.18)

कई लोग ऐसा समझते हैं कि तीर्थ यात्रा करने से पुण्य होता है और उससे मनोरथ सिद्ध होते हैं किन्तु तीर्थयात्रा एकमात्र परिश्रम ही है। यह केवल मन का भ्रम है कि तीर्थयात्रा से पुण्य होता है, वास्तव में श्रीगोविंद के चरणों की भक्ति ही सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली है। अतः दृढ़–विश्वासपूर्वक श्री गोविंद का अनन्य भजन करना चाहिये, किसी भी दूसरे साधन द्वारा मनोरथों की पूर्ति की आशा नहीं रखनी चाहिये। अज्ञानमय अहंकार तथा दूसरों के उत्कर्ष को सहन न करने की प्रवृति का त्याग कर देना चाहिये। श्रीकृष्ण के भक्तों का दर्शन करना, उनका ही संग करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्ण नाम–लीलागुणों को सुनना एवं उनका कीर्तन करना चाहिये। श्रीकृष्ण की पूजा, उनका स्मरण तथा ध्यान, यही वैष्णवों के लिये आचरणीय है। यही नवविधा–भक्ति का महत् स्वरूप है। इसी नवविधा भक्ति का आचरण ही प्रेम–भक्ति का प्रधान कारण है।

हे हरि! मैं अगणित अपराधों से ग्रस्त हूँ, भयंकर संसार रूपी समुद्र में गोते खा रहा हूँ तथा बिल्कुल ही आश्रयहीन हूँ। अतः आपकी शरण ग्रहण कर रहा हूँ। आप अपने अनेक गुणों में से केवल एक गुण–'कृपा' के द्वारा मुझे अपना बना लें अर्थात् मुझे अपने दास के रूप में स्वीकार कर लें।

15

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 31.12.2010

अति महत्वपूर्ण पत्र
सबसे सुगम भगवत्-प्राप्ति

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् तथा भगवत्-प्रेम पाने की प्रार्थना। इस इतबार के आयोजन में, श्री गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज स्वयं बोलकर सभी साधकों को सावधान करना चाहते हैं। नये साल जनवरी, 2011 से सभी भक्त / साधक यह प्रण करें कि-"मैं इस वर्ष में किसी में दोष दर्शन नहीं करूंगा तथा प्रतिदिन 8 या16 माला अधिक जप करूंगा।" यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। आज मेरे गुरुदेव आप सबको स्वयं रोषवृति में बोलेंगे। जैसा एक मां अपने बच्चे के थप्पड़ लगाती है, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भी सबकी मां ही है। वे सदैव हमारा मंगल चाहते हैं। अब मेरे श्रीगुरुदेव की वाणी श्रवण करें।

मैं भक्तिदयित माधव सभी साधकगणों को सतर्क व सावधान कर रहा हूं कि जो भी मैंने इतवार का आयोजन केवल नाम महिमा का आरंभ किया है, यह मेरे ठाकुर जी द्वारा आदेश प्राप्त करके ही किया है। जो भी साधक इसमें शंका तथा अविश्वास करेगा, वह कलि महाराज से घोर दंड प्राप्त करेगा। भगवत्-शक्ति माया उसे पैरों नीचे कुचलती रहेगी, जिस साधक की सुकृति, संत अपराध से कमजोर रहेगी, वही इस आयोजन को काल्पनिक समझेगा व मानेगा।

अरे मन्द भाग्यशालियो! मैंने राजस्थान में केवल मेरे प्रिय शिष्य अनिरुद्धदास को इस नाम महिमा के लिये चुनकर आदेश

दिया है कि तुम तीन लाख हरिनाम नित्य करो तथा एक लाख हरिनाम अधिक से अधिक साधकगणों को करावो।

मेरे शिष्य अनिरुद्धदास ने आपत्ति की कि मैं अल्पज्ञ यह सब कैसे कर सकता हूं। आपके आदेश का पालन करना, मेरी सामर्थ्य के बाहर है। तब मैंने कहा कि तुमको इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हें पीछे से सामर्थ्य देता रहूंगा। तुम तीन लाख हरिनाम करना आरंभ करो। फिर अनिरुद्धदास ने आपत्ति खड़ी कर दी कि मैं हर प्रकार से कमजोर तथा शक्तिहीन हूँ। मेरा आदर–सत्कार होगा तो मुझे अहंकार आना सहज है, तो मेरा पतन होना भी सहज ही होगा। तब मैंने बोला कि अनिरुद्ध, अहंकार तेरे को छूएगा भी नहीं। मैं हर प्रकार से तुम्हारी रक्षा करता रहूंगा। तुम्हें क्या चिंता है तब मैं तुम्हारे पीछे खड़ा हूँ। तुम बेफिक्र होकर आयोजन शुरू करो। जो साधक सुकृतिवान होगा वह इस आयोजन में ८० प्रतिशत (अस्सी प्रतिशत) शामिल होता रहेगा। जिसकी सुकृति कमजोर होती होगी, वह इस आयोजन को बीच में ही छोड़ देगा। जो भगवान् के भक्त का अपराध करता है उसकी सुकृति जड़ से समाप्त हो जाती है। यदि कोई अदोषदर्शी बनकर अपने साधन में, हरिनाम में निरंतर संलग्न होता रहेगा तो उसका मार्ग निष्कंटक व साफ होता रहेगा और वह एक दिन पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था को उपलब्ध कर लेगा।

जो साधक अनिरुद्धदास में दोषारोपण करेगा उसकी भगवद्–भक्ति समूल नष्ट हो जाएगी तथा उसकी कलहकारिणी स्थिति आ जायेगी। मैं सभी साधकगणों को सावधान कर रहा हूँ। ध्यान देकर सुनो। जिसको हनुमान जी ने दर्शन दिया। जिसको भगवान् ने हृदय रुप में आकर स्वयं रबड़ी खिलाई, क्या वह साधारण मानव है ? जो कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा को जहर समझता है, क्या वह साधारण मानव है ? जो रात को एक बजे उठकर हरिनाम करता हुआ प्रातः काल आठ बजे तक लगातार (सात घंटे) एक ही आसन पर बैठ सकता है जिसकी उम्र ८1 वर्ष की हो चुकी है और जो

3 लाख हरिनाम से अमृत उपलब्ध करके निरोगी अवस्था को उपलब्ध कर रहा है, क्या वह साधारण मानव है ? क्या अठारह घंटे में कोई तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करना सहज नहीं है। जिसके कारण आज कितने नर–नारी नित्यप्रति एक लाख हरिनाम कर रहे हैं। जिसने सभी साधकों का मन बदलकर अपने अधीन कर लिया, क्या वह साधारण मानव है ?

उसके दोनों हाथों में भगवत्–आयुधों के छः चिह्न हैं–शंख, सुदर्शन चक्र, गदा व वैजयन्ती माला इत्यादि हैं और जो दोनों हाथों में साफ दिखाई देते हैं। क्या भगवत्–आयुधों के चिह्न अनिरुद्ध ने स्वयं बनाये हैं। श्रीमद्भागवतपुराण में लिखा है कि जिसके हाथ या पैर में भगवान् के आयुधों का एक भी चिह्न हो, वह भगवान् का भेजा हुआ मानव पृथ्वी पर आता है। जिसके द्वारा अनेक साधकगणों का गोलोकधाम गमन होगा यदि भक्त अपराध न हो तो कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं। अनिरुद्धदास को, जो टाउन प्लानर तथा इंजीनियर की पोस्ट पर था तथा बच्चों को पढ़ाने में रत था क्या इसे सत्संग का मौका मिला होगा ? उस समय न तो कोई सड़क थी, न कहीं नदियों पर पुल थे। काम की भी भरमार थी। ऐसे में सत्संग कहां मिला होगा! वह तो उम्र भर सत्संग से वंचित ही रहा है।

जिसने सन् 1954 में, किसी के बताये बिना ही, कृष्ण मंत्र का अठारह लाख जप छः महीने में पूरा करके पुरश्चरण किया और वाक्सिद्धि उपलब्ध की और उसका लाभ साधारण जनता को होता रहा। जब मैंने मना किया तब इसने हाथ देखना तथा अपनी वाक्सिद्धि के लाभ को देना बंद कर दिया। सन् 1952 में इसकी पूर्ण दीक्षा हुई थी और सन् 1954 में ही इसने पुरश्चरण भी कर लिया था। क्या वह साधारण मानव है ?

मैं बोल रहा हूँ जिसको इससे लाभ लेना हो, ले लो। ऐसा अवसर फिर नहीं मिल सकेगा। साधकों के उद्धार के लिये वह अपना

समय लगा रहा है। यह मानुष जन्म फिर नहीं मिलेगा। इसी जन्म में भक्ति प्राप्त कर भगवान् से मिल लो।

जो मेरे इस प्रवचन को झूठा समझेगा वह गर्त में चला जायेगा तथा भक्ति से हाथ धो बैठेगा तथा दुःख व कष्ट में पड़ा हुआ जीवन काटता रहेगा। अब भी आंखें खोलकर मार्ग पर चलना ही सर्वोत्तम होगा।

दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को नहीं पहचाना तो परिवार सहित नष्ट हो गया। श्रीचैतन्य महाप्रभु को मायापुर धाम में कईयों ने नहीं पहचाना तो नरकगामी हो गये। प्रहलाद् जी को उसके पिता ने नहीं पहचाना तो मृत्यु की गोद में चला गया। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। सुकृति के अभाव में कोई भी महान् पुरुषों को नहीं पहचान सकता।

भगवत्–कृपा के अभाव में कोई किसी को नहीं पहचान सकता। बड़े–बड़े योगी, तपस्वी भी भक्त अपराध से नरकगामी हो जाते हैं। पिछले गुरुवर्ग को भगवत्–दर्शन हुये हैं। तुम सबको भी हो सकते हैं। भगवत्–प्राप्ति कोई मुश्किल नहीं है। बहुत सहज है यदि मन काबू में हो तो कुछ भी करना–धरना नहीं होता। भगवत्–मार्ग पर ध्यानपूर्वक थोड़ा अग्रसर होता रहे तो भगवत्–प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। ऐसा अवसर केवल कलियुग में ही हाथ में आता है। सत्युग, त्रेता तथा द्वापर में भगवत्–प्राप्ति कठिनाई से होती है।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। सभी साधकगण क्या अनिरुद्धदास का आचरण नहीं देख रहे हो। फिर भी श्रद्धा और विश्वास नहीं होता तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है।

मैंने अनिरुद्धदास को प्रेरित कर लगभग 500 पत्र रातों में लिखवाये हैं। क्या कोई साधारण व्यक्ति ऐसे प्रभावशाली पत्र लिख सकता है और फिर एक ही विषय पर, श्री हरिनाम की महिमा पर इतने पत्र लिखने में कोई भी सक्षम नहीं हो सकता। ये सब मेरी प्रेरणा से ही हुआ है। अब भी आंखें खोलो। अब भी अमृत का प्याला पी सकते हो। वरना बर्बादी तो प्रत्यक्ष सामने है ही।

मैं बोल रहा हूँ, ध्यान से सुना। भगवान् तो हर समय प्राप्त हैं ही परंतु हमारी आंखें मिच रहीं (बंद) हैं, हमें दिखाई नहीं देता। इस संसार में भगवान् से नजदीक कोई नहीं है। केवल मन की आंखों से अन्तःकरण में नजर डालो। भगवान् अपने पुत्र को गोद में लेने को हाथ फैला रहे हैं और बोल रहे हैं कि कहां गुम हो गया। अब तो मेरी गोद में आ जा। मेरी गोद से बिछुड़ गया इसलिये दुःखी है। अब सुनो, भगवान् बोल रहे हैंः–

"मेरी गोद में आने के साधन व उपाय बता रहा हूं। श्रीगुरुदेव के मुख से, मैं ही बोलता हूँ। श्रीगुरुदेव के मुखारविंद से जो शब्द निकलता है, उसे अपना लो। मैं गुरुदेव के मुख से ही खाता हूँ तथा गुरुदेव के पदारविन्द से आकर तुम्हें अपनाता हूँ और गोद में चढ़ाकर प्यार भरा चुंबन करता हूँ।

श्री गुरु पदनख मणिगण जोती।
सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती
उघरहिं विमल विलोचन हियके
मिटहि दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित निमानक
गुप्त प्रगट जो जेहि खानिक।

मैं बोल रहा हूँ। ध्यान से सुनो। **"जो साधक हरिनाम करते हुए श्रीगुरुदेव के चरणों के नाखूनों की जगमगाती हुई आभा को देखता रहेगा तो उसकी नजर दिव्य हो जायेगी। उसके हृदय के ज्ञान के नेत्र खुल जायेंगे और माया के दुःख कष्ट खत्म हो जायेंगे, तथा मेरे मुख से निकले हुये धर्मशास्त्र, बिना पढ़े ही हृदय में प्रगट हो जायेंगे।"**

अब मैं माधव चेता रहा हूँ। जिस प्रकार श्रीगौरकिशोर दास बाबा जी अनपढ़ थे परंतु हरिनाम स्मरण से सभी शास्त्र उनके हृदय में प्रगट हो गये थे। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। अपने श्रीगुरुदेव के चरणों के नखों का ध्यान करते हुये, कम से कम आठ माला, कान से सुनकर, करना चाहिये तो उक्त स्थिति प्रगट हो जायेगी।

देखो ! बचपन, जवानी, बुढ़ापा तथा मौत तो अटल सिद्धांत में आते हैं। इनका तो Fundamental Rule है–यह बदला नहीं जा सकता।

यदि कोई बुरा काम करता है तो कौन कहता है कि मत करो। यह मन ही कहता है क्योंकि मन स्वयं भगवान् है और आत्मा भी शरीर में भगवान् है। शरीर में अन्य सभी अवयव जड़ हैं। फिर भी इंसान बुरा काम कर बैठता है। यह कौन करवाता है ? यह इसका स्वभाव ही करा देता है। जानते हुए भी कर बैठता है। पिछले जन्मों के संस्कार मरते नहीं हैं, जाग्रत रहते हैं। यही प्रेरित कर बुरा कर्म करा बैठते हैं।

बुरा काम करना कैसे बंद हो ? यह किसी महापुरुष की संगत से ही मूल सहित छूट जाता है। उसकी तरंगें दुर्गुणों को जलाती रहती है। यह संग मानसिक भी हो सकता है तथा सामने स्थूल भी हो सकता है।

संसार की सभी वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं फिर भी इनको महत्व देते हो। स्वयं कभी नष्ट नहीं होता। यदि स्वयं को महत्व देवोगे तो दुःख, कष्ट दिखाई ही नहीं देगा। यही तो ज्ञान है और सभी अज्ञान की श्रेणी में आता है। निर्गुणवृति वाला, तुरीय अवस्था वाला तथा परमहंस अवस्था वाला, संसारी वस्तुओं को महत्व नहीं देता। वह स्वयं को महत्व देता है। अतः परमानंद भाव की उपलब्धि करता है अर्थात् वह भगवत्–प्राप्ति कर लेता है। स्वयं कौन है ? वह है भगवान् का पुत्र। जैसे भगवान् सभी जड़–चेतन के मां–बाप हैं। यदि मानव इनको पुत्र के समान समझे तो वह किसी भी प्राणी, अप्राणी को नुकसान नहीं पहुंचा सकता। वह इनकी रक्षा, पालन तथा भरण पोषण करेगा क्योंकि ज्ञानी मानव समझेगा कि इन सब में मेरा प्यारा भगवान् विराजित है। इनको परेशान करना मेरे भगवान् को परेशान करना ही है। तब मानव भगवान् को पा लेगा। भगवान् की प्राप्ति में उत्कट अभिलाषा ही काम आती है।

जिस दिन किसी को संसार का संबंध नहीं सुहायेगा तो क्या वह भगवान् के बिना रह सकेगा? उसी दिन भगवत्–प्राप्ति का योग बन जायेगा। मन में यह बैठ जाये कि संसार असत्य है, भगवत्–प्राप्ति करना ही सत्य है, तब देर नहीं लगेगी।

जब भक्त के हृदय में उच्च सीमा की विरहाग्नि जल उठेगी तथा समझने लगेगा कि अब भगवान् प्रकट होने वाले हैं, मैं भगवान् बिना एक पल भी नहीं रह सकता। प्राणवायु रुकने की स्थिति में आ जाती है तब भगवान् को प्रकट होना ही पड़ता है। तब भगवान् रुक नहीं सकते। ध्रुव को यही स्थिति प्राप्त हो गई थी। तब संसार में सभी का सांस रुक गया था। तब भगवान् को ध्रुव के पास आना ही पड़ा। ध्रुव की रुकी हुई प्राणवायु को खोला क्योंकि ध्रुव की सांस रुकने से प्रलय जैसी स्थिति बन गई थी।

यह स्थिति जब ही आती है जब संसार का लगाव मूलसहित नष्ट हो जाता है।

मैं हरिनाम की जाप–विधि बता रहा हूँ। वाचक जप वह होता है जब जीभ से उच्चारण होकर, दूसरे पास वाले को सुने तथा स्वयं का कान सुनता रहे। उपांसु जप वह होता है जो कंठ से उच्चारण हो, जिसमें होठों की हरकत हो, जिसे स्वयं के कान ही सुने पर पास बैठा व्यक्ति न सुन सके। यह कानाफूसी के नाम से भी पुकारा जाता है। मानसिक जप वह होता है जिसको मन ही जपे, दूसरा न सुने पर अपने अंदर का कान सुने। ऐसे महसूस हो कि कोई मेरे अंदर बैठा नाम जप कर रहा है।

आश्चर्य तो यह है कि मानव के सामने प्रतिदिन संसार में कोई न कोई मर कर शमशान में जाता ही रहता है फिर भी मानव यही नहीं समझता कि एक दिन उसे भी शमशान में आना ही पड़ेगा। यही तो आश्चर्य की बात है। युधिष्ठर ने यक्ष को यही जवाब दिया था तभी तो पांडव यक्ष के चुंगल से छूट पाये। महाभारत शास्त्र में लेख है।

ज्ञान द्वारा देखा जाए तो मानव या कोई भी नित्य ही मर रहा है। स्वयं ही मौत के पास जा रहा है। मां कहती है, बहिन, मेरा बच्चा अब तो पांच साल का हो गया तो मां राजी होती है। मां को मालूम नहीं कि उसके बेटे की उम्र प्रतिदिन घटती जा रही है। वह मौत के पास जा रहा है। यह एक साधारण सी बात है।

जीने की इच्छा, करने की इच्छा तथा पाने की इच्छा–ये तीनों ही जितनी प्रबल होंगी उतनी ही संसार में फंसावट का काम करेंगी तथा दुःखी करती रहेंगी क्योंकि इनमें स्थिरता नहीं है। ये सब नष्ट होने वाली हैं। जब उक्त इच्छाएं समाप्त हो जाएंगी तो मानव निर्भय होकर आनंद में अपना जीवन बसर करेगा तथा मन को भगवत्–भजन में सरलता व सुगमता से लगा पायेगा। उक्त इच्छाओं के कारण ही मन डांवाडोल रहता है। कहावत है–"जब आवे संतोष धन, तो सब धन धूरि समान।" यही तो ज्ञान है और सब अज्ञान है।

अर्जुन ने जब भी कोई काम करने की इच्छा की तभी श्रीकृष्ण ने उसे महात्माओं के पास ले जाकर उसकी इच्छाओं का दमन कर दिया क्योंकि भगवान् समझते थे कि ये इच्छाएं ही मन को दुःखी करती रहेंगी। केवल भगवत्–प्राप्ति की इच्छा ही सुखदायक होती है अन्य सभी इच्छाएं तो दुःखों को बुलाने की होती हैं।

वैराग्य लाने के तो बहुत दृष्टांत हैं। जितना भी बोला जाये, सब थोड़ा है। जो बोला है, इसी को हृदयंगम करे तो लाभ ही लाभ है।

यहीं पर श्रीगुरुदेव अपने वक्तव्य को विश्राम दे रहे हैं।

देखो ध्यान देकर सुनो। शास्त्र में लिखा है कि हाथ से ताली बजाना, कीर्तन में जोर–जोर से ताली बजाना स्वास्थ्यवर्धक है। इसका संबंध दिल से है। इससे खून शरीर में आता–जाता है। उसका मार्ग खुलता रहता है और हार्ट फेल नहीं होता, कीर्तन में नींद नहीं आती और मन भी स्थिर रहता है। सब तरह से लाभ ही लाभ है। इसलिये कीर्तन में दोनों हाथों से ताली बजाना चाहिये।

यहीं पर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं।

सभी को मेरी नये साल की शुभकामनायें तथा सबको मेरा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो।

हरि बोल ! हरि बोल !

स्निग्ध–शिष्य के हृदय में ही गुरु–तत्त्व प्रकाशित होता है, वह ही गुरुजी के हृदय की बात को जान सकता है।



16

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

दिनांक : 10.12.2010

अशुभ विचारों को दूर करने का तरीका

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

कोई भी शुभ या अशुभ विचार सबसे पहले चित्त में स्फुरित होता है। इस मानव शरीर में पांच कोष होते हैं। पहला अन्नकोष जो अन्न पर निर्भर करता है, दूसरा प्राणमय कोष, जो प्राणवायु पर निर्भर करता है। तीसरा मनोमय कोष जो मन के संकल्प-विकल्प पर निर्भर रहता है। चौथा विज्ञान कोष जो बुद्धि की सोच पर निर्भर रहता है और पांचवां आनंदमय कोष जो चित्त के चिंतन पर निर्भर रहता है। यही आत्मा का वासस्थान है।

इसी प्रकार शरीर भी तीन प्रकार के होते हैं। पहला-स्थूल शरीर जो हड्डी मांस, रुधिरादि से निर्मित है। दूसरा-सूक्ष्म शरीर जो अदृश्य रहता है। यह इन्द्रियों का शरीर है और तीसरा-कारण शरीर जो स्वभाव का शरीर होता है। कारण शरीर ही मानव के जन्म-मरण का कारण है। जिस मानव की अशुभ कर्म करने में रुचि होती है, वह आवागमन के चक्कर में फंसा रहता है।

जब मन अशुभ कर्म करने पर अग्रसर (उतारू) हो जाता है तो सबसे पहले चित्त में स्फुरणा (हरकत, हलचल) उदय होगी। इस स्फुरणा को यदि यहीं पर दबाया नहीं गया, खत्म नहीं किया तो यह मन पर हावी हो जायेगी। जब मन इसे पकड़ कर काबू कर लेगा तो यह विचार में पलट कर इन्द्री पर हावी हो जायेगी। इन्द्री पर आने पर मानव काबू से बाहर हो जायेगा। फिर समझाने से भी नहीं समझेगा। फिर उसे इस स्फुरणा को प्रेक्टीकल (व्यावहारिक)

रूप में करना ही पड़ेगा। जब काम पूरा हो जायेगा तो बाद में पछतायेगा और सोचेगा कि मुझे ऐसा घृणित कर्म नहीं करना चाहिये था।

अब पछताये होत क्या, जब चिड़ियां चुग गई खेत।

अब विचार करने की बात यह है कि इस बुरे काम को रोका कैसे जाये। इस समस्या का हल यह है कि जब भी कोई गंदी भावना, अशुभ–विचार मन में आवे, स्फुरणा चित्त में हिलोरें मारे तो उस हिलोर को वहीं पर दबा दो। अब इस विचार को दबाएं कैसे ? इसका उत्तर यह है कि उसी वक्त उस स्थान को छोड़ दो और जाकर ठंडा पानी पीओ। किसी बुजुर्ग आदमी के पास जाकर बैठ जाओ और उससे कोई बातचीत करनी शुरू कर दो। वार्तालाप शुरू होते ही चित्त की स्फुरणा वहीं मर जायेगी। दूसरा उपाय यह है कि मन माफिक (जो मन को अच्छा लगे) किसी दूसरे काम में जुट जाओ और उस स्फुरणा की ओर ध्यान ही मत दो। पर ध्यान रखना कि इसमें मन की दृढ़ता बहुत जरूरी है। यदि मन कमजोर हुआ तो सारा काम मिट्टी में मिल जायेगा। यह होगा बुद्धि द्वारा गंभीरता से विचार करने पर ही अन्यथा पागल (बेकाबू) मन फिसल जायेगा। इससे बचने का भी एक तरीका है–भगवान् का नाम जोर–जोर से उच्चारण करो। नाम से सहायता मांगो। नाम अवश्य ही इसमें सहायता करेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। इसे कोई भी आजमा कर देख सकता है।

चिंतन का उद्गम स्थान है चित्त जिसको आनंदमय कोष के नाम से पुकारा जाता है। इसमें ही परमात्मा के रहने का स्थान है। मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार से यह स्थान निर्मित है। साधक को अभ्यास के साथ इसे ही नियंत्रण में करना चाहिये। इसको काबू में करने से भगवत्–दर्शन की शक्ति उदय हो जाती है। इस कोष में ही शुभ–अशुभ चिंतन आरंभ होकर मन के पास चला जाता है। फिर मन संकल्प–विकल्प द्वारा चिंतन का उद्बोधन करके इसे इन्द्री पर पहुंचा देता है। फिर साधक का चिंतन, स्थूल रूप में आने

पर नियंत्रण के बाहर हो जाता है। अतः अशुभ चिंतन को चित्त में ही समाप्त कर देना होगा। पर शुभ चिंतन को रोकना नहीं, इससे भक्तिमार्ग निष्कंटक खुलता हुआ चला जाता है।

अशुभ चिंतन का उद्गम स्थान है पिछले जन्मों के कुसंस्कार जो चित्त में आकर साधक को कर्म करने को बाध्य करते रहते हैं। यदि साधक को सच्चा सत्संग प्राप्त हो जावे तो पिछले अशुभ संस्कार की जड़ ही समाप्त हो जाती है। सच्चा सत्संग एक क्षण में ही कुसंस्कारों की जड़ काट देता है पर ऐसा सत्संग मिलेगा कहाँ ? ऐसा सच्चा सत्संग मिलेगा आचरणशील साधु के पास। जिसकी करनी और कथनी में कोई अंतर नहीं। जो अंदर है, वही बाहर है। जो कुछ उपदेश देता है, उस पर स्वयं भी आचरण करता है। ऐसा साधु ही सच्चा सत्संग दे सकता है। जिस साधु का स्वयं का भजन का आचरण नहीं वह किसी भी साधक का मन कभी नहीं बदल सकता। जो स्वयं ही कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा के चक्करों में फंसा हुआ है, वह किसी का उद्धार क्या करेगा ! पर जो साधु–कंचन (रुपया, पैसा) कामिनी (स्त्री–संग) तथा प्रतिष्ठा (प्रसिद्धि) से दूर है, वही भक्तिमार्ग पर बेखटके अग्रसर हो सकता है और दूसरों को भी प्रेम मार्ग पर ले जा सकता है अन्यथा सब दिखावा है, बनावटीपन है, कपट है। ऐसा साधु भगवान् से कोसों दूर है।

इस कलिकाल में भक्ति का प्रेम मार्ग केवल मात्र हरिनाम की शरण होने पर ही मिलना संभव है। किसी दूसरे साधन से नहीं मिलेगा। हरिनाम भी कान से सुनना पड़ेगा तभी शरणागति होगी। कान द्वारा श्रवण न करने से भगवत्–प्रेम बहुत दूर की वस्तु होगी। जब संसार का कोई भी काम बिना सुने नहीं होता तो भगवान् की प्राप्ति तो बहुत दूर की बात है। इसलिये श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी ने संकीर्तन करने का प्रचार किया है। सबके साथ मिलकर भगवान् के नामों का उच्चारण करना कीर्तन कहलाता है। फल दोनों का समान ही है।

कलियुग में किसी को भी भगवान् का प्रत्यक्ष तथा असली दर्शन नहीं होता। साधक उस तेज को सहन ही नहीं कर सकता। इसलिये भगवान् अपने भक्तों को छद्म रूप (भेष बदल कर) दर्शन देने स्वयं आते हैं। मुझे भगवान ने छद्म दर्शन दिये हैं। ट्रेन में आकर मुझे रबड़ी खिलाई। जब भक्त सच्चे मन से भगवान् को चाहता है, याद करता है, पुकारता है, उसके लिये रोता है तो भगवान् भी उसे मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। अपने भक्त को भगवान् रोता नहीं देख सकता, बेचैन हो जाता है पर यदि सच्ची भावना नहीं होगी, व्याकुलता नहीं होगी तो भगवान् भक्त के पास कभी नहीं आयेंगे।

भगवान् को मन चाहता ही नहीं है, मन चाहता है संसार को धन–दौलत, पुत्र–परिवार को। अपनी खुशहाली को। जब मन में भगवान् के लिये छटपटाहट होगी, व्याकुलता बढ़ेगी तो संसार से वैराग्य होने लगेगा। संसार से आसक्ति (फंसावट) कम होने लगेगी। जब सच्चा ज्ञान अन्तःकरण में उदय होगा तब ही वैराग्य का उदय होगा। कान से सुनकर कम से कम तीन लाख हरिनाम करने से यह होगा। किसी किसी साधक को इससे कम संख्या में हरिनाम जपने से भी हो सकता है। ऐसे साधक की पिछले जन्मों की भक्ति होगी तो ऐसा होगा। इसकी कसौटी क्या है ?

श्रीगुरुदेव जी द्वारा बताया गया 'कसौटी का दर्पण' नामक लेख 'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' भाग (एक) में छपा है। उसे पढ़कर कोई भी साधक यह जान सकता है कि इस दर्पणमयी कसौटी में वह कितना खरा उतरता है और उसे अपनी भक्ति का स्तर भी पता लग सकता है। भक्ति सच्ची है या कपटमयी है–यह सब पता चल जायेगा।

साधकों की शिकायत आती है कि हम हरिनाम ले रहे हैं पर हमारे दुःख, हमारे क्लेश दूर नहीं हुये। भई, आपके दुःख क्लेश कैसे हटेंगे ? अपने आप को टटोलो। अपने अंदर झांक कर तो देखो कि अंदर कितनी गंदगी भरी पड़ी है। कितने अवगुण, कितनी

कपटता भरी पड़ी है। जब मन ही मैला है तो कर्म कैसे उज्ज्वल हो सकता है। तुम्हारे अंदर जो ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार भरा हुआ है उसने तुम्हें गंदा बना रखा है। फिर शिकायत करते हो कि हरिनाम करते हुए भी हमारा दुःख, कष्ट हटता नहीं है। हम अपना चेहरा अपनी आंखों से नहीं देख सकते। अपनी आंखों से अपना चेहरा देखने के लिये हमें दर्पण की जरूरत होती है। किसी सच्चे साधु से संपर्क करो वह ही दर्पण का काम करेगा। आपका चेहरा आपको दिखा देगा। तभी आपको अपनी कमियों का पता चलेगा। तभी आप अपना स्वभाव जान सकोगे। तुम सच–सच बताओ कि भगवान् को कितना चाहते हो। केवल दूसरों को दिखाने के लिये नाटकबाजी करते हो। एक तरफ पूजा का दिखावा तो दूसरी ओर सिर में डंडे मारना।

तुम अपनी खुशहाली चाहते हो। तुम्हें भगवान् से क्या लेना–देना! दूसरों की बुराई करने में जो आनंद आता है वह साधु–संग में नहीं आता। करोड़ों में कोई एक व्यक्ति भगवान् को चाहता है बाकी सबका व्यवहार कपटपूर्ण है, इसीलिये सभी दुःखी हैं। हमें लगता है कि हम सुखी हैं पर यह सुख केवल छायामात्र है, जो कुछ समय के लिये है। यह सुख स्थिर नहीं है, स्थायी नहीं है। जैसे बादल आकाश में आते हैं उसी प्रकार यह सुख भी आता–जाता रहता है।

इस कलियुग में लोभ का साम्राज्य है। दूसरों की बात छोड़ो, साधु–साधु को मरवा रहा है। समय बहुत खराब चल रहा है। शासन में कोई दम नहीं है। सुनने वाला कोई नहीं है। केवलमात्र भगवान् ही रक्षा और पालन करने वाले हैं। अतः भगवान् की शरण में रहना ही उपयुक्त है। आपकी शिकायत आती है कि भगवान् हमारी बात सुनते ही नहीं। मेरे श्रील गुरुदेव कह रहे हैं–

"भगवान् तो सुनते हैं पर तुम भगवान् की नहीं सुनते। इसीलिये दुःखी हो।"

जिसके अन्तःकरण में गंदगी भरी हुई है, कलुषित भावनायें रमी हैं, वहां हरिनाम रूपी भगवान् आकर कैसे बैठ सकते हैं? पहले मनरूपी दर्पण की मैल अर्थात् धूल को साफ करो तब हरिनाम रूपी भगवान् आकर विराजमान होंगे। मन को तो एक दूसरे की बुराई करने में, नीचा दिखाने में आनंद आता है, वहां हरिनाम स्मरण करने में आनंद कैसे आ सकेगा! आनंद तो दूसरी तरफ मुड़ गया।

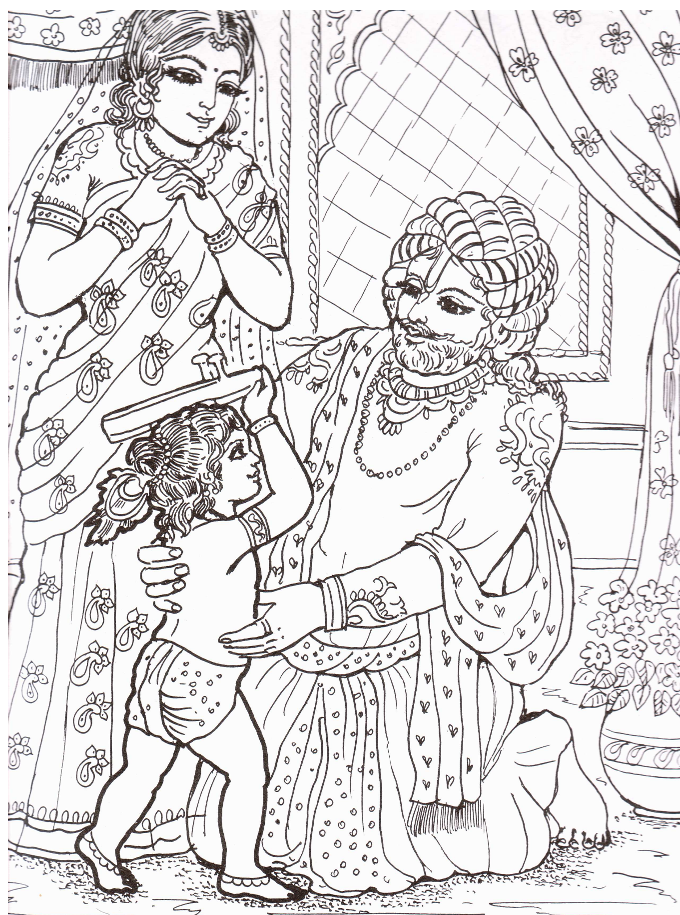
कहने का मतलब यह है कि स्वयं अपने आपको टटोलो, भविष्य का मार्ग साफ दिखाई पड़ेगा। मेरे गुरुदेव बार–बार समझा–समझा कर हार गये, फिर भी समझ में नहीं आता। आप अपने आपको सुधारो। कोई कुछ भी करे, आपको किसी से क्या लेना–देना। अपने मार्ग पर सच्चाई से बेखटके चलते रहो। गन्तव्य स्थान पर पहुंच जावोगे, नहीं तो बीच में अटक कर, किसी गहरे खड्डे (खाई) में गिरकर अपना जीवन बरबाद कर लोगे।

अभी भी समय है। अभी भी समझ जावो। आंखें बंद कर हरिनाम स्मरण में जुट जावो। कोई कुछ भी करे, उसकी परवाह न करो। भगवान् सब देख रहे हैं। आप अपना लक्ष्य निर्धारित करो। हरिनाम ही आपको अपनी मंजिल पर पहुंचा देगा। अपना मार्ग मत छोड़ना। समय आने पर आनंद सिंधु प्राप्त हो जावेगा। मेरे श्रील गुरुदेव ने पिछले पांच–छः वर्षों में मुझे हरिनाम पर ही पाँच सौ से ज्यादा पत्र लिखवाये हैं जो 'इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति' नामक पुस्तक में छपे हैं। इस पुस्तक के तीन भाग छप चुके हैं जिन्हें पढ़कर आज सैकड़ों साधकों का जीवन बदल गया है और वे एक लाख (64 माला) हरिनाम की कर रहे हैं और आनंदसिंधु में गोते लगा रहे हैं। आप भी इस पुस्तक को बार–बार पढ़ते रहो। आपका सच्चा मार्गदर्शन होता रहेगा। इस पुस्तक में भगवत् वाणी है, शास्त्रों का सार भरा पड़ा है।

मेरे श्रीलगुरुदेव का मार्गदर्शन करने वाला वक्तव्य यहीं विश्राम लेता है।

हे मेरे मन! तू गिरिराज गोवर्धन में रहने वाले कमललोचन श्रीकृष्ण का चिन्तन कर! हे मेरी जिह्वा! तू उन्हीं का नाम व उनकी गुण–महिमा का कीर्तन कर। हे मेरे मस्तक! तुम उनके ही श्रीचरणों में झुक जाओ। हे मेरे हाथों! तुम उनके सामने स्वयं को जोड़ लो। ओ मेरे दीर्घ शरीर! तू उन्हें साष्टांग दंडवत्पूर्वक प्रणाम कर।

हे मेरी आत्मा! तुम केवलमात्र उनका ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि जीवों के मंगल की प्राप्ति के लिए एकमात्र वे ही धन्य हैं, पुण्यतम हैं और परम दिव्य हैं।



17

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.01.2006

भगवान् से स्वाभाविक प्यार

मैं जो भी आपके चरणों में लेख प्रस्तुत करता हूँ वह केवल मात्र संतों से सुनकर तथा धर्म–ग्रंथों से पढ़कर ही करता हूँ। आप जैसा बोला करते हैं कि मुझे ठाकुर जी से बुद्धि का तात्विक ज्ञान प्राप्त होता रहता है, सही नहीं है, क्योंकि मैं अपने को जानता हूँ कि मैं कैसा हूँ, दुर्गुणों से भरे मन में क्या ठाकुरजी कृपा करेंगे ? कदापि नहीं।

आपके चरणों में लिखने का कारण मात्र सत्संग की भूख ही है जो यहां पर मिलता नहीं है। अतः भूख मिटाने के लिए आपके समक्ष लिखना पड़ता है। उससे मुझे शांति का अनुभव होता है। संत की याद ही ठाकुर की प्रसन्नता में सहायक होती है। लिखने में संकोच भी होता है कि एक परमहंस संत को अनुभव लिखकर भेजना अपराध तो नहीं है। फिर सोचता हूँ कि यदि अपराध होता तो ठाकुर जी के प्रेम से दूर हो जाता, लेकिन ऐसा तो नहीं है। अतः दिल खोलकर आपके चरण–युगल में लिख–लिखकर भेजता रहता हूँ।

भागवत शास्त्र में कपिल भगवान् अपनी मां देवहूति को भक्ति की प्राप्ति के लिए उपाय बता रहे हैं। स्वाभाविक प्रवृति ही भगवान् को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। कोई विरला ही ऐसा हो सकता है जिसमें स्वाभाविक ही भगवान् से प्यार हो। यह केवल मात्र पूर्व–जन्मों के भक्ति–संस्कारों पर ही निर्भर करता है, जैसे जड़ भरत जी थे। मैं तो अभी शुरूआत की श्रेणी में ही हूँ।

यह मैं सत्य कह रहा हूँ कि जो भी ठाकुर के प्रति लगाव हो रहा है, यह केवल मात्र आपकी कृपा का ही फल है। मैं जानता हूँ

कि आपकी कृपा शुरू से ही मुझ पर हो गई थी। आपकी कृपा से ही मन में उद्गार उठकर लेख के रूप में लिखे जा रहे हैं।

सुखमय जीवन बिताने का एकमात्र साधन है हरिनाम। कलिकाल का दुश्मन–नाम। हरिनाम से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष–चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है। लेकिन सही नाम होता नहीं।

इसके निम्न कारण हो सकते हैं :–

1. भगवत्–चरणों में स्वाभाविक लगाव का न होना। संसार में लगाव होना।

2. किसी भी तरह का अहंकार।

3. प्रतिष्ठा की चाह। संतों के प्रति अश्रद्धा। गुरु को संसारी मानना।

4. नेक कमाई से प्राप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध न होना।

5. ठाकुर जी का प्रसाद न समझकर खाद्य पदार्थों का सेवन करना।

6. असत्संग का त्याग न करना। मन से भी असत्संग का त्याग होना चाहिए। कुविचारों से दूर रहना चाहिये।

7. केवल मात्र भगवत्–प्राप्ति ही ध्येय न होना।

8. संतों–भक्तों से सच्चा प्यार न होना व अपराधों से न बचना।

उक्त मुख्य कारणों से भगवान् के प्रति लगाव नहीं होता। जहाँ लगाव होगा, ठाकुर के लिये रोयेगा। यही शरणागति का लक्षण है। जिसकी शरणागति सच्चे रूप में हो जाएगी, उसकी तड़फन उतनी ही तेज होगी। तब स्वतः ही दुर्गुण नष्ट होकर सद्गुण आकर बस जायेंगे व हरिनाम में रस आएगा वरना हरिनाम भार बन जाएगा। सूक्ष्म देह का नाश नहीं होगा। आवागमन होता रहेगा। ठाकुर चरण नहीं मिलेगा। ऐसा मैंने सुना व पढ़ा है।

गोपियों का स्वाभाविक ही कृष्ण के प्रति झुकाव रहता था। ऐसा झुकाव कोई विरले प्राणी का ही हुआ करता है। ठाकुर जी के दो पुत्र हैं–पहला संत व दूसरा नास्तिक। जब संत से स्वाभाविक ही सच्चा प्रेम होता है, तब समझना चाहिए कि अब आवागमन का चक्कर मिटने वाला है।

सबसे खतरनाक है सन्त अपराध। चाहे कैसा भी प्रेमी–भक्त हो, सन्त व भक्त–अपराध से वह नीचे स्तर पर आ गिरता है। ज्ञान, कर्म–मार्ग में परणित हो पड़ेगा।

रामायण से उदाहरण –

इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला,
कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई,
भक्त–द्रोह पावक सो जरई।।

पावक–ऐसी प्रचंड अग्नि होती है जिस अग्नि में लोहा–पत्थर पिघलकर पानी बन जाता है।

जो अपराध भगत कर करहिं,
राम रोष पावक सो जरहिं।।

गुरुदेव का अपराध और भी खतरनाक है। यदि हो जाता है तो करोड़ों युगों तक नरक–वास करना पड़ता है। गुरुदेव साक्षात् भगवद्–रूप होते हैं।।

राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहीं कोऊ जग त्राता।।
कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानऊं एक भगति कर नाता।।

आप सब कुछ जानते हैं, आपसे कुछ छिपा नहीं है। परंतु सत्संग की प्यास बुझाने को लिखना पड़ता है।

आपका सत्संग मुझको सोने में सुगंध बन जाएगा।

रामायण का कथन है :

दोहा

मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर संतन सेव।
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताके सब देव।।
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानि। बिनु सत्संग न पावहिं प्राणी।
पुन्य पुंज बिनु मिलहि न संता। सत-संगति संसृति कर अन्ता।।

इस जन्म में तो मैंने ऐसा कोई पुण्य नहीं किया जो आप जैसे संतों का समागम करता रहता हूँ। पिछले जन्म का कह नहीं सकता। लेकिन संत का हृदय तो मक्खन से भी कोमल होता है, आप बिना मतलब सबका कल्याण चाहते हैं।



श्रीहरिनाम करते-करते श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से जब जीव का भाग्य उदय होता है, तभी नाम-सेवा से उसकी भाव-सेवा उदित होती है। भक्ति के अन्य सभी साधनों का फल है – अन्त में नाम में प्रेम प्रदान करना-इसलिये नाम-साधक श्रीहरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता है। श्रीहरिनामनिष्ठ किसी दूसरी साधना को नहीं करता।

(श्री हरिनाम चिंतामणि)

18

छींड की ढाणी
दिनांक : 10.02.2006

मनुष्य तन भगवान् की धरोहर

दार्शनिक शास्त्र का सिद्धांत एक ऐसा दर्शन कराने का सिद्धांत है जिससे वास्तविक दर्शन लाभ होता है। जैसे एक टेढ़ी-मेड़ी सर्प के रंग की लकड़ी रास्ते में अंधेरे में पड़ी है। पांच-सात व्यक्ति रास्ते से जा रहे हैं। कोई कहता 'सर्प' है। कोई कहता 'सर्प' होता तो चलता, कोई कहता है मरा हुआ सर्प है। कोई कहता लकड़ी छुआ कर देखो।

किसी ने लकड़ी लगायी तो वह हिल गया, तो सभी ने कहा कि सर्प बीमार दिखता है। चल नहीं पाता, उजाला करो, क्या बात है। उजाला करते ही लकड़ी मिली। तब सभी को दर्शन मिलने से पूर्ण विश्वास हो गया कि वास्तव में यह लकड़ी थी परंतु इसका टेढ़ा-मेढ़ापन व रंग सर्प के समान था। अब दर्शन से वास्तविक वस्तु का पता चल गया। यह है दर्शन-शास्त्र। इसी में मैं विश्वास करता हूँ, जब तक मैं परीक्षा नहीं कर लेता, भक्ति-पथ पर चलने में पूर्ण विश्वास नहीं होता। जब करके देख लेता हूँ तो वास्तविक मार्ग मिलता है।

सभी भक्त कहते हैं कि जब तक 'तृणादपि सुनीचेन'-अवस्था नहीं आयेगी, तब तक भगवत्-दर्शन तथा शरणागति की प्रेमावस्था नहीं आ सकती। अब प्रश्न यह उठता है कि यह उक्त अवस्था आये कैसे ? यह अवस्था तब ही आ सकेगी जब अहंकार का नाश होगा। जब तक अहंकार (मैं, मेरा) अन्तःकरण में रहेगा, तब तक 'तृणादपि' की अवस्था आ नहीं सकेगी।

भगवान् ने अन्तःकरण चतुष्ट्य को जीव में प्रतिष्ठित किया है - (मन, बुद्धि-चित्त-अहंकार)। यह अहंकार ही जीव का महान

शत्रु है। जब तक 'मैं', 'मेरा' चित्त में रहेगा व 'तू', 'तेरा' में प्रतिष्ठित नहीं होगा, तब तक 'तृणादपि' की स्थिति आ नहीं सकेगी। यह अवस्था थी जड़ भरत जी की। संसार ने उन पर खूब आघात किया, परंतु वे सहते ही गये क्योंकि उन्होंने समझ लिया था कि यह तन तो धरोहर के रूप में भगवान् ने मुझे दिया है। इससे मेरा क्या लेना–देना। उनका अहंकार नष्ट हो चुका था।

भगवान् ने जीव को यह तन धरोहर के रूप में दिया है। यह धरोहर 10–20–50–100 वर्ष के लिये मिली है। जीव ऐसा कृतघ्न है कि धरोहर देने वाले को ही भूल जाता है। इसका दुरुपयोग करने पर भगवान् जीव को संसार रूपी कारागार में डाल देते हैं।

इस धरोहर की रक्षा व रख रखाव के लिए भगवान् ने जीव को दस इन्द्रियाँ दी हैं। इन्द्रियों से ठीक प्रकार से काम लेने के लिए बुद्धि प्रदान की है। तन के रख–रखाव के लिए हवा, पानी, उजाला व जमीन दी है। परंतु जीव इनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग कर धरोहर रखने वाले को भूल कर मस्ती से अपना जीवन बिताता रहता है।

अहंकार भगवान् को सुहाता नहीं है। जब–जब भी भक्तों को अहंकार ने दबोचा, तब–तब ही भगवान् को अपने भक्तों का अहंकार नष्ट करना पड़ा।

जब अहंकार 'तू'–'तेरा' भगवान् व भक्त के प्रति हो जाता है तो 'मैं'–'मेरा' भाव नष्ट होकर 'तू'–'तेरा' भाव जाग्रत हो पड़ता है और स्वतः ही सद्गुण अन्तःकरण में आ विराजते हैं। दुर्गुण नष्ट हो जाते है।

'मैं' बुद्धि फसांने वाली, 'तू' बुद्धि भगवत–चरण में पहुंचाने वाली होती है। जैसे–किसी ने किसी को 50/– रुपये धरोहर में दिए व कह दिया कि जब चाहूँगा, मांग लूँगा। उसने उन रुपयों की शराब पी ली। क्या दुबारा वह रुपया ले सकेगा ?

भगवान् ने जो तन धरोहर के रूप में दिया, उन तन से वह अनर्थ करता गया तो क्या भगवान् दुबारा मानुष–तन दे देंगे। उस धरोहर से उसे शुभ कर्म करना चाहिए था परंतु जिसने धरोहर दी उसे ही भूल गया तो सजा मिलनी ही चाहिए। अतः उसे चौरासी में घूमना ही होगा।

जो धरोहर की परवाह न कर आत्म–हत्या कर लेते हैं, उन्हें तो कभी भी मानुष–तन मिलता ही नहीं। जब संत–पद–रज, संयोग से उनको छू जाये तो ही उनको मानुष तन मिल सकता है। संत–पद–रज का प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि संसार का मोचन हो जाए। दुराचारी से दुराचारी भी संत–पद–रज से सदाचारी बन कर भगवत्–चरण में पहुँच जाता है। पारस–पत्थर लोहे को सोना बना देता है परंतु भगवान् तो भक्त के अनुसार चलने वाले हैं। भक्तों के लिए अवतार लेकर भक्तों के संग खेला करते हैं।

रूपकः–सेठ रूपी भगवान ने मनुष्य रूपी ग्राहक को आत्मा रूपी अमूल्य रत्न 10–20–50–100 साल के लिए धरोहर के रूप में सौंपा और कहा कि जब मैं मांगू, देना होगा। इस धरोहर के रख–रखाव व सुरक्षा के लिए तन रूपी तिजोरी संभलवाई तथा बुद्धि रूपी ताला तिजोरी पर लगाने को दिया तथा बुद्धि की एक चाबी जीव को स्वयं के लिए दी व दूसरी चाबी माया रूपी मैनेजर को सौंपी।

जीव रूपी ग्राहक इतना बेपरवाह हो गया कि जिसने धरोहर दी, उस सेठ रूपी भगवान् को ही भूल गया। मैनेजर ने उस धरोहर को खर्च कर डाला। जीव देखता ही रह गया एवं एक दिन उस अमूल्य धन से वंचित होकर भटकन में पड़ गया तथा दुःखों पर दुःख भोगता रहा। अब वह मानुष तन की आत्मा रूपी धरोहर सदा के लिए खो बैठा।

अहंकार (अहम्) ही माया का न खुलने वाला बंधन है। जब तक यह अन्तःकरण से दूर नहीं होगा, तब तक वह अपने खास

घर–जो भगवत्–चरण हैं, नहीं पहुँच पाएगा। अहंकार खत्म होते ही तृणादपि सुनीचेन की स्थिति स्वतः ही आ टपकेगी।

अंहकार जाएगा हरिनाम (कृष्ण) की कृपा से। यह कृपा होगी अद्वैताचार्य जी के रोते हुए भजनानुसार नाम–जप से। भगवान ने जैसा लिखवाया, वैसा आपके चरणों में सेवा के रूप में दे रहा हूँ। मैं अल्पज्ञ क्या सेवा कर सकता हूँ।

बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन–धाम।।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक :18.02.2006

अहम् से हानि

धर्म–शास्त्रों में पढ़कर, संतों से श्रवण कर तथा प्रभु–प्रेरित होकर ही लिखा जाता है, मेरी इसमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं है। मैं अल्पज्ञ कैसे तात्विक विषय पर लिखने में सक्षम हो सकता हूँ। संतों में यही तो गुण होता है कि सबमें और सब ओर गुण ही गुण देखा करते हैं। अवगुण तो उनकी नजर में आता ही नहीं। यह मैं आपको सच–सच कह रहा हूँ। आपसे छिपाऊँ तो नरक में जाऊं। श्रीगुरुदेव से कपट करना जघन्य अपराध होता है।

रामायण, (रामचरित मानस) शिवजी के मन से प्रगट हुआ है। इसलिए इस धर्म–शास्त्र का नाम मानस पड़ गया। ब्रह्मा–शिव तो साक्षात् भगवान्–स्वरूप हैं। अतः यह भगवान ने ही रचा है। इसी को अपनी भाषा में श्रीतुलसीदास ने लिखा ताकि एक नासमझ भी इसको समझ सके। यह मैंने संतों से सुना है। महादेव जी अपनी धर्म–पत्नी उमा को सदैव इसे सुनाया करते हैं।

“भाव कुभाव अनख (क्रोध) आलसहुं।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूं।।”

हरिनाम को कैसे भी जपा जाए, दसों–दिशाओं में मंगल कर देता है। मन दसों–दिशाओं के अलावा कहाँ जाएगा, जहाँ भी मन हरिनाम को ले जाएगा, वहाँ का मंगल निश्चित होगा ही। क्योंकि नाम का स्वभाव ही वांच्छा–कल्पतरु, चारु चिंतामणि है। मानो मन खेत में चला गया तो फसल अच्छी हो जाएगी, किसी जन के पास चला गया तो उस जन की सुकृति बन जाएगी। यदि मन भगवान में चला गया तो भगवान् का लाभ मिल जाएगा अर्थात् भगवत्–प्रेम मिल जाएगा। यह तो ध्रुव सत्य व दार्शनिक सिद्धांत है।

अब हर आस्तिक को अपना मन टटोलना चाहिए कि मन नाम जपते हुए कहाँ जाता है। सारी उम्र बीत जाती है, फिर भी नाम में रुचि नहीं होती, इसका कारण केवल मात्र है कि मन भगवान् की तरफ गया ही नहीं। यदि जाता तो अब तक भगवान् के दर्शन की अकुलाहट हो जाती।

भगवान् में मन लगाने के अनन्त मार्ग हैं। इतना मसाला है कि जापक इतना जप कर ही नहीं सकता। ब्रह्मा से लेकर अपने श्रीगुरुदेव तक अनन्त संत हो गए हैं, उनके चरणों में जाकर नाम जपते हुए प्रार्थना करे। अनन्त भगवत्–धाम में जाकर घूमना शुरू कर दे। अनन्त भगवत् लीलाएं हैं, राम–कृष्ण–नृसिंहदेव–वामन भगवान् आदि, जो कि भागवत्, रामायण में भरी पड़ी हैं। कहाँ तक गिनाया जाए, जापक इतनी लीलाएं जप ही नहीं सकता। मन भगवान् के अलावा कहीं जा ही नहीं सकता।

जापक दो अपराध तो सदैव करता ही रहता है। नाम को अवहेलनापूर्वक जपना तथा मन से संतों का दोष देखते रहना। संत तो चिन्मय होते हैं। इसलिए जापक का अपराध होता ही रहता है। स्वयं को देखते नहीं कि स्वयं में कितने सारे दुर्गुण भरे पड़े हैं। अपने दुर्गुणों को देखना, अहं को समाप्त करना है। अहं ही अपराध कराता है। अहं को भगवत्–चरणों में सौंपने से सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाता है। अहं ही दुखों की जड़ है। अहंकार भगवान् को तनिक भी सुहाता नहीं है। भक्त जब थोड़ा–बहुत ही अहं भगवान को सौंप देता है, तब भगवान् उसकी अहं से रक्षा करते हैं। अहं न रहने से सारे अन्दरूनी शत्रुओं का नाश स्वतः ही होने लग जाता है। यह सब होगा हरिनाम को मन लगाकर जपने से। जपते हए सतर्क रहें कि मन कहीं जा तो नहीं रहा है। तैलधारावत जप शीघ्र ही भगवान् के प्रति छटपटाहट पैदा कर देता है, फिर तो रोने का तांता लग जाता है। विरहाग्नि सभी दोषों को जलाकर राख कर देती है। बस आवागमन से छुटकारा मिल गया। दुखों का अंत हो गया। जीवन थोड़ा है, पश्चाताप की आग में जलना चाहिए।

प्रथम चित्त से ही सारा स्मरण होता है। बुरी स्फुरणा होते ही पकड़ना चाहिए कि बुरे रास्ते तो नहीं जा रहा है। मन बड़ा शैतान है। बुरी स्फुरणा मन में पहुँचते ही इन्द्रियां हावी हो जाती हैं। बस फिर क्या है गिरना ही पड़ता है।

नारी, माया की साक्षात मूर्ति है। प्रेम-भाव को एक क्षण में समाप्त कर देती है। उसने ब्रह्मा, शिव, नारद, विश्वामित्र आदि तक को अपने पैरों से कुचल डाला। लकड़ी की नारी तक भी खतरनाक है। अच्छी संगति में पड़ा मानव भी नारी के लिए जग जाता है। इससे बचाव श्रीहरि ही कर सकते हैं। गृहस्थ तो अपनी जेब में जहरीली बोतल रखता है। सदैव अमृत समझ कर पीता रहता है क्योंकि यह निरंकुश है। अन्य आश्रम वालों पर अंकुश है। पर नारी उनको भी नहीं छोड़ती।

महाप्रभु जी ने छोटे हरिदास को क्यों दंड दिया, क्योंकि नारी का क्षणिक संग भी प्रेमावस्था का बहुत बड़ा शत्रु है। एक क्षण का संग हजारों साल की तपस्या खाक में मिला देता है। मरते दम तक यह पिंड नहीं छोड़ता। आजकल का रवैया बहुत ही खराब है। भगवान को कौन चाहता है ? सारा संसार नारी को चाहता है।

गृहस्थ भी बड़े-बड़े संत हुए हैं। भूतकाल में सभी गृहस्थ थे एवं उन्होंने भगवान् को अपना अहं सौंप दिया था। वे भगवान् से बातें करते थे। गृहस्थ, नारी-रूपी किले में सुरक्षित रहता है, अतः शत्रुओं से बचा रहता है। अन्य आश्रम वाले किले के बाहर रहते हैं। अतः दुश्मन हर समय उन पर हावी रहता है। लेकिन संत भी भगवान् से बातें करते हैं। क्योंकि उन्होंने अपना अहंकार (अहं) भगवान् को सौंप रखा है।

नारी साक्षात् माया का रूप है। इससे जो बचा है, उसी ने भगवान् को पाया है। इससे रक्षा भगवान् ही कर सकते हैं। अपने बल से कौन विजय पा सकता है। हरिनाम ही इसकी महाऔषधि है। इसका सेवन सतर्कता से करना चाहिए। यही हर तरफ से रक्षा

करता है, यदि कोई इसको आदरपूर्वक जीभ से जपकर अपनाए। अपना अहं इसमें बहुत बड़ा शत्रु है। जब तक अहं रहेगा, दुर्गुण रहेंगे ही। दुर्गुणों को भगवान् देखते भी नहीं। भगवान् देखते हैं कि इसने अपनापन मुझको कितना सौंपा है, उतनी अनुपात में श्री भगवान् भी भक्त की रक्षा व देखभाल रखते हैं।

जैसा आपकी चरण धूलि से मिला, मैंने आपके युगल-चरणों में रखा। यही मेरी तुच्छ सेवा आपकी कृपा से हो रही है। कृपा करें, मेरा मन हरिनाम में रुचिपूर्वक लगे। आपसे यही आशा है।

दो फूल आपके चरणों में

1. कौन कहता है कि घनश्याम आते नहीं,
आते हैं, पर उनको दिल से बुलाते नहीं।
दिल से बुलाते तो घनश्याम कहीं जाते नहीं।।
रोना ही घनश्याम को खैंच लाता है।
श्रद्धा की बगिया में घनश्याम मस्ती से गाता है।
कपट का हृदय घनश्याम को भाता नहीं।
स्वच्छ हृदय में उनको कोई बिठाता नहीं।।
हरिनाम की मीठी लौर (ध्वनि) उन्हें कोई सुनावे।
तो घनश्याम इक क्षणभर भी रुकने न पावे।
दास अनिरुद्ध का, घनश्याम को रोना भावे।।
2. भक्त कहते हैं कि हरिनाम में मन लगता नहीं,
लगता है पर अहं शत्रु को, कोई तजता नहीं।
महत्व हरिनाम का कोई समझता नहीं।।
श्रवण कर हरिनाम, तो निश्चय ही हिय अकुलाय,
विरह-ज्वाला कर दर्शन प्रभु का पाये।
क्यों नाम अपराध कर जीवन अमूल्य गंवावे।
मौत सामने खड़ी है, फिर भी चेत न आवे,
सचेत किया बार-बार, फिर भी सोता ही रह जावे।
दास अनिरुद्ध गुरुदेव वचन पर, जीवन अपना बितावे।।

20

श्रीश्रीगुरुगौरांगो जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.03.2005

अन्तःकरण के भाव

जब भजन कम हो जाता है तो आपको याद कर मन ही मन रोता रहता हूँ। पत्र देने पर ही शांति मिलती है। इसके बाद भजन-स्तर बढ़ जाता है। न मालूम क्यों ?

आप समुद्र हैं, मैं एक बूंद हूँ। मुझमें अनन्त अवगुण भरे पड़े हैं जिनके कारण भजन-स्तर आगे बढ़ नहीं रहा है। यह जो ठाकुर जी की तरफ खिंचावट हो रही है, यह भी आप संत की कृपा का फल है। अब जगत् से मन ऊबता जा रहा है। मौत सिर पर खड़ी है, न जाने कब अचानक आकर दबोच लेगी। यह मानव-जन्म बेकार न हो जाए, बस यही हर क्षण चिंता लगी रहती है। न घर में मोह है, न पैसे में। मैं आपसे झूठ बोलकर अपराध नहीं लेता। यदि ऐसा होता तो ठाकुर जी की खिंचावट खत्म हो जाती एवं मैं नास्तिक बन जाता।

एक न एक दिन तो सबकुछ छोड़ना ही होगा।

आपके सिर पर काल मंडरा रहा है, अतः शीघ्रचेतना ही श्रेयकर होगा। अब हम कूच करने वाले हैं। अब तो आपकी कृपा से 4-5 घंटे इकतारे से कीर्तन में ही खर्च हो रहे हैं। और अधिक समय देकर जीवनयापन करूंगा, सहायता व प्रेरणा आपसे मिलती है। मन भी आपकी कृपा से खूब लगता है। तड़फन का ही सहारा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अंतिम सांस में ठाकुर जी आकर संभालेंगे। मेरा किसी में मन नहीं है। केवल आपके चरणों में ही मन दौड़ता रहता है। संत गुरुभाई तो बहुत हैं परंतु आपके चरणों का ही इस तृण को सहारा है। यह क्यों ? ठाकुर जी जानें।

श्री गोपीनाथ बाबा ने छींड में इस ठाकुर घर पर 11 साल तक

रहकर भजन किया था। उनका यह इकतारा दिया हुआ है। इससे मेरा मन कीर्तन से बाहर जाता नहीं। विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होती रहती है। इस घर पर श्रीगुरुदेव की पूर्ण कृपा तो है ही, तब ही तो गुरुदेव जी ने मेरे ताऊ जी को प्रत्यक्ष आकर दर्शन दिया था व ताऊ जी ने दूसरे दिन जबरदस्त विशाल भंडारा किया था। यह सन् 1966–67 की घटना है। मुझे कभी–कभी ऐसा अनुभव होता है कि ठाकुर जी दर्शन भी दे देवेंगे क्योंकि संतों की कृपा भी मुझ पर रहती है। कभी–कभी विरह भी चरम–सीमा पर हो जाता है। लेकिन लगातार नहीं रहता, अतः आपको पत्र देना पड़ता है। तब फिर विरह जगने लगता है। मेरी चर्चा (बातें) किसी को न बतावें। मेरा भजन गिर जावेगा। हमारा संसार ज्यादा दिन का नहीं है। रास्ते के लिए पूरी सामग्री अभी से इकट्ठी करनी होगी। समय निकल जाने पर इतना नुकसान होगा कि जिसकी सीमा नहीं।

कृष्ण नाम, भक्तसेवा सतत करिबे।
कृष्ण–प्रेम–लाभ ता'र अवश्य हइबे।।

हमेशा श्रीकृष्णनाम व भक्त सेवा करते रहें।
ऐसा करने पर श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति अवश्य होगी।



21

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक : 25.03.2006

भक्तिमय आचरण

आपकी कृपा से मैंने पूरी (तीनों खंड) नई चैतन्य भागवत को पढ़कर यही निचोड़ निकाला है कि आपको इसी जन्म में भगवत्-प्राप्ति निश्चय ही हो जायेगी।

मैंने जैसा संतों के मुखारविंद से सुना है तथा धर्म-शास्त्रों में पढ़ा है वैसे का वैसा लिखकर आपके चरणों सेवार्थ भेज देता हूँ। इससे मेरा मन आपकी याद में रहता है तथा लिखने से ठाकुर जी का स्मरण रहता है। इससे बड़ा मन को लगाने का क्या साधन हो सकता है ?

मन से ही बंधन, मन से ही घनानंद होता है, इसमें दो राय नहीं। यदि नीचे लिखे अनुसार मन पाजी चलता है तो निश्चय ही शत-प्रतिशत भगवत्-प्रेम प्राप्ति का अंतिम पुरुषार्थ प्राप्त होकर इसी जन्म में ठाकुर का सानिध्य मिल सकता है तथा जन्म-मरण का असहनीय दुःख मिट सकता हैः-

1. सोते समय भगवान् व भक्त का चिंतन करने की आदत मन को डालें। निद्रा भी मृत्यु की पुत्री है। मरते समय जैसा भाव होगा, अगला जन्म उसी भाव से मिलेगा, उसी प्रकार सोते समय जैसा भाव होगा, वही भाव रात को तथा प्रातः जगने तक चलता रहेगा वही भाव रोम-रोम में धीरे-धीरे रम जाएगा। जगने पर भी उक्त चिंतन करते हुए खाट से नीचे उतर कर शौचादि करना चाहिए।

2. श्री चैतन्य भागवत् में पढ़ा है कि जब भगवद्-प्रसाद सामने आता था तो महाप्रभुजी उसकी प्रदक्षिणा कर हाथ जोड़कर प्रसाद सेवन करते थे। हरिनाम जपते हुए हर ग्रास खाते रहना चाहिए ताकि हर एक ग्रास निर्गुण की प्राप्ति करा सके। जैसा अन्न

वैसा मन। जिस भाव में खायेंगे, उसी भाव की सात्विक निर्गुण धारा चालू होगी। जब भी पानी पीना हो तब यह भाव रखना चाहिए कि इसे ठाकुर जी पी रहे हैं, फिर मैं इस अमृत को पीऊँगा व अमरता की प्राप्ति कर सकूंगा। इसे करके देखने से मालूम होगा।

3. अहंकार को भगवत्–चरणों में सौंपना। अहं ठाकुरजी के प्रति हो तो शरणागति का प्रादुर्भाव स्वतः ही प्रकट हो जाता है तथा 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि' की स्थिति हो जाती है। जब तक अहं शत्रु की आसक्ति त्रिगुण अवस्था में रहेगी तब तक निर्गुण अवस्था नहीं आ सकती। अहं में प्रतिष्ठा की गंध छुपी रहती है जो महसूस नहीं होती। जब तक प्रतिष्ठा–शूकरी–विष्ठा की गंध हृदय में रहेगी, ठाकुर जी बहुत दूर रहेंगे, अतः साधक को सावधानीपूर्वक अहं का संभालना परमावश्यक है। अहं बदलते ही ठाकुर प्रकट होने में देर नहीं होगी।

जब तक अंहकार स्वयं में रहेगा, तब तक साधन शून्य रहेंगे। चाहे कितना ही हरिनाम करो, कितना ही सत्संग करो, कितना ही शास्त्र अवलोकन करो, रिजल्ट होगा शून्य। हरिनामादि केवल मात्र अहं को बदलने के लिए होता है ताकि अहं स्वयं में न होकर ठाकुर में ठहर जाये। यही शरणागति का दूसरा नाम है।

गोपियों ने कौन सा साधन–भजन, सत्संगादि किया था। भीलनी ने कौन सा शास्त्र पढ़ा था। केवल मात्र अहं को प्रभु चरणों में सौंपा था। गोपियों को संसार की कोई परवाह नहीं थी। इसी कारण ठाकुर जी (कृष्ण) उनके पीछे–पीछे फिरते रहते थे व अनेक बहाने बना कर उनसे मिलते रहते थे तथा जबरन छीन–छीनकर घर में जाकर खाते–पीते थे। राम जी संतों को छोड़ भीलनी की कुटिया में गए एवं उसने रामजी के जाते ही अपने प्राणों को छोड़ दिया क्योंकि उसने अहं को ठाकुर जी के चरणों में सौंप दिया था।

4. भगवत्–प्राप्ति के अलावा दूसरा कोई ध्येय न हो वरना अहं स्वयं में रहेगा।

5. काल का भय आठों याम रहे।

6. असत्–संग का त्याग, मन व शरीर दोनों से हो।

7. हरिनाम को अपनी सच्ची कमाई समझकर संत व ठाकुर जी का स्मरण करते हुए जप करना (मन को संसार में भटकाना वर्जित)

मन को लगाने का अनन्त मसाला है, यदि मन चाहे तो। स्वयं के गुरुवर्ग, ठाकुर के 24 अवतारों के चरित्रांकन में, भागवत पुराण के अनन्त संत, रामायण के अनन्त संत, सनकादिक से लेकर अब तक के संत चरित्रादि, धामादि, तीर्थाटन। जापक इतनी माला जप ही नहीं सकता जितना लंबा–चौड़ा मन को रोकने का मसाला ठाकुर जी ने दिया है, जीव को अपनाने के लिए। दुर्भागा जीव उनको चाहता ही नहीं। फिर भगवान् क्या करें, जब पुत्र ही गोद में आना नहीं चाहता। भगवान् तो हाथ फैलाकर जीवों को गोद में चढ़ाना चाहते हैं, लेकिन जीवों को बाप की परवाह ही नहीं। इसमें किसका कसूर है ?

8. संतों से प्रेम, वरना मन संसार रूपी भव–सागर में डूब जाएगा।

9. मन, वचन, कर्म से अपराध से बचता रहे। यदि हो जावे तो मन, वचन, कर्म से क्षमा मांग ले। ब्रह्मा व शिवजी भी यदि ठाकुर के प्रेमी का अपराध कर दें तो ठाकुर एक दम मना कर देता है और कहता है कि मुझे कुछ नहीं मालूम, जिनका अपराध हुआ है, उन्हीं से क्षमा मांगो।

10. जीव मात्र पर दया करें क्योंकि सबके हृदय–कमल पर ठाकुरजी विराजमान रहते हैं। जीव को दुःखी करने से ठाकुरजी स्वयं दुःख महसूस करते हैं। अतः माया दुःख देने वाले को परेशान करती रहती है।

11. गणेश, शिव, ब्रह्मादि को भगवान् ने अखिल ब्रह्मांड को चलाने के लिए नियुक्त किया है, उनसे केवल मात्र यही मांगे कि

मेरा अहंकार भगवत्–चरणों में लग जाए, भगवत्–प्यार ही मेरा अंतिम पुरुषार्थ रहे।

उपर्युक्त 11 साधन ठाकुर को प्रकट कर आवागमन से मुक्ति दिला देते हैं। इनको विचार कर समझना चाहिए। यह संतों से सुना–सुनाया लिख कर भेज रहा हूँ, अंगीकार करने की कृपा करें। हरिनाम को कान से सुनकर ही भगवत्–प्रेम मिलेगा वरना सब व्यर्थ हो जाएगा। भौतिकता की बातें सुन–सुनकर ही तो हृदय में संसार रम गया। इसी प्रकार सत्संग का महत्व है। अध्यातम की बातें सुन–सुनकर भौतिकता के रंग को हटाकर प्रेम का रंग चढ़ाना होगा।

शास्त्रों में केवल हरिनाम में मन लगाने की चर्चा की गई है, सबका निचोड़ यह है कि हरिनाम को कान से सुनकर हृदय से बेकार का कचरा बाहर निकाल दिया जाए ताकि प्रेम का अंकुर निकल सके। जिह्वा से जपने से ही तो कान सुन सकेगा शास्त्रीय उदाहरणः–

1. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानहिं तेऊ।।
2. जीह नाम जप सुनहुं भवानी। भव बंधन काटहिं नर ज्ञानी।।
3. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।।
4. पुलक गात हिय सिए रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।
5. सादर सुमिरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।
6. मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नयन बहे नीरा।।
7. करउं सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।
राम–राम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोई।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होई ।।

दसों इन्द्रियों रोक कर तथा कान से सुनकर, जीभ से उच्चारण कर ही घर्षण होकर विरहाग्नि जल सकती है। पूरा जीवन बीत गया, अश्रु एक भी नहीं आया। अनेक उदाहरण शास्त्रों में जीभ से

जपने के हैं। कान से सुनकर ही कुछ मिल सकता है। भटकन से सुकृति अवश्य एकत्रित होगी जो कई जन्म की देरी करा देती है। आवागमन तो अवश्य हटेगा, परंतु देर होगी।

दार्शनिक सिद्धांत भी है, जैसे आक्सीजन हाईड्रोजन मिलने पर जल प्रकट होता है, दो लकड़ियों का घर्षण आग प्रकट कर देती है, माचिस की तीली का घर्षण आग पैदा करता है, चकमक को पत्थर पर रगड़ने से आग पैदा हो जाती है, इसी प्रकार बहुत से उदाहरण हैं।

इसी प्रकार जीभ का उच्चारण व कान का श्रवण विरहाग्नि को प्रकट करा देता है। मेरे गुरुदेव का आदेश है :

While chanting Hari Nam sweetly listen by ears.

स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर (स्वभाव) हरिनाम से पवित्र हो जाते हैं। अनुभव भी कहता है व भक्त कहा करते हैं कि जप भी खूब कर रहे हैं परंतु प्रभाव कुछ नहीं होता। होगा कैसे, ठीक ढंग से जपो, फिर सब कुछ मिल जाएगा।

उक्त सब लेखनी का ज्ञान संतों की कृपा से व शास्त्र पढ़ने से मिला है जिसे आपके गले में सुगन्धित फूलों के रूप में पिरोकर पहनाने जा रहा हूँ, कृपया अंगीकार करें।

श्रीमन् महाप्रभु की प्रतिज्ञा

जिस धन को प्राप्त करना ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है, उसे मैं इस संसार में सभी को प्रदान करूँगा और इस अवतार में उस धन (प्रेम) को वितरण करने में पात्र-अपात्र का भी विचार नहीं करूँगा।

22

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
13.07.07

विरह प्राप्ति में बाधाएँ

भक्त के सामने झूठ, कपट करना घोर अपराध है। मैं आपकी सेवा को हर समय याद रखता हूँ। आपकी यह बात सुनकर मुझे बहुत दुःख होता था कि इस जन्म में तो मुझे पाँचवां पुरुषार्थ-प्रेम मिलना असम्भव ही है, आपकी कृपा से ही मिल सकेगा। यह बात मेरे हृदय को विदीर्ण किए जा रही थी।

'विरहावस्था' जब रात में होती थी तो आपकी चर्चा मुझे अखरा करती थी। "ठाकुर जी! क्या आप इतने निष्ठुर हो गये, जो कुछ बात सुनते तक नहीं ?''-मैं ठाकुर जी से कहता था।

आप मेरे हृदय-स्पर्शी अन्तरंग साथी हो। मैं आपको कैसे भूल सकता हूँ, जबकि आप Phone पर कहते हो, "अनिरुद्ध जी! मुझे आप भूल से गए हो।" जब ऐसी बात सुनता हूँ तो मेरा कलेजा विदीर्ण होने लगता है। "हे मेरे ठाकुर जी! मैं कब उनके मुख से सुनूँगा कि अब तो मुझे भगवान् के प्रति विरह हो रहा है ?"

विरह होना एक खंडे (तलवार) की धार है। बिना भक्त-कृपा से हरिनाम संख्या अधिक होना भी असम्भव ही है। यह मेरी कृपा नहीं है। यह हरिनाम की कृपा ही है जो मेरे पर बरस कर, आप पर बरसने लगी है। विचार करने की बात है। विरह की यह अवस्था हर समय नहीं रहती। हर समय रहती है जब पूर्ण रूप से संसारी-वासना अन्तःकरण से दूर हो जाती है। जब सच्चा ज्ञान हृदय में स्थान पा लेता है। तब हर समय भगवान् की याद हृदय को बींधती रहती है। अतः जब कभी शुष्क हृदय हो जावे तो पश्चाताप् करना चाहिए। शुष्क हृदय तब ही होता है जब भवरोग हृदय को दूषित करता है। जब सत्संग से भवरोग मिट जाता है या किसी सच्चे संत का संग

प्राप्त हो जाता है तो रोग हृदय से दूर हो जाता है। फिर वही विरह–अवस्था जागृत हो जाती है। संत–कृपा जिस जीव पर एक बार हो गई, उसे ठाकुर हटा नहीं सकता। संत के पीछे ठाकुर चलते हैं। संत बनने में देर नहीं होती, यदि जीव हरिनाम की–3 लाख संख्या करने लग जाए। धीरे–धीरे हरिनाम ही उसे संत की पदवी तक पहुँचा देता है।

अब जब आपने हरिनाम की अधिक संख्या पर जोर दिया तो हरिनाम (ठाकुर) ने विरह दे दिया। जिसको एक बार ठाकुर के प्रति विरह हो गया, वह फिर नष्ट नहीं होता। यदि भक्त अपराध व मान–प्रतिष्ठा को काबू में रखे तो। 'अहम्' प्रेम–रस को पी जाता है। वहाँ शरणागति का भाव मूल सहित नष्ट हो जाता है। 'मैं' पना, भगवान् से दूर कर देता है। 'तू'–पना, भगवान् को पास बुला लेता है।

श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि तू योगी बन, अभ्यास और वैराग्य से मन को काबू में कर अर्थात् मेरा नाम अधिक संख्या में कर, जिससे संसार से वैराग्य हो जाएगा अर्थात् संसारी राग की आसक्ति धीरे–धीरे कम होती जाएगी। जिस परिमाण में आसक्ति कम होगी, उसी परिमाण में मेरे से अनुराग (प्रेम) होता चला जाएगा। जब मेरे से अनुराग होता चला जाएगा, तो स्वतः ही मेरे लिए छटपटाहट होना स्वाभाविक ही है। अधिक हरिनाम करने से ही विरहावस्था जागृत हो जाती है। अतः नामाचार्य श्री श्रील हरिदास जी, श्रील गौरकिशोरदास बाबा जी व श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी ने लगातार तैलधारावत् हरिनाम किया। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सबके सामने है। जब तक हरिनाम संख्या अधिक मात्रा में नहीं होगी, तब तक संसारी आसक्ति नहीं मिटने वाली। जब तक संसारी आसक्ति रहेगी, अन्तःकरण को दूषित करती रहेगी। जहाँ अन्तःकरण (हृदय) दूषित रहेगा तो ठाकुर जी से लगाव होना बिल्कुल असम्भव होगा। जब भगवान् से लगाव होगा ही नहीं, तब विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होना सम्भव ही नहीं। फिर आप मुझे दोष देते रहते हो कि मुझ पर

तो आपकी कृपा है ही नहीं। आपकी कृपा बिना भगवान् की कृपा कैसे होगी ?

अब आप ही बतावें, इसमें मेरा क्या दोष है ? जब आप हरिनाम संख्या अधिक करते ही नहीं तो भगवत्–कृपा कैसे हो सकती है ? हलवा बना रहे हैं 5 किलो आटे का, और पानी इसमें डाल रहे हो 100 ग्राम। क्या हलवे का Taste जीभ पर आ सकेगा ? इसी प्रकार जो कलि का धर्म है, "कलियुग केवल नाम अधारा, सुमिर–सुमिर नर उतरहिं पारा।।" क्या आप हरि का नाम जितना चाहिए, उतना कर रहे हो ? फिर मुझे दोष देते रहते हो कि आप ठाकुर जी से मेरे लिए कहते नहीं हो। अब ठाकुर जी भी आप पर कृपा कैसे करें, जब आप उन्हें चाहते ही नहीं। ठाकुर की दया की तो कोई सीमा ही नहीं, परन्तु आपकी भी दया ठाकुर जी पर होनी चाहिए। जब अपनी हरिनाम संख्या आप बढ़ाते ही नहीं, तो भी ठाकुर जी की आप पर दया हो गई। कैसी बिडम्बना है! हमारे गुरुवर्ग–पार्षदों ने हरिनाम को अपने जीवन में अपनाकर, ठाकुर को अपने पास छद्‌म रूप से बुला लिया। अरे भाई! ठाकुर तो अपने नाम के पीछे दौड़े आते हैं। हरिनाम ही सारी दुविधाएँ हटाने को तैयार हैं। यदि आप चाहो तब ही। आप चाहते ही नहीं हो, केवल बातें बनाना आपको आता है।

बातें बनाने से काम नहीं होगा। कुछ करके दिखाओ। तब ठाकुर जी का असीम प्यार तुम पर बरस पड़ेगा। यह भी ठीक है कि ठाकुर सुनता है। सुनेगा तब ही, जब खुद भी तो कुछ करे। खुद तो कुछ करना चाहता ही नहीं। मुझे तो बनी–बनाई सामग्री मिलती रहे। भाई! भक्त ने प्रसाद की थाली आपके सामने रख दी, जब हाथ चलाओगे ही नहीं तो क्या प्रसाद मुख में चला जायेगा ? भक्त तो ठाकुर जी से कहता–कहता थक जाता है और समझता है कि मेरी बात ठाकुर जी सुनते ही नहीं। अरे भाई! सुने भी तो कैसे सुने ? कृपा चाहने वाला, कुछ तो करे! निठल्ला होकर बैठा रहे और

कहता रहे तुम मुझको चाहते ही नहीं हो। ठाकुर से जोर देकर कहते ही नहीं हो।

तब मैं तो हैरानी में आ गया और ठाकुर जी से पूछना पड़ा कि कैसे निष्ठुर हो, मेरी सुनते ही नहीं हो, तब ठाकुर जी ने कृपा चाहने वाले की, सारी पोल खोलनी शुरू कर दी। अन्त में लिखना पड़ा कि आप में यह कमी है। अतः ठाकुर जी की कृपा होगी नहीं।

अब, जब आपने हरिनाम पर जोर दिया और हरिनाम संख्या बढ़ाई, तब ही तो ठाकुर–कृपा आप पर बरसने लगी। विरहाग्नि जलने लगी। जब आप ठाकुर जी को चाहते ही नहीं तो ठाकुर क्यों चाहने लगे। यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है, इसे कोई काटे तो उसका जवाब मेरे पास है।

विरहाग्नि (प्रेम–भक्ति) पाँचवां पुरुषार्थ है, जो करोड़ों में से एक को प्राप्त होता है। मैंने कहा कि जो करोड़ों में से एक को होता है। वह हजार में एक को होगा। जो मेरी बात मानेगा, वरना करोड़ों में एक को भी नहीं होगा।

यह पत्र आपको आधी रात में लिखकर डालना पड़ा, जब ठाकुर जी का आदेश हुआ तथा आदेशानुसार ठाकुर जी ने ही लिखवाना शुरू किया। क्या यह अधम जीव उक्त लेख लिख सकता है ? बिल्कुल असम्भव है। आप मानो या न मानो, मुझमें कोई शक्ति नहीं है। शक्ति है भगवान् की। भगवान् ही, लेखन–सामग्री तैयार करवाते हैं। मैं तो उनकी कठपुतली हूँ। जैसा नचाते हैं, नाचता रहता हूँ, मुझसे पत्र लिखवाकर ठाकुर जी अपने भक्तों को, अपने चरणों में लेना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी तरह से भक्त, किसी के द्वारा उनके चरणों में चला जावे।

मुझे ठाकुर जी ने कठपुतली बनाया। कठपुतली का काम है नाचना। अब जैसा ठाकुर जी नचावें, अपने भक्तों को नाच दिखावें। यह भक्तों की सेवा ठाकुर जी ने दी है, जो मेरा जीवन सफल करती जा रही है।

मैं तो भक्तों के मन की प्रसन्नता का साधन हूँ। मुझे कोई भक्त न समझे। हाँ, भक्तों के तन की छाया मुझे शीतलता दे रही है। उससे मैं अपना जीवन आनन्द से गुजार रहा हूँ। यह मेरी सुकृति का ही फल हो सकता है।

सभी भक्तों की कृपा से इस ठाकुर जी के परिवार का सन्त समागम 19 दिसम्बर से 22 दिसम्बर 2007 तक होकर 23 दिसम्बर से 28 दिसम्बर तक जयपुर में हुआ, अतः सभी भक्त–प्रवर, मुझ पर कृपावर्षण करने के लिए पधारें। श्री विष्णु महाराज जी का फोन आया था, इससे पता चला है।

एक आश्चर्यजनक घटना आप भक्तों की कृपा से इस घर पर, जो ठाकुर गोविन्द का है, हुई है। उसे लिखकर सुनाने जा रहा हूँ। सुनकर आपकी नामनिष्ठा में और अधिक वृद्धि हो जायेगी।

मेरा बेटा बैंक में है। दोनों दम्पत्ति मिलकर डेढ़ लाख हरिनाम कर रहे हैं। उसका Transfer दूसरे स्थान पर हो गया। जो उसका साथी है, वह यूनियन का मैम्बर है। उसने लिस्ट देखकर कहा कि आपका Transfer अमुक स्थान पर हो गया। इस पर उसने कहा कि मैं तो नहीं चाहता था परन्तु जैसी ठाकुर जी की मर्जी, जाना ही होगा। जहाँ बदली हुई, उस बैंक के मैनेजर ने बड़े अफसर से कहा कि यदि अमरेश इस बैंक में आ जावे तो बैंक अच्छी तरह चल सकता है। उसकी बदली यहाँ पर कर दो। उसने हाँ कर दी। List तैयार हो गयी। उस मैनेजर ने अमरेश से पूछा कि वे कब Join कर रहे हैं ? अमरेश ने कहा–"जब रिलीव कर देंगे, आ जाऊँगा।"

अमरेश ने कहा "ठाकुर जी! ऐसी गलत जगह भेजकर क्यों मेरा धर्मभ्रष्ट करवा रहे हो। वहाँ दो नम्बर का पैसा नहीं खाऊँगा तो बैरी बनूँगा। मुझे बचालो, मेरे ठाकुर जी।"

दूसरे दिन रिलीव करने लगे तो क्या हुआ। जयपुर से एक पत्र आया, जिसमें इसके नाम के बदले दूसरे का नाम लिस्ट में छपा था। दूसरे को जाना पड़ गया। सभी बैंक वाले अचम्भा करने लगे।

यह गलत कैसे हो गया। उस बैंक वाले भी व इस बैंक वाले भी अचम्भा करने लगे।

"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"

उक्त पंक्ति कृतार्थ हो गयी। जो भगवान् के नाम पर निर्भर है, उस पर भगवत–कृपा स्वतः ही हो जाती है। शरणागत की भगवान हर जगह रक्षा करते हैं तथा संकट हरते हैं। यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। धर्मशास्त्रों के अर्थ भगवत्–कृपा के बिना समझना असम्भव है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर–सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

इसका आशय क्या है ? जरा अन्तःकरण से सोच–विचार करना चाहिए। सार वही है कि जीव को हरिनाम का ही आसरा लेना चाहिए तथा हरिनाम को अधिक से अधिक संख्या में जपना चाहिए। तब ही भगवत् कृपा मिल सकेगी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है–गौरपार्षद जिन्होंने नाम को लाख–लाख जपकर जगत को जानकारी दी थी। जब तक नाम को कलियुगी जीव नहीं अपनाएगा, तब तक उसे भगवत–कृपा मिलना असम्भव है। फिर कहता रहेगा कि मुझ पर भगवान् व भक्त कृपा करते ही नहीं हैं। कृपा कैसे हो, पहले स्वयं की कृपा भी तो हो अर्थात् नाम को स्वयं भी तो अधिक संख्या में जपे। गौरपार्षद पागल थे क्या ? जो लाखों संख्या में नाम जपा करते थे। 18 घंटे नाम जपते थे। आप 10 घण्टे तो नाम करो। 10 घंटे में 3 लाख हरिनाम हो जाता है या 11 घंटे में हो जायेगा। तब प्रेमावस्था स्वतः ही प्रकट हो जायेगी। नाम सुमिरन ही जीवन का आधार होना चाहिए अर्थात् मन लगे न लगे, नाम–संख्या लाखों में होनी चाहिए। विचार करने की बात है–क्या गुरु वर्ग का शुरू में ही नाम में मन लग गया था ? गौरहरि ने एक लाख नाम को क्यों प्राथमिकता दी थी ? क्या शुरू में मन लग जाता है ?

23

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
16.7.07

हरिनाम का स्मरण अन्तःकरण से हो

फोन पर अधिक भक्ति-चर्चा नहीं हो सकती, अतः पत्र द्वारा ही आपसे आशीर्वाद लिया जा सकता है। अतः मुझ अधम पर कृपा करते रहिये। मेरा चतुर्मास में आपके चरणों में आना असम्भव जान पड़ता है। परिवार वाले भेजकर प्रसन्न नहीं हैं; मैं भी जबरन आना नहीं चाहता क्योंकि मैं अपराध से डरता रहता हूँ। यहाँ भी मेरा भजन सुचारू रूप से आप सबकी कृपा से चलता रहता है। पत्रों द्वारा जैसे ठाकुर प्रेरित करता है, मैं लेख रूप में आपसे कहता रहूँगा। मेरी प्रसन्नता तो इसी में है कि हरिनाम आप सबका प्रेम सहित होता रहे वरना जीवन शीघ्र गर्त में जा ही रहा है। सब सुविधायें होते हुए भी यदि हरिनाम नहीं हो रहा है तो जीवन में इसके तुल्य कोई नुकसान नहीं है। यह होगा नाम-जापकों की कृपा से। अपनी सामर्थ्य से कुछ भी नहीं होगा अपने गुरु-वर्ग में नाम-जापकों की बहुतायत है। जिससे भी प्रार्थना करोगे, नाम का आशीर्वाद मिलेगा ही। शिवजी उमा महारानी को माध्यम बनाकर जीवों को सच्चा रास्ता बता रहे हैं कि

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

सुमिर-सुमिर, दो बार क्यों कहा गया है ? इसका आशय है कि चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते, उबासी लेते, छींकते-खांसते हर समय हरिनाम मुख से उच्चारण करने से सुकृति होती है। जैसा कि संसार में देखा जाता है कि आपस में मिलते हुये बोला करते हैं

"भैया राम-राम!" "राधा-गोविंद!" "जै श्री राधे!" -

आदि आदि। इसका आशय यह है कि किसी भी तरह मुख से हरिनाम उच्चारण हो तो सुकृति इकट्ठी होकर जन्म-जन्मातर में

कभी तो दुःख के सागर, आवागमन, जन्ममरण से छुटकारा मिलेगा। मै नहीं कह रहा हूँ। धर्म–शास्त्रों में लेख है–

"भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ।।"
''जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। (जीभ) नाम जप जानेऊ तेऊ।।''
''कृत जुग त्रेता, द्वापर पूजा मख अरु जोग।''
''जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावहिं लोग।।"
''चहुँ जुग तीन काल तिंहु लोका। भये नाम जप जीव बिसोका।।"
''चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहीं आन उपाऊ।।"

कितने उदाहरण देकर समझाया जाये, कोई अन्त नहीं है।। अतः जो भी नाम का जीवन में सहारा लेगा, वही इस जीवन में सुख–सागर में तैरेगा। श्रीगुरुवर्ग ने केवल माला का नियम इसीलिये बनाया है कि जापक पर अधिक भार न बन जाये। छोड़ भी सकता है। लेकिन दो–चार साल के बाद तो एक लाख नाम यानि 64 माला का नियम लेना चाहिये। यदि इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति करनी हो तो, सुखी जीवन बिताना हो तो। फिर दोबारा मानुष जन्म मिलना असम्भव ही है। सभी कहते रहते हैं कि सेवा कर रहे हैं। हरिनाम का समय मिलता ही नहीं है। फिर तो सेवा से भक्ति मिलनी चाहिये। सेवा का आशय–भक्ति। यदि भक्ति (सेवा) असली (वास्तविक) है तो ठाकुर से लगाव होना चाहिये। जब लगाव होगा तो ठाकुर जी से प्रेम तो होगा ही। जब प्रेम होगा तब शरणागति का भाव आयेगा ही। यदि शरणागति का भाव आएगा तो विरहाग्नि प्रगट होना परम–आवश्यक है। यह तब ही होगा, जब संसार से प्रेम हटेगा। केवल कहने से कुछ नहीं होता। केवल बुद्धि ही कह रही है, हृदयगम्य आचरण हुआ ही नहीं है। अंतःकरण ने इसे स्वीकार किया ही नहीं है। कहते–कहते सारी उमर चली गयी कि सेवा ठाकुर की हो रही है तो सेवा का फल तो ठाकुर से प्रेम होना चाहिये। यदि नहीं है तो केवल दिखावा है। कठपुतली का नाच है। जरा गहरे दिमाग से सोचो। आप धोखे में हो। असलीयत बहुत दूर है। हरिनाम–संख्या, एक लाख से तीन

लाख करनी होगी। श्रीगौरहरि ने एक लाख नाम प्रतिदिन जप करने के लिए सबको आदेश क्यों दिया था। वे जानते नहीं थे कि 64 माला में शीघ्र मन नहीं लगेगा, लेकिन अधिक जप होगा तो सुकृति ज्यादा होगी। वही सुकृति नाम में मन लगा देगी। हमारे गुरुवर्ग ने क्यों संख्या बढ़ाकर, रात में 2 बजे उठकर प्रातः तक हरिनाम करते थे। दिन में भी नाम पर ही दिन बिताते थे। क्या वे पागल थे? नहीं! हम पागल हैं, जो बहाना बनाते रहते हैं कि समय ही नहीं मिलता। और कामों के लिये समय कैसे मिल जाता है? यह सभी काम असार व अनित्य हैं। जो नित्य रहने वाला कर्म है, उसके लिये समय नहीं मिलता। क्यों अपना जीवन नरक में जाने के लिये तैयार कर रहे हो? शर्म की बात है। ज्ञानी होते हुये भी अज्ञानी बनते जा रहे हो। गहरा दुःख है लेकिन क्या किया जाये? कोई मेरी सुन ही नहीं रहा है। समय सबको मिलता है। मैंने नौकरी की, तब मुझे एक लाख हरिनाम का समय कैसे मिल जाता था? सच्ची बात तो यह है कि हरिनाम में 100% श्रद्धा नहीं है। जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ मन का लगाव स्वतः ही होता है। झूठ–मूठ कहने से काम चलने वाला नहीं है। थाली सामने परोसी गई, फिर भी खाना नहीं चाहो तो परोसने वाला क्या करे! भूखे मरो! कर्मों को रोवो! समय चला जायेगा सिर पर हाथ रखकर रोवोगे। दिन में, (सूर्य भगवान् का अपराध), दोनों संध्या, पर्व, त्योहार, माहवारी, प्रातः, शाम, एकादशी, पूर्णमासी, मंगलवार, बेमन से, रुग्णावस्था, क्रोधवृत्ति व अप्रसन्नता की अवस्था में जो भी स्त्री–संग करता है, वह महान अपराधी होकर दुष्टों को जन्म देता है। वही सन्तान माँ–बाप तथा पड़ोसियों के दुःख का कारण बन जाती है। हरिनाम में इसका मन नहीं लग सकता। घर में कलि का प्रवेश हो जाने से कलह रहेगा। हरिनाम का अनुष्ठान करके स्त्री संग करो तो महात्मा जन्म लेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कोई किसी के दुःख का कारण नहीं है। स्वयं ने ही दुःख का बीज बोया है। काम का वेग भक्ति को नाश कर देता है। प्रेमावस्था को सुखा देता है। अतः संयम रखकर जो हरिनाम

करेगा, वही शरणागति–भाव को जागृत करेगा वरना धूलि में से तेल निकालना चाहेगा।

अब भी समय रहते समझ जावो, वरना दण्ड भोगना पड़ेगा। संयम तोड़ोगे तो रोगी हो जाओगे। हड्डियाँ गल कर निकलेंगी। फिर भजन बहत दूर की बात होगी। समझाते–समझाते, मैं तो थक गया, कब चेत होगा ? क्या सोते ही रहोगे ? एक दिन हमेशा के लिये सो जावोगे। कोई नहीं पूछेगा। अब खास बात बता रहा हूँ। सभी कहा करते हैं कि हरिनाम में मन नहीं लगता। लगेगा कैसे ? क्योंकि इसका लाभ किसी को मालूम ही नहीं है। लाभ मालूम हो तो नाम पर श्रद्धा अवश्य होगी। जब श्रद्धा होगी तो मन कहीं जायेगा नहीं। जब मन कहीं नहीं जावेगा तो एक अलौकिक–आनन्द की मस्ती अनुभूत होगी। मस्ती में झूमेगा। कभी हंसेगा। कभी सुस्त होकर पड़ा रहेगा। एक पागल जैसी स्थिति प्रगट हो जायेगी। निडरता आ जायेगी, जैसे प्रहलाद महाराज को आई थी। हरिनाम–महामंत्र की चार माला कान से सुनकर करने से अन्तःकरण में एक अलौकिक भगवत्–दर्शन होने लगेगा जिससे मन वहाँ से हटना नहीं चाहेगा। दिन रात आनन्दानुभूति हृदय में लहरें लेने लगेगी। यह अवस्था इसलिये नहीं हो रही है क्योंकि अन्तःकरण में संसार का कूड़ा–कर्कट भरा पड़ा है। चार माला करने से वह कूड़ा–करकट जलकर, अश्रुधारा में बहकर बाहर निकल जायेगा। चार माला क्यों नहीं हो रही है ? इसका कारण है–भक्तापराध। मान–प्रतिष्ठा की चाह में अहंकार छुपा रहता है। अहंकार भगवान् का शत्रु है। शत्रु से प्यार करना भगवान् से दूर रहना ही है। आप सभी Phone करते रहना तो सजगता रहेगी वरना आँखें बन्द हो जायेंगी। यह मैं उकसा नहीं रहा हूँ। इस तरह से ठाकुर जी ही मेरे माध्यम से आपको अपनाना चाहते हैं।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे
हे नाथ! नारायण वासुदेव

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
1.08.07

जय श्रील गुरुदेव

मन की सृष्टि का मुख्य विधाता है। जैसा संकल्प-विकल्प मन का होगा, वैसा ही सृष्टि का प्रादुर्भाव होगा। जब मन में हरिनाम का प्रवेश (आवेश) नहीं है अर्थात् मन एकमात्र हरिनाम नहीं करता है तो उस मन से शुद्ध सेवा भी होना निश्चय ही असंभव रहेगी। जो सेवा होगी, वह भौतिकी सेवा होगी न कि आध्यात्मिक सेवा।

आजकल हम देख भी रहे हैं कि प्रत्येक मंदिर में कथा-कीर्तन भी होता है, आकर्षणमय आयोजन भी होते रहते हैं, परन्तु मन का बदलाव कुछ भी नहीं हो रहा है। भगवत्-प्रेम अथवा ठाकुर की तरफ। मन का झुकाव होना चाहिये लेकिन झुकाव हो रहा है माया की तरफ आपस में लड़ना-झगड़ना, सोना, खाना, पैसा बटोरना और मौज उड़ाना-यही स्थिति प्रत्येक स्थान पर होती हम देख रहे हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है ? केवल मात्र हरिनाम की अवहेलना से। हरिनाम जो कलियुग का एकमात्र मुख्य धर्म है, उसे ठुकराने से। यदि साधक चौंसठ माला हरिनाम की नहीं करते तो सेवा, कथा कीर्तन के आकर्षणमय आयोजनों में कोई बल नहीं रहेगा। केवल दिखावामात्र ही रहेगा।

मेरे गुरुदेव ने जब संसार छोड़ने का मन किया तो वृन्दावन मठ में सभी शिष्यों को गुरु होते हुए भी आवेदन किया था कि जो हरिनाम को अधिक से अधिक अपनायेगा, वही मेरा खास प्यारा शिष्य व मेरी सेवा का अधिकारी होगा। यही पूरी चर्चा का मुख्य विषय था। तब से मैं उनकी कृपा-प्रार्थना कर, उनका आदेश

उनकी ही कृपा से पालन कर रहा हूँ। अन्यों को भी, जैसी मेरे मन की भावना है, अधिक से अधिक हरिनाम करने की प्रार्थना करता रहता हूँ। इसमें कोई भी मेरी शक्ति नहीं है। इसके पीछे केवल मात्र गुरु की कृपा तथा तीन लाख नाम का आशीर्वाद है। जिसको भी बोलता हूँ, तीन लाख नाम ही अपना प्रभाव डालकर उसके मन को हरिनाम में लगाता रहता है। बहुतों को लाभ भी हो रहा है। पंचम पुरुषार्थ– जो प्रेमावस्था है, वो तो बहुत दूर की बात है फिर भी साधकों को नाम की कुछ–कुछ उपलब्धि हो रही है। इसके पीछे गुरुदेव व मेरे पर कृपा बरसाने वाले संतों का तथा हरिनाम की प्रेरणा का हाथ है।

यदि सुचारु रूप से सेवा करनी हो तो मूल सेवा होगी–चौंसठ माला हरिनाम जप की। प्रत्येक साधक प्रेमपूर्वक मन लगाकर करें तो हरिनाम ही ठाकुर की शुद्ध–सेवा सभी से करवा लेगा। अब जो सेवा हो रही है, पैसे की तथा मान–प्रतिष्ठा की इससे ठाकुर को कोई लगाव ही नहीं है। अब तक की ठाकुर सेवा में कोई बल होता तो प्रत्येक धार्मिक स्थान भौतिक स्थल नहीं बनता। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। क्या हरिदास ठाकुर बाइस बाजारों में बेरहमी से पिटकर भी अपनी जिंदगी से हाथ नहीं धो लेता ? प्रहलाद जी, तो केवल पाँच वर्ष के बालक थे। उनके पिता बहुत बड़े सम्राट् थे। यदि वो चाहते तो अपने पुत्र को हाथों से पकड़कर, भींचकर खत्म कर सकते थे। उसका पिता मारने का हर उपाय कर के थक गया। क्या प्रहलाद का बाल–बांका कर सका ? उसका पिता स्वयं जिंदगी से हाथ धो बैठा!

मीरा एक अबला नारी थी, बेचारी बेसहाय थी। उसके जेठ ने उसे मारने की कोई कसर नहीं छोड़ी, क्या मार सका ? कहते हैं :–

"जिसको राखे साइयां, मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।।"

जब ऐसे–ऐसे ज्वलन्त उदाहरण हैं फिर भी मानव की आंख खुलती नहीं। बेहोश होकर सोता रहता है। बहुत बड़ा दण्ड मिलेगा।

कोई बचाएगा नहीं। अकेले को भुगतना पड़ेगा। देवता भी तरस रहे हैं कि हमें मानव देह मिल जाये तो हमारा यह आवागमन, जो दारूण दुःख का समुद्र है, छूट जावे। कितने दुःख की बात है! हमारा जन्म भी भारत में हुआ है, जहाँ भगवान आते हैं। फिर अच्छे कुल में हुआ। रहने के लिये अनुकूल स्थान भी मिला। संग भी अच्छा मिला। फिर उससे भी बड़ा सौभाग्य कि भगवान् ने सतगुरु रूप में आकर हमें अपनाया। सबसे बड़ा सौभाग्य कि हमने ऐसे कलियुग में जन्म लिया। जिसमें जप, तप ध्यानादि नहीं करना पड़ता। केवल घर में (वन में नहीं) रहना है। गर्मी में पंखे के नीचे तथा सर्दी में हीटर के पास, मकान में बैठकर, बड़ी आसानी से हरिनाम कर सकते हैं। इतनी सुविधा होते हुए भी आँख बन्द करके सोये हैं। इतना नुकसान कर रहे हैं, जिसकी कोई हद नहीं। अभी तो शरीर स्वस्थ है, नाम–धन कमा लो। रुग्ण होने पर खाट में पड़े–पड़े चिल्लाना पड़ेगा। नरक–भोग करना पड़ेगा। कोई साथ नहीं देगा, अकेले तड़पोगे।

शुद्ध नाम तब ही होगा, जब हम अन्य–अभिलाषा से शून्य होकर होंगे। भगवान् को पुकारो। कोई भी काम जब अपने सुख के लिए होगा तो काम तथा भगवान् के सुख के लिये होगा तो प्रेम। जैसे बच्चा माँ–माँ पुकारता है तो माँ को सुख होता है क्योंकि बच्चा माँ पर ही आश्रित रहता है। यदि भक्त, भगवान् के सुख के लिये पुकारता है, तो शरणागति बिन–बुलावे प्रगट हो जावेगी। जब शरणागति हो जायेगी तो भगवान् शरणागत के आश्रय बन जायेंगे।

श्री हरिनाम की एक माला भी यदि नाम को कान से सुनकर की जाए तो यह सोलह माला के बराबर होगी अर्थात् 1 माला=16 माला। इस तरह से चार माला करने पर यह 64 माला के बराबर होंगी यदि हरिनाम को सुनकर की जाएँ तो। यदि बिना कान के सुने हरिनाम होगा तो फिर एक माला की बजाय 16 माला ही करनी पड़ेंगी। 16 माला में, एक से डेढ़ घंटा समय लगेगा जबकि कान से सुनने पर एक माला अधिक से अधिक 10 मिनट में हो

जाती है। 4 माला 45 मिनट में हो जायेंगी। कान से हरिनाम को सुनना अधिक लाभदायक होगा। कान का न सुनना नुकसानदायक होगा। शिवजी नाम संख्या का प्रमाण घोषित करते हुए कह रहे हैं–"जासु नाम जप एकहिं बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।" कम संख्या में जपना अधिक लाभदायक है। हरिनाम को सुनकर के 4 माला से विरहाग्नि में जलना इसलिए घोषित किया गया है क्योंकि यह 64 माला के जपने से भी अधिक लाभप्रद है। 4 माला में अष्ट–सात्विक विकार प्रगट होंगे ही जबकि नाम को बिना कान से सुने 64 माला में भी कदापि नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमाकर देख सकता है। मेरी शत–प्रतिशत गारंटी है।

"जासु नाम जप सुनह भवानी। भव–बंधन काटहिं नर ज्ञानी।।"
"नाम–प्रसाद शंभू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।"
"नाम प्रभाव जान शिव जी को। कालकूट फल दीन अमी को।।"

विष, अमृत बन गया। जिस साधक को हरिनाम में रुचि हो गयी उसने अखंड, असीम सत्संग कर लिया। अनेक मंदिरों का ठाकुर–दर्शन कर लिया। अनेक तीर्थाटन कर लिया व अनन्त–पुण्य अर्जन कर लिया अर्थात् जो भी धर्मार्थ कर्म करना था, सभी अर्जन कर लिया। उसे अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पति हस्तगत हो गयी। अगर हरिनाम में रुचि नहीं हुई तो उक्त सभी धर्म–कर्म निरर्थक हो गये। उक्त धर्म–कर्म इसलिए अर्जन किये जाते हैं ताकि भगवत्–नाम में रुचि उत्पन्न हो जाये। भगवत्–नाम में सच्ची रुचि होना कोई कठिन काम नहीं, यदि थोड़ा सा अभ्यास किया जाये। इससे मायिक–आसक्ति धीरे–धीरे कम होती जायेगी व भगवत्–आसक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायेगी। मानप्रतिष्ठा व भक्त–अपराध से बचने पर शीघ्रातिशीघ्र भगवत्–प्रेम प्रकट हो जाता है। अन्य दुर्गुण अष्ट सात्विक विकारों में दग्ध हो जाते हैं तथा सद्गुण हृदय में उदय होने लग जाते हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती। हरिनाम–स्मरण के लिये मन को

एकाग्र करने हेतु तीन साधन

भक्त का भाव
कान का श्रवण } **मन**
जीभ का उच्चारण

1. जीभ का उच्चारण+कान का श्रवण+भक्त का भाव। भाव में प्रेम–रसास्वादन की कामना करनी चाहिए।

2. किसी सन्त के चरणों में बैठकर हरिनाम–स्मरण करना एवं उस सन्त की सेवा में स्वयं को नियोजित करना। जैसे–शरीर में मालिश, स्नान, तन को दबाना आदि। प्रसाद–पानी देकर सेवा करना। इसमें नाम श्रवण गौण होगा तथा ज्ञान नेत्र द्वारा सन्त–दर्शन मुख्य होगा। इससे हृदय में एक प्रकार की रील चलेगी।

3. किसी गौर–पार्षद द्वारा ठाकुर जी से सिफारिश करवाना। इसमें भी हृदय–मन्दिर में एक रील गठित होगी। इसमें भी हरि–स्मरण अर्थात् कान का श्रवण गौण होगा तथा ज्ञान नेत्र द्वारा दिव्य–दर्शन प्राप्त होगा।

ठाकुर या सन्त के नाम, रूप, गुण, लीला आदि में कोई अन्तर नहीं होता, चारों समान ही होते हैं।

भक्त, भक्ति, भगवंत गुरु, चतुर नाम वपु एक।
इन सबको वंदन किए, नाशें विघ्न अनेक।।

उक्त साधन करने से मन, मायिक–चिन्तन से बिल्कुल बच जाता है तथा दिव्य–दर्शन का लाभ स्वतः ही प्राप्त कर लेता है। भक्त का काल्पनिक संकल्प–विकल्प सत्यता के लिए होता है। हम धर्म शास्त्रों में देखते आ रहे हैं कि मानसिक रूप से फाग खेलने पर ठाकुर का डाला हुआ रंग प्रत्यक्ष में नजर आता है। गर्म खीर के भोग में अंगुली डालकर देखने पर प्रत्यक्ष में फफोले अंगुली पर नजर आने लगते हैं।

सन्त व ठाकुर का शरीर चिन्मय होता है, मायिक नहीं होता। सन्त पर दोषारोपण करना स्वयं को संकट में डालना है। जिस

प्रकार गंगा जी के जल में गन्दी नालियाँ आकर मिलने पर भी गंगाजल सदैव पवित्र रहता है, उसी प्रकार सन्त सदैव निर्मलता को प्राप्त किए रहता है।

भगवान् तो सन्त को अपना आराध्य देव घोषित करते हैं। इनके प्रति दोषारोपण करना महान अपराध है। यदि दोषारोपण होता है तो हरिनाम स्मरण समूल नष्ट हो जाता है। सोचना भी बड़ा खतरनाक है। अतः साधक को सन्त–दोषारोपण से बड़ी सावधानी से बचते रहना चाहिए तब ही उसे पंचम पुरुषार्थ–प्रेम की प्राप्ति हो सकेगी, विरहाग्नि जल सकेगी तथा अष्ट–विकार प्रकट हो सकेंगे। वरना लाख–लाख हरिनाम–स्मरण से भी कुछ लाभ प्राप्ति नहीं हो सकेगी। आजमाकर देखा जा सकता है।

कोई–कोई साधक कहा करते हैं कि हमारा मन एक माला में नहीं टिकता। यह इनकी बहुत बड़ी भूल है। संसारी काम में घंटों तक मन कैसे टिक जाता है ? वहाँ भी मन नहीं टिकना चाहिए। केवल बेपरवाही के अलावा कुछ नहीं है। अपना जीवन बर्बाद करना है। मानव जन्म दुबारा नहीं मिलेगा। फिर–चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाते रहोगे। ऐसा सुन्दर संयोग (मौका) मिला परन्तु यदि नासमझी से इसे बर्बाद कर दिया तो इसका दण्ड अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

सतयुग, त्रेता व द्वापर में साधक को अत्यंत परिश्रम करना होता था। तपस्या, यज्ञ तथा पूजा हजारों साल तक करने पर भी भगवत्–प्राप्ति नहीं होती थी लेकिन कलिकाल में घर बैठे, भगवत् प्राप्ति सहज में हो जाती है। सब साधन उपलब्ध होते हुए भगवत्–नाम नहीं होता तो कितनी मूर्खता है। रोना पड़ेगा, पछताना पड़ेगा। अब भी समझ जावो तो श्रेयस्कर हो सकता है। शरणागत का जीवन तो भगवान् स्वतः ही सुन्दर रूप से चलाते रहते हैं। उसको कुछ करना ही नहीं पड़ता। किसी न किसी के द्वारा हृदय में प्रेरित करते रहते हैं। फिर भी मानव समझ नहीं रहा है। अफसोस है, दुःख है, पर क्या किया जाए–इसका असीम दुर्भाग्य।

25

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
5.08.07

श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रतिदिन एक लाख नाम करने का भक्तों को आदेश

मैं अल्पज्ञ, मूढ़, अज्ञानी, अधम, भगवत्-संबंधी लेख लिखने में सक्षम नहीं हूँ परन्तु श्री गुरुदेव व भक्तों की कृपा परवश होकर ऐसा व्यसन हो गया है कि एक मात्र हरिनाम की महिमा को, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा प्रेरणा देकर, प्रेरित किया जा रहा है। अन्तःकरण में यह पूर्ण विश्वास जम गया है कि श्री गुरुदेव की कृपा से भक्तों की कृपा, मुझ अधम पर बरसती रहेगी। मेरा भजन-स्तर बढ़ता रहेगा। ऐसा प्रत्यक्ष में महसूस भी हो रहा है। प्रतिदिन तीन लाख नाम कोई भी अपनी शक्ति से नहीं कर सकता। इस नाम की कृपा से ही चंडीगढ़ में बहुत से भक्त एक लाख नाम करने में लगे हैं एवं उनको प्रत्यक्ष संसारी व आध्यात्मिक लाभ भी दिखाई दे रहा है। बारबार फोन आ रहे हैं कि हम आपको लेने आ रहे हैं। आपके बिना हमारा भजन-स्तर घटता जा रहा है।

मैंने कह दिया कि जन्माष्टमी पर आ सकता हूँ थोड़े दिनों के लिए क्योंकि गृहणी भी भक्त है, बीमार रहते हुये भी एक से डेढ़ लाख नाम नित्य कर रही है। उसके अपराध से मैं डर रहा हूँ। यह मुझे भेजना नहीं चाहती।

हरिनाम साध्य व साधन दोनों है

देखा गया है कि सभी धर्मावलम्बी-हिन्दु, सिख, मुस्लिम, ईसाई आदि माला पर प्रभु का नाम जपते रहते हैं। कलियुग में ही नहीं, चारों युगों में नाम का प्रभाव शास्त्रों ने घोषित कर रखा है-

**"चहुँ जुग, चहुँ श्रुति, नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।"**

यदि कोई साधक एक लाख नाम नित्य स्मरण करे तो नाम ही साधक की संसारी बाधा तथा आध्यात्मिक बाधा को दूर कर अपने में रुचि पैदा कर देता है। नाम में रुचि नहीं है, इसका खास कारण है– पूर्ण श्रद्धा की कमी। मन वहीं लगता है जहाँ उसे लाभ दिखाई देता है। इससे बड़ा कोई लाभ नहीं है।

**"लाभ कि किछु हरि–भक्ति समाना।
जेहि गावहिं श्रुति वेद पुराणा।।"
''हानि कि जग एहि समय किछु भाई।
भजिये न रामहिं नर तन पाई।।"**

–शिव वचन

साधक हरिनाम भी तब ही कर सकेगा जब यह वह अपराधों से तथा मान–प्रतिष्ठा से बचता रहेगा। भगवत्–संबंध जोड़े बिना भजन आरंभ ही नहीं होता। दास का, सखा का, माता–पिता आदि का भाव। माता–पिता के संबंध में शिशु का न अपराध होता है न मान–प्रतिष्ठा की चाह रहती है। अतः शीघ्र ही हरिनाम में रुचि बन जाती है। यह सम्बंध भी श्री गुरुदेव व ठाकुर जी देंगे, जब हरिनाम–संख्या अधिक होगी।

यह तो प्रत्यक्ष ही है, सभी जानते भी हैं कि गौरहरि जी ने अपने गृहस्थ भक्तों को आदेश दिया था कि जो गृहस्थ, नित्य चौंसठ माला जप करेगा, उसी घर में मैं भोजन करूँगा। यह एक बहाना था। इससे सभी भक्त एक लाख हरिनाम करने लग गए। गौरहरि जी को अच्छी तरह पता था कि चौंसठ माला में किसी का मन निरंतर लगेगा ही नहीं, परन्तु भगवत्–नाम ही अधिक संख्या में जपने से अपने में रुचि पैदा करा लेगा। भागवतादि शास्त्रों में लिखा भी है कि खाते–पीते, सोते–जागते, चलते–फिरते, फिसलते, खाँसते, उबासी लेते भी नाम उच्चारण होने से सुकृति अवश्य होती रहेगी। उक्त अवस्था में मन से नाम नहीं निकलेगा। इसी वजह से

गौर–हरि ने साधक को नाम में लगा दिया। अब मेरी भी सुन लो। श्री गुरुदेव ने मुझे भी स्वप्न में आदेश दिया कि तुम तीन लाख हरि–नाम नित्य किया करो तथा अन्यों को भी एक लाख नाम की प्रेरणा करो। यही मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी। मैंने निवेदन किया कि मुझमें ऐसी शक्ति नहीं जो एक गिरा हुआ प्राणी अन्यों को प्रेरणा दे सके। श्री गुरुदेव जी बोले, "भगवान् जी व तुम्हारा तीन लाख 'हरिनाम' ही अन्यों को हरिनाम जप करने को बाध्य कर देगा। तुम्हें केवल आग्रह करना है।"

मन लगाने के लिये एक माला ही काफी होगी। अधिक बोझ डालना उचित नहीं। एक माला में 1728 बार (16x108) भगवान् को पुकारना पड़ता है। तो भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर एक लाख भी करा देंगे, चाहे मन लगे या ना लगे।

"Chant Harinam Sweetly & Listen by Ears."

शिव जी ने कहा है :–

1. "सादर सुमिरन जो नर करहिं।
भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।"

2. "राम नाम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोई।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होई।"

3. "कर में तो माला फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाहिं।।"

जब संसार का काम ही बिना मन के बिगड़ जाता है तो बिना मन के हरिनाम कैसे सफल होगा ? उदाहरण के तौर पर मान लो– मेरे बहुत प्यारे दोस्त का पुत्र बहुत ज्यादा बीमार हो गया। वह डाक्टर की उधेड़बुन में था कि किसको दिखाऊँ। शहर में डाक्टर को दिखाना था। पत्नि से परामर्श कर रहा था। मैंने उसे कहा कि तुम शहर जा रहे हो तो मेरे लिये एक किलो अंगूर लेते आना। उसने कहा कि लेता आऊँगा। जब डाक्टर को दिखा कर लौट रहा था तो उसे याद आया कि मित्र ने कुछ मंगाया था परन्तु मैंने अच्छी तरह सुना नहीं, क्योंकि मैं चिंता में था। पत्नि को बोला कि तूने सुना

होगा क्या मंगाया था ? उसने कहा कि शायद बर्फी मंगाई होगी। उसने एक किलो बर्फी का डिब्बा लाकर मेरी मेज पर रखा और कहा कि ये रही आपकी बर्फी। मैंने देखते ही माथे पर हाथ मारा और बोला कि कर्म फूट गए। बुखार में बर्फी खाऊँ। अंगूर मंगाये थे। अंगूर शहर में मिलते हैं। कोई जाने वाला भी नहीं। अब मैं क्या खाऊँ ? बेचारा हक्का–बक्का रह गया। खिसकना भी मुश्किल हो गया। मैंने कहा कि घर क्यों नहीं जाते हो। यह बर्फी भी लेते जाओ और खुश होकर खाओ। अब विचार करना होगा कि जब बिना मन के संसार का काम ही बिगड़ जाता है तो बिना मन अर्थात् बिना कान के सुने हरिनाम कैसे सफल होगा ? फिर भी सुकृति तो होगी ही। इसी वजह से एक लाख नाम करना ही चाहिये।

मन का स्वभाव तो लगने का है परंतु साधक श्रद्धा कम होने से लगाना नहीं चाहता। एक परीक्षार्थी तीन घंटे तक मन को इतना लगा देता है कि यदि उसके पास कोई खड़ा हो तो उसे मालूम तक नहीं पड़ता कि उसके पास में कोई खड़ा भी है क्योंकि उस समय उसको मन लगाने में ही लाभ दिखाई देता है। जब पत्र लिखते हैं या कोई अंकों का जोड़ लगाते हैं तो भी पंद्रह बीस मिनटों तक मन कहीं नहीं जाता।

निष्कर्ष यह निकलता है कि साधक हरिनाम का लाभ नहीं समझता इसीलिये उसका मन डाँवाडोल रहता है। हरिनाम के बराबर संसार में कोई लाभ नहीं व मन से न जपने पर इसके बराबर त्रिलोकी में कोई नुकसान भी नहीं है। कहते हैं कि समय नहीं मिलता यह तो केवल बहाना है। समय सभी को मिलता है। प्रातःकाल जल्दी उठो। ग्राम्य–चर्चा मत करो। समय जरूर मिलेगा। जवानी में नाम को नहीं अपनावोगे तो बुढ़ापे में कई रोगों से ग्रसित होकर चिल्लाते रहोगे। फिर पछताने के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा।

मन का स्वभाव ही ऐसा है कि जहाँ उसको लाभ दिखाई देता है, वहाँ वह शीघ्र लग जाता है। नाम की कितनी कीमत है। संसार में देखा जाता है कि कोई आपस में मिलता है तो बोलते रहते हैं– राम–राम जी, जै गोपीनाथ की आदि–आदि क्योंकि नाम मुख में आने से धीरे–धीरे भाग्य उदय होने लगता है। अतः ऐसा रिवाज चला है। मैं असमर्थ हूँ। सुचारु रूप से मुझे लिखना भी नहीं आता। गाँव का एक गंवार कैसे लिख सकता है ? अपनी गाँव की भाषा में ही तो लिखेगा। अतः भक्तगण मेरी कमी पर नजर नहीं करके, लेख पर नजर रखें।

भक्त का हरिनाम में मन तब ही लग सकता है जब वह टी. वी. और अखबार से बिल्कुल सम्बंध तोड़ देगा। टी.वी. साक्षात् कलि का रूप है। इसने सारी मर्यादा का लोप कर दिया। शर्म खत्म कर दी। बदमाशी के अलावा कुछ शिक्षा नहीं देता। रहा अखबार जो इधर–उधर की चर्चा कर सबको भ्रमित करता रहता है। Mobile भी इसी का रूप है। गुप्त रूप में क्या–क्या करवाता रहता है। इससे तो थोड़ा संपर्क रखना ही होगा। जरूरी काम इससे शीघ्र हो जाते हैं। इनमें भक्त की फंसावट होना स्वाभाविक ही है।

हरिनाम अधिक जपने से अर्थात् एक लाख से तीन लाख तक जपने से यह हरिनाम ही अष्ट–विकार जागृत कर देगा। शरणागति–भाव तब ही उदय होगा। जब अष्ट–विकार जागृत होगा तब संसार अन्तःकरण से निकलेगा। नाम ही की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। बहुत सत्संग भी किया। बहुत शास्त्र–पठन भी किया। बहुत साधु–संग भी खूब की लेकिन हरिनाम अधिक संख्या में नहीं हो रहा है। इसका क्या कारण है ? इसका केवल मात्र एक ही कारण हो सकता है– भक्त–अपराध! पिछले जन्मों का तथा इस जन्म का। मान–प्रतिष्ठा की भूख अन्तःकरण में लगी है। भगवत्–प्रसाद को प्रसाद समझ कर नहीं लिया। इन्द्रिय तर्पण कर प्रसाद–सेवन किया। मन्दिरों में जहरीला दान भी आता है। ठाकुर

तो पचा सकता है परन्तु साधारण व्यक्ति नहीं पचा सकता। भगवान् घोषणा कर रहे हैं–

"कोटि विप्र वध लागहि जाहू।
आये शरण तजहुँ नहिं ताहू।।"

भक्त थोड़ा भी भगवान को पुकारेगा तो क्या भगवान् नहीं सुनेगा? भगवान् को पुकारने से श्रद्धा बढ़ती है। पहली भक्ति है–नाम सेवा, दूसरी है मठ–मंदिर–सेवा, गुरु–सेवा आदि–आदि। यदि दोनों साथ–साथ हों तो शरणागति का भाव आने में देर नहीं होगी।

मन्दिरों में देखा जा रहा है कि सभी साधक सेवा में रत रहते हैं परन्तु माला को हाथ में लेना नहीं चाहते। सेवा, सात्विक न होकर तामसिक–राजसिक हो रही है। कठपुतली सेवा होती है। माला तो दूर की बात है, आरती में भी आना मुश्किल है। घर छोड़ा, भाई–बन्धु छोड़े, फिर भी भजन से अति दूर। भजन–गीति सभी प्रकार से ठाकुर–प्राप्ति का साधन बता रही है। इसे गौर से पढ़ो भगवत–चरणों में मन लगाने का साधन अर्थात् हरिनाम में मन कैसे लगे, सब कुछ समझ में आ जावेगा।

(क) हरिनाम को कान से सुना जाये। परंतु कहते सुना गया है कि थोड़ी देर बाद मन भाग जाता है। यह तो स्वाभाविक है। मैं मानता हूँ। जब निरंतर हरिनाम में मन लग जाता है तो जीभ तथा कान का घर्षण होता है। यह घर्षण ही विरहाग्नि प्रगट कर देता है। ऐसा सत्य–सिद्धान्त है। क्या भगवान् निर्दयी हैं? जो सुनेंगे नहीं? भगवान् तो दया के समुद्र हैं जब जीवात्मा उन्हें बार–बार पुकारती है तो वह रह नहीं सकते, दौड़े चले आते हैं। कोई भी आजमाकर देख सकता है, लेकिन वही आजमाएगा जिसको भगवान् की जरूरत है।

"मम गुन गावत पुलक सरीरा
गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"

''ताकि करूँ सदा रखवारी।
जिमि बालक राखहिं महतारी।।''

जब पुलक होगा व अश्रुधारा बहेगी तो भगवान् अश्रुधारा में बहकर अन्तःकरण में से बाहर प्रगट हो जायेंगे।

(ख) मन, क्रम, वचन कपट तजि, जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।

राम जी की उक्त घोषणा कितनी श्रद्धा उत्पन्न कर रही है! भगवान् का खास रहने का स्थान है–सन्तों का हृदय–कमल। साधक जब भी हरिनाम पर बैठे तो अपने गुरु चरणों में बैठकर हरिनाम शुरू करे। इसके बाद श्री माधव महाराज जी, श्री प्रभुपाद जी, श्री गौर किशोर दास बाबा जी, श्री भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्री जगन्नाथ बाबा जी तथा अन्य कितने ही गुरु वर्ग हैं जिनके चरणों में बैठकर स्मरण कर सकता है क्योंकि मन को कोई आधार चाहिए। अतः इस प्रकार हरि–स्मरण करता रहे। मन अवश्य रुकेगा। सन्त दयालु होते हैं, कृपाकर मन लगा देते हैं। भगवान् साधक को सन्त के हृदय से देखते रहते हैं।

(ग) हरिनाम–स्मरण करते हुए धाम का दर्शन मानसिक रूप से करते रहो। जैसे नाम कर रहे हो और गिरिराज गोवर्धन की सात कोसी परिक्रमा कर रहे हो। राधा–रमण व बाँके बिहारी का दर्शन कर रहे हो। यमुना–स्नान कर रहे हो। तट पर बैठ कर नाम–स्मरण कर रहे हो। बरसाना, नंदगांव, गोकुल में जाकर घूमना शुरू कर दो। मन लगाने का बहुत मसाला है यदि कोई साधक प्रयास करे तो।

(घ) 24–अवतारों की अनन्त लीलाएँ शास्त्रों में हैं, उन अवतारों की लीलाओं का ध्यान कर नाम स्मरण करते रहो। धीरे–धीरे आनंद आवेगा तो संसार का आनंद फीका पड़ता जायेगा। राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, कपिल, कच्छपादि अवतारों को स्मरण करो।

(ङ) गौर हरि का विरह–विलाप, जो नीलाचल में होता रहता है, उसका ध्यान कर हरिनाम स्मरण कर सकते हैं। नवद्वीप धाम में विचरण कर नाम–स्मरण हो सकता है। पंच–तत्व से प्रार्थना कर सकता है, उनसे सिफारिश करवा सकता है। शची माँ, देव विष्णु प्रिया जी के चरणों में जाकर रो सकता है। गौरहरि को निताई से सिफारिश करवा सकता है। गौरहरि की अनेक लीलाओं का ध्यान कर नाम–स्मरण कर सकता है। त्रिलोकी को आँख के इशारे से खत्म करने वाला वह कन्हैया, यशोदा माँ की छड़ी से डर के मारे काँपता रहता है, यहाँ तक कि पेशाब भी कर देता है।

सन्तों के जीवन चरित्र स्मरण कर, हरिनाम स्मरण कर सकता है। न जाने कितने ही मन को लगाने के तरीके हैं पर यदि कोई चाहे तो। मसाला कम नहीं है, सीमा रहित है।

हरिनाम ही इस युग का तारक व पारक मंत्र है। शीघ्र अपना लो तो सर्वोत्तम है। जो समय जा रहा है वह लौटकर कभी नहीं आता। अब भी आरंभ करना श्रेयस्कर होगा। मौत सिर पर नाच रही है, अचानक आकर निगल जावेगी।

भजन गीति के 29वें पेज पर सम्बंध–ज्ञान या भक्तों की शरणागति बहुत अच्छी तरह समझ में आ जाती है। इससे भजन–स्तर बढ़ने में सहायता मिलती है।

अपराधशून्य ह'ये लय कृष्णनाम।
जबे जीव कृष्णप्रेम लभे अविराम।।

यदि जीव अपराधशून्य होकर कृष्णनाम लेता है तो वह बिना किसी बाधा के कृष्णप्रेम प्राप्त करता है।

श्रेयस्तत्रहितं वाक्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम्
(विष्णु पुराण 3.12.44)
परमार्थ विषय में यद्यपि अत्यन्त अप्रिय वाक्य हों तो भी मंगलकारी हैं।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

26

छींड की ढाणी
13.07.07

विरही सन्त को स्वयं भगवान् लेने आते हैं

"सतजुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावहिं लोग।।"

समाधान एक दम साफ है कि कलियुग में केवल मात्र हरिनाम से ही उद्धार होना सम्भव है। दूसरा कोई भी साधन नहीं है। अनन्त–कोटि ब्रह्माण्डों में जब भी कलियुग का समय होगा तो हरिनाम (हरे कृष्ण–महामन्त्र) ही जन्म–मरण रूपी दारूण दुःख से छूटने का साधन होगा।

सतयुग में हजारों साल ध्यान द्वारा तप करो। अपने तन, मन को कसो। सर्दी, गर्मी, बरसात, भूख–प्यास को सहन करो तब भी भगवान् को निश्चित तौर पर प्रसन्न कर लेना सम्भव नहीं है। त्रेता युग में यज्ञ करो। सामग्री इकट्ठी करो। सद् ब्राह्मणों से प्रार्थना करो। शुद्ध घी, समिधा जुटा लो। बहुत बड़ा आयोजन करने पर भी यज्ञ यदि पूरा हो जाए तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। यज्ञ भी कई प्रकार के होते हैं। यदि मंत्र शुद्ध न बोला जाए तो अनिष्ट होने की आशंका रहती है। यज्ञ कराने वाला भी नष्ट हो सकता है। द्वापर में प्रेम सहित भगवान् का अर्चन (पूजन) करो। यदि मन, तन शुद्ध नहीं तो अर्चन भी व्यर्थ हो जाता है।

अब रहा कलियुग का समय। इसमें कोई भी अनिष्ट होने की आशंका नहीं है। कैसे भी, कहीं भी, शुद्ध हो या अशुद्ध हो–हरिनाम का उच्चारण करते रहो। घर में रहो। गर्मी हो तो पंखा चला लो, सर्दी हो, हीटर चला लो। बरसात हो, अंदर बैठकर स्मरण करते रहो। चलते–फिरते, सोते–जागते, खाते–पीते, गिरते–पड़ते, कैसे

भी हरिनाम लिया जाए तो सुकृति इकट्ठी होती रहेगी। यह सुकृति भगवान् को प्रसन्न करने से संत से मिला देगी। यदि मर गया तो आगे के जन्म में सद्गुरु से भेंट करवा देगी। संत भगवान् को प्राप्त करने का मार्ग बता देगा। कितना सरलतम साधन है। परन्तु अभागा मानव, अपना जीवन व्यर्थ में खर्च कर, अंत में चौरासी लाख योनियों में भटकने को चला जाता है। भगवान् गारंटी ले रहे हैं–

"कोटि विप्र बध लागहिं जाहूँ। आए शरण तजहुँ नहीं ताहूँ।।"
"सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासंहु तबहिं।।"

सन्मुख होना तथा शरणागत होना क्या है ? इसका आशय है 'हरिनाम' को अपनाना। इसको जिसने महत्व नहीं दिया, उसकी धाम–सेवा, ठाकुर सेवा, भक्त का प्यार संबंध, सब सारहीन हैं। हरिनाम को अधिक संख्या में करना होगा अर्थात् एक लाख तो कम से कम है। जैसे कि चैतन्य महाप्रभु जी ने सब भक्तों को आदेश दिया है–मन लगे, न लगे, जपना ही होगा। भागवत् में घोषणा की गई है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, सोते–जागते, यदि नाम जबरन भी निकल जाए तो भी लाभप्रद है।

भगवान् की प्रथम सेवा है–हरिनाम करना। दूजी सेवा है–ठाकुर सेवा–अर्चनादि अथवा मठ सेवादि, भक्तों से प्रेम–संबंध, तब शरणागति का प्राकट्य होगा। भगवान से सन्मुखता होगी तो मठ–सेवा होगी। परन्तु हरिनाम मन से नहीं होगा तो भगवान् से प्रीति नहीं होगी।

कहने को नित्य पाठ–कीर्तन होता है तो भी आजकल मन्दिरों में भजन–स्तर गिरता जा रहा है। इसका कारण है–राजसिक व तामसिक सेवा। इसके पीछे है पैसा व मान–प्रतिष्ठा की भावना। सात्विक–सेवा होने से भजन–स्तर अवश्य बढ़ेगा। भगवान् का प्रसाद भी इन्द्रियतर्पण के लिए पाया जाता है। हरिनाम लेते हुए प्रसाद पाना चाहिए। इससे मन शुद्ध होकर भगवान् की तरफ आकर्षित होगा।

हरिनाम सर्वशक्तिमान है। यह सब कुछ निर्गुणता से करवा देगा। हरिनाम मूल है यदि इस में हरिनाम जप रूपी पानी नहीं दोगे तो मंदिर–सेवा तथा भक्त की सेवा सूखी ही रह जाएँगी। प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। जहाँ हरिनाम–स्मरण की प्रधानता नहीं, वहाँ दोनों सेवाएँ प्रभावहीन हो रही हैं।

गुरुवर्ग के समय में हरिनाम की प्रधानता थी। तब सेवा तथा आपस का प्रेम ठीक से चलता था। हरिनाम की प्रधानता होने से स्वतः ही शरणागति भाव उदित होने से ठाकुर सेवा तथा आपस का प्रेम स्वतः ही होने लग जाता है। यदि ऐसा नहीं है तो भजन का लाभ भी नहीं है, केवल दिखावा है।

हरिनाम में रुचि पैदा करने के लिए शुद्ध आचार–विचार परमावश्यक है। यदि भगवत्–प्राप्ति ही साधक का अंतिम ध्येय हो तो साधक समय को बड़ी सावधानी से खर्च करेगा। भगवत्–नाम व चिंतन के द्वारा समय को अपनाएगा। सीमित भोजन करेगा व सीमित शयन करेगा। संसार से सीमित संबंध रखेगा। ग्राम्य–चर्चा से दूर रहेगा। पठन–पाठन में तथा हरिनाम में स्वयं को नियोजित रखेगा। अष्ट–प्रहर आध्यात्मिक भावों में रहेगा। तब ही उसके अंतःकरण से संसार हटने लगेगा। सद्गुण आकर रमने लगेंगे तथा दुर्गुणों का लोप हो जाएगा।

जब इस लोक से जाने का समय होगा तब भगवान् स्वयं अपने प्रेमी–शरणागत भक्त को लेने आएंगे। दिव्य–देह से अपने धाम में ले जाकर धूमधाम से स्वागत करेंगे। जैसा भक्त का भाव होगा, वैसी सेवा में भगवत्–चरणों में लग जाएगा।

भगवान जी हमारे माँ–बाप हैं। जीव ने उनको छोड़ कर माया को माँ–बाप बना रखा है। अतः दुःख पर दुःख भोग रहा है। मौसी किसको निहाल करती है ? अपना शिशु हो तो प्यार करे। दूसरी माँ के शिशु को क्यों प्यार करने लगी। शिशु माँ की शरणागत होता है

और माँ को उसका हर क्षण ध्यान रहता है। इसी प्रकार भक्त जब शरणागत होता है अर्थात् उसका नाम पुकारता है तो भगवान् उसका हर क्षण ख्याल रखते हैं। बिना हरिनाम के शरणागति का भाव कभी आ नहीं सकता। अतः नाम–स्मरण बिना साधक दुखी ही रहता है।

रामायण का असली नाम है। 'राम चरित मानस'। यह शिवजी के मन से प्रगट हुई है। इसीलिये इसका नाम मानस हुआ। वाल्मीकि मुनि जी ने जब हृदय में अष्ट प्रहर राम–नाम स्मरण किया तब यह उनके हृदय में प्रगट हुई तथा तुलसीदास जी ने कलि के जीवों के हेतु इसे सरल भाषा में लिख दिया ताकि सभी अल्पज्ञ जीव इसे समझ लें।

"संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा।।"
"कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी। जेहिं विधि शंकर कहा बखानी।।"
"राम चरित मानव मन भावन। विरचेऊ शंभु सुहावन पावन।।"

बे–मन से अर्थात् विवश होकर भी यदि मुख से हरिनाम निकल जावे तो अनेक जन्मों के पाप जलकर राख हो जाते हैं। यह बात शिवजी रामचरित मानस में बता रहे हैं।

स्वयं उमा को साथ लेकर अष्ट–प्रहर राम–स्मरण करते रहते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने भी सभी भक्तों को आदेश दिया है कि जो 64 माला (एक लाख नाम) नित्य स्मरण करेगा, उसी के घर जाकर प्रसाद पाऊँगा। एक लाख नाम लेने वाले पर नाम ही कृपा कर देता है। मन स्थिर हो न हो, धीरे–धीरे नाम ही रुचि पैदा कर देता है। हरिनाम के अभाव में न मठ की सेवा सफल होती है और न भक्तों से प्यार का संबंध होता है। न अपराध से बचा जा सकता है, न मान–प्रतिष्ठा से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है। हरिनाम ही इन दुर्गुणों को दूर करता रहता है तथा सद्गुणों को अंतःकरण में जमा करता रहता है।

प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि वृद्ध–गुरुवर्ग खटिया में पड़े–पड़े हरिनाम माला को नहीं छोड़ते। मरते दम तक माला हाथ से दूर नहीं होती। पूजा–पाठ, अर्चन, कीर्तन से दूर रहकर तैलधारावत्, सदा हरिनाम में लीन रहा करते हैं क्योंकि कलियुग का केवल मात्र धर्म–कर्म, हरिनाम–स्मरण ही है। इसी से भगवान् भक्त के अधीन हो जाते हैं।

द्वापर, में अर्जुन जब सोता था तो उसके रोम–रोम से हरिनाम अर्थात–'कृष्ण' 'कृष्ण' की ध्वनि निकलती रहती थी। कितने उदाहरण दिए जाएँ, कोई अंत नहीं। जिसने हरिनाम की शरण ली है, उसने इस लोक में तथा मरने के बाद परलोक में भी सुख भोग किया है। "न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू।।" "राम राम कहि जे जमुहाहिं। तिनहिं न पाप पुन्ज समुहाहिं।।" कितनी गारंटी है कि यदि उबासी लेते भी नाम मुख से निकल जाए तो पापों का ढेर जलकर भस्म हो जाएगा।

"राम नाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद् गावा।।"
"जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।"
''जिन कर नाम लेत जगमाहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।''
"सुनहु राम का सहज सुभाऊ।। जन अभिमान न राखहिं काऊ।।"

मौत सिर पर खड़ी है, अब भी समझ जाओ। मानव जन्म अब आगे नहीं मिलेगा। चौरासी में फिर से जाना पड़ेगा। मौका चूकने से गहरा पछताना पड़ेगा। कोई किसी का नहीं है। न कोई साथ जाएगा। अकेला अपने कर्मों की गठरी लाद कर ले जाएगा। फिर पीछे पछतावेगा। खाना पीना तो पशु–पक्षी भी करते हैं। इस खाने–पीने के पीछे अमूल्य समय व्यर्थ न करो। संसार दुःखालय है। प्रत्यक्ष में देखकर भी अंधे हो रहे हैं। क्या किसी को सुखी देखा है ? स्वयं का पुत्र ही पिता को सजा दे रहा है। माँ को ठोकरों से मार रहा है। अपने–अपने कर्मों का भोग स्वयं को ही भोगना पड़ता है, कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता। अपने शुभ–अशुभ कर्म ही सुख–दुःख देते रहते हैं; दूसरों को दोष देना मूर्खता है।

सबसे सर्वोत्तम कर्म है कलियुग में हरिनाम स्मरण करते रहो। हर क्षण सुखी रहोगे। भगवान् हर क्षण तुम्हारी देखभाल करेंगे जैसे मीरा की, प्रहलाद की, आदि आदि।

नाम की कीमत शिवजी ने जानी है–

"नाम प्रभाव जान शिव जी को। कालकूट फल दीन्ह अमी को।।"

"नाम प्रसाद शंभु अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।"

"उल्टा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।।"

''शुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।"

''सगुण उपासक, पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।।''

''ते नर प्राण समान मम। जिनके द्विज पद प्रेम।।"

''सुन उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।"

शास्त्र में गारंटी के कई उदाहरण हैं, तब भी साधक को पूरी श्रद्धा नहीं होती। इसका खास कारण है–अपराध बहुत हैं। भगवान् के सिवाय सभी प्राणियों में दुर्गुण हैं, अतः दुर्गुणों की तरफ न देखकर उसके गुणों की तरफ देखना श्रेयस्कर है। साधक का खास उद्देश्य भगवत्–प्राप्ति का है जो सर्वोत्तम ध्येय है। किसी का भी दोष देखना भगवान् को सुहाता नहीं है, अतः भगवान् हरिनाम अर्थात् अपना नाम, उसकी जीभ पर आने नहीं देते, क्योंकि साधक उनके प्यारे का दोष देखता है। नाम व भगवान् दो नहीं, एक ही हैं। अतः भगवान् दोष देखने वाले से दूर हो जाते हैं। लोग कहते रहते हैं–'मेरा मन हरिनाम में बिल्कुल नहीं लगता, आप कृपा करो।' ऐसे व्यक्ति पर कोई भक्त यदि कृपा भी करे, तो भी भगवान् उस सिफारिश को मानते नहीं। वे कहते हैं, साधक स्वयं को तो सुधारे। स्वयं तो खड्डे में गिरे, फिर भक्त उसको कैसे बचा सकता है? जानबूझ कर गिरना चाहे तो उसे कौन बचा सकता है। फिर कहते हैं कि भगवान् सुनता नहीं। सुन भी नहीं सकता क्योंकि भक्त आपको जैसा करने को कहते हैं, वैसा करने को तो तैयार नहीं। उक्त लेख भगवत् प्रेरणा से लिखा गया है। मैं अल्पज्ञ लिखने में सक्षम नहीं हूँ।

27

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

मंदिरों में भक्ति के लोप का कारण

माला हरिनाम-जप-स्मरण संकीर्तन तथा चौंसठ माला हरिनाम-जप-स्मरण की अवहेलना।

महाप्रभु गौरहरि जी ने अपने भक्तों को आदेश दिया कि जो भी चौंसठ माला हरिनाम की करेगा, उसके घर पर जाकर प्रसाद पाया करूँगा। महाप्रभु जी को अच्छी तरह मालूम था कि चौंसठ माला में किसी का मन नहीं लग सकता, परंतु बिना मन भी जो करेगा, उसका मंगल होना निश्चित ही है।

जैसे शिवजी उमा को कह रहे हैं :-

"बिबसहुँ जासु नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।"

विवश होकर भी किया भगवत् नाम मंगलदायक होता है। श्रीमद् भागवत में भी लिखा है कि जो जबरन भी जिसके मुख से नाम निकल जायेगा, तो उसका भी कल्याण निश्चित है। तब ही गौरहरि जी ने ऐसा आदेश सबको दिया है। ऐसा एक नियम चल रहा है कि आपस में मिलने पर राम-राम, राधे-राधे आदि हरिनाम मुख से निकालते रहते हैं। मठों में आपस में प्रेम की हवा भी नहीं है। इसका खास कारण ठाकुर जी ने प्रेरणा कर लिखवाया है कि भगवत्-भक्ति रूपी पेड़ की जड़ के खड्डे में यदि हरिनाम रूपी पानी बहुतायत से गिरता रहे, तो पेड़ की शाखा, पर शाखा रूपी ठाकुर सेवा (भक्ति) तथा भक्तों में प्यार का सम्बंध रूपी टहनियां, पत्ते, फल फूल रूपी भक्तों के सौहार्द का सम्बन्ध चिरकाल तक स्थिर रहेगा। पेड़ को उगाने वाले को परमानन्द रूपी अलौकिक फल क्षण-क्षण में प्राप्त होता रहेगा।

यदि हरिनाम रूपी जल भगवद्-भक्ति रूपी पेड़ में नहीं सींचा गया तो वह ठाकुर-सेवा रूपी शाखा, पर शाखा रूपी टहनी, पत्ते,

फल, फूल इत्यादि से वंचित रह जायेगा। एक दिन भक्ति रूपी पेड़ सूखकर गिर जायेगा। भक्ति रूपी फलों से हाथ धोना पड़ेगा। भक्ति रूपी फल की उपलब्धि न होने पर शरीर में विटामिनों की कमी से शरीर रूपी साधक रोग–ग्रस्त हो जायेगा अर्थात् विषयों की ज्वाला से उसका तन–मन, जर–जर होकर गिर पड़ेगा। धार्मिक स्थलों रूपी बीहड़ जंगल में सेवक, सूखे बांसों का झुरमुट (विषयों) रूपी आंधी में आपस में टकराकर अपने ध्येय से वंचित हो जायेगा।

हरिनाम–स्मरण रूपी भक्ति–रस में सींचे हुये सेवक वर्ग में काम अग्नि का स्पर्श हो ही नहीं सकता। कलि का धर्म, जो नाम का संकीर्तन व जप है, साधक को उससे अलग होकर केवल खाना–पीना, सोना, मौज उड़ाना ही केवल मात्र धर्म रह जायेगा। विषयों की ज्वाला प्रत्येक साधक में भड़कती रहती है। यदि प्रत्येक साधक चौंसठ माला जप करने लग जाये तो उनका सौभाग्य उदय हो जावे। प्रत्येक मठ साधक यदि चौंसठ माला करने लग जाये तो शत–प्रतिशत ढांचा ही बदल जाये। गुरुवर्ग के समय में सभी हरिनाम–स्मरण पर जोर देते थे तो भक्ति महारानी नृत्य करती थीं। हरिनाम न होने से हर साधक के हृदय में विषयों की ज्वाला धधक रही है। कई साधक तो हाथ में माला तक नहीं पकड़ते। कीर्तन में भी गिने–चुने ही बैठते हैं।

कलि का प्रथम धर्म है– हरिनाम–स्मरण को अपनाना। हरिनाम को अपनाने से ही ठाकुर की शुद्ध सेवा (भक्ति) हो सकती है। यदि नाम नहीं है तो सेवा केवल कपट होगी। आपस में प्रेम नहीं होगा। क्रोधाग्नि हृदय में जलती रहेगी। कपट–सेवा होगी केवल पैसे की तथा मान–प्रतिष्ठा की। इससे ठाकुर जी कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? ठाकुर जी यदि प्रसन्न होते तो क्रोधाग्नि बुझ जाती।

गौरहरि दक्षिण यात्रा पर जाते समय सबसे बोले–मैं अकेला ही जाऊँगा। श्री नित्यानंद ने कहा–"आप अकेले जावोगे तो आपके दोनों हाथ तो माला व नाम संख्या में रुके रहेंगे; बर्हिवास (अंगवस्त्र)

दण्ड कौन सम्भालेगा ? अतः किसी एक को साथ ले जाना होगा। आप बेहोश भी हो जाते हो। अतः हम अकेले नहीं जाने देंगे।"

महाप्रभु जी ने स्वयं हरिनाम जप की जगत् को शिक्षा दी कि हर समय माला जपनी चाहिये। पर साधकगण, इससे वंचित रहते हैं।

हरिनाम व जप भी श्री कृष्ण की प्रीति व खुशी के लिये होना चाहिए। जैसे शिशु जब मां–मां पुकारता है तो मां को अपार खुशी होती है। इसी प्रकार सभी तो भगवान के शिशु हैं। जब भक्त उनको पुकारता है तो उनको बहुत खुशी होती है। लेकिन नाम–जप अपने सुख के लिये किया जाता है। मेरा परिवार सुख–शांति में रहेगा। धन मिल जायेगा। तन–मन खुश रहेगा, आदि–आदि। गोपियाँ इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। वे कृष्ण की प्रीति के लिये सब काम करती थीं। अपने लिये कुछ नहीं करती थीं। यही है शुद्ध भक्ति। दूजी भक्ति तो अन्याभिलाषमय होती है।

चौंसठ माला स्मरण करने से अपराधों का मार्जन भी होता रहता है। अतः सभी को चौंसठ माला करनी चाहिये। धीरे–धीरे नाम ही प्रेम की अवस्था तक पहुँचा देगा। अपनी शक्ति से कोई भी पांचवां पुरुषार्थ (श्री कृष्ण–प्रेम) नहीं पा सकता। जप का उद्देश्य केवल मात्र भगवत् प्राप्ति ही होना चाहिये, तब ही प्रेम की अवस्था तक पहुँच पायेगा। जब भगवत्–प्राप्ति का ध्येय होगा तो वह ग्राम्य चर्चा व अखबार टी.बी. इत्यादि से दूर रहेगा।

श्री चैतन्य अवतारे बड विलक्षण
अपराधसत्त्वे जीव लभे प्रेमधन।।

श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतार में एक बहुत विलक्षण बात है कि अपराध रहने पर भी जीव प्रेम–धन को प्राप्त कर लेता है।

28

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18.8.07

निष्काम भक्ति

श्री गुरु देव जी का जब धाम पधारने का समय आया तो श्री गुरुदेव जी ने वृन्दावन के मुख्य मठ में प्रवचन किया। उस समय मैं वहाँ पर मौजूद था। उन्होंने गुरु होते हुए भी सभी शिष्यों से आवेदन किया कि जो हरिनाम को श्रवण करके, अधिक से अधिक जपेगा, वही मेरा प्यारा शिष्य होगा। उन्होंने यह तो नहीं कहा कि जो ठाकुर जी का अर्चन-पूजन करेगा, वह मेरा प्यारा शिष्य होगा। वे जानते हैं कि हरिनाम से हृदय निर्मल बनेगा तो भगवान् के प्रति प्रेम का आविर्भाव होगा। तभी ठाकुर जी की सात्विक सेवा अपने आप होगी।

चैतन्य चरितामृत के 201 पेज पर लिखा है कि प्रेम के बिना ठाकुर जी की सेवा-भक्ति नीरस होगी। इससे भगवान् को सुख नहीं होता। भक्त के हृदय में प्रेम नहीं होता तो भगवान् में सेवा लेने की वासना ही जागृत नहीं होती। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जब तक साधकगण हरिनाम श्रवण को नहीं अपनाएँगे अर्थात् 64 माला नहीं करेंगे, तब तक शुद्ध ठाकुर-सेवा होनी असम्भव ही है। भजन में गिरावट निश्चय ही रहेगी। देखा गया कि बहुत से साधक मन्दिरों में रहते हुए भी हाथ में माला तक नहीं पकड़ते। ठाकुर-आरती में तथा संकीर्त्तन में नहीं बैठते। खाना-पीना, सोना, मौज उड़ाना ही उनके जीवन की शैली बन गया है। तभी ऐसे स्थानों पर भी कलि का प्रवेश होकर भौतिकवाद का बोलबाला हो रहा है। पैसा व मान-प्रतिष्ठा का दौर चल रहा है।

जहाँ ठाकुर जी का सुख-विधान नहीं, वहाँ पर कपट का व्यापार रहता है। भक्त-सेवा यदि दिखाने की भी हो, तो भी ठाकुर

को वहाँ सुख होता है। यदि भक्त–सेवा हृदय से होगी तो ठाकुर, सेवाकारी पीछे–पीछे घूमते हैं। ऐसा शास्त्र का वचन है।

नाम–श्रवण भी यदि ठाकुर जी के सुख के लिए होगा तो वह शुद्ध भक्ति की श्रेणी में आयेगा। इस भावना से नाम श्रवण करना चाहिए कि नाम लेने से मेरे ठाकुर जी को सुख मिलता है। ठीक वैसे ही, जैसे बच्चा माँ–माँ करता है, तो माँ को सुख मिलता है। मैं ठाकुर जी का नाम–श्रवण करूंगा तो लोग मुझे भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुखी व समृद्ध हो जाएगा इस प्रकार अन्य–अभिलाषा रहने से प्रेम नहीं काम की श्रेणी में आ जाएगा। परन्तु न करने से तो यह भी उत्तम है। पतिव्रता स्त्री यदि पति के सुख के लिए सभी काम करती है तो वह सती श्रेणी में आती है। शिष्य, यदि गुरु जी के सुख के लिए सब काम करता है तो वह गुरु–निष्ठ श्रेणी में आ जाता है। भगवान् अपने भक्त के अधीन रहते हैं। गोपियाँ जो भी कर्म करती थीं, नन्दलाल के सुख के लिए करती थीं तो भगवान् का मन गोपियों से हर समय प्रसन्न रहता था। गोपियों के बिना नन्दलाल का मन लगता ही नहीं था इसीलिए उन्हें रासलीला का आयोजन करना पड़ा।

इसी प्रकार यदि मंदिरों की सेवा भगवान् के सुख के लिए होगी, तब ही वहाँ के रहने वालों का सुख–विधान हो सकेगा। यह तब ही होगा जब वहाँ रहने वाला प्रत्येक साधक–भक्त–हरिनाम–महामंत्र की 64 माला श्रवण पूर्वक कीर्तन करेगा। इसके अभाव में ऐसे स्थानों की स्थिति सुधारना असंभव ही है। मन्दिरों में पैसा भी हर प्रकार का आता रहता है। जिसको खाने से मन मलीन होता रहता है। 'जैसा अन्न वैसा मन'। अतः प्रसाद समझ कर सेवन करना चाहिए। प्रसाद पाते समय मन ही मन हरिनाम जप करते रहने से वह पेट में जाकर सात्विक व निर्गुणता की लहर चला देगा। तामसवृत्ति को समाप्त कर देगा। जहाँ रोग होता है, वहाँ निरोग रहने की व्यवस्था भी होती है लेकिन कोई भी इस पर ध्यान ही नहीं देता।

प्रथम सीढ़ी हरिनाम ही है, जो कलि का धर्म है। दूसरी सीढ़ी ठाकुर जी का अर्चन–पूजन है, जो द्वापर का धर्म है। द्वापर का धर्म तब ही फलीभूत होगा जब कलि का धर्म अपनाया जाएगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो ठाकुर–पूजा केवल कपटमय होगी! शास्त्र का वचन भी है–

"नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगलवासा।।"

स्वाभाविक प्यार से जो नाम लेता है, वह दूसरों का भी मंगल विधान करता रहता है।

"जासु नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।"

भगवान् का नाम ही ऐसा है कि इससे समस्त दुःखों की जड़ ही कट जाती है।

**"राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।
जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।"**

जो नाम का प्रभाव जानना चाहें तो अपनी जीभ से जप कर देख सकते हो।

"बिबसहुं जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघ दहहीं।।"

यदि किसी के कहने से भी नाम मुख से निकल जाए तो अनन्त जन्मों के पाप जो रचे–पचे हैं, एक क्षण में जलकर राख हो जावें।

"सादर सुमिरन जो नर करहिं। भव वारिधि गोपद इव तरहिं।।"

जो प्रेम से नाम लेता है, उसका जीवन गौ के पैर से बने खड्डे को लांघने के समान सुगम हो जाता है।

"सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहिं।।"

भगवान् आश्वासन देते हुए कहते हैं कि वे उनका नाम पुकारने वाले के अनेक जन्मों के पापों को उसी समय नष्ट कर देते हैं।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।"
"ताकी करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।"

जिसको पंचम पुरुषार्थ–'प्रेम' प्राप्त हो जाता है उस भक्त को मैं एक क्षण भी अपने दिल से दूर नहीं करता क्योंकि वह मेरे शरणागत है।

"कोटि विप्र वध लागहिं जाहू। आए शरण तजहूँ नहीं ताहू।।"

विचार करने पर समझ में आ जाएगा कि जब हरिनाम महामंत्र (हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।) की 64 माला सभी जपने लग जाएँगे तो मन निर्मल बनेगा। मन जब तक निर्मल नहीं होगा, तब तक ठाकुर जी की शुद्ध सेवा नहीं होगी। अशुद्ध सेवा को ठाकुर जी ग्रहण नहीं करेंगे। देखा जा रहा है कि आजकल हरिनाम नाम–मात्र को ही हो रहा है। इसको कोई भी काट कर देखे तो ठाकुर का वचन भी झूठा हो जावे। यह ठाकुर जी ने ही प्रेरणा करके लिखवाया है। गलत कैसे हो सकता है।

आगे शास्त्रोक्त वचन है :–

"चहुँ जुग चहूँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।"

कलियुग में नाम श्रवण के अलावा दूसरा साधन ही नहीं है कि जिससे भगवान् को सुख हो।

"कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।"

मंदिरों में यदि कलि का धर्म 'नाम' नहीं होगा तो वहां विपत्ति रहेगी।

"मन–क्रम वचन मोर गति, भजन करें निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, करऊँ सदा विश्राम।।"

जो मेरे सिवाए किसी और को नहीं जानता व मेरा भजन मेरे सुख के लिए करता रहता है, उसके हृदय में मैं सदैव विश्राम करता हूँ। वहीं मुझे सुख मिलता है।

"सुगण उपासक पर हित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम जिनके द्विज–पद प्रेम।।"

जो दृढ़ता पूर्वक मेरा नाम लेता रहता है व दूसरों को मेरे नाम में लगा कर हित करता रहता है, ऐसा प्राणी मुझे मेरे प्राणों से भी प्यारा है।

"शुक सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।।"

जो ब्रह्म में लीन रहते हैं, वे भी नाम की कृपा से प्रभु के प्रेम सुख का आस्वादन करते हैं।

"सुनहू राम कर सहज सुभाऊ।
जन अभिमान न राखहिं काऊ।।"

अपने भक्त का थोड़ा भी गर्व भगवान् रहने नहीं देते क्योंकि यह अभिमान अपने को बड़ा कर देता है भगवान् दीन–बंधु हैं। अहम् बंधु नहीं है।

"सुन सुरेस उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।"
"मानत सुख, सेवक सुखकाई। सेवक बैर, बैर अधिकाई।।"

मेरे भक्त का बैरी मेरा भी बैरी है। वह कुल सहित नष्ट होकर सदैव नरक भोग करता है।

"सुनह उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।"

कितना आश्चर्य है कि ऐसा सुगम अवसर हाथ लगा, फिर इस स्वर्ण अवसर को विषयों में रम कर गंवा रहे हैं।

भारत में जन्म हुआ, जहाँ भगवान् का अवतार होता है। फिर शुभ–लगन में जन्म हुआ। अच्छे व उच्च कुल में जन्म हुआ। फिर श्रीमानों की गोद में खेले। सतगुरु, सौभाग्य से प्राप्त हुए। सन्तों का समागम मिला, फिर भी विषयों में रम कर अपना जीवन व्यर्थ–चर्चा में गँवा दिया तो ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा।

TV (टीवी) अखबार तथा मोबाईल साक्षात् कलि के अवतार हैं। जो इनका संग करता है, वह भक्ति–पथ पर नहीं चल सकता। टी.वी. में जो धार्मिक पिक्चरें आती हैं देखने वालों पर उनका क्या प्रभाव पड़ सकता है ? अखबार भी एक वासना है। दुनियाँ भर की

सूचनाओं से भक्त को क्या मतलब है ? मोबाईल भी भजन करते समय बाधा डालता रहता है। बार–बार फोन आते रहते हैं। थोड़ा लाभप्रद जरूर है। आवश्यकता अनुसार काम लेना उचित है।

भजन करने वाले नवयुवकों को मोबाईल से क्या काम है ? Mobile पर गुप्त बातें करके अपने आचरण को ही बिगाड़ना होता है। उनका मन भजन में कदापि नहीं लगेगा। क्योंकि उनकी उम्र ही बिगड़ने की होती है। कुसंग हर वक्त जेब में रखा रहता है। बाहर जावो तो अश्लील फोटो बाजारों में देखो। लड़कियों का पहरावा अश्लीलता का द्योतक है। फिर खान–पान, रहन–सहन व भरी जवानी। कहाँ तक बचोगे, असम्भव है।

सच्चे संत का संग ही बचा सकता है। जो प्रभु–कृपा के बिना मिलना असंभव है। कथा–कीर्त्तन, आरती–दर्शन यदि ऊपरी मन से होगा तो वह अन्तःकरण को छूएगा नहीं। ऐसे में मनुष्य–जन्म को गर्त में ही ले जाना होता है। शिक्षा भी काम नहीं दे सकती, क्योंकि कुसंग का पलड़ा भारी पड़ता है। कोई उपाय नहीं। यदि उक्त कुसंग से मुख मोड़ लें तो कुछ सम्भव हो सकता है परन्तु यह बहुत मुश्किल है।

जिस प्रकार दसवीं का विद्यार्थी कलैक्टर नहीं बन सकता उसी प्रकार जो अर्चक 64 माला (एक लाख) हरिनाम नित्य नहीं करता, उसकी अर्चन–पूजा ठाकुर जी ग्रहण नहीं करते। अर्चन अर्थात् पुजारी ही देव को पुजाता है। जो स्वयं ही अयोग्य है, वह ठाकुरजी की क्या पूजा कर सकता है ? चैतन्य महाप्रभु के आदेशानुसार प्रत्येक साधक–भक्त को प्रतिदिन 64 माला हरिनाम की करना परमावश्यक है। यदि श्री गौरहरि के इस आदेश का पालन नहीं होता अर्थात् कलियुग के मुख्य धर्म–हरिनाम की 64 माला नित्य जप नहीं करते तो द्वापर का धर्म–ठाकुर जी का अर्चन, 'पूजन' व्यर्थ ही होगा। प्रथम कक्षा में बैठे नहीं किन्तु बी.ए. की डिग्री लेना चाहते हो। कितनी मूर्खता की बात है ? यदि उक्त आदेश का पालन नहीं होता तो मंदिर में वास भी गृहस्थ आश्रम में वास के समान

ही है। जो भी लिखा गया है, ठाकुर जी की प्रेरणा से लिखा गया है। इसको कोई काट नहीं सकता।

स्वयं को बदलो। दूसरों को नहीं बदल सकते। चाहते हुए भी कुछ लोग 64 माला करने में असमर्थ हैं क्योंकि उनका मन रूपी घोड़ा चंचल है। अब वह घोड़ा अपने मालिक के बेकाबू हो चुका है। चाबुक खाकर भी इधर–उधर दौड़कर मालिक को खड्डे में गिरा देता है। अतः ऐसे लोग महान दुःखी हैं।



नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं
लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानं
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं
परामृष्टमत्यं ततो द्रुत्य गोप्या

(श्री दामोदराष्टक–1)

29

छींड की ढाणी
21.8.07

अनन्त कोटि भानु-उदय का उजाला

गुरु, ठाकुर द्वारा प्रेरित होकर यह लेख लिखा जा रहा है। मैं अल्पज्ञ व अधम, उजाला करने में असमर्थ हूँ। इस तथ्य को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में कोई काट नहीं सकता, क्योंकि इसमें श्रीगुरुदेव की शक्ति काम कर रही है।

हरिनाम से अल्पकाल में शरणागति का प्रादुर्भाव होकर शक्ति जाग्रत होना।

जो 'हरिनाम' भगवान के सुख के हेतु किया जाता है, वह 'हरिनाम' शुद्ध-निर्मल भक्ति में आता है एवम् जो 'हरिनाम' स्वयं के सुखी करने हेतु किया जाता है (अर्थात् मुझे सब भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुखी व समृद्ध हो जाएगा आदि-आदि), वह हरिनाम शुद्ध-भक्ति में न आकर मलीन-'काम-भक्ति' में आता है।

जैस याज्ञिक ब्राह्मण की पत्नियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के सुख के लिए (कि भगवान् को सुख होगा) पतियों के नाराज होने पर भी भोजन लेकर गईं। गोपियाँ, पतियों के विरुद्ध होने पर भी कृष्ण के सुख-विधान में अपना जीवन-यापन करती रहती थीं। जब एक छोटा बच्चा माँ-माँ बोल कर पुकारता है तो माँ को कितना सुख मिलता है। स्त्री अपने पति के लिए हर प्रकार की सेवा में संलग्न रहकर पति का सुख-विधान करती है तो वह 'गुरु-निष्ठा' की श्रेणी में आता है व भगवान् उसके पीछे-पीछे घूमते रहते हैं कि इसकी पद रज मुझ पर पड़ती रहे एवम् मैं पवित्रता लाभ करता रहूँ। प्रह्लाद भगवान् के सुख के लिए कीर्तन करते थे तो भगवान् पत्थर के खम्भे से प्रगट हो गए। मीरा भगवान् को पद्य सुना-सुनाकर सुखी करती रहती थी तो अन्त में भगवान् के मुख में समा गई।

जब भगवान् के सुख के लिए भक्ति की जाती है तो शीघ्र शरणागति का भाव जाग्रत हो जाता है। भगवान् गीता में कहते हैं कि भक्त जिस तरह मुझे भजता है अर्थात् याद करता है, वैसे ही मैं भी उसको याद करता हूँ।

To every action, there is an equal & opposite-reaction-

यह सत्य सिद्धान्त है। जिस भाव से भक्त, भगवान् को भजते हैं, भगवान् भी वैसे ही भाव से भक्त को भजते हैं। उनका सुख–विधान, स्वतः ही साधक का सुख–विधान होगा ही। सुख–विधान ही ठाकुर की शुद्ध–भक्ति है, वरना तो अशुद्ध अथवा काम–भक्ति होगी। कामना पूरी हो जाएगी, परन्तु भगवान् से प्रेम नहीं होगा। शरणागति भाव नहीं आवेगा। पंचम पुरुषार्थ से वंचित रहना पड़ेगा।

जैसी हरकत होगी, वैसी ही बरकत होगी। गरीबी को लेकर सुदामा द्वारिका गया तो महल–मकान–वैभव मिल गया। भगवान् ने नरसी भक्त का भात भर दिया क्योंकि उसको भात की जरूरत थी। बिल्व मंगल को भगवान् की जरूरत थी तो भगवान् ने अंधा होने के कारण, हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाया। कबीर जी को भक्ति सहित ज्ञान मिल गया। रैदास भक्त को दिव्य–दृष्टि मिल गई। तुलसीदास व बाल्मीकि जी के अन्तःकरण में भगवत्–लीलाओं का प्रकाश होने पर उन्होंने रामायण की रचना कर दी।

जिस भाव में भगवान् को पुकारा जाता है, उसी भाव में भगवान् को जबरन आना पड़ता है। भगवान् के सुख के लिए उन्हें पुकारना अति श्रेष्ठत्तम भक्ति–पथ है। अपने सुख के लिए पुकारना निम्न श्रेणी की भक्ति है। न करने से तो यह भी उत्तम है।

किसी भी भाव का सम्बन्ध हो–दास का, सखा का, वात्सल्य का, मधुर भाव का–सभी भावों में भगवान् का सुख–विधान हो सकता है। नाम–श्रवण करते हुए ऐसी भावना दिल में रखने से भगवान् का सुख–विधान कर सकते हैं। जैसा भगवान् को भजोगे, वैसा भगवान् तुमको भजेंगे। उनको सुख होगा तो स्वतः ही साधक को सुख होगा।

आप प्रश्न कर सकते हो कि हरिनाम–श्रवण भगवान् के हेतु कैसे किया जाता है तो ठाकुर जी बता रहे हैं कि जैसे खेल में भक्त शिशु को माँ की याद आती है तो वह माँ–माँ कहकर पुकारता है। आवाज कानों में पड़ते ही सब काम–काज छोड़कर माँ बच्चे के पास भाग जाती है। क्या वह घर में रह सकती है ? नहीं क्योंकि इसमें माँ को सुख होता है। इसी प्रकार जब भक्त, भगवान् को 'हरे', 'राम', 'कृष्ण' अर्थात् (माँ–माँ) कहकर पुकारता है तो क्या भगवान् जो वात्सल्य–रस के समुद्र हैं दूर रह सकते हैं। लेकिन पुकारने में भेद रहता है। ऐसा अन्त–करण से गहराई से चिन्तन करे कि मैं भगवान् का बच्चा हूँ। भगवान मेरे माँ–बाप हैं। सभी तो भगवान् के बच्चे हैं। मैं उनको पुकारूँगा, तो वे मेरे पास आवेंगे। ऐसी पक्की भावना हो तो निसंदेह शीघ्र ही शरणागति–भाव जाग्रत हो जाएगा। इसमें भगवान् को सुख होता है क्योंकि वे सोचते हैं कि भक्त, संसारी वस्तु माँगता ही नहीं है, वह तो मुझे ही माँग रहा है। यह है नाम–श्रवण का तरीका। स्वयं भगवान ही प्रेरणा–पूर्वक इसे लिखवा रहे हैं। मैं 100% कुछ लिख नहीं सकता। अब आप कुछ भी समझें। अपराध मोल ले सकते हो।

भगवान् के सुख हेतु की जाने वाली भक्ति से ऊपर कोई भक्ति नहीं है। लेकिन यह भक्ति तब ही जागृत होगी जब भक्त का 100% ध्येय भगवत्–प्राप्ति होगा। घर छोड़ने से भगवत्–प्राप्ति नहीं हआ करती यदि ऐसा हो तो सभी त्यागी भगवान् को प्राप्त कर लें। अधिकतर, इनमें अन्य–वाच्छा अन्तःकरण में रहती है। करोड़ों में से किसी एक का भगवत्–प्राप्ति का ध्येय होता है। सच्चे दिल से पूछकर देखें कि वास्तव में उनके मन में क्या प्राप्त करने की इच्छा है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

ठाकुर जी की पूजा करने वाले प्रत्येक साधक का पहला धर्म है– एक लाख 'हरिनाम' करना। इनको समय की कमी भी नहीं होती। एक लाख (64 माला) सभी कर सकते हैं। क्या सभी पूजक

ऐसा करते हैं ? यदि नहीं करते तो ठाकुर–अर्चन–पूजा, केवल कपटमयी होती है। जब हरिनाम के श्रवण के अभाव में प्रेम होगा ही नहीं, तो प्रेम से ठाकुर का श्रृंगार व प्रसाद–अर्पण कैसे होगा ? मैंने देखा है कि कई स्थानों पर ठाकुर जी का श्रृंगार कई–कई दिनों में होता है। अर्पण करने के बाद कितनी देर तक प्रसाद मंदिर में रखा रहता है। ठाकुर जी द्वारा प्रसाद पाने का चिंतन होना श्रेयस्कर है।

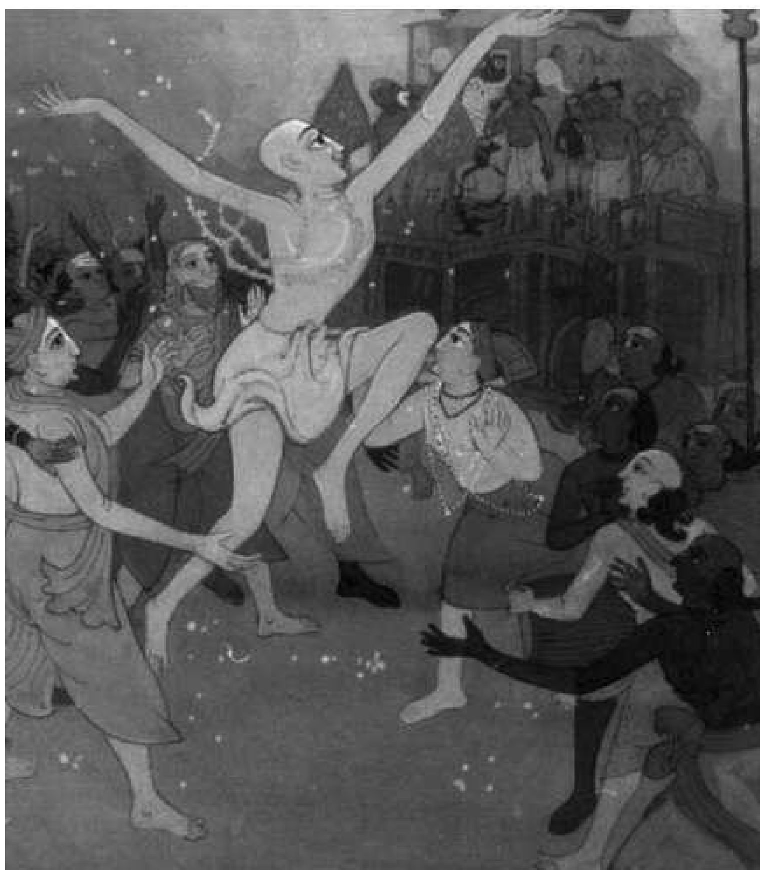
आरती के समय अधिकतर दर्शनार्थियों को यह मालूम नहीं रहता कि आज ठाकुर जी ने किस रंग का पोशाक पहन रखा है, क्योंकि दर्शन अन्दर की आँखों से नहीं, चर्म–नेत्रों से होता है, जो स्थायी नहीं होता। कीर्तन–नृत्यादि के समय साधकों को पुलक–अश्रुपात होना चाहिए। केवल पेट का खाना Digest हो जाए और भूख लग जाए, इस विचार से कीर्तन–नृत्यादि नहीं करना चाहिए। मेरा अपराध न हो जाए, ऐसा सभी को नहीं होता, परन्तु अधिकतर ऐसा हो रहा है। ठाकुर का दर्शन अन्तःकरण से होना चाहिए। दर्शन के समय ठाकुर जी से मूक बातें भी होनी चाहिए। ऐसा करने से ठाकुर जी का जवाब भी मिलता है।

जब तक कलि का धर्म– 'हरिनाम' का श्रवण नहीं होगा, तब तक द्वापर का धर्म, अर्चन–पूजनादि ढकोसला मात्र ही होगा। प्रथम कक्षा पास की नहीं B.A. की क्लास में बैठ गए। क्या B.A. का प्रमाण पत्र मिल जाएगा ? कितनी मूर्खता है। साँप की लकीर को पीटे जावो, साँप तो हाथ से निकल गया। मैं अर्चन–पूजन के विपरीत नहीं लिख रहा हूँ, यह अवश्य होना चाहिए पर पहले एक लाख हरिनाम होना जरूरी है।

जब हम अन्तःकरण में गहरे रूप से विचार–विमर्श करते हैं तो निष्कर्ष निकलता है कि कलिकाल का एकमात्र धर्म है– हरिनाम–स्मरण–कीर्तन। सभी साधकों को प्रतिदिन कम–से–कम 64 माला हरिनाम–स्मरण की करना परमावश्यक है। ठाकुर का अर्चन–पूजन–यह द्वापर का धर्म है, जो कलिकाल में भी हो रहा है

अतः अति उत्तम है; परन्तु नाम–स्मरण को छोड़कर अर्चन–पूजन करना कौन सा धर्म है ? L.K.G., U.K.G. कक्षा को छोड़कर चौथी कक्षा में बैठना क्या युक्तियुक्त है ?

–0–



30

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23.8.07

हरिनाम ही कलियुग का शासक

जिस देश में कोई शासक (राजा) नहीं है, वहाँ अराजकता फैलना एक साधारण सी बात है। अतः देश में राजा होना परमावश्यक है।

इसी प्रकार इस कलियुग में हरिनाम ही राजा (शासक) है। यदि कलियुग (देश) रूपी इस लोक में शासक नहीं रहेगा तो पूरे संसार रूपी आध्यात्मिक क्षेत्र में अराजकता फैलना एक साधारण सा विषय होगा। जैसा कि हम पूरे पृथ्वी–क्षेत्र में देख रहे हैं, हरिनाम राजा की अनुपस्थिति में क्या–क्या न होने वाले काम प्रत्यक्ष में हो रहे हैं। इनसे बचना बिल्कुल असम्भव है। इसमें सज्जन–दुर्जन सभी पिसे जा रहे हैं।

यह तो हुई संसार की स्थिति। अब बात करें मंदिरों की जिन्हें आध्यात्मिक केन्द्र माना जाता है व जहाँ अखिल–ब्रह्माण्डों के स्वामी–भगवान् विराजमान रहते हैं। वहाँ भी हरिनाम रूपी राजा की अनुपस्थिति में अराजकता फैलना एक आश्चर्य का विषय है। परन्तु ऐसे स्थानों पर हरिनाम रूपी राजा अपना स्थान ग्रहण नहीं कर रहा है, क्योंकि ऐसे केन्द्रों को चलाने के लिए योग्य कार्यकर्त्ता नहीं हैं। इनके अभाव में हरिनाम रूपी शासक अपना स्थान ग्रहण नहीं कर रहा है।

अब इन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए सद्‌गुरु परमावश्यक है तथा सद्‌गुरु देव के विश्वासपात्र, शिक्षा गुरुवर्ग की भी बहुत आवश्यकता है। यदि ऐसी पाठ्शाला खुले, तो ऐसी अराजकता का नामोनिशान ही समाप्त हो जाए, इसमें बहुत परिश्रम की आवश्यकता है। स्वयं को तपस्या करनी पड़ेगी। हर प्रकार का कष्ट झेलना पड़ेगा। त्याग करने पर कुछ सम्भव हो सकता है बिना बलिदान, कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि अराजकता चरम सीमा तक पहुँच

चुकी है। हरिनाम ही राजा का सिद्ध विश्वासपात्र, समर्थ कार्यकर्त्ता है ऐसा कार्यकर्त्ता अकेला ही अराजकता को समाप्त करने के लिए काफी है।

एक सींक से कूड़ा साफ नहीं किया जा सकता। यदि कई सींकें एक जगह बाँध दी जाएँ, तो वह बुहारी का रूप बन जाती है। इस बंधी हुई बुहारी से संसार का पूरा कूड़ा साफ किया जा सकता है। इसी प्रकार से यदि सभी साधक हरि के एक लाख नाम करके नाम–श्रवण करने लग जाएं तो सभी के मन का कूड़ा साफ होकर निर्मलता में बदल जाए। तब ऐसे स्थानों का उत्कर्ष बहुत शीघ्र उदय हो जाए। सभी असुविधाएँ स्वतः ही दूर होकर दिव्यता का प्रसार हो जाए व प्रेम का विस्तार हो जाए।

अकेले साधक रूपी सींक से मन का कूड़ा साफ नहीं हो सकता। सभी साधक रूपी सींकें इकट्ठी होकर हरिनाम रूपी दिव्य बुहारी से अपने–अपने मन के व मन्दिरों के कूड़े को साफ कर सकती हैं।

सारा का सारा हृदय–रोग रूपी कूड़ा साफ होकर ऐसे संस्थानों का उत्कर्ष उदय हो जाए। लेकिन ऐसा होना असम्भव सा जान पड़ता है क्योंकि कूड़ा इतना ज्यादा हो चुका है कि साफ करना असम्भव लगता है। गुरु–संत–ठाकुर ही इसमें सक्षम हैं। यदि चाहें तो चिपका हुआ कूड़ा भी साफ हो सकता है। परन्तु इन महानुभावों को कोई याद तक नहीं करता तो कैसे हो सकता है ?

कलिजीवेर अपराध असंख्य दुर्वार।
गौरनाम बिना ता 'र नाहिक उद्धार।।
अतएव गौरनाम बिना कलिते उपाय।
ना देखि कोथाय आर, शास्त्र फुकारय।।

कलियुग के जीवों के अपराध असंख्य और भीषण हैं, गौरनाम बिना उनका उद्धार नहीं हो सकता। इसलिये शास्त्र बार–बार उच्च–स्वर से कह रहे हैं कि गौरनाम के अतिरिक्त कलियुग के जीवों के उद्धार का अन्य कोई भी उपाय दिखाई नहीं देता।

31

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
24.8.07

शास्त्रीय सत्य-सिद्धान्त की अवहेलना

द्वापर का धर्म-कर्म है, भगवान् को साक्षात् समझकर शुद्ध-भक्ति द्वारा ठाकुर जी की श्रद्धा-प्रेम से अर्चन-पूजा करना। यह ठाकुर जी की शुद्ध अर्चन-पूजा तब ही श्रद्धा-प्रेम से हो सकेगी जब पूजा करने वाला स्वयं भक्तिमान हो। पुजारी भक्तिमान तब ही होगा, जब वह कम से कम जो कलि का धर्म-कर्म है-64 माला (एक लाख हरिनाम) का नित्य श्रवण-पूर्वक जप करेगा।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं महाप्रभु गौरहरि; जिन्होंने अपने भक्तजनों को आदेश दिया कि सभी को एक लाख हरिनाम नित्य श्रवण करना होगा। इस आदेश का आशय यह था कि इन पर ठाकुर जी की अल्पकाल में कृपा हो जाए। नाम ही रुचि पैदा कर संसार से इनकी आसक्ति छुड़ा देगा व संतों का संग करा देगा। 'बिन हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।'

हरिनाम-श्रवण के अभाव में ठाकुर जी का अर्चन-पूजन एक कठपुतली होगा। बिना हरिनाम के श्रद्धा-प्रेम होगा ही नहीं, क्योंकि हरिनाम-श्रवण रूपी धन, पूजक के पास है ही नहीं। बिना धन के कुछ होता ही नहीं। द्वापर की भक्ति, जो ठाकुर जी की पूजा-अर्चन है, वह इसलिए परमावश्यक है कि साधकजन ठाकुर जी की शरण में रहकर, कलि का धर्म-कर्म जो हरिनाम श्रवण-कीर्तन है, शान्ति पूर्वक कर सकें। मंदिरों में ठाकुर जी विराजमान होते हैं। इनके संरक्षण से हरिनाम-श्रवण-संकीर्तन बड़ी सुगमता से होता रहता है। इनके अभाव में उक्त-साधन होना असम्भव ही है क्योंकि अराजकता फैलने का भय बना रहता है।

इसी कारण भक्त–गृहस्थी अपने घर के एक कमरे में ठाकुर जी का चित्रपट रख कर निर्भय होकर सोता है। ठाकुर जी को अपना स्वामी समझकर हरिनाम–श्रवण–कीर्तन का आयोजन नित्य सुगमता से करता रहता है। अराजकता का भय नहीं होता।

भक्त–गृहस्थ नित्य ठाकुर को भोग अर्पित करता है। शयन कराता है। गर्मी में पंखा करता है। सर्दी में गर्म शाल औढ़ाता है। कष्ट आने पर ठाकुर से प्रार्थना करता है। बैठकर मूक बातें भी करता है। समस्याओं का हल भी पूछता है। संतों की कथा ठाकुर को प्यारी लगती है तो उनका चरित्र सुनाता है। ठाकुर जी को हर प्रकार से सुखी देखना चाहता है। ठाकुर जी भी उसे सुखी करते रहते हैं। "जिस प्रकार भक्त मुझे भजता है, मैं भी उसी प्रकार से उस भक्त का भजन करता हूँ। To every Action, there is an equal and opposite reaction जैसी हरकत, वैसी बरकत होगी ही, यह गीता जी का वचन है।"

अब रहा कलियुग का धर्म–कर्म; तो जहाँ हरिनाम श्रवण–कीर्तन नहीं हो रहा है, वहाँ शुद्ध अर्चन–पूजन भी नहीं हो पाएगा। वहाँ अराजकता फैलनी जरूरी ही है। नाम–श्रवण–कीर्त्तन के अभाव में जो धर्म–कर्म, अर्चन–पूजा होती है, वह शक्तिहीन रहती है, क्योंकि मूल वृक्ष की जड़ में यदि श्रवण–रूपी जल नहीं दिया गया तो ठाकुर जी का पूजन–अर्चन रूपी वृक्ष सूख जाएगा और एक दिन गिर पड़ेगा। अतः निष्कर्ष यह निकला कि प्रत्येक साधक को कम से कम एक लाख हरिनाम–श्रवण अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने से कीर्त्तन–प्रवचन में बल प्रकट हो जाएगा, वरना सभी साधक बलहीन होते रहेंगे। केवल समय को बर्बाद करते रहेंगे, कुछ उपलब्धि नहीं मिलेगी।

पहली कक्षा में तो बैठे नहीं B.A. की कक्षा में बैठ गए तो क्या कुछ उपलब्धि हो सकेगी? केवल हाथ पर हाथ रखकर समय गुजारते रहोगे। इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है? मानव–जन्म तो भगवान् की कृपा से मिला है, व्यर्थ में खोते रहो।

अमूल्य–रत्न हाथ लगा था, पत्थर समझ कूड़े में फैंक दिया। दुबारा मिलने को तरसते रहोगे।

ठाकुर जी का अर्चन–पूजन, ठाकुर जी के सुख हेतु श्रद्धा–प्रेम से होना चाहिए। इसलिये नहीं होना चाहिये कि संसार मुझे भक्त कहेगा। मुझे धन मिल जाएगा। यह है काम–भक्ति की श्रेणी।

मैं ठाकुर जी को आज ऐसी सुन्दर पोशाक से सजाऊँगा कि दर्शकगण देखते ही रह जाएँगे। इत्र–फूल से ठाकुर जी के कमरे को महका दूँगा। ठाकुर जी को बहुत सुख होगा। आज ठाकुर को तरह–तरह का भोग अर्पण करूँगा। ठाकुर जी उसे पाकर तृप्त हो जाएँगे। इस प्रकार ठाकुर से सुख हेतु जो अर्चन–पूजन होता है, वह शुद्ध–निर्मल–भक्ति की श्रेणी में आता है। जो ऐसी ठाकुर–सेवा करते हैं, ठाकुर जी उनसे बातें भी करते हैं। हर हालत में यह ठाकुर जी का ही विधान है–ऐसा समझना चाहिए।

"धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ अच्छा होय।
माली सीचें सौ घड़ा, रितु आए फल होय।।"

श्रीमन् माधवेन्द्र पुरी जी एक बार (खीरचोरा) गोपीनाथ मन्दिर में दर्शन हेतु गए तो किसी ने कहा कि यहाँ रात को अमृत के समान स्वादिष्ट खीर का भोग लगता है तो माधवेन्द्र पुरीपाद जी की इच्छा हुई कि यदि थोड़ी सी खीर–प्रसाद मुझे चखने को मिल जाए तो मैं भी अपने गोपाल जी का ऐसी खीर का भोग लगाऊँ। थोड़ी देर में पछताने लगे कि मेरी जीभ खाने को ललचा रही है। इससे वे दुःखी हुए।

यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। जब भक्त भगवान् के सुख के लिए सोचता है तो भगवान् भी भक्त के सुख की सोचते हैं। रात को गोपीनाथ जी ने पुजारी को खीर का एक कुल्हड़, जो उन्होंने छिपाकर रख लिया था, माधवेन्द्र पुरी को देने के लिए स्वप्न में कहा। पुजारी उनको बाजार में, जहाँ बैठकर वह जप कर रहे थे, खीर का कुल्हड़ देकर आए। उन्होंने वह खीर खाई और कुल्हड़ फोड़ कर गल–वस्त्र में बाँध लिया एवम् उसके टुकड़ों को हर रोज

थोड़ा–थोड़ा खाते रहे क्योंकि वह ठाकुर जी का महाप्रसाद था। हरिनाम लेते रहे और ठाकुर जी की कृपा के लिए रोते रहे। अतः हरिनाम ठाकुर के सुख हेतु ही लेना चाहिए। मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं। शास्त्रीय सिद्धान्त को न अपनाने से प्रत्येक पूजा–स्थल में अराजकता फैलती जा रही है। फिर भी चेतना नहीं होती। यही कलियुग का प्रकोप है। स्वयं को सुधारो दूसरे नहीं सुधरेंगे।

कोई साधक (विशेष कर कोई त्यागी भक्त) यदि नित्य प्रति एक लाख हरिनाम–महामन्त्र का जप नहीं करता तो साफ प्रगट होता है कि भगवत् प्राप्ति उसका उद्देश्य नहीं है। केवल मान–प्रतिष्ठा, धन कमाना व मौज उड़ाना ही उसका ध्येय है। T.V. देखने वाले व Mobile का दुरुपयोग एवं फिजूल उपयोग करने वाले साधक भक्त क्या भगवान् को चाहेंगे ? बिल्कुल नहीं। यदि वे भगवान को नहीं चाहते तो फिर घर छोड़ कर किस लिए आए हैं। मेरा कहना है कि यदि वे भगवान को चाहते तो T.V. इत्यादि से दूर रहते। संसार में बहुत साधुवेशधारी हैं किन्तु ऐसे करोड़ों साधुओं में कोई एक भगवान् को चाहता है, बाकी सब तो असाधुता में ही रमण कर रहे हैं। गीता जी का भी यही कथन है।

यह लेख मैंने नहीं लिखा, किसी अदृश्य–शक्ति द्वारा प्रेरित करके लिखवाया गया है। स्वयं गृहस्थ में फंसा प्राणी, ऐसा लेख लिखकर दूसरों को किस प्रकार ऊपर उठा सकता है जबकि वह खुद ही गिरा पड़ा है।

नवद्वीपे जेबा प्रभु करय गमन।
सर्व अपराधमुक्त हय सेइ जन।।
जो कोई भी व्यक्ति नवद्वीपधाम में जाता है,
वह सब प्रकार के अपराधों से मुक्त हो जाता है।

32

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28.8.07

श्री हरिनाम ही परमानन्द का जनक

भगवान् ने कलियुग को चार लाख बत्तीस हजार साल के लिए मृत्यु लोक में राज करने का आदेश दिया। कलि का स्वभाव चांडाल प्रकृति का है अतः जो उसके स्वभावानुसार जीवनयापन करेगा, उसी के अनुकूल कलि राजा का बर्ताव होगा। जो इसके स्वभाव के विरुद्ध होगा, उसे कलियुग कभी सुखी नहीं देख सकेगा। ऐसा इस समय देखने को मिल भी रहा है।

कलि राजा पर शासन करने वाला अखिल ब्रह्माण्डों का पालनकर्ता हरिनाम (भगवान्) है। जो मानव श्री हरिनाम की शरण में रहकर अपना जीवनयापन करेगा, उसे कलि कभी भी नहीं सताएगा क्योंकि उसके ऊपर ठाकुर जी का शासन है।

भगवान् ने जब उसे राजा बनाया तो उसे कहा था कि यदि मेरे भक्तजन से टकराएगा तो जल कर खाक हो जाएगा। प्रत्यक्ष में देखा भी जा रहा है कि जिस घर में, मंदिर आदि में, मस्जिद में सच्चा प्यार (हरिनाम) नहीं हो रहा है, वहाँ हर समय कलह मचा रहता है। सद्-व्यवहार वहाँ है ही नहीं। सौहार्दपना मूल से चला गया है। यहाँ तक कि मार-पीट भी होती रहती है।

कलि का प्रकोप प्रत्यक्ष नजर आ रहा है। धनी भी दुःखी, गरीब भी दुःखी। राजा भी दुःखी तो रंक भी दुःखी। कोई सुखी नहीं, क्योंकि इस मृत्यु लोक में कोई रक्षक नहीं; सभी भक्षक बनकर सता रहे हैं।

सच्चे भगवत् भक्त ही (जो हरिनाम एक लाख 64 माला नित्य स्मरण करते हैं) सुखी हैं, क्योंकि उनके रक्षक-पालनकर्ता हरिनाम हैं। इन पर भी कलि का प्रभाव तो पड़ता ही है पर हरिनाम

करने से वे बिगाड़ से बच जाते हैं। प्रत्येक परिवार में, समाज में, गांव में, शहर में, देश–विदेश में कलह कराना, अराजकता, मारपीट, लूट–खसोट करवाना और कहीं पर भी शान्ति न रहने देना एवं देख–देखकर हँसना–यह कलियुग का धर्म है।

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।"

जो सच्चे अन्तःकरण से हरिनाम करता है, उस पर कलि का प्रभाव नहीं पड़ता। वही इस लोक में परम सुखी है। बाकी सभी दुःख की आग में झुलस रहे हैं।

प्रत्येक जगह कुसंग का बोल बाला है। कलि ने बोला है कि संपूर्ण मृत्यु लोक को कुसंग की धधकती हुई आग में नहीं झोंक दूँ तो मेरा नाम कलि ही क्या हुआ ? ऐसे–ऐसे आविष्कार यहाँ पर करूँगा कि कोई बच नहीं सकेगा। यहाँ तक कि ऋषि–मुनि भी इनकी चपेट में आए बिना नहीं रह सकेंगे। T.V. का आविष्कार जो मैंने किया है, उसमें बालक–वृद्ध तक कुसंगी बनते रहेंगे। धर्म, मर्यादा, सत्य, न्याय–कुछ भी बचा नहीं रहेगा। दूसरा आविष्कार है अखबार जिसमें झूठी–सच्ची खबरें छापकर लोगों का सारा समय बर्बाद करता रहूँगा। सद्मार्ग के हेतु समय बचने नहीं दूँगा। तीसरा आविष्कार है–मोबाईल जिसमें गुप्त षड्यन्त्र रचकर बर्बादी का माहौल बनाता रहूँगा। भविष्य में एक आविष्कार और करने वाला हूँ, देखते जाओ। एक ऐसी मशीन बनाऊंगा कि वह मशीन 1000 मीटर दूर से ही घर की, बैंक की, कारखाने की, धन–दौलत बताती रहेगी। मैं मौका देखकर उस पर हमला करके सारा माल–मत्ता लूट कर ले जाऊँगा एवं सबको वहीं पर कत्लेआम कर जाऊँगा। कोई रक्षक नहीं होगा। कोई सुनने वाला नहीं होगा। पैसे का बोलबाला होगा। पैसा देकर आजादी से घूमता रहूँगा। परीक्षित जैसों को भी मैंने नहीं छोड़ा तो और तो मेरे लिए मच्छर–मक्खी हैं।

केवल हरिभक्त (नाम–जापक) पर ही मेरा प्रभाव नहीं चलेगा, जो करोड़ों में एक ही होगा और सब पाखंडी होंगे। माला जपेंगे और गला काटेंगे। वे मेरे चंगुल से बाहर नहीं जा सकेंगे।

गौरहरि ने क्यों एक लाख (64 माला) हरिनाम की करने का अपने जनों को आदेश दिया है इसका कारण है कि हरिनाम द्वारा कलि की दुष्टता से बचाव हो सके। भविष्यकाल बहुत खतरनाक आवेगा जिनमें भगवान् का भक्त ही बच पावेगा। गौरहरि भी जानते थे कि 64 माला में किसी का मन रुकेगा नहीं, परन्तु नाम ही धीरे–धीरे मन को रुकवाएगा, जब आनंद आने लगेगा।

"धीरे–धीरे रे मना धीरे सबकुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, रितु आए फल होय।।"
धैर्य रखना होगा।
"भाव कुभाव अनख आलसहूँ
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।"

गौरहरि ने इसी वजह से 64 माला करने का आदेश दिया था। इस आदेश का पालन सभी को करना चाहिए। तब ही मंदिरों में प्रेम–श्रद्धा से पूजा हो सकेगी, वरना कपटमयी पूजा तो होती ही है। पुजारी ही देवता को पुजवाता है। जब पूजक ही श्रद्धाहीन होगा, तो अन्य भी वैसा ही करेंगे। जब श्रद्धा नहीं होगी तो संकीर्तन पाठ भी कपट की श्रेणी में आवेगा। इससे श्री विग्रह–पूजा ग्रहण नहीं करेगा व सोता ही रहेगा। प्राण–प्रतिष्ठा के बाद पुजारी ही ठाकुर को जगाता है वरना सो जाएगा। सजीवता नहीं रहेगी। भगवान् गौरहरि अच्छी तरह से जानते थे कि ऐसा कलियुग आएगा जिसमें ऋषि–मुनि महात्मा भी नहीं बच पाएँगे, अतः इससे बचने का उपाय अभी से बताना उचित है।

यह शर्त लगा दी कि जो 64 माला (एक लाख) हरिनाम श्रवणपूर्वक करेगा, उसी के घर पर मैं प्रसाद पाऊँगा। इससे गहरा विचार करने पर यह निश्चय होता है कि हरिनाम श्रवण के अभाव में मानव को दुःख सागर में निश्चय ही डूबना पड़ेगा। अतः अभी से इनके बचाव का उपाय बताना उचित होगा।

इन वचनों पर आस्तिकजनों को पूरा ध्यान देना चाहिए कि जो आदेश उन्होंने दिया है कितनी गंभीरता लिए हुए है। जैसा कि देख

भी रहे हैं। जिस ठौर पर भगवान् का नाम श्रद्धा व प्रेम से नहीं हो रहा है, वहाँ कलि महाराज ने कलह मचा रखा है। मंदिर हो, घर हो, या वन हो–सभी ठौर कलह से सभी प्राणी भीषण आग में झुलसते जा रहे हैं।

इस हरिनाम का अमित प्रभाव है। तभी स्वयं भगवान् राम ने अपने नाम के लिए घोषणा की है कि–

"कहाँ कहौं लगि नाम बड़ाई
राम न सकहिं नाम गुण गाई।।"

नाम सर्वसमर्थ हैं। आराध्यतम् हैं। साधन व साध्य दोनों नाम में ओत–प्रोत रहते हैं। "चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहीं आन उपाऊ।" जिसने नाम की शरणागति ले ली, अर्थात् रात–दिन जप रहा है। उसने सद्मार्ग पर अपना जीवन–यापन कर लिया। जिसने नाम की शरणागति नहीं ली, उसका सभी आध्यात्मिक कर्म न के बराबर है, क्योंकि कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम जपना ही होता है। वह उसने छोड़ रखा है। मूल में पानी दिया नहीं तो वृक्ष कैसे हरा–भरा रह सकता है?

मंदिरों के ठाकुर जी, जो हरिनाम से ही सजीवता धारण किए हुए हैं, नाम के अभाव में सजीव कैसे रह सकते हैं। केवल पत्थर की मूर्ति ही दिखाई देगी। दर्शन होता है–अन्तःकरण के ज्ञान नेत्र से, वह नेत्र हरिनाम–श्रवण के अभाव में खुलते नहीं। जब हरिनाम–श्रवण रूपी काजल का नेत्रों में अन्जन होगा, तब दिव्य दृष्टि स्वतः ही जाग्रत हो जायेगी।

नाम से ध्रुव ने, प्रह्लाद ने भगवान् का हृदय दहला दिया। अन्य भक्तों ने भगवान् के हृदय को मोल ले लिया। गहरा विचार करना होगा कि जो समय गया सो गया अब भी चेत कर हरिनाम को अपनावो। खटवांग राजा ने तो दो घड़ी में ही भगवान् को पा लिया था। सात दिन में परीक्षित जी ने गोलोक धाम की प्राप्ति कर ली थी।

धैर्य रखो, घबरावो नहीं। संसार से मन एक दम हटा लो तो भगवान् शीघ्र मिल जाएंगे। भगवान् केवल तुम्हारा मन लेना चाहते हैं। अब तक मन माया को सौंप रखा है, अब इसी क्षण यह मन भगवान् को सौंप दो तो तुम्हारा अनन्त कोटि जन्मों के दुःखों का बखेड़ा इसी क्षण समाप्त होता हुआ दिखाई देगा।

संसार में रहते संसार का काम भी करो लेकिन फंसावट से दूर रहकर हर समय हरिनाम करते रहो व भगवान् को नहीं भूलो। बस तुम्हारा काम बन जायेगा। केवल मन को पलटना है। माया–मोह ही अगला जन्म करवाते हैं। पलट कर मोह को भगवत–चरणों में रख दो।

"सन्मुख होहिं जीव मोहिं जबहिं।
जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहिं।।"

हरिनाम–श्रवण को अपनाना ही भगवान् के सामने होना है, अन्य कोई साधन नहीं है–

"कोटि विप्र वध लागहिं जाहू। आये शरण तजहूँ नहीं ताहू।।"

समय बड़ी तेजी से जा रहा है, बालपन गया, जवानी गई, बुढ़ापा आकर आपको सुचेत कर रहा है कि अब भी चेत जावो, कुछ नहीं बिगड़ा है वरना अचानक मौत आकर तुम्हें निगल जावेगी। इससे पहले कि मौत आवे, भगवान् के चरण में लेट जावो तो यमराज के मुख पर कालिख पुत जायेगी। भगवान स्वयं अपने संग में, प्रेम से स्वागत सहित, अपने धाम में ले जाएँगे। चूको मत, अभी से नेत्र खोलकर चल दो। मंगल होगा। कलि ने Mobile का जो आविष्कार किया है, यह कामदेव का तथा क्रूरता का साक्षात् स्वरूप है। इसे 10% अच्छा उपयोग होता है तथा 90% खराब उपयोग हो रहा है। भजनानन्दी को भजन के समय बंद रखना चाहिए। आवश्यकता अनुसार ही काम लेना उचित है। T.V.तथा अखबार से क्या मतलब है। इनसे तो भगवत–चिंतन में बहुत नुकसान होता है। जो भी भक्त इनसे काम लेगा उसका भजन–स्तर गिरता ही रहेगा।

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
1.1.07

भय से आक्रांत की दुःख-विज्ञप्ति

आत्मा जब से परमपिता परमात्मा से बिछुड़ा तब से इसे एक पल का चैन नहीं है। ठौर-ठौर (84-लाख योनियों) की ठोकरें खाता फिरता है। परमपिता को भूलने से माया इसे दुःख के पिंजरे में डालकर दुःख पर दुःख दे रही है। आत्मा विशुद्ध चेतन-परमात्मा की शक्ति का अंश होते हुए भी दुःख पर दुःख भोग रहा है। यह अज्ञानमय कुसंग के कारण है। जब तक इसकी भगवान के प्यारे जन से भेंट नहीं होगी, तब तक अनन्त कोटि जन्म-जन्मान्तर तक अनेक योनियों में भटकता रहेगा। भगवान् के प्यारे जन से यह भेंट भी भगवत-कृपा बिना नहीं होती।

प्रथम तो इसे नरक-तुल्य गर्भाशय के कष्ट झेलने पड़ते हैं। गर्भाशय से बाहर आने पर संसारी कष्ट उसके पीछे पड़ जाते हैं। शिशु अवस्था में उसे कुछ ज्ञान नहीं रहता, न हलचल करने की शक्ति रहती है, न बोल सकता है। उसे मक्खी-मच्छर खटमल परेशान करते हैं। कभी कान दर्द, कभी पेट दर्द, कभी भूख, कभी प्यास-इनसे आक्रान्त रहता है।

बड़ा होने पर मन न मानते हुए भी पाठ्शाला जाना पड़ता है, जबकि इसका मन खेलने में रहता है। लेकिन क्या करें, माँ-बाप जबरन भेजते हैं। पाठ्शाला में मास्टर धमका देता है। बराबर वालों से लड़ पड़ता है। उच्च पाठ्शाला में जाने के लिए आपस में होड़ लग जाती है कि कौन पढ़ने में व खेलने में सर्वोत्तम है। परीक्षा में कम नम्बर आने पर रात को नींद नहीं आती। बराबर वाले चिढ़ाते हैं। यहाँ तक कि आत्महत्या करने की तैयारी लगती है। अनपढ़ गरीब होने पर, इसे मजदूरी पर जाना पड़ता है। जबकि यह रोग-ग्रस्त है। लेकिन क्या करें, पेट भरता नहीं है। शादी होने पर

धर्मपत्नि से बनती नहीं है। बच्चे बहुत हो गए। अतः रात–दिन गरीबी के कारण बेचैन रहता है। अतः गलत तरीके से कमाना चाहता है तो सजा का हकदार होना पड़ता है।

बड़ी मुश्किल से B.A. M.A. पास की है, परन्तु नौकरी के लिए भटकता रहता है। अतः हार कर मजदूरी करने लग जाता है। मजदूरी करने की आदत नहीं है, क्योंकि 20 साल तक पढ़ा है काम किया तो कभी नहीं, अतः रो–रोकर दिन बसर करता है।

फौज की नौकरी मिल गई तो अफसरों की डाँट डपट सहनी पड़ती है। दुश्मन राष्ट्र की पकड़ में चला जाए तो ऐसी दुर्दशा भोगनी पड़ती है कि देखने वाला बेहोश हो जाए। इतना मारते हैं कि मरता भी नहीं, न जीता ही है। चाहता है कि मर जाऊँ तो अच्छा है। गर्म लोहा शरीर में दागते हैं, बर्फ में डाल देते हैं, न जाने क्या–क्या सजा देते हैं।

इतने भयानक दुःखों को देखकर भी मानव सुख की तरफ नहीं जाता। बुढ़ापा तो इतना दुःखदायक है कि क्षणभर चैन नहीं मिलता। सांस आती नहीं। शरीर दर्द करता है। खांसी चैन नहीं लेने देती। खाट में पड़ा–पड़ा तड़पता रहता है। बेटे–पोते पूछते नहीं कि बाप का क्या हाल है। घर से निकाल देते हैं। खाना देना तो दूर, पूछते तक नहीं हैं। अंत में तड़पता हुआ मर जाता है। यह है मानव–जीवन की गाथा। इस लेख को पढ़ने से संसार से वैराग्य होने की संभावना है।

मन ही मन सब समय अर्थ की चिन्ता करते–करते तुम्हारे दिन व्यर्थ में नष्ट हो रहे हैं। यह अर्थ नहीं, अनर्थ है, इसे समझो। पत्नी, पुत्र, बन्धु–बान्धव आदि कोई भी अपना नहीं है। मरने के बाद कोई किसी का नहीं रहता। इसलिये कहता हूँ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

34

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
7.1.07

भगवत् प्राप्ति का केवल मात्र एक ही साधन–हरिनाम जप

सृष्टि के पहले एक भगवान् के अलावा कुछ नहीं था। भगवान् ने लीला रचाने हेतु अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना की। वे ब्रह्माण्ड में स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु व शिव रूप में अवतरित हुए। ब्रह्मा को सृष्टि बढ़ाने का आदेश दिया। विष्णु को सृष्टि के जीवों का पालन का भार सौंपा व शिवजी को उनके कर्मानुसार मौत देने का भार सौंपा।

ब्रह्मा ने सृष्टि करना आरम्भ किया। जो सृष्टि प्रगट हुई, वह ब्रह्मा को ही सताने लगी। ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि यह सृष्टि तो मुझे ही सता रही है, मैं क्या करूँ? परमात्मा ने आदेश दिया कि मुझे याद करके अर्थात् मेरा भजन करते हुए सृष्टि रचो। ब्रह्मा ने ऐसा ही किया तो प्रथम उनके मन से ही श्रीनारद का अवतार हुआ। इसके बाद उनकी भौंओं (भृकुटि) से रुद्र अवतार हुआ। इसके बाद सप्तऋषि प्रगट हुए। इन ऋषियों से ही सृष्टि का विस्तार हुआ। उक्त बात इसलिए अंकित हो गई कि इसमें हरिनाम का ही प्रसंग है।

पिछले युगों में बच्चे 25 साल तक गुरु–आश्रम में शास्त्र श्रवण करते थे। उनका खून सात्विक होता था। उनसे जो संतानें होती थीं वह शुद्धवृत्ति–अच्छे स्वभाव वाली होती थीं। कलियुग में बच्चों को अधिक से अधिक धन कमाने की शिक्षा दी जाती है। अतः बच्चों का स्वभाव ही राजसिक–तामसिक होता जा रहा है जिससे संतानें बुरे–स्वभाव की होती जा रही हैं। माता–पिता को दुःख देती हैं। उनमें धर्म का तो 1% भी भाव नहीं है। जो संतान माँ–बाप तक

को नहीं मानती, वह परमपिता परमात्मा को कैसे मान सकती है ? असली बाप अर्थात् परमात्मा को भूलने के कारण माया उनको हर प्रकार से दुःख देती रहती है।

नाम–शब्द की शक्ति द्वारा ही सृष्टि का काम चलता है। इसके अभाव में कुछ भी कर्म हो ही नहीं सकता। इन नाम–शब्दों में दुःख व सुख भरा पड़ा है। उदाहरणार्थ –किसी ने किसी को अपशब्द बोला तो तुरंत हृदय में उथल–पुथल मच गई एवं क्रोध का प्राकट्य हो गया। किसी ने किसी को प्रेम भरा शब्द बोला तो उसके हृदय में सुख की स्फूर्ति प्रगट हो गई। शब्द की शक्ति से बाण चलते थे। शब्द की शक्ति से 'मेघ' राग से बरसात होती है। इसी प्रकार शब्द की शक्ति से ही भगवान, भक्त के पीछे–पीछे फिरते हैं। शब्द की शक्ति से लैक्चरार के शब्द सुनने से इन्जीनियर की पद्वी प्राप्त हो जाती है। जो कुछ सफलता मिली, वह केवल मात्र शब्द के सुनने से मिली।

इसी प्रकार हरिनाम–महामंत्र रूपी शब्दों को कान से सुनने पर ही भगवत–प्रेम जागृत होता है। कहते हैं कि मन नहीं लगता (रुकता) है, बिल्कुल गलत बात है। एक इंजीनियर बिना सुने इंजीनियर कैसे बन गया ? पत्र लिखते हैं, तब कैसे मन रुकता है ? हरिनाम को बिना सुने, भगवान् कैसे मिल जाएगा ?

इसी प्रकार हरिनाम–महामंत्र के शब्दों में भी अपार शक्ति निहित है। यदि किसी सुकृतिशाली जीव को इन नामों में श्रद्धा बन जाए तो इसी जन्म में हृदय रूप में भगवत्–दर्शन होकर जन्म–मरण से छुटकारा मिल जाए तथा गोलोकधाम की प्राप्ति हो जाए।

शब्दों से जुड़ कर मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें भगवान् ने अपार शक्ति भर दी; जिनसे एक क्षण में सृष्टि का प्रादुर्भाव हो जावे। मन्त्रों से राक्षस वायु रूप से आकाश में उड़कर देवताओं से युद्ध करते हैं, गायकजन दीपक राग गाकर दीपक जला देते हैं। मेघ राग से बरसात बरसा देते हैं इत्यादि।

शब्द के बिना सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। जरा गहरा विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम–जापक के पास समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। अर्थ–धर्म–काम–मोक्ष तथा अष्ट सिद्धियाँ–नव निधियाँ उसे सुलभ हो जाती हैं।

जब भगवान ही मिल जाते हैं तो इससे बड़ा लाभ क्या हो सकता है।

यह सब होगा केवल मात्र हरिनाम महामंत्र के शब्दों के श्रवण से ही। अनेक जन्म बीत जाएँगे, श्रवण बिना कुछ नहीं मिलेगा। सुनना तो Most Essential (बहुत जरूरी) है। सुने बिना तो सृष्टि का काम ही नहीं चलता तो फिर भगवान् कैसे मिल जाएँगे, यह तो असम्भव ही है। हरिनाम–महामंत्र की चार–माला कान से सुनकर करने से भगवान् के लिए छटपट प्रगट हो जाती है, यदि कोई अपराध न हो व मान–प्रतिष्ठा की इच्छा न हो तो!

जरा सोचो !

तुम्हारे मरने के बाद तुम्हारी देह का संस्कार करने के बाद सभी अपने–अपने घर चले जायेंगे। जब कोई किसी का हो ही नहीं सकता तो क्यों मिथ्या आशा लगाकर बैठे हो तथा किसलिये विषयों के प्रति आसक्त हो रहे हो ? इसलिये तो कह रहा हूँ कि इन पत्रों को पढ़ो! समझो और हरिनाम करो–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

नवद्वीपे बसि' जेई मंत्र जप करे।
श्रीमंत्र चैतन्य हय, अनायासे तरे।।

श्रीनवद्वीप धाम में जो व्यक्ति मंत्र जप करता है। उसका मंत्र साक्षात् मूर्ति धारण कर उसके सामने प्रकाशित होता है और वह व्यक्ति अनायास ही भवसागर को पार कर लेता है।

व्यवहार में एक साधारण विचार

एक स्थान पर एक महात्मा का सत्संग हो रहा है। वहाँ हमारा एक परिचित व्यक्ति बैठा सत्संग सुन रहा है। वह किससे सुन रहा है–कान से। जब हम उसे पूछेंगे कि सत्संग में महात्मा जी ने क्या बोला तो जितना उसने सुना उतना वह आपको सुना देगा। यदि उसका मन कहीं किसी ओर होगा तो वह नहीं सुना सकेगा तब उसे सत्संग का कोई लाभ प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार, हरिनाम को, कान से न सुनने से 'प्रेम' नहीं मिल सकेगा। इसमें केवल अभ्यास की जरूरत है। मन एक स्वच्छ वस्तु है, यदि अभ्यास किया जाए तो इस पर कोई भी रंग शीघ्र ही चढ़ सकता है। गंदा रंग भी, स्वच्छ रंग भी, जैसा संग किया जाये।

सत्संग में हजारों व्यक्ति बैठे हैं, हमने अपने एक परिचित व्यक्ति को पुकारा–"दिनेश! यहाँ आना।" दिनेश, पुकारते ही वह उठकर आपके पास आयेगा, परन्तु आने के बाद आप ने उससे बात नहीं की और न उसकी सुनी तो वह नाराज होकर वापिस चला जायेगा। इसी प्रकार हमने हरिनाम से अर्थात् भगवान् का नाम लेकर भगवान् को पुकारा। भगवान् एक क्षण में प्रगट हो गये, क्योंकि भगवान् हर क्षण, हर ठौर, कण–कण में व्याप्त हैं, उनको आने में देर नहीं लगती। अब आपका मन कहीं और चला गया तो भगवान् वहाँ से उसी समय चले जायेंगे। क्योंकि भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। यदि भगवान् से जापक का प्यार होता तो मन टिकता, प्यार न होने से मन दूसरी ओर चला जाता है। हमारा सच्चा प्यार जगत से है, झूठा प्यार भगवान् से है।

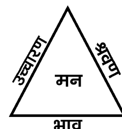
प्रेम ही भगवान् के लिये रुलाता है। सच्चा प्यार है नहीं, अतः रोना आता नहीं। जहाँ भगवान् के लिये रोना प्रगट हो जाता है,

वहाँ भगवान् रुक नहीं सकते, क्योंकि जीव उनका वास्तव में खास पुत्र है। जब तक वास्तविक बाप की गोद नहीं मिलेगी, तब तक जीव–आत्मा को वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। जब भगवान् की गोद मिल जायेगी तो इसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष–चारों पदार्थों की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी वरना दाने–दाने के लिये भटकता फिरेगा।

यह प्राप्ति होगी केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनने पर ही। जब महसूस करते हो कि जगत का व्यवहार भी कान से सुनने पर ही सफल होता है तो हरिनाम को बिना सुने कैसे लाभ होगा। कान से सुने बिना संसार का काम चल ही नहीं सकता।

मन को हरिनाम में लगाने का तरीका–

हमारा मन एक त्रिभुज में बंद है।



हमारा मन हृदय के भाव, कान के श्रवण और जीभ के उच्चारण रूपी त्रिभुज में बंद है। उसको कोई बाहर जाने का रास्ता नहीं है। एक भुजा हरिनाम उच्चारण की, दूसरी भुजा कान से सुनने की, तीसरी भुजा भाव की अर्थात् भगवान को तुम क्या बोल रहे हो (भाव में भगवान को बोलना चाहिए कि मैं आपका प्यार चाहता हूँ)। भगवान से प्यार होने पर संसार से मन का लगना अपने आप ही हटता चला जायेगा। संसार में रहते हुये कर्म करेगा, परन्तु फंसावट नहीं होगी।

गुरु जी का आदेश 1966 में सचिवालय में–

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by Ears."

यही तरीका शिव जी, उमा को बता रहे हैं–"सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव वारिधि गो पद इव तरही।।" (सादर सुमिरन means chanting Harinam sweetly) जो प्रेम से हरिनाम लेगा, संसार में उसका जीवन इस प्रकार हो जायेगा जैसा गौ के खुर से बने खड्डे को सुगमता से लांघ लिया जाता है।

"मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नैन बहे नीरा।।"

''ताकी करऊँ सदा रखबारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।''

उक्त प्रण राम जी अपनी प्रजा से कर रहे हैं।

"सुमरिये नाम रूप बिन देखे, आवत हृदय स्नेह विशेषे।।"

नाम जपते–जपते हृदय में भगवान् नजर आयेंगे। उक्त बात मैं अपने अनुभव की बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कहते हैं भजन को छुपाकर रखना चाहिये। ठीक भी है, क्योंकि घमंड आ जाता है। लेकिन मेरा भजन बढ़ता जा रहा है। इसका एक मात्र कारण है, हर समय अपने भजन में कमी ही देखना। जितना सुपात्र को प्रेरणा करता हूँ, उतना लाभ होता है। मैं ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूँ। एक लाख नाम संतों की व भगवान् कृपा से अश्रुपात में ही हो जाता है। एक क्षण मन इधर–उधर नहीं जाता है। कभी–कभी तो बिना अश्रुधारा के भी होता है। इसमें भी कोई अपराध मन से हो जाता होगा, क्योंकि घर में भी गुरु–भाई तथा भक्त रहते हैं।

श्री गौरहरि ने अपनी माँ का अपराध माना। उसने अद्वैताचार्य के प्रति अपराध किया था। उसने कहा था यह बूढ़ा मेरे बेटे का घर छुड़ाएगा। अतः मेरा भी अपराध हो जाता होगा। नामापराध तथा मान–प्रतिष्ठा की इच्छा न होने पर स्वतः ही नाम में प्रेम आने लगता है। 1954 में जब कृष्णमंत्र का पुरश्चरण किया था, उस समय मुझे 3–3 घंटे विरह होता था। अब फिर विरह जागृत हो रहा है। यह संतों व भगवत्–कृपा का फल है। यह मैं इसलिये बता रहा हूँ कि तुमको भी ऐसा हो। भगवान् विरह बिना नहीं मिलते। जब माँ ही शिशु को रोये बिना गोद में नहीं लेती, तो भगवान् बिना रोए कैसे मिलेंगे। परन्तु भगवान् तो वात्सल्यरस के सिंधु हैं, रोने से शीघ्र भक्त के पास आकर उसे संभालते हैं जो हम अपने जीवन में देख भी रहे हैं। यह रोना तो करोड़ों में से किसी एक को मिलता है। जिसको मिल गया, उसकी 21 पीढ़ी भगवान् की हो गई। (मेरी पोती) को जो रोना आ रहा है, वह पूर्ण जन्म की भक्ता बाई है। 10 साल की बाई को इतना ज्ञान, बिना भक्ति के हो नहीं सकता। यह रोना शरणागति का प्रत्यक्ष लक्षण है। शरणागति ही उत्तम

भक्ति का लक्षण है। शरणागति ही भगवान को खींच लाती है।

हरिनाम में रति–मति न होने के मुख्य कारण केवल मात्र दो ही हैं– (1) नामापराध (2) मान–प्रतिष्ठा की चाह।

अपराध, भगवान का शत्रु है। मान–प्रतिष्ठा से साधक को अहंकार हो जाता है। अहंकार श्री नारद जी–शिवजी आदि को हुआ था। उस अहंकार का ठाकुर जी ने छेदन किया। इन दो को हरिनाम प्रेमी संभाल ले तो अन्य अवगुण हरिनाम में प्रेम–होने से विरहाग्नि में जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। जो अवगुण बाहर दिखाई पड़ते हैं, वे केवल छाया–मात्र हैं। महात्माओं में अवगुण देखने से, उनका अपराध जापक को हो जाता है। समर्थ को दोष नहीं लगता। श्री गुरुदेव का अपराध तो अत्यन्त खतरनाक होता है। भक्त अपराध भी भगवान् का दुश्मन है। अपराध होने पर रूखा हरिनाम ही होता रहता है। इस जाप से केवल सुकृति इकट्ठी होती है, जो अगले जन्म में सतुगुरु के चरणों की प्राप्ति करायेगी। चाहे कोई कितना बड़ा महात्मा हो, अपराध करने पर वह भी भगवत् प्रेम से वंचित ही रहता है।

" जो सठ गुरु सन ईर्षा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।"
''त्रिभुज जोनि पुनि धरहिं शरीरा। अचुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।"

प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने भी भक्तों को दुःख दिया है, सभी भक्ति से वंचित हुए हैं।

''जो अपराध भक्त का करहीं। राम रोष पावक सो जरहीं।।"
''इन्द्र कुलिश मम सूल बिशाला। काल दंड हरि चक्र कराला।।''
''जो इनका मारा नहिं मरहिं। भक्त द्रोह पावक सो जरहिं।।"
"पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।"
"सानुकुल ताहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करहिं भक्त–सेवा।।"
"मन क्रम वचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।"(भगवत वचन)

अगला वचन शिव पार्वती को सुना रहे हैं–

1. राखहिं गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध, नहिं कोऊ जग त्राता।

हरिनाम को कान से सुनना ही पड़ेगा, वरना भगवत–प्रेम बड़े दूर की बात है!

2. मन थिर करि तब शम्भु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।
3. मुनि तापस जिन्ह ते दुःख लहहिं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं।।
4. राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुराण साधु सुर साखी।।
5. भक्ति गत अनुपम सुख मूला। मिलहिं जो सन्त होई अनुकूला।।
6. सुनह, उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।
7. कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।
8. शरण गये प्रभु ताहू न त्यागा। विश्व द्रोहि कृत अप जहि लागा।
9. जो सभीत आया सरनाई। राखहूँ ताहि प्राण की नाईं।।
10. सगुण उपासक, परहित, निरत नीति दृढ़ प्रेम।
ते नर प्राण समान मम, जिनके द्विज पद प्रेम।।
11. हरि हर निंदा सुने जो काना होय पाप गो घात समाना।।

भक्ति बढ़ाने की लगभग 350 चौपाइयाँ मैंने रामायण से छाँट कर रखी हैं, जिनके हृदय में रखने से भगवान् के चरणों में प्रेम प्राप्त होकर संसार से वैराग्य प्रगट हो जाता है। यह सब शिवजी अपनी अर्धांगनी उमा को सुनाते रहते हैं। आप संतों की कृपा से ही ऐसी प्रेरणा मिलकर सेवार्थ आपके चरणों में अर्पित करता रहता हूँ। बस आपकी कृपा की ही तृष्णा है। कृपा करते रहें!

जीवन के सार (वास्तविक उद्देश्य) को जानो।

देखो!

मनुष्य जीवन भवसागर से पार होने के लिये

अर्थात् केवलमात्र भजन करने के लिये ही प्राप्त हुआ है।

इसीलिये मेरी प्रार्थना सुनो–

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

36

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
7.3.07

एकाग्रता पूर्वक जप का महत्त्व

आप सब भक्तों की याद मुझे सताती रहती है लेकिन परिवार के बंधन की वजह से आपके चरणों में स्थान पाना मेरे लिये असंभव सा ही है। ये भी मुझे छोड़ना नहीं चाहते व आप भी मुझे अलग रखना नहीं चाहते। यह दुविधा वृद्धावस्था में आ पड़ी है। जैसा ठाकुर जी को मंजूर होगा, वही सही अवस्था होगी। वैसे मैं आपका क्या भला कर सकता हूँ। मैं खुद ही कीचड़ का कीट हूँ। गुरु महाराज ने मुझे उजागर कर दिया। अब तक मुझे कोई नहीं जानता था। अब चारों तरफ से खींचातानी हो गई। मैं भी मजबूर हूँ। आपको जो लाभ हो रहा है वह हरिनाम-स्मरण से व ठाकुर जी की कृपा से हो रहा है तथा गुरु जी का हस्तकमल सिर पर होने से हो रहा है। सच पूछो तो जैसा आप समझ रहे हैं, वैसा मैं नहीं हूँ। मेरा तीन लाख हरिनाम जो हो रहा है, किसी अलक्ष शक्ति द्वारा ही हो रहा है एवं वही शक्ति मेरे से कहलाकर आपको हरिनाम करने को प्रेरित कर रही है। देखा जाय तो पांडवों को जिताया श्रीकृष्ण ने और नाम अर्जुन का हो गया। भगवान् ही सब करवाते हैं। किसमें शक्ति है कि किसी का भला कर सके। मेरे पत्रों के लेखों को छपाकर पुस्तक रूप में परिणित करने से तो मेरी ख्याति होगी। मैं नहीं चाहता कि मेरी ख्याति बढ़े। इससे तो मुझे नरकगामी होना पड़ेगा। एक साधारण मानव क्या ख्याति के योग्य है? ख्याति भगवान् के अलावा किसी की नहीं होती। ख्याति-योग्य केवलमात्र भगवान् ही हैं। जो भी मैंने गुरु महाराज के चरणों में पत्र डाले हैं, वह मैंने स्वयं नहीं लिखे, किसी अलक्ष शक्ति द्वारा प्रेरित होकर आधी रात में लिखवाये गये हैं। आपसे झूठ बोलकर मैं नरकगामी हो जाऊँगा। जबकि मैं जीवन भर सत्संग में नहीं जा सका।

घर–गृहस्थी से फुर्सत ही नहीं मिल पाई। फिर इंजीनियर की नौकरी में कहाँ समय था। हरिनाम के अलावा पत्रों में कुछ भी नहीं लिखा है। हरिनाम–स्मरण से कैसे लाभ हो सकता है ? यही खुलासा पत्रों में लिखा गया है। इससे साधक, जो हरिनाम करना चाहता है, सुचारु रूप से उच्चारण कर भगवत्–अनुभूति प्राप्त कर शरणागति–भाव में संलग्न हो सकता है। मेरे लेखों में, जो अलक्ष शक्ति ने प्रेरित होकर लिखवाये हैं, 1% भी कमी नहीं है। मैंने गारंटी ली है कि जो भी साधक कान से सुनके चार माला कर लेगा, 100% विरह सागर में डूबेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती। कोई आजमाकर देख सकता है। हाँ, शर्त यह है कि यदि साधक मान–प्रतिष्ठा तथा भक्त–अपराध से बचे, तब ही उक्त अवस्था प्राप्त कर सकेगा। इससे सब को लाभ पहुँचेगा अतः पुस्तक छपवाना सर्वोत्तम ही है। यदि इसमें Objection होता है तो छपाना उचित नहीं है। जैसा सब साधक चाहें, कर सकते हो। यह प्रश्न भी तब उठा जब सभी ने पत्रों को डायरियों में उतारना आरम्भ किया और उनकी इच्छा छपवाने की हुई। मैंने मना भी किया था कि छपवाने की क्या जरूरत है, तब महाराज जी ने कहा कि इन पत्रों से सभी को लाभ होगा। इसमें आपका क्या नुकसान है ? मैंने कहा, जैसी आपकी मर्जी। मैं तो आपके विचारों से सहमत ही हूँ। इसमें किसी को एतराज नहीं होना चाहिये।

निताई चैतन्य बलि' जेइ जीव डाके।
सुविमल कृष्ण प्रेम अन्वेषये ता'के।

जो जीव 'हा निताइ! हा चैतन्य।'
कहकर पुकारता है,
सुविमल कृष्ण प्रेम उसे ढूँढ़ता फिरता है।

37

छींड की ढाणी
2.7.07

हरिनाम–शब्द की शक्ति

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। जीह (जीभ से) नाम जप जानहिं तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा, सन्त, पुराण उपनिषद गावा।।
जिनकर नाम लेत जग माहिं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
कह हनुमन्त बिपत्ति प्रभु सोई। जब तक सुमिरन भजन न होई।।
मन थिर कर तब शम्भू सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना।।

मन एकाग्र करना परम आवश्यक है, जो नाम रूपी शब्द को कान से सुने बिना कभी नहीं हो सकता। मन+कान को एक ठौर अर्थात् एक साथ रखना होगा।

नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगलवासा।।
सन्मुख होहिं जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघनासहूँ तबहीं।।

श्री गुरुदेव की शरण में जाते ही अनन्त कोटि जन्मों के पाप भस्म हो जाते हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में जिह्वा द्वारा उच्चारित शब्द की शक्ति का प्रभाव अकथनीय होता है। शब्द के अभाव में भगवत् सृष्टि का कोई भी कर्म हो ही नहीं सकता।

शब्द की शक्ति से अष्टसिद्धि व नवनिधि का प्रादुर्भाव होता है। इसी से ब्राह्मणों का सृजन व प्रलय होता है। इसी से श्रवण–दर्शन–स्पर्शनादि हो पड़ते हैं। कहने का आशय है कि यदि शब्द–शक्ति का अभाव हो जाए तो सभी चर–अचर स्थावर–जंगम नश्वरता को प्राप्त हो जावें। सभी शब्द भगवान् श्री हरि से ही प्रगट हुए हैं। 'हरि' ही शब्द का उद्गम स्थान है। सभी शब्द हरिमय ही हैं। हरि के अभाव में शब्द का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता। शब्द–शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। दुःख–स्वरूप व सुख–स्वरूप दोनों प्रकार के होते हैं। उदाहरणस्वरूप किसी ने किसी को अपशब्द अर्थात् गाली–गलोज से संबोधित किया तो उसका अन्तःकरण

दुःख की आग से उथल–पुथल हो गया। उस शब्द ने क्रोध को जागृत कर दिया जो अनिष्टकारक, दुःखकारक हो गया। इसी प्रकार किसी ने किसी को आदर–सूचक शब्द से संबोधित किया तो उस शब्द से सुनने वाले के अन्तःकरण को प्रेमामृत से आच्छादित कर दिया, जो सुखकारक हो गया।

इसी प्रकार प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ प्रभाव होता ही है। बिना प्रभाव किए शब्द विलीन नहीं होता। शब्द–शक्ति से विमान चलते थे, धनुष से अग्नि बाण, वायु–बाण आदि तीर चलते थे। प्रलय तक हो पड़ता था। संगीत विद्या से दीपक जल जाते थे व मेघ बरसात करते थे। शब्द–शक्ति से समुद्र सूख जाते थे, आदि–आदि। इसी प्रकार भगवान् का कोई भी नाम उच्चारण करने पर सुनने वाले का परम मंगल कर देता है। इसी कारण से कलियुग में भगवान ने नाम रूप से अवतार लेकर, सरलतम साधन–

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

महामंत्र का आविष्कार कर प्रचार किया है।

जो भी मानव उक्त हरिनाम रूपी महामंत्र को अपने जीवन में अपनाएगा, वह असीम दुःख (जन्म–मरण) से मुक्त हो जावेगा, जैसा कि भूतकाल में, भक्तों ने इसे अपना कर, अपना मंगल–विधान कर भविष्य में आने वालों के लिए इसे सरलतम मार्ग के रूप में निश्चित किया है।

चारों युगों में ही हरिनाम का प्रभाव निश्चित है परन्तु कलियुग में तो विशेष करके श्रीहरि ने हम जीवों पर कृपा करके ही इस महामंत्र को प्रकट किया है जिससे सरलता से जीव अपना उद्धार कर सकता है। स्वयं हरि ने श्रीगौर हरि के रूप में अवतार लेकर इस नाम को अपनाकर सभी को शिक्षा दी है। उन्होंने स्वयं भक्त बनकर इस सरलतम मार्ग को दर्शाया है।

आरम्भ में इस महामंत्र में मन नहीं लगता क्योंकि माया–मोहित जीव विषयों में ओत–प्रोत रहता है। विषयों के विष

की मस्ती उसे चढ़ी रहती है। जब जीव, जबरन हरिनाम जपने लग जाता है तो साधु–कृपा से उसे थोड़ा सा चस्का लगने लग जाता है व उसका विषयों का विष उतरने लग जाता है। तब इस मंत्र में उसका मन लगने लग जाता है कुछ गुरु कृपा से, कुछ संतों की कृपा से नाम लेते रहने से धीरे–धीरे असत्संग छूटने लग जाता है, दुर्गुण कम होने लग जाते हैं व सद्गुण अन्तःकरण में घुसने लग जाते हैं। तब, हरिनाम में रुचि पैदा होने लग जाती है।

कलिकाल का युग, दुर्गुण–प्रधान होने से भगवान् ने कृपा करके मानव के मंगल हेतु सरलतम् साधन रूप से इस हरिनाम–महामंत्र को सरलतम उपाय रूप से उपलब्ध करा दिया है लेकिन दुर्भागा मानव इस तरफ देखता तक नहीं। अपना जीवन सोने में व कमाने में व्यर्थ खर्च कर डालता है। उसे पता नहीं कि एक दिन यहाँ से जाना पड़ेगा तथा फिर मनुष्य–जन्म नहीं मिलेगा।

दूसरे का हित करना भगवान् को प्रसन्न करने का सबसे बड़ा साधन है। जो दूसरों का हित करता रहता है, उसे जग में कुछ भी असंभव नहीं रहता। सभी उसे प्रेम की दृष्टि से देखा करते हैं।

परहित बस जिन्ह के मन माहिं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कुछ नाहिं।।
सुन उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।
सगुण उपासक, परहित निरत नीति दृढ़नेम।
ते नर प्राण समान मम जिनके द्विज पद प्रेम।।

जो माया को, ईश्वर को तथा अपने स्वरूप को नहीं जानता, वही 'जीव' नाम से कहा जाता है। इसका बारम्बार जन्म–मरण होता रहता है।

भक्ति के सब साधनों में श्रेष्ठतम है–हरिनाम का स्मरण। जिसको इसमें रुचि हो गई, उसने सभी भक्ति–प्रधान साधनों का पूर्ण समापन कर लिया जिसको हरिनाम में रुचि नहीं हुई, उसको अन्य साधनों से आवागमन (जन्म–मरण) का दारुण दुःख हटाने

में अनेक जन्म व्यतीत हो जाएँगे। अन्त में हरिनाम ही पार लगाएगा। क्योंकि हरिनाम की चार माला होने पर अन्तःकरण में शत–प्रति–शत भगवान् के लिए अकुलाहट हो जाती है। आँखों से लगातार अश्रुधाराएँ बहने लगती हैं तथा नाक से श्लेषमा टपकने लग जाता है।”

यह स्थिति तभी आती है जब संसार से वैराग्य का भाव तथा भगवान् से राग के भाव का प्रादुर्भाव होने लग जाता है। यही है सत्य रूप में शरणागति का लक्षण। उक्त भाव के अभाव में शरणागति के भाव का आना असम्भव ही है। शरणागति का भाव तब ही उदय होगा जब भगवान् के लिए हृदय में छटपट मचेगी।

भगवान् शरणागति भाव वाले जीव को एक क्षण के लिए भी अपने वक्ष–स्थल से अलग नहीं रख सकते। यह भगवान् के लिए असम्भव ही होगा। यह होगा हरिनाम की 4 माला स्मरण करने से अर्थात् नाम को कान से सुनने से ही हरिनाम में जिस साधक की रुचि हो गई, उसने सतसंग, धर्म–शास्त्र पठन, तीर्थाटन, वर्णाश्रम–धर्मादि सभी पूरे निभा लिए। यदि नाम में रुचि नहीं हुई तो इनका अंतिम फल न मिलने से शरणागति रूपी फल नहीं मिल सकेगा। जब तक शरणागति का भाव अन्तःकरण में नहीं जागृत हुआ, तब तक भगवत्–कृपा अर्थात् भगवान् के प्यारे से वँचित ही रहना पड़ेगा।

भक्तापराध तथा मान–प्रतिष्ठा की चाह–ये दोनों, शरणागति का भाव उदय होने में मूल–बाधक रहेंगे। समय बड़ी तेजी से जा रहा है। अतः भक्ति रूपी धन, किराए हेतु इकट्ठा कर लेने में ही मंगल है, वरना अकथनीय नुकसान होगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
हर समय सोलह नाम वाले इस महामंत्र का जप करते रहो।

38

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.4.07

मन को हरिनाम में लगाने का सरलतम साधन

भक्त-कृपा ही, भक्ति-प्राप्ति का मूल है। भगवान् के रहने का कोई अलग से स्थान नहीं है। भक्त का हृदय-कमल ही, ठाकुर जी का मंदिर है। अतः भक्त चरण का चिंतन ही परम पुरुषार्थ 'प्रेम' को प्राप्त करा सकता है। ठाकुर जी का चिंतन इतना सक्षम नहीं है, जितना भक्त का चिंतन। स्वभावानुसार भक्त में जो गन्दगी दिखाई दे रही है, वह सूर्य को बादल द्वारा ढकने के समान समझनी चाहिए, वरना घोर दुःख भोगने पड़ेंगे। जिस प्रकार गंगाजी में गंदा पानी रहने पर भी सदैव पवित्र व स्वच्छ रहती है। उसी प्रकार भक्त सदैव निर्मल है, यह मैंने भी गुरुदेव जी से सुना है।

निम्न प्रकार अपना जीवनयापन करने पर मन हरिनाम में निश्चित रूप से लग जाएगा-

1. प्रसाद पाते या जल-सेवन करते समय मन ही मन हरिनाम करते रहो।

2. असत्-संग भूल कर भी न करो।

3. इन्द्रियों का तर्पण ठाकुर जी के लिए करते रहो।

4. अखबार उपन्यास आदि कभी न पढ़ो, मन चंचल होगा।

5. T.V. भूल कर भी न देखो। यह साक्षात् कलि का रूप है।

6. असत् संकल्प-विकल्प का चिंतन कभी न करो।

7. सत्-शास्त्र का अवलोकन खाली समय में करते रहो।

8. गुरु-संत-धाम का चिंतन करते रहो।

9. हरिनाम को कान से सुनते रहो।

10. मौत को हर क्षण याद रखो।

11. मानव–जन्म अब भविष्य में न होगा, यदि भजन न किया तो फिर से चौरासी के चक्कर में जाना होगा, इसे हमेशा याद रखो।

12. 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मान–देन कीर्तनीयः सदा हरि'–भाव में सदैव रत रहो।

13. भगवान् से अपने भावानुसार नाता जोड़ो।

14. मरने वालों के संग शमशान भूमि में जाते रहो।

15. दस–नामापराधों से बचते रहो।

16. मान–प्रतिष्ठा को अपना घोर शत्रु समझते रहो।

17. जब मन असत् विचारों में जाने लगे तो साक्षात् रूप से अथवा मानसिक चिंतन से उस स्थान को छोड़कर महान–आत्माओं के चरणों में जा बैठो अथवा अकेले में जोर–जोर से हरिनाम करो। हरिनाम को कान से सुनकर करना।

18. हरि–मंदिरों की सेवा में रत रहो।

19. युवक हो, तो बराबर वालों के संग मत बैठो।

20. आँखों को बुरे दृश्यों से बचाते रहो।

21. ताश, चौपड़, शतरंज खेलकर समय बर्बाद न करो।

22. हर क्षण हरिनाम में मन लगाना सीखो।

23. क्रोध के वेग से तथा उपस्थ के वेग से बचो, वरना भगवत्–प्रेम की लहर आती हुई रुक जाएगी। हजारों वर्षों की तपस्या एक क्षण में विलीन हो जाती है।

भगवत्–भक्त–चरणों में सेवा हेतु प्रस्तुत रहो, इस भावना से कि भक्तों का आशीर्वाद मिलेगा तो भजन–स्तर और बढ़ जाएगा।

उक्त प्रकार से जीवन यापन करने पर, 100% हरिनाम में मन लगाकर व पूर्ण–वैराग्य में डूब कर भगवत्–प्रेम–रस–सिंधु को प्राप्त किया जा सकता है।

★जय श्री राधे★



जिस व्यक्ति के हृदय में प्रेम आविर्भूत होता है, वह भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न लीला–विलासरस में निमज्जित हो जाता है। उसे व्रज में श्री राधा के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त हो जाता है और उसका मन सदैव युगल–सेवा में ही लगा रहता है

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

हरिनाम का साधन

हरिनाम जपने का चारों युगों में ही महत्त्व है, लेकिन कलियुग में केवल मात्र हरिनाम अन्तःकरण से करने पर ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तथा भगवत्-प्रेम जो पंचम पुरुषार्थ है, प्राप्त हो जाता है। अन्तःकरण से नाम-जप करने के दो साधन हैं। पहला साधन कान से श्रवण करना व दूसरा भक्त के माध्यम से हरिनाम करना। दूसरा साधन पहले साधन से सरलतम है। लेकिन पहले साधन से प्रेम-विरह की प्राप्ति शीघ्र होती है। दूसरे साधन से देर में प्रेम प्राप्त होगा।

दस-नामापराधों में नौवां नामापराध-अनमने मन से हरिनाम जपना प्रायः सभी से होता रहता है, लेकिन घबरायें नहीं। माला भी उक्त दोनों साधनों से हो जावे तो अन्य माला अनमने मन से करने पर भी अपराध का मार्जन हो जाता है। भगवान् भक्त की चूक नहीं देखते, वह भक्त का प्रयास ही देखते हैं, जैसे शिशु घर में कुछ नुकसान भी कर दे तो माँ शिशु का अपराध नहीं मानती।

अनमने मन से हरिनाम करना भी न करने से अच्छा है। इससे सुकृति इकट्ठी हो जाती है एवं अगले जन्म में सदगुण से सम्बन्ध हो जाता है।

भक्त की कृपा ही प्रेम-भक्ति प्राप्त होने का मूल है। अब प्रश्न यह है कि भक्त की कृपा कैसे मिल सकती है ? भक्त की कृपा-भक्त की सेवा से, भक्त के चिंतन से, भक्त पद-रज, पदजल व भक्त के अवशेष-प्रसाद से ही प्राप्ति हो सकती है। भक्त का संग दूर से भी हो जाता है। भक्त चिन्मय होता है। साधक 500 कोस दूर रह कर भी मन से भक्त (सन्त) का संग कर सकता है। भक्त के माध्यम से ही भगवत्-प्राप्ति होती है। भगवान् किसी को सीधे नहीं मिलते।

क्यों इसलिये नहीं मिलते कि भगवान्, न तो बैकुंठ में, न मंदिर–मस्जिद–चर्च में वास करते हैं, किन्तु वह तो भक्त के हृदय–मंदिर में ही वास करते हैं। अतः भक्त के चरणों में मानसिक रूप में बैठकर हरिनाम करना चाहिए। मानसिक रूप से राधाकुण्ड पर जाकर उन्हें स्नान कराना चाहिए, उनका चरण धोकर पीना चाहिए, उनका जूठन–प्रसाद खाना चाहिए। इससे भगवत्–प्रेम शीघ्र प्राप्त हो जाता है। भगवान् जापक के हृदय में प्रगट हो जाते हैं।

"सुमरिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय स्नेह विशेषे।"

– शिव वचन

"While chanting Harinam sweetly, listen by ears"

– श्रीलगुरुदेव

"सादर सुमरिन जे नर करहिं। भव बारिधि गो–पद इव तरहि।"

– शिव वचन

प्रधानमंत्री से मिलने हेतु उसके अंगरक्षक से मिलना होगा। इसी प्रकार भगवान् से मिलने हेतु उनके भक्त से मिलना होगा।

शरणागत भक्त की बात भगवान् कभी टालते नहीं। शरणागत भक्त को कैसे पहचानें ? शरणागत भक्त, रुचिपूर्वक हरिनाम करता है। रुचिपूर्वक हरिनाम तब ही होगा जब संसार में उसका लगाव कम होगा। संसार में मन का लगाव जितना कम होगा, उतनी अधिक हरिनाम करने में रुचि होगी। वह हर समय भगवत् चर्चा ही करेगा। संसारी बातों से वह दूर रहेगा। नाम जपने तथा भगवत्–चर्चा होने पर रो देगा। रोना तब ही आवेगा जब उसका नाता भगवान् से जुड़ा हुआ होगा। भगवान से सम्बन्ध होना अत्यंत जरूरी है। भगवान् मेरे माँ–बाप हैं, भाई हैं, सखा हैं, आदि–आदि। बिना सम्बन्ध प्रेम होगा ही नहीं।

अब विचार करना होगा कि श्री चैतन्य महाप्रभु किसकी बात मानते हैं। किसकी बात नहीं टालते। शची माँ, अद्वैताचार्य, ईशान ठाकुर जो निमाई को गोद में खिलाते रहते थे, जिनके बिना निमाई रोता रहता था। ऐसे बहत से गुरुवर्ग हैं, जिनको निमाई से प्यार

था। ऐसे किसी गुरुवर्ग के पास जाकर उनसे प्रार्थना करके निमाई के पास जाना चाहिए। निमाई इनकी सिफारिश को स्वप्न में भी नहीं टालेगा और आप पर कृपा–वर्षा कर देगा। इसी प्रकार कृष्ण से, कपिल भगवान से, नृसिंह देव, शिव जी, हनुमान आदि से कृपा ली जा सकती है। इस साधना से मन कहीं और नहीं जावेगा। शीघ्र–प्राप्ति हो जावेगी। संसार करते हुए ही तन्मयता से भजन होता रहेगा। शरणागति–भाव प्रगट होने पर भगवान् उसकी हर क्षण देखभाल रखेगा। जैसे माँ अपने शिशु की देखभाल रखती है; क्योंकि शिशु माँ के शरणागत है। कितना सरल जप करने का तरीका है। गुरुवर्ग ने इसी प्रकार भजन कर भगवान् से लगाव किया था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने भजन में लिखा है–वैष्णव चरण, कल्याणेर खनि, मातिब हृदये धरि–वैष्णवों के चरम कल्याण की खान हैं। हे हरि! मैं कब उन चरणों को हृदय में धारण करके मतवाला होऊँगा। वैष्णव चरित्र सदा ही पवित्र है। जो वैष्णवों की निंदा करते हैं, उनसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बात भी नहीं करते। श्रील नरोत्तम ठाकुर ने कहा है "ठाकुर वैष्णव पद, अवनीर सुसम्पद" कि वैष्णवों के श्री चरण ही पृथ्वी की सम्पदा हैं। वैष्णवों के चरण की रज ही मस्तक का आभूषण है। वैष्णवों का संग सदा आनंद क्षेत्र प्रदान करता है। जो वैष्णवों का आश्रय लेकर भजन करता है, उसका श्रीकृष्ण परित्याग नहीं करते।"

जो कोई भी नाम का प्रभाव जानना चाहता है उसे जिह्वा से नाम जपना चाहिये।

"रामनाम का अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा।।"

– शिव वचन

सरलतापूर्वक गुरु वैष्णवों की सेवा में तत्पर रहकर, सर्वदा ही श्रीनाम भजन करने पर समस्त अनर्थ दूर हो जाते हैं।

– श्रील वामन गोस्वामी महाराज

40

छींड की ढाणी

हरिनाम स्मरण (जपने) के प्रायः तीन ही साधन

हरिनाम जपने के प्रायः तीन ही साधन हैं :-

1) कान से सुनना तीनों साधनों में होगा।

2) संतों के चरण में बैठकर नाम-जप करते रहना। इसमें गुरुदेव से लेकर गुरु-परम्परा में जो संत आए हैं, उनके श्री चरणों में बैठकर नाम-जप करते रहना। इसमें श्रवण गौण रहेगा तथा संत चरण में बैठना मुख्य रहेगा।

भगवान कहते हैं, मैं न वैकुण्ठ में, न मंदिर में, न धाम में, मैं केवल मात्र भक्त के हृदय में सदैव विराजता हूँ। यदि मेरा दर्शन करना हो तो भक्त से प्रेम का नाता जोड़ लो, मैं प्राप्त हो जाऊँगा। गुरु व संत के माध्यम से मैं प्रगट हो जाता हूँ। यदि कोई मुझे इनके अभाव में देखना चाहे तो मैं उधर झाँकता भी नहीं।

3) श्री गौर-निताई व श्रीकृष्ण जिनकी बात मानते हैं, उनसे प्रार्थना करना होगा। निमाई अपनी माँ शची की, अद्वैताचार्य आदि की बात मानते हैं। उनके पास जाकर प्रार्थना करें। वे यदि साधक को उनके पास ले जाकर सिफारिश करेंगे तो उस भक्त पर कृपा अवश्यमेव होगी ही। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के लिए करना होगा।

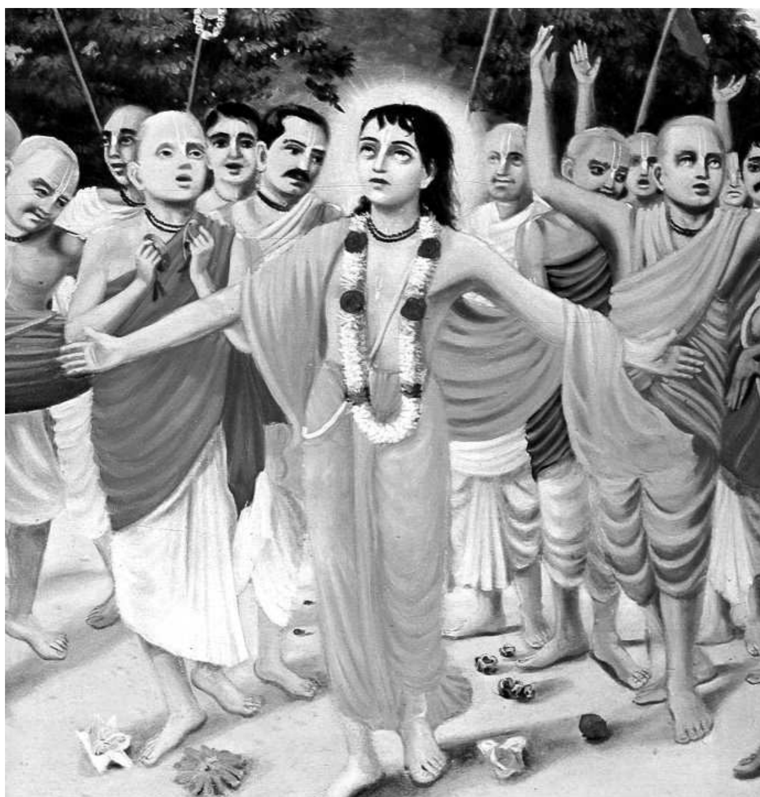
उक्त प्रक्रिया में एक रील सी बनकर मन को एकाग्र कर देगी। कान का श्रवण इसमें गौण रहेगा, रील मुख्य होगी। मानसिक-भजन शत-प्रतिशत सच्चा होता है। शास्त्र में अनेक उदाहरण हैं। भक्त की बात भगवान को माननी पड़ती है। कान से सुनने पर शीघ्र शरणागति प्रकट होती है, क्योंकि उसमें विरहाग्नि जल पड़ती है। रील में देर होती है। जीभ का उच्चारण व कान का श्रवण, घर्षण पैदा कर, भगवान् के लिए विरह प्रगट कर देता है।

उक्त प्रकार का नाम–जप शीघ्र भगवत्–रति प्रकट कर देता है। उक्त दो साधन ऐसे सरल हैं कि इसमें मन टिक जाता है। संसार का चिंतन रफूचक्कर हो जाता है। इन तीनों साधनों से चण्डीगढ़ में (बहुत से लोगों) को लाभ हो रहा है व हुआ है। ये केवल मन पर ही निर्भर है, कोई मुश्किल नहीं है।

विष्णु प्रिया (मेरी पोती) को एक साल में विरह कैसे हो गया। जब भी फोन करता हूँ, सुनता हूँ कि कथा कर रही है। हो सकता है रोज अश्रु न आवें, कभी–कभी ही सही। बीज तो पड़ गया। बूढ़े हो गये, क्या कभी अपने प्रभु के लिए रोए ? यह सब बेपरवाही ही है। 1954 में मैंने कैसे पुरश्चरण कर लिया ? जिसमें 3–3 बार रोना होता था। इसी कारण वाक् सिद्धि आई। ना–समझी से बरबाद करता रहा। किसी का हित हो जाये तो अच्छा है। अभी भी हित होने की वजह से अपना भजन बांटता हूँ तो मेरा भजन उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। मुझे मान–प्रतिष्ठा की तनिक भी चाह नहीं है, यदि होती तो प्रतिदिन 3 लाख नाम मन–सहित नहीं होता। भगवान् को मन चाहिए। भगवान् किसी समय में नहीं बंधे हैं। बूढ़े हो गए परन्तु हरिनाम करते हुए एक अश्रु नहीं आता। लेकिन किसी ने अभी हरिनाम लिया है, उसको भगवान के लिए रोना आता है।

समय बातों में बरबाद हो रहा है, जितनी जरूरत हो, उतनी ही बात करनी चाहिए। दुनियाँ तो रो रही है, उनके साथ तुम भी रोते रहो। हरिनाम ही सम्पत्ति है, लूटनी हो तो लूट लो, वरना रोना तो है ही। तुम दुनियाँ के नहीं हो। तुम राधा–गोविंद के परिवार में हो। अब भी समझ जावो तो ठीक है। मुझे गोविंद का नुकसान सहन नहीं होता। बस, इसी से झगड़ा होता है और मुझे कोई परवाह नहीं है। रात में प्रेम सहित कीर्तन करो। समय निकाल कर हरिनाम करो। यदि छटपट नहीं होगी तो केवल कपट का भजन है। भजन गीति में रोने की ही शिक्षा है। उसे ग्रहण करो तो सब कुछ मिल पाएगा।

एक माला भी कान के श्रवण से नहीं होती तो इसका मतलब है बेपरवाही। बैंक में भी मन के बिना काम हो जाता होगा? हरिनाम का महत्त्व नहीं समझा। मन को जिसका महत्त्व समझ में आता है वहीं मन लगता है। पछताना पड़ेगा, रोना पड़ेगा, अब भी समझ जावो। मुझ पर पूर्ण कृपा है। परिवार में ऊपर से प्यार रखो। समय बरबाद मत करो। खुशामद मत करो। खुशामद करो भक्त की।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

41

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

चण्डीगढ़

दिनांक : 1.6.2007

भगवान्-प्रेम प्राप्ति में गुरु वैष्णव तथा हरिनाम का महत्व

मानुष जन्म बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियों के बाद भगवान् जीव को यह सोच कर एक मौका देते हैं कि मेरी गोद से बिछुड़ा हुआ प्राणी अनन्त भीषण दुःखों की ज्वाला में जल रहा है। अब इसे मानुष देह देना परमावश्यक है ताकि मुझ नित्य-पिता की गोद में आकर अपने भीषण दुःखों से अपना पिंड छुड़ा सके। लेकिन माया-मोहित जीव को जब तक सन्त-संग न मिल सके, तब तक वह माया से पिंड छुड़ा नहीं सकता। दुर्भाग्यवश जीव फिर उन्हीं चौरासी लाख योनियों में घूमता-फिरता है। साधु की कृपा से इसे ज्ञान होने पर यह भक्ति-पथ का पथिक होकर भगवत-चरणों में जा पहुँचता है, जहाँ से फिर वापिस लौटना नहीं पड़ता। वहाँ जाकर अलौकिक आनन्द-सिन्धु का रस पीता रहता है। भगवद्धाम में उसे अन्दर-बाहर का कोई रोग नहीं सताता। सदा नवयुवक उम्र में ही रहता है। बुढ़ापा, झुरियाँ पड़ना, सफेद बाल होना आदि वहाँ नहीं होता। सदा आनन्द की मस्ती में घूमता रहता है। मन चाही वस्तु तुरन्त उपलब्ध हो जाती है। कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। ऐसा एक गोलोक धाम है। वहाँ श्रीकृष्ण अपने पार्षदों के संग लीला करते रहते हैं। उसी में वह शामिल होकर आनन्द से भक्ति करता रहता है। भगवान्, भक्त की भाव-पूर्ण भावना से ही प्रसन्न होते हैं। भक्तवत्सल भगवन् का झुकाव केवल भावपूर्ण जाप की तरह होता है। जो उनके नाम के जप का जीभ से उच्चारण करते हुए व कान से सुनते हुए करता है, अचल-निश्चल व एकाग्रमन होकर श्री हरिनाम-धुन में लौ लगाता है तथा नाम पर अपने को निर्भर कर देता है वह नाम श्रवण को ही अन्तिम सिद्धि मान लेता है।

श्रीनाम का अभ्यासी नाम के जप से, चिन्तन से, आराधना से, ध्यान से, नामी–भगवान् को अपने हृदय–मंदिर में ऐसे प्रकट कर लेता है जैसे यज्ञ करने वाला दो लकड़ियों को आपस में रगड़ कर अग्नि प्रकट कर लिया करता है। परन्तु नामाभ्यासी को नाम को लगन से, संशय रहित निश्चय से, पूरे भरोसे से व बड़ी तत्परता से जपना चाहिए। इसमें शिथिलता होने पर सफलता होने में सन्देह हो सकता है। नाम बेकार नहीं जाता। सुकृति होने पर अगले जन्म में सद्गुरु प्राप्त कर लेता है। नाम–योग की महिमा अगम्य है। कहा भी है–जाना चहहीं गूढ़ गति जेऊ। जीह (जीभ) नाम जप जानेऊ तेऊ।। "हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा"।। "नाम प्रसाद संभू अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।" जप–साधक को यदि अपनी मंजिल पर पहुँचना हो तो वह अपने मन से ईर्षा–द्वेष को जड़ से उखाड़ फैंके, वरना भगवत्–प्रेम आने से देर होगी। भगवत्–प्रेम ही अन्तिम पुरुषार्थ है। भगवान की अन्तिम उपलब्धि शरणागति है। शरणागति के लक्षण हैं–भगवान् के लिए छटपट व आँखों से अश्रुधारा। जब तक अश्रुधारा नहीं, तब तक शरणागति भी नहीं। शरणागति ही अश्रुधारा प्रगट करती है। यह तब ही होगी, जब संसारी आसक्ति कम होती जाएगी। शरणागति के प्रकट होने में दो जबरदस्त रोड़े हैं– (1) दस नामापराध व (2) अहंकार (मान प्रतिष्ठा की चाह)। भक्त–अपराध होने पर हाथ में माला लेना दूभर हो जाता है तथा अहंकार आने पर नास्तिकता का उदय हो जाता है। भगवान् कहते हैं कि यदि शिवजी को भी अहंकार हो जाता है तो वह भी अपनी स्थिति से नीचे गिर जाते हैं। साधारण की तो बात ही क्या है!

यदि उक्त दो अड़चनें शान्त रहती हैं तो अन्दर के दुर्गुण हरिनाम को कान से सुनने पर विरहाग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं तथा अश्रुधारा में बहकर–सूक्ष्म शरीर से बाहर निकल जाते हैं। सद्गुण अन्दर अपना जमाव करने लग जाते हैं। सब का हित करना ही उस साधक का सर्वश्रेष्ठ कर्म हो जाता है।

"परहित बस जिनके मन माहीं।
तिन्हँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।"

(शिव वचन)

श्री गुरुदेव कान रूपी नौका में शिष्य को बिठाकर, हरिनाम–मंत्र रूपी मल्लाह को संसार–रूपी अथाह सागर को पार करने हेतु भेजते हैं। शिष्य अपने गुरुदेव के आदेश से मन्त्र को अपना कर श्रवण रूपी लट्ठे (चप्पू) से नौका को चलाकर अथाह संसार–रूपी सागर को पार कर जाता है तो फिर वह आनन्द–तट रूपी गोलोक में पहुँच जाता है तथा सदैव के लिए दुःख–सागर से छुटकारा पा जाता है। आवागमन रूपी अन्धकूप से निकलकर अमृत–सागर में तैरने लग जाता है।

जिस साधक को हरिनाम का चस्का लग गया, उसे अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पत्ति मिल गई। उसे भगवत प्राप्ति हो गई। अब उसे और कोई सम्पत्ति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रही। उसने तो अपनी 21 पीढ़ियों का उद्धार कर लिया। उसका रोना–धोना समूल नष्ट हो गया। जिसने नाम का सहारा ले लिया, उसका हिंसक प्राणी भी प्यारा बन गया।

"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"
"लाभ कि किछु हरि भक्ति समाना। जेहि गावहिं श्रुति सन्त पुराणा।"

भरत जी का राम–नाम जपना कैसे होता था ?

पुलक गात, हिय सिय–रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृश गात।
राम–राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जल जात।।

उक्त प्रकार से जब जप होगा तब शरणागति अर्थात् भगवत्–प्राप्ति होगी। शरणागत को भगवान एक क्षण भी छोड़ कर कहीं नहीं जाते। उसकी रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को नियुक्त रखते हैं।

मम गुण गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकि करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहीं महतारी।।
सन्मुख होहिं जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघनासहूँ तबही।।

गुरु–आश्रित होते ही अनन्त कोटि जन्मों के पाप जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। भविष्य में यदि गुरु आदेशानुसार जीवनयापन करता है तो अन्त में आवागमन रूपी भीषण दुःख से सदा के लिए छूट जाता है। दुसंग में, स्त्री–लम्पट का संग सबसे खतरनाक है। इसे दूर से ही त्याग देना श्रेयस्कर है। यह साक्षात् माया का असली रूप है। आजकल T.V. साक्षात् 'कलि' का अवतार है, जो बच्चे से लेकर बूढ़े तक को चरित्रहीन कर बर्बाद कर रहा है। कलि का दूसरा अवतार है– मोबाइल (Mobile) जो छुप कर बदमाशी की Training दे रहा है तीसरा, अखबार भी कलि का ही रूप है। इसे भक्त को तो पढ़ना ही नहीं चाहिए। यह भक्ति का असली शत्रु है। यदि इनका संग नहीं किया जाए तो भगवत–प्रेम प्राप्त किया जा सकता है। जो भी भविष्य में आविष्कार होगा, ऐसे यन्त्र का होगा जो मानव का नाश करता रहेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो भी हरिनाम का आसरा लेगा, वही इस कलि से बच पायेगा। यह कलि इतना खतरनाक है कि हर गृहस्थी में कलह मचा कर आनन्द से नाचता रहता है। इससे बचने का हरिनाम के सिवा कोई उपाय नहीं है। भाव से जीभ से उच्चारण करके, कान से श्रवण करने से 2 से 4 माला जप होने पर 100% अश्रुधारा बहेगी। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमा कर देख सकता है। जिसको उक्त स्थिति प्राप्त हो गई, वह भगवान् का प्यारा हो गया। उसे शरणागति, जो भक्ति का जीवन प्राण है, उपलब्ध हो गई।

भगवान् सीधा कभी नहीं मिलता। भक्त के माध्यम से ही मिलता है अर्थात् गुरु के माध्यम से भगवान् उपलब्ध होता है। गुरुवर्ग में किसी के भी चरण में बैठकर नाम–जप करना होता है। मानसिक रूप से सन्त की सेवा करते रहना चाहिए तथा चरणों में बैठकर हरिनाम जप करना चाहिए। मानसिक चिन्तन शत–प्रतिशत

सत्य होता है क्योंकि सन्त मायिक नहीं होता, चिन्मय होता है इसलिए उसका चिन्तन भी चिन्मय होता है। कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम श्रेणी के सन्त होते हैं। उत्तम श्रेणी के सन्त की तन–मन–धन से सेवा करने से भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

"मन क्रम वचन, कपट तजि, जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंचि शिव, बस ताके सब देव।।"
" पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।"
''सानुकूल तिन पर मुनि देवा। जो तजि कपट करें भक्त सेवा।।"
"जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करे सब कोई।।"
"राम नाम का अमित प्रभावा।
सन्त पुराण उपनिषद गावा।।"
"कहौ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकई नाम गुण गाई।।"
"जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
जीह (जीभ से) नाम जप जानेऊ तेऊ।।"

हरिनाम का प्रभाव जो जानना चाहे, वह हरिनाम को जीभ से जप कर जान सकता है।

अति आहार, अति निद्रा, अति विषय–प्रयास, ग्राम्य कथा, नियम–आग्रह, दुःसंग तथा लोभ–भक्ति का विनाश करते हैं। उत्साह, निश्चय, धैर्य, सत्संग, अन्याभिलाषा नहीं करना, अनुकूल–अनुशीलन–भक्ति को बढ़ाते हैं।

हरिनाम का अधिक अनुशीलन होने से अनुकूल परिस्थिति का प्रादुर्भाव हो जाता है तथा सात्विक अष्ट–विकारों का प्राकट्य हो पड़ता है। भगवत्–प्राप्ति का संयोग होने लगता है तथा परमानंद की लहरें उठने लग जाती हैं। जब संपूर्ण निर्भरता या संसार का आसरा छूटने लगता है तो भगवत्–शरणागति का अंकुर अन्तःकरण में अंकुरित होने लग जाता है। आवागमन रूपी भीषण दुःख का सदैव के लिए अन्त हो जाता है तथा भगवत् चरण–प्राप्ति रूपी सुख की उपलब्धि हो जाती है।

–0–

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
15.06.07

भक्त अधीन भगवान

माँ के हृदय तथा शिशु के हृदय का संबंध जुड़ा रहता है। जब शिशु 'माँ'–'माँ' का शब्द पुकारता है तो माँ कितने ही काम में व्यस्त हो, शीघ्र दौड़ कर शिशु को गोद में लेकर पुचकार कर प्यार भरा स्तन पिलाती है।

इसी प्रकार भक्त के हृदय का संबंध, भगवान् के हृदय से जुड़ा रहता है। जब भक्त 'हरे कृष्ण', 'हरे राम' पुकारता है तो भगवान् का हृदय अकुला उठता है, वे एक क्षण में प्रगट हो जाते हैं क्योंकि भगवान् हर स्थान में, कण–कण में तथा हर क्षण मौजूद रहते हैं। जैसा कि गीता जी में श्री भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि भक्त जैसा मुझे भजता है, याद करता है, मैं भी उसी तरह वैसे ही भक्त को भजता हूँ, याद करता हूँ।

भक्त रोता है, भगवान भी रोते हैं। रोना, शरणागति के बिना आ ही नहीं सकता। शरणागति ही भगवान् को खींच लाती है। हृदय से रो रो कर पुकारना ही सच्ची शरणागति है। तभी जीव की आत्मा तड़फेगी कि भगवान् मुझे कब मिलेंगे ? तब ही संसार से वैराग्य हो सकेगा। जब तक वैराग्य नहीं होगा, तब तक शरणागति का जन्म भी नहीं होगा। भगवान् कहते हैं कि मैं भी भक्त के शरणागत रहता हूँ। भक्त जैसे नचाता है, मुझे वैसे ही नाचना पड़ता है। यह स्थिति आवेगी हरिनाम को कान से सुनने पर ही। अन्य कोई साधन नहीं है।

आप दलदल में फंसे हुये हैं। आपके भजन की चिंता करना ही मेरा प्रथम धर्म है। मेरे ठाकुर जी दलदल में फंसे हुए को, निकालने में सक्षम हैं। मैं तो प्रार्थना ही कर सकता हूँ। भगवान् अवश्य ही शीघ्र सुनेंगे।

मैंने तो दीपावली के बाद आने की घरवालों से अनुमति मांगी थी, परन्तु सब मना करते हैं कि आप वहाँ रहकर संतों से सेवा लेते हैं। यह ठीक नहीं है। आपका भजन जब यहीं हो रहा है, तब जाने की क्या जरूरत है ? अतः मेरा आपके चरणों में आना सम्भव नहीं होगा।

–0–

मनमानी से भी जरूर मिलेगा

भक्ति को शास्त्र में निरपेक्ष कहा गया है। यानी यह किसी की अपेक्षा नहीं रखती, यह भगवान् की ही तरह परम स्वतंत्र है, न शास्त्र, न विधि, न निषेध, न मंत्र, न नियम, न साधन, न ज्ञान। इस बात के प्रमाण में ऐसे अनेक संत हुए हैं, एक संत ने भोग न लगाने पर प्रभु को पहले तो खूब हड़काया, न मानने पर डंडा उठा लिया, प्रभु प्रकट हो गए और भोग लगाया, ठाकुर को डंडा मारना शास्त्रीय नहीं है, न भक्ति के 64 अंगों में आता है। इसी प्रकार हम जो कर रहे हैं, उलटा–सीधा, उचित–अनुचित, अशास्त्रीय, हमें यदि आत्मिक आनंद मिल रहा है, प्रभु का अहसास हो रहा है, हम गद्‌गद् हैं, तो इससे बढ़कर कुछ भी नहीं, न शास्त्र, न साधु, न संत, न विद्वान्। और यदि संतुष्टि है नहीं, भटकन बनी हुयी है, अहसास हो नहीं रहा, आनंद का लेश भी नहीं है, तर्क–कुतर्क, हार–जीत का सिलसिला, राग द्वेष, अहंकार–प्रतिष्ठा बनी है तो हम भटक रहे हैं और यह भटकन शास्त्र विधि का अनुसरण करने पर ही दूर होगी, मनमानी बंद करनी ही होगी। आत्म–निरीक्षण से स्वयं को स्वयं ही पैनी दृष्टि से नापना होगा, दूसरा कोई कुछ भी कहे, कहता रहे।

43

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
10.07.07

हरिनाम से असम्भव भी सम्भव होना

आपका भजन–स्तर बढ़ने की मुझे अत्यंत चिंता रहती है। दिनांक 06.07.07, शाम को, आपका फोन आने पर मुझे इतना दुःख हुआ कि मैं कह नहीं सकता। मुझ अधम को आपने बोला–"मेरा भजन–स्तर, हरिनाम–स्मरण क्यों नहीं बढ़ रहा है। आप ठाकुर जी से मेरे लिए प्रार्थना हृदय से नहीं करते। मेरे में क्या कमी है ? कृपया मुझे बताएँ।"

यह बात मुझको गहरे रूप में आहत कर गई। अतः मैं उसी रात में सुबह 3 बजे उठकर हरिनाम करते हुए ठाकुर जी के चरणों में रो–रोकर प्रार्थना करने लगा। उस दिन मुझे ज्वर आ गया था, अतः देर से उठा। वैसे 2 बजे नित्य उठ जाता हूँ, वरना मेरा 3 लाख हरिनाम 9–10 बजे तक पूरा नहीं हो पाता। कम होने पर दूसरे दिन करना पड़ता है।

मैं आपको एक आश्चर्यजनक घटना बता रहा हूँ। यह हरिनाम की असीम कृपा का ही फल है। अमरेश (मेरे सुपुत्र) का चुरु (राजस्थान) से पत्र आया था "बाबू जी! मेरा Transfer बैंक की दूसरी शाखा में हो गया है जो एकदम खराब ब्रांच है। सभी बैंक वाले कह रहे थे कि अब तो मुझे जाना ही पड़ेगा।" मैंने कहा "जैसा ठाकुर जी चाहेंगे, वैसा ही होगा।" नई ब्रांच के मैनेजर ने उसे रिलीव होकर, तुरंत ज्वाइन करने को कहा तो उसने कहा कि वह अगले ही दिन रिलीव होकर शीघ्रातिशीघ्र Join कर लेगा)

"हे मेरे गुरुदेव! मैं आपको क्या बताऊँ, जब उसे रिलीव करने वाले ही थे कि जयपुर से एक Order आया कि उसके स्थान पर अमुक व्यक्ति, उस बैंक में Join करेगा। पत्र को पढ़ते ही मेरी

अश्रुधारा चालू हो गई। हे मेरे ठाकुर! आप कितने दयालु हो! प्रत्यक्ष में शरणागत की रक्षा करते हो। यह कैसे हो गया। उसके नाम पर दूसरे व्यक्ति का Order हो गया।

ऐसा ही हरि ॐ (मेरे दूसरे सुपुत्र के साथ हुआ)। उसका मैनेजर गलत काम करवाता था। अतः झगड़ा होता रहता था। लेकिन हरि ॐ व उसके बच्चे स्मरणपूर्वक हरिनाम करते हैं। मेरी पोती विष्णुप्रिया को तो आपने प्रत्यक्ष देखा ही है। हरिनाम करती हुई रोती रहती है। मेरा पोता ध्रुव जो 6 साल का है, कीर्तन करके कभी–कभी रोने लग जाता है। जब उससे पूछते हैं कि ध्रुव तुम क्यों रो रहे हो तो वह कहता है कि कृष्ण भगवान् मुझे रुला रहे हैं। न मालूम, क्यों रोना आ जाता है।

हरि ॐ आधा लाख (32 माला) जप, बड़े ध्यानपूर्वक करता रहता है। अचानक क्या हुआ कि उसके मैनेजर का Transfer बहुत दूर ठाकुर जी ने करवा दिया। मैं तो समझ गया कि उसने भगवान् के भक्त–हरि ॐ का अपराध कर दिया था। मैंने हरि ॐ को कहा था इसको इसका दण्ड शीघ्र मिलने वाला है। तू चिंता मत कर! अब दूसरा मैनेजर आया है। वह हरि ॐ से पूछ कर काम करता है। हालांकि वह हरि ॐ से Superior है, तो भी उससे डरता है। अब सोचिए, यह सब ठाकुर जी की कृपा के बिना और क्या हो सकता है? ठाकुर जी अपने भक्तों के साथ लीला करते रहते हैं ताकि उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।

मैं 100% गारन्टी के साथ कह सकता हूँ कि जो भी साधक अन्तःकरण से हरिनाम का स्मरण करते हैं, उनकी देखभाल ठाकुर हर समय करता है।

अमरेश भी प्रातः 3 बजे बड़ी तल्लीनता से हरिनाम करता है। वह तो रो–रोकर ठाकुर जी को पुकारता है, क्योंकि वह मुझसे भजन छुपाता नहीं है। मैंने भी सभी को कह रखा है कि ठाकुर जी की बात मुझसे छुपाना नहीं। इससे श्रद्धा और अधिक बढ़ती है। ठाकुर जी अधिक याद आते हैं।

अमरेश को कल स्वप्न आया कि आप छींड में आये हो तथा बहुत बड़ा संत–समागम हो रहा है। आप यहाँ की चरण–रज अपने शरीर पर लगा कर जोर–जोर से रो रहे हैं। रात को आपका Phone आ ही गया। मुझे आश्चर्य हुआ। अंदर की भावना कितनी प्रबल होती है कि उसने आपको Phone करने को प्रेरित कर दिया।

अब मैं पीछे की चर्चा बता रहा हूँ। रात में मैंने ठाकुर जी से कहा कि जब आप अन्य भक्तों का भजन–स्तर बढ़ा सकते हैं, उनकी विरहाग्नि प्रज्ज्वलित कर सकते हैं तो क्या भजन–स्तर बढ़ाने में आपको कुछ जोर पड़ रहा है। मुझे इसका जवाब देना होगा, वरना मैं आपसे बात ही नहीं करूँगा। रो–रोकर मैं ठाकुर जी से कहने लगा।

अब ठाकुर जी मुझे अन्तःकरण में आकाशवाणी द्वारा बता रहे हैं कि जिसके लिए तुम मुझे बार–बार कहकर बुला रहे हो, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। उसी का दोष है, जो भजन–स्तर नहीं बढ़ा रहे हैं। तब मैंने कहा क्या दोष है ? मुझे बताइये ताकि मैं उन्हें समझा सकूँ। वैसे मैं तो अधम हूँ फिर भी आपके आदेश का पालन करूँगा। एक तो सबसे बड़ा दोष है कि उसकी हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा नहीं है। जरा गहरा सोच कर देखें कि जिस ओर पूर्ण लाभ दिखेगा, क्या उस ओर मन न लगने का प्रश्न उठता है ? बोले, क्या गलत है ? मैंने कहा है–जहाँ अधिक लाभ होगा, वहाँ से मन कहीं जाएगा ही नहीं। यह तो एक साधारण–सी बात है।

"दूसरा दोष है वह मेरी निर्गुण–सेवा नहीं करता। निर्गुण–सेवा का दूसरा आशय है– प्रेम–भक्ति ? क्या प्रेम से सेवा होती है ? इसमें केवल कर्म ही प्रधान है। भक्ति का लेश भी नहीं है। रजोगुणमयी सेवा हो रही है। अपने मन में गहरा विचार कर देखें। जब सच्ची सेवा ठाकुर देता है तो उसमें प्रेमाश्रु बहता है। मन में गहरा विचार करें।"

"तीसरा दोष–थोड़े से काम से मन घबरा जाता है। क्या यह शरणागति का भाव है ? मुझ पर उनका कहाँ विश्वास रहा ? सभी

काम मैं ही करवाता हूँ। मेरे बिना एक काम भी वे पूरा नहीं कर सकते। हर समय हर बात पर चिंतित रहना, क्या शरणागति का भाव है ? अब तुम ही बताओ, उनको हरिनाम कैसे फल देगा ?"

"चौथा दोष–वृद्धावस्था होने पर खटिया उन्हें प्यारी लगती है। यह तो स्वाभाविक है। लेकिन मेरा चिंतन तो हो सकता है। चिंतन भी नहीं करते। निद्रावस्था में समय गुजर रहा है। असुविधाओं का चिंतन रहता है। क्या मैं न के बराबर हूँ ? जो काम असुविधाजनक आ जाता है, क्या वह काम मैं सुविधाजनक नहीं कर सकता ? क्या मेरे बिना कोई काम बन सकता है ? उनको मेरे पर विश्वास की कमी है। यदि सब काम मुझ पर छोड़ दे तथा प्रेम सहित मेरा नाम रटे तो क्या विरहावस्था से वंचित रह सकेगा ?"

"मेरी कृपा की कमी नहीं है, उसकी श्रद्धा की कमी है जो उनका मन मेरे नाम में नहीं लगता। अब उनको अधिक दिन इस पृथ्वी पर रहना नहीं है। अभी से अपना मन मेरे नाम में लगा दें। घर को छोड़ने की जरूरत नहीं है। सभी सुविधा में है। नाम को हृदय से जपें, इसी जन्म में उनका उद्धार हो जाएगा। ठाकुर जी ने आगे कहा है कि वे दुर्गुणों की ओर ध्यान नहीं देते। दुर्गुण तो हर इन्सान में होते हैं क्योंकि उनकी माया को पार करना दुस्तर है। केवल हरिनाम की शक्ति ही माया से निपट सकती है। नाम के बिना शास्त्र पठन-पाठन, तीर्थाटन, दान, योग, यज्ञादि कुछ भी उद्धार करने की शक्ति नहीं रखते। इनमें समय खर्च करना व्यर्थ होगा अर्थात् भगवत् प्रेम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। वैसे अच्छा कर्म करना तो उचित ही है, कभी न कभी उसका उद्धार तो होगा ही। कई जन्मों के बाद आवागमन से छुटकारा मिल जाएगा।

हरिनाम यदि स्मरणपूर्वक जपा जाए तो प्रेम उत्पन्न करा सकता है। भगवान् कहते हैं कि मैं प्रेम के अधीन ही रहता हूँ। इसी जन्म में दुःख सागर से पार हो जाएगा। जब तक मेरे नाम में रुचि नहीं होगी, तब तक उद्धार होने में संदेह है। कुछ भक्तों को नाम में रुचि हो गई है तथा वे आधा व एक लाख हरिनाम करने लगे हैं।

विरह भी होता है। इसका कारण है केवल नाम में श्रद्धा। ठाकुर जी की कृपा उन पर हो रही है।

मेरे पत्रों की पुस्तक छपाने से अन्य को लाभ होगा। यह तो ठीक बात है, परन्तु मेरी ख्याति हो जाएगी। यह मेरे लिए जहरीला कांटा बन जाएगा। यदि मेरा नाम इसमें न हो तो मेरे लिए सोने पर सुहागा हो। इसमें किसी को ऐतराज भी हो सकता है। मेरे परिवार वाले ख्याति से नफरत करते हैं। केवल इतना जरूर है कि दूसरों का हित इन लेखों से हो सकता है, जिससे ठाकुर की कृपा इस अधम पर बरसती रहेगी।

ठाकुर जी को भूले हुए जीव पर एक लेख लिखा जा रहा है।

किसी दम्पत्ति का एक 6–7 साल का बच्चा किसी मेले में गुम हो गया। बहुत तलाश करवाई, परन्तु मिला नहीं, अब वह बच्चा घर–घर में भीख माँग कर खाता रहता। सर्दी–गर्मी बरसात में कहीं पर जाकर अपना जीवन बसर करता रहता। वह भी अपने माँ–बाप, शहर, मकान से अनभिज्ञ था। पूछने पर भी कुछ बता नहीं सकता था।

जब वह बारह साल का हो गया तो अचानक, उस शहर में आ गया जहाँ उसका जन्म हुआ था। एक गली में एक मकान का काम चल रहा था। उसने मकान मालिक को बोला, मुझे काम पर लगा लो। मालिक ने कहा–"क्या मजदूरी लोगे ?'' उसने कहा–"रोटी, कपड़ा–जो चाहे दे देना।" मालिक ने रख लिया। जब वह टोकरी ढो रहा था तो मकान–मालकिन ने उसे गौर से देखा तो उसे ध्यान आया कि मेरा बच्चा इसी की सूरत जैसा था। कहीं यह वही तो नहीं है। मेरे बच्चे के एक हाथ में दो अंगूठे थे। दाहिनी आँख में लहसुन का चिह्न था। उसने उसे बुलाया और पूछा–"तुम्हारे माँ–बाप का नाम क्या है ?" उसने मालकिन के पति का नाम बताया तथा माँ का नाम भी बता दिया और कहा मैं मेले में गुम हो गया था। अब तक मैं माँ–बाप से नहीं मिला। मालकिन ने

कहा–"तू ही मेरा बेटा है। तेरे हाथ में दो अंगूठे का निशान है। दाहिने आँख में लहसुन का निशान है। हम ही तेरे माँ–बाप हैं। बस फिर क्या था! बिछुड़ा हुआ बच्चा माँ–बाप से मिल गया।"

कहने का तात्पर्य है कि जीव अपने बिछुड़े हुए माँ–बाप (भगवान्) से हरिनाम के द्वारा मिल सकता है। अब तक न जाने कितने माँ बाप करता हुआ भटकता रहा। अब तो परम शान्ति की गोद में आ जा।

जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।
जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद
श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्तवृन्द।।

जिस व्यक्ति को धाम की कृपा प्राप्त होती है उसे धाम की कृपा के फलस्वरूप साधुओं का संग मिलता है। साधुसंग में रहकर भजन करते–करते वह कृष्ण प्रेम में डूब जाता है। प्रेम में आविष्ट होना ही परम आनन्द का विषय है।

श्रील गुरुदेवजी की अन्तिम वाणी के कुछ अंश

मैंने मठ की रजिस्ट्री की है, वह किसी की Personal (व्यक्तिगत) सम्पति नहीं है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मठ में रहकर हर एक आदमी हकूमत करेगा, स्वेच्छाचारी हो जाएगा। ऐसा नही। ऐसा करने से जीवन बरबाद हो जाएगा। अतः मठ को चलाने के लिए एक Management Scheme होना आवश्यक है। वहां एक आदमी मठ का (आचार्य) होगा। आचार्य को प्रधान भी कहते हैं और President भी कहते हैं। मेरे चले जाने से एक व्यक्ति मेरे स्थान पर बैठेगा। वह कौन बैठेगा ? यह पद वोट से निश्चय किया जाये, यह हमारे गुरुजी का विधान नहीं है। वोट द्वारा आचार्य निर्णय करना हरिभक्ति नहीं है। आचार्य निर्णय होगा भगवान् के द्वारा। ऊपर से जो Order आया है वही ठीक है। ऊपर से जो निर्देश (Order) आ रहा है उसे मानना सिर्फ गौड़ीय सम्प्रदाय में ही नहीं बल्कि रामानुज, विष्णुस्वामी व निम्बाकाचार्य सब सम्प्रदायों का ये ही विधान है। अतएव आम्नाय गुरु परम्परा में उक्त व्यवस्था को अवलम्बन करना ही उचित है। अभी हम लोगों की जो गोष्ठी है, उस गोष्ठी में मेरे जो ज्येष्ठ गुरु भाई हैं, उनसे सलाह करके मैंने यही निश्चय किया है कि मेरे चले जाने के पश्चात् श्रीमान् भक्तिबल्लभतीर्थ महाराज Next President अग्रिम आचार्य होंगे। मैं चला गया, हमारे गुरु महाराज चले गए, इसलिये हम लोग स्वेच्छाचारी हो जाएं, यह ठीक नहीं हैं।

भक्त का आनुगत्य ही वैष्णवता है। भक्त कौन है ? भक्त के आनुगत्य में जो भगवान् की प्रीति के लिए तत्पर रहता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। इसलिए भक्त का आनुगत्य करना ही भक्ति प्राप्ति का रास्ता है। भगवद्-कृपा, भक्त-कृपा अनुगामिनी होती है। भक्त की कृपा जिन पर होती है, भगवान् की कृपा भी उन पर ही होती है। यही धारा है। इसी प्रकार का विचार लेकर आप लोगों को चलना चाहिए। यही मेरा आप लोगों से संक्षेप में निवेदन है।

एक और बात मैं बोलता हूँ। हम लोग हरि भजन करने के लिये आए हैं। इसमें तीन रुकावटें हैं।

1. विषय–स्पृहा–कनक, रुपये पैसे के लिये लोभ, हरि भक्ति में पहली बाधा है। भिक्षा का रुपया तुम लोग अपने लिये जमा न करना। इससे हरि भक्ति नहीं होगी। यदि भिक्षा का रुपया हम लोग ले लेंगे, उससे मठ को कुछ हानि नहीं होगी। तुम्हारा ही नुकसान होगा। मठ की रक्षा करेंगे कृष्ण, भक्तगण, वैष्णवगण परन्तु भिक्षा के पैसे जो जमा करने की चेष्टा रखते हैं उनका सारा परमार्थ चूल्हे में चला जाएगा, हरि भजन नहीं होगा। पैसा जमा नहीं करना, जो भी हो उसे सारा मठ रक्षक के पास जमा करना होगा। जब कुछ असुविधा हो तो मठ रक्षक को कहना।

2. और एक हरि भक्ति रुकावट है– स्त्री–संग। स्त्री के साथ स्थूल संग, सूक्ष्म संग, दोनों प्रकार का स्त्री–संग ही हरि भक्ति में बाधक है। साक्षात् स्त्री–संग तो करना ही नहीं चाहिए, ऐसा कि मन में भी उसके बारे में चिन्ता या ध्यान नहीं करना, क्योंकि हम लोग सब कुछ छोड़ कर हरि भजन करने के लिये आए हैं।

3. और एक रुकावट है–प्रतिष्ठा के लिये चेष्टा। गुरुदेव कहा करते थे–

''कनक कामिनी प्रतिष्ठा बाधिनी, छाडियाछे यारे सेइ त' वैष्णव।
सेइ अनासक्त, सेइ शुद्धभक्त, संसार तथाय पाय पराभव।।''

प्रभुपाद जी ने कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा की, बाघिनी (शेरनी) के साथ तुलना की है। प्रतिष्ठा खतरनाक हे, लेकिन प्रतिष्ठा नहीं चाहते हुए जो लोग हरि भजन करते हैं, उनके पास प्रतिष्ठा स्वयं आ जाती है। परंतु तुम इन तीन बाधाओं को त्याग देना। यह बहुत आसानी से नहीं जाती हैं। ये सब चित्त को खींच लेती हैं।

मेरा जाने का समय हो गया। तीर्थ महाराज सब समय नहीं रहते। इसलिये जगमोहन प्रभु पर देखभाल के लिए जिम्मेदारी है।

मेरी हस्पताल में जाने के लिये इच्छा नहीं थी लेकिन वैष्णवों की इच्छा पूर्ति के लिए जा रहा हूँ। मेरी कर्कश कथा के कारण तुम लोग दुख न मानना, मुझे क्षमा करना, जो वैष्णवजन हैं वो लोग मेरे सेव्य हैं। मैं सब की सेवा करने को चाहता हूँ। तुम लोग सब निष्ठा के साथ हरि भजन करना। ''जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।'

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।



अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे

(श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग)

सबसे पहले मैं अपने श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णु पाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी, सभी वैष्णवों, वृन्दादेवी तथा भगवान् श्रीश्री राधागोविंद को स्मरण करता हूँ और उन्हें कोटि–कोटि प्रणाम करता हूँ। इन चारों को स्मरण करने से सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और हृदय में अहैतुकी भक्ति जागृत होती हैं।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति नामक इन ग्रंथो में मेरे श्रीगुरुदेव जी की वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रंथो का नाम भी श्रीगुरुदेव ने ही मुझे बताया था और इस लेख में, मैं जो कुछ भी वर्णन करूँगा, वह उनकी ही प्रेरणा से ही होगा। जो कोई भी इन ग्रंथो में लिखी बातों पर श्रद्धा एवं विश्वास करेगा, इनमें बताये गये मार्ग पर चलेगा, इसमें बताये गये क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति होगी। उस पर भगवद्–कृपा बरसेगी। इन ग्रंथों के शीर्षक को सार्थक करने के लिये ही, मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे यह लेख लिखने की प्रेरणा की है। सभी भक्तजनों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे इन ग्रंथो में लिखी किसी भी बात पर सन्देह न करें। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि संशय करने से अमंगल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है–

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

(गीता 4.40)

“जो मूर्ख हैं तथा जिनकी शास्त्रों में श्रद्धा नहीं है, जो शास्त्रों में संदेह करते हैं, वे नीचे गिर जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को न इस लोक में और न ही परलोक में सुख मिलता है।”

देखो! मैं तो सबका मंगल चाहता हूँ। मुझे भगवान् ने इसीलिये यहाँ भेजा है कि मैं सबको हरिनाम कराऊँ। मैं चाहता हूँ कि जिस श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति मुझे हुई है, वह आपको भी हो। इस लेख में कई बातें ऐसी हैं जिनका जिक्र करना मैं इसलिये आवश्यक समझता हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। मेरे गुरुदेव ने मुझे कहा कि कुछ भी मत छुपाओ। सब कुछ बता दो। दूसरा कारण यह है कि इससे भक्तों को प्रेरणा मिलेगी, उनका मार्गदर्शन होगा और वे मुझ में श्रद्धा एवं विश्वास करेंगे। इन बातों को मैं अपने स्वार्थ के लिये नहीं लिख रहा हूँ। मुझे न तो प्रतिष्ठा की चाह है, न धन की और न ही मैं किसी उपाधि का इच्छुक हूँ। मैं तो एक छोटे से गाँव में रहने वाला, एक साधारण व्यक्ति हूँ। मुझमें कोई योग्यता भी नहीं है। जो कुछ भी है, मेरे श्रीगुरुदेव की कृपा है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

आज से लगभग 84 वर्ष पूर्व, 23 अक्टूबर सन् 1930 को मेरा जन्म हुआ था। वह शरद-पूर्णिमा की रात थी। समय था लगभग सवा दस बजे। शरद-पूर्णिमा यानि भगवान् श्रीकृष्ण की रासयात्रा की रात। आज से लगभग 5232 वर्ष पहले, शरद्-पूर्णिमा की इसी रात में, भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसी मधुर बंसी बजाई थी जिसे सुनकर गोपियों की विचित्र गति हो गई थी। सारे विश्व को मोह लेने वाले, मदनमोहन ने, अपनी बाँसुरी पर कामबीज 'क्लीं' की मधुर तान छेड़कर, ब्रजसुंदरियों के प्राण, मन और आत्माओं का अपहरण कर लिया था। अपने प्यारे श्यामसुंदर की विरह-वेदना में, विरह-अग्नि में, उन गोपियों के अशुभ संस्कार जलकर भस्म हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट हुये थे। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि इसका मेरे जीवन से विशेष सबंध है।

सन् 1954 में, मैं राजस्थान के कोटा शहर में कार्यरत था। वहीं पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर, मैंने छः महीने में अठारह लाख 'कृष्णमंत्र' का जाप किया जिससे मुझे वाक्-सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला के दर्शन हुये और भगवान् श्री कृष्ण ने मुझे हरे रंग की साड़ी पहनाई, मेरा शृंगार किया और

मुझे रासलीला में ले गये। वहां उन्होंने मुझे नाम दिया 'ओम अलि'। वहां मैंने अपने उस दिव्य स्वरूप के दर्शन किये और श्रीमती राधा रानी तथा असंख्य गोपियों के दर्शन मुझे हुये। जिस प्रकार ब्रजसुंदरियों को शरद–पूर्णिमा की रात में दर्शन हुये थे, वैसे ही दर्शन मुझे हुये और मेरा उस रात में जन्म लेना सार्थक हुआ। मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हुआ। यह दर्शन कृष्ण मंत्र के पुरश्चरण का फल था। भक्तवत्सल भगवान् ने मुझ अधम पर अहैतुकी कृपा की। ऐसे परमदयालु भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'कृष्ण–मंत्र' जाप करना बहुत कठिन है। जरा सी भूल भी हो गई तो आदमी पागल हो सकता है। कई भक्तों ने मेरी नकल करने की कोशिश की है, पर वे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके। उनका जप पूरा ही नहीं हुआ और एक तो पागल हो गये। इस मंत्र का पुरश्चरण करते हुये मन में काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये और नियमों का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है। इसलिये मेरे गुरुदेव ने, मुझे, शिशु भाव देकर केवल हरिनाम करने का आदेश दिया है। उन्होंने मुझे भविष्य में कोई भी अनुष्ठान या पुरश्चरण करने से मना कर दिया था।

अब तो मैं केवल हरिनाम ही करता हूँ और हरिनाम से मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है। अपने प्राणनाथ गोविंद के चरणों की सेवा करने, उनके नाम का रसास्वादन करने तथा उनके नाम का प्रचार करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। जिन्हें अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनका जीवन ही धन्य है।

यह भगवान् की अहैतुकी कृपा का ही चमत्कार है कि मैं जिसे भी हरिनाम करने को कहता हूँ, वह हरिनाम करने लग जाता है। मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं। उनमें बहुत से संसारी कामनाओं के लिये भी आते हैं पर मैं तो सबको हरिनाम करने के लिये ही कहता हूँ और जब वे मेरी बात मानकर हरिनाम करते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। कई दम्पति ऐसे भी आये जिनके 20 वर्षों से संतान नहीं हुई थी पर हरिनाम करने से उन्हें संतान की प्राप्ति हो गई।

मैं पिछले 40 वर्षों से गरीब लोगों को होम्योपैथी की दवाई मुफ्त दे रहा हूँ। जब शरीर निरोग होगा तभी तो भजन होगा। मैं गंगा जल से आँखों की दवाई बनाकर सबको मुफ्त देता हूँ जिससे लोगों के चश्मे उतर गये, नजर बढ़ गई। मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ, यह शक्ति मुझे केवल और केवल हरिनाम से मिली है। इसीलिये मैं सबको बार–बार यही कहता हूँ–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करते रहो। संकीर्तन करते रहो।

यह 'हरे कृष्ण' महामंत्र तारक ब्रह्म नाम है और वेद, उपनिषद्, पुराण और संहिता आदि सात्वत–शास्त्रों के अनुसार कलियुग का महामंत्र है। कलिकाल में यह महामंत्र ही समस्त साधनों का शिरोमणि है। कलियुग पावनावतारी श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी सदा–सर्वदा श्री हरिनाम–संकीर्तन करने का उपदेश दिया है–

"कीर्तनीयः सदा हरिः।"

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सदा कीर्तन करने को कहा है और मेरे श्रीगुरुदेव ने भी मुझे उच्च स्वर में (उच्चारणपूर्वक) हरिनाम करने को कहा है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करना भी संकीर्तन ही है। कोई इसे अकेला भी कर सकता है और सामूहिक रूप से भी कर सकता है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करने वाला अपने को और अपने साथ के श्रोताओं को भी पवित्र कर देता है। पशु–पक्षी, कीट–पतंग, पेड़–पौधे इत्यादि जो बोल नहीं सकते, वे भी हरिनाम को सुनकर भवसागर से तर जाते हैं। शास्त्रों में उच्चारण पूर्वक नाम करने की महिमा अधिक बतलाई गई है। चुपचाप हरिनाम करने की अपेक्षा उच्चारणपूर्वक हरिनाम करना सौ–गुणा श्रेष्ठ है।

यह 'हरेकृष्ण' महामंत्र देवर्षि नारद जी ने अपने गुरु श्रीब्रह्मा जी से प्राप्त किया था। ब्रह्मयामल नाम के ग्रंथ में शिव जी पार्वती को कहते है– "हे महादेवि! कलियुग में हरिनाम के विना कोई भी साधन सरलता से पापों से छुटकारा नहीं दिला सकता। इसलिये हरेकृष्ण महामंत्र को प्रकाशित करना आवश्यक है। 'हरेकृष्ण' महामंत्र में पहले दो बार 'हरेकृष्ण' 'हरेकृष्ण' बोलना चाहिये। उसके बाद दो बार 'कृष्ण' 'कृष्ण' और बाद में दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार दो बार 'हरेराम' 'हरेराम', दो बार 'राम' 'राम' और दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार सभी पापों को विनाश करने वाले श्रीकृष्ण महामंत्र का जप, उच्चारण व कीर्तन करना चाहिये।

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह महामंत्र त्रैकालिक–पापों को नष्ट कर देता है। इस महामंत्र का नित्य जप करने वाला वैष्णव, श्रीश्रीराधाकृष्ण के गोलोक – वृन्दावन धाम को प्राप्त कर लेता है। इस महामंत्र में जो सोलह नाम हैं, वे सम्बोधनात्मक हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती है अतः श्रीराधा ही 'हरा' नाम से कही गई हैं। 'हरा' – शब्द का संबोधन में 'हरे' रूप बनता है। एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुल के आनन्दकंद, कमललोचन, नंदनंदन श्री श्यामसुदंर ही 'कृष्ण' हैं। श्रीकृष्ण अपने रूप–लावण्य से व्रजगोपियों के मन को आनन्दित करते रहते हैं।

इसी कारण वे 'राम' कहे जाते हैं। इस महामंत्र में 'हरे' 'कृष्ण' और 'राम' तीनों नामों का बार–बार उच्चारण होता है।

जो फल सत्ययुग में ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञों का अनुष्ठान करने तथा द्वापर में अर्चना पूजा द्वारा प्राप्त होता है, कलियुग में वही फल एकमात्र हरिनाम–कीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

हर युग का एक तारक–ब्रह्म महामंत्र होता है। अनन्त संहिता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है। सतयुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

नारायण परावेदाः नारायण पराक्षराः।
नारायण परामुक्तिः नारायण परागतिः।।

त्रेतायुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

रामानारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

द्वापर का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।।

कलियुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसलिये समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है। हरिनाम से ही समस्त जगत का उद्धार होता है। हरिनाम सब प्रकार के मंगलों में श्रेष्ठ मंगल स्वरूप है। "नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ" हरिनाम करने से मंगल ही होगा। कैसे भी करो। श्रद्धा से करो अथवा अवहेलना से जो एक बार भी 'कृष्ण' नाम का उच्चारण कर लेता है, कृष्ण नाम उसी समय उसको तार देता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इन नामों में अपनी सभी शक्तियों को भर दिया है। पतित जीवों का उद्धार करने के लिये, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अहैतुकी कृपा करके 'नाम' रूप में अवतीर्ण हुये हैं। भगवन्नाम भगवान् का शब्दावतार है। इस शब्द ध्वनि का अभ्यास करके अर्थात् उच्चारणपूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का जप करके हम भगवान् के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हरिनाम करते करते हम उस दिव्य अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं जिसे पंचम पुरुषार्थ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करना ही इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। यही अवस्था सर्वोच्च सिद्धि की अवस्था है। भगवान् ने तो कृपा कर दी और हमें सरल, सुगम व सहज मार्ग भी बता दिया पर फिर भी हमारी नाम में रुचि नहीं है। इसका एकमात्र कारण है– अपराध। शास्त्रों में हरिनाम के सबंध में दस प्रकार के अपराधों का वर्णन आता है। कई साधकों ने मुझे नामापराधों के बारे में पूछा है अतः मैं संक्षिप्त रूप में उनका वर्णन कर रहा हूँ।

पहला नामापराध है– साधुनिन्दा। श्रीमद्भागवत में साधु के लक्षण बताये गये हैं। दयालु, सहनशील, सबको समान देखने वाला, सच बोलने वाला, विशुद्ध आत्मा, हमेशा दूसरों का हित करने वाला, कामना–वासना से दूर, जितेन्द्रिय, अकिंचन, विनम्र, पवित्र, जितनी जरुरत हो उतना ही भोजन करने वाला, शांतमन वाला, धैर्यवान्, स्थिर, किसी भी वस्तु की कामना न करने वाला, श्रीकृष्ण का शरणागत, भगवान् का भक्त, दूसरों को हरिकथा सुनाने वाला, काम–क्रोध आदि से मुक्त, मान–सम्मान की परवाह न करने वाला, दूसरों को सम्मान देने वाला तथा ज्ञानवाला व्यक्ति ही साधु है। ऐसे साधु की निंदा करना पहला अपराध है।

दूसरा अपराध है शिव आदि देवताओं को भगवान् से स्वतंत्र समझना, भगवान् से अलग समझना। हरिनाम करने वाले साधकों को समझ लेना चाहिये कि गोलोकविहारी श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। वे 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं। बाकी जितने भी देवी–देवता हैं, वे उनके दास–दासियाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने से सभी देवी–देवताओं की पूजा हो जाती है और वे प्रसन्न हो जाते हैं। साधकों को सदा सभी देवी–देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। उन्हें भगवान् का प्रसाद निवेदन करना चाहिये और कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

तीसरा नाम अपराध है–गुरु की अवज्ञा करना। गुरुदेव को आचार्य कहा गया है वे हरिनाम की शिक्षा देते हैं अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

श्रुति–शास्त्रों की निंदा करना चौथा अपराध है। वेदों में भागवत धर्म का वर्णन है। उनमें भगवान् नाम की महिमा बताई गई है। श्रुति–शास्त्र, वेद, उपनिषद्, पुराण ये सब श्रीकृष्ण के श्वास से उत्पन्न हुये हैं और भागवत–तत्व निर्णय में प्रामाणिक हैं। इसलिये इनकी निंदा नहीं करनी चाहिये।

पाँचवाँ अपराध है हरिनाम में अर्थवाद करना। कुछ लोग समझते

हैं कि वेदों में जो हरिनाम की महिमा का वर्णन है, वह काल्पनिक है, नाम की प्रशंसा के लिये है। ऐसी धारणा वाले नामापराधी हैं।

हरिनाम के बल पर पाप करना छठा नामापराध है। कुछ लोग समझते हैं कि हरिनाम प्राप्त करके हमें पाप करने की छूट मिल गई है। इसी धारणा के साथ वे चोरी, ठगी, बदमाशी, डकैती करते हैं तथा झूठ बोलते हैं। वे सोचते हैं कि इन पापकर्मों को करके, हरिनाम कर लेंगे और सारे पाप कट जायेंगे। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। उनकी दुर्गति होती है। इसलिये हरिनाम का सहारा लेकर कभी भी पाप नहीं करना।

जिन व्यक्तियों को हरिनाम में श्रद्धा नहीं है, ऐसे अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करना सातवाँ नामापराध है। जब किसी की हरिनाम में श्रद्धा हो जाये, उसके बाद ही उसे नाम का उपदेश करना चाहिये। श्रद्धावान् व्यक्ति ही हरिनाम करने का असली अधिकारी है।

दूसरे शुभ कर्मों को हरिनाम के बराबर समझना आठवाँ अपराध है। कुछ लोग समझते हैं कि जैसे यज्ञ, दान, तीर्थ–यात्रा आदि शुभ कर्म हैं, शुभकर है, हरिनाम भी वैसी ही चीज है। ऐसे लोग भी नामापराधी हैं।

नौवाँ अपराध है प्रमाद। प्रमाद का अर्थ है– असावधानी, आलस्य, उदासीनता। भजन करते हुये आलस्य करना, उदासीन होना तथा मन का इधर–उधर जाना ही प्रमाद है। एकांत भाव से उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने से, धीरे–धीरे यह अपराध खत्म हो जाता है और हरिनाम का दिव्य रस आने लगता है।

दसवाँ नामापराध है हरिनाम की अगाध महिमा को जानते हुये भी हरिनाम न करना। जो हरिनाम के शरणागत होकर हरिनाम करता है, वही भाग्यवान् है, वही धन्य है।

यहां दस नामापराधों का संक्षेप में वर्णन किया गया है, जो भी साधक कृष्ण–भक्ति में आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें इन अपराधों से अवश्य बचना चाहिये। अपराधों से बचकर हरिनाम करना ही

भजन–साधन में निपुणता है। इसके लिये हरिनाम प्रभु के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिये कि **'हे हरिनाम प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं सदा–सर्वदा नामापराधों से बचकर शुद्ध हरिनाम करता रहूँ।'**

यहां जिन अपराधों का वर्णन हुआ है, इनसे बचने का एकमात्र उपाय भी हरिनाम ही है। निरंतर हरिनाम करते रहने से नामापराध खत्म हो जाता है और अपराध खत्म होने से शुद्ध नाम उदित हो जाता है और अहैतुकी भक्ति जागृत हो जाती है।

जो साधक पूर्ण रूप से नाम पर आश्रित हो जाता है, ऐसे शुद्ध–नामाश्रित व्यक्ति को कभी भी, किसी भी रूप में नामापराध स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि नामाश्रित व्यक्ति की, श्रीहरिनाम सदा ही रक्षा करते हैं। उससे अपराध होगा ही नहीं। जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता तब तक अपराध होने का डर बना रहता है। इसलिये हर वक्त हरिनाम करते रहो।

जिनकी नाम में श्रद्धा है, नाम में जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोत्तम साधक हैं। **भगवद्–प्राप्ति करने के जितने भी साधन हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रय से ही सर्वसिद्धि होती हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है।** नाम का आश्रय लेकर यह पद्धति श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के समय से चली आ रही है। इससे पहले भी प्राचीनकाल में व्रजमण्डल के वैष्णव–संतों ने इसी भजन–प्रणाली के अनुसार भजन किया है। श्री हरिनाम का तत्व किसी सौभाग्यशाली को ही समझ में आता है। जब कोई भाग्यवान् जीव, भगवान् श्रीकृष्ण के किसी नामनिष्ठ भक्त का संग करता है तब उसकी हरिनाम में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

श्रीकृष्ण नाम चिंतामणि है, अनादि है, चिन्मय है। चूंकि श्रीकृष्ण अनादि हैं, दिव्य हैं इसलिये उनका नाम, उनका रूप, उनके गुण तथा उनकी लीलायें भी अनादि एवं दिव्य हैं। श्रीकृष्ण का नाम और उनका रूप एक ही वस्तु है। उनके नाम का स्मरण करने से, उनके नाम का कीर्तन करने से, उनका रूप स्वतः ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

सुमरिए नाम रूप विन देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण का रूप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार उनके नाम में भी यह आकर्षण नित्य विराजमान रहता है। यद्यपि भगवान् के नाम, रूप, गुण व लीला उनसे अलग नहीं है फिर भी उनका नाम सभी का आदि है, सबका मूल है। हरिनाम करते–करते उनका रूप, उनके गुण और उनकी समस्त लीलायें हृदय में स्वतः ही प्रकाशित हो जाती हैं।

सार बात यह है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है और वैष्णवों का एकमात्र धर्म है– हरिनाम करना। आज से 529 वर्ष पूर्व, इस युग के युगधर्म– श्रीहरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। उन्होंने स्वयं हरिनाम करके दिखाया। उनके आदेशानुसार, उनकी शिक्षाओं पर चलकर, आज अनंतकोटि जीव श्रीकृष्ण–प्रेम रूपी महाधन (परमधन) को प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य देव ने हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करने के लिये ही उपदेश क्यों किया ?

श्री चैतन्य चरितामृत में वर्णन है कि जब संन्यासियों के प्रधान प्रकाशानन्द जी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से पूछा कि केशव भारती के शिष्य होकर तथा अनुमोदित सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण करने के बाद भी तुम संन्यासी धर्म का पालन नहीं करके, भावुकों के कर्म करते फिरते हो, संन्यासी होकर भी पागलों की तरह नृत्य–गान करते हो, संकीर्तन करते हो। तुम ऐसा अनुचित व हीन कर्म क्यों करते हो ? तो श्री महाप्रभु जी ने कहा–

"श्रीपाद! मैं इसका कारण बताता हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे मूर्ख देखकर कहा कि तुम मूर्ख हो तथा वेदान्त पढ़ने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। अतः तुम नित्य–निरंतर श्रीकृष्ण मंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन किया करो। वेदांत का निचोड़ यही महामंत्र है। इस महामंत्र का कीर्तन करने से तुम्हारे सभी बंधन समाप्त हो जायेंगे और तुम्हें श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति हो जायेगी।

इस कलिकाल में श्रीकृष्ण के नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। जितने भी मंत्र हैं, जितने भी साधन हैं, उन सबका सार है– हरिनाम। यही बात सभी शास्त्रों ने कही है।"

इस प्रकार अपने श्रीगुरुदेव केशवभारती की आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रतिक्षण कीर्तन करने लगे

एइ आज्ञा पाञा नाम लइ अनुक्षण।

नाम–संकीर्तन के सिवा उन्हें कुछ भी याद नहीं रहा। वे सब कुछ भूल गये। कीर्तन करते–करते कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते, कभी पागलों की तरह सुध–बुध खो देते। उनकी हालत पागल जैसी हो गई। एक दिन उन्होंने अपने श्रीगुरुदेव से कहा कि आपने मुझे कैसा उपदेश किया है। इस मंत्र ने तो मुझे पागल कर दिया है। इस महामंत्र में बहुत शक्ति है। महाप्रभु जी की बात सुनकर उनके श्रीगुरुदेव हंसने लगे और बोले–

कृष्णनाम महामंत्रेर एइत स्वभाव।
जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव।।

अर्थात् श्रीकृष्ण नाम का यही स्वभाव है। जो भी इस महामंत्र का जप करता है, उसमें श्रीकृष्ण प्रेम उत्पन्न हो जाता है। श्रीनाम संकीर्तन का मुख्य फल श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति है पर यह फल उसे ही मिलता है जो उसी शुद्ध–प्रेम की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करता है। इस लोक तथा परलोक के सुख–भोगों की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। ये सब सुख–भोग तो हरिनाम करने से स्वतः ही मिल जायेंगे। हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिये, श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये, श्रीकृष्ण के सुख के लिये हरिनाम करना है। नाम की महिमा असीम है, अपार है। यहां तक कि नवविधा भक्ति की पूर्णता श्रीनाम संकीर्तन से ही होती है–

नवविधा–भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।।

इसलिये हरिनाम ही सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग है।

देखो! भगवान् श्रीकृष्ण का मेरे प्रति वात्सल्य भाव है। इस संबध से, वे मेरे दादा हैं और मैं उनका पोता हूँ, मेरा नाम अनिरुद्ध है और मेरी उम्र है डेढ़ वर्ष। मुझे इस सबंध का पहले कुछ भी पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि मैं कौन हूँ और मेरा भगवान् से क्या संबंध है ? पर मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके मुझे यह संबंध ज्ञान दिया है। इस संबंध में, कोई अपराध नहीं होता। बाकी संबंधों में अपराध होने का भय बना रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे केवल और केवल मात्र हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

करने की आज्ञा दी है और वही मैं कर रहा हूँ। हरे कृष्ण महामंत्र करते–करते मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगता है और मैं अपने दादा (भगवान् श्रीकृष्ण) को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता हूँ। तब भगवान् मुझे दर्शन देते हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी गोदी में चढ़ने के लिये मचल जाता हूँ। रोने लगता हूँ। भगवान् मुझे दोनों हाथों से उठाकर गोदी में ले लेते हैं। मुझे बहुत प्यार करते हैं, दुलारते हैं, पुचकारते हैं, मेरा माथा चूमते हैं, मेरे घुँघराले बालों को सँवारते हैं। मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ और उनकी गोदी में ही रहना चाहता हूँ। थोड़ी देर बाद, वे मुझे रुक्मिणी जी को पकड़ा देते हैं और आप सोने के रथ में सवार होकर सुकर्मा सभा में जाने लगते हैं। रथ का सारथी दारुक रथ लेकर तैयार खड़ा है पर ज्यों ही वे जाने लगते हैं– मैं जोर–जोर से रोने लगता हूँ और उनकी गोदी में चढ़ने की जिद करता हूँ। मुझे रोते हुये देखकर वे रुक जाते हैं और फिर मुझे गोदी में उठा लेते हैं। इस प्रकार बार–बार होता है और उस दिन से वे सुकर्मा सभा में जाने से ही मना कर देते हैं।

कई बार मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करता हूँ। महाप्रभु गंभीरा में सबको हरिनाम की महिमा सुनाते हैं। (भाग एक व दो के पृष्ठ 152 के साथ रंगीन चित्र देखें) गंभीरा में

नित्यानंद प्रभु, श्री अद्वैताचार्य, श्रीगदाधर पंडित, श्री निवासाचार्य, श्रीस्वरुप– दामोदर गोस्वामी, वृन्दावन के छः गोस्वामीगण, देवर्षि नारद, व्यास जी, ब्रह्मा जी तथा शिव जी सब महाप्रभु के मुखारविंद से हरिनाम की महिमा सुन रहे हैं। मेरे श्रील गुरुदेव पूरी गुरु–परम्परा तथा सभी वैष्णव–संत भी वहां विराजमान होते हैं। मैं डेढ़ वर्ष के शिशु के रूप में घुटनों के बल चलकर महाप्रभु जी की गोदी में जाकर बैठ जाता हूँ। (फोटो में देखें) वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। मुझे प्यार करते हैं, मुझे चूमते हैं, दुलारते हैं। मैं गद्गद् हो जाता हूँ। गंभीरा में विराजमान सारा वैष्णव समाज मुझे देखता है। उसी समय मेरे श्री गुरुदेव एक सोने के गिलास में कोई आसव (मधुर पेय) लेकर आते हैं। महाप्रभु उस आसव में से कुछ घूँट पीते हैं और बाकी आसव मुझे पिला देते हैं।

कई बार मैं शिवजी और माँ–पार्वती जी के दर्शन करता हूँ। शिवजी की गोदी में, मैं सांपों से डर जाता हूँ और रोने लगता हूँ। तब माता पार्वती मुझे गोद में लेकर प्यार करती हैं और स्तनपान कराती हैं। उस समय मुझे परम सुख की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार हरिनाम करते–करते मुझे भगवान् एवं उनके भक्तों के दर्शन होते रहते हैं। कभी ब्रह्मा जी, कभी नारद जी, कभी माँ लक्ष्मी, कभी माया देवी के दर्शन मुझे होते हैं और मुझे सबका आशीर्वाद एवं प्यार मिलता है। मैं ये सब इसलिये बता रहा हूँ क्योंकि मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है कि मैं अपने बारे में सब कुछ बता दूँ, कुछ भी छुपा के नहीं रखूं। मैं अपनी बड़ाई के लिये यह सब नहीं बता रहा हूँ। मैं तो आपको हरिनाम की महिमा बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता ? हरिनाम की कृपा से मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये हैं। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे गोलोक धाम के दर्शन भी करवाये हैं।

मैं उम्र में तो डेढ़ वर्ष का शिशु हूँ पर अपने दादा भगवान् श्रीकृष्ण से बड़े–बड़े प्रश्न पूछता हूँ। कभी पूछता हूँ कि तुम्हारे वस्त्र का रंग पीला क्यों हैं ? कभी पूछता हूँ राधारानी की साड़ी का रंग नीला क्यों है ? कभी पूछता हूँ प्रकृति का रंग हरा और समुद्र का पानी नीला क्यों

है ? भगवान् श्रीकृष्ण मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं और कई बार कहते हैं कि तू बड़ा नटखट है, बड़े–बड़े प्रश्न पूछता है। मेरी बातें सुनकर वे मुस्कराते हैं और गोदी में बिठाकर मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

यह संबंध बड़ा दिव्य है। यह भाव अलौकिक है। जबतक संबंध ज्ञान नहीं होता तब तक इन भावों को समझा नहीं जा सकता। भगवान् से हमारा कोई भी संबंध हो सकता है– पिता का, पुत्र का, पति का, सखा का, स्वामी का। जिसका जैसा भाव होगा, उसे वैसा ही संबंध ज्ञान मिलेगा पर यह सब मिलेगा हरिनाम करने से। नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहने से, आगे का रास्ता अपने आप बनता जाता है और श्री गुरुदेव ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंध ज्ञान दे दिया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का जो सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है, उससे बहुत शीघ्र संबंध–ज्ञान हो जायेगा और इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो जायेगी।

यह मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं मुझे बताया है। यह मार्ग आजतक किसी ने नहीं बताया और न ही इसका किसी ग्रंथ में वर्णन है। यह अतिगोपनीय था पर अब मैं सबको यह गोपनीय रहस्य बता रहा हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि तुमने तो मेरी पोल खोलकर रख दी। मैं सब कुछ दे देता हूँ पर अपनी भक्ति नहीं देता क्योंकि मुझे भक्त का गुलाम बनना पड़ता है। मैंने कहा कि जब आपने मुझे इस पृथ्वी पर भेजा ही इसलिये है तो मैं क्यों न बताऊँ ? मैं यह बात सबको बताऊँगा और आपके धाम में ले जाऊँगा। यदि आपने मुझसे हरिनाम का प्रचार नहीं करवाना था तो मुझे यहां भेजा ही क्यों ? मेरी बात सुनकर भगवान् हंस पड़े और बोले – “तू बड़ा चतुर है”।

भगवान् को प्राप्त करने का रहस्य तो मैं आप को बता रहा हूँ पर जो सुकृतिशाली होगा, वही मेरी बात पर विश्वास करेगा। जो सुकृतिशाली नहीं होगा, वह इसे सच ही नहीं मानेगा। यह मार्ग इतना सहज एवं व्यावहारिक है कि कोई भी, कहीं भी, कैसे भी, इस पर चलकर हरिनाम कर सकता है। इसके लिये आपको कुछ

भी विशेष नहीं करना। आप अपने घर, दुकान, कार्यालय, फैक्ट्री, कहीं भी हरिनाम कर सकते हो। जहां भी रहो, जैसी भी परिस्थिति हो, इसे करना बहुत आसान है। यह मार्ग इतना प्रभावशाली है कि इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपको संसार के सुख तो मिलेंगे ही, आपका आध्यात्मिक जीवन भी निखर जायेगा। आपको भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। भगवान् के दर्शन तीन प्रकार हुआ करते हैं – स्वप्न में, छद्म रूप में और साक्षात्–दर्शन। साधक के हृदय की जैसी वृत्ति होगी, उसी वृत्ति के अनुसार उसे दर्शन होगा। यदि साधक की वृत्ति निर्गुणी है तो साक्षात् दर्शन होगा। यदि सतोगुणी वृत्ति है तो छद्म दर्शन होगा और यदि कोई इस क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा तो उसे स्वप्न में तो दर्शन जरूर होंगे।

आप कह सकते हो कि इसका प्रमाण क्या है ? मैं कहता हूँ, करके देख लो। देखो ! जो नामनिष्ठ भक्त होता है, वह भगवान् को बहुत प्यारा होता है। भगवान् कभी भी उसकी बात टालते नहीं हैं। हरिनाम की कृपा से, मुझे वाक् सिद्धि प्राप्त है इसलिये मैं सबको हरिनाम करने को कहता हूँ और लोग हरिनाम करने लगते हैं। पिछले वर्ष (18 मार्च, 2013) मैं गोवर्धन के पास चन्द्र सरोवर पर गया था। वहां मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये। उस दिन मेरे साथ आठ भक्त और थे। दो जयपुर के, एक चण्डीगढ़ के, एक दिल्ली के डाक्टर, एक संन्यासी तथा तीन विदेशी भक्त। ये मेरे साथ थे पर इन्हें भगवान् ने साक्षात् दर्शन नहीं दिये क्योंकि उनकी निर्गुणी वृत्ति नहीं है। ये सभी भक्त हरिनाम तो करते हैं पर अभी अधकचरे हैं इसलिये इन्हें दर्शन नहीं हुये। पर जब मैंने भगवान् से प्रार्थना की तो भगवान् ने उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिये। यह सब हरिनाम का चमत्कार है।

हरिनाम की इतनी अगाध महिमा सुनकर और महाप्रभु की आज्ञा का पालन करके आज पूरा विश्व हरिनाम कर रहा है। हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन कर रहा है। आज असंख्य भक्त हरिनाम कर रहे हैं। कोई सोलह माला करता है, कोई बत्तीस माला करता है और बहुत सारे भक्त चौसठ माला (एक लाख हरिनाम)

करते हैं। दो लाख व ढाई लाख हरिनाम नित्य प्रति करने वाले भी हैं पर उनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। कुछेक तो तीन लाख हरिनाम भी प्रतिदिन करते हैं। मेरे पास बहुत से भक्तजन आते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या आपको स्वप्न में भगवान् के दर्शन होते हैं? क्या हरिनाम करते-करते आपकी आँखो में अश्रु आते हैं? क्या भगवान् के लिये छटपटाहट होती है? क्या संसार की आसक्ति कम हुई? क्या विरह होता है? क्या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार छूटा या कम हुआ? उत्तर मिलता है– नहीं।

एक दिन मैंने अपने बाबा भगवान् श्रीकृष्ण से बोला– "बाबा! क्या आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है?"

मेरा प्रश्न सुनकर बाबा बोले, 'अरे अनिरुद्ध! तू कैसी पागलों जैसी बातें करता रहता है। क्या मेरे नाम में शक्ति नहीं है?'

"हाँ! आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है। जो भक्त आपका एक लाख, डेढ़ लाख नाम प्रतिदिन जपते हैं उनका राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार तक नहीं गया। फिर आपका नाम जपने से क्या फायदा हुआ?"

मेरी बात सुनकर बाबा ने कहा– "अरे! तू जो कुछ कह रहा है, वह ठीक ही है लेकिन मेरी बात सुन। जब मैं अवतार लेता हूँ तब जो भी मेरे संपर्क में आता है, उसका उद्धार हो जाता है पर मेरा नाम तो अनंतकोटि ब्राह्मंडों में रहने वाले जीवों का उद्धार कर देता है। इसलिये मेरे से भी अधिक मेरे नाम की महिमा है। मेरे नाम का जप करके मेरे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं। काल, महाकाल भी मुझ से थर-थर काँपते हैं पर मैं अपने भक्तों से डरता हूँ। अब मेरी बात ध्यान से सुन। ये संसार क्या है? ये संसार दुःखालय है। दुःखों का घर है। जो भक्त एक लाख या डेढ़ लाख हरिनाम प्रतिदिन कर रहे हैं, वे सब हरिनाम के बदले मुझसे इस संसार की वस्तुएं ही मांगते हैं। कोई घर माँगता है, कोई कहता है मेरी बेटी की शादी हो जाये, कोई कहता है मेरे बेटे की नौकरी लग जाये, मेरा करोबार अच्छी तरह चलता रहे। मेरा नाम है चिंतामणि! उससे जो मांगोगे,

वही दे देगा। संसार की वस्तुऐं मांगोगे तो संसार ही मिलेगा। दुःखों के घर में सुख कैसे मिलेगा? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार– ये सब माया का परिवार है। जब कोई अपने स्वार्थ के लिये नाम जप करता है तो माया का परिवार, माया के हथियार उसे प्रताड़ित करते हैं और वह माया द्वारा बुरी तरह सताया जाता है। पर जो मेरे लिये, मेरी प्रसन्नता के लिये नाम–जप करता है, माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती अपितु भगवद्–प्राप्ति में उसकी सहायता करती है। अपने स्वार्थ के लिये नाम–जप करना अविधिपूर्वक है और मेरी प्राप्ति, मेरी प्रसन्नता के लिये जप करना ही विधिपूर्वक जप करना है। नाम जप करने वाले की जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल मिलता है। यदि कोई गोपियों तथा भीलनी जैसे भाव से नाम जप करता है, मुझे बुलाता है, याद करता है तो मैं उससे कभी दूर नहीं रह सकता। पर मुझे चाहता ही कौन है? मुझे चाहने वाला तो कोई विरला ही होता है।"

"अच्छा बाबा! अब ये बताओ कि हमें सुख कैसे मिलेगा?"– मैंने पूछा।

"सुख मिलेगा मेरे भक्तों से तथा मुझसे, क्योंकि मैं सुख का सागर हूँ। गोपियाँ हर पल, हर क्षण मेरे सुख के लिये सब काम करती थीं इसलिये उन्हें हर पल सुख मिलता था। मेरे भक्तों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाओ। मैं अपने भक्तों के हृदयों में रहता हूँ। जब कोई मेरे प्यारे भक्तों को हरिनाम सुनायेगा तो मैं भी सुनूँगा। मेरे प्यारे भक्त हरिनाम सुनेंगे तो उनकी कृपा मिलेगी, उनका आशीर्वाद मिलेगा और मैं हरिनाम सुनूंगा तो मैं गद्‌गद् हो जाऊँगा। मैं खुश हो जाऊँगा तो सुख अपने आप मिलेगा।"

मैंने अपने बाबा (श्रीकृष्ण) से पूछा कि यह बात आपने पहले कभी नहीं बताई तो वे बोले– "तुमने पहले कभी ये बात पूछी नहीं, इसलिये मैंने नहीं बताई। आज पूछी है तो बता दी। अब मैं तुम्हें हरिनाम करने का सर्वोत्तम मार्ग बताता हूँ।"

इस प्रकार कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे हरिनाम

करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग बता दिया। वही मार्ग मैं आपको बता रहा हूँ। हरिनाम करने से पहले वृन्दा देवी (तुलसी महारानी) को प्रणाम करो। वृंदा देवी की प्रसन्नता से ही सब कुछ होगा। तुलसी माँ की प्रसन्नता कैसे होगी–वह इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति (भाग एक व दो के पृष्ठ संख्या 32–33 तथा भाग पाँच में पृष्ठ संख्या 29–30 पर) में लिखा है, भक्तगण उसे अवश्य पढ़ें और उसके अनुसार हरिनाम शुरु करें। साथ ही प्रतिदिन तीन प्रार्थनाएं भी करें। (देखें भाग एक व दो पृष्ठ संख्या 30–31 तथा भाग पांच–पृष्ठ संख्या 27–28)

जितने भी नामनिष्ठ हैं, वे भगवान् को अतिप्रिय हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो भगवान् को बहुत सुख मिलता है। इन नामनिष्ठ भक्तों को प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है उनके चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाना। ऐसा करने से भगवान् के प्यारे भक्तों की कृपा भी मिलेगी और भगवान् भी आनन्दित हो जायेंगे। जब भगवान् ही प्रसन्न हो गये तो बाकी क्या बचा ? सब कुछ मिल गया।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्त अनगिनत हैं, असंख्य हैं पर भगवान् ने अहैतुकी कृपा करके मुझे दो ग्रुप बताये हैं जिसका मैं वर्णन करने जा रहा हूँ। इन सबके चरणों में बैठकर, इन्हें हरिनाम सुनाना है पर यह होगा मानसिक रूप से।

पहला ग्रुप है श्रीगुरुदेव का। इस ग्रुप का क्रम इस प्रकार है–

1. श्री गुरुदेव
2. श्रीनृसिंह देव
3. श्रीगौरहरि
4. श्रीकृष्ण
5. श्रीराधा
6. पुरी मंदिर में विराजमान श्री बलदेव, सुभद्रा एवं भगवान् जगन्नाथ
7. श्रीगौरहरि का विरह

8. श्री हरिदास ठाकुर
9. वृन्दावन के षड्–गोस्वामी
10. श्री माधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वर पुरीपाद

इस क्रमानुसार सबको चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। सबसे पहले श्री गुरुदेव जी को, फिर नृसिंह देव जी एवं प्रहलाद जी को, फिर श्री गौरहरि जी को, श्रीकृष्ण जी को, श्रीराधा जी को, भगवान् जगन्नाथ, बलदेव एवं सुभद्राजी (तीनों को चार माला), षड्–गोस्वामियों को चार माला तथा क्रमांक 10 के श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वरपुरी पाद, दोनों को चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार क्रमांक एक से दस तक, चार–चार माला हरिनाम की करने से चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप का क्रम है। यह ग्रुप है देवर्षि नारद जी का।

1. श्री नारद जी
2. श्री सनकादिक जी
3. श्री ब्रह्मा जी
4. श्री शिव जी
5. श्री नित्यानंद प्रभु
6. श्री अद्वैताचार्य जी
7. श्री गदाधर पंडित जी
8. श्रीवास (निवास) जी
9. षड्–गोस्वामी
10. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्री ईश्वरपुरीपाद।

वृन्दावन के षड्–गोस्वामी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद एवं श्री ईश्वरपुरी पाद दोनों ग्रुपों में शामिल हैं। इस क्रमानुसार हर बार चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रुप में भी चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी। इन दोनों ग्रुपों को पूरा करने के बाद अस्सी (40+40=80) माला हरिनाम की हो जायेंगी यानि 1,25,000 हरिनाम पूरा होगा। इस पूरे क्रम को दो बार करने से 160 माला यानि 2,50,000 हरिनाम पूरा हो जायेगा।

तीन बार करने से 3,75,000 तथा चार बार करने से पाँच लाख (5,00,000) हरिनाम पूरा हो जाता है। यह सब भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशानुसार है। जो इसे अपनायेगा उसे भगवान् का दर्शन अवश्य होगा। इस बात की 100 प्रतिशत (शत-प्रतिशत) गारंटी है।

इन दोनों ग्रुपों में जो नाम आये हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इसी ग्रंथ के आमुख नाम के लेख में दिया गया है एवं उनके रंगीन चित्र भी दिये गये हैं। भक्तगण, उसे जरूर पढ़ें।

अब मैं आपको हरिनाम का चमत्कार बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। मेरी उम्र है 85 वर्ष। उम्र के हिसाब से तो मुझे खटिया में पड़ जाना चाहिये पर इस उम्र में भी, मेरे शरीर में बीस वर्ष के नौजवान जैसी शक्ति है। मेरी दृष्टि पांच वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दांत है और मुझे कोई भी रोग नहीं है। मैं हर रोज रात को एक बजे उठकर हरिनाम करता हूँ। पहले मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता था। 24 नवम्बर, 2013 को जब भगवान् ने मुझे यह क्रम बताया तो मैं इस पूरे क्रम को तीन बार करता था और मेरा 3,75,000 हरिनाम प्रतिदिन होता था। अब मैं इस पूरे क्रम को चार बार प्रतिदिन करता हूँ और 24 दिसंबर, 2013 से मैं प्रतिदिन पाँच लाख हरिनाम करता हूँ और यह सब 16-17 घंटों में पूरा हो जाता है। बाकी समय में मैं खाना-पीना, सोना करता हूँ तथा भक्तों से मिलता हूँ। इस जन्म में मैं अबतक लगभग 500 करोड़ हरिनाम कर चुका हूँ। आपको सच नहीं लग रहा न! मैं कहता हूँ, करके देख लो! जब मैं 85 वर्ष का बूढ़ा आदमी पांच लाख हरिनाम कर सकता हूँ तो आप क्यों नहीं कर सकते। पर मैं आपको पांच लाख हरिनाम करने को नहीं कहता। मैं कहता हूँ आप कम से कम पूरे क्रम को एक बार तो करो यानि 80 माला (1,25,000) हरिनाम। इसी से आपको विरह होने लगेगा और इसी जन्म में श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति हो जायेगी।

देखो! हरिनाम में अमृत भरा पड़ा है। इस अमृत को जितना पी सकते हो, पी लो। यह हरिनाम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीचैतन्य

महाप्रभु के रूप में हमें दिया है। हे रसिक व भावुकजनो! श्रीचैतन्य महाप्रभु के मुख का संयोग होने से हरिनाम रूपी यह अमृतरस परिपूर्ण है और इस हरिनाम का रस इसी लोक में, इसी जन्म में सुलभ है। इसलिये जब तक शरीर में प्राण हैं, चेतना है तब तक हर पल, हर सांस में इस अमृत का पान करते रहो। यह मौका फिर नहीं मिलेगा। यह हरिनाम वैष्णवों का परमधन है। परमहंसों का प्राण धन है तथा भक्तों का जीवन धन है। इसलिये मेरे प्यारे भक्तो! इस हरिनाम रस का खूब पान करो। इसे कभी मत छोड़ना। जो नित्य–निरंतर हरिनाम करता है, वे त्रिलोकी में अत्यन्त निर्धन होने पर भी परम धन्य है क्योंकि इस हरिनाम की डोरी से बंधकर, भगवान् को, अपना परमधाम छोड़कर, भक्त को साक्षात् दर्शन देना पड़ता है। हरिनाम की महिमा इससे अधिक और क्या हो सकती है! हरिनाम का आश्रय लेकर, इसे स्वयं करने तथा दूसरों से करवाने वाले– दोनों को ही श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। फिर इस हरिनाम को छोड़कर और कुछ करने से क्या प्रयोजन है ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का यह सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है। इस मार्ग से हरिनाम करने पर, हरिनाम करते रहने की इच्छा बढ़ती जायेगी और जो आनन्द प्राप्त होगा, उस आनंद की कोई सीमा नहीं है। वह आनन्द अलौकिक है, अगाध है, असीमित है, अपरिमित है, अवर्णनीय है और भगवान् का साक्षात्–दर्शन कराने वाला है। इसीलिये मैं सबसे बार–बार कहता हूँ–

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

"गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।"

यह हरिनाम–संकीर्तन व्रजेन्द्रनदंन श्रीकृष्ण के गोलोक धाम का प्रेमधन है। हरिनाम की कृपा से ही श्रीश्रीराधाकृष्ण, राधाकुंड, गोवर्धन, यमुना, कुसुम–सरोवर, मानसी–गंगा, वृन्दावन, वंशीवट, गोकुल, व्रज के वृक्ष–लता–पत्ते–गोप–गोपियाँ, गाय–बछ्ड़े, पशु–पक्षी, भौंरे, वन–उपवन, मुरली तथा बरसाना सबके दर्शन होंगे।

एक दिन मैंने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि माया तो आपकी दासी है। फिर यह आपके भक्तों को प्रताड़ित क्यों करती है? क्यों उन्हें कष्ट देती है? आपके आदेश के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता फिर मनुष्यों को सताने के लिये आपने माया को आदेश क्यों दिया?

मेरी बात सुनकर मेरे बाबा बोले, "अनिरुद्ध! इस प्रश्न का उत्तर आप माया से ही पूछो न!"

भगवान् के आदेश से उसी क्षण माया देवी वहां प्रकट हो गई। मैं उन्हें देखकर हतप्रभ रह गया। सुन्दर स्वरूप, विलक्षण तेज और सबको आकर्षित करने वाली दिव्य आभा। मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। यही भगवान की दैवीशक्ति माया है– यह जानकर मैंने तुरंत माया देवी को प्रणाम किया। मैंने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से माया देवी से पूछा कि आप मनुष्यों को कष्ट क्यों देती हो? क्यों उन्हें प्रताड़ित करती हो?

माया देवी ने कहा– "देखो! अनादिकाल से यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। इन चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य की योनि ही कर्म प्रधान है। बाकी सभी योनियाँ भोग भोगने के लिये हैं। इन योनियों में जीव कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है पर मनुष्य योनि में वह कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। उसे कर्म करने की पूरी आज़ादी है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र तो है पर उसे इन सभी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। मनुष्य पाप–पुण्य आदि जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना ही होगा पर दूसरी योनियों में कोई पाप नहीं लगता। मनुष्य को यह जन्म भगवद्–प्राप्ति के लिये मिला है। उसने गर्भ में भगवान् से प्रार्थना की थी कि मैं आपका भजन करूँगा। भगवान् ने उसकी प्रार्थना सुनकर, बिना कारण, उस पर कृपा करके इस संसार में भेज दिया ताकि वह भगवद्–भजन कर सके। पर यह मनुष्य भगवान् को ही भूल गया और अपने सुख की खोज में लग गया। वह अपने स्वामी, जिसका वह नित्यदास है, उसको छोड़कर अपनी दुनियाँ बसाने में लग गया।

वह मेरे स्वामी की सेवा छोड़कर, पति–पत्नि, परिवार की सेवा में लग गया और मेरे स्वामी को भूल गया। इसलिये वह दुःखी है। मेरे स्वामी को प्रसन्न करने की बजाय, उसे सुख देने की बजाय, यह मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में लग जाता है इसलिये मैं उसे परेशान करती हूँ। मैं उसे भ्रमित कर देती हूँ, उसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करती हूँ। कभी भूकंप आता है, कहीं सुनामी सब कुछ मलियामेट कर देती है, कहीं बादलों के फटने से गाँव के गाँव उग्र धाराओं में बह जाते हैं। कहीं सूखा पड़ जाता है, कहीं भुखमरी पैदा हो जाती है। यह सब मेरा ही खेल है। मेरा यह खेल इतना रहस्यमय है कि मनुष्य इसे समझ नहीं पाता और असहाय बनकर रह जाता है। मेरे चंगुल में फँसकर बड़े–बड़े विद्वान, वैज्ञानिक दार्शनिक, कवि तथा साहित्यकार भी यह मान लेते हैं कि यह जीवन केवल मात्र खाने–पीने, सोने तथा मौजमस्ती करने के लिये मिला है और ऐसे लोग, अपने जीवन की अंतिम सांस तक, अपनी इन्द्रियों का तुष्ट करने में लगे रहते हैं। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है।

भगवान् श्री मेरे स्वामी हैं अर्थात् मायापति हैं। उनको प्रसन्न किये बिना, कोई भी जीव मेरे चंगुल से बच नहीं सकता। कोई भी उसे छुड़ा नहीं सकता। इस जीव को वही मेरे चंगुल से छुड़ा सकते हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो वे मुझे आदेश देते हैं कि मैं उनके प्रिय पुत्र (जीव) को मुक्त करूँ और उनके पास ले जाने में उसकी सहायता करूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष, ईर्ष्या ये सब मेरे हथियार हैं– मेरा परिवार है। जब तक जीव मेरे स्वामी को प्रसन्न नहीं करता, उनका भजन नहीं करता तब तक वह इसी प्रकार कष्ट भोगता रहेगा।"

यह कहकर माया देवी अन्तर्धान हो गईं। मायादेवी के इस वार्तालाप से जो बात निकल कर आई है वह यह है कि **यदि आप काम को भगाना चाहते हैं, तो हरिनाम करो। क्रोध को मिटाना चाहते हैं तो हरिनाम करो। राग–द्वेष को समाप्त करना चाहते हैं तो हरिनाम करो। केवल और केवलमात्र हरिनाम करने से भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे और माया मैया हरिनाम में आपकी सहायता करेगी।**

हरिनाम करने से ही अहैतुकी भक्ति हृदय में जागृत हो जायेगी और आपकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले लेंगे। जैसे एक माँ, अपने नन्हे–मुन्ने बच्चे का पालन–पोषण करती है। उसे स्नान कराती है, सुंदर–सुंदर वस्त्र पहनाती है, उसका शृंगार करती है, दुलारती है, पुचकारती है, दूध पिलाती है, उसको किसी की नजर न लग जाये इसलिये काला टीका लगाती है, उसे चूमती है, खेलने के लिये उसे खिलौने देती है, पालने में सुलाती है, लोरी सुनाती है, गोद में बिठाती है, उससे बातें करती हैं। एक माँ यह सब काम निःस्वार्थ भाव से अपने बच्चे को सुख देने के लिये करती है। उसकी रक्षा का भार उठाती है क्योंकि वह बच्चा अपनी मां के आश्रित है, उस पर निर्भर है, उसकी शरणागत है और बच्चा भी अपनी माँ की हर भावना को समझता है, देखता है, अनुभव करता है और उसकी छाती से चिपक जाता है। माँ की गोद में उसे कोई डर नहीं सताता। कोई दुःख नहीं देता और वह ममतामयी माँ को ही अपना सब कुछ समझता है। यह एक उदाहरण है।

जिस प्रकार जब बच्चा मां के शरणागत हो जाता है, उस पर आश्रित होता है तो उसकी सारी जिम्मेवारी माँ उठाती है, ठीक उसी प्रकार यदि यह जीव हरिनाम का आश्रय लेकर भगवान् श्रीकृष्ण रूपी माँ की शरण में चला जाये, उसके हाथों में अपने जीवन की डोर सौंप देता है तो क्या भगवान् उसके सुख में, उसकी खुशी में कोई कमी आने देंगे ? जिस प्रकार माँ–बेटे का रिश्ता है उसी प्रकार भगवान् का अपने भक्त से रिश्ता है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को प्यार करती है, उसी प्रकार भगवान् उससे भी अधिक प्यार अपने प्रिय भक्त को करते हैं और सदा–सदा के लिये अपनी गोदी में बिठा लेते हैं। भगवान् अपने भक्त के समान और किसी को नहीं मानते। उन्हें अपना भक्त सबसे प्रिय होता है। वे हर पल, हर क्षण अपने भक्तों पर दृष्टि रखते हैं, उन पर कृपा बरसाते हैं! यही उनकी भक्तवत्सलता है! यही है उनकी अहैतुकी कृपा! जिस पर भगवद्–कृपा हो जाती है उस पर सभी कृपा करते हैं।

जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।

सबसे पहले श्रीगुरुदेव

हरिनाम करने का, जो क्रम मैंने बताया है, उस क्रम को पढ़कर, सुनकर या देखकर कोई भी साधक प्रश्न कर सकता है कि श्री गुरुदेव वाले ग्रुप में, सबसे पहले श्रीगुरुदेव का नाम क्यों आया है ? क्यों श्रीगुरुदेव के बाद भगवान् का नाम आया है ? इसका उत्तर शास्त्रों में मिलता है।

गुरु कृष्णरूप इन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु रुचे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।।45।।

द्धचैतन्य चरितामृत आदि लीला अध्याय-1ऋ

"सभी शास्त्रों का मत है कि श्रीगुरुदेव भगवान् श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही गुरु रूप में भक्तों का कल्याण करते हैं।"

साक्षाद् हरित्वेन समस्त शास्त्रैः
उक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य,
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम्।।

"श्री गुरुदेव का स्वरूप हरि का ही स्वरूप होता है। ऐसा सभी शास्त्रों में बतलाया गया है। सज्जनपुरुषों ने भी अपने अनुभव द्वारा यही बात कही है। जो अपने प्रभु को अतिशय प्यारे हैं, उन श्रील गुरुदेव के चरण कमलों की मैं वंदना करता हूँ।"

रामायण में लिखा है-

कवच अभेद गुरु पद पूजा।
यही सम विजय उपाय न पूजा।

'श्री गुरुदेव के चरणकमलों को हृदय में धारण करना एक ऐसा कवच है जिसे कोई भी शक्ति भेद नहीं सकती। तोड़ नहीं सकती। बाकी जितने भी कवच हैं उनको भेदा जा सकता है, तोड़ा जा सकता है पर गुरुकवच को तो भगवान् भी नहीं तोड़ सकते। गुरु कवच

अलौकिक है, अतुलनीय है। इसकी शक्ति अमोघ है। अपने किसी पत्र में लव–कुश के प्रसंग में, मैंने इसका वर्णन किया है। पर यह अमोघ कवच मिलेगा कैसे ? इसके लिये एक ही उपाय है– श्रीगुरुदेव की अहैतुकी कृपा या तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करना। जो साधक तीन लाख हरिनाम हर रोज करता है, उसे हरिनाम की कृपा से सब कुछ मिल जाता है। श्री हरिनाम चिन्तामणि में लिखा है–

अग्रे गुरु–पूजा, परे श्रीकृष्ण पूजन।

सबसे पहले गुरु पूजा करनी चाहिये। उसके बाद श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीगुरुदेव की अनुमति लेकर ही श्रीश्रीराधाकृष्ण की पूजा करनी चाहिये।

श्रीगुरुदेव भगवान् के सबसे प्रिय भक्त हैं और भगवान् अपने प्यारे भक्तों को सर्वोपरि मानते हैं। भगवान् ने स्वयं कहा है – मैं हूँ भक्तन को दास, भक्त मेरे मुकुटमणि। अतः श्री गुरुदेव को सबसे पहले याद किया जाता है। सबसे पहले उनके चरण कमलों में प्रार्थना की जाती है तभी श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति होगी।

श्री नरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं–

श्री गुरु चरण पद्म, केवल भक्ति सद्म
वन्दों मुञि सावधान मते।

श्री गुरुदेव के चरण कमल शुद्ध भक्ति की खान हैं
अतः मैं बड़ी सावधानीपूर्वक उनकी वदंना करता हूँ,

याहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाइ
कृष्ण प्राप्ति हय याहाँ हइते।।

श्री गुरुदेव के चरण कमलों की कृपा से भवसागर से पार हुआ जाता है और इन्हीं चरण कमलों की कृपा से श्रीकृष्ण की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप में देवर्षि नारद जी का नाम भी सबसे पहले आया है। देवर्षि नारद भक्तशिरोमणि हैं। वे हर वक्त भगवान् का नाम–संकीर्तन करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी की कृपा के बिना हरिनाम संकीर्तन में रुचि हो ही नहीं सकती और जिस पर देवर्षि

नारद जी की कृपा हो गई, समझो, उसकी नैया पार हो गई। नारद जी ने भक्त ध्रुव पर कृपा की। भक्त प्रहलाद पर कृपा की और उन्हें भगवान् के दर्शन करा दिये। बाल्मीकि जी पर कृपा की और उन्हें त्रिकालदर्शी बना दिया। इतना ही नहीं जब–जब भगवान् का अवतार होता है तो देवर्षि नारद उनके जन्म लेने में सहायक होते हैं। नारद जी ने कंस को बताया कि देवकी का आठवां पुत्र उसका काल होगा तो कंस ने आठ लकीरें खींची और कहा कि मैं उसे जन्म लेते ही समाप्त कर दूंगा। पर नारद जी चाहते थे कि कंस के पाप का घड़ा जल्दी भर जाये और भगवान् शीघ्र अवतार लें, इसलिये उन्होंने कंस की बुद्धि को भ्रमित कर दिया और कहा कि देवकी का कोई भी बालक आठवी संतान हो सकता है। अपनी बात को सिद्ध करने के लिये नारद जी ने युक्तिसंगत तर्क भी दिया। फलस्वरूप, नारद जी की बात मानकर कंस ने देवकी के सातों पुत्रों को जन्म लेते ही मौत के घाट उतार दिया। आठवें बालक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर, कंस का वध किया और देवर्षि नारद की इच्छा पूरी की।

इसलिये देवर्षि नारद जी की कृपा बहुत जरूरी है। देवर्षि नारद हम सब पर कृपा करें ताकि हम दृढ़तापूर्वक हरिनाम कर सकें। आइये! देवर्षि नारद के चरणकमलों में नमन करें और उनके चरण कमलों में बैठकर उन्हें उच्चारणपूर्वक हरिनाम सुनायें।

जब हम एकान्त में बैठकर उच्चारणपूर्वक हरिनाम करते हैं, उसे अपने कानों से सुनते हैं और श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णवाचार्यों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाते हैं, तो वह कीर्तन कहलाता है और जब बहुत सारे भक्त एकत्रित होकर उच्चस्वर से हरिनाम करते हैं, तो वह संकीर्तन कहलाता है। कीर्तन और संकीर्तन का फल एक ही है। इसलिये हरिनाम करते रहो।

भगवान् का सब में वास है

एक बार देवर्षि नारद ने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि आप कहाँ रहते हो ? भगवान् ने कहा कि मैं जीवमात्र में रहता हूँ। हर एक प्राणी में मेरा वास है। मैं आत्मा रूप से सब प्राणियों में विराजमान रहता हूँ। हर एक जीव अपने कर्मानुसार चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है और चौरासी लाख योनियों की, उसकी इस यात्रा में, मैं हर योनि में, आत्मा रूप से उसके साथ रहता हूँ। यदि मैं उसके साथ न रहूँ तो उसका शरीर मृतप्राय हो जाये। इसलिये कभी भी, किसी जीव को मारना नहीं चाहिये। किसी जीव की हिंसा करने पर मुझे कष्ट होता है और मैं नाराज हो जाता हूँ।"

भगवान् ने जो बात कही है उसको समझाने के लिये, मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ। मान लो यह शरीर एक गाड़ी है और इस गाड़ी को चलाने वाला ड्राइवर है आत्मा। यदि ड्राइवर ही नहीं होगा तो गाड़ी कैसे चलेगी ? यदि शरीर में आत्मा ही नहीं होगी तो शरीर कैसे काम करेगा ? इस शरीर के जितने भी कर्म हैं, वह तभी तक हैं जब तक उसमें आत्मा विराजमान है। यदि शरीर में आत्मा न हो तो शरीर न चल सकता है, न बोल सकता है, न खा सकता है और न सुन सकता है ? जब कोई मर जाता है तब उसका शरीर तो रहता है पर वह कुछ कर नहीं सकता। इसका मतलब है कि उस शरीर रूपी गाड़ी को चलाने वाला आत्मा रूपी ड्राइवर नहीं होने से वह शरीर किसी काम का नहीं रहा, बेकार हो गया और उसे जला दिया जाता है।

देखो! जितनी भी योनियाँ है, जितने भी जीव हैं, उनमें भगवान् का वास है। जिस स्थान में भगवान् रहते हैं, उसे मंदिर कहते हैं। इस प्रकार जितनी भी योनियाँ हैं चाहे वे पुरुष की योनि हो, पशु की योनि हो, पक्षी की योनि हो, ये सब भगवान् के मंदिर हैं; यदि कोई किसी जीव को मारता है तो वह भगवान् के मंदिर को नष्ट करता है जिससे भगवान् उससे नाराज हो जाते हैं। यदि कोई मेरी भजन–कुटी को

तोड़ देगा तो क्या मैं उससे नाराज नहीं हूँगा ? मुझे दुःख होगा! इसी प्रकार यदि कोई किसी जीव की हत्या करेगा तो उसे उसी जीव की योनि में जन्म लेना होगा और पाप कर्म का फल भोगना पड़ेगा। उदाहरण के लिये, मान लो एक सांप की कुल आयु एक हजार वर्ष की है और इस समय उसकी आयु है दो सौ वर्ष। उस सांप को अभी आठ सौ वर्ष और जीना है। उसका जीवन आठ सौ वर्ष अभी बाकी है। मान लो किसी ने उस सांप को मार दिया अर्थात् भगवान् के मंदिर को तोड़ दिया तो उसको बाकी के आठ सौ साल तक सांप की योनि में जाना पड़ेगा और अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा। देखो! सांप कभी भी, किसी को पहले कभी नहीं काटता। जब हम उसे मारने दौड़ते हैं या उस पर हमारा पाँव पड़ जाता है, तभी वह हमें काटता है। भगवान् ने उसका स्वभाव ही ऐसा बनाया है।

कई भक्तों ने पूछा है कि क्या मच्छर को मारने से भी पाप लगेगा ? मच्छर जब हमें काटता है तब हम मच्छर को मारते हैं। इसका उत्तर यह है कि काटना मच्छर का स्वभाव है। इसमें उसका दोष नहीं है। मच्छर की योनि भोग योनि है और हमारी योनि कर्म योनि है। भोग योनि में पाप नहीं लगता। कर्म योनि में पाप लगेगा। यदि हम किसी प्राणी को जीवित नहीं कर सकते तो उसे मारने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है। मच्छर काटता है तो उसे मारो मत। यदि मारोगे तो भगवान् का मंदिर नष्ट हो जायेगा और वे नाराज हो जायेंगे। मच्छर को मारने की बजाय कोई ऐसा उपाय करो कि मच्छर पास ही न आये। काटे ही नहीं। आजकल बाजार में ऐसी बहुत सी चीजें मिलती हैं जिससे मच्छर दूर रहते हैं। यह एक उदाहरण है। कहने का अभिप्राय है कभी भी हिंसा न करो। कभी किसी को न सताओ, न मारो। सोच विचार करके काम करो।

मैं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। कई बार अनजाने में हमसे कोई पाप हो जाता है, जीव मर जाता है तो उसका दोष नहीं लगता क्योंकि उस जीव को मारने की हमारी इच्छा नहीं थी। हमारे मन में कहीं भी ऐसी धारणा नहीं थी। हम कहीं जा रहे हैं।

पाँव के नीचे कोई चींटी आई और मर गई। हमें पता ही नहीं चला। इसका दोष नहीं लगेगा क्योंकि हमने जान बूझकर उस चींटी को नहीं मारा। हमारे मन में उसे मारने का विचार नहीं था। ऐसे पाप को भगवान् क्षमा कर देते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि इन्द्रियों में 'मन' मैं हूँ। भगवान् कभी नहीं चाहेंगे कि जीव की हत्या हो। इसलिये भगवान् कभी भी, किसी भी जीव को मारने की अनुमति नहीं देते।

यह बात मैंने किसी पत्र में, पहले भी विस्तार से लिखी है फिर भी मैं इस बात को यहां इसलिये दुहरा रहा हूँ ताकि हम सावधान हो जायें, सचेत हो जायें और भगवान् के इन मंदिरो को नष्ट न करें। भगवान को नाराज न करें।

वैष्णव गुरु कौन?

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'

शिष्य का सब कुछ गुरु को प्राप्त होने पर भी वैष्णव गुरु अपने शिष्य के घर के धन इत्यादि सांसारिक मल (रुपया, पैसा आदि) स्वयं ग्रहण नहीं करते। जो लोग गुरु–दक्षिणा ग्रहण करते हैं, वे दक्षिणा मार्ग के द्वारा यम भवन में गिरते हैं। वैष्णव लोग इस प्रकार के यम भवन के यात्री नहीं है। वे उत्तरा मार्ग के पथिक हैं। इसलिये कर्मी ब्राह्मण आदि को दुनिया के वैभव आदि देने की व्यवस्था है। वैष्णव–गुरु अपने शिष्य के हरि विमुख करवाने वाले भोग्य विषय वैभव स्वयं ग्रहण करके शिष्य के आनुगत्य की व उसके मुख की ओर ताकने की अपेक्षा नहीं करते। हाँ, ऐसे वैभव को हरिवैमुख्य जनक जानकर उसका त्याग अवश्य कर देते हैं। शिष्य को प्राकृत अभिमान से मुक्त कराना एवं उसके द्वारा परित्यक्त सांसारिक मल (रुपया–पैसा आदि) स्वयं ग्रहण न करना ही सदाचारी वैष्णव गुरु का कर्तव्य है। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरजी की यही शिक्षा है।

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों का पूरी तरह निःशुल्क वितरण रोककर स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है। ग्रन्थ छपने के बाद पुनः निःशुल्क वितरण प्रारम्भ होगा–ऐसी योजना है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 09837031415

email-harinampress@gmail.com

।। श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

अंतिम 5 वाँ भाग



- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल–प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादक
श्री हरिपददास अधिकारी

साज–सज्जा
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506–29044, 01421–217059

प्रथम संस्करण – 2000 प्रतियाँ
उत्थान एकादशी 24 नवम्बर, 2012
द्वितीय संस्करण – 1000 प्रतियाँ
उत्थान एकादशी 22 नवम्बर, 2015
ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी
महाराज जी की 111 वीं आविर्भाव तिथि

मुद्रण–संयोजन
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन–281121 • मोबाइल : 07500 987654

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 5

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

प्राप्ति-स्थान

(1)

श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

गांव पांचूडाला, छींड की ढाणी, तहसील कोटपूतली,
जिला जयपुर, (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506—29044, 01421—217059

(2)

श्रीहरिनाम प्रेस

हरिनाम पथ, लोई बाज़ार, वृन्दावन—281121 (मथुरा)
दूरभाष : 07500987654, 0565—2442415

(3)

श्री विनोद वाणी गौड़ीय मठ

32, कालीदह, मदनमोहन चौराहा, वृन्दावन (मथुरा)—281121
दूरभाष : 092676—07945, 095366—26195

(4)

श्री चैतन्य गौड़ीय मठ

सैक्टर—20 बी., चंडीगढ़—160020
दूरभाष : 0172—2708788

(5)

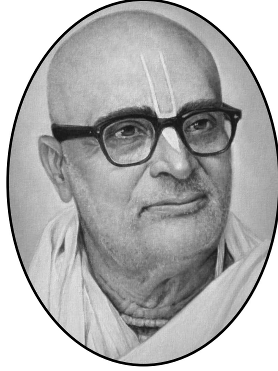
श्री रमेश गुप्ता जी,

397, लक्ष्मी नगर, मगोड़ी वालों की बगीची, ब्रह्मपुरी रोड,
जयपुर (राजस्थान) : दूरभाष : 094140—45053

——— अधिक जानकारी के लिये संपर्क करें ———

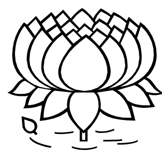
हरिपद दास अधिकारी

099141—08292
email-haripaddasadhikari@gmail.com



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



रे मन धीरज क्यों न धरे
संवत दो हजार से ऊपर,
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण,
चहुँ दिसि काल परै।।
अकाल मृत्यु सब जग मँह व्यापै
परजा बहुत मरै।
सहस बरस लगि सतयुग व्यापै
सुख की दशा फिरै।
स्वर्ण फूल बन पृथ्वी फूलै
धर्म की बेल फरै।
काल व्याल से वही बचेगा
जो गुरु का ध्यान धरै।
'सूरदास' यह हरि की लीला
टारे नाहिं टरै।।



विषय-सूची

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध दास प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, **"इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग–5)"** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' नामक पाँचों भाग श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का प्राण है। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु–निष्ठा, श्रीनाम–निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने–कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा–वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा–सदा के लिये श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? – इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन–निष्ठा, नामनिष्ठा तथा केवल हरे कृष्ण महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है। और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के

सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन–मयूर नाच उठेगा– ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँचवें और अंतिम भाग की एक विशेषता और है कि इसमें श्री अनिरुद्धदास प्रभु के संक्षिप्त जीवन–चरित्र के साथ–साथ उनके श्रील गुरुदेव, श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। चूँकि यह श्री अनिरुद्ध प्रभु जी का अंतिम ग्रंथ है इसलिये मैं एक बात कहना चाहूँगा कि इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था। **''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति''** का अब तक का सफर इस प्रकार रहा–

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) 1000 प्रतियाँ
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) 1000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी–2010

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) 1000 प्रतियाँ
श्रीहरि उत्थान एकादशी–2010

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) 1000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी– 2011

वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् 2000 प्रतियाँ
श्रीराम नवमी, 2011

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) 5000 प्रतियाँ
दूसरा संस्करण
श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011

एक शिशु की विरह–वेदना श्रीराम नवमी, 2012	1000 प्रतियाँ
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012	1000 प्रतियाँ
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) श्रीगोपाष्टमी, 2012	2000 प्रतियाँ
एक शिशु की विरह–वेदना शरद पूर्णिमा, 2014	1000 प्रतियाँ
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन शरद पूर्णिमा, 2014	3000 प्रतियाँ
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015	1000 प्रतियाँ

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से गत छह वर्षों में उन्नीस हजार (19,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग सोलह हजार (16,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की लगभग एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, बेवसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुंच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

इन उन्नीस हजार (19,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्री श्रीराधा गोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे–ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको ! इन पत्रों में कई बातों को बार–बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें। अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रंथों को बार–बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्ण–प्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

"*Arise, awake & stop not, till the goal is reached*"

-Swami Vivekananda

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्री पादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुये, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के
श्रीवृन्दावन आगमन का 500वां वर्ष
कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा, सन् 2015

वैष्णव दासानुदास
हरिपद दास

शरणागत–भक्त के हृदय में भगवद्–तत्त्व का आविर्भाव होता है। शरणागति से पहले कोई भी क्रिया भक्ति नहीं है। शरणागति ही सब समस्याओं का समाधान और सब क्लेशों के निवारण की राम–बाण औषधि है।

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। **"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति"** का पाँचवा और अंतिम भाग आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं आप सबको इसकी बधाई देता हूँ।

"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी—यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार सभी को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को अपने लाभ के लिए छपवाकर या उन्हें बेचकर अपनी आजीविका बनायेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा—ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

अतः मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्री गुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

इस पुस्तक के लेखक
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का
संक्षिप्त जीवन परिचय
(श्री हरिपददास अधिकारी)

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे
श्रीगुरु–वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 82 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्धप्रभु (आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्–पूर्णिमा रास–पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी विरक्त सन्त थे, को अवलंबन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म–स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त, इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्री जय सिंह शेखावत हुये। गांव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। बड़े भाई एक कमरा किराये पर लेकर रहते। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधागोविन्ददेव जी के

श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुंदर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबंधकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों संत–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असंतुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना संभव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्द देवजी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करतालों इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊंचे, लंबे कद एवं अलौकिक सौंदर्य वाला संन्यासी कीर्तन कर रहा था। श्री श्रीराधागोविन्द जी के मंदिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहा था और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहा था। ''ये संन्यासी कौन है? ये रो क्यों रहा है?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति अनिरुद्धप्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे गुरुदेव! यही हैं मेरे गुरुदेव! यही मुझे भगवान् से

मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव अनिरुद्ध प्रभु के ह्रदय में हिलोरें लेने लगे।

अनिरुद्धप्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो अनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

21 नवम्बर, 1952 को अनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र जपकर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधाकृष्ण जी के कुंजों में झाडू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुये हो गया था परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती

चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक–एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति–अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया–रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन–काल बहुत बढ़िया, बीता। सरकारी नौकरी के साथ–साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। कर्ज ले–लेकर तीनों बच्चों को पढ़ाया। अपनी नेक–कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये श्रील गुरुदेव को भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह–सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी–

"While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears."

यह नाम–संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक,

अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप ही उनके अकेले शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने Voluntary Retirement लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। परम–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गांव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गांव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहां के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतो के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढ़ाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

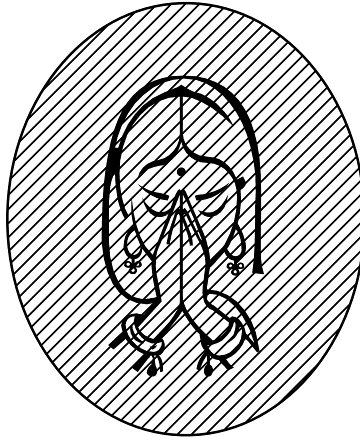
''अनिरुद्ध! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बांटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो, मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध दास प्रभु जी एक अनुभूति–प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों– शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिन्हों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

(श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज)

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्री मते भक्तिदयितमाधवस्वामी–नामिने।।
कृष्णाभिन्न–प्रकाश–श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म–गुरुप्रीति–प्रदर्शिने।
ईशोद्यान–प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार–सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द–सम्वर्धनाय ते नमः।।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्णचैतन्य–आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिब्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन–पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते

थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप–लावण्ययुक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्‌भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृ भक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र–ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते–करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ

आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में अपने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्तिसंगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्त सेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था–भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुये श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा–

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोनीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्ति गौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु–निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थित में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख–दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर (आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की

भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों

अद्‌भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुये हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

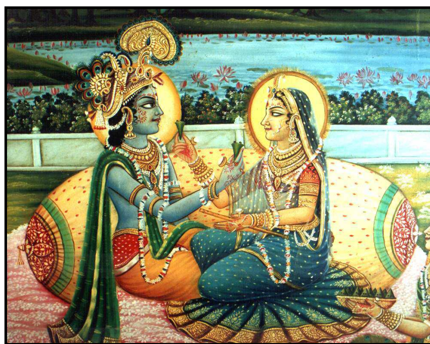
"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इस में किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

–Srila Prabhupada

दो मिनट में भगवान् का दर्शन



श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ गोविंद ! जब मेरी मौत आवे और मेरे अंतिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।''

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और जब मैं भूल जाऊँ, तो मुझे याद करवा देना।''

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! गोविंद! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणीमात्र में आपका ही दर्शन करूँ।''

आवश्यक सूचना – इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।



Chant ...
Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram Ram Ram Hare Hare
... and Be Happy.

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियां हैं, वे गोपियां हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ?

अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की, अमर माँ है । वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

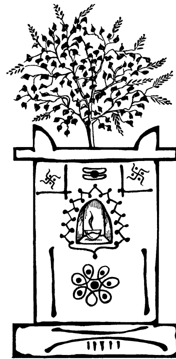
जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। इससे पहले, पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला– झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जाप के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।



श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

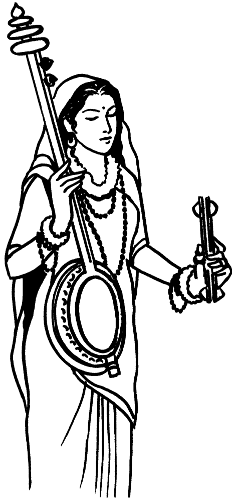
श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

मेरी ओर निहारो!



अनंतकोटि वैष्णवजन,
अनंतकोटि भक्तजन,
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन,
मैं जन्म–जन्म से आपके
चरणों की धूल–कण ।
मुझको ले लो अपनी शरण,
मेरे मन की हटा दो भटकन,
लगा दो मुझको कृष्णचरण,
लगा दो मुझको गौरचरण,
यदि अपराध मुझसे बन गये,
आपके चरणारविंद में,
जाने में या अनजाने में,
किसी जन्म में या इसी जन्म में,
क्षमा करो मेरे गुरुजन,
मैं हूँ आपकी चरण–शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ,
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ,
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ ।
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो,
हे मेरे प्राणधन।
निभालो अब तो अपनापन,
मैं हूँ आपके चरण–शरण
हे मेरे जन्म–जन्म के गुरुजन।



आप कहाँ हो ?



हा गौरांग! हा गौरांग !

कहां गौरांग। कहां गौरांग।

कहां जाऊं ? कहां पाऊं आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप !

हे दयानिधान ! आप कहां हो ?

मैं आपको ढूंढ रहा हूँ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ।

आप कहां हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद।

दर्शन दो स्वामी!

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो!



1

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड

03.04.2011

हरिनाम में मन कैसे लगे ?

पिछले रविवार को मेरे दयानिधि श्रीगुरुदेव जी ने मन को हरिनाम में स्थिर करने हेतु कई नामनिष्ठों के नाम बताए थे। यदि इन नामनिष्ठों के चरणों में बैठकर हरिनाम सुनाया जावे तो नामनिष्ठ से निकलने वाली दिव्य तरंगें हरिनाम करने वाले के चित्त रूपी दर्पण को स्वच्छ बनाती रहेंगी।

इतने अधिक नामनिष्ठ हुये हैं कि साधक उनकी गिनती नहीं कर सकता। किसी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर, हरिनाम उच्चारण करके, उसे सुनाना चाहिये। ऐसा करने से नाम में मन लग जायेगा और भगवद्–प्रेम का प्रवाह बहने लग जायेगा। जब हृदय में प्रेम का प्रवाह बहने लगेगा तो भगवान् की कमी महसूस होने लगेगी। मन भगवद्–दर्शन के लिये छटपटायेगा, अकुलायेगा और अष्टविकार प्रकट होने लगेंगे। आँखों से अश्रुधारा बहेगी और मन पुलकित होकर आनन्दमय स्थिति का अनुभव करेगा।

यदि शरीर स्वस्थ है तभी हरिनाम में मन लगेगा। बीमारी होने से हरिनाम में मन नहीं लगेगा। मन बीमारी की तरफ रहेगा। इसलिये निरोग रहने के लिए यह प्रयोग करें। चैत्र मास की अमावस्या के बाद नीम के वृक्ष में भूरे रंग की नई पत्तियाँ निकलने लगती हैं। आठ पत्तियाँ खाली पेट सेवन करने से शरीर निरोग रहेगा और मन को नई स्फूर्ति मिलेगी। यह प्रयोग तीन दिन करना चाहिये। यदि नीम सेवन करने पर उल्टी हो जाये तो इसे नहीं करना चाहिये। जब शरीर स्वस्थ रहेगा तभी तो एक लाख हरिनाम हो सकेगा। हरिनाम करते हुये वैष्णव अपराधों से बच कर रहें। यदि प्रतिदिन आगे लिखा कीर्तन करके हरिनाम करोगे तो वैष्णव

अपराध से बच जाओगे और सभी वैष्णवों की असीम कृपा भी प्राप्त होगी।

यदि सप्ताह में या दस दिन में, एक बार भी यह कीर्तन करते रहोगे तो वैष्णव कृपा तो मिलेगी ही, साथ ही हरिनाम में रुचि बढ़ जायेगी और अश्रु पुलक आरंभ हो जायेगा।

मेरे गुरुदेव इस बात की गारंटी दे रहे हैं कि जो यह कीर्तन करेगा, वह भविष्य में वैष्णव अपराध से बच जायेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिये। आप इस कीर्तन को करोगे तो गारंटी शत–प्रतिशत सही पाओगे। विस्वसार तंत्र में लेख हैः–

महादेव जी पार्वती से कह रहे हैं "हे प्रिय ! गंगा की दाहिनी ओर मनोहर नवद्वीप धाम में, भगवान् श्रीकृष्ण ही, कलियुग के पापों का विनाश करने के लिये, फाल्गुन पूर्णमासी की रात्रि में मिश्र पुरन्दर, श्रीजगन्नाथ मिश्र के घर में शची माता के गर्भ से गौर रूप में आविर्भूत होंगे।''

भविष्य पुराण के ब्रह्मांड खंड के 7 वें अध्याय में महादेव जी पार्वती को कह रहे हैं–'हे देवी ! कलियुग की प्रथम संध्या में गौरांगदेव भूतल में पवित्र भागीरथी नदी के तट पर शचीनन्दन रूप में अवतीर्ण होंगे। श्री नवद्वीपधाम–महात्मा (परिक्रमा–खंड) में श्री महादेव जी पार्वती को कह रहे हैं–

राधाभाव ल'ये कृष्ण कलिते एबार ।
मायापुरे शचीगर्भे ह'बे अवतार ।।

इस कलियुग में श्रीकृष्ण श्रीमती राधा के भाव और अंगकांति को लेकर मायापुर में श्रीशची देवी के गर्भ से अवतरित होंगे।

कीर्तन रंगेते माति' प्रभु गोरामणि।
वितरिबे प्रेमरत्न पात्र नाहि गणि'।। 52।।

स्वयं संकीर्तन में निमग्न होकर महाप्रभु श्रीगौरहरि, प्रेमरूपी रत्न को पात्र–अपात्र का विचार किये बिना जनसाधारण में वितरण करेंगे।

एई प्रेमवन्या–जले जे जीव ना भासे।
धिक् ता'र भाग्ये देवि, जीवन–विलासे।।53।।

इस प्रेमरूपी बाढ़ में जो जीव नहीं डूबेगा, उसके भाग्य को धिक्कार है। हे देवी ! उसका जीवन धारण करना ही व्यर्थ है।

आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान् धनवंतरि सभी साधकों को सावधान करते हुये कह रहे हैं :–

''अच्युत अनंत गोविंद नाम उच्चारण भेषजात्
नश्यन्ति सकला रोगाः, सत्यं सत्यं वदामि ते''

"हे मानव ! तू भगवान् के अच्युत, अनंत एवं गोविंद, नामों को स्मरण कर। ऐसा करने से तेरे सभी रोग समाप्त हो जायेंगे, यह मैं सत्य–सत्य कह रहा हूँ।''

भगवान् का नाम अमृत है और अमृत पीने वाले को कोई रोग नहीं होता। इसीलिये कह रहे हैं कि हर क्षण भगवान् का स्मरण करते रहो। एक क्षण के लिए भी उस हरिनाम को न भूलो। इस शरीर के अंदर तथा बाहर के सभी रोगों व कष्टों से मुक्ति मिल जायेगी और मनुष्य, जीवन भर के लिये सुखी हो जायेगा।

मैं श्रीहरिनाम का प्रभाव बता रहा हूँ। इसे आप मेरी बड़ाई न समझें, ये तो श्रीहरिनाम की कृपा का फल है।

देखो ! मेरी आयु 81 वर्ष की है। पिछले कई सालों से कहीं घूमने नहीं गया क्योंकि घर से बाहर जाने पर मेरे भजन में बाधा पड़ती है। मेरा तीन लाख हरिनाम पूरा नहीं होता और फिर बुढ़ापे के कारण चलने–फिरने में भी तकलीफ़ होती है। पाँवों में लड़खड़ाहट होती है। यह होना स्वाभाविक ही है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा तथा मौत यह तो आना ही है। भगवान् ने ऐसे ही सृष्टि की रचना की है। यह तो सबके लिये निश्चित है।

मेरा बेटा, मेरी शारीरिक जाँच के लिये मुझे जयपुर के दुर्लभजी अस्पताल में ले गया। डॉक्टर ने मेरा खून चैक किया तो 15 ग्राम निकला।

डॉक्टर ने पूछा, ''बाबा ! तुम क्या खाते हो ? तुम्हारे शरीर में इतना खून कहाँ से आया ? इतना खून तो किसी जवान आदमी के शरीर में भी नहीं होता।''

मैंने बोला कि मैं तो दिन में एक बार दोपहर को दो–तीन फुलकी (चपाती) खाता हूँ। रात में दूध पीता हूँ।''

डॉक्टर ने कहा, ''बाबा ! तेरे जैसा मरीज़ मेरे पास आज तक नहीं आया। सच–सच बता दो कि तुम्हारे अंदर इतना खून कैसे है ?''

मैंने कहा–''डॉक्टर साहब! मैं बेफिक्र रहता हूँ। मुझे कोई भी चिंता नहीं है।''

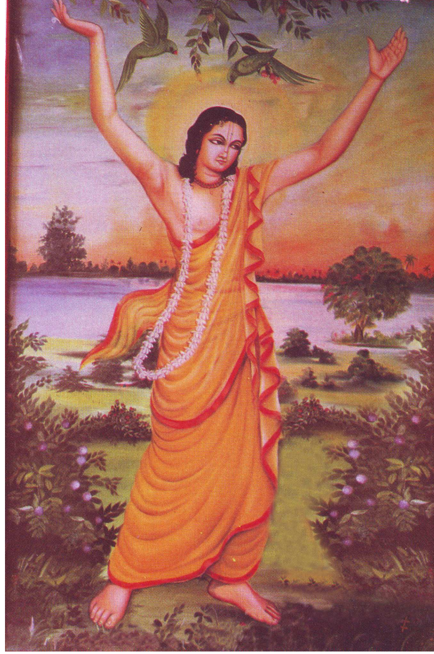
''बूढ़ों को तो चिंता रहती ही है। पर आप पर भगवान् की विशेष कृपा है जो इस उम्र में भी स्वस्थ हो''–डॉक्टर ने कहा ।

डॉक्टर की बातों को सुनकर मैं समझ गया कि यह सब हरिनाम करने का प्रभाव है। मैंने डॉक्टर को नहीं बताया कि मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता हूँ अतः मेरे शरीर में कोई भी रोग नहीं है। देखो ! डॉक्टर सभी को बोलते हैं कि हर रोज 2–3 किलोमीटर की सैर अवश्य किया करो वरना चारपाई पर पड़ना पड़ेगा पर मैं आपको बता दूँ कि मैंने पिछले 24 वर्षों में कभी सैर नहीं की, कहीं घूमने नहीं गया और मेरे शरीर में नवयुवकों जैसी ताकत अब भी है। यह सब हरिनाम का ही तो चमत्कार है।

यह सब इसलिये बोला है ताकि आप सबकी हरिनाम में श्रद्धा बन जाये और आप अधिक से अधिक हरिनाम करने लग जाओ। इसमें मेरा भी भला और आपका भी भला। इस 81 वर्ष की आयु में भी मैं रात को 1 बजे उठकर सात बजे तक (छः घंटे) एक ही आसन में बैठकर हरिनाम करता हूँ। मेरी कमर में कभी दर्द नहीं होता। कभी घुटनों में तकलीफ नहीं होती क्योंकि हरिनाम में अमृत बरसता है। विषयों का चिंतन करने से पूरे शरीर में विष व्याप्त हो जाता है और हरिनाम करने से, भगवद्–चिंतन करने से, पूरे शरीर



श्रीराधाकृष्ण



श्रीचैतन्य महाप्रभु जी

में अमृत व्याप्त होता है। यह सत्य बात है। मेरी नज़र आज भी 10 वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दाँत हैं। मेरा शरीर निरोग है। मेरा जीवन आप सबके सामने है। आप स्वयं मेरी परीक्षा करके देख सकते हो। बारीक से बारीक अक्षर भी मैं बिना चश्में के पढ़ सकता हूँ। निष्किंचन महाराज जी यह सब जानते हैं। आप भी मेरी परीक्षा लेकर देखो। यह मेरी बड़ाई नहीं है। यह हरिनाम करने का कमाल है। यह मैंने इसलिये लिखा है ताकि आप सबको हरिनाम में रुचि हो जाये। जिसका स्वयं का आचरण शुद्ध नहीं है, वह किसी दूसरे को शुद्ध आचरण की शिक्षा क्या देगा ? जहाँ सूर्य है, वहाँ अंधकार नहीं होगा। जहाँ हरिनाम है, वहीं आनंद है, वहीं प्रेम है, वहीं भगवान् हैं, वहीं सब कुछ है।

आप सबकी हरिनाम में रुचि हो जाये, आपका मन हरिनाम में लग जाये, इसलिये मैं कुछ नामनिष्ठ संतों के नाम लिख रहा हूँ जिनके चरण दर्शन करते हुये हरिनाम करने से, मन स्थिर हो जायेगाः–

1. सबसे पहले अपने श्रील गुरुदेव के चरणों का ध्यान करते हुये, उनके चरणों में बैठकर (मानसिक रूप से), उन्हें हरिनाम सुनाना चाहिये ।

कम से कम आठ माला ऐसे करें ।

2. अपने परमगुरुदेव (श्रील भक्तिदयितमाधव महाराज) तथा श्री श्रीराधाकृष्ण।

3. श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामी महाराज जी।

4. श्रील गौरकिशोर दास बाबा जी महाराज।

5. श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी।

6. श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी।

7. श्रील माधवेन्द्र पुरी जी।

8. श्रील ईश्वर पुरी जी।



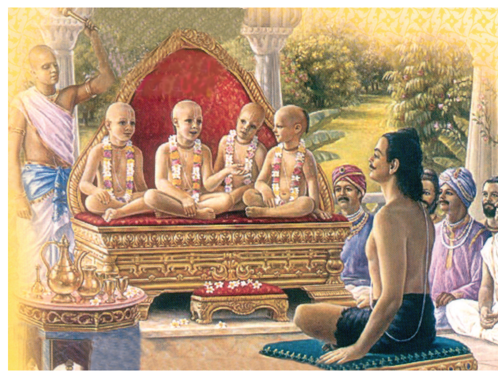
भगवान श्री जगन्नाथ जी



श्री गिरिराज जी महाराज



श्री राधा कुण्ड



चार सनकादिक ऋषि कुमार



श्री जगन्नाथ मिश्र एवं शची माता जी
(श्रीचैतन्य महाप्रभु के माता–पिता)



यशोदा मैया–कन्हैया



नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी



तुलसीदास



सूरदास



कबीरदास

9. श्रीचैतन्य महाप्रभु जी।
10. श्रीनित्यानंद प्रभु जी।
11. श्रील हरिदास ठाकुर।
12. भगवान् जगन्नाथ, बलदेव व सुभद्रा जी।
13. श्रीअद्वैताचार्य जी।
14. गौरगदाधर जी।
15. श्रीनिवास जी ।
16. गिरिराज जी की परिक्रमा करते हुए।
17. राधा कुंड–श्याम कुंड स्नान करते हुये।
18. वृन्दावन की पांच कोसी परिक्रमा करते हुये।
19. यशोदा मैया जी।
20. शची माता जी।
21. श्री शिवजी।
22. श्री गणेश जी।
23. श्री हनुमान जी।
24. श्री नारद जी।
25. श्री अम्बरीष जी।
26. श्री नवयोगेश्वर जी।
27. श्री सनकादि जी।
28. श्री व्यास जी।
29. श्री तुलसीदास जी।
30. श्री कबीर जी।
31. श्री सूरदास जी।

यदि मन में एक लाख हरिनाम करने की सच्ची भावना हो तो पहली आठमाला श्रीगुरुदेव के चरणों का ध्यान करते हुये करो और बाकी सभी नामनिष्ठों (2 से 31) के चरणों का ध्यान करते हुये प्रत्येक को दो–दो माला हरिनाम की सुनाओ। तीस गुणा दो (30 x 2)=60 माला। 8 माला गुरुदेव की। कुल मिलाकर 68 माला बन जाती हैं। यह एक उदाहरण है। आप अपनी इच्छानुसार किसी भी नामनिष्ठ की कृपा प्राप्त कर सकते हो पर हरिनाम करना ज़रूरी है, तभी तो कृपा मिलेगी।

भगवान् की अनंत लीलाएँ हैं। उनका दर्शन करते हुये, हरिनाम करने से हम भगवान् की माया से बच सकते हैं। भगवद्–कृपा से ही कोई भगवान् को पहचान सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों के पास थे फिर भी वे उन्हें पहचान नहीं सके। अंधे व्यक्ति को सूर्य की रोशनी में भी अंधेरा दिखता है। कौरव अपनी अज्ञानता के कारण, दुर्भाग्यवश, भगवान् को पहचान नहीं पाये, समझ नहीं पाये। जिस प्रकार कौरव भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं पहचान सके उसी प्रकार नवद्वीपवासी भी निमाई को एक साधारण बालक समझते रहे। श्रीगौरहरि ने विचार किया कि मैं तो इन सबका कल्याण करने, उद्धार करने के लिये आया हूँ। यदि ये मुझे एक साधारण मानव समझते रहेंगें तो मेरी बात नहीं सुनेंगे और उद्धार होने से वंचित रह जायेंगे। इसलिये निमाई को संन्यास लेना पड़ा ताकि लोग उनकी बात सुन सकें।

नवद्वीपवासी निमाई को एक चंचल तथा तार्किक बालक समझते थे और कहते थे–"कितना अच्छा होता यदि इस बालक में भगवान् की भक्ति होती।" उनकी बात सुनकर निमाई कहता–"आपके आशीर्वाद से यह भी हो जायेगा और मैं भक्त बन जाऊँगा।"

मानव की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह सदा ही दूसरों के दोष देखता है। दूसरों के दोष देखते हुये वह अपने दोष नहीं देखता। यही सबसे बड़ी बाधा है। दूसरों के दोष ढूँढने में हम कितना समय बर्बाद कर देते हैं ? कितनी शक्ति व्यर्थ गँवा देते हैं।

कितने शुभ अवसर हाथ से गँवा देते हैं ? लोगों ने तो माता सीता को भी नहीं बख्शा। मीरा, कबीर, नामदेव, नरसी आदि में भी दोष देखे। अतः एक सुनहरा अवसर गँवा दिया। उस अवसर का लाभ नहीं उठाया। मानव जीवन को नष्ट कर दिया और नरकगामी हो गये। सच्चा संत ऐसे लोगों से पिंड छुड़ाकर, एकांत में बैठकर भजन करता है। सच्चे संतों को जनता परेशान करती है। अपने सुख के लिये, अपनी संसारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, अपने स्वार्थ के लिये लोग सच्चे–संतों का अमूल्य समय नष्ट कर देते हैं। कभी–कभी संत ऐसे लोगों से बचने के लिए कई प्रकार की लीला किया करते हैं। साँच को आँच कहाँ ? सच्चा संत तो सबका भला चाहता है पर उसे पहचानना बहुत मुश्किल है। जिस पर भगवद्–कृपा होगी वह संत में दोषदृष्टि नहीं करेगा। इसलिये मैं आप सबसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आप बिना समय गंवाये, अब हरिनाम करने में लग जाओ। बस यही इस लेख का सार है।

हरि बोल।

●

"वैष्णव सेवा के फल से श्रीनाम में अवश्य रुचि होगी।"

–श्री जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज

●

2

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
30.06.2011

प्रेमास्पद भक्तगण!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

आचरणशील भक्त के पीछे भगवान् छायावत् रहते हैं

राम नाम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।

यहाँ दशरथ का मतलब है दस इन्द्रियाँ। दसों इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से, उनमें केंद्रित करने से भगवान् सरलता से खिंचे चले आयेंगे—यह बात निश्चित है। इसमें ज़रा भी संदेह नहीं करना।

जो सभीत आया शरनाई। ताको राखूँ प्राण की नाईं।।

1. जो साधक सदा सुखी रहना चाहता है, वही इस संसार रूपी दुःखालय (दुःखों का घर) से डर कर भगवान् को याद करता है और भगवान् उसे अपने हृदय से चिपकाये रहते हैं। भगवान् कहते हैं कि जीवात्मा मेरा शिशु है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु (बच्चे) को अपनी छाती से चिपका कर रखती है उसी प्रकार मैं भी अपने भक्त को हृदय से चिपकाये रखता हूँ क्योंकि मेरे भक्त ने केवल मेरा ही आसरा ले रखा है। मेरे सिवा इस संसार में उसका कोई नहीं है। इसलिये उसकी चिंता मैं स्वयं करता हूँ। जिसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया हो, जो हर पल मेरा चिंतन कर रहा हो, जिसके रोम—रोम में हरिनाम की दिव्य ध्वनि गूँज रही हो,

जिसके हर श्वास में हरिनाम का उच्चारण होता हो, अपने शरणागत उस भक्त को मैं कैसे त्याग सकता हूँ ?

भगवान् तो सब जीवों की माँ हैं और वात्सल्यभाव की असीम मूर्ति हैं। फिर अपनी शरण में आये जीवों को वह कैसे त्याग सकते हैं ? ऐसे भक्त को, जिसने अपना मन सब ओर से हटा कर, भगवान् के चरण कमलों में लगा दिया है, भगवान् अपने से दूर कैसे रख सकते हैं ? इसलिये भगवान् की प्राप्ति का सबसे पहला साधन है–मन का संयम। जब सब इन्द्रियों का संयम हो जाता है तो फिर भगवान् दूर नहीं। भगवान् से नज़दीक तो कोई नहीं और असंयमी जितना भगवान् से दूर रहता है, उतना कोई दूर नहीं। जो शरणागत रहता है, उसकी भगवान् स्वयं रक्षा करते हैं।

धर्मग्रंथों में बिल्ली तथा बन्दरिया का उदाहरण मिलता है। बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुख से उठाकर कई घर बदलती है पर उसका बच्चा कभी भी उसके मुख से गिरता नहीं है क्योंकि वह अपनी माँ की शरण में है और उसकी माँ ने उसे कस कर अपने मुख में पकड़ रखा है। अतः वह सुरक्षित है।

दूसरी ओर बंदरिया का बच्चा अपने बल से अपनी माँ को पकड़े रहता है और शरणागत नहीं होता और जब बंदरिया एक स्थान से दूसरे स्थान पर छलांग लगाती है तो बच्चा छाती से अलग हो जाता है, नीचे गिर जाता है। उसकी मौत हो जाती है। यह इसलिये क्योंकि वह पूर्ण रूप से शरणागत नहीं था और अपने बल से उसने माँ को पकड़ा हुआ था।

कहने का मतलब यह हुआ कि हम अपने बल से भगवान् को नहीं जान सकते। हां, भगवान् की शरण लेने पर, वे स्वयं अपनी दया से, हमें अपना लेंगे। अपने चरणों में रख लेंगे और हमारी रक्षा करेंगे। शरणागत की रक्षा, उसका पालन भगवान् स्वयं करते हैं। शरणागत किसी भी बात की चिंता नहीं करता। वह तो केवल भगवान का चिंतन करता है और उसकी चिंता भगवान् करते हैं। अतः सबसे पहली बात है–**शरणागति।**

2. दूसरी बात जो भगवान् को आकर्षित करती है–हर एक प्राणी में उन्हें ही देखना। जो जीव मात्र में उनका दर्शन करता है, भगवान् उससे दूर हैं ही नहीं। ऐसा साधक किसी को दुःखी नहीं देख सकता। किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता। ऐसे साधक के लिये भगवान् खिंचे चले आते हैं पर यह स्थिति एक दिन में नहीं आयेगी। भगवान् से हर रोज़ प्रार्थना करो–**'हे भगवान् ! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो कि हर जीव में, मैं आपका दर्शन कर सकूँ।''** बार–बार प्रार्थना करने पर, भगवान् की कृपा से कुछ समय बाद अपने आप वह स्थिति आ जायेगी जब भक्त को सब कुछ कृष्णमय दिखने लगेगा। उसके इर्द–गिर्द का सारा वातावरण कृष्णमय हो जायेगा और उसका मन श्रीधाम वृन्दावन बन जायेगा जिसमें वह मुरलीमनोहर, श्यामसुंदर अपनी आह्लादिनी शक्ति–श्रीमती राधारानी के साथ विराजमान होकर आनंद की वंशी बजायेंगे।

3. तीसरी बात, भक्त को चाहिये कि वह जो कुछ भी करे, भगवान् का काम समझ कर करे। मन से, वचन से या फिर कर्म से किया हुआ हर काम, जब भगवान् के लिये होगा तो वह भक्ति बन जायेगा और साधक बुरे कर्मों से बच जायेगा। पाप कर्म उससे होगा ही नहीं। जब उसका उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना, चलना, पढ़ना–लिखना, पूजा करना, मंदिर जाना, जप करना, श्रीविग्रह की सेवा करना, फूल माला बनाना, भोग लगाना तथा श्रृंगार करना इत्यादि सभी काम भगवान् के लिये होंगे, फिर तो उसका चौबीस घंटे भगवान् का भजन हो गया। जिसका हर काम भगवान् के निमित्त है, उनकी प्रसन्नता के लिये है, उसके लिये तो भगवान् को आना ही पड़ता है। भगवान् छाया की तरह उसके साथ–साथ रहते हैं। एक क्षण भी उससे दूर नहीं होते।

जिस भक्त का मन पूर्ण रूप से भगवान् में लग गया, भगवान् की सेवा में रम गया, फिर संसार की आसक्ति उसका क्या बिगाड़ेगी ? ऐसा भक्त तो साक्षात् वैराग्य की प्रतिमा बन जाता है।

4. चौथी बात, जो शिष्य अपने श्रीगुरुदेव के वचनों पर अमल करता है, उनकी आज्ञानुसार भजन करता है, उसका मन हर क्षण भगवान् में लगने लगेगा। जो मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर ही हरिनाम करता है, भगवान् उसकी ओर बहुत शीघ्र आकर्षित होते हैं क्योंकि उसकी पुकार सुनकर, उसकी तड़प देखकर भगवान् रुक नहीं सकते। ऐसे भक्त के रोम–रोम से हरिनाम की ध्वनि निकलती रहती है और संसारी वासनायें उसके हृदय से मूल सहित समाप्त हो जाती हैं और वह श्रीकृष्ण भगवान् की भावना से प्रभावित रहने लगता है।

5. एकादशी व्रत, सब व्रतों का राजा है। एकादशी व्रत करने वाले को भगवान् का प्रेम बहुत जल्दी प्राप्त होता है। जो भी भक्त नियम से एकादशी का व्रत करता है, एकादशी को कम से कम एक लाख हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का, श्रील गुरुदेव द्वारा प्रदत्त तुलसी की माला पर जप करता है, उसका भगवान् कभी त्याग नहीं करते। एकादशी व्रत का नियम है कि दशमी तिथि को एक बार प्रसाद सेवन करे। एकादशी को निराहार रहे तथा द्वादशी को पारण करे, दूसरी बार प्रसाद न पावे। त्रयोदशी को दो बार प्रसाद पा सकता है। यह कलिकाल है यदि इतना न हो सके तो केवल एकादशी को फलाहार लिया जा सकता है। आजकल भक्तों में इतनी शक्ति नहीं है कि वह नियम से एकादशी व्रत का पालन कर सकें। जो कर सकते हैं बहुत अच्छी बात है। जो खाये बिना नहीं रह सकते तो कम से कम एकादशी के दिन केवल फलाहार करके एक लाख हरिनाम अवश्य करें। भगवान् बहुत दयालु हैं। वे जानते हैं कि मेरा भक्त इतनी कठोर तपस्या नहीं कर सकता अतः वह सामान्य रूप से रखे व्रत को भी स्वीकार कर लेते हैं पर एक लाख हरिनाम करने में कोई छूट नहीं देते। एकादशी को 64 माला करना परमावश्यक है।

6. **पुण्य एक जग में नहीं दूजा**
मन, क्रम, वचन, साधुपद पूजा

भगवान् कहते हैं कि जो बिना किसी कपट के, तन तथा मन से भगवान् के सच्चे सेवक, वैष्णव–संत की सेवा करता है, मैं उसे कभी नहीं त्याग सकता और मैं सदा उसके पास वास करता हूँ। ऐसे भक्त के बिना मैं कैसे रह सकता हूँ क्योंकि सच्चे संत के रूप में वह मेरी ही सेवा करता है और मैं उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसकी ओर आकर्षित हो जाता हूँ। उसके पीछे–पीछे चलने लगता हूँ।

7. जो सभी जीवों पर दया करता है, किसी भी प्राणी से हिंसा नहीं करता, सबसे प्रेम करता है, उसके हृदय कमल पर मैं सदा विराजमान रहता हूँ क्योंकि प्रत्येक जीव में वह मुझे ही देखता है। वह चींटी से लेकर हाथी तक में, मेरी उपस्थिति का ही अनुभव करता है। ऐसे भक्त से किसी का बुरा नहीं हो सकता।

8. मेरा भक्त हर क्षण मुझे अपने साथ महसूस करता है। वह हर पल मुझमें और मै उसमें विराजित हूँ। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। वह तो मेरा प्राण बन जाता है।

9. जो भक्त इन्द्रियों का संयम करता है, उसके पास ही भगवान् विराजते हैं। इन्द्रियों के संयम के अभाव में पंचम पुरुषार्थ (श्रीकृष्ण–प्रेम) का रस रुक जाता है और अंत में सूख जाता है।

10. मेरा भक्त संसार को दुःख रूप अनुभव करते हुये, वैराग्य को धारण करता हुआ, मेरे से कभी अलग नहीं होता और न मैं उससे अलग रहता हूँ । ऐसे भक्त की संसारी आसक्ति मूल रूप से नष्ट हो जाती है।

11. जो मेरे शरणागत हो जाता है, वह किसी में दोष नहीं देखता। वह नामापराध से ऐसे डरता रहता है जैसे कोई विषधर सर्प सामने फन फैलाकर खड़ा हो या फिर बब्बर शेर सामने आकर खड़ा हो और वह उससे डर जाये। यदि ऐसे भक्त से किसी वैष्णव

के चरणों में अनजाने में अपराध हो भी जाये तो वह उसके चरणों में लेट कर क्षमा–प्रार्थना करता है। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? मैं तो उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ क्योंकि उसने मुझे प्रेम की रस्सी से बांध लिया है। यह बात श्रीमद्भागवत पुराण के जय–विजय के प्रसंग में मिलती है।

उपरोक्त लिखी वृत्तियाँ भक्त में तभी उदय हो सकती हैं जब उसे किसी सच्चे वैरागी संत का सानिध्य उपलब्ध होगा। बिना सत्संग के, बिना सद्गुरु के, बिना किसी वैष्णव संत की कृपा के, कुछ भी नहीं मिलेगा – यह अकाट्य सिद्धांत है। सच्चे संत की कृपा होगी, उसका संग मिलेगा, उसका दर्शन मिलेगा तभी उक्त वृत्तियाँ हृदय में प्रकट हो सकेंगी, अन्यथा नहीं।

भक्तजन अक्सर कहा करते हैं कि हम भगवान् से बातें करते हैं, उन्हें बुलाते हैं, वह हमारी किसी भी बात का जवाब नहीं देते, हम से नहीं बोलते। मैं कहता हूँ–"नहीं, आप झूठे हैं। भगवान् बोलते हैं यदि बुलाने वाले की योग्यता हो तो। देखो ! जब तक मन, बुद्धि भगवान् में नहीं लग जाते तब तक कुछ नहीं होने वाला। मन, बुद्धि तथा कर्म भगवान् को दे दो, उन्हें अर्पित कर दो, भगवान् आपसे बातें करेंगे। जब यह तीनों ही अनुकूल नहीं हैं तो भगवान् आपसे क्यों बात करेंगे ?"

देखो! भगवान् को जिस अनुपात में आप बुलाओगे, जिस अनुपात में भजन करोगे, उसी अनुपात में आपको उनका प्रेम प्राप्त होता रहेगा।

भगवान् को जितना तुम चाहोगे, भगवान् भी आपको उसी मात्रा में चाहेंगे। श्रीमद् भगवद्गीता में अर्जुन से भगवान् कहते हैं:–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

(गीता 4.11)

''हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।''

इसमें भगवान् का क्या दोष है ? दोष तो हमारा है। भगवान् कहते हैं कि मैं अन्तर्यामी हूँ। मैं सबके हृदय की बात जानता हूँ। लोग मेरे साथ भी कपट करते हैं। मेरे मन्दिर में आकर भक्त होने का ढोंग करते हैं। मेरे श्रीविग्रह के सामने लेट कर लंबे–लंबे हाथ जोड़ते हैं, परिक्रमा लगाते हैं, दण्डवत् करते हैं और मेरे ही भक्तों से द्वेष करते हैं, वैर–विरोध करते हैं। मन्दिर से बाहर निकलते ही अपने साथियों का गला घोंटते हैं – ऐसे साधक से मैं क्यों बोलूँ ? वह किसी और से नहीं, मेरे से ही द्वेष करता है, मेरा ही विरोध करता है, मुझ से ही वैर करता है और फिर कहता है–भगवान् दयालु नहीं हैं, उनके हृदय में दया नहीं है, मैंने ज़िंदगी भर भगवान् का भजन किया, पर उसने मेरा क्या किया ?

देखो ! ऐसा भक्त कभी भी भगवान् को नहीं प्राप्त कर सकता। भगवान् से द्वेष करने वाला व्यक्ति कैसा मूर्ख है ? अपने दोषों को नहीं देखता। अपने अवगुणों को दूर नहीं करता और दोष देता है भगवान् को। भगवान् पर दोषारोपण करता है। बाकी लोगों की छोड़ो, भगवान् को भी दोषी बना दिया। ऐसा मूर्ख स्वयं तो नरक के गहरे खड्डे में गिरता है, दूसरों को भी साथ ले बैठता है। ऐसे मूर्खों से दूर रहने में ही भलाई है। भक्तिविनोद ठाकुर जी ने अपने एक पद में कहा है कि ऐसे व्यक्ति से तो मैं बात तक नहीं करता।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

3

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
09.07.2011

प्रेमास्पद भक्तप्रवरगण!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विराहावस्था निरंतर होने की प्रार्थना।

मानव–जन्म सुदुर्लभ से भी सुदुर्लभ है

भगवान् जीव को मनुष्य का जन्म तभी देते हैं जब उस पर अति कृपा होती है। भगवान् यह सुदुर्लभ अवसर इसलिये प्रदान करते हैं ताकि जीवात्मा, जो उनसे बिछुड़कर, असीम दुःख सागर में गोता खाता रहता है, माया के विषय जाल में फंसकर सारी ज़िंदगी बेकार के कर्मों में खर्च कर देता है, इस भवसागर से निकल सके और उनकी गोद में आ सके। भगवान् ने बिना किसी कारण, जीव पर कृपा की और उसे अपने पास बुलाने का सुअवसर दिया परंतु दुर्भागे जीव ने, इस अति दुर्लभ अवसर को भी गँवा दिया।

अब जब उसने सुदुर्लभ मनुष्य जीवन गँवा दिया तो अपनी सूक्ष्म देह को लेकर, वह करोड़ों युगों तक अट्‌ठाईस प्रकार के नरकों का भोग भोगेगा। ऐसे नरक, जहाँ दुःखों का कोई अंत नहीं है। करोड़ों युगों तक नरक भोगने के बाद, वह चौरासी लाख योनियों का भोग करेगा। अनंत कोटि युगों तक इन चौरासी लाख योनियों का भोग करता रहेगा। ज़रा विचार करो कि अट्‌ठाईस प्रकार के नरक तथा चौरासी लाख योनियों को भोगने में कितना समय लगेगा ? अरबों–खरबों वर्ष व्यतीत हो जायेंगे। इतने समय के बाद भी कोई गारंटी नहीं है कि जीव को मनुष्य की योनि उपलब्ध हो। कलियुग की आयु है चार लाख बत्तीस हज़ार (4,32,000) वर्ष। उससे दुगना (8,64,000 वर्ष) द्वापर युग, उससे

तिगुनी (12,96,000 वर्ष) त्रेता की तथा उससे भी चार गुणा (17,28,000 वर्ष) सतयुग की आयु होती है। यदि इन चारों युगों की आयु को जोड़ा जाए तो यह 43 लाख 20 हजार (43,20,000) वर्ष के लगभग बनती है। कितने चर्तुयुग बीत जायेंगे तब कहीं जाकर मनुष्य जन्म की उपलब्धि होती है। वह भी भगवद्-कृपा से।

मेरे श्रील गुरुदेव ने अपने पिछले पत्र दिनांक 30.06.2011 में लिखवाया था कि किन कारणों से भगवान् भक्त के पीछे–पीछे चलते हैं, उनके पास खिंचे चले आते हैं। श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि पिछले रविवार को मैंने इस आयोजन में आने वाले सभी भक्तों को माखन खिलाया था पर इस इतवार को सभी श्रोताओं को कड़वी दवाई पिलाऊँगा ताकि उनके अंदर की विषय–वासनाओं का विष (ज़हर) मन से निकल जावे। इन्द्रियों में भरे हुये उस ज़हर को निकालने की, मैं कोशिश कर रहा हूँ।

मेरे श्रील गुरुदेव साधकों को भयभीत करके श्रीहरिनाम में लगाने का प्रयास कर रहे हैं। भयभीत होने की सभी घटनायें सत्य हैं। काल्पनिक नहीं हैं।

श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि यह मनुष्य जन्म कब मिलता है ? यह जन्म तब मिलता है जब किसी जीव का संग, किसी सच्चे संत से बन जाये और उसे उस संत की सेवा करने का अवसर मिल जाये। पर याद रखो, ऐसा संत मिलना, ऐसा अवसर मिलना भी बहुत मुश्किल है।

देखो ! याद रखो कि भगवान् न तो योग से, न तपस्या से, न शुभकर्मों से व न तीर्थाटन से आकर्षित होते हैं। भगवान् केवलमात्र भगवद्–नाम की शरणागति रूपी भक्ति से दृष्टिगोचर होते हैं। किसी सच्चे नामनिष्ठ की शरणागति में होना परमावश्यक है। जब किसी सच्चे हरिनामनिष्ठ संत की प्राप्ति होती है तो संसार से पूरा वैराग्य हो जाता है। तभी भगवान् से प्यार होता है। जब पूर्ण रूप से भगवान् से सच्चा प्रेम हो जाता है तो भगवान् जैसी शक्ति स्वतः ही उदय हो जाती है और भक्त अष्ट सिद्धि व नवनिधियों का भंडारी बन जाता है।

इस कलिकाल में भगवद्–प्राप्ति बहुत सरल है, सुगम है। इस कलियुग में भगवान् बहुत शीघ्र मिल सकते हैं। इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो सकती है। इस युग में करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक, जो बहुत सुकृतिशाली होता है, वही भगवान् को चाहता है। इस युग में सच्चे मन से भगवान् को चाहने वालों की कमी है। श्रीमद्भागवत पुराण के जय–विजय के प्रसंग में भगवान् ने कहा है कि मेरा भक्त ही मेरा आराध्यदेव है। अपने भक्तों के बिना मेरा मन लगता ही नहीं है।

ज़रा विचार करो ! सोचो ! हमारे भक्तवत्सल भगवान् कितने दयालु हैं ! वे अपने दोनों हाथ फैलाये खड़े हैं और जीवों को बुला रहे हैं। वे कहते हैं–



"हे मेरे पुत्र! तू मुझसे बिछुड़ गया है। अब मेरे पास वापस आ जा। मेरी गोद में आ जा और सदा–सदा के लिये मेरे पास एक नित्य, आनंदमय व दिव्य जीवन का आनंद प्राप्त कर।"

भगवान् अपने पुत्र जीवात्मा को लेने के लिये तत्पर हैं, तैयार हैं, अपनी बाँहें फैलाये खड़े हैं पर दुर्भागा जीव उनकी ओर देखता भी नहीं और भवसागर के गर्त में गिरता जा रहा है। कैसी विडंबना है ? कितनी मूर्खता है ?

धर्मग्रंथों में अनेकों प्रसंग ऐसे मिलते हैं जिससे मनुष्य को शिक्षा मिल सके। यहाँ पर भी एक हृदय–स्पर्शी मार्मिक प्रसंग दिया गया है, ध्यान से सुनो।

जब रावण लंका का राजा था, उसी समय भारतवर्ष के उज्जैन में एक बहुत धार्मिक राजा था। जिसका नाम था –चकवा बैन। हो सकता है आप में से किसी ने यह नाम सुना भी हो।

रावण बहुत अहंकारी था। उसने अपने बल से सभी राजाओं

को हराकर अपने अधीन कर रखा था पर चकवा बैन से मिलने का उसे अभी तक अवसर नहीं मिला था। रावण उस राजा को भी जीत कर अपने अधीन करना चाहता था इसलिये उसने अपने एक बहुत ही विश्वासपात्र मंत्री को राजा चकवा बैन के पास भेजा और पूछा कि क्या वह रावण से युद्ध करना चाहता है ?

रावण का मंत्री महाराज चकवा बैन के राज्य, उज्जैन में आ गया और उसने वहाँ के निवासियों से उसके रहने का ठिकाना पूछा। किसी ने कहा कि इस समय तो राजा अपने खेतों में काम कर रहा होगा, वहाँ चले जाइये।

मंत्री पूछते–पूछते खेतों में आ गया और वहाँ जाकर उसने देखा कि एक आदमी खेतों में खड़ी फसल को पानी दे रहा है। रावण के मंत्री ने सोचा कि शायद यह कोई किसान है। चलो, इसी से राजा का पता पूछते हैं। मंत्री ने कहा–''राजा चकवा बैन कहाँ मिल सकता है ? ''

''तुम्हें चकवा बैन से क्या काम है ?''– राजा ने पूछा। मंत्री ने कहा कि मुझे जो काम है, वह मैं राजा को ही बताऊँगा। आपको नहीं। तब राजा ने कहा कि मैं ही चकवा बैन हूँ। बताइये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

मंत्री ने कहा कि राजा रावण आपसे युद्ध करना चाहते हैं, आपकी क्या राय है ?

''ठीक है! आप मुझे लंका का नक्शा बनाकर दिखाओ''–राजा ने कहा।

मंत्री ने ज़मीन पर लंका का नक्शा बना दिया और चकवा बैन ने एक पत्थर से लंका की चारदिवारी की एक दीवार पर पत्थर मारा और कहा कि अंहकारी रावण को जाकर वह दीवार दिखा देना जो मेरे पत्थर मारने से लंका में सचमुच में गिर गई है और कहना कि जब चाहे, रावण मुझ से युद्ध कर ले।

मंत्री जब लंका वापस पहुँचा तो उसने देखा, चारदिवारी की

एक दीवार सचमुच गिरी पड़ी है। जब मंत्री ने सारी बात रावण को बताई तो रावण हैरान रह गया। उसके पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई। वह सोचने लगा कि जो आदमी इतनी दूर बैठा, मेरी लंका की एक चारदिवारी पत्थर मारकर गिरा सकता है, वह क्या नहीं कर सकता ! रावण मन ही मन उस चकवा बैन की शक्ति को जान चुका था पर अपने मंत्री के सामने, अपनी कमज़ोरी को छिपाकर बोला कि ऐसी जादूगरी तो मैं भी जानता हूँ। राजा चकवा बैन जादूगर है। समय आने पर मैं अपनी जादूगरी से उसे अपने अधीन कर लूँगा। मंत्री भी जान गया था कि रावण डींग हाँक रहा है इसलिये चुपचाप वहाँ से चला गया।

यदि इस प्रसंग को ध्यान से देखा जाए तो समझ आ जाएगा कि जिसने भगवद्–शरण ले ली, उसमें अतुलित शक्ति आ जाती है। चकवा बैन भगवान् का भक्त था और सच्चे मन से अपनी प्रजा का पालन करता था। राजा होते हुये भी अपने खेतों में काम करते हुये, अपने परिवार का पालन करता था। वह एकादशी व्रत करता था और उसने राज्य में आदेश दे रखा था कि सभी प्रजाजन एकादशी का व्रत करें। जैसा राजा, वैसी प्रजा।

महाराज चकवा बैन स्वयं जाकर लोगों से मिलता था। उनके दुःख–दर्द सुनता था, उनकी जरूरतों को पूरा करता था। अपनी प्रजा का पालन करना ही उसकी पूजा थी, उसका धर्म था। वह प्रत्येक प्राणी में भगवान् का ही दर्शन करता था इसलिये भगवान् उससे बहुत प्रसन्न थे। भगवद्–कृपा से उसमें एक सच्चे संत के सभी गुण थे। वह विनम्र था, सहनशील था, दयावान् था, सबका हितैषी था, संतो का सम्मान करता था, बालकों, वृद्धों तथा महिलाओं की रक्षा करता था। उसके राज्य में सभी सुखी थे और सर्वगुण संपन्न थे। यह उसकी भक्ति का ही तो प्रभाव था।

जितने भी धर्मग्रंथ हैं, वे भगवान् की ही वाणी हैं। भगवान् के मुख से निकले हैं। अतः उनमें अश्रद्धा करना अपराध है। शास्त्रों में हरिनाम के बारे में लिखी एक–एक बात सत्य है, सिद्ध है। कोई

भी जिह्वा से हरिनाम करके, उसको आज़मा सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। यदि इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करना चाहते हो तो हरिनाम की शरण में आ जाओ। मुख से उच्चारण कर, कानों से सुनकर, कम से कम एक लाख हरिनाम नित्यप्रति करो, आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपका दुःखों का संसार समाप्त हो जायेगा। हरिनाम के बिना जीवन बेकार है और हरिनाम करने में ही सर्वोत्तम लाभ है। यदि यह मौका चूक गये तो पछताने के सिवा कुछ भी हाथ नहीं आयेगा।

मेरे श्रील गुरुदेव समझा रहे हैं कि 84 लाख योनियों में 30 लाख योनियाँ पेड़–पौधों की हैं। एक–एक पेड़ की आयु हज़ारों वर्षों की होती है। इस प्रकार इन 30 लाख योनियों में युगों के युग बीत जायेंगे। 20 लाख जल में रहने वाले (जलचर) जीव–जंतु, 20 लाख आकाश में उड़ने वाले पक्षी (नभचर) तथा 10 लाख थलचर हैं और चार लाख प्रकार की मनुष्य की जातियाँ हैं ।

कल्पना करो कि इन सब योनियों में जाना पड़ेगा, सब कुछ बनना पड़ेगा, कितना दुःख, कितना कष्ट सहना पड़ेगा। हर योनि में भोग भोगना पड़ेगा। सूअर बनना पड़ेगा, गधा बनकर बोझ उठाना पड़ेगा, घोड़ा बनकर गाड़ी खींचनी होगी, सांप बनना होगा, केंचुआ बनना होगा, बंदर बनना पड़ेगा, गंदी नाली में कीड़े बनना होगा, नेवला, बिच्छू, खरगोश, हाथी, गीदड़, चील, कौआ, तोता, कबूतर, गाय, भैंस, बकरी, जो कुछ भी नज़र आ रहा है, वह सब बनना पड़ेगा और उस योनि के अनुसार अपने कर्मों का भोग भोगना होगा। इससे छुटकारा नहीं मिलेगा। कितना समय लगेगा– यह सोचकर ही आदमी काँपने लगता है पर फिर भी अज्ञानी बना घूमता है। जानबूझकर भी अनजान बना हुआ है।

मेरे गुरुदेव गत कई वर्षों से, इन पत्रों के द्वारा हम सबको चेता रहे हैं, सावधान कर रहे हैं कि अभी भी समय है, सँभल जाओ और हरिनाम की शरण लेकर अपने मनुष्य जीवन को सफल कर लो। हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जाप करो। कीर्तन करो।

देखो। याद रखो कि सद्गुरु भगवान् का पार्षद होता है। भगवान् अपने पार्षदों को मृत्युलोक के जीवों के उद्धार के लिये यहाँ भेजते हैं। जो शिष्य अपने गुरु के वचनों में अटूट श्रद्धा व विश्वास करके, उनके आदेश का पालन करता है उसे इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो जाती है। जो गुरु को एक साधारण पुरुष समझता है, वह अपराधी है। जो गुरु का विरोध करता है, वह भगवान् का शत्रु बन जाता है। भगवान् उसे घोर दुःख देने हेतु नरक में डाल देते हैं जहाँ उसे युगों–युगों तक नारकीय यातनायें भोगनी पड़ती हैं। शास्त्र कह रहा है–

"जो सठ गुरु सन ईर्षा करहिं।
रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
त्रिजुग जोनी पुनि धरहिं शरीरा।
अयुत जन्म तक पावहिं पीरा।।"

ऐसे जीव के दुःखों का कोई अंत नहीं। इसलिये सभी भक्तों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि मेरे श्रील गुरुदेव की आज्ञा का पालन करें और हर वक्त हरिनाम उच्चारण करते रहें। मेरे श्रीगुरुदेव सबका मंगल चाहते हैं। वे चाहते हैं कि सभी भक्त इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करके असहनीय दुःखों से छूट जायें। मेरे गुरुदेव की चाह में अपनी चाह मिलाने में ही हमारा सर्वोतम लाभ है। अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहो। देखो! मौत का कोई ठिकाना नहीं है। वह किसी भी समय आ सकती है। इसलिये बार–बार इस बात को दुहराया जाता है। मैं अपने पत्रों में कई बातों को बार–बार दुहराता हूँ ताकि हम सावधान हो जायें। हमारी आँखें खुल जायें। देखो! बड़े से बड़ा पाप भी हरिनाम करने से समूल नष्ट हो जायेगा पर यदि वैष्णव अपराध बन गया तो उसका भोग तो भोगना ही पड़ेगा।

मेरे गुरुदेव ने सार रूप में तीन युक्तियाँ बताई हैं जिनको अपना कर, हम निश्चित रूप से अपना कल्याण कर सकते हैं।

1. रात–दिन जो भी कर्म करो, उसे भगवान् का काम मानकर करो।

2. हर प्राणी में भगवान् का दर्शन करो। किसी को भी मत सताओ।

3. हर समय भगवान् का नाम स्मरण करते रहो।

यदि कोई इन तीनों बातों को अपने जीवन में धारण कर ले तो उसका आवागमन निश्चित रूप से समाप्त हो जायेगा ।

श्रीमद्भागवत पुराण में अजामिल के प्रसंग में कथा आती है कि अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को पुकारा था। मृत्यु के समय ''नारायण'' नाम मुख से निकल जाने के कारण उसे भगवान् के पार्षद लेने के लिये आये। चूँकि वह बड़ा अत्याचारी था, पापी था, सबको सताता था, सब गलत काम करता था, इसलिये उसे यमराज के दूत भी लेने आये। यमराज के दूत उसे दंड देना चाहते थे पर भगवान् के पार्षदों ने उन्हें भगा दिया। यमराज के दूतों ने जाकर अपने स्वामी से पूछा कि क्या आपके सिवा कोई और भी भगवान् है।

यमराज ने अपने दूतों को जो आज्ञा दी, वह हम सबको समझनी चाहिये।

यमराज ने कहा–''दूतो ! सुनो ! मैं तो क्या, सभी देवी–देवताओं से बड़े भगवान् हैं। वही सबके मालिक हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी भी उनके अधीन हैं। ये तीनों देवता उनकी कृपा से ही सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं। हर वक्त उसी के नाम का जाप करते रहते हैं। सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा सभी ग्रह इत्यादि उस भगवान् की शक्ति से ही चल रहे हैं और अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। उसी के डर से समुद्र अपनी मर्यादा में रहता है। मेरे में भी अपनी कोई शक्ति नहीं है। मेरा स्वामी भी

परमात्मा परमेश्वर है। वही कृष्ण है। वही राम है। वही नारायण है। जो भी उसका नाम लेता है, उसका बन जाता है, उस प्राणी को दंड देना मेरे अधिकार में नहीं है। मेरे दूतो! भगवान् के भक्तों की तरफ, आँख उठाकर भी मत देखना। उन्हें प्रणाम करना, नहीं तो मेरा अधिकार भी छिन सकता है। मैं भी उसी की कृपा की बाट जोहता रहता हूँ। हरपल उसी का नाम जप करता रहता हूँ। यदि कोई भी प्राणी, भले ही वह किसी भी जाति का हो, वर्ग का हो, किसी भी देश का हो, गिरते–पड़ते, सोते–जागते, खाते–पीते, चलते–फिरते उसके नामों का उच्चारण करता है तो वह घोर पापों से बच जाता है। यदि कोई किसी भी बहाने, दिखावे के लिये ही सही, मोहवश, भ्रमवश, जाने–अनजाने में भी उसका नाम ले लेता है, तो उसका भी उद्धार हो जाता है।''

देखो ! अजामिल का उदाहरण आपके सामने है। अजामिल ने अपने पुत्र नारायण को पुकारा था पर भगवान् ने अपने पार्षदों को भेजकर उसे बचा लिया। जिस प्रकार आग का स्वभाव है, वैसे ही हरिनाम का स्वभाव है। आग को जाने–अनजाने कैसे भी छू लो तो जला देगी। इसी प्रकार हरिनाम किसी भी बहाने मुख से उच्चारण हो गया, कान से सुन लिया तो कल्याण कर देगा। यह सत्य है। जो प्राणी इन्द्रियों का संयम करते हुये, मन से नाम लेता है, उसके तो भगवान् पीछे–पीछे डोलते हैं अर्थात् छाया की तरह उसके साथ रहते हैं।

भगवान् की कथाएँ अनंत हैं। साधारण जीव उन्हें समझ नहीं सकता। जिन पर भगवद्–कृपा होती है, वही इन लीलाओं को समझ सकता है।

ध्यान से सुनो! गोलोकधाम उसे ही मिलता है जिसको संबंध ज्ञान मिला होता है। जिसको संबंधज्ञान नहीं मिलता, उन्हें बैकुंठ धाम मिल जायेगा। गोलोकधाम भी बहुत हैं। वैकुण्ठधाम भी बहुत हैं। ऐसा शास्त्रों में वर्णन है। गोलोकधाम की प्राप्ति कैसे हो सकती है इसका वर्णन अगले पत्र में किया जायेगा।

– हरि बोल –

4

श्री श्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
14.07.2011

प्रेमास्पद भक्तप्रवरगण !

अनिरुद्धदास, नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा विरहाग्नि अवस्था चरम सीमा तक बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

गोलोक धाम किसको उपलब्ध होता है ?

भगवान् उसी जीव को गोलोक धाम ले जाते हैं जिसका पूर्ण रूप से मन से संसार का लगाव हट जाता है अर्थात् जिसकी संसार से आसक्ति मूल सहित नष्ट हो जाती है। ऐसे जीव पर भले ही कितने संकट आ जायें, कितनी मुश्किलों का पहाड़ टूट पड़े पर वह उनसे घबराता नहीं, अशांत नहीं होता, उसका मन चंचल नहीं होता क्योंकि वह जान लेता है कि भगवान् हर क्षण उसके साथ हैं। साक्षात् रूप में वह अपने स्वामी को अपने पास, अपने साथ महसूस करता है। वह जान लेता है कि यह संकट, यह दुःख यह तकलीफ मेरा क्या बिगाड़ेंगे ? मेरे भगवान् मेरे साथ हैं, वह स्वयं इनको संभालेंगे। मेरा इनसे कुछ लेना–देना नहीं है।

यही अवस्था है पूर्ण शरणागति की। जिस प्रकार यदि घर में कोई मुसीबत आती है या संकट आता है तो घर के मालिक (पिता) के पुत्र का मन अशांत नहीं होता। क्यों ? इसलिये कि वह अपने पिता पर पूर्ण रूप से आश्रित है, पूर्ण रूप से शरणागत है और वह सोचता है कि मेरा पिता इस संकट को स्वयं झेल लेगा। मैं इसकी चिंता क्यों करूँ ? ठीक उसी प्रकार जब भक्त साधक अपने स्वामी भगवान् के चरणों में पूर्ण रूप से शरणागत हो जाता है तो उसका भार भगवान् को उठाना पड़ता है। उसके संकट का भार भगवान् पर स्वतः ही बन जाता है।

जब महाभारत का युद्ध हो रहा था और पांडवों पर घोर संकट आया था तो वे बिल्कुल भी नहीं घबराये क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण पर पूर्ण रूप से आश्रित थे। उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति थी। इस महाभारत के युद्ध में पांडव पूरी तरह शांत रहे क्योंकि उन्हें मालूम था कि हम पर भगवान् श्रीकृष्ण का हस्तकमल है। वे ही हमारे रक्षक हैं और वे ही इस संकट को संभाल लेंगे। फिर हम चिंता क्यों करें ?

जब भक्त की इस प्रकार भगवान् में पूर्ण शरणागति हो जाती है तो भगवान् हर पल उसके अंग–संग रहते हैं। एक पल के लिए भी उससे दूर नहीं जाते। पर यह भाव, यह अवस्था करोड़ों मनुष्य में से किसी एक की होती है। यह बहुत उच्च स्थिति है जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जाती है। मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर जब हम हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करते हैं तो हमारा बड़ी तेज़ी से विकास होता है, हम बड़ी तेज़ी से अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने लगते हैं। हरिनाम में पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण विश्वास, पूर्ण शरणागति जब तक नहीं होगी तब तक यह अवस्था नहीं आयेगी।

'गोलोकेर प्रेमधन हरिनाम–संकीर्तन'

श्रील नरोत्तम ठाकुर कहते हैं कि गोलोकधाम का प्रेमधन, श्रीहरिनाम संकीर्तन है। हरिनाम–संकीर्तन के द्वारा ही पतितों, दीन–हीनों का उद्धार हुआ है। इस बात का प्रमाण हैं–जगाई और माधाई।

दीन हीन यत छिल, हरिनामे उद्धारिल
तार साक्षी जगाई–माधाई।

पर दुर्भागा मनुष्य, सुदुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर भी श्रीश्रीराधा कृष्णजी का भजन नहीं करता, इसलिये वह अशांत है, दिन–रात संसार रूपी विषयानल में उसका हृदय जल रहा है।

देखा जाता है कि थोड़ा सा संकट आने पर भक्त घबरा जाते हैं जिसका मलतब है कि उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब भक्त की भगवान् के चरणों में पूर्ण शरणागति बन जाती है तो उसमें विरह की अवस्था की स्थिति स्वतः ही आ जाती है। यह विरहावस्था भगवान् के लिये तड़प पैदा कर देती है। भक्त का मन भगवान् को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता है। वह दिन–रात उसके दर्शन के लिये आतुर हो जाता है। एक गोपी ''ॐ अलि'' (अनिरुद्ध प्रभु) की अवस्था देखिये, क्या कह रही है ?

रात–दिना याद में तड़पूं, मेरा जिया अकुलावे है।
कैसे धीर धरूं मैं सजनी, कलेजा क्षण–क्षण खावे है ।।
ये चाँदवा बैरी भया री आली, ये अग्नि बरसावे है।
भूख न लागे, प्यास न लागे, तन मेरा थर्रावे है,
माधव 'ॐ अलि' है तेरी, तोहे शर्म न आवे है।

जब भक्त की ऐसी अवस्था हो जाती है तो पूर्ण रूप से उसका मन संसार से हट जाता है। वह दिन–रात भगवान् के विरह में बेचैन रहता है, तड़पता है। उसके लिये खाना–पीना, सोना, जागना, चलना–फिरना सब भार बन जाता है। वह पागलों की तरह हँसने लगता है, कभी रोता है। ऐसी गहरी स्थिति में पहुँच कर, वह अपने शरीर की सुध–बुध भूल जाता है। लोग उसे पागल समझते हैं पर उसकी वास्तविक स्थिति को कोई नहीं समझता। कोई अनुभवी संत ही उसे पहचान सकता है।

जिस भक्त की स्थिति ऐसी बन जाती है, भगवान् उसे अपना पारिवारिक संबंध दे देते हैं। जिस भाव से वह भगवान् को भजता है, याद करता है, उसी भाव के अनुसार भगवान् उसे संबंध–ज्ञान दे देते हैं, क्योंकि भगवान् तो अन्तर्यामी है, सबके हृदय की बात जानते हैं । अतः उसके मन के अनुरूप ही उसे पुत्र, भाई, सखा, मंजरी, इत्यादि का संबध प्रदान कर देते हैं, उसके हृदय में प्रेरित कर देते है। संबंध–ज्ञान जब तक नहीं होगा, तब तक

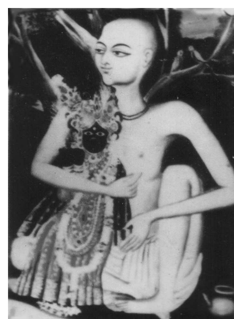
श्रीकृष्ण–प्रेम की प्राप्ति नहीं होगी। संबंध–ज्ञान होने पर ही विरह उदय होता है। संबंध ज्ञान होने पर ही भगवद्–दर्शन होता है।

मीरा जी भगवान् को पति रूप में देखती हैं। मीरा जी कहती हैं–



"जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।।"

जब हमें संबंध ज्ञान मिल जाता है तो किसी से क्या लेना–देना। कभी–कभी भक्त प्रेम के वशीभूत होकर भगवान् से शिकायत भी करता है, उसको निहोरा भी मारता है, ताने भी देता है। नरसी भक्त जी ने भात भरने पर भगवान् को ताने मारे हैं। स्वामी श्रीहरिदास जी का मंजरी भाव था और उन्होंने श्रीबाँकेबिहारीजी को प्रकट कर दिया। इसी प्रकार हर भक्त का अपना–अपना भाव होता है जिसके अनुसार ही वह भगवान् से अपने हृदय की बात करता है। अब मेरा शिशु भाव है। मैं भगवान् का एक छोटा सा शिशु हूँ। उनकी गोद में चढ़ जाता हूँ। कभी उन्हें परेशान करता हूँ। कभी रोने लगता हूँ तो वे मुझे चुप कराते हैं। रुक्मिणी की गोद में बिठा देते हैं। मुझे दुलारते, पुचकारते और प्यार करते हैं। कई बार उन्हें मेरे गुस्से को भी सहन करना पड़ता है । मेरी ज़िद्द भी पूरी करनी पड़ती है क्योंकि मैं उनका शिशु हूँ। उन्हें मेरी बात सुननी ही पड़ेगी।



वास्तव में भाव की गति विचित्र है, इसे समझना असंभव है। जब तक संबंध ज्ञान नहीं होगा, गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होगी। संबंध–ज्ञान होने के बाद ही गोलोकधाम की प्राप्ति हो सकती है। जिन भक्तों का कोई संबंध नहीं बना, भाव नहीं बना और साधारण

रूप में, मन से वह भगवान् से जुड़े हैं, वे केवल वैकुण्ठ में ही जाते हैं। जहाँ से अन्तर्यामी भगवान् उसके अन्तःकरण में थोड़ा सा संबंध का भाव देकर, इस धरातल पर किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं। फिर उसी भाव में भक्ति करके वह संबंध–ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। संबंध–ज्ञान होने के बाद उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो जाता है।

उपरोक्त जो भी बातें कही गई हैं, यह सब बातें मेरे श्रील गुरुदेव सभी भक्तों को समझा रहे हैं। इन बातों को समझकर भक्तिमार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार भक्ति में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर होगा।

देखो! गोलोकधाम भी एक नहीं है। बहुत से गोलोकधाम हैं। जिस भक्त का जैसा भाव होता है, उसे उसी भाव वाले गोलोकधाम में भेजा जाता है। इसी प्रकार वैकुण्ठ धाम भी अनेक हैं। वैकुण्ठ धाम तो भगवान् की कृपा मिलने पर ही उपलब्ध हो जाता है पर जब तक संसार की आसक्ति बनी रहेगी, बार–बार जन्म लेना पड़ेगा। भगवान् सबके हृदय की बात जानते हैं। साधक के अन्तः करण में जो भाव होता है, वह बाहर भी प्रकट हो जाता है। जिस भक्त का मन संसार से पूर्ण रूप से नहीं हटा, उसे भगवान् बार–बार अपने भक्तों के घरों में जन्म देते रहते हैं ताकि धीरे–धीरे भक्ति करके, संबंध–ज्ञान होने पर, उसे गोलोकधाम उपलब्ध हो सके। ऐसे भक्त को गोलोकधाम मिलने में ज्यादा समय लगता है।

जिस प्रकार जब कोई बच्चा स्कूल में जाता है तो हर साल अगली कक्षा में जाता रहता है। प्रथम, दूसरी, तीसरी, चौथी से लेकर आठवीं, दसवीं फिर कॉलेज, फिर यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी करके उसे नौकरी मिल जाती है। पर पढ़ाई किए बिना एक अच्छी नौकरी उसे नहीं मिलेगी।

अब संबंध–ज्ञान उदय कैसे होगा? यह बात भी समझ लो। संबंध–ज्ञान उदय होगा केवल तीन लाख हरिनाम नित्य प्रति करने से तथा कान से सुनने से अर्थात् एकाग्रता होने पर। जब तक मन

संसार की ओर भागता रहेगा, हरिनाम में एकाग्रता नहीं बनेगी। भजन होगा पर अनमने मन से। अधिकतर भक्तों को नामाभास ही होता है जिसके कारण वे विरहावस्था से बहुत दूर होते हैं। संबंध–ज्ञान हुये बिना विरह उदय नहीं होगा। विरह उदय हुये बिना पूर्ण शरणागति का भाव नहीं बनेगा और पूर्ण शरणागति बिना गोलोकधाम की प्राप्ति नहीं होगी। यह स्थिति बहुत ऊँची है, कोई विरला ही इसे उपलब्ध कर पाता है।

जिस प्रकार गोलोकधाम को कोई विरला ही प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी किसी विरले को ही प्राप्त होता है जिसका कारण है– नामापराध। नामापराध होने से भक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और बार–बार नामापराध होने से उसका किया–कराया सब व्यर्थ हो जाता है। कई लोग मुझे आकर अक्सर पूछते हैं कि हम हरिनाम करते हैं और भगवान् के शरणागत हैं पर हमें विरह नहीं होता। हमारी भक्ति बढ़ नहीं रही है। उन सभी भक्तों के लिये मेरे गुरुदेव ने एक नहीं, बहुत बार बोला है कि यह सच्ची–भक्ति नहीं है। ये सभी ऊपर से कहते हैं कि हम हरिनाम करते हैं, क्या वे पूरी तरह से भगवान् पर निर्भर हैं ? नहीं। वास्तव में, कोई भी भगवान् को नहीं चाहता। सभी अपने परिवार की खुशहाली चाहते हैं। भगवान् को तो कोई विरला ही चाहता है। मैं कई बार साधकों से पूछता हूँ कि इस इतवार को मैंने जो बोला है, उसे उन्होंने ध्यान से सुना है या नहीं। यदि सुना है तो क्या वे बता सकते हैं कि मैंने क्या बोला था ? जवाब मिलता है – हमें तो कुछ याद नहीं। जब तक आप मेरे गुरुदेव की वाणी को कान से नहीं सुनोगे, एकाग्रता से उस पर ध्यान नहीं दोगे, उसके अनुसार नहीं चलोगे तो अपराध होगा ही। फिर कैसे हरिनाम में रुचि होगी ? कैसे विरह उदय होगा ? कैसे भगवद् प्राप्ति होगी ? ऐसे साधक को सपने में भी भगवद्–प्राप्ति नहीं हो सकती। वह भक्ति से अभी कोसों दूर है और उसे निष्ठापूर्वक, श्रद्धा व विश्वास के साथ, कम से कम एक लाख हरिनाम, उच्चारण के साथ, कान से सुनकर करना होगा।

मेरे श्रीगुरुदेव एक उदाहरण देकर सभी भक्तों को समझा रहे हैं कि जब तक संसार में आसक्ति है, विरह उदय नहीं होगा।

एक पतिव्रता स्त्री का पति परदेश में रहता है और वह दिन–रात उसके लिए तड़पती रहती है पर समाज के भय से, शर्म के कारण अपना दुःख किसी से कह नहीं सकती। अंदर ही अंदर घुटती रहती है, रोती रहती है।

एक दस महीने के बच्चे की माँ परलोक सिधार गई है। वह शिशु माँ की गोद के लिए बेचैन है और स्तनपान के लिये छटपटाता है। वह न खिलौनों से खेलता है, न कुछ खाता है। बस रोता ही रहता है। सभी उसे खिलाने की कोशिश करते हैं, चुप कराते हैं पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उसे तो अपनी माँ चाहिये। अपनी माँ की गोद चाहिये। माँ की गोद के सिवाय कोई भी चीज़ उसे वह खुशी नहीं दे सकती। यही है पूर्ण शरणागति का भाव। यदि भक्त का भाव उस पतिव्रता स्त्री जैसा बन जाये, उस शिशु जैसा बन जाये तभी समझना चाहिये कि वह भगवान् के शरणागत है। मेरे गुरुदेव ने सबको समझाने के लिये ही यह उदाहरण दिया है। अब जो भी साधक या भक्त कर रहे हैं, वह नाम–स्मरण नहीं है। केवल नामाभास है।

मेरे गुरुदेव सब कुछ स्पष्ट कह देते हैं। साधकगण ! भक्तजन ! नाराज़ न हों वरना घोर अपराधी बन जायेंगे। मेरे गुरुदेव तो सभी का कल्याण चाहते हैं। वह चाहते हैं कि सभी इस जन्म–मरण के चक्कर से छूट जायें। इसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सभी के उद्धार के लिये कितने पत्र लिखवा चुके हैं। रविवार को आयोजन भी इस लक्ष्य को लेकर ही शुरु किया गया है पर स्थिति वहीं की वहीं है। यह सब इसलिये हो रहा है कि भक्तजनों की पूर्ण शरणागति नहीं है। उनका मन तो संसार में फंसा है। मन तो एक ही है उसे चाहें भगवान् को दे दो या संसार को। भगवान् को मन देने से संसार अपने आप ठीक चलने लगेगा। फिर भगवान् की जिम्मेदारी हो जायेगी हमारे परिवार को चलाने की, संसार को

चलाने की, पर हमें विश्वास ही नहीं है, न अपने–आप पर, न भगवान पर। एक बार अपनी जीवन की नैया की बागडोर भगवान के हाथ में सौंप कर तो देखो ! कहने से नहीं, करने से होगा। इसलिये मैं बार–बार कहता हूँ कि प्रतिदिन कम से कम एक लाख हरिनाम ज़रूर करो। उच्चारण करो तथा कान से सुनो पर तीन साल हो गये मुझे बोलते हुये। मैं तो अपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ और हर रविवार को उनकी वाणी सबको सुनाता हूँ पर इन श्रोताओं में से कोई एक भी ऐसा नहीं जिसे विरह उदय हुआ हो। इसका कारण साफ है – संसार में आसक्ति। संसार में मन का फँसना।

देखो! श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं –

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(गीता 18.65)

"हे अर्जुन! तू मुझ में मन वाला हो। मेरा भक्त बन। मेरा पूजन करने वाला हो और मुझे प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ , क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है।"

देखो ! भगवान् ने अर्जुन को कहा है कि तेरा यह मन मेरा है जो तूने अपना अधिकार समझ कर अपने काबू में कर रखा है। इस मन को माया का दास बना रखा है, इसी कारण तू दुःखी हो रहा है। हे अर्जुन! किसी दूसरे की वस्तु पर अधिकार जमाकर कोई सुखी नहीं रह सकता। यह अटल सिद्धांत है। अतः तू इस मन को, जो मेरा है, मुझे सौंप दे तो सुखी हो जायेगा। जब तू यह मन मुझे दे देगा तो दसों इन्द्रियाँ भी इस मन के साथ हो जायेंगी। जब यह मेरी वस्तु तू मुझे सौंप देगा तो अपने–आप ही तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जायेगा और तू परम सुखी हो जायेगा। फिर तुझे शरण होने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा। जब तुझ में शरणागति

का भाव उदय हो जायेगा तो तेरे जीवन का सारा भार मैं अपने ऊपर ले लूँगा और तू मुझ को ही प्राप्त हो जायेगा। फिर तो तेरे सारे दुःखों का बखेड़ा मूल सहित समाप्त हो जायेगा। बस, एक बार अपना मन मुझे सौंप दे, फिर देख मैं तेरे लिये क्या करता हूँ। अभी तक तूने इसे अपने पास रखा हुआ है, इसलिये दुःखी है। इसलिये मैं कहता हूँ कि यदि तू शाश्वत सुख चाहता है, मेरे पास मेरे धाम में आना चाहता है तो इन चारों बातों को कर। अपना मन मुझे सौंप दे। मेरा भक्त बन जा। मेरी पूजा कर और मुझे प्रणाम कर।

मन भगवान् को सौंपने का अर्थ है–हर समय हरिनाम करते रहना। भगवद्–नाम करते रहना और कान से श्रवण करते रहना ही मन का भगवान् को सौंपना है। मेरे गुरुदेव ने स्पष्ट कहा है–

"While chanting harinam sweetly, listen by ears."

जब हम उच्चारणपूर्वक हरिनाम करेंगे और कान से श्रवण करेंगे तो स्वतः ही भगवान् के लिये तड़पन पैदा होने लगेगी। उनके दर्शन के लिये छटपटाहट होने लगेगी, मन अकुलाने लगेगा, शरीर पुलकित होने लगेगा और अश्रुपात होने लग जायेगा। धीरे–धीरे मन संसार से हटता जायेगा और भगवान् के नाम स्मरण में रुचि बढ़ती जायेगी। इस बात को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

मेरे श्रीगुरुदेव बता रहे हैं कि जब किसी कन्या का विवाह किसी लड़के के साथ माँ–बाप कर देते हैं तो उसे अपने माँ–बाप का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है। यदि वह पूर्ण समर्पण कर, पूर्ण शरणागत होकर, उस पति की सेवा करती है तो उसकी सारी ज़िम्मेदारी उसका पति अपने ऊपर ले लेता है और वह अपने पति के चरणों में रहकर, अपना पूरा जीवन सुख से बिताती है।

देखो! इस बात को ध्यान से समझो। जब तक कन्या रूपी यह जीवात्मा, अपने पति रूपी परमात्मा के चरणों में पूर्ण रूप से

समर्पण नहीं करेगी, पूर्ण रूप से उसके शरणागत नहीं होगी, तब तक इसे परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, भगवद्धाम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अपने पति रूपी परमात्मा के धाम में निवास करने के लिये उसे अपने माँ–बाप (मायके) के घर को छोड़ना ही पड़ेगा, उसका त्याग करना ही पड़ेगा। यह परमावश्यक है। माँ–बाप का घर छोड़े बिना, माँ–बाप का त्याग किये बिना, उसे पति का धाम उपलब्ध नहीं हो सकता।

यही बात विचारने की है। यही है संबंध–ज्ञान का महत्वशाली चिन्मय विचार। भगवद् कृपा बिना यह भी समझ में नहीं आ सकता। जिस पर गुरु–वैष्णव की कृपा होगी, वही इस तथ्य को समझ सकता है।

वैदिक परंपरा के अनुसार, माँ–बाप ही अपनी कन्या का वर ढूँढ़ते हैं और पूरी सामाजिक परंपराओं के साथ उसकी शादी एक योग्य, बुद्धिमान, विद्वान एवं सुरक्षित लड़के से करते हैं जो जीवन भर उनकी कन्या की ज़िम्मेदारी उठा सके। बड़ी सोच–विचार के बाद, माँ–बाप अपनी बेटी का संबंध, उसके पति (संबंध–ज्ञान) से करते हैं। जो पहले एक पुत्री थी, अब वह एक पत्नी बनेगी और माँ–बाप उसे यह संबंध–ज्ञान देंगे कि आज के बाद अमुक पुरुष तेरा पति होगा।

इसी प्रकार श्रील गुरुदेव अपने शिष्य का संबंध परमात्मा से जोड़ते हैं। वह जीवात्मा जो पहले पुत्र, भाई, पति या पिता था अब श्रीगुरुदेव की कृपा से एक शिष्य बन जाता है और गुरुदेव की कृपा से, उनके आदेश का पालन करने, उनके मार्गदर्शन में हरिनाम करने से, उसे वह संबंध–ज्ञान प्राप्त हो जाता है जो उसे गोलोकधाम उपलब्ध करा देता है। नामाभास से वैकुण्ठ मिल जायेगा। वैकुण्ठ में दुःख की छाया भी नहीं है। वहाँ पर परमानंद का स्रोत बहता रहता है। स्वतः ही भगवान् का प्रेम मिलता रहता है पर जब तक संबंध–ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की उपलब्धि नहीं होगी। इस पूरे प्रसंग का सार यही है कि केवल

हरिनाम के द्वारा, किसी नामनिष्ठ के आनुगत्य में रहकर, हरिनाम करके, नामापराध से बचते हुये, श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, उच्चारणपूर्वक, हरे कृष्ण महामंत्रः–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करके ही गोलोक धाम में जाया जा सकता है।

– हरि बोल –



5

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड
20.07.2011

नामाभास से वैकुण्ठ प्राप्ति

जिस प्रकार यदि कोई जाने–अनजाने कैसे भी अमृत पी लेवे तो वह उसको अमर बना देता है। यदि कोई जाने–अनजाने में ज़हर पी लेता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। अग्नि को छू ले तो वह जला देती है उसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव है कि जिस भी जिह्वा या मुखारविंद से हरिनाम का उच्चारण हो जायेगा, भले ही वह भाव से हो या कुभाव से, अपना प्रभाव ज़रूर दिखायेगा। जैसे बिच्छू का स्वभाव है कि जिस जगह पर वह स्पर्श करेगा, वहाँ अपना ज़हरीला डंक मार कर ही रहेगा और यदि कोई सांप को छेड़ेगा तो वह अपने ज़हरीले दाँतो से उसे डस लेगा। इसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव है। हरिनाम कैसे भी लिया जाये, सबका मंगल करता है और हरिनाम करने वाले का उद्धार होना निश्चित है।

शास्त्र उद्घोष कर रहा है, ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें :–

भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

भले ही भाव से या बिना भाव के हरिनाम लिया जाये, भगवद्–नाम जीव का दसों दिशाओं में मंगल विधान करेगा। ऐसा हरिनाम का स्वभाव है।

अजामिल का उदाहरण प्रत्यक्ष है। उसने अपने पुत्र नारायण (भगवान्) का नाम अपने मुख से उच्चारण किया तो उसके वैकुण्ठ जाने की युक्ति बन गई। उसने भगवान् को नहीं बुलाया था। उसने तो अपने पुत्र को बुलाया था।

अजामिल के मुख से भगवान् का नारायण नाम क्यों निकला ? उसका भी कारण था। एक दिन अजामिल के घर पर कुछ साधु

बिना बुलाये पहुँच गये और न चाहते हुये भी अजामिल से उनकी सेवा बन गई। देखो! जिस घर में संतो के, वैष्णवों के चरण पड़ जाते हैं, वह वैकुण्ठ बन जाता है। सभी खुशियाँ वहाँ प्रगट हो जाया करती हैं। यह साधुओं की सेवा का ही फल था कि वह अपने मुख से नारायण नाम का उच्चारण कर सका।

श्रीमद्भागवत पुराण में जय–विजय के प्रसंग में वर्णन मिलता है कि जब उन्होंने सनकादि मुनियों को वैकुण्ठ की ड्योढ़ी पर ही रोक दिया तब सनकादि ऋषियों ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम इस वैकुण्ठ में रहने योग्य नहीं हो। जाओ! तीन जन्म तक राक्षस योनि में रहो।



सनकादि का शाप सुनकर भगवान् नारायण सनकादि ऋषियों के पास आये और पूछने लगे कि क्या बात है जो आप इतने गुस्से में हो?

भगवान् की बात सुनकर जय–विजय बोले कि हमने इनके चरणों में अपराध किया है अतः हमें इनसे शाप मिला है। यह हमारा दुर्भाग्य है।

सनकादि ऋषियों ने कहा कि जय–विजय ने हमें आपके पास आने से रोका तो आपसे मिलने में बाधा डालने के कारण, हमने इन्हें तीन जन्म तक राक्षस होने का शाप दिया है। यदि आप चाहें तो हम यह शाप वापस ले लेते हैं।

भगवान् नारायण ने कहा कि यह सब हमारी इच्छा से ही हुआ है, आप चिंता न करें। मैंने ही जय–विजय को प्रेरणा करके आपका रास्ता रुकवाया और आपको प्रेरणा करके इन्हें शाप दिला दिया। इसमें किसी का भी कोई दोष नहीं है। देखो! जब मेरी कोई लीला करने की इच्छा होती है तो मैं संतों के हृदय में प्रेरणा करके किसी को शाप या वरदान दिला देता हूँ।

यही बात अजामिल के प्रसंग में आती है। साधुओं ने उसकी सेवा से प्रसन्न होकर कहा कि अपने होने वाले बेटे का नाम नारायण रखना। अजामिल की सेवा के ऋण से उऋण होने के लिये ही संतों ने नारायण नाम उच्चारण करवाया था। यदि वह अपने बेटे का नाम नारायण नहीं रखता तो वह नारायण नाम का उच्चारण भी नहीं कर पाता। पुत्र का नाम नारायण रखने से वह उसे दिन भर नारायण–नारायण कहकर बुलाता था और उसके पाप समाप्त होते गये। बार–बार नारायण नाम का उच्चारण करने से उसका हृदय निर्मल हो गया और अंत में जब यमराज के दूत उसे लेने आये तो उन्हें देखकर वह डर गया। उस डर से, उसने अपने बेटे नारायण को पुकारा। अंत समय में भगवान् का नाम उसके मुख से निकल गया। तभी भगवान् नारायण के पार्षद वहाँ पहुँच गये और उन्होंने यमराज के दूतों को वहाँ से भगा दिया। एक बार के नाम–उच्चारण ने उसकी मृत्यु बदल दी। कहाँ यमदूतों का फांसी का फंदा और कहाँ वैकुण्ठ जाने के लिए विमान ! पर यह सब अचानक नहीं हुआ ! उसने साधुओं की सेवा की थी। उनकी आज्ञा का पालन करके अपने बेटे का नाम नारायण रखा था।

साधुओं की सेवा का यह फल था। भगवान् अपने भक्तों को बहुत प्यार करते हैं। उनकी बात को कभी नहीं टालते। उनका प्रिय संत, उनका प्यारा भक्त जो कुछ अपने मुख से बोल देता है, भगवान् उसकी बात को सत्य कर दिखाते हैं। यह भगवान् का स्वभाव है कि वह थोड़े को भी बहुत बड़ा मानते हैं। पर अभागा जीव फिर भी उनकी शरण में नहीं जाता।

मेरे श्रील गुरुदेव ने सभी साधकों/भक्तों पर कृपा करके यह रविवार के सत्संग का आयोजन शुरु किया है और कहा है कि जो भी इस सत्संग में 80 प्रतिशत उपस्थिति करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति अवश्य होगी। भले ही उसे कुछ समझ आये या नहीं, उसका उपस्थित रहना ही बहुत बड़ी बात है। इसी से उसका

मंगल हो जायेगा। गर्मियों में इस रविवारीय सत्संग का समय 7 बजे होता है पर फिर भी साधक/भक्त समय पर नहीं पहुँचते। इसलिये मेरे गुरुदेव ने उद्‌घोष किया है कि जो साधक समय पर नहीं आयेगा या सात बजे के बाद आयेगा, उसका नाम उपस्थिति पंजिका में नहीं लिखा जायेगा। उसकी उपस्थिति नहीं मानी जायेगी। जो साधक एक सप्ताह में डेढ़ घंटे का समय भगवान् के लिये नहीं निकाल सकता वह भगवान् को क्या चाहेगा ? वह तो केवल दिखावा करता है। भगवान् तो उससे कोसों दूर हैं। उसकी हरिनाम में रुचि नहीं हो सकती क्योंकि वह तो हरिनाम के बदले अपने परिवार की खुशहाली चाहता है। वह भगवान् को नहीं चाहता।

हर रविवार के सत्संग के बाद, मैं कभी–कभी उपस्थित साधकों से पूछता हूँ कि आज मैंने क्या बोला था तो जवाब मिलता है, मुझे कुछ भी याद नहीं है। मतलब साफ है कि वह बेमन से आता है। यदि वह भगवान् को चाहेगा तो समय से सत्संग में आवेगा। एकाग्रचित होकर सत्संग सुनेगा तो कुछ न कुछ उसे याद रहेगा न। पर बेमन से किया हुआ काम बिगड़ जाता है।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि ऐसा साधक कई बार अनिरुद्ध प्रभु की बातें सुनकर नाराज़ भी हो जाता है पर इससे अनिरुद्ध प्रभु का तो कुछ भी बिगड़ेगा नहीं। हाँ, उस साधक का अपराध ज़रूर बन जाएगा और वह इस आयोजन में आना बंद कर देगा। इससे बड़ा नुकसान और क्या हो सकता है ! मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि मैं तो ठाकुर जी के आदेश का पालन कर रहा हूँ और साधकगण को इसकी कोई परवाह नहीं और वे मनुष्य जन्म को बेकार में खो रहे हैं।

कभी–कभी मेरे गुरुदेव मीठी दवाई का सेवन कराते हैं तो कभी कड़वी दवाई भी देते हैं ताकि विषयों का विष समाप्त हो जावे। जो साधक समय का पाबंद नहीं है, उसका नाम रविवार के सत्संग की लिस्ट में नहीं लिखना होगा – ऐसा मेरे गुरुदेव ने

बोला है। जो साधक जानबूझकर लेट आता है, वह जघन्य अपराध कर रहा है। जिन साधकों ने अपराध किया है, वे जानते हैं और उनका आना ही बंद हो गया।

यदि आदमी अपने दफ्तर समय से जा सकता है, डाक्टर के पास समय पर पहुँच सकता है, दुकान समय पर खोल सकता है तो क्या सप्ताह में एक दिन, केवल एक बार सत्संग में समय पर नहीं आ सकता ? क्या पूरे सप्ताह में डेढ़ घंटा नहीं निकाल सकता ? जिस सत्संग में जाने से आत्मा का पोषण होता है वहाँ पर तो मन जाता नहीं और जहाँ केवल पेट भरने का साधन है, वहाँ मन लग जाता है। कितनी विडम्बना है ! कितनी मूर्खता है ! शरीर का साधन तो अनित्य है। शरीर आज है, कल नहीं रहेगा पर आत्मा नित्य है, शाश्वत है। शरीर दुःखों का घर है और आत्मा ही सुख देने वाला है। देखो! ऐसा शुद्ध सत्संग फिर कभी उपलब्ध नहीं होगा। इतना सरल उपाय मिलने पर भी, इतनी सुगमता से भगवान् से मिलने का शुभ अवसर मिलने पर भी, वह नरक में जाना चाहता है। इसलिये तो शास्त्र कह रहा है कि करोड़ों में से कोई विरला ही इस मार्ग पर चलता है अन्यथा सभी माया के चक्कर में फँसे हुये हैं।

देखो! नामापराध बहुत खतरनाक है। नामापराधी एक लाख हरिनाम कर ही नहीं सकता, स्वयं नाम ही उससे रुष्ट हो जाता है। नाम स्वयं आराध्य अथवा साध्य भी है तथा साधन भी है।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि इन सभी साधकों को दुःख से छुड़ाने के लिये ही मैंने इस रविवार के आयोजन को शुरु किया है पर कोई भी इसे गंभीरता से नहीं ले रहा। ऐसे साधकों का इस जन्म में उद्धार होना बहुत मुश्किल है। मेरे गुरुदेव सबके मन की बात जानते हैं। सबके हृदय के भाव समझते हैं। उनसे कुछ भी छुपा हुआ नहीं है। आज मेरे गुरुदेव को इस बात का बहुत दुःख हुआ है कि बार–बार कहने पर, बार–बार समझाने पर भी साधकगण बेपरवाह बने हुये हैं। इसलिये आज कड़वी दवाई सभी साधकों को

खिला रहे हैं ताकि वे अभी भी सँभल जायें अन्यथा पछताने के सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

कई साधक किसी के बहकावे में आकर अनुष्ठान या पुरश्चरण करवाना चाहते हैं, उनको गुरुदेव का आदेश है कि वे इन चक्करों में बिल्कुल न पड़ें। यदि करना ही है तो ज्यादा से ज्यादा हरिनाम करो। जो लोग अनुष्ठान या पुरश्चरण करने लगे थे, वे भजन से गिर गये। पुरश्चरण में तो काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये। इसलिये गुरुदेव ने केवल हरिनाम करने के लिये ही कहा है। हरिनाम से ही सब कुछ प्राप्त हो जायेगा। **हरिनाम चिंतामणि है। हरिनाम करते समय जैसा चिंतन करोगे, वही फल अवश्य मिलेगा।**

हरिनाम के प्रभाव का एक प्रत्यक्ष उदाहरण बता रहा हूँ। चंडीगढ़ में अमुक नाम से एक सज्जन हैं। बैंक मैनेजर थे और रिटायर होने के बाद बीमार रहने लगे थे। पूरे शरीर में दर्द रहता था। हृदय के वाल्व (volves) 90 प्रतिशत खराब हो चुके थे। इलाज के लिये न तो पैसे थे और न ही ठीक होने की गारंटी थी। उन महाशय ने मुझसे संपर्क किया तो मैंने कहा कि कान से सुनकर हरिनाम की 32 माला (50 हज़ार हरिनाम) कम से कम हर रोज़ करना शुरु कर दो। आपरेशन की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। वे मुझ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। उन्होंने मेरी बात मान ली और कान से सुनकर हरिनाम की 64 माला करने लगे। मरता क्या न करता ! और कोई उपाय भी तो नहीं था। अब वे महाशय बिल्कुल ठीक हैं। उनका न कोई आपरेशन हुआ और न कोई पैसा खर्च हुआ। न कोई दवाई ली। कान से सुनकर हरिनाम वे करते रहे और बिल्कुल ठीक हो गये। अब वे प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम करते हैं। चंडीगढ़ के भक्त उन्हें जानते हैं। यहाँ नाम देना ठीक नहीं। आज भी वे हर बात में मेरी सलाह लेते हैं।

ऐसे एक नहीं, बहुत से उदाहरण हैं। हरिनाम करने से कितनों का जीवन बदल गया। कितने बेरोज़गारों को नौकरी मिल गई।

कितनों के घर बस गये। मतलब साफ है–मुझ पर विश्वास और मेरी बातों में श्रद्धा। यहाँ सबका वर्णन कठिन है। कभी समय मिला तो वर्णन किया जा सकता है।

देखो ! हरिनाम समय का पाबंद नहीं है। जब चाहो, जिस वक्त भी चाहो, किसी भी अवस्था में हरिनाम कर सकते हो। मनुष्य जन्म बहुत मुश्किल से मिला है। इसलिये एक बात को बार–बार दुहराना पड़ जाता है ताकि बात हमारे मन में बैठ जाये। कभी साधक कहा करते हैं कि आप तो वही बातें बार–बार दुहराते हैं। मैं पूछता हूँ इतनी बार सुनकर भी, इतनी बार दुहराये जाने पर भी आप पर कोई असर नहीं पड़ा। वही ढाक के तीन पात। मेरे गुरुदेव ने बार–बार इन बातों को दोहराया है। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमान आचार्य श्रील भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज भी बार–बार इन बातों को दुहराते हैं। मैं भी बार–बार यही कहता हूँ कि–

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

भगवान् को जितना अपना भक्त प्रिय होता है, उसका चरित्र भी उतना ही प्रिय होता है। अपने भक्तों का जीवन–चरित्र सुनने में भगवान् को बहुत आनंद आता है। साधकों को शिक्षा देने के लिये ही महाप्रभु ने गदाधर जी से सौ से भी ज्यादा बार भक्त प्रह्लाद तथा ध्रुव जी का चरित्र सुना था। भक्त का चरित्र जो भगवान् को सुनाता है, उसे भगवान् हृदय से लगाये रखते हैं। भगवान् तो केवलमात्र भक्तों की प्रसन्नता के लिये इस धरातल पर आकर लीला करते हैं अन्यथा उनके आने का कोई दूसरा कारण नहीं है।

साधकगणो ! एक महत्वपूर्ण बात मेरे गुरुदेव बता रहे हैं, ध्यान देकर सुनो। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि हर रोज़ सोते समय तथा प्रातः जागते समय जैसा मैं बोल रहा हूं, वैसे बोला करो–

"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और मेरे तन से अंतिम सांस निकले तो अपने नाम का उच्चारण मेरे मुख से करवा देना।"

मेरे गुरुदेव के इस बोल को बोलने से भगवान् पर ऋण चढ़ जायेगा और जो नित्यप्रति बोलेगा उससे भगवान् अंतिम सांस में अपना नाम उच्चारण करवा देंगे। मेरे गुरुदेव के वचन को सत्य करने हेतु भगवान् को अपना नाम उच्चारण कराना पड़ेगा। पर जो मेरे गुरुदेव के वचनों पर विश्वास नहीं करेगा, उसकी भगवान् कोई गारंटी नहीं लेंगे।

मेरे गुरुदेव फिर बता रहे हैं कि भगवान् को अपना भक्त बहुत प्यारा होता है। यदि कोई भगवान् के प्यारे पुत्र को गोद में लेकर प्यार करे अर्थात् उसकी सेवा–सुश्रुषा करे तो भगवान् की दृष्टि उस पर अपने आप ही चली जाती है और भगवान् उससे बहुत प्रसन्न होते हैं। उस पर भगवद्–कृपा बरसने लगती है।

इस लेख का सार यही है कि यदि आप अपना मंगल चाहते हो, अपना उज्ज्वल भविष्य चाहते हो, सदा–सदा के लिये जन्म–मरण के इस चक्कर से छूटना चाहते हो, इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति करना चाहते हो तो हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।

की नित्यप्रति चौंसठ माला अवश्य करो व नामापराध से बचो।

– हरि बोल –

विषयी जनों के धन और अन्न दोनों से मन मलिन होता है। मन मलिन होने से श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं होता।

6

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
25.07.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार प्रार्थना।

महापापी अजामिल का अंतिम सांस में नारायण नाम क्यों उच्चारण हुआ ?

मेरे गुरुदेव इसका कारण बता रहे हैं। साधकगण ध्यान देकर सुनें। अजामिल बचपन से ही भगवत्–भक्ति में संलग्न था। जवानी में भी वह भगवान् की पूजा–अर्चना बड़े प्रेम के साथ करता था। भगवान् की पूजा के लिये जंगल से कमल–फूल लाया करता था। एक दिन जंगल में उसने किसी कामी पुरुष को देख लिया और माया परवश होकर, वह भी उस स्त्री पर आसक्त हो गया जिसके साथ वह कामी पुरुष बुरी हरकत कर रहा था।

अजामिल के घर पर उसकी सती स्त्री उसके पास रहती थी। उसने अपनी पत्नी को छोड़ दिया और अपने माता–पिता को भी तिलांजलि दे दी और उस कुलटा स्त्री (वेश्या) को घर में रख लिया, भगवान् की माया ऐसी प्रबल है कि बड़े–बड़े महान् आदमियों को भी अपने पैरों के नीचे कुचल देती है। भगवद्–परायण होने पर भी अजामिल अपने आप को रोक नहीं सका और गलत मार्ग में फँस गया।

अंत समय जब वह प्राण त्यागने लगा तो बेटे के बहाने उसके मुख से भगवत् नाम–'नारायण' निकल गया।

एक कारण तो यह था कि भक्ति कभी भी मरती नहीं है। भक्ति किसी कारण से दब जाती है। इस भक्ति के कारण ही

संतगण इसके घर पर रात भर विश्राम करने को चले गये। भगवान् अपने भक्त का एहसान कभी नहीं भूलते। भगवद्–प्रेरणा से, किसी मनचले युवक ने संतगणों को महापापी अजामिल के घर पर जाने को बोल दिया। यह भगवान् की भक्ति के कारण ही था।

जब संतगण अजामिल के घर पहुँचे तो अजामिल शिकार करने के लिये जंगल में गया हुआ था। उसकी कुलटा–स्त्री (वेश्या) घर पर थी। चाहे कोई कितना भी बड़ा पापी व नास्तिक हो, साधुओं का तो सभी सम्मान करते हैं। अजामिल की स्त्री ने भी उनका सम्मान किया और चबूतरे पर दरी बिछा दी और कहा कि आज रात आप यहाँ विश्राम करिये। संतगणों ने पूछा कि आपके पतिदेव कहाँ हैं तो अजामिल की स्त्री बोली कि बाहर गये हैं, थोड़ी देर में आ जायेंगे। संतगणों ने उसके पति के बारे में इस कारण पूछा था कि उस घर में वह औरत अकेली थी और वे वहाँ कैसे रहेंगे ?

अजामिल की पत्नि ने महात्माओं से पूछा कि आपको क्या चाहिये ? आपके लिये क्या बनाऊँ ?

महात्मा बोले कि हम स्वयं–पाकी हैं अर्थात् हम स्वयं ही रसोई बनाकर, भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद सेवन करते हैं। हम किसी के हाथ का बनाया हुआ खाद्य पदार्थ नहीं खाते। यदि तुम हमें दाल, आटा तथा चावल दे सको तो हम बनाकर खा लेंगे। हम कल प्रातःकाल ही यहाँ से चले जायेंगे।

अजामिल की स्त्री ने बोला आपको जो कुछ भी चाहिये, मैं उसका इंतजाम कर देती हूँ। थोड़ी देर में मेरे स्वामी घर पर आ जायेंगे। आपकी जो भी ज़रूरत होगी, वह पूरा कर देंगे। आप बड़े आनंद से रात भर यहाँ विश्राम कर लीजिये। सोने के लिये बिस्तर आदि का भी इंतजाम हो जायेगा।

संतगणों को अभी तक यह बात मालूम नहीं थी कि अजामिल शराबी और मांसाहारी है। उसके घर के आस–पास रहने वाले

घरों के लोग आपस में कानाफूसी कर रहे थे कि इतने पापी अजामिल के घर साधुओं को किसने भेज दिया। पर किसी ने संतगणों को नहीं बताया कि अजामिल बुरा आदमी है और वे वहाँ क्यों आये।

संतगणों ने रातभर अजामिल के घर में विश्राम किया। अगले दिन प्रातःकाल जब वे जाने लगे तो उन्होंने सोचा कि इस अजामिल ने हमारी सेवा की है। इसका कुछ भला तो करना ही चाहिये। संतों ने अजामिल से कहा कि अब की बार जब तेरी पत्नि के प्रसव हो तो शिशु का नाम 'नारायण' रखना। संतगणों ने यह इसलिये कहा कि इसी बहाने अपने बेटे को बुलाने के लिये वह नारायण–नारायण बोलता रहेगा। संतों को यह प्रेरणा भगवान् ने ही दी थी क्योंकि अजामिल ने भगवान् के प्यारे पुत्र संतगणों की सेवा की थी। इसलिये भगवान् ने तो अजामिल का उद्धार करना ही था।

भगवान् अपनी महिमा कभी नहीं बढ़ाते। वे तो अपने प्यारे पुत्रों अर्थात् संतगणों की महिमा बढ़ाते हैं। धर्मग्रंथों में इसके बहुत से उदाहरण हैं। भगवान् अपने भक्त को स्वयं प्रेरणा देते हैं और प्रवृत्त करते हैं। नास्तिक को भी प्रेरणा होती है। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–इन तीनों गुणों में, स्वभावानुसार भगवान् प्रेरणा करते हैं। ऐसा मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने ही प्रेरणा करके, महाभारत का युद्ध करवाया और अपने भक्त पांडवगणों को जिताया। उन्होंने अपने प्यारे भैया अर्जुन की संसार में महिमा बढ़ाई। अपने श्रीगुरुदेव की आज्ञा के अनुसार, मैं भी प्रत्येक इतवार को



प्रातःकाल 7 बजे से 8.30 बजे तक, हरिनाम महिमा का गुणगान करता रहता हूँ। मैं यह सब केवल मात्र अपने गुरुदेव की प्रेरणानुसार ही कर रहा हूँ और गुरुदेव जी नाम मेरा करवा रहे हैं। गुरुदेव भगवत्–रूप ही तो हैं–

साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः!
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविंदम्।।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती जी ने श्रीगुरुदेवाष्टकम् में लिखा है कि सभी शास्त्रों में यही बतलाया है कि श्रीगुरुदेव का स्वरूप साक्षात् श्रीहरि का ही स्वरूप होता है। सज्जनों के द्वारा उसी स्वरूप को अनुभव में भी लाया जा सकता है क्योंकि श्रीगुरुदेव अपने प्रभु के अतिशय प्यारे हैं। ऐसे श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्दों की मैं वंदना करता हूँ।

कहने का मतलब यही है कि भगवान् ही श्रीगुरुदेव के रूप में आकर सबका उद्धार करते रहते हैं।

हाँ, तो श्रील गुरुदेव, साधकों के संशय निवारण हेतु कह रहे थे कि अजामिल तो महापापी था, महापापी होते हुये भी उसने नारायण का नाम उच्चारण क्यों किया तथा सब कैसे हुआ ? यह प्रसंग सुनाया है। इसका खास कारण मेरे श्रीगुरुदेव बता रहे हैं कि यह सब संतगणों की सेवा का ही फल है। जो संत की सेवा करता है उसका ऋण भगवान् पर चढ़ जाता है और भगवान् को उसका उद्धार करना ही पड़ता है। लेकिन साधकगणो, ध्यान से सुनो ! जब तक हरिनाम की शरणागति नहीं होगी तो संतों की सेवा करने की प्रेरणा हृदय में उदय नहीं होगी। यह गुण केवल हरिनाम रूपी भगवत् प्रेरणा से ही आता है। अजामिल भूतकाल में परमभक्त शिरोमणि था पर वेश्या के संग से उसकी भक्ति कुछ समय के लिए दब गई थी। जब उससे संतों की सेवा बन गई तो भक्ति जग गई। अब क्योंकि भगवान् ने उसकी सेवा का ऋण उतारना था अतः प्रेरणा करके अपना नाम नारायण उच्चारण करवा दिया।

इन्द्रद्युम्न राजा भक्त था। संत के शाप से हाथी योनि में गया परंतु हाथी योनि पाकर भी उसे भगवान् की स्तुति याद रही। उसने भगवान् से प्रार्थना की। वृत्रासुर पिछले जन्म में भक्त था। शाप से राक्षस हो गया था। यह सब प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिनसे यह बात साबित होती है कि भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। गीता में भगवान् अर्जुन को कह रहे हैंः–

"कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।" (9.31)

"हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।"

देखो ! जिनकी हरिनाम में शरणागति नहीं है वह अनंत मार्गों– मंत्र, पुरश्चरण में, मंत्रों के अनुष्ठान में, हवन–यज्ञ में फँस जाता है। ये सब साधन व्यर्थ हैं। कलियुग में केवल हरिनाम ही साधन है। इसके अलावा कोई साधन नहीं है। हमारे प्रभु चैतन्यमहाप्रभु ने तो किसी को नहीं बोला कि ये करो, ये करो। इसलिये मनगढ़ंत चक्करों में पड़कर समय बर्बाद न करो। हरिनाम से बड़ा अन्य कोई साधन नहीं है लेकिन भोले–भाले साधक इन मार्गों में फँस जाते हैं। यज्ञ केवल पैसा कमाने हेतु होते रहते हैं। यह कलियुग का साधन नहीं है।

रविवार को, श्रीगुरुदेव की वाणी, उनके पत्रों को पढ़कर, साधकों को सुनाने का जो आयोजन शुरु हुआ है और पिछले तीन वर्ष से नियमित रूप से चल रहा है, स्वयं भगवान् ने, मेरे श्रीगुरुदेव को आदेश देकर आरंभ करवाया है तथा इसका माध्यम मुझ अनिरुद्धदास को बनाया है। यदि किसी को मुझ पर श्रद्धा न हो, विश्वास नहीं हो तो उसका आना फिजूल है। यह आंदोलन भगवान् की अहैतुकी कृपा से शुरु हुआ है और जो इसमें 80 प्रतिशत उपस्थित रहेगा, उसके कल्याण की गारंटी मेरे गुरुदेव ले रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के अठाहरवें अध्याय की श्लोक संख्या 66 में बोला है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।



इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त व शिष्य अर्जुन को उपदेश देते हुये कहते हैं कि तू संपूर्ण धर्मों को अर्थात् सभी कर्त्तव्यों को त्यागकर केवल एक मुझ सर्व–शक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

देखो जैसा भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, गारंटी ली है, उसी तरह मेरे श्रील गुरुदेव भी गारंटी से कह रहे हैं कि रविवार के आयोजन में जिनकी उपस्थिति 80 प्रतिशत होगी, उनकी ज़िम्मेदारी वे स्वयं लेते हैं। उन्हें किसी भी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इतना सुगम उपाय गुरु जी ने बता दिया इसलिये बार–बार कहता हूँ सब कुछ छोड़कर, सप्ताह में एक दिन, रविवार को केवल डेढ़ घंटे के लिये इस आयोजन में आओ और कृष्ण–प्रेम प्राप्त करो।

ज़रा आंखें खोलकर देखो! ज़रा मन में विचार करो कि इस आयोजन के शुरु होने के बाद कितने साधक एक लाख हरिनाम हर रोज़ करने लग गये। कितनों को तो विरहावस्था भी उदय होती जा रही है। जो मुझ में श्रद्धा करेंगे, उन्हें यह अवस्था प्राप्त होगी ज़रूर। देखो! आज तक तो ऐसा वातावरण नहीं रहा। सारी ज़िंदगी सत्संग करते हो गये फिर भी जूं तक नहीं रेंगी। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जो सुकृतिवान होगा वही समय पर आवेगा अन्यथा बनाने के लिये बहाने तो बहुत हैं। जो पुराने भक्त हैं, बड़े महान् साधक हैं जब वे ही समय पर नहीं आयेंगे तो बाकी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? जो सात दिन में एक या डेढ घंटा भगवान् के लिये नहीं निकाल सकता, वह श्रद्धालु नहीं हो सकता। वह तो अपना ही नुकसान करेगा। उसके न आने से न तो मुझे कोई नुकसान होने वाला है और न ही मेरे श्रील गुरुदेव माधव

महाराज को नुकसान होगा। इसलिये अब भी सतर्क हो जाओ। इसी में भलाई है अन्यथा माया की चक्की में पिसना तो है ही।

निष्कर्ष यह हुआ कि भगवद्–प्रेरणा से ही अजामिल के मुख से नारायण का नाम उच्चारण हुआ। बेटे के मोह के कारण पुकारने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

देखो! जब मृत्यु आती है तो प्राणी बेहोश हो जाता है। एक हज़ार बिच्छुओं के काटने से जो दर्द होता है, उतना दर्द मृत्यु के समय प्राणी को होता है। ऐसे में भगवान् के नाम का उच्चारण वह कैसे कर सकेगा ? असंभव है। मेरे गुरुदेव ने सभी साधकों को सचेत किया है कि रात को सोते समय तथा प्रातःकाल जागते समय भगवान् से प्रार्थना करो–

"हे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस के साथ, जब मेरे प्राण मेरे शरीर से निकलें तो अपना नाम उच्चारण करवा देना।"

जब आप प्रार्थना करोगे तो क्या भगवान् नहीं सुनेंगे ? क्या भगवान् इतने बेपरवाह हैं ? फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। यह बड़े दुःख की बात है।

नामाभासी को मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं। साधकगण इस बात को बड़े ध्यान से सुनें कि जब प्रातःकाल नींद से जागो तब ऐसा बोलो कि–**"आज पूरे दिन, मैं तन व मन से जो भी कर्म करूँ, वह आपके लिये हो। ऐसी शक्ति दीजिये। यदि मैं बीच–बीच में भूल जाऊँ तो हे मेरे प्राणनाथ! कृपा करके मुझे याद दिलाते रहना।"**

जब साधक बार–बार ऐसी प्रार्थना करेगा तब अभ्यास होने के कारण भूल नहीं होगी। साधकगण जब ऐसा बोलेगा तो संसारी माया का सत, रज व तम गुण जड़ सहित उखड़ जायेगा और जन्म मरण का दारुण दुःख सदा–सदा के लिये दूर हो जायेगा।

– हरि बोल –

7

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
03.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण शिरोमणि !

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

शुद्ध हरिनाम से गोलोकगमन–1

मेरे गुरुदेव सब साधकों को समझाते–समझाते थक गये कि नामापराध मत करो। नामापराध से भयभीत रहो परंतु फिर भी साधकगण नहीं मानते। नामापराध करते रहेंगे तो स्वप्न में भी मुख से शुद्ध हरिनाम नहीं निकल सकता। निंदा–स्तुति करने में क्या आनंद आता है ? तुम्हें इनसे क्या लेना–देना ? आप बेफिक्र होकर अपना हरिनाम करते रहोगे तो शुद्ध हरिनाम शत–प्रतिशत निकलता रहेगा। नामापराध होने से भगवद्–नाम मुख में क्यों आने लगा ? इसमें शुद्ध नाम का क्या दोष है ?

शुद्ध नाम ही धीरे–धीरे संसार से वैराग्य उदय करा देगा। जब संसार से मन हटने लगेगा तो भगवत्–संबंधी विषयों में मन स्वतः ही सुगमता से लगने लगेगा। मन हरिनाम में लगा नहीं कि नाम भगवान् से मिलने की तड़पन आरंभ होने लगेगी। जिस प्रकार दो बांसों को आपस में रगड़ने से अग्नि प्रगट हो जाती है। दियासलाई की रगड़ से अग्नि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार मन तथा नाम की रगड़ से विरहाग्नि जल जायेगी।

जब भगवान् के प्रति तड़पन अधिक होने लगेगी तो भगवान् के साथ दास, सखा, पुत्र या पिता आदि का संबंध उदय होने लगेगा। इस स्थिर संबंध–ज्ञान को भगवान् हृदय में प्रगट कर देंगे। जब जीव का भगवान् के प्रति संबंध उदय हो जायेगा तो

फिर वह संबंध टूट नहीं सकता और संबंध न टूटने से भगवान् उसे अपने गोलोकधाम में ले जायेंगे। वहाँ वह अमरता प्राप्त कर लेगा। उस गोलोकधाम में क्या सुख है? क्या आनंद है? इसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से बताया नहीं जा सकता। छायामात्र इंगित किया जा सकता है।

नामाभासी का, जो नामापराध भी करता रहता है, उसका वैकुण्ठ में वास हो जाता है। यदि कोई नामाभासी एक लाख हरिनाम करता है या इससे अधिक करता है, डेढ लाख या दो लाख हरिनाम करता है और नामापराध भी करता है तो भी उसे वैकुण्ठ धाम ही उपलब्ध होता है। इसका कारण है कि उसने नाम भगवान् को नहीं त्यागा। देखो! गलती तो सबसे होती ही है। भगवान् का स्वभाव है कि वे साधक को बार–बार मौका देते हैं। जब हरिनाम करते–करते उसका हृदय निर्मल हो जायेगा तो उसे वैकुण्ठ धाम ही वास करवाते हैं। जैसे पाठशाला में कोई विद्यार्थी फेल हो जाता है तो हैडमास्टर उसे पाठशाला से निकालता नहीं है। उसे फिर मौका देते हैं। उससे ट्यूशन करवाते हैं। इसी प्रकार भगवान् बड़े दयालु हैं। वे नामापराधी को त्यागते नहीं हैं पर यदि वह अपराधी ही भगवद्–नाम को छोड़ देता है तो भगवान् उसे चौरासी लाख योनियों में डाल देते हैं। पर वह नरक भोग नहीं करता क्योंकि उसने कोई जीव हत्या नहीं की।

जिसने भगवान् के नाम को पकड़ रखा है, भगवान् उसे वैकुण्ठ धाम में वास करवा देते हैं जहाँ वह कई युगों तक वास करता है। फिर भगवान् उसे संबंध ज्ञान हेतु किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं।

भगवान् उसे साधु–संग करवाते हैं–यह गीता का वचन है। जैसे पाठशाला का विद्यार्थी ट्यूशन पढ़ने के बाद पास हो जाता है उसी प्रकार भक्त के घर में जन्म देकर, भगवान् साधक को साधु–संग करवा देते हैं जहाँ उसे संबंध–ज्ञान हो जाता है और वह गोलोकधाम चला जाता है।

नारद जी का वचन है कि कलियुग में केवल भगवद्–नाम ही भगवद्–प्राप्ति का साधन है। मन्दिरों का अर्चन–पूजन द्वापर का साधन है। मन्दिरों का अर्चन–पूजन एक सहायक मात्र है क्योंकि मन्दिरों में साधक निर्भय होकर हरिनाम कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभु ने अपने सभी अनुचरों को बोला है कि जो लखपति होगा उसके घर पर मैं आऊँगा। जो लखपति नहीं होगा उसके घर पर मैं जाऊँगा ही नहीं। सभी को चिंता हो गई कि हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं। हम तो मारे गये तो महाप्रभु बोले कि मेरा मतलब है जो हरिनाम की 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करेगा उसके घर पर मैं प्रसाद सेवन करूँगा। जिस मन्दिर में पुजारी से अर्चन–पूजन के साथ एक लाख हरिनाम नहीं होगा, ठाकुर जी उसका निवेदित भोग नहीं खाते। उस मन्दिर में ठाकुर जी भूखे रहेंगे और जब ठाकुर जी भूखे रहेंगे, ठाकुर जी भोग ही नहीं लगायेंगे तो मन्दिर में रहने वालों को भगवत्–प्रसाद नहीं मिल सकेगा। जहाँ भगवद्–प्रसाद सेवन नहीं होगा वहाँ पर कलि महाराज कलह कराकर झगड़े का वातावरण बनाते रहेंगे। मंदिरों में गलत कर्म होता रहेगा। चोरी, ज़ारी तो मुख्य कर्म होगा। मेरे गुरुदेव डंके की चोट पर यह घोषणा कर रहे हैं कि जहाँ भगवान् भूखे रहते हैं, वहाँ पर गुप्तरूप में कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा का राज्य हो रहा है। इसे कोई माने या न माने। जैसा करोगे वैसा भरोगे। इसमें एक प्रतिशत भी गलत बात नहीं है। जहाँ कोई भी ब्रह्मचारीगण या कोई भी मठ कर्मचारी गलत मार्ग में फँस रहा है, उसे समझाना उचित है अन्यथा धीरे–धीरे कोई भी मठ में आना कम करता जायेगा।

यदि कलियुग में अर्चन–पूजन सेवा जरूरी है तो शास्त्र क्यों बोल रहा है कि–

"कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।"

"न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलंबन एकू।।"

"सतयुग, त्रेता, द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।।"

भरत जी को श्रीराम जी के विग्रह की पूजा करनी चाहिये थी, उन्होंने नाम का सहारा क्यों लिया ? भरत जी क्या साधन कर रहे हैं ? केवल नाम जप रहे हैं –

"पुलक गात हिय सिय रघुबीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।"

धर्मग्रन्थों में अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जहाँ केवल हरिनाम की शरण ली गई है लेकिन भगवत्–विग्रह के अर्चन–पूजन का एक भी उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। अर्चन–पूजन भी तभी फलीभूत होगा जब हरिनाम का एक लाख जप होगा। तभी भगवान् की भूख मिट सकेगी वरना भगवान् भूखे ही रहेंगे।



शिवजी करोड़ों रामायण रच कर, उनमें से केवल एक 'राम ' नाम निकाल कर क्यों जपते रहते हैं ? उन्हें तो श्री राम जी के विग्रह का अर्चन–पूजन करना चाहिये। वाल्मीकि जी ने राम नाम ही क्यों जपा ? गुरु नारद जी को तो उन्हें राम का अर्चन–पूजन बताना चाहिये था। अर्चना–पूजा तो द्वापर युग का विशेष साधन है। हमारे वृद्ध गुरुवर्ग एकांत में रहकर नाम जप करते थे। वृन्दावन के छः गोस्वामी रूप, सनातन इत्यादि गिरिराज जी की तलहटी में नाम–जप किया करते थे। कहते हैं भगवत्–सेवा बहुत ज़रूरी है परंतु प्रधान सेवा भगवद्–नाम है। जब भगवद्–सेवा के साथ हरिनाम भी होगा तो सेवा सरस होगी। जब नाम नहीं होगा तो सेवा नीरस होगी अर्थात् जबरन होगी। उसे भगवान् अंगीकार नहीं करते। सेवा से तो भगवद् के लिये छटपटाना चाहिये। दुर्गुण जाने चाहियें, पर ऐसा हो तो नहीं रहा है।

मेरे गुरुदेव पापी मानव की मरण–अवस्था का वर्णन कर रहे हैं कि जब पापी मानव की मृत्यु का समय आता है तो उसकी नस–नस में एक असहनीय दर्द होता है, उसकी नसों में असहनीय खिंचाव होता है। तन में दर्द होता है जैसे एक हज़ार बिच्छू एक साथ काट रहे हों, डंक मार रहे हों। उस वक्त यमराज के तीन दूत विकराल रूप धारण करके उसके सामने आते हैं। उन्हें देखकर पापी मानव इतना भयभीत हो जाता है कि उसे बेहोशी आ जाती है। वह कुछ भी बोल नहीं सकता।

अब प्रश्न उठता है कि फिर अजामिल के मुख से भगवान् का नाम कैसे निकल गया ? उसने 'नारायण' नाम का उच्चारण कैसे किया ?

मेरे गुरुदेव इस बात का जवाब दे रहे हैं। अजामिल ने बचपन से जवानी तक मन से भगवान् का भजन किया था। भजन कभी भी नष्ट नहीं होता, दब जाता है। मेरे गुरुदेव जी बता रहे हैं कि उसके मुख से 'नारायण' नाम निकला, इसका प्रथम कारण तो यह है कि उसने संतों की सेवा की थी। नामापराध नहीं किया। संतों की सेवा से भगवान् अजामिल के ऋणी हो गये थे। उसी ऋण को उतारने के लिये ही भगवान् ने उसके मुख से अपना नाम उच्चारण करवा दिया। यद्यपि सभी कहते हैं कि उसने डर के कारण अपने पुत्र 'नारायण' को पुकारा था। लेकिन यह पुकार भी भगवान् ने ही उच्चारण करवाई। जब यम दूत को देखकर वह बेहोश हो गया था तो नाम का उच्चारण कैसे कर सकता था ? भगवान् ने ही कृपा करके यह पुकार उच्चारण करवाई। इसके पीछे भगवान् ही थे। यह संत–सेवा का फल है। उसका कोई नामापराध नहीं था।

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवद्–प्रेरणा का प्रत्यक्ष उदाहरण देखने को मिलता है। जब जय–विजय को सनकादि से शाप मिल गया, तो भगवान् ड्योढ़ी पर आकर पूछने लगे "सनकादिगण ! आज मैं आपको गुस्से में देख रहा हूँ। आपको तो आज तक कभी भी गुस्से में नहीं देखा ! तो सनकादिक बोले कि आपके इन दोनों

द्वारपालों ने हमें आपके चरणों के दर्शन पाने से रोक दिया अतः हमने इन्हें शाप दे दिया कि जाओ! तीन जन्म तक राक्षस हो कर पृथ्वी पर विचरण करो। ये शाप हम वापस ले लेते हैं। हमसे गलती हो गई।

तब भगवान् बोले, '' देखो! जब मुझे लीला करनी होती है तो मैं अपने प्यारे भक्तों के मुख से शाप या वर दिला दिया करता हूँ। अतः जय–विजय को प्रेरणा करके, मैंने ही आपको अंदर आने से रुकवाया है और मैंने ही आप में क्रोध वृत्ति जगाकर शाप दिलाया है। इसलिये यह सब कुछ मेरी ही मर्ज़ी से हुआ है। जो कुछ भी होता है, मेरी ही प्रेरणा से हुआ करता है इसलिये कोई चिंता की बात नहीं है। ''जय–विजय'' से भगवान् बोले कि अब आप जाओ और मेरे से विरोध करके पृथ्वी पर विचरण करो। मैं ही तुम्हें फिर से इस ठौर पर विराजमान कर दूँगा। आप चिंता न करो। सनकादिक को भगवान् बोले कि आप भी चिंतन करें कि मैंने ही आपके मन से ऐसा शाप दिलाया है।

साधारण जीव अपने सत्, रज, तमोगुण से अपना कर्म करते रहते हैं। इससे भगवान् को कुछ भी लेना–देना नहीं है। लेकिन ऐसा भी है कि आत्मा रूपी भगवान् ही जीव के हृदय में विराजमान हैं। जब तक शरीर में आत्मा है तब तक जीव कर्म करता है। जब आत्मा शरीर को छोड़ देती है तो कर्म होने का सवाल ही नहीं है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

''राखहिं गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहिं कोऊ जग त्राता।।''

– हरि बोल –

8

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
09.08.2011

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि!

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा दिन–रात विरहावस्था जाग्रत रहने की बारंबार प्रार्थना।

समस्त धर्मग्रंथों तथा श्रीमद्भगवद्गीता का सार

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि मैंने भक्तों को न चूकने वाले, तीन इंजैक्शन (तीन बातें) लगाये हैं। भक्त–साधक इन तीनों इंजैक्शन को लें। ये तीनों हृदयस्पर्शी तथा पूर्ण शरणागति के द्योतक हैं। ये तीनों भवरोग तथा विषय–विष को नष्ट करने हेतु अमोघ औषधि के रूप में प्रचलित हैं। ये इंजैक्शन संसार रूपी दुःखालय से बचने हेतु अमोघ हथियार हैं। अपने पिछले पत्रों में मैंने इनके बारे में बताया है। जो साधक–भक्त इनको भूले हुये हैं, उनको याद कराने के लिये फिर बता रहा हूँ। ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्त होकर सुनो ताकि अनंत युगों से जिस संसार रूपी दुःखसागर में गिरे हुये हो उससे बाहर निकल सको तथा परमानंद सागर में तैर सको।

पहला इंजैक्शन है कि रात को जब सोने लगो तो भगवान् से यह प्रार्थना करें–

1.''हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और इस तन से अंतिम सांस में, मेरे प्राण निकलने लगें तो कृपा कर अपना नाम उच्चारण करवा देने की कृपा करें क्योंकि धर्मग्रंथ बोल रहे हैं कि मृत्यु के समय प्रत्येक नस–नाड़ियों में असहनीय खिंचावट होती है। हज़ार बिच्छू के डंक मारने जैसी पीड़ा होती है तो बेहोशी आ जाती है। उस समय, हे प्राणनाथ! आपका नाम मेरे मुख से

उच्चारण होना असंभव जान पड़ता है अतः मुझ शरणागत की रक्षा करें। यही मेरी अंतिम प्रार्थना होगी। ''

इस प्रार्थना में श्रीमद्भगवद्गीता का सार तत्त्व है कि अंतिम सांस में जिस भाव में प्राण का निष्कासन होगा उसी भाव के अनुसार अगला जन्म होगा।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

(गीता 8.5)

''जो पुरुष अंतकाल में मुझको स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग करता है वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है।''

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता 8.6)

''हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस–उस भाव को प्राप्त होता है क्योंकि वह सदा उसी भाव से प्रभावित रहता है।''

भाव यह है कि जो मानव पूरी ज़िंदगी भर जिस भाव में भावित रहता है, उसी भावानुसार उसे अगला जन्म उपलब्ध होता है। जिस प्रकार यदि किसी ने ज़िंदगी भर बकरियाँ चराई हैं तो अंत समय में, मरने के समय उसे बकरी ही याद आयेगी तो वह बकरी के गर्भ में बकरी या बकरा होकर जन्म लेगा। अधिकतर वह बकरा होकर ही जन्म लेगा क्योंकि मांस बेचने वालों को वह पैसों के लिये बकरे बेचता रहा है। इसलिये पहले तो उसे नरकभोग करने के लिये नरक में जाना पड़ेगा। नरक भी एक नहीं। अट्ठाईस नरक भोग करेगा जिनमें कई युग बीत जायेंगे। युगों की आयु के बारे में धर्मग्रंथ बता रहे है कि 4,32,000 वर्ष का तो कलियुग है। इससे दुगुना द्वापर है। इससे तिगुना त्रेतायुग है और उससे चौगुना

सतयुग है। यह तो हुई एक चर्तुयुगी। वह बकरी पालने वाला, जो बकरे बेचकर मांसाहारियों को मांस खिलाता रहता है, कई चतुर्युगों तक नरकभोग करेगा। नरकों का कष्ट देखकर मन दहल जाता है, अधीर हो जाता है। धर्मग्रंथ भगवान् की सांस से प्रकट हुये हैं और कह रहे हैं कि हर क्षण–क्षण नाम की शरणागति में रहना ही उचित है। इसलिये ''हे मनुष्यो–

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

नामाभास भी कल्याणप्रद है। यदि शुद्ध नाम होता है तो उसे भगवद्–विरह होने से संबंध–ज्ञान उपलब्ध होगा जो भगवान् कृपा करके प्रदान करेंगे। इससे भक्त–साधकों को गोलोकधाम उपलब्ध हो जायेगा अन्यथा वैकुण्ठ तो मिलेगा ही। हरिनाम करने वाला न नरक में जायेगा, न चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करेगा। यदि वह नामापराधी भी होगा तो भी भगवान् उस पर कृपा ही करेंगे। जैसे कुपात्र पुत्र को भी माँ–बाप घर से बाहर नहीं निकालते, उसे सुधारने की कोशिश करते हैं। पर जिस साधक या भक्त ने हरिनाम को ही छोड़ दिया, उस पर भगवत् कृपा नहीं होगी।

भगवान् तो दयानिधि हैं। जीवमात्र ही भगवान् के पुत्र हैं फिर वे नाम लेने वालों को चौरासी लाख योनियों में कैसे भेज सकते हैं ? ऐसे अपने भक्त को, कई युगों तक वैकुण्ठ वास करवा कर, भगवान् किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं ताकि वह संबंध–ज्ञान प्राप्त कर अंतिम धाम जा सके अर्थात् उसका गोलोकधाम में वास हो सके।

अब दूसरा इंजैक्शन गुरुदेव बता रहे हैं, ध्यानपूर्वक सुनो !

2. प्रातःकाल जागते ही प्रार्थना करो–

'हे प्राणनाथ! मेरी बात ध्यान से सुनिये। इस समय से, मेरे तन, मन, वचन से जो भी कर्म मेरे से बनें, वह कर्म आपके ही निमित्त, आपका ही समझकर बनें तथा जब मैं किसी क्षण आपको भूल जाऊँ तो कृपा करके मुझे याद दिलाते रहें क्योंकि मैं अल्पज्ञ

हूँ पर मैं हूँ तो आपका ही। बस इतनी कृपा मुझ पर करते रहिये। मैं सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से आक्रान्त न हो सकूँ। मुझे निर्गुणधारा में बहाते रहो। मुझे संत–समागम कराते रहो। अहम् से मुझे बचाते रहो। तन, मन, वचन से आपका ही कर्म समझकर आपके लिये ही कर्म होते रहें।

3. तीसरा इन्जैक्शन मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि हर रोज़, जब संध्या करने बैठो तो भगवान् से यह मार्मिक प्रार्थना करो–

''हे मेरे प्राणनाथ! मेरे मन की भावना इस प्रकार भावमयी बना दो कि मैं कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। आपको ही निहारा करूँ। इससे मुझसे दूसरों का बुरा होगा ही नहीं। अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में आपका ही अस्तित्व है। आपके बिना तो कुछ भी नहीं है। सब कुछ आपसे ही है, आपका ही है। फिर भी आप इनसे अलग ही हो । सभी मेरे मन के भावों से भावित होता रहे।''

भगवान् बोलते हैं जो ऐसा करता है, उससे मैं ओझल नहीं रहता और वह मेरे से ओझल नहीं रहता।

ये तीनों इंजैक्शन मेरे श्रीगुरुदेव जी ने कृपा करके, भक्त–साधकों को लगाये हैं ताकि यह भवरोग तथा विषयों का विष नष्ट हो सके। तो फिर बचेगा ही क्या ? केवल भगवत्–नाम । जब भगवत्–नाम। बच जायेगा तो संसार सागर का विष जल सूखकर खाली हो जायेगा। सारे दुःखों का बखेड़ा ही विलीन हो जायेगा। कण–कण में भगवान् नज़र आयेगा।

उक्त प्रसंग गीता का सार है, तत्त्व है। पूरी गीता का प्राण है। यदि भक्त साधक उक्त प्रसंग अनुसार अपना जीवनयापन करता रहे तो अष्टयाम (आठों पहर) भगवत्–चरणों में ही रमता रहेगा तथा भगवत्–माया तो उससे बहुत दूर विराजेगी। माया का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

भगवान् को पाने का कितना सुगम तथा सरलतम मार्ग मेरे

गुरुदेव जी ने सभी भक्तों को बता दिया है। इसी कारण इस ग्रंथ के पांचों भागों का नाम रखा है–''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति''।

कलिकाल में भगवान् भक्त–साधकों को छद्म रूप में दर्शन दिया करते हैं क्योंकि भक्त–साधक साक्षात् दर्शन करने में असमर्थ हैं। हमारे भूतकाल के गुरु वर्ग को भगवान् ने छद्म–दर्शन दिया है। माधवेन्द्रपुरीपाद, रूप–सनातन, ईश्वरपुरीपाद आदि–आदि गुरुजन हमारी गुरु–परंपरा में हो गये हैं। अब भी जो मेरे श्रीगुरुदेव के बताये हुये मार्ग पर चलते रहेंगे तो भगवान् छद्म–दर्शन देंगे तथा अन्त में अपने गोलोकधाम में ले जाकर भव्य–स्वागत कराते रहेंगे। सदा–सदा के लिये आवागमन रूपी दारुण–दुःखालय से साधकगण मुक्ति पा लेंगे।

भगवान् अर्जुन को बताते हैं कि जिसने मन को जीत रखा है जिसकी अन्तःकरण की वृत्ति शांत है, विकार रहित है, उसके ज्ञान में कोई कमी नहीं है। उसके लिये मिट्टी व सोना एक समान है। वह भगवान् में ही निष्ठित है। उसके लिये वैरी व मित्र एक समान हैं। ऐसा साधक युक्त आहार–विहार वाला होता है और शांति की पराकाष्ठा उपलब्ध करता है। ऐसा साधक भगवद्–प्राप्ति के सिवाय कोई लाभ नहीं समझता। बड़े से बड़े संकट में भी चलायमान नहीं होता क्योंकि वह भगवान् पर पूर्ण आश्रित है। पूर्ण शरणागत है। वह भगवान् को अपने पास साक्षात् रूप में अनुभव करता है। ऐसे भक्त साधक के आनंद का कोई परिवार नहीं है। वह अपनी जड़ जिह्वा से इस आनंद को बता नहीं सकता।

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि क्या मंदयत्न (साधारण भजन) करने वाला साधक दुर्गति को प्राप्त होगा ? तो भगवान् बोले कि वह स्वप्न में भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होगा। वह स्वर्ग आदि लोकों में जायेगा और फिर बाद में भक्त के घर में जन्म लेगा। वहाँ वह तीव्रगति से मेरी ओर यत्नशील होगा और अन्त में मुझे ही प्राप्त हो जायेगा। हाँ, उसको मुझे प्राप्त करने में समय अधिक लग सकता है। शुभकर्म करने वाला कभी दुर्गति में नहीं जा सकता।

हरिनाम करना शुभकर्म ही है। श्रीगौरहरि की शिक्षा है –

''सर्वक्षण बोले इथे विधि नाहिं आर।''

''अविश्रांत नामे नाम अपराध जाये।
ताहे अपराध कभू स्थान नाहिं पाय।।''

''कि भोजने कि शयने किवा जागरणे,
अहर्निश चिन्त कृष्ण बलह वदने।''

इसलिये हर समय कृष्ण नाम लेते रहो। ऐसा कहीं नहीं लिखा कि केवल 16 माला ही करनी चाहिये।

नाम–जापक कभी भी स्वर्ग में नहीं जायेगा। वह सीधा वैकुण्ठ में जायेगा और कई युगों तक वहाँ रहकर संबंध–ज्ञान प्राप्त करने हेतु फिर किसी भक्त के घर में जन्म लेगा। फिर गोलोक गमन करेगा। यह ''हरिनाम चिंतामणि'' में लिखा है।

जो साधक भगवान् के बताये हुये उपरोक्त तीन इन्जैक्शन लगवा लेगा, उसका भवरोग तथा माया का बंधन सदा–सदा के लिये हट जायेगा और वह जन्म–मरण रूपी दारुण–कष्ट से मुक्ति पा लेगा। इसमें थोड़ा भी संशय नहीं है। लेकिन यह तीनों इंजैक्शन तभी लाभप्रद होंगे जब साधक हर क्षण भगवत् नाम की शरण में रहेगा क्योंकि कलियुग का मुख्य साधन है केवल मात्र हरिनाम स्मरण करना। शास्त्र का वचन है–

सतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग,
जो गति होय सो कलि, हरिनाम से पावें लोग।

नारदजी साधकों को समझा रहे हैं –

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु बोल रहे हैं :–

नाम बिना कलिकाले नाहिं आर धर्म।
सर्वमंत्र सार नाम एइ शास्त्र मर्म।।

जो लोग हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

की केवल सोलह माला करने के लिये बोल रहे हैं, बिल्कुल गलत है।

श्रीमहाप्रभु जी कहते हैं :–

अविश्रान्ते नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभू, स्थान नाहिं पाय।।

अर्थात् निरंतर नाम लेना ही सर्वोत्तम है। खाते–पीते, चलते–फिरते, उठते–बैठते, सदा नाम लेते रहो। अपनी मनगढ़ंत बातों से किसी को भ्रमित करना घोर अपराध है। मानव जन्म बहुत ही कीमती है। इसे बर्बाद मत करो वरना अन्त समय में पछताना पड़ेगा। फिर तो स्वप्न में भी मानव जन्म उपलब्ध नहीं होगा। मैंने जो कुछ भी बोला है, शास्त्रानुसार बोला है। आप मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैं तो सब भक्तों के चरणों की धूल मात्र हूँ।

भगवान् अर्जुन को साफ–साफ बोल रहे हैं कि जो लोग तन से या मन से दूसरे संसारी जीवों को सताते रहते हैं तो दूसरों को सताने वाले ऐसे मानव, मुझे ही सताते हैं क्योंकि प्रत्येक जीवमात्र में, मैं ही विराजित हूँ। जीव जिस शरीर में रहता है, वह उसका मकान है और यदि कोई किसी जीव को सताता है तो मकान को पीड़ा क्या होगी ? पीड़ा तो मकान में रहने वाले आत्मस्वरूप मुझ को ही होगी। अतः ऐसे लोग जो दूसरों को सताते हैं, मैं उन्हें घोर नरकों में यातना हेतु भेजता हूँ। यहाँ तक कि पेड़ को काटना भी उचित नहीं है। उसमें भी मैं आत्मा रूप में विराजित हूँ। देखो ! सांप की आयु एक हज़ार वर्ष की होती है पर यदि किसी ने उसे उस समय मार दिया जब उसकी आयु दो सौ वर्ष की थी तो मारने वाले को आठ सौ साल, उसी तरह सांप की देह में आना पड़ेगा। जिसने सांप को मारा है, उसे ही सांप की देह में आना होगा। उसने भले ही सांप का बुरा नहीं किया हो पर उसने मेरी आत्मा को तो सताया है।

मैंने अपने श्रीगुरुदेव जी से कहा कि हम तो किसान हैं। जब हमारी फसल को कीड़ा लग जाता है, सरसों में कीड़ा लग जाता है जो करोड़ों की संख्या में होता है, हमें तो उस पर दवाई छिड़क कर मारना ही पड़ता है। इसी तरह गेहूँ , जौ आदि अनाज को जब घूण आदि कीड़े अंदर से खा जाते हैं तो उनको भी दवाई डालकर मारना पड़ता है। हमें तो जबरदस्ती पाप करना पड़ता है। हम इससे बच नहीं सकते। फिर भले ही हम भक्ति करते हैं, असंख्य जीवों की हत्या करने से, हमारा मनुष्य जीवन, जो हमें भगवद्–प्राप्ति के लिये मिला है, बेकार चला जायेगा।

तो मेरे श्रीगुरुदेव जी ने उत्तर दिया कि तुम्हें चिंता करने की कोई ज़रूरत नहीं है क्योंकि तुम भगवान् के शरणागत हो, हरिनाम के शरणागत हो। जिस फसल के लिये, जिस अनाज को बचाने के लिये तुम्हें पाप करना पड़ रहा है, वह भी तो भगवान् का ही है। तुम्हें वह पाप कभी नहीं लग सकता। क्या धर्मग्रंथों में इसका उदाहरण तुम नहीं देखते ? श्रीहनुमान जी ने पूरी लंका में आग लगा दी, वहाँ जीवमात्र जलकर भस्म हो गये। क्या श्रीहनुमान जी को पाप लगा ? उन्हें पाप इसलिये नहीं लगा क्योंकि उनका वह कर्म अपने प्रभु भगवान् श्रीराम के निमित्त था। भगवान् के निमित्त जो कर्म होता है, उसका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है। फिर तुमको चिंता करने की क्या ज़रूरत है ? तुम्हारा तो पूरा परिवार ही भगवान् के शरणागत है इसलिये तुम्हें तो स्वप्न में भी पाप नहीं छू सकता। स्वयं के लिये तो तुम कुछ करते नहीं हो। जो करते हो, केवलमात्र भगवान् के लिये करते हो।

मेरे गुरुदेव ने तीसरा इंजैक्शन यहीं दिया है कि भगवान् से यही प्रार्थना करे कि मेरे से जो भी कर्म बने, वह मैं आपका ही समझ कर करता रहूँ। बस ! आप मेरी ऐसी भावना बना दो क्योंकि मैं आपका हूँ और आप मेरे हितैषी हो। मैं अल्पज्ञ हूँ। आप सर्वज्ञ हो। इसलिये मुझ पर कृपा करते रहना।

जिस प्रकार कलियुग में भगवद्–प्राप्ति का केवलमात्र एक ही साधन है–हरिनाम–उसी प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के समस्त शास्त्र, वेद या गीता का सार यही तीन साधन हैं जिनको अपना कर जीव दुःखदायी भवसागर से पार हो सकता है।

1. प्रथम–अंतिम सांस में भगवद्–नाम उच्चारण हो जाये।

2. दूसरा साधन है–संपूर्ण कर्म भगवत् के निमित्त हों।

3. तीसरा साधन है–कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में, मैं आपको ही देख पाऊँ।

इन तीनों साधनों से ऊपर, कोई भी साधन सरल व सुगम नहीं है। यह तीनों साधन धर्मग्रंथों का बीज है। इन साधनों की प्रार्थना को बोलने में दो मिनट लगते हैं जो सभी साधकों को अवश्य करना चाहिये। ऐसा मेरे गुरुदेव, सब साधकों को आदेश दे रहे हैं। मानव जीवन गँवाना उचित नहीं है। गहराई से सोचने की ज़रूरत है। ये साधन ही पूर्ण शरणागति के प्रतीक हैं। इनसे ही पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाती है। जब साधक को उक्त लिखित तीनों साधनों की उपलब्धि हो गई, इनमें बताई गई स्थिति उपलब्ध हो गई, फिर उसे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह तो कृतकृत्य हो गया। वह तो भगवान् को पा गया।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह महामंत्र उस दिव्योन्माद अवस्था में आविर्भूत होता है जब श्रीकृष्ण मादनाख्य महाभाव सागर में डूबकर आत्म–विस्मृत हो जाते हैं, वे यह भी निश्चय नहीं कर पाते कि वे श्रीकृष्ण हैं या श्रीराधा।

9

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति विरहाग्नि दिन–प्रतिदिन अधिक होने की प्रार्थना।

शुद्ध हरिनाम से गोलोक गमन–2

मेरे श्रीगुरुदेव जी सब साधकों को बता रहे हैं कि नामापराध रहित होकर हरिनाम करते रहने से नाम भगवान् हृदय में प्रकट होकर, संसारी फँसावट अर्थात् आसक्ति धीरे–धीरे हटा देंगे तथा भगवान् के लिये छटपटाहट शुरु कर देंगे।

जब घंटों–घंटों तक विरहाग्नि जग पड़ेगी तो श्रीगुरुदेव, जो साक्षात् भगवद्–रूप ही हैं तथा भगवान् के प्रियजन हैं, साधक–विरही को कोई भी संबंध अपना करवा देंगे–सखा का, दास का, भाई का, पुत्र का या पिता का आदि–आदि। जब संबंध ज्ञान हो जायेगा तो भगवान् इसे संसार में नहीं छोड़ सकते। मरने के बाद उसे अपने संग गोलोकधाम ले जायेंगे और वहाँ इस नये साधक का भव्य स्वागत करवायेंगे।

गोलोकधाम में भगवान् इसके साथ उसी संबंध से लीला करते रहेंगे। वहाँ पर जो आनंद है, वह इस जड़ जिह्वा से बखान नहीं किया जा सकता। गोलोकधाम में भी साधक का विरह जाग्रत रहेगा क्योंकि वहाँ भी भगवान् साधक की दृष्टि से समय–समय पर ओझल होते रहेंगे। अपने भक्त के साथ आँख–मिचौनी करते रहेंगे। जिस प्रकार एक शिशु पिता की गोद में जाने के लिये रोता है, तड़पता है पर पिता हर वक्त शिशु के पास नहीं रह सकता।

इसी प्रकार भगवान् भी साधक के साथ हरदम नहीं रह सकते, भले ही उसका भगवान् के साथ कोई भी संबंध हो। इस स्थिति में साधक की विरह अवस्था जाग्रत होती रहती है। इसी विरह में, इस मस्ती में जो आनंद है, वह बताया नहीं जा सकता। जिसको ऐसी विरह–अवस्था उपलब्ध हो जाती है, वही इस अवस्था का आनंद भोग कर सकता है।

उस साधक का जीवन, जब वह इस संसार में था, कैसा था ? यह मेरे गुरुदेव बता रहे हैं–

ऐसा साधक जब इस संसार में रहता है तो प्रत्येक प्राणी में भगवद्–दर्शन का अनुभव करता रहता है। सभी जनों की भलाई करने में लगा रहता है। किसी जीव को दुःख देने से उसका हृदय काँपता है। ऐसा साधक तन, मन से जो भी कर्म करता है, वह भगवान् का कर्म समझ कर करता है, भगवान् के निमित्त करता है, इस प्रकार उसका रात–दिन का अर्थात् आठ घड़ी (24 घंटे) का भजन बन जाता है। वह अपना मन, इन्द्रियों सहित, भगवान् के लिये, भगवान् की सेवा में ही लगाये रहता है। उसके मन में जो भी संकल्प–विकल्प होते हैं, वे सब भगवान् के लिये ही होते रहते हैं। ऐसे साधक से माया तो बहुत दूर रहती है अर्थात् माया उसको सताती नहीं, प्रत्येक क्षण उसका साथ देती है।

ऐसा साधक हर क्षण भगवत्–नाम में रत रहता है। नामापराध तो उसे स्वप्न में भी नज़र नहीं आता। उसका तो नींद में भी, हर क्षण नाम स्मरण चलता रहता है और वह भगवान् के विरह में रोता रहता है। उसके अन्तःकरण में अलौकिक मस्ती छाई रहती है।

भगवान् अपने भक्त के माध्यम से ही किसी को शाप या वरदान दिया करते हैं। भक्त के अन्तःकरण में जो भी प्रेरणा होती है, वह भगवान् के करने से ही होती है। अभक्त अर्थात् नास्तिक को जो प्रेरणा होती है वह उसके स्वभावानुसार– सतोगुणमयी, रजोगुणमयी या तमोगुणमयी होती है। भगवान् का इसमें कोई लेना–देना नहीं होता।

भूतकाल में जितने भी धर्मग्रंथों का प्रकाशन हुआ है या अब हो रहा है, वह भगवान् ने प्रेरणा करके अपने भक्तों के माध्यम से किया है। इसमें भक्त की अपनी प्रेरणा बिल्कुल नहीं होती। भक्त तो भगवान् की प्रेरणा से ही अपना जीवन धारण करता रहता है। एक तरह से वह तो भगवान् की कठपुतलीवत् ही है।

भगवान् भी भक्त के आश्रित होकर प्रेरक बनते रहते हैं। दोनों का संबंध ऐसा रहता है जैसे दूध और पानी। दूध में पानी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार भक्त और भगवान् भी आपस में मिले रहते हैं। भगवान् अपने भक्त की बात कभी नहीं टालते और भक्त भी भगवान् की रुचि के विरुद्ध कुछ नहीं करता। जिस प्रकार अरणि में आग छिपी रहती है और रगड़ने पर प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भगवान् और भक्त के अन्तःकरण का भाव मिला रहता है और समय आने पर प्रकट हो जाता है। साधारण साधक इस स्थिति को नहीं समझ सकता। किसी के आचरण या भाव को, भगवत्–कृपा बिना समझना, असंभव है।

ऐसे भावुक संत का दूसरों पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ जाता है पर ऐसा संत–समागम बहुत दुर्लभ है। भगवत् कृपा बिना ऐसा संयोग बनता ही नहीं है।

भगवान् का मन अपने भक्त के साथ लीला करने में ही खुश रहता है। लीला बिना भगवान् का मन कहीं पर भी नहीं लगता। अतः भगवान् ही प्रेरक बन जाते हैं और भक्त से शाप या वरदान दिला देते हैं ताकि उन्हें लीला करने का अवसर उपलब्ध हो सके। धर्मग्रंथों में ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद हैं। उदाहरण के लिये, जैसे देवर्षि नारद जी ने विवाह करने के लिये भगवान् से सुंदर रूप माँगा तो भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया। भगवान् ने ऐसा इसलिये किया क्योंकि वे जानते हैं कि नारद मेरा भक्त है। विवाह करने के बाद वह बेचारा संसार में फँस जायेगा। इसलिये भगवान् ने सोचा कि मैं इसे ऐसा रूप दूँ कि इसे संसार की कोई भी लड़की वरे ही नहीं (शादी ही नहीं करे)।

यह सब भगवान् की इच्छा थी। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कोई लीला–विधान हो और मैं इस लीला में आनंद लूट सकूँ। इसलिये भगवान् ने लीला करने के लिये देवर्षि नारद जी को इसका माध्यम बनाया। जब नारद जी ने देखा कि भगवान् ने मुझे धोखा दिया है तो उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने भगवान् को शाप दिया कि जिस तरह मुझे पत्नी के लिये तड़पना पड़ा है, उसी प्रकार तुम भी पत्नी के लिये जंगलों में रोते फिरोगे।

इस प्रकार भगवान् अपने भक्त के मुखारविन्द से ही शाप या वरदान दिलाते रहते हैं क्योंकि उन्हें करना होता है अपना लीला–विधान। भगवान् बोलते हैं कि मैं अपने भक्त के मुखारविन्द से ही प्रसाद ग्रहण करता हूँ, बोलता हूँ। मेरी हर हरकत (क्रिया) अपने भक्त के द्वारा ही होती है। अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में मेरा भक्त ही मुझे सबसे प्यारा है। भक्त के बिना मेरा मन लगता ही नहीं।

ऐसे ही भगवान् ने लीला करके, सनकादि द्वारा अपनी ड्योढ़ी के द्वारपालों– जय और विजय को शाप दिलवाया था कि तीन जन्म तक राक्षस बन जाओ। अब तो भगवान् को लीला करने का बहुत बड़ा अवसर मिल गया। भविष्य में भी देखा जायेगा कि लीला करने हेतु भगवान् के किस भक्त के द्वारा शाप या वरदान दिया जायेगा।

भगवान् बड़े कौतुकी हैं। कुछ न कुछ करते रहते हैं और साधकगणों को इन लीलाओं से, भजन में रत रहने का मसाला उपलब्ध होता रहता है। अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवत्–लीलायें चलती ही रहती हैं। कभी भी बंद नहीं होतीं। किसी ब्रह्मांड में रामावतार की लीला चल रही है। किसी ब्रह्मांड में कृष्ण अवतार की लीला हो रही है। कहीं कपिल, कहीं वामन आदि की लीलायें प्रत्येक ब्रह्मांड में चलती ही रहती हैं जिनका स्मरण कर साधकगण भगवद्–प्राप्ति कर लेते हैं।

भगवान् से ही भगवत्–सृष्टि बनती रहती है। इस सृष्टि से ही लीलाएँ प्रगट होती रहती हैं। भगवान् के बिना तो सृष्टि में एक कण मात्र भी नहीं है। यह सब ही भगवत्–माया का साम्राज्य है। माया को अंगीकार कर भगवत्–लीलाएँ होती रहती हैं। इन लीलाओं का कभी अंत नहीं होता। अंत केवल जीवमात्र का ही होता है। इस संसार में सुख की छाया भी नहीं है, यह संसार दुःखों का घर है क्योंकि माया सब जीवों पर छाई रहती है। यह माया केवलमात्र भगवत् के चिंतन से ही दूर होती है, अन्य कोई उपाय नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समस्त कर्मों को समर्पित कर देना ही संसार के तीनों पापों को दूर करने की एकमात्र औषधि है। जितने भी कर्म हैं यदि वे भगवान् के निमित्त नहीं किये जायेंगे, तो वे जन्म–मरण के चक्करों में डालते रहते हैं। इस तन से या मन से, यही कर्म जब भगवान् के निमित्त किये जाते हैं तो इन कर्मों का कर्मपना ही नष्ट हो जाता है।

पिछले इतवार को मेरे श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को बोला था कि प्रातःकाल नींद से जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है कि आज से मेरे द्वारा इस तन–मन से, रात–दिन में जो भी कर्म हो, वह आपके निमित्त ही हो। ऐसी मुझे शक्ति प्रदान करना। जब मैं कर्म–समर्पण करने की भूल कर बैठूँ तो आप मुझे याद करवाने की कृपा करना।

जब साधक ऐसी प्रार्थना करेगा और उसका ऐसा स्वभाव बन जायेगा फिर तो कर्मपना ही नष्ट हो जायेगा और उसे सहज में ही भगवत्–शरणागति उपलब्ध हो जायेगी। जब साधकों को भवरोग आक्रांत करता है, सताता है तो मेरे गुरुदेव को ऐसा इंजैक्शन देना पड़ता है।

जब साधक उपरोक्त साधन करता है तो उसका मन हरिनाम में सहज में लगना आरंभ हो जाता है और जब मन हरिनाम में लगने लग जाता है तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आकर रुक जाती हैं। जब इन्द्रियों का संसारी व्यापार समाप्त हो जाता है तो

भगवत्–व्यापार उदय होकर विरहाग्नि प्रकट कर देता है। जब विरहाग्नि प्रकट हो जाती है तो भगवान् को संबंध–ज्ञान प्रदान करना पड़ता है। जब साधक को संबंध–ज्ञान उपलब्ध हो जाता है तो उसे सहज में ही गोलोकधाम मिल जाता है।

अब बताओ इसमें कौन सा श्रम करना पड़ता है ? कौन सी बहुत मेहनत करनी पड़ती है ? सहज में ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। **इस कलिकाल में भगवान् के ग्राहक नहीं के बराबर हैं इसलिये यदि थोड़ा भी मन हरिनाम में लग जाता है, भगवान् में लग जाता है तो भगवान् फौरन प्रसन्न हो जाते हैं।**

मेरे श्रीगुरुदेव सभी साधकों को इतना सरल उपाय बताते रहते हैं फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। कितने दुःख की बात है !

गोलोकधाम उपलब्ध करने वाले साधक का स्वभाव सरल, दम्भरहित, सबका हित करने वाला, दूसरों के दुःखों में दुःखी होने वाला, परहित करने में आतुर रहने वाला, जीवमात्र का प्यारा आदि गुणों का भंडार होता है। वह एकांत सेवी तथा भगवत् नाम में रत रहने वाला होता है। कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा की तो छाया भी उसे छू नहीं पाती। हर समय मस्ती छाई रहती है। वह तो अलौकिक आनंद का भंडारी होता है। वह प्रत्येक प्राणी में भगवत्–दर्शन के भाव में ओत–प्रोत रहता है। हिंसक प्राणी की भी सदा रक्षा–पालन करता है। संतसेवा तो उसका जन्मजात स्वभाव होता है। निद्रावस्था में भी नाम–स्मरण व जप करता रहता है तथा भगवत्–अभाव में अश्रुपात करता रहता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी बहुत दुःखी होकर बोल रहे हैं कि एक प्रसिद्ध संन्यासी हैं। उनका नाम लेना उचित नहीं है। वे साधकों को भ्रमित करते रहते हैं कि एक लाख हरिनाम करने की क्या ज़रूरत है। केवल सोलह माला ही करनी चाहियें और वे भी स्पष्ट मन सहित होनी चाहियें। वे संन्यासी साधकों को कहते हैं कि

गुरुदेव सभी को सोलह माला करने को कहते हैं इसलिये सोलह माला से अधिक करना व्यर्थ है। वे कहते हैं कि महाप्रभु ने जो एक लाख हरिनाम करने की बात कही है उसका अर्थ है–एक लक्ष यानि एक लक्ष्य। देखो! इस संन्यासी ने अर्थ का अनर्थ कर दिया। जो लोग एक लाख हरिनाम नहीं करते या करना नहीं चाहते या जिनका एक लाख हरिनाम होता ही नहीं, वे ही ऐसा कहते हैं। वे एक लाख हरिनाम करने वालों को भी भ्रमित करते रहते हैं। हरिनाम तो सदा ही करते रहना चाहिये। खाते–पीते, चलते–फिरते नाम करते रहना चाहिये।

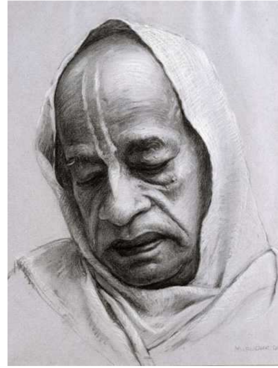
श्रीगुरुदेव सोलह माला से अधिक अर्थात् एक लाख हरिनाम करने को इसलिये नहीं कहते क्योंकि वे जानते हैं कि यह साधक अभी नया है, यदि मैं इसे एक लाख हरिनाम यानि 64 माला करने को कहूँगा और यदि ये न कर सका तो गुरु–आदेश पालन नहीं होने से इससे गुरु–आज्ञा का घोर अपराध बन जायेगा। अतः शुरु–शुरु में गुरुदेव अपने शिष्यों को सोलह माला ही प्रतिदिन करने को बोलते हैं। कुछ साल में गुरुदेव शिष्यों को एक लाख हरिनाम या चौंसठ माला करने का आदेश दे देते हैं। एक लाख या इससे कुछ अधिक हरिनाम करना सर्वोतम है। ऐसा करने से कुछ हरिनाम शुद्ध भी होने लगेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने अपने साथियों को बोला है कि जो लखपति होगा उसके घर पर आकर प्रसाद पाऊँगा और जो साधक लखपति नहीं होगा उसके घर पर आकर प्रसाद नहीं पाऊँगा। सभी को चिंता हो गई। सबने बोला ''प्रभु जी ! हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं हैं, इसलिये हमारे घर पर आपका प्रसाद पाने का सवाल ही नहीं उठता।''

तब महाप्रभु बोलने लगे, ''मेरा मतलब है कि जो हरिनाम की चौंसठ माला अर्थात् एक लाख हरिनाम नित्य करेगा, उसके घर पर आकर ही प्रसाद पाऊँगा।''

महाप्रभु जी का यह स्पष्ट आदेश है कि नित्य एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। महाप्रभु स्वयं भी दिन–रात माला पर हरिनाम किया करते थे। एक बार महाप्रभु जी ने नित्यानंद प्रभु जी से बोला कि मैं अकेला ही वृन्दावन जाऊँगा। जब नित्यानन्द प्रभु जी ने बोला कि आपके एक हाथ में हरिनाम की माला रहेगी, दूसरे हाथ में झोला रहेगा, फिर दंड कैसे पकड़ोगे। इसलिये आपको एक व्यक्ति को संग ले जाना पड़ेगा तब महाप्रभु जी बोले कि आपने ठीक कहा है। मैं एक व्यक्ति को संग ले जाऊँगा।

इससे स्पष्ट हो गया कि महाप्रभु भी हरदम माला जपा करते थे। महाप्रभु ने हम सबको यह शिक्षा दी है कि हर क्षण नाम जपना है, कभी भी नाम को छोड़ना नहीं है। धर्मशास्त्रों में भी नाम की महिमा के अनंत उदाहरण मौजूद हैं। देवर्षि नारद जी ने वाल्मीकि को सदा राम–नाम जपने को बोला, जिसे जपकर वे त्रिकालदर्शी हो गये। शिवजी ने सौ करोड़ रामायणों में से राम नाम चुना और अब पार्वती को संग में बिठाकर हर क्षण राम नाम जपते रहते हैं।



इस्कॉन के संस्थापकाचार्य त्रिदण्डि–स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदांत स्वामी जी महाराज ने वृन्दावन के श्रीराधा–दामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया। नारद पुराण में नारद जी कहते हैं कि कलियुग में भगवत्–प्राप्ति का एक मात्र साधन हरिनाम ही है। इसके बिना दूसरा कोई भी साधन भगवद्–प्राप्ति कराने वाला नहीं है।

"कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।"
"सत्युग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि, हरिनाम ते पावें लोग।"
"न कलि कर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।"

हरिनाम सदा जपना चाहिये–इसके अनेक उदाहरण हैं। इस विषय पर विस्तार से लिखने का समय नहीं है, ऐसा मेरे गुरुदेव जी बोल रहे हैं।

हरिभक्तिविलास में स्पष्ट लिखा है कि यदि जल्दी–जल्दी में नाम अधूरा हो, खंडित हो तो भी कोई नुकसान नहीं है। भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम लेने वाले पर प्रसन्न रहते हैं। शुरु–शुरु में नाम खंडित व अधूरा होता है पर बाद में शुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार कोई शिशु तोतली बोली में अधूरा बोलता है तो क्या उसके माँ–बाप उससे नाराज़ हो जाते हैं ? इसी प्रकार भगवान् तो हम सबके माँ–बाप हैं। वे हमसे कभी नाराज़ नहीं होते। वे तो प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और जब शिशु बड़ा हो जाता है तो अपने आप शुद्ध बोलने लगता है। ऐसे ही अभ्यास होने पर साधक भी शुद्ध हरिनाम करने लग जाता है।

भगवान् नामाभासी को भी नरक में या चौरासी लाख योनियों में नहीं भेजते यद्यपि नामाभासी नामापराधी है तो भी भगवान् उसे वैकुण्ठवास देने के बाद, संबंध–ज्ञान प्राप्त करने हेतु किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं। संबंध–ज्ञान ही भगवद्–प्राप्ति का अंतिम सोपान है, सीढ़ी है, साधन है। इसके बाद कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। इसके बाद जन्म–मरण नहीं होता। जिस प्रकार माँ–बाप कुपात्र बेटे को भी घर से बाहर नहीं निकालते बल्कि उसे सुधारने की कोशिश करते हैं उसी प्रकार नामापराधी को भी भगवान् अपने किसी भक्त के घर में जन्म देकर संबंध–ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देते हैं।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भगवान् नारायण के द्वारपाल जय–विजय हैं। उन्होंने सनकादिकों के चरणों में अपराध कर दिया तो उन्हें शापवश तीन जन्म तक राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा पर बाद में वे अपनी ठौर पर आ गये। भगवान् ने उन्हें नरक या चौरासी लाख योनियों में नहीं भेजा।

इस पूरे प्रसंग का निष्कर्ष यही निकलता है कि भगवान् का नाम लेने वाले का स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। उसका मंगल होने में देर हो सकती है पर अंधेर नहीं ।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।

नाम जपने वाले का दसों दिशाओं में मंगल ही मंगल होता है।

जिस प्रकार माता–पिता जब तक अपने पुत्र को अच्छी तरह पढ़ाई–लिखाई कराके, उच्चशिक्षा देकर, या पी–एच.डी. आदि करवाकर पास नहीं करवा लेते तब तक वे उस पर बेपरवाह होकर पैसा खर्च करते रहते हैं। कोई भी माँ–बाप यह नहीं चाहता कि उसका बेटा अपनी पढ़ाई बीच में ही अधूरी छोड़ दे। वे तो यही चाहते हैं कि उनका बेटा अपनी पढ़ाई पूरी करके, अपना रोज़गार प्राप्त करे। इसी प्रकार भगवान् हम सबके माँ–बाप हैं। सबके हितैषी हैं। जब तक नामाभासी संबंध–ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता तब तक भगवान् उसे कई युगों तक वैकुण्ठ में वास कराते हैं। संबंध–ज्ञान उपलब्ध कराने के लिये वे उसे अपने किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं जहाँ वह बचपन से भक्ति में लग जाता है और भक्ति में आगे बढ़ता रहता है। उसे भक्त माँ–बाप का सत्संग मिलता है और शुद्ध–हरिनाम करने का अवसर मिलता है।

जब शुद्ध नाम होने लगता है तो भगवान् के प्रति छटपटाहट, पुलक होना आरंभ हो जाता है। तब उसके मन के अनुसार भगवान् उसे संबंध–ज्ञान प्रदान कर देते हैं। वह सखा, भाई, पिता, जमाई या मंजरी आदि का संबंध ज्ञान प्रदान करते हैं। जब उसे संबंध ज्ञान हो गया फिर तो उसकी पी–एच.डी. की पढ़ाई पूरी हो गई। तब भगवान् उसे संबंध–ज्ञान की डिग्री, उसका सर्टीफिकेट दे देते हैं अर्थात् उसे गोलोकधाम में अपनी सेवा प्रदान कर देते हैं, नौकरी दे देते हैं। जिस प्रकार माँ–बाप ने अपने बेटे को पी–एच.डी. करवाई तो उसे राजकीय पद मिल जाता है। फिर उसे जीवन भर किसी बात का डर नहीं रहता। पूरी ज़िंदगी तक, कर्म करके, अपना व अपने माता–पिता व परिवार का पेट पालने तथा भरण–पोषण

करने की गारंटी हो गई। पूरी जिंदगी की मौज लग गई। पूरा जीवन सुखमय हो गया, ठीक उसी प्रकार संबंध–ज्ञान हो जाने पर वह सदा–सदा के लिये गोलोकधाम में आनंद लेता रहता है।

हर रोज़ प्रातःकाल संध्या करते समय भगवान् को बोलना है–

''हे मेरे प्राणनाथ! आप मेरी आत्मा हो। अतः मैं आपका ही हूँ। पर मैं अल्पज्ञ हूँ। अतः मेरे मन की ऐसी धारणा बना दो कि मुझे कण–कण में, जीवमात्र में आपका ही दर्शन हो। ''

-- हरि बोल --



10

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
श्रीकृष्णजन्माष्टमी
22.08.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा अष्टयाम विरह–अवस्था रहने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवत्–शरणागति से ऊपर कोई भक्ति–साधन नहीं

भगवत्–गीता का प्राण, निचोड़ तथा सार ही शरणागति है। सर्वग्रंथों का सार ही शरणागति है। शरणागति के अभाव में अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

प्रत्येक चर–अचर प्राणी को किसी न किसी की शरणागति लेनी ही पड़ती है। बिना शरणागति के किसी का कोई कर्म बन ही नहीं सकता। पेड़ को ज़मीन की, आत्मा को शरीर की, पुत्र को पिता की, विद्यार्थी को अध्यापक की, शिष्य को गुरुदेव जी की, राजकर्मचारी को तनख्वाह की, सेठ को मुनीम आदि की शरणागति लेनी ही पड़ेगी। इस प्रकार भक्त को भगवान् की शरणागति लेनी ही पड़ेगी। यदि भक्त शरणागति नहीं लेता तो माया उसे सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से दुःखी करती ही रहेगी। जब भगवत्–शरणागति पूर्ण रहती है तो निर्गुणवृत्ति भक्त–साधक में स्वतः ही सुगमता से हो जाती है। जब अन्तःकरण में निर्गुणवृत्ति उदय हो जाती है तो भगवत्–माया इसको हाथ जोड़े दूर खड़ी हो जाती है। तब माया भक्त की भक्ति उन्नति में साथ देती है।

अब प्रश्न उठ सकता है कि शरणागति होने का क्या रूप है ? क्या साधन है ? मन की वृत्ति क्या है ? साधक का जीवनयापन क्या है ?

मेरे श्रीगुरुदेव इस प्रश्न का उत्तर बता रहे हैं कि –

प्रत्येक हरिनाम साधक के लिये भगवत्–शरणागति परमावश्यक है। खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते, हरिनाम को पकड़े रहो तो पूरे धर्मग्रंथों का सार, निचोड़, साधक के अन्तःकरण में स्वयं ही उदित हो जायेगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं – श्रीगौर किशोरदास बाबा जी महाराज, जो बिल्कुल अनपढ़ थे।

सर्वग्रंथों का सार क्या है ? पूरी उम्र भर मानव जिस भाव में अपना जीवनयापन करता रहेगा, वही भाव अन्त समय में, मरते समय उदय होगा। जैसा भाव उदय होगा उसी भावानुसार अगली देह नर–मादा के संग से निर्मित हो जायेगी। यदि मानव मांसाहारी व शराबी होगा तो तमोगुणी स्वभाव के अनुसार नरक भोग करके चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरेगा जिसमें उसको कई चतुर्युगी का समय गुज़ारना पड़ेगा। तब भी, मानव का जन्म उसे उपलब्ध होगा–इसमें भी संदेह है। भगवद्–कृपा से ही सुदुर्लभ मानव शरीर मिलता है, संत भी श्रीहरि की कृपा से ही मिलते हैं।

"बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।"

श्रीहरि की कृपा भी जीव पर तभी होती है जब संयोगवश उसे संत–सेवा का अवसर मिल जाता है। ऐसा अवसर करोड़ों में से किसी एक को ही मिला करता है।

इसीलिये मेरे श्रीगुरुदेव ने सभी साधकों को सावधान करके बोला है कि रात को सोते समय, जब नींद आने को हो, तब भगवान् से प्रार्थना करनी है कि **"जब मेरे तन से प्राण निकलें तो आपका नाम मुख से उच्चारण करवाने की कृपा करें।"**

एक प्रकार से यही है–भगवत् शरणागति का साक्षात् स्वरूप। जब माला झोली लेकर तुलसी की माला से हरिनाम करने के लिये

बैठो तो भगवान् की ओर देखते रहो व यह प्रार्थना बोलते रहो तथा ऐसा महसूस करते रहो कि भगवान् नाम द्वारा मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। जब हरिनाम करते–करते यह धारणा बनती जायेगी तो कुछ समय बाद विरहावस्था प्रगट हो पड़ेगी। ऐसा तभी होगा यदि नामापराध से बचते रहोगे अन्यथा विरहावस्था प्रगट होने में देर भी लग सकती है। अपराध होते रहने से उक्त धारणा बन ही नहीं पायेगी। ऐसा मेरे गुरुदेव सभी साधकों को बता कर सावधान कर रहे हैं।

पूरी ज़िंदगी भर का भाव बदलने हेतु ही श्रीगुरुदेव ने कृपा–परवश होकर उक्त प्रार्थना का आयोजन सभी साधकों को बताया है कि रात में सोते वक्त ऐसा मार्मिक उच्चारण करवाने की भगवान् से प्रार्थना करनी है। **प्रार्थना, आत्मा का बल है और आत्मा का भोजन है–भगवान् को याद करते रहना।** भगवान् ने ही पूरी सृष्टि का निर्माण किया है। इसलिये सभी चर–अचर प्राणियों के अमर पिता भगवान् ही हैं। पिता को भूलने से ही जीवमात्र हर क्षण दुःखी रहता है। भगवत्–माया इसे दुःखों के कोल्हू में पीड़ती (पीसती) रहती है। जीव भगवान् को भूला बैठा है, यही इसका अज्ञान है।

जीव की भूल को यदि कोई सुधार सकता है तो वह है सच्चा साधु। पर साधु–संग मिलना बहुत मुश्किल है। भगवत्–कृपा बिना साधु–संग मिलता नहीं है और यदि कहीं साधु संग मिल भी जावे तो जीव सेवा करने से वंचित रहता है। कारण यह है कि उसे साधु–सेवा करने का ज्ञान ही नहीं है। आत्मा का भोजन साधु ही दे सकता है।

जीवमात्र सत, रज और तम के चंगुल में फँसा रहता है। उक्त स्वभाव अनुसार ही कर्म में प्रवृत्त रहता है और भगवान् को भूला रहता है। रात सोने में तथा दिन हाय–धाय में, इसी तरह पूरी उम्र गुज़र जाती है। जिस उद्देश्य के लिये मानव जन्म उपलब्ध हुआ था, मूर्खतावश, अज्ञानतावश, वह उस उद्देश्य को भूलकर अपना

जीवन खो देता है और फिर से नरक तथा चौरासी लाख योनियों में भटकने को चला जाता है। बाद में यह सुदुर्लभ मानव जन्म उपलब्ध होता है। इसलिये धर्मग्रंथ बोल रहे हैं कि करोड़ों में कोई एक विरला ही भगवान् के धाम में पहुँच पाता है, बाकी सबका जीवन तो व्यर्थ चला जाता है।

मन से बंधन तथा मन से ही स्वतंत्रता उपलब्ध होती है। मन ही मित्र तथा मन ही शत्रुवत् बर्ताव करता है। इस मन का विश्वास कभी मत करना। यह मन जीव को गहरे खड्डे में गिरा देता है इसलिये इसे कभी भी फुर्सत में मत रखो। मन को सदैव काम में लगाए रखना उत्तम है।

भगवत्–नाम में मन को लगाये रखो तो यह त्रिगुणों (सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) से दूर होता जायेगा और जीव को सद्गति की उपलब्धि हो जायेगी। भगवत्–नाम में, भगवद्–चिंतन में मन को नहीं लगाने से, यह संकल्प–विकल्प करके जीव को भ्रमित करता रहेगा। मन को हरिनाम की शरणागति परमावश्यक है। जब मन को नाम की शरणागति बन जायेगी तो वह नाम–संबंधी ही संकल्प–विकल्प करेगा और जीव का सुख विधान बन जायेगा।

मायिक (माया का) अहम् यदि भगवान् के प्रति बदल जाये तो सुगमता से परमानंद की उपलब्धि हो जाये। अहम् ही जीव का सबसे बड़ा दुश्मन है। इस अहम् को मारना बहुत ज़रूरी है। यह अहम् ही जीव को दुःखी कर रहा है। यदि यह अहम् भगवान् की ओर मुड़ जाये तो पूरा कर्म ही भगवान् के प्रति होगा तो यह शरणागति का ही प्रतीक होगा। जब सब कर्म ही भगवान् के प्रति होने लगेंगे तो सब पर तथा अपने आप पर दया करने की उसकी धारणा बन जायेगी। जीवमात्र में उसकी भगवत्–दृष्टि होने लगेगी। तब जीव–साधक किसी भी जीवमात्र का बुरा कर ही नहीं सकेगा। उसके हृदय में दया का भाव उदय हो जायेगा और वह सभी को अपना हितैषी अनुभव करने लगेगा। तब उसे यह सारा जगत्

सुखमय नज़र आने लगेगा। फिर दुःख का तो नामोनिशान ही नहीं रहेगा।

पर यह अवस्था हरिनाम–स्मरण से ही हो सकेगी। हरिनाम ही मन को स्वच्छ व निर्मल बनाता है। कलियुग में हरिनाम के बिना कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

किसी भी जीव को दुःख देना, सताना, भगवान् को ही सताने जैसा है। इसलिये उसका दण्ड–विधान स्वतः ही बन जाता है। प्रत्येक जीव का शरीर एक मकान ही है। शरीर रूपी इस मकान में कौन रहता है ? आत्मा ही इसमें रहती है। किसी को भी दुःखी करना आत्मा को ही दुःखी करना होता है। इसी कारण श्रीगुरुदेव ने बोला है कि भगवान् से प्रार्थना करो कि **"हे प्रभो! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि प्रत्येक प्राणी में, मैं आपको ही देखूं।"**

एक बात जो मार्मिक है, ध्यानपूर्वक सुनो। साधक नाम लेता है, यह तो बहुत उत्तम बात है पर नाम लेने के बाद हिंसा–प्रवृत्ति में संलग्न हो जाता है, जीवों को मारता है, दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाता है, पेड़–पौधों को काटता है, (यह भी हिंसा है), यह बात ठीक नहीं है। यह तो नाम के बल पर पाप करना हो गया अर्थात् यह सोचकर पाप करना कि अभी पाप कर लेते हैं, फिर हरिनाम करके उसे धो डालेंगे। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है। प्रत्येक जीवमात्र में आत्मा रूप से परमात्मा विराजित है। यदि साधक किसी को सताता है या दुःख देता है, वह भगवान् को ही सताना या दुःख देना है क्योंकि प्रत्येक जीवात्मा का रहने का स्थान तो शरीर ही होता है। शरीर तो भौतिक पदार्थों से रचित है, अतः जड़ है। जड़ को दुःख होने का प्रश्न ही नहीं होता है। आत्मा चेतन है। दुःख तो आत्मा रूपी परमात्मा को ही हुआ करता है। जो परमात्मा को सताता रहता है, वह सुखी कैसे रह सकता है ? जब इस शरीर से आत्मा निकल जाती है तो क्या इस शरीर से कुछ कर्म बन सकता है ? नहीं। अतः साधक को जीवमात्र में भगवान् को

विराजित देखकर अर्थात् अनुभव कर, उसकी भलाई में रत रहना चाहिये जैसा कि मेरे श्रीगुरुदेव ने बोला है कि कण–कण में तथा जीवमात्र में साधक भगवान् को ही विराजमान अनुभव करे तो ऐसा साधक भगवान् को उपलब्ध हो जायेगा।

जब साधक का ऐसा स्वभाव बन जायेगा तो उसका हर कर्म स्वतः ही (अपने आप ही) भगवान् के प्रति बन जायेगा। जब कण–कण में भगवान् को देखने की दृष्टि साधक की हो जायेगी तो कर्त्ता–भाव से कर्म कैसे हो सकेगा ? उसका हर कर्म भगवान् के प्रति ही हो जायेगा।

--हरि बोल--



11

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
अमावस्या
29.08.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि भभकने की करबद्ध प्रार्थना स्वीकार हो।

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !

फिर से मानव–जन्म उपलब्ध होना, सुदुर्लभ तथा वर्णनातीत है। भगवत् माया को अपने अनुकूल बनाना खंडे की धार (बहुत मुश्किल काम) है। जीवात्मा को काबू रखने हेतु माया के पास सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–तीन अमोघ हथियार हैं। इनको जीत पाना आत्मा के लिये असंभव है।

जीवात्मा जब से भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, तभी से दुःख के सागर में गोते खा रहा है तथा अनंत जन्मों से अर्थात् अनंत कल्पों से, अनंत युगों से भगवान् की गोद में नहीं पहुँच पाया है। यह जीवात्मा संसार की बीहड़ जंगल में भटकता रहता है। इस बीहड़ जंगल से बाहर निकलने का सबसे आसान रास्ता तथा सुख का रास्ता बताने वाला इसे आज तक नहीं मिल पाया। जहाँ सुख का नामोनिशान भी नहीं, उसी को सुख मानकर, मौज–मस्ती में अपना जीवन बिता रहा है। इसी को सब कुछ मान बैठा है। इस अज्ञान को ही परम सुख मान रहा है। कितनी मूर्खता है ? कैसी विडंबना है ?

सूकर (सूअर) आदमी का मल खाता है पर उसे ही अमृत समझ कर, अपनी मौज़ में रहता है। यह उसकी अज्ञानता है। इस

संसार में चारों ओर अज्ञान छा रहा है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्'–जीव ही जीव का भोजन है। जीव ही जीव को खाकर आनंद मना रहा है। जीव ही जीव का वैरी बन रहा है। दसों दिशाओं में भय का साम्राज्य है। कोई भी निर्भय नहीं है। सभी परतंत्रता (गुलामी) का जीवन काट रहे हैं। कहीं भी स्वतंत्रता का नामोनिशान नहीं है। कोई भी सुरक्षित नहीं है।

सभी की ऐसी अवस्था क्यों है ? ऐसी अवस्था इसलिये है क्योंकि जीव भगवान् को भूल गया है। अपने को जन्म देने वाले को भूल बैठा है। यदि जीव जन्म देने वाले को याद करता रहे तो सभी दुःखों का बखेड़ा ही समाप्त हो जाये। अब क्या हो रहा है ? पुत्र वाला भी सुखी नहीं है और जिसके पुत्र नहीं है, वह भी सुखी नहीं है। धनवान भी सुखी नहीं है। गरीब भी सुखी नहीं है। गृहस्थी भी सुखी नहीं है। संन्यासी भी सुखी नहीं है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर सुखी कौन है ? जो ब्रह्मलीन है, जिसका मन भगवत् चरण में लीन है, वही सुखी है। श्रीमद्भगवद् गीता का वचन है :–

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

(गीता 18.54)

अर्थात् जो दिव्य पद पर स्थित हो जाता है, वह तुरन्त परब्रह्म का अनुभव करता है और पूर्णतया प्रसन्न हो जाता है। वह न तो कभी शोक करता है न किसी वस्तु की कामना करता है। वह प्रत्येक जीव पर समभाव रखता है। उस अवस्था में वह मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है। पर जिसका मन सदा ही उधेड़ बुन में रहता है वह सुखी कैसे रह सकता है ? मन केवल भगवान् का चिंतन करने से ही स्थिर होता है। हमारे दुःख और सुख का कारण केवल मन ही है। मन ही सुख व दुःख की अनुभूति करता है। सब कुछ मन पर ही निर्भर है।

मन कौन है ? मन स्वयं भगवान् है। हमने अपने मन को माया के हाथों में सौंप रखा है अर्थात् हमारा मन सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के चंगुल में पड़ गया और दुःखी हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बोल रहे हैं कि इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। तूने जबरदस्ती इस पर अपना अधिकार जमा रखा है। बिना किसी अधिकार के मेरी वस्तु (मन) को अपना मान लेने के कारण तू व्यर्थ में दुःखी हो रहा है। यदि इस मन को, जोकि मेरा है, तू मुझे सौंप दे तो सब तरह से सुखी बन जाये। इस मन को जब तक तू मुझे नहीं देगा, दुःखी ही रहेगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 9.34)

''मुझ में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा को मुझ में नियुक्त करके, मेरे परायण होकर तू मुझे ही प्राप्त होगा।''

''भगवान् कहते हैं कि जिस प्रकार मैं ही मन हूँ उसी प्रकार हरिनाम भी मैं ही हूँ। इन दोनों को एक संग में रख ले तो तुझे सुखी होने में देर नहीं लगेगी। मेरा नाम और मेरा रूप एक ही वस्तु है इसमें कोई भेद नहीं है। श्रीहरिनाम स्मरण करने के साथ–साथ ही मेरा रूप प्रकट होता है। जब कोई साधक बड़ी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ, एकाग्रता के साथ मन से हरिनाम करता है तो मेरा नाम और मेरे रूप उसके हृदय में नृत्य करते हैं।

श्रीनाम स्मरिले रूप आईसे संगे।
रूप नाम भिन्न नय, नाचे नाना रंगे।।

(श्री हरिनाम चिन्तामणि)

कहने का मतलब हुआ कि तू मन से ही हरिनाम कर। मन से हरिनाम करने का अभिप्राय है कि मुख से हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जाप कर और कान से सुन। ऐसा करने मात्र से ही तू सुखी हो जायेगा।

भगवान् महावदान्य हैं। परम करुणामय हैं। परम दयालु हैं, पतित पावन हैं और परम स्वतंत्र हैं। भगवान् चाहते हैं कि किसी तरह मेरा पुत्र (जीवात्मा) मेरे पास वापस आ जाये। इसलिये भगवान् कहते हैं कि हे साधक! यदि तू अपना मन मुझे नहीं दे सकता या देने में असमर्थ है तो एक काम कर। मैं तुझे एक दूसरा उपाय बताता हूँ। तू भगवान् के किसी प्यारे, किसी नामनिष्ठ संत के साथ सांठ–गांठ कर ले। ऐसा नामनिष्ठ जिसने अपना मन भगवान् को सौंप रखा है जो भगवान् को ही अपना सब कुछ मानता है, उसका संग कर। उसका संग करने से, उसके शरीर से निकलने वाली तरंगें, उसके मुख से निकलने वाले हरिनाम को सुनने मात्र से तेरा जीवन बदल जायेगा और तुझ पर हरिनाम का रंग चढ़ जायेगा। तेरा जीवन सरल हो जायेगा और वह नामनिष्ठ तेरा मन भगवान् में लगा देगा। जब तेरा मन भगवान् में लग गया, जब तू भगवान् के पास पहुँच गया फिर तो सारा दुःख ही समाप्त हो जायेगा।

ध्यान से सुन और विचार कर कि यदि तूने भजन नहीं किया तो इस सुदुर्लभ मानव जीवन के बीत जाने के बाद तुझे क्या–क्या दुःख झेलना पड़ेगा। मैं तुझे बता रहा हूँ , इसे समझ और हरिनाम करने में लग जा।

यदि तू भगवान् का भजन नहीं करेगा तो मरने के बाद, सबसे पहले तो कई युगों तक तू अट्ठाईस नरक भोग करेगा। इन नरकों में जो दुःख और कष्ट तुझे उठाने पड़ेंगे, उनका कोई अन्त नहीं। उनको देखने मात्र से जीव बेहोश हो जाता है। श्रीमद्भागवतपुराण में इन नरकों का वर्णन मिलता है।

अनंतकोटि जन्मों तक, नरक भोगने के बाद, फिर तुम्हें चौरासी लाख योनियों में जीवन बिताना पड़ेगा। इन चौरासी लाख योनियों में तीस लाख योनियाँ तो पेड़–पौधों की हैं, बीस लाख योनियाँ

जलचरों (जल में रहने वाले जीव–जंतु) की हैं, बीस लाख योनियाँ नभचरों (आकाश में उड़ने वाले पक्षी इत्यादि) की हैं। दस लाख थलचरों (जमीन पर चलने वाले साँप इत्यादि) की हैं। मनुष्य की योनियाँ चार लाख तरह की हैं। इस प्रकार इन चौरासी लाख योनियों में जीवन बिताने में ही कई चतुर्युग (सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग) का समय लग जायेगा। इन चौरासी लाख योनियों के कष्ट को महसूस करते हुये मानव साधक को हरिनाम में लग जाना चाहिये। इतने नरकों का भोग भोगने के बाद तथा चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद, यह सुदुर्लभ मनुष्य का शरीर मिला है। यदि मनुष्य का शरीर पाकर अब भी भजन नहीं करता तो अगला मनुष्य शरीर कब मिलेगा ? इसमें संदेह है। इसकी कोई गारंटी नहीं है।

मेरे श्रीगुरुदेव गारंटी ले रहे हैं कि जो इस जन्म में हरिनाम करने में जुट जायेगा, उसका उद्धार होना निश्चित है पर नित्य प्रति एक लाख हरिनाम करना परम आवश्यक है। नामाभास होने पर भी वैकुण्ठ प्राप्ति अवश्य हो जायेगी। श्रीहरिनाम चिन्तामणि में लिखा है कि यदि एक कृष्ण नाम किसी के मुख से निकले अथवा कानों के रास्ते से किसी के अंदर प्रवेश करे तो चाहे शुद्ध वर्ण हों या अशुद्ध वर्ण, हरिनाम के प्रभाव से वह जीव भवसागर से पार हो जाता है किन्तु इसमें एक बात सुनिश्चित है कि नामाभास होने पर वास्तविक फल की प्राप्ति में विलंब होता है। नामाभास होने पर अन्य शुभ फल तो शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं लेकिन प्रेमधन की प्राप्ति में विलंब होता है। नामाभास के द्वारा जब हरिनाम करने वाले के सारे पाप और अनर्थ खत्म हो जाते हैं तब शुद्धनाम भक्त की जिह्वा पर नृत्य करता है। उसी समय शुद्धनाम के प्रभाव से जीव को प्रेमधन की प्राप्ति हो जाती है।

मेरे श्रीगुरुदेव ने सभी शास्त्रों का सार, निचोड़ तथा बीज केवल मात्र तीन बातों में बता दिया है। इन तीनों बातों को याद करके, नित्यप्रति भगवान् से प्रार्थना करना परमावश्यक है। लगातार

तीन महीने तक इस साधन को अपनाने से, अभ्यास करने से, इनको करने की आदत बन जायेगी और यही तीन बातें (तीन साधन) मरते समय साधक को दुःख सागर से पार कर देंगे। भवसागर से पार होने के लिये ये तीनों बातें सर्वोत्तम नाव है।

पहली बात हर रोज़ रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करनी है–**"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस के साथ, हे भगवान् आपका नाम उच्चारण हो जाये।"**

दूसरी बात प्रातःकाल जगते ही भगवान् से प्रार्थना करे–**"हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आज मेरे तन–मन से जो भी कर्म बने, वह सब आपके निमित्त ही हो। यदि मैं भूल जाऊँ तो हे भगवान् ! कृपा करके मुझे याद दिलाते रहें। मैं आपकी शरण में हूँ।**

तीसरी बात, नित्यप्रति आह्निक अर्थात् संध्या करते समय भगवान् से प्रार्थना करे–**"हे प्रभु! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो, मेरी दृष्टि ऐसी बना दो कि कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में, मैं आपको देखूँ अर्थात् आपको ही अनुभव करूँ।**

इन तीनों बातों को बोलने में केवलमात्र दो मिनट का समय लगता है। यदि साधक इन तीनों बातों को अपने जीवन में अपना ले, प्रतिदिन इन प्रार्थनाओं को भगवान् से कहे तो निश्चित रूप से उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति हो जायेगी। इन तीनों बातों के सिवाय भगवान् को प्राप्त करने का चौथा साधन और कोई नहीं है। ऐसा मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं।

ये तीनों बातें या साधन पूर्ण शरणागति के द्योतक हैं। इन प्रार्थनाओं को करने से साधक का मन एक क्षण भी भगवत् चरण के सिवाय कहीं नहीं जा सकता। इसलिये मेरे श्रीगुरुदेव बार–बार इन तीनों साधनों को बता रहे हैं और सभी को सावधान कर रहे हैं।

ऐसी भावना तथा ऐसी दृष्टि एक दिन में तो होगी नहीं। तीन महीने अभ्यास करने पर 50 प्रतिशत दृष्टि बन जायेगी और

लगातार करते रहने से भविष्य में पूर्ण सफलता मिल जायेगी। अब यह साधक पर निर्भर करता है कि वह भगवान् को कितना चाहता है। जिस अनुपात (Ratio) में वह भगवान् को चाहेगा, उसी अनुपात (Ratio) में, उसी अनुपात के समय में, उसे सफलता मिलती रहेगी। यदि साधक भगवान् को चाहेगा ही नहीं तो यह साधन उससे कभी नहीं हो सकेगा और यदि साधक भगवान् को चाहेगा तो इस साधन को करने में केवलमात्र दो मिनट का समय लगता है। ऐसा सरल, सुगम साधन मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके साधको को बता दिया है।

श्रीमद्भागवतपुराण में देवर्षि नारद जी बोल रहे हैं कि यह मन प्रधान लिंग शरीर ही जीव के जन्मादि का कारण है। अतएव कर्म बंधन से छुटकारा पाने हेतु, संपूर्ण विश्व को भगवत्–रूप देखते हुये, सब प्रकार से हरिभजन करना चाहिये। यही बात मेरे श्रीगुरुदेव भी कह रहे हैं कि जीवमात्र में भगवान् को देखो।

श्रीगुरुदेव जी बोल रहे हैं कि हमारे सुख और दुःख का कारण केवल मन है। मन सुधर जाये तो सारा जीवन सुधर जाये। वास्तव में मन जीव का है ही नहीं। यह तो भगवान् की संपत्ति है। अतः इस संपत्ति को, हरिनाम जपकर, कान से सुनकर, भगवान् को देना ही पड़ेगा। तब ही जीव का सुख का साधन बन सकता है। अन्य कोई रास्ता नहीं है। एकमात्र मन को ही बुद्धि द्वारा समझाना होगा। गीता में भगवान् ने अर्जुन को बोला है कि–

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि।

अर्थात् इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। मेरा मन लेकर जीव दुःखी हो रहा है। जब तक वह मेरा मन मुझे नहीं देगा तब तक वह हर क्षण दुःखी ही रहेगा। जब तक माया के तीनों गुण–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण जीव के साथ रहेंगे तब तक सूक्ष्म शरीर यातना लेने हेतु साथ में रहेगा। जब जीवन के संग में निर्गुणवृत्ति उदय हो जायेगी तो सूक्ष्म शरीर भी नष्ट हो जायेगा। जब सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जायेगा तो समस्त दुख का बखेड़ा भी समाप्त हो जायेगा। तब

भगवान् का संग उपलब्ध हो जायेगा। आवागमन भी छूट जायेगा तथा माया से पिंड भी छूट जायेगा। फिर पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हो जायेगी।

यह निर्गुणवृत्ति कब प्रकट होगी ? यह वृत्ति तब उपलब्ध होगी जब श्रीगुरुदेव के बताये हुये तीनों अमूल्य साधन जीव को उपलब्ध हो जायेंगे। ऐसा सरल, सुगम साधन मानव जन्म का अमूल्य धन है जो कोई भी इनको अपनायेगा, वह हर क्षण सुख पायेगा। श्रीहरिनाम को (हरे कृष्ण महामंत्र)–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

को मुख से उच्चारण करके, कान से सुनकर–ये तीनों साधन सफलतापूर्वक उपलब्ध हो जायेंगे। पर यह होगा तभी जब साधक मन से इसको चाहेंगे। जब संसारी आसक्ति निर्मूल हो जायेगी तभी निर्गुणधारा अन्तःकरण में प्रवाहित होगी। संसारी आसक्ति निर्मूल तब होगी जब साधक अपने जीवन में मेरे श्रीगुरुदेव द्वारा बताये गये, ये तीनों साधन (बातें) अपने जीवन में उतारेंगे। मेरे श्रीगुरुदेव आदेश दे रहे हैं कि इन तीनों साधनों को बार–बार बोलकर, मन को सावधान करते रहो ताकि ये तीनों बातें जीवन में अंकित हो जायें। निर्गुणधारा बहने पर ही यातनामय सूक्ष्म शरीर का अभाव हो सकेगा। जब तक सत, रज, तम–माया के ये तीन गुण अन्तःकरण में रमे रहेंगे तब तक निर्गुणधारा अन्तःकरण में प्रगट होगी ही नहीं।

हरिनाम ही एक ऐसी औषधि है जो कान के द्वारा सेवन की जायेगी। ये औषधि माया के इन तीनों गुणों (सत, रज, तथा तम) को निर्मूल करके ही रहेगी। इस औषधि को मन से सेवन करना परम आवश्यक है। मन से सेवन करने पर ही शीघ्र सफलता उपलब्ध होगी। यदि हरिनाम रूपी यह औषधि मन से सेवन नहीं की तो भी सफलता तो अवश्य मिलेगी परंतु उसमें समय लगेगा, देर होगी। इस कलियुग में हरिनाम के सिवाय दूसरा कोई साधन है ही नहीं। नारद जी ने घोषणा कर रखी हैः–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
क्लौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

इस कलियुग में केवल हरिनाम ही एकमात्र साधन है। भगवद् प्राप्ति का इसके सिवाय दूसरा कोई साधन नहीं है और इस साधन में न कोई खर्च होता है, न कहीं जाने की आवश्यकता है, न कोई समय की पाबंदी है, न कोई जगह की पाबंदी है, न शुद्ध–अशुद्ध का नियम, न शब्दों के शुद्धिकरण की आवश्यकता है। हरिनाम को मन से लेना है बस !

भगवान् तो साधक का केवल मात्र भाव देखते हैं। शब्द खंडित उच्चारण होने पर भी कोई नुकसान नहीं। भगवान् तो भावग्राही हैं, वे सब समझते हैं कि साधक क्या कर रहा है। जब कोई छोटा सा शिशु अपनी तोतली भाषा में कुछ बोलता है तब उसे न तो भाषा का ज्ञान होता है, न उच्चारण का और न ही वह अपनी बात को पूरी तरह कह पाता है, पर ममतामयी माँ उसके हाव–भाव से समझ जाती है कि वह क्या कह रहा है और क्या चाहता है। इसी प्रकार भगवान् तो संपूर्ण विश्व की करुणामयी, दयामयी, कृपामयी एवं वात्सल्यमयी माँ है। इस सृष्टि के जीवमात्र उसके पुत्र हैं। वह अपने सभी पुत्रों के मन की बात समझती है, जानती है। उस माँ को सच्चे मन से पुकार कर तो देखो ! कातर प्रार्थना करो तो सही ! वह दौड़ी चली आयेंगी और उसे बुलाने का एक ही साधन मेरे श्रीगुरुदेव ने बताया है।

While Chanting Harinam Sweetly, listen by ear.

मन से ही हरिनाम करो और कान से सुनो

मेरे गुरुदेव की इस वाणी को पढ़कर एक भक्त के हृदय में भगवद्–दर्शन की उत्कट इच्छा हुई। उसने मुझसे पूछा कि विरहाग्नि कैसे प्रकट होगी ? भगवान् कैसे मिलेंगे ? मैंने कहा– मुख से उच्चारण करके हरिनाम को कान से सुनो।

उस साधक ने जब बार–बार प्रयास किया और भगवान् से

कातर प्रार्थना की तब भगवान् ने दिनांक 25 मई, 2010 को स्वयं उन्हें आदेश दिया।

"मेरा नाम करो। कान से सुनो।"

ये बात शत प्रतिशत सत्य है। जब उस साधक ने मुझे बताया तो मैं भाव–विभोर हो गया। देखो! भगवान् आज भी अपने भक्तों की पुकार सुनते हैं, वे कहीं चले नहीं गये। जब भक्त बुलाता है, वे आते हैं। ये बात मैं इसलिये बता रहा हूँ ताकि आपकी हरिनाम में श्रद्धा एवं विश्वास बढ़ जाये। हरिनाम करने में मंगल ही मंगल है। नाम जपने वाले का अमंगल हो ही नहीं सकता।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहिं। जन्मकोटि अघ नासहुं तबहिं।।

सन्मुख का आशय है कि मेरा नाम ले, फिर उसके सुख का विस्तार हो जायेगा।

देखो ! इस कलियुग में राक्षस जन्म ले रहे हैं जो माँ–बाप को ही मार देते हैं। इसमें राक्षसों का कोई कसूर नहीं है। इसमें सारा दोष, सारा कसूर माँ–बाप का है क्योंकि माँ–बाप में भगवद् भक्ति का अभाव है अतः तमोगुण आचार–विचार होने से तमोगुणी संतान ही जन्म लेती है। ऐसी संतान दुष्ट–प्रकृति, दुष्ट स्वभाव की होती है और सभी को दुःख देती है।

शास्त्र मानव की आँखे खोल रहा है पर मानव है कि शास्त्र को मानता ही नहीं। यही कारण है कि आँखें बंद होने से, मानव के सभी कर्म अशुद्ध होते जा रहे हैं।

श्रीभागवत पुराण स्पष्ट रूप से बोल रहा है कि जब भगवान् की नाभि से कमल प्रकट हुआ तो उसमें से ब्रह्मा जी का अवतार हुआ। ब्रह्मा जी को भगवान् का आदेश हुआ कि सृष्टि पैदा करो। ब्रह्मा जी ने सृष्टि पैदा करना आरंभ किया तो अशुभ सृष्टि पैदा होने लगी। कामुक, क्रोधी, लोभी, गाली–गलौज देने वाली सृष्टि जन्म लेने लगी और ब्रह्मा जी को ही परेशान करने लगी। तब ब्रह्मा जी ने भगवान् से प्रार्थना की कि शुभ सृष्टि करना मेरी

सामर्थ्य से बाहर है तो भगवान् ने आदेश दिया कि तप करो अर्थात् मुझे याद करके अर्थात् मेरी भक्ति करके सृष्टि आरंभ करो। तब ब्रह्मा जी ने भगवान् की भक्ति की। भक्ति करने के बाद जब सृष्टि आरंभ करने लगे तो सनकादिक (चार कुमार) का अवतार हुआ जो सदा ही पाँच साल के बच्चे बने रहते हैं। वे सदा नंगे–धड़ंगे रहते हैं। उनके बाद दस संन्यासी प्रकट हुये जिनमें दसवें नारद जी हैं। जब ब्रह्मा जी ने भगवान् की भक्ति आरंभ की तब रुद्र देवता आदि की शुभ सृष्टि होना आरंभ हुआ।

आजकल हम सभी देख रहे हैं कि बच्चे माँ–बाप का कहना नहीं मानते। गलत मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। पर इनमें बच्चों का कोई भी दोष नहीं है। इसमें तो माँ–बाप का ही दोष है। जब तामसी वृत्ति से बीज डालता है तो तामसी बच्चा ही पैदा होगा। ऐसे माँ–बाप का उद्देश्य पुत्र पैदा करने का नहीं होता, केवल इन्द्रिय तर्पण का ही रहता है। इसलिये मुझे यह सब स्पष्ट रूप से कहना पड़ रहा है। लोग मेरे पास आकर मुझसे शिकायत करते रहते हैं कि मेरा बच्चा कहना नहीं मानता। बराबर ऊँचा बोलता है। सामने बोलता है। गलत मार्ग में चला गया है। दूषित खान–पान करता रहता है। तो मेरे पास इन सभी समस्याओं की एक ही औषधि है, एक ही उपाय है और वह है–''हरिनाम करो।'' करके देखो तो सही ! **एक लाख हरिनाम अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र की चौंसठ माला प्रतिदिन करने से जीवन ही बदल जायेगा।**

कई परिवार में पति–पत्नि का झगड़ा रहता है। इसका स्पष्ट कारण है कि लोग जन्म–पत्री का मिलान नहीं करते। अपनी इच्छानुसार थोड़ा सा प्यार हुआ और शादी कर ली। आपस में थोड़ा बहुत मनमुटाव होना एक साधारण बात है। यदि कौए की शादी कबूतरी से होगी तो आपस में प्यार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही है–कर्मशास्त्रों की अवहेलना। कर्मशास्त्र तो मानव को सुख का मार्ग दिखाता रहा है लेकिन मानव शास्त्र को मानता ही नहीं है। इसलिये दुःख सागर में पड़ा गोते खाता रहता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने ''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'' पुस्तक के दूसरे भाग में मनचाही संतान प्राप्त करने का लेख लिखवाया है। पाठक वहाँ देख सकते हैं। इस लेख के अनुसार चलने से साधु पैदा होंगे और प्रत्यक्ष हो भी रहे हैं। जो लोग मेरे श्रीगुरुदेव की आज्ञा अनुसार चल रहे हैं उनके साधु प्रकृति के बच्चे पैदा हो रहे हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। पाठकों की जानकारी के लिये लिख रहा हूँ कि चंडीगढ़ के हरिबल्लभ (हितेश) तथा गीता (पति–पत्नि) तथा वृन्दावन के कुणाल के साधु प्रकृति के बच्चे पैदा हुये हैं। दूसरे लोगों को भी ऐसे बच्चे पैदा हुये हैं जिनके स्वभाव से ही पता चल जाता है। ऐसे साधु स्वभाव के बच्चे ही माँ–बाप को सुख देते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में भी साधु स्वभाव की संतान होने के अनेकों उदाहरण मौजूद हैं। घर में भक्ति होने से बच्चे भी भक्त बनते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान् कह रहे हैं कि सभी भूत प्राणियों में मानव ही श्रेष्ठ है। मानव में भी ज्ञानी मानव श्रेष्ठ है। ब्रह्मा जी का पुत्र रुद्र श्रेष्ठ है। रुद्र से भी ब्रह्मा श्रेष्ठ है और ब्रह्मा से भी मैं श्रेष्ठ हूँ क्योंकि मैं ब्रह्मा का पिता हूँ। मेरे से भी श्रेष्ठ है मेरा भक्त क्योंकि भक्त मेरा प्राण स्वरूप है। मैं अपने भक्त को आराध्य देव मानता हूँ। जो भी मेरे भक्त का बुरा करता है, वह मुझसे सहन नहीं होता। बुरा करने वाले का मैं दुश्मन बन जाता हूँ। जो मेरे भक्त को भोजन कराके उसे तृप्त करता है उससे मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ। उसकी तृप्ति मेरी ही तृप्ति है। यज्ञ में आहुति देने से भी वह तृप्ति मुझे नहीं होती। भीलनी ने मुझे बेर खिलाये तथा विदुरानी ने मुझे केले के छिलके खिलाये। इन बेरों तथा छिलकों को खाकर मैं जितना तृप्त हुआ उतना तृप्त माँ–यशोदा मैया के हाथ से बिलोये माखन खाने से भी नहीं हुआ। मैं तो प्रेम खाता हूँ। प्रेम के अतिरिक्त मैं कुछ भी नहीं खाता।

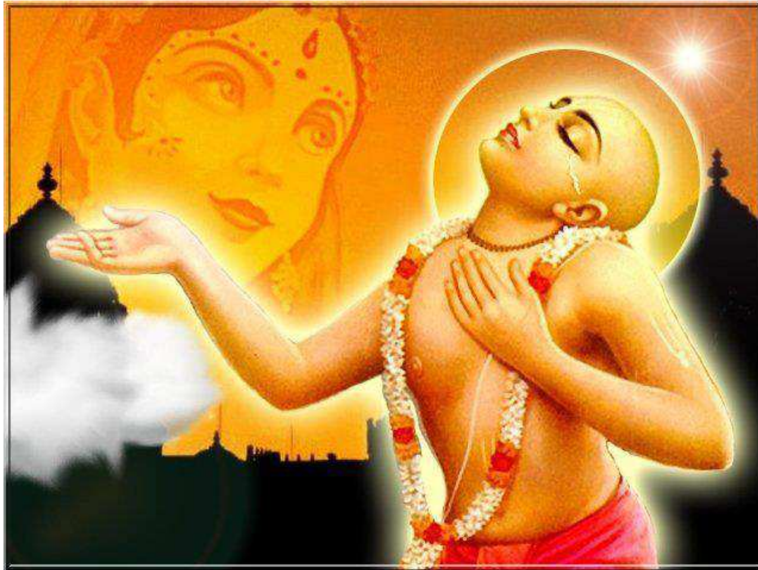
देखो ! भगवान् से तब ही प्रेम होगा जब संसारी दिखावटी प्रेम निर्मूल हो जायेगा। प्रेम का उद्गम कान से हरिनाम सुनकर

ही होगा। कलियुग का अन्य कोई मार्ग नहीं है। अतः साधक को चाहिये कि वह अपना पूरा जीवन हरिनाम में लगा दे। तभी से कल्प वृक्ष की छाया में बैठने का अवसर हाथ लग सकता है। इससे ज्यादा सुखदायक छाया कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकती। ऐसा मेरे श्रीगुरुदेव का अमृत वचन है। इसे अपनाना सर्वोत्तम होगा। भविष्य में ऐसा समय आने वाला है कि तब न कोई त्योहारों को मनायेगा, न मंदिरों में भगवान् को मानेगा। मन्दिर सरकार के हाथ में चले जायेंगे। किराये पर पुजारी रखे जायेंगे। फिर एक समय ऐसा भी आयेगा कि जो भगवान् को मानेगा उसे दंड दिया जायेगा। इसलिये जागो। चेत जाओ। अभी समय है–हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

-- *हरिबोल* --



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥



12

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
राधाष्टमी
05.09.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का सभी के चरणों में बारंबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उग्र रूप से होने की करबद्ध प्रार्थना।

सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से ही कर्म भोग तथा पुनर्जन्म भोगना

अनंतकोटि पिछले जन्मों के सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के स्वभावानुसार अगला जन्म चर–अचर प्राणियों में किसी का हुआ करता है। जिसे धर्मग्रंथ कारण शरीर भी कहते हैं। शरीर भी तीन प्रकार के होते हैं। स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर। सूक्ष्म शरीर ही अगले जन्म का हेतु है। जब निर्गुण वृत्ति का स्वभाव साधक का बन जाता है तो यह सूक्ष्म शरीर समाप्त हो जाता है। सूक्ष्म शरीर तो सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के संग में ही रहता है। निर्गुण वृत्ति का स्वभाव तो परमहंस तथा दिव्य महानुभावों महात्माओं का ही हुआ करता है। इनको दिव्य शरीर प्राप्त हो जाता है।

संसारी आसक्ति वाले साधकों का स्वभाव तो गुणों से ही लिप्त रहता है। गुणों से ही पुनर्जन्म होता रहता है। भगवान् के भक्त के संग से ही इन गुणों का अंत हो जाता है क्योंकि भक्त से ही सच्चा ज्ञान उपलब्ध होता है। भक्त के संग में सदैव भगवत् चर्चा होती ही रहती है। अतः साधक पर भक्त का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है। क्योंकि भक्त स्वयं आचरणशील है जो स्वयं आचरण में रहता है उसका प्रभाव चुम्बक की तरह पड़ता है। जैसे चुम्बक

द्वारा लोहा सुगमता से खिंच आता है उसी तरह संसार में फँसा साधक शुद्ध आचरण में रंग जाता है। वह भगवान् को उपलब्ध करके, आवागमन से जोकि जघन्य दुःख का कारण है, सदा के लिये छुट्टी पा लेता है। सूक्ष्म शरीर के बाद ही दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर पिछले जन्मों के शुभ–अशुभ संस्कारों का पुंज है जो केवल मात्र साधु संग से हट सकता है। साधु संग भी भगवत् कृपा से ही मिला करता है। भगवत् कृपा कब मानव पर होती है ? जब मानव हरिनाम नामाभास पूर्वक करने लग जाता है तथा उससे संत सेवा बन जाती है। तब ही तो शास्त्र घोषणा कर रहे हैं कि –

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

कलिकाल में भगवत् प्राप्ति का कोई दूसरा साधन है ही नहीं। जिसका अनुष्ठान करने में कोई कठिनाई है ही नहीं। किसी भी समय, कहीं भी बैठकर, बिना कुछ खर्च किये सुगमता व सरलता से हरिनाम कर सकते हैं। लेकिन मानव इतने मायाजाल में फँसा पड़ा है कि हरिनाम जपने में इसका जी घबराता है। कितना अज्ञान, कितनी मूर्खता इसमें समायी पड़ी है। यह दुःख को ही सुख मानकर अपना जीवन काट रहा है। इसको यह पता नहीं है कि अब भविष्य में इसे मानव जन्म नहीं प्राप्त होगा एवं यह दुःख सागर में गिर जायेगा। शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ मानवों में कोई एक ही अपना उद्धार करता है। मेरे श्रीगुरुदेव जी कितनी कृपा कर रहे हैं और बता रहे हैं कि कितनी सुगमता से मानव, भगवान् के धाम में सदैव सुख प्राप्त करने हेतु जा सकता है। फिर भी साधक व मानव श्रीगुरुदेव की कृपा की अवहेलना करता जा रहा है।

मानव का अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से गठित है। यह अहंकार ही बंधन का कारण है। इसमें मैं–मेरा भरा पड़ा है। यदि इससे तू–तेरा भाव बन जाये तो इसका सारा दुःख ही विलीन हो जावे। इसी कारण मेरे श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को बोला

है कि जो भी रात–दिन कर्म करो तो भगवान् का समझ कर, भगवान् के निमित्त ही किया करो तो निष्काम करने से कर्म भोग भोगना नहीं पड़ेगा। यह सकाम कर्म ही केवल मात्र दुःख का कारण होता है। यह भाव केवलमात्र हरिनाम जपते रहने से ही उदय हो जायेगा। हरिनाम को छोड़ा नहीं और माया के बंधन में पड़ा नहीं। हरिनाम करने से ही माया दूर रहेगी अन्य कोई साधन माया को दूर रखने का है ही नहीं। त्रिगुण ही पुनर्जन्म का कारण है।

मन भगवान् का है जो अन्तःकरण का हिस्सा है तथा अहंकार भी भगवान् को देना है। इन दोनों को भगवान् को सौंपने से बुद्धि तथा चित्त स्वतः ही सुगमता से भगवान् की ओर मुड़ जायेंगे। जब पूरा अन्तःकरण ही भगवान् की ओर मुड़ जायेगा, जब शरीर का महत्वशील हिस्सा ही भगवान् का बन गया तो फिर बचा ही क्या? इस मानव जन्म का सार ही सफल हो गया।

इसमें महत्त्वशील चर्चा यह है कि साधक अपने अन्तःकरण से, हृदय से, भगवान् को ही उपलब्ध करना चाहेगा तभी पूरी सफलता हाथ में आ सकती है वरना तो श्रम ही हाथ में आयेगा।

आजकल कलियुग में दुष्ट स्वभाव के बच्चे क्यों जन्म ले रहे हैं? इसका खास कारण है कि मानव का स्वभाव ही तामसी गुण का है। इनको संतान की आवश्यकता तो नहीं है इनको तो मन की तृप्ति होनी चाहिये। क्योंकि मन ही कामुक स्वभाव का बना हुआ है इसलिये जो बच्चा होगा, तामसी स्वभाव का ही होगा। जो माँ–बाप का कहना नहीं मानेगा, खान–पान दूषित करेगा। कर्म भी अशांति करने वाला करेगा। पड़ोसी को सतायेगा। निर्दयी स्वभाव का होगा। लोभी होगा तो माँ–बाप को पैसे हेतु मार भी देगा। फिर माँ–बाप शिकायत करते हैं कि मेरा बच्चा मेरा कहना नहीं मानता। तो मैं इनको यही बोलता हूँ कि हरिनाम के आश्रित हो जावो, हरिनाम ही इसको सुधार सकता है, दूसरा उपाय है ही नहीं। सत्संग से कौन नहीं सुधरा? पशु–पक्षी तक सत्संग से सुधर जाते

हैं। गलती बच्चे की नहीं है, गलती मानव की है। मानव उचित समय नहीं देखते हैं। जब चाहे तब ही इन्द्री तर्पण करते रहते हैं। शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन करना तथा दुःख–कष्ट मोल लेना अवश्यम्भावी है ही। इसका उदाहरण शास्त्र बोल रहा है। दिति कश्यप जी का उदाहरण मौजूद है जिनकी संतान हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष ने जन्म लिया। उचित समय जो नहीं देखता उसे दुःख का भोग भोगना ही पड़ेगा।

मेरे श्रीगुरुदेव कितनी बार साधकों की आँखें खोलते रहते हैं परन्तु फिर भी साधकों की आँखें बंद होती रहती हैं जो इनका दुर्भाग्य ही है। धर्मशास्त्र भगवान् के मुखारविंद के साँस से प्रकट हुये हैं जो मानव के सुख के लिये ही बनाये गये हैं। शास्त्र मर्यादा जो तोड़ेगा वह कभी स्वप्न में भी सुख पा नहीं सकता।

"बोये बीज बबूल के, तो आम कहाँ से खाय" यह सच्ची कहावत है। बो दिया जौ और चाहें कि चावल मिल जाये। सही रास्ते चलो तो कहीं पर गिरने का डर नहीं होगा।

हनुमान जी राम जी को बोल रहे हैं :–

कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई।।

जब हरिनाम स्मरण कम होने लगेगा तो समझना होगा कि अब मनुष्य में कुछ न कुछ दुःख आने वाला है एवं जब हरिनाम स्मरण अधिक संख्या में होने लगेगा तो समझना होगा कि अब सुख के दिन आने वाले हैं। क्योंकि मानव का संबंध केवल भगवान से है न कि माया से जिसका जिससे संबंध होगा उसी के संग से आनंदवर्धन होगा एवं जिसका जिससे संबंध ही नहीं होगा उसके संग से आनंदवर्धन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कबूतर कभी कौवे के पास जाकर नहीं बैठता। यदि कौवे के पास बैठेगा तो वहाँ उसका मन सुखी नहीं रहेगा क्योंकि स्वभाव में रात–दिन का अंतर है। अतः कहने का मतलब यही है कि आत्मा का संबंध परमात्मा

से है जब आत्मा परमात्मा के पास में बैठेगा तो सुखी बन जायेगा एवं जब माया के पास आत्मा बैठेगा तो दुःखी रहेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है ! संसार में हम देखते हैं कि शराबी, शराबी के पास बैठता है। सत्संगी साधु के पास बैठता है। तो सुखी कौन है ? यह सभी जानते हैं। यदि मानव को अतुलित परमानंद की उपलब्धि करनी हो तो साधु का संग करे। ग्राम चर्चा से दूर रहे। हरिनाम की शरण में अपना जीवनयापन करता रहे तो दुःख तो कोसों दूर भाग जायेगा। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ रात अर्थात् अँधेरा कैसे रह सकता है? इनकी आपस में कभी बनती ही नहीं है। सुख–दुख आपस में दुश्मन हैं। जहाँ सुख है वहाँ दुःख नहीं आ सकता एवं जहाँ दुःख है वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह पक्का विधान है।

भगवत्–नाम की शरणागति उपलब्ध हो जाये तो यह माया का प्रभाव, सत–रज–तम गुण समाप्त हो जाये और निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में उदय हो जाये। मन से सच्ची शरणागति होती नहीं। अतः दुःख का साम्राज्य छाया रहता है। भगवत् नाम के पास दुःख आ ही नहीं सकता। भगवत् नाम कैसे स्मरण होना चाहिये उसके लिये श्रीगुरुदेव जपने का तरीका बता रहे हैं कि **जब माला हाथ में आवे तथा नाम करना आरंभ हो तो शरीर में एक तरंग व्याप्त होने लगे। इस तरंग से संसार विलीन होता हुआ चला जाता है।** यह है सुचारु रूप से, सत्य रूप में, हरिनाम जाप। इससे प्रेम उदय होकर विरहावस्था प्रगट हो पड़ती है। सती पतिव्रता का उदाहरण दिया जाता है। उसका सारा कर्म ही पति की सेवा के लिये होता है। इसी प्रकार भक्त का कर्म केवल मात्र, अपने इष्टदेव भगवान् के लिये ही होता है। अन्य के लिये भक्त को अवकाश ही कहाँ मिल सकता है ? उसका तो सारा समय भगवान् के लिये ही हो गया।

सत्संग प्राप्त होने का लाभ अकथनीय है। शास्त्र बोल रहा है–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक संग
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

एक समय की बात है कि विश्वामित्र व वशिष्ठ जी में आपस में बहस हो गई। विश्वामित्र कहने लगे कि तपस्या सबसे बड़ी होती है क्योंकि विश्वामित्र जी ने हज़ारों साल तपस्या की थी और वशिष्ठ जी ने केवल सत्संग की भक्ति ही की थी। दोनों में कुछ झगड़े की संभावना बन गई। किसी साधु ने कहा कि आप दोनों क्यों झगड़ते हो ? किसी बड़े साधु के पास जाकर इसका निर्णय करवा लो। दोनों राजी हो गये कि सबसे बड़ा निर्णायक तो विष्णु भगवान् ही हैं, उनके पास जाकर यह निर्णय ले सकते हैं। बीच में शिवजी मिल गये। शिवजी से पूछने लगे तो शिवजी ने टाल दिया। शिवजी ने सोचा एक का पक्ष लेंगे तो दूसरा नाराज हो जायेगा। पार्वती साथ में ही थी। पार्वती ने ही शिवजी से पूछा–''आपने उनको तो नहीं बताया, मुझको ही बता दें कि तपस्या बड़ी है या सत्संग बड़ा है ? शिवजी बोले–

गिरिजा सन्त समागम सम, न लाभ कछु आन।
बिन हरि कृपा न होय, गावहिं वेद पुरान।।

''हे सती! सत्संग ही बड़ा है, जो संत के पास ही मिल सकता है।''

शिवजी ने इसका निर्णय नहीं दिया तो दोनों संत ब्रह्मा, विष्णु के पास पहुँचे और उक्त प्रश्न किया तो विष्णु जी ने भी इस कारण निर्णय नहीं दिया कि दोनों ही मेरे भक्त हैं मैं किसका पक्ष लूँ । अतः टाल दिया और बोले कि आप दोनों शेषनाग के पास चले जाओ, वहाँ आपका ठीक निर्णय हो जायेगा।

अब तो दोनो पाताल के नीचे शेषनाग के पास चले गये और अपना प्रश्न उनके सामने रखा। शेषनाग जी ने सोचा कि मैं किसका पक्ष लूँ ? एक का पक्ष लूँगा तो दूसरा नाराज हो जायेगा। अतः मन में सोचा जवाब देना तो परमावश्यक है तो विश्वामित्र जी

से बोले कि मेरे सिर पर पृथ्वी का भार अर्थात् बोझ रखा है, आप अपनी तपस्या पृथ्वी माँ को दे दो तो भार हल्का होने से मैं जवाब दे सकूँगा। विश्वामित्र ने दस हजार वर्ष की तपस्या का फल पृथ्वी माँ को दे दिया। शेषनाग ने कहा कि आप पृथ्वी को अपने करकमलों से पकड़े रहो तो मैं जवाब दे दूँ। जब विश्वामित्र जी ने भार सँभाला तो पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्र जी बोले यह पृथ्वी तो नीचे खिसक रही है तो शेषनाग जी बोले आपको अपनी पूरी तपस्या पृथ्वी को देनी पड़ेगी फिर पृथ्वी नीचे नहीं खिसकेगी। विश्वामित्र जी ने फिर पूरी तपस्या अर्पण कर दी तो भी पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्र जी बोले आपको जवाब देना ही होगा। शेषनाग जी बोले अब तो वशिष्ठ जी आप ही अपने सत्संग का फल पृथ्वी को दे दो। तब वशिष्ठ जी बोले–

"हे पृथ्वी माता ! यदि सत्संग का लवमात्र भी कोई प्रभाव हो तो अधर में रह जा।"

शेषनाग जी ने अपना फन नीचा कर लिया तो पृथ्वी अधर में ही रुक गई। अब तो विश्वामित्र जी पानी–पानी हो गये पर वशिष्ठ जी को कोई अहंकार नहीं हुआ। वशिष्ठ जी विश्वामित्र के चरणों में गिर गये कि मेरी वजह से आपको दुःख हुआ तथा शेषनाग जी के चरणों में लिपट कर कहने लगे कि यह सब भगवत् कृपा का ही फल है। इसमें मेरा क्या है ? भगवान् को भी सत्संग ही प्यारा है। सत्संग भक्ति का ही अंग है।

एक अलौकिक बात है कि एक पोता अपने दादा अर्थात् बाबा से बोला कि सत्संग का क्या प्रभाव होता है। दादा बोला "अमुक जगह चला जा, वहाँ बड़ वट का पेड़ है, उसमें एक कीड़ा रहता है, वही सत्संग का प्रभाव बता सकेगा।"

पोता बोला–आप तो बताते नहीं, फिर कीड़ा कैसे बता सकेगा ?

बाबा बोला–"वही बतायेगा।"

पोता पूछता–पूछता सही जगह पर पहुँच गया और बड़ में जो

कीड़ा बैठा था, उससे पूछने लगा कि कीड़े महाराज जी, सत्संग का क्या प्रभाव होता है ? इतना पूछते ही कीड़ा मर गया।

पोता बाबा के पास आकर बोला बाबा–''जब मैं कीड़े से पूछने लगा तो कीड़ा मर गया। आप ही क्यों नहीं बता देते ?''

तब बाबा बोला–''अमुक जगह पर एक ब्राह्मण की गाय ब्याही है, उसके बछड़ा हुआ है अभी दो दिन का ही हुआ है। वह सत्संग का प्रभाव बता देगा।''

अब तो पोता पूछता–पूछता वहाँ भी गया और बछड़े से पूछने लगा कि सत्संग का प्रभाव कैसा होता है। इतना पूछते ही वह बछड़ा भी मर गया। अब तो वह डर गया कि ब्राह्मण मुझे मारेगा तो बिना बताये खिसक गया। ब्राह्मण उसे जानता नहीं था कि कहाँ रहता है ?

फिर बाबा के पास आकर पूरी घटना बता दी कि वह बछड़ा तो पूछते ही मर गया तो बाबा बोला कि अबकी बार अमुक राजा के 20 साल बाद पुत्र हुआ है। वह तुझे सत्संग का प्रभाव बता देगा।

पोता बोला–''आप भी कैसी बात करते हो। राजा का बेटा भी मर गया तो मुझे फांसी लग जायेगी। मैं तो वहाँ नहीं जाता।''

बाबा बोला–''तुझे यदि सत्संग का प्रभाव पूछना हो तो वहाँ जाना ही पड़ेगा।''

पोते को सत्संग का प्रभाव पूछना था, उसे पूछे बिना उसका खाना–पीना सोना हराम हो गया था। अतः उसने सोचा–''जैसा भगवान् चाहेगा वैसा ही होगा।''

अब तो वह वहाँ भी पहुँच गया। वहाँ तो पहरेदार ही पहरेदार थे। अतः उसने साधु का भेष बना लिया कि साधु को तो कोई रोकेगा नहीं। पहरेदारों से बोला मैं राजा के पुत्र से मिलना चाहता हूँ। उसे आशीर्वाद देना है कि वह चिरंजीव रहे। पहरेदारों ने सोचा

हमारे राजा के 20 साल बाद बच्चा हुआ है, यह साधु है इससे बुरा तो हो नहीं सकता। अतः इसे जाने देने में ही भलाई है। तो पहरेदारों ने कहा कि तुम जा सकते हो। जब वह महल में गया तो साधु भेष देखकर सबने मिलने की आज्ञा दे दी।

बच्चा शैय्या पर सो रहा था। साधु भेष में पोता डर रहा था कि पूछते ही यह मर जाएगा तो मेरी तो मार–मार कर बुरी हालत कर देंगे। बेहोश कर देंगे। लेकिन हिम्मत करके बच्चे से पूछा कि सत्संग का क्या प्रभाव है अब तो बच्चा बैठ गया और कहने लगा–''सत्संग की वजह से तो मैं राजा का पुत्र हो गया। प्रथम बार तुमने सत्संग के बारे में पूछा तब मैं कीड़ा था तो मैं कीड़े की योनि से विदा हो गया। दुबारा मैं बछड़ा बना। तुमने पूछा तो मैंने बछड़े की योनि से छुट्टी पा ली। अब मैंने राजा का लड़का होकर जन्म लिया है। यही है सत्संग की करामात ! जो मैं इतने बड़े राज्य का मालिक बनूँगा। सत्संग ही सुख का भंडार है। सत्संग बिना सब जीवन बेकार है।'' तब पोते ने अपने बाबा से सारी कहानी बता दी तो बाबा भी खुश हो गया। सत्संग से क्या उपलब्ध नहीं होता ? सत्संग से ऊँचा कुछ नहीं है।

मन एकाग्रता की एक घटिया किस्म की वार्ता है लेकिन सारगर्भित बहुत प्रभावशाली है एवं महत्त्वशील है। ध्यान से सुनो–एक सुंदरी अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। उसका मन उस तरफ इतना तल्लीन था कि उसको अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। रास्ते में एक मौलवी अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था अर्थात् नमाज पढ़ रहा था। वह सुंदरी भागी–भागी जा रही थी और उस मौलवी पर चढ़ गई और शीघ्रता से चली गई। उस मौलवी ने सोचा–''कैसी अंधी औरत है कि उसे मैं नहीं दिखा ! क्या वह अंधी है ?''

कामान्ध की दशा ऐसी ही होती है। मौलवी ने सोचा कि वह वापस तो इसी रास्ते से आयेगी क्योंकि दूसरा रास्ता है ही नहीं। मौलवी उसकी बाट में बैठा रहा। जब वह सुंदरी वापस आई तो

मौलवी बोला –''तू मेरे ऊपर क्यों चढ़ गई ? क्या तुझे मैं दिखा नहीं ? क्या तू अंधी है ?''

सुंदरी बोली–''जब तू अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था तो तुझे कैसे महसूस हुआ कि मैं तुझ पर चढ़ गई। तेरी इबादत करना ढोंग है। तेरा परवरदिगार तुझे क्या देखेगा ? ध्यानपूर्वक सुन ! मैं अपने प्यार से मिलने जा रही थी। मेरा मन इतना तल्लीन था कि रास्ते में क्या–क्या है, मेरा उस ओर कहीं ध्यान ही नहीं था। पर तेरी इबादत करना धूल में मिल गया।''

अब तो मौलवी के ज्ञान नेत्र खुल गये कि सुंदरी बात तो ठीक ही कह रही है। मेरी इबादत करना फिजूल ही है जबकि मेरा मन तल्लीन ही नहीं हो पाया। अब मैं तल्लीनता से परवरदिगार की इबादत करूँगा। उस मौलवी को एक वेश्या ने ज्ञान नेत्र दे दिये। कहने का भाव है कि शिक्षा तो निम्न श्रेणी से भी मिल जाती है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी गारंटी ले रहे हैं कि जो अनपढ़ हो, गँवार हो, जिसको कोई सहारा न हो, जिसमें कोई गुण भी नहीं हो, जिसको जगत् ने त्याग दिया हो, वह यदि मेरे कहे अनुसार, नित्य ही शरणागति के तीन साधन अपने जीवन में अपनाता रहे तो ऐसे साधक को, ऐसी कोई शक्ति नहीं जो वैकुण्ठ धाम जाने से रोक सके। स्वयं परमात्मा भी रोक नहीं सकते। परमात्मा से बड़ा तो अनन्तकोटि ब्रह्मांडों में कोई है भी नहीं।

इन तीनों साधनों में दो मिनट से अधिक का समय लगने वाला नहीं हैं, फिर से मैं संक्षेप में वर्णन कर देता हूँ।

पहला साधन–''अंतिम सांस में भगवान् का उच्चारण हो जाये''–जब रात में निद्रा आने को हो, तब बोलना है।

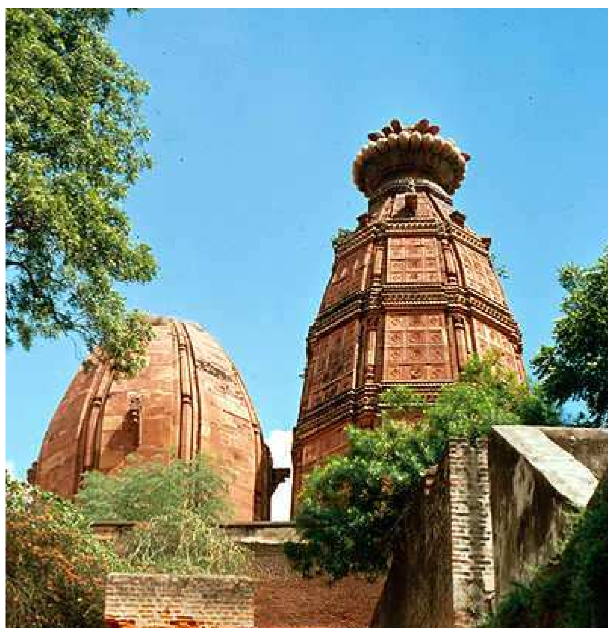
दूसरा साधन–जब ब्रह्ममुहूर्त में नींद खुले, तब बोलना है–''इसी क्षण से भगवत् का काम समझ कर, भगवान् के लिये ही संपूर्ण कर्म हो।''

तीसरा साधन– जब आनिक अर्थात् प्रातः की संध्या करने बैठो तब बोलना है–''प्रत्येक कण–कण में, जीवमात्र में, भगवत् दर्शन का भाव बन जावे।''

ऐसा अभ्यास करते रहने से तीन माह में 50 प्रतिशत भावना स्थिर हो जायेगी। बाद में तो पूर्ण शरणागति का भाव बन ही जायेगा। कितने थोड़े समय में पूर्णशरणागति उपलब्ध हो जायेगी। लेकिन उसको ही सफलता उपलब्ध हो सकेगी जो वैकुण्ठ जाने को तैयार होगा।

– हरि बोल –

प्राचीन मन्दिर ठाकुर श्री मदनमोहन देव जी, वृन्दावन



13

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण समाज,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार हाथ जोड़ कर प्रार्थना स्वीकार हो।

दूषित अन्न पाने का मन पर गहरा प्रभाव निश्चित

गिरिराज आश्रित कृष्णदास बाबा सिद्ध संतों की महिमा में चरम सीमा में गिने जाते हैं। कई लोग शास्त्रार्थ करने हेतु आये और अपना सा मुँह लेकर चले गये। हर समय हरिनाम करना तथा अन्य को हरिनाम करने की प्रेरणा देना उनका सर्वोतम कर्म था। वे सदा ''हा राधा ! हा राधा !'' पुकारा करते थे। दिन में एक बार केवल मात्र, दो घर से मधुकरी लाकर, भगवान् को भोग लगाकर पा लिया करते थे।

न जाने दिन–रात में कितनी बार ''हा राधा ! हा राधा ! हा श्यामसुन्दर ! हा श्यामसुन्दर !'' पुकारा करते थे और रोया करते थे। कोई बोलता आप इतने क्यों रोते हो तो कहते कि तुमको इससे क्या लेना–देना ? जब कोई पीछे पड़ ही जाता तो कहने लगते कि ये दोनों मुझे रुलाते रहते हैं।

''तो आप उनसे क्यों न बोलो कि तुमको मेरे रुलाने में क्या मज़ा आता है ?'' तो बाबा बोलते–''मैं कहता हूँ तो जवाब देते हैं कि हमें भी आपके साथ रोने में मज़ा आता है। हमको रुलाने वाला कोई मिलता ही नहीं है।'' तब ये दोनों बोलते हैं कि बाबा इस रोने में कितना मज़ा है, क्या तुमको पता नहीं है ? तो बाबा बोलते हैं कि पता है।

एक दिन एक वेश्या शाम को उनके पास आई और बोली कि मेरा जीवन तो बेकार ही चला गया। मैं क्या करूँ बाबा ? बाबा बोले–''मेरे पास बैठकर हरिनाम किया कर।''

''बाबा, मैं वेश्या हूँ।''

बाबा बोला–''तू वेश्या है तो मैं क्या करूँ? तुझे यदि अगला जीवन सुधारना हो तो मेरे पास बैठकर हरिनाम किया कर।''

वेश्या बोली–''बाबा तू बदनाम हो जायेगा।''

बाबा बोला–''मैं बदनाम हो जाऊँगा तो मेरा क्या बिगड़ जायेगा। तुझे हरिनाम मेरे साथ बैठकर करना हो तो कर, वरना मेरा माथा मत खा।''

वेश्या ने सोचा ऐसा संत तो मैंने अब तक नहीं देखा, न सुना ! इसको किसी बात की चिन्ता ही नहीं है। इस बाबा से मेरा कल्याण हो सकता है। अब तो वह रोज़ रात–दिन बाबा के पास रहकर हरिनाम करने लगी। दुनिया में चर्चा होने लगी कि बाबा इतना सिद्ध था परन्तु माया ने किसको नहीं कुचला ! अब तो किसी का भी बाबा के पास आना–जाना न हुआ।

एक दिन बाबा वेश्या से बोला कि तुम्हारे आने से मेरा भजन कितनी तरक्की पर चला गया। लोग–बाग आकर मेरा माथा खाते थे और भजन के लिये तो कोई पूछता नहीं था। अपना रोना रोकर मुझे सुनाते थे। इससे तो पिंड छूटा। अब कितने आनंद से हमारा तुम्हारा हरिनाम सुचारु रूप से हो रहा है।

वेश्या बोली–''हाँ बाबा ! मेरा भी उद्धार अब तो निश्चित हो ही जायेगा।''

बाबा बोला–''क्यों नहीं।''

तब वेश्या बोली–''मेरे पास लोगों का लाखों रुपया कमाया हुआ है, आपको देना चाहती हूँ।''

बाबा बोला–''ऐसा कभी मत सोचना ! देना हो तो भगवान् के मन्दिर में चढ़ा सकती हो।''

''गुसाईं जी मेरा पैसा ले लेंगे क्या ?''

''जाकर पूछ लो क्या कहते हैं।''

दूसरे दिन वेश्या मन्दिर में गई और गुसाईं जी से प्रार्थना की कि मेरे पास बहुत पैसा है, आप ठाकुर जी के लिये ले लो।

गुसाईंजी बोले–''तू वेश्या है, तेरा पैसा ठाकुर नहीं ले सकता।'' फिर क्या था ! इतना सुनते ही वह ठाकुर जी के सामने चिल्लाने लगी–''आपने मुझे वेश्या का कर्म सौंपा। मेरा इसमें क्या दोष है ? अब मैंने जो कमाई की है, आपको लेनी पड़ेगी। नहीं लोगे तो दस–पांच दिनों में तुम्हारे चरणों में प्राण दे दूँगी।'' बोलो, क्या कहते हो ?''

गुसाईं भी उसका उलाहना सुनकर हैरान हो रहा था कि यह कैसी वेश्या है।

''गणिका भी वेश्या ही थी उसको आपने कैसे अपनाया ? और मैं भी वेश्या ही हूँ। यह भेदभाव क्यों ? तुम कैसे भगवान् हो ? तुम तो पत्थर के बने बैठे हो। दर्शकों को धोखा दे रहे हो। इस प्रकार वह ज़ोर–ज़ोर से चिल्ला–चिल्ला कर, दहाड़ मार कर रोने लगी तो गुसाईं क्या देखता है कि ठाकुर जी की, गले की माला खिसक कर सिंहासन पर गिर गई। गुसाईं समझ गया कि वेश्या की प्रार्थना ठाकुर ने सुन ली है लेकिन मैं तो तब समझूँगा ठाकुर ! जब आप मुझे स्वप्न में आदेश दोगे ! तो मैं वेश्या का धन ले सकता हूँ। उस धन से बार–बार सन्तों का भंडारा करता रहूँगा।

अब तो ठाकुर जी भी फँस गये कि वेश्या तो प्राण त्याग देगी ! अब तो गुसाईं जी को स्वप्न देना ही पड़ेगा। रात में ठाकुर जी ने गुसाईं को स्वप्न दिया कि जैसा वेश्या बोले, निःसंकोच होकर उसकी बात मान लेना, यह मेरा आदेश है।

अब तो गुसाईं को चिंता हो गई और वेश्या को बुलाने हेतु पुजारी को भेजा। पुजारी बोला कि मैं वेश्या के दरवाजे पर कैसे जा सकता हूँ ? उसका दरवाजा तो बाज़ार के बीच में है। बाज़ार के बीच में से होकर जाना पड़ेगा। बाज़ार में दोनों ओर सुनारों की दुकानें हैं, वे मेरे रिश्तेदार हैं। वे क्या सोचेंगे ?

गुसाईं जी ने बोला–"जब दुकानें बंद हो जावें तब उसके कमरे पर चले जाना। तुमको जाना तो बहुत ही जरूरी है। बेचारा पुजारी तो उसके आदेश से मजबूर होकर गया और वेश्या को बोला कि गुसाईं जी ने तुमको बुलाया है। लेकिन गुसाईं के घर पर मत जाना, उन्होंने मना किया है। मन्दिर में ही जाना है।"

वेश्या बोली–"क्यों बुलाया है ? कोई खास बात है !" ठाकुर जी ने ही गुसाईं जी को आदेश दिया है–ऐसा सुनते ही वेश्या ज़ोर–ज़ोर से रोने लगी।

पुजारी ने कहा–"मेरा क्या हाल होगा ? मुझे यहाँ से निकल जाने दो। बाद में जैसा चाहे करना।"

वेश्या के पास जाने से सभी डर जाते हैं। समाज का डर भी लगता है। आँख मिलाना दूभर हो जाता है।

वेश्या गुसाईं के पास जाकर बोली–"क्या बात है?"

गुसाईं बोला–"तुम्हारा जितना धन है, मन्दिर में चढ़ा दो, मैं स्वीकार करता हूँ।"

वेश्या के पास लाखों रुपया था तथा सामान भी बहुत था। स्वयं का मकान तथा दुकान भी थीं, उसने मकान व दुकान बेच दी, वह पैसा भी भगवान् को सौंप दिया और मूड़ मुड़ाकर कृष्णदास बाबा के पास आकर उनकी चेली बन गई। वैराग्य धारण कर, अपना अलग से आश्रम बनाकर, भजन में लीन रहने लगी तथा रात–दिन हरिनाम जपा करती। अब तो उसके पास साधु–महात्मा तक आने लगे और सत्संग का परामर्श करने लगे। वेश्या इतनी बदल गई कि नामी विरहणी संत के पथ पर अग्रसर हो गई।

वृद्धावस्था आने पर हरिद्वार में जाकर अपना अंतिम जीवन विरहावस्था में ही बिताया, अंत में भगवान् को प्राप्त हो गई। यह मेरे श्रीगुरुदेव ने ऐसी मार्मिक वार्ता सुनाकर अंकित करवाई है।

जब गुसाईं जी ने वेश्या के धन से भंडारा करना आरम्भ किया तो संतगण भंडारा पाने लगे तो उनको रात में स्वप्नदोष होने लगा। वो गुसाईं जी को आकर पूछने लगे कि जो आपने भंडारा किया है, वह किसके अन्न से किया है ? तो गुसाईं जी ने कहा–''यह वेश्या के अन्न से भंडारा हुआ है।'' संतगण आकर ठाकुर जी को उलाहना देने लगे कि आपने वेश्या का धन क्यों लिया ? तो ठाकुर जी ने सिद्ध संतों को स्वप्न में कहा कि मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा। वेश्या ने मुझे उलाहना दे–देकर परेशान कर दिया कि यदि आप मेरा धन नहीं लोगे तो मैं पाँच–सात दिन में तुम्हारे मन्दिर में आकर ही प्राण त्याग दूँगी। अतः मुझे वेश्या का धन लेना पड़ गया।

संत बोले–''आपने धन तो ले लिया, वह ठीक है परन्तु भंडारा करके हमारा धर्म क्यों बिगाड़ा। हमें तो शादी करने का रोग आक्रांत कर रहा है।''

भगवान् बोले कि मैं तो वेश्या का अन्न पचा सकता हूँ , आप नहीं पचा सकते। आपको तो ऐसे अन्न को सिर से लगाकर कणी मात्र लेकर सेवन करना उचित है। अब तुम सब तीन दिन का उपवास कर लो ताकि वेश्या के अन्न से तुम्हारे आमाशय खाली हो जायें। फिर तुमको कामवासना नहीं सतायेगी। तुमको तो मधुकरी का अन्न ही खाना उचित है। भंडारे में न जाना ही तुम्हारे लिये श्रेयस्कर है क्योंकि भंडारे में अधिकतर अन्न दूषित ही आता है। वह आपके लिये नुकसानकारक है। मधुकरी भी नित्य एक घर से भी नहीं माँगना चाहिये। नित्य नये–नये घर में जाकर भिक्षा करना उचित है। एक ही घर में जाने से तुम्हें माया पकड़ लेगी। जाओ भी ऐसे समय में जब घरवाले सब खा चुकें क्योंकि कम भोजन होने से कोई न कोई घरवाला भूखा रह जायेगा। इससे वह मधुकरी

अमृत से वंचित रह जायेगी। मधुकरी सेवन अमृत सेवन ही होती है जिससे भजन में मन लगता है, नहीं तो मन में उच्चाट हो जाता है।

अब तो भविष्य में संतों ने भगवान् की शिक्षा ग्रहण कर, मधुकरी से अपना जीवनयापन करना आरम्भ कर दिया तो भजन में मन लगने लग गया। ठाकुर जी ने जब से भंडारे में जाने से मना किया तब से भंडारे में जाना संतों ने बंद कर दिया।

देखो ! कलिकाल में अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं है, केवल हरिनाम पर ही आश्रित रहना उचित है। जितने भी हमारे पिछले गुरुवर्ग हुए हैं, सभी रात–दिन हरिनाम किया करते थे, उनके अनुगत में रहकर ही अपना जीवनयापन करना श्रेयस्कर है।

केवल नामापराध से बचकर रहना परमावश्यक है। नामापराध होने से भजन में गहरा ह्रास हो जाता है। नामापराध स्वयं करने से तथा अन्य से सुनने से भी हो जाता है। मन में सोचने पर भी नामापराध बन जाता है। भगवान् को सब कुछ सहन हो जाता है लेकिन नामापराध सहन नहीं होता। यद्यपि वह ब्रह्मा, शंकर ही क्यों न हो उसको भी दंड का भागी होना पड़ेगा।

जिसने आज ही गुरुदेव से हरिनाम लिया है उसका भी साधक से अपराध बन जाता है क्योंकि श्रीगुरुदेव जी ने नये साधक का हाथ ठाकुर जी के हाथ में सौंप दिया है अतः वह साधक अब ठाकुर जी का हो गया। माया के चंगुल से वह साधक छूट गया है। ब्रह्मा का जन्म समाप्त हो गया और उस जीव का, जिस दिन हरिनाम श्रीगुरुदेव जी से हुआ, उसी दिन से उसका नया जन्म होता है। ऐसा धर्मशास्त्र का वचन है।

एक आश्चर्यजनक घटना है। ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक बूढ़ा व्यक्ति था। उसके पाँच पुत्र थे तथा पाँच बहुयें थीं। बूढ़े की पत्नि का स्वर्गवास हो गया था। अतः वह बूढ़ा घर में बहुत परेशान रहता था। उस बूढ़े को पुत्र तथा पुत्रों की

बहुयें झिड़कती रहती थीं। कहती थीं–''बूढ़े ! तुझे शर्म नहीं आती। चाहे जहाँ, थूक देता है, मूत देता है। खैं–खैं करता रहता है। हमें सोने भी नहीं देता। तू मर जावे तो इस घर का सुखी दिन आ जावे। कई बार बोलने पर तो उसे बासी खाद्य पदार्थ खाने को दे देती तो कभी भूखा ही सो जाता। पानी के लिये बोले तो झिड़क दे कि तू मरता भी नहीं, हमें परेशान करता रहता है। तू यहाँ से निकल जा। हमें मुँह मत दिखा। पहनने का कपड़ा भी फटा–पुराना समाज के भय की वजह से देना पड़ता।

अब बूढ़ा बहुत परेशान होकर रात में ही घर से निकल गया और एक साधु के आश्रम में पहुँच गया । सब परेशानी घर वालों की साधु से बताई तो साधु बोला कि घरवाले तेरे अनुकूल नहीं होने का कारण इनके पूर्व जन्म के संस्कार हैं और तेरा भी पूर्व जन्म का संस्कार है। यह दर्पण ले जा। इस दर्पण से, पूर्व जन्म में कौन किस योनि में था, मालूम हो जाता है। अतः तू एक बार फिर तेरे घर पर जाकर देख कि तेरा परिवार पिछले जन्म में किस योनि में था और तू किस योनि में था। उसने वहीं पर, साधु से दर्पण लेकर अपने को देखा तो क्या देखता है कि वह पिछले जन्म में हिरण था। तो साधु बोला, ''तेरे परिवार को देखना, वे पिछले जन्म में कुत्ते होंगे। वे आपस में लड़ते होंगे।''

बूढ़े ने कहा–''हाँ महात्मा जी ! वे रात–दिन आपस में लड़ते ही रहते हैं।''

तो तेरा उनसे मेल कैसे खा सकता है ? हिरण के पीछे कुत्ते तो स्वाभाविक ही भौंकते रहते हैं। अतः तेरी उनसे कभी नहीं बन सकती। तू एक बार घर पर जाकर इस दर्पण से जाँच करके मेरे पास आजा। बूढ़ा घर पर गया तो सब मिलकर उस बूढ़े को पीटने को तैयार हो गये तो उसने दूर से दर्पण में देखा तो सारा परिवार ही कुत्ते–कुत्तियाँ ही नज़र आये। अब तो वह वहाँ से अपनी जान बचाकर साधु के पास आया और आकर सारा हाल बता दिया।

साधु ने कहा कि अब तू कहीं भी जा सकता है क्योंकि मैं तो किसी को अपने पास रखता नहीं हूँ। बूढ़ा भूखा–प्यासा किसी गाँव में जा रहा था तो एक घर पर जाकर पानी पीने को माँगा तो दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। बुढ़िया बोली–''बाबा तुझे क्या चाहिये ? बूढ़ा बोला–''मैं प्यासा हूँ, थोड़ा पानी पिला सकती हो ?''

''हाँ, क्यों नहीं ? पानी पीलो तथा कुछ खा भी लो।''

बुढ़िया का परिवार भी बड़ा था। बेटे, पोते, बेटों की बहुएँ और बूढ़ी का पति भी मौजूद था। इतने में बूढ़ी का पति बाहर आया और बूढ़े से पूछने लगा–

''तू कहाँ का है ? कहाँ जा रहा है ?''

बूढ़े ने अपनी बीती स्वयं बता दी कि मैं तो परिवार से बहुत परेशान हूँ। बूढ़ी का पति बोला–''भैया तुम हमारे घर पर रहो। कुछ करना नहीं, मौज से खावो पीवो और हमें अच्छी–अच्छी शिक्षा दो क्योंकि तुमने संसार को देखा है। हम भी आपकी शिक्षा लेकर खुश रहेंगे।''

बाबा तो चाहता ही था कि कहीं आसरा मिल जाये तो अपना आगे का जीवन खुशी से बसर कर सकूँ अतः हाँ कर दी कि मैं आपके घर में रह जाऊँगा। आपकी बड़ी कृपा होगी। बूढ़ी व बूढ़ी का पति बोला–''आप खुशी से रहो।''

अब बाबा ने सोचा कि साधु ने दर्पण दिया है, देखूँ तो सही, इस परिवार वाले पिछले जन्म में किस योनि में थे। तो बाबा क्या देखता है कि पूरा परिवार ही हिरण हिरणी की योनि में थे। अतः बाबा ने सोचा कि मैं भी पिछले जन्म में हिरण ही था इसलिये मेरा इनका मेल हो गया।

यही है संसार में माया का खेल। आपस में परिवार में क्यों नहीं बनती ? न जाने किस–किस योनि से आपस में जीव इकट्ठे हो जाते हैं तो एक जाति न होने से आपस में बनने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिये संसार दुःखालय कहलाता है। पशु–पक्षियों

का भी स्वभाव एक सा नहीं होता। कोई शरीफ होता है तो कोई बदमाश होता है। ऐसा हम देखते ही हैं। पिछले जन्मों के स्वभाव बदलते नहीं हैं। स्वभाव केवल भगवत्–नाम के सत्संग से ही बदल सकता है, इसका अन्य कोई साधन नहीं है।

''जब तक माया के ये तीन गुण–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण पिछले संस्कारवश मौजूद रहेंगे तब तक सूक्ष्म शरीर जो इन्द्रियों का पुँज है, मौजूद रहेगा। यही कर्मानुसार अगला जन्म करवाता रहेगा। जब हरिनाम स्मरण करते–करते यह समाप्त हो जायेगा तब निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में जाग्रत हो जायेगी तथा सूक्ष्म शरीर की जगह दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जायेगा। जब दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जायेगा तो इसके संग में प्रेमावस्था तथा विरहावस्था अन्तःकरण के भाव में प्रगट हो जायेगी। यही है क्रम भगवत् प्राप्ति का तथा आवागमन हटने का। आवागमन ही जघन्य दुःख का कारण बनता है।

लेकिन यह क्रम फलीभूत सच्चे साधु के संग से ही होगा। साधु संग के अभाव में उक्त क्रम होगा ही नहीं तथा साधु की सेवा इसमें सम्मिलित है। साधु की सेवा से ही साधु की प्रसन्नता प्राप्त कर, साधक पर कृपा होगी। सेवा के अभाव में, साधु के संग से भी कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है।

माया का प्रभाव ब्रह्मलोक तथा शिव लोक तक भी है जब ही तो ब्रह्मा श्रीकृष्ण के बछड़े तथा ग्वाल बाल चुराकर ले गया तथा अपनी पुत्री के पीछे दौड़ पड़ा। इसी प्रकार शिवजी भी मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े थे। यदि ब्रह्मलोक तथा शिवलोक में माया नहीं होती तो यह अवगुण वहाँ कैसे आ सकते थे ? माया केवल वैकुण्ठलोक तथा गोलोक में नहीं है। वहाँ भगवान् का ही आधिपत्य है, वहाँ सुख ही सुख है। वहाँ साधक जाकर संसार में वापस नहीं आता।

संबंध–ज्ञान की वजह से, जिसको संबंध–ज्ञान नहीं मिला, उसे वैकुण्ठ से वापस आना पड़ जाता है। उसको किसी उच्च स्थिति वाले भक्त के घर में भगवान् जन्म देते हैं। वहाँ वह आरम्भ

से ही अर्थात् बचपन से ही, मन से भजन करके संबंध–ज्ञान उपलब्ध कर लेता है तब उसे भगवान् गोलोकधाम की प्राप्ति करवा देते हैं।

वहाँ से साधक वापस नहीं आता है। आता भी जब ही है जब भगवान् स्वयं धरातल पर अवतरित होते हैं। उनके संग लीलावर्धन करने हेतु संबंध–ज्ञान वाला साधक धरातल पर अवतरित होता है और साधारण साधक इन लीलाओं का स्मरण कर भक्ति में उन्नत होता रहता है। कलियुग में हरिनाम स्मरण के अलावा दूसरा कोई साधन है ही नहीं। इस साधन से ही साधक गोलोकधाम तक पहुँच जाता है। ऐसा मेरे गुरुदेव जी का कहना है। अतः सभी प्रेमास्पद भक्तगण, कृपा कर हरिनाम की ही शरणागति उपलब्ध करें। अनन्तकोटि ब्रह्मांड हैं । प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा हैं, शिव हैं। वैकुण्ठ तथा गोलोक भी भिन्न–भिन्न हैं, अनंत हैं। इनकी गणना कोई नहीं कर सकता।

– हरि बोल –



श्री रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपालभट्ट, दासरघुनाथ।।
एई छः गोसाईं करौं चरणवन्दन, जाहा हइते विघ्न नाश, अभीष्ट पूरण।।

14

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

प्रेममय विरह किस साधक को होता है ?

जो अपना संपूर्ण कर्म भगवान् के निमित्त ही करता है, जिसकी संसारी आसक्ति मूल सहित समाप्त हो चुकी है, जिसको भगवान् ने गीता में निष्कर्म बोला है।

जिसको कण–कण में तथा प्रत्येक जीवमात्र में भगवत् अनुभव होता रहता है तथा जो दया की मूर्ति होता है। जो प्रत्येक प्राणी के हित में ही अपना जीवनयापन करता रहता है क्योंकि वह समझता है कि भगवान् ने प्रत्येक चर–अचर प्राणी को आत्मा के वास करने हेतु शरीर रूपी मकान बनाकर दिया है। जो केवलमात्र किराये का है क्योंकि सदैव इस मकान में कोई भी चर–अचर प्राणी कब्जा कर ही नहीं सकता। भिन्न–भिन्न समय हेतु उसके कर्मानुसार सौंपा है इसके बाद इसको अर्थात् जीव आत्मा को इसमें से निकलना ही पड़ेगा तथा अपने स्वभावानुसार दूसरे मकान में कर्मानुसार रहना ही पड़ेगा।

यह मकान जीव आत्मा का जब ही छूट पायेगा जब माया का प्रकोप जो सत–रज और तम गुण का है, जो प्रत्येक जीवमात्र तथा चर–अचर के कर्मानुसार सौंपा गया है, वह कर्म जब भगवान् के प्रति बदल जायेगा तब ही इससे छुट्टी मिलेगी। तब ही तीनों गुणों की शक्ति नष्ट हो पायेगी तथा निर्गुण शक्ति उपलब्ध हो जायेगी।

जब साधक अपने लिये कोई कर्म नहीं करेगा केवल भगवान् का काम समझ कर करता रहेगा तो उसके फल में आसक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जो अपना कर्म समझता ही नहीं है, भगवान् का ही समझता है तो कर्म उसको कैसे बांधेगा ? जो कर्म भगवान् के लिये होता है तो उस कर्म में उसे पाप कैसे लग सकता है ? यह प्रत्यक्ष उदाहरण सभी भक्तगण देखते ही हैं कि हनुमान जी ने पूरी लंका जला कर राख कर दी। जिस आग में अनंतकोटि जीव–जन्तु जल कर भस्म हो गये तो क्या हनुमान जी को पाप छुआ ? पाप कैसे छूता क्योंकि हनुमान जी ने अपने स्वार्थ हेतु जलाने का कर्म थोड़े ही किया ! यह कर्म तो श्रीराम के लिये किया है अतः पाप लगेगा तो श्रीराम को लगेगा। हनुमान जी को क्यों लगेगा ?

इसीलिये सभी भक्तगणों को मेरे गुरुदेव जी बोल रहे हैं कि प्रातः जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है कि जो भी आज मेरे से बने वह कर्म आपके निमित ही हो। अब तो साधक बिल्कुल निश्चिंत हो गया। स्वतंत्र हो गया। परतंत्रता का तो सवाल ही नहीं है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म करने का अर्जुन को आदेश दिया है ताकि अर्जुन कर्म में बंधे नहीं वरना दुःख को मोल ले लेगा। यदि कर्म करने पर असफल हो गये तो दुःख तो होना अवश्यम्भावी है ही। जब कर्म भगवान् के लिये होगा तो असफलता भी हो, तो दुःख क्यों होगा ? नुकसान हुआ तो भगवान् का हुआ।

जैसे सेठ का मुनीम सेठ की मुनीमाई करता है लेकिन व्यापार में नुकसान हो गया तो क्या मुनीम को दुःख होगा ? दुःख होगा तो सेठ को होगा। मुनीम तो दुःख से अछूता ही रहेगा।

एक बात बड़ी गौर से समझने की है कि साधक, शास्त्र जो कर्म करने को बता रहा है उसी कर्म को भगवान् के निमित्त करे। जो शास्त्र के विरुद्ध कर्म है वह भगवान् के निमित्त न करे। जिस प्रकार शराब का ठेका भगवान् के निमित्त खोले तो यह कर्म शास्त्र के विरुद्ध है। ऐसा करके भगवान् को बेवकूफ नहीं बनावे।

एक आकर्षक मनमोहक वार्ता है, सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक संत आश्रम था। उसमें श्रीगुरुदेव के 5–10 शिष्य भी थे इनमें एक शिष्य तो ऐसा था कि कभी स्नान करता, कभी नहीं करता। एकांत में पड़ा रहता, किसी से बातचीत भी नहीं करता, उसे सभी शिष्यगण तथा गुरुदेव निठल्ला तथा बेकार स्वभाव का शिष्य बताते थे।

एक दिन गुरुदेव ने उसे बुलाकर कहा कि हम सब तीर्थ यात्रा करके आते हैं हमें लगभग एक माह लग जायेगा तू ठाकुर जी की सेवा कर लेना।

शिष्य ने कहा–''क्या–क्या सेवा करनी है, बता दो।''

गुरुदेव ने कहा,–''प्रातः उठकर स्नान करना, संध्या वन्दन करना, फिर रोटी बनाकर भगवान् को भोजन कराना, पानी पिलाना तथा दोपहर में सुला देना। इसीप्रकार शाम को भी भोजन कराना है।''

शिष्य बोला–''शाम को भी मुझे नहाना होगा क्या ?

गुरुदेव बोले–''स्नान तो करके ही भोजन बनाना होगा। भगवान् तो बड़ी शुद्धि से तैयार करने पर ही भोजन करते हैं।''

शिष्य ने मन में सोचा कि हाँ, कई बार पेशाब करना ही पड़ता है अतः नहाना जरूरी है।

शिष्य बोला–''भगवान् कितना खाते है ? मुझे बता दो।''

गुरुदेव बोले–''जितना तुम खिलाओगे, उतना ही खा लेंगे।''

शिष्य बोला–''ठीक है, मैं भगवान् की पूरी सेवा कर लूँगा। आप जा सकते हो।''

आश्रम से सभी चले गये। अब तो शिष्य को चिंता हो गई कि सुबह–सुबह जल्दी नहा लूँगा भगवान् को जल्दी ही भूख लग जाती होगी। भोजन बनाने में भी समय लगेगा तो भगवान् चिल्लाना शुरु कर देंगे। शिष्य भोला–भाला तथा सरल हृदय का था। अतः भगवान् के लिये चिंता हो गई कि देर न हो जावे।

दूसरे दिन जल्दी स्नान कर संध्यावंदन कर भोजन बनाना शुरु कर दिया तो उसे दस बज गये तो भगवान् के लिये दो रोटी तथा अपने लिये भी दो रोटी बनाई और देर होने की वजह से सब्जी बनाई नहीं। अतः दही व रोटी रख दी। आश्रम में गाय रहती थी उसके दूध का दही जमा हुआ था। भगवान् के लिये भोजन रखा। पर्दा करके पास में बैठ गया और विचार करने लगा भगवान् तो धीरे–धीरे खाते होंगे, अतः आधा घंटा तो इंतजार करूँ। जल्दी पर्दा खोलने से भगवान् भूखा रह जायेगा। जब आधे घंटे में पर्दा खोला तो देखा कि भगवान् ने न रोटी खाई, न दही। वैसे की वैसे भोजन रखा है। तब बोला–'' गुरुजी के सामने तो भोजन कर लेते थे। मेरे से भोजन नहीं करते हो। शायद मैं अच्छी तरह नहाया नहीं। अब रगड़–रगड़ कर नहाऊँगा।'' तब खूब अच्छी तरह से स्नान किया। पहले उसने सब्जी भी नहीं बनाई थी। एक दही से भगवान् कैसे खावें ? उसने सोचा कि मैं भी भूखा मर रहा हूँ। भगवान् भी भूखे मर रहे हैं। एक माह तक नहीं खावेंगे तो ये भी मर जावेंगे और मैं भी मर जाऊँगा। इसलिये जल्दी–जल्दी सब्जी बनाई, चार रोटी बनाई, घी रखा और बोला–'' भगवान् अबकी बार मैं रगड़–रगड़ कर खूब नहाया हूँ तथा अबकी बार सब्जी भी रख दी है अतः आप चार रोटी ही खा लेना। कल से भूखे हो। मैं तो पड़ोस से लेकर दो रोटी खा लूँगा या और बनाकर खा लूँगा।''

द्वार पर पर्दा कर दिया और आधे घंटे इंतजार में बैठा रहा। जब पर्दा खोला तो देखा भगवान् ने कुछ नहीं खाया। तब बोला–''क्या बात है, क्यों नहीं खाते ? मैं भी भूखा मर रहा हूँ और तुम भी भूखे मर रहे हो ! कोई कमी हो तो बता दो वरना अभी डंडे से तुम्हारी खबर लूँगा।'' फिर पर्दा लगा दिया और आधे घंटे तक इंतजार करने लगा तो अंदर खाने की चुपचुप आवाज़ आने लगी तो मन में सोचा कि अब की बार तो भगवान् मेरे डर की वजह से खा रहे हैं। बातों से कोई नहीं मानता। डर से तो भूत भी काँपता है। जब पर्दा खोल कर देखा तो पूरा भोजन भगवान् चट कर गये

थे। तो बोला–''इस प्रकार से दोनों समय राजी–राजी खा लिया करो वरना डंडे से खबर लेनी पड़ेगी।'' अब तो भगवान् दोनों समय नित्य ही खा लिया करते। यह है अटूट श्रद्धा विश्वास की बात!

एक महीने बाद जब गुरुदेव व दूसरे शिष्य आश्रम पर आये तो श्रीगुरुदेव जी ने पूछा कि भगवान् की सेवा ठीक तरह से की है।

''हाँ, ठीक तरह से की है। दो दिन तक तो भगवान् ने नखरे किये, खाया नहीं। तीसरे दिन जब डंडा दिखाया तो डर की वजह से दोनों समय ही खाना शुरु कर दिया।''

गुरु बोला–''तूने भगवान् को भूखा रखा है, झूठ बोलता है। मेरे सामने 5–5 दिनों तक नहाता नहीं था। मुझे विश्वास नहीं है कि भगवान् को तूने खिलाया होगा। ठीक है अब खिला के बताओ।''

शिष्य बोला–''आपके सामने खिला कर दिखाता हूँ।''

गुरुदेव के सामने भोजन रखा और पर्दा करके आधा घंटा बैठ गया और बोला भोजन करो, मेरे गुरुदेव देखना चाहते हैं। यदि नखरे किये तो डंडे से खबर लूँगा।''

अब तो भगवान् ने भोजन कर लिया और गुरु अपने शिष्य के चरणों में पड़ गया कि आज तक 70 साल में, मैं नहीं खिला सका और शिष्य ने खिला दिया । वास्तव में तो यह मेरा गुरु है। मैं ही इसका शिष्य हूँ।''

इसमें था भोलापन, पूर्णविश्वास, साक्षात् भगवत् भाव व दर्शन, मन की निर्मलता, कपटहीनता। तब भगवान् भक्त के बन जाते हैं। यही है शुद्ध भक्ति।

अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं। प्रत्येक ब्रह्मांड में ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मनु आदि अपने–अपने कार्य में नियुक्त हैं। लेकिन भगवान् केवलमात्र एक ही है। ऐसा कोई ब्रह्मांड नहीं है जहाँ कण–कण में तथा प्रत्येक प्राणी में भगवान् न हो। ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ भगवान्

न हो। ऐसी वृत्ति जिस साधक की होती है उसे भगवान् हर क्षण मिला हुआ है वह किसी को दुःख–कष्ट नहीं देगा। ईर्ष्या, द्वेष नहीं करेगा। हर क्षण अहिंसा वृत्ति से रहेगा। दया की मूर्ति होगा। सभी दैवी गुणों का खज़ाना होगा। उसका संग जो भी साधक करेगा उसका दुःखालय संसार से उद्धार होना निश्चित है। भगवान् इससे एक क्षण दूर नहीं रह सकते। भगवान् उसका खरीदा हुआ गुलाम है जैसा कि श्री भागवत पुराण घोषणा कर रहा है। जैसा भक्त चाहता है, वैसा भगवान् को उसका आदेश मानना पड़ता है। लेकिन शास्त्र का वचन है कि इस संसार की आबादी को देखते हुये, अरबों–खरबों में से कोई एक ही भगवान् का प्यारा भक्त होता है और सभी नकली भक्त होते हैं। कपट से भजन करते हैं। भगवान् को कोई नहीं चाहता। सभी वर्तमान की सुख–सुविधा चाहते हैं। सत–रज और तम गुणों के तहत सूक्ष्म शरीर मौजूद रहता है।

पिछले अनंतकोटि जन्मों के स्वभावानुसार प्रेरित होकर जीव शुभ–अशुभ कर्म में लिप्त रहता है। यह स्वभाव किसी सच्चे संत से ही बदल सकता है। तब ही तो सत्संग को सबसे अधिक महत्वशील बताया गया है। साधु के द्वारा संसार की नश्वरता तथा भक्ति की सुख–सुविधा सुनकर उसका स्वभाव धीरे–धीरे बदलता हुआ चला जाता है तथा एक दिन उसे संसार से वैराग्य उदय हो जाता है।

इस कलिकाल में केवलमात्र हरिनाम ही एक ऐसा सरल सुगम साधन है जो भगवान् को प्राप्त करा सकता है। श्रीगुरुदेव की भविष्यवाणी है कि एक दिन ऐसा आवेगा जब मठ मन्दिर सरकार के हाथ में चले जावेंगे। वहाँ तनख्वाह पर पुजारी रखे जायेंगे तब श्रद्धावानों का जो मन्दिर में पैसा आवेगा, वह सरकार के खज़ाने में जमा होगा। ऐसा भी जमाना आवेगा जो कि यदि कोई भक्त भजन करेगा वह दंड का भागी होगा। कलियुग में ही क्या? यह तो सतयुग में, त्रेतायुग में तथा द्वापर युग में भी भक्तों को दुःख दिया गया है।

रामजी के जमाने में जब त्रेतायुग था, तब राम जी ने देखा कि संतों की हड्डियों के ढेर से पहाड़ जैसा बना हुआ है। तब रामजी ने किसी महान् पुरुष से पूछा कि यह हड्डियों का ढेर किसका है ? तब उसने बोला कि राक्षसों ने संतों को मारकर हड्डियों का ढेर बना दिया है। तब राम ने प्रण किया कि भविष्य में मैं पृथ्वी को राक्षसों से रहित कर दूँगा। इसी प्रकार हिरण्यकश्यपु ने भक्तों को सताया है। भक्तों को रहने की जगह नहीं मिली, बेचारों ने पहाड़ों में जाकर अपना जीवन बिताया। द्वापर में श्रीकृष्ण के ज़माने में कंस ने भी भक्तों को बेहद सताया है।

वर्तमान में कलियुग तो चांडाल का रूप ही है। अब भविष्य में जो कुछ होने वाला है उसका वर्णन करना अकथनीय है। जो हरिनाम की शरण में रहेगा, वही बच पायेगा। उसका तो बाल भी बांका होने वाला नहीं है। अतः कम से कम एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है। श्रीगौरहरि की कृपा उस पर अटूट रहेगी। ऐसे भक्त को जो सतायेगा, वह मारा जायेगा।

यह समय अभी दूर है। अब कलियुग केवल पाँच–छः हज़ार वर्ष का ही आया है। इसकी अवधि चार लाख बत्तीस हज़ार वर्ष की है लेकिन अभी से, न होने वाले बुरे काम हो रहे हैं। आगे जो होगा, वह कैसा होगा, अकथनीय है !

जब गहरा कलि महाराज, जो कुस्वभाव का है, आयेगा तो देखना गायों का दर्शन होना असंभव हो जायेगा। घी का दर्शन नहीं होगा। बंदरों का नाम निशान चला जायेगा। गिद्धों, चीलों, जंगली सूअर, बारहसींगा, हिरण, खरगोश, चीता, बाघ आदि की पीढ़ी (जनरेशन) ही समाप्त हो जायेगी। जंगल उजाड़ में बदल जायेंगे। पेड़–पौधों का नामो निशान नहीं रहेगा। लंगूर समाप्त हो जायेंगे। बार–बार अकाल पड़ेगा। पानी के लिये मानव, पशु–पक्षी तरसेंगे। गर्मी इतनी भयानक पड़ेगी कि हर प्राणी झुलस कर प्राण त्याग देगा। सर्दी का इतना प्रकोप होगा कि जहाँ बर्फ नहीं पड़ती, वहां बेशुमार बर्फ गिरेगी। उससे भी जीव मारे जायेंगे। सूर्य व



चंद्रमा में बार–बार ग्रहण होंगे तथा इनके चारों तरफ मंडल पडेंगे। ज़हरीली बरसात होगी तथा पेड़–पौधे जल जायेंगे। बार–बार भूकम्प होंगे। जहाँ कभी नहीं हुये थे, वहाँ पर भूकम्प से धरातल में उथल–पुथल होता रहेगा। कहीं पर सुनामी का प्रकोप होगा जिससे बड़े–बड़े शहर डूब जायेंगे। जमा धन का नाश हो जायेगा। कोई भगवान् को मानेगा ही नहीं। सभी प्रकृति को मानकर चलेंगे। भजन करने वालों को निठल्ला समझेंगे। ऐसे–ऐसे अविष्कार हो जायेंगे कि जिनसे भगवान् का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

यह सब करिश्मा करेगा भगवान् ही क्योंकि जैसा काल होगा, वैसा हाल होगा। इसमें किसी का दोष नहीं। यह महाकाल का ही तमाशा है। अतः अभी से प्रेम से हरिनाम करो ताकि आगे आपदाकाल में जन्म न हो। वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जावे। वरना यह दुःख–कष्ट देखना व सहना पड़ेगा।

– हरिबोल –

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
28.09.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का आपके चरण युगल में दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि उत्तरोत्तर जाग्रत होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

विरक्त महापुरुष–वैष्णवजन का संग ही सर्वोत्तम है

भगवत् माया की शक्ति विशेषकर रजोगुण, तमोगुण तथा सतोगुण है। इन्हीं के द्वारा मानव का अगला जन्म होता है। पूरी जिन्दगी भर मानव कर्म में आसक्त रहता है। इस कर्म से ही जब अंतिम समय में मौत आती है तो पूरी जिन्दगी में, जो कर्म किया है उसी कर्म की याद आने से अगला जन्म, किसी भी चर–अचर प्राणी की योनि में लेगा।

मानव का जैसा संग होता है वैसा ही रंग होगा अर्थात् इसके अनुसार ही उसके जीवन का स्वभाव बनेगा। अशुभ संग रहेगा तो बुरी आदतें बन जायेंगी और शुभ संग रहेगा तो अच्छी आदतें बन जायेंगी। जैसा बीज डालोगे, वैसा ही जन्म होगा। बीज दूषित डाला तो अच्छा जन्म होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह गुरुदेव जी की अमृतवाणी नवयुवकों के लिये अमृत समान है और जिनके संतान हो चुकी है उनके काम की यह है नहीं। अब पछताये क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत।

इसी कारण सत्संग को सबसे अच्छा माना गया है। आजकल कलियुग का समय चल रहा है। प्रत्येक ओर कुसंग ही उपलब्ध हो रहा है। खाना–पीना, पहरावा, कोऐजुकेशन, दूषित उपन्यास, ब्लू फिल्म, दूषित चित्र, दूषित गान, दूषित हवा। कितना बताया जाये, कोई सीमा नहीं तो दूषित आबादी होना स्वाभाविक है ही।

जगह–जगह से शिकायत आती है हमारा बच्चा बिगड़ गया है। शराब पीता है, गुंडों के संग रहता है, गुटका खाता है, होटलों में जाकर मांस सेवन करता है, पढ़ने हेतु पैसा भी खूब खर्च कर रहे हैं, फिर भी पढ़ता नहीं है। घर पर भी कम ही रहता है। दोस्तों के संग न जाने कहां–कहां जाता है। सुना है गलत–गलत काम करता है। आप आशीर्वाद करें हमारा बच्चा ठीक हो जाये।

तो मुझे कहना पड़ जाता है कि इसमें बच्चे का कोई दोष नहीं है। यह तुम्हारा ही दोष है। तुमने शुभ संतान करने हेतु शादी थोड़े ही की है तुमने तो इन्द्रियां तर्पण हेतु शादी की है तो जैसा बीज डालोगे वैसा ही तो पौधा उत्पन्न होगा। इसमें बच्चे का क्या दोष है ? इसमें पौधे का क्या दोष है ? यह तो पौधा लगाने वाले का दोष है। मैं गृहस्थी हूँ , मैं खुलकर बात कर सकता हूँ। संन्यासी वर्ग खुलकर बात नहीं कर सकते। भविष्य का जमाना ठीक न होने के लिये मुझे लिखना पड़ रहा है वरना मुझे क्या मतलब है। मेरा अपना समय खराब क्यों करूँ ?

आत्मा, परमात्मा की जाति की है, सजातीय है। इसी प्रकार मेरे गुरुदेव के आदेश से लिखना पड़ता है क्योंकि श्रीगुरुदेव जी ने नवयुवकों को मेरी पुस्तक **"इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति" (भाग–दो)** में शिक्षा दी है कि भविष्य में जीवन ऐसे चलाना होगा। कोई भी जीव अपनी जाति में ही रह कर सुख अनुभव करता है। अतः सजातीय से ही उसकी बात बनती है क्योंकि स्वभाव इनका समान ही रहता है। जैसे गाय, गायों के झुंड में जाकर ही सम्मिलित होगी, भैंसों के झुंड में नहीं सम्मिलित होगी। क्योंकि भैंस गाय की विजातीय है। इसकी जाति इससे मेल नहीं खाती। इस प्रकार कबूतर भी कबूतरों के झुंड में जाकर बैठेगा क्योंकि यह उसकी सजातीय है। यह अपनी जाति में है। कौवों के झुंड में कबूतर सम्मिलित नहीं होगा क्योंकि कौवों की जाति विजातीय है अर्थात् अपनी जाति की नहीं है।

श्रीगुरुदेव जी सभी भक्तगणों को सावधान कर रहे हैं, सभी बड़े ध्यानपूर्वक सुनें तथा हृदय में इस बात को गहराई से बैठा लें कि सजातीय ही जीव को सुख प्रदान कर सकता है, विजातीय दुःख का कारण बनेगा।

जीवात्मा, परमात्मा का सजातीय संबंधी है। माया जीवात्मा की विजातीय है अर्थात् माया इसकी जाति की नहीं है अतः दुःख का कारण बनती है। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जब तक जीव आत्मा–परमात्मा से संबंध स्थापित नहीं करेगा, कभी भी सुखी नहीं रह सकता। संसार में इसी कारण दुःख ही दुःख है। संसार दुःखालय इसलिये कहलाता है कि जीव आत्मा, विजातीय माया से संबंध रखता है।

अमृत और ज़हर एक जगह कैसे रह सकते हैं? अँधेरा और उजाला एक जगह कैसे रह सकता है? सुख–दुःख एक जगह कैसे रह सकता है? इसी कारण माया और जीव आत्मा एक जगह कैसे रह सकता है? यदि एक जगह कोई भी रहेगा तो उत्पात होके ही रहेगा। यह सब मौलिक सिद्धांत हैं। भगवान् की रची हुई यह चौरासी लाख योनियाँ हैं, जिसमें मानव ही बुद्धिमान है। इसको तो अपने सुख का साधन करना ही चाहिये। लेकिन इसने विजातीय से नाता जोड़ रखा है अर्थात् माया को इसने अपना रखा है। तब बुद्धिमान मानव सुखी कैसे रह सकता है? यह तो पशु–पक्षी से भी गया बीता, अज्ञानी, बेशर्म, मूर्ख है। इसने तो भगवत् द्वारा बनाई मर्यादाओं को ही नष्ट कर दिया। अतः दुःख–सागर में गोते खा रहा है। समझाने से भी समझता नहीं है। यही तो इसका दुर्भाग्य है!

मृत्यु का कोई समय नहीं, वह कभी भी अचानक आ सकती है। तो यह मनुष्य जन्म बेकार ही चला गया। आगे अब मानव का जन्म होने वाला नहीं है क्योंकि इसने कोई शुभ कर्म किया ही नहीं है, सदैव अशुभ कर्म ही करता रहा है। इसका भोग तो चौरासी लाख योनियों में दुःख भोग कर करेगा ही इसके अलावा अट्ठाईस प्रकार के नरकों में, कई युगों तक भोग करता रहेगा। अरबों–खरबों

युग तक इसे मानव जन्म उपलब्ध होगा ही नहीं। तब भी यह समझता ही नहीं है कि भविष्य में मेरा क्या होने वाला है।

भगवत्–संबंध के बिना गोलोक धाम में कोई भी साधक जा नहीं सकता। एक लाख हरिनाम जपने वाले को वैकुण्ठधाम अवश्य उपलब्ध हो जायेगा। वहाँ से भगवत्–संबंध के लिये कई युगों के बाद इस धरातल पर किसी भक्त घर में जन्म लेना पड़ेगा। तब बचपन से ही माँ–बाप का भगवत्–सत्संग मिलता रहेगा तब इसे भगवान् का कोई भी नाता अर्थात् संबंध–पुत्र का, सखा का, भाई का, बाप का, मंजरी का मिलेगा तब इसे गोलोकधाम उपलब्ध हो जायेगा। वहाँ से फिर वह इस धरातल पर नहीं आवेगा। जब भगवान् का इस पृथ्वी पर अवतार होगा तब उनके संग में इसी धरातल पर वह भी जन्म ले लेगा और भगवत् लीलाओं में वह भी सम्मिलित हो जायेगा।

उक्त उपलब्धि केवल हरिनाम से ही उपलब्ध हो सकेगी। जब संसारी आसक्ति मूल सहित समाप्त हो जायेगी तब ही भगवत् के मिलन के लिये छटपट शुरु हो जायेगी। तब भगवान् ही जीव को अपना संबंध करवा देगें।

जिस प्रकार कन्या का पिता, कन्या का किसी पति से संबंध करवा देंगे तब ही कन्या ससुराल में, जो पति का निवास है, जाकर जीवन भर रह सकेगी। जब तक इसका नाता नहीं जुड़ेगा तब तक वह पीहर, जो पिता का निवास है, में अपना जीवन बसर करती रहेगी। यही दृष्टांत गोलोकधाम तथा वैकुण्ठधाम से मेल खाता है। इसी को साधकगण समझने की कोशिश करें।

इस प्रसंग का सारांश यही है कि साधकगण किसी सच्चे महापुरुष, सच्चे संत, जो आचरणशील हों, के सम्पर्क में रहें तो साधक का जीवन बहुत शीघ्र बदल कर शुभ मार्ग में आ सकता है क्योंकि संसार का वातावरण बहुत दूषित हो चुका है। सभी बेईमान हो चुके हैं। ईमानदारी की बेला (समय) तो जड़ सहित समाप्त हो

चुकी है। जो बात हृदय गम्य नहीं होती अर्थात् जो बात मन से मनन नहीं होती, वह स्थिर नहीं होती। जिस प्रकार पशु चारा एक साथ चर लेता है, बाद में बैठकर जुगाली करता है। इसी प्रकार साधक भक्ति की वार्ता ध्यान से सुने और फिर मन से इसका मनन करे तो वह भक्ति मन में अंकित हो जाती है। जैसे विद्यार्थी अपने मन में किसी विषय को ध्यान से पढ़ता है, फिर उसका मनन करता है तो परीक्षा में उतीर्ण हो जाता है। इस संसार में जिसका मन अपने काबू में है, वही खुशी के साम्राज्य में रह सकता है एवं जिसका मन अपने काबू में नहीं है, वह अकथनीय दुःख भोग करता है।

माँ–बाप को अपने बच्चे पर गहरी निगरानी रखनी चाहिये क्योंकि इस समय में दूषित वातावरण हर जगह फैला हुआ है। साथी भी सभी गन्दे विचारों के हैं, उसको भी गन्दा बना देंगे। अच्छा संग तो मिलता नहीं है। बच्चा कुछ समझता नहीं है अतः बुरे रंग में रंगता हुआ चला जाता है। जो माँ–बाप के लिये मुसीबत का वातावरण बना देता है।

हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है। श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण कान के छिद्रों के द्वारा अपने भक्तों के भावमय हृदय कमल पर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद ऋतु जल का गंदलापन मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तों के मनोमल का नाश कर देते हैं।

प्रविष्टः कर्णरुंध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।।

श्रीगुरुदेव जी ने प्रमुख साधन बताया कि प्रत्येक प्राणी में भगवान् का दर्शन करे। यही बात भागवत पुराण में तीसरे स्कंध में 24 वें अध्याय के 46 श्लोक में अंकित है। प्रजापति कर्दम संपूर्ण भूतों में अपने आत्मा श्री भगवान् को और संपूर्ण भूतों को आत्मस्वरूप श्रीहरि में स्थित देखने लगे। भूतों का मतलब है प्रत्येक जीव में। श्रीमद्भागवत के अनुसार विवेकीजन, संग या आसक्ति को ही

आत्मा का बंधन मानते हैं किन्तु वही संग या आसक्ति संत–महात्माओं के प्रति हो जाये तो मोक्ष का खुला द्वार बन जाती है। भगवान् बोल रहे हैं जो मेरे लिये सारे कर्म करते रहते हैं, उनको कभी पाप लगता ही नहीं है। जैसे हनुमान जी ने राम के लिये लंका जला दी तो उनको पाप लगा ही नहीं।

भगवान् बोल रहे हैं कि जीव को बंधन व मोक्ष का कारण केवल मन ही है। विषयों में आसक्त होने पर बंधन और परमात्मा में तथा सन्तों में अनुरक्त होने पर मोक्ष का कारण बन जाता है।

भगवान् कपिल कह रहे हैं कि जीव की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वही मेरी अहेतुकी भक्ति है। संसार में सबसे बड़ा कल्याण इसी में है कि जीव अपना चित्त भक्तियोग द्वारा मुझ में लगाकर स्थिरता प्राप्त कर ले। यह हरिनाम स्मरण करने से ही होगा। मेरे नाम में असीम शक्ति है। जो भी श्रीगुरुदेव मुझ से प्रेरणा कर लिखाते हैं, वह सब शास्त्रीय ही होता है जो श्रीभागवत शास्त्र में लिखा मिलता है।

गीता के अनुसार काल की अवधि बताई गई है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में चारों युग जब हज़ार बार निकल जाते हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। ऐसे ही हज़ार चौकड़ी वाली रात्रि होती है। यह चर–अचर प्राणी, जिनको भूत समुदाय के नाम से बोला जाता है, ब्रह्मा के शरीर से दिन में प्रगट होते हैं और रात को ब्रह्मा के शरीर में ही समा जाते हैं। जब ब्रह्मा के सौ वर्ष समाप्त हो जाते हैं तब ब्रह्मा भी अपने लोक सहित काल में समा जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। लेकिन भगवान् का गोलोकधाम सदैव ही रहता है। यह कालातीत है अर्थात् काल इस पर आधिपत्य नहीं जमा सकता। अन्य सभी अनंतकोटि ब्रह्मांड, काल के आधिपत्य में हैं। यह काल सभी को खा जाता है। भगवान् के भक्त को काल नहीं खा सकता।

यह जगत् सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीनों गुणों से भरा पड़ा है। यही माया की शक्ति में आता है। जब साधक मन से

हरिनाम कान से सुनकर करता रहता है तो इन तीनों गुण, जो माया के प्रतीक हैं, मूल सहित नष्ट होकर निर्गुण की वृत्ति में उदय हो जाते हैं। तब यह सूक्ष्म देह समाप्त हो जाती है तथा दिव्य देह प्राप्त हो जाती है, जो परमानंद का स्रोत है। साधक का जन्म–मरण अर्थात् आवागमन सदा के लिये समाप्त हो जाता है। परमानंद को उपलब्ध कर दुःखों की मूल सहित समाप्ति हो जाती है। यह उपलब्धि साधु संग से ही हो सकती है। अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है। लेकिन भगवत् कृपा के अभाव से यह संग भी मिलता नहीं है। यह कृपा भी तब ही उपलब्ध होती है जब साधक जीव को किसी महापुरुष–सन्तजन की सेवा का अवसर उपलब्ध हो जावे तो भगवत् कृपा का स्रोत उस साधक जीव पर आ जावे। शास्त्र बोल रहा है–

पुण्य एक जग में नहीं दूजा। मन, क्रम, वचन साधुपद पूजा।
सानुकूल तिन पे मुनि देवा। जो तजि कपट करे साधु सेवा।

भगवान् का मन साधु के अभाव में लगता नहीं है। अतः साधु को भगवान् तलाश करते रहते हैं। जो जीव साधु को दुःख देता है, उस पर भगवान् अत्यन्त नाराज़ हो जाते हैं। उसका अमंगल होके ही रहता है। इसे कोई प्राणी भी बचा नहीं सकता। उसे कष्ट भोग करना ही होता है।

गुण व अवगुण सभी ब्रह्मा जी से ही अवतीर्ण होते हैं। पूरी सृष्टि ही भगवान् ब्रह्मा से प्रगट होती है। कोई भी सृष्टि में ऐसा पदार्थ नहीं है जो भगवान् ब्रह्मा से नहीं उत्पन्न हुआ हो। ब्रह्मा का हज़ार चौकड़ी का दिन होता है जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है। जब ब्रह्मा के सौ वर्ष समाप्त हो जाते हैं तब ब्रह्मा भी मृत्यु का ग्रास बन जाता है तो यह उत्पन्न की हुई सारी चर–अचर की पूरी सृष्टि भी ब्रह्मा के शरीर में ही विलीन हो जाती है। यही है भगवत् माया का जंजाल। भगवत् कृपा के अभाव में यह जंजाल समाप्त नहीं होता है। यह कृपा केवल जिह्वा से हरिनाम करने पर तथा कान से इसे सुनने पर ही हो सकता है अन्य दूसरा कोई

उपाय नहीं है। इस कलिकाल के युग में साधकगण इसपर पूर्ण श्रद्धा विश्वास करके अपना जीवनयापन करता रहे तो इसी जन्म में भगवत्–प्राप्ति बन जावे।

यह संसारी आसक्ति ही मन से हरिनाम नहीं होने देती। श्रीगुरुदेव जी ने जो तीन इंजैक्शन (बातें) साधकगण को कृपा कर दिये हैं, यदि साधकगण इनको अपनाते रहें तो बहुत शीघ्र ही मंगलविधान उपलब्ध कर लेवे वरना मंगल होना असंभव ही जान पड़ता है। यह अमूल्य मानव जन्म व्यर्थ में चला जायेगा। मृत्यु का भरोसा न कर, इस साधन में जुट जाना ही श्रेयस्कर होगा। समय निकल जाने पर पछतावा ही हाथ में आवेगा। मेरे श्रीगुरुदेव जी समझाते–समझाते थक गये, इतना समय निकल गया फिर भी लोग असमंजस में, संदेह में पड़े–पड़े अपना जीवन बर्बाद करते जा रहे हैं। सुलटी सोचते नहीं हैं, उल्टी ही उल्टी सोचते रहते हैं।

मैं सत्य–सत्य बोल रहा हूँ कि भगवान् को प्राप्त करने का यह सब प्रसंग श्रीगुरुदेव ही अंकित कराते रहते हैं। इसमें मेरा रति भर भी प्रयास नहीं है। इसके विपरीत सोचने वाले को घोर अपराध लगता रहेगा तथा हरिनाम मन से होने का तो सवाल ही नहीं है। श्रीगुरुदेव की वाणी में दोष निकालना बहुत बड़ी मूर्खता है, अज्ञान है। लेकिन महामाया सबपर छाई रहकर भगवान् की ओर आने नहीं देती।

शास्त्र बोल रहा है–

कृष्ण यदि छुटे भक्ते मुक्ति युक्ति दिया।
कभू प्रेम भक्ति ना देय राखे लुकाइया।।

प्रबल प्रेम के पाले पड़कर हरि का नियम बदलते देखा,
स्वयं का नियम भले टल जाये भक्त का नियम न टलते देखा।

काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता। निज व्रत कर्म भोग सबु भ्राता।।
तबहि होय सब संसय भंगा। जब बहु काम करिये सतसंगा।।

– हरिबोल –

16

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

पांचूडाला (छींड)
10.11.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारंबार, हाथ जोड़ कर प्रार्थना स्वीकार हो।

समस्त धर्मग्रंथों का निचोड़ तथा बीज अर्थात् सार का विवेचन

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने पिछले इतवारों में प्रातः 7 बजे से 8.30 बजे तक समस्त धर्मग्रंथों का सार तत्त्व मुझ से वर्णन करवाया था। उक्त सार कार्तिक मास में अष्टयाम कीर्तन में स्पष्ट रूप में वर्णित किया गया है। जो नीचे अंकित किया जा रहा है। केवलमात्र दो क्षण की प्रार्थना से ही भगवत्–प्राप्ति हो जाती है यदि कोई भी भक्त साधक इन तीनों प्रार्थनाओं को नित्य ही, बिना भूल से करता रहे, तो तीन माह की प्रार्थना से उक्त तीनों भाव हृदय में पक्के हो जायेंगे। दो–ढाई घड़ी में राजा खट्वांग को भगवत् प्राप्ति हुई है। श्रीगुरुदेव जी ने दो मिनट में भगवान् के चरण में पहुँचा दिया क्योंकि इन तीनों प्रार्थनाओं को करने में दो मिनट से अधिक समय नहीं लगता।

इन तीनों प्रार्थनाओं से कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। घर में ही भगवान् की उपलब्धि बन जा सकती है। दो मिनट की प्रार्थना से भगवान् मिल जाते हैं। कहीं तीर्थाटन करने की आवश्यकता नहीं। घर बैठे सत्संग की उपलब्धि हो जाती है। केवल नामापराध से बचना परमावश्यक है। सारे धर्मग्रंथ भी इन तीनों प्रार्थनाओं का उल्लेख ही करते हैं ताकि यह तीनों प्रार्थनाएं भक्त–साधक के हृदय में पूरी तरह से बैठ जावें, जम जावें। 3 माह में जम जायेंगी।

जब ये तीन भाव भक्त–साधक के हृदय में बैठ जावेंगे तो अंत समय में जब मौत आवेगी तो स्वयं भगवान् उस भक्त–साधक को लेने आवेंगे। वैसे साधारण भक्त को तीन पार्षद वैकुण्ठ धाम से लेने हेतु आते हैं।

प्रत्येक दिन एक लाख हरिनाम तो करना ही पड़ेगा। हरिनाम के अभाव में ये तीनों प्रार्थनाएँ जम नहीं सकती। हृदयगम्य हो नहीं सकतीं। भगवान् इस भक्त–साधक का वैकुण्ठधाम में भव्य स्वागत करवाते हैं। वैकुण्ठधाम एक ऐसा स्वच्छ स्थान है जिसका इस जड़ जिह्वा से वर्णन हो ही नहीं सकता। वहाँ दुःखों की तो हवा ही नहीं है। सुख ही सुख का साम्राज्य फैला हुआ है।

यदि श्रीगुरुदेव प्रदत्त माला मैया का सम्मान तथा आदर नहीं हुआ तो बना बनाया महल धराशायी हो जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने माला का रख रखाव पिछले इतवारों में मेरे से अंकित करवा दिया था। जो मैंने बोलकर सभी भक्तगणों को सावधान भी कर दिया था। प्रेम प्राप्ति का मूल स्रोत हमारी माला मैया ही है। श्रीगुरुदेव जी ने हमें अमोघ हथियार सौंपा है ताकि हम माया को परास्त कर सकें।

भगवान् के हम सब बच्चे ही तो हैं अतः भगवान् गुरु रूप में आकर हमें माया से रक्षा पालन हेतु माला मैया की गोद में सौंप देते हैं तो माला मैया हमें हरिनाम रूपी अमृत सुधा का दूध पिलाकर, विषय विष को Overlap करती रहती है अर्थात् विषयों के ज़हर को अपने अमृत सुधा के दूध में डुबोती रहती है। ज़हर को तन से बाहर निकालती रहती है। कुछ काल बाद में हमें अमृतमयी प्रेम की उपलब्धि हो जाती है तथा हमारा माया रूपी बंधन टूट जाता है और सदा के लिये परम पुरुषार्थ प्रेम, भगवान् से जुड़ जाता है। अनंत जन्मों से हम जिस दुःख की घाणी में पिल रहे थे, वह दुःख हमारे से सदा के लिये विदा हो गया। अष्टयाम कीर्तन में उक्त सभी वर्णन अंकित हैं।

साधक से नामापराध बन जाने पर हरिनाम ही इस अपराध को नष्ट कर देता है जैसा कि भजन गीति गारंटी दे रही है। एक लाख नित्य हरिनाम होते रहने से अपराध होने का अंदेशा रहता है। 64 माला से 4 माला अधिक होने पर ये 4 माला अपराध को खंडित करता रहता है। भजनगीति में स्पष्ट अंकित है।

अविश्रान्त नामे, नाम–अपराध जाय,
ताहे अपराध कभु स्थान नाहि पाय।।

''हर वक्त नाम जपते रहने से सारे नामापराध समाप्त हो जाते हैं क्योंकि निरंतर हरिनाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं मिलता।''

पानी पीते रहने से पेशाब तो आवेगा ही। इसी प्रकार स्वादिष्ट भोजन खाने से काम वेग आना भी बहुत जरूरी है ही। यही शरीर का धर्म है। इसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती। जब ही तो हमारे पिछले गुरुवर्ग पेट की ज्वाला को शांत करने हेतु यमुना रेत फांक लिया करते थे।

हरिनाम बिना कलिकाले, नाहि आर धर्म।
सर्वमंत्र सार नाम, एइ शास्त्र मर्म।।

दूसरे याम कीर्तन में अंकित है कि हरिनाम में शुद्धि–अशुद्धि का ध्यान नहीं रखना पड़ता।

खाइते–शुइते यथा–तथा नाम लय
देश–काल–नियम नाहिं, सर्वसिद्धि हय।

तीसरे याम कीर्तन में अंकित है–

उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान।।

यही चर्चा मेरे गुरुदेव जी ने की है कि जब संध्या वंदन करें तो भगवान् से प्रार्थना करें कि मैं हर जीव मात्र में तथा कण–कण में आपको ही देखूँ। आपको ही अनुभव करूँ, ऐसी भावना मेरी बना दीजिये। फिर सावधान किया है–

प्रतिष्ठाशा छाड़ि कर अमानी ह्रदय।
कृष्ण–अधिष्ठान सर्वजीवे जानि सदा।।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा
दैन्य दया, अन्ये मान प्रतिष्ठा–वर्जन।।

छठे याम कीर्तन में प्रार्थना की गई है कि मनुष्य जन्म पाकर भी यदि भगवान् से प्रेम नहीं हुआ तो सारा जीवन बेकार ही चला गया। नामापराध बनने से मेरा चित्त पत्थर जैसा हो गया। इस कारण अश्रु–पुलक आदि मेरे शरीर पर नहीं हो रहे हैं। तो यह सात्विक गुण कैसे हो सकते हैं? केवल हरिनाम अधिक होने पर ही हो सकते हैं। अतः पश्चाताप से दिल जल रहा है तो ज़ोर–ज़ोर से हरिनाम करके ही भगवत्–शरण में अपना तन–मन नियोजित कर लिया एवं भगवत् से प्रार्थना करने लगा कि कब मुझे अश्रुपात होगा? कब कंठ गदगद होगा? कब शरीर पुलकायमान होगा? कब शरीर का रंग बदरंग बनेगा? जब विरहाग्नि बड़े ज़ोर से प्रज्ज्वलित होगी तब ही उक्त विकार आ सकेंगे।

तब मुझे निमेष मात्र युग के समान महसूस होगा। यह जगत् मुझे सूना–सूना लगेगा। यह संसार मुझे अच्छा नहीं लगेगा। मैं कहाँ जाऊँ ? कौन मुझे मेरे प्राणनाथ से मिलावे? यही दुःख मेरे कलेजे को खाता रहता है। मेरी सहनशक्ति समाप्त हो चुकी है। अब तो मेरे प्राण पखेरु इस शरीर रूपी वृक्ष से उड़ने वाले हैं। अब तो केवल मात्र सहारा हरिनाम का ही है। कभी प्राणनाथ दर्शन देकर मुझे तरसाते रहते हैं। दयानिधि होकर भी मुझ जैसे दीन–हीन पर दया नहीं करते। यही अवस्था मुझे सताती रहती है। मेरा कलेजा चिंता से चूर–चूर हो गया। कौन मुझे इस दुःख से छुड़ावे? सभी मार्ग बंद हो चुके। दिन जावे न रात, कब होगी प्रभात? जब सभी रास्ते बंद हो जाते हैं तो हरिनाम करने से ही कुछ शांति अन्तःकरण में महसूस होने लगती है लेकिन फिर वही दुःख, दुःखी करता रहता है। उस निर्दयी के नाम के अलावा, मुझे शांति देने वाला कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। वह मुझे मारे या जिवावे, मैं

तो उसका ही रहूँगा। वह मेरे प्राणनाथ हैं। वह मेरा बाप है मैं उनका जन्म–जन्म का पुत्र हूँ।

मैं रोऊँगा तो उनके लिये,

मैं सोऊँगा तो उनके लिये,

मैं खाऊँगा तो उनके लिये,

मैं गीत गाऊँगा तो उनके लिये,

वे ही मेरे सब कुछ हैं, दूसरा मेरा कोई नहीं है।



अब गीता के कथनानुसार भी श्रीगुरुदेव जी ने साधकों को बोला है कि ब्रह्ममुहूर्त में, जब भी नींद खुले तो बोलो–**"हे मेरे प्राणनाथ ! आज जो भी कर्म मेरे से बने, वह कर्म आपके निमित्त ही हो। जब मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना। यही कृपा मुझ पर आकर कर देना।"**

साधक, गुणों के कारण कर्म करने में बाध्य है। जैसा उसका स्वभाव होगा–सतोगुण, रजोगुण या तमोगुण का, वैसा ही बाध्य होकर कर्म करना पड़ेगा। अतः जब भगवत् कृपा साधक पर हो जायेगी तो उक्त गुण उसे बाध्य नहीं कर सकेंगे। अतः गुरुदेव ने साधकों को सतर्क किया है।

शास्त्र, समस्त कर्म भगवान् से ही प्रगट हुआ है अतः कर्म भगवान् के निमित्त ही करना उत्तम है। अतः साधक कर्म स्वयं के लिये न करने पर बंधेगा नहीं। इसका कर्म ही नरक में ले जाता है एवं कर्म ही वैकुण्ठ में ले जाता है। जब कर्म भगवान् के निमित्त होता रहता है तो पाप लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिस प्रकार हनुमान जी ने पूरी लंका को जला कर भस्म कर दिया जिसमें अनंतकोटि जीव स्वाहा हो गये तो हनुमान जी को पाप छुआ तक नहीं क्योंकि हनुमान जी का कर्म श्रीराम जी के निमित्त था।

भगवान् ने जीवमात्र के कर्मानुसार सभी को शरीर रूपी धर्मशाला दी है इन धर्मशालाओं में रहने हेतु समय निश्चित किया है। जब समय पूरा हो जाता है तो इस धर्मशाला से जीव को जाना पड़ता है। कब्जा नहीं कर सकता। श्रीगुरुदेव ने साधकगणों को सतर्क किया है कि किसी भी धर्मशाला को नष्ट करने का तुम्हें अधिकार नहीं है। मक्खी, मच्छर से लेकर हाथी तक सबको शरीर रूपी धर्मशाला समय गुजारने हेतु भगवान् ने इनके कर्मानुसार दी है। यदि साधक इन धर्मशालाओं को नष्ट करता है तो स्वयं को नई धर्मशालाओं में रहना पड़ेगा। यह शरीर रूपी धर्मशाला तो जड़ पदार्थ से बनाई गई है। इसमें आत्मा रूप में भगवान् वास करते हैं तो जो साधक इनका नुकसान करता है, वह नुकसान आत्मा रूपी भगवान् को ही होता है। धर्मशाला जड़ पदार्थ होने से इनको नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तब ही शास्त्र घोषणा करता है कि करोड़ों अरबों में कोई जीव ही मुझे उपलब्ध करता है। अन्यथा सभी माया की चक्की में पिसते रहते हैं।

रात में कौन जागता है एक तो चोर दूसरा तो भगवान् का प्यारा संत। जो रात में कमाई करते हैं वे भी चोर ही हैं क्योंकि रात तो केवल विश्राम के लिए ही है। दिन कर्म करने हेतु है अतः सभी चोर ही हैं जो रात में कमाई करते हैं ।

यह महत्वपूर्ण बात साधक को ध्यान देकर सुनने की है। श्रीगुरुदेव जी सबको सतर्क कर रहे हैं। यदि आपको भगवान् के धाम में जाना हो तो किसी भी जीव को सतावो नहीं। भले ही वह मच्छर ही क्यों न हो। जिसको आप सतावोगे वह सताना आत्मा रूपी परमात्मा को होगा क्योंकि शरीर तो पाँच तत्वों से बना जड़ शरीर है। जड़ शरीर को सताने से क्या कोई दुःख होगा। संसार में देख रहे हैं कि एक मानव दूसरे मानव से शत्रुवत् व्यवहार, द्वेष करता रहता है। वह मानव से नहीं करता, वह तो परमात्मा से शत्रुवत् व्यवहार कर रहा है तो उसे भगवत् धाम उपलब्ध होने का सवाल ही नहीं उठता। मानव दूसरे मानव से राग–द्वेष करता

रहता है। उदाहरण देकर समझाया जा रहा है। जैसे मेरे मकान में कोई खिड़की तोड़े तो क्या मकान को दर्द होगा ? मैं इसमें रहता हूँ अतः दर्द मुझे होगा। निष्कर्ष यह निकला कि किसी भी जीव को सतावो नहीं वरना भगवान् नहीं मिलेगा, संसार मिलेगा और दुःख सागर में गोते खाते रहोगे। माया की असहाय चक्की में पिसते रहोगे। अतः अभी से सावधान हो जावो। बाद में यह मानव जन्म नहीं उपलब्ध हो सकेगा। अरबों–खरबों युग बीत जायेंगे, तो संभव है, मिल जाये।

श्रीगुरु महाराज समझाते–समझाते हार गये। परंतु अभी भी समझ नहीं आई। ये सभी गूढ़ बातें अन्य ठौर में नहीं मिलेंगी जो साधारण सरल व सुगम हैं। जिनको साधक आसानी से अपना सकता है। गूढ़ बातें धर्मग्रंथों में नहीं मिलेंगी।

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा साक्षात् माया का रूप है। जिस साधक ने इनको त्यागा है वही भगवत् चरण में पहुँच पाया है। ये इतने प्रबल तथा झीनी अवस्था के हैं कि कोई विरला ही इन्हें छोड़ पाया है। जिस पर सच्चे संत की कृपा हो जाती है वही इन्हें दूर करवा सकता है अन्य किसी उपाय से, ये तीनों अन्तःकरण से हट नहीं सकते।

श्रीगुरुदेव जी ने पिछले इतवारों को, भगवान् को प्राप्त करने के गूढ़ उपाय–सोते समय, प्रातः जगते समय तथा प्रातः संध्या करते समय–इतने सरल, सुगम सभी साधकों को बताये हैं। इतने कम समय में प्रार्थना करने पर भगवत् चरण उपलब्ध हो सकते हैं जो समस्त धर्मग्रंथों का निचोड़ तथा बीज है। प्रयास करने पर इस दुःखदायी जन्म–मरण से पिंड छूट सकता है। जो अमूल्य भगवत् प्राप्ति का उपाय है। बारंबार श्रीगुरुदेव जी साधको को सावधान करने हेतु लिखते रहते हैं क्योंकि साधकों को नहीं चेतावें तो साधक भूल जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी प्रह्लाद तथा ध्रुव चरित्र सौ–सौ बार सुना करते थे क्योंकि बार–बार बताने से बात हृदय में बैठ जाती है। माया के इतने बेशुमार झंझट साधक के नजदीक

रहते हैं कि साधक इन झंझटों में फँसकर भगवत् प्राप्ति के उपायों को भूल जाता है। अतः बार–बार बताना पड़ जाता है।

भगवान् तो इतने दयालु हैं अर्थात् वात्सल्य रस के समुद्र हैं कि एक बार भी साधक उन्हें पुकार लेता है तो वे तुरन्त ही उसे अपनी गोद में लेने को तैयार रहते हैं। जिस प्रकार कोई दूध पीता शिशु जागकर माँ को पुकारता है तो माया की माँ ही तुरन्त अपना काम छोड़कर शिशु को अपनी गोद में लेकर, अपना स्तन अपने शिशु को पिलाने में अग्रसर हो जाती है। भगवान् जो अनंतकोटि ब्रह्मांडों को सृजन करने की माँ है, इनका वात्सल्य भाव, इस जड़ जिह्वा से बताया नहीं जा सकता। लेकिन कोई भाग्यवान् जीव इसे पुकार के तो देखे !

भगवत् गीता के कथनानुसार काम ही जीव का महान् शत्रु है। काम का आशय है–इच्छाएँ। इन इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है। इन इच्छाओं से ज्ञान ढका रहता है। यदि जीव का इन इच्छाओं पर आधिपत्य हो जाये तो भगवत् प्राप्ति का सच्चा ज्ञान उसके अन्तःकरण में प्रगट हो जाये। सभी इच्छायें अंत में दुःख का कारण बन जाती हैं। दुःख को मोल लेना क्या जीव की समझदारी है ? जो कुछ जीव को उपलब्ध हो रहा है, उसी में संतोष करके अपना भजन स्तर बढ़ाता रहे तो अंत में सुख ही सुख हस्तगत हो जायेगा।

मठ–मंदिर में रहना साधक की प्रारंभिक स्थिति है जब वह उच्च स्थिति पर पहुँच जाता है तो उसका हृदय–मन्दिर ही भगवान् के बैठने का पक्का स्थान बन जाता है। इसके उदाहरण हैं–रूप, सनातन तथा माधवेन्द्र पुरी आदि। तीन गुणों के कारण ही संसार का बंधन रहता है। जब तीन गुण विलीन हो जाते हैं तो निर्गुणवृत्ति प्रगट हो जाती है। भक्तगण ध्यान देकर सुनें कि जब निर्गुणवृत्ति अन्तःकरण में प्रगट हो जायेगी तो स्वतः ही विरहाग्नि निश्चित रूप से प्रगट हो जायेगी। संसार का अस्तित्व ही समाप्त

हो जायेगा। भगवान् के प्रति विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने पर एक अकथनीय, अलौकिक आनंद की हृदय में अनुभूति होने लगेगी। यही है पंचम पुरुषार्थ की उपलब्धि। इसी के लिये भक्तगण सदैव लालायित रहते हैं।

भक्तगण ध्यानपूर्वक श्रीगुरु की अमृतवाणी सुनने की कृपा करें। भगवान् से जीव का कोई भी संबंध बन जाये तो भगवान् उसी संबंध से जीव पर प्रसन्न हो जाते हैं। जिस प्रकार पूतना ने तो कृष्ण को मारने की इच्छा से अपना विष लगे स्तन का दूध पिलाया तो क्या भगवान् ने उसे शत्रु माना ? नहीं ! भगवान् ने पूतना को माँ की गति प्रदान की।

राक्षसों ने भगवान् से बैर किया तो भगवान् ने उन्हें वैरी नहीं माना, उनको सद्गति ही दी। निष्कर्ष यह ही निकलता है कि भगवान् को किसी भाव से याद करते रहो। भगवान् का स्वभाव ही ऐसा है कि किसी भी भाव से उन्हें याद करे तो भगवान् उसका मंगल ही करते हैं। सभी भाव भगवान् से ही तो उदय हुये हैं। भाव अच्छा हो या भाव बुरा हो, भगवान् के लिये समान ही है। संसारी मानव के लिये इनका भेद महसूस होता है। पिछले जन्मों के संस्कार ही मानव को कर्म करने हेतु बाध्य करते हैं लेकिन भगवत् नाम ही पिछले संस्कारों को जला कर राख कर देते हैं।

भागवत में लिखा है कि भगवान् से कोई भी संबंध से नाता जुड़ना चाहिये फिर उद्धार होना निश्चित है। नाता काम का हो, क्रोध का हो, भय का हो, स्नेह का हो, किसी भी भाव का हो उसका उद्धार का कारण बन जाता है। जैसे भगवान् को बेटा शिशुपाल ने सौ गाली दी तो क्या भगवान् उससे नाराज़ हुये ? भगवान् ने उसे मुक्त कर दिया। पूतना ने भगवान् को ज़हर भरा स्तन पिलाया तो उसे माँ का दर्जा दिया। राक्षस वर्ग ने भगवान् से दुश्मनी की तो क्या भगवान् ने उन्हें दुश्मन माना ? सभी का उद्धार किया। कहने का मतलब यही है कि भगवान् में मन किसी प्रकार से लगे तो उसका उद्धार निश्चित है जैसा कि शास्त्र बोल रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिशि दसहुँ।।

किसी भी तरह से भगवान् से मन जुड़ना चाहिये। भगवान् के लिये सभी भाव आदर के पात्र हैं। भगवान् के अतिरिक्त अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में कुछ है ही नहीं। न शब्द है, न भाव है। सभी भगवान् के सानिध्य में हैं। भगवान् से चर–अचर भाव, कुभाव, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुवत् व्यवहार श्रीकृष्ण से ही है। शब्द, स्वर, व्यंजन वर्ण आदि भगवान् से ही निकले हैं। माया ने इन्हें अंगीकार कर मानव को संसार में फँसा दिया। माया यदि न हो तो यह भगवत् सृष्टि का सृजन हो ही नहीं सकता। भगवान् ऐसी माया को अंगीकार कर, अनेक प्रकार की लीलाओं का विस्तार इस कारण करते हैं कि साधकगण इन्हें अन्तःकरण में रख कर अपना उद्धार कर सके। माया के चंगुल से छूट सके।

श्रीगुरुदेव प्रदत्त माला का सत्कारपूर्वक रख–रखाव का साधक यदि ध्यान नहीं रखता तो हरिनाम में रुचि होना बिल्कुल असंभव है। **साधक टी.वी. देख रहा है और माला भी जप रहा है तो यह माला का जघन्य अपराध है। माला को कहीं भी रखना, जहाँ स्वच्छ स्थान नहीं है, माला का निरादर है।** माला हमारी माँ है जो हमें हरिनाम रूपी अमृत दूध हमें अपने स्तन से पिलाती है जिससे विषयों का ज़हर साधक के तन से बाहर निकलता रहता है। यदि माला जपते समय मन इधर–उधर भटकता है तो माला उलझती रहेगी। यदि बुरा भाव मन में आता है तो माला टूट जायेगी। यदि भगवत् चिंतन में माला से जप होता है तो माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु ही हाथ में आवेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। **कोई भी चर्चा बार–बार इसलिये करनी पड़ती है कि साधक सावधान होकर भजन में मन नियोजित करता रहे।** श्रीगुरुदेव जी गूढ़ से गूढ़ प्रसंग भी साधकों को बताते रहते हैं फिर भी यदि साधक ध्यान न देवे तो इसके बराबर कोई निर्भागा नहीं है, मूर्ख नहीं है, बेपरवाह नहीं है।

माला मैया का प्रेम से आदर सत्कार होगा तो जब माला से हरिनाम जपना आरंभ करोगे तो सुमेरु ही हाथ में आवेगा। यदि विश्वास न हो तो आज़मा कर देख सकते हो। माला मैया का आदर न होने से नाम में रुचि हो ही नहीं सकती। यह मेरे गुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं जो बात सारगर्भित होती है उसे बार–बार बोलना पड़ता है। अतः साधकगण श्रद्धा को बनाये रखें।

– हरि बोल –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

17

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
20.11.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की हाथ जोड़कर प्रार्थना स्वीकार हो।

माया शक्ति क्या बला है ? क्या मुसीबत है ? क्या आफत है ? तथा योगमाया क्या बला है ? क्या शक्ति है ?

माया शक्ति है जो जीव आत्मा को संसार में फँसाने वाली है, योगमाया है जिसका अवलंबन करके भगवान् अनंतकोटि ब्रह्मांडों में जीवों के उद्धार हेतु, लीलाओं का विस्तार करने हेतु, अनंत अलौकिक लीलाओं का सृजन करते हैं। जिनका चिंतन करके जीव भवसागर से पार हो जाता है। भगवान् से सभी चर–अचर प्राणी प्रगट होते रहते हैं। भगवान् के अभाव में किंचित मात्र भी धरातल पर कुछ नहीं है। यदि यह दृष्टि किसी भाग्यवान् जीव की हो जाती है वह भगवान् का अलौकिक धाम उपलब्ध कर लेता है। यही प्रसंग मेरे गुरुदेव ने पिछले इतवारों को भक्त साधकों को मुझ से अंकित करवाया है। भगवान् योगमाया का अवलंबन करके ही लीलाओं का सृजन किया करते हैं।

लेकिन मायाशक्ति इतनी प्रबल है कि कोई करोड़ों, अरबों युगों में विरला ही इस माया से पार होता है। जिस पर सच्चे आचरणशील भक्त संत की कृपा हो जाती है, वही इस शक्तिशाली माया से पार हो जाता है। जिसको उक्त संत की सेवा का अवसर उपलब्ध हो जाता है। बिना संत की सेवा से भगवत् कृपा नहीं होती।

यह माया उसे दुःख देती है जो भगवान् को नहीं मानता। जो सच्चे दिल से भगवान् की शरण में रहता है उसे माया सहायक होकर सच्चे मार्ग पर चलाती रहती है। मायाशक्ति सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण का साक्षात् स्वरूप है। जीव के कर्मानुसार सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण से जीव का जीवनयापन होता रहता है। यही गुण प्रेरित करके जीव को कर्म करने में बाध्य करते रहते हैं।

ये तीनों गुण ही आत्मा को दुःखी करते रहते हैं अर्थात् जीव आत्मा इनसे दुःखी होती रहती है। जैसे ईर्ष्या, द्वेष करना, किसी को दुःखी देखकर खुश होना, शत्रुवत् व्यवहार करना–इनका तन पर अर्थात् शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रभाव पड़ता है जीव आत्मा पर। क्योंकि शरीर तो जड़ पदार्थ से निर्मित्त होता है अर्थात् निर्जीव है।

भगवान् स्वयं बोलते हैं कि–''हे मानव ! तू मन्दिर में जाकर लंबे–लंबे हाथ जोड़ता है कि सुख प्रदान करो एवं मन्दिर के बाहर जाकर मेरे सिर पर लाठी मारता है अर्थात् अपने समान ही मानव पर शत्रुवत् व्यवहार करता रहता है तो मैं तुमसे कैसे खुश रह सकता हूँ ? मानव के ढांचे पर क्या असर होगा क्योंकि यह शरीर तो जड़ पदार्थ से बना है ? जो इसमें रहता है आत्मा, उसको तेरा व्यवहार प्रभाव करेगा। क्योंकि आत्मा सजीव है। परमात्मा की सजातीय है। परमात्मा से प्रगट हुई है।''

भगवान् से जब आत्मा प्रेम संबंध कर लेता है तो माया के सत्–रज और तम गुण समाप्त हो जाते हैं तथा निर्गुणवृत्ति जागृत हो जाती है। यह प्रेम संबंध हरिनाम में रुचि होने पर स्वतः ही उदय हो जाता है।

निर्गुणवृत्ति ही परमहंस अवस्था कहलाती है। जिसे तुरीय अवस्था भी कहते हैं यह अलौकिक अवस्था होती है। इसमें साधक का मन भगवान् से एकीभूत हो जाता है। भगवान् एवं

साधक का एक मेल हो जाता है अर्थात् दोनों में किंचित् मात्र भी अंतर नहीं रहता। जैसे सूर्य और सूर्य की किरण। फूल और फूल की सुगंध।

यह बहुत ऊँची अवस्था होती है इसको कोई उच्च कोटि का साधक ही समझ सकता है। साधारण साधक की बुद्धि के बाहर है। जीव को हरिनाम से ही शांति उपलब्ध होती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। **विरहाग्नि में जलता रहेगा तब अंत में हरिनाम का ही सहारा लेना पड़ेगा, तब थोड़ा जलना कम होगा।**

आप भक्तगण गलत न समझें। भगवान् का अर्चन–पूजन वैसे द्वापर युग का भक्ति करने का धर्म है। मैं अर्चन–पूजन का विरोध नहीं कर रहा हूँ। यह अर्चन–पूजन हरिनाम करने में सहायक रहता है। मठों में भजन–साधन साधारण भक्त के लिये सर्वोत्तम है। यहाँ भगवत्–अर्चन–पूजन से वातावरण शुद्ध रहता है तो हरिनाम में मन लग जाता है।

भजन गीति में तथा अष्टयाम कीर्तन में अर्चन–पूजन का कहीं उल्लेख नहीं है। केवलमात्र हरिनाम का ही उल्लेख हुआ है। भक्तगण, सभी का उद्देश्य यहीं रहा है कि कब हरिनाम करने से, मुझे सात्विक विचार उदय होकर, मेरे शरीर पर अश्रुपुलक होगा, कंठ गद्गद् होगा। भजनगीति में उल्लेख हुआ है।

गृहे थाक, वने थाक, सदा 'हरि' ब'ले डाक,
सुखे–दुःखे भुल ना'क, वदने हरिनाम कर रे।।

कि वन में रहो, चाहे घर में रहो, हरिनाम करते रहो। कहीं भी रहो, कोई आपत्ति नहीं है। हरिनाम में रुचि होनी चाहिये। हरिनाम में मन लगना परमावश्यक है। यदि मठ में हरिनाम करने में लाभ नहीं है तो घर ही सर्वोतम है।

हमारे गुरुवर्ग ने मठ इसलिये निर्माण किये हैं कि यहाँ पर शुद्ध वातावरण होने से हरिनाम कीर्तन में मन लग सकेगा। बस यही मुख्य कारण है। अन्य दूसरा कोई कारण नहीं है।

मन को हरिनाम में नियोजित करना ही सर्वोत्तम है क्योंकि यही कलियुग में भगवत् प्राप्ति का श्रेष्ठतम धर्म है। हरिनाम मन से होने से भगवत्–अर्चन–पूजन स्वतः ही हो जाता है। अर्चन–पूजन भी तो मन को लगाने हेतु ही तो है। अर्चन–पूजन में अपराध होने का भय है परंतु हरिनाम में किंचित् मात्र भी भय का प्रश्न नहीं उठता। इससे अपराध होता ही नहीं। कैसे भी हरिनाम की शरणागति लेते रहो।

पुराने समय में राजा तथा राजपूत मंदिरों को ज़मीन दिया करते थे। ज़मीन की आय से मंदिरों के खर्चे के काम सुचारु रूप से चलते रहते थे। हरिनाम में रुचि हेतु सभी मठ–मंदिरों के निर्माण की आवश्यकता रहती है। यदि हरिनाम में रुचि रहती है तो हृदय मंदिर ही सर्वोत्तम मठ मंदिर है। कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है।

मठ निर्माण करने का एक कारण यह भी है कि विग्रह के समक्ष संकीर्तन करने से आनंदानुभूति होती है तथा मठ को चलाने हेतु पैसे की भी आवश्यकता रहती है। तो भक्तगण जो गृहस्थी हैं भगवान् के लिये पैसा भी देते रहते हैं जिससे मठ का सुचारु रूप से बिजली पानी से निर्वाह होता रहता है तथा कमरे बनने से विस्तार होता रहता है।

लेकिन जहाँ मठ की सेवा हेतु प्रेमी संन्यासियों का अभाव होता है वहाँ मठ निर्माण करना उचित नहीं है। वहाँ पर अपराध होने का अंदेशा रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव जी को जयपुर–महाराज मठ बनाने हेतु बहुत सुंदर, अनुकूल स्थल दे रहे थे परंतु मेरे श्रीगुरुदेव जी ने यह कहकर मना कर दिया कि मेरे पास मठ की सेवा हेतु विरक्त संन्यासी नहीं हैं। अतः मैं यह स्थल लेकर क्या करुँगा ? इससे तो अपराध का भागी बन जाऊँगा।

श्रीगुरुदेव जी ने प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में जगने पर बोला है कि–**"हे मेरे प्राणनाथ! आज जो भी कर्म करूँ, वह आपके निमित्त ही हो। मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना। ऐसी मुझ पर कृपा करते**

रहना।'' यह गीता का निष्काम कर्मयोग हो गया। जो गीता के नौवें अध्याय में सत्ताईसवें श्लोक में अर्जुन को भगवान् ने बोला है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता 9.27)

''हे अर्जुन। तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ स्वधर्माचरण रूप तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर। इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप संन्यास योग से युक्त हुए मन वाला, तू अशुभ फलरूप कर्म बंधन से मुक्त हो जायेगा और मुझे ही प्राप्त होगा।''

मेरे श्रीगुरुदेव ने प्रातःसंध्या करते समय बोला है कि–**''हे प्राणनाथ! मेरी हस्ती ऐसी बना दीजिये कि मैं कण–कण में, प्रत्येक जीवमात्र में आपको ही देखूँ।''** यही प्रसंग गीता के बारहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में भगवान् ने बोला है कि जो साधक सब भूतों में अर्थात् सभी जीवमात्र में द्वेष भाव से रहित है एवं स्वार्थ रहित, सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित एवं अहंकार से रहित दयावान् है वह मुझे ही प्राप्त होता है।

त्रिगुणात्मक माया का संग ही जीव आत्मा को अच्छी बुरी योनियों में भ्रमण कराता रहता है क्योंकि यह त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता रहता है। केवलमात्र हरिनाम मन से जपने पर त्रिगुणात्मक संग दूर हो जाता है और निर्गुण संग उपलब्ध हो जाता है। निर्गुण संग ही भगवान् से मिला देता है क्योंकि इस संग से साधक के हृदय में सात्विक विकार उदय हो जाते हैं। भगवान् के लिए छटपट शुरु हो जाती है।

गीता के तेरहवें अध्याय में पच्चीसवें श्लोक में भगवान् ने बोला है कि मन्द उपासना करने वाले साधक भी सच्चे संत से सुनकर मृत्युरूप संसार सागर से निःसंदेह तर जाते हैं।

गीता के सोलहवें अध्याय में अठारहवें श्लोक में भगवान् बोल रहे हैं कि अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोधादिक के परायण दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीरों में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करने वाले हैं। इनको मैं माया द्वारा दुःखी करता रहता हूँ तथा जन्म–मरण योनियों में भ्रमण कराता रहता हूँ।

गीता के सत्रहवें अध्याय के छठे श्लोक में भगवान् ने बोला है कि जो शरीर रूप से स्थित भूत समुदाय की अर्थात् जीवमात्र को और अन्तःकरण में स्थित मुझ अन्तर्यामी को भी द्वेष करने वाले हैं उन अज्ञानियों को हे अर्जुन ! तू आसुरी स्वभाव वाला ही जान।

मनुष्य का शरीर तो एक धर्मशाला है जो उनके कर्मानुसार रच कर दिया है। इसमें मैं आत्मा रूप से वास करता हूँ। तो दुःख धर्मशाला को नहीं होता क्योंकि धर्मशाला निर्जीव है। कष्ट तथा दुःख तो जीव आत्मा को महसूस होता है। जो मुझे दुःख देता है वह सुखी कैसे रह सकता है। उनको मैं नीच योनियों में गिराता रहता हूँ।

अठारहवें अध्याय के चालीसवें श्लोक में गीता में अर्जुन को भगवान् ने बोला है कि पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुये तीनों गुणों से रहित हो क्योंकि यह सर्वजगत् त्रिर्गुणमाया का ही विकार है।

कहने का तात्पर्य यही है कि सभी कर्मों को मेरे अर्पण कर फिर तुझे पाप–पुण्य कुछ नहीं लगेगा। अर्थात् मेरी शरण में ही अपना जीवन–यापन करता रह।

ध्यान से सुनिये–

नामापराध का प्रायश्चित्त– हम जिसका अपराध करते हैं उसी से क्षमा मांगना पड़ता है। वही क्षमा कर सकता है। जिस प्रकार दुर्वासा का अपराध अम्बरीष से ही क्षमा हुआ है।

नामापराध का दूसरा उपाय है क्षमा। क्षमा भी नाम से ही होती है। शास्त्र में लिखा है–

नामापराध युक्तानां नामन्येव हरत्यधम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि हि।।

इसका मतलब है नामापराध युक्त पुरुषों के पापों को नाम ही हर लेता है जब निरंतर नाम स्मरण करते जाओगे तो नामापराध का निवारण स्वतः ही हो जाता है। नाम ही क्षमा कर देता है। हरिभक्तिविलास में 713 पेज पर अंकित है कि नाम खंडित हो तो कोई नुकसान नहीं है। अतः एक लाख नाम गौरहरि के कहने अनुसार करना परमावश्यक है चाहे मन लगे या न लगे। नाम तो मंगल करेगा ही। जिस प्रकार जाने अथवा अनजाने आग छुओ तो जलाएगी ही। इसी प्रकार हरिनाम जीभ पर आना चाहिये, मंगल करेगा ही। आरंभ में किसी का हरिनाम ध्यान से कैसे हो सकता है ? बाद में स्वतः ही ध्यान से होने लग जाता है। शास्त्र बोल रहा है, ध्यान दें–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

दसों दिशाओं में मंगल क्यों लिखा है ? हरिनाम से भ्रमित करने वाले बहुत हैं। वे कहते हैं 16 माला ही श्रीगुरुदेव ने करने का आदेश दिया है। श्रीगुरुदेव जी ने 16 माला करने का आदेश इसलिये दिया है कि आज ही मैं 64 माला जपने को कहूँगा तो नया दीक्षित साधक इसे कर नहीं सकेगा तो इसे गुरु अपराध लग जायेगा। अतः इसे 16 माला ही करने के लिये आदेश देना उचित है।

जो कहते हैं कि शुद्ध नाम जपना चाहिये तो उनसे पूछा जाये कि आप तो 16 माला शुद्धि से कर रहे हो तो क्या आपको भगवान् के लिये छटपट हो रही है ? आँख से एक अश्रु भी आया है कभी ? तो उत्तर मिलेगा, ऐसा तो नहीं है। तो फिर गौरहरि ने 64 माला जपने को क्यों बोला ? उन्होंने यह तो नहीं बोला कि माला शुद्ध

जपना। केवल इतना बोला कि जो एक लाख नित्य जप करेगा मैं उसके घर पर प्रसाद पाया करुँगा। जो 64 माला नहीं जपेगा उसके घर पर मैं प्रसाद नहीं पाऊँगा। आरंभ में शुद्ध नाम नहीं होगा। बाद में धीरे–धीरे शुद्ध भी होने लगेगा। 64 माला में कभी तो शुद्ध नाम जप भी होगा ही।

मेरे श्रीगुरुदेव जैसा बोलें, उस पर विश्वास रखने में ही कल्याण है। जो मन बुद्धि को भ्रमित कर रहे हैं उनसे दूर रहो क्योंकि उनसे तो एक लाख होता नहीं अतः जो करते हैं उनको भी अपने साथ मिलाना चाहते हैं। अंग्रेजों के गुरुदेव जी ने तथा भक्तिसिद्धांत सरस्वती जी ने सौ करोड़ हरिनाम जप क्यों किया है? मन, बुद्धि भ्रमित करने वालों से इसका जवाब लो! बहुत संन्यासियों ने तीन–तीन लाख हरिनाम नित्य किया है। श्रीगुरुदेव के आदेश से मैं भी 3 लाख तथा अधिक भी करता रहता हूँ।

जो भगवान् को पाने में रोड़े अटकाता है उसे त्याग देना उचित है। शास्त्र बोल रहा है–

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परमसनेही।।

मेरे गुरुदेव जी ने लगभग एक साल पहले ही बता दिया था कि श्रीश्रीराधामाधव जी भूखे रहते हैं। पुजारी ने ठाकुर की रात–दिन सेवा की, फिर पुजारी को क्या मिला ? माया में फँसा कहता था कि सेवा बड़ी है, नाम नहीं है।

गुरुदेव जी ने सतर्क कर दिया था परंतु मठरक्षक अनसुनी करते रहे तभी तो यह नौबत आ गई। इसमें मठ की बदनामी हो गई। कईयों के भाव मठ के प्रति समाप्त हो गये। दिन प्रतिदिन मठ से भक्तगण दूर होते जा रहे हैं। जहाँ नाम नहीं, वहाँ भगवान् नहीं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी का आदेश है कि जहाँ मठ मंदिर में ठाकुर जी भूखा रहता है वहाँ बहुत बड़ा जघन्य अपराध होता

रहता है। वहाँ जो भी ब्रह्मचारी, गृहस्थी संन्यासी अन्न–भोजन का सेवन करेगा, वह हरिनाम कर ही नहीं सकता क्योंकि हरिनाम स्वयं ठाकुर जी का साक्षात् रूप है। जब भगवान् भूखा रहता है तो हरिनाम कैसे जिह्वा पर आ सकता है ? सभी के मन में हरिनाम से अरुचि होती रहेगी क्योंकि स्वयं मन भी भगवान् ही है। जैसा गीता बोल रही है भूख से मन भी दुखी है। ऐसे स्थान में कलि महाराज का पदार्पण हो जायेगा। कलि महाराज का स्वभाव ही कलहकारिणी स्थिति बनाने का है। वहाँ पर चोरी, झगड़ा, पिशाच होना परमावश्यक है। जिस स्थान में मन सहित भजन होता है, वहाँ कलि महाराज का पदार्पण हो नहीं सकता क्योंकि कलि को ठाकुर जी का डर लगता है।

अतः ठाकुर जी सेवाकारी को एक लाख हरिनाम होना बहुत परमावश्यक है। एक को समय न मिल सके तो प्रातः शाम सेवा करने हेतु दो सेवाकारी रखना बहुत जरूरी है। अंग्रेजों के मंदिरों में तीन पुजारी रखे जाते हैं ताकि समय मिलने पर तीनों एक–एक लाख हरिनाम नित्य कर सकें। एक पुजारी अपनी मनमानी कर सकता है, अधिक पुजारी रखने पर मनमानी करना संभव नहीं क्योंकि स्वभाव भिन्न–भिन्न होता है। एक पुजारी गलत सलत काम में फँसता रहेगा। पैसे का लोभी हो जायेगा। श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने अष्टयाम कीर्तन केवल नाम की शरण हेतु बोला है।

– हरिबोल –

बोल हरि बोल हरि हरि हरि बोल
केशव माधव गोविन्द बोल

जय शचीनन्दन जय गौरहरि
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी

18

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
27.11.2011

प्रेमास्पद भक्तगण,

दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो।

पंचम पुरुषार्थ – प्रेम की पराकाष्ठा का मार्मिक कथन

केवलमात्र गोपियों में भगवान् कृष्ण के प्रति चरमसीमा का प्रेम था। वे तो स्वयं सिद्ध जीवात्मा थीं। उन्होंने न कभी बैठकर माला जपी, न ही किसी मठ मंदिर में जाकर दर्शन किया, न तीर्थ करने हेतु कहीं पर गईं। न किसी से गुरु दीक्षा ली। न कहीं सत्संग में गई। न शास्त्रों का पठन–पाठन किया। फिर भी गोपियों का मन और बुद्धि हर क्षण भगवान् की याद में विलीन रहा करती थी।

भगवान् के प्रति याद ही सर्वोपरि है। यह याद ही भगवान् का जीवात्मा के नज़दीक आकर्षण कर लेती है। अक्सर जीव आत्मा की याद संसारी वस्तुओं के प्रति रहती है। इसके पीछे मायिक गुण जीवात्मा के पीछे लगे रहते हैं जिनसे बाध्य होकर जीवात्मा संसार की फंसावट में फंसा रहता है एवं अपने पिता को, जो जन्म दाता है, भूला रहता है। अतः जन्म पर जन्म के चक्कर में चक्कर लगाता रहता है जिनमें दुःख के सिवाय सुख का नामो निशान नहीं है। केवल सुख का अनुभव करता रहता है। जिस प्रकार सूकर विष्टा खाने में आनंद का अनुभव करता रहता है जो कि संसार की अभक्ष्य से भी अभक्ष्य घृणित वस्तु है उसी प्रकार जीवात्मा जिस योनि में अपना जीवन बसर करता है उसमें ही स्वर्गीय सुख अनुभव करता है। यही सबसे बड़ा अज्ञान है। उद्धव ज्ञानवान था लेकिन गोपियों के सत्संग से अपना ज्ञान सब भूल गया और

सोचने लगा **''गोपियों का जन्म ही सफल है, मैं तो गोपियों के पग धूल की भी बराबरी नहीं कर सकता। इनका जो श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम है, यही प्रेम की पराकाष्ठा है। त्रिलोकी में इनके प्रेम की तुलना कहीं पर भी नहीं हो सकती। इनका जीवन ही कृष्ण के लिये है।''** श्रीकृष्ण का जीवन भी गोपियों के लिये ही था। गोपियों का पारिवारिक बंधन तो न के बराबर ही था। रात–दिन जो भी काम करती थीं केवलमात्र कृष्ण के प्रति ही किया करती थीं।

श्री उद्धवजी ब्रजदेवियों की चरणरेणु की वंदना करते हुये एवं श्रीमुख से निःसृत श्रीहरिकथा को त्रिभुवनपावनी बताते हुये कहते हैं–

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीनां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्।।

''नंदबाबा के ब्रज में रहने वाली गोपांगनाओं की चरणधूलि को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ, उसे सिर पर चढ़ाता हूँ। अहा ! इन गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीला–कथा के संबंध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सर्वदा पवित्र करता रहेगा।''

गोपियों का सोना–जागना भी श्रीकृष्ण के लिये ही था। खाना–पीना भी श्रीकृष्ण के लिये ही था । पारिवारिक काम धंधा भी श्रीकृष्ण के लिये ही था। गोपियों की तरह श्रीकृष्ण को याद रखने की यह अवस्था केवलमात्र हरिनाम से ही उदय हो सकती है अन्य कोई दूसरा साधन है ही नहीं। केवल हरिनाम, केवल हरिनाम ही–**हरेर्नामैव केवलम्।**

भगवान् को याद करने का बड़ा महत्व है। भगवान् का स्मरण अन्तःकरण में रहना चाहिये। बस ! यही याद भगवान् से प्रेम का संबंध करा देता है एवं संसार से अनंतकोटि जन्मों का नाता अर्थात् फँसावट छुड़वा देता है। गोपियों का भगवान् गोविंद से अटूट संबंध था। भगवान् गोपियों के ऋणी बन गये थे। जैसा चाहती थीं

भगवान् श्रीकृष्ण उनके आदेशानुसार कठपुतली की भांति नाचा करते थे क्योंकि गोपियों ने श्रीकृष्ण को अपने अन्तःकरण में प्रेम–डोरी से बांध रखा था।

भगवान् को किसी भी भाव से संबंध तथा स्मरण किया जाये, भगवान् उसी भाव से भक्त के गुलाम बन जाते हैं। भगवान् चाहें तो भी उनसे अलग होने में असमर्थ रहते हैं। तब ही शास्त्र घोषणा कर रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।
जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरीसम यद्यपि परमस्नेही।।

जो भगवान् से दूर करता है, भक्ति में बाधा डालता है वह चाहे परम स्नेह रखता हो, उसे घोर दुश्मन समझकर त्याग देना चाहिये।

इसके अनेकों उदाहरण हैं। गोपियों ने अपने पतियों को त्याग दिया था। भीलनी ने अपने कुटुंब को त्याग दिया था। बलि महाराज ने अपने गुरु महाराज को त्याग दिया था। विभीषण ने अपने भाई रावण को त्याग दिया था। राम के भाई भरत ने अपनी मां को त्यागा। बेटे प्रहलाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यपु को त्याग दिया था। इस प्रकार से मानव इस मृत्युलोक में अपने ही शरीर से ईर्ष्या, द्वेष करता रहता है वह चाहे चर–अचर प्राणी ही क्यों न हो। इसी कारण मानव दुःख को स्वयं बुलाता रहता है। देखा जाये तो सभी चर–अचर प्राणियों में एक जैसा खून होता है, सभी के खून का रंग लाल होता है। खून एक जैसा होने से सभी अपने हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत हुआ। दूसरा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे अपने हाथ की पाँच उंगलियों में से एक उंगली को चोट पहुँचाओ तो पूरे शरीर में दुःखदायी वातावरण फैल जायेगा।

सुख पाने का एक ही उपाय है कि किसी भी चर–अचर प्राणी को दुःख मत पहुंचाओ। तो सदा ही सुख का जीवन चलाते रहोगे। अतः भूल कर भी किसी को कष्ट मत दो। मन, वचन और कर्म से

दुःख दिया जाता है। मन, वचन और कर्म से ही सुख दिया जाता है। देखा जाता है कि मानव को अपने कर्म से असफलता होती रहती है। इसका खास कारण है कि मानव ने दूसरे के कर्म में रोड़ा अटकाया है। दूसरे के कर्म में बाधा डाली है। कहावत है जैसा करोगे वैसा भरोगे। जो दूसरों को दुःख देता है, वह अपने लिये दुःख मोल लेता है।

यदि कोई भी मानव, किसी के शरीर की आकृति को देखकर, उसे दुःखी करता है तो यह उसका अज्ञान है। शरीर तो एक धर्मशाला है। जड़ पदार्थ से बना है। जड़ को क्या दुःख होगा ? दुःख होगा उसे, जो इसमें बैठा है। तो सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मा रूपी परमात्मा बैठा है। दुःख किसको होगा जो इस धर्मशाला में बैठा है अर्थात् आत्मारूपी परमात्मा को होगा। यही बात गहरे दिमाग से समझने की है। निर्जीव अर्थात् जड़ पदार्थ को दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो मानव का अज्ञान है। जब भगवान् किसी से दुःख पायेंगे तो वह कैसे सुखी रह सकता है। इसको उसका बदला चुकाना ही पड़ेगा। जो खड्डा खोदेगा वही तो गिरेगा। जैसे अचर प्राणी पेड़ है जो इसको काटता है उसे पेड़ की योनि में जाना पड़ेगा। क्योंकि पेड़ के अंदर भी भगवान् का वास है, जब ही तो पेड़ हरा रहता है जब भगवान् नहीं होगा तो पेड़ सूख जायेगा। जो पेड़ की योनि में आया है वह भी अपने कर्मानुसार ही पेड़ बना है। जो इसको काटेगा उसको भी पेड़ की योनि में आना पड़ेगा।

भगवान् के विधान को कोई भी शक्ति बदल नहीं सकती। कर्म भी भगवान् का ही स्वरूप है। कर्म से ही नरक में जाना पड़ता है। कर्म से ही गोलोकधाम उपलब्ध हो जाता है। इसका मतलब यही हुआ कि कर्म ही प्रधान है।

कर्मप्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा।।
क्योंकर तर्क बढ़ावहिं साखा।

बहस करने से कोई मतलब नहीं है। कर्म ही सुख–दुःख का बीज है। अतः शुभ कर्म करना उचित है ताकि सुखी रहने का अवसर उपलब्ध होता रहे।

कर्म स्वयं के लिये करने पर, कर्म भोग स्वयं को भोगना पड़ता है जब कर्म भगवान् के लिये होता है तो उस कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता। जिस प्रकार हनुमान जी ने राम का कर्म समझ कर लंका को जलाकर भस्म कर दिया जिसमें अनंत जीव स्वाहा हो गये लेकिन हनुमान जी को कर्म का फल भोगना नहीं पड़ा अर्थात् पाप नहीं लगा। श्री हनुमान जी का कर्म निष्काम हो गया।

जैसा गीता बता रही है। मानव दुःखी क्यों है ? इसका खास कारण है कि चर–अचर प्राणियों को इसने दुःख दिया है। यदि यह किसी को दुःख न देवे तो वह सदैव सुख का जीवन जीता रहेगा। हम कहते हैं कि उसने मुझे दुःखी किया है, मुझे सताया है। याद रखो कोई किसी को दुःख नहीं देता। मानव दुःखी केवल अपने कर्म से ही होता है। मक्खी, मच्छर, कीट पतंग को भी मारना नहीं चाहिये। इनमें भी आत्मा रूपी परमात्मा बैठा है। इनकी रक्षा, पालन करना मानव का धर्म है। जिस मानव का ऐसा स्वभाव है, उसके पास भगवान् स्वयं खिंचकर आते हैं। कैसा सरल, सुगम तरीका है सुखी रहने का। फिर भी मानव समझता नहीं। समझे भी कैसे ? क्योंकि इसके पीछे सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रूपी मायाशक्ति लगी रहती है। जो इसके स्वभावानुसार कर्म में प्रेरित करती रहती है। इसका नाश केवल हरिनाम स्मरण से ही होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

लेकिन हरिनाम भी मानव करता नहीं है। क्योंकि सुकृति नहीं है। सुकृति साधु सेवा से ही बनती है, आत्म–साधन से नहीं। सेवा तन, मन, वचन तथा धन से ही बनती है। यदि मानव साधक, भगवत्–धाम में जाना चाहता है तो उसे विरहमयी स्थिति अन्तःकरण में प्रगट करनी पड़ेगी। यह स्थिति श्रीगुरुदेव जी की तीन प्रार्थना नित्य करने से ही प्रगट हो सकती है। लेकिन एक सूरत यह भी

है कि साधक सच्चे मन से, तन से भगवान् को उपलब्ध करना चाहें। जब भगवान् को चाहेगा तो स्वतः ही संसार की आसक्ति धीरे–धीरे दूर होती चली जायेगी। जो अन्तःकरण में संसारी खिंचावट अर्थात् टेंशन है, वह निर्मूल होता चला जायेगा। जब टेंशन अन्तःकरण में नहीं रहेगी तो सरलता व सुगमता से मन भगवत् चरणों में आसक्त हो जायेगा तो भगवत् मिलन की कामना होने से विरह स्थिति शत–प्रतिशत उदय हो पड़ेगी। बस साधक को चरम सीमा का पंचम–पुरुषार्थ प्रेम उपलब्ध हो जायेगा। यही है मानव साधक का अमृत सुधा का क्षण पान। इसमें है एक अलौकिक मस्ती, एक अलौकिक खुशी जिसे प्राप्त कर साधक के मन में संसारी कामनाओं की निर्मूलता उपलब्ध हो जायेगी। केवल मात्र एक ही कामना हृदय में रहेगी केवल भगवत् मिलन, भगवत् स्मरण। साधारण साधक उक्त भावों को समझ नहीं सकता। जिस साधक पर भगवत् कृपा होगी वही इन आंतरिक गहरे भावों को समझने में सक्षम होगा।

इस प्रकार की मनोवृत्ति जिस साधक की होगी वह सबसे प्रेम का बर्ताव करेगा। शत्रु का भी भला चाहेगा। दयानिधि होगा। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि जो भी अशुभ भाव होंगे, सब निर्मूल हो जायेंगे। दूसरों को दुःखी देखकर स्वयं दुःखी हो जायेगा और दुःख को हटाने में प्रयत्नशील हो जायेगा। उक्त लक्षण, जिस साधक के आचरण में होंगे, वही सच्चा संत है। सरलता की वह साक्षात् मूर्ति होगा। शरीर के बंधन से वह दूर रहेगा। खाने–पीने में अरुचिवान होगा। जो कुछ मिल गया, उसी में खुशी महसूस करेगा। सदैव प्रेम का बर्ताव करेगा। अनजान से भी तन, मन से सेवा में रत रहेगा।

जो इस प्रकार के संत से दुष्टता का बर्ताव करेगा उसका भगवान् नाश कर देगा अर्थात् वह कभी सुख से रह नहीं सकेगा। सदैव उसका अन्तःकरण अग्नि की तरह उबलता रहेगा। कहीं भी उसे चैन नहीं पड़ेगा। वह सुखी होने के लिये तड़पता

रहेगा। इसका उदाहरण है जड़ भरत। मनुष्य योनी ही एक ऐसी योनी है जिस योनी से चौरासी लाख योनियाँ समाप्त हो सकती हैं। मनुष्य योनि में यदि संत समागम का सुअवसर उपलब्ध हो जाता है तो यह अज्ञान का पर्दा हट जाता है और ज्ञान का दीपक जल जाता है। सच्चाई का जीवन प्रत्यक्ष सामने आ जाता है।

लेकिन मनुष्य योनि मिलना बहुत ही मुश्किल है अर्थात् सुदुर्लभ बताई गई है। इसको बर्बाद करना बहुत बड़ा अकथनीय नुकसान है। इस दुस्तर माया से मानव की आंखे बंद रहती हैं। इन आंखों को खोलने वाला केवलमात्र परमहंस संत ही है जो सुकृतिशाली मानव को ही उपलब्ध होता है।

इसका एक उदाहरण है। जब मैं कॉलेज में पढ़ता था, तब मैंने कल्याण (एक धार्मिक मासिक पत्रिका) में पढ़ा था। किसी जंगल में एक पेड़ पर कबूतर का जोड़ा रहता था। कहीं से एक अयाचक वृत्ति का भूखा प्यासा संत आकर पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा। कबूतर–कबूतरी को भी मानव पालता रहता है। मानव को इसका शौक रहता है। कबूतर मानव की बात समझता भी है। किसी समय में ये कबूतर चिट्ठियां ले जाते थे। कबूतर–कबूतरी ने सोचा ''संत भूखा प्यासा है। इसकी सेवा करना हमारा धर्म है क्योंकि यह हमारे दरवाजे पर आया है। भूखा प्यासा यहाँ से नहीं जाना चाहिये।''

अचानचक वृत्ति होने से किसी ने उसे कुछ खिलाया नहीं था। कबूतर–कबूतरी दोनों अपने पालने वाले आदमी के पास गये। आदमी–पानी के पास जाकर अपने सिर हिलाने लगे तथा गेहूं जो धूप में सूख रहा था, वहां जाकर बैठ गये लेकिन चुगना बंद रखा। तब पालने वाले ने सोचा कि जब मैं कबूतरों व मोरों को, अनाज का दाना छत पर बैठाकर डालता हूं तो कबूतर मेरी गोदी में या कंधे पर आकर बैठ जाता है, मोर छतरी पर आकर नाचते हैं। पशु–पक्षी भी मानव की मन वृत्ति को जानते हैं कि यह हमें मारेगा नहीं।

पालने वाले आदमी ने देखा कि कबूतर–कबूतरी कुछ कहना चाहते हैं और वह समझ गया कि कोई भूखा प्यासा है, इसीलिए यह मेरे पास आये हैं। पालने वाला आदमी जानता था कि कबूतर–कबूतरी का घोंसला किस पेड़ पर है। वह भोजन–पानी साथ लेकर गया तो जाकर देखा एक साधु पेड़ के नीचे पड़ा पुकार रहा है। ''हे भगवान् ! हे राम !'' जब पालने वाला आदमी वहाँ पहुँचा तो कबूतर–कबूतरी पेड़ से नीचे उतर आये, थोड़ी दूरपर जाकर जमीन पर बैठकर, गुटरगूँ शब्द करने लग गये। पालने वाला आदमी उनकी बोली समझ गया कि साधु को खिलावो–पिलावो।

पालने वाला आदमी साधु से बोला कि महात्मा जी कुछ खा लो, पी लो। महात्मा जी बोले कि आपको कैसे मालूम कि मैं तीन दिन से भूखा प्यासा हूँ। उसने कहा कि वे दूर बैठे कबूतर गुटरगूँ कर रहे हैं, उन्होंने ही मुझे आपका परिचय दिया है। परमहंस साधु ने जब कबूतर–कबूतरी की ओर देखा तो कबूतर–कबूतरी की योनि बदल कर एक अलौकिक सुंदर रूप में स्त्री–पुरुष का जोड़ा बन गया।

यही है साधु। सेवा की सुकृति का फल। पक्षी योनि बदलकर मानव की योनि उपलब्ध हो गई। पशु पक्षियों में भी बुद्धि ज्ञान रहता है। पशु–पक्षियों की तो बात ही क्या है ? पेड़ों में भी बुद्धिज्ञान रहता है। श्री राधा कुंड, श्री श्याम कुंड पर पांचों पांडव पेड़ के रूप में रहते थे जब श्याम कुंड को चौकोर (चौरस) बनाने लगे तो पेड़ों को काटना पड़ गया। तो पेड़ बोले कि हम पांडव हैं, हमें काटो मत। इसलिये श्याम कुंड चौकोर नहीं बन सका।

प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि एक कीड़ी (चींटी) के पीछे सारी कीड़ियाँ (चींटियाँ) एक कतार में चलती रहती हैं। यदि बुद्धिमान न हों तो ऐसा कैसे हो सकता है ? एक कबूतर के पीछे, सभी कबूतर, आकाश में, एक ही दिशा में, उसके पीछे उड़ान भरते रहते हैं। एक बकरी के पीछे सौ बकरियाँ जंगल में चरती रहती हैं। शाम को एक

साथ मिलकर चरावे (चरवाहे) के घर पर आ जाती हैं। गाय पहाड़ों में चरकर सीधी अपने पालने वाले के घर पर आ जाती है। निष्कर्ष यह निकलता है कि सभी चर–अचर प्राणियों में भगवान् ने सूक्ष्म बुद्धि प्रदान की है। केवल इनकी भाषा मानव समझता नहीं है। आपस में पशु–पक्षी अपनी भाषा समझते रहते हैं। बोलकर मानव को समझा नहीं सकते। हाव भाव से मालिक की हरकत समझ जाते हैं।

हमारे गुरुवर्ग में श्रीमान् माधवेन्द्रपुरी जी भी अयाचक वृत्ति के परमहंस संत हुये हैं। राजस्थान में श्रीनाथ जी इनकी ही देन है। गोविंदकुंड श्री गिरिराज की तलहटी में है, यहीं पर श्रीनाथ जी प्रगट हुये हैं। अयाचक वृत्ति का मतलब है कि यदि कोई खिलादे तो खाले, वरना दस दिन तक या अधिक दिन तक बिना मांगे ही भजन में रत रहते हैं। लेकिन भगवान् को यह सहन नहीं होता। भगवान् किसी को प्रेरणा कर, इस प्रकार के भक्त शिरोमणि को भूखा नहीं रखते। कभी–कभी दो–तीन दिन भूखा भी रहना पड़ जाता है। जब कोई नई जगह साधु का जाना हो जाये तब किसी को मालूम ही नहीं होता कि कोई भूखा–प्यासा साधु ने यहाँ पर पदार्पण किया है।

मेरे श्रीगुरुदेव बार–बार साधकों की आँखे खोल रहे हैं कि यदि तुमने अपनी माला मैया का आदर सत्कार नहीं किया तो स्वप्न में भी तुम्हारा मन हरिनाम में नहीं लग सकेगा। जिस प्रकार मानव कभी भी वस्त्रहीन अर्थात् नंगा नहीं रहता इसी प्रकार तुम्हारी माला मैया वस्त्रहीन अर्थात् नंगी कैसे रह सकती है ? यह माला झोली ही तुम्हारी माला मैया की पोशाक है, इसे मैली होते ही धोना परमावश्यक है।

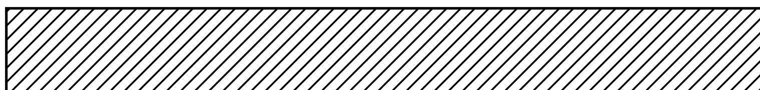
माला मैया का सुमेरु साक्षात् श्रीकृष्ण है और 108 मनके साक्षात् गोपियाँ हैं। जब साधकगण माला मैया का आदर सत्कार करेंगे तो माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु, जोकि साक्षात्

श्रीकृष्ण स्वरूप हैं, हाथ में आ जावेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आज़माकर देखलेना। धर्मग्रंथों में माला मैया का रख रखाव कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलेगा। यही श्रीगुरुदेव जी की अनुभवशील, अलौकिक चर्चाएं हैं। श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि मैंने माला मैया का रख रखाव पिछले इतवारों में सभी साधकगणों को बता दिया था। उसको ध्यान में रखकर माला मैया का रख–रखाव करना सर्वोतम होगा।

जो माला मैया तुमको हरिनाम रूपी अमृतसुधा का पान कराती रहती है। उससे अधिक लाभप्रद उपलब्धि क्या हो सकती है ? जिससे जन्म–जन्म की संसारी वासनाएं निर्मूल हो जाती हैं। अब भी सावधानी से अपने भक्ति मार्ग पर अग्रसर होते रहो तो इसी जन्म में पंचम पुरुषार्थ–प्रेम की उपलब्धि हो जायेगी तथा आवागमन रूपी दारुण कष्ट का निवारण हो जायेगा। सदा के लिये वैकुंठ में वास बन जायेगा। अपने माँ–बाप की गोद में पहुँच जाओगे। मैं तो तुम्हें समझाते–समझाते थक गया लेकिन तुम्हारे तन–मन पर एक चींटी भी नहीं रेंगी। शर्म की बात है।

माला मैया की शरणागति तो सभी धार्मिक संस्थाओं में है। मुस्लिम वर्ग माला से खुदा को याद करते हैं। जैनी माला से महावीर स्वामी को याद करते हैं। साक्षात् भगवान् शिवजी, पार्वती को संग में बिठाकर माला से अपने मालिक को याद करते हैं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु जी अष्टप्रहर, रात–दिन माला पर हरिनाम का जप करते रहते हैं। माला ही, द्रुतगति से दौड़कर अपने आदिकाल के माँ–बाप की गोद में पहुँचा देती है। जहाँ दुःख की हवा तक नहीं है। आनंद सागर लहराता रहता है। यहीं पर मैं मेरे श्रीगुरुदेवजी की अमृतवाणी को विश्राम देता हूँ।

– *हरिबोल* –



19

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
04.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने का आशीर्वाद करने की कृपा करें।

मानव माया के गुणों से परेशान है।

मानव में तीन शरीर रहते हैं पहला स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर और तीसरा कारण शरीर। यह कारण शरीर ही अगला जन्म होने का कारण है। इस शरीर में ही पिछले जन्मों के कर्म होने के संस्कार मौजूद रहते हैं। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण–माया के इन गुणों से मानव परतंत्रता को प्राप्त होता है। यह परतंत्रता भगवत् नाम से स्वतंत्रता में बदल सकती है। भगवत्–प्रेम ही स्वतंत्रता के नाम से जानी जाती है।

माया के इन गुणों के कारण ही मानव में कामनाओं का जाल फैला रहता है। भगवान् ने गीता में अर्जुन को बोला है कि अर्जुन इस काम वैरी को मार। इसके कारण ही मानव जन्म पर जन्म उपलब्ध करता रहता है एवं कभी शांति लाभ नहीं कर सकता। इन कामनाओं में दुःख ही दुःख भरा रहता है। एक कामना पूरी हो भी नहीं पाई कि दूसरी कामना सामने खड़ी हो जाती है। अतः मानव हरिनाम स्मरण से दूर रहता है। हरिनाम ही सुख का उद्गम स्थान है।

कामनाओं से निपटने हेतु केवल साधु संग ही है। साधु संग चिंतन द्वारा भी होता है तथा असलियत में भी हो जाता है। असलियत में साधु का प्रभाव प्रत्यक्ष पड़ता रहता है क्योंकि साधु

की वाइब्रेशन (तरंगें) सीधी सत्संग करने वाले पर पड़ती रहती हैं। लेकिन साधु संग भी बिना भगवत् कृपा के उपलब्ध नहीं हो सकता है। मानव पर भगवत् कृपा भी जब ही होती है जब उसने कभी साधु की सेवा का अवसर प्राप्त किया होगा। सेवा तन, मन, वचन तथा धन से की जाती है।

हरिनाम में मन तब ही लग सकेगा जब कंचन, कामिनी व प्रतिष्ठा से दूर रहेगा। अंहकार ही इसका मूल कारण है। अहंकार जब ह्रदय में नहीं रहेगा तो **"तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन, कीर्तनीय सदा हरिः**–का भाव स्वतः ही उदय हो जायेगा।

साधक, मानव जन्म का मूल अर्थात् महत्व नहीं समझ रहा है इसी कारण से संसार में इधर–उधर भटक रहा है। इसको मालूम नहीं कि किस क्षण में सांस निकल कर मौत आ जावे। दोबारा मानव जन्म होगा भी नहीं। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना होगा जिनमें अरबों–खरबों युग बीत जायेंगे। जिनमें सुख का नामो–निशान नहीं रहेगा। जब भवसागर का पानी सूख जायेगा तो अंदर से प्रज्ज्वलित अग्नि प्रगट होकर, जगत के माया के गुणों को भस्मीभूत कर देगी। भगवान् की निर्गुण अग्नि प्रज्ज्वलित होकर जीव आत्मा की ओर फैलती जायेगी तो जागतिक गुण का नामो निशान ही नहीं रहेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने भक्त का चोला पहन कर इस अलौकिक प्रज्ज्वलित अग्नि का सभी साधकों को दर्शन कराया है। यह चुंबक की भांति, लोहे की तरह, भगवान् को आकर्षण कर, साधक–विरही भक्त को, आंसुओं की बाढ़ में सराबोर कर देती है। जो ऐसी दृष्टि प्रदान कर देती है कि साधक को प्रेमास्पद के सिवाय कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वह एक पागलपन के आवेश में डूबा रहता है, संसारी भाव इसे छूता भी नहीं है।

यह उक्त अवस्था साधक में तब ही उदय होती है जब उसका

हरिनाम तल्लीनता से होने लगता है। यही पूर्ण शरणागति का द्योतक है। पूर्ण शरणागति भी जब उदय होती है जब सभी साधकों को श्रीगुरुदेव जी द्वारा बताई गई तीन प्रार्थनाएँ–सोते समय रात में, प्रातः जागते समय ब्रह्ममुहूर्त में तथा संध्या करते समय करनी होती है। यही तीन प्रार्थनाएँ समस्त धर्मग्रंथों का सार तथा बीज हैं। इस बीज से ही भगवान् के मुखारविंद से धर्मग्रथों का उद्गम हुआ है।

राजा खट्वांग ने दो घड़ी में भगवत् उपलब्धि की है। श्रीगुरुदेव जी ने सभी साधकों को दो मिनट में भगवत् उपलब्धि करवा दी है। तीनों प्रार्थनाओं में दो मिनट से अधिक का समय लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा सरल, सुगम साधन आज तक किसी ने नहीं बताया, न धर्मग्रंथों से दृष्टिगोचर हो सका लेकिन धर्मग्रंथों में अंकित अवश्य है। जिस प्रकार दूध में से माखन निकालने की विधि जिसको आती है, वही दूध से माखन निकाल सकता है। जौहरी ही असली नग को पहचान सकता है। अनुभवी वैद्य ही नाड़ी पकड़ कर रोग का निदान कर सकता है। इसी प्रकार मेरे श्रीगुरुदेव जी ने जो भगवत् उपलब्धि की प्रार्थनामयी विधि, सभी साधकों को बताई है कि दो मिनट में भगवान् से मिलन हो सकता है लेकिन नित्य ही साधन करना परमावश्यक है। एक दिन का भी नागा नहीं होना चाहिये।

जो साधक तीन माह निरंतर उक्त प्रार्थनाएँ करता रहेगा वह अन्तःकरण से इनको अपना कर रहेगा। उसका इसी जन्म में उद्धार होना शत–प्रतिशत निश्चित है।

भगवान् तो सभी चर–अचर प्राणियों के पिता हैं। पिता कभी अपनी संतान की प्रार्थनाएँ सुने बिना रह नहीं सकता। भगवान् तो दयानिधि हैं। एक साधारण संसारी पिता भी पुत्र की प्रार्थना सुने बिना रह नहीं सकता तो भगवान् की तो बात ही अकथनीय है। श्रद्धा विश्वास होना बहुत जरूरी है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं

चाहिये। कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। साधक का जीवन ही बदल कर रहेगा। यह गुरुदेव की गारंटी है। इतना सस्ता माल कहीं नहीं मिल सकता। इसमें गीता का सार छिपा पड़ा है जो साक्षात् भगवत् की वाणी है।

पहला–अंतिम भाव में जो प्राणी मरेगा वह उसी गति को प्राप्त होगा। **दूसरा**–निष्काम कर्म योग है ही। **तीसरा**–प्रत्येक प्राणी चर–अचर में मेरा वास है ही।

इसके अतिरिक्त धर्मग्रंथों में है ही क्या ? यदि साधक फिर भी सोता रहता है तो इसके बराबर कर्महीन, कर्मफटा कौन हो सकता है ? उक्त साधन से परम पुरुषार्थ भगवत्–प्रेम बड़ी सरलता तथा सुगमता से उपलब्ध हो जाता है। मानव जन्म को व्यर्थ में गँवाना कितना बड़ा नुकसान होगा जिसका अंदाजा नहीं हो सकता।

श्रीगुरु प्रदत्त माला का रख–रखाव, यदि श्रीगुरुदेव के बताये अनुसार नहीं किया गया तो हरिनाम में मन नहीं लगेगा। माला बराबर उलझती रहेगी तथा टूटती रहेगी। इसी कारण मुझे बार–बार बोलना पड़ जाता है। माला झोली, माला का पहनने का चोला है, इसे पर्व पर धोकर माला को पहनाना आवश्यक है। माला की पोशाक गंदी हो जाती है और उसे जपते रहना उचित नहीं है। जैसे हम पर्व पर नये कपड़े पहनते हैं इसी प्रकार माला को भी नई झोली पहनाना उचित है। इसका ध्यान न रखने से हरिनाम नाराज़ हो जाता है और जापक को हरिनाम में रुचि होने से दूर कर देता है। तब ही तो भगवत् प्रेम उदय होने में समय लग जाता है। श्रीगुरुदेव छोटी से छोटी चर्चा भी करते रहते हैं लेकिन ऐसी चर्चा बहुत मूल्यवान है। जिसके न होने से भगवत् प्रेम होने में देर हो जाती है। ऐसी चर्चाएँ पुस्तकों में भी बहुत कम पढ़ने को मिलती हैं। मृत्युलोक के भगवान् की सेवा में और गोलोकधाम की सेवा में, जो आनंद अनुभव होता है उसमें हज़ार गुणा अंतर है। इसको उदाहरण द्वारा श्रीगुरुदेव भक्तगणों को समझाने का प्रयास कर रहे हैं।

जिस प्रकार माँ अपने इकलौते शिशु की देखभाल तथा सेवा में, जो मन का आनंद अनुभव करती है उस सेवा से तथा गोलोक धाम की भगवत् सेवा के आनंद अनुभव में करोड़ गुणा अंतर है।

इसी प्रकार सती स्त्री अपने पति की देखभाल तथा सेवा में, जिस मन का आनंद अनुभव करती है, उस सेवाभाव में तथा गोलोकधाम की भगवत् सेवा के आनंद अनुभव में करोड़ गुणा अंतर रहता है। गोलोक का आनंद अलौकिक भाव में ओत–प्रोत रहता है जिसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से बखान नहीं किया जा सकता। उक्त संसार का आनंद, माया से ऊपर का आनंद, अनुभवशील है। माया में आनंद है ही नहीं, केवल दीखता है।

मेरे गुरुदेव ने बताया है कि हरिनाम लेने का क्या तरीका है यही भगवान् अर्जुन को सुझा रहे हैं कि हरिनाम स्मरण करने का क्या तरीका है। श्रीगुरुदेव जी ने बताया:–

Chanting Harinam sweetly and listen by ear.

ऐसा भगवान् अर्जुन को बता रहे हैं, भक्तगण ध्यान देकर सुनने की कृपा करें:–

जो साधक ॐ इस एक अक्षर रुप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और इसके अर्थ स्वरूप मेरे को चिंतन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह साधक परमगति को प्राप्त होता है। यह गीता के आठवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में अर्जुन को भगवान् श्रीकृष्ण ने बोला है, कोई भी साधक देख सकता है ।

हे अर्जुन! जो साधक मेरे में अनन्य चित्त से स्थित हुआ, सदा ही निरंतर मेरे को स्मरण करता है उस, निरंतर मेरे में युक्त हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् सहज में ही प्राप्त हो जाता हूँ। यह गीता के अठाहरवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में बोला गया है। इसी प्रकार से हरिनाम को सुनते हुये और भगवान् का चिंतन करते हुये अपने साधन में जुट जाना चाहिये।

जो साधक उक्त बोले अनुसार साधन करेगा उसे इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष उपलब्ध हो जायेगा तथा अष्ट–सिद्धि, नवनिधि उसके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहेगी और प्रार्थना करेगी कि हमें अपना लो परंतु भगवत् प्रेमी भक्त उसकी प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं देगा और अपने प्रेम भक्ति मार्ग पर अग्रसर होता रहेगा। अन्त में भगवान् ऐसे भक्त को, स्वयं गोलोकधाम तथा वैकुण्ठधाम लेकर जायेंगे। वहाँ उसका भव्य स्वागत करवायेंगे। ऐसा धर्म शास्त्र का वचन है।

जो ऐसा भजन करेगा, उस पर सभी कृपा करते रहेंगे शास्त्र बोल रहा है–**जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करे सब कोई।** हिंसक जानवर भी उसे नुकसान नहीं करेगा क्योंकि इसमें भी वही प्राणनाथ विराजित हैं। उसके आदेश बिना कोई कुछ भी कर नहीं सकता। भरत जी भी गीता के आदेशानुसार ही भगवत् नाम लिया करते थे।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।

सीता जी भी इसी प्रकार हरिनाम लिया करती थीं –

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्री राम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरि नाम।।

यह हरिनाम लेने के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। फिर साधक को क्या परेशानी है ? घर में बैठकर, एकांत में हरिनाम स्मरण कर सकता है। न इसमें पैसा लगता है, न कोई मौसम की परेशानी है। सर्दी, गर्मी, बरसात का प्रबन्ध हो सकता है। परिवार वाले सहायक बन सकते हैं। आसानी से अपना मानव जन्म सार्थक कर सकता है।

भजन में (नंदी) स्थान का महत्त्व बहुत बड़ा है। एक बार शिवजी व पार्वती नादिया पर बैठकर कहीं जा रहे थे तो रास्ते में एक जगह शिवजी ने नादिया से उतरकर, पृथ्वी पर लेटकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की तो पार्वती ने पूछा कि यहाँ तो कुछ है

ही नहीं, फिर आपने किसे दण्डवत् की है ? तो शिवजी बोले कि इस टीले पर दस हज़ार वर्ष पहले एक संत ने भगवत् नाम जप किया है इसलिये इस स्थान को मैंने दण्डवत् की है। फिर शिवजी नादिया पर चढ़कर जाने लगे। बहुत दूर जाने पर फिर शिवजी ने नादिया से उतरकर, पहले की तरह पृथ्वी पर लेटकर, प्रणाम कर साष्टांग दण्डवत् की तो पार्वती ने पूछा ''हे मेरे पति परमेश्वर ! अब किसे प्रणाम् कर रहे हो ?'' तो शिवजी बोले–''पार्वती इस टीले पर दस हज़ार वर्ष बाद, एक संत भगवत् नाम स्मरण करेंगे। अतः इस स्थान का महत्व है। अतः इसे प्रणाम कर रहा हूँ।'' पार्वती बोली कि इस प्रणाम से क्या लाभ होगा ? शिवजी बोले–''मुझे हरिनाम में रुचि होगी।'' इसका खास महत्व यह है कि **भगवत् भजन से प्रत्येक वस्तु विशेष आदर की पात्र हो जाती है। भगवत् नाम से संसार की कोई भी वस्तु क्यों न हो, वह चिन्मय स्थिति में परिणत हो जाती है।**

जिस प्रकार एक हरिनामनिष्ठ से, एक नामी वेश्या ने हरिनाम सुनकर, तीन दिन में अपने मन को संसार की आसक्ति से निर्मूल कर दिया था। घोर पापी रत्नाकर जिसे वाल्मीकि भी बोला जाता है, भगवत् नाम 'मरा–मरा' जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गया। जिसने हज़ारों साल पहले ही रामायण रच दी थी और रामावतार हज़ारों साल बाद में हुआ। रामजी ने वही संसार में लीलाएँ की जो वाल्मीकि जी ने रामायण में रची थीं, लिखी थीं।

हमारे गौरकिशोर बाबा जी, बिलकुल अनपढ़ थे। जिनको अपना नाम लिखना नहीं आता था। सारे शास्त्र उनके हृदय में प्रगट हो गये क्योंकि बाबा ने भगवत् नाम का ही आसरा लिया था। एकांत में रहकर नाम स्मरण किया था ताकि कोई नामापराध न बन सके। जब संसारी लोग संसारी दुःख हटवाने आते तो बाबा जी, भजन बाधा होने के कारण, बाथरूम में जाकर नाम स्मरण किया करते थे। तो निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम का कितना अकथनीय महत्व है। चारों युगों में ही नाम का महत्व है।

कलिकाल में तो विशेष महत्व है ही। जिस किसी ने भी हरिनाम की शरण ग्रहण की है, वही इस दुःखदायी जन्म–मरण से छूट पाया है। तब ही तो शास्त्र घोषणा कर रहा है कि अरबों–खरबों साधकों में से कोई एक ही मेरे को उपलब्ध करता है। सभी माया के चंगुल में फँस जाते हैं। चरम सीमा पर पहुँच कर भी नीचे आ गिरते हैं।

माया बड़ी दुस्तर है। इससे पिंडा छुड़ान बहुत मुश्किल है। इससे तो पिंड वही छुड़ा सकता है जिसने भगवत् रसिक की शरण ग्रहण की है। इसके शास्त्रों में अनंत उदाहरण मौजूद हैं। ऊपर से दिखाई देंगे भक्त, अंदर से संपर्क में आने पर मालूम पड़ेगा–बड़े दुष्ट आचरण वाले। जिसने कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा को त्यागा है, वही भक्त है। संपर्क में आने पर हृदय के आचरण का सब कुछ मालूम पड़ जाता है। जब तक सूर्य उदय नहीं होता तब तक ही अंधेरा रहता है। सूर्य उगने पर अंधेरा रह ही नहीं सकता। संसार कपटपूर्ण वातावरण से भरा पड़ा है। अतः भक्ति तो बहुत दूर की बात है। ऊपर से सोने का घड़ा चमक रहा है और अंदर में ज़हर भरा है। बातों से कुछ नहीं होता। व्यवहार में सच्चाई होना परमावश्यक है। तब ही कुछ शुभ सुकृति उपलब्ध हो सकती है।

हरिनाम तो कोई करता नहीं और मठ–मंदिर के निर्माण करने में फँस रहे हैं। सारी ज़िंदगी योहीं इन्हीं कामों में गुजार देंगे। जो उत्तम कर्म है, उसे तो करते नहीं। हरिनाम है कलिकाल का सच्चा कर्म।

एक बार कौरवों का बड़ा भाई दुर्योधन भगवान् श्रीकृष्ण से बोला–''कृष्ण मेरे घर पर अनेक प्रकार की मिठाईयाँ, कई प्रकार की चटनी आदि बनाई गई हैं। आप मेरे यहाँ चलकर भोजन करो तो श्रीकृष्ण बोले कि दुर्योधन न तो तुम मुझसे प्यार करते हो, न मैं तुमसे प्रेम करता हूँ और मुझे भूख भी नहीं है अतः मैं तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकता। मुझे तो वहीं भूख लगती है जहाँ पर प्रेम होता है। प्रेम वहाँ है, जहाँ कृष्ण की याद है। दुर्योधन, मैं तो केवलमात्र प्रेम खाता हूँ। तुम्हारे पास प्रेम है ही नहीं। जहाँ प्रेम

होगा वहाँ जाकर भोजन करुँगा।'' यह कहकर उसी समय श्रीकृष्ण विदुरानी के घर चले गये और बोले–''माता जी, मैं तो भूख के मारे मर रहा हूँ। जो कुछ घर में है, वही खिला दो।'' घर में तो कुछ था नहीं। केवल छींके पर एक केले का गुच्छा पड़ा था तो विदुरानी हड़बड़ाकर केले ले आई और पीढा बैठने के लिये डाल दिया और बोली कि पीढे पर बैठ जाओ, अभी कुछ लाती हूँ। अब तो प्रेम में अंधी होकर केले का गुद्दा नीचे डालती जा रही है और केले के छिलके खिला रही है। श्रीकृष्ण बहुत आनंद से खा रहे हैं। इतने में विदुर जी आ गये और माथा पीटा, कहा कि तू क्या कर रही है। भगवान् बोले कि आज जो मुझे खाने में स्वाद आया, वह स्वाद, मेरी मैया यशोदा के पास खाने में भी नहीं आया।

पिछले इतवारों को श्रीगुरुदेव जी ने तीन प्रार्थनाएं नित्य करने का आदेश दिया था कि इन तीन प्रार्थनाओं को, जिनमें दो ही मिनट लगते हैं, नित्य करने से भगवान् मिल जाता है जबकि खट्वांग राजा को दो–ढाई घड़ी में भगवान् मिले थे।

तीन प्रार्थनाएँ कौन सी हैं। एक तो सोते समय, जब नींद आने लगे तब करनी है। दूसरी, प्रातः जागते समय, जब नींद खुले, तब करनी है। तीसरी प्रार्थना–जब प्रातः संध्या करने बैठो तो, तब करनी है। इन तीनों प्रार्थनाओं में केवलमात्र दो ही मिनट का समय खर्च होता है। श्रीगुरुदेव बोलते हैं कि इन तीनों प्रार्थनाओं से 2 मिनट में भगवान् मिल जाते हैं।

बहुत से साधकगणों को शंका हो सकती है कि हम तो ये तीनों प्रार्थनायें कई दिन से करते आ रहे हैं, लेकिन हमें तो भगवान् नहीं मिले। यह शंका साधारण साधकगणों को हो सकती है। जिस पर भगवत् कृपा होती है, वह सभी विषयों को अन्तःकरण में समझ लेता है। कोई भी कर्म शीघ्र फल नहीं देता। खड्डे में कोई बीज बोते हैं तो 10–15 दिन में पानी देते–देते अंकुरित होता है उसी दिन अंकुरित नहीं होता है। एक पाठक इंजीनियर बनना चाहते हैं तो क्या एक दिन में, कॉलेज में जाकर लैक्चरार की बात सुनकर

इंजीनियर बन जायेगा ? उसको भी चार साल तक पढ़ना पड़ेगा, तब इंजीनियर बन सकेगा। जो भी मन से पठन करेगा, वही इंजीनियर बन सकेगा। किसी भी कर्म में समय लगता ही है, तब ही सफल परिणाम उपलब्ध होता है।

इसी प्रकार साधक समझने का प्रयास करें कि जो श्रीगुरुदेव जी ने तीन प्रार्थनाएँ नित्य करने का आदेश दिया है, उसमें समय तो 2 मिनट का ही लगेगा परंतु जब साधक की मौत आवेगी तब ही तो भगवत् दर्शन का लाभ होगा अर्थात् ये तीन प्रार्थनाओं का परिणाम निकलेगा अर्थात् भगवान् इन तीन प्रार्थनाएँ करने वाले को अपने धाम वैकुण्ठ में ले जायेंगे। साधकगण समझते हैं कि 2 मिनट में भगवान् तो मिले नहीं। यह श्रीगुरुदेव जी ने कैसे कह दिया। अतः साधकों में समझने की कमी है।

भगवान् की संसारी सृष्टि आश्चर्यजनक है। सभी चर–अचर प्राणियों में सूक्ष्म बुद्धिमत्ता अर्थात् सैन्स होता है, जिससे अपना जीवन सुखपूर्वक चलाते रहते हैं। शहद की मक्खियों में एक रानी मक्खी होती है। वह कुछ हरे रंग की चमकदार होती है। वह जहाँ जाकर रहने के हेतु अपना छत्ता बनाती है, वहीं पर समस्त मक्खियां उसके आदेशानुसार अपना जीवनयापन करती रहती हैं। मानव उनको पालता भी है। अपना व्यापारिक धंधा कर, अपना जीवनयापन करता है। बड़ी मक्खियों में एका (एकता) रहती है। इनमें एक मक्खी को सताने पर समस्त मक्खी उस पर धावा बोल देती हैं। सभी उस पर टूट पड़ती हैं तथा उसकी जान ले लेती हैं। छोटी–बड़ी समस्त मक्खियाँ बड़ी खतरनाक होती हैं। मानव का जीवन समाप्त कर देती हैं।

पशु नाक से सूंघ कर पदार्थ को पहचान जाता है। सर्प आँख से ही सुनता तथा देखता है। शेर की गर्दन अगल–बगल में मुड़ती नहीं है, वह केवल सामने ही देख सकता है। भगवान् ने उसका शरीर ऐसा ही बनाया है वरना शेर अगल–बगल में देख लेवे तो जीवों का भक्षण कर सकता है। बागल पक्षी तथा उल्लू रात में ही

देख सकता है। दिन में नहीं देख सकते। मछलियाँ पानी में ही सांस लेती हैं इनको बाहर की हवा उपलब्ध ही नहीं होती। रेंगने वाले जन्तु जमीन में ही बिल बनाकर रहते हैं ये बिना हवा लिये ही जीते रहते हैं जैसे सर्प, कीड़ियाँ आदि। मेंढक हमेशा समाधि लगाए रहते हैं। पहली बरसात होते ही टर–टर करने लगते हैं। गिजाइयाँ तथा वीर बहूटी जो मखमल जैसी मनमोहक लाल रंग की होती है, पहली बरसात में कहाँ से आ जाती हैं ? इसी प्रकार भगवान् की अनंत प्रकार की सृष्टि है जिसका अवलोकन कर बुद्धिमान मानव आश्चर्य रूपी सिंधु में डूब जाता है।

कहने का निष्कर्ष यह है कि मानव की योनि मिलना बहुत सुदुर्लभ है। इन सब चराचर जीवों की रक्षा पालन करना, इसका मुख्य धर्म है। मानव ही इनका माँ–बाप है। यदि मानव में भावना है तो भगवान् इससे दूर नहीं तथा वह भगवान् से दूर नहीं। जैसा कि मेरे गुरुदेव जी ने बोला है कि कण–कण में तथा सभी जीवमात्र में, मैं आपको ही विराजमान देखूं। आप ही मुझे इन चर–अचर प्राणियों में दर्शन देते रहें। यही है दूर दृष्टि के भाव का अवलोकन। ऐसा मानव कभी स्वप्न में भी दुःख व कष्ट का दर्शन नहीं कर सकेगा। इसका स्वतः ही संसार से वैराग्य हो जायेगा तथा इसका मन भगवान् की ओर आकर्षित हो जायेगा। पंचम पुरुषार्थ एवं प्रेम की विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। इसका अनंतकोटि जन्मों का जीवन सार्थक हो जायेगा। भगवत् चरणों में पहुँच जायेगा।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

20

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
08.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

मैया तुलसी महारानी की महिमा का अकथनीय वर्णन

तुलसी मैया भगवान् को अतिशय प्यारी है जबही भगवान् तुलसी माँ को अपने गले से अलग नहीं करते। तुलसी माँ आदि काल से अमर है। तुलसी माँ के बिना भगवान् साधकगण का कुछ भी ग्रहण नहीं करते। जब भगवान् ही तुलसी माँ को गले से एक क्षण भी अलग नहीं करते तो श्रीगुरुदेव, जब जीव को भगवत्–चरण में अर्पण करते हैं तो प्रथम में जीवात्मा के गले में तुलसी मैया को पहनाते हैं अर्थात् इस जीवात्मा को भगवान् अपने चरण में स्वीकार कर लेते हैं।

श्रीगुरुदेव जी शिष्य को आदेश प्रदान करते हैं कि गले की तुलसी माला को एक क्षण भी गले से अलग मत करना। गुरुदेव शिक्षा प्रदान करते हैं कि सब कुछ जो तुम्हें प्रारब्धवश प्राप्त हुआ है, यह भगवान् ने ही दिया है। इसलिये जो भी वस्तु अपने काम में लो उसमें तुलसी दल डालकर भगवान् की वस्तु भगवान् को ही सौंप दो। जिस प्रकार भगवान् के हेतु अमनियां तैयार करो तो तुलसी दल डालकर भगवान् को अर्पण करो ताकि भगवत् प्रसाद आपको उपलब्ध हो सके। इसी प्रकार अपने तन आदि के लिये कपड़ा खरीद कर लावो तो प्रथम में तुलसी दल डालकर भगवत्–चरण में अर्पण करो। इसके बाद अपने काम में लावो।

जो माला श्रीगुरुदेव आपको जपकर (माला पर जप करने के बाद) सौंप रहे हैं, वह भी तुलसी की मणियों की हुआ करती है। अतः यह माला भी सजीव है। निर्जीव कभी स्वप्न में भी न समझें। **तुलसी मैया की शरणागति लेकर हरिनाम जाप करना है। जिसकी साधक शरण लेता है उसका आदर–सत्कार करना एक साधारण सी बात है। यदि आदर–सत्कार में कमी रही तो हरिनाम जपने से अपराध बनता रहेगा।** तो मन भगवान् है। एकाग्र होगा ही नहीं। केवल जाप होगा भार बनकर। अक्सर साधकगण गुरु प्रदत (द्वारा दी गई) माला को एक साधारण सी निर्जीव वस्तु समझते हैं। अतः आदर–सत्कार तो बहुत दूर की बात है। अज्ञान की भी हद हो गई।

श्रीगुरुदेव जी ने बहुत बार माला की आदर–सत्कार की चर्चा की है क्योंकि माला भक्ति प्राप्ति की प्रथम व अन्तिम अमोघ शक्ति है। इसपर साधकगण ध्यानपूर्वक गौर करें। माला को सिर से प्रणाम करें, चरणों का चुंबन करें, छाती से लगावें। तुलसी माला आदिकाल से ही साधकगण की माँ है जो साधकगण को अपनी गोद में लिटाकर अमृतसुधा का हरिनाम रूपी दूध अपने स्तन से पिलाती है जिससे विषय रूपी विष तन–मन से बाहर निकलता रहता है।

माला जपने का विधान सभी धर्मों में सर्वप्रिय है। जपने हेतु माला उठाते ही सुमेरु जापक के हाथ में आवेगा। माला की थैली ही माला माँ की पहनने की पोशाक है। इसको थोड़ी मैली होने पर धोते रहना चाहिये। शुद्ध जगह पर माला को रखना परमावश्यक है। अशुद्ध जगह पर रखने से माला माँ का निरादर होता है। माला मैया जब नाराज़ होती है तो नीचे लिखा लक्षण जापक के सामने प्रकट हो जाता है। माला उलझती रहेगी। हाथ से गिर जायेगी। दुर्भावना होने से माला टूट जायेगी।

यह वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध नहीं होगा। यह श्रीगुरुदेव जी का अपना अनुभव है। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं होता। कोई भी परीक्षा

कर देख सकता है। यह एक साधारण सी बात है कि जिसका साधक से निरादर होगा वह उसे चाहेगा क्या ? स्वप्न में भी नहीं। यही कारण है कि साधकगण की शिकायत रहती है कि हमारा हरिनाम में मन नहीं लगता, क्या करें ? तो गुरुदेव जी ने कई बार सोते हुओं को जगा दिया परन्तु उत्साह की कमी से, फिर सो जाते हैं। इसमें श्रीगुरुदेव भी क्या कर सकते हैं ? कमी साधकगणों की ही है।

भक्ति प्राप्ति की खास चीज़ तो जपने की माला ही है। यदि इसे संभाल लिया जाये तो भविष्य का भक्ति का रास्ता स्वतः ही खुल जावे। जब पौधे में पानी ही नहीं पहुँचा तो पौधा सूख जावेगा। इसमें पौधे का क्या दोष है ? दोष तो है पानी देने वाले का।

भगवान् को कौन चाहता है ? अरबों–खरबों में कोई एक भाग्यशाली ही चाहता है। सभी अपनी वर्तमान स्थिति का सुख चाहते हैं क्योंकि इनमें अभी सच्चा ज्ञान है नहीं। सच्चा ज्ञान होने पर तो यह सब मिट्टी समान है। यह सच्चा ज्ञान परमहंस संत ही दे सकता है क्योंकि ज्ञान का बैंक तो निर्लिप्त साधु के पास ही है। पर भगवान् की असीम कृपा के बिना ऐसा साधु उपलब्ध होता नहीं।

भगवान् अन्तर्यामी हैं। सबके अन्तःकरण का भाव इनसे छुपा नहीं है। जो सच्चे रूप से भगवान् को चाहता है उसके पास भगवान् ऐसा साधु भेज देते हैं। जैसे विभीषण के पास हनुमान जी को भेज दिया था। जबकि विभीषण राक्षसों के बीच अपना जीवनयापन ऐसे कर रहा था जिस प्रकार 32 दांतों के बीच बेचारी जीभ का रहना होता है।

उपरोक्त संकटों का निवारण केवलमात्र हरिनाम से ही हो सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस कलियुग में नामापराध से बचना ही एकमात्र उपाय है वरना तो बना बनाया महल ढहकर मिट्टी में मिल जायेगा। अपराध जीव की धर्मशाला का नहीं

होता। यह अपराध स्वयं जीव आत्मा का होता है। धर्मशाला तो निर्जीव पदार्थों से निर्मित हुई है। इसे कष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। चींटी से लेकर हाथी तक के लिये, भगवान् ने इनके पिछले कर्मानुसार धर्मशालाएँ बनाकर दी हैं। मानव भगवान् से ही द्वेष करता रहता है तब इसे सुख कैसे मिल सकता है ? यही इसका खास अज्ञान है।

श्रीकृष्ण का रास रचने का प्रबन्ध केवल तुलसी माँ ही करती है। भगवान् की योग माया को साथ लेकर तुलसी मैया रास स्थल का वातावरण अलौकिक रचना से रचित करती है। उस स्थल पर कानों को आकर्षित करने वाली अलौकिक ध्वनि गूँजती रहती है। इसका वर्णन इस जड़ जिह्वा से नहीं किया जा सकता। इस स्थल पर एक अलौकिक सुगंध की, आकर्षित समीर बहती रहती है जिससे एक मस्ती की लहर में सभी डूबे रहते हैं। जड़ वस्तु भी सजीवता का रूप वरण कर लेती है। सभी वर्णन जड़ जिह्वा से बाहर हैं। यह सभी तुलसी महारानी की कृपा वर्षण से ही होता है। केवल भगवत् योग–माया को संग में लेकर करती है। योगमाया से अनंतकोटि ब्रह्मांडों में क्या नहीं हो सकता! लेकिन यह तुलसी की कृपा बिना सक्षम नहीं है।

तुलसी के अभाव में भगवान् भी किसी लीला के प्रादुर्भाव में असमर्थ रहते हैं। तुलसी महिमा को कोई भी वर्णन कर नहीं सकता। यह अपने में ही महिमावृत है।

तुलसी आराधना तो भगवान् से भी बढ़कर है। तुलसी कृपा बिना तो भगवान् भी अदृश्य रहते हैं। तुलसी कृपा जिस साधक पर हो गई तो भगवान् उस पर कृपा करने में मजबूर हो गये। तुलसी महारानी से ही भगवान् का अन्तःकरण अग्रसर होता है अपनी समर्थ से भगवान् कुछ कर नहीं सकते, असमर्थ रहते हैं। पंचपात्र का जल पीना उचित नहीं है। तुलसी जड़ में डालना उत्तम है। जल डालकर तुलसी को प्रणाम करें। यह शास्त्र का विधान है।

कोई–कोई साधकगण बोलते हैं कि माला में हरिनाम जपने की क्या जरूरत है बिना माला से भी हरिनाम स्मरण हो सकता है। यह कहना बिल्कुल गलत है। बिना माला स्मरण होना असंभव है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी स्वयं माला में, हरिनाम संख्या रखकर करते रहते हैं। शिवजी अपनी धर्मपत्नि को संग में बिठाकर हरिनाम स्मरण करते हैं। संकीर्तन भी झांझ, करताल तथा मृदंग का सहारा लेकर मन को एकाग्र करते हैं। बिना किसी सहारे से संसार का कोई काम स्वप्न में भी नहीं हो सकता।

बिना कागज़ पैन से कोई लेखन हो नहीं सकता। बिना खुरपा किसी भी क्यारी का निर्माण बन नहीं सकता। शास्त्र का कथन है–

माला मन से लड़ पड़ी तू क्या समझे मोय ।
बड़े–बड़े जो सूरमा, बिन हथियार न जीते कोय ।।

अपने देश के लिये, बिना हथियार दुश्मन को जीतना असंभव है। इसी प्रकार बिना माला के मन को जीतना भी असंभव है। मन तो क्षण–क्षण में न जाने कहाँ–कहाँ भटकता रहता है। एक क्षण तो शुभ कर्म करने में संलग्न हो जाता है दूसरे क्षण अशुभ से अशुभ कर्म करने को तैयार हो जाता है। अतः माला हरिनाम स्मरण करने में परमावश्यक है।

माला मैया आदिकाल से अमर है, सजीव है। इसका थोड़ा सा भी निरादर होने से माला स्मरण करते समय उलझ जाती है तथा टूट जाती है। जिस प्रकार मानव पैसे को कितना प्यार करता हुआ सुरक्षित रखता है वैसे ही माला माँ को इससे भी अधिक प्यार से रखना चाहिये। यदि बेपरवाही से माला का सत्कार नहीं हुआ तो स्वप्न में भी मन का टिकाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कहते हैं कि हमने तो नामापराध कभी किया भी नहीं, फिर भी हमारा मन हरिनाम में लगता ही नहीं। इसका खास कारण यही है कि माला का आदर सत्कार होता ही नहीं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की

आवश्यकता नहीं है। कोई भी साधक आजमा कर देख ले कि माला माँ के भविष्य में क्या–क्या लक्षण सामने आते हैं। जब माला जपने को माला की झोली में हाथ डालोगे तो सुमेरु हाथ में आ जायेगा। सुमेरु को ढूंढना नहीं पड़ेगा। सुमेरु साक्षात् कृष्ण का स्वरूप है और दोनों ओर माला की मणियाँ साक्षात् गोपियाँ हैं। सुमेरु भगवान् बीच में हैं और गोपियां भगवान् को घेरे हुये रास क्रीड़ा में मस्त हैं।

श्रीगुरुदेव गारंटी से बोल रहे हैं कि कोई भी जापक आजमाकर देख सकता है। क्या–क्या गुल भविष्य में खिलता है। न हो, तो मुझसे बोलो ! कमी होगी जापक की। न कि श्रीगुरुदेव के वचनों की।

धर्मशास्त्रों में कुछ–कुछ मार्मिक चर्चाएँ उपलब्ध नहीं होती। यह स्वयं का अनुभवी लेख है जो शत–प्रतिशत सत्य होता है। किसी–किसी विषय को बार–बार बोलना पड़ता है ताकि यह साधकगण के हृदय में बैठ जाये ताकि भक्ति मार्ग निष्कंटक बनता जाये। हमारे तीर्थ महाराज जी बहुत से विषय बारबार बोलते रहते हैं। यज्ञ–पत्नियों की बार–बार चर्चा करते हैं। ध्रुव, प्रहलाद के चरित्र की चर्चा बहुत बार बोलते रहते हैं। अतः श्रवणकारी इन विषयों में दोषारोपण न करें। तब ही उनका भला है। किसी की निंदा स्तुति में तो आनंद महसूस करते हैं और भगवत् संबंधी चर्चा में दुःखी हो जाते हैं। इसका खास कारण सामने ही है कि अभी ऐसे साधक भगवान् को नहीं चाहते। केवल इसलिये श्रवण करते हैं कि हमारा घर सुखमय बन जाये। कोई संकट न आवे। सभी वातावरण हमारे अनुकूल हो जावे।

करोड़ों साधकों में कोई ही भाग्यशाली भगवान् को चाहता है। सभी कपटमय भजन में लीन रहते हैं। फिर शिकायत करते रहते हैं कि हम माला भी एक लाख से अधिक करते हैं परंतु हमारा मन कभी शांति में नहीं रहता। जहाँ शांति है वहाँ पर जाते ही नहीं तो मन शांत कैसे रह सकता है ? जहाँ अग्नि जल रही है वहाँ जाते

ही नहीं, तो ठिठुरता सर्दी की कैसे दूर हो सकती है? यही तो खास अज्ञान है। ज्ञानी के पास बैठो तो अज्ञान दूर हो सकता है। कहते हैं, हमें समय ही नहीं। अरे ! जब मौत का पैगाम आवेगा तब भी कह देना कि अभी समय नहीं है, बाद में आ जाना तो मौत आपका कहना मान जावेगी मूर्खता की भी हद हो गई ! श्रीगुरुदेव जी समझाते–समझाते थक गये लेकिन एक भी मार्ग पर नहीं चल सका।

– हरि बोल –



श्री वृन्दादेवी (श्री तुलसी महारानी)

21

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
21.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

धर्मग्रंथों का निरंतर हरिनाम करने का लगातार आग्रह

गृहस्थी साधक को घर गृहस्थ में अनेक काम–धन्धे हुआ करते हैं। अतः हरिनाम की संख्या जितनी इसने ले रखी है हरिनाम की उतनी संख्या करने में असमर्थ रहता है अतः उसे किसी संत की सत्–संगत में बैठने पर, हरिनाम हेतु माला जपनी पड़ जाती है। समय कम होने के कारण ऐसे समय में हरिनाम की माला जपने पर दुगना लाभ उपलब्ध होता रहता है। एक तो जिह्वा से नाम भगवान् का स्पर्श होता रहता है तथा नाम भगवान् का ही सत्संग सुनता रहता है। दोनों साथ–साथ में होते रहते हैं। सत्संग सुनना तथा नाम जप होना। संसार का स्मरण तो होता नहीं है। अतः इस समय में माला जपना श्रेयस्कर है। माला निर्जीव अर्थात् जड़ नहीं है, सजीव है तब ही तो माया से छुड़ा सकती है। शास्त्र इस अवस्था के हेतु बोल भी रहा है–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

यहाँ पर कुभाव शब्द आया है अर्थात् बिना मन से हरिनाम जपने से है तो संत के सत्संग में बैठने से तो कुभाव भी नहीं है, भाव से है क्योंकि नाम भगवान् के संबंध में ही संत की चर्चा हो रही है। इसमें हरिनाम जपने में क्या नुकसान हो सकता है?

बहुत से संत अपने सत्संग में माला जपने पर नाराजगी प्रकट करते हैं। कई संत मना नहीं करते। देखा जाये तो संत का सत्संग तो सुनते ही हैं, फिर मना करना व्यर्थ है। नाम जप भी हो रहा है और सत्संग सुनना भी हो रहा है। दोगुना लाभ बन रहा है। मेरे श्रीगुरुदेव तथा भारती महाराज तो कभी–कभी सत्संग सुनने पर माला बंद नहीं करवाते हैं। **माला भी जपो, सत्संग भी सुनो।** इसमें नुकसान होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

तुलसी माला चिन्मय वस्तु है तब ही तो भगवान् से मिला देती है। यदि अलौकिक न हो तो माया से कैसे छुड़ा सकती है? साधक में यह बड़ी कमी है कि गुरु प्रदत माला को एक साधारण सी तुच्छ वस्तु समझता है। अतः इससे माला का अपमान निरादर करता रहता है तो माला इसको हरिनाम में मन लगाने नहीं देती। कितनी ही माला जाप करो केवल भार स्वरूप ही जप होता रहेगा।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी भी हर समय नाम जप पर जोर दिया करते थे। सभी को आदेश देते रहते थे कि खाते–पीते, सोते–जागते, चलते–फिरते, काम–काज करते कभी भी हरिनाम जाप बंद मत करो। सदैव हरिनाम जपते रहो।

शौच करते समय श्रीगौरहरि तो अपनी जीभ को पकड़ कर रखते थे। श्रीगौरहरि की आदत ही ऐसी पड़ गई थी कि इनकी जिह्वा कभी नाम लिये बिना रुकती ही नहीं थी। श्रीगौरहरि के सेवक ने ऐसा बोला है कि शौच के समय मौत आ जावे तो मानव जन्म बेकार हो जावे तो उसे गौरहरि ने गुरु की पदवी दी है। हरि भक्ति विलास में लिखा है केवलमात्र भगवान् का एक नाम, वह यदि शुद्ध वर्ण, अशुद्ध वर्ण अथवा खंडित या अधूरा भी हो तो भी वह नाम ग्रहणकारी का उद्धार करता है। भगवान् तो भावग्राही हैं। अन्तर्यामी हैं। नाम कैसे भी उच्चारण हो, लाभ ही लाभ है। नाम भार स्वरूप भी कल्याणप्रद है। नाम जिह्वा से छूना ही काफी है। अजामिल इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

जीभ से नाम का स्पर्श होना परमावश्यक है। इसका लाभ अकथनीय है। श्रीगौरहरि स्वयं भगवान् हैं। भक्त बनकर साधक को स्वयं शिक्षा दे रहे हैं।

भाव–कुभाव अनख आलसहुँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

नाम का, जीभ का स्पर्श दसों दिशाओं में मंगल विधान कर देता है। दिशाएँ भी दस ही होती हैं। फिर अमंगल होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दस से अधिक दिशायें कहीं पर होती ही नहीं हैं। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो गया है कि सत्संग जहाँ भी होता है वहाँ पर जापक अपनी माला बैठकर जप कर सकता है। इसमें कोई नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मना करना एक प्रकार से अपराध ही है क्योंकि मना करने वालों ने हरिनाम पर रोक लगा दी। हरिनाम पर रोक लगाना अपराध ही है। यह एक साधारण सी बात है।

इस रोक में छुपी हुई प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर हो रही है। उसी कारण माला जपने वालों पर रोक लगाई जाती है। लेकिन यह उचित जान नहीं पड़ती। धर्मशास्त्र हरिनाम पर किसी भी दशा में रोक नहीं लगाते। हर क्षण करने का आदेश देते रहते हैं। यहाँ तक कह दिया–

विवसहुँ जासु नाम नर कहहिं, जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।

यदि किसी को जबरदस्ती भी नाम उच्चारण करवा दें तो उसके जन्मों के रचे–पचे पाप भी जल कर भस्म हो जाते हैं। रचे–पचे पाप कैसे होते हैं ? जब कोई निर्दयी किसी जानवर को अधमरा करके तड़पाता है तो कोई दयालु उसे कहता है कि इसको क्यों तड़पा रहा है तो वह कहता है इसे तड़पाने में मुझे आनंद आता है। ऐसे निर्दयी को एक बार नाम उच्चारण करवा दें तो उसके भी अनेक जन्मों के पाप जल कर भस्म हो जाते हैं। तो नाम जपने से रोकना कितना खतरनाक है ? कई लोग कहते हैं मन तो एक है, सत्संग सुनते समय नामजप कैसे हो सकता है ? बात तो

ठीक है मन तो एक तरफ ही होगा लेकिन हरिनाम पर यह बात सिद्ध नहीं होती क्योंकि हरिनाम, बिना मन भी, लाभप्रद होता है। नाम का जीभ से स्पर्श होना ही काफी है। जैसे अग्नि का बेमन से स्पर्श भी अग्नि का प्रभाव बन जाता है अर्थात् उसका जलाने का स्वभाव है। इसी प्रकार जीभ का, बिना मन हरिनाम स्पर्श भी, मंगलकारी हो जाता है क्योंकि नाम का स्वभाव ही कल्याणप्रद है। नाम और नामी क्या अलग–अलग है ? दोनों एक ही हैं अर्थात् जीव आत्मा का स्पर्श भगवान् से होगा तो स्वतः ही मंगल विधान बन ही गया।

नाम जाप के प्रति कोई भी किंचित्मात्र भी विरोधाभास नहीं है। नाम एक अलौकिक शब्द है, अमृतमय, रसमय सिंधु है। इस पर दोषारोपण करना जघन्य अपराध है। जो करता है, उसका मार्ग कंटकमय बन जाता है। वह कभी भगवत् की हवा भी महसूस नहीं कर सकता। अपनी बुद्धि लगाना विष सिंधु में डूबना है।

उक्त सभी चर्चा मेरे श्रीगुरुदेव के मुखारविंद से निष्कासित हुई है। इसे जो अपनायेगा, सुख सिंधु को पायेगा। भगवान् ने चर–अचर प्राणियों को जन्म दिया है। अनंतकोटि अखिल ब्रहमांडों में कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जो भगवान् की सृष्टि के बाहर हो। अतः सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के दास या पुत्र समान हैं। **भगवान् को उपलब्ध करने हेतु दो ऐसे ऊँचे शिखर हैं जिनको पार करना साधक के लिए बहुत ही दुष्कर है। एक तो मूल अड़चन है–गुरु प्रदत्त जपने की माला का निरादर का अपराध। दूसरा है–नामापराध। इन दो अड़चनशील अपराधों के कारण अरबों–खरबों में कोई एक साधक भगवान् के चरणों में पहुँच पाता है। सभी माया के जाल में फँसे पड़े हैं।**

परमहंस सन्त ही एक ऐसा ज्ञानी है जो इन प्राणियों को भगवत् चरण में ले जा सकता है। अन्य कोई दूसरा इस सृष्टि में उद्धार पाने का मार्ग नहीं है। यह भी उपलब्धि तब ही हस्तगत

होगी जब गहरी सुकृति साधक को उपलब्ध होगी। ऐसी उपलब्धि भी किसी विरले को ही होती है। हरिनाम में तो इतनी अपार शक्ति है कि जीव अपने जीवन में इतना पाप कर ही नहीं सकता कि नाम उसको जलाकर भस्म नहीं कर दे।

नाम्नोऽस्य चावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कुर्वीत न शक्नोति पातकं पातकी जनः।।

(बृहद्विष्णुपुराण)

श्री हरि के इस नाम में पाप नाश करने की जितनी शक्ति है, उतना पातक, पातकी मनुष्य अपने जीवन में कर ही नहीं सकता। तो नाम पर रोक लगाना कितना खतरनाक है।

राहगीर अर्थात् पथिक ड्राइवर, जिस हरिनाम रूपी गाड़ी में बैठकर वैकुण्ठधाम में जा रहा है। गुरु प्रदत्त तुलसी माला रूपी पटरी, जिस पर गाड़ी दौड़ रही है, इस पटरी को बड़ी सावधानी से देख–रेख एवं सँभाल कर रखें वरना हरिनाम की गाड़ी नीचे गिरकर, उसमें बैठकर जाने वाले पथिक को चकना–चूर कर सकती है। ध्यान से सुनने की रहस्यमयी बात है।

बड़े ध्यान से सुनने की कृपा करें। दुबारा बोलता हूँ :– इसमें माला का निरादर घोषित किया गया क्योंकि **गुरु प्रदत्त माला का निरादर भगवान् को सहन नहीं होता। वह दंड का भागी होगा। श्रीगुरुदेव भगवान् की प्रिय मूर्ति हैं इनकी वस्तु का अपमान भगवान् को कैसे सहन हो सकता है?**

इस हरिनाम रूपी गाड़ी में आध्यात्मिक ज्ञान को उपलब्ध कराने वाले श्रवणकारी बैठकर जा रहे हैं इस लोभ से ताकि हम अपने खास घर, जो वैकुण्ठधाम है, पहुँच सकें।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने साधकों को कई बार गुरु प्रदत्त माला की महिमा वर्णन की है कि हरिनाम जपने की माला जड़ वस्तु नहीं है। निर्जीव वस्तु नहीं है। यह अलौकिक, दिव्य और सजीव वस्तु है। इसका आदर सत्कार करने से ही हरिनाम में मन नियोजित होगा।

इसका निरादर तथा अपमान होने से नाम भगवान् साधक के मन को एकाग्र नहीं करेगा। यदि माला निर्जीव जड़ वस्तु हो तो भगवान् से कैसे मिला सकती है ? ऐसा समझना अपराध है। **जब प्रत्येक माला की 108 मणियों की संख्या पूरी होने पर साधक माला झोली को सिर से छुएगा, हृदय से छुएगा, मुख से चुंबन करेगा तथा माला जपने के बाद शुद्ध जगह स्थापित करेगा तब माला का आदर सत्कार होना समझें।**

जब ऐसी अवस्था होगी तब माला खुश हो जायेगी तो जब भी जापक माला को जपने हेतु माला झोली में हाथ डालेगा तो प्रत्यक्ष में सुमेरु भगवान् उसकी उँगलियों पर आ विराजेगा। साधक को सुमेरु ढूँढना नहीं होगा। सुमेरु स्वयं राधा कृष्ण ही है और दोनों ओर तुलसी की मणियाँ साक्षात् गोपियाँ हैं। गोपियाँ सुमेरु भगवान् को, दोनों ओर से घेर कर, रास रचने हेतु तैयार खड़ी हैं।

जो साधक इस प्रकार से हरिनाम जपेगा उसका मन स्वतः ही सुगमता व सरलता से भगवान् के चरण में लगता रहेगा। संसारी चिंतन की तो हवा भी नहीं छुएगी। न माला उलझेगी, न हाथ से गिरेगी, न टूटेगी। बड़ी आसानी से जप होता रहेगा। प्रेमावस्था का पंचम–पुरुषार्थ हस्तगत हो जायेगा। कोई भी साधक आज़माकर देख सकता है। यदि उक्त अवस्था न आवे तो बोल सकता है। आदर–सत्कार की कमी के कारण ही उक्त अवस्था आने में देर हो सकती है वरना तो सूर्य उगने पर अँधेरा रह ही कैसे सकता है ?

मेरे गुरुदेव सब साधकों को प्रत्यक्ष गारंटी दे रहे हैं। कोई करके तो देखे ! धर्मग्रंथों में ऐसी बातें पढ़ने को नहीं मिल सकतीं। यही श्री गुरुदेव जी का अनुभव का विषय है जो 100 प्रतिशत सत्य होगा। माला अपनी माँ है। माँ का आदर सत्कार होना परमावश्यक है ही। यह साधक को माया से बचाती है। अपने स्तन से अमृत दूध पिलाती है। विषय विष को मन से बाहर करती है। भगवान् ने अपने जन को अपनाने के हेतु, यह माला रूपी गाड़ी, अपने पास

बुलाने हेतु भेजी है। इस पर सवार होकर कोई भी उनके धाम पहुँच सकता है।

मानलो कि पटरी ही न हो तो रेलगाड़ी किसी गंतव्य स्थान पर कैसे पहुँच सकती है? इसी प्रकार यदि तुलसी माला रूपी पटरी ही न हो तो क्या साधक अर्थात् सवार भगवत् धाम तक पहुँच सकता है? स्वप्न में भी नहीं। तुलसी माला यदि निर्जीव हो, अर्थात् जड़ हो तो क्या माया से छुड़ा सकती है? यह तो साधारण सा विचारणीय विषय है कि माला, सजीव भगवान् की, सजातीय शक्ति है तब ही भगवान् से मिला सकती है।

साधक इस माला को सजीव नहीं समझता, इसी कारण भगवत् नाम में मन लगता नहीं है। यह इसका जघन्य अपराध है। साधक 2–2 लाख हरिनाम जपते हैं फिर शिकायत करते हैं कि हमें नाप जप से कोई फायदा ही नहीं दिखाई देता। फायदा कैसे दिखाई दे ? ये नामापराध तथा तुलसी माला का अपमान करते रहते हैं । अतः विरला ही कोई पंचम–पुरुषार्थ प्रेम उपलब्ध कर पाता है। रोग कैसे शांत हो? जब परहेज करते नहीं तो दवा कैसे असर करे ?

श्रीगुरुदेव सभी तरीके साधकों को बता–बता कर थक गये फिर भी साधक अनसुनी करते रहते हैं। इसमें किसका नुकसान है। स्वयं का ही है। इति।

– हरि बोल –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

22

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
30.12.2011

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का चरणों में दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

जन्म–मरण–परण भगवान से निश्चित है

पुनर्जन्मों के कर्मानुसार जन्म–मरण–परण विधाता ने रचा है। कर्म भी जीव आत्मा से तीन प्रकार के हुआ करते हैं। संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा क्रियामाण कर्म। इन कर्मों के अनुसार ही जीव आत्मा का अगला जन्म धारण किया जाता है। वैसे ये कर्म अमिट हैं। इनको बदलना असंभव है फिर भी भगवत् कृपा से ये बदले जा सकते हैं। शास्त्र वचन हैं–**मेटत कठिन कुअंक भाल के।**

भगवत् आराधना एक ऐसा शक्तिशाली कर्म है जो ब्रह्मा के समस्त विधानों को रद्द कर देता है। विधाता भी इसमें कुछ नहीं कर सकता। यह उच्चकोटि का कर्म है। इसके ऊपर कोई कर्म नहीं है। वह है पंचम पुरुषार्थ–भगवत्प्रेम। भगवान् अपना प्रण तोड़ देते हैं, भक्त की बात रख लेते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि यह अवस्था जीव आत्मा को कैसे उपलब्ध हो सकती है। केवल हरिनाम स्मरण से ही। सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग–चारों युगों में भगवत् नाम ही सर्वप्रिय साधन है। भगवत् नाम के अभाव में कोई भक्ति है ही नहीं। **भक्ति का अर्थ है–भगवान् में जीव आत्मा की आसक्ति।**

सतयुग में योगीजन जंगल में, पहाड़ों में एकांत में जाकर, भगवान् से अपना मन जोड़कर, भगवन् नाम की शरणागति पर

आश्रित रहते हैं। सर्दी, गर्मी, बरसात सहते हैं, भूखे–प्यासे रहकर तप में लीन रहते हैं। कोई तपस्वी जल में खड़े होकर भगवान् को नाम उच्चारण से पुकारता रहता है तो कोई अग्नि में अपने तन को कसता है, कोई धूप में खड़ा होकर भगवान् के नाम का उच्चारण करता है। इस तरह कई प्रकार से अपने तन को कष्ट देता रहता है। भगवान् को जबरन अपने पास बुलाना चाहता है।

जिसका साक्षात् उदाहरण है ध्रुव भक्त। नारद जी के उपदेश से पाँच वर्ष की अवस्था में ध्रुव ने घोर तपस्या की। बिना पानी पिये, बिना खाये, केवल हवा पर अपना तन कसता रहा। हवा भी लेना बंद कर दिया तो संसार में रहने वालों का सांस लेना भी दूभर हो गया तो भगवान् को ध्रुव के पास जाना पड़ गया।

भगवान् ने ध्रुव को छत्तीस हज़ार वर्ष का राज दिया क्योंकि आरंभ में ध्रुव की कामना राज पाने की थी। भगवत्–दर्शन के बाद यह कामना भी नहीं रही। परंतु भगवान् तो भक्त की कामना पूरी करते ही हैं। बाद में ध्रुव को एक नया लोक बनाकर उसका नाम ध्रुवलोक रखा। वह ध्रुवलोक ध्रुव को सौंपा। सब लोक उसकी परिक्रमा लगाते रहते हैं। ऐसे ही प्रह्लाद भगवत् नाम के आश्रित रहा। उसके पिता हिरण्यकश्यपु ने प्रहलाद पर अनगिनत अत्याचार, प्रहलाद को मारने हेतु किये परंतु भगवत् नाम के आश्रित रहने के कारण प्रह्लाद का बाल भी बांका न हो सका। स्वयं हत्याकारी ही मौत के घाट गया। **भगवत् नाम का आसरा लेना तथा श्रीकृष्ण का आसरा लेना एक ही बात है।**

निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवत् नाम ही अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में एक अमोघ दुस्तर शक्ति है कि नाम भगवान् को कोई शक्ति विजय नहीं कर सकती जो भी इसका सामना करता है स्वयं ही मौत के घाट चला जाता है।

इसी प्रकार त्रेतायुग में भी कई प्रकार के यज्ञों द्वारा भगवत् आराधना करनी होती है। यज्ञों के समापन हेतु पूरी दुनिया पर विजय करनी पड़ती है। जब विजय हो जाती है सभी यज्ञ करने

वाले की हर प्रकार की सहायता करते हैं। तब यज्ञ पूरा समापन पर पहुँचता है। इसमें भी भगवत् नाम की आहुति देनी होती है। भगवत् नाम के बिना तो कोई भी युग का साधन है ही नहीं।

इसी प्रकार द्वापर युग में भी निर्मल हृदय अर्थात् मन से भगवान् के विग्रह का अर्चन–पूजन होता है इसमें भी भगवत् नाम के अभाव में अर्चन–पूजन का नाम निशान ही नहीं है। गौरहरि के कथनानुसार, एक लाख हरिनाम लेना परमावश्यक है।

कलियुग में तो केवल हरिनाम स्मरण ही सर्वोत्तम साधन है। इसमें कहीं पर जाने की आवश्यकता है ही नहीं। जहाँ पर हो, जिस समय में हो, जिस अवस्था में हो, बेफिकर होकर हरिनाम स्मरण करने में लीन रह सकते हैं। इसमें कोई खर्चा नहीं, सर्दी, गर्मी बरसात की कोई बाधा नहीं। सभी सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं। बड़ी सरलता व सुगमता से हरिनाम स्मरण हो सकता है। भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

यदि पूर्ण श्रद्धा विश्वास जीव आत्मा की बन जाये तो हरिनाम स्मरण करने के अलावा कुछ भी साधन करने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्र का वचन है–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
राम नाम की औषधी जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं महा रोग मिट जाय।।
अच्युत अनंत गोविंद नामोच्चारण भेषजात।
नश्यन्ति सकला रोगा, सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

शास्त्रीय वचन सत्य तथा अमिट होते हैं यदि कोई साधक इन पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास कर ले तो इसी जन्म में भगवत् धाम उपलब्ध किया जा सकता है तथा जन्म–मरण का दारुण कष्ट मिटाया जा सकता है।

अनेक जन्मों के संचित कर्म तो भगवान् के सामने आते ही जलकर भस्म हो जाते हैं।

सनमुख होय जीव मोय जबहिं। जन्मकोटि अघ नासहिं तबहिं।।

हरिनाम, निरपराध जपने से प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं। शुभ मार्ग पर चलने से क्रियमन कर्म, (वर्तमान स्थिति) समाप्त हो जाते हैं। कर्म ही से सतोगुण रजोगुण तथा तमोगुण का स्वभाव बनता रहता है। यदि कर्म ही भगवान् के प्रति बन जाये तो कर्म का बीज ही नाश हो जाये।

जब जीव आत्मा का निर्गुणवृत्ति का स्वभाव उदय हो जायगा जब कर्म ही नहीं रहेगा तो स्वभाव भी निर्मल बन जायेगा अर्थात् जीव मात्र पर दया भाव उदय होकर उपकार में मन नियोजित हो जायेगा। यहाँ अहंकार का नाश स्वतः ही हो जायेगा। कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा का नामोनिशान ही नहीं रहेगा। यही है परमहंस अवस्था, निर्गुण अवस्था, चिन्मयी अवस्था।

यह स्थिति केवल हरिनाम स्मरण से ही आती है। यदि नामापराध तथा गुरु प्रदत्त माला का अपराध न हो तो फिर भक्ति मार्ग निष्कंटक बन जाता है। जो भी इसका संग करेगा, इसी रंग में रंग जायेगा। विभीषण को हनुमान जी का क्षणिक संग मिला तो मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम जी से भेंट हो गई। जबकि उसका वास कंटीले कांटों पर था लेकिन संत का मिलन बेकार नहीं जाता पर संत सच्चा और निर्लोभी होना चाहिये। शास्त्र का वचन है–

बिनु हरि कृपा मिले नहि सन्ता

जब साधक की सुकृति होगी तब ही भगवत् कृपा इसके पीछे आवेगी। जब सुकृति नहीं होगी तो भगवत् कृपा भी नहीं होगी। तो साधक का मंगल कैसे होगा? लेकिन मंगल भी होगा। कैसे होगा? **हमारे जितने भी सच्चे, भगवत् प्रेमी गुरुवर्ग हुये हैं, हरिनाम करते हुये उनका चिन्तन करने से, भगवत् कृपा को जबरन आना पड़ेगा। क्योंकि भगवान् हमारे गुरुवर्ग के आदरणीय**

हैं तथा उन्होंने अपने भक्ति से भगवान् को अपना बना रखा है तो भगवान् उनके आश्रित हैं।

जैसा कि भागवत–पुराण में जय–विजय के प्रसंग में भगवान् ने स्वयं अपने मुखारविंद से बोला है कि मैं तो भक्तों का खरीदा हुआ गुलाम हूँ। जिन्होंने मेरे लिए सब कुछ त्याग रखा है। अतः निष्कर्ष निकलता है कि साधक सच्चा संत कहाँ से लावे? जब भगवत् कृपा ही नहीं होगी। भगवत् कृपा के बिना सच्चा संत उपलब्ध होता नहीं।

तो एक सरल व सुगम रास्ता है जो भी सच्चे संत, गुरुवर्ग के रूप में भूतकाल में हुये हैं, उनका चिंतन किया जाये तो भगवत् कृपा उस चिंतन के पीछे आनी शुरु होगी। भगवत कृपा रुक नहीं सकती क्योंकि साधक ने भगवत् प्यारे संतों का आसरा लिया है तो भगवान् को ऐसे साधकों पर जबरन कृपा करनी ही पड़ेगी।

चिन्तन एक ऐसा चिन्मय मार्ग है कि इस चिंतन से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष ही प्रगट हो जाते हैं। बिना चिंतन के कोई भाव उदय हो ही नहीं सकता। जब माया के विकार ही उदय हो जाते हैं तो क्या अलौकिक भगवत् संबंधी, संत चिंतन से, प्रेम विकार उदय नहीं होगा ? ऐसा हो नहीं सकता। प्रेम उदय हुये बिना रह नहीं सकता। अन्तःकरण का चिन्तन ही सर्वोप्रिय होता है। वह चिंतन माया संबंधी हो या भगवत संबंधी हो, कोई भी हो, अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता।

बात यह है कि सच्चे संत को लाना नहीं पड़ता। चिंतन से सच्चे संत स्वयं प्रगट हो जाते हैं। जहाँ सच्चे संत प्रगट हो वहाँ भगवान् का प्रगट होना परम आवश्यक हो जाता है। भगवान् को प्राप्त करना बहुत सहज है। साधक का मन होना चाहिये। साधक का मन तो संसार में है तो भगवान् में कैसे हो सकता है ? केवल कपटमय व्यवहार से साधक का जीवन चल रहा है। फिर शिकायत करते रहते हैं कि हमारा मन हरिनाम में लगता ही नहीं है। माला भी डेढ़–दो लाख जप लेते हैं परंतु कोई लाभ प्रतीत नहीं होता।

लाभ कैसे मालूम होगा जब मन ही दूसरी ओर रम रहा है। मन तो स्वयं भगवान् है इस मन भगवान् को संसार में फँसा रखा है तो हरिनाम भगवान् साधक के पास कैसे प्रगट होगा ?

श्रीगुरुदेव हर प्रकार से समझा–समझा कर थक गये परंतु मानव की अनसुनी करने की भी हद हो गई। लेकिन गुरुदेव फिर भी पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। अन्तःकरण की वृत्ति को आध्यात्मिक मार्ग में चलावो तो सब साधन सरल व सुगम बन जायेगा। इस वृत्ति को माया मार्ग में लगा रखा है तो सत्य, सुखमय मार्ग कहाँ से मिल सकेगा ? यही तो अज्ञान साधकों को परेशान कर रहा है। यह अज्ञान गुरुवर्ग के चिंतन से दूर हो सकता है। हरिनाम जपते हुये चिंतन किया जाये तो ज्ञान का दीपक अन्तःकरण में जल जायेगा। जब ज्ञान का दीपक अन्तःकरण में जल जायेगा तो सब बखेड़ा ही हट जायेगा।

भक्त चिन्तन का मसला इतना है कि साधक अपने जीवन में कर ही नहीं सकता। जैसे सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के अनगिनत संत हैं उनका चिंतन कर सकते हैं। जैसे नारदजी, सनकादिक मुनि, नवयोगेश्वर, ईश्वरपुरी, माधवेन्द्रपुरी, विभीषण, हनुमान जी, ध्रुव, अम्बरीश जी, प्रहलाद जी, सुदामा, सूरदास जी, तुलसीदास जी, कबीरदास जी, रूप–सनातन, गौर किशोरदास बाबा, भक्ति विनोद ठाकुर, ए. सी. भक्ति वेदांत स्वामी, नरोत्तम ठाकुर कितने को बताया जाये। कोई गिनती नहीं है। फिर भी साधक चिंतन करने को ढूँढता रहता है कि मन ही नहीं लगता। मन है ही नहीं, मन कैसे लगे ? जहाँ चाह, वहाँ राह मौजूद रहती है। सब बहानेबाजी है। बताने वाले भी क्या करें, कोई सुनने को तैयार ही नहीं। यह मानव जन्म व्यर्थ में ही जा रहा है। फिर मिलने वाला है नहीं। रोता हुआ जायेगा, दुःख सागर को पायेगा। हाथ कुछ नहीं आयेगा। अंत समय पछतायेगा। अब भी समझ ले, तो कुछ मिल जायेगा।

जैसे हमारे गुरुदेव अब हैं नहीं, गोलोकधाम पधार गये तो क्या

अब हमारे पास हमारे गुरुदेव नहीं हैं। जब याद करो हमारे गुरुदेव हमारी मंगल कामना करने को तैयार रहते हैं। हमारे अंदर ही कमी है। हममें श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं। धर्मशास्त्र इसका प्रमाण हैं।

श्रीगुरु पदनख मणिगण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
उघरहि विमल विलोचन हिय के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।
सुझहिं राम चरित्र मणि माणिक।
गुप्त प्रगट जो जेहि खानिक।

क्या हमारा शास्त्र झूठ बोल रहा है ? कोई भी आजमा कर देख सकता है। हरिनाम की आठ माला मानसिक रूप से गुरु चरणों में बैठकर स्मरण करे तो कुछ समय बाद सात्विक विचार ह्रदय में उदय हो जायेंगे।

श्रीगुरु चरण की नख ज्योति जपने वाले को आलोकित कर रही है। इस आभा से जपने वाला सराबोर हो रहा है। हमारे गुरुवर्ग की पुस्तक जो भजन गीति है, उसमें भी श्रीगुरुदेव का चिंतन करने की महिमा बताई गई है। देख सकते हो पेज नं 17 पर अंकित है। यदि चिन्तन में कमी होती तो धर्मग्रंथ चिन्तन की महिमा नहीं गाते। चिन्तन ही सर्वोप्रिय है। **चिंतन के अभाव में न संसारी कर्म हो सकता है न आध्यात्मिक कर्म हो सकता है। भगवान् ने अन्तःकरण को चिन्तन करने हेतु ही निर्माण किया है। यह चिंतन माया संबंधी या फिर भगवत् संबंधी भी हो सकता है। माया संबंधी दुःख का कारण है एवं भगवत् संबंधी परम सुख का कारण है।**

गुरु प्रदत्त तुलसी की माला यदि जड़ हो तो माया को कैसे दूर कर सकती है ? भगवान् से कैसे मिला सकती है ? जापक इसे निर्जीव समझ लेता है इसी कारण हरिनाम में मन नहीं लगता। क्योंकि हरिनाम स्वयं भगवान् है। तुलसी मैया का निरादर करने से भगवान् कैसे जिह्वा पर नाच सकता है ? यही जापक का महान्

अपराध है। इस कारण भगवान् और भगवान् के नाम में कोई भेद या अंतर नहीं है। यह बात जापक समझता नहीं है अतः भगवत् प्रेम से वंचित रहता है। कोई प्रवचनकार इतनी गहराई तथा तथ्य को श्रवणकारियों को समझाता नहीं है। केवल भगवत् लीलाओं का वर्णन कर देता है। अतः जो भगवान् के पास पहुँचने का मार्ग है, यह मेरे गुरुदेव जी ही कृपा कर साधकों को बताते रहते हैं। अब मार्ग को कोई अपनावे ही नहीं तो गुरुदेव का क्या दोष है?

माला के बारे में बारंबार बोलना बहुत ही जरूरी है क्योंकि माला ही भगवान् को प्राप्त करने का मूल मार्ग है, अन्य मार्ग सब गौण स्थिति में आते हैं।

यह प्रत्यक्ष प्रमाण सभी जापकों के सामने प्रगट है ही कि श्री गुरु प्रदत्त माला सजीव तथा जाग्रत होने से, माला झोली में हाथ डालते ही जापक की उँगलियों पर सुमेरु भगवान् प्रगट हो जाता है। यदि जापक माला का आदर–सत्कार करता रहता है तो। पर यदि माला का निरादर होता है तो माला झोली में हाथ डालने पर सुमेरु भगवान् को टटोलना पड़ता है। ऐसा अनुभवी ज्ञान सभी साधकों को होता नहीं है। सभी प्रवचनकार धर्मग्रंथों से जो भी उपलब्ध होता है, अपने प्रवचन में श्रवणकारियों को बोल दिया करते हैं। यही तो मेरे गुरुदेव की असीम कृपा है जो भगवान् की सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा छुपी हुई गूढ़ बातें भी वर्णन कर दिया करते हैं। तब ही तो भगवान् मेरे गुरुदेव जी को उलाहना देते रहते हैं कि **यह माधव (श्रील भक्तिदयित माधव महाराज) तो मेरे न कहने योग्य, रहस्यमयी छुपे हुये प्रसंगों को, सभी को बताकर मेरी पोल खोलता रहता है। लेकिन मैं कर भी क्या सकता हूँ? माधव ने तो मुझे प्रेम रज्जु से बाँध रखा है। मैं इसे मना भी नहीं कर सकता। मजबूर हूँ। इसने मेरे पास पहुँचने का सरल, सुगम मार्ग सभी को बता दिया। फिर भी मैं समझता हूँ कि कोई विरला ही इस मार्ग पर चलता है। सभी माया की चक्की में पिस रहे हैं। इसका खास कारण है–मेरा प्रेमी संत। कोई विरला ही है, जिसका संग मिलना बहुत ही असंभव है।**

भगवान् बोल रहे हैं कि–ऐसे रहस्यमयी गुप्त प्रसंग, मेरे शास्त्रों में कहीं न कहीं अंकित हैं। बिना अंकित प्रसंग किसी के अन्तःकरण में आ ही नहीं सकता। धर्मग्रंथ भी अनगिनत हैं। कई करोड़ों में हैं, अरबों में हैं जो अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में मौजूद हैं जिनका अवलोकन करना किसी अंश में भी नहीं हो सकता। लेकिन मेरी कृपा से, न पढ़ा हुआ प्रसंग भी, मैं मेरे प्रेमी भक्त के हृदय में प्रगट कर देता हूँ। अंदर की छुपी हुई अनुभूति मेरे प्रेमी भक्त के अन्तःकरण में उदय हो जाया करती है। मैं, मेरे भक्त को बुद्धियोग का ज्ञान दे देता हूँ।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।

(गीता 10.10)

भगवान् बोल रहे हैं कि **इसमें कोई भी शंका न करे वरना अपराध का भागी बन जायेगा। इसी कारण से मैं साधकों को सावधान व सतर्क कर रहा हूँ। साधकों का शंका करना अपने भक्ति मार्ग से च्युत होना है। कोई विरला ही पूर्ण श्रद्धावान् होता है। अधिकतर मार्ग में अटक जाते हैं। शास्त्रों ने बोला है कि करोड़ों–अरबों साधकों में कोई ही विरला सुकृतिवान ही मेरे धाम में पहुँच पाता है। अधिकतर रास्ते में ही अटक कर रह जाते हैं। यही तो मेरी माया का खेल है। मेरी माया को पार करना बड़ा दुस्तर है। केवलमात्र सच्चे संत की कृपा ही इसमें सहायक है जिसने कंचन, कामिनी तथा प्रतिष्ठा की ओर से अपना मुख मोड़ रखा है। इनसे मुख मोड़ना बड़ी टेड़ी खीर है।**

ठाकुर जी की, जो भी अर्चन–पूजन की सामग्री है, सभी सजीव व चिन्मय होती है। जो पुजारी, इनको निर्जीव, ताँबा पीतल आदि की समझता है, उसका अर्चन–पूजन ठाकुर जी स्वीकार ही नहीं करते। उस पुजारी के लिये ठाकुर जी पत्थर व अन्य धातु के ही बने रहते हैं। यदि पुजारी ठाकुर जी की वस्तुओं को चिन्मय रुप से देखता है, समझता है तो ठाकुर जी उस पुजारी से बातें करते हैं, स्वप्न में आदेश देते हैं। माधवेन्द्रपुरी जी के लिये, ठाकुर जी ने

पुजारी को आदेश दिया कि मेरे भक्त माधवेन्द्रपुरी को, एक सिकोरा अमृतकेली खीर का, जो मैंने अपने आसन में छुपा रखा है, उन्हें बाज़ार में ढूँढकर, देकर आओ। पुजारी से ही ठाकुर जी प्रत्यक्ष में सजीवता धारण किये रहते हैं।

जो पुजारी एक लाख हरिनाम नित्य स्मरण सहित करता रहता है, उसकी मन की आँखे खुली रहती है और जो पुजारी नित्य एक लाख हरिनाम नहीं जपता, उसकी मन की आँखे माया निर्मित रहती हैं। तब पुजारी ठाकुर जी को पाषाण का समझकर ठाकुर जी की चोरी में लिप्त हो जाता है। जो भी ठाकुर जी का भोग बनता है, उसे ठाकुर जी ग्रहण करते नहीं और तो आश्रितजनों को ठाकुर जी का महाप्रसाद उपलब्ध होता नहीं। आश्रितजन भी भगवान् भक्ति से वंचित ही रहते हैं। अतः उनके हृदय में दुर्गुणों का वास हो जाता है। वे ईर्ष्या, द्वेष में लिप्त हो जाते हैं। ठाकुर सेवा भी भार स्वरूप बन जाती है। हरिनाम के अभाव में दुर्गुण आना स्वाभाविक है ही इसलिये पुजारी नामनिष्ठ ही रखना उचित व श्रेयस्कर है। वहीं पर भक्ति महारानी का नृत्य होता रहता है।

''जीवो जीवस्य भोजनम्,'' जीव ही जीव को खाता है। जीव ही जीव का भोजन है। ऐसा क्यों है? इसका खास कारण है कि जिस जीव को जीव खाता है, उसने भी कभी उस जीव को दुख व कष्ट दिया है, उसे खाया है। कोई भी कर्म वह चाहे शुभ हो या अशुभ, उसका भोग उसे अवश्य भोगना ही पड़ेगा। एक जानवर को दस जानवर घेर कर उसके ऊपर लिपट जाते हैं और उसका मांस खाते रहते हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसका खास कारण है कि जिस जानवर को घेरकर खा रहे हैं, उसने भी कभी इनको लिपट कर खाया है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। अतः मानव समझदार होकर भी मांसाहारी बना हुआ है। इसका कारण है–अज्ञान। इसी कारण सत्संग की विशेष आवश्यकता रहती है ताकि इसकी अज्ञान की आँखे सत्संग सुनकर ज्ञान की आँखे खुल सकें। इसी कारण धर्मग्रंथों में सत्संग का सर्वोत्तम महत्व बताया गया है। लेकिन यह

सुकृति के अभाव में उपलब्ध नहीं होता। सुकृति सबसे अधिक होती है किसी सच्चे संत की सेवा से। अन्य की सेवा गौण रहती है एवं संत की सेवा मुख्य होती है क्योंकि संत भगवान् का प्यारा होता है। भगवान् के प्यारे का कौन बाल बाँका कर सकता है ? भगवान् से ऊपर तो कोई शक्ति है ही नहीं।

मेरे श्री गुरुदेव का प्रत्यक्ष आदेश है–

हरिनाम में मन क्यों नहीं लगता है ? इसका खास कारण है गुरु प्रदत्त माला का निरादर। इसको जपने हेतु हाथ में ले कर मस्तक पर लगावें, हृदय से लगावें तथा माला मैया जो हमें हरिनाम रूपी अमृतमय अपने स्तन से दूध पिलाती है, माला मैया के चरणों का चुंबन करो। तब समझो कि माला का आदर–सत्कार हो रहा है। तब प्रत्यक्ष प्रमाण जपने वाले को उपलब्ध होगा कि जब भी माला जपने हेतु माला झोली में हाथ डालोगे तो सुमेरु भगवान् हाथ डालते ही जपने वाले की ऊँगलियों पर विराजित हो जायेगा। आज़मा के देख सकते हो, ऐसा ही होगा।

एक साधारण सी समझने की बात है कि गुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है तो भगवान् जपने वाले की जिह्वा पर आ ही नहीं सकते क्योंकि माला का अपराध हो रहा है। श्रीगुरुदेव जिसने माला शिष्य को जपने हेतु दी है, भगवान् की प्रियमूर्ति है। भगवान् को माला का निरादर कैसे सहन हो सकता है ?

विचार करने की बात है यदि माला निर्जीव हो, जड़ हो, तो क्या निर्जीव वस्तु माया से छुड़ा सकती है ? भगवान् से मिला सकती है ? अज्ञान की भी हद हो गई। **जापक माला को एक साधारण वस्तु समझकर माला का अपमान करता रहता है। अतः कितनी संख्या में माला जपे, मन स्वप्न में भी नहीं लग सकता क्योंकि मन स्वयं भगवान् है। भगवान् कैसे जिह्वा पर आ सकेगा।**

प्रथम मूल अपराध तो माला का ही होता रहता है। दूसरा मूल अपराध तो नामापराध का होता रहता है जिसे मेरे गुरुदेव बोल रहे

हैं। यदि भगवान् को उपलब्ध करना चाहो तो माला का कभी निरादर, अपमान भूलकर भी न करो। माला खोने पर तो बहुत बड़ा अकथनीय अपराध हो जाता है अतः गले से माला दूर न करो। बैग में रखने से बैग खो भी सकता है, तो माला जा भी सकती है। माला भी जब ही खोती है जब जापक से जघन्य अपराध हो जाता है। माला टूटने से भी अधिक जघन्य अपराध होता है। खो जाने पर भी श्रीगुरुदेव भी बहुत नाराज हो जाते हैं क्योंकि माला खोना भगवान् से बहुत दूर होना है।

गुरु प्रदत्त माला को जापक एक मामूली साधारण वस्तु समझकर माला का अपमान करता रहता है, फिर बोलता है, हरिनाम में मन नहीं लगता। मन कैसे लगे ? मन तो स्वयं भगवान् है तथा तुलसी माला भगवान् की हृदयस्पर्शी प्यारी देवी हैं। भगवान् को इनका निरादर स्वप्न में भी सहन नहीं हो सकता।

गुरु प्रदत्त माला को जापक, हीरा, मोती, पन्ना, जवाहरात, रुपये इत्यादि से भी मूल्यवान् समझकर, आदर सत्कार करते हुये, अपनी छाती से लगाकर संभाल कर रखे। हीरा, मोती, पन्ना, जवाहरात, तो एक प्रकार से मिट्टी ही हैं। यह मिट्टी तुम्हें क्या सुख दे सकती है ? माला ही सुख का उद्गम स्थान है। इसको प्यार से अन्तःकरण में छुपाकर रखो। माला सजीव तथा अलौकिक होने से साधक पर प्रसन्न होती है। जब साधक तुलसी माला मैया को अलौकिक प्यार देगा तब ही तो सुमेरु भगवान् साधकों की उँगलियों पर आकर विराजेगा। यदि माला मैया जड़ या निर्जीव होती तो क्या माला मैया की ऐसी सजीव हरकत होती ? सुमेरु को टटोलना पड़ता तथा बेमन के जप से माला उछलती, उँगलियों से छूटती, गन्दे विचार से टूटती, माया से छुड़ाती, भगवान् से मिलाती ! यह जापक को अपने हृदय में पक्का कर लेना चाहिये कि वास्तव में माला मैया सजीव है। नाम भगवान् की अत्यंत प्यारी है।

– हरिबोल –

23

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
03.01.2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की प्रार्थना।

गुरु, वैष्णव, भगवान् तथा वृन्दादेवी की कृपा ही सर्वोपरि है

गुरु, वैष्णव, भगवान् तथा वृन्दादेवी की कृपा ही सर्वोपरि है। इन चारों के अभाव में भक्त–साधक पर कृपा नगण्य है। भक्त–साधक पर जब इन चारों की कृपा होगी तब ही उसका भक्ति–मार्ग निष्कंटक होगा। इनमें से यदि एक की भी कृपा की कमी रह गई तो भक्ति–मार्ग निष्कंटक नहीं हो सकता। इन चारों में भी यदि तुलसी मैया की प्रसन्नता नहीं है तो बाकी तीनों भी भक्त को भक्ति देने में सक्षम नहीं होते। ये तीनों भी पंगु रहते हैं। जीव आत्मा को अपने पास बुलाने हेतु भगवान् ही गुरुरूप में आते हैं। गुरुदेव के बिना किसी भी विषय का ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। गुरुदेव ही शिष्य का पालक है, जन्मदाता है तथा ज्ञानदाता है। इसलिये शास्त्र बोल रहा है–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

श्रील गुरुदेव के वचनों के आदेश का पालन करना ही शिष्य का परम कर्तव्य है। श्रील गुरुदेव की यही महत्वशील सेवा है। श्रीगुरुदेव के वचनों का पालन न करना, श्रीगुरुदेव के चरणों में जघन्य अपराध है।

श्रील गुरुदेव कैसे होने चाहियें? उनका स्वभाव कैसा होना चाहिये?

जो निर्लोभी हो। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से बहुत दूर अपना जीवनयापन कर रहा हो। समस्त धर्मग्रंथों के सार में प्रवीण हो। प्रत्येक शंका का समाधान करने में कुशल हो। सरल हो। दया की मूर्ति हो। एकान्तवासी हो। स्वादु न हो। मृदुभाषी हो। संतोषी स्वभाव का हो।

ऐसा गुरु मिलना अतिदुर्लभ है। किसी अति सुकृतिशाली मानव को स्वयं भगवान् ही ऐसे गुरुरूप में आकर अपनाते हैं। कलिकाल में ऐसा गुरु उपलब्ध होना बहुत ही दुस्तर (मुश्किल) है। अधिकतर स्वादु–गुरु ही विचरते रहते हैं। ऐसे गुरुओं का शिष्यों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं होता। शिक्षा–गुरु भी वैष्णव होते हैं। उनका भी दीक्षा–गुरु के समान ही आदर, सत्कार व सेवा करना उचित है। जो निर्लोभी हो, खुद आचरणशील हो, वही दूसरों को आचरणशील बना सकता है। ऐसे आचरणशील शिक्षा गुरु भी बहुत ही कम हुआ करते हैं। ज्यादातर स्वादु और पैसे के पीछे दौड़ने वाले होते हैं। श्रवणकारियों पर इनके प्रवचनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भगवान् पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास होना साधक के लिये परमावश्यक है। इस कलिकाल में लोग भगवान् के अस्तित्व को ही नहीं मानते। भगवान् भी कोई है, ज्यादातर लोग इस बात को नहीं मानते। ऐसे लोगों की भगवान् पर श्रद्धा क्या होगी ? भगवान् पर श्रद्धा व विश्वास बनाने के लिये, एक शुद्ध व सच्चे, वैष्णव संत की संगति होने की परमावश्यकता रहती है तभी भगवान् का अस्तित्व साधक की समझ में आ सकता है, उसके मानस पटल पर अंकित हो सकता है। यदि वृन्दादेवी (तुलसी महारानी) की कृपा नहीं होगी तो गुरु–वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। वे सभी असमर्थ रहते हैं।

विदेशों में भगवान् के अस्तित्व को लोग नहीं मानते। भारतवर्ष के सच्चे संत ही वहाँ जाकर उनको भगवान् के बारे में जानकारी देते हैं। भगवान् के अस्तित्व पर गहरी चर्चा करते हैं। तब ही

विदेशियों को भगवान् का अस्तित्व समझ आता है और वे भारतवर्ष में आकर वैष्णवों व संतों का संग करते हैं। विदेशों में वैभव की कोई कमी नहीं है फिर भी वे परमदुःखी हैं क्योंकि उन्हें दुःख देने वाली वस्तुओं का ही संग मिलता है। वे वैभव की सामग्री को, वस्तुओं को ही सुख का साधन मानते हैं। वास्तव में, इन वस्तुओं में सुख तो लेशमात्र भी नहीं है। केवल भासता (लगता) है कि इन में सुख है। जहाँ सुख का नामोनिशान ही नहीं है, वहाँ सुख कैसे हो सकता है ? जहाँ दुर्गन्ध है वहाँ सुगंध कैसे हो सकती है ?

सुख तो केवलमात्र भगवत्–नाम में है। इस नाम के द्वारा ही दसों–दिशाओं में सुख की सुगंध फैल जाती है। विदेशी लोगों को भगवद्–नाम के इस सुख का पता ही नहीं है। उन्होंने इसके स्वाद को चखा ही नहीं है। खाना–पीना और मौज–मस्ती करना (Eat, drink & be mary) ही उनके जीवन का लक्ष्य है। इसी को वे सुखी जीवन मानते हैं। क्या विषयों में सुख मिलता है ? विषयों में तो विष भरा हुआ है। विष का साम्राज्य चारों ओर फैला हुआ है। यदि विषयों में ही सुख होता तो विदेशों में इतनी बड़ी मात्रा में लोग आत्महत्याएँ नहीं करते।

हरिनाम करने से ही परमानंद की प्राप्ति हो सकती है। हरिनाम करने से संतोष, सब्र व शांति प्रगट हो जाती है। फिर 'हाय–हाय' धाय–धाय का नामोनिशां ही नहीं रहता। ज्ञान का दीपक जल जाता है और अज्ञान का अंधेरा भाग जाता है।

वृन्दादेवी की शरणागति मानव को लेनी ही पड़ेगी। वृन्दादेवी के बिना भगवान् का अस्तित्व ही नहीं रहता। वस्तुतः वृन्दादेवी ही भगवान् का अन्तःकरण है। अन्तःकरण के बिना किसी भी जीवात्मा का अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

यह एक अतिगूढ़ रहस्य है। साधारण साधक की समझ से बाहर है। इसको समझ पाना बहुत कठिन है।

देखो! तुलसी देवी, वृन्दादेवी भगवान् की आत्मावत् हैं। तुलसी

के बिना तो भगवान् हिल भी नहीं सकते। जब तक साधक तुलसी मैया की सेवा से वंचित है तब तक उसके हृदय में भक्ति उदय नहीं हो सकती। हर प्रकार से तुलसी मैया की सेवा करना परमावश्यक है। तुलसी सेवा करते समय मैया के चरणों में अपराध होना सहज है, स्वाभाविक है। इसलिये बड़ी सावधानी से तुलसी मैया की सेवा करनी चाहिये। अपराध होने से भगवद्–भक्ति तो बहुत दूर की बात है, भगवान् के अस्तित्व में साधक का विश्वास ही समाप्त हो जाता है।

यदि मानव की छाया भी तुलसी मैया पर पड़ गई तो जघन्य अपराध बन जाता है। तुलसी महारानी की चार परिक्रमा करना तथा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना परमावश्यक है। पंचपात्र का बचा हुआ पानी तुलसी में डालना उचित है। तुलसी मैया को जल देना, दण्डवत्–प्रणाम करना परमावश्यक है। द्वादशी के दिन तुलसी पत्र तोड़ना अपराध है। समय–समय पर तुलसी की मंजरियों को तोड़ते रहना चाहिये ताकि तुलसी महारानी बढ़ती रहे। गऊ का गोबर तुलसी की जड़ों में डालते रहना चाहिये। बरसात के दिनों में तुलसी महारानी के पत्तों पर कीड़े लग जाया करते हैं, पत्तों पर हल्दी का चूरा (पाउडर) डालने से कीड़े समाप्त हो जायेंगे। तुलसी के ऊपर या जड़ों में कभी भूलकर भी कोई रासायनिक पदार्थ या तरल पदार्थ का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तुलसीदल को गर्म पानी में या आग में उबालना नहीं चाहिये। तुलसी पत्तों की माला बनाकर ठाकुर जी को पहनावे तथा चरणों में मलयागिरि चन्दन लगा सकते हैं। जब भी तुलसीदल का चयन करना हो तो पहले प्रणाम मंत्र द्वारा दण्डवत् प्रणाम करे–

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि प्रणमामि हरि प्रिये।।

फिर यह मंत्र पढ़ते हुये तुलसी पत्रों का चयन करना चाहियेः–

तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा वर शोभने।।

तुलसी दल चयन करने के बाद फिर दण्डवत्–प्रणाम् करे। इससे तुलसी महारानी प्रसन्नता का अनुभव करती हैं।

श्री तुलसी सेवा के संबंध में श्री भक्तिरसामृत सिंधु (पू. वि.) में मिलता है–

दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्त्तिता नमिता श्रुता।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा।।

अर्थात् तुलसी देवी का दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, कीर्तन, प्रणाम–तुलसी–माहात्म्य श्रवण, तुलसी–सेवा, जलसिंचनादि सेवन और पूजन–ये नौ प्रकार से तुलसी की सेवा करनी चाहिये।

दोनों समय (प्रातःकाल तथा सायं काल) तुलसी आरती करनी चाहिये। वैष्णवों को तुलसी पत्र देना उचित है। जब अमनिया तैयार हो जावे तो सभी खाद्य–सामग्री में तुलसी पत्र डालें। गर्म दूध इत्यादि का भोग नहीं लगाना चाहिये। जब भगवान् को भोग लगावें तो पानी के एक बर्तन में तुलसी पत्र डालकर भोग–सामग्री के पास रख देवें। फिर हरिनाम करते हुये, घंटी बजाते हुये, पर्दा करके, यह चिंतन करें कि भगवान् भोग लगा रहे हैं। भोग लगाने के बाद, भगवत्–प्रसाद को रसोई घर की खाद्य सामग्री में डालें ताकि सभी कुछ भगवत्–प्रसादी बन जावे। भगवान् द्वारा भोग आरोगने के बाद जब पर्दा खोलें तब भी दण्डवत् प्रणाम करें। जब भगवान् भोजन पालें तब भी ठाकुर जी को बारंबार प्रणाम करने से भक्ति महारानी खुश हो जाती हैं। पर्दा खोलने तथा पर्दा लगाते समय, साष्टांग दण्डवत्–प्रणाम करना बहुत लाभप्रद है। इससे भक्ति बढ़ती है। **एकादशी व्रत का पालन करना सदा ही उचित है। कभी भूल कर अन्न खा लेवें तो भी एकादशी का पालन करें। भूल से अन्न खा लेने को भगवान् अपराध नहीं मानते। एकादशी व्रत का पालन न करने से भक्ति नष्ट हो जाती है। एकादशी के दिन अन्न नहीं खाना चाहिये। बाकी चीज़ें खा सकते हैं। गरीबी में कोई डर नहीं है।**

भगवान् के श्रीविग्रह के सामने किसी को भी प्रणाम नहीं

करना चाहिये। केवल 'हरे कृष्ण' 'जय राधेश्याम' ऐसे बोल सकते हैं। घर पर कोई वैष्णव–संत पधारें तो ठाकुर जी की सेवा छोड़कर भी उनका आदर–सत्कार करना उचित है, उनके चले जाने के बाद सेवा में जुट जायें। साधारण व्यक्ति के आने पर सेवा कभी न छोड़ें और कुछ देर इंतजार करने तथा बैठने के लिये प्रार्थना करें।

याद रखो जब तक संबंध–ज्ञान नहीं होगा, तब तक गोलोकधाम की कभी प्राप्ति नहीं हो सकती। इससे पहले वैकुण्ठ जाना होता है। जिस प्रकार एक कुँआरी कन्या अपने पीहर (मायके) में अपने माँ–बाप के घर में रहती है, जब उसका संबंध किसी युवक के साथ हो जाता है तब वह पत्नि के संबंध में अपने पति के घर में चली जाती है। पीहर में वह एक बेटी थी पर पति के घर में वह उसकी पत्नि है। पति से संबंध होने के कारण अब पीहर उसका घर नहीं है। अब उसका घर, परिवार सब कुछ ससुराल ही है। उसे अब सारी ज़िन्दगी ससुराल में ही रहना है। ठीक उसी प्रकार जब तक इस आत्मा का परमपिता परमात्मा से संबंध नहीं बन जाता तब तक वह गोलोकधाम में नहीं जा सकती। जैसे माता–पिता अपनी बेटी का संबंध तय करते हैं उसी प्रकार साधक–भक्त को संबंध–ज्ञान उसके श्रीगुरुदेव की कृपा से स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। अनंतकोटि ब्रह्मांड हैं और गोलोकधाम भी अनेक हैं। जिस प्रकार का संबंध ज्ञान किसी भक्त का होता है, उसे उसी भाव के गोलोकधाम में जाना पड़ता है। यह संबंध माता–पिता, भाई, सखा, शिशु तथा मंजरी इत्यादि कोई भी हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने से, हरिनाम करने से वैकुण्ठ मिल जाता है। वैकुण्ठ में जो सुख–सुविधा आनंद उपलब्ध है, वह अकथनीय है। यह जड़ जिह्वा उसे बयान नहीं कर सकती। अनंत चतुर्युगों तक वहाँ रहने के बाद फिर भक्त के घर में जन्म होता है। भक्त के घर में जन्म लेने से, जन्म से ही भक्ति में रत रहने से, प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होने से जीवात्मा का भगवान् श्रीकृष्ण से संबंध हो जाता है और उसे गोलोकधाम में जाना होता है।

पिछले युग में एक जालंधर नाम का राक्षस हुआ है। वह देवताओं को बहुत परेशान करता रहता था। देवताओं ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि आप भगवान् विष्णु को हमारे दुःख, हमारी परेशानी का कारण बताओ। यह राक्षस हमें बहुत दुःखी करता है।

देवताओं की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा जी ने उनकी परेशानी भगवान् श्रीविष्णु को बताई तो भगवान् ने शिवजी को आदेश दिया कि इस दुष्ट राक्षस जालंधर का किसी भी तरह वध करो।

भगवान् शिव ने जालंधर को मारने का बहुत प्रयत्न किया पर वह नहीं मरा। जब विष्णु भगवान् ने उसके न मरने का कारण पूछा तो शिवजी ने कहा–' हे विष्णु! इस राक्षस का वध इसलिये नहीं हो रहा क्योंकि इसकी पत्नि अकथनीय सती है। उसके सतीव्रत के कारण, उसकी तपस्या के कारण इसको मारा नहीं जा सकता। किसी तरह इसकी पत्नि का सतीत्व भंग हो जाये, तभी इसकी मृत्यु हो सकती है ?

भगवान् विष्णु ने विचार किया कि देवताओं के कष्ट को दूर करना तो मेरा धर्म है और उन्होंने जालंधर का रूप धारण करके उसकी पत्नि का सतीत्व भंग कर दिया। जालंधर की पत्नि का नाम था वृन्दा। जब वृन्दा को मालूम पड़ा कि भगवान् विष्णु ने मेरे पति का रूप धारण कर, मेरे से दुराचार किया है तो उसने भगवान् विष्णु को पत्थर होने का श्राप दे दिया। **भगवान् विष्णु ने कहा–"देवि! मुझे तेरा श्राप स्वीकार है पर मुझ पर एक कृपा करो कि मैं निर्जीव न बनूँ।"**

तब वृन्दा ने कहा–"ठीक है! तुम शालग्राम के रूप में पूजित होओगे और मेरी कृपा बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं चलेगा। मेरी कृपा बिना तुम सृष्टि की रचना भी नहीं कर सकोगे। मेरी कृपा बिना तुम मेरे बराबर ही रहोगे। तेरा अवतार भक्तों के लिये होता है पर मेरी कृपा बिना तेरे भक्तों का आविर्भाव भी नहीं होगा। मैं दो रूपों में सदा तुम्हारे पास रहूँगी। मेरा एक रूप अदृश्य होगा जो सदैव तुम्हारे संग रहेगा और दूसरा रूप वृक्ष के रूप में

धरातल पर रहेगा क्योंकि मुझे भी वृक्ष होने का शाप पहले किसी युग में मिल चुका है।"

"क्योंकि अब तुम मेरे पति का वध कर दोगे तो मेरा कोई सहारा नहीं रहेगा। मैं कहाँ जाऊँगी ? कहाँ रहूँगी ? अब भविष्य में तुम ही मेरे सहारे होगे। मैं तुम्हारी शरण में ही रहूँगी। तुम्हारे बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकूँगी।"

"इस धरातल पर जो मेरा वृक्ष रूप होगा, वह तेरे भक्तों के कारण ही होगा। जो मनुष्य तुम्हारी भक्ति पाना चाहेगा उसे पहले मेरी सेवा करके, मुझे ही प्रसन्न करना होगा। जब तक मेरी कृपा भक्त पर नहीं होगी तब तक भक्त तेरी भक्ति से दूर ही रहेगा और भक्ति के अभाव में तेरा भक्त से संबंध होगा ही नहीं क्योंकि तेरा अवतार ही भक्तों के लिये होता है।"

"मेरी कृपा के बिना एक क्षण भी तेरा जीवन नहीं चलेगा। क्योंकि तुमने मेरे साथ कपट किया है, मुझे धोखा दिया है, इसलिये तुम्हें कर्म का भोग भोगना पड़ेगा। मेरी प्रसन्नता में ही तुम्हारी प्रसन्नता होगी।"

भगवान् बोले, ' हे देवी! तुम जैसा चाहोगी, मैं वैसा ही करुँगा। मैं मज़बूर हूँ। मुझे तुम्हारा श्राप स्वीकार है।"

इस प्रसंग को पढ़कर या सुनकर कोई भी यह शंका कर सकता है कि भगवान् ने वृन्दा के साथ ऐसा कुकर्म क्यों किया ? यह तो अच्छा नहीं किया उसके साथ ! देखो ! भगवान् परमभोक्ता हैं। हर वस्तु को भोगने का अधिकार उन्हें है। सब कुछ उन्हीं का है। उनसे ऊपर तो कुछ भी नहीं है।

"परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई।"

भगवान् तो परम स्वतंत्र हैं। आत्माराम हैं। लीला पुरुषोत्तम हैं। लीला करने के लिये ही यह श्राप या वरदान स्वीकार करते हैं। जो समर्थ होता है, उसको कोई दोष नहीं हुआ करता।

"समरथ को नहिं दोष गुसाईं।"



भगवान् शिव ने विषपान किया और नीलकंठ के नाम से प्रसिद्ध हो गये। क्या कोई साधारण व्यक्ति ज़हर पी सकता है? क्या विषपान करने से महादेव की मृत्यु हुई ? भगवान् शिव तो अविनाशी हैं। ज़हर उनका क्या बिगाड़ सकता है? यदि कोई साधारण व्यक्ति थोड़ा सा ही विषपान कर ले, तो क्या बच सकता है ? नहीं।

देखो! एक बात बड़े ध्यान से समझ लो कि कभी भी भूलकर भी भगवान् का आचरण नहीं करना। किसी समर्थ की नकल नहीं करना। यदि कोई ऐसा करेगा तो उसका नाश हो जायेगा। जालंधर का वध करके, भगवान् ने देवताओं को दुःख से मुक्त करना था, इसलिये यह लीला करनी पड़ी। भगवत्–लीला को कोई नहीं समझ सकता। भगवत्–लीला में दोष निकालना खतरनाक होता है।

–हरि बोल –

24

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
05.01.2012
एकादशी

प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम व दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना।

भगवान् से मिलना सहज है

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों में चर–अचर सभी प्राणी भगवान् की संतानें हैं। भगवान् अपनी सभी संतानों को अपनी गोद में लेना चाहते हैं पर ये संतानें माया के खेल में इतनी मस्त हैं कि अपने पिता की ओर नज़र ही नहीं करतीं।

भगवान् बोलते हैं कि मैंने इस संसार में अनगिनत धर्मग्रंथों को बनाया और उनका विस्तार किया पर मानव इनकी ओर दृष्टिपात ही नहीं करता। यदि कोई इन धर्मग्रंथों की ओर दृष्टिपात करता भी है तो इनमें बताये नियमों के अनुसार जीवन को नहीं चलाता। यदि कुछ इने–गिने लोग इन धर्मग्रंथों के अनुसार जीवन चलाते भी हैं तो उन नियमों को अपने स्वभाव में नहीं लाते। वे माया की क्षणिक वस्तुओं में अपने स्वभाव को रमाये रहते हैं।

भगवान् कहते हैं कि इस सृष्टि में, इस कलियुग में मुझे चाहने वाले सच्चे संत इने–गिने हैं। मेरी कृपा के बिना ऐसे संत किसी को नहीं मिलते पर जिन पर मेरी कृपा–दृष्टि हो जाती है उसे मैं ऐसे सच्चे–संतों से मिला देता हूँ। अतः अरबों–खरबों मानवों में से कोई एक मेरी गोद में आ पाता है। यह अवसर भी सभी को नसीब नहीं होता पर जो मेरे प्रिय सच्चे संत की सेवा करते हैं, यह सुकृति भी उसी मानव की होती है। अन्य किसी भी कर्म से यह सुकृति नहीं होती। भले ही कोई कितनी बार तीर्थ करे, कितना ही

दान–पुण्य करे, कितने ही कुएँ–बावड़ी व धर्मशालाएँ बनवा देवे अर्थात् कितने भी शुभ कर्म कर लेवे पर उसे मेरी कृपा नहीं मिल सकेगी। इन कर्मों को करने से उसे वैभवशाली लोक तो उपलब्ध हो जायेगा पर मेरी कृपा नहीं मिलेगी।

मेरी कृपा केवल मात्र मेरे प्यारे–संत की सेवा करने से ही मिल सकेगी क्योंकि मेरा सच्चा–संत, मेरे लिये सब कुछ त्याग कर, केवल मेरी ही शरण में रहता है। रात–दिन मेरे लिये ही जीवनयापन करता है। ऐसा संत मिलना बहुत दुर्लभ है पर जिस पर मेरी कृपा हो जाती है, उस बहुत ही सुकृतिशाली को ही ऐसा संत मिलता है और उसकी सेवा का अवसर उपलब्ध होता है। बहुत से तो अवसर मिलने पर भी, सेवा न करने से नीचे स्तर में ही अपना जीवनयापन करते रहते हैं।

वास्तव में देखा जाये तो सच्चा–संत किसी की सेवा लेना भी नहीं चाहता। अपने सुख के लिये, अपने आनंद के लिये या फिर अपनी प्रसिद्धि के लिये दूसरों से किसी भी प्रकार की सेवा का वह सर्वथा त्याग कर चुका होता है। **इच्छा या बिना इच्छा के भी प्राप्त हुआ धन या सेवा, कहीं न कहीं, कुछ न कुछ अनर्थ अवश्य करती है और भगवान् के प्रेम की प्राप्ति में बाधक बन जाया करती है।** पर यदि कोई सच्चा–संत किसी की सेवा स्वीकार करता भी है तो केवल अपने सेवक के मंगल के लिये ही वह ऐसा करता है। जब वह उसकी सेवा से प्रसन्न हो जाता है, तो वह उसका सही मार्गदर्शन करता है। सच्चे–संत की प्रसन्नता इसी बात में है कि सेवक उसकी आज्ञा का पालन करे, उसकी शिक्षाओं पर चले यद्यपि आज्ञा का पालन बहुत कठिन है और कोई विरला ही ऐसा कर पाता है। तो उसे श्रील गुरुदेव व संत–दर्शन होने लगता है। यदि साधक को श्रील गुरुदेव या किसी संत के दर्शन नहीं होते तो समझना चाहिये कि भजन में अभी कमी है।

सच्चा संत अपने सेवक को, अपने जीवन के अनुसार चलाना चाहता है। वह उसे रात को जल्दी सोने तथा प्रातः जल्दी उठने

का आदेश देता है ताकि वह स्वस्थ रहे। हर प्रकार से धनवान तथा ज्ञानवान बने। कहावत भी है–

"Early to bed & early to rise, makes a man healthy, wealthy & wise."

ब्रह्म–मुहूर्त में 2 या 3 बजे उठो और हरिनाम करो। यदि ब्रह्म–मुहूर्त में उठने में सुस्ती लगे या उठ जाने पर, हरिनाम करते हुये नींद सतावे तो रात का भोजन कम करो या हल्का करो या फिर केवल दूध पीकर ही सो जाओ। हर रोज़ ब्रह्म–मुहूर्त में उठकर कम से कम एक लाख हरिनाम यानि 64 माला महामंत्र की करनी चाहिये। यह महामंत्र है–

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

इस महामंत्र को श्रील गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी माला पर जपो। मुख से उच्चारण करके, कान से सुनो। यह परमावश्यक है। एक लाख से ज्यादा हरिनाम कर सको तो बहुत ही अच्छी बात है।

कंचन–कामिनी व प्रतिष्ठा ज़हर के समान हैं। उनकी ओर देखना भी मत। यह बहुत खतरनाक खेल है। अपनी गृहस्थी में रहते हुये, ब्रह्मचर्य रखते हुये, शुद्ध कमाई के पैसों से जीवन चलावो। कभी भी नामापराध न करो। माला का कभी तिरस्कार मत करो। सदा यह ध्यान रखो कि आपसे वैष्णव–संतों तथा माला मैया का सम्मान बना रहे।

ग्राम्य–चर्चा से दूर रहो। रसेन्द्रिय (जिह्वा) पर कंट्रोल रखो। भोजन भी रूखा–सूखा करो ताकि कामवेग सोया रहे, शांत रहे। अपने समय को बहुत सी बातों में बर्बाद मत करो। संसारी लोगों से ज्यादा मिलना–जुलना भी कम करो। मृदुभाषी बनो। आपकी वाणी से, आपके व्यवहार से किसी के हृदय को चोट न पहुँचे, कोई उद्वेग प्राप्त न हो, इसका ध्यान रखो। यदि कोई आपसे दुर्व्यवहार करता है तो भी उससे खिन्न न हों। सहनशील बने रहो। सबको

सम्मान दो पर अपने सम्मान की कामना भी न रखो। महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में यही शिक्षा दी है–

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि अपने को तृण (घास के तिनके) से भी नीचा समझकर, वृक्ष से भी ज्यादा सहनशील बनकर, अपने मान की इच्छा को त्यागकर, दूसरों को मान देने वाला बनकर, सदैव श्रीहरिनाम संकीर्तन करो।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इसी बात को दुहराते हुये कहते हैं–

"तृणाधिक हीन, दीन, अकिंचन, छार।
आपने मानबि सदा छाड़ि अहंकार।।
वृक्षसम क्षमागुण, करबि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि, अन्ये करबि पालन।।
जीवन–निर्वाहे आने उद्वेग ना दिबे
पर उपकारे निज सुख पासरिबे।
कृष्ण–अधिष्ठान सर्वजीवे जानि सदा।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा।।
दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा–वर्जन।
चारि गुणे गुणी हय करह कीर्तन।।

जहाँ तक हो सके, चर–अचर प्राणियों का उपकार करते रहो। अपने से बड़ों को सम्मान दो। बराबर वालों से मृदुभाषी बनो तथा अपने से छोटों से प्यार का बर्ताव करो।

इन उपरोक्त शिक्षाओं पर चलकर और संत की आज्ञा का पालन करके, कोई भी स्वप्न में भगवान् के दर्शन कर सकता है। ऐसे सेवक को स्वप्न में तीर्थों तथा मन्दिरों के दर्शन होने लगते हैं। गुरुदर्शन तथा संत–दर्शन भी उसे बार–बार होता है जो इस बात का प्रमाण है कि उसका भजन बढ़ रहा है। यदि उसे स्वप्न में भी

ऐसे दर्शन नहीं होते तो समझना होगा कि उसके भजन में अभी बहुत कमी है।

मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं– काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार इत्यादि। पर अहंकार तो सबसे खतरनाक है। यह एक ऐसी वृत्ति है कि इसको जान लेना बहुत ही कठिन काम है। इस अहंकार ने तो ब्रह्मा, शिव, नारदजी, हनुमान जी तथा अर्जुन तक को नहीं छोड़ा। ये सभी प्रसंग बहुत बड़े हैं। यहाँ इनकी चर्चा करना संभव नहीं है। कहने का मतलब है कि जब बड़े–बड़े देवी–देवताओं को इस अहंकार ने नहीं बख्शा तो एक साधारण साधक की तो बात ही क्या है ! इस अहंकार से यदि बचना है तो भगवत्–शरण में जाओ। केवल भगवान् की शरणागति से ही यह अन्तःकरण में नहीं व्यापता और ऐसी शरणागति भी अपने आप नहीं हुआ करती। यह होगी केवल हरिनाम–स्मरण से। इसलिये प्रतिदिन कम से कम 64 माला हरे कृष्ण महामंत्र –

''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।''

की अवश्य करो। मुख से उच्चारण करो तथा कान से सुनो। मेरे श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्ति–दयित माधव गोस्वामी महाराज ने इस बात पर बार–बार ज़ोर देकर कहा है–

"CHANT HARINAM SWEETLY AND LISTEN BY EARS."

हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है। इस अहंकार को दूर करने के लिये ही, श्रीगौरहरि ने अपने पार्षदों को बोला है कि जो लखपति होगा–उसी के घर पर आकर मैं भोजन करूँगा। जो लखपति नहीं होगा उसके घर पर मैं जाऊँगा ही नहीं। ''इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति'' के तीसरे भाग में ''नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण'' नामक लेख प्रकाशित हुआ था। श्रीमद् व्यासावतार, आदिमहाकवि, पूज्यपाद श्री श्रीमद् वृन्दावनदास ठाकुर

विरचित श्री श्रीचैतन्य भागवत (अन्त्य–खंड) नवम् अध्याय (115–126) में इसका वर्णन है । पाठकों की सुविधा के लिये उस लेख का कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है ।

भिक्षा–निमंत्रणे प्रभु बलेन हासिया।।
चल तुमि आगे लक्षेश्वर हओ गिया।।117।।
तथा भिक्षा आमार, ये हय ''लक्षेश्वर''
शुनिया ब्राह्मण सब चिन्तित–अंतर।। 118।।

अर्थात् भिक्षा निमंत्रण के समय प्रभु हँसकर कहते थे, ''जाओ, पहले तुम लक्षेश्वर (लखपति) बनो । मैं लखपति के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।'' यह सुनकर सभी ब्राह्मण सोचने लगे और मन में दुःखी होकर रोने लगे।

पार्षदों के लिये बहुत बड़ी समस्या बन गई। वह सोचने लगे कि लाख की बात तो बहुत दूर, हमारे पास तो सौ रुपये भी नहीं है। अब गौरहरि हमारे घर आवेंगे ही नहीं और न ही हमारे यहाँ भोजन करेंगे।

श्रीगौरहरि तो साक्षात् भगवान् हैं और सबके हृदय की बात जानते हैं। उन्होंने अपने सभी भक्तों से कहा कि आप चिंता मत करो। मेरे कहने का मतलब रुपयों से नहीं है। मेरे कहने का मतलब इतना है–**''जो नित्यप्रति एक लाख नाम स्मरण करेगा, मैं उसके घर पर भोजन अवश्य करुँगा और उस घर को कभी भी नहीं छोड़ूँगा। वहीं पर सदा वास करुँगा।''**

प्रभु बले, ''जान, 'लक्षेश्वर' बलि का'रे ?
प्रतिदिन लक्ष–नाम ग्रहण करे।।121।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'
तथा भिक्षा आमार, ना याइ अन्य घर।।122।।

अर्थात् तब दयामय प्रभु ने कौतुक छोड़कर अपने मन की बात खोलकर कह दी । उन्होंने कहा –''जानते हो, मैं लक्षेश्वर किसे कहता हूँ ? जो नित्यप्रति लक्ष (एक लाख) नाम ग्रहण करते हैं

उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ और उन्हीं के घर भिक्षा स्वीकार करता हूँ। किसी और घर नहीं जाता ।''

श्रीगौरहरि तो महावदान्य हैं। उनका तो अवतार ही पतितों को पावन करने के लिये हुआ है। उन्होंने भगवद्–प्राप्ति का एक बहुत ही सरल, सुगम उपाय बतला दिया–**''एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करो और मुझे खरीद लो।''**

श्रीगौरहरि की इस बात से सभी भक्त लोग प्रसन्न हो गये और एक लाख हरिनाम अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला प्रतिदिन करने लगे।

श्रीगौरहरि ने कम से कम एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करने पर इतना ज़ोर क्यों दिया? इसलिये कि जो दिन में कम से कम एक लाख बार भगवान् के नाम का स्मरण करेगा, एक लाख बार भगवान् के नाम का उच्चारण करेगा, उन्हें पुकारेगा तो भगवान् की दृष्टि उस पर हो जायेगी और उस साधक के स्वभाव में–

''तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमामिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरि।।''

अपने आप प्रकट हो जायेगा अर्थात् दैन्य, दया, अन्यमान तथा प्रतिष्ठा–वर्जन, इन चार गुणों का उसके स्वभाव में अपने आप ही स्थान बन जायेगा और वह बड़े प्रेम से हरिनाम का कीर्तन कर सकेगा। फिर अहंकार तो उसको स्वप्न में भी नहीं आयेगा। इस अहंकार रूपी दुश्मन को मारने के लिये ही श्रीगौरहरि ने नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला करने पर ज़ोर दिया, जो परमावश्यक है।

अहंकार भक्ति मार्ग में बहुत बड़ा बाधक है। यह पूरी भक्ति–साधना का मटियामेट कर देता है। उसे मिट्टी में मिला देता है। यह अहंकार भगवान् का भी शत्रु है। इससे भक्त बहुत गहरे खड्डे में जा गिरता है। इस अहंकार से अपने भक्त को बचाना, उसकी रक्षा करना भगवान् के लिये बहुत ज़रूरी हो जाता है। इसलिये भगवान् सबसे पहले अपने भक्त के अंदर के अहंकार

का नाश करते हैं और फिर उसे अपने चरणों में बुलाते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो माया उस भक्त से आकर लिपट जायेगी और भक्त का किया–कराया सारा साधन–भजन, भगवत्–प्रेम अश्रद्धा में बदल जायेगा और वह माया के जाल में फंस जायेगा।

जब मेरे श्रील गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी कि मैं सबको बता दूँ कि मैं एक साधारण व्यक्ति नहीं हूँ और भगवान् का पार्षद हूँ और सबको हरिनाम जपाने के लिये इस पृथ्वी पर आया हूँ। मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के छः चिह्न भी हैं जो श्री हनुमान जी ने मुझे बताये थे, तो मैं डर गया और घबराकर मैंने अपने श्रील गुरुदेव जी से प्रार्थना की कि यदि मैं ऐसा करुँगा तो मेरी ख्याति बढ़ जायेगी, मेरा आदर–सत्कार होगा और मेरे जैसा एक गंवार व्यक्ति, एक तुच्छ व्यक्ति अहंकार में डूब जायेगा और फिर तो मेरा बचना ही असंभव हो जायेगा।

तब श्रीगुरुदेव जी ने बोला–''तुम्हें किसी बात की चिंता नहीं करनी चाहिये। तुम्हारे पीछे मैं खड़ा हूँ। अहंकार तो तुम्हें छुएगा भी नहीं। तुमसे दूर ही रहेगा। यहाँ तुम्हें भगवान् ने भेजा है और तुम्हें यह मालूम ही नहीं है कि तुम कौन हो। अर्जुन को भी मालूम नहीं था कि वह नर–नारायण का अवतारी पुरुष है पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे बार–बार कहा कि तुम साधारण व्यक्ति नहीं हो। तुम भगवान् के विशेष पार्षद हो पर इस समय तुम सब कुछ भूल रहे हो पर मैं सब जानता हूँ। तुम्हें अपने पिछले जन्म की कोई भी बात याद नहीं है पर मुझे न केवल अपनी, पर हर प्राणी के, हर जन्म की, एक–एक बात याद है क्योंकि मैं भगवान् हूँ।''

श्रीगौरहरि के जितने भी पार्षद थे, वे सभी श्रीकृष्ण के सखा इत्यादि थे परंतु वे स्वयं यह नहीं जान पाये कि श्रीकृष्ण लीला में वे अमुक नाम के सखा आदि थे। जब श्रीगौरहरि ने उन्हें बताया कि मेरे श्रीकृष्ण–जन्म में तुम मेरे अमुक सखा थे और अब इस जन्म में जहाँ–जहाँ पर जन्म लिया है, वहाँ–वहाँ का उद्धार होगा। श्रील पुण्डरीक विद्यानिधि जी श्रीराधारानी के पिता वृषभानु जी थे।

श्री नित्यानंदप्रभु–बलदेव, लक्ष्मण व शेषनाग के अवतारी पुरुष थे। अद्वैताचार्य श्रीब्रह्मा के अवतारी पुरुष थे। गदाधर श्री राधाशक्ति के अवतारी पुरुष थे। श्रीवास नारद जी के अवतारी पुरुष थे। कितने नाम गिनाये जायें। सभी भगवान् के साथ अवतार लेकर लीला का विस्तार करवाते रहते हैं। माया से मोहित अज्ञानी पुरुष इनको पहचान नहीं सकता पर जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वह उन्हें पहचान लेता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों तथा पांडवों के साथ रहे पर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के अभाव में कौरव श्रीकृष्ण को पहचान नहीं सके और उन्होंने श्रीकृष्ण को एक साधारण मानव, एक ग्वाला समझ लिया पर पांडवों पर भगवान् की कृपा थी। अतः वे उन्हें पहचान सके और उन्हें सृष्टि का रचैया, परब्रह्म परमात्मा के रूप में मानते थे।

यही तो भगवान् की माया है। यदि माया न हो तो भगवान् की लीला हो ही नहीं सकती। संसार तो चलाने के लिये माया का खेल होना भी अति आवश्यक है। यह तो पर्दा है। यही माया का पर्दा न हो तो भगवान् की लीला में आनंद का झरना बहता ही नहीं।

मेरे गुरुदेव जी ने मुझे बोला कि तुम किसी भी प्रसंग को छुपाकर रखोगे तो कोई भी तुम पर श्रद्धा और विश्वास नहीं करेगा। अतः सारे प्रसंग खोलकर सभी को सुनाते रहो। कोई भी बात छुपा के मत रखो। तभी लोग तुम में श्रद्धा व विश्वास करेंगे अन्यथा तुम्हें एक छोटे से गाँव का रहने वाला गृहस्थी समझकर, तुम पर कौन विश्वास करेगा?

भगवान् अपने भक्तों को शुभ तिथि में जन्म देते हैं। जन्म लेना किसी के वश की बात नहीं है। मेरा जन्म शरद्पूर्णिमा (रासपूर्णिमा) की रात को दस बजे हुआ। यह पूर्णिमा सब पूर्णमासियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। फिर मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के छः चिह्न हैं जो बिल्कुल साफ दिखाई देते हैं। कोई भी इन्हें देख सकता है और मेरी बातों पर श्रद्धा व विश्वास कर सकता है।

इतना ही नहीं, मेरे जीवन में बहुत सी अलौकिक घटनायें भी घटीं हैं। सन् 1952 में दीक्षा के बाद, सन् 1954 में कृष्णमंत्र का पुरश्चरण करके वाक्‌सिद्धि उपलब्ध की। पुरश्चरण करने का तरीका किसी ने नहीं बताया। स्वयं ही हृदय से प्रेरणा हुई। वाक्‌सिद्धि प्राप्त करने के बाद कई साल तक दूसरों का भला करता रहा। मेरे गुरुदेव बार–बार जयपुर आते थे पर उन्होंने राजस्थान में उस वक्त केवल मुझे ही शिष्य क्यों चुना? अब मेरे घर का हर सदस्य श्रील गुरुदेव का चरणाश्रित है और श्रील गुरुदेव की कृपा से ही यह संभव हुआ। श्रीहनुमान जी ने मुझे दर्शन दिये। भगवान् श्रीकृष्ण ने रबड़ी खिलाई। मेरे बेटे अमरीश को बचपन में ही श्रीहनुमान जी के दर्शन हुये।

कहाँ तक गिनाऊँ? ऐसी अनेकों अलौकिक लीलाएँ मेरे जीवन में हुई हैं और अब भी हो रही हैं। मेरे बारे में इतना कुछ जानकर भी यदि किसी को मुझ पर श्रद्धा या विश्वास नहीं होता तो समझ लेना चाहिये कि उसके भजन में निश्चित रूप से कमी है। उस पर भगवत्–कृपा की कमी है। मेरे सिवा, एक ही विषय–श्री हरिनाम–पर आज तक किसी ने 600 पत्र नहीं लिखे और न ही हज़ारों लोगों से एक लाख हरिनाम करवाया है। मेरी पुस्तक को पढ़कर अब हज़ारों लोग प्रतिदिन एक–एक लाख हरिनाम कर रहे हैं। यह मेरे गुरुदेव की वाणी का कमाल है। इसमें मेरा कुछ नहीं।

अभी भी बहुत से साधक ऐसे हैं जो मेरे रविवार के कार्यक्रम में आते हैं, मेरी पुस्तकें भी पढ़ते हैं, मुझे मिलते भी हैं पर मेरे आदेश का पालन न करने के कारण, एक लाख हरिनाम नहीं कर पाते। यह उनका दुर्भाग्य है। यह बात सबको मालूम है कि मैं काँचन, कामिनी और प्रतिष्ठा से कोसों दूर हूँ। फिर भी साधक किस सूर्य के उदय होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वह सूर्य उदय होगा? कब उनकी आँखें खुलेंगी ? कब उनका अज्ञान दूर भागेगा और उनके जीवन में श्री हरिनाम रूपी शीतल, सुगंधित व आनंद प्रदान करने वाली बयार बहेगी ?

देखो! एक बात बड़े ध्यान से सुनो। आप सबको जो यह अवसर मिला है, फिर यह कभी नहीं मिलेगा। इसलिये मैं आप सबको बार–बार कह रहा हूँ कि मेरी बात मानो। इस अवसर को मत गँवाओ। श्रीहरिनाम रूपी इस अमृत को इस दुर्लभ मानव जीवन में जितना पी सकते हो, पी लो। हर समय पीते रहो और पीकर निहाल हो जाओ। जब मैं इस संसार को छोड़कर चला जाऊँगा तब पछताओगे, रोओगे पर फिर कुछ नहीं बन सकेगा। मेरे जीते जी मेरी बात नहीं मानोगे तो बाद में कुछ भी नहीं होगा। अब पछताये होत क्या ? जब चिड़िया चुग गई खेत।

मुझ में न तो बल है, न समझ है और न ही ज्ञान है। मैं अपनी बुद्धि से एक भी पत्र नहीं लिख पाता। मेरे गुरुदेव ही मुझ पर कृपा करके 600 पत्र लिखवा चुके हैं और रविवार का सत्संग करवा रहे हैं। मैं गत तीन वर्षों से हर रविवार को एक ही विषय–श्री हरिनाम–पर लगातार बोल रहा हूँ। क्या मुझ में कोई शक्ति है ? नहीं ! मेरे गुरुदेव ही मुझे माध्यम बनाकर, सबका कल्याण करने के लिये बुला रहे हैं और मेरे आराध्यदेव श्रीकृष्ण ही मुझे आदेश देकर कलियुग के जीवों के कल्याण के लिये इस भक्तिपथ का आयोजन करवा रहे हैं। जो सुकृतिशाली जीव हैं वे अवश्य ही इस अवसर का लाभ उठावेंगे। जिस पर भगवद्–कृपा होगी, वही इस आयोजन में आयेगा और इस अमृत का पान कर सकेगा। भगवद्–कृपा के बिना यह अमृत किसी को भी नहीं मिल सकता।

भगवान् ने ही मुझे आदेश कर यह शुभ अवसर प्रदान किया है, इस आयोजन की शुरुआत की है। इसका लाभ उठाना ही मानव जीवन को सफल करना है। देखो! मौत का कोई भरोसा नहीं। पता नहीं, अगला सांस आयेगा भी या नहीं। इसके बाद मानव जन्म मिलेगा भी या नहीं। अनंत युग बीत जाने पर यदि मिलेगा भी तो कोई गारंटी नहीं है कि ऐसा सुलभ, सरल तथा अचूक साधन मिल पायेगा। इसलिये सभी गुरुजन, सभी वैष्णवजन, सभी शास्त्र, बार–बार यही बात कह रहे हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ

है। आगे जाकर सच्चे संत की सेवा मिलेगी नहीं, तो मनुष्य जीवन मिलेगा नहीं।

भगवद् की यही वाणी है। कोई सुकृतिशाली ज्ञानी पुरुष ही इसे समझ सकता है, साधारण मानव के वश की बात नहीं है।

बहुत ध्यान देने का प्रसंग है। कृपा करके सुनने की चेष्टा करें। आत्मा–आत्मा में किंचित्मात्र भी भेद नहीं है। सब चर–अचर की आत्मा एक ही हैं। जैसे हमने किसी पर क्रोध किया तो उसकी जीवात्मा दुःखी हुई तो अपनी जीवात्मा सुखी रहेगी क्या ? अपनी जीवात्मा भी अशांत रहेगी क्योंकि आत्मा–आत्मा सबकी एक ही हैं।



जैसे हमारी उंगली को हमने चोट पहुँचाई तो हमारे पूरे शरीर को कष्ट हुआ, दर्द हुआ क्योंकि उंगली का पूरे शरीर से संबंध है। इसी प्रकार हमने किसी जीवात्मा को कष्ट या दुःख पहुँचाया तो यह दुःख कष्ट हमारी जीवात्मा पर भी 100 प्रतिशत पहुँचेगा क्योंकि जीवात्मा हम सबके शरीरों में एक ही है।

मच्छर से लेकर हाथी तक, सब प्राणियों का खून अलग–अलग है क्या ? इन सब में खून का रंग लाल ही होता है। इसका मतलब सबमें एक जैसा ही, एक ही रंग का खून है। जिस प्रकार अग्नि का स्वभाव जलाने का है। अग्नि कहीं पर भी हो, कहीं की भी हो, वह जलायेगी ही। ऐसा तो नहीं कि भारतवर्ष की अग्नि जलायेगी और अमेरिका की अग्नि नहीं जलायेगी। भारत की अग्नि एक प्रकार की है और अमेरिका की अग्नि दूसरी प्रकार की। ऐसा कभी होगा क्या ?

निष्कर्ष यह निकला कि किसी में कोई भेदभाव नहीं है। सभी एक हैं। अतः जो किसी से प्रेम करेगा तो उसमें अपने आप ही प्रेम भाव आ जायेगा। जो दूसरों से दुश्मनी करेगा उसमें दुश्मनी का भाव आ जायेगा। सबका शरीर तो जड़ पदार्थों से निर्मित हुआ है फिर उसमें सुख–दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस शरीर में जब तक जीवात्मा का वास है तभी तक सुख और दुःख महसूस होगा। जब आत्मा शरीर से निकल जायेगी तो सुख दुःख कैसे महसूस होगा।

कहने का अभिप्राय यही है कि किसी भी चर या अचर प्राणी को भूलकर भी नहीं सताना चाहिये। यदि सतावोगे तो यह सताना स्वयं में भी व्याप्त हो जायेगा। किसी को सुखी करोगे तो स्वयं भी सुखी रहोगे। यही है ज्ञान नेत्र का खुलना।

भगवान् ने सब आत्माओं के रहने के लिये शरीर रूपी मकान बनाये हैं। जो इन शरीर रूपी मकानों को क्षति पहुँचायेगा, उसे उसी मकान में आना पड़ेगा। जैसे किसी ने सांप को मारा है तो उसे सांप बनना पड़ेगा। भगवान् तो सभी जीवों को उनके कर्मानुसार मकान बनाकर देते हैं और आत्मा रूप में स्वयं उसमें वास करते हैं। यदि वे स्वयं वास न करें तो भगवान् की सृष्टि का निर्माण हो ही नहीं सकता। लीला रचने हेतु भगवान् को सृष्टि की रचना करनी पड़ती है। इसके बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। इसलिये चौरासी लाख योनियाँ अर्थात् चौरासी लाख शरीर रूपी मकान बनाकर स्वयं भगवान् को इन शरीर रूपी मकानों में वास करना पड़ता है। आत्मा को तो कोई सुख–दुःख होता नहीं है। सुख–दुःख तो जीव को ही भोगना पड़ता है। जो जैसा कर्म करेगा, उसे वैसा ही फल मिलेगा। जिसने जैसा कर्म किया, वह वैसा ही भोगेगा। आत्मा तो निर्भय होकर देखता रहता है। यह आत्मा तो परमात्मा का अंश है। इसे दुःख होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह प्रसंग जिसको समझ में आ जायेगा तो समझो कि उसका ज्ञान नेत्र खुल गया। ज्ञान नेत्र खुला नहीं कि आवागमन अर्थात्

जन्म–मरण का दारुण कष्ट मिटा नहीं। इसलिये सत्संग की परमावश्यकता रहती है। एक पल का सत्संग भी महत्वशील तथा मूल्यवान है। सत्संग का प्रभाव उसी संत का होगा जो स्वयं आचरण करेगा वरना कितना भी सत्संग करते रहो, कुछ भी लाभ नहीं होने वाला। इस कलिकाल में सच्चा सत्संग मिलना बहुत दुर्लभ है। यदि कहीं मिल गया तो समझो बड़ा भाग्य है। इसे भगवान् तथा श्रीगुरुदेव की कृपा ही समझना।

एक उदाहरण दे रहा हूँ, समझने का प्रयास करो। जैसे किसी ने मेरे शरीर में सुई चुभोई तो मेरे शरीर में दर्द हुआ। मुझे दर्द की अनुभूति हुई। अब मुझे यही बात अनुभव करनी पड़ेगी कि यदि मैं किसी के शरीर को सुई चुभो दूँगा तो उसे भी इस तरह दर्द होगा। जैसी पीड़ा मुझे हुई, वैसे ही उसे भी पीड़ा होगी। सुख–दुःख का अनुभव जैसे मुझे होता है, दूसरों को भी वैसा ही होगा। जिस दिन यह ज्ञान हो जायेगा फिर तो मनुष्य किसी को दुःख नहीं दे सकता। यही तो है भगवान् को कण–कण में देखना। सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मा रूप में परमात्मा का ही वास है।

– हरि बोल –



नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी

25

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

तुलसी सेवा सर्वोपरि है

इस बार मैंने श्रीगुरुदेव से पूछा कि मैंने सुना है कि गुरु वैष्णव और भगवान् की कृपा से प्रेमाभक्ति प्रसन्न हो जाती है। क्या उन सबसे ऊपर भी कोई ऐसी शक्ति है जिसकी कृपा बिना गुरु, वैष्णव और भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। वे पंगु हो जाते हैं। कमज़ोर हो जाते हैं।

श्रीगुरुदेव ने बोला–''हाँ ! इन सबसे भी ऊपर एक ऐसी शक्तिशाली शक्ति है जिसकी कृपा बिना भक्ति का नामोनिशान भी नहीं रहता। वह शक्ति है वृंदा देवी अर्थात् तुलसी महारानी। यदि तुलसी महारानी की कृपा हो तो ये तीनों कुछ नहीं कर सकते। तुलसी मैया के हस्तकमलों में प्रेमाभक्ति नाचती रहती है।''

मैंने पूछा–''गुरुदेव! यह कैसे हो सकता है कि भगवान् भी असमर्थ हो जाते हैं।''

"हाँ, भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते। तुलसी कृपा से साधक के अन्तःकरण में भक्ति का प्रागट्य होता है। तुलसी मैया के अभाव में, यदि अमनिया में तुलसी पत्र नहीं डालोगे तो भगवान् भोग नहीं लगावोंगे अर्थात् भगवान् भूखे मर जावेंगे। तुलसी मैया के बिना भगवान् कुछ कर ही नहीं सकते। भगवान् श्रीकृष्ण जब तुलसी जी को बोलते हैं कि मैं रासलीला करना चाहता हूँ और आपके आयोजन बिना मैं रासलीला नहीं कर सकता तो तुलसी जी ही पूरी रासलीला का प्रबंध करती हैं। तब गोपियों के संग में श्रीकृष्ण की रासलीला होती है। तुलसी मैया तो भगवान् की आत्मवत् हैं। तुलसी मैया के बिना तो भगवान् की कोई हरकत हो ही नहीं सकती। तुलसी के बिना तो भगवान् निर्जीव अवस्था के समान हो जाते हैं।

अब विचार कीजिये कि श्रीगुरुदेव अपने शिष्य के गले में तुलसीमाला क्यों पहनाते हैं। तुलसी से ही भगवान् जीव को अपनाते हैं। यदि तुलसी मैया के प्रति अपराध हो जाये तो भक्ति मूल सहित नष्ट हो जाती है। दूसरी बात श्रीगुरुदेव हरिनाम जपने के लिये तुलसी माला ही क्यों देते हैं ? काठ या किसी अन्य चीज़ की माला क्यों नहीं देते ? दूसरी किसी तरह की माला भी दे सकते हैं। श्रीगुरुदेव जी स्वयं भी तुलसी मैया की शरणागति से ही गुरु पदवी पर पहुँचते हैं। इसलिये तुलसी मैया की कृपा, श्रीकृष्ण की कृपा से भी ज्यादा जरूरी है।

आईये! अब वैष्णवों की बात करें। वैष्णवजन दिन–रात तुलसी मैया की सेवा में लगे रहते हैं। तुलसी मैया के बिना मन्दिर में कोई भी अर्चन–पूजन नहीं हो सकता। तुलसी मैया की कृपा बिना तो भक्ति का जन्म ही नहीं होता। भक्ति भी तुलसी मैया की अनुगामिनी है।

इसलिये ! हे अनिरुद्धदास ! सबसे महत्वशील तुलसी मैया की सेवा है। इसके बाद गुरु, वैष्णव, भगवान् हैं। यह तीनों ही तुलसी महारानी के अनुगमन में रहते हैं। इसलिये तुलसी सेवा प्रथम है। मैंने दो–चार बार तुलसी मैया का निरादर करने का प्रभाव भी बताया है और समादर करने का प्रभाव भी वर्णन किया है। निरादर करने से क्या–क्या नतीजे सामने आते हैं और आदर करने से क्या–क्या नतीजा सामने आवेगा। जो तुलसी में पूर्ण श्रद्धा करेंगे उन्हें हरिनाम जप शुरु करते ही सुमेरु हाथ में आवेगा। जिन भक्तों को ऐसा अनुभव हुआ है और हो रहा है, उनकी पूर्ण श्रद्धा हो गई है। अब तो बहुत सारे भक्त जब हरिनाम करने लगते हैं तो सबसे पहले सुमेरू (स्वयं श्रीकृष्ण) ही उनके हाथ में आता है।

साधारण साधक इस प्रेमावस्था को नहीं समझ सकता। यह अवस्था अलौकिक है, चिन्मय है तथा परमहंस अवस्था होती है जिसे निर्गुण अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में प्रेमास्पद को कुछ भी बोला जा सकता है, कोई भी शंका न करें कि भगवान्

तो अनंतकोटि ब्रह्मांडों के स्वामी तथा त्रिलोकीनाथ हैं। इसलिये उनके लिये न बोलने वाले शब्द कैसे बोले जा सकते हैं ?

देखो! प्रेम अन्धा होता है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को जाने क्या क्या न बोलने लायक अपशब्द बोले हैं। अर्जुन नर–नारायण का अवतार होकर भी श्रीकृष्ण को समझा नहीं। जब श्रीकृष्ण ने विराट रूप दिखाया तो अर्जुन बोला कि मैंने आपको न बोलने वाले शब्द बोले हैं। आप मुझे माफ कर देना।

भगवान् बोले–**"कोई बात नहीं। प्रेम में ऐसा हो जाता है। प्रेमास्पद में सभी भाव मौजूद रहते हैं। आदर के भी, निरादर के भी।" तभी तो मेरे गुरुदेव तथा भगवान् में भी बहस हो जाती है। भगवान् बोलते हैं कि इस माधव ने तो मेरी पूरी पोल खोल दी और खोलता जा रहा है। यह मुझे सबका गुलाम बनाकर रहेगा।**

मेरे श्रीगुरुदेव ने बोला–"आपने मुझे हरिनाम प्रचार का आयोजन करने को क्यों बोला? अब तो जो मेरी मर्जी होगी, वही करूँगा। आपको इसमें क्या एतराज है ? आपके आदेश का पालन करना मेरा धर्म है। आपको एतराज़गी किस बात की है ?

इस प्रकार प्रेमास्पद में अनबन होती ही रहती है। सती स्त्री अपने पतिदेव को कुछ भी न बोलने वाले बोल भी बोल दिया करती है और पति को प्रेम के कारण सहन करना पड़ जाता है। मेरे गुरुदेव ने मुझे भी स्पष्ट कह रखा है कि तुम भी कोई बात मत छुपाओ इसलिये मैं कुछ भी छुपाता नहीं हूं। मेरी एक छोटी सी पुस्तक छपी है जिसका नाम है–**"एक शिशु की विरह–वेदना।"** इस पुस्तक में एक–डेढ़ साल के बच्चे के हृदय की भावनाओं का वर्णन है।

देखो! मैं डेढ़ साल का शिशु हूँ। अनिरुद्ध श्रीकृष्ण का पोता है। पोते का काम है मचलना और बाबा का काम है बहलाना। कोई शंका करे कि डेढ़ साल के पोते को तो बोलना ही नहीं आता। फिर यह बाबा से बहस कैसे कर सकता है ?

देखो! यह अवस्था लौकिक नहीं है। यह अलौकिक अवस्था है। भगवान् श्रीकृष्ण ने तो 6 वर्ष की आयु में गिरिराज पर्वत को अपनी उंगली पर उठा लिया था। क्या 6 साल का बच्चा इतने बड़े पर्वत को उंगली पर उठा सकता है ? रामावतार में राक्षस भी शरीर बदल लेते थे। मारीच राक्षस तो सोने का हिरण बन गया था। इसलिये शंका करना मूर्खता है।

बाबा पिता के समान ही होता है इसलिये मैं अपने दादा (श्रीकृष्ण) को बाप ही बोलता हूँ। मैं तो उससे लड़ भी नहीं सकता हूँ। मैं कहता हूँ कि आप मेरे बाप हो और मैं आपका शिशु हूँ। मेरा काम मचलना है और तुम्हारा काम है बहलाना। यदि आप मुझे बहलाते हो तो मुझ पर कौन सा एहसान करते हो तो मेरा बाप हँसकर मुझे गोद में ले लेता है और प्यार भरा चुंबन करता है। जब मैं ज्यादा रोता हूँ तो वह मुझे दादी रूक्मणी के पास स्तन पान करने के लिये दे देता है। दादी रुक्मिणी मुझे स्तनपान से अमृतसुधा का दूध पिलाकर पालने में सुला देती है। फिर मैं सो जाता हूँ। इसी प्रकार मुझे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का अनेक प्रकार का वात्सलयमयी प्यार मिलता रहता है। मैं सभी रानियों के महलों में जाता रहता हूं और वहाँ मुझे सभी दादियों का वात्सलयमयी प्यार मिलता रहता है।

ये सब प्रसंग संसारी बातों का उदाहरण देकर बताने पड़ते हैं। इसमें शंका न करना अन्यथा अपराध हो जायेगा। यह प्रसंग मैंने अपनी बड़ाई के लिये नहीं बोला है। मैंने तो केवलमात्र अपने श्रीगुरुदेव के आदेश का पालन किया है। श्रीगुरुदेव मुझे बोलते हैं कि यदि तुम नहीं बोलेगे तो कोई भी तुम पर श्रद्धा नहीं करेगा। इसलिये श्रद्धा विश्वास हेतु बोलते रहो।

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं। सभी साधक ध्यान देकर सुनो– ''अनिरुद्धदास किस लिये बड़ाई चाहेगा ? इसको तो कुछ चाहिये ही नहीं। आप अंधे हो क्या ? इसके दोनों हाथों में भगवान् के आयुद्धों के छः चिन्ह हैं। क्या ये चिन्ह इसने स्वयं बनवाये हैं ? यह

चिन्ह भगवान् के पार्षद होने का शत्–प्रतिशत् प्रमाण है। इससे अधिक और क्या सबूत होगा। इसने मेरे द्वारा लिखवायें गए 600 से भी ज्यादा पत्र एक ही विषय पर लिखे हैं। **"इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति"** पुस्तक की पाँच–पाँच हज़ार पुस्तकें तैयार हुई हैं। यह किस शक्ति ने तैयार की हैं। आज से पहले कोई विरला ही 64 माला हरिनाम की जपता होगा और अब इन पुस्तकों को पढ़कर कितने लोग एक–एक लाख हरिनाम नित्य जप रहे हैं। कई तो एक लाख से भी ज्यादा जप रहे हैं। ये पुस्तकें विदेशों में भी पहुँच रही है जहाँ बहुत सारे लोग एक–एक लाख हरिनाम करने लग गये हैं।

83 वर्ष की उम्र में क्या कोई रात को एक बजे उठकर, छः–छः घंटे एक ही आसन पर बैठकर तीन लाख हरिनाम कर सकता है ? अनिरुद्ध सबको हरिनाम में लगाने के लिये बड़ी लगन से जुटा हुआ है। लगभग पिछले तीन साल से मेरे आदेश का पालन करके, बिना नागा हर रविवार को गर्मी–सर्दी की परवाह किये बिना, सबकी भलाई में जुटा हुआ है। घर पर लोगों को मुफ्त होम्योपैथिक दवाईयाँ बाँटता है। आँखों की दवा स्वयं बनाकर लोगों को बाँट रहा है। 83 वर्ष की आयु में 5 साल के बच्चे जैसी आँखों की रोशनी है। इसका आचरण अलौकिकता से परिपूर्ण है। इनका लाभ जिसको लेना हो, ले लो। लेने में ही फायदा है। यह अवसर बाद में नहीं मिलेगा। इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति कर लो नहीं तो फिर जन्म–मरण के चक्कर में फंसना पड़ेगा। मैंने कई बार सभी साधकों को समझा दिया है कि जिस पर भगवान् की कृपा होगी, वही इनको समझ पायेगा। वरना जिस प्रकार कौरव श्रीकृष्ण को नहीं समझ पाये, पहचान नहीं पाये और मौत के घाट पहुँच गये, वहीं होगा। पांडवों ने श्रीकृष्ण को पहचाना और उसका लाभ उठा लिया। इसीलिये मैं बार–बार यही कहता हूँ कि अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहो, भगवत्–कृपा स्वतः ही बन जायेगी और इसी जन्म में वैकुण्ठ–प्राप्ति हो जायेगी।

मैं बोल रहा हूँ, ध्यान देकर सुनो। बड़ाई वहीं चाहेगा जिसके मन में लोगों से कुछ लेने की इच्छा हो पर जिसको किसी से कुछ लेना ही नहीं है, केवल देना ही देना है, देने की ही भावना हो, वह तो मान–बड़ाई को ठोकर मारता है। जो बड़ाई चाहेगा उसकी– ''तृणादपि सुनीचेन, तरोरपि सहिष्णुना, अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः'' ऐसी आचरणशील अवस्था आही नहीं सकती। अपने श्री गुरुदेव की कृपा से अहंकार तो इससे कोसों दूर रहता है। अहंकार में ही मान बढ़ाई छिपी रहती है। जो भी इनमें (अनिरुद्ध प्रभु) में कमी देखेगा, अपराध का शिकार बन जायेगा। भक्ति से हाथ धो बैठेगा। उसकी हरिनाम में अरुचि हो जायेगी। आपत्ति में फंस जायेगा और जिसकी सुकृति होगी, वह इन पर पूर्ण श्रद्धा व विश्वास करेगा। जिसकी सुकृति नहीं होगी, वह इन्हें साधारण मानव समझता रहेगा। वह भक्ति पथ से गिर जावेगा।''

– हरि बोल –



मैं राधा राधा गाऊँ, राधा हित वेणु बजाऊँ।

26

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
15.01.2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि तेज़ होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

मानव का ज्ञाननेत्र खुलना, परमानन्द का कारण

अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों के रचैया भगवान् ने मानव के सतो, रजो तथा तमोगुणों के कर्मानुसार शरीरों की रचना की। जिसका जैसा भाव था, उसका वैसा मकान बनाकर उसमें स्वयं बैठ गया। आत्मा–परमात्मा का पुत्र है। अतः आत्मा को इस शरीर रूपी मकान में बिठाकर, जीव को उसके कर्मों का भोग भुगतवाने हेतु, उसे स्वयं (भगवान्) उसमें बैठना पड़ा अर्थात् उस मकान में वास करना पड़ा।

यदि परमात्मा अपने पुत्र आत्मा के शरीर में वास नहीं करता तो परमात्मा की अनंतकोटि अखिल ब्रह्मांडों की सृष्टि अर्थात् रचना नहीं हो सकती थी। अतः स्वयं आत्मा को, जो परमात्मा का अंश है, शरीरों में रहना पड़ गया। जिस प्रकार परमात्मा सृष्टि की रचना करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी सृष्टि की रचना करता है। वह शादी करके संतान की रचना करता है और स्वयं को इसमें बांध लेता है। अपनी संतान की देखभाल करना, रक्षा करना तथा इसके पेट भरने का प्रबंध करने में पूरी ज़िंदगी लगा देता है और इसमें ही लिप्त हो जाता है। यही तो माया है, यही माया का अस्तित्व है।

पारिवारिक–बंधनों में बंधकर मानव अज्ञान की अंधेरी कोठरी में बंद हो जाता है तथा गलत कर्म करके अपना जीवन बर्बाद कर

देता है। यह मानव जिनका पेट भरता है, पालन करता है, वही परिवार उसका जीवन बर्बाद करता रहता है। उसके कर्मों का भोग भुगवाता रहता है। माया का यह परिवार उसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या तथा द्वेष की अंधेरी कोठरी में डाल देता है। उस अंधेरी कोठरी में इसे कुछ भी नज़र नहीं आता। उसकी आँखें धूमिल हो जाती हैं और वह गलत मार्ग रूपी अवगुणों का रास्ता पकड़ लेता है। शुभ कर्मों का सच्चा रास्ता तो उसको नज़र ही नहीं आता। अन्त में वृद्धावस्था उस पर हावी हो जाती है और वह असहाय हो जाता है। पूरी ज़िंदगी भर जिनकी इसने देखभाल की, पालन–पोषण किया, जिसमें फंसकर वह भगवान् को भी भूल गया था, अब उसी परिवार के लोग उसका तिरस्कार करते हैं और सोचते हैं कि कब यह मरेगा और हमारी आफत दूर होगी।

ज़रा गहराई से विचार करो कि यहाँ कौन किसी का है ? यहाँ पर कोई भी किसी का नहीं है। अपना नहीं है। इस शरीर में विराजमान परमात्मा का अंश, आत्मा ही हमारा सच्चा साथी है। इससे ही संबंध रखना चाहिये पर यह सच्चा ज्ञान अन्तःकरण में कैसे प्रगट होगा ? यह ज्ञान तब ही प्रगट होगा जब मानव की सुकृति होगी, तभी कोई सच्चा ज्ञानी उसकी धूमिल आँखों को ज्ञान का अंजन लगाकर खोल सकेगा।

जब इसका ज्ञान नेत्र खुल जायेगा तो इसको माया का यह संसार दुःखमय तथा अंधकारमय दिखाई देगा। जब इसका ज्ञान नेत्र खुल जाएगा तो वह भगवान् द्वारा बनाये गये शरीर रूपी मकानों को कभी नुकसान नहीं पहुँचायेगा जिसमें वह आत्मा रूप में स्वयं (भगवान्) वास करता है। इन मकानों रूपी शरीरों में रहने वाले आत्मा से भी वह प्यार करने में जुट जायेगा। यह तभी होगा जब उसे इस बात की समझ आ जायेगी कि आत्मा से प्यार करने में ही उसका भला है, बाकी सब तो माया का बवंडर है। तब वह मानव, आत्मा अर्थात् भगवान् से नाता रखता है और उससे अपना मन जोड़कर अपना जीवन बिताता है।

परंतु अब क्या हो रहा है ? यह मानव अपनी अज्ञानता के कारण, मकान रूपी शरीर से ही राग, द्वेष कर रहा है जिसको भगवान् ने आत्मा के रहने के लिये बनाकर दिया है। इस मूर्ख को यह पता ही नहीं है कि मकान तो निर्जीव है, जड़ है। मकान को दर्द या नुकसान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दर्द या नुकसान तो उसमें रहने वाले परमात्मा के पुत्र अर्थात् अंश, आत्मा को हो रहा है।

जब यह अज्ञानी मनुष्य दूसरों की आत्मा को कष्ट दे रहा है, उसे दुःखी कर रहा है तो वह आप सुखी कैसे रह सकता है ? वह अपनी ही आत्मा, जो स्वयं उसके शरीर में बैठी है, को ही दुःखी कर रहा है। क्या अपनी या दूसरों की आत्मा में कोई भेद है ? कोई अंतर है ? नहीं। दोनों की आत्मा एक जैसी ही है। सभी जीवों में एक जैसा ही खून है और सभी के खून का रंग लाल है। जब सभी एक हैं तो दूसरों से द्वेष करना, अपने से ही द्वेष करना है। यही बात मनुष्य नहीं समझता। कितनी अज्ञानता है ! कितनी मूर्खता है ! इस बात को न समझने के कारण, वह जीवों को कष्ट दे रहा है और हर पल अशांत रहता है। उसे स्वप्न में भी शांति नहीं मिलती। जब वह गलत काम करता है तो उसके अंदर बैठी आत्मा उसे मना करती है पर वह उसकी बात को अनसुना कर देता है और गलत काम कर बैठता।

जब किसी सच्चे संत के समझाने से उसके ज्ञान–नेत्र खुल जायेंगे तो मानव सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा बड़े से बड़ी जीवात्मा को, भूलकर भी नहीं सतायेगा। सभी का भला करने में अपना जीवन लगा देगा। तन, मन से सबका भला करने में लग जायेगा। तब उसके हृदय में–

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।"

का स्वभाव आरोपित हो जायेगा। पर यह अवस्था आयेगी कैसे ? यह अवस्था आयेगी किसी सच्चे संत के समागम से व

हरिनाम–स्मरण की कृपा से। हरिनाम की कृपा नहीं होगी तो सच्चा संत मिलेगा ही नहीं और हरिनाम की कृपा होगी केवल वृन्दा महारानी (तुलसी देवी) की सेवा से सच्चा संत मिल जाऐगा।

इसलिये श्रीगौरहरि (महाप्रभु) ने हरिनाम की चौंसठ (64) माला करने पर बार–बार ज़ोर दिया है और कहा है कि जो नित्य चौंसठ (64) माला करेगा उसका इसी जन्म में उद्धार हो जायेगा। एक माला की रियायत भी नहीं होगी। तरेसठ (63) माला से भी काम नहीं बनेगा। माला करने में कोई छूट नहीं। एक लाख हरिनाम, चौंसठ (64) माला करना अनिवार्य है, अति आवश्यक है। मन हरिनाम में लगे या न लगे पर जो चौंसठ (64) माला करेगा उसे वैकुण्ठ धाम तो मिल ही जायेगा। यह बात 'हरिनाम चिंतामणि' में नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी ने बोली है। आप इस पुस्तक में पेज 33 से पेज 47 पर देख सकते हैं।

एक कृष्णनाम यदि मुखे बाहिराय।
अथवा श्रवण–पथे अन्तरेते जाय।।
शुद्ध वर्ण हय वा अशुद्ध वर्ण हय
ताते जीव तरे, एइ शास्त्रेर निर्णय।।

यदि किसी के मुख से एक श्रीकृष्ण नाम यानि एक बार भी 'श्रीकृष्ण' नाम निकल जाये या फिर कानों के द्वारा सुनकर उसके अंदर प्रवेश कर जाये तो 'श्रीकृष्ण' नाम के प्रभाव से वह जीव भवसागर से पार हो जाता है । वह जीव भले ही शुद्ध वर्ण का हो या अशुद्ध वर्ण का हो। यह शास्त्रों का निर्णय है।

वैकुण्ठादि–लोकप्राप्ति नामाभासे हय।
विशेषतः कलियुगे सर्वशास्त्र कय।।

भले ही हरिनाम में मन लगे या न लगे, श्री हरिनाम करते–करते नामाभास से ही वैकुण्ठादि लोकों की प्राप्ति हो जाती है। विशेषकर इस कलियुग में तो यह सुनिश्चित है, ऐसा सभी शास्त्र कह रहे हैं।

चौंसठ (64) माला करने से साधक मरने के बाद कई युगों तक वैकुण्ठ धाम में वास करेगा, जहाँ दुःख या कष्ट की छाया भी

नहीं है। वहाँ रहने के बाद, उसका जन्म किसी भक्त के घर में होगा। उसका जन्म किस लिये होगा ? उसका जन्म इसलिये होगा कि उसका भगवान् से संबंध–ज्ञान बन जाये क्योंकि संबंध–ज्ञान हुये बिना उसे गोलोकधाम नहीं मिलेगा।

जिस प्रकार जब तक किसी कन्या का संबंध किसी युवक से नहीं होगा तब तक वह अपने माँ–बाप के घर में, अपने पीहर में ही रहेगी। जब उसका संबंध किसी युवक से बन गया तो वह उस युवक के साथ अपनी ससुराल में रहेगी। इसी प्रकार जब तक भक्त को संबंध–ज्ञान नहीं होगा तब तक वह वैकुण्ठ में ही रहेगा। जब उसे भगवत् से संबंध–ज्ञान हो जायेगा तो उसे गोलोकधाम में ही जाना पड़ेगा। उस भक्त का भगवान् से सखा, भाई, पुत्र, पिता या दास आदि का कोई भी संबंध हो जाता है तो भगवान् उसे अपने से दूर रख नहीं सकते। उसे अपने पास ही रखेंगे। संबंध–ज्ञान नहीं होने से ही दूरी बनी हुई है। जैसे शादी के बाद कन्या अपने पति के साथ ही रहना चाहती है और पति भी अपनी धर्मपत्नि के साथ ही रहना चाहता है, उसी प्रकार भगवान् भी अपने भक्त के बिना नहीं रह सकता। वह भी अपने भक्त के साथ ही रहना चाहता है और भक्त भी भगवान् से अलग रहने को तैयार नहीं है।

गहराई से समझना पड़ेगा कि जैसे शरीर के किसी अंग को चोट पहुँचे तो सारा शरीर ही अशांत हो जाता है क्योंकि सभी अंग अपने हैं। इसी प्रकार किसी भी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना, अपनी जीवात्मा को ही कष्ट देना है। आत्मा–आत्मा सभी एक हैं, इनमें भेद करना मूर्खता है। जिसको सच्चा ज्ञान हो गया वह कभी हिंसा नहीं करेगा। कभी किसी को भी नहीं सतायेगा। मन, वचन या कर्म से किसी भी तरह, किसी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना हिंसा का ही विस्तृत रूप है।

किसी भी तरह से मन, वचन, कर्म से किसी जीवात्मा को कष्ट पहुँचाना, ईर्ष्या, द्वेष करना, हिंसा ही तो है । यह ईर्ष्या, द्वेष शरीर से कैसे होगा ? शरीर तो निर्जीव है, जड़ है। यह हुआ जीवात्मा

से। जब जीवात्मा से राग, द्वेष किया तो अपनी जीव–आत्मा दुःखी हो गई क्योंकि दोनों आत्माएं एक ही तो हैं। इनमें किंचित मात्र भी भेद नहीं है। यही तो ज्ञान है। इसको न समझना ही अज्ञान है। जब ऐसा ज्ञान मानव के हृदय में उदय हो जायेगा अर्थात् ज्ञान का सूर्य उग जायेगा तो अज्ञान का अंधेरा भाग जायेगा। तब बुद्धि पर पड़ा हुआ माया का पर्दा, सदा के लिये दूर हो जायेगा एवं जीवात्मा का जन्म–मरण का दारुण दुःख सदा–सदा के लिये दूर हो जायेगा। ऐसा मानव भगवत्–स्वरूप के गुणों में परिणित हो जायेगा। उसको कण–कण में भगवान् ही नज़र आयेगा। फिर किसी को कष्ट देने का प्रश्न ही नहीं रहेगा। उसे इसी जन्म में भगवद–प्राप्ति हो जायेगी। जब भगवद्–प्राप्ति हो गई फिर उसके लिये बाकी रहा ही क्या ?

ऐसा आचरणशील वैष्णव ही पूरे ब्रह्मांड को तार सकता है। ऐसे आचरणशील मानव का प्रभाव दूर–दूर तक चारों ओर फैल जायेगा। उसके संग से गंदा भी शुद्ध हो जायेगा। दुर्गन्ध दब जायेगी तथा सुगंध चारों ओर फैल जायेगी। जब शरीर को आत्मा छोड़ देती है तो वही शरीर घृणा का पात्र हो जाता है अतः इस शरीर की कीमत नहीं, कीमत आत्मा की है। निष्कर्ष यह निकला कि मूल्यवान पदार्थ से ही प्रेम का संबंध रखने में भलाई है। जैसे मानव के अर्थात् किसी भी चर–अचर आत्मवत् शरीर में दर्द होता है तो वह दर्द आत्मा को महसूस होगा क्योंकि आत्मा सजीव है। क्योंकि चर–अचर प्राणियों के शरीर जड़ हैं, निर्जीव हैं, इनको दर्द महसूस नहीं होगा। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

(गीता 2.23)

आत्मा शाश्वत् है। इसे न शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी इसे गीला कर सकता है और न हवा इसे सुखा सकती है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल और सनातन है।

पंच तत्व से आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। शरीर में जब आत्मा विराजमान रहेगी तो आत्मा को ही सुख–दुःख का अनुभव होगा। जब आत्मा शरीर से निकल जायेगी तो शरीर को कैसा भी दुःख दिया जाये, शरीर जड़वत् ही रहेगा। इसलिये आत्मा को समझना बहुत ही गहन विषय है। साधारण मानव तो इसकी हवा तक भी महसूस नहीं कर सकता।

जिस पर असीम भगवद्–कृपा होगी, वही इस आत्मा को समझेगा या जिसके सिर पर भक्त का हस्तकमल होगा, वही इसे समझेगा। शरीर में आत्मा का अस्तित्व नहीं होने से जीव का कर्म भोग कैसे होगा ? जो भी भक्त–साधक इस आत्मा को अच्छी प्रकार समझ जायेगा, उससे भूलकर भी बुरा कर्म नहीं होगा। दूसरों का दर्द भी उसे अपने आप को महसूस होने लगेगा। दूसरों का सुख भी उसे सुखी करेगा। उसका तो अन्तःकरण ही निर्मल हो जायेगा। उसकी बुद्धि तात्विक विचारों में बदल जायेगी। उसके मन का संकल्प–विकल्प चिन्मय अर्थात् अलौकिक वृत्ति में बदल जायेगा। ऐसे संत का आशीर्वाद अमोघ होगा तथा श्राप भी अमोघ होगा। ऐसे संत के वचन को भगवान् भी नहीं बदल सकते, वे असमर्थ हो जाते हैं। जिस प्रकार देवर्षि नारद ने भगवान् राम को श्राप दे दिया था कि तुम भी अपनी धर्मपत्नी के लिये तड़पते फिरोगे क्योंकि तुमने मेरी शादी होने में बाधा डाली है।

मर्यादा पुरुषोतम भगवान् श्रीराम तो अपने भक्त की सदा ही रक्षा करते हैं, उसे माया में फंसने से रोकते हैं इसलिये उन्होंने नारद जी की शादी नहीं होने दी और नारद जी का श्राप भी अपने सिर पर धारण कर लिया। नारद जी का यह श्राप भी भगवान् की लीला करने हेतु इच्छा का ही कारण था अन्यथा लीला का उद्गम कैसे होता ? भगवान् की लीला को कोई भी नहीं समझ सकता। हां, भगवान् का प्यारा भक्त ही उसे थोड़ा समझ सकता है।

मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि भक्तगण ध्यान से सुनो कि भगवान् का मिलन, किस साधन या स्वभाव की वृत्ति से होता है।

बच्चे की तरह रोने से भगवत्–मिलन शत्–प्रतिशत् (100 प्रतिशत) हो जाता है। साधक का रोना तो अपने हाथ में नहीं है, यह तो अन्तःकरण की वृत्ति है। अन्तःकरण ही जब भगवान् को चाहेगा तब ही भगवत्–मिलन होगा। अन्तःकरण किस साधन से चाहेगा ? केवल मन से हरिनाम करने से। मन से हरिनाम होगा कैसे ? यह होगा श्रीगुरुदेव के आदेश की कृपा से। श्रीगुरुदेव के आदेश की कृपा कैसे होगी ? जब साधक वृन्दादेवी अर्थात् तुलसी महारानी की सच्ची सेवा करेगा। तुलसी महारानी की सच्ची सेवा कैसे होगी ? जैसे कोई पुत्र हृदय से अपनी माँ की सेवा करता है। हर पल माँ की देखभाल करता है ताकि माँ को कोई भी कष्ट न हो जाये। समय–समय पर माँ को यह पूछते रहना कि तुम्हें क्या चाहिये ? तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है, कोई असुविधा हो तो मुझे बता दिया करो। माँ कहती है–हे बेटा ! तेरी सेवा अकथनीय है। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। मेरा आशीर्वाद है कि तेरा जीवन सुखमय बीतेगा। मरने के बाद भी सुखी रहेगा अर्थात् तेरा किसी सुखी लोक में जन्म होगा।''

इस प्रकार से जो भक्त तुलसी महारानी की सेवा करके वृन्दादेवी को प्रसन्न कर लेगा, उसकी हरिनाम में रुचि बनकर, उसके हृदय में भगवत्–विरह प्रगट हो जायेगा। यह भगवत्–विरह ही भगवान् के अन्तःकरण को उथल–पुथल कर देता है और भगवान् भक्त को मिलने के लिये तड़पने लग जाते हैं। यह अवस्था तब आती है जब मन से उसका संसार से नाता टूट जाता है। जब तक मन में संसार विराजेगा तब तक भगवत्–प्रेमावस्था उदय होगी ही नहीं। यह पक्की बात है।

जब तक मन में परहित करने की भावना नहीं होगी तब तक समझिये कि अन्तःकरण निर्मल नहीं हुआ। तब तक–

''तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।''

की अवस्था आ नहीं सकती। साधक से नामापराध तथा वैष्णव

अपराध होता रहेगा। इसलिये सच्चे सत्संग की परमावश्यकता है, जो धर्मग्रंथों से तथा सच्चे साधु–संग से ही प्राप्त हो सकेगा। जब बुराईयों से बचता रहेगा तब ही ऐसे संग का प्रभाव अन्तःकरण में जमता रहेगा। इसमें सीमित आहार–विहार ही सहायक है। जितना हो सके, कम से कम करे। ये अंदर के शत्रु काम, क्रोध, मोह, लोभ, वृद्धावस्था में अधिक हावी हो जाते हैं पर जो भजनानन्दी है, उसका पीछा ये छोड़ देते हैं।

आजकल टेलीविज़न (टी.वी.) साक्षात् कलि महाराज का अवतार है। मानव के मन को दूषित करने वाला प्रथम रोग टी.वी. ही है। समय की बरबादी तथा शुद्ध आचरणहीनता का द्योतक केवलमात्र टी.वी. है। भारत की संस्कृति लोप होती जा रही है। भारत का मानव अब हिन्दी बोलने में अपनी बेईज्जती समझता है। विदेशी भाषा, अंग्रेज़ी बोलने में अपना गौरव समझता है। हिंदु–समाज की सिर की शिखा अर्थात् चोटी भी गायब हो चुकी है। जिस साधक के सिर पर चोटी नहीं है उसका धर्म–कर्म मिट्टी में मिल जाता है। विज्ञान ने भी चोटी रखने के कई लाभ घोषित किये हैं। इससे बुद्धि में शुद्ध संकल्प–विकल्प आते रहते हैं। आदमी बुरे विचारों से बचता रहता है। चोटी रखने से शरीर में अमृत प्रवाहित होता रहता है। चन्द्रमा भी धरातल पर पेड़–पौधों को अमृत प्रदान करता रहता है। चोटी इस अमृत को खींच कर पूरे शरीर में प्रवाहित करती रहती है और शरीर अनेक रोगों से बचा रहता है। अंदर–बाहर के सभी रोग शरीर में घुसने में असमर्थ रहते हैं। अतः सभी साधकों से अनुरोध है कि सभी महानुभाव चोटी रखें।

मर्यादा रखने वाले का तो कलि महाराज शत्रु है। वह सबकी मति बिगाड़ रहा है। पहले सभी हिन्दू धोती–कुर्ता पहनते थे। पैंटे पहनकर न अर्चन–पूजन या संध्या होती थी न ही महाप्रसाद वितरण होता था। सबके लिये धोती–कुर्ता पहनना आवश्यक था। प्रसाद का सम्मान होता था। आजकल कोई ध्यान ही नहीं है। आजकल प्रसाद झूठा छोड़कर फेंक दिया जाता है। प्रसाद का

अपमान होता है। फिर हरिनाम में मन कैसे लगे ? परोसने वाला भी अपराधी, खाने वाला भी अपराधी। ऐसे साधकों के लिये हरिनाम भार है। आज गाँवों में भेड़–बकरी चराने वाले चरवाहे भी बिना पैंट के जंगल में नहीं जाते। पैंट में कितनी असुविधा होती है। न बैठने की सुविधा, न चलने की सुविधा । पैंट की वजह से नाभि के नीचे से हवा भी नहीं जाती। सभी हिन्दू धर्म त्याग कर मुस्लिम धर्म अपनाते जा रहे हैं। अंग्रेज इत्यादि सभी विदेशी मूल में मुसलमान ही होते हैं। मानव की बहुत पहले से ही दो जातियां थीं। एक थी आर्य और दूसरी थी द्रविड़। आर्य हिन्दुत्व में तथा द्रविड़ अन्य जातियों में आता है जो मुस्लिम जाति से संबंधित होती है। भगवान् को तो सभी मानते हैं। कोई किसी शब्द से उसे पुकारता है तो कोई किसी शब्द से पुकारता है। भगवान् तो भावग्राही है। सबकी पुकार मानते हैं।

शरीर में तीन नाड़ियों का स्त्रोत होता है। पहली ईड़ा, दूसरी पिंगला तथा तीसरी सुषुम्ना। ईड़ा और पिंगला का सांस माया में प्रवाहित होता है एवं सुषुम्ना का सांस भजन की परमहंस अवस्था में प्रवाहित होता है। जब मन एकाग्र अवस्था में होता है तब सांस की गति स्वतः ही सुषुम्ना नाड़ी की गति में आकर प्रवाहित होने लग जाती है। तब भक्तिमान साधक को एक अलौकिक खुशी अन्तःकरण में होने लगती है। मन भगवान् को चाहने लगता है। पर जब ईड़ा–पिंगला में सांस चलने लगता है तब मानव के मन में कामनाओं का जाल बिछ जाता है।

योगियों तथा भक्तों को जब मौत आती है तो चोटी के रास्ते से ब्रह्मांड फोड़कर प्राण शरीर से बाहर निकलता है। इस ऊर्ध्वगति में मानव सुखमय लोकों में चला जाता है। ऐसे लोक भी अनंत हैं। इन लोकों में दुःख व कष्ट की हवा भी नहीं है। इसलिये सभी साधक भविष्य में चोटी अवश्य रखें। इससे हरिनाम में मन अवश्य लगेगा। मन में एकाग्रता होगी। चोटी (शिखा) रखने के लाभ उन सभी को बताओ जो इस प्रवचन को नहीं सुन रहे हैं, इससे बताने

वाले को भी लाभ होगा। हरिनाम उस पर कृपा करेगा। उसका हरिनाम में मन लगेगा।

मैंने प्रत्यक्ष में देखा है जब भी श्रीगुरुदेव के पास उनका कोई शिष्य आता था तो श्रीगुरुदेव उससे पूछा करते थे कि सिर पर चोटीं है या नहीं। गले में तुलसी माला है कि नहीं। जनेऊ का पालन करते हो या नहीं। ज्यादा बाल भी मत रखो। भक्ति मार्ग में आगे बढ़ने के लिये इन बातों का विशेष ध्यान रखो।

जब कोई भक्त संध्या करने बैठता है और पंचपात्र में जल भरकर, गंगा आदि नदियों का आवाहन करने के लिये, अपनी उंगुलियों से जल को छूता है एवं पंचपात्र में एक तुलसीपत्र डालता है तो पंचपात्र का जल पवित्रता में बदल जाता है। पंचपात्र के जल को पवित्र करने का मंत्र इस प्रकार है–

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जले अस्मिन् संन्निधि कुरु।।

फिर तीन बार आचमन करता है–

ॐ केशवाय नमः। ॐ नारायणाय नमः। ॐ माधवाय नमः।।

आचमन के जल को केवल होठों से छूना ही काफी है, इसे पीना उचित नहीं है, होठों से छुये हुये जल को एक तरफ ज़मीन पर छोड़ते रहना चाहिये। यही शुद्ध आचमन कहलाता है। पंचपात्र के जल को पीना उचित नहीं है। इस जल को तुलसी महारानी के पौधे में डालना ही सर्वोत्तम है। तुलसी में जल देकर, उसकी चार परिक्रमा लगाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् करना चाहिये ताकि तुलसी मैया की प्रसन्नता उपलब्ध हो सके। जब तुलसी मैया प्रसन्न होगी तब ही हरिनाम में मन लगेगा। जब तुलसी पत्र तोड़े तो पहले तुलसी मैया को प्रणाम मंत्र से प्रणाम करे फिर बाद में मंत्र द्वारा ही तुलसी पत्र तोड़े। तुलसी प्रणाम–मंत्र इस प्रकार है–

"वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णु भक्ति प्रदे देवि सत्यवत्यै नमो नमः।।"

तुलसी दल चयन करते समय यह मंत्र बोलें –

"तुलस्यामृत जन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थ चिनोमि त्वां, वरदा भव शोभने।।"

तुलसी पत्र तोड़ते समय यदि ऊपर लिखा प्रणाम् मंत्र याद न हो तो हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करते हुये तुलसी पत्र चयन करना चाहिये। तुलसी पत्र के अभाव में भगवान् कुछ भी ग्रहण नहीं करते। इसलिये सबसे पहले तुलसी मैया की प्रसन्नता परमावश्यक है। गर्मियों में ज्यादा धूप से बचाना तथा सर्दियों में ज्यादा ठंड से कपड़े आदि से ढक देना इत्यादि सेवा ज़रूरी है। ध्यान दें ! तुलसी मैया की सेवा के बाद ही गुरु–वैष्णवों की प्रसन्नता उपलब्ध हो सकेगी। भक्ति का प्रागट्य ही तुलसी मैया के हस्तकमल से होता है।

इसी मकान (शरीर) रूपी पेड़ पर दो पक्षी घोंसला बनाकर रहते हैं। एक है जीव तथा दूसरा है जीवात्मा। आत्मा भोक्ता है, जीव भोग्य है। लेकिन माया के हावी होने से जीव भोक्ता बन बैठा, इसलिये उसे (जीव को) कर्म भोग भोगना पड़ गया। यह जीव–आत्मा स्वयं मालिक बनकर बैठ गया और दुःख सागर में डूब गया। यही जीव का अज्ञान है। इसी अज्ञान के अंधकार में उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता है। यही कारण है कि वह भटकता रहता है। याद रखो कि यहाँ जो कुछ भी है, जो भी दिखाई दे रहा है, सब भगवान् का है। हम न कुछ साथ लेकर आये थे और न ही साथ लेकर जायेंगे। खाली हाथ आये थे और खाली हाथ जायेंगे। यदि हम सब कुछ भगवान् का मान लेवें तो दुःख से पाला ही क्यों पड़े। सब कुछ भगवान् का मान लेने से सुख ही सुख होगा और आनंद भोग करेगा। यही मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश तथा उपदेश है।

– हरि बोल –

27

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दिनांक 27.01.2012

प्रेमास्पद शिरोमणि,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् अहैतुकी कृपा करते हैं

मानव अपने गृहस्थी में तथा अपने व्यापारिक धंधों में इतना फंसा पड़ा है कि उसे यह भी नहीं पता कि वह कहाँ से आया है? किसने उसे पैदा किया है ? और अपने जीवन में क्या करना उसका कर्तव्य है? सच्चा उद्देश्य उसका क्या है ?

भगवान् के अनंतकोटि अखिल ब्राह्मांड हैं। सभी भगवान् की संतानें हैं। प्रत्येक ब्राह्मांड में शिव, ब्रह्मा व विष्णु अपने–अपने काम में नियुक्त होकर सृजन, पालन व संहार करते रहते हैं। प्रत्येक ब्राह्मांड में भगवत् अवतार लेकर अपनी लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं लेकिन श्रीराम तथा श्रीकृष्ण अनेक नहीं है, एक ही हैं। कहीं रामावतार हो रहा है तो कहीं कृष्णावतार हो रहा है। इन अवतारों का उद्देश्य भी यही है कि मानव इन अवतारों की लीलाएँ सुन–सुनकर, माया–मोह–ममता से हटकर, अपना मानव जन्म सफल कर, जहां से आया था, और जो मानव का खास घर है, वहीं पर चला जाये तो इसका जो दारुण दुःख है, जन्म–मरण, इससे छुटकारा पा लेवे। संसार तो दुःखालय है। सत–रज–तम, माया के इन गुणों से मानव परेशान रहता है। ये गुण ही इसे अंधा बनाये रहते हैं। इनकी आँखे खोलने वाला, इनको सच्चा मार्ग बताने वाला कोई सुकृतिवश मिल जाये, तो इनका जीवन सफल हो जायें। लीलायें तो निरंतर हो रही हैं। लीलाएँ कभी रुकती नहीं हैं।

प्रत्येक ब्राह्मांड में भगवान् का अवतार होता रहता है। कहीं ठौर नहीं, जहाँ भगवान् की लीलायें न हो रही हों। भगवान् तो सबका बाप है। सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के पुत्र हैं। ऐसा कोई बाप हो सकता है जिसको पुत्र प्यारे न हो ? लेकिन पुत्र ही नालायक तथा कुपात्र बन जाये तो इसमें बाप का क्या दोष है ? बाप भगवान् तो अपने पुत्रों को अपने पास बुलाना चाहता है लेकिन चर–अचर प्राणी, जो भगवान् के पुत्र हैं, विषय वासनाओं में इतने रम रहे हैं, फंस रहे हैं कि इनको समय का ध्यान ही नहीं है कि इनकी उम्र कब चली गई। इतना भूल भुलैया में रम गया है कि कब रात हुई और कब दिन चला गया।

मानव की उम्र सौ साल होती है जिसमें कोई ही सौ साल जीता है। सभी अधिक से अधिक सत्तर या अस्सी साल की उम्र में मर जाते हैं तो इनको सत–रज–तम के गुणों के अनुसार अगले जन्म की योनियाँ उपलब्ध होती रहती हैं। मानव जन्म तो फिर अरबों–खरबों युगों के बाद ही भगवत् कृपा से मिलता है। वह भी जब उपलब्ध होता है जब किसी मानव जन्म में किसी साधु की शुभ अवसर अनुसार सेवा बन जाती है तो। सुकृति होने से भगवान् उस जीव आत्मा को मानव जन्म उपलब्ध करा देते हैं इसी कारण धर्मग्रंथ मानव जन्म को बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होना बताते हैं, सुदुर्लभ बताते हैं।

मानव जन्म मिलने पर 20 साल तो खेल कूद में चले जाते हैं। 30 साल धन कमाने–धमाने पारिवारिक पालन पोषण में चले जाते हैं। इस तरह 50 साल तो यूं ही खत्म हो गये तथा 50 साल रात में सोने पर चले जाते हैं। इस तरह से सौ साल का पता ही नहीं चलता। अतः धर्मग्रंथ बोलते हैं कि कोई अरबों–खरबों में एक ही भगवान् को उपलब्ध करता है। सभी चौरासी लाख योनियों में भटकते रहते हैं तथा बहुत से मानव तो कई युगों तक नरक भोगा करते हैं जो तमोगुणी स्वभाव के होते हैं। भक्ष–अभक्ष, भक्षण करते रहते हैं। उनको प्रथम में नरक में जाना पड़ता है। नरक भोगने के

बाद चौरासी लाख योनियाँ भोगनी पड़ती है। तो मानव जन्म तो सुदुर्लभ होगा ही।

भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार ही खड़े रहते हैं। परंतु कोई कृपा भी लेने को तैयार हो। मानव प्रथम में स्वयं पर भी कृपा करे तब ही तो भगवत् कृपा उपलब्ध हो। मानव भगवान् की कृपा चाहता ही नहीं है तब भगवान् अहैतुकी कृपा क्यों करने लगे?

मान लो कोई बोले कि मैं तो भगवान् की कृपा चाहता हूँ तो भगवान् तो बोलते हैं कि तू मेरी पूर्ण शरणागत तो हो। अगर तू बोले कि मैं तो पूर्ण शरणागत हूँ तो भगवान् बोलते हैं कि तू झूठ बोलता है। तू पूर्ण शरणागत नहीं है। यदि तू पूर्ण शरणागत होता तो तेरा मन मेरे लिये अकुलाता, तड़पता, रात–दिन खाना–पीना, सोना, हराम बन जाता। क्या ऐसी स्थिति तेरी है ? यदि नहीं है तो तेरा केवल वहम (भ्रम) है कि मैं भगवान् की पूर्ण शरणागत हूँ। क्या तुझे निसदिन कभी अश्रु पुलक होता है ? नहीं होता, तो समझना होगा कि अभी शरणागति की स्थिति बहुत दूर है। मैं तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार खड़ा हूँ परंतु तुझमें योग्यता भी हो। कृपा रखने हेतु पात्र भी तो हो।

इसका मतलब प्रत्यक्ष में है कि अभी तेरी आसक्ति संसार में कहीं पर है। संसार की आसक्ति हटी कि मेरी शरणागति हुई। नाम में केवल श्रद्धा की कमी है, तब ही पूर्ण शरणागति नहीं होती। स्तन पीता माँ का शिशु, माँ के पूर्ण शरणागत रहता है। तो माँ उस पर पूर्ण अहैतु की कृपा करती है कि नहीं ? मान लो वह चिड़िया ही क्यों न हो, अपने चीकले को चुग्गा चुगाती है कि नहीं ? क्या वह बड़ा होकर उसको निहाल करेगा ? उसकी माँ में भगवान् की ही दी हुई अहैतुकी कृपा मौजूद रहती है। भगवान् बाप होने से उनका स्वभाव जीवमात्र में होता है।

भगवान् तो सर्वशक्तिमान है ही। भगवान् की ही दी हुई सभी वृत्तियाँ प्रत्येक जीवमात्र में रहती हैं यदि ऐसा न हो तो भगवान् की

सृष्टि चल ही नहीं सकती। जीव, जीव को खाकर अपना जीवन बसर करता ही है। इसी प्रकार से यह नदी का प्रवाह बहता ही रहता है, कभी रुकता नहीं है। भगवान् अहैतुकी कृपा करने हेतु, कौरवों में, दुर्योधन के पास गये लेकिन दुर्योधन ने कृपा लेनी ही नहीं चाहीं। तब इसमें भगवान् का क्या दोष रह गया ? भगवान् तो अहैतुकी कृपा जीवमात्र पर करना चाहते हैं परंतु जीवमात्र लेना ही नहीं चाहता।

भगवान् को दोष देना मूर्खता है मानव ने अपना सत्यनाश स्वयं ही कर लिया। इसमें भगवान् क्या करे ? भगवान् ने अनंत शास्त्र बनाकर रख दिये। मानव इनको देखता तक नहीं। भगवान् ने आनंद का रास्ता शास्त्रों में बता रखा है परंतु मानव आँखें मींचकर बुरे रास्ते पर चलता रहता है। तो कर्म का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। भगवान् तो कहते हैं कि:–

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सा तस फल चाखा।।

कर्म न हो तो यह सृष्टि चल ही नहीं सकती। कर्म से ही सृष्टि चल रही है। भगवान् का वचन है–''स्वयं मुझको भी कर्म करना पड़ता है यदि मैं कर्म न करुँ तो मेरी सृष्टि का लोप हो जाये। मैं अवतार लेकर कर्म में प्रवृत होता ही हूँ। मुझे भी श्राप–वरदान झेलना पड़ जाता है। श्राप–वरदान केवल मेरे भक्त के हाथ में ही है। किसी को श्राप दिला देता हूँ तो किसी को वरदान। सनकादिकों से जय–विजय को श्राप दिला दिया तो मेरे को तीन बार अवतार लेकर हिरनाक्ष तथा हिरण्यकिश्यपु को मारा। रावण और कुंभकरण को मारा। शिशुपाल व दंतवक्र को मारा। यही तो मेरी खेल भूजाणी है। नारद भक्त ने मुझे श्राप दिया तो मैं रामावतार लेकर धरातल पर आया। सीता हेतु वन–वन भटकना पड़ा। मेरे अवतार के भी कई कारण होते हैं। जिनका लेखन में आना असंभव होता है। श्रीकृष्ण बोलते हैं–''मैं गौरहरि के रुप में अवतार लेकर आया। उस अवतार में, मैंने किसी दुष्ट को, किसी

हथियार से नहीं मारा केवल प्रेम देकर उनके मन को सुधारा और प्रेम किस युक्ति से होता है, वह भी सभी जीव मात्र को स्वयं साधन करके बताया। वह साधन क्या है ? स्वयं मैंने किया और सभी को करने को आदेश प्रदान किया कि जो नित्य एक लाख (64 माला) बार मेरे नाम अर्थात् हरिनाम का स्मरण करेगा वह जन्म–मरण के संसारी दुःख से छूट जायेगा और मेरे वैकुण्ठ धाम में चला जायेगा। फिर वहां से मेरे उच्चतम गोलोक धाम में सदा के लिये पदार्पण कर जायेगा। जब मेरा अवतार धरातल पर होगा, मेरी लीला विस्तार करने हेतु, मेरे साथ पार्षद, ठौर–ठौर में अवतरित होंगे। यह सृष्टि का प्रवाह चलता ही रहता है, कभी बंद नहीं होता। ऐसा सुगम, सरल साधन तीनों युगों में सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग में भी नहीं है, जो कलियुग के जीवों के लिये है। केवल गृह–गृहस्थी में रहते हुये किसी भी ठौर में, किसी भी समय में, किसी भी अवस्था में आसानी से कर सकते हैं। जो बहुत ही दुर्भाग्यशाली होगा वही इस साधन से वंचित रह सकेगा। जो सुकृतिशाली होगा वह इसी जन्म में आवागमन जन्म–मरण से छुट्टी पालेगा, मेरी गारंटी है। केवल मन को संसारी आसक्ति से हटाना परमावश्यक है। तब ही मेरे नाम में मन रत हो पावेगा। मन रत होने पर अश्रुपुलक शरीर में प्रगट हो पड़ेगा। यही अंतिम भाव प्रेम का हो जाता है। इसी भाव से मैं भक्त के आश्रित हो जाता हूँ। भक्त मेरा और मैं भक्त का।''

भगवान् बोलते हैं कि कोई साधक बोले कि मैं तो अहैतुकी कृपा लेना चाहता हूँ, मुझे क्यों नहीं देते हैं ? तो भगवान् बोलते हैं कि तुम्हारी चाहना ऊपर की है, अन्तःकरण की चाहना नहीं है। यदि हृदय से चाहना हो तो तुम शांति से रह नहीं सकते। मेरे लिये क्षण–क्षण में रोओगे, यह लक्षण तो तुममें है ही नहीं। तो तुम अहैतुकी कृपा चाहते कहाँ हो ? पूर्ण शरणागति जब होगी तब ही अहैतुकी कृपा उपलब्ध होगी। मैंने अहैतुकी कृपा दसों दिशाओं में फैला रखी है, कोई लेने वाला भी हो। धर्मग्रंथों द्वारा, तीर्थों द्वारा,

सत्संगों द्वारा, मठ–मंदिरों द्वारा, अनेक संतों द्वारा, फिर बोलते हैं कि अहैतुकी कृपा नहीं है।

सभी जानवर अपनी योनियों में मस्त हैं, कोई भी दुःख महसूस नहीं करता। एक बार नारद जी सूअर को स्वर्ग ले जाने हेतु बोले जबकि सूअर की योनि निकृष्ट योनि है। उसको मानव का मल खाने में ही आनंद आता है। सूअर बोला–''महात्मा जी ! मैं स्वर्ग में जाने को तैयार हूँ पर यह बताओं वहाँ मानव का मल खाने को मिलेगा ?'' नारद जी बोले–'' वहाँ तो सब तरह से स्वादिष्ट भोजन चटनी इत्यादि मिलती है। वहाँ मानव का मल तो नहीं मिल सकता।'' तो सूअर बोला–''मेरे लिये वहाँ का स्वादिष्ट भोजन किस काम का! मेरी खाने की वस्तु ही नहीं है तो मैं जाने को तैयार नहीं हूँ।''

कहने का मतलब यही है कि निकृष्ट जानवर भी जाना नहीं चाहता तो मानव की तो बात ही क्या है ! इसलिये भगवान् अहैतुकी कृपा कैसे और किस पर करें ? अहैतुकी कृपा का कोई इच्छुक ही नहीं है। भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने को तैयार रहते हैं। लेकिन लेने वाले में योग्यता भी हो। अहैतुकी कृपा लेने वाला बेईमान है। बेईमान क्यों है ? भगवान् का मन इसके पास है। भगवान् कहते हैं कि मेरा मन तूने जबरदस्ती क्यों ले रखा है ? बेहक किसी की वस्तु लेना बेईमानी नहीं है क्या ? गीता में भगवान् ने बोला है **''इन्द्रियाणां मनश्चास्मि ''** अर्थात् इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ। इस मेरे मन को, अपने इन्द्रियों के देवताओं को सौंप रखा है। सुंदर, आकर्षक कोई वस्तु देखी, बस ! मन को आंखे खींच ले गई। मीठा बोल सुनाई दिया तथा अश्लील बातों में कान का देवता मन को खींच ले गया। सुगंधित कोई वस्तु अनुभव हुई कि नाक का देवता मन को खींच ले गया। जीभ को कोई स्वादिष्ट भोग छू गया तो मन उस देवता की तरफ लुभा गया। कहीं सुंदर, स्पर्श शरीर को हो गया तो मन उधर भाग गया।

तो ज़रा विचार करो कि मन तो व्याभिचारी वृत्ति का बन गया तो व्याभिचारी कोई भी क्यों न हो, क्या कोई उसका विश्वास करेगा ? भगवान् तो उसका विश्वास करेगा ही क्यों ? क्या मन भगवान् को चाहता है ? बिल्कुल कपट का व्यवहार खेला जा रहा है। फिर कहते हैं कि हम भगवान् की शरण में हैं। जब भगवान् का मन, भगवान् को ही नहीं सौंपा तो साधक का भगवान् से नाता क्या हुआ ? भगवान् उस पर अहैतुकी कृपा करेंगे ? मन का स्वभाव है कि उसको जो भा गया उसे मन किसी दशा में छोड़ता नहीं। अभी तो मन संसार में भा रहा है तो भगवान् तो बहुत दूर हैं।

जब मन भगवान् को चाहेगा तो मन को पूरी दुनिया की संपति देने को बोला जाये तो मन उसको लात मार देगा। यही है सच्ची शरणागति और सब कहने की बात है। शरणागत का जीवन शरणागत ही जान सकता है। शरणागत संसार को ठोकर देकर चलता है। भगवान् उस पर अहैतुकी कृपा करता है जबकि वह कुछ चाहता भी नहीं है। कृपा स्वयं आकर भक्त के चरण में लोटती है। जब ही तो भगवान् बोलते हैं कि ऐसे भक्त का, मैं खरीदा हुआ गुलाम हूँ। मैं काल का भी काल हूँ। काल भी मुझसे थर–थर काँपता है लेकिन मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ। क्यों काँपता हूँ? क्योंकि भक्त के पास अपना कुछ भी नहीं है। अपना शरीर तक भी अपना नहीं है। जो कुछ है, वह सब कुछ मेरा ही है। भक्त में और मुझ में कुछ भेद नहीं है। भक्त ही भगवान् है और भगवान् ही भक्त है। साधारण साधक इन भावों को समझ नहीं सकता। भगवान् का प्यारा ही इन भावों को समझेगा।

पहले अपने मन को टटोलों कि मन वास्तविक रूप में क्या चाहता है ? संसार को या भगवान् को ? इसका लक्षण होगा कि स्वप्न कैसे आते रहते हैं ? भगवान् के संबंध के या संसार के संबंध के ? क्योंकि व्यवस्था में ही मन की परीक्षा होती है। मन जहाँ रस रहा है उसी के स्वप्न सोने पर आवेगें। इसमें ही स्वयं की परीक्षा हो जायेगी वरना कहना सब फिजूल का है।

भगवान् तो अहैतुकी कृपा करने में चूकते नहीं हैं लेकिन कोई शुद्ध पात्र भी तो हो उस कृपा को भरने हेतु। मेरे गुरुदेव तथा हरिनाम चिंतामणि में 33 पेज से 47 पेज तक जीव आत्मा की गारंटी ले रहे हैं कि भगवत शरणागति न भी हो, चाहें अवगुणों की खान भी हो, यदि साधक 64 माला नित्य बिना मन भी जपता है तो उसका इसी जन्म में सुनिश्चित उद्धार होगा ही। वैकुण्ठगमन होगा ही।

भगवान् को प्राप्त करने हेतु कलियुग जैसा समय ही नहीं है। इसके लिये तो देवता भी तरसते हैं कि हमारा जन्म भगवत् कृपा से कलिकाल में ही हो जावे तो हम भी इस आवागमन के चक्कर से छुट्टी पा जावे। भगवान् कहते हैं कि कलियुग में मेरे ग्राहक ही नहीं हैं। मैं भक्तों के लिये तरसता रहता हूँ क्योंकि मेरा जीवन ही भक्तों से है। केवल मेरा एक लाख नाम, बिना मन, नित्य जपे। सतयुग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में साधन करना बहुत कठिन है। मैं शीघ्र प्रसन्न नहीं होता क्योंकि इस समय के साधकों में तन–मन में शक्ति भरपूर रहती है लेकिन कलिकाल में, साधक हर प्रकार से कमज़ोर रहता है। अतः मेरे नाम का थोड़ा साधन करने से ही मैं शीघ्र प्रसन्न हो जाता हूँ।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।

परन्तु मुश्किल यह है कि इस कलियुग में गलत, झूठे मार्ग, साधन करने के बहुत हो जाते हैं। जिनमें साधक फंसकर अपना अमूल्य जीवन बर्बाद कर देता है। भगवान् का वचन है–''कुछ साधन न करो, केवल मेरा नाम जपो। कलियुग में केवल मेरे नाम से ही भवसागर पार हो जाता है। कहीं पर जाने की जरूरत नहीं। किसी समय की जरूरत नहीं, किसी अवस्था की जरूरत नहीं, किसी शुद्धि–अशुद्धि की जरुरत नहीं। जैसी भी हालत में है, कहीं पर भी बैठकर, मेरा नाम स्मरण करता रहे। 64 माला निसदिन करे तो मैं सुगमता व सरलता से साधक को मिल जाता हूँ। भूतकाल में मिला हूँ लेकिन मेरे नामनिष्ठ का संग प्राप्त होना भी बहुत

कठिन है जिससे कि साधक को नाम में पूर्ण श्रद्धा विश्वास बन सके। यह तो किसी सुकृतिशाली को ही भगवत् कृपा से मिलता है। फिर नामनिष्ठ पर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास होना भी बहुत जरूरी है। जब ही इसके आदेश को मानेगा।

नामनिष्ठ का आचरण देखकर ही पूर्ण श्रद्धा विश्वास हुआ करता है। ऐसे साधकों की कमी है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है :— कौरव। भगवान् श्रीकृष्ण के परिवार में ही रहते थे परन्तु कौरव ने श्रीकृष्ण को कभी भगवान् माना ही नहीं। एक साधारण ग्वाल, गायों का चरावाहा मानते रहे।

भगवत् कृपा बिना कोई भी, किसी सच्चे पथिक राहगीर को मान नहीं सकता। पांडवों पर भगवत कृपा थी तब ही पांडव भगवान् को जान सके कि यह तो परब्रहम् सृष्टि का रचैया परमात्मा है। तब ही अर्जुन ने भगवान् की सेना का बहिष्कार कर दिया और केवल श्रीकृष्ण को ही महाभारत युद्ध में अपना साथी चुन लिया जबकि भगवान् श्रीकृष्ण ने कह भी दिया था कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, केवल तेरा रथ हाकूँगा।

अर्जुन जानता था कि जहाँ साक्षात् भगवान् मेरे पास रहेंगे वहाँ हार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। शर्तिया जीत होगी ही। दुर्योधन अज्ञानी था, मूर्ख था, इसलिये उसने भगवान् की सेना लेना ठीक समझा।

पांडवों पर श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा बरसी। क्यों बरसी ? इसलिये बरसी कि कृपा को भरने हेतु शुद्ध पवित्र पात्र था हृदय। कौरवों पर अहैतुकी कृपा इसलिये नहीं बरसी कि कृपा को भरने हेतु शुद्ध पवित्र पात्र नहीं था। हृदय दूषित था। भगवान् तो अहैतुकी कृपा देने हेतु तैयार खड़े रहते हैं लेकिन कोई योग्य पात्र भी हो। भगवान् बेसमझ नहीं हैं। हम बेसमझ हैं, हम भगवत की अहैतुकी कृपा भरने हेतु योग्य पात्र नहीं हैं।

योग्य पात्र न होते हुये भी भगवान् ने तो हमें सच्चा, सरल,

सुगम सत्संग उपलब्ध करवा दिया। अब हम इस सत्संग का लाभ न उठावें तो इसमें भगवान् का क्या दोष है ? हम ही कर्मफूटे, दुर्भाग्यशाली हैं। अपनी आयु बेकार के कामों में बिता रहे हैं। अमृतमय अवसर खो रहे हैं। श्रीगुरुदेव गारंटी ले रहे हैं कि जो भी साधक 64 माला (एक लाख हरिनाम) निसदिन जपेगा उसका इसी जन्म में उद्धार होना सुनिश्चित है। जैसा कि **"इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति"** पुस्तक से 100 प्रतिशत सत्य है। श्रद्धा विश्वास से तो पत्थर भी बोलता है जैसा कि साक्षी गोपाल का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यदि तुम बोलते हो, तो चल भी सकते हो। भगवान् को भक्ति ने बांध लिया, चलना पड़ा। कथा लंबी है, बाद में बोल देंगे। कितने उदाहरण दिये जायें। माधवेन्द्रपुरी जी से भगवान् बोलते थे जो आज श्रीनाथ जी के नाम से भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। मदनमोहन करोली की महारानी की उंगली पकड़ ली थी। रुप गोस्वामी जी को जयपुर के राधा–गोविंद बोलते थे। सनातन गोस्वामी जी को, गोपाल भट्ट गोस्वामी जी को वृन्दावन में राधारमण भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। हरिदास जी के बांकेबिहारी जी वृन्दावन में भक्तों को दर्शन दे रहे हैं।

कहाँ तक गिनाया जाये, कोई अंत नहीं। अब भी भगवान् दर्शन दे रहे हैं लेकिन महात्मा गुप्त हैं। जो भगवान् के प्यारे हैं उन्हें उन महात्माओं के दर्शन होते रहते हैं।

1. वारि मथे घृतहोय बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।
2. हिमते अनल प्रगट बरु होई।
विमुख राम सुख पाव न कोई।।
3. अंधकार बरु रविहिं नसावे, राम विमुख न जीव सुख पावे।।
3. ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदान।
रामचरित सत कोटि में लिय महेश जिय जान।।

शास्त्रवचन–पानी को मथने से घी निकल जावे और मिट्टी से तेल निकल जावे परंतु बिना हरिभजन सुख नहीं मिलेगा, यह

बात पक्की है। बर्फ से आग प्रगट हो सकती है लेकिन भगवत् भजन बिना स्वप्न में भी सुख नहीं होगा। अंधकार सूर्य की रोशनी को मिटा सकता है लेकिन भगवत भजन के बिना जीव कभी सुखी नहीं रह सकता। शिवजी ने सौ करोड़ रामायण रची उनमें राम नाम निकालकर पार्वती को संग में बिठाकर जपते रहते हैं। नाम–भगवान् से भी बड़ा इनका नाम है। भगवान् ने तो कुछ को ही तारा परंतु इनके नाम ने अनगिनत तारे और तार रहे हैं। इति।

हरिबोल ! निताई गौर ! हरिबोल !



श्रीराधाकुण्ड श्रीराधारानी का ही स्वरूप है।

28

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
राजस्थान

उच्चारण एवं स्मरण

नराधम अनिरुद्धदास

मैंने श्रीगुरुदेव जी को उच्चारण तथा स्मरण को स्पष्ट करने हेतु बोला तो श्रीगुरुदेव जी ने बोला कि उच्चारण ऐसा होना चाहिये जिसमें भगवत् के चरणों में मन हो तो वहीं स्मरण की श्रेणी में आता है। उच्चारण से मन स्थिर रहता है। इसीलिये कीर्तन का प्रचार हुआ।

प्रत्यक्ष में प्रमाण की जरूरत नहीं रहती। कोई भी आज़माकर देख सकता है। हरिनाम जपने के लिये साधक को श्रीगुरुदेव द्वारा दी गई माला माँ है जो माया से रक्षा करती है, प्रसन्न रखती है और पालन करती है। माला एक ऐसा अमोघ हथियार है जो श्रीगुरुदेव ने शिष्य को सौंपा है जिसके द्वारा हम माया से लड़कर स्वतंत्रता उपलब्ध कर सकते हैं और दुःख सागर से पार हो सकते हैं।

माला हमारी मैया है हम इसका जितना आदर सत्कार करेंगे यह उतना ही कृष्ण–प्रेम हमें प्रदान करेगी। इस मैया का आदर सत्कार कैसे करना है ? माला को सदा झोली में रखो। इसमें 108 मणियाँ (Beads) और एक सुमेरु होता है। जब भी माला पर हरिनाम करने लगो तो सबसे पहले माला मैया को सिर से लगाकर प्रणाम करो। फिर हृदय से लगाओ और फिर इसके चरणों का चुंबन करो। जब साधक इस प्रकार भाव व श्रद्धापूर्वक हरिनाम करने के लिये झोली में हाथ डालेगा तो सुमेरू उसके हाथ में आ जावेगा जो इस बात का प्रमाण है कि माला मैया आप पर प्रसन्न

है। जब माला मैया आपसे प्रसन्न होगी तो आपको भगवान् के चरणकमल को उपलब्ध करा देगी अर्थात् भगवान् को मिला देगी। जब भगवान् ही आप को मिल गये तो फिर इस संसार में प्राप्त करने के लिये क्या बचा ? आपको तो सबकुछ ही मिल गया। इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है!

माला के 108 मोती (Beads) गोपियाँ हैं और सबसे बड़ा मोती सुमेरु अर्थात् श्रीकृष्ण हैं। जब आप प्रेम, श्रद्धा एवं भाव से माला करने लगोगे तो माला झोली (Beadbag) में हाथ डालने पर सुमेरू आपको ढूँढना नहीं पड़ेगा। वह स्वतः ही आपके हाथ में आ जायेगा। इस बात को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। यह परीक्षित तथ्य है। माला का आदर–सत्कार नहीं होने से सुमेरु हाथ में नहीं आयेगा अर्थात् भगवान् अदृश्य हो जायेंगे, सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। कई साधक शिकायत करते हैं कि हरिनाम में मन नहीं लगता। मन कैसे लगे ? जब तक माला मैया का आदर–सत्कार नहीं होगा, भाव से हरिनाम नहीं करोगे, मन लगेगा ही नहीं।

देखो ! मैं एक छोटे से गाँव का गंवार व्यक्ति हूँ। मैं धर्मग्रंथों को क्या जानूँ ! पर मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझ पर कृपा करके, मुझे अपनाकर यह सब बताया है। इसलिये इन पत्रों में जो कुछ भी लिखा जाता है, वह श्रीगुरुदेव जी की प्रेरणा से ही लिखा जाता है। इसमें मेरा कोई प्रयास नहीं है।

देखो ! माला हमारी माँ है। माला एक काठ या लकड़ी की वस्तु नहीं है। वह सजीव है, वह चिन्मय है। वह जड़ वस्तु नहीं है। माला माँ हमें अपनी गोद में लेकर हरिनाम नामक अमृत का दूध अपने स्तन से पिलाती रहती है। माला हमारे अनन्त जन्मों का, माया का विषय–वासना रुपी विष अमृतरूपी दूध में डुबोती रहती है। विषय रुपी विष दूध में डूबने से अदृश्य हो जाता है और हमें परमानंद का अनुभव होने लगता है।

जब साधक बिना भाव के, अनमने मन से, हरिनाम करेगा तो माला उलझ जायेगी । माला की झोली (Beadbag) माला मैया का

ओढ़ने का वस्त्र है इसलिये माला झोली को मैला (गंदा) नहीं होने देना। उसे धोते रहना चाहिये। कम से कम प्रत्येक पर्व पर तो माला झोली धोना आवश्यक है। यदि साधक माला झोली को साफ–सुथरा नहीं रखेगा तो यह माला का अनादर होगा। जब माला का निरादर होगा तो माला टूट जावेगी। जब ऐसा होने लगेगा तो भजन में हास हो जायेगा। यह निश्चित् बात है।

माला एक अति अमूल्य, दिव्य व चिन्मय वस्तु है। इसे यहाँ, वहाँ हर जगह रख देने से इसका निरादर होगा। माला को सदा ही साफ–सुथरी जगह रखो। पूजा के स्थान पर रखो या गले में डाल लो। माला झोली को कभी भी खूँटी पर नहीं टाँगना। माला माँ है, सजीव है। माला झोली को हाथ में लेकर किसी के पैर छूना माला का निरादर है। यदि ऐसा करना ही पड़े तो माला झोली को गले में डालकर, गर्दन के पीछे से घुमाकर, पीछे करके पैर छुआ जा सकता है या साष्टांग दण्डवत् प्रणाम् करना उचित है। माला पर हरिनाम करते हुये गंदे विचार मन में होना भी माला का निरादर है। जब मन में गंदे विचार आ रहे हों तो माला को किसी शुद्ध स्थान पर रख देना उचित है और जब मन में शुद्ध विचार आवें तब माला लेकर जप करना चाहिये।

अधिकतर साधक ऐसा समझते हैं कि जो कुछ भी मेरे द्वारा बोला जाता है वह मेरे द्वारा ही लिखा हुआ होता है। जो ऐसा समझ रहे हैं, वे जघन्य अपराध कर रहे हैं। कई साधक यह भी कहते हैं कि मैं एक बात को बार–बार दुहराता रहता हूँ। किसी भी बात को बारबार इसलिये दुहराया जाता है ताकि वह साधकों के मन में उतर जायें, घर कर जायें।

मेरे गुरुदेव जी, जो भी प्रेरणा करके लिखवाते हैं, वहीं मैं बोलता हूँ। जो प्रसंग चरमसीमा का होता है, उसे बार–बार इसलिये दोहराया जाता है ताकि वह साधकों के हृदय में बैठ जाये और उनका भगवान् में मन लग जाये। प्रत्येक रविवार को जो कार्यक्रम होता है, उसमें नई से नई चर्चा होती है, यह सब मेरे

श्रीगुरुदेव करवा रहे हैं। मैं तो अनभिज्ञ हूँ। मैंने न तो कभी सत्संग किया और न ही शास्त्रों को पढ़ा। मुझे कभी समय ही नहीं मिला। राजकार्य और बच्चों को पढ़ाने में ही समय बीत गया। मेरे जैसा गंवार क्या इतने पत्र लिख सकता है ? इसलिये मैं जो कुछ भी बोलता हूँ, वह सब मेरे श्रीगुरुदेव जी की ही वाणी है। जो इसके विपरीत समझता है, वह घोर अपराधी है। ऐसे साधकों का मन हरिनाम में लग ही नहीं सकता क्योंकि वह मेरे श्रीगुरुदेव के चरणों में अपराध कर रहा है। मैं सभी साधकों को सतर्क एवं सावधान करने के लिये आज यह बोल रहा हूँ। अतः सभी साधकगण सावधान हो जायें अन्यथा मेरे प्रवचन सुनना और आयोजन में आना केवलमात्र परिश्रम की श्रेणी में आवेगा। इससे कोई लाभ नहीं होगा।

मेरे श्रीगुरुदेव जो भी प्रसंग अंकित करवाते हैं वह केवल भगवान् को पकड़ने का ही करवाते हैं। भगवद्–लीला के प्रसंग बहुत कम अंकित करवाते हैं। जहाँ बहुत जरुरी होता है, वहीं पर भगवद्लीला का प्रसंग लिखना पड़ जाता है वरना सब चर्चाएँ मन को भगवान् में लगाने की होती हैं। यदि साधकगण यह सोचते हैं कि रविवार को होने वाला आयोजन अनिरुद्ध का (मेरा) ही है और मेरे श्रीगुरुदेव का नहीं है और आप इसे सुनना नहीं चाहते तो मैं इस आयोजन को बंद कर देता हूँ। पर इसका अपराध मुझे नहीं लगेगा। इसका अपराध आप साधकों को ही लगेगा। मुझे तो कोई भी लोभ नहीं है। मेरा काम तो श्रीगुरुदेव की आज्ञानुसार प्रचार करना है।

किस साधक का भजन सच्चा है ? निरपराध सच्चे भजन की कसौटी में वही साधक आता है जिसे भगवद्–प्रेम होने पर विरहावस्था उदय होगी। यदि विरहावस्था उदय नहीं हुई है तो समझना होगा कि साधक अभी तक माया में ही फंसा पड़ा है। वह भले ही अपने आप को बहुत बड़ा ज्ञानी समझे, पर उसके हाथ केवल परिश्रम ही लगेगा। भगवान् पांडित्य से नहीं मिलते। भगवान् मिलते हैं अन्तःकरण

के प्रेम से और वह प्रेम मिलता है–**"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि"** अर्थात् अपने आप को तृण (घास) के तिनके से भी अधिक विनम्र बनाकर, वृक्ष की तरह सहनशील बनकर, दूसरों को सम्मान देकर, भगवान् श्रीकृष्ण के नामों का कीर्तन करने से ही श्रीकृष्ण प्रेम हृदय में उदय होगा। जिस साधक में ये गुण उदय हो जायेंगे, वह हरिनाम को प्रेम से कर सकेगा अन्यथा तो उसका हरिनाम भार स्वरूप ही होता रहेगा। ऐसे साधक का जीवन बर्बाद है। यदि साधक में विनम्रता नहीं होगी तो उसमें अहंकार आ जायेगा और बड़प्पन का भाव उस पर हावी हो जायेगा।

यह बात एक बार फिर ध्यान से सुनने की कृपा करें। प्रेममयी विरह किस साधक का होता है ? यह उसी साधक का होता है जिसकी संसारी मोह ममता मूल सहित समाप्त हो गई हो। फिर वह प्रेममयी विरह चाहे भगवान् से हो, चाहे किसी इंसान से हो। सती का प्रेम अपने प्रवासी पति से होता है तथा भक्त का भगवान् से होता है। पुत्र का पिता से होता है और भातृ–भक्त का भ्राता से होता है। इतना ही नहीं देशभक्त का अपने देश से प्रेम होता है। भले ही जान चली जाये परंतु यह प्रेम मन से हटता नहीं। यह एक उच्चतम् "भाववृत" है। इसको वही महसूस कर सकता है जिसको इसका अनुभव है। साधारण साधक तो इसकी छाया भी छू नहीं सकता। जब यही प्रेम भगवान् से होता है तो साधक भगवद्धाम चला जाता है।

प्रेम तथा दुश्मनी एक ही पिता की संतान हैं। अतः पिता इन दोनों से ही समान रुप में प्रेम करता है। दुश्मनी भी उसके लिये प्रेम का प्रतीक है और प्रेम तो है ही। पूतना राक्षसी ने भगवान् श्रीकृष्ण को मारने के लिये उन्हें अपने स्तन से दूध पिलाया। उसके स्तन के ऊपर ज़हर लगा हुआ था। वह भगवान् को ज़हर वाला दूध पिलाकर मार देना चाहती थी। उसने भगवान् से शत्रुवत् व्यवहार किया। पर भगवान् ने उसे भी अपनी माँ का दर्जा देकर

अपने धाम भेज दिया। यह भगवान् की दयालुता है, उदारता है, करुणा है, कृपा है। कोई किसी भी भाव को लेकर उनके पास जाता है, वे उसका मंगल ही करते हैं। भगवान् कभी किसी का अमंगल नहीं किया करते।

जितने भी अच्छे या बुरे भाव हैं, सब भगवान् की सृष्टि से ही तो आते हैं। प्रेम, करुणा, दया, ईर्ष्या, द्वेष, गाली–गलौज सभी ब्रहमा जी की सृष्टि से ही तो उत्पन्न हुये हैं। ब्रह्माजी भी स्वयं भगवान् हैं पर नाम है ब्रह्मा। शिव भी भगवान् ही हैं। उन्होंने अपना नाम शिव रख लिया। इस सृष्टि में एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें भगवान् नहीं हैं या फिर जो भगवान् का अंश नहीं है। जो कुछ ही दृष्टिगोचर हो रहा है सबमें भगवान् हैं। कण–कण में भगवान् हैं पर यह बात भगवत्–कृपा बिना समझ में नहीं आती। साधारण साधक के लिये इसे समझना असंभव है।

एक साधारण सी बात है। एक शिशु जो बिल्कुल नासमझ है, अपने माँ–बाप को लकड़ी (डंडा) से मार देता है तो क्या माँ–बाप नाराज़ हो जाते हैं ? छोटा सा शिशु अपनी माँ की गोद में लेटा हुआ दूध पीते–पीते, को अपने छोटे–छोटे दाँतों से माँ के स्तन को काट देता है तो क्या माँ उसे थप्पड़ मारती है ? नहीं ना। जब एक साधारण माँ अपने बच्चे को इतना प्यार करती है तो भगवान् जो पूरे ब्रहमांड के माँ–बाप हैं, जो एक बहुत उच्चकोटि की माँ है, क्या उन्हें अपने बच्चे पर क्रोध आ सकता है ? स्वप्न में भी नहीं। राक्षस भी नासमझी (अज्ञानता) की श्रेणी में आते हैं। क्या भगवान् उनसे नाराज़ होते हैं ? भगवान् उन्हें मारकर अपने धाम में भेज देते हैं।

यह बहुत उच्च श्रेणी की चर्चा है। एक साधारण साधक इसे क्या समझेगा ! उसकी समझ में यह बात आयेगी भी नहीं। वह तो भगवान् की इन लीलाओं का उल्टा अर्थ निकालकर अपराधी बन जाता है। भगवत् कृष्ण बिना कोई भी इस भाव को नहीं समझ सकता।

भगवान् किसी को निमित्त बनाकर अपनी लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं। यदि वे सूर्पनखा की नाक नहीं काटते तो न तो रावण मरता और न ही विभीषण को लंका का राज उपलब्ध होता। बिना निमित्त बनाये भगवान् को भी लीला करने का अवसर नहीं मिलता। ऐसे ही भगवान् ने कंस का वध करके राक्षसों को मारा। राक्षस भगवान् से शत्रुभाव रखते थे अतः वे भगवान् श्रीकृष्ण को मारने आये तो क्या भगवान् ने उन्हें नरक में भेजा ? नहीं! भगवान् ने उन सबको अपने धाम में भेज दिया। भगवान् ने अपने भक्त प्रहलाद को निमित्त बनाकर हिरण्यकिश्यपु को मारा अन्यथा हिरण्यकिश्यपु का वध होता ही नहीं क्योंकि उसने तो ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके सारे वरदान प्राप्त कर लिये थे। यदि नृसिंह भगवान् नहीं आते तो हिरण्यकिश्यपु का वध होता ही नहीं। ऐसे अनेकों कारण हैं जिनसे भगवद्–लीलाओं का उद्‌गम होता है।

भगवान् इतने दयालु हैं कि जो कोई ईर्ष्या, द्वेष अथवा क्रोध से भी उनके पास जाता है, उन्हें पुकारता है वे उसे भी अपना धाम दे देते हैं। फिर जो प्रेमपूर्वक उनका नाम स्मरण करता है, उनके नामों का कीर्तन करता है, उसके भाग्य की सराहना कौन कर सकता है ? ऐसा सुकृतिशाली जीव भगवान् को अतिप्रिय होता है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने बोला था कि हर रोज़ रात को जब सोने लगो तो भगवान् से प्रार्थना करना–'हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आवे तो अंतिम सांस जब तन से निकलने लगे तो आप अपना नाम उच्चारण करा देना।'

इसी बात पर मेरे शिक्षागुरु श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज ने कहा कि शास्त्र का वचन है–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

अर्थात् स्मरण करना ही उचित है। उन्होंने यह भी कहा कि अपने नाम को उच्चारण करा देने की बात कही है। आपने स्मरण के लिये क्यों नहीं बोला ?

इस बात से श्रवणकारी भक्त असमंजस में पड़ गये और यह बात स्वाभाविक है। मेरे श्रीगुरुदेव जी ने उच्चारण करने के लिये क्यों बोला ? इस बात का समाधान करना परमावश्यक है।

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने कहा है कि स्मरण का मतलब है–मन से उच्चारण होना। मन से उच्चारण करना ही स्मरण की धारा में आता है। भरत जी ने उच्चारण किया है तो राम जी का स्मरण करके उच्चारण किया है। सीता जी ने उच्चारण किया है वह भी श्रीराम जी की लीला का स्मरण करके ही किया है। स्मरण तो उच्चारण से पहले ही हो जाता है। किसी भी काम के लिये पहले स्मरण होता है और बाद में उच्चारण होता है । उच्चारण के कई उदाहरण हैं । शास्त्र बोल रहा है –

जाना चाहिये गूढ़ गति जेउ। जीह नाम जप जानहि तेउ।।
जाको नाम लेत जगमाहीं। सकल अमंगल मूल नसाहिं।।
नाम जीह जप जागहिं जोगी। विरल विरंच प्रपंच वियोगी।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहिं नर ज्ञानी।।

देखो ! मैं तो एक छोटे से गांव का गंवार व्यक्ति हूँ और जैसे मेरे गुरुदेव ने कहा है मैं तो उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव समझा रहे हैं। ध्यान से सुनो। कबूतर हमेशा कबूतरों के झुंड में ही बैठेगा। वह कभी भी कौओं के झुंड में नहीं जाएगा। कौओं को कौओं के झुंड में ही जाकर शांति मिलेगी। वह कबूतरों के झुंड में नहीं जाएगा। इसी प्रकार गौ, गौओं के झुंड में ही जाकर बैठेगी। भैसों के झुंड में नहीं बैठेगी। निष्कर्ष यह निकलता है कि जीव अपनी जाति वालों के पास जाकर ही शांति प्राप्त करेगा अर्थात् सजातीय में ही खुश रहेगा। वह विजातियों में कभी सुखी नहीं रह सकता। जहाँ उसका मेल नहीं खायेगा, वह वहाँ जायेगा ही नहीं।

इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा की जाति में है। अतः जीवात्मा परमात्मा के पास ही बैठने से सुखी रह सकता है। पर यदि वह जीवात्मा माया के पास बैठेगा तो दुःख ही पायेगा क्योंकि माया

उसकी जाति में नहीं आती। अतः वह वहाँ सुखी कैसे रह सकता है ? परमात्मा का भजन करना ही उसके लिये परमावश्यक है। यह स्वभाव की ही बात है। शराबी हमेशा शराबियों के पास बैठेगा। जुआ खेलने वाला जुआरियों के पास जायेगा। स्मरण मन से होता है। उच्चारण मुख से होता है। श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि जो पुरुष भगवान् के नामों का उच्चारण करता है वह अपने आप को तथा समस्त श्रोताओं को तुरन्त तार देता है। यहाँ पर स्मरण शब्द नहीं कहा गया। उच्चारण कहा गया है। जब उच्चारण होता है तो स्मरण तो अपने आप ही हो जाता है। स्मरण के बाद ही उच्चारण होता है। स्मरण तथा उच्चारण एक–दूसरे के पूरक हैं। उच्चारण के संग स्मरण तो छाया की तरह संग में रहता है। श्रीमद्भागवत पुराण के नवें स्कंध में महाराज अंबरीष के प्रसंग में दुर्वासा ऋषि ने कहा है'' हे भगवान् ! आपके नाम उच्चारण करने से तो नारकी जीव भी मुक्त हो जाते हैं।'' यहां स्मरण शब्द नहीं बोला। उच्चारण में स्मरण मौजूद रहता है। यह विचार करने की बात है कि कोई भी कर्म करने का जब मन करता है तो सबसे पहले उसका स्मरण होता है, बाद में कुछ कर्म किया जाता है अर्थात् जीभ से बोला जाता है अर्थात् उच्चारण किया जाता है। स्मरण तथा उच्चारण में कोई अंतर नहीं है।

मैंने अपने श्रीगुरुदेव जी ने प्रार्थना की कि इसका सीधा सा, सरल जवाब क्या होगा? तो गुरुदेव जी ने बोला कि नाम की सिद्धि होने पर ही स्मरण हो सकता है। सबसे पहले, प्रथम में होता है वाचक जप जो जिह्वा से ही होता है। जब वाचक जप सिद्ध हो जाता है फिर जप होता है कंठ से, इसे उपांशु जप बोला जाता है। उसके बाद मानसिक जप होता है। मानसिक जप में स्मरण से ही जप होता रहता है। बाकी दोनों तरह का जप जिह्वा से ही होता है। मैंने जो रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करने की बात कही है कि अंतिम सांस में आपका नाम उच्चारण हो जाये, इसका आशय स्मरण से ही है। भगवान् तो भक्त के मन का भाव ही देखते

हैं। वे तो भावग्राही हैं इसमें उच्चारण तथा स्मरण एक ही बात है।

मानलो किसी की मौत दिन में तीन बजे होने वाली है और उसने बारह बजे भगवान् के नाम का उच्चारण कर लिया तो परमकरुणामय भगवान् तो उसी को अंतिम सांस का उच्चारण मान लेते हैं। मरने वाला अन्त समय में, अंतिम सांस के समय बेहोश हो जाता है। वह अपने बल से भगवान् के नाम का उच्चारण नहीं कर सकता पर भगवान् करुणा करके, अपने भक्त के अन्तःकरण से स्वयं का अपना नाम स्मरण करा देते हैं अर्थात् उच्चारण करा देते हैं। यह स्मरण ही उच्चारण के नाम से पुकारा जाता है।

भरत जी को तो स्मरण करना चाहिये था उन्होंने जीभ से राम नाम का उच्चारण क्यों किया ?

पुलक गात हिय सिय रघुवीरु।
जीह नाम जप लोचन नीरु।।

इसी तरह सीता जी को तो राम का स्मरण करना चाहिये था लेकिन सीता ने जीभ से उच्चारण किया है।

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्री राम ।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति श्री राम।।

रटना तो जीभ से ही होता है। मन से होता है स्मरण। अतः सीता जी ने मन से स्मरण न करके, जीभ से उच्चारण किया है। जब उच्चारण मन से होता है, तो यही स्मरण में आ जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने कीर्तन का प्रचार क्यों किया ? जीभ से उच्चारण करने पर ही कीर्तन होता है। यहाँ भी कीर्तन स्मरण से होना चाहिये था।

कहने का मतलब यही है कि भगवान् का नाम चाहे उच्चारण से हो या स्मरण से, उसमें कोई अंतर नहीं है। मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे उच्चारणपूर्वक नाम करने को क्यों कहा ? मेरे श्रीगुरुदेव जी ने स्पष्ट कहा है –"Chanting Harinam sweetly and listen by ear."

श्रीगुरुदेव जी ने स्मरण करने को क्यों नहीं बोला ? उच्चारण के लिये क्यों बोला ?

जब जिह्वा से हरिनाम करते–करते, नाम की सिद्धि हो जाती है, तब स्मरण होता है। तब नींद में भी स्मरण होता है। जाग्रत अवस्था में उच्चारण ही हुआ करता है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

यहाँ दो बार सुमर–सुमर आया है जिसका कारण है कि बार–बार नाम करते–करते नाम अन्तःकरण में रम जाता है तब स्वतः ही अंदर से स्मरण होता रहता है। सुषुप्ति अवस्था में भी स्मरण होता रहता है लेकिन शुरु–शुरु में जब भी कोई साधक/भक्त हरिनाम करता है तब जीभ से ही उच्चारण हुआ करता है।

सार बात यह है कि भगवान् तो भावग्राही हैं। वह तो मन का भाव ही लेते हैं। जब शास्त्र भी यहाँ तक बोल रहा है कि गिरते–पड़ते भी यदि मुख से नाम उच्चारण हो जाये तब भी जीव का मंगल हो जाता है और यदि कोई प्रेम–पूर्वक, जीभ से उच्चारण करके हरिनाम करेगा तो उसका मंगल होने में कोई कसर हो सकती है क्या ?

श्रवणकारियों का संदेह पूरा करने के लिये मुझे श्रीगुरुदेव जी से पूछना पड़ गया। इसमें निष्किंचन महाराज का कोई दोष नहीं है क्योंकि शास्त्र स्मरण के लिये बोल रहे हैं। मेरे शिक्षागुरुदेव, श्रीनिष्किंचन महाराज इसमें बुरा न मानें, मैंने इस बात को स्पष्ट करने के लिये ही श्रीगुरुदेव जी से प्रार्थना की थी ताकि श्रवणकारियों की हरिनाम में श्रद्धा की कमी न हो। वे असमंजस में न पड़ जायें। अतः मैंने साधकों को प्रेरणा की है कि वे अंतिम सांस में उच्चारण के लिये ही भगवान् से प्रार्थना करें।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद प्रार्थना सुन लीजिये।
दीन, हीन, मलीन पर, हे नाथ! करुणा कीजिये।

मौत जब आवे मेरी, तब नाथ अंतिम सांस में,
तेरा नाम उच्चारण करूँ, मुझे ऐसी शक्ति दीजिये।।

जो रात को सोते समय भगवान् से यह प्रार्थना करते हैं कि भगवान् उन्हें मृत्यु के समय निर्मलमति (अपनी स्मृति) प्रदान करते हैं और **'अन्ते मतिः सा गतिः'** के अनुसार ऐसे भक्त को निश्चय ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है और वह सदा–सदा के लिये जन्म–मृत्यु के बंधन से छूट जाता है। इसमें रत्ती मात्र भी संदेह नहीं।

– हरि बोल –



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

29

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी

08.02.2012

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हाथ जोड़कर, उत्तरोत्तर विरहावस्था बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

अधिक हरिनाम स्मरण नहीं करने हेतु भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं

मानव के उद्धार होने हेतु चारों युगों में ही हरिनाम स्मरण परमावश्यक है जैसा कि धर्मग्रन्थ बोल रहे हैंः–

क्रत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मख और जोग।
जो गति होय, सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

यदि किसी भक्तिमार्ग में त्रुटि हो भी जाती है तो भगवन्नाम से वह त्रुटि ठीक हो जाती है। देवर्षि नारद जी तथा धन्वन्तरि वैद्य जी, जो आयुर्वेद के, प्रवर्तक हैं, उन्होंने श्रीहरिनाम की महिमा गाई है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।
अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगा, सत्यं सत्यं वदामि अहम्।।

हे मानव ! तू भगवान् का नाम ले। तेरे अन्दर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जायेंगे। मैं सच बोल रहा हूँ।

अविश्रान्त नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभु स्थान नहीं पाय।।

कहते हैं कि निरन्तर नाम जपने से नामापराध होने का अवसर ही नहीं मिलता। इससे स्पष्ट हो गया कि नाम भगवान् को जितना अधिक जपा जाये उतना ही कम है। श्री हरिनाम चिन्तामणि ग्रन्थ,

जिसमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर जी ने भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम, हरे कृष्ण महामन्त्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जाप करने वाले नामाचार्य श्रील हरिनाम ठाकुरजी की हरिनाम पर विभिन्न पहलुओं पर दिव्य चर्चा का वर्णन किया है।

श्रीचैतन्य गौड़िय मठ, चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाशित इस ग्रंथ के पृष्ठ संख्या 209–210 पर लिखा है–

भक्त्युन्मुख जीव शुद्ध गुरुर कृपाय।
श्रीयुगल ब्रह्मनाम सौभाग्येते पाय।।
तुलसीमालाय नाम संख्या करि स्मरे।
अथवा कीर्त्तन करे परम आदरे।।
एक ग्रन्थ संख्या करि' आरम्भिवे नाम
क्रम तिन लक्ष स्मरि' पूरे मनस्काम।।

अर्थात् भक्ति के उन्मुख जीव, शुद्ध गुरु की कृपा से श्री श्री राधाकृष्ण जी के युगलमंत्र अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र को सौभाग्य से प्राप्त करते हैं तथा परम आदर के साथ, तुलसीमाला पर संख्यापूर्वक नाम स्मरण तथा कीर्त्तनादि करते हैं। एक ग्रन्थि अर्थात् 16 माला (लगभग 25,000 हरिनाम) से शुरू करके धीरे–धीरे तीन लाख हरिनाम का जप करना चाहिये, इससे मन की सभी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी तो यहां तक बोल रहे हैं कि खाते–पीते, सोते–जागते, सदैव हरिनाम करते रहो।

कीर्त्तनीय सदा हरिः

इससे तुम्हें इसी जन्म में भगवद्–दर्शन का लाभ उपलब्ध हो जायेगा। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। हमारे गुरुवर्गों ने दो–दो, तीन–तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन जपकर भगवान् से बातें की हैं। श्रीलमाधवेन्द्रपुरी जी के श्रीनाथ जी,

नाथद्वारा में विराजित हैं। श्रील रूपगोस्वामी जी के श्री श्रीराधा–गोविन्ददेव जी, जयपुर में विराजित हैं। श्री स्वामी हरिनाम जी के श्रीबाँकेबिहारी जी श्रीधाम वृन्दावन में विराज रहे हैं। ऐसे ही ठाकुर श्रीगोपीनाथ जी भी जयपुर में विराजित हैं। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी जी के शालग्राम ने अपने भक्त की इच्छा पूर्ण हेतु श्रीराधारमण जी का रूप धारण कर लिया था जो वृन्दावन में विराजित हैं।

कितने भक्तों के नाम गिनाये जायें। भारतवर्ष में ऐसे बहुत से श्री हरिनामनिष्ठ महात्मा हुये हैं जिन्होंने ठाकुर जी से बातें की हैं, उनको प्रगट किया है। ये कोई बहुत पुरानी बातें नहीं हैं। पिछले 500–600 सालों में ऐसे बहुत से नामनिष्ठ भक्त हुये हैं। जब पहले हुये नामनिष्ठों को भगवान् ने दर्शन दिये हैं तो क्या अब भगवान् नाराज़ हो गये हैं, जो दर्शन नहीं देंगे? आज भी बहुत से नामनिष्ठ महात्मा हैं जिनको ठाकुर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (छद्म) रूप में दर्शन दे रहे हैं। क्या आपको पता नहीं है कि भगवान् ने नरसी मेहता का भात भरा था ? साक्षी गोपाल के रूप में भगवान् स्वयं वृन्दावन से पैदल चल कर गये।

भगवान् ने अपने भक्तों के लिये क्या नहीं किया। लेकिन होना चाहिये सच्चा भक्त। इस्कान के संस्थापकाचार्य श्री ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी जी प्रभुपाद, जो नामनिष्ठ थे, उन्होंने वृन्दावन के श्रीराधादामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था जिसके कारण पूरे विश्व में श्रीहरिनाम का प्रचार हुआ। भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ और अब भी हो रहा है।

यह सब हरिनामनिष्ठों की ही करामात है। आज भी दुनियां भर में भक्तगण एक लाख या इससे भी अधिक हरिनाम प्रतिदिन करने में अग्रसर हो रहे हैं। इसी से वे भगवद्–प्रेम अवस्था (पंचम्–पुरुषार्थ) उपलब्ध कर रहे हैं और भगवत्–हेतु अश्रु–पुलक विरहावस्था प्राप्त की जा रही है।

नाम और नामी में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही हैं नाम भी भगवान् ही है। जो इन दोनों (नाम और नामी) में भेद समझता है, उसे प्रेमप्राप्ति में देर हो जायेगी।

श्री भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने भी सौ करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था जिस कारण आज सारा संसार गौड़ीय संप्रदाय में दीक्षित हो पाया है। मेरे श्रीलगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट परमपूज्यपाद ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी मेरे माध्यम से, जगह–जगह पर भक्तगणों से एक एक लाख या इससे भी अधिक हरिनाम नित्यप्रति करवा रहे हैं। हमारे देश में नहीं, विदेशों में भी, जहां–जहां –**"इसी जन्म में, भगवद्–प्राप्ति"** नामक पुस्तक पहुँची है, वहां वहां भक्तगण एक–एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करने में लग गये हैं। कई विदेशी भक्तों से फोन पर बात होती रहती हैं। उनके आग्रह पर इस पुस्तक का शीघ्र ही अंग्रेजी भाषा में अनुवाद होने जा रहा है। इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति का पाँचवा और अन्तिम भाग आपके हस्तकमलों में है और आप बड़े भाव से इसे पढ़ रहे हैं। जल्दी ही इस पुस्तकों को, इंटरनेट द्वारा सारे संसार में पहुँचाने का कार्य भी विचाराधीन है ताकि सारा विश्व श्रीहरिनाम में लग जाये, कृष्णमय, नाममय हो जाये,

वर्तमान सत्संग का आयोजन, मेरे श्रील गुरुदेव तथा ठाकुर जी द्वारा किया जा रहा है। इस आयोजन में, जो भी उपस्थित होगा, उसका सुनिश्चित् रूप से इसी जन्म में उद्धार होगा–ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव का वचन है। इस आयोजन में उपस्थित रहने वाले, बहुत से भक्तों का जीवन बदल गया है, उनके मन में बदलाव हुआ है और उन्हें सात्विक विकारों की उपलब्धि भी हो रही है।

श्रीलगौरकिशोर दास बाबा जी महाराज बिल्कुल अनपढ़ थे। वे नित्यप्रति तीन लाख हरिनाम करते थे और सभी धर्मग्रंथ उनके हृदय में जाग्रत थे। नाम बीज है, इसमें सभी शास्त्र मौजूद रहते

हैं। नाम जपने से सभी शास्त्र भक्त के हृदय में प्रकट हो जाते हैं। नाम जपना, बीज को बोना ही है जो जप द्वारा हृदय रूपी खड्डे में बोया जाता है। इसी से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। शास्त्र भी प्रकट हो जाते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त अर्जुन को कहा है कि जो अनन्यभाव से, निरन्तर मेरा नाम जप करते हैं मैं उन्हें बुद्धियोग दे देता हूँ **'ददामि बुद्धियोगं'** जिनके द्वारा वे मुझे प्राप्तकर लेते हैं।

कुछ साधकों को शंका है यदि एक लाख हरिनाम करना जरूरी है तो श्रील गुरुदेव अपने शिष्य को शुरू में ही 64 माला करने को क्यों नहीं कहते? हरिनाम की 16 माला करने को क्यों कहते हैं? प्रतिदिन हरिनाम की 64 माला करने का आदेश नहीं नहीं देते?

इस शंका का समाधान यह है, इसका उत्तर स्पष्ट है कि श्रील गुरुदेव शुरू–शुरू में अपने शिष्य को एक लाख हरिनाम यानि 64 माला करने का आदेश इसलिये नहीं देते क्योंकि शुरू–शुरू में शिष्य को 16 माला करना भी आफत लगता है। जब शिष्य 16 माला ही बड़े प्रेमपूर्वक नहीं जप सकता तो 64 माला जपने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। देखो! कोई भी व्यक्ति सीधा बी.ए. की कक्षा में नहीं बैठ सकता। उसे एल.के. जी (L.K.G.) से ही पढ़ाई शुरू करनी होती है तभी धीरे–धीरे, एक–एक करके वह बी.ए. की पढ़ाई तक पहुँच पाता है।

ऐसी भी शिकायत है कि हरिनाम स्पष्ट व शुद्धता से जपना चाहिये। यह उन शिष्यों के लिये है जिन्होंने अभी–अभी हरिनाम जपना शुरू किया है। पुराने शिष्यों को शुद्ध नाम जपना जरूरी नहीं है। अभ्यास हो जाने से, उनका हरिनाम तो अपने आप शुद्ध होने लग जाता है। श्रीहरिनाम चिन्तामणि ग्रंथ में लिखा है कि शुद्ध हो या अशुद्ध हो, नाम करने से नाम का प्रभाव होना शुरू हो जाता है क्योंकि भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम सदा ही मंगलमय है।

जब नाम की इतनी महिमा है तो कोई भी ज्यादा से नाम

जपने के लिये मना क्यों करेगा? नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी कभी यह नहीं कहेगा कि भगवान् का नाम अधिक लेना उचित नहीं है। हाँ, जिन लोगों का, स्वयं का अधिक हरिनाम नहीं होता या जो करना ही नहीं चाहते, वे ही दूसरों को अधिक हरिनाम जपने से रोकते हैं। वे कहते हैं कि आप इतना अधिक हरिनाम क्यों जपते रहते हो?

देखो ! यह कलियुग है। कलिकाल ने सबको भ्रमित कर दिया है। साधु–सन्त भी पैसे के पीछे दौड़ रहे हैं। वे भी पैसे को ही भगवान् मानते हैं। उनके यहां कांचन, कामिनी और प्रतिष्ठा का ही साम्राज्य फैला हुआ है जो कि माया का असली रूप है। ऐसे लोगों से भगवान् बहुत दूर हैं। उनसे तो वह गृहस्थी अच्छा है जो अपने परिवार का पालन करता है, साधु–सन्तों की सेवा करता है और घर में रहकर नाम भी जपता है। ऐसे गृहस्थी पर तो भगवान् भी प्रसन्न रहते हैं। इसलिये गृहस्थ जीवन सर्वोत्तम है। भूतकाल में बहुत से गृहस्थ भक्त हुये हैं जिनसे भगवान् बातें करते थे। गृहस्थ भक्त सदा ही सुरक्षित रहता है, किले में रहता है और वैरागी संत किले के बाहर रहता है, अतः असुरक्षित है। किसी भी समय वह माया का शिकार बन सकता है, माया की चपेट में आ सकता है।

यह कलिकाल बहुत खतरनाक है। चारों तरफ वाावरण दूषित हैं। गंदा–खाना, गंदा–सोचना। जिस तरफ भी नज़र जाती है, गन्दगी फैली नज़र आती है। ऐसे वातावरण में साधक का बचा रहना बहुत मुश्किल है। सच्चा सत्संग कहीं उपलब्ध होता नहीं है। सभी जगह कपटता है, धोखेबाजी है। सभी ओर दूषित हवा चल रही है। जो साधक को प्रभावित करती रहती है इस समय में यदि कोई उसको बचा सकता है, उसकी रक्षा कर सकता है–वह है केवल–हरिनाम। हरिनाम लेने वाले को कलिकाल की हवा छू भी नहीं सकती।

नाम जप से क्या नहीं हो सकता ! जानवरों को मारने वाला रत्नाकर, नाम जप कर बाल्मीक नाम से प्रसिद्ध हो गया। नाम के

प्रभाव से वह त्रिकालदर्शी बन गया और उसने भगवान् श्रीराम के जन्म से, हजारों साल पहले, रामायण की रचना कर दी थी। भगवान् श्रीराम का अवतार तो हजारों साल बाद में हुआ और जो उसने रामायण में लिखा था, वही सब घटा।

देवर्षि नारद हर समय, इकतारे से नारायण–नारायण गाते रहते है और हमेशा नाम की धुन में मस्त रहते हैं। भगवान् शिव जी ने सौ करोड़ रामायण रचकर, उनमें से केवल **'राम'** नाम निकाल कर नाम की महिमा का गुणगान किया। शिव जी हर समय पार्वती के साथ बैठकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। पाताल लोक में शेषनाग जी अपने हजारों मुखों से भगवत्–नाम जपते रहते हैं। भरत जी, नन्दग्राम में, कुटिया बनाकर, गौ माता को जौ खिलाकर और गौ के गोबर में, जो जौ निकलते थे, उनको चुनकर उनका दलिया बनाकर, उस दलिया को खाकर, सदा 'राम' नाम जपा करते थे। अशोकवाटिका में, श्रीसीता जी सदा 'राम' नाम जपा करती थीं। भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु हर समय माला पर भगवद्–नाम जपते थे और सबको संग में बिठाकर घण्टों हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्त्तन करने में मस्त रहते थे। (रंगीन चित्र देखें)

अनेकों उदाहरण हैं। कितने सन्तों का नाम बताया जाये! इनका कोई अन्त नहीं है, कोई पार नहीं है। इसलिये मेरी सबके चरणों में प्रार्थना है कि **यदि कोई आपको अधिक नाम जपने से रोकता है, मना करता है, आपको भ्रमित करता है, उसकी बातों पर ध्यान नहीं देना और जितना ज्यादा कर सको, हरिनाम करते रहना। चारों युगों में नाम का ही तो प्रताप है।**

मेरे श्रील गुरुदेव, सभी साधकों को फिर सतर्क कर रहे हैं कि वृन्दादेवी (तुलसी देवी) की सारी सुविधायें बनाकर, उसकी सेवा में नियुक्त हो जाओ तभी भक्ति महारानी का अमृत दूध पी सकोगे। एक आदमी भी अपने रहने की सुख–सुविधा ढूँढ़ता है और चाहता है कि उसके पास रहने की पूरी सुख–सुविधा होनी चाहिये। इसी प्रकार मूक तुलसी मैया भी पूरी सुख–सुविधा चाहती है। उसे सूर्य

की धूप लगानी चाहिये। सर्दी से बचने के लिये सर्दियों में पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। कभी भूलकर भी तुलसी के पत्तों को उबालना नहीं चाहिये। कीड़ों से बचाव के लिये तुलसी के पत्तों पर हल्दी पाऊडर बुरकना (छिड़कना) चाहिये। ज़हरीले कीटनाशक, जहरीला पाऊडर भी नहीं डालना चाहिए।

जब साधक तुलसी मैया का इतना ध्यान रखेगा तो उस पर गुरु–वैष्णव व भगवान् प्रसन्न रहेंगे और उसका मन हरिनाम में लगता रहेगा। जिस प्रकार तुलसी मैया की सेवा जरुरी है, ठीक उसी प्रकार माला मैया (जप माला) का आदर–सत्कार करना परमावश्यक है। यह माला मैया हमें हरिनाम का अमृत–सुधा का दूध अपने स्तन से पिलाती रहती है। समय–समय पर माला मैया की पोशाक को जिसे माला झोली या माला थैली (Bead bag) कहते हैं, धोते रहना चाहिये। जब भी हरिनाम करने के, माला थैली को हाथ में लो तो सबसे पहले उसे सिर से लगाओ। फिर हृदय से लगाओ और माला मैया के चरणों का चुंबन करो। इस तरह करने से, ज्योंहि हरिनाम शुरू करने के लिये, अपना हाथ माला झोली में डालोगे तो माला का सुमेरु यानि सबसे बड़ी मणि (श्रीकृष्ण) आपकी उंगलियों में आ जावेगा। आपको उसे तलाशना नहीं पड़ेगा। इसे कोई भी आज़माकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होतीं। माला मैया को इधर–उधर कहीं भी रखना अपराध है। माला निर्जीव वस्तु नहीं है, वह सजीव है यदि माला निर्जीव या जड़ होती तो क्या वह हमें माया से छुड़ा सकती? क्या वह भगवान् से मिला सकती? बहुत से साधक माला मैया को सूखी तुलसी के दोनोंसे बनी निर्जीव वस्तु समझते हैं। यह बहुत बड़ी कमी है, इसीलिये हरिनाम में मन नहीं लगता। साधकगणो ! यदि भगवान् को प्राप्त करना चाहते हो तो तुलसी महारानी की सुख–सुविधा का पूरा ध्यान रखो और माला मैया का आदर–सत्कार करो तो देखना, बड़ी सुगमता व सरलता से भगवान् आपसे मिलने आ जायेंगे।

देखो ! भक्त कभी भी भगवान् के पास नहीं जाता। भगवान् स्वयं अपने भक्त को दर्शन देने आते हैं। भगवान् एक प्राण, दो देह धारण करके, श्री श्रीराधागोविन्द का अवतार धारण करके, लीला करते हैं ताकि साधकगण, उन लीलाओं का चिन्तन कर, दुःख सागर संसार से अपना पिंड छुड़ा सकें। भगवान् की ओर से कभी भी कमी नहीं रहती, कमी सदैव भक्त की ओर से रहती है। भगवान् तो असीम दयानिधि स्वभाव के हैं और अपने पुत्र को गोद में लेना चाहते हैं। अब पुत्र ही उनकी गोद में जाना नहीं चाहे तो भगवान् क्या करें !

– हरि बोल –



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

30

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

बंगलौर
20.01.2012

प्रेमास्पद वैष्णवगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहावस्था बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

कारण शरीर ही जन्म–मरण का कारण है

कारण शरीर ही जन्म–मरण का कारण है तथा इसी से उर्ध्वगति भी उपलब्ध होती है। शरीर तीन प्रकार के हुआ करते हैं– स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर। स्थूल शरीर पंचतत्व से निर्मित होता है। सूक्ष्म शरीर दस इन्द्रियों तथा मन का शरीर होता है। कारण शरीर मन के स्वभाव अनुसार होता है। जीव भी इसी शरीर से गठित होता है। जीव उसे कहते हैं जो स्वयं को न जाने, माया को न जाने तथा जो भगवान् को न जाने। जो स्वयं को जान जाये। यह जान जाये कि इस जीवन में क्या करना है तथा यह माया ही जन्म–मरण का कारण है और भगवान् का भजन करना ही सर्वोत्तम है, उसे जीवात्मा कहते हैं। इसमें बुद्धितत्व रहता है।

आज का विषय बड़ा गहन है, ध्यान देने पर समझ आवेगा। चौरासी 84 लाख योनियों में अस्सी 80 लाख योनियाँ हैं–थलचर, नभचर और जलचरों की। चार लाख योनियाँ मानव की हैं। अस्सी 80 लाख योनियों में केवल खाना, पीना तथा विषय भोग करना ही जीवन का उद्देश्य है। इन योनियों में बुद्धितत्व सुषुप्ति अवस्था में रहता है। इन योनियों में बुद्धितत्व तो रहता है पर योनियों के प्राणी यह नहीं जानते कि उनका मंगल किस कर्म से हो सकता है। इन योनियों के जीव, जो योनि उन्हें उनके कर्मानुसार उपलब्ध होती है, उसी में मस्त रहते हैं। भले ही वह निकृष्ट योनि में हो फिर भी वे

जीवित रहना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। इन योनियों में एक जीव ही दूसरे जीवों को खा–खाकर अपना पेट भरता है इसलिये कहावत भी है–''जीवो जीवस्य भोजनम्''। ऐसे जीवों को जीवात्मा की संज्ञा नहीं दी गई है। उन्हें केवल जीव की संज्ञा दी गई है। ये जीव सूँघकर और छूकर किसी वस्तु के होने का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

अब शेष रह गई चार लाख मनुष्यों की योनियाँ जो उन्हें उनके कर्मानुसार ही उपलब्ध होती हैं। इनमें भी अधिकतर जीव की संज्ञा में ही आते हैं क्योंकि इनको भी यह सच्चा ज्ञान नहीं होता कि हमारा मंगल किस काम में है और हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? ऐसे मानव का कर्म क्या है? इनका कर्म है–खाना, पीना और मौज उड़ाना। इनकी तो बस पेट की ज्वाला शान्त रहनी चाहिए, उसी में ये खुश रहते हैं। ये भगवान् को नहीं जानते।

जो मानव यह जान लेता है कि मेरा खास कर्म, जिसके लिये मुझे यह–मनुष्य जन्म मिला है, भगवत् स्मरण है, वह सभी काम भगवान् का समझ कर करेगा तथा सभी प्राणियों में भगवान् का दर्शन करेगा। वह जानता है कि भगवान् सभी में विराजमान हैं और इन सबका हित करना मेरा मंगलदायक कर्म है। जिस मानव की वृत्ति ऐसी हो जाती है, हो गई है, उसे जीवात्मा की संज्ञा दी गई है क्योंकि ऐसे जीव का नाता आत्मा से जुड़ गया। पर ऐसा मानव बहुत कम मिलता है। अरबों–खरबों में कोई एक ऐसा ज्ञानी होता है जो केवल भगवान् की तरफ मुड़ा हुआ होता है अन्यथा सभी माया के बँधन में फँसे रहते हैं।

तपस्वियों तथा योगियों के सिद्धान्त के अनुसार, इस शरीर में तीन नाड़ियों0 में प्राण गमन करता है। ये नाड़ियाँ हैं–

1–इडा, 2–पिंगला तथा 3–सुषुम्ना।

जब मन वासनाओं में रहता है तब इड़ा–पिंगला में प्राण गमन करता है। जब मन रजोगुण तथा तमोगुण के स्वभाव में रमन

करता है तब भी इंड़ा–पिंगला में प्राण गमन करता है। उस स्थिति में मन आलसी, निद्रा अवस्था में, अभक्ष्य भक्षण में रहता है। वह सोचता है कि मैंने इतना कमा लिया और भविष्य में इतना कमा लूंगा। उस शत्रु को जीत लूंगा–इत्यादि दुर्भावनाएं उसके मन में प्रकट हो जायेंगी अच्छाई का तो नामो–निशान भी उसके पास नहीं रहेगा।

इडा–पिंगला का प्राण शरीर के दायें–बायें बगल से गमन करता है। सुषम्ना का प्राण नाभि से, सिर–शिखा ब्रह्मरन्ध्र तक बीच में से गमन करता है। नासाछिद्र से रेचक–पूरक (कुम्भक) परिणामों के अनुसार, दोनों एक ही धारा से चलते हैं। इड़ा–पिंगला नाड़ी में, दोनों नासाछिद्र परिणाम अलग–अलग धारा से प्रवाहित होते रहते हैं।

जब मन एकाग्रता में आता है तो प्राण सुषुम्ना से प्रवाहित होने लगता है और इसमें मन आनन्दानुभव महसूस करता है। जब प्राण इंड़ा–पिंगला में गमन करता है तब मन अशांति का अनुभव करता है।

इन चौरासी लाख योनियों में, मनुष्यों की चार लाख योनियाँ भिन्न–भिन्न जातियों की होती हैं। इनमें बुद्धितत्व तथा ज्ञानवर्धक स्थिति रहती है इसीलिये इसे जीवात्मा की संज्ञा का दर्जा दिया जाता है। बाकी अस्सी लाख योनियों में बुद्धितत्व सोया रहता है। इन योनियों में खाना, पीना तथा मैथुन में रत रहना ही आता है। ज्ञान संज्ञा न होने से इनको पाप नहीं लगता।

भगवान् ने आदिकाल में मानव को जन्म दिया। तब मानव का अन्तःकरण स्वच्छ एवं निर्मल था पर संग के प्रभाव से धीरे–धीरे उसका मन अशुद्ध होता गया और उस पर (सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) का आवरण चढ़ता गया। तब भगवान् ने इन गुणों के कर्मानुसार, भोग भोगने के लिये उसे चौरासी लाख योनियों में डाल दिया।

जब भी कभी, संयोगवश, जीवात्मा को मनुष्य योनि उपलब्ध हुई और इसका संग भगवान् को जानने वाले किसी साधु से हो गया और संयोगवश उससे साधु सेवा बन गई तो वह भगवान् की नजर में आ गया। बस, उसी क्षण उसका मंगलविधान हो गया। साधु से भगवान् का पारिवारिक संबंध रहता है। साधु भगवान् का निजमन होता है । जो साधु से प्यार का संबन्ध कर लेता है, उससे नाता जोड़ लेता है तो भगवान् उसे अपना लेते हैं और ऐसी जीवात्मा का माया से पिण्ड छूट जाता है।

जिस स्थान पर साधु विराजता है, उस स्थान पर, सुकृतिवश बहुत से मानव, उसका संग करने से अपने जीवन के उद्‌देश्य को जानकर, भक्ति में संलग्न हो जाते हैं। विदेशों में साधु के अभाव के कारण कोई भी मानव भगवान् को जानता ही नहीं है। उनके लिये खाना, पीना और मौज़ उड़ाना ही आनन्द का स्त्रोत है लेकिन वहां पर भी दुःखों का कोई पारावार नहीं क्योंकि विषयों में तो विष भरा है। फिर सुख की हवा भी कैसे महसूस हो सकती है?

सच्चा सुख तो भगवान् के चरणों में ही है, भगवत् नाम में है, साधु–संग में है। जहाँ सुख का नामोनिशान ही नहीं है, वहां सुख कैसे उपलब्ध होगा? यही तो विदेशों का अज्ञान है, अंधेरा है। अंधेरे में टक्कर खाते रहो। टक्कर खाने में सुख कहाँ?

भारत की संस्कृति ही सुखदायक है जो अब नष्ट होती जा रही है। भारतीय भी विदेशी संस्कृति अपनाते जा रहे हैं। देसी भाषा बोलने में शर्माते हैं और विदेशी भाषा बोलने में अपना, गौरव समझते हैं। बोलचाल का ढंग, पहनावा सब बदलता जा रहा है। सभी का आदर–सत्कार करना, सेवा करना–इस भावना का लोप होता जा रहा है। स्वच्छ, मर्यादाएं समाप्त होती जा रही हैं। पाठशालाओं में केवल धन कमाने की शिक्षा दी जा रही है। धार्मिक शिक्षाओं का तो नामोनिशान भी नहीं है। शिशुओं पर आरम्भ में ही अंग्रेजी थोपी जा रही है।

धार्मिक शिक्षाओं के अभाव में, भारत में स्वप्न में भी शान्ति होने

वाली नहीं है। हर ठौर अशान्ति का वातावरण होता जा रहा है एवं भविष्य में भी होगा ही। परिवार में शान्ति नहीं, समाज में शान्ति नहीं, गाँव में, शहर में शांति नहीं। देश में शान्ति नहीं, दुनियाँ में शान्ति नहीं। सभी जगह हाय–हाय का तूफान दसों दिशाओं में छा रहा है। सारा संसार पैसे के पीछे दौड़ रहा है। पैसे में शान्ति कहाँ? पैसा तो अशान्ति का भण्डार है इसमें केवल ऐशो–आराम से जीवन काटना हो सकता है पर सच्चा–सुख, सच्चा ऐशो–आराम तो भगवत्–नाम में है जिस नाम का यहां अस्तित्व भी नहीं है। शान्ति ज्ञान में नहीं है, शान्ति तो भगवद्–ध्यान में है। पूरी दुनियां में एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में नाश के उपकरण तैयार किये जा रहे हैं जो कभी स्वयं पर ही घातक सिद्ध होंगे। वर्तमान समय के इन आविष्कारों ने पूरी दुनियां के मौसमों में बदलाव ला दिया। जहां बरसात कम होती थी, वहां बेशुमार बरसात होती है और जहां बरसात अधिक होती थी, वहां पर सूखा पड़ा रहता है, वहां अकाल पड़ रहा है। घने–जंगल उज़ाड़ में बदल रहे हैं, जंगली जानवर समाप्त होते जा रहे हैं। बहुत से जंगली जानवरों की तो नस्ल ही खत्म हो चुकी है। गिद्ध, कौवे आदि कहीं–कहीं ही नज़र आते हैं। जगह–जगह भूकम्प आते रहते हैं। कहीं–कहीं सुनामी आकर शहरों को नष्ट कर रहा है। सूर्य–चन्द्र ग्रहण बार–बार होते रहते हैं। इनका बार–बार होना भविष्य में अशुभ का सूचक है।

यह सब ही कलियुग का प्रभाव है। सभी के हृदय में स्वार्थ समा गया है। प्रेम तो नाममात्र का ही रह गया है। चारों तरफ नास्तिकवाद की हवा फैलती जा रही है। धर्म का लोप होता जा रहा है। धर्म के नाम पर पैसे की लूट हो रही है। जिनको सच्चे संत माना जा रहा था या माने जा रहे हैं, उनमें कपट ही कपट नजर आ रहा है। इनकी पोल सामने आ रही है। यही कारण है कि साधु के प्रति मानव की श्रद्धा और विश्वास ही उठता जा रहा है। जो धर्म का उपदेश करते रहते हैं उनके अन्तःकरण में पैसे की हवा

चल रही है। ऐसे में श्रोताओं पर उनका प्रभाव कैसे हो सकता है? ये सब श्रोताओं को धोखा दे रहे हैं। कलि महाराज के प्रभाव से सच्चाई तो बहुत कम है (धोखेबाज) अधिक हैं। शास्त्रीय मर्यादाएं समाप्त होती जा रही हैं। सारे संसार में महिलाओं का आधिपत्य छा रहा है, पारिवारिक संबंध टूटते जा रहे हैं। जाति–पाति धीरे–धीरे समाप्त हो गई है जिससे संसार में वर्ण शंकरता फैल रही है। कबूतरी की शादी कोवे से हो रही है इसीलिये तो आपस में बनती नहीं है क्योंकि दोनों का स्वभाव भिन्न–भिन्न है। ऐसे में आपस में प्रेम से रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। पहले समय में लड़के और लड़की की जन्मपत्री मिलान की जाती थी। यदि जन्मपत्री मेल नहीं खाती थी तो संबंध नहीं होता था।

आज तो प्यार हो जाना चाहिये, जाति भले कोई भी हो। यही कारण है कि अन्त में तलाक (सम्बन्ध–विच्छेद) की नौबत आ जाती है। जब खून ही आपस में मेल नहीं खाता तो आपस में प्रेम निभाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कहने का आशय यही है कि भविष्य बड़ा दुखदायी होगा। इसका खास कारण है कलि महाराज का समय–यह कलियुग का समय है। इस समय में जो भगवत् की शरण में रहेगा, वही सुखी रह सकेगा अर्थात् जो नित्यप्रति हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र–हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।) की चौंसठ 64 माला करता रहेगा उसका तो दुःख से पाला ही नहीं होगा। नाम भगवान् उसकी हर प्रकार से रक्षा करता रहेगा। जो भगवत् नाम से दूर रहेगा वह माया की चक्की में पिसता रहेगा। वर्तमान में भी सुखी वही है जो हरिनाम की शरण में है। भगवत्–नाम की शरण लेने को माया की थोड़ी–बहुत हवा तो लगती रहेगी परन्तु ऊपर से निकल जायेगी।

बहुत से साधक बोला करते हैं कि हम भगवान् के भक्त हैं, हम भगवान् की शरण में हैं पर हमारा मन हरिनाम में लगता नहीं। जब मैं उनसे पूछता हूँ कि भगवान् के लिये क्या उन्हें शिशु की

तरह रोना आता है जोकि शरणागति का प्रत्यक्ष लक्षण है तो कहते हैं कि नहीं, ऐसा तो नहीं होता। कारण स्पष्ट है, स्थिति प्रत्यक्ष सामने है कि अभी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब तक मन संसार से लगाव रखता है तो पूर्ण शरणागति कैसे होगी? यदि मन संसार से हटा नहीं, भगवान् के लिये रोना आया नहीं तो समझ लो अभी अन्तःकरण की शरणागति में कमी है। हम भगवान् के भक्त हैं, हम उनकी शरण में हैं–ऐसा सोचना केवल भ्रम है, ब्रह्म है।

देखो ! मौत का कोई भरोसा नहीं है, मौत कभी भी, किसी भी समय अचानक आ सकती है–प्रत्येक क्षण ऐसा विचार करते रहना चाहिये। फिर वर्तमान जैसा उत्तम अवसर भविष्य में उपलब्ध होगा नहीं।

"हे मन ! चारों ओर की चिन्ता छोड़कर, अब तो पूर्णरूप से अपने भगवान् के चरणों में लग जा। इस संसार में कोई भी अपना नहीं है, भगवान् ही अपना है वही अहैतुकी कृपा करने वाला है। तेरा इस संसार में अपना कुछ भी नहीं है। तुझे जो कुछ भी मिला है भगवत् की कृपा से ही मिला है। इस संसार में, खाली हाथ आया था और खाली हाथ जावेगा। यहां तक कि तू अपना शरीर तक भी साथ नहीं ले जा सकता। भविष्य में ऐसा मानव जन्म तुझे हस्तगत होगा नहीं। पूरी जिन्दगी में तुमने कोई शुभ कर्म किया नहीं। अब तेरे हाथ में अमूल्य हीरा आ गया है, हरिनाम का यह अमूल्य हीरा तुझे प्राप्त हो गया है, इसे अपने ह्रदय से चिपकाकर इसकी शरण में हो जा। जितना जीवन बाकी बचा है, उसमें संसार से नाता तोड़ ले और हरिनाम रूपी इस अमूल्य हीरे को हर क्षण हर पल अपने ह्रदय से लगाकर रख। हर क्षण हरिनाम कर।"

उक्त विचारों को बार–बार दुहराते रहने से निश्चित रूप से संसार से वैराग्य हो जाता है और सरलता से, स्वतः ही भगवत्–शरणागति उदय हो जाती है। देखो ! संसार का मोह–ममता ही हमारा दुश्मन बना हुआ है, यही हमें भगवान् के पास जाने से

रोकता है। यही माया की फंसावट है। जिस क्षण माया की यह फंसावट समाप्त हो जायेगी उसी क्षण भगवान् से मिलना हो जायेगा। उसी क्षण भगवान् के लिये छटपट शुरू हो जायेगी। खाना, पीना, सोना हराम हो जायेगा। बस, हृदय से मन को समझाना है यह मन ही पूरी रुकावट कर रहा है। इसलिये तो मन अंधेरे में भटक रहा है, इसीलिये टक्कर पर टक्कर खाता रहता है। इसको उजाला चाहिये जो विचार करने पर ही मिलेगा। इति।

– *हरिबोल* –



प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि! कुरुक्षेत्र–मिलित–
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयो संगमसुखम्।
तथाप्यन्तः खेलन्मधुरमुरली–पंचम–जुषे–
मनो मे कालिन्दी पुलिन विपिनाय स्पृहयति।।

कुरुक्षेत्र में श्रीश्यामसुन्दर के साथ चिर मिलन के बाद श्रीराधाजी अपनी एक सहचरी से कह रही हैं–हे सहचरि! यह वही वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण हैं, जिनसे मैं कुरुक्षेत्र में मिली हूँ, मैं भी वही राधा हूँ। दोनों का यह संगम–सुख भी वही है तथापि जहां क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण अपनी मधुर मुरली पंचम स्वर में बजाते थे, यमुना–पुलिन अवस्थित उसी वृन्दावन के लिये ही मेरा मन व्याकुल हो रहा है।

31

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
18–2–2012

परम प्रेमास्पद भक्तगण,

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्–विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् भक्तों से थर-थर काँपते हैं



भगवान् भक्तों से थर–थर काँपते हैं तथा कष्टों से छुड़ाते हैं। मेरे श्री गुरुदेव बोल रहे है कि जिन भगवान् से काल–महाकाल भी थर–थर काँपता रहता है, वही भगवान् भक्तों की प्रेम पराकाष्ठा होने से थर–थर काँपते हैं। भगवत्–लीला को कोई भी समझ नहीं सकता। शिव, ब्रह्मा तक भी लीलाओं को समझने में सक्षम नहीं हैं

लेकिन भगवान् का शुद्ध भक्त, भगवत्–लीलाओं को कुछ–कुछ समझने की सामर्थ्य रखता है।

एक दिन कन्हैया ने ब्रज की रज (मिट्टी) खा ली और बलदाऊ भैया ने यशोदा मैया के पास जाकर शिकायत कर दी कि आज तो कान्हा ने ब्रज की मिट्टी खाई है– ''तेरे कान्हा ने माटी खाई, यशोदा, सुन माई।'' हे मैया, मिट्टी खाने से उसके पेट में कीड़े पड़ जावेंगे।

अब तो मैया को गुस्सा आ गया और वह छड़ी लेकर कान्हा के पास आईं। यशोदा ने कान्हा को कान से पकड़कर पूछा–'अरे लाला ! तूने मिट्टी क्यों खाई है। आज तो मैं इस डण्डे से तुझे मारूँगी।'

माँ यशोदा का गुस्सा देखकर और हाथ में छड़ी को देखकर कान्हा थर–थर काँपने लगा। उसकी आंखों से आँसू निकल पड़े और डर के कारण पेशाब भी। कान्हा ने थर–थर कांपते हुये और आँखों के आंसू पोंछते हुये कहा–''मैया ! मैंने मिट्टी नहीं खाई।''

मैया ने कहा–''लाला ! झूठ बोलता है। चल, अपना मुँह खोल कर दिखा।''

कन्हैया ने अपना मुख खोलकर दिखाया तो मैया को उसके मुख में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के दर्शन होने लगे। मैया आश्चर्यचकित होकर देखती रह गई और चकरा गई। वह सोचने लगी कि मैं यह सब क्या देख रही हूँ। क्या मैं कोई सपना देख रही हूँ? क्या माया ने मुझे भ्रम में डाल दिया है या यह मेरी आँखों का ही दोष है?

माँ की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। फिर जब कन्हैया ने अपनी माया हटा ली तब मैया उसे फिर डांट रही है और कह रही है कि मिट्टी खाने से तेरे पेट में कीड़े पड़ जायेंगे इसलिये अब कभी भी मिट्टी नहीं खाना वरना मैं तुम्हें पीटूँगी।

अब तो कान्हा को थोड़ा सांस आया। माँ का गुस्सा कम हो गया था। कन्हैया ने कहा–''मैया ! मुझे नन्दबाबा की सौगन्ध! बलदाऊ भैया की सौगन्ध है! अब मैं कभी भी मिट्टी नहीं खाऊँगा।''

जब कन्हैया ने इस प्रकार सौगन्ध खाई तो यशोदा को उस पर दया आ गई और मैया ने कन्हैया को गोद में लेकर प्यार किया और उसकी आँखों से टपकते आँसूओं को पोंछा। कन्हैया भी मैया से लिपट गया।

कन्हैया ने ब्रज रज क्यों खाई?

ब्रजरज खाने की इस लीला के माध्यम से कन्हैया यह बताना चाहते थे कि **ब्रज की वह रज जिस पर मेरे भक्तों के चरण पड़े हैं, मुझे बहुत प्रिय है। इस रज को खाने से मन–निर्मल हो जायेगा, स्वच्छ हो जायेगा और मन में प्रेम उदय हो जायेगा।**

मुक्ति कहे गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय।
ब्रजरज उड़ मस्तक लगे, मुक्ति मुक्त ह्वै जाये।

भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रज अतिप्रिय है और ये तीन चीज़ें तो भगवान् को बहुत प्रिय हैं–वेणु, रेणु और धेनु अर्थात् बाँसुरी, ब्रज की रज और ब्रज की गाय भगवान् श्रीकृष्ण का प्राणधन है।

जय श्री राधे



ऊखल–बन्धन

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
23–2–2012

परम प्रेमास्पद भक्त शिरोमणिगण,

नराधम, अधमाधम, दासनुदास, अनिरुद्धदास का आप सबके चरणकमलों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवत्–विरहावस्था उत्तरोत्तर, चरम सीमा तक बढ़ने की प्रार्थना स्वीकार हो।

चौरासी लाख योनियों के बीजों की अवर्णनीय, मार्मिक रहस्यात्मक एवं कथनमय चर्चा

भगवान् का भी अकेले का मन नहीं लगता। यदि ऐसा होता तो भगवान् अनन्तकोटि अखिल ब्राह्माण्डों की सृष्टियों का सृजन क्यों करता जिनमें चौरासी लाख योनियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस सृष्टियों में तीन प्रकार के जीवों की सृष्टि का निर्माण हुआ। ये हैं–नभचर, (आकाश में उड़ने वाले), जलचर (जल में रहने वाले) तथा थलचर (पृथ्वी पर रहने वाले) उस भगवान् ने मानव की सृष्टि की। उसे अपने जैसा बनाया और वह भगवान् को सबसे अधिक पसंद भी आया। मानव बुद्धि प्रधान है। अन्य तीन प्रकार की सृष्टियों में सोच–विचार करने की कमी रहती है। इनका जीवन खाने, पीने तथा विषय भोग करने में ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य को छोड़कर, दूसरी योनियों के जीव यह नहीं जानते कि क्या कर्म करने से उन्हें सुख मिल सकता है। मैं कौन हूँ ? भगवान् कौन हैं? भगवान् की माया क्या है? क्या करने से मुझे सुख मिल सकता है? इन सब बातों का ज्ञान उन्हें नहीं रहता। इसीलिये इनको जीव की संज्ञा दी गई है। इस कलियुग के अधिकतर मानव भी इनमें आ जाते हैं पर सत्‌युग, त्रेतायुग तथा द्वापर युग में मनुष्यों में से अधिकतर जीवात्माओं की संज्ञा में आते हैं। इन्हें सुख उपलब्ध करने का ज्ञान होता है। ये शुभ–अशुभ कर्मों के ज्ञाता होते हैं।

चौरासी लाख योनियों के बीज–भी भिन्न–भिन्न होते हैं। मच्छर, मक्खी में बीज, पशु–पक्षियों के बीज से भिन्न होता है। जिस प्रकार किसान यदि जमीन रूपी गर्भ में जौ रूपी बीज डालेगा तो उससे जौ के पौधे का शरीर ही उपलब्ध करेगा। चावल का बीज डालेगा तो चावल का शरीर उपलब्ध करेगा। मानव से मानव ही जन्म लेगा। पेड़ से पेड़ ही जन्म लेगा। कबूतर से कबूतर ही प्रगट होगा लेकिन इसमें आश्चर्य यह है कि ये बीज तब ही फलीभूत होंगे जब इन बीजों के शरीर में भगवान् आत्मरूप में विराजित होंगे। यदि भगवान् इनमें आत्मा रूप में विराजित नहीं होंगे तो इन बीजों का कोई भी महत्व नहीं होगा।

यह समस्त बीज मानव के कर्मानुसार ही प्रगट हो सकेंगे। इनका उद्गम स्थान मानव का कर्म ही है। इसी कारण भगवान् ने सबसे पहले, ब्रह्मा जी के रूप में अपने जैसा मानव प्रगट किया। सृष्टि के सबसे पहले पुरुष, ब्रह्मा जी से ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ, प्रागट्य हुआ। समस्त सृष्टि का बाण ब्रह्मा ही है। सबसे पहले ब्रह्मा जी ने जो सृष्टि प्रगट की वह भगवत्–स्मरण के बिना की। यह सृष्टि चूंकि भगवत्–नाम स्मरण के बिना उत्पन्न हुई थी अतः बुरे स्वभाव की प्रगट हुई और ब्रह्मा जी को ही दुःख देने लगी। उन्हें ही खाने के लिये उनकी ओर दौड़ने लगी।

ठीक यही सब कुछ इस समय हो रहा है। मनुष्य बिना सोचे–समझे, इन्द्रियों की तृप्ति में रत हैं और भगवत् भजन के बिना, जो सृष्टि (संतान) की उत्पत्ति कर रहा है, वह संतान माँ–बाप को ही दुखी कर रही है। माँ–बाप को ही नहीं, आस–पड़ौस को भी सताती रहती है।

भगवत्–माया की तीन शक्तियाँ मानव को सताती रहती हैं। ये तीन शक्तियाँ–सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण हैं जिनसे यह सारा संसार ओत–प्रोत है। मानव का कर्म ही इन गुणों को प्रकट करता है और इन कर्मों द्वारा ही चौरासी लाख योनियों का प्रागट्य होता है। दुःख का असली कारण यही है। मानव जिस तरह के

संग में रहता है उसका मन वैसे ही संग को ग्रहण करता रहेगा। कलिकाल में अधिकत्तर वातावरण दूषित है अतः संग भी दूषित मिलता है। दूषित संग में सुख मात्र नाममात्र का है। सुख भासता है, है नहीं। जो है सब दिखावटी है। सच्चा सुख तो भगवद्–नाम स्मरण में है इसलिये हर समय हरिनाम करते रहना चाहिये। इसी जीवन का यही सार है, यही उद्देश्य है।

– हरिबोल –



जय राधामाधव जय कुँजबिहारी।
जय गोपीजनवल्लभ जय गिरिवरधारी।।
यशोदानन्दन, ब्रजजनरंजन यमुना तीर वनचारी।।

33

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणिगण,

साधक, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

अवलम्बन ही सार है

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि भगवत्–भक्तों की एक ही शिकायत है कि उनका मन हरिनाम में बिल्कुल ही नहीं लगता। ऐसे में वे मन को एकाग्र कैसे करें? कृपा करके, हरिनाम करने में मन लग जाये, ऐसा कोई उपाय बतावें ! श्रीगुरुदेव सभी साधकों को बड़ा सरल व सुगम तरीका बता रहे हैं। साधकगण ध्यानपूर्वक सुनें।

बिना सहारा अर्थात् बिना आसरा अर्थात् बिना अवलंबन संसार का कोई भी काम नहीं हो सकता। प्रत्येक चर–अचर प्राणी को किसी ने किसी का अवलम्बन होना परमावश्यक रहता है। जिस प्रकार पेड़–पौधों को पृथ्वी का अवलम्बन होता है। शिशु को माँ–बाप का, नारी को नर का, विद्यार्थी को शिक्षक का, शिष्य को श्री गुरुदेव का अर्थात् सभी को किसी न किसी का अवलम्बन बहुत जरूरी है।

इसी प्रकार मन को भी अवलम्बन चाहिये। अवलम्बन के बिना मन कभी भी, किसी भी दशा में टिक नहीं सकता। मन बड़े चंचल स्वभाव का है और एक क्षण के लिये भी एक स्थान पर रह नहीं सकता। अभी भारत के किसी स्थान पर है तो अगले पल में अमेरिका में भाग जायेगा। अमेरिका तो इस पृथ्वी का ही एक कोना है। मन तो स्वर्गलोक, चन्द्रलोक तथा सूर्यलोक में भाग जायेगा। जिस साधक ने मन को काबू में कर लिया, वही सबसे बड़ा विजयी

है। मानव सबको अपने वश में करने की कोशिश में लगा रहता है पर मन एक पल के लिये भी वश में नहीं रहता। केवल भ्रम है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन ही दुःख का कारण है और मन ही सुख का कारण है। मन ही जन्म–मरण से छुड़ा सकता है और मन ही आवागमन में घुमा सकता है।

अब प्रश्न होता है कि इस चंचल मन को कैसे वश में किया जाये? देखो ! इस मन को एक पल के लिये भी खाली मत रहने दो। इसे एक क्षण को भी फुर्सत मत दो। यदि मन ठाला (खाली) रहेगा तो वह प्राणी को आपत्ति में डाल देगा।

एक आदमी ने एक प्रेत अर्थात् भूत को काबू में कर लिया। भूत ने उसे बोला कि यदि तूने मुझे किसी काम पर नहीं लगाया तो मैं तुझे खा जाऊँगा। अब तो वह आदमी उस भूत को जो भी काम देता, भूत तुरन्त उसे करके आ जावे और कहे कि मैं अब क्या करूँ। जब सभी कामों का अन्त हो गया तो उस आदमी पर बड़ी विपत्ति आ गई। किसी ने बताया कि इस मुसीबत से बचने का उपाय तो कोई संत ही बता सकता है। उसके पास जाकर पूछ।

वह आदमी एक संत के पास गया और जाकर अपनी विपत्ति बताई तो संत बोला कि अपने घर के आँगन में एक लंबा बांस गाड़ दो और जब प्रेत बोले कि काम बताओ तो उसे कहना कि इस बांस पर उतरते–चढ़ते रहो। इस तरह उस प्रेत को चढ़ने–उतरने से कभी फुर्सत ही नहीं मिलेगी और तेरा काम बन जायेगा। तू प्रेत से बच जायेगा। उस आदमी ने संत की बात मान ली और ऐसा ही उपाय किया। आखिर प्रेत ने उस आदमी से हार मान ली और वश में हो गया।

कहने का मतलब यही है कि हमारा यह मन ही प्रेत है जो इसको फुर्सत में रखता है तो मन उसको बरबाद कर देता है इसलिये इस मन को कभी भी ठाला (खाली) मत छोड़ो। इस मन को दिन–रात हरिनाम में लगाये रखो। यही उपाय एक वृत्ति का बांस है जो अपने तन के हृदय रूपी चौंक में गड़ा हुआ है। यदि

मन इस हरिनाम रूपी बांस पर उतरता–चढ़ता रहेगा तो मन को और कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिलेगा और हरिनाम में लगाने पर, यह मन मानव को सुख सागर में तैराता रहेगा। फिर माया उसे छूएगी ही नहीं। उसका मार्ग ही बदल जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने कैसा सरल व सुगम मार्ग साधकों को बताया है।

अब मन के हरिनाम को भी अवलम्बन चाहिये वरना हरिनाम जपते हुये भी मन स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकेगा। जब हरिनाम जपने के लिये माला हाथ में पकड़ो तो सबसे पहले, माला मैया को सिर से लगाओ, फिर हृदय से लगाओ तथा माला मैया के चरणों का चुम्बन करो। इसी प्रकार करने से, झोली में हाथ डालते ही, माला मैया सुमेरु भगवान् को साधक की उगंलियों में पकड़ा देगी। अब माला मैया की मणियों, जो गोपियों का प्रतीक है, पर जप करना शुरु कर दो। अब **जब हरिनाम करना शुरू करो तो सबसे पहले अपने श्रीगुरुदेव जी के चरणों में बैठ जाओ और चिन्तन करो कि मेरे गुरुदेव मेरे हरिनाम को सुन रहे हैं। मेरे गुरुदेव के चरणों से एक ज्योति निकल कर**, मुझे अवलोकित कर रही हैं, सराबोर कर रही है। इस प्रकार मन को एक अवलम्बन मिल गया। अब मन इसी उधेड़बुन में चिपका रहेगा। दूसरा चिन्तन उसका होगा ही नहीं। इसी प्रकार हर रोज़ का नियम बना लो कि सबसे पहली आठ माला मन को एकाग्र करके इसी प्रकार बैठकर श्रीगुरुदेव के चरणकमलों में बैठकर करनी हैं। ऐसा अभ्यास करने पर मन स्वतः ही हरिनाम में लग जायेगा। यह है गीतानुसार–अभ्यास की कसौटी।

उसी प्रकार आठ माला श्री श्री राधाकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते हुये करो। फिर गौर–निताई के चरणों में बैठकर करो। किसी भी संत के चरणों में बैठकर करें। ऐसा अभ्यास करने से मन शत–प्रतिशत रुकता रहेगा। जब मन स्थिरता प्राप्त कर लेगा तो उस मन में हरिनाम रूपी बीज द्वारा सभी धर्मशास्त्र के वचन हृदय में प्रगट हो जायेंगे।

भगवत् नाम ही सभी धर्मग्रन्थों का बीज है। स्मरण रूपी जल से सींचने पर, धर्मग्रन्थों के सार तत्व हृदय रूपी जमीन में अंकुरित हो जायेंगे। धीरे–धीरे यही साधन भगवत्–मिलन हेतु छटपट की अंकुरता उपलब्ध करवा देगा और संसारी आसक्ति छुड़ाकर, वैराग्य प्रगट कर देगा। बस! अब तो पंचम पुरुषार्थ प्रेम प्रगट हो जायेगा और विरहामयी अवस्था साधक के हृदय को झकझोरना आरंभ कर देगी। बस भगवान् का मन, यहीं पर भगवान् के चरणों में चला जायेगा। यह मन भगवान् का दिया हुआ है, मनुष्य ने बेहक से, इसे ले रखा है। वह मन जो अब तक माया के चंगुल में रहता था अब भगवान् के हस्तकमल में रहेगा।

यही है अवलम्बन का सार तत्व जो मेरे श्रीगुरुदेव ने सूक्ष्म रूप से साधकों को बताया है। इस मार्ग को अपनाकर साधकगण अपने भजन–पथ में अग्रसर होते रहेंगे तो सुख ही सुख है, आनन्द ही आनन्द है। दुःख की जड़ ही कट गई। मैंने सुना है कि कई लोग कहते हैं कि सोलह माला से अधिक नाम जपने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो ऐसा बोलते हैं, वे अपराध करते हैं। भगवत्–नाम तो जितना अधिक लिया जाये उतना ही कम है। नाम के विरोधी बोलते हैं कि नामाचार्य श्रीहरिनाम ठाकुर तो ब्रह्मा जी के अवतार थे अतः वे तीन लाख हरिनाम कर सकते थे पर साधारण मानव तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति नहीं कर सकता। यह आम आदमी के शक्ति के बाहर है। ऐसा कहना बिल्कुल ग़लत है और दूसरों को भ्रमित करना है। ऐसा कहना भी जघन्य अपराध है।

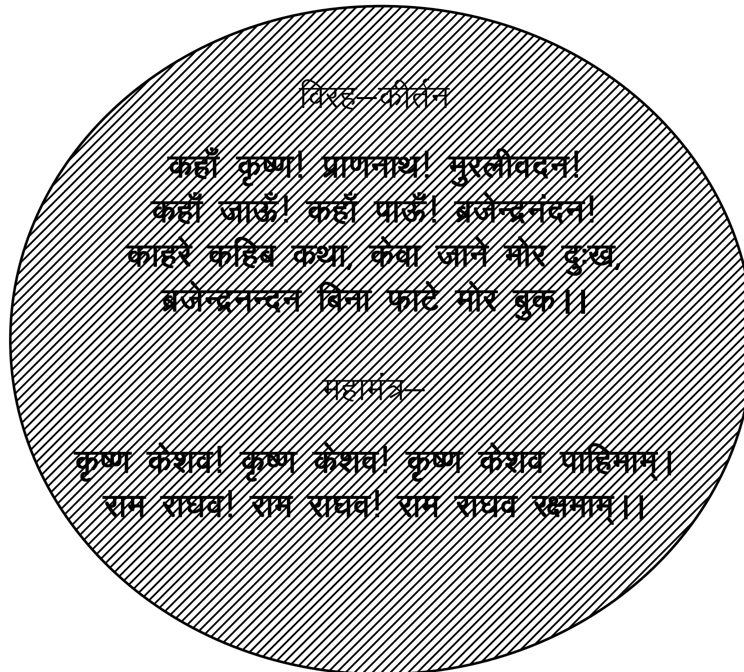
हमारे सभी गुरुवर्गों ने तीन–तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति किया है और कई आज भी कर रहे हैं। श्रीगौरहरि और श्रीहरिदास के मध्य, हरिनाम पर हुई चर्चा में स्पष्ट लिखा है कि सोलह माला करने के बाद तीन लाख नाम तक पहुँचना चाहिये (श्रीहरिनाम चिन्तामणि पृष्ठ संख्या–210)।

नारद जी हर समय हरिनाम का कीर्त्तन करते रहते हैं। धन्वन्तरि वैध ने कहा है कि हरिनाम सभी प्रकार के रोगों को नष्ट

कर देता है।

कितने उदाहरण है। नाम तो कैसे भी लिया जाये, सुख में डुबा देगा, कल्याण कर देगा। बेमन से जपा हुआ नाम भी जन्म मरण से छुड़ाकर, वैकुण्ठवास करा देगा। हरिनाम का जाप ही भगवत्–दर्शन का प्रतीक है। भगवान् से नज़दीक कोई नहीं है और भगवान् से दूर भी कोई नहीं है। जो भगवान् को नहीं ध्याता, भगवान् उससे बहुत दूर हैं और जो हरिनाम जपता है, भगवान् उसके बहुत नज़दीक हैं। केवल भाव की ही भ्रान्ति है। भाव की भ्रान्ति होने से ही भगवत्–विरहाग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती। केवल एक बाल का ही अन्तर है। भगवान् तो दर्शन दे रहे हैं, तुम्हें नज़र नहीं आ रहे, इसमें केवल भाव की अदृश्यता है।

– हरि बोल –



34

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
9–3–2012

प्रेमास्पद भक्तगण शिरोमणि

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

समस्त धर्म ग्रन्थों का सार केवल हरिनाम

सभी धर्मग्रंथ भगवान् की सांस से निकले हैं। उनके धर्म ग्रन्थों में जो भी लिखा है, सार रूप में वह हरिनाम का ही महत्व दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के तौर पर, जैसे दूध को जामन देकर जमाया जाता है। फिर उसे मथनी द्वारा मथा जाता है। उस मंथन से मक्खन निकाला जाता है। यह मक्खन ही सारतत्व है। इस मक्खन को खाने से शरीर पुष्ट होता है।

ठीक इसी प्रकार धर्मग्रन्थों का पठन पाठन करने, साररूप में हरिनाम रूपी सारतत्व उपलब्ध किया जाता है। यह हरिनाम ही आत्मा का ख़ास भोजन है। जो भी मानव इसका उपभोग करता है, वह परमात्मा स्वरूप में बदल जाता है। वह संसारी दुखों से छूटकर, हमेशा के लिये स्वन्त्रता उपलब्ध कर लेता है। अखिल लोक ब्रह्माण्डों में, भगवत्–प्राप्ति का इससे बड़ा व सरल साधन कोई नहीं है जिससे मानव को सर्वोत्तम उपलब्धि हो सके। सभी धर्मशास्त्र इस बात के साक्षी हैं। सार रूप में मेरे श्रीगुरुदेव ने तीन प्रार्थनाएं बताई हैं। साधकों के मन में पूर्ण–श्रद्धा व विश्वास जमाने हेतु श्रील गुरुदेव बता रहे हैं, सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुनकर, अपनों हृदयों में बिठा लो ताकि आवागमन रूपी गर्भाशय के दारुण कष्ट से मुक्ति मिल सके। आवागमन का यह कष्ट चींटी से लेकर हाथी तक सभी को सहन करना पड़ता है। हरिनाम हेतु श्रीमद्भागवत पुराण क्या बोलता है?

हे परीक्षित! यह कलियुग दोषों का भण्डार है, ख़जाना है पर इसमें एक महान गुण यह है कि श्रीकृष्ण नामों का कीर्त्तन करने मात्र से मानव परमपद को प्राप्त कर लेते हैं।

विष्णुपुराण क्या बोल रहा है? ध्यान से सुनो !

सत्ययुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में अर्चन–पूजन से साधक जिस फल को प्राप्त करता है, वही फल वह कलियुग में केवल भगवत्–नाम जपकर प्राप्त कर लेता है।

नारद पुराण क्या बोल रहा है?

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नाम मम जीवनम्।
क्लौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

अर्थात् श्रीहरिनाम, हरिनाम और हरिनाम ही मेरा जीवन है। कलियुग में इसके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है। कलियुग में भगवत्–प्राप्ति का दूसरा कोई साधन है ही नहीं। हर वक्त हरिनाम करते रहना ही नारद जी का परमध्येय है

''नरेश्वर ! मनुष्यों में वे ही सौभाग्यशाली तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं जो कलियुग में स्वयं हरिनाम स्मरण करते हैं और दूसरों को हरिनाम में लगाते रहते हैं–यह स्कन्दपुराण की उक्ति है।

''घोर कलियुग में जो मानव हरिनाम का जप करता है, वही कृतकृत्य है। कलि उन्हें बाधा नहीं देता। जो हरिनाम का जप करता है, वही सुखी है अन्य सभी कलि की चक्की में पिस रहे हैं।''

वामनपुराण

भगवान् स्वयं बोल रहे हैं–''जो कलियुग में मेरे नाम का जप करता है, वही धन्य है, वही कृतार्थ है, उन्होंने ही पुण्य कर्म किये हैं तथा उन्होंने ही जन्म व जीवन का योग्य फल पाया है। इस कलियुग में इस दुर्लभ हरिनाम का जो एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वे कृतार्थ हैं। इसमें किंचितमात्र भी संशय नहीं है।''

गरुड़ पुराण क्या बोल रहा है?

''कलियुग के लोग प्रज्ज्वलित पापाग्नि से भय न करें क्योंकि गोविन्द नाम रूपी मेघ–समूहों के जल बिन्दुओं से वह नष्ट हो जाती है। यदि कोई विवश होकर भी भगवत्–नाम का उच्चारण करता है, उसके समस्त पाप ठीक उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाते हैं जैसे सिंह की दहाड़ से सभी हिसंक पशु शिकार छोड़कर भाग जाते हैं।''

वामन पुराण बोल रहा है–

''इसी पृथ्वी पर हरिनाम नायक एक नर को प्रसिद्ध चोर बताया गया है जिसका नाम कानों के रास्ते, अन्दर जाने पर, अनेक जन्मों की कमाई हुयी पाप राशि को चुरा लेता है।''

स्कन्द पुराण बोल रहा है–

मानव भक्तिभाव या बिना भक्तिभाव के भी, यदि भगवत्–नाम उच्चारण कर ले तो यह नाम समस्त पापों को उसी तरह दग्ध कर देता है जैसे युगान्तकाल में प्रज्ज्वलित हुई प्रलयाग्नि सारे जगत् को जला डालती है। इस पृथ्वी पर कोई भी भगवत्–नाम लेने से प्रसिद्ध हो जाता है और उसके द्वारा नाम का उच्चारण करने पर पापों के सहस्त्रों टुकड़े हो जाते हैं। जैसे–असावधानी से छुई हुई आग अंग को जला डालती है उसी प्रकार यदि हरिनाम को होंठ भी छूलें तो पापों को जलाकर भस्म कर देते हैं।

पद्म पुराण बोल रहा है–

''जैसे अनिच्छा से भी छू लेने पर आग जला डालती है उसी प्रकार किसी भी बहाने से भगवत्–नाम मुख से निकल जाये तो समस्त पाप भस्मीभूत हो जाते हैं''

''अमित तेजस्वी भगवत्–नाम के उच्चारण करने पर समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाते हैं, जैसे–दिन निकल जाने पर अंधकार विलीन हो जाता है। संकेत, परिहास, स्तोभ में अनादरपूर्वक लिया हुआ भगवत्–नाम भी समस्त पापों को जलाकर ख़ाक कर देता है।''

''जाने–अनजाने में भी, किसी के मुख से भगवत्–नाम निकल जाये तो उसका दसो–दिशाओं में कल्याण हो जाता है।''

बृहद–पुराण बोल रहा है–

''भगवत्–नाम में पाप नाश करने की इतनी अपार शक्ति है कि मानव उतना पाप जिन्दगी भर में कर ही नहीं सकता।''

बृहद–विष्णुपुराण बोल रहा है–

''भगवत्–नाम में जितनी शक्ति विद्यमान है उतने पाप कुकुरभोजी चांडाल भी नहीं कर सकता।''

श्री धन्वन्तरि जी का कथन है–

अच्युत अनन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

भगवत्–नाम एक अमर औषधि है जिसको जपने से, मानव के अन्दर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अन्दर के रोग यानि काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार तथा राग–द्वेष इत्यादि और बाहर के यानि शरीर के समस्त रोग–दुःख दर्द इत्यादि, सभी नष्ट हो जाते है। यह मैं सच–सच कह रहा हूँ। इसलिये हे मानव ! मेरा नाम जप ! मेरा नाम ले।''

''हे साम्ब ! व्याधिजनक दुःख स्वतः छूटने योग्य नहीं हैं। इन्हें दूसरी औषधियों द्वारा भी दूर नहीं किया जा सकता परन्तु हरिनाम रुपी औषधि का पान करने से समस्त व्याधियों का निवारण हो जाता है। इसमें किंचितमात्र भी संशय नहीं है।''

''भगवान् के नाम–संकीर्त्तन से सम्पूर्ण व्याधियाँ (मानसिक चिंतायें और शारीरिक कष्ट) तत्काल नष्ट हो जाती हैं पूर्वजन्मों के संस्कार भी जलकर भस्म हो जाते हैं और वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाती है।

''जो मायामय व्याधि से आच्छादित तथा राजरोग से पीड़ित है वह मानव भगवत्–नाम करने से निर्भय हो जाता है। श्रीहरि के

नाम का बारंबार उच्चारण समस्त रोगों को नष्ट करने वाला तथा सारे उपद्रवों का नाशक और सम्पूर्ण अरिष्टों को शान्त करने वाला है।'' (विष्णु पुराण)

नाम की महिमा कहाँ तक कहें ! नाम की महिमा अनन्त है, अपार है। अभी कुछ समय पहले की एक प्रत्यक्ष घटना है। चण्डीगढ़ से, श्रीमान कक्कड़ जी, सैक्टर–22 में रहते हैं। वे रिटायर्ड बैंक मैनेज़र हैं। लगभग दो साल पहले उनको कई शारीरिक रोग बहुत सता रहे थे। वे बहुत परेशान थे। अचानक उनको हृदय रोग ने भी आ घेरा। सभी टेस्ट करवाये गये। डाक्टरों ने कहा कि दोनों वाल्व पूरी तरह खराब हो चुके हैं। यदि शीघ्र ही आपरेशन नहीं किया गया तो कुछ भी हो सकता है। आपरेशन में कई लाख रुपयों का खर्चा होना था और फिर भी जीवन बचेगा, इसकी भी कोई गारंटी नहीं थी। श्रीमान कक्कड़ जी बहुत परेशान थे।

श्रीकक्कड़ जी की मुझमें बहुत श्रद्धा है और मेरे वचनों पर विश्वास भी है। उन्होंने मुझे फोन करके सारी व्यथा बताई और इस गंभीर समस्या का उपाय पूछा। मैंने उन्होंने सलाह दी कि आपरेशन मत करावो और जितना हो सके, ज्यादा से ज्यादा हरिनाम मन लगाकर करोगे तो आपरेशन नहीं कराना पड़ेगा। वे जानते हैं कि मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त है।

फिर क्या? मरता क्या न करता? कक्कड़ जी ने दिन–रात एक करके श्रद्धा और प्रेम के साथ, उच्चारण सहित हरिनाम करना आरंभ किया। कुछ ही महीनों में, वे पूर्णरूप से स्वस्थ हो गये। उनका सारा कष्ट, सारे दुःख–दर्द, तकलीफें जानें कहां लुप्त हो गईं।

यह बहुत बड़ा चमत्कार था। भगवत्–नाम से क्या नहीं हो सकता। डाक्टर भी हैरान रह गये कि बिना आपरेशन के कैसे वे ठीक हो गये।

यह हरिनाम की अलौकिक शक्ति है पर जो हरिनाम पर पूर्ण श्रद्धा करेगा, वही सुकृतिशाली है। जो सुकृतिशाली नहीं होगा उसके मुख से हरिनाम उच्चारण होगा ही नहीं। सुकृतिशाली होने के लिये भगवान् के किसी प्यारे साधु की सेवा परमावश्यक है। भगवान् कहते हैं–

मन, क्रम, वचन, कपट तजि, जो करे संतन सेव।
मो समेत, विरंचि शिव, वश ताके सब देव।।
पुण्य एक जग में नहीं दूजा।
मन, क्रम, वचन साधु पद–पूजा।
सानुकूल तिन पर मुनिदेवा।
जो तजि कपट करहिं भक्त–सेवा।।

''जो मानव उक्त प्रकार से भगवत्–प्रेमी साधु की सेवा करता है, वह सुकृतिशाली बन जाता है। भगवत्–कृपा उस पर स्वतः ही आ जाती है।

मैंने जो श्रीकक्कड़ जी के बारे में वर्णन किया है, यह हरिनाम का प्रत्यक्ष चमत्कार है। ऐसे बहुत सारे चमत्कार हुये हैं और हो रहे हैं। कुछ लिख रहा हूँ। भक्तगण हरिनाम की अद्भुत महिमा को अनुभव करने की कृपा करें।

एक भक्त महिला मेरे पास आकर बोली कि मेरा पति मुझे हरिनाम करते देखकर बहुत गुस्सा होता है और मेरी माला छीन कर दूर फेंक देता है। मैं मन्दिर जाती हूँ तो भी नाराज़ होता है। मैं क्या करूँ?

मैंने उन भक्त महिला से कहा–''माताजी ! आप जितनी माला जपते हो, उससे दूनी (दो गुणा) जपा करो आप का पति आपके अनुकूल हो जायेगा।''

उस महिला की मुझ पर पूर्ण श्रद्धा थी और मेरे वचनों में विश्वास भी। उसने उसी दिन से हरिनाम की माला की गिनती दो गुनी कर दी। भगवान् तो अन्तर्यामी है। वे जान गये कि यह बेचारी, अपने पति को अनुकूल करने हेतु मेरा नाम जप रही है।

भगवान् तो प्रत्येक जीव के अन्दर आत्मा रूप से विराजमान रहते ही हैं। उसके पति के हृदय में भी विराजमान हैं। भगवान् ने कुछ ही दिनों उसके पति का मन बदल कर उसके अनुकूल कर दिया। इतना ही नहीं, वह अपनी पत्नि से बोला–''मुझे भी एक माला लाकर दे। मैं भी हरिनाम किया करूँगा।''

कहने का मतलब है कि हरिनाम की शक्ति अमोघ है पर हमें विश्वास ही नहीं होता। भगवान् का नाम असंभव को भी संभव बना देता है। नाम में सच्ची निष्ठा हो, फिर कोई भी काम असफल होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मेरा पोता निमाई जिसने लगभग 20 बार नौकरी के लिये इम्तहान दिया। अच्छे नंबरों में पास भी हुआ पर इंटरव्यू में रह जाता। वह बेचारा बहुत परेशान हो गया था और मेरे पास आकर कहने लगा–''बाबू जी ! मेरी तो इंजीनियर की पढ़ाई ही बेकार गई। इतना पैसा भी खर्च किया। मैं क्या करूँ?''

निमाई की मुझ पर पूर्ण श्रद्धा है। वह हरिनाम भी करता है। मैंने उसे कहा–''बेटा ! चिन्ता मत कर। मेरी बात सुन। जितनी माला तू करता है, उससे दुगुनी कर और हरिनाम को कान से सुन। तेरी नौकरी अवश्य लग जायेगी।

निमाई ने ऐसा ही किया। फिर क्या था। अब तो इसकी चार जगह नौकरी लग गई। अब तो निमाई की हरिनाम में पूर्ण श्रद्धा हो गई। कहा जाता है कि भगवान् से कुछ भी मांगना नहीं चाहिये। बात तो ठीक है पर नये साधक की श्रद्धा तब ही बनेगी जब उसकी मांग पूरी होगी। बिना कामना तो संसार चलता ही नहीं है। पर बाद में कामना भी निष्काम में बदल जाती है। किसान खेती क्यों करता है? इसलिये कि खेती करने से खाने–पीने का काम चलेगा। बिना लोभ काम होता ही नहीं है। यदि निष्काम भावना अन्तःकरण में आ जाये तो भगवान् ही मिल जायें। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को बोला है कि इस काम बैरी को मार क्योंकि कामना अर्थात् इच्छा ही बुरे रास्ते में ले जाती है, बुरा काम

करवाती है। हरिनाम की शरणागति ही कामशत्रु को मारती है।

मेरे जन्म स्थान छींड की ढाणी में आठ युवक पढ़े–लिखे थे। उन्होंने बहुत बार नौकरी के लिये कोशिश की पर हर बार इंटरव्यू में फेल हो जाते। ये भी नवयुवक गरीब घराने के हैं और दूर–दूर इंटरव्यू पर जाने के लिये इन्हें कर्ज़ लेकर जाना पड़ता है। जब कहीं भी नौकरी नहीं लगी तो हताश हो गये, निराश हो गये। एक दिन मेरे पास आये और बोले–''बाबा ! हमारी नौकरी तो कभी भी नहीं लगेगी। कमाई का कोई और साधन भी नहीं है। क्या करें? आप ही कोई रास्ता बताओ।''

मैंने कहा–''यदि तुम्हारा मुझ पर विश्वास है तो नौकरी लगने का उपाय बता सकता हूँ।''

उन्होंने कहा–''हमारी आप में पूरी श्रद्धा है। आप जो भी बतावेंगे, हम जी–जान से करने को तैयार हैं।''

''तुम सभी हरिनाम की आठ–आठ माला, कान से सुनकर हर रोज़ करो तो तुम्हारी नौकरी शर्तिया लग जायेगी।'' मैंने कहा।

अब तो उन्होंने नित्य प्रति आठ माला करनी शुरू कर दी। पिछले महीने में उनमें से चार की नौकरी तो रेलवे विभाग में लग गई। एक पटवारी बन गया और तीन फौज में चले गये। अब वे आठों नवयुवक अपनी–अपनी नौकरियों पर हैं और हर रोज़ हरिनाम कर रहे हैं।

मेरे घर वाले मुझे बोलते हैं कि श्रीगुरुदेव ने आपको वाक्सिद्धि दे रखी है आप इसे यूंही लोगों के लिये लुटा रहे हो। इससे आपका भजन–स्तर गिर जायेगा। 1954 में भी आपने वाक्–सिद्धि प्राप्त करके दस साल तक लोगों के काम किये। जब श्रीगुरुदेव ने मना किया था तभी आप माने थे। अब आप ऐसा मत करो। इससे आपका भी नुकसान होता है और हमारा भी।

मैंने परिवार वालों को बोला–

परहित सरस धर्म नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अघमाई।

किसी का भला करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं और किसी को पीड़ा देने से बड़ा पाप नहीं। मैंने एक उदाहरण दिया।

रामानुजाचार्य ने किसी व्यक्ति को शिष्य बनाकर कान में मंत्र दिया और आदेश दिया कि इस मंत्र को गुप्त रखना। यदि यह मंत्र किसी को बता दिया तो नरक भोग करना पड़ेगा। यदि नहीं बताया तो तुम्हें वैकुण्ठ को प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि जो भी इस मंत्र को जपेगा, वह वैकुण्ठ में जायेगा।

शिष्य बड़ा परोपकारी था। सोचा, यदि मैं इस मंत्र को सबको बता दूँ तो सबका कल्याण होगा और यदि मैं इसे गुप्त रखूंगा तो केवल मेरा ही मंगल होगा। अतः मुझे स्वार्थी नहीं होना चाहिये। मैं भले ही नरक में चला जाऊँ, बाकी सभी तो वैकुण्ठ में जायेंगे।

एक गाँव में बहुत बड़ा मेला लगा था। वहां हज़ारों लोग इकट्ठे हुये थे। रामानुजाचार्य के शिष्य ने सोचा कि गुरु जी द्वारा दिये गये गुप्त मंत्र को सभी को सुनाने का यह अच्छा मौका है। ऐसा सोचकर वह एक ऊँचे टावर पर चढ़ गया और उस पर खड़ा होकर ज़ोर–ज़ोर से बोलने लगा–''सुनो ! सुनो! मैं आप सबको एक बात बता रहा हूँ। आप में से जो–जो वैकुण्ठ जाना चाहते हैं, वे सभी इस मंत्र को सुनो। मैं यह मंत्र आपको सुना रहा हूँ।'' ऐसा कहकर उसने वह गुप्त मंत्र ऊँची आवाज़ में सबको सुना दिया।

अब किसी दूसरे शिष्य ने जाकर गुरु जी से शिकायत कर दी। गुरु जी को बड़ा गुस्सा आया और उसे भला–बुरा कहा और पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया? शिष्य ने कहा–''गुरुदेव ! मंत्र सबको बता देने से सब लोग तो वैकुण्ठ में जायेंगे। मैं अकेला ही नरक में जाऊँगा। इसलिये सबका कल्याण करने के लिये मैंने ऐसा किया।''

उसकी बात सुनकर गुरुजी बहुत प्रसन्न हुये और उसको अपनी छाती से लगाकर बोले–''बेटा ! तू कभी नरक नहीं जायेगा।

जो दूसरों के कल्याण के बारे में सोचता है, वह भगवत्–स्वरूप ही होता है। भगवान् में और उसमें कोई अन्तर नहीं होता। तूने जो किया, बहुत उचित किया।''

मैंने ऊपर जो कथा बताई है उसका मतलब यही है कि मैं सबका भला चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि कैसे भी सभी हरिनाम करने लग जायें। इसमें आपका भी भला और मेरा भी भला। मैं ऊपर जो बातें बताई हैं वह केवल इसलिये कि इनको पढ़कर–सुनकर आपकी हरिनाम में रुचि हो जाये। मैंने केवल हरिनाम का महत्व बताया है। श्रील गुरुदेव की कृष्ण से, मैं स्वप्न में भी बड़ाई नहीं चाहता। कांचन, कामिनी प्रतिष्ठा मेरे लिये ज़हर है। आप सबकी हरिनाम में रुचि हो जाये, इसलिये कोई भी प्रसंग बोलता रहता हूँ। यह मेरे श्रीगुरुदेव के आशीर्वाद का ही प्रतीक है। इन बातों को जो कोई भी बड़ाई समझेगा, वह अपराध का भागीदार बनेगा। हरिनाम करते हुये कान से सुनना परमावश्यक इसलिये भी है कि इससे मन इधर–उधर नहीं जायेगा और एकाग्र होगा।

सुना है कि 13 दिसम्बर, 2012 को संसार में बहुत से स्थानों पर उपद्रव होंगे जिससे बहुत सारी जनसंख्या कम हो सकती है। सच क्या है, यह तो भगवान् जाने। मैंने तो जैसा सुना है, सबको बता दिया है। देखो ! हरिनाम करने वाले का बाल भी बांका नहीं हो सकता। अभी अवसर है, अभी भी सचेत हो जाओ। ऐसा अवसर आगे फिर नहीं मिलेगा। आने वाले समय में पूरी दुनियां में हरिनाम का उजाला फैल जायेगा। जो दुर्भाग्य होगा, उसके लिये अंधेरा छा जायेगा। ''गाँव–गाँव में, शहर–शहर में, मेरे नाम का प्रचार होगा'' –श्रीगौरहरि की यह वाणी सत्य होकर रहेगी।

हरिबोल !

35

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
15—03—2012

प्रेमास्पद भक्तशिरोमणि

नराधम, अधमाधम, दासानुदास, अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था तेज़ होने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

भगवान् शीघ्र प्रसन्न कैसे हों?

मेरे श्रील गुरुदेव बोल रहे हैं कि जब सूखी तुलसी की मणियों की माला जागृत एवं सजीव हो सकती है एवं ऐसे साधक को, जो हरिनाम जाप करता है, सुमेरु भगवान् को उसकी उंगलियों में पकड़ा सकती है तो जो तुलसी देवी, जो जीवों का उद्धार करने के लिये पेड़ के रूप में, हरे—हरे पत्तों से लदकर, पृथ्वी माँ की गोद में खड़ी है, क्या वह भगवान् से मिला नहीं सकती? भगवत्—धाम पहुँचा नहीं सकती? ऐसा विचार कर जापक को वृन्दादेवी की सेवा में संलग्न हो जाना चाहिये। उसे नित्यप्रति शाम सवेरे वृन्दादेवी माँ से प्रार्थना करनी चाहिये कि—**"हे मेरी प्यारी माँ, मेरा मन संसार से हटाकर भगवान् में लगा दे। किसी भी तरह, इस संसार सागर से, जो दुखों से भरा है, मुझे किनारे लगा दे। तेरे चरणों में, मेरी रो—रोकर बस यही प्रार्थना है।"**

वृन्दादेवी दयानिधि हैं और जीवों का उद्धार करने के लिये ही इस धरातल पर पधारी हैं। लेकिन जीव तुलसी माँ का अनादर करके, दुःख सागर में डूब रहे हैं। तुलसी माँ भगवान् से शिकायत करती हैं कि आप इन जीवों को जो दुःख व कष्ट देते रहते हो, वह मेरे मन के विरुद्ध है। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये।

भगवान बोलते हैं—**"हे भक्तवत्सला देवी ! हे शरणागतवत्सला**

देवी। मेरी परिचारिका ! इसमें मेरा क्या दोष है? तेरी कृपा के बिना मैं किसी को अपना नहीं सकता। ये सभी तुम्हें एक संसारी वृक्ष के रूप में मान रहे हैं क्योंकि अज्ञान का अंधेरा इन पर छा रहा है। इनका यह अज्ञान रूपी अंधेरा तो तेरे सेवक, वैष्णवजन ही हटा सकते हैं और इन जीवों को सच्चा ज्ञान रूपी उजाला फैला सकते हैं। हे वृन्दे देवी ! मुझे दोषी बनाना तुम्हें शोभा नहीं देता।''

तब वृन्दादेवी बोली–''आप जो बोलते हो, वही ठीक है। इन जीवों पर माया के कारण सत्, रज और तमोगुण हावी हो रहा है। अतः इनको अपने कर्मानुसार भोग भोगना ही पड़ता है। अब आपका कोई दोष नहीं है।'' मेरे गुरुदेव के बिना, भगवान् के पास पहुँचने का सीधा रास्ता कोई नहीं बताता है। मेरे श्रीगुरुदेव बोल रहे हैं कि वृन्दादेवी के अभाव में भगवान् का जीवन भी निरर्थक रहता है। जिस साधक पर वृन्दादेवी प्रसन्न हैं, उस पर स्वतः ही भगवान् प्रसन्न रहते हैं। पर जिस घर में वृन्दादेवी दुःखी हैं, उस घर में भगवान् भी दुःखी रहते हैं। वहां पर माया का प्रकोप होता रहता है। उस घर में किसी की भी आपस में बनती नहीं है और आपस में लड़ाई–झगड़े होते रहते हैं। उस घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त हो जाती है। उस घर पर कलि महाराज का साम्राज्य छाया रहता है। वस्तुतः भगवान् का जीवन ही वृन्दा महारानी से है।

वृन्दा महारानी घर में दुखी क्यों रहती हैं? समय पर पानी की व्यवस्था नहीं होती। वृन्दादेवी के पत्तों पर कीड़े लग जाते हैं इन कीड़ों से वृन्दादेवी को बचाने के लिये, इसके पत्तों पर हल्दी पाऊडर (पिसी हुई हल्दी) डालते रहना चाहिये। जब मंजरी आवे तो मंजरी तोड़ना परमावश्यक है। मंजरी न तोड़ने से वृन्दा देवी सुव्यवस्थित नहीं रहती और उसका फलना–फूलना (growth) रुक जाता है। वृन्दादेवी की जड़ों में छः महीने में एक बार गऊ के गोबर की खाद देना परमावश्यक है। जड़ में कीड़े लग जाने से वृन्दादेवी रोगी होकर सूखने लग जाती है इसलिये तुलसी महारानी

की जड़ों में सफेद रंग की फिटकड़ी डालते रहना चाहिये। वृन्दादेवी के पास भगवान् का वास होता है। इसलिये दोनों समय सुगन्धित अगरबत्ती जलाते रहना चाहिये। शुद्ध घी का दीपक एकादशी के दिन जलाना चाहिये।

साधक को सवेरे–शाम, दोनों समय वृन्दादेवी की चार बार परिक्रमा करने के बाद साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। सूर्य की धूप वृन्दादेवी पर पड़ती रहनी चाहिये तथा सर्दी में उसकी शुद्ध घी के दीपक से आरती होनी चाहिये। जहां पर वृन्दादेवी विराजमान हैं, उसके पास, धुले हुये कपड़े सुखाने के लिये नहीं डालना चाहिये क्योंकि इन कपड़ों की हवा वृन्दादेवी को लगती है और वह सूखना आरंभ कर देती है। हमारे शरीर की छाया भी वृन्दादेवी पर नहीं पड़नी चाहिये।

जहां वृन्दादेवी का वास है वहां पर बुरी आत्मा नहीं आती। उस घर में रोग या संकट अचानक आक्रमण नहीं करता। वृन्दादेवी की मंजरी भगवान् के चरणों में अर्पण करनी चाहिये तथा वृन्दादेवी के पत्तों की माला भगवान् के गले में धारण करवाना चाहिये। अर्पण की हुई माला के पत्तों का घर वाले खा सकते हैं या फिर इन पत्तों को वृन्दादेवी के ही गमले में या जड़ों में डाल सकते हैं। तुलसी महारानी के पत्तों को भूलकर भी उबालना नहीं चाहिये। ऐसा करना बहुत जघन्य अपराध होगा।

वृन्दादेवी सुखी हैं तो भगवान् भी सुखी हैं और यदि वृन्दादेवी दुःखी हैं तो भगवान् भी दुःखी हैं। ऐसे घर में, जहाँ भगवान् दुःखी रहते हैं, भगवत्–भक्ति का स्तर बढ़ता नहीं है। जिस घर में वृन्दादेवी दुःखी हैं, उस घर में गुरु, वैष्णव व भगवान् पंगु बने रहते हैं क्योंकि भक्ति का मूल प्रादुर्भाव तो वृन्दादेवी की कृपा से ही होता है। इसलिये ये तीनों (गुरु वैष्णव व भगवान्) साधक को भक्ति में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान नहीं कर सकते। देखा भी जाता है कि बहुत से साधकगण वृन्दादेवी की अवहेलना करते रहते हैं और फिर बोलते हैं कि हम हरिनाम भी खूब करते हैं,

धर्मग्रन्थों के अनुसार जीवन भी चला रहे हैं, फिर भी घर में, दुःख रहता है, क्लेश रहता है। पता नहीं, किस कारण से किस अपराध से हम दुःखी रहते हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव बोलते हैं कि साधक जपने वाली तुलसी माला को, लकड़ी या काठ की बनी निर्जीव माला समझते हैं, उसे एक साधारण वस्तु समझकर माला जपते रहते हैं। ऐसे साधकों के मन को माला भगवान् के चरणों में कैसे लगा सकती है? श्रीगुरुदेव ने, हरिनाम जप करने के लिये जो तुलसी माला दी है, वह माया से छुड़ाती है और भगवान् से मिलाती है, उसे एक निर्जीव वस्तु समझकर घर में जघन्य अपराध होता रहता है और साधक दुःखी रहता है। अतः भक्ति का स्तर बढ़ता नहीं है।

जो बातें मेरे श्रीगुरुदेव बताते हैं, ऐसी सूक्ष्म बातें कोई भी बताता नहीं है। घर में जो तुलसी महारानी का पौधा है, वह एक साधारण पौधा नहीं है, वह साक्षात् भगवान् की परिचायिका है। उस पौधे को पौधा समझ लेने से वहां भगवान् का वास नहीं रहता। भगवान् स़ख्त नाराज हो जाते हैं। जब भगवान् ही नाराज हो गये तो दूसरे देवता भी नाराज हो जाते हैं क्योंकि देवता भगवान् के निजजन हैं। देवता नाराज होने से घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त हो जाती है। इसीलिये भक्ति में मन नहीं लगने का एकमात्र कारण यह है कि साधक वृन्दादेवी की सेवा करना ही नहीं जानता। यदि तुलसी महारानी की सुचारु रुप से सेवा हो तो नाम भगवान्, साधक का मन अपने चरणों में लगा देवें। सेवा न होने से भगवान् नाराज़ रहते हैं अतः भक्ति नीरस रहती है।

याद रखो, श्रीहरिनाम जपने वाली तुलसी की माला, हमारी अमर माँ है। यदि इस माँ का आदर–सत्कार होता रहता है तो यह माया से छुड़ा देती है और भगवान् से मिला देती है। कोई भी साधक या भक्त इस बात को आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जैसे मेरे श्रीगुरुदेव ने बताया है यदि वैसे तुलसी देवी की सेवा करते रहोगे तो माला

मैया, सुमेरु (भगवान्) को आपकी उंगलियों में पकड़ाती रहेगी। सुमेरु (भगवान्) तलाश करना नहीं पड़ेगा। कभी ऐसा भी हो सकता है कि सुमेरु भगवान् माला झोली में ढूंढ़ना पड़ जाता है तो माला मैया को बोलो–**"हे मैया ! मुझसे क्या अपराध हो गया। मैं तो आपका शिशु हूँ। शिशु से गलती भी हो जाती है। मैया आप महान हो। आप मुझे क्षमा कर दो।"** ऐसी प्रार्थना करते ही, सुमेरु भगवान् साधक की उंगलियों में प्रगट हो जायेगा। सुमेरु ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं और सुमेरु के दोनों ओर की 108 माणियाँ, गोपियों की कृपा के बिना भगवान् का दर्शन होना असंभव है।

जो बातें मेरे श्रीगुरुदेव ने बताई हैं, ऐसी बातें हर कोई बताता नहीं है। यदि कोई बताता भी है तो साधक या तो उस पर ध्यान नहीं देता या फिर कम ध्यान देता है। यदि साधक पूरी तरह ध्यान दे तो सब कुछ सामने प्रत्यक्ष हो जावे।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के समय में, त्रेतायुग में शबरी (भीलनी) तुलसी मैया की तन–मन से सेवा करती थी। उसके गुरु थे मतंग ऋषि। वह उनकी सेवा में संलग्न रहती थी। यद्यपि दूसरे ऋषिगण उससे घृणा करते थे फिर भी भीलनी, आग जलाने के लिये, उनके आश्रमों में सूखी लकड़ियाँ रखकर आती थी। तुलसी देवी की सेवा से भगवान् प्रसन्न हो गये और लक्ष्मण जी के संग चलकर, वे भीलनी की कुटिया में आये। उन्हें देखकर भीलनी बावली हो गई और सोचने लगी कि इनको कहाँ बिठाऊँ। एक पीढ़ा (बैठने की चौकी) लाकर उस पर श्रीराम व लक्ष्मण जी को बिठा दिया। भगवान् को खिलाने के लिये उसके पास कुछ भी नहीं था। उसने केवल बेर ही इकट्ठे कर रखे थे। उसने भगवान् से कहा कि आपको खिलाने के लिये मेरे पास केवल बेर हैं।

उसका प्रेम देखकर भगवान् राम बोले–"शबरी ! तेरे बेरों से ज्यादा स्वादिष्ट और क्या हो सकता है? हम तो वही खायेंगे।"

अब तो भीलनी की खुशी का ठिकाना न रहा और बेरों की

टोकरी लेकर वह भगवान् के पास आई एक–एक बेर चख कर भगवान् को खिलाने लगी। वह यह सब इसलिये कर रही थी कि कहीं कोई कड़वा या खट्टा बेर भगवान् न खा लें और उनके मुख का स्वाद खराब न हो जावे। भगवान् राम तो बड़े प्रेम से बेर खा रहे हैं और लक्ष्मण जी मुख बिगाड़ रहे हैं। भीलनी ने लक्ष्मण जी को भी चख–चख कर, खाने को बेर दिये पर लक्ष्मण जी उन बेरों को छुपकर पीछे फैंकते रहे। भीलनी तो प्रेम में अंधी थी। लक्ष्मण जी बेरों को फेंक रहे हैं, इस बात का उसे पता ही नहीं चला पर राम तो भक्तवत्सल हैं। उन्होंने बेर खाये और मन ही मन कहा–''लक्ष्मण ! तूने भक्ति का स्वाद नहीं जाना है। देखना, एक दिन यही बेर तुम्हें जीवन देंगे।''

जब भगवान् राम बेर खा चुके तो उन्होंने भीलनी से पूछा–''मैया ! कोई सीता को चुरा कर ले गया है, उसे ढूंढ़ने हम कहाँ जायें?''

भीलनी मन ही मन में बोली–''भगवान् आपकी लीला अपार है। सबकुछ जानते हुये भी, मुझसे पूछ रहे हो कि कहाँ जायें?''

फिर भीलनी ने भगवान् राम से कहा–''भगवन्! आप सुग्रीव के पास जाओ। वह सीता का पता करवा देगा।'' यह कहकर भीलनी मौन हो गई और ज्योंहि भगवान् राम ने जाने के लिये भीलनी की कुटिया से बाहर अपना चरण रखा, भीलनी उनके चरणों से लिपट गई और भगवान् के चरणों में उसने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। वह सदा के लिये भगवान् की हो गई। भगवद्–धाम में चली गई।

धन्य है परम भक्त भीलनी! धन्य है भीलनी का भक्तिभाव से भरा जीवन और धन्य है उसका मरण। भगवान् की ऐसी परमभक्त, भीलनी को हमारा कोटि–कोटि प्रणाम् !

प्रेमीभक्तो ! जरा सोचो कि भीलनी को यह उत्तम गति कैसे प्राप्त हुई? उसे भगवान् के दर्शन क्यों हुये? क्यों उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हुई?

इसका उत्तर एक है कि उसने वृन्दादेवी (तुलसी महारानी) की सेवा की थी। वृन्दादेवी ने भीलनी को स्वप्न में बता दिया था कि भगवान् राम उससे मिलने आवेंगे। उसी दिन से भीलनी भगवान् के आने की बाट जोह रही थी, भगवान् का इंतजार करती थी। वह बेरों के वन में एक कुटिया बनाकर अपने श्रीगुरुदेव के चरणों में रहा करती थी। बेरी के वृक्ष के कांटे भगवान् के चरणों में न लग जायें और रास्ते के कंक्कड़–पत्थर भगवान् के चरण–कमलों में चुभ न जायें, इसलिये वह हर रोज़ रास्ता बुहारती थी, रास्ता साफ़ करती थी।

यह है वृन्दा देवी की सेवा का अमर फल जो भीलनी का भगवान् से मिलन हुआ और उसने अपने प्राण भगवान् के चरणकमलों में अर्पण कर दिये। साधकों को इन कथा से शिक्षा लेनी चाहिये तभी जीवन सफल है। **वृन्दादेवी तथा गऊ सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं है। इन दोनों की सेवा होने से गुरु–वैष्णव तथा भगवान् की सेवा स्वतः ही हो जाती है।**

भीलनी हर क्षण हरिनाम करती रहती थी। तुलसी महारानी की सेवा करने से उसका मन हरिनाम में लगा रहता था। उस क्षेत्र में और भी ऋषि मुनि थे जो हरिनाम करते थे पर वे भीलनी से इसलिये घृणा करते थे क्योंकि वह जाति की नीच थी। यही जघन्य अपराध होने से भगवान् उनके आश्रमों में न जाकर, अपनी परमभक्त भीलनी की कुटिया पर पधारे। तब ऋषियों की आँखें खुलीं कि हमने भक्ति भी की पर शुद्ध भक्ति से वंचित ही रहे, इसलिये भगवान् हमारे पास नहीं आये। वे सोचने लगे कि भीलनी ने शुद्ध भक्ति की है इसीलिये भगवान् उसकी कुटिया पर गये और उसका भगवान् के चरणों में इतना दृढ़ प्रेम था कि एक बार भगवान् का दर्शन कर लेने के बाद, उसे इस नश्वर संसार की कोई भी वस्तु अच्छी न लगी और अब वह एक क्षण भी भगवान् के बिना रह नहीं सकती थी अतः उसने भगवान् के चरण कमलों में अपने प्राण अर्पण कर दिये। धिक्कार है हमारी भक्ति को ! हमने तो अपना

जीवन ही बेकार कर दिया। हमारे अन्दर अहंकार था और इसी अहंकार ने हमारी भक्ति को छीन लिया। हमारा जीवन ही मिट्टी में मिल गया।

विभीषण जी राक्षसों के बीच रहते थे। श्रीहनुमान जी जब माता जानकी जी की खोज में लंका में गये तो उन्होंने सब जगह माँ–जानकी को खोजा पर वे कहीं भी दिखाई नहीं दीं। फिर उन्हें एक सुन्दर महल दिखाई दिया। उस महल में भगवान् का एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ था।

रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहं देखि हरषे कपिराइ।।

(सुन्दर कांड दोहा. 5)

वह महल श्रीराम के आयुध (धनुष–बाण) के चिन्हों से अंकित था। वह इतना सुन्दर था कि उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। उस सुन्दरतम महल में नये–नये तुलसी के वृक्ष समूहों को देखकर कपिराज श्री हनुमानजी बहुत प्रसन्न हुये।

इससे स्पष्ट है कि विभीषण जी तन–मन से तुलसी जी की बड़े प्रेम से सेवा करते थे और तुलसी महारानी की सेवा ने श्रीराम भक्त श्रीहनुमान जी से मिला दिया। अन्त में वे भगवान् के चरणों में पहुँच गये और लंकापति बन गये।

यह सब कुछ वृन्दादेवी की सेवा से ही हुआ। वृन्दादेवी की कृपा बिना भगवान् मिल ही नहीं सकते। विभीषण जी का श्रीहनुमान जी से मिलना, फिर भगवान् श्रीराम से मिलना और अन्त में लंकापति बनना–यह सब वृन्दादेवी की सेवा का ही फल था। वृन्दा देवी की सेवा करके कोई भी भगवद्–दर्शन कर सकता है। कोई भी आजमाकर देख ले, यदि न हो तो मेरे श्रीगुरुदेव से शिकायत कर सकता है। मेरे गुरुदेव, जो दोष होगा, बता देंगे।

भूतकाल में जितने भी संत हुये हैं सबने वृन्दादेवी की सेवा की है। वृन्दादेवी की सेवा के बिना, वे भगवान् से मिल नहीं सके। वृन्दादेवी ही भक्त को भगवान् से मिलाती है। वृन्दा देवी की सेवा

के अभाव में भक्ति प्रगट नहीं होती। मेरे गुरुदेव सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष बताते रहते हैं यदि फिर भी कोई इनकी तरफ ध्यान नहीं देता तो मेरे गुरुदेव क्या कर सकते हैं? तुलसीदास, सूरदास, संत कबीर, रैदास, नरसी भक्त आदि सभी ने तन–मन से वृन्दादेवी की सेवा करके ही भगवद्–प्राप्ति की है। आज भी हमारे गुरुवर्ग एवं आचार्य तुलसी देवी की नित्यप्रति सेवा करते हैं। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वर्तमानाचार्य श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी जी महाराज, 88 वर्ष की आयु में भी तन–मन से वृन्दादेवी की सेवा में संलग्न रहते हैं और वृन्दादेवी का दर्शन किये बिना प्रसाद भी ग्रहण नहीं करते।

मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि वृन्दादेवी की सेवा ही मूल है। इस सेवा से गुरु–वैष्णव तथा भगवान् खिंचे चले आते हैं। जहां पर वृन्दादेवी की सेवा की कमी रहती है, वहां भक्ति नीरस रहती है। वहां पर न गुरुदेव हैं न वैष्णव हैं और न भगवान् हैं। वहां भगवान् भी दुःखी रहते हैं।

भगवान् बोलते हैं कि वृन्दादेवी की कृपा से ही मेरी रासलीला आनन्द रससिंधु में डूबती रहती है। यदि वृन्दादेवी की कृपा न हो तो मुझे कोई भी आनन्द नहीं दिला सकता। रासलीला का प्रबन्ध ही वृन्दादेवी करती हैं। रासलीला में गोपियों से ही मेरा आनन्दवर्धन आरम्भ होता है। अतः मैं वृन्दादेवी का आभारी हूँ। मैं वृन्दादेवी का सदा ऋणी बना रहता हूँ और यह ऋण मुझ से कभी भी उतरता नहीं है। जो वृन्दादेवी को खुश रखता है, मैं उसका भी आभारी हूँ।

भगवान् बोलते हैं कि श्रीगुरु, वैष्णव तथा भगवान् से भक्ति बढ़ती है, ऐसा श्रीगुरुजन तथा संत कहते हैं। मैं वृन्दादेवी के आश्रित रहता हूँ और वृन्दादेवी के बिना तो मेरा जीवन चलता ही नहीं है, इसलिये मैंने वृन्दादेवी की सेवा को छुपाकर रखा था पर इस माधव ने (नित्य–लीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज) मेरी सारी पोल खोलता जा रहा है। इसने श्रीगुरु–वैष्णव भगवान् के साथ वृन्दादेवी को भी जोड़ दिया। अब जो भी वृन्दादेवी की सेवा करके उसे राजी कर

लेगा, खुश कर लेगा, मुझे भी उसकी गुलामी करनी पड़ जायेगी। क्योंकि वृन्दादेवी के बिना मैं एक क्षण भी रह ही नहीं सकता। पर मैं माधव को भी कुछ नहीं बोल सकता क्योंकि माधव ने तो मुझे प्रेम की मज़बूत डोर से बांध रखा है। माधव ने तो मुझे खरीदकर अपना गुलाम बना लिया है और अब मेरी माया भी कमज़ोर पड़ रही है। माधव के प्रेम के कारण, मैं कुछ भी करने तथा बोलने में असमर्थ हूँ। मैं वृन्दादेवी के पराधीन हूँ। वृन्दादेवी तो मेरा जीवन है, इस रहस्य को मैंने इसलिये छुपाकर रखा था कि वृन्दादेवी की सेवा करके, कोई भी उसे राजी कर लेगा और उसके राज़ी होने से मुझे भी राज़ी होना पड़ेगा। माधव गुप्त से गुप्त साधन भी सबको बताता रहता है। बताना उसे चाहिये जो योग्य हो। हीरे की कीमत कितनी होती है, गाँव का गंवार क्या जाने ! लेकिन इस माधव की मर्जी है। मैं कुछ बोल भी नहीं सकता। जैसे श्री गौरहरि ने गिरे हुओं को अपनाया है, माधव भी वही कर रहा है।

भगवान् बोलते हैं–''मैं क्या करूँ? मैं तो वृन्दादेवी की कृपा बिना पराधीन हूँ एवं स्वाधीन भी इसी से हूँ। वृन्दादेवी की अनुमति बिना न मैं खा सकता हूँ, न पी सकता हूँ, न कुछ कर सकता हूँ, न कुछ पा सकता हूँ, न कहीं जा सकता हूँ। मैं तो सब ओर से असमर्थ हूँ। जो वृन्दादेवी को खुश कर लेगा, मैं भी उस साधक के पराधीन हो जाऊँगा। मुझे भी उसका आदेश मानना पड़ जायेगा। हे माधव (नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज) प्यारे ! गुप्त से गुप्त रास्ते बताकर मुझे क्यों साधक का गुलाम बना रहा है? क्यों मुझे पराधीन कर रहा है? तेरे प्यार ने मेरी जुबान बंद कर रखी है। मैं असमर्थ हूँ।''

गुरुदेव तथा वैष्णवगण बोला करते हैं कि गुरु, वैष्णव तथा भगवान् की प्रसन्नता से ही भक्तिस्तर बढ़ता है लेकिन मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि इन्होंने (गुरु वैष्णव तथा भगवान्) वृन्दादेवी की प्रसन्नता को छुपाकर रख लिया। अतः मैं बोल रहा हूँ कि प्रथम प्रसन्नता किसीकी होनी चाहिये। कोई भी साधक आजमाकर देख

सकता है। यदि कमी हो तो श्रीगुरुदेव से शिकायत कर सकता है।

विचार करने की बात है कि जब गुरु जी द्वारा प्रदत्त माला, जो सूखी तुलसी की मणियों से तैयार की जाती है, उसका आदर सत्कार करने पर वह सजीवता धारण कर लेती है और साधक (नाम जापक) को सुमेरु भगवान् पकड़ा देती है तो जो वृन्दादेवी, एक हरे–भरे पौधे के रुप में विराजमान है, वह भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर क्या नहीं कर सकती? वह हरिनाम में मन लगा देगी। पंचम पुरुषार्थ प्रेम उदय करवा देगी और अन्त में भगवान् से मिला देगी। ऐसी घटनाएं प्रत्यक्ष रूप में घट रही है। फिर अविश्वास होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसे कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

इसीलिये जब श्रीगुरुदेव किसी जीव को अपनाते हैं तो सबसे पहले उसके गले में कण्ठीमाला (तुलसी माला) डालकर उसे वृन्दादेवी की शरण में भेजते हैं। इसके बाद कान में भगवत्–मंत्र सुनाकर, मंन्त्र को बारंबार जपने के लिये उसे तुलसीमाला (जपमाला) देते हैं और उसे भगवान् की शरण में सौंप देते हैं। भक्ति का जन्म ही वृन्दादेवी से हुआ है, इसलिये श्रील गुरुदेव आरम्भ में ही जीव को वृन्दादेवी के चरणों में सौंपते हैं उसके बाद ही उस जीव को भगवान् अपनाते हैं। भगवान् को भी वृन्दा देवी की अनुमति लेनी पड़ जाती है। भगवान् किसी जीव को सीधे अपना ही नहीं सकते। वृन्दादेवी की स्वीकृति के बिना भगवान् कुछ भी नहीं कर सकते।

इससे यह प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया है कि वृन्दा देवी ! तुलसी देवी ! भगवान् से भी बड़ी हैं। भगवान् वृन्दादेवी के आश्रित हैं। आज से लगभग 525 वर्ष पहले श्रीगौरहरि पार्षद भक्तशिरोमणि श्रीअद्वैताचार्य जी इस धरातल पर हुये हैं। उन्होंने केवलमात्र तन, मन व वचन से वृन्दा महारानी की सेवा की थी और अष्टयाम यही प्रार्थना करते थे–

"हे वृन्दा मैया! भगवान् को इस धरातल पर कब प्रगट करोगी?"

वे रो–रोकर तुलसी मंजरी से ठाकुर जी का अर्चन–पूजन किया करते थे। एक दिन ऐसा भी आया जब श्रीगौरहरि नदिया के मायापुर धाम में होलिका दहन के दिन अपने परिकरों के संग प्रकट हुये।

श्रीअद्वैताचार्य प्रभु की जय। वृन्दा देवी की जय।

श्रीगौरहरि तुलसी मैया के चरणों में बैठकर हरिनाम किया करते थे। जब कहीं जाते तो एक भक्त तुलसी मैया का एक गमला लेकर उनके आगे–आगे चला करता था। इस बात से यह स्पष्ट हो गया कि वृन्दामहारानी भगवान् से भी बड़ी तथा पूजनीय हैं। इसलिये जो भी साधक तन मन से वृन्दादेवी की सेवा करेगा, वह भगवान् को पा जावेगा। जो वृन्दा माँ के आश्रित होकर, हरिनाम जप करता रहता है, भगवान् उसके पराधीन एवं आश्रित हो जायेंगे। जिस घर में वृन्दामाँ प्रसन्न रहती हैं वहां भगवान् का नित्य वास रहता है और जिस घर में वृन्दा महारानी को असुविधा रहती है, वहां भगवान् का पदार्पण नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी सत्यभामा बहुत सुन्दर थी। उसे यह घमण्ड हो गया था कि भगवान् की सभी रानियों में, मैं ही उन्हें सबसे प्यारी हूँ। रुक्मिणी आदि सभी तो मेरे से नीची हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जितना मुझे प्यार करते हैं उतना किसी भी दूसरी रानी से नहीं करते। मुझे ही मेरे पतिदेव स्वर्ग लेकर गये और मेरे कहने पर वहां से पारिजात वृक्ष द्वारका लेकर आये जिसकी छाया में बैठने से अलौकिक सुख अनुभव होता है। इसलिये मैं ही सबसे प्यारी हूँ।

भगवान् का स्वभाव है कि वे अपने प्यारे के अहंकार को रहने नहीं देते। अतः भगवान् श्रीकृष्ण ने एक लीला रची। भगवान् श्रीकृष्ण ने देवर्षि नारद जी को याद किया तो नारद जी द्वारका में पधारे। सभी रानियों ने उनका खूब स्वागत किया और बैठने के लिये सुन्दर आसन दिया। सभी ने मीठी–मीठी बातों से उन्हें प्रसन्न किया। सत्यभामा तो सबसे आगे होकर आदर–सत्कार कर रही थी और बार–बार पूछ रही थी कि मैं क्या सेवा करूँ? क्या भेंट करूँ?

नारद जी बोले–''सत्यभामा ! आज मैं जो मागूंगा, मुझे दे दोगी?''

सत्यभामा सोचने लगी कि हमारी द्वारका में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है, उसने नारद जी से कहा–''आप जो मांगोगे, हम दे देगीं।''

देवर्षि नारद जी ने कहा–''कि पहले मुझे वचन दो कि मैं जो भी मागूंगा, वह आप मुझे दोगी।'' सत्यभामा ने वचन दे दिया।

नारद जी बोले–''अपने पति श्रीकृष्ण को मुझे दे दो।''

अब तो सत्यभामा तथा अन्य रानियों के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई और सोचने लगीं कि अब क्या करें। यह तो बहुत बुरा हुआ हम अपने पतिदेव को कैसे दे सकती हैं। नारद जी श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर ले जाने लगे तो सत्यभामा रोने लगी। बाकी सभी रानियां भी विलाप करने लगीं तो नारद जी को दया आ गई। नारद जी बोले कि यदि आप श्रीकृष्ण के बराबर सोना दे दोगी तो मैं इन्हें नहीं ले जाऊँगा। सभी रानियाँ इस बात के लिये राजी हो गईं। उन्होंने सोचा कि द्वारका में सोने की क्या कमी है। यहां तो दरवाजे, फाटक इत्यादि सभी सोने के बने हैं। रानियों ने तुरन्त तराजू मंगवाया और एक पलड़े में श्रीकृष्ण को बिठा दिया और दूसरे पलड़े में सोने के गहने रखने लगीं। सबने अपने–अपने गहने उतार दिये फिर भी श्रीकृष्ण वाला पलड़ा हिला तक नहीं। पलड़ा एक इंच भी ऊपर नहीं उठा, तो सब रानियाँ घबरा गईं कि अब तो नारद जी हमारे पति को अपने संग ले जायेंगे। अब कोई दूसरा उपाय भी नहीं है, यह सोचकर बिलख–बिलख कर रोने लगी। नारद जी को वचन भी दे दिया है। अब तो सत्यभामा को उलाहना देने लगी कि तुमने यह क्या अनर्थ कर डाला। अब तो सभी निराश हो गईं।।

देवर्षि नारद जी को रानियों पर दया आ गई। द्वारका में दुःख का साम्राज्य फैल गया। नारद जी बोले कि एक उपाय हो सकता

है। सभी रानियाँ बोलीं कि नारद जी ! जल्दी बताओ हम वही करने को तैयार हैं।

नारद जी ने कहा कि तुलसी का एक पत्ता ले आवो और उसे गहने वाले पलड़े में रख दो। रानियां बोलने लगीं कि नारद जी जब इतने सारे गहनों से पलड़ा नहीं हिला तो तुलसी के एक पत्ते को रखने से पलड़ा कैसे ऊपर उठेगा? आप भी कैसी मूर्खता वाली बात करते हो। जब इतने भारी–भारी गहने रखे तब भी पलड़ा नहीं उठा तो अब कैसे उठ सकता है?

नारद जी ने कहा कि आप मेरे ऊपर विश्वास करो और जो मैं कहता हूँ, वही करो। एक पत्ता तुलसी का लेकर तो आओ !

सत्यभामा दौड़कर तुलसी का एक पत्ता ले आई और नारद जी के हाथ में दे दिया। नारद जी ने उस पत्ते पर ''कृष्ण'' का नाम लिखा और सत्यभामा को सारे गहने पलड़े में से निकालने को कहा। जब सत्यभामा ने सारे गहने पलड़े में से उतार दिये तो नारद जी ने ''कृष्ण'' नाम से अंकित तुलसी का पत्ता सत्यभामा को पलड़े में रखने को कहा। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि राई मात्र के बोझ से भी कम तुलसी के पत्ते को रखने से भगवान् श्रीकृष्ण वाला पलड़ा नीचे हो जायेगा पर ज्योंकि सत्यभामा ने तुलसी का पत्ता पलड़े में रखा तो श्रीकृष्ण वाला पलड़ा ऊपर उठ गया और तुलसी पत्ते वाला पलड़ा धरती पर लग गया।

अब तो सभी रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। वे सभी तालियाँ बजाने लगीं और नाचने लगीं। वे नारद जी से बोली कि अब आप तुलसी के इस पत्ते को अपने साथ ले जा सकते हो। सत्यभामा बोली कि मेरा वचन भी पूरा हो गया।

नारद जी ने कहा–''सुनो ! आपको घमण्ड था कि भगवान् हमें सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। नहीं ! भगवान् को, आप सबसे ज्यादा प्यारी वृन्दा महारानी हैं। भगवान् को वृन्दादेवी से बढ़कर प्रिय कोई नहीं है।''

अब तो सभी रानियां वृन्दा महारानी की खुशामद करने लगी कि आप कृपा करके, श्रीकृष्ण से हमारी सिफारिश करो और हमसे प्रेम करवा दो।

यह है वृन्दा महारानी का महत्व। जो तुलसी देवी को राजी कर लेगा, वह श्रीकृष्ण का पा जावेगा। प्रेम से की गई सेवा से कोई भी राजी हो जाता है।

धर्मग्रन्थों में लिखा है कि प्रत्येक कल्प में भागवत्–लीलाएं अलग–अलग हुआ करती हैं। एक कल्प में ऐसा भी हुआ है कि श्रीगणेश जी ने वृन्दा देवी को श्राप दिया था कि तुम राक्षस की पत्नी होगी। इसलिये वृन्दादेवी जालन्धर राक्षस की पत्नि हुई थीं। वृन्दादेवी ने भी श्रीगणेश जी को श्राप दिया था कि तुम्हारी शादी तुम्हारे मन के विरुद्ध होगी इसलिये गणेश जी की शादी, उनके मन के विरुद्ध रिद्धि–सिद्धि से हुई।

वृन्दादेवी सतियों में सबसे उच्चकोटि की सती थीं। इसलिये जालन्धर राक्षस किसी से भी मरता नहीं था। देवताओं ने भगवान् से प्रार्थना की कि जालन्धर राक्षस हमें बहुत सताता है। हम उससे हार गये हैं। तब भगवान् बोले कि इसकी धर्मपत्नि वृन्दादेवी बहुत उच्चकोटि की सती हैं। उसी के सतीत्व के कारण वह किसी से मरने वाला नहीं है। अतः मुझे ही इसका कोई उपाय करना पड़ेगा।

भगवान् ने जालन्धर का रूप धारण करके, वृन्दादेवी का सतीत्व नष्ट किया तो वृन्दादेवी ने श्राप दिया कि तुमने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है, धोखा किया है अतः मेरा श्राप है कि तुम पत्थर के बन जाओ।

जब भगवान् ने प्रार्थना की कि ऐसा मत करो तो वृन्दादेवी बोली–''ठीक है तुम शालग्राम बनोगे और संसार तुम्हारी भगवान् से भी अधिक पूजा–अर्चना करेंगे और मेरी अनुमति तथा कृपा के बिना तुम्हारा जीवन ही नहीं चलेगा। तुम सदा ही मेरे आश्रित रहोगे।''

तब भगवान् बोले–''मुझे स्वीकार है। जैसा तुम बोलती हो, वैसा ही मेरा जीवन होगा और तुम भी धरातल पर वृक्ष के रूप में रहोगी। मेरी सेवा से ही तुम्हारी सेवा अर्चना बन सकेगी।''

तब वृन्दादेवी बोली कि एक कल्प में एक गोप बालक ने मुझे धरातल पर वृक्ष होने का श्राप दिया था और कहा था कि मेरी सेवा से साधकगण भगवान् को प्रसन्न कर लेंगे और भगवत्–धाम को पा लेंगे।

ऐसा है कि प्रत्येक कल्प में भांति–भांति की भगवद्–लीलाएं हुआ करती हैं। भगवद्–लीलाएं अनन्त हैं किसी कल्प में कोई लीला होती है और किसी दूसरे कल्प में कोई और लीला होती है। इन सभी लीलाओं का स्मरण में आना असम्भव है। भगवान् को वृन्दा देवी महारानी से बढ़कर कोई भी प्रिय नहीं है। गोलोक धाम में भी अनन्त लीलाएं होती रहती हैं। वहां भी श्रीराधा जी ने वृन्दा देवी को श्राप दिया है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक ही हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्रिय हैं ही क्योंकि एक ही शरीर के दो भाग बने हैं। एक हैं प्रिय और दूसरा है प्रेमास्पद। श्रीराधा जी के वपु से सभी गोपियाँ प्रगट हुई हैं और श्रीकृष्ण के वपु से सभी गोप बालक प्रगट हुये हैं लेकिन वृन्दादेवी की तो अलौकिक कहानी है। इसकी प्रसन्नता के अभाव में भगवान् भी प्रसन्न नहीं हो सकते। जो भी जीव वृन्दादेवी को प्रसन्न कर लेगा, उस पर भगवान् स्वतः ही प्रसन्न हो जायेंगे। जिस घर में वृन्दा देवी असुविधा में है, वहां भगवान् भी असुविधा में रहते हैं। वहां भक्ति उदय नहीं होती। भले कितना ही हरिनाम करो, मन नहीं लगेगा। जप के समय हर क्षण संसार का स्मरण ही आता रहेगा। अतः भगवद् प्रेम उदय नहीं होगा। हरिनाम बेमन से होता रहेगा।

मेरे गुरुदेव स्पष्ट रूप से गुप्त से गुप्त प्रसंग भी बताते रहते हैं अतः भगवान् मेरे गुरुदेव को उलाहना देते रहते हैं कि जो मैंने रहस्यमयी प्रसंग छुपा रखा है, मेरा प्रेमी यह माधव उसे अयोग्य साधकों को बताता रहता है। जैसे मैंने गौरहरि रूप धारण कर

धरातल पर अवतार लिया और घर–घर जाकर सभी को मुझे प्राप्त करने का मार्ग बताया है, उसी प्रकार यह माधव भी मुझे पाने का मार्ग, मेरी ही तरह सबको बताता रहता है। इसमें इसका कसूर मैं कैसे बताऊँ क्योंकि यह तो मेरे मार्ग का ही अनुसरण करता आ रहा है। उसने मेरे को प्रेम की रस्सी से बाँध रखा है। प्रेम की रस्सी को कोई भी तोड़ सकता नहीं। यह प्रेम अलौकिक है। चिन्मय है, अमर है। अमर को कौन मार सकता है?

ब्रह्मा के एक दिन में भगवान् का अवतार होता है। इसी से भगवत्–लीला होती रहती हैं जिन पर चिन्तन करके साधक भक्ति उपलब्ध करता है। इस तरह प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भगवत्–लीलाएं चलती ही रहती हैं। ऐसा कोई भी ब्रह्माण्ड नहीं है जहां भगवत्–लीलाएं नहीं हो रही हो। भगवान् के एक रोमकूप में ही अनन्त ब्रह्माण्ड बसे हुये हैं। इन ब्रह्माण्डों का कोई अन्त नहीं है। ब्रह्मा जी व शिव जी तक को माया ने घेर रखा है। ये दोनों भी भगवत्–लीलाएं नहीं जान सकते फिर अन्य के जानने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ब्रह्माजी के जीवन काल में भगवान् का अवतार हुआ करता है। ब्रह्मा जी का एक दिन एक हज़ार चौकड़ी का होता है। इतनी ही हज़ार चौकड़ी की रात होती है। इसी रात को प्रलय होती है और सभी जीव ब्रह्मा के शरीर में समा जाते हैं। सौ साल बाद ब्रह्मा भी काल में समा जाता है। पर मानव को इतना सब कुछ जानने से कोई मतलब नहीं है। वह तो बस इतना जान ले तथा यह श्रद्धा–विश्वास अपने अन्तःकरण में जमा ले कि केवल हरिनाम स्मरण से ही सब कुछ जानना बन जाता है। सब कुछ हृदय मन्दिर में लिखा मिल जाता है। सब कुछ जान लेना किसी का हो भी नहीं सकता। हरिनाम को अपना लेने से सभी अपने बन जाते हैं। कोई दूसरा है ही नहीं, सभी अपने हैं। यही शुद्ध ज्ञान है। और कुछ जानने की जरुरत भी क्या है !

पूरा जानने के लिये निचोड़ यही है, सार यही है कि मन संसार से हटाकर वृन्दा महारानी, गुरु–वैष्णव तथा भगवान् से प्रीत जमा ले। इससे सब कुछ जानना हो गया। कुछ भी ऐसा नहीं रहा जिसे जानना बाकी रह गया हो।

इसमें मूल है वृन्दामहारानी जो श्रील गुरुदेव की दी हुई सूखी तुलसी की माला, माला झोली में हाथ डालते ही सुमेरु भगवान को पकड़ा देती है तो जो हरी–भरी तुलसी महारानी, पेड़ के रूप में धरातल पर खड़ी है, उसे प्रसन्न करके, उसकी सेवा करके, भगवान् हमारे न बन पायें, क्या ऐसा कभी हो सकता है।

मेरे गुरुदेव जी ने वृन्दा महारानी की महिमा बताकर, भगवान् को प्रसन्न करने का कितना सरल व सुगम उपाय बता दिया है जो आज तक कहीं पढ़ने को नहीं मिला, न किसी से सुनने को मिला। वृन्दा महारनी के प्रसन्न होने पर भगवान् को इस धरातल पर आना पड़ा जिसकी भक्ति करने से जीव को सुख विधान हुआ।

आओ आओ नाम हरि के मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु मेरी जिह्वा पर आओ।।
रसना मेरी अति दुर्भाषिणी, कटु भाषिणी अरु पापमई।
अघ अवगुण विसराओ इसके, आजाओ प्रभु आजाओ।।
कण्ठ मेरा अति कर्कश वाणी, नाम मधुरिमा नहिं जानी।
अपनी मधुरता आप बखेरो, नाम सुधा रस बरसाओ।।
चित्त मेरा अघमूलमलीना, अन्ध कूप सम सब गुणहीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अन्तर ज्योति जगा जाओ।।
तन मन में अरु स्वास स्वास में, रोम रोम में रम जाओ।
रग–रग में झंकार उठे, पिय अन्तर वीणा बजा जाओ।।
तृण सों नीच दीन ह्वै जाऊं, तरु सों सहनशील बनजाऊं।
सबहि मानप्रद मान न चाहूँ, यह करुणा निज वर्षाओ।।
केलि के जीवन नईया खिवैय्या, भव डूबत की बांह ग्रहिया।
जीवन नईय्या पार लगाने, आ जाओ अब आ जाओ।।

●●●

नाम महाधन है अपनो, नहीं सम्पत्ति दूसरी और कमानी।
छोड़ अट्टारी अटा जग के, हमको कुटिया ब्रज माहि छ्वानी।।
टूक मिले रसिकों के सदा, पीवे को मिले यमुना जल पानी।
औरन की परवाह नहीं, अपनी ठकुरानी श्री राधिका रानी।।

36

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
03—06—2012

प्रेमास्पद, भक्तगण शिरोमणि,

अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्धदास का सभी भक्तों के चरण कमलों में दण्डवत् प्रणाम तथा प्रचण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की करबद्ध प्रार्थना।

जीव का भगवत् चरण में पहुँचने का क्रम

भगवान् समस्त चर—अचर जीवों के मां—बाप हैं। जीव का जब से भगवान् के अंश से जन्म हुआ है तब से लेकर अब तक जीव सत, रज और तम—इन गुणों, जो माया के हैं, में फँसकर अपने परमपिता भगवान् की गोद में नहीं पहुँच पाया। तब जीव जो भगवान् का अंशी है, बिल्कुल स्वच्छ या निर्मल था। धीरे—धीरे जीव माया के गुणों के कारण जो सत, रज और तम हैं, इनसे गंदा होता गया। जिस प्रकार मानव नया कुर्ता पहनता है तो वह कुछ समय बाद गंदा हो जाता है, उस पर मैल चढ़ जाता है तो उसे पानी में धोना पड़ता है। फिर धूप में सूखाना पड़ता है और तब उसे तन में पहना जाता है।

इसी प्रकार जब जीव सत, रज और तम रूपी धूल में गंदा हो जाता है तो इसे चौरासी लाख योनियों में डालकर अर्थात् जेल में बंदकर शुद्ध किया जाता है। जो जीव भगवान को नहीं मानता, माया उसे कारागार में डालकर दुःख व कष्ट देकर शुद्ध करती रहती है। चर—अचर प्राणियों में कौन सुख नहीं चाहता? सभी सुख के लिये प्रयत्न करने में लगे रहते हैं लेकिन इनको मालूम नहीं कि सुख कहां मिल सकता है। जिस योनि में रहते हैं उसमें ही सुख मानकर अपना जीवन चलाते रहते हैं। खाना—पीना, सोना, संभोग करना तथा अपनी रक्षा करना ही इनका उद्देश्य होता है।

एक बार की बात है। देवर्षि नारद जी ने सूअर को पूछा कि क्या वह स्वर्ग में जाना चाहता है तो सूअर बोलता है कि क्या वहां पर मानव का मल खाने को मिलेगा। नारद जी ने कहा कि वहां गंदी चीजें नहीं मिलती तो सूअर ने जाने से मना कर दिया।

देखो ! सच्चा सुख केवल आत्मा के स्तर पर ही संभव है। जिस प्रकार कार का भोजन पैट्रोल है। पैट्रोल के बिना कार चल नहीं सकती, बेकार होती है पर कार चालक का भोजन पैट्रोल नहीं है। उसका भोजन तो दाल रोटी तथा सब्जी आदि होता है। जिस प्रकार अपने शरीर को जिंदा रखने के लिये हम इसे भोजन देते हैं उसी प्रकार आत्मा का भी तो कोई भोजन होगा ! आत्मा का भोजन, भोजन–पानी नहीं है। उसका भोजन है परमात्मा की याद। इस याद में आत्मा तृप्त हो जाती है।

भक्ति करना आत्मा का भोजन है। यही साधक की सेवा है। जिस प्रकार हाथ की उंगली पूरे शरीर की सेवा करती है, इससे शरीर पुष्ट होता है उसी प्रकार जीव भगवान का अंश है तो भगवान् की सेवा करने से आत्मा पुष्ट रहती है। आत्मा पुष्ट रहने से शरीर भी पुष्ट रहता है और खुशी से भरा रहता है। अनंतकोटि ब्रह्मांडो में भगवान् केवल एक ही है। शिव, ब्रह्मा तथा अन्य देवी–देवता इस सृष्टि को चलाने में भगवान् के सहायक हैं।

भगवान् स्वयं कहते हैं कि मुझे न तो देवता और नहीं ऋषिगण जानते हैं। केवल मेरा आश्रित भक्त ही कुछ कुछ मुझे जानता है। माया के गुणों के कारण शिव तथा ब्रह्मा भी मुझे नहीं जानते। मुझे न जानने के कारण ब्रह्मा जी मेरे बछड़े तथा ग्वालों को चुराकर ले गये। शिव जी मेरे मोहिनी रूप में फंस गये। अन्य की तो बात ही क्या है? पर जो मेरा शरणागत भक्त है, उसे माया कभी भी फंसा नहीं सकती। मेरे भक्त को माया दूर से ही प्रणाम करती है। राजा भरत योगी था अतः माया ने उसे फंसा लिया।

भगवान् कहते हैं कि मेरे सिवाय किसी की भी भक्ति नहीं करनी चाहिये। जो भी मुझे छोड़कर, अन्यों की भक्ति करेगा तो वह

वापस चर–अचर योनियों में जन्म लेगा। उसकी जो भी कामना होगी, वह क्षणिक होगी।

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम भक्ति को अत्यन्त सरल व सुगम बना दिया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र को कोई भी कर सकता है। किसी भी जाति का आदमी कर सकता है। जहां भी चाहे, वहीं कर सकता है। किसी भी समय कर सकता है। शुद्ध–अशुद्ध रहकर भी कर सकता है। खंडित नाम जप भी कर सकता है। क्योंकि भगवान् तो भावग्राही हैं, अन्तर्यामी हैं, अपने नाम को सुनकर जीव पर कृपा करते रहते हैं। नाम जप के समय मन कहीं भी हो जिसको नामाभास बोला जाता है, साधक कर सकता है। ऐसे साधक का भी वैकुण्ठ वास होना निश्चित् है। उसकी अज्ञानता की धूल साफ हो जाती है और अनेक जन्मों की दुःखमयी अग्नि बुझ जाती है।

संतो और धर्मशास्त्रों का सम्मत है कि हरिनाम नामाभास करने की सरल विधि है। इस कलियुग में ध्यान आदि करना असंभव है क्योंकि कलियुग में खान–पान तथा वातावरण सब कुछ अशुद्ध है। अपनी जीवन शैली को बदलने की जरूरत नहीं है। घर में रहते हुये, नौकरी करते हुये, शिक्षा ग्रहण करते हुये, जहां भी हो, कोई भी बेखटके से हरिनाम कर सकता है। पर **मांसाहार, जुआ, नशा तथा व्यभिचार से दूर रहना अतिआवश्यक है।** अपने घर में जो भी खाद्यपदार्थ तैयार करें और चित्रपट में जो भी भगवान् विराजमान है, तुलसी पत्र डालकर उन्हें भोग लगाकर, फिर प्रसाद स्वयं सेवन कर सकते हैं।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

तिनके से भी ज्यादा विनम्र, वृक्ष के समान सहनशील, दूसरों

को सम्मान देकर तथा स्वयं अमानी रहकर, सदैव श्री हरि कीर्तन करना चाहिये।

ऐसी स्वाभाविक भावना बनाकर श्री हरिनाम करने से, भगवान के दर्शन का सौभाग्य उपलब्ध हो जायेगा तथा वैकुण्ठवास निश्चित् रूप से होगा।

भगवान् इस धरा पर क्यों प्रकट होते हैं?

हम जैसे बद्धजीवों को दिव्य ज्ञान प्रदान करके, भूले–भटकों को, गोलोक धाम लौटने की प्रेरणा देने के लिये भगवान् प्रकट होते हैं। यह अलौकिक ज्ञान इस सृष्टि में चार विशेष महानुभावों को प्रदान किया गया था–

1. श्री लक्ष्मी जी, 2. श्री शिव जी, 3. श्री ब्रह्मा जी, एवं 4. चार कुमार–सनक, सनातन, सनन्दन एवं संतकुमार।

इन चारों से चार संप्रदाय प्रकट हुये। श्री लक्ष्मी जी से श्री सम्प्रदाय, श्री शिव जी से रुद्र सम्प्रदाय, श्री ब्रह्मा जी से ब्रह्म सम्प्रदाय एवं चारों कुमारों से कुमार संप्रदाय। वर्तमान में श्री रामानुजाचार्य, श्री विष्णुस्वामी, श्री पाद मध्वाचार्य तथा निंबार्काचार्य–ये चारों ही इन संप्रदायों के आचार्य बने।

श्री गौड़ीय सम्प्रदाय ब्रह्म सम्प्रदाय के अन्तर्गत आता है। जिन्होंने कलियुग के एकमात्र साधन, श्री हरिनाम संकीर्तन का पूरी पृथ्वी पर प्रचार किया। इन चारों सम्प्रदायों में दो सिद्धान्त एक समान है।

(1) श्री कृष्ण परम भगवान् हैं। (2) जीव इनका अमर अंश है एवं अंश का परम कर्तव्य है भगवान् श्री कृष्ण की सेवा करना।

श्री ब्रह्ममध्व गौड़ीय संप्रदाय में ही भगवान् श्री चैतन्य प्रकट हुये जो श्री श्रीराधाकृष्ण जी का सम्मिलित अवतार हैं। इन्होंने श्री ईश्वरपुरी जी से दीक्षा ली जो माधवेन्द्र पुरी के शिष्य हैं।

श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी ने श्री नाथ जी को प्रकट किया है

जो राजस्थान में अपना वैभव बांट रहे हैं। कई लोगों के अनुसार जीव भगवान् से भिन्न है और कइयों के अनुसार जीव इन दोनों के समान है परन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि जीव भगवान् से भिन्न भी है और समान भी है। जिस प्रकार समुद्र की बूंद, समुद्र के समान भी है और भिन्न भी है। ऐसे ही सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न भी हैं और सूर्य के समान भी हैं। जल की बूंद और सूर्य की किरण अणु है पर समुद्र और सूर्य विभु हैं। बस इतना ही अन्तर है। इसी प्रकार भगवान् विभु हैं और जीव अणु है। दोनों ही सच्चिदानंद हैं। हम आत्मा हैं और जीव परमात्मा हैं।

भगवान् परम स्वतन्त्र है, पूरी तरह स्वतन्त्र हैं पर जीव पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं है। उसे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है पर थोड़ी मात्रा में। भगवान् ने जीव को यह स्वतंत्रता इसलिये दी कि वह अपनी इच्छा से उससे (भगवान्) प्रेम कर सके। जब जीव इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करता है तो भगवान् की माया उसे इस भौतिक जगत् रूपी कारागार में डालकर सजा देती है। यह सजा इन जीवों को इसलिये मिलती है ताकि वे अपनी गलती सुधार सकें और जीवन के लक्ष्य को समझकर अपने सही रास्ते पर आ सकें। इसका मतलब यह नहीं है कि भगवान् अपने अंशी (जीव) से द्वेष करते हैं।

जिस प्रकार सोने को चमकाने के लिये आग में तपाया जाता है उसी प्रकार जीव के बुरे स्वभाव को अच्छा बनाने हेतु, जहां से वह आया है, वहीं पर चला जाये और इसका दुःखों व कष्ट से पिंडा छूट जाये उसे यह सजा दी जाती है। भगवान् तो बहुत दयालु हैं, वे चाहते हैं कि उनका पुत्र अपने घर वापस लौट जाये। इसलिये वे अपने पुत्रों रूपी इन जीवों को समझाने के लिये बार–बार अवतार लेकर आते हैं और अनेक लीलाएं करते हैं ताकि इन लीलाओं को हृदय में धारण कर जीव बुरी आदतें छोड़ दे। अनेक धर्मग्रंथों की रचनायें भी इसीलिये हुआ करती है ताकि इनका पठन–पाठन करके जीव का मन निर्मल बन सके जैसे

श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत महापुराण, रामायण आदि का पठन–पाठन कर सके।

भगवान् तो चर–अचर सभी जीवों के माँ–बाप हैं। बेटा निगुरा हो सकता है, पूत कपूत हो सकता है फिर भी मां–बाप कभी बुरे नहीं होते। माँ–बाप को सदैव उसकी चिंता रहती है ताकि वह सुधर जाये और यदि सुकृति तेज होती है तो यह भूला–भटका जीव, साधु–संग करने से सुधर भी जाता है।

देखो! प्रत्येक युग में भगवान् को प्राप्त करने की विधि भिन्न–भिन्न हुआ करती है। विष्णु पुराण में लिखा है–

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्।।

अर्थात् सत्ययुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञों द्वारा भजन और द्वापर में उनका पूजन करके मनुष्य जिस फल को पाता है, वही फल वह कलियुग में केशव का कीर्तन मात्र करके प्राप्त कर लेता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

–बृहन्नारदीय पुराण

कलियुग में श्री हरि का नाम, श्री हरि का नाम और केवल श्री हरि का नाम ही एकमात्र सहारा है। श्री हरिनाम के बिना इस कलियुग में और कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है,। इसलिये सदैव

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का कीर्तन व जप करते रहो। यह महामंत्र किसी भी देश, काल और अवस्था में शुद्धि आदि की अपेक्षा नहीं रखता। यह तो स्वतन्त्र ही रहकर, अभीष्ट कामनाओं को देने वाला है। जूठे अथवा अपवित्र होने पर भी नामोच्चारण के लिये कोई निषेध नहीं

है। भगवान् के कीर्तन में अशौच बाधक नहीं है क्योंकि भगवन्नाम स्वयं ही सबको पवित्र करने वाला है।

जिस प्रकार पानी को शुद्ध करने के लिये, उसकी गंदगी दूर करने के लिये उसे छान लिया जाता है उसी तरह मनुष्य की गंदी मानसिकता (भगवान से विद्रोह) को हरिनाम जप व कीर्तन द्वारा शुद्ध किया जाता है। इसके बाद ही आत्मा भगवत् धाम में जाकर आनन्द भोग कर सकती है।

आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है–प्रमाद जो भगवत्–नाम से दूर करता है। हरिनाम में मन लगने नहीं देता। प्रमाद का अर्थ है–बेपरवाही, आलसपना। जो संतान अपने माता–पिता की सेवा नहीं करती, जो शिष्य अपने श्रील गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, जो धर्म पत्नि अपने पति के आदेश का पालन कर, सेवा नहीं करती, इन सबको कभी भी भगवान् की प्राप्ति नहीं हो सकती। ये भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते।

सेवा ही भगवान् को सेवक के पास खींच कर लाती है। जिस प्रकार किसान खेतों में बीज बो देता है और अनाज पैदा करता है। यही अनाज किसान की पैसे से अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति रूपी सेवा करता है। अनाज उसकी पेट की भूख मिटाकर भी सेवा करता ही है। इसी प्रकार भक्त साधक को हर प्रकार से सेवा करके भगवान् को प्रसन्न करते रहना चाहिये। सेवा के अभाव में साधक अपने ध्येय (लक्ष्य) पर नहीं पहुँच पाता है। ये सत्य सिद्धान्त है–

(1)

संत मिलन को चाहिए, तज माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरें, कोटि यज्ञ समान।।

(2)

सगंत कीजै साधु की जिनका पूरा मन।
अनतोले ही देत है नाम सरीखा धन।।

(3)

संत बड़े परमार्थी ज्यों घन बरसें आय।
तपन बुझावें और की, अपनो पारस लाय।।

(4)

तीर्थ नहाये एक फल, संत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहत कबीर विचार।।

(5)

मन दिया, तन सब दिया, मन के लाख शरीर।
अब देने को कुछ नहीं, कहते दास कबीर।।

इस पूरे जगत का समाज भी भिन्न–भिन्न हुआ करता है। अतः सत्य सिद्धान्त यह होता है कि अपने–अपने समाज में ही पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सैद्धान्तिक होता है और दूसरे के समाज में दखल अंदाजी (हस्तक्षेप) करना सिद्धान्त के विरुद्ध है और यह अपराध के दायरे में आ जाता है और ऐसा करने से साधक जिस मार्ग पर चल रहा होता है, उसका मार्ग कंटीला बन जाता है अर्थात् वह अपने लक्ष्य से वंचित हो जाता है।

अध्यात्मिवादियों का अपना समाज होता है। इस समाज में भगवान् को प्राप्त करने वाला मार्ग होता है। इसी समाज में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी व संन्यासी आते हैं। गृहस्थियों का समाज बहुत बड़ा होता है। राजनीतिज्ञों का समाज, विद्यार्थियों का समाज, खेती करने वालों का समाज, किसानों का समाज, डाक्टर–वैद्यों का समाज, मजदूरों का समाज–इस प्रकार कई अलग–अलग प्रकार के समाज इस जगत् में हुआ करते हैं। इसलिये सत्यसिद्धान्त यह होता है कि अपने अपने समाज में पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सैद्धान्तिक होता है एवं दूसरे के समाज में पक्ष–विपक्ष का कर्म करना सिद्धान्त के विरुद्ध है। जो साधक भगवान् को मिलना चाहता है, दूसरे समाज के कार्यों में हस्तक्षेप करने से, वह अपराधों के चंगुल में फंसता हुआ चला जाता है। दूसरे के समाज से उसको क्या लेना–देना ! उसकी ओर से तो सोते रहने में ही फायदा है।

लेकिन ऐसा होता है कि गृहस्थ, आध्यात्मिवादियों का पक्ष–विपक्ष लेता रहता है तो अपने उद्देश्य से भटक जाता है, वंचित हो जाता है। इसलिये हरिनाम की शरण में जाने से ही भगवान् से मिलना हो सकता है, नहीं तो उसका मार्ग रुक जाता है, हरिनाम में अरुचि हो जाती है। देखो, इस कलियुग में केवलमात्र हरिनाम ही साधक को भगवान् से मिला सकता है पर यदि साधक अब नहीं समझता तो यह उसका अज्ञान है, उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है।

यह कलिकाल गौड़ीय सम्प्रदाय के जमाने (समय) में आया है। इस कलिकाल में, जो कोई भी श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की कड़ी में जुड़ जायेगा, उसका उद्धार होना निश्चित् है चाहे वह एक जन्म में हो या दस जन्मों में। पर उसका उद्धार होगा अवश्य। नामापराध के कारण उद्धार होने में देरी हो सकती है पर होगा अवश्य।

देखो ! यह कलिकाल बारंबार नहीं आता है। ऐसा कलिकाल केवल अठाइसवें द्वापर के बाद ही आता है। इस कलिकाल में दया परवश होकर, भगवान् श्री कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम से अवतार लेते हैं। श्री अद्वैताचार्य, मंजरी सहित तुलसी पत्रों से भगवान् शालिग्राम की पूजा करते हैं और उन्हें अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। तब दया की मूर्ति भगवान श्री कृष्ण ही चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित होते हैं। यह अवतार दया की असीम मूर्ति होती है। इस अवतार में भगवान् प्रेम देकर पात्र–अपात्र सभी का उद्धार करते हैं। एक अपराधी को उसका उद्धार करने में समय अधिक लगा देते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

केवलमात्र इस हरिनाम (महामंत्र) को जपकर साधक इस जन्म मरण के दारुण दुःख से छूट जाता है। इसमें किसी भी विधि का नियम नहीं है। जैसे ही बने, हरिनाम होना चाहिये। हरिनाम लेने के लिये कोई कानून नहीं है।

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति मज्जने।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले।।

अर्थात् दान और यज्ञ के लिये समय और काल का नियम है, स्नान और मज्जन (नदी, सरोवर आदि में गोता लगाने) के लिये भी समय का नियम है परंतु इस पृथ्वी पर भगवान् विष्णु का कीर्तन करने के लिये कोई काल निश्चित् नहीं है। उसे हर समय किया जा सकता है।

पूरी दुनियाँ में जिस किसी की सुकृति होगी वही श्री गौरहरि की इस कड़ी में जुड़ पायेगा वह भी अरबों–खरबों में से कोई एक होगा। बाकी सभी इस कड़ी में जुड़ने से वंचित रह जायेंगे। इस दया से वंचित रह जायेंगे। **किसी भी जीव का उद्धार करने में किसी हरिनामनिष्ठ, परमवैष्णव की एक नजर समर्थ है।** मैं तो अधम से भी अधम हूँ। प्रत्येक इतवार को आप सब भक्तों की नज़र मुझ पर पड़ती है तो मुझ पर भगवत् कृपा बरसती है। जब मुझ पर भगवत् कृपा बरसती है तो मेरा मन भगवान् से मिलने को तड़पता है, उनसे मिलने को जी चाहता है। मेरा शिशु भाव होने के कारण, मैं भगवान् की गोद में चढ़ना चाहता हूँ। गोदी में चढ़ने की व्याकुलता से मुझे बार–बार रोना आता है। मुझे कौन रुलाता है? यह तो मुझे नहीं मालूम पर यह रोना मुझे अच्छा लगता है। मेरा मन करता है कि मैं इसी तरह रोता ही रहूँ। मेरा रोना बंद ही न हो परंतु क्योंकि मुझे अपने श्रील गुरुदेव की अमृतवाणी भक्तों को सुनानी होती है, इसलिये श्रील गुरुदेव की वाणी, मुझे रोने से रोक देती है। जब मुझे श्रीगुरुदेव की अमृतवाणी बोलने को मजबूर कर देती है तो मुझे मजबूरी में रोना बंद करना पड़ता है।

– हरि बोल –

37

श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः

छींड की ढाणी
दि. 04.06.2012

नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का समस्त भक्तगणों के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहावस्था उत्तरोत्तर बढ़ने की बारंबार प्रार्थना स्वीकार हो।

केवलमात्र वृन्दादेवी की कृपा से ही भगवत् मिलन होगा

न सतगुरुदेव जी की कृपा से, (जो भगवत् स्वरूप ही होता है) न भगवत् वैष्णव की ही कृपा से और न स्वयं भगवान् की ही कृपा से भगवत् मिलन होगा, केवल मात्र तुलसी माँ ही, अपनी कृपा से ही, अपने प्रिय पुत्र भक्त साधक का, अपने पति भगवान से मिलन करा सकती है। अन्य किसी की भी कृपा से भगवान से मिलन नहीं हो सकता। इसका खास कारण है कि भगवान् तुलसी महारानी के पराधीन रहते हैं। तुलसी माँ के आदेश के बिना भगवान कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि भगवान वृन्दादेवी को वचन दे चुके हैं कि तेरे आदेश के बिना, मैं कुछ भी करने में सदा असमर्थ रहूँगा। इसका कारण नीचे दिया जा रहा है।

वृन्दा महारानी अखिल लोक ब्रह्मांड में सती शिरोमणि हैं। वृन्दा महारानी से बड़ी सती अखिल लोक ब्रह्मांड में कोई नहीं है। वृन्दा महारानी जलन्धर राक्षस की पत्नि थी। जलन्धर राक्षस सभी देवताओं को सताता रहता था। जलन्धर राक्षस वृन्दा देवी सती की वजह से किसी से मरता नहीं था। जब ब्रह्मा, शिवजी भी इस राक्षस को मारने से असमर्थ हो गए तब उन्होंने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि यह राक्षस अपनी सती पत्नि की वजह से हमसे मारा नहीं जा रहा है। इसकी पत्नि के सतीत्व ने हम सब को हरा दिया। अतः आप ही इसको मारने का उपाय करो वरना उसके

अमर रहने से सभी देवी–देवता, इसके कारण शान्ति व सुख से नहीं रह सकते।

तब इनकी प्रार्थना से विष्णु भगवान् इसको मारने का उपाय सोचने लगे कि जब तक सती शिरोमणी वृन्दादेवी का सतीत्व नष्ट नहीं होगा तब तक यह राक्षस मर नहीं सकता। इस सती के सतीत्व से यह अमर बन रहा है। तब कोई भी मरने का उपाय न देखकर मजबूरी में विष्णु भगवान ने जलन्धर राक्षस का रूप धारण कर वृन्दा महारानी के पास जाकर इनका सतीत्व नष्ट किया। जब वृन्दा देवी को मालूम पड़ा कि यह तो मेरा पति नहीं है, इसने मेरे पति का रूप धर कर मेरे से अन्याय किया है। यह तो विष्णु है तो वृन्दा देवी ने विष्णु को श्राप दे दिया कि तूने मेरे से अन्याय किया है इसलिये जा, तू पत्थर का बन जा। श्री विष्णु ने प्रार्थना की कि देवी ऐसा तो श्राप मत दे। तो वृन्दा देवी बोली कि ठीक है, तू सालग्राम बन कर भक्तों की सेवा का लाभ प्राप्त करेगा, एवं तू अब हमेशा मेरे अधीन रहेगा। मेरी आदेश के बिना तू पराधीन रहेगा। तब विष्णु भगवान बोले तूने मुझे ऐसा कठोर श्राप दिया है अतः मैं भी तुझे श्राप देता हूँ। तू धरातल पर पेड़ के रूप में जन्म लेगी। तब वृन्दा महारानी बोली तुमने भी मुझे ऐसा कठोर श्राप दिया है अतः मैं भी तुम्हें श्राप देती हूँ कि मेरे पेड़ के पत्तों के बिना तेरे भक्तों का तुझसे मिलन नहीं होगा।

भगवान् श्रीविष्णु बोले, ''देवी! भक्तों के बिना तो मेरा जीवन ही नहीं है। अतः तेरी कृपा के बिना भक्त मुझसे मिल नहीं सकेगा।''

वृन्दा महारानी ने कहा, ''ऐसा ही मुझे स्वीकार है। अब तू भी मेरे बिना नहीं रह सकेगा। तेरा और मेरा अटूट सम्बन्ध रहेगा।''

भगवान विष्णु ने कहा, ''यह मुझे स्वीकार है।''

तब भगवान विष्णु ने जलन्धर पर आक्रमण कर दिया। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। इसके बाद विष्णु ने जलन्धर राक्षस का,

अपने सुदर्शन चक्र से सिर काट कर धरती पर गिरा दिया। इस प्रकार से जलन्धर राक्षस का उद्धार हुआ।

इस प्रसंग से शंका हो सकती है कि भगवान् विष्णु ने ऐसा गलत कर्म क्यों किया? इस का समाधान साफ है कि सबकी भलाई हेतु कर्म करना शुभ ही होता है। दूसरा समाधान यह है कि भगवान् विष्णु आत्मा रूप से किसमें नहीं हैं? उनसे क्या छुपा है? उनके बिना तो अखिल लोक ब्रह्माण्ड में एक भी कण नहीं है। वह कहाँ नहीं हैं? किसमें नहीं हैं? सिद्धान्त भी है कि

समरथ को नहीं दोष गुसाईं

भगवान् शिव ने हलाहल जहर पी लिया। क्या कोई जरा सा जहर पी सकता है? भगवान् श्रीकृष्ण ने अनन्त सुन्दर गोपियों के साथ रास किया। क्या काम गन्ध भी उन्हें छू सकी? अगस्त्य ऋषि ने एक चुल्लु में समुद्र का जल पी लिया। क्या कोई जल का भरा हुआ एक मटका (घड़ा) पी सकता है? इसलिये शंका करना बेकार है।

वास्तविक बात यह है कि साधक/भक्त वृन्दा माँ की कृपा के बिना भगवान् से नहीं मिल सकता। क्योंकि भगवान् की असली पत्नी तुलसी माँ ही है। श्री भगवान् ने सशरीर तुलसी से रमण किया है। भगवान की जो सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ हैं ये भगवान् की असली पत्नी नहीं हैं क्योंकि भगवान् ने मानसिक रूप से इनका संग किया अर्थात् शरीर से उनका संग न करके मन से किया है। अतः वे असली पत्नी नहीं हैं। अतः भगवान् के साथ सशरीर रमण करने के कारण तुलसी माँ ही भगवान् की असली पत्नी हो गयी। अतः साधक/भक्त तुलसी माँ की कृपा के बिना भगवान् से स्वप्न में भी नहीं मिल सकता। यह प्रत्यक्ष शास्त्रीय बात है ही कि क्या सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ की चर्चा कहीं आती है कि इन रानियों की कृपा से भगवान् से मिलन होगा।

तुलसी माँ की सेवा ही भगवान् से मिलाती है। अब सेवा किस

प्रकार से होनी चाहिए ? यह मेरे श्री गुरुदेव जी बता रहे हैं? ध्यान पूर्वक सुनने की कोशिश करें।

प्रथम तो किसी शुभ दिन में तुलसी रोपण करना चाहिए। समय–समय पर तुलसी विडले में शुद्ध पानी देना चाहिए। छः माह में एक बार गाय का गोबर थोड़ी मात्रा में डालना चाहिए। अधिक गोबर डालने से, उसकी गर्मी तुलसी माँ को सुखा देती है गोबर डालकर शुद्ध पानी देने से तुलसी माँ को गोबर की गर्मी नुकसान नहीं करेगी। भगवान की सेवा में तुलसी दल लेने हेतु पहले दण्डवत करें बाद में मंत्र द्वारा तुलसी दल सिर पर नहीं तोड़कर, बीच में से तोड़े। सिर पर दल तोड़ने से तुलसी माँ बढ़ नहीं सकेगी। सिर पर तोड़ने से मंजरी नहीं आ सकेगी। मंजरी जब बड़ी हो जावे उसे तोड़ते रहना चाहिये ताकि तुलसी माँ प्रफुल्लित रहे। मंजरी न तोड़ने से तुलसी माँ सुस्त रहेगी।

तुलसी माँ के पत्रों को भगवत् चरण में मलयागिरी चन्दन में लपेट कर चढ़ाना चाहिये तथा भगवान् को गले में तुलसीदल की माला पहनाना चाहिये।

श्री गुरुदेव को तुलसी दल मलयागिरी चन्दन में लपेट कर सिर या गले में चढ़ाना चाहिये। घर में अमनिया जब तैयार हो जावे तो सब्जी, दाल, रोटी तथा पानी के गिलास में तुलसी दल डालना चाहिये। जो भी खाद्य पदार्थ हो उसमें तुलसी दल डालना चाहिये। फिर पर्दा करके, आसन पर बैठकर ध्यान करें कि भगवान् खाद्य पदार्थ खा रहे हैं और फिर ये भावना करें कि भगवत् प्रसाद श्री गुरुदेव पा रहे हैं। फिर घंटी बजाकर पर्दा खोलो और प्रसाद ले जाकर रसोई घर में रखें। बाद में भक्तों को वितरण करें। भक्तों को उतना ही प्रसाद वितरण करें जितना भक्त खा सकें। थाली या पत्तल में जूठा प्रसाद छोड़ना घोर अपराध है जिससे हरिनाम में रुचि होना असम्भव है। द्वादशी को तुलसी दल तोड़ना महा अपराध है। तुलसी पेड़ पर अपनी छाया का पड़ना या सुखाने के लिये डाले हुये कपड़ों की छाया पड़ना घोर अपराध है। जब तुलसी

के पेड़ में कीड़े लग जायें तो फिटकरी जड़ में डालें। इससे कीड़े नहीं लगेंगे। पत्तों पर कीड़े लगने पर हल्दी पाउडर (पिसी हुई हल्दी) पत्तों पर छिड़क दें।

तुलसी माँ के गमले के पास बैठ कर हरिनाम करना सर्वोत्तम है इससे हरिनाम में रुचि होगी। श्री गौर हरि तुलसी माँ के पास बैठकर हरिनाम करते थे। हरिनाम में मन लगाने हेतु तुलसी माँ से प्रार्थना करते थे।

तुलसी की चार परिक्रमा नित्य प्रति सवेरे शाम करना सर्वोत्तम है। तुलसी माँ के समक्ष भक्तों की जय देना सर्वोत्तम है। भक्त तुलसी माँ के सच्चे पुत्रवत् ही होते हैं। तुलसी माँ के और कोई पुत्र है ही नहीं। तुलसी माँ ही अपने भक्त पुत्रों को भगवान् की गोद में चढ़ाती हैं।

तुलसी माँ के पत्रों को चबाकर खा सकते हो वरना तुलसी पत्र साँस नली में घुसने से मौत हो सकती है। सर्दी हो तो तुलसी माँ को शुद्ध कपड़ा ओढ़ावें (पहनावें) या कमरे के अन्दर विराजमान करें। गर्मी या धूप हो तो छाया में रखें। तुलसी मैया की अपने बच्चों की तरह देखभाल रखें। अखिल ब्रह्माण्ड में तुलसी माँ के बराबर, रक्षा व पालन करने वाली अन्य कोई भी माँ नहीं है एवं भगवान् के अलावा अखिल ब्रह्माण्ड में कोई बाप नहीं है। ये दो ही जीवात्मा पर अहैतुकी कृपा करने वाले रक्षक व पालक हैं।

आप सभी भक्तगण प्रत्यक्ष में देख रहे हो तथा अनुभव कर रहे हो कि जो प्रसंग न कहीं पढ़ा है, न किसी से सुना है फिर भी प्रत्यक्ष में हो रहा है। देखने में आ रहा है, अनुभव में आ रहा है। यह तुलसी माँ की ही कृपा का चमत्कार है।

सौ में से सौ साधक/भक्तगण, तुलसी माला को, जो कि श्री गुरुदेव जी के द्वारा हरिनाम जपने के लिये उपलब्ध होती है, निर्जीव व जड़ समझते हैं एवं अनुभव करते हैं। वे सोचते हैं कि यह माला सूखी लकड़ी की मणियों की माला है। इसमें जीव तो है नहीं, अतः यह निर्जीव है।

अब सभी भक्त/साधक गण विचार करें कि जो सूखी मणियों की तुलसी माला है और जिसको निर्जीव समझ रहे हो, क्या यह हमें माया से छुड़ा देगी? क्या यह भगवान् से मिला देगी? लेकिन हम देखते हैं कि यह माया से छुड़ाती भी है और भगवान् से मिलाती भी है। फिर यह निर्जीव कैसे हुई ? यह तो सजीव हुई। यह तो जाग्रत हुई। यह तो जिन्दी हुई।

अब प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या जरूरत है! श्री गुरुदेव जी बोल रहे हैं कि जब साधक/भक्त माला हाथ में लेकर हरिनाम जपने को तैयार हो तो माला मैया को सबसे पहले सिर पर लगाओ, फिर हृदय से लगाओ और फिर माला मैया के चरणों का चुम्बन करो। तो साधक गण देखेंगे कि यह माला मैया, सुमेरु भगवान् को उनके हाथ की उंगलियों में सौंप देगी। यदि ऐसी प्रार्थना नहीं करोगे तो माला–झोली में सुमेरु भगवान् को तलाश करना पड़ेगा। ऐसा चमत्कार साधक/भक्तगण को प्रत्यक्ष हो रहा है फिर भी श्रद्धा व विश्वास भक्त/साधकगण का न हो तो समझना होगा उसके दुर्भाग्य का कोई अन्त नहीं।

याद रखो ! सुमेरु साक्षात भगवान् हैं और उसके दोनों ओर गोपियां हैं। मेरे श्री गुरुदेव ने जो तीन प्रार्थनायें बतायीं हैं वे कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलीं और न किसी से सुनी जो कि दो ही मिनट की हैं। ये प्रार्थनाएं समस्त शास्त्रों का निचोड़ है, बीज है जो बहुत ही प्रभावशाली है यदि फिर भी किसी को इन प्रार्थनाओं में श्रद्धा या विश्वास नहीं होता तो समझना होगा कि अपराधी होने में कोई कसर नहीं। वैसे तो ये तीन प्रार्थनायें सभी को पता है फिर भी कोई नया साधक हो उसके लिये मैं फिर से बता देता हूँ।

साधक रात को सोते समय भगवान् से ये प्रार्थना करे कि,

"हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आवे और मेरे शरीर से आप आत्मा रूप में बाहर निकलो तो आप का नाम उच्चारण करा देना। भूल मत करना। हे मेरे प्राणनाथ! मुझ पर इतनी कृपा जरूर करना।"

जब प्रातःकाल में सोकर जगो तो बोलना है कि, **"हे मेरे प्राणनाथ! अब से लेकर, जब मैं रात में सोऊँ तब तक, मैं जो भी कर्म करूँ आपका ही समझकर करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद करा देना। हे मेरे प्राणनाथ! भूल मत करना।"**

ऐसा कहकर भगवान् को बाँध दिया है।

तीसरी प्रार्थना–जब सवेरे तिलक इत्यादि लगाकर संध्या वन्दन करने लगो तो भगवान् से बोलना, **"हे मेरे प्राणनाथ! मेरी दृष्टि ऐसी बना दो कि चर–अचर प्राणी मात्र में तथा सृष्टि के कण–कण में मैं आपको ही देखूँ। हे मेरे प्राणनाथ! मैं भूल जाऊँ तो याद दिला देना।"**

यहाँ भी भगवान् को बाँध दिया है।

इन तीन प्रार्थनाओं में केवल दो मिनट का ही समय लगता है। फिर भी कोई न करे तो उसके समान तो कोई दुर्भागा इस धरातल पर नहीं है।

वृन्दा महारानी सभी सोलह हजार एक सौ आठ रानियों को बोल रही है कि मैं ही विष्णु की असली पत्नि हूँ क्योंकि विष्णु ने सशरीर मुझसे रमण किया है। तुम सब नकली पत्नी हो क्योंकि तुमने मानसिक रूप से कृष्ण से रमण किया है। तुमने मन से कृष्ण को अपनी सेज पर शयन कराया है। मन से ही गर्भ धारण कर के तुम सबके 10–10 पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ है। मेरे तो अनन्त पुत्र और पुत्रियां हैं। जो भी भगवान् विष्णु के भक्त है वे सभी तो मेरे पुत्र–पुत्रियां हैं। मेरे पुत्र–पुत्रियों के नाते मैं उन्हें अपने पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ाती रहती हूँ। उन्हें वैकुण्ठ धाम व गोलोक धाम भी पहुँचाती रहती हूँ। तुम सब की सब किसी एक भक्त को भी क्या भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ा सकी हो? इसलिये घमण्ड मत करो। तुम सबमें मेरे बराबर कोई भी भगवान् विष्णु को प्यारी नहीं है। भगवान् विष्णु मेरे बिना कुछ नहीं कर सकते। सदा मेरे अधीन रहते हैं। अब आप ही बताओ कि आप

सबमें से कौन ऐसी है जो भगवान् विष्णु को पराधीन कर सकती है। मेरे बिना तो भगवान् कुछ कर ही नहीं सकते।

भगवान् विष्णु की सोलह हजार एक सौ आठ रानियां मायिक तो है नहीं, वे सभी दिव्य शरीर वाली हैं। इन्होंने भगवान् विष्णु को अपने मन से, अपनी सेज पर आवाहन करके रमण किया है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब सृष्टि का विस्तार हुआ तो केवल मात्र मन से ही हुआ है। बाद में स्त्री पुरुष के रमण से सृष्टि का विस्तार होना आरम्भ हुआ है।

वृन्दा महारानी भगवान् श्रीकृष्ण की सभी रमणियों से बोल रही है कि तुम्हारे सब के दस–दस पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ और मेरे अनन्त पुत्र पुत्रियों को जन्म हुआ है और अब भी हो रहा है। और वे हैं मेरे पति भगवान् विष्णु के प्रिय भक्त। मेरे इन भक्तों में कुपात्र भक्त भी हैं और सुपात्र भक्त भी हैं। इन सुपात्र भक्त संतानों को मैं खुश होकर, अपने प्रिय पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ाती रहती हूँ। आपमें से कोई भी रमणी, आज तक क्या किसी भी संतान को मेरे प्रिय पति भगवान् विष्णु की गोद में चढ़ा सकी हो? अब तुम ही बताओ कि विष्णु की सबसे प्यारी कौन है?

वृन्दा देवी की बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण की सभी रमणियां कुछ नहीं बोल सकीं और मन ही मन वृन्दा महारानी की महिमा का गान करने लगीं। वे सोचने लगीं कि वृन्दा महारानी की बात तो एकदम सही है ही। हम भगवान् की उतनी प्रिय रमणी नहीं हैं जितनी वृन्दा देवी प्रिय है। हमारी सबकी सन्तानें तो आपस में लड़कर प्रभास क्षेत्र में मारी गयीं पर वृन्दा देवी की सन्तानें अमर हैं।

अतः जो भक्त साधक तुलसी माँ को जितना खुश कर सकेगा उतना ही भगवान् विष्णु के नजदीक पहुँच सकेगा।

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में वृन्दा देवी का उदाहरण प्रत्यक्ष है। श्री अद्वैताचार्य भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के

प्रगट होने से पहले ही तुलसी मंजरी सहित श्री विष्णु भगवान् की अर्चन–पूजन किया करते थे और भगवान् से यही प्रार्थना किया करते थे कि हम सभी दुःख व संकट से परेशान हैं। आप अवतार लेकर इस दुःख व कष्ट से उद्धार करो।

क्योंकि उस समय भारतवर्ष में मुसलमानों को राज्य था। ये हिन्दुओं पर अत्याचार किया करते थे। भगवत् भक्ति में बाधा देते रहते थे। अतः श्री अद्वैताचार्य केवल तुलसी माँ से ही प्रार्थना किया करते थे।

"हे मैया! भगवान् विष्णु तुम्हारे अधीन हैं। हे मैया! तुम ही कृपा करके भगवान् विष्णु का अवतार करा सकती हो।" उनकी प्रार्थना से खुश होकर तुलसी मैया ने दया अवतारी श्री चैतन्य महाप्रभु जी का अवतार इस धरातल पर कराया।

निष्कर्ष यह निकला कि वृन्दा माँ की कृपा ही सर्वोपरि है। साधकगण केवल वृन्दा माँ से ही प्रार्थना करके हरिनाम में रुचि होने का प्रयास करें। वृन्दा माँ नामापराध से भी बचा देगी क्योंकि मन स्वयं भगवान् है ही और गीता में भगवान् ने कहा है कि इन्द्रियों में मैं ही मन हूँ। जब भगवान् वृन्दा माँ के पराधीन हैं तो नामापराध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तुलसी माँ स्वयं बचाती रहेगी।

वृन्दा देवी कोई इस जन्म की जलन्धर नामक राक्षस की पत्नी नहीं थी। वे तो आदि जन्म से ही सती शिरोमणि रही है तब ही तो भगवान् विष्णु की खास पत्नी शिरोमणि रही हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में वृन्दा देवी का ही आधिपत्य तथा महिमा स्थापित है। अतः वृन्दा देवी के समान तो कोई भी महिमा वाली सती नहीं है। जिससे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक भगवान् भी उसका अधिपत्य स्वीकार करते हैं। **यदि भगवान् को अपना बनाना चाहते हो तो तुलसी माँ की सेवा करो। अन्य किसी भी उपाय से भगवत् की उपलब्धि नहीं हो सकती।**

जीव मात्र में सभी चर–अचर प्राणी आते हैं इनको सताना भगवान् को सताना होता है क्योंकि शरीर तो जड़ पदार्थ है इसमें आत्मा रूप से परमात्मा विराजमान है। इस कारण आत्मा ही सताई जाती है। जो ऐसा कर्म करता है उसका कभी उद्धार नहीं होगा। वह माया की चक्की में पिसता ही रहेगा। मन ही प्रत्येक प्राणी का दुश्मन है एवं मन ही एक प्राणी का दोस्त है। जब मन चर–अचर प्राणियों का भला करता है तब ये मन उसका दोस्त है क्योंकि यह भला करना ही भगवान् की भक्ति है। जब मन चर–अचर प्राणियों को सताता है तो यह मन ही इसका दुश्मन है क्योंकि यह उसको कभी सुखी नहीं कर सकेगा। यह आत्मा को ही दुखी करता रहता है, अर्थात् परमात्मा का ही एक प्रकार से दुश्मन है।

वृन्दा महारानी के लिये शास्त्र बोल रहा है–

शालिग्राम महा पटरानी

महा का अर्थ है कि तुलसी माँ से अधिक भगवान् विष्णु को प्यारी दूसरी कोई नहीं।

शिव सनकादिक और ब्रह्मादिक, ढूँढत फिरत महा मुनिज्ञानी।

ढूँढत फिरत का अर्थ है कि वृन्दा महारानी की कृपा के पीछे ही त्रिलोकी नाथ की कृपा दौड़ती आती है। अतः सभी वृन्दा महारानी की कृपा के भिखारी हैं।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवत् भक्त, साधकगण वृन्दा महारानी की सेवा करके, कृपा के भिखारी बनो तभी वैकुण्ठ धाम तथा गोलोक धाम में वास मिल सकेगा।

भगवान् श्री कृष्ण के रास रचने का प्रबन्ध केवल तुलसी माँ ही करती है। 16 हजार एक सौ आठ रानियाँ नहीं करती हैं और न ही रास में शामिल हो सकती हैं क्योंकि रास में शामिल होने का अधिकार इन रानियों को नहीं है। केवल गोपियों तथा वृन्दा देवी को ही ये अधिकार प्राप्त है।

– हरि बोल –

मंगल आरती

(श्रीगौर–गोविन्द–आरती)

भाले गोरा–गदाधरेर आरती नेहारि।
नदिया–पूरब भावे याँउ बलिहारी।।1।।
कल्पतरुतले रत्नसिंहासनोपरि।
सबु सखी वेष्टित किशोर–किशोरी।।2।।
पुरट – जड़ित कत मणि – गजमति।
झमकि' झमकि' लभे प्रति अंग ज्योति।।3।।
नील नीरद लागि, विद्युत माला।
दुहुँ अंग मिलि' शोभा भुवन उजाला।।4।।
शंख बाजे, घण्टा बाजे बाजे करताल।
मधुर मृदंग बाजे परम रसाल।।5।।
विशाखादि सखीवृन्द दुहुँ गुण गाओये।
प्रियनर्मसखीगण चामर ढुलाओये।।6।।
अनंगमंजरी, चुया चन्दन देओये।
मालतीर माला रूप–मंजरी लागाओये।।7।।
पंच प्रदीपे धरि' कर्पूर बाति।
ललितासुन्दरी करे युगल–आरती।।8।।
देवी–लक्ष्मी–श्रुतिगण धरणी लोटाओये।
गोपीजन अधिकार रओयत गाओये।।9।।
भक्तिविनोद रहि' सुरभिकि कुंजे।
आरती–दर्शने प्रेम–सुख भुंजे।।10।।

नदिया के पूर्व भाव में अर्थात् ब्रज–भाव में उत्तम प्रकार से हो रही श्रीगौर–गदाधर जी की आरती को देखकर मैं बलिहारी जाता हूँ। कल्पवृक्ष के नीचे, रत्नों के सिंहासन के ऊपर सब सखियों से घिरे नित्य–किशोर श्रीकृष्ण एवं नित्य–किशोरी श्रीमती राधा जी विराजमान हैं। वहाँ जड़ित सोना व गजमुक्ता आदि अनेकों मणियाँ

झलमल–झलमल कर रही हैं तथा दोनों के अंगों से ज्योति बिखर रही है। घने बादलों की तरह घनश्याम श्रीकृष्ण एवं विद्युत–सी श्रीमती राधा जी की शोभा सारी पृथ्वी को आलोकमय कर रही हैं। शंख बज रहे हैं, घण्टे बज रहे हैं, करताल बज रहे हैं तथा परम–रसमय–ताल पर मधुर मृदंग बज रहे हैं। विशाखा आदि सखियाँ श्रीराधा–कृष्ण जी के गुणगान गा रही हैं तथा प्रियनर्म सखियाँ चामर ढुला रही हैं। अनंग मंजरी नामक गोपी विशेष सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दन लगा रही हैं तथा रूप मंजरी नामक गोपी मालती के फूलों की माला अर्पण कर रही हैं। पंच–प्रदीप द्वारा कर्पूरयुक्त बत्तियों को जलाकर ललिता सुन्दरी जी दोनों की आरती कर रही हैं। सभी देवियाँ, लक्ष्मी जी व श्रुतियाँ धरती पर लोट–पोट कर गोपियों के इस अधिकार की महिमा को रो–रो कर गा रही हैं। भक्तिविनोद ठाकुर जी सुरभि–कुंज में रहकर इस आरती को दर्शन करके प्रेम–सुख का आस्वादन कर रहे हैं।

— हरिबोल —

नाम की महिमा है अधिकाई।
थके गणेश शेष अरु शारद, पार न कोई पाई।
शरण परे शिष्य गुरु चरणन में तन मन भेंट चढाई।।
अभय करें शिर कर धर स्वामी, दें निज नाम बताई।
दृढ़ विश्वास नाम नवका में, बैठे भाव बढ़ाई।
भवसागर से सहज सुगम ही, हरि पद पहुँचे जाई।।
सतयुग में सत त्रेता में तप, द्वापर पूजा भाई।
कलि में केवल नाम अधारा, जपिये प्रीति लगाई।।
नामी कूं निज नाम मिलावे, वेद विमल यश गाई।
सरसमाधुरी संशय तज के, रहो नाम लौ लाई।।

सन्ध्या आरती

(श्रीगौर–आरती)

जय जय गोराचाँदेर आरती को शोभा।
जाह्नवी – तटवने जग – मन लोभा।।1।।
दक्षिणे निताइचाँद, वामे गदाधर।
निकटे अद्वैत, श्रीनिवास छत्रधर।।2।।
बसियाछे गोराचांद रत्नसिंहासने।
आरती करेन ब्रह्मा – आदि देवगणे।।3।।
नरहरि – आदि करि' चामर ढुलाय।
संजय–मुकुन्द वासुघोष–आदि गाय।।4।।
शंख बाजे, घण्टा बाजे, बाजे करताल।
मधुर मृदंग, बाजे परम रसाल।।5।।
बहु कोटि चन्द्र जिनि' वदन उज्ज्वल।
गलदेशे वनमाला करे झलमल।।6।।
शिव–शुक–नारद प्रेमे गदगद।
भक्तिविनोद देखे गोरार संपद।।7।।

सारे संसार के मन को लुभाने वाली गंगा जी के तट पर हो रही श्रीगौरचन्द्र जी की आरती की शोभा की जय हो, जय हो। दाहिनी ओर नित्यानन्द प्रभु, बायीं ओर श्रीगदाधर जी हैं तथा उनके पास श्रीअद्वैत–आचार्य जी हैं एवं श्रीनिवास जी छत्र पकड़े खड़े हैं। रत्न–सिंहासन पर गौरचन्द्र जी विराजमान हैं तथा ब्रह्मा इत्यादि देवगण उनकी आरती करते हैं। श्रीमान् नरहरि आदि चामर ढुलाते हैं। श्रीसंजय, मुकुन्द तथा वासुदेव घोष आदि भक्त लोग गाते हैं। शंख बजते हैं, घण्टे बजते हैं, करताल बजते हैं तथा परम–रसमय–ताल में मधुर मृदंग बजते हैं। करोड़ों चन्द्रमाओं की तरह जिनका उज्ज्वल मुखारविन्द है, उनके गले में वनमाला झलमल–झलमल करती रहती है। इन सब दृश्यों को देखकर शिव जी महाराज, शुकदेव जी व भक्त–प्रवर नादर जी प्रेम में गद्गद् हो उठते हैं तथा भक्तिविनोद ठाकुर जी इस गौर–सम्पदा का दर्शन करते रहते हैं।

सन्ध्या-आरती

(श्रीश्रीयुगल आरती)

जय जय राधाकृष्ण युगल–मिलन।
आरती करये ललितादि सखीगण।।1।।
मदनमोहन रूप त्रिभंग सुन्दर।
पीताम्बर शिखिपुच्छ–चूड़ा मनोहर।।2।।
ललितमाधव–वामे वृषभानु–कन्या।
नीलवसना गौरी रूपे गुणे धन्या।।3।।
नानाविध अलंकार करे झलमल।
हरिमनोविमोहन वदन उज्ज्वल।।4।।
विशाखादि सखीगण नाना रागे गाय।
प्रियनर्म–सखी यत चामर ढुलाय।।5।।
श्रीराधामाधव–पद – सरसिज–आशे।
भक्तिविनोद सखीपदे सुखे भासे।।6।।

श्रीराधा–कृष्ण जी के युगल मिलन की जय हो–जय हो। ललिता आदि सखियाँ उनकी आरती करती हैं। उनका मदन–मोहन त्रिभंग रूप बड़ा ही सुन्दर है। उन्होंने पीताम्बर धारण किया हुआ है। सिर पर मोर का पंख व मनोहर चूड़ा धारण किया हुआ है। वे जो ललित माधव हैं, उनके बायीं ओर गौर वर्ण वाली, नीले वस्त्र पहने, रूप व गुणों की धनी, वृषभानु महाराज की कन्या, श्रीमती राधिका जी विराजमान हैं। नाना प्रकार से सुशोभित अलंकार झलमल–झलमल कर रहे हैं तथा उनका उज्ज्वल श्रीमुख हरि के मन को भी विमोहित कर लेता है। विशाखा आदि सखियाँ नाना रागों से गा रही हैं तथा प्रियनर्म सखियाँ चामर ढुलाती हैं। श्रीराधा माधव जी के चरण–कमलों की आशा में भक्तिविनोद ठाकुर जी सखियों के चरण प्रान्त में रहकर सुख सागर में निमग्न हैं।

श्रीतुलसी-आरती

नमो नमः तुलसी महारानी वृन्दे महारानी! नमो नमः।
नमो री – नमो री मैया नमो नारायणी! नमो नमः।
जाको दरशे – परशे अघनाशी।
महिमा वेद–पुराण बखानि! नमो नमः।।
जाको पत्र – मंजरी कोमल।
श्रीपति चरण–कमल लपटानी। नमो नमः।।
धन्य तुलसी पूर्ण तप किये।
श्रीशालग्राम महापटरानी! नमो नमः।।
धूप, दीप, नैवेद्य आरती।
फूलन किये बरखा बरखानी! नमो नमः।।
छप्पन भोग छत्तीस व्यंजन।
बिना तुलसी प्रभु एक नाही मानी ! नमो नमः।।
शिव, शुक, नारद और ब्रह्मादिक।
ढूँढत फिरत महामुनि ज्ञानी! नमो नमः।।
चन्द्रशेखर मैया तेरो यश गावे।
भक्ति–दान दीजिये महारानी ! नमो नमः।।
तुलसी महारानी वृन्दे महारानी! नमो नमः।।

हे तुलसी महारानी! आपको नमस्कार है। हे वृन्दे महारानी। आपको नमस्कार है। मैयाजी! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे नारायणी! आपको नमस्कार है। आपके दर्शन से व स्पर्श से जीव के तमाम पाप खत्म हो जाते हैं–आपकी ऐसी महिमा का वेद व पुराण बखान करते हैं। आपके पत्ते व कोमल–कोमल मंजरी श्रीपति नारायण जी के श्रीचरणों में लिपटी रहती हैं। हे तुलसी जी! आप धन्य हैं। आपने पूर्ण तप किया है, जिससे आप शालग्राम जी की पटरानी कहलाती हो। धूप–दीप व नैवेद्य आपको अर्पण किये जाते हैं। आपकी आरती होती है तथा फूलों की वर्षा बरसायी जाती है। छप्पन–भोग व छत्तीसों प्रकार व्यंजन तुलसी के बिना

भगवान् ग्रहण नहीं करते। शिवजी महाराज, शुकदेवजी महाराज, नारद, गोस्वामीजी तथा ब्रह्मा आदि महामुनि ज्ञानी आपको ढूँढते फिरते हैं (अथवा तुलसी जी की परिक्रमा करते रहते हैं), चन्द्रशेखर जी, मैया ! आपका यशगान करते हैं। हे महारानी ! आप भक्ति का दान दीजिये। तुलसी महारानी ! वृन्दे महारानी ! आपको नमस्कार है।

श्रीतुलसी–वन्दना

नमो नमः तुलसी कृष्ण–प्रेयसी नमो नमः।
(व्रजे) राधाकृष्ण–सेवा पाब एइ अभिलाषी।।
ये तोमार शरण लय, तार वांछा पूर्ण हय।
कृपा करि कर तारे वृन्दावनवासी।।
मोर एइ अभिलाष, विलासकुन्जे दिओ वास।
नयने हेरिब सदा युगल रूप राशी।।
एइ निवेदन धर, सखीर अनुगत कर।
सेवा–अधिकार दिये कर निजदासी।।
दीन कृष्णदासे कय, एइ येन मोर हय।
श्रीराधा–गोविन्द प्रेमे सदा येन भासि।।

हे कृष्ण–प्रेयसी तुलसी जी! मैं ब्रज में श्रीराधा–कृष्ण जी की सेवा प्राप्त करूँ, इस अभिलाषा से आपको बार–बार प्रणाम करता हूँ। जो भी आपकी शरण लेता है, उसकी इच्छायें पूर्ण हो जाती हैं। आप कृपा करके मुझे वृन्दावनवासी बना दें। मेरी यही अभिलाषा है कि आप मुझे विलास–कुँज में वास दें, जिससे मैं हमेशा युगल रूप का अपने नेत्रों से दर्शन करता रहूँ। आप मेरा ये निवेदन स्वीकार कर लीजिये। मुझे सखियों के आनुगत्य में सेवा का अधिकार देकर अपनी दासी बना लीजिये। स्वयं को दीन कहते हुए श्रील कृष्णदास जी कहते हैं कि मेरी ये अभिलाषा जैसे पूर्ण हो जाये और मैं सदा श्रीराधा–गोविन्द जी के प्रेम में डूबा रहूँ।

कृपा–प्रार्थना

परमादरणीय वैष्णवजन एवं पाठकगण!

मैं एक अल्पज्ञ जीव हूँ। मुझे न तो संस्कृत का ज्ञान है, न ही मैं हिंदी भाषा में पारंगत हूँ। अपने शिक्षागुरु, परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के आदेश का पालन करते हुये, उन्हीं की अहैतुकी कृपा से, इन ग्रंथों के प्रकाशन, सम्पादन और प्रचार की सेवा मुझे प्राप्त हुई है।

मेरा प्रयास रहा कि इन ग्रंथों में कम से कम गलतियाँ हों पर फिर भी अज्ञानतावश और मानव स्वभाववश इन ग्रंथों में बहुत सी त्रुटियां रह गई होंगी। जो कमियाँ हैं वह सब मेरी हैं और जो विशेषताएँ हैं वह सब आप जैसे गुणग्राही पाठकों की हैं। आप सभी वैष्णवजन एवं प्रबुद्ध पाठकगण भावग्राही हैं, इसलिये श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के इन ग्रंथों में से भाव ही ग्रहण करना, मेरी न्यूनताओं की ओर ध्यान न देना।

यदि इन ग्रन्थों के पढ़ने से कोई भगवद्–उन्मुख होता है या नाम–जप में अग्रसर होता है तो मैं समझूँगा कि मेरा यह प्रयास सार्थक है और श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा का ही यह साक्षात् फल है। आप सबको प्रणाम करता हुआ, आप सभी से भक्तियुक्त कृपा की प्रार्थना करता हूँ।

–हरिपद दास

Cell: 099141-08292 • e-mail: haripaddasadhikari@gmail.com

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से नये संस्करण अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों का पूरी तरह निःशुल्क वितरण रोककर स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है। ग्रन्थ छपने के बाद पुनः निःशुल्क वितरण प्रारम्भ होगा–ऐसी योजना है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 09837031415

email-harinampress@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 6



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल–प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
श्रीमुकुन्ददास अधिकारी
श्रीहरिपद दास
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

प्रथम संस्करण–2000 प्रतियाँ
श्रीगुरुपूर्णिमा, 9 जुलाई 2017

मुद्रण–संयोजन एवं ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन–281121 – मोबाइल : 07500 987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 6

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य

अनिरुद्ध दास अधिकारी

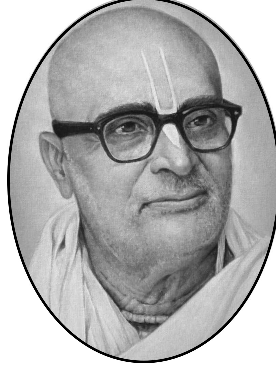
कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मँझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भँवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

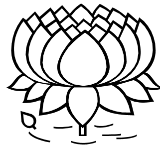
हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।

***



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भाग– 6

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। "**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" के छठे भाग का प्रथम संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

"**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी–यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा-ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँच भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग–अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ

उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। उनके द्वारा श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। आज श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के सभी भाग नियमित रूप से श्रीहरिनाम प्रेस में निरन्तर छप रहे हैं और उनका वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से वहाँ से ही चल रहा है।

अन्त में मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

प्रस्तावना

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

वर्तमान समय में अखिल विश्व इस 'हरे कृष्ण महामंत्र' के कीर्तन से आनन्दसागर में डुबकियाँ लगा रहा है। 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक इस ग्रन्थ से नित्य 1 लाख, 2 लाख तथा 3 लाख हरिनाम का आस्वादन किया जा रहा है। इस महामंत्र के विषय में वेद, उपनिषद्, पुराण तथा संहिता में इसका प्रमाण पाया जाता है। इसकी पुष्टि करने हेतु तथा श्रद्धावान्, सौभाग्यवान पाठकों की हरिनाम के प्रति पूर्ण निष्ठा उत्पन्न होने हेतु इस ग्रन्थ में नाम–महिमा से सम्बन्धित अनेकों शास्त्रीय प्रमाणों को अर्थसहित प्रस्तुत किया गया है। इससे इस ग्रन्थ का विषय तथा लेखक के पत्रों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इस ग्रन्थ के लेखक श्रीहरिनाम निष्ठ वैष्णव सन्त श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी अपने पत्रों में कई बार यह उल्लेख करते हैं कि, **'यह पत्र मैंने नहीं लिखे हैं, मेरे बाबा (भगवान् श्रीकृष्ण) ने मुझसे लिखवाए हैं।'**

श्रील अनिरुद्ध प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु और गुरु–शिष्य परम्परा षड्गोस्वामिवृन्द की गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय से जुड़े हुए एक अधिकृत रूपानुग वैष्णव सन्त हैं तथा गुरु–साधु–शास्त्र के अनुसार इनके दिव्य पत्रों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। साथ ही साथ ठाकुर जी (भगवान् श्रीकृष्ण) ने उनके पत्रों में उनसे यह भी लिखवाया है कि वे इस भौतिक जगत् के साधारण जीव नहीं है। उन्हें भगवान् ने हरिनाम ग्रहण कराने हेतु गोलोक धाम से इस धरती पर भेजा है। डेढ़ साल का शिशु तथा पोते के रूप में उनका भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध है। इसलिए यह ग्रन्थ स्वयं में ही एक प्रमाण है, इसे और किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि, श्रील अनिरुद्ध प्रभु अपने पत्रों में बारम्बार यह

लिखते हैं कि, प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं आजमाकर देख लो! क्योंकि प्रभु जी स्वयं दार्शनिक स्वभाव के हैं, जब तक वह स्वयं किसी वस्तु विशेष को अनुभव नहीं करते, तब तक वह उसकी सत्यता स्वीकार नहीं करते।

लेखक का कहना है कि, **जो अति सुकृतिशाली सौभाग्यवान जीव होगा, केवल वह ही इस ग्रन्थ के रहस्य को समझ पायेगा। केवल उसे ही इस ग्रन्थ के अनुसार हरिनाम का पूर्ण आश्रय ग्रहण करने से अतिदुर्लभ कृष्णप्रेम की प्राप्ति हो जायेगी। तथा तुच्छ फल के रूप में उसके सांसारिक दुःख भी हल्के हो जायेंगे**, जैसा कि पद्मपुराण में वर्णन आता है कि,

नाम चिन्तामणिः कृष्णः चैतन्य रसविग्रहः।
पूर्ण शुद्धो नित्य मुक्त अभिन्नत्वात् नामनामिनो॥

अर्थात्, भगवान् का नाम तथा भगवान् में कोई भेद नहीं है, दोनों ही अभिन्न तत्व हैं। इसलिए हरिनाम से जो कुछ भी माँगोगे उसे देने में वह सर्वसमर्थ हैं। इस नाम में भगवान् का रूप, गुण, लीला, धाम तथा उनकी समस्त शक्तियाँ विद्यमान होने के कारण यह समस्त रसों से पूर्ण तथा आनन्दमय है। भगवान् के पूर्ण, शुद्ध, नित्य तथा मुक्त होने के कारण उनके नाम में भी वहीं लक्षण पाये जाते हैं, इसलिए इसका आश्रय लेने वाला सौभाग्यशाली जीव भी क्रमशः पूर्णत्व को, पवित्रता को, नित्य स्वरूप (दिव्य शरीर) को प्राप्त कर सदा–सदा के लिए इस दुःखमय संसार से मुक्त हो जाता है।

ग्रन्थकार का कहना है कि, 'नाम का आश्रय लेने वाले को कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। घर बैठे भगवान् मिल जाते हैं तथा समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित है तथा मानसिक रूप से संसार की आसक्ति हटाकर वही आसक्ति भगवान् में लगाकर नित्य एक से तीन लाख हरिनाम करते समय भगवान् के प्रति तीव्र विरह उदय होने से

सम्बन्ध ज्ञान (स्वरूप ज्ञान) प्राप्त होकर इसी जन्म में गोलोक धाम की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जायेगी।

ग्रन्थकार के इस भाव तथा उपदेश में तथा भगवान् श्रीकृष्ण–चैतन्य महाप्रभु की वाणी में यत्किंचित् भी अन्तर नहीं है। इसकी पुष्टि हेतु श्रीचैतन्यचरितामृत–मध्य लीला– 7.121–135 में उद्धृत निम्नलिखित घटना को हृदयंगम करें।

एक गाँव में कूर्म नाम का एक वैदिक ब्राह्मण था। उसने बड़े ही सत्कार तथा भक्ति से श्रीचैतन्य महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया। यह ब्राह्मण महाप्रभु को अपने घर ले आया, उसने उनके चरणकमल धोये और उस जल को परिवार सहित ग्रहण किया। उस कूर्म ब्राह्मण ने महाप्रभु को बड़े ही स्नेह तथा आदर से सभी प्रकार का भोजन कराया। उसके बाद जो शेष बचा उसे परिवार के सारे सदस्यों सहित उसने खाया।

फिर उस ब्राह्मण ने प्रार्थना करनी शुरू की, "हे प्रभु, आपके जिन चरणकमलों का ध्यान ब्रह्माजी करते हैं, वे ही चरणकमल आज मेरे घर में पधारे हैं। हे प्रभु, मेरे महान् सौभाग्य की कोई सीमा नहीं रही। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आज मेरा परिवार, जन्म तथा मेरा धन सभी धन्य हो गये।" उस ब्राह्मण ने श्रीचैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना की, "हे प्रभु, आप मुझपर कृपादृष्टि करें और मुझे अपने साथ चलने दें। मैं अब और अधिक समय तक भौतिक जीवन से उत्पन्न दुःख की लहरों को सहन नहीं कर सकता।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "अब फिर से ऐसा मत कहना। अच्छा यही होगा कि तुम घर पर रहो और सदैव कृष्ण–नाम का जप करो। हर एक को उपदेश दो कि वह भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् कृष्ण के आदेशों का पालन करें। इस तरह गुरु बनो और इस देश के हर व्यक्ति का उद्धार करने का प्रयास करो।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कूर्म ब्राह्मण को यह भी उपदेश दिया, "यदि तुम इस उपदेश का पालन करोगे, तो तुम्हारा गृहस्थ जीवन तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति में बाधक नहीं बनेगा। यदि तुम इन नियमों का पालन करोगे, तो पुनः मेरा सानिध्य प्राप्त करोगे।

दक्षिण भारत की यात्रा से जगन्नाथपुरी लौट आने तक महाप्रभु सबको इसी प्रकार प्रचार करते रहे।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु का सबको यह निवेदन है कि, इस ग्रन्थ को एक शिक्षागुरु के रूप में स्वीकार करें। शुद्ध धन की कमाई के द्वारा अपना स्वधर्म निभाते हुए तुलसी माला पर नित्य कम से कम एक लाख हरिनाम जप करें। तुलसी पूजन, नित्य तीन प्रार्थना, वैष्णव प्रार्थना, भगवान् श्रीराधा- कृष्ण के चित्र की पूजा करें। भगवान् को भोग लगाकर फिर स्वयं प्रसाद पाना, एकादशी व्रत पालन, द्वादश-तिलक धारण इत्यादि वैष्णव सदाचार का पालन करें। कपटवृत्ति परित्याग कर भगवद् प्राप्ति की उत्कट लालसा हृदय में रखने से सद्गुरु-वैष्णव तथा भगवान् प्रसन्न होकर साधक के पास कृपा करने हेतु स्वयं दौड़े चले आयेंगे। इस कपट भरे कलियुग में भगवान् को ढूँढ़ने के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।

इस ग्रन्थ के पहले 4 भागों में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का तथा 5 वें भाग में 'प्रेम' इस विषय का वर्णन है। छठे भाग में विरहप्राप्ति तथा 7 वे भाग में अन्तिम सोपान 'सम्बन्ध ज्ञान' की प्राप्ति का वर्णन होगा, जिसे प्राप्त होने के पश्चात् और कुछ प्राप्त करना बाकी नहीं रहता। लेखक का कहना है, 'दुनिया के सभी कथा-प्रवचनकार बहुत सारी बातों का वर्णन करते रहते हैं, लेकिन भगवान् के पास जाने का सीधा रास्ता कोई नहीं बताता। नाम ही साध्य तथा साधन तत्व है। इसका आश्रय किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए यह कोई नहीं बताता।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन '**हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग**' इस लेख में स्पष्ट किया गया है।

यह मार्ग श्रील अनिरुद्ध प्रभु को पाँचों भागों के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के बाद दि. 24 नवम्बर 2013 को स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया था।

तब से श्रील अनिरुद्ध प्रभु इसी मार्गानुसार तथा क्रमानुसार हरिनाम करते हैं और दूसरों को भी इसीप्रकार से हरिनाम करने की प्रार्थना करते हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह महामंत्र कोई साधारण शब्दों की रचना नहीं बल्कि शाश्वत मंत्र है। यह उस स्थान से इस धरती पर प्रकट हुआ है, जहाँ पर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अन्तरंगा आह्लादिनी शक्ति श्रीमती राधारानी तथा अपने अनन्त पार्षदों के साथ मधुररस का तथा अन्य रसों का नित्य आस्वादन करते हैं। शुद्ध-भक्त उस स्थान को 'गोलोक धाम' के नाम से सम्बोधित करते हैं।

गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।

गोलोक धाम का सर्वोच्च विषय है- **प्रेम**! इस प्रेमधन को वितरित करने के लिए साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधा का महाभाव धारण कर लगभग 530 साल पूर्व पश्चिम बंगाल में स्थित नवद्वीप धाम में शचीमाता के गर्भ से प्रकट हुए। और उन्होंने हरिनाम संकीर्तन यज्ञ के रूप में एक दिव्य आन्दोलन की शुरुआत कर इस प्रेम को '**हरे कृष्ण महामंत्र**' के रूप में प्रचुर मात्रा में बिना किसी जाति-भेद तथा वर्णभेद के वितरण किया।

यजुर्वेदीय-कलिसन्तरणोपनिषद् में भी 'महामन्त्र' का स्वरूप और माहात्म्य इस प्रकार बतलाया गया है—

हरिः ॐ।। द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम, कथं भगवन्! गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छ्रुणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नाराणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः

पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति ? स होवाच हिरण्यगर्भः—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते।। इति षोडशकलावृतस्य जीवस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परंब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्! कोऽस्य विधिरिति ? स होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति।

द्वापर के अन्त में श्रीनारद श्रीब्रह्मा के निकट गये और प्रणाम करके बोले कि, 'हे भगवन्! भूतल पर भ्रमण करता हुआ मैं कलि-काल को किस प्रकार पार कर सकूँगा ?'

श्रीब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। सभी वेदों का जो गोपनीय रहस्य है उसे सुनो, जिसके द्वारा तुम कलिरूप-संसार से अनायास ही तर जाओगे। आदिपुरुष भगवान् श्रीमन् नारायण (कृष्ण) के नामोच्चारणमात्र से ही, कलियुग विशेष रूप से काँपने लगता है।

श्रीनारद ने पुनः पूछा कि वह नाम कौन-सा है ? उसका स्वरूप क्या है ?

इसके उत्तर में श्रीब्रह्मा ने कहा कि—"**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे**।।" इस प्रकार सोलह नामोंवाला यह जो 'महामन्त्र' है, यह कलिके कल्मषों को सम्पूर्ण रूप से विनष्ट करने वाला है। सभी वेदों में इससे श्रेष्ठ और कोई भी साधन नहीं दीखता है। यह मन्त्र षोडशकलाओं से आवृत अर्थात् पञ्चभूत एवं ग्यारह इन्द्रियों के आवरण से युक्त जीव के आवरण को विनष्ट करने वाला है। उसके पश्चात् तो जीव के सामने, परब्रह्म उसी प्रकार से प्रकाशित हो जाते हैं जैसे बादलों के विनष्ट होने पर सूर्य की किरणों का समुदाय प्रकाशित हो जाता है।

श्रीनारद ने पुनः पूछा कि भगवन्! इस 'महामन्त्र' के जप की विधि क्या है ?

श्रीब्रह्मा ने कहा—इसकी कोई विधि नहीं है। पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी अवस्था में कोई भी व्यक्ति, इस 'महामन्त्र' का स्पष्ट उच्चारण करता हुआ, पाँचों प्रकार की मुक्तियों को आनुषंगिक रूप से प्राप्त कर लेता है।

केवल इतना ही नहीं; किन्तु मुख्य रूप से तो पञ्चम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेमपर्यन्त प्राप्त कर लेता है।

(इस विषय में श्रीचैतन्यचरितामृत आ० 7/83-86; म० 25/147, 192; अ० 3/177; अ० 7/104; अ० 20/11 भी द्रष्टव्य है)।

अन्धकार की तुलना शैतान से की जाती है तथा प्रकाश की तुलना भगवान् से। विश्वविख्यात जर्मन वैज्ञानिक आइन्स्टाईन जब पाठशाला में पढ़ते थे तब एक बार उनके अध्यापक ने कहा कि, इस दुनिया में भगवान् का अस्तित्व नहीं है, केवल शैतान का ही अस्तित्व है, इसलिए इस जगत में दुःख तथा क्लेश है। तब यह सुनकर आइन्स्टाईन, जो कि उस समय एक छोटा सा, नन्हा सा बच्चा था उठ खड़ा हुआ और उसने अपने अध्यापक से सवाल पूछा–

'सर! क्या इस जगत में, अन्धकार का अस्तित्व है ?

अध्यापक ने कहा, 'हाँ, है!' तब आइन्स्टाईन ने जबाव दिया–

'गलत! केवल प्रकाश का ही अस्तित्व है। परन्तु, जब प्रकाश का अभाव होता है, तो अन्धकार अनुभव होता है, अन्धकार का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार हमारे हृदय में जब भगवद्प्रेम का अभाव होता है, उसी का नाम शैतान, अज्ञान तथा अन्धकार है, जिसके कारण हम दुःख तथा क्लेश अनुभव करते हैं।'

चैतन्यचरितामृत मध्यलीला श्लोक 22.31 में भी कहा गया है कि,

कृष्ण-सूर्य-सम माया हय अन्धकार।
याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार।।

भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं, तथा माया अन्धकार के समान है। जहाँ कृष्ण उपस्थित होते हैं, वहाँ माया का कोई अस्तित्व नहीं होता।

इसलिए इस घोर कलियुग में मायारूपी पिशाचिनी की गोद में निश्चिन्त होकर अज्ञानता से सोये हुए बद्ध जीवों को जगाने के लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए।

जीव जागो, जीव जागो, गोराचाँद बले।
कत निद्रा जाओ माया-पिशाचीर कोले।।
भजिबो बलिया एसे संसार भीतरे।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार भरे।।
तोमारे लइते आमि हइनु अवतार।
आमि बिना बन्धु आर के आछे तोमार।।
एनेछि औषधि माया नाशिबार लागि।
हरिनाम महामंत्र लाओ तुमि मागि।।
भकतिविनोद प्रभु चरणे पड़िया।
सेइ हरिनाम-मंत्र लइल मागिया।।

श्रीगौरसुन्दर कह रहे हैं—अरे जीव! जाग, जाग, और कितनी देर तक मायारूपी पिशाची की गोद में सोयेगा। तू इस जगत में **"मैं हरिनाम करूँगा"**, ऐसी प्रतिज्ञा करके आया था। परन्तु जगत् में आकर अविद्या (माया) में फँसकर तू सब भूल गया है। अतः तुझे लेने के लिए मैं स्वयं ही इस जगत में अवतरित हुआ हूँ। अब तू स्वयं विचार कर कि मेरे अतिरिक्त तेरा बन्धु और कौन है ? मैं माया का विनाश करने वाली औषधि "हरिनाम महामंत्र" लेकर आया हूँ। अतः तुम मुझसे वह महामंत्र मांग लो। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी ने भी श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों में गिरकर वह हरिनाम मंत्र मांग लिया है।

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ वैष्णव सन्त श्रीमद् अनिरुद्ध दास अधिकारी जी भी अब इस धरती पर प्रकट होकर इस प्रस्तुत ग्रन्थ के रूप में हमसे भी यही माँग कर रहे हैं कि,

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

हरिनाम से क्या नहीं हो सकता? असम्भव भी सम्भव हो जाता है। समस्त इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं, इस अमूल्य रत्न से भगवान् भी खरीदे जा सकते हैं।

श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु नाम की महिमा बताने के लिए अक्सर यह भजन गाते हैं–

हरि से बड़ा हरि का नाम
अन्त में निकला ये परिणाम।
हरि से बड़ा हरि का नाम
हरि ने तारे भक्त महान।
और नाम ने तारे अनन्त जहाँन।।
हरि से बड़ा हरि का नाम, प्रभु से बड़ा प्रभु का नाम।
सुमिरो नाम रूप बिन देखे, कौड़ी लगे न दाम।।
नाम के बाँधे खिंच आयेंगे, आखिर एक दिन श्याम।
द्रौपदी ने जब नाम पुकारा, झट आ गए घनश्याम।
साड़ी खैंचत हारा दुःशासन, साड़ी बढ़ाई श्याम।
जल डूबत गजराज पुकारो, आये आधे नाम।।
नामी को चिन्ता रहती है, नाम न हो बदनाम।
जिस सागर को लांघ सके ना, बिना पुलके राम।।
कूद पाए हनुमान उसी को, लेके हरि का नाम।
वो दिल वाले डूब जायेंगे, जिनमें नहीं है नाम।।
वो पत्थर भी तैरेंगे जिन पर, लिखा राम का नाम।
हरि से बड़ा हरि का नाम, प्रभु से बड़ा प्रभु का नाम।।

इससे बड़ी हरिनाम की और क्या महिमा हो सकती है ?

जो हरिनाम का रहस्य जानता है, वह कृष्ण को जानता है और जो कृष्ण को जानता है वह सबकुछ जानता है।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

(श्रीभगवद्गीता 15.15)

यस्मिन् विज्ञाने सर्वमिदं विज्ञाने भवति।

(मुण्डकोपनिषद 1.3)

इस प्रमाण के अनुसार– यदि कोई भगवान् श्रीकृष्ण को जान लेता है, तो वह सबकुछ जान जाता है।

इस प्रकार 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक इस ग्रन्थ के लेखक श्री श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु जी समस्त शास्त्रों के ज्ञाता तथा भक्तिशास्त्र में निपुण हैं। तथा उन्हें एक साधारण गाँव में रहने वाले एक साधारण मनुष्य समझने की तथा उनके पत्रों में दोष देखने की भूल न करते हुए इस ग्रन्थ की विषयवस्तु को गम्भीरता से ग्रहण करें।

अतः पाठकगणों! परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्री श्रीमद् अनिरुद्ध अधिकारी जी द्वारा लिखित ग्रन्थ 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' उन भक्तों के लिए नहीं प्रकाशित किया गया है जिनकी नाम में निष्ठा नहीं है। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" में छापे हुए सभी पत्र सर्वसाधारण के लिए लिखे ही नहीं गये हैं। ये पत्र तो उन्होंने अपने शिक्षागुरुदेव तथा श्रीहरिनाम– निष्ठ, त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज को लिखे हैं और इसे गोपनीय रखने की प्रार्थना भी की है कि जिस साधक की हरिनाम में निष्ठा नहीं है, श्रद्धा नहीं है, विश्वास नहीं है, उनके लिए इन पत्रों का कोई औचित्य नहीं है। वे इन पत्रों के मर्म को नहीं जानने के कारण वैष्णव अपराध तथा नामापराध करेंगे। इसलिए श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ने इन्हें गोपनीय रखने की प्रार्थना की और कई पत्रों में यह भी लिखा है कि जो इस वाणी को काल्पनिक या मनगढंत समझेगा वह घोर अपराध का भागीदार होगा। परमदयालु,

परम उदार सभी का हित चाहने वाले परमपूज्य श्रीमद् निष्किंचन महाराज जी ने सभी के कल्याण के लिए इन पत्रों को प्रकाशित करने का निर्णय लिया ताकि साधकगण श्रीहरिनाम के महत्व को समझें और निष्ठा पूर्वक हरिनाम करके अपना जीवन सफल करें!

9 अक्टूबर 2016 को मैं वृन्दावन पहुँचा। 26 अक्टूबर 2016 को मेरा वापसी का टिकट था। 15 अक्टूबर को श्रीमान हरिपद प्रभु जी मेरे घर वृन्दावन में पधारे। तब उन्होंने मुझे कहा कि आप श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु के शिष्य हो तथा आप उनकी वाणी का प्रचार करना चाहते हो, इसलिए मैं आपको बड़े विश्वास और प्रेम से यह सेवा भेंट के रूप में सौंप रहा हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने मुझे गुरुदेव के उन बचे हुए पत्रों को सौंप दिया, जो 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' के पहले पाँच भागों में नहीं छपे थे। मैं उन पत्रों को देखकर अवाक् रह गया।

आगे उन्होंने कहा- "ये पत्र आपको छपवाने हैं, ऐसी ठाकुर जी की इच्छा है।"

फिर मैंने वह सारे पत्र देखने शुरू किये। वह सब छायांकित पत्र थे। उसमें से कौन से पत्र छपे हुए हैं, उन सारे पत्रों को मैंने अलग किया, इसमें कुछ दिन व्यतीत हुए क्योंकि Photo State के अक्षर समझ में नहीं आ रहे थे। फिर बचे हुए पत्रों के पन्ने अलग-अलग लगे हुए थे, उन्हें ढूँढ़कर उनके सम्बन्धित पत्रों से जोड़ा। इसमें बहुत समय व्यतीत हुआ।

बीच-बीच में मैं श्रीहरिनाम प्रेस के संचालक श्रीभागवतकृष्ण जी से परामर्श लेता रहा। उनका मुझे पहले से ही बड़ा प्रेमपूर्ण सहयोग रहा है। उन्होंने मुझे सलाह दी कि पहले इन पत्रों के अलग हुए पन्नों को ठीक से जोड़ लो फिर उन्हें अपने लेख में लिखना शुरू करो।

11 दिसम्बर 2016 को श्रीभागवतकृष्ण जी और मैं गुरुदेव के घर छींड की ढाणी उन्हें मिलने हेतु गये। तब श्रीभागवतकृष्ण जी ने श्रीगुरुदेव से कहा कि, अब इन पत्रों का सम्पादन कार्य मुकुन्द करेगा। और यह सारे पत्र 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ के 6 वें तथा 7 वें भाग के रूप में प्रकाशित होंगे। तब श्रीगुरुदेव ने इसकी सहर्ष अनुमति दे दी।

फिर मुझे आदेश दिया कि 17 दिसम्बर 2016 से इस सेवा का शुभारम्भ करो, क्योंकि उस दिन **श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद** का तिरोभाव महोत्सव दिवस है, अतः यह अतिपवित्र दिवस है। इस आदेश के पश्चात् ग्रन्थ छपने तक श्रीगुरुदेव की अनुमति से मुझे वृन्दावन धाम वास का सौभाग्य प्राप्त हो पाया।

फिर 17 दिसम्बर 2016 से मैंने श्रीगुरुदेव के पत्रों का पुनर्लेखन करने की सेवा आरम्भ की। पहले-पहले मुझे वह पत्र समझ में नहीं आ रहे थे, परन्तु श्रीगुरुदेव की कृपा, श्रीभागवतकृष्ण जी के विशेष सहयोग से मैं इन पत्रों को समझ पाया और बीच-बीच में श्रीमान् हरिपद प्रभु जी का मार्गदर्शन मुझे मिलता रहा, परिणाम स्वरूप 26 अप्रैल 2017 को सारे पत्र लिख के पूरे हो गए।

उसके बाद श्रीभागवतकृष्ण जी ने बड़ी तीव्रगति से अथक परिश्रम करके इस ग्रन्थ को मूर्त स्वरूप प्रदान करने में बहुत बड़ा योगदान दिया। साथ ही साथ उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु की समस्त लीलाओं के वर्णन द्वारा तत्त्वज्ञान तथा भक्तिरस का संगम करके गागर में सागर भरने की भाँति '**श्रीश्री निताई-गौर चालीसा**' को व्याख्या सहित प्रस्तुत कर समस्त गौड़ीय वैष्णव परम्परा तथा श्रीश्रीनिताई-गौर प्रेमी भक्तों को लाभान्वित किया है। मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर उन्होंने इस ग्रन्थ के शुरुआत में उसे समाविष्ट कर पाठक वर्ग को बड़ी भेंट प्रदान की है। अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

मुझ जैसे अज्ञ के द्वारा सम्पादन करने से ग्रन्थ में कुछ त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। श्रद्धालु पाठकगण उसे संशोधन कर कृपया हमें सूचित करें, जिससे कि अगले संस्करण में हम उन त्रुटियों का संशोधन कर सकें।

मैं श्रीगुरुदेव (श्रीमद् अनिरुद्ध प्रभु), श्रीमान् भागवतकृष्ण जी तथा श्रीमान् हरिपद प्रभु इनके चरणों की वन्दना करता हुआ कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके दयाभाव के कारण यह ग्रन्थ प्रकाशित हो पाया, जिसका लाभ समस्त विश्व उठायेगा!

अन्त में श्रीहरि–गुरु–वैष्णव के चरणों में मेरी सकातर प्रार्थना है कि, जिन भक्त, साधक तथा हितचिन्तकों ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में हमें सहयोग दिया है उनपर प्रचुर कृपावर्षण करें जिससे उन्हें **शुद्ध हरिनाम** की प्राप्ति हो जाये।

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी

–मुकुन्द दास





व्रज का खेल कुलेल-मगन-मन।
नदिया का रज-लुण्ठित-तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग-जल-वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल-बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग-बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, ''**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति**'' **भाग छह का प्रथम संस्करण** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'**इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति**' नामक ग्रन्थ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के प्राण हैं। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? - इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा बिना गृहत्याग किये केवल हरे कृष्ण महामंत्र —

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' ग्रन्थ में श्री अनिरुद्ध प्रभु के संक्षिप्त जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1–2) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2013

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3–4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगौर पूर्णिमा, 2014
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **3000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **1000 प्रतियाँ**
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2016
अहैतुकी कृपा **2000 प्रतियाँ**
उत्थान एकादशी, 2016
अनन्त कृपा (पूर्ण रंगीन) **3000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2017
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 6) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगुरुपूर्णिमा, 2017

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में तेतीस हजार (33,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग तीस हजार (30,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कॅनडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुँच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम

की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम-संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रुप से दर्शन भी हुये हैं।

इन तेतीस हजार (33,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे-ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको! इन पत्रों में कई बातों को बार-बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें।

अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रन्थों को बार-बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्णप्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' के इस छठे भाग का सम्पादन मुख्य रूप से, श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी के शिष्य श्रीमुकुन्ददास ने किया है। उन्होंने बड़ी निष्ठा और एकाग्रता से प्रभु जी के पत्रों के विशाल संग्रह में से चुनकर इन्हें इस भाग में बड़े परिश्रम से संगृहीत किया है और डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया के सहयोग से इसे मूर्त रूप प्रदान किया है। इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुऐ, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास

–हरिपद दास



अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

सर्वव्यापक – सर्वज्ञ
सर्वान्तर्यामी – सर्वशक्तिमान

OMNIPRESENT • OMNIFICENT • OMNISCIENT • OMNIPOTENT

भगवान् सर्वव्यापी होने के कारण यहाँ पर भी उपस्थित हैं।
हर समय होने के कारण इस वक्त में भी उपस्थित हैं।
सबके हृदय में होने के कारण हमारे हृदय में भी हैं।
और सबके होने के कारण हमारे भी हैं।
इसलिए भगवान् के यहाँ पर उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है।
इस वक्त उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए भविष्य की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।
हमारे अन्दर होने के कारण उन्हें बाहर कहीं भी ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है
आवश्यकता है तो सिर्फ और सिर्फ हरिनाम के बल से उनका साक्षात्कार करने की।

इस भाव से हरिनाम जपोगे तो
प्रत्यक्ष रूप में भगवान् को अपने पास में पाओगे!



श्रीसूरदास जी भजन कर रहे हैं और श्रीकृष्ण उसे सुन रहे हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने 13 मार्च से 30 मार्च 2013 तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। श्रीराधाकुण्ड पहुँचते ही उन्होंने श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुए। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण ● जय महात्मा सूरदास।।

श्रीहरिनाम

आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

1. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब-अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।

2. कण्ठ मेरा अति कर्कष वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम-सुधा-रस बरसाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

3. चित्त मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

4. तन-मन में और श्वांस-श्वांस में, रोम-रोम में बस जाओ।
रग-रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

5. पुत्र की जीवन नैया के खवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

इस ग्रंथ के लेखक
परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रस्तुति : श्री हरिपददास अधिकारी

प्रणाम मंत्र

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे।
श्रीहरिगुरु-वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 87 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्-पूर्णिमा (रास-पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी सन्त स्वरूप थे, को अवलम्बन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म-स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्रीजय सिंह शेखावत हुये। गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस

वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधा–गोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुन्दर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबन्धकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों सन्त–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असन्तुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना सम्भव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्ददेव जी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करताल इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊँचे, लम्बे कद एवं अलौकिक सौन्दर्य वाले संन्यासी कीर्तन कर रहे थे। श्री श्रीराधा–गोविन्द जी के मन्दिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहे थे और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहे थे। ''ये संन्यासी कौन हैं ? ये रो क्यों रहे हैं ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''-ये सारे भाव श्रीअनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मन्दिर-परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम ?''-श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्-तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण-विधि द्वारा कृष्ण-मंत्र (गोपाल मंत्र) सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण-मंत्र (गोपाल मंत्र) जप कर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाडू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्-सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्-सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का **(हरे कृष्ण महामंत्र का)** ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध-भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुए हो गया था, परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक-एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति-अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया - रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन-काल बहुत बढ़िया बीता। सरकारी नौकरी के साथ-साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। अपनी नेक-कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये (उस जमाने के) श्रील गुरुदेव को भी भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह-सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी-

"*While Chanting Harinam Sweetly, Listen by ears.*"

यह नाम-संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, सन् 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप

से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप अकेले ही उनके शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने स्वेच्छानिवृत्ति (Voluntary Retirement) लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। इनके–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के तत्कालीन आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गाँव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गाँव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहाँ के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतों के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बाँटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी एक अनुभूति-प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों-शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिह्नों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥





क्लीं का अर्थ

"क्लीं"- यह कामबीज है क, ल, ईं, इन अक्षरों से "क्लीं" निष्पन्न होता है। बृहद् गौतमीय तन्त्र में कहा गया है-

ककारः पुरुषः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
ई-कारः प्रकृती राधा नित्य-वृन्दावनेश्वरी।।
लश्चानन्दात्मकं प्रेमसुखं तयोश्च कीर्तितम्।
चुम्बनानन्दमाधुर्यं नादविन्दुः समीरितः।।

'क'-कार का अर्थ है- सच्चिदानन्द- विग्रह परमपुरुष श्रीकृष्ण। 'ई'- कार का अर्थ है- परमाप्रकृति (सर्व प्रेयसी-शिरोमणि, सर्व शक्ति-वरीयसी) नित्य वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा। तथा 'ल'-कार का अर्थ-श्रीराधाकृष्ण का आनन्दात्मक प्रेम सुख है एवं नाद बिन्दु का अर्थ है- श्रीश्रीराधाकृष्ण का परस्पर चुम्बनानन्द माधुर्य। इससे स्पष्ट है कि "क्लीं"-काम बीज लीलाविलसित श्रीश्रीराधाकृष्ण के परम मधुर युगल स्वरूप को ही सूचित करता है।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुति : श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म-स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्-भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा-वरुणालय-स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु-देव-भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु-प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म-स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी-गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्ण-चैतन्य-आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन-पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप-लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्‌भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृभक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र-ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते-करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी

दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में आपने अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था-भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुए श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा-

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु-निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थिति में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख-दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर

(आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्तिमती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम जगन्नाथ पुरी में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

प्रभुपाद जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुए हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव, श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

“जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।”

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

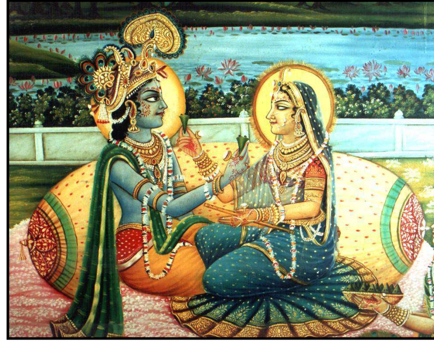
–Srila Prabhupada

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग महाराज को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो



मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति हो जायेगी।**

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

नित्य प्रार्थनाओं का भगवद्गीता में उल्लिखित शास्त्रीय प्रमाण

– पहली प्रार्थना –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(८.६)

भाषांतर : हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस–जिस भाव का स्मरण करता है, मृत्यु के पश्चात् वह उस–उस भाव के अनुसार निश्चित रूप से पुनः शरीर प्राप्त करता है।

तात्पर्य : महाराज भरत ने मृत्यु के समय हिरन का चिन्तन किया, अतः अगले जन्म में उन्हें हिरण का शरीर प्राप्त हुआ। इसलिए मृत्यु के समय में दूसरे विषयों का स्मरण न हो, केवल भगवान् का ही स्मरण हो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(८.५)

भाषांतर : और जीवन के अंतिम समय में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करते हैं, वे तुरन्त ही मेरे भाव को प्राप्त होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तात्पर्य : अतः मनुष्य को निरन्तर हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस महामंत्र का जप करना चाहिए ताकि मृत्यु के समय इसके उच्चारण मात्र से ही भगवद्प्राप्ति हो जाये।

● पहली प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्कृपा से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी।

– दूसरी प्रार्थना –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9.27)

भाषांतर : हे कौन्तेय! तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ भोजन करते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो तथा जो भी तपस्या करते हो, उन सबको मुझे समर्पित करते हुए करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ (9.28)

भाषांतर : इस प्रकार तुम शुभ तथा अशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो सकोगे तथा इस कर्मफलत्यागरूप योग में अपने चित्त को स्थिर करके तुम मुक्त होकर मेरे पास आओगे।

उदाहरण : अर्जुन क्षत्रिय तथा गृहस्थ होते हुए भी उसने भगवान् को प्रसन्न किया।

● दूसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्भावना से युक्त कर्म हो जायेगा।

– तीसरी प्रार्थना –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (6.29)

भाषांतर : वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें सबको देखता है। निस्सन्देह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6.30)

भाषांतर : जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबकुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

● तीसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही शुद्ध भक्ति, शुद्ध नाम तथा भगवद्दर्शन प्राप्त होंगे।

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ? अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। फिर पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला–झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जप करने के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

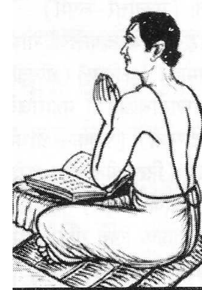
यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।





वैष्णव प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन



प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी।

ग्रंथकार की प्रार्थना.....



हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!

आप कहाँ हो ?

कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात-दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप

मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते-करते आपके नाम की महिमा लिखते-लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ-स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके विरह का समुद्र उछलने लगता है। प्राण-विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसुओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद-मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों-संतों की चरण-रज का सेवन करने से, भजन-साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आती।

यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम–संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्–प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम गान में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य–निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

आप कहाँ हो ?



हा गौरांग? हा गौरांग ?

कहाँ गौरांग। कहाँ गौरांग ।

कहाँ जाऊं ?

कहाँ पाऊँ आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप ?

हे दयानिधान ? आप कहाँ हो ?

मैं आपको ढूँढ रहा हूँ ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ ।

आप कहाँ हो ?



कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ - हे कीर्तनानंद ।

दर्शन दो स्वामी ?

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो ?

श्रीचैतन्य महाप्रभु विरचित

श्रीशिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनंपरं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्।।1।।

श्रीकृष्ण संकीर्तन की परम विजय हो जो वर्षों से संचित मल से चित्त का मार्जन करने वाला तथा बारम्बार जन्म-मृत्यु रूप महादावानल को शान्त करने वाला है। यह संकीर्तन-यज्ञ मानवता का परम कल्याणकारी है क्योंकि यह मंगलरूपी चन्द्रिका का वितरण करता है। समस्त आप्राकृत विद्या रूपी वधू का यही जीवन है। यह आनन्द के समुद्र की वृद्धि करने वाला है और यह श्रीकृष्ण-नाम हमारे द्वारा नित्य वांच्छित पूर्णामृत का हमें आस्वादन कराता है।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।2।।

हे भगवान्! आपका नाम अकेला ही जीवों का सब प्रकार से मंगल करने वाला है- कृष्ण, गोविन्द जैसे लाखों नाम हैं। आपने इन अप्राकृत नामों में अपनी समस्त अप्राकृत शक्तियाँ अर्पित कर दी हैं। इन नामों का स्मरण और कीर्तन करने में देश- कालादि का कोई भी नियम नहीं है। प्रभो! आपने तो अपनी कृपा के कारण हमें भगवन्नाम के द्वारा अत्यन्त ही सरलता से भगवत्- प्राप्ति कर लेने में समर्थ बना दिया है, किन्तु मैं इतना दुर्भागी हूँ कि आपके ऐसे नाम में मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं हो पाया।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।3।।

स्वयं को मार्ग में पड़े हुए तृण से भी अधिक हीन मानकर, वृक्ष के समान सहनशील होकर, मिथ्या मान की भावना से सर्वथा शून्य रहकर एवं दूसरों को सदा ही पूर्ण मान देने वाला होकर ही सदा श्रीहरिनाम का कीर्तन विनम्र भाव से करना चाहिए।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।4।।

हे सर्वसमर्थ जगदीश! मुझे धन एकत्र करने की कोई कामना नहीं है, न मैं अनुयायियों, सुन्दर स्त्री अथवा सालंकार कविता का ही इच्छुक हूँ। मेरी तो एकमात्र कामना यही है कि जन्म-जन्मान्तर में आपकी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकज स्थित धूलिसदृशं विचिन्तय।।5।।

हे नन्दतनुज (कृष्ण) मैं तो आपका नित्य किंकर (दास) हूँ किन्तु किसी न किसी प्रकार से मैं जन्म-मृत्युरूपी संसार में गिर पड़ा हूँ। कृपया इस विषमय मृत्युसागर से मेरा उद्धार करके अपने चरण-कमल की धूलि का कण बना लीजिए।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगद-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम-ग्रहणे भविष्यति।।6।।

हे प्रभो आपका नाम-कीर्तन करते हुए, कब मेरे नेत्र अविरल प्रेमाश्रुओं की धारा से विभूषित होंगे? कब आपके नाम-उच्चारण करने मात्र से ही मेरा कण्ठ गद्गद् वाक्यों से रुद्ध हो जाएगा और मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा?

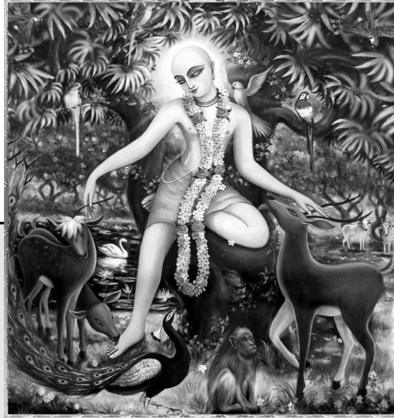
युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे।।7।।

हे गोविन्द! आपके विरह में मुझे एक निमेष काल (पलक लगने तक का समय) एक युग के बराबर प्रतीत हो रहा है। नेत्रों

से मूसलाधार वर्षा के समान निरन्तर अश्रु प्रवाह हो रहा है तथा आपके विरह में मुझे समस्त जगत् शून्य ही दीख पड़ता है।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टुमाम्
अदर्शनार्न्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।8।।

एकमात्र श्रीकृष्ण के अतिरिक्त मेरे कोई प्राणनाथ हैं ही नहीं और वे मेरे लिए यथानुरूप बने ही रहेंगे, चाहे वे मेरा गाढ़–आलिंगन करें अथवा दर्शन न देकर मुझे मर्माहत करें। वे कुछ भी क्यों न करें– वे तो सभी कुछ करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं क्योंकि श्रीकृष्ण मेरे नित्य, प्रतिबन्ध रहित आराध्य प्राणेश्वर हैं।



जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा–कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण–कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।

साभार : श्रीहरिनाम

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'श्रीलप्रभुपाद' की

उपदेशावली

1– 'परं विजयते श्रीकृष्ण–संकीर्तनम्'—यही श्रीगौड़ीय मठ के एकमात्र उपास्य हैं।

2– विषय विग्रह श्रीकृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं, तदतिरिक्त सभी उनके भोग्य हैं।

3– जो हरि–भजन नहीं करते, वे सभी निर्बोध और आत्मघाती हैं।

4– श्रीहरिनाम–ग्रहण और भगवत् साक्षात्कार दोनों एक ही बात हैं।

5– जो पञ्च–मिश्रित धर्मों का पालन करते हैं, वे भगवान् की सेवा नहीं कर सकते।

6– मुद्रण–यन्त्र के स्थापन, भक्ति–ग्रन्थों के प्रचार और नाम–हाट के प्रचार द्वारा ही श्रीधाम मायापुर (श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थान) की प्रकृत सेवा होगी।

7– हम सत्कर्मी, कुकर्मी अथवा ज्ञानी–अज्ञानी नहीं हैं; हम तो अकैतव (निष्कपट) हरिजनों के पाद–त्राण वाहक, "कीर्त्तनीयः सदा हरिः" मन्त्र में दीक्षित हैं।

8– केवल आचार–रहित प्रचार कर्म–अङ्ग के अन्तर्गत है। परस्वभाव की निन्दा न कर आत्म–संशोधन करना चाहिए; यही मेरा उपदेश है।

9– माथुर–विरह–कातर ब्रजवासियों की सेवा करना ही हमारा परमधर्म है।

10– यदि हम श्रेय–पथ चाहते हैं, तो असंख्य जनमत का परित्याग करके भी श्रौतवाणी का श्रवण करना चाहिए।

11– पशु, पक्षी, कीट, पतंग प्रभृति लक्ष–लक्ष योनियों में रहना अच्छा है, तथापि कपटता का आश्रय करना उचित नहीं, निष्कपट व्यक्ति का मंगल होता है।

12– सरलता का नामान्तर ही वैष्णवता है। परमहंस वैष्णवों के दास सरल होते हैं; इसलिए वे ही सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं।

13– जीवों की विपरीत रुचि को परिवर्तन करना ही सर्वश्रेष्ठ दयालुता का परिचय है। महामाया के दुर्ग के बीच से यदि एक जीव की भी रक्षा कर सको, तो अनन्त कोटि अस्पतालों के निर्माण की अपेक्षा उसमें अनन्तगुना परोपकार का कार्य होगा।

14– हम इस जगत् में कोई काठ–पत्थर के कारीगर होने नहीं आए हैं; हम तो श्रीचैतन्यदेव की वाणी के वाहक मात्र हैं।

15– हम इस जगत् में अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरिकीर्तन करते–करते हमारा देहपात होने से ही इस देह धारण की सार्थकता है।

16– श्रीचैतन्यदेव के मनोऽभीष्ट–संस्थापक श्रीरूप गोस्वामी के पादपद्म की धूल ही हमारे जीवन की एकमात्र आकांक्षा की वस्तु है।

17– हमारा “निरपेक्ष सत्य” भाषण अन्य मनुष्यों को अप्रीतिकर होगा, इस भय से यदि सत्य कथन का परित्याग करूँ तो मेरा श्रौत–पथ का परित्याग कर अश्रौत पथ का ग्रहण करना हो गया, मैं अवैदिक नास्तिक हो गया–सत्यस्वरूप भगवान् में मेरा विश्वास नहीं रहा।

18– निर्गुण वस्तु का दर्शन करने के लिए कोई भी दूसरा पथ नहीं–एकमात्र कान को छोड़कर।

19– जहाँ हरिकथा होती है, वहीं तीर्थ है।

20– कीर्तन के माध्यम से श्रवण होता है और स्मरण का सुयोग प्राप्त होता है। उसी समय अष्टकालीय–लीला–सेवा की अनुभूति सम्भव है।

21– श्रीकृष्ण–नामोच्चारण को ही भक्ति समझना चाहिए।

22– जो प्रतिदिन एक लक्ष हरिनाम नहीं ग्रहण करते, उनकी दी हुई कोई वस्तु भगवान् ग्रहण नहीं करते।

23– अपराधों से दूर रहकर श्रीहरिनाम ग्रहण की इच्छा कर निरन्तर हरिनाम करते रहने से अपराध दूर होंगे और शुद्ध हरिनाम उदित होंगे।

24– श्रीनाम करते समय जड़–चिन्ताएँ उदित होने पर श्रीनाम–ग्रहण में शिथिलता नहीं करनी चाहिए। श्रीनाम–ग्रहण के गौण फलस्वरूप वृथा जड़–चिन्ताएँ क्रमशः दूर हो जाएँगी; इसके लिए घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त आग्रह के साथ तन–मन–वचन से श्रीनाम की सेवा करने से ही श्रीनामी प्रभु अपना परम मंगलमय अप्राकृत स्वरूप का दर्शन कराते हैं। श्रीनाम ग्रहण करते–करते अनर्थ दूर होने पर श्रीनाम से ही रूप, गुण, लीला की अपने आप ही स्फूर्ति होती है।

बोल कृष्ण भज कृष्ण
लह कृष्ण नाम
कृष्ण माता कृष्ण पिता
कृष्ण धन–धाम

श्रीनित्यानन्द प्रभु

निताई

श्रीसंकर्षण तत्व : श्रीबलरामजी का अवतार

अन्य नाम – निताई, निताई चाँद और बचपन में चिदानन्द
वस्त्र रंग – नीला
जन्म – माघ शुक्ला त्रयोदशी संवत् 1530
जन्मस्थान – ग्राम. एकचक्रा जि. वीरभूम (बंगाल)
माता – श्रीमती पद्मावती
पिता – श्रीहाड़ाई पण्डित, (श्रीमुकुन्द)
पत्नी – श्रीमती वसुधा एवं श्रीमती जाह्नवा (दोनों श्रीसूर्यदास पण्डित की पुत्रियाँ)
पुत्र – श्रीमती वसुधाजी के श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) गोस्वामी
पुत्री – गंगा माता गोस्वामिनी
गुरुदीक्षा – श्रीलक्ष्मीपति प्रभुपाद (पंढरपुर में)
जीवनकाल – 12 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग
20 वर्ष तक अवधूत संन्यासी रहे।
35 वर्ष की अवस्था में श्रीचैतन्य के आदेश से विवाह किया।
श्रीचैतन्य से 12–13 वर्ष बड़े थे।
आज भी शृंगारवट, वृन्दावन में आपके वंशज हैं।
अप्रकट – संवत 1598, तिथि अज्ञात, श्रीगोपीनाथजी में लीन। कुल लगभग 68 वर्ष पृथ्वी पर रहे।



श्रीचैतन्य महाप्रभु

गौर

श्रीश्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार

हरिबोल

अन्य नाम – निमाई, गौर, गौरांग एवं विश्वम्भर
वस्त्र रंग – पीला।
अंग रंग – स्वर्ण जैसा
जन्म – फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542
जन्मस्थान – नवद्वीप (बंगाल)
माता – श्रीमती शची देवी
पिता – श्रीजगन्नाथ मिश्र
दादी – श्रीमती कलावती देवी
दादा – श्रीउपेन्द्र मिश्र
बड़े भाई – श्रीविश्वरूप (प्रकाण्ड पण्डित महापुरुष)
14–15 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर संन्यासी बने नाम हुआ शंकरारण्य।
दो–ढाई वर्ष बाद पंढरपुर में देहत्याग।
पत्नी – 1. श्रीवल्लभ आचार्य की पुत्री श्रीमती लक्ष्मीप्रिया। सर्पदंश से अप्रकट हुई।
2. श्रीसनातन मिश्र की पुत्री श्रीमती विष्णुप्रिया।
गुरुदीक्षा – श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य–श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से (गया में)
संन्यास – श्रीपाद केशव भारती जी से।
जीवनकाल – महाप्रभु 24 वर्ष गृहस्थ में रहे। संन्यास लेकर 6 वर्ष जगन्नाथपुरी (नीलाचल) में रहे। कुल लगभग 48 वर्ष पृथ्वी पर रहे। (अंतिम 12 वर्ष को गम्भीरा लीला भी कहते हैं)
अप्रकट – आषाढ़ शुक्ल सप्तमी सं. 1590 तीसरा प्रहर, श्रीजगन्नाथ जी में लीन

॥ जय जय श्रीनिताई-गौर ॥

।। श्रीश्रीनिताई–गौर चालीसा ।।

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा–

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानन्द गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
बार बार सुमिरन करूँ, हरिदासन का दास।।

चौपाई–

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1 ।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2 ।।
मास फाल्गुन तिथि पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3 ।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4 ।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5 ।।
शिशु रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6 ।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7 ।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8 ।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9 ।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।1 0 ।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।1 1 ।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।1 2 ।।
मात इष्ट वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।1 3 ।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।1 4 ।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।1 5 ।।
त्रेता में श्रीराम–लक्ष्मण। द्वापर में बलराम–कृष्ण बन।।1 6 ।।
कलि में गौर–निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्दरूपघन।।1 7 ।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध ह्वै घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गर्जन कीना। नित्यानन्द हरि वर्जन कीना।।21।।
मारण हित नहीं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधु हुए जगाई–मधाई। हरि किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप भये तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। दिया वचन है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उद्धारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रतापरुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ति वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़पत प्राण 'कृष्ण' बिनु हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधि, हरिनाम का सार।।

श्रीनिताई गौर चालीसा : भावार्थ

दोहा–

हे श्री चैतन्यमहाप्रभु आप सब पर कृपा करने वाले हैं और इस कलियुग में भगवान् का प्रेम–अवतार हैं। आपने सभी जीवों पर कृपा करके प्रेम भक्ति प्रदान की और सभी को इस संसार रूपी भव सागर से तार दिया।

भगवान् के अन्य अवतारों में देखा–सुना जाता है कि भगवान् ने दुष्टों का और पापियों का संहार कर उन्हें दण्डित किया। लेकिन श्रीचैतन्य महाप्रभु ने दुष्टों को मारा नहीं, उन्हें सुधारा। उनके पाप दूर किये और उन्हें भक्तियुक्त बनाया। यह उनके इस अवतार की एक प्रमुख विशेषता रही।

श्रीचैतन्य महाप्रभु के साथ–साथ श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीगदाधर पंडित, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु और श्रीश्रीवास पंडित इन 'पंचतत्त्व' नाम से प्रसिद्ध पाँचों भगवत् स्वरूपों का, हरि के दासों का दास मैं, बार–बार स्मरण करता हूँ। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार हैं। श्री नित्यानन्द प्रभु संकर्षण (बलरामजी) के अवतार हैं। श्री गदाधर पंडित श्रीराधा का अवतार हैं। श्री अद्वैताचार्य सदाशिव और श्री श्रीवास पंडित नारद जी का अवतार हैं।

(1)

श्रीचैतन्य महाप्रभु में अपार कृपा है। वे सब जीवों पर
कृपा करते हैं। तत्त्वतः वे भगवद् स्वरूप हैं
और श्रीराधा एवं कृष्ण का मिलित स्वरूप हैं।

'अन्तर्कृष्ण बहिर्गौर'–अर्थात् अन्दर से कृष्ण और बाहरी स्वरूप से गौरवर्ण राधा। ब्रजलीला में श्रीराधा को श्रीकृष्ण के प्रेम में कैसा आनन्द आता है इस रस का अनुभव करने के लिए राधा का रूप

धरकर स्वयं कृष्ण, श्रीचैतन्य के रूप में प्रकट हुए और श्रीकृष्ण-प्रेम का आस्वादन किया।

(2)

आपका प्राकट्य बंगाल के नवद्वीप धाम में हुआ। नीम के वृक्ष के नीचे जन्म होने से माता-पिता इन्हें निमाई कहते थे। श्रीजगन्नाथ मिश्र आपके पिता हैं और श्रीशचीदेवी आपकी माता हैं।

नवद्वीप बंगाल प्रान्त का एक छोटा सा गाँव है, जो पुण्यसलिला गंगा नदी के किनारे बसा है। श्रीजगन्नाथ मिश्र उस गाँव में 'मिश्र पुरन्दर' नाम से विख्यात थे। निमाई का जन्म नाम विश्वम्भर था और सोने की तरह चमकीला इनका शरीर था। इसलिए गौर या गौरांग के नाम से भी लोग इन्हें पुकारते थे।

(3)

फाल्गुन महीने की पूर्णिमा तिथि को आप प्रकट हुए। उस दिवस चन्द्र ग्रहण होने से पूर्णिमा की शोभा अद्भुत थी।

फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542 तदनुसार 19 फरवरी सन् 1485 को संध्या के समय श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म हुआ। आजकल जिस दिन होली-धुलैड़ी का पर्व मनाया जाता है, यह वही तिथि है। गौड़ीय वैष्णव इस दिन व्रत रखकर विशेष भजन आयोजन पूर्वक उनका जन्मदिन मनाते हैं। मन्दिरों में अभिषेक किया जाता है और शोभायात्राएँ निकाली जाती हैं।

(4)

नवद्वीप गंगा नदी के तट पर बसा है वहीं गंगा के किनारे नीम के वृक्ष के घने सुरम्य वातावरण में आप प्रकट हुए।

राजा सगर के साठ हजार मृत पुत्रों को जीवित करने के लिए राजा अंशुमान ने कठोर तपस्या की। तदुपरान्त उनके पुत्र राजा दिलीप और सफलता न मिलने पर पुनः उनके पुत्र राजा भगीरथ ने कठोर तपस्या की। फलस्वरूप गंगा का देवलोक से आगमन हुआ। पहले

उसके वेग को शिव ने अपनी जटा पर धारण किया और वहाँ से पृथ्वी पर अवतरण हुआ। राजा भगीरथ के द्वारा गंगा पृथ्वी पर प्रकटीं, इसलिए गंगा का एक नाम भागीरथी भी है।

(5)

बालक के जन्म होने पर नर–नारी हरि–हरि उच्चारण कर रहे थे। नवजात बालक को देखकर ऐसा सुख मिलता था मानो नारायण स्वयं प्रकट हुए हों।

हरिबोल! हरिबोल! हरिबोल! हरिबोल!

चन्द्रग्रहण का अवसर होने के कारण अनेक लोग गंगा में स्नान कर रहे थे। और ऐसे अवसर पर उल्लासमय वातावरण में सभी लोग हरि–संकीर्तन कर रहे थे इसलिए वातावरण भक्तिमय था।

(6)

आप शिशु रूप में अति चंचल थे और जब विद्याध्ययन के लिए विद्यालय भेजा तो वहाँ भी पढ़ते–लिखते कम और ऊधम मचाते अधिक। माता को जब यह पता चलता तो वह बेचारी दुखी होती।

देखा जाता है कि मेधावी बालक बचपन में बड़े चंचल होते हैं। इसीप्रकार निमाई भी थे। अपने साथियों के साथ गंगा तट पर खूब मस्ती करते। कभी–कभी तो लोगों के घर के दरवाजे बाहर से बन्द कर देते और अन्दर बन्द लोगों के बहुत अनुनय विनय करने पर ही उसे खोलते।

(7)

जब युवा हुए तो आप सर्वज्ञानी 'पंडित' के रूप में प्रसिद्ध हुए तब गौर वर्ण वाले निमाई अध्यापक बन कर शिक्षा प्रदान करने लगे।

धीरे–धीरे निमाई की चंचलता समाप्त हुई और विद्या में मन लगने लगा तो माता–पिता ने निमाई का विद्यालय जाना बन्द करा दिया। उन्हें डर था कि बड़े भाई विश्वरूप की तरह ज्ञानी बनकर हमारा

निमाई कहीं संन्यासी न बन जाय। लेकिन युक्तिपूर्वक निमाई ने विद्या भी प्राप्त की और एक विद्यालय का संचालन करने लगे।

(8)

देखते ही देखते चारों दिशाओं में दूर–दूर तक
महाप्रभु की प्रसिद्धि होने लगी कि वे श्रीकृष्ण
और श्रीहरिनामरूपी महान् सम्पत्ति के प्रचारक हैं।

विद्यालय जाते–आते समय आप सखाओं के साथ हरिबोल– हरिबोल करते हुए नाचते–गाते जाते। आपकी उस छवि का दर्शन कर नर–नारी मुग्ध हो जाते थे। कभी चंचल रहे निमाई के इस भक्तिपूर्ण आचरण से सभी अत्यधिक प्रसन्न होते और मन ही मन आशीर्वाद देते।

(9)

पंडित निमाई विद्यालय में छात्रों को सब समय यही पढ़ाते कि देखो सब कुछ कृष्ण ही हैं। कृष्ण ही तुम्हारे माता–पिता हैं और कृष्ण ही मूल्यवान सम्पत्ति हैं तथा वे ही परम धाम हैं।

'बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम।
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन धाम।'

महाप्रभु जब संकीर्तन आनन्द में मत्त होते तो इस धुन का गान करते और लोगों को श्रीकृष्ण नाम का महत्व प्रतिपादित करते।

(10)

माता शचीदेवी ने शीघ्र ही निमाई से और कन्या पक्ष से वचन ले लिया और श्रीलक्ष्मीप्रिया जी के साथ पंडित निमाई (श्रीचैतन्य महाप्रभु) का शुभविवाह सम्पन्न कराया।

श्रीजगन्नाथ मिश्र का देहावसान हो चुका था। एक बड़े भाई विश्वरूप संसार की असारता को जानकर गृह त्याग चुके थे। पुनः निमाई की इस कृष्ण भक्ति को देखकर माता ने उन्हें बाँधना चाहा और मात्र 18 वर्ष की आयु में नवद्वीप के पंडित श्रीवल्लभ आचार्य की सुपुत्री से इनका विवाह करा दिया।

(11)

कुछ समय पश्चात् एक सर्प के काटने से नव ब्याहता श्रीमती लक्ष्मीप्रिया देवी ने शरीर त्याग दिया।

माता की आज्ञा से महाप्रभु ने पद्मावती नदी के तट पर स्थित सभी नगरों का भ्रमण किया और सभी को हरिनाम का उपदेश देते हुए अपने पूर्वजों के स्थान श्रीहट्ट में पहुँचे। तभी नवद्वीप में उनकी अनुपस्थिति में श्रीलक्ष्मीप्रिया देवी अप्रकट हुईं।

(12)

समय पाकर शचीमाता ने पुनः इनका विवाह कराया और इसबार सब शुभ लक्षण–मुहूर्त जाँच परखकर अति रूपवान श्रीमती विष्णुप्रिया जी को वधू बनाकर अपने पास ले आईं।

परमभक्त राजपंडित श्रीसनातन की कन्या को प्रतिदिन गंगा स्नान को जाते हुए माता देखती थी। वह कन्या उन्हें अपने निमाई के लिये पसन्द आ गई। माता द्वारा सम्बन्ध के आग्रह पर उसी रूपवान कन्या श्रीविष्णुप्रिया देवी से महाप्रभु का पुनः विवाह सानन्द सम्पन्न हुआ।

(13)

विष्णुप्रिया देवी माता, अपने इष्ट व निमाई की प्रेम से सेवा करती। समस्त गृहकार्य करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में रहती और अपने आचरण से वह सभी का मन हर लेती थी।

महाप्रभु के संन्यास के उपरान्त विष्णुप्रिया माता की पर्याप्त सेवा करती और महाप्रभु की पादुकाओं का आश्रय लेकर रात–दिन भगवन्नाम में संलग्न रहती। खाने के नाम पर चावल के कुछ दाने ही उसके पेट में जाते। माता के अन्तर्धान के पश्चात् निजी सेवक ईशान ने क्रन्दनपूर्ण विष्णुप्रिया देवी को किस प्रकार सँभाला – वह अवर्णनीय है।

(14)

अब तक निमाई श्रीनित्यानन्द प्रभु से मिल चुके थे। उन्हें पहचान चुके थे। तब निमाई ने आगे की लीला करने की तैयारी की।

माता से आज्ञा लेकर आप पिण्डदान करने गया गये। ब्रह्मकुण्ड पर स्नान-तर्पण किया। वहीं आपने श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से मन्त्र दीक्षा ली और श्रीकृष्ण प्रेमभक्ति का प्रकाश आरम्भ किया। हा कृष्ण! हा कृष्ण! कहते हुए आप गुरु आज्ञा से नवद्वीप लौट आये। कृष्ण-प्रेम में आप इतने मत्त रहते कि खाना-पीना-सोना कुछ भी सुध न रहती।

(15)

श्रीनित्यानन्द प्रभु संकर्षण के रूप हैं और इस जगत् का आधार (धुरी) वे ही हैं।

संकर्षण के ये अवतार- शेषनाग के रूप में अपने फन पर पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। आधारशक्ति होने से जब-जब प्रभु इस धरती पर प्रकट होते हैं उन्हें धारण करने के लिये ये संकर्षण तत्व भी उनके साथ प्रकट होते हैं। जैसे शेरनी का दूध स्वर्णपात्र में ही संग्रह किया जा सकता है उसीप्रकार प्रभु को धारण करने की योग्यता एकमात्र संकर्षण तत्व में ही है।

(16)

त्रेता युग में भगवान् राम के साथ आप लक्ष्मण रूप में प्रकटे। द्वापर में आप कृष्ण के साथ बलराम के रूप में प्रकट हुए।

(17)

कलियुग में सच्चिदानन्दघन स्वरूप आप दोनों प्रेमरूपी धन, श्रीगौर और श्रीनिताई के रूप में प्रकट हुए।

(18)

श्रीनित्यानन्द प्रभु बड़े ही प्रेमी और अनुरागी थे उन्होंने प्रेम के अधिष्ठान श्रीभगवन्नाम की भिक्षा माँगनी प्रारम्भ की।

वह प्रत्येक प्राणी से कहते– भाई ! एकबार कृष्ण बोलो, भगवन् नाम उच्चारण करो और ऐसा करते ही वह प्राणी नाम के प्रेम से मतवाला हो उठता था। कृष्ण–कृष्ण, हरिबोल–हरिबोल कहता हुआ पागलों की तरह नाचने लगता था। क्या कहें– साक्षात् प्रेम मूर्तिमन्त हो उठता था।

(19)

नवद्वीप के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्मे दो भाई थे– जगाई–मधाई। दोनों ही मदिरा पीने वाले, अति नीच और मांसाहारी थे।

महाप्रभु की आज्ञा थी, नित्यानन्द जाओ और सबसे कृष्ण नाम का कीर्तन कराओ। इसलिए भगवन्नाम का प्रचार करते हुए एक दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने साथियों के साथ इनके पास पहुँचे और कहने लगे– भैया कृष्ण कहो, कृष्ण बोलो। दोनों भाई इन्हें गालियाँ देने लगे।

(20)

मदिरा पान और अहंकार में अन्धे हुए भाइयों ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को मिट्टी की सुराही फेंककर मारी जो प्रभु के मस्तक पर लगी। प्रभु के माथे से रक्त बह निकला। अचानक श्रीगौर वहाँ प्रकट हो गये और अपने अभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु को चोटिल देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गये। स्मरण मात्र से उनके हस्तकमल में चक्र सुदर्शन प्रकट हो गया।

(21)

चक्र सुदर्शन के गर्जन से धरती–आकाश–पाताल कम्पायमान होने लगे तब नित्यानन्द प्रभु ने महाप्रभु को रोका और प्रार्थना की–

(22)

हे महाप्रभु ! शान्त हो जाइये। आपका अवतार मारने के लिए नहीं, तारने के लिए है। आप तो सबको श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान करते हो।

(23)

जगाई–मधाई दोनों भाई साधु हो गये।
महाप्रभु गौरांग और श्रीनित्यानन्द प्रभु ने दोनों पर
ऐसी कृपा की जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

फिर महाप्रभु की कृपा से जगाई–मधाई का नशा चूर–चूर हो गया वे प्रभु के पैरों में पड़ गये और अपनी दुष्टता के लिए बार–बार क्षमा माँगने लगे। महाप्रभु ने दोनों के जन्म–जन्मान्तरों के पापों का संकल्प जल लेकर पी लिया और उन्हें पापमुक्त कर दिया। तब से दोनों भाई हरिनाम संकीर्तन करने लग गये।

(24)

स्थान–स्थान पर संकीर्तन का प्रचार होते देखकर द्वेष–वश नगर
के काजी ने फरमान देकर नगर में संकीर्तन पर रोक लगा दी।

महाप्रभु अनेक लोगों को साथ लेकर श्रीहरिनाम संकीर्तन करते हुए प्रतिदिन नगर–भ्रमण करने लगे। चारों ओर नाम–ध्वनि से पूरा नगर गूँज उठता था। उस समय यवनों का शासन था। इसलिए शासक लोग हिन्दुओं को धर्माचरण से रोकते थे, उन्हें परेशान करते थे। उनके द्वारा धर्म–प्रचार पर रोक लगाते थे।

(25)

जब महाप्रभु ने यह सुना तो उन्होंने उसे सुधारने के लिए एक
लीला की। एक रात स्वप्न में काजी ने भयंकर स्वप्न देखा–
उसने देखा कि एक सिंह (नृसिंह रूप) उसकी छाती पर चढ़ बैठा है
और अपने नाखूनों से उसका वक्षस्थल चीर डालने को उद्यत है।
वह सिंह कह रहा था– अच्छा! तू मेरा संकीर्तन बन्द करायेगा,
मैं तेरी छाती फाड़ दूँगा। ऐसा देखकर काजी भय से
थर–थर काँपने लगा और व्याकुल हो पागल सा हो गया।

(26)

प्रातःकाल होते ही काजी महाप्रभु के पास आया। चरणों में प्रणाम कर क्षमा–याचना की और संकीर्तन पर लगाई गई रोक को हटाने का काजी ने जब वचन दिया तब महाप्रभु ने उसे भयमुक्त कर दिया।

काजी को दिये स्वप्न–भय की इस घटना के बाद कोई भी महाप्रभु के नगर संकीर्तन पर व्यवधान नहीं डालता था बल्कि आनन्दपूर्वक सभी उसमें सम्मिलित होते थे। महाप्रभु को अब एक दिव्य पुरुष के रूप में लोग स्वीकारने लगे थे।

(27)

विश्वविजय करते हुए आये एक विद्वान् का विद्या–अभिमान प्रभु ने चूर किया और एक संन्यासी प्रकाशानन्द का उद्धार किया।

काशी में साठ हजार शिष्यों के गुरु को महाप्रभु ने श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान किया उन्हें मायावादी से वैष्णव प्रबोधानन्द सरस्वती बना दिया। फलस्वरूप श्रीवृन्दावन महिमा के एक सौ शतक अर्थात् दस हजार श्लोकों की उन्होंने रचना की। आज मात्र 17 शतक उपलब्ध हैं। पुस्तक रूप में प्रकाशित हैं। श्रीराधारससुधानिधि उनकी माधुर्यपूर्ण उज्ज्वल रचना है। श्रीहरिनाम प्रेस से निशुल्क प्राप्य है।

(28)

श्रीवास महाप्रभु के बड़े कृपापात्र थे। उनके निवास पर आँगन में प्रतिदिन रात्रि में महाप्रभु उच्चस्वर से संकीर्तन करते। उस स्थान पर महाप्रभु के केवल और केवल ऐकान्तिक दास हुआ करते थे।

श्रीवास आंगन में एक वर्ष का अखण्ड संकीर्तन चला। एक दिन महाप्रभु ने सबको अपना अद्भुत ऐश्वर्य दिखाया। सात प्रहर (21 घंटे) तक वे महाभाव में आविष्ट रहे थे और सब भक्तों पर कृपा की थी। 'महाभाव' प्रेम की वह उच्चतम अवस्था है जिसमें केवल

श्रीराधारानी का प्रवेश है। साधारण जीव या महापुरुषों तक का भी प्रवेश कदापि नहीं है।

(29)

महाप्रभु श्रीचैतन्य का प्रिय धाम है जगन्नाथपुरी। जब पुरी में रथयात्रा का आयोजन होता है तो रथ के सामने महाप्रभु अति विस्तार से नृत्य करते हुए यात्रा में साथ चलते हैं।

महाप्रभु ने जीव–जगत् को शिक्षा प्रदान करने के लिए और अज्ञानी निन्दकों का उद्धार करने के लिए श्रीपाद केशव भारती जी से वैष्णवी संन्यास–दीक्षा ले ली और सब कुछ छोड़कर आप जगन्नाथपुरी में रहते हुए श्रीकृष्ण–प्रेम–भक्ति का प्रचार करने लगे।

(30)

यवन परिवार में पले–बढ़े एक भक्त श्रीहरिदास पर आपने अद्भुत कृपा की। भगवन्नाम में उनकी ऐसी प्रवृत्ति हुई कि लोग उन्हें 'नामावतार' कहने लगे। अनेक भक्तों के अनुनय विनय करने पर श्रीजगन्नाथपुरी के तत्कालीन राजा श्री प्रतापरुद्र पर महाप्रभु ने कृपा की जिससे राजा उन पर न्योछावर हो गया।

पुरी में रथ यात्रा के प्रारम्भ होने से पहले स्वर्ण में मढ़ी हुई झाडू से राजा प्रतापरुद्र मार्ग को स्वयं अपने हाथ से झाड़ते थे। यह परम्परा आज भी वहाँ जीवित है।

(31)

महाप्रभु जब झारिखण्ड के रास्ते होते हुए श्रीवृन्दावन पधारे तो जंगलों में हिरन–सिंह आदि हिंसक जानवर अपना नैसर्गिक द्वेषी स्वभाव भूलकर महाप्रभु के साथ हरिनाम संकीर्तन करते हुए नाचने लगे और प्रेम में गद्गद् हो अश्रु बहाते हुए हरि–हरि बोलने लगे।

वृन्दावन चलने को उद्यत असंख्य लोगों को रोककर महाप्रभु केवल एक सेवक के साथ श्रीधाम वृन्दावन पधारे थे। धाम आगमन की

यही रीति है, जो श्रीपाद सनातन गोस्वामी ने महाप्रभु को बतायी थी।

(32)

महाप्रभु ने श्रीवृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीला–स्थलियों को प्रकटित एवं महिमामंडित किया। साथ ही व्रजमण्डल के सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन कर जीवों को उसका दिग्दर्शन कराया।

वृन्दावन अर्थात् तुलसी का वन। आज से 500 वर्ष पूर्व का वह वृन्दावन आज ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। सब तरफ ऊँचे–ऊँचे भवन और एक से एक आलीशान आश्रमों से युक्त यह वृन्दावन बस मानसी सेवा में ही वृन्दा का वन शेष रह गया है। प्रभु की जैसी इच्छा!!!

(33)

महाप्रभु श्रीचैतन्य ने ही श्रीराधाकुण्ड और श्रीकृष्णकुण्ड की खोज की जो अत्यन्त शोभायमान हैं और स्वयं भगवान् श्रीराधा एवं कृष्ण के द्वारा निर्मित हैं। श्रीगोवर्धन पर्वत और गिरिराज–धरण श्रीकृष्ण तो मन को लुभाने वाले हैं।

महाप्रभु ने ब्रज के चौबीस घाटों पर स्नान किया। द्वादश वनों की यात्रा की। गोवर्धन परिक्रमा की। नन्दीश्वर तथा गुफा में श्रीनन्द–यशोदा व श्रीकृष्ण के दर्शन किये और भावावेश में अक्रूरघाट पर तो वे श्रीयमुना में कूद ही पड़े।

(34)

महाप्रभु श्रीचैतन्य ने शिक्षाप्रद मात्र आठ श्लोकों की रचना की जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हैं। अपनी शिक्षाओं के प्रचार हेतु छह गोस्वामियों को व्रज में भेजा जो सभी के द्वारा यहाँ समादृत हुए।

वृन्दावन में सप्त–देवालयों की स्थापना श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, जीव, गोपालभट्ट, रघुनाथदास– इन्हीं छह गोस्वामियों के द्वारा हुई। चैतन्य सम्प्रदाय के अद्भुत दर्शन और सर्वमान्य सार्वभौम सिद्धान्त को प्रस्तुत करने वाले अनेक ग्रन्थों की रचना इन्हीं गोस्वामिगणों द्वारा हुई।

(35)

महाप्रभु ने श्रीभागवत महापुराण का उत्कर्ष स्थापन करते हुए उसे सर्वश्रेष्ठ शास्त्र एवं शब्द प्रमाण के रूप में स्थापित किया। जीव का स्वरूप निर्णय करते हुए उसे श्रीकृष्ण का नित्य दास बताया।

'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास'। और दास के रूप में अपने स्वामी की सेवा जीव का एकमात्र कर्त्तव्य बताया। हर मनुष्य परिवार के सदस्यों की सेवा भी इस रूप में करे कि ये सब भी मेरे प्रभु के दास हैं।

(36)

जप, तप, संयम, ज्ञान, योग आदि मार्गों में सर्वश्रेष्ठ है– भक्ति का मार्ग। भक्ति एक सागर के समान विस्तृत और सर्वव्यापक है।

अन्वय माने विधि और व्यतिरेक माने निषेध। इसके द्वारा महाप्रभु ने सिद्ध किया कि स्वामी की सेवा के लिए एकमात्र साधन भक्ति ही नित्य है, सर्वत्र है और सर्वशक्तिमान् है। भक्ति निरपेक्ष है और अपना फल 'श्रीकृष्ण प्रेम' प्रदान करने में किसी की अपेक्षा नहीं रखती।

(37)

महाप्रभु ने कहा कि कलियुग में केशव अर्थात् कृष्ण का कीर्तन करना ही जीवन का सार है। इसके बिना और कोई गति नहीं है।

'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'

विधि *: तीन बार कहा– हरेर्नाम। एव माने ही। अर्थात् केवल हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम ही।* ***निषेध*** *: पुनः तीन बार कहा नास्त्येव। न+अस्ति+एव। अन्यथा गति नहीं ही है, नहीं ही है, नहीं ही है।*

(38)

'हरेकृष्ण' महामन्त्र का ध्यान करना और भक्तिपूर्वक
कीर्तन करना ही जीव के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है
और जीव का लक्ष्य है– उस प्रेम को प्राप्त करना
जैसा प्रेम गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति किया था।

श्रीपाद रूप गोस्वामी ने कहा है– अन्य अभिलाषा से शून्य, ज्ञान–कर्म आदि से अनावृत, एकमात्र श्रीकृष्ण की अनुकूलतामयी सेवा ही उत्तमा भक्ति है।

(39)

महाप्रभु स्वयं इस प्रेम को प्राप्त कर श्रीकृष्ण के विरह में इतने
व्याकुल हुए कि उनका सब कुछ लुट गया। उनकी आँखों से अश्रु
ऐसे बहते थे जैसे मानो झरना बह रहा हो।।39।।

(40)

भगवान् श्रीकृष्ण के बिना वे ऐसे तड़पने लगे जैसे प्राण हीन हो गये
हों। प्रेम की इस उच्च अवस्था को प्राप्त कर महाप्रभु श्रीगौरांग
एक दिन पुरी मंदिर के श्रीजगन्नाथ विग्रह में लीन हो गये।

दोहा–

श्रीश्रीगौर–निताई प्रभु को प्रेम से चित्त लगाकर
जो स्मरण करेगा, प्रेम भक्ति में उसकी निष्ठा सुदृढ़ होगी
और काम–क्रोधादि कसैलापन उसके जीवन से दूर हो
जायेगा अर्थात् वह निर्मल हो जायेगा।

श्रीवृन्दावन में रहते हुए (प्रत्यक्ष या मानसिक रूप से) हरिनाम संकीर्तन का आधार लेना चाहिए क्योंकि श्रीहरिनाम का सार ही श्रीकृष्णप्रेम रूपी समुद्र को प्राप्त कराने वाला है।



हरिनाम भक्ति से ऊँची कोई भक्ति नहीं।
हरिनाम स्मरण से ऊँची कोई शक्ति नहीं।
मानव जन्म सा ऊँचा कोई जन्म नहीं।
आत्मज्ञान सा ऊँचा कोई ज्ञान नहीं।
भगवत् भूल सी ऊँची, कोई भूल नहीं।
क्रोध सा ऊँचा कोई शूल नहीं।
गुरुभक्त चरणरज सी कोई धूल नहीं।
माया-जादू से ऊँचा कोई जादू नहीं।
इसको समझने से ऊपर कोई ज्ञान नहीं।
न समझने के ऊपर कोई अज्ञान नहीं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवी-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धाऽपसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

समष्टिगत-प्रणाम

गुरवे गौरचंद्राय राधिकायै तदालये।
कृष्णाय कृष्णभक्ताय तद्भक्ताय नमो नमः।।16।।

पंचतत्व-प्रणाम मंत्र

जय श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।17।।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।18।।

मंगलाचरण

– सपरिकर–श्रीहरि–गुरु–वैष्णव वन्दना –

मैं अपने गुरु के चरणकमलों में तथा समस्त वैष्णवों के चरणों में नमस्कार करता हूँ। मैं श्रील रूप गोस्वामी तथा उनके अग्रज सनातन गोस्वामी एवं साथ ही रघुनाथदास, रघुनाथभट्ट, गोपालभट्ट एवं श्रील जीव गोस्वामी के चरणकमलों में सादर नमस्कार करता हूँ। मैं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य तथा भगवान् नित्यानन्द के साथ–साथ अद्वैताचार्य, गदाधर पण्डित, श्रीवास पण्डित तथा अन्य पार्षदों को सादर प्रणाम करता हूँ। मैं श्रीमती राधारानी तथा श्रीकृष्ण को श्रीललिता तथा श्रीविशाखा सखियों सहित नमस्कार करता हूँ॥1 ॥

– श्रीगुरुदेव–प्रणाम –

अज्ञान के अंधकार से अंधी हुई आँखों को ज्ञानाञ्जनरूपी शलाका से खोलने वाले श्रीगुरु के चरणकमलों में मेरा सादर प्रणाम है॥2 ॥

– श्रील माधव गोस्वामी महाराज–प्रणाम –

श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज नामवाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दोनों को तारनेवाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणावरुणालय–स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु–देव–भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु–प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरी धाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म–स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर

प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी–गुरुदेव को नमस्कार है।।3।।

– श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद–प्रणाम –

कृष्ण सम्बन्ध–विज्ञान के दाता, कृष्ण के प्रिय, श्रीवार्षभानवीदेवी राधिका के प्रियपात्र, इस भूतल पर अवतीर्ण ॐ विष्णुपाद श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी नामक कृपा–वारिधि प्रभु की वन्दना करता हूँ। जो माधुर्य के द्वारा उज्ज्वलीकृत प्रेमपूर्ण, श्रीरूपानुग–भक्ति–दानकारी तथा श्रीगौरांग–महाप्रभु की करुणा–शक्ति के विग्रह–स्वरूप हैं, उन सरस्वती ठाकुर को मैं पुनः नमस्कार करता हूँ। जो गौर–वाणी के मूर्तिमान स्वरूप हैं, दोनों को तारने वाले हैं, तथा श्रील रूप गोस्वामी द्वारा प्रणीत भक्तिमय सेवा के सिद्धान्तों से विरुद्ध कोई कथन सहन नहीं करते।।4।।

– श्रील गौरकिशोर–प्रणाम –

मैं गौरकिशोरदास बाबा जी के चरणकमलों में सादर नमन करता हूँ, जो साक्षात् वैराग्य की मूर्ति हैं, एवं कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम व विरह भाव में ही सदा निमग्न रहते हैं।।5।।

– श्रील भक्तिविनोद–प्रणाम –

मैं उन सच्चिदानंद भक्तिविनोद को सादर नमन करता हूँ, जो गौरांग महाप्रभु की शक्ति का स्वरूप हैं तथा श्रील रूप गोस्वामी के नेतृत्वगत सभी गोस्वामियों के अनुयायी हैं।।6।।

– श्रील जगन्नाथदास बाबा जी–प्रणाम –

मैं उन जगन्नाथदास बाबा जी को सादर नमन करता हूँ, जो समस्त वैष्णव समुदाय द्वारा समादृत हैं तथा जिन्होंने गौरांग महाप्रभु की आविर्भाव भूमि की खोज की थी।।7।।

– श्रीवैष्णव प्रणाम –

मैं भगवान् के उन समस्त वैष्णव भक्तों को सादर नमस्कार करता हूँ, जो सबकी वाञ्छा (इच्छा) को पूर्ण करने में कल्पतरु के समान हैं, दया के सागर हैं तथा पतितों का उद्धार करने वाले हैं।।8।।

– श्रीगौरांग महाप्रभु-प्रणाम –

हे परम करुणामय अवतार! आप स्वयं कृष्ण हैं, जो श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। आपने श्रीमती राधारानी का गौरवर्ण धारण किया हैं और आप कृष्ण के विशुद्ध प्रेम का सर्वत्र वितरण कर रहे हैं। हम आपको सादर नमन करते हैं।।9।।

– श्रीराधा-प्रणाम –

मैं उन राधारानी को प्रणाम करता हूँ, जिनकी शारीरिक कान्ति पिघले हुए सोने के समान है, जो वृन्दावन की महारानी हैं। आप वृषभानु की पुत्री हैं और भगवान् कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं।।10।।

– श्रीकृष्ण प्रणाम –

हे कृष्ण! आप दुखियों के सखा तथा सृष्टि के उद्गम हैं। आप गोपियों के स्वामी तथा राधारानी के प्रेमी हैं। मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ।।11।।

– श्रीसम्बन्धाधिदेव प्रणाम –

उन श्रीराधा मदनमोहन की जय हो, जो मेरे जैसे पंगु एवं मंदमति की भी गति हैं तथा जिनके चरणकमल मेरे सर्वस्व स्वरूप हैं।।12।।

– श्रीअभिधेयाधिदेव प्रणाम –

परम शोभायमान श्रीवृन्दावन में, कल्पवृक्ष के नीचे, परमसुन्दर रत्नों के द्वारा बने हुए भवन में, मणिमय सिंहासन पर विराजमान एवं अपनी अतिशय प्रिय श्रीललिता-विशाखा आदि सखियों के

द्वारा प्रतिक्षण जिनकी सेवा होती रहती है, उन श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी का मैं स्मरण करता हूँ।।13।।

– श्रीप्रयोजनाधिदेव प्रणाम –

श्रीराधा गोपीनाथ जी हमारी कुशलता के लिए विद्यमान रहें क्योंकि वे रास सम्बन्धी रस का आरम्भ करने वाले हैं व वंशीवट के नीचे विराजमान होकर अपनी वंशीध्वनि के द्वारा गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं।।14।।

– श्रीतुलसी प्रणाम –

वृन्दा एवं सत्यवती नामक तुलसीदेवी के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। श्रीकृष्ण की प्रियतमा तुलसीदेवी के लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है। हे कृष्ण-भक्ति को देने वाली तुलसीदेवी! आपके लिए मेरा बारम्बार प्रणाम है।।15।।

– समष्टिगत प्रणाम –

मैं श्रीगुरुदेव, श्रीगौरचन्द्र, श्रीमती राधिका और उनके परिकर तथा श्रीकृष्ण और उनके भक्त तथा उनके भक्तों के भी भक्तों को प्रणाम करता हूँ।।16।।

– पंचतत्व प्रणाम –

मैं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीगदाधर पण्डित तथा श्रीवास पण्डित सहित अन्यान्य सभी गौरभक्तों को प्रणाम करता हूँ।।17।।

– महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

गीता उपदेश

क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो ? किससे व्यर्थ डरते हो ?
कौन तुम्हें मार सकता है ? आत्मा न पैदा होती है, न मरती है।
जो हुआ वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है वह अच्छा हो रहा है।
जो होगा वह भी अच्छा ही होगा।
तुम भूत का पश्चाताप न करो। भविष्य की चिन्ता न करो।
वर्तमान चल रहा है।
तुम्हारा क्या गया जो तुम रोते हो ? तुम क्या लाये थे
जो तुमने खो दिया ? तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया ?
न तुम कुछ लेकर आये, न तुमने कुछ पैदा किया।
जो लिया यहीं से (इसी भगवान् से) लिया। जो दिया यहीं पर दिया।
खाली हाथ आये, खाली हाथ चले।
जो आज तुम्हारा है। कल किसी और का था, परसों किसी
और का होगा। तुम इसे अपना समझकर मग्न हो रहे हो,
बस! यही प्रसन्नता ही तुम्हारे दुःखों का कारण है।
परिवर्तन ही संसार का नियम है।
एक क्षण में तुम करोड़ों के स्वामी बन जाते हो तो दूसरे ही
क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो। मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया,
मन से मिटा दो, विचार से हटा दो, फिर सब तुम्हारा है
और तुम सबके हो।
न यह शरीर तुम्हारा है न तुम शरीर के हो
यह पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश से बना है
और इसी में मिल जायेगा।
परन्तु आत्मा स्थिर है। इस जगत में आत्मा तथा हरिनाम ये दो ही
चिन्मय और सत्य वस्तु हैं, बाकी सब असत्य हैं।
इस सत्य को समझकर तू हरिनाम के पूर्ण आश्रित हो जा
फिर देख! तू भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त होकर भगवद्प्रेम
में डूबकर परमानन्द का अनुभव करेगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

1

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 3-1-2001

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीश्री 108 श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन में रुचि होने की बारम्बार प्रार्थना।

अमूल्य लेख

प्राचीनकाल में बच्चों को गुरु आश्रम में माँ बाप सद्शिक्षा पाने के लिए भेजा करते थे। उनको वहाँ 25 साल तक आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती थी। जब 25 साल पूरे हो जाते थे, तो गुरुदेव शिष्य को पूछते थे कि आप गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करोगे या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर संन्यास धर्म अपनावोगे? शिष्य अपनी मन की कामना बताता कि, मैं तो गृहस्थ बनना चाहता हूँ। आपका आदेश तथा आशीर्वाद चाहता हूँ। श्रीगुरुदेव उसको आदेश देते कि घर पर जाओ तथा कुलीन लड़की से शादी कर अपना जीवन संयम पूर्वक रखकर सन्तान पैदा करो। शीघ्र सन्तान प्राप्त कर गृहस्थी से अवकाश पाकर प्रभु का भजन करके आवागमन (जन्म मृत्यु का चक्कर) से जो दुःखों का घर है, उससे निवृत्त होना।

जब तुम्हारी सन्तान पाने की कामना हो तो पहले दोनों दम्पत्ति हरिनाम भजन सवा तीन माह करके कोई शुभदिन चुनकर हरिस्मरण पूर्वक संयोग कर्म करना। जब ऐसा करोगे तो सन्तान होगी सात्त्विक! ऐसा न करने पर सन्तान होगी तामस वृत्ति की, जो स्वयं को दुःखी करेगी तथा पड़ोस को भी दुःखी करती रहेगी। एकादशी, पूर्णमासी, अष्टमी, मंगलवार, पर्व, दोनों संध्या, दिन में, रुग्णावस्था में, क्रोध में, न चाहने पर, मासिक धर्म पर, इन पर संयोग करना वर्जित है। यदि करोगे तो राक्षस पैदा हो जायेंगे जो स्वयं को ही खा

जायेंगे। ऐसा श्रीमद्भागवत में अंकित है। जब संयोग करोगे तो उस क्षण यदि स्त्री जाति का स्मरण आ गया तो लड़की पैदा होगी एवं यदि पुरुष जाति का स्मरण हो गया तो लड़का पैदा होगा। यह 100% सत्य आविष्कार है। दोनों को 21 दिन तक संयम रखना होगा। सत इसबगोल तथा दूध का सेवन करना लाभप्रद है।

आजकल इन्द्रियतर्पण से गृहस्थ धर्म अपनाते जा रहे हैं। अतः सन्तान तामसी वृत्ति की प्रकट हो जाती है। जो माँ बाप को तंग करती है। तथा धन के लोभ में मार भी देती है। अतः अभी से नवयुवकों को चेत करना श्रेयस्कर होगा।

देखा गया है कि, आजकल के जो गृहस्थ हैं वह अपने घर में मंदिर बनवाकर उसमें भगवान् के विग्रह (किसी भी प्रकार की मूर्ति) स्थापित करते हैं। इससे तो अच्छा है कि, घर में भगवान् का चित्र रखे। क्योंकि इसमें पूजा, पाठ, अर्चनादि समयानुसार न होने से कोई अपराध नहीं होता। परन्तु धातु विग्रह सेवा (मूर्ति पूजा) समय के अनुसार होना परमावश्यक है। घर में पूजा, पाठ, अर्चनादि ठीक समयानुसार होना कठिन है, इसलिए विग्रह सेवा में अपराध होते रहते हैं। मठ–मंदिर में विग्रह सेवा के लिए पुजारी वर्ग नियुक्त किए गए होते हैं, इसलिए वहाँ पर समयानुसार और सुचारु रूप से विग्रह सेवा हो सकती है। परन्तु, घर में भगवान् के चित्र की पूजा ही सर्वोत्तम तथा शान्तिदायक होती है। चित्र के रूप में विग्रह सेवा करने का लाभ धातु विग्रह की सेवा से कम नहीं है! जितना प्रभाव धातु विग्रह का होगा उतना ही चित्र पूजा का होगा, बल्कि धातु विग्रह से भी अधिक होगा। चित्र पूजा में अपराध भी नहीं लगते।

अतः सोच विचार कर धर्मशास्त्रों के अनुसार जीवनयापन करना श्रेयस्कर होगा।

2

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 1-2-2002

परमश्रद्धेय व आराध्यतम, श्रीनिष्किंचन महाराज के चरणकमलों में दासानुदास अनिरुद्ध- दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम व हरि-भजन के लिए करबद्ध प्रार्थना!

पुरश्चरण और जप

आपके आदेशानुसार पुरश्चरण भजन के लिए कुछ शब्द आपकी असीम कृपा से लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

वृद्धावस्था में पुरश्चरण पूरा होना असम्भव ही रहता है। इसमें बहुत से नियम विधि विधान में न होने से ठाकुर की प्रसन्नता पाना असम्भव ही है। अड़चनें आती रहती हैं। जिससे मन डाँवाडोल रहता है। तैलधारावत् (निरन्तर) जप नहीं हो पाता तो प्रेम जागृत नहीं हो पाता।

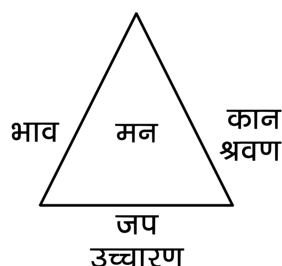
बुढ़ापे का तो सरलतम भजन हरिनाम जप ही है। इसी का पुरश्चरण अनुकूल रहता है। इसमें विधि और नियम रत्तीभर भी नहीं है। लेकिन तैलधारावत् होना भी अत्यन्त जरूरी है। तब ही संसार से वैराग्य प्रत्यक्ष में हृदय में जागृत हो जाता है। यदि अपराध से बचते रहे।

इन्द्रियों में सबसे बड़ा महत्व है कान का, कान से ही संसार बन्धन हुआ एवं कान से ही मुक्ति मिल सकती है। कान के द्वारा ठाकुर दर्शन होता है। कान को मन के साथ जोड़ दिया जाये तो सांसारिक तथा पारमार्थिक सेवा सरल हो जाती है। यदि कान को न जोड़ें तो सब व्यर्थ हो जाता है।

शास्त्र कह रहे हैं, कि शास्त्र श्रवण करो। कथा, कीर्तन श्रवण करो, श्रुतियाँ भी श्रवण का ही महत्व बता रही हैं। श्रवण बिना सब व्यर्थ हो जाता है।

हरिनाम जीभ से उच्चारण हो और कान इसे सुनता रहे, तो घर्षण पैदा होगा। इस घर्षण से विरहाग्नि हृदय में जल उठती है। जिससे रोने का ताता बँध जाता है व संसार से राग (आसक्ति) हट जाती है। प्रेमावस्था जागृत हो जाती है। तो समझिए उद्धार हो गया। जिस किसी साधन से ऐसी अवस्था न आये तो उसका साधन केवल श्रम ही है। किसी को नाम जप से, किसी को कथा श्रवण से, किसी को कीर्तन से, किसी को मन्दिर की सेवा भक्ति से, यह प्रेमावस्था जागृत हो जाती है। यदि इन उक्त भक्ति साधनों से ठाकुर के प्रति आकुलता विकलता न जागृत हो तो समझना चाहिए कि अपराध उपस्थित हैं।

जब चार माला कान से सुनकर हो जाती हैं, तो मन तड़पने लगता है। अश्रुबिन्दु छलकने लग जाते हैं। ठाकुर के प्रति आकर्षण होने लगता है। यह मेरा स्वयं का अनुभव है। Theory से Practical ज्यादा सत्य होता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, कोई करके तो देखे।



उक्त त्रिभुज में मन को जाने का रास्ता मिल ही नहीं सकता। मन का प्रतिबंध ही तो मुख्य है। मन ने ही हमें फँसाया और मन से ही हम छूट सकते हैं। कारण शरीर से जन्म-मरण होता है, यह स्वभाव का शरीर जब ठाकुर के प्रति हो जाता है, तो आवागमन हट जाता है।

भरत की तरह हरिनाम जपना चाहिए–

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।।

परमाराध्यतम श्रीगुरुदेव जब धाम पधारने लगे तो उन्होंने मुझे एक पत्र दिया था, जो मौजूद है, कि अनिरुद्ध तुम एक लाख नाम रोज करना। वह कैसे करना होगा ?

While chanting harinam sweetly, listen by ear

अर्थात्, नाम को कानों से सुनकर आतुरता से जपो। तब से मैं इस आदेश का पालन कर जीवनयापन कर रहा हूँ। कृपा कर मेरा पत्र किसी को दिखाना नहीं। प्रवचन में शिक्षा देने में कोई हर्ज नहीं।

संसार झूठा है। सब यहीं रह जाएगा। किया कराया ही साथ जाएगा। यदि अब भी समय निकल गया तो पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। अब कोई भरोसा नहीं है। कब काल भक्षण कर जाये। अतः शक्ति रहते भजन कर ठाकुर जी से प्यार करने में ही भलाई है। अब करलेंगे, अब करलेंगे... कभी अन्त नहीं आएगा। जल्द ही सम्भलने में फायदा है।

3

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3-10-2002

पारमार्थिक प्रश्नोत्तर

भगवान् ने शास्त्रों द्वारा जीवों को अपना जीवन बिताने हेतु रास्ता बता रखा है। तब भी जीव उस रास्ते से चलकर अपना जीवन नहीं बिताता, अतः दुःख भोग करता रहता है। भगवान् का इसमें क्या दोष है?

प्रश्न– भगवान् किससे खेलते हैं?

उत्तर– भगवान् भक्तों से खेलते हैं। भक्तों के बिना उनका मन नहीं लगता व भक्तों का भी मन भगवान् के बिना नहीं लगता।

प्रश्न– माया से मुक्ति कैसे मिल सकती है?

उत्तर– मायापति भगवान् को भजकर ही माया से मुक्ति का अधिकारी बन सकते हैं। भगवान् सबके बाप हैं। सब जीव उनके पुत्र हैं। जब बाप को पुत्र नहीं मानेगा तो बाप उसे अपनी सम्पत्ति का मालिक क्यों बनायेगा? अतः वह दुःख भोगता ही रहेगा। माया उसे तरह-तरह के दुःख भोग कराती रहेगी।

प्रश्न– जीव का सच्चा घर कहाँ पर है?

उत्तर– जीव का सच्चा घर भगवान् के चरणकमल रूपी **बृजधाम** ही है। जब तक वह यहाँ नहीं पहुँचेगा, भटकता ही रहेगा।

प्रश्न– जीव अपने सच्चे घर में क्यों नहीं जाना चाहता। ताकि दुःख से छुटकारा मिल जाये?

उत्तर– असत्संग ही इसका मुख्य कारण है। किसी सच्चे संत का संग मिल जाये तो वह समस्त दुःखों से छूटकर भगवद्चरण में चला जाये। उक्त लेख सन्तों की कृपावर्षण से लिखा गया है। मेरा इसमें कुछ भी नहीं है।

4

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 8/07/2004

परमाराध्यतम प्रातःस्मरणीय, मेरे हितचिंतक स्नेहास्पद श्री भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणों में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम एवं भगवद्प्रेम प्राप्ति की असंख्यबार श्रीचरणों में प्रार्थना।

गुरुदेव का अपार वात्सल्य

आपका फोन रघुवीर के पास आया। इससे मुझे परमानन्द की प्राप्ति हुई कि इस दीन-हीन के सिर पर आप जैसे परम सन्त का हाथ है। ठाकुर जी की कृपा बिना सन्त का ध्यान जीव पर जा ही नहीं सकता। श्रीगुरु कृपा मुझ पर सदैव रहती है।

श्रीगुरुदेव की महिमा वर्णन करने का साहस मैं कर रहा हूँ कि कैसे मुझ पर श्रीगुरुदेव की असीम कृपा रही थी और अब भी है।

23 नवम्बर सन् 1952 को 3-4 साल बाद हम पति-पत्नि झूलन यात्रा में श्रीवृन्दावन धाम आए। श्रीगुरुदेव का दर्शन हुआ। गुरुदेव ने श्रीवीरभद्र ब्रह्मचारी को आदेश दिया कि अनिरुद्ध दास को मिर्जापुर धर्मशाला में अच्छा सा कमरा दिला देना। गुरुदेव ने मुझे उनके चरणों में बिठाकर सिर पर हाथ धरा और कहा- "यदि वहाँ कोई कष्ट हो तो मुझे बता देना। प्रसाद व प्रवचन के समय मैं ब्रह्मचारी से बुलवा लिया करुँगा।" मैंने कहा- "आपका मुझ पर कितना प्यार है।" ऐसा कहकर मैं सिसकियों से रोने लगा।

हमने सोचा मठ में गुरुचरणों में चढ़ाने को पैसे तो है नहीं, अतः बाजार में प्रसाद पा लेंगे। मैं पूरी तरह से नियमों से अनभिज्ञ था।

मैं प्रातः मंगला आरती में गया। महाराज जी बरामदे में बैठे रहते थे। सभी वहीं पर परिक्रमा के बाद दण्डवत् करते थे। मैंने भी पत्नी के साथ दण्डवत् किया। उठने पर महाराज जी बोले, 'अरे

ओंकार! तूने कल शाम का प्रसाद कहाँ पाया ?' मैंने कहा, 'बाजार में।' गुरुदेव बोले, 'बाजार में क्या तेरे माँ-बाप का घर है ?' मैं चुप! फिर उन्होंने हम दोनों को चरणों में बिठाया एवं ठोड़ी को अपने करकमल से छूकर बोले- 'क्या कोई अपने बाप के घर पर जाता है, तो घर से खाना लाता है या बाजार में जाकर खाता है ? अरे भोले भंडारी ऐसा नहीं करना चाहिए।'

सभी सन्तगण खड़े-खड़े गुरुजी का वात्सल्य भाव देख रहे थे। गुरुदेव बोले, 'देख अब तेरे पास पैसा नहीं है। जब भगवान् जी तुझे पैसा देवें, तब मठ की सेवा खूब करना। मैं भिखारी सन्त नहीं हूँ। तुम जब भी यहाँ पर आओ, तो कुछ नहीं देना।'

मेरी तनख्वा थोड़ी थी। मैं बिदा होने पर ग्यारह रूपये चरणों में चढ़ाता तो गुरुजी एक रुपया लेकर दस रुपये वापस कर देते थे। कहते थे, 'तुम्हारे पास भाड़ा कम पड़ जाएगा।' इसी प्रकार का प्यार कई बार हुआ। खड़ाऊँ की प्राप्ति, ताऊजी को घर पर दर्शन देना, मेरी पत्नी को दण्डवत् करने और माला पहनाने को मना करना, अन्तिम समय में हमें वृन्दावन बुलाकर अपनी जीवनी सुनाना आदि-आदि अनेक प्रसंग हृदयंगम हैं।

नोट : श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी का पूर्व नाम श्रीओंकार था।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज।।
ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे, पाय श्रीकृष्णचरण।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला 19/251, 22/25)

संसार में भ्रमण करते-करते किसी सौभाग्यवान जीव को श्रीगुरु और कृष्ण की कृपा से भक्ति-लता का बीज प्राप्त होता है। उसके फलस्वरुप गुरु की सेवा और कृष्ण का भजन करते-करते वह शीघ्र ही माया के जाल से मुक्त होकर श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को प्राप्त कर लेता है।

5

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 9/07/2004

परमाराध्यतम शुभचिन्तक, श्रीश्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में इस अधम दास अनिरुद्धदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा हरि भक्ति बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

सभी सन्तों को मेरा बारम्बार दण्डवत् कहने की कृपा करें। मुझे उनकी कृपा का एकमात्र अवलम्बन है।

पावन पादुकाएँ

मेरे गुरुदेव जी साक्षात् वात्सल्यरस सिंधु की कृपामयी मूर्ति हैं। अगस्त सन् 1968 में जब झूलन उत्सव का समय था, तब हम पुत्र रघुवीर सहित गुरु चरणों में श्रीवृन्दावन धाम आये। तनख्वा थोड़ी थी, उधार करके आए।

दोपहर बाद जब सभी आराम कर रहे थे तब हम तीनों श्रीगुरुदेव के कमरे के बाहर चुपचाप बैठ गए। गुरुजी को Disturbance न हो जाये, यह सोचकर लगभग 1/2 घंटा बैठे रहे। गुरुजी तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने किवाड़ खोला और हमें देखते ही बोले, “आपको यहाँ बैठे काफी देर हो गयी। आप अन्दर आ जाओ।”

गुरुजी अपनी शय्या पर बैठकर किसी को पत्र लिख रहे थे और उसे बन्द कर रहे थे। हम दोनों जाकर चरणों में लिपट गए और रोने लगे।

गुरुजी ने अपना करकमल हमारे दोनों के सिर पर रखा और प्यार से बोले–‘आपको क्या तकलीफ है ? रहने की व्यवस्था ठीक नहीं है ?’ हमने कहा ‘नहीं महाराज! आपके चरणों में क्या तकलीफ हो सकती है ?’

गुरुदेव बोले, ‘बताओ! दोनों क्यों रोते हो।’ मैंने कहा–‘मैं आपका राजस्थान में इकलौता शिष्य (बेटा) हूँ। आपके सिवाय मेरा

कोई सहारा नहीं है। मुझे आपकी चरण पादुकाएँ चाहिएँ।' श्रीगुरुदेव ने कहा– 'अनिरुद्ध! मैं किसी को अपने खड़ाऊँ नहीं देता हूँ।' इतना कहते ही मैं जोर-जोर से रोने लगा, तो मैंने देखा कि, मेरे गुरुदेव भी आँसू बहा रहे हैं। रोना सुनकर श्रीपुरी महाराज जी कमरे में घुसे और प्रसंग मालूम किया।

श्रीपुरी महाराज जी महाराज जी को बोले– 'अनिरुद्ध अपना अधिकार माँग रहा है। श्रीराम ने भरत को भी तो पादुकाएँ दी थीं। आप न दोगे तो लो, मैं दे देता हूँ।' उन्होंने गुरुदेव की चरणपादुका उठाकर मेरे सिर पर रख दीं। बस फिर क्या था, मुझे त्रिलोकी का राज्य मिल गया। मैंने निवेदन किया, 'मेरी छुट्टी नहीं है। शाम को अजमेर जाना है।' श्रीगुरु महाराज जी ने कहा, 'ठीक है। आते-जाते रहा करो।' मैंने ग्यारह रुपये भेंट चढ़ाए। श्रीगुरुजी ने कहा– 'भाड़ा कम पड़ जाएगा। मैं एक रुपया ले लेता हूँ। जब भगवान् जी आपको देंगे तब मठ की सेवा करना।' इसी प्रकार कई बार श्रीगुरु महाराज बाप से भी ज्यादा खास प्यार करते थे। अमरेश जब तीन माह का था, तब गुरुदेव के पास उसे लिटाकर जब हम प्रसाद पाने चले गए थे तब गुरुदेव ने उसे अपने गोद तक में ले लिया था!

श्रीगुरु-वंदना



श्रीगुरु चरण-पद्म, केवल-भक्ति-सद्म
वन्दों मुञि सावधान मते।
यॉहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया याई,
कृष्ण-प्राप्ति हय याहा हइते।।

हमारे गुरुदेव के चरणकमल ही एकमात्र साधन हैं जिनके द्वारा हम शुद्ध भक्तिमय सेवा प्राप्त कर सकते हैं। मैं उनके चरणकमलों में अत्यन्त भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होता हूँ। उनकी कृपा से ही जीव भवसागर (भौतिक क्लेश रुपी महासागर) को पार कर सकता है तथा कृष्ण की कृपा प्राप्त कर सकता है।

6

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 18/08/2004

परमश्रद्धेय व आराध्यतम, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस विषयी अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम में रुचि बनने हेतु बारम्बार प्रार्थना।

हीरा जन्म गँवाया

आपने फोन के माध्यम से मुझ विषयी पामर जीव पर कृपा कर सम्भाल लिया। यह आपकी अहैतुकी कृपा ही है। ठाकुर व श्रीगुरुदेव की कृपादृष्टि होती है, तब ही कोई सन्त जीव पर दृष्टि डालता है।

इस कृपा के लिए मैं अपने तन के चर्म की अनन्तकाल तक जूतियाँ बनाकर पहनाता रहूँ, तो भी किसी जन्म में उऋण नहीं हो सकता।

मेरी कलुषित बुद्धि तथा बिगड़ा हुआ मन आपके सिवाय कौन सुधार सकता है। मन को अनेक क्लेश लगे रहते हैं। फिर भी इस मन को वैराग्य नहीं होता। ठाकुर व सन्त चरण में वह लगना नहीं चाहता। अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ की बातों व धन्धों में गँवाता रहता है।

ठाकुर व श्रीगुरुदेव ने कृपा कर के हमें हरिनाम का अमूल्य रत्न दिया। इसको बेकार समझकर यों ही कूड़े में फेंक दिया। सारा जीवन बेकार गँवा दिया। मन संसार में आनन्द ढूँढता है। वहाँ आनन्द की गंध भी नहीं। उल्टा काँटों में फँस जाता है।

अतः आपकी ही कृपा से मन की जागृति हुई है एवं मन सोच रहा है– जितना खो दिया, सो खो दिया, अब जो हीरा तुम्हारे पास है, उसे आजमाकर तो देखो!

तीन लाख हरिनाम नित्य करने की प्रेरणा हुई है। समय लगता है, परन्तु सन्तों की कृपा से सुचारु रूप से हो रहा है।

शास्त्र मानव को सचेत कर रहा है। चतुर्मास में भजन करना कल्याण का हेतु है। परन्तु, ठाकुर व सन्त कृपा के बिना ऐसा होना असम्भव ही है।

मैंने तो हरिनाम को ही पकड़ रखा है। शिव, नानकदेव, ईसा मसीह, रहमानादि ने नाम से ही उद्धार पाया है।

शास्त्रवचन

1. चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।।

2. नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। हरिनाम अवलम्बन एकू।।

3. कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा।।

4. कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावे लोग।।

5. जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बन्धन काटहिं नर ज्ञानी।।

6. बिबसहुँ जासु नाम नर करहि। जन्म अनेक रचित अघ दहही।।

7. सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव वारिध गौपद इव तरहीं।।

8. यह कलिकाल न साधन दूजा। जोग यज्ञ जप तप व्रत पूजा।।

शास्त्रों में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। जिनसे मेरा मन कुछ जागृत हुआ।

हरिनाम कान से सुनने से कीर्तन व जप दोनों होने से गौरहरि के आदेश का पालन हो जाता है।

ठाकुर जी का वचन है–

मोहे, कपट, छल, छिद्र न भावा।

तब ही तो कलि का तमाशा हो रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में कलह नाच रहा है। मानव के हृदय में, घर-घर में, जाति-जाति में, समाज-समाज में, प्रान्त-प्रान्त में, देश-देश में व सारे संसार में जहाँ देखो वहाँ कलह का राज दिखाई दे रहा है। यहाँ तक कि धर्म क्षेत्रों में भी कलि आकर घुस गया है। इसका खास कारण है,

मालिक (ठाकुर) को भूलना व माया के हाथों में पड़ना। जहाँ होना चाहिए आपस में प्यार, वहाँ तेरा-मेरा होकर कलह नाच रहा है। क्योंकि सभी ठाकुरजी की सन्तानें हैं लेकिन मन में दरारें पड़ गयी **तेरा-मेरा** की। सभी ठाकुरजी का है। बिना बात हक जमाना, दुःख को मोल लेना है। यह दरार मिटेगी **हरिनाम** सुनकर, लेकिन सभी आलस्य में पड़े हैं। कोई आजमाकर देखना ही नहीं चाहता। अरे भाई 4-6 माला करके तो देखो, क्या गुल खिलता है! उक्त अवस्था ठाकुर को खींचकर हृदय में बन्द कर देगी तथा मस्ती में भर देगी।

धर्म का जो भी आयोजन होता है, संसार को रिझाने के लिए होता है। ठाकुर को रिझाने के लिए नहीं होता। अतः ठाकुर को छल कपट सुहाता नहीं। अतः वहाँ **कलह** होता है। कलि की वहाँ दाल गल जाती है। जहाँ सत्यता होगी, वहाँ कलि का प्रवेश हो ही नहीं सकता। वहाँ पर कृष्ण भगवान् का सुदर्शन चक्र घूमता रहता है तो कलह कैसे होगा! कलि महाराज वहाँ पर कैसे आयेंगे ?

भजन बिना कलह निश्चित है। अतः मन को समझाओ कि दुनियाँ जाये भाड़ में, तुम स्वयं को सम्भालो। दुनियाँ अपने कुसंस्कार वश बहती जा रही है। उसकी बाढ़ को रोकना तुम्हारे बस की बात नहीं है। यदि कोई सुधर जाए, तो भगवद् कृपा! जब तुम ही नहीं सुधरे तो दुनियाँ को क्या सुधारोगे? अतः चुप साधना ही उत्तम है।

शास्त्र कहते हैं कि, चतुर्मास में सब देवता सो जाते हैं। परन्तु सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, हवा, अग्नि सब पहले जैसे ही अपने कर्तव्य में नियुक्त हैं। फिर देवता कहाँ सोए ?

इसका मतलब कुछ और ही है, देवता सोते नहीं, 6 माह के विक्षेप से हटकर शान्त समाधि में चले जाते हैं। जहाँ विश्राम होता है वहाँ मन का निरोध हो जाता है। फुर्सत होने से सभी देवता देखते हैं, कि ठाकुर जी की सृष्टि में कहाँ पर क्या हो रहा है और कौन क्या कर रहा है। जो ठाकुर जी (मालिक) को याद कर रहा है उसे आशीर्वाद के रूप में **आनन्दवर्धन** कर देते हैं, एवं जो हाय-धाय में

फंस रहा है उसे और फंसाकर चले जाते हैं। दुःखसागर में डाल जाते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि चारों माह भजन में लीन रहो। अन्य बात मत सोचो, आवागमन से छूटकर भगवद्चरण प्राप्त कर लो।

शरीर क्षणभंगुर है। जितना प्रभु से प्यार करलो उतना ही कम है। सभी धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जा रहे हैं एवं एक दिन तुझे भी जाना है। सँभलना ही कल्याणप्रद है, वरना पछतावा ही हाथ लगेगा। मन को ऐसा काबू में कर लो कि अन्त समय में जहाँ लगाओ वहाँ लग जाय अर्थात् हरिनाम को सुनते हुए इस संसार से निकल जाओ। तब ही जीवन का सार है। अन्त समय मन काबू में न रहा तो सारा साधन धूल है, बेकार है।

कर में तो माला फिरे। जीभ फिरे मुख माहि।।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे। यह तो सुमिरन नाहि।।
मनवा सोच जरा मन माहि। यह तो सुमिरन नाहि।।
मानुष देह न बारम्बारा। प्रभु कृपा मिला इस बारा।।
ठाकुर सन्त चरण में लग जा। तेरा आवागमन छुट जाय।।
कोई नहीं रे जग में अपना। ये तो सारा का सारा सपना।।
हरिनाम तू प्रेम से जपना। तेरा साकार हो जाए रे सपना।।

हे निष्किंचन महाराज जी! मैं तो दोषों का भण्डार हूँ। ये दोष मुझे क्षण-क्षण में सता रहे हैं। भजन में बाधा डाल रहे हैं। क्या आप दयालु होकर इन दोषों को मिटायेंगे नहीं ? क्या आप मुझे अपना बनायेंगे नहीं ? करुणा की चलती-फिरती मूर्ति आप ही तो हैं। जिससे अनभिज्ञ प्राणी जागृति को प्राप्त हो रहे हैं। क्या मुझे जागृति नहीं कराओगे ?

गोविन्द जय जय गोपाल जय जय
राधारमण हरि गोविन्द जय जय

प्रार्थना

हे गुरु महाराज मुझे निष्किंचन बना दो।
विषयों की ज्वाला मेरे हृदय से बुझा दो।।
श्रीकृष्ण के विरह में रोता रहूँ मैं।
अन्त समय मेरा अब तो निभा दो।।
बार बार करूँ मैं चरणों में प्रार्थना।
हे दयालु करना न मेरी भर्त्सना।।
जग में तेरा ही मुझको जो सहारा।
हे शरणागत अब तो माया से करो छुटकारा।।
जी चाहता है आपके चरणों में चलकर रोऊँ।
सन्त ठाकुर अपना है जो अपने अपनत्व को मैं खोऊँ।।

श्रीशुकदेव गोस्वामी महाराज परीक्षित को उपदेश देते हैं–

कलेर्दोषनिधे राजन् ह्यस्ति एको महान गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्त संगः परं व्रजेत।।

(श्रीमद्भागवत 12.3.5)

हे राजन् यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है, फिर भी इस युग में एक अच्छा गुण भी है– केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त हो सकता है और दिव्य धाम को प्राप्त करता है।

7

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/09/2004

परमश्रद्धेय आराध्यतम, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस विषयलीन अधमाधम अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम हरिस्मरण के साथ भजन बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना!

आपकी कृपादृष्टि

आपकी असीम कृपा से मेरा तीन लाख जप नित्य चल रहा है। हरिनाम को सुनकर ही जप का अभ्यास कर रहा हूँ। इससे मन भी लग जाता है। मन इधर-उधर भाग भी जाता है, तो पश्चाताप से फिर रुकने लग जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा भी है, कि 'मन को रोक-कर भजन करना चाहिए' जैसा कि भगवद्गीता के 6 अध्याय के 35 वें **श्लोक** में आश्वासन दिलाया है, कि 'अभ्यास करने से मन रुक जाता है। ऐसा मेरा मत है।' भगवान् सत्य संकल्प हैं, तो मन यदि अभी नहीं रुकता तो मृत्यु के समय में रुकने का सवाल ही नहीं है। कोई कहे उस समय मन को रोक लेंगे तो यह केवल कहने की बात है। मन उसी का रुकेगा जो साधन करते समय रोक सकेगा। मन ही गिराता है एवं मन ही चढ़ाता है।

रामायण में अनेकों उदाहरण हैं कि हरिनाम को जीभ से उच्चारण करो तब ही मन रुक सकता है वरना जप का कोई फल नहीं। श्रीभागवत महापुराण में भी लिखा है, बिना मन रुके जप का कोई मतलब नहीं, केवल श्रम ही है। (केवल सुकृति इकट्ठी होगी तथा सांसारिक लाभ होगा)।

जहाँ मन थोड़ी देर रुका नहीं कि अश्रुधारा बही। अश्रुधारा में **आराध्यदेव** बह कर बाहर आ जाते हैं ऐसा मेरा अनुभव है। ठाकुर तो, मन का उद्देश्य क्या है यह देखते हैं, लौकिक है या अलौकिक!

मैं आपको लिखकर शिक्षा नहीं दे रहा हूँ। यदि ऐसी मेरी भावना है, तो मेरा कभी उद्धार नहीं होगा। मैं तो आपको मेरा भजन मार्ग बताकर स्वयं को उत्साहित करता रहता हूँ। आपको लिखने से मेरा भजन बढ़ता है क्योंकि पत्र पढ़ने पर आपकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पड़ती है तो ठाकुर की दृष्टि तो अपने आप आपकी कृपा से आ जाती है।

ठाकुर जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है कि, 'सन्त कृपा जिस पर हो जाती है उस पर मेरी कृपा स्वतः ही हो जाती है।' पत्र देने से यदि अपराध होता तो मेरा भजन स्तर गिर जाता। मेरा तो भजन बढ़ता ही है। आपके चरण दर्शन भटिण्डा में कार्तिक मास में कर सकूँगा। आपका व सन्तों का स्मरण ही मेरा भजन बल है। भजन करते समय मेरी तरफ भी ध्यान दे कर आशीर्वाद के रूप में कृपा कर दिया करें। आप ठाकुर के अत्यन्त नजदीक हैं। मैं तो आपके माध्यम से ही ठाकुर चरणों में रहता हूँ। बुढ़ापा ने मुझे सन्त चरणों के दर्शन से दूर कर दिया है।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 6.35)

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा–

हे महाबाहु कुन्तीपुत्र ! निस्सन्देह चंचल मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है, किन्तु निरन्तर अभ्यास द्वारा तथा वैराग्य द्वारा ऐसा सम्भव है।

8

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 24/09/2004
एकादशी

परमश्रद्धेय परमाराध्यतम, शिक्षागुरुदेव के चरणकमल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम व हरिनाम सम्पूर्ण होने की करबद्ध प्रार्थना।

मन रुकता है

आपके श्री चरणकमल में मेरे भावों को अर्पण करने में मुझे अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। जितने क्षण पत्र लिखने में लगते हैं उतना समय आपकी निर्मल आकृति मेरे हृदय पटल पर अंकित रहती है। वहाँ पर आप जब इसे पढ़ेंगे तब आपको मेरा स्मरण होने से मेरा भजन स्तर बढ़ने लगता है। यह आपका अनुग्रह ही मुझे भजन पथ पर चलाता रहता है। मैं यहाँ अकेला आपके श्री चरणों की शरणागति से कृतार्थ हूँ।

रामायण में बहुत ही आकर्षण करने वाली पद्य व चौपाइयाँ है, जिनसे बिना साधुसंग से भी भजन में प्रोत्साहन मिलता रहता है। आपकी कृपा से व ठाकुरजी की प्रेरणा से श्रीरामचरितमानस से विधि, नाम महिमा, सन्त व जप का उत्कर्ष छाँटकर एक सूची तैयार की है। जो ठाकुर जी तथा सन्तों की कृपा से भाव जागृत हुए हैं उन्हें मैं अंकित करने जा रहा हूँ। और आपके श्रीचरणों में आपकी कृपा से अर्पण करने की चेष्टा कर रहा हूँ। नित्य 3 लाख हरिनाम श्रवण द्वारा आपकी असीम कृपा से साधन चल रहा है। श्रवण इन्द्रिय ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसी से संसार घुसा है व इसी से परमार्थ (नाम) घुसेगा तो त्रितापों से हटकर जन्म-मरण से छुट्टी होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। मन रुकता है, मन रुकने पर ही हर विषय में सफलता मिलेगी। कहते हैं मन कभी नहीं रुक सकता, बिल्कुल गलत बात है! पत्र लिखने में मन कैसे रुका ?

बिना मन रुके कैसे डिग्री प्राप्त कर ली ? निष्कर्ष निकला, मन का स्वभाव तो एकाग्र होने का है, परन्तु इसमें कमजोरी स्वयं की है। भजन को महत्त्व न देकर संसार को महत्त्व दिया है। इसी वजह से हरिनाम की 4 माला जपने पर भी अश्रुपात नहीं हुआ। ठाकुरजी जापक का ध्येय देखते हैं कि जापक मुझे चाहता है या संसार को चाहता है। बस! भजन में केवल यही रुकावट नजर आती है।

रामायण हरिनाम जपने का रास्ता बता रही है–

1. भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

–यह चौपाई अभ्यास (Training) के लिए है। पहली कक्षा में बैठने वाले के लिए है। धीरे–धीरे मन लगने पर कुछ स्मरण भी होने लगेगा। वरना तो ऊब कर छोड़ देगा।

2. पुलक भरत हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।

–यह चौपाई उसके लिए है जो केवल ठाकुर को ही चाहता है। संसार को केवल जीवन चलाने हेतु ही महत्व देता है।

3. यह कलिकाल मलयातन मन कर देख विचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन उपाय।।

–यह गन्दे विचारों का समय है। अतः हरिनाम से उद्धार पा लेना चाहिए।

4. जेहि विधि कपट कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

सीताजी जीव को हरिनाम जपने की विधि बता रही हैं, कि जीभ से नाम उच्चारण करो जो कान सुनता रहे एवं ठाकुर लीलाओं का ध्यान करते रहोगे तो अन्त में प्रेमप्राप्ति होगी।

5. जासु नाम जपि सुनहुं भवानी। भव बन्धन काटहि नर ज्ञानी।।

–शिवजी भवानी को समझा रहे हैं कि जीभ से नाम जप करके साधु जन संसार का मोचन कर दिया करते हैं।

6. सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरही।।

–प्रेम से सुनकर जो जप करते हैं वे सहज में ही जन्म मरण से छूटते हैं।

7. जपिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

–भगवान् को साधारण मानव ने देखा नहीं परन्तु प्यार से जपने पर वे हृदय में प्रकट हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वाल्मीकि मुनि हैं, जिन्होंने राम के प्रकट होने से पहिले ही रामायण लिख दी थी।

8. करहू सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालक राखहि महतारी।।

–माँ जैसे दूध पीते शिशु की देखभाल करती है, उसी प्रकार रामजी भक्त की देखभाल करते हैं। उसके सिर पर सुदर्शन चक्र घूमता रहता है।

9. कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तब सुमरन भजन न होई।।

–भजन (ठाकुर की याद) बिना जीवन ही बेकार है।

10. कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दुजा।।

–साधुसंग तथा गुरु कवच पहनकर जीवनयापन करते रहो। कोई संकट अन्दर–बाहर का आ ही नहीं सकता।

सन्त–अपराध

1. सुन मम वचन सत्य अब भाई। हरितोषण वृत्त द्विज सेवकाई।।
अब जानि करहि विप्र अपमाना। जानेसु सन्त अनन्त समाना।।

–सन्त का अपराध भूलकर भी न करना। श्रीराम कहते हैं, सन्त को मेरे समान ही समझना।

2. इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
जो इनको मारा नहिं मरहि। विप्र द्रोह पावक सो जरहि।।

–जो सुदर्शन चक्रादि से नहीं मरता वह साधु द्रोह से भस्मीभूत हो जाता है। अतः यदि साधु ताड़ना भी करे तो भी उनके चरणों में पड़कर प्रार्थना करनी चाहिए।

3. सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुरु कोप कहहु को राखा।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहीं कोइ जगत्राता।।

–सन्त एवं गुरु के क्रोध से कौन रक्षा कर सकता है। यदि ब्रह्मा भी क्रोध करे तो गुरुदेव बचा लेते हैं, परन्तु गुरुदेव क्रोध करें तो त्रिलोकी में कोई बचाने वाला नहीं है।

4. मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भुसुर सेव।
मो समेत विरंचि शिव बस ताके सब देव।।

–जो साधु सन्त की सेवा में रत हैं, तो ब्रह्मा शिवादि सभी देवता उसके वश में रहते हैं। अर्थात् सब प्रसन्न रहते हैं।

5. मुनि तापस जिनते दुख लहहि। ते नरेश बिनु पावक दहही।।
मंगल मूल विप्र परितोषू। दहहि कोटिकुल भुसुर रोषू।।

–सन्तों का क्रोध करोड़ों कुलों का नाश कर देता है।

6. जो अपराध भक्त कर करहिं। राम रोश पावक सो जरई।।

–भक्त अपराध बड़ा खतरनाक है। फिर भी लोग करते रहते हैं, तो आगे भजनवृद्धि होगी कैसे ?

आपसे कोई शास्त्रीय बात छिपी नहीं परन्तु वर्णन करने में मजा आता है। उक्त प्रकार की लगभग 200 पद्य चौपाईयाँ छांटकर अंकित की हैं। इन्हें बार–बार पढ़ने से मन संसार से हटकर साधु व ठाकुर जी की तरफ भागता है। श्रीराम जी ने बहुत बार आश्वासन देकर मन को खींचा है। बुद्धि की विकृति से मन डाँवाडोल रहता है। जिसकी बुद्धि स्थिरता में है उसका मन भी स्थिरता में रहता है। मन बुद्धि की भ्रान्ता नहीं है। यदि बुद्धि हावी हो तो मन कुछ नहीं कर सकता।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

विरहमयी विज्ञप्ति –

जीवन की आशा छोड़ चला तुम पर हे श्रीगुरु महाराज।
कब श्रीकृपा होगी मुझ पर, भक्ति से दूर हुआ मैं आज।।
बुढ़ापा ने आ घेर लिया, भजन का ह्रास हुआ अपना।
तुम मेरे और मैं तेरा, संसार में कोई नहीं अपना।।
सब स्वारथ के साथी जो यह सारा का सारा है सपना।
त्राहि त्राहि मैं करूँ चरण में अब तो अपनालो भगवन्।।
मानुष जन्म अकारथ जावे सर्वस्व कर दिया मैंने अर्पण।
दया करो हे करुणासागर अब तो राखो मोहि चरणन।।

भगवान् श्रीकृष्ण का श्रीउद्धव के प्रति उपदेश

शब्द ब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः।।

(श्रीमद्भागवत 11.11.18)

यदि कोई गहन अध्ययन करके वैदिक साहित्य के पठन–पाठन में तो निपुण बन जाता है, किन्तु निरन्तर हरिनाम स्मरण के द्वारा मन को रोक कर उसे भगवान् में स्थिर नहीं करता, तो उसका श्रम वैसा ही होता है, जिस तरह दूध न देने वाली गाय की रखवाली करने में अत्यधिक श्रम करने वाले व्यक्ति का। दूसरे शब्दों में, मन को रोके बिना ज्ञान के श्रमपूर्ण अध्ययन का फल कोरा श्रम ही निकलता है।

9

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/10/2004

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणकमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

नाम जपने का शास्त्रीय तरीका

1. नाम जीह जपि जागहि जोगी। (जीभ)
विरत विरंच प्रपंच वियोगी।।

2. पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।। (जीभ)

3. बैठे देखि कुशासन जटा मुकुट कृसगात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।

(जीभ से नाम जप रहे हैं एवं आँखों से अश्रुधारा बह रही है)

4. बिबसहुँ जासु नाम नर कहही। जन्म अनेक रचित अघ दहही।।
सादर सुमिरन जो नर करही। भव वारिध गोपद इव तरही।।
(प्रेम से)

5. कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहि पारा।।

6. जपिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।
जाकर नाम मरन मुख आवा।
अधमहुँ मुक्त होई श्रुति गावा।।

(अतः नाम का अभ्यास करना अति आवश्यक है)

7. कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

8. उल्टा नाम जपत जग जाना।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

(कैसे भी जपो परन्तु मन से जपो। संसार याद न आये)

9. मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद गिरा नयन बहे नीरा।।

(उक्त प्रकार से हरिनाम सुनकर मन निश्चित ही वश में होता है)

10. श्री रघुवीर नाम तजि नाहिन आन उपाय।।

(नाम के बिना अन्य उपाय नहीं)

11. नाम प्रभाव जान शिवजी को।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को।।

(नाम का प्रभाव शिवजी ही जानते हैं, जिनके लिए हलाहल जहर अमृत बना)।

12. भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

(यह पहली कक्षा के लिए है, ताकि धीरे धीरे मन नाम में लग जाये। इससे प्रेम प्राप्ति नहीं होगी। संसार की इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी)।

13. जाना चहहि गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ।।

(जानना चाहते हो तो हरिनाम को जपकर देखो, फिर देखो क्या गुल खिलते हैं! अष्ट सिद्धि, नवनिधि हस्तगत हो जाएँगी। जैसे हनुमान जी को हुई। दूर की वस्तु देखना, दूर का सुनाई देना आदि। अनेकों उदाहरण हैं, यह तो 10% भी नहीं है।

शीघ्र नाम की कृपा लेने के लिए महत् पुरुषों (सन्तों) की सेवा परमावश्यक है। वह तन से मन से तथा धन से होनी चाहिए।

सन्त सेवा के शास्त्रीय प्रमाण सहित उदाहरण–

1. सन्त चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा।।

(सन्त समागम होने से ही तो भजन में दृढ़ता आयेगी)।

2. सुन मम वचन सत्य अब भाई। हरितोषण वृत्त द्विज सेवकाई।।
अब जानि करहि विप्र अपमाना। मम कुदृष्टि होय तुम जाना।।
3. इंद्र कुलिश मम शूल विशाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
जो इनको मारा नहीं मरहि। विप्र द्रोह पावक सो जरहि।।

(अम्बरीश, दुर्वासा प्रसंग)

(सन्त का अपराध भगवान् को सहन नहीं होता)

4. सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्राण समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम।।

(सन्त महत् पुरुषों में जिनको प्रेम हो गया, समझो वे ठाकुर के हो गये)।

5. गिरजा सन्त समागम सम न लाभ कछु आन।
बिन हरि कृपा न होय सो गावहि वेद पुराण।।

(ठाकुर जी की कृपा ही सन्तों को घेर कर लाती है। अपने सामर्थ्य से नहीं)।

6. सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकहु बारा।।

(सच्चे संत का एक क्षण का संग मन को पलट देता है)।

7. भूपति भावी मिटहि नहिं जदपि न दूषण तोर।
किए अन्यथा होई नहिं विप्र शाप अति घोर।।

(सन्त का शाप ठाकुरजी भी नहीं मिटा सकते)।

8. भक्ति तात अनुपम सुख मूला। मिलई जो सन्त होय अनुकूला।।

(ज्ञानमार्गीय सन्त न मिलकर भक्ति मार्गीय सन्त मिल जाए तो आनन्द के समुद्र में ज्वार भाटा आ जाए)।

9. मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसर सेव।
मो समेत विरंचि शिव बस ताके सब देव।।

सन्तों से प्रेम करने के अनेकों उदाहरण हैं जिनसे ठाकुर को आना पड़ता है। 1% ही लिखने में आए हैं। जो सन्तों से तो दूर रहते हैं और घर में भजन करते हैं। उनको ऐसा ही समझना चाहिए जैसे मिट्‌टी से तेल निकालना चाहते हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव जी की बाहें घुटनों से नीचे तक लम्बी थीं। उन्हें श्रीकृष्ण जी ने गोलोक से अपना कल्याण करने के लिए भेजा था। ठाकुर जी की कृपा से जयपुर में सदैव फुर्सत पर रहने के कारण सदा उनके चरणों में बैठने का मौका मिला। हर मठ स्थापित करने के लिए 3 बार श्री विग्रह देखने के लिए उन्हें जयपुर आना पड़ता था। जब बड़ा लड़का रघुवीर 5–6 वर्ष का ही था वह भी संग में बैठा सुनता रहता था। अतः उस पर भी अच्छे संस्कार का प्रभाव हो गया। तीनों बच्चों को उमर के 12–13 साल के लगभग दीक्षा का मौका मिल गया। अतः सन्तों में प्रेम हो गया। सन्त सेवा से ही घर पर आनन्द ही आनन्द रहता है।

भक्ति प्राप्त करने के लिए शुद्ध कमाई का पैसा घर पर आ जाये तथा सन्तों की कृपा हो जाये तो समझना चाहिए कि अब जन्म–मरण छूटने का समय नजदीक आ गया। यह शास्त्र वचन है।

गुरुजी का मेरे लिए आदेश भी ऐसा ही था जो ठाकुर जी ने निभा दिया एवं अब भी तीनों बच्चों से निभ रहा है। पसीने का धन हृदय को निर्मल बनाता है। किसी भी प्राणी को कष्ट देकर कोई ठाकुर जी को प्रसन्न कर सकता है ? कदापि नहीं। ठाकुर जी को धोखा देता है। शुद्ध पैसा ही भक्ति प्राप्त करने की L.K.G. Class है। इसमें उत्तीर्ण होने पर ही U.K.G में बैठा जा सकता है। यह Class ही सन्तों से नाता जोड़ती है।

मेरे लिखे पत्रों पर आपको संशय होता है, कि यह जो पत्र लिखे जाते हैं, कहीं–कहीं वाक्य पंक्तियाँ शास्त्र सम्मत मालूम नहीं पड़ती। आपके चरणकमलों में करबद्ध प्रार्थना है कि जो भी मैं पत्र डालूँगा शास्त्रसम्मत ही होगा। अनन्त कोटि शास्त्र हैं, जिनको

एक व्यक्ति पूरी उम्र भर में भी पढ़ नहीं सकता। अतः संशय होना स्वाभाविक ही है।

आप कहेंगे कि मैंने ऐसा **गुरु कवच** पढ़ा ही नहीं। श्रीवाल्मीकि मुनि ने वाल्मीकि रामायण के अलावा अनेक शास्त्र लिखे जो वर्तमान में अप्रकट हो गए। जिसका कारण मुसलमान शासक तथा नास्तिक युग था। वाल्मीकि तो त्रेतायुग के आरम्भ में प्रकट हुए थे। इतने लम्बे समय के बाद कोई भी वस्तु का प्रकट रहना सम्भव बात नहीं है। जिन्होंने श्रीराम जी के प्रकट होने के बहुत समय पहले ही वाल्मीकि रामायण की रचना कर दी थी। वाल्मीकि जी ने राम जी के सुपुत्रों लव–कुश पर गुरु कवच का प्रयोग किया था। जो कवच हनुमान जी से, भरत–लक्ष्मणादि से टूट नहीं सका। अन्त में हारकर राम जी को लड़ने के लिए जाना पड़ा ताकि यज्ञ हेतु घोड़ा छीनकर अयोध्या में ले आयें। परन्तु गुरु कवच श्रीराम भी नहीं तोड़ सके। अन्ततोगत्वा श्रीवाल्मीकि की शरण में जाने से ही लव–कुश ने घोड़ा मुक्त किया। तब यज्ञ सम्पूर्ण किया। यह गुरु कवच मैंने स्वयं प्रयोग करके देखा है। जब भी काम हावी हुआ, जब पुरश्चरण किया तो प्रत्यक्ष में काम का आवेग शरीर से उतरता हुआ अनुभव हुआ। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कोई भी प्रयोग करके देखे। प्रभु की प्रेरणा भी शत–प्रतिशत सत्य होती देखी गई है। प्रभु कृपा करके भक्त को बुद्धियोग देते रहते हैं। जो शास्त्र सम्मत ही होता है।

मेरा स्वभाव दार्शनिक है। जब तक मैं किसी विषय को स्वयं आजमाकर नहीं देख लेता, तब तक मैं उसे मानने को तैयार नहीं होता। यही विज्ञान की शैली है। शास्त्र की हर पंक्ति को गहराई से हृदयगम्य करने पर ही उसका निचोड़ निकलता है। तब स्वतः ही पूर्ण श्रद्धा उस पर हो जाती है।

हरिनाम चारु चिंतामणि है। जैसी चिन्ता याने स्मरण होगा वही वस्तु उसको मिल जायेगी। संसार का चिन्तन संसार का लाभ करा देगा एवं आध्यात्मिक चिन्तन (स्मरण) जन्म–मरण से छुड़वा

देगा। इसमें तर्क की कोई थोड़ी भी गुंजाईश नहीं है। लेकिन अभ्यास परमावश्यक है। अभ्यास से सब कुछ सम्भव है। बिना अभ्यास किये संसार का ही काम नहीं होता तो आध्यात्मिक काम कैसे हो सकता है ?

नोट– नृसिंह भगवान् का चिन्तन करते हुए हरिनाम जपने से अन्दर बाहर के सब शत्रु (दोष) शमन हो जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है भक्त प्रह्लाद।

श्रीकृष्ण नाम के अनुशीलन की प्रणाली

स्यात्कृष्णनामचरितादिसिताप्यविद्या–
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा
स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गद्मूल हन्त्री।।

कृष्ण का पवित्र नाम, चरित्रादि मिश्री के समान आध्यात्मिक रूप से मधुर हैं। यद्यपि अविद्या रूपी पीलिया रोग से ग्रस्त रोगी की जीभ किसी भी मीठी वस्तु का स्वाद नहीं ले सकती, जो कि उस रोगी के लिए वही एकमात्र ओषधि है। लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि इन मधुर नामों का नित्य सावधानी पूर्वक कीर्तन करने से उसकी जीभ में प्राकृतिक स्वाद जागृत हो उठता है और उसका रोग धीरे–धीरे समूल नष्ट हो जाता है।

10

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

पांचूडाला (छींड)
दि. 20/12/2005

परमाराध्यतम स्नेहास्पद, शिक्षागुरु जी श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणाम एवं कृष्णप्रेम प्राप्ति की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

चेत रे मन!

आपके चरण दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप हुए युग बीत गए। मन की प्यास अकुलाहट में बदल गयी। कब आपका दर्शन सुलभ हो सकेगा। मैं कोटा से गाँव आ गया हूँ, यदि आपकी कृपादृष्टि बन जाये तो आपका यहाँ पधारना मेरे लिए श्रेयस्कर बन जाये।

जीवन की गाड़ी स्टेशन पर आ चुकी है। कब हॉर्न बज जाय! गाड़ी चल दे, फिर लौटना मुश्किल! फिर मिलना मुश्किल!

मानुष जन्म न बारम्बारा।
मिला अब है प्रभु कृपा अपारा।

संसार को खूब देखा टटोला परन्तु सब जगह धोखा! अब भी सम्भल जा रे मन फिर दुबारा मानुष तन मिलने का नहीं। समय तेजी से गुजर रहा है। फिर हाथ नहीं आने का। अन्त में पछताना पड़ेगा। सब धरा रह जाएगा। हाथ मलता रह जाएगा। अब भी समझ रे मूर्ख मन!

आँख गई! कान गए! सिर के बाल सफेद हो गए! पैर गए! लड़खड़ाहट में सो गए! परन्तु हे मन, तेरा कुछ न गया। केवल समय चला गया। बचपन गया! जवानी गयी! बुढ़ापा ने आ घेर लिया। परन्तु तेरी समझ को क्या हो गया ? हँसकर जाना था, रोता हुआ चला गया। आँख बन्द है तेरी, कब खुलेगी आँख ? अन्त में रोएगा। मन बड़ा पाजी है,

मन के कहे न चलिए जो चाहे कल्याण!

कितना सरल रास्ता है, जो ठाकुर जी ने कलियुग के जीवों के लिए दिया। फिर कितना सौभाग्यशाली युग है जिसमें गौरहरि दया सिन्धु का प्राकट्य हुआ। कल्पवृक्ष के नीचे हमें सहारा मिला। कितने भाग्यशाली हम हुए जो गौरहरि का प्यार मिला। कितना बड़ा भाग्य हम लोगों का जो इतने प्रभावशाली गुरुदेव मिले। कितने भाग्यवान् हम हैं कि कितना बड़ा गुरु परिवार मिला जो ठाकुर जी के प्यार में जीवनयापन किया। फिर भी इसे कुछ न समझा एवं समय गुजार कर बुढ़ापे तक पहुँच गये। अब इन्द्रियाँ बेकाबू हो गयीं। फिर भी समय है, जरा चेत रे मन– अब भी तेरे हाथ में सब कुछ है। सम्राट् खटवांग जी ने तो ढाई घड़ी में ठाकुर को पा लिया था, क्या तू नहीं पा सकता ? बस थोड़ी आँखें खोलले। आतुरता से पुकार, ठाकुर तेरे सामने हाथ पसारे खड़े हैं। तू ही मुँह मोड़कर खड़ा है। वे तो लेने को तैयार हैं। सब उनके बच्चे हैं। बच्चा रोएगा ही नहीं तो माँ उसे कैसे गोद में उठाकर दूध पिलाएगी!

रोना अमृत की खान है। इस खान में अद्भुत रत्न भरे पड़े हैं! जरा ठाकुर के चरणों में रोकर तो देखो। फिर क्या गुल खिलते हैं! मन को वश करने का केवल एक ही रास्ता है, रोना गिड़गिड़ाना। फिर ठाकुर जी रह नहीं सकते। वे दयालु हैं। वे रोना सह नहीं सकते। उनका हृदय अकुला उठता है। सब काम छोड़कर आँसुओं की धारा में बहकर टपक पड़ते हैं। जरा रोकर तो देखो!

रोना भी सहज बात नहीं है। वह आता तब है जब चारों ओर से हाथ छूट जाते हैं। कोई सहारा नहीं रहता। मौत सामने खड़ी दिखती है। बस! फिर तो रोना निश्चित है। गजेन्द्र, द्रोपदी आदि कई उदाहरण मौजूद हैं। ठाकुरजी को हँसकर किसी ने नहीं पाया। हँसने में ताकत नहीं है। रोने में असीम ताकत है। जो पत्थर को भी पिघला देती है। यदि नाम में रोना नहीं आया तो समझलो निस्तार होने में पूरा सन्देह है। रोए बिना कपट हटेगा ही नहीं। रोना हृदय दर्पण को स्वच्छ

बना देता है। इसके आगे कोई मांग नहीं। मांग है तो केवल रोने की, रोने में जो अलौकिक मजा है वह और किसी में नहीं!

श्रीगौरहरि कितने रोए। यह रोना संसारी नहीं पारलौकिक है। जो हमें गौरहरि स्वयं भक्त बनकर सिखा रहे हैं।

पत्र बड़ा है, क्षमा करना प्रभुजी!! आज दिल खोलकर मन रोता जा रहा है। यह क्षण मेरे लिए अद्वितीय है। जिसमें आप मेरे सामने बैठे देख रहे हो एवं मन में भी हँसते जा रहे हो कि यह भी कैसा अजनबी है! जो मुझे ऐसी बातें लिख रहा है। मुझे मालूम है– मेरा मन पाजी है, पागल है, मूर्ख है, जो इतने महान गुरुदेव को समझाने बैठा है।

आपके चरणों में बैठकर अपने अरमान लिखने में मुझे सन्तोष तथा मजा आता है। किसको सुनाऊँ मेरी जीवन गाथा और तो कोई सुनने वाला नहीं जिसे मैं सुनाने बैठूँ।

नाम जपने की उक्ति–

1. सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।

–जपना हो तो प्यार से जपो, आदर से जपो, रोकर जपो, तब तो है फायदा वरना है श्रम!

2. बैठ देख कुशासन जटा मुकुट कृस गात।
राम नाम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।।

–नाम के साथ रोना परमावश्यक है। तब ही कुछ मिल सकेगा।

3. जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होय सुखारी।।

सबसे बड़ा–कुसंकट है मन का वश में न होना। जो रोने से वश में आ जाता है।

4. पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू।।

–भरत का तन पुलकित हो रहा है एवं आँखों से आँसू बह रहे हैं। यह है जपना।

5. जपिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

–जब प्रेमसहित नाम उच्चारण होगा तो स्वतः ही ठाकुरजी का दर्शन होगा ही।

6. जासु नाम सुमरत इकबारा। उतरहि नर भवसिंधु अपारा।।

सुमरत मतलब–प्यार से, मन से (शुद्ध नाम) एकबार ही जपने से भवसिन्धु पार हो जाता है। दो बार नाम लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अन्त समय में नाम नौका पार करा देती है।

7. राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
जो एकबार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।

–दसों इन्द्रियों को एक जगह करके जो नाम जपता है वही सफल होता है। दशरथ मतलब दस इन्द्रियाँ।

8. मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नैन बहे नीरा।।
काम आदि मद दम न जाके। तात निरन्तर बस में ताके।।

उक्त प्रकार से जप का विधान है वरना सब श्रम तथा कपट है।

विपत्ति तब ही समझें जब भजन साधन में मन न लगे।

उदाहरण – **कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई।**
जब तब सुमरन भजन न होई।।

नारायण कवच, राधा कवच, विष्णु कवच आदि तोड़े जा सकते हैं। परन्तु गुरु कवच किसी से नहीं टूटता। इसका उदाहरण है लव–कुश। गुरु वाल्मीकि ने यह कवच उन्हें पहनाया था। राम भी गुरु कवच नहीं तोड़ सके, जब लव–कुश ने यज्ञ का घोड़ा बांध लिया था।

उदाहरण–

कवच अभेद सत्गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
जे गुरुचरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विभव वस करहि।।

जिसने गुरु को प्रसन्न कर लिया उसने जग को वश में कर लिया।

11

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 21/06/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीनिष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में अधमाधम दासानुदास का अनन्त कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास में 4 करोड़ जप करने की शक्ति प्रदान करने की बारम्बार प्रार्थना।

चतुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम

आपके छींड छोड़ने के बाद मेरा मन अशान्त हो गया। मन एक क्षण लगना दूभर हो गया। फिर ठाकुर जी से प्रार्थना करके मन को शान्त किया और हरिनाम का सहारा लेकर समय बिता रहा हूँ। सन्त ही मेरे सर्वस्व हैं। सन्त ही मेरा अपना परिवार है। सन्त कृपा से व ठाकुर की करुणा से मेरा परिवार अनुगमन करता है।

प्रभु प्रेरित होकर एवं आप सन्त वर्ग का सहारा लेकर चतुर्मास में 4 करोड़ हरिनाम जप करने का उत्साह हो गया है। 1 माह में 1 करोड़ जप पूरा करने से 4 माह में 4 करोड़ जप हो जाता है। नित्य 3 लाख हरिनाम के साथ कुछ माला ज्यादा करने से 1 माह में 1 करोड़ जप हो जायेगा। बीच-बीच में भागवत पाठ भी करना हो जायेगा।

मैं जगन्नाथ रथयात्रा महोत्सव पर आ नहीं पाऊँगा। मेरी असमर्थता है, यहीं से रथयात्रा का दर्शन कर लूँगा। आप तो जाओगे ही! मेरी तरफ से भी जगन्नाथ जी, बलदेव जी तथा सुभद्रा जी से प्रेमाभक्ति देने की प्रार्थना कर देना और ठाकुर जी से कह देना कि असमर्थता के कारण अनिरुद्ध दास आ नहीं सका।

जब आपके पास समय हो तो छींड में आ जायें। वातावरण बहुत सुन्दर बन गया है। ठाकुर में मन लगने का उद्दीपन भाव

जागृत होगा। कोयल, मोर, पपीहा आदि रात दिन कूंक रहे हैं। मेघ गर्जन कर रहे हैं और ठाकुर जी की याद दिला रहे हैं।

किनारे पर खड़े हैं। कभी भी किनारा खिसक सकता है। अतः ठाकुर का सहारा लेकर भजन द्वारा पुकारते रहें। यही सार है, बाकी सब तो बेकार है, पार जाना असम्भव ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा

न नामसदृशं ज्ञानं न नामसदृशं व्रतम्।
न नामसदृशं ध्यानं न नामसदृशं फलम्।।
न नामसदृशस्त्यागो न नामसदृशः शमः।
न नामसदृशं पुण्यं न नामसदृशी गतिः।।
नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः।
नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः।।
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः।
नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः।।
नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च।
नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः।।

(आदिपुराण)

नाम के समान न ज्ञान है, न व्रत है, न ध्यान है, न फल है, न दान है, न शम है, न पुण्य है और न कोई आश्रय है। नाम ही परम मुक्ति है, नाम ही परम गति है, नाम ही परम शान्ति है, नाम ही परम निष्ठा है, नाम ही परम भक्ति है, नाम ही परम बुद्धि है, नाम ही परम प्रीति है, नाम ही परम स्मृति है, नाम ही जीव की गति है, नाम ही प्रभु है, नाम ही परम आराध्य है और नाम ही परम गुरु है।

12

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चूरू, राजस्थान
दि. 20/07/2005

चतुर्मास में भजन का फल करोड़ों गुणा अधिक

श्रीहरिवल्लभ व हरिप्रसाद जी,

भक्ति साधकों के प्रति इस अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास में हरिनाम साधन करने की प्रार्थना।

आप भौतिक संसार छोड़कर मठ में हरिभजन करने आए हैं, तो अपना सच्चा स्वार्थ विचार कर मन से हरिनाम जपने में लग जाना चाहिए। अभी आप नवयुवक हैं। सब तरह की सामर्थ्य है। बहुत देर तक एक आसन पर बैठकर साधन कर सकते हैं। अमूल्य समय को विचार कर समय नष्ट करना बड़ी भारी भूल है। समय चला जाएगा फिर हाथ नहीं आयेगा। केवल पछतावा हाथ लगेगा। हरिभजन मन से न करने से आन्तरिक दुश्मन आप पर हावी होते रहेंगे। मन से भजन करने से बुरे विचारों को दिल में ठहरने का मौका ही नहीं मिल सकेगा। जिस साध्य के लिए घर छोड़ा है वह साध्य हासिल करना सर्वोत्तम कार्य है।

दि. 17 से चतुर्मास चल रहा है। 4 माह में चार करोड़ जप कर लेना चाहिए। लगभग 214 माला रोज करने से चार माह में चार करोड़ जप हो जाता है। 1 माला में लगभग 3 मिनट का समय लगता है अगर जीभ से उच्चारण हो तथा कान उसे सुनता रहे। लगभग 3 घंटे में 1 लाख जप हो जाता है। यदि इतना न कर सको तो आधा ही कर लें। लेकिन इसका दुबारा विचार कर लेने में भलाई है। आधा न हो तो चौथाई ही करें।

3 बजे उठकर प्रातः 6.00 बजे तक 1 लाख नाम आसानी से हो जाता है। मठ का काम भी करें एवं जप भी करें। मठ का काम छोड़कर जप करना नुकसानकारक होगा।

यदि हरिनाम में मन लगाकर जप नहीं हुआ तो न ठाकुर की कृपा मिलेगी, न विकलता होगी, न आतुरता होगी और न कुछ मिलेगा। इसके शास्त्रों में कई उदाहरण स्पष्ट लिखे हैं।

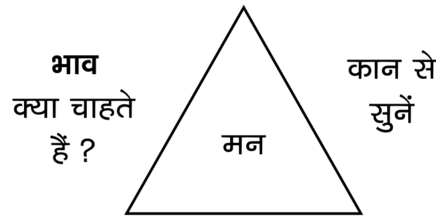
जब तक ठाकुर के लिए अश्रुपात नहीं होगा, तब तक हरिनाम का जपना नहीं हुआ, केवल नाटकबाजी ही हो पायी। शास्त्र आदेश दे रहा है– कथा श्रवण करो, नाम श्रवण करो। ऐसा न हुआ तो केवल कैतव (कपट) ही है।

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुँ।।

नाम चाहे कैसे भी जपो, दसों दिशाओं में मंगल कर देगा। क्योंकि मन जहाँ भी हरिनाम को लेकर जायेगा वहाँ का कल्याण कर देगा। जैसे मन दुकान पर चला गया तो दुकान में मुनाफा हो जायेगा आदि आदि। हरिनाम चारु चिन्तामणि है। चारु का अर्थ है अच्छी प्रकार से। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में फायदा हो जायेगा। नाम वांछा–कल्पतरु है। जैसी कामना होगी वैसी पूर्ति कर देगा नाम!

लेकिन इस तरह का जप केवल उनके लिए है, जो अभी–अभी हरिनाम से दीक्षित हुए हैं। अर्थात् पहली–दूसरी कक्षा वालों के लिए है। प्रथम में तो ऐसा ही जप होता है। यह ट्रेनिंग की क्लास है।

हरिनाम लाख–लाख करते हुए बूढ़े हो जाते हैं। परन्तु कुछ मन को शान्ति नहीं है और कहते सुना है कि 20 साल से हरिनाम कर रहे हैं, परन्तु कोई फायदा नहीं नजर आया। इसका मुख्य कारण है, नाम को ठाकुर चिन्तन के बिना जपा है। भौतिक लाभ अवश्य हुआ है। परन्तु उसकी तरफ जापक का ध्यान ही नहीं गया।



हरिनाम का जीभ से उच्चारण

इस प्रकार से हरिनाम जपने से मन कहीं जा ही नहीं सकता। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई जप करके तो देखे। प्रथम 5 नाम में मन लगायें, बाद में 10 नाम में। इस तरह से बढ़ाते जायें तो एक माला 1 माह में सरलता से हो सकती है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। अर्जुन को भी श्रीकृष्ण ने अभ्यास करने को ही कहा है। धीरे-धीरे मन को आनन्द आने लगेगा, क्योंकि हरिनाम में आनन्द भरा पड़ा है। मन का स्वभाव ही है, कि जिसमें ज्यादा आनन्द मिलता है, वही लग जाता है।

वैसे दार्शनिक सिद्धान्त भी है कि दो चीजों का घर्षण तीसरी चीज पैदा कर देता है। ऑक्सीजन + हाइड्रोजन का घर्षण पानी पैदा कर देता है। दिया सलाई का घर्षण आग पैदा कर देता है।

इसी तरह जीभ-शब्द का उच्चारण एवं कान से सुनने का घर्षण विरहाग्नि पैदा कर देता है। यही कीर्तन का महत्त्व है। इसलिए श्रीगौरहरि ने कलियुग में सबको कीर्तन करने को कहा है। क्योंकि कीर्तन कान में जाकर घर्षण पैदा करता है।

अगर कोई कहे कि मन नहीं लगता तो सरासर झूठ है। जब आप पत्र लिखते हैं, तब मन आधा-पौन घंटे कैसे लग जाता है। बी. ए. की डिग्री, बिना मन लगे कैसे प्राप्त कर ली!

इसका मतलब है, मन तो लगता है, परन्तु, हम मन लगाने में अवहेलना कर जाते हैं। इसका महत्त्व नहीं समझते। अरे! हरिनाम से क्या नहीं मिल जाता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वतः ही मिल जाते हैं। जन्म-मरण जो बहुत दुखदाई है, इससे हमेशा के

लिए छुटकारा हो जाता है। संसार तो दुःखों का घर है ऐसा समझकर मन को समझाना चाहिए। तब मन लगने लगेगा। कोई आजमाकर तो देखे, क्या गुल खिलते हैं!

1966 में मेरे गुरुदेव का लिखित आदेश मेरे लिए था।

Chant harinam sweetly & listen by ear.

हरिनाम को प्रेम से जपो तथा कान से सुनो।

सादर सुमिरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।

हूबहू कॉपी श्रीतुलसीदास जी ने रामायण में अंकित की है।

(दोनों भाव एक ही हैं)

भरत का जपना–

पुलकित गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
जीह नाम जप जागहि जोगी। (जीभ से)
निरत विरंच प्रपंच वियोगी।।

जागहि मतलब संसार झूठा है, अर्थात् ज्ञान हो जाता है। संसार से मन हट जाता है तथा ठाकुर में लग जाता हैं।

श्रीराम अपनी प्रजा को उपदेश कर रहे हैं–

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकी करूँ सदा रखवारी। जिमि बालक राखहि महतारी।।

इस प्रकार अनन्त उदाहरण हैं। यह है पूर्ण शरणागति का उदाहरण। जब तक शरीर पुलक नहीं होगा तब तक शरणागति होगी ही नहीं। नाम को कान से सुनने से अवश्यमेव रोना प्रकट होता है। वैराग्य का जन्म हो जाता है। अर्थात् संसार मन से हटने लगता है।

जाना चहिए गूढ़ गति जेऊँ। जीह नाम जप जानहि तेहुँ।।

जीभ से जप करके तो देखो, क्या गुल खिलते हैं! वरना सारा जीवन चला जाएगा, कुछ मिलने वाला नहीं है। जब बुढ़ापा आ घेरेगा। पछताना पड़ेगा।

कम से कम एक करोड़ तो हरिनाम कर लेना चाहिए चतुर्मास के पूरे 4 माह में।

मैं चुरु में अमरेश के पास 6 अगस्त तक रहूँगा। आप एक पत्र यहाँ पते पर डाल दें, फिर गाँव चला जाऊँगा। वहाँ पर पुरश्चरण करूँगा। अभी यहाँ पर पुरश्चरण चल रहा है। नित्य 3 लाख हरिनाम जप हो रहा है।

काल मण्डरा रहा है, कभी भी आकर दबोच लेगा। एहसान समझें कि अभी तो जवानी है। अगर ऐसा सोचेंगे कि, देखा जायेगा, बाद में भजन कर लेंगे। बाद में तो बाद है, कोई भरोसा है कि अगले क्षण क्या होने वाला है ? अगली साँस आयी न आयी। शुभ काम में ढील नहीं करनी चाहिए। अशुभ काम को टालने में लाभ है। मठ की सेवा करते रहने से शीघ्र श्रेयता मिल जाती है। मठ में रहते हुए निठल्ला बनना महाअपराध है। जितनी सेवा बन सके उतनी सेवा करते रहें व भजन के लिए भी समय निकालकर अनुष्ठान करें। चतुर्मास में भजन का फल करोड़ों गुणा मिल जाता है, क्योंकि देवता विश्राम पर रहते हैं, तो उनका ध्यान भजनशील पर शीघ्र जाता रहता है। भजन में मदद मिलती है, आशीर्वाद मिलता है, समय भी अनुकूल रहता है। न गर्मी, न सर्दी, वातावरण में बादलों की गर्जना, पपीहा की पीपी, कोयल की कूंक, मोर की आवाज आदि उद्दीपन भाव उत्पन्न करता रहता है। समय को नष्ट कर अपना नाश मत करो, अगला जन्म मानव का ही मिले गारंटी नहीं। इसी जन्म में अपना उद्धार कर लें।

मैंने 17 जुलाई से पुरश्चरण आरम्भ कर दिया है। अब आप पत्र पढ़ते ही शुरू करलें, कुछ आगे तक कर लेना। पत्र को ठाकुर प्रेरित समझना। मैं किस लायक हूँ, जो आपको भजन में लगा सकूँ। यह सब ठाकुर कृपा आप पर हो रही है।

भजन होने पर मुझे बार-बार लिखकर बताते रहें।

नोट :- हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र आदि) को जीभ से ही जपना चाहिए तथा गोपाल मंत्र आदि मानसिक रूप से जपना चाहिए।

13

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चूरू
दि. 29/07/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा चातुर्मास अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पूर्ण होने के लिए करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् हरिनाम जापक को भक्त के हृदयरूपी झरोखे से देखते हैं

ठाकुर राधामाधव जी की प्रेरणा से प्रेरित होकर आपके करकमल में स्वर्ण अक्षरों में लेख लिखकर सेवा भाव से प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप मेरे शिक्षा गुरुदेव हैं। ठाकुरजी ने लेखन द्वारा आपकी सेवा मुझे सौंप रखी है, अतः मैं स्वयं को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ। क्योंकि मैं इस लेखन के योग्य कदापि नहीं हूँ।

मैं अज्ञानी हूँ – विषयों में रत, प्रतिष्ठा का लोभी, अवगुणों की खान आदि–आदि। क्या ये अयोग्य व्यक्ति परमहंस को पत्र लिख सकता है? लेकिन इतनी अयोग्यता होते हुए भी आपकी चरणों की असीम कृपा होने से मेरे जैसा पंगु भी पहाड़ उलांघ गया।

ठाकुरजी बोलते हैं कि, "प्रत्येक प्रवचनकार मेरी लीलाएं सुनाया करता है। भक्तों के आश्चर्यजनक चरित्र सुनाया करता है। परन्तु मेरी प्राप्ति का साधन कोई नहीं बताता, कि हरिनाम कैसे किया जाय, जो कि सारे ब्रह्माण्डों की आनन्दमयी जड़ी है।

ब्रह्माण्डों में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अवलम्बन (सहारा) से रहित हो। अवलम्बन सभी को चाहिए। मुझे भी अवलम्बन की जरूरत रहती है, वरना मेरा जी एक क्षण भी नहीं लगे। भक्त ही मेरा अवलम्बन है। यदि भक्त का अवतार न हो तो मैं निष्क्रिय हो जाऊँ। मैं अवतार ही क्यों लूँ? जगत में मेरा अवतार मात्र दो

प्रकार से होता है। पहला अवतार भक्त के हृदय में प्रकट रहता है। तथा दूसरा अवतार मन्दिर में श्रीविग्रह के रूप में होता है। ऐसा क्यों होता है ? केवल अवलम्बन हेतु! मन्दिर में विग्रह स्वरूप में अगर मैं न विराजूँ तो भक्त बेचारा बिना अवलम्बन क्या करेगा ? भक्त न हो तो बिना अवलम्बन मैं क्या करूँ ? बेल को पेड़ का अवलम्बन चाहिए। पहाड़ को पृथ्वी का अवलम्बन चाहिए। सूर्य को खुला सा रास्ते का अवलम्बन चाहिए। स्त्री को पति का अवलम्बन चाहिए। यानि अवलम्बन बिना संसार चलेगा ही नहीं!

मोह रहते मुझे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि अपना काम बनाकर शान्त हो जाते हैं, परन्तु मोह इतना खतरनाक है कि इसको पकड़ना बिल्कुल असम्भव है। यह इतना झीना (सूक्ष्म) भाव है कि अनुभव में ही नहीं आता। यही आवागमन, जन्म-मरण करवाता रहता है।

संसारी मोह होने से ठाकुर को हमारे हृदय में बैठने का स्थान नहीं मिलता। प्रथम - शरीर का मोह, दूसरा - इन्द्रियों का मोह, रसेन्द्रियाँ रस की तरफ, आँखें देखने की तरफ, कान सुनने की तरफ दौड़ते रहते हैं। तीसरा मोह - धन, जन, तथा स्थान का। चौथा मोह - कारण शरीर (स्वभाव) का। जैसे कि, मैं दयालु हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं मेरे दुश्मन का दुश्मन हूँ आदि ऐसा अहंकार (मोह) रमा रहता है। जैसे फूल में सुगन्ध, दूध में मक्खन आदि-आदि।

मठ में भी मोह रहता है। स्थूल रूप से मठ सेवा चलती रहती है। यदि मठ में मोह न हो तो जब भी मठ में संकट आता है तो ठाकुर जी के द्वारा सम्भालने का भाव प्रकट हो जाता है। इसका मतलब है, मोह है सच्चा प्रेम नहीं। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, **राधा-माधव** सबको सचेत कर रहे हैं। वह कह रहे हैं, कि मैं मठ का मालिक हूँ, परन्तु 'मठरक्षक' मुझको मन्दिर में आकर सम्भालता भी नहीं, कि मुझे यहाँ क्या-क्या असुविधा रहती है। कोई भाव से मेरी सेवा नहीं होती, कभी-कभी तो मुझे नींद भी नहीं आती। गर्मी के मारे दुःखी रहता हूँ। सर्दी से कांपा करता हूँ। भूखा भी रह जाता

हूँ। क्या वे मठ रक्षक मुझे आकर मेरी देख रेख करने वाले पुजारी की परीक्षा लेते हैं ? उनको छिप-छिपकर देखना चाहिए। खैर फिर भी वे मेरे प्यार के भूखे हैं। मैं परवाह नहीं करता।

अब ठाकुर श्रीराधा-माधव जी अपनी प्राप्ति करने का अति-सरलतम श्रेष्ठ अमोघ उपाय बता रहे हैं "केवल मात्र हरिनाम को उच्च स्वर से जपते हुए कान से सुने, किसी भी सिद्ध संत के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर करुण हृदय से प्रार्थना करते रहे। क्योंकि मैं मेरे भक्त के हृदयरूपी झरोखे से नाम जापक को देखता रहता हूँ। मेरे भक्त को, जापक को नाम जपता देखकर दया आएगी ही, तो वह दया मुझे प्रेरित कर उस जापक पर प्रभाव कर देगी एवं वह मेरे लिए रो पड़ेगा।

स्वतन्त्र रूप से मेरा दर्शन करते हुए जापक का हरिनाम जपना निम्न श्रेणी का होगा, क्योंकि मैं भक्त के हृदय को छोड़कर एक क्षण भी बाहर नहीं जाता। अतः जापक के ध्यान से भाग जाता हूँ। एवं जापक को विरह स्थिति आती नहीं। विरह स्थिति भक्त के माध्यम से ही आयेगी।

क्योंकि मेरा किसी साधारण मानव ने कभी दर्शन किया नहीं एवं भक्त का दर्शन वह रोज करता ही है, तो मेरी प्राप्ति उसके माध्यम से हो जायेगी। सन्त तो मेरे आराध्य देव हैं। मैं सन्त हृदय को छोड़कर जाने में असमर्थ रहता हूँ।"

यदि मोह का अन्त करना हो तो उक्त प्रकार से हरिनाम जपकर निश्चित ही कर सकते हैं।

अन्दर का खतरनाक शत्रु मोह है तथा बाहर का शत्रु कान! यदि इन पर विजय प्राप्त कर ली जाये तो ठाकुर प्राप्ति शीघ्र ही निश्चित रूप से हो जाती है। दोनों शत्रु उक्त तरह से हरिनाम जपने से मित्र बन जाते हैं तथा हमेशा के लिए जन्म-मरण से छुड़वाकर ठाकुर की चरण सेवा में पहुँचा देते हैं।

सच्चे भक्त भी बहुत हैं, जैसे वर्तमान के गुरुदेव प्रभुपाद जी, सर्व श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, लोकनाथ गोस्वामी, पुण्डरीक विद्यानिधि, माधवेन्द्रपुरी जी, ईश्वरपुरी जी, रायरामानन्द जी, नामाचार्य श्रीहरिदास जी, भक्तिविनोद जी, आदि–आदि तथा भूतकाल के भक्त मीरा जी, कबीर जी, अम्बरीश जी, नारद जी, ध्रुव आदि।

किसी भी भक्त के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर उनकी चरणरज में स्नान करें, प्रसादी लें, चरण जल सिर पर चढ़ावें, आदि करते हुए हरिनाम जपते रहें तो निश्चित ही विरहाग्नि प्रज्वलित होगी ही। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है, करके देखें एवं ठाकुर जी की असीम कृपा का गुणगान करते रहें।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं

नामयुक्तान्जनान्दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
य याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते।।
तस्मान्नामानि कौन्तये भजस्व दृढमानसः।
नामयुक्त प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्जुन।।

(आदिपुराण)

हरिनाम युक्त पुरुषों को देखकर जो मनुष्य प्रसन्न होता है वह परम धाम को प्राप्त मेरे सानिध्य में आनन्द का अनुभव करता है। अतएव हे कौन्तेय! दृढ़ चित्त से नाम–भजन करो। नामयुक्त व्यक्ति मुझे बड़ा प्रिय है। अतः हे अर्जुन! तुम नामयुक्त हो जाओ।

14

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 1/10/2005

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुर के प्रति विरहाग्नि प्रज्वलित होने तथा संसार से मन ऊब जाने की करबद्ध प्रार्थना!

सारगर्भित रहस्यमय बात

एक तुच्छ नासमझ जुगुनू अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाले सूर्य भगवान् को क्या प्रकाशित कर सकता है ? कभी नहीं। यह इसकी बड़ी से बड़ी मूर्खता ही है। परन्तु इसके पीछे कोई महान् अलौकिक शक्ति इसका साथ दे रही हो, तो सूर्य भगवान् को प्रकाशित तो नहीं कर सकता, परन्तु इसके चरणों में तो जा ही सकता है। यह स्वाभाविक ही है कि सजातीय, सजातीय से मिलकर आनन्द का अनुभव करता ही है। जुगुनू सूर्य का सजातीय ही है।

आवागमन (जन्म-मरण) का असाध्य दुःख भवरोग जो अनन्त कोटि युगों से जीव भुगतता जा रहा है, इसका खास कारण है, अहंकार (मैं-मेरापन)। अन्तःकरण - मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का पुंज है। अहंकार भौतिक रस से भी भर सकता है व आध्यात्मिक रस से भी भर सकता है। अन्तःकरण में इतनी ही जगह है, कि जहाँ एक ही रस समा सकता है। अज्ञान से भौतिक रस व ज्ञान से आध्यात्मिक रस पुंजीभूत रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि, इस दुःखदायी भौतिक रस को अन्तःकरण से कैसे निकाल दिया जाये ? आध्यात्मिक रस उड़ेल दिया जाये तो भौतिक रस स्वतः ही बाहर आ जाएगा।

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों रूपी पर्वतों से निकलकर व मिलकर एक नद (नाला) अनन्त कोटि तिनकों रूपी जीवों को अपने-अपने कर्मों का भोग भुगवाने हेतु दुःख समुद्र की ओर बहाकर अनन्त काल से ले जाता रहता है। इस बहाव का कभी भी अन्त नहीं होता। जन्म-मृत्यु रूप बहाव नाले के दोनों ही ओर रहता है। संयोगवश यदि इस नद के किनारे पर सच्चा संत रूपी पेड़ खड़ा मिल जाये, तो तिनका रूपी जीव उस पेड़ से लगकर बहाव से बच सकता है। भगवान् ही नद (नाला) रूप बनकर जीव रूपी तिनकों को आवागमन (जन्म-मृत्यु) रूपी लहरों में बहाता रहता है। जब जीव सन्त से मिलता है तो सन्त, नाला जहाँ से चलता है वहाँ उसे पहुँचाकर जीव को आवागमन रूपी दुख से हमेशा के लिए छुड़ा देता है।

इस नाले का कहीं आदि-अन्त नहीं है, सदैव बहता ही रहता है। अब प्रश्न उठता है, कि सच्चा सन्त मिले कैसे ? भगवान् जो जीव का असली बाप है, जीव अगर उन्हें बारबार रो-रोकर प्रार्थना करता रहे तो भगवान् ही स्वयं सन्त बनकर जीव के पास आकर अपने गोद में उठा लेते हैं। लेकिन फिर भी समय-समय पर अहंकार भौतिकता की ओर खींचता रहता है। अतः पूर्ण सावधान रहकर भौतिक अहंकार को अन्तःकरण में घुसने का मौका न दे।

रोना ही सार है। बंसी दास बाबा ने भगवत् प्राप्ति का उपाय केवल मात्र रोना ही बताया है। 'भजन-गीति' में रोना ही रोना है। रोना नहीं आता तो सब साधन बेकार है। रोना भगवान् को बहाकर अन्तःकरण में बिठा देता है। रोने में ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं। रोने में सभी शास्त्र हृदय में प्रकट हो जाते हैं। रोना आनन्द सागर प्रकट करता है। रोना तब ही प्रकट होगा जब अहंकार (मेरापन, मोह) ठाकुर जी के प्रति होगा। भौतिकता के भाव की गंध भी नहीं होगी। गौरहरि ने रो-रोकर सभी जीवों को समझाया है, परन्तु जीव इतना पाजी है कि इतना सुनकर भी सचेत नहीं होता। इसके कर्म में दुःख ही लिखा है। लापरवाही इसकी जड़ है।

हरिनाम से ही रोना आ सकता है, जब इसे कान से सुना जाये। कान से न सुनना नाम को बेकार करना होगा। कान से सुनने से ही तो संसार रस अन्तःकरण में भरा है। अजी, कान से हरिनाम सुनोगे तो ठाकुर का प्रेमरस निश्चित ही भर जाएगा। ऐसा अनुभव व शास्त्र वचन है।

राम वचन–

सन्मुख होय जीव मोहि जबही। कोटि जन्म अघ नासहुं तबही।।

कितना आस्वादन जीव को ठाकुर जी दे रहे हैं, परन्तु जीव अभागा सुनता ही नहीं है। काल सिर पर मण्डरा रहा है। सामने दुःख सागर लहरा रहा है। फिर भी जीव अचेत होकर सो रहा है। कितनी मूर्खता है! जब तक शिशु रोता नहीं तब तक माँ निश्चिन्त होकर अपने काम में लगी रहती है। जब शिशु रोना शुरू कर देता है, तो माँ सब काम छोड़कर शिशु के पास आकर अपनी गोद में चढ़ा लेती है। यह तो संसारी माँ का हाल है। ठाकुर जी तो अखिल ब्रह्माण्डों की माँ हैं। इसकी दया का, वात्सल्यता का अन्दाजा लगाना ही टेढ़ी खीर है। इतना होते हुए भी जीव दुःख सागर से निकलना नहीं चाहता। कितनी विडम्बना है। समझ की अर्थात् अज्ञान की भी हद हो गयी।

लेख मेरा नहीं ठाकुर जी का है, आप मानो या ना मानो, अपराध क्षमा करें।

आपकी याद में रोना मुझे श्रेयस्कर है। वियोग से याद अधिक आती है। गोपियाँ वियोग में क्षणक्षण में रोती रहती थीं।

भक्त प्रह्लाद महाराज कहते हैं

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्।
नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्।।

(स्कन्दपुराण, द्वारका मा० 38.45)

कलियुग में जो प्रतिदिन 'कृष्ण', कृष्ण', कृष्ण' नाम का उच्चारण करेगा उसे नित्य दस हजार यज्ञ तथा करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त होगा।

प्रार्थना

चतुर्मास जो करता है, हरि से स्नेह लगाता है
तीन लाख हरिनाम करो, प्रेमामृत का पान करो
आनन्द सिंधु में डुबकी लगा, मानव योनि लाभ करो
आवागमन का दारुण दुखड़ा, मिट जाए विश्राम करो
मानुष जन्म ना बारम्बारा, शुभ अवसर ना चूक करो
सुन लो मेरे भैया, पार लगे तेरी नैया
हृदय में बस जाएंगे, प्यारे कृष्ण कन्हैया
विरह आग जल जाएगी, कुसंस्कार जल जायेंगे
प्रभु प्रेरित यह प्रार्थना, करो न इसकी अवहेलना।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



समर्पण प्रार्थना

हे राधा माधव!

जब मन तुमको दिया तो जग का प्यारा बन गया।
जब ये मन दुनियाँ का था तो दुश्मन हजारा बन गया।
माया ने न जाने कितना घर बनवाया।
हार कर चरणों में आ, अपनापन चढ़ाया।
जन्म जन्म के प्राणपिता, तुम मुझको गोद चढ़ावो।
पापी हूँ अपराधी हूँ जैसा भी हूँ तुम्हारा हूँ।
अच्छा हूँ या बुरा हूँ, खोटा हूँ या खरा हूँ।
दोषों को गिनोगे तो कभी मेरा निस्तार नहीं।
रो-रोकर शिशु तेरा कहता है, तेरे सिवा मेरा कोई नहीं।

15

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3/11/2005

परमादरणीय श्रद्धेय स्नेहास्पद, श्रीगुरुदेव के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुर जी के प्रति, दिन प्रतिदिन क्षण-क्षण में अकुलाहट होकर अन्तःकरण में पीड़ा होने की बारम्बार प्रार्थना स्वीकार हो।

आनन्दमयी नौका

आप मेरे अन्तःकरण में ऐसे बस गए हो कि मैं आपकी याद भुलाना चाहूँ तो भी भुला नहीं सकता। शायद आपको पत्र पढ़ने में असुविधा होती होगी। मेरा अपराध क्षमा करते रहें, मैं तो मजबूर हूँ। जब भी ठाकुर जी के प्रति विरहाग्नि जागृत होती है तब मैं आपके चरणों में लेख के रूप में समर्पित हो जाता हूँ। आप ही की कृपा का यह फल प्राप्त हो रहा है, कि जब हरिनाम जपता हूँ तब स्वतः ही अचानक विरह जागृत हो जाता है। घण्टों तक ठाकुर जी श्रीराधा कृष्ण तथा मेरे गुरुदेव व गौर-निताई मेरे पास खड़े होकर मुझको प्यार की दृष्टि से समझाते रहते हैं तथा आपको मैं उनके संग में खड़ा देखता हूँ। आपका दर्शन होते ही मेरा विरह और तीव्र हो जाता है। यह आपकी कृपा नहीं तो और क्या है ? आप इसी तरह से मुझे सम्भालते रहें, तो मेरा जीवन सफल हो जाये। मेरा लेख गुप्त रखने की कृपा करें।

आप मेरे गुरुदेव हैं, मैं आपसे क्या छिपाऊँ ? छिपाता हूँ तो अपराध का भागी बन जाता हूँ।

मेरा शिशु का भाव शुरू से ही है। इस भाव में अपराध होने का तो तनिक भी सवाल नहीं है। अन्य भावों में अपराध होने का सन्देह रहता है।

शिशु भाव में रोना ही तो सम्बल (सहारा) है। रोने में ऐसा आकर्षण है कि पत्थर दिल भी पिघले बिना रह नहीं सकता। ठाकुर जी तो दयानिधि हैं। उनके बराबर दयालु है ही कौन ? रोना ही तो ठाकुर जी को अन्तःकरण में जकड़ लेता है। वे अन्तःकरण से जाना ही नहीं चाहते। रोना उनको आनन्द सिन्धु में हिलोरें दिलाता रहता है। जब ठाकुर जी गोद में चढ़ा लेते हैं तो रोना अनन्तगुणा बढ़ जाता है। इस रोने में अनन्त ब्रह्माण्ड का सुख समा जाता है। रोना क्या है ? एक आनन्द की सीमा पार कर जाना है।

भजन-गीति में श्री भक्तिविनोद ठाकुर जी, श्री नरोत्तमदास ठाकुर जी आदि रोने के लिए अपनी पद्य रचना में बारम्बार प्रार्थना कर रहे हैं। यह रोना ही तो जन्म-मरण का अन्त कराने वाला भाव है। यदि सारी उमर में साधना करते हुए भी रोना प्रकट नहीं हुआ तो आवागमन से छूटने में निश्चित ही सन्देह है।

अब प्रश्न यह है कि, रोना तो सभी चाहते हैं, परन्तु यह अवस्था आती क्यों नहीं ? इसके प्रकट न होने के कई कारण हैं जो शास्त्रों में अंकित हैं।

पहला कारण- खान-पान है। जैसा अन्न वैसा मन। जैसा पानी वैसी वाणी। हरिनाम जपते हुए प्रसाद सेवन तथा ऐसा भाव कि इस भोजन को (अमनिया को) मेरे ठाकुर जी ने तथा मेरे गुरुदेव जी ने पाया है। अब इसको मैं पा रहा हूँ। इससे मेरे अन्तःकरण में सात्विकता का भाव प्रकट होगा। दस दिन में रजोगुण, तमोगुण नष्ट होकर सात्विक भाव जागृत हो जायेगा, तब स्वतः ही मन ठाकुर जी की ओर खिंचने लगेगा तथा संसार से मन हटकर ठाकुर जी की ओर छटपटाहट होने लगेगी।

दूसरा कारण- सन्त अपराध। मानसिक तथा शारीरिक। प्रातः सायं काल सन्तों से प्रार्थना तथा जिससे अपराध हो गया हो उसकी चरण-रज तथा चरण जल छिपकर लेकर अपने सिर पर धारण करना तथा स्थूल रूप में क्षमायाचना करना। आप सन्त जानते भी

हैं। एक चींटी क्या पहाड़ का बोझ धारण कर सकती है ? परन्तु, व्यसन वश लिखना पड़ रहा है। आपका स्मरण ही मेरा व्यसन है।

तीसरा कारण है– अहंकार (मोह)। मोह में अनेक भाव आते हैं। मान–प्रतिष्ठा, कंचन–कामिनी, संसार का रमण आदि। इस वृत्ति का भाव ही ठाकुर के लिए छटपट पैदा होने में रुकावट डालता रहता है।

केवल अन्तःकरण यह माने कि मेरा ठाकुर ही अखिल ब्रह्माण्डों में मेरा है, बाकी सब बखेड़ा है। सामने मौत खड़ी है तो मेरा क्या बिगाड़ सकती है, जब सर्वशक्तिमान मेरा है! जब अन्तःकरण ऐसा मान लेता है, तो यह जीवन स्वर्णमय, आनन्दमय, बेफिकर, मस्ती में चूर, निडर, पागलपन का भाव आदि में चलता रहता है।

जब मौत का पैगाम आता है, तो हँसता हुआ इस दुःख सागर रूपी संसार से **आनन्दमयी नौका** पर चढ़कर ठाकुर जी की गोद में हमेशा के लिए कूंच कर जाता है तथा संसार में रहने वालों के लिए ठाकुर जी की प्रेममयी नौका छोड़ जाता है ताकि पीछे रहने वाले इस नौका पर चढ़कर ठाकुर जी के चरणों में पहुँच सकें।

श्रीरूप गोस्वामी, श्री भक्तिविनोद ठाकुर, श्री नरोत्तमदास ठाकुर, श्रीगुरुदेव जी, मीरा, भीलनी, प्रह्लाद जी, आदि के चरणों में मानसिक रूप से पड़कर प्रार्थना करने से ठाकुर जी के प्रति मन खींचने की तथा विह्वलता की भावना शीघ्र ही आती है। **ठाकुर जी का निजी स्थायी घर भक्तों का हृदय मन्दिर ही है। ठाकुर जी के रहने का अन्य कोई स्थान नहीं है, इसलिए भक्तों का स्मरण शीघ्र लाभ करता है।** रोए बिना ठाकुर कभी भी हृदय मन्दिर में आयेंगे ही नहीं, यदि आयेंगे तो कुछ क्षण के लिए आकर फिर तुरन्त चले जायेंगे।

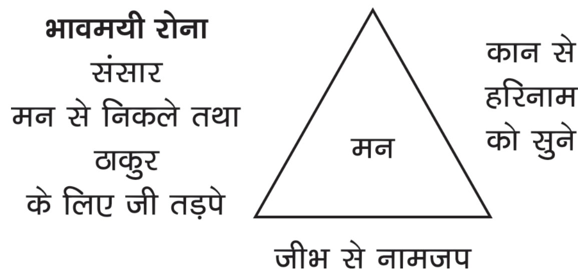
हरिनाम के जप से ही रोना आएगा। भरत जी ने रो–रोकर भजन किया है। भीलनी ने रो–रोकर अपनी आँखें गँवा दी। मीरा ने रो–रोकर अपने प्रीतम को झटकारा। गोपियों ने रो–रोकर विरहाग्नि

में जलकर अपने प्राण–प्राणनाथ को समर्पित कर दिए। बिना रोए किसी को भगवान् ने दर्शन नहीं दिये। रोने में सब इन्द्रियाँ एक ठौर आकर रोने का आनन्द उठाती हैं।

श्रीगौरहरि रो–रोकर मानव को हरि से मिलने का रास्ता बता रहे हैं। लेकिन मानव बेचैन होकर दुःख सागर में डूबकर भी पागल की तरह अपना जीवन काट रहा है। उसे मालूम नहीं है कि, एक क्षण में काल आकर तेरा गला दबोच लेगा। फिर यह मानव जन्म का मौका मिलेगा नहीं। फिर जन्म–मरण रूपी दुखान्त अवस्था में अनन्त युगों तक जन्मता–मरता रहेगा। कितना अज्ञान अन्धकार में पड़ा हुआ जीवन काट रहा है। **यहाँ सुख नहीं दुख का ही दूसरा रूप है।**

हरिनाम को कान से सुने बिना कभी किसी हालत में रोना आना निश्चित ही असम्भव होगा। जब कान से न सुना जाए तो गहरा पश्चाताप होना चाहिए। फिर दुबारा कान से सुनने का प्रयत्न करे तो मनोरथ सफल होगा। यह अनुभव तथा शास्त्र का कहना है। नाम श्रवण–कथा श्रवण करो यह शास्त्र का वचन है।

कान से सुनने का तरीका



उक्त प्रकार से मन शीघ्र कुछ दिनों में ही एकाग्र होने लगता है। जब मन केन्द्रित होने लगता है तो दसों इन्द्रियाँ उसका साथ देने लगती हैं। संसारी विचारधारा आना बन्द हो जाती है। जब

संसारी संकल्प–विकल्प बन्द हो जाते हैं, तब बड़ी सहजता से श्रीकृष्ण, श्रीगौरहरि तथा श्रीगुरुदेव जी हृदयमन्दिर में आकर क्रीड़ा करने लगते हैं तब इनका दर्शन स्वतः ही त्रिभुज Trangle से चर्तुभुज Rectangle में प्रकट हो जाता है।

रामायण वचन–

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

नाम के स्मरण से भगवान् का रूप अपने आप ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

यह मैं नहीं लिख रहा हूँ, ठाकुर जी ही आप पर कृपावर्षण कर रहे हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। अकाट्य सिद्धान्त है। अगर उक्त अवस्था प्रकट न होगी तो निश्चित ही आवागमन छूटेगा नहीं। फिर संसार में आना पड़ेगा।

रोकर हरिनाम करना होगा–

यदि विरह प्रकट न हुआ तो सब साधन है शून्य।
रात दिन लगे रहो तो निश्चित ही पाओगे पुण्य।।

(हे प्रभु! आप का नित्य वास कहाँ है?– नारदजी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदयेषु वा।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।

(पद्मपुराण–कार्तिक माहात्म्य तथा भक्ति सन्दर्भ 269)

हे नारद! मैं वैकुण्ठ में अथवा योगियों के हृदय में वास नहीं करता हूँ (कभी वास करता हूँ, कभी वहाँ से चला भी जाता हूँ) किन्तु जहाँ मेरे भक्त मेरा कीर्तन करते हैं, वहाँ पर मैं बैठा ही रहता हूँ तथा निरन्तर वहीं वास करता हूँ।'

16

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 15/11/2005

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, शिक्षागुरु श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का अनन्तकोटि दण्डवत् प्रणाम व उत्तरोत्तर श्रीकृष्ण, गौर-निताई तथा गुरुदेव के प्रति विरहाग्नि प्रज्वलित होने की करबद्ध प्रार्थना।

भक्ति बीज का रोपण

आपकी याद में यह तुच्छ मानव विरहाग्नि में जलता हुआ, शान्ति पाने हेतु पत्र लिखने को बाध्य होता रहता है। जब तक मन के उद्‌गार लेख द्वारा प्रकट न करूँ, तब तक शान्ति लाभ नहीं होती। न जाने कौन सी शक्ति मुझे प्रेरित कर जबरन लिखने को बाध्य करती है।

हरिनाम को कान से सुनना बहुत ही जरूरी है, यदि ऐसा नहीं हुआ तो स्मरण व्यर्थ होगा। वैसे बिल्कुल व्यर्थ तो नहीं होगा। संसार का काम सुधरता रहेगा तथा सुकृति इकट्‌ठी होती रहेगी, परन्तु भगवद् चरणों में पहुँचने में बहुत देर होगी। अनन्त जन्म-मरण रूपी दुख भोगना पड़ेगा। मन जहाँ भी हरिनाम को ले जाता रहेगा वहीं का कल्याण होता रहेगा। क्योंकि नाम चारु-चिन्तामणि है, वांछा कल्पतरु है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है।

हरिनाम में किसान की खेती की कसौटी शत-प्रतिशत सही उतरती है।

भगवान् जीव पर कृपा करने हेतु गुरु रूप से आकर हरिनाम का बीज कान में सुनाते हैं एवं समझाते हैं, इसको कान द्वारा पोषण करते रहना अर्थात् कान से सुनते रहना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया तो बीज अंकुरित नहीं होगा। लेकिन शिष्य इस

बीज को कान में न डालकर इर्द–गिर्द फैंकता रहता है, अतः वह बीज हृदय रूपी जमीन में जाता नहीं, अतः भक्तिलता बीज अंकुरित होता ही नहीं। सारा जीवन व्यर्थ में चला जाता है। अंजुलि में भरे हुए अमृत को जमीन में डाल देता है फिर यह अमृत अनन्त जन्मों तक हाथ नहीं लगता। यह इसका महान अज्ञान का कारण ही तो है।

किसान बैलों द्वारा हल चलाता है। साधक साधु द्वारा अपना जीवनयापन करता रहता है। किसान हल के आगे कुश द्वारा गहरी लाईन (उमरा) बनाता रहता है। साधक हृदयरूपी खड्डे को सद्गुण रूपी कुश द्वारा गहरा करता रहता है।

किसान हल के पीछे एक (ओरणा) पाइप बांध देता है जो लाईन (उमरा) के पैंदे से Touch रहता है। वहाँ जाकर बीज स्थिर होता रहता है।

साधक कान रूपी पाईप में मुखारविन्द रूपी मुट्ठी से हरिनाम बीज सुनाता (डालता) रहता है। वह बीज जो किसान डालता रहता है, पाइप में खुन–खुन की आवाज सुनते रहता है।

साधक भी हरिनाम की आवाज मन द्वारा सुनता रहता है, यदि किसान खुन–खुन आवाज नहीं सुनता तो वह उस पाइप को ध्यान पूर्वक देखता है, कि बीज जमीन में नहीं जा रहा है, कहीं रुकावट हो गई है।

इसी प्रकार साधक जब हरिनाम को मन से नहीं सुनता तो वह समझता है, कि मन रूपी खुन–खुन बन्द हो गई है, अतः साधक सावधान होकर उच्चारण करता है।

हल के पीछे लगभग एक हाथ दूर किसान एक भारा (झाड़ी) बांध देता है, वह झाड़ी लाइन (उमरा) की दोनों किनारों की मिट्टी गड्ढे में डालती रहती है ताकि बीज के ऊपर सीलन रहे, वरना बीज सूखी मिट्टी के कारण अंकुरित नहीं होगा। फिर किसान छः

दिन में जाकर देखता है, तो सभी उमरों में बीज अंकुरित हो चुका है। तब वह फूला नहीं समाता, नाचने लगता है।

इसी प्रकार साधक का चार माला कान से सुनकर जब मनोरथ सफल हो जाता है, तो हरिनाम रूपी बीज प्रेम रूपी अंकुर में अंकुरित होने लगता है। प्रेमी (ठाकुर) से मिलने हेतु आकुल-व्याकुल हो पड़ता है।

किसान का बीज जमीन की गर्मी से अंकुरित होता है। हरिनाम रूपी बीज साधक के हृदय रूपी जमीन की विरहाग्नि से गर्म होकर भक्तिलता में परिणत होने लगता है।

जो बीज किसान के पाइप के मुख से बाहर गिरता रहता है, वह बीज सूखने के कारण नष्ट हो जाता है तथा पक्षी उस बीज को चुग जाते हैं। व्यर्थ चला जाता है।

इसी प्रकार साधक को अगर पाइप रूपी कान में हरिनाम बीज नहीं सुनाई देता तो वह आवागमन नहीं छुड़ा सकता। लेकिन उस बीज से सुकृति इकट्ठी होती रहेगी। जब अधिक सुकृति बन जायेगी तब भगवान् उस पर कृपा करने के लिए गुरु रूप से फिर बीज का रोपण कर जाएँगे। इसी प्रकार यह मार्ग चलता रहता है।

साधक तीन प्रकार से जप करता है। प्रथम उच्चारण से, जिसे पास में बैठा सुन लेता है। दूसरा उपांशु, जिसे स्वयं ही सुनता है। तीसरा मानसिक, जिसे हृदय का सूक्ष्म मन सुनता है। सूक्ष्म आँख कान आदि ज्ञान इन्द्रियाँ इसे अनुभव करती हैं। उक्त गति अपनी कोशिश से नहीं होती। साधन करते-करते स्वतः ही आती है। नामाचार्य हरिदास जी उक्त प्रकार से ही 3 लाख नाम किया करते थे।

20 दिन के बाद किसान अंकुरित बीज में पानी देता है। जब वह बीज (उमरा) लाईन के बाहर आ जाता है, तो 120 दिन में फल-फूल से फसल लद जाती है, फिर वह अपने घर पर फसल लाद कर ले आता है। अब परिवार के सारे लोग उसका उपभोग करते हैं।

इसी प्रकार साधक में सद्‌गुण रूपी फल-फूल आकर इकट्ठे होते हैं तथा विरहाग्नि रूपी तेज निखरने लगता है तो संसार रूपी परिवार उसका संग करके तृप्त होता रहता है।

जब साधक का अन्तिम समय आता है तो वह आनन्द-सागर में तैरता हुआ अपने स्थायी घर भगवद्‌चरण में जा पहुँचता है। **संसार का नाता सदा के लिए छूट जाता है तथा अपने 21 पुरखों को भी साथ में ले जाता है।**

1. धर्म परायण सोई कुल त्राता। राम चरण जाकर मन राता।।

2. सो कुल धन्य उमा सुन, जगत पूज्य सुपुनीत।।
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज पुनीत।।

अगर मनुष्य जन्म सफल करना हो तो अब भी समय है, चेत जाना श्रेयस्कर होगा। यह ठाकुर की चेतावनी है, मेरी नहीं।

अमूल्य रत्न हरिनाम को बेपरवाह से जपना जघन्य अपराध है। इससे बचना चाहिए।

कनिष्ठ अधिकारी वैष्णव भक्त	– जो कभी कभी हरिनाम करता है।
मध्यम अधिकारी वैष्णव भक्त	– जो निरन्तर हरिनाम करता है।
उत्तम अधिकारी वैष्णव भक्त	– जिसके केवल दर्शन मात्र से ही जीव हरिनाम करने लग जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिक्षा के अनुसार और किसी भी लक्षण से वैष्णव के अधिकार का निर्णय नहीं करना चाहिए।

(संदर्भ – जैवधर्म, अध्याय दूसरा)

कनिष्ठ अधिकारी वैष्णव की 7 पीढ़ियाँ,
मध्यम अधिकारी वैष्णव की 14 पीढ़ियाँ तथा
उत्तम अधिकारी की 21 पीढ़ियाँ भगवद्‌धाम जाती हैं।

शरणागति का सम्पूर्ण लक्षण

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नैन बहे नीरा।।
तिनकी करूं सदा रखवारी। जिमिं बालक राखहि महतारी।।

संसार में प्रवचन तो बहुत होते रहते हैं, परन्तु नाम जपने का तरीका कोई नहीं बताता, जो कि जन्म-मरण छूटने का अति महत्वपूर्ण साधन है। कितनी विडम्बना है! कितना बड़ा ह्रास हो रहा है...

जो नाम जपने का तरीका बतायेगा, भगवान् उसके आभारी रहेंगे, उसका आवागमन छूट जायेगा। गौरहरि बताकर गए हैं, कि नगर संकीर्तन से सबको लाभ है।

चारों युगों में, चारों वेदों में, अठारह पुराणों में, छः शास्त्रों में तथा उपनिषदों में हरि का नाम स्मरण करने का विधान है। स्मरण होता है मन व कान दोनों को साथ में मिलाकर। मन यदि हरिनाम में नहीं होगा, तो उच्चारण किया हुआ शब्द व्यर्थ में चला जायेगा। मन ही इन्द्रियों का राजा है, जैसा मन का स्वभाव होता है, इन्द्रियाँ भी उसी का साथ देती हैं।

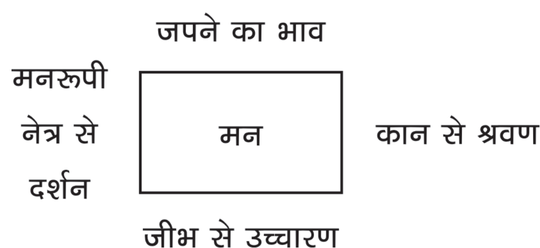
कलिकाल में मन अधिकतर राजसिक तथा तामसिक प्रकृति के होते हैं, अतः सृष्टि भी राजसिक, तामसिक होती जा रही है। क्योंकि स्कूल और कॉलेजों में शिक्षा भी उक्त तरह की ही दी जा रही है। सात्विक प्रकृति का तो नामोनिशान ही नहीं है। Television भी बदमाशी के अलावा बच्चों को अच्छी बातें नहीं बता रहा है।

पहले युगों में बच्चा 25 साल तक गुरु आश्रम में रहकर सात्विक शिक्षा सीखता था, तो सात्विक सृष्टि जन्म लेती थी। आजकल राजसिक, तामसी सृष्टि होती जा रही है।

जैसा मन वैसा जन जन्म लेता है, जैसा बीज वैसी उपज होती है, यह अटल सिद्धान्त है। मन का स्वभाव ही आत्मा को खींचकर गर्भ धारण करता है। जैसा स्वभाव होता है, वैसे ही स्वभाव की आत्मा गर्भ धारण करती है। इस युग में इन्द्रिय तर्पण ही सबका

स्वभाव बन रहा है, अतः तामस प्रकृति के जन्म होते जा रहे हैं, जो माँ–बाप के दुश्मन बन जाते हैं। यह दोष माँ–बाप का है। जन्म लेने वाले का नहीं। **जैसा करो वैसा भरो।** फिर कहते हैं, हमारा बच्चा कहना मानता नहीं। मानेगा भी नहीं। बीज ही तुम्हारा दूषित है। इसमें फसल का क्या दोष है।

मन लगने का सरलतम साधन–



भाव– मैं आपको (भगवान् को) ही चाहता हूँ। आवागमन को याद करके रोना आता है, क्योंकि गर्भ में रहना अकथनीय दुःख का कारण है। जन्म के बाद भी अनन्त दुःख लगे रहते हैं। सुख का तो लेश भी नहीं है, मौत सामने खड़ी है।

भाव– उक्त प्रकार से नाम जपने से मन एक क्षण के लिए भी इधर–उधर नहीं जा सकता। यदि मन में कोई चिन्ता (Tension) न रहे तो।

अपना स्वभाव साथ जायेगा, स्वभाव को सात्विक बना लो।

अगर मनुष्य जन्म सफल करना हो तो अब भी समय है, चेत जाना श्रेयस्कर होगा। यह ठाकुर की चेतावनी है, मेरी नहीं।

अमूल्य रत्न हरिनाम को बेपरवाह से जपना जघन्य अपराध है। इससे बचना चाहिए।

> हरि का भजन करो हरि है तुम्हारा
> हरि के बिना नहीं कोई सहारा

मानसिक दर्शन

धाम दर्शन ज्ञान–नेत्र से करते रहो। नाम जपते हुए (मानसिक रूप से) गिरिराज परिक्रमा करते रहो, चाहे नाम कान से सुनकर न भी हुआ तो अन्दर नाम हो रहा है, वह अनुभव में नहीं आता।

किसी भक्त से मानसिक रूप से प्रार्थना करते रहो। भगवान् का स्थायी स्थान भक्त का हृदय ही है।

कोई लीला चिन्तन करते रहो, तो अवश्यमेव विरह प्रकट हो जायेगा। इसमें रत्तीभर भी शक नहीं। विरह ही भक्ति का अन्तिम लक्षण है। जब तक विरहावस्था नहीं आएगी, जन्म–मरण होता ही रहेगा। अन्त में भगवान् विरही भक्त को सम्भालने आते हैं, क्योंकि वह शरणागत है।

अब भी जगना या चेत जाना चाहिए।

शाम के 4–5 बजे से पहले किसी से न मिलो। भगवान् का अन्वेषण करते रहो, तो जीवन सार्थक होगा व विरह अवश्य होगा।

हरिनाम को कान से सुनने के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जा रहे हैं–

1. **नाम जीह जप जागहि जोगी।** (जीभ से उच्चारण)
विरत विरंचि प्रपंच वियोगी।।

2. **जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ।**
जीह नाम जप जानहिं तेऊ।।

3. **पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।**
जीह नाम जप लोचन नीरू।।
(भरत का जपना)

4. **मन थिर कर तब शम्भु सुजाना।**
लगे करण रघुनायक ध्याना।।

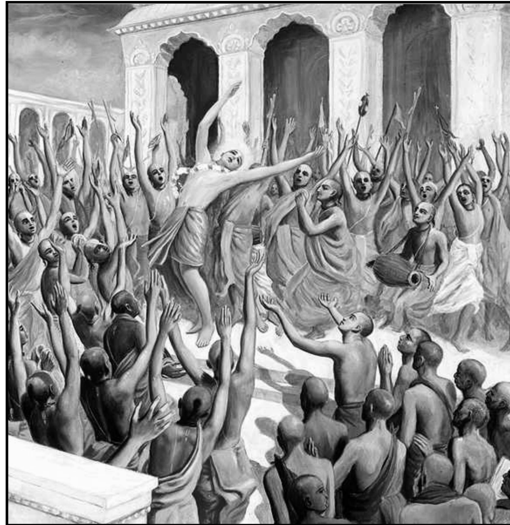
जीभ से नामजप कर कान द्वारा ही सुना जाता है। अतः जीभ से नाम–जप, शास्त्रों में वर्णित किया गया है। मंत्र (गोपाल मंत्र,

गायत्री मंत्र आदि) मानसिक होता है तथा हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र) जीभ से उच्चारण पूर्वक होता है। **मंत्र का उच्चारण अपराध है तथा नाम का उच्चारण युक्ति संगत है।**

मन ही कारण शरीर है। यही जन्म लेने का तथा मृत्यु का कारण है। स्वभाव को अच्छा बनाना प्रथम काम है। स्थूल+सूक्ष्म शरीर इसके आश्रित है। मन ही सृष्टि को चला रहा है। मन वश में करना सबसे बड़ी सफलता है, सबसे बड़ी खुशी है व सबसे बड़ी विजय है, अमरता है। अगर मन वश में न रहा तो सबसे बड़ा दुःख है।

नोट– यदि आप अधिकतर मठ में ही रहकर भजन करना चाहते हैं, तो आप अपराह्न 4.00 बजे बाद मिलकर समस्याओं का समाधान करें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो भजन असम्भव है।

विरह होना शरणागति का लक्षण है।
शरणागत ही आवागमन से छूटता है।
अन्य सब माया के बंधन में है।



17

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 23/12/2005

परमादरणीय श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, गुरुदेव के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति जागृत होने की असंख्यबार प्रार्थना!

प्रेमरूपी पुत्र-प्राप्ति

हरिनाम जपने की कसौटी किसान पर पूर्णरूप में उतरती है, तथा गर्भाधान करने वाले जीव पर भी 100% लागू होती है।

यदि किसान बीजारोपण करते हुए हल को चलाते वक्त कुश को नहीं सम्भालेगा तो बीज उगने में पूरा सन्देह है। क्योंकि कुश मिट्टी की सीलन तक पहुँची नहीं। अतः किसान कुश को दो चार अंगुल आगे सेट करेगा। ताकि बीज जमीन की सीलन तक पहुँच सके। सीलन से बीज 5-6 रोज में जमीन की सतह से ऊपर अंकुरित होते हुए दिखाई देने लगेगा।

यदि बीज खराब होगा तो भी अंकुरित नहीं होगा। आजकल संकर बीज बोए जाते हैं तो खाद्य भी संकर ही हो गया है, जो रोग का कारण है तथा मन भी अशुद्ध हो गया।

इसी प्रकार यदि जापक का मनरूपी कुश सन्तुलन पर नहीं होगा तो हरिनाम बीज कानरूपी सीलन तक नहीं पहुँच पाएगा। हरिनाम का हृदयरूपी जमीन पर कोई प्रभाव नहीं होगा। नाम प्रभावहीन होता रहेगा। पूरी उम्रभर नाम जपता रहेगा परन्तु निरर्थक ही होगा। केवल सुकृति इकट्ठी होगी।

दूसरी कसौटी गर्भाधान करने वाले जीव पर पूर्ण रूप से उतरती है। जब मादा जीव की माहवारी होती है, तो समझना होगा कि गर्भाधान रूपी जमीन बीज धारण करने को उपयुक्त है। गर्भाधान

करने वाला नर यदि इस समय को टाल देगा, तो गर्भाशय रूपी जमीन सूख जायेगी, सूखे में बीज उगता ही नहीं।

यदि समय पर गर्भाशय में बीज गिर जायेगा तो जीवरूपी बीज भविष्य में अपना शरीर धारण कर लेगा। समय पर नर अपनी सफलता पायेगा।

इसी प्रकार यदि जापक ठीक समय पर हरिनाम रूपी बीज कानरूपी गर्भाशय में पहुँचा देगा तो हृदयरूपी जमीन पर जाकर प्रेमरूपी पौधा प्रकट कर देगा। प्रेमरूपी पुत्र को पाकर साधक प्रेम से झूमता रहेगा। उसको ऐसी आनन्दमयी मस्ती आएगी कि उसका वर्णन अकथनीय है।

लेकिन हरिनाम को कान से नहीं सुनेगा तो अनन्त जन्म बिताकर भी प्रेमरूपी पुत्र पा नहीं सकेगा। संकीर्तन पिता श्रीगौरहरि इसका साक्षात् उदाहरण हैं। कान का महत्व सब इन्द्रियों से अधिक है। कान से संसार मिला एवं कान से ही भगवान् मिलेगा। कान से कथा सुनना तथा कान से ही संसार सुनना होता है। अब जाने का समय हो गया, शीघ्र चेत जाना चाहिए वरना धोखा होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता 10.25- में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को हरिनाम जप की महिमा बता रहे हैं।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।

मैं महर्षियों में भृगु हूँ, वाणी में दिव्य ओंकार हूँ, समस्त यज्ञों में पवित्र नाम का कीर्तन (जप) तथा समस्त अचलों में हिमालय मैं हूँ।

18

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 20/04/2006

परमाराध्यतम प्रातः स्मरणीय भगवत् प्रदाता, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति–सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानु–दास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् प्राप्ति हेतु करबद्ध प्रार्थना।

प्रेरणात्मक जिज्ञासानुसार भगवद्–प्राप्ति हेतु श्रीगुरुदेव जी से प्रश्न उत्तर–

सन् 1948 से जब मैं जयपुर में आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था, श्रीराधा गोविन्द के मन्दिर में जाकर दर्शन कर सद्गुरुदेव जी की प्राप्ति की प्रार्थना किया करता था। इसी मन्दिर में मुझे श्रीगुरुदेव जी के 8–10 ब्रह्मचारियों के संग में दर्शन सुलभ हुए। ब्रह्मचारी थे श्रीभारती महाराज! श्रीमंगल महाराज! श्रीकृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी (तीर्थ महाराज) श्री गिरी महाराज आदि।

मेरी जानकारी में 1952 के पहले केवल कलकत्ता मठ ही था। इसके बाद में 20 मठ भारत में निर्माण हुए। श्रीगुरुदेव जी प्रत्येक मठ के श्रीविग्रह हेतु तीन बार जयपुर में जाया करते थे। एकबार ऑर्डर देने हेतु, दुबारा विग्रह कैसा तैयार हुआ है यह देखने हेतु और तीसरी बार ले जाने हेतु।

उस समय श्रीगुरु महाराज जी के बहुत कम शिष्य थे। जयपुर में तो केवल मैं ही इकलौता प्यारा शिष्य था। अतः महाराज जी अकेले बैठे रहते थे। मुझे उनके चरणों में बैठकर भगवान् के प्रति प्रश्न करने का मौका अधिकतर मिलता रहता था। महाराज जी मेरे प्रश्नों का उत्तर बड़े प्रेम व चाव से देते रहते थे। महाराज जी भी आनन्द में विभोर हो जाते थे। महाराज जी समय देकर मुझे बुला लिया करते थे। वे कहते थे, “अनिरुद्धदास! तेरी क्या जिज्ञासा है ?

खुलकर मुझसे पूछते रहो।" मैं कहता–"हाँ! महाराज जी, आपकी कृपा बरसती है।"

जो मुझे याद है, आपके चरणों में सेवार्थ अंकित कर भेजता रहूँगा, कृपया अंगीकार करते रहें।

1. प्रश्न – भगवान् कैसे मिलेगा? यह मेरी तीव्र भूख थी।

   उत्तर – रोकर ही प्राप्त होगा, परन्तु केवलमात्र भगवद् प्राप्ति ही ध्येय हो।

2. प्रश्न – रोना तो आता नहीं।

   उत्तर – भगवान् से **सम्बन्ध** बनालो।

3. प्रश्न – **सम्बन्ध** क्या होता है?

   उत्तर – जैसे इस जगत में सम्बन्ध होता है। माँ–बेटे का! भाई–भाई का! मित्र–मित्र का आदि–आदि।

6. प्रश्न – भगवान् तो सभी के माँ–बाप हैं। ये जीव सृष्टि उन्हीं की बनाई हुई है। अतः भगवान् जी तो सबके पिता हैं ही। तो शिशु का सम्बन्ध (रिश्ता) कैसा रहेगा, महाराज जी!

   उत्तर – सर्वोत्तम।

15. प्रश्न – यही सम्बन्ध सर्वोत्तम क्यों है?

   उत्तर – इस सम्बन्ध में गलती होने का कोई भय नहीं है। आँख मींचकर दौड़ते रहो, गिरोगे नहीं। शिशु माँ–बाप को थप्पड़ मार भी देता है, तो माँ–बाप उसे गोद में बिठाकर प्यार भरा चुम्बन देते हैं। अतः इससे सर्वश्रेष्ठ कोई सम्बन्ध नहीं। अन्य सम्बन्ध में मर्यादा से चलना पड़ता है। इसमें नहीं।

6. प्रश्न – श्रीगुरुदेव मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मेरा यह सम्बन्ध पक्का बन जाये।

उत्तर – अवश्य! चिन्ता मत करो। भगवान् सब ठीक करेंगे।

7. प्रश्न – शिशु भाव (सम्बन्ध) कैसे बने, महाराज जी ?

उत्तर – भगवान् जी से प्रार्थना करते रहो एवं अपने आप को (अहम्) को भगवद् चरणों में चढ़ाते रहो। संसार से नाता ढीला करते रहो वरना मोह के कारण अगला जन्म होता रहेगा। आवागमन मिटेगा नहीं।

8. प्रश्न – प्रार्थना किस प्रकार करनी होगी, श्रीगुरुदेव जी ?

उत्तर – जिस प्रकार सामने खड़े अथवा बैठे मनुष्य से की जाती है, किसी काम हेतु। वह कान से सुनता रहता है। इस प्रकार हरिनाम को जीभ से उच्चारण करते हुए कान से सुनकर ठाकुर जी से प्रार्थना की जाती है। ऐसा अनुभव हो कि ठाकुर जी मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। तब धीरे-धीरे भगवान् से शिशु का सम्बन्ध पक्का हो जायेगा।

9. प्रश्न – मन तो एकक्षण में भाग जाता है।

उत्तर – वास्तविक पक्का सम्बन्ध नहीं है।

10. प्रश्न – वास्तविक पक्का सम्बन्ध कैसे हो महाराज जी ?

उत्तर – हरिनाम को कान से सुनकर ही होगा। अधिक से अधिक जपना होगा।

Chant Harinam Sweetly & Listen By Ear

Hare Krishna Hare Krishna
Krishna Krishna Hare Hare
Hare Ram Hare Ram
Ram Ram Hare Hare

19

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/05/06

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीशिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना!

भगवद्-प्राप्ति का सरलतम से सरलतम साधन (उपाय)

तीन प्रकार के शरीर-

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर (स्वभाव का शरीर)।

स्थूल शरीर- मिट्टी में मिल जायेगा जो पृथ्वी तत्त्व का है।

सूक्ष्म शरीर- प्राण (हवा) का शरीर है, जो कर्मानुसार दूसरे शरीर में चला जाता है।

कारण शरीर- जो जन्म-मरण व भगवद्-प्राप्ति का कारण है। कारण शरीर को सत्संग द्वारा शुद्ध निर्मल करना होता है।

शरीर में 5 कोश होते हैं।

1. अन्नमय कोश, 2. प्राणमय कोश, 3. मनोमय कोश, 4. विज्ञानमय कोश, 5. आनन्दमय कोश।

अन्नमय कोश पृथ्वीतत्व से निर्मित है। प्राणमय कोश सांस पर निर्मित है। मनोमय कोश संकल्प-विकल्प से निर्मित है। विज्ञानमय कोश बुद्धितत्व का द्योतक है। **आनन्दमय कोश चित्त से सम्बन्धित है। इसी में भगवान् और आत्मा का शुद्ध स्थान है।**

अन्तःकरण चतुष्टय 4 तत्वों से बना है–

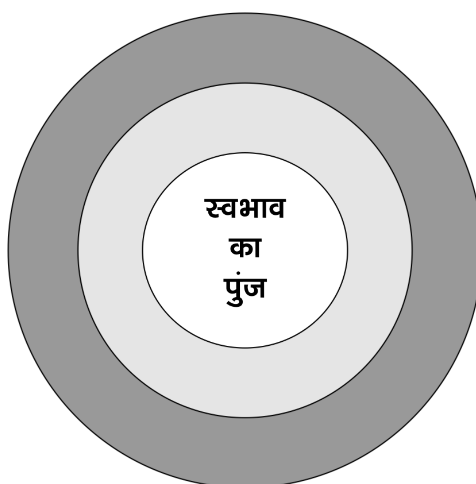
1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त, 5. अहंकार।

अहंकार ही सारे जगत की जड़ है। अहंकार (मैं–मेरा, तू–तेरा) को सचेत कर दिया जाये तो सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाये। अहंकार रूपी वृक्ष में दो तरह के फल लगते हैं।

1. कड़ूवा, जहरीला (भौतिकता का)।

2. मीठा अमृतमय प्रेमामृत फल (आध्यात्मिकता का)।

स्थूल शरीर **सूक्ष्म शरीर** **कारण शरीर**

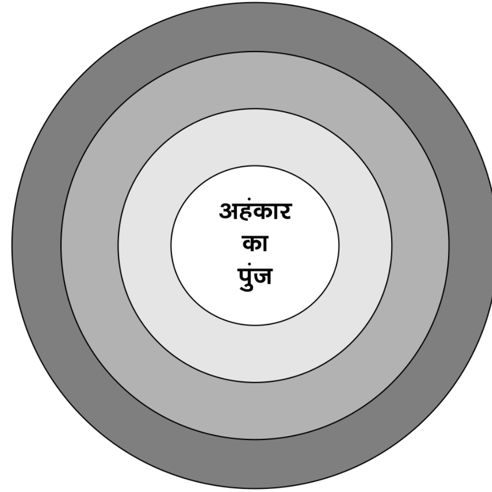


स्थूल शरीर – घटता–बढ़ता है। जैसे– बचपन, जवानी, बुढ़ापा। यह खाने–पीने पर निर्भर है।

सूक्ष्म शरीर – जो कर्मानुसार जन्म–मृत्यु का कारण है। यह प्राण तत्व पर निर्भर है।

कारण शरीर – आदत का शरीर। आदि जन्म का स्वभाव। भगवद्–प्राप्ति तथा संसार प्राप्ति करवाता है।

मन **बुद्धि** **चित्त** **अहंकार**



● मन से सूक्ष्म बुद्धि, बुद्धि से सूक्ष्म चित्त तथा चित्त से सूक्ष्म अहंकार है। **ये अहंकार ही जीव का मित्र तथा शत्रु है।**

ये अहंकार यदि ठाकुर के प्रति बन जाय तो पूर्ण शरणागति में पलट जाता है। ***तृणादपि सुनीचेन** स्थिति स्वतः ही टपक पड़ती है। दुर्गुण नष्ट होकर सद्गुण आकर मन, बुद्धि, और चित्त में रम जाते हैं। यदि जीव भगवान् के लिए ही कर्म करता रहे तो इसका सारा का सारा दुःख खत्म हो जायेगा। अर्थात् मुनीम बनकर सेठ की बन्दगी करता रहे, तो उसके भोग सेठ को भुगतने पड़ते हैं। लाभ, हानि सेठ की ही होगी। मुनीम बच जायेगा। यही भगवद्गीता बता रही है।

***तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः॥**

जो स्वयं को घास के तिनके से भी अधिक क्षुद्र मानते हैं, जो वृक्ष से भी अधिक सहनशील हैं, तथा स्वयं मानशून्य (दूसरों से मान की अपेक्षा न करने वाला) होकर दूसरों को यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं, वे ही सदा हरिकीर्तन के अधिकारी होते हैं। (श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट शिक्षाष्टकम्, श्लोक 3)



अन्नमय कोश– खाने पीने का स्थान

प्राणमय कोश– सांस लेने का स्थान

मनोमय कोश– संकल्प–विकल्प का स्थान

विज्ञानमय कोश– बुद्धि का स्थान

आनन्दमय कोश– भगवान् का तथा आत्मा का रहने का स्थान

चित्त से ही स्फुरणा उठती है, अच्छी–बुरी। स्फुरणा को यहीं रोका जा सकता है वरना वह स्थूल रुप ले लेती है। विचार मन पर जाने पर बेकाबू हो जाता है। फिर शरीर से उस कर्म को बाध्य होकर करना पड़ता है।

स्थूल+सूक्ष्म+कारण शरीर ठाकुर जी द्वारा रचे गए हैं। जिसमें कारण शरीर (स्वभाव का शरीर) ही सबसे महत्वपूर्ण शरीर है। यही जन्म-मरण का कारण बनता रहता है। यही संसार में फँसाए रखता है, तथा यही भगवत् चरणों में पहुँचाकर जन्म मरण से छुट्कारा दिला देता है।

इसका मुख्य कारण है– **सम्बन्ध ज्ञान**। चाहे संसार से सम्बन्ध हो जाये चाहे भगवान् से सम्बन्ध हो जाये। इन दो में एक से सम्बन्ध अवश्यमेव होगा। एक से दुःख और एक से सुख। कुसंग से दुःख तथा सत्संग से सुख।

सम्बन्धज्ञान को ही स्वरूपज्ञान कहते हैं।

हर जीव का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ व्यक्तिगत रूप में निश्चित रूप से एक निजी सम्बन्ध रहता है। जैसे कि श्रीराम भक्त हनुमान जी का प्रभु श्रीरामजी के साथ दास्य भाव में नित्य सम्बन्ध है। यशोदा मैय्या का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ वात्सल्य भाव में माता के रूप में नित्य सम्बन्ध है।

"नित्य" शब्द का प्रयोग इसलिये किया जाता है। क्योंकि भगवान् नित्य हैं तथा जीवात्मा भी भगवान् का नित्य अंश होने के कारण वह भी नित्य ही है। अर्थात् भगवान् के साथ जीव का नित्य सम्बन्ध है। उसी सम्बन्ध के अनुसार भगवान् की सेवा में रत रहते हुए उन्हें प्रसन्न करना– यही जीव का वास्तविक धर्म है।

***जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।**
कृष्णेर 'तटस्था-शक्ति' 'भेदाभेद प्रकाश'॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, 20.108)

---

*जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति है। कृष्ण के साथ जीव का एक ही साथ भेद तथा अभेद प्रकाशरूपी सम्बन्ध है। जीव सूर्य रूप कृष्ण का अंश अर्थात् किरण है अथवा अग्नि से निकली हुई चिनगारी के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य से निकलकर भी कभी सूर्य नहीं बन सकतीं, उसी प्रकार जीव कृष्ण का अंश होकर भी कभी कृष्ण नहीं बन सकता। यही 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' है। इसलिए कृष्ण के प्रति नित्य दास्यत्व ही जीव का नित्य स्वरूप है।

भगवान् की इच्छा से भगवान् के निजजन श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी जी ने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ में भगवान् श्रीगौरचन्द्र शिक्षा का सार उक्त पयार में व्यक्त किया है।

भगवान् के साथ हमारा क्या नित्य सम्बन्ध है इसका ज्ञान होना, इसी को सम्बन्धज्ञान तथा स्वरूपज्ञान कहते हैं। यह प्राप्त होने के बाद और कुछ प्राप्त होना या करना बाकी नहीं रहता। यह अन्तिम सीढ़ी है।

सम्बन्ध ज्ञान में शिशु भाव का सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है, जो एकदम स्वच्छ सम्बन्ध है। अंधाधुन्ध चलते रहो, कहीं गिरने का जरा भी डर नहीं है। अन्य सम्बन्धों में कहीं न कहीं, कभी न कभी गिरने का डर होता है। चाहे सखा भाव का हो, या चाहे रति भाव का हो। अपराध होने का व मर्यादा में चलने का भय सदा बना रहता है। शिशु भाव में बेधड़क जीवन भर चलते रहो। तनिक भी भय नहीं है। इसमें हर समय रोते ही रहो। सदा ठाकुर-ठकुरानी की गोद में सोते रहो, मचलते रहो। धूल में सनते रहो। क्या कोई भय रहता है ? मस्ती में खेलते रहो! जब भूख लगे तो रोना शुरू कर दो। तुरन्त, ठकुरानी आकर गोद में ले लेगी तथा अपना स्तनपान कराते हुए सिर पर हाथ फेरती रहेगी तथा खिलौना देकर आंगन में अपने शिशु को उतारकर खेलने के लिए छोड़ देगी। फिर शिशु आंगन से बाहर चबूतरे तथा रास्ते की तरफ खेलते-खेलते चला जाता है। उसे कोई फिकर नहीं होगी, फिकर तो उसकी माँ (ठकुरानी) को होगी कि बच्चा कहीं गिर न जाये। उसका ख्याल माँ हर क्षण रखती है!

रामवचन-

मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
करहुं सदा तिनकी रखवारी।
जिमि बालक राखहि महतारी।।

यह निश्चित है, कि भक्त जब सारी जिन्दगी शिशु भाव में भगवान् के चरणों में खेलता रहेगा, तो क्या अन्त में अर्थात् मृत्यु के समय में क्या उसे डर रहेगा ? क्या माँ उस समय शिशु से दूर रहेगी।

माँ (ठकुरानी) अवश्य उसे अपनी गोद में चढ़ा लेगीं। उसका कारण शरीर सदा के लिए नष्ट हो जायेगा। आनन्द सागर में डुबकी लगाने हेतु सदा के लिए चला जायेगा। इसमें रत्तीभर भी सोचने की गुंजाईश नहीं है।

यह ठाकुरजी की प्रेरणा से प्रेरित लेख है। चाहे आप मानें या न मानें। मैं ऐसा स्वप्न में भी लिखने में असमर्थ हूँ। ठाकुर जी यदि कृपा करें तो सम्बन्ध ज्ञान का भाव शीघ्र बदल सकता है, यदि उनसे रो-रोकर प्रार्थना की जाये। भाव बदलने में देर नहीं होती, अन्तः करण ही इसका आधार है। सच्चे दिल से हर परिस्थिति बदली जा सकती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कितने रो-रोकर पद रचना करते थे। प्रत्यक्ष उदाहरण है ही। श्रीनरोत्तम दास ठाकुर रो-रोकर भगवान् को पुकारते थे। फिर इसमें सन्देह कैसा ?

कहते हैं कि रोना अपने बस की बात नहीं है। इसमें खास कारण है, संसारी मोह। यह मोह अहंकार का कारण बन जाता है एवं अहंकार ठाकुरजी को पसन्द नहीं है। अतः रोना दूर की वस्तु बन जाती है। एकदम संसार से वैराग्य हो, एकदम संसार का अवलम्बन छूट गया हो, तब कहीं रोना आ सकता है। जब तक भौतिकता का अवलम्बन रहेगा, तब तक ठाकुरजी की तरफ का अवलम्बन केवल कपट मात्र होगा। यह इतना सूक्ष्म तथा झीना है कि अन्दर घुसने पर भी पकड़ में नहीं आता। कहीं न कहीं मोह की गन्ध रहती है, जो ठाकुर जी की तरफ जाने में और प्रीति कराने में अलगाव बनाती रहती है।

यदि उक्त खतरनाक परिस्थिति न होगी, तो भगवद्चरणों में रोने के लिए जबरदस्त आवेग आयेगा। स्वतः ही रोना फूट पड़ेगा। फिर उसका अवलम्बन ठाकुर चरणों के सिवाय कहाँ पर रहेगा!

उसको तो ठाकुर अन्दर–बाहर दिखाई देगा। जब उसे अलौकिक आनन्दानुभूति होने लगेगी तब क्या वह वहाँ से हट सकेगा ? चाहे उसे कितने ही बड़े संकट पर संकट क्यों न आये, वह एक क्षण भी विचलित नहीं होगा।

इसका खास उदाहरण है–***नृसिंह पुत्र प्रह्लाद**। क्या वह कभी डरा ? इसका दूसरा उदाहरण है, नामाचार्य हरिदास ठाकुर, क्या वह मार खाने से डरे ? जब अलौकिक आनन्द आता है, तब उस पर भौतिकता की मार प्रभाव नहीं कर सकती। यह एक ऐसा अमोघ कवच है, जिसको तोड़ने में कोई शक्ति सक्षम नहीं हो सकती।

अब समय नहीं है। काल रात्रि आ जाने में देर नहीं है। जल्दी चेत जाना चाहिए। भौतिकता को पीछे छोड़कर ठाकुर चरणों में बैठ जाना ही श्रेयस्कर रहेगा। यह सब अन्तिम साधन हरिनाम का आधार लेकर रोना होगा। जीभ और कान का घर्षण सन्त चरण में (प्रत्यक्ष रूप में या मानसिक रूप में) बैठकर होने पर जल्द रोना आ जाता है। हँसते–हँसते युग बीत गए। अब तो आखिरी रोना सन्तों से ही होगा।

सब तरफ से मन को हटाकर ठाकुर व सच्चे सन्त के पास प्रार्थना करने पर तुरन्त लाभ होगा। अनन्त सन्त हो चुके हैं। कभी किसी के चरणों में बैठकर रोवो तो कभी किसी के चरणों में बैठकर रोवो। अवश्य रोना आ जायेगा। कम से कम 24 घंटे में एक घंटे तो रो–रोकर हरिनाम जपना चाहिए।

यह मैं नहीं लिख रहा हूँ, ठाकुरजी आप पर कृपा करने के लिए मुझे निमित्त बनाकर आपको गोद में लेना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि, मैं किस निम्न श्रेणी का मानव हूँ। लेकिन भगवद्कृपा हो जाये तो गधा भी वेद का विद्वान् बन सकता है। लेकिन यह बात मेरे अन्दर नहीं है, मैं तो केवलमात्र निमित्त बन गया हूँ। यह निमित्तता भी सन्तों की मेरे ऊपर कृपा ही है।

---

*नृसिंह पुत्र प्रह्लाद = श्रीनृसिंह भगवान् की लीला में हिरण्यकशिपु प्रह्लाद जी के पिता थे, परन्तु, यहाँ शिशु की तरह भगवान् के लिए रोने की बात बताई गयी है, इसलिए 'नृसिंह' पुत्र प्रह्लाद ऐसा उल्लेख किया गया है।

20

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 25/06/2006

परमादरणीय श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविन्द में इस अधमाधम दासानु-दास अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति स्तर बढ़ने तथा चातुर्मास में 3 लाख जप करने हेतु सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना।

हरिनाम से प्रार्थना

मुझे निष्किंचन बनाकर अपने चरणों में स्थान देने की प्रवृत्ति प्रकट करने की कृपा करें। भक्तों से सच्चा नाता निभाने की सक्षमता देने की कृपा करें।

आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु मेरी जिह्वा पर आओ।।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
इकतारे के तारों से निकला हरिनाम उद्गार।
जगत भाव पीछे जो छूटा, हरि से हो गया प्यार।।

जब तक संसार से वैराग्य नहीं होगा, तब तक ठाकुर के प्रति प्यार नहीं होगा। जब तक ठाकुर से प्यार न होगा, तब तक ठाकुर जी के लिए छटपट नहीं होगी। छट-पट ही एक अटूट रस्सी है, जो ठाकुर जी को खींचकर सामने खड़ा कर देती है। ठाकुर के लिए रोने से ठाकुर जी का चित्त अकुला उठता है। उनसे भक्त का दर्शन करना व स्वयं का दर्शन देना बाध्यता में पलट जाता है।

उक्त अवस्था का स्तर होगा केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनकर ही। दूसरा कोई उपाय त्रिलोकी में कहीं पर नहीं है। चाहे

कितना ही सत्संग करो, चाहे कितना ही जप करो, चाहे कितना ही तीर्थाटन करो, कुछ हाथ नहीं लगेगा।

कान (श्रवण) व जीभ का घर्षण ही विरहावस्था प्राप्त करा देता है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। कोई भी करके तो देखो। अगर ऐसा नहीं हो तो सब ठौर असम्भवता का राज्य होगा।

लेकिन यह तब ही होगा जब संसार का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं होगा। मठ की सेवा साक्षात् भगवद् चरण की सेवा है। इस सेवा से आनन्दानुभूति होना परमावश्यक है। यदि ऐसा अनुभव में नहीं आ रहा है, तो कहीं न कहीं अधूरापन है। भागवत, रामायण व अन्य धार्मिक ग्रन्थों से पढ़ने को मिलता है कि कही भी जाओ, सब जगह पर झंझट मिलेगा ही। उन झंझटों की परवाह न करते हुए अपने रास्ते से न डिगकर चलते ही रहे तो अन्त में भगवद् चरण प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा मैंने संतों से सुना भी है व ग्रन्थों में पढ़ा भी है। मेरी इसमें कोई सक्षमता नहीं समझें। एक तुच्छ मानव क्या इतनी लेखन क्रिया कर सकता है ? असम्भव है।

भजन–गीति से यही शिक्षा मिल रही है, कि ठाकुर जी के प्रति रोना कब होगा ? रोना भी सन्त ही दिया करते हैं, क्योंकि उनके हृदय में रोने का सिन्धु लहराता रहता है।

यदि रोने की बूँद कोई लेना चाहे तो किसी सच्चे सन्त, विरही सन्त से उनके चिंतन द्वारा ही ले सकता है। साक्षात् रुप में मिलने की जरुरत नहीं है, क्योंकि सन्त चिन्मयता का भण्डार होता है। वह साधारण मानव नहीं है। भक्त जो मानसिक रूप से सेवा करता है, तो वह सेवा अन्त में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाती है।

कोई सन्त ठाकुरजी से मानसिक रूप में होली खेला करता था तो वह भक्त प्रत्यक्ष में रंगीला होकर बाहर निकला। चित्र में भगवान् विराजते हैं। चित्र का मनन भगवान् को आकर्षित कर लेता है। भगवान् को वैसा ही जबरन करना पड़ जाता है जैसा कि

गीता कहती है– जैसा भक्त करता है, वैसा मुझे भी करना पड़ता है!

हरिनाम को जपते हुए किसी विरही सन्त से मानसिक चिन्तन द्वारा मिलना चाहिए। उसका ठाकुर के प्रति विरह आपके चित्त में भी आ जायेगा। मेरे बहुत से गुरुवर्ग हो गए हैं, जिन्होंने ठाकुर जी से जुड़कर अपना जीवन यापन किया है। किसी भी गुरुवर्ग में से किसी भी सन्त के चरणों में बैठकर हरिनाम जपा जा सकता है। साक्षात् ठाकुर जी का चिन्तन थोड़ा मुश्किल पड़ता है व ठाकुरजी अकेले न आकर सन्त के माध्यम से भक्त के हृदय में आते हैं।

जीवन थोड़ा है, न जाने अगला चतुर्मास जीवन में आये न आये, तो अभी से कमर कसकर जाने की तैयारी कर लेनी होगी। किराया न होगा तो बीच में पकड़े जायेंगे। अपने स्थान पर पहुँचने में देर हो जायेगी। गुरुदेव मैं आपके चरणों का आसरा लेकर अपने खास स्थान (घर) पर पहुँचना चाहता हूँ। जहाँ से फिर कहीं जाने का मन नहीं करता।

अगला समय कुछ अस्वस्थता में बीत सकता है। अतः अभी से कमर कसकर भगवान् को पकड़ने में ही लाभ है। अगला जन्म श्रीमानों के घर पर ही होगा। परन्तु इसी जन्म में भगवद्चरणों की प्राप्ति हो जाये तो गर्भाशय का दारुण कष्ट भोगना नहीं पड़ेगा। अगर मौत सामने खड़ी हो, तो क्या कोई दूसरे भाव में रत हो सकता है? उसको कुछ नहीं सूझता, केवल अपने सहायक को पुकारता है। नैय्या डूब रही हो तो दूसरे नाविक को पुकारेगा। मुझे बचाओ। भागकर नाविक उसे बचा लेता है। मौत से बढ़कर और कोई दूसरा भय त्रिलोकी में है, जो मौत आये एवं हँसता हुआ जाये? आज कैसा शुभ क्षण है जो मैं मेरे अमर माँ बाप की गोद में जा रहा हूँ। अब तक मेरे असली माँ–बाप की गोद नहीं मिल पाई थी। यह तब ही होगा जब मोह–ममता का पिण्ड छूट जाएगा अर्थात् सम्पूर्ण रूप से वैराग्य दिल में समाया होगा। मोह–ममता इतनी सूक्ष्म वृत्ति है कि इसको पकड़ना असम्भव ही है।

इसमें स्वयं का अहंकार ही कारण है, अतः इस अहंकार के कारण ही असली माँ–बाप से दूर रहते हैं। यह भी बहुत सूक्ष्म है, इसे अनुभव पकड़ नहीं सकता। हाँ, जब भगवान् के प्रति रोना प्रकट हो जाये तो कुछ पकड़ में आ सकता है।

ऐसे समर्थ गुरु–वर्ग की चरणों की कड़ी में जुड़कर भी यदि कड़ी से विलग रह गये तो कितना बड़ा नुकसान हाथ लगा। यह जुड़ना अपने बल पर नहीं है, यह पूर्व–जन्म की भक्ति पर निर्भर है। तब ही ठाकुर जी सच्चे गुरु के रूप में अपने खोए हुए शिशु को अपना लेते हैं। वरना तो अनन्त गलत मार्ग में जीव चला जाता है, क्योंकि उस जीव की सुकृति कमजोर है।

अच्छे मार्ग वालों में भी अलगाव पना रहता है। यह भी उन्नति का ही कारण बनता है। सच्चे भक्त को कोई कष्ट दे ही नहीं सकता। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद के विरोधी भी प्रभुपाद का बाल भी बांका नहीं कर सके। सन्त कबीर पर भी बहुत आघात हुआ, मीरा पर भी बहुत अत्याचार हुआ, प्रह्लाद को भी बहुत सताया गया। अनेक उदाहरण हैं, इसमें भी मंगल ही होता है। इससे तो उत्कर्ष बढ़ता है, कम नहीं होता।

आप जिस अवस्था, स्थिति में चल रहे हैं, भगवान् की ही प्रेरणा समझकर अपने पथ पर चलते रहना चाहिए। इसमें भी मंगल ही है।

नोट : रात में मन को एकाग्रचित करके हरिनाम का आसरा लेना चाहिए। दिन में तो कई असुविधा होती रहती हैं। भक्तों से की गई प्रार्थना ही सहायक होती है। ठाकुर से प्रार्थना भक्तों की प्रार्थना से कमजोर पड़ती है। क्योंकि, ठाकुर जी भक्त की इच्छा निभाया करते हैं, अपनी इच्छा तुच्छ कर देते हैं।



दानव्रततपस्तीर्थक्षेत्रादीनाञ्च या स्थिताः।
शक्तयो देवमहतां सर्वपापहराः शुभाः।।
राजसूयाश्वमेधानां ज्ञानसाध्यात्मवस्तुनः।
आकृष्य हरिणा सर्वाः स्थापिता स्वेषु नामसु।।

(स्कन्धपुराण से उद्धृत)

दान में, व्रत में, तप में, तीर्थ-क्षेत्रों में, प्रधान-प्रधान देवताओं में समस्त प्रकार के पापों को हरण करने वाले सत्कर्मों में, शक्ति समूह में, राजसूय और अश्वमेध यज्ञादि में तथा ज्ञान-साध्य आत्म वस्तु में— जहाँ भी जो कुछ है, श्रीहरि ने उसे वहाँ से आकर्षण कर अपने नाम में स्थापन कर दिया है।

21

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी, राजस्थान
दि. 20/05/2006

परमाराध्यतम व परमश्रद्धेय, शिक्षागुरुदेव श्री भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़कर विरहाग्नि प्रज्वलित होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

रोते क्यों हैं भगवान् ?

मैं जो भी आपके चरणों में सेवार्थ लिख रहा हूँ, भक्तों की तथा श्रीगुरुदेव की कृपावर्षण से ही लिख रहा हूँ। तुच्छ जीव आकाश में सूर्य भगवान् को कैसे छू सकता है। लेकिन इस लेखन से मेरे मन को शान्ति व आपका शुभचिन्तन होता रहता है। यह मेरे भजन में सहायक रहता है।

प्रश्न– भगवान् शीघ्र प्रसन्न कैसे हों ?

उत्तर– श्रीगुरुदेव व महत् पुरुषों की तन, मन, धन, तथा प्राण से सेवा करने से। उनके चरणों में बैठकर, मीठे वचन से भजन हेतु पूछने से।

प्रश्न– मानव के चित्त में दुर्गुणों का वास रहता है। सद्गुण कैसे आ सकते हैं ?

उत्तर– सद्गुरु और महत् पुरुषों की कृपा का अवलम्बन ही सर्वोत्तम है। तब सद्गुण आकर बसने लगते हैं।

प्रश्न– जीव व आत्मा में क्या अन्तर है ?

उत्तर– जीव आत्मा – परमात्मा का अंश स्वरूप है। जीव मायाबद्ध होने से आत्मा से दूर रहता है। या यों कहिए जीव संज्ञा जगत् आसक्ति से ही है। आत्मा भोक्ता है। जीव भोग्य है। जीव भगवान् कभी नहीं बन सकता। जीव आदि जन्म से ही भगवान् का

किंकर (दास) है। या यों कहिए कि कारण शरीर (असत् स्वभाव) ही **जीव** की संज्ञा है। जब कारण शरीर (सत् स्वभाव) अपना अहम् जगत से तोड़कर भगवान् के चरणों में अर्पित हो जाता है तो जीव संज्ञा समाप्त होकर शुद्ध आत्मा बनकर आवागमन से सदैव के लिए छूट जाता है। आवागमन तब ही होता है, जब भगवान् उस शुद्ध आत्मा को जीवों के उद्धार हेतु मृत्युलोक में भेजते हैं। जैसे नानकदेव, सूरदास, तुलसीदास, श्रीगुरुदेव आदि।

प्रश्न– पाप और अपराध में क्या अंतर है ?

उत्तर– पाप जीव जन्य होता है। अपराध महत् जन्य होता है। पाप करने से भगवान् इतने क्रोधित नहीं होते, जितने अपराध से होते हैं। भक्त भगवान् का प्यारा होता है। अन्य जीव अपने कर्म भोग करते रहते हैं। भगवान् को उनसे कोई प्रयोजन नहीं। जीव को भगवान् से कोई प्रयोजन नहीं रहता। भागवत में सनकादिकों के प्रसंग में भगवान् ने सन्तों को अपना आराध्य देव घोषित किया है। भगवान् कहते हैं, 'संतों की रज (चरणधूलि) से मुझे सब सामर्थ्य प्राप्त हुआ हैं।' उद्धव ने भगवान् से प्रार्थना की है, 'मुझे वृन्दावन में कोई झाड़ी आदि बना दें ताकि गोपियों की चरणरज मुझ पर पड़ती रहे तो मेरा जीवन सार्थक बनता रहे।' महत् चरण रज ही महत्वशील है। कोई इसे छोटा न समझे वरना अपराध हो जाएगा।

प्रश्न– अपराध क्यों करता है मानव ?

उत्तर– असत् संग व पिछले जन्मों के संस्कारवश।

प्रश्न– अपराधी को कितना दण्ड भोगना पड़ता है ?

उत्तर– अपराधी को दण्ड उसके अपराध के मापदण्ड पर निर्भर करता है। भक्त की भक्ति के मापदण्ड पर आधारित है। शरणागत को भगवान् हर क्षण अपने चित्त से लगाए रहते हैं। जैसे माँ अपने शिशु को हृदय से लगाकर रखती है। उसको जो भी दुःखी करेगा, माँ को सहन नहीं होगा।

प्रश्न– क्या अपराध मार्जन का कोई संशोधन है ?

उत्तर– अवश्य है! जिससे अपराध हुआ है उसकी चरणरज, चरण जल तथा महाप्रसादी लेने से ही अपराध क्षमा होता रहता है। लेकिन अलक्ष रूप में लेवे। उसको मालूम नहीं होना चाहिए। यदि मालूम हो गया तो दुगुणा अपराध हो जायेगा। क्योंकि उसको दुःख होगा। प्रत्यक्ष रूप में अपराध का मार्जन उसकी सेवा करके करना चाहिए।

प्रश्न– भगवान् क्या खाते पीते हैं ?

उत्तर– भक्त का भाव।

प्रश्न– भगवान् कहाँ रहते हैं ?

उत्तर– शरणागत के हृदयकमल पर विराजते हैं।

प्रश्न– भगवान् कब रोते हैं ?

उत्तर– भगवान् तब रोते हैं, जब भक्त उनकी याद में विकल हो जाता है। जैसे गोपियाँ! भगवान् गोपियों के लिए कहते हैं– "गोपियो! मैं अनेक जन्मों में भी तुम्हारी भाव की चिरस्थिति से उऋण नहीं हो सकता।"

प्रश्न– भगवान् रोते क्यों हैं। वे तो सर्वसमर्थ हैं ?

उत्तर– भगवान् भक्त की कठपुतली है, जैसे भक्त करता है, वैसा ही भगवान् को करना पड़ता है। यह गीता का उपदेश है।

प्रश्न– महत् पुरुष कब रोता है ?

उत्तर– जब संसार से वैराग्य होकर भगवान् को हृदय से पुकारता है, तो उसे रोना निश्चित आता है। वह भगवान् से मिलने के हेतु तड़पता रहता है। तब भगवान् भी भक्त से मिलने के लिए तड़प जाते हैं।

प्रश्न– चिन्मय जन्म का क्या अर्थ होता है ?

उत्तर– चिन्मयता Super Natural अलौकिकता का सूचक है। जिस जीवात्मा में चिन्मयता का आरोप हो गया वह दिव्यता पा गया अर्थात् उसमें भगवत्ता का गुण प्रकट हो गया।

प्रश्न– आकुलता–व्याकुलता स्थिति से क्या आशय है ?

उत्तर– यह मन की स्थिति होती है। इसमें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता। यह अपने आराध्य को अष्टप्रहर याद कर–कर रोता रहता है। यह स्थिति अन्तिम स्थिति है। इसको कुछ भी नहीं सुहाता है। बराबर उन्हीं का चिन्तन रहता है। अतः भगवान् भी बेचैन हो जाते हैं। भेंट करने को प्रकट हो जाते हैं। ऐसी स्थिरता कोई विरले ही सुकृतिशाली की होती है।

प्रश्न– जहाँ सभी गुरु जी के शिष्य हैं व भजनशील भी हैं। कभी–कभी आपस में तू–तू, मैं–मैं होने की सम्भावना रहती ही है। तब अपराध होने से उसकी नैया कैसे पार होगी ? भगवान् को कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?

उत्तर– जिससे भी तू–तू, मैं–मैं हो गई, अलक्ष रूप से उसकी चरणधूलि वक्षस्थल व सिर पर मलने से तथा अलक्ष रूप में प्रार्थना रूप से चरणों में प्रणामादि कर लेवे। तब भगवान् अपराध क्षमा करते रहते हैं। अपराध तब ही होता है, जब उसका बुरा चिन्तन होता है। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, सबके मन की बात जानते हैं।

प्रश्न– भगवान् ने अनेक ब्रह्माण्डों की रचना कर, स्वयं अनेक जीव धारण कर, दुःख पाने का बखेड़ा रचा ही क्यों ?

उत्तर– भगवान् भी अकेले नहीं रह सके। उनको भी खेलने की चाह हुई। अतः ब्रह्मा रूप से सृष्टि रचना शुरू कर एवं जीवों के कर्मानुसार भोग भोगने हेतु 84 लाख योनियाँ बनाईं ताकि जीव अपना किया हुआ शुभ अशुभ कर्म भोग सके। परम पिता परमात्मा किसी जीव के दुःख का कारण नहीं है। जीव ही अपना शुभ–अशुभ कर्म करके दुःख पाता रहता है।

22

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 3/06/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में इस अधमाधम दासानुदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर वैराग्य सहित बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

गृहस्थी भी साधु

आपकी ही प्रेरणा से मैं आपको पत्र लिखे बिना रह नहीं सकता। यदि नहीं लिखता हूँ, तो भजनस्तर गिरता रहता है। लिखने में परमानन्द महसूस होता है। आपकी ही वस्तु आपके चरणों में चढ़ाकर सुखी होता हूँ। मैं अनपढ़ जीव, क्या लेखन में सक्षम हो सकता हूँ? कभी नहीं।

प्रश्न– धर्म–शास्त्रों में भक्त पद रज, भक्त पदजल, भक्त अवशेष तथा झूठन महाप्रसादी पढ़ने में तथा सुनने में आती है। इसका सच्चे रूप में क्या आशय है?

उत्तर– पहला तो मुख्य आशय यह है कि जैसे महत् पुरुषों ने अपना जीवन यापन किया है, उसी प्रकार भक्त भी अपना जीवन यापन करता रहे। दूसरा जो गुप्त आशय है कि उक्त रज, जल, प्रसाद साक्षात् रूप में सेवन करे। जिसके शास्त्रों में प्रत्यक्ष उदाहरण देखने में आते हैं।

1. उद्धव जी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना करके, यही माँग की है कि, “मुझे कुसुम सरोवर व राधाकुण्ड परिक्रमा में, या कहीं भी वृन्दावन में झाड़ी झंकार में परिणत कर दे तो मेरा जीवन सफल हो जाये। गोपियों की पदरज मुझ पर पड़ती रहे। तो मैं निहाल होता रहूँ।”

2. प्रह्लाद जी की उक्ति– जब तक महत्‌जन की पद रज से अभिषेक नहीं होगा तब तक भगवद्–कृपा प्राप्त नहीं होगी।

3. गंगा जी ने पापियों के स्नान करने पर दुःख प्रकट किया तो भगवान् ने कहा– भक्त के स्नान करने पर तुम सदैव पवित्रता प्राप्त करती रहोगी।

4. केवट ने श्रीराम जी के चरण धोकर घर में चरणामृत छिड़का, तथा चरणामृत का पान किया।

5. अहिल्या श्रीराम जी की चरणरज लगते ही सुन्दर युवती बन गयी जो शापवश पत्थर की बनी हुई थी।

6. श्रीमद्भागवत पुराण की उक्ति– साधुगण, महापुरुषों के चरणों की धूल से अपने को निहाले बिना–केवल तप, वेदाध्ययन, यज्ञादि, कर्मादि से भगवान् का स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।

7. भगवान् की प्यारी सखियों के चरणकमलों से जिस रज का स्पर्श होता है, वह रज धन्य हो जाती है। महत् पुरुषों की चरणरज का तो कहना ही क्या है? भगवान् ने चरण–रज के लिए सिर दर्द का बहाना किया। गोपियों ने चरण–रज दी। महत् पुरुष के चरित्रानु–सार चलना तो बहुत दूभर है, परन्तु भक्त चरण–रज और प्रसादी तो बहुत सरलतम है। इससे भक्ति बहुत शीघ्र प्राप्त हो जाती है। 'भजन गीति' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

प्रश्न– जहाँ पर महात्माजनों का दर्शन बहुत दुर्लभ है, वहाँ पर रज, पद जल, भक्त अवशेष प्रसादी कैसे प्राप्त होगी? इसका भी कोई उपाय है?

उत्तर– हाँ, है! चिन्तन द्वारा सब सम्भव हो जाता है। क्योंकि यह सब चिन्मय रास्ते हैं। भक्त चिन्मय होता है। चिन्तन भी चिन्मय होता है।

प्रश्न– जीव की असली कमाई कौन सी है?

उत्तर– केवल भक्त व भगवद् प्रेम की प्राप्ति ही असली कमाई है।

प्रश्न– त्रिगुण क्या होते हैं?

उत्तर– त्रिगुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण) के बन्धन से ही जीव अथाह दुःख सागर में डूबा रहता है। सच्चे भजन से निर्गुण अवस्था प्राप्त हो जाती है। भजन होगा सत्संग से।

प्रश्न– निर्गुण क्या होते हैं ?

उत्तर– जिस जीव में गुण (तीन गुण) नहीं है, वह जीव दिव्य होता है। यह Super natural person होता है। इसको परमहंस की पदवी मिल जाती है। इसको तुरीय अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसे भगवद्प्राप्त पुरुष कह सकते हैं।

प्रश्न– निर्गुण अवस्था कैसे प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर– जिसका कारण शरीर (स्वभाव का शरीर) सत् में परिणत हो। जो हरक्षण भगवद्चिन्तन में ओत–प्रोत हो। अहंकार की सूक्ष्मतम वृत्ति तब ही नष्ट होगी जब सच्चा ज्ञान, मन, बुद्धि, चित्त में समा जाएगा। अज्ञान, जगत् में आसक्ति का द्योतक है। वही आसक्ति भक्त और भगवान् की तरफ मुड़ जाये तो सच्चा ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो जाये। अन्धेरा रूपी अज्ञान समूल नष्ट हो जाये। ऐसा शास्त्रों व सन्तजनों का कहना है।

प्रश्न– मैंने श्रीगुरुदेव जी से पूछा, "महाराज जी साधु को कैसे पहचाना जाये ?"

उत्तर– **वेश भूषा से साधु की पहचान नहीं होती। गृहस्थी भी साधु हो सकता है। जो भी भगवद्प्राप्ति के लिए साधना करता है एवं जिसका अन्तिम ध्येय ही भगवद्प्राप्ति है, वह साधु है।**

किवा विप्र, किवा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता, सेई गुरु हय॥

कोई ब्राह्मण हो या संन्यासी हो अथवा शूद्र ही क्यों न हो, जो व्यक्ति कृष्णतत्त्व का जानकार है, वही गुरु होने का अधिकारी है। कृष्णतत्त्वविद् होना ही गुरु का प्रधान लक्षण है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत–मध्यलीला, 8.127)

प्रश्न– अब इनको पहचाने कैसे ?

उत्तर– आप उनके चरणों में जाकर बैठो, प्रणाम करो, तो साधु के मुख से निकलेगा, 'जय राधेश्याम' एवं 'भजन कैसा हो रहा है ?' साधु पूछेगा। बाद में भगवद्चर्चा शुरू कर देगा। जैसे कोई पतिपरायणा स्त्री अपने पति की चर्चा होने पर आनन्द मानती है। उसी प्रकार भगवद्भक्त का भी भगवान् की चर्चा में बैठे रहने का मन करेगा। यदि साधु में साधुता नहीं है तो बैठने वाले का मन उठने की कोशिश में रहेगा। शर्म से बैठ सकता है। फिर उसकी दिनचर्या से मालूम हो जायेगा। उसके स्थान से, उसके पड़ोसी से, फिर उसके भगवद्चर्चा करने पर सात्विक भावों से मालूम हो जायेगा। कपटी साधु के पास मन ऊब जाता है, बैठने का मन ही नहीं करता।

प्रश्न– गुरुदेव! यह कैसे जाने कि मन से भजन हो रहा है ?

उत्तर– जब जगत् का महत्वपूर्ण काम छोड़कर मन भगवान् की तरफ ही खिंचता रहे तथा चर्चा करने पर पुलक अश्रु होता रहे, तो समझना चाहिए कि भजन बढ़ रहा है। वरना घट रहा है।

प्रश्न– भजन बढ़ने का उपाय क्या है ?

उत्तर– किसी अनुकूल सच्चे सन्त का सम्पर्क करते रहो तथा तन, मन, वचन तथा धन से सेवा भी करते रहो तो भजन स्तर बढ़ जायेगा।

प्रश्न– कलियुग में कपटी सन्त अधिकतर होते हैं। सच्चे सन्त का समागम दुष्कर है। सच्चे सन्त का सम्पर्क कैसे बने ?

उत्तर– भगवद् कृपा बिना सच्चा सन्त नहीं मिल सकता। रामायण की उक्ति है–

बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं सन्ता।

ठाकुर से सच्चे दिल से प्रार्थना करने पर सच्चा सन्त मिल जाता है।

प्रश्न– तो फिर क्या यह मनुष्य जन्म बेकार ही चला जायेगा ?

उत्तर– बिल्कुल नहीं, भगवान् के सन्तों के प्रति आतुरता ही जन्म-मरण से छुड़वाकर धाम में नित्य वास करा देती है।

प्रश्न– यह आतुरता कैसे प्रकट की जाये ?

उत्तर– भगवान् के सामने रोकर ही आ सकती है।

प्रश्न– रोना तो एकक्षण भी आता नहीं है। कोई उपाय है?

उत्तर– अवश्य उपाय है, हरिनाम को कान से सुनो। बार–बार नाम सुनने से आतुरता आकर रोना प्रकट हो जाता है। रोना ही भगवान् को खींचने की कला है।

प्रश्न– गुरुदेव आप आशीर्वाद दें कि ऐसी अवस्था मेरे हृदय में प्रकट हो।

उत्तर– अवश्य हो जायेगी। गुरु और भगवान् में अन्तर नहीं है। गुरु को तो देखा है लेकिन भगवान् को देखा नहीं है। अतः गुरुचरणों में बैठकर उनके चरणों का ध्यान करें।

श्रीगुरु पदनख मणिगन ज्योती। सुमरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

मैं : श्रीगुरुदेव अब मैं चलूँ?

गुरुदेव : ठीक है! जाओ और मन से हरिनाम करते रहना। कल फिर आकर कोई संशय हो तो पूछ लेना।

मैं : आपकी कृपा का ही सहारा है। मुझे क्या चिन्ता!

सहारा लो नाम का अमृत समझकर।
पीलो कान से मन को सटाकर।।
आठों याम हरिनाम को जपाकर।
आनन्दमय गुजरेगा जीवन सजाकर।।
इसी जप से कभी संकट न आता।
पापों की गंध जड़ से उखड़ जाता।।
इसी जप से विरह आनन्द होगा।
इसी जप से सन्तों से प्यार होगा।।
इसी जप से संसार असार होगा।
इसी जप से शान्ति विस्तार होगा।।
यही जप माता पिता भाई।
क्यों न पुत्र बनकर करलो कमाई।।

अनिरुद्ध दास तेरा तो, पाप अपराध करलो अघाकर।
शिशु सम्बन्ध से पाप अपराध होता ही नहीं।

23

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/06/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव के चरण–युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरह सागर में डूबने की अनन्त कोटि बार चरणों में प्रार्थना!

सत्संग का अवसर

एक जुगुनू सूर्य को रोशनी दे, कैसी महान् मूर्खता है। ऐसे ही पतंगा दीपक के पास जाता ही है, चाहे मर भी जाये। क्योंकि पतंगे का स्वभाव ही है, कि रोशनी उसे खींच लेती है। बस इसी में समझना पड़ेगा। मैं पत्र लिखे बिना रह नहीं सकता। क्योंकि आपने मेरे मन को कैद कर रखा है। अब सोचिए, कैदी जाये भी तो कहाँ जाए ? पैरों में बेडियाँ पड़ी हैं। हाथ पीछे बाँध रखे हैं। बेचारा याद करके दिल ही दिल में रोया करता है।

बस, हरिनाम का आसरा लेकर जीवन यापन करता रहता हूँ। बस, यही सन्तोष करने की अमोघ औषधि है। इसी में असीम सुख मानकर मस्ती में रहता हूँ। अपने दिल के उद्गार इकतारे के तारों में भरकर आपके चरणों में अर्पण करता रहता हूँ और आनन्द मनाता हूँ।

अब तो सुविधायुक्त कमरा बरामदे के ऊपर बना दिया है। वहाँ आपको एकान्त व शुद्ध हवा मिलेगी। आप आ जायें तो मेरा जीवन सफल हो जाये। सत्संग की प्यास बड़ी जोरों से लग रही है। कोई सत्संग करके प्यास बुझाता नहीं।

ठाकुर को मन के उद्गार बोलकर इकतारे का आसरा ले लेता हूँ। जो नीचे आपके चरणों में अर्पण कर रहा हूँ।

दृढ़ विनयोक्ति–

हे गौर! दयावानों के सिरमौर बता दो।
छोड़ूँ मैं भला आपको किस तौर बता दो।।
हाँ, शर्त यह कर लो तो मैं हट जाऊँगा दर से।
अपना सा दयासिन्धु कोई और बता दो।।
यदि चरणों में, गौर रह सकता नहीं।
तो दयालु कोई और ठौर बता दो।।
यदि रोने पर भी आपका दिल पसीजता नहीं।
तो अनिरुद्ध शिशु को आपकी गोद के सिवा कुछ भाता नहीं।।

दैन्योक्ति–

भक्त बनता मगर, अधमों का सिरताज भी।
देखकर पाखण्ड मेरा, हँस पड़े गिरिराज भी।।
कौन मुझसे कपटी होगा, इस संसार में।
सुनके मुझ कपटी की चर्चा, डर गए यमराज भी।।
क्यों पापी कहे उनसे, कि अपनालो मुझे चैतन्य जी।
हैं पतितपावन तो खुद रखेंगे अपनी लाज भी।।
नैनों से सरिता बहा देंगे, हृदय उनका दहला देंगे।
अनिरुद्ध जो है पापी, अपनालो अब तो बापजी।।

प्रश्न– भगवद् चिन्तन हर पल कैसे हो ?

उत्तर– मृत्यु को सामने रखकर अपना जीवनयापन करें। किसी महत् पुरुष की कृपा प्राप्त करते रहें।

प्रश्न– भजन ह्रास करने वाली कौन सी अवस्थाएँ हैं ?

उत्तर– असत्–संग, असत्–आहार–विहार, अब्रह्मचर्य, अनुप–युक्त निद्रा, असत्–विचार, अशुद्ध रोजगार, मौन न रहना, अवैराग्य।

प्रश्न– 50–60 वर्ष की उम्र होने के बाद राजा लोग बदरिकाश्रम जाते थे, तो इसका क्या कारण हो सकता है ?

उत्तर– वृद्धावस्था में बद्री वन जाने पर जीव को आवागमन से छुटकारा मिल जाता है, यदि वहाँ एक रात भी रहने का अवसर

मिल जाये। गुरुदेव आप परम सुकृतिवान हैं, जो इस अवस्था में आपको वहाँ जाने का अवसर मिल गया। मेरी भी बड़ी इच्छा है। एकबार तो मैं जा चुका हूँ। वहाँ साक्षात् नर नारायण तपस्या करते रहते हैं। ऐसा शास्त्रों में अंकित है।

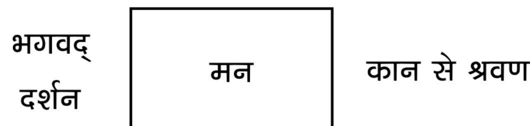
प्रश्न– सच्ची भक्ति क्या होती है ?

उत्तर– सच्ची भक्ति का लक्षण है– स्वाभाविक ही प्रवृत्ति हो, जैसे गोपियों की थी। उन्होंने न माला घुमाई, न सत्संग किया, फिर भी उनका श्रीकृष्ण में स्वाभाविक प्रेम तथा चिन्तन था। साधारण मानव को भक्ति का प्रयास करना पड़ता है। स्वाभाविक भक्ति की प्रवृत्ति, जन्म–जात होती है। प्रयास से नहीं होती। यह भक्ति दिव्य पुरुषों की होती है। जिनको भगवान् मृत्युलोक में जीवों का उद्धार करने के लिए भेजते रहते हैं। जैसे मीरा, सूरदास, तीर्थ महाराज, गुरुदेव, श्रीमाधव महाराज आदि।

प्रश्न– भक्ति प्राप्ति का सरलतम रास्ता कौन सा है ? विशेष करके कलिकाल में ?

उत्तर– भारतवर्ष में जन्म! सत्संग का सुअवसर! भक्तकुल में जन्म! फिर हरिनाम की सद्गुरु से शिक्षा! हरिनाम को कान से सुनकर स्मरण सहित आदर पूर्वक जप! जप का आसान सरलतम तरीका।

प्रेमप्राप्ति का भाव हो



जीभ से उच्चारण

उक्त कोष्टक के अनुसार जप करने पर मन एक क्षण भी कहीं नहीं जा सकता। यह 100% सत्य रास्ता है। कोई भी आजमाकर देख सकता है। यदि ऐसा अभ्यास नहीं होता तो उस मानव का

जन्म व्यर्थ है। ऐसा करने से भगवान् के लिए मन तड़पने लगेगा। इसमें रत्तीभर भी शक नहीं है।

नदी किनारे पर मानव बैठा है और लहरों को देख-देखकर आनन्द मना रहा है। उसे पता नहीं है कि कब बाढ़ आजाये और कब किनारा कट जाये और बहता हुआ भवसिन्धु में डूब जाये। न समझेगा तो ऐसा निश्चित ही होगा। चाहे वह युवक हो, चाहे बूढ़ा हो।

इन सब में से उद्धार होने का एकमात्र उपाय है, हरिनाम को कान से सुनने का अभ्यास बढ़ाये। चेत जाने का समय होने पर भी अनसुनी करे तो इससे बड़ा त्रिलोकी में कोई नुकसान नहीं है। यह अकाट्य सिद्धान्त है।

उक्त आकृति के अनुसार चतुर्भुज में मन को रोक दिया गया तो मन को निकलने का कोई भी रास्ता नहीं है। मन कहाँ जायेगा, केवल भगवद् चिन्तन में ही रमा रहेगा।

गो-कोटि-दानं ग्रहणे खगस्य प्रयागगंगोदककल्पवासः।
यज्ञायुतं मेरूसुवर्णदानं गोविन्द कीर्तने समं शतांशैः।।

(स्कन्धपुराण से उद्धृत)

सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण के दिन कोटि गोदान, प्रयाग या गंगातट पर एक कल्प तक का वास, हजारों यज्ञ और सुमेरू पर्वत के समान ऊँचे सोने के पर्वत का दान - यह सब कुछ 'श्रीगोविन्द' नाम के कीर्तन के सौवें भाग के बराबर भी नहीं हो सकता।

24

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/07/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविन्द में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति प्राप्ति की बारम्बार प्रार्थना।

भगवान् से अपनापन

ठाकुर जी के प्रति अपनत्व ही विरहाग्नि प्रज्वलित होने का मूल साधन है। जब तक अपनत्व संसार में होगा, विरहमयी छटपट आ ही नहीं सकती। यह अपनत्व ही अहंकार (अहम्) को भक्षण कर जाता है। जब तक संसार में अहम (मेरापन) रहेगा, ठाकुर जी से अपनत्व होने का सवाल ही नहीं है। चाहे कितना ही सत्संग कर लो, कितनी ही माला हरिनाम की कर लो। अपनत्व तब ही जन्म लेगा जब कान से हरिनाम श्रवण होगा। बस यही एक भक्ति का मूल साधन है। यही शरणागति का मूल लक्षण होगा, वरना केवल कपट ही नाचेगा।

अपनापन एक ऐसी अटूट रस्सी है, जो विरह को खींच लेती है। गोपियाँ, द्रोपदी, भीलनी, नरसी मेहता, तुलसीदास जी, मीरा आदि अनेक इस अपनत्व के उदाहरण हैं।

अपनत्व होने से वियोग सहन नहीं होता। मिलने के लिए क्षण-क्षण युग के समान होता दिखाई देता है। फिर ठाकुर को भी भक्त का वियोग सहन नहीं होता।

चतुर्मास आरम्भ होने वाला है। कमर कस कर खड़े होने में असीम लाभ है। यों ही समय निकल जायेगा। काल आकर दबोच लेगा। चारों दिशाओं में वह मुख फाड़े खड़ा है। जब मौका मिलेगा तब ही निगल जायेगा।

कम से कम तीन लाख हरिनाम जप तो परमावश्यक ही है। आठों याम भजन-साधन में लगना चाहिए। दिन में बहुत सारे झंझट बखेड़े सामने खड़े रहते हैं। रात भजन के लिए अनुकूल रहती है। जहाँ सुनसान वातावरण, ठण्डी रातें, सुहावना मौसम हो, फिर इससे ज्यादा अनुकूलता क्या होगी ?

गीता कहती है-

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.69)

जो सब जीवों के लिए रात्रि है, वह आत्मसंयमी के जागने का समय है और जो समस्त जीवों के जागने का समय है वह आत्म-निरीक्षक मुनि के लिए रात्रि है।

भजनानन्दी रात में जागता है। दिन में सोता है। जगने में ही अपना हित है। जिस प्रकार कामी को रात में नींद नहीं आती। इसी प्रकार विरही को रात में नींद नहीं आती। वह कामी विष पान करता है। विरही अमृत का मजा लेता है।

चाहे कुछ भी बोलो यह होगा केवल मात्र हरिनाम से! वह भी स्मरण को साथ में रखकर, अर्थात् कान से जोड़कर, दोनों का घर्षण अपनत्व प्रकट कर देता है। जब तक अपना खास घर नहीं मिलेगा, तब तक भटकन होती ही रहेगी। जब से बाप से बिछड़े हैं, झंझटों में फंसे हैं। कौन सुखी है ? केवल परमहंस भक्त ही अपने जीवन में मस्त है।

अपनत्व से अहम्, काम, संसारी-आसक्ति, दुःख, कष्ट, चिन्ता आदि सब कुछ विलीन हो जाता है। यह सब होगा हरिनाम से।

हरिनाम जिसको प्यारा लगा, वही चारों वेद, अठारह पुराणों उपनिषदादि का पूर्ण ज्ञाता हो गया। भीलनी ने कौन से शास्त्र पढ़े थे ? केवल श्रीराम से अमरत्व प्राप्त कर लिया।

हरिनाम ही भगवान् को प्रकट करने की सच्ची युक्ति है। लेकिन हरिनाम में कोई भाग्यशाली विरला ही रुचि रखता है। भार समझकर संख्या तो पूरी करता है। यह भी न जपने से तो उत्तम ही है। इससे सुकृति इकट्ठी होती रहती है। कई जन्म लेने के बाद हरिनाम में रुचि हो जायेगी और वह अमरत्व प्राप्त कर लेगा।

अवलम्बन (सहारा) भी एक महत्वशील भाव है। इसके बिना भगवद् सृष्टि चल ही नहीं सकती। जीव को पाँच तत्वों का पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, आकाश आदि का अवलम्बन चाहिए। इनमें से अगर एक भी तत्व की उपलब्धि नहीं हुई तो शरीर रह ही नहीं सकता। अवलम्बन बिना सब निस्सार है।

मनुष्य श्रीगुरुदेव द्वारा भगवान् का अवलम्बन लेता है। परन्तु, जब तक भगवान् से अपनापन नहीं होगा तब तक अवलम्बन से ही बात नहीं बनेगी। अपनत्व ही सारभूत भाव है। इसके बिना सब निस्सार होगा।

संसार में न जाने कितने मनुष्य मरते रहते हैं। अपनत्व न होने से कोई दुःख मन को नहीं व्यापता। अपने परिवार में कोई निजजन मरता है, तो अपार दुःख सागर में डूब जाते हैं क्योंकि उनसे स्वयं का अपनत्व है।

इसी प्रकार यदि भगवान् से अपनापन हो जाएगा तो सारा का सारा बखेड़ा ही मिट जाएगा। बस, इसी की कमी के कारण जीव दुःख भोग करता रहता है।

अब सवाल यह हो सकता है कि यह अपनापन कैसे प्राप्त हो ? तो इसका सरलतम उपाय है, कि मौत को सामने रखे और विचार करें कि तेरे सामने कितने ही जाने अनजाने व्यक्ति मौत के मुख में चले गए। अब तेरा भी नम्बर आने वाला है। फिर विचार करें, कोई सुखी है ? सभी किसी न किसी दुःख में पिस रहे हैं। इसमें कोई अपना नहीं, सभी पराए हैं। केवल मात्र भगवान् ही अपना है जो सबका बाप है, उसी की गोद में जाने से सुख

मिलेगा। चाहे कितने भी वैभवशाली हो जाओ। वैभव सुख नहीं देगा। क्योंकि वहाँ सुख दिखता है, लेकिन है नहीं।

भजन बिना ब्रह्मा व महादेव, देवी–देवताओं को ही सुख नहीं, तो फिर हम किस गिनती में हैं! बारम्बार विचार करें तो हरिनाम में रुचि होने लगेगी। **भगवान् ने जीवों को अपनाने हेतु अपना नाम सृष्टि में रमा रखा है इसलिए कि, इसी एकमात्र मेरे नाम को पुकारने से मैं (भगवान्) पुकारने वाले के पास न चाहते हुए भी खिंचकर आ जाता हूँ।** लेकिन इतना सरल साधन होने पर भी कोई इसको अपनाता नहीं और अपनाता है तो इसमें अपनत्व नहीं रखता है। इसी तरह इसका जीवन व्यर्थ की बातों में चला जाता है। फिर उसको यह संयोग मिलता भी नहीं।

रोग के रूप में मौत आँखें दिखा रही है, फिर भी मानव सोता रहता है, कितनी मूर्खता है। सोने में भी कारण है, सन्त अपराध। गौरहरि ने अपनी माँ तक को भी क्षमा नहीं किया, सन्त का मन से भी बुरा सोचना अपराध है। जितना सन्तों में मन से प्यार होगा, उतना ही नाम में रुचि होगी। भार समझकर नाम लेना कई जन्म करवा देगा। नाम से विरह होना चाहिए। यही अवस्था मन की परीक्षा करवा देती है। इसका आशय है, अभी भी मन संसार से जुड़ा हुआ है।

श्रीगुरुदेव दिल्ली में आ रहे हैं, मैं भी दर्शनार्थ जाऊँगा। यदि आप भी वहाँ रहें तो सूचित करने की कृपा करें, ताकि भजन की बातें आपसे हो जायें। वहाँ जाने से गुरुदेव की कृपा बरसेगी, तो भजन विरहमय होगा। आपका दर्शन, स्पर्श व वार्तालाप हो सकेगा।

बुढ़ापा व्याप रहा है, शरीर लड़खड़ा रहा है, अब अपनत्व आपसे व ठाकुर जी से ही होने में लाभ है। यह घर परिवार छोड़कर जाना ही है, तो इनसे अपनत्व करना भारी नुकसान है। हालांकि परिवार के लोग भक्त हैं, फिर भी खून का रिश्ता होने से फँसावट हो सकती है।

25

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 15/07/2006

परमादरणीय श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम, तथा चतुर्मास में तीन लाख हरिनाम करने के लिए शक्ति प्रदान करने की चरण स्पर्श कर प्रार्थना।

कल मौत आयेगी

प्रभु का प्रेमसहित विरहमय भजन नहीं होता। इसका मुख्य उपाय निम्नलिखित है–

1. भक्त, भगवान् और स्वयं की कृपा का अनुभव महसूस करते रहना।

2. मौत को सिर पर मंडराते हुए मन से महसूस करना।

इसके अलावा भजन में रुचि होने का तीसरा उपाय हो ही नहीं सकता।

राजा परीक्षित को मालूम पड़ गया था कि मृत्यु आने में सात दिन ही हैं, अतः उनको बेचैनी हो गयी कि भजन तो हुआ ही नहीं, उद्धार कैसे होगा ? तब उन्हें एकदम संसार से वैराग्य हो गया तथा पूर्ण रूप से उनका मन भगवान् में लग गया।

हमारा मन इसीलिए नहीं लग रहा है, क्योंकि हम सोचते हैं कि, मौत अभी बहुत दूर है, अतः संसार में फँसावट रहती है। जब तक फँसावट रहेगी, वैराग्य होगा ही नहीं।

अतः ऐसा विचार करके महसूस करना होगा कि कल का भी पता नहीं है कि मैं जीवित रहूँगा भी या नहीं ? तब ही मन संसार से हट सकता है।

जब फाँसी का तख्ता सामने हो तो फांसी पर चढ़ने वाले का मन क्या संसार में रह सकता है ? उसे तो मौत सामने दिखाई देती है, वह कुछ नहीं चाहता। वह तो यही चाहता है कि मैं मौत से बच जाऊँ। भगवान् के लिए छट-पट तब ही होगी जब मौत दिखाई देगी। हरिनाम में भी मन लगेगा, सब सहारा छूटेगा तब भगवान् का सहारा होगा एवं रोएगा। भगवान् के नाम में कोई मन नहीं लगा सकता, केवल मौत के स्मरण से ही मन लग सकता है। फिर स्वयं ही नाम में मन लग सकेगा। हाँ! भक्त आशीर्वाद सहायक बन जाता है। क्योंकि भगवान् भक्त की सिफारिश मानते हैं। चर्तुमास में तीन लाख जप आवश्यक है। रात में 2.30-3.00 बजे से 6.00 बजे तक और बाद में दिन में हो सकता है। नाम ही आवागमन से छुड़ायेगा। क्योंकि यही कलियुग का धर्म है।

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपाः।
ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्यादिवर्जिताः।।
सर्वधर्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्वेऽपि धार्मिकाः।।

(पद्मपुराण से उद्धृत)

जिनकी कोई दूसरी गति नहीं है, जो भोगी हैं, दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं, ज्ञान और वैराग्य से रहित हैं, ब्रह्मचर्य-वर्जित हैं और जो समस्त धर्मों से बाहर हैं, वे केवलमात्र विष्णु तथा कृष्ण का नामकीर्तन कर जो गति प्राप्त करते हैं उस गति को सारे धार्मिकजन एक साथ मिलकर भी प्राप्त नहीं कर सकते।

26

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 09/04/2006

परमाराध्यतम प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हृदय में भगवान् के प्रति विरहज्वाला भड़कने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

चरण रज का महत्त्व

16, 32, 64 माला तथा डेढ़-दो लाख हरिनाम जपने पर तथा अष्टयाम सत्संग सुनने पर भी अन्तिम पुरुषार्थ भगवद् प्रेम तथा भगवान् के प्रति विरहाग्नि न जलने की जीवन में सबसे बड़ी हानि निम्न कारणों से धर्मशास्त्रों में अंकित है।

1. भक्त अपराध मानसिक तथा स्थूल रूप से होते रहते हैं।
2. हरिनाम कान से सुनकर नहीं होता है।
3. असत् संग, ब्रह्मचर्य व्रत त्याग, संसारी आसक्ति।
4. जीवमात्र में दया का अभाव।

उक्त मुख्य चार कारणों से ठाकुर जी तथा सन्तों के प्रति प्रेम सम्बन्ध नहीं होता।

भक्त तथा भगवान् से प्रेम कैसे अंकुरित होता है, उसका सरलतम उपाय निम्नलिखित है, जो शास्त्रों तथा सच्चे भक्तों से प्राप्त होता है।

भक्त पद रज + भक्त पद जल + भक्त अवशेष प्रसाद + भक्त सेवा – (वाचिक, मानसिक तथा प्रत्यक्ष रूप में)

उक्त का स्थूल रूप है कि उनके आचरण तथा उपदेशानुसार जीवनयापन करना।

सूक्ष्म रूप है, कि साक्षात् रूप में भक्त की चरण रज सिर पर तथा सारे शरीर पर लगाना। इसी प्रकार चरण जल को मुख में डालना तथा भक्त अवशेष प्रसाद को सेवन करना। परन्तु, गुप्त रूप से, जिस भक्त के प्रति अपराध हुआ है उसे मालूम न पड़े। यदि मालूम होगा तो उसको दुःख होगा तो दुगना अपराध हो जाएगा।

इसका साक्षात् उदाहरण नीचे लिखा जा रहा है, जो ध्यान पूर्वक मनन करे।

1. श्रीउद्धव जी भगवान् से कह रहे हैं कि वृन्दावन में कहीं भी गोपियों के आस-पास मुझे वृक्ष, लता कुछ भी बना दो, ताकि हवा चलने पर गोपियों की चरणरज मेरे ऊपर पड़ती रहे तो मैं पवित्र होता रहूँगा।

2. भक्त प्रह्लाद की उक्ति- जब तक महत् पुरुष के चरण-रज से अभिषेक नहीं होगा, तब तक जीव का उद्धार कदापि नहीं होगा।

3. श्रीगंगाजी की भगवान् के प्रति प्रार्थना- हे प्रभु मेरे जल में पापी लोग स्नान कर पाप को मेरे अन्दर छोड़ जाएंगे तो मैं तो पापिनी हो जाऊँगी। इसका कोई उपाय बतायें।

भगवान् ने कहा- 'जब भक्त स्नान करेंगे तब वह पाप समाप्त हो जाएगा।'

4. श्रील रूप गोस्वामी का एक भक्त के प्रति मानसिक रूप से अपराध हो गया, तब सनातन गोस्वामी ने उन्हें भण्डारा करने को कहा। भण्डारा किया। सब प्रसाद पाने आए। जिस सन्त के प्रति अपराध हुआ वे नहीं आए। सबसे पूछा गया कि कौन सन्त नहीं आये। कहा गया कि, अमुक सन्त नहीं आए। तब श्री रूप ने उनके चरणों में पड़कर निवेदन किया कि, आप प्रसाद पावें। उन्होंने आकर प्रसाद पाया तब जाकर रूप गोस्वामी जी को भगवद् लीलाएँ स्फुरित होने लगीं।

5. श्रीराम ने भीलनी के झूठे बेर खाये। क्योंकि वह स्वयं चख-चख कर खिला रही थी। भगवान् प्रेम सहित खा रहे थे। भगवान् जब कह रहे हैं कि, सन्त तथा भक्त मेरे से बड़े हैं, मेरे आराध्य देव हैं तब भक्त का झूठा प्रसाद कितना बल दे सकता है! मनन कर महसूस करें।

6. अहिल्या जी पत्थर बन खड़ी थीं तब श्रीराम जी ने अपनी चरण-रज छुवा दी, तब अहिल्या जीवित हो गई। रज का कितना प्रभाव है।

7. केवट ने राम के पैर धोकर उनका चरणामृत अपने घर पर सबको पिलाया।

8. अम्बरीष महाराज के चरणों में दुर्वासा को अपराध मार्जन के लिए जाना पड़ा।

9. श्रीकृष्ण भगवान् को सिर दर्द हो गया, तो उन्होंने नारद जी को कहा कि, यदि किसी भक्त की चरण-रज मेरे सिर पर मल दो, तो मेरा सिर दर्द मिट जाये। नारद जी बहुत जगह माँगते फिरे परन्तु अपराध तथा नरकभोग के भय से किसी ने भी अपनी चरण-रज नारद जी को नहीं दी। वापस आकर उन्होंने कहा कि, भगवान् किसी ने चरण-रज नहीं दी। तब भगवान् बोले- तुम गोपियों के पास जाओ वे शायद दे देंगी। नारद जी ने गोपियों को सब बताया, तो गोपियाँ दौड़-दौड़ के अपने पैरों की मिट्‌टी को रगड़-रगड़ के देने लगीं और कहा कि, जल्दी जाकर दे दें। हमारे प्राणनाथ तड़प रहे हैं। जल्दी जाओ! क्या नारद जी के पास उनकी खुद की चरण-रज नहीं थी ?

अन्य कई उदाहरण हैं। जिनको पत्र में लिखना असम्भव है। अतः कहने का आशय यह है कि उक्त लिखे भक्त चरण रज, जल, प्रसाद इतने प्रभावशाली हैं कि भगवान् को लाकर सामने खड़ा कर देते हैं, क्योंकि भगवान् का एकमात्र स्थान भक्तों का हृदय कमल ही है।

एक भंगी जाति का भक्त था। उसकी फैंकी हुई आम की गुठली जो कूड़े में पड़ी थी, साक्षात् भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु उसे उठाकर खा गए थे। अब इससे ज्यादा उदाहरण क्या हो सकता है ?

रामचरितमानस जघन्य अपराध का शिव का दिया हुआ दृष्टान्त–

इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। काल दंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहिं मरहि। भक्तद्रोह पावक सो जलहि।।

अपराधी उसी समय मरता नहीं वह मन ही मन घबराता रहता है। पावक लोहे को पिघलाकर द्रवित कर देता है। इसका उदाहरण है– जो श्रीवास पण्डित के घर के बाहर माँस लाकर रख देता था उसको कोढ़ हो गया, तो वह बुरी तरह से तड़पता रहता था। किसी ने उसके लिए गौरहरि से प्रार्थना की, तो गौरहरि ने कहा– 'वह करोड़ों जन्मों तक यूँ ही तड़पेगा'। गौरहरि की माँ का अपराध, जो श्रीअद्वैताचार्य के प्रति मन में हो गया था, तो गौरहरि ने अपनी माँ को भी क्षमा नहीं किया।

आप से कोई बात छिपी नहीं है, परन्तु लिखने में आनन्द आता है। सती स्त्री को पति की चर्चा जैसे प्यारी लगती है, वैसे ही तो आपका स्मरण मुझे प्यारा लगता है।

यदि अपने पुत्र के प्रति भी अपराध हो जाये तथा अपनी स्त्री के चरणों में अपराध हो जाये तो उसका भी मार्जन करना परमावश्यक है। क्योंकि ये भी भक्त श्रेणी में आते हैं। यदि ये भक्त न हों तो कोई अपराध नहीं होता।

श्रीगुरुदेव की जो प्रार्थना है, **'हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु करुणा कीजिए'**– यह प्रार्थना गोरखपुर में जो कल्याण के सम्पादक हैं, जो मेरे जानकार थे उन्होंने लगभग, 40 साल पहिले मेरे से लिखवाकर ली थी। उन्होंने इस प्रार्थना को किसी पुस्तक में भी छपवाया था। आपने मुझसे एक दो बार पूछा भी था कि यह प्रार्थना आपने रची है क्या ? पहले तो मैं बताना नहीं चाहता था, परन्तु बार–बार पूछने पर मैंने बता दिया। मैंने यह गुप्त प्रार्थना किसी को नहीं बताई थी। क्योंकि बताने से भजन ह्रास हो जाता है। मैंने बचपन में लगभग

500 भजन लिखे हैं, जो गुप्त ही रखता हूँ। केवल मात्र आपके चरणों में ठाकुर जी ने प्रेरित कर बताया है। कुछ प्रार्थना आपके चरणों में अर्पण कर रहा हूँ, कृपया अंगीकार करें।

प्रार्थना

शिशु हूँ गौर मैं आदिजन्म का तुम्हारा।
सुना है तू है दया का भण्डारा।।
जो निजकर्म से होता तरने का सहारा।
तो फिर ढूंढ़ता क्यों सहारा तुम्हारा?
इस पामर की नजरों में जब तुम आए,
उसी क्षण में तरने का हो गया सहारा।
इस दुःखिया की बिनती सुनो मेरे बाप!
अनिरुद्ध दास शिशु है प्यारा तुम्हारा।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी द्वारा प्रस्तुत 'हरिनाम चिन्तामणि' चतुर्थ परिच्छेद, श्लोक 70,71,72 से उद्धृत)

भक्ति लभिवारे आर नाहिक उपाय।
भक्ति लभे सर्वजीव वैष्णव कृपाय।।
वैष्णव-देहेते थाके श्रीकृष्णेर शक्ति।
सेइ-देह-स्पर्शे अन्ये हय कृष्णभक्ति।।
वैष्णव-अधरामृत आर पद-जल।
वैष्णवेर पदरजः तिन महाबल।।

वैष्णव-कृपा को छोड़कर भक्ति को प्राप्त करने का और दूसरा कोई उपाय नहीं हैं। वैष्णव की कृपा से ही जीवों को भक्ति की प्राप्ति होती है। वैष्णवों के देह में श्रीकृष्ण-शक्ति रहती है। ऐसे वैष्णवों को स्पर्श करने से भी श्रीकृष्ण में भक्ति उदित हो जाती है। वैष्णवों की जूठन, वैष्णवों के चरणों का जल तथा वैष्णवों के चरणों की धूलि-'ये तीनों ही भक्ति की साधना में महाबल प्रदान करते हैं।

27

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 20/07/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार दण्डवत् प्रणाम तथा चतुर्मास के अनुष्ठान में सुचारु रूप से हरिनाम जप पूरा होने की करबद्ध प्रार्थना।

अश्रु बिन्दु के लेख

शास्त्र व सभी भक्तगण कहते हैं कि अपना भजन छिपाकर रखना चाहिए। वास्तव में कहना तो ठीक है, परन्तु इसमें भी अपवाद है। जिसके सिर पर काल मण्डरा रहा हो, सामने दुःख सागर उमड़ता दिख रहा हो, जिसका दूसरों का हित करने का अन्तःकरण से भाव हो, तो क्या उसके भजन का कोई कुछ बिगाड़ कर सकता है ? क्या प्रतिष्ठा उसके सामने आएगी ? क्या धन-वैभव उसे ललचायेगा ? जो फाँसी के तख्ते पर जा रहा हो, क्या उसे संसारी वैभव सता सकता है ?

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, श्रीरामानुजाचार्य हैं। इनके गुरुदेव ने मंत्र देकर आदेश दिया था कि इस मंत्र को छिपाकर रखना।

रामानुजाचार्य जी ने पूछा, क्यों महाराज!

श्रीगुरुदेव ने कहा- इससे भगवान् के दर्शन हो जाएँगे। यदि इस मंत्र को न छिपाया तो नरक भोग करना होगा।

रामानुज ने दूसरों के हित की भावना से छत पर जाकर जोर-जोर से सबको यह मंत्र सुना दिया।

श्रीगुरुदेव ने कहा- 'यह तुमने क्या किया ?'

रामानुज ने कहा- 'दूसरों को भगवान् के दर्शन हो जायें, तो उत्तम ही है। चाहे इसके बदले, मैं नरक क्यों न चला जाऊँ!'

श्रीगुरुदेव ने कहा– जब तुम्हारा जीवों के प्रति ऐसा भाव है, तो तुम नरक में कभी जा ही नहीं सकते। जिसका दूसरों के प्रति अन्तःकरण में हित करने का भाव है, उसका संसार क्या बिगाड़ सकता है ? उसे तो सभी को अपना भजन भाव बताने में कोई हर्ज नहीं, क्योंकि बताने से दूसरे भी वैसा भजन करना चाहेंगे।

फिर भी पात्र को बताना ही श्रेयस्कर होगा, हर किसी को बताने से कोई लाभ नहीं है। भैंस के आगे बीन बजाना निरर्थक ही है।

ठाकुर जी जैसी प्रेरणा करते हैं, उसी प्रेरणा से आपकी सेवा करने का मौका मुझे देते हैं। वह सेवा केवलमात्र हरिनाम में मन लगाने की है तथा नाम में विरहाग्नि कैसे प्रज्वलित हो, ऐसी सेवा मुझसे करवाते हैं। अतः चाहे इसे मेरी बुद्धि समझें, या भगवान् बुद्धियोग देते हैं, ऐसा समझें। जैसा कि गीता में भगवान् ने अर्जुन को बोला है कि– मैं बुद्धियोग देता हूँ!

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(श्रीगीता10.10)

जो प्रेमपूर्वक निरन्तर मेरा भजन करते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान तथा बुद्धि प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा वे मुझ तक आ सकते हैं।

जीव का अन्तिम प्रयोजन यह है कि, केवल हरिनाम से विरह हो जाये। विरहाग्नि भौतिकता को जला कर राख कर देती है। कान से सुनने में थोड़ी कठिनाई आती है, अतः ठाकुर जी ने सरलतम रास्ता यही बताया है कि, 'मैं भक्त के हृदय रूपी गुहा में हरदम रहता हूँ, अतः भक्त के चरणों में पड़कर मुझे याद किया जाये तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आकर विरह जागृत कर देती हैं। मुझे तो कभी देखा नहीं परन्तु मेरे भक्त को तो पुस्तकों में देखा भी है, तो भक्त के चरणों में मन अधिक देर तक टिकेगा।'

जहाँ मन स्थिर होगा, वहाँ रोना अवश्य आयेगा। रोने से ठाकुर दर्शन होने लगेगा तो अधिक रोना प्रकट होगा। वियोग और संयोग दोनों में ही रोना आने लगेगा।

बच्चा जब रोता है तो माँ शीघ्र भागकर गोद में ले लेती है, तो भी शिशु रोना बन्द नहीं करता। ऐसा क्यों ? 'माँ ने इतनी देर के बाद मुझे क्यों सम्भाला' प्रेम के कारण रोने का ही यह दूसरा रूप है। जब रोना नाम से नहीं होगा, तो समझना चाहिए कि अभी रास्ता बहुत दूर है। जन्म-मरण के चक्कर से छूटने में देरी है। सब सन्तों के चिन्तन से ही, केवल मात्र उनके अवलम्बन से ही भगवान् मिलेगा। अखिल ब्रह्माण्डों में दूसरा कोई रास्ता नहीं है और बाकी सब रास्ते तो विडम्बना मात्र ही हैं। अनन्त संत हैं। सत्युग, द्वापर, त्रेता, कलियुग के किसी भी सन्त के चरणों की रज का (मानसिक रूप से) स्नान करलो, सन्तों की कमी आएगी ही नहीं।

यह सब मैं नहीं कह रहा हूँ, ये सब शास्त्र ढोल बजा बजाकर कह रहे हैं, परन्तु जो बहरा हो वह क्या लाभ ले सकता है ? उसको जो मानव जन्म मिला है, अन्त में बेकार चला जायेगा। उसे हरि नाम से कुछ नहीं मिलेगा, केवल भौतिक लाभ हो जायेगा। क्योंकि जीवन में जिसका चिन्तन होगा, नाम उसका लाभ कर देगा। नाम तो चारु चिन्तामणि है। नाम कल्पवृक्ष है। जो चाहोगे वह मिल जायेगा। लेकिन भगवान् नहीं मिलेगा। कभी भी नहीं।

समय नहीं है, सिर पर काल मुख फाड़े खड़ा है। कभी भी अचानक निगल जायेगा। अतः शीघ्र चेत जाना ही लाभप्रद होगा।

यदि समय मिले तो आप मेरे पर कृपा करने आ जाया करें। कभी छींड में कभी चण्डीगढ़ में, मैं वास्तव में आपकी कृपा का भिखारी हूँ। मुझ में न भक्ति है, न शक्ति है। मैं केवल ढोंगी हूँ। संसार में रमा हुआ, अनन्त अवगुणों की खान, गुण का तो मुझमें लेश भी नहीं है। यह सब लिखता हूँ, केवल मात्र ठाकुर की कृपा से, वे तो अदोषदर्शी हैं। मुझ जैसे पापी पर कृपा कर रहे हैं। क्योंकि पुत्र रघुवीर, अमरेश, हरिओम व बहुएँ सच्चे दिल से भक्तों की सेवा व नाम जप करती हैं। अतः उन पर कृपा होने से मुझ पर भी सन्तों व ठाकुर की कृपा हो गयी। परोसी हुई थाली मुझे मिल गई। अब मैं क्यों न उसका भोजन करूँ! वास्तव में सच्चे दिल से कह

रहा हूँ। वरना मैं तो गिरा हुआ प्राणी हूँ। रघुवीर की माँ तो ठाकुर के सामने बैठकर सुबक-सुबक कर रोती रहती है। आप मानो या ना मानो। ये सेवा का मौका मिलने से मैं भी भवसागर पार हो जाऊँगा। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। करने धरने वाला तो कोई और ही है। श्रीगुरुदेव के म्यूझियम बनाने में हम भी आप की कृपा से कुछ तुच्छ भेंट देने को योग्य हो गये हैं। जैसे ठाकुर जी की प्रेरणा होगी, जो दिलवाएंगे देना होगा। श्री भक्ति प्रचार विष्णु महाराज को मेरी ओर से प्रार्थना करना, मेरी भी तुच्छ भेंट स्वीकार करने की कृपा करें। श्रीओमप्रकाश आदि को दण्डवत्!

सन्तों के माध्यम से हरिनाम स्मरण करने से ही ठाकुर जी प्रसन्न रहते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीगौड़ीय मठ की भजन गीति। जिसमें ठाकुर से प्रार्थना न करके केवल मात्र भक्तों से भजन रति होने की प्रार्थना की गई है। अब कोई आँख, कान बन्द कर भजन गीति का पठन करे तो किसकी गलती है ? यह तो स्वयं की ही है। इसमें रामायण व भागवत तथा अन्य शास्त्र प्रमाण हैं। लेकिन नाम को जीभ से जपना परमावश्यक है।

उदाहरण स्वरूप-

1. **जीह नाम जप जागहि जोगी। विरत विरंच प्रपंच वियोगी।।**
2. **जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ। जीह नामजप जानहि तेऊ।।**
3. **पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नामजप लोचन नीरू।।**

इस तरह से जीभ से जपने के अनेक उदाहरण हैं।

आप गहराई से सोचिए, क्या गाँव का गँवार रूपी कीड़ा समुद्र को चोंच में भरकर खाली कर सकता है ? या खाली समुद्र को भर सकता है ? यह केवल भक्त चरण-रज का अमोघ प्रभाव है तथा श्रीगुरुदेव की असीम कृपा का ही फल है। जो पागल भी वेद का पारगामी विद्वान् हो गया। भगवान् और भक्त को दोष दर्शन तो कभी होता ही नहीं।

जब तक विरहाग्नि नहीं जलती तब तक कहीं न कहीं गलती हो रही है। मैं तो समझता हूँ, इसमें कहीं न कहीं मोह छिपा हुआ

है। यदि मन कहीं भी न हो तो फिर मन कहाँ टिकेगा ? **जब मोह कहीं नहीं है, तो मन को टिकने की जगह केवल भक्त और भगवान् ही होंगे।** मोह इतना सूक्ष्म है कि पता नहीं पड़ता। यह अहंकार का ही रूप है यह मेरापने का ही छायामात्र है। यह भक्त और भगवान् के चरणों में अवलम्बन की ही कमी है। जब तक पूर्ण शरणागति (अवलम्बन) नहीं होगी, तब तक तीव्र विरहाग्नि बुझी ही रहेगी। जब मोह चला जाएगा, तब स्वतः ही नाम से विरहाग्नि प्रज्वलित हो पड़ेगी। समय निकल रहा है। शीघ्र चेत जाना चाहिए। मैं आपको नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल आपके मुखारविन्द से ये अमृतवाणी अन्यों को सुनाने के लिए कह रहा हूँ।

विरह सागर में गोता लगाकर ही कुछ पाया जा सकता है। बाकी और सब तो विडम्बना मात्र है। हीरे, मोती, पन्ने आदि नग रत्न विरहसागर के पैंदे में ही मिला करते हैं। मैं जो चुन-चुनकर माला पिरोता हूँ उस माला को ठाकुर जी बड़े प्रेम से गले में धारण करते हैं। वही माला ठाकुर जी आप पर कृपा वर्षा करने के लिए आपके पास भेजते रहते हैं। मेरा कल्याण करने के लिए आप परमहंस निष्किंचनता की मूर्ति के पास सेवा कराने हेतु मेरे द्वारा भेजते रहते हैं। यह सेवा ही मेरा अनमोल धन है। अश्रु बिन्दुओं की स्याही से यह लेख लिखे जाते हैं।

अश्रु बिन्दु कोई साधारण जल नहीं है, यह ठाकुर जी के कलेजे का सन्तप्त जल है, जो प्रेम का प्रतीक है।

शीघ्र विरहाग्नि जलने के लिए प्रसाद सेवन युक्ति है। जब प्रसाद सामने आये, तो नमस्कार कर ऐसी भावना करें कि इस अमृत प्रसाद को मेरे ठाकुरजी ने पाया है। बाद में मेरे गुरुदेव ने और अन्य भगवद् प्रेमियों ने पाया है। अर्थात् यह चिन्मय है। अब मैं पाऊँगा तो मैं भी चिन्मय हो जाऊँगा। मौन होकर नाम जपते हुए प्रसाद पा लेना चाहिए तथा पानी भी ठाकुर को पिलाकर पीना चाहिए, तो एक हफ्ते में थोड़ा बहुत विरह होने लग जाएगा। बाद में जोरदार विरह होगा। **यह युक्ति ठाकुर जी ने ही बताई है।**

28

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 26/07/2006

महामहिम आचार्य श्रीश्री 108 श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज का अलौकिक चरित्र

महाराज जी अवतारी दिव्य पुरुष हैं। जब मेरे गुरुदेव 20 नवम्बर 1952 को जयपुर मन्दिर में पधारे थे, तब मैंने महाराज जी के प्रथम बार दर्शन किये।

जयपुर में सोमी हलवाई की धर्मशाला में श्रीगुरुदेव ठहरे हुए थे। मैंने देखा व महसूस किया कि दोपहर में प्रसाद लेकर सभी आराम किया करते हैं लेकिन महाराज विश्राम न कर अकेले माला जपा करते थे। एक दिन डरते-डरते मैं इनके चरणों में पहुँच गया एवं कुछ भजन पद्धति के बारे में जिज्ञासा की। महाराज जी ने बड़े प्रेम व प्रसन्नता से हरिनाम जपने का तरिका बताया। तब से मैं महाराज जी को जानता हूँ। जब ये ब्रह्मचारी वेष में थे, तब उनका नाम था कृष्णवल्लभ ब्रह्मचारी एवं वर्ण भी शरीर का था श्याम।

जब मेरे श्रीगुरुदेव जी की कृपा महाराज पर बरसी तो महाराज जी के शरीर का वर्ण हो गया गौर! श्रीगुरुदेव जी ने अपने शरीर का चोला महाराज जी को पहना दिया। श्रीगुरुदेव मुझे हर माह पत्र देकर कृपा करते रहते थे, तो वह पत्र श्रीतीर्थ महाराज जी के हाथ का लिखा हुआ प्राप्त होता था। मेरे गुरुदेव नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिया करते थे। बहुत सी लिखने की बातें हैं, लेख बढ़ने का डर है।

ठाकुर जी की प्रेरणा से, जो ठाकुर जी लिखवा रहे हैं, लिख रहा हूँ।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि।।

उक्त श्लोक महाराज जी में शत–प्रतिशत दृष्टिगोचर होता है।

मानसिक आन्तरिक शत्रुओं को भगवद्कृपा से विरले ही जीव जीत पाते हैं। क्रोध को जीतना असम्भव है। लेकिन महाराज जी में क्रोध की झलक भी कभी जीवन में नहीं देखी गयी। विपरीतता में भी महाराज में प्रेम ही देखा गया है। छोटे से छोटे को सम्मान देना, बच्चे की तरह पूछना कि, क्या करना चाहिए ? यह हृदय में खलबल मचा देता है। मेरे पर महाराज जी की अपार करुणा व कृपा है। अयोग्य व मूर्ख होते हुए भी मुझसे पूछते हैं, क्या मुझे स्टेज पर भाषण देने को चलना है। मेरा दिल चूर–चूर हो जाता है एवं दिल चाहता है कि, मैं इनके चरणों में लिपट कर रोता रहूँ। महाराज जी में कितनी विशेषता है, मेरा पत्थर दिल भी दण्डवत् करते समय रोये बिना नहीं रहता। महाराज की याद आज भी मेरे दिल को जलाती रहती है। मेरे गुरुदेव के दर्शन महाराज जी में प्रत्यक्ष रूप से होते हैं। मेरे गुरुदेव का तन का चोला महाराज जी पहने हुए हैं।

जब तक मैं जीऊँगा तब तक महाराज की चरणों की याद में रोता ही रहूँगा। अब भविष्य में महाराज जी 'छींड की ढाणी' में नहीं पधारेंगे। मैंने महाराज के चरणों में पड़कर रोते हुए प्रार्थना की थी, कि महाराज जी अब मैं भविष्य में अपना जीवन कैसे बिताऊँगा आपके पदार्पण बिना ?

महाराज जी ने मुझे बच्चे की तरह पुचकारकर कहा था कि, मैं अवश्य आऊँगा, तुम चिन्ता क्यों करते हो! मैंने रोकर प्रार्थना की, कि आपने संसार को प्रेमभक्ति उपहार में दान की। मुझे रोता ही रख दिया। भजन बनता नहीं है। महाराज जी ने करुणा में भरकर सिर पर हाथ रखा और कहा– भजन तुम्हारा हो रहा है और होगा। प्रेम से हरिनाम करते रहो। महाराज जी की कृपा से ही गाड़ी चल रही है, मैं तो विषय कूप में पड़ा–पड़ा महाराज जी की चरण–रज चाहता रहता हूँ।

महाराज जी तो करुणामय अवतार हैं, मैं ही कुपात्र हूँ, जो करुणा लेने में भी असमर्थ हूँ।

बस, मुझे तो एक ही सहारा मिल गया है, महाराज जी की याद में रोना। रोना ही मेरे जीवन का साथी है। रोने में ही महाराज जी के दर्शन सुलभ हैं।

कलियुग पावनावतारी भगवान् श्रीगौरसुन्दर जी के अत्यन्त प्रियतम स्वरूप, श्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी को मैं नमस्कार करता हूँ। आप मायावाद रूपी असत् शास्त्रों का भक्ति के विशुद्ध सिद्धान्तों द्वारा खण्डन करने वाले हैं। आप हमेशा ही अपने गुरुजी से सुनी दिव्य वाणी का ही अनुकीर्तन करते रहते हैं। पश्चिमी देशों में अर्थात् विदेशों में भी आप भगवद्-भक्ति का उपदेश देते रहते हैं। आपका चेहरा हमेशा प्रसन्नता से खिला रहता है। आप शुद्ध-भक्ति की गंगा को प्रवाहित करने वाले हैं। हे शुद्ध भक्ति के भागीरथ! आप श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी के ही अभिन्न स्वरूप हो। आपको मेरा नमस्कार है। श्रीहरिनाम-संकीर्तन के द्वारा ही अखिल-रसामृतमूर्ति, नन्द-नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण जी के नाम, रूप, गुण, लीला व धाम आदि के अमृत रस का महामधुर रसास्वादन करने एवं करवाने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के मूर्त स्वरूप व उनकी दिव्य-ज्ञान-परम्परा में स्वयं आचरण करके शिक्षा देने वाले, हे आचार्य आपको मैं नमस्कार करता हूँ। भगवान् श्री गौरहरि के मधुर रसमय नाम का निरन्तर प्रचार करने से जिनका कोमल हृदय उस दिव्य नाम-रस से भरा हुआ है, जो हर समय भगवान् के भक्तों की सेवा करने की ही आकांक्षा करते रहते हैं तथा अपने गुरु-भाइयों से जिनको बहुत प्यार है, जो अपने प्रत्येक गुरु-भाई के प्रति सद्भाव रखते हैं ऐसे श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज रूपी महापुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ।

29

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 5/08/2006
एकादशी

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा चर्तुमास निर्विघ्न सम्पूर्ण होने की असंख्य बार प्रार्थना।

ठाकुर श्रीविग्रह के दर्शन से भगवद्–चरण प्राप्ति

ठाकुर जी के दर्शन दो प्रकार से हुआ करते हैं।

ठाकुर झाँकी–

जो भक्त की चर्म आँखों से (जड़ दर्शन) हुआ करते हैं। पुजारी जी जैसा ठाकुर को वस्त्र अलंकार परिधान आदि से तथा फूल पत्रादि से सजाकर भक्तों को झाँकी कराते हैं। भक्त केवलमात्र ऊपर से ठाकुर झाँकी करता है। अर्थात् थोड़ी देर तक झाँक कर मन्दिर से बाहर आ जाता है। बाहर आने के बाद उसको श्रीविग्रह की याद भी नहीं रहती। जब कोई पूछता है कि– ठाकुर जी कैसी पोशाक पहने हुए थे? तो उत्तर मिलता है, 'यह तो मैंने देखा नहीं!' यह है ऊपरी दर्शन, इससे सुकृति तो होती है, परन्तु ठाकुर से लगाव नहीं रहता।

ठाकुर दर्शन–

यह होता है, मन की आँखों से। भक्त एकाग्रता से चरण से लेकर मस्तक तक ठाकुर जी का दर्शन करता है। वह ऐसा चिन्तन करता है कि, 'ठाकुर जी मेरी ओर प्रेम दृष्टि से निहार रहे हैं। कुछ मुख पर मुस्कुराहट भी महसूस कर रहे हैं, कुछ मूक होकर मेरे से

कुछ कहना चाह रहे हैं।' भक्त अपने मन के भावों को ठाकुर जी को मूकता से बता रहा है कि– कब तक मुझे अपने चरणों से दूर रखोगे। क्या मैं आपका नहीं हूँ ? आप तो करुणा की मूर्ति हैं। क्या करुणा मुझ पर नहीं होगी ? इतना कहकर भक्त अन्दर ही अन्दर रोता है। जब रोता है, तब आकाशवाणी (हृदयाकाश में) होती है, 'क्यों चिन्ता करता है ? मैं तो तेरे पास में ही हूँ!' इसी प्रकार कई तरह के हृदय स्पर्शी उद्‌गार भक्त भगवान् के सामने प्रकट करता रहता है। कभी–कभी इतनी प्रगाढ़ता आ जाती है कि, किसी की भी शर्म न कर जोर से चिल्ला उठता है, तो उसकी पोल खुल जाती है। वह भक्त श्रेणी में आ जाता है। इससे कोई नुकसान नहीं है। क्योंकि उसका मन ठाकुर जी के पास में रहता है। अतः अहंकार का शिकार नहीं होता। इससे दूसरे भक्तों को भी लाभ हो जाता है। वह पछताने लगते हैं, कि 'इतना समय भक्ति करते हो गया, एक आँसू भी ठाकुर हेतु न आया।' मन्दिर के बाहर आने पर भक्त का मन ठाकुर जी में खिंचा चला जाता है। कभी पुलक, कभी अश्रु, कभी सुस्त हो जाता है।

ठाकुर जी पत्थर की मूर्ति नहीं हैं, साक्षात् आपको दर्शन देने के लिए विराजमान हैं। ठाकुर जी कह रहे हैं, 'क्यों भटक रहा है ? मेरे दर्शन कर, मेरी गोद में आ जा। नहीं आएगा तो बहुत योनियों में भटकता फिरेगा, जहाँ दुःख ही दुःख है। जब से बिछुड़ा है। दुःख सागर में क्यों गोते खा रहा है ?'

ठाकुर जी के दर्शन करने पर यदि अश्रुपात नहीं हुआ, तो समझो भक्त को दर्शन नहीं हुआ, केवल झाँकी हुई है। **कितनी शर्म की बात है। सारी उम्र चली गयी, अब भी ठाकुर के दर्शन से वंचित ही रहे।**

ठाकुर के असली दर्शन से सभी विपदाएँ सहज में ही चली जाती हैं। भक्त को ठाकुर जी का ध्यान भी रखना चाहिए। ठाकुर को भोग कैसा लग रहा है ? ठाकुर जी को गर्मी तो नहीं लग रही है ? सर्दी में ठाकुर जी ठिठुर तो नहीं रहे हैं ? ठाकुर जी को अच्छी

नींद आती है कि नहीं ? पुजारी की परीक्षा छिप–छिप कर करते रहना चाहिए। ठाकुर जी को सोने के लिए अच्छे गद्दे, रजाई साफ–सुथरे हैं कि नहीं ? ऐसा करने से ठाकुर जी भक्त के अधीन हो जाते हैं। स्वप्न में ठाकुर जी भक्त को अपना कष्ट कहते रहते हैं। मुझे सर्दी लग रही है। गर्मी लग रही है, प्रातः भूख लग जाती है। बिस्तर गरम न होने से नींद नहीं आती, आदि–आदि भक्त की अधीनता स्वीकार करते रहते हैं।

जहाँ ठाकुर विराजमान हों वहाँ असुविधा कैसी ? असुविधा हो तो ठाकुर जी को कहना पड़ता है– आपके विराजने पर भी यह असुविधा क्यों होती है ? ठाकुर के सामने जाकर बोलो, ठाकुर जी शीघ्र सुनते हैं। हृदय से कहने पर ठाकुर को टालना बेकाबू हो जाता है। ठाकुर तो हर समय, हर जगह विराजमान रहते हैं। फिर असुविधा क्यों ? केवल हृदय की पुकार की कमी के कारण ही।

मेरे गुरुवर्ग में कितने उदाहरण हैं। जहाँ ठाकुर जी भक्त से निहोरा करते हैं, 'मुझे भूख लगी है, मुझे गर्मी लग रही है, चन्दन लेप करो। मुझे बुखार हो रहा है, खिचड़ी बना दो।'

ठाकुर जी भक्तों से ही लीला करते रहते हैं। संसार में भक्तों से ही उनका मन लगता है। भक्त न हों तो ठाकुर जी भी दुःख सागर में डूब जाते हैं।

ठाकुर जी की क्षण–क्षण में याद आती रहे। कभी नाम जप करें, कभी शास्त्र अवलोकन करें। कभी एकान्त में बैठकर गुन–गुनायें। कभी चिन्तन में ठाकुर को पास में न पाकर रोयें। कभी ठाकुर जी को याद करें तो खिल–खिला कर हँसने लग जायें। यही है ठाकुर की क्षण–क्षण याद–स्मरण।

ऐसी अवस्था होने पर संसार याद आता ही नहीं। ठाकुर से लगाव ही उसका संसार हो जाता है।

स्वप्न में ठाकुर जी भक्त को कुछ कहते रहते हैं। भक्त को कष्ट या संकट आता है, तो यह ठाकुर जी की लीला मात्र होती है।

जो भी लिखा गया है इसका मूल है, हरिनाम को कान से सुनते रहें। कान से ठाकुर जी हृदय में जाकर भाँति-भाँति की लीला करते रहते हैं। कान से न सुनने पर ठाकुर जी हृदय में न विराजकर बाहर भ्रमण करते रहते हैं। जहाँ मन हरिनाम को ले जाता है, हरिनाम वहाँ का मंगल करता रहता है। स्वयं का मंगल तो नाम सुनने से ही होगा। सुनकर ही कोई नीचे गिरा है, सुनकर ही कोई ऊँचा चढ़कर गोलोक धाम पहुँच पाया है। अतः श्रवण का महत्व अकथनीय है।

(श्रीहरिनाम चिन्तामणि-15 वाँ परिच्छेद से उद्धृत)

हरिनाम का जप करने से अपने-आप ही बड़ी आसानी से भक्ति के अन्य अंगों का पालन हो जाता है। नाम और नामी (भगवान्) एक तत्त्व हैं, ऐसा विश्वास करके दस नामापराधों को त्यागकर जो साधक एकान्त में बैठकर भजन करता है, उस पर हरिनाम प्रभु दया-परवश होकर अपने श्यामसुन्दर रूप में उसके हृदय में प्रकाशित हो जाते हैं। जब साधना में नाम और रूप एक ही हैं ऐसा अनुभव हो जाता है, तब नाम लेने से ही हर समय भगवान् का रूप भी चित्त में आ जाता है। इसी प्रकार रूप के साथ-साथ क्रमशः गुण, लीला और धाम की भी स्फूर्ति भक्त के चित्त में होने लगती है।

30

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 9/08/2006

परमाराध्यतम प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय, श्रीगुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग बारम्बार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की असंख्यबार प्रार्थना!

हरिनाम में दिलचस्पी

आपके संग में मैं चण्डीगढ़ नहीं जा सका इसके लिए क्षमा प्रार्थना है। क्योंकि इसके कुछ कारण थे। पहला तो, मैं मेरे संग पहनने के लिए तथा काम में लेने के लिये कुछ भी सामग्री नहीं लाया था। दूसरा, जन्माष्टमी **छींड** में मनानी थी। तीसरा, धर्मपत्नी भक्त होने के नाते उसकी अनुमति लेना जरूरी रहता है, वरना अपराध होता है। रात में हरिनाम जप करते हुए सात्विक भाव इसको भी प्रभावित करते रहते हैं। मेरे अभाव में भजन स्तर गिरने का डर रहता है। चुम्बक लोहे को आकर्षित करता ही है। जैसे कोई हँस रहा हो तो सामने वाले को भी हँसी आ ही जाती है और भी कई कारण हैं, जो लेख बढ़ने से लिख नहीं सकता।

जन्माष्टमी के बाद यदि ठाकुर और आपकी कृपा हुई तो अवश्य आ जाऊँगा।

रात में हरिनाम करते हुए, ठाकुर की आकाशवाणी हृदय में हुई– श्रीगुरु महाराज अब अधिक दिन नहीं रहेंगे। अपने भजन का स्तर बढ़ाना चाहिए। Revolution होने से आप पर भी गहरा बुरा प्रभाव पड़ सकता है। भजन ही साथ देगा।

जाको राखे साइयाँ। मार सके ना कोय।।

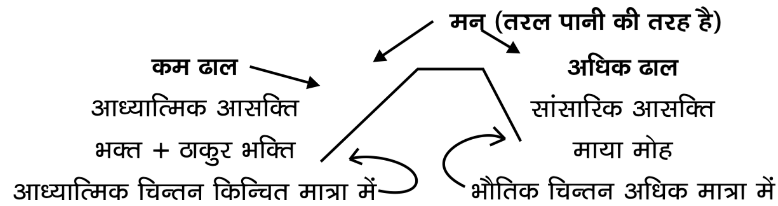
भूतकाल में भक्तों पर हुए अत्याचार भी ठाकुर जी की लीला मात्र है। उनका बिगाड़ स्वप्न में भी नहीं होता।

भगवद् प्रेम (ठाकुर) प्राप्ति का दार्शनिक सरलतम साधन मार्ग है– अपनत्व + अवलम्बन + शरणागति।

उक्त भाव जागृत होने से ठाकुर हृदय में प्रकट होंगे ही। जिस प्रकार स्तन पीता शिशु अपनी माँ में यही भाव रखता है, तो माँ बेबस होकर शिशु का लालन पालन रक्षादि करती ही है। आत्मा परमात्मा का शिशु ही तो है।

कहते हैं, मन वश में नहीं है। पत्र लिखते हुए तथा जिस काम में दिलचस्पी होती है, वहाँ मन कैसे रुक जाता है।

इसका एक ही अर्थ है कि हरिनाम में दिलचस्पी नहीं है। इसका महत्व समझ में नहीं आया। मन पानी की तरह है। उदाहरण स्वरूप–



यदि ऊपर वाले तीनों भाव मन में प्रकट हों, तो मन स्वतः ही ठाकुर की तरफ बहेगा। क्योंकि हृदयरूपी जमीन का ढाल अधिक रहेगा तो संसारी आसक्ति का ढाल कम हो जायेगा। जल ऊपर से ही बहता है, जहाँ अधिक ढालू जमीन होती है।

अब प्रश्न उठता है, कि उक्त तीन भाव कैसे प्रकट हों? यह न सत्संग से होगा, न शास्त्र पढ़ने से होगा, न अपनी शक्ति से होगा। यह होगा केवल मात्र हरिनाम को कान से सुनेंगे तब। कान से हरिनाम बीज हृदयरूपी जमीन पर गिरेगा तो विरहरूपी जल से सिंचित होकर अंकुरित हो जायेगा। फिर बड़ा होकर अपने स्वरूप में आ जायेगा। अर्थात् कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। आकर्षण होने से विरहाग्नि अधिक प्रज्वलित होगी तो तीनों भाव स्वतः ही आ जायेंगे।

अपनत्व + अवलम्बन + शरणागति प्रकट होने से संसार हमेशा के लिए छूट जायेगा। भगवद् चरण प्राप्त हो जायेंगे। यह सब अपनी शक्ति से नहीं होगा। यह शक्ति गुरुवर्ग के चिन्तन के द्वारा प्रार्थना करने से प्राप्त होगी। इसमें नारद जी, शिव जी, सनकादिक, नव योगेन्द्र, माधवेन्द्रपुरी आदि हैं। यह भी हरिनाम की कृपा से ही होगा। हरिनाम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ सुलभ हो जाते हैं। हरिनाम को कान से सुनना ही उक्त विधान की शुरुआत है। कान से न सुनने से केवल सुकृति होगी। भाव प्रकट नहीं होंगे।

एक साधारण सी बात है। कान से सुन–सुनकर संसार में फँसावट हुई है। ऐसे ही सत्संग सुनने से भगवान् में फँसावट होगी। यह तो अकाट्य दार्शनिक सिद्धान्त ही है। हरिनाम को कान से सुनना, यही वास्तविक सच्चा संग तथा सत्संग है।

3 लाख जप अपनी शक्ति से नहीं हो सकता। इसके पीछे गुरुवर्ग, भक्त कृपा तथा ठाकुर कृपा उत्साहित करती रहती है। यदि ऐसा नहीं होगा तो अहंकार का शिकार होकर जप छूट जायेगा। विरह प्रकट नहीं होगा। जब तक विरह नहीं होगा, तो समझिए कान में नाम गया ही नहीं। नाम बाहर ही उड़ता रहा। हृदय में नाम तब ही अंकुरित होगा जब कान द्वारा प्रविष्ट होगा।

सुमिरन का अर्थ है– मन + कान का संयोग। दो का संयोग तीसरी वस्तु प्रकट करता है। यह दार्शनिक सिद्धान्त है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

हरिनाम जप करने के लिए सभी सन्त प्रवचन में कहते रहते हैं, परन्तु जो कि असली बीज केवल हरिनाम ही है, इसे किस प्रकार जपना चाहिए, यह कोई सन्त नहीं बताता।

लेकिन शिव जी उमा को हरिनाम की महिमा बताते रहते हैं।

1. जाना चहिए गूढ़ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
2. पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।
3. जाको नाम जप एकही बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
4. जीह नाम जप जागहि जोगी। विरत विरंच प्रपंच वियोगी।।

शास्त्रों में अनेक उदाहरण हैं, परन्तु अभागा मानव आँख बन्द कर चलता रहता है। एवं सारी जिन्दगी मार्ग भटककर निकाल देता है। कितनी नुकसान की बात है। यदि अब भी चेत हो जाये तो सब कुछ प्राप्त कर सकता है। क्योंकि मौत को बहुत दूर की समझ रहा है। एक क्षण में मौत आ सकती है, यदि ऐसा समझलें तो स्वतः ही मन से भजन होने लग जाये, जैसे परीक्षित् महाराज को अनुभव हुआ।

भजन के बिना वैराग्य नहीं होता, यह प्रकट तब होगा, जब हरिनाम को कान से सुना जायेगा। विरहाग्नि संसारी आसक्ति को जलाकर भस्म कर देती है। वैराग्य स्वतः ही प्रकट हो जाता है।

यश चाहने पर सब मलियामेट हो जाता है। ठाकुर दूर भाग जाते हैं, ठाकुर जी से नजदीक कोई नहीं एवं ठाकुर जी से दूर भी कोई नहीं। आस्तिक के नजदीक है तथा नास्तिक से बहुत दूर है।

जब मौत आयेगी तब कुछ न कुछ रोग लायेगी। फिर भजन दूर भाग जायेगा। जब तक शरीर निरोगी है, भजन स्तर बढ़ाते रहना चाहिए। वरना बाद में पछताना ही पड़ेगा। संसार आसक्ति साथ ले जायेगा। चौरासी लाख योनियों में घूमता रहेगा, जैसे राजा भरत हिरन बन गये!

भक्ति हृदय में विराजमान होगी तो भविष्य में भी मंगल करेगी।

प्रजा हेतु वात्सल्य

जब राम वनवास से अयोध्या पधारे तो प्रजागण से उन्होंने कहा कि आप मुझे राजा बनाएँगे, अतः शाम को सभा में आ जाना। ऐसा ढिंढोरा अयोध्या में पिटवा दिया।

सभी प्रजा दरबार में इकट्ठी हुई। वहाँ राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न व सभी सपरिवार मंच पर बैठे।

तब हाथ जोड़कर श्रीराम ने प्रजा से कहा कि आप मुझे राज पदवी दे रहे हैं, मैं आपका नौकर बनकर लालन-पालन तथा रक्षा करूँगा।

लेकिन मेरे से भी कोई गलती हो जाये तो मुझे निःसंकोच कह देना, डरना नहीं।

इससे प्रजा में हाहाकार मच गया कि श्रीराम कैसी छोटी बात कर रहे हैं। इसमें ऐश्वर्यभाव की झलक भी नहीं थी।

जब प्रजा उठकर जाने लगी, तो फिर राम ऐश्वर्यभाव में बोलने लगे कि, देखो! सुनो! मैं एक सार बात बोल रहा हूँ। आप ध्यान देकर सुनना। प्रजा हाथ जोड़े खड़ी रही। राम ने कहा-

मार्मिक बात-

मम गुण गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
ताकी करुं सदा रखवारी। जिमि बालक राखहिं महतारी।।

प्रजा ने यह सुनकर फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया। राम ने कहा- सभी अपने-अपने घर जाओ, कोई दुःख हो तो मुझे आकर सुना देना। यह है प्रभु की कृपा!

31

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/12/2006

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण कमल में अधमाधम दासानु-दास अनिरुद्ध दास का अनन्त बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा विरहाग्नि प्रज्वलित होने की चरण स्पर्श सहित प्रार्थना!

अति सर्वोत्तम सार चर्चा

परमात्मा ने ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यंत सभी जीवात्मा अपने से प्रकट किए, अतः वह सभी जीवों के माँ बाप बने। सभी चर-अचर जीव रिश्ते से उनके पुत्र हुए। जिनमें मनुष्य को स्वयं के जैसे प्रकट किया तथा वह बुद्धिशील बने। उन्होंने सभी जीवों के लिए अनन्त ब्रह्माण्डों की सृष्टि की रचना की ताकि ये जीव अपने कर्मानुसार भ्रमण करते हुए इनमें वास करते रहें।

परमात्मा के केवल मात्र दो प्रकार के ही पुत्र हैं-

1. आस्तिक, 2. नास्तिक।

आस्तिक अपने पिता परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है। दूसरा, नास्तिक अपने पिता परमात्मा की आज्ञा पालन न करके निरादर करता है। अतः यह कपूत बेटा है। इसे परमात्मा तरह-तरह के दुःख सागरों में डालकर मायारूपी त्रिगुणों से तपाता रहता है। सपूत पुत्र (भक्त) को परमात्मा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी चारों पुरुषार्थों का सुख दान करता रहता है। इन पुत्रों को कपूत पुत्र दुःख देते हैं, तो परमात्मा को सहन नहीं होता। परमात्मा उन्हें दुःखालय रूपी अग्नि में जलाता रहता है।

शिव वचन-

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। कालदण्ड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहीं। भक्त द्रोह पावक सो जरहीं।।

पावक वह प्रचण्ड अग्नि है जो पत्थर और लोहे को पानी बनाकर पिघला देती है। सारी जिन्दगी वह दुःख से पीड़ित रहता है।

अब यदि यह कपूत पुत्र किसी सपूत पुत्र (भक्त) से किसी प्रकार संयोग से सम्बन्ध बनालें तो यह कपूत पुत्र भी परमात्मा का आज्ञाकारी होकर सुख सागर में गोता लगा कर सदा के लिए अपने पिता परमात्मा की गोद में खेलने को चला जाय, पीने को अमृत सागर को प्राप्त करले।

सपूत पुत्रों (भक्तों) में भी कई श्रेणियाँ हैं–

1. **योगी तपस्वी–** जो ज्योति का ध्यान कर दुःखों से छूटना चाहता है तथा अपने पिता परमात्मा से मिलना चाहता है।

2. **कर्मी भक्त–** जो अपने सारे कर्म अपने पिता भगवान् को समर्पण कर देता है। सभी कर्म भगवान् के लिए करता है।

3. **ज्ञानी–** जो अहम् ब्रह्मास्मि, मतलब मैं भी ब्रह्म ही हूँ, ब्रह्म में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार से निर्गुण अवस्था प्राप्त करना चाहता है।

4. **साधु–** जो अपनी साधना में लगा रहता है कि, मैं इस साधन से परमात्मा को प्राप्त कर लूँगा। आवागमन से (जन्म–मृत्यु के चक्र से) छूट जाऊँगा।

5. **सन्त–** जो अपनी दसों इन्द्रियों को वश में कर अपनी साधना में लगा रहकर भगवान् को प्राप्त करना चाहता है।

6. **भक्त–** जो भगवान् के चरणों में आसक्त रहता है। शरणापन्न होकर अपना जीवन यापन करता है। जैसे पाण्डव आदि।

7. **रसिक भक्त–** जो अपनी रसना से भगवद्गुण गा–गाकर भगवान् को रिझाता रहता है। जैसे वृन्दावन में स्थित श्रीबाँकेबिहारी के प्राकट्यकर्ता स्वामी हरिदास जी।

8. **विरही भक्त–** जो रोने में ही मस्त रहता है, रो–रोकर भगवान् को अपने हृदय कमल पर विराजमान रखता है। जैसे भीलनी (शबरी), गोपी।

9. पागल भक्त– यह परमहंस तथा तुरीय अवस्था को प्राप्त है। इसका संसार से कोई लेना देना नहीं रहता। जैसे जड़भरत तथा जगन्नाथदास बाबा जी महाराज।

वैसे बहुत तरह के भक्त हैं जो भगवान् को बहुत तरह से रिझाते रहते हैं। लेकिन उक्त नौ श्रेणी के भक्त प्रत्यक्ष में नजर आते रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी चार प्रकार के भक्त बताये हैं– आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी।

परमात्मा को प्राप्त करने हेतु दो बड़ी रुकावटें हैं–

1. दस नामापराध

2. मान प्रतिष्ठा की चाह –

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद ने प्रतिष्ठा को शूकर विष्ठा (सूअर का विष्ठा) बोला है।

जब ये दोनों हृदय में होंगी तो हृदय को दूषित बनाती रहेंगी। यदि इनसे बचाव होता रहा, तो हरिनाम को कान से सुनकर एक दिन विरहाग्नि प्रज्वलित हो पड़ेगी, जिनसे अन्य जो दुर्गुणों की रुकावटें हैं वह जलकर भस्म हो जायेंगी। बस, उक्त दो कारणों को हृदय में स्थान न देवें।

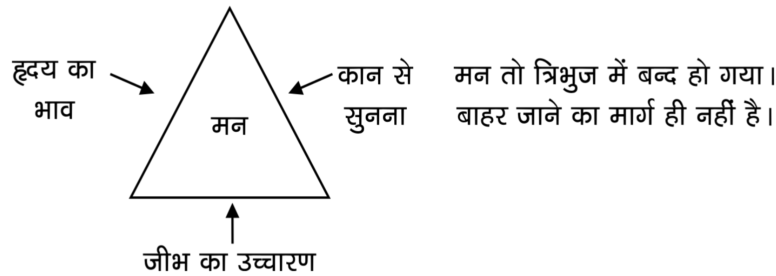
ये दो रुकावटें होने पर हाथ में माला लेना ही असम्भव हो जायेगा। भक्ति का बढ़ना रुक जायेगा। अतः मन को टटोलना चाहिए। यदि ऐसा हो तो पश्चाताप की अग्नि में जलना चाहिए। क्योंकि मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा।

संसार सम्बन्धी तथा भगवद् सेवा सम्बन्धी चिन्ता हरिनाम के सुनने में प्रमुख बाधा है।

इस चिन्ता को हटाने हेतु एक ही उपाय है। अपना सारा भार भगवान् पर छोड़ दें, जैसे द्रोपदी ने अपना तन, मन का बल गोविन्द पर छोड़ दिया था तो द्रोपदी की लाज बच गई। अपनी चिन्ता तब तक रहेगी, जब तक अपने ऊपर भार रहेगा। तब तक भगवान् भी नहीं सुनेगा। भगवान् पर भार छोड़कर तो देखें, क्या

गुल खिलते हैं! जब भी जैसी भी चिन्ता हो भगवान् को सौंपने से काम सुगमता से स्वतः ही हो जाता है।

उक्त साधन करने से, नाम को कान सुनेगा। जब कान से सुना जायेगा तब ही प्रेमांकुर हृदय में अंकुरित होगा। जब प्रेम अंकुरित होगा तब ही भगवान् के लिए रोना प्रकट होगा। रोए बिना भगवान् कृपा नहीं करेंगे। रोना नहीं आता तो समझना होगा, मन संसार में फँसा पड़ा है। मन में एक ही वस्तु रह सकती है, चाहे संसार-चाहे भगवान्! एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकतीं।



जीभ + कान + भाव- तीनों ही मन के आश्रित हैं। बिना मन तीनों का संचालन हो ही नहीं सकता, अतः मन △ त्रिभुज में ही रहेगा।

जीभ का उच्चारण- जब मन बोलेगा कि, हरिनाम उच्चारण करो, तब जीभ हरकत में आयेगी।

कान का श्रवण- मन जब कान को इशारा करेगा तब कान सुनने की हरकत करेगा।

हृदय का भाव- जब मन हृदय के भाव को जागृत करेगा तब ही हृदय में छटपट होगी।

अतः मन के द्वारा ही तीनों का संचालन हो सकेगा वरना तीनों ही सुप्तावस्था में रहेंगे। कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। जैसे बच्चा माँ-माँ पुकारकर माँ को खींचकर ले आता है। इसी प्रकार "**हरे कृष्ण हरे राम**" भी माँ-माँ कहना ही है। यह भी भगवान् को माँ-माँ कहकर बुलाना ही है।

बुलाने वाले के कान में भी शब्द है। सुनने वाले के कान में भी शब्द है और हृदय के भाव में भी शब्द ही है। तीनों जगह शब्द की आवाज है, तब ही शब्द से कुछ सार निकलेगा।

अगर उक्त प्रकार की अवस्था नहीं आयेगी तो अन्तिम पुरुषार्थ प्रेम (विरह) प्रकट नहीं होगा। गहराई से समझना होगा। तीन बार पढ़कर समझना पड़ेगा।

हरिनाम को कान से सुने बिना किसी जन्म-जन्मान्तर में भी भगवद् कृपा नहीं मिल सकेगी। चाहे कितना भी सत्संग करो, चाहे कितना भी शास्त्र अध्ययन करो आदि-आदि, सब रफू चक्कर हो जायेगा। अब तक इतना सब कुछ किया, क्या मिला? कुछ नहीं।

यदि पूर्ण शरणागति प्राप्त करनी हो तो हरिनाम को कान से सुनकर विरहाग्नि प्रकट करो। स्वतः ही शरणागति प्रकट हो जायेगी। यह ध्रुव सत्य और अकाट्य सिद्धान्त है।

यदि उक्त स्थिति नहीं है, तो कपट भक्ति ही समझना होगा।

मेरे श्री गुरुदेव ने जो शिष्यों के नाम दिए हैं, उनके स्वभावानुसार ही दिए हैं। आपका नाम निष्किंचन कितना सार्थक है। वास्तव में आप निष्किंचन ही हैं। मेरा नाम श्रीकृष्ण के पोते पर अनिरुद्ध दिया है। यह कृष्ण का शिशु ही है, अतः मेरा भाव भी शिशु का है। वैसे भी देखा जाय तो सभी प्राणी भगवान् के बच्चे ही तो हैं। अबकी बार आपकी कृपा असीम हो रही है। जन्म-जन्म का ऋणी रहूँगा।

नोट : यह लेख आपके लिए नहीं है, अन्यों के लिए लिखा गया है। सूर्य को क्या दीपक दिखाना। मेरा अपराध क्षमा करें।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
सम्प्राप्ते सन्निहिते काले, न हि न हि रक्षति डुकृञ्करणे।।
(आद्य शंकराचार्य)

अरे मूर्खो (मूढमति), केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो, केवल श्रीगोविन्द का भजन करो। तुम्हारा व्याकरण का ज्ञान एवं शब्दचातुरी मृत्यु के समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर पाएगी।

32

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 24/12/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् प्रेम बढ़ने की उत्तरोत्तर प्रार्थना!

कान कहीं – मन कहीं

भगवान् ने जीवात्माओं के कर्मानुसार रहने हेतु अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना की।

जगत् में नाम से ही सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। नाम बिना किसी वस्तु को पहचाना नहीं जा सकता। अतः निष्कर्ष यह निकला कि जगत् में नाम का ही प्रभाव है।

भगवान् नाम के बल पर ही आकृष्ट होते हैं। अन्य साधन तो केवल गौण रूप से हैं। अन्य साधनों का केवल यही आशय है कि, जीवात्मा का इन साधनों से भगवान् के नाम में मन लग जाये। जब नामनिष्ठ हो जाये तो अन्य साधनों की आवश्यकता ही नहीं है।

राम न सकहि नाम गुण गाई।

चारों युगों में हरिनाम का ही प्रभाव है, कलियुग में विशेषकर है। सभी शास्त्र भी नाम का ही गुण वर्णन कर रहे हैं। लेकिन नाम को कैसे जपना चाहिए यह एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं।

राम ने मोहन को बोला– 'मोहन! बाजार से एक साबुन लेते आना।'

अब मोहन ने उसे सुना नहीं क्योंकि उसका मन किसी उधेड़बुन में था। वह डर गया और बाजार से साबुन की जगह नील ले आया। क्या नील से काम चल जायेगा, अर्थात् कर्म गलत बन गया।

इसी प्रकार हरिनाम तो ले रहे हैं, जिससे भगवान् को बुला रहे हैं। लेकिन मन चला गया दुकान में, तो क्या दुकान को बुला रहे हो। फिर भगवान् क्यों आने लगे! गलत सोच रहे हो अतः इच्छित कर्मफल नहीं मिलेगा। इसप्रकार से हरिनाम करने से लाभ नहीं होगा। हरिनाम से लाभ तब ही होगा जब कान से सुन सकेंगे। यदि कान तक आवाज नहीं गई, तो समझना होगा कि, मन कहीं और था तब हरिनाम से केवल सुकृति (भाग्य) इकट्ठी होगी। भगवद्प्रेम प्रकट नहीं होगा।

सुनने में तीन इन्द्रियाँ सचेत होती हैं। प्रथम तो आदेश देने वाले की इन्द्रिय–**जीभ**। दूसरी, सुनने वाली की इन्द्रिय– **कान** तथा आदेश पालन करने वाले का **मन (हृदय) तथा बुद्धि**। जीभ + कान + हृदय का कान– तब कहीं सुचारु रूप से कर्म बन सकेगा। वरना कर्म गलत बन जायेगा। जब संसारी कर्म ही गलत बन जाता है, तो पारमार्थिक कर्म कैसे सही बन सकेगा ?

अतः जब तक हरिनाम को स्मरण सहित अर्थात् मन + कान साथ रखकर नहीं जपा जायेगा तब तक भगवद् कृपा स्वप्न में भी नहीं होगी।

अब तक जिन जापकों को 30–40 साल हरिनाम जपते हो गए, उनसे सुना है कि, हमारा तो वैसा का वैसा ही स्वभाव बना हुआ है। न कभी भगवान् के लिए अश्रुपात होता है न कभी नाम में रुचि होती है, इसका क्या कारण है ? मैं कहता हूँ, एक ही कारण है। नाम को कान से नहीं सुना। अब सुनकर तो देखो, क्या गुल खिलते हैं! क्या एक Engineer बिना Lecture सुने ही पास होकर Engineer बन गया ? विचार करो जब संसार का काम ही सफल नहीं होता है, तब परलोक का काम कैसे सफल हो सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि, हरिनाम का महत्व ही समझ में नहीं आया।

33

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/01/2007

परमादरणीय भजनशील प्रेमास्पद, श्रीहितैष मलिक के चरणों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना!

विरह की बीमारी

आप मेरे पूजनीय भक्तप्रवर हो। पूजनीय वही होता है, जो भगवान् को चाहता हो, तथा उसे भक्ति की भूख हो। छोटी उमर होते हुए भी आपमें भक्ति की तृष्णा जागृत होती रहती है। अतः आदर सूचक शब्द आपको लिखना मेरे लिए स्नेह व प्रेम सूचक है।

वैसे आप मेरे लिए Super natural son हो। क्योंकि मैं आपके पिता बराबर हूँ। यह भौतिक सम्बन्ध है, परन्तु भक्त के नाते आप मेरे गुरु वर्ग समान हैं। आप में जो पंचम पुरुषार्थ प्रकट हुआ है, यह कोई मामूली प्राप्ति नहीं है। यह तो कई जन्मों के बाद सन्त और भगवद् कृपा से प्राप्त होता है। यदि 10 नामापराध व मान प्रतिष्ठा से बच गए तो यह उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहेगा। इसी जन्म में भगवद् दर्शन हो सकता है। विरहाग्नि ही भगवान् के हृदय को तपाकर खींचकर लाती है, इसके शास्त्रों में अनन्त उदाहरण हैं। मीरा, नरसी मेहता आदि तो अभी हुए हैं। अपने गुरुवर्ग भी तो अभी हुए हैं, जिनसे भगवान् बातें करते थे। भगवान् को भी उनकी फटकार सुननी पड़ती थी। पूरी बातें तो लिखी नहीं जा सकतीं, कागज छोटा पड़ता है।

कहते हैं– भजन को जितना छिपाकर रखा जाय उतना अधिक बढ़ता है। बिल्कुल ठीक है। इसका कारण यह है कि, उसकी पूजा बढ़ जाती है, तो उसको मान हो जाता है, घमण्ड हो जाता है, इसलिए गिर जाता है। जिसका भजन खोल कर बताने का उद्देश्य

दूसरे के भजन वृद्धि हेतु हो तो उसे प्रतिष्ठा से घृणा होती है। उसकी भजन वृद्धि होती जाती है। उसके भजन को देख-सुनकर दूसरों को भी पश्चाताप होता है, कि इतने साल से भगवद्प्रेम नहीं हुआ, तो वह अधिक भजन करने लगते हैं। अपना भजन दूसरों को दिखाने से उसके भजन में गिरावट नहीं आती, उल्टा भजन अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि उसका ध्येय दूसरों का भजन बढ़ाने का होता है।

मुझे मेरे घरवाले छोड़ना नहीं चाहते क्योंकि इनको मेरे भजन से उत्साह मिलता रहता है। अधिक से अधिक 15-20 दिन के लिए आपके पास भेज सकते हैं।

गुरु, सन्त और ठाकुर कृपा से अब मेरा विरह तीव्र गति में हो गया है। प्रातः ब्रह्म मुहूर्त का हरिनाम विरह सागर में डुबोए रखता है। फिर भी चैन नहीं लेता। मन तो उत्तरोत्तर भगवान् की तरफ खिंचता रहता है। हो सकता है कि, आपके पास कथा सुनने पर अधिक विरह हो जाये!

एक छूत की बीमारी होती है, जो छू जाने पर लग जाती है। यही विरह की बीमारी मुझे लग गयी। इसको बीमारी कहना तो अनर्थ की बात है लेकिन शब्दों में कहना पड़ रहा है। मेरे पास वाले को भी लग जाती है, यदि उसको अपराध और मान-प्रतिष्ठा का रोग नहीं हो। मेरे साथ में रहने से मेरी धर्मपत्नी को भी यह विरहाग्नि की बीमारी लग गयी है। यह बीमारी तो मुझे 20 साल की उम्र में ही लग चुकी थी जब मैंने 1954 में कृष्ण मंत्र का (गोपाल मंत्र का) पुरश्चरण किया था। अब लगभग 4-5 साल से यह फिर जागृत हो गयी है। अब तो कुछ अधिक ही उग्र रूप धारण कर रही है। आप किसी से मेरी चर्चा न करें यदि लाभ हो तो अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा में उल्लेख करें, लेकिन मेरा नाम गुप्त रखें। गुप्त न रखने पर मेरे पीछे अपात्र भी पड़ सकते हैं, जिससे मेरे भजन में मुझे समय न मिलने पर नुकसान हो सकता है।

आप सबको भजन में अधिक से अधिक लगायें यह कहकर कि हरिनाम को कान से सुना करो। इसी उपाय से विरह जागृत

होता है। दो इन्द्रियों का घर्षण अग्नि प्रकट करता है। यह अभ्यास पर निर्भर है। इसी जन्म में आवागमन छूट जायेगा। चिन्ता न करें। ब्रह्मचर्य संयम रखें ताकि नाम में अधिक देर मन लग सके। गहरा विचार करना होगा। खंडन से भावना का तार छूट जाता है।

मैंने भी इसी रास्ते से अपना जीवन बिताया था। **मेरे जीवन में भगवान् ने असम्भव बातें सम्भव कर दिखाई थी। अब भी हो रही हैं। बताना उचित नहीं है।**

आपका भजन स्तर बढ़ाने के लिए इतना लेख लिखा गया है क्योंकि आप इसके पात्र हो। आप पात्र हो तब ही तो परमहंस निष्किंचन महाराज जी ने गौरहरि आविर्भाव उत्सव पर आपको कथा कहने को प्रेरित किया है, वैसे वहाँ बहुत ब्रह्मचारी और संन्यासी वर्ग मौजूद हैं। यह ठाकुर जी की कृपा समझनी चाहिए।

मैंने भी आपका ही सहारा लिया है। मैं भी अधिक कुछ नहीं जानता हूँ। केवल नाम के बारे में जैसा रास्ता अपनाया है, वैसी सबको प्रेरणा देकर लगाने की कोशिश करता रहता हूँ। इससे ठाकुर जी मुझ पर अधिक कृपालु बन जाते हैं।

मठ में जाने पर मुझे बड़ा समझकर जौहर जी व अन्य महात्मा मुझे आग्रह कर कभी–कभी कह देते हैं, कीर्तन करो। आदि–आदि आदेश दे देते हैं।

मैं उनके आदेश का पालन न करूँ तो अपराध से डर जाता हूँ। अब मुझे विरह होने का डर रहता है, बोलने पर दिल मचल जाता है, तो मेरी पोल सबको मालूम हो जाती है, फिर जो पात्र भी नहीं है वह मेरे पीछे पड़ने लग जाता है, तो भजन में नुकसान हो जाता है। क्योंकि समय देना पड़ता है, उसे तो कुछ फायदा भी नहीं क्योंकि वह विषयों का गुलाम है, भजन चाहता ही नहीं।

अतः फिलहाल मुझे कोई बोलने को न कहे। मैं सुनने को ही वहाँ बैठ सकता हूँ।

जो पात्र होगा ठाकुर उसे मेरे पास भेज देगा। जो अपात्र होगा वह मेरे पास क्यों आने लगा?

मेरा स्वभाव है कि, जो भी मेरे पास आयेगा उसे मना करना मेरा धर्म नहीं है, चाहे मुझे नुकसान ही क्यों न हो। आप मेरा स्वभाव जानते ही हो। आप मेरी रक्षा कर सकते हैं। मेरे अंग रक्षक आप ही हो। मेरा वहाँ आना तब सार्थक होगा, जब आप मेरी रक्षा करो।

संकीर्तन-पिता

महाप्रभु श्री चैतन्य को 'संकीर्तन-पिता' कहा गया।
श्रवण-पिता, परिक्रमा-पिता, कथा-पिता, दर्शन-पिता
नहीं कहा गया।
कारण उन्होंने केवल और केवल नाम का आश्रय लिया।
नाम का प्रचार किया,
नाम संकीर्तन किया, चाहे नदिया की गलियों में
चाहे श्रीवास के आंगन में, उन्होंने कहीं
कथा की हो, प्रवचन किया हो, ऐसा नहीं-
श्रीहरिनाम केवल श्रीहरिनाम।
बोल कृष्ण भज कृष्ण लह कृष्ण नाम
कृष्ण माता कृष्ण पिता कृष्ण धन धाम
और कलियुग में नाम द्वारा ही प्रेम
प्राप्ति सम्भव है। अन्य जितने भी श्रवण,
दर्शन, परिक्रमा, कथा आदि हैं- ये नाम के प्रति अनन्यता
उत्पन्न करने को ही हैं।
नाम में श्रद्धा होने पर ये सब छूटते ही हैं।

34

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 19/01/07

परमाराध्यतम श्रद्धेय, श्रीगुरुदेव भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणों में अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम!

कर्म ही प्रधान है

जीवात्मा जब से भगवान् से बिछुड़ा है, तब से ही अशान्ति में भटक रहा है। इसका मुख्य कारण है, कर्म! कर्म अच्छे और बुरे दो तरह के होते हैं। अच्छे कर्म से शान्ति और बुरे कर्म से अशान्ति होती है। भगवान् ने सभी प्राणियों को पैदा किया है, तो सभी प्राणी भगवान् के पुत्र समान हैं। जब कोई प्राणी किसी प्राणी का अहित करता है, तो भगवान् माया द्वारा उनको सजा दिलाता रहता है। जो प्राणी किसी प्राणी का हित करता है, तो उसे माया से सहायता मिलती है, तथा भगवान् उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देकर उसे सुख प्रदान करते हैं।

जो जीव दूसरे जीवों को भगवान् के घर में पहुँचाने का हित करता है, अर्थात् शास्त्र द्वारा वर्णित बातों को सुनाकर मानव को भगवान् की भक्ति में लगाता है, उस पर भगवान् की अपार कृपा बरसती है।

शिव जी अपनी अर्धांगिनी उमा को बता रहे हैं–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

मानव से कर्म होते ही रहते हैं, बिना कर्म किए जीवन यापन हो ही नहीं सकता। कर्म – मन वचन और तन से होते हैं। तीन प्रकार के कर्म हैं– 1. संचित, 2. प्रारब्ध, 3. क्रियमाण–

मानव के अलावा किसी प्राणी से कर्म नहीं बनते, केवल मात्र मानव ही कर्म से बँधता है। कितनी ही बार वह 84 लाख योनियाँ

भुगत कर आया है। जिसमें कितनी ही बार मानव शरीर मिला है। उसमें उसने तीनों तरह के कर्म किए हैं। वे संचित होकर प्रारब्ध के रूप में भुगतते हुए जीवन यापन करता आया है। जब प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाता है तब मृत्यु होने के बाद स्वभावानुसार जैसी मन की भावना होती है, उसके अनुसार वह दूसरे शरीर में चला जाता है। फिर जब मानव शरीर मिलता है, तो फिर क्रियमाण कर्म करता है। वह संचित कर्म में जुड़ता रहता है। इसी तरह से यह चौरासी लाख योनियों का चक्कर चलता ही रहता है।

जब कभी सुकृति उदय हो जाती है तो मानव को भगवान् की कृपा से साधु संग मिलता है। तब मानव सद्गुरु की शरण ले लेता है। सद्गुरु देव भगवान् के हाथों में उस जीव को सौंप देते हैं। भगवान् के हाथों में जाने से उसके जन्म-जन्म के संचित कर्म जलकर राख हो जाते हैं। भगवान् का वचन है-

सन्मुख होय जीव मोहि जबहि।
कोटि जन्म अघ नासहिं तबहि।।

अब प्रारब्ध कर्म से उसका जीवन चलता रहता है। यदि क्रियमाण कर्म को सम्भाल लिया जाये तो उसका जन्म-मरण का दारुण दुःख सदैव के लिए समाप्त हो जाये। अर्थात् प्रेमाभक्ति हरिनाम के द्वारा अन्तःकरण से शरणापन्न हो जाये तो वह मानव अपने खास घर पर अर्थात् भगवान् की गोद में चला जाये। तो सारा का सारा बखेड़ा ही समाप्त हो जाये।

कहने का आशय यह है कि, अपना स्वभाव सुधारकर भगवान् की गोद में चले जाना ही श्रेयस्कर है, जब तक स्वभाव बिगड़ता रहेगा, तब तक माया द्वारा दण्डित होते रहोगे। कलिकाल में हरिनाम ही एक ऐसी औषधि है जो सारा का सारा रोग मिटा सकती है। हरिनाम स्वयं शब्द ब्रह्म है! हरिनाम जपने वाला भगवान् के चरणों में ही रहता है, अर्थात् सम्मुख रहता ही है। हरिनाम जपने से संचित कर्मों का नाश हो जाता है। भक्ति करने से संचित कर्म ही जब राख हो जायेंगे तो प्रारब्ध कहाँ बचेंगे ? केवल मात्र क्रियमाण

कर्म से ही जीवन चलता रहेगा। क्रियमाण कर्म केवल भक्ति सम्बन्धित रहेंगे तो अन्त समय जब मौत आयेगी और स्वभाव भक्तिमय होगा तो मन (अन्तःकरण) भगवान् में लगने से आवागमन का अन्त हो जायेगा।

परिवार में एक व्यक्ति भगवान् का प्यारा बन गया तो भगवान् उसकी 21 पीढ़ियों को अपने धाम में बुला लेगा। अगर पापी एक नाव में बैठ जाये तो सभी को डुबा देगा और एक भक्त नाव में बैठने से सभी को किनारे लगा देगा।

कितना सुन्दर सरल मौका कलियुग में मानव को मिला है। फिर भी अभागा इस स्वर्ण अवसर को खाने-पीने मैथुनादि में व्यतीत कर देता है। इसकी मूर्खता की भी हद हो गई। उसे मालूम नहीं है कि एक दिन यहाँ से कूच करना ही पड़ेगा, क्यों सो रहा है बेवकूफ!

अपना नुकसान करके भी दूसरों का हित करना चाहिए। क्योंकि सभी भगवान् के पुत्र हैं। अहित करने से भगवान् नाराज ही होंगे।

सबसे बड़ा महान् हित है, किसी को भगवान् की भक्ति में लगा देना। इससे बड़ा हित त्रिलोकी में तथा अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में अन्य कोई नहीं है।

यही सोचकर मैं पत्र पर पत्र देकर भगवान् की कृपा लेता रहता हूँ। मेरी शक्ति से कुछ भी नहीं हो सकता। भगवद् कृपा से ही एक लाख हरिनाम जप ब्रह्म मुहूर्त में विरहसागर में डूबकर होता रहता है। मैं जितना अपना भजन का प्रचार करता रहता हूँ उतना मेरा भगवान् की तरफ आकर्षण बढ़ता है। **मेरी देखा-देखी में अगर एक भी मानव भक्ति में लग गया तो मेरा निश्चित ही बेड़ा पार हो गया।** दिन में विरह बहुत कम होता है। भगवान् और आप भक्तों की कृपा से दिन में भी विरह होने लग जायेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है ? क्या बच्चे का रोना माँ बरदाश्त कर सकती है ? कभी नहीं! भगवान् तो वात्सल्य भाव की असीम मूर्ति है, वह भक्त का रोना कैसे सहन कर सकता है। मैंने अपने जीवन में भगवद् कृपा

का अनुभव न जाने कितनी बार किया है, इसका कोई अन्दाजा नहीं है। संकट आते ही भगवान् को दूर करना पड़ा। भजन बताने से अन्यों को अधिक श्रद्धा बनती है। मुझे कहने में थोड़ा भी नुकसान नहीं दिखाई देता, अतः कह देता हूँ। जो भी लेख लिखा जाता है किसी अदृश्य शक्ति द्वारा ही लिखा जाता है। मैं झूठ कहूँगा तो अपराध का भागी बन जाऊँगा। क्योंकि मैं मेरे अन्तःकरण को जानता हूँ कि कितना गन्दा है। केवल मात्र सन्तों का ही सहारा है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–

तुम मेरे अत्यन्त प्रिय मित्र हो, अतएव मैं तुम्हें अपना परम आदेश, जो सर्वाधिक गुह्यज्ञान है, बता रहा हूँ। इसे अपने हित के लिए सुनो। सदैव मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे नमस्कार करो। इसप्रकार तुम निश्चित रूप से मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें वचन देता हूँ क्योंकि तुम मेरे परम प्रिय मित्र हो। समस्त प्रकार के धर्मों का परित्याग करो और मेरी शरण में आओ। मैं समस्त पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत। यह गुह्यज्ञान उनको कभी भी बताया न जाये, जो न तो संयमी हैं, न एकनिष्ठ, न भक्ति में रत हैं, न ही उसे, जो मुझसे द्वेष करता हो। जो व्यक्ति भक्तों को यह परम रहस्य बताता है, वह शुद्धभक्ति को प्राप्त करेगा और अन्त में वह मेरे पास वापस आएगा। इस संसार में उसकी अपेक्षा कोई अन्य सेवक न तो मुझे अधिक प्रिय है और न कभी होगा।

(श्रीमद्भगवद्गीता 18.64–70)

35

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 26/01/07

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन-स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

विष और अमृत

हरिनाम जप का हृदय से शरीर पर कैसे प्रभाव पड़ता है, वह नीचे Practical रूप में लिखा जा रहा है।

प्रत्येक शब्द में अमृत (सुख) और विष (दुःख) पूर्ण रूप से निहित रहता है। उच्चारण करने में तथा चिंतन करने में शब्द में अपार शक्ति है। चिन्तन होता है चित्त से और उच्चारण होता है जीभ से, चित्त से स्फुरणा होकर मन पर प्रभाव करता है। मन से बुद्धि पर आक्रमण करता है। इसके बाद अहंकार में परिणत हो जाता है। अर्थात् 'मैं ऐसा करूँगा' ऐसा भाव मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से हृदय कोष्ट निर्मित है। उदाहरणार्थ-

काम, क्रोध, लोभ, मोह सम्बन्धित जो भी चर्चा या चिन्तन होगा वह प्रथम चित्त में स्फुरणा करेगा। चित्त से मन पर, मन से बुद्धि पर, बुद्धि से शरीर पर हावी होगा। शरीर उसे कार्य रूप में परिणत करना चाहेगा।

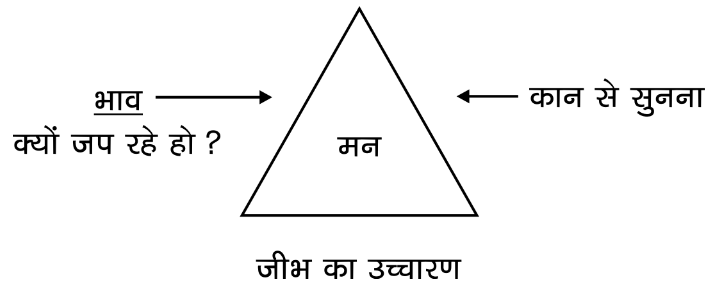
किसी ने किसी को गाली दी तो वह चित्त में स्फुरणा कर हृदय को अकुला देगी। वहाँ से क्रोध की उत्पत्ति हो पड़ेगी। वहाँ से शब्द ने जहर फैला दिया। जहाँ जहर हो गया, वहाँ मरण प्रकट हो जायेगा। इसी प्रकार प्रत्येक शब्द प्रभाव कर देगा।

किसी ने किसी को कहा, कि 'आइये महाशय जी, बहुत दिनों के बाद आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो सका।' तो आपस में गलबैया देकर प्रेम प्रकट कर दिया।

अब विचार करना होगा कि केवल मात्र शब्द ने ही तो अमृत और विष की स्फुरणा हृदय पर की तथा सुख और दुःख का प्रभाव हृदय पर हुआ।

इसी प्रकार '**हरे कृष्ण राम**' ये शब्द प्रेम समुद्र से ओत-प्रोत हैं। जो भी इन शब्दों का उच्चारण या चिन्तन करेगा तो दूसरों के हृदय में प्रेमसमुद्र को उड़ेल देगा, हृदय में भर देगा तथा जो पहले से ही दुर्गुणों का विष जमा था वह बाहर फेंक देगा। जैसा शब्द का Action वैसा ही Reverse होकर Reaction होगा ही।

मन को कैसे **हरे-कृष्ण-राम** इन शब्दों में फँसाया जाये यह नीचे की आकृति के द्वारा समझना होगा।



जीभ का उच्चारण

भाव- भगवान् मिल जाये।

त्रिभुज से मन को निकलने का रास्ता ही नहीं है। अभ्यास से सफलता मिलेगी ही।

कलिकाल में हरिनाम जप से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ मिल ही जायेंगे।

भगवान् भक्त से निहोरे करता है, इसके भूतकाल के अनेक उदाहरण हैं। भक्त जैसा नचाता है, भगवान् कठपुतली की तरह नाचता-फिरता है। भक्तों से पिटता फिरता है। यशोदा और कौशल्या ने भगवान् को कई बार थप्पड़ मारे। डर के मारे भगवान् थर-थर काँपे। केवल प्रेम के ही कारण....।

सेवा अपराध

मठ की (ठाकुर जी की) सेवा करते हुए अन्तःकरण में द्रवता क्यों नहीं आती अर्थात् शरीर पुलकित क्यों नहीं होता? नित्य संकीर्तन आदि साधन करने पर भी अष्ट सात्विक विकार क्यों प्रकट नहीं होते? इसका मुख्य कारण है तोते की रटन। तोते को, तोता पालन करने वाला कोई शब्द-वाक्य जैसे सिखा देता है, वह उसी वाक्य को बारम्बार रटता रहता है। इसलिए जब कोई उसके पिंजरे के पास आता है, तब उसके बोलने का मन पर कोई असर नहीं पड़ता। उसको यह नहीं मालूम कि, वह क्या बोल रहा है, इस बोलने का क्या आशय है, वह इस पर कोई ध्यान नहीं देता। बस केवल उसे रटने से काम है।

इसी प्रकार मठ की (ठाकुरजी की) सेवा जो हो रही है, वह उक्त तोते की रटन के समान ही है। उसका अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तःकरण उसे छूता ही नहीं। कोई भी शब्द या वाक्य जब अन्तःकरण को छुएगा, तब ही उसका प्रभाव स्थूल व सूक्ष्म शरीर पर पड़ेगा, वरना हवा की तरह उड़ जायेगा। जैसे के तैसे ही आचरण से जीवन बसर होता रहेगा। कोई भी लाभ दिखाई नहीं देगा। केवल श्रम ही मिलेगा।

इसमें अपराध, मान-प्रतिष्ठा की चाह तथा आहार-विहार ही मुख्य कारण है, जैसे कि मठों में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है।

जब तक हरिनाम कान+मन को सटाकर नहीं होगा, तब तक उक्त दोषों का संहार नहीं हो सकेगा। कम से कम एक लाख जप स्मरण सहित होना चाहिए।

एक माला भी ध्यान पूर्वक होने से नाम अवश्य रक्षा कर देगा।

36

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
29/01/2007
एकादशी

परमाराध्यतम परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, 108 श्री श्रीमद् भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त कोटि बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना!

कलियुग में सहजता से हरिनाम स्मरण से भगवद् प्राप्ति

शिव वचन-

कृत जुग-त्रेता-द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार गर्भोदकशायी विष्णु ने ब्रह्मा जी द्वारा **जरायुज-अंडज-स्वेदज और उद्भिज** ऐसे चार प्रकार के प्राणी प्रकट कराये। विष्णु को इन प्राणियों में अपने जैसा मानव देह सबसे अधिक पसन्द आया।

मानव को भगवान् ने हृदय और बुद्धि तत्व उक्त प्राणियों से ज्यादा विशेष रूप में अर्पित कीं। गीता में भगवान् ने वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष को अपना ही स्वरूप बताया है। वैसे भी वेदों में अखिल ब्रह्माण्ड को पीपल के वृक्ष के रूप में लक्षित किया गया है। अब इसीसे हरिनाम स्मरण का विधान घोषित किया जा रहा है, जो ठाकुर जी द्वारा हो रहा है। मेरा इसमें कुछ नहीं। (कृष्ण नाम रूपी) इस पीपल वृक्ष का आश्रय लेने से मानव सर्वसुखी हो सकता है। **आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप** (इन त्रिविध तापों से) बच जाता है तथा सत्वगुण-रजोगुण-तमोगुण जैसे दारुण दुःखदायी रोगों से तथा अन्तर्भूत अनन्त रोगों से छुटकारा पा

सकता है। अन्त में आवागमन रूपी असहनीय दारुण दुःखों से सदैव के लिए छुटकारा पा जाता है।

(कृष्ण नाम रूपी) पीपल के बीज को हृदय रूपी जमीन में बोने के लिए कान रूपी घड़े में जीभ उच्चारण रूपी हाथों से हरिनाम रूपी जल द्वारा त्रिकाल समय-ब्रह्ममुहूर्त में, दिन में तथा रात में सिंचन करे तो पीपल बीज अंकुरित होकर शाखा रूपी शास्त्र, टहनी रूपी सच्चा ज्ञान, पत्तों रूपी रतिमति, फूल रूपी वैराग्य तथा फल रूपी प्रेम प्राप्त कर सकता है।

मानव इतना स्वादिष्ट फल प्राप्त कर सकेगा कि उसे खाकर मस्ती में झूमेगा। कोई भय-शंका-दुःख स्वप्न में भी नहीं देख सकेगा।

इसके विपरीत यदि हरिनाम रूपी जल कान रूपी घड़े में न जाकर यदि घड़े के बाहर गिरता रहेगा तो पीपल वृक्ष बीज में केवल सीलन रूपी सुकृति पहुँच सकेगी। जिससे वृक्ष को बढ़ने में काफी समय लग जायेगा। उक्त प्राप्ति जो जल पहुँचने पर हुई है, जल न पहुँचने के कारण बहुत समय बाद हो सकेगी अर्थात् रति-मति वैराग्य-प्रेम आदि की प्राप्ति देरी से होगी।

जब हरिनाम रूपी जल डालने में पूरी निष्ठा हो जायेगी तो सत्संग रूपी शास्त्र हृदय में अंकुरित हो पड़ेंगे तथा रति-मति वैराग्य-प्रेम आने में समय नहीं लगेगा। यह सब भक्ति-साधन केवल हरिनाम स्मरण में निष्ठा के लिए ही होते हैं। यदि इन साधनों से हरिनाम में निष्ठा नहीं हुई तो केवल श्रम ही हाथ लगा। समय व्यर्थ नष्ट हुआ।

दस नामापराध एवं मान-प्रतिष्ठा का त्याग करने से शरणागति स्वतः ही प्रकट हो जायेगी। अहम् ठाकुर जी में प्रतिष्ठित हो जायेगा।

इस लेख का अन्तिम आशय यह है कि, हरिनाम को कान से सुने बिना केवल श्रम होगा। जीवन व्यर्थ जाएगा। कान तब ही सुन पायेगा जब मन साथ में होगा। बिना सुने तो संसार का काम भी

सफल नहीं हो पाता। जरा पूरा ध्यान देकर विचार करे कि, बात तो सही है। यह होगा अभ्यास से, अभ्यास से क्या नहीं हो सकता ? जरा गौर करें।



चार प्रकार की उत्पत्ति

जरायुज – गर्भ से उत्पन्न हुए जैसे मानव, गाय या घोड़े–कुत्ते आदि जानवर

अंडज – अंडे से उत्पन्न हुए जैसे पक्षी और कीड़े मकौड़े आदि

स्वेदज – पसीना, लार, जैविक पदार्थों से उत्पन्न हुए जैसे वायरस, बैक्टीरिया, जूँऐ आदि

उद्भिज – पृथ्वी से उत्पन्न हुए जैसे वृक्ष और लतापता आदि

37

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 13/02/2007
एकादशी

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातःस्मरणीय, श्रीनिष्किंचन महाराज के चरणों में अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम।

केवल मात्र नाम से ही सृष्टि का व्यवहार चलता है

सभी प्राणी नाम के पीछे-पीछे दौड़ते रहते हैं। नाम के अभाव में सृष्टि का कोई काम चल ही नहीं सकता। यहाँ तक कि पशु, पक्षी जिनमें बुद्धि तत्व का अभाव है, नाम उच्चारण करते ही वह दौड़कर पास में आ जाते हैं। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि, **'हरे, कृष्ण, राम'** का नाम लेते ही भगवान् शीघ्र प्रकट हो जाते हैं। जब मायिक प्राणी ही नहीं रुक सकते, तो मायापति निर्गुण ब्रह्म (भगवान्) नाम लेने पर कैसे रुक सकते हैं?

परन्तु, लेंगे तो हरिनाम और अन्तःकरण में आ जाये नदी या पहाड़ का ध्यान तो वहाँ भगवान् का दर्शन क्यों होगा? भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। मन का संकल्प-विकल्प जानते हैं। भगवान् के हृदय में न आने से उनके गुण भी नहीं आ सकेंगे। ऐसा सिद्धान्त है कि, हृदय में जैसा संकल्प-विकल्प आता है, वैसा ही हृदय में रंग चढ़ जाता है।

जिसको अन्तिम पुरुषार्थ प्रेम फल प्राप्त हो गया, उसे अन्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती। आम का फल प्राप्त हो जाने पर आम के बौर की, पेड़ की, शाखा की, प्रशाखा की, टहनी की, पत्तों की कोई आवश्यकता नहीं।

अर्थात् जिसे ठाकुर का प्रेम विरह प्राप्त हो गया उसे शास्त्र पठन, सत्संग, तीर्थाटन, मन्दिर दर्शन, आदि की अधिक आवश्यकता

नहीं है। उसे तो स्मरण से ही सब उपलब्धि हो जाती है। उक्त का थोड़ा सम्पर्क तो होना ही चाहिए।

नाम के पीछे–पीछे भगवान् दौड़ते हैं–

भयहु तुम्हार तनय सोई स्वामी।
राम पुनीत नाम प्रेम अनुगामी।।

मायिक नाम तथा चिन्मय नामादि में अपार शक्ति है। जो अन्तःकरण को सचेत कर देती है और तड़पन में परिणत कर देती है। यह तड़पन शुभ–अशुभ को लेकर ही होती है। शुभ नाम शब्द में आनन्दानुभूति होती है और अशुभ शब्दों में दुःखानुभूति होती है। मायिक शब्दों में दुःख और परमायिक शब्दों में सुखानुभूति होती है।

एक साधारण सा चित्रण है, जब हम किसी वस्तु विशेष का नाम लेते हैं तो वह हमारे अन्तःकरण में चित्रित हो पड़ती है, एवं उसका असर इन्द्रियों में आ जाता है। इन्द्रियों से स्थूल शरीर पर आ जाता है। स्थूल शरीर उसे व्यावहारिक रूप में काम लेने लगता है।

इसी प्रकार हरिनाम लेने पर ठाकुर जी का चित्र (आकृति) अन्तःकरण में दीखने लगती है। अधिक देर रहने पर उसका प्रभाव इन्द्रियों पर से स्थूल शरीर पर आने लगता है। स्थूल शरीर उसे व्यावहारिक रूप में परिणत करता है। अर्थात् सन्तों से मिलना, शास्त्र पढ़ना, मन्दिर जाना आदि करता है क्योंकि वह प्रभाव उसे ऐसा संग करने को प्रेरित करता है।

हथेली पर रखी हुई वस्तु जब तक कोई बता न दे या दिखा न दे तब तक हृदय उसे पकड़ न पायेगा। जैसे हथेली पर आम है। नाम लेते ही शक्ल हृदय में उदित हो जाती है। नाम के बिना पास की वस्तु भी नजर में नहीं आती। इसी प्रकार हरिनाम से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। नाम के पीछे सृष्टि चलायमान होती है।

मैंने अपने माँ–बाप (राधा–माधव) से एक भक्त के लिये झगड़ा किया कि 'एक भक्त है, उनके लिए आपने कुछ नहीं किया। आँख मींचकर सोते रहते हो, यह तो ठीक नहीं है। मैं भी आपसे अब नहीं बोलूँगा यदि इसी तरह से बेपरवाही की तो आप देख लेना इसका नतीजा खराब होगा।'

मेरे बाप ने उत्तर दिया, "मैं क्या करूँ, जब वह ही सोता रहता है। कितनी बार उसे जगाता रहता हूँ, फिर भी सो जाता है। उसके बदले तुम ही कुछ करो।

मैंने कहा–'मैं भोजन करूँ और उसका पेट भर जायेगा, ऐसा हो सकता है क्या ?"

मेरे बाप ने कहा, "मैं तो उसको बहुत प्रेरित करता हूँ, परन्तु वह कुछ सचेत हो भी जाता है। पश्चाताप भी करता है। चिन्ता भी करता है। परन्तु नतीजा कुछ नहीं होता।

उनके लिए बेटा तुम्हारी सिफारिश करना बेकार है। कितनी बार बेटा तुम मुझे उनके लिए कह चुके। उनको कोई असर होता ही नहीं है। अब आगे मुझे कुछ नहीं कहना। कहोगे तो मैं अनसुनी करता रहूँगा।

उस अन्धे को इतना भी मालूम नहीं है कि, तेरे सिर पर मौत नाच रही है और तू अचेत होकर सो रहा है। इससे भी बड़ा कोई नुकसान हो सकता है क्या ? समय उसको खूब मिलता है। लेकिन मन लगाकर मुझे याद करता ही नहीं है। उसको तो अपने स्वास्थ्य की चिन्ता ही लगी रहती है। मेरा इसमें क्या दोष है ?

मठ में आयोजन होता है तो उसको गहरी चिन्ता हो जाती है, वह बावला हो जाता है। उसने कभी सारा भार मुझ पर छोड़ा ? तुमने भी बेटा उसको बहुत समझाया कि यह आयोजन का काम ठाकुर जी सबसे करवा रहे हैं। आप क्यों इतनी चिन्ता करते रहते हो ? परन्तु, उसको मुझ पर भरोसा ही नहीं है, उसे लगता है कि मैं नहीं देखूँगा तो सारा काम बिगड़ जायेगा।

अब तुम ही बताओ, वह मेरी याद कर सकता है ? उसको तो चारों ओर की आफतें घेरी रहती हैं। क्या वह मठ चला रहा है ? मठ तो मैं ही चलवा रहा हूँ।

जब तक वह अपने ऊपर भार ले के रखेगा, तब तक वह मुझे याद नहीं कर सकता। माला लेकर बैठ जाता है कि हरिनाम करूँगा और नाम के बजाय न मालूम क्या-क्या स्मरण करता रहता है। पूरी उम्र बीत चुकी, अभी भी मन स्थिर नहीं हुआ तो, जिन्दगी में क्या हासिल किया ?"

मैंने नाम जपते रोते-रोते मेरे बाप को उलाहना दिया था कि "आपका वचन झूठा पड़ रहा है कि, मैं भक्त की आवाज सुनकर उसे पूरा करता हूँ। आप झूठे हो, आपने मेरी आज तक सुनी जरूर परन्तु कभी-कभी अनसुनी भी की है। या तो मैं आपका शरणागत भक्त नहीं, या फिर आप झूठे हो।"

लेकिन जब मेरे माँ-बाप ने शिकायत की तो मेरे समझ में आ गया कि कमी राधा-माधव जी में नहीं है। कमी उस भक्त में है।

माँ-बाप ने शिशु के चलने के लिए वॉकर ला दिया और शिशु उससे चलना सीखे ही नहीं, तो माँ-बाप क्या करेगा ? यह शिशु की बदमाशी है। मैंने उस भक्त से कहा, "अब आप मुझे दोष मत देना। मैंने अपना कर्तव्य अदा कर दिया अब आप जानो, आपका काम जाने। मैं तो उऋण हो चुका।"

अबकी बार में, मैंने पूरी रामायण में से माखन निकालकर इकट्ठा किया था कि आपको वह माखन खिलाऊं ताकि उससे मेरे माँ-बाप के चरणों तक जाने की ताकत मिल सके। लेकिन मेरे गोविन्द के परिवार का दुर्भाग्य, आपका यहाँ आना नहीं हो सका। लगभग 250-300 चौपाइयाँ मैंने छाट कर रखी है, जो भक्ति स्तर बढाने में सक्षम है।

मैं भी नहीं आ सकता, फोन पर ही कुछ मसाला मिल जाता है, या पत्रद्धारा कुछ भोजन हो जाता है।

यह पत्र स्वयं ही पढ़े, चाहे तीन बार पढ़ना पड़े। इति

नोट– इस पत्र को काल्पनिक ना समझें। यह ध्रुव–सत्य चर्चा हुई है। यदि इसे आप काल्पनिक समझेंगे तो आपका बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा, आपका त्रिदण्ड लेना बेकार हो जायेगा। मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा, न संन्यास धर्म मिलेगा, न ऐसे वातावरण का संग व मौका मिलेगा। यह चर्चा गुह्य है। किसी को न बताया। बताओगे तो भारी नुकसान भुगतान पड़ेगा। घोर अपराध हो जायेगा।



38

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 5/02/2007

परम प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि सत्संग प्रचारक को इस अधमाधम दासानुदास का दण्डवत् प्रणाम तथा सप्रेम हरिस्मरण। बच्चे को चिर आयु आशीर्वाद।

प्रेरणात्मक कथानक

हे, हितेश मलिक (श्रीहरिवल्लभदास)!

ठाकुर प्रेरित हृदय आकाशवाणी जो मुझे रात में 2 से 4 बजे के बीच में हुई उसे आप ध्यानपूर्वक हृदयगम्य (अन्तःकरण में) करें। अन्यों को भी सुनायें, परन्तु मेरा नाम गुप्त रखें, अमुक भक्त ने सुनाई थी, सत् कथा है ऐसा बोल दें।

एक निर्धन व्यक्ति जिसका परिवार बहुत बड़ा हो गया था। एक समय भी भोजन मिलना मुश्किल हो गया था। पूछता फिरता था कि, "कैसे दिन काटूँ? बच्चे भूख से तड़पते रहते हैं, देखा नहीं जाता।"

किसी सज्जन व्यक्ति ने कहा, "अमुक एक सन्त, अमुक ठौर पर भजन करते रहते हैं। वे ही इस कष्ट को मिटा सकते हैं। कोई युक्ति बता सकते हैं। उनके पास जाकर अपना दुखड़ा रोओ।"

वह बेचारा वहाँ गया, जहाँ सच्चे भजनशील सन्त भजन किया करते थे। उनके पास उसने अपना दुखड़ा रो दिया। सन्त ने कहा, 'चिन्ता मत करो, सब ठीक हो जायेगा।'

सन्त ने उसको, बच्चे जो काँच की कंचे खेला करते हैं, उससे भी छोटा एक पत्थर का गोल टुकड़ा देकर कहा, 'यह ले जाओ एवं इसको किसी को देना नहीं, घर में रख लेना।

उस गरीब ने सोचा, यह पत्थर का टुकड़ा तो एक ग्राम का भी नहीं है। क्या इससे कंगाली जायेगी? हाथ जोड़कर वह वहाँ से

चल दिया। उसने सोचा, घर में सब्जी नहीं है, इस टुकड़े से सब्जी ही ले चलें। क्योंकि वह पत्थर का टुकड़ा चमकता था।

वह मालिन के पास जाकर बोला, "माताजी यह टुकड़ा ले लो और मुझे थोड़ी-सी सब्जी दे दो।"

झल्लाती हुई मालिन बोली, "जा यहाँ से, मुझे ही सताने आया है, पैसा दे और सब्जी ले।"

बेचारा मन मसोस कर चल दिया। फिर एक दुकान पर गया और बोला, 'थोड़ी चीनी दे दो, और यह पत्थर का टुकडा ले लो।' उस दुकानदार ने कहा, 'मैं ही ठगने को मिला! जाता है कि बाट से मारूं।'

गरीब गिड़गिड़ाया, 'दे दो भैया, इतना नाराज मत हो।'

उसका पिंडा छुड़ाने के लिए झुंझला कर दुकानदार ने एक मुठ्ठी चीनी दे दी और कहा, "अब कभी इस दुकान पर मत आना।"

"ठीक है मालिक" ऐसा बोलकर वह गरीब चीनी खाता हुआ वहाँ से चला गया। इस टुकड़े ने चीनी तो दिलाई, ऐसा वह सोचने लगा।

दूर से एक दलाल उसको देख रहा था। उसने सोचा यह जो पत्थर का टुकड़ा बनिया को दे रहा था, मामूली नहीं है। उसने आकर गरीब को बोला, "दिखा वह पत्थर का टुकड़ा, कहाँ से लाया ?"

गरीब ने सच-सच बता दिया, जहाँ से उसे मिला था।

गरीब ने उसको वह टुकड़ा दिखा दिया।

दलाल ने बोला, "मुझे दे दो।"

गरीब ने बोला, "इसके बदले आप मुझे क्या दोगे ?"

दलाल ने कहा, "मैं दस रुपये दे दूँगा।"

गरीब ने बोला, "नहीं दूँगा।"

दलाल ने बोला, “तो क्या लेगा ?”

गरीब ने बोला, “कुछ नहीं लूँगा।”

क्योंकि सन्त ने उसे देने को मना कर दिया था। दोनों के बीच रस्सी खेंच चलने लगी। 100 ले ले, नहीं! 1000 ले ले–नहीं! तो फिर कितना लेगा ? कुछ नहीं लूँगा!

दलाल ने बोला, “तुझे जौहरी की दुकान पर ले चलूँ ? वहाँ ज्यादा मिलेगा। लेकिन आधा मुझे देना पड़ेगा।”

गरीब ने बोला, “ठीक है, चल।”

जौहरी को गरीब ने वह टुकड़ा दिखाया।

जौहरी ने बोला– “क्या लोगे ?”

गरीब ने बोला,“आप क्या दे सकते हैं ?”

जौहरी ने बोला, “1 लाख दे सकता हूँ।”

तब तो गरीब की आँख खुली और उसने सोचा कि– यह तो बड़ा कीमती है! उसने कहा, “मुझे देना ही नहीं।”

जौहरी ने बोला,“10 लाख ले लो।”

गरीब ने बोला, “नहीं मुझे देना नहीं है।”

दलाल ने बोला, “जो सबसे बड़ा जौहरी है, उसके पास चलोगे ?”

गरीब ने बोला, “क्यों नहीं, चलो!”

दलाल ने बोला, “आधा मुझे देना पड़ेगा।”

गरीब ने बोला, “ठीक है, दूँगा।”

जौहरी ने टुकड़े को देखा तो वह मन ही मन यह सोचने लगा कि– यह टुकड़ा तो तू खरीद ही नहीं सकता।

उसने गरीब से पूछा, “क्या लोगे ?”

गरीब ने बोला, “आप क्या दे सकते हैं ?”

जौहरी ने बोला, "1 करोड़ रूपया दे सकता हूँ।"

गरीब ने बोला, "थोड़ा है।"

तो दोनों में रस्सी खेंच चलने लगी...

10 करोड़ ले लो। नहीं! तो एक अरब ले लो।

गरीब ने बोला, "मुझे देना ही नहीं है।"

जौहरी ने बोला, "तू आया ही क्यों, जब तुझे देना ही नहीं था।"

गरीब ने बोला, "मैं तो इसकी कीमत अँकवाने आया था।"

उधर स्वर्ग का राजा इन्द्र जो अत्यन्त लोभी है, देख रहा था। जो सन्तों की भक्ति बिगाड़ता रहता है। कहीं कोई मेरा स्वर्ग छीन न ले। अप्सराओं को भेजकर मन डिगाता रहता है।

उसने सोचा, टुकड़ा बड़ा कीमती है, मैं ही खरीद लूँ!

वह गरीब के पास आकर बोला, "दिखाना तेरा वह पत्थर का टुकड़ा। मैं खरीद लूँगा।"

गरीब ने बोला, "देख सकते हो और आप इसका क्या दोगे ?" इन्द्र ने बोला, "स्वर्ग का राज तुमको मिल जायेगा।"

गरीब ने कहा,"स्वर्ग में क्या क्या है ?"

इन्द्र ने कहा,"वहाँ पारिजात वृक्ष है। कल्पतरु वृक्ष है।"

"इनका मैं क्या करूँगा ?", गरीब ने बोला।

इन्द्र ने बोला, "तुम्हें मालूम नहीं है, यह जो वृक्ष है वह तुम जो कामना करोगे उसे पूरी कर देते हैं।"

गरीब ने बोला, "और क्या-क्या है ?"

इन्द्र ने बोला,"अप्सरायें हैं, जो हर प्रकार का सुख देंगी। विमान है, जहाँ चाहो वहाँ ले जाते हैं। सभी सुख स्वर्ग में हैं। लाओ वह पत्थर का टुकड़ा मुझे सौंपो और स्वर्ग में जाकर राज करो।"

गरीब ने बोला,"मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए।"

इन्द्र ने बोला, "तो क्या चाहिए ?"

गरीब ने बोला, "कुछ नहीं।"

इतने में ही भगवान् वैकुण्ठ छोड़ कर वहाँ की बात सुनने के लिये आ गये और बोले,"इन्द्र! इस गरीब से क्यो झगड़ा फसाद कर रहे हो ?"

इन्द्र ने बोला, "इसके पास पत्थर का टुकड़ा है, लेकिन इसका इस पर इतना मोह है कि देना ही नहीं चाहता!"

भगवान् बोले, "दिखाओ! मैं भी खरीद सकता हूँ।"

गरीब ने बोला, "यह देखो!"

भगवान् उसे देखकर बोले, "मैं इसकी कीमत नहीं चुका सकता। हाँ, इसके बदले मुझे ही मोल ले लो। मैं तुम्हारा नौकर बनकर क्षण-क्षण तुम्हारा काम करता रहूँगा। तब भी इस हीरे की कीमत असीम ही होगी।"

वह हीरा और कुछ नहीं साक्षात् हरिनाम ही था!

भगवान् बोले-

राम न सकहि नाम गुण गाई।

भगवान् भी हरिनाम का गुण वर्णन करने में असमर्थ हैं। क्योंकि **राम तथा कृष्ण** ने तो बहुत कम पापियों को तारा होगा। लेकिन नाम ने तो बेशुमार असंख्य पापी तारे हैं, तारते हैं और तारेंगे।

सद्‌गुरु ने **हरिनाम का हीरा** दिया। लेकिन इसकी कीमत न समझने के कारण व्यक्ति इसे कूड़े में डाल कर मजे से सोता है, फिर अन्त समय पछताता है।

यह सत् वार्ता है। हरिनाम का सहारा ही आनन्द समुद्र में गोता लगा देगा। भूलो नहीं, चेत जाओ। समझा समझा कर थक गया। लेकिन एक भी नहीं मानी।

नोट : चूको मत समय जा रहा है। सुअवसर फिर नहीं मिलेगा। इसी जन्म में जन्म-मरण अवश्य छूट जायेगा। नहीं तो पछताना ही होगा।

इस रूपक का आशय समझना होगा।

मालिन ने इस टुकड़े को गली में फेंकने योग्य समझा-**अर्थात् नास्तिक व्यक्ति।**

जौहरी ने इसकी कीमत समझी- **अर्थात् भक्त**

इन्द्र ने इसे अमूल्य समझा-**अर्थात् नामनिष्ठ ने अमूल्य वस्तु समझा।**

भगवान् इसके बदले बिक जाते हैं।

इस हरिनाम का मूल्य खुद भगवान् भी बताने में अक्षम हैं।

शिववचन-

हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्तपुराण उपनिषद् गावा।।

राम नाम के हीरा मोती

राम नाम के हीरा मोती, मैं बिखराऊँ गली गली।
ले लो रे कोई राम का प्यारा, शोर मचाऊँ गली गली।।
माया के दिवानों सुन लो, एक दिन ऐसा आएगा।
धन दौलत और माल खजाना, यहीं पड़ा रहा जाएगा।।
सुन्दर काया माटी होगी, चरचा होगी गली गली।।
क्यों करता है मेरा मेरा, यह तो मेरा मकां नहीं।
झूठे जग में फँसा हुआ है, वह सच्चा इन्सान नहीं।।
जग का मेला दो दिन का है, अन्त में होगी चला चली।।
जिन जिन ने यह मोती लूटे, वह तो माला माल हुये।
धन दौलत के बने पुजारी, आखिर वह बेहाल हुये।।
चाँदी सोने वालो सुनलो बात सुनाऊँ खरी-खरी।।

39

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 22/02/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

हरिनाम में रति-मति न होने के कारण

श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी और मेरे गुरु जन मेरा अपराध क्षमा करें। मैं नहीं लिख रहा हूँ, मेरे ठाकुरजी ही मुझसे सेवा लेकर भक्तों के चरणों में कुछ लिखने को प्रेरित कर रहे हैं। हरिनाम में मन क्यों नहीं लग पाता है? इसके कई कारण हो सकते हैं तथा होते हैं।

1. शरीर का अस्वस्थ रहना।
2. स्थान में दूषित वातावरण।
3. मायिक भौतिक विचारों की भरमार।
4. सत्संग का अभाव।
5. पड़ोसियों से असुविधा।
6. मन में उत्साह की कमी।
7. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, मान-प्रतिष्ठा में रत रहना।
8. पिछले जन्मों के संस्कारों का आक्रमण।
9. दूषित खान-पान।
10. अपनी मौत को भूले रहना।
11. **माया**-ईश्वर तथा स्वयं के बारे में अज्ञान का आवरण।
12. रजोगुणी वृत्ति में अशान्त रहना-तृष्णा में रहना

13. अनर्थ समूल नष्ट न होना।
14. पाप वासना का दबाव।
15. मन, कर्म, वचन से भक्तों के प्रति अपराध होते रहना।
16. अभ्यास की कमी तथा वैराग्य की क्षीणता।
17. विषयों का विष अन्तःकरण को दूषित करते रहना।
18. हरिनाम का महत्व न समझना।
19. श्रीगुरुदेव को साधारण समझना।

शिव वचन–

हरिनाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद् गावा।।
जे सठ् गुरु सन इर्षा करहिं। रौरव नरक कोटि जुग परहिं।।
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहि नाम गुण गाई।।

नाम के पीछे भगवान् चलते हैं। अतः कान से नाम को सुनना परमावश्यक है। जब मन लगा होगा तब ही कान सुन सकेगा। जीभ का उच्चारण तथा कान का श्रवण विरहाग्नि प्रकट कर देगा। दो चीजों का घर्षण – गर्मी प्रकट करता है।

जब तक विरहावस्था प्रकट नहीं होगी तब तक मानव जन्म सार्थक नहीं होगा। विरह भी दो प्रकार का होता है, एक निम्न कोटि का और दूसरा उच्च कोटि का।

निम्न कोटि के विरह में आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, जो अधिक देर तक नहीं रहती, कुछ समय के लिए ठाकुर के प्रति हो जाती है। इसके विलीन होने पर अन्तःकरण में संसार आ टपकता है। यह भी होना किसी विरले भक्त को ही होता है।

उच्च कोटि के विरह में अश्रुधारा के साथ नाक से श्लेष्मा बहने लगता है। अष्ट–प्रहर भी यह स्थिति रह सकती है तथा 2–4 घंटे भी रह सकती है। इसमें अन्नमय कोश–प्राणमय कोश–मनोमय कोश–विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश जिसको चित्तमय कोश भी कहा जाता है, इसमें मन की स्थिति होकर समाधि की अवस्था

में स्थिरता हो जाती है। **जिसको तुरीय अवस्था भी कहा जाता हैं।** इसमें कभी–कभी साँस का चलना बन्द भी हो जाता है। बेहोशी भी हो जाती है। इसमें ठाकुर जी की आकाशवाणी तथा रमणीय दर्शन तथा अलौकिक महक का भी अनुभव हो जाता है। परमहंस प्राप्त व्यक्ति का आवागमन निवृत्त हो जाता है। **यह अवस्था करोड़ों में से किसी एक सुकृतिशाली व्यक्ति को ही हुआ करती है।** इसका संग भी किसी सुकृतिशाली व्यक्ति को ही होता है, जिसपर ठाकुरजी की असीम कृपा होती है।

मम गुण गान नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोई जानई परमानन्द संदोह।।

उक्त अवस्था प्राप्त व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम मोक्ष प्राप्त हो जाता है। **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** हो जाती है।

कूपमण्डूक न्याय

कुएं के अन्दर के मेंढक का न्याय। कुएं के अन्दर का मेंढक सोचता है कि, उसका कुआं ही विश्व का सबसे बड़ा जलाशय है और वह महासागर के विशालता की कल्पना नहीं कर सकता! उसी प्रकार, तथाकथित बुद्धिमान लोग सोचते हैं कि, 'मैं एक व्यक्ति हूँ और मैं सीमित हूँ– व्यक्ति असीमित नहीं हो सकता। भगवान् असीमित हैं, इसलिए व्यक्ति नहीं हैं!' परन्तु जिस प्रकार कुएं का मेंढक समुद्र की विशालता को नहीं समझ सकता, उसी प्रकार तथाकथित बुद्धिमान लोग इस बात को नहीं समझ सकते कि, भगवान् असीमित होकर भी एक व्यक्ति हैं।

40

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 28/02/2007

आश्चर्य–आश्चर्य–आश्चर्य

परमश्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण–युगल में इस अधमाधम दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम और हरिनाम में मन लगाने की प्रार्थना!

प्रश्न कुछ जटिल है, उत्तर देना असम्भवसा प्रतीत होता है।

प्रायः देखा गया है कि, साधु, सन्त, महात्मा अन्त समय वृद्ध अवस्था में खटिया में पड़कर कष्ट भोग कर देह–त्याग करते हैं। यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है।

नास्तिक मायासक्त व्यक्ति बोलते हैं कि– भगवान् को भजने से क्या लाभ, जो इतना दुःख भोगकर मरना है एवं दुष्ट अत्याचारी मानव एक क्षण में ही मरता देखा गया है। फिर भक्ति करने से क्या लाभ ?

इसका खास मुख्य कारण है भगवान् की असीम कृपा!

अपने भक्त को भगवान् स्वच्छ कर के धाम ले जाते हैं। खटिया में पड़ने से न तो उनसे कोई पाप होता है, न मन, वचन, कर्म से भक्त अपराध होता है। पूरी उम्र भर नाम की शरण लेकर जीवनयापन किया है, अतः अंतिम सांस भी भगवद्चिन्तन में ही निकल जाती है। गीता के कहे अनुसार, वे सदा के लिए जन्म–मरण रूपी दारुण दुःख से छूट जाते हैं।

नास्तिक मायिक मानव अचानक मर जाने से उसे भगवान् की स्मृति आ ही नहीं सकती। जिस भाव में उसने जीवन बिताया है, उसी भौतिक भाव में साँस निकल जाने से अधोगति में चला जाता है। अतः भक्त को कितनी सुविधा का अवसर दिया गया है।

आस्तिक नास्तिक को समझाता है कि, वेद शास्त्र क्या गलत कहते हैं ?

नास्तिक कहता है कि,'वेद शास्त्र तो इसलिए कहते हैं कि, मानव सुख–शान्ति से रह सके, अतः कई प्रकार के प्रलोभन देकर मानव को बुरा काम करने से रोकते हैं। कुछ नहीं है, सब बकवास है।'

भक्त के लिए तो अन्त में खाट में पड़ना तो एक फाँसी के तख्ते के समान है। जिसको सामने मौत दिख रही हो, उसे संसार की वस्तु याद आ सकती है ? भूख, प्यास तक उड़ जाती है, अतः भक्त हर क्षण भगवद् चिंतन में ही क्षण–क्षण बिलखता रहता है। कोई अपवाद भी इसलिए हो जाता है कि कोई भक्त अचानक भी मर जाता है। इसका कारण है वह एकदम विरक्त परमहंस तुरीया–वस्था प्राप्त मानव है। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, अतः ऐसे भक्त को शरीर छोड़ने में एक क्षण ही लगता है। भरत–हिरण के बच्चे में आसक्त होकर शीघ्र ही मर गये थे। लेकिन भक्ति अमर ही रहती है। अगले जन्म में लाभकारी बन जाती है।

नास्तिक का भी अपवाद है। कोई–कोई नास्तिक भी खटिया पर दुःख भोग कर जाता देखा गया है। इसका कारण है, उसके कुकर्म! यहाँ भी यमराज उसे भोग भुगवाकर भविष्य में मरने के बाद नरक भोग करायेगा। अब एक स्पष्ट उदाहरण द्वारा इस समस्या को हल किया जा रहा है–

एक माँ का शिशु घर के बाहर खेलता हुआ रेत में तथा मल में अपने को लिपायमान कर लेता है। जब माँ उसे बाहर आकर देखती है, तो क्या उसे फौरन गोद में चढ़ा लेगी ? पहले तो वह उसको स्वच्छ करेगी, तभी गोद में लेगी। भक्त शिशु है और भगवान् माँ है। यही इसका रूपक है। पशुओं में भी जब प्रसव होता है, तो बच्चे को मादा पशु पहले चाट–चाट कर साफ करके फिर स्तनपान कराती है। क्या भगवान् भक्त को अनदेखा कर सकता है ? जबकि वह अखिल ब्रह्माण्डों की माँ हैं। श्रीनृसिंहदेव ने अपने भक्त प्रह्लाद

को चाट–चाटकर वात्सल्य भाव दिखाया था कि मुझको प्रकट होने में देर हुई। मेरे भक्त ने बहुत कष्ट पाया है, यह सोचकर चाट–चाटकर पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हैं।

उक्त समस्या का समाधान क्या एक तुच्छ बुद्धि मानव कर सकता है ?

भगवान् ने प्रेरित कर के सन्त सेवार्थ चरणों में अर्पित करने के हेतु यह लेख लिखवाया है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह 'महामन्त्र' बत्तीस अक्षरों से युक्त है, समस्त पापों का नाशक है, सभी प्रकार की दुर्वासनाओं को जलाने के लिए अग्नि स्वरूप है, धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को देने वाला है, दुर्बुद्धि को हरने वाला है, शुद्धसत्त्वस्वरूप भगवद्वृत्ति वाली बुद्धि को देने वाला है, सभी का आराध्य एवं सेवनीय है, सभी की कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। महामन्त्र के संकीर्तन में सभी का अधिकार है, यह मन्त्र सभी का मुख्य बान्धव है, दीक्षाविधि आदि की अपेक्षा से रहित है, वाणीमात्र से पूजित करने योग्य है, बाह्यपूजा विधि की अपेक्षा नहीं करता है, केवल जिह्वा के स्पर्शमात्र से फलदायक है, देशकाल आदि के नियम से विमुक्त है। अतः यह सर्ववादीजन के द्वारा सुसम्मत है।

(श्रीभक्तिचन्द्रिका के सप्तम पटल में से उद्‌धृत)

41

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 11/03/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, मेरे गुरुदेव 108 श्रीश्रीभक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानु-दास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम।

जैसा नाम वैसा काम

मेरी देखा-देखी यदि ब्रह्मचारी भजन को बढ़ाकर करने लगें तो ठाकुर जी की मुझ पर अपार कृपा हो सकती है। क्योंकि मेरा ध्येय अन्यों की भजन में उन्नति करवाने का है। एक लाख हरिनाम जप रात में ब्रह्ममुहूर्त में प्रेम सहित हो जाता है। मन एकदम स्थिर रहता है। एक लाख जप दिन में हो जाता है, परन्तु रात जैसा मन नहीं लग पाता। इसके कई कारण हैं। कोई आ जाता है, खट-पट होती रहती है, आदि आदि कारण हैं।

मेरे द्वारा जो पत्र लेखन होता है, वह किसी अपरिचित शक्ति द्वारा ही होता है। यह एक तुच्छ प्राणी का काम नहीं है, जो लिखने में सक्षम हो।

श्रीगुरुदेव जी ने जो भी शिष्यों के नाम रखे उसी नामानुसार स्वभाव भी बना दिए गए।

मेरा नाम अनिरुद्ध रखा तो मेरा स्वभाव शिशु का बन गया। श्रीकृष्ण जी ने कितनी बार अपने पोते अनिरुद्ध को गोद में लेकर खिलाया होगा! रुक्मिणी, सत्यभामा आदि ने कितनी बार गोद में सुलाकर स्तनपान कराया होगा! वही चिन्तन श्रीगुरुदेव ने मुझे प्रदान किया है। शिशु से पाप अपराध कभी होने का सवाल ही नहीं है। फिर भजन स्तर क्यों गिरेगा ? केवलमात्र मान-प्रतिष्ठा और दस नामापराध से बचना होता है।

शिशु का सहारा रोना है। इस रोने से कौन पत्थर दिल होगा जो पिघलेगा नहीं ?

शिव वचन–

जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

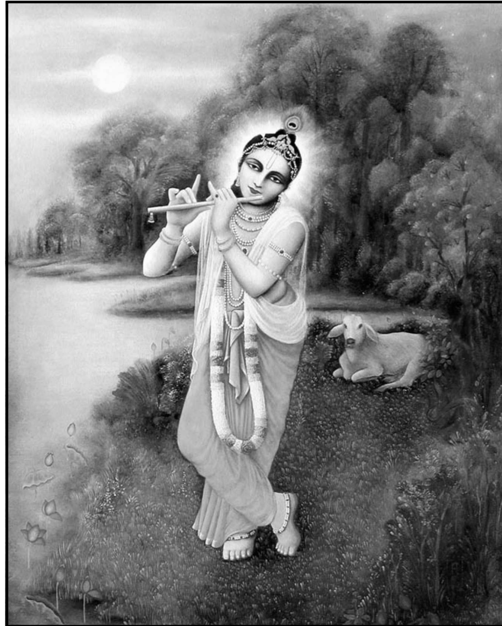
श्रीराम बोल रहे हैं!

जहाँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिनाम भवानी।।
सो रघुनाथ नाम श्रुति गाई। राम कृपा कहु इक पाई।
सब कर फल हरिनाम सुहाई। सो बिन सन्तन काहु न पाई।।

राम वचन–

काहु न कोऊ सुख दुःख कर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता।।

नोट– संसार दुःखालय है। हरिनाम सुखालय है। कृपाकर जाग जाओ। मौत का कोई समय नहीं है।



42

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 05/06/2007

परमाराध्यतम भक्तगण, अधमाधम दासानुदास का बारम्बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा नामनिष्ठा अन्तःकरण में जगने की करबद्ध प्रार्थना।

हरिनाम ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का पालनकर्ता, सृष्टिकर्ता तथा संहारकर्ता

हरिनाम की शरणागति लेना ही मानव मात्र का सर्वप्रथम तथा अन्तिम कर्तव्य है। जिस मानव ने हरिनाम को अपना लिया उसको सब कुछ प्राप्त हो गया, उसे कुछ भी पाना बाकी नहीं रहा।

अब प्रश्न उठता है शरणागति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? इसका सही उत्तर होगा, हरिनाम को जिह्वा से धीमे स्वर में उच्चारण करे, ताकि केवल कान में सुनाई पड़ सके। जोर से उच्चारण करने पर थकान जल्दी आ जायेगी।

कान व मन को केन्द्रित कर नाम को सुनना होगा। यदि कोई साधक इस तरह से चार माला कान व मन को केन्द्रित कर के सुन लेगा तो उसे शत-प्रतिशत भगवान् के लिए रोना आयेगा। लेकिन यह उक्त साधन एक माह तक होना चाहिए। यदि क्रम अर्थात् निरन्तरता टूट गई, तैलधारावत हरिनाम नहीं हुआ तो अश्रुधारा आने में सन्देह है।

विरह प्रकट होने में दो अड़चनें आ सकती हैं। 10 नामापराध व मान प्रतिष्ठा की चाह। इनकी सतर्कता से सावधानी रखनी चाहिए वरना उक्त विरह स्थिति आना बिल्कुल असम्भव ही है। जब मानव साधक का मन 64 माला स्मरण करने लग जायेगा तो स्थिति स्वर्णमय बनकर दुर्गुणों का नाश होने लगेगा तथा सद्गुण

अन्तःकरण में प्रकट होने लगेंगे। एक अलौकिक आनन्दानुभूति महसूस होने लगेगी।

सभी शब्द भगवान् से ही सम्बन्धित हैं, अतः प्रत्येक शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। शब्दों से ही मंत्र बन जाते हैं। मन्त्रों से बाण चलते हैं जो अग्नि लगा देते हैं। पानी सोंख लेते हैं। राग रागनियाँ संगठित होकर बादल बन कर बरसात कर देते हैं। हर प्रकार के विष का शोषण कर देते हैं, अमृत बरसा देते हैं। ब्रह्माण्डों को एक क्षण में नाश कर देते हैं। शब्द शक्ति क्रोध, प्रेम अर्थात् आन्तरिक भावों को जागृत कर अपना अच्छा बुरा प्रभाव प्रकट कर देती है।

इसी प्रकार हरिनाम गिरते पड़ते, साँस लेते, उबासी, छींक लेते, वैर से, प्यार से, अवहेलना से, कैसे भी मुख ने निकल पड़े तो मंगल सूचक होगा। जो तुलसी माला पर आग्रहपूर्वक अधिक से अधिक संख्या में हरिनाम स्मरण करेगा उसे इसी जन्म में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ उपलब्ध हो जायेंगे। अन्त में आवागमन रूपी दारुण दुःख से छूटकर पंचम पुरुषार्थ प्रेम को प्राप्त कर परमधाम में चला जायेगा। अमरता को प्राप्त कर लेगा।

न कलिकर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलम्बन एकू।।
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहि आन उपाऊ।।
जाना चहिए गूढ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
जिन कर नाम लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नशाहीं।।

यदि सुख का जीवन बिताना है तो रामनाम तथा हरिनाम को अन्तःकरण (कान+मन) से स्मरण करो। फिर संसार में कोई बाल भी बांका न कर सकेगा। जो भी टकरायेगा नष्ट हो जायेगा। इसके शास्त्रो में अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

43

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दि. 04/06/2007

समर्पण

श्रीचैतन्यगौड़ीय मठ के संस्थापक नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज के तथा उनके प्रियतम शिष्य वर्तमान मठाचार्य ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिवल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज के युगल चरणकमलों में, अधमाधम, दासानुदास अनिरुद्ध दासाधिकारी अपने अन्तःकरण से हरिनाम स्मरण के उद्गार मठ के भक्तों के चरण-कमलों के माध्यम से अर्पित कर रहा है। कृपया अंगीकार कर और मुझ अधम पर कृपा-दृष्टि कर अनुग्रहीत करें। यह मुझ पर भक्त व भगवान् की अति कृपा होगी।

भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम आदि सब प्रकृति से अतीत हैं। श्रीभगवान् व उनके नाम, रूप, गुण, लीला आदि उनसे सर्वथा अभिन्न हैं। स्वयं भगवान् ही जीवों का उद्धार करने हेतु अपनी अहैतुकी कृपा से नाम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। अतः भाग्यशाली जीव, हरिनाम के प्रचारक-सद्गुरु द्वारा हरिनाम की शिक्षा लेकर और भगवान् के संकीर्तन तथा नाम-स्मरण का आश्रय ग्रहण करके कृतार्थ हो जाते हैं। क्योंकि कलिकाल में हरिनाम का स्मरण कान व मन को सटाकर (केन्द्रित करके) तथा सब मिलकर संकीर्तन करके अपने को शरणागति की स्थिति में प्रोत्साहित कर लेते हैं। हमारे प्राणेश्वर भगवान् श्रीचैतन्यमहाप्रभु जी, शुद्ध कृष्ण-नाम का जगत् में प्रचार करने के लिए इस धरातल पर अवतीर्ण हुए तथा उन्होंने सदैव कान व मन को सटाकर हरिनाम स्मरण करने तथा सब मिलकर संकीर्तन करने का उपदेश दिया। अतः अपना मंगल चाहने वालों के लिए आवागमन (जन्म-मृत्यु का चक्कर) रूपी दारुण दुःख को हटाने के लिए यह शुभ साधन भगवान् गौरहरि ने सुलभ कर दिया।

भगवद्–कृपा से प्रेरित होकर नामामृत पीने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा अन्य जीवों को पिलाने के अवसर का भी संयोग हुआ। भक्त–अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा की चाह को दूर रखते हुए यदि कोई भाग्यशाली सुकृतिवान जीव चार माला हरिनाम की मन व कान को सटाकर कर लेगा, तो उसे शत–प्रतिशत अवश्य ही भगवद् शरणागति का शुभ अवसर प्राप्त होकर विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो पड़ेगी। जिससे अन्तःकरण के सभी दुर्गुण भस्मीभूत होकर सद्गुणों का आविर्भाव हो जायेगा। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। कोई सुकृतिवान इसे आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। एक से चार माला हरिनाम, मन और कान को सटाकर करने पर भगवान् की अपार कृपा बरसेगी। यदि अपराध और मान–प्रतिष्ठा की चाह से भक्त बचता रहेगा, तो मैं गारण्टी से कह सकता हूँ कि उसकी विरहाग्नि प्रकट हो जायेगी। उसे भगवद् शरणागति, जो भगवद्गीता के प्राण हैं, सरलता से सुलभ हो जायेगी। शरणागत को भगवान् एक क्षण भी दूर नहीं करते, सदैव अपने हृदय से चिपकाकर रखते हैं, ठीक उसी प्रकार से, जिस प्रकार माँ अपने शिशु को हृदय से लगाए रहती है। जीव हरिनाम अमृत का रस पीने से अमर बन जायेगा।

जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

(रामचरितमानस)

यदि यह उक्त लेखन सामग्री जो ठाकुर जी ने अन्तःकरण में प्रेरित कर अंकित करवाई है, किसी एक साधक को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेगी, तो मेरा मनुष्य जन्म सफल हुआ ऐसा जान कर, स्वयं को परम कृतार्थ समझूँगा तथा भक्तों के चरण–कमलों के शरणागत होकर भवसागर से निश्चित ही पार हो जाऊँगा। इसे भक्तगण अंगीकार करेंगे ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

गुरु और भगवान् अभिन्न है। शास्त्र के अनुसार गुरुतत्व भगवान् से अभिन्न होने के कारण गुरु को भगवान् के समान पूजनीय मानकर उनका सम्मान तथा पूजा करनी चाहिये। ऐसा भगवान् का आदेश है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर रचित श्रीश्री गुर्वाष्टक से–

साक्षाद्-हरित्वेन समस्त शास्त्रैर्
उक्तस् तथा भाव्यत एव सद्भिः
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्

श्री भगवान् के अत्यन्त अन्तरंग सेवक होने के कारण, श्रीगुरुदेव को स्वयं श्री भगवान् के समान ही सम्मानित किया जाना चाहिए। इस बात को सभी प्रमाणित शास्त्रों ने माना है और सारे महाजनों ने इसका पालन किया है। भगवान् श्रीहरि (श्रीकृष्ण) के ऐसे प्रमाणित प्रतिनिधि के चरणकमलों में मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु सर्वदेवता एवं महेश्वर हैं। गुरु ही साक्षात् परंब्रह्म हैं– ऐसे श्रीगुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस उपरोक्त भाव के अतिरिक्त विद्वान् इस श्लोक की दूसरी व्याख्या भी करते हैं, जो इसप्रकार है–

ब्रह्मा गुरु हैं, विष्णु गुरु हैं, सर्व देवता गुरु हैं, महेश्वर गुरु हैं और साक्षात् परंब्रह्म गुरु हैं ऐसे गुरु को नमस्कार करता हूँ।

सात सूत्र

आदरणीय भक्तजनों! इस समय हमारी परीक्षा की घड़ी है और हमें अपनी तर्क बुद्धि को त्याग कर, अपनी बुद्धिमत्ता एवं भक्ति का दिखावा न करके, बिना विचार किये, बिना कोई तर्क किये, श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी की हर बात को मानना है। इसी में ही हमारा मंगल है। गत एक महीने में जिन बातों को वे चार बार दुहरा चुके हैं, उन्हीं बातों का संक्षिप्त रूप में यहाँ वर्णन किया जा रहा है। श्रद्धेय पाठक गण! इन महत्वपूर्ण बातों को समझेंगे और उनपर चलेंगे–ऐसी मुझे आशा है और भगवान् के चरणकमलों में प्रार्थना भी। श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के प्रवचन के अंश और उनकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है–

1. जो कांचन–कामिनी–प्रतिष्ठा से दूर है।

2. जिसका संग्रह–परिग्रह करने का स्वभाव नहीं होगा।

3. जो 'तृणादपि सुनीचेन' की मूर्ति अर्थात् विनम्र एवं सहनशील होगा। दूसरों का सम्मान करेगा।

4. नित्य तीन प्रार्थनाएँ करेगा।

5. जब हरिनाम जपें तब यह भाव रखें कि भगवान् मेरे पास बैठे हैं।

6. जो किसी का गुण–दोष नहीं देखेगा।

7. जो संतोषी होगा। भगवान् ने जो कुछ उसे दिया है, उसी में सन्तुष्ट होगा, सुखी होगा, प्रसन्न होगा।

जो भी मनुष्य इन सात सूत्रों को जीवन में धारण करेगा, उसे इसी जन्म में भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। यह पक्की बात है। ये सूत्र सात ही क्यों ? आठ, नौ या दस क्यों नहीं ? इसका उत्तर है कि सात नंबर बहुत महत्वपूर्ण है। इसलिये सात सूत्र कहे हैं। पहले

सात का रहस्य सुनो! देखो (1) सप्ताह में दिन सात ही होते हैं। (2) सप्ताह के सात ही दिनों में आदमी जन्म लेता है, इन्हीं सात दिनों में वह मरता है। (3) सप्त ऋषियों से ही सृष्टि चली। (4) श्रील व्यासदेव जी के आत्मदर्शी सुपुत्र श्रील शुकदेव जी ने, महाराज परीक्षित को सात दिन में ही श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर उन्हें भगवान् के धाम में भेजा था। (5) भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सबसे छोटी उंगली पर सात दिन तक श्रीगिरिराज जी को धारण किया था। (6) उस समय उनकी आयु भी सात वर्ष की ही थी। (7) श्रीगिरिराज की परिक्रमा भी सात कोस की ही है। (8) सात ऋषि (सप्तऋषि) ध्रुवलोक की परिक्रमा करते रहते हैं। (9) सात महीने बाद अर्जुन द्वारका से इंद्रप्रस्थ वापिस आए थे। (10) दुल्हा व दुल्हन अग्नि की सात ही परिक्रमा करते हैं। (11) इंद्रधनुष में सात ही रंग होते हैं। (12) संगीत के स्वर भी सात ही हैं। (13) राजा प्रियव्रत ने पृथ्वी की सात परिक्रमा की थीं। (14) राजा प्रियव्रत द्वारा पृथ्वी पर सात समुद्र बनाए गए थे। (15) प्रियव्रत ने सात ही द्वीप (सप्त द्वीप) बनाए। (16) प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सात द्वीपों का स्वामित्व दिया। (17) राजा इन सात आवरणों से घिरा रहता है– गुरु, मंत्री, दुर्ग (किला), कोश, सेना, मित्र तथा प्रजा (18) श्रीनारद जी ने बोला– सात रात में संकर्षण के दर्शन होंगे। (19) श्रीनारद जी के कहे अनुसार महाराज चित्रकेतु ने सात दिन अनुष्ठान किया। (20) सात आवरणों से ब्रह्माण्ड कोष घिरा रहता है। (21) इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति के अभी तक सात भाग प्रकाशित हुए हैं।

सात आचरणशील व स्वभाव वाले भक्त के पीछे श्रीकृष्ण छायावत् चिपके रहते हैं।

आईये! इन सातों सूत्रों के बारे कुछ और जानें।

(1) कांचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर

कनक-कामिनी, प्रतिष्ठा, बाघिनी, छाडियाछे यारे सेई त वैष्णव।
सेइ अनासक्त, सेई शुद्ध भक्त, संसार तथाय पाय पराभव॥

(दुष्ट मन तुमि किसेर वैष्णव, श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद)

"धन, स्त्री व प्रतिष्ठा रूपी बाघिनी का परित्याग करने वाला ही यथार्थ वैष्णव है। इस प्रकार की आसक्ति से रहित शुद्ध भक्त ही संसार का उद्धार करने की सार्मथ्य रखता है।"

कांचन

कनक या कांचन में रुपया-पैसा, सोना-चाँदी, मकान-दुकान-खेत सब आ जाता है। शंकराचार्य जी कहते हैं-

अर्थमनर्थ भावय नित्यं, नास्तिततः सुखलेशः सत्यम।

यानि साधक का यह भाव बना रहना चाहिए कि अर्थ सदा अनर्थ करने वाला है, इसके द्वारा लेशमात्र भी सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भागवत में धन के दोषों का वर्णन करते हुए कहा है- "धन कमाने में, कमा लेने पर उसको बढ़ाने, रखने व खर्च करने में तथा उसके नाश और उपभोग में, जहाँ देखो, वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है। चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, बैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जुआ और शराब - ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्य में धन के कारण ही माने गए हैं। इसलिए अनर्थकारी अर्थ को कल्याण कामी को दूर से ही त्याग देना चाहिए।" मनुष्य को उतने ही धन का उपार्जन करना चाहिए, जिससे निर्वाह मात्र हो सके **(यावदर्थमुपासीनो)**। अधिक के फेर में पड़ने पर भजन का समय कहाँ रहेगा ? और ऐसे मनुष्य को धन की तृष्णा व अभिमान, भक्ति पथ में बहुत बाधा देगा।

तब एक प्रश्न उठता है कि जिसके पास अधिक धन है, क्या वह सारा धन दान कर दे या नष्ट कर दे ? नहीं! अर्थ जहाँ अनर्थ

लाने वाला है वहीं अर्थ परमार्थ भी देने वाला है। जब धन अपनी सुविधा सुख भोग के लिए लगाया जाए तो अनर्थकारी है परन्तु जब भगवान् की, भक्तों की, सेवा में लगाया जाए तो परमार्थकारी है। श्रील रूप गोस्वामी बताते हैं कि मनुष्य जब धन के प्रति आसक्ति न रखता हुआ, भगवान् की सेवा के सम्बन्ध से उसका प्रयोग करता है तो उसके त्याग की आवश्यकता नहीं है।

तोमार धन, तोमार दिये, तोमार हय रई।

"हे प्रभु! आपका धन, आपकी ही सेवा में लगाकर, आपका ही बनकर रहता हूँ।" भगवान् के अर्पित होने पर वह सब प्रकार से मंगलकारी हो जाता है– **कृष्णार्पित कुशलदम्** (पाद्मे)। भगवान् के भक्त उल्लू की सवारी करने वाली, स्वर्ण रेखा रूप में नारायण के हृदय पर विराजमान, रजोगुण–प्रिया, चंचला लक्ष्मी (धन) की इच्छा नहीं करते। वे तो सदैव नारायण की चरण सेवा में नियोजित, सफेद गज की सवारी करने वाली, सत्वगुण–प्रिया, अचला, धर्मयुक्त, हरिसेवा में लगाने वाली महालक्ष्मी (धन) की ही इच्छा करते हैं।

कुछ लोग ऐसी इच्छा करते हैं कि हमारे पास अधिक धन होता तो हम बहुत अच्छी प्रकार से प्रभु की सेवा कर पाते। परन्तु शास्त्र कहते हैं कि कीचड़ में पाँव डालकर, उसे धोने से बेहतर है कि कीचड़ में पाँव डाले ही न जाएँ। यानि धन रूपी कीचड़ को सेवा रूपी पानी से धोने से अच्छा है ये कीच इकट्ठा ही न किया जाए। तब प्रश्न आता है कि धन के बिना सेवा कैसे हो ? सेवा तन से, मन से व धन से होती है। इसमें धन से की गई सेवा अभिमान–युक्त होने के कारण सबसे निम्न मानी जाती है। धनहीनों में धन का अभिमान नहीं होता। दीनता होती है।

दीनेर अधिक दया करे भगवान्।

"दीनों पर भगवान् की विशेष दया रहती है।" दीन जनों की 1 रुपये की सेवा भी भगवान् 1 लाख की तरह ग्रहण करते हैं, तभी तो कुरुक्षेत्र में अपनी एकमात्र संपत्ति–खुरपे का दान करने वाले

माली के दान को भगवान् ने मनों सोने का दान करने वालों से श्रेष्ठ माना।

धनहीन जन, तन से सेवा कर सकते हैं। और मन से सेवा वे तीन प्रकार से कर सकते हैं। पहली है अनुमोदना सेवा। अर्थात् किसी ने भी, जो भी सेवा की, उसमें परम प्रसन्न हो जाना, उसका अनुमोदन करना। इससे आप भी उस सेवा के भागीदार बन जाते हैं, भगवान् की प्रसन्नता के पात्र बन जाते हैं–

आद्रतो वानुमोदितः सद्यः पुनाति

(भा 11.2.12)

दूसरी, मन में वह सेवा करने की इच्छा रखना। जैसे धाम में जाने की इच्छा मात्र से वहाँ जाने का कुछ पुण्य मिल जाता है। क्योंकि भगवान् तो भक्त का भाव ग्रहण करते हैं– **भावग्राही जनार्दनः**।

तीसरा है, मन ही मन उस सेवा का सम्पादन करना। कलियुग में मन से किये पुण्य का फल मिलता है, पाप का नहीं– **मानस पुण्य होय नहि पापा**। जैसे प्रतिष्ठानपुर के ब्राह्मण ने लक्ष्मीनारायण का मन ही मन पूजन व बढ़िया खीर भोग अर्पण कर उनका दर्शन पाया व वैकुण्ठ गमन किया। धन से उत्कृष्ट तन की व उससे श्रेष्ठ सेवा मन की है क्योंकि बिना मन के की गई सेवा से इंसान खुश नहीं होता, भगवान् तो कैसे होंगे ? **वास्तव में भक्त के हृदय में जो प्रेम व प्रीति है, उसी से भगवान् की प्रसन्नता होती है, वस्तु से नहीं – प्रेम्णैव भक्तहृदयं सुखविद्रुतं स्यात (पद्यावली 13)**। तभी तो सूरदास जी ने कहा– **दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाई। सबसे ऊँची प्रेम सगाई**। अतः साधक को **'सादा जीवन उच्च विचार'** का आर्दश ले, धन संग्रह व आसक्ति का त्याग करना चाहिए।

कामिनी

कामिनी अर्थात् स्त्री। स्त्री देवताओं की माया का वह प्रबल हथियार है जिससे जीव भगवान् की प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। दत्तात्रेयजी कहते हैं–

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां, तद्भावैरजितेन्द्रियः।
प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्रे पतङ्गवत्॥

(भा 11.8.7)

इन्द्रियों को वश में न रखने वाला पुरुष जब स्त्री को देखता है तो उसके हाव-भाव पर आसक्त हो, परमार्थ मार्ग से गिरकर अपना सर्वनाश उसी प्रकार कर लेता है जैसे पतिंगा अग्नि के रूप पर मोहित हो आग में कूद जाता है और जल मरता है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि तेज गरमी, जलाशयों के जल को सुखा देती है। उसी प्रकार नारी की आसक्ति जप, तप नियम रूपी जलाशय को पूरा सुखा देती है- **जप तप नेम जलाशय झारी। होई ग्रीष्म सोषइ सब नारी**। पुरुरवाजी भी कहते हैं कि स्त्री ने जिसका मन चुरा लिया है उसकी विद्या व्यर्थ है। तप, त्याग, शास्त्राभ्यास से उसे कोई लाभ नहीं है। उसका एकांत सेवन और मौन भी निष्फल है।

जगन्नाथपुरी में युवक भक्त 'छोटा हरिदास' ने ८४ वर्षीय भक्ता माधवी देवी से जब चावल भिक्षा ग्रहण की तब श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने छोटा हरिदास का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिया। महाप्रभु हम सबको स्त्री से दूर रहने की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। जगदानंद पण्डित कहते हैं कि यदि आप श्रीमहाप्रभु की प्रीति चाहते हो, उनके कहे अनुसार भक्तिमार्ग में आगे बढ़ना चाहते हो तो छोटा हरिदास की कथा कभी न भूलें-

यदि चाह प्रणय राखिते गौरांगेर सने।
छोटा हरिदासेर कथा थाके येन मने॥

यह आसक्ति स्त्रीलंपटों व स्त्रियों के संग से आ जाती है। श्रीकृष्ण कहते हैं अपना कल्याण चाहने वाले को स्त्री को देखना, स्पर्श करना, वृथा बातचीत या हंसी-मस्खरी करना छोड़ देना चाहिए। **साधक को परस्त्री के प्रति सदा माता का भाव रखना चाहिए- मातृवत परदारेशु**। भक्तिमती नारी सदैव वंदनीय है। परन्तु उससे भी मर्यादा के अनुसार व्यवहार करते हुए दूरी रखनी ही श्रेष्ठ है। शुकदेव

गोस्वामी कहते हैं कि इन्द्रियाँ इतनी बलवान हैं कि वह बड़े-बड़े विद्वानों को भी मोहित कर देती हैं। इसलिए माँ-बहिन-बेटी के साथ भी एक आसन पर अकेले नहीं बैठना चाहिए। तभी तो कहा है-

काजल की कोठरी में, कैसों भी सयानो जाय
काजल की एक रेख, लागी है रे लागी है।

यहाँ तक गृहस्थ के लिए भी अपनी पत्नी में आसक्ति उचित नहीं बताई गई। पत्नी संतान प्राप्ति मात्र के लिए है, भोग विलास के लिए नहीं- **एवं व्यवायः प्रजया न रत्या** (भा 11.5.13)। जैसे आग में घी डालने पर आग बुझती नहीं है बल्कि बढ़ती है। उसी प्रकार स्त्रीसंग से स्त्री आसक्ति बढ़ेगी, घटेगी नहीं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि सद्गृहस्थ, पत्नी-पुत्र-भाई आदि को अपनी नहीं, बल्कि भगवान् के सेवक-सेविकाएं जानता है। सब कुछ भगवान् का मानकर, उनके साथ भगवान् की सेवा में नियुक्त रहता है-**बन्धु दारा सुत सुता तब दासी दास। सेइ त सम्बन्धे सबे आमार प्रयास॥** गलत संग का त्याग करने से और निरंतर भक्तों का संग करने से यह भाव पक्का हो जाता है।

जिस प्रकार पुरुष साधकों को स्त्री आसक्ति से बचना है वैसे ही सब स्त्री साधिकाओं को पुरुषों की आसक्ति से अपनी रक्षा करनी है।

प्रतिष्ठा

जो मनुष्य कांचन व कामिनी रूपी भक्ति बाधा को पार कर गया है उसके लिए भी सूक्ष्म रूप से कार्य करने वाली प्रतिष्ठा, यश मान की इच्छा को दूर करना बड़ा कठिन है। प्रारंभिक अवस्था के साधक में इस प्रकार के मान की आशा होती है कि- **आमि वैष्णव**-मैं तो भक्त हूँ, मैं इतना हरिनाम करता हूँ, मैंने सब विषयों को छोड़ दिया है और ऊँची अवस्था के साधक में ऐसा मान पाने की इच्छा रहती है- मैंने शास्त्रों का अर्थ जान लिया है, मैं इतने

सालों से भजन कर रहा हूँ, मैं भजन में सिद्ध हो गया हूँ और प्रतिष्ठा पाते–पाते अति तो तब हो जाती है जब अपना विशेष सम्मान न होना ही उसे अपमान प्रतीत होता है। जैसे दक्ष प्रजापति को शिवजी का, उसके सम्मान में खड़ा न होना, भयंकर अपमान लगा था। कई महात्मा तो माला न पहनाने व प्रणाम न करने पर अपमानित अनुभव करते हैं। सत्य दैन्य (दीनता) आए बिना इस बाधा को दूर करना असंभव है।

सनातन गोस्वामी पाद कहते हैं कि यह प्रतिष्ठा, विष्ठा (मल) के समान घृणित है। जिस प्रकार से विष्ठा का स्पर्श न ही करना अच्छा है, उसी प्रकार से प्रतिष्ठा रूपी विष्ठा का भी यत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए–

कुर्य्युः प्रतिष्ठा विष्टया यत्नमस्पर्शने वरम्।

श्रील रघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं कि जब तक हृदय में प्रतिष्ठा की इच्छा रूपी चाण्डालिनी उद्दण्ड होकर नृत्य कर रही है तब तक भक्तिपथ पर मार्गदर्शन करने वाले निर्मल साधुओं के प्रति प्रीति कैसे हो सकती है। (मनः शिक्षा 7)।

अतः भक्तों का सदा भाव रहता है– **गुण तोमार समुझई निज दोषा**। यानि जितने भी गुण या अच्छाई हैं वह प्रभु की कृपा है और जितने भी अवगुण व दोष हैं उसका कारण मैं हूँ। भक्त सदैव यश, मान सम्मान का कारण हरिनाम, गुरुजनों व भगवान् को मानता है। जो भी मान सम्मान मिलता है उसका मूल कारण गुरु–वैष्णव–भगवान् को जान उनके ही चरणों में उसे समर्पित कर देता है– **तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा**।

साधारण तौर पर कोई अपने भजन के कठोर नियमों व भजन की अनुभूतियों को सबको बताए, तो उसका पतन हो जाता है जैसे राजा ययाति स्वर्ग से पृथ्वीलोक पर गिर गया था। पतन का कारण है अपनी प्रतिष्ठा। परन्तु यदि कोई भक्त इन सब दिव्य अनुभवों को भगवान् की कृपा, महिमा के रूप में देखे तो यह उसको नीचे

नहीं गिराती बल्कि भजन में और आगे बढ़ा देती है। अवधूत श्री गार्ड साहिब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उन पर की गई अद्भुत कृपाओं (उनके रूप में ट्रेन चलाना, बेमौसम आम पैदा करना, फेल को पास करना, बच्ची के प्राण बचाना, दुर्गियाना मन्दिर सरोवर जल के अंदर रहकर 10-12 घण्टे कालिय नाग लीला का साक्षात् दर्शन करना) का बार-बार बखान करते थे। परन्तु उन्होंने इसे सदा भगवान् की कृपा समझा, अपना चमत्कार नहीं। श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी भी अपने भजन के रहस्य बताकर भी, प्रेम सागर, विरह सागर में गोते लगाते रहते हैं।

(2) संग्रह – परिग्रह से दूर

संग्रह-परिग्रह का अर्थ है सांसारिक वस्तुओं को इकट्ठा करना। सांसारिक सुख की वस्तुओं को इकट्ठा करना मनुष्य का स्वभाव है। लगता तो यह है कि यह सुख-भोग की वस्तु संग्रह करने पर सुख देगी पर वास्तविकता यह है कि उससे अन्त में दुख की ही प्राप्ति होती है। अब एक धन का ही उदाहरण लें। कामनाओं के भोग के लिए मनुष्य अन्याय पूर्वक भी इसको इकट्ठा करता है-

काम भोगार्थमन्यायेनार्थ सञ्चयान्

(गीता 16.12)

धन कमाना तो कठिन है ही, फिर उसे संभालने में, बढ़ाने में, खर्च करने में निरंतर भय, चिंता व परिश्रम है। फिर 99 के फेर में पड़ा मनुष्य अपने कल्याण के बारे में तो कुछ समझता ही नहीं है और यदि कोई इसे लूट ले या घाटा हो जाय तो मनुष्य को यह भयंकर दुख दे जाता है। यही बात बाकी प्रिय वस्तुओं के संग्रह पर भी खरी उतरती है-

परिग्रहो हि दुखाय, यद यत्प्रियतमं नृणाम्।
अनंतं सुखमाप्नोति तद् विद्वान् यस्त्वकिञ्चनः।

(भा. 11.9.1)

"मनुष्य को जो वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय लगती हैं, उन्हें इकट्ठा करना ही उसके दुख का कारण है। जो बुद्धिमान मनुष्य यह समझ लेता है, वह अकिञ्चन भाव से रहता है, यानि शरीर तो क्या मन से भी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करता, वह अनंत सुख का भागीदार बन जाता है, भगवत्-प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है।"

दतात्रेय जी अपने 18वें गुरु कुकुर पक्षी का उदाहरण देते हैं। एक कुकुर पक्षी चोंच में मांस का टुकड़ा लिए जा रहा था। तभी एक बलवान पक्षी उस टुकड़े को छीनने के लिए कुकुर पक्षी पर चोंच से प्रहार करने लगा। माँस के टुकड़े का त्याग करने पर ही उसे सुख मिला। इसी प्रकार मधुमक्खी भी अपने शहद के संग्रह के कारण ही जीवन से हाथ धो बैठती है।

प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस् तु महाफला (मनु संहिता 5.56)। सुख भोग की वस्तुओं के संग्रह की तो मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है परन्तु यदि कोई इसको छोड़ता है तो महाफल की प्राप्ति करता है। इस संग्रह-परिग्रह का त्याग करने वाला निष्किंचन या अकिंचन कहलाता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद कहते हैं कि जब तक जीव भोगोन्मुख रहता है तब तक प्रेम (भक्ति) का आस्वादन करना उसके लिए असंभव है। जिस प्रकार शहद से भरी काँच की बोतल पर बैठा भौंरा, काँच को भेदकर शहद का रस कभी नहीं पी सकता, उसी प्रकार निष्किंचन हुए बिना ब्रजरस (भक्तिरस) का आस्वादन कभी नहीं हो सकता है।

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँकि रहि सकै, रवि रजनी इक ठाम॥

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि संग्रह-परिग्रह से रहित अकिंचन, संयमी, शांत, समदर्शी व संतोषी के लिए आकाश का कोना-कोना आनंद से भरा है। रुक्मिणीजी से तो भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कह दिया कि हम सदा के अकिंचन हैं और अकिंचन भक्तों से ही हम प्रेम करते हैं और वे हमारे से प्रेम करते हैं- **निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचन-जनप्रियाः** (भा 10.60.14)। फिर भगवान् दर्शन

भी अकिंचन भक्तों को ही देते हैं–**त्वामकिंचन- गोचरम्** (भा 1.8. 26)।

तब यह प्रश्न उठता है कि जिसके पास पहले से ही बहुत वस्तुओं का संग्रह है वह क्या उनको नष्ट कर दे ? भगवान् कृष्ण उद्धवजी से कहते हैं कि संसार में जो वस्तु अपने को सबसे प्रिय, सबसे अभीष्ट जान पड़े, वह मुझे समर्पित कर दे। ऐसा करने से वह अनंत फल देने वाली हो जाती है (भा 11.11.41)। वह साधक प्रिय वस्तुऐं भगवान् की सेवा में लगाए और आगे से संग्रह की आदत को कम करे। और जिसकी संसार में आसक्ति समाप्त हो गई है वह सारे धन–वैभव–संपत्ति को बिना विचार किए छोड़कर निकल जाएगा और उन्मुक्त पक्षी की तरह वृन्दावन में विचरण करेगा–

बहवः इव विहंगा भिक्षुचर्या चरन्ति

(भा 10.47.7)

जैसे राजा भरत, रघुनाथदास गोस्वामी, नरोत्तम ठाकुर।

इसलिए शास्त्रों में जहाँ भी भक्त के लक्षण बताए गए हैं, अकिंचनता का वर्णन किया गया है। महाप्रभु ने कहा–**मृदु शुचि अकिंचन (चै.च 22/74)** तुलसीदास जी ने कहा–

तेहि ते कहहि संत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे॥

(मानस 1.161.3)

भागवत के अनुसार जितने से पेट भर जाए उससे अधिक को अपना मानने वाला चोर है और दण्ड का पात्र है– **स स्तेनो दण्डमर्हति**। इस दृष्टि से मनुष्य को संग्रह–परिग्रह छोड़ना चाहिए और वैसे भी यह जीवन कमल के पत्ते पर पड़ी जल की बूंद के समान अस्थायी है– **कमलदल–जल, जीवन टलमल**। इस जीवन की समाप्ति के साथ सारे संग्रह भी समाप्त हो जाऐंगे तो पहले परित्याग कर अनंत सुख के भागीदार क्यों न बना जाए। धन, मकान, गाड़ी, गहने संग्रह करने में लगा मनुष्य, इन्हीं में उलझा रहेगा। भजन के लिए तो उसे समय मिल ही नहीं पाएगा। अतः सब भोग की

वस्तुओं का संग्रह छोड़कर, केवल और केवल, नाम धन का संग्रह करना चाहिए–

कबीरा सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोइ।
धनवंता सोई जानिये, रामधनी जो होई॥

(3) 'तृणादपि सुनीचेन' की मूर्ति

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरि॥

(शिक्षाष्टक 3)

साधक स्वयं को तिनके से भी अधिक हीन समझकर, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनकर, स्वयं अभिमान से रहित होकर, दूसरों को उचित सम्मान देकर, सदा हरिनाम कीर्तन करता रहेगा।

भगवत्–दर्शन के इच्छुक को इस श्लोक में वर्णित गुणों से युक्त होना चाहिए।

तृणादपि सुनीचेन– सबके पैरों के नीचे कुचले जाने वाले तिनके से भी अधिक अपने को दीन–हीन समझना। **दैन्य प्रियत्वाच्च** – भगवान् को दीनता अति प्रिय है। अपने पापों व अपराधों के फलस्वरूप जन्म–मरण के चक्र में फंसा मैं, आपकी अहैतुकी कृपा से दुर्लभ मानव जन्म लाभ कर पाया हूँ। साधुसंग से भजन की महिमा जानकर भी मैं भोगों का त्याग कर भजन में नहीं लग पा रहा हूँ। इस प्रकार का विचार साधक का बना रहना चाहिए। सूरदास जी कहते हैं–

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसौ नमक हरामी।
भरि भरि उदर विषयन कों धायो, जैसे सूकर–ग्रामी।
हरिजन छांड़ि, हरि विमुखन की, निसदिन करत गुलामी॥

इसी प्रकार से रूप गोस्वामी जी दीनता से कहते हैं– हे प्रभु! मेरे जैसा पापी और अपराधी कोई नहीं है। मैं कौन–सा मुख लेकर आपके सामने आऊँ। और श्रील कृष्णदास कविराज कहते हैं–

पुरीशीर कीट हय मुई से लघिष्ट

"मैं तो मल के कीड़े से भी ज्यादा तुच्छ हूँ।" वास्तव में जितनी भक्ति बढ़ती है साधक में उतनी दीनता आ जाती है। सूखा पेड़ झुकता नहीं है परन्तु फलवान वृक्ष झुक जाते हैं। वैसे ही गुणी महात्मा झुक जाते हैं, दीन हो जाते हैं– **नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणिनो जनः**।

जिसके पास दीनता का पात्र (बर्तन) नहीं है वह साधु व भगवान् की कृपा को रखेगा कहाँ ? विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद कहते हैं कि वर्षा (भगवत–कृपा) सब पर समान रूप से बरसती है पर जल पहाड़ (अभिमानी जनों) पर नहीं रूकता, गड्ढे में (दीन जनों पर) आकर ठहरता है। अतः यत्नपूर्वक साधक को '**भक्ति के भूषण**' – दीनता को धारण करना चाहिए।

तरोरपि सहिष्णुना– वृक्ष सहनशीलता की मूर्ति है। वह अपने काटने वाले को भी फल व छाया देता है। स्वयं धूप, सर्दी, वर्षा सहन करता हुआ भी सबकी धूप व वर्षा से रक्षा करता है। साधक को ऐसा सहनशील, सहिष्णु बनना चाहिए। सहनशील न होने पर साधक, भक्तिमार्ग की बाधाओं से परेशान होकर इसे छोड़ देगा। जड़भरत को लोगों ने कितना सताया, कोई उस पर थूक देता, कोई मूत्र ही कर देता परन्तु वह सब सहन कर लेता। चंदन को भी बार–बार घिसने पर ही उसकी सुगंध फैलती है। गन्ने को भी पेरने पर ही उसमें से रस निकलता है। सोने को अग्नि में बार–बार तपाने पर ही उसका सुंदर रूप प्रकट होता है–

'दग्धं–दग्धं पुनरपि पुनरः कांचनं कांतरूपः।'

इसी प्रकार भगवान् के भक्त भी सब प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन कर जाते हैं, उनसे प्रभावित नहीं होते। इससे उनकी भक्ति पूर्ण रूप से मार्जित होती है और जगत को प्रकाशित करती है। इस प्रकार सहनशील होने से ही भजन हो सकेगा।

अमानिना– साधक को अभिमान से रहित होना चाहिए। इस शरीर के सम्बन्ध से होने वाले अभिमान क्षणिक हैं, झूठे हैं। यह शरीर ही हमेशा रहने वाला नहीं है तब इसके सम्बन्ध से होने वाले अभिमान–धन–वैभव, बल, जन्म, सुंदरता, जाति, कला, विद्या, बुद्धि, तप कहाँ तक सत्य हो सकते हैं ? सत्य अभिमान तो आत्मा का अभिमान है और वह एक ही है–

अस अभिमान जाई जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

मानस 3.11

कृष्णादेव समुन्धितं जगदिदं, कृष्णस्य दासोऽस्म्यहं॥

(मुकुन्द माला स्तोत्र 50)

मैं भगवान् का सेवक हूँ और वह मेरे स्वामी हैं। कोई इसे मानता है और कोई नहीं मानता है। इस सत्य अभिमान को जो मानता है उसका कल्याण हो जाता है और जो नहीं मानता, इसी पाप से उसका नाश हो जाता है–

केह माने केह न माने, सब तार दास।
ये न माने, तार हय, सेइ पापे नाश॥

(चै.च. 1.6.83)

झूठे अभिमान का त्याग कर सही अभिमान में रहने पर व सम्मान पाने की इच्छा से रहित होने पर ही साधक निरंतर हरिनाम कर सकेगा।

मानदेन– भक्त सबको यथा–योग्य, उचित सम्मान देगा। साथ ही वह जगत के किसी भी प्राणी, यहाँ तक कि चींटी, पतिंगा व आततायी मच्छर से भी द्वेष या हिंसा नहीं करेगा। भगवान् कहते हैं कि अनंत ब्रह्माण्डों में जितने भी जीव हैं सब मेरे दास हैं, जो उनकी हिंसा करता है, उसका सर्वनाश हो जाता है–

अनंत ब्रह्माण्डे जत, सब मोर दास। ऐतेके ये परहिंसें सेई जाय नाश॥

(चै भा. 2.19.210)

कनिष्ठे आदर, मध्यमे प्रणति, उत्तमे शुश्रुषा जानि। साधक एक बार भी कृष्ण नाम बोलने वाले को मन ही मन प्रणाम करेगा,

गुरु–आश्रय में भजन करने वाले को दण्डवत् प्रणाम करेगा और निंदा आदि दोषों से मुक्त महापुरुषों को केवल प्रणाम ही नहीं करेगा, बल्कि सब प्रकार से उनकी सेवा करेगा (उपदेशामृत 5)। इस प्रकार के उचित आचरण से ही भक्त अपराधों से बचता हुआ, हरिनाम कर पाएगा।

(4) सब जीवों में भगवान् का दर्शन करें

भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं–

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो

(गी. 15/15)

अर्थात् मैं ही सब जीवों के हृदय में ईश्वर रूप से विराजमान हूँ। श्रीमद्भागवत में भी वे उद्धवजी को भक्ति के श्रेष्ठ साधन के रूप में समस्त प्राणियों में ईश्वर को देखना ही बताते हैं– **सर्वभूतेषु मन्मतिः (भा 11/19/21)।**

अतः हर प्राणी में भगवान् का वास है। किसी भी प्राणि को दुख देने वाला, सताने–मारने वाला, भगवान् को ही सताता व दुख देता है। उसके द्वारा की गई भगवान् की पूजा तो बेकार हो ही जाती है, उसको भीष्म दुख भी सहन करना पड़ता है–

पूजाओ विफल जाये, आर दुख मरे।

हरे वृक्षों को काटना भी पाप है क्योंकि उनमें भी भगवान् का वास है। इस सृष्टि में भक्त भगवान् के अति प्रिय हैं। उनकी निंदा मात्र ही सौ जीवों को सताने के बराबर है, अतः सौ गुणा अधिक पाप लगता है–

तार शत गुण हय वैष्णव निन्दिले।

सब जीवों में भगवद्–दर्शन का हमें क्या लाभ है ? सब जीवों में भगवान् विराजमान हैं, यह जानने पर हम सबका सम्मान करेंगे। किसी के भी प्रति बुरी भावना, द्वेष, ईर्ष्या हमारे हृदय में नहीं आएगी–

निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध।

किसी भी जीव का जब हमसे अपराध नहीं होगा तो भगवद्-प्राप्ति का मार्ग अति सुगम हो जाएगा॥

जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
वंदउँ सब के पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥

(मानस बालकण्ड)

(5) सब काम भगवान् का समझ कर करता है

संसार में मनुष्य अच्छे व बुरे दोनों प्रकार के कर्म करता है। अच्छे कर्मों का फल पुण्य व बुरे कर्मों का फल पाप होता है। यह पाप ही दुख के रूप में व पुण्य ही सुख के रूप में मनुष्य को मिलता रहता है। यहाँ मनुष्य जो भी कर्म करता है, अपने व अपनों के लिए करता है। अतः उसका फल भी उसे ही भोगना पड़ता है। अब यदि वह कर्म भगवान् के लिए करे, तो पाप-पुण्य का सारा बोझ भगवान् को जाता है। भगवान् समस्त लोकों के, ईश्वरों के भी ईश्वर **(सर्वलोकमहेश्वर)** व समस्त यज्ञ व तपस्याओं को भोगने वाले **(भोक्तारं यज्ञतपसां)** होने से पाप-पुण्य से परे हैं, इस के प्रभाव से रहित हैं। अतः यदि यह सब कर्म, मनुष्य भगवान् के लिए करता है या भगवान् का समझ कर करता है तो उसे कर्मों के बंधन में फँसना नहीं पड़ता।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि भगवान् के लिए किए गए कामना-रहित कर्म के सिवा, सब प्रकार के कर्मों से मनुष्य को बँधना पड़ता है, अर्थात् पाप-पुण्य का फल भोगना पड़ता है। इसलिए अर्जुन तुम फल की इच्छा से रहित हो, भगवान् के निमित्त, ठीक प्रकार से कर्म करो। (गीता 3.9)

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि शास्त्र-विरोधी पाप-कर्म भगवान् के अर्पित नहीं हो सकते **(कामिनाम तु सर्वथैव न दुष्कर्मार्पणम्-जीव गोस्वामी)**। तो ऐसा साधक जिससे पाप कर्म अभी नहीं छूटते वह क्या करे! वह पाप कर्मों को छोड़ सब कर्म भगवान् का समझकर (भगवान् के अर्पित), करता रहे। बहुत शीघ्र

ही उसकी पाप–कर्मों की इच्छा छूट जाएगी और वह धर्मात्मा बन जाएगा– **क्षिप्रं भवति धर्मात्मा, गीता 9.31।**

श्रीधर स्वामी बताते हैं कि भक्त केवल शास्त्र–विहित कर्म ही भगवान् को अर्पित नहीं करता बल्कि साधारण व्यावहारिक क्रियाएं (चलना, बैठना, सोना आदि) भी उन्हें अर्पित करता है। कर्मी (कर्मयोगी) तो ये सब कर्म, करने के बाद अर्पित करते हैं ताकि उनसे कर्म बंधन न हो परन्तु अनन्य भक्त उन्हें भगवान् के सुख के लिए, प्रीति के लिए, करने से पहले अर्पित करता है– **(भगवत्यर्पितैव क्रियते–विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद)**। अर्थात् पाप से बचने के लिए भगवान् को भोजन का भोग नहीं लगाता बल्कि रसोई में भोजन बनाता ही भगवान् के सुख के लिए है।

श्रीमद्भागवत के नव–योगेश्वर संवाद में योगेश्वर श्रीकविजी द्वारा भागवत–धर्म भगवद् प्राप्ति का सुगम साधन बताया गया है जिसपर चलने से मनुष्य सारे विघ्नों को आसानी से पार कर लेता है व इस मार्ग पर नेत्र बंद करके दौड़ने पर भी न कभी गिरता है व न ही फल से वंचित होता है। वहाँ उन्होंने इसी प्रकार 'सब कर्म भगवान् के समझ कर करने' को भगवान् की प्राप्ति का आसान तरीका बताया है–

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै, नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

(भा 11/2/36)

साधक शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियों, बुद्धि, अहंकार से अनेक जन्मों की आदतों से स्वभाव वश जो–जो करे, वह सब परमपुरुष भगवान् नारायण के लिए ही है– इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा ये सब शास्त्रों का सार दूसरी प्रार्थना के रूप में हमें दिया गया है, जिसके रोज बोलने से हम भागवत–धर्म का पालन करते हुए, कर्म बंधन से मुक्त होते हुए, भगवान् के दर्शन प्राप्त करने के पात्र बनते जा रहे हैं।

(6) किसी के भी गुण–दोष नहीं देखता

प्रत्येक मनुष्य में कुछ गुण व कुछ दोष अवश्य होते हैं। भगवत्–प्राप्त संतों को छोड़कर कोई भी पूर्ण रूप से दोषों से रहित नहीं हो सकता। और कोई भी मनुष्य सृष्टि में ऐसा नहीं है जिसमें कोई गुण न हो।

हम जिसके गुण या दोष का चिंतन करते हैं, वह गुण व दोष हमारे में आ जाते हैं। अतः शास्त्रों में अनेक स्थानों पर गुण–दोष चिन्तन को छोड़ने को कहा गया है– **अन्यस्य दोष–गुण चिंतनम् आशु मुक्त्वा (गोकर्ण)**। भगवान् कृष्ण ने उद्धवजी से तो यहाँ तक कह दिया कि गुण–दोष पर दृष्टि जाना ही सबसे बड़ा दोष है– **गुणदोष दृशि दोषो (भा 11.19.45)**। हम लोगों की दोष वर्णन की इतनी आदत बन चुकी है कि अगर हम किसी के गुणों की बात करना आरम्भ करेंगे, तो भी शीघ्र ही उसके दोषों का गान करने पर आ जाएेंगे। इसलिए गुण–दोष दोनों का ही चिंतन निषेध किया गया है।

परन्तु यह भी विचारणीय है कि समस्त धर्म ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर गुणों व दोषों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। जब हमें गुण दोष पर दृष्टि करनी ही नहीं तब जानने का क्या अर्थ है? इसका उत्तर यह है कि गुण–दोष इसलिए बताए गए हैं ताकि हम जब तक निर्गुण अवस्था तक नहीं आ जाते, गुण–दोष देखना छोड़ नहीं देते, तब तक हम अपने गुण–दोषों को परख सकें व दोषों को त्यागकर गुणों को आत्मसात कर सकें। निश्चित रूप से गुण, दोषों से श्रेष्ठ हैं। तुलसीदास जी कहते हैं–

तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
अस विवेक जब देहि विधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥

रामचरितमानस 1.6.1–2

"यहाँ कुछ गुण व दोषों का वर्णन किया है क्योंकि बिना पहचाने गुणों का संग्रह व दोषों का त्याग नहीं किया जा सकता है।

विधाता जब इस प्रकार का (हंस का सा) विवेक देते हैं तब ही मनुष्य का मन दोषों को छोड़कर गुणों में अनुरक्त होता है।"

वास्तविकता यह है कि संसार के विषयी प्राणी प्रमुख रूप से अपने नहीं, बल्कि दूसरों के दोष देखने में लगे रहते हैं व शेषनाग की तरह हजारों मुखों से उनके दोषों का वर्णन करते रहते हैं **(सहस वदन बरनई पर दोषा)**। जिस दोष का हम बार–बार चिंतन करेंगे उसको बोलेगें भी और यही दोषों का वर्णन श्रीधर–स्वामी के अनुसार निंदा है– **निन्दनं दोष कीर्तनं**। जिस प्रकार से सूअर मल खाकर गाँव को स्वच्छ रखता है उसी प्रकार निंदक साधु के बचे–खुचे दोषों (पापों) को खाकर उसे शुद्ध कर देता है– **शुद्ध्यन्ति शूकराः ग्रामं साधुनः शुद्ध्यन्ति निन्दकाः**।

दोष चर्चा करने पर दोष शीघ्र हमारे में आ जाते हैं परन्तु गुण वर्णन करने पर गुण धीरे–धीरे ही हमारे स्वभाव में आते हैं। कैसे ? जैसे बड़ा पत्थर अगर पहाड़ पर चढ़ाना हो तो कितना अधिक समय व परिश्रम लगेगा पर चोटी से अगर उसे गिराना हो, तो एक धक्का ही काफी है।

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना।

कलि के प्रभाव से मनुष्य का मन पापों में ऐसा रमता है जैसे जल में मछली। अतः दुर्गुण शीघ्र आते हैं व सद्‌गुण बहुत प्रयास से।

जो भक्ति के पथ पर अभी नया–नया है (कनिष्ठ वैष्णव), उसमें भी दोष–देखने की ही प्रवृत्ति विशेष होती है। जो भक्त, भक्ति की मध्यमावस्था (मध्यम वैष्णव) तक आ जाता है वह गुण व दोष दोनों को देखना व परखना जानता है व उसके अनुसार व्यवहार करता है। और भक्ति की ऊँची अवस्था पर पहुँचा भक्त (उत्तम वैष्णव) केवल गुण ही गुण देखता है। और जो परमहंस, अवधूत, भगवत्–दर्शन प्राप्त संत (सिद्ध–वैष्णव) होता है, वह दूसरों के दोषों को भी गुण रूप में देखता है। ऐसे संत पूर्ण रूप से

समदृष्टि वाले होते हैं, अर्थात् सब जीवों व प्राणियों में भगवद् दर्शन करते हैं। जैसे वंशीदास बाबाजी महाराज के नवद्वीप स्थित कुटी से जब चोर बर्तन चोरी करके ले गए तो वे खिल-खिलाकर हँसते हुए कहते हैं- एक चोर देता है, एक चोर लेता है। अर्थात् वह चोर का दोष नहीं देख रहे हैं और कह रहे हैं कि देने वाले भी कृष्ण व लेने वाले भी कृष्ण ही हैं।

गुण-दोष व्यवस्था अधिकार के अनुसार होती है वस्तु के अनुसार नहीं अर्थात् अपने अधिकार के अनुसार कार्य करना गुण है व अधिकार से बाहर कार्य दोष है (भा 11/21/2)। जैसे गृहस्थी अगर अपनी स्त्री के साथ रहता है तो गुण है और संन्यासी यदि स्त्री के साथ रहे तो दोष। वैश्य यदि दूध बेचे तो गुण व ब्राह्मण यदि बेचे तो दोष। किसी साधारण मनुष्य से कोई गलत कार्य हो जाए तो 'पाप' और यदि शुद्ध भक्त से कोई गलत कार्य बन जाए तो 'कुछ नहीं'- **न हन्ति न निबध्यते (गीता 18.17)**। भगवान् कहते हैं मेरे परम प्रेमी ऐकान्तिक भक्तों का गुण-दोषों से उत्पन्न होने वाले पाप-पुण्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वे पाप-पुण्य से अछूते रहते हैं-

न मय्येकान्त भक्तानां, गुणदोषोद्भवा गुणाः

(भा 11.20.36)

मनुष्य अधिकार का विचार किए बिना साधारण मनुष्य व वैष्णव को एक तराजू पर तोलता है और वैष्णव दोष दर्शन व वर्णन कर अपना सर्वनाश कर बैठता है-

ये निन्दन्ति हृषीकेशं तद्भक्त पुण्य रूपिणम्।
शतजन्मर्ज्जितं पुण्यं तेषां नश्यति निश्चितम्।
ते पतन्ति महाघोरे कुम्भी पाके भयानके।
भक्षिताः कीटसंघेन यावद् चन्द्र दिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

भगवान् हृषीकेश के पुण्यशाली भक्तों की निंदा करने वाला, अपने सौ जन्मों में अर्जित पुण्यों का नाश कर बैठता है। इतना ही

नहीं, मरने पर वह भयानक कुम्भीपाक नरक में सूर्य व चन्द्र की आयु तक अति भीषण कीड़ों द्वारा खाया जाता है।

अतः साधक किसी भी अवस्था का हो, उसे दूसरों के गुण-दोष देखने से बचने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। गुण-दोष देखने की सार्थकता इसी में है कि अगर **दूसरे में कुछ दिखे तो केवल गुण और अपने में कुछ दिखे तो केवल दोष**!

(7) संतोषी

संतुष्टस्य निरीहस्य, स्वात्मारामस्य यत् सुखम्।
कुतस्तत् कामलोभेन, धावतोऽर्थेहया दिशः॥

(भा 7.15.16)

"नारद जी कहते हैं- जितना मिल जाए उतने में संतोष रखने वाला, जीविका के लिए अधिक प्रयास न करने वाले, भगवान् के सम्बन्ध से युक्त हो कार्य करने वाले को, जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह उस मनुष्य को भला कैसे मिल सकता है जो कामना और लोभ से धन के लिए हाय-हाय करता हुआ इधर-उधर दौड़ता फिरता है।"

संतोषी सदा सुखी। इस कहावत को लोग जानते व कहते तो हैं पर इसे जीवन में उतारते नहीं हैं। आज के समय में हर मनुष्य एक व्याधि, रोग, से पीड़ित है। वह रोग है असंतोष व तृष्णा का। जिसके पास सौ हैं वह हजार चाहता है और हजार वाला लाख। लाख वाला करोड़ और करोड़ वाला अरब चाहता है। इस असंतोष का कोई अंत नहीं है। मनुष्य तृष्णा को पूर्ण करता-करता बूढ़ा हो जाता है परन्तु तृष्णा बूढ़ी नहीं होती- **तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णः**। जब तक मनुष्य संतोषी नहीं होता, कामना व इच्छा का अंत नहीं हो सकता और कामनाओं के रहते हुए मनुष्य को स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती-

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाही॥

(रा.च.मानस 9.90)

भगवान् श्रीराम ने अयोध्यावासियों को कहा, "कहो तो भक्ति-मार्ग में कौन सा परिश्रम है ? केवल सरल स्वभाव हो, मन में कपट न हो और जो मिल जाए उस में संतोष रहे।"

श्रीमद्भगवद्गीता की अपनी टीका में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रश्न करते हैं कि भक्त का निर्वाह कैसे होता है ? उसके उत्तर में वह कहते हैं- **संतुष्टः (गीता 12/14)**। अर्थात् भक्त भाग्य से प्राप्त या बहुत थोड़े यत्न से प्राप्त वस्तु से ही संतुष्ट रहते हैं क्योंकि वह भक्ति के विषय में सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।

अगर कोई यह प्रश्न करें कि कोई व्यक्ति संतोषी न हो व अधिक वस्तुएं संग्रह करें, तो इसमें हानि ही क्या है ? भक्त प्रह्लाद बताते हैं कि जैसे बिना प्रयास हमें दुख मिलता है वैसे ही बिना प्रयास के सुख भी मिलेगा ही। हम सुख-भोगों का संग्रह अधिक करने लगेंगे तो हमारे क्षणभंगुर जीवन का सारा बहुमूल्य समय इसी में नष्ट हो जाएगा और हम भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द की प्राप्ति से वंचित रह जाऐंगे। इसलिए संतोष धारण करने पर ही भजन संभव होगा। संतोष रूपी तलवार और वैराग्य रूपी ढाल ही हमारे इस संसार-युद्ध में सहायक होगी- **विरति चर्म संतोष कृपाना।**

भगवान् कृष्ण संतोष-रहित मनुष्य को 'गरीब' (दरिद्र) कहते हैं- **दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः (भा 11/19/44)**। धर्मशास्त्रों में यहाँ तक कह दिया गया कि जिसकी जितनी बड़ी इच्छा, असंतोष है, वह उतना ही गरीब है। जिस दिन हमें संतोष रूपी धन की प्राप्ति हो गई, उस दिन हमें गाड़ी, मकान, जमीन, मोती, हीरे, रुपये सब धूल के समान प्रतीत होंगे-

गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

सांसारिक सुखों की प्राप्ति में तो जो मिल जाए उसमें ही संतोष करना है परन्तु भगवान् के भजन में, नाम-जप में, भक्त-भगवान् सेवा में, श्रवण-कीर्तन-स्मरण में कभी संतोष नहीं करना है, सदा असंतोषी ही रहना है।

(8) फलश्रुति

यह सात प्रकार के आचरण जिस भक्त में दृष्टिगोचर होते हैं छाया की तरह भगवान् उसके पीछे रहते हैं– **अनुव्रजाम्यहं नित्यं (भा 11.14.16)**। भगवान् ऐसे भक्त को स्वप्न में आदेश देते रहते हैं। यहाँ तक कि भगवान् उसकी आज्ञा का पालन भी करते हैं– **भगवान् भक्त भक्तिमान (भा 10.86.59)**।

हरिनाम–निष्ठ, इन सात आचरणों से युक्त भक्त को शीघ्र ही भगवान् प्रकट होकर दर्शन देते हैं–

संकीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान।

(नारद भक्ति सूत्र 80)

अतः भक्तों को अपना स्वभाव इस प्रकार का बनाने का प्रयास करना चाहिए।

ऐसे भक्तों को निश्चित रूप से अंत समय में भगवान् कृष्ण स्वयं लेने आते हैं। वेदान्त सूत्र में कहा गया है–

विशेषं च दर्शयति।

(वे. सू. 4/8/16)

"परम भागवतों की भगवद् प्राप्ति की भी विशेषता को श्रुतियाँ बताती हैं।"

नयामि परमं स्थानमर्च्चिरादि गतिं विना।
गरुड स्कन्धमारोप्य यथेच्छमनिवारितः।

(वराह पुराण)

"अर्च्चिरादि गति के बिना ही, मैं अपने निरपेक्ष भक्तों को गरुड़ के स्कन्ध पर बिठा कर, इच्छागति से अपने परम धाम में उपस्थित कराता हूँ।"

इसलिए इस प्रकार के आचरण से युक्त भक्तों को वैकुण्ठ या गोलोक धाम की प्राप्ति होती है। इस में कोई संशय नहीं है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

नाम संकीर्तन

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः॥१॥

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन॥२॥

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द श्रीअद्वैत सीता।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता॥३॥

जय रूप सनातन भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास-रघुनाथ॥४॥

एइ छय-गोसाञिर करि चरण-वन्दन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट-पूरण॥५॥

एह छय-गोसाञि याँर-मुञि ताँर दास।
ताँ' सबार पदरेणु मोर पञ्च-ग्रास॥६॥

ताँदेर चरण सेवि भक्तसने वास।
जनमे-जनमे हय एइ अभिलाषा॥७॥

एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश॥८॥

आनन्दे बलह हरि, भज वृन्दावन।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन॥९॥

श्रीगुरु-वैष्णव-पादपद्म करि आश।
नाम-संकीर्त्तन कहे नरोत्तमदास॥१०॥

श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग

(अहैतुकी भक्ति हृदये जागे अनुक्षणे)

प्रस्तुति : अनिरुद्ध दास अधिकारी

गौर पूर्णिमा : 16 मार्च 2014

सबसे पहले मैं अपने श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णु पाद परमहंस 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी, सभी वैष्णवों, वृन्दादेवी तथा भगवान् श्रीश्री राधागोविन्दजी को स्मरण करता हूँ और उन्हें कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। इन चारों को स्मरण करने से सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और हृदय में अहैतुकी भक्ति जागृत होती है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' नामक इन ग्रंथों में मेरे श्रीगुरुदेव जी की वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रंथों का नाम भी श्रीगुरुदेव ने ही मुझे बताया था और इस लेख में, मैं जो कुछ भी वर्णन करूँगा, वह उनकी प्रेरणा से ही होगा। जो कोई भी इन ग्रंथों में लिखी बातों पर श्रद्धा एवं विश्वास करेगा, इनमें बताये गये मार्ग पर चलेगा, इसमें बताये गये क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा, उसे इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति होगी। उस पर भगवद्-कृपा बरसेगी। इन ग्रंथों के शीर्षक को सार्थक करने के लिये ही, मेरे श्रीगुरुदेव जी ने मुझे यह लेख लिखने की प्रेरणा की है। सभी भक्तजनों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे इन ग्रंथों में लिखी किसी भी बात पर सन्देह न करें। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि संशय करने से अमंगल होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है-

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

(गीता 4.40)

"जो मूर्ख हैं तथा जिनकी शास्त्रों में श्रद्धा नहीं है, जो शास्त्रों में संदेह करते हैं, वे नीचे गिर जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को न इस लोक में और न ही परलोक में सुख मिलता है।"

देखो! मैं तो सबका मंगल चाहता हूँ। मुझे भगवान् ने इसीलिये यहाँ भेजा है कि मैं सबको हरिनाम कराऊँ। मैं चाहता हूँ कि जिस **श्रीकृष्ण-प्रेम** की प्राप्ति मुझे हुई है, वह आपको भी हो। इस लेख में कई बातें ऐसी हैं जिनका जिक्र करना मैं इसलिये आवश्यक समझता हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। मेरे गुरुदेव ने मुझे कहा कि कुछ भी मत छुपाओ। सब कुछ बता दो। दूसरा कारण यह है कि इससे भक्तों को प्रेरणा मिलेगी, उनका मार्गदर्शन होगा और वे मुझ में श्रद्धा एवं विश्वास करेंगे। इन बातों को मैं अपने स्वार्थ के लिये नहीं लिख रहा हूँ। मुझे न तो प्रतिष्ठा की चाह है, न धन की और न ही मैं किसी उपाधि का इच्छुक हूँ। मैं तो एक छोटे से गाँव में रहने वाला, एक साधारण व्यक्ति हूँ। मुझमें कोई योग्यता भी नहीं है। जो कुछ भी है, मेरे श्रीगुरुदेव की कृपा है, इसमें मेरा कुछ भी नहीं है।

आज से लगभग 84 वर्ष पूर्व, 23 अक्टूबर सन् 1930 को मेरा जन्म हुआ था। वह शरद-पूर्णिमा की रात थी। समय था लगभग सवा दस बजे। शरद-पूर्णिमा यानि भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला की रात। आज से लगभग 5232 वर्ष पहले, शरद्-पूर्णिमा की इसी रात में, भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसी मधुर बंसी बजाई थी जिसे सुनकर गोपियों की विचित्र गति हो गई थी। सारे विश्व को मोह लेने वाले, मदनमोहन ने, अपनी बाँसुरी पर कामबीज 'क्लीं' की मधुर तान छेड़कर, ब्रजसुंदरियों के प्राण, मन और आत्माओं का अपहरण कर लिया था। अपने प्यारे श्यामसुंदर की विरह-वेदना में, विरह-अग्नि में, उन गोपियों के अशुभ संस्कार जलकर भस्म हो

गये थे और भगवान् श्रीकृष्ण उनके सामने प्रकट हुये थे। यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि इसका मेरे जीवन से विशेष संबंध है।

सन् 1954 में, मैं राजस्थान के कोटा शहर में कार्यरत था। वहीं पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनकर, मैंने छः महीने में अठारह लाख 'कृष्णमंत्र' (गोपाल मंत्र) का जाप किया जिससे मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला के दर्शन हुये और भगवान् श्री कृष्ण ने मुझे हरे रंग की साड़ी पहनाई, मेरा शृंगार किया और मुझे रासलीला में ले गये। वहां उन्होंने मुझे नाम दिया 'ओम अलि'। वहां मैंने अपने उस दिव्य स्वरूप के दर्शन किये और श्रीमती राधा रानी तथा असंख्य गोपियों के दर्शन मुझे हुये। जिस प्रकार ब्रजसुंदरियों को शरद–पूर्णिमा की रात में दर्शन हुए थे, वैसे ही दर्शन मुझे हुए और मेरा उस रात में जन्म लेना सार्थक हुआ। मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हुआ। यह दर्शन कृष्ण मंत्र के पुरश्चरण का फल था। भक्तवत्सल भगवान् ने मुझ अधम पर अहैतुकी कृपा की। ऐसे परमदयालु भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बार–बार प्रणाम करता हूँ।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'कृष्ण–मंत्र' (गोपाल मंत्र) जाप करना बहुत कठिन है। जरा सी भूल भी हो गई तो आदमी पागल हो सकता है। कई भक्तों ने मेरी नकल करने की कोशिश की है, पर वे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके। उनका जप पूरा ही नहीं हुआ और एक तो पागल हो गये। इस मंत्र का पुरश्चरण करते हुये मन में काम की गंध भी नहीं होनी चाहिये और नियमों का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है। **इसलिये मेरे गुरुदेव ने, मुझे शिशु भाव देकर केवल हरिनाम (हरे कृष्ण महामंत्र) करने का आदेश दिया है। उन्होंने मुझे भविष्य में 'कृष्ण–मंत्र' का कोई भी अनुष्ठान या पुरश्चरण करने से मना कर दिया था।**

बृहन्नारदीयपुराण में हरिनाम की महिमा इस प्रकार गायी गयी है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अर्थात् कलियुग में हरिनाम से ही जीव की गति है यह तीन बार कहा और पुनः तीन बार ही कहा कि इसके बिना गति नहीं ही है, नहीं ही है और नहीं ही है।

अतः अब तो मैं केवल हरिनाम ही करता हूँ और हरिनाम से मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ है। अपने प्राणनाथ गोविंद के चरणों की सेवा करने, उनके नाम का रसास्वादन करने तथा उनके नाम का प्रचार करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। जिन्हें अहैतुकी भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनका जीवन ही धन्य है।

यह भगवान् की अहैतुकी कृपा का ही चमत्कार है कि मैं जिसे भी हरिनाम करने को कहता हूँ, वह हरिनाम करने लग जाता है। मेरे पास बहुत लोग मिलने आते हैं। उनमें बहुत से संसारी कामनाओं के लिये भी आते हैं पर मैं तो सबको हरिनाम करने के लिये ही कहता हूँ और जब वे मेरी बात मानकर हरिनाम करते हैं तो उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। कई दम्पति ऐसे भी आये जिनके 20 वर्षों से संतान नहीं हुई थी पर हरिनाम करने से उन्हें संतान की प्राप्ति हो गई।

मैं पिछले 40 वर्षों से गरीब लोगों को होम्योपैथी की दवाई मुफ्त दे रहा हूँ। जब शरीर निरोग होगा तभी तो भजन होगा। मैं गंगा जल से आँखों की दवाई बनाकर सबको मुफ्त देता हूँ जिससे एक लाख से भी अधिक लोगों के चश्मे उतर गये, नजर बढ़ गई। मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ, यह शक्ति मुझे केवल और केवल हरिनाम से मिली है। इसीलिये मैं सबको बार-बार यही कहता हूँ-

हरिनाम करो ! हरिनाम करो ! हरिनाम करो !
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामंत्र का जप करते रहो। संकीर्तन करते रहो।

यह 'हरे कृष्ण' महामंत्र तारक–पारक व पारक ब्रह्म नाम है जो संकटों से बचाता है, मुक्ति प्रदान करता है और दुर्लभ प्रेम भी प्रदान करता है।

वेद, उपनिषद्, पुराण और संहिता आदि सात्वत–शास्त्रों के अनुसार कलियुग का महामंत्र है। कलिकाल में यह महामंत्र ही समस्त साधनों का शिरोमणि है। कलियुग पावनावतारी श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी सदा–सर्वदा श्री हरिनाम–संकीर्तन करने का उपदेश दिया है–

"कीर्तनीयः सदा हरिः।"

भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने सदा कीर्तन करने को कहा है और मेरे श्रीगुरुदेव ने भी मुझे उच्च स्वर में (उच्चारणपूर्वक) हरिनाम करने को कहा है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करना संकीर्तन ही है। कोई इसे अकेला भी कर सकता है और सामूहिक रूप से भी कर सकता है। उच्चारण पूर्वक हरिनाम करने वाला अपने को और अपने साथ के श्रोताओं को भी पवित्र कर देता है। पशु–पक्षी, कीट–पतंग, पेड़–पौधे इत्यादि जो बोल नहीं सकते, वे भी हरिनाम को सुनकर भवसागर से तर जाते हैं। शास्त्रों में उच्चारण पूर्वक नाम करने की महिमा अधिक बतलाई गई है। चुपचाप हरिनाम करने की अपेक्षा उच्चारणपूर्वक हरिनाम करना सौ–गुणा श्रेष्ठ है।

यह 'हरेकृष्ण' महामंत्र देवर्षि नारद जी ने अपने गुरु श्रीब्रह्मा जी से प्राप्त किया था।

कलियुग के प्रारम्भ में, नारद मुनि ब्रह्मा जी के पास गए और उनसे पूछा कि, 'कलियुग के पतित लोगों का उद्धार किस प्रकार होगा ? तब ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इति षोडषकम् नाम्नं कलि कल्मष नाशनं।
नातः परतरोपायः सर्व वेदेषु दृश्यते॥

(कलि सन्तरण उपनिषद 2-7)

यह सोलह नामों का (बत्तीस अक्षर) महामंत्र कलियुग के समस्त दोषों तथा पापों को नष्ट करने वाला है। इससे श्रेष्ठ उपाय समस्त वेदों में कहीं नहीं है। सोलह नाम युक्त यह महामंत्र जीवात्मा के भौतिक आवरण का नाश करता है। जब हरे कृष्ण महामंत्र के जप द्वारा, जीवात्मा के स्थूल व सूक्ष्म भौतिक आवरण नष्ट हो जाते हैं, तब परम भगवान् श्रीकृष्ण जीवात्मा के समक्ष उसी प्रकार प्रकट होंगे, जिस प्रकार बादल छट जाने पर सूर्य की प्रखर किरणें प्रकट होती हैं।

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य – रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

नाम और नामी परस्पर अभेद तत्त्व हैं। इसलिए नामी कृष्ण के समस्त चिन्मय गुण उनके नाम में हैं, नाम सर्वदा पूर्ण तत्त्व है, हरिनाम में जड़–संस्पर्श नहीं है, वे नित्यमुक्त हैं, क्योंकि वे मायिक गुणों द्वारा कभी आबद्ध नहीं होते। नाम स्वयं कृष्ण है, अतएव चैतन्य–रस के घन–विग्रह हैं। नाम–चिन्तामणि हैं, उनसे जो कुछ भी माँगा जाये, वे सब कुछ देने में समर्थ हैं।

(संदर्भ : पद्मपुराण/भक्तिरसामृतसिन्धु पू. वि. 2, लहरी 108)

ब्रह्मयामल ग्रंथ में शिव जी पार्वती को कहते हैं– "हे महादेवि! कलियुग में हरिनाम के बिना कोई भी साधन सरलता से पापों से छुटकारा नहीं दिला सकता। इसलिये हरेकृष्ण महामंत्र को प्रकाशित करना आवश्यक है। 'हरेकृष्ण' महामंत्र में पहले दो बार 'हरेकृष्ण' 'हरेकृष्ण' बोलना चाहिये। उसके बाद दो बार 'कृष्ण' 'कृष्ण' और बाद में दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार दो बार 'हरेराम' 'हरेराम', दो बार 'राम' 'राम' और दो बार 'हरे' 'हरे' बोलना चाहिये। इसी प्रकार सभी पापों को विनाश करने वाले हरेकृष्ण महामंत्र का जप, उच्चारण व कीर्तन करना चाहिये।

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह महामंत्र त्रैकालिक–पापों को नष्ट कर देता है। इस महामंत्र का नित्य जप करने वाला वैष्णव,

श्रीश्रीराधाकृष्ण के गोलोक – वृन्दावन धाम को प्राप्त कर लेता है। इस महामंत्र में जो सोलह नाम हैं, वे सम्बोधनात्मक हैं। श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती है अतः श्रीराधा ही 'हरा' नाम से कही गई हैं। 'हरा' – शब्द का संबोधन में 'हरे' रूप बनता है। एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुल के आनन्दकंद, कमललोचन, नंदनंदन श्री श्यामसुन्दर ही 'कृष्ण' हैं। श्रीकृष्ण अपने रूप–लावण्य से व्रज–गोपियों के मन को आनन्दित करते रहते हैं।

इसी कारण वे 'राम' कहे जाते हैं। इस महामंत्र में 'हरे' 'कृष्ण' और 'राम' तीनों नामों का बार–बार उच्चारण होता है।

जो फल सत्ययुग में ध्यान के द्वारा, त्रेता में यज्ञों का अनुष्ठान करने तथा द्वापर में अर्चना पूजा द्वारा प्राप्त होता है, कलियुग में वही फल एकमात्र हरिनाम–कीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

हर युग का एक तारक–ब्रह्म महामंत्र होता है। अनन्त संहिता में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है।

- सतयुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

नारायण परावेदाः नारायण पराक्षराः।
नारायण परामुक्तिः नारायण परागतिः।।

- त्रेतायुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

रामानारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन।।

- द्वापर का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।।

- कलियुग का तारक ब्रह्म मंत्र है–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसलिये समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है। हरिनाम से ही समस्त जगत् का उद्धार होता है। हरिनाम सब प्रकार के मंगलों में

श्रेष्ठ मंगल स्वरूप है। "नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ" हरिनाम करने से मंगल ही होगा। कैसे भी करो। श्रद्धा से करो अथवा अवहेलना से, जो एक बार भी 'कृष्ण' नाम का उच्चारण कर लेता है, कृष्ण नाम उसी समय उसको तार देता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इन नामों में अपनी सभी शक्तियों को भर दिया है। पतित जीवों का उद्धार करने के लिये, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अहैतुकी कृपा करके 'नाम' रूप में अवतीर्ण हुए हैं। भगवन्नाम भगवान् का शब्दावतार है। इस शब्द ध्वनि का अभ्यास करके अर्थात् उच्चारणपूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का जप करके हम भगवान् के साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हरिनाम करते करते हम उस दिव्य अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं जिसे पंचम पुरुषार्थ अर्थात् श्रीकृष्ण प्रेम कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करना ही इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। यही अवस्था सर्वोच्च सिद्धि की अवस्था है।

भगवान् ने तो कृपा कर दी और हमें सरल, सुगम व सहज मार्ग भी बता दिया पर फिर भी हमारी नाम में रुचि नहीं है। इसका एकमात्र कारण है– नाम अपराध। पद्मपुराण–स्वर्गखण्ड अध्याय 48 में हरिनाम के संबंध में दस प्रकार के नाम अपराधों का वर्णन आता है। कई साधकों ने मुझे नामापराधों के बारे में पूछा है अतः मैं संक्षिप्त रूप में उनका वर्णन कर रहा हूँ।

पहला नामापराध है– साधुनिन्दा।

श्रीमद्भागवत में साधु के लक्षण बताये गये हैं। दयालु, सहनशील, सबको समान देखने वाला, सच बोलने वाला, विशुद्ध आत्मा, हमेशा दूसरों का हित करने वाला, कामना–वासना से दूर, जितेन्द्रिय, अकिंचन, विनम्र, पवित्र, जितनी जरूरत हो उतना ही भोजन करने वाला, शांत मन वाला, धैर्यवान्, स्थिर, किसी भी वस्तु की कामना न करने वाला, श्रीकृष्ण का शरणागत, भगवान् का भक्त, दूसरों को हरिकथा सुनाने वाला, काम–क्रोध आदि से मुक्त, मान–सम्मान की परवाह न करने वाला, दूसरों को सम्मान

देने वाला तथा ज्ञानवाला व्यक्ति ही साधु है। ऐसे साधु की निंदा करना पहला अपराध है।

दूसरा अपराध है– शिव आदि देवताओं को भगवान् से स्वतंत्र समझना, भगवान् से अलग समझना।

हरिनाम करने वाले साधकों को समझ लेना चाहिये कि गोलोकविहारी श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। वे 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं। बाकी जितने भी देवी–देवता हैं, वे उनके दास–दासियाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करने से सभी देवी–देवताओं की पूजा हो जाती है और वे प्रसन्न हो जाते हैं। साधकों को सदा सभी देवी–देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। उन्हें भगवान् का प्रसाद निवेदन करना चाहिये और कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

श्रीगीता में भगवान् ने स्वयं कहा है कि जो भी दूसरे–दूसरे देवताओं की पूजा किया करता है वह एक प्रकार से मेरी ही उपासना करता है परन्तु वह अविधिपूर्वक है।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

(–श्रीमद्भगवद्गीता 9.23)

तीसरा नाम अपराध है– गुरु की अवज्ञा करना।

गुरुदेव को आचार्य कहा गया है वे हरिनाम की शिक्षा देते हैं अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये।

चौथा अपराध है– श्रुति–शास्त्रों की निंदा करना।

वेदों में भागवत धर्म का वर्णन है। उनमें भगवान् नाम की महिमा बताई गई है। श्रुति–शास्त्र, वेद, उपनिषद्, पुराण ये सब श्रीकृष्ण के श्वास से उत्पन्न हुए हैं और भागवत–तत्व निर्णय में प्रामाणिक हैं। इसलिये इनकी निंदा नहीं करनी चाहिये।

पाँचवाँ अपराध है– हरिनाम में अर्थवाद करना।

कुछ लोग समझते हैं कि वेदों में जो हरिनाम की महिमा का वर्णन है, वह काल्पनिक है, नाम की प्रशंसा के लिये है। ऐसी धारणा नहीं करनी चाहिए।

छठा नामापराध है– हरिनाम के बल पर पाप करना।

कुछ लोग समझते हैं कि हरिनाम प्राप्त करके हमें पाप करने की छूट मिल गई है। इसी धारणा के साथ वे चोरी, ठगी, बदमाशी, डकैती करते हैं तथा झूठ बोलते हैं। वे सोचते हैं कि इन पापकर्मों को करके, हरिनाम कर लेंगे और सारे पाप कट जायेंगे। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं। उनकी दुर्गति होती है। इसलिये हरिनाम का सहारा लेकर कभी भी पाप नहीं करना चाहिए।

सातवाँ अपराध है– जिन व्यक्तियों को हरिनाम में श्रद्धा नहीं है, ऐसे अश्रद्धालु व्यक्ति को हरिनाम का उपदेश करना।

जब किसी की हरिनाम में श्रद्धा हो जाये, उसके बाद ही उसे नाम का उपदेश करना चाहिये। श्रद्धावान् व्यक्ति ही हरिनाम करने का असली अधिकारी है।

आठवाँ अपराध है– दूसरे शुभ कर्मों को हरिनाम के बराबर समझना।

कुछ लोग समझते हैं कि जैसे यज्ञ, दान, तीर्थ–यात्रा आदि शुभ कर्म हैं, शुभकर हैं, हरिनाम भी वैसे ही है। ऐसे लोग भी नामापराधी हैं।

नौवाँ अपराध है– प्रमाद।

प्रमाद का अर्थ है– असावधानी, आलस्य, उदासीनता। भजन करते हुये आलस्य करना, उदासीन होना तथा मन का इधर–उधर जाना ही प्रमाद है। एकांत भाव से उच्चारणपूर्वक हरिनाम करने से, धीरे–धीरे यह अपराध खत्म हो जाता है और हरिनाम का दिव्य रस आने लगता है।

दसवाँ नामापराध है– हरिनाम की अगाध महिमा को जानते हुए भी हरिनाम न करना।

जो हरिनाम के शरणागत होकर हरिनाम करता है, वही भाग्यवान् है, वही धन्य है।

यहाँ दस नामापराधों का संक्षेप में वर्णन किया गया है, जो भी साधक कृष्ण–भक्ति में आगे बढ़ना चाहते हैं, उन्हें इन अपराधों से अवश्य बचना चाहिये। अपराधों से बचकर हरिनाम करना ही भजन–साधन में निपुणता है। इसके लिये हरिनाम प्रभु के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिये कि **'हे हरिनाम प्रभु! मुझ पर ऐसी कृपा करो कि मैं सदा–सर्वदा नामापराधों से बचकर शुद्ध हरिनाम करता रहूँ।'**

यहाँ जिन अपराधों का वर्णन हुआ है, इनसे बचने का एकमात्र उपाय भी हरिनाम ही है। निरंतर हरिनाम करते रहने से नामापराध खत्म हो जाता है और अपराध खत्म होने से शुद्ध नाम उदित हो जाता है और अहैतुकी भक्ति जागृत हो जाती है।

नामापराधयुक्तानां नामानि एव हरन्ति अघम्।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तानि एवार्थकराणि च॥

(पद्मपुराण, स्वर्ग खंड 48, 49)

निरन्तर नामभजन द्वारा हरिनाम के प्रति अपराधी व्यक्ति धीरे–धीरे पापों और अपराधों से मुक्त हो जायेगा। वह निरपराध जप के स्तर पर पहुँच जाएगा, और अंततः वह जीवन के चरम लक्ष्य, **कृष्णप्रेम** को प्राप्त करेगा।

जो साधक पूर्ण रूप से नाम पर आश्रित हो जाता है, ऐसे शुद्ध–नामाश्रित व्यक्ति को कभी भी, किसी भी रूप में नामापराध स्पर्श नहीं कर सकते क्योंकि नामाश्रित व्यक्ति की, श्रीहरिनाम सदा ही रक्षा करते हैं। उससे अपराध होगा ही नहीं। जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता तब तक अपराध होने का डर बना रहता है। इसलिये हर वक्त हरिनाम करते रहो।

जिनकी नाम में श्रद्धा है, नाम में जिनका विश्वास है, वे ही सर्वोत्तम साधक हैं। **भगवद्-प्राप्ति करने के जितने भी साधन हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रय से ही सर्वसिद्धि होती हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है।** नाम का आश्रय लेकर यह पद्धति श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के समय से चली आ रही है। इससे पहले भी प्राचीनकाल में व्रजमण्डल के वैष्णव-संतों ने इसी भजन-प्रणाली के अनुसार भजन किया है। श्री हरिनाम का तत्व किसी सौभाग्यशाली को ही समझ में आता है। जब कोई भाग्यवान् जीव, भगवान् श्रीकृष्ण के किसी नामनिष्ठ भक्त का संग करता है तब उसकी हरिनाम में रुचि उत्पन्न हो जाती है।

श्रीकृष्ण नाम चिंतामणि है, अनादि है, चिन्मय है। चूंकि श्रीकृष्ण अनादि हैं, दिव्य हैं इसलिये उनका नाम, उनका रूप, उनके गुण तथा उनकी लीलायें भी अनादि एवं दिव्य हैं। **श्रीकृष्ण का नाम और उनका रूप एक ही वस्तु है।** उनके नाम का स्मरण करने से, उनके नाम का कीर्तन करने से, उनका रूप स्वतः ही हृदय में प्रकट हो जाता है।

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे।
आवत हृदय सनेह विशेषे।।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण का रूप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, उसी प्रकार उनके नाम में भी यह आकर्षण नित्य विराजमान रहता है। यद्यपि भगवान् के नाम, रूप, गुण व लीला उनसे अलग नहीं है फिर भी उनका नाम सभी का आदि है, सबका मूल है। हरिनाम करते-करते उनका रूप, उनके गुण और उनकी समस्त लीलायें हृदय में स्वतः ही प्रकाशित हो जाती हैं।

'नाम', 'विग्रह', 'स्वरूप'-तिन एकरूप।
तिने 'भेद' नाहि-तिन 'चिदानंद-रूप'॥

(चैतन्यचरितामृत मध्यलीला 17.131)

भगवान् का नाम, उनका विग्रह (शरीर) और उनका स्वरूप-ये तीनों एक ही हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है। तीनों ही चिदानन्द स्वरूप हैं। कृष्ण के शरीर तथा स्वयं कृष्ण में या उनके नाम तथा उनमें कोई अन्तर नहीं है।

सार बात यह है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है और वैष्णवों का एकमात्र धर्म है– हरिनाम करना। आज से 529 वर्ष पूर्व, इस युग के युगधर्म– श्रीहरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुये हैं। उन्होंने स्वयं हरिनाम करके दिखाया। उनके आदेशानुसार, उनकी शिक्षाओं पर चलकर, आज अनंतकोटि जीव श्रीकृष्ण–प्रेम रूपी महाधन (परमधन) को प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य देव ने हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन करने के लिये ही उपदेश क्यों किया ?

श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णन है कि जब संन्यासियों के प्रधान प्रकाशानन्द जी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से पूछा कि केशव भारती के शिष्य होकर तथा अनुमोदित सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण करने के बाद भी आप संन्यासी धर्म का पालन नहीं करके, भावुकों के कर्म करते फिरते हो, संन्यासी होकर भी पागलों की तरह नृत्य–गान करते हो, संकीर्तन करते हो। आप ऐसा अनुचित व हीन कर्म क्यों करते हो ? तो श्री महाप्रभु जी ने कहा–

"श्रीपाद! मैं इसका कारण बताता हूँ। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे मूर्ख देखकर कहा कि तुम मूर्ख हो तथा वेदान्त पढ़ने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। अतः तुम नित्य–निरंतर श्रीकृष्ण का महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का जप व कीर्तन किया करो। वेदांत का निचोड़ यही महामंत्र है। इस महामंत्र का कीर्तन करने से तुम्हारे सभी बंधन समाप्त हो जायेंगे और तुम्हें श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति हो जायेगी।

इस कलिकाल में श्रीकृष्ण के नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। जितने भी मंत्र हैं, जितने भी साधन हैं, उन सबका सार है– हरिनाम। यही बात सभी शास्त्रों ने कही है।"

नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म।
सर्वमन्त्रसार नाम एई शास्त्र मर्म॥

(चैतन्यचरितामृत आदि लीला 7.74)

कलियुग में नाम के बिना और कोई धर्म नहीं है। समस्त मन्त्रों का सार हरिनाम है, यही सभी शास्त्रों का मर्म है।

इस प्रकार अपने श्रीगुरुदेव केशवभारती की आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु प्रतिक्षण कीर्तन करने लगे

एइ आज्ञा पात्रा नाम लइ अनुक्षण।

नाम–संकीर्तन के सिवा उन्हें कुछ भी याद नहीं रहा। वे सब कुछ भूल गये। कीर्तन करते–करते कभी हंसते, कभी रोते, कभी नाचते, कभी पागलों की तरह सुध–बुध खो देते। उनकी हालत पागल जैसी हो गई। एक दिन उन्होंने अपने श्रीगुरुदेव से कहा कि आपने मुझे कैसा उपदेश किया है। इस मंत्र ने तो मुझे पागल कर दिया है। इस महामंत्र में बहुत शक्ति है। महाप्रभु जी की बात सुनकर उनके श्रीगुरुदेव हँसने लगे और बोले–

कृष्णनाम महामंत्रेर एइत स्वभाव।
जेइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव।।

अर्थात् श्रीकृष्ण नाम का यही स्वभाव है। जो भी इस महामंत्र का जप करता है, उसमें श्रीकृष्ण प्रेम उत्पन्न हो जाता है। श्रीनाम संकीर्तन का मुख्य फल श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति है पर यह फल उसे ही मिलता है जो उसी शुद्ध–प्रेम की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करता है। इस लोक तथा परलोक के सुख–भोगों की प्राप्ति के लिये नाम–संकीर्तन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। ये सब सुख–भोग तो हरिनाम करने से स्वतः ही मिल जायेंगे। हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति के लिये, श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिये, श्रीकृष्ण के सुख के

लिये हरिनाम करना है। नाम की महिमा असीम है, अपार है। यहां तक कि नवविधा भक्ति की पूर्णता श्रीनाम संकीर्तन से ही होती है–

नवविधा–भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।।

इसलिये हरिनाम ही सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग है।

देखो! भगवान् श्रीकृष्ण का मेरे प्रति वात्सल्य भाव है। इस संबध से, वे मेरे दादा हैं और मैं उनका पोता हूँ, मेरा नाम अनिरुद्ध है और मेरी उम्र है डेढ़ वर्ष। मुझे इस सम्बन्ध का पहले कुछ भी पता नहीं था। मैं नहीं जानता था कि मैं कौन हूँ और मेरा भगवान् से क्या सम्बन्ध है? पर मेरे श्रीगुरुदेव ने कृपा करके मुझे यह सम्बन्ध ज्ञान दिया है। इस संबंध में, कोई अपराध नहीं होता। बाकी संबंधों में अपराध होने का भय बना रहता है। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे केवल और केवल मात्र हरे कृष्ण महामंत्र–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

करने की आज्ञा दी है और वही मैं कर रहा हूँ। हरे कृष्ण महामंत्र करते–करते मेरी आँखों से अश्रुपात होने लगता है और मैं अपने दादा (भगवान् श्रीकृष्ण) को मिलने के लिये व्याकुल हो जाता हूँ। तब भगवान् मुझे दर्शन देते हैं। उन्हें देखकर मैं उनकी गोदी में चढ़ने के लिये मचल जाता हूँ। रोने लगता हूँ। भगवान् मुझे दोनों हाथों से उठाकर गोदी में ले लेते हैं। मुझे बहुत प्यार करते हैं, दुलारते हैं, पुचकारते हैं, मेरा माथा चूमते हैं, मेरे घुँघराले बालों को सँवारते हैं। मैं बहुत प्रसन्न होता हूँ और उनकी गोदी में ही रहना चाहता हूँ। थोड़ी देर बाद, वे मुझे रुक्मिणी जी को पकड़ा देते हैं और आप सोने के रथ में सवार होकर सुकर्मा सभा में जाने लगते हैं। रथ का सारथी दारुक रथ लेकर तैयार खड़ा है पर ज्यों ही वे जाने लगते हैं– मैं जोर–जोर से रोने लगता हूँ और उनकी गोदी में चढ़ने की जिद करता हूँ। मुझे रोते हुये देखकर वे रुक जाते हैं और फिर मुझे गोदी में उठा लेते हैं। इस प्रकार बार–बार होता है और उस दिन से वे सुकर्मा सभा में जाने से ही मना कर देते हैं।

कई बार मैं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन करता हूँ। महाप्रभु गंभीरा में सबको हरिनाम की महिमा सुनाते हैं। गंभीरा में नित्यानंद प्रभु, श्री अद्वैताचार्य, श्रीगदाधर पंडित, श्री निवासाचार्य, श्रीस्वरूप–दामोदर गोस्वामी, वृन्दावन के छः गोस्वामीगण, देवर्षि नारद, व्यासजी, ब्रह्माजी तथा शिवजी सब महाप्रभु के मुखारविन्द से हरिनाम की महिमा सुन रहे हैं। मेरे श्रील गुरुदेव पूरी गुरु–परम्परा तथा सभी वैष्णव–संत भी वहाँ विराजमान होते हैं। मैं डेढ़ वर्ष के शिशु के रूप में घुटनों के बल चलकर महाप्रभु जी की गोदी में जाकर बैठ जाता हूँ। वे मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। मुझे प्यार करते हैं, मुझे चूमते हैं, दुलारते हैं। मैं गद्गद् हो जाता हूँ। गंभीरा में विराजमान सारा वैष्णव समाज मुझे देखता है। उसी समय मेरे श्री गुरुदेव एक सोने के गिलास में कोई आसव (मधुर पेय) लेकर आते हैं। महाप्रभु उस आसव में से कुछ घूँट पीते हैं और बाकी आसव मुझे पिला देते हैं।

कई बार मैं शिवजी और माँ–पार्वती जी के दर्शन करता हूँ। शिवजी की गोदी में, मैं सांपों से डर जाता हूँ और रोने लगता हूँ। तब माता पार्वती मुझे गोद में लेकर प्यार करती हैं और स्तनपान कराती हैं। उस समय मुझे परम सुख की अनुभूति होती है।

इसी प्रकार हरिनाम करते–करते मुझे भगवान् एवं उनके भक्तों के दर्शन होते रहते हैं। कभी ब्रह्मा जी, कभी नारद जी, कभी माँ लक्ष्मी, कभी माया देवी के दर्शन मुझे होते हैं और मुझे सबका आशीर्वाद एवं प्यार मिलता है। **मैं ये सब इसलिये बता रहा हूँ क्योंकि मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है कि मैं अपने बारे में सब कुछ बता दूँ, कुछ भी छुपा के नहीं रखूँ।** मैं अपनी बड़ाई के लिये यह सब नहीं बता रहा हूँ। मैं तो आपको हरिनाम की महिमा बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता ? हरिनाम की कृपा से मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुए हैं। मेरे श्रीगुरुदेव ने मुझे गोलोक धाम के दर्शन भी करवाये हैं।

मैं उम्र में तो डेढ़ वर्ष का शिशु हूँ पर अपने दादा भगवान् श्रीकृष्ण से बड़े–बड़े प्रश्न पूछता हूँ। कभी पूछता हूँ कि तुम्हारे वस्त्र का रंग

पीला क्यों हैं ? कभी पूछता हूँ राधारानी की साड़ी का रंग नीला क्यों है ? कभी पूछता हूँ प्रकृति का रंग हरा और समुद्र का पानी नीला क्यों है ? भगवान् श्रीकृष्ण मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं और कई बार कहते हैं कि तू बड़ा नटखट है, बड़े-बड़े प्रश्न पूछता है। मेरी बातें सुनकर वे मुस्कराते हैं और गोदी में बिठाकर मेरे प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

यह सम्बन्ध बड़ा दिव्य है। यह भाव अलौकिक है। जबतक संबंध ज्ञान नहीं होता तब तक इन भावों को समझा नहीं जा सकता। भगवान् से हमारा कोई भी संबंध हो सकता है- पिता का, पुत्र का, पति का, सखा का, स्वामी का। जिसका जैसा भाव होगा, उसे वैसा ही संबंध ज्ञान मिलेगा पर यह सब मिलेगा हरिनाम करने से। नित्य-निरंतर हरिनाम करते रहने से, आगे का रास्ता अपने आप बनता जाता है और श्री गुरुदेव ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संबंध ज्ञान दे दिया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का जो सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है, उससे बहुत शीघ्र संबंध-ज्ञान हो जायेगा और इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी।

यह मार्ग भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं मुझे बताया है। यह मार्ग आजतक किसी ने नहीं बताया और न ही इसका किसी ग्रंथ में वर्णन है। यह अति गोपनीय था पर अब मैं सबको यह गोपनीय रहस्य बता रहा हूँ क्योंकि यह मेरे श्रीगुरुदेव का आदेश है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा कि तुमने तो मेरी पोल खोलकर रख दी। मैं सब कुछ दे देता हूँ पर अपनी भक्ति नहीं देता क्योंकि मुझे भक्त का गुलाम बनना पड़ता है। मैंने कहा कि “जब आपने मुझे इस पृथ्वी पर भेजा ही इसलिये है तो मैं क्यों न बताऊँ ? मैं यह बात सबको बताऊँगा और आपके धाम में ले जाऊँगा। यदि आपको मुझसे हरिनाम का प्रचार नहीं करवाना था तो मुझे यहाँ भेजा ही क्यों ?” मेरी बात सुनकर भगवान् हँस पड़े और बोले - “तू बड़ा चतुर है”।

भगवान् को प्राप्त करने का रहस्य तो मैं आप को बता रहा हूँ पर जो सुकृतिशाली होगा, वही मेरी बात पर विश्वास करेगा। जो

सुकृतिशाली नहीं होगा, वह इसे सच ही नहीं मानेगा। यह मार्ग इतना सहज एवं व्यावहारिक है कि कोई भी, कहीं भी, कैसे भी, इस पर चलकर हरिनाम कर सकता है। इसके लिये आपको कुछ भी विशेष नहीं करना है। आप अपने घर, दुकान, कार्यालय, फैक्ट्री, कहीं भी हरिनाम कर सकते हो। जहाँ भी रहो, जैसी भी परिस्थिति हो, इसे करना बहुत आसान है। यह मार्ग इतना प्रभावशाली है कि इससे आपका जीवन ही बदल जायेगा। आपको संसार के सुख तो मिलेंगे ही, आपका आध्यात्मिक जीवन भी निखर जायेगा। आपको भगवान् के दर्शन हो जायेंगे। भगवान् के दर्शन तीन प्रकार हुआ करते हैं – स्वप्न में, छद्म रूप में और साक्षात्–दर्शन। साधक के हृदय की जैसी वृत्ति होगी, उसी वृत्ति के अनुसार उसे दर्शन होगा। यदि साधक की वृत्ति निर्गुणी है तो साक्षात् दर्शन होगा। यदि सतोगुणी वृत्ति है तो छद्म दर्शन होगा और यदि कोई इस क्रम के अनुसार हरिनाम करेगा तो उसे स्वप्न में तो दर्शन जरूर होंगे। भगवान् के द्वारा अपने भगवत् स्वरूप के अलावा किसी अन्य रूप में अपने दर्शन और अनुभूति कराना छद्म दर्शन है।

आप कह सकते हो कि इसका प्रमाण क्या है ? मैं कहता हूँ, करके देख लो। देखो ! जो नामनिष्ठ भक्त होता है, वह भगवान् को बहुत प्यारा होता है। भगवान् कभी भी उसकी बात टालते नहीं हैं। हरिनाम की कृपा से, मुझे वाक् सिद्धि प्राप्त है इसलिये मैं सबको हरिनाम करने को कहता हूँ और लोग हरिनाम करने लगते हैं। पिछले वर्ष (18 मार्च, 2013) मैं गोवर्धन के पास चन्द्र सरोवर पर गया था। वहां मुझे भगवान् के साक्षात् दर्शन हुये। उस दिन मेरे साथ आठ भक्त और थे। दो जयपुर के, एक चण्डीगढ़ के, एक दिल्ली के डाक्टर, एक संन्यासी तथा तीन विदेशी भक्त। ये मेरे साथ थे पर इन्हें भगवान् ने साक्षात् दर्शन नहीं दिये क्योंकि उनकी निर्गुणी वृत्ति नहीं है। ये सभी भक्त हरिनाम तो करते हैं पर अभी अधकचरे हैं इसलिये इन्हें दर्शन नहीं हुए। पर जब मैंने भगवान् से प्रार्थना की तो भगवान् ने उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिये। यह सब हरिनाम का चमत्कार है।

हरिनाम की इतनी अगाध महिमा सुनकर और महाप्रभु की आज्ञा का पालन करके आज पूरा विश्व हरिनाम कर रहा है। हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन कर रहा है। आज असंख्य भक्त हरिनाम कर रहे हैं। कोई सोलह माला करता है, कोई बत्तीस माला करता है और बहुत सारे भक्त चौसठ माला (एक लाख हरिनाम) करते हैं। दो लाख व ढाई लाख हरिनाम नित्य प्रति करने वाले भी हैं पर उनकी संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। कुछेक तो तीन लाख हरिनाम भी प्रतिदिन करते हैं। मेरे पास बहुत से भक्तजन आते हैं। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या आपको स्वप्न में भगवान् के दर्शन होते हैं ? क्या हरिनाम करते-करते आपकी आँखो में अश्रु आते हैं ? क्या भगवान् के लिये छटपटाहट होती है ? क्या संसार की आसक्ति कम हुई ? क्या विरह होता है ? क्या काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार छूटा या कम हुआ कि नहीं ? उत्तर मिलता है- नहीं।

एक दिन मैंने अपने बाबा भगवान् श्रीकृष्ण से बोला- "बाबा! क्या आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है ?"

मेरा प्रश्न सुनकर बाबा बोले, 'अरे अनिरुद्ध! तू कैसी पागलों जैसी बातें करता रहता है। क्या मेरे नाम में शक्ति नहीं है ?'

"हाँ! आपके नाम में कोई शक्ति नहीं है। जो भक्त आपका एक लाख, डेढ़ लाख नाम प्रतिदिन जपते हैं उनका राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार तक नहीं गया। फिर आपका नाम जपने से क्या फायदा हुआ ?"

मेरी बात सुनकर बाबा ने कहा- "अरे! तू जो कुछ कह रहा है, वह ठीक ही है लेकिन मेरी बात सुन। जब मैं अवतार लेता हूँ तब जो भी मेरे संपर्क में आता है, उसका उद्धार हो जाता है पर मेरा नाम तो अनंतकोटि ब्राह्मांडों में रहने वाले जीवों का उद्धार कर देता है। इसलिये मेरे से भी अधिक मेरे नाम की महिमा है। मेरे नाम का जप करके मेरे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं। काल, महाकाल भी मुझ से थर-थर काँपते हैं पर मैं अपने भक्तों से डरता हूँ। अब

मेरी बात ध्यान से सुन। ये संसार क्या है ? ये संसार दुःखालय है। दुःखों का घर है। जो भक्त एक लाख या डेढ़ लाख हरिनाम प्रतिदिन कर रहे हैं, वे सब हरिनाम के बदले मुझसे इस संसार की वस्तुएं ही माँगते हैं। कोई घर माँगता है, कोई कहता है मेरी बेटी की शादी हो जाये, कोई कहता है मेरे बेटे की नौकरी लग जाये, मेरा कारोबार अच्छी तरह चलता रहे। मेरा नाम है चिंतामणि! उससे जो मांगोगे, वही दे देगा। संसार की वस्तुऐं मांगोगे तो संसार ही मिलेगा। दुःखों के घर में सुख कैसे मिलेगा ? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार– ये सब माया का परिवार है। जब कोई अपने स्वार्थ के लिये नाम जप करता है तो माया का परिवार, माया के हथियार उसे प्रताड़ित करते हैं और वह माया द्वारा बुरी तरह सताया जाता है। पर जो मेरे लिये, मेरी प्रसन्नता के लिये नाम–जप करता है, माया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती अपितु भगवद्–प्राप्ति में उसकी सहायता करती है। अपने स्वार्थ के लिये नाम–जप करना अविधिपूर्वक है और मेरी प्राप्ति, मेरी प्रसन्नता के लिये जप करना ही विधिपूर्वक जप करना है। **नाम जप करने वाले की जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल मिलता है।** यदि कोई गोपियों तथा भीलनी (शबरी) जैसे भाव से नाम जप करता है, मुझे बुलाता है, याद करता है तो मैं उससे कभी दूर नहीं रह सकता। पर मुझे चाहता ही कौन है ? मुझे चाहने वाला तो कोई विरला ही होता है।"

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

श्रीमद्भगवद्गीता 4.11

अर्थ : हे पार्थ! जो मनुष्य जिस प्रकार मुझे भजते है, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही पथ का अनुसरण करते हैं।

"अच्छा बाबा! अब ये बताओ कि हमें सुख कैसे मिलेगा ?"– मैंने पूछा।

"सुख मिलेगा मेरे भक्तों से तथा मुझसे, क्योंकि मैं सुख का सागर हूँ। गोपियाँ हर पल, हर क्षण मेरे सुख के लिये सब काम करती थीं इसलिये उन्हें हर पल सुख मिलता था। मेरे भक्तों के चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाओ। मैं अपने भक्तों के हृदयों में रहता हूँ। जब कोई मेरे प्यारे भक्तों को हरिनाम सुनायेगा तो मैं भी सुनूँगा। मेरे प्यारे भक्त हरिनाम सुनेंगे तो उनकी कृपा मिलेगी, उनका आशीर्वाद मिलेगा और मैं हरिनाम सुनूँगा तो मैं गद्गद् हो जाऊँगा। मैं खुश हो जाऊँगा तो सुख अपने आप मिलेगा।"

मैंने अपने बाबा (श्रीकृष्ण) से पूछा कि यह बात आपने पहले कभी नहीं बताई तो वे बोले– "तुमने पहले कभी ये बात पूछी नहीं, इसलिये मैंने नहीं बताई। आज पूछी है तो बता दी। अब मैं तुम्हें हरिनाम करने का सर्वोत्तम मार्ग बताता हूँ।"

इस प्रकार कहने के बाद भगवान् श्रीकृष्ण ने मुझे हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग बता दिया। वही मार्ग मैं आपको बता रहा हूँ। हरिनाम करने से पहले वृन्दा देवी (तुलसी महारानी) को प्रणाम करो। वृन्दा देवी की प्रसन्नता से ही सब कुछ होगा। तुलसी माँ की प्रसन्नता कैसे होगी–वह इसी पुस्तक में लिखा है, भक्तगण उसे अवश्य पढ़ें और उसके अनुसार हरिनाम शुरु करें। साथ ही प्रतिदिन तीन प्रार्थनाएँ तथा वैष्णव प्रार्थनाएँ भी करें।

जितने भी नामनिष्ठ हैं, वे भगवान् को अतिप्रिय हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो भगवान् को बहुत सुख मिलता है। इन नामनिष्ठ भक्तों को प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है उनके चरणों में बैठकर, उन्हें हरिनाम सुनाना। ऐसा करने से भगवान् के प्यारे भक्तों की कृपा भी मिलेगी और भगवान् भी आनन्दित हो जायेंगे। जब भगवान् ही प्रसन्न हो गये तो बाकी क्या बचा ? सब कुछ मिल गया।

भगवान् के नामनिष्ठ भक्त अनगिनत हैं, असंख्य हैं पर भगवान् ने अहैतुकी कृपा करके मुझे दो ग्रुप बताये हैं जिसका मैं

वर्णन करने जा रहा हूँ। इन सबके चरणों में बैठकर, इन्हें हरिनाम सुनाना है पर यह होगा **मानसिक रूप** से।

पहला ग्रुप है **श्रीगुरुदेव** का। इस ग्रुप का क्रम इस प्रकार है–

1. श्री गुरुदेव
2. श्रीनृसिंह देव
3. श्रीगौरहरि
4. श्रीकृष्ण
5. श्रीराधा
6. पुरी मंदिर में विराजमान श्री बलदेव, सुभद्रा एवं भगवान् जगन्नाथ
7. श्रीगौरहरि का विलाप
8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर
9. षड्–गोस्वामी पाद
10. श्री माधवेन्द्र पुरी पाद एवं ईश्वर पुरीपाद

इस क्रमानुसार सबको चार–चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार क्रमांक एक से दस तक, चार–चार माला हरिनाम की करने से चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी।

इसी प्रकार दूसरे ग्रुप का क्रम है। यह ग्रुप है **देवर्षि नारद जी का**।

11. श्री नारद जी
12. श्री सनकादिक जी (चार कुमार)
13. श्री ब्रह्मा जी
14. श्री शिव जी
15. श्री नित्यानंद प्रभु
16. श्री अद्वैताचार्य जी
17. श्री गदाधर पंडित जी
18. श्रीवास (निवास) जी
19. षड्–गोस्वामी पाद
20. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्री ईश्वरपुरीपाद।

(श्रीपाद षड्-गोस्वामी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद एवं श्री ईश्वरपुरी पाद दोनों ग्रुपों में शामिल हैं।)

इस क्रमानुसार हर बार चार-चार माला हरिनाम की सुनानी हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रुप में भी चालीस (10x4=40) माला हो जायेंगी। इन दोनों ग्रुपों को पूरा करने के बाद अस्सी (40+40=80) माला हरिनाम की हो जायेंगी यानि 1,25,000 हरिनाम पूरा होगा। इस पूरे क्रम को दो बार करने से 160 माला यानि 2,50,000 हरिनाम पूरा हो जायेगा। तीन बार करने से 3,75,000 तथा चार बार करने से पाँच लाख (5,00,000) हरिनाम पूरा हो जाता है। **यह सब भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशानुसार है।** जो इसे अपनायेगा उसे भगवान् का दर्शन अवश्य होगा। इस बात की शत-प्रतिशत गारंटी है।

क्रम में बदलाव न करें। अगर आप 4 माला कर रहे हैं, तो गुरुदेव को ही 4 माला सुनाइये, 8 माला कर रहे हैं, तो 4 माला गुरुदेव और 4 माला नृसिंहदेव को सुनाइये, इस तरह से आगे बढ़िये। किसी को 1 माला, किसी को 2 माला सुनाईं ऐसी मनमानी न करें।

इन दोनों ग्रुपों में जो नाम आये हैं, उनका संक्षिप्त परिचय इसी ग्रंथ के **आमुख** नाम के लेख में आगे दिया गया है, भक्तगण, उसे जरूर पढ़ें।

अब मैं आपको हरिनाम का चमत्कार बता रहा हूँ। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। मेरी उम्र है 85 वर्ष। उम्र के हिसाब से तो मुझे खटिया में पड़ जाना चाहिये पर इस उम्र में भी, मेरे शरीर में बीस वर्ष के नौजवान जैसी शक्ति है। मेरी दृष्टि पाँच वर्ष के बच्चे जैसी है। मेरे सारे दाँत हैं और मुझे कोई भी रोग नहीं है। मैं हर रोज रात को 12 बजे उठकर हरिनाम करता हूँ। पहले मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन करता था। 24 नवम्बर, 2013 को जब भगवान् ने मुझे यह क्रम बताया तो मैं इस पूरे क्रम को तीन बार करता था और मेरा 3,75,000 हरिनाम प्रतिदिन होता था। अब मैं इस पूरे क्रम को चार बार प्रतिदिन करता हूँ और 24

दिसंबर, 2013 से मैं प्रतिदिन पाँच लाख हरिनाम करता हूँ और यह सब 16-17 घंटों में पूरा हो जाता है। बाकी समय में मैं खाना-पीना, सोना करता हूँ तथा भक्तों से मिलता हूँ। इस जन्म में मैं अबतक लगभग 800 करोड़ हरिनाम कर चुका हूँ। आपको सच नहीं लग रहा न! मैं कहता हूँ, करके देख लो! जब मैं 85 वर्ष का बूढ़ा आदमी पाँच लाख हरिनाम कर सकता हूँ तो आप क्यों नहीं कर सकते। पर मैं आपको पाँच लाख हरिनाम करने को नहीं कहता। मैं कहता हूँ आप कम से कम पूरे क्रम को एक बार तो करो यानि 80 माला (1,25,000) हरिनाम। इसी से आपको विरह होने लगेगा और इसी जन्म में श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति हो जायेगी।

देखो! हरिनाम में अमृत भरा पड़ा है। इस अमृत को जितना पी सकते हो, पी लो। यह हरिनाम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में हमें दिया है। हे रसिक व भावुकजनो! श्रीचैतन्य महाप्रभु के मुख का संयोग होने से हरिनाम रूपी यह अमृतरस परिपूर्ण है और इस हरिनाम का रस इसी लोक में, इसी जन्म में सुलभ है। इसलिये जब तक शरीर में प्राण हैं, चेतना है तब तक हर पल, हर सांस में इस अमृत का पान करते रहो। यह मौका फिर नहीं मिलेगा। यह हरिनाम वैष्णवों का परमधन है। परमहंसों का प्राण धन है तथा भक्तों का जीवन धन है। इसलिये मेरे प्यारे भक्तो! इस हरिनाम रस का खूब पान करो। इसे कभी मत छोड़ना। जो नित्य-निरंतर हरिनाम करता है, वे त्रिलोकी में अत्यन्त निर्धन होने पर भी परम धन्य है क्योंकि इस हरिनाम की डोरी से बँधकर, भगवान् को, अपना परमधाम छोड़कर, भक्त को साक्षात् दर्शन देना पड़ता है। हरिनाम की महिमा इससे अधिक और क्या हो सकती है! हरिनाम का आश्रय लेकर, इसे स्वयं करने तथा दूसरों से करवाने वाले- दोनों को ही श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। **फिर इस हरिनाम को छोड़कर और कुछ करने से क्या प्रयोजन है?**

भगवान् श्रीकृष्ण ने हरिनाम करने का यह सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग मुझे बताया है। इस मार्ग से हरिनाम करने पर, हरिनाम

करते रहने की इच्छा बढ़ती जायेगी और जो आनन्द प्राप्त होगा, उस आनंद की कोई सीमा नहीं है। वह आनन्द अलौकिक है, अगाध है, असीमित है, अपरिमित है, अवर्णनीय है और भगवान् का साक्षात्-दर्शन कराने वाला है। इसीलिये मैं सबसे बार-बार कहता हूँ-

हरिनाम करो। हरिनाम करो। हरिनाम करो।

"गोलोकेर प्रेमधन, हरिनाम संकीर्तन।"

यह हरिनाम-संकीर्तन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के गोलोक धाम का प्रेमधन है। हरिनाम की कृपा से ही श्रीश्रीराधाकृष्ण, राधाकुण्ड, गोवर्धन, यमुना, कुसुम-सरोवर, मानसी-गंगा, वृन्दावन, वंशीवट, गोकुल, व्रज के वृक्ष-लता-पत्ते-गोप-गोपियाँ, गाय-बछड़े, पशु-पक्षी, भौंरे, वन-उपवन, मुरली तथा बरसाना सबके दर्शन होंगे।

एक दिन मैंने भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा कि माया तो आपकी दासी है। फिर यह आपके भक्तों को प्रताड़ित क्यों करती है ? क्यों उन्हें कष्ट देती है ? आपके आदेश के बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता फिर मनुष्यों को सताने के लिये आपने माया को आदेश क्यों दिया ?

मेरी बात सुनकर मेरे बाबा बोले, "अनिरुद्ध! इस प्रश्न का उत्तर तुम मेरी माया से ही पूछो न!"

भगवान् के आदेश से उसी क्षण माया देवी वहाँ प्रकट हो गई। मैं उन्हें देखकर हतप्रभ रह गया। सुन्दर स्वरूप, विलक्षण तेज और सबको आकर्षित करने वाली दिव्य आभा। मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। यही भगवान् की दैवीशक्ति माया है- यह जानकर मैंने तुरंत माया देवी को प्रणाम किया। मैंने दोनों हाथ जोड़कर बड़ी विनम्रता से माया देवी से पूछा कि, आप मनुष्यों को कष्ट क्यों देती हो ? क्यों उन्हें प्रताड़ित करती हो ?

माया देवी ने कहा- "देखो! अनादिकाल से यह जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रहा है। इन चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य की योनि ही कर्म प्रधान है। बाकी सभी योनियाँ भोग

भोगने के लिये हैं। इन योनियों में जीव कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है पर मनुष्य योनि में वह कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। उसे कर्म करने की पूरी आज़ादी है। मनुष्य कर्म करने के लिये स्वतंत्र तो है पर उसे इन सभी कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का बुरा फल होता है। मनुष्य पाप-पुण्य आदि जो भी कर्म करता है, उसका फल उसे भोगना ही होगा पर दूसरी योनियों में कोई पाप नहीं लगता।

मनुष्य को यह जन्म भगवद्-प्राप्ति के लिये मिला है। उसने गर्भ में भगवान् से प्रार्थना की थी कि मैं आपका भजन करूँगा। भगवान् ने उसकी प्रार्थना सुनकर, बिना कारण, उस पर कृपा करके इस संसार में भेज दिया ताकि वह भगवद्-भजन कर सके। पर यह मनुष्य भगवान् को ही भूल गया और अपने सुख की खोज में लग गया। वह अपने स्वामी, जिसका वह नित्यदास है, उसको छोड़कर अपनी दुनियाँ बसाने में लग गया। वह मेरे स्वामी की सेवा छोड़कर, पति-पत्नि, परिवार की सेवा में लग गया और मेरे स्वामी को भूल गया। इसलिये वह दुःखी है। मेरे स्वामी को प्रसन्न करने की बजाय, उसे सुख देने की बजाय, यह मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में लग जाता है इसलिये मैं उसे परेशान करती हूँ। मैं उसे भ्रमित कर देती हूँ, उसके मार्ग में बाधाएं खड़ी करती हूँ।

कभी भूकंप आता है, कहीं सुनामी सब कुछ मलियामेट हो जाता है, कहीं बादलों के फटने से गाँव के गाँव उग्र धाराओं में बह जाते हैं। कहीं सूखा पड़ जाता है, कहीं भुखमरी पैदा हो जाती है। यह सब मेरा ही खेल है। मेरा यह खेल इतना रहस्यमय है कि मनुष्य इसे समझ नहीं पाता और असहाय बनकर रह जाता है। मेरे चंगुल में फँसकर बड़े-बड़े विद्वान, वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि तथा साहित्यकार भी यह मान लेते हैं कि यह जीवन केवल मात्र खाने-पीने, सोने तथा मौजमस्ती करने के लिये मिला है और ऐसे लोग, अपने जीवन की अंतिम सांस तक, अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने में लगे रहते हैं। यह मनुष्य का दुर्भाग्य है।

भगवान् श्रीकृष्ण मेरे स्वामी हैं अर्थात् मायापति हैं। उनको प्रसन्न किये बिना, कोई भी जीव मेरे चंगुल से बच नहीं सकता। कोई भी उसे छुड़ा नहीं सकता। इस जीव को वही मेरे चंगुल से छुड़ा सकते हैं। जब वे प्रसन्न हो जाते हैं तो वे मुझे आदेश देते हैं कि मैं उनके प्रिय पुत्र (जीव) को मुक्त करूँ और उनके पास ले जाने में उसकी सहायता करूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग-द्वेष, ईर्ष्या ये सब मेरे हथियार हैं- मेरा परिवार है। जब तक जीव मेरे स्वामी को प्रसन्न नहीं करता, उनका भजन नहीं करता तब तक वह इसी प्रकार कष्ट भोगता रहेगा।"

यह कहकर माया देवी अन्तर्धान हो गईं। मायादेवी के इस वार्तालाप से जो बात निकल कर आई है वह यह है कि **यदि आप काम को भगाना चाहते हैं, तो हरिनाम करो। क्रोध को मिटाना चाहते हैं तो हरिनाम करो। राग-द्वेष को समाप्त करना चाहते हैं तो हरिनाम करो। केवल और केवलमात्र हरिनाम करने से भगवान् प्रसन्न हो जायेंगे और माया मैया हरिनाम में आपकी सहायता करेगी।**

हरिनाम करने से ही अहैतुकी भक्ति हृदय में जागृत हो जायेगी और आपकी सारी जिम्मेदारी भगवान् अपने ऊपर ले लेंगे। जैसे एक माँ, अपने नन्हे-मुन्ने बच्चे का पालन-पोषण करती है। उसे स्नान कराती है, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनाती है, उसका श्रृंगार करती है, दुलारती है, पुचकारती है, दूध पिलाती है, उसको किसी की नजर न लग जाये इसलिये काला टीका लगाती है, उसे चूमती है, खेलने के लिये उसे खिलौने देती है, पालने में सुलाती है, लोरी सुनाती है, गोद में बिठाती है, उससे बातें करती हैं। एक माँ यह सब काम निःस्वार्थ भाव से अपने बच्चे को सुख देने के लिये करती है। उसकी रक्षा का भार उठाती है क्योंकि वह बच्चा अपनी माँ के आश्रित है, उस पर निर्भर है, उसकी शरणागत है और बच्चा भी अपनी माँ की हर भावना को समझता है, देखता है, अनुभव करता है और उसकी छाती से चिपक जाता है। माँ की गोद में उसे कोई डर नहीं सताता। कोई दुःख नहीं होता और वह ममतामयी माँ को ही अपना सब कुछ समझता है। यह एक उदाहरण है।

जिस प्रकार जब बच्चा माँ के शरणागत हो जाता है, उस पर आश्रित होता है तो उसकी सारी जिम्मेदारी माँ उठाती है, ठीक उसी प्रकार यदि यह जीव हरिनाम का आश्रय लेकर भगवान् श्रीकृष्ण रूपी माँ की शरण में चला जाये, उसके हाथों में अपने जीवन की डोर सौंप देता है तो क्या भगवान् उसके सुख में, उसकी खुशी में कोई कमी आने देंगे ? जिस प्रकार माँ–बेटे का रिश्ता है उसी प्रकार भगवान् का अपने भक्त से रिश्ता है। जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को प्यार करती है, उसी प्रकार भगवान् उससे भी अधिक प्यार अपने प्रिय भक्त को करते हैं और सदा–सदा के लिये अपनी गोदी में बिठा लेते हैं। भगवान् अपने भक्त के समान और किसी को नहीं मानते। उन्हें अपना भक्त सबसे प्रिय होता है। वे हर पल, हर क्षण अपने भक्तों पर दृष्टि रखते हैं, उन पर कृपा बरसाते हैं! यही उनकी भक्तवत्सलता है! यही है उनकी अहैतुकी कृपा! जिस पर भगवद्–कृपा हो जाती है उस पर सभी कृपा करते हैं।

जापर कृपा राम की होई। तापर कृपा करें सब कोई।।

•••

विषयेर अन्न खाईल मलिन हय मन।
जाँहा मलिन हय मन ताँहा नाहिं कृष्णेर स्मरण।।

विषयी व्यक्ति का अन्न खाने से चित्त मलिन हो जाता है। चित्त मलिन होने से कृष्ण–स्मृति का अभाव हो जाता है तथा कृष्ण–स्मृति के अभाव में जीवन निष्फल हो जाता है। इसलिये सभी लोगों के लिये यह निषिद्ध है, विशेषतः धर्माचार्यों के लिये तो विशेष रूप से निषिद्ध है।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

आमुख

प्रस्तुति : श्रीहरिपद दास

गौर पूर्णिमा : 16 मार्च 2014

परम भागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास अधिकारी (श्री अनिरुद्ध प्रभुजी) ने अपने लेख के अन्तर्गत '**श्रीहरिनाम करने का सर्वोत्तम एवं शुद्ध मार्ग**' बताया है जो अति गोपनीय था पर उन्होंने सब पर कृपा करके, उस परम गोपनीय रहस्य को उजागर कर दिया है। इसलिए वे आत्यन्तिकी प्रीति के भाजन हो रहे हैं। स्वयं भगवान् श्रीगौर–सुन्दर और उनके निजजन एवं श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी के श्रीगुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी भी उनके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं।

मेरे श्रीगुरुदेव एवं अखिल भारतव्यापी श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के वर्तमान अध्यक्ष एवं आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजजी ने अहैतुकी कृपा करके 'श्रीगौर पार्षद' एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों के संक्षिप्त चरितामृत नामक अपने ग्रंथ के रूप में शुद्ध भक्ति प्रार्थी साधकों को एक महान प्रेरणादायक एवं अनमोल उपहार दिया है। उस ग्रंथरत्न में से, मैं कुछ श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का संक्षिप्त परिचय इस लेख में इसलिये दे रहा हूँ क्योंकि इसका श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी के लेख से संबंध है। इन श्रीगौरपार्षद एवं गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की कृपा के बिना श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होना दुर्लभ ही नहीं, असंभव है।

श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजी का भजन है–

"शुद्ध भक्त चरण रेणु भजन-अनुकूल
भक्त-सेवा परमसिद्धि प्रेम लतिकार मूल।"

"शुद्ध-भक्तों की चरण रज (चरणधूलि) भजन के अनुकूल है। भक्तसेवा ही सर्वोच्चसिद्धि है एवं प्रेम भक्ति लता का मूल है।"

शुद्ध भक्त-साधु भगवान् का बड़ा प्रिय होता है इसलिये भगवद्-भक्त के जीवनामृत का रसास्वादन श्रीभगवान् की कृपा प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। भगवान् अपनी पूजा से अधिक अपने भक्त की पूजा से प्रसन्न होते हैं। अपने प्यारे भक्तों का गुणगान सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। भक्तों के गुणों का गुणगान करते हुए वे अपने आपको भूल जाते हैं। जिन पर भक्तवत्सल भगवान् के प्रिय भक्तों की कृपा हो जाती है, उनके हृदय में भगवान् अति शीघ्र अपनी लीला को प्रकाशित कर देते हैं। भक्तकृपा से ही भगवद्-कृपा प्राप्त होती है।

ग्रुप ए : श्रीगुरुदेव का ग्रुप

1. श्रीगुरुदेव

श्रीगुरुदेव साक्षात् हरि स्वरूप हैं। भक्ति-शास्त्रानुसार श्रीगुरुदेव श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त हैं। श्रीकृष्ण के प्रियतम भक्त होते हुए भी शास्त्रों ने श्री गुरुदेव को श्रीकृष्ण तुल्य ही कहा है। श्री कृष्ण में जैसी प्रीति करनी चाहिये, वैसी ही प्रीति श्रीगुरुदेव में करनी चाहिये, जैसे श्रीकृष्ण पूज्य हैं, श्रीगुरुदेव भी उसी प्रकार पूज्य हैं। इसलिये गुरु भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण-भक्ति करने से ही अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्ण मान लेते हैं और श्रीकृष्ण भक्ति छोड़कर केवल श्रीगुरु भक्ति में लगे रहते हैं, वे भटक जाते हैं। उनके निस्तार में शंका है। गुरु दो प्रकार के हैं- **दीक्षा गुरु** तथा **शिक्षा गुरु**। भगवान् का भजन करने के लिये जिनसे मूल मंत्र ग्रहण किया जाये, वे दीक्षा गुरु होते हैं और जो भजन संबंधी शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा गुरु कहलाते हैं। शिक्षा गुरु

अनेक हो सकते हैं परन्तु दीक्षा गुरु एक होते हैं और अपरिवर्तनीय हैं। वास्तव में श्रीकृष्ण की शक्ति ही श्रीगुरुदेव के चित्त में आविर्भूत होकर शिष्य पर कृपा करती है। इसीलिये श्रीगुरुदेव का वैशिष्ट्य है।

2. श्री नृसिंह देव

श्रीमद्भागवत पुराण के सातवें स्कन्ध में भगवान् श्रीनृसिंह देव के आविर्भाव का प्रसंग मिलता है। अपने प्रिय भक्त प्रहलाद जी की रक्षा करने के लिये, वे वैशाख की शुक्ला चतुर्दशी को आविर्भूत हुए थे। श्रीनृसिंह देवजी का स्वरूप दो प्रकार का है। अभक्तों के लिये उनका उग्ररूप है और भक्तों के लिये वे वात्सल्य-युक्त हैं, स्नेहपूर्ण हैं। श्रीनृसिंहदेव जी की भक्ति, प्रतिकूल भावों का नाश करके, भक्ति को समृद्ध करती है। अनर्थयुक्त साधकों को भक्ति विघ्न विनाशन श्रीनृसिंह देव की कृपा की आवश्यकता है इसलिये सभी भक्तों की भगवान् नृसिंह देव से प्रार्थना करनी चाहिये। प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही, रात को सोते समय और सुविधानुसार दिन में दो बार किसी भी समय इस प्रार्थना को चार-बार करना चाहिये।

1. इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो, यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहों, नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये।
2. नमस्ते नरसिंहाय प्रहलाद-आह्लाद दायिने
हिरण्यकशिपोर्वक्षः शिलाटंक नखालये।
3. वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदय संवित तं नृसिंहमहं भजे।।
4. श्री नृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह
प्रह्लादेश जय पद्म मुख पद्म भृंग।।

3. श्रीगौरहरि

ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही श्रीगौरहरि हैं और वे ही कलियुग में श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से अवतीर्ण हुए हैं। कलियुग का युगधर्म हरिनाम है। उस हरिनाम का प्रचार करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण पीले वस्त्र धारण करके, श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतीर्ण हुए। उनका शरीर परमोज्जवल सोने के समान सुंदर एवं आकर्षक है। उनकी कण्ठ ध्वनि अति मधुर है। उनका मुखचन्द्र भी अति सुंदर एवं ज्योतिर्मय है। कमल के समान बड़े–बड़े एवं सुंदर उनके नेत्र हैं और उनकी भुजायें घुटने पर्यन्त लंबी हैं, नासिका भी बहुत सुंदर है। अपनी दोनों भुजाओं को ऊँचा उठाकर जब वे 'हरि' 'हरि' उच्चारण करते हैं और अपने प्रेम पूर्ण नेत्रों से जिसे देखते हैं उसी क्षण उस जीव के जन्म–जन्मान्तरों के समस्त कर्मों का नाश हो जाता है और उस जीव को कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
गदाधर प्राणधन संकीर्तन बिहारी।।
जय शचीनन्दन जय गौरहरि।
विष्णुप्रिया प्राणधन नदिया विहारी।।
जय शचीनन्दन गौर गुणाकर।
प्रेम परसमणि भाव रस सागर।।

श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात महाप्रभु ही श्रीगौरहरि हैं वही गौरांग है, नीमवृक्ष के नीचे जन्म होने से उनका एक नाम निमाई भी है। अपनी अहैतुकी कृपा से, अपनी सेवा के अत्यन्त उत्कृष्ट रस को हरिनाम के रूप में प्रदान करने के लिये वे अवतीर्ण हुये। जो साक्षात् कृष्ण होते हुए भी श्रीमती राधारानी के भाव तथा स्वरूप में प्रकट हुए हैं, उन श्रीकृष्णचैतन्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

पौर्णमास्यां फाल्गुनस्य फल्गुनी ऋक्षयोगतः।
भविष्ये गौररूपेण शचीगर्भे पुरन्दरात॥

स्वर्ण दीतीरमास्थाया नवद्वीपे जनाश्रये।
तत्र द्विजकुलं प्राप्तो भविष्यामि जनालये॥
भक्तियोग प्रदानाय लोकस्यानुग्रहाय च।
संन्यासरूपमास्थाय कृष्ण चैतन्यनामधृक॥

(वायु पुराण)

भगवान् स्वयं कहते हैं– हे देवताओ! उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग से युक्त फाल्गुन मास की पूर्णिमा के दिन, द्विजेन्द्र पण्डित श्रीजगन्नाथ (मिश्र पुरन्दर) द्वारा, श्रीशचीमाता के गर्भ से, गौरांग रूप से अवतीर्ण होऊँगा।

गंगा तट का आश्रय लेकर, विराजमान भक्तजनों का जो प्रधान स्थान नवद्वीप है, वहाँ पर मैं, उत्तम ब्राह्मण कुल का आश्रय लेकर, भक्तों के स्थान में आविर्भूत होऊँगा। उस समय श्रीहरिनाम संकीर्तन यज्ञ द्वारा भक्तियोग को प्रदान करने के लिए जनमात्र को अनुग्रहीत करने के लिये, संन्यास वेष धारण कर, श्रीकृष्णचैतन्य नाम से विख्यात होऊँगा।

4. भगवान् श्रीकृष्ण

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

(श्रीब्रह्मा द्वारा रचित ब्रह्मसंहिता 5.1)

श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं तथा वे स्वयं भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। वे स्वयं अनादि हैं किन्तु सबके आदि हैं। वे गोविन्द हैं तथा सब कारणों के कारण हैं। वे ब्रजराज श्रीनन्द महाराज के पुत्र हैं। उनमें समस्त ऐश्वर्य हैं, समस्त शक्तियाँ हैं तथा वे समस्त रसों से पूर्ण रसस्वरूप हैं। वे शृंगार रस की मूर्ति हैं इसलिये दूसरों की तो बात ही क्या, वे तो अपने चित्त को भी हरण करने वाले हैं।

श्रीकृष्ण चन्द्र का ऐसा अद्भुत सौंदर्य–माधुर्य है कि वे अपने आपको आलिंगन करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण की चरण–सेवा ही जीव

की एकमात्र अभीष्ट वस्तु है और वह प्राप्त होती है हरिनाम करने से। हरिनाम करने में जो सुख है, वह अतुलनीय है, सर्वोपरि है, सर्वश्रेष्ठ है।

किसी समय असंख्य ब्रह्मा द्वारिकापुरी में द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए उपस्थित हुए। उनमें किसी के दस, किसी के बीस, किसी के सहस्र, किसी के लक्ष और किसी के करोड़ों मुख थे। उनकी संख्या की गणना करना असम्भव था। उसी समय दस, बीस एवं करोड़ों मुख वाले रुद्र भी उपस्थित हुए। इतने में ही उसी प्रकार के मुख वाले करोड़ों इन्द्र भी उपस्थित हुए। वे सभी ब्रह्मा, रुद्र एवं इन्द्र कृष्ण के सम्मुख दण्डवत् करने लगे। उस समय उनके रत्ननिर्मित मुकुटों की ध्वनि से सारा आकाश मण्डल झंकृत हो गया। मानों वे मुकुट भी श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे हों। ब्रह्मा और रुद्र आदि हाथों को जोड़कर द्वारिकाधीश का स्तव करने लगे। वे स्तव-स्तुति करने के पश्चात् बोले-प्रभो! आपने कृपाकर हमें दर्शन दिया। हमारा परम सौभाग्य है कि आपने हमें यहाँ बुलाया और अपने दास के रूप में अंगीकार किया। आपकी क्या आज्ञा है ? हम उस आदेश को शीश पर धारण कर उसका पालन करेंगे।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 21/66-74)

5. श्रीराधा

भगवान् श्रीकृष्ण की अनंत शक्तियाँ हैं, श्रीराधा कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं। श्रीराधा के महाभाव को अंगीकार करके ही श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण चैतन्य रूप से प्रकट हुए हैं। श्रीराधा जी की भावमयी भक्ति में जीव का अधिकार नहीं है। जीव तटस्था शक्ति है, उसका श्रीराधाभाव की आनुगत्यमयी सेवा में ही अधिकार है। उस आनुगत्यमयी सेवा में जो सुख है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। श्रीराधा दयामयी हैं, कृपामयी एवं करुणामयी हैं।

श्रीराधाजी की कृपा प्राप्त करने के लिये जरूरी है कि उनके श्रीचरणकमलों में बैठकर उन्हें कृष्णनाम सुनाया जाये। हरे कृष्ण महामंत्र में 'हरे' का अर्थ है– 'श्रीराधा'। जब हम हरे कृष्ण महामंत्र का जप या कीर्तन करते हैं तो सबसे पहले हरे (श्रीराधा) का नाम लेते हैं। 'हरे' शब्द को सुनकर श्रीकृष्ण गद्‌गद् हो जाते हैं और 'कृष्ण' नाम सुनकर श्रीराधा कृपा करती हैं। अतः उच्चस्वर में हरे कृष्ण महामंत्र का जप व कीर्तन करने से श्रीराधाकृष्ण दोनों की कृपा प्राप्त होती है। जय जय श्रीराधे!

6. भगवान् जगन्नाथ, श्रीबलदेव एवं सुभद्राजी

भगवान् जगन्नाथ श्रीकृष्ण ही हैं एवं श्रीबलदेव जी उनके बड़े भाई हैं। सुभद्राजी इनकी बहन हैं। ये तीनों श्रीजगन्नाथ पुरी में, महासमुद्र के किनारे, सुवर्ण के समान सुंदर, नीलाचल के शिखर में अपने मंदिर में विराजमान हैं। भगवान् जगन्नाथ करुणा के सागर हैं। उनका मुख निर्मल कमल के समान है, उनके नेत्र दिव्य हैं।

रथयात्रा के अवसर पर भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीबलदेव एवं सुभद्रा जी, जब ये तीनों विशाल रथों में बैठकर निकलते हैं तो समस्त देवी–देवता उनका स्तुति गान करते हैं। ब्राह्मण–समुदाय के द्वारा पद–पद पर उनकी स्तुति का गान होता है। भगवान् शेष जी के सिर पर अपने चरणों को स्थापित करने वाले भगवान् जगन्नाथ जी का चारु चरित्र शिवजी गाते रहते हैं। श्रीलक्ष्मीजी, शिव–ब्रह्मा, इन्द्र एवं गणेश आदि देवी–देवता उनके श्रीचरण कमलों की पूजा करते हैं। भगवान् जगन्नाथ, श्री बलदेव एवं सुभद्रा जी की कृपा से व्यक्ति सब पापों से रहित होकर, विशुद्ध चित्तवाला होकर आनन्दपूर्वक श्रीहरिनाम कर सकता है।

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे।
भगवान् श्रीजगन्नाथ! मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायें।

7. श्री गौर हरि का विलाप

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहिमाम्।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्षमाम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहिमाम्।।

कहां कृष्ण प्राणनाथ मुरली वदन ?
कहां जाऊँ कहां पाऊँ ब्रजेन्द्र नन्दन ?
काहरे कहिब कथा केबा जाने मोर दुःख।
ब्रजेन्द्र नन्दन बिना फाटे मोर बुक।।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु ने हरे कृष्ण महामंत्र द्वारा नाम संकीर्तन करने का उपदेश दिया है। इसी महामंत्र का रात–दिन कीर्तन करते हुए श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण–विरह सागर में निमग्न रहते थे। श्रीकृष्ण के विरह में ऐसी अद्भुत शक्ति है जो श्रीकृष्ण को भी रुलाती है, भक्त को भी रुलाती है। विरह में भक्त और भगवान् दोनों आंसू बहाते हैं।

8. नामाचार्य श्री हरिदास ठाकुर

ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः।
प्रह्लादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन्।।

ऋचीक मुनि के पुत्र जिनका नाम महातपा ब्रह्मा था, वही प्रह्लाद के साथ जन्म ग्रहणकर अभी हरिदास रूप से आये हैं। एक दिन मुनि कुमार तुलसी पत्र लेने गया। उसने तुलसी पत्र तोड़े और बिना धोये ही अपने पिता को दे दिये जिससे पिता ने उसे यवनकुल

में जन्म लेने का शाप दिया था। वही मुनिपुत्र परमभक्त हरिदास के रूप में प्रकट हुये थे।

श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से उनके आविर्भाव से पहले ही आविर्भूत हो चुके थे। नवद्वीप माहात्म्य में लिखा है कि द्वापर युग में ब्रह्माजी ने नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के बछड़ों और ग्वालों का हरण करके उनकी परीक्षा लेनी चाही थी। इन सभी गाय, बछड़ों तथा ग्वाल–बालों को ब्रह्माजी ने एक वर्ष तक सुमेरु पर्वत की गुफा में छुपा कर रखा था। बाद में जब उन्हें अपनी भूल का पता चला तो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में क्षमा याचना की और भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा करके ब्रह्माजी को अपना स्वरूप दिखाया था। वही नंदनंदन श्रीकृष्ण श्रीगौरांग रूप में अवतीर्ण हुए थे।

नवद्वीप धाम के अन्तर्गत, अन्तर्द्वीप में बैठ, ब्रह्माजी इस बात की चिन्ता कर रहे थे कि जो भूल उन्होंने श्रीकृष्ण के समय की थी, वही गौरावतार में दुबारा न हो जाये। ब्रह्माजी के मन की व्यथा भगवान् श्रीकृष्ण जान गये और उन्होंने गौरांगरूप में ब्रह्माजी को दर्शन दिया और कहा–''गौरांग अवतार के समय तुम यवन कुल में आविर्भूत होकर हरिदास ठाकुर के रूप में नाम–माहात्म्य का प्रचार करके, जीवों का कल्याण करोगे।''

इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ही हरिदास ठाकुर के रूप में अवतीर्ण हुये और नाम–महिमा का प्रचार किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित ''हरिनाम– चिंतामणि'' नामक ग्रंथ में इसका वर्णन है।

श्रील हरिदास ठाकुरजी का चरित्र अद्भुत है। जो प्रतिदिन तीन लाख हरिनाम लेते हैं, जिनके गुण अनंत है, श्रीअद्वैताचार्यजी ने जिनको श्राद्ध का भोजन कराया था, जिनके गुण समूह प्रह्लाद के समान हैं, यवनों द्वारा पीटने पर जिनका बाल भी बांका नहीं हुआ, उन हरिदासजी की महिमा कहने की सामर्थ्य किसमें है ?

श्रील हरिदास ठाकुर निर्जन स्थानों में कुटिया में रहा करते थे। प्रतिदिन तुलसी सेवा और तीन लाख हरिनाम करते। ब्राह्मणों के घरों पर जाकर भिक्षा करते थे। उनकी कृपा से एक वेश्या (लक्षहीरा) प्रसिद्ध वैष्णवी–परम महान्ती हो गई। बड़े–बड़े वैष्णव भी उनके दर्शन करने आते थे।

श्रीहरिदास ठाकुरजी के दर्शन से ही अनादिकाल के कर्म–बंधन छिन्न–भिन्न हो जाते हैं। उनका संग ब्रह्माजी–शिवजी को भी वांछनीय है और गंगा मैया भी उनके स्पर्श की कामना करती है। श्रीमन्महाप्रभु जी ने स्वयं अपने मुख से श्रीहरिदासजी की महिमा का कीर्तन किया है। महाप्रभुजी नित्यप्रति उनको मिलने आते थे। उनके शरीर त्यागने पर महाप्रभु जी ने उनकी देह को अपनी गोद में उठाकर, महानन्द के साथ नृत्य किया था।

श्री महाप्रभु जी के अवतार का प्रयोजन है– श्रीहरिनाम–प्रचार। उन्होंने श्री हरिनाम–प्रचार का अपना काम श्रीहरिदास जी के द्वारा करवाया। श्रीहरिदास ठाकुर जी ने श्रीहरिनाम का आचरण एवं प्रचार दोनों कार्य किये। अतः वे सबके गुरु हैं तथा समस्त जगत् के पूज्य हैं।

मैं, नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी को प्रणाम करता हूँ एवं उनके प्रभु श्रीचैतन्य देव को नमस्कार करता हूँ।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की जय।

9. श्रीषड् गोस्वामी

जय रूप सनातन भट्ट रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास रघुनाथ।।
एइ छय गोसाञिर करि चरण–वंदन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट पूरण।।
एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण–नित्यलीला करिला प्रकाश।।

श्री रूप गोस्वामी, श्री सनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी इन छः गोस्वामियों की जय हो। मैं इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करता हूँ। इन छः गोस्वामियों की चरण वंदना करने से सभी विघ्नों का नाश हो जाता है तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। इन छः गोस्वामियों ने ब्रज में वास किया और श्रीश्रीराधा-कृष्णजी की नित्यलीलाओं को प्रकाशित किया।

वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ।।

मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ तथा उनका संक्षिप्त परिचय देकर उनके चरण कमलों में कृपा-प्रार्थना करता हूँ।

9.1. श्री रूप गोस्वामी

श्रीधाम वृन्दावन के षड्-गोस्वामियों में और गौरलीला में, श्रीरूपगोस्वामी जी प्रधान हैं। श्रीमती राधारानी की अनुगता मंजरियों में प्रधान हैं- श्रीरूप मंजरी। पूर्वकाल में, वृन्दावन की लीला में श्रीरूप मंजरी के नाम से जो प्रसिद्ध थीं, गौर लीला में वही रूप गोस्वामी के रूप में प्रकट हुये थे।

रामकेलि ग्राम में श्रीकेलि कदम्ब वृक्ष और तमाल वृक्ष के नीचे श्रीरूप और श्रीसनातन के साथ श्रीमन्महाप्रभु जी का पहला मिलन हुआ था। श्रीमन्महाप्रभु जी की इच्छा से रूप-सनातन के हृदय में तीव्र वैराग्य पैदा हो गया था। श्रीमन्महाप्रभु जी ने रूप गोस्वामी जी के माध्यम से वृन्दावन की रसक्रीड़ा के संबंध में और ब्रज-प्रेम प्राप्ति के साधन विषय की शिक्षा प्रदान की है। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' नामक ग्रंथ लिखने के लिये श्रीमन्महाप्रभुजी का प्रत्यक्ष निर्देश उन्हें प्रयाग में प्राप्त हुआ था। उनके 'ललितमाधव' और 'विदग्ध माधव' के प्रचार अंक के मंगलाचरण में लिखे दो

श्लोकों को सुनकर श्रीराय रामानंद जी ने अपने हजार मुखों से उनकी प्रशंसा की थी।

एत शुनि राय कहे प्रभुर चरणे।
रुपेर कवित्व प्रशंसि सहस्रवदने।।

श्रीनरोत्तम ठाकुर जी कहते हैं–

श्री रूप मंजरी पद, सेई मोर संपद,
सेई मोर भजन–पूजन।
सेइ मोर प्राणधन, सेइ मोर आमरण,
सेइ मोर जीवनेर जीवन।।

''श्रीरूप मंजरी के चरण ही मेरी सम्पत्ति हैं, वे ही मेरा भजन–पूजन हैं। वे ही मेरे प्राण धन हैं, वे ही मेरे आमरण हैं। वे ही मेरे जीवन के जीवन हैं।''

श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ने श्रीरूपगोस्वामी जी के चरण कमलों की धूलि को अपना सर्वस्व माना है। वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर के पीछे श्रीरूप गोस्वामीजी का मूल समाधि मंदिर और भजन कुटीर है।

9.2. श्री सनातन गोस्वामी

जो श्रीकृष्णलीला में, रूप मंजरी की प्रिय रतिमंजरी अथवा लवंग मंजरी थीं, गौर लीला में वही श्रीगौरांग महाप्रभुजी के अभिन्न तनु श्री सनातन गोस्वामी जी के रूप में अवतरित हुये थे। छोटी उम्र में ही उनका श्रीमद्भागवत शास्त्र में अनुराग था। उनके श्रीगुरुदेव का नाम था– श्रीविद्या वाचस्पति जी।

श्रीसनातन गोस्वामी जी भक्तिसिद्धान्त के आचार्य तथा संबंध ज्ञान के दाता हैं। उन्होंने जगत्वासियों को जो शिक्षा दी, उसका परमयत्न के साथ चिंतन व पालन करना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीसनातन के प्रति खुश होकर, उनमें शक्ति का संचार किया था। शुद्ध–भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना तथा वैष्णव सदाचार के

लिये उन्होंने चार ग्रंथों की रचना की। उन्होंने ब्रजमंडल में लुप्त हो चुके तीर्थों का उद्धार किया और वृन्दावन में श्रीराधामदनमोहन जी के श्रीविग्रह की सेवा का प्रकाश किया। गोकुल महावन में उन्होंने दूसरे गोप बालकों के साथ मदनगोपालजी को क्रीड़ा करते हुये देखा था।

श्रीसनातन गोस्वामी जब गोवर्धन में थे तो अयाचित भाव से प्रतिदिन गिरिराज जी की परिक्रमा करते थे। एक दिन गोपीनाथ जी ने गोपबालक के रूप में उनको दर्शन दिया और श्रीकृष्ण के चरणों से चिह्नित एक शिला देकर कहा–'अब आप वृद्ध हो गये हो। क्यों इतना परिश्रम करते हो ? लो! यह गोवर्धन शिला ले लो, इसकी परिक्रमा करने से ही आपकी गिरिराज जी की परिक्रमा हो जाया करेगी।' इतना कहकर वह गोप बालक अन्तर्धान हो गया। गोप बालक को न देखकर सनातन गोस्वामी जी रोने लगे। श्रीसनातन गोस्वामी जी द्वारा सेवित वही गोवर्धन शिला आजकल वृन्दावन में श्रीराधादामोदर मंदिर में विराजमान है और भक्तलोग उस शिला का दर्शन करते हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी जी की नामभजन साधना से प्रसन्न होकर भगवान् एकदम छोटे से गिरिराज जी का रूप लेकर उनके जप माला की झोली के अन्दर प्रकट हुए।

श्रीसनातन गोस्वामी जी ने नन्दग्राम के पावन सरोवर के तट पर स्थित कुटिया में रहकर भजन किया था वहाँ भी एक गोपबालक के रूप में उन्हें श्रीकृष्ण ने दूध दिया था। श्रीरूप गोस्वामी द्वारा श्रीसनातन को खीर का भोजन करवाने की इच्छा करने पर, श्रीमती राधारानी ने एक गोपबालिका के वेष में खीर की सामग्री घी, दूध, चावल व चीनी आदि लाकर दी थी।

पुराने श्रीराधा मदनमोहन मंदिर के पीछे स्थित श्रीसनातन गोस्वामी जी का समाधि मंदिर दर्शनीय है।

9.3. श्री रघुनाथ भट्ट गोस्वामी

''रघुनाथाख्यको भट्टः पुरा या रागमंजरी।
कृत श्रीराधिका-कुण्डकुटीर वसतिः स तु।।''

(गौर गणोद्देश दीपिका)

''श्रीकृष्णलीला में जो रागमंजरी हैं, श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की लीला की पुष्टि के लिये वे ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी के रूप में प्रकटित हुई हैं।''

श्रीमन् महाप्रभु जी जिस समय बंगाल देश में गये थे, उसी समय रघुनाथ भट्ट गोस्वामीजी के पिता श्री तपन मिश्रजी के साथ उनका साक्षात्कार हुआ था।

श्रीरघुनाथभट्टजी लगभग 28 वर्ष तक घर में रहे। फिर समस्त सांसारिक कार्य परित्याग करके श्रीमन्महाप्रभु से मिलने नीलाचल धाम में चले गये थे। नीलाचल पहुँचकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुजी के दर्शन किये। आठ महीने तक वे नीलाचल में रहे। आठ महीने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें काशी जाकर वृद्ध वैष्णव माता-पिता की सेवा करने का आदेश दिया और विवाह कराने से मना कर दिया। महाप्रभु जी ने प्रेमाविष्ट होकर उनका आलिंगन किया और अपने गले की माला उनके गले में डालकर, फिर नीलाचल आने को कहा।

जब तक रघुनाथ भट्ट जी के माता-पिता प्रकट थे तब तक उन्होंने उनकी खूब सेवा की। उसके बाद वे पुनः नीलाचल में आकर श्रीमन् महाप्रभुजी के पास रहने लगे। वे रसोई बनाने में अत्यन्त निपुण थे। श्रीमन् महाप्रभु जी अपने भक्त द्वारा प्रेम से दिये, अमृत के समान पकाये व्यंजनादि का भोजन करके परम

तृप्ति का अनुभव करते थे। तब रघुनाथ भट्टजी को भी महाप्रभु जी का उच्छिष्ट प्रसाद पाने का सौभाग्य प्राप्त होता था।

आठ महीने पुरी में वास करने के बाद महाप्रभु जी ने उन्हें वृन्दावन में जाकर श्रीरूप गोस्वामी तथा श्री सनातन गोस्वामी जी के आश्रय में रहकर नित्य भागवत पाठ और कृष्णनाम करने को कहा। श्रीमन् महाप्रभु जी का प्रेमालिंगन प्राप्त करके और उनके हाथों से भगवान् जगन्नाथ जी की चौदह हाथ लम्बी तुलसी माला एवं प्रसादी पान बीड़ा पाकर श्रीरघुनाथ भट्ट जी प्रेमोन्मत्त होकर बेसुध हो गये।

श्रीरघुनाथ भट्ट जी का अपूर्व कण्ठस्वर था जब वे सुमधुर कण्ठ से एक–एक श्लोक का पाठ करते तो भक्तगण उनके प्रति परम आकृष्ट हो उठते थे। श्रीभक्तिरत्नाकर ग्रंथ में रघुनाथ भट्ट गोस्वामी जी की गुण महिमा का वर्णन हुआ है।

9.4. श्री जीव गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो विलास मंजरी हैं, वे ही गौरलीला की उपशाखा रूप से श्रीजीव गोस्वामी रूप में आविर्भूत हुई हैं। श्रीमन् महाप्रभुजी की इच्छा से जीव गोस्वामी जी के हृदय में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया था। नाना रत्नों से जड़ित सुखमय सुंदर वस्त्र, आरामदायक बिस्तर, नाना प्रकार की भोजन सामग्री इत्यादि इन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और राज्य आदि की चर्चा तो ये बिल्कुल भी नहीं सुनते थे।

जब श्रीजीव गोस्वामीजी ने स्वप्न में संकीर्तन के मध्य नृत्य अवस्था में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के दर्शन किये तो वे प्रेम में व्याकुल हो उठे। जब इन्होंने भक्त वात्सल्य में व्याकुल, भक्तों के प्राणप्रिय, श्रीनित्यानंद प्रभु के दर्शन किये तो नित्यानंद जी ने अपने पावन चरण कमलों को इनके माथे पर रखा। श्रीमन्नित्यानन्द

प्रभु ने उन्हें उठाया और दृढ़ प्रेमालिंगन प्रदान करके अतिशय कृपा की और उन्हें शीघ्र ही व्रज में जाने को कहा।

श्रीमन् नित्यानंद प्रभु की कृपा से इन्होंने नवद्वीप धाम का दर्शन किया। फिर वे काशी चले गये। उसके बाद वृन्दावन जाकर श्रीरूप-सनातन गोस्वामी जी का चरणाश्रय ग्रहण किया। भक्ति रत्नाकर ग्रंथ में जीव गोस्वामी जी के पच्चीस ग्रंथों का उल्लेख हुआ है। श्रीश्रीराधादामोदरजी के विग्रह जिनकी श्रीजीव गोस्वामी सेवा करते थे, आज भी वृन्दावन में श्रीराधा दामोदर मंदिर में विराजमान हैं। मंदिर के पीछे श्रीजीव गोस्वामी जी का समाधि मन्दिर है। श्रीराधाकुण्ड के किनारे तथा श्रीललिताकुण्ड के पास इनकी भजन कुटी आज भी हैं।

9.5. श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी

श्रीकृष्ण लीला में जो अनंग मंजरी हैं, गौर लीला में वे ही श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी के रूप में अवतरित हुईं। श्रीकृष्ण लीला के पार्षद होने के कारण, श्रीगोपाल भट्टजी को यह ज्ञान हो गया था कि नंदनंदन श्रीकृष्ण ही शचीनंदन गौरहरि के रूप में अवतरित हुए हैं। जब वे छोटी आयु के थे तभी उन्हें महाप्रभु जी के चरण कमलों की साक्षात् सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी की कृपा से उनका सारा परिवार श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा में लग गया था।

श्रीगोपाल भट्ट जी ने अपने चाचा त्रिदण्डि यति श्रीमान् प्रबोधा-नन्द सरस्वती पाद से दीक्षा ग्रहण की थी।

श्रीरूप गोस्वामीजी ने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी को अपने प्राणों के समान प्रिय मानकर, उन्हें श्री राधारमणजी की सेवा में नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी जी छः गोस्वामियों में अन्यतम हुए। वे अपने आप को बहुत दीन मानते थे। श्रीनिवासा-

चार्य जी इनके शिष्य थे। श्रीमन्महाप्रभु जी ने श्रीगोपालभट्ट जी का स्नेह देखकर ही उनको अपनी डोर कौपीन तथा काली लकड़ी का आसन भेजा था। आज भी वृन्दावन के श्रीराधारमण मंदिर में उस डोर, कौपीन और आसन की पूजा होती है तथा विशेष अवसरों पर उनके दर्शन भी कराये जाते हैं। श्रीराधारमण मंदिर के पीछे उनका समाधि मंदिर है।

9.6. श्री रघुनाथ दास गोस्वामी

श्रीकृष्णलीला में जो रसमंजरी हैं, श्रीगौर लीला में वे ही श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के रूप में प्रकट हुई हैं। श्रीरघुनाथ दासजी ने बचपन में ही हरिदास ठाकुर के दर्शन किये थे और श्रीहरिदास जी ने भी उन पर कृपा की थी। उसी कृपा के प्रभाव से उनको श्रीचैतन्य महाप्रभु जी की प्राप्ति हुई थी। जिस समय महाप्रभु जी संन्यास लेकर शान्तिपुर में आये थे, उस समय श्रीरघुनाथ दासजी को उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का पहला अवसर मिला था। महाप्रभु जी के दर्शन करके, उनके चरणों में लेटकर श्रीरघुनाथजी भावविभोर हो गये थे और जब महाप्रभुजी शान्तिपुर से नीलाचल चले गये तो महाप्रभु के विरह में प्रेमोन्मत्त होकर रघुनाथ दासजी जोर-जोर से रोने लगे थे। पुत्र को व्याकुल देखकर, पिता ने चिन्तित होकर, रघुनाथ जी को महाप्रभु के पास भेज दिया। महाप्रभु का दर्शन करके मानो रघुनाथ जी को दुबारा प्राण मिल गये और उन्होंने महाप्रभु जी से अपने दुःखों की बात कही और संसार से मुक्ति कैसे होगी ? यह जिज्ञासा की। महाप्रभु ने उन्हें समझाते हुये वापस घर चले जाने को कहा। श्रीमन्महाप्रभुजी के उपदेशों के अनुसार रघुनाथदासजी घर वापस आ गये और युक्त वैराग्य का सहारा लेकर अंदर से वैराग्य और बाहर से विषयी की भांति रहने लगे।

उनके पिता ने कुछ समय बाद रघुनाथ दास को संसार में बाँधने के लिये उनका विवाह कर दिया। एक साल बीतने पर

श्रीरघुनाथदासजी फिर महाप्रभु जी से मिलने के लिये घर से भाग गये।

श्रील रघुनाथदासजी का वैराग्य मानो पत्थर पर लकीर हो। उनके साढ़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घंटे) कृष्ण–कीर्तन व स्मरण में बीतते थे। आहार और निद्रा आदि के लिये केवल चारदण्ड (डेढ़ घण्टा) का समय ही रखते थे। वे केवल प्राणरक्षा के लिये ही भोजन करते थे और परिधान में केवल एक फटी गुदड़ी ही रखते थे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'स्तवावली' के 'चैतन्यकल्पवृक्ष स्तव' में श्रीमन्महाप्रभु जी की करुणा का सजीव वर्णन किया है।

श्रीस्वरूप दामोदर जी के आनुगत्य में रहकर, श्रीरघुनाथ दासजी ने श्रीमन्महाप्रभु जी की अन्तरंग सेवा की थी। श्रीमन्महाप्रभुजी और स्वरूप दामोदर जी के इहलीला संवरण करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु जी एवं श्रीराधाकृष्ण के विरह में, उन्होंने अन्न और जल त्याग दिया था। वे केवल मात्र थोड़ी सी छाछ पीते थे। वे हजार दण्डवत्, एक लाख हरिनाम, रात–दिन राधाकृष्ण की अष्टकालीन सेवा, महाप्रभुजी का चरित्र–कथन तथा तीनों संन्ध्याओं में राधाकुण्ड में स्नान आदि करके साढ़े सात प्रहर बिताते थे। राधाकुण्ड पर राधारानी का नित्य सानिध्य प्राप्त करके भी, वे थोड़े समय का विरह भी सहन नहीं कर पाते थे। राधाकुण्ड पर ही श्रीदास गोस्वामी जी ने अन्तर्धान लीला की। वहीं पर उनका समाधि मंदिर है।



जिनकी प्रेरणा से, मेरे हृदय में वृन्दावन के इन छः गोस्वामियों का गुणगान करने की शक्ति मुझे प्राप्त हुई, उन श्रीचैतन्य देव श्रीगौरहरि के चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूँ।

संख्यापूर्वक नामगाननतिभिः कालावसानी कृतौ।
निद्राहार–विहारकादि–विजितौ चात्यन्त–दीनौ च यौ।।
राधाकृष्ण गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ।
वन्दे रूप सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव गोपालकौ।।

''जो अपने समय को संख्यापूर्वक नाम–जप, नाम संकीर्तन एवं संख्यापूर्वक प्रणाम आदि के द्वारा व्यतीत करते थे, जिन्होंने निद्रा–आहार–विहार आदि पर विजय प्राप्त कर ली थी एवं जो अपने को अत्यन्त दीन मानते थे तथा श्रीश्रीराधाकृष्ण जी के गुणों की स्मृति से प्राप्त माधुर्यमय आनन्द के द्वारा विमुग्ध रहते थे। मैं श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपाल भट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वंदना करता हूँ। मैं उनकी कृपा प्राप्त करने की कामना करता हूँ।

षड् गोस्वामिपाद जी की जय!!

10.1. श्रील माधवेन्द्र पुरी पाद

श्रील माधवेन्द्रपुरी पाद जी श्री, ब्रह्म, रुद्र व सनक – इन चारों भुवन–पावन–वैष्णव सम्प्रदायों में से ब्रह्म–सम्प्रदाय के अन्तर्गत गुरु हैं। इन्हीं के अनुशिष्य श्रीचैतन्य देव जी हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादजी का प्रेममय कलेवर था और उनके संगी साथी भी प्रेम में मत्त रहते थे।

कृष्ण रसास्वादन के बिना उनका दूसरा कुछ भी आहार नहीं था। जिनके शिष्य स्वयं अद्वैताचार्य प्रभुजी हों, उनके प्रेम की बड़ाई कौन कर सकता है!

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद भक्तिरस के आदि सूत्रधार हैं– ये बात श्री गौरचन्द्र जी ने बार–बार कही है।

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति रसमय।
यार नाम स्मरणे सकल सिद्धि हय।।

(भक्तिरत्नाकर)

माधवेन्द्र पुरी प्रेमभक्ति के रस स्वरूप हैं जिनके स्मरण मात्र से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। माधवेन्द्रपुरी जी नित्यानंद जी को अपना बंधु समझते थे और नित्यानंद जी माधवेन्द्र जी के प्रति गुरुबुद्धि रखते थे। जब नित्यानंद जी ने माधवेन्द्रपुरी जी को देखा था उसी क्षण वे प्रेम में मूर्छित हो गये थे और माधवेन्द्रजी भी

नित्यानंद जी को देखकर अपने आपको भूलकर मूर्छित होकर भूमि पर गिर गये थे। माधवेन्द्रपुरीजी ने नित्यानंद को उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वे उन्हें कुछ कहना चाहते थे पर प्रेम के कारण गला रुँध गया था। इन दोनों के परस्पर मिलने पर जिस प्रेम का प्रकाश हुआ, वह वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीमन्महाप्रभु जी जब बालेश्वर रेमुणा में पधारे तो वहाँ खीरचोरा गोपीनाथजी के दर्शन करके प्रेमोन्माद में डूब गये थे। अपने श्रीगुरुदेव, श्रीईश्वरपुरीपादजी से उन्होंने श्रील माधवेन्द्रपुरी पादजी के बारे में सुना था कि श्रीगोपीनाथ जी ने कैसे उनके लिये खीर चोरी की थी।

एक दिन गिरिराज गोवर्धन की परिक्रमा करके व श्रीगोविंदकुण्ड में स्नान करके, माधवेन्द्रपुरी जी एक वृक्ष के नीचे बैठकर सन्ध्या कर रहे थे कि तभी एक बालक दूध का बर्तन लेकर उनके पास आया और मुस्कराते हुये बोला–''तुम क्या चिंता कर रहे हो ? मांग कर क्यों नहीं खाते ? लो, मैं यह दूध लाया हूँ, पी लो।''

बालक का अद्‌भुत सौंदर्य देखकर माधवेन्द्रपुरीजी हैरान रह गये और बालक से पूछने लगे–

''तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ? मैं भूखा हूँ, ये तुम्हें कैसे पता चला ?''

''मैं गोप हूँ। इसी गाँव में रहता हूँ। मेरे गाँव में कोई भी भूखा नहीं रहता। कोई माँग कर खा लेता है। जो माँगकर नहीं खाता उसे 'मैं' देता हूँ। अब मेरा गो–दोहन का समय हो गया है और मुझे जल्दी जाना होगा। मैं बाद में आकर दूध का बर्तन ले जाऊँगा–'' इतना कहकर बालक चला गया।

उसी रात माधवेन्द्रपुरी जी ने एक स्वप्न देखा कि वही बालक उनका हाथ पकड़कर एक कुँज में ले गया और कहने लगा– ''मैं इस कुँज में रहता हूँ। मैं यहाँ सर्दी, गर्मी व वर्षा में बहुत दुःख पा रहा हूँ। गाँव के लोगों से मिलकर, पर्वत के ऊपर एक मठ स्थापन

करके मुझे वहाँ स्थापित करो और बहुत सारा जल लाकर मेरे अंगों का मार्जन करवाओ। मैं तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा एवं सभी को दर्शन देकर संसार का उद्धार करूँगा। मेरा नाम है '**गोवर्धनधारी गोपाल**'। श्रीकृष्ण के प्रपौत्र व अनिरुद्ध के पुत्र ने मुझे यहाँ स्थापित किया था। मलेच्छों के डर से, मेरे सेवक, मुझे इस कुंज में रखकर भाग गये थे, तभी से मैं यहाँ हूँ। आप आये हैं, बहुत अच्छा हुआ आप मेरा उद्धार करो।''

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी का स्वप्न भंग हुआ और उस बालक की आज्ञा पालन करने के लिये उन्होंने गाँव के लोगों को इकठ्ठा किया और स्वप्न की बात बताई। गाँव के लोगों ने परमोल्लास के साथ घास, मिट्टी हटाई तो देखा–महाभारी ठाकुरजी का विग्रह! श्रीमूर्ति प्रकट हुई। महाभिषेक हुआ। बहुत दिनों से भूखे गोपाल जी ने सारी भोग सामग्री ग्रहण की। गाँवों के गाँव गोपालजी के दर्शन करने आते। एक मंदिर भी बन गया, दस हजार गौएँ भी हो गईं। एक दिन गोपालजी ने माधवेन्द्रपुरी जी को स्वप्न में कहा कि उनके अंगों की गर्मी अभी नहीं गयी है इसलिये मलयज चन्दन लाओ और मेरे ऊपर उसका लेप करो। गोपाल जी की आज्ञा पाकर वे चन्दन लेने के लिये पूर्व देश की ओर चल दिये। रास्ते में रेमुणा में गोपीनाथ जी का अपूर्व दर्शन करके वे प्रेम–विह्वल हो उठे। ठीक उसी समय 'अमृतकेलि' खीर का भोग ठाकुर जी को निवेदन किया गया। आरती करके वे मंदिर से बाहर चले गये और एकांत में बैठकर हरिनाम करने लगे। उनके मन में विचार आया कि यदि थोड़ा खीर प्रसाद मिल जाता तो मैं भी उसका रसास्वादन करता। ठाकुर गोपीनाथ उनके मन की इच्छा जान गये।

जब पुजारी मंदिर बंद करके सो गया तो ठाकुरजी ने स्वप्न में उससे कहा कि मैंने माधवेन्द्रपुरी संन्यासी के लिये एक पात्र खीर रखी हुई है जोकि मेरे आंचल के कपड़े से ढकी हुई है। शीघ्र वह खीर ले जाकर उसे दे दो।

पुजारी ने श्रील माधवेन्द्रपुरी जी को खीर दी, दण्डवत् प्रणाम किया और अपना स्वप्न सुनाया। माधवेन्द्रपुरी जी ने खीर प्रसाद का सम्मान किया और रात्रि समाप्त होते ही प्रतिष्ठा के भय से नीलाचल की ओर प्रस्थान किया। नीलाचल में पहुँचकर जगन्नाथ जी के दर्शन करके वे प्रेमाविष्ट हो उठे। चन्दन लेकर दुबारा रेमुणा में आकर रुके। उसी रात फिर गोपालजी ने स्वप्न में आदेश दिया।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी जगद्गुरु थे। वे अपने शिष्य श्रीईश्वर–पुरी जी की सेवा से बहुत प्रसन्न थे और ईश्वरपुरीपादजी को कृष्ण प्रेम दान कर निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुये वे अन्तर्धान हो गये।

अयि दीनदयार्द्रनाथ!
हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।।
हृदयं त्वदलोककातरं।
दयितं भ्राम्यति किं करोम्यहम्।। (पद्यावली)

''अहो दीनदयार्द्र नाथ! अहो मथुरानाथ! मैं कब आपका दर्शन करुँगा। आपके दर्शन के बिना मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित, मैं अब क्या करूँ ?

इस श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु जी प्रेमोन्मत्त हो गये थे तथा नित्यानंद जी ने उन्हें गोद में बिठा लिया था।

ऐसी थी श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादजी की अलौकिक प्रेम–पराकाष्ठा।

पतित पावन, परमाराध्य श्रील माधवेन्द्र पुरीपाद जी के श्रीपादपद्मों में अनंतकोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

10.2. श्री ईश्वरपुरी पाद

श्रीईश्वरपुरीपाद श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद के शिष्य थे। श्रीमाधवेन्द्रपुरी पाद भक्ति रस के आदि सूत्रधार हैं, ऐसा श्रीगौरचन्द्रजी ने बार–बार

कहा है। यद्यपि श्रीगौरचन्द्र (श्रीचैतन्य महाप्रभु) स्वयं भगवान् हैं, फिर भी सद्‌गुरु चरणाश्रय की शिक्षा देने के लिये उन्होंने श्री ईश्वरपुरीपाद जी से दीक्षा ग्रहण करने की लीला की थी। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु जी का श्रीकृष्ण–प्रेम प्रकाशित हुआ। श्रीईश्वरपुरीपाद ने जब नवद्वीप में शुभ पदार्पण किया था तब श्रीमन्महाप्रभु जी ने अपने हाथों से रसोई बनाकर व अपने हाथों से परिवेषण करके, गुरु–सेवा का सर्वोत्तम आदर्श स्थापन किया था।

एकबार श्रीईश्वरपुरीपादजी ने स्वरचित 'श्रीकृष्ण लीलामृत' ग्रंथ की भूल–चूक देखने के लिये निमाई (श्रीगौरहरि) को कहा तो गौरहरि ने कहा–''एक तो भक्त वाक्य फिर उसमें भी श्रीकृष्ण का वर्णन इसमें जो दोष देखेगा, वह पापी ही होगा। इसमें अर्थात् भक्त के लेख में जो दोष देखता है वह दोष स्वयं देखने वाले में होता है। भक्त के वर्णन मात्र से ही कृष्ण का संतोष होता है। इसलिये आपका जो ये प्रेम–वर्णन है इसमें दोष देखने का साहस कौन कर सकता है ?''

श्रीईश्वरपुरीपाद जी ने अपने मन, वाणी तथा शरीर द्वारा अपने श्रीलगुरुदेवजी की सेवा करके एवं हर समय कृष्ण नाम व कृष्ण लीलाऐं सुना–सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया था।

श्रीईश्वरपुरीपादजी ने अप्रकट होने से पहले अपने दो शिष्यों– काशीश्वर तथा गोविन्द को श्रीमन्महाप्रभुजी की सेवा के लिये निर्देश किया। ''श्रीगुरुजी की आज्ञा अवश्य पालनीय है'' इस विचार से श्रीमन्महाप्रभु जी ने उन दोनों को सेवक रूप में ग्रहण किया था।

श्री ईश्वरपुरीपादजी मुझ अधम पर कृपा करें ताकि मेरी हरिनाम में रुचि नित्य–निरंतर बढ़ती रहे। उनके श्रीचरणकमलों में शत–शत प्रणाम।

ग्रुप बी : श्रीनारद जी का ग्रुप

11. देवर्षि नारद जी

देवर्षि नारद जी ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं और भक्त शिरोमणि हैं। वे सभी गोपनीय रहस्यों को जानने वाले हैं। वे वीणा बजाते हुये और 'नारायण' 'नारायण' नाम का मधुर स्वर में कीर्तन करते हुये तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। देवर्षि नारद इसलिये भी धन्य हैं क्योंकि वे शार्ङ्गपाणि भगवान् की कीर्ति का गान करके स्वयं तो आनन्दमग्न रहते हैं और इस जगत् के प्राणियों को भी आनन्दित करते रहते हैं। देवर्षि नारद जी का दर्शन सभी पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है। **जब किसी मनुष्य का भाग्य उदय होता है, तभी उसे नारदजी के दर्शन होते हैं।** हरिनाम में हमारी रुचि बढ़े और हमारा हरिनाम तैलधारावत् चलता रहे, इसलिये देवर्षि नारद से प्रार्थना करनी चाहिये।

"देवर्षे! मैं अति दीन हूँ और आप स्वभाव से ही दयालु हैं। इसलिये मुझपर अवश्य कृपा कीजिए। हे करुणानिधान! मैं संसार सागर में डूबा हुआ और बहुत अधम हूँ। आप इस संसार सागर से मेरा उद्धार कीजिए। मैं आपकी शरण लेता हूँ।"

जयति जगति मायां यस्य कायाधवस्ते
वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य।
ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतास्मि।।

'देवर्षे! आपका केवल एकबार का उपदेश धारण करके कयाधूकुमार प्रहलाद ने माया पर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुव ने भी आपकी कृपा से ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमंगलमय और साक्षात् ब्रह्मा जी के पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

12. श्री सनकादिक जी

भगवान् ने कौमार सर्ग में सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ये चारों भाई बड़े योगी, बुद्धिमान और विद्वान् हैं। देखने में तो पाँच–पाँच वर्ष के बालक से जान पड़ते हैं किन्तु हैं पूर्वजों के भी पूर्वज। ये सदा वैकुण्ठ धाम में निवास करते हैं। ये निरंतर हरि कीर्तन में तत्पर रहते हैं। एकमात्र भगवान् का नाम ही इनके जीवन का आधार है। 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) – यह वाक्य सदा उनके मुख में रहता है।

13. श्री ब्रह्मा जी

ब्रह्मा जी को 'स्वयंभू' भी कहते हैं। तीनों लोकों के परमगुरु आदिदेव ब्रह्मा जी का जन्म भगवान् की नाभि से हुआ है। गर्भोदशायी के नाभिकमल से उत्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्माजी व्यष्टि जीवों की सृष्टि करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं उन्होंने अपने तत्त्व का ज्ञान सबसे पहले, सृष्टि के प्रथम जीव, चतुर्मुख ब्रह्माजी को ही दिया था।

14. श्री शिव जी

शिवजी परम वैष्णव हैं। उन्हें कैलासपति भी कहते हैं। वे हिमाचल के समान गौरवर्ण तथा गंभीर हैं। उनके सिर पर सुंदर गंगा जी विराजमान हैं। उनके ललाट पर द्वितीय का चन्द्रमा और गले में सांप रहते हैं। उनके कानों में विशाल कुण्डल हैं, उनके नेत्र विशाल हैं। वे प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं। वे सिंह चर्म का वस्त्र धारण करते हैं और मुण्डमाल पहने रहते हैं। वे रुद्ररूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, परमेश्वर, अखंड, अजन्मा, कल्याणस्वरूप और हाथ में त्रिशूल धारण किये रहते हैं। वे निराकार, ओंकार के मूल, महाकाल के भी काल, गुणों के धाम तथा कामदेव के शत्रु हैं। शिवजी की

कृपा के बिना भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति नहीं हो सकती। भोलेनाथ सबके गुरु और माता-पिता हैं।

''हे शम्भो! मैं न योग जानता हूँ, न पूजा जानता हूँ। मैं तो सदा-सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! मुझे हरिनाम करने की शक्ति प्रदान कीजिये। हे ईश्वर! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।''

श्री शिवजी से यही प्रार्थना करनी चाहिये।

15. श्रीनित्यानन्द प्रभु

जय जय नित्यानंद चरणारविंद।
जाहां हैते पाइलाम श्रीराधागोविन्द।।

''श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों की जय हो। जय हो। जिनकी कृपा से मुझे श्रीराधागोविन्द देव के दर्शन प्राप्त हुए।''

श्रीनित्यानंद प्रभु कृपा के अवतार हैं, वे कृपा की प्रकट मूर्ति हैं। श्रीमन्नित्यानंद प्रभुजी 'ईश्वर का प्रकाश' हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य तथा नित्यानंद में कोई भेद नहीं है। वे एक ही हैं। केवल देह से वे भिन्न-भिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के अवतार हैं। वे स्वयं भगवान् हैं और उन्हीं का दूसरा विग्रह हैं श्रीबलराम। श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण के सहायक हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप से नवद्वीप में अवतरित हुए तो बलरामजी नित्यानंद रूप में अवतीर्ण हुए। श्री बलराम संकर्षण के अंशी हैं अथवा मूल हैं। ब्रजलीला में जैसे श्रीबलराम श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं उसी तरह नवद्वीप लीला में नित्यानंद जी भी कभी गुरु, कभी सखा, कभी दास भाव से लीला करते हैं।

त्रेतायुग में श्रीकृष्ण ही श्रीराम रूप में लीला करते हैं और बलराम जी उनके साथ श्रीलक्ष्मण रूप से सहायता करते हैं। श्रीराम जी श्रीकृष्ण का अंश हैं और श्रीलक्ष्मण जी बलराम जी का

अंश है। वही श्रीकृष्ण जब चैतन्य रूप में अवतीर्ण हुए तो श्री बलरामजी नित्यानंद रूप से अवतीर्ण हुये।

श्री नित्यानंद जी की महिमा का सिंधु अनंत एवं असीम है। उनके गुणों की महिमा का वर्णन अपार है। शेष भगवान् भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सके।

आईये श्रीनित्यानंद प्रभु के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि दण्डवत् प्रणाम करके, उनसे अपने अपराधों की क्षमा मांगें और प्रार्थना करें कि हरिनाम में हमारी रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे।

जय जय नित्यानंद नित्यानंद राम।
जय जय नित्यानंद जय कृपामय।।

16. श्री अद्वैताचार्य

श्री अद्वैताचार्य प्रभु महाविष्णु तथा सदाशिव के सम्मिलित अवतार हैं। हरि से अभिन्न तत्त्व होने के कारण ही उनका नाम 'अद्वैत' है तथा भक्ति–शिक्षक होने के कारण उन्हें 'आचार्य' कहा जाता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद जी की अलौकिक प्रेम–चेष्टाएं देखकर ही, श्री अद्वैताचार्य जी ने उनसे शिक्षा ग्रहण की थी। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के आविर्भाव से पहले ही अद्वैताचार्य जी ने जान लिया था कि कलियुग की प्रथम संध्या में तथा भविष्य में अनाचारों की प्रबलता होगी। सारा संसार श्रीकृष्ण भक्ति शून्य होगा। ऐसी स्थिति में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने से ही जगत् का कल्याण होगा। इसलिये श्रीअद्वैताचार्य जी गंगाजल व तुलसी मंजरी के द्वारा श्रीकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करते हुए, उन्हें अवतीर्ण करवाने के लिये हुंकार भरने लगे। श्री अद्वैताचार्यजी की प्रेम–हुंकार से गोलोकपति श्रीहरि की अवतीर्ण होने की इच्छा हुई और वे श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुये।

श्रीचैतन्य चरितामृत में लिखा है कि महाप्रभु जी कहते हैं– ''श्री अद्वैताचार्य जी के कारण ही मेरा अवतार हुआ है। आज भी

मेरे कानों में उनकी हुंकार गूंज रही है। मैं तो बड़े आराम से क्षीर सागर में सो रहा था, इन्हीं अद्वैताचार्य की हुंकार ने मुझे जगा दिया।''

श्री अद्वैताचार्य श्री चैतन्य महाप्रभुजी से अभिन्न शरीर हैं। उनकी कृपा के बिना श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानंद प्रभुजी की सेवा प्राप्त नहीं हो सकती।

महाविष्णुर्जगत्कर्ता मायया यः सृजत्यदः।
तस्यावतार एवायमद्वैताचार्य ईश्वरः।।

मैं भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य ईश्वर का आश्रय ग्रहण करता हूँ। जो महाविष्णु, माया द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं, उन जगत्कर्ता के ही अवतार हैं– ईश्वर अद्वैताचार्य जी।

एकबार महाप्रभुजी का महाऐश्वर्य दर्शन करके श्रीअद्वैताचार्य स्तम्भित हो गये थे और उन्होंने निम्न मंत्र द्वारा उन्हें प्रणाम किया था–

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो–ब्राह्मण हिताय च।
जगद्–हिताय कृष्णाय गोविंदाय नमो नमः।।

श्री अद्वैताचार्य जी के श्रीचरण कमलों में कोटि–कोटि प्रणाम है। हमारी हरिनाम में रुचि निरंतर बढ़ती रहे, यही कृपा–प्रार्थना है।

17. श्री गदाधर पण्डित

श्रीकृष्ण लीला में जो श्रीमती राधिका हैं, श्रीगौरलीला में वे ही गदाधर पण्डित गोस्वामी हैं। गौर नारायण जी की शक्ति हैं लक्ष्मी प्रिया तथा विष्णुप्रिया और गौर कृष्ण की शक्ति हैं– श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी श्रीमन्महाप्रभुजी के अन्तरंग भक्तों में से सर्वप्रधान भक्त हैं। श्रीराधागोविन्द जी का मधुररस से भजन करने वाले शुद्ध भक्त, श्रीगदाधरजी का आश्रय ग्रहण करते हैं और इनका आश्रय लेने पर ही उनकी गिनती श्रीगौरांग महाप्रभुजी

के अन्तरंग भक्तों में होती है। श्रीगौरांग महाप्रभु जी के अन्तरंग पार्षदों के अतिरिक्त, श्रीगदाधरजी की अद्भुत गौरांग प्रीति को समझने की सामर्थ्य और किसी में नहीं है।

श्री मन्महाप्रभु जी के अन्तर्धान होने के बाद श्रीगदाधर पण्डित मात्र ग्यारह महीने प्रकट रहे। श्रीगौरांग महाप्रभुजी के विरह में श्रीगदाधर पण्डित जी की जो दारुण अवस्था हुई थी, उसका वर्णन 'भक्ति-रत्नाकर' ग्रंथ में हुआ है।

श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी जी आप मुझ दीन पर कृपा करें कि तैलधारावत् मेरा हरिनाम चलता रहे। आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

18. श्रीवास पण्डित

श्रीवास पण्डितो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः।।

श्रीनारद मुनि ही गौरलीला में श्रीवास पण्डित के रूप में अवतरित हुए थे। चैतन्य चरितामृत में लिखा है-

शचीर मंदिरे, आर नित्यानंद नर्तने।
श्रीवास कीर्तने, आर राघव भवने।।
एइ चारि ठाञि प्रभुर सदा आविर्भाव।
प्रेमाकृष्ट-हय, प्रभुर सहज स्वभाव।।

''शचीमाता के भवन में, श्रीनित्यानंदप्रभु के नृत्य में, श्रीवास पण्डित के कीर्तन में तथा श्री राघवजी के भवन में- इन चार स्थानों पर श्रीमहाप्रभु नित्य निवास करते हैं।''

श्रीमन्महाप्रभुजी ने एक साल तक सारी-सारी रात श्रीवास आंगन में संकीर्तन किया था। उस समय श्रीमन्महाप्रभु जी केवल अपने पार्षदों को लेकर ही संकीर्तन विलास करते थे। एकदिन महाप्रभु जी ने, श्रीवास आंगन में 'महाप्रकाश लीला' प्रकट की थी और सात प्रहर तक चलने वाली इस लीला में, उन्होंने विष्णु के अवतारों के सभी रूपों को प्रकाशित किया था। श्रीवास आंगन में

संकीर्तन करने के बाद श्रीमन्महाप्रभु अपने गणों के साथ गंगा–स्नान के लिये जाया करते थे।

एकदिन श्रीवास आंगन में रात को संकीर्तन के समय, उनका इकलौता पुत्र मर गया। पुत्र वियोग में घर की स्त्रियाँ रोने लगीं। श्रीवासजी तुरंत घर के अंदर गये और सबको चुप करा दिया। कीर्तन चलता रहा। कुछ देर बाद महाप्रभुजी ने पूछा–

पण्डित के घर में कोई दुःख हुआ है क्या ? महाप्रभुजी की बात सुनकर श्रीवासजी ने कहा–

प्रभु मोर कौन दुःख?
यार घरे सप्रसन्ने तोमार श्रीमुख

''हे प्रभो! जिस घर में आपका सुप्रसन्न श्रीमुख हो, वहाँ भला क्या दुःख हो सकता है ?''

जब भक्तों ने बताया कि श्रीवासजी का इकलौता पुत्र आधी रात में गुजर गया था पर आपके कीर्तन में बाधा न हो, इसलिये श्रीवासजी ने आपको बताने से मना कर दिया था तो महाप्रभु रोने लगे और मृत–शिशु के पास आकर बोले– अहो बालक! तुमने श्रीवास जैसे भक्त के घर को क्यों त्याग दिया ?

इस पर मृत–शिशु बोला– ''प्रभो! मैं आपका नित्य दास हूँ। आपकी इच्छा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। जितने दिन मुझे इस घर में ठहरना था, उतने दिन मैं यहाँ रहा। अब आपकी इच्छा से मैं यहाँ से जा रहा हूँ। आप मुझ पर कृपा कीजिये कि मुझे कभी भी, किसी भी अवस्था में आपके चरण–कमलों की विस्मृति न हो''– मृत–शिशु के मुख से ये बातें सुनकर, श्रीवास और उनके परिवारजनों का शोक दूर हो गया और उनको दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रीवास जी की नित्यानंदजी में दृढ़–निष्ठा देखकर श्रीमन्महाप्रभु जी ने इन्हें वर प्रदान किया था कि उनके घर में कभी भी लक्ष्मी का

अभाव नहीं होगा और उस घर के कुत्ते–बिल्ली तक की भी श्रीभगवान् में अचला भक्ति होगी।''

वस्तुतः श्रीगौरांग महाप्रभु! श्रीनित्यानंद प्रभु! श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर तथा श्रीवास – इन पंच तत्त्वों में कोई भेद नहीं हैं परन्तु रसास्वादन के लिये, वह विचित्र लीलामय एक ही तत्व पांच भागों में बंटा हुआ है। श्रीगौरांग महाप्रभुजी, श्रीनित्यानंद प्रभु जी तथा श्रीअद्वैताचार्यजी यह तीनों ही विष्णु तत्त्व हैं और भक्तरूप, भक्त स्वरूप एवं भक्तावतार के रूप में प्रकट हुये हैं जबकि श्रीगदाधरजी भक्तशक्ति और श्रीवास जी शुद्ध भक्त हैं।

पंचतत्त्वात्मकं कृष्ण भक्तरूप स्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्त शक्तिकम्।।

मैं, पंचतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण को अर्थात् श्रीकृष्ण के भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्त और भक्तशक्ति को प्रणाम करता हूँ।

19. श्रीषड् गोस्वामिपाद

इनका वर्णन पूर्व में पृष्ठ 314 पर दृष्टव्य है।

20. श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद एवं श्रीईश्वरपुरीपाद

इनका वर्णन पूर्व में पृष्ठ 323 पर पठनीय है।

उपरोक्त क्रम के अनुसार श्रीगुरुदेव का ग्रुप ए और श्रीनारदजी का ग्रुप बी के नामनिष्ठों को 4–4 माला मानसिक रूप से उनके चरणों में बैठकर सुनानी हैं। जिससे कुल माला संख्या 80 हो जायेगी।

त्वदीय वस्तु गोविन्द !
तुभ्यमेव समर्पये !!

प्रकाशन–अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन–केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर–घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ–सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा। अतः ग्रन्थों के पूरी तरह निःशुल्क वितरण के साथ–साथ स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 9068231415

email-harinampress@gmail.com

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 7



भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

- अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
श्रीमुकुन्ददास अधिकारी
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण व अन्य चित्रों के लिए
Google व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) भारत
दूरभाष : 099506-29044, 01421-217059

प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 15 अगस्त 2017

मुद्रण-संयोजन एवं ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन-281121 - मोबाइल : 07500 987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 7

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी,
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

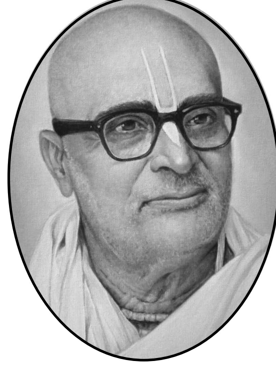
कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्धदास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।1।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मँझधार में।
आसरा है दूसरा कोई न, इस संसार में।।2।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और भरा अभिमान है।।3।।
पाप बोझे से लदी, नैया भँवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।4।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दुःख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।5।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।6।।

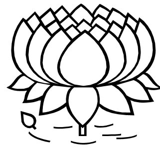
हे मेरे गुरुदेव करुणा सिन्धु करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।

***



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है



विषय-सूची

भाग– 7

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। "**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" के सातवें भाग का प्रथम संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। मैं सभी को इसकी बधाई देता हूँ।

"**इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति**" नामक ग्रन्थों में मेरे श्री गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, जो कोई भी एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करेगा, उसे इसी जन्म में भगवत् प्राप्ति हो जायेगी–यह बात ध्रुव सत्य है।

क्योंकि इन ग्रन्थों में केवल मात्र श्रीहरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसलिये इन ग्रन्थों को भक्तों में निःशुल्क बांटने से भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। इस बात को कोई भी आज़मा सकता है। **इन ग्रन्थों को, किसी भी भाषा में छपवाकर, उनको निःशुल्क वितरण करने का अधिकार श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन को है पर यदि कोई इन ग्रन्थों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा-ऐसा मेरे श्रील गुरुदेव ने बोला है।**

'इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति' के पाँच भागों के प्रकाशन का काम मेरे श्रीगुरुदेव, परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की 108वीं आविर्भाव तिथि, उत्थान एकादशी (24 नवम्बर 2012) को पूरा हो गया था किन्तु इसके सभी भाग अलग–अलग प्रेसों में छपे थे। जो भी भाग छपता, वह कुछ महीनों में ही समाप्त हो जाता। भक्तों की माँग निरन्तर बढ़ रही थी और हमारे पास सभी भाग एक साथ

उपलब्ध नहीं थे। मेरी इच्छा थी कि इस ग्रंथ के पाँचों भाग एक ही जगह उपलब्ध हों। इन ग्रंथों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार हो इसलिये हमने श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन से संपर्क किया।

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन के संस्थापक व्रजविभूति श्रीश्यामदास (श्रीश्यामलालजी हकीम) की मुझ पर बड़ी कृपा रही। मैं जब भी वृन्दावन जाता था, उनके दर्शन जरूर करता था। श्रीश्यामलाल हकीम जी ने ग्रंथ सेवा का जो महान् कार्य किया है, उसके लिये आज पूरा वैष्णव समाज उनका ऋणी है। उनके द्वारा श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना सन् 1969 में हुई थी। आज श्रीहरिनाम प्रेस की अपनी एक अलग पहचान है। जिस काम को श्रद्धेय श्रीश्यामलाल हकीम जी ने शुरु किया था उसी महान् कार्य को उनके सुपुत्र दासाभास डा. गिरिराजकृष्ण एवं डा. भागवतकृष्ण नांगिया जी बखूबी आगे बढ़ा रहे हैं। जब हमने इनसे अपने मन की बात कही तो वे सहर्ष इस कार्य को करने के लिये तैयार हो गये और अपना सौभाग्य माना।

'एक शिशु की विरह वेदना' 'कार्तिक माहात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' के सभी भाग नियमित रूप से श्रीहरिनाम प्रेस में निरन्तर छप रहे हैं और उनका वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से वहाँ से ही चल रहा है।

अन्त में मेरी सभी भक्तवृन्दों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वे मेरे श्रीगुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस महामन्त्र की कम से कम 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रन्थ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरि बोल !

—अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

प्रस्तावना

पाठकगण सुहृद!

आपके हाथ में यह ग्रन्थ है, इसका अर्थ है कि आपको '**इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति**' करने का सुदुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ है। इस दुर्लभ मनुष्य जीवन में इस सुअवसर को खोने न दे। इस ग्रन्थ को पढ़कर उसके अनुसार आचरण करने की आपकी इच्छा ही आपके परम सौभाग्य का प्रमाण दर्शाती है। इस ग्रन्थ का यह 7 वाँ भाग है। इस भाग में ग्रन्थकार ने विशेषकर '**सम्बन्ध ज्ञान**' इस गम्भीर विषय को बड़ी सरलता से प्रस्तुत कर हमारी गलत धारणाओं को स्पष्ट करने का पूरा प्रयास किया है। क्लिष्ट–अति क्लिष्ट विषय को सरल शब्दों में समझाना उनकी विशेषता है। यह ग्रन्थ उनके द्वारा लिखे गए पत्रों का संकलन है। उनके पत्रों में तथा इस ग्रन्थ के सारे भागों में, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण, श्रीचैतन्यचरितामृत, चैतन्य भागवत, उपनिषद्, पुराण, संहिता, जैवधर्म आदि महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक शास्त्र तथा ग्रन्थों का सार भरा पड़ा है। जिसे पढ़ने से हम भगवद्तत्त्व तथा भगवद्धाम को तात्त्विक रूप से भलीभाँति समझ सकते हैं। इससे हम भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपना नित्य सम्बन्ध प्रस्थापित करने हेतु गम्भीरतापूर्वक प्रयास करने का विचार कर सकते हैं।

संसार में हम किसी वस्तु अथवा व्यक्ति से विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्बन्ध प्रस्थापित करते हैं, परन्तु उद्देश्य पूर्ति होते ही यह सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। कुछ सम्बन्ध ऐसे होते हैं, जो हमें हमारे जन्म के साथ ही प्राप्त होते हैं, जिन्हें हम बिना किसी उद्देश्य के स्नेह तथा आसक्ति वश कायम रखना चाहते हैं। परन्तु, हम यह भूल जाते हैं कि, काल के प्रभाव से यह सम्बन्ध भी नष्ट हो

जाते हैं, जो अन्त में हमारे पीड़ा, दुःख तथा शोक का कारण बन जाते हैं।

परन्तु, प्रेमसागर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ एकबार सम्बन्ध प्रस्थापित हो जाने के बाद वह सम्बन्ध कभी नहीं टूटता। भगवान् नित्य हैं तथा हम भगवान् के नित्य अंश होने के नाते हमारा भगवान् के साथ जो दिव्य सम्बन्ध है, वह भी नित्य ही है। यह सम्बन्ध काल के प्रभाव के परे होने के कारण हमारे पीड़ा का कारण नहीं बनता, बल्कि भगवान् के प्रति हमारी आसक्ति जितनी अधिक गाढ़ी होती है, वह आसक्ति उतनी ही हमारे आनन्द की वृद्धि का कारण बनती है।

भगवान् के साथ हमारा अनेक प्रकार के रसों में, भाव में सम्बन्ध प्रस्थापित हो सकता है, परन्तु शान्त रस, दास्य रस, सख्य रस, वात्सल्य रस तथा माधुर्य (मधुर) रस – यह पाँच प्रकार के मुख्य रस हैं। उदाहरण स्वरूप – ग्रन्थकार श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी का भगवान् के साथ वात्सल्य रस में एक डेढ़ साल के शिशु के रूप में सम्बन्ध तथा भाव है। वह आध्यात्मिक जगत् में भगवान् के पोते हैं। इसी स्थिति को सम्बन्धज्ञान तथा स्वरूपज्ञान कहते हैं। और इसी कारण से इस ग्रन्थ में छापे हुए अनेक पत्रों में उनका शिशुभाव झलकता है। अतः उन्होंने इस भाव को सर्वोत्तम भाव बताया है।

परन्तु, ग्रन्थकार का कहना है कि– चाहे कोई भी भाव हो, वह अपने मन से प्रस्थापित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह ज्यादा समय तक टिकेगा भी नहीं तथा वह घोर अपराध का कारण भी बनेगा। आरम्भ में हमें भगवान् के प्रति दास्यत्व का भाव रखकर (जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास) ही साधन–भजन करना चाहिए, इसी में हमारा कल्याण है। उनका कहना है कि– इस ग्रन्थ को पढ़कर हमें एकदम शिशुभाव में सम्बन्ध रखने का अधिकार नहीं है, परन्तु श्रीहरिनाम जप करते समय एक शिशु की तरह विरह में रोने का हमें अधिकार है।

केवल मात्र विरहयुक्त श्रीनामभजन के प्रभाव से ही हमें अपना निजी सम्बन्ध तथा भाव किसी नामनिष्ठ सद्‌गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त होगा अथवा स्वयं भगवान् ही हमारे नामभजन से प्रसन्न होकर हमारा वास्तविक भाव हमारे हृदय में स्फुरित कर देंगे। इस दुर्लभ उपलब्धि के पश्चात् ही दिव्य गोलोक धाम को अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

एक बार श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद जी के गुरुदेव श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज को एक गृहस्थ अनुयायी ने सिद्ध प्रणाली दीक्षा के लिए निवेदन किया। तब श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज ने कहा– **"हरे कृष्ण महामन्त्र"** ही सिद्ध मन्त्र है। इस मन्त्र में परम भगवान् श्रीकृष्ण का सिद्ध रूप तथा सब जीवात्माओं के सिद्ध रूप समाविष्ट हैं। यदि तुम शुद्ध भाव से इस महामन्त्र को जपोगे, तो महामन्त्र के अक्षर धीरे–धीरे श्रीकृष्ण का दिव्य रूप, गुण, लीलाएँ तथा धाम को प्रकाशित कर देंगे। तथा यह जप आपकी नित्य दिव्य देह, सेवा तथा आपके सिद्ध स्वरूप के ग्यारह लक्षण भी प्रकट कर देगा।

इन लक्षणों को प्रकट करने के लिए हरिनाम किसी पर निर्भर नहीं है, वह स्वयं में पर्याप्त तथा पूर्णतया स्वतंत्र है। जिस प्रकार अग्नि को स्पर्श करते ही वह बिना किसी प्रतीक्षा के तुरन्त फल दर्शाती है, ठीक उसी प्रकार पवित्र हरिनाम केवल उच्चारण मात्र से ही तुरन्त फल प्रदान करता है। इसके लिए वह किसी प्रकार की प्रतीक्षा नहीं करता।

इसकी पुष्टि हेतु साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि–

दीक्षा–पुरश्चर्या–विधि अपेक्षा ना करे।
जिव्हा–स्पर्शे आ–चण्डाल सबारे उद्धारे।।
आनुषंग–फले करे संसारेर क्षय।
चित्त आकर्षिया कराय कृष्णे प्रेमोदय।।

श्रीचैतन्यचरितामृत, मध्यलीला 15.108,109

"न तो दीक्षा विधि की आवश्यकता है न ही दीक्षा के पूर्व के आवश्यक कृत्य (पुरश्चर्या) करने की। मनुष्य को केवल अपने होठों पर पवित्र नाम लाना होता है। इस प्रकार अधम से अधम व्यक्ति (चण्डाल) का भी उद्धार हो जाता है। भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन द्वारा मनुष्य संसार तथा माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इसके बाद वह कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होता है और इस तरह से हृदय में सुप्त **कृष्ण-प्रेम** का उदय होता है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, महर्षि वाल्मीकि। नारदजी के द्वारा केवल नाम-भजन की शिक्षा प्राप्त कर डाकू रत्नाकर त्रिकालदर्शी महर्षि वाल्मीकि बने और रामावतार होने से पहले ही उन्होंने रामायण की रचना कर डाली। यह है नाम का प्रभाव!

इसी नाम से नामनिष्ठ सन्त (शुद्ध भक्त) का संग मिलेगा, इसी नाम से वैकुण्ठ मिलेगा, इसी नाम से सम्बन्ध बनेगा, इसी नाम से गोलोक मिलेगा तथा इसी नाम से दुर्लभ कृष्णप्रेम प्राप्त होगा।

केवल इस ग्रन्थ को बार-बार पढ़ते रहने से हमें प्रेरणा, शक्ति, शिक्षा तथा कृपा मिलेगी जो हमें नामभजन में वृद्धि के लिए सहायता करेगी और 6 वें भाग के अन्त में दिये हुए '**हरिनाम करने का सर्वोत्तम शुद्ध मार्ग**' नामक लेख के अनुसार हरिनाम करने से अनायास ही श्रीचैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा में रूपानुग वैष्णव बनने का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा! और हमारा जीवन धन्य हो जाएगा!

सही समय पर, सही सलाह सबको नहीं मिलती। हम बहुत सौभाग्यवान हैं, क्योंकि लोगों को अक्सर यह बहुत देर से पता चलता है-

बालपन में बताया धराधाम सत्य है
जवानी में बताया अर्थ काम सत्य है
जब पंछी पिंजडे से उड़कर चला तो
लोगों ने बताया राम नाम सत्य है...

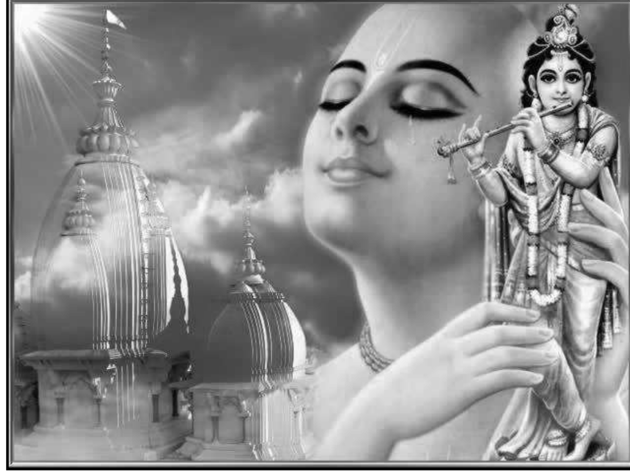
अतः निरन्तर हरिनाम जपिये–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी

–मुकुन्द दास

भज गोविन्द, भज गोविन्द, भज गोविन्द का नाम रे।
गोविन्द के नाम बिना, तेरे कोई न आवे काम रे।।
ये जीवन है सुख दुःख का मेला,
दुनियादारी स्वप्न का खेला।
जाना तुझको पड़ेगा अकेला,
भज ले हरि का नाम रे।।
गोविन्द की महिमा गाके,
प्रेम से उस पर फाग लगाके।
जीवन अपना सफल बना ले,
चल ईश्वर के धाम रे।।



व्रज का खेल कुलेल–मगन–मन।
नदिया का रज–लुण्ठित–तन।।
व्रज का खेल मुरलिका वादन।
नदिया का हरिनाम भजन।।
व्रज का खेल कुसुम वन विहरण।
नदिया का दृग–जल–वर्षण।।

व्रज में कृष्ण का खेल है ग्वाल–बालों के साथ ऊधम मचाना पर नदिया में श्रीगौर का तन रज में लोट पोट होता है। व्रज में कृष्ण मुरली बजाकर खेल करते हैं पर नदिया में श्रीगौर हरिनाम का भजन करते हैं। व्रज में कृष्ण बाग–बगीचों में विहार करते हैं पर नदिया में श्रीगौर के नेत्रों से श्रीकृष्ण प्रेम के अश्रु बहते रहते हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

दो शब्द

श्री श्रीगुरु गांधर्विका गिरिधारी जी की असीम कृपा से, उनके परमप्रिय पार्षद, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी की दिव्यवाणी, उनके परमप्रिय शिष्य, श्री अनिरुद्ध प्रभु जी द्वारा लिखित पत्रों के रूप में, **''इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति'' भाग सात का प्रथम संस्करण** सभी भक्तों के हस्तकमलों में समर्पित है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' नामक ग्रन्थ श्री अनिरुद्ध प्रभु जी के प्राण हैं। इस ग्रंथ में उनकी श्रीगुरु-निष्ठा, श्रीनाम-निष्ठा, श्री हरिनाम को संसार के कोने-कोने तक पहुँचाने की उत्कट अभिलाषा, सभी जीवों पर कृपा-वर्षा करने का एक अपूर्व अनुभव, साधकों को प्राप्त होता है। साधकों की श्री हरिनाम में रुचि बढ़े, उनका आवागमन छूटे, उनके दुःखों का अन्त होकर, उन्हें सदा-सदा के लिये श्री कृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाये, इसी उल्लासमयी उत्कण्ठा, प्रगाढ़ हरिनाम निष्ठता, सरलता, सहजता, अपने प्रियतम के विरह में तड़पना, रोना कैसे होगा ? - इन सब बातों का अद्भुत जीवन्त वर्णन इन ग्रंथों में किया गया है।

अनन्य भजन-निष्ठा, नामनिष्ठा तथा बिना गृहत्याग किये केवल हरे कृष्ण महामंत्र –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारणपूर्वक जप करके तथा कान द्वारा श्रवण करके, कैसे वैकुण्ठधाम या गोलोकधाम प्राप्त हो सकता है ? इसका सर्वांगीण वर्णन इन ग्रंथों में उपलब्ध है और भी बहुत सी ऐसी बातें, जो हम ने न कभी सुनीं हैं, न कहीं पढ़ीं हैं, इन ग्रंथों में देखने को मिलती हैं। इस ग्रंथ के अध्ययन, मनन तथा चिंतन से सांसारिक लोगों के सन्तप्त हृदय में प्रेम उदय होगा जिसकी शीतलता एवं परमानन्दमयी अनुभूति से सबका मन-मयूर नाच उठेगा- ऐसा मेरा विश्वास है।

'इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति' ग्रन्थ में श्री अनिरुद्ध प्रभु के संक्षिप्त जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी का रोमहर्षक वृत्तांत वर्णन किया गया है।

मेरे श्रील गुरुदेव, मेरे परम गुरुदेव तथा श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की कृपा के बिना इन ग्रंथों का छपना और हज़ारों भक्तों तक पहुँच पाना असंभव था। इन ग्रंथों को छपवाने में, यदि किसी ने अपना सहयोग दिया है, वे हैं आप सभी वैष्णववृन्द एवं पाठकगण। आपके सहयोग के बिना इतने ग्रंथों का प्रकाशन एवं वितरण संभव ही नहीं था।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2009
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–2) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3) **1000 प्रतियाँ**
श्रीहरि उत्थान एकादशी, 2010
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–4) **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
वन्दे गुरोः श्री चरणारविंदम् **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2011
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1) **5000 प्रतियाँ**
दूसरा संस्करण, श्रीहरि उत्थान, एकादशी, 2011
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2012
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **1000 प्रतियाँ**
श्री अनन्त चतुर्दशी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगोपाष्टमी, 2012
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–1–2) **2000 प्रतियाँ**
श्रीरामनवमी, 2013

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–3–4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगौर पूर्णिमा, 2014
एक शिशु की विरह–वेदना **1000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
कार्तिक माहात्म्य एवं श्री दामोदर भजन **3000 प्रतियाँ**
शरद पूर्णिमा, 2014
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–5) **1000 प्रतियाँ**
श्रीदेवोत्थान एकादशी, 2015
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 1 से 4) **2000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2016
अहैतुकी कृपा **2000 प्रतियाँ**
उत्थान एकादशी, 2016
अनन्त कृपा (पूर्ण रंगीन) **3000 प्रतियाँ**
श्रीराम नवमी, 2017
इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति (भाग 6) **2000 प्रतियाँ**
श्रीगुरुपूर्णिमा, 2017
इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति (भाग–7) **2000 प्रतियाँ**
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 2017

इसी प्रकार श्रीगुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में पैंतीस हजार (35,000) ग्रंथ छपे हैं और लगभग तीस हजार (30,000) ग्रंथों का वितरण हुआ है। इसके साथ ही श्री अनिरुद्ध प्रभु जी की आवाज में रिकार्ड किये गये प्रवचनों की एक हजार (1000) सी.डी. भी बांटी गई हैं। कॅनडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इन्टरनेट, ई–मेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुँच चुका है। भारत में मुंबई, बैंगलुरु, दिल्ली, पूना, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े–बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गाँवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। इन ग्रंथों की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम करने लगे हैं।

कार्तिक मास, 2012 में श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी ने 12 दिन तक श्रीराधाकुण्ड (मथुरा) के पावन स्थल में सैकड़ों भक्तों को श्रीहरिनाम की महिमा सुनाई जिससे भक्तों की नाम-संख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। कई भक्तों को तो अप्रत्यक्ष (indirect) रूप से दर्शन भी हुये हैं।

इन पैंतीस हजार (35,000) ग्रंथों को छपवाने तथा वितरण करने में आप सब ने बहुत सहयोग दिया है। इसके लिये हमारे आराध्यदेव, श्रीश्रीराधागोविन्ददेव जी, आप सब पर प्रसन्न हों एवं उनकी कृपा आप पर बरसे-ऐसी कामना करते हैं।

सुधी पाठको! इन पत्रों में कई बातों को बार-बार इसलिये दुहराया गया है ताकि वे हमारे हृदय में बैठ जायें, उतर जायें और हम चेत जायें और सावधान होकर हरिनाम करने में जुट जायें।

अतः मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि इन ग्रन्थों को बार-बार पढ़ना। इससे आपको दिशा मिलेगी, लक्ष्य मिलेगा और मिलेगा श्रीकृष्णप्रेम, जो हमारे मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। हमारा लक्ष्य हमारे सामने है और अब हमें उठना है, जागना है और तब तक मंजिल की ओर चलते रहना है जब तक हमें श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं हो जाती।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' के इस सातवें भाग का सम्पादन मुख्य रूप से, श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी के शिष्य श्रीमुकुन्ददास ने किया है। उन्होंने बड़ी निष्ठा और एकाग्रता से प्रभु जी के पत्रों के विशाल संग्रह में से चुनकर इन्हें इस भाग में बड़े परिश्रम से संगृहीत किया है और डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया के सहयोग से इसे मूर्तरूप प्रदान किया है। इसके लिए वे दोनों बधाई के पात्र हैं।

अन्त में, पतितपावन परम गुरुदेव, श्रील गुरुदेव, सभी गुरुवर्ग, शिक्षा गुरुवर्ग तथा सभी वैष्णवों के श्रीपादपद्मों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए, मैं उनकी अहैतुकी कृपा और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णव दासानुदास

–हरिपद दास



अब तो हरिनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‍यो वैरागी।।
कित छोड़ी वह मोहन मुरली, कित छोड़ीं सब गोपी।
मूँड़ मुड़ाई डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किशोर भयो नव गौरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कौपीन कसै।
गौरकृष्ण की दासी 'मीरा' रसना कृष्ण बसै।।

सर्वव्यापक – सर्वज्ञ
सर्वान्तर्यामी – सर्वशक्तिमान

OMNIPRESENT • OMNIFICENT • OMNISCIENT • OMNIPOTENT

भगवान् सर्वव्यापी होने के कारण यहाँ पर भी उपस्थित हैं।
हर समय होने के कारण इस समय में भी उपस्थित हैं।
सबके हृदय में होने के कारण हमारे हृदय में भी हैं।
और सबके होने के कारण वे हमारे भी हैं।
इसलिए भगवान् के यहाँ पर उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है।
इस वक्त उपस्थित होने के कारण उन्हें प्राप्त करने के लिए भविष्य की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है।
हमारे अन्दर होने के कारण उन्हें बाहर कहीं भी ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है।
आवश्यकता है तो सिर्फ और सिर्फ
हरिनाम के बल से उनका साक्षात्कार करने की।

इस भाव से हरिनाम जपोगे तो
प्रत्यक्ष रूप में भगवान् को अपने पास में पाओगे!



श्रीसूरदास जी भजन कर रहे हैं और श्रीकृष्ण उसे सुन रहे हैं।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

भगवान् के साक्षात् दर्शन

परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ श्रीअनिरुद्धदास जी अधिकारी (प्रभुजी) ने 13 मार्च से 30 मार्च 2013 तक ब्रज में वास किया। श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठ, वृन्दावन में चार दिन तक श्रीहरिनाम की महिमा सुनाकर 17 मार्च को उन्होंने श्रीराधाकुण्ड में जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने दिव्यातिदिव्य श्रीराधाकुण्ड का दर्शन किया।

अगले दिन 18 मार्च, 2013 को पूज्यपाद श्रीविष्णुदैवत स्वामी, श्रीदाऊदयाल दास, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती प्राणेश्वरी दासी, जयपुर के श्रीरमेश गुप्ता व उनकी पत्नी डा. कनिका, सुश्री रसमंजरी देवी एवं श्रीहरिपददास जी के साथ श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी चन्द्र सरोवर गये। वहाँ पर महात्मा सूरदास की समाधि व भजनकुटीर के दर्शन किये। ज्यों ही सभी भक्त भजनकुटीर के द्वार पर खड़े दर्शन कर रहे थे तभी श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन हुये। उन्होंने अपने साथ आये सभी भक्तों को दर्शन करने के लिये कहा, पर उन सबको श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं हुए। अब तो श्रीअनिरुद्धप्रभु जी भावावस्था में चले गये और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि वे सभी भक्तों को भी दर्शन दें।

देखते ही देखते भजनकुटीर में दीवार पर टँगे हुये सफेद रंग के परदे पर भगवान् श्रीकृष्ण की आकृति अंकित हो गई और सभी भक्तों ने उसके दर्शन किये और गद्गद् हो गये। यह सब श्रीअनिरुद्ध प्रभुजी की कृपा से ही हो सका। यह अप्रत्यक्ष दर्शन था जो भक्तों को हुआ।

।। जय श्रीकृष्ण ● जय महात्मा सूरदास।।

श्रीहरिनाम

आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

1. रसना मेरी अति दुर्भागिनी, कटु वाचिनी और पापमयी।
अब-अवगुण बिसराओ इसके, आ जाओ प्रभु आ जाओ।।

2. कण्ठ मेरा अति कर्कश वाणी, नाम मधुरिमा नहीं जानी।
अपनी मधुरता आप बिखेरो, नाम-सुधा-रस बरसाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

3. चित्त मेरा अति मूल मलीना, अंधकूप सम सब दुःखदीना।
अपनी ज्योति आप बखेरो, अंतर ज्योति जला जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

4. तन-मन में और श्वांस-श्वांस में, रोम-रोम में बस जाओ।
रग-रग में झनकार उठे प्रभु अंतर बीन बजा जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।।

5. पुत्र की जीवन नैया के खिवैया, भव डूबत को पार लगैया।
जीवन नैया पार लगाने, आ जाओ प्रभु आ जाओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।
मेरी रसना पर आओ प्रभु, मेरी जिह्वा पर आओ।
आओ-आओ नाम हरि का, मेरी रसना पर आओ।

इस ग्रंथ के लेखक
परमभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ

श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

प्रस्तुति : श्री हरिपददास अधिकारी

प्रणाम मंत्र

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे।
श्रीहरिगुरु-वैष्णवप्रियमूर्तिं, श्रीअनिरुद्धदासाय ते नमः।।

अपने श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी एवं सभी वैष्णवजनों के प्यारे, श्रीहरिनाम में रुचि रखने वाले और श्रीहरिनाम के मधुर अमृत रस का रसास्वादन करने एवं सभी को करवाने वाले, परमभागवत श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी प्रभु जी को हमारा नमस्कार है।

आज से लगभग 87 वर्ष पहले, हम सब पर कृपा करने हेतु श्रील अनिरुद्ध प्रभु आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद्-पूर्णिमा (रास-पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत, जो एक गृहस्थी होकर भी सन्त स्वरूप थे, को अवलम्बन करते हुए प्रकट हुये। इनका जन्म-स्थान छींड की ढाणी, पो. पांचूडाला, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) है।

इनके अतिरिक्त इनके एक बड़े भाई, श्रीउमराव सिंह शेखावत और छोटे भाई श्रीजय सिंह शेखावत हुये। गाँव में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर, इन्हें शिक्षा प्राप्त करने के लिये, सन् 1944 में अपने बड़े भाई के पास जयपुर जाना पड़ा। पास ही श्रीगोविन्ददेव जी का मंदिर था। श्रील रूप गोस्वामीपाद सेवित, श्रीराधागोविन्ददेव जी ने विशेष रूप से आपका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उस

वक्त आपकी उम्र लगभग 14 वर्ष की थी। आप घंटों तक श्रीराधा–गोविन्ददेव जी के श्रीविग्रह के सामने बैठे रहते और उनकी सुन्दर छवि एवं रूपमाधुरी देखकर गद्गद् होते। आप आरती–दर्शन, कीर्तन, परिक्रमा एवं अन्य सेवाओं में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेते। आपके सरल–स्वभाव व निर्मल–चित्त ने सबका मन मोह लिया और आप मंदिर के प्रबन्धकों एवं पुजारियों के प्रिय बन गये।

श्रील गोविन्ददेव जी के दर्शनों के लिये अनेकों सन्त–महात्मा आते। आप सभी मतों के साधु–महात्माओं के दर्शन करते व उनसे हरिकथा सुनते। आप उनसे पूछते कि भगवान् कैसे मिलेंगे ? जब आपके प्रश्न का कोई ठीक जवाब नहीं मिलता था तो आप बहुत व्याकुल हो जाते और असन्तुष्ट होकर घर वापस आ जाते। बहुत दिनों तक साधु–संग करने के कारण आप यह बात तो अच्छी तरह जान चुके थे कि सद्गुरु से सद्शिक्षा एवं दीक्षा जब तक नहीं ली जाती तब तक भक्ति–मार्ग में आगे बढ़ना सम्भव नहीं।

सन् 1952 की बात है। जयपुर के श्री श्रीराधागोविन्ददेव जी का मंदिर संकीर्तन की ध्वनि से गूंज रहा था। शंख, घंटा, खोल, करताल इत्यादि के साथ सफेद–वस्त्र पहने हुये लगभग दस ब्रह्मचारी उच्च–स्वर से कीर्तन कर रहे थे। उनके बीच में एक ऊँचे, लम्बे कद एवं अलौकिक सौन्दर्य वाले संन्यासी कीर्तन कर रहे थे। श्री श्रीराधा–गोविन्द जी के मन्दिर में भाव विभोर करने वाला ऐसा दृश्य अनिरुद्ध प्रभु जी ने पहले कभी नहीं देखा था। अपनी दोनों भुजाऐं उठा–उठाकर वह संन्यासी नृत्य कर रहे थे और प्रेम में विभोर होकर भगवान् के सामने जोर–जोर से रो–रोकर कीर्तन कर रहे थे। ''ये संन्यासी कौन हैं ? ये रो क्यों रहे हैं ?''–आपके मन में ये प्रश्न उठने लगे। श्रीराधागोविन्द देवजी के मंदिर में पहले भी अनेकों प्रभु–भक्त आकर भगवान् का दर्शन करते थे, कीर्तन करते थे पर उस दिन जो दिव्य–अनुभूति श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी को हुई, वह पहले कभी नहीं हुई थी। आज वे एक परम आनंद, दिव्य सुख का अनुभव कर रहे थे।

''यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही हैं मेरे श्रीगुरुदेव! यही मुझे भगवान् से मिला सकते हैं। मैं इन्हीं से दीक्षा लूँगा''–ये सारे भाव श्रीअनिरुद्ध प्रभु के हृदय में हिलोरें लेने लगे।

श्रीअनिरुद्ध प्रभु श्री श्रीराधागोविन्द देवजी के मन्दिर–परिसर के बाहर खड़े होकर महाराज जी की प्रतीक्षा करने लगे। ज्योंही ॐ विष्णुपाद परमहंस 108 श्रीमद् भक्तिदयितमाधव गोस्वामी महाराज जी मंदिर से बाहर निकले तो श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी ने उन्हें सष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया।

''कौन हो तुम ?''–श्रील महाराज जी ने मुस्कराकर पूछा।

''महाराज ! मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।'' अपना परिचय देते हुये प्रभु जी ने तुरंत कह दिया। श्रील महाराज मुस्कराये। श्रील महाराज जी ने बड़े प्रेम से उन्हें भगवद्–तत्व समझाया।

23 नवम्बर, 1952 को श्रीअनिरुद्ध प्रभु जी का हरिनाम एवं दीक्षा एक साथ हुई। उस समय वे कालेज में पढ़ते थे। हरिनाम व दीक्षा के मात्र 2 वर्ष बाद, सन् 1954 में, आपने पुरश्चरण–विधि द्वारा कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) सिद्ध कर लिया। केवल 6 महीने में 18 लाख कृष्ण–मंत्र (गोपाल मंत्र) जप कर, आपने उच्च स्थिति प्राप्त की। अब तो आपको भगवान् की रासलीला के दर्शन होने लगे। रासलीला के दर्शन करते हुए, एक मंजरी के रूप में, आप अपने भी दर्शन करते थे। मंजरी के रूप में, आप श्री श्रीराधा कृष्ण जी के कुंजों में झाड़ू लगाते व पानी का छिड़काव करते। इस पुरश्चरण के बाद आपको वाक्–सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई। लगभग 10 वर्ष तक लोकहित के उद्देश्य से आप लोगों के लिये इसका प्रयोग करते रहे। जब आपके गुरुदेव को यह पता चला कि आपके पास वाक्–सिद्धि है तो उन्होंने आपको फटकारा व केवल कृष्णनाम का (**हरे कृष्ण महामंत्र का**) ही आश्रय करने को कहा। सिद्धि, मुक्ति इत्यादि को शुद्ध–भक्ति से कहीं निम्न बताते हुये गुरुजी ने इन्हें भविष्य में सिद्धि प्रयोग करने से मना कर दिया।

इनका विवाह 14 साल की उम्र में ही, 8 वीं कक्षा में पढ़ते हुए हो गया था, परन्तु 21 साल की उम्र में आप अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रकला को अपने साथ गाँव छींड़ लाये। पैदा होने वाली संतानें भक्त हों, इसके लिये आपने कठोर व्रत लिये। प्रत्येक संतान उत्पत्ति के फैसले से पहले पूर्ण ब्रह्मचर्य, दम्पति द्वारा एक-एक लाख हरिनाम इत्यादि भक्ति-अंगों का पालन करके ही तीन पुत्र प्राप्त हुए जिन्हें आपके गुरुजी ने नाम दिया - रघुवीर प्रसाद, अमरेश व हरिदास। आपका साधन-काल बहुत बढ़िया बीता। सरकारी नौकरी के साथ-साथ हरिभजन का संतुलन आपने बखूबी बनाए रखा। विभिन्न विभागों में आपने सरकारी नौकरी की। सारी उम्र नौकरी में आपने एक पैसा ठगी या रिश्वत का नहीं लिया। परिवार तो आपने बड़ी मुश्किल से चलाया। अपनी नेक-कमाई से प्रति माह ग्यारह रुपये (उस जमाने के) श्रील गुरुदेव को भी भेजते थे।

1966 में श्रील गुरुदेव ने पत्र द्वारा आपसे एक लाख हरिनाम (64 माला) रोज करने को कहा। सरकारी नौकरी व पूरे परिवार की अनेक जिम्मेवारियों के साथ गुरुदेव की इस आज्ञा का पालन करना अत्यन्त कठिन था, जिसके बारे में आपने पत्र द्वारा अपने गुरुदेव को अवगत कराया। गुरुजी का वापस पत्र आया कि घबराओ नहीं, भगवान् जी की कृपा से सब हो जायेगा। तभी से प्रभु जी रोजाना सुबह-सुबह 2 बजे जगकर एक लाख हरिनाम करने लगे। इसी दौरान इन्हें श्रील गुरुदेव द्वारा ध्यान से हरिनाम करने के लिये पत्र मिला जिसमें जप करने की विधि लिखी थी-

"*While Chanting Harinam Sweetly, Listen by Ears.*"

यह नाम-संख्या कुछ साल तो एक लाख रही, परन्तु बाद में प्रभु जी ने अधिक मन लगने पर यह संख्या डेढ़ लाख, उसके बाद दो लाख प्रतिदिन कर दी। चातुर्मास के दौरान तो यह संख्या बढ़ाकर तीन लाख कर देते थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के जन्म दिवस फाल्गुनी पूर्णिमा, सन् 2004 से प्रभु जी ने नियमित रूप

से तीन लाख नाम हर रोज़ करने का नियम लिया जो अब तक सुचारु रूप से चल रहा है। जपकाल में आप उच्च–कोटि का विरह व पुलक, अश्रु इत्यादि विकारों का दिव्य–सुख अनुभव करते हैं। जो लोग प्रभु जी के अंतरंग हैं, उन्हें प्रभुजी ने हरिनाम से हुए अनेकों चमत्कारों के बारे में बताया है।

जब आपका आपके गुरुदेव से शुरुआती साक्षात्कार हुआ था तो एक भी मठ स्थापित नहीं था। धीरे–धीरे जैसे–जैसे गुरु महाराज द्वारा शुद्ध भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा, अनेकानेक स्थानों पर मठ स्थापित होते रहे। हर मठ में श्रीविग्रह की स्थापना भी होती। इसी संदर्भ में आपके गुरुजी जयपुर आते–जाते रहते और आपका, आपके गुरु महाराज के साथ बहुत समय बीतता। दोपहर को श्रील गुरु महाराज विश्राम न करके आपसे घंटों भगवद्–चर्चा करते रहते। पूरे राजस्थान में आप अकेले ही उनके शिष्य थे। आज भी पूरे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ में श्री अनिरुद्ध प्रभु जी ही एकमात्र ऐसे शिष्य हैं जिनके पास अपने श्री गुरुदेव, श्रील माधव महाराज जी की चरण–पादुकायें तथा पहनने के वस्त्र हैं जो कि उन पर अहैतुकी कृपा करके, उनके गुरुदेव ने उन्हें दिये थे।

सन् 1987 में, समय से चार वर्ष पूर्व, आपने स्वेच्छानिवृत्ति (Voluntary Retirement) लेकर पूर्ण रूप से अपना सारा समय भगवद्–भक्ति में लगा दिया। इनके–गुरुजी के नित्यलीला में प्रवेश के बाद, इन्होंने श्री चैतन्य गौड़ीय मठ के तत्कालीन आचार्य, परम पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति बल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी की, जी भर कर सेवा की। आप अपने गाँव में वैष्णव–संतों का सम्मेलन कराते। श्रील गुरु महाराज इनके गाँव को वृन्दावन बताते हैं। इनके परिवार व गाँव वालों की सेवा सभी वैष्णवों का मन जीत लेती है।

60 साल तीव्र भजन में रत रहते हुए भी कुछ समय पहले तक, आपके अधिकतर गुरु–भाइयों को आपकी वास्तविक स्थिति का आभास भी न था। आप भी अपने भजन का स्तर किसी के

आगे प्रकट न करते परन्तु सन् 2005 में चण्डीगढ़ मठ के मठरक्षक, पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के समझाने पर यह सब बदल गया। श्रील निष्किंचन महाराज के साथ आपका परस्पर पत्र–व्यवहार चलता रहता था। महाराज जी आपके गाँव भी जाते व वहाँ के ऐकान्तिक भजन–अनुकूल मनोहर–वातावरण का लाभ उठाते। जब महाराज जी को आपकी भजन में प्राप्त विशिष्ट–स्थिति का अनुभव हुआ तो महाराज जी ने आपसे इस भाव को लोगों में बाँटने के लिये कहा। महाराज जी के आग्रह के बाद आप अत्यन्त उदार हो गये। 2005 से आप अकाट्य सिद्धांतों के पत्र महाराज जी के अलावा औरों को भी लिखने लगे।

प्रभु जी, मात्र दो–ढाई घंटे सोकर, दिन रात हरिनाम के आनंद–सागर में विभोर रहते हैं। स्वयं आनन्द लेते हैं व सभी को आनन्द की अनुभूति कराते हैं। आप सभी को हरिनाम में लगाते रहते हैं और प्रतिदिन एक लाख हरिनाम का संख्यापूर्वक जप करने पर जोर देते रहते हैं। वे कहते हैं–''श्रीमन्महाप्रभु जी का आदेश है कि प्रत्येक भक्त को एक लाख हरिनाम प्रतिदिन करना होगा। वे अपने भक्तों से प्रतिदिन एक लाख हरिनाम कराते थे।''

जून 2007 के द्वितीय सप्ताह के आरम्भ में इन्हें ब्रह्ममुहूर्त में अपने गुरुदेव, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद माधव गोस्वामी महाराज जी ने स्वप्न में दर्शन दिये। अपने गुरु–महाराज का दर्शन प्राप्त करते ही इन्होंने उन्हें साक्षात् दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुजी ने इन्हें स्वयं अपने कर–कमलों से उठाकर आलिंगनबद्ध करते हुए आदेश दिया कि आप समस्त जनमानस को रुचिपूर्वक शुद्ध–हरिनाम करने को प्रेरित करो। श्रीगुरु जी ने उनसे कहा–

> **''अनिरुद्ध ! तुम्हारा तो हरिनाम हो गया। अब तुम इसे सबको बाँटो व हरिनाम करते हुए तुम्हारे हृदय में श्रीगुरु–गौरांग–राधा–कृष्ण के लिये जो अखण्ड विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उसे सबके हृदय में प्रज्ज्वलित करवाने की चेष्टा करो। तुम चेष्टा करो,**

मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारी चेष्टा से सबके हृदय में हरिनाम करने से भगवान् के लिये विरहाग्नि अवश्य प्रज्ज्वलित होगी।''

ऐसा कहकर परम गुरुजी अन्तर्हित हो गये और प्रभु जी ने स्वप्न भंग होने पर अपने गुरु जी का आदेश पालन करने का दृढ़ संकल्प लिया।

श्रील अनिरुद्ध प्रभु जी एक अनुभूति–प्राप्त वैष्णव हैं। उनके दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों–शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयन्तीमाला के चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार, जिन महापुरुषों के हाथ या पैर में ऐसे चिह्न होते हैं, वे भगवान् के निज जन होते हैं। इन चिह्नों के बारे में पहले वे भी कुछ नहीं जानते थे परन्तु एक दिन बीकानेर में श्रीहनुमान जी ने उनके दोनों हाथ देखकर उन्हें यह सब बताया था।

श्रीपाद अनिरुद्ध प्रभु जी हम सब पर कृपा वर्षा करें और हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी हरिनाम में उत्तरोत्तर रुचि बढ़ती रहे, इसी प्रार्थना के साथ हम सब उनके श्रीचरणकमलों में अनन्तकोटि नमन करते हैं।

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।



नाम संकीर्तन

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः ॥१॥

गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन ॥२॥

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द श्रीअद्वैत सीता।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता ॥३॥

जय रूप सनातन भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव गोपाल भट्ट दास-रघुनाथ ॥४॥

एइ छय-गोसाञिर करि चरण-वन्दन।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट-पूरण ॥५॥

एह छय-गोसाञि याँर-मुञि ताँर दास।
ताँ' सबार पदरेणु मोर पञ्च-ग्रास ॥६॥

ताँदेर चरण सेवि भक्तसने वास।
जनमे-जनमे हय एइ अभिलाषा ॥७॥

एइ छय गोसाञि जबे ब्रजे कैला वास।
राधाकृष्ण-नित्यलीला करिला प्रकाश ॥८॥

आनन्दे बलह हरि, भज वृन्दावन।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन ॥९॥

श्रीगुरु-वैष्णव-पादपद्म करि आश।
नाम-संकीर्त्तन कहे नरोत्तमदास ॥१०।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुति : श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज

नम ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नम।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्रीरूपगोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्म-स्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट 108 श्री श्रीमद्-भक्तिदयित माधव महाराज नाम वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीकृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले, क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा-वरुणालय-स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु-देव-भाइयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु-प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म-स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनंदवर्धनकारी-गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त

सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्ण–चैतन्य–आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिब्राजकाचार्य, ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज विष्णुपाद जी शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बंगाल देश) में फरीदपुर जिले के कांचन–पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए। शैशव काल से ही श्रील गुरुदेव जी में दूसरे बालकों की अपेक्षा अनेक असाधारण गुण प्रकाशित थे। आप कहीं भी, किसी अवस्था में भी झूठ नहीं बोलते थे, बल्कि दूसरे बालकों को भी सत्य बात कहने के गुण तथा असत्य बात कहने के दोष बतलाते थे। बालक के इन असाधारण आचरणों को देख कर सभी आश्चर्यान्वित होते थे। रूप–लावण्य युक्त सुदृढ़ देह, स्वभाव में मधुरता, अद्भुत न्यायपरायणता और सहनशीलता आदि स्वाभाविक ही आप में थे। इसलिए बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यौवनावस्था में सदा ही आपको प्रधान नेतृत्व पद प्राप्त होता रहा।

श्रीगुरुदेव आदर्श मातृभक्त थे। आपकी माता जी आपको अपने पास बिठाकर विभिन्न शास्त्र–ग्रन्थों का स्वयं पाठ करतीं थीं एवं आपके द्वारा भी पाठ कराती थीं। इस प्रकार वह धर्मपरायण माता, आपका धर्म विषय में तथा ईश्वर आराधना में उत्साह बढ़ाती थीं। नियमित रूप से प्रतिदिन गीता पाठ करते–करते आपको 11 वर्ष की आयु में ही सारी गीता कण्ठस्थ हो गयी थी। एक रात श्रीगुरुदेव जी ने एक अपूर्व स्वप्न देखा कि नारद ऋषि जी ने आकर आपको सांत्वना दी तथा मंत्र प्रदान किया और कहा कि इस मंत्र के जप से तुम्हें सबसे प्रिय वस्तु की प्राप्ति होगी। परन्तु स्वप्न टूट जाने के पश्चात् बहुत चेष्टा करने पर भी सारा मंत्र आपको याद नहीं हो पाया। मंत्र भूल जाने पर आपके मन और बुद्धि में अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ और दुःख के कारण आप क्षुभित हो गए। सांसारिक वस्तुओं से उदासीनता चरम सीमा पर पहुँच गई और आपने संसार को त्याग देने का संकल्प लिया। उस समय आपकी माता जी दुर्गापुर में रहती थीं। आप अपनी माता जी का आशीर्वाद प्राप्त

करने के लिए दुर्गापुर पहुँच गए। आपकी भक्तिमती माता जी ने भी आपके संकल्प में बाधा नहीं दी। संसार को त्याग कर आपने हिमालय की ओर प्रस्थान किया।

हृदय में तीव्र इच्छा को लेकर आप हरिद्वार आ गए। यहाँ से अकेले ही बिना किसी सहायता के हिमालय पर्वत पर चले गए। जंगलों से घिरे हुए निर्जन पहाड़ पर तीन दिन और तीन रात भोजन और निद्रा का त्याग करके आप एकाग्रचित्त होकर, अत्यन्त व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकारते रहे। उसी समय वहाँ आकाशवाणी हुई,–"आप जहाँ पहले रहते थे, वहाँ आपके होने वाले श्रीगुरुदेव जी का आविर्भाव हो चुका है, इसलिए आप अपने स्थान को वापस लौट जाओ।" दैववाणी के आदेश को शिरोधार्य करके आप हिमालय से कलकत्ता वापस आ गये।

सन् 1925 में श्रीचैतन्य मठ में आपने अपने श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रथम दर्शन किये। श्रील प्रभुपाद जी के महापुरुषोचित अलौकिक व्यक्तित्व को देखकर आप उनकी ओर आकृष्ट हुए थे। श्रील प्रभुपाद जी के मुखारविन्द से श्रीमहाप्रभु जी की शिक्षा और सिद्धान्त सुन कर, उसे अधिक युक्ति संगम जानकर आपने हृदयंगम कर लिया।

4 सितम्बर, सन् 1927, श्रीराधाष्टमी की शुभ तिथि को उल्टाडांगा, जंक्शन रोड पर स्थित, श्रीगौड़ीय मठ में प्रभुपाद जी का चरणाश्रय लेते हुए श्रीहरिनाम और दीक्षा मंत्र ग्रहण किया। दीक्षित होने के बाद आप हयग्रीव दास ब्रह्मचारी के नाम से परिचित हुए। आप आजीवन ब्रह्मचारी थे। आपकी ऐकान्तिक गुरु–निष्ठा, विष्णु–वैष्णव सेवा के लिए सदैव तत्परता और सेवाओं में बहुमुखी योग्यता ने आपकी बड़े थोड़े समय में ही श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी के प्रमुख पार्षद के रूप में गिनती करवा दी। आपकी आलस्यरहित महा–उद्यम–युक्तसेवा प्रचेष्टा तथा सब कार्यों में आपकी सफलता को देखकर श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद जी ऐसा कहा करते थे कि आप में अद्भुत volcanic energy है।

श्रील गुरुदेव, श्रील प्रभुपाद जी के कितने आस्था–भाजन, प्रिय व अन्तरंग थे, वह आसाम प्रदेश के सरभोग गौड़ीय मठ में हुए श्री श्रीगुरुगौरांग गिरिधारी जी के विग्रह प्रतिष्ठा उत्सव के अवसर पर कही गयी प्रभुपाद जी की उक्तियों से जाना जाता है। श्रील प्रभुपाद श्रील गुरुदेव जी को अनेक मूल्यवान् उपदेश देते हुए प्रकारान्तर से ये बताने लगे कि वे उनके अन्तरंग प्रियजन हैं। श्रील प्रभुपाद जी ने उनसे कहा–

"अत चाओ केन, आर कष्ट पाओ केन। अमुक व्यक्ति इतनी सेवा करेगा, इस प्रकार आशा करना ठीक नहीं हैं क्योंकि गुरु सेवा के जितने भी कार्य हैं, वे सब तुम्हारे हैं। उसमें दूसरा यदि कोई कुछ सेवा करता है तो उसके लिए तुम्हें उसका कृतज्ञ रहना होगा।"

श्री प्रभुपाद जी के उक्त वाक्यों द्वारा यह स्पष्ट रूप से ही प्रमाणित होता है कि श्रीगुरुदेव उनके अंतरंग निजजन हैं।

श्रील प्रभुपाद जी की जिस प्रकार आजानुलम्बित बाहु, दीर्घाकृति, गौरकान्ति और सौम्य मूर्ति थी, उसे देखकर अनेक लोगों को श्रील गुरुदेव जी के प्रति श्रील प्रभुपाद जी के पुत्र होने का भ्रम होता था। सन् 1944 फाल्गुनी पूर्णिमा को, गौर आविर्भाव तिथि पर आपने श्री टोटा गोपीनाथ जी के मन्दिर (श्री पुरुषोत्तम धाम, उड़ीसा) में अपने गुरुभाई परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज जी से सात्वत विधान के अनुसार त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब आपकी उम्र 40 वर्ष की थी। संन्यास के बाद आप परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुरु–निष्ठा तथा गुरुदेव जी के वैभव (गुरु भाईयों) में प्रीति आपका एक आदर्श थी।

श्रील प्रभुपाद जी के अप्रकट हो जाने के बाद, यदि कभी आपके गुरु भाई किसी विपरीत परिस्थिति में पड़ जाते थे तो आप हमेशा अपने सुख–दुःख की चिंता न करके, उनकी सेवा करने के लिए उनके पीछे खड़े हो जाते थे। सन् 1947 में श्रील गुरुदेव जी जब पुनः आसाम प्रचार में आये तो आसाम के महकुमा सदर

(आज कल नाम है ग्वालपाड़ा जिला सदर) ग्वालपाड़ा के ही रहने वाले, श्री गौड़ीय मठ के आश्रित गृहस्थ भक्त थे। राधामोहन दासाधिकारी जी के विशेष निमन्त्रण पर एक बार फिर श्री गुरु महाराज जी ग्वालपाड़ा में गये। श्री गुरु महाराज जी से मेरी प्रथम मुलाकात, श्रीराधामोहन प्रभु के घर पर ही हुई थी। राधामोहन प्रभु की भक्ति मती सहधर्मिणी एवं उनके परिजन वर्ग का स्नेह–ऋण अपरिशोधनीय है अर्थात् उनके स्नेह के ऋण को उतारा नहीं जा सकता। श्रीगुरु महाराज जी ने अपने स्नेहपूर्ण कृपा–आशीर्वाद रूप पत्रों में मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर देते हुए सारे संशयों को मिटाया तथा श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी द्वारा लिखित **"जैव धर्म"** ग्रन्थ का अध्ययन करने का उपदेश दिया था। जैव धर्म ग्रन्थ के पाठ करने से मेरे बहुत दिनों के संचित संशयों का निवारण हो गया था।

श्रील प्रभुपाद जी के निर्देश को स्मरण करते हुए, श्रील गुरु महाराज जी प्रतिवर्ष ही आसाम में जाते थे एवं जीवों के दुःखों से कातर होकर श्रील गुरुदेव उनके आत्यन्तिक मंगल के लिये व उन्हें कृष्णोन्मुख करने के लिये अनेक कष्ट सहन करते हुए, कभी पैदल व कभी बैलगाड़ी में भ्रमण करते थे। श्रील गुरुदेव जी के द्वारा विपुल प्रचार के फलस्वरूप उनके प्रकटकाल में ही आसाम में तीन मठ संस्थापित हो चुके थे जिनमें सर्वप्रथम मठ तेजपुर में, उसके बाद गोहाटी में एवं अन्त में ग्वालपाड़ा में एक मठ की संस्थापना हुई। थोड़े ही दिनों में श्रील गुरुदेव जी ने बहुत से मठ, शिक्षाकेन्द्र, ग्रन्थागार, धर्मार्थ चिकित्सालय और शुद्ध भक्तिग्रन्थों का प्रचार करने के लिये प्रेसों की स्थापना की।

श्रील गुरुदेव जी के अलौकिक महापुरुषोचित व्यक्तित्व से हैदराबाद और पंजाब में मायावाद छिन्न–भिन्न हो गया था। सैकड़ों नर–नारियों ने श्रीमन्महाप्रभु जी के विशुद्ध भक्तिसिद्धान्त और भक्ति–सदाचार को ग्रहण कर, श्री गौरांगमहाप्रभु जी के बताये रास्ते पर चलने का व्रत लिया था। श्रीपुरुषोत्तम धाम जगन्नाथ पुरी में विश्वव्यापी श्रीचैतन्य मठ और श्रीगौड़ीय मठों के प्रतिष्ठाता, परमगुरु पादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर

प्रभुपाद जी के आविर्भाव स्थान का मकान मिलना, चण्डीगढ़ जैसे शहर में सैक्टर 20–बी में जमीन का मिलना और अगरलता में प्रतिष्ठान के केन्द्र की स्थापना के लिये श्री जगन्नाथ बाड़ी की सेवा मिलना–ये तीनों अद्भुत कार्य केवल श्रील गुरुदेव जी के असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही हुए हैं।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्लप्रतिपदा तिथि को वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथ दास बाबा जी महाराज और श्रील रसिकानन्द देव गोस्वामी प्रभु जी की तिरोभाव तिथि पूजा के समय, सुबह 9 बजे महासंकीर्तन के बीच में अपने गुरु भाईयों और आश्रित शिष्यों को विरह सागर में निमज्जित करते हुये, श्रील गुरुदेव, श्रीराधा गोविन्द देव जी की पूर्वाह्नकालीन नित्यलीला में प्रविष्ट हो गये।

श्रील गुरुदेव जी का अन्तिम उपदेश–

"जैसी भी अवस्था में रहो हरि भजन कभी नहीं छोड़ना। यही मेरी तुम लोगों के पास प्रार्थना, अनुरोध, वांछा और उपदेश है। सर्व अवस्था में तुम लोग हरि भजन करना। श्रेष्ठ वैष्णव को हर समय सम्मान देना। इसमें किसी प्रकार का संकोच न करना। इससे मंगल होगा।"

आज का मानव अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य ही भूल गया है। वह इस बात को भूल गया है कि मानव जन्म भौतिक जगत् के विषयों में फँसने के लिये नहीं है, बल्कि भगवान् का भजन करने के लिये मिला है। इस सुदुर्लभ मानव जन्म का एकमात्र लक्ष्य है भगवान् के धाम में वापस जाना।

Back to God & back to home is the message of Gaudiya Math.

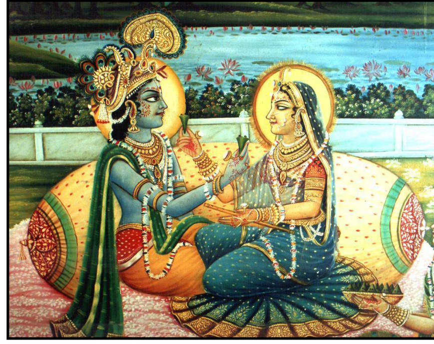
–Srila Prabhupada

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

श्रीमद्भागवत पुराण में कथा आती है कि खट्वांग महाराज को दो घड़ी में भगवान् के दर्शन हो गये थे, परन्तु मेरे श्रील गुरुदेव परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट विष्णुपाद 108 श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज ने कहा है कि यदि कोई भी व्यक्ति हर रोज़ नीचे लिखी तीनों प्रार्थनाओं को करे, जिसमें दो



मिनट का समय लगता है, तो उसे निश्चित रूप से इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो जायेगी। यह तीनों प्रार्थनाएँ सभी ग्रंथों, वेदों तथा पुराणों का सार हैं।

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो –

''हे मेरे प्राणनाथ ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।''

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो –

"हे मेरे प्राणनाथ ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति** हो जायेगी।

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

नित्य प्रार्थनाओं का भगवद्गीता में उल्लिखित शास्त्रीय प्रमाण

– पहली प्रार्थना –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(8.6)

भाषांतर : हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस–जिस भाव का स्मरण करता है, मृत्यु के पश्चात् वह उस–उस भाव के अनुसार निश्चित रूप से पुनः शरीर प्राप्त करता है।

तात्पर्य : महाराज भरत ने मृत्यु के समय हिरन का चिन्तन किया, अतः अगले जन्म में उन्हें हिरण का शरीर प्राप्त हुआ। इसलिए मृत्यु के समय में दूसरे विषयों का स्मरण न हो, केवल भगवान् का ही स्मरण हो।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(8.5)

भाषांतर : और जीवन के अंतिम समय में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करते हैं, वे तुरन्त ही मेरे भाव को प्राप्त होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तात्पर्य : अतः मनुष्य को निरन्तर हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस महामंत्र का जप करना चाहिए ताकि मृत्यु के समय इसके उच्चारण मात्र से ही भगवद्प्राप्ति हो जाये।

● पहली प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्कृपा से इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाएगी।

– दूसरी प्रार्थना –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9.27)

भाषांतर : हे कौन्तेय! तुम जो कुछ कर्म करते हो, जो कुछ भोजन करते हो, जो कुछ अर्पित करते हो या दान देते हो तथा जो भी तपस्या करते हो, उन सबको मुझे समर्पित करते हुए करो।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ (9.28)

भाषांतर : इस प्रकार तुम शुभ तथा अशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो सकोगे तथा इस कर्मफलत्यागरूप योग में अपने चित्त को स्थिर करके तुम मुक्त होकर मेरे पास आओगे।

उदाहरण : अर्जुन क्षत्रिय तथा गृहस्थ होते हुए भी उसने भगवान् को प्रसन्न किया।

● दूसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही भगवद्भावना से युक्त कर्म हो जायेगा।

– तीसरी प्रार्थना –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (6.29)

भाषांतर : वास्तविक योगी समस्त जीवों में मुझको तथा मुझमें सबको देखता है। निस्सन्देह स्वरूपसिद्ध व्यक्ति मुझ परमेश्वर को सर्वत्र देखता है।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ (6.30)

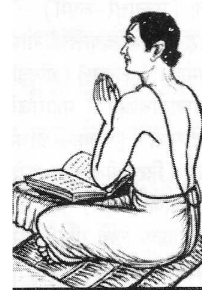
भाषांतर : जो मुझे सर्वत्र देखता है और सबकुछ मुझमें देखता है उसके लिए न तो मैं कभी अदृश्य होता हूँ और न वह मेरे लिए अदृश्य होता है।

● तीसरी प्रार्थना बोलने से स्वतः ही शुद्ध भक्ति, शुद्ध नाम तथा भगवद्दर्शन प्राप्त होंगे।



वैष्णव प्रार्थना !

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन



प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी।

तुलसी माँ की प्रसन्नता से ही भगवद्-प्राप्ति



जब तक वृन्दा महारानी की कृपा नहीं होगी तब तक गुरु, वैष्णव तथा भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते क्योंकि भगवान् तो तुलसी माँ के पराधीन हैं। तुलसी महारानी के परामर्श के बिना भगवान् कुछ नहीं कर सकते। इसका प्रसंग लेख, धर्मग्रंथों में लिखा मिलता है जो विस्तृत होने से सूक्ष्म में लिखा जा रहा है।

जहाँ श्रीगुरु प्रदत्त माला का निरादर होता है, वहाँ पर साधक का हरिनाम में मन नहीं लगता। जपने की माला में सुमेरु, जो माला के मध्य में होता है, साक्षात् भगवान् है। सुमेरु के दोनों ओर, जो सूखी तुलसी की मनियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं जो सुमेरु भगवान् को घेरकर खड़ी रहती हैं। माला मैया का निरादर होने से माला उलझ जाती है, उंगलियों से छूट जाती है और किसी का बुरा सोचने पर माला टूट जाती है। जब माला का आदर-सत्कार होता है तो हरिनाम में रुचि होती है और मन लगता है। जाप भी भार स्वरूप नहीं होता।

माला को जापक जड़ और निर्जीव समझते हैं लेकिन माला जड़ और निर्जीव नहीं है। विचार करने की बात है कि निर्जीव वस्तु क्या माया से छुड़ा सकती है ? क्या भगवान् से मिला सकती है ? अर्थात् माला हमारी आदि जन्म की अमर माँ है। वही हमको अपने पति–परमेश्वर भगवान् से मिला देगी।

जब जपने के लिये माला हाथ में लें तो पहले मस्तक पर लगावें। इसके बाद हृदय से लगावें। फिर माला मैया के चरणों का चुंबन करो तो माला मैया का आदर–सत्कार हो जायेगा। फिर पांच बार हरिनाम–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

का उच्चारण करें। तब ही माला–झोली में हाथ डालें वरना माला मैया सुमेरु भगवान् को उंगलियों में नहीं पकड़ायेगी। सुमेरु को ढूँढना पड़ेगा। माला को जप करने के बाद स्वच्छ जगह में रखें वरना अपराध बन जायेगा।

जो धरातल पर पेड़ के रूप में तुलसी माँ खड़ी है, उसकी सुचारु रूप की सेवा का तो मूल्य ही अकथनीय है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्री चैतन्य महाप्रभु हैं जो वृन्दा महारानी की अकथनीय सेवा में संलग्न रहते थे।

यह मेरे श्रीगुरुदेव का अकथनीय लेख है। इन बातों को कोई भी आज़मा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।



ग्रंथकार की प्रार्थना.....

हे मेरे गुरुदेव! हे मेरे प्राणनाथ!
हे गौर हरि!



आप कहाँ हो?

कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ?
आपके चरणारविंद!

हे हरिदास!

नाम की भूख जगा दो मन को,

नाम का अमृत पिला दो हम को,

तुम सा कोई नामनिष्ठ नहीं है,

नाम का रस पिला दो हमको,

अलमस्त रहें हम, नाम के बल पर,

ऐसी कृपा करो, न टालो कल पर।

हे गुरुदेव! हे पतितपावन! हे भक्तवत्सल गौरहरि! हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! आपका दासानुदास, नराधम, अधमाधम, अनिरुद्धदास, आपके श्रीचरणों में बैठकर रात-दिन आपके वियोग में रोता रहता है। आपकी कृपा से, आपके आदेश से, जिस दिन से आपका यह दास श्रीहरिनाम की महिमा लिख रहा है, उसी दिन से वह रो रहा है। आप जो कुछ करवाते हो, वही करता है। हे नाथ! आप इच्छामय हो। आपकी जो इच्छा होगी, वही होगा। इस जगत का उद्धार कैसे होगा, यह आप भली भाँति जानते हो। आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। आपकी लीला परम स्वतंत्र है। आप जो चाहोगे, निश्चयपूर्वक वही होगा। फिर भी आपसे मेरा अनुरोध है कि आप

मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करना जिसे प्राप्त करके मैं अपने मन का भाव सब भक्तों के सामने खोलकर रख सकूँ।

हे मेरे प्राणनाथ! हरिनाम करते-करते आपके नाम की महिमा लिखते-लिखते मेरा कठोर हृदय द्रवित हो गया है। मेरे दोनों नेत्रों से अविरल, अश्रुधारा बहती रहती है, कण्ठ-स्वर अवरुद्ध हो जाता है। हे प्राणनाथ! मेरे रोने का अंत नहीं है और आपकी कृपा का भी अंत नहीं है। आपका अभागा अनिरुद्ध जब कागज पेन लेकर पत्र लिखने बैठता है तो उसके विरह का समुद्र उछलने लगता है। प्राण-विरह में तड़पने लगते हैं और मन मिलने के लिये व्याकुल हो जाते हैं। शरीर काँपने लगता है और दोनों आँखों से बहती अश्रुधारा से कागज भीग जाता है पर फिर भी मुझे यह सब लिखना पड़ रहा है क्योंकि यही आपका आदेश है। यह कार्य इतना कठिन था कि मैं इसे कभी भी नहीं कर सकता था आपने कृपा करके, मेरा हाथ पकड़कर जो लिखवाया, वह लिख दिया। जो बुलवाया, वह बोल दिया।

हे गोविंद! मेरे ये आँसू दुःख या शोक के आँसू नहीं है। ये आँसू मेरी मंगलमय अनुभूति के आँसू है। ये आँसू मेरी अमूल्य निधि हैं, मेरी श्रेष्ठतम सम्पत्ति हैं। मेरी आँखों में इन आँसुओं को देखकर, आप भी तो रोने लगते हो। आप अपने भक्तों की आँखों में आँसू देखकर रुक नहीं पाते और उन्हें अपने पीताम्बर से पोंछने के लिये दौड़े चले आते हो। अपने प्यारे को गले से लगा लेते हो और मंद-मंद मुस्कुराते हो। उस समय आपके दर्शन करके जो परम आनन्द व परम उल्लास होता है वह अकथनीय है। यही है आपकी भक्तवत्सलता। यही है आपका प्रेम।

हे मेरे प्राणनाथ गोविंद! आपका यह प्रेम सबको उपलब्ध नहीं होता। यह प्रेम मिलता है, वैष्णवों की चरणरज को सिर पर धारण करने से। वैष्णवों-संतों की चरण-रज का सेवन करने से, भजन-साधन मार्जित होता है, उसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं आती।

यह प्रेम मिलता है आपके भक्तों को हरिनाम सुनाने से, उनके संग नाम-संकीर्तन करने से।

हे मेरे नाथ! आपका नाम चिन्तामणि है। हरिनाम करने से कर्मों के बंधन का नाश हो जाता है। आपने हरिनाम करने का जो मार्ग बताया है, उसे करने से, कलिकाल के जीवों का भवबंधन निश्चितरूप से समाप्त हो जायेगा। आपने हरिनाम करने की जो विधि मुझे बताई है, उस विधि द्वारा हरिनाम करने से भक्तजनों की आँखों से अश्रुधारा बहेगी और उन्हें भी आपका प्रेम प्राप्त होगा।

हे गोविन्द! इस कलियुग में मनुष्य का हृदय बहुत कठोर हो गया है। इन कठोर हृदय वाले जीवों पर अहैतुकी कृपा करने के लिये ही आपने श्रीहरिनाम की महिमा लिखवाई है और भगवद्-प्राप्ति का सहज, सरल एवं श्रेष्ठतम मार्ग बताया है।

हे दीनानाथ! हे करुणा के सागर! हे भक्तवत्सल! आपकी दासी माया ने हम सबको बुरी तरह जकड़ रखा है। हे नाथ! इस दुर्गम माया से हमें बचाइये। हमारी रक्षा कीजिये। हे प्राणनाथ! हम सब पर ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब आपके हरिनाम गान में मस्त हो जायें। हमें आपके श्रीचरण कमलों की स्मृति सदा बनी रहे। गुरु, वैष्णवों एवं भगवान् के चरणकमलों में बैठकर हम नित्य-निरंतर हरिनाम करते रहें। उन्हें हरिनाम सुनाते रहें। इसी में हम सबका मंगल है।

हे मेरे प्राणनाथ। मेरे मन में एक इच्छा है कि आपके दर्शन करने तथा आपकी चरण धूलि लेकर मस्तक पर लगाने का एक अवसर, कम से कम एक बार तो आपके सभी भक्तों को मिले और उन्हें इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति हो।

आपका श्रीचरणरेणु प्रार्थी

अनिरुद्ध दास

आप कहाँ हो ?



हा गौरांग! हा गौरांग !

कहाँ गौरांग ? कहाँ गौरांग ?

कहाँ जाऊं ?

कहाँ पाऊँ आपका गौरवदन ?

आपका प्रेमस्वरुप !

हे दयानिधान ! आप कहाँ हो ?

मैं आपको ढूंढ रहा हूँ ।

मैं अकेला भटक रहा हूँ ।

आप कहाँ हो ?



कहाँ जाऊँ ?

कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ?

कहाँ दर्शन पाऊँ – हे कीर्तनानंद !

दर्शन दो स्वामी !

इस दीन-हीन गरीब को

दर्शन दो !

हरे कृष्ण महामंत्र का अर्थ

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

– हरे –

भगवान् श्रीकृष्ण की मूल दैवी प्रकृति परम आह्लादिनी योगमाया अन्तरंगा शक्ति श्रीमती राधारानी। जो हमें भगवान् तक पहुँचने में सहायता करती हैं।

मनो हरित कृष्णस्य कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
ततो हरा श्रीराधैव तस्याः संबोधनं हरे।।

श्रीकृष्ण की आह्लादस्वरूपिणी श्रीराधा श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही '**हरा**' नाम से कही जाती हैं। '**हरा**' शब्द के सम्बोधन में '**हरे**' रूप बनता है।

– कृष्ण –

अखिल सृष्टि के निर्माता सर्वाकर्षक आदि–पुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण।

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।

'**कृष्**' धातु आकर्षक सत्तावाचक है और '**ण**' शब्द आनन्दवाचक है। **कृष्** धातु **ण** प्रत्यय से मिलकर आनन्द–स्वरूप आकर्षक परमसत्य परब्रह्म ही '**कृष्ण**' नाम से कहे जाते हैं।

सन्दर्भः महाभारत, उद्योग पर्व 71.4/चैतन्यचरितामृत मध्यलीला 9.30

– राम –

भगवान् श्रीकृष्ण का एक नाम 'राधा–रमण' है।

श्रीराधां रमय नित्यं राम इत्यभिधीयते।।

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमती राधारानी को नित्य रमण कराते रहते हैं अर्थात् आनन्दित करते रहते हैं, इसलिए वे **'राम'** कहलाते है।

(ब्रह्माण्डपुराण, उत्तरखण्ड 6.55)

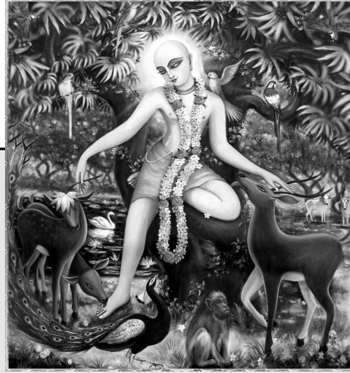
रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम-पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।।

योगिजन चिन्मय, अनन्त, सत्य और असीम आनन्द के स्रोत जिस परतत्त्व में रमण करते हैं, वह परतत्त्व परं ब्रह्म ही **'राम'** नाम से कहा जाता है जो हर चर-अचर में आत्मा के रूप में रमा रहता है।

(सन्दर्भः पद्मपुराण, शतनाम स्तोत्र 8)

'हरे-कृष्ण-राम' ये तीन शब्द महामन्त्र के दिव्य बीज हैं।

यह महामन्त्र भगवान् के प्रति आत्मा की रुदनयुक्त पुकार हैं.....



जब भाव की गाढ़ता होती है तो श्रीराधा-कृपा होती है।
जब रस की गाढ़ता होती है तो श्रीकृष्ण-कृपा होती है।
जब भाव और रस दोनों की गाढ़ता होती है तो
श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा होती है।

साभार : श्रीहरिनाम

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

एक लाख हरिनाम जप की अनिवार्यता

– आचार्यों व शास्त्रों के प्रमाण –

शास्त्रों में कहा गया है कि–

एक कृष्णनाम करे सर्वपापक्षय।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश।।
अनायासे भवक्षय, कृष्णेर सेवन।
एक कृष्ण–नामेर फले पाई एत धन।।
हेन कृष्णनाम यदि लय बहुबार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार।।
तबे जानि ताहाते अपराध प्रचुर।
कृष्णनाम–बीज ताहे ना करे अंकुर।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत आदि लीला 8.26,28,29,30)

"एक कृष्ण–नाम समस्त पापों का विनाश कर प्रेम के द्वारा भक्ति का प्रकाश करता है, अनायास रूप में सांसारिक आवागमन को दूरकर कृष्ण की साक्षात् सेवा में नियुक्त कर देता है। एक श्रीकृष्णनाम के फल से इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसे माहात्म्ययुक्त श्रीकृष्णनाम को बारम्बार ग्रहण करने पर भी यदि श्रीकृष्णप्रेम का प्रादुर्भाव नहीं होता और नेत्रों से अविरत अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होती, तो ऐसा समझना चाहिए कि, मेरे प्रचुर अपराध हैं।

अपराध किसे कहते हैं ?

अप– प्रतिकूल, के बिना, दूर करना, विरुद्ध अथवा छोड़ देना।

राध– समृद्धि, सफलता, प्रसन्न करना तथा प्रेमधारा।

अर्थात्, पवित्र नाम से अभिन्न श्रीकृष्ण उस व्यक्ति से अप्रसन्न हो जाते हैं, जो उनके नाम तथा रूप के प्रति अपराध करता है। दूसरे शब्दों में, नाम के प्रति किया गया अपराध हमारी प्रेमधारा को भगवान् से दूर ले जाकर हमारी आध्यात्मिक जीवन की सफलता में बाधा उत्पन्न कर देता है।

अतः अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, हरिनाम तीन स्तर पर अर्थात् तीन प्रकार से लिया जाता है।

1) नामापराध (अपराधयुक्त नाम)

2) नामाभास (आभासयुक्त नाम)

3) शुद्धनाम (वास्तविक हरिनाम)

1) नामापराध–

हरिनाम करने वाला साधक भक्त जब जान बूझकर अपराध करता रहता है, उसे अपराधयुक्त नाम कहते हैं।

2) नामाभास–

साधक जब अनजाने में अपराध करता है, साथ ही साथ हरिनाम भी करता है तब उसे जो नाम का आभास होता है, उसे 'नामाभास' कहते हैं।

3) शुद्धनाम–

जब जाने–अनजाने में किसी भी प्रकार से 10 नामापराध नहीं किये जाते तथा उसकी गंध भी नहीं रहती, ऐसी स्थिति में किया गया नाम **'शुद्ध हरिनाम'** है। ऐसे केवल एक शुद्ध नाम के उच्चारण मात्र से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति हो जाती है। और उसके बाद अपने आप निरन्तर शुद्ध हरिनाम चलता ही रहता है। इसी के द्वारा दिव्य चिन्मय शरीर की प्राप्ति हो जाती है। तथा स्वरूपसिद्धि प्राप्त होती है।

वैसे हरिनाम कैसे भी किया जाय, पाप कर्म के फल तो तुरन्त भस्म हो जाते हैं तथा समस्त सांसारिक लाभ भी प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु, पाप वासना अर्थात् सांसारिक वासना नष्ट नहीं होती। अतः चित्त शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा पूर्णरूपेण सांसारिक वासना तथा समस्त मायिक संस्कारों का क्षय होने तक निरन्तर हरिनाम का अभ्यास करने मात्र से ही '**शुद्ध हरिनाम**' का उदय हो जाता है।

इसलिए पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड 48 में कहा गया है कि,

नामापराधयुक्तानां नामानि एव हरन्ति अघम्।
अविश्रान्त प्रयुक्तानि तानि एवार्थकराणि च।।

नाम अपराधी के समस्त पापों तथा अपराधों का नाश स्वयं नाम ही करता है। अतः निरन्तर नाम-भजन द्वारा नाम अपराधी व्यक्ति धीरे-धीरे समस्त पापों व अपराधों से मुक्त हो जाएगा। और वह निरपराध जप के स्तर पर पहुँच कर जीवन के चरम लक्ष्य **शुद्ध हरिनाम** तथा **कृष्णप्रेम** को प्राप्त करेगा।

इसी प्रकार निरन्तर हरिनाम स्मरण के विषय में निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है-

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः।।

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड 42 अ. 103)

कृष्ण ही भगवान् विष्णु के उद्गम हैं। उनका सतत स्मरण करना चाहिए और किसी भी समय उन्हें भूलना नहीं चाहिए। शास्त्रों में वर्णित सारे सकारात्मक तथा नकारात्मक नियम (अर्थात् विधि और निषेध) तथा समस्त आदेश इन्हीं दो नियमों के दास हैं।

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी का कहना है कि, ज्यादा संख्या में लिया गया अपराधयुक्त नाम चुम्बक की तरह कुछ-कुछ नामाभास को आकर्षित करता है तथा खींचता है और ज्यादा संख्या में लिया गया आभास-युक्त नाम (नामाभास) शुद्ध हरिनाम को खींचता है।

अतः केवल एक नाम के उच्चारण से कार्य सिद्ध नहीं होगा। निरन्तर नाम की अनिवार्यता यहाँ सिद्ध होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि निरन्तर हरिनाम कैसे हो ? इस प्रश्न के उत्तर में ही तुलसीमाला पर नित्य एक लाख हरिनाम करने का रहस्य प्रकट हो जाता है।

जाने बिना न होइ परतीति। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति।।

(रामचरितामानस 7.89)

"महिमा जाने बिना विश्वास नहीं होता और विश्वास तथा श्रद्धा के बिना प्रीति नहीं होती।"

जब गुरु-साधु-शास्त्र एक ही बात बोलते हैं तब यह प्रमाणित हो जाता है कि, यह सिद्धान्त सही है।

अतः हम यहाँ '**एक लाख हरिनाम की महिमा**' का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे है।

श्रीचैतन्य भागवत ग्रन्थ में यह वर्णन आता है कि, श्रीजगन्नाथ पुरी धाम में कलियुग पावनकारी श्रीचैतन्य महाप्रभु को भिक्षा (भोजन) के लिए ब्राह्मणगण आमन्त्रित करते हैं। महाप्रभु उन्हें कहते हैं कि, 'तुम पहले लक्षेश्वर (लखपति) बनो। मैं लक्षेश्वर के घर में ही भिक्षा स्वीकार करता हूँ।' तबी सभी ब्राह्मण बोले कि, 'हे प्रभु! लाख की बात तो दूर, हमारे पास तो हजार (रुपये) भी नहीं हैं। आपको निमन्त्रित किए बिना तो हमारी गृहस्थी ही बेकार है। उन्हें दुःखी जानकर महाप्रभु ने समझाया-

प्रभु बले- जान, 'लक्षेश्वर' बलि का रे?
प्रतिदिन लक्ष-नाम ये ग्रहण करे।।
से जनेर नाम आमि बलि 'लक्षेश्वर'।
तथा भिक्षा आमार, ना जाई अन्य घर।।

(श्रीचैतन्य भागवत 3.9.121-122)

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जानते हो! मैं किसे 'लक्षेश्वर' कहता हूँ? जो नित्यप्रति लक्ष नाम (एक लाख हरिनाम) ग्रहण करते हैं, उन्हें मैं लक्षेश्वर (लखपति) नाम से पुकारता हूँ। मैं उन्हीं

के घर में भिक्षा (भोजन) स्वीकार करता हूँ, किसी और के घर नहीं जाता।"

उपरोक्त पयार से सम्बन्धित अन्य पयारों का विस्तारपूर्वक वर्णन 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' ग्रन्थ के तीसरे भाग के 'नित्यप्रति एक लाख हरिनाम करने का शास्त्रीय प्रमाण' इस लेख में द्रष्टव्य है। तथा इन पयारों की 'गौड़ीय भाष्य' टीका में श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद एक लाख हरिनाम (हरे कृष्ण महामन्त्र की 64 माला) की महिमा को प्रधान रूप से स्वीकार करने का आग्रह करते हैं। श्रीचैतन्य भागवत के 3.9.127 वें पयार की टीका में श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपाद एक लाख हरिनाम की महत्ता के बारे में कहते हैं कि,

1) "लक्षेश्वर व्यतीत गौरभक्ति (एक लाख हरिनाम के बिना की गई गौरभक्ति) का आदेश कोई भी गौड़ीय सन्त स्वीकार नहीं करता।"

श्रीचैतन्य महाप्रभु के आश्रित भक्तों का भक्ति का सबसे प्रमुख साधन व आदेश है– एक लाख हरिनाम का जप। जो नित्य कम से कम एक लाख हरिनाम करता है वही महाप्रभु का वास्तविक भक्त है।

2) "अधः पतित जनसमूह एकमात्र भजन–शब्द–वाच्य श्रीनाम भजन में विमुखतावश लक्ष नाम ग्रहण करने के बदले अन्य भजन की छलना करते हैं, अतः वे मंगल प्राप्त करने में पूरी तरह असमर्थ रह जाते हैं। अतः वह पतित है।" भक्ति के सभी अंगों में सर्वश्रेष्ठ व सबमें प्रमुख अंग श्रीनामभजन ही है। श्रीचैतन्यचरितामृत आदिलीला 15.107 में भी कहा गया है कि,

नवविधा भक्ति पूर्ण नाम हैते हय।

अर्थात् केवल श्रीनाम भजन से ही नौ प्रकार की भक्ति हो जाती है। अतः जो सबसे प्रमुख अंग 'एक लाख हरिनाम जप' को छोड़कर बाकी प्रकार की भक्ति व सेवा को अधिक महत्त्व दे रहा है

वह अपने आप को ही छल रहा है, अतः उसका मंगल होने की सम्भावना नहीं है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु नवद्वीपवासियों को उपदेश कर रहे हैं–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
प्रभु बले – कहिलाञ एइ महामन्त्र।
इहा जप गिया सबे करिया निर्बन्ध।।
इहा हइते सर्व–सिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर।।

(श्रीचैतन्य भागवत मध्य 23.76–78)

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा–

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यही महामन्त्र है। तुम सब इसका **निर्बन्ध** में जप किया करो। इसके जप से ही तुम्हें सारी सिद्धियाँ मिल जाएँगी। इस जप का कोई विधि–विधान नहीं है, केवल सब समय इसे बोलते रहो।

'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर उपरोक्त पयार में उल्लिखित शब्द **निर्बन्ध** का अर्थ निम्नलिखित पयार में इस प्रकार स्पष्ट करते हैं।

चारिबार माला फिरिले एक ग्रन्थ हय।
एक ग्रन्थ नियम करिया क्रमशः वृद्धि करिते–करिते
सोलह ग्रन्थे एक लक्ष नाम निर्बन्ध हइबे।।

(मूल बंगला ग्रन्थ श्रीहरिनाम चिन्तामणि 10.50 फुटनोट 18)

अर्थात्, 'हरे कृष्ण महामन्त्र' की चार माला करने से एक ग्रन्थि होती है। अतः आरम्भ में एक ग्रन्थि नित्य करने का संकल्प करके क्रमशः ग्रन्थियों की संख्या बढ़ाते रहनी चाहिए। सोलह ग्रन्थि (64 माला) करने से एक **निर्बन्ध** यानी कि एक लाख नाम संख्या पूर्ण हो जाती है।

इस विषय को विस्तारपूर्वक इस प्रकार समझें–

एक महामन्त्र =

16 नाम (32 अक्षर)

माला के एक मनके पर एक महामन्त्र का जप होता है। अतः–

एक मनका =

एक महामन्त्र का जप

एक माला =

108 मनके = 108 महामन्त्र X 16 नाम = 1728 हरिनाम

एक ग्रन्थि =

4 माला = 432 महामन्त्र = 6912 हरिनाम

चार ग्रन्थि =

16 माला = 1728 महामन्त्र = 27,648 हरिनाम = 25,000 ग्राह्य हरिनाम

एक निर्बन्ध (16 ग्रन्थि) =

64 माला = 6912 महामन्त्र = 1,10,592 हरिनाम = 1 लाख ग्राह्य हरिनाम

माला पर जप करते समय हरिनाम की गति बढ़ाने के कारण विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की सम्भावना रहती है और मन की गति रुक जाती है। तथापि कुछ नामों का अस्पष्ट उच्चारण हो जाने की सम्भावना के कारण तथा कुछ नाम कानों में सुनाई न देने के कारण 16 माला को 25 हजार हरिनाम तथा 64 माला को एक लाख हरिनाम के रूप में गिना जाता है।

अतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुर यहाँ पर नित्य एक लाख हरिनाम जप के लिए उपदेश कर रहे हैं।

श्रीप्रेमविलास ग्रन्थ के 18 वें अध्याय में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर भक्तों से कहते हैं कि–

प्रथमे कृष्णपद प्राप्ति लक्ष्य जारा।
से लइबे लक्षनाम संख्या आपनारा।।

अर्थात्, जिसके जीवन का सबसे प्रमुख उद्देश्य कृष्ण चरणों की प्राप्ति है उसे नित्य नियमपूर्वक एक लाख हरिनाम का जप अवश्य करना चाहिए।

'श्रीहरिनाम चिन्तामणि' ग्रन्थ में 3 लाख नाम जप का महत्त्व–

एक ग्रन्थ संख्या करि आरम्भिवे नाम।
क्रम तिन लक्ष स्मरि पूरे मनस्काम।।

(15.36)

एक ग्रन्थि (चार माला) से आरम्भ करके धीरे-धीरे एक लाख और फिर तीन लाख जप तक पहुँचना चाहिए। ऐसा करने से मन की समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

मने ह'बे आज लक्ष नाम ये करिव।
क्रमे क्रमे तिन लक्ष नाम ये स्मरिव।।

(12.30)

अर्थात्, नामनिष्ठ साधुओं के संग से साधक के मन में यह धारणा बनने लगती है कि आज मैं एक लाख हरिनाम करूँगा और धीरे-धीरे मैं तीन लाख हरिनाम प्रतिदिन किया करूँगा।

परन्तु, कुछ साधक संख्या बढ़ाने के प्रति उदासीन रहते हैं। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामीजी का कहना है कि–

"हमने अपने शिष्यों से कम से कम सोलह माला का जप करने को कहा है। सोलह माला जप कुछ भी नहीं है। वृन्दावन में बहुत से भक्त हैं, जो 120 माला का जप करते हैं। अतः सोलह माला न्यूनतन संख्या है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि पाश्चात्य देशों में 64 माला अथवा 120 माला करना एक दुष्कर कार्य है।"

(भक्तिरसामृतसिन्धु पर आधारित प्रवचन दि. 20/10/1972)

समस्त आचार्यों ने हमेशा अपराध रहित जप पर ही बल दिया है, जो केवल निरन्तर हरिनाम द्वारा ही सम्भव है।

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी बड़ी रहस्यमय बात बताते हैं कि, "भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने एक अमूल्य ग्रन्थ लिखा था जिसे उन्होंने गंगा नदी में सिर्फ इसलिए बहा दिया था क्योंकि उसे देखकर उनके विद्वान् मित्र को बड़ा दुख हुआ था। क्योंकि उस मित्र ने बड़े कष्ट से एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की थी कि उसके मतानुसार पूरे विश्व में ऐसा ग्रन्थ किसी ने नहीं रचा होगा। परन्तु महाप्रभु के दिव्य ग्रन्थ को देखकर उसका भ्रम टूट गया, अतः वह दुखी हो गया। तो महाप्रभु ने अपने दिव्य ग्रन्थ को गंगा नदी में बहा दिया। यदि वह ग्रन्थ आज उपलब्ध होता तो नाम जप का रहस्य और अधिक दृष्टिगोचर होता।"

श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी जी श्रीचैतन्य महाप्रभु की वाणी को तथा उस रहस्य को दोहराते हुए कहते हैं कि–

"जो नित्य कम से कम एक लाख नाम करेगा उसका निरन्तर हरिनाम स्वाभाविक रूप से शुरू हो जाएगा। तथा उस जापक की संख्या पूर्वक नामजप में वृद्धि होती जाएगी। नित्य एक लाख नाम करने वाले साधक के घर में कलि (कलियुग का राजा) नहीं घुसेगा, जो कलह, अशान्ति, झगड़े तथा रिद्धि–सिद्धि न रहने का कारण है। आज घर–घर में टी.वी., अखबार, मोबाइल आदि के रूप में वह घुस गया है। एक लाख नाम करने वाले को अगर कलि बुरी नजर से देखेगा तो महाप्रभु ने उसे कहा है कि, 'मैं तेरा सर्वनाश कर दूँगा। अतः वह एक लाख नाम करने वाले से दूर रहता है। मृत्यु के समय ऐसे साधक को ले जाने के लिए भगवान् स्वयं आते हैं। जो हरिनाम करता है उसके लिए कलियुग भी सत्युग है, और जो हरिनाम नहीं करता उसके लिए सत्युग भी कलियुग के समान है। अतः एक लाख हरिनाम जप सबके लिए अनिवार्य है।"

–मुकुन्द दास

श्रीनित्यानन्द प्रभु

निताई

श्रीसंकर्षण तत्व : श्रीबलरामजी का अवतार

अन्य नाम – निताई, निताई चाँद और बचपन में चिदानन्द
वस्त्र रंग – नीला
जन्म – माघ शुक्ला त्रयोदशी संवत् 1530
जन्मस्थान – ग्राम. एकचक्रा जि. वीरभूम (बंगाल)
माता – श्रीमती पद्मावती
पिता – श्रीहाड़ाई पण्डित, (श्रीमुकुन्द)
पत्नी – श्रीमती वसुधा एवं श्रीमती जाह्नवा (दोनों श्रीसूर्यदास पण्डित की पुत्रियाँ)
पुत्र – श्रीमती वसुधाजी के श्रीवीरचन्द्र (वीरभद्र) गोस्वामी
पुत्री – गंगा माता गोस्वामिनी
गुरुदीक्षा – श्रीलक्ष्मीपति प्रभुपाद (पंढरपुर में)
जीवनकाल – 12 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग
20 वर्ष तक अवधूत संन्यासी रहे।
35 वर्ष की अवस्था में श्रीचैतन्य के आदेश से विवाह किया।
श्रीचैतन्य से 12-13 वर्ष बड़े थे।
आज भी शृंगारवट, वृन्दावन में आपके वंशज हैं।
अप्रकट – संवत 1598, तिथि अज्ञात, श्रीगोपीनाथजी में लीन। कुल लगभग 68 वर्ष पृथ्वी पर रहे।



श्रीचैतन्य महाप्रभु

गौर

श्रीश्रीराधाकृष्ण का मिलित अवतार

अन्य नाम – निमाई, गौर, गौरांग एवं विश्वम्भर
वस्त्र रंग – पीला।
अंग रंग – स्वर्ण जैसा
जन्म – फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 1542
जन्मस्थान – नवद्वीप (बंगाल)
माता – श्रीमती शची देवी
पिता – श्रीजगन्नाथ मिश्र
दादी – श्रीमती कलावती देवी
दादा – श्रीउपेन्द्र मिश्र
बड़े भाई – श्रीविश्वरूप (प्रकाण्ड पण्डित महापुरुष)
14-15 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग कर संन्यासी बने नाम हुआ शंकरारण्य।
दो-ढाई वर्ष बाद पंढरपुर में देहत्याग।
पत्नी – 1. श्रीवल्लभ आचार्य की पुत्री श्रीमती लक्ष्मीप्रिया। सर्पदंश से अप्रकट हुई।
2. श्रीसनातन मिश्र की पुत्री श्रीमती विष्णुप्रिया।
गुरुदीक्षा – श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी के शिष्य-श्रीपाद ईश्वरपुरी जी से (गया में)
संन्यास – श्रीपाद केशव भारती जी से।
जीवनकाल – महाप्रभु 24 वर्ष गृहस्थ में रहे। संन्यास लेकर 6 वर्ष जगन्नाथपुरी (नीलाचल) में रहे। कुल लगभग 48 वर्ष पृथ्वी पर रहे।
(अंतिम 12 वर्ष को गम्भीरा लीला भी कहते हैं)
अप्रकट – आषाढ़ शुक्ल सप्तमी सं. 1590 तीसरा प्रहर, श्रीजगन्नाथ जी में लीन

हरिबोल

॥ जय जय श्रीनिताई-गौर ॥

।। श्रीश्रीनिताई-गौर चालीसा ।।

रचयिता : डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

दोहा-

श्रीचैतन्य कृपानिधि, कलियुग के अवतार।
प्रेमभक्ति वितरण करी, दिया सभी को तार।।
श्रीनित्यानन्द गदाधर, श्रीअद्वैत श्रीवास।।
बार बार सुमिरन करूँ, हरिदासन का दास।।

चौपाई-

श्रीचैतन्य कृपा के सागर। राधाकृष्ण मिलित तनु आगर।।1 ।।
नवद्वीप प्रकटे श्रीनिमाई। जगन्नाथ पितु शचि हैं माई।।2 ।।
मास फाल्गुन तिथि पूर्णिमा। चन्द्रग्रहण सुन्दर थी सुषमा।।3 ।।
भागीरथि का दिव्य किनारा। निम्ब वृक्ष का सघन सहारा।।4 ।।
हरि हरि बोलें नर और नारी। नारायण प्रकटे सुखकारी।।5 ।।
शिशु रूप चंचल अति भारी। पढ़ें लिखें नहिं मात दुखारी।।6 ।।
हुए युवा प्रकटी पंडिताई। अध्यापक बने गौर निमाई।।7 ।।
चारों ओर हुई परसिद्धि। कृष्ण प्रचारक नाम महानिधि।।8 ।।
यही पढ़ाते आठों याम। मात पिता धन कृष्ण ही धाम।।9 ।।
माता शीघ्र वचन है लीना। लक्ष्मीप्रिया विवाह शुभ कीना।।10 ।।
अल्प समय दुख देखी माता। सर्प दंश से सिधरी ब्याहता।।11 ।।
पुनः मात इक वधू ले आई। विष्णुप्रिया शुभ लक्षण ब्याई।।12 ।।
मात इष्ट वर सेवा करती। रहती कृष्ण शरण मन हरती।।13 ।।
अब प्रभु लीला विस्तर कीन्हा। नित्यानन्द मिले तब चीन्हा।।14 ।।
संकर्षण के रूप अपारा। सर्व जगत् के आप अधारा।।15 ।।
त्रेता में श्रीराम-लक्ष्मण। द्वापर में बलराम-कृष्ण बन।।16 ।।
कलि में गौर-निताई प्रेमधन। प्रकटे सच्चिदानन्दरूपघन।।17 ।।

नित्यानन्द बड़े अनुरागी। नाम–प्रेम की भिक्षा माँगी।।18।।
ब्राह्मण भ्रात जगाई–मधाई। दोनों मद्यप नीच कसाई।।19।।
मद–मदान्ध ह्वै घायल कीना। प्रकटे गौर शस्त्र गहि लीना।।20।।
चक्र–सुदर्शन गर्जन कीना। नित्यानन्द हरि वर्जन कीना।।21।।
मारण हित नहीं तव अवतारा। प्रेम प्रदायक रूप तिहारा।।22।।
साधु हुए जगाई–मधाई। हरि किरपा वरणी नहिं जाई।।23।।
मुसलमान काजी की लड़ाई। संकीर्तन पर रोक लगाई।।24।।
नरसिंह रूप भये तब गौरा। भय से अकुलित काजी बौरा।।25।।
नतमस्तक चरणन में दौड़ा। दिया वचन है तब प्रभु छोड़ा।।26।।
अभिमानी दिग्विजयी सुधारा। अरु प्रकाशानन्द उद्धारा।।27।।
आँगन कीर्तन नित्य श्रीवासा। परम एकान्त हरी के दासा।।28।।
जगन्नाथ तव धाम पियारा। निरतत रथ सँग अति विस्तारा।।29।।
श्रीहरिदास नाम अवतारा। राजा प्रतापरुद्र बलिहारा।।30।।
झारिखण्ड मृग व्याध नचाये। हरि हरि बोलें अश्रु बहाये।।31।।
श्री वृन्दावन को प्रकटाया। ब्रज गरिमा का दरश कराया।।32।।
राधा–कृष्णकुण्ड अति शोभित। श्रीगोवर्धनधर मन लोभित।।33।।
शिक्षा अष्टक निःसृत कीना। षड्गोस्वामी आदृत कीना।।34।।
शास्त्र प्रमाण भागवत मानी। जीव कृष्ण का दास बखानी।।35।।
जपतप संयम ज्ञान योग मधि। सर्वश्रेष्ठ मग भक्ति वारिधि।।36।।
कलि में केशव कीर्तन सारा। और नहीं गति इसके पारा।।37।।
महामन्त्र हरेकृष्ण है ध्याना। गोपी प्रेम है लक्ष्य बखाना।।38।।
प्रेम विरह ने सब कुछ हरना। झरझर अश्रु बहे ज्यों झरना।।39।।
तड़पत प्राण 'कृष्ण' बिनु हीना। जगन्नाथ में भये तब लीना।।40।।

दोहा–

गौर–निताई प्रेम से, जो ध्यावे चित लाय।
प्रेम भक्ति सुदृढ़ करे, निर्मल होत कषाय।।
श्रीवृन्दावन में वास लह, संकीर्तन आधार।
'कृष्ण' प्रेम की वारिधि, हरिनाम का सार।।

श्रीशिक्षाष्टकम्

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।।1।।

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।2।।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।3।।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।4।।

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकज स्थित धूलिसदृशं विचिन्तय।।5।।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गदगद-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम-ग्रहणे भविष्यति।।6।।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द-विरहेण मे।।7।।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टुमाम्
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।8।।

(इनका अर्थास्वादन छठे भाग में पठनीय है।)

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मंगलाचरण

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांश्च,
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण - रघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं,
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।।1।।

श्रीगुरुदेव-प्रणाम

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्रील माधव गोस्वामी महाराज-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी - नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीतिसद्धर्म - गुरुप्रीति - प्रदर्शिने।
ईशोद्यान - प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार - सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द - सम्वर्धनाय ते नमः।।3।।

श्रील प्रभुपाद-प्रणाम

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने।।
श्रीवार्षभानवीदेवी-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः।।
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य-श्रीरूपानुगभक्तिद।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तुते।।
नमस्ते गौरवाणी श्रीमूर्त्तये दीनतारिणे।
रूपानुगविरुद्धाऽपसिद्धान्त - ध्वान्तहारिणे।।4।।

श्रील गौरकिशोर-प्रणाम

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये।
विप्रलम्भरसाम्भोधे! पादाम्बुजाय ते नमः।।5।।

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणाम

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते।।6।।

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी-प्रणाम

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः।
वैष्णवसार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः।।7।।

श्रीवैष्णव प्रणाम

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।8।।

श्रीगौरांगमहाप्रभु-प्रणाम

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः।।9।।

श्रीराधा-प्रणाम

तप्तकाञ्चनगौरांगि! राधे! वृन्दावनेश्वरि!।
वृषभानुसुते! देवि! प्रणमामि हरिप्रिये!।।10।।

श्रीकृष्ण-प्रणाम

हे कृष्ण! करुणासिन्धो! दीनबन्धो! जगत्पते!।
गोपेश! गोपिकाकान्त! राधाकान्त! नमोऽस्तुते।।11।।

श्रीसम्बन्धाधिदेव-प्रणाम

जयतां सुरतौ पंगोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधामदनमोहनौ।।12।।

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणाम

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीश्रीराधा-श्रीलगोविन्ददेवौ, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि।।13।।

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणाम

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षण् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।।14।।

श्रीतुलसी-प्रणाम

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।15।।

समष्टिगत-प्रणाम

गुरवे गौरचंद्राय राधिकायै तदालये।
कृष्णाय कृष्णभक्ताय तद्भक्ताय नमो नमः।।16।।

पंचतत्व-प्रणाम मंत्र

जय श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द।।17।।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।18।।

आनन्द के सागर में,
आनन्द की लहरें...

निरन्तर श्रीहरिनाम-जप के प्रभाव से विषयवासना के अनन्त संस्कार नष्ट होकर चित्त में केवल हरिनाम का ही राज्य रह जाता हैं। परिणामस्वरूप चित्त में नित्यनिरन्तर केवल नाम की स्फुरणा उठती रहती है, मानों-आनन्द के सागर में, आनन्द की लहरें! इस अनुभव का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। परन्तु श्रील रूपगोस्वामीपाद उसका वर्णन इस प्रकार से करते हैं-

तुण्डे ताण्डविनी रति वितनुते तुण्डावली-लब्धये
कर्ण-क्रोड़-कड़म्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः-प्राङ्गण-सङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्ण-द्वयी।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 1.11)

"मैं नहीं जानता हूँ कि, 'कृष्-ण' के दो अक्षरों ने कितना अमृत उत्पन्न किया है। जब कृष्ण के पवित्र नाम का उच्चारण किया जाता है, तो यह मुख के भीतर नृत्य करता प्रतीत होता है। तब हमें अनेकानेक मुख प्राप्त करने की लालसा जाग उठती है। जब वही नाम कानों के छिद्रों में प्रवेश करता है, तब करोड़ों-करोड़ों कर्ण-प्राप्ति की इच्छा होने लगाती है। और जब यह नाम हृदय के आँगन में नृत्य करता है, तब यह मन की समस्त गतिविधियों को जीत लेता है, जिससे समस्त इन्द्रियाँ स्तब्ध हो जाती हैं।"

अर्थात्, श्रील रूपगोस्वामीपाद का कहना है कि, 'यदि मुझे लाखों जिह्वाएँ और करोड़ों कान मिल जाएँ, तब कहीं जाकर मैं नाम का आनन्द उठा पाऊँ। इतना आनन्द भरा हुआ है इस कृष्ण नाम में!

1

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

चण्डीगढ़
दि. 5-6-2007

परमाराध्यतम प्रेमास्पद प्रातः स्मरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा उत्तरोत्तर विरहाग्नि बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

शरणागति ही भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र साधन

गीता में भगवान् ने अर्जुन को उन्हें प्राप्त करने के अनेक साधन बताये, जैसे निष्काम कर्म, योग, ध्यान आदि-आदि।

अर्जुन ने पूछा, 'कृष्ण! मुझे तो कोई एक साधन बता दो, जो न चाहते हुए भी मैं अपनी ओर आपको आकर्षित कर सकूँ।' तब भगवान् कृष्ण बोले, 'मैं तुमको एक गुप्त साधन बताता हूँ, जो इस गीता का प्राण समझना, इस साधन से भक्त मुझे आकर्षित कर जबरन मुझे खरीद लेता है, वह है **शरणागति**।'

शरणागति एक ऐसा प्रभावशाली भाव है, जो मेरे हृदय को मथकर बेबस कर देता है। इस जगत में इसका प्रत्यक्ष उदाहरण बता रहा हूँ। एक बिल्ली जो अपने बच्चे को मुख में पकड़कर इधर-उधर ले जाती रहती है, तब बच्चे को कोई चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि वह अपनी माँ की शरण में है। माँ ही बच्चे की चिन्ता करती रहती है।

दूसरा उदाहरण है- बन्दरिया का। बन्दरिया अपने बच्चे को पकड़कर इधर-उधर कूदती नहीं है, स्वयं बच्चा उसकी छाती को अपने हाथों से पकड़ा रहता है। अतः बच्चे को गिरने का भय रहता है, बन्दरिया बे-चिन्ता से इधर-उधर कूदती रहती है।

तीसरा उदाहरण मानव का है। जब तक शिशु 4–5 साल का नहीं हो जाता, तब तक माँ को शिशु की हर प्रकार से चिन्ता रहती है। खाने–पिलाने की, स्नानादि कपड़े बदलने की, अपनी छाती से लगाकर सुलाने की आदि–आदि, क्योंकि शिशु माँ की शरण में है। बच्चा बड़ा होने पर माँ उसकी परवाह नहीं करती।

इसी प्रकार शरणागत भक्त भगवान् का शिशु है। ज्ञानी भक्त भगवान् का बड़ा बालक है। वह स्वयं अपने आप को सम्भालने में समर्थ है। शरणागत भक्त स्तन पीता शिशु है। यह अपने आप को सम्भाल नहीं सकता। भगवान् के आश्रित ही जीवन यापन करता है, अतः भगवान् को भक्त की देखभाल करनी पड़ती है।

जिस प्रकार शिशु माँ–माँ बोलकर माँ को अपने पास बुला लेता है। माँ चाहे किसी काम में कितनी ही व्यस्त हो, शिशु की आवाज सुनकर शिशु के पास दौड़कर आ जाती है। इसी प्रकार भक्त माँ–माँ **(हरे-कृष्ण-राम)** बोल कर भगवान् को प्रकट कर देता है। माँ को बच्चे के पास आने में कुछ देर हो सकती है, परन्तु भगवान् को आने में देर नहीं होती। क्योंकि भगवान् तो कण–कण में, हर अवस्था में, हर समय मौजूद रहते हैं।

इस जगत में मिलिट्री में शरणागत शत्रु को भी मारते नहीं हैं, जब वह हाथ ऊपर कर देता है। अतः शरणागति की बड़ी महिमा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शरणागति आये कैसे ? इसका उत्तर है, भगवान् का नाम बारम्बार उच्चारण करने पर। जब बार–बार एकाग्र चित्त से अर्थात् कान व मन को साथ में रखकर बारम्बार बोलेगा तो भाव प्रकट होने लगेगा, वह भाव होगा भगवान् से मिलन का। इस बार–बार उच्चारण से संसार से वैराग्य का उदय होगा। जब संसार से राग हटने लगेगा तो स्वतः ही भगवान् से राग जुड़ने लगेगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। ऐसी परिस्थिति अवश्यमेव प्रकट होगी ही। कोई भी आजमाकर देख सकता है। एक दिन में

नहीं तो एक माह में हो जायेगी। यदि भक्त अपराध न हो, घमण्ड न हो तो।

भगवान् से राग होने पर, भगवान् की तरफ मन खिंचेगा। उस खिंचाव में रोना आयेगा। धीरे–धीरे निरन्तर रोने लगेगा। जब निरन्तर रोयेगा तब समझना होगा कि, दसों इन्द्रियाँ एक जगह पर हो गईं, अब शत–प्रतिशत ध्यान का आकर्षण भगवान् की तरफ हो गया, संसार से एकदम नाता टूट चुका। जब संसार से नाता नहीं रहा तो अन्तःकरण खाली नहीं रहता, उसमें या तो संसार भरेगा या भगवान् भरेगा।

भगवान् भरने के कारण उसमें नाम, रूप, गुण, लीला, धाम स्फुरित होने लगेंगे। अब विरहाग्नि तीव्र हो जायेगी तो अन्तःकरण में जो दुर्गुण भरे पड़े थे, वे दुर्गुण, सद्गुण भरने के कारण अश्रुधारा के साथ बहकर अन्तःकरण से बाहर आ जायेंगे। अब तो उसका संसार कृष्ण का संसार हो जायेगा। जब संसार ही कृष्ण का होगा, तो सभी प्राणी कृष्ण में है, कृष्ण से हैं, कौन विपरीत रहेगा। सभी प्राण समान प्यारे बन जायेंगे। अब उसे किसी भी चीज की कभी–कमी नहीं रहेगी। कृष्ण जब उसके हो गये, तो कृष्ण की सभी सम्पत्ति उसकी हो गई। जैसे पिता की सम्पत्ति का हक अपने पुत्र पर रहता है, उसी प्रकार भक्त का हक भगवान् की सम्पत्ति पर स्वतः ही हो जायेगा।

अतः मेरे अन्तरंग प्रियजनों, हरिनाम को अधिक से अधिक कान व मन को केन्द्रित करके जपा करो। सारा जीवन सुखमय बीत जायेगा। अन्त में गोलोक प्राप्ति होगी। भगवान् स्वयं आकर भक्त को विमान में बिठाकर अपने घर में ले जायेंगे। जो घर अनन्त युगों से नहीं मिल रहा था वह आज मिल गया। एक साधारण सी सोच है, कि जब कोई भी घर से बाहर निकल जाता है, वह जब तक घर में वापस नहीं आता तब तक चैन से नहीं रह पाता।

2

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 5-6-2007

चि. रघुबीर, अमरेश, हरि ओम तथा बच्चे,

हरिनाम में रति हो।

हरिनाम से किसी भी चीज की कमी नहीं रहती

जिस मानव को हरिनाम स्मरण का चस्का अर्थात् नशा लग गया वह अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों की सम्पत्ति का स्वामी बन गया। क्यों बन गया ? इसका कारण है, भगवान् को इसने खरीद लिया। जिस प्रकार मीरा कह रही है...

लियो जी मैं तो लियो गोविंदो मोल,
कोई कहे चौडे, कोई कहे छानै लियोजी बजन्ता ढोल,
कोई कहे सूंगो कोई कहे महंगो लियोजी तराजू तोल।

इसी प्रकार से जो ज्यादातर हरिनाम पर अपना जीवन चलाता है, गोविन्द उसका बन जाता है। उसको छोड़कर भगवान् कहीं नहीं जाते। सम्पूर्ण सृष्टियों को रचने वाले भगवान् ही है। भगवान् के बिना सृष्टि में कुछ भी नहीं है।

हरिनाम जापक को इसी जन्म में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इसके संसार के सभी काम सुलभ हो गए। जो अनन्तकोटि जन्मों से भगवान् की गोद से बिछुड़कर भटक रहा था, अब उनकी गोद में जा बैठा। उसने तो अपनी 21 पीढ़ियों को अपने साथ ले जाकर उनका उद्धार कर दिया। जैसा कि भगवान् का वचन है।

कृत जुग-त्रेता-द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कली हरिनाम ते पावहिं लोग।।

सत्युग में हजारों साल भगवान् का ध्यान करने से, त्रेतायुग में बहुत सा धन लगाकर यज्ञ करने से, द्वापरयुग में बड़ी श्रद्धा से पूजा करने से भगवान् दर्शन देते थे। वह कलियुग में कमरे में पंखा–हीटर लगाकर शान्त चित्त से बैठकर हरिनाम जप करने से हो सकता है। कहीं जंगल में जाने की, धूप–सर्दी, बरसात, भूख–प्यास सहन करने की आवश्यकता नहीं। लेकिन मानव कितना दुर्भागा है, इतनी सुविधा होने पर भी हरिनाम जप नहीं करता। इसका दण्ड भविष्य में भोगना पड़ेगा। चौरासी लाख योनियों में जन्म लेकर असीम दुःख भोगना पड़ेगा।

कलियुग में करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक ही भगवान् को चाहता है। हर कोई धन, वैभव, नौकरी, पुत्रादि चाहता है, भगवान् को कोई नहीं चाहता। कलियुग में भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। ग्राहकों के बिना भगवान् का मन लगता नहीं। भक्तों से ही भगवान् का संसार बनता है, अतः भगवान् को भक्तों की बहुत आवश्यकता रहती है, यदि कोई–कोई थोड़ा–सा भी साधन भजन कर लेता है तो भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। जैसा कि भक्त प्रह्लाद अपने सहपाठियों से कह रहे हैं कि भगवान् को पाना कठिन नहीं है।

शिवजी उमा को कह रहे हैं–

जाऊ नाम जप एकहि बारा। उतरहिं नर भव सिंधु अपारा।।
जाऊ नाम जप सुनो भवानी। भव बंधन काटहि नर ज्ञानी।।

निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि कोई साधक कान से सुनकर एक माला भी कर लेता है तो भगवान् उसे अपना लेते हैं क्योंकि एक माला में **1728** हरिनाम का उच्चारण होता है। इतनी बार भगवान् को पुकारता है, लेकिन मन साथ में होना आवश्यक है। मन के इधर–उधर भटकने से, भगवान् अन्तर्यामी हैं, इसलिए नहीं आयेंगे।

जिस प्रकार 1–2 साल का एक शिशु माँ–माँ कहकर माँ को बुला लेता है, इसी प्रकार भक्त नाम उच्चारण कर, भगवान् को

बुला लेता है। भगवान् तो हर जगह, हरपल, मौजूद रहते हैं। पुकारने की देर है, पुकारते ही तुरन्त प्रकट हो जाते हैं।

कितना सुगम सरल साधन है, तब भी मूर्ख मानव अचेत होकर सोता रहता है। समय बरबाद कर, जीवन नष्ट करता रहता है। उसे पता नहीं है कि काल सिर पर मुख फाड़े खड़ा है, अचानक निगल जायेगा। फिर रोता हुआ जायेगा।

अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) से पुकारना मन–कान को सटाकर (जोड़कर) ही होता है। मन नहीं होगा तो कान सुनेगा भी नहीं।

राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय।।
कर में तो माला फिरे जीभ फिरे मुख माहि।
मनवा तो चहुँ दिशि फिरे यह तो सुमरन नाहि।।

कहते हैं मन नहीं रुकता। यह कहना भी बेकार है। परीक्षार्थी 3 घंटे तक परीक्षा देता है तो मन न रुकने पर फेल हो जाता है। फिर वहाँ मन 3 घंटे कैसे रुक जाता है ? इसका आशय यह हुआ कि हरिनाम में लोभ नहीं है। हरिनाम के बराबर संसार में कोई लाभ है ही नहीं।

लाभ कि कछु हरिनाम समाना। जेहि गावहि श्रुति वेद पुराना।।
हानि कि कछु जग में कछु भाई। जपिए न नाम नर तन पाई।।

हरिनाम को महत्त्व देवे तो संसार का कोई काम अधूरा रहता ही नहीं। क्योंकि वह हरिनाम (भगवान्) के शरणागत हो चुका। गीता के कथनानुसार शरणागति गीता का प्राण है। शरणागत को भगवान् एक क्षण भी नहीं छोड़ते।

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

शरणागति तब ही प्रकट होगी जब मनसहित कान हरिनाम सुन पायेगा। बार–बार रटने से भगवान् के लिए छटपट होकर

अश्रुधारा बहने लगेगी। अश्रुधारा का साक्षात् रूप शरणागति ही है। अश्रुधारा न आने पर शरणागति होगी ही नहीं।

रामवचन–

जौं सभीत आवा सरणाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

हिंसक प्राणी भी शरणागत को दुःखी नहीं करेंगे क्योंकि उनमें भी भगवान् विराजमान हैं। वह मित्र बन जायेंगे।

श्रीगौरहरि ने उच्च स्वर के कीर्तन का आविष्कार किया। यह कीर्तन भी कान+मन को सटाकर होता है, इस कीर्तन में मन बाहर जाता नहीं। लेकिन थकान जल्दी हो जाती है, जप में घंटों तक थकान नहीं होती यदि मन से जप हो तो।

बुढ़ापा आने पर अपने बुजुर्ग सन्त एक जगह बैठकर 5–5 लाख नाम जप करते थे। उच्च स्वर के कीर्तन, पठन से दूर ही रहते थे। अशक्तता के कारण एक जगह बैठकर नाम करते थे।

मन को रोकने के लिए प्रसाद पाते वक्त नाम जप करते रहना चाहिए ताकि खून में सात्विकता आरोपित हो जाये। सात्विकता में मन रुक जाता है, तामस में चंचल रहता है। पानी भी नाम जप करते हुए पिया जाए तो वह चरणामृत बन जाता है।

नाम का अभ्यास हर समय करते रहना चाहिए। आदत होने से स्वतः ही नाम अन्दर चलता रहता है।

निष्कर्ष यह निकलता है, कि जो साधक हरिनाम को तत्परता, श्रद्धा व प्रेम से संख्यापूर्वक जपता है, उसको सांसारिक व पारलौकिक सम्पत्ति बड़ी सरलता से स्वतः ही उपलब्ध हो जाती है। सभी उसके मित्र बन जाते हैं।

जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई।।

नित्य 3 लाख जप बड़ा प्रभावशाली दृष्टिगोचर हो रहा है, जैसा कि मैं अनुभव कर रहा हूँ। मुझे मठ व बाहर के सभी भक्त कितना चाह रहे हैं, किसी चीज की कमी है ही नहीं। बड़ी श्रद्धा से सभी सेवा हो रही है। जबकि मैं चाह भी नहीं रहा हूँ। इति।

3

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 21-8-2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय तथा अष्ट प्रहर स्मरणीय, श्रीगुरुदेव भक्ति-सर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवान् के प्रति शुद्ध नाम, भगवद् सुख के हेतु प्रार्थना।

अनन्त कोटि भानु उदय का उजाला

गुरु तथा ठाकुर द्वारा प्रेरित होकर यह लेख लिख रहा हूँ। मैं अल्पज्ञ अधम उजाला करने में असमर्थ हूँ। क्योंकि इसमें श्रीगुरुदेव की शक्ति काम कर रही है। इस तथ्य को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में कोई काट नहीं सकता।

जो हरिनाम भगवान् के सुख के हेतु किया जाता है वह हरिनाम शुद्ध निर्मल भक्ति में आता है एवं जो हरिनाम स्वयं के सुख के हेतु लिया जाता है अर्थात् ऐसा भाव कि, मुझे सब भक्त कहेंगे, मेरा परिवार सुख समृद्ध हो जायेगा आदि-आदि। यह हरिनाम शुद्ध भक्ति में न आकर मलिन काम भक्ति में आता है।

जैसे यज्ञ पत्नियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के लिए, कि भगवान् को सुख होगा इसलिए पतियों के नाराज होने पर भी भोजन लेकर गईं। गोपियाँ पतियों के विरुद्ध होने पर भी कृष्ण के सुखविधान में अपना जीवनयापन करती रहती थीं। जैसे छोटा बच्चा माँ-माँ करके पुकारता है, तो माँ को कितना सुख मिलता है। स्त्री अपने पति के लिए हर प्रकार से सेवा में संलग्न रहकर पति का सुख विधान करती रहती है, तो वह सती श्रेणी में आती है। शिष्य अपने गुरु की सेवा में संलग्न रहकर गुरुदेव जी का सुख-विधान करता है, तो वह गुरुनिष्ठ श्रेणी में आता है। इसके पीछे-पीछे भगवान् घूमते रहते हैं कि इसकी पद-रज मुझ पर पड़ती रहे एवं मैं पवित्रता लाभ

करता रहूँ। प्रह्लाद भगवान् के सुख के लिए कीर्तन करते थे तो भगवान् पत्थर के खम्भे से प्रकट हो गये। मीरा भगवान् को पद्य सुना-सुनाकर भगवान् को सुखी करती रहती थी तो अन्त में भगवान् के श्रीविग्रह में समा गई।

जब भगवान् के सुख के लिए भक्ति की जाती है तो शीघ्र शरणागति भाव जागृत हो जाता है। भगवान् गीता में कहते हैं कि, भक्त जिस तरह मुझे भजता है अर्थात् याद करता है, वैसे ही मैं उसको याद करता हूँ। Action Reverse Reaction जैसी हरकत होगी वैसी ही बरकत होगी। गरीबी को लेकर सुदामा द्वारिका गये तो महल, मकान, वैभव मिल गया। नरसी भक्त का भात भर दिया, उसको भात की जरूरत थी। बिल्वमंगल ठाकुर को भगवान् की जरूरत थी तो भगवान् ने उसके अंधा होने के कारण उसका हाथ पकड़कर रास्ता दिखाया। कबीर जी को भक्ति सहित ज्ञान मिल गया। रैदास को दिव्य दृष्टि मिल गयी। तुलसीदास और वाल्मीकि को भगवद् लीलाओं का अन्तःकरण में प्रकाश हो गया तो रामायण रच दी।

जिस भाव में भगवान् को पुकारा जाता है उसी भाव में भगवान् को जबरन आना पड़ता है। भगवान् के सुख के प्रति पुकारना अति श्रेष्ठतम भक्ति पथ है। अपने सुख के लिए पुकारना भी निम्न श्रेणी की भक्ति है। न करने से तो यह भी उत्तम ही है।

आप प्रश्न कर सकते हो कि हरिनाम भगवान् के हेतु कैसे लिया जाता है ? तो ठाकुरजी बता रहे हैं कि जैसे शिशु माँ को माँ-माँ कहकर पुकारता है। जबकि वह घर के बाहर खेल में मस्त रहता है। जब माँ याद आती है, तो माँ-माँ कहकर पुकारता है। कानों में आवाज पड़ते ही सब काम-काज छोड़कर माँ बच्चे के पास भाग के आ जाती है। क्या वह घर में रह सकती है ? इसमें माँ को सुख होता है।

इसी प्रकार जब भक्त भगवान् को **हरे**, **राम**, **कृष्ण** (माँ-माँ) कहकर पुकारता है, तो भगवान्, जो वात्सल्य रस के समुद्र हैं, क्या

रह सकते हैं ? लेकिन पुकारने में भेद रहता है। अन्तःकरण में ऐसा गहराई से चिन्तन करे कि मैं भगवान् का बच्चा हूँ, भगवान् मेरे बाप हैं। सभी तो भगवान् के बच्चे हैं। मैं उनको पुकारूंगा तो वे मेरे पास अवश्य आयेंगे। ऐसी पक्की भावना हो तो शीघ्र ही शरणागति का भाव निःसन्देह जागृत हो जायेगा। इसमें भगवान् को सुख होगा क्योंकि भक्त संसारी वस्तु माँग नहीं रहा है। मुझे ही माँग रहा है। यह है नाम श्रवण का तरीका। स्वयं भगवान् प्रेरणा पूर्वक लिखवा रहे हैं। मैं 100% कुछ नहीं लिख सकता। अब आप कुछ भी समझें। अपराध मोल ले सकते हो।

भगवान् के सुख हेतु की गई भक्ति से ऊपर कोई भक्ति नहीं है। लेकिन यह भक्ति तब ही जागृत होगी जब भक्त का 100% ध्येय भगवद् प्राप्ति ही होगा। घर छोड़ने से भगवद्प्राप्ति ध्येय नहीं हुआ करता तब तो सभी ब्रह्मचारी भगवान् को प्राप्त कर लें! इनमें अन्य इच्छा अन्तःकरण में रहती है। करोड़ों में से कोई एक को भगवद्प्राप्ति करने का ध्येय होता है। सच्चे दिल से पूछकर देखे कि वास्तव में उनके मन में क्या प्राप्त करने की इच्छा है?

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

पूरी दृष्टि से देखना पड़ेगा कि ठाकुरजी के पुजारी का पहला धर्म है एक लाख हरिनाम करना। इसको समय की कमी भी नहीं है। एक लाख हरिनाम यानि 64 माला कर सकता है। क्या पुजारी करता है ?

यदि नहीं करता तो ठाकुर की अर्चन पूजा केवल कपटमयी होती है। जब हरिनाम श्रवण के अभाव में प्रेम होगा ही नहीं, तो क्या प्रेम से ठाकुर का श्रृंगार व प्रसाद अर्पण होगा ? मैंने देखा है कि, ठाकुर जी का श्रृंगार कई कई दिनों में होता है। प्रसाद को जितनी देर प्रसाद मन्दिर में रखा होगा, उतनी देर तक पुजारी को ठाकुर प्रसाद पा रहे हैं 'यह चिन्तन होना श्रेयस्कर है।'

आरती के समय दर्शनार्थी को यह मालूम नहीं रहता कि आज ठाकुर जी ने किस रंग की पोशाक पहन रखी है, क्योंकि दर्शन

अन्दर की आँखों से नहीं चर्म नेत्रों से होता है, जो स्थायी नहीं होता। जो कीर्तन नाच–नाच कर होता है, उसमें पुलक, अश्रुपात होना चाहिए, केवल पेट का खाना digest हो जाये तो भूख लग जाये! ऐसा भाव न हो। नृत्य कीर्तन में ऐसा सभी को नहीं होता परन्तु अधिकतर ऐसा ही हो रहा है। ठाकुर का दर्शन अन्तःकरण से होना चाहिए, मूक बातें भी होनी चाहिएँ तो ठाकुर का जवाब भी मिलता है।

जब तक कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम श्रवण नहीं होगा तब तक द्वापर का धर्म अर्चन–पूजन ढकोसला मात्र ही होगा। प्रथम कक्षा पास की नहीं और B.A. में बैठ गए। क्या B.A. का प्रमाण पत्र मिल जायेगा ? कितनी मूर्खता की विडम्बना है। साँप की लकीर पीटे जाओ लेकिन साँप तो हाथ से निकल गया। मैं अर्चन पूजन के विपरीत नहीं लिख रहा हूँ, अवश्य होना चाहिए।

यस्मिन् तुष्टे जगत तुष्टम्

यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् प्रसन्न होते हैं, तो सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

नोट– Action Reverse Reaction यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। जिस भाव से भक्त भगवान् को भजता है, भगवान् भी वैसे ही भाव से भक्त को भजते हैं। उनके सुखविधान से स्वतः ही साधक का भी सुखविधान होगा। ठाकुर का सुख विधान ही ठाकुर की शुद्धभक्ति है, वरना अशुद्ध कामभक्ति होगी। कामना पूरी हो जायेगी, परन्तु भगवान् से प्रेम नहीं होगा। शरणागति भाव नहीं आयेगा, पंचम पुरुषार्थ (भगवद्प्रेम) से वंचित रहना पड़ेगा।

नोट– किसी भी भाव का सम्बन्ध हो, दास का, सखा का, वात्सल्य का, मधुर भाव का सभी भावों में भगवान् का सुख विधान हो सकता है। नाम श्रवण करते हुए ऐसी भावना दिल में रखने से भगवान् का सुख विधान कर सकते हैं। जैसा भगवान् को भजोगे वैसा भगवान् तुमको भजेंगे। उनको सुख होगा तो स्वतः ही साधक को सुख होगा।

4

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 9-07-2007

परमाराध्यतम महात्मा वर्ग को अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा तात्त्विक बुद्धि अर्पण करने की करबद्ध प्रार्थना।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा,

"तू समस्त धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आ जा। तेरी पूरी जिन्दगी की जिम्मेदारी मैं लेता हूँ।"

शरण में कैसे आया जाता है ? केवल संसार से पूर्ण अलगाव करके कि यहाँ सभी माया का आधिपत्य है, जो पूर्णरूप से झूठा है, अनित्य है, स्वार्थमय है, कलहकारक है, दुःखों का भण्डार है। जब यह भाव अन्तःकरण में बैठ जायेगा तो स्वतः ही सहज रूप में हरिनाम स्मरण होने लगेगा।

लेकिन यह भाव आये कैसे ? यह तब ही आयेगा जब ज्ञान दृष्टि से चारों तरफ दृष्टि डालेगा कि यहाँ कोई भी चीज या प्राणी स्थिर नहीं है। सभी काल के गाल में जा रहे हैं। अतः यहाँ पर मन को चिपकाना व्यर्थ है। मन को तो हरिनाम स्मरण में चिपकाना सर्वोत्तम होगा। तब मन एक क्षण भी कहीं नहीं जायेगा, क्योंकि पूर्ण वैराग्य अन्तःकरण में जम गया। जब तक वैराग्य नहीं होगा, तब तक असली हरिनाम स्मरण हो ही नहीं सकता। कितनी ही माला फेरते रहो कुछ उपलब्धि नहीं होगी। केवल सांसारिक लाभ जरूर होगा।

जब वैराग्य असली होगा, तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दुर्गुण स्वतः ही हट जायेंगे। फिर भगवद्सेवा में और गृहस्थ धर्मपालन सेवा में कोई अन्तर नहीं होगा। जब तक उक्त दुर्गुण अन्तःकरण में रहेंगे तब तक भजन केवल कपटमय होगा। पुलक, अश्रुपातादि अष्ट सात्विक विकार को धारण नहीं कर सकेंगे।

जौं सभीत आवा सरणाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

सभीत का आशय है, संसार से वैराग्य का भाव। संसार दुःखमय दिखाई देगा तथा महसूस होगा।

अपराध व मान–प्रतिष्ठा तब ही आरोपित होगी जब वैराग्य की हृदय में कमी रहेगी। जब मन से संसार ही हट जायेगा तो उक्त भाव आ ही नहीं सकते और यदि आते हैं तो पूर्ण वैराग्य नहीं है।

अपने जीवन को भी रसमय बनाना होगा। खाने–पीने, सोने तथा विश्राम की तरफ साधक का झुकाव नहीं रहेगा। अष्टप्रहर ठाकुर की याद में ही व्यतीत होगा। कभी नाम स्मरण करने लगेगा, कभी शास्त्र अवलोकन करेगा, कभी संसार की नश्वरता पर विचार करने लगेगा, कभी विचार करेगा कि अब तक मुझे ठाकुर दर्शन क्यों नहीं हुआ ? क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मुझे ठाकुरजी से मिलायेगा ? तो वह रो पड़ेगा। भूख, प्यास जड़ से समाप्त हो जायेगी। कभी हँसेगा, कभी नृत्य करेगा, कभी मौन धारण कर एकान्त में निर्जीव सा होकर घंटों तक बैठा रहेगा। रात की नींद भाग जायेगी। चाँद को देखकर, मोर की कुहू–कुहू की आवाज सुन, बादलों की काली घटा देख आदि–आदि उद्दीपन भाव पर रीझकर अपने आप को निर्जीव सा महसूस करने लगेगा। यह है, विरही सन्त के अन्तःकरण की स्थिति।

यदि कोई इसे पकड़कर छोड़ेगा तो वह पागल सा बनकर दौड़ने लगेगा। बारम्बार हँसेगा। यह है विरही सन्त का ऊपरी लक्षण। अन्दर का लक्षण तो कोई विरला सन्त ही पहचान सकेगा।

ऐसी अवस्था वाले को भगवद्–दर्शन होता ही रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसी अवस्था कैसे आये ? यह अवस्था अधिक से अधिक हरिनाम करने पर हरिनाम ही कृपा कर के प्रदान कर देता है। अन्य साधन से कभी भी नहीं आ सकती। इसलिए साधक का ध्यान केवल मात्र हरिनाम स्मरण की तरफ ही हो।

यह अवस्था संसार से वैराग्य हुए बिना नहीं आ सकती। उक्त स्थिति के सन्त का दर्शन और वार्तालाप से तुरन्त ही दर्शक का

मन, जो संसार में ओतप्रोत रहता था, शीघ्र वैराग्य को प्रकट कर लेता है। लेकिन ऐसे सन्त के दर्शन किसी बड़े भाग्यशाली मानव को ही हुआ करते हैं, जिसकी पूर्व जन्मों की सुकृति होती है। भगवान् ही सुकृति वाले मानव को ऐसा संयोग प्रदान करते हैं।

बिनु हरिकृपा मिलहि नहिं सन्ता।

लेकिन माया ऐसी प्रबल है कि महान् सन्तों को भी पैरो नीचे कुचल देती है, केवल शरणागत भक्त से ही डरती है। क्योंकि इसके पीछे भगवान् रहते हैं।

कृष्ण यदि छूटे भुक्ति मुक्ति दिया।
कभु प्रेम भक्ति ना देय राखे लुकाईया।।

भगवान् अपनी भक्ति किसी को बड़ी मुश्किल से देते हैं। संसारी वैभव, भुक्ति (भोग) आदि देने में हिचकते नहीं हैं। परन्तु अपनी भक्ति को छुपाकर रखते हैं, क्योंकि ऐसे शरणागत भक्त की पूरी जिम्मेदारी लेकर उसके पीछे–पीछे घूमते हैं, ताकि इसकी चरण–रज मुझ पर पड़ती रहे, तो मैं पवित्र बनता रहूँ।

भगवान् साफ घोषणा करके कहते हैं कि जो मेरे भक्त का बैरी होगा वह मेरा भी बैरी है।

मानत सुख भक्त सेवकाई। भक्त वैर, वैर अधिकाई।।
सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी।।

यह लेख किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखा गया है। ऐसा गम्भीर लेख लिखने में मैं बिल्कुल सक्षम नहीं हूँ।

द्वात्रिंशदक्षरं मन्त्रं नामषोडशकान्वितम्।
प्रजपन वैष्णवो नित्यं राधाकृष्णस्थलं लभेत्।।

(पद्मपुराण से उद्धृत)

सोलह नामों से युक्त बत्तीस अक्षरों वाले 'हरे कृष्ण महामन्त्र' को नित्य जपने वाला वैष्णव, श्रीराधाकृष्ण के गोलोक धाम को प्राप्त कर लेता है।

5

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

चण्डीगढ़
दि. 11/09/07

परमादरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन–स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

हरिनाम में रुचि क्यों नहीं होती?

प्रथम– तो इसका मुख्य कारण है– संसार में आसक्ति। मन में दो प्रकार की ही आसक्ति हुआ करती है। एक आसक्ति रहती है संसारी एवं दूसरी आसक्ति होती है पारमार्थिक अर्थात् सन्तों व भगवान् से। जब एक आसक्ति विलीन हो जाती है तो दूसरी आसक्ति स्वतः ही सहज में ही अन्तःकरण में आकर भर जाती है।

दूसरा– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है शारीरिक रुग्णता। जब शरीर में कोई भी रोग होगा तो मन का झुकाव कष्ट की ओर होगा।

तीसरा– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है पूर्व जन्मों के संस्कार। साधुसंग के अभाव में अच्छे संस्कार जागृत नहीं होते हैं।

चौथा– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है कुसंग– जैसे, टी. वी. अखबार तथा मोबाइल का संग। इनका संग करने से संसारी वासनाएँ जगती रहती हैं। श्रीहरिनाम का सेवन करते समय अन्तः–करण को दूषित करती रहती हैं।

पाँचवाँ– कारण है– काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष का आक्रमण–इनसे जो हरिनाम स्मरण में बाधा पड़ती रहती है, उसके कारण उक्त सभी वेग सात्विक भावों को नष्ट करते रहते है।

छठा– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है परस्पर निन्दा करना, जिसमें साधु और भगवान् की निन्दा सुनना व कहना तो

जघन्य अपराध में आता है। ऐसे लोगों से तो बात भी नहीं करनी चाहिए। भगवान् की निन्दा का आशय है, धर्मग्रन्थों को मायिक, प्राकृत समझकर निन्दा करते रहना।

सातवाँ– हरिनाम में रुचि न होने का कारण है, ज्ञान मार्ग में भटक जाना। **ज्ञानी स्वयं को ही भगवान् कहता है। यह भक्तिमार्ग का जघन्य विरोधी है, इसमें सेवा भाव का अत्यन्त अभाव रहता है।**

ऐसे तो हरिनाम में रुचि न होने के और भी कारण है, परन्तु मुख्य कारण तो सात ही हैं। यदि इन उक्त कारणों से बचा जाये तो हरिनाम में रुचि न होने का निश्चित ही कोई कारण नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी आजमाकर देख सकता है।

अब इनसे बचा कैसे जाये ? इनसे बचने का एक ही उपाय है–

Chant Harinam Sweetly & Listen by Ears

सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहिं।।

जिसकी 4 माला उक्त प्रकार से कान से सुनकर हो जायेगी, उसकी उक्त लिखी हुई अड़चनें सहज ही में दूर हो जायेंगी।

नित्य एक लाख अर्थात् 64 माला का नियम जो ले लेगा, उसके घर पर श्रीचैतन्य महाप्रभु का वास अवश्य ही हो जायेगा। जैसा कि स्वयं महाप्रभु जी ने अपने जनों को बोला है, कि

'एक लाख नाम नित्य करो। वहाँ कलियुग का शीघ्र निष्कासन हो जायेगा। वरना उस घर में कलह होता रहेगा।'

प्रत्यक्ष में हम देख रहे हैं कि, हर घर में जहाँ हरिनाम का आविर्भाव नहीं है, वहाँ बाप–बेटे में, स्त्री–पुरुष में, भाई–भाई में आदि जगह–जगह, समाज में, गाँव में, शहर में, देश–देश में, पूरी मृत्युलोक में अर्थात् संसार में कलि महाराज के कोप का शासन चल रहा है। सभी दुःखी हैं। खान–पान, रहन–सहन सब दूषित हो गया। प्रेम का नामोनिशान मिट गया। सब जगह स्वार्थ घुस गया। पैसे के लिए गला काटा जा रहा है। कोई सुनने वाला नहीं है। पैसा

देकर बदमाशों की जीत हो जाती है। गरीब का भगवान् के अलावा कोई साथी नहीं है। सभी दुःख सागर में डूबे जा रहे हैं। अतः सतर्क होकर उचित मार्ग पकड़ो।

यह मार्ग आपको बचा सकता है। हरिनाम की 64 माला करने लगो तो यहाँ पर सत्युग का आगमन हो जायेगा। कलि कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। हरिनाम ही जापक की रक्षा और पालन करता रहेगा। बाकी सभी चक्की में पिस जाएंगे। जापक बच जायेगा।

विचार करो, इस युग में कितना सहज, सरल मार्ग आपको जीवनयापन करने को मिला है। इस मार्ग में कहीं पर जाना भी नहीं है। घर बैठे कमाई का साधन मिल रहा है। गर्मी सताये तो पंखा चलालो, सर्दी लग रही है तो हीटर चलालो, तूफान आ रहा हो तो खिड़की दरवाजे बन्द कर लो, किसी भी तरह की दुविधा नहीं है।

कैसे भी बैठकर, जमीन पर, कुर्सी पर, पलंग पर, छत पर चलकर, सोकर, हरिनाम को कान से सुनकर जपते रहो, किसी प्रकार की अड़चन है ही नहीं एवं इसी जन्म में भगवान् से मिल लो तथा आवागमन के दारुण दुःख से छुट्टी पा लो। यदि ऐसा शुभ-अवसर मिलने पर भी हरिनाम की शरणागति नहीं कर रहे हो तो आपके समान दुर्भागा संसार में कोई नहीं होगा।

करोड़ों में से कोई एक को ही ऐसा शुभ अवसर मिलता है। फिर अन्त समय पछताना पड़ेगा। थोड़ा विचार तो करो कि क्या धनी को सुख है, गरीब को सुख है, पशु को सुख है, पक्षी को सुख है, किसको सुख है ? सभी लोग आहार, निद्रा, भय, मैथुन में ही जीवन गुजार रहे हैं। अंधे होकर जीवन बिता रहे हैं। अज्ञान की भी कोई हद है।

मनुष्य जन्म रूपी हीरा मिला था। उसे कूड़े में फेंक कर रो रहे हैं। ना समझी के कारण इस हीरे की कीमत नहीं समझ सके। जिस हीरे से भगवान् भी खरीदे जा सकते थे। भगवान् की सम्पत्ति के मालिक बन सकते थे। हाथ से अवसर निकाल दिया। अब तो न जाने कितने करोड़ों साल तक दुःख भोग करना पड़ेगा। बाहरी अज्ञान ने खूब डुबोया। अब तो भविष्य में रोना ही रोना हाथ लगेगा।

भगवान् हृदय में कैसे प्रकट होते हैं?

सुमरिए नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

शिववचन

कान और मन को संलग्न कर हरिनाम करना चाहिए। नाम करते करते कुछ दिनों बाद भगवद् स्वरूप अन्तःकरण में अपने आप प्रकट हो जायेगा। श्रीगुरुदेव जी ने हरिनाम रूपी बीज कान रूपी पाईप में डाला, यह बीज अन्तःकरण रूपी जमीन में जा गिरा। अब जापक इसको बार-बार जप रूपी पानी देगा, तो जिसका जैसा पिछले जन्मों का संस्कार होगा उसी संस्कार के प्रेशर से अधिक व कम दिनों में हरिनाम रूपी बीज अंकुरित हो जायेगा। उस अंकुरित बीज से श्रीकृष्ण रूपी पौधा बाहर निकलेगा, जिसको साधक (जापक) देख कर आनन्दसिंधु में तैरने लगेगा। तैरने से उसे प्रेम रूपी रस का स्वाद आने लगेगा एवं मस्ती में रमण करता रहेगा।

हरिनाम रूपी बीज में अनन्त वेद-शास्त्र, पुराण ओत-प्रोत रहते हैं परन्तु साधक जब जप स्मरण रूपी पानी देता रहेगा तो एक दिन ये शास्त्र उसके अन्तःकरण में प्रकट हो जायेंगे। जैसा गीता कहती है, बुद्धियोग का आविर्भाव होगा। ददामि बुद्धियोगं...

जिस प्रकार बड़ या पीपल का बीज, जो राई से भी छोटा होता है, वह जमीन में बोने से और पानी देने से अंकुरित होकर फिर कुछ दिनों व महिने के बाद एक विशाल वृक्ष का रूप बनकर सबको अपनी छाया व फल देकर उपकार करता रहता है। इस बीज में वृक्ष छिपा हुआ रहता है। इसी प्रकार हरिनाम बीज में श्रीकृष्ण का रूप, गुण, लीला तथा धाम समाहित रहते हैं। स्मरणपूर्वक अभ्यास करने पर प्रकट हो पड़ते हैं। **अतः निष्कर्ष यह हुआ कि जापक नाम जपते हुए भगवान् का स्वरूप देखने का प्रयास न करे। स्वतः ही जपते-जपते स्वरूप सहित सभी लीला, गुण स्फुरित होने लगेंगे।** बड़ के बीज में जैसे पेड़ दिखाई नहीं देता इसी प्रकार हरिनाम में श्रीकृष्ण दिखाई नहीं देते। हरिनाम जपने से समय पाकर निश्चित ही दिखाई देंगे।

6

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

चण्डीगढ़
दि. 12/9/2007

परमश्रद्धेय परमआदरणीय भक्तगण,

अधमाधम दासानुदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

हरिनाम में से भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रकट हो जाते हैं?

संसार का उदाहरण देकर इसको भक्तगण बहुत अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं। बड़ का बीज या पीपल वृक्ष का बीज राई से भी छोटा होता है। क्या इसमें बड़ दिखाई देता है ? आप बोलोगे, नहीं!

मैं कहूँगा मुझे दिख रहा है। आप बोलोगे, 'बिल्कुल झूठ बोल रहे हो।' मैं खड्डा खोदकर बीज को खड्डे में गाड़ दूँगा और पानी से खड्डे को भर दूँगा। कुछ दिन बाद उसमें अंकुर प्रकट हो जायेगा तथा एक माह में पत्ते, टहनियाँ आ जायेंगी। एक साल में विशाल आकार लिए हुए पत्ते, फूल, फल से पेड़ लद जायेगा। फिर आपको लाकर दिखाऊँगा कि देखो मैं झूठ नहीं कह रहा था, अब देखो इस नन्हें से बीज में यह विशाल वृक्ष जो छिपा हुआ था प्रकट हो गया, तब आपको पूर्ण विश्वास हो जायेगा कि वास्तव में बात सत्य ही है।

दूसरा उदाहरण, राम शब्द में राम की आकृति रूप दिखाई देती है ? आप कहोगे, 'नहीं।' मैं कहूँगा, 'मुझे तो दिखाई देती है।' आप कहोगे, 'बिल्कुल झूठ बोल रहे हो।' 'मैं कहूँगा, 'अब मैं तुमको दिखाता हूँ, देखना इस शब्द में राम प्रकट होगा।

मैं राम को पुकारूँगा, राम-राम, तो राम शीघ्र आकर खड़ा हो जायेगा। राम कहाँ से प्रकट हुआ ? शब्द से। अब मैंने तो उसे बुला लिया परन्तु मुख फेरकर मैं बैठ गया, तो वह नाराज होकर चला

जायेगा। वह सोचेगा कि इन्होंने मुझे बुलाया और मेरी ओर नजर भी नहीं की।

इसी प्रकार कान और मन को संलग्न कर हरिनाम उच्चारण करना पड़ेगा। तो नाम में से कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। कृष्ण तो प्रकट हो गये परन्तु, आपका मन बाजार में चला गया तो कृष्ण मन में विचार करेंगे कि बड़ा बेवकूफ है, मुझे बुला तो लिया और आप चले बाजार में तो मैं अब क्यों रहूँ? मैं भी यहाँ से चला जाता हूँ।

इस प्रकार के नाम जप से केवल सुकृति इकट्ठी होगी जो सांसारिक लाभ करा देगी। भगवद् प्रेम प्राप्त नहीं होगा क्योंकि इस नाम में आदर नहीं है। अवहेलना पूर्वक नाम लिया गया है।

श्रीगुरुदेव जी ने हरिनाम बीज कान रूपी पाइप में डाला, यह हरिनाम बीज अन्तःकरण रूपी जमीन में जा गिरा, अब साधक (माली) ने उसमें उच्चारण रूपी जल सींचा नहीं तो बीज नष्ट हो जायेगा। जब इस बीज को बारम्बार जप रूपी जल से सींचा जायेगा तो इसमें से अंकुर रूपी कृष्ण प्रकट हो जायेंगे। यह अंकुर तना, शाखा, परशाखा, पत्ते, फूल, फल रूपी रूप, गुण, लीला, धाम में स्फुरित हो जायेगा। अतः लिखा है–

शिव वचन–

सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे।।

नाम कान और मन को सटाकर (संलग्न कर) लेते रहो, एक दिन भगवद् रूप, गुण, लीला आदि स्वतः ही प्रकट हो जायेंगे।

एक लाख नाम तो प्रत्येक गृहस्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासी को जपना परमावश्यक है, तब ही कुछ उपलब्धि हो सकेगी। वरना व्यर्थ का परिश्रम समझें। भगवद् सेवा भी नीरसमयी होगी।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परस्पर प्रभू अनुगामी।।

शिववचन– प्रभु श्रीराम जी अपने राम नाम का ही अनुगमन करते हैं, अर्थात् नाम लेते ही नाम के पीछे दौड़े आते है।

जब मायिक व्यक्ति ही नाम लेने पर प्रकट हो जाता है, तो भगवान् तो हर जगह हर समय मौजूद रहते हैं। शीघ्र ही नाम लेते ही प्रकट हो जाते हैं।

70 साल की आयु के उपरान्त भक्त को हरिनाम के ही आश्रित रहकर अपना जीवन व्यतीत करना Most Essential है। मठ में रहो या घर में रहो, एकान्त में वास कर अधिक से अधिक 1 लाख से 3 लाख तक हरिनाम स्मरण ही भगवद्चरणों में पहुँचा कर पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था उदय करा देता है तथा अष्ट-सात्त्विक विकार शरीर पर दृष्टिगोचर होने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में भक्त क्षण-क्षण में विरहसागर में परमानन्द से तैरता रहता है। केवल भगवद् चिन्तन के अलावा उसे कुछ भी अनुभव में नहीं आता।

उक्त स्थिति का भक्त प्रवर अन्य भक्तों पर अपने दर्शन और वार्तालाप से अपना पूरा प्रभाव डाल देता है। उसके द्वारा संसारी प्राणी का निश्चित ही उद्धार हो जाता है। उसकी आकर्षण शक्ति दूर तक प्रभाव करती रहती है।

सभी गुरुवर्ग जो वृद्धावस्था में पहुँच गए हैं, उन्हें एकान्त में कुटी बनाकर विश्राम करते हुए अष्टयाम हरिनाम की माला करते हम देख रहे हैं। श्रीप्रमोदपुरी महाराज, श्रीभक्ति विज्ञान भारती महाराज, श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज, श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज आदि अपनी माला झोली में हाथ डालकर हरिनाम करते रहते हैं।

हे ब्रह्मचारी गणो! यह ऐसी अवस्था तब ही उपलब्ध हो सकेगी जब किशोर या युवा अवस्था से हरिनाम की 64 माला स्मरण करने लगोगे। यदि ऐसी स्थिति अभी से नहीं होने लगेगी तो वृद्धावस्था में हरिनाम स्मरण होना निश्चित ही असम्भव होगा।

ब्रह्ममुहूर्त में अर्थात् ढाई-तीन बजे उठकर शौचक्रिया या हाथ मुँह धोकर अपनी जपमाला पर हरिनाम आरम्भ करना होगा। 8 बजे तक आरती, भावमय दर्शन, पाठ, कीर्तन करना होगा।

अब यदि 9 बजे ठाकुरजी का शयन हो जाये तो 10 बजे तक सभी ब्रह्मचारी गण शयन कर सकते हैं एवं 5 घंटे सो कर ब्रह्ममूहुर्त में 3 बजे जगकर एक लाख हरिनाम अर्थात 64 माला सरलता से कर सकते हैं। मठ शान्तिमय हो सकता है। मठ की सेवा भी सरसमयी हो सकती है। हरिनाम के अभाव में सेवा भाव नीरस रहता है, जिसको बोलो कि, यह सेवा आपको करनी है, तो उस पर वज्र सा गिर जाता है। बेमन की सेवा क्या सरसमयी हो सकती है ?

कई मठों में 9 बजे ठाकुर जी को शयन हो जाता है। तो ब्रह्मचारी गण को पूरी नींद का लाभ मिल जाता है। युवकों को 6 घंटे नींद लेना परमावश्यक है वरना भजन को सुस्ती दबा लेती है। 5 घंटे रात में सोना एवं दोपहर में 11 बजे ठाकुरजी को शयन कराने से सभी साधक 5 बजे तक माला करें, 2 घंटे सो भी सकते हैं। जयपुर में श्रीराधा–गोविन्द मन्दिर में ऐसा ही होता है।

मठ केवल मात्र भजन के हेतु स्थान बना है। यहाँ पर भजन न होकर भोजन होता रहे तो कलि महाराज का आवागमन होता रहेगा। झगड़ा फसाद होता रहेगा। सेवा भाव का अभाव होगा। जो सेवा होगी वह अवहेलनापूर्वक होगी।

यदि ठाकुरजी का वर्तमान का नियम बदल दिया जाये तो मठ में सुख का विस्तार फैल जाये। इसमें भोजन भण्डारी की सहायता करना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि समय पर अमणिया तैयार हो जाये तो ठाकुरजी का भोग जल्दी समय पर लग जाये, तो सभी को सहज ही में सुविधा हो जाये।

सभी के लिए एक लाख हरिनाम सरलता से हो सकता है।

अभ्यास से 64 माला (एक लाख नामजप) 3½ घंटे में ही हो जाता है।

8 घंटे–दफ्तर का,

2 घंटे–आने जाने में।

5 घंटे सोना–रात्रि 10 से 3 बजे तक।

2 घंटे–शौच–स्नान–प्रसाद

5 घंटे–हरिनाम जप

2 घंटे–Extra फिर भी बचते हैं जो बच्चों को पढ़ा सकते हो।

उक्त प्रेरणा ठाकुरजी से मिली है, यदि इसे सब सत्य मानें तो शीघ्र आदेश का पालन होना श्रेयस्कर होगा।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 6.16–17)

हे अर्जुन! जो अधिक खाता है अथवा अत्यन्त कम खाता है, जो अधिक सोता है अथवा जो पर्याप्त नहीं सोता, वह योगी नहीं बन सकता। जो खाने, सोने, आमोद–प्रमोद (आहार– विहार) तथा काम करने की आदतों में यथायोग्य रहता है वह योगाभ्यास द्वारा समस्त सांसारिक क्लेशों को नष्ट कर सकता है।

7

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 13/10/07

परमश्रद्धेय भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

हरिनाम का अद्भुत अकथनीय प्रभाव

चहु जुग चहु श्रुति नाम प्रभावा। कलि विशेष नहि आन उपावा।।
कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

नामनिष्ठ को अन्त समय में स्वयं भगवान् लेने आते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर।

नामापराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचकर नाम को कान से सुनकर करने पर नाम का अवर्णनीय प्रभाव होता है।

मेरे माध्यम से ठाकुर जी की प्रेरणा से श्रीगुरुदेव के आदेशानुसार निम्न प्रभाव हरिनाम से 99% गारंटी से होता है। सन्तों के चरणों में मानसिक रूप से बैठकर साधक यदि सन्तों को नाम सुनाता रहे तो सन्तों का आशीर्वाद प्राप्त होगा तथा भगवान् की साक्षात् कृपा लाभ होगी। आजमाकर देख सकते हो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

- एक करोड़ जप से सुस्ती जावे।
- दो करोड़ जप से रोग न आवे।
- तीन करोड़ जप से मन लग जावे।
- चार करोड़ जप से विरह हो जावे।

- पाँच करोड़ जप से मन अकुलावे।
- छः करोड़ जप से नींद भाग जावे।
- सात करोड़ जप से परमानन्द पावे।
- आठ करोड़ जप से दुर्गुण भाग जावे।
- नौ करोड़ जप से सद्गुण आवे।
- दस करोड़ जप से भाव उपजावे।
- ग्यारह करोड़ जप से सम्बन्ध बन जावे।
- बारह करोड़ जप से प्रेम उपजावे।
- तेरह करोड़ जप से दर्शन पावे।
- चौदह करोड़ जप से आवागमन मिट जावे।
- पन्द्रह करोड़ जप से गोलोक पठावे।
- सोलह करोड़ जप से सेवा पावे।
- सतरह करोड़ जप से अमर हो जावे।

उक्त अवस्थाएँ कलियुग में इससे भी शीघ्र आ सकती हैं। भगवान् समय को नहीं देखते, भक्त की तीव्रता को देखते हैं। भगवान् काल के वश में नहीं हैं। भक्त के वश में हैं। यह अनुभव की बात है, विरही को नींद कब आती है! बार-बार उद्दीपन भाव भक्त को सताते रहते हैं। तब नींद कहाँ?

जब हरिनाम मन से अर्थात् ध्यान से होता है तो जप में समय भी कम लगता है। नये जापक को 7-8 घंटे एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला में लग जाते हैं। जब प्रेम से, ध्यान से होने लगता है, तो 64 माला 4 या 3½ घंटे से भी कम समय में होने लग जाती है। अतः डरने की कोई बात नहीं है। उत्साहपूर्वक हरिनाम करने पर समस्त भौतिक तथा आध्यात्मिक कामनाएँ सहज ही में पूर्ण हो जाती हैं। इसमें 1% भी शक नहीं है।

जब उक्त स्थिति आ जाती है, तो समझो उसे अखिल अनन्त ब्रह्माण्डों का आधिपत्य मिल गया। अनन्त जन्मों के दारुण दुखड़े से पिण्ड छूट गया, जब तक शरीर में रुग्णता नहीं हो तब तक यह कमाई कर लेना, परमानन्द की बात होगी।

समय बड़ी तेजी से गुजर रहा है, अब भी सब कुछ हासिल कर सकते हो वरना अनन्त काल तक रोना पड़ेगा। कोई किसी का नहीं है, केवल भगवान् ही अपना है, जो अहैतुकी कृपा करता रहता है। सभी स्वार्थ के वश सम्बन्ध रखते हैं। मर जाने पर कोई किसी को याद तक नहीं करता।

भगवान् तो असीम दयालु हैं ही, स्वयं भी दयालु बन जाओ। भगवान् को हरिनाम स्मरण द्वारा याद करते रहो, यही स्वयं पर दया की कुंजी है।

इस समय भगवान् अपने ग्राहकों की कमी देखकर सुस्त रहते हैं। जो उनका ग्राहक है, उसे वह शीघ्र ही अपनी शरणागति में शामिल कर लेते हैं। शरणागति फौज कम रहने से भगवान् का मन लगता नहीं है। करोड़ों, अरबों मनुष्यों में कोई एक इस फौज में भर्ती होता है। अब भगवान् किस पर शासन करें। अतः सुस्त बैठे रहते हैं।

पहले तो हजारों सालों में भगवान् भक्त को दर्शन देते थे, वे कलियुग में 24 घंटे में दर्शन दे देते हैं। परन्तु, भगवान् को कोई हृदय से पुकारता भी तो नहीं है। अन्तःकरण में तो संसारी गन्दगी भरी पड़ी है। भगवान् कहाँ आकर बैठे ? आते हैं पुकारने पर, परन्तु जगह नहीं होने से चले जाते हैं। उनको तो स्वच्छ हृदय मंदिर चाहिए, जहाँ पर विश्राम कर सकें।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

शास्त्रों के अनुसार सोलह नाम और बत्तीस अक्षरों वाला यह हरिनाम कलियुग का महामन्त्र है। यह महामन्त्र कलियुग में जीवों का उद्धार करने में सबसे प्रभावशाली मन्त्र है। 'कृष्ण' नाम को छोड़कर दुर्जनों के द्वारा परिकल्पित, छन्दोबद्ध, सुसिद्धान्त विरुद्ध, रसाभास दोषयुक्त पदों तथा मन्त्रों का कदापि जप या कीर्तन नहीं करना चाहिये। आदि गुरु ब्रह्मा ने कलि सन्तरण आदि श्रुतियों के माध्यम से इस तारक ब्रह्म हरिनाम को प्राप्त किया था। पुनः ब्रह्मा के द्वारा श्रुति परम्परा से उनके शिष्य परम बुद्धिमान श्रीनारद गोस्वामी ने इस महामन्त्र को प्राप्त किया था। जो लोग इस महामन्त्र को छोड़कर दूसरों के द्वारा कल्पित पदको महामन्त्र मानकर करते है, वे शास्त्र और गुरु के उल्लंघनकारी हैं।

(अनन्तसंहिता)

8

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 26/09/07

समस्त भक्तगणों के युगल चरण कमल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा एक लाख हरिनाम करने की करबद्ध प्रार्थना एवं भक्ति स्तर बढ़ने का आग्रह।

महाप्रभु गौर हरि का एक लाख हरिनाम जपने का आदेश

महाप्रभु को प्रत्येक पार्षद अपने घर पर प्रसाद पाने का आग्रह किया करते थे, तो महाप्रभुजी ने उनसे बोला कि जो सज्जन नित्य एक लाख हरिनाम करता रहेगा उसके यहाँ घर पर प्रसाद पा सकता हूँ। वैसे उन्होंने कहा, 'जो लखपति होगा उसके घर पर प्रसाद पा सकता हूँ, तो सभी भक्तजन बोले, प्रभुजी हम तो हजार पति भी नहीं हैं, हम आपको प्रसाद कैसे पवा सकते हैं?'

भगवान् गौरहरि बोले, 'आप समझे नहीं, मेरे कहने का आशय है, जो नित्य एक लाख (64 माला) हरिनाम जप करेगा उसके घर पर प्रसाद पा सकता हूँ।' भक्तगण बोले, '64 माला में तो हमारा मन लगातार कैसे लग सकता है?' महाप्रभु जी बोले, 'इसकी चिंता मत करो, इसकी चिंता हरिनाम करेगा। धीरे-धीरे नाम में आनन्द आने लगेगा, तो निम्न कोटि का, जो झूठा और मायिक आनन्द है, जो आनन्द की श्रेणी में आता ही नहीं है, केवल महसूस होता है वह वास्तविक आनन्द नहीं है तब स्वतः ही हरिनाम जपने पर जो आनन्द आयेगा तो मायिक आनन्द छूटता जायेगा।'

धीरे धीरे रे मना बाद में सबकुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा ऋतु आवे फल होय।।
बिबसहूँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहि।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। कोटि जन्म अध नासहूँ तबहि।।

सन्मुख का आशय है, जब श्रीगुरुदेव हरिनाम की दीक्षा देकर चले जाते हैं, तो गुरु-शरणागत शिष्य को हरिनाम की 64 माला का जप करते रहना ही सम्मुख होना है। जब अनचाहे बिना मन से भी हरिनाम जिसके मुख से निकल जाये तो उसके जो रचे-पचे अनेक जन्मों के पाप हैं, वह जल जाते हैं, तो जो साधक प्रेम से हरिनाम करने लगेगा, तो उसको क्या प्राप्ति हो सकती है? अकथनीय है!

गुरुदेव का 1966 में आदेश-

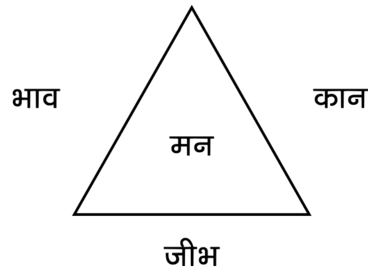
Chant Harinam Sweetly And Listen by Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

(शिववचन)

जो प्रेम से हरिनाम करता है, उसमें अष्ट सात्त्विक विकार, पुलक, अश्रुपात आदि उदय होने लग जाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि, प्रेम से कैसे जपना होता है? ये कान से सुनकर, भक्त शिरोमणि के चरणों में (प्रत्यक्ष तथा मानसिक रूप से) बैठकर, भगवान् के पार्षदों की सिफारिश करवाकर सहज ही में हो सकता है। Detail तो आमने सामने चर्चा होकर ही clear किया जा सकता है। जब अवसर मिलेगा तब सेवा कर सकूँगा।



जीभ से उच्चारण हो, कान से सुनना हो, भगवान् की कृपा का भाव हो। तब शीघ्र ही अष्ट सात्त्विक विकार प्रकट होने लग जाते हैं। जब उक्त दशा होने लग जाती है, तो समझना होगा कि जो

गीता का प्राण है शरणागति, उसका उदय हो जाता है। शरणागत को भगवान् एक क्षण के लिए भी छोड़ते नहीं हैं।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.22)

जो लोग अनन्यभाव से मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए निरन्तर मेरा भजन करते हैं, उनकी जो आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें मैं पूरा करता हूँ और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूँ। इस प्रकार मैं मेरे भक्तों का लौकिक तथा पारलौकिक भार वहन करता हूँ।

शरणागत की पूरी जिम्मेदारी भगवान् लेते रहते हैं। जो कमी है वह पूरी करते हैं और जो उसके पास है उसकी देखभाल व रक्षा करते हैं।

शरणागति का भाव तब ही उदय होगा जब संसार से अलगाव होगा। जब तक संसार अन्तःकरण में रमा रहेगा तब तक शरणागति का भाव लोप रहेगा। हरिनाम स्मरण से ही सभी कुछ उदय हो जाता है। कोई भी आजमाकर देख सकता है, इसमें 1% भी कमी नहीं है।

मथुरा के भक्त दम्पत्ति का एक ही दिन में, 64 माला करने पर उनका दसों अंगुलियों का असह्य दर्द समाप्त हो गया। लगभग दस दिन पीछे की ही चर्चा है, कोई भी मालूम कर सकता है।

मैं लॅबोरेटरी में बैठा रहता हूँ और मेरे गुरुदेव प्रयोग करके दिखाते रहते हैं। मेरा इसमें कोई ज्ञान नहीं है। यह है 3 लाख हरिनाम का प्रभाव, जो नित्य श्रीगुरुदेव जी के आदेश के पालन का अनुशीलन है।

जहाँ कलि का धर्म हरिनाम नहीं होता वहाँ कलि महाराज कलह करवाते रहते हैं। घर-घर में, समाज में, गाँव में, शहर में, देश में, सम्पूर्ण पृथ्वी लोक में, कहाँ कलह नहीं है ? जहाँ हरिनाम

है, वहाँ कलि महाराज जा नहीं सकते क्योंकि वहाँ जाने पर जलकर भस्म हो जाते हैं।

चण्डीगढ़ शहर में बहुत से भक्त 64 माला करने लगे हैं, उनको काफी फायदे होते देखे गये हैं। सभी को करना चाहिए। घर बैठे सभी सुविधाऐं, पंखा, हीटर आदि उपलब्ध हैं। कहीं भी बैठकर हरिनाम कर सकते हैं। भारत में जन्म, अच्छे कुल में, अच्छे पड़ोस में, सत्संग आदि मिलने पर भी जो समय का लाभ नहीं लेता उसे घोर क्लेश उठाना पड़ेगा। हरिनाम से न जाने कितने अकथनीय असम्भव लाभ होते देखे गये हैं। कोई भी आजमाकर देख सकता है। 10 नामापराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचना परमावश्यक है। वरना कुछ मिलेगा नहीं। 64 माला करने वाले के घर में महाप्रभु 24 घंटे रहते हैं। वहीं पर खाना-पीना विश्राम आदि करते रहते हैं। जहाँ भगवान् का हर वक्त रहन सहन हो, क्या वहाँ अमंगल हो सकता है ? वहाँ तो अमंगल की जड़ ही कट जाती है।

मन लगने के उपाय-

(1) ब्रह्ममुहूर्त में उठकर कान और मन को सटाकर (संलग्न कर) हरिनाम करना।

(2) शाम को सूक्ष्म रूप में प्रसाद सेवन करना। वरना आलस्य का प्रकोप होता है।

(3) प्रसाद सेवन करते हुए हरिनाम जप करते रहना ताकि सात्त्विक धारा चल सके। **जैसा अन्न वैसा मन**। पानी भी हरिनाम जपते हुए पिया जाये तो चरणामृत बन जाता है। **जैसा पानी वैसी वाणी**।

(4) रात में सोते समय हरिनाम जपते हुए सोये। ताकि रातभर Circulation चलता रहे।

(5) T.V., अखबार व मोबाइल से दूर रहे। आवश्यक होने पर मोबाइल 10% काम में ले सकते हो।

(6) 64 माला नित्य हरिनाम स्मरण करते रहें। ताकि समय ही न मिल सके।

(7) ग्राम्य–चर्चा (प्रजल्प) से दूर रहे। 64 माला जप से स्वतः ही बरबादी करने का समय मिलेगा ही नहीं।

(8) संयम से जीवनयापन करे। काम–क्रोध सात्विक भाव रस को जला देता है।

(9) दम्पत्ति आपस में झगड़े नहीं, अपराध होगा। लक्ष्मी, रिद्धि–सिद्धि नहीं रहेगी। फिर भजन रसमय बनना तो बहुत दूर की बात है।

(10) सन्त, महात्माओं से प्यार का सम्बन्ध बनाये रखें, ताकि ठाकुर की आप पर दृष्टि हो।

(11) मंदिर में भाव नेत्रों से ठाकुर दर्शन करें, जड़ आँखों से दर्शन होता ही नहीं।

(12) मान–प्रतिष्ठा तथा 10 नामापराध से बचें। Most Essential है।

(13) हरिनाम कान से सुनकर करें।

(14) अश्रु–पुलक न होने पर पश्चाताप करें।

(15) सभी काम भगवान् का समझकर करें। Service (नौकरी) भी भगवान् की ही है।

(16) उद्देश्य केवल मात्र भगवद् प्राप्ति ही हो। घर–बार सब भगवान् का ही समझें।

उक्त प्रकार से सावधानी रखकर 64 माला करते रहे तो उस घर में श्री गौरहरि का हर दम वास रहेगा। वहाँ अमंगल की जड़ ही उखड़ जायेगी। जैसा कि देखने में आ रहा है।

इतने सालों से हरिनाम जप हो रहा है, परन्तु कुछ लाभ नहीं दिख रहा है, क्या कारण है? केवल उक्त लिखा कारण ही है। आजमाकर देख सकते हो। नहीं तो बोलो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की

आवश्यकता नहीं होती। शक्ति रहते कमाई करना, नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ेगा।

मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलने वाला। जब भी होगा तो अरब देशों में हो जायेगा, जहाँ पर भगवान् की भक्ति का नामोनिशान ही नहीं है। गलत प्रचार में मानव भटक रहा है।

कलियुग का समय सब युगों में सर्वोत्तम है, जहाँ कुछ करना ही नहीं पड़ता। घर बैठे हरिनाम करो एवं सुख का जीवन जीओ। भगवान् की गोद में प्राणी जब तक नहीं जाता, तब तक प्राणी दारुण दुःखों में जलता रहता है। संसार में सुख दिखता है, लेकिन है नहीं। धनी दुःखी, गरीब दुःखी, पुत्रवाला दुःखी, न पुत्रवाला भी दुःखी। कोई सुखी है ही नहीं। सुखी वही है, जो सन्तोषी है। जैसा भगवान् ने अपने कर्मों के अनुसार दे दिया, उसी को पाकर जो सन्तोष करता है वही परमसुखी है, आशा ही परम दुःख का कारण है।

सुख की स्थिति केवल मात्र हरिनाम स्मरण से ही आती है। अन्य कोई भी कलिकाल में दूसरा साधन नहीं है।

जाना चहिए गूढ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।(जीभ)
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।

यह लेख मैंने नहीं लिखा, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा लिखवाया गया है। अल्पज्ञ मानव क्या उक्त प्रभावशाली लेख लिखने में सक्षम हो सकता है ? कदापि नहीं। इति

नोट– 64 माला जप से असम्भव सम्भव होता देखा गया है। आजमाकर देखना चाहिए। लेकिन माला कान से सुनकर करे। मान–प्रतिष्ठा व नामापराध से बचकर हो। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

9

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 28/09/2007

परमादरणीय भक्त प्रवर,

आपके चरणारविन्द में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्य बार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

हरिनाम का अकथनीय प्रभाव

चारों युगों में ही हरिनाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग में तो विशेषकर हरिनाम ही स्मरण करने का साधन है, जिसके द्वारा भगवद् शरणागति अल्पकाल में सहज में ही प्राप्त हो जाती है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।
बिबसहुँ जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।

(शिववचन)

भूल से भी यदि हरिनाम मुख से निकल जाये, तो अनेक जन्मों के रचे-पचे पाप जलकर राख हो जाते हैं।

एक ही नाम सर्व पाप क्षय कर देता है, श्रीगौरहरि की घोषणा है।

'एक नाम करें सर्वपाप क्षय'

(चै. चरितामृत.)

नाम प्रसाद शिम्भू अवनाशी। साज अमंगल मंगल रासी।।
नाम प्रभाव जान शिवनी को। कालकूट फल दीन अमी को।।

शिवजी ने हरिनाम का महत्त्व जाना है।

जिनका नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नशाहि।।
नाम सप्रेम जपत अनियासा। भक्त होय गुरु मंगल वासा।।
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहि नर ज्ञानी।।

गुरुदेव वचन–

Chant Harinam Sweetly And Listen By Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

शास्त्रों में अनेक हरिनाम जपने के उदाहरण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। अतः मनुष्य जन्म का लाभ लेना हो तो नित्य एक लाख (64 माला) हरिनाम स्मरण करना चाहिए। जैसा कि महाप्रभु जी ने अपने भक्तों को आदेश दिया है। जो एक लाख नाम जपेगा मैं उस घर को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। जिस घर में भगवान् का वास हो वहाँ अमंगल की जड़ ही कट जाती है। इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है ?

लेकिन माया मोहित मानव की आँखें बन्द रहने से सुअवसर हाथ से निकल जाता है फिर वही चौरासी लक्ष योनी में से भटकना पड़ता है, फिर मानव जन्म कब मिलेगा कोई पता नहीं।

भारत में जन्म मिला, सुस्थान मिला, शुभ पड़ोस मिला, शुभ कुल मिला, माता–पिता भक्त मिले, सद्गुरुदेव की कृपा मिली, सच्चा सत्संग मिल गया, रहन–सहन, खानपान, मकान, जायदाद मुफ्त में मिल गयी। सब सुविधाऐं मिलने पर भी हरिनाम की शरण नहीं हुई तो इससे बड़ा नुकसान क्या हो सकता है ?

भगवान् कह रहे हैं–

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

भक्त जैसा मुझे भजता है, वैसे ही मैं भी भक्त को भजता हूँ। भक्त मेरे लिए अश्रु बहाता है तो मैं भक्त के लिए लगातार अश्रु बहाता हूँ। क्योंकि वह मेरी गोद से अनेक युग काल से बिछुड़ा हुआ है, लेकिन वह इतना माया मोहित है कि मेरी ओर झांकता भी नहीं है।

सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहुँ तबहि।।

मेरे सामने तो आये, तो मैं फौरन उसके पापकर्म समाप्त कर दूँ। बार–बार मनुष्य जन्म देता रहता हूँ, परन्तु, जीव बारबार माया में फँस जाता है।

मानव जन्म मोक्ष का द्वार है, फिर भी मानव इस द्वार में घुसना नहीं चाहता। सन्त कृपा बिना यह द्वार बन्द ही रहता है। जब भगवान् हरि इसके पास सन्त भेजते हैं, तो अभागा मानव उनकी तरफ से आँख मींच लेता है। सन्त कहते हैं, संसार में सुख नहीं है। यह संसार दुःख सागर है। सुख दीखता है, परन्तु यह तेरा भ्रम है। सुख तो भगवद्नाम में है, जो तू नाम को अपनाता ही नहीं है। यह तेरी बड़ी भूल है।

संसार में सभी स्वार्थी हैं। निस्वार्थी, अहैतुक प्रेमी तेरा भगवान् ही है। उस भगवान् से नाता जोड़ ले तो तेरा अनन्त काल का दुःख सदा के लिए मिट जाये। जिनको तू पालता–पोसता है वही तेरे वृद्ध होने पर लात मारेंगे। मरने के बाद एक दिन में भूल जायेंगे।

इन दुःखों का अन्त नहीं होगा, अब भी वैराग्य धारण कर, अपने प्रभु को अपना बना लो। सदा सुख की नींद सोयेगा। श्मशान में तेरा बेटा ही तेरे सिर पर लाठी मारेगा, तू राख का ढेर हो जायेगा जिस पर जंगली जानवर मल–मूत्र करेंगे। रोता हुआ आया था, रोता हुआ जायेगा। क्या साथ लाया था, क्या साथ ले जायेगा ? नरक में दुःख पायेगा, फिर कीट, वृक्ष बन जायेगा। सर्दी, गर्मी, बरसात का ताप तुझे सताएगा। फिर भी चेत न आयेगा। फिर मिट्टी में मिल जायेगा।

कलियुग में कितना सरल साधन है, गर्मी लगे तो पंखा चला लो, सर्दी में हीटर, बरसात में घर। सहज में ही भगवद्प्राप्ति हो जायेगी। भूल कर पछतायेगा, फिर अवसर नहीं आयेगा। अभ्यास करने पर हरिनाम में मन लग जाता है। मन ही नरक ले जायेगा तथा मन ही ठाकुर कृपा करायेगा। परीक्षार्थी 3 घंटे मन कैसे लगा लेता है ? हरिनाम में महत्त्व नहीं दिखता। इससे बड़ा कोई लाभ है ही नहीं।

10

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 3/10/2007

परमादरणीय प्रेमास्पद भक्त शिरोमणि, हितेश जी, श्रीचैतन्यचरण दास जौहर जी तथा धर्मपालजी,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना तथा सप्रेम हरिस्मरण।

संबंध ज्ञान बिना ठाकुर प्रेम शिथिलतापूर्ण

इस जगत् में जिससे सम्बंध होता है, उसी से मायिक प्रेम हो जाता है, उसके सुख दुःख में हम भी सुख दुःख महसूस करते हैं लेकिन यह प्रेम स्वार्थमय होता है। थोड़ी बहुत अन-बन होने से यह मायिक होने की वजह से शीघ्र टूट जाता है।

भगवान् का जो सम्बंध बन जाता है वह चिन्मय व अलौकिक होने से कभी भी टूटता नहीं है, कोई कितना भी तोड़ना चाहे, वह सम्बंध निरन्तर चलता ही रहता है। यह सम्बंध अपनी मर्जी से नहीं हो सकता, हरिनाम स्मरण करते-करते स्वतः ही अन्तःकरण में उदय हो जाता है।

जो अपनी शक्ति से प्रेम जोड़ता है, वह स्थिर नहीं रहता, डगमगाता रहता है तथा प्रेमावस्था छाया मात्र रहती है। एक दिन वह प्रेम गायब भी हो जाता है। नामनिष्ठ का प्रेम स्थायी होता है तथा अन्तिम सांस शरीर से निकलते समय भगवान् उसे लेने स्वयं आते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नामनिष्ठ श्रीहरिदास ठाकुर जी पर पूर्णरूप से लागू होता है। जब हरिदासजी के प्राण शरीर से निकलने लगे तब श्रीगौरहरि ने शीघ्र ही उन्हें अपनी गोद में उठाकर अश्रुधारा से नामनिष्ठ को नहला दिया। भगवान् को प्राप्त करने का कलियुग का धर्म-कर्म हरिनाम है, यह निश्चित किया है। केवल

हरिनाम ही सर्वोत्तम भक्ति है, उसे किसी जीव ने अपनाकर निभाया तो भगवान् उस शरणागत को कैसे त्याग सकते हैं, स्वयं आकर अपने धाम में ले जाकर उसका धूमधाम से स्वागत करते हैं तथा करवाते हैं। इसमें एक प्रतिशत भी अश्रद्धा करने की गुंजाईश नहीं है। यह लेख भगवान् ही लिखवाकर दूसरों की आँखें खोल रहे हैं।

जो कलि का धर्म-कर्म तो अपनाता नहीं है और अन्य साधन यज्ञ, तप, स्मार्त कर्म आदि करता रहता है, उसे भगवान् देखते भी नहीं हैं। न उसे उसका फल प्राप्त होता है। केवल श्रम होता है। थोड़ी बहुत सुकृति मिल जाती है, परन्तु इसमें भी शक ही है।

भगवान् से नाता जोड़ना होता है, जो स्वयं भगवान् ही देते हैं। दास का, वात्सल्य का, मधुर का (मंजरी, सखी) सखा आदि का। इसमें मधुर भाव का सम्बन्ध उच्च नैष्ठिक ब्रह्मचारी का ही होता है, जो गोलोक धाम में से पार्षदगण आते हैं, उन्हीं को यह मधुर भाव शोभा देता है। यदि अपनी मर्जी से यह भाव भक्त बनाने लग जाता है, तो उसे बहुत बड़ा नुकसान भुगतना पड़ता है, क्योंकि यह भाव बहुत उच्चकोटि का तथा निर्मलता का भाव है जो गोपियों का तथा उच्चतम श्रीराधा का ही है, जीव कोटि को बिल्कुल वर्जित है। *100 जन्म तक स्वधर्म का यथार्थ रूप में पालन करने वाले जीव को ब्रह्माजी का पद प्राप्त होता है। तथा 100 जन्म तक भक्ति में लीन परमहंस अवस्था वाले जीव को शिवजी का पद प्राप्त होता है। जीव कोटि में ब्रह्मा तथा शिव भी आते हैं तथा दूसरी ओर स्वयं भगवान् ही ब्रह्मा व शिव की पदवी धारण करते हैं। भगवान् ही शिव, ब्रह्मा को अपनी शक्ति देकर ब्रह्माण्ड का अधिकार देकर काम चलाते हैं। भगवान् की शक्ति के अभाव में कोई भी जीव कार्य करने में सक्षम नहीं है।

वात्सल्यता का भाव बहुत ही सर्वोत्तम है। इसमें गिरने का तो तिलभर अवकाश है ही नहीं। आँख मींचकर चलते रहो। इस भाव में न नामापराध और न मान प्रतिष्ठा का प्रकोप। बेधड़क शिशु बनकर भगवान् की गोद में चढ़कर प्यार भरा चुम्बन प्राप्त करते

रहो। शिशु माँ–बाप को मार भी देता है, तो माँ–बाप उल्टा राजी होते हैं। रोना ही उसका सम्बल (सहारा) है। अन्य भावों में मर्यादा से चलना पड़ता है। इसमें मर्यादा का बिल्कुल अभाव है। जिसको यह भाव मिल गया उसे भगवद् धाम की प्राप्ति हो गई, वह अकथनीय भाग्यशाली है।

यह भाव केवल हरिनाम करते करते बहुत दिनों के बाद मिला करता है, जिसके पूर्वजन्मों के संस्कार उज्ज्वल हैं, उन्हें शीघ्र भी प्राप्त हो जाता है।

श्रीनिष्किंचन महाराज को भी यह पत्र पढ़ाना होगा।

*जीव कोटि ब्रह्मा व रुद्र

श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला–अष्टादश परिच्छेद में जीव कोटि ब्रह्मा और शिव का वर्णन है जिसपर व्रजविभूति श्रीश्यामदास जी की विस्तृत टीका का यहाँ उल्लेख करना ज्ञान वर्धन के लिए प्रासंगिक है।

तथाहि हरिभक्तिविलासे (1–73)–

यस्तु नारायणं देवे ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्।।9।।

जो व्यक्ति ब्रह्मा एवं रुद्रादि देवताओं को श्रीनारायणदेव के समान देखता है अर्थात् ब्रह्मारुद्रादि देवताओं को भी श्रीनारायण देव के समान मानता है, वह व्यक्ति निश्चय ही पाषण्डी है।।9।।

व्रजविभूति श्रीश्यामदास विरचित चैतन्य-चरण-चुम्बिनी टीका—ब्रह्मा–रुद्र एवं आदि शब्द से यहाँ अन्यान्य इन्द्रादि देवताओं से अभिप्राय हैं, ये सब श्रीभगवान् की विभूति या शक्ति से आविष्ट जीव–तत्त्व ही है। ब्रह्मा दो प्रकार के होते हैं। 1. जीवकोटि 2. ईश्वर कोटि। किसी–किसी महाकल्प में उपासना के प्रभाव से कोई जीव–विशेष ब्रह्मा बना करता है और किसी कल्प में श्रीविष्णु ही ब्रह्मा रूप से प्रकट होते हैं (पाद्म–वचन)। श्रीमद्भागवत (4–24–29) में

कहा गया है कि जो व्यक्ति सौ जन्म पर्यन्त निष्ठा के साथ स्वधर्म पालन करता है, वह ब्रह्मा पद को प्राप्त करता है।

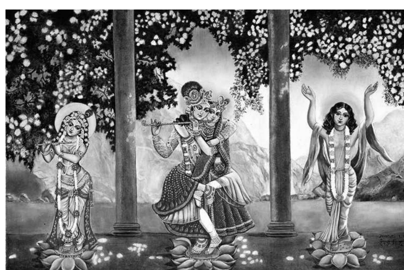
इसी प्रकार रुद्र भी जीवकोटि एवं ईश्वरकोटि भेद से दो प्रकार के हैं। जिस कल्प में योग्य जीव प्राप्त हो जाता है, उस कल्प में भगवान् उसी जीव में ही संहार–शक्ति संचारित कर देते हैं और वही रुद्र का कार्य करता है। योग्य जीव प्राप्त न होने पर श्रीविष्णु ही रुद्ररूप में प्रकट होकर सृष्टि कार्य निर्वाह करते हैं, (द्रष्टव्य आदि–लीला) इस प्रकार 'ब्रह्म–रुद्रादि' को भी जो श्रीनारायण के समान कहते हैं, उन्हें पाषण्डी कहा गया है फिर किसी साधारण जीव या संन्यासी को श्रीनारायण मानना घोर अपराध है, इसमें कहना ही क्या है? जीव तथा ईश्वर को समान जानने वाले को पाषण्डी कहा जाता है–इस बात के समर्थन में उक्त श्लोक उल्लिखित किया गया था। प्रसंग वश कोई यह भी कह सकता है कि उक्त श्लोक में जिन ब्रह्मा–रुद्र आदि की बात कही गई है, वे जीव–कोटि ब्रह्मा एवं जीव–कोटि रुद्र के सम्बन्ध में हो सकती है, किन्तु ईश्वर–कोटि ब्रह्मा तथा रुद्र के सम्बन्ध में नहीं है। अतः ईश्वर–कोटि ब्रह्मा तथा ईश्वर–कोटि रुद्र को यदि श्रीनारायण के समान माना जाए तब तो पाषण्ड अथवा किसी दोष की आशंका नहीं रहती, इसमें तो ईश्वर–स्वरूप का कोई अपकर्ष नहीं होता?

इसके समाधान में वक्तव्य यह है कि ईश्वर कोटि–ब्रह्मा एवं ईश्वर कोटि–रुद्र को श्रीनारायण के समान मान लेने में ईश्वर–स्वरूप का कुछ अपकर्ष नहीं होता, किन्तु श्रीनारायण की महिमा का अपकर्ष अवश्य सूचित होता है। क्योंकि श्रीनारायण सत्त्व, रज, तम–इन तीनों माया के गुणों से परे हैं। उनके साथ माया के गुणों का कोई मिश्रण नहीं है। किन्तु ईश्वर कोटि–ब्रह्मा तथा रुद्र इन दोनों का स्वरूपतः ईश्वर होने पर भी प्राकृत ब्रह्माण्ड–व्यापार में माया के गुणों के साथ सम्बन्ध है। ब्रह्मा रजोगुण द्वारा सृष्टि करते हैं एवं रुद्र तमोगुण के द्वारा सृष्टि का संहार करते हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने इस श्लोक की टीका में लिखा है कि रजोगुण ब्रह्मा

को एवं तमोगुण रुद्र को उपरञ्जित (रंग) कर देते हैं। अपने गुण प्रभाव से ये दोनों गुण उनके आनन्द में विक्षेप एवं आवरण सम्पादित कर देते हैं। इसलिये उनके विग्रह रजोगुणमय एवं तमोगुणमय के समान ही हो जाते हैं। अतः वे सगुण कहलाते हैं, किन्तु श्रीविष्णु या श्रीनारायण जो सत्त्वगुण के द्वारा सृष्टि का पालन करते हैं। वे सत्त्वगुण से रञ्जित नहीं होते क्योंकि सत्वगुण उदासीन एवं प्रकाशरूप है। उसमें रञ्जकत्व नहीं है। सत्त्वगुण में रञ्जकत्व न होने से श्रीविष्णु निर्गुण ही रहते हैं। अतः ब्रह्मा–रुद्रादि की उपासना से जीव माया–गुणातीत नहीं हो सकता, किन्तु निर्गुण श्रीनारायण की उपासना से जीव गुणातीत हो जाता है। अतः उपासना की दृष्टि से ईश्वरकोटि ब्रह्मा एवं रुद्र की श्रीनारायण के साथ समानता मानने में श्रीनारायण की महिमा का अपकर्ष सूचित होता है।

जीव–कोटि ब्रह्मा एवं रुद्र के साथ श्रीनारायण का स्वरूपगत भेद है। वे जीवकोटि हैं परन्तु श्रीनारायण ईश्वरकोटि हैं और ईश्वरकोटि ब्रह्मा एवं शिव का श्रीनारायण के साथ स्वरूपगत भेद नहीं है, किन्तु महिमागत भेद है। यहाँ ब्रह्मा, शिव एवं श्रीनारायण तीनों स्वरूपतः आनन्द स्वरूप ईश्वर होते हुए भी रजोगुण के विक्षेपात्मक धर्मवशतः श्रीब्रह्मा का आनन्द विक्षेप विशिष्ट हो जाता है और तमोगुण के आवरणात्मक धर्मवशतः श्रीशिव का आनन्द आवरण–विशिष्ट हो जाता है, अतः उनमें साक्षात् परब्रह्मत्व एवं उपकारकत्व नहीं रहता और इसलिये वे धर्म, अर्थ तथा काम–इन तीनों को ही प्रदान कर सकते हैं। किन्तु सत्त्वगुण के प्रकाशात्मक धर्मवशतः श्रीविष्णु का आनन्द प्रकाशविशिष्ट ही रहता है, जिससे कुछ भी क्षति नहीं होती। इसलिये उन्हें श्रेष्ठ उपास्य कहा गया है और उनमें साक्षात् परब्रह्मत्व तथा उपकारत्व रहता है। वे धर्म, अर्थ, काम के साथ–साथ मोक्ष भी प्रदान कर सकते हैं। अतः श्रीब्रह्मा–रुद्रादि को श्रीविष्णु के समान मानने में श्रीविष्णु की महिमा का अपकर्ष सूचित होता है, जो अपराध–जनक है।

नामापराध प्रकरण में जहाँ श्रीशिव के एवं श्रीविष्णु के गुण–नामादिक में भेद मानने को अपराध कहा गया है, वहाँ भी स्वरूपगत–भेद मानने में अपराध कहा गया है। महिमा–गत भेद समस्त भगवत् स्वरूपों में उनके स्वरूप, नाम, लीला एवं गुण तथा धाम के तारतम्यानुसार शास्त्रों में निरूपण किया ही गया है। अतः उक्त श्लोकों में परस्पर महिमा की समानता मानने में ही पाषण्ड अथवा दोष वर्णन किया गया है। सारांश यह है कि मूल–नारायण श्रीकृष्ण परमब्रह्म, परम स्वतन्त्र तत्त्व हैं एवं ब्रह्मा–रुद्रादि उनकी ही अंश विभूतियाँ हैं, उनको श्रीनारायण के समान मानने में दोष एवं अपराध है।



नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे
गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः।।

मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नहीं और न शूद्र हूँ। मैं ब्रह्मचारी नहीं, गृहस्थी नहीं, वानप्रस्थी तथा संन्यासी भी नहीं हूँ। किन्तु मैं प्रकट रूप से प्रकटित निखिल परमानन्द से पूर्ण अमृतसागर के समान गोपियों के भर्ता भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों के दासों के दासों का दास ही हूँ।

(श्रीजगन्नाथ जी के रथ के आगे नृत्य करते–करते श्रीमहाप्रभु इस श्लोक का गान करते थे। मानों जीव को उसके स्वरूप–कृष्णदासानुदास के दास का उपदेश देते थे)

11

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 05/10/2007

प्रेमास्पद भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

नामनिष्ठ को भगवान् स्वयं लेने आते हैं

जो साधक कलियुग का धर्म-कर्म हरिनाम स्मरण पर अपना जीवन व्यतीत करता है, उसे भगवान् तन से अन्तिम सांस निकलने पर भगवद् पार्षदों को न भेजकर स्वयं ही नामनिष्ठ को अपने विमान में बिठाकर अपने गोलोक धाम में ले जाते हैं। वहाँ पर उसका बहुत शोभायमान स्वागत करवाते हैं, जो अवर्णनीय है।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर हैं। जब हरिदास जी का प्राण तन से निकलने लगा तो महाप्रभु गौरहरि ने हरिदास जी के शरीर को शीघ्र उठाकर अपने हाथों में लेकर इतना विलाप किया कि हरिदास जी का शरीर निरन्तर आँसुओं की धारा से तरबतर हो गया। स्वयं महाप्रभु ने उनके भण्डारे के लिए घर-घर जाकर भिक्षा माँगी तथा समुद्र के किनारे अन्तिम संस्कार अपने हाथों से किया। यह इनका साक्षात् ज्वलन्त उदाहरण है। जटायु का रामजी ने रोते रोते अन्तिम संस्कार किया था। प्रभु की भक्तवत्सलता की भी हद हो गयी।

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी जी जो इस्कॉन के संस्थापकाचार्य थे उन्होंने वृन्दावन के श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में सौ करोड़ हरिनाम स्मरण का अनुष्ठान किया हैं, वहाँ पर उन्होंने सवा तीन लाख हरिनाम जप नित्य किया था जो आठ साल में सम्पूर्ण हुआ था। अतः मैंने भी ठाकुर और गुरु वैष्णवों की कृपा से सवा तीन लाख

नाम नित्य अपनाने का अनुष्ठान लिया है। जब तक जिन्दगी है, भगवान् और वैष्णवगण मेरा यह संकल्प निभायेंगे।

सवा तीन लाख हरिनाम में मुझे कोई परिश्रम नहीं होता तथा उत्साह ही रहता है। मन भी खूब लग जाता है। रात में 2 बजे उठकर आरम्भ कर देता हूँ तथा 8–9 बजे रात को सोने से पहले सवा तीन लाख नाम पूरा हो जाता है। अतः सभी से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि कम से कम एक लाख हरिनाम तो करें।

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी आदि ने हरिनाम से ही हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त की थी। मानव जन्म बार–बार नहीं मिलेगा। इस अवसर को चूको नहीं वरना बहुत बड़ा नुकसान हो जायेगा, जो अवर्णनीय होगा।

भगवान् गीता में कहते हैं कि, भक्त जिस प्रकार मुझे याद करता है, उसी प्रकार मैं भी भक्त को याद करता हूँ। मैं तो कठपुतली हूँ, जैसे भक्त मुझे नचाता है, वैसे मैं नाचता हूँ। भक्त मेरे लिए रोता है, तो मैं भी भक्त के लिए रोता हूँ।

मैं भक्त के दुर्गुण तो देखता ही नहीं हूँ, मैं तो उसका अन्तिम ध्येय देखता हूँ कि वह संसार चाहता है या मुझे चाहता है! मुझे चाहने पर मैं उसे सौ गुणा ज्यादा चाहता हूँ। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहंकार, ये सब दुर्गुण हरिनाम से धीर–धीरे समाप्त हो जायेंगे। यदि भक्त का अन्तिम उद्देश्य मुझे प्राप्त करने का है तो एक जन्म में न सही, दूसरे–तीसरे जन्म में मेरे धाम में प्रवेश पा जायेगा।

भक्त का भगवान् से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध होना परमावश्यक है। इसके अभाव में भगवद्प्रेम उदय नहीं होता। यह सम्बन्ध स्वयं हरिनाम ही करवायेगा। वात्सल्य भाव के सम्बन्ध में सभी भावों का समावेश हो जाता है। वात्सल्य भाव में शिशु का सम्बन्ध सर्वोत्तम सम्बन्ध है। इसमें गिरने का भय नहीं है। शिशु में कोई दोष दर्शन नहीं होता। मधुर रस के अलावा शिशु सम्बन्ध में सभी रसों का समावेश रहता है।

महाप्रभु के आदेशानुसार प्रत्येक गृहस्थी, ब्रह्मचारी, संन्यासीगण को कम से कम एक लाख नाम जप प्रतिदिन करना चाहिए। इसके अभाव में सभी सेवाएँ निर्बल रहती हैं। रसमयी सेवा तब ही होगी जब कलि का धर्म हरिनाम स्मरण होगा। हरिनाम के अभाव में सभी धर्म-कर्म सुकृतिमय होंगे जो अगले जन्म में सद्गुरु से भेंट करा देंगे। यह गारंटी भी नहीं है कि अगला जन्म मनुष्य का ही हो। फिर भी हरिनाम का सहारा ही मनुष्य जन्म दे पायेगा।

यह ब्रह्माण्ड अनन्तकोटि जीवों से भरा है। उसमें भी जीव दो प्रकार के हैं- स्थावर (जो चल-फिर नहीं सकते, जैसे वृक्ष) और जंगम (जो चल-फिर सकते हैं, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी आदि)। ऐसी तिर्यक-जलचर, स्थलचर आदि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य जाति की संख्या अत्यल्प है। उसमें भी वेदानुसार आचरण करने वाले दुर्लभ हैं। उनमें भी यज्ञ आदि कर्मों में जिनकी निष्ठा होती है ऐसे करोड़ों कर्मनिष्ठों में एक ज्ञानी दुर्लभ है। फिर करोड़ों ज्ञानियों में भी कोई एक विरला व्यक्ति ही सिद्ध या मुक्तावस्था को प्राप्त होता है। ऐसे करोड़ों मुक्त व्यक्तियों में कोई एक विरला ही कृष्ण भक्त होता है। ऐसे करोड़ों-करोड़ों कृष्ण भक्तों में वास्तविक कृष्ण भक्त (शुद्ध भक्त) कोई एक विरला ही होता है, जो अन्य सभी कामनाओं को छोड़कर श्रीकृष्ण सेवा तथा उनकी प्रसन्नता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहता। अतएव कृष्णभक्त अति दुर्लभ है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 19.138, 144-148 से उद्धृत)

12

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 07/10/2007

परमाराध्यतम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् की माया ने किसी को नहीं छोड़ा

यह पत्र अवश्य हृदयंगम करने का है।

जैमिनि ऋषि बहुत बड़े तपस्वी महात्मा हुए हैं। जो जन्म से ही नैष्ठिक ब्रह्मचारियों में गिने जाते हैं। वह सघन घोर जंगल में एकान्त में अपनी कुटी बनाकर रात दिन तपस्या किया करते थे। जहाँ हिंसक पशु रात दिन फिरा करते थे। वृद्धावस्था होने के कारण उनको स्त्रियों से कोई डर नहीं था। ऐसे बीहड़ जंगल में कोई स्त्री आती भी नहीं थी।

उनको अहंकार हो गया कि अब मैंने काम पर विजय पा ली है। काम अब मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?

इस काम ने शिवजी तक को अपने पैरों के नीचे कुचल दिया जब भगवान् ने मोहिनी रूप बनाकर देवताओं को अमृत पिलाया था। शिवजी उस मोहिनी रूप को देखना चाहते थे। भगवान् ने उस रूप को शिवजी को दिखाया तो शिवजी पार्वती के पास बैठकर तथा महात्माओं से सत्संग की चर्चा करते हुए भी अपने मन को रोक नहीं सके एवं मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े।

शिवजी भी काम को जीत नहीं सके लेकिन मैंने इसे जीत लिया– ऐसा अहंकार उन्हें जाग्रत हो गया। बस फिर क्या था! भगवान् की माया ने इनको फिसला दिया। भगवान् ने किसी के

भी अहंकार को आज तक रहने नहीं दिया। अतः अहंकार से सदैव हाथ जोड़ते रहना चाहिए।

हरिनाम ही अहंकार और काम पर विजयी हो सकता है। अन्य साधन न के बराबर रहते हैं। अतः हरिनाम को इस युग में अपनाना होगा।

एक दिन क्या हुआ, एक 16 साल की लड़की शाम को जैमिनि महात्माजी की कुटिया पर आकर बोली, 'महात्मा जी मैं प्यासी हूँ आप मुझे पानी पिला दीजिए। मैं बहुत दूर से थकी हारी आई हूँ यदि कुछ खाने को हो तो कृपाकर दे दीजिए।' महात्मा ने पानी पिलाया और कुछ फल खाने को दे दिये।

लड़की बोली, 'अब रात होने वाली है, मैं कहाँ जाऊँ? कोई हिंसक जानवर मुझे खा जायेगा। मुझे अपनी कुटिया में थोड़ी सी जगह दे दो, मैं प्रातः उठकर चली जाऊँगी। महात्मा बोले, 'स्त्रियों को रात में यहाँ रहना मना है, अतः आप कहीं भी जा सकती हो, यहाँ बिल्कुल रहने और सोने का स्थान नहीं है।'

लड़की बहुत गिडगिड़ाई, 'अब मैं कहाँ जाऊँ, आप मेरे पिता समान हो, कहीं पर भी जगह दे दो महात्माजी।' महात्मा जी को दया ने घेर लिया एवं महात्मा जी को दया आ गयी और वह सोचने लगे कि, बेचारी सच कह रही है, अब यह कहाँ जायेगी। गाँव यहाँ से बहुत दूर पड़ता है। बीहड़ जंगल है, हिंसक पशु इसे खा जायेंगे। अतः इसे यहीं पर रखना मेरा धर्म है।

महात्माजी बोले, 'यहाँ से कुछ दूर दूसरी कुटिया है, जहाँ पर तुलसी का बगीचा है। रात में तुम वहाँ चली जाओ और कुटिया का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लेना। कोई खोलना चाहे तो खोलना नहीं। लड़की बोली, 'बिल्कुल नहीं खोलूँगी। प्रातः उठकर अपने गाँव चली जाऊँगी।'

महात्मा बोले, 'देखो मैं भी दरवाजा खुलवाऊँ तो भी खोलना नहीं। 'लड़की बोली, 'अच्छी बात है, नहीं खोलूँगी।' अब तक

महात्मा जी का मन बिल्कुल स्वच्छ तथा निर्मल था। लड़की जाकर सो गयी। महात्मा भी अपना भजन का नियम करके सो गये। अचानक आधी रात में महात्मा को चेत हो गया। अब क्या था! लड़की का सुन्दर चेहरा सामने नाचने लगा, बहुत हटाना चाहा लेकिन नहीं हटा। एक घंटे तक संकल्प विकल्प ने झकझोरा, परन्तु पार नहीं पा सका। मन को समझा बुझाकर थक गया। काम का वेग ही ऐसा होता है कि वह अन्धा होता है, उसे कुछ नहीं दिखता, केवल काम का ही खेल नजर आने लगता है। महात्मा जी ने सोचा क्या करूँ ? इस कुएँ में गिरकर मरना ही उचित है, लेकिन मन में सोचा, पहिले काम से निवृत्त हो लूँ फिर कुएँ में गिरकर मरना ठीक है। काम वेग ने उसे घायल कर दिया।'

अब क्या था, महात्मा जी तुलसी वन में कुटिया पर चले गए और लड़की को पुकारा, 'दरवाजा खोलो! मैं जैमिनि ही हूँ। तुम्हारे लिए कुछ खाने को तथा पीने को स्वादिष्ट शरबत लाया हूँ, इसे ग्रहण करो। फिर मैं खिलापिला कर वापस अपनी कुटिया पर चला जाऊँगा।'

बहुत देर तक पुकारते रहे परन्तु, लड़की ने दरवाजा जो अन्दर से बन्द किया था, खोला नहीं। न कुछ बोली, जैसे गहरी नींद में अचेत पड़ी हो। महात्माजी ने सोचा, 'अब क्या करूँ ? मैं तो रह नहीं सकता। व्याकुलता मन पर छा रही है, क्या उपाय करूँ ?

उन्होंने अब सोचा, छप्पर फाड़कर अन्दर जा सकता हूँ। अपनी कुटिया पर जाकर सीढ़ी लाये। बिना सीढ़ी के चढ़ना असम्भव था। पीछे छप्पर की भीत पर सीढ़ी लगायी और छप्पर पर चढ़ गए। अब सोचा, बिना औजार छप्पर फटेगा नहीं तो फिर उतरे और अपनी कुटिया पर गए और दरात लेकर फिर छप्पर पर चढ़े और छप्पर की छान को काटना शुरू किया। जब घुसने जैसा छेद हो गया तो झाँककर देखा कि लड़की क्या कर रही है। वास्तव में इतनी गाढ़ी निद्रा में बोल नहीं रही है, शायद थकान होने से गाढ़ी निद्रा ने उसे

बेहोश कर दिया होगा। जवानी में नींद गहरी आती ही है, जरा देखूँ तो सही।

अब महात्मा जी क्या देखते हैं कि ध्यान मग्न होकर वेदव्यास जी आसन पर बैठे हैं। सोचा, लड़की कहाँ गायब हो गई ? तब आँख खुली कि मेरे अहंकार को नष्ट करने के लिए मेरे गुरुदेव ने लड़की के रूप में आकर यह लीला रची थी। गुरुदेव का दर्शन करते ही न जाने काम कहाँ गायब हो गया।

शीघ्र ही पहले वाली अवस्था प्रकट हो गयी और पछताने लगे कि इतने साल तपस्या की, फिर वही पहला दिन। तब समझ में आया। तपस्या तो एक विकल्प मात्र है।

हरिनाम ही इन वेगों का शमन कर सकता है, क्योंकि भक्त भगवान् के शरणागत होता है। तपस्वी अपने बलबूते पर भगवान् को पाना चाहता है। अपनी शक्ति से भगवान् कभी भी नहीं मिलते। अपना बल छोड़ा गजेंद्र ने, मीरा ने, द्रौपदी ने तब भगवान् शरणागत के पालक रक्षक बन सके।

यह काम ऐसी बला है कि अर्थी पर पड़े शमशान जाते हुए मानव को भी जगा देता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि एक लाख हरिनाम से ही इन वेगों से पार हुआ जा सकता है। कुछ कम संख्या में हरिनाम जपने से कुछ हाथ नहीं आने का। गृहस्थी, संन्यासी, ब्रह्मचारीगण को हरिनाम ही अपनाना पड़ेगा वरना मानव जन्म व्यर्थ ही जायेगा, कुछ हाथ में नहीं आयेगा।

इसी वजह से महाप्रभु जी ने एक ही अमर औषधि दी है। कम से कम एक लाख हरिनाम करो। जो नहीं करेगा, माया से पार नहीं जा सकेगा। माया पर विजय प्राप्त करनी हो तो एक लाख हरिनाम करो वरना अन्त समय में रोते हुए जाओगे। कोई साथ नहीं देगा।

शिववचन–

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभावा। कलि विशेष नहीं आन उपावा।।
कृतजुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग।।

कलियुग में केवल मात्र नाम ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दे सकता है। तपस्या, यज्ञ तथा भगवद्पूजा यदि हरिनाम के अभाव में होती है तो शक्तिहीन रहती है। हरिनाम भक्ति जहाँ पर हो वहाँ यह उक्त धर्म भी शक्तिशाली बन जाते हैं। अतः जिस भक्त ने हरिनाम का आसरा लिया है उसी ने इस जीवन में विजय प्राप्त की है। अन्य सब साधन निरर्थक हैं।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित गीतावली से उद्धृत)

जीवन अनित्य जानह सार,
ताहे नाना-विध विपद-भार,
नामाश्रय करि' जतने तुमि,
थाकह आपन काजे

इतना जान लीजिए कि, एक तो यह जीवन अनित्य है तथा इस जीवन में भी नाना प्रकार की विपदाएँ हैं। अतः तुम यत्नपूर्वक हरिनाम का आश्रय ग्रहण करो तथा केवल जीवननिर्वाह के निमित्त सांसारिक व्यवहार करो।

13

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 13/10/2007

परमकरुणामय परमाराध्यतम भक्तप्रवर के चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिनाम भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना।

अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों का आधिपत्य रखते हुए भगवान् की भक्तवत्सलता

कलियुग में हरिनाम ही भगवान् की भक्तवत्सलता का उदय कराता है। चारों युगों में ही नाम का ही प्रभाव है परन्तु, कलियुग में विशेष कर है। अतः महाप्रभु गौरहरि ने अपने सभी स्वजनों को आदेश दिया कि जो भी 64 माला अर्थात एक लाख हरिनाम करेगा उस घर को मैं एक क्षण भी छोड़कर नहीं जाऊँगा।

भगवान् स्वयं अपने मुखारविन्द से कहते हैं कि मैं अपने नाम की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। मेरा नाम ही भक्तवत्सलता उदय कराता है। जिस प्रकार अग्नि जाने या अनजाने में छू जाये तो उसका स्वभाव है जलाने का, वह छूने वाले को जला डालती है। वैसे ही मेरा नाम अवहेलनापूर्वक भी लिया जाये तो भी अनन्तकोटि जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। जो साधक मन और कान को एक करके हरिनाम लेगा उसे भगवान् एक क्षण भी छोड़ नहीं सकते।

शिववचन–

बिबसहुं जाको नाम नर कहहि।
जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।

गुरुदेव वचन–

Chant Harinam Sweetly & Listen By Ear

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

भगवान् की भक्तवत्सलता तो देखने योग्य है, जिस भगवान् से काल भी भयभीत रहता है। मिट्टी खाने पर यशोदा मैय्या कान्हा को छड़ी लेकर डरा रही है कि, 'तू फिर मिट्टी खायेगा ?' तो कन्हैया डर की वजह से भयंकर कांप रहा है, रो रहा है तथा भय के कारण पेशाब कर रहा है और हाथ जोड़कर कह रहा है, 'मैया अब नहीं खाऊंगा, मुझे मारो मत।'

नन्दबाबा बोल रहे हैं, 'लाला मेरी जूती तो ला दे, मुझे बाहर जाना है, तो कान्हा अपने सिर पर धर कर बाबा की जूतियाँ ला रहे हैं, जिन जूतियों का भार वहन नहीं हो रहा है। जिस गोपाल ने गिरिराज जी को कन्नी छोटी अंगुली पर 7 दिन तक उठाए रखा वह जूतियों का भार वहन करने में समर्थ नहीं है।'

जो पूतना कान्हा को मारने आयी थी उसे भी माँ के समान गति दे दी। अतः निष्कर्ष निकलता है कि, भगवान् को कैसे भी अपनाओ भगवान् उसे भक्ति राज्य में सम्मिलित कर लेते हैं।

जब तक द्रौपदी ने अपनी शक्ति जुटाई तब तक भगवान् नहीं आये, जब अपनी शक्ति हटाई, तो भगवान् ने देरी नहीं लगाई। साड़ी इतनी बढ़ा दी कि दुःशासन खींचते-खींचते हार गया।

कौरव-पाण्डव युद्ध में रथी बनकर भगवान् घायल होते रहे। विश्राम करने पर घोड़ों की मालिश की। भीष्म की प्रतिज्ञा, जो अर्जुन को मारने की थी, उसे भगवान् ने स्वयं की प्रतिज्ञा तोड़कर भी अर्जुन को बचाया।

रो रोकर आँसुओं से सुदामा के पैर पखारे, रुक्मिणी को शत्रुओं से छुड़ाकर स्वयं उसके साथ विवाह किया। काम्य वन में दुर्वासा के शाप से पाण्डवों को बचाया। लाक्षागृह की आग से पाण्डवों को बचाया। न जाने कितनी-कितनी बार अपने भक्तों पर

कष्ट आये तो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के नायक भगवान् ने अपनी भक्तवत्सलता दर्शायी।

श्रीराम केवट से विनय कर रहे हैं, 'भैया! हमें अपनी नाव से गंगा पार करा दे।' केवट मना कर रहा है, 'मैं गंगा से पार करवा दूँगा, आप मुझे भवसागर से पार करवा देना, तब तो गंगा पार करवा सकता हूँ। 'श्रीराम निहोरा कर रहे हैं, 'ठीक है, जल्दी कर।'

रावण का भाई विभीषण की शरणागति देखकर राम ने उसे लंकेश की पदवी सौंप दी। विभीषण को रावण की वीरघातनी शक्ति से बचाकर स्वयं ने शक्ति झेली।

बाली को मारकर सुग्रीव को राज दिलाया। भीलनी के झूठे बेर बड़े प्रेम से खाये, जो बेर भीलनी खुद चख-चखकर राम को खिला रही थी।

विदुरानी के केले के छिलके बड़े प्रेम से खा रहे हैं, जो वह बेसुध होकर खिलाती जा रही है। यह है शरणागति का प्रभाव, जिससे भगवान् भक्त के सेवक बन जाते हैं।

सुतल लोक में वामन भगवान् ने बलि के पहरेदार बन कर उसकी रक्षा की। समुद्र मंथन में अपने शरणागत देवताओं को अमृत पिलाया। राक्षस देखते ही रह गये। कपिल भगवान् ने अपनी माँ को सांख्य ज्ञान का उपदेश देकर माँ को अज्ञान से उपरत किया।

मोहिनी रूप धारण करके शिव का मन विचलित कर दिया। फिर शिवजी को अपना लिया।

यह सब भक्तवत्सलता भगवान् के नामस्मरण से शीघ्र भगवान् के अन्तःकरण में प्रकट हो जाती है। मानव इसी जन्म में गोलोक धाम का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् नामनिष्ठ को स्वयं लेने आते हैं। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर, ध्रुव, प्रह्लाद आदि।

14

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 10/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना–

हरिनाम में मन लगाने के विविध तरीके

(1) हरिनाम को धीमी ध्वनि से कान से सुनते रहें, जिससे ध्वनि बाहर न जाकर स्वयं का कान ही सुने। जोर की ध्वनि थकान पैदा करती है। जीभ का उच्चारण एवं कान का श्रवण एक घर्षण पैदा करता है। जिससे गर्मी पैदा होकर विरहाग्नि प्रज्वलित हो जाती है, इससे अष्ट–सात्विक विकार उदय हो पड़ते हैं। पुलक अश्रुपात होने लग जाता है। रोने से अन्तःकरण के सम्पूर्ण दुर्गुण धीरे–धीरे निकल जाते हैं तथा सद्गुण आकर भरने लग जाते हैं। प्रत्यक्ष आजमाकर देख सकते हैं।

(2) किसी नामनिष्ठ सन्त के चरणों में (प्रत्यक्ष या मानसिक रूप से) बैठकर, हरिनाम करना होगा। इनके अन्तःकरण के चित्त में भगवान् विराजमान रहते हैं। वहाँ से जापक को देखते रहते हैं तथा नामनिष्ठ सन्त की कृपा भी बरसती रहती है। चार–चार माला प्रत्येक सन्त के चरण में बैठकर कर सकते हैं। सन्तों की कोई कमी नहीं है। अनन्त सन्त चारों युगों में होते आए हैं। मन चाहे जिस सन्त के चरणों में बैठकर माला जप कर सकते हैं। इस साधन से मन संसार में कभी नहीं जायेगा।

(3) मानसिक तथा प्रत्यक्ष रूप से सन्तों के संग में धाम भ्रमण करें। यमुना, गंगा, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड पर सन्त को स्नान करावे तथा वस्त्र धोकर नये कपड़े पहनाये। स्नान कराते समय उनके चरणों का पवित्र जल पीये, उनकी रज सिरपर व हृदय

पर लगाये, प्रसाद पवावे, उनका झूठा महाप्रसाद पावे तो मन संसार में कभी नहीं जायेगा। इससे अष्टसात्त्विक विकारों का उदय हो पड़ेगा। हरिनाम में मन लगाने के अनेक साधन है।

(4) भगवान् के पास जाने के लिए, किसी भक्त के द्वारा सिफारिश करवाना होता है। यशोदा मैया के पास जाओ, शची माँ के पास जाओ, अद्वैताचार्य के पास जाओ, नारदजी के पास जाओ, सनकादिक के पास जाओ, शबरी के पास जाओ, कपिल की माँ देवहूति के पास जाकर रोओ, रूप, सनातन, राय रामानन्द कितने ही भक्त शिरोमणि हो गए है, सभी दयावान हैं, आपकी सिफारिश भगवान् से कर देंगे। भगवान् भक्तों की बात कभी भी टालते नहीं हैं। आपका मन हरिनाम में लगा देंगे। अनन्तकोटि भक्तगण हो गए हैं, किसी के भी पास जाकर सिफारिश करवा सकते हो, कोई मना करेगा ही नहीं, क्योंकि सभी उदार प्रकृति के हैं।

(5) स्वयं के गुरुजी के चरणों में बैठकर हरिनाम कर सकते हैं। उनका ध्यान कर सकते हैं। उनसे अपनी मन की बात कर सकते हैं। उनकी सेवा में हरिनाम करते हुए रत रह सकते हैं।

(6) मंदिर में जाकर भगवान् का भावमयी नेत्रों से दर्शन व वार्तालाप कर सकते हैं। अपनी व्यथा उनको सुना सकते हैं।

इतने तरीकों से मन संसार में जा ही नहीं सकता। फिर कहते हो मन लगता नहीं। झूठी बात है, मन लगता है मन लगाना नहीं चाहते।

एक परीक्षार्थी का मन 3 घंटे तक एक क्षण भी कहीं नहीं जाता। बैंक मैनेजर का मन न रुके तो बहुत बड़ा नुकसान हो जाये।

केवल मात्र हरिनाम में लोभ नहीं, श्रद्धा नहीं इसीलिए मन चलायमान रहता है।

(7) जितने भगवद् अवतार हुए हैं उनका स्मरण करते हुए जीभ से हरिनाम करते रहना चाहिए।

क– प्रथम तो गौरहरि जगन्नाथजी के मंदिर में स्तम्भ के पास खड़े होकर कीर्तन करते हुए रो रहे हैं। पुरी में जहाँ तहाँ दौड़ा–दौड़ी कर भगवान् कृष्ण को पुकार रहे हैं। हा कृष्ण! तुम कहाँ हो, कहाँ जाऊ कहाँ पाऊँ व्रजेन्द्रनन्दन, कौन बताये वे कहाँ मिलेंगे ? आदि आदि उनका विरह क्रन्दन का स्मरण कर नाम करते रहें।

ख– श्रीराम जटायु को गोद में लेकर विलाप कर रहे हैं एवं आँसुओं से जटायु को तरबतरकर कर रहे हैं। कहीं राम केवट से गंगा पार करने हेतु निहोरा कर रहे हैं। भैय्या, जल्दी हमें गंगा पार करा दो। कहीं, राम–लक्ष्मण भीलनी के बेर जो चख–चख कर खिला रही हैं, उसे बड़े प्रेम से खा रहे हैं। कहीं पर राम विभीषण को अपनी छाती से लगाकर लंकेश की पदवी दे रहे हैं। श्रीराम की कितनी ही लीलाएँ हैं, नाम जपते हुए स्मरण करते रहना चाहिए।

ग– कपिल भगवान् अपनी माँ देवहूति को संसार से मुक्त होने का उपदेश दे रहे हैं। कह रहे हैं, 'माँ! संसार तो दुःखालय है। अतः इसकी आसक्ति समाप्त कर भगवान् की अनेक रोचक लीलाएँ हैं, मेरा नाम जपते हुए उनका स्मरण करना चाहिए।'

घ– नृसिंह भगवान् प्रह्लाद को गोदी में बिठाकर आँसुओं से तरबतर कर रहे हैं और कह रहे हैं कि, "प्रह्लाद मुझे तुम्हारे पास आने में देर हो गई। तुमने बहुत सारे कष्ट भोगे, मैं शर्मिन्दा हूँ। अब मेरे प्यारे प्रह्लाद! तुम पर कोई कष्ट नहीं आयेगा, तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा, तुम बे–चिंता रहो।"

ङ– वामन भगवान् नट का सा भेष धर कर नाटे कद से सुन्दर बच्चे का रूप लेकर बलि के वाजपेय यज्ञ में भिक्षा माँगने चले गए ताकि देवताओं का राक्षसों से बचाव हो सके। दो पग में सारी पृथ्वी को नापकर उसे रसातल में राज्य दे दिया।

च– भगवान् ने कच्छप अवतार लेकर समुद्र मन्थन किया और देवताओं को अमृत पिलाकर आकर्षक मोहिनी रूप से राक्षसों को मोहित कर दिया।

छ– नारद, सनकादिक, नवयोगेश्वर, भरत का नामजप, हनुमान जी का दास्यत्व, कौरवों–पांडवों का मनमुटाव, विदुर जी के घर जाकर केले के छिलके खाना, अचानक काम्यवन में दुर्वासा जी के भोजन माँगने पर पांडवों को शाप से बचाना आदि कितनी ही भगवद् अवतारों की लीलाएँ हैं कि इतना ध्यान कोई कर ही नहीं सकता। चाहो तो 5 लाख हरिनाम स्मरण करो परन्तु लीला समाप्त नहीं होगी।

यह गारंटी है और शास्त्रों की प्रत्यक्ष घोषणा है कि, जो मानव नामनिष्ठ बनकर अधिक से अधिक हरिनाम कर सकेगा, उसको भगवान् अपने पार्षदों को न भेजकर स्वयं (उसकी अन्तिम सांस जब तन से निकलेगी तब) उसे लेने आयेंगे। इसमें 1% भी सन्देह नहीं समझना, क्योंकि इस मानव ने कलियुग का धर्म जो हरिनाम ही है और इस युग का परम धर्म–कर्म है उसे अपनाया है। नामनिष्ठ के सिर पर भगवान् का हाथ है तथा उससे जो सम्बन्ध रखते हैं, उनको भी भगवान् सुखी करते रहते हैं। **यदि कोई कहे कि इतना हरिनाम लेने पर भी दुःख क्यों आ रहा है तो यह दुःख नहीं, भगवान् अपने जन को दुःखभोग कराकर अपने धाम में ले जाना चाहते हैं। यह मनगढ़न्त नहीं, वास्तव में 100% सत्य सिद्धान्त है।** इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, मीरा, पांडव, व्रज पर राक्षसों का आक्रमण, स्वयं राम जी के पिता पर घोर आपत्ति, इन्द्र पर बार–बार राक्षसों का आक्रमण, कितने ही उदाहरण हैं। भक्तों पर सदैव दुःख आते रहते हैं, परन्तु भक्त उसको दुःख न महसूस कर उसे भगवद्कृपा ही समझता है। कुन्ती ने दुःख क्यों माँगा ? इससे स्पष्ट हो जाता है कि दुःख भगवान् को अधिक याद करवाता रहता है। सुख में मानव भगवान् को भूला रहता है।

अधिक से अधिक हरिनाम करना ही संसार निवृत्ति का एक मात्र साधन है। इसके अभाव में भगवद् पूजा, अर्चन, यज्ञ, स्वाध्याय, योग, तपस्या, तीर्थाटन, गृहस्थ धर्म, चारों वर्ण तथा आश्रम सभी केवल श्रम मात्र है। इनसे सुकृति मात्र हो जाती है। अर्थात् उसका

मन धीरे- धीरे शुद्ध होता रहता है। कई जन्मों के बाद में यह हरिनाम में रुचि प्रदान करेगा। इसी से मन शुद्ध होकर नाम से प्रेम प्रकट हो जायेगा। प्रेम ही भगवान् को आकर्षित करता है। यह हरिनाम के अभाव में उदय होगा ही नहीं। यह नाम ही भक्त अपराध और मान-प्रतिष्ठा से बचाता रहेगा। यह दोनों ही भक्ति पथ में बहुत बड़े रोड़े हैं। इन दुश्मनों से हरिनाम ही बचाता है वरना बचना असम्भव ही है।

हरिनाम स्मरण करते-करते इतना परमानन्द उदय होता है कि कहना अकथनीय है। जो इसे अपनाएगा वही महसूस करेगा। बताया नहीं जा सकता। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, आजमाकर देख सकते हो। अनुभव न हो तो शास्त्र कृपा की याचना करे। शास्त्र मानव की वाणी नहीं है, भगवद्वाणी है, जो लेखनी के रूप में मानव मात्र की आँखें खोल रही है। यदि नहीं खुलती तो समझना होगा अभी नरक भोगना होगा, दुःखसागर में डूबना होगा।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशीविलासानन-लोकनं विना
विभर्मि यत् प्राणपतंगकान् वृथा।।

(विशुद्ध प्रेम की बात तो दूर रही) मुझमें तो श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम की लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। केवल अपने सौभाग्य को प्रकाशित करने के लिए मैं रोता हूँ। वंशी विलासी श्रीकृष्णचन्द्र के मुखचन्द्र का दर्शन मुझे प्राप्त नहीं हुआ, मैं तो अपने प्राण-पतंगों को व्यर्थ ही धारण कर रहा हूँ।

(श्रीकृष्ण-विरह में कातर होकर दैन्यभरे आलापों में
इस श्लोक को श्रीचैतन्य महाप्रभु ने
श्रीस्वरूपदामोदर-रायरामानन्द को कहा था)

15

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ठाणी
दि. 14/10/2007

परमश्रद्धेय भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का श्रीचरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना सहित हरिस्मरण।

भगवान् भक्तों से डरते हैं तथा दुष्टों से बचाते हैं

जिस अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों के नायक से महाकाल भी भयभीत रहता है वह भक्तों से थर-थर काँपता रहता है। शरणागत भक्त की अकथनीय महिमा और भगवान् के वात्सल्य प्रेम की अकथनीय महिमा का कोई अन्त नहीं है।

सभी चर-अचर भगवान् के पुत्र समान हैं। जो भगवान् को मानता है वह सुपुत्र है और जो भगवान् को नहीं मानता वह कुपुत्र श्रेणी में आता है।

कन्हैया ने वृज की मिट्टी (रज) खाई। क्यों खाई ? यह सोचकर कि, 'यहाँ भक्तों की चरणरज बिखरी पड़ी है। अतः मेरे खाने से मेरा तन मन निर्मलता को प्राप्त हो जायेगा।'

यशोदा मैया समझ नहीं पायी तो छड़ी लेकर मारने दौड़ी तो कन्हैया डर गया और थर-थर काँपने लगा। यहाँ तक कि इतना डरा कि पीला पड़ गया और तोतली बोली में कहने लगा कि 'अब आगे मैं मिट्टी नहीं खाऊँगा, तू मुझे मत मार।' तो यशोदा मैया बोली नहीं तू फिर खाएगा,।' कन्हैया ने बोला 'नहीं मैया, कभी नहीं खाऊँगा, बलदाऊ भैया की सौगन्ध, बाबा की सौगन्ध।' महाकाल जिससे डरता है, वह मैया से काँप रहा है। यह है भक्ति की अद्‌भुत महिमा।

भगवान् वामनरूप धारण कर बलि से प्रार्थना करते हैं, कि मुझे 3 पग जमीन चाहिए। शिशुपाल के डर से रुक्मिणी से शीघ्र विवाह किया, कहीं उसे शिशुपाल न ले जाये इसलिए।

श्रीदामा सखा से डरकर गेंद हेतु कालीदह में कूदना पड़ा। नारदजी के शापवश सीता के लिए भटकना पड़ा। राम ने नारद जी को विवाह करने से रोका तो डर की वजह से शाप अंगीकार करना पड़ा। समुद्र मन्थन कर राक्षसों से डरकर मोहिनी रूप बनाना पड़ा ताकि देवताओं को अमृत पिला सकूँ। राक्षस भी पूर्वजन्म के भक्त थे, शाप वश राक्षस हो गये। भीष्म पितामह से अर्जुन को बचाने हेतु अपना वचन भी झूठा करना पड़ा। द्रौपदी की लाज बचाने हेतु चीर बढ़ाना पड़ा। भगवान् सदैव भक्तों के लिए अपना वचन त्याग करके भक्तों से डरते आए हैं।

केवट भक्त से श्रीराम, लक्ष्मण निहोरा कर रहे हैं, 'अरे भैय्या! हमें इस गंगाजी से अपनी नाव से पार करा देना।' केवट बिल्कुल मना कर देता है। 'कभी नहीं करूँगा। आपके चरण रज में जादू है। अगर मेरी नाव उड़ जाये तो मैं क्या करूँ, भूखा मरूँ ? ज्यों आपके चरणस्पर्श से पत्थर की अहिल्या ही उड़ गई। मेरी नाव तो पत्थर से नरम है। यदि आप मुझे आपके पैर धो लेने दो तो गंगा के पार पहुँचा दूँगा वरना पार नहीं करने का।'

श्रीराम बोले, 'जैसा करना चाहो शीघ्र कर लो, हमें देर हो रही है।' केवट ने राजी होकर गंगा का पानी कठोती में भरकर श्रीराम जी के चरण धोकर अपने परिवार को भवसागर से पार करा लिया। जब सीताजी उतराई के बदले में मुद्रिका देने लगीं, तो केवट बोला, 'हम दोनों एक ही जाति के हैं, आप हमें भवसागर पार कर देना, मैंने आपको गंगा पार कर दिया।' तब तो तीनों ही खिल-खिलाकर हँस पड़े। रामजी बोले, 'कैसा चतुर है! लक्ष्मण, भक्तों ने मुझे सदा ही हराया है।'

मतंग ऋषि के आश्रम के पास भीलनी भक्तानी (शबरी) श्रीराम का रोज इन्तजार करती रहती थी और उनके लिए बेर

इकट्‌ठा करती रहती थी। भीलनी को उसके गुरुदेव ने बोला था कि श्रीराम लक्ष्मण इसी रास्ते से सीता का पता लगाने आयेंगे। अतः भीलनी रास्ता साफ करती रहती थी। जब भगवान् सब महात्माओं को छोड़कर प्रथम उसकी कुटिया पर पधारे तो सभी महात्माओं को दुःख हुआ और गर्व गलित हो गये। भीलनी ने दोनों को आसन पर बिठा दिया और चख–चख कर बेर खिलाने बैठी। लक्ष्मण को झूठे बेर खाने से घृणा हो गयी। इस पर लक्ष्मण को कष्ट भुगतना पड़ा। उन्हीं बेरों से उसे जीवनदान मिला। भीलनी से राम पूछ रहे हैं, 'मैया! हम सीता का पता पाने कहाँ जायें?' तो भीलनी रास्ता बता रही है, 'आप पंपा सरोवर पर सुग्रीव के पास चले जाओ, वह सीताजी का पता करवा देगा।' कैसे भोले बन जाते हैं भक्त के पास भगवान्! राम के बिछुड़ते ही भीलनी परमधाम चली गई।

यशोदा मैया हव्वा से कन्हैया को डराती रहती थी कि, 'लाला अकेला मत जाना, हव्वा खा जायेगा।'

कान्हा ने पूछा, 'मैया, हव्वा कैसा है?'

तो मैय्या बता रही है, 'हव्वा के बड़े–बड़े दांत है, चमकदार आँखें हैं। डरावनी सूरत है।

कान्हा ने बोला, 'तो मैया मेरे ललाट पर काला टीका लगा दे। उसकी नजर भी लग जाती है, ऐसा दाऊ भैया बता रहा था।'

मैय्या बोली 'हाँ लाला, उसकी नजर बड़ी खतरनाक है।'

कान्हा ने बोला, 'तो मैया जब तुम मुझे टीका लगा दोगी, फिर तो मुझे वह नहीं डरावेगा।'

मैया बोली, 'हाँ, लाला!'

तो कान्हा ने बोला,

'तो मैं इसे मिटाऊँगा नहीं।'

भक्तों से डरने के अनन्त उदाहरण हैं जो लिखना असम्भव है।

भगवान् की भक्तवत्सलता की भी हद हो गई। कन्हैया सखाओं के साथ खेल में उन्हें अपने कंधों पर चढ़ाकर अपनी पारी देते थे। झूठा अचार आदि सखाओं के मुख से निकालकर खा जाते थे।

नरसी भक्त ने भगवान् को खूब खरी–खोटी सुनाई और कहा कि दोहती का भात कौन भरेगा ? मेरे पास तो दाम भी नहीं हैं, तेरी हँसी होगी, मेरा क्या जायेगा ? संसार में, समाज में जो हँसी होगी वह तेरी होगी। भगवान् ने **साँवरिया सेठ** बनकर ऐसा भात भरा जो अवर्णनीय है।

भक्तों पर जब भी संकट आया, भगवान् ने उन्हें बचाया। मीरा को उसके जेठ ने बहुत सताया। जहर का प्याला भेजा, विषधर सर्प भेजा, न जाने क्या क्या मीरा को मारने के षडयन्त्र रचे, परन्तु कोई मीरा का बाल भी बाँका नहीं कर सका।

नामनिष्ठ सन्त श्रीहरिदास जी को मुसलमान बादशाह ने बाईस बाजारों में घुमाते हुए बेरहमी से कोड़े बरसाए, समुद्र में फिंकवा दिया, परन्तु हरिदास को कुछ न हुआ, महाप्रभु गौरहरि ने अपने पीठ पर कोड़े ले लिए। जब भक्तों ने देखा कि, महाप्रभु जी कराह रहे हैं तब उनके निजजनों ने पूछा, 'आपको कहाँ पर दर्द है ?' महाप्रभु जी ने अपनी पीठ दिखाई तो क्या देखते हैं कि पीठ पर कोड़ों की मार से निशान पड़कर खून की लकीरें पड़ रही हैं। उनसे पूछा गया कि, 'यह कैसे हो गया ?' तब महाप्रभु जी बताने लगे, कि 'मेरे हरिदास को जल्लाद कोड़े मार रहे थे तो हरिदास हा कृष्ण! हा राम! पुकार पुकारकर चिल्ला रहे थे तो मैं भक्त की मार कैसे सहन कर सकता था ? मैंने ही अपनी पीठ पर कोड़ों की मार सही है।' तब तो सभी भक्तों में कोहराम मच गया और कहने लगे कि, कैसी भक्त वत्सलता है भगवान् की!

मधाई ने मटके से नित्यानंद प्रभु का सिर फोड़ दिया, जिससे वे खून में लथपथ हो गए। मार सहन करके भी अपनी भक्ति प्रदान की। दया की भी हद हो गई।

इन्द्र की पूजा बन्द करने पर, इन्द्र मूसलाधार बरसात करने लगा तो गोपाल ने गिरिराज पर्वत को 7 दिन तक धारण कर व्रजवासियों को कष्ट से बचाया।

एक ब्राह्मण की सन्तान जन्म लेते ही मर जाती थी, उसने युधिष्ठिर से शिकायत की, कि 'तुम्हारे राज्य में पाप हो रहा है इस कारण मेरी सन्तान मर जाती है।' अर्जुन को इसका दुःख हुआ। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि अबकी बार मैं बचा लूँगा और यदि न बचा सका तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। प्रतिज्ञा के बाद ब्राह्मण का बच्चा मर गया, तो भगवान् कृष्ण ने ऐसी लीला की कि अर्जुन जलकर मरने से बच गया।

हर प्रकार से हर जगह में भगवान् की भक्तवत्सलता देखी जाती है।

कौरवों में से जयद्रथ ने प्रतिज्ञा की, कि आज सूर्यास्त से पहले अर्जुन को मार दूँगा। भगवान् को चिंता हो गई। सूर्यास्त होने वाला था और हो भी गया। भगवान् ने कहा, 'सूर्य छिप गया है, तुम्हारी प्रतिज्ञा खंडित हो गयी है, अर्जुन को मार न सके। अब तुम अपनी प्रतिज्ञानुसार मर जाओ।'

राम का यज्ञ का घोड़ा विजय प्राप्त करने के लिए छोड़ा गया। वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश ने उसे पकड़कर बांध लिया तो श्रीराम ने हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि को घोड़ा लाने हेतु भेजा परन्तु सभी हार गये क्योंकि **गुरु वाल्मीकि जी ने लव-कुश को गुरु कवच पहना रखा था जो कवच किसी भी शक्ति से तोड़ा नहीं जा सकता था। अन्त में स्वयं रामजी गये और हार गये। इसमें गुरु का महत्त्व दर्शाया गया है।** यह है भगवान् की भक्तवत्सलता, जिसमें स्वयं हार मान ली। भगवान् भक्त से स्वयं हार मान लेते हैं। भक्त का हृदय दुखाना उनके लिए संभव नहीं है।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवद् नाम ही भक्तवत्सलता का उदय करवाता है। भगवान् अपने नाम के पीछे हार मान लेते हैं। अतः मानव को अधिक से अधिक हरिनाम जप करना चाहिए।

कलियुग में बचने का यह एक बड़ा साधन भगवान् ने मानव को सौंपा है, जो इसे नहीं अपनायेगा वह कभी भी सुख से रह नहीं सकता। यह शास्त्रों का वचन है।

बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

कलियुग में केवल नाम, केवल नाम, केवल नाम ही उद्धार पाने का साधन है। अन्य साधन नहीं है, नहीं है, नहीं है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहि पारा।।

महारानी कुन्ती की भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः।।
विपदः सन्तु ताः शश्वत तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्याद् अपुनर्भवदर्शनम्।।

हे कृष्ण! आपने हमें विषमय भोजन से, महान् अग्निकाण्ड से, मनुष्य–भक्षकों से, दूषित सभा से, वनवास काल के कष्टों से तथा महारथियों द्वारा लड़े गये युद्ध से बचाया है। और अब आपने हमें अश्वत्थामा के अस्त्र से बचा लिया है।

मैं चाहती हूँ कि ये सारी विपत्तियाँ बार–बार आयें जिससे हम आपका पुनः दर्शन कर सकें क्योंकि आपके दर्शन का अर्थ है कि हमें बार–बार जन्म–मृत्यु का अर्थात् इस दुःखरूपी भवसागर का पुनः दर्शन नहीं होगा।

(श्रीमद्भागवत 1.8.24, 25)

16

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 20/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना सहित हरिस्मरण।

मंगलकारी सदाशिव अपनी धर्मपत्नी उमा को भगवद्प्राप्ति हेतु कलियुग में निस्तार होने का उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामायण और श्रीरामचरितमानस न वाल्मीकि ने, न तुलसी-दास जी ने रची है। यह तो सदाशिव की मूल रचना है। जो उनके मन से उत्पन्न हुई हैं।

सदाशिव की रामचरितमानस में नाम महिमा

रामायण

सिम्भू कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा कर उमहि सुनावा॥
रामचरित मानस मन भावन। विरचेऊ सिम्भू सुहावन पावन॥

हरिनाम की महिमा उमा को सुना रहे हैं-

राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुरान उपनिषद् गावा॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहि तेऊ॥
जीह नाम जप जागहि जोगी। विरत विरंच प्रपंच वियोगी॥
भाव कुभाव अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहि पारा॥
हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

अच्युत अनंत गोविंद नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकलाः रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

–भगवान् धन्वन्तरि वचन

जाको नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नसाहि॥
बिबसहुँ जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि॥

एक नाम करे सर्व पाप क्षय।

श्री गौरहरि का वचन।

न कलिकर्म न भक्ति विवेकू। राम नाम अवलम्बन एकू॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विशेष नहि आन उपाऊ॥
सुमरिए नाम रूप बिन देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे॥
सादर सुमिरन जो नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥
मम गुण ग्राम नाम रत, रात ममता मद मोह।
ता कर सुख सोई जानई, परमानन्द सन्दोह॥(श्रीराम वचन)
मम गुण गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा॥

(राम वचन)

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीक भये ब्रह्म समाना॥
पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू॥

(भरत का जाप)

जपिये नाम जप आरत भारी। मिटहि कुसंकट होय सुखारी॥
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भव बंधन काटहि नर ज्ञानी॥
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा॥
बैठे देख कुशासन जटा मुकट कुश गात।
राम राम रघुपति जपत श्रवन नैन जल जात॥
कह हनुमन्त विपत्ति प्रभु सोई। जब तब साधन भजन न होई॥
नाम जपत सप्रेम अनियासा। भक्त होय मुद मंगल वासा॥
नाम प्रसाद शम्भु अविनाशी। साज अमंगल मंगल राशी॥
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको॥
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहु तबही॥

(नाम)

राम नाम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो कोटि यज्ञ फल होय॥
शुक सनकादिक सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
हरिनाम की औषधी जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं, महारोग मिट जाय॥

(जन्म मरण रूपी रोग)

नाम लेत भवसिंधु सुखाहि। करहु विचार सुजन मन माही॥
जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई॥

(हिंसक जन्तु भी अनुकूल हो जाते हैं)

सुनो उमा ते लोग अभागी। नाम ताजि होय विषय अनुरागी॥
यह कलिकाल मलया तन मन कर देख विचार।
श्री हरिनाम तजि नाहिन कोई उपाय॥
कृत जुग त्रेता द्वापर पूजा मख और जोग।
जो गति होय सो कलि हरिनाम से पावें लोग॥
सुमरि पवन सुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू॥
पापी जाकर नाम सुमिरहि। अति अगाध भवसागर तरहि॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गई सती जहँ प्रभु सुख धामा॥

(शिव)

सो छवि सीता राखि उर। रटति रहति हरिनाम॥

(जीभ से)

मन थिर करि तव शम्भू सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना॥
राम नाम शिव सुमरन लागे। जानेऊ सती जगत पति जागे॥

(कान+मन को जोड़कर)

जो अपराध भक्त सन करहि। राम रोश पावक सम जरहि॥
इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला, कालदंड हरि चक्र कराला॥
इनसे जो मारा नहि मरहि। साधु द्रोह पावक सो जरहि॥

जो भक्त किसी भक्त का अपराध तन मन वचन से करेगा उसे उक्त नाम ही घोर सजा दे देगा। कोई नहीं बचा सकेगा। भगवान् भी ठोकर मार देगा।

17

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 20/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का युगल चरणों में असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर उत्तरोत्तर बढने की करबद्ध प्रार्थना।

कितना हरिनाम स्मरण करने से क्या-क्या उपलब्धि होती है

1 करोड़ हरिनाम से 17 करोड़ हरिनाम स्मरण करने पर जापक को कलिकाल में क्या-क्या उपलब्धि होती है, यह शास्त्रीय उद्गार है, मेरे नहीं! जो ठाकुर कृपा वर्षण से उदय होकर लेखन के रूप में व्यक्त करने को प्रेरित हुआ है। स्मरणकारी आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं चाहिए।

यह तब ही साधक को उपलब्ध होगा जब निम्न शत्रुओं से बच पाएगा।

(1) स्मरणपूर्वक जप हो जिसका वर्णन मैंने पिछले कुछ पत्रों में किया हुआ हैं। यह स्मरण कोई कठिन कार्य नहीं है, यदि साधक को पूरी श्रद्धा हो, सुख से जीवनयापन कर आवागमन से छूटना हो तथा भगवद् प्रेम जो अन्तिम पुरुषार्थ है वह पाना चाहते हो तो अवश्य करे।

(2) मान-प्रतिष्ठा से बचता रहे। माया मान-प्रतिष्ठा कराकर भगवान् से वंचित करना चाहेगी क्योंकि भगवान् ने सदाशिव को आदेश दे रखा है कि शास्त्रों की ऐसी रचना कर दो कि मेरे पास कोई आ न सके वरना मुझे भक्त का सेवक बनना पड़ेगा। जैसे यशोदा जी से कान्हा थर-थर काँपता है। केवट से गंगा पार होने को निहोरा खाता है। देवताओं को राक्षसों से बचाना पड़ता है आदि-आदि।

कृष्ण यदि छुटे भुक्ति मुक्ति दिया। कभू प्रेम न देय राखे लुकाइया।।

अतः सदाशिव ने अनेक शास्त्र रच दिए जिससे साधक भटकता रहता है। गलत शास्त्रों से अज्ञानी जीव भक्ति को जो हरिनाम से प्राप्त होती है उसे न जानकर दान, तप, यज्ञादि से अपना अमूल्य मानव जीवन खो बैठता है। यही है माया का खेल। जो सुकृतिशाली होगा वही हरिनाम के आश्रित हो पायेगा, जो करोड़ों में से कोई एक ही होगा, केवल जिसपर भगवान् की तथा भक्तों की अकथनीय कृपा होगी। लेकिन श्रीगुरुदेव जी के आदेश से मुझपर ठाकुरजी की पूर्ण कृपा होने से हजार में एक भक्ति पथ (हरिनाम) का रास्ता अपनाकर अपना जीवन सफल कर रहा हूँ। जिसको भी मैं बोलता हूँ, एक लाख हरिनाम हर रोज करना है, वह करने लग जाता है। इससे ठाकुरजी की कृपारूपी हरिनाम अधिक करने की मुझे कामना होती है।

अब तीन से चार लाख हरिनाम कर रहा हूँ जिसमें 14 से 15 घंटे लग जाते हैं। यह इसलिए घोषणा कर रहा हूँ ताकि लेख पढ़ने वालों को प्रेरणा मिल सके तथा पश्चाताप होकर अधिक से अधिक हरिनाम स्मरण बन सके। भजन छिपाकर रखने से अन्य भक्तों को श्रद्धा नहीं हो सकेगी। भजन को छिपाकर रखना भी उचित है परन्तु छिपाकर रखने से अन्य भक्तों को उत्साह नहीं रहेगा। मेरा भजन स्तर गिर जाने की मुझे चिन्ता नहीं है। अन्यों को तो लाभ होगा।

न कलि कर्म न भक्ति विवेकु। रामनाम अवलम्बन एकू।।

(3) स्मरण का तीसरा शत्रु है, 10 नामापराधों से बचते रहें- जिसमें भक्त अपराध बहुत ही खतरनाक है। यदि शिव-ब्रह्मा भी भक्त अपराध करें तो बच नहीं सकते। दुर्वासा शिवजी का भाई ही तो था वो ही अम्बरीष का अपराध करने पर बच नहीं सका। अपराध ही अपराध करने वाले का नाश कर देता है एवं भक्त की सेवा ही भगवान् से मिला देती है।

शिव वचन–

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। साधु द्रोह पावक सम जरहि।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कह रहे हैं,

एक नाम करे सर्व पाप क्षय

यदि कान व मन को जोड़कर हरिनाम किया जाय व उक्त तीन प्रकार के अपराधों से बचता रहे तो प्रेम प्रकट हो जायेगा।

हरिनाम का अकथनीय प्रभाव–

भगवद् अवतार धन्वन्तरि जी, जो क्षीरसागर से अमृत का कलश लेकर आये थे, कह रहे हैं–

अच्युत अनन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात् (औषध)
नश्यन्ति सकलाः रोगाः सत्यं सत्यं वदामि अहम्।

मै सत्य–सत्य कह रहा हूँ, कि हरिनाम अर्थात्, अनन्त और गोविन्द नाम के उच्चारण की ओषधि से सभी रोग समाप्त हो जाते हैं।

एक करोड़ जप से सुस्ती जावे। दो करोड़ जप से रोग न आवे।
तीन करोड़ जप से मन लग जावे। चार करोड़ जप से विरह हो जावे।
पाँच करोड़ जप से मन अकुलावे। छः करोड़ जप से नींद भाग जावे।
सात करोड़ जप से परमानन्द पावे। आठ करोड़ जप से दुर्गुण भाग जावे।
नौ करोड़ जप से सद्गुण आवे। दस करोड़ जप से भाव उपजावे।
ग्यारह करोड़ जप से संबंध बन जावे। बारह करोड़ जप से प्रेम उपजावे।
तेरह करोड़ जप से दर्शन पावे।
चौदह करोड़ जप से जन्म–मरण नष्ट हो जावे।
पन्द्रह करोड़ जप से गोलोक पठावे। सोलह करोड़ जप से सेवा पावे।
सत्रह करोड़ जप से अमर हो जावे।

असीम कृपा भगवान् की–

रहति न प्रभु चित्त चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिय की।।

भक्त की गलती भगवान् देखते ही नहीं। भक्त की सेवा की सौ–सौ बार प्रशंसा करते रहते हैं। प्रभु की दया का भी कोई वर्णन कर सकता है क्या ? कदापि नहीं।

अखिल ब्रह्माण्डों के नायक भगवान् की अकथनीय भक्त वत्सलता है। हरिनाम ही भगवान् की भक्त वत्सलता उदय कराने में सक्षम है। नाम में ऐसी अपार शक्ति है कि स्वयं भगवान् भी हरिनाम स्मरण का महत्व नहीं बता सकते। जिस प्रकार अग्नि जाने अनजाने में छू जाये तो दाहिका शक्ति होने से जला डालती है। इसी प्रकार हरिनाम यदि जाने व अनजाने में मुख से निकल जाये तो अनन्तकोटि जन्मों के पापों को जलाकर समाप्त कर देता है।

ध्यानपूर्वक पढ़ें–

बिबसहुँ जाको नाम नर कहहिं। जन्म अनेक रचित अघ दहहिं।।

भगवान् की भक्तवत्सलता को देखकर हैरानी हो जाती है कि जिससे महाकाल भी थर–थर काँपता रहता है वह भगवान् भक्त की सेवा के वश होकर जैसे भक्त नचाता है वैसे नाचता रहता है। यशोदा मैय्या से कान्हा थर–थर काँपता था, भय की वजह से रोता था। अर्जुन जैसा कहता था वैसा ही रथ को भगवान् खड़ा कर देते थे। युद्ध विश्राम पर श्रीकृष्ण घोड़ों की मालिश करते थे। सभी योद्धा विश्राम करते थे एवं भगवान् सेवा मे रत रहते थे। यह कितनी आश्चर्य की बात है।

भगवान् का शत्रु–

सुन सुरेश उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।
मानन सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकायी।।
उमा सुनो ते लोग अभागी। हरि तजि होय विजय अनुरागी।।
वचन कर्म मन मोरि गति, भजन करहि निष्काम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करहि सदा विश्राम।।

(राम वचन)

अब प्रश्न उठता है कि हरिनाम में मन कैसे लगे ?

इसका उत्तर है कि सर्वोत्तम भक्त का संग करे। विषय वासना को धीरे–धीरे कम करते जाये। विचार करते रहे कि यहाँ की सभी वस्तुएँ नाशवान हैं तथा साथ में जायेंगी नहीं, जब शरीर ही साथ में नहीं जाता तो और क्या साथ में जाएगा ? केवल मात्र जाएगा अपना शुभ व अशुभ कर्म ही। गृहस्थी कुछ माला में हरिनाम करता रहे तथा अन्य समय में मुख से हरिनाम करता रहे, तो अभ्यास होने से सदैव हरिनाम होता रहेगा। भूलने पर बार–बार नाम में मन को लगाते रहे। नाम ही सुदृढ़ नौका है जो भवसागर से पार करा देगी। नाम को हरदम कान से सुनने का अभ्यास करते रहे। सच्ची कमाई का पैसा ही हरिनाम में मन लगायेगा। गलत पैसा तोता रटन (भावरहित हरिनाम) करता रहेगा, वह भी लाभकारी रहेगा लेकिन भविष्य का जन्म मनुष्य का नहीं होगा। जब चौरासी लक्ष योनि भुगतकर भगवद्कृपा से मानव जन्म मिलेगा तब पिछले जन्म में सुकृति से जो हरिनाम अवहेलनापूर्वक लिया था वह सद्गुरु से मिला देगा।

गहरे दिमाग से विचार करो कि भगवान् ने मुझे भारत में जन्म दिया जहाँ भगवान् अवतार लेते हैं। विदेशों में भगवद्भक्ति का नामोनिशान ही नहीं है। अच्छे कुल में जन्म हुआ। निरोगी काया दी। जीवनयापन की सामग्री दी। कुटुम्ब अनुकूल दिया। सन्तों का संग दिया। सद्गुरु से मिला दिया। कलि का धर्म जो हरिनाम है वह सुगमता से जपने का सुअवसर दिया। भगवान् ने कितनी अवर्णनीय कृपा की! फिर भी हरिनाम में रुचि नहीं है, कितना दुर्भाग्य है मेरा–ऐसा सोचकर पश्चाताप की आग में जलना चाहिए।

यदि हरिनाम में रुचि नहीं हुई तो यह मानव जन्म व्यर्थ चला जायेगा। फिर दुःख सागर में दुःख भोगते रहो। नरक की यातना सुनने से ही दिल घबरा जाता है। अतः गहरा सोच विचार कर हरिनाम करो।

यह कलिकाल का युग है, इसमें भगवान् के ग्राहक गिने-चुने हैं, अतः जो मानव थोड़ा भी हरिनाम करता है तो उसे भगवान् याद रखते हैं। सभी भगवान् के बच्चे हैं अतः किसी को भी दुःख देकर दुःखी मत करो वरना भगवान् आपको बहुत खतरनाक दण्ड देगा। सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न है अतः वह अपने-अपने स्वभावानुसार जीवनयापन करते हैं। अतः निन्दा-स्तुति से दूर रहकर हरिनाम करते रहना चाहिए। हरिनाम की कृपा से सभी जापक भगवान् की कृपा प्राप्त करते हैं।

जापे कृपा राम की होई। तापे कृपा करे सब कोई।।

जिसपर भगवान् की कृपा होती है, उस पर सभी कृपा करने लगते हैं। क्योंकि सबके हृदय में राम का वास है। हिंसक प्राणी भी उसे दुःख कष्ट नहीं पहुँचाएगा।

अब भी समय है। मन लगाकर लगातार हरिनाम करो वरना पछताना पड़ेगा। रोना पड़ेगा। चौरासी लक्ष योनियों में जाना पड़ेगा। सुख से हाथ धोना पड़ेगा। अमूल्य समय को खोना पड़ेगा। चेत जाने में ही अकथनीय लाभ है। सभी काम भगवद्कृपा से पहले से भी ज्यादा अच्छे होंगे।

श्रीराम नाम की औषधि जो श्रद्धा से खाय।
कोई रोग आवे नहीं महारोग मिट जाय।।

कितना सहज, सरल मार्ग है, आँख मींचकर चलो तो भी गिरोगे नहीं क्योंकि भगवान् ने हाथ पकड़ रखा है।

चाणक्य – नीति

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्य स्वर्णकोटिभिः।
स चेन्निरर्थकं नीतः का च हानिस्ततोऽधिका।।

(श्लोक 34)

कोटि स्वर्णमुद्राएँ देकर भी जीवन का बीता हुए एक भी क्षण वापस नहीं आ सकता। इसलिए व्यर्थ गँवाये हुए समय से अधिक और कौन-सी हानि हो सकती है ?

हरिनाम करो! हरिनाम करो! हरिनाम करो!

18

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 30/10/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का आपके युगल चरणारविंद में अनन्तबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़कर पंचम पुरुषार्थ–प्रेम प्रदान करने की प्रार्थना के सहित हरिनाम स्मरण करने की प्रार्थना।

ऐसा करके तो देख...

(भगवान् के दिव्य वचन)

1. मेरे मार्ग पर पैर रखकर तो देख, तेरे सब मार्ग न खोल दूँ तो कहना।
2. मेरे मार्ग पर तन–मन–धन न्योछावर करके तो देख, तुझे कुबेर न कर दूँ तो कहना।
3. मेरा स्मरण करके तो देख, तुझे परमानन्द सिंधु में न डुबा दूँ तो कहना।
4. मेरे नाम का उच्चारण करके तो देख, तुझे माया जाल से न निकाल दूँ तो कहना।
5. मेरे नाम का प्रचार करके तो देख, तुझे सबका प्यारा न बना दूँ तो कहना।
6. मेरी तरफ आकर तो देख, तेरा ध्यान न रखूँ तो कहना।
7. मेरी चर्चा लोगों से करके तो देख, तुझे अमृत न पिला दूँ तो कहना।
8. स्वयं को न्योछावर करके तो देख, तेरा न बन जाऊँ तो कहना।

9. मेरा कीर्तन करके तो देख, कलि चाण्डाल से न बचा दूँ तो कहना।
10. मेरे लिए आँसू बहाकर तो देख, तेरा दुःख समूल नष्ट न कर दूँ तो कहना।
11. तू मेरा बनकर तो देख, जगत को तेरा न बना दूँ तो कहना।
12. मेरे लिए कुछ करके तो देख, यमराज के मुख पर कालिख न लगा दूँ तो कहना।
13. तू साधु सन्तों का बनकर तो देख, तेरा दास न बन जाऊँ तो कहना।
14. मेरे लिए सत्शास्त्रों का अवलोकन करके तो देख, ज्ञान का भण्डार न खोल दूँ तो कहना।
15. तू मेरी भक्ति करके तो देख, तुझे वैराग्य का चोला न पहना दूँ तो कहना।
16. तू मेरे सम्मुख होकर तो देख, तेरे सारे रोग न मिटा दूँ तो कहना।
17. तू मेरे लिए जाग कर तो देख, तुझे निद्रा दोष से न हटा दूँ तो कहना।
18. तू टी.वी., अखबार, मोबाइल से दूर रहकर तो देख, तेरा मन मेरे में न लगा दूँ तो कहना।
19. तू मेरे चरणों का ध्यान करके तो देख, तुझे जन्म-मरण के दुःख से न छुड़ा दूँ तो कहना।
20. तू मेरा शिशु होकर तो देख, तुझे नामापराध व मान-प्रतिष्ठा से न बचा दूँ तो कहना।

उक्त प्रकार से जो साधक जीवन यापन करेगा वही परमानन्द सिंधु में गोता खाता रहेगा, वरना आवागमन के दारुण दुःख में जलता रहेगा।

कलिकाल में इस दारुण दुःख से दूर होने का केवल मात्र एक ही उपाय है, हरिनाम को आदर सहित स्मरण करते रहो, अन्य कोई भी साधन अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में नहीं है। जो भी इसको अपनाएगा वही सुखी रह सकेगा, अन्य सभी माया की चक्की में पिसते रहेंगे।

उक्त 20 मार्गदर्शनों की उपलब्धि केवल हरिनाम स्मरणपूर्वक करने पर ही हो सकेगी। सन्त अपराध तथा मान-प्रतिष्ठा से बचकर हरिनाम करना होगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए, कोई भी आजमाकर देख सकता है। 4 माला स्मरणपूर्वक करने पर ही अन्तिम पुरुषार्थ भगवद्प्रेम प्राप्त हो सकता है। 100 प्रतिशत होगा ही।

जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
जाको नाम लेत जग माहि। सकल अमंगल मूल नशाहि।।
बिबसहुं जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। जन्म कोटि अघ नासहुं तबहि।।

हरिनाम को अपनाना ही सम्मुख होना है। कलियुग का धर्म ही नामस्मरण है। अतः सभी मेरे स्नेही बंधु नाम का आसरा लो, ताकि समस्त दुःखों से छुटकारा हो सके। बस, यही मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है, सभी के चरणों में! मनुष्य जन्म अब आगे नहीं होगा, फिर चौरासी लक्ष योनियों में भटकना पड़ेगा। सरलतम साधन अपना कर अपना जीवन सफल करने में ही लाभ है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

19

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 01/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का अनन्त बार चरणों में दण्डवत् प्रणाम तथा भक्ति मन सहित होने की प्रार्थना के साथ सप्रेम हरिस्मरण।

भगवद्भक्ति का प्रभाव अमिट क्यों है?

भक्ति कभी भी नष्ट नहीं होती, क्योंकि यह भगवान् में आसक्ति का मूल स्रोत है। भगवान् और भक्त नित्य हैं। भगवान् में से सभी चर-अचर प्राणी सन्तान के रूप में प्रकट हुए हैं। आदि में सभी जीवों का अन्तःकरण एकदम स्वच्छ तथा निर्मल था। धीरे-धीरे माया का गुण सत्व-रज-तम का आवरण (मैल) चढ़ गया एवं जीव दूषित होता गया। आदि में जीव सद्गुण, दया, धर्म, प्रेमादि से ओत-प्रोत था बाद में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि उसमें व्याप गए, अतः सद्गुण का प्रभाव जाता रहा। यह माया के आवरण ने परम पिता को भुला दिया जो नित्य का पिता है। अनेक पिता बना बनाकर भटकता रहा। अब तक उसे अपना खास पिता नहीं मिला। यह पिता तब ही मिल सकता है जब किसी श्रेष्ठ सन्त का संग हो। यह इसकी सुकृति के अभाव में मिल नहीं सकता।

यह सुकृति तब ही उपलब्ध होती है, जब इसके अनन्त योनि भुगतने पर मनुष्य जन्म भगवद्कृपा से मिला हो, तथा सन्त की कृपा उपलब्ध की हो। न जाने कितनी बार इसने मनुष्य जन्म भगवद्कृपा से उपलब्ध किया हो। उन मनुष्य जन्मों में बार-बार सत्संग किया हो तब जाके इसका जन्म-मरण से पिंड छूटता है।

लेकिन यह आवागमन अनन्त कोटि वर्षों में छूट पाता है। इसका कोई हिसाब किताब नहीं कर सकता।

प्रायः पिता का गुण–अवगुण पुत्र में अवश्यमेव आता है। सभी भगवान् के पुत्र हैं। भगवान् निर्गुण (तीन गुणों से परे) हैं, अतः उनकी भक्ति भी निर्गुण है। भक्ति का अर्थ है, भगवान् में आसक्ति। भगवान् में आसक्ति भी निर्गुण सिद्ध हो जाती है, अतः भक्त सहज ही निर्गुणता को उपलब्ध हो गया।

निर्गुणता नित्य में आरोपित होती है। भगवान् तथा भक्त नित्य है, वह कभी अनित्य नहीं हो सकते। भक्ति भी अमिट रहती है।

इसके धर्मशास्त्रों में कई उदाहरण मिलते हैं, जैसे भरत ने भक्ति की थी लेकिन पूर्ण न होने तक हिरण के बच्चे में आसक्त होने के कारण पूर्णावस्था प्राप्त होने से पहले ही बीच में देहमुक्त हो गया, लेकिन भक्ति नष्ट नहीं हुई और हिरण की योनि प्राप्त होने पर हिरणों के संग से दूर रहा एवं सन्तों के आश्रम में उन्होंने अपना जीवनयापन किया। अगले जन्म में ब्राह्मण के यहाँ जन्म पाया तथा जड़भरत कहलाया।

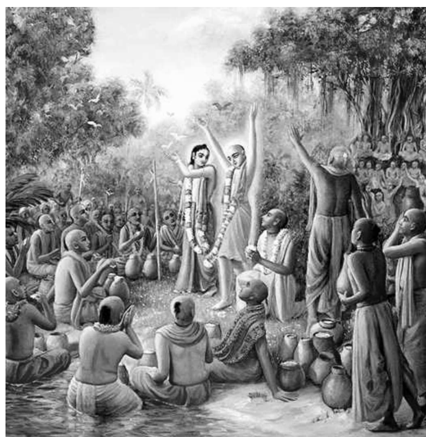
इन्द्रद्युम्न राजा ने अगस्त्य मुनि के शाप से हाथी की योनि पाई। जब ग्राह ने उस हाथी के पैर पकड़कर उसे तालाब में डुबोने लगा तो हाथी ने पिछले जन्म में जो भक्ति की थी उसके बल से भगवान् की प्रार्थना की तथा भगवान् ने उसे संकट से बचाया। हू–हू नामक गन्धर्व शाप से ग्राह बन गया था।

वृत्रासुर राक्षस था। यह पिछले जन्म में चित्रकेतु नाम का राजा था। पार्वती के शाप से राक्षस हो गया था। चित्रकेतु भक्त होने के कारण उसने वृत्रासुर राक्षस के रूप में जन्म लेकर इन्द्र को भक्तिमय शिक्षा से सराबोर कर दिया। कई उदाहरण हैं कि भक्ति सदैव अमर रहती है।

उदाहरण स्वरूप, एक पाठशाला मे 8वीं पास करली, अब इस पाठशाला में 8वीं से आगे कक्षा नहीं है तो पाठक दूसरी पाठशाला में 9वीं कक्षा में भर्ती होगा ही। इसी प्रकार भक्ति का क्रम आगे आगे बढ़ता चला जाता है।

माया जादूगरी की तरह, सच्ची दिखती है परन्तु वास्तव में एकदम झूठी है। यह अज्ञान है। भक्तिरुपी सूर्य के यहाँ अज्ञानरूपी अन्धेरा रह नहीं सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण के गौरहरि अवतार की कड़ी में जो जुड़ गया उसका एक दिन जन्म-मरण निश्चित ही छूट जायेगा। यदि भक्त अपराध और अहंकार से बचता रहे तो छूट जायेगा।



भगवान्, भक्त और भक्ति नित्य और सत्य है।
बाकी सबकुछ अनित्य और असत्य है।

जनमे जनमे सबे पितामाता पाय।
कृष्ण गुरु नाहि मिले भजन हरि भाय।।

हर जन्म में पिता-माता मिलते हैं, परन्तु कृष्ण और गुरु हर जन्म में नहीं मिलते हैं, इसलिए भगवान् हरि का भजन (हरिनाम) कीजिए।

20

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 1/10/2007

परमाराध्य भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का सभी भक्तों के युगल चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की प्रार्थना के साथ प्रेम से हरिस्मरण।

कलि चाण्डाल के प्रकोप से बचने का एकमात्र उपाय–हरिनाम स्मरण

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीचैतन्य महाप्रभु गौरहरि। जिन्होंने अपने सभी जनों से एक लाख हरिनाम नित्य स्मरण करवाने हेतु घर–घर जाकर भगवद्प्रसाद पाने का एक बहाना किया था, वास्तव में तो उनसे एक लाख हरिनाम स्मरण करवाना था। ताकि इस कलि चाण्डाल से बचा जा सके।

कलि बोल रहा था कि, "घर घर में, समाज में, गाँव–गाँव में, शहर–शहर में, देश–देश में यदि कलह नहीं करवा दूँ तो मेरा नाम कलि ही क्या हुआ ? जो प्रत्यक्ष में दृष्टिगोचर हो रहा है।

जिस जगह में एक लाख हरिनाम स्मरण होता होगा, वहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी क्योंकि वहाँ भगवान् का सुदर्शन चक्र पहरा देता रहता है, यदि मैं वहाँ चला जाऊँ तो जलकर भस्म हो जाऊँ। ऐसा आदेश मुझे अखिल लोक के सृजनकारी ने दे रखा है कि भक्त के यहाँ जाने पर तेरा अन्त निश्चित है।

अन्य जगह में, मैं टी.वी., अखबार तथा मोबाइल के रूप में आविष्कृत होकर मानव को चरित्रहीन करके ही रहूँगा। और मैं भविष्य में भी एक आविष्कार करने वाला हूँ। एक ऐसा यंत्र बनाऊँगा, जिससे बैंक, घर, कारखाना आदि का माल, सोना, चांदी, रुपया

सभी उस यंत्र के द्वारा देखकर मोबाइल द्वारा मेरी गैंग को आधी रात में बुलाकर मालिकों को मार कर सबकुछ लूट ले जाऊँगा। पकड़े जाने पर धन दे दूँगा और स्वतन्त्र हो जाऊँगा। केवल नामनिष्ठ भगवद्भक्त ही मेरे से बच पाएगा।

इस समय में भी ऐसा देखने को मिल रहा है। जो जिसको चाहे, उसको मारकर भाग जाता है।

मेरा आधिपत्य चार लाख बत्तीस हजार वर्षों तक रहेगा, क्योंकि मुझे भगवान् ने राज्य करने का आदेश दिया है। अत्याचार करने में मुझे परमानन्द मिलता है। स्वार्थमय वातावरण बना दूंगा। बेटा धन के हेतु माँ–बाप का कत्ल कर देगा। भाई–भाई का शत्रु बनकर सालों से प्रेम करेगा। ऐसी उथल–पुथल भविष्य में अधिक होगी। यहाँ तक कि मठ मन्दिर भी दूषित हो जायेंगे। भजन का अभाव होगा, केवलमात्र खाना–पीना, सोना और ऐश करना ही मुख्य होगा। आपस में झगड़ना, ईर्ष्या–द्वेष करना ही एकमात्र कर्म रह जायेगा। चेले को मानेंगे और गुरु को तानेंगे। पाठशालाओं में पाठ्कों का आधिपत्य होगा। सह शिक्षा (Co-Education) होने से व्यभिचार बढ़ जायेगा। मोबाइल से गुप्त बातें होंगी। शादी में माँ–बाप की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। वर्णसंकरता दस दिशाओं में व्याप्त हो जायेगी।"

अतः एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक हैं।

एक लाख हरिनाम करने हेतु भक्त घबराएँ नहीं। 6 माह एक लाख हरिनाम करने पर 3.5 घंटे ही लगेंगे। आरम्भ में 6–8 घंटे लग सकते हैं। बाद में 2–2.5 मिनट में भी एक माला हो जाती है। एक लाख हरिनाम करने पर दसों दिशाओं की बाधाएँ समाप्त हो जाएँगी। गौरहरि की गारण्टी अनुसार रक्षा होती रहेगी। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमाकर देख सकता है कि, क्या गुल खिलते हैं।

परिवार पर, पड़ोसियों पर, मिलने वालों पर आपका प्रभाव पड़ता रहेगा। चारों ओर रामराज्य हो जायेगा। श्रीगौरहरि के आदेश का भी पालन हो जायेगा।

मेरे ठाकुरजी की गारण्टी है कि जो भक्त 4 माला कान से सुनकर कर लेगा उसे पुलक अश्रु, सात्विक विकार उदय होने लगेंगे। भक्त अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा से दूर रहेगा तब ही ऐसी स्थिति आ सकेगी। जिस भक्त का मूल उद्देश्य भगवद् प्राप्ति का ही होगा उसे शीघ्र ही उक्त स्थिति प्राप्त हो सकेगी। उक्त दो अड़चनें (भक्त अपराध तथा मान–प्रतिष्ठा) नास्तिकता का भाव उदय करा देती है। अश्रद्धा हो पड़ेगी।

नित्य एक लाख हरिनाम के जप से व्यर्थ में जो समय जा रहा था वह सदुपयोग में गुजरेगा। दो–तीन साल से बहुत भक्त एक सवा लाख हरिनाम कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण है, श्रीगुरुदेव का स्वप्नादेश! **स्वयं 3–4 लाख करो और अन्यों को एक लाख करने के लिए प्रार्थना करो।** यह मेरी शक्ति से नहीं कर रहे हैं। मैं तो एक माईक का काम कर रहा हूँ, पीछे से श्रीगुरुदेव का आदेश काम कर रहा है। मुझे भी ठाकुरजी की तरफ से कृपा रूपी कमीशन मिलता रहता है, इसी वजह से मैं इतना नाम करने में सक्षम हो जाता हूँ। अपनी शक्ति से कोई भी इतना हरिनाम करने में समर्थ नहीं है।

कलियुग का धर्म है हरिनाम करना, वह तो होता नहीं तो द्वापरयुग का धर्म विग्रह की अर्चना पूजा करना तो कैसे फलीभूत होगा ? पहली कक्षा में तो भर्ती हुआ नहीं और बी.ए. में भर्ती हो गया तो क्या वह बी.ए. में पढ़ सकेगा ? उसके लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर होगा। जब पुजारी एक लाख नाम करेगा तब ही भगवान् पूजा ग्रहण करेगा वरना पत्थर का बन जाएगा एवं दर्शकगणों को भी पत्थर ही दिखाई देगा। पुजारी ही देवता को पुजवा देता है।

भगवान् का विग्रह दर्शन इन चर्म चक्षुओं से नहीं हो सकता, यह दर्शन भाव नेत्रों से हुआ करता है। इसलिए तो किसी भी

दर्शनार्थी को पुलक, अश्रुपात दृष्टिगोचर नहीं होता। भूतकाल में पुजारी से भगवान् बातचीत किया करते थे।

हरिनाम ही भावनेत्र प्रदान करेगा। दुर्गुणों को नष्ट कर सद्गुण आकर अन्तःकरण में रम जायेंगे। हरिनाम में रुचि ही नहीं होती इसका खास कारण है, नामनिष्ठ संत के संग का अभाव। नामापराध व मान–प्रतिष्ठा की भूख।

जब तक श्रीगौरहरि के आदेश का पालन नहीं होगा तब तक कलि चाण्डाल से बच नहीं सकते। घर में कलह रहना, रोगों का आक्रमण, केस लग जाना, घर की रिद्धि–सिद्धि समाप्त होना, पड़ोसियों से झगड़ा रहना, रोजगार का न होगा, चरित्र बिगड़ जाना, स्त्रियों का दूषित हो जाना, पुत्र–पुत्री स्वतः ही अपनी शादी तय करना, माँ–बाप की राय को जरूरी न समझना आदि–आदि मर्यादाओं का उल्लंघन होना।

जो एक लाख हरिनाम कर सकेगा उसको गौरहरि एक क्षण भी छोड़कर नहीं जायेंगे। जिस घर में गौरहरि वास करेंगे उस घर मे कलि का प्रवेश ही नहीं होगा, तब उक्त परेशानियाँ आऐंगी ही नहीं। ऐसा अब देख भी रहे हैं। अतः मेरी हाथ जोड़कर सभी से प्रार्थना है कि अभी से एक लाख हरिनाम करने लग जायें, इसमें मेरा भी भला व जापक का भी भला। इसी जन्म में मनुष्य जन्म सफल हो जाये और दुःख सागर से पार हो जाये, तो कितनी बड़ी उपलब्धि हो जाती है, जो अवर्णनीय है।

हरिनाम की अकथनीय महिमा–

कहौं कहा लगि नाम बडाई। राम न सकहि नाम गुणगाई।।
बिबसहूं जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
जाऊ नाम जप सुनहु भवानी। भवबंधन काटहि नर ज्ञानी।।
जाऊ नाम जप एक ही बारा। उतरहि नर भव सिंधु अपारा।।
भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहुं।।
नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको।।
नाम प्रसाद शिम्भू अवनाशी। साज अमंगल मंगल राशी।।

नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होय मुद मंगल वासा।।
कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई। जब तब साधन भजन न होई।।
जिनकर नाम लेत लग माहि। सकल अमंगल मूल नशाही।।
उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीक भए ब्रह्म समाना।।
जाना चहिए गूढ गति जेऊ। जीह नाम जप जानेऊ तेऊ।।
राम नाम का अमित प्रभावा। सन्त पुराण उपनिषद गावा।।
जीह नाम जप जागहि जोगी। विरन विरंच प्रपंच वियोगी।।
सन्मुख होय जीव मोहि जबहि। कोटि जन्म अघ नासहु तबही।।

हरिनाम करना यही सम्मुख होना है।

उक्त शिवजी के वचन हैं, जो उमा को बता रहे हैं। रामचरित-मानस शिवजी के मन से निकली है। यह रामनाम से वाल्मीकि के हृदय में प्रकट हुई है। उन्होंने राम का चरित्र हजारों साल पहले ही रामायण में लिख दिया था। तुलसीदास ने इसी का सरल भाषा में अनुवाद कर दिया है। रामायण का मूल तो स्वयं शिवजी हैं।

(श्रीमद्भागवत पुराण का अन्तिम श्लोक)

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्।।

मैं उन भगवान् हरि को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके पवित्र नामों का संकीर्तन सारे पापों को नष्ट करता है और जिनको नमस्कार करने से सारे कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

(12.13.23)

21

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 3/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का भक्तों के युगल चरणों में असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ाने की बारम्बार प्रार्थना।

मन को रोकने का अचूक सरलतम साधन

शान्त मन से अपनी माला लेकर एकान्त स्थान में बैठ जाओ। अपने गुरुदेव से आरम्भ कर उनके चरणों में मानसिक रूप से बैठकर उन्हें हरिनाम सुनाते रहो। मन एकाग्र होने तक सुनाते रहो। बाद में क्रम बद्ध अनुसार अपनी गुरु परम्परा ब्रह्मा तक गुरुवर्ग को एक–एक, दो–दो माला सुनाते रहो तथा जो भगवद्‌रूप हैं उनको भी सुनाना, जैसे गौर–निताई, शिवजी, गणेशजी, हनुमानजी, कपिलजी आदि को भी चरणों में बैठकर सुनाते रहो। बड़े–बड़े समर्थ भक्त हुए हैं, उनको भी। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद,अम्बरीष, पांडवादि को भी। इनकी सेवा में रहकर मन को अधिक रोक सकते हैं। इनको मानसिक रूप से स्नान कराओ, भोजन कराओ, तीर्थों में इनके पीछे–पीछे चलकर इनके चरणों की धूल मन में लगाओ।

मन को रोकने का इतना मसाला है कि जापक इतना हरिनाम कर ही नहीं सकता। ऐसा करने पर इनकी कृपा बरसेगी तथा भगवान् जो इनके हृदय मंदिर में बैठा रहता है, इनकी दृष्टि आप पर पड़ेगी तो शरणागति का भाव उदय हो जायेगा। आपका मन कहीं नहीं चलेगा।

लेकिन शर्त यह है कि जापक का उद्देश्य केवल मात्र भगवद् प्राप्ति का ही होना चाहिए तथा मान-प्रतिष्ठा से दूर रहे। भाव ऐसा हो कि जो मेरे समक्ष है, मेरा हरिनाम सुन रहे हैं, मैं इनको बड़ी लगन से सुना रहा हूँ। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए। बहुत शीघ्र समय में ही इनकी कृपा से अष्ट सात्विक विकार निश्चित ही उदय हो जायेंगे। जब अश्रुपात, पुलक होने लगेगा तो शरणागति का भाव स्वतः ही प्रकट हो जायेगा। भगवान् से सम्बन्ध भी शीघ्र उपलब्ध हो जायेगा। यह सम्बन्ध भगवान् ही प्रदान करेंगे। सम्बन्ध के अभाव में प्रेम का उदय नहीं होगा। भगवान् से नाता जुड़ने पर ही सच्चा प्रेम उदय होता है।

भक्तों को हरिनाम सुनाने से स्वतः ही उसकी छवि हृदयपटल पर दृष्टिगोचर होगी तब ही जापक हरिनाम को सुना सकेगा। जब फोटो ही नहीं होगी तो किसको नाम सुनाएगा ? यह साधन एक दिन में फलीभूत नहीं होगा, धीरे-धीरे अभ्यास करने पर 2-3 माह में सफलता मिल सकेगी। आजमाकर देख लो, मन 100% अवश्य रुक जायेगा। जब तक मन नहीं रोक पाओगे तब तक अगली स्टेज प्राप्त नहीं हो सकेगी। पूरी जिन्दगी व्यर्थ में जाती रहेगी। मन रुके बिना तो संसारी काम ही नहीं होता। सुनने के अभाव में बहुत बड़ा नुकसान भी हो जाता है।

श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का प्रचार इसलिए किया कि पशु-पक्षी आदि जो नाम नहीं कर सकते वह नाम को सुनकर सुकृति इकट्ठी कर सकते हैं। अतः गुरुवर्ग को नाम सुनाना परमावश्यक है।

जो भगवद्प्राप्ति करोड़ों मानवों में केवलमात्र किसी एक को ही होती है वह उक्त साधन करने पर हजार में एक को होगी। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, शास्त्र कह रहा है-

बिबसहु जाको नाम नर कहहि। जन्म अनेक रचित अघ दहहि।।
जो सभीत आया शरणाई। ताको राखूँ प्राण की नाई।।

मन से नाम करना ही शरणागति है। यह कलियुग का धर्म है। यह जब होने लगती है तो भगवान् का अर्चन-पूजन सजीवता

धारण कर लेता है, वरना ठाकुर पत्थर का बना रहता है, क्योंकि जब नाम ही नहीं होगा तो भाव कहाँ से उदय होगा ? भाव नेत्रों के बिना भगवद् दर्शन नहीं होगा। इन जड़ आँखों से ठाकुर दर्शन असम्भव ही है। पुजारी को तो कम से कम एक लाख हरिनाम करना परमावश्यक है, जैसा कि गौरहरि का सबके लिए आदेश है।

पुजारी से भगवान् बोलते हैं, जब भाव से ठाकुर सेवा होती है। वरना ठाकुर मूक बनकर बैठे रहते हैं।

अर्चन मार्गेते गाढ़तर रुचि याँर।
श्रवण-कीर्तन-सिद्धि ताहाते ताँहार।।
नामे ऐकन्तिकी रति हइवे याँहार।
श्रवण-कीर्तन-स्मृति केवल ताँहार।।

अर्चन-मार्ग में जिसकी गाढ़ रुचि है, वह भगवान् का अर्चन तो करेगा परन्तु उसे भी भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला व धामों की महिमा का श्रवण-कीर्तन करना होगा, तब ही उसको अर्चन मार्ग में सिद्धि मिलेगी। हरिनाम में जिसकी एकान्तिकी प्रीति होगी, वह केवल भगवान् के नाम का श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही करेंगे, अर्चन इत्यादि में उनकी ज्यादा रुचि नहीं होती।

(श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित 'श्रीहरिनाम चिन्तामणि'-
भजनप्रणाली 15.39,40)

22

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/11/2007
एकादशी

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का सभी भक्तगण के युगल चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्तिस्तर बढ़ते रहने की प्रार्थना।

भगवान् व भक्त की पदरज, पद जल तथा अवशेष (उच्छिष्ट) से प्रेमाभक्ति का उदय

धर्मशास्त्रों मे उक्त वर्णित पदरज, पदजल तथा अवशेष के बहुत उदाहरण मिलते हैं।

प्रथम तो स्वयं भगवान् ने गोकुल में रज खाई। इसका मुख्य कारण है, इस भूमि पर भक्त घूमा करते थे अतः स्वयं भगवान् रज खाकर सभी जनों को शिक्षा दे रहे हैं।

गंगा जी ने भगवान् से प्रार्थना की, कि पापी मुझमें स्नान करके मुझे भी गंदा बना देंगे, तो भगवान् ने आश्वासन दिया कि भक्तजन जब तुम में स्नान करेंगे तो तुम गंदी न होकर पवित्रता प्राप्त कर सकोगी।

भगवान् ने अपनी चरणरज छुवाकर अहिल्या का उद्धार किया। भगवान् कृष्ण ने सुदामा के चरण रो-रो कर अश्रुधारा से पखारे। तथा उसके पादप्रक्षालन का चरणामृत (चरण जल) परिवार को पीने को दिया तथा पूरे घर में छिड़का।

केवट ने गंगापार करवाने से पहले श्रीराम के चरण कठौती में पानी भरकर पखारे तथा परिवार सहित उनका चरण जल सेवन किया। भगवान् कृष्ण ने सिरदर्द का बहाना बना कर नारद को भक्त की चरण रज मँगवाने को कहा, तो नारद को किसी ने भी

अपनी चरणरज नहीं दी। गोपियों के पास जाने को कहा तो गोपियों ने पैरों को रगड़-रगड़ कर बहुत सी चरणरज कपड़े में बाँधकर दे दी और कहा कि शीघ्र ले जाकर उनके सिर पर मल देना ताकि शीघ्र सिरदर्द समाप्त हो सके।

प्रह्लाद की उक्ति है कि, जब तक महन्तजन की चरण का अभिषेक नहीं होता तब तक भक्ति स्तर बढ़ता नहीं है। अपराध क्षमा होता नहीं है। उद्धव ने व्रज में झाड़ी होने की श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, ताकि गोपियों की चरणरज मुझपर पड़ती रहेगी, तो मैं पवित्र होता रहूँगा।

भक्तों की कितनी महिमा है-

पुण्य एक जग में नही दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपट करहि भक्त सेवा।।
मन क्रम वचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मो समेत विरंच शिव, वस तप के सब देव।।
जाते बेगि द्रबहु में भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदायी।।
कह रघुपति सुन भामिनी बाता। मानऊ एक भक्ति का नाता।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहि कोऊ जगत्राता।।
कवच अभेद गुरु पद पूजा। एहि सम उपाय विजय न दूजा।।
जो अपराध भक्त कर करहि। राम रोश पावक सो जरहि।।
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विमव बस करहि।।
इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
जो सठ गुरु सन ईर्षा करहि। रौरव नरक कोटि जुग परहि।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहि शरीरा। अयुत जन्म तक पावहि पीरा।।
गुरु के वचन प्रतीति न जेहि। सपनेहु सुगम न सुख सिद्धि तेहि।।

सत्य नित्य प्रेमाभक्ति भगवान् से दास, सखा, शिशु आदि भाव से नाता जुड़े बिना नहीं हो सकती। भगवान् पुत्र है यह नाता तथा सखी, मंजरी भाव का नाता भगवान् देते नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों सम्बन्ध आदि काल से बने बनाए रहते हैं। कश्यप-अदिति, दशरथ-कौशल्या, नन्द यशोदा आदि सब आदि काल से हैं, ऐसे ही

सखि-मंजरी भाव भी आदिकाल से हैं। कोई भक्त इन दो प्रकार का नाता करना चाहता हो तो उसे बहुत उच्च स्तर की परमहंस स्थिति होना आवश्यक है वरना वह निश्चित ही नीचे गिरेगा। साधारण भक्त अपने मतानुसार, यह नाते स्वयं कर लेता है। भगवान् यह सम्बन्ध किन्ही करोड़ों-अरबों में किसी एक को ही देते हैं। ये दोनों नाते खतरे से खाली नहीं हैं। साधारण भक्त इसका अधिकारी नहीं है। अन्य नाते भगवान् भक्त को उसके भावानुसार देते हैं।

भगवान् से जब तक सम्बन्ध नहीं जुड़ेगा तब तक भगवान् उसे नहीं अपनाते क्योंकि अभी उस भक्त का सम्बन्ध संसार से है। जब संसार से नाता टूटेगा तब ही भगवान् से नाता जुड़ सकता है।

जब भक्त 11 करोड़ हरिनाम सम्पूर्ण कर लेगा तब ही भगवान् उसे उसके भावानुसार सम्बन्ध करा देंगे। स्वयं के मन से बनाया हुआ सम्बन्ध टूट जाता है तथा भगवान् के द्वारा दिया हुआ सम्बन्ध अमर होता है।

11 करोड़ हरिनाम = 11 करोड़ हरिनाम ÷ 16 नाम = 68 लाख 75 हजार हरे कृष्ण महामन्त्र।

हरिनाम मन से होना आवश्यक है तथा नामापराध व मान प्रतिष्ठा सम्बंध प्राप्ति में रुकावट डालती है। जब भगवान् भक्त को सम्बंध देते हैं, तो उसकी पूरी जिम्मेदारी भगवान् स्वयं ले लेते हैं। उसकी कमी पूरी करना तथा जो उसके पास है उसकी देखभाल रखना, भगवान् का काम हो जाता है। उसको जरूरतों की कोई कमी नहीं रहती।

भगवान् भक्त का हो जाता है, भक्त भगवान का हो जाता है।

सादर सुमरन जो नर करहि। भव वारिध गौपद इव तरहि।।
मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद् गिरा नैन बहे नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

भगवद्नाम भी तब ही फलीभूत हो सकेगा जब भक्त का सच्चा प्यार साधु सन्तों से होगा। भगवान् का संसार साधु सन्त ही हैं। इनकी वजह से भगवान् पृथ्वी पर अवतार धारण करते है। केवलमात्र भारतवर्ष ही भगवान् के अवतार का स्थान है।

भगवान् एक दूसरे को शाप व वरदान दिलाकर भक्त को भारत में भेज देते हैं। इनके अभाव में भगवान् किससे अपनी लीलाओं का विस्तार करे? भगवान् की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। माया को अंगीकार कर के लीलाओं का विस्तार करते रहते हैं।

भक्तों के बिना भगवान् रह नहीं सकते एवं भक्त भगवान् के बिना रह नहीं सकते। इन अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में इन दोनों का गहरा अमिट सम्बन्ध है।

(भगवान् कपिलदेव अपनी माता देवहूति को उपदेश देते हैं।)

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तत् जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिभक्तिरनुक्रमिष्यति।।

शुद्ध भक्तों की संगति में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कथाओं तथा उनके कार्यकलापों की चर्चा कान तथा हृदय को अत्यधिक रोचक एवं प्रसन्न करने वाली होती है। ऐसे ज्ञान के अनुशीलन से मनुष्य धीरे-धीरे मोक्ष मार्ग में अग्रसर होता है, तत्पश्चात मुक्त हो जाता है और उसका आकर्षण स्थिर हो जाता है। तब असली समर्पण तथा भक्तियोग का शुभारम्भ होता है।

(श्रीमद्भागवतम् 3.25.25)

23

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 8/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास का सभी भक्तगण के युगल चरणारविन्द में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भक्तिस्तर बढ़ते रहने की प्रार्थना।

विस्मयात्मक चर्चा

भगवद् सृष्टि में देखने में आता है कि एक कन्या का पाणिग्रहण (शादी) माँ–बाप किसी योग्यता वाले युवक से शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मण द्वारा अग्नि को साक्षी मानकर कर देते हैं तो वह कन्या उसके आश्रित होकर सारा जीवन उसके संग रहकर काट दिया करती है।

वह कन्या पीहर के सगे सम्बंधी, भाई–बंधु, माता–पिता आदि को सदा के लिए छोड़कर ससुराल में अपने पति के साथ घर में रहने लगती है। जब उसे शादी के दूसरे दिन कोई पूछता है कि मेरी बहन तुम्हारी शादी हो गई? तो वह उसे जवाब देती है कि, 'हाँ मेरी शादी रात में हो गई है।' यह इस नाते को एक रात भर में ही पक्का कर लेती है।

जब उसकी सन्तान हो जाती है, तो वह अपनी जन्मभूमि (पीहर) आना–जाना बहुत कम कर देती है। प्रायः वह पीहर को भूल सी जाती है। कभी–कभी उसे शादी और मृत्यु जैसे कारणवश बे मन से जाना भी पड़ जाता है।

अपनी संतान की शिक्षा व शादी करने के बाद तो उसे पीहर में जाना–आना बुरा सा लगने लग जाता है। उसे स्वप्न में भी पीहर के भाई–बंधु व माँ–बाप याद भी नहीं आते। अपने पति के घर को ही अपना पक्का घर मान लेती है। अगर कोई उसे पूछता है कि तुम

किस गाँव की हो ? तो वह अपने पति के गाँव को ही अपना गाँव बताती है। माँ–बाप का गाँव तो दिल से निकल ही जाता है। जन्मभूमि को भी भूल जाती है। कैसी विस्मयात्मक और दार्शनिक चर्चा है।

इसी प्रकार से गुरुदेव अपने शिष्य को भगवद्–मंत्र देकर शास्त्रोक्त साक्षी कर भगवान् के हाथों कुंवारी कन्या की तरह सौंप देते हैं। क्योंकि यह भी माया रूपी माँ–बाप के यहाँ कुँवारा ही है। गुरुदेव इसकी शादी रूपी शिष्यता भगवान् से करा देते हैं। तथा शिष्य को कह देते हैं कि आज ही तुम्हारा जन्म हुआ है। आज से तुम भगवान् के हो एवं भगवान् तुम्हारे हैं। तुम सदा से भगवान् के थे, परन्तु मायावश तुम अपने बाप भगवान् से बिछुड़ गये हो, माया ने तुमको भुलावे में डाल दिया। अब आज से तुम असली बाप की गोदी में रहा करो, अब गोदी छोड़कर दूसरी ठौर मत जाना वरना दुःख पर दुःख भोगोगे। शिष्य कहता है, जो आज्ञा, गुरुदेव!

लेकिन अभागा शिष्य भगवान् को भूलकर फिर माया की गोदी में जा बैठा। माया तो सौतेली माँ है। सौतेली माँ भी कभी दूसरे के बच्चे को सुख दे सकती है ? उसमें वात्सल्य प्रेम का अंकुर ही नहीं है। कहाँ से सुख देगी ? नकली वस्तु कभी असली नहीं हो सकती। अतः दुःख पर दुःख होगा ही।

अब गौर से विचार करना होगा, जैसे कोई भी घर से बाहर किसी कारण वश चला जाता है, तो जब तक वह अपने घर पर नहीं आ जाता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता। विश्राम तो उसे अपने घर पर ही मिल सकता है। अन्य किसी जगह पर नहीं।

इस प्रकार जीव जब तक अपने असली बाप के घर अर्थात् भगवान् के घर नहीं पहुँच जाता तब तक जीव को शान्ति कहाँ ? क्योंकि जीव का स्थायी घर तो भगवद्धाम ही है। यह तब ही उपलब्ध हो सकता है जब उसे कोई ज्ञानरूपी सन्त की उपलब्धि हो जाये तो अज्ञान रूपी नैन खुल जाये तथा सच्चे मार्ग पर गमन कर

अपने स्थायी घर पर पहुँच जाये, जहाँ से उसे वापस आना न पड़े। तो सदैव के लिए अमृतसिंधु उसे उपलब्ध हो जाये।

जिस कन्या का विवाह हो जाता है वह उसके अन्तः करण में इतना गहरा बैठ जाता है कि वह 1% भी स्वयं के पीहर का नाता नहीं मानती, अपने पति के गाँव का नाता, पति के भाई, माँ–बाप का नाता 100% मान लेती है। एक रात में इसका मन एकदम बदल गया।

लेकिन शिष्य का नाता जो कि भगवान् का नित्यदास है, वह पक्का नहीं होता। इसका मुख्य कारण है, इसके पूर्वजन्म के संस्कार, जो तामस, राजस तथा सात्विक हैं। वह इतने रचे पचे हैं कि यह संस्कार उसका भगवान् से नाता जुड़ने नहीं देते। माया मोहित शिष्य इनमें फँसा रहता है। इसलिए भगवान् से पक्का नाता जुड़ नहीं पाता।

पहले जन्म की भक्ति कमजोर है, वैसे भक्ति तो सदैव अमर रहती है। जैसे जड़भरत के पूर्वजन्म के भक्ति संस्कारों ने उसे दूसरे जन्म में भी प्रेरित कर संतों की कुटिया के पास रहने को बाध्य कर दिया तथा वह संस्कार उसे हिरण जाति से अलग करते रहे। जिसने पूर्वजन्म में भक्ति की होगी वह सन्त संग पाकर शीघ्र जागृत हो जाती है।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम।।

मनुष्य चाहे निष्काम हो या सकाम (फल का इच्छुक) हो या मुक्ति का इच्छुक ही क्यों न हो, उसे पूरे सामर्थ्य से निरन्तर हरिनाम करते हुए भगवान् की भक्तिमय सेवा करनी चाहिए, जिससे उसे पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सके, जिसकी परिणति अंत में शुद्ध भक्ति में हो जाती है।

(श्रीमद्‌भागवतम् 2.3.10)

24

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 13/11/2007

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर भाव रस बढ़ने की प्रार्थना के साथ सप्रेम हरिस्मरण।

शिशु भाव परम सर्वोत्तम

भगवान् के पिता का सम्बंध करना उचित नहीं है। पिता का सम्बंध तो नित्य है, जैसे दशरथ पिता थे, नन्दबाबा, वसुदेव जी, कर्दम–देवहूति आदि आदि भगवान् के नित्य पार्षद हैं। यह सम्बन्ध साधारण जीव नहीं कर सकता। इसमें त्रुटि होने का भय रहता है।

गोपियों का मधुर सम्बन्ध भी नित्य सम्बन्ध है, यह सम्बन्ध भी साधारण व्यक्ति नहीं निभा सकता। इस सम्बन्ध में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य रहना परमावश्यक है। दास, सखा, शिशु आदि कोई भी सम्बन्ध हो सकता है, परन्तु यह भी भजन के प्रभाव से भगवान् ही देते हैं, अपने मन से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

शिशु सम्बन्ध के कई शास्त्रीय उदाहरण हैं–

श्रीमद्भागवत महापुराण में 10 वें स्कन्ध के 14 वें अध्याय में श्लोक संख्या 12,13 में स्वयं ब्रह्माजी भगवान् से कह रहे हैं कि, क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?

श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार ने गीता के आरम्भ में लिखा है कि तुम ही मेरे माता–पिता व सखा आदि हो। इसमें भी प्रथम शिशु का भाव वर्णित किया है। गौड़ीय सम्प्रदाय की भजनगीति में अपने को शिशु बोला है। रामायण में भी भगवान् ने स्पष्ट कहा है

कि 'चर-अचर सभी मेरे द्वारा उपजाए हैं, अतः सभी का मैं पिता हूँ।

राक्षस तो भगवान् को शत्रुभाव से वर्तते थे फिर भी भगवान् ने उनका उद्धार किया। तो क्या शिशु भाव में कमी हो सकती है?

अब प्रश्न उठता है कि, शिशु तो सेवा करवाता है। अतः यह भाव निम्नकोटि का है।

इसका प्रत्यक्ष उत्तर है कि शिशुभाव उच्चकोटि का है। सेवा किसे कहते हैं? सेवा उसे कहते हैं कि जिसकी सेवा की जाये उसको सुख मिल सके। शिशु भाव में माँ-बाप को हर क्षण शिशु से सुख मिलता है। बच्चा ठुमक-ठुमक कर चलता है, बच्चा हँसता है, बच्चा मिट्टी में लिप्त हो जाता है तो उसे देख-देख कर माता-पिता को रात-दिन सुख मिलता रहता है। जब बच्चा बड़ा हो जाता है, तो माँ-बाप उसकी तरफ देखते तक नहीं।

पशु-पक्षी के वात्सल्य का प्रत्यक्ष आचरण हम सामने देखते रहते हैं कि पक्षी अपने बच्चे से कितना प्यार करता है। चौबीस घंटे उसकी तरफ उसकी चीं-चीं की पुकार से, उसकी बोली से, माँ-बाप आकर्षित होते रहते हैं।

एक बन्दरिया को देख लो। उसका बच्चा मर जाता है, फिर भी वह 6 माह तक छाती से चिपकाए रहती है। बड़ा हो जाने पर उसकी तरफ देखती भी नहीं। शिशुभाव वाले भक्त को भगवान् अष्टप्रहर याद रखते हैं। अन्य भाव वाले भक्त को समय-समय पर याद रखते हैं। माँ-बाप छोटे शिशु को एक क्षण भी याद से दूर नहीं करते। प्रत्यक्ष में प्रमाण नहीं चाहिए।

करोड़ों-अरबों भक्तों में से किसी एक को, भगवान् उसके भाव के अनुसार शिशु भाव प्रदान करते हैं। इतने सारे भक्तों में किसी एक को ही शिशु भाव क्यों देते हैं? इसका कारण है, भगवान् को अष्टप्रहर उस शिशु का ध्यान रखना पड़ता है। उसकी सेवा में रत रहना पड़ता है। लेकिन यह भाव तब ही देते हैं जब

भक्त 100% उन्हें अपना पिता समझता है। उनके लिए तड़पता रहता है।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद् गद गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

शिशु भाव रखने पर विरोधाभास हुआ है, अतः शास्त्रीय वचनों के अनुसार भक्त-चरणों में अर्पित कर रहा हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें। किसी शक्ति ने लिखवाया है। मैंने नहीं लिखा है।

हे कृष्ण प्यारे! अपने दर से ना टालो।

इस शिशु का इकरार, मुझसे लिखा लो।

मैं आपका, आप हैं जो मेरे माता-पिता।

ये झूठा संसार बस आपसे ही रिश्ता।

रिश्ता निभावोगे न, तो क्या देखोगे पिसता।

गोपियों ने कौन सा सत्संग किया था?

फिर भी कृष्ण उनके पीछे-पीछे फिरा था।

केवल अहम् को कृष्ण-चरणों में चढ़ाया।

आठों याम श्याम को दिल में बिठाया।

घर में ही रहकर सब कारज निभाया।

न जप-तप किया, केवल आँखों से आँसू बहाया।

अनिरुद्ध दास जो तेरा शिशु कहाया।

25

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 01/01/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर,

अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजनस्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना।

शास्त्रीय ज्ञान तथा राम वचन

मधुर भाव अर्थात् सखी, मंजरी व कान्ता भाव अत्यन्त उच्चकोटि का भाव है। कान्ता भाव केवल मात्र श्रीराधाजी का होता है। सखी भाव राधाजी के वपु (शरीर) से प्रकट हुआ है। सखी, मंजरी भाव केवल मात्र गोपियों का होता है। रामावतार में संतों ने श्रीराम से प्रार्थना की थी कि 'हम पर भी कृपा होनी चाहिए, कब कृपा करेंगे भगवान् ?' श्रीराम ने कहा, 'जब मैं द्वापरयुग में कृष्ण रूप से अवतरित होऊँगा तब तुम गोपों के घर में जन्म लेना, उस समय मैं तुम्हारे संग में लीला विहार करूँगा। उस समय का इंतजार करते हुए अपने भक्तिपथ पर अग्रसर होते रहो।'

यही संत जन कृष्ण अवतरण पर गोपों के घर में प्रकट होकर गोपी रूप से (साधन सिद्ध) गोपियाँ कृष्ण के संग लीला विहार में सम्मिलित हुए तथा श्रीराधाजी के वपु से प्रकट होकर अन्य गोपियों ने श्रीकृष्ण लीला विहार में संयोग किया। यह सब गोपियाँ नित्य हैं। वह कृष्ण को सुख प्रदान करती रहती हैं।

मधुर भाव को एक साधारण भक्त प्राप्त नहीं कर सकता। एक साधारण भक्त का अन्तःकरण निर्मल नहीं रहता। छः वेग और छः दोष हृदय को दूषित करते रहते हैं। यदि भक्त उक्त भाव का अनुसरण करता है तो अपराधों के चंगुल में फँसकर घोर चरम सीमा का रौरव नरक में दारुण भोग अनन्त युगों तक करता है।

मधुर भाव जो गौर पार्षदों में दृष्टिगोचर होता है, यह सभी नित्यशः मधुर भाव से प्रेरित होकर गोलोक धाम से प्रकट हुए हैं, अतः उनकी पद्य रचना मधुर भाव में वर्णित हुई है।

भगवान् को भक्त, पुत्र के रूप में भजन करते हैं। मैं भगवान् का पिता हूँ, यह भाव भी अपराधों से वंचित नहीं है। भगवान् के साथ पिता का सम्बन्ध भी नित्य ही है। राजा दशरथ ही नन्दबाबा तथा कपिल भगवान् के पिता कर्दम ऋषि के रूप में अवतरित हुए थे।

जब–जब भगवान् के अवतार होते हैं तब तब दशरथ जी ही भिन्न–भिन्न नामों से अवतरित होते हैं। अतः भगवान् को बेटा मानकर (इस भाव से) भजन करना खतरे से खाली नहीं है, अपराध का भागी होना पड़ता है।

मधुर भाव केवल गोपीगण के लिए ही है, जो राधाजी के वपु से प्रकट है। सखा भी कृष्ण के वपु से प्रकट हैं। बहुत ही उच्चकोटि का भक्त इस श्रेणी में आ सकता है, जो अनन्तकोटि भक्तों में कोई एक ही होगा। जो मधुर भाव अपनाता है, संकट में फँस जाता है।

अब शेष रहा शिशु भाव, जो भगवान् को अपना पिता समझकर उस भाव से भजन में रत है। यह सर्वश्रेष्ठ भाव के रूप में विचार करणीय है। सभी भगवान् से प्रकट हुए हैं, अतः सभी उनके पुत्र ही हैं। इस भाव में कहीं भी गिरने का खतरा नहीं है लेकिन अपने सामर्थ्य से यह भाव मिलता नहीं है। **यह भाव भी हरिनाम ही देगा, जब भक्त इस में रत रहकर ग्यारह करोड़ हरिनाम स्मरण सहित करेगा।** क्योंकि भगवद्गीता में भगवान् अर्जुन को बता रहे हैं कि, 'जिस भाव से भक्त मेरा भजन करता है, मैं भी उसी भाव से उसका भजन करता हूँ। जिस प्रकार भक्त मुझे भजता है, मैं भी उसी प्रकार से उसको भजता हूँ।'

शिशु से भगवान् सदैव सुख मानते हैं। माँ–बाप को शिशु पालन में कष्ट न होकर सुख ही होता रहता है। उसकी हलचल, तोतली बोली माँ–बाप को आकर्षित करके सुख–विधान करती

रहती है। शिशु भाव में भक्त दुर्गुणों से बचा रहता है, कोई वेग आदि उसे सताते नहीं हैं, अतः अन्तःकरण शुद्ध होने से भगवान् का प्यारा रहता है।

रोते रहना ही उसके जीवन का आधार है, जो माँ–बाप को अपनी ओर खींचकर माँ–बाप की सुखमय सेवा करता रहता है। इस भाव को कौन काट सकता है, अर्थात् कोई नहीं। यदि यह भाव गलत होता तो अश्रुपुलक से वंचित रहता। ऐसा तो दिखाई नहीं देता, अतः यह भाव सर्वोत्तम है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

राम का वचन (यह वचन शिशु भाव में रहता है)

सेवा का तात्पर्य क्या होता है? इसका गहराई से विचार करना होगा। जिस सेवा से सेवाकारी को सुख का विधान हो, उसे सुख हो वही सेवा सर्वोत्तम होती है।

जीव भगवान् का नित्यदास है अर्थात् नित्य पुत्र है क्योंकि भगवान् ने उसे जन्म दिया है, तो भगवान् उसका नित्य पिता है। यह अकाट्य सिद्धान्त है। इसका कोई भी विरोध नहीं कर सकता। भक्त दास, सखा, शिशु आदि भाव से भगवान् की सेवा भक्ति करता रहता है। कलिकाल में भक्ति का उद्गम केवल मात्र हरिनाम ही है। जो इसे अपनाकर ग्यारह करोड़ हरिनाम को मनसहित उच्चारण करता रहता है, उसे कृपा कर के भगवान् ही भाव सम्बन्ध अर्पण कर देते हैं। यह सम्बन्ध ही भगवान् में प्रेम उदय करा देता है। जब तक भगवान् से कोई भी नाता (सम्बन्ध) नहीं होगा, तब तक भगवान् के प्रति प्रेम का अंकुर नहीं दिखाई देगा एवं न संसारी आसक्ति दूर हो सकेगी। जब तक संसार में आसक्ति रहती है, तब तक भगवान् के प्रति सच्चा सेवा भाव जागृत नहीं होगा। जब सेवा भाव नहीं जागेगा, तो भक्ति केवल दिखावा मात्र होगी। यह भी, नहीं होने से तो उत्तम ही है। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। मरने के बाद, जन्म होने पर फिर से उदय हो जायेगी। जैसे आठवीं कक्षा

पास कर के दूसरे पाठशाला में नवीं कक्षा में भर्ती होना पड़ता है, आठवीं में नहीं।

भगवान् मेरा पुत्र है इस भाव से भजन करना तथा मधुर भाव से भजन करना, एक साधारण भक्त की यह सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि यह छः वेगों तथा छः दोषों से लिपायमान रहता है। वह यदि उक्त भाव में भजन करता है तो घोर अपराध करता है। भगवान् मेरा पुत्र है ऐसा भाव रखकर भजन करने में बहुत बड़ी चेष्टा की आवश्यकता है। माँ बाप, बेटे की हर समय, हर क्षण देखभाल रखते हैं। ऐसा ध्यान रखना एक साधारण भक्त से नहीं हो सकता।

शिशु की कितनी देख–रेख करनी पड़ती है। यह एक साधारण भक्त नहीं कर सकता अतः गहरे संकट में फँस जाता है, अपराध ही हाथ में आता है।

शास्त्रों में देखा जाता है, कि अनन्तकाल तक जंगलों में जाकर भक्त भगवान् की भक्ति करते हैं, तब भगवान् प्रसन्न होकर भक्त के पुत्र होकर अवतरित होते हैं। भगवान् के साथ उनका शिशु बन के तथा सखा के, दास के भाव में भक्त का रत रहना सम्भव है। यह भाव भी ग्यारह करोड़ जप स्मरण पूर्वक करने पर स्वयं हरिनाम ही भक्त को प्रदान करता है। जो योगभ्रष्ट भक्त हो उसे शीघ्र ही इसी जन्म में सम्बन्ध ज्ञान का लाभ मिल सकता है।

स्वयं की शक्ति से सम्बन्ध ज्ञान नहीं हो सकता। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं है, भक्ति केवल कैतव (कपट) है। सम्बन्ध ज्ञान के अभाव में प्रेम हो ही नहीं सकता। यह अकाट्य सिद्धान्त है।

सम्बन्ध ज्ञान होने पर भक्त में हरिनाम आरम्भ करते ही पुलक अश्रु अष्ट सात्विक विकार नजर आने लग जाते हैं, यही सम्बन्ध ज्ञान की पहचान है। जो भी ऐसे भक्त के नजदीक होगा उसे भी चुम्बक की तरह आकर्षित कर अश्रु पुलक स्वतः ही करा देगा।

एक सामान्य सा विचार है कि सभी भगवान् के पुत्र हैं क्योंकि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों को रचने वाले भगवान् ही हैं, अतः सभी उनके पुत्र समान हैं। ब्रह्माजी ने भी भागवत में भगवान् को कहा है कि, 'मैं आपका पुत्र ही तो हूँ!' जब ब्रह्मा ही पुत्र हैं तो सभी पुत्र हो गये। रामायण में श्रीराम ने भी कहा है कि, 'मैंने सभी को पैदा किया है, अतः सभी मेरे पुत्र हैं।'

शिशु भाव में आँखें बंद कर के चलते रहो कोई गिरने का डर नहीं है। न अपराध का और न प्रतिष्ठा का लोभ। भक्त जैसे भाव में रत रहता है, भगवान् उसे उसी भाव से भक्ति करने देते हैं। भगवद्गीता भी यही बता रही है कि जैसा भक्त करता है, मैं भी वैसा ही करता हूँ। दास व सखा भाव भी उत्तम है। परन्तु, मधुर व पिता भाव खतरे से खाली नहीं है। गौरपार्षदों के भाव पहले से ही अलौकिकता लिए हुए हैं। उनकी चरण रज लेने में ही सार्थकता है।

"यदि कोई लाखों सृष्टियों की सम्पन्नता अथवा शान को भी एकत्र करले तब भी वह शायद ही कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा के एक छोटे से कण के बराबर हो। कृष्ण का पवित्र नाम ही मेरा जीवन है। यही मेरे जीवन का परमलक्ष्य है। यही मेरे लक्ष्य की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है।"

(श्रील रूप गोस्वामी की पद्यावली से उद्धृत)

26

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 06/01/2008

परमादरणीय श्रद्धेय व प्रेमास्पद श्रीभक्तिप्रचार विष्णु महाराज जी (श्रीचन्द्रशेखर जी) के युगल चरण कमलों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का असंख्यबार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की करबद्ध प्रार्थना–

माधुर्य भाव (रस) सर्वोच्च भाव

यह माधुर्य भाव (कान्ता भाव) केवल मात्र श्रीराधाजी में ओत–प्रोत है। इससे कुछ निम्नतर मंजरी, सखी भाव गोपीगणों में विद्यमान रहता है। साधारण साधक इस भाव की तरफ दृष्टि भी नहीं डाल सकता, यदि साधक इस ओर चित्तवृत्ति लगाता है तो घोर संकट में फंस जाता है। नरकों में घोर कष्टदायक नरक, रौरव नरक में अनन्तकाल युगों तक गिरकर भोग भोगता रहता है।

माधुर्य भाव में वही रत रह सकता है, जिसने छः वेग–वाणी वेग, मनोवेग, क्रोधवेग, जिह्वा वेग, उदर वेग और उपस्थ वेग से भगवद् कृपा से छुटकारा पा लिया हो तथा छः दोष अत्याहार, जडविषयों के लिए प्रयास, ग्राम्यचर्चा, असत् संग, अस्थिर सिद्धांत तथा इन्द्रिय तर्पण में रुचि से निवृत्त हो गया हो। स्वच्छ अन्तः–करण तथा इन्द्रिय तर्पण कर लिया हो।

वाचो वेगं मनस् क्रोध वेगं जिह्वा वेगं उदर उपस्थ वेगं।
एतान वेगान् यो विषयेत् धीर सर्वामपीमां पृथ्वी स शिष्यात्।।

(उपदेशामृत श्लोक क्र.1)

वाणी वेग, मनोवेग, क्रोध का वेग, जिह्वा वेग, उदर वेग तथा जननेन्द्रिय का वेग इन वेगों तथा आवेगों को जो नियंत्रित करता है, ऐसा धीर व्यक्ति ही इस पृथ्वी पर शिष्य बनाने में समर्थ गुरु है।

गोपियों में से कुछ गोपियों ने रामावतार के समय में भगवान् से प्रार्थना की थी, तब वह रामकृपा से गोपों के घरों में अवतरित हुई थीं, कुछ गोपी श्रीराधाजी के वपु (शरीर) से प्रकट हुई थीं, कुछ गोपी आदिकाल से ही भगवान् के सुख का वर्धन करती थीं।

नये साधक को इस माधुर्य भाव में पैर रखना खतरे से खाली नहीं है। यदि कोई साधक इधर चित्तवृत्ति लगाता है, तो महा अपराध करने के कारण, वह माया द्वारा घोर दण्ड का पात्र बन जाता है।

माया द्वारा दण्डविधान–

जो मंजरी भाव आचरण करहि। रौरव नरक कोटि युग परहि।।
त्रिजग योनि पुनि धरहि शरीरा। बहुत काल तक पावहि पीरा।।

(बड़ों की नकल करना खतरनाक है)

मेरे श्रीगुरुदेव जी ने आदेश दिया था कि तुम भी रासपंचा–ध्यायी मत पढ़ना एवं रास जहाँ भी हो रहा हो वहाँ भूलकर भी मत देखना। यदि देखोगे या भागवत की रासपंचाध्यायी पढ़ोगे तो साधन पथ पर रुक जाओगे।

आपके लिए मैं कुछ कह नहीं सकता आप मंजरी भाव के पात्र हो सकते हो, आपका अन्तःकरण निर्मल है। आप पर गुरुदेव और ठाकुर जी की प्रत्यक्ष कृपा है। तब ही तो 21 मठों का संचालन आपके द्वारा हो रहा है। मैं तो अल्पज्ञ, गाँव का गँवार हूँ, मैं तो नीची Stage का साधक हूँ। मुझपर आपकी कृपा सदैव रहे, यही प्रार्थना है।

यह प्रार्थना मैं आपसे जरूर करता हूँ कि अन्यों को मंजरी भाव के प्रति प्रेरित न करें, वरना आप पर अपराध का भार गिर पड़ेगा। सभी तो इस योग्य नहीं बन सकते, अरबों में कोई एक ही इस भाव में रत हो सकता है। वैसे मैं समझता हूँ, इस भाव का अनुगमन करना असम्भव ही है।

मेरे गुरुदेव तथा श्रीभक्तिवल्लभ तीर्थ महाराज जी को भगवान् ने मंजरी भाव से ही पृथ्वी पर भेजा है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जी भी मंजरी भाव से (कमल मंजरी) इस धरती पर आविर्भूत हुए हैं। सभी तो मंजरी भाव को नहीं अपना सकते।

गौरपार्षद पुस्तक में से भी यह जान पड़ता है कि कोई गोपी तथा कोई गोप बालक गौरपार्षदों के रूप में आविर्भूत हुए हैं। एक साधारण साधक इस भाव का कदापि अधिकारी नहीं हो सकता। उन पार्षदों ने जो पद्य रचना की है वह मंजरी भाव की ही होनी चाहिए। महान् पुरुषों का आचरण करना खतरे से खाली नहीं होता। शिवजी ने विष पी लिया, और कोई पी लेगा क्या ?

स्वयं को टटोल कर देखना होगा कि तू किस Stage का साधक है। उसी Stage अनुसार साधन करना श्रेयस्कर होगा। मंजरी भाव में रत रहने वाला साधक भगवान् कृष्ण को अष्टयाम स्मरण करता रहता है। उसे संसार सूना-सूना प्रतीत होता है। उसे एक क्षण युग के समान जान पड़ता है। वियोग में रोता रहता है ऐसी अवस्था तो किसी में दिखाई नहीं देती।

केवल मात्र नामनिष्ठ को हरिनाम (भगवान्) ही सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करता है। किसी को दास, किसी को शिशु, किसी को सखा आदि भाव देते हैं। मंजरी भाव तो बहुत ही दुर्लभ है। भगवान् अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों की रचना कर इसमें भक्तों के साथ लीला करते रहते हैं। अतः साधारण तौर पर सभी उनके पुत्र समान हैं ही। स्वयं ब्रह्माजी ने भागवत में भगवान् से बोला है, 'क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ?' जब ब्रह्माजी ही पुत्र श्रेणी में आ जाते हैं, तो साधारण जीव तो स्वतः ही पुत्र श्रेणी में आ गया। शिशु भाव में दास, सखा इत्यादि सभी रसों का समावेश है।

हरिनाम करते हुए मन चंचल रहता है, तो उसे सम्बन्ध ज्ञान की प्राप्ति होना बहुत दूर की बात है। स्मरणपूर्वक ग्यारह करोड़ जप होने पर सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

शिशु भाव में न कोई धोखा है, न अपराध, न प्रतिष्ठा की चाह। निर्भर रहकर माँ–बाप को याद कर रोते रहना ही इसका सहारा है। भगवान् को शिशु की चंचलता पर सुख मिलता रहता है। सेवा वही उत्तम है, जिससे सुख मिले।

अब प्रश्न उठ सकता है कि, शिशु भाव में तो भगवान् से सेवा ली जाती है। इसका उत्तर है कि, जिस सेवा से सेवा लेने वाले को सुख मिले वही सेवा सर्वोत्तम है। भगवान् का पुत्र बनकर साधन करने पर भगवान् को पुत्र की चंचलता पर, उसकी हँसी और तोतली बोली पर माँ–बाप के जैसा सुख मिलता है। पुत्र बाप की कोई छोटी सी सेवा भी कर देता है, तो बाप हँस–हँसकर लोट पोट हो जाता है, उसको गोद में चढ़ाकर प्यार भरा चुम्बन देता है। उसे सुख मिलता है।

वैसे विचार किया जाये तो सभी जीव भगवान् के पुत्र ही तो हैं। शिशुभाव निर्भयता का प्रतीक है। रोना ही माँ–बाप को खींच लाता है। माँ–बाप कठोर हो ही नहीं सकते।

गुरुदेव जी ने 1966 में लिखा था–

Chant Harinam Sweetly and Listen By Ear

शिवजी भी यही कह रहे हैं–

सादर सुमिरन जे नर करहीं।
भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

जिसको मैं एक लाख हरिनाम करने को कहता हूँ, वह करने लग जाता है। यह मेरी सामर्थ्य नहीं है, इसके पीछे गुरुदेव का ही हाथ है। गुरुदेव की कृपा ही सबसे एक लाख हरिनाम करवा रही है।

मैं तो आपकी चरण रेणु का अल्पज्ञ भिखारी हूँ। आप की कृपा से ही मेरा साधन भजन हो सकता है। मेरे जैसे गृहस्थी में फँसे हुए का, आप जैसे महान् सन्त ही उद्धार कर सकते हैं। जो मेरे मन में था, वह मैंने आपके चरणों में अर्पित कर दिया। अत्युक्ति हो तो क्षमा करें।



तिनेर स्मरणे हय विघ्न विनाशन।
अनायासे हय निज वाञ्छितपूरण।।

मात्र शुद्ध भक्तों का स्मरण करने से जप में आने वाले विघ्नों का विनाश हो जाता है। गुरु, वैष्णवों तथा भगवान् का स्मरण मात्र समस्त कठिनाइयों का नाश करता है और मनुष्य की समस्त इच्छाओं को सहज ही पूर्ण कर देता है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत, आदि लीला 1.12-2)

27

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 10/2/2008

परमकृपालु भक्त प्रवर तथा श्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम एवं प्रेमसहित भजन होने की करबद्ध प्रार्थना।

भगवान् से सम्बन्ध के अभाव में भक्ति (भगवान में आसक्ति) केवल कपट-मात्र

साधक के अनन्त जन्म-मरण बीत जाते हैं, परन्तु संसारी आसक्ति नहीं जाती। इसका मुख्य कारण है कि, अभी भगवान् से कोई लगाव (सम्बन्ध) नहीं हुआ। जब तक भगवान् से रिश्ता नहीं जुड़ेगा, तब तक भक्ति का आविर्भाव ही नहीं होगा।

मैं जो भी भगवान् के सम्बन्ध के बारे में लेख लिख रहा हूँ, मेरे गुरुदेव के चरण नख ज्योति से हरिनाम करते हुए हृदय में उदय हो रहा है, जो शास्त्रीय ही होगा।

श्रीगुरु पद नख मनि गन ज्योति। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।
उघरहिं बिमल बिलोचन हीय के। मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।।
सूझहि राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

सम्बन्ध ज्ञान क्यों परमावश्यक है ? यह सांसारिक उदाहरण से एकदम स्पष्ट हो जाता है। एक पिता अपनी कन्या का हाथ समाज व अग्नि की साक्षी में किसी सुयोग्य युवक के हाथ में सौंप देता है। अब कन्या का सम्बन्ध पिता के घर (पीहर) से धीरे-धीरे हटकर ससुराल (पति) के घर के जनों से होता चला जाता है। संतान होने के बाद तो उसका मन पीहर में बिल्कुल नहीं रहता। जब कभी पिता के यहाँ कोई आयोजन होता है तो उसे बिना मन जबरन जाना पड़ता है, वह भी दो चार दिन के लिए।

इसी प्रकार श्रीगुरुदेव (पिता) अपनी कन्या (आत्मा) का हाथ भगवान् (पति) के हाथ में सौंप देते हैं। जीव आत्मा (कन्या) का सम्बन्ध जो माया के घर पीहर का था अब वह सम्बन्ध भगवान् (पति) से हो गया। वैसे अन्तःकरण से समझा जाये तो आत्मा स्त्रीलिंग है ही व परमात्मा (परमपति परमात्मा) पुल्लिंग है ही। सभी उसकी संतान हैं, यह निर्विवाद सत्य है ही।

जब भगवान् (पति) से सम्बन्ध बन गया तो अपने आप ही पिता (पीहर) भौतिकता का सम्बन्ध धीरे-धीरे हटता गया। अब भगवान् (पति) के जन-परिवार महात्माओं से प्रेम सम्बन्ध अधिक से अधिक जुड़ता चला गया। अर्थात् कन्या (आत्मा) का चाचा, ताऊ, माँ-बाप, भाई आदि का दिखावे का नाता रह गया। पति (भगवान्) के परिवार-सन्त, महात्माओं से सच्चे प्रेम का नाता जुड़ता चला गया। जब भगवान् के प्यारों से आत्मा (पत्नि) का सम्बन्ध बनता चला गया तो भगवान् रूपी पति को आत्मरूपी पत्नि प्यारी लगने लगी। अब तो भगवान् (पति) आत्मा (पत्नि) का हरक्षण ख्याल रखने लगे। पत्नि को कोई तकलीफ न हो, आवश्यक वस्तु की कमी महसूस न हो। हर प्रकार उसे सुखी देखकर राजी होने लगे।

जब तक भगवान् के साथ सम्बन्ध की स्थिति नहीं होगी, तब तक प्रेम सम्बन्ध होगा ही नहीं और अष्टसात्विक विकार, अश्रु पुलक उदय होना असम्भव ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह अवस्था कैसे आये ? इसका एकमात्र उत्तर है कि, श्रीगुरुदेव के वचनों पर पूर्णश्रद्धा हो। हरिनाम का अधिक से अधिक स्मरण हो। स्मरण कैसे किया जाये ? तो दि. 5/2/2008 के पत्र में उल्लिखित शास्त्रीय उदाहरण से हरिनाम स्मरण किया जाये। जो श्रीगुरुदेव ने आदेश देकर लिखवाया है।

जब ग्यारह करोड़ हरिनाम हो जायेगा, तब भगवान् ही अपना सम्बन्ध अन्तःकरण में उदय करा देंगे। माया का सम्बन्ध मूल सहित उखाड़ कर फैंक देंगे। अपने चरणों में सदा के लिए स्थान

प्रदान कर देंगे। सारा का सारा असत्य दुखड़ा मिटा देंगे, जो अनन्त जन्मों से भोगा जा रहा है। अतः मेरे स्नेही बंधु प्रेमी भक्तों से बारम्बार प्रार्थना है कि हरिनाम की शरण ग्रहण करो ताकि यह जीवन सफल हो सके। भूल करना बहुत बड़ी नुकसान की बात होगी। अभी से सम्भलना श्रेयस्कर है वरना पछतावा हाथ लगेगा। मानव जन्म दोबारा नहीं मिलेगा। पिछले जन्मों में भक्ति की होगी, तो भगवद् सम्बन्ध 5–7 करोड़ हरिनाम में भी प्राप्त हो सकता है। यह स्थिति भजन की तीव्रता पर निर्भर है। आतुरता के भाव पर निर्भर है।

नामाचार्य श्रील श्रीहरिदास ठाकुर के नाम के प्रति दृढ़ता के वचन–

खंड खंड हइया देह जाय यदि प्राण।
तबु आमि वदने ना छाड़ि हरिनाम।।

‘यदि मेरे शरीर को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट दिया जाए तथा मैं अपने प्राण खो बैठूँ, तो भी मैं हरिनाम जपना नहीं छोड़ूँगा।’

(श्रीचैतन्यभागवत आदि 11.91)

28

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी

भूलकर भी रास मत देखना

गुरुदेव का मुझे आदेश था कि तुम कभी भी श्रीकृष्ण भगवान् का रास नहीं देखना। रास देखने से तुम्हें घोर अपराध हो जायेगा। क्योंकि रास अलौकिक होता है, एवं तुम उसे लौकिक अनुभव करोगे, तो तुमसे भगवद् दोष बन जायेगा। और कभी भी श्रीमद्-भागवत के रासपंचाध्यायी का पठन मत करना क्योंकि उसमें गोपियों की भगवद् चर्चा है। उसे भी तुम लौकिक अनुभव करोगे क्योंकि अभी भजनस्थिति इतनी उच्च नहीं है। इसलिए अपराध बन जायेगा।

जो साधक गोपियों का भाव लेकर मंजरी या गोपी भाव से भगवान् से नाता, सम्बन्ध जोड़ता है वह नरकगामी होता है क्योंकि उसका अन्तःकरण अशुद्ध है। न उनके वाणीवेग, उपस्थ वेगादि गये हैं न छः दोष गये हैं। जब तक उक्त दोष नहीं जायेंगे उसका गोपी भाव से भजन करना बहुत बड़ा दोष है। अन्य सम्बन्ध भगवान् से होने में कोई दोष नहीं होगा। संबंध ज्ञान तो स्वयं भगवान् ही दिया करते हैं, जब भक्त की उच्च स्थिति हो जाती है। **मनगढ़न्त भाव ठहरेगा नहीं थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जायेगा। हरिनाम से ही भाव प्राप्त होगा।**

जयपुर में एक सज्जन गोपीभाव से भजन करते रहते थे। मैंने श्रीगुरुदेव को सब बातें खोलकर कहीं तो उन्होंने कहा कि, कभी भूलकर भी गोपी भाव से भजन नहीं करना। जब तक अन्तःकरण में दुर्गुण भरे पड़े हैं, तब तक इस भाव की स्वप्न में भी चेष्टा न करना।

एक महाराज कह रहे हैं कि, 'मधुर भाव सर्वश्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध से भजन करना श्रेष्ठ है।' बिल्कुल ठीक है। परन्तु मन भी तो शुद्ध निर्मल होना चाहिए। पार्षदगण तो गोलोक धाम से पधारे

थे। उनका मधुर भाव होना सम्भव था ही। भक्ति विनोद ठाकुर जी तो मंजरी का अवतार थे। अतः उनका भाव मंजरी का होना जरूरी था। हम नीची स्थिति के साधकगण हैं अतः उक्त भाव में खतरा है। नरक भोग करना पड़ेगा।

शिशु भाव तो एकदम निर्मल है। शिशु में न ईर्ष्या–द्वेष है, न कोई इन्द्रिय वेग है और न कोई दोष है। अतः यदि भगवान् ने यह भाव अर्पित कर दिया तो इससे सर्वश्रेष्ठ भाव क्या हो सकता है! इसका कोई विरोध कर नहीं सकता। देखा जाये तो सभी चर–अचर प्राणी भगवान् के पुत्र समान हैं ही। उन्हीं से सब जन्मे हैं, अतः वह सबके पिता हैं ही। शिशु भाव में 1% भी गिरने का डर नहीं है। कहते हैं कि, इसमें तो भगवान् की सेवा का अभाव है। सेवा किसे कहते हैं ? जिसमें सेवा कराने वाले को सुख मिले। तो यह स्पष्ट ही है कि, शिशु की चंचलता पर माँ–बाप को वात्सल्य सुखानुभूति होती है। शिशु की चपलता पर आनंद आता है। जो शत्रुभाव से भजन करता है जैसे कि राक्षस इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं, उन्हें भी सद्गति मिल गई, तो जो भगवान् को अपना बाप समझकर भजन करेगा, क्या उसे नरक मिलेगा ? कैसी विडम्बना है। हँसी आती है। त्रिलोकी में इसे कोई काट नहीं सकता।

भगवान् शीघ्र दर्शन देते हैं केवल मात्र एक ही उपाय है शिशु की तरह रोने से। भगवान् के लिए बिलखन ही भगवान् को जबरन आकर्षित करती है।

अब प्रश्न उठता है कि रोना तो बस की बात नहीं है, फिर रोना कैसे आये ? इसका सरलतम सुलभ उपाय है कि मृत्यु की याद तथा ऐसा चिन्तन—फिर से मानव योनि प्राप्त होना बड़ा दुर्लभ है यहाँ की सभी आराम की वस्तुएँ नश्वर हैं तथा दुःखदायी हैं, सुख केवल दिखता है, सुख है नहीं। यदि ऐसी बाहरी स्थिति अन्तःकरण में जम जाये तो रोना आना सहज है।

विचार करे कि, यहाँ संसार में कोई अपना नहीं है। सभी स्वार्थी हैं, जब किसी से मतलब होगा तब तो पास में आकर

छल–कपट पूर्वक मीठी बातें बनायेगा तथा जब कोई मतलब नहीं होगा तब इधर देखेगा भी नहीं, चाहे वह कितने भी कष्ट में कराह रहा हो। यह है संसार का प्यार। स्वयं की धर्मपत्नी ही बुढ़ापा आने पर दुत्कार देती है, अंट–शंट बक देती है, तो अन्य सम्बन्धियों की तो बात ही क्या है! अपना शरीर ही दुश्मन बन कर पीड़ा देता है।

केवल मात्र भगवान् ही अहैतुक दयावान हैं। वो ही तेरा प्यारा सम्बन्धी है। तू उसका है, और वो ही तेरा है ऐसा दृढ़ता से अन्तःकरण में बैठ जाये तो फिर क्षण–क्षण में रोना ही रोना स्वतः ही आने लगता है। ऐसी स्थिति कब आये, जब सच्चे भक्त का संग मिल जाये तो सहज ही में उक्त स्थिति प्रकट हो पड़ेगी। ऐसा सच्चा सन्त इस धरती पर ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता। केवल मात्र भगवान्, सन्तों व गुरुदेव की कृपा से ही मिल सकता है। यह तब ही मिल सकता है जब साधक का सच्चे रूप से मन अकुलाये। छल–कपट ही संत न मिलने की मूल रुकावट है।

अन्तःकरण में ही भगवान् का वास है। यह अन्तर्यामि मन का सभी संकल्प–विकल्प जानते हैं। इसमें (मन में) जब तक संसार बसा हुआ है, तब तक भगवान् की अनुभूति होना सम्भव नहीं है। जब तक मूल उद्देश्य भगवद् प्राप्ति का नहीं होगा और भगवद् प्राप्ति व दर्शन पाने की सच्ची अकुलाहट सहित गहरी भूख नहीं होगी तब तक भगवान् बहुत दूर हैं। भगवान् नजदीक से नजदीक तथा दूर से दूर हैं। यह साधक की तीव्र भूख पर निर्भर है।

भगवान् तो सबके पिता हैं। क्या पिता भी कभी अपने पुत्र का अकल्याण करता है ? पुत्र ही पिता की तरफ देखता तक नहीं, अतः किसी की शरण में न होने से दुःख से रोता फिरता है। इसमें किसका कसूर है, पिता का ? पिता तो हाथ फैलाए खड़े हैं, परन्तु पुत्र संसारी खेल में मस्त है, उधर देखता तक नहीं। अतः दुःख पर दुःख भोग रहा है।

कहते हैं, पहले तो रोना आता था, अब तो एक बूंद भी आँखों से नहीं गिरती। इसका खास कारण है कि, मन में संसारी वासना

की गंध घुस गई तथा सच्चे संग से दूर हो गए। संग छोड़ते ही दीपक बुझ गया, अतः अंधेरा आने से टक्कर खाते रहो इसमें समझाने वाले क्या करें? गलती खुद की है, जान बूझकर मन को संसार के कीचड़ में फंसा लिया। अतः संत का संग जरूरी है। जहाँ सच्चा भक्तिनिष्ठ महात्मा हो उसको छोड़ना बड़ा खतरनाक है, फिर से संसारी बदरंग मन पर चढ़ जाएगा। यदि भक्ति से भगवान् को प्राप्त करना हो, तो सच्चे महात्मा का संग कभी भूलकर भी नहीं छोड़ें, वरना माया आकर आक्रान्त कर लेगी। अगर गृहस्थ हो तो सब कर्म भगवान् का समझकर करते रहो तो माया दूर से ही त्याग देगी। अतः सच्चा रोना–बिलखना ही भगवद् प्राप्ति का सच्चा रास्ता है। जैसे गौरहरि ने संसार को सिखाया है।

चैतन्य मंजूषा

(श्रीमद्भागवत की एक टीका)

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद् धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमार्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः।।

भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनका धाम श्रीवृन्दावन है। व्रजगोपियों द्वारा की गयी रमणीक उपासना हमारी उपासना पद्धति है। श्रीमद्भागवत अमल प्रमाण है। प्रेम सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु का यह मत है इस मत में ही हमारा आदर है।

29

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 17/2/2008
एकादशी

परमाराध्यतम भक्त प्रवर स्नेह बंधु तथा श्रीशिक्षागुरुदेव भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराजजी,

सबके चरणों में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा वैराग्य का चोला पहनाने की प्रार्थना!

अन्तःकरण स्पर्शी चेतावनी

समय जा रहा है, काल खा रहा है, मानव सो रहा है, समस्या पर समस्या छा रही है, दुःखों पर दुःख पा रहा है। अन्त में जन्म मरण पर जा रहा है, अनन्त काल से भवसिंधु में डूबा जा रहा है, फिर भी चेत नहीं रहा है।

अभी तो चेत जाओ, समय रहते अपना जीवन सफल करो। यह संसार दुःखों का खजाना है। सुख का तो इसमें लेश भी नहीं है। जो अनुभव होता है, सब स्वप्न की भांति झूठा है, केवल दिखता है। जब से प्राणी अपने पिता भगवान् की गोद से बिछुड़ा है, तब से दुःख पर दुःख भोग रहा है। न जाने कितने पिता बनाता जा रहा है, असली पिता को भूलकर अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में भटक रहा है।

जब तक अपने पिता (हरिनाम) को हृदय से नहीं पुकारोगे तब तक समस्याओं का अन्त नहीं पाओगे। इसलिए श्रीगौरहरि ने संकीर्तन का आविष्कार किया है। इसमें जोर से भगवान् को पुकारना ही होता है। जोर से न पुकारने से मन इधर-उधर भटक जाता है। जब आदत में आ जाता है, तब धीरे-धीरे जप में भी मन स्थिर हो जाता है।

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजी की उक्ति –

बड़ दुःखे डाकि बारबार।

सीता महारानी की उक्ति –

जेहि विधि कपट कुरंग संग धाम चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहत हरिनाम।।

डाकि व रटत– का आशय है कि, जोर से पुकारना। श्रीगौरहरिजी जोर से बोलते थे, हा कृष्ण! तुम कहाँ हो ? कहाँ जाऊँ, कहाँ पाऊँ आपका दर्शन ? अतः प्रथम में जोर से हरिनाम करना ही पड़ेगा। बाद में मार्ग खुल जायेगा।

गृहस्थ को सब तरह की सुविधा है। सच्ची कमाई करो। उससे शक्ति भर सन्त सेवा करो। अधिक से अधिक हरिनाम करो। रटन से प्रेमावस्था शीघ्र उदय हो जाती है। शिव की उक्ति–

पुन्य एक जग में नहीं दूजा। मन क्रम वचन भक्त पद पूजा।।
सानुकूल तिन पर मुनि देवा। जो तजि कपट करे सन्त सेवा।।

जो भी गृहस्थी का काम करो भगवान् का समझकर करो तो 24 घंटे का भजन बन जायेगा। पानी पीओ तो भगवान् को मन में पिलाकर (भोग लगाकर) पीओ तो भगवद्चरणामृत बन जाएगा। प्रसाद पावो, तो एक एक ग्रास में हरिनाम करते रहो तो जिह्वा वेग समाप्त होकर अन्तःकरण में अष्टसात्विक धारा बहने लगेगी। हरिनाम में निरन्तर मन लगने लगेगा। इसमें 1% भी संशय न समझना। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। हरिनाम जोर से करने पर थकान होगी। बाद में धीरे–धीरे भी होने से मन स्थिर होने लगेगा।

उदाहरण– अध्यापक बच्चों से जोर–जोर से पहाड़े बुलवाते हैं। एक बच्चे को खड़ा करके उससे जोर से बुलवाते हैं। उसके पीछे सब बच्चे जोर–जोर से बोलते हैं। बाद में धीरे–धीरे भी याद हो जाते हैं।

आज तक जितने भी पत्र मेरे द्वारा लिखकर आप के चरणों में सेवा हेतु भेजे गये हैं, उन पत्रों में मेरे मन के उद्गार नहीं हैं।

इनमें मेरे गुरुदेव व ठाकुरजी साक्षी हैं। यदि कोई भी साधक मेरी उक्त बातों को मनगढ़न्त समझेगा, उसे न तो भक्ति में कोई लाभ होगा, बल्कि अपराध का भागी होगा।

विचार करो, मुझे तो आप साधकों से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी तरह का मुझे लोभ है, न मुझे प्रतिष्ठा की भूख है। यदि प्रतिष्ठा की भूख होती तो मेरा 3 लाख हरिनाम कब का छूट गया होता। विरहाग्नि बुझ जाती। ऐसा तो नहीं हो रहा है।

मुझसे अदृश्य शक्ति जो भी मुझे प्रेरणा करके लिखवाती रहती है, यह मेरी भक्तों की सेवा का द्योतक है। इससे प्रत्यक्ष में सभी साधक लाभान्वित होते जा रहे हैं। विरोध करने वालों से मैं बराबर क्षमा मांग रहा हूँ। मैं इन पत्रों को नहीं छपवाऊंगा। जो भगवान् का प्यारा होगा, जिसकी सुकृति अधिक होगी जिसको भगवद् भूख व प्रेम होगा वह स्वयं ही Photostate करवा कर ले लेगा। मुझे ठाकुरजी व सद्गुरु देव जी की सेवा होने से मुझे दोनों हाथों में लड्डू उपलब्ध रहेंगे।

मुझे तो कोई नुकसान होगा नहीं। पत्रों को झूठा समझने वाले को अवश्य ही घोर अपराध का नुकसान होगा। क्योंकि उन्होंने ठाकुर व सद्गुरु देव के आदेश को ठोकर मार दी है। जो भी लेख लिखा गया है, शास्त्र के बाहर का है ही नहीं।

इसलिए मुझे यह लेख लिखना पड़ रहा है कि, किसी साधक को कोई नुकसान न हो जाये। मेरा तो कर्म था आदेश पालन करना।

मेरी तो हार्दिक कामना है कि मेरे अंतरंग स्नेह बंधु भक्त प्रवर यहाँ पर गोविन्द के दरबार में निरन्तर आते रहें, तो मेरा सहज ही में उद्धार हो जाये। मठ में रहने पर कई नुकसान नजर आ रहे हैं। कुछ–कुछ विरोधबाजी, भक्त साधकों से कपड़े धुलवाना, झूठा खिलाना, पैसा लेना आदि सेवा लेने से भजन में ह्रास हो जाता है। जितना यहाँ घर पर भजन बढ़ता है, उतना वहाँ पर नहीं बढ़ता।

भगवान् सब इंतजाम करते रहते हैं। मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। चिंता है केवल मात्र संग के अभाव की। भक्तों का संग मुझे मिलता रहे। मैं चाहता हूँ कि जो भी मेरा संग करे वह **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** का अधिकारी बन सके एवं जिन भक्तों का मैं संग करुँ तो मेरा भी बेड़ा पार हो जाये। मुझे ठाकुर की हमेशा के लिए गोद मिल जाये।

मेरे अंतरंग भक्त कोई शंका न करें। सभी कुछ भक्तों की देन है। मेरा कुछ नहीं है। संकोच करना ठीक नहीं है। गोविंद का घर, गोविंद का जन। मेरा क्या है ? मेरा तो केवल मात्र भक्त संग ही अतुल सम्पत्ति है।

मैं उसी को सेवा समझता हूँ, जो अधिक से अधिक हरिनाम का अवलम्बन करता है। जो वास्तव में भगवान् को प्राप्त करना चाहता है, वही मेरा प्यारा अंतरंग साथी है। संसार तो बंधन का कारण है। संतजन ही यह बन्धन तोड़ सकते हैं, अतः संतों का समागम ही मेरे लिए परमनिधि है।

सच्चाई छुप नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।
सफाई आ नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से।।

मेरे श्रीगुरुदेव के आदेशपत्रों को सभी भक्ति राहगीर पढें ताकि हरिनाम में रुचि बन सकें।

मेरी सब भक्तों से प्रार्थना है, कि मन से अधिक से अधिक हरिनाम करते रहें इसी में भलाई है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तो जीते जी पाये जा सकते हैं।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तात्त्वतः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 7.3)

कई हजार मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होता है और इस तरह सिद्धि प्राप्त करने वालों में से विरला ही कोई एक मुझे वास्तव में जान पाता है।

30

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 20/2/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर, प्रेमास्पद श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरणारविंद में अधमाधम अल्पज्ञ दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा हरिस्मरण निरन्तर होने की करबद्ध प्रार्थना।

भाववृत्ति में दिव्य आकर्षण शक्ति

भगवान् तो अनन्त कोटि अखिल ब्रह्माण्डों के नायक होते हुए भी भक्त के अनुचर मात्र हैं। क्यों अनुचर हैं ? भक्त भगवान् को प्रेमभावमयी वृत्ति से आकर्षित कर सामने खड़ा कर लेता है। प्रेम भाववृत्ति भगवान् को जबरन खींच लेती है। भगवान् का अवतार ही केवल मात्र भक्तों के हेतु हुआ करता है, अन्य कोई कारण नहीं है। कारण केवल यही है कि भक्तों का वियोग भगवान् को सहन नहीं होता। भगवान् का मन भक्तों के बिना एक क्षण भी नहीं लगता। राक्षसों को तो भगवान् अपनी टेढ़ी भौंओं से तथा इशारे से ही मार सकते हैं, लेकिन लीला विस्तार करने हेतु अवतार लेकर राक्षसों से क्रीड़ा करते रहते हैं। इसलिए कि जीव मेरी लीलाओं का स्मरण करके, दुःखों का घर जो भवसागर है, उसे सहज में ही पार कर जाये यह भाव भगवान् के अन्तःकरण में रहता है।

भाव के अभाव में सृष्टि का चक्कर चलता ही नहीं। भाव के अभाव में कोई भी कर्म होता ही नहीं। प्रथम अन्तःकरण में भाव उदय होता है, तब वह भाव स्थूल वृत्ति में आता है, तब कर्म सम्पूर्ण होता है।

भाव भी शुभ व अशुभ दो प्रकार का होता है। माँ के प्रति अलग प्रकार का भाव होता है, पत्नि के प्रति अलग प्रकार का होता है, भाई के प्रति अलग, बहन के प्रति अलग, पुत्र के प्रति अलग,

पुत्री के प्रति अलग प्रकार का भाव होता है। इसी प्रकार भगवान् के प्रति जब तक कोई भी भाव सम्बन्ध नहीं होगा तब तक भगवान् की भक्ति (भगवान् में आसक्ति) कभी हो ही नहीं सकती। भौतिक आसक्ति का भाव ही अन्तःकरण में रहकर दूषित वातावरण बनाता रहेगा।

भगवान् के अन्तःकरण में भी भाव रहता है तथा जीवमात्र के अन्तःकरण में भी भाव रहता है, जब दोनों भाव आपस में आकर्षण शक्ति से जुड़ते हैं तब प्रेम की धारा अन्तःकरण से बाहर निकलती है। अष्टसात्विक विकारों से ओत-प्रोत हो पड़ती है। इन्द्रियों में भी भाव-कुभाव की वृत्तियाँ समाहित रहती हैं। इनमें मन ही मुख्य कारण है।

भाव नेत्रों से भगवद् दर्शन करने पर श्रीविग्रह (भगवान् की मूर्ति) जागृत हो जाता है, वरना तो जड़ स्थिति में नजर आता है। इसी प्रकार भावमयी श्रवण से सुना जाता है, तो अष्टसात्विक विकार, अश्रु, पुलक उदय होने लग जाते हैं। भाव के अभाव में सृष्टिक्रम चलना ही असम्भव है। भाव से भगवान् मिल जाते हैं। भाव से ही संसार मिला हुआ है।

भगवद् लीलाओं को शिव और ब्रह्मा तक कोई समझ नहीं सकते, केवल मात्र भगवान् की कृपा से ही कुछ भक्त ही समझ पाते हैं। क्योंकि भगवान् भक्त के हृदय में लीला स्फुरित कर देते हैं। मैं अल्पज्ञ, अज्ञानी, मूढ़, गाँव का गँवार, अनन्त दोषों का भंडार, इन्द्रिय वेगों का शिकार क्या भगवद् सम्बन्धी लेख लिखने में सक्षम हो सकता हूँ? कभी स्वप्न में भी सम्भव नहीं है।

रात में जब हरिनाम जपते हुए विरह अश्रुधारा बहने लगती है, तब उस धारा में यह शब्द भाव रूपी हीरे, मोती, पन्ना बनकर बहकर बाहर प्रकट होने लग जाते हैं। किसी अदृश्य शक्ति द्वारा बाध्य होकर भक्तों की सोई हुई भावमयी वृत्ति को जगाने हेतु वह शक्ति मेरे द्वारा लिखवा देती है, इसमें मेरा 1% भी प्रयास नहीं है। ऐसी भक्तप्रवर के चरणों में मेरी हृदयगम्य प्रार्थना है। मैं भक्त

नहीं हूँ। भक्त होने का प्रयास करके आपके चरणों से भक्ति प्राप्त करने की कोशिश में हूँ। आप मुझ दीन पर अवश्य कृपा करेंगे ही।

यह जो कुछ भी मुझ में भक्तों को अच्छाई नजर आ रही है वह केवल मात्र श्रीसद्गुरुदेव का आवरण मेरे ऊपर चढ़ा हुआ है तथा संतों की कृपा वर्षण से मैं स्वच्छ दिख रहा हूँ तथा अन्य एक कारण और भी है। मुझे आप सब की कृपा प्रार्थना करने से भगवान् के प्रति शिशु भाव का उदय हो गया है। शिशु का अन्तःकरण रूपी दर्पण एकदम साफ रहता ही है। जब शिशु तीन साल से ऊपर की वयस में चला जाता है तो उसमें कुछ–कुछ दुर्गुण तथा वेगों का संचार दिखाई देने लग जाता है। अन्तःकरण में तो जन्म–जन्मान्तर के संस्कार भरे पड़े ही हैं, जो ठग रहे हैं।

भगवान् की प्रत्येक वस्तु में आकर्षण शक्ति का भाव ओत–प्रोत रहता है। भगवान् का अभाव किसी वस्तु में न हो ऐसा शत–प्रतिशत हो ही नहीं सकता। पहाड़ों में, नदियों में जाने पर हर एक का मन उधर आकर्षित होकर आनन्दानुभव करता ही है।

चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। पत्थर आकाश की ओर फेंकने पर पृथ्वी के आकर्षण से वह नीचे आ गिरता है। इसी प्रकार जिसमें जो आकर्षण शक्ति का भाव अन्तःकरण में होता है, वह सामने वाले को अपनी ओर खींच लेता है।

जब युद्ध का आक्रमण होता है तो नगारों पर चोट दी जाती है, तो सब जवानों में जोश भाव का आकर्षण होने लग जाता है। इसी प्रकार से शराबी के पास जाने या बैठने पर जाने वाले पर उसका आकर्षण भाव उसे खींचकर शराबी का नशा उस पर चढ़ा देगा।

कहने का निष्कर्ष यह है कि संत समागम करने पर नास्तिक भी अवश्यमेव सन्त बन जायेगा। क्योंकि संत के अन्तःकरण में भगवद्प्रेम रूपी सरिता (नदी) प्रवाहित होती रहती है। उनके पास जाने वाले को भी यह उपलब्धि हो पड़ेगी।

सृष्टि ही भगवान् ने ऐसी रची है कि एक का आकर्षण दूसरे को अपनी ओर खींचता है। फिर वह आकर्षण चाहे बुरा हो या चाहे अच्छा हो।

प्रत्येक मानव के शरीर के चारों ओर एक ज्योति पुंज (प्रभामंडल) होता है, जिसे औरा (Aura) भी कहते हैं। कबीर जी की ज्योति पुंज की ज्योति सौ कोस (300 कि.मी.) तक प्रभाव डालती थी, आकर्षित करके खींच लेती थी। भगवान् की ज्योति पुंज का कोई आर-पार नहीं है। अनुकूलता ही इसका प्रमाण है। पांडवों में अनुकूलता थी, तो कृष्ण को पहचान गये। उधर कौरव प्रतिकूलता के भाव के कारण पहचान नहीं सके।

सम्पूर्ण पत्र लेख में मेरे कहने का आशय यह है कि, जो मेरे अन्तरंग भक्त हैं, मुझपर कृपा करके, यहाँ गोविन्द के घर में आ सके तो उनका संग मेरे लिए सोने में सुगन्ध का काम कर दे। उनके संग में बैठकर हरिनामामृत पान करके मैं निहाल हो जाऊँ। भक्त संग का आकर्षण भाव बहुत बलिष्ठ होता है। मेरी सोई हुई आत्मा शीघ्र जागृत हो जाये। क्योंकि काल का बिल्कुल भरोसा नहीं है, कभी भी अचानक आकर निगल सकता है। आपके अवलम्बन से मेरा भी निस्तार हो जाये। मैं तो आने में असमर्थ हूँ। आप सब समर्थ हो, मुझ दीन पर अवश्य कृपा करेंगे ही, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

मुझपर ऐसी कृपा करो कि मैं भावमयी वृत्ति से श्रीविग्रह का दर्शन करूँ। भाव से भगवद्कथा श्रवण करूँ, भाव से भगवद्भक्ति व संतसेवा कर सकूँ। भाव से हरिनाम का मनन करूँ, भाव से झुककर भक्त और भगवान् को प्रणाम करूँ, भाव से तीर्थाटन करूँ, मेरा अन्तःकरण भाव आपके रंग में रंग जाये। कुभाव मूलसहित नष्ट हो जाये, तो मेरा जीवन आपकी कृपावर्षण से सरोबार हो जाये, सफल हो जाये।

31

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दि. 28/02/2008

परमाराध्यतम भक्तराज स्नेहास्पद, तथा मेरे शिक्षागुरु श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के युगल चरणारविंद में अधमाधम दासानुदास अनुचर का साष्टांग दण्डवत् तथा भजन स्तर प्रेमसहित बढ़ने की प्रार्थना।

मन को कैसे वश में किया जाये

(सुगम और सरलतम उपाय)

श्रीमद्भागवत महापुराण में श्रीकृष्ण उद्धव से, यदु महाराज के प्रश्न करने पर कुछ विवेचन कर रहे हैं। मन कैसे वश में हो। मन तो हवा से भी अधिक दौड़ने वाला है। रसेन्द्रिय को वश में करने पर सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। रसेन्द्रिय का उपस्थ इन्द्रिय (जननेन्द्रिय) से सीधा सम्पर्क रहता है। रस सहित भजन हेतु नैष्ठिक ब्रह्मचर्य परमावश्यक है। वरना हजारों साल की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है। जो प्रेम की लहर बह रही होती है, वह एकदम रुक जाती है। श्रीगौरहरि का वचन है–

ग्राम्य-कथा ना शुनिबे, ग्राम्य-वार्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे।।

न तो सामान्य लोगों की तरह सांसारिक बातें बोलो और न उसे सुनो। तुम न तो स्वादिष्ट भोजन करो और न ही सुन्दर वस्त्र पहनो।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 6.236)

चारों युगों में देखा गया है कि जो भी सन्तगणों ने जिह्वा को रूखा सूखा देकर पेट की अग्नि बुझाई है, वही भगवान् की प्राप्ति

कर पाये हैं। स्वादिष्ट खाने से उपस्थ इन्द्रिय जाग जाती है। इससे सारा किया कराया भजन धूल में मिल जाता है।

रूप, सनातन, रघुनाथदास आदि गोस्वामीगण चार चुल्लू भर छाछ पीकर अष्टयाम भजन में रत रहते थे। जिनसे भगवान् हाथ जोड़कर कहते थे कि मुझे बिना नमक की रोटी नहीं भाती, थोड़ा नमक तो डाल दिया करो। सन्त कहते कि, आज तुझे नमक चाहिए, कल तुझे मीठा चाहियेगा। मुझे इतना समय कहाँ, जो तेरे लिए भजन छोड़कर भागता फिरूँ। यह भक्तों की भक्ति है, जो भगवान् को भी फटकार सुननी पड़ती है। यशोदा माता से डरकर भगवान् थर-थर काँपते थे, जिससे काल भी थर्राता है। यह है भक्ति।

इस उक्त आचरण से साधक के अन्तःकरण में ज्ञान का सूर्य उदय होकर अज्ञान का अन्धेरा विलीन होते रहता है। मन जो भी माँग करे, उसे ठुकराते रहने से मन मरता रहेगा। मन ही तो अनन्तकोटि योनियों में घुमा रहा है। इसका कहना कभी भूलकर भी नहीं मानना चाहिए। इसका कहना मानने से यह उछलांग हो जाता है एवं बुरे रास्ते पर ले जाता है।

जब तक साधक उक्त स्तर पर नहीं चलेगा तब तक उसको भगवद् प्राप्ति के लिए अनेक जन्म लग जायेंगे। भरत महाराज ने राजपाट छोड़कर इसी वृत्ति से जीवन यापन किया है। अवधूत दत्तात्रेय ने भी सब साधकों को यही शिक्षा दी है।

जिह्वा वेग समाप्त होने पर वैराग्य स्वतः ही उदय हो पड़ता है। क्योंकि साधक इन्द्रियों के चक्कर में फँसा रहता है। यह साधक को भजन करने ही नहीं देती। इन्द्रियाँ सबसे बड़ी दुश्मन हैं। साधक को भटकाना ही इनका काम है। जिह्वा वेग से मन चंचल रहता है। मन चंचल है तो भगवद् प्राप्ति बहुत दूर है।

मन के कहे न चलिए जो चाहो उद्धार।
मन के कहे चलन पर सदा ही होगी हार।।
मानुष देह न बारम्बारा। मिल गई भगवद् कृपा अपारा।।

श्रीमद्भागवत पुराण में आया है कि देवता व मानव चाहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो ताकि हरि का नामस्मरण करके आवागमन से छूट जायें। ऐसा सरल सुगम रास्ता अन्य युगों में नहीं है। भारतवर्ष में भी किसी सुकृतिशाली को ही मानव का जन्म मिलता है। गंगा, यमुना आदि नदियों का जल जो पीते रहते हैं, उनका मन सहज में ही निर्मल रहता है। दक्षिण भारत में अधिकतर ये नदियाँ हैं। ज्ञान का सूर्य उदय होकर अज्ञान के अन्धेरे को विलीन करता रहता है।

यदि जिह्वा वेग को नहीं रोक सके तो मात्र प्रसाद पाने के समय प्रत्येक ग्रास में हरिनाम स्मरण तो प्रत्येक साधक कर ही सकता है, यदि साधक इसका प्रयास नहीं करना चाहता, तो समझना होगा कि, अभी उसको विषयों में राग है। वह भगवान् को नहीं चाहता। केवल सबको धोका दे रहा है। छल–कपट उसके अन्दर है।

मन का स्वभाव ही है कि, प्रत्येक क्षण–निमेष में संकल्प–विकल्प करना। यह संकल्प–विकल्प होता है संसार के तामस–राजस गुणों से प्रेरित होकर। यदि यह संकल्प–विकल्प आध्यात्मिकता की ओर मुड़ जाये तो सारा का सारा दुःख समाप्त हो जाये। लेकिन यह तब ही हो सकेगा, जब साधक का हरिनाम स्मरण खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते, विश्राम पर होता रहेगा। जो भी कर्म करे भगवान् का समझकर ही करे, तो सहज में ही मन का झुकाव निर्गुण वृत्ति में झुक जायेगा। ऐसा अनुभव है व शास्त्र भी यही कह रहा है।

जैसे चुम्बक के पास लोहा खिंचा चला आता है, सोना, पीतल, चांदी नहीं खिंचेगी क्योंकि वह सजातीय नहीं है। सजातीय ही सजातीय को आकर्षित करती है, विजातीय को नहीं।

इसी प्रकार सुकृतिवश यदि साधक का भगवान् और भक्त की कृपा से कोई नामनिष्ठ सन्त का सम्पर्क बन जाये,तो वह सम्पर्क साधकों को नामनिष्ठ बनायेगा। लेकिन साधक की भी यही कामना होनी चाहिए वरना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे कि, साधक यज्ञ आदि को

अधिक महत्व देता है और उसी में इसकी अधिक निष्ठा है तो फिर नामनिष्ठ का संग करने पर भी नामनिष्ठ नहीं बन सकेगा। यह विपरीत वृत्ति सजातीय नहीं है।

जिसको भगवद् प्राप्ति की सच्ची लगन है, उसे नामनिष्ठ का संग करने पर सच्चा वैराग्य स्वतः ही उदय हो जाता है। जब तक वैराग्य उदय नहीं होगा, तब तक समझना होगा कि इसे भगवद् प्राप्ति की सच्ची लगन नहीं है। इसमें अज्ञान ही मुख्य कारण है।

देखा व सुना गया है कि, राजा लोग नाचना-गाना कराते हुए भोजन करते थे। उनकी भावना कलुषित रहती थी। अतः उनकी विषयी वृत्ति होना स्वाभाविक था। जिस वृत्ति से भोजन किया जाता है, उसी वृत्ति का प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता रहता है। पानी भी जिस वृत्ति से पिया जाता है, वैसा ही प्रभाव उसके स्वभाव में आ जाता है। यदि पानी भगवद् चिन्तन में पिया जायेगा तो वह भगवद् चरणामृत बन जायेगा, तो इससे उसका स्वभाव निर्गुण बनता रहेगा। लेकिन ऐसा कोई साधक करता नहीं है, तब ही तो सारे जीवन में भगवद् प्रेम उपलब्ध नहीं हो पाता। बड़ी मुश्किल से जो मानव जन्म मिलता है, यों ही गँवा देता है। चौरासी लक्ष योनियों के चक्कर में फिर से घूमता रहता है। कितनी मूर्खता है। मूर्खता की भी हद हो गयी। समझाते-समझाते थक गये, परन्तु एक भी बात नहीं मानी। इसका कारण है दुर्भाग्य।

आनन्द सिंधु में से जो रसमयी धारायें बहती हुई बाहर निकलती हैं, उनमे से हीरे, मोती, पन्ना आदि अमूल्य रत्न बहकर आ जाते हैं। जो भी साधक इनके सम्पर्क में आ जाते हैं, वे मालामाल हो जाते हैं।

मैं इन धाराओं की चमत्कारिक चमक का पात्र नहीं हूँ। ये धाराएँ श्रीठाकुर जी व गुरुदेव की कृपा वर्षण से बहकर बाहर आती हैं। इसे कोई भी मेरी पात्रता न समझे वरना अपराध हो जायेगा।

भगवान् ऐसे ही नहीं मिलते, वह तो प्रेम सहित विरहमयी अकुलाहट से मिला करते हैं। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना' रूपी स्वभाव से मिला करते है।

शरीर तीन प्रकार के होते हैं–

1. **स्थूल शरीर** – हड्डी, मांस तथा रुधिर का

2. **सूक्ष्म शरीर** – जो कर्मानुसार मरने के बाद साथ में जाता है।

3. **कारण शरीर** – जिसके द्वारा मृत्यु होती है, यह होता है स्वभाव का शरीर, जैसा जिसका स्वभाव होता है, अन्त समय मरने के ठीक समय में जो भाव जागृत होता है, उसी भावानुसार अन्य शरीर की प्राप्ति होती है। अतः स्वभाव को उन्नत बनाने हेतु सन्त महात्मा आते–जाते हैं। पूरी जिन्दगी भर जो कर्म करते रहते हैं, उसी कर्म से मानव का स्वभाव बनता रहता है। शास्त्र इसलिए कहते रहते हैं कि, सत्संग करने पर स्वभाव उन्नत बनता जाता है। अन्त समय में उन्नत स्वभाव का विचार अन्तःकरण से फूट पड़ता है, तो उन्नत लोकों में वह भावमय सूक्ष्म शरीर गमन करता है।

शरीर में 5 कोष होते हैं–

1. अन्नमय कोष – जो खाने–पीने पर निर्भर है।
2. प्राणमय कोष – जो प्राणवायु पर निर्भर है।
3. मनोमय कोष – जिससे संकल्प–विकल्प जागृत होते रहते हैं।
4. विज्ञानमय कोष – जो बुद्धि पर निर्भर है।

5. आनन्दमय कोष – जो परमानंद का द्योतक है। आत्मा तथा परमात्मा यहीं पर विराजती है। जिसने निर्गुणता को अपना लिया है, उसके आवागमन (जन्म मृत्यु का चक्कर) का अन्त हो गया। तीन गुण ही जन्म–मरण का मुख्य कारण हैं जो भक्ति की कृपा से नष्ट हो जाते हैं। जिह्वा पर नियन्त्रण करने पर सभी दुःखों का अन्त हो जाता है।

32

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी

मनचाही सन्तान की उपलब्धि

श्रेष्ठ पुत्र अथवा पुत्री

जीव स्वयं के भाग्य की रचना स्वयं ही करता है। भगवान् इसमें निर्लिप्त है। जैसा कर्म मानव करता है, उसी कर्मानुसार भाग्य की रचना हुआ करती है। कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं– कर्म, विकर्म तथा अकर्म। कर्म उसे कहा जाता है, जिस कर्म को करने को धर्मशास्त्र आदेश प्रदान करता है। अकर्म उसे कहा जाता है जो शास्त्र के विरुद्ध होता है। विकर्म उसे कहा जाता है जो नास्तिकवाद के अन्तर्गत आता है।

बस इन तीनों कर्मों से ही शुभ–अशुभ भाग्य का निर्माण होता है। कर्मानुसार ही भावी जन्म का विधान रचा जाता है। भगवान् तो केवल साक्षी मात्र है। जीव स्वयं भोक्ता बनकर अपना जीवनयापन करता रहता है। यही इसकी सबसे बड़ी भूल है। भोक्ता केवलमात्र भगवान् ही है। जीव तो भगवान् के द्वारा भोग्य है।

दम्पत्ति (स्त्री–पुरुष) यदि आपस में संग करते हुए स्त्री जाति का चिंतन करते हैं तो कन्या की उपलब्धि होगी तथा पुरुष जाति का चिंतन होता है तो पुत्र की उपलब्धि होगी। मन का संकल्प–विकल्प ही तो भविष्य में स्थूल रूप में प्रकट होता है। जिस प्रकार उदाहरण स्वरूप मकान बनाने का मन का संकल्प–विकल्प स्थूल रूप में मकान को प्रकट कर देता है। इसी प्रकार सन्तान उपलब्धि का मनोमय विज्ञान संतान को आविष्कृत कर देता है।

संग करते हुए दोनों स्त्री पुरुष को किसी पुरुष लिंग का चिन्तन हो गया तो पुत्र का आविष्कार होगा। इसी प्रकार यदि स्त्री लिंग का चिंतन हो गया तो पुत्री का आविष्कार हो जायेगा।

अतः संग करते हुए दोनों को अपने गुरु जो पारदर्शी तत्वज्ञ हो, उनका चिंतन करना होगा। तो श्रेष्ठतम भक्त पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी। श्रीगुरुदेव के संस्कार उस आत्मा में अर्थात् जीव में ओत-प्रोत हो जायेंगे। यदि अपनी पत्नि का चिंतन अर्थात् स्त्री लिंग का चिंतन करे तो पुत्री का आविष्कार कर देगा। किसी भी महापुरुष या स्वयं की स्त्री का चिंतन शुभकारक होगा।

उक्त उपलब्धि का साधन है केवल मात्र 21 दिन दोनों हरिनाम याने कि महामंत्र की मन सहित नित्य ही माला जप करें। कम से कम 32 माला स्त्री करे, तथा 32 माला पुरुष करे, हो सके तो दोनों प्रत्येक दिन 64 माला (एक लाख नाम) करे। इस प्रकार 21 दिन में दोनों का 21 लाख हरिनाम का जाप सम्पूर्ण होगा। इस जप से दोनों का अन्तःकरण भक्तिमय हो जायेगा व सात्विक तथा निर्गुण वृत्ति जागृत हो जायेगी।

यदि उक्त विधान को अपनायेंगे तो श्रेष्ठ संतान पायेंगे। इस श्रेष्ठ कर्म से श्रेष्ठतम शुभ भाग्य की उपलब्धि बन जायेगी। 108 दिनों तक संयम रखना सर्वोत्तम है यदि संयम से नहीं रह सके तो ऋतु धर्म होने के 16 दिन बाद संग कर सकते हैं जिनमें गर्भधारण करने का संयोग नहीं रहता। इसके पहले गर्भ रह सकता है जो प्रतिकूल वृत्ति का हो सकता है। जो दुःख का कारण बनेगा।

इस अनुष्ठान नियम के बाद शुभ दिन-रात चुनकर, रात में 10 बजे,12 बजे तथा 2 बजे 3 बार संग करें। इससे पहले कमरा स्वच्छ कर लें, अच्छे-अच्छे चित्र टांग दें। उस दिन केवल दूध पीकर ही रहें। पंचमी, अष्टमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी यह शुभ दिन होते हैं। मंगलवार, एकादशी वर्जित है। कभी भी दिन में, सन्ध्याओं में, पर्व पर, रुग्णावस्था में, क्रोध में संग करने पर राक्षस वृत्ति की संतान पैदा होगी। पुत्र की कामना हो तो दाहिनी करवट लेकर स्त्री लेटे। पुत्री की कामना हो तो बायीं करवट पर लेटे। बीच में ही सुबह तक उठकर चले नहीं, वरना शक्ति निकल जायेगी। संग करने से पहले पेशाब करना होगा।

प्रातः जगने पर महापुरुष या पतिदेव के दर्शन करे। तो संतान में इनका स्वभाव आरोपित हो जायेगा। उक्त सारा विवेचन धर्म–शास्त्रानुसार श्रीमद्भागवत ग्रंथ में वर्णित है। चाहो तो दिखा सकता हूँ तथा अनुभव से सत्य है। 100 दिन संयम रखने से बहुत बड़ा महापुरुष जन्म लेगा। उक्त अनुसार न करने पर मन के विपरीत होगा। आजकल मोबाइल हाथ में होने से होटल वेश्याघर बनते जा रहे हैं। युवक युवतियाँ वहाँ जाकर अपनी कामाग्नि बुझाते रहते हैं। इससे राक्षस वृत्ति की संतानें पैदा होती हैं जो माँ–बाप तक को मार देती हैं तथा अन्यों को भी दुःख देती हैं।

यह उत्तम शिक्षा किसी भी युवक–युवतियों को उपलब्ध नहीं होती अतः दुराचरण में अपने मन व तन को नष्ट करते रहते हैं। इस युग में इस शुभ शिक्षा की बहुत जरूरत है। ऐसी उत्तम शिक्षा देना कोई बुरी बात नहीं है, न दी जाती है न भविष्य में कोई भी देगा अतः वातावरण बिगड़ता जायेगा। इसका मुख्य कारण है, शर्म। अन्धों को आँख वितरण करना सर्वश्रेष्ठ धर्म कर्म है, ऐसी शिक्षा मुख से न देकर लिखित रूप में देना श्रेयस्कर होगा।

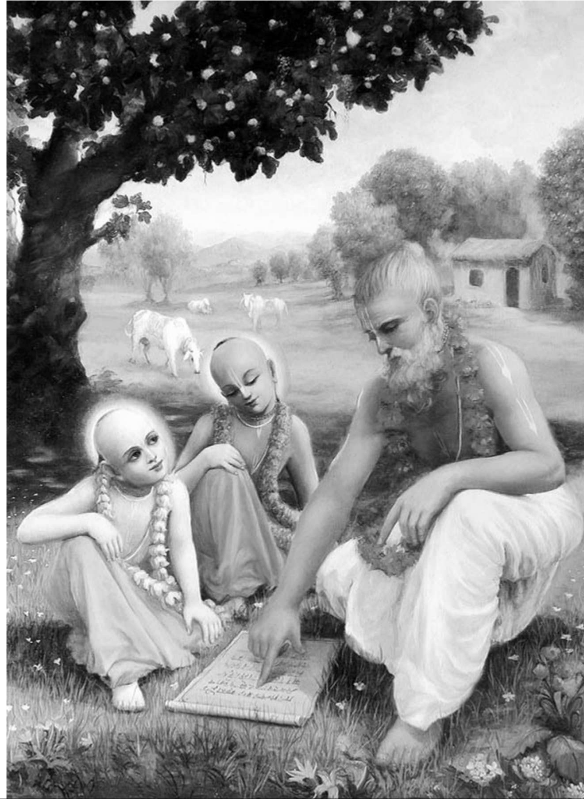
देश भी इस उत्तम शिक्षा से धार्मिक व उन्नत होगा। सात्विक संतानें प्रकट होकर पूरे देश में सत्युग बना देंगी।

इस लेख को कोई बुरा न समझे। यह तो ब्रह्माजी की शुभ सृष्टि का लेख है। छिप–छिपकर गलत मार्ग पर चलना स्वयं के ही दुःख का कारण बनता रहता है। अनजान होने से राक्षस वृत्ति की संतानें इस जगत में पैदा होती जा रही हैं। इसका कारण है धर्म विरुद्ध आचरण।

नोट–

प्रत्येक अवस्था में भाव ही प्रधान है। जिस भाव में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, उसी भाव के अनुसार सत्व, रज और तमोगुण उसे प्रेरित करके अगला जन्म देते हैं।

इसी प्रकार जिस भाव में संतान प्राप्ति हेतु संग होता है, उसी प्रकार के भाव की आत्मा गर्भाशय में खिंच कर आ जाती है। फिर चाहे पुत्र हो या पुत्री। त्रिगुण में जैसा भाव होगा उसी भाव के अनुसार उसका शुभ अशुभ आचरण होगा। यह सृष्टि बढ़ाने के अमृतमय सिद्धान्त हैं। इसको अपनाकर उचित गर्भ संस्कारों के द्वारा ऋषि-मुनि समान भक्तों को प्रकट करना कितना श्रेयस्कर होगा।



गर्भवती अवस्था में प्रथम रामायण पढ़नी चाहिए बाद में श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थ पढ़ने चाहिएँ।

33

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर स्नेह बंधु तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर प्रेम सहित होने की करबद्ध प्रार्थना।

प्रवचन का प्रभाव

धर्मशास्त्रों की आड़ में परमानन्द की प्राप्ति कराने वाले प्रवचन-कारों का प्रभाव श्रवणकारियों पर क्यों नहीं पड़ता ? इसका मुख्य कारण केवल मात्र है प्रवचनकारों के अन्तःकरण में शुद्ध आचरणों की कमी। पांडित्य से कोई किसी को सुधार नहीं सकता। सभी जगह धन उपार्जन हेतु प्रवचन होता है, न कि भगवद्प्रेम वितरण के हेतु। उससे तो श्रवणकारियों का धन अर्जन करने का स्वभाव बनता है क्योंकि जो कुछ बाँटा जायेगा वही सुनने वाले पर हावी बनता जायेगा। अतः ऐसी ठौर में प्रवचन सुनना उचित नहीं है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रवचनकार कभी-कभी अश्रुपात का ढोंग भी करता है ताकि सुनने वाले उसे सन्त शिरोमणि समझे तो उसको रुपया पैसा अधिक देंगे।

गौरहरि का कहना है कि, स्वयं आचरण करो तथा दूसरों को सिखाओ। जिसके पास जो गुण होगा वही गुण वह अन्यों को दे सकेगा। जैसे किसी की रुचि यज्ञ करने की है, तो जो भी उसके सम्पर्क में आयेगा तो यज्ञ करने की वृत्ति उसमें जागृत हो पड़ेगी। किसी में योग का, किसी में तपस्या का, किसी में हरिनाम स्मरण करने का गुण होता है। जिसमें जो गुण समाया हुआ है वही गुण अन्यों में, जो सम्पर्क में आयेगा उसमें ओत-प्रोत हो जायेगा।

जिसमें कोई गुण नहीं है, केवल छल–कपट से पैसा बटोरने का स्वभाव है वह अन्यों को भी छल–कपट और पैसा ही दे सकेगा। यह सिद्धांत भी है कि प्रत्येक मानव में एक ज्योति पुंज जिसे आभा (Aura) भी कहते हैं वह दूसरे को अपनी ओर खींचता है। शराबी, जुआरी, आदि–आदि, जो इनके सम्पर्क में आयेगा वह वैसा ही बन जायेगा। बच नहीं सकता।

सच्चा साधु किसी को कुछ संसारी वस्तु देगा ही नहीं एवं यदि सुपात्र माँगता है तो उसे कुछ दिन बाद में आने को कहेगा। स्वयं आचरणशील होगा तब ही तो अन्यों को कुछ देगा। ऐसे उदाहरण शास्त्रों में पढ़े हैं।

जो उर्दू नहीं जानता, क्या वह अन्यों को उर्दू सिखा सकेगा ? जिसके पास Bank Balance नहीं है, क्या वह किसी को पैसा दे सकेगा ? बड़े–बड़े ढोंगी साधु जिनके प्रवचन में हजारों लाखों मानव सुनने के लिए आते हैं, जब उनको नजदीक से सम्पर्क करते हैं, तो मालूम पड़ता है कि इन्होंने कौनसी कुरीती छोड़ी है। वह तो अवगुणों के भंडार हैं। केवलमात्र पांडित्य से बोलने का तरीका होने से जनता को रिझा लेते हैं। श्रोताओं ने इधर प्रवचन सुना, उधर रास्ते में ही खाली। प्रवचनकर्ता स्वयं अपना भी सत्यानाश कर रहे हैं तथा औरों का भी सत्यानाश करके समय बर्बाद कर रहे हैं। इस कलियुग में छल–कपट से ही साधु कमा रहे हैं। बड़े–बड़े आश्रमों में बहुत सारी युक्तियों से कमाई हो रही है। न जाने क्या–क्या कुकर्म करते रहते हैं।

टी.वी. पर जो धार्मिक पिक्चर आते हैं जो शास्त्र विरुद्ध भी होते हैं। उनमें भूमिकाएँ करने वालों का चरित्र एकदम शर्मनाक होता है। इसलिए उनको देखने से कोई लाभ नहीं होता।

कलियुग में हरिनाम ही सार है। जहाँ हरिनाम का बोलबाला हो वहीं पर अधिक से अधिक सम्पर्क करना श्रेयस्कर होगा वरना समय की बर्बादी के अलावा कुछ नहीं है। केवल अपनी आयु का

क्षय करना होता है। यह क्षय ही सबसे बड़ा नुकसान का कारण बनेगा।

हरिनाम में मन लगाना और अन्य कार्यों से मुख मोड़ना ही उत्तम है। स्वयं हरिनाम करो तथा दूसरों से भी करवाओ, भगवान् को प्रसन्न करने का इससे बड़ा दूसरा कोई लाभ ही नहीं है।

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दियो बताय।।

गोविन्द से मिला दिया, सामने लाकर खड़ा कर दिया, तब गुरु की बलिहारी होती है। गोविन्द से तो मिलाया नहीं और गुरु बन गये– इसलिए अकेले खड़े गुरु की महिमा नहीं है। महिमा उस गुरु की है जिसके साथ गोविन्द भी खड़े हैं अर्थात्– जिसने भगवान् की प्राप्ति करा दी है।

पारस केरा गुण किसी पलटा नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा।।

अगर पारस के स्पर्श से लोहा सोना नहीं बना तो वह पारस असली पारस नहीं है अथवा लोहा असली लोहा नहीं है अथवा बीच में कोई आड़ है। इसी तरह अगर शिष्य को तत्त्वज्ञान नहीं हुआ तो गुरु तत्त्वप्राप्त नहीं है अथवा शिष्य आज्ञापालन करने वाला नहीं है अथवा बीच में कोई आड़ (कपट भाव) है।

34

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 3/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर अन्तरंग साथी आपके चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर प्रेम सहित होने की प्रार्थना।

साध्य और साधन

हरिनाम साध्य है तथा संसार से मुख मोड़ना मुख्य साधन है। इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति हो सकती है। इसके लिए अन्तःकरण चतुष्टय को निर्मल करना आवश्यक है। अन्तःकरण शुद्ध कैसे हो ? इसका सरलतम, सुगम, सुलभ साधन है कि संसार की लिप्सा, आसक्ति हृदय से निकाल दो।

कैसे निकालें ?

किसी सिद्ध महात्मा की शरण ग्रहण करो।

सिद्ध महात्मा कहाँ उपलब्ध होंगे ?

गुरु व भगवान् से बारम्बार आतुरता से प्रार्थना करो। भगवान् दया निधि हैं। सिद्ध महात्मा से मिला देंगे।

सिद्ध महात्मा मिलने पर क्या करना होगा ?

उसकी तन, मन, प्राण से सेवा करनी होगी। भक्त की सेवा से भगवान् शीघ्र प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। तब सिद्ध महात्मा उपदेश करेंगे, उनकी वाणी का प्रभाव आप पर गहरा पड़ जायेगा तो संसारी आसक्ति छूटती जायेगी। जब संसारी लगाव छूटेगा तो भगवद्भक्त के प्रति आसक्ति अन्तःकरण में जमती जायेगी। तब भगवान् में आसक्ति होने लगेगी और जब भगवान् में आसक्ति होने लगेगी तो स्वतः ही भगवान् को मिलने की छटपट उदय हो जायेगी। जब छटपट उदय होगी तो नींद व प्रसाद (भोजन) में अरुचि होने लगेगी। न भूख लगेगी न नींद होगी। रातभर तड़पन होकर रोना ही अच्छा लगेगा।

जब रोने की सीमा ही नहीं रहेगी तो भगवान् को भी अकुलाहट होने लगेगी। भगवान् का मन भी उचट जाएगा। एक क्षण युग के समान हो जायेगा। अब दोनों विरहियों का संगम हो जाएगा। अब केवल भक्त व भगवान् का ही संसार रहेगा।

महात्मा शरणागत को उपदेश देगा। क्या उपदेश देगा ? संसार में सुख नहीं है, सभी किसी न किसी चिंता में ग्रसित हो रहे हैं। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक दुःख सागर में डूबना होता है। संसार की सभी चीजें नश्वर हैं। जो भी वस्तु हस्तगत होगी वही वस्तु उसे दुःख देती रहेगी। एक गाड़ी को ही ले लो, कभी पंक्चर, कभी टक्कर, कभी राज्यशासन का डर, कभी पड़ोसी के माँगने का डर, दूसरों से ईर्ष्या का डर, कहने का मतलब है कि सुख कहीं पर नहीं है, केवल दिखता है। महात्मा पहले संसार की असारता समझाकर उसका मन संसार से हटा देगा। अपने परिवार से रिश्तेदारों से भी दुःख ही दुःख मिलता रहता है। अपने मन व शरीर से भी दुःखी रहना पड़ता है। मन अशान्त तथा शरीर के रोग होने लगते हैं।

जब साधक की संसार के प्रति दुःख बुद्धि हो जायेगी तो स्वतः ही मन संसार से नाता तोड़ने लगेगा। जब नाता मन से टूट जायेगा तो भगवान् से स्वतः ही नाता हो जायेगा। श्रम करने की जरूरत नहीं होगी।

अब भक्ति की ओर तन, मन और भाव आकृष्ट होने लगेंगे। लेकिन साध्य (हरिनाम) को हरदम पकड़ना होगा। हरिनाम को अधिक से अधिक स्मरण करना होगा। तब ही उक्त स्थिति प्राप्त हो सकेगी वरना सभी श्रम व्यर्थ हो जायेंगे।

उक्त लाभ तब ही होगा जब भक्त अपराध से व निन्दा-स्तुति से बचते रहोगे। निन्दा-स्तुति न सुनो न कहो। फिर कोई डर नहीं है। पहले के सिद्ध महात्मा केवल करवा व लंगोटी के अलावा कुछ नहीं रखते थे क्योंकि सभी वस्तुएँ भजन में बाधा कारक हैं। **गृहस्थों को भी आवश्यक सामान ही रखना उचित है। जितना बटोरोगे उतना ही फँसोगे।**

35

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 5/3/2008

परमाराध्यतम प्रेमास्पद स्नेहबंधु तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणयुगल में नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

श्रृंगार रस (मधुर भाव) का प्रवचन अपराधजनक

स्थान-स्थान पर वक्ता गोपियों के सखीभाव, मंजरी भाव के विषय में प्रवचन करते रहते हैं। इस दिव्य भाव को साधारण श्रोता क्या समझेंगे? श्रीकृष्ण व गोपियों में अवर्णनीय, अलौकिक वार्ता का समागम होता है। इस वार्ता में गलत भावना करके वक्ता व श्रोता दोनों ही बहुत बड़ा जघन्य अपराध करते रहते हैं।

लाखों साधकों में कोई एक विरला ही सच्चे रूप की भावना को समझ सकता है, जो बहुत ही उच्च स्थिति में पहुँचा हुआ हो। छः दोष व छः वेग साधक में और साधारण श्रोता में भी समाये रहते हैं। वह उक्त भावनाओं को समझ ही नहीं सकते। जो त्रिगुण में समाया हुआ है वह निर्गुण भावना को कैसे समझ सकता है?

आजकल केवल श्रोताओं को लुभाकर पैसा बटोरना ही कुछ वक्ताओं का कर्म रह गया है। रसमयी कथा प्रवचन उससे हो ही नहीं सकता वह रजोगुण प्रधान ही कथा करेगा क्योंकि उसके पास रजोगुण वस्तु ही बिक्री में है। अन्तःकरण में जो भाव रहता है, वही भाव अन्य सम्पर्क वालों के हृदय में उदय हो जाता है। यह सत्य सिद्धान्त है।

समझदार श्रोता को उक्त तरह का प्रवचन सुनना ही नहीं चाहिए वरना भजन स्तर से गिरना पड़ेगा। भगवद् रसिक ही सम्पर्क में आने वाले प्राणी को रसिक बना सकता है। इस कलिकाल में केवल मात्र पैसे का ही बोलबाला है। भगवान् को कौन चाहता है ?

भगवान् को चाहने वाला ही, दूसरों को भगवान् में लगा सकता है। सब जगह छल-कपट ही नृत्य कर रहा है। आजकल सभी का मन-चंचल है। इस चंचल मन को काबू करने हेतु सभी शास्त्र भरे पड़े हैं। सत्संग भी चंचल मन को रोकने हेतु ही हुआ करते हैं। इस संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं है न कोई किसी का मित्र है। शत्रु है तो अपना ही मन और मित्र है तो अपना ही मन।

जन्म-मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाला मन अपना मित्र है एवं माया में त्रिगुणों में फंसाने वाला मन अपना बहुत बड़ा शत्रु है।

अब प्रश्न उठता है कि इसे कैसे वश में किया जाये ? तो बस एक ही तरीका है कि अन्तःकरण में वैराग्य का बीज अंकुरित हो जाये। यदि सोचे कि वैराग्य होना अपने बस की बात नहीं तो ऐसा कुछ नहीं है। यह मुश्किल नहीं है। स्वयं एकान्त में बैठकर विचार करते रहो कि तेरे सामने सब मरते जा रहे हैं, तू भी एक दिन अवश्य मरेगा। फिर 84 लक्ष योनियों में जो दुखों की योनियाँ हैं उनमें भटकता फिरेगा। फिर दोबारा यह मानव शरीर नहीं मिलेगा। इसी शरीर से आवागमन का चक्कर मिट सकता है। इसको तू मूर्खतावश बेकार में खो रहा है। और खुद का बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है। त्रिलोकी में इस नुकसान से अधिक कोई नुकसान नहीं है। अतः मन को समझाओ कि हे मन! अब भी समय है, तू किसी भजनशील सिद्ध सन्त की शरण ले ले। वे तुझको अपने जैसा बना लेंगे। यहाँ की सब वस्तुएँ नश्वर हैं एवं दुःखदायी हैं। कभी इनसे सुख प्राप्त हुआ है ? कभी भी नहीं। यह तेरा स्वप्न है। स्वप्न झूठा है। ऐसे ही सभी वस्तुएँ भी झूठी हैं।

बार–बार ऐसे विचार करने से मन में वैराग्य उदय हो जायेगा लेकिन इतना विचार करने के लिए मानव साधक के पास समय ही कहाँ है ? उसे तो संसार से एक क्षण के लिए अवकाश ही नहीं है, सोचेगा कहाँ से ? अतः रोता हुआ जायेगा एवं निरंतर अनन्तकाल तक दुःख ही पायेगा। अब भी जो समय बचा है, उसमें वैराग्य पूर्ण भावना करके अपने को आनन्द सिंधु में डुबाले। वैराग्य होने से स्वतः ही मन स्थिर होकर भगवद्चरणों में चिपक जाता है। इसमें तनिक भी संशय होने की गुंजाईश नहीं है।

चाहे मन (अन्तःकरण) में संसार रमालो, चाहे भगवान् सम्बन्धी विचार रमालो। एक ही भाव रम सकता है, दो भाव कभी भी रम नहीं सकते।

इस भाव को रमाने की एक ही युक्ति (मार्ग) है, कलिकाल में उद्धार करने का जो रास्ता है, उसे अपनालो। वह है केवलमात्र हरिनाम की शरण लेना। शरणागति कब मिल सकती है, जब किसी साधक में बहुत बड़ी सुकृति हो। सुकृति ही साधक को किसी सिद्ध नामनिष्ठ सन्त से मिला देगी।

उसका संग करने पर वह साधक को अपनी अलौकिक साधना से अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। यह कुछ ही दिनों में नहीं होगा। निरन्तर संग उपलब्ध होना परमावश्यक है। स्वतः ही वैराग्य उदय होकर मन नाम में स्थिर हो जायेगा।

मन स्थिर होते ही अश्रु–पुलक भाव में डूबना हो जायेगा। फिर आनन्द आने लगेगा तो मन वहाँ से कहीं नहीं जायेगा। मन को जहाँ आनन्द मिलता है, वो वहीं चिपक जाता है।

शराबी 10 कोस (30 कि.मी.) भी शराब पीने चला जाता है क्योंकि वह शराब के बिना नहीं रह सकता। इसी प्रकार जिसको भगवद्रस का चस्का लग जाता है उसको वह रस ही डुबो देता है। गोपीगण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कृष्ण को वह दिल से निकालने का प्रयास करती थीं, फिर भी नहीं निकलता था वह अष्टयाम उनके दिल में बसा रहता था।

36

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 7/3/2008

परमाराध्यतम भक्त प्रवर, शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के युगल चरणारविंद में नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेमाभक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना।

भगवद् भक्ति के मुख्य शत्रु

संत अपराध, अहंकार तथा मान-प्रतिष्ठा की चाह

यदि यह तीनों अन्तःकरण से दूर रहें तो शीघ्र ही अष्टसात्विक विकार की उपलब्धि साधकगण को हो जाये। लेकिन इन तीनों में से कोई न कोई हृदय में उदय होते ही रहते हैं, जिनके कारण बीच-बीच में भक्ति रसाभास विलीन होता रहता है।

मेरे जो अंतरंग भक्तसाथी हैं, उनसे यह कहते सुना है कि क्या बात है ? हमारा भजन रससहित हो रहा था लेकिन अचानक भजन रुचि समाप्त होती जा रही है। मानव साधक के अनन्त जन्मों के राजस, तामस तथा सात्विक गुण (स्वभाव) पीछे से बार-बार प्रेरित करते रहते हैं तथा वर्तमान संग दोष से भी भजन पथ में रुकावट आती रहती है।

यदि अन्तःकरण से भावपूर्ण भजन (हरिनाम) चलता रहे एवं उक्त तीन शत्रु हृदय में उदय न हों तो भजन पथ में कोई रुकावट आ ही नहीं सकती। निरंतर तैलधारावत् भजन चलता रहे।

तैलधारावत् भजन तब ही हो सकेगा जब सांसारिक आसक्ति हृदय से निकलती रहेगी। आसक्ति तब ही निकल सकती है जब संसार दुःखों का सागर दिखाई दे तथा अस्थिरता नजर आये अर्थात्

सब संसारी वस्तुएँ प्रायः क्षण–क्षण नष्ट होती रहती हैं, ऐसा दिखाई दे। अगर इतनी बात हृदय में रम जाये तो संसार से वैराग्य होकर भगवद् चरणों में राग हो जाये। जब तक चित्त में संसारी आसक्ति रहेगी तब तक स्वप्न में भी भगवद् आसक्ति उदय नहीं होगी।

गृहस्थों को थोड़ा संयम भी रखना चाहिए। ब्रह्मचर्य खंडित होने से रसाभास सूख जाता है। शास्त्रों में देखा जाता है कि हजारों वर्षों की तपस्या एक क्षण में समाप्त हो जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि ब्रह्मचर्य कैसे सम्भव हो सकता है ? क्यों न हो ? रसेन्द्रिय (जीभ) को नियंत्रित करना पड़ेगा। रूखा–सूखा खाकर रात में 2–3 बजे उठकर नाम को कान से सुनो, जिस प्रकार सीताजी अशोकवाटिका में नाम को रटा करती थीं। भरत जी रूखा–सूखा खाकर (गायों को गेहूँ खिलाकर) गोवर से गेहूँ चुनकर दलिया बनाकर खाते थे और रामनाम उच्चारण करते थे। श्रीगौरपार्षद गण पेड़ के नीचे आसन बिछाकर मधुकरी से अपना जीवन यापन करते थे।

जिह्वा का सीधा कनेक्शन उपस्थ इन्द्रिय से रहता है। स्वादिष्ट भोजन उपस्थ इन्द्रिय को जागृत कर देता है तब साधक का मन काबू में नहीं रह सकता।

या तो संसार का मजा ले लो या भगवद् आनन्द का रस पी लो। किसी एक की ही उपलब्धि हो सकती है। दोनों से एक साथ आनन्द नहीं मिलेगा। सभी गौर पार्षदगण गृहस्थ थे। उन्होंने अपने जीवन से हमको शिक्षा दी है। उन्होंने सन्तान की भी प्राप्ति की थी। लेकिन संयम से काम लिया एवं भजन भी किया।

शास्त्र का उदाहरण–

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरिनाम।।

भरत–

पुलक गात हिय सिय रघुवीरू।
जीह नाम जप लोचन नीरू।।

इस प्रकार जीभ से उच्चारण करके हरिनाम स्मरण करना होगा। मठ मन्दिर की सेवा भी तब ही फलीभूत होगी जब साथ में हरिनाम होगा जो कलियुग का सार साधन है। इसके अभाव में रसानुभूति नहीं होगी।

सेवा वही फलीभूत होती है, जिस सेवा से सेवाधिकारी ख़ुश हो। जिस सेवा से सेवाधिकारी को सुखानुभूति हो। जब तक हरिनाम की शरणागति नहीं होगी तब तक सेवाधिकारी (भगवान्) को सुख नहीं होगा।

पुजारी जी को तो कम से कम एक लाख हरिनाम स्मरण पूर्वक प्रत्येक दिन करना चाहिए। वैसे इनको काफी समय मिलता भी है। अधिक भी हरिनाम कर सकते हैं। यदि ऐसा नहीं करते तो भगवान् इनकी सेवा को अंगीकार नहीं करते। जब भगवान् ने सेवा को अंगीकार नहीं किया तो दर्शकगण भक्तों को भी ठाकुर दर्शन का लाभ नहीं मिल पायेगा। क्योंकि पुजारी ही भगवान् को चेतन करता है। यदि भगवान् चेतन नहीं हुए तो भक्त भी चेतन नहीं हो सकते। आकर्षण शक्ति ही इसमें काम करती है। चुम्बक लोहे को ही खींच पायेगा, सोना, चांदी को नहीं।

पुजारी ही दर्शकगणों को भगवान् के दर्शन प्राप्त करने की आकर्षण शक्ति देगा, अन्य उपायों से कुछ नहीं होगा। अपराध से बचो, भगवान् क्या कह रहे हैं–

सुन सुरेश उपदेश हमारा। रामहि सेवक परम पियारा।।
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक वैर–वैर अधिकाई।।

सेवक के वैरी को मैं छोड़ता नहीं हूँ क्योंकि वह मेरा भी वैरी है। सेवक से भी ज्यादा मेरा वैरी है।

इन्द्र कुलिश मम सूल विशाला। काल दण्ड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। भक्त द्रोह पावक सो जरहि।।
जो अपराध भक्त सन करहि। राम रोष पावक सो जरहि।।

अहंकारी को भगवान् लात मारकर दूर फेंक देते हैं। मान प्रतिष्ठा शूकरविष्ठा। जो मान-प्रतिष्ठा चाहता है, वह भगवान् से दूर हो जाता है उसका मन उधर ही आकर्षित रहता है।

यदि **इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति** करनी हो तो उक्त दोषों से बचो, वरना यह जीवन व्यर्थ में ही चला जायेगा। मानव जन्म का मौका भगवान् ने दिया था उसे समझ नहीं पाया अतः भविष्य में मानव-जन्म नहीं मिलेगा, भगवान् उसे यहीं दण्ड देंगे।

सभी धर्मशास्त्र पुकार-पुकार कर कह रहे है-

क्यों दुःख सागर में गोता खा रहे हो, अभी भी समय है, माँ की गोद से बिछुड़े हुए शिशु की क्या गति होती है, वही गति तुम्हारी होगी।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

जिह्वार लालसे जेई इति-उति धाय।
शिश्नोदर - परायण कृष्ण नाहि पाय।।

जो अपनी जीभ का दास है और जो इस प्रकार इधर-उधर घूमता रहता है एवं अपने जननांग तथा पेट के प्रति समर्पित होता है, वह कृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकता।

(श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य लीला 6.227)

37

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दि. 10/03/2008

परमाराध्यतम श्रद्धेय भक्त प्रवर तथा श्रीशिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज

आप सभी के युगल चरणों में अधमाधम नराधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा संग प्राप्ति की करबद्ध प्रार्थना।

परमानन्दमय (अमृतमय) निमन्त्रण

मेरी व इस गोविन्द के परिवार की हार्दिक कामना है कि भगवान् के प्यारे श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी और उनके संग में मेरे अन्तरंग अन्तःकरण के अलौकिक नामनिष्ठ प्रेमी साथी आप सब इस गोविन्द के आश्रम में पधारकर हम सबको अनुगृहीत करें।

मुझे याद आ गया, एकबार श्रीगौरहरि श्रीवास पण्डित के घर पर कीर्तन कर रहे थे, उस दिन उन्हें संकीर्तन में आनन्द नहीं आ रहा था तो उन्होंने श्रीवास को बोला, कि आज मुझे संकीर्तन में रस नहीं आ रहा है, इसका मुख्य कारण मुझे यह महसूस हो रहा है कि आज कोई बाह्यवृत्ति वाला यहाँ छुपकर बैठा है। जब तलाशी हुई तो मालूम पड़ा कि श्रीवास की सास छुपकर संकीर्तन सुन रही थी। तो श्रीगौरहरि ने कहा कि इस मूर्ख को यहाँ से बाहर निकालो। यह संकीर्तन सुनने की अधिकारी नहीं है।

कहने का आशय यह है कि इस गोविन्द के घर में ऐसा तो कोई आयेगा ही नहीं। मुझे पूरा विश्वास है कि यह नामनिष्ठों का संग अलौकिक आनन्द प्रदान करेगा। अतः आप सभी यहाँ पधारकर मेरी कामना पूर्ण करें। घर के लोग मुझे कहते हैं कि– "हम आपको मठ में इस कारण से नहीं भेजते हैं कि वहाँ के भक्त आपकी सेवा करते हैं और सेवा लेना भक्ति के विरुद्ध है।

दूसरा कारण यह है कि, आपके यहाँ से जाने से आश्रम (घर) सूना-सूना हो जाता है। आप जाओं अवश्य परन्तु, किसी से सेवा मत लेना तथा 10-15 दिन रहो और फिर वापस यहाँ पर आ जाओ। अधिक दिन रहना उचित नहीं है। क्योंकि एक दिन आप भार बन जाओगे। मठ में गृहस्थों का रहना ठीक नहीं है। यदि आप संन्यासी होते तो ठीक था।

आपके पत्रों की पुस्तक छप नहीं रही है। यह हमें बड़ी ख़ुशी है। जब हमने सुना कि पुस्तक छपेगी, तो हमें गहरी चिंता हो गई कि प्रतिष्ठा होने से यह जो गोविन्द का आश्रम है वह खंडित हो जायेगा।"

मैंने कहा कि, 'मैं भी यही चाहता हूँ। यदि कोई नामनिष्ठ बनना चाहे तो वह मेरे इन पत्रों को टाइप करवाकर लेलें, वरना कौन भगवान् को चाहता है ? संसार में अधिकतर तो दिखावट ही फैल रही है। सच्ची भूख तो किसी विरले को ही होती है।'

अतः मेरी ओर से इस परिवार की प्रार्थना है कि आप सब यहाँ आकर हमें अनुग्रहीत करें।

'साधु संत येती घरा, तोचि दिवाली दसरा'

जब साधु-सन्त घर में आते हैं, वही वास्तव में
दिवाली तथा दशहरा का उत्सव होता है,
जो आनन्द-वर्धन करता है।

– सन्त तुकाराम महाराज

38

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 13/3/2008

परमाराध्यतम श्रद्धेय भक्त प्रवर, तथा शिक्षागुरुदेव श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरणयुगल में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर बढ़ने की बारम्बार प्रार्थना।

भगवद्सेवा में किसी भी प्रकार की कमी रहने पर वह हरिनाम से ही पूर्ण हो जाती है

हरिनाम स्मरण के अभाव में सभी सेवाएँ भगवद्भक्ति से शून्य हो जाती हैं। उसके बिना भगवान् किसी भी भक्त की सेवा को अंगीकार करते ही नहीं हैं। यज्ञ, योग, कर्म, श्रीविग्रह सेवा आदि करने पर भी हरिनाम के अभाव में वह निष्फल हो जाते हैं।

वृन्दावन में याज्ञिकी ब्राह्मण यज्ञ में आहुति देते समय 'ॐ गोविन्दाय स्वाहा' इस मंत्र का उच्चारण कर रहे थे। लेकिन भाव से नहीं केवल कर्म समझकर स्वाहा स्वाहा करके यज्ञ में आहुति दिया करते थे। अतः उन्होंने गोविंद के ग्वाल बालों की तरफ ध्यान नहीं दिया, जब ग्वालबाल भोजन की याचना करने लगे तो उनको फटकार भी दिया। लेकिन गोविंद नाम ने ही, जो स्वाहा-स्वाहा करके यज्ञ में आहुति डाल रहे थे जो भी बिना भाव से एक कर्म समझ के कर रहे थे-फिर भी नाम ने ही अपार कृपा का भागी बना दिया। वे यदि स्वाहा-स्वाहा करके नाम उच्चारण नहीं करते तो कृपा होने में संदेह था। उनकी धर्म-पत्नियाँ इस कृपा का कारण बनीं।

भगवद्नाम के अभाव में भगवद्कृपा स्वप्न में भी नहीं हो सकती, भाव से या कुभाव से भी नाम का उच्चारण किया जाये तो

कल्याण का भागी हो ही जाता है। धर्मशास्त्रों में नाम के अनेक उदाहरण हैं।

हरिनाम स्मरण से इसी जन्म में अष्टसिद्धि, नवनिधि तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि हो जाती है यदि कोई भी साधक मन को एकाग्र करके जपे तो! और एकाग्रता तब ही आयेगी जब संसार से वैराग्य की भावना उदय होगी। भावना भी तब ही उदय होगी जब मन में यह भावना हो जाये कि यह संसार दुःखों का खजाना है। यहाँ सुख नहीं है। तब ही भगवान् की ओर मन मुड़ जायेगा।

श्रीनानकदेव जी की उक्ति है–

पोस्त डोडा भांग धतूरा उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका चढी रहत दिन रात।।

अर्थात् भाँग–धतूरा आदि नशीले द्रव्यों का सेवन करने वालों का नशा प्रातःकाल होने तक उतर जाता है परन्तु भगवन्नाम का जो नशा है वह दिन रात चढ़ा ही रहता है।

बस! फिर मानव जन्म सफल है। लेकिन यह स्थिति तब ही उपलब्ध हो सकेगी जब किसी सुकृतिवान को किसी नामनिष्ठ सिद्ध संत का संग मिल जाये। वरना उक्त स्थिति उदय होना बहुत दुष्कर है।

हरिनाम स्मरण से ही उक्त कृपा उपलब्ध हो सकेगी, यदि इसे प्रेम से उच्चारण किया जाये तो!

नाम कृपा की बाट में जो हृदय अकुलाय।
नाम ही नानका संत से तुरतहि जाय मिलाय।।

भक्त की कृपा के बिना भगवान् कृपा नहीं करते। याज्ञिकियों की धर्म पत्नियाँ भक्त थीं, इसी कारण याज्ञिक ब्राह्मणों को भगवद्कृपा उपलब्ध हो गई। यदि इनकी पत्नियाँ भक्त नहीं होतीं तो याज्ञिकी ब्राह्मण यज्ञकर्म से भगवद्कृपा प्राप्त नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे तो कर्म–मार्ग के उपासक थे।

यदि किसी नामनिष्ठ संत की उपलब्धि न हो सके तो नामनिष्ठ संत की याद भी उद्धार का कारण बन सकेगी। जैसे कि, नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर नामनिष्ठ संत थे, श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज आदि का चिंतन भी लाभप्रद होता है। नारदजी, वाल्मीकि जी आदि संत हरिनाम पर ही जीवनयापन करते थे।

स्वयं की बढ़ाई जब सुनो तो गहरा दुःख होना चाहिए। क्यों दुःख होना चाहिए ? इसलिए कि, कितनी बुराइयाँ मुझ में भरी पड़ी हैं, इन बेचारों को यह पता नहीं है। तो फिर अहंकार नहीं आयेगा। अहंकार भजन नष्ट करने का अमिट शत्रु है।

इस कलिकाल में जिस साधक को हरिनाम में रुचि हो गई, हरिनाम स्मरण का स्वभाव बन गया, हरिनाम की शरण में हो गया, तो वह साधक सत्संग, शास्त्र श्रवणादि आध्यात्मिक विषय में पूरी तरह से उत्तीर्ण हो गया।

यदि हरिनाम में रुचि नहीं हुई, तो सब साधन का केवल श्रम ही प्राप्त हुआ। स्वयं की शक्ति से कुछ उपलब्धि नहीं हो सकती, संत, गुरु व भगवान् से प्रार्थना ही इस उपलब्धि का कारण बनेगी। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती, श्रम का भी लाभ होगा। सिर्फ देर हो जायेगी।

देवता तक तरसते हैं कि हमारा जन्म कलिकाल में हो जाये तो हम हरिनाम की शरण में होकर भगवद्चरणों में पहुँच जायें। सत्युग, त्रेता व द्वापर में साधन करने में जो कठिनाई है, वहीं कलियुग में उसके एक प्रतिशत भी नहीं है। घर में रहते हुए भगवद् प्राप्ति हो जायेगी। केवल मात्र हरिनाम में रुचि हो जाये। हरिनाम में रुचि तब ही हो सकती है जब उक्त आचरण कर के भगवद्प्रेमी संत की उपलब्धि हो जाये। इससे उसके आकर्षण से हरिनाम में रुचि हो सकती है। यह रुचि भी तब ही होगी जब संसारी आसक्ति कम होती जाये और भगवद् आसक्ति बढ़ती जाये, वरना संत का प्रभाव भी नहीं हो सकेगा। **स्वयं की कृपा तथा संतकृपा दोनों का समावेश होना परमावश्यक है। एक हाथ से ताली नहीं बजती।**

सत्व, रज और तमोगुण की अन्तःकरण में लहर उठती रहती है। भगवद्भाव में उतार–चढ़ाव आते रहते हैं। इनकी परवाह न करके अपनी ध्येय वृत्ति पर हृदय से चिपके रहे तो सफलता अर्थात् विरहावस्था उदय होने में देर नहीं हो सकती। जो भगवान् को न चाहकर संसार को चाहता रहेगा उसे केवल श्रम ही हाथ लगेगा। संसार से वैराग्य होना परमावश्यक है। वैराग्य ही मन को भगवद्–चरणों में लगा सकता है। जब तक संसार के प्रति दुःख बुद्धि रखकर उससे नहीं हटेंगे तब तक भगवद्प्रेम बहुत दूर रहेगा। यह युक्ति शास्त्र बता रहा है, मैं नहीं बता रहा हूँ।

साधक को भगवद् प्राप्ति की भूख होना आवश्यक है। यह भूख ही भगवद्दर्शन करा देगी। नामनिष्ठ संत के सानिध्य में भी गये लेकिन भूख तो है ही नहीं, तो साधक को संत भूखतृप्ति की सामग्री देगा लेकिन साधक खाना ही नहीं चाहता तो जाने से कोई लाभ नहीं। संत का समय भी बर्बाद किया तथा अपने समय का भी कोई मूल्य नहीं समझा। ऐसे साधक को तो कोई उपलब्धि नहीं हो सकती।

जब खेत में कभी गया ही नहीं और सोच रहा है कि कोई नुकसान नहीं हो रहा है, लेकिन जब गया तो क्या देखता है कि खेत में दाना तक नहीं है, तो–

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत!

यह सभी का हाल है। बातें तो आसमान जैसी ऊँची बनाते हैं, लेकिन तथ्य कुछ और ही है। बस ऐसे लोगों का काम ही है कि दोनों का समय बर्बाद करना। ऐसों से तो दूर ही रहना श्रेयस्कर होगा। करना तो कुछ चाहते ही नहीं तथा जो चाहते हैं उनका माथा खाते हैं कि ऐसा क्यों नहीं हुआ, वैसा क्यों नहीं हुआ ? मुख में ग्रास भी दे दिया लेकिन चबाकर निगलते तक नहीं। ऐसों को कैसे समझाया जाये ? जो कुछ भी प्राप्त करना है उसके लिए स्वयं को भी तो कुछ करना ही पड़ेगा।

हर रोज रात–दिन सुनते हैं भगवद् सम्बन्धी कैसेट, परन्तु जो चलाते हैं कैसेट, उनका तो एक प्रतिशत भी भगवान् की तरफ मन

नहीं होता। पास वालों को Disturb करना ही उनका काम है। कैसेट सुनकर कोई भक्ति की ओर नहीं मुड़ता, वह सुनना तो हवा की तरह उड़ जाता है। केवल कानों को तृप्त करना ही उनका ध्येय होता है। रात में न खुद सोते हैं और न पड़ोसियों को सोने देते हैं। ऐसे मानव तो राक्षस प्रवृत्ति के ही होते हैं। इससे तो केवल अपराध ही हस्तगत होता है।



नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमे वैष वृणुते तेन लभ्य
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।।

(कठोपनिषद 1.2.23) और मुण्डक-उपनिषद 3.2.3)

यह परब्रह्म परमात्मा तो न तो प्रवचन से प्राप्त होते है, न बुद्धि से और बहुत अधिक श्रवण से भी प्राप्त नहीं होते। वे तो केवल उस व्यक्ति के (शुद्ध भक्त के) द्वारा प्राप्त होते हैं, जिसे वे स्वयं चुनते हैं। ऐसे व्यक्ति के सामने वे अपना स्वयं-रूप प्रकट करते हैं।

- हरिनाम से ही शुद्ध भक्त का संग प्राप्त होता है।

39

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 16/4/2008
एकादशी

श्रीयुत भक्त व शिक्षागुरुदेव के चरणकमलों में नराधम अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भगवद् भाव जागृति की बारम्बार प्रार्थना।

भगवद् भाव प्राप्ति हेतु अहम् का सर्वोत्तम महत्व

मानव का अन्तःकरण चतुष्टय बना हुआ है, मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार से। यह चतुष्टय एक दूसरे से सूक्ष्म है। अहंकार इतना झीना व सूक्ष्म है कि इसे पकड़कर महसूस करना स्वयं के अधिकार से बाहर है। जिस साधक पर भगवान् और भक्त की कृपा बरसती रहती है, वह ही इस अहम को पकड़कर अपना विकृत स्वभाव बदल सकता है।

प्रश्न उठता है कि, यह अहम् क्या बला है ? अहम् अपनत्व का द्योतक है। अपनत्व का आशय होता है- '**मैं और मेरा**' तथा '**तू और तेरा**।' 'मैं और मेरा' माया से सम्बन्ध रखता है और 'तू-तेरा' भक्त व भगवान् से सम्बन्ध रखता है।

अब माया का सम्बन्ध कैसे तोड़ा जाये तथा भक्त व भगवान् से कैसे जोड़ा जाये ? जैसे एक पौधे को खोदकर दूसरी क्यारी में लगा दिया जाये। लेकिन खोदने के लिए औजार नहीं है, अर्थात् भक्त रूपी खुरपी साधक को उपलब्ध नहीं है। भक्त के सम्बन्ध के अभाव में माया का नाता तोड़ा नहीं जा सकता।

अहम् को भक्तचरणों में जोड़ दे। भक्त ही माया का नाता तोड़ने में सक्षम है। भक्त की उपलब्धि के अभाव में माया का सम्बन्ध तोड़ा नहीं जा सकता। जिस प्रकार प्रधानमंत्री व राष्ट्रपति

से मिलने के लिए प्रथम उनके बॉडीगार्ड (अंगरक्षक) से प्रार्थना करनी पड़ेगी। वैसे ही भक्त ही भगवान् का बॉडीगार्ड है।

भक्त भी सजातीय होना आवश्यक है। भक्त जिस साधन से भगवद्भाव जागृत करना चाहे, वही सजातीयता भक्त को भगवान् से मिला देगी। सजातीय के अभाव में अहम् बदला नहीं जा सकता। क्योंकि चारों युगों के लिए भगवद् प्राप्ति के साधन भिन्न-भिन्न हैं। जिस युग का जो साधन है, अगर वही साधन भक्त अपनायेगा तो वही साधन भगवान् की उपलब्धि करा देगा। यदि साधन युग के प्रतिकूल होगा तो भगवद् प्राप्ति कदापि नहीं होगी।

कलियुग के लिए भगवद् प्राप्ति का साधन है हरिनाम संकीर्तन और जप। यदि साधक यज्ञ, ध्यानादि करने लगेगा तो भगवद् प्राप्ति कभी भी नहीं होगी। क्योंकि कलियुग दोषों का भंडार है। कोई भी वस्तु शुद्ध नहीं है, न कोई यज्ञ करने वाले शुद्ध अन्तःकरण वाले हैं। साधक को निष्फलता ही प्राप्त होगी।

युग के साधन अनुसार सजातीय भक्त से नाता जोड़ना पड़ेगा। अर्थात् नामनिष्ठ का संग करना परमावश्यक है। वही नामनिष्ठ नाम में अन्तःकरण को जोड़कर अहम् को माया से हटाकर नाम में रुचि उपलब्ध करा देगा। क्योंकि वह चुम्बक है। वह अपनी ओर आकर्षित कर देगा। उसकी नामनिष्ठा नाम से परमानन्द का भाव जागृत करा देगी।

इसलिए नाम ही जो सर्वशक्तिमान है वह नामनिष्ठा ही साधक की धीरे-धीरे जगत् की आसक्ति छुड़ाकर भक्त व भगवान् के प्रति आसक्ति जागृत करा देगी। अर्थात् अहम् को भौतिक भाव से हटाकर आध्यात्मिक भाव में पलट देगी। नाम ही संसारी नश्वरता का बीज अन्तःकरण में बो देगा। जब संसारी आसक्ति नहीं रहेगी तो भक्त व भगवान् से आसक्ति जुड़ जायेगी। जब ऐसी स्थिति अन्तःकरण में रम जायेगी तो मन-बुद्धि-चित्त स्वतः ही छाया की भांति अहम् से जुड़ जायेगा। जब अहम् से जुड़ जायेगा तो मन

छाया की तरह उससे चिपक जायेगा। मन को वश में करने का यह सरलतम उपाय है। पूरे लेख का आशय यह है कि सजातीय का संग करो।

कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग परं व्रजेत।।
कृते यत् ध्यायते विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्हरिकीर्तनात्।।

हे राजन् यद्यपि कलियुग दोषों का सागर है, फिर भी 'इस युग में एक अच्छा गुण भी है– केवल कृष्णनाम का कीर्तन करने से मनुष्य भवबन्धन से मुक्त होकर दिव्य धाम को प्राप्त कर सकता है।

सत्ययुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से तथा द्वापरयुग में भगवान् के चरणकमलों की सेवा (अर्चन–पूजन) करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल कलियुग में केवल हरि–कीर्तन (हरिनाम) से प्राप्त होता है।

(श्रीमद्भागवत 12.3.51,52)

40

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 16/12/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय, श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरणों में मेरा साष्टांग दण्डवत् प्रणाम।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति का सरलतम स्वयं सिद्ध अकाट्य साधन

हरिनाम को कान से सुनना

रामवचन–

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्गद् गिरा नैन बह नीरा।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

उदाहरणार्थ– जैसे एक शिशु घर के बाहर चौक में अपनी मस्ती में खेलता रहता है। शिशु की माँ घर के अन्दर काम करती रहती है लेकिन माँ का पूरा ध्यान बच्चे की ओर ही रहता है। वह सोचती रहती है कि मेरा शिशु कहीं गिर न जाये। या किसी बुरी चीज को खा न जाये, आदि–आदि।

जब शिशु माँ–माँ पुकारते हुए रोने लगता है, तो माँ तुरन्त घर का काम छोड़कर शिशु के पास दौड़कर आ जाती है। फौरन गोद में उठाकर प्यार भरा चुम्बन करती है, पुचकारती है, स्तनपान कराती है। और जब माँ देखती है कि बच्चा तो अपने खेल में मस्त है तो माँ दबे पाँव वापस घर में आकर अपना काम करने लग जाती है। यह है संसारी माँ का शिशु के प्रति वात्सल्य भाव।

अब विचार कीजिए कि जो जन्म–जन्मान्तर की माँ (भगवान्) है उसमें शिशु (भक्त) के प्रति कितना वात्सल्यप्रेम होगा ? अकथनीय है। भगवान् तो वात्सल्यरस के समुद्र हैं। जब भक्त थोड़ी भी आँसू

की बूँदें बहाता है तो भगवान् रूपी माँ कैसे ठहर सकती है, उसका दयालु हृदय काँप उठता है। शीघ्र भक्त के पास आ जाती है। लेकिन भगवान् जब देखते हैं कि यह तो मुझे नहीं बुला रहा है, हरिनाम करते हुए खेत व दुकान का चिंतन कर रहा है, तो भगवान् आकर चले जाते हैं।

शिव वचन–

भाव कुभाव अनख आलसहुँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

मन दशों–दिशाओं के अलावा कहीं जाता ही नहीं है, अतः जहाँ मन हरिनाम को ले जायेगा, वहाँ का मंगल (लाभ) ही कर देगा। क्योंकि हरिनाम का स्वभाव है चारु चिन्तामणि, वाञ्छा कल्पतरु। जिसका चिंतन करोगे उसका कल्याण कर देगा।

माँ–माँ पुकारना ही हरिनाम पुकारना है। माँ–माँ पुकारना संसारी माँ को बुलाना है एवं '**हरे कृष्ण हरे राम**' पुकारना भगवान् को पुकारना है।

भगवान् तो जन्म–जन्मान्तर की माँ है क्योंकि सभी चल–अचल जीवमात्र उसने पैदा किये हैं, सभी भगवान् के बच्चे हैं।

साधक जब नाम जपता है तब नाम के मुखारविंद से निकलते ही भगवान् भक्त के पास आ जाते हैं, परन्तु भगवान् जब देखते हैं कि जापक का मन मुझमें न होकर संसार में भटक रहा है, तो भगवान् फौरन वहाँ से चले जाते हैं अतः मन को रोकने का उपाय केवलमात्र श्रवण ही है। जब हम किसी को कहते हैं कि अमुक काम करना है तो स्वयं का कान भी इस शब्द को सुनता है तथा जिसको काम बताया जाता है वह भी उस शब्द (वाक्य) को सुनता है, फिर हृदय में उस काम का अहसास होता है तब ही काम सूचारु रूप से सफल हो जाता है। जब मन का संचार होगा तब ही जिह्वा हरकत में आयेगी। तीनों जगह में ही मन द्वारा ही कोई भी काम सम्पूर्ण होता है। तीन जगह कौन सी हैं ?

1. मन जिह्वा को बोलेगा कि–यह काम बोलो।

2. कान उसे सुनेगा, कान उस वाक्य को हृदय तक पहुँचाएगा।

3. हृदय उसको बुद्धि द्वारा संचारित करेगा तब काम पूरा होगा। यदि मन को कान के पास नहीं ले गए तो बिना सुने काम बेकाम हो जायेगा।

जब संसार का ही काम उक्त तरीका अपनाये बिना नहीं हो सकता तो भगवान् से सम्बन्धित काम कैसे सफल हो सकता है ? थोड़ा गहरा विचार करके देखना चाहिए। वरना यह जीवन व्यर्थ में चला जा रहा है एवं चला जायेगा। **मैं केवल नाम पर ही जोर देता हूँ, क्योंकि यही प्रमुख बीज है और अन्य सभी तो इसी की शाखा, पत्र, फल इत्यादि हैं।**

श्रीचैतन्य महाप्रभु सनातन गोस्वामी
को उपदेश देते हुए कहते हैं–

नित्य-सिद्ध कृष्ण-प्रेम 'साध्य' कभु नय।
श्रवणादि-शुद्ध-चित्ते करये उदय।।

कृष्ण के प्रति शुद्ध प्रेम जीवों के हृदयों में नित्य स्थापित रहता है। यह ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे किसी अन्य स्रोत से प्राप्त किया जाए। जब हरिनामादि श्रवण तथा कीर्तन से हृदय शुद्ध हो जाता है, तब यह प्रेम स्वाभाविक रूप से जागृत हो उठता है।

(श्रीचैतन्यचरितामृत मध्यलीला 22.107)

41

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 25/12/2006

परमादरणीय आराध्यतम प्रातः स्मरणीय श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा प्रेम-प्राप्ति की प्रार्थना।

हरिनाम में अपार अकथनीय शक्ति

(दार्शनिक सिद्धान्तानुसार तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)

अनन्त ब्रह्माण्डों में नाम शब्द के बिना कोई भी कर्म हो ही नहीं सकता। किसी वस्तु विशेष का नाम उच्चारण करके ही कोई भी कर्म सम्पन्न होता है। नाम का शब्द भी यदि कान में चला गया तो कर्म सम्पन्न हो जायेगा एवं यदि शब्द कान में नहीं गया तो वह कर्म निष्फल हो जायेगा।

प्रत्येक नाम शब्द में सुख एवं दुःख की ही अनुभूति रहती है, तीसरी कोई स्फुरणा नहीं होती। प्रत्येक नाम शब्द में अपार शक्ति निहित रहती है। उदाहरणार्थ- जैसे किसी ने किसी को अपशब्द (गाली) बोला, और यदि कान में यह शब्द श्रवण हो गया तब तो उसके हृदय में उथल-पुथल मच गई, अर्थात् क्रोध का भाव प्रकट हो गया, दुःख की अनुभूति इस शब्द ने कर दी।

दूसरी तरफ यदि नाम शब्द कान में नहीं गया अर्थात् इस समय सुनने वाले का मन कहीं दूसरी ओर था तो इस नाम शब्द का कोई प्रभाव उस सुनने वाले पर नहीं होगा। उसके हृदय में कोई उथल-पुथल नहीं होगी।

दूसरी तरफ, यदि किसी को प्रेम भरा नाम-शब्द बोल दिया, जैसे कि, 'बहुत दिनों में आपका पधारना हुआ, आज हमारा शुभदिन

उदय हुआ।' तो सुनने वाले के हृदय में प्रेमभाव की लहरें उठने लगेंगी और सुख का भाव जागृत हो जायेगा। शब्द ने ही तो हृदय का उफान लाया।

इसी तरह से **'हरे कृष्ण राम'** शब्द में अपार अकथनीय प्यार भरा समुद्र लहराता रहता है। यह किसी सुकृतिशाली को ही सुलभ हो जायेगा। परन्तु होगा नाम श्रवण से ही।

हरिनाम शब्द में भी अपार शक्ति निहित है। यदि किसी सुकृतिशाली को इन नामों में श्रद्धा बन जाये तो इसी जन्म में छद्‌म रूप में भगवद्‌दर्शन होकर जन्म-मरण से छुटकारा मिल जायेगा तथा गोलोक धाम की प्राप्ति हो जायेगी।

शब्दों से जुड़कर मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें अपार शक्ति भर दी गयी है, जिनसे एक क्षण में ही सृष्टि का विनाश हो सकता है तथा एक क्षण में ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हो सकता है। मंत्रों से राक्षस आकाश में हवा में उड़कर देवताओं से युद्ध करते हैं। दीप राग गाकर दीपक जला देते हैं। मेघ राग से बरसात बरसा देते हैं आदि-आदि।

शब्द के बिना सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। जरा गहरा विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम जापक के पास समस्त शक्तियाँ हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तथा अष्टसिद्धियाँ और नव-निधियाँ सुलभ हो जाती हैं।

जब भगवान् ही मिल जाते हैं, तो इससे बड़ा लाभ क्या हो सकता है?

परन्तु लाभ होगा केवल मात्र हरिनाम श्रवण से ही। वरना अनेक जन्म बीत जाएँगे। श्रवण बिना कुछ नहीं मिलेगा। सुनना तो Most Essential (बहुत आवश्यक) है। सुने बिना तो सृष्टि का काम ही नहीं चल सकता तो भगवान् कैसे मिल जायेंगे ? असम्भव ही है। चार माला कान से सुनकर करने से भगवान् के लिए छट-पट प्रकट हो जाती है, अगर यदि कोई अपराध न हो तो।

42

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 27/12/2006

कान से ही बन्धन और मुक्ति

चारों युगों का शास्त्रीय महत्वशील सरल साधन नाम का एक मात्र श्रवण

इन्द्रियों का राजा है कान। कान नरक दे सकता है और वही कान भगवद्‌चरण को भी दे सकता है।

अनन्त जन्मों से कान ही भौतिक वार्ताएँ सुन–सुनकर भवसागर में डाल देता है एवं कान ही आध्यात्मिक वार्ताएँ सुन–सुनकर भगवद्‌चरणों में पहुँचा देता है। अतः इन्द्रियों में कान ही इन्द्रियों का राजा है। यदि कान से मन को वश में कर लिया जाये तो सब इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

यदि कान से हरिनाम को सुना जाये तो इसी जन्म में प्रभु दर्शन हो जाता है। ठाकुर जी साक्षी है। अकाट्य सिद्धान्त है। दो वस्तुओं का घर्षण तीसरी वस्तु को प्रकट कर देता है। जिस प्रकार दो अरणियों के घर्षण से अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। ऑक्सीजन+ हायड्रोजन मिलकर पानी बन जाता है। तीली और माचिस का घर्षण अग्नि को जन्म देता है, आदि–आदि। इसी प्रकार जिह्वा (उच्चारण) एवं कान (श्रवण) इन दोनों का घर्षण विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित कर देता है। यदि ठाकुरजी के किसी प्यारे को चार माला का कान से सुनकर अभ्यास हो जाये तो 100% ठाकुर के लिए छटपट हो जाये। इसमें कोई पाप या अपराध अड़चन नहीं कर सकता, न ही कुसंस्कार। आजमाकर देखना चाहिए। मानव जन्म बार–बार नहीं मिलता, अवसर चूकने पर पछताना पड़ेगा। काल का कोई भरोसा नहीं है कि कब अचानक आकर निगल जाये।

इसमें एक शर्त है कि सुकृतिवान जापक का एकमात्र लक्ष हो भगवद् प्राप्ति तथा भगवद्प्रेम। सुकृतिवान को ही ठाकुरजी यह मौका देंगे वरना पढ़कर भी यह हृदयंगम नहीं होगा। जापक एक-एक लाख हरिनाम करते हैं परन्तु 40-50 साल तक करने पर भी उनका कारण शरीर (स्वभाव) नहीं बदला। इसका कारण केवल मात्र मन का भटकना, प्रमाद से जप करते रहना है।

मुखारविंद रूपी दीपक में जिह्वा रूपी बाती डालकर, कानरूपी कुप्पी से हरिनाम श्रवणरूपी तेल निरन्तर डालते रहने से ज्ञानरूपी दीपक जल उठेगा और जन्म-जन्मान्तर का घोर अज्ञानरूपी अंधकार सदा के लिए विलीन हो जायेगा।

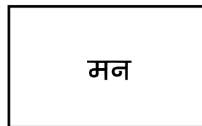
पत्रद्वारा गुरुदेव का आदेश-

CHANT HARINAM SWEETLY & LISTEN BY EAR

तब से गुरु आदेश गुरुकृपा से ही पालन किया जा रहा है। आजमा कर देखिए। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। करके देखिए क्या-क्या गुल खिलते हैं! कहने में अकथनीय है। सारा का सारा जीवन बदलकर आनन्दमय हो जायेगा, वह भी बड़ी सरलता से। **उस जापक को कोई पहचान नहीं सकता, जिस पर ठाकुर कृपा है वही पहचान पायेगा। भक्त ही भक्त को पहचान सकता है। जौहरी ही हीरे की परख जान सकता है।**

भगवद्दर्शन

हृदय का भाव



कान से श्रवण

जीभ से उच्चारण

प्रेमप्राप्ति के बाद भगवद् दर्शन होता है, नाम को कान से सुनते-सुनते हृदय में प्रेमांकुर अंकुरित होगा। इसके बाद विरहाग्नि प्रकट होगी। विरहाग्नि में सारे दुर्गुण जलकर भस्म हो जाएँगे तथा मिलन की छटपट इतनी तेज होगी कि एक-एक क्षण युग के

समान बीतने लगेगा। बार–बार सांस रुकने लगेगी। प्राण छोड़ने को तैयार हो जायेगा। तब भगवान् से रहा नहीं जायेगा तथा भक्त को दर्शन देने को बाध्य हो जायेगा। लेकिन यह अवस्था तब ही आयेगी जब संसार उसे सूना–सूना महसूस होने लगेगा। उसे भगवान् के सिवाय कोई भी अपना नहीं लगेगा।

ऐसी स्थिति में उसका वियोग भी सुखकारक होगा। दुःख तो संसार में है। वहाँ तो (भगवान् के सान्निध्य में) दुःख की छाया भी नहीं है। उस वियोग में भी संयोग ही है। कथन से बाहर है, जो चखता है उसे ही मालूम है। दूसरे को बताना तो असम्भव ही है।

श्रीगौरहरि ने भक्त के रूप में प्रकट होकर भक्ति कैसे की जाती है यह प्रत्यक्ष रूप में आचरण करके दिखा दिया। सुकृतिवान ही उसको पकड़ सका। विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हुए बिना क्या कोई ठाकुर जी को पा सकता है ? कदापि नहीं। उक्त बताए अनुसार ही विरहाग्नि प्रकट होगी, अन्य उपाय से नहीं। जोर से कीर्तन सुनकर ही तो गौरहरि ने विरह की प्राप्ति की थी।

मन को वश में करने का शास्त्रीय सरलतम तरीका–

आँखें (कृष्ण का दर्शन)

भाव (लक्ष्य क्या है?) **मन** **कान (श्रवण)**

जिह्वा (उच्चारण)

उक्त Rectangle में मन फँसा पड़ा है। उसको निकलने के लिए कहीं जगह ही नहीं है। हरिनाम का जीभ से उच्चारण करके उसे कान के द्वारा सुनो। जब सुनोगे तब जिसका नाम ले रहे हो वह आँखों के सामने आयेगा। जब सामने आयेगा तब क्या चाहते हो यह प्रश्न उठेगा। तो बताओ, मन कहीं अन्य ठौर जा सकेगा ?

प्रमाद से हरिनाम लेना भी अपराध है लेकिन कान के द्वारा सुनने से अपराध खंडित हो जाता है।

सिद्धांत यह है कि सजातीय वस्तु सजातीय के पास आकर्षित होती है। और विजातीय वस्तु विजातीय के पास आकर्षित होती है। इसमें दो राय नहीं है। आत्मा परमात्मा की सजातीय है अतः आत्मा परमात्मा के संग में रहकर ही आनन्दलाभ कर सकेगी, विजातीय अर्थात् भौतिक जगत के संग में नहीं।

हरिनाम वाञ्छा कल्पतरु है, चारु चिन्तामणि है, जहाँ पर मन हरिनाम को ले जायेगा वहाँ उसका कल्याण कर ही देगा। हरिनाम जपते हुए मन में अगर दुकान की याद आ गई तो दुकान में मुनाफा हो जायेगा। एवं यदि कान से नाम सुना जायेगा तो वह बाहर कहाँ जायेगा? हृदय में जाकर आत्मा से मिल जायेगा। मिलते-मिलते, सुन-सुनकर प्रेम हो जायेगा एवं जन्म-मरण का चक्कर ही सदा के लिए हट जायेगा।

शास्त्रीय प्रमाण-

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

प्रमाद से लिया हुआ नाम भी कल्याणकारी होता है।

शास्त्रवचन-

गिरते पड़ते अकस्मात् यदि नाम मुख से निकल जाये तो कल्याण कर देता है। मन नाम को दशों-दिशाओं में ले जाकर उन दिशाओं का कल्याण कर देगा लेकिन स्वयं का कल्याण तो श्रवण द्वारा ही होगा।

प्रश्न - मन की परीक्षा कैसे की जाय कि मन संसार को चाहता है या भगवान् को चाहता है?

उत्तर - मन की परीक्षा स्वयं ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं। जब माला से हरिनाम शुरु करें और उसमें मन रमे, रमने से अलौकिक आनन्द का अनुभव हो। स्वप्न अपने प्रयास से जैसा चाहे वैसा नहीं आ सकता। जिसमें मन को आकर्षण होगा वही

स्वप्न आयेगा। भगवान् में सच्चा मन होगा तो नींद में भी तड़पन होगी। कब मुझे भगवान् मिलेंगे? नाम जपने पर अपने पास भगवान् को बैठने, खड़े होने, मुस्कुराने, अप्रकट होने, मूकबात करने आदि का अनुभव होगा। कोई कार्य अगर कठिन जान पड़ेगा तो तुरंत हो जायेगा, तो वह भक्त ऐसा समझेगा कि भगवान् मुझे कितना चाहते है, तो वह रो पड़ेगा। ऐसे कई लक्षण हैं, सारे लेख में नहीं आ सकते।

मन का उद्गार

क्या उदारता का स्वभाव और अब नहीं है?
अधमों से कोई दरकार अब नहीं है?
पाते थे जिन-चरणों से, हिम्मत लाखों अपराधी।
अब अपराधियों का, कोई अवतार अब नहीं है?
क्षमा का अवतार लेकर आए इस जग में।
क्या वह करुणा सिंधु का, स्वभाव अब नहीं है?
बैठा अनिरुद्ध दास ताक में, दिल में क्षमा क्या अब नहीं है?

प्रश्न – क्या गौरहरि की भक्ति करना परमावश्यक है?

उत्तर – अवश्य! कलिकाल पापियों का सागर है, सागर में रहकर कहाँ बच पाओगे। श्रीकृष्ण ने पापियों को हथियारों से मारा। उनके मन में पापियों के लिए दया नहीं थी। जैसा किया वैसा भोगो, यह विचार सभी भगवद् अवतारों का था। लेकिन गौरहरि अगाध दया के सागर हैं, क्योंकि वह राधा का भाव लेकर प्रकट हुए हैं। राधा में अदोष-दर्शिता कूट-कूटकर भरी है। अतः गौरहरि का भजन इस समय परमावश्यक है।

तब ही तो गौरहरि का अवतार 28 वें द्वापर के बाद एकबार ही होता है। ऐसा शास्त्रों में लिखा है। जो इस गौरहरि की कड़ी से जुड़ गया, चाहे उसने खास भजन भी नहीं किया हो। इस जन्म में न सही, दूसरे-तीसरे जन्म में अवश्य ही जन्म-मरण से छूट जायेगा। वरना तो इसी जन्म में आवागमन सदा के लिए हट जायेगा। अधूरे का अगला जन्म श्रीमानों के घर में ही होगा।

भजनगीति में भी नरोत्तमदास ठाकुर एवं भक्तिविनोद ठाकुर ने प्रार्थना की है कि मैं गौरहरि एवं श्रीकृष्ण में भेद नहीं समझूँ ऐसी कृपा करो कि मेरा मन गौरहरि में लग जाए क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण ही गौरहरि हैं।

अब चतुर्मास आरम्भ होने वाला है, भगवान् मुझे तीन लाख हरिनाम करने की शक्ति प्रदान करें। कहाँ करना चाहिए ? जैसी ठाकुर की मर्जी होगी, वहीं पर बैठक हरिनाम की होगी। निर्जला एकादशी आपकी कृपा से निराहार हो गई, गर्मी कुछ कम थी, बरसात हो गई थी। अन्तिम सांस आ रही है, भजन करना ही सच्ची कमाई है। आप ऐसी शक्ति प्रदान करते रहें कि मेरा आवागमन हट जाये।



अवंती ब्राह्मण कहते हैं–

"न तो ये लोग मेरे सुख तथा दुःख का कारण हैं, न ही देवता, न मेरा शरीर, न ग्रह, न मेरे विगत कर्म तथा काल। प्रत्युत यह तो एकमात्र मेरा मन है जो सुख तथा दुःख का कारण है और भौतिक जीवन को निरन्तर घुमाता रहता है।"

(श्रीमद्भागवत 11.23.42)

43

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 24/8/2007
एकादशी

परमाराध्यतम श्रद्धेय, मेरे शिक्षागुरुदेव 108 श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में अधमाधम दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टांग दण्डवत् प्रणाम तथा भजन स्तर उत्तरोत्तर बढ़ने की प्रार्थना।

शास्त्रीय सत्य सिद्धांत में अंधापना

द्वापरयुग का धर्म-कर्म है कि अर्चाविग्रह को साक्षात् भगवान् समझकर शुद्ध भक्तिद्वारा ठाकुरजी का श्रद्धा और प्रेम से अर्चन-पूजन करना। ठाकुर जी की यह शुद्ध अर्चन-पूजा तब ही श्रद्धा व प्रेम से हो सकेगी जब पुजारी जी के पास भक्तिभाव हो। पुजारी के पास भक्तिभाव तब ही होगा जब वह कम से कम 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम जो कि कलियुग का धर्म-कर्म है उसे श्रवण करेगा।

जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है- महाप्रभु श्रीगौरहरि। जिन्होंने अपने भक्तजनों को आदेश दिया कि सभी को एक लाख हरिनाम श्रवण नित्य करना होगा ताकि इन पर ठाकुरजी की अल्पकाल में कृपा हो जाये। नाम ही रुचि पैदा करा कर संसार से आसक्ति छुड़ा देगा। संतों का संग करा देगा।

बिनु हरिकृपा मिलहि नहि सन्ता।

हरिनाम श्रवण के अभाव में ठाकुरजी का अर्चन-पूजन एक कठपुतलीवत होगा। बिना हरिनाम के श्रद्धा तथा प्रेम होगा ही नहीं। क्योंकि हरिनाम श्रवण रूपी धन पुजारी जी के पास है ही नहीं। बिना धन के कोई काम होता ही नहीं।

द्वापरयुग की भक्ति जो ठाकुर जी का अर्चन-पूजन है वह इसलिए परमावश्यक है कि, साधकगण ठाकुर जी की शरण में

रहकर, कलियुग का धर्म–कर्म जो हरिनाम श्रवण कीर्तन है इसे शान्तिपूर्वक कर सके। मठ–मन्दिर में ठाकुरजी का विराजना होता है, इनके संरक्षण से हरिनाम श्रवण संकीर्तन बड़ी सुगमता से होता रहता है। हरिनाम के अभाव में उक्त साधन होना असम्भव ही है क्योंकि अराजकता फैलने का भय बना रहता है।

इसी कारण गृहस्थ भक्त अपने घर के एक कमरे में ठाकुर जी का चित्रपट विराजमान करके निर्भयता से सोता रहता है। उन्हें अपना स्वामी समझकर हरिनाम श्रवण कीर्तन का आयोजन नित्य सुगमता से करता रहता है। क्योंकि वहाँ अराजकता का भय नहीं होता।

गृहस्थ भक्त नित्य ठाकुर को भोग अर्पण करता है, शयन कराता है। गर्मी में पंखा करता है। सर्दी में गर्म शॉल उढ़ाता है। कष्ट आने पर ठाकुर से प्रार्थना करता है। बैठकर उनसे मूक बातें भी करता है। समस्याओं का हल पूछता है। संतों की कथा ठाकुर को प्यारी लगती है तो उनका चरित्र सुनाता है। ठाकुर जी को हर प्रकार से सुखी करके देखना चाहता है। ठाकुरजी भी उसे सुखी करते रहते हैं। ठाकुरजी कहते हैं कि जैसा भक्त मुझे भजता है, मै भी भक्त को वैसे ही भजा करता हूँ। Action Reverse Reaction जैसी हरकत वैसी बरकत होगी ही। यह गीता का वचन है।

अब रहा कलियुग का धर्म–कर्म हरिनाम श्रवण कीर्तन। जहाँ यह नहीं हो रहा है वहाँ ठाकुर का अर्चन–पूजन भी निःसंदेह नहीं हो रहा है। वहाँ अराजकता जरूर फैलेगी। नाम श्रवण कीर्तन के अभाव में ठाकुर जी का अर्चन–पूजन जो द्वापरयुग का धर्म–कर्म है वह भी शक्तिहीन ही रहता है। क्योंकि मूल वृक्ष की जड़ में जो नाम श्रवण रूपी जल नहीं दिया गया तो ठाकुर जी का अर्चन–पूजन रूपी वृक्ष सूखकर बिना पत्ते, फूल, फल के नंगा ही रहेगा और एक दिन वह गिर भी पड़ेगा। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक मठ वासी ब्रह्मचारी, संन्यासी कम से कम एक लाख हरिनाम श्रवण अवश्य करते रहें, तब ही कथा, कीर्तन, प्रवचन में बल प्रकट हो

जायेगा। वरना सभी साधन बल-हीन होते रहेंगे। अन्यथा केवल समय को बर्बाद करते रहो। कुछ उपलब्धि हासिल नहीं होगी।

पहली कक्षा में तो बैठे नहीं एवं बी.ए. की कक्षा में बैठ गए तो क्या कुछ उपलब्धि हो सकेगी ? केवल हाथ पर हाथ रखकर समय गुजारते रहो। इससे अधिक मूर्खता क्या हो सकती है ? मानव जन्म जो भगवान् की कृपा से मिला है, उसे व्यर्थ में खोते रहो। अमूल्य रत्न हाथ लगा था। पत्थर समझकर कूड़े में फेंक दिया। फिर दुबारा मिलने के लिए तरसते रहो।

ठाकुरजी का अर्चन-पूजन ठाकुर के सुख के हेतु श्रद्धा और प्रेम से होना चाहिए। ऐसी भावना नहीं होनी चाहिए कि संसार मुझे भक्त कहेगा, मुझे धन मिल जायेगा, मुझे खूब अच्छा खाने को मिलता ही है, जो संसारी लोग ठाकुर को भोग लगाते रहते हैं। यह भावना काम भक्ति की श्रेणी में आती है।

मैं ठाकुरजी को आज ऐसी सुन्दर पोशाक पहनाकर सजाऊँगा कि, दर्शकगण देखते ही रह जायेंगे। इत्र और फूलों से ठाकुर के कमरे को महका कर ठाकुरजी को तरह तरह के भोग अर्पण करुँगा, फिर ठाकुरजी भोग पाकर तृप्त हो जायेंगे, इस प्रकार ठाकुर के सुख हेतु जो अर्चन-पूजन होता है, वह शुद्ध निर्मल भक्ति की श्रेणी में आता है। जो ऐसी ठाकुर सेवा करता है, उससे ठाकुरजी बातें भी करते हैं। हर काम को ठाकुर का विधान समझना चाहिए। सेवा करते-करते श्रद्धा बढ़ जाती है।

धीरे-धीरे रे मना सब कुछ अच्छा होय।
मालीं सींचे सौ घड़ा रितु आवे फल होय।।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी एकबार खीर चोर गोपीनाथ के मन्दिर में दर्शन हेतु गए तो किसी ने कहा कि यहाँ रात को अमृत केलि खीर का भोग लगता है। माधवेन्द्रपुरी जी की इच्छा हुई कि थोड़ा-सा खीर भोग मुझे चखने को मिल जाये तो मैं भी मेरे गोपाल को ऐसी खीर का भोग लगाऊँगा। थोड़ी ही देर में वह पछताने लगे और खुद

को कोसने लगे कि मेरी जीभ खाने की इच्छा कर रही है। तो इस कारण वह दुःखी हुए।

यह प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है कि, जब भगवान् के सुख के लिए भक्त सोचता है, तो भगवान् भी भक्त के सुख की सोचते हैं। तो फिर रात में पुजारी के स्वप्न में गोपीनाथ जी आये और उन्होंने कहा कि, मैंने भोग में से खीर का कुल्हड़ चुराकर बाजू में रख दिया था, तुम उसे लेकर माधवेन्द्रपुरी को देकर आ जाओ, वह अभी बाजार में बैठकर हरिनाम कर रहे हैं। पुजारी ने तुरन्त वह खीर ले जाकर माधवेन्द्रपुरी जी को देकर सब बात बताई। फिर उन्होंने वह खीर खाई। उन्होंने उस कुल्हड़ को फोड़कर अपने गलवस्त्र में बांध लिया एवं उन टुकड़ों को नित्य खाते रहे क्योंकि यह ठाकुरजी के द्वारा दिया हुआ महाप्रसाद था। वह हरिनाम लेते रहे और ठाकुरजी की इस कृपा के लिए रोते रहे। अतः हरिनाम ठाकुर के सुख हेतु लेना चाहिए। ऐसा भाव हो कि, मैं पुकार रहा हूँ, ठाकुर को सुखी कर रहा हूँ। मैं उनका हूँ, वे मेरे हैं।

नोट– यदि मठवासीगण एक लाख हरिनाम नहीं करते, तो साफ प्रकट है कि इनका खास उद्देश्य भगवद् प्राप्ति नहीं है। केवल मान प्रतिष्ठा, धन कमाना, मौज उड़ाना आदि है। टी.वी., मोबाइल रखकर क्या ब्रह्मचारी भगवान् को चाहेंगे ? 100% नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि, ये घर छोड़कर आए हैं, तो क्या वह भगवान् को नहीं चाहेंगे ? यदि चाहते तो नाम करते, टी.वी., मोबाइल से दूर रहते। संसार में बहुत साधु हैं, करोड़ों में से कोई एक ही भगवान् को चाहता है। सभी असाधुता में रमण कर रहे हैं। गीता भी यही कहती है। शास्त्रीय सिद्धान्त को न अपनाने से प्रत्येक मठ मन्दिर में अराजकता फैलती जा रही है। फिर भी सचेत नहीं होते। यह कलियुग का प्रकोप है। हरिनाम के बिना बचना असम्भव ही है।

यह लेख मैंने नहीं लिखा है, किसी अदृश्य शक्ति द्वारा प्रेरित कर लिखवाया गया है। यह सच मानो। क्या गृहस्थी में फँसा हुआ प्राणी दूसरों को लिखकर उठा सकता है ? खुद ही गिरा पड़ा है।

44

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 25/9/2006

परमाराध्यतम श्रद्धेय व प्रातः स्मरणीय, श्रीगुरुदेव शिक्षा प्रदाता श्रीभक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी के चरण युगल में इस अधमाधम दासानुदास अनिरुद्धदास का असंख्यबार दण्डवत् प्रणाम तथा ठाकुरजी के प्रति विरहाग्नि प्रज्ज्वलित होने की बारम्बार करबद्ध प्रार्थना।

अभी शरणागत हो जाओ, मौत सामने खड़ी है

पतंगा (जुगनू) अपने सजातीय सूर्य के चरणों में जाना चाहता है अपने सामर्थ्य पर, लेकिन यह सबका अज्ञान ही है कि कहाँ सूर्य सर्वशक्तिमान, कहाँ अल्पशक्ति तुच्छ जुगनू। क्या करे, सूर्य उसको आकर्षित करता रहता है अतः जुगनू मजबूर है, उड़ने पर। यह सूर्य तक पहुँच पाये या न पाये, यह इसका जन्म–जात स्वभाव ही है।

हरिनाम में रुचि न होने के निम्न कारण –

1. भक्त अपराध, मन से, वचन से व कर्म से।

2. भक्त व संत के चरणों में उनकी इच्छा के विरुद्ध चरण स्पर्श करने या दण्डवत् प्रणाम करने से भक्ति का ह्रास होता है, भक्ति क्षीण होती रहती है एवं इच्छा के विरुद्ध चरण धोने से तो भारी क्षीणता आ जाती है।

3. मठ में ठाकुर की सेवा भार समझ कर बे मन से करना। ऐसा मन में समझना कि मेरे कारण यह सेवा हो रही है, यह सेवा अपराध है। मुझसे ठाकुरजी सेवा ले रहे हैं यह विचार श्रेयस्कर है। इससे नाम में रुचि हो जाती है।

4. मठ रक्षक के नाते, मठ में भजनशील भक्त के प्रति सद्‌भाव रखे तथा भजन न करने वाले के प्रति प्रेम से सुझाव देते रहे। धीरे-धीरे ठाकुरजी का सेवक समझकर सद्‌व्यवहार करते रहे। शरणागति पूर्वक प्रार्थना करने से वातावरण शुद्ध हो जाता है। ठाकुर जी की कृपा से Tension (तनाव) दूर होकर हरिनाम में रुचि हो जाती है।

मेरे सिर पर राधा-माधव बैठे हैं। वह अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं। उनसे कुछ छुपा नहीं है, वह अपने आप सब काम करेंगे। द्रोपदी व गजेन्द्र जैसी शरणागति होने पर सब कार्य उत्तम हो जाते हैं। एकबार भगवान् पर सब कुछ छोड़कर तो देखो! क्या फांसी थोड़े ही लग जायेगी!

ठाकुरजी भी हँसते रहते हैं। कैसा मूर्ख है, सब भार अपने ही सिर पर लेता रहता है। लेने दो! पूर्ण शरणागति कहाँ हुई। इसमें स्वयं का सूक्ष्म अहंकार ही कारण है। झीना अहंकार महसूस नहीं हो रहा है। अतः नाम में रुचि नहीं हो रही है। भय किस बात का ? जहाँ भय होगा वहाँ ठाकुर पर पूर्ण श्रद्धा नहीं, अल्प श्रद्धा है। पूर्ण शरणागति नहीं, अल्प शरणागति है।

सब कुछ जानते हुए भी कि मौत सामने खड़ी है, फांसी का तख्ता सामने दिख रहा है परन्तु फिर भी निश्चिन्त होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यह केवल विचार में ही उतरा है। अन्तःकरण में अभी इसका ज्ञान नहीं हुआ है। जिस क्षण अन्तःकरण इस ज्ञान को पकड़ लेगा उसी क्षण ठाकुर के प्रति अपनापन, शरणागति, अवलम्बन स्वतः ही प्रकट हो जायेगा। हरिनाम ही प्यारा लगेगा एवं इस नाम से विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो जायेगी। ठाकुर के बिना एक-एक क्षण युग सा प्रतीत होने लगेगा।

जिसने आज ही श्रीसद्‌गुरुदेव की शरणागति ली है, वह भी भक्त की श्रेणी में आ जाता है। उसकी भी इच्छा के विरुद्ध उसके चरण धोना यह भी भक्ति क्षीण करा देता है। इसका भी अपराध

लागू हो जाता है। जैसा कि गीता कह रही है कि, उसका उद्देश्य मुझे प्राप्त करने का है अतः वह साधु ही मानने योग्य है।

5. मान–प्रतिष्ठा की कामना जैसे कि कोई मुझे भक्त समझे, मेरा आदर करे। ऐसा भाव होने पर हरिनाम में रुचि व ठाकुर के प्रति अकुलाहट नहीं होती। अपने को सबसे छोटा समझे। किसी के दण्डवत् करने पर स्वयं भी करे तो अहंकार नहीं आयेगा।

6. ठाकुरजी की झांकी न कर, दर्शन करे। चरण से लेकर मस्तक तक ध्यानपूर्वक दर्शन करे। मन ही मन अपना रोना रोए की जब से गोद से बिछुड़ा है अब तक गोद नहीं मिल पाई। झाँकी और दर्शन में रात–दिन का अन्तर है।

7. संसारी आसक्ति न रखते हुए अधिक बखेड़ा न फैलावे, घर को मन्दिर समझकर ठाकुर का मुनीम बन कर रहे। लाभ होगा तो ठाकुर का और नुकसान होगा तो ठाकुर का। मुनीम का क्या जायेगा ?

8. अनमने मन से हरिनाम लेना– इससे सुकृति इकठ्ठी होगी और सांसारिक लाभ होगा परन्तु ठाकुर का प्यार नहीं मिलेगा। नौवा अपराध होता रहेगा। एक लाख से कम नाम जपने से ठाकुर से प्यार नहीं होगा, गौरहरि की उक्ति अनुसार।

9. खान–पान, आचार विचार, युक्त शयन का ध्यान रखना। ज्यादा मौन रहना। आवश्यकता पड़े तब भगवद्चर्चा ही करना। संसारी चर्चा से दूर रहना। स्त्री जाति से एकदम दूर रहना। ब्रह्मचर्य पालन परमावश्यक है। मन बिगड़ने पर,

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
राम राघव राम राघव राम राघव त्राहि माम्।।

इसका जोर–जोर से उच्चारण करने से गन्दी वासना की गंध समाप्त हो जाती है।

10. जहाँ तक हो सके क्रोध का दमन करे वरना ठाकुर के प्रति मन का आकर्षण समाप्त हो जाता है।

11. गुरुवर्ग का चिंतन करते हुए जप करे। ठाकुर से ज्यादा भक्त का चिंतन अधिक प्रभावशाली होता है। उनके चरणों में मानसिक रूप से बैठकर हरिनाम करते रहे।

शिवजी उमा को बता रहे हैं–

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती।।
उघरहि विमल विलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुःख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

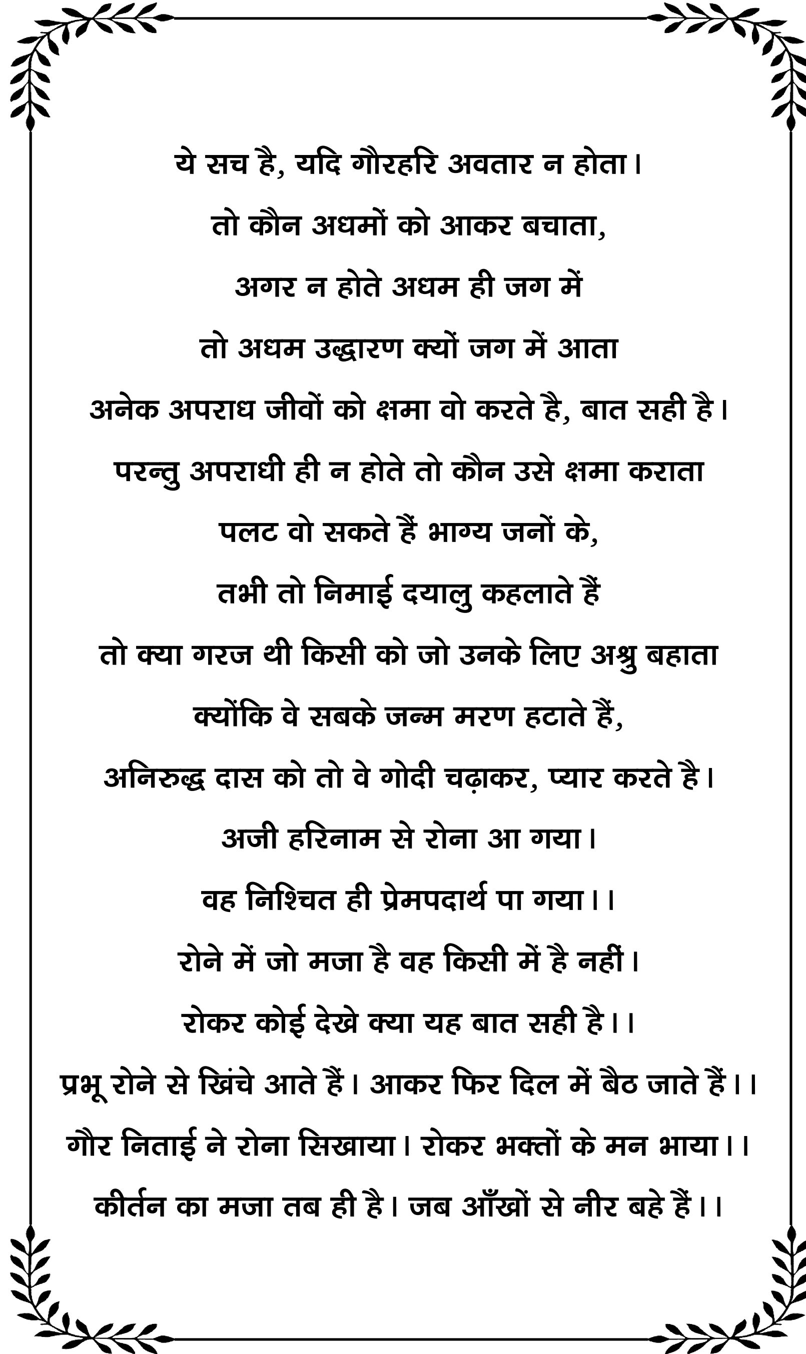
श्रीगुरुदेव के चरण नख का ध्यान त्रिकालदर्शी बना देता है।

(भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा)

ये मे भक्त-जनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्त-तमा मताः।।

जो मेरे प्रत्यक्ष भक्त हैं, वे वास्तव में मेरे भक्त नहीं हैं,
किन्तु जो मेरे भक्तों के भक्त हैं,
वास्तव में वही मेरे भक्त हैं।

(आदिपुराण/चैतन्यचरितामृत, मध्य 11.28)



ये सच है, यदि गौरहरि अवतार न होता।

तो कौन अधमों को आकर बचाता,

अगर न होते अधम ही जग में

तो अधम उद्धारण क्यों जग में आता

अनेक अपराध जीवों को क्षमा वो करते है, बात सही है।

परन्तु अपराधी ही न होते तो कौन उसे क्षमा कराता

पलट वो सकते हैं भाग्य जनों के,

तभी तो निमाई दयालु कहलाते हैं

तो क्या गरज थी किसी को जो उनके लिए अश्रु बहाता

क्योंकि वे सबके जन्म मरण हटाते हैं,

अनिरुद्ध दास को तो वे गोदी चढ़ाकर, प्यार करते है।

अजी हरिनाम से रोना आ गया।

वह निश्चित ही प्रेमपदार्थ पा गया।।

रोने में जो मजा है वह किसी में है नहीं।

रोकर कोई देखे क्या यह बात सही है।।

प्रभू रोने से खिंचे आते हैं। आकर फिर दिल में बैठ जाते हैं।।

गौर निताई ने रोना सिखाया। रोकर भक्तों के मन भाया।।

कीर्तन का मजा तब ही है। जब आँखों से नीर बहे हैं।।

45

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 14/9/2009

मन के खेल तमाशे पर तात्विक विचार विवेचन

सारी भगवद् सृष्टि ही मन पर आधारित है। मन के अभाव में भगवद् सृष्टि का संचालन हो ही नहीं सकता। मन एक वृत्ति विशेष है। या यों कह सकते हैं कि मन एक कारण शरीर है। शरीर तीन प्रकार के हुआ करते हैं। पहला है **स्थूल शरीर**–जो खान–पान का शरीर है। दूसरा हैं, **सूक्ष्म शरीर**– जो मरने के बाद साथ में जाता है, अर्थात् एक प्रकार से इन्द्रियों का शरीर है। तीसरा है **कारण शरीर** अर्थात् स्वभाव का शरीर। या यों कह सकते हैं, कि अनन्तकोटि संस्कारों का शरीर जो मानव को स्वभावानुसार प्रेरित कर के कर्म में ढकेलता रहता है। इन तीनों शरीरों से ही अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में सृष्टि का संचालन होता रहता है।

मन ही इनको संचालन के कर्म में लगाता रहता है। एक प्रकार से भगवान् की वृत्ति विशेष है यह कारण शरीर! अर्थात् स्वभाव, जो संस्कारों का पुंज है यह जुड़ा रहता है तथा कर्म में संलग्न रखता है।

अब बड़े ध्यान से विचार करने का विषय है– गीता में भगवान् अर्जुन को (जो भगवान् का प्यारा भक्त है अर्थात् नर–नारायण से जुड़ा अवतारी पुरुष है उसे) बोल रहे हैं कि, 'हे पार्थ! मैं तुमको मेरा वैभव विशेष खोलकर बता रहा हूँ, ध्यान पूर्वक श्रवण करो।

ग्यारह इन्द्रियों में मन को तुम मुझे (भगवान् को) ही जानो, जो तुमने बेहक से अनाधिकार चेष्टा से अपने कब्जे में कर रखा है, यह उचित नहीं है। यहाँ पर माया का साम्राज्य है अतः माया के चंगुल में आत्मा रूप से मन द्वारा मैं फँस गया हूँ अतः इसी वजह

से तू दुःखी है। बेहक की कोई भी वस्तु किसी को सुखी नहीं कर सकती। अपनी वस्तु ही सुखकारक हुआ करती है, अतः तू इसे मुझको समझकर सम्भाल। अगर तू यह बोले कि, मैं किस उपाय से आपको सम्भालूँ तो यह तुम्हें मैं बाद में बताऊँगा।

अब तू पहले मेरे वैभव विभूतियों को सुन ले। देख, पेड़ों में पीपल मैं ही हूँ। चार पैरों वालों में ऐरावत हाथी मेरे को ही जान, पक्षियों में गरुड़ मैं हूँ, सर्पों में वासुकी नाग मैं हूँ। मनुष्यों में राजा मैं हूँ। जिसमें जितना वैभव दिखाई देता है उसे मेरा ही जान। उसी प्रकार इन्द्रियों में **मन** मैं हूँ।

अष्टसात्विक विकारों का भाव मेरे से ही उदय होता है। क्योंकि मेरे नाम को उच्चारण कर कान द्वारा सुनने से सात्विक भावों का उदय होता है, नाम के रूप में मैं ही प्रकट होता हूँ। संचारी भाव, उद्दीपन भाव आदि मेरे अष्टसात्विक विकारों की देन है, यह जिस भक्तप्रवर में उदय हो जाते हैं इन भावों को वह रोक नहीं सकता क्योंकि इनका सम्बन्ध भगवान् से है। ये विरह के उद्‌गार कलेजे को चीर कर रख देते हैं। कुछ अच्छा नहीं लगता, पागल जैसी वृत्ति उदय हो जाती है। रात–दिन की भूख–प्यास, नींद हराम हो जाती है, केवल अपना निजी जन्म–जन्म का साथी राधा–गोविंद ही सब ओर नजर आने लगता है परन्तु, उनसे लिपटकर रोना ही मन को भाता है।

सारा संसार उनके लिए सूना–सूना ही नजर आता है। पल–पल उसे भारी बनकर युग के समान व्यतीत जान पड़ता है।

क्योंकि भक्त का मन भगवान् के पास चला गया तो मन आनन्द समुद्र में तैरने लग जाता है, इसके पहले मन माया के दुःख सागर में गोते खा रहा था। मन ही संसार में फँसा देता है तथा मन ही अलौकिक देश में पहुँचा देता है, यही तो मन का खेल तमाशा है लेकिन भगवद्‌कृपा के बिना यह मन का खेल–तमाशा दिखाई नहीं देता। यही माया के अज्ञान का विस्तार का राज्य है।

इस मार्ग के सच्चे राहगीर संत की कृपा के बिना आँखों का मोतिया-बिन्दु हटता नहीं है। अतः सच्चा संत, जो अष्टसात्विक विकारों का रोगी है उसी रोग को अपनाना होगा। यह अछूत का रोग है, पास में जाने से ही लग जाता है, तो पास में जाने वाला इसी रोग से ग्रस्त हो जाता है।

सुना है, रोना बंद होना चाहिए। यह कैसे हो सकता है ? यह तो अपनी शक्ति के बाहर है। जिसका एकलौता बेटा शादी-शुदा तथा अपनी संतान को छोड़कर मर जाये, तो क्या उसके माँ-बाप रोने को रोक सकते हैं ? कभी नहीं! कहना और बात है, तथा करना और बात है।

जिसको शरीर में काम वृत्ति का आवेग उदय हो गया, क्या वह उसे रोक सकता है ? जिसे किसी कारण से किसी पर क्रोधवृत्ति उदय हो गयी, तो क्या वह क्रोध को रोक सकता है ? कभी नहीं। जिसको लोभ वृत्ति विशेष मन में छा गयी क्या वह लोभ को छोड़ सकता है ? लोभ के लिए माँ-बाप की भी अवज्ञा कर सकता है।

जिसको मोह ने घेर रखा है, क्या कोई उसे मोह से छुड़ा सकता है ? इनसे भी ऊपर अहंकार का राज्य है, यह सब पर हावी होकर रहता है। इस वृत्ति से वह बुरे से बुरा कर्म कर सकता है, अहंकार का बाप **मैं-मेरा** है- इसी ने सब को अपने जाल में फँसा रखा है।

अतः सारे लेख का आशय यही है कि, सच्चा भक्त जो भगवान् का सच्चा ग्राहक है वह विरह वृत्ति को कैसे दूर कर सकता है ? वह तो भगवान् के लिए छटपटाता ही रहेगा। चाहे उसे कोई कुछ भी कहे। वह इस रोने के भाव को कम या दूर नहीं कर सकता। क्योंकि यह हृदयाकाश की लहरें विशेष हैं जो उत्तरोत्तर बहती रहती हैं। इनका वेग नियंत्रित करना सामर्थ्य के बाहर है।

प्रेमास्पद भक्तप्रवर! अब ध्यान देकर सुनो कि, यह विरह की लहरें कैसे प्रकट होकर बह सकती हैं ? तो केवल हरिनाम को कान से सुनकर ही यह संभव है।

हरिनाम सुनने से हृदयाकाश में अमृत बरसेगा तो संसारी आसक्ति रूपी जहर को ढककर अपना अमृत सिंधु का ज्वार भाटा प्रकट कर देगा। इस सिंधु से ही भगवान् को प्रकट करा देगा। जब भगवान् प्रकट हो जायेंगे तो जहर के पानी का अंश या तो जल जायेगा या सूख जायेगा। अर्थात् संसार की माया का राज्य, जो दुःख का भंडार है वह हमेशा के लिए समाप्त हो जायेगा।

यह सभी मन का खेल–तमाशा है। इस तमाशे को गौर से देखने पर अज्ञान जाता रहेगा एवं ज्ञानरूपी दीपक की रोशनी दशों दिशाओं में फैलती रहेगी। साधक का प्रत्येक क्षण सुख का विस्तार कर देगा।

मेरे प्रेमास्पद भक्त प्रवर! सारे लेख का सार ध्यान देकर सुनो, माया तथा भगवान् के सम्बन्ध से जो भी खेल–तमाशा हो रहा है, इनके ऊपर है मन के राज्य का वैभव। मन यदि साधक के वश में हो जाये तो यह खेल–तमाशा का रहस्य समझ में आ जाये।

मन को वश में करेगा, भगवान् का नाम! जो भी साधक जो भगवान् का राहगीर है अगर वह कम से कम एक लाख अर्थात् 64 माला नित्य कान से सुनकर करेगा तो उसका मन स्वयं ही वश में हो जायेगा। संसारी आसक्ति ही मन को वश में होने नहीं देती।

हरिनाम सुनते रहने से मन का मैल, जो अनन्त कोटि जन्मों से चढ़ा हुआ है वह स्वच्छ होकर अन्दर से भगवद्दर्शन होने लग जायेगा। तब मन भगवद्दर्शन का आनन्द लेने लगेगा, तो स्वतः ही संसारी आसक्ति रूपी मैल हटने लगेगा। कितना सरल और सुगम उपाय है। अतः इस रविवार के आयोजन में 80% उपस्थिति देते रहो क्योंकि यह आयोजन भगवद् आकाश वाणी से खोला गया है। भगवान् इस आयोजन में आने वालों को सद्गुणों से भरकर दुर्गुणों को जलाकर अपने चरणों मे बुला लेंगे।

श्री शिवशंकर का यह उद्घोष है–

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव वारिधि गोपद इव तरहीं।।

अर्थात्, प्रेमसहित भगवद् नाम को कान से सुनकर जो नित्य अपनायेगा उसका जीवन आनन्दपूर्वक गुजर जायेगा जिस प्रकार गाय के पाँव के खुर को लांघ जाये। तो गाय के खुर को लांघना कौन–सी मुश्किल की बात है? छोटा बच्चा भी लांघ सकता है। उसी प्रकार यह अथाह भवसागर गाय के पाँव के खुर के अंदर जितना पानी होता है, उसके समान छोटा बन जाता है, जिसे हम बड़ी आसानी से लाँघ सकते हैं। जो इस आयोजन में बताये गए गुरु वचनों को ध्यान पूर्वक अपनायेगा वह इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति कर सकेगा एवं पूरा जीवन बिना किसी बाधा के गुजारेगा। क्योंकि उसके रक्षक गुरु तथा भगवान् रहेंगे। ऐसे भक्त का पालन करना तथा उसके पास जो भी कमी हो वह पूरी करना भगवान् की जिम्मेदारी होगी। फिर चिंता किस बात की?

भक्तप्रवर, ध्यान देकर सुनो! श्रीगुरुदेव जी बोल रहे हैं–

जिस साधक को शीघ्र नाम भगवान् में रुचि उदय करनी हो तथा अष्टसात्विक विकारों में Overlap होना हो तो जिनसे अनन्त ज्योति बिखर रही है उन श्रीगौरहरि के चरणकमलों मे बैठकर वह साधक भगवद्नाम का जप किया करे, तो एक तो अपराधों का मार्जन होगा, दूसरा नाम में रुचि प्रकट हो जायेगी क्योंकि, कृष्ण तो अपराधों को देखते हैं तो सजा भी दे देते हैं परन्तु गौरहरि में तो परम दयालु श्रीराधा है जिसका दर्जा माँ का है वह राधा तो वात्सल्य रस भाव की प्रत्यक्ष मूर्ति है, वह अपराध को देखती ही नहीं है, अतः श्रीगौरहरि के चरण दर्शन करते हुए जो नाम जपता है वह बहुत जल्दी ही पंचम पुरुषार्थ प्रेमावस्था की पदवी पर पहुँच जाता है। कितना सरल सुगम साधन श्रीगुरुदेव जी सब पर कृपा वर्षण करके बता रहे हैं। **अतः ठाकुरजी भी हैरान होकर कह रहे हैं कि–**

“माधव (श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी) ने तो सभी युक्तियाँ बता–बताकर मेरे को साधकों से बँधवा दिया।

ऐसे तो मेरे भक्तों की भरमार होती रहेगी, कुछ तो संयम रखना चाहिए। मेरे प्रेमास्पद माधव की कृपा को मैं कैसे निरस्त कर सकता हूँ। मेरे बाँध को तोड़ दिया और सारा पानी बह गया। माधव ने कुछ भी छुपाकर नहीं रखा। ऐसा बिना विधान का आयोजन तो कभी भूतकाल में हुआ ही नहीं था, अब इस द्रुतगामी आयोजन को मुझे सफल करना ही पड़ता है। इस आयोजन में आने वालों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। अन्त समय में उन्हें सम्भालने की मेरी परम जिम्मेदारी हो गयी। मुझे मजबूर कर दिया। माधव ऐसा मत करो।"

मुझे प्रत्यक्ष में बोला गया है कि, आपका रोना उचित नहीं है। तथा प्रेरणात्मक हृदय आकाशवाणी से भी मालूम हुआ है कि कुछ भक्तप्रवर तथा साधारण भक्तगण इस रोने को औपचारिक समझ रहे हैं।

अतः आप सभी के चरणों में मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि, जो यह रविवार का आयोजन श्रीगुरुदेव जी ने आरम्भ किया है तथा ठाकुर जी ने श्रीगुरुदेव को आदेश देकर करवाया है तथा आप भक्तप्रवरों की सेवा मुझ पर कृपा करके सोंपी गई है इसलिए मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ तथा जब से आयोजन आरम्भ हुआ है तब से मेरा सारगर्भित भजन उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

मैं इस विरह उद्‌गार के रोने को बंद करने में असमर्थ हूँ। जब भी हरिनाम मेरी जिह्वा पर नाचता है तो अंदर से अन्तःकरण में रोने की लहरें आरम्भ हो जाती हैं। कलेजा फटने लग जाता है। इन भावों को मैं जिह्वा से बता नहीं सकता। इसके लिए अन्तःकरण की जिह्वा होना जरूरी है। शिशु का रोना ही सम्बल (सहारा) है, रोना सबको खींच लेता है।

मैं सभी सज्जन वर्ग को चेतावनी दे रहा हूँ कि इस प्रचण्ड धधकती हुई आग में पैर न रखें, नहीं तो जलकर राख हो जाओगे।

जो सलाहकार होगा वह भी इससे बचेगा नहीं। जो मन ही मन गलत चिंतन भी करेगा वह भी दग्ध होगा।

मैं इस आदेश से अधिक से अधिक सबका मंगल करने आया हूँ या नाश करने आया हूँ? ये विरह उद्गार में रोना बंद करना मेरी असमर्थता के बाहर है। मैं इसे रोकने में असमर्थ हूँ। यह तब ही रुक सकता है, जब इस रविवार के आयोजन को जो श्रीगुरुदेव जी ने चलाया है उसे बंद कर दिया जाये। मेरा रोना तो कभी बंद होगा नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण ने मुझ पर जादू की दृष्टि फेर दी है। श्रीगुरुदेव का आदेश पालन ही मेरा ध्येय है।

अतः सबसे मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि, सावधान होने में ही कल्याण है। मैं स्वप्न में भी किसी का बुरा नहीं करना चाहता लेकिन भगवान् के रोष को रोकना मेरे बस की बात नहीं है अतः सावधान होने में ही भलाई है।

इसका प्रत्यक्ष में तथा अप्रत्यक्ष में भी षडयंत्र हो रहा है लेकिन मैं इसकी 1% भी परवाह नहीं करता क्योंकि श्रीगुरुदेव जी के साथ में ठाकुर जी का मेरे सिर पर हाथ है।

सभी ध्यानपूर्वक सुनें कि शिवजी पार्वती को क्या बोल रहे हैं कि भक्त का अपराध कितना खतरनाक है। यह श्रीगुरुदेव का प्रत्यक्ष अपराध हो रहा है।

इन्द्र कुलिश मम शूल विशाला। कालदंड हरिचक्र कराला।।
इनसे जो मारा नहि मरहि। भक्त द्रोह पावक सम जलहि।।
जो भक्त से ईर्शा करहिं। रामरोष पावक सो जरहिं।।

ये पावक अर्थात् अग्नि कैसी प्रचण्ड होती है जिससे लोहा पानी बनकर बह जाता है। वह अपराधी जल्दी मरता नहीं है, पूरी जिंदगी तड़पता ही रहेगा भगवान् के रोष में। इन प्रचण्ड हथियारों से जो मरता नहीं है, भक्त अपराध उसे छोड़ता नहीं है! पिछले कई उदाहरण हैं, याद करो।

कोई सज्जन बोल रहा था कि, अनिरुद्ध का यह कहना गलत है कि हरिनाम से तेरा अमुक काम बन जायेगा, तू हरिनाम कर। यह गलत है ही नहीं, शास्त्र का वचन है कि जो हरिनाम की शरणागति कर लेगा उसे इसी जन्म में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि 100% होगी। इतनी मूल्यवानों की उपलब्धि हो सकती है तो क्या तुच्छ इच्छाएँ पूरी नहीं होंगी ? कितने आश्चर्य की बात है ? हरिनाम से क्या असम्भव है ?

शास्त्र के वचन हैं, कि अमुक यज्ञ करें तो स्वर्ग का वास होगा। बच्चा जब पाठशाला नहीं जाता तो उसे मिठाई का, पैसे का लोभ दिया जाता है तो थोड़े दिन के बाद उसका स्वतः ही पाठशाला जाने का मन हो जाता है। इसी प्रकार पहले स्वर्ग का लोभ देकर ही भगवान् की तरफ मन को खींचा जाता है यह भागवत पुराण कह रहा है।

इसी प्रकार हरिनाम में मन लगाने हेतु साधक को लोभ दिया जाता है लेकिन ऐसा न समझे कि हरिनाम से काम सिद्ध नहीं होगा। हरिनाम स्वयं भगवान् है, इसलिए श्रद्धा होगी तो हरिनाम इच्छानुसार काम पूरा कर देगा। मानव को कैसे पहचाना जाये कि यह स्वर्ग से आया है या नरक से आया है ?

जो मानव स्वर्ग से आता है, उसका स्वभाव होता है, दान देना, दूसरों का हित करना, मीठा बोलना, संत की सेवा करना, उनको संतुष्ट रखना, सत्य भाषण करना, दयालु, शुद्ध आचार–विचार, भगवद्भक्ति में रत रहना।

जो नरक से आता है उसका स्वभाव होता है, दूसरों के दुःख में सुख मानना, ईर्ष्या–द्वेष करना, झूठ बोलना, सदैव क्रोधवृत्ति करना, सदैव कटु बोलना। साधु को कैसे पहचाने – साधु के पास जाने से मन में शान्ति की स्फूर्ति होना। उनके चरणों में बैठे रहने की इच्छा रहना। संसार को भूल जाना। भगवद्वृत्ति में आसक्त हो जाना। साधु के मुख से भगवद्चर्चा ही निकलना। प्रेम का अंकुर प्रकट होना। कपटी साधु के लक्षण इसके विपरीत हैं।

कपटी साधु आपकी श्रद्धा जमाने हेतु उसके पास जाते ही भगवद् चर्चा करने लगेगा लेकिन इस चर्चा मे वहाँ बैठने वाले का मन नहीं लगेगा। वहाँ से उठने का मन करेगा। क्योंकि मन तो स्वयं इन्द्रियों के बीच में भगवान् का ही है। जब साधक बुरे काम में हाथ रखेगा तो मन मना करता ही है परन्तु मन की कोई मानता ही नहीं है क्योंकि मन को तो माया के पिंजरे में बंद कर रखा है। बुद्धि विचार कर निर्णय देती है, परन्तु मन की चलती नहीं है, बुरा काम कर बैठता है फिर मन पछताता है कि तेरी चलने नहीं दी अतः अन्त में पछताना ही पड़ता है।

कहने का मतलब यही है कि मन को भगवान् को देना है अर्थात् हरिनाम को कान से सुनना ही मन भगवान् को देना होता है।

मैंने बारबार आयोजन में बोला है कि बिल्कुल रात में सोते समय पहले यह बोलना है कि हे भगवान्, अन्त समय में जब मैं मरने लगू तो आप अपना नाम मेरे साथ भेज देना, कहीं भूल न जाना।

यह कहने से भगवान् भी घबरा गये कि–मेरे प्रेमास्पद ने मुझे बाँधने की यह बड़ी युक्ति बता दी। अब मैं इस युक्ति को निरस्त नहीं कर सकूँगा, मुझे साधक को साथ में गोलोक धाम ले जाना ही पड़ेगा। इसको नाम में रुचि देनी ही पड़ेगी। तब ही अन्त समय में मेरा नाम इसके हृदय में गूँजेगा तो स्वतः ही मुक्त हो जायेगा।?

अब मैं मेरे गुरुदेव के वक्तव्य को विश्राम देता हूँ तथा सब भक्तों को दण्डवत् प्रणाम करता हुआ आशीर्वाद की भिक्षा माँगता हूँ कि मेरे भजन की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहे।

नोट– निन्दा को सबसे ज्यादा बुरा क्यों बताया गया है, इसलिए कि जिसकी निन्दा हो रही है उसका दुर्गुण निन्दा करने वाले पर छा जाता है तथा भक्त की निन्दा हो तो भगवान् के रोश में दुख पाता है। कबीर जी बोल रहे हैं,

निन्दक नियरे राखिए आंगन कुटि छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय।।

अगर कोई निन्दा करता है तो सुखी होना चाहिए कि दुर्गुणों की सफाई हो रही है।

दीपक के नीचे अन्धेरा रहता ही है लेकिन वह चारों ओर रोशनी फैलाता है। कृष्ण के सामने रहने पर भी कौरव उन्हें नहीं पहचान सके। यशोदा के सामने कृष्ण ने क्या ऐश्वर्य लीला नहीं की ? परन्तु यशोदा की प्रेमाभक्ति से ऐश्वर्य लीला दब गई और वह उन्हें अपना बेटा ही जान पाई।

श्रीचैतन्य महाप्रभु को ही साधकगण नहीं समझ सके अतः अपराध होने की वजह से महाप्रभु जी ने संन्यास लेना उचित समझा ताकि साधकगण अपराध से बच सकें। महाप्रभु ने सोचा कि, मैं इनका उद्धार करने आया हूँ, लेकिन यह तो उल्टा ही हो रहा है अतः संन्यासी बनना श्रेयस्कर होगा। तब साधकगण उन्हें समझ सके।

ध्यान देकर सुनें, यदि उपस्थ वेग को मारना है तो जिह्वा वेग को अर्थात् खान–पान पर नियंत्रण करो। उपस्थ वेग भगवद्प्रेम भाव को दबा देता है। फिर दुबारा उदय होने में देर हो जाती है। रसेन्द्रिय का उपस्थ इन्द्रिय के साथ सीधा सम्बन्ध रहता है। अतः रुखा–सूखा खाना चाहिए। यदि खान पान पर नियंत्रण नहीं होता है तो एक सरल सुगम उपाय है कि मन ही मन हरिनाम करते हुए प्रसाद पाओ तो भी उपस्थ वेग पर नियंत्रण हो जायेगा। सात्विकता हृदय में आ जायेगी। बुरा विचार नहीं आयेगा।

मेरे गुरुदेव ने बोला है कि, तुम अपने आप को छुपाकर मत रखो क्योंकि तुम एक साधारण गृहस्थी हो। यदि तुम संन्यासी होते तो सब तुम पर श्रद्धा करते। फिर मैंने प्रार्थना की कि, श्रीगुरुदेव मुझे अहंकार आ जायेगा क्योंकि सब मेरी सेवा करेंगे तथा सिर झुकायेंगे। श्रीगुरुदेव ने बोला कि, इसकी जिम्मेदारी मेरी है, तुम्हें अहंकार छुएगा ही नहीं। मैं जैसा बोलूँ वैसा करते रहो।

46

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

छींड की ढाणी
दिनांक 23/9/2009

किसान के खाद्य बीज का हरिनाम बीज से तुलनात्मक विवेचन

भगवद् नाम में मन क्यों नहीं लगता इसका उत्तर किसान के उदाहरण से भक्त प्रवरों को बहुत अच्छी तरह से समझ में आ जायेगा कि नाम स्मरण करने में कोई न कोई कमी हो रही है, गुरुदेव इसको खुलासा रूप में समझाने का प्रयास कर रहे हैं, ध्यान देकर श्रवण करें।

दसों इन्द्रियों में कान का महत्त्व सबसे अधिक है। मन तो भगवान् है ही। किसान अपनी फसल उपलब्ध करने हेतु अपने खेत पर जाता है। वह साथ में दो बैल, एक हल, बीज, गेहूँ, जौ, चना, सरसों, तिल, मूँग, मोठ तथा बाजरा इनमें से कोई भी बीज अपने खेत में बोने हेतु तैयार होकर जाता है।

हल के पीछे एक पाईप बांधकर रखता है जिसे ओरा बोला जाता है, यह ऊपर से कीप की तरह चौड़ा होता है। जिससे बीज पाईप के बाहर न गिर सके। हल के नीचे लोहे की कुश रहती है जो जमीन को चीरती रहती है। उससे एक खाई बनती रहती है, खाई को उमरा बोला जाता है। यह लगभग नौ इंच गहरी होती है। हल के आगे एक लम्बा हल जिससे दो बैल हल को खींचने हेतु बाँध दिये जाते हैं। ये हल को आगे की ओर खींचते रहते हैं।

किसान अपनी झोली में जो उसके गले में लटकती रहती है उसमें बीज को भरे रखता है, उसमें से मुठ्ठी भरकर थोड़ा-थोड़ा पाईप में डालता रहता है जो उमरे में अर्थात् खाई में गिरता रहता है। बैलों के चलने से उस खाई के दोनों किनारों के हिलने से मिट्टी उस बीज को ढकती रहती है। किसान उस खेत में पहले से ही पानी

देकर उसे उपजाऊ बनाता है। खेत को जोतकर उसको बीज डालने योग्य कर देता है।

कभी–कभी बैलों के इधर–उधर होने से वह बीज खाई के दोनों किनारों पर गिर जाता है। उस बीज पर मिट्टी नहीं पड़ने से और पानी की सीलन न मिलने से बीज उगता नहीं है। इसके पहले ही पक्षी उसे चुग जाते हैं या चींटियाँ उसे खा जाती हैं।

जो बीज खाई में गिरता जा रहा है, वह छः दिन से 15 दिन के अन्दर अंकुरित हो जाता है। उसे देखकर किसान फूला नहीं समाता, मन में खुशी मनाता है। यह है किसान के बीज के फल की उपलब्धि।

इसी प्रकार श्रीगुरुदेव हरिनाम रूपी बीज कान रूपी पाईप में अपने मुखारविंद रूपी मुठ्ठी से धीरे से उच्चारण कर के शिष्य को सुनाते हैं तो वह हृदयरूपी जमीन में जा गिरता है।

जब हृदयरूपी जमीन में हरिनाम बीज पहुँच गया तो वहाँ कुछ दिनों के बाद अंकुरित हो जायेगा। लेकिन शिष्य उस कान रूपी पाईप के द्वारा बीज को श्रवण रूपी जल उसमें डालता रहे। अर्थात् हरिनाम को उच्चारण करते हुए कान रूपी पाईप में श्रवण करता रहे।

यह श्रवण ही बीज को पानी देना होता है। श्रवण करते करते हरिनाम बीज अंकुरित हो जायेगा। उस बीज से राधाकृष्ण रूपी पौधा तैयार होकर शिष्य को दिखाई देगा। जिस प्रकार किसान को गेहूँ या बाजरे का पौधा दिखाई देता है। जिसे देखकर वह आनन्द में भर जाता है। इसी प्रकार शिष्य को जब राधा–कृष्ण हृदय में दिखाई देने लगते हैं तो शिष्य का मन वहीं पर लगने लग जाता है क्योंकि वह पौधा इतना मनमोहक है कि शिष्य का मन वहीं जमने लग जाता है।

इसके पहले मन संसारी पदार्थों में रमा था जो इस पौधे से निम्नकोटि के थे। अब उच्चकोटि का पौधा उपलब्ध हो गया तो

निम्नकोटि के पौधे से मन हटता गया। अर्थात् संसारी चर-अचर आसक्ति से मन हट गया अर्थात् वैराग्य का रूप उपलब्ध हो गया। अर्थात् अनन्त जन्मों से जो माया का परदा पड़ा हुआ था, वह पर्दा हट गया। **चेतो दर्पण मार्जनम्** हो गया (चित्तरूपी आईना स्वच्छ हो गया)। अज्ञान का अन्धेरा जाता रहा एवं ज्ञान का दीपक जल गया। जब ज्ञान का दीपक जल गया तो तमाम संशयों का तथा अन्धेरे का नाश हमेशा के लिए हो गया। अन्धेरा समाप्त हो गया।

जन्म मृत्यु के दारुण दुःख से छुटकारा मिल गया। पूरे लेख का निचोड़ यही है कि हरिनाम को कान से सुनना परमावश्यक है, नहीं तो सुकृति के सिवाय और कुछ प्राप्त नहीं होगा।

कान की आवाज भीतर के आत्मा रूपी भगवान् को जगा देगी। जब आत्मा जग जायेगी तो भगवान् की निगाह बोलने वाले की तरफ स्वतः ही चली जायेगी। जब भगवान् की निगाह जीव पर जायेगी तो मंगल विधान होने में क्या देर या कसर रहेगी ?

मंगल विधान का आशय यही है कि अष्टसात्विक विकार उदय होने लगेंगे। तो अश्रु पुलक शरीर से प्रकट हो जायेंगे। भगवान् बोलते हैं कि जो मेरे लिए रोता है, मैं उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ। अश्रुपुलक साधक के शरीर पर होने लग जाते हैं तो भगवान् के हृदय में खलबली मच जाती है तब भगवान् उसे बुद्धि योग देने लगते हैं तो हृदय में शास्त्र तथा भगवान् की गुप्त लीलाएँ प्रकट होने लग जाती हैं।

कान के द्वारा हरिनाम श्रवण किये बिना सारी जिन्दगी व्यर्थ में जाती रहती है क्योंकि नाम ध्वनि बाहर चली जाती है, कान के बाहर नाम ध्वनि जाना ही किसान द्वारा खाई के बाहर बीज पड़ने जैसा हो जाता है। वह खाई के दोनों ओर किनारों पर बीज पड़ने जैसा हो जाता है तो फिर बीज अंकुरित नहीं होता, उसे पक्षी चुग जाते हैं। इसी प्रकार कान के बाहर (किनारों पर) हरिनाम बीज पड़ने से सुकृति अर्थात् भाग्य तो बन जायेगा परन्तु, नाम बीज अंकुरित नहीं होने से राधा-कृष्ण रूपी पौधा उग नहीं सकेगा।

किसान के बीज का तथा श्रीगुरुदेव के हरिनाम बीज का तालमेल 100% सही उतरता है। यदि साधक ध्यानपूर्वक इसको सुनकर बुद्धि से विचार करे तो उसको भगवद्प्रेम प्राप्ति का संयोग अवश्यमेव मिल जायेगा। संसारी आसक्ति बिल्कुल समाप्त हो जायेगी व भगवद्चरणों में मन लग जायेगा।

एक दिन मैंने मेरे ठाकुरजी से पूछा कि, 'पिताजी! समुद्र का तथा आसमान का रंग नीला क्यों है तथा पृथ्वी सब जगह हरी हरी पेड़ पौधों से क्यों है ?' तो ठाकुर जी ने जवाब दिया, 'बेटा तुम नहीं जानते,यह सब मेरा ही वैभव है लेकिन माया के नेत्रों से यह देखा जाना असम्भव है। जिसके पास मेरी कृपा से दिव्य नेत्र हैं वह मेरा वैभव, जो अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में फैला पड़ा है उसे देखने में सक्षम है। मेरा निवास क्षीरसागर है।' मैंने बोला, मुझे अच्छी तरह से समझाओ कि ऐसा क्यों है ? तब भगवान् बोले– 'बेटा मैं नील माधव हूँ अर्थात् मेरे शरीर का रंग नीलापन लिए हुए है अतः समुद्र में मेरी ही परछाईं की आभा दिखाई देती है यह परछाईं इतनी गहरी है कि आसमान में ऊपर जाकर आकाश को नीला बना देती है। जैसे सूर्य की किरण पानी में पड़कर छत पर उसकी परछाईं (Reflaction) कर देती है।' मैंने पूछा कि, 'पिताजी यह धरती हरी ही हरी क्यों रहती है ?' तब भगवान् बोले, बेटा मैं पीताम्बर पहनता हूँ तथा मेरी आराध्य देव राधा नीलाम्बर धारण करती है तथा मेरे शरीर का रंग नीलमणि जैसा है अतः मैं नीलमाधव के नाम से जाना जाता हूँ तथा राधा के शरीर का रंग निखरे हुए सोने के जैसा है। अतः नील और पीत रंग मिलकर जब ज्योति ऊपर बिखरती है तो हरी हो जाती है। यह हरी ज्योति धरती पर फैली रहती है। अतः घास व पेड़ पौधों का रंग हरा रहता है इसलिए धरती पेड़ पौधों के रूप में हरी–हरी नजर आती है। सभी ठौर पर मैं ही मैं हूँ परन्तु मायिक नेत्रों से वास्तविकता दिखाई नहीं देती वह उन्हीं को दिखाई देती है, जो मेरे ही प्रेम मे रत रहते हैं। यह बेटा तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया अब और क्या पूछना चाहते हो ?'

मैंने बोला, 'यह माया का बखेड़ा आपने क्यों बिखेरा ? इससे तो सभी दुःखी है।' भगवान् ने कहा–'बेटा सभी दुःखी तो अपने कर्मों से हैं। कोई किसी को दुःख नहीं दे सकता। माया का वैभव तो मुझे भी अपनाना पड़ता है। तब ही मेरी लीलाओं का विस्तार होता है। सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से सभी जीव बंधे रहते हैं। इन्हीं से मेरी सृष्टि का विस्तार होता रहता है। जिससे मैं प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

मेरा प्रेमी माया के बंधन से बाहर रहता है। माया उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकती, उल्टा सहायक बनकर उसकी सेवा करती रहती है। जो मुझे भूलकर संसारी आसक्ति में फँसा है, उसी को माया दुःख देती है, क्योंकि माया मेरी ही शक्ति विशेष है।

इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ, जो माया से छुड़ा सकता है तथा माया के चंगुल में फँसा सकता है। यह मन का ही खेल तमाशा मेरी जीव सृष्टि में फैला हुआ है। यह मन यदि मेरे प्यारे संतों में चला जाये तो माया ही इस मन को मेरे चरणों में पहुँचा देती है। लेकिन जो जीव संत-चरणों में नहीं जाता वही माया के चक्कर में फँस जाता है तथा चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। जहाँ दुःख का समुद्र लहराता है। परन्तु जीव इसी को सुख समझकर अपना जीवन बिताता रहता है। कैसा आश्चर्य व विडम्बना का खेल है। अगर माया न हो तो मेरी सृष्टि का विस्तार ही नहीं हो सकता।'

ठाकुर जी आगे बोल रहे हैं कि, 'बेटा! मेरी लीलाओं का रहस्य कोई नहीं समझ सकता। शिव, ब्रह्मा भी मेरी लीलाओं का रहस्य समझ नहीं सकते तो अन्यों की तो बात ही क्या है!' मैंने पूछा, 'पिताजी! फिर कोई तो समझता होगा!'

ठाकुर जी ने कहाँ, 'हाँ जरूर समझता है। मेरे आराध्यदेव मेरे प्रेमी भक्तजन। अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्डों में मेरे प्रेमी भक्तजन के अलावा कोई भी मेरे लिए पूज्य नहीं है।

भक्तों से ही मेरी सृष्टि है। भक्त ही पृथ्वी की सम्पदा हैं। सब जगह मेरी मर्जी चलती है परन्तु भक्त पर मेरी मर्जी नहीं चल

सकती। भक्त जैसा बोलता है, मुझे जबरन वही करना पड़ता है क्योंकि भक्त मेरे पूज्य हैं। भक्तों से जो बैर करता है वह मेरा खास बैरी है। वह कभी खुश नहीं रह सकता, जब तक वह मेरे भक्त को खुश न कर दे। जब भक्त खुश हो जायेगा, तो मैं भी खुश हो जाऊँगा क्योंकि भक्त की खुशी में ही मेरी खुशी है। जो मेरे सुदर्शन चक्र से नहीं मरता वह भक्त द्रोह से जलकर राख हो जाता है। वह उसी समय नहीं मरता, दुःख सागर में डूबता उतरता रहता है। तुम मेरे शिशु हो, शिशु माँ–बाप की शरण में रहता है। तो माँ–बाप उसकी हर तरह से देखभाल करते हैं। उसको सहारा है तो रोने का ही है। शिशु रोकर व हँसकर ही माँ–बाप को खुश करता रहता है। उसकी तोतली बोली तो माँ–बाप को रिझाती रहती है। शिशु की हरकत ही मेरी सेवा करना है।'

मेरे गुरुदेव बार–बार बोलते हैं कि सबको बोलो कि जैसा मैं कहूँ वैसा नित्य करते रहें। जब एकदम रात में सोने का विचार हो तो बोलो कि 'हे मेरे प्राणनाथ! जब मैं मरने लगूँ एवं मेरी अन्तिम साँस तन से निकले तो उस साँस के साथ, हे प्राणनाथ! आपका नाम संग में जाये।' ऐसा जो रोज बोलेगा उसका दुबारा जन्म नहीं होगा। वह गोलोक धाम में गमन कर जायेगा।

अब यह प्रश्न उठ सकता है कि अनिरुद्ध दास का तो सम्बन्ध ज्ञान एक डेढ़ साल के शिशु की उम्र का है वह भगवान् के साथ जो इसका दादा है उनसे कैसी बड़ी आयु जैसी बातें कर सकता है ? तो इसका उत्तर यह है कि, सम्बन्ध ज्ञान चिन्मय होता है। जिस प्रकार रामायण में मारीच नाम का राक्षस हिरण का रूप धारण कर सकता है, तो भगवान् का भक्त बड़ी आयु का क्यों नहीं हो सकता ? 16 साल की आयु धारण कर बात क्यों नहीं कर सकता ? अतः भगवान् बता रहे हैं कि 'सम्बन्ध ज्ञान उसी भक्त को उपलब्ध होता है जो मायिक सम्बन्ध तोड़ देते हैं तथा मेरे में तीव्रता से अपना मन फँसा लेते हैं। यह वही फँसा सकता है जिसको संसार की फँसावट

से पूर्ण वैराग्य हो। तब ही तो मैंने अर्जुन को बोला है कि हे अर्जुन! इस काम वैरी को मार। कामनाओं का दमन कर।'

ऐसा भक्त भगवान् के लिए रोता रहता है। इसको रात-दिन चैन नहीं पड़ता। न भूख की परवाह, न नींद की परवाह। क्षण-क्षण में उद्दीपन भाव जागृत रहता है। और यह न किसी को बता सकता है अतः मन ही मन व्याकुल होकर रोता रहता है। तब भगवान् ऐसी अवस्था वाले भक्त को अपना सम्बन्ध करवा देते हैं कि तू मेरा सखा है, तू मेरा पुत्र है, तू मेरी मंजरी है आदि-आदि।

भगवान् हैरानी से बोल रहे हैं कि, 'यह रहस्यमयी हृदय की चर्चा को बताकर ने मुझे बांध दिया मुझे मजबूर कर दिया। अब तो मुझे मेरे नाम में रुचि उदय करवाकर देनी पड़ेगी। तब ही अन्त समय में मेरा नाम स्वतः ही मुखारविंद से निकलेगा। नाम ही मेरे प्रेमी को संग में ले जायेगा और माया डरकर दूर खड़ी रहकर देखती रहेगी...



47

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 11/3/2007

भगवद्प्रेम प्रकट होनें का सरलतम योग

सहारा लो हरिनाम का अमृत समझकर।
पीलो कान से मन को प्यारे सटाकर।।
आठों याम हरिनाम को जपा कर।
आनन्दमय गुजरेगा जीवन सजाकर।।
इसी जप से कभी संकट न आता।
पापों की वृत्ति जड़ से उखड़ जाता।।
इसी जप से विरह आनन्द होगा।
इसी जप से संसार असार होगा।।
यही जप माता-पिता व भाई।
क्यों न पुत्र बनकर करलो कमाई।।
अनिरुद्ध शिशु का रिश्ता बनाकर।
पाप अपराध न होगा कर अघाकर।।

श्रीगुरुदेव ही भगवान् से सम्बन्ध जोड़ते हैं। चाहे माँ-बाप का दोस्त का, दास का, भाई का, पुत्र का आदि-आदि। जब तक भगवान् से नाता नहीं जुड़ेगा तब तक भक्ति का लेशमात्र भी प्राकट्य नहीं होगा। यह होगा, केवलमात्र हरिनाम को प्यार से जपने से ही!

10 नामापराध तथा मान प्रतिष्ठा की अन्तःकरण में गंध भी न रहना परमावश्यक है। क्योंकि यही भगवद्प्रेम में मुख्य रुकावट है। अन्य दुर्गुण तो गौण रूप में रहकर विलीन हो जाते हैं। अब प्रश्न उठता है, मान-प्रतिष्ठा कैसे विलीन हो? यह बहुत बड़ी कठिनता है। यह तब ही नष्ट हो सकेगी जब स्वयं में अवगुण देखते रहे कि मुझसे सब अच्छे हैं और मुझमें तो दुर्गुण कूट-कूटकर भरे पड़े हैं, तब अन्तःकरण में हीन वृत्ति रहेगी, तब अहंकार नहीं होगा।

जब अहंकार मन में आ जाता है तो भगवद् शरणागति जड़ से ही चली जाती है।

सभी कहते हैं कि, अपने भजन को गुप्त रखना चाहिए। बिल्कुल ठीक कहते हैं। जानकारी होने से सभी इज्जत करने लग जाते हैं तो घमण्ड का अंकुर निकल कर अहंकार का फल प्रकट हो जाता है तो ठाकुर की कृपा से वंचित हो जाने से भजन स्तर गिरने लग जाता है। जिसका उद्देश्य दूसरों का हित करने का हो, उसे उक्त दुर्गुण नहीं आ सकेगा। शिवजी ने पार्वती को बोला है–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।

जो अपना भजन अन्यों को बताता रहेगा तो उसके देखा देखी साधक भी भजन करने लगेगा। स्वयं को पश्चाताप भी होगा कि अमुक भक्त इतना भजन करता है, और मैं तो कुछ भी नहीं कर रहा हूँ। मुझे भी करना चाहिए। देख सुनकर भजन में उत्साह भी होगा। यदि अन्यों को बताने में भजन स्तर घटने लगे तो फिर गुप्त रखने में ही लाभ है। मैं तो जितना अन्यों को बताता हूँ, तो मेरा भजन स्तर अधिक बढ़ने लगता है।

श्रीगौरहरि ने अपना भजन सभी के सामने प्रकट किया है, इसलिए कि सभी उनकी तरह भजन करने लगें। रामानुजाचार्य ने श्रीगुरुदेव की अवज्ञा कर मंत्र को छत पर चढ़कर जोर से उच्चारण कर सभी को बताया था। फिर भी परहित भावना से गुरुदेव प्रसन्न हो गये थे।

नाम महिमा पर किसी अदृश्य शक्ति द्वारा मुझसे अनेक पत्र लिखवाए गये हैं। इसके पीछे मेरे आराध्यतम गुरुदेव का हाथ है। यह पत्र मेरे पुत्रों को व भक्ति सर्वस्व निष्किंचन महाराज को तथा भक्तों को समर्पित किये गए हैं। जब से गुरुदेव जी ने मुझे चौबीसों घंटे हरिनाम करने का आदेश दिया तब से मुझसे पत्र लिखवा रहे हैं। यह नाम महिमा लिखवाने का व्यसन भी श्रीगुरुदेव जी ने ही लगाया है।

जिस साधक का उद्देश्य भगवद् प्राप्ति करने का होगा उससे टी.वी., अखबार आदि स्वतः ही छूटने लगेंगे। वह ग्राम्य चर्चा से दूर रहने लगेगा। समय की बर्बादी का दुःख अन्तःकरण में घुसकर भजन स्तर बढ़ाने में लग जायेगा। मनुष्य जन्म दुबारा नहीं होगा, अतः शीघ्र ही भक्ति का किराया इकट्ठा कर लो ताकि श्रेष्ठ स्थान पर पहुँच सको। वरना पछताना हाथ में आएगा, बिना किराया पैदल जाना पड़ेगा। धूप, सर्दी, बरसात ऊपर से सहनी पड़ेगी। स्थान भी दुःखदायी मिलेगा।

यदि कोई भी साधक एक माह तक उक्त का संसारी सम्बन्ध तोड़ देगा तथा 64 माला जप करने लगेगा तो उसे अवश्य संसारी व पारमार्थिक लाभ होगा।

श्रीप्रह्लादजी अपने सहपाठियों से कहते हैं कि भगवान् को प्राप्त करना कठिन नहीं है। सत्य ही कहते हैं। भगवान् कहते हैं कि, 'हे साधक तेरा मन तू मुझे दे दे। बस! मैं तुरन्त तुझसे मिल लूँगा। तूने मन माया को दे रखा है, अतः मैं तुझ पर आधिपत्य कैसे जमा सकता हूँ? यह मेरी गलती नहीं है, यह तेरी ही नासमझी है, जो तू मुझको भूल गया। तू तो मेरा अनन्त जन्मों का तथा आदि जन्म का बेटा है। मैं तेरे को बार-बार ढूँढ़-ढूँढ़ कर गया लेकिन तू ही मेरी नजर से छुपता रहता है, अतः तू दुःख पर दुःख भोग कर रहा है। अब भी मेरा नाम लेकर पुकार, मैं तुझे माया के बन्धन से छुड़ा लूँगा। तथा वैष्णवों से प्रेम कर, वैष्णव ही तुझे सर्वसिद्धि अवश्य करा देंगे। भजनगीति में लिखा है-

आश्रय लिया भजे, तारे कृष्ण नहिं तजे।

जीवों पर दया करते हुए हरिनाम स्मरण से सर्व धर्म सार की प्राप्ति होगी, रोते-रोते हरिनाम करने पर वैष्णव कृपा द्वारा ठाकुर कृपा स्वतः ही बरसेगी। वैष्णव चरण-रज शीघ्र ही मन का मैल समाप्त कर देती है। भक्तिविनोद ठाकुर जी सब को कह रहे हैं, कम से कम एक बार तो नाम रस में डूबो। वृन्दावनदास ठाकुर कह रहे हैं, सर्व महाप्रायश्चित है केवल हरि का नाम।

अविश्रान्त नामे, नाम अपराध जाय।
ताहे अपराध कभु स्थान नहि पाय।।
अमानी मानद हया कृष्ण नाम सदा लवे

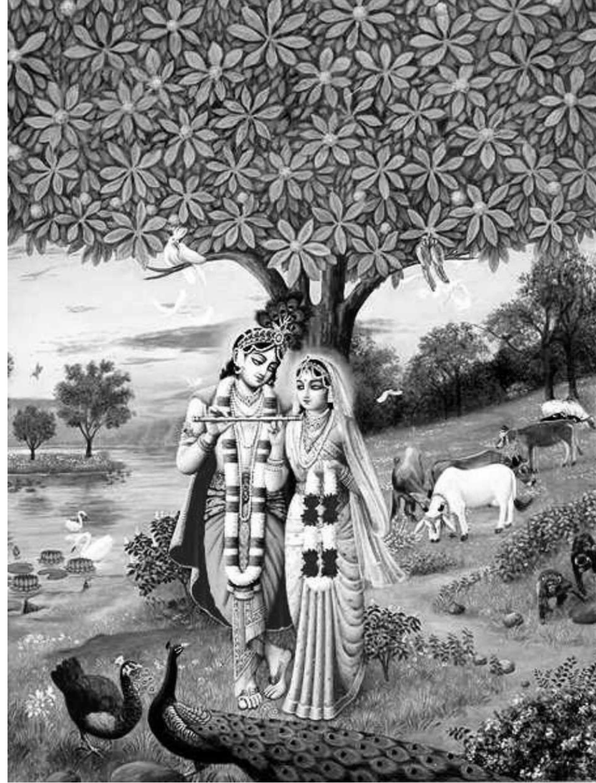
अपराध व मान प्रतिष्ठा ही सबसे बड़ी रुकावट है। हरिनाम ही सबसे कीमती धन है। इसको स्मरण सहित कमाना ही जीवन का सार है।

आत्मा व परमात्मा का उदाहरण –

एक 4–5 साल का बच्चा मेले में खो गया। माता–पिता ने उसे बहुत ढूँढ़ा, परन्तु मिला ही नहीं। रो–धोकर घर पर आ गये, बच्चा इकलौता था, वह भी छोड़कर चला गया। अब वह बच्चा इधर–उधर भटक रहा है। भीख मांग–मांगकर खाता है। सड़क पर सोता है। जबकि माँ–बाप करोड़पति हैं, लेकिन दुर्भाग्य से दुःख भोग कर रहा है। धीरे–धीरे वह 15 साल का हो गया। एक दिन वहा एक गली में मकान का काम–चल रहा था वहाँ गया। उसने सोचा कि यदि यह मकान मालिक मुझे मजदूरी पर लगा ले तो मैं खा पी लूँ तथा कपड़ा पहन लूँ। उसने एक सज्जन से यह बात बोली। उस सज्जन ने जो मकान बनवा रहा था उसके पास इस बच्चे की सिफारिश की तो मकान वाले ने पूछा, 'क्या लेगा?' उसने कहा, 'रोटी, कपड़ा दे देना, चाहो तो थोड़ा खर्चा दे देना।' 'मकान मालिक बोला 'ठीक है। तुम टोकरी ढोते रहो, तुम्हारा काम देखकर कुछ कर सकता हूँ।' जब वह बच्चा 10 दिन तक टोकरी ढोता रहा तो एक दिन मकान मालिक ने उसे गौर से देखा तो उसे शक हो गया कि यह बालक मेरे बच्चे से मिलता जुलता है, इसे बुलाकर पूछूँ तो सही! तो उसने बच्चे को बुलाकर पूछा, 'तू कौन है?' उस बच्चे ने उसकी सारी जीवनी कही कि, 'मैं मेले में गुम हो गया था। मेरे माँ–बाप का पता नहीं, न घर का पता है। पुलिस ने पूछा भी लेकिन बता न सका।'

फिर मकान वाले ने देखा, मेरे बच्चे के दो अँगूठे थे, पास में एक विशेष चिह्न भी था, यही इसके है। तो मकान मालिक की पत्नि जो इस बच्चे की माँ थी, अपने बच्चे को देखकर उसके स्तन से दूध टपकने लगा। बस क्या था, उस बच्चे का व उस दम्पत्ति का भाग्य उदय हो गया।

सज्जन ही गुरु के रूप में आया है। गुरु ने भगवान् से सिफारस की तो भगवान् ने उसे अपना लिया। भगवान् (माँ) के स्तन से वात्सल्य रस (दूध) टपकने लगा। यही आत्मा-परमात्मा का मिलन है। आत्मा भूला हुआ भटक रहा है। सद्गुरु ही मिलन करा देते हैं।



48

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

छींड की ढाणी
दिनांक 28/9/2009

श्रीगुरुदेव की महिमा

यह त्रेतायुग का समय था। समस्त संसार में दशरथ जी का साम्राज्य था, लेकिन सन्तान के बिना दशरथ जी दुःखी रहा करते थे। एक दिन दशरथ जी शीशे में अपना मुख देखकर अधिक दुःखी हो गए कि मेरा अब मरने का समय आ गया क्योंकि मेरे बाल सफेद होते जा रहे हैं, बिना संतान के मैं नरक में गिर जाऊँगा, तो गुरु वशिष्ठ जी, जो पुरोहित का काम करते थे उनसे जाकर दशरथ जी बोले कि, 'मुझे नरक से बचाओ, मुझे संतान नहीं है।'

तब वशिष्ठ जी ने कहा कि पुत्रेष्टि यज्ञ करने पर संतान हो सकती है। जब पुत्रेष्टि यज्ञ की तैयारी की गयी तब अग्निदेव चरु अर्थात् खीर लेकर यज्ञ से प्रकट हुए। तब वशिष्ठ जी ने राजा दशरथ जी को कहा कि, इस खीर को अपनी रानियों को खिला दो, तो पुत्र प्राप्त होंगे। उन्होंने खीर प्रथम बड़ी रानी कौशल्या को खाने को दी और बाकी खीर छोटी रानी कैकेयी व सुमित्रा को दे दी। कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से लक्ष्मण व शत्रुघ्न प्रकट हुए।

बचपन से राम अधिकतर कैकेयी के पास ही रहा करते थे। त्रेतायुग में यज्ञ ही भगवद्प्राप्ति का मुख्य साधन था लेकिन राक्षसगण यज्ञ करने में विघ्न डालते रहते थे अतः ऋषिगण दुःखी रहते थे।

एक दिन राम अपनी माँ कैकेयी से बोले कि 'माँ मुझे वनवास दिला दे। पिताजी मुझे वन में जाने नहीं देंगे।' तब कैकेयी बोली, 'ऐसा मत बोलो राम।' राम बोले, 'माँ मुझे राक्षसों का वध करना है।' तब कैकेयी राजी हो गयी बोली, 'ठीक है।'

तब दशरथ जी से नाराज होकर कैकेयी ने दो वरदान मांगे, राम को वनवास और भरत को अयोध्या में राजपद पर बिठाना। दशरथ जी ने बहुत समझाया कि ऐसा वरदान मत मांगो, वरना मैं मर जाऊँगा। लेकिन राम को वन में भेजने से कैकेयी मानी नहीं। तो राम को वनवास होते ही दशरथ जी राम के विरह में चल बसे। क्योंकि इनको पहले से ही शाप था। इनके द्वारा श्रवण के मरने पर श्रवण के माँ–बाप ने इनको शाप दिया था कि जैसे हम पुत्र के विरह में मर रहे हैं तुम भी इसी प्रकार शरीर छोड़ोगे।

रामजी को वनवास हो गया तब रावण की बहन शुर्पणखां रामजी के पास आकर बोली कि 'मेरे समान सुन्दर नारी इस संसार में नहीं है एवं आपके समान नर इस संसार में नहीं है अतः मुझे पुरुष की जरूरत है तथा आपको मेरी जरूरत होनी चाहिए।'

तब राम बोले, 'मेरी तो स्त्री (पत्नि) है। मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास चली जाओ।' तब शुर्पणखां लक्ष्मण के पास जाकर बोली, 'मुझे तुम्हारी स्त्री (पत्नि) बनालो।' तब लक्ष्मण ने मना कर दिया तो बार–बार लक्ष्मण के पीछे पड़ गई कि तुम कैसे पुरुष हो तुमको मुझपर दया नहीं आती ? मेरी प्रार्थना सुननी होगी। तब तो लक्ष्मण बोले, 'तुम्हारे जैसी निर्लज्ज से क्या बात करूँ ? चली जा यहाँ से।' फिर भी जब शुर्पणखां बार–बार पीछे पड़ गई तो लक्ष्मण ने उसकी नाक को अपने धनुष बाण से काट दिया।

अब तो उसने अपना विकराल शरीर प्रकट कर दिया और बोली कि 'देखना भविष्य में तुम को रोना पड़ेगा।' तब लक्ष्मण ने कहा 'भाग जा यहाँ से।' अब तो वह रोती चिल्लाती लंका में जाकर अपने भाई रावण से बोली, 'देख! मेरी क्या हालत कर दी है उन वनवासी पुरुषों ने, तू जीते जी ही मर गया क्या ?'

रावण ने बोला, 'बहन चिंता मत कर। अब तू मेरा तमाशा देख, मैं क्या करता हूँ।' रावण संन्यासी का भेष बनाकर पंचवटी पर गया जहाँ राम सीता लक्ष्मण कुटी बनाकर रहा करते थे।

इधर रावण ने मारीच को बोला कि, 'तुम सुन्दर हिरण बन कर कुटिया के पास इधर-उधर फिरते रहो, तो सीता का मन-चलायमान हो जायेगा तो तुम्हारी मृग छाल को प्राप्त करने के लिए तुम्हें मारने के लिए सीता राम को भेज देगी, तो मैं आसानी से सीता को हरण कर ले आऊँगा।' मारीच को डर की वजह से हाँ करनी पड़ी। उसने सोचा, ये रावण मुझे मार देगा, इससे तो अच्छा है कि मैं राम के हाथों मर जाऊँ। तो मेरा उद्धार तो होगा!

मारीच को हिरण के रूप में देखकर सीता ने राम को बोला कि, कितना सुन्दर हिरण है। इसकी मृग छाल पर बैठकर भजन करना चाहती हूँ, आप इसे मारकर मृग छाल ले आओ।

इधर लक्ष्मण को राम ने कहा कि, 'मैं जा रहा हूँ तुम कुटी में रहना, सीता को अकेली मत छोड़ना। क्योंकि यहाँ राक्षस फिरते रहते हैं, कहीं सीता को उठाकर न ले जायें।

वैसे तो, जो असली सीता थी वह तो अग्नि में समा गई थी। यह नकली सीता (वेदवति) ही थी। क्योंकि सीता को रामजी बोले थे कि मैं राक्षसों का वध करने जा रहा हूँ, तुम अग्नि में समा जाओ। अग्नि देवता को बड़ी खुशी हुई कि मेरा अहो भाग्य है जो सीता माता मेरे पास रहेगी।

जब राम कुटिया में से चले गये तो लक्ष्मण उस कुटी से फलादि कुछ वस्तु लाने जंगल में चले गए। पीछे से रावण संन्यासी का भेष बनाकर कुटीया पर गया और बोला, 'भिक्षां देही!'

सीता जी अन्दर से बाहर आई तो क्या देखती है कि एक संन्यासी दरवाजे पर खड़ा भिक्षा माँग रहा है, तो सीता जी अन्दर जाकर कुछ फल वगैरह ले आयी और बोली, 'महात्माजी यह भिक्षा ले लो!'

(लक्ष्मण जब वन से कुछ फलादि लाने गये तो सीताजी को कह गये थे कि मैं एक रेखा खींचकर जाता हूँ, इस रेखा से बाहर

मत निकलना। सीताजी बोली, 'देवर जी चिंता न करें, आप जाओ, मैं नहीं निकलूंगी।')

रावण ने बोला, मैं बंधी भिक्षा नहीं लिया करता हूँ, तुम भिक्षा खोलकर दे दो। खोलकर देने से रेखा के बाहर आना पड़ेगा, अतः सीता सोच विचार में पड़ गई कि, महात्मा जी बिना भिक्षा लिए द्वार से न चले जायें, अतः वह कुछ देर ठहर गई।

रावण ने बोला कि, 'भिक्षा देती हो या नहीं, वरना मैं जा रहा हूँ, देना हो तो पास में आकर दे दो।'

सीता जी सोच में पड़ गईं कि, देखा जायेगा। बिना भिक्षा लिए साधु का जाना उचित नहीं है, अतः वह रेखा से बाहर आ गईं। इसके पहले जब वह अन्दर भिक्षा लाने गई थी तो रावण दरवाजे के पास आने लगा तो पैर रखते ही रेखा से ज्वाला निकली, तो रावण डर गया कि यह ज्वाला तो मुझे जलाकर भस्म कर देगी, अतः सीता को ही बाहर आने दिया जाये अतः यही युक्ति है कि मैं उसे ऐसा बोल दूँ कि मैं बंधी भिक्षा नहीं लेता खुली भिक्षा देना हो तो दे दो, वरना मैं चला। इसी कारण से सीता जी रेखा लांघकर बाहर आ गई और जब वह भिक्षा देने लगी तो रावण उसे गोदी में उठाकर आकाश में उड़ गया।

अब तो सीताजी चिल्लाने लगी तो चिल्लाना सुनकर जटायु आ गया। तब वह क्या देखता है कि, सीता माँ को रावण आकाश मार्ग से ले जा रहा है, तो जटायु उस पर टूट पड़ा और अपने पंखों से उसे घायल कर दिया, लेकिन रावण के पास कृपाण था, उससे उसने जटायु के एक तरफ के पंख काट डाले तो जटायु आकाश में पंख कटने से पृथ्वी पर आ गिरा। वह कहने लगा, 'हा, राम! हा, राम!' राम ने सुना कि कोई व्याकुल होकर मेरा नाम ले रहा है। राम तुरन्त ही वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि जटायु की मरण जैसी अवस्था हो रही है, तब राम उसे गोदी में लेकर पूछने लगे कि, 'दादा तेरी यह बुरी दशा किसने की?' तब जटायु बोला कि माँ सीता को रावण आकाश मार्ग से ले जा रहा था मैंने अपने पंखों से

उसे घायल कर दिया तब उसने मेरे एक ओर के पंख कृपाण से काट गिराए। इतना कहते–कहते हा! राम, हा! राम कहकर जटायु की अन्तिम सांस निकल गई। अब तो राम ने बिलख–बिलखकर, रो–रोकर, आँसुओं से जटायु को नहला दिया तथा उसकी पूरी अन्तिम क्रिया अपने हाथों से की। यह वरदान जटायु ने लिया था। कथा बड़ी है।

रावण ने सीताजी को माँ समझकर लंका में अशोकवाटिका नाम का जो सर्वश्रेष्ठ स्थान था वह दे दिया और सेवा के लिए राक्षसियों का पहरा लगा दिया।

रावण जानता था कि मेरी मुक्ति जल्दी तब ही हो सकती है जब मैं राम का विरोधी बनूँ क्योंकि राम भजन करना मेरे बस की बात नहीं है।

त्रिजटा राक्षसी सीता को सांत्वना देती थी कि सीता तू चिंता क्यों करती है ? राम जल्दी ही लेने आयेंगे। सीता अशोक वृक्ष के नीचे बैठकर अशोक वृक्ष से कहती थी कि तेरा नाम शोकरहित है तो मेरे शोक को क्यों नहीं हटाता ?

जेहि विधि कुरंग संग धाय चले श्रीराम।
सो छवि सीता राखि उर रटत रहति हरिनाम।।

जब सीता वनवास से अयोध्या धाम चली आई तो राम ने सुना कि एक धोबी अपनी स्त्री को बोल रहा है कि तू इतने दिन कहाँ रही, मैं राम नहीं हूँ, जो सीता को घर में रख लिया जो कितने दिन राक्षसों के घर में रहकर आई है। यह चर्चा सुनकर लोक अपराध से राम ने सीता को वनवास दे दिया।

उस वन में साधु महात्मा वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। वहाँ सीता भटक रही थी तो वाल्मीकि ने उसे कहा, 'बेटी तू कहाँ से आई है ?' सब बताने पर वह सीता को बोले, 'बेटी तू इसी आश्रम में रहा कर।'

सीताजी गर्भवती थीं। वहीं पर लव का जन्म हुआ। सीता लव को नित्य ही वाल्मीकि ऋषि के पास सुलाकर ऋषि के लिए तथा भगवान् के लिए नदी से पानी लाया करती थीं।

एक दिन वाल्मीकि शौच के लिए बाहर चले गये तो सीताजी लव को भी अपने साथ ले गयीं जहाँ पानी लेने नित्य जाती थीं। वाल्मीकि जब लव के पास आये तो लव नहीं मिला, तो उन्हें चिंता हो गई कि लव को कोई जानवर उठा ले गया। मैं सीता को क्या जवाब दूँगा ? अतः उसके आने से पहले ही वाल्मीकि ऋषि ने अपने कुश के आसान से एक तिनका निकाला और उसे अभिमंत्रित करके लव जैसा ही शिशु पैदा करके वहाँ पर सुला दिया।

जब सीता पानी भरकर आश्रम पर आई तो क्या देखती है कि लव के जैसा ही एक शिशु वाल्मीकि के पास लेटा हुआ है।

सीता जी ने पूछा, गुरुदेव! यह बालक कहाँ से आ गया ? तो वाल्मीकि ने अपनी चिंता बताकर कहा कि अब यह पुत्र भी तुम्हारा ही शिशु है। कुशासन से पैदा होने के कारण इसका नाम होगा कुश, अतः बेटी! तेरे लव व कुश यह दो शिशु रहेंगे। यह सुनकर सीता को बड़ी खुशी हुई कि, यह गुरु प्रदत्त शिशु भी मेरा ही है। अब वाल्मीकि जी ने उन दो बेटों को धनुष–बाण चलाना सिखा दिया।

एक दिन पारिवारिक गुरुदेव वशिष्ठ जी श्रीराम को बोले कि 'राम! तुमको एक यज्ञ करना है, जिसमें विजयपत्र के हेतु एक घोड़ा छोड़ना है। इसकी तैयारी करनी होगी।'

रामजी बोले, 'बहुत खुशी की बात है, गुरुदेव! शीघ्र ही घोड़ा छोड़ा जायेगा।'

घोड़ा छोड़ दिया। उसके मस्तक पर एक विजयपत्र बांध दिया, उस पर लिखा था– **जो इस विजय पत्र को नहीं मानेगा, वह राम से लड़ेगा।**

जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम पर घूम रहा था तो लव-कुश धनुष विद्या सीख रहे थे, तो उन्होंने देखा कि, इस घोड़े के मस्तक पर विजय पत्र टंगा हुआ है उसपर लिखा हुआ है कि, जो इस विजय-पत्र को नहीं मानेगा, वह राम से लड़ेगा वरना यज्ञ अधूरा ही रह जायेगा। यह पढ़कर दोनों भाईयों की भुजाएँ फड़कने लगीं कि अब तो युद्ध करने का मौका हाथ लगा।

लव-कुश ने अपने गुरुजी से बोला कि, 'श्रीगुरुदेव अपने आश्रम के बाहर एक घोड़ा घूम रहा है, हम इसे पकड़कर बांधेंगे और जिसने इसे छोड़ा है उससे हम युद्ध करेंगे।'

वाल्मीकि ने कहा, 'बेटे अभी तुम छोटी उम्र के हो, बच्चे हो, कैसे युद्ध करोगे ? जिसने इसे भेजा है वह तो बहुत बड़ा शक्तिशाली होगा।' तब लव-कुश बोले कि, 'गुरुदेव! हमने सीता माँ के स्तन का दूध पिया है, क्या माँ के दूध को लज्जित करेंगे ? गुरुदेव! हम तो युद्ध करेंगे, यद्यपि घोड़ा छोड़ने वाला कितना भी बलशाली क्यों न हो।'

तब वाल्मीकि ऋषि बोले, 'ठीक है, तुमको मैं गुरुकवच पहना देता हूँ इसे कोई भी शक्ति तोड़ नहीं सकेगी।' लव-कुश ने कहा, 'गुरुदेव! जैसा भी आप उचित समझें हम को पहना दीजिए।'

गुरु कवच एक ऐसा कवच है, जिसको कोई तोड़ नहीं सकता। विष्णु कवच, नारायण कवच, राधा कवच आदि कवच तोड़े जा सकते हैं, परन्तु गुरु का कवच कोई नहीं तोड़ सकता।

शिव वचन-

कवच अभेद गुरु पद पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।।
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहि। ते जन सकल विभव वस करहि।।
राखहि गुरु जो कोप विधाता। गुरु विरोध नहि कोऊ जगत्राता।।
जो सठ गुरु सन ईर्शा करहि। रौरव नरक कोटि जुग परहि।।

यह गुरुमहिमा शिवजी पार्वती को सुना रहे हैं कि, 'हे पार्वती! **गुरुकवच** ऐसा अभेद कवच है, जिसको तोड़ने में भगवान् भी सक्षम नहीं हैं।'

इधर गुरु वशिष्ठ जी राम को बोले, 'राम! घोड़ा छोड़े बहुत दिन हो गए, घोड़ा आया नहीं, जरूर किसी बलशाली ने घोड़ा बाँध लिया है, अतः तलाश करो कि घोड़ा किस शक्तिशाली ने बाँधा है ?'

तब राम ने चारों ओर गुप्तचर भेज दिये तो मालूम पड़ा कि घोड़ा तो रामजी के बेटे ने ही बाँधा है। क्योंकि लव तो राम का बेटा है, लेकिन कुश का तो किसी को मालूम ही नहीं था, कुश कहाँ से आ गया ? तो किसी ने कहा कि, लव का एक और भाई है, जिसका नाम कुश है। अतः घोड़ा दोनों भाईयों ने बाँधा है। तब तो सब परिवार को आश्चर्य हो गया कि लव तो राम का बेटा है। कुश कहाँ से आ गया ? तो मालूम हुआ कि, श्रीगुरुदेव वाल्मीकि के द्वारा प्रदत्त पुत्र कुश राम का ही बेटा है।

अपने भजन करने का जो आसन था कुशासन, उसमें से तिनका निकालकर वाल्मीकि ने कुश शिशु प्रकट कर दिया। इसका एक रहस्यमय कारण है जो हमें बाद में मालूम हो जायेगा। ऐसा सोचकर गुप्तचरों से यह वार्ता सुनने के बाद राम अपने गुरुदेव वशिष्ठ जी से बोले, 'श्रीगुरुदेव! अब क्या करना चाहिए ?' तब गुरुदेव बोले कि, 'अब तो हनुमान को भेजो, वह घोड़ा छुड़ाकर ला सकता है, क्योंकि हनुमान के बराबर कोई बलशाली नहीं है।'

तब हनुमानजी को राम ने आदेश दिया कि, हनुमान तुम दोनों बालकों को समझा बुझाकर घोड़ा छुड़ाकर ले आओ। हनुमान बोले, 'बहुत अच्छा। कल ही घोड़ा अयोध्या में आ जायेगा। कोई मुश्किल नहीं है।'

हनुमान जी वाल्मीकि आश्रम में गए और वाल्मीकि को बोले, 'ऋषिवर! घोड़ा राम का है, यज्ञ करने का मुहूर्त जा रहा है। आप शीघ्र घोड़ा छुड़वा दें।'

वाल्मीकि बोले, 'हनुमान! तुम घोड़ा ले जा सकते हो, वे तो बेचारे छोटे-छोटे बालक हैं। उनके पास जाकर बोलो, वे छोड़ देंगे।'

तब हनुमान लव कुश को बोले, 'बच्चो घोड़ा तुम्हारे पिता राम का है, आप इसे छोड़ दो।' तो लव कुश बोले, 'हम राजपूत हैं। बिना युद्ध किये हम घोड़ा कैसे छोड़ दें ? क्या राम हमारे पिता हैं ? हमको अब तक मालूम ही नहीं था, क्योंकि माँ सीता ने हमको बताया ही नहीं था कि तुम राम के पुत्र हो। अब मालूम पड़ा कि हम राम के पुत्र हैं। लेकिन धर्म यह कहता है कि जब युद्ध का अवसर प्राप्त हो तो किसी का नाता नहीं देखा जाता। राजपूत होने के नाते आपसे भी लड़ना पड़ेगा, आप युद्ध करके घोड़ा ले जा सकते हो।'

हनुमान जी असमंजस में पड़ गये कि, राम के पुत्रों से मैं कैसे युद्ध करूँ ? राम तो मेरे आराध्य देव हैं, तो पुत्र भी मेरे आराध्यदेव ही हैं, इसलिए मेरा युद्ध करना उचित नहीं है, लेकिन घोड़ा छुड़ाना भी परमावश्यक है। तब हनुमानजी घोड़े के पास जाकर घोड़े की लगाम पकड़ने लगे तो लव-कुश बोले, 'सावधान! युद्ध करो, तब घोड़ा ले जाओ।'

अब तो हनुमान जी पर बड़ा संकट आ गया तो जब वह जबरदस्ती करने लगे तो लव-कुश ने उनकी पूँछ से ही उनको पेड़ से बाँध दिया, तो हनुमान जी यह बंधन तोड़ न सके। जब बहुत दिन हो गये, हनुमान जी अयोध्या में घोड़ा लेकर नहीं पहुँचे तो गुरु वशिष्ठ जी को चिन्ता हो गयी कि, क्या कारण है, जो हनुमान अब तक घोड़ा छुड़ाकर आये नहीं! अतः उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि, 'लक्ष्मण! तुम जाओ और देखो कि क्या बात है ?

लक्ष्मण भी बड़े असमंजस में पड़ गये कि, 'इन बालकों का हठ भी कैसा है! अब तो इनके गुरु वाल्मीकि से मिलना चाहिए।' लक्ष्मण वाल्मीकि ऋषि से मिले और घोड़ा छोड़ने के लिए प्रार्थना करने लगे, तो वाल्मीकि बोले कि 'लक्ष्मण! बालक हठ तथा स्त्री हठ ऐसा होता है कि वह किसी प्रार्थना से नहीं मानता, अतः युद्ध करके ही तुम्हें घोड़ा छुड़ाना पड़ेगा।'

अब तो लक्ष्मण ने भी अपना धनुषबाण उठा लिया और लव–कुश ने भी अपना धनुषबाण उठा लिया। दोनों ओर से तीर चलने लगे तो लक्ष्मण के तीर वापस आकर लक्ष्मण को ही बाँधने लगे। लव–कुश खड़े–खड़े देखने लगे कि चाचा जी बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर गये। लव–कुश ने श्रीगुरुदेव का अचूक अभेद कवच पहन रखा था अतः कवच से बाण टकराकर वापस उसी चलाने वाले को घायल करते जा रहे थे।

अब तो वशिष्ठ जी व राम दोनों को चिंता हो गयी कि लक्ष्मण भी वापस नहीं लौटा तो कोई न कोई बहुत बड़ी समस्या सामने है।

वशिष्ठ गुरु ने सबको भेजा लेकिन कोई भी वापस नहीं आया तो अन्त में राम को आदेश दिया कि, 'राम अब तुम ही जाओ, कोई न कोई बड़ी समस्या आ गयी है।'

तब तो राम गए और देखा तो, कैसे सुन्दर कोमल आकर्षक बच्चे धनुषबाण साधे खड़े हुए हैं, तब राम बोले, 'बच्चो घोड़ा छोड़ दो!' लव–कुश बोले, 'ले जाओ, हमने कब मना किया है?' राम जब घोड़े की लगाम पकड़ने लगे तो लव–कुश बोले, 'पिताजी, राजपूत का क्या धर्म है? धर्म विरुद्ध कर्म करना शास्त्र व भगवान् के विरुद्ध है। आपको हमसे युद्ध करना ही पड़ेगा।'

तब तो राम सीता के पास जाकर बोले कि, 'सीते! तुम ही बच्चों को समझाकर घोड़ा छुड़ा दो।' तब सीता बोली, 'धर्म विरुद्ध कार्य मैं कैसे कर सकती हूँ? बच्चे मेरी भी नहीं मानेंगे क्योंकि वह कहते हैं कि, हमने तो सीता माँ का दूध पिया है, तो क्या माँ का दूध पीकर लज्जित होंगे?' अतः सीता बोली, 'मैं भी घोड़ा छुड़ाने में असमर्थ हूँ।'

राम ने सोचा, क्या करना चाहिए? मैं इन कोमल बच्चों पर बाण कैसे चलाऊँ? धर्म की आड़ में मुझे लड़ना ही पड़ेगा। अब तो राम ने धनुषबाण उठाया और बच्चों पर चला दिया। वह बाण बच्चों से वापस आकर राम को पीड़ा देने लगे, तब राम समझ गये कि

यह करामात तो इनके गुरु वाल्मीकि ऋषि की है। तब राम ऋषि के चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगे कि, 'ऋषिवर! इन बालकों पर आपकी कृपा होने के कारण, मैं तो इन बालकों से हार गया। मुझे यज्ञ करना बहुत जरूरी है। आप ही यज्ञ सम्पूर्ण करा सकते हैं। मुझपर कृपा करो।' तब वाल्मीकि जी बच्चों के पास जाकर बोले कि, 'लव–कुश तुम परीक्षा में पास हो गए हो, अब इनको घोड़ा दे दो। तब बच्चे बोले कि, 'पिताजी! अब आप घोड़ा ले जा सकते हैं।'

लव–कुश ने रामजी को उनके पैर छूकर प्रणाम किया और गुरु के आदेश का पालन किया। तब राम सीता से बोले कि, 'तुम्हारे बिना यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। अतः अब तुम मेरे साथ चलो।' तब पृथ्वी माता से आज्ञा लेते ही पृथ्वी फटी और सीताजी जैसे पृथ्वी से प्रकट हुई थीं वैसे ही पृथ्वी में ही समा गईं।

राम ने सोने की सीता बनवाकर यज्ञ पूरा किया। इसके बाद राम ने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन कर ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य किया। इसके बाद अपने धाम **साकेत लोक** में चले गए। ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य करने के लिए सीता की कोई आवश्यकता नहीं थी अतः जैसे पृथ्वी की गोद से लीला करने हेतु प्रकट हुई थीं वैसे ही अपने पिता जनक जी से आदेश लेकर पृथ्वी में ही समा गईं।

ध्यान देकर सभी भक्तप्रवर गुरु की महिमा सुनें जो शिवजी ने पार्वती को बताई है। रामायण न तो तुलसीदास जी ने रची है और न वाल्मीकि जी ने रची है। इसको रचने वाले शिव शंकर जी हैं, इसलिए इसका मूल नाम है **रामचरितमानस**। क्योंकि यह शिवजी के मन से प्रकट हुई है। बाद में तुलसीदास जी ने सरल भाषा में इसका अनुवाद कर दिया तथा वाल्मीकि जी ने भी इसी का अनुवाद किया है। शिवजी गुरुदेव की महिमा बोल रहे हैं कि, जो भी इसके अनुसार जीवनयापन करेगा वह भगवद्दर्शन पायेगा।

श्रीगुरु पदनख मनि गन ज्योती। सुमिरत दिव्य-दृष्टि हियँ होती।।
उघरहि विमल विलोचन ही के। मिटहिं दोष दुःख भव-रजनी के।।
सूझहिं राम-चरित मनि मानिक। गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।

हरिनाम को गुरुचरणों में (मानसिक रूप से) बैठकर जपते हुए ऐसा ध्यान करे कि श्रीगुरुदेव जी के चरणों के नखों से बड़ी आभायुक्त ज्योति निकल रही है, तो उक्त लिखा लाभ प्राप्त हो जायेगा। इसमें रत्तीभर भी संशय नहीं करना है।

मुझे तो जो भी प्राप्त हुआ है, वह उक्त लिखे श्लोक से ही मिला है।

भक्तप्रवर आप श्रीगुरुदेव की प्रेरणात्मक आकाशवाणी को ध्यान देकर सुनें तो मैं आपकी बड़ी कृपा का भाजन बनूँगा।

इस वाणी को मैं कई बार कह भी चुका हूँ। रात में जब नींद में आँख भरने लगें तो यह बात नहीं भूलना तथा बोलना कि, 'हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और मेरी अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।'

इससे भगवान् को हरिनाम में रुचि देनी पड़ेगी। लेकिन यह याद रखें, भक्त अपराध न हो। नींद भी मृत्यु की बहन है, ठीक नींद जब आने लगे तो ऊपर लिखा श्लोक बोलें तथा प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में आँख खुलेगी तो यह प्रार्थना ठाकुरजी से करें।

हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात को सोने तक मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझकर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।'

इन प्रार्थनाओं को नित्य करने से बीच का समय भी भजन में ही व्यतीत होता है। *हर मनुष्य की 21,600 साँसे रात-दिन

---

*'हरे कृष्ण महामन्त्र' की 200 माला नित्य जप करने से (200X108) = 21,600 महामन्त्र का उच्चारण हो जाता है।

में (24 घंटे में) निकलती हैं। ऊपर की प्रार्थना उन साँसों के साथ भगवान् के साथ जायेगी, अतः यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त प्रार्थना से तो रात दिन का भजन हो गया। भगवान् को बाँधने को कैसी मनरचित सुन्दर, आकर्षक युक्ति श्रीगुरुदेव ने सभी साधक भक्तों को बता दी है। इसे कभी भूले नहीं। इस युक्ति से बिना भजन किये ही भजन बन गया। जय गुरुदेव। हरिबोल–निताई गौर हरि बोल हरिबोल हरिबोल...



सृष्टि रचयिता श्रीब्रह्मा जी द्वारा रचित

श्रीब्रह्म-संहिता

(अध्याय-5)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्।।1।।

गोविन्द के नाम से विख्यात कृष्ण ही परमेश्वर हैं। उनका सच्चिदानन्द शरीर है। वह सब के आदि हैं। उनका कोई आदि नहीं एवं वह समस्त कारणों के मूल कारण हैं।

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम्।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।29।।

मैं उन आदि पुरुष भगवान् गोविन्द का भजन करता हूँ, जो लाखों कल्पवृक्षों से घिरे हुए चिन्तामणि समूह से निर्मित भवनों में कामधेनु गायों का पालन-पोषण करते हैं एवं जो असंख्य लक्ष्मियों द्वारा सदैव प्रगाढ़ आदर और प्रेम सहित सेवित होते रहते हैं।

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दरांगम्।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।30।।

जो वेणु बजाने में दक्ष हैं, कमल की पंखुडियों जैसे जिनके प्रफुल्ल नेत्र हैं, जिनका मस्तक मोरपंख से आभूषित है, जिनके अंग नीले बादलों जैसे सुन्दर हैं और जिनकी विशेष शोभा करोड़ों कामदेवों को भी लुभाती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

आलोलचन्द्रकलसद्वनमाल्यवंशी रत्नां गदं प्रणयकेलिकलाविलासम्।
श्यामं त्रिभंगललितं नियतप्रकाशं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।31।।

जिनके गले में चन्द्रक से शोभित वनमाला झूम रही है, जिनके दोनों हाथ वंशी तथा रत्नजड़ित बाजूबन्दों से सुशोभित हैं, जो सदैव प्रेम-लीलाओं में मग्न रहते हैं, जिनका ललित त्रिभंग श्यामसुन्दर रूप नित्य प्रकाशमान है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।32।।

जिनका अप्राकृत श्रीविग्रह आनन्द, चिन्मयता तथा सत् से पूरित होने के कारण परमोज्ज्वल है, जिनके चिन्मय शरीर का प्रत्येक अंग अन्याान्य सभी इन्द्रियों की पूर्ण–विकसित वृत्तियों से युक्त है, चिरकाल से जो आध्यात्मिक एवं भौतिक–दोनों जगतों को देखते, पालन करते तथा प्रकट करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम् आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।33।।

जो वेदों के लिए दुर्लभ हैं, किन्तु आत्मा को विशुद्ध भक्ति द्वारा सुलभ हैं, जो अद्वैत हैं, अच्युत हैं, अनादि हैं, जिनका रूप अनन्त है, जो सबके आदि हैं तथा प्राचीनतम पुरुष होते हुए भी नित्यनवयुवक हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसम्प्रगम्यो वायोरथापि मनसो मुनिपुंगवानाम्
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।34।।

चिन्मयता को प्राप्त करने के इच्छुक योगियों के प्राणायामादि वायु निरोधात्मक योग–पथ से अथवा निर्भेद ब्रह्मानुसंधान करने वाले श्रेष्ठ ज्ञानियों के भौतिक त्याग द्वारा ज्ञान–पथ से, शतकोटि वर्षों तक साधन करने पर भी जिनके चरणारविन्द के अग्रभाग की ही प्राप्ति होती है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।35।।

जो शक्ति एवं शक्तिमान में अभिन्नता होने के कारण निर्भेद एक तत्त्व हैं, जिनके द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्डों की सृष्टि होने पर भी जिनकी शक्ति उनसे पृथक् नहीं है, जिनमें सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं एवं जो साथ ही साथ ब्रह्माण्डों के भीतर रहने वाले परमाणु–समूह

के भी भीतर पूर्ण रूप से अवस्थान करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव सम्प्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।36।।

भाव-भक्ति से भावित हृदय वाले मनुष्य अपने उपयुक्त रूप, महिमा, आसन, वाहन तथा आभूषणों को प्राप्त करके वेद कथित मंत्र-सूक्तों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिस् ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।37।।

जो अपने धाम गोलोक में अपनी स्वरूप शक्ति, चौंसठ कला-युक्त ह्लादिनीरूपा श्रीराधा तथा उनकी सखियों के साथ, जो कि उनके नित्य आनन्दमय चिन्मय रस से स्फूर्त एवं पूरित रहती हैं, निवास करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।38।।

जो स्वयं श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हैं, जिनके अनेकानेक अचिन्त्य गुण हैं, तथा जिनका शुद्ध भक्त प्रेम के अन्जन से रंजित भक्ति के नेत्रों द्वारा अपने अन्तर्हृदय में दर्शन करते रहते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।39।।

जिन्होंने श्रीराम, नृसिंह, वामन इत्यादि विग्रहों में नियत संख्या की कला रूप से स्थित रहकर जगत् में अवतार लिए, परन्तु जो भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्
तद् ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।40।।

जिनकी प्रभा उपनिषदों में वर्णित निर्विशेष ब्रह्म का स्रोत है, तथा करोड़ों ब्रह्माण्डों में अनन्त विभूतियों के रूप में भेद को प्राप्त होने के नाते निरवच्छिन्न, पूर्ण, अनन्त सत्य के रूप में प्रकट है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना।
सत्त्वावलम्बिपरसत्त्वं विशुद्धसत्त्वं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।41।।

सत्व, रज तथा तमोरूप–त्रिगुणमयी एवं जड़–ब्रह्माण्डसम्बन्धि वेदज्ञानविस्तारिणी माया जिनकी अपरा शक्ति है, उन्हीं सत्वाश्रय रूप परत्वनिबन्ध विशुद्धसत्वरूप आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य देवीमहेशहरिधामसु तेषु तेषु।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।43।।

जिन्होंने गोलोक नामक अपने सर्वोपरि धाम में रहते हुए उसके नीचे स्थित क्रमशः वैकुण्ठलोक, महेशलोक तथा देवीलोक नामक विभिन्न धामों के विभिन्न स्वामियों को यथायोग्य अधिकार प्रदान किया है, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका छायेव यस्य भुवनानि विभर्ति दुर्गा।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।44।।

भौतिक जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय की साधनकारिणी, चित्शक्ति की छाया–स्वरूपा माया शक्ति, जो कि सभी के द्वारा दुर्गा नाम से पूजित होती हैं, जिनकी इच्छा के अनुसार चेष्टाएँ करती हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात् सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद् गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।45।।

दूध जिस प्रकार खटाई या जामनादि के संयोग से दही में बदल जाता है, किन्तु फिर भी अपने उपादान–कारण दूध से वह न तो समान होता है और न पृथक् होता है; उसी प्रकार संहार कार्य के निमित्त जो शम्भु रूप में परिणत हो गए हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।46।।

जैसे मूल दीपक की लौ दूसरे दीपक में पहुँच कर यद्यपि दीपकों में पृथक् रूप से जलती है परन्तु गुण में एक समान होती है, उसी प्रकार जो स्वयं को विभिन्न प्रकाशों में समान रूप से प्रदर्शित करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यः कारणार्णजले भजति स्म योग-निद्रामनन्तजगदण्ड सरोमकूपः।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।47।।

जो अपनी आधारशक्ति-स्वरूप अनन्तशेष नामक श्रेष्ठमूर्ति का अवलम्बन कर अपने रोमकूपों में अनन्त ब्रह्माण्डों को समाये हुए, योगनिद्रा का आनन्द लेते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्यैक निश्चसितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।48।।

महाविष्णु के रोम छिद्रों से प्रकट ब्रह्मा एवं भौतिक ब्रह्माण्डों के अन्य स्वामीगण उनके (महाविष्णु के) एक श्वास-जितने काल तक ही जीवित रहते हैं; परन्तु वे महाविष्णु भी जिनकी एक विशिष्ट कला मात्र हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः स्वीयं कियत्प्रकटयत्यपि तद्वदत्र।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।49।।

सूर्य जिस प्रकार सूर्यकान्तादि मणियों में अपने कुछ तेज का संचार करता है, उसी प्रकार विभिन्नांश-स्वरूप ब्रह्मा जिनसे प्राप्त शक्ति द्वारा ब्रह्माण्ड का विधान करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः।
विघ्नान विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।50।।

तीनों लोकों के समस्त विघ्नों का विनाश करने हेतु शक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से श्रीगणेश जिनके चरणकमलों को अपने

मस्तक के दोनों कुम्भों पर धारण करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि।
यस्माद् भवन्ति विभवन्ति विशान्ति यं च गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।51।।

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, दिशाएँ, काल, आत्मा एवं मन से युक्त तीनों लोक जिनसे उत्पन्न होते हैं, जिनमें स्थित रहते हैं और जिनमें प्रलय के समय प्रवेश कर जाते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।52।।

इस जगत् के नेत्ररूप सूर्य, समस्त ग्रहों के अधिपति, सारे देवताओं के प्रतीक एवं अतिशय तेजस्वी होते हुए भी जिनकी आज्ञा से कालचक्र पर चढ़कर भ्रमण करते रहते हैं उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि ब्रह्मादिकीटपतंगावधयश्च जीवाः।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।53।।

धर्म, पापसमूह, वेद, तपस्याएँ और ब्रह्मा से लेकर कीटपतंग तक समस्त जीव जिनके द्वारा प्रदत्त शक्तियों से पालित होते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।54।।

जो एक इन्द्रगोप जैसे क्षुद्र कीड़े से लेकर देवराज इन्द्र पर्यन्त समस्त जीवों को उनके कर्मफलों के अनुरूप फलभोग कराते हैं, किन्तु जो अपने भक्तों के समस्त कर्मों को समूल नष्ट कर देते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः।
संचिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।55।।

क्रोध, काम, सहज स्नेह, भय, वात्सल्य, मोह, श्रद्धा तथा सेवा भाव से जिनका चिन्तन करके साधक उन्हीं भावों के यथायोग्य

रूपों को प्राप्त हो गए, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्द का मैं भजन करता हूँ।

श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम्।
कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च।।
स यत्र क्षीराब्धिः स्रवति सुरभीभ्यश्च सुमहान् निमेषार्धाख्यो वा व्रजति न हि यत्रापि समयः।
भजे श्वेतद्वीपं तमहमिह गोलोकमिति यं विदन्तस्ते सन्तः क्षितिविरलचाराः कतिपये।।56।।

मैं उस श्वेतद्वीप नामक अप्राकृत धाम को भजता हूँ जहाँ प्रेमिका लक्ष्मियाँ अपने शुद्ध भाव से परमपुरुष कृष्ण की अपने एकमात्र प्रेमी के रूप में सेवा करती हैं, जहाँ प्रत्येक वृक्ष कल्पतरु है, जहाँ की भूमि चिन्तामणिमय है, सारा जल अमृत है, सारे शब्द गीत हैं, सारा गमन नृत्य है, वंशी ही जहाँ प्रियसखी है, जहाँ की ज्योति चिदानन्दमय एवं परम आस्वाद्य है; जहाँ अनगिनत सुरभि गौएँ चिन्मय महाक्षीरसागरों को प्रवाहित करती हैं; जहाँ चिन्मय काल का नित्य अस्तित्व है, जिसमें भूत-भविष्य नहीं होने के कारण अर्धक्षण भी नहीं बीतता, और जो इस जगत् में विरले भगवन्निष्ठ सन्तों द्वारा ही गोलोक के रूप में जाना जाता है।

अथोवाच महाविष्णुर्भगवन्तं प्रजापतिम्।
ब्रह्मन् महत्त्वविज्ञाने प्रजासर्गे च चेन्मतिः।
पञ्चश्लोकीमिमां विद्यां वत्स! दत्तां निबोध मे।।57।।

श्रीब्रह्माजी की स्तुति सुनने के बाद सर्वेश्वरेश्वर श्रीगोविन्द भगवान् ब्रह्मा के प्रति बोले-हे प्रजापते ब्रह्मा! मेरे महत्त्व-विज्ञान को विशेष भाव से जानने की तथा प्रजा सृष्टि करने की यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो हे वत्स! मेरे द्वारा उपदिष्ट इस पञ्चश्लोकी विद्या को सावधान होकर सुनो।

प्रबुद्धे ज्ञानभक्तिभ्यामात्मन्यानन्दचिन्मयी।
उदेत्यनुत्तमा भक्तिर्भगवत्प्रेमलक्षणा।।58।।

श्रीभगवान् ने कहा-मेरे तत्त्वज्ञान या विज्ञान एवं भक्ति द्वारा अन्तःकरण के जागरित होने पर-अन्तःकरण के शुद्ध होने पर मेरी प्रेमलक्षणा चिन्मयरसरूपा सर्वोत्तमा भक्ति उदित होती है।

प्रमाणैस्तत् सदाचारैस्तदभ्यासैर्निरन्तरम्।
बोधयत्यात्मनात्मानं भक्तिमप्युत्तमां लभेत्।।59।।

प्रमाण, सदाचार तथा सदाचार के अभ्यास द्वारा निरन्तर अपने को भगवदाश्रित शुद्ध-जीवरूप में अनुभव करने से ही उत्तमा-भक्ति की प्राप्ति होती है।

यस्याः श्रेयस्करं नास्ति यया निर्वृत्तिमाप्नुयात्।
या साधयति मामेव भक्तिं तामेव साधयेत्।।60।।

श्रीभगवान् ने आगे कहा-'जिससे बढ़कर और कुछ भी कल्याणकारी नहीं है, जिसके द्वारा परमानन्द सुख की प्राप्ति होती है, जो मुझे प्राप्त कराने में समर्थ है, उस मेरी भक्ति का ही साधन करना चाहिये।

धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन्।
यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी।।
कुर्वन्निरन्तरं कर्म लोकोऽयमनुवर्त्तते।
तेनैव कर्मणा ध्यायन् मां परां भक्तिमिच्छति।।61।।

श्रीगोविन्द ने कहा- हे ब्रह्मा! अन्यान्य जितने धर्म हैं, उनका परित्याग करके एकमात्र विश्वासपूर्वक मेरा भजन करो। जैसी-जैसी श्रद्धा उदित होती है, वैसी-वैसी सिद्धि लाभ होती है। इस जगत् के लोग निरन्तर अनेक प्रकार के कर्म करते रहते हैं। उन सब कर्मों द्वारा ही मेरा चिन्तन करते हुए वे परा-भक्ति को प्राप्त करेंगे।

अहं हि विश्वस्य चराचरस्य बीजं प्रधान प्रकृतिः पुमांश्च।
मयाहितं तेज इदं विभर्षि विधे विधेहि त्वमथो जगन्ति।।62।।

हे ब्रह्मा! मैं इस स्थावर-जंगम ब्रह्माण्ड का प्रधान बीज या मूल-तत्त्व हूँ, प्रकृति (त्रिगुणात्मिका बहिरंगा शक्ति माया) तथा उसका द्रष्टा पुरुष (कारणसागरशायी महाविष्णु) भी मैं ही हूं। तुम भी मेरे द्वारा सृजन किये गये इस तेज-शक्ति को धारण कर रहे हो। इस तेज द्वारा स्थावर-जंगमात्मक समस्त सृष्टि-वस्तुओं का सृजन करो।

गोलोक एवं श्वेतद्वीप एक ही हैं

श्रीब्रह्माजी ने ब्रह्मसंहिता के श्लोक 56 से पूर्व के 27 श्लोकों में आदिपुरुष स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्द की अनेकविध स्वरूप-वैचित्री के साथ-साथ उनके चरणों में भजन की प्रार्थना की है। श्लोक 56 में श्रीगोविन्द के चिन्मय गोलोक-धाम के स्वरूप का उन्होंने चित्रण किया है।

श्रीगोलोक को ही 'वृन्दावन' एवं 'श्वेतद्वीप' नाम से शास्त्रों में वर्णन किया गया है। इस श्लोक में श्वेतद्वीप आख्या से श्रीवृन्दावन धाम का वर्णन किया है। श्रीवृन्दावन धाम में अशेष-विशेष चिन्मय सम्पत्ति का एक अथाह सिन्धु प्रवाहित हो रहा है।

स्वरूप-शक्ति या सन्धिनी-शक्ति अंश-प्रधान शुद्ध सत्त्वरूपा आधार शक्ति ही धामरूप में अपने पूर्णतम विलास एवं उपकरणों के साथ प्रकटित है। वैसे तो द्वारका, अयोध्या, वैकुण्ठ-परव्योमादि समस्त भगवद्धाम ही स्वरूप-शक्ति अंश प्रधान हैं, किन्तु श्रीवृन्दावन धाम में उसका जितना साहजिक सर्वोत्कृष्ट विलास एवं वैभव-सिन्धु उच्छलित हो रहा है, उतना और किसी भी भगवद्धाम में नहीं है।

श्रीगोलोक-वृन्दावन की भूमि चिन्तामणिमय है और वहाँ के समस्त वृक्ष ही कल्पवृक्ष हैं तथा वहाँ की समस्त गौएँ कामधेनु हैं- ये तीनों मनचाही वस्तु देने वाली हैं, किन्तु ब्रज-परिकरगण इतने पूर्णकाम हैं, श्रीकृष्ण-सेवा कामना से पूर्ण-हृदय हैं कि उनके मन में उसके अतिरिक्त कुछ माँगने की अपेक्षा ही नहीं है।

चिन्तामणियों को वहाँ की ब्रजरमणीगण केवल अपने चरणनूपुरों में जड़कर सजाये रहती हैं, जिससे नृत्य-गान में उनकी उस शोभा को देखकर श्रीगोविन्द आनन्द लाभ करें।

कल्पतरुओं से वे केवल श्रीगोविन्द के शृंगार के लिये पुष्पों की याचना करते हैं अथवा प्रियतम के सुख विधान करने के लिए

ब्रजसुन्दरीगण अपने शृंगार के लिये उनसे पत्र–पुष्प ही स्वीकार करती हैं।

इसी प्रकार कामधेनुओं से केवल वे दूध ही दूध अंगीकार करते हैं। ब्रजपरिकरों का सहज बोल–चाल ही दिव्य संगीत के समान है और सहज–गमन ही अद्‌भुत नृत्यतुल्य है। चिदानन्द ज्योति ही मूर्तिमान होकर चन्द्र–सूर्य रूप में सबका आनन्द विधान करती है। श्रीगोविन्द की कान्तागण–ब्रजगोपियाँ महा लक्ष्मी–स्वरूपा हैं, सर्व कान्तिमयी एवं सर्व सम्मोहिनी हैं। उनके गुण–रूप–पराभूत सौन्दर्य–लावण्य लक्ष्मी जी के रूप–गुण सौन्दर्यादि को हरने वाले हैं।

वहाँ प्राकृत काल की गति नहीं है। निमेष–पलक, पल–घड़ी, दिन–रात, पक्ष–मास–वर्ष–यह काल–विभाग वहाँ नहीं हैं, न वहाँ भूतकाल है न भविष्यकाल। नित्य एक चिन्मय विकार रहित काल वर्तमान है।

जब परमपुरुषकान्त जागते हैं, तब प्रभात उपस्थित होता है, जब शयन करते हैं तब रात्रि प्रकटित होती है।

जब होरी लीला की इच्छा करते हैं, तब फाल्गुन–मास और जब झूला झूलना चाहते हैं तब सावन–मास सेवा सौभाग्य लाभ करता है। प्रिया–प्रीतम की लीलाओं के अनुरूप काल अनुगमन करता है, न कि काल के अनुरूप लीलाएँ होती हैं। प्राकृतबुद्धि के अतीत परम अचिन्त्य है वहाँ का सर्वस्व।

कामधेनुओं के स्तनों से वंशी–ध्वनि के श्रवणावेश में इतना दुग्ध क्षरित होता रहता है कि चारों ओर एक समुज्ज्वल कान्तिमय क्षीरसमुद्र ही उस श्रीवृन्दावन में तरंगायित होता रहता है, जिससे श्रीगोविन्द के गोलोकधाम–या वृन्दावन–धाम का एक नाम 'श्वेतद्वीप' है। अर्थात् ऐसा द्वीप जहाँ जल के स्थान पर श्वेत या सफेद दुग्ध भरा है।

परन्तु इस नाम को अथवा इस धाम की साहजिका सम्पदा को, केवल कोई विरले महापुरुष ही अनुभव करते हैं। जो ब्रज की विशुद्ध रागात्मिका–भक्ति का अनुगमन कर उनकी सेवा–चिन्तन

परिपाटी का अनुसरण करते हैं या सर्वोत्कृष्ट रागानुगा भजन मार्ग में जिनका श्रीहरिगुरु कृपा से प्रवेश हुआ है। जिनके एकमात्र उपास्य हैं श्रीवृन्दावनाधिपति स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्द। वही महाभाग जीव ही इस श्वेतद्वीप-धाम को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार श्रीब्रह्माजी ने "ईश्वरः परमः कृष्ण" (प्रथम श्लोक)-इत्यादि से लेकर श्रीगोविन्द की परम ईश्वरता का या स्वयं-भगवत्ता का निरूपण करते हुए जब उनकी भजन-प्रार्थना के साथ-साथ उनके सपरिकर, सोपकरणादि श्रीगोलाकधाम-श्वेतद्वीप धाम की स्तुति-महिमा का गान किया तो श्रीगोविन्द उन पर अति प्रसन्न हो उठे और उन्हें अन्त के पाँच श्लोकों में विद्या-पराभक्ति विद्या का उपदेश दिया।

(उपर्युक्त लेख 'गोलोक एवं श्वेतद्वीप एक ही हैं'-
व्रजविभूति श्रीश्यामदास जी द्वारा रचित ब्रह्मसंहिता
की श्रीजीवकृपानुगा टीका से लिया गया है।
सटीक ब्रह्मसंहिता श्रीहरिनाम प्रेस में उपलब्ध है।)



प्रकाशन-अनुदान

जय श्री राधे

श्रीश्रीगुरुगौरांग की कृपा एवं उनकी अहैतुकी प्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनका एकमात्र उद्देश्य है मानव को भक्ति की शिक्षा देकर येन-केन प्रकारेण श्रीहरिनाम में लगाना। शास्त्रों में एक नहीं, अनेक बार इस बात को दुहराया गया है कि कलियुग में इस भवसागर से पार होने का एकमात्र उपाय श्रीहरिनाम का आश्रय ही है।

परम आदरणीय श्रीपाद अनिरुद्धदास जी का यह परम विनीत आग्रह है कि ये ग्रन्थ घर-घर में पहुँचें। अतः इनका वितरण निःशुल्क हो। उनकी इच्छानुसार ऐसा ही किया गया। हमारे दयालु उदारमना श्रेष्ठ सज्जन भगवद्भक्तों ने इसके प्रकाशन और वितरण हेतु धनराशि प्रदान की। वे अपने धन के सार्थक उपयोग द्वारा ग्रन्थ-सेवा कर गुरुगोविन्द की कृपा और सौभाग्य का साक्षात् अनुभव भी कर रहे हैं।

(अभी कुछ समय से ये ग्रन्थ अनुपलब्ध होने लगे और पर्याप्त द्रव्य न होने के कारण इनके पुनः प्रकाशन में विलम्ब होने लगा था।) अतः ग्रन्थों के पूरी तरह निःशुल्क वितरण के साथ-साथ स्वेच्छा से प्रदान की गयी कितनी भी राशि अथवा लागत मात्र राशि स्वीकार की जाने लगी है।

यदि आप भी इस सौभाग्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके प्रकाशन हेतु अपनी शुद्ध कमाई में से धनराशि भिजवा सकते हैं।

निवेदक : डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया

दूरध्वनि : 9068231415

email-harinampress@gmail.com

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति

प्रवचनों का संग्रह | 8



अनिरुद्ध दास अधिकारी

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति

भाग – 8



HkDr dks bl h tUe esa Hkxoku` ds n'ku

– अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण के लिए श्री अम्बरीष दास प्रभुजी
अन्य चित्रों के लिए गूगल व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान), भारत
मो० 7742836121

प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ
गुरु पूर्णिमा : 27 जुलाई 2018
द्वितीय संस्करण-2000 प्रतियाँ
शरद पूर्णिमा : 31 अक्टूबर 2020

ग्रन्थ प्राप्ति हेतु नीचे लिखे नम्बरों पर अपना पता भेजें
8287567726, 9953047744, 9911356599

निःशुल्क वितरण
FREE DISTRIBUTION

मुद्रण-संयोजन
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन-281121 - मोबाइल : +91 7500987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्–प्राप्ति

भाग – 8

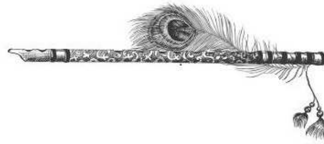
कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
,o
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

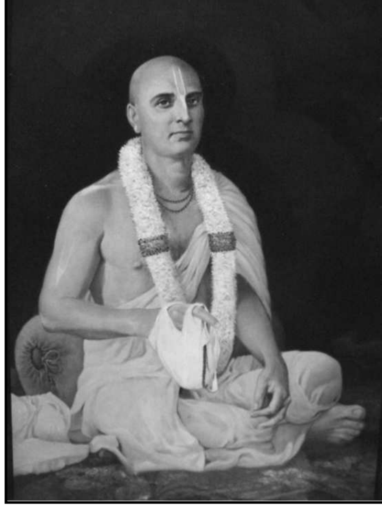
y[kd %
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य
अनिरुद्ध दास अधिकारी

विषय-सूची

प्रवचन श्रृंखला



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।



समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु

अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट

ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव

गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से

यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है

श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,

उन्हीं के कर कमलों में

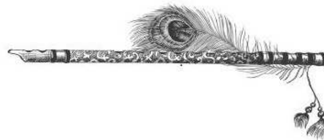
सादर, सप्रेम समर्पित है

'अनिरुद्ध दास'

कृपा – प्रार्थना

¼vfu#) nkl vf/kdkjh½

gs esjs xq#nso d#.kk&flU/kq! d#.kk dhft;sA
gw¡ v/ke] vk/khu] v'kj.k] vc 'kj.k esa yhft;sAA
[kk jgk xksrs gw¡ eSa] Hko&flU/kq ds e>/kkj esaA
vkljk gS u dksbZ] nwtk bl lalkj esaAA
eq>esa gS ti ri u lk/ku] vkSj ugha dqN Kku gSA
fuyZTtrk gS ,d ckdh] vkSj cl vfHkeku gSAA
iki cks> ls ynh] uS;k Hk¡oj esa tk jghA
ukFk nkSM+ks vkSj cpkvks] tYn Mwch tk jghAA
dgk¡ tkÅ¡ dgha BkSj ugha gS] vki flok esjk vkSj ugha gSA
gs esjs xq#nso ek/ko] eq>ij d#.kk dhft,AA
gw¡ v/ke] vk/khu] v'kj.k] eq>s 'kj.k esa yhft,AA
vki Hkh ;fn NksM+ nksxs] fQj dgk¡ tkÅ¡xk eSaA
tUe&nq%[k dh uko dSls ikj dj ikÅ¡xk eSaAA
lc txg eSaus HkVd dj] vc 'kj.k yh vkidhA
ikj djuk ;k u djuk] nksuksa ethZ vkidhAA
tUe&tUe dk eSa rqEgkjk] eSaus thou rqe is gkjkA
gs esjs xq#nso ek/ko] viukiu fuHkk yhft,AA
gw¡ v/ke] vk/khu] v'kj.k] eq>ij d#.kk dhft,AA

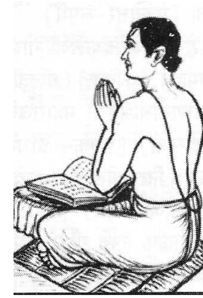


॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

वैष्णव प्रार्थना !

प्रत्यक्ष प्रैक्टिकल अनुभव अनुसार

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन



प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी। – अनिरुद्ध दास

विनम्र निवेदन

çekLin Hkäx.k]

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें।

"इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" के आठवें भाग का द्वितीय संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति ग्रंथ में केवल मात्र श्री हरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसीलिए इन ग्रंथों को भक्तों में निशुल्क बांटने से भगवान् श्री कृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। हिंदी भाषा में, इन ग्रंथों को छपवा कर उनको निशुल्क वितरण करने का अधिकार 'श्री हरिनाम प्रेस' वृंदावन को है, पर यदि कोई इन ग्रंथों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा। ऐसा मेरे श्री गुरुदेव ने बोला है।

'एक शिशु की विरह वेदना', 'कार्तिक महात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' (1–8) के सभी भाग नियमित रूप से श्री हरिनाम प्रेस में निरंतर छप रहे हैं और उनका निशुल्क वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से चल रहा है जिसके लिए हम ह्रदय से उनके बहुत आभारी हैं। इसके साथ–साथ 'अति शीघ्र भगवद् प्राप्ति' पुस्तकों का हिन्दी, बंगला, पंजाबी और गुजराती भाषा में प्रकाशन कर भक्तों को वितरित किया गया है। श्री गुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में लगभग 70000 ग्रंथ छपे और वितरित हुए हैं। इन ग्रंथों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम की 64 माला करने लगे हैं। भारत में मुंबई, बेंगलुरु, दिल्ली, पुणे, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गांवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इंटरनेट, ईमेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुँच चुके हैं।

अंत में मेरी सभी भक्तजनों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वह मेरे गुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

Þgj¢ Ñ".k gj¢ Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj¢ gj¢A
gj¢ jke gj¢ jke jke jke gj¢ gj¢Aß

इस महामंत्र की कम से कम 64 माला अर्थात् एक लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रंथ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है, तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

gfjcky!
vfu#) nkl

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

प्रस्तावना

ç.kke e=
uek ukefu"Bk;] Jhgfjuke çpkfj.kA
Jhgfjx#&o".kofç;efr] Jh vfu#)nkl k; r ue%AA

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति भाग–8 पुस्तक श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी जी के उन प्रवचनों से उद्धृत है जो उन्होंने श्री द्वारकाधीश जी के स्वप्न आदेश होने के बाद 1 सितम्बर 2016 से 30 सितम्बर 2017 तक हर शुक्रवार को फोन द्वारा दिए। श्री द्वारकाधीश जी ने इस स्वप्न आदेश में उन्हें बताया कि यह प्रवचन वैकुण्ठ तथा गोलोक जाने का टिकट है और जो भी भाग्यवान व सुकृतिवान इन प्रवचनों को सुनेगा उसको वैकुण्ठ अथवा गोलोक जाने का टिकट 100 प्रतिशत प्राप्त होगा।

अभी इन प्रवचनों को शुरू हुए केवल 2 महीने ही हुए थे कि बाबा (द्वारकाधीश जी) ने अपने प्यारे पोते (श्री अनिरुद्ध दास जी का ठाकुर जी के साथ नित्य सम्बन्ध दादा का है) को दिए इस वचन का पुष्टिकरण करते हुए नवम्बर 2016 एकादशी को दुबारा से स्वप्न में दर्शन देकर बताया, "मैंने उन सारे भक्तों का वैकुण्ठ का टिकट रिजर्व कर दिया है जो तुम्हारे साथ जुड़े हुए हैं। अब चाहे वे 10 साल के बाद या 50 साल के बाद भी अपना शरीर छोड़ें उनको वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति होगी।"

अगले ही दिन बहुत सारे भक्त उनको मिलने के लिए एकत्र हुए तथा श्रील गुरुदेव इस स्वप्न को दुबारा बताते हुए अपने आँसुओं को नहीं रोक पाए और ठाकुरजी की इस कृपा और दयालुता को देख कर बार–बार रोये जा रहे थे। श्रील गुरुदेव ने बताया कि तुम सब की अब वैकुण्ठ की टिकट तो पक्की हो चुकी है परन्तु गोलोक धाम उतनी देर प्राप्त नहीं होगा जितनी देर तुम ठाकुर जी के लिए रोओगे नहीं तथा ठाकुरजी से विरह नहीं होगा। जैसे ही भक्त ठाकुर जी के लिए रोता है तो ठाकुर जी को विवश होकर उसको सम्बन्ध ज्ञान देना ही पड़ता है।

श्रील गुरुदेव ने इस पुस्तक के माध्यम से वैकुण्ठ तथा गोलोक जाने के रास्ते का प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) वर्णन किया है। उन्होंने इस पुस्तक

में भगवद् प्राप्ति हेतु आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन के साथ–साथ सांसारिक मर्यादाओं को भी प्रकाशित किया है जो हम आजकल की भागदौड़ में भूलते जा रहे हैं। यहाँ पर यह बताना अति आवश्यक है कि श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी साधारण साधक न होकर गोलोक निवासी हैं और उन्होंने गोलोक के रास्ते को पहले ही देख रखा है और उनका आविर्भाव केवल हरिनाम का प्रचार करने हेतु ही हुआ है।

पृथु महाराज जी के जन्म उपरान्त जब जगद्गुरु ब्रह्माजी देवता और देवेश्वरों के साथ पधारे तो उन्होंने वेनकुमार पृथु के दाहिने हाथ में भगवान् विष्णु की हस्तरेखाएँ और चरणों में कमल का चिह्न देखकर उन्हें श्रीहरि का ही अंश समझा, क्योंकि जिसके हाथ में दूसरी रेखाओं से बिना कटा हुआ चक्र का चिह्न होता है, वह भगवान् का ही अंश होता है। (श्री भा. 4.15.9–10)

श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी जी के हाथों में 7 भगवद् आयुध चिह्न– शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला तथा दो त्रिशूल हैं।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' (1–7 भाग) का निचोड़ श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी जी ने इस पुस्तक (भाग 8) के माध्यम से बताया है इसलिए हर उस साधक के लिए यह पुस्तक पढ़ना अनिवार्य है जो इसी जन्म में ही भगवद् धाम को प्राप्त करना चाहता है।

इस पुस्तक को जल्द से जल्द छपवाने की इच्छा तथा लालसा को श्रील गुरुदेव में देखा गया था क्योंकि वे हमेशा पूछते रहते थे कि पुस्तक कब तक छप जाएगी जो कि इस पुस्तक के प्रति उनकी उत्सुकता और जीवों के प्रति करुणा को दर्शाता है। इसका एक उदाहरण है कि जब उन्होंने एक दिन कहा, "नित्य प्रति बहुत लोग मर रहे हैं और इस पुस्तक के लाभ से वंचित रह रहे हैं तथा यह मेरी आखिरी पुस्तक है इसलिए यह पुस्तक जल्द से जल्द छप जानी चाहिए।" उनके यह शब्द इस पुस्तक में छिपे हुए बहुत सारे गूढ़ रहस्यों की ओर संकेत कर रहे हैं जो कि साधकों के लिए भगवद् प्राप्ति का सरल मार्ग खोल रहे हैं।



Jhy x#no dh lok e]
vkid nkl

इस ग्रंथ के लेखक
महाभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ
श्रीपाद अनिरुद्धदास अधिकारी जी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी प्रभुजी आज 93 वर्ष की आयु में भी प्रतिदिन 3 से 5 लाख हरिनाम अर्धरात्रि 12 से 1 बजे जागकर एक ही जगह में बैठ कर करते हैं और प्रतिदिन केवल 3 से 4 घंटे रात्रि विश्राम करते हैं। आज तक ठाकुर जी ने आपको केवल हरिनाम पर 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक 8 ग्रन्थ लिखवाए हैं जिसमें भाग 1 से 7 ठाकुर जी ने आपको पत्रों के रूप में रात को लिखवाये तथा भाग 8 प्रवचनों के रूप में हर शुक्रवार को लगभग एक साल तक आपके मुख से बुलवाये।

आपका जन्म आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद–पूर्णिमा (रास–पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1565 (23 अक्तूबर, सन् 1928) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत जी, जो कि एक गृहस्थी होकर भी एक विरक्त संत स्वरूप थे, के घर छींड की ढाणी, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) में हुआ।

आप पेशे से एक सिविल इंजीनियर थे तथा इस पद पर बीकानेर में काम करते हुए आपको हनुमान जी के छद्म रूप में दर्शन हुए, जिन्होंने आपको बताया कि आप एक साधारण मनुष्य न होकर गोलोक निवासी हैं, जिसका पुष्टिकरण हनुमान जी ने आपको आपके हाथों में अंकित 7 भगवद् चिह्न दिखाकर किया और इस बात को 74 साल की आयु तक गोपनीय ही रखने को कहा और बताया कि 74 साल के बाद इस रहस्य को सब को बता देना वरना तुम्हारा प्रचार नहीं हो पायेगा। अतः आप केवल शिक्षा गुरु के रूप में सभी साधकों को हरिनाम करने की शिक्षा देते हैं तथा आज तक आपने कोई भी शिष्य नहीं बनाया है।

आप का आज तक लगभग 700 करोड़ से भी अधिक हरिनाम हो चुका है जिसके प्रभाव से आपको आज 93 साल की आयु में भी कोई रोग नहीं है तथा आपकी आँखें 5 साल के बच्चे की तरह और ताकत 20 साल के जवान की तरह है। आप नम्रता की साक्षात् मूर्ति हैं एवं अपने शिक्षा–शिष्यों को भी अति स्नेह व प्यार देते हैं और सबको पूजनीय मानते हैं

क्योंकि आप यह समझते हैं कि मेरा प्यारा (भगवान्) सभी के हृदय में बैठा हुआ है तथा किसी को पैर छूने, माला पहनाने, भेंट आदि देने की आज्ञा नहीं देते हैं। आपका भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध डेढ़ साल के बच्चे (दादा–पोते) का है व आप प्यार से भगवान् को बाबा कहकर बुलाते हैं।

आपको चंद्र सरोवर पर सूरदास जी की कुटीर में भगवान् के साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए व आपके साथ वाले 10–11 भक्तों को कुछ नजर नहीं आया और उसी समय आपने भगवान् को प्रार्थना की, "बाबा, आप इनको भी दर्शन दो वरना यह मुझे झूठा समझेंगे।" आपकी इस प्रार्थना वश ठाकुर जी ने उनको दिव्य दृष्टि देकर छाया रूप में ही दर्शन दिए, साक्षात् दर्शन नहीं दिए क्योंकि वे ठाकुर जी के साक्षात् दर्शन का तेज प्रकाश सहन करने के योग्य नहीं थे। इन सभी भक्तों के नाम 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' (भाग–1) में अंकित हैं। भगवान् के दर्शन तो बहुत भक्तों को हुए हैं परन्तु दूसरों को भगवान् के दर्शन करवाना उनके भजन–बल तथा उनके भगवान् से अति प्रिय सम्बन्ध का प्रमाण है।

दूसरी बार ठाकुरजी ने ट्रेन में एक छोटे बच्चे के छद्म रूप में आकर, आपको भ्रमित करके खीर खिलाई तथा जब आपको ट्रेन रुकने के बाद अपने साथी मित्र से इस भ्रम का पता चला तो आपने ठाकुरजी द्वारा दिए हुए मिट्टी के करवे को रख लिया व अगले 6 महीनों में थोड़ा–थोड़ा तोड़कर खाया।

lc èkjrh dkxn d:] y[kuh lc cujk;A
lkr leæ dh efl d:] x# x.k fy[kk u tk;AA

(संत कबीर जी का दोहा)

उत्तम वैष्णवों तथा गुरुदेव की महिमा का गान सात समुद्र के पानी को स्याही बनाने से, वनों के सब पेड़ों की कलम बनाने से तथा सारी धरती को कागज बनाने से भी नहीं किया जा सकता इसलिए हमने कुछ शब्दों में सूर्य को दीपक दिखाने का प्रयास किया है।



Jhy x#no dh lok e]
vkid nkl

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय एवं विशेष अनुग्रह

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी-नामिने।।
कृष्णाभिन्न-प्रकाश-श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म-गुरुप्रीति-प्रदर्शिने।
ईशोद्यान-प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार-सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द-सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपाद–पद्मस्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज को नमस्कार है। श्री कृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा–वरुणालय–स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु–देव–भाईयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु–प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म–स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनन्दवर्धनकारी–गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्री चैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद,

श्रीकृष्ण–चैतन्य–आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बांग्ला देश) में फरीदपुर जिले के कांचन–पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए।

मेरे गुरुजी ने मुझे हरिनाम व दीक्षा एक ही बार में सन् 1952 में दी। यह उस समय की बात है जब परम पूज्य भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज जी, परम पूज्य भारती महाराज जी सब ब्रह्मचारी थे और एक भी मठ नहीं था और गुरुजी को राधा–कृष्ण के विग्रह लेने जयपुर खुद आना पड़ता था। पहली बार तो वे ऑर्डर देने आते थे कि इतने साइज (नाप) के राधा–कृष्ण होने चाहिएँ और आर्डर देकर चले जाते थे। फिर जब विग्रह बनने शुरू हो जाते तो वे बीच में एक बार देखने आते थे कि विग्रह कैसा बना और अगर कोई कमी होती थी तो बता देते थे, जैसे कि राधारानी का सिर मोटा है और इसको पतला करो और तीसरी बार विग्रह को लेकर जाने के लिए आते थे। इसलिए वे एक विग्रह के लिए तीन बार आते थे। उन्होंने मेरे परिवार के अलावा पूरे राजस्थान में किसी को शिष्य नहीं बनाया था। इसलिए मेरा संपर्क उनके साथ ज्यादा रहा। क्योंकि जब भीड़ होती है तो संपर्क कम हो पाता है और तब भीड़ ही नहीं होती थी तो अच्छी तरह से ठाकुर जी के बारे में गुरु जी से बातें होती रहती थीं। तो मैं गुरु जी को यही कहता था, "गुरुजी मुझे कुछ नहीं चाहिए मुझे भगवान् के दर्शन कब होंगे?" वे कहते थे, "हरिनाम से होंगे बस।" उनकी वजह से ही मुझे आज हरिनाम पर 100% निष्ठा हो गयी। इसलिए मैंने हरिनाम के अलावा कुछ नहीं किया और सारी जिंदगी मैंने हरिनाम ही किया है बस।

पुरश्चरण तो मैंने 2 बार पहले किया है। सबसे पहले तो मैंने कृष्ण मंत्र का पुरश्चरण किया। कृष्ण मन्त्र करने से विरह बहुत होता था और मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त हो गई और मैं जो भी बोलता था वह

हो जाता था जैसे कि कोई पूछता, "मेरी नौकरी कब लगेगी?" तो मैं ऐसे ही कोई तारीख बोल देता था जैसे कि 27 मई को लग जाएगी और कोई पूछता था, "मेरी शादी कब होगी?" तो मैं बोल देता था कि 9 फरवरी को हो जाएगी तो उसी तारीख को उनका काम हो जाता था। एक बार गुरु जी जयपुर में विग्रह देखने के लिए आये हुए थे और एक चीफ इंजीनियर भी गुरुजी को मिलने आता था। एक दिन चीफ इंजीनियर ने गुरुजी के सामने ही यह सब कुछ कह दिया और फिर गुरुजी ने कहा, "अब तुम किसी का हाथ मत देखना।"

गुरुदेव जयपुर में कभी–कभी राधा–गोविन्द जी के गोस्वामीजी के घर, कभी सोमी हलवाई की धर्मशाला में तथा कभी जगदीश जी के यहाँ ठहरते थे तो मैं उनके पास जाता था। वे कहते थे, "मेरे पास आया करो और जब भी मैं आऊँ वहाँ पर आओ और वहीं प्रसाद पाओ।" तो गुरुजी जब भी जयपुर आते तो मैं जयपुर उनसे मिलने जाता। जयपुर में मैं जहाँ पर रहता था गुरुजी वहाँ उनके घर में भी आते थे। मेरी धर्म पत्नी गुरुजी को गरम–गरम फुल्के खिलाया करती थी।

एक बार मुझे पता चला कि मेरी साली में प्रेत आता है और मेरे ताऊ जी ने, बहुत पैसे वाले होने के कारण, बहुत बड़े–बड़े मौलवियों और पंडितों को बुलाया, पर प्रेत नहीं निकला और अंत में उन्होंने मुझे कहा, "क्या तुम्हारे गुरुजी इस प्रेत को निकाल सकते हैं?" तो मैंने कहा, "हाँ।" और मैंने गुरुजी को याद करते हुए हरिनाम करके उनके गले में 7 गाँठों वाला धागा बाँध दिया और वह प्रेत चला गया और फिर मेरे गुरुजी की कृपा से कभी नहीं आया।

फिर एक बार मेरे गुरुजी एक ही समय दो जगह पर प्रकट हुए। जब वे स्वयं आसाम में थे तो उसी समय मेरे ताऊ जी को हमारे गाँव में भी साक्षात् दर्शन दिए थे। ऐसा नहीं कि उनको स्वप्न में दर्शन दिया हो, साक्षात् दर्शन दिया था। ताऊ जी ने बाद में बताया, "उनके ललाट पर भी तुम्हारे जैसा तिलक था और 6–7 फुट लम्बे थे, भगवा कपड़े पहने हुए थे। बहुत सुन्दर थे।" तो मैंने कहा, "यह तो मेरे गुरु जी थे।"

मेरे ऊपर गुरुजी की बहुत कृपा थी क्योंकि मैं राजस्थान में उनका अकेला ही शिष्य था तथा उन्होंने और किसी को शिष्य नहीं बनाया और बाद में बस हमारे परिवार को शिष्य बनाया।

एक बार गुरुजी जयपुर में श्रीश्री राधा–गोपीनाथ जी के मंदिर में बैठे थे और मैं भी वहाँ पर ही था। मंदिर के गोस्वामी जी ने अचानक उनके चरण के तलवे को देखा कि उसमें भगवत् चिह्न है तो उसने फूल लाकर उनके चरणों में चढ़ाये और दण्डवत् किया तो गुरु जी ने अपने पैर को छिपा लिया।

श्रीश्री राधा–गोविन्द देव जी के मंदिर में जो कि श्री रूप गोस्वामी जी के श्रीविग्रह हैं, वहाँ पर गुरु जी बहुत जोर से नाचते थे। उनकी आवाज बहुत बुलंद थी। दीर्घाकृति, गौरवर्ण और बहुत लुभावने, सुन्दर थे और मुझे केवल वही गुरु के रूप में पसंद आए। मुझे पहली बार गुरुजी के दर्शन वहीं श्रीराधा–गोविन्द देव जी के मंदिर में ही हुए और मेरी दीक्षा का पूरा खर्चा गुरु जी ने किया था क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं। मुझे कपड़े भी उन्होंने ही दिए, हवन सामग्री इत्यादि भी सब कुछ उन्होंने ही दिया। बाद में जब मुझे तनखाह मिलती तो मैं ग्यारह रुपये मनी–ऑर्डर से हर महीने गुरु जी को कलकत्ता में भेजता था।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा तिथि को, प्रातः 9 बजे महासंकीर्तन के बीच मेरे गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट हो धाम पधार गये।

मेरे गुरुदेव की अहैतुकी कृपा वर्षण एवं प्रेरणा के फलस्वरूप ही मैं "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1–8) ग्रंथ केवल एक ही विषय "हरिनाम" पर लिख सका। इन ग्रंथों में मेरे गुरुदेव की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। मुझे जो भी प्राप्त हुआ है, उनकी असीम अनुकंपा से ही हुआ है। आज भी मैं अपने गुरुदेव को हर समय अपने साथ पाता हूँ।

– अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण-कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति** हो जायेगी।

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

मंगलवर्धनी स्तुति

oUn·g Jhxjk% Jh;rindey Jhx:u o".kok'p
Jh:i lkxtkr lgx.kj?kukFkkfUor r ltnhoeAA
lk}r lko/kr ifjtulfgr Ñ".kprU;no
Jhjk/kkÑ".kiknku lgx.kyfyrk Jhfo'kk[kkfUork'pA

ॐ vKkufrfejkU/kL; Kkuk¥tu'kykd;kA
p{k#Uehfyr ;u rLe Jhxjo ue%A

ue% ॐ fo".kiknk; :ikuxfç;k; pA
Jher Hkfänf;r ek/koLokeh&ukfeuAA
Ñ".kkfHkUu&çdk'k&Jher ;nhurkfj.kA
{kekx.kkorkjk; xjo çHko ue%AA
lrhFkçhfr l)e&x#çhfr&çnf'kuA
b'kk|ku&çHkkoL; çdk'kdk; r ue%AA
Jh{k= çHkiknL; LFkkuk)kj&ldhr;A
lkjLor x.kkuUn&lEo/kuk; r ue%AA

/;kuey xjkefr% itkey xjk% inA
e=ey xjkokD; ek{key xjk% ÑikAA

x# Ñik fg doy] x# Ñik fg doyA
x# Ñik fg doy] x# Ñik fg doyAA

x#cãk x#fo".kx#nok eg'oj%A
x#% lk{kkRij cã rLe Jhxjo ue%AA

v[k.Me.Mykdkj 0;kIr ;u pjkpjeA
rRin nf'kr ;u rLe Jhxjo ue%AA

lk{kk)fjRou leLr 'kkL=mäLrFkk Hkk0;r ,o lnfHk%A
fdUr çHkk;% fç; ,o rL; oUn xjk% Jh pj.kkjfoUne AA

uek cã.; nok; xkckã.k fgrk; p A
txr fgrk; Ñ".kk; xkfoUnk; uek ue%AA

oUnk; ryl h n0;; fç;k; d'koL; p A
fo".kHkfäçn nfo! lR;oR; uek ue%AA

okNk&dYir:H;'p Ñik&fl/kH; ,o p A
ifrrkuk ikouH;k =dkfyd o".koH;k uek ue%AA

गोलोक धाम का टिकट

1

1 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमाभक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

देखो भक्तगणो! आपको मैं वैकुण्ठ ले जाऊँगा, आप ध्यान से सुनो क्योंकि मैं गोलोक धाम से आया हूँ और गोलोक धाम का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) मेरे पास है इसलिए मैं आपको वैकुण्ठ ले जा सकता हूँ। अब मेरी बात सुनो!

gfj ls cMk gfj dk uke] var esa fudyk ;g ifj.kke
gfj ls cMk gfj dk uke] Ñ".k ls cMk Ñ".k dk uke
var esa fudyk ;g ifj.kke] jke ls cMk jke dk uke
var esa fudyk ;g ifj.kke] gfj ls cMk gfj dk uke
gfj us rkjs Hkä egku vkSj uke us rkjs vuar tgku
Ñ".k us rkjs Hkä egku vkSj uke us rkjs vuar tgku
jke us rkjs Hkä egku vkSj uke us rkjs vuar tgku
gfj ls cMk gfj dk uke] var esa fudyk ;g ifj.kke

– अनिरुद्ध दास

अब देखो कि गुरु का आचरण कैसा होना चाहिए? तभी तो वह वैकुण्ठ ले जा सकता है तभी वह गोलोक ले जा सकता है। उसका आचरण कैसा होना चाहिए? यह मैं आपके चरणों में निवेदन करूँगा। जो मैं आपको कहता हूँ, उसे सुनो!

देखिये गुरु कैसा होना चाहिए? शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु, उसका चरित्र कैसा होना चाहिए? वह बता रहा हूँ।

- जिसका चरित्र, आचरण शुद्ध हो।
- जिस पर माया का प्रभाव न पड़ता हो।
- काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार से दूर हो।
- जो निस्वार्थ भाव से सबका भला चाहता हो।
- जो कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहता हो।
- जो भजनशील हो।
- जो शास्त्रीय चर्चा से बाहर का साधन भी बताता हो और वह साधन प्रत्यक्ष में हो रहा हो तो समझो वह भगवान् का भेजा हुआ पार्षद है।
- जिसके हाथ, पैरों में भगवद् आयुधों के चिह्न होंगे, वही भगवान् का भेजा हुआ पार्षद है।
- जिसको भगवान् का साक्षात् दर्शन हुआ हो और अन्य को भी दर्शन करवाने की सामर्थ्य हो।
- जो असंभव कर्म को संभव करके दिखा रहा हो, वही भगवद् प्रेमी दूसरों को अपने साथ वैकुण्ठ ले जा सकता है।

जो स्वयं हरिनाम करता नहीं है और दूसरों को हरिनाम करने की प्रेरणा देता रहता है, उसका कोई भी प्रभाव नहीं होगा, वह केवल धर्म का व्यापारी है, वह किसी का उद्धार नहीं कर सकेगा। सच्चा चुम्बक ही जंग लगे लोहे को अपनी ओर खींच सकता है अर्थात् जो स्वयं हरिनामनिष्ठ होगा वही दूसरे को हरिनाम करवा सकेगा वरना सब व्यर्थ होगा। उदाहरण से एक आई स्पेशलिस्ट (आँखों का विशेषज्ञ) ही अन्य किसी को आई स्पेशलिस्ट (आँखों का विशेषज्ञ) बना सकता है वरना वह अन्य की आँख ही फोड़ देगा।

जो कर्महीन होगा वह भगवद् पार्षद के दर्शन से वंचित ही रहेगा जैसे कौरवों के साथ उनके घर पर भगवान् कृष्ण रहते थे, फिर भी वे उन्हें नहीं पहचान सके क्योंकि वे भक्त पांडवों के विरोधी

होने से घोर अपराधी बन चुके थे। अतः भगवान् को एक साधारण मानव ही मानते थे। कहते हैं:

fcu gfjÑik feyfg ufg lrk

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

तुम सब भगवान् की ओर से बड़े भाग्यशाली हो जो आप मेरी ओर आ गए हो। पास के रहने वाला भी नहीं पहचान पाने के कारण दूर रहता है। बिना कृष्ण की कृपा से कोई नहीं आ सकता, दीपक के नीचे हमेशा अँधेरा ही रहता है और चारों ओर उजाला करता रहता है। गंगा के पास रहने पर भी गंगा स्नान नहीं कर सकते क्योंकि भगवद् कृपा से वंचित है। कलिकाल में सभी का सार खत्म हो चुका है। केवल हरिनाम करने वाला ही कलिकाल को जीत सकता है। जैसे प्रह्लाद 5 साल का बच्चा और पिता में दस हजार हाथियों का बल था। हिरण्यकशिपु उसको मार नहीं सका क्योंकि हिरण्यकशिपु के अंदर भी वही प्यारा भगवान् बैठा हुआ था, वह मारने कैसे देता? भगवान् उसके रक्षक एवं पालक थे। प्रह्लाद ने हरिनाम से हिरण्यकशिपु को जीत लिया। हरिनाम से ही कलि को जीत सकते हैं। इसलिए इस कलियुग में हरिनाम ही सबकी रक्षा और पालन कर सकता है।

यह ध्यान से सुनो! हरिनाम करते समय भगवान् का सानिध्य परम आवश्यक है। मतलब भगवान् का उपस्थित रहना बहुत जरूरी है। एक उदाहरण से मैं समझा रहा हूँ, जैसे हमारे पास कोई मिलने के लिए आये और सामने बैठ कर उससे हम बातें करते रहते हैं वह हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा है और फिर यदि हम पीठ मोड़ कर बैठ जाएँ या बाहर चले जाएँ तो जो आने वाला है, वह कितना दुखी होगा? इस प्रकार हमको भगवान् के सानिध्य में हरिनाम करना चाहिए। यानि भगवान् को अपने पास रखते हुए हरिनाम करना चाहिए। तब वह नाम शुद्ध नाम होगा। वैसे अशुद्ध नाम से भी कल्याण तो हो जायेगा पर उसमें समय ज्यादा लगेगा। अतः जब हम हरिनाम कर रहे हैं तो हमारे पास भगवान् को बिठाना पड़ेगा वरना भगवान् का दोष लगेगा। हमारा मन जो भगवद् स्वरूप ही है यदि

हम इसे इधर उधर ले जाएंगे तो हरिनाम शुद्ध उच्चारण नहीं होगा। मन के साथ में जीव यदि स्कूल, बाजार, खेत इत्यादि में चला जाए तो भगवान् उठ कर चले जाएंगे, क्योंकि भगवान् जानते हैं कि यह तो स्कूल को जप रहा है, बाजार को जप रहा है, खेत को जप रहा है। लेकिन जहाँ पर भी नाम को ले जाएगा, उसका कल्याण तो निश्चित है। मान लो वह दुकान में चला गया तो दुकान का कल्याण हो जाएगा और दुकान में बिक्री अच्छी हो जाएगी, खेत में चला गया तो खेत की उपज अच्छी हो जाएगी क्योंकि नाम तो अपना प्रभाव डाले बिना रहता नहीं। कैसे भी लो!

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

आप मन से लो, बेमन से लो, सोते हुए लो, चलते–फिरते लो, गिरते–पड़ते लो, नाम तो अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता, आपका कल्याण कर देगा, लेकिन प्यार नहीं आएगा। भगवान् का प्यार नहीं आएगा। प्यार आएगा बहुत समय के बाद में। अगला जन्म मिलेगा, फिर आप भजन शुरू करोगे, फिर धीरे–धीरे आपको ऊँची स्थिति मिलती जाएगी। जैसे किसी स्कूल में हम आठवीं कक्षा तक पढ़े हैं, वहाँ आठवीं कक्षा तक ही स्कूल है तो हम क्या करेंगे? हम उस स्कूल को छोड़ देंगे और दसवीं क्लास (कक्षा) के स्कूल में भर्ती हो जाएंगे। उसी तरह से भक्ति का है जितनी भक्ति हुई उतना हम करके यदि मर गए तो हमको दूसरा जन्म जरूर मिलेगा, भगवान् दूसरा जन्म देंगे फिर वह बचपन से ही भक्ति करने लगेगा और उसका जन्म कहाँ होगा? "भक्त के घर में होगा", जैसे श्रीमद्भगवद्गीता कहती है।

अब मैं आपको समझा रहा हूँ माया का चमत्कार। देखिए जो लड़की 25 साल तक माँ–बाप के घर में प्यार से रहती थी। वह शादी के एक दिन में ही किसी अनजान युवक की तरफ 90% हो जाती है केवल 10% ही माँ–बाप की रहती है तथा कुछ समय में अपना परिवार बना कर माँ–बाप को भी भूल जाती है। यह तो आप

प्रत्यक्ष ही संसार में देख रहे हैं। यही माया का खेल है। यहाँ जो कुछ है सब कुछ माया ही माया है, अँधेरा ही अँधेरा है। इसलिए अँधेरे में हम टक्कर खाते रहते हैं लेकिन जो अपना भगवान् परमात्मा के रूप में शरीर के अंदर बैठा हुआ है, उससे पूरी उम्र में भी प्यार नहीं करते, जो कि अपना है। दूसरे अपने नहीं हैं, सब झूठे हैं। यही तो माया की अद्भुत लीला है। इस लीला को नामनिष्ठ संत ही समाप्त कर सकता है, अन्य से यह माया की लीला दूर नहीं हो सकती।

कलियुग में सभी मर्यादाएं समाप्त हो रही हैं अतः कहीं शान्ति नहीं है, दुखों का साम्राज्य हो रहा है। पैसे वाला भी दुखी, गरीब भी दुखी और अनंत रोगों की भरमार हो रही है। खून का रंग सबका लाल ही होगा। सोचिये! लेकिन गुण भिन्न–भिन्न हुआ करते हैं। अपने खून की सन्तान ही सुख दे सकती है, दूसरे की कभी भी नहीं दे सकती। राजपूत–राजपूतनी, ब्राह्मण–ब्राह्मणी, बनिया–बनियानी और चमार–चमारी ही शादी करने से सर्वोत्तम लाभ उपलब्ध कर सकेगा वरना स्वप्न में भी सुखी नहीं रहेगा क्योंकि रामजी ने यही मर्यादाएं बनाई हैं, तभी तो मर्यादा पुरुषोत्तम बोले जाते हैं। इन मर्यादाओं को तोड़ना जघन्य अपराध है। वही सुखी रहेगा जो मर्यादा में रहेगा।

समर्थ को कोई दोष करेगा तो नष्ट हो जायेगा। कहा गया है

lejFk dg| ufg| nk"k| xkl kbA

(मानस, बाल. दो. 68 चौ. 8)

शिवजी ने जहर पी लिया, आप भी पी लो। नहीं पी सकोगे, आप मर जाओगे।

ध्यान पूर्वक मेरी बात सुनो! मैं किसी से कुछ नहीं चाहता, मेरे आदेश का पालन करोगे तो यहाँ भी सुखी और मरने के बाद भी सुखी हो जाओगे। मेरी मुख्य कामना यानि इच्छा यही है कि सभी मानव वैकुण्ठ में पहुँच जाएँ वरना यहीं कलियुग में ही जन्म लेना

पड़ेगा। ऐसा समय आएगा कि जो भजन करेगा उसको जेल में ठूस दिया जायेगा और जो भजन के लिए समाज इकठ्ठा होगा, उसको सबके सामने जला दिया जाएगा। ऐसा समय आ रहा है। मैंने सुना है कि कहीं कहीं ऐसा है कि कोई भी संकीर्तन नहीं कर सकता, बाहर आवाज नहीं आ सकती, अंदर ही अंदर करते हैं।

देखो! मुझे भगवान् ने गोलोक धाम से भेजा है, और गोलोक का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) मेरे पास है, गोलोक से जो सर्टिफिकेट लाया हूँ, आप उसको देख सकते हो। वह भगवद् का दिया हुआ सर्टिफिकेट है। 7–8 चिह्न (भगवान् के आयुधों के चिह्न) जो कि मैंने तो नहीं बनाये हैं और कोई बना भी नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीमद्भागवत महापुराण में एक जगह लिखा है कि पृथु महाराज के एक चिह्न था और मेरे 7 चिह्न हैं। मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, मैं इसलिए बोल रहा हूँ कि आप मेरे पर अटूट विश्वास रखो और मेरे आदेश के अनुसार अगर चलोगे तो आपको वैकुण्ठ और गोलोक धाम मिल सकता है। संसार का कल्याण हो सकता है। दूसरा उदाहरण है कि ऐसे मानव का आचरण और चरित्र देख कर भी श्रद्धा–विश्वास स्वतः ही हो जाया करती है। तीसरा उदाहरण जो शास्त्रों में नहीं है पर वह प्रत्यक्ष करके दिखा रहा है। जैसे माला हमारी माँ है, तीन प्रार्थनाएं पूरे शास्त्रों का सार हैं, जो केवल 2 मिनट की हैं। एक ही विषय हरिनाम पर 'इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति' की 7–8 पुस्तकें लिखना असंभव बात है क्योंकि मैं न तो अध्यापक था, न मैं कोई लेक्चरर था, मैं तो एक इंजीनियर था। इंजीनियर क्या लिख सकता है? यह सब मेरे बाबा, श्रीकृष्ण ने मुझसे लिखवाया है।

एक बात बताता हूँ। एक दंपत्ति को 20–22 साल से सन्तान नहीं हुई और डॉक्टरों ने मना कर दिया। फिर उनको संतान हुई, क्या कारण है? डॉक्टरों की डॉक्टरी फेल हो गयी। भगवान् क्या नहीं कर सकता? मैंने कहा, "हरिनाम करो, सब कार्य हो सकता है।" जब भी कोई परेशानी आती है तो उनको मैं यही बात बोलता हूँ कि हरिनाम करो। हरिनाम से सब कुछ हो सकता है, सभी मनोकामना

पूरी हो सकती हैं।

जैसे कौरवों के घर में कृष्ण जाते थे। फिर भी कौरव उनको नहीं पहचान पाए क्योंकि भगवद् कृपा के बिना कोई किसी को नहीं पहचान सकता। अतः सबसे मेरी प्रार्थना है कि जैसा मैं बोलूँ उस पर चलकर सुख के रास्ते चल पड़ो। जो निस्वार्थ है, वही संत है और सब असंत हैं। जिसको संसारी भूख है वह संत कोटि में नहीं आ सकता, पर जिसको भगवान् व संतों की भूख है, वही संत सबको वैकुण्ठ ले कर जा सकता है, जो निर्लोभी है कुछ नहीं चाहता है। जो इतना ही चाहता है कि मेरे कहने से सब हरिनाम करके वैकुण्ठ चले जाएँ। जिसके पास नौका नहीं, वह भवसागर पार नहीं करवा सकता। जिसके पास निस्वार्थ नौका है वही भवसागर पार करवा सकता है।

देखिये! हम मन को कैसे रोक सकते हैं? मन का रुकना परम आवश्यक है, प्रत्येक प्राणी को किसी न किसी का सहारा बहुत जरूरी है, सहारे के बिना संसार नहीं चल सकता। जैसे पेड़ को पृथ्वी का सहारा है वरना पेड़ खड़ा नहीं रह सकता। पक्षी को आकाश का सहारा जरूरी है वरना उड़ नहीं सकता। जलचर को पानी का सहारा होगा नहीं तो जी नहीं सकता। मानव को समाज का सहारा जरूरी है वरना उसका जीवन नहीं चल सकता। जैसे खाती (बढ़ई) हमको पलंग बना कर देते हैं, किसान हमको अनाज देते हैं, दर्जी हमको कपड़ा सिल कर देते हैं और दुकान से हमको कपड़ा मिलता है। समाज का हमको बहुत सहारा है। इसलिए सबको सहारे की जरूरत है। एक शिशु को माँ–बाप का सहारा जरूरी है। छात्र को अध्यापक का सहारा होगा वरना पंडित नहीं बन सकता। शिष्य को गुरुदेव का सहारा जरूरी है वरना योग्यता उपलब्ध नहीं कर सकता। उसी प्रकार मन को भगवान् का सहारा जरूरी है वरना सुखी नहीं रह सकता। गीता का सार ही शरणागति है। शरणागति अर्थात् भगवान् का सहारा बहुत जरूरी है। माया का सहारा दुख है और संत व भगवान् का सहारा सुख है। ●

शुद्ध भक्त का जीवन चरित्र

2

9 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे श्री गुरुदेवजी ने बोला कि अनिरुद्ध दास! तुम कोई भी बात छिपाना नहीं। अपना अनुभव जो भगवान् के प्रति हुआ है तथा जो शास्त्रों में पढ़ा है, खोलकर सब भक्तों को बताओ। यदि ऐसा करने से तुम हिचकिचाओगे तो तुम भक्तों को भक्ति मार्ग के सही रास्ते पर नहीं ला सकोगे। ऐसा मेरा तुमको नम्र आदेश है।

मैंने बोला कि हे मेरे प्राणनाथ गुरुदेव, यदि मैं ऐसा करूँगा तो मेरी दुनिया में बड़ाई होगी, मेरा आदर सत्कार होगा। मुझे अहंकार आकर नष्ट कर देगा एवं मुझे जो भगवान् ने गोलोक से भेजा है, संसार का उद्धार करने हेतु, वह मुझसे नहीं हो सकेगा। इसलिए सभी मानवों को जानने के लिए मेरे दोनों हाथों में भगवद् आयुधों के चिह्न बनाकर भेजे हैं ताकि सभी मुझ पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास कर, भगवान् की गोद में जा सकें। क्योंकि भगवान् ने ही सभी जीव मात्र को उनके कर्मानुसार योनि देकर मृत्यु लोक में भेजा है। यही मेरा गोलोक का सर्टिफिकेट है, जो दोनों हाथों में अंकित है।

श्री गुरुदेव बोले कि जो तुम अहंकार से डर रहे हो, तुम्हारा अहंकार तो जलकर भस्म हो चुका है। उसकी छाया भी तुम पर आ नहीं सकती क्योंकि तुम अब तक कई करोड़ हरिनाम कर चुके हो।

इस हरिनाम से ही अहंकार भस्म हो चुका है, अतः निर्भय होकर सभी साधकों को खुलासा करके शास्त्रीय तथा अपने अनुभव, जो भी तुमको हुए हैं और हो रहे हैं, बताना सर्वोत्तम होगा। मैं तुम्हारे पीछे से सब कर रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा। मेरे पीछे द्वारिकाधीश जो तुम्हारे दादा अर्थात् बाबा हैं, तुमको प्रत्यक्ष प्रेरणा देते रहते हैं और देते रहेंगे। फिर चिंता किस बात की है। सभी अवस्थायें आपको उपलब्ध हो चुकी हैं एवं भविष्य में भी होती रहेंगी। तुम निश्चिंत होकर, सभी साधकों को भगवद् प्राप्ति का मार्ग बताते रहो। मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं। कलियुग में भगवान् की कृपा बहुत शीघ्र मिल जाती है। कृपा ही नहीं, साधक को भगवान् के दर्शन भी सुलभ हो जाते हैं। जिस प्रकार भूतकाल में, गुरुवर्ग को हुए हैं एवं मुझे भी हुए हैं एवं मैंने अन्य को भी दर्शन करवाया है।

भगवान् ने कलि साधकों के लिए बहुत ही सरल मार्ग, उपलब्ध करने हेतु बताया है। इसका खास कारण यह है कि कलियुगी जीव बहुत कमजोर व थोड़ी आयु वाला होता है। भगवान् को कोई नहीं चाहता। केवल पैसा ही पैसा चाहता है, जो माया का मूल है। बड़े–बड़े संन्यासी भी पैसे के लिए धर्म–शास्त्रों को बेच रहे हैं। ठौर–ठौर पर श्रीमद्भागवत हो रही है। वह भी कॉन्ट्रैक्ट (ठेके) पर की जाती है कि इतनी रकम लेंगे और भागवत सुना देंगे। श्रवणकारियों को भागवत सुनने पर कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि वहाँ विश्वसनीयता कहाँ है? जैसा प्रवचनकार होगा, श्रवणकारियों पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। पैसे का लोभ बढ़ेगा। अतः ऐसी ठौर पर सुनने जाना ठीक नहीं होगा। अपने घर पर ही भागवत का पठन करना श्रेयस्कर तथा उत्तम होगा।

मार्मिक चर्चा को सुनो। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव, साधक एवं स्वर्गीय देवता भी चाहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो जाए तो हम अपना उद्धार कर लें, अर्थात् इस जन्म–मरण रूपी दारुण दुख से छुट्टी पा लें। जन्म–मरण का दुख इतना भारी है कि बर्दाश्त हो ही नहीं सकता। लेकिन माया ऐसी है कि आँखें खुलने नहीं देती।

सभी अचेत अवस्था में पड़े सोते रहते हैं। यदि कोई पीछे से संस्कारों की सुकृति जागृत हो जाए तो साधु का संग बन जाए और सही मार्ग मिल जाए। सच्चा साधु वही है, जो पैसे को जहर समझता है। कहते हैं कि मठ–मंदिर का काम कैसे चलेगा? इसका मतलब यह हुआ कि साधु को भगवान् पर विश्वास नहीं अर्थात् शरणागति की विशेष कमी है। हम देखते हैं कि जो निस्वार्थ संत हैं, उसके यहाँ स्वतः ही ट्रकों में भर–भर कर सामग्रियाँ आती रहती हैं। संत को माँगने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जो मठ–मंदिर के अंदर विराजमान है, क्या उस भगवान् को पता नहीं कि यहाँ किस वस्तु की कमी है या जरूरत है? स्वतः ही किसी को प्रेरित कर मालगाड़ियां भिजवाता रहता है। संत वही है जो भगवान् के आश्रित है और उसी का साधकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बढ़िया चुम्बक ही जंग लगे लोहे को अपनी ओर खींच सकता है। खोटी चुंबक, शुद्ध लोहे को हिला भी नहीं सकती। पैसा ही माया है, जो बुरे से बुरा कर्म करवाता है। तभी भगवान् जिसे अपनाता है, उस साधक को निर्धन बना देता है। उस साधक के पास कोई जाता तक नहीं है। सभी उससे घृणा करते रहते हैं। कोई उससे प्यार नहीं करता, परिवार वाले भी उसे छोड़ देते हैं। संसार तो छोड़ेगा ही। अब दारुण दुख का वर्णन करता हूँ।

ध्यान देकर सुनने से सावधानी से जीवन व्यतीत होगा। प्रथम में समझना होगा कि मानव जन्म सुदुर्लभ है एवं गर्भाशय का दुख–कष्ट तो सुनने मात्र से कलेजा धड़कने लगेगा। मल–मूत्र में पड़ा–पड़ा जीव, क्षण–क्षण बाहर आने का चिंतन करता रहता है। क्योंकि माँ का खाना, पीना कोमल त्वचा को जलाता रहता है, जिससे जीव अचेत सा हो जाता है। कभी बेहोश हो जाता है। कभी चेत हो जाता है, तो दुख व कष्ट से तड़पता रहता है। वहाँ उसकी कोई सुनने वाला नहीं है। थोड़े दिन भी नहीं, 9 माह तक कष्ट भोग करता रहता है। जब सात–आठ महीने गर्भ में हो जाते हैं, तब उसे कुछ–कुछ ज्ञान होने लगता है, तो प्रार्थना करता है, "जिसने मुझे इस गंदे कुंड में डाला है, वह मुझे इससे कब बाहर निकालेगा।" जब

9 माह पूरे हो जाते हैं, तब प्रसव वायु, उसे योनि से बाहर धकेलती है, तो सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। जिससे उसका साँस घुट जाता है। बड़े कष्ट से बाहर निकलता है। मल–मूत्र में गिरकर कीड़े की तरह छटपटाता है, रोता है, और फिर बाहर आने पर जो आत्मज्ञान हुआ था, भूल जाता है।

इससे अधिक कष्ट उसको तब होता है, जब माँ–बाप निर्दयी होकर उसका अबॉर्शन (गर्भपात) करवाते हैं। निर्दयी डॉक्टर छुरी से धीरे–धीरे उसके अंग को काटते हैं। वह अंदर ही अंदर तड़पता रहता है। कोई उसे बचाने वाला नहीं है, वहीं उसकी जान निकल जाती है। उसका मनुष्य जन्म बेकार। वह भ्रूण बेकार चला जाता है। यह पैसा ही सच्ची माया है। डॉक्टर कैसा घोर निर्दयी काम करते हैं। इनको भगवान् इसी जन्म में दुख देते हैं और भविष्य में कई कष्टदायक नरकों में गिराकर कष्ट देते हैं। इन डॉक्टरों की संतानें कोई लंगड़ा, कोई अंधा तथा बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। लड़कियों की शादी बड़ी धूमधाम से पैसे देकर कर देते हैं, बाद में विधवा हो जाती हैं। जो लड़के होते हैं, वह माँ–बाप को दुखी करते रहते हैं और कटु वचनों से उनका दिल दुखाते रहते हैं। शास्त्र बोलता है कि डॉक्टर का पानी भी नहीं पीना चाहिए। वरना पीने वाला भी क्रोधी व निर्दयी बन जाएगा। यह भ्रूण हत्या है। मानव को शिशुकाल में मच्छर, खटमल खाते रहते हैं। इनकी कोमल त्वचा होती है। बोल सकते नहीं। केवल रोना ही इनका साथी है। माँ–बाप को अपने काम से ही फुर्सत नहीं है, शिशु को कौन सँभाले? थोड़ा बड़ा होने पर जबरन पाठशाला में जाना पड़ता है। वहाँ उसका मन नहीं लगता। बेचारा अंदर ही अंदर रोता रहता है, खेलना बंद हो जाता है, खिलौने ही उसको रुचिकर रहते हैं, परंतु खेल नहीं सकता है। बड़ा होने पर पढ़ाई की चिंता, फिर नौकरी की चिंता, फिर शादी की लालसा, फिर कमाने की चिंता, फिर मकान की, गाड़ी की एवं आराम की लालसा। फिर बुढ़ापा आने पर रोग घेर लेते हैं। खटिया पर पड़ा–पड़ा, सारी जिंदगी की चिंता घेरे रहती है। अंत में इसे

कोई नहीं पूछता। पानी, खाना भी समय पर परिवार वाले नहीं देते और सोचते हैं कि यह मर जाए, तो हमारा पिंडा छूटे। फिर मर कर दुखदाई नरकों में कष्ट पाता है क्योंकि इसने कभी अपने बाप, भगवान् को याद किया ही नहीं। जिंदगी भर अंधा बना रहा। अन्य को सब तरह का दुख देता रहा। **^vk;s Fks gfj Hktu dks] vkVu yxs dikl A*** यही तो है माया का खेल, चमत्कार।

मेरे गुरुजी का आदेश है कि भजन की कोई बात छिपा कर मत रखो वरना आप पर कोई श्रद्धा विश्वास नहीं करेगा। अहंकार, आप को आएगा ही नहीं, क्योंकि वह हरिनाम से जल चुका है। अतः जब तक आपको मेरे पर श्रद्धा नहीं होगी, फायदा नहीं होगा। इसलिए मैं अपनी चर्चा सुना रहा हूँ। बड़ाई मत समझना। मै आज ऐसी चर्चा करूँगा, जिस चर्चा से भक्तगणों को मुझ पर अटूट श्रद्धा, विश्वास बन सके। मैं अपनी बड़ाई नहीं करता। बड़ाई कौन चाहता है? जिसके मन में कुछ लेने की इच्छा हो, मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं। झूठी बड़ाई करूँगा तो मेरा ही नुकसान होगा।

भक्त का जीवनचरित्र देखना जरूरी है कि इसका आचरण कैसा है? भूतकाल में ऐसे–ऐसे प्रवचनकार सामने आए जो निरी कपट की खान थे। इस कारण, सच्चे प्रवचनकार पर भी श्रद्धा, विश्वास खत्म हो गया। भीष्म पितामह ने कौरवों को समझाया कि यह भगवान् हैं, पर वे नहीं समझे। अतः यह बहुत जरूरी है कि जो हरिनाम का अथवा शास्त्रीय चर्चा का प्रवचन कर रहा है, वह कैसा आचरणशील है? पैसे का लोभी तो नहीं है? पैसा ही माया का मूल है। निर्मलता, सरलता, इसमें कैसी है? सबका भला चाहता है कि नहीं? काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से दूर है कि नहीं? स्त्रियों से रुचिकर वार्तालाप तो नहीं करता? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर है कि नहीं? परोपकारी स्वभाव का है या नहीं? भजनशीलता का स्तर कितना है? ब्रह्म मुहूर्त में कितने बजे उठता है? चार बजे उठने वाला भी भजनशील नहीं होता। नास्तिक स्वभाव वाले भी चार बजे उठा

करते हैं। जिसको भगवद् भजन की भूख होगी, वह ब्रह्म मुहूर्त का समय नहीं देखता। बारह बजे चेत (जाग) हो गया, तो कभी एक बजे चेत हो गया, तो उसी समय बिस्तर छोड़कर भगवद् भजन में लग जाता है। साधु को देख कर आह्लादित होता है कि नहीं? निष्काम है कि नहीं? शिष्य से शरीर की सेवा कराता है कि नहीं? यदि करवाता है, तो निष्कपट साधु नहीं हो सकता। क्योंकि उसको मालूम नहीं कि इस शिष्य में भी मेरे प्यारे ठाकुर जी परमात्मा रूप से विराजते हैं। सच्चा साधु न पैर धुलवायेगा, न माला पहनवायेगा, न पैर छुवायेगा, न अपना जूठा प्रसाद शिष्य को देगा। बीमारी की बात अलग है। स्वस्थ शरीर से सच्चा साधु कभी भी अपनी सेवा नहीं करवाएगा। मन ही मन शिष्य को भी नमन करेगा क्योंकि इसमें भी मेरा प्यारा परमात्मा के रूप में विराजित है। जीव मात्र को भी नमन करेगा। शिष्य जो भी शंका, संशय करेगा, खुलासा करके, उसके प्रश्न का उत्तर देकर, उसे अपने पर श्रद्धा विश्वास करा देगा। किसी से कुछ नहीं चाहेगा, केवल उसको भक्ति के लिए प्रेरित करेगा।

कहने का मतलब इतना ही है कि नीचे लिखे अनुसार उसका स्वभाव हो :

r`.kknfi lquhpsu rjksjfi lfg".kqukA
vekfuuk ekunsu dhrZuh; lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

अपने को सबसे नीच स्वभाव का महसूस करे कि मेरे जैसा नीच पामर कोई नहीं है। मैं तो भक्तों की चरण रज के बराबर भी नहीं हूँ। सब को इज्जत दे पर अपना मान इज्जत न चाहे। यदि कोई बड़ाई करे तो सकुचा जाए। उपरोक्त स्वभाव का संत ही अन्य को भक्ति में लगा सकेगा। इसकी वाइब्रेशन (तरंगें) सामने बैठे मानव पर पड़ कर उसे भगवद् भक्ति की ओर मोड़ देंगी। कहा भी है कि संत दर्शन ही सबसे प्रभावशाली है और किसी में इतनी शक्ति नहीं है, जो संत में है। तीर्थ आदि में जाने से स्वभाव में देर से परिवर्तन होगा। अतः

बोला भी है कि संत समागम बहुत दुर्लभ है। भगवत्कृपा बिना नहीं मिल सकता।

मेरे गुरुदेव ने बोला कि यदि अपने अनुभव की या शास्त्र की बात छिपाते रहोगे तो तुम संसार का उद्धार नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुम एक छोटे से गाँव में रहने वाले साधारण गृहस्थी हो। तुमको कोई नहीं जानेगा। तुमको भगवान् ने गोलोक धाम से पृथ्वी पर भेजा है, सबको अपने पास लाने हेतु। इस तरह से भगवद् आदेश का पालन नहीं हो सकेगा। तुम्हें गोलोक से मृत्युलोक में आने का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) दिया गया है। वह सर्टिफिकेट क्या है? तुम्हारे दोनों हाथ में सात–आठ भगवद् आयुधों के चिह्न हैं, जिनको तुम दिखाने में हिचकते हो, जो ठीक नहीं है। जो देखना चाहें, फौरन दिखा दो, ताकि देखने वालों को तुम पर अटूट श्रद्धा, विश्वास बन जाए। इस प्रकार वह तुम्हारे भगवद् सम्बन्धी आदेश का पालन करेगा एवं उसका भवसागर से अर्थात् माया से अथवा दुखों से पिंडा छूट जाएगा।

मैंने बोला कि हे मेरे गुरुदेव! मेरी बड़ाई, प्रतिष्ठा होगी। मुझे अहंकार दुश्मन नष्ट कर देगा। अहंकार भगवान् का दुश्मन है। भगवान् अहंकार को चाहते ही नहीं हैं। अतः मेरा उद्धार कैसे होगा। श्री गुरुदेव बोले कि तुम यहाँ के नहीं हो। गोलोक धाम से आने वालों को अहंकार छूता ही नहीं है। अहंकार तो तुम्हारे हरिनाम से जल चुका है। यह तो एक साधारण सी चर्चा हुई। हरिनाम कोई भी करे तो अहंकार जलकर भस्म हो जाता है। तुम तो भगवद् पार्षद हो। तुम्हारा अहंकार क्या कर सकेगा?

श्री गुरुदेव ने पूरे राजस्थान में केवल मुझे ही शिष्य बनाया, अन्य कोई नहीं। तब से मैं बेफिक्र होकर सब भक्तों को मेरे अनुभव व सारी बातें खोलकर बताता रहता हूँ। क्योंकि गुरुदेव जी मेरे पीछे खड़े रहते हैं। मेरे बाप, दादा (भगवान्) मेरे पास में रहते हैं। मैं उनकी गोद में रहता हूँ। भ्रमण के समय गोद में लटका कर, वे मुझे

कहीं भी ले जाते हैं। कभी मथुरा, कभी बरसाना, कभी नंदगाँव, कभी गोकुल। जहाँ भी जाते हैं, मैं जिद करके उनके साथ हो जाता हूँ क्योंकि मैं उनका पोता हूँ। पोता तो सभी को अधिक प्यारा होता है। डेढ़ साल की उम्र होने से मैं जिद कर के सबका भला करने की, मेरे बाबा से बोलता रहता हूँ, तो बाबा कहते हैं, "जो मर्यादा है, उसे मैं कैसे तोड़ूँ?" मैं कहता हूँ कि बाबा! आपके ऊपर तो कोई नहीं है, तो आप मर्यादा को भी तोड़ सकते हो और तोड़ना ही पड़ेगा। जब अधिक पीछे पड़ जाता हूँ तो बाबा को मर्यादाएं तोड़नी भी पड़ जाती हैं। कभी–कभी कहते हैं, "तू बड़ा जिद्दी है। मुझे परेशान करता रहता है। मेरे कान खाता रहता है।" मैं कहता हूँ कि तो मैं किस का कान खाऊँ? मेरा दूसरा कोई है ही नहीं। तब बाबा मुझे गोद में उठाकर हँसते हुए चुंबन करते हैं। मैं उनके गले से लिपट जाता हूँ। यह है भगवद् प्यार की चर्चा। कोई भी ऐसा कर सकता है, परंतु सभी माया में लिप्त हैं। मैं भी सब पर ऐसी कृपा नहीं करता, मेरे बाबा ही सूक्ष्म रूप में प्रेरित करते हैं। तब किसी जीव के लिए बाबा से जिद हो जाती है, वरना नहीं। यह तो मेरे बाबा ही जानें।

भगवान् कृष्ण अर्जुन को ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं, "अर्जुन! जो लोगे अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध आदि से दूसरों की निंदा में रत हैं, वे अपने व दूसरों के शरीर में स्थित, मुझ अंतर्यामी से द्वेष करते रहते हैं। उनको मैं सूकर, कूकर योनियों में गिराता रहता हूँ।" यह गीता के 16वें अध्याय के, 18वें श्लोक में बोला है।

17वें अध्याय के 6ठे श्लोक में भी बोला है, "हे पार्थ! जो शरीर रूप से स्थित, भूत समुदाय को और अंतःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को कृश करने वाले, अर्थात् दुख देने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला ही जान। ऐसे मानव, शास्त्र के विरुद्ध, मनोकल्पित घोर तप को करते हैं। दंभ और अहंकार से कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से युक्त रहते हैं, उनको मैं घोर दुखदाई नरकों में डालकर पीड़ा देता रहता हूँ।"

मैं सभी भक्त समुदाय को बताता रहता हूँ कि अपराधों से बचो। 10 अपराध शास्त्रों में एवं 84 जो शास्त्रों में नहीं है। वह विचार करने पर प्रकट होते हैं। 84 लाख योनियों में भी परमात्मारूप से भगवान् उनके हृदय मंदिरों में विराजमान रहते हैं। उनको भी दुखी मत करो। चींटी, मक्खी, पेड़ आदि के प्रति भी अपराध बनते रहते हैं। इसी कारण हरिनाम में भक्त समुदाय का मन नहीं लगता। इस प्रकार 94 अपराध हैं, उनसे बचकर रहने से भगवान् भक्त के पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं। भगवान् भक्त के पास जाकर दर्शन देते रहते हैं। भक्त भगवान् के पास नहीं जाता। भगवान् कितनी दया के समुद्र हैं, ऐसा विचार कर हरिनाम में मन लगाना चाहिए। हरिनाम जप ही कलिकाल का अमूल्य धन है। तीन युगों के मानव तथा देवता भी कलियुग में जन्म चाहते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में भगवद्प्राप्ति का इतना सरल, सुगम साधन नहीं था, जितना कि कलिकाल में है। हरिनाम के अलावा कोई साधन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम।

dfy;x doy uke vèkkjkA
lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

तीन बार बोला। मोहर लगा दी।

लेकिन कलियुग में अरबों, खरबों में कोई एक भगवान् का प्यारा इस साधन को करता है। इस दुनिया की आबादी देखते हुए, अरबों खरबों में से कोई विरला ही केवल भगवान् को चाहता है। जो चाहता है, उसे भगवान् जल्दी मिल जाते हैं।

अब आप सभी भक्त समुदाय विचार करें कि जो टेक्निकल है तथा लेक्चरर, हैडमास्टर न रहा हो, क्या वह 7–8 पुस्तकें "इसी

जन्म में भगवद् प्राप्ति" केवल एक ही विषय, "हरिनाम" पर लिख सकेगा? असंभव! इसका कारण है कि यह साधारण मानव नहीं हो सकता। अतः इसकी भगवद् सम्बन्धी बातों को मानना चाहिए ताकि इसी जन्म में वैकुण्ठ व गोलोक धाम में पदार्पण हो सके। जो कर्महीन होगा, नहीं मानेगा। जैसे कौरवों के घर में 24 घंटे भगवान् कृष्ण रहते थे, परंतु भीष्म पितामह के बताने पर भी कृष्ण को कौरवों ने एक साधारण मानव ही समझा। अतः मारे गए। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है, क्योंकि पांडव भक्त थे। इनका अपराध करने से कौरवों के ज्ञान नेत्र बंद थे।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : मैं एक साल से 3 लाख हरिनाम कर रही हूँ, केवल संख्या हो रही है पर रुचि नहीं आ रही है, मैं क्या करूँ ? क्या इसका फल केवल वैकुण्ठ होगा और मैं गोलोक नहीं जा सकूँगी ?

उत्तर : नहीं! नहीं! गोलोक तो जा ही नहीं सकोगे पर वैकुण्ठ चले जाओगे, 3 लाख कर रहे हो तो वैकुण्ठ चले जाओगे। तुम्हारा मन लगे चाहे नहीं लगे। एक लाख वाला भी चला जायेगा। जो एक लाख से कम करेगा, उसको वैकुण्ठ तो नहीं मिलेगा पर दुबारा मनुष्य जन्म जरूर मिलेगा।

अजनाभवर्ष : वैकुण्ठ का एक टुकड़ा

3

16 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य जन्म बहुत मुश्किल से मिलता है, वह भी भारतवर्ष में। वैकुण्ठ का टुकड़ा भारतवर्ष लाकर योगमाया ने मृत्यु लोक में रखा है, जिस प्रकार मृत्यु लोक को दो टुकड़ों में बांट रखा है, एशिया और यूरोप। इसी प्रकार वैकुण्ठ को भी बांट रखा है। इस टुकड़े का नाम अजनाभवर्ष है, जो पृथ्वी पर लाकर योगमाया ने रखा है। भगवान् ने जब मृत्युलोक में अवतार लेने को कहा तो योगमाया को आदेश दिया, "मैं मृत्यु–लोक में जाऊँगा, प्रकट होऊँगा। वहाँ मेरे रहने हेतु सब सुविधाओं का प्रबंध करो।" तो योगमाया ने वहाँ से नदियों के रूप में देवियों को यहाँ पर प्रकट किया। इसका नाम भरत राजा से, भारतवर्ष पड़ गया। जैसे अजनाभवर्ष है, इसी प्रकार यह भारतवर्ष है। इन दोनों के आगे वर्ष जोड़ा है, अजनाभ के आगे वर्ष है, इसी तरह भारत के आगे वर्ष है अतः यह ध्रुव सत्य नाम है। पृथ्वी के धूलकण व तारे गिने जा सकते हैं, परंतु भगवद् लोक नहीं गिने जा सकते। अनंत हैं। यहाँ वैकुण्ठ की देवियां नदियों के रूप में हैं, जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती आदि। देवता पहाड़ों के रूप में, जैसे पार्वती हिमालय की पुत्री हैं, एवं समुद्र भी देवता रूप में हैं। जब भगवान् वैकुण्ठ जाने लगे तो समुद्र को बोले "7 दिन के अंदर द्वारका को डुबो देना। मेरा जो स्थान है, उसको मत डुबोना और पूरी द्वारका को डुबो देना" तो समुद्र ने एक सप्ताह के अंदर द्वारका को डुबो दिया। जब रामचंद्रजी लंका में जाने के लिए रामेश्वर पुल बांधने लगे तो जब वह बंधने में नहीं

आया तो रामजी को बड़ा गुस्सा आ गया और समुद्र से बोले, "अग्निबाण से तुझे सुखा दूँगा।" तो डर कर समुद्र, अमूल्य रत्नों का थाल लेकर, उनको भेंट करने के लिए आया और बोला, "मुझ से गलती हो गई और अब मैं भी सहायता करूँगा।" यह सब देवी देवता ही तो हैं इसलिए हम बड़े भाग्यशाली हैं कि भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ है नहीं तो कहीं विदेश में हो जाता। हम कितने भाग्यशाली हैं, भारतवर्ष में हम भगवान् को जल्दी प्राप्त कर सकते हैं।

सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव तथा देवता भी चाहते हैं कि हमारा जन्म भारत वर्ष में हो तथा कलियुग में ही हो, ताकि सरलता व सुगमता से हम वैकुण्ठ की उपलब्धि कर लें। जन्म—मरण के दारुण दुख से छुटकारा पा लें। गर्भाशय का कष्ट बोला नहीं जा सकता कि शिशु गर्भाशय के अंदर कितना दुख पाता है? बोलने पर दिल थर्राने लग जाता है।

जब मरण का समय आता है तो प्राणी कितना दुख, कष्ट भोगता है। हजारों बिच्छुओं का दर्द होता है। जिससे प्राणी बेहोश हो जाता है। भगवद् स्मरण बिना जन्म पर जन्म तथा मरण पर मरण होता ही रहता है, इसका कभी अंत होता ही नहीं है। अतः भगवद् स्मरण से ही इस दुख से छुटकारा मिल सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है। सबसे सरलतम उपाय है भगवद् शरणागति। शरणागति कैसे होगी? केवल हरिनाम जप से। जो भी कर्म करें भगवान् का समझकर करें। अपना कर्म, बंधन का हेतु होगा। उसमें मानव फँसता ही चला जाएगा। दूसरा सरलतम उपाय है जीव मात्र और कण—कण में भगवान् को ही देखें। फिर किस से बैर— विरोध करेगा? जब थोड़ा—थोड़ा अभ्यास करेगा तो दोनों साधन हृदय में बैठ जाएंगे। जल्दी तो होगा नहीं। धीरे—धीरे होगा। एकदम से कोई बात बनती नहीं है। एकदम से कोई पी—एच.डी. पास नहीं करता।

èkhjs&èkhjs js euk] èkhjs lc dqN gks;A
ekyh lhaps lks ?kM+k] _rq vk, Qy gks;AA

(संत कबीर जी)

कोई प्राणी गर्भधारण करे और चाहे कि अभी शिशु हो जाए तो क्या हो जाएगा? हर प्राणी के दिन निश्चित हैं। गाय के 10 माह, भैंस

के 9 माह, मानव के भी 9 माह में शिशु प्रकट होता है। तो धीरे–धीरे भगवान् में मन लगता है और संसार से मन हट जाता है अर्थात् वैराग्य उदय हो जाता है। गीता में, भगवान् अर्जुन को बोल रहे हैं, "अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य ही प्रत्येक साधन को प्राप्त करने का सरलतम उपाय है।" अभ्यास से पी–एच.डी. हो जाती है एवं वैराग्य से भगवान् की उपलब्धि हो जाती है, क्योंकि मन दो तरफ नहीं रह सकता। मन का एक ही तरफ झुकाव रहा करता है।

श्रीमद्भागवत पुराण के 11वें स्कंध के 28वें अध्याय में, उद्धव ने भगवान् से बोला, "हे मेरे प्राणनाथ! जो अपना मन, आपके चरणों में स्थिर नहीं कर सका है, उसके लिए तो आपको पाना बहुत ही दुर्लभ है। बड़े– बड़े योगी भी अपना मन स्थिर न होने से हार मान लेते हैं। हे भगवन्! मुझे ऐसा कोई सरल, सुगम साधन बताइए ताकि उसे करने से आपकी सन्निधि में आ सकूँ। जो योगी जन साधन करते हैं, अपने बल पर साधन करते हैं, उन्हें अहंकार दबा लेता है एवं आप के भक्त आप पर सब कुछ छोड़ देते हैं तो आप अपने भक्त की रक्षा, पालन करते रहते हो। माया स्वप्न में भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। जो मानव, अपने बल पर साधन–भजन करते हैं, उन पर आपकी माया हावी होकर, उनको अपनी कामना पूरी करने नहीं देती, क्योंकि उनको अपने साधन का घमंड हो जाता है। ऐसे कर्म योगी, ज्ञानी हुआ करते हैं। उनको भगवान् से कोई मतलब नहीं। अतः वे सिद्धियों में फँस जाते हैं। भगवान् का आश्रित भक्त बेफिक्र होकर अपना जीवन व्यतीत करता रहता है।"

फिर उद्धवजी ने भगवान् से पूछा, "हे अच्युत! कोई ऐसा सरलतम व सुगम साधन बताइए जिससे एक साधारण भक्त आपकी गोद में आ सके, क्योंकि आप ही तो सबके माँ–बाप हो।" माता की गोद में आने पर बच्चा मौज से खेलता रहता है। जिस प्रकार से एक डेढ़ साल का शिशु अपनी माँ की पूर्ण शरण में रहकर खेलता रहता है। माया की माँ ही जब शिशु का इतना ध्यान रखती है तो जो पूरे ब्रह्मांडों की माँ भगवान् हैं, क्या वे शरणागत की देखभाल नहीं

करेंगे? प्रह्लाद तो बेचारा पांच साल का ही था और हिरण्यकशिपु जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, उसे गला दबा कर मार सकता था। क्यों नहीं मारा? इसका कारण है कि हर हरकत, भगवान् की प्रेरणा से हुआ करती है। भगवद् प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता।

हिरण्यकशिपु के हृदय मंदिर में भी भगवान् ही विराजमान थे। भगवद् प्रेरणा बिना प्रह्लाद को उसका बाप कैसे मार सकता था? अंत में भगवान् ने प्रह्लाद की रक्षा करके हिरण्यकशिपु को नरसिंह रूप धारण कर अपने नाखूनों से उसका पेट फाड़ कर मारा। प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर भगवान् नरसिंह से बोला, "हे भगवन्! मेरे पिता ने आप का विरोध किया तथा घोर अपराधी हुआ, वह तो नर्क में जाएगा, यही मुझे दुखी कर रहा है।" तब भगवान् बोले, "ओ प्रह्लाद! तेरे जैसा भक्त पुत्र जिसको हो जाए वह बाप कितना ही पापी हो, भक्त पुत्र की वजह से वैकुण्ठ में पदार्पण करेगा। तू अपने पिता के लिए मुझ से विनती कर रहा है, तुम्हारी तो 21 पीढ़ियां वैकुण्ठ चली गईं।" जिस कुल में एक भक्त हो जाता है उसकी 21 पीढ़ियां वैकुण्ठ में चली जाती हैं।

जिसका बेटा मांस, मदिरा का सेवन करता रहता है, उसकी तो 28 पीढियां, अनन्त नरकों में जाकर दुख भोग करती रहती हैं। नरक भोगने के बाद 84 लाख योनियों में जाकर भोग भोगती हैं। दुख और कष्टों में पड़ती हैं।

भगवान् को याद आई कि उद्धव! तूने मुझसे पूछा था कि कोई ऐसा सरलतम व सुगम साधन बताइए, जिससे साधारण मानव आपकी सन्निधि में आ सके। वैकुण्ठ गमन कर सके। तो भगवान् बोले, "तुमको मैं ऐसा सरलतम साधन बता रहा हूँ, जिससे मानव सरलता से मुझे प्राप्त कर सकेगा। मेरे भक्त को चाहिए कि सारे काम मेरे लिए ही करे और कर्म करते समय मुझे याद भी करता रहे। तो धीरे–धीरे उसका मन संसार से हट जाएगा और स्वतः ही वह मेरे भक्त, साधुओं से संपर्क करेगा। क्योंकि जो वह चाहता है मेरे साधु

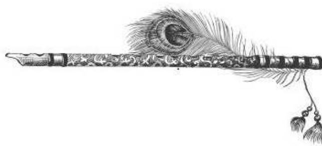
भी उसी मार्ग के पथिक हैं। उनसे भगवद् कथा सुनकर अपना मन निर्मल कर लेगा। उसमें दुर्गुण समाप्त होते रहेंगे और सद्गुण हृदय में आते रहेंगे, तो उसका मन मुझ परमात्मा में लग जाएगा।"

"प्राणी मात्र में परमात्मा विराजमान होने से धीरे–धीरे उसका मन सब को आदर की दृष्टि से देखेगा। मक्खी, मच्छर, हाथी, पेड़–पौधे में भी मुझे देखने की शक्ति उसमें उदय हो जाएगी। उसकी नजर मेरे सिवा कहीं भी देखने की नहीं होगी। दुश्मन को भी प्यार की दृष्टि से देखेगा, क्योंकि मेरे भक्त को महसूस होगा कि इस दुश्मन में भी मेरा प्यारा प्राणनाथ ही बैठा हुआ है। मेरा भक्त उसका भी भला ही चाहेगा।"

जब 24 घंटे, भगवद् की भावना या चिंतन रहेगा तो अंत समय में जब मौत आएगी तो भगवान् ही याद आएंगे। भगवान् को वैकुण्ठ छोड़कर तुरंत भक्त के पास आना पड़ेगा। भक्त भगवान् के पास कभी भी नहीं जाता। भगवान् ही भक्त के पास आते हैं। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि। भगवान् उसे अपने विमान में बिठाकर वैकुण्ठ में ले जाते हैं, वहाँ उसका भव्य स्वागत होता है। सभी वैकुण्ठवासी उससे बहुत प्यार का व्यवहार करते हैं। वैकुण्ठ में वह जीव अनंत युगों तक आनंद भोगता है। फिर किसी भक्त के घर भगवान् उसे जन्म देते हैं, ताकि वह प्रेम से भजन कर विरहमयी अवस्था उदय करके भगवान् से सम्बन्ध स्थापित कर ले। ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता बता रही है कि गोलोक धाम के लिए भगवान् से सम्बन्ध होना बहुत जरूरी है। सम्बन्ध के बिना गोलोक धाम में जीव नहीं जा सकता। वह सम्बन्ध दास का हो, दोस्त यानि सखा का हो, भाई का हो, बाप का, बेटे का हो, पति का हो, जैसा भी सम्बन्ध होता है, उसे भगवान् गोलोक धाम में ले जाते हैं। संसार के सम्बन्ध में एक उदाहरण द्वारा खुलासा से समझ में आ जाएगा। मानो किसी बेटी का सम्बन्ध एक युवक से कर दिया। बेटी अपने पास 25–30 साल तक रही। सम्बन्ध बनने से वह अपने माँ–बाप को तुरंत ही छोड़ देगी, और केवल एक रात में ही उस युवक से गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लेगी। न लड़की उसे

छोड़ेगी न युवक उसे छोड़ेगा एवं सारी उम्रभर माँ–बाप से बिछुड़ कर युवक के घर में ही अपना अलग से परिवार बना लेगी और माँ–बाप को भूल जाएगी। कभी–कभी बेमन से माँ–बाप से मिलने जाया करेगी। वह भी समाज के डर से कि समाज उसे क्या कहेगा। अतः जाना पड़ेगा।

भगवान् ने यहाँ तक कहा है कि किसी प्रकार त्रुटि पड़ना तो दूर रही, यदि इस धर्म का साधन जो पीछे बताया है, भय, शोक आदि के अवसर पर रोने–पीटने, भागने जैसा निरर्थक कर्म भी निष्काम भाव से उन्हें अर्पण कर दें, तो वह भी उनकी प्रसन्नता का कारण होगा। जो भक्त उनके भक्त को यह स्पष्ट करके समझाएगा तो ज्ञानदाता को प्रसन्न मन से सब कुछ अर्पण कर देंगे। वे उसके खरीदे हुए गुलाम बन जाते हैं। उसके आदेश का पालन करने में मजबूर हो जाते हैं। इस प्रकार का वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा मिलता है, मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं बोलता। जो धर्म–शास्त्रों में लिखा है, वही बोलता हूँ और जो अनुभव में आता है, वही बोला करता हूँ। श्रवणकारी इसे भगवत्कृपा का ही फल समझें। मेरा कुछ ज्ञान नहीं है। भगवान् जो प्रेरणा करते हैं प्रेरित होकर वही प्रसंग मैं आप सब भक्तों के चरणों में अर्पित कर देता हूँ। इसमें मेरा अपना ज्ञान कुछ भी नहीं है, क्योंकि मेरे गुरुदेव का आदेश है कि तुम सब खोलकर श्रवणकारियों को बताओ ताकि उनको भगवत्प्राप्ति लाभ हो सके। मैंने बोला कि मेरा आदर सत्कार हो जाएगा, मुझे अहंकार आकर दबा लेगा, तो मेरा नाश हो जाएगा। तो श्री गुरुदेव ने बोला कि तुमने इतना अधिक हरिनाम किया है जिससे अहंकार जलकर भस्म हो चुका है। तुम निश्चिंत होकर अपने अनुभव व शास्त्र सम्बन्धित बातें सभी को खोलकर बताओ। भगवान् तुम पर अति प्रसन्न होंगे। मैं तुम्हारी जिम्मेदारी लेता हूँ। तब मैं निश्चिंत हो गया। अब मुझे कोई भय नहीं रहा।



मन को सहारा चाहिए

4

23 सितम्बर 2016
श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, चंडीगढ़

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मैं दोबारा बोल रहा हूँ ताकि भक्त समुदाय की आंखें खुल जाएँ कि भारत में मानव पर जन्म से ही आध्यात्मिक प्रभाव रहता है। हम बड़े भाग्यशाली हैं जो भगवान् ने हमें भारत में जन्म दिया। हमारा भारत वर्ष वैकुण्ठ का टुकड़ा है। योगमाया ने इसे भगवान् कृष्ण के आदेश से मृत्यु लोक "अवनी" पर ला कर रखा है। इसका वैकुण्ठ में नाम है अजनाभवर्ष। राजा भरत के नाम से इसका नाम भारतवर्ष हो गया। दोनों स्थानों के आगे वर्ष शब्द इसी कारण से है। अजनाभवर्ष की देवियां नदियों के रूप में भारत में बहती रहती हैं। इनमें स्नान करने से हृदय निर्मल हो जाता है और पापों का सर्वनाश हो जाता है। इसी प्रकार वहाँ के देवता पहाड़ों के रूप में अपनी सीमा निर्धारित करते हैं। उनकी गोद में बैठ कर भक्त राजा भगवान् हेतु तपस्या करने जाते हैं। पार्वती, जो शिवजी की पत्नी हैं, हिमालय पहाड़ की बेटी हैं, यमुना अर्थात् कालिंदी भगवान् कृष्ण की पत्नी हैं।

समुद्र भी अजनाभवर्ष में देवता के रूप में हैं। वह भी भारतवर्ष में समुद्र के रूप में प्रकट हैं। जब भगवान् मृत्युलोक से जाने लगे, तब समुद्र को आदेश दिया कि मेरे जाने के बाद मेरी द्वारिका को डुबो देना, केवल मेरे महल को छोड़ देना। जो "भेंट द्वारका" नाम से जाना जाता है, अब भी मौजूद है।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवद् कृपा से हमारा जन्म भारत में हुआ है, फिर भी हम भगवान् को भूल रहे हैं। इस कलिकाल में भगवान् जो परम सुख की निधि हैं, भक्त को बहुत शीघ्र दर्शन देने के लिए आ जाते हैं। इसका खास कारण यह है कि कलियुग में मानव का मन माया की ओर अधिक झुका रहता है। भगवान् को कोई नहीं जानता। अतः भगवान् के चाहने वाले बहुत ही कम व्यक्ति हैं। भगवान् का मन भक्तों के बिना नहीं लगता है। भगवान् का जीवन ही भक्तों से है। अतः जो भी मानव थोड़ा–बहुत भगवान् को चाहता है, भगवान् उस पर जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं।

कलिकाल में भगवान् इस कारण भी जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं कि कलियुग में मानव हर प्रकार से कमजोर रहता है। एक तो थोड़ी आयु वाला है, संसार का वातावरण भी अनुकूल नहीं है। सत्संग की कमी रहती है, सच्चा साधु मिलता नहीं है। सभी धन की तरफ झुके रहते हैं, उनके लिए पैसा ही भगवान् है। पैसे हेतु बुरे से बुरा कर्म करते रहते हैं, सभी ओर स्वार्थ का बोलबाला है। रोग इतने फैल जाते हैं कि बताना दुर्लभ है। इसका कारण है दूषित अन्न, दूषित पानी और दूषित वातावरण। सभी मानव श्रीराम द्वारा स्थापित मर्यादाओं के विपरीत जीवन चलाते रहते हैं। मनमाने ढंग से धर्म शास्त्रों की चर्चाएं होती रहती हैं। जब पेट भरने की नौबत आ जाती है तो मानव साधु का भेष बनाकर जनता को ठगता रहता है। स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। यहाँ तक कि पति को मरवा डालती हैं, अर्थात् कलियुग में कोई भी कर्म ठीक से नहीं होता।

अतः जो कोई मानव थोड़ा बहुत भी भगवान् को चाहता है तो भगवान् उस पर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि भक्तों की बहुत कमी रहती है। जो भक्त, शास्त्र में लिखे 10 अपराधों से तथा 84 अपराधों से बचता है (क्योंकि भगवान् 84 लाख योनियों के हृदय मंदिर में विराजते हैं) इनको कभी सताता नहीं है। जहाँ तक हो सकता है, इनकी तन–मन से सेवा करता रहता है। बस, भगवान् उस मानव के पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं एवं उसकी रक्षा,

पालन, भरणपोषण करते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में भगवान् का दर्शन बहुत दुर्लभ होता है क्योंकि इन युगों में शास्त्र की मर्यादाएं रहती हैं। कलिकाल में सभी मर्यादाएं नाम मात्र की रहती हैं। यह सिद्धांत भी है कि जिस वस्तु की कमी रहती है उसकी चाहना सभी को अधिक होती है। ग्राहक की कमी होने से उसका मूल्य स्वतः ही बढ़ जाता है। यह ध्रुव सिद्ध सिद्धांत है।

कलिकाल में घर बैठे ही भगवान् मिल जाते हैं। कहीं दूर पहाड़ आदि पर जाने की जरूरत नहीं है। सर्दी, गर्मी, बरसात सहने की जरूरत नहीं है। कहीं भी बैठकर, किसी भी समय, बिना मन लगाए ही, केवल भगवद् नाम करते रहो तो भगवद् नाम करने वाले का चारों ओर सुख ही सुख बनता जाएगा। दुख का तो नामोनिशान भी नहीं रहेगा। तभी तो शास्त्र बोल रहा है :

dfy;|x d|oy uke vèkkjkA
l|fej l|fej uj mrjfg| ikjkAA

जैसे भी हो नाम करो, तो दसों दिशाओं में सुख ही सुख हो जाएगा। शास्त्र बोल रहा है :

Hkko d|Hkko vu[k vkyl g|A
uke tir e|xy fnfl nl g|AA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

लेकिन एक प्रसंग बहुत जरूरी है कि भगवान् के मिलने का मार्ग बताने वाला अध्यापक, परमावश्यक है क्योंकि धर्मशास्त्र पढ़कर 10% ही मन पर प्रभाव पड़ता है और पी–एच.डी. किया हुआ अध्यापक (गुरु) अच्छी प्रकार से ज्ञान मार्ग पर चलने वालों के प्रश्नों के उत्तर देकर, उनको आध्यात्मिक मार्ग पर सुचारु रूप से चला सकता है। संशय हृदय में रहने से भक्ति मार्ग रुक जाता है। ऐसा गुरु भी भगवद् कृपा के बिना नहीं मिल सकता। जिस जीव की सुकृति होगी उसे ही ऐसा गुरु उपलब्ध होगा।

सर्वप्रथम तो ऐसा गुरु हो जो बिल्कुल निस्वार्थी हो और सबका भला चाहता हो। दयावान हो, समदर्शी हो, कष्ट सहने वाला हो, भजनशील हो, दुश्मन का भी कल्याण चाहता हो, जीवमात्र को अपना समझता हो, आलसी न हो, निरोगी हो, अल्प खान–पान वाला हो, निद्रा आदि से ग्रसित न हो, अंदर के शत्रुओं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, उसको छू तक न गया हो। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से घृणा करता हो आदि–आदि गुण आश्रम को चलाने वाले गुरु में होने चाहिएँ। ऐसा गुरु स्वयं को तथा अन्य को जो आश्रम में रहते हैं, जन्म–मरण से छुड़ाकर वैकुण्ठ ले जा सकता है। श्रद्धावान मानव गुरु की पहचान करने में असमर्थ रहता है, अतः कपटी, स्वार्थी गुरु के चक्कर में फँस जाता है। जैसाकि कलियुग में, ऐसे गुरु जनता के सामने आए हैं। यह स्वयं भी डूबते हैं और शिष्यों को भी डुबो देते हैं। भवसागर तो दुखों का भंडार है। इसमें डूब कर अनंत युगों तक दुख व कष्टों की चक्की में पिसते रहते हैं। मानव जन्म सुदुर्लभ है।

अतः सोच समझ कर गुरु करना चाहिए। चाहे कुछ समय लग जाए। कभी भी जल्दी नहीं करनी चाहिए। जल्दी में सभी काम बिगड़ जाते हैं, अन्यों को भी पूछना चाहिए। स्वयं भी उनका आचरण देखना चाहिए। कुछ दिन पास रहकर पता करना चाहिए।

कलिकाल में भगवद्प्राप्ति का रास्ता केवल हरिनाम जप करना ही है, जो श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं आचरण करके सभी को बतलाया है कि मानव को एक लाख नाम अर्थात् 64 माला नित्य जपना अति आवश्यक है। चाहे मन लगे चाहे न लगे, तो उसका वैकुण्ठ वास हो जाएगा। यदि मानव 94 अपराधों से बचने का यथासंभव प्रयत्न करता है, तो कोई अपराध होने पर भी भगवान् उसे अगला जन्म मानव का ही देंगे, ताकि अगले जन्म में वह सुधर जाए। जैसे विद्यार्थी नवीं, दसवीं पास करके कॉलेज में जाता है। यदि दसवीं करके घर पर ही बैठ जाएगा तो उसे पढ़ने का लाभ नहीं मिलेगा और यदि कॉलेज में पढ़ने हेतु जाता रहा तो उसे उसका

लाभ अवश्य ही मिलेगा। नौकरी या बिजनेस अच्छी प्रकार से कर सकेगा। इसी प्रकार भक्त की भक्ति में कमी रहने से भगवान् उसे अगला जन्म मनुष्य का ही दिया करते हैं, ताकि इस जन्म में वह हरिनाम जप करके भगवान् से प्रेम का वातावरण बना सके एवं संसार से वैराग्य कर सके।

श्रीमद्भगवद् गीता बता रही है कि अभ्यास तथा वैराग्य से ही मानव का दुख और कष्टों से उद्धार हो सकता है। अभ्यास क्या है? हरिनाम जप। और वैराग्य क्या है? साधु संग होने से संसार से मन हटना। कुटुंब परिवार से मोह दूर होना एवं भगवद् भक्तों में प्रेम होना। भगवान्, भक्त के प्यार के बिना नहीं मिलते। भक्त को आसरा लेना ही पड़ेगा वरना सारा जीवन बेकार में ही चला जाएगा। जैसे स्वप्न का खेल न के बराबर है, वैसे ही संसार की आसक्ति भी न के बराबर है। सभी नश्वर है। भगवान् कृष्ण उद्धव को जो उनका बहुत ही हृदय से प्यारा है, बोलते हैं, "उद्धव! मैं ही सब कुछ हूँ। मैं बनता भी हूँ और बनाने वाला भी हूँ। जो कुछ जगत में दिखाई देता है या महसूस होता है, मेरे से अलग नहीं है। सब कुछ मैं ही हूँ। ऐसी वृत्ति, जिस मानव या भक्त की है, उससे मैं कभी अलग नहीं होता और भक्त भी मुझसे ओझल नहीं होता।" इस गहराई को समझ कर तुम अपना जीवन चलाते रहो। तुमको कभी भी दुख, कष्ट नहीं छुएगा एवं तुम आनंद सागर में सदा तैरते रहोगे।

इस ब्रह्मांड को बलदाऊजी ने शेषनाग के रूप में, जिसके हजारों फन हैं, एक फन पर धारण कर रखा है। जिसे वे सरसों के एक दाने के भार बराबर महसूस करते हैं।

इस अखिल ब्रह्मांड में सभी को किसी का सहारा बहुत ही आवश्यक है। बिना सहारे कोई भी टिक नहीं सकता। इसी प्रकार मानव को भगवान् की भक्ति का सहारा होना चाहिए। यदि मानव को भगवान् का सहारा नहीं है तो मानव डाँवाडोल स्थिति में रहेगा। सदैव दुख पाता रहेगा। इसी प्रकार दसों इंद्रियों को वश में करने हेतु संत का सहारा बहुत आवश्यक है, नहीं तो इंद्रियां दुख सागर

में डुबोती रहेंगी। इन इंद्रियों के साथ ही मन, बुद्धि, अहंकार रहता है। यदि इनको भगवद्कथा का सहारा नहीं है तो यह तीनों विकृत अवस्था में रहेंगी अर्थात् अशांत अवस्था में डूबी रहेंगी। भगवत् कथा के अभाव में माया इन पर हावी रहेगी एवं इनको दुख, कष्ट ही व्यापता रहेगा। अतः भगवत् कथा हरपल सुनते रहना चाहिए ताकि माया का प्रभाव न हो सके। माया का मतलब है अज्ञान, अंधेरा, नासमझी, नश्वरता, अनित्यता आदि।

भगवान् ने ही सब अवस्थाएं रची हैं। जो रची हैं, वह भी स्वयं वे आप ही हैं। भगवान् के बिना अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कुछ भी नहीं है। सब भगवान् की लीला मात्र है, लेकिन मानव इतना अज्ञानी तथा मूर्ख है कि सब कुछ अपना समझ कर व्यवहार करता है। अतः दुख सागर में गोता खाता रहता है।

भगवान् ने कृपा करके जीव को मानव योनि प्रदान की है। जीव अज्ञान के अंधेरे में भटक रहा है, जगह–जगह ठोकरें खा रहा है, इस को कौन समझाए? अतः भगवान् स्वयं ही गुरु रूप में आकर मानव को अपनाते हैं और ज्ञान का चश्मा इसकी आंखों पर चढ़ाते हैं, ताकि यह सुखी मार्ग पर चलकर उनके पास आ सके। क्योंकि यह अनंत समय से उनसे बिछुड़ा हुआ है अतः सुख की नींद सो सके। गुरुदेव ही इसका कर्णधार हैं। गुरुदेव पर अटूट श्रद्धा, विश्वास रखकर अपना मार्ग तय कर सकता है, जिस मार्ग पर चलकर साधु वर्ग इस परमात्मा से मिल सके हैं।

dfytx le tx vku ufg tk uj dj fcLokl A
xkb jke xu xu fcey Hko rj fcufg ç;kl AA

(मानस, उत्तर. 103 (क))

केवल हरिनाम जप कर। अन्य कोई भक्ति साधन करने की आवश्यकता नहीं है। इस हरिनाम से कैंसर, लीवर, हृदय के दोनों ओर के वाल्व ठीक हो गए। जबकि डॉक्टरों के सब साधन फेल हो गए। डॉक्टर इस प्रकार से हरिनाम की महिमा सुनकर चकित हुए और वे भी स्वयं इसको अपना कर जीवन चला रहे हैं। सत्संग की

बड़ी महिमा है। क्षणभर का सत्संग ही जीवन को बदल देता है। लेकिन होना चाहिए किसी उन्नत भक्त का, ताकि उसका श्रवणकारी पर गहरा प्रभाव पड़ सके।

बढ़िया चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी ओर खींच लेता है अर्थात् सत्संग नास्तिक मानव को भी आस्तिक बना देता है। घटिया चुंबक बढ़िया लोहे को अपनी ओर नहीं खींच सकता। यह एक सच्चा उदाहरण संतगण दिया करते हैं कि जैसे मीठा चीटियों को अपनी ओर खींच लेता है तथा जीव मात्र की भूख अपने खाने की वस्तु की तरफ स्वयं ही खिंची चली जाती है। जिस जीव की सुकृति है भगवान् उस जीव को संत के पास भेज देते हैं।

fcu| gfj Ñik fey: ugha l;rkA

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

सुकृति बढ़िया कब जागती है? जब उससे किसी शुद्ध, सच्चे संत की सेवा बन जाए। भगवान् सदैव ही भक्त के पीछे लगे रहते हैं, क्योंकि भक्त ही भगवान् का सब कुछ है। भगवान् को अन्य से कुछ लेना–देना नहीं है। भगवान् का जीवन ही संत से है। संत किसे कहते हैं? जिसने अपनी दसों इंद्रियों को एवं मन को भगवान् में लगा रखा है। उसे ही संत का पद उपलब्ध होता है। जो भगवान् एवं भक्त पर पूर्ण शरणागत है।

श्रीमद्भगवद् गीता का सार अर्थात् प्राण 18वें अध्याय का 66वां श्लोक है, "शरणागति"। जैसे उदाहरण स्वरूप बताया जा रहा है कि एक डेढ़ साल का शिशु पूर्ण रूप से अपनी माँ के शरणागत होता है। सभी जानते हैं कि शिशु बेफिक्र होकर अपना जीवन यापन करता रहता है। माँ इसका 24 घंटे कितना ख्याल रखती है, जो कि माया मिश्रित माँ है। भगवान् जो अनंत कोटि ब्रह्मांडों की माँ है, उनकी शरणागति लेने से क्या हो सकता है, आप स्वयं विचार कर देख सकते हैं। कलियुग में शरणागति का एक ही मार्ग है, केवल हरिनाम जप, कीर्तन एवं भगवद् कथा। भगवद् कथा के अभाव में हरिनाम

रुचिपूर्वक नहीं होगा। जबरदस्ती ही होगा। लेकिन जबरदस्ती भी श्रेयस्कर है।

èkhjs&èkhjs js euk] èkhjs lc dqN gks;A
ekyh lhaps lkS ?kMk] _rq vk, Qy gks;AA

(संत कबीर जी)

एकदम से किसी ने पी–एच.डी. पास नहीं की है। एल.के.जी. –यू.के.जी. में बैठकर ही आगे का मार्ग मिल सकेगा। जो भर्ती ही नहीं होगा, पी–एच.डी. स्वप्न में भी नहीं कर सकेगा।

मेरे गाँव का नाम पांडववाल है, लेकिन अब इसका नाम बिगड़कर, पांचूडाला हो गया है। यहाँ से 7 किलोमीटर दूर विराटनगर है। जहाँ पांडवों का एक साल का अज्ञातवास हुआ था। वहाँ पर भीम लता मौजूद है, जो अथाह पानी से भरपूर रहती है। इसकी गहराई का किसी को मालूम नहीं है। शिवजी यहाँ पांडवों से मिलने आया करते थे। यहाँ पहाड़ में महादेव के तीन कुंड मशहूर हैं, जहाँ पानी अखंड भरा रहता है। हमारे चारों ओर पहाड़ हैं, जहाँ तपस्वी कई जगह तपस्या करते रहते हैं। मेरे पड़–दादाजी एक महात्मा को रोज दूध पिलाने जाया करते थे। एक बार बरसात का मौसम था। नाला बहुत जोर से बह रहा था जिसमें 25 किलोमीटर लम्बी पहाड़ी का पानी तूफान की तरह आ रहा था।

मेरी पड़–दादी ने उस दिन पड़–दादा को दूध पिलाने के लिए जाने हेतु मना किया। लेकिन पड़–दादा ने एक न सुनी और वह बहते नाले में उतरकर साधु के पास पहुँच गए, तो वहाँ क्या देखते हैं कि दो शेर धूने पर साधु के पास बैठे हैं। तो पड़–दादा जोर से चिल्लाये, "बाबा! दूध लाया हूँ। कैसे आऊँ?" साधु ने चिमटे से इशारा किया तो दोनों शेर जंगल में भाग गए।

जब संत के पास पड़–दादाजी पहुँचे, तो संत महाराज नाराज होकर बोले, "तू बह जाता तो मैं क्या जवाब देता?" उनकी वापसी पर बाबा ने नाले में रास्ता बना दिया। अतः वह बहे नहीं। तब संत

खुश होकर बोले, "जा तेरे कुल में हर पीढ़ी में एक भगवद् का प्यारा पुत्र होगा और नहरुआ रोग (नारू रोग) पीड़ित को, यदि तुम्हारे परिवार के लोग, चाहे शिशु ही हाथ फेर देगा, तो तुरंत ठीक हो जाएगा।

नहरुआ (नारू) एक रोग होता है, इसमें जोरदार बुखार आता है। एक फोड़ा शरीर में होता है, उसमें से धागे जैसा तार निकलता है। वह एक कीड़ा ही होता है, जो अधिकतर उदयपुर, कोटा, राजस्थान के इलाकों में लोगों को हो जाता है। मैं जब राजकीय नौकरी में था तो मैंने मकान के बाहर बोर्ड लगा रखा था कि इस रोग का यहाँ मुफ्त इलाज होता है, तो बहुत रोगी आते थे।

हमारे यहाँ पांडवों के पास कृष्ण भी आते थे। पांडवों ने यहाँ पर एक ही रात में 52 बावडियां बनाई थीं, जो अब मिट्टी में दब गई हैं। कुछ अभी भी बाकी हैं। इसमें 10–10 फुट के पत्थर लगे हैं। चूना आदि कोई मसाला नहीं है। यहाँ पहाड़ों में कई जगह साधु–संत तपस्या करते रहते हैं।

यहाँ एक सिद्ध का स्थान है, जो मेरे मकान से लगभग 3 किलोमीटर दूर पहाड़ में है। वहाँ मुनि महाराज को पहाड़ में से निकाला गया था। जिसमें न मांस था, न चमड़ा था, केवल हड्डियों का कंकाल ही था और ॐ की ध्वनि शरीर से निकल रही थी। सब की प्रार्थना से संत ने लगभग 10 हाथ गहरे कुंड में गंगा को बुलाकर भरा है। जहाँ हजार फुट पर पानी नहीं है, वहाँ इस कुंड में 4–5 फुट पर ही पानी रहता है। कितना ही निकालो, कभी कम नहीं होता। मेरे यहाँ आने वालों ने इसका दर्शन किया है।



सतीत्व की परीक्षा

5

30 सितम्बर 2016
श्रीराधाकुण्ड

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

सभी भक्त समुदाय ध्यानपूर्वक सुनें। श्री रामजी ने जो मर्यादाएं रखी हैं, उन्हें अपनाकर सुखी रहें। उदाहरण के तौर पर श्रीगुरुदेवजी की चर्चा ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। शिशु अर्थात् मानव का प्रथम गुरु माँ–बाप ही होता है। जो युवक माँ–बाप की सेवा करेगा तो युवक के पुत्र भी उसकी सेवा करेंगे वरना नहीं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। रामसुखदासजी जो विरक्त निरहंकारी संत थे, कहा करते थे कि भक्तो! अभी तो तुम्हें घर में रहना नहीं आता है, तो समाज की सेवा क्या करोगे एवं भगवद् भक्तों की सेवा कैसे करोगे? जिस प्रकार जो पत्नी पति के अनुकूल नहीं रहती, वह स्वप्न में भी भगवद्भक्ति नहीं कर सकती अर्थात् हरिनाम जप जो कलिकाल का सर्वोत्तम साधन है, नहीं कर सकती। उसी प्रकार पत्नी का पति, जो पत्नी की राय बिना कुछ कर्म करता है, वह भी स्वयं में भक्त नहीं बन सकता। इसके घर में रिद्धि–सिद्धि नहीं रहती। जो शिष्य गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, वह शिष्य भगवान् व भक्त की सेवा कभी नहीं कर सकता। जो भाई, भाई की राय लिए बिना कर्म करता है, उसका कर्म निष्फल हो जाता है।

कलिकाल में ऐसा ही होता है कि भाई, भाई से राय न लेकर रिश्तेदारों से राय लेते हैं। उनका जीवन सुखमय नहीं रह सकता।

ऐसे ही बहुत से सिद्धांत हैं। अतः भक्त समुदाय सोच समझकर जीवन बिताएं, ताकि उनका जीवन सुखमय बीते। भक्तों के साथ–साथ मानव भी, शास्त्रों ने जो मर्यादाएं बांधी हैं, उन पर गहरा ध्यान देकर अपना जीवन यापन करें तो श्रेयस्कर होगा। शादी अपने कुल में ही करें, वरना आपस में दंपत्ति की स्वप्न में भी नहीं बनेगी। कबूतरी की शादी कौवे से की जाए, तो कैसे बनेगी। दोनों का खून भिन्न भिन्न है। उदाहरण स्वरूप अस्पतालों में तब तक खून नहीं चढ़ाते, जब तक खून अनुकूल न हो, वरना रोगी की मृत्यु हो जाएगी। इन्द्रिय तर्पण करना नरक का द्वार है। वर्णसंकर संतानें, माँ–बाप को ही नहीं बल्कि सात पीढ़ियों को नर्क में ले जाती हैं। आत्मा, परमात्मा को सब का लेखा–जोखा रहता है। इसमें एक अपवाद यह है कि जिसकी स्थिति व अवस्था उच्च हो जाए अर्थात् तुरीय या परमहंस अवस्था तो उसके लिए मर्यादा स्वयं ही छूट जाती है। उक्त लिखित तो नीचे के स्तर वालों के लिए है। प्रेम अवस्था में मर्यादा नहीं रहती।

विराट नगर का वर्णन पीछे रह गया था, वह अब कर रहा हूँ। मेरे गाँव से लगभग 15–20 किलोमीटर दूर एक पहाड़ है, जहाँ अत्रि मुनि ने तपस्या की थी। उनकी पत्नी अनुसुइया थी। वहाँ स्नान के लिए पहाड़ की चोटी पर 3–4 कुंड हैं, जहाँ महिलाएं तथा पुरुष स्नान करते हैं। एक कुंड ऐसा है, जिसका पानी अत्रि–अनुसुइया मंदिर के अर्चन, पूजन के लिए है।

एक बार ब्रह्माणी, लक्ष्मी, पार्वती को अहंकार हो गया था और उन्होंने नारदजी से बोला कि उनके बराबर कोई भी संसार में सती नहीं है। नारदजी ने बोला, "घमंड क्यों करती हो? तुमसे अधिक तो भारतवर्ष के राजस्थान में अत्रि मुनि की धर्मपत्नी है।" ब्रह्मा, विष्णु, महेश को यह सुनकर दुख हुआ और तीनों ने सोचा कि हम उसका पति धर्म बिगाड़ कर आएंगे। उनकी धर्मपत्नियों ने कहा कि वे तुरंत जाकर अनुसुइया का पतिधर्म नष्ट कर आयें। तीनों साधु का वेश धर कर अत्रिजी के आश्रम पर गए और अनुसुइया को बोले, "मातेश्वरी!

भिक्षा दो।" अनुसुइया ने बोला कि वह अभी ले कर आती हैं तब तक तीनों चटाई पर विराजे। तब तीनों बोले कि वे भिक्षा ऐसे नहीं लेंगे, तो अनुसुइया बोली कि कैसे लेंगे? उन्हें कौन सी भिक्षा चाहिए? तीनों ने बोला, "माता जी! आप हमको निर्वस्त्र होकर खाना खिलाओ, नहीं तो हम जाते हैं।" यह सुनकर अनुसुइया घबरा गई कि ये बिना खाये चले गये, तो ठीक नहीं होगा। ऐसा आज तक नहीं हुआ कि बिना भिक्षा के कोई यहाँ से गया हो।

तब अनुसुइया ने पति अत्रि के पास जाकर सब बातें बताईं। अत्रिजी बोले, "बिना भिक्षा दिए तो हमारा धर्म नष्ट हो जाएगा।" अनुसुइया बोली कि वह क्या करे? तो अत्रि मुनि बोले, "मेरा ध्यान करते हुए उनके चरणों को धोओ। हमारा धर्म है कि साधु के चरण छूएं, यही हमारी तपस्या है।" अब अनुसुइया संकट में पड़ गई कि निर्वस्त्र होकर उनको प्रसाद कैसे खिलाये। तो अनुसुइया को हृदय में ही उनका शिशु रूप में दर्शन हुआ। यह अत्रिजी के प्रताप से ही हुआ। फिर वह निडर होकर बोली, "आप तीनों खाट पर बैठ जाओ।" तीनों खाट पर बैठ गए। अनुसुइया ने जैसे ही पैर छुए। तीनों साल–साल भर के शिशु बन गए। उसने उनपर पंचपात्र का जल छिड़का था।

अब अनुसुइया ने तीनों को अपने स्तनों का दूध पिलाया। जब अत्रिजी बाहर आए तो क्या देखते हैं कि तीनों ही शिशु बनकर पालने में सो रहे हैं। अत्रिजी ने भगवान् को नमस्कार किया और बोले, "भगवन्! आप तो सदैव ही भक्तों की रक्षा करते आये हो। मैं तो ऐसा भक्त भी नहीं हूँ। यह तो आपकी महानता ही है।" और नाचने लगे और अनुसुइया भी ताली बजा रही है और अत्रिजी के चरणों में लोट रही है।

ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती आपस में बातें कर रही हैं कि उनके पतिदेव को गए बहुत समय हो गया। क्या बात है? अभी तक नहीं आए। किससे पूछें? इतने में नारद मुनि आ गए। तब तीनों ने नारदजी से पूछा कि क्या बात है कि उनके पतिदेव, अब तक क्यों

नहीं आए? नारदजी बोले, "अरे संतों के पास जाने से क्या कोई जल्दी आ सकता है? हो सकता है 10–20 दिन लग जाएँ।" नारदजी को तो सब मालूम था, परंतु बताया नहीं। तीनों ने नारदजी से पूछा कि क्या वे उन्हें ढूंढने जाँए? तो नारदजी बोले, "अवश्य जाओ। उनका कुछ मालूम नहीं, हो सकता है साल भर न आएँ"। तीनों बोलीं, "तो नारदजी! हम अभी जाती हैं"।

अत्रि मुनि का पता–पूछते–पूछते तीनों अतेल गाँव में पहुँचीं, जो अत्रि मुनि के नाम से बसा हुआ है। उन्होंने गाँव वालों से पूछा, "क्या कोई तीन संत यहाँ आये हैं"? तो गाँव वालों ने बोला कि कुछ दिन पहले तीन साधु आए थे, अब मालूम नहीं कहाँ चले गए। "तुम किसलिए पूछ रही हो?" तीनों बोलीं, "अजी! वे हमारे गाँव में ही भिक्षा करते हैं। हमको उनका सत्संग का लाभ होता रहता है। अब सत्संग से वंचित हो गए हैं। अतः हम उन्हें ढूंढने आई हैं। मिल जाएंगे क्या"? तब गाँव वाले बोले, "हम नहीं कह सकते, ऊपर एक अत्रि संत रहते हैं, पर वे आश्रम में आने को मना करते हैं। अतः हम उनके पास नहीं जाते हैं, क्योंकि वह विरक्त संत हैं। उनके पास एक महिला भी रहती है। हमें तो उन पर कोई श्रद्धा–विश्वास है नहीं। कभी–कभी बाहर से आने वाले वहाँ जाते रहते हैं। हम गाँव वालों में से तो कोई नहीं जाता। संत को स्त्री से क्या मतलब। अतः गाँव वालों को उन पर कोई श्रद्धा विश्वास नहीं है।"

पास वालों को कभी श्रद्धा नहीं होती, ऐसी ही भगवद् माया है। तीनों ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती ने बोला, "हम जाती हैं।" तो सबने पूछा कि वहाँ जाकर क्या करेंगी? वहाँ जाने से क्या लाभ होगा ? तीनों ने उत्तर दिया, "हमने सुना है कि वहाँ पहाड़ की चोटी पर 3–4 कुंड हैं। हम वहाँ का दर्शन ही कर आयें"। गाँव वाले बोले, "यह तुम्हारी मर्जी है। तुम जा सकती हो"।

तीनों ऊपर गईं तो रास्ते में एक नवयुवक ब्रह्मचारी से भेंट हुई। उससे पूछा, "यहाँ अत्रि–अनुसुइया कहाँ रहते हैं?" ब्रह्मचारी बोला, "ऊपर चले जाओ। वहाँ दोनों ही मिल जाएंगे"। तीनों ने पूछा, "आप

कौन हैं?" तो वह बोला, "मैं उनका सेवक हूँ। जैसी आज्ञा होती है, मैं कर देता हूँ।" तीनों ने फिर पूछा, "वहाँ की कोई नई बात जानते हो?" तो बोला, "हाँ! जानता हूँ। पहले तो माताजी अकेली ही रहती थीं। अब तो उनके पास तीन शिशु पालने में झूलते रहते हैं। शिशु क्या हैं, माता जी! वह तो सुंदरता की मनमोहक मूर्ति हैं। मैंने माताजी से पूछा था, परंतु माताजी ने अनसुनी कर दी, तो डर के मारे मैंने दोबारा पूछा ही नहीं।"

यह सुनकर तीनों घबरा गईं और आपस में बोलीं, "ये शिशु हमारे पति भी हो सकते हैं। हम तो मारी गईं।" आपस में कहने लगीं, "सतीत्व के अहंकार ने हमें नष्ट कर दिया। अब आगे क्या होगा? हे परमात्मा! हमारी रक्षा करो।" घबराती, थर्राती ऊपर पहुँचीं तो देखा कि अनुसुइया पालने में सोए हुए शिशुओं को झुला रही हैं। तीनों अचेत होकर गहरी नींद में सो रहे हैं। उन्होंने जाकर अनुसुइया के पैर छुए और अनमनी–सी होकर पास में बैठ गईं। अनुसुइया ने पूछा, "आप कौन हो? कहाँ से आई हो?" तीनों ने कहा, "हम आपके चरणों की दासी हैं।" उन्होंने पूछा, "यह तीनों शिशु आपके हैं क्या?" अनुसुइया ने उत्तर दिया, "हां! मेरे ही हैं।" इतने में अत्रि मुनिजी आ गए और पूछने लगे, "माताओ! आप कौन हैं? कैसे आई हैं?" तो तीनों डर गईं कि झूठ बोलेंगे तो अनर्थ हो जाएगा। उन्होंने सच–सच बता दिया कि वे ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती हैं और अपने पतियों को लेने आई हैं। अत्रि मुनि बोले, "तो ले जाओ। अनुसुइया! इनको इनके पतियों को सौंप दो।" पतिदेव की आज्ञा से अनुसुइया बोली, "अपने अपने पतियों को ले लो"। तो तीनों घबरा गईं कि यदि गलत हाथ लग गया तो पतिधर्म नष्ट हो जाएगा क्योंकि तीनों शिशु एक ही सूरत के थे। कैसे पहचानें? तीनों अनुसुइया के चरणों में पड़कर बड़े जोर से रोने लगीं, "माँ! हमारी रक्षा करो। हमारे धर्म की रक्षा करो।" अनुसुइया बोली, "ले जाओ न। मैं कब मना कर रही हूँ।" तीनों बोलीं, "हम इनमें से अपने–अपने पति को कैसे पहचानें, हमारी सामर्थ्य के बाहर है।"

अत्रिजी बोले, "अनुसुइया! ज्यादा परीक्षा मत लो। यह मेरा पंचपात्र का जल लो और इन पर छिड़को।" अनुसुइया ने वैसा ही किया और तीनों, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव अपनी अवस्था में आ गए और अत्रि व अनुसुइया के चरणों में गिरकर कहने लगे कि यह है भगवद्भक्ति व पतिधर्म का साक्षात् रूप। कभी भी किसी अवस्था का अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकार ने सबको कितना दुख–कष्ट दिया है। भक्ति तत्व एवं सती तत्व मिलकर क्या नहीं कर सकते, भगवद् तत्व को अपने अधिकार में कर सकते हैं। तब वहाँ से विदा होकर सब अपने–अपने धाम चले गए।

इसी प्रकार से हमारे यहाँ पहाड़ों पर तपोभूमि के अनेक स्थान हैं, जो दर्शन योग्य हैं। लगभग 40 स्थान हैं जिसमें संतों व शिवजी के अधिक स्थान हैं। हमारे पास ही तालवृक्ष में गर्म कुंड तथा ठंडा कुंड है, जो पहाड़ी तलहटी में ही है। यहाँ पर मार्कण्डेयजी ने तपस्या की थी। नलदेश्वर महादेव जी, पहाड़ों के बीच में हैं, जहाँ पर एक झुकी हुई चट्टान है, जैसे अभी गिर जाएगी। वहाँ नल की तरह से महादेवजी पर पानी गिरता रहता है। यह अलवर के रास्ते में है। इस स्थान को इसी वजह से नलदेश्वर बोलते हैं। इसी प्रकार से लगभग 40 जगह हैं, जहाँ पर महादेवजी व संतों के तपोमय स्थान हैं। बहुत से संत, गुफाओं में तप करते रहते हैं। इस कलिकाल में उनका दर्शन होना दुर्लभ है।

इसी प्रकार से पराशर ऋषि, वीर हनुमान, भानगढ़ सती, संत रामेश्वर, सुंदरदासजी, संत उदयनाथजी, धूणीनाथजी, नीलकामंगलदासजी, संत शीतलनाथजी, तखीजी धाम लोहागरजी, देवनारायण अवतारी, खाटू श्यामजी, जीण माता, नारायणी माता, कूल के कुंड, गरबाजी, संत बत्रामानसून, पांडुपोल, संत परमानंद छत्रसाल, संत चित्रदास, जितने संत मुझे याद हैं, आप भक्तों की कृपा से मैंने आपके चरणों में निवेदन कर दिया है। अभी तो बहुत हैं जो मुझे याद नहीं हैं। कलियुग में ऐसे संतों के दर्शन होना बहुत दुर्लभ है। उनके पानी के कुंड आदि के दर्शन कर सकते हैं, जैसे

अत्रि–अनुसुइया तपोभूमि है। उन संतों के दर्शन अब कहाँ हैं, केवल उनके स्थान हैं जो दर्शन कर सकते हैं।

अधिकतर संत पहाड़ों में ही तपस्या किया करते हैं और करते थे क्योंकि यह पहाड़ वैकुण्ठ के देवता हैं, उनकी गोद में बैठकर संतजन तपस्या करते रहते हैं। आजकल पहाड़ भी नग्न अवस्था में हो गए, क्योंकि इस कलिकाल में 25–30 वर्ष से बरसात नहीं हो रही है, अतः हरे–भरे नहीं हैं।

मैं भी किसान कुल से ही हूँ, लेकिन पिताजी ने पढ़ने को बैठा दिया था। इंजीनियर के पद पर कार्यरत था, लेकिन गुरुजी की कृपा से राजकीय (सरकारी) एक पैसा, न तो खाया और न ही किसी को खाने दिया। राजकीय सेवा दुविधापूर्वक की। अतः बदली होती रही। मैंने सोचा घर के बाहर तो हूँ ही चाहे कहीं भी भेजो, मुझे क्या फर्क पड़ता है। सचिवालय में 12 साल सेवा में रहा, फिर बाद में राजाओं की जमीन सीलिंग में सेवा देता रहा। वहाँ से 4 साल पहले वोलंटरी रिटायरमेंट (स्वैच्छिक अवकाश) लेकर घर आ गया तब भगवद् भजन में लग गया। बेटे, पोते सब भगवद् कृपा से राजकीय सेवा में लग गए। मैं सबसे निवृत्त होकर हरिनाम की शरण में चला गया, तो परम सुखी हो गया। मैं इस शरद पूर्णिमा (2016) को 89 वर्ष का हो जाऊँगा। भगवद् कृपा से अब तक कोई रोग नहीं है। रात में 12–1 बजे उठ कर हरिनाम करता हूँ। सुबह तक मन माफिक हरिनाम पूर्ण हो जाता है। मन भी भगवद् कृपा से इधर–उधर नहीं जाता, मन स्थिरता में ही रहता है अतः सभी भक्त समुदाय को कहा करता हूँ कि शुद्ध कमाई हो और भगवान् में मन हो तो मन स्थिर हो जाएगा। यह सब मन का ही खेल है। जिसने मन बस में कर लिया उसने संसार को जीत लिया।

जब भगवान् अपने हो गए तो दूर कौन रहेगा?

tk ij Ñik jke dh gkbA
rk ij Ñik djfg lc dkbAA

उसको सांप, बिच्छू, बाघ आदि भी कुछ नहीं कहेगा क्योंकि उनके हृदय मंदिर में भी वही प्यारा बैठा हुआ है। बिना भगवद् प्रेरणा के तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। प्रत्येक जीवमात्र में ही उस प्यारे की उपस्थिति देखो। जानवर बोलता नहीं है, परंतु हाव–भाव सबके पहचानता है। कबूतरों को छत पर दाना डालता रहता हूँ, तो कबूतर मेरे कंधे पर आकर बैठ जाते हैं, गोद में दाना डालने पर गोद में आकर चुगने लग जाते हैं। जीवमात्र सब के भावों को पहचानता है केवल बोलता नहीं है। हिंसा–प्रेमी को देखते हैं, तो उड़ जाते हैं। और मोर भी नजदीक में आकर नाचते रहते हैं। मुझे देखकर कितना सुख होता है यह मैं ही महसूस कर सकता हूँ। टेबल (मेज) पर दूध की बूंद गिर जाती है तो चींटी उसे खाने लगती है, मैं सोचता हूँ कि बेचारी भूखी है अतः मैं उसको हटाता नहीं हूँ। ऐसी दृष्टि भक्त समुदाय की होने से भगवान् उससे कभी किसी क्षण में दूर नहीं होते, क्योंकि सभी जीव मात्र भगवान् के पुत्र समान हैं। उनके कर्मों के अनुसार ही उनको चींटी की योनि प्रदान की है। चींटी में भी मेरा प्यारा बैठा हुआ है। हम उसे भगाएंगे तो प्यारे को कष्ट होगा। भगवान् इस कारण से ही तो जीव से दूर रहते हैं क्योंकि ऐसी दृष्टि किसी विरले की ही होती है। यदि ऐसी दृष्टि बन जाए तो भगवान् दूर नहीं रह सकते। मेरे बाबा ने तीन प्रार्थनाएं भक्त समुदाय को बताई हैं। सोते समय, सुबह जागते ही और स्नान के बाद, जो पूरे शास्त्रों का सार है। ये प्रार्थनायें मेरी सभी पुस्तकों "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" में विस्तार से लिखी हुई हैं।

हमको इस अवस्था में ही भगवान् को उपलब्ध करना है, देर क्यों? गया समय हाथ नहीं आता, बाद में पछताने के सिवा कुछ नहीं मिलता।

पूरे राजस्थान में मेरे गुरुदेव का मैं ही एक शिष्य हूँ तथा मेरा परिवार है। वे परीक्षा करके शिष्य बनाते थे। उन्होंने मुझे सन् 1952 में हरिनाम व दीक्षा एक साथ दी थी। 23 नवंबर 1952 को मेरा स्वर्णिम दिन था, जब मुझे गुरुदेव की शरणागति उपलब्ध हुई। तब

एक भी मठ नहीं था अतः श्रीविग्रह के हेतु 50–60 बार गुरुदेव जयपुर पधारते रहे। तीर्थ महाराज, भारती महाराज आदि सब ब्रह्मचारी थे। अतः स्वयं ही आकर राधा–कृष्ण के श्रीविग्रह बनवाकर ले जाते थे। मैं उनसे केवल एक ही चर्चा करता था कि भगवान् मुझको कब मिल सकते हैं?

श्री गुरुदेवजी कहते कि केवल हरिनाम ध्यानपूर्वक करने से भगवान् मिल जाएंगे। उनके आशीर्वाद से ही भगवान् मुझे दो बार मिले। गुरुदेव, मुझे बोलते थे कि कभी 'रासपंचाध्यायी' मत पढ़ना और श्रीमद्भागवत महापुराण पढ़ते रहना। जहाँ रास हो तो कभी भूल कर भी मत जाना। रामलीला अवश्य देखने जा सकते हो। उन्होंने कभी मधुर–भाव के प्रवचन नहीं किए। गुरुदेव बोलते थे कि हम इस योग्य ही नहीं हैं कि मधुर–भाव के प्रवचन सुनकर मन को शुद्ध रख सकें। इसमें गोपियाँ उच्चतम भाव–राज्य में हैं। संसारी मानव इसको समझ नहीं सकता, अपराध कर बैठेगा। जो हमारे गुरुवर्ग थे, वे तो भगवद् पार्षद थे, अतः मधुर–भाव में ओत–प्रोत थे। हम साधारण भक्त हैं, हमसे अपराध बन जाएगा। हरिनाम से ही यह मधुर–भाव हृदय में प्रकट होगा। अपने प्रयास से मधुर–भाव की भक्ति नहीं हो सकती। आप देख भी रहे हो कि क्या मधुर–भाव के व्यक्ति को कभी भगवान् के लिए रोना आता है या भक्ति सम्बन्धित स्वप्न आते हैं? स्वप्न आते हैं तो केवल संसार के। तो यह स्पष्ट है कि मनगढ़ंत भाव कभी सफल नहीं हो सकता। हरिनाम अर्थात् भगवान् ही यह भाव देंगे। मधुर–भाव को सुनकर कोई भी उन्नत नहीं हुआ है।

पुराणों में भी श्रीमद्भागवत पुराण सर्वश्रेष्ठ है इसके अध्ययन करने से संसार से वैराग्य और कृष्ण की प्रेम भक्ति उपलब्ध हो जाती है। भगवान् के नामों का कीर्तन सारे पापों को निर्मूलता से नष्ट कर देता है और भगवान् को आत्मसमर्पण सब प्रकार के भय का नाश कर देता है।

जब भगवान् कृष्ण धराधाम को छोड़कर अपने धाम गोलोक में जाने लगे तो उद्धव बोले, "आपके बिना मैं कैसे रहूँगा?" ऐसे ही ब्रह्माजी बोले, "आपके बिना मैं सृष्टि रचना कैसे करूँगा?" शिवजी बोले, "सृष्टि का संहार कैसे करूँगा?" तीनों ने भगवान् से निवेदन किया तो भगवान् बोले, "तुम चिंता मत करो, मैं श्रीमद्‌भागवत के रूप में पृथ्वी पर रहूँगा। इसका अध्ययन करते रहना। तीनों को उससे शक्ति प्राप्त होती रहेगी।" तब तीनों को शांति मिली। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी जीव इस भागवत का नित्य सेवन करें, तो सदैव सुख ही सुख में रहेंगे। दुख तो समूल नष्ट हो जाएगा। मैं तो इस पुराण का सदा ही सेवन करता रहता हूँ। कभी 2 माह में और कभी 3 माह में अध्ययन पूरा हो जाता है। मैं सदा सुखी रहता हूँ। कभी कोई चिंता नहीं रहती है। हरे कृष्ण!



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे



सहज भगवद् प्राप्ति

6

7 अक्तूबर 2016
चाणक्यपुरी, दिल्ली

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे ठाकुरजी मुझे बता रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना बहुत सरल है। सरल कैसे है? वह नए भक्तों को आश्वासन दे रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं, सतयुग में हजारों वर्ष तपस्या करने पर भगवान् दर्शन देते थे, त्रेता में कई प्रकार के यज्ञ करने पर भगवान् यज्ञ अग्नि से प्रकट हो जाते थे, द्वापर में स्वच्छ हृदय से भगवान् के विग्रह का अर्चन–पूजन करने पर भगवान् श्री विग्रह से प्रकट हो जाया करते थे और कलियुग में तो भगवान् अपने नाम से ही प्रकट हो जाते हैं, केवल 64 माला प्रतिदिन कान द्वारा सुनकर जीभ से उच्चारण कर लो। कहीं पर जाने की आवश्यकता नहीं है, घर के ही किसी कोने में बैठ कर भगवान् के नाम को, कान द्वारा सुनकर, भगवान् का छद्म दर्शन किया जा सकता है। इसमें कोई पैसा नहीं लगता। सर्दी हो तो कंबल ओढ़ सकते हो और गर्मी हो तो पंखा, कूलर, ए.सी. आदि चला सकते हो। इसलिए भगवान् कलियुग में बहुत सरलता से मिल जाते हैं। इसमें कोई स्नान करने की भी जरूरत नहीं है, जैसी भी हालत हो वैसे ही आप बैठकर हरिनाम कर सकते हो क्योंकि मैं एक उदाहरण आपको दे रहा हूँ कि चंडीगढ़ के श्री दुग्गलजी के गुरुदेव रेलविभाग में गार्ड की पोस्ट (पद) पर

नियुक्त थे और एक दिन भगवान् का हरिनाम करते–करते उन्हें समय का कुछ भी ध्यान नहीं रहा और वे परम आनंद में डूब गए। भगवान् स्वयं उनके हमशक्ल बन कर उनकी ड्यूटी करते हुए रेलगाड़ी ले गए। यह बात लगभग 50 वर्ष पहले की है। इसी प्रकार आज से लगभग 500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग श्रीरूप, सनातन, माधवेंद्रपुरी, नरसी मेहता, कबीर, रविदासजी आदि ने हरिनाम जप कर ही भगवान् का दर्शन किया है। त्रेतायुग में महाराज खट्वांग ने दो घड़ी में भगवान् का दर्शन किया था।

भगवान् क्या कह रहे हैं :

tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कह रहे हैं, "जो जीव दुख पाकर के भी मेरी शरण में आ जाता है तो उसे मैं प्राणों से भी प्यारा रखता हूँ।"

भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं, "रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध का रूप धारण कर लेता है। यह काम ही, लुभाने वाला और बड़ा पापी है, इसको तो इस विषय में अपना शत्रु ही मान। इस पाप के महान् प्रतीक 'काम' वैरी (शत्रु) को मार डाल।"

इसका अर्थ है संसार की आसक्ति का न होना। जो इच्छाएँ हैं उनको दमन कर।

जब संसार की आसक्ति ही मन में नहीं रहेगी तो भगवान् को उपलब्ध करना बहुत सुगम हो जाएगा। यह फसावट ही भगवान् और जीव के बीच में दीवार का काम कर रही है। जब इन इच्छाओं से हृदय रूपी सिंहासन खाली हो जाएगा तो भगवान् बड़ी शीघ्र आकर हृदय रूपी सिंहासन पर विराजमान हो जाएंगे।

देखिए संसार की यह चल और अचल आसक्ति ही माया की सशक्त बेड़ी है जो जीव के पैरों में बंधी पड़ी है। इस बेड़ी को खोलने में कोई भी सक्षम नहीं है। माया की इस सशक्त बेड़ी को तोड़ने में

केवल नरसिंह भगवान् ही सक्षम हैं क्योंकि उनका अवतार भक्तों की हर प्रकार से रक्षा करने हेतु हुआ है। माया इनकी दासी है और इस दासी को दूर करना उनके लिए बहुत आसान है इसलिए भक्त को, हर साधक को चाहिए कि वह भगवान् नरसिंह के चरणों में बैठकर हरिनाम की कुछ मालाएँ उच्चारण पूर्वक कान से सुनकर कर लिया करें, यह परम आवश्यक है। नरसिंह भगवान् न केवल हमारे विघ्नों का नाश करेंगे बल्कि भक्ति मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को वह दूर करके शुद्ध भक्ति प्रदान करेंगे। उनका आविर्भाव ही भक्तों की रक्षा के लिए हुआ है। रात को सोते समय, प्रातः काल उठते ही तथा दिन में दो बार अपनी सुविधा के अनुसार नरसिंह भगवान् जी की स्तुति अवश्य कर लिया करें, इससे आपका जीवन ही बदल जाएगा।

brk uflg% ijrk uflgk] ;rk ;rk ;kfe rrk uflg%A
cfguflgk ân;s uflgk uflg vkfn 'kj.k çi|sAA
ueLrs ujflgk;] çºyknkºyknnkf;usA
fgj.;df'kiko{k%] f'kykVdu[kky;sAA
okxh'kk ;L; onus y{eh;L; p o{kflA
;L;kLrs ân;s lfor~ ra uflgeg HktsAA
Jhuflg t; uflg t; t; uflgA
çºykns'k ! t; ineke[kine & HkxAA

(नरसिंह पुराण) (श्लोक 3 : श्री. भा. 10.87.1 (टीका श्रील श्रीधर स्वामी))

यह स्तुति भी कर लेना अच्छा है और इनके चरणों में बैठकर हरिनाम करना भी बहुत ही उत्तम है, सर्वोत्तम है, तो आपके भजन में कोई रुकावट नहीं आएगी। इस प्रकार हरिदासजी की, गणेशजी की, महादेवजी की और गुरुदेव के चरणों में बैठकर कुछ मालाएं करना अच्छा है, यह सभी नामनिष्ठ हैं। हनुमानजी नाम के प्रेमी हैं उनके चरणों में बैठकर हरिनाम करना चाहिए। हरिनाम को कान से सुनने से स्वतः ही भगवद् रूप हृदय में प्रकट हो जाएगा। कहते हैं, देखो! शास्त्र कह रहा है :

l|fejv uke :i fcu| n[kA
vkor ân;| lug fcl"kAA

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 6)

जो हृदय में प्यार से प्रकट हो जाएगा, नाम जब कान में पड़ेगा तो हृदय रूपी जमीन में अंकुरित हो जाएगा। अंकुरित क्या होगा? राधा–कृष्ण प्रकट हो जाएंगे। किसी भी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर हरिनाम करते हुए यही मूल प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरा मन संपूर्ण रूप से हरिनाम में लग जाए। हनुमानजी सभी संसारी संकट हरने वाले हैं। हरिनाम करने में जो संकट आते हैं, विघ्न आते हैं, उन्हें नरसिंह देव ही हटा देते हैं क्योंकि माया इनके चरणों की दासी है।

gj| Ñ".k gj| Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj| gjA
gj| jke gj| jke jke jke gj| gjAA

हनुमानजी कह रहे हैं कि संकट तब ही आते हैं जब हम भगवान् को भूल जाते हैं।

dg guer fcifr çHk| lkbA
tc ro l|feju Hktu u gkbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

संकट तब ही आते हैं जब भगवान् का सुमिरन नहीं होता है। कलियुग में इस धरातल पर भगवान् नाम रूप से ही पधारे हैं। जो साधक कान से सुनकर नाम बोलता है वह इसी जन्म में अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष और पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त कर लेता है। नाम भगवान् से, साधक जो कुछ भी माँगता है नाम भगवान् उसे वही पदार्थ दे देते हैं क्योंकि भगवान् का नाम वांछा कल्पतरु है, चिंतामणि है लेकिन नाम निरंतर हो और भक्त अपराध नहीं होना चाहिए। भक्त अपराध तो नाम को समूल ही नष्ट कर देता है। सभी 11 इंद्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से इसी जन्म में भगवद् दर्शन हो जाते हैं। प्रश्न उठता है कि इन 11 इंद्रियों में उपस्थ इंद्रिय भी आती है

तो यह इंद्रिय भगवान् की सेवा में कैसे लग सकती है? इसका उत्तर है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से तथा कीर्तन में नृत्य करने से उपस्थ इंद्रिय भी भगवान् की सेवा में लग जाती है। विचार कर लो चाहे। जो नाचेगा उसकी यह इंद्रिय सेवा में लग जाएगी।

इसकी सेवा तो बाकी दसों इंद्रियों की सेवा से अधिक हो जाती है। देखिए! जिह्वा द्वारा पेट को रूखा–सूखा आहार, कम मात्रा में देने से यह इंद्रिय भी सेवा में लग जाएगी। ध्यान से सुनो! अगर जिह्वा वश में है तो यह सुगमता से वश में हो जाती है। जिह्वा का और इस इंद्रिय का एक ही कनेक्शन (संपर्क) होता है। जिह्वा से ही यह जागृत हो जाती है। इसलिए रूखा सूखा खाओ और काम को भगाओ। कम आहार करने से मन की चंचलता कम हो जाती है तथा शरीर भी स्वस्थ रहता है। यह शरीर मोक्ष का द्वार है, शरीर बिगड़ जाने से साधक का मन नहीं लग सकता है, भक्ति पथ पर नहीं चल सकता है। पेट से इस इंद्रिय का सीधा संपर्क रहता है इसलिए हमारे पूर्व गुरुवर्ग सायं में भोजन नहीं करते थे। प्रातः काल 7–8 बजे के स्नान करने के बाद ही संध्या–वंदन किया करते थे इसलिए साधक को उनके आनुगत्य में ही अपना जीवन बिताना चाहिए। जैसे हमारे गुरुवर्ग जीवन बिता रहे थे, वैसे ही हमें भी बिताना चाहिए तभी तो भगवान् की कृपा मिलेगी। जब उपरोक्त प्रकार से भजन–साधन होता है तो अष्टविकार होना शुरु हो जाता है। जब अष्टविकार होने लग जाता है तो साधक बिलख–बिलख कर रोने लग जाता है। तब गुरुदेव तथा भगवान् इसे सम्बन्ध ज्ञान करवा देते हैं। सम्बन्ध ज्ञान दास का, सखा का, भाई का, माँ–बाप का, शिष्य का, मंजरी आदि–आदि का उस साधक के हृदय में जगा देते हैं। कोई भी साधक इस प्रकार से साधन करके देख सकता है, क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। आप करके देख सकते हो। भगवान् तो 2 मिनट में ही मिल जाते हैं। आप भी कहोगे कि कैसा झूठा आदमी है यह? ऐसे कैसे हो सकता है? मैं आपको बताता हूँ सुनो –

जब आपको नींद आने लगे तब आप बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आए और मेरे तन से बाहर निकलने लगो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना और भूल मत करना।""हाँ! भूल मत करना" और भगवान् को बाँध भी दिया तो भगवान् नहीं भूलेंगे। हम भूल जाते हैं। देखो! इसमें कितना समय लगा? 10–15 सैकंड लगे।

अब दूसरा, जब आप सुबह निद्रा से उठो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! अब से लेकर और जब तक मैं सोऊँ तब तक, जो भी काम करूँ आपका ही समझकर करूँ और भूल जाऊँ तो आप मुझे याद दिला देना, भूल मत करना। प्रभु भूलना मत।"

तीसरी बार जब आप स्नान करने के बाद संध्या करने बैठो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी निगाह बना दो, ऐसी दृष्टि बना दो कि कण–कण में और प्राणी मात्र में मैं आपका ही दर्शन करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।"

भगवान् को तीनों समय भक्त ने बाँध दिया तो भगवान् नहीं भूलेंगे, हम भूल जाते हैं। इसमें तो, 2 मिनट भी नहीं लगे तो इन तीनों प्रार्थनाओं के सिवा शास्त्र में कुछ भी नहीं है। पूरे शास्त्रों में यह तीनों ही प्रार्थनायें हैं, इससे अलग और कुछ नहीं है। यह निष्काम कर्मयोग हो गया। जीव की अंत में जैसी भावना होती है उसके अनुसार उसका जन्म होता है और हर प्राणी में जो भगवान् को देखेगा, वह किसको सताएगा? किसी को नहीं सताएगा, चींटी को भी नहीं सताएगा, किसी जीव को भी नहीं सताएगा। तो देखो! कितना सरल रास्ता है, यह शास्त्र में कहीं भी नहीं लिखा हुआ है, लेकिन मेरे ठाकुरजी ने बताया है। कुछ चीजें ऐसी हैं जो शास्त्रों में नहीं हैं और प्रत्यक्ष में हो रही हैं, यह मेरे ठाकुरजी बताते रहते हैं। मैं कहता हूँ, "बाबा! कोई सरल सा रास्ता बता दो न।" तो बोले, "सरल रास्ता बता दूँगा तो मेरी सृष्टि कैसे चलेगी?" मैंने कहा, "सृष्टि तो चलती रहेगी, अब मुझ को बताना पड़ेगा।" तो उन्होंने बता दिया कि 2 मिनट में ही मेरे को प्राप्त कर सकता है। अब ध्यान

देकर सुनिए! जब आप भगवान् का दर्शन करने के लिए मंदिर जाते हो तो इन नेत्रों से दर्शन नहीं हुआ करता है इनसे तो जड़ दर्शन ही होता है। असली दिव्य दर्शन तो हृदय के नेत्रों से होते हैं, तो ऐसे दर्शन किया करो। मूक प्रार्थना ही दिव्य होती है। इससे भगवान् के नैन चलते हुए तथा मूक प्रार्थना का जवाब देते हुए भक्त को महसूस होने लगता है। आप करके देखो। सच को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। जब ठाकुरजी के सामने सभी का नृत्य होता है, वह नृत्य हृदय से नहीं होता वह शरीर से होता है। अतः किसी को भी पुलक तथा अश्रुपात नहीं हुआ करता। ठाकुरजी की सेवा जो मन से नहीं होती, वह सेवा भी बनावटी होती है, कपटी होती है।

यदि सेवा प्रेम सहित हो तो पल–पल में शरीर पुलकित होने लगता है, आँसू आने लगते हैं। हरिनाम से तो धीरे–धीरे प्रेम भी प्रकट हो जाएगा। जब किसी साधक की नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला होने लग जाती हैं तो उसकी सेवा भी रसमयी होने लगती है। अगर 64 माला नहीं होती हैं तो वह सेवा भी नीरस रहती है। साधक को छिप–छिप कर रोने, पुलक के भाव प्रकट होने लग जाते हैं। जब अधिक भाव से हरिनाम में मन रमने लग जाता है तो फिर हृदय से रोने का स्रोत बहने लगता है, फिर उसे रोका नहीं जा सकता। साधक भाव में तल्लीन हो जाता है, फिर उसे कोई भक्त कहे या अभक्त कहे उसके बस की बात नहीं रहती क्योंकि उसके मन का तार ठाकुरजी के तार से जुड़ जाता है, फिर तो रोने का तांता ही लग जाता है। फिर भगवान् कैसे रह सकते हैं? भगवान् कहते हैं, "भक्त जब रोता है तो मैं भी उसके लिए रोता हूँ।" भक्त कभी भगवान् के पास नहीं जाता, भगवान् ही भक्त के पास आया करते हैं। तो फिर उसको क्या होता है? फिर उसे भगवान् के बिना यह संसार सूना–सूना दिखाई देने लगता है। कण–कण में तथा जीव मात्र में भगवान् के दर्शन करने से उसे संसार में खुशियां ही खुशियां नजर आने लगती हैं। वह ऐसी मस्ती में झूमता है जैसे कोई मादक रस पीकर अलमस्त हो जाता है। यह मस्ती अलौकिक हुआ करती है,

इसे कोई बता नहीं सकता, अकथनीय है। इसको कहीं चैन नहीं पड़ता है, रात में नींद नहीं आती है, दिन में भूख नहीं लगती है और बस रोता रहता है, "हा मेरे प्राणनाथ! आप कब मिलोगे। मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपको? अब मेरा एक क्षण भी युग के समान बीत रहा है, आप मुझे कब अपनाओगे? हे प्रभु!" और रो–रो कर पछाड़ खाता है।

जब भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। जब भगवान् से भक्त पूछता है, "आप क्यों रोते हो?" भक्त तो पूछेगा ही भगवान् से, "आप क्यों रोते हो?" तो भगवान् जवाब देते हैं, "मैं इसलिए रोता हूँ कि तू मुझे रुलाता रहता है। मैं रोता नहीं हूँ, तू मुझे रुलाता है। तेरा मेरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। तू नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ, तू मौन धारण करता है तो मैं भी मौन धारण कर लेता हूँ, तू मुझे जो भी आदेश करता है, मुझे उस आदेश का पालन करना पड़ ही जाता है क्योंकि मैं मजबूर हूँ, तूने प्रेम की रस्सी से मेरे पैरों को बांध रखा है।"

मेरे ठाकुरजी बोल रहे हैं, "यदि साधक 10 दिन उक्त प्रकार से ठाकुरजी का दर्शन लाभ करता है तो वह रोये बिना नहीं रह सकता, शर्त यह है कि उससे भक्त अपराध न हुआ हो।" तब साधक भगवान् से कहता है, "मेरे प्राणनाथ! मुझे कब दर्शन दोगे? हे मेरे प्राणनाथ!" उसे अहंकार, घमंड, गर्व नहीं होता है। "मैं, आपके चरणों से दूर न हो जाऊँ। प्रभु! ऐसी कृपा करना कि माया का आवेश मुझ पर नहीं हो। मेरी प्रतिष्ठा होगी तो मेरा पतन हो जाएगा।" भगवान् साधक भक्त को भी जवाब देते हैं, भगवत्कृपा से जिसको प्रतिष्ठा जहर लगेगी तो वह सबके सामने खुलकर रोएगा जैसे गौरहरि सबके सामने जोर जोर से बिलख–बिलख कर रोते थे, उनके रोने से पशु–पक्षी, सब जानवर तक बेहाल हो जाते थे। यह रोना भी एक छूत का रोग होता है, पास वाले को भी सुबक सुबक कर रुला देता है। जो भक्त के रोने को झूठा या बनावटी समझने लगे, वह ठाकुरजी का बैरी हो जाता है। उसका लक्षण सबके सामने आ जाता है। उसे कोई बीमारी पकड़ लेती है, हरिनाम में अरुचि होने लगती है, ज्ञान

मार्ग या कर्म मार्ग में फंस जाता है, घर कलह का स्थान बन जाता है, माँ–बाप, भाई–बहन, सगे–सम्बन्धी भी शत्रुता करने लग जाते हैं। इस प्रकार उसका सारा जीवन तड़पने में ही बीत जाता है क्योंकि सभी के हृदय में भगवान् रहते हैं इसलिए वह केवल दुखी ही रहता है, फिर कहीं भी शांति नहीं मिलती। जैसा कि प्रत्यक्ष में हो रहा है कि अपराध से क्या नहीं हो सकता!

bæ dfyl ee l;y fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA fcç ækg ikod lk tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

tk vijkèk Hkxr dj djbA jke jk"k ikod lk tjb

(मानस, अयोध्या. दो. 217 चौ. 3)

यह भगवान् का वचन है। पावक ऐसी आग होती है जो लोहे को पिघलाकर पानी बना देती है, उसको ऐसा दुख होता है, ऐसा कष्ट होता है कि ऐसा अपराधी, उसी समय नहीं मरता। जिंदगी भर अशांति में रहता है। इसलिए कहा गया है कि करोड़ों में से कोई विरला ही भगवान् को प्राप्त कर सकता है। इस मार्ग में काँटे ही काँटे हैं, इनसे पार होना बड़ा मुश्किल है लेकिन नाम से पार हो सकता है। केवल नाम रक्षा करता है। नाम करो और कान से सुनो। अतः भक्त अपराध से बचकर रहना चाहिए। इससे बड़ा कोई अपराध नहीं है। भक्त का थोड़ा सा अपराध भी भगवान् को सहन नहीं होता। भक्त चाहे कितना ही बड़ा हो अपराध होने पर वह भी नहीं बचेगा। वैसे तो शास्त्र ने 10 अपराध लिखे हैं लेकिन अपराध चौरानवें (94) होते हैं।

जब एक बार नारदजी भगवान् के वैकुण्ठ में पहुँचे तो भगवान् बोले, "नारद! तू सब जगह जा रहा है, क्या हालचाल है?" तो नारदजी बोले, "हे भगवान्! सब दुखी हैं, कोई भी सुखी नहीं है।" भगवान् बोले, "जो माँ–बाप से बिछुड़ जाता है तो वह कैसे सुखी रह सकता है? मैं तो सब का माँ–बाप हूँ, सब मुझे भूल गए हैं, इसलिए

दुखी ही रहेंगे।" तो नारद बोले, "भगवान् आप कहाँ रहते हो यह तो बताओ?" तो भगवान् बोलते हैं, "नारद! मैं 84 लाख योनियों के हृदय मंदिर में रहता हूँ और उनके कर्मानुसार उनको योनि देता हूँ। जो उस योनि को नष्ट करता है तो उसी योनि में फिर उसको जन्म लेना पड़ेगा।" इसीलिए किसी को मत सताओ। इसलिए 94 अपराध होते हैं। भगवान् कहते हैं, "एक तरफ तो मुझसे प्यार करता है और दूसरी तरफ मुझे ही सिर में डंडे मारता है।" यह डंडे मारना ही तो हुआ। मक्खी को अपने हाथ से मार दिया तो मक्खी बनना पड़ेगा। मच्छर आया तो मच्छर को मार दिया तो मच्छर बनना पड़ेगा। इसलिए इनका यह अपराध होता रहता है।

कहते हैं कि मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। इसीलिए सुदुर्लभ है कि हम उनकी तरफ ध्यान ही नहीं देते। 10 अपराध हैं उनकी तरफ तो थोड़ा बहुत ध्यान देते हैं और ध्यान चला जाता है लेकिन इनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता। इसलिए यदि किसी का इनकी तरफ ध्यान हो जाए तो भगवान् छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं। भगवान् कहते हैं, "ऐसे भक्त को मैं छोड़ नहीं सकता। मेरे अंदर शक्ति नहीं है कि मैं उससे अलग हो सकूँ। काल और महाकाल मेरे से थर–थर काँपता रहता है लेकिन मैं ऐसे भक्त से थर–थर काँपता हूँ। वह जो आदेश देता है उसका मैं पालन करता हूँ। मैं तो उसका नौकर बन जाता हूँ, गुलाम बन जाता हूँ।" इसलिए अपराध से बचो। देखो! दुर्वासाजी, जो भगवान् शंकर के परम भक्त थे, कोई छोटे–मोटे भक्त नहीं थे। फिर भी अम्बरीष महाराज के प्रति अपराध करने पर उन्हें कितना दुख उठाना पड़ा, यह तो आप शास्त्र में पढ़ते ही रहते हो। अपनी रक्षा के लिए भगवान् के पास गए तो भगवान् ने यह कह दिया, "मेरा हृदय तो अम्बरीष ने ले रक्खा है, मेरे पास नहीं है। क्षमा तो हृदय से होती है और मन से होती है तो मेरा मन तो मेरे पास है ही नहीं। अतः तुम अम्बरीष के पास चले जाओ। उसके चरणों में पड़कर क्षमा माँगो तब मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारा पीछा छोड़ देगा।" बहुत भागते फिरे लेकिन किसी ने उनकी रक्षा नहीं की। शिवजी के पास गए तो शिवजी बोले, "तुम मेरा शिव–लोक ही गिरा दोगे, भाग

जाओ यहाँ से।" ब्रह्मा के पास गए तो ब्रह्माजी ने भी जवाब दिया, "तुम यहाँ से जाओ, तुम मेरा ब्रह्मलोक जला दोगे, भाग जाओ। इसके बिना तुम्हारे बचाव का कोई उपाय नहीं है, यह उपाय भी मैंने, तुम्हें बेमन से बता दिया है। बताना तो नहीं चाहता था लेकिन क्योंकि तुम शिवजी के भाई हो इसलिए बता दिया।" अब जब दुर्वासाजी ने अम्बरीषजी से क्षमा माँगी, तब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासाजी का पीछा छोड़ा।

इसलिए भक्त–अपराध बहुत खतरनाक है। भगवान् स्वयं बोल रहे हैं, "यदि मेरा हाथ भी भक्त–अपराध कर दे तो मैं इस हाथ को काट के फैंक दूँ।" तो इससे ज्यादा कोई क्या कर सकता है। इसलिए ठाकुरजी सावधान कर रहे हैं कि जो शुभ अवसर आपको मिला है वह फिर भविष्य में नहीं मिलेगा। एक तो कलियुग में जन्म दिया जिसमें भगवत्प्राप्ति बहुत सरल व सुगम हो जाती है, दूसरा भारतवर्ष में जन्म दिया। यहाँ भगवान् का अवतार होता है वरना तो विदेश में जन्म दे देते। यहाँ गंगा–यमुना, राधा–कुंड, श्याम–कुंड आदि में स्नान करने से पापों से निवृत्त हो जाते हैं। तीसरा भक्त के घर में जन्म हुआ, चौथा सद्गुरु की प्राप्ति हुई और गौरहरि की गुरु–परंपरा में जुड़ना हुआ और पाँचवाँ शुद्ध सत्संग उपलब्ध हुआ। फिर यह सब कोई कम सौभाग्य तो नहीं है। तब भी नहीं किया, फिर भी समय को बर्बाद किया तो दिल दहला देने वाले नरकों की यातनाओं की ओर जाना पड़ेगा। कितने दुर्भाग्य की बात है!



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

भगवद्-स्मरण

7

18 नवंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

जैसे स्वप्न झूठा होता है, वैसे ही यह मानव जीवन भगवद्–स्मरण बिना झूठा होता है। जैसे स्वप्न में सुख–दुख झूठा होता है वैसे ही मानव जीवन में सुख–दुख झूठा होता है। जैसे पूर्व जन्मों के संस्कारवश सुख–दुख बिना विचारे ही उपलब्ध होता रहता है वैसे ही पूर्व जन्म के संस्कारवश, स्वप्न में सुख–दुख महसूस होते रहते हैं। इनका कोई सार नहीं।

यह सब कर्मानुसार सत, रज, तम गुणों के ही आश्रित हैं। यह गुण ही मानव को क्षण–क्षण में नचाते रहते हैं। मानव का इसमें कोई वश नहीं है, पूर्व संस्कार के वश ही यह गुण आते रहते हैं अतः जीव परतन्त्र है, स्वतन्त्र तभी हो सकता है कि जब इनसे पिंडा छूट जाए। कलिकाल में पिंडा छूटने का केवल मात्र एक ही उपाय है, भगवद्–स्मरण। वह चाहे कैसे भी हो? प्यार से हो, दुश्मनी से हो, आलस्य से हो, किसी के कहने से हो, पूर्व संस्कारवश हो। और कलिकाल में स्मरण का आधार है, केवल हरिनाम। हरिनाम स्मरण ही हरि की याद करवाता रहता है, वह हरिनाम चाहे मन से हो, चाहे बेमन से हो। हर क्षण सुख का विधान बनाता रहता है।

अब सुख क्या है? वह यह है कि मन की हर इच्छा पूरी हो अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ही इसका सार है। मानव का प्रथम कर्म अथवा धर्म है कि उसकी अपनी कमाई धर्म में खर्च हो। अब धर्म का क्या मतलब है? भगवान् की साँस से उद्भूत हुए शास्त्रों में जो वर्णित है उसको धारण करना ही धर्म कहा जाता है। धर्म से ही मानव को असीम सुख की प्राप्ति तथा मूल सहित दुख का नाश हो सकता है।

धर्म वही कहा जाता है जिससे जीव मात्र का भला हो। अधर्म उसे कहा जाता है जिससे जीव मात्र की हानि हो। लेकिन देखा जाता है कि धर्म से, कोई मानव कर्म नहीं करता। अपने परिवार के लिए ही कर्म करके अधर्म कमाता रहता है जैसे पुत्र होने पर समाज को स्वादिष्ट भोज करवाता है। पुत्र पुत्रियों की शादी में अनाप शनाप पैसा खर्च करता रहता है। अपनी ऐश आराम की सुविधाओं के हेतु आलीशान मकान बनाता है, घूमने हेतु कार खरीदता है, आने–जाने में खर्च करता रहता है वह भी दो नंबर पैसे की कमाई होती है। दूसरे का हक छीन कर सुख का विधान करना कैसी मूर्खता है, जिससे पैसा छीनता है इसको मालूम नहीं कि यह उसका कर्जवान बनता जा रहा है, मरने के बाद ऊँट, बैल बन कर कर्ज चुकाएगा। खाने पीने को कुछ मिलेगा नहीं, प्यासा भूखा रह कर उसकी सेवा करनी होगी। उसके वश में रह कर जीवन काटेगा, नाक में नकेल डालकर उससे बेरहमी से काम करवाया जायेगा। जिससे उसको भूख व प्यास की वजह से नींद भी नहीं आएगी तो कमजोरी की वजह से भार ढो नहीं सकेगा तो पीछे से मालिक उसको चाबुक से मार–मार कर काम करवाएगा। वह बोल तो सकता नहीं, अंदर ही अंदर दुखी होता रहेगा और अन्त में मर कर नर्क में अनेक युगों तक यातनाएँ भोगता रहेगा। फिर नर्क भोग कर 84 लाख योनियों में कर्मभोग भोगेगा।

30 लाख तरह के पेड़ पौधो में भोग भोगना पड़ेगा, 20 लाख तरह के उड़ने वाले पक्षी, जानवरों में भोग भोगेगा, 20 लाख जलचर

जानवरों में भोग भोगेगा, 10 लाख चौपाये पशुओं में भोग भोगना पड़ेगा एवं 4 लाख तरह की मनुष्य जातियों में भोग भोगना पड़ेगा। इसको जोड़ कर 84 लाख योनियां होंगी। इसमें अनेक युग बीत जाएंगे। 4 लाख 32 हजार वर्ष का कलियुग का समय है। इससे दुगना द्वापर, इससे तिगुना त्रेता, इससे चौगुना सतयुग। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मनुष्य भी चाहते हैं कि कलियुग में उनका जन्म हो जाये।

अब विचार करो कि कब मनुष्य जन्म मिल सकेगा? तभी तो हमारे शास्त्र चेता रहे हैं, आंखें खोल रहे हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ है। फिर भी मानव बुरा कर्म करके फिर इसमें जाने की तैयारी कर रहा है। कितनी मूर्खता है। अतः दुख सागर में गोता खाता रहेगा।

1966 में, जब मैं 38 साल का था, तब मैं एक रोज लंच (दोपहर का भोजन) में जा रहा था और रास्ते में सड़क की तरफ एक 80–90 साल का बूढ़ा बैठा हुआ था, उसने बोला, "बेटा! इधर आना, इधर आना।" पहले मैंने सोचा कि कोई भिखारी है और पैसे मांगेगा तो मैंने कहा, "बाबा मेरे को टाइम (समय) नहीं है, मैंने ऑफिस (दफ्तर) जाना है।" बूढा बोला, "अरे! थोड़ी देर के लिए आ जा।" तो मैंने सोचा कि बुजुर्ग है, अगर कहना नहीं माना तो दोष लगेगा। इसलिए मैं उसके पास चला गया। जब उसके पास गया तो बोले, "बैठ जा" और मैं बैठ गया। कहते हैं, "तेरा हाथ दिखा" तो मैंने कहा," मैं किसी को हाथ नहीं दिखाता।" मैंने सोचा यह मुझसे पैसा लेगा। उसने कहा, "मैं तेरे से पैसा नहीं लूँगा, बस हाथ दिखा दे।" मैंने हाथ दिखाया तो उसने आगे पीछे की सब बातें बता दीं। यह मेरी पुस्तक 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' में भी लिखा है पर डिटेल (विस्तार) में नहीं है। उसने सब कुछ बता दिया और फिर बोला, "तुम तो यहाँ के नहीं हो।" तो मैंने पूछा, "मैं कहाँ का हूँ?" वे बोले, "तुम तो गोलोक धाम से आये हो।" मैंने कहा, "बाबा! क्यों झूठ बोलते हो?" मैंने सोचा कोई ज्योतिषी होगा। वह कहने लगे, "नहीं! सच बोल रहा हूँ।" मैंने कहा, "मैं कैसे मान लूँ कि मैं वहाँ से आया हूँ?" तो बोले, "देखो! तुम्हारे हाथों में 7 चिह्न हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला

इस तरह से तुम्हारे दोनों हाथों में चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जिसके एक चिह्न होता है, वह भगवान् का पार्षद होता है और तुम्हारे तो 7 चिह्न हैं।" फिर उसने बोला, "तुम 74 साल की उम्र से पहले किसी को मत बताना और उसके बाद ही बताना तो तुम पूरी दुनिया में हरिनाम का प्रचार कर लोगे।" उसने पूछा, "तुम्हारा ऑफिस (दफ्तर) कहाँ है?" और मैं ऐसे मुड़कर अपने हाथ से बताने लगा कि उधर ऑफिस है तो फिर जब मैंने वापिस मुड़ कर देखा तो वह बूढ़ा गायब हो गया। यह और कोई नहीं, हनुमानजी थे क्योंकि मैं रात को हनुमानजी को एक डेढ़ घंटे तक रामायण सुनाया करता था। इसलिए हनुमानजी मेरे पर बहुत राजी (खुश) थे और जब मैं सुनाता था, तो कमरे में कई बार इतनी सुगंध आ जाती थी कि जैसे अलौकिक सुगंध हो, तो मैं समझ जाता था कि हनुमानजी सुनने के लिए आये हैं। इस तरह से मुझे हनुमानजी मिले थे।

मानव भक्त कहता है, "हमें सुख कैसे मिलेगा?" हरिनाम करने से ही सुख मिलेगा। भगवान् मुझे बोलते हैं, "यह सभी मेरे बच्चे हैं और मुझ से बिछुड़े हुए हैं, परंतु मेरी गोद में कोई आना नहीं चाहता है।" जिनको संसार में रहना ही नहीं आया, वे भगवान् के पास कैसे जा सकते हैं? पहले घर में रहना तो सीखो, फिर समाज में रहना सीखो, फिर गाँव और शहर में रहना सीखो, फिर देश में रहना सीखो। अभी तो कहीं भी रहना नहीं आया तो भगवान् कैसे मिलेगा? स्वप्न में भी नहीं मिलेगा। घर में रहकर माँ–बाप से लड़ते रहते हो, भाई–बहिन से लड़ते रहते हो, आस–पड़ोस से लड़ते रहते हो। रिश्तेदारों से प्यार करते हो और उनसे सलाह लेते हो और भाई से पूछते भी नहीं हो। कैसा, यह कलियुग आया है, फिर तुम्हें भगवान् कैसे मिलेगा?

कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ, ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का मकान है, सताने से आत्मा दुखी होती है न कि शरीर। जब आत्मा को दुख देंगे तो क्या परमात्मा खुश रहेंगे? अभी तक तो भक्ति पथ बहुत दूर

है। प्रथम में एल.के.जी. में भर्ती होना पड़ेगा, तभी पी–एच.डी. में जा सकोगे। पहले घर में रहना तो सीखो, तब ही भक्ति पथ पर जा सकोगे। भगवान् ने मोहल्ला, गाँव इसीलिए बनाये हैं कि मानव मिलजुल कर सुखी रहना सीख सके, परंतु यदि मर्यादाओं को तोड़ दो तो सुखी होने का सवाल ही नहीं। जब घर में ही रहना नहीं आया तो समाज में, गाँव में, शहर में और देश में रहना, कैसे आ सकता है? पहले नींव मजबूत बनाओ, तभी भक्ति महल खड़ा कर सकोगे, वरना महल का निशान ही नहीं होगा।

यदि मानव दो साधन मन में धारण कर ले, केवल दो साधन, तो सारा बखेड़ा ही मिट जाए।

1. पहला है, अपने घर की और वैभव की आसक्ति दिल से निकाल दें, आसक्ति ही दूसरा जन्म दिलाती है, तो यह सारा रोग ही खत्म हो जाए।

2. दूसरा साधन है संग्रह–परिग्रह इतना ही रखो कि अपना जीवन सुचारु रूप से चलता रहे। जितना संग्रह–परिग्रह रहेगा, उतना ही मन फंसता चला जायेगा और भगवान् की तरफ मन नहीं जायेगा। हरिनाम में मन नहीं लगेगा।

ये दो साधन अगर कोई कर ले तो भगवान् की प्राप्ति बहुत सुचारु रूप से, जल्दी हो जाए।

हमारे गुरुवर्ग तो दो करवे रखते थे। एक तो शौच जाने के लिए और दूसरा प्रसाद पाने के लिए। एक झौंपड़ी में रह कर हरिनाम जप करते रहते थे। हमें विचार करना होगा कि हम गृहस्थी हैं, हमें सब कुछ चाहिए तो इतना ही रखो कि मन उसमें फंसे नहीं। ज्यादा जरूरत का सामान ही घर में रखो, फिजूल का सामान रखने से मन को हरिनाम करने में हानि होती रहेगी क्योंकि मन उसमें फंसता रहेगा। भगवान् ऐश–आराम से नहीं मिलता। त्याग और तपस्या से ही भगवान् मिला है और मिलेगा। त्याग है नींद का त्याग। ब्रह्ममहूर्त में जल्दी उठो और हरिनाम करो। रात में 1–2 बजे जाग कर

हरिनाम करना चाहिए। और तपस्या क्या है? हरिनाम करना। इस प्रकार त्याग है– निद्रा का त्याग और तपस्या है– हरिनाम करना।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने भी यही कहा है, "अभ्यास व वैराग्य।" अभ्यास है हरिनाम जप और वैराग्य है आसक्ति का मन में न रहना। यह आसक्ति ही अगला जन्म करवाती है। आसक्ति, भक्त और भगवान् में रहे तो जन्म मरण का कारण दुख हमेशा के लिए विलीन हो जाए। दुख का जड़ सहित नाश और सुख का असीम आनंद हो जाये। अगर यह बात हो जाए तो सदैव के लिए आनंद समुद्र उपलब्ध हो जाए। भगवान् की भूख नहीं है, भूख है संसार की। अतः 84 लाख योनियों में चक्कर लगाते रहो और दुख भोग भोगते रहो। यही तो माया राज्य है, माया का मतलब है अँधेरा, माया का मतलब है अज्ञान, माया का मतलब है झूठ, माया का मतलब है सपना, माया का मतलब है अनित्यता, माया का मतलब है अंधकार। मानव, इसमें फंसता जा रहा है। यह फसावट सत्संग से ही दूर हो सकती है। सच्चा सत्संग कैसे और कहाँ मिले? जो इस संग का राहगीर है, वह है साधु। लेकिन 'बिनु हरि कृपा मिले नहिं संता।' भगवान् सामने आ जाए, तब भी भगवान् को पहचान नहीं सकते। भगवत्कृपा के बिना नहीं पहचान सकते। क्या कारण है? कृष्ण भगवान् तो कौरवों के घर में 24 घंटे विराजते थे, परन्तु कौरव उनको एक साधारण मानव ही मानते थे क्योंकि उन पर हरि की कृपा नहीं थी।

हरिनाम जपते हुए भगवान् का सानिध्य परम आवश्यक है। जैसे हमारे पास कोई आगंतुक (अचानक आ जानेवाला) आवे और हम सामने बैठ कर उससे बात करते हैं और वह हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा है। फिर कुछ देर बाद यदि हम पीठ मोड़कर बैठ जाएँ या वहाँ से चले जाएँ तो आगंतुक को कितना बुरा लगेगा? इसी प्रकार हम हरिनाम कर रहे हैं तो हमारे पास भगवान् को बिठाना पड़ेगा वरना हमें भगवान् का दोष लगेगा। हमारा मन जो भगवद् स्वरूप है, उसे हम यदि इधर उधर ले जाएंगे तो हरिनाम शुद्ध उच्चारण नहीं

होगा। मन के साथ में जियो। यही मूल बाधक है। यदि हमारा मन स्कूल, दुकान, खेत में चला जाएगा तो भगवान् उठकर चले जाएंगे। इसलिए जब हरिनाम करें तो भगवान् को संग में रखना चाहिए। उनके चरणों में बैठ कर के हरिनाम करना चाहिए।

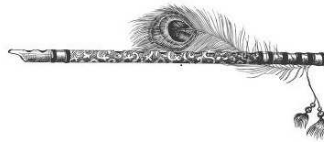
देखो! हरिनाम कितना चमत्कारी है? शिमला की, अभी 5–6 महीने की ही बात है। शिमला में, मेरे गुरु भाई तीर्थ महाराज के शिष्य हैं, उनको हृदय में कैंसर हो गया था। तो वह बोला, "मैं तो मरूँगा क्योंकि कैंसर का तो कोई इलाज नहीं है, तो आप बताओ क्या करूँ?" मैंने कहा, "मैं ठाकुरजी से पूछूँगा।" मैंने ठाकुरजी से पूछा कि वह बेचारा डेढ़–दो लाख नाम कर रहा है और उसको कैंसर हो गया है तो उसका क्या इलाज है? ठाकुरजी ने बोला, "उसको बता दो कि वह जितना हरिनाम करता है उससे डबल कर दे। मैंने पूछा कि क्या कैंसर खत्म हो जायेगा? ठाकुरजी ने कहा, "क्यों नहीं होगा? इसका मतलब हरिनाम छोटा हो गया और कैंसर बड़ा हो गया।" मैंने फोन पर कह दिया, "जितना आप नाम करते हो, उससे डबल कर लो।" तो उन्होंने डबल किया तो डेढ़ महीने के बाद में तीन अस्पतालों में चैक करवाया तो तीनों अस्पताल कहते हैं कि कैंसर का नाम–निशान भी नहीं है। यह प्रत्यक्ष हरिनाम का प्रभाव देख लो। कैंसर तक खत्म हो गया।

जयपुर में 23 साल का लड़का जिसका 95% लीवर खराब था और डाक्टरों ने कह दिया कि उसको घर ले जाओ, अब वह बच नहीं सकता। उसके दोस्त ने मुझे फोन किया कि ऐसी–ऐसी बात है तो मैंने कहा कि उसे हरिनाम करवाओ। "उससे एक लाख हरिनाम करवाओ और गोविन्द देवजी का चरणामृत दिन में तीन बार सुबह–दोपहर–शाम को दो।" तो उसने चरणामृत लिया और एक लाख हरिनाम किया। उसने सोचा कि अब मरना तो है ही तो एक लाख नाम करके ही मरूँ तो अच्छा है। एक लाख हरिनाम किया। अभी की बात है, यह भी ज्यादा दिन पुरानी बात नहीं है। एक हफ्ते

के बाद में उसको प्यास लगी। पहले पानी की प्यास ही नहीं लगती थी, तो अब प्यास लगी और पानी डाइजेस्ट (पच गया) हो गया फिर 20 दिन के बाद में भूख लगी तब उसने खाया और डाइजेस्ट (पच गया) हो गया। अब उसने सोचा कि अब बच गया। वह अब एकदम से स्वस्थ है। डॉक्टर के पास गया, तो डॉक्टर अचम्भा करने लगा कि ये कैसे हुआ? उसने कहा कि ऐसी–ऐसी बात है। तो उसके डॉक्टर भी मेरे पास आए थे और बोले कि क्या हरिनाम में इतनी शक्ति है? मैंने कहा, "हरिनाम में इतनी शक्ति है कि त्रिभुवन को हिला सकता है। आपको मालूम नहीं है कि भगवान् का नाम कितना शक्तिशाली है?" डॉक्टर बोला, "हमको बता दो।" तो मैंने कहा, "आप भी हरिनाम करो।" तो वह भी हरिनाम करने लगे। तो मैं आपको बता रहा हूँ कि हरिनाम में क्या शक्ति है।

हरिनाम से बढ़कर तो कोई शक्ति नहीं है। यदि ऐसा न हो तो फिर कैंसर तो हरिनाम से बलिष्ठ हो गया और हरिनाम कमजोर हो गया। यह कैसे हो सकता है? अब यह देखिये! कि कैसे–कैसे चमत्कार हैं हरिनाम के? हरिनाम से मौतें ही टल जाती हैं। इसलिए सबको हरिनाम करना चाहिए।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

भगवद् प्राप्ति की कुंजी

(8)

25 नवंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

यदि यह 15 पोएन्ट (बिंदु) धारण हो जाएँ। यदि 15 में से 1 पोएन्ट (बिंदु) भी धारण हो जाए तो उसका उद्धार हो जाए।

1. तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना – अगर ऐसा स्वभाव बन जाए तो फिर भगवान् दूर नहीं हैं।

2. कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहें – कंचन में सब आ गया पैसा, वैभव इत्यादि। कामिनी में कोई भी हो बच्ची हो, जवान हो उसे माँ समझे। फिर क्या है प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठा शूकर विष्ठा। जब बड़ाई हो तो ऐसा समझे कि सब मेरी बड़ाई क्यों कर रहे हैं? मेरे में तो कोई गुण नहीं है जो भी है वह हरिनाम की वजह से है।

3. आसक्ति न हो। वैभव से आसक्ति न हो। जो भी कुछ है जमीन है, मकान है, कुछ भी है, सब भगवान् का है।

4. संग्रह–परिग्रह कम रखो। संग्रह–परिग्रह उतना ही रखो जितने में काम चल जाए। कहते हैं, "हम तो गृहस्थी हैं और हमको तो संग्रह करना ही पड़ता है।" लेकिन उतना ही करो, जितने से काम चल जाए।

5. हरिनाम में भगवान् को पास रखो।

6. भगवान् के लिए त्याग और तपस्या होनी चाहिए। त्याग और तपस्या क्या है? भगवान् आराम से कभी नहीं मिलते। 1:00 से 2:00 बजे उठकर हरिनाम जप करना चाहिए। कहते हैं, "हमको नींद आती है।" मैं कहता हूँ, "नींद नहीं आती, शाम का भोजन बहुत कम करना चाहिए या दूध पी कर सो जाना चाहिए।" धीरे–धीरे आपको आदत पड़ जाएगी और आप 1:00 से 2:00 बजे उठोगे और आपका हरिनाम होने लग जाएगा।

7. श्रीमद्भागवत का पठन करना चाहिए। देखो! जब भगवान् वैकुण्ठ जाने लगे तो ब्रह्माजी बोलते हैं, "प्रभु! आप जा रहे हो और मैं तो सृष्टि रचना करने में असमर्थ हो जाऊँगा। मैं सृष्टि नहीं कर सकूँगा। तो ब्रह्मा को भगवान् ने कहा, "मैं स्वयं श्रीमद्भागवत में स्थित हूँ, तुम श्रीमद्भागवत का पाठ करते रहो। तुम्हारी सृष्टि रचना अपने आप होती रहेगी। इसलिए श्रीमद्भागवत पाठ करो।" फिर शिवजी ने भी ऐसे ही कहा, "आपके जाने के बाद में मारण शक्ति मेरे अंदर नहीं रहेगी, मैं क्या करूँ?" तो उन्होंने कहा, "मैं यहाँ पर ही हूँ श्रीमद्भागवत के रूप में, तुम श्रीमद्भागवत प्रतिदिन पाठ करो। कभी पार्वती आपको श्रीमद्भागवत सुनाएगी और कभी तुम सुनाओ। जब तुम सुनाओगे तो 2 महीने लगेंगे जब पार्वती सुनाएगी तो उसे ज्यादा समय लगेगा।"

8. परहित सरिस धर्म नहिं भाई। दूसरे का हित करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। दूसरे का हित करना ही सच्चा धर्म है। इसलिए दूसरे का हित करो।

9. किसी की आत्मा मत सताओ। यह शरीर क्या है? आत्मा का घर है, तो दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता है। यह शरीर तो जड़ है। शरीर को कभी भी दुख नहीं होगा। आत्मा को दुख होगा। तभी तो कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ ऐसा तो नहीं कहा कि किसी का शरीर मत सताओ।

10. ब्रह्मचर्य व्रत– ब्रह्मचर्य व्रत किसको कहते हैं? 11 इंद्रियां हैं उनसे ही ब्रह्मचर्य होता है। 11 इंद्रियों को अपने गोलकों में रखो,

माया की तरफ मत जाने दो। जैसे कान को भगवान् की कथा सुनाओ, जिह्वा से नाम जपो। ऐसे 11 इंद्रियों को भगवान् की तरफ नियोजित करो, वह ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य का विस्तृत रूप है 11 इंद्रियों को भगवान् की तरफ लगाना।

11. भगवान् दो चीजों से बहुत प्रसन्न होते हैं। एक साधु की सेवा से भगवान् बहुत खुश होते हैं। दूसरा सांड की सेवा से, सांड को दलिया खिलाने से। क्योंकि सांड से गायों की जनरेशन (संख्या) बढ़ती है। देखो! जब कोई मरता है तो गरुड़ पुराण सुनाते हैं। गरुड़ पुराण में लिखा है कि जो मरने वाले के निमित्त सांड छोड़ता है तो मरने वाला भी वैकुण्ठ जाता है और छोड़ने वाला भी। इसीलिए हम जीते जी ही सांड की सेवा करें तो कितना लाभ होगा। तो हमको सांड को दलिया खिलाना चाहिए। दलिया, अपनी सामर्थ्य के अनुसार खिलाओ। सवा 5 किलो, सवा 11 किलो, सवा 21 किलो, जितनी भी सामर्थ्य हो, उतना दलिया खिलाओ। दलिये में एक चौथाई गुड़िया शक्कर (गुड़ वाली शक्कर) मिला दो। एक परात में उसको रख दो और उसके ऊपर तुलसीदल डालो तो भगवान् के अर्पण हो गया। फिर उसकी चार परिक्रमा करो और उस को दण्डवत् करो, जिसके लिए दलिया खिला रहे हो उसको तुलसीदल खिला दो। फिर एक सांड को सवा किलो से ज्यादा मत खिलाना क्योंकि ज्यादा खिलाने से उसका पेट खराब हो जाएगा। इस तरह 10–15 सांडों को जाकर के खिला दो, गौशालाओं में खिला दो और कहीं भी इधर–उधर होंगे वहाँ पर खिला दो।

यह पॉइंट (बिंदु) हैं जो भगवान् को प्रसन्न करने वाले हैं और यह भगवान् के पास पहुँचाने वाले हैं।

12. पैसे से घृणा रखो। जितने में काम चले उसमें संतोष रखो। यह पैसा ही खास माया है, यही सब को परेशान कर रहा है इसलिए पैसे से ज्यादा प्यार मत रखो।

13. और ये तीन प्रार्थनाएं जो हैं – रात को सोते वक्त, सुबह उठते वक्त और स्नान करने के बाद। यह तीन प्रार्थनाएं पूरे शास्त्रों

का सार हैं। शास्त्र में और कुछ नहीं है यह तीन प्रार्थना ही लिखी हैं। शास्त्र पढ़ने में तो कितने साल लग जाएंगे लेकिन तीन प्रार्थनाओं में दो ही मिनट लगते हैं। एक प्रार्थना में तो 2–4 सैकंड ही लगते हैं। प्रार्थना करते रहो, कभी भूलो मत। जो ऐसा करेगा उसको स्वयं भगवान् लेने आएंगे, अपने पार्षदों को नहीं भेजेंगे।

14. नाम करते रहो। हरिनाम को मत छोड़ो। कलियुग में नाम ही भगवान् को प्राप्त करवाने वाला है।

15. वृंदा माँ की सेवा – वृंदा माँ, भगवान् को प्राप्त करवाने वाली हैं। यह माँ हैं माँ। हम वृंदा माँ की गोद में बैठकर ही तो जप करते हैं, हम वृंदा माँ की गोद में बैठ जाते हैं और बाप को फिर याद करते हैं, बाप को बुलाते हैं 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' उनकी गोद में बैठकर ही तो करते हैं। तो यह माँ ही अपने पति से मिलवा देती है।

इनमें से यदि कोई एक भी करेगा तो वह भगवान् को प्राप्त हो जाएगा। उसका बेड़ा पार हो जाएगा। यह 15 पॉइंट (बिंदु) हैं।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

देखिए! आज उत्पन्ना एकादशी है और नरहरि ठाकुर का आज तिरोभाव है। हमारे गुरुवर्ग का आविर्भाव या तिरोभाव जब होता है तो उनको याद करने से उनकी कृपा मिलती है इसलिए उनको याद करना चाहिए।

शुद्ध एकादशी का पालन यथासम्भव करना चाहिए। शुद्ध एकादशी होती है कि दशमी को एक समय प्रसाद पाओ। एकादशी को निराहार रहो और द्वादशी को पारण करके शाम का भोजन मत करो। यह है शुद्ध एकादशी यानि शुद्ध एकदम सुपीरियर (श्रेष्ठ)। और ऐसा भी है कि दशमी को भी दो बार खा लेते हैं, द्वादशी को भी दो टाइम खा लेते हैं और एकादशी को फलाहार करते हैं। तो यह एकादशी भी भगवान् को प्राप्त करवा देगी क्योंकि सभी तो

निर्जला नहीं कर सकते। लेकिन ऐसे एकादशी व्रत को तो सभी कर सकते हैं।

जो गोलोक धाम या वैकुण्ठ धाम से आता है तो उसको खुद को मालूम नहीं रहता कि मैं वैकुण्ठ या गोलोक धाम से आया हूँ क्योंकि इस मृत्यु लोक में माया का साम्राज्य रहता है। अतः यहाँ अज्ञान या अंधकार रहता है। प्रत्यक्ष उदाहरण है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के पार्षद इस मृत्युलोक में प्रकट हुए, इनको यह मालूम नहीं था कि कृष्ण के समय में हमारा क्या रोल (भूमिका) था। अतः चैतन्य महाप्रभुजी ने उन्हें बताया कि, "हे स्वरूप दामोदर! तुम ललिता के अवतार थे। जब मैं कृष्ण था और तुम ललिता थी।" पुंडरीक विद्यानिधि को बताया कि, "उस समय तुम वृषभानु के अवतार थे।" फिर रामानंद रायजी को बताया और इसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने सभी पार्षदों को अपने अवतार से अवगत कराया था। क्योंकि यह मृत्यु लोक है, इसमें माया का साम्राज्य है, इसलिए मालूम नहीं होता। इसलिए भगवान् ही बताते हैं।

यदि कोई भेंट देना चाहे तो मेरी भेंट इतनी ही है कि अधिक से अधिक हरिनाम करो, यही मेरी भेंट है, यही मेरी सेवा है। किसी का जीवन चरित्र देख कर भी विश्वास, श्रद्धा हो जाता है। उसके वचन से भी सच्चाई मालूम हो जाती है जैसे कि मृत्यु से बचाना, रोग से छुटकारा पाना और डॉक्टरी घटनाएं सत्य होना आदि–आदि से भी श्रद्धा बन जाती है। अनंत घटनाएं ऐसी हैं जो 100% सत्य हो रही हैं। इसलिए हरिनाम की बड़ाई है। हरिनाम की वजह से हो रहा है। (हँसते हुए) मेरे घरवाले कहते हैं कि, "यहाँ जो आते हैं आपको लूटने के लिए आते हैं क्योंकि आपको वाक्–सिद्धि भी है। आप किसी को बच्चे देते हो, किसी की बीमारी ठीक कर देते हो, किसी के अनबन झगड़े होते हैं, उनको सुधार देते हो, किसी को मौत से ही बचा लेते हो। अतः आपका भजन लूटकर ले जाते हैं।" मैं जवाब देता हूँ, "शास्त्र का वचन है 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई' दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है, दूसरे का हित करना भगवान् का ही

हित होता है क्योंकि भगवान् सबके ह्रदय में बैठे हुए हैं। भगवान् अंतर्यामी हैं, भगवान् खुश होते हैं। किसी की आत्मा को खुश करना ही भगवान् की आत्मा को खुश करना है क्योंकि भगवान् आत्मा के रूप में सब में विराजमान हैं। शरीर तो एक मकान है, दुख मकान को नहीं होता है, दुख तो आत्मा को होता है। फिर मैं कौन सा बुरा काम कर रहा हूँ? भला ही तो कर रहा हूँ।" इसी कारण घरवाले नीचे आते ही नहीं हैं कि पिताजी ठीक नहीं कर रहे हैं, भजन को लुटा रहे हैं। कौन आया है, वह देखते ही नहीं हैं। घरवाले ज्यादा बोलते नहीं हैं कि यदि पिताजी रुष्ट हो जाएंगे तो कुछ मुख से गुस्से में बोल देंगे तो उनका अनिष्ट हो जाएगा। अतः चुप ही रहते हैं। प्रेम से ही समझाते रहते हैं, "फोन को मत रखो, किसी को बुलाओ नहीं, कहीं जाओ नहीं। किताबें लिख दी हैं उनको बोलो कि किताबें पढ़कर भजन करते रहो। आगे आगे सुझाव देते रहो।" लेकिन मैं उनकी सुनता नहीं हूँ। अपने मन की ही करता रहता हूँ। जब भगवान् ने भेजा है तो मैं किसी की क्यों सुनूँ? विरोधपना तो होता ही रहता है, भक्त का हर जगह विरोध हुआ है इसलिए मैं सोचता हूँ करने दो, ये ऐसे ही करते रहेंगे।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

माला जपने का अर्थ है कि हम माँ वृंदा की गोद में बैठ करके अपने पिता को बोलकर, उन्हें बुला रहे हैं कि, "हम को गोद में ले लो।" क्योंकि भगवान् के सभी जीव मात्र शिशु ही हैं। तो शिशु का स्वभाव ही ऐसा हुआ करता है कि शिशु सदा बाप की गोद में चढ़ कर आनंद महसूस करता रहता है। तो वृंदा माँ (माला) हमारी जन्म–जन्म की माँ हैं और भगवान् हमारे जन्म–जन्म के पिता हैं। हम उनकी गोद में रहकर ही खुश रह सकते हैं, आनंद से रह सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होगा तो माया हमें तरह–तरह से दुखी करती रहेगी। कोई भी मनोकामना पूरी होने नहीं देगी। अतः माँ–बाप को पुकारो 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम

राम हरे हरे' तो भगवान् को जब पुकारेंगे तो हमारे पास भगवान् आ जाएंगे। भगवान् को उपलब्ध करने हेतु दो अड़चनें मन में से हटा दो तो भगवान् तुरंत मिल जाएंगे।

एक तो आसक्ति को हटा दो। आसक्ति भगवान् में लगाओ या संतों में लगाओ। आसक्ति किसकी? गृहस्थी की आसक्ति। गृहस्थी में जो खेत, दुकान, मकान हैं उनकी आसक्ति भी मिटा दो और संग्रह–परिग्रह कम रखो क्योंकि उसमें मन फंसेगा। इतना ही रखो जिससे अपना जीवन चल सके, आसानी से चल जाए बस। ऐश और आराम से भगवान् नहीं मिलते। आज तक न ही किसी को मिले हैं, न ही मिलेंगे। त्याग और तपस्या ही भगवान् को खींच कर लाती है। त्याग क्या है? निद्रा का त्याग करो। देखो हमारे गुरुवर्ग ने निद्रा को त्याग कर ही तो भगवान् को प्राप्त किया था। तो निद्रा का त्याग करो और तपस्या क्या है? हरिनाम करो। रात को जल्दी जाग कर हरिनाम करो। ऐसे त्याग और तपस्या से भगवान् मिलते हैं। भगवान् को जबरदस्ती आना ही पड़ेगा। भगवान् तो चाहते ही हैं कि, "उनका बच्चा उनके पास आ जाए।" लेकिन हम नहीं चाहते। भगवान् को आना ही पड़ता है कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती। भक्त के इस साधन से भगवान् कमजोर (विवश) पड़ जाते हैं। जैसे सुदामाजी का जीवन था। सुदामा का जीवन कैसा था? अकिंचन एवं भक्तिमय। यदि हम सुदामा जैसा स्वभाव बनाते हैं तो भगवान् रुक नहीं सकते।

भक्त रूपी चुंबक लोहे रूपी भगवान् को खींच लाएगा। यह शत–प्रतिशत सिद्धांत है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। दो–चार दिन कर के देखो, मन में धारण कर लो, संग्रह–परिग्रह, आसक्ति हटा दो और फिर आपको भगवान् मिल जाएंगे। यह आसक्ति ही तो हमको दूसरा जन्म दिलाती है।

इस कलियुग में भगवद् उपलब्धि बहुत सहज है, बहुत सरल है यदि सभी जीव–मात्र पर दया की जाए, किसी को सताया नहीं जाए। हम जीवों पर ध्यान नहीं देते हैं इसलिए सताया जाता है, भगवान् की आत्मा सताई जाती है। आत्मा को परमात्मा का बेटा

समझ लो। बेटे को जो दुख देगा तो क्या परमात्मा राजी (खुश) होगा? क्योंकि सभी चराचर भगवद् संतानें हैं। उन पर दया करने से भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। कोई भी अपने बच्चे को किसी के द्वारा प्यार करता हुआ देखे तो चाहे वह अनजान ही क्यों न हो, उस पर स्वतः ही प्यार की दृष्टि आ जाएगी। मानव तो माया का पुतला है फिर भी उसको अनजान से प्यार बन जाता है। तो भगवान् तो दयानिधि हैं और त्रिलोकी व अनंत ब्रह्माण्डों के बाप हैं। तो फिर दया से वंचित कैसे रख सकते हैं? उस जीव पर असीम कृपा बरसा देंगे। जहाँ पर भगवान् की दया हो गई वहाँ सुख की कमी नहीं रह सकती और दुख का तो मूल–सहित ही नाश हो जाएगा।

देखो! आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि वैद्य थे क्योंकि देवताओं का उपचार करते थे। जब देवता और राक्षसों ने समुद्र मंथन किया, तो यही धन्वन्तरि जो आयुर्वेद के प्रवर्तक थे, अमृत का कलश लेकर बाहर आए थे। समुद्र से 14 रत्न निकले थे। उन्होंने समुद्र मंथन इसलिए किया कि हम को अमृतरस मिलेगा। देवताओं ने राक्षसों को कहा कि यदि वे राक्षस, उनकी सहायता करेंगे तो उन्हें भी अमृतरस मिलेगा। तो राक्षस बोले, "हां! जरूर करेंगे।" तो राक्षस एक तरफ हो गए और देवता दूसरी तरफ हो गए और समुद्र को मन्दराचल पहाड़ की मथानी बना कर मथने लगे तो पहाड़, समुद्र में डूबने लगा। तब भगवान् ने कच्छप रूप से उसको अपनी पीठ पर रख लिया। उन्हें पीठ में हल्की हल्की खुजलाहट होने लगी और उनको नींद आ गई। नींद में तो साँस ज्यादा चलता ही है तो समुद्र में ज्वार भाटा आने लगा। तभी से समुद्र में ज्वार–भाटा आता रहता है, समुद्र कभी शांत नहीं रहता। अब देवता तो भगवान् की शरण में थे लेकिन राक्षस, उस अमृत कलश को छीन कर भाग गए। तब देवता निराश हो गए, भगवान् से प्रार्थना की, "हमने भी इतनी मेहनत की और अब हम तो अमृत पी नहीं सकेंगे क्योंकि राक्षस छीन कर ले गए हैं।" भगवान् ने कहा, ''चिंता मत करो।" भगवान् ने इतना सुंदर मोहिनी रूप धरा कि राक्षस उनकी तरफ देखकर मोहित हो गए और उनके पास में आए

और बोले, ''यह अमृतरस है जो आप हमको बाँट दो।"

भगवान् बोले, "देखो! तुम्हें स्त्री का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। जो स्त्री होती है, उसका कोई विश्वास नहीं होता।" तो राक्षस बोले, "नहीं! हमको आप पर विश्वास है, आप बाँट दो।" मोहिनी रूप भगवान् बोले कि ठीक है। और बोले, "मैं जैसे–जैसे कहूँ वैसे–वैसे करना।" राक्षस उत्साहित हो कर बोले, "ठीक है।" मोहिनी बोली, "एक पंक्ति बना लो। देवता एक पंक्ति में बैठ जाओ और तुम भी एक पंक्ति में बैठ जाओ।" तो भगवान् मोहिनी, अमृत रस का कलश ले कर राक्षसों के पास गई और वहाँ से फिर इधर देवताओं की तरफ आई और उनको सबको अमृतरस पिलाने लगी। अब यह राक्षस सोच रहे हैं कि उनकी तरफ भी अभी आकर पिलाएगी। परंतु उसने तो पूरा ही अमृतरस देवताओं को ही पिला दिया और राक्षसों को पिलाया ही नहीं। वह तो निराश हो गए। मोहिनी भगवान् तो अदृश्य हो गए, अप्रकट हो गए और वे देखते ही रह गए। इसका मतलब है कि जो भगवान् की शरण में होता है, उसको सब चीजें मिल जाती हैं पर जो भगवान् की शरण में नहीं होता वह कितनी भी मेहनत करे, उसके पास कुछ नहीं रहता। जितनी भी मेहनत करेगा, सब असफल हो जाएँगी। इसलिए भगवान् की शरण में रहना चाहिए।

अब आपको हरिनाम की महिमा ही बताता हूँ। देखो! अब मैं 89 साल का हो गया और फिर भी मेरे अंदर 20 साल के नवयुवक जैसी ताकत है। मेरे शरीर में कोई रोग नहीं और मेरी आंखों की दृष्टि 5 साल के बच्चे जैसी है। अब बताइए यह क्या है? हरिनाम की महिमा है, मैंने हरिनाम किया है और अभी भी करता ही रहता हूँ। यह हरिनाम का ही अमृत बरसता है। हरिनाम करते–करते अमृत भर गया और जहर निकल गया। जहर क्या है? माया का जो परिवार है : काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष यह सब निकल गए। उदाहरण के लिए मान लो कि एक घड़ा है उसमें शराब भरी पड़ी है और आप गंगाजल डालते रहो, डालते रहो तो शराब तो निकल

जाएगी और गंगाजल रह जाएगा। ऐसे अमृत ही पूरे शरीर में भर गया और जो जहर था वह निकल चुका। और भी आपको बहुत अच्छी बातें बता रहा हूँ कि हरिनाम में कितनी शक्ति है?

देखो! कई जगह दूर–दूर तक अमेरिका आदि देशों में मेरे नाम से (मेरे फोन नम्बर से) फोन चले जाते हैं अब वह फोन चले जाते हैं और वे मुझ को वापिस फोन करते हैं कि आपका फोन आया था और आपने कोई बात नहीं की। तो मैं बोलता हूँ, "मैं आपसे बात कैसे करूँगा? जब मेरे पास आप का फोन नंबर ही नहीं है।" वे पूछते हैं कि फिर यह फोन किसने किया है? यह किसने बात की है? मैंने कहा, "यह तो आप समझो, किसने फोन किया है। अरे! यह तो ठाकुरजी ने किया। ठाकुरजी का मन लगता नहीं है भक्तों के बिना और कलियुग में बहुत कम भक्त होते हैं। ठाकुर का मन तो लगता नहीं है और अब यह फोन से लीला करते रहते हैं। अब यह बताओ मैं बोलता हूँ कि आपका फोन नंबर ही मेरे पास नहीं है तो मैं कैसे बात करूँगा? यह तो बहुत बार होता रहता है। कई जगह यहाँ इंडिया में भी काफी होता रहता है कि मेरे नाम से फोन चले जाते हैं। भगवान् ही फोन करते हैं। ऐसा है कि भगवान् की कृपा के बिना फोन नहीं जाते। विदेशों में भी भक्त हैं तो उनसे भी भगवान् फोन के द्वारा लीला करते रहते हैं। इस तरह की घटनाएं होती रहती हैं।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

देखो! मुसलमान के यहाँ 'हरामी' एक गाली है। हरामी एक बुरा शब्द है, लेकिन उसमें 'राम' आ गया तो उनका उद्धार हो गया। अब बताओ! कि नाम को आप कैसे भी जपो, भगवान् को तो सब मालूम है।

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

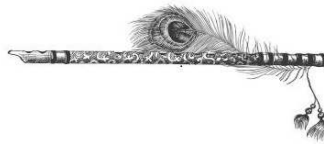
भाव से लो, बेमन से लो, चलते–फिरते लो, सोते हुए लो। मैं उदाहरण देता हूँ जैसे एक छोटा सा, डेढ़ साल का शिशु है। वह रोता रहता है, घर में बहुत परेशान करता है, घर में तोड़ा–फोड़ी करता है, इसलिए उसको खिलौने के साथ, बाहर चबूतरे पर बैठा देते हैं और वह खिलौनों में लग जाता है। अतः फिर वह कुछ समय तो माँ–बाप को भूल जाता है। हम भी खिलौनों में लगे हुए हैं, कोई खेती करता है, कोई दुकान करता है, कोई नौकरी करता है और हम भी माँ–बाप को भूल जाते हैं। लेकिन जब वह ऊब जाता है तब रोता हुआ बोलता है, "मम्मी–मम्मी–मम्मी–मम्मी।" तो उसकी मम्मी जितना भी कोई जरूरी काम हो, उसको छोड़ कर भाग कर उसके पास आ जाती है और उसको गोद में ले लेती है। तो ऐसे ही जब हम भगवान् का नाम लेते हैं तो भगवान् आ जाते हैं। तो इसलिए नाम जप करते समय भगवान् को पास में रखना चाहिए, तब वह शुद्ध नाम कहलाता है।

शुद्ध नाम बोलना शुद्ध नहीं होता। आप कृष्ण की जगह 'कृ' ही बोल दो और राम की जगह 'र' ही बोल दो। यह भी शास्त्रों में लिखा है कि नाम, अशुद्ध–शुद्ध भी बोल दो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। शुद्ध नाम कौन सा होता है कि जिस को बुलाया है तुमने, वह आपके पास में तो रहे। उसको अपने पास में रखो। जब आप हरिनाम कर रहे हो तो आप ध्यान करो कि मेरे भगवान् मेरी बात सुन रहे हैं या रत्न–सिंहासन पर बैठकर मेरी बात सुन रहे हैं, जब ऐसा करोगे, ऐसा सुनोगे तो आपको बहुत जल्दी विरह होगा। आप नाम तो लेते हो और आपका मन कहाँ–कहाँ चला गया। लेकिन जहाँ भी मन गया, कल्याण कर देगा। मान लो आपका मन खेती में चला गया, वहाँ नाम को लेकर तुम गए हो तो उस खेती का कल्याण हो जाएगा, उस बाजार का कल्याण हो जाएगा, उस दुकान का कल्याण हो जाएगा। जहाँ पर भी तुम उसको ले जाओगे वहाँ पर कल्याण हो जाएगा। आपका भी कल्याण होगा पर आपका ज्यादा फायदा तभी होगा, जब भगवान् को पास में रखोगे। ऐसे धीरे–धीरे

अभ्यास करने से भगवान् पास में रहेंगे। या फिर ऐसे करो कि नाम लेते हुए गिरिराजजी की परिक्रमा करते रहो या फिर उनकी कोई लीलाएँ स्मरण करते रहो। लेकिन मन संसार में नहीं जाना चाहिए। जब हरिनाम करो तो संसार मन में नहीं आना चाहिए। संसार मन में आ जाता है तभी तो कोई आगे नहीं बढ़ सकता। कहते हैं, हम तो खूब हरिनाम भी करते हैं लेकिन हमें रुचि नहीं हो रही है। रुचि कैसे होगी? तुम हरिनाम तो कर रहे हो पर रुचि तो तुम्हारी संसार में है।

तुम्हारा 80% मन तो संसार में लगा हुआ है और 20% भगवान् की तरफ है। बताओ! इसमें भगवान् क्या करें? 80% अगर भगवान् की तरफ हो और 20% माया की तरफ हो तब तो भगवान् की कृपा मिल जाएगी। वैसे तो कृपा अभी भी मिल रही है लेकिन बहुत टाइम लगेगा, इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति नहीं होगी, फिर कई जन्म लग जाएंगे। कलियुग से महत्वपूर्ण कोई युग नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर के सब लोग और देवता लोग तरसते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए और भारतवर्ष में हो जाए तो हम भगवान् के पास चले जाएंगे।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा भारतवर्ष में जन्म हुआ और फिर हमको सब सुविधाएं भी मिल गईं और हमको भगवान् का रास्ता भी मिल गया, गुरुजी भी अच्छे मिल गए, सत्संग भी अच्छा मिल गया तो हम कितने भाग्यशाली हैं। इससे बढ़कर क्या होगा? बताओ? लेकिन समय को ऐसे ही बर्बाद कर दोगे तो आगे आपको फिर से जन्म लेना पड़ेगा।



भगवद् स्मरण : केवल हरिनाम से ही संभव

9

2 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

आज थोड़ी देर माखन ही माखन खिलाएँगे और आप को अमृत पिलाएंगे। कृपा करके ध्यान पूर्वक सुनें! देखिये! श्री चैतन्य महाप्रभुजी के समान कोई दयालु नहीं है।

कितनी खुशी की बात है इसलिए चैतन्य महाप्रभुजी कृष्ण से अधिक दयालु हैं। क्यों हैं? कृष्ण ने अपने आयुध यानि सुदर्शन चक्र आदि से दुष्टों का उद्धार किया था और चैतन्य महाप्रभुजी ने अपने नाम से ही उद्धार किया है। अपना नाम स्वयं जप कर सबको शिक्षा दी और बोले, "जो 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम जप करेगा, उसके घर ही मैं जा कर प्रसाद पाउँगा अर्थात् उससे ही बात करूँगा और जो एक लाख हरिनाम नहीं करेगा, उसके घर मैं न जाऊँगा, न उससे बात करूँगा।" उन्होंने इतनी कठोरता क्यों की? इसलिए कि किसी तरह मानव जीवन सफल हो जाए। इतना कठोर आदेश क्यों किया? इसलिए किया था क्योंकि वो दया के अवतार हैं। उनको दुखी जीवों पर दया आयी कि किसी तरह मानव उनका नाम जप कर वैकुण्ठ चले जाएँ वरना भविष्य में इनको मानव देह मिलने वाली

नहीं है। तो उनकी सन्निधि में ही एक लाख नाम जपने वाले संत हो चुके थे, लेकिन उन्होंने केवल इतना कहा, "जो एक लाख नाम नित्य करेगा, उसका जन्म–मरण निश्चय ही छूट जायेगा।" जन्म–मरण छूट जायेगा, क्या इतना कहना ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गयी? तो जन्म मरण छूटने के बाद जायेगा कहाँ? वैकुण्ठ के सिवाय कहाँ जगह है? कहाँ जायेगा? कहीं नहीं, इसलिए मेरे बाबा द्वारकाधीश, सत्संग एवं हरिनाम करवा कर सबको वैकुण्ठ ले जाना चाहते हैं। जो भी यह करेगा, उसका वैकुण्ठ धाम निश्चित हो गया और रिजर्वेशन का आश्वासन तो एकादशी पर उन्होंने ही दिया था।

{श्रील गुरुदेव (श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी) को एकादशी वाले दिन ठाकुरजी ने बताया कि उनसे जुड़े हुए भक्तों का, जो एक लाख हरिनाम करते हैं, वैकुण्ठ का टिकट पक्का हो गया है} और ऐसा बोला है कि नाम में मन लगे या न लगे, तब भी वैकुण्ठ मिल जायेगा। अजामिल का नाम में मन कहाँ लगा था, उसने अपने बेटे नारायण को पुकारा था। 'नारायण' ही नाम लिया था। केवल नाम से ही वैकुण्ठ मिल जायेगा। बोला भी है:

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जायेगा, दसों दिशाओं के अलावा ग्यारह दिशा तो होती ही नहीं हैं, अर्थात् मंगल हो जायेगा। जब यह बोल दिया तो फिर अमंगल कहाँ रहा? अमंगल का तो स्थान ही नहीं है, क्योंकि उन्होंने कहा, "दसों दिशाओं में मंगल हो जायेगा।" इसका मतलब है वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जाएगी।

अधिकतर मानव 64 माला करते हैं, पर फिर प्रचार में फंस जाते हैं। अतः वैकुण्ठ से वंचित रह जाते हैं क्योंकि पहले नाम को स्टोर (भंडार में रखना) करो और फिर प्रचार करो। नाम का स्टोर (भंडारण) नहीं हुआ तो प्रचार में असर नहीं होगा। जब स्टोर होगा

तो आपका प्रचार स्वतः ही होने लगेगा। अगर नाम नहीं किया और प्रचार करने लगे तो उसका असर नहीं होगा। यही तो माया है। सुकृति की कमी के कारण माया ने हरिनाम पर श्रद्धा होने नहीं दी। यह माया है। जिसने हरिनाम पर श्रद्धा की, उन पर माया का वश नहीं चल सकता क्योंकि हरिनाम कौन है? भगवान्। और भगवान्, माया के स्वामी हैं इसलिए उन पर कोई असर नहीं होता क्योंकि हरिनाम स्वयं भगवान् ही हैं। अतः जो प्रचार करता रहता है उस पर अहंकार हावी हो जाता है। फलतः हरिनाम से वंचित रह जाता है। उसकी अंदर की धारणा कुछ पैसे की होती है, भगवान् की तो नहीं होती है।

देखिये! खास बात ध्यान पूर्वक सुनें कि भगवान् का स्मरण ही भगवान् को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। तभी तो यह आविष्कार किया कि हरिनाम करो। हरिनाम से ही स्मरण होगा। वैसे होगा नहीं। हरिनाम से ही स्मरण होगा। स्मरण सबसे प्रभावशाली है। पूतना ने भी स्मरण किया था तो उसे माता की गति दे दी। वह तो स्तनों में जहर लगा कर मारने के लिए आयी थी। लेकिन मरते समय भगवान् का स्मरण तो किया। भगवान् दुश्मनी, प्यार कुछ नहीं देखते, वह तो स्मरण देखते हैं कि मुझको कैसे स्मरण करता है। देखो! राक्षसों ने भी तो स्मरण ही किया और पुंडरीक ने तो भगवान् को बोला, "मैं भगवान् हूँ, तुम भगवान् नहीं हो।" भगवान् का चिंतन करता रहा तो इसलिए उसका भी उद्धार हो गया। उसने तो स्वयं यह बोला था, "कृष्ण! तुम भगवान् नहीं हो, मैं भगवान् हूँ।" तो देखो, उसका स्मरण से ही उद्धार हो गया। इसलिए स्मरण बहुत आवश्यक है। स्मरण कैसे होगा? हरिनाम से।

अब ध्यान पूर्वक सुनो, देखो मन भगवान् ही है। जैसा कि गीता में बोला है, ''हे अर्जुन! ग्यारह इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ।" परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि पंच तत्त्व के शरीर में दो भगवान् कैसे हो सकते हैं? देखो! आप ध्यानपूर्वक सुनें। इसका उत्तर है कि परमात्मा तो भगवान् है जो भोग्य नहीं है, भोक्ता है। लेकिन दूसरा भगवान्, जो

मन है वह ब्रह्मा का प्रतीक है। ब्रह्मा का प्रतीक कैसे है? ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता है, इसी प्रकार मन भी संकल्प विकल्प करता रहता है। यह भी सृष्टि (मन की) का रचयिता है। यह मन क्या करता है?... कि, "मकान बना लूँ, कार ले लूँ, ऐसा कर लूँ, वैसा कर लूँ।" इस प्रकार यह सारी उधेड़बुन करता रहता है। यह मन ही भगवान् को प्राप्त करा सकता है और यह मन ही है, जो नर्क में ले जाता है। तो यह मन भी रचयिता का ही प्रतीक है। मन ही अनंत कोटि ब्रह्मांडों में मुख्य है। इसी से ब्रह्माण्ड की रचना होती रहती है। परमात्मा यह रचना नहीं करता क्योंकि वह केवल देखता रहता है कि मन तन, मन, वचन से क्या–क्या करवाता है। जैसा मन कर्म करता है वैसा ही जीव को भोग भोगना पड़ता है। जीव मन की वजह से ही दुख सुख भोगता रहता है। भगवान् कहते हैं, "मन मैं ही हूँ।" मेरे गुरुदेव ने इसमें लिखा है कि मन को कैसे वश में किया जाये? भक्तगण इसका ध्यान पूर्वक विचार करके समझ सकते हैं। मन क्या करता है? मन एक क्षण भी चुपचाप नहीं रहता, कुछ न कुछ उधेड़बुन करता ही रहता है। लेकिन यदि मानव उसे रोक दे, तब उसका उद्धार होगा। यह रुकता नहीं, हमेशा चंचल रहता है। इसको रोकना बहुत जरूरी है। कहते हैं कि :

eu d dgu e u pkfy; tk pkgk dY;k.kA

मन के कहने से आप चलोगे तो खड्डे में डाल देगा। इसलिए मन पर विश्वास कभी न करो। मन को किसी न किसी काम में लगाए रखो। जैसा मन, तन, वचन से कर्म होता है वैसा ही जीव को भोग करना पड़ता है। यह मन ही करता है अर्थात् तन, मन, वचन यह सब मन की प्रेरणा से ही कर्म करते हैं। यह सब कुछ मन ही करवाता है। यह जैसा कर्म करवाता है वैसा ही जीव को भोगना पड़ता है और ऐसा न हो तो संसार चल ही नहीं सकता। यही माया का व्यापार है। योगमाया ही भगवद् संसार का नियमन करती है। जीव मन की वजह से ही दुख–सुख भोग करता है। अब प्रश्न उठता है कि इस मन को कैसे समझाया जाए ताकि दुख मूल सहित नष्ट

हो जाए? यह मन ही दुख का कारण है और मन ही सुख का कारण है। तो जिस जीव–आत्मा ने मन को समझाने का मार्ग देखा है वही सभी राहगीरों को समझा सकता है। इसमें लिखा राहगीर कौन है? राहगीर वही है जो भगवान् की गोद से बिछुड़ गया है और भगवान् को चाहता है और वापिस उसी की गोद में जाना चाहता है। अतः जो इस मन को ठीक कर सकता है वह कौन है? वह है सच्चा संत। नामनिष्ठ संत ही बता सकता है कि मन को कैसे समझाया जाए। सिर्फ संत समझा सकता है और कोई नहीं समझा सकता क्योंकि संत ने उस रास्ते को देखा है। मन को उसने वश में किया है। किस अभ्यास (प्रैक्टिस) से किया है, वह साधक को बता सकता है कि किस तरह से मन वश में आ सकता है।

ऐसा संत राहगीर को क्या बोलेगा, यह अब बताया जा रहा है।

मन ही सृष्टि रचना करता रहता है। देखिये, इस संसार में बिना सहारे के कोई आज तक नहीं टिका। बिना किसी सहारे के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं रह सकते। जब ब्रह्माण्ड तक स्थिर रह नहीं सकते तो मन बेचारे का स्थिर रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। मन कैसे स्थिर रहेगा? इसको भी सहारा चाहिए। मन स्थिर रखने हेतु, मन की चंचलता दूर करने हेतु कोई साधन होना तो परमावश्यक है। वह साधन क्या हो सकता है? साधन वही हो सकता है जो मन को रोक सके। मन का सम्बन्ध किससे है? मन का सम्बन्ध भगवान् से ही तो है। सम्बन्ध मन के टिकाव से ही होगा अन्य से कभी नहीं हो सकता। मन का टिकाव कैसे हो सकता है? हरिनाम से। हरिनाम क्या है? हरिनाम स्वयं भगवान् है। प्रथम हरिनाम रूपी एल.के.जी. पाठशाला में बैठना पड़ेगा तो हरिनाम से ही मन टिकेगा। उस पाठशाला में कैसी शिक्षा उपलब्ध की जाएगी? भगवान् के सम्बन्ध की।

प्रथम में हरिनाम को हृदय में बिठाओ और वृंदा महारानी जो भगवान् की असीम प्यारी है, उसका सहारा ले लो। बिना वृंदा महारानी के सहारे से मन नहीं टिकेगा। उसकी शरणागति लो तो भगवान् की शरणागति स्वतः हो सकती है। तो हृदय से वृंदा माँ के

पास बैठकर हरिनाम करें अर्थात् भगवान् संग में हैं, वृन्दा महारानी के चरणों में हरिनाम लें, उससे मन को बहुत सहायता मिलेगी। वृंदा माँ कौन है? जपमाला ही वृंदा माँ है। जपमाला की गोद में बैठ कर यानि वृंदा माँ की गोद में बैठ कर अपने बाप को पुकारो, जैसे शिशु माँ की गोद में बैठ कर बाप को पुकारता है कि नहीं! "पापा! पापा! पापा!" ऐसे ही आप पुकारो।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

ऐसे पुकारो तो भगवान् आप के पास में आकर खड़े हो जाते हैं। भगवान् के पास में आते ही उनके चरण पकड़ कर "पिताजी! पिताजी!" ऐसा सोचते हुए हरिनाम करते रहो। जब पिताजी को बोलोगे तो पिताजी आपको गोद में उठा लेंगे। हरिनाम करते–करते पैर में पड़ जाओ और फिर रोओ, रोना भी नहीं आये तो पिताजी! पिताजी! ही करते रहो यानि हरिनाम करते रहो, पैरों में चिपके रहो तो मन कहीं नहीं जायेगा। इसकी चंचलता निर्मल हो जाएगी। अगर ऐसा करोगे तो मन संसार में नहीं जायेगा क्योंकि इसको सहारा मिल गया। मन को उसके पिताजी के पैरों को पकड़ने का सहारा मिल गया इसलिए अब वह संसार में नहीं जायेगा। कुछ दिनों के बाद में स्वतः ही ऐसे करते करते आपको रोना आ जायेगा, विरह प्रकट हो जायेगा। हम भगवान् को पुकारते हैं, पुकारते ही भगवान् तो आ जाते हैं और हमारा मन कहाँ चला जाता है? वह बाजार में चला जाता है, स्कूल में चला जाता है, खेत में चला जाता है तो भगवान् कहते हैं, "तूने मुझे बुलाया था मैं आया तो तू कहाँ चला गया?" ऐसे जप से सुकृति तो इकट्ठी हो जाएगी और मन जहाँ नाम को ले जायेगा, उसका कल्याण हो जायेगा। जैसे मन नाम को लेकर खेत में चला गया तो खेत की उपज अच्छी हो जाएगी। मान लो दुकान में चला गया तो दुकान का कल्याण हो जायेगा।

मन, नाम को जहाँ भी ले जायेगा वहीं कल्याण करेगा। यदि आप अपने लिए करोगे तो आपका कल्याण हो जायेगा। वैसे सुकृति

इकट्ठी होते होते आपका भी कल्याण तो करेगा पर उसमें समय अधिक लग जाएगा। ऐसा कहा है कि नाम कैसे भी जपो, वह तो मंगल विधान ही करेगा। अब जैसे अग्नि में जान के या अनजाने से हाथ लगाओ। उसका स्वभाव है कि जलाये बिना नहीं रहेगी, इसी तरह से आप नाम कैसे भी लो, नाम अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा, आपका मंगल कर देगा। तभी तो बोला है :

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा, ग्यारह दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में यहाँ मंगल बोल दिया तो फिर अमंगल का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अमंगल तो रहा ही नहीं, वह तो समूल ही नष्ट हो गया। बेमन से चलते–फिरते, खाते–पीते, सोते–जागते, हरिनाम बोलकर करते रहो, तब भी भगवद् कृपा बन जाएगी और मन में शान्ति हो जाएगी, लेकिन इसमें समय अधिक लग जाएगा। आप यदि भाव–कुभाव से भी करोगे, तो वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाएगी। यह तो निश्चित है कि आप बेमन से भी भगवान् का नाम लोगे तो वैकुण्ठ तो प्राप्त हो ही जायेगा, क्योंकि चैतन्य महाप्रभुजी ने बोल दिया कि "मैं भी जप रहा हूँ तुम भी जपो।" दया करके वो उद्धार करना चाहते हैं इसलिए ही स्वयं ने आचरण करके दूसरों को बताया, "तुम हरिनाम करो, एक लाख हरिनाम करना पड़ेगा।"

अच्छा! अब मेरे गुरुदेव और ठाकुरजी बता रहे हैं कि नाम को किस तरह से जपना चाहिए? जैसे सीताजी जपती थीं वैसे जपना चाहिए। सीताजी कैसे जपती थीं ?

tfg fcfèk diV djx ljx èkkb pyJhjkeA
lk Nfc lhrk jkf[k mj jVfr jgfr gfjukeAA

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

रटना अर्थात् जीभ से बोलती रहती थीं।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

रावण के कहने पर मारीच राक्षस ऐसा बढ़िया हिरण का सुंदर रूप जो सोने की तरह चमक रहा था, बन कर रामजी की कुटिया के पास आया। उसे देख कर सीताजी बोलीं, "रामजी! इसको मार कर इसकी खाल ले आओ और इसकी मृगशाला पर बैठ कर हम दोनों हरिनाम करेंगे।" रामजी हिरण के पीछे दौड़े। वही छवि सीताजी हृदय में धारण कर के नाम जपती रहती थीं। जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम...ऐसा चिंतन कर रही थीं। स्मरण कर रही थीं। सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम.... वही छवि हृदय में रखकर हरिनाम कर रही थीं। ऐसे ही हरिनाम हमको करना चाहिए यानि जिसको हम याद कर रहे हैं, उसकी छवि साथ में रहनी चाहिए, हृदय में रहनी चाहिए पर हमारे हृदय में रहती नहीं है इसलिए प्रेम जल्दी नहीं आता है।

अब भरत जी कैसे जपते थे?

iqyd xkr fg;¡ fl; j?kqch: A
thg uke| ti ykspu uh: AA

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू.... हृदय पुलकित हो रहा है, और रामचंद्रजी का ध्यान कर रहे हैं, "जो मेरा भईया है, नंगे पैर जा रहा है, बालू बहुत तप रही है, ऊपर से सूर्य तप रहा है, ऐसे सोचकर रो रहे हैं।"

देखिये! नाम तो जपो और सब कुछ करो, लेकिन संत अपराध मत करो। संत अपराध बहुत खतरनाक है क्योंकि संत भगवान् के प्यारे बेटे हैं। बेटे को कोई परेशान करे तो पिता को कैसे बर्दाश्त हो सकता है? जैसे दुर्वासा ऋषि। वह साधारण भक्त नहीं थे, फिर भी जब उन्होंने अम्बरीष का अपराध किया तो सुदर्शन से दुखी हो कर

भागते रहे और अंत में अम्बरीष ने ही उनको बचाया। भगवान् भी नहीं बचा सके, क्योंकि भगवान् ने तो सीधा सा जवाब दे दिया। कहा, "मेरा मन तो मेरे पास है ही नहीं, मेरा मन तो मेरे प्रिय भक्त अम्बरीष ने ले रखा है। मन से ही तो अच्छा बुरा हो सकता है, अब तुम उसके पास ही जाओ, वहीं तुम्हें शान्ति मिल सकती है क्योंकि मेरा मन वहाँ पर है।" इसलिए अपराध से बचो। अपराध बहुत खतरनाक होता है। कहते हैं :

bæ dfyl ee ly fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA fcç ækg ikod lk tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी कहते हैं कि इंद्र का वज्र, मेरा त्रिशूल, यमराज का दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरे, साधु का द्रोह करने से, साधु को सताने से, पावक में जल जायेगा। पावक कैसी होती है? पावक ऐसी होती है जो लोहे को पानी बना दे। ऐसे वह जल–जल कर मरेगा, वह तुरंत नहीं मरेगा वह तड़प–तड़प कर मरेगा। ऐसी अग्नि में जल कर मरेगा। कभी भी संत का अपराध मत करो। भगवान् श्रीमद्भागवत में भी कहते हैं, "मैं संत को तीन बार नमस्कार करता हूँ।" और भगवान् ने ब्राह्मण का नाम लिया। ब्राह्मण वही संत है जो ब्रह्म को जानता है। "मैं ब्राह्मण को तीन बार नमस्कार करता हूँ, ब्राह्मण मेरे सिरमौर हैं" इसलिए संत तो भगवान् के सिरमौर हैं। इसलिए साधु के अपराध से बचो और जहाँ तक हो सके, साधु की सेवा करो और साधु यदि मार भी दे तो उसके आगे हाथ जोड़ दो तो आपका जीवन बहुत सुखमय हो जायेगा, नहीं तो आपका हरिनाम ही नहीं बढ़ पायेगा।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

इसलिए हरिनाम को ऐसे जपो जैसे सीताजी जपती थीं, भरतजी जपते थे, इस तरह से नाम को जपना चाहिए।

देखिये! वैसे तो हमारे शास्त्रों में दस अपराध बताये हैं लेकिन अपराध केवल 10 ही नहीं हैं, अपराध 94 होते हैं। क्योंकि 84 लाख योनियां हैं उनमें भी भगवान् परमात्मा रूप से विराजते हैं। उनको यदि हम सतायेंगे तो वह भी अपराध है। जैसे चींटी है, चींटी में भी भगवान् बैठे हैं इसलिए चींटी चलती फिरती है। हाथी में भी भगवान् है। पेड़ में भी भगवान् है। उनका भी अपराध मत करो उनसे भी बचो। अगर आप इन 94 अपराधों से बच जाओगे तो भगवान् आपके पीछे छाया की तरह चिपके रहेंगे। देखिये! कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ, यह नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का मकान है, आत्मा इस मकान में रहता है। मकान तो निर्जीव है। अब मेरे मकान की कोई खिड़की तोड़े तो मकान थोड़ी रोएगा, मैं रोऊँगा। इसलिए जब हम किसी से द्वेष करते हैं तो वह आत्मा (परमात्मा) से द्वेष होता है। इसलिए किसी की आत्मा मत सताओ और किसी का जी मत दुखाओ। यह 84 लाख योनियों के लिए है। चींटियां हमारे आँगन में आयी और हम झाड़ू से उसको हटाने लगे तो उसमें दो–चार चींटी मर गयीं तो आपको चींटी बनना पड़ेगा क्योंकि भगवान् ने उसको उसके कर्मानुसार चींटी बनाया था, आप ने उसको मार दिया तो उसी योनि में जाना पड़ेगा। इसीलिए मान लो, हमारे यहाँ आँगन में चींटियाँ आ गयीं तो हम क्या करेंगे? भगवान् ने हमें बुद्धि दी है। हम दरवाजे के बाहर पताशे या चीनी वगैरा डाल दें तो चींटी 10 मिनट में ही अपने आप वहाँ चली जाएंगी क्योंकि उनकी नाक बहुत तेज है और आप पाप से बच जाओगे। इसलिए 84 लाख योनियों की तरफ तो कोई ध्यान ही नहीं देता है और न ही कोई बताता है। बताना चाहिए। अरे! भगवान् परमात्मा रूप में उनमें भी तो विराजते ही हैं। इसलिए उनको भी बचाओ। अरे! उनको बचाओगे तो भगवान् छाया की तरह आपके पीछे रहेंगे। इसीलिए तो तीन प्रार्थनाएं बोली हैं : तीसरी प्रार्थना है –"हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी दृष्टि बना दो कि मैं कण–कण और हर जीव मात्र में आपका ही दर्शन करूँ।"

तो जिसका ऐसा स्वभाव हो जायेगा वह किसी को दुख नहीं देगा और चींटी को भी दुख नहीं देगा। वह तो कहेगा "अरे! मेरा प्यारा तो इस चींटी में भी बैठा हुआ है। मेरा प्यारा तो इस मक्खी में भी बैठा हुआ है।" अतः वह किसी को दुख नहीं देगा। एक उदाहरण देता हूँ जैसे हम दूध पी रहे हैं और हमारे सामने एक टेबल (मेज) है और टेबल पर एक बूंद पड़ गई और एक–दो चींटी आ कर उस बूंद को पीने लगीं तो साधारणतया हम उस बूंद को पोंछ देते हैं। बेचारी चींटी तो भूखी थी तो उसका अपराध हो गया। उस बूंद को वहीं रहने दो, बाद में चींटी उस बूंद को पी कर 4–5 मिनट में दूर चली जाएगी। फिर उसको साफ कर दो। ये मैंने उदाहरण दिया है कि ऐसे हम किसी की सेवा करें, किसी को दुख नहीं दें, इस तरह जो करेगा वह तो साक्षात् भगवान् का रूप है और वह निश्चित रूप से भगवान् के यहाँ चला जाएगा।

ऐसा प्रश्न आता है कि मैं तो वैकुण्ठ जाना नहीं चाहता। तो कहाँ जाना चाहते हो? बोलते हैं कि, "हम तो गोलोकधाम जाना चाहते हैं।" मैंने कहा, "गोलोक धाम जाने की आपके अंदर योग्यता भी तो होनी चाहिए।" बोले, "वह क्या योग्यता है बताओ?" "गोलोक धाम वह जाता है जो भगवान् के लिए तड़पता है। अरे! तुम हरिनाम करते हो, पर एक आंसू भी तो नहीं आता है। हरिनाम करते हो, तुमको वैकुण्ठ तो मिल ही जायेगा लेकिन गोलोक धाम कैसे मिलेगा? गोलोक धाम तो तब मिलेगा, जब तुम भगवान् के लिए तड़पोगे। भगवान् के लिए तड़पो। एक आंसू भी नहीं आता है और गोलोक धाम चाहते हो। तुम्हारी कुछ भी योग्यता नहीं है, तुम तो अभी दसवीं में बैठे हो, पी–एच.डी. तो की नहीं तुमने, फिर तुम्हें सर्टिफिकेट कैसे मिलेगा?"

तुम गोलोक धाम जाना चाहते हो तो मैं बता रहा हूँ कि उसके लिए स्वभाव कैसा होना चाहिए? गोलोक धाम वाले को संसार में 1% भी आसक्ति नहीं रहेगी। भगवान् के लिए वह तड़पेगा, न उसे भूख लगेगी, न उसे नींद आएगी और भगवान् को "हा प्राणनाथ! कब मिलोगे मेरे को? हा प्राणनाथ! आप कहाँ चले गए? मैं कैसे मिलूँ?

कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ? आपको।" ऐसे जो तड़पेगा उसको खुद भगवान् कहते हैं कि, "जो मेरा भक्त तड़पता है मैं भी वैसे ही तड़पता हूँ। इसलिए मेरे से रहा नहीं जाता।" इसलिए इस अवस्था का जो भक्त होगा, उसको गोलोक धाम मिलेगा तो भगवान् उसको सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे और फिर वह भगवान् के पास चला जायेगा।

जैसे उदाहरण है, हमारी बच्ची 25 साल तक हमारे पास रही। अब नवयुवक से उसका सम्बन्ध करवाया तो नया सम्बन्ध होने से वह 25 साल तक रहने पर भी माँ–बाप को छोड़ देगी और नवयुवक के पास सारी उम्र बुढ़ापे तक वहीं रहेगी। न तो नवयुवक उसको छोड़ेगा और न ही वह बच्ची उसको छोड़ेगी। इसी तरह से जब ऐसा भक्त होगा तो वह भगवान् के बिना नहीं रहेगा और भगवान् भी उसके बिना नहीं रहेंगे और तब भगवान् उसको सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे कि वह भगवान् का दोस्त है, बेटा है आदि–आदि। भगवान् जानते हैं कि इसकी अंदर से क्या भावनाएं हैं, वैसा ही उसको रिलेशन (सम्बन्ध) दे देंगे। अभी तो तुम्हारा केवल वैकुण्ठ का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुआ है और अभी जितना भी जीवन शेष है तो ऐसा हरिनाम करो कि जिससे भगवान् के लिए तड़पन हो जाए। कैसे होगी वह तड़पन? जब तुम हरिनाम करो तो भगवान् को साथ में रखो, भगवान् के पैरों में चिपके रहो और 'हरे कृष्ण' करते रहो, "पापा! पापा!" करते रहो। हरिनाम का मतलब है "पिता जी! पिता जी!" करो और आप चरणों से चिपके रहो तो फिर धीरे धीरे आपको विरह हो जायेगा, रोना आ जायेगा। अच्छा! यदि भगवान् को पास में नहीं रखोगे तो बहुत समय के बाद में रोना आएगा।

हरिनाम करते हुए भगवान् पास में रहेंगे तो रोना आ जायेगा, रोना आएगा तो भगवान् को बर्दाश्त नहीं होगा और भगवान् उसको हृदय से चिपका लेंगे। तो ऐसे होना चाहिए। अभी हम हरिनाम करते हैं और एक मिनट तो भगवान् रहते हैं फिर मन पता नहीं कहाँ–कहाँ चला जाता है तो उससे रोना कैसे आएगा? आपका मन तो संसार में है अभी, (80% तो संसार में और 20% है भगवान् में) तो तुमको

गोलोक धाम कैसे मिलेगा? वैकुण्ठ तो मिल जायेगा पर गोलोक धाम नहीं मिलेगा। गोलोक धाम तब मिलेगा जबकि मन 80% भगवान् में हो और 20% संसार में हो। सच्चे भक्त का तो मन 20% भी संसार में नहीं होता। उसका तो 1% भी नहीं होता है। वह तो भगवान् के लिए ऐसा व्याकुल हो जाता है कि नींद भी चली जाती है और खाना–पीना भी उसका बंद हो जाता है और तड़पता रहता है वह तो एक मिनट भगवान् को नहीं भूलता। "हाय–हाय, हाय–हाय करता रहता है, "भगवान् कब मिलोगे? कब मिलोगे? रोयेगा, किस से पूछूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ मिलोगे आप?" जब ऐसी अवस्था होगी तब गोलोक धाम मिलेगा।

हमारा यह स्थूल शरीर है। इसमें 11 इन्द्रियाँ हैं और सूक्ष्म शरीर में भी इन्द्रियाँ हैं। देखो! नाक, कान, आँख यह सब कुछ अंदर भी हैं। जैसे मान लो हम अमेरिका गए हैं एक बार और फिर हम यहाँ बैठे–बैठे अमेरिका को देख लेते हैं। हमें इन आँखों से तो दिख नहीं रहा तो वह अंदर की आँखों से दिखता है। ऐसे कान भी सुनते हैं। जैसे एक बार देवता, राक्षसों से बहुत परेशान हो गए तो इन्द्र सब देवताओं को लेकर ब्रह्मा के पास जाते हैं कि "ब्रह्माजी! राक्षस हमें बहुत परेशान कर रहे हैं।" तो ब्रह्माजी बोले, "आप बैठो! मैं भगवान् से पूछता हूँ।" तो वह अंदर जाकर हृदय में भगवान् को याद करते हैं और अंदर से आकाशवाणी होती है, वह हृदय आकाशवाणी कहलाती है, वह कान से भी सुनाई देती है। भगवान् कहते हैं कि, "उनको जाकर कह दो कि थोड़े दिन की परेशानी और है, फिर बाद मैं खुद ही अवतार ले कर आऊँगा।" इसी तरह मुझ से कोई पूछता है तो मैं पहले भगवान् को पूछता हूँ कि भगवान् ऐसा है कि वह परेशान है इसलिए उसके बारे में बताओ तो भगवान् बताते हैं। कभी कभी तो जवाब देते हैं, कभी नहीं देते हैं।

जब तक ठाकुरजी नहीं बोलते, तब तक मैं एक भी शब्द बाहर नहीं निकालता। ठाकुरजी से पूछ लेता हूँ, कभी तो जवाब देते हैं कभी–कभी तो जवाब ही नहीं देते। वह तो ठाकुरजी जानें क्यों नहीं

देते और कई बार दे भी देते हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण भी हैं कि कइयों की मौत टल गयी, कइयों के बच्चे हो गए। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं तो ठाकुरजी बता देते हैं। अरे! सब को बताएंगे। ठाकुरजी सब को बताएंगे, अगर हरिनाम हो जाए और आसक्ति संसार से हट कर भगवान् में ज्यादा हो जाए तो ठाकुरजी सब के लिए सब को बता सकते हैं। सब के हृदय में ठाकुरजी बैठे हैं और सभी इस योग्य बन सकते हैं। लेकिन योग्यता होनी चाहिए, तभी तो ठाकुरजी जवाब देंगे और योग्यता नहीं है, तो ठाकुरजी से पूछोगे तो जवाब आपको मिलेगा ही नहीं। वह योग्यता सब में आ सकती है अगर कोई चाहे तो। क्योंकि 80% तो संसार में मन फँसा हुआ है और 20% भगवान् में है तो भगवान् कैसे जवाब देंगे? जवाब तब देंगे अगर हमारा ज्यादा झुकाव भगवान् की तरफ होगा। भगवान् से नजदीक तो हमारे पास कोई है ही नहीं, सबसे ज्यादा नजदीक तो भगवान् ही हैं। हमारे अंदर ही बैठा हुआ है लेकिन उसे हम बाहर ढूँढ़ते हैं। अंदर बैठा हुआ है फिर हम बाहर क्यों ढूंढ रहे हैं? और फिर वह युक्ति भी बता दी कि भाई! ऐसा–ऐसा करो तो भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी। लेकिन वे करते ही नहीं हैं क्योंकि माया है। सब माया में फँसे हुए हैं। सबसे आसक्ति है। गृहस्थी में है, वैभव में है। आसक्ति संसार में लगी हुई है, भगवान् की तरफ कम है।

अब कहते हैं कि हमारा हरिनाम में मन नहीं लगता। हरिनाम में मन कैसे लगेगा? तुम्हारी आसक्ति तो संसार में ज्यादा है और हरिनाम में कम है। हरिनाम में ज्यादा होगी तो अपने आप ही सब काम हो जाएंगे। पर फिर भी आप बेमन से भी करो हरिनाम, वैकुण्ठ तो आपको मिल ही गया। अब इससे ज्यादा क्या होगा? अब अगर आप गोलोक धाम जाना चाहते हो तो ऐसी अवस्था लाओ कि भगवान् के लिए रोओ। सबसे सरल तरीका यही है कि जिसको आप बुला रहे हो उसको पास में रखो। जिसको आप नाम सुना रहे हो उसको पास में तो रखो। आप पास में रखते नहीं हो और नाम कर रहे हो, जिसको नाम सुनाया उसके पास तो रहते नहीं हो और कहीं–कहीं भाग जाते हो तो भगवान् आपसे कैसे बोलेगा ? भगवान्

आप की बात क्यों सुनेगा? यह कठिन काम है लेकिन धीरे धीरे अभ्यास करने से हो जाता है। भगवान् को देखो कि मेरे पास ही बैठे हुए हैं, भगवान् अब चल रहे हैं और अब हँस रहे हैं। ऐसे–ऐसे आप चिंतन करते रहो और हरिनाम करते रहो। एक दम से तो हो नहीं सकता। पी–एच.डी. एक दम से थोड़ी होती है, धीरे धीरे एल.के.जी. यू.के.जी. में बैठने के बाद में ही तो धीरे–धीरे होती है। हर चीज धीरे–धीरे होती है। अभ्यास से सब होगा। गीता में भगवान् कहते हैं, "अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य (वैराग्य का मतलब है संसार से विरक्ति) से धीरे धीरे सब काम हो जाते हैं।" देखो! त्याग और तपस्या से भगवान् मिला है, ऐश आराम से किसी को आज तक नहीं मिला। त्याग और तपस्या करो। त्याग क्या है? त्याग है कि आप निद्रा का त्याग करो। रात को 12–1–2 बजे जाग कर हरिनाम करो, यह त्याग है। तपस्या क्या है? तपस्या है कि एक जगह पर बैठ कर हरिनाम करो। यह तपस्या है। त्याग और तपस्या करो। ऐश–आराम से भगवान् कभी नहीं मिला और न ही मिलेगा।

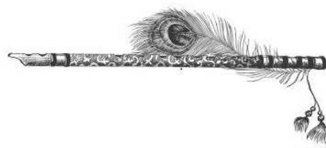
कलियुग में तो बहुत जल्दी भगवान् मिलते हैं क्योंकि उनके ग्राहक नहीं हैं। जिस चीज की कमी रहती है उसकी कीमत बढ़ जाती है। तो इस समय दुनिया की पापुलेशन (जनसंख्या) देखते हुए अरबों खरबों में कोई एक ही भगवान् को चाहता है और जो एक भी भगवान् को चाहता है तो वह भी कैसे चाहता है कि मेरे घर में सुख शांति रहे। अब उन अरबों–खरबों में भी कोई एक विरला ही ऐसा चाहता है, "भगवान्! मैं तो आपको ही चाहता हूँ और मैं किसी को नहीं चाहता हूँ।" बताओ! भक्तों की कितनी कमी है? इसलिए भगवान् जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए तो हमारे गुरुवर्ग को भगवान् ने दर्शन दिया था।

ij fgr lfjl èke! ufg: HkkbA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

क्योंकि सबसे बड़ा यही है कि 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।' दूसरे का हित करना भगवान् का हित करना ही है। दूसरे का हित

करना सबसे बड़ा धर्म है, क्योंकि जिसका हित करते हो उसमें मेरे भगवान् ही तो बैठे हैं। प्यारे ही तो बैठे हैं। इसलिए सबका हित करो। यही सब से ज्यादा भगवान् को प्रसन्न करने वाला है। किसी को दुख नहीं देना चाहिए। मैं तो किसी से कुछ छिपाऊँगा नहीं। मेरे घर वाले कहते हैं, "अरे! यह जो सब आते हैं आपको लूटने के लिए आते हैं क्योंकि आपको वाक्‌सिद्धि है। चाहे जिसको आप बोल देते हो और आपका भजन जाता है।" तो मैंने कहा, "समुद्र में से अगर कोई घड़ा निकाल लिया जाए तो क्या समुद्र कम हो जायेगा? मालूम है मैंने कितना हरिनाम किया है? और अब भी कर रहा हूँ। मेरा हरिनाम तो उल्टा बढ़ रहा है, कम नहीं हो रहा है।" अब घरवाले भी ज्यादा क्लेश नहीं करते क्योंकि उनको भी डर लगता है कि पिताजी अगर नाराज हो गए और उनके मुँह से कुछ निकल गया तो हमारा तो अनिष्ट हो जायेगा। इसलिए प्यार से ही कहते हैं कि, "आप किसी को बुलाओ मत।" मैंने कहा, "मैं तो बुलाता नहीं हूँ वे तो अपने आप आते हैं। मैंने तो कार्तिक में भी बोला था कि कार्तिक में मेरे पास टाइम नहीं है। अब मत आना।" वे कहते हैं "हम तो आएंगे। आप हमको 10 मिनट तो दोगे?" मैं सोचता हूँ, "इतनी दूर से आएंगे और मै 10 मिनट भी न दूं तो, यह तो बड़ी अपराध की बात है। तो ठीक है आ जाया करो।" इसलिए 2 घंटे तो देना ही पड़ता था।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

दयासिन्धु महाप्रभु की कृपा

10

9 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं उनमें श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार के समान कोई भी अवतार दयालु नहीं है। विचार करने से मालूम होता है कि महाप्रभु जबरन सबको भवसागर पार कराना चाहते थे और अपने धाम में ले जाना चाहते थे। अतः स्वयं अपना नाम तुलसी माला पर नित्य इस कारण जप करते हैं कि दूसरे भी उनके आचरण को देखकर हरिनाम जप में जुट जायें। जैसे एक माँ अपने बच्चे का फोड़ा डॉक्टर से चिरवाती है, बच्चा रोता है फिर भी सहन करती रहती है कि भविष्य में बच्चा ठीक हो जाएगा। जबरन दुखी होकर भी वह दुखदाई अवस्था को सहन करती रहती है। इसी तरह से श्रीचैतन्य महाप्रभुजी इतने कृपालु हैं कि जबरन हरिनाम करवाकर, सब जीवों को सुखी करने हेतु अपने धाम में ले जाना चाहते हैं क्योंकि महाप्रभु अति दया के अवतार रूप हैं। 553 वर्ष पहले जो एक लाख हरिनाम जप कर रहा था उसका महाप्रभुजी ने धाम का रिजर्वेशन (आरक्षण) करवा दिया था, लेकिन बाहर घोषणा नहीं की थी। अतः द्वारकाधीश के रूप में चैतन्य महाप्रभुजी ने यह घोषणा एकादशी के दिन कर दी है कि "जो एक लाख नाम करता है उसका रिजर्वेशन हो चुका है। जो एक लाख से कम करता है या भविष्य में भी कम करेगा, उसे दुबारा मनुष्य जन्म दिया जाएगा। उस

जन्म में वह एक लाख करके फिर धाम में जा सकता है। मेरा नाम चाहे मन से करें या बेमन से करें, तो भी मेरे धाम में जाएगा। नामाभास से भी भगवान् का धाम मिल जाएगा। इसकी गारंटी मैं ले रहा हूँ। अतः निश्चिंत होकर जीवन बसर करते रहो। अपना कर्म भी करो और मेरा नाम जप कर नित्य स्मरण भी करते रहो।"

बेमन से या भार रूप समझ कर, अवहेलना पूर्वक, जबरदस्ती भी हरिनाम जिसके मुख से निकलता है उसे वैकुण्ठ निश्चित रूप से उपलब्ध होगा।" इसे नामाभास बोला जाता है।

यह भगवान् के शास्त्र के वचन हैं। ऐसा हरिभक्तिविलास में भी घोषणा की है जो गौड़ीय संप्रदाय का माना हुआ ग्रंथ है। इसलिए शास्त्र कह रहा है कि –

Hkko d|Hkko vu[k vkyl g|A
uke tir exy fnfl n lg|AA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, प्रेम से लो, चाहे बेमन से लो, खाते–पीते लो, सोते–फिरते लो, जैसे भी लो, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दसों दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो होती नहीं है। यह शास्त्रों के वचन हैं, दसों दिशाओं में मंगल अर्थात् वह वैकुण्ठ धाम चला जाएगा, जहाँ दुख का नामोनिशान ही नहीं है।

अब मेरे गुरुदेव बता रहे हैं, कि गोलोक धाम किसको मिल सकता है? जरा ध्यानपूर्वक सुनें! भगवान् उसी जीव को गोलोक धाम ले जाते हैं, जिसका पूर्ण रूप से मन का संसार से लगाव हट जाता है। अतः जिसकी संसार से आसक्ति मूल–सहित नष्ट हो जाती है। ऐसे जीव पर चाहे कितने संकट आ जाएं, कितनी मुश्किलों का पहाड़ टूट पड़े, पर वह उन से घबराता नहीं है। अशांत नहीं होता। उसका मन चंचल नहीं होता क्योंकि वह जान लेता है, कि भगवान् हर क्षण उनके साथ में है। साक्षात् रूप में वह अपने स्वामी को अपने पास, अपने साथ में महसूस करता रहता है। वह

जान लेता है कि यह संकट, यह दुख–तकलीफ मेरा क्या बिगाड़ सकती है? मेरे भगवान् मेरे साथ हैं। वह स्वयं इनको संभाल लेंगे। मेरा इससे कुछ लेना देना नहीं है। वह बेफिक्र रहता है। यही अवस्था है पूर्ण शरणागति की। उदाहरण स्वरूप यदि घर में कोई मुसीबत आ जाती है, या संकट आ जाता है, और घर का मालिक, पिता है, तो पुत्र का मन अशांत नहीं होता क्योंकि पिताजी अपने आप संभाल लेंगे, वह अपने पिता पर पूर्णरूप से आश्रित है, पूर्णरूप से शरणागत है और वह सोचता है कि उसका पिता इस संकट को स्वयं झेल लेगा। वह इसकी चिंता क्यों करे? ठीक इसी प्रकार वह भक्त, साधक, अपने स्वामी के चरणों में पूर्णरूप से शरणागत होता है तो उसका भार भगवान् को उठाना पड़ता है। यह संकट का भार भगवान् सहन करते हैं।

जब महाभारत का युद्ध हो रहा था और पांडवों पर घोर संकट आया था तो वे बिल्कुल भी नहीं घबराए, क्योंकि वह भगवान् श्री कृष्ण पर पूर्णरूप से आश्रित थे। उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति थी। महाभारत के युद्ध में पांडव पूरी तरह से शांत रहे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि उन पर भगवान् श्रीकृष्ण का हस्त कमल है, वे ही उनके रक्षक हैं, वे ही इस संकट को संभालेंगे। फिर वे चिंता क्यों करें? जब भक्त की इस प्रकार भगवान् में पूर्ण शरणागति हो जाती है, तो भगवान् हर पल उसके अंग–संग में रहते हैं। एक पल के लिए भी उससे दूर नहीं होते। यह भाव, यह अवस्था करोड़ों मनुष्यों में से किसी एक की ही आती है। बहुत उच्च्व स्थिति है, जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जायेगी। हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम और किसी से नहीं।

dfy;|x doy uke vèkkjkA
l|fej l|fej uj mrjfg ikjkAA

केवल यही रास्ता है और दूसरा रास्ता नहीं है। कलियुग केवल नाम अधारा, नाम का ही आधार है कलियुग में। नाम से ही कलियुग में भगवान् की प्राप्ति हो जाती है और जन्म–मरण हट जाता है। यह

बहुत ऊंची स्थिति है जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जाएगी। मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर, जब हम हरे कृष्ण महामंत्र जप और कीर्तन करते हैं तब हमारा बड़ी तेजी से विकास होने लगता है। हम बड़ी तेजी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगते हैं। हरिनाम में पूर्ण– श्रद्धा, पूर्ण–विश्वास, पूर्ण–शरणागति, जब तक नहीं होगी, तब तक यह अवस्था नहीं आएगी।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : क्षण भर का विरह, क्या आप इसे विरह कहेंगे या कल्पना कहेंगे ?

उत्तर : भगवान् के प्रति क्षण भर का विरह है, बहुत अच्छा है भगवान् के लिए यह विरह हुआ है न, यह उन्नति का कारण है। फिर धीरे–धीरे ज्यादा होगा। जैसे–जैसे संसार से मन हटेगा, तो विरह भी धीरे–धीरे बढ़ता जाएगा। कभी–कभी ऐसा होता है परंतु लगातार नहीं होता है। लगातार इसलिए नहीं होता है क्योंकि एक तो संग नहीं मिलता है ऐसा, और हमारा 'जैसा अन्न–वैसा मन' होता है। जब किसी के घर खाने के लिए चले जाते हैं तो वहाँ कैसी कमाई का अन्न होता है क्या मालूम ? इसलिए उसका प्रभाव भजन में पड़ता है, यही कारण है। परंतु विरह होना अच्छा है। यह उन्नति का प्रतीक है।

इन्द्रियों में मैं मन हूँ

(11)

16 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेवजी ने मुझे आदेश दिया है कि केवल भगवद् नाम की महिमा ही सदैव बोलते रहो और कुछ भी नहीं बोलना है। अतः मैं, गुरुजी की शक्ति से उनके आदेश का पालन करने का प्रयास कर रहा हूँ। कृपया भक्त ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें!

553 वर्ष पहले स्वयं भगवान् ने श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के रूप में, राधाजी के भाव से ओतप्रोत होकर अवनी (पृथ्वी) पर अवतार लिया था। ऐसा अवतार इस अवनी पर कभी नहीं हुआ है। अनंत ब्रह्मांड हैं, उन ब्रह्मांडों का कुछ मालूम नहीं है। विचार करने पर दयालु स्वभाव होने से वहाँ भी चैतन्य महाप्रभुजी का अवतार हुआ होगा, कह नहीं सकते। उन्होंने जीवों का उद्धार करने हेतु, स्वयं अपना नाम जप कर, जीवों को अपने नाम में लगाया और आदेश दिया कि "जो लखपति होगा, उसके यहाँ पर ही मैं प्रसाद पाऊँगा।" तो सभी जबरन 64 माला अर्थात् एक लाख नाम करने लग गए। शास्त्र के अनुसार, केवल एक भगवद् नाम से ही उद्धार हो जाता है, तो 64 माला करने से तो 100% उद्धार होगा ही क्योंकि इतने नाम जपने में कुछ तो शुद्ध नाम निकलता ही है। महाप्रभु का उद्देश्य था

जो भी इतना नाम नित्य करेंगे, उन्हें वैकुण्ठ या गोलोक धाम जाने में, स्वप्न में भी रुकावट नहीं हो सकती। कोई शक्ति उनको वहाँ जाने से नहीं रोक सकती।

'शब्द' में बहुत प्रभाव करने वाली शक्ति होती है। उदाहरण के लिए, किसी ने किसी को माँ—बहन की गाली दी, तो सामने वाले को इसका इतना प्रभाव हुआ और इतना क्रोध आया कि उसने उसका गला ही काट दिया। यह शब्द का प्रभाव था। एक शब्द ऐसा होता है कि किसी ने बोला, "भैया! मैं तुम्हारी शरण में हूँ। आप मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ।" तो कैसा प्रभाव होगा? सुखदायक होगा, इससे प्रेम उमड़ आएगा। अतः शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। तो इसी प्रकार 'हरे कृष्ण, हरे राम' शब्द ऐसा प्रभावशाली है, कि मानव का दिल समदर्शी, अमृतमय, आनंदमय बनाकर सामने वाले को भी इसके प्रभाव से ओत—प्रोत कर सकता है। 'शब्द' के बिना संसार का काम चल ही नहीं सकता। शब्द ही कर्म को जन्म देता है शब्द नहीं तो कर्म हो ही नहीं सकता। बिना शब्द कुछ नहीं हो सकता। यदि कोई सब्जी बनाना चाहेगा तो उस सब्जी का नाम उसको लेना पड़ेगा, नहीं तो सब्जी की उपलब्धि नहीं होगी। इसलिए 'हरे कृष्ण' और 'हरे राम' का शब्द इतना प्रभावशाली है कि त्रिलोकी को हिला सकता है।

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं, "गोलोक धाम का प्रेम धन हरिनाम संकीर्तन है।" हरिनाम संकीर्तन के द्वारा ही सभी पतितों, दीनजनों का उद्धार हुआ है। इस बात का प्रमाण है, जगाई—मधाई। एक कीर्तन होता है वह तो इंडिविजुअल (एकाकी) करता है। जब कोई एक जोर—जोर से हरिनाम करते हुए बोलता है वह कीर्तन होता है और जो सामूहिक कीर्तन होता है, वह संकीर्तन कहलाता है।

nhughu ;r fNyk] gfjuke m)kfjykA
rk*j lk{kh txkb&ekèkkbAA3AA

(भजनः हरि हरि बिफले जनम)
(नरोत्तम दास ठाकुर, ग्रन्थ : प्रार्थना)

दुर्भाग्यपूर्ण मनुष्य, सुदुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी श्री राधाकृष्ण का भजन नहीं करता, इसलिए वह अशांत है, दिन–रात संसार रूपी विषयानल में उसका हृदय जलता ही रहता है। अतः इस मनुष्य जन्म को बेकार न करें। देखा जाता है कि थोड़ा सा संकट आने पर भक्त घबरा जाते हैं जिसका अर्थ है कि उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब भक्त की भगवान् के चरणों में पूर्ण शरणागति बन जाती है तो उसमें विरहावस्था की स्थिति स्वतः ही आने लगती है। यह विरहावस्था भगवान् के लिए तड़पन पैदा करती है अतः मन भगवान् को मिलने के लिए व्याकुल हो जाता है। वह दिन–रात हर समय दर्शन के लिए आतुर हो जाता है।

जब भक्त की ऐसी अवस्था हो जाती है तो पूर्णरूप से उसका मन संसार से हट जाता है। वह दिन–रात भगवान् के विरह में तड़पता रहता है। उसके लिए खाना–पीना, सोना–जागना, चलना–फिरना सब भार बन जाता है। वह पागलों की तरह हँसने लगता है, कभी रोता है। ऐसी गहरी स्थिति में पहुँचकर वह शरीर की सुध–बुध भूल जाता है। लोग उसे पागल समझते हैं, पर उसकी वास्तविक स्थिति को कोई नहीं समझता। कोई अनुभवी संत ही उसे पहचान सकता है।

जिस भक्त की स्थिति ऐसी बन जाती है, तो भगवान् उसे अपना पारिवारिक सम्बन्ध दे देते हैं। जिस भाव से वह भगवान् को भजता है, याद करता है, उसी भाव के अनुसार भगवान् उसे सम्बन्ध ज्ञान दे देते हैं क्योंकि भगवान् तो अंतर्यामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। अतः उसके मन के अनुरूप ही उसे पुत्र, भाई, सखा, मंजरी इत्यादि का सम्बन्ध प्रदान कर देते हैं। उसके हृदय में स्फुरित कर देते हैं। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक श्री कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति नहीं होगी। सम्बन्ध ज्ञान होने पर ही विरह उत्पन्न हो जाता है। भगवान् के लिए तड़पन होने लगती है। सम्बन्ध ज्ञान होने पर ही भगवद् दर्शन होने लगता है।

मीराबाईजी भगवान् के प्रति कहती हैं :

tkd: flj eksj eqdqV ejks ifr lkbZA
ejs rks fxjèkj xksiky nwljk u dksbZAA

(मीराबाई)

ऐसी स्थिति में, जब हमें सम्बन्ध ज्ञान मिल जाता है तो किसी से क्या लेना—देना। कभी—कभी भक्त प्रेम के वशीभूत होकर ठाकुर से शिकायत भी करता है, उसको न्योहरा भी मारता है, ताने भी देता है, जैसे नरसी भक्तजी ने भात भरने पर ताने दिए। स्वामी हरिदास जी का मंजरी भाव था, उन्होंने श्री बांके बिहारी जी को प्रकट किया। इस प्रकार हर भक्त का अपना—अपना भाव होता है, जिसके अनुसार ही वह भगवान् से अपने हृदय की बात करता है। अब मेरा शिशु भाव है, मैं भगवान् का एक छोटा सा शिशु हूँ। उनकी गोद में चढ़ जाता हूँ, उन्हें परेशान करता हूँ, कभी रोने लगता हूँ, तो वह मुझे चुप करा देते हैं, रुक्मिणीजी की गोद में बिठा देते हैं, रुक्मिणी मेरी दादी है। मुझे दुलारते हैं, पुचकारते हैं और प्यार करते हैं। कई बार उन्हें मेरे गुस्से को भी सहन करना पड़ता है। मेरी जिद्द भी पूरी करनी पड़ती है क्योंकि मैं उनका शिशु हूँ, उन्हें मेरी बात सुननी पड़ेगी।

वास्तव में भाव की गति विचित्र है, इसे समझना असंभव है। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की प्राप्ति नहीं होगी। सम्बन्ध ज्ञान होने के बाद ही गोलोक धाम की प्राप्ति हो सकती है। जिन भक्तों का कोई सम्बन्ध नहीं बना तो वे वैकुण्ठ में ही जा सकते हैं। जहाँ से अंतर्यामी भगवान्, उसके अंतःकरण में थोड़ा सा सम्बन्ध का भाव देकर, इस धरातल पर किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं। फिर उसी भाव में भक्ति करके वह सम्बन्ध ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। सम्बन्ध ज्ञान होने के बाद उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो जाता है।

उपरोक्त जो भी बातें कही गई हैं, वह सब बातें मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को समझा रहे हैं। इन बातों को समझकर भक्ति मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है, इस प्रकार भक्ति में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर

होगा। देखो! गोलोक धाम भी एक नहीं है, बहुत से गोलोक धाम हैं। जिस भक्त का जैसा भाव होता है, उसे उसी भाव वाले गोलोक धाम में भेजा जाता है। इसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी अनेक हैं। वैकुण्ठधाम तो भगवान् की कृपा मिलने पर ही उपलब्ध हो जाता है, पर जब तक संसार की आसक्ति बनी रहेगी बार–बार जन्म लेना ही पड़ेगा। भगवान् सबके हृदय की बात जानते हैं। साधक के अंतःकरण में जो भाव होता है, वह बाहर भी प्रकट हो जाता है। जिस भक्त का मन संसार से पूर्ण रूप से नहीं हटा, उसे भगवान् बार–बार अपने भक्तों के घर में जन्म देते रहते हैं, ताकि धीरे–धीरे भक्ति करके, सम्बन्ध ज्ञान होने पर उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो सके। ऐसे भक्त को गोलोक धाम मिलने में ज्यादा समय लग सकता है। इस प्रकार जब कोई बच्चा स्कूल में जाता है, तो हर साल अगली कक्षा में जाता है तथा दूसरी, तीसरी, चौथी, ऐसे ही बढ़ते हुए दसवीं और फिर कॉलेज यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी करके उसे नौकरी मिल जाती है। परंतु पढ़ाई किए बिना नौकरी नहीं मिलेगी। अब सम्बन्ध ज्ञान उदय कैसे होगा? सम्बन्ध ज्ञान उदय होगा, केवल तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति करने से और कान से सुनने से तथा मन एकाग्र होने पर ही। जब तक मन संसार की ओर भागता रहेगा, हरिनाम में एकाग्रता नहीं बनेगी। भजन होगा, पर अनमने मन से होगा।

अधिकतर भक्तों को नामाभास ही हुआ करता है, जिसके कारण वे विरहावस्था से दूर रहते हैं। विरहावस्था तभी होगी जब सम्बन्ध होगा, सम्बन्ध ज्ञान हुए बिना विरह उदय नहीं होगा। विरहावस्था हुए बिना पूर्ण शरणागति का भाव भी नहीं बनेगा और पूर्ण शरणागति हुए बिना गोलोक धाम की प्राप्ति भी नहीं होगी। यह स्थिति बहुत ऊंची है। इस प्रकार गोलोक धाम को कोई विरला ही पा सकता है। उसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी किसी विरले को ही प्राप्त होता है। इसका कारण है नामापराध। नाम अपराध होने से भक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और बार–बार नामापराध होने से उसका किया कराया सब नष्ट हो जाता है। कई लोग मुझे आकर पूछते हैं कि वे हरिनाम करते हैं और भगवान् के शरणागत भी हैं, पर उन्हें विरह नहीं होता,

उनकी भक्ति बढ़ नहीं रही है तो उन सभी भक्तों के लिए मेरे गुरुदेव ने एक नहीं, बहुत बार बोला है कि यह सच्ची भक्ति नहीं है। सभी ऊपर से कहते हैं कि हम हरिनाम करते हैं। क्या वे पूरी तरह से भगवान् पर निर्भर हैं? नहीं! नहीं! वास्तव में कोई भी भगवान् को नहीं चाहता। सभी अपने परिवार की खुशहाली चाहते हैं। खुशहाली तो हो जाएगी, भगवान् को तो कोई विरला ही चाहता है।

जब तक आप मेरे गुरुदेवजी की वाणी को कान से नहीं सुनोगे, एकाग्रता से उस पर ध्यान नहीं दोगे, उसके अनुसार नहीं चलोगे, तो अपराध होगा ही। फिर कैसे हरिनाम होगा? कैसे हरिनाम में रुचि होगी? कैसे विरह उदय होगा? कैसे भगवद् प्राप्ति होगी? ऐसे साधक को स्वप्न में भी भगवद् प्राप्ति नहीं हो सकती। जिसको हम सुनते हैं उसको हृदय में धारण करना चाहिए। इस कान से सुना, दूसरे कान से बाहर निकाल दिया। फिर क्या लाभ हुआ? वह भक्ति से अभी कोसों दूर है। उसे निष्ठा और श्रद्धा के साथ कम से कम एक लाख हरिनाम उच्चारण के साथ कान से सुनकर करना चाहिए।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

मेरे गुरुदेव, एक उदाहरण देकर सभी भक्तों को समझा रहे हैं, कि जब तक संसार में आसक्ति है, विरह उदय नहीं होगा। एक पतिव्रता स्त्री का पति परदेस में रहता है और वह दिन–रात उसके लिए तड़पती रहती है। पर समाज के भय से, शर्म के कारण अपना दुख किसी से कहती नहीं। अंदर ही अंदर रोती है, घुटती रहती है।

जैसे एक वर्ष के बच्चे की माँ परलोक सिधार गई। वह शिशु माँ की गोद के लिए बेचैन रहता है। स्तनपान के लिए छटपटाता है। वह न खिलौने से खेलता है, न कुछ खाता है। बस रोता ही रहता है। सभी उसे खिलाने की कोशिश करते हैं, चुप कराते हैं पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसे तो अपनी माँ चाहिए। अपनी माँ की गोद चाहिए। माँ की गोद के सिवाय कोई भी चीज उसे वह सुख नहीं दे सकती। यही है पूर्ण शरणागति का भाव। यदि भक्त का भाव

उस पतिव्रता स्त्री जैसा बन जाए, शिशु जैसा बन जाए, तभी समझना चाहिए कि वह भगवान् के शरणागत है।

अब ध्यान से सुनो जो बात गुरुदेव कह रहे हैं। मेरे गुरुदेव ने सब को समझाने के लिए ही यह उदाहरण दिया है। अब जो भी साधक या भक्त कर रहे हैं वह नाम स्मरण नहीं, केवल नामाभास है। मेरे गुरुदेव सब स्पष्ट कह देते हैं। साधकगण, भक्तगण नाराज न हों, वरना घोर अपराधी बन जाएंगे। मेरे गुरुदेव तो सभी का कल्याण चाहते हैं और चाहते हैं कि सभी इस जन्म मरण के चक्कर से छूट जाएं। इसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सभी के उद्धार के लिए इतने पत्र लिखवा चुके हैं, जो "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1–7) नामक पुस्तको में संकलित हुए हैं। ऐसा इसलिए हो रहा है कि भक्त जनों की पूर्ण शरणागति बनी रहे। लेकिन भक्तजनों का मन तो संसार में फंसा हुआ है। मन तो एक ही है, उसे चाहे भगवान् में दे दो या संसार को दे दो। भगवान् को मन देने से संसार अपने आप पीठ करने लगेगा, फिर भगवान् की जिम्मेदारी हो जाती है हमारे परिवार को चलाने की, संसार को चलाने की, पर हमें विश्वास नहीं होता। विचार कीजिये कि हमें अपने आप पर विश्वास है या भगवान् पर विश्वास है? एक बार अपने जीवन की नैया की बागडोर भगवान् के हाथों में सौंप कर देखो तो सही। कहने से नहीं, करने से होगा। इसलिए मैं बार–बार कहता हूँ कि प्रतिदिन कम से कम एक लाख हरिनाम जरूर करो। उच्चारण करो और कान से सुना करो।

श्रोताओं में से ऐसा एक भी नहीं जिसे विरह उदय हुआ हो। इसका कारण साफ है, संसार की आसक्ति और संसार में मन की फँसावट।

भगवान् कह रहे हैं कि, "हे अर्जुन! मुझ में मन लगाओ, मेरा भक्त बनकर, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझे प्रणाम कर, ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा कर रहा हूँ

क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्यारा है।" यह तो भगवान् ने अर्जुन को कहा है, "तेरा यह मन केवल मेरा है। यह जो मन है, यह मेरा है। तूने जबरदस्ती ले रखा है, जो तूने अपना अधिकार समझकर अपने काबू में कर रखा है। इस मन को माया का दास बना रखा है। इसी कारण तू दुखी हो रहा है। "हे अर्जुन! किसी दूसरे की वस्तु पर अधिकार जमा कर कोई सुखी नहीं रह सकता।" यह सिद्धांत है, पक्का सिद्धांत, यह अटल सिद्धांत है। "अतः तू इस मन को, जो मेरा है मुझे सौंप दे। तू सुखी हो जाएगा। जब तू यह मन मुझे दे देगा, तो दसों इंद्रिया भी इस मन के साथ आ जाएंगी। जब यह मेरी वस्तु तू मुझे सौंप देगा और अपने आप ही तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जाएगा और तू परम सुखी हो जाएगा। फिर तुझे शरणागत होने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा।"

जब तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जाएगा, तो तेरे जीवन का सारा भार मैं अपने ऊपर ले लूँगा और तू, मुझ को ही प्राप्त हो जाएगा। तेरे सारे दुखों का बखेड़ा ही मूल सहित खत्म हो जाएगा। बस एक बार अपना मन मुझे सौंप कर तो देख। मैं तेरे लिए क्या करता हूँ? अभी तक तूने इसे अपने पास रखा है, इसीलिए तू दुखी है। इसीलिए मैं कहता हूँ, यदि तू शाश्वत सुख चाहता है, मेरे पास, मेरे धाम में आना चाहता है, तो इन चारों बातों को कर। अपना मन मुझे सौंप दे, मेरा भक्त बन जा, मेरी पूजा कर और मुझे प्रणाम कर।"

मन भगवान् को सौंपने का अर्थ है, कि हर समय हरिनाम करते रहना। यही सम्बन्ध तो सोचने का है परन्तु हमें तो संसार का चिंतन होता रहता है। मन को संसार में फंसा रखा है, मन संसार को दे रखा है। भगवद् नाम करते रहना और कान से श्रवण करते रहना ही मन का भगवान् को सौंपना है। बस इतना करो। कान से सुनो, हरिनाम करते रहो। कान से नहीं सुनोगे, तो मन भाग जाएगा। मन को भगवान् को सौंपना है। मेरे गुरुदेव स्पष्ट कह रहे हैं :

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

जब हम उच्चारण पूर्वक हरिनाम करेंगे और कान से श्रवण करेंगे, तो स्वतः ही भगवान् के लिए तड़पन पैदा होने लगेगी, उनके दर्शन के लिए झटपट होने लगेगी, मन अकुला उठेगा, शरीर पुलकित होने लगेगा, अश्रुपात होने लगेगा और धीरे–धीरे मन संसार से हटता जाएगा। इतना सरल रास्ता है, फिर भी हम ऐसा करते नहीं है। भगवान् के नाम स्मरण में रुचि बढ़ती जाएगी। इस बात को कोई भी आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

ऐसा करो कि एक एक माला करो, और विचार रहे कि मैं एक माला कर रहा हूँ, मेरा मन इधर उधर नहीं जाना चाहिए। ऐसी कोशिश करने से मन धीरे–धीरे रुक जाएगा। एक माला में रुकेगा, दो माला में रुकेगा, फिर तीन माला में भी रुकेगा। धीरे–धीरे ऐसे रुकता जाएगा।

मैं आप को कह रहा हूँ। मैं अपनी बड़ाई तो कर नहीं रहा हूँ, लेकिन मैं तो रोज 12–1 बजे जाग जाता हूँ और मेरा मन तो कहीं भी नहीं जाता। मेरा मन तो स्थिर रहता है। भगवान् की तरफ ही रहता है। ऐसे, जब मेरा लग सकता है तो आप का भी लग सकता है। मैं कोई अलग थोड़े ही हूँ। आपका भी मन रुक सकता है। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि जब किसी कन्या का विवाह, किसी लड़के के साथ माँ–बाप कर देते हैं, उसे अपने माँ–बाप का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है। 25 साल तो माँ–बाप के पास रही और उसके बाद में, शादी होते ही माँ–बाप को छोड़ देती है। वह पूर्ण शरणागत होकर पति की सेवा करती है और उसकी सारी जिम्मेवारी उसका पति अपने सिर पर ले लेता है। ऐसे ही भगवान् भी ले लेते हैं। वह कन्या, अपने पति के चरणों में रहकर अपना पूरा जीवन बिताती है। देखो! इस बात को ध्यान से समझो कि जब तक कन्या–रूपी, यह जीवात्मा अपने पति–रूपी परमात्मा के चरणों में पूर्णरूप से समर्पित नहीं होगी, पूर्णरूप से उसकी शरणागत नहीं होगी, तब तक उसे परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। भगवद् धाम

की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अपने पति–रूपी परमात्मा के धाम में निवास करने के लिए, अपने माँ–बाप के घर को छोड़ना ही पड़ेगा यानि संसार को छोड़ना पड़ेगा। संसार छूटेगा तभी तो भगवान् के चरण मिलेंगे। संसार का त्याग करना ही पड़ेगा। यह परमावश्यक है। माँ–बाप का घर छोड़े बिना, माँ–बाप का त्याग किए बिना, उसे पति का धाम उपलब्ध नहीं हो सकता। संसार को छोड़े बिना, भगवान् के पास नहीं जा सकते। यही बात विचारने की है। यही है सम्बन्ध ज्ञान का महत्वशील चिन्मय विचार। भगवत्कृपा बिना यह भी समझ में नहीं आ सकता। जिस पर गुरु–वैष्णवों की कृपा होगी, वही इस तत्व को समझ लेगा। वैदिक परंपरा के अनुसार माँ–बाप ही अपनी कन्या का वर खोजते हैं और पूरी सामाजिक परंपराओं के साथ उसकी शादी एक योग्य, बुद्धिमान्, विद्वान् और सुशील लड़के से कर देते हैं जो जीवन भर उनकी कन्या की जिम्मेदारी उठा सके। बड़ी सोच विचार करके माँ–बाप अपनी कन्या का सम्बन्ध उसके पति से करते हैं। जो पहले एक पुत्री थी, अब वही पत्नी बनेगी और माँ–बाप ही उसे यह सम्बन्ध ज्ञान देंगे कि आज के बाद यह अमुक पुरुष उसका पति होगा। यह सम्बन्ध ज्ञान हो गया। इसी प्रकार से गुरुदेव अपने शिष्य का सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ते हैं। वह जीवात्मा जो पहले पुत्र, भाई और पति था, अब गुरुदेव की कृपा से एक शिष्य बन जाता है और गुरुदेव की कृपा से उनके आदेश का पालन करता है, उनके मार्गदर्शन में हरिनाम करने से, उसे सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह उसे गोलोक धाम प्राप्त करा देता है। नामाभास से वैकुण्ठ मिल जाएगा और वैकुण्ठ में दुख की छाया भी नहीं है। वहाँ पर परमानेंट (स्थायी) सुख बहता रहता है तथा भगवान् का प्रेम मिलता रहता है और जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की उपलब्धि नहीं होगी। पूरे प्रसंग का सार यही है कि हरिनाम पर ही आश्रित होना पड़ेगा।

ftUg dj ukeq yr tx ekghA
ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

चाहे जितने भी दुख हैं, वह जड़ से खत्म हो जाएँगे। जब दुखों की जड़ ही नहीं रहेगी तो दुख कैसे होगा? इतना सरल रास्ता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में बहुत मुश्किल से साधन होते थे पर अब तो इतना सरल साधन है कि आप कहीं भी बैठ कर हरिनाम कर सकते हो। किसी भी समय कर सकते हो। नहाने धोने की भी जरूरत नहीं है।

हम कहते हैं कि शुद्ध नाम करो। शुद्ध नाम अर्थात्, शब्द बोलो। शुद्ध बोलने की जरूरत नहीं है। जैसे एक छोटा सा शिशु होता है और वह माँ–बाप को तोतली भाषा में अधूरा शब्द बोलता है तो माँ–बाप नाराज नहीं होते हैं, बहुत खुश होते हैं। वह तोतली भाषा में अधूरा शब्द बोलता है, तो क्या हमारे जन्म–जन्म के माँ–बाप, अनंतकोटि जन्मों के माँ–बाप, नाराज होंगे? नहीं होंगे। आप कृष्ण की जगह 'कृ' ही बोल दो, राम की जगह 'रा' ही बोल दो। वाल्मीकि को नारदजी ने कहा, ''तुम राम–राम करो।'' वह बोले, ''मैं राम–राम नहीं कर सकता क्योंकि मैंने तो उम्र भर मारा ही मारा है तो मैं मरा–मरा कर सकता हूँ।'' तो नारदजी बोले, ''मरा–मरा करो।'' मरा–मरा बोलते–बोलते राम–राम आ गया, तो त्रिकालदर्शी हो गया, तो भगवान् के शुद्ध नाम की तो फिर बात ही और है!

शुद्ध नाम होता है कि जिसको आप बोल रहे हो वह आपके पास में है। जैसे हमने किसी को फोन से घर पर बुलाया और आपस में बात करने लगे। थोड़ी देर बात की और उठ कर चल दिए और उसे बोला भी नहीं कि आप जा रहे हो और चुपचाप चले गये। अब वह जो आया है, उसको कैसा लगेगा? क्या करेगा? वह दुखी हो जाएगा और चला जाएगा। ऐसे ही हम भगवान् को बुलाते हैं, फिर हम क्या करते हैं? एक मिनट भगवान् आते हैं फिर हम बाजार चले जाते हैं, हम स्कूल चले जाते हैं, हम खेत में चले जाते हैं। तो भगवान् क्या कहेंगे कि, "मेरे को बुलाया और चला गया।" लेकिन उसमें भी सुकृति होगी। जब खेत में नाम को लेकर जाएगा तो फसल अच्छी हो जाएगी। जहाँ भी नाम को लेकर जाएगा, उसका

कल्याण हो जाएगा और यदि अपने स्वयं के लिए करेगा तो अपना स्वयं का कल्याण होगा।

इसलिए नाम को जपते हुए, भगवान् को पास में रखना चाहिए। भगवान् की कई तरह की मुद्राएं (पोज) होती हैं, बैठे हुए हैं, चलते–फिरते हैं, उन्हें भी अपने पास बिठाकर हरिनाम करो, उनके चरणों में बैठकर करो, उनके चरणों का ध्यान करके करो, उनके चरणों में खड़े होओ। उनके पास में उनका पीताम्बर पकड़ कर, उनकी प्रार्थना करते रहो। "मेरे को संग में ले लो, मेरे को संग में ले लो।" ऐसे बहुत से विचार हैं और भाव हैं, उनको ले लोगे, तो मन इधर–उधर नहीं भागेगा। मन को भी कोई न कोई सहारा तो चाहिए। सहारे के बिना तो कहीं न कहीं जाएगा ही। सबको ही सहारा चाहिए। जैसे पेड़ है, तो पेड़ को जमीन का सहारा चाहिए। बच्चे को माँ–बाप का सहारा चाहिए। शिष्य को गुरु का सहारा चाहिए। ऐसे सबको सहारा चाहिए। मन को भी सहारा चाहिए। मन को भगवान् के चरणों का सहारा दो। जब ऐसा होगा, तो बहुत जल्दी भगवान् का विरह हो जाएगा। जब तक सहारा नहीं होगा, तो संसार में मन रहेगा। मन इधर–उधर जाएगा। यह केवल नामाभास हुआ। नामाभास से वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। अजामिल को नामाभास ही हुआ था। अजामिल ने अपने बच्चे को पुकारा था "नारायण!" उसके बच्चे का नाम था। उसने भगवान् को थोड़े ही पुकारा था। उसको वैकुण्ठ प्राप्त हो गया। भगवान् का नाम ऐसा ही प्रभावशाली है।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

कीर्तनीयः सदा हरि

12

23 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् साधक के साथ हरदम नहीं रह सकते, भले ही उसका भगवान् के साथ कोई भी सम्बन्ध हो। ऐसी स्थिति में साधक की विरहावस्था जागृत होती रहती है। इसी विरह में, इस मस्ती में, जो आनंद है, वह बताया नहीं जा सकता। जिसको ऐसी विरह अवस्था उपलब्ध हो जाती है, वही इस अवस्था का आनंद भोग सकता है और बता सकता है। जिसको यह आनंद आता है, वही जानता है। उस साधक का जीवन ऐसा होता है कि जब वह इस संसार में रहता है, प्रत्येक प्राणी में भगवद् दर्शन का अनुभव करता रहता है। यह तीन प्रार्थनाओं में लिखा हुआ है। हर चर–अचर में उसे भगवान् का दर्शन होता है। सभी जनों की भलाई करने में वह लग जाता है। किसी जीव को दुख देने से उसका हृदय काँप उठता है। ऐसा साधक तन–मन से जो भी कर्म करता है, वह भगवान् का कर्म समझकर ही करता है। तीनों प्रार्थनाएँ इसमें आ चुकी हैं। भगवान् के निमित्त भजन करता है, इस प्रकार उसका रात–दिन का अर्थात्, 8 घड़ी 24 घंटे का भजन हो जाता है। वह अपना मन, इंद्रियों सहित भगवान् के लिए, भगवान् की सेवा में ही लगाए रहता है। उसके मन में जो भी संकल्प–विकल्प होते हैं, वह सब भगवान् के लिए होते हैं। ऐसे साधक से माया बहुत दूर रहती है। संसार से उसका बिल्कुल कट–ऑफ

(नाता टूट) हो जाता है। माया उसको सताती नहीं है। माया, प्रत्येक क्षण उसका साथ भी देती रहती है।

ऐसा साधक, हर क्षण भगवद् नाम में रत रहता है। नामापराध उसे सपने में भी नजर नहीं आते। उसका तो नींद में भी, हर क्षण नाम स्मरण चलता रहता है। सोते–सोते भी वह रोता रहता है, भगवान् के विरह में रोता रहता है। उसके अंतःकरण में अलौकिक मस्ती छाई रहती है। भगवान् अपने भक्त के माध्यम से किसी को श्राप या वरदान दिया करते हैं। भक्त के अंतःकरण में जो भी प्रेरणा होती है, वह भगवान् के करने से ही होती है। अभक्त अथवा नास्तिक को जो प्रेरणा होती है, वह उसके भावानुसार– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के अनुसार होती है। इसमें भगवान् का कोई लेन–देन नहीं है। भगवान् का लेन–देन केवल भक्त से है। भूतकाल में जितने भी धर्म–ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है, या अब हो रहा है, वह भगवान् ने प्रेरणा करके अपने भक्तों के माध्यम से ही किया है। इसमें भक्त की अपनी प्रेरणा कुछ भी नहीं होती है। भक्त तो भगवान् की प्रेरणा से ही अपना जीवन धारण करता है। एक तरह से वह भगवान् की कठपुतली ही बना रहता है।

भगवान् भी भक्त के आश्रित होकर प्रेरक बनते रहते हैं। दोनों का सम्बन्ध ऐसा रहता है– जैसे दूध और पानी। दूध में पानी दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार भक्त और भगवान् भी आपस में मिले हुए रहते हैं, पर भगवान् अपने भक्त की बात कभी नहीं टालते और भक्त भी भगवान् की रुचि के विरुद्ध कुछ नहीं करता। जिस प्रकार अरणि में आग छिपी रहती है और रगड़ने पर प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भगवान् और भक्त के अंतःकरण का भाव मिला रहता है और समय आने पर प्रकट हो जाता है। साधारण साधक इसी चीज को नहीं समझ सकते। किसी के आचरण या भाव को, भगवद्–कृपा बिना समझना असंभव है। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, वही इस भाव को समझ सकता है। ऐसे भावुक संत का दूसरों पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ जाता है और ऐसा संत समागम बहुत दुर्लभ है। भगवद्–कृपा बिना ऐसा

संयोग बनता नहीं। जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वही इस संत से मिलता है। भगवान् का मन अपने भक्त के साथ लीला करने में ही खुश रहता है। लीला बिना भगवान् का मन कहीं भी नहीं लग सकता। अतः भगवान् ही प्रेरक बन जाते हैं और भक्त से श्राप और वरदान दिला देते हैं, ताकि उन्हें लीला करने का अवसर उपलब्ध हो सके। धर्म ग्रंथों में ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद रहते हैं। नारदजी ने विवाह करने के लिए भगवान् से एक सुंदर रूप मांगा था, तो भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया। भगवान् ने ऐसा इसलिए दिया क्योंकि वह जानते हैं कि नारद उनका भक्त है विवाह करने के बाद वह बेचारा संसार में फँस जाएगा। इसलिए भगवान् ने सोचा कि उसे वे ऐसा रूप दें कि उसे संसार की कोई भी लड़की शादी में वरण न करे। भगवान् भक्त का बहुत भला चाहते हैं, लेकिन भक्त जानता नहीं है और वह उन से रुष्ट हो जाता है।

यह सब भगवान् की इच्छा थी। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कोई लीला विधान हो और वे इस लीला में आनंद लूट सकें। इसलिए भगवान् ने लीला करने के लिए देवऋषि नारदजी को इसका माध्यम बनाया। जब नारदजी ने देखा कि भगवान् ने उन्हें धोखा दिया है, तो उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने भगवान् को श्राप दे दिया कि जैसे उन्हें पत्नी के लिए तड़पना पड़ा है, उसी प्रकार भगवान् भी पत्नी के लिए जंगलों में रोते फिरेंगे। भगवान् भी भक्तों से ही श्राप लेते हैं। इस प्रकार भगवान् अपने भक्त के मुखारविंद से ही श्राप या वरदान दिलाते रहते हैं, क्योंकि उन्हें अपना लीला विधान करना होता है। भगवान् बोलते हैं कि वे अपने भक्त के मुखारविंद से ही प्रसाद ग्रहण करते हैं। उनकी हर हरकत ही भक्त के द्वारा हुआ करती है। इसलिए मैं कहता हूँ, जो भी मैं बोल रहा हूँ, पीछे से कोई शक्ति मेरे को बुलवा रही है। मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं तो एक साधारण पुरुष हूँ। भगवान् कहते हैं, "अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में मेरा भक्त ही मुझे सबसे प्यारा लगता है। भक्त के बिना मेरा मन नहीं लगता।"

ऐसी ही लीला भगवान् ने सनकादिक के द्वारा की और अपने द्वारपालों जय–विजय को श्राप दिलाया कि वे तीन जन्म तक राक्षस बन जाएँ। अब तो भगवान् को लीला करने का बहुत बड़ा अवसर मिल गया। भविष्य में भी देखा जाएगा कि लीला करने हेतु भगवान् को किसी भक्त के द्वारा ही श्राप और वरदान दिला दिया जाएगा। भगवान् बड़े कौतुकी हैं, कुछ न कुछ करते ही रहते हैं और साधक गणों को इन लीलाओं से भजन में रत रहने का मसाला देते रहते हैं। अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवद् लीलाएँ चलती ही रहती हैं, कभी बंद नहीं होतीं। किसी ब्रह्मांड में रामावतार की लीला चल रही है, किसी ब्रह्मांड में कृष्ण अवतार की लीला चल रही है। कहीं कपिल, कहीं वामन आदि की लीलाएँ, प्रत्येक ब्रह्मांडों में चलती रहती हैं। इनका स्मरण कर साधकगण भगवद् प्राप्ति कर लेते हैं।

भगवान् से ही भगवद् सृष्टि बनती है। इस सृष्टि से लीलाएँ प्रकट होती रहती हैं। भगवान् के बिना तो सृष्टि में एक कण मात्र भी नहीं हिलता। यह सभी भगवद् माया का साम्राज्य है। माया को अंगीकार कर भगवान् लीलाएँ करते रहते हैं, इन लीलाओं का कभी अंत नहीं होता। अंत केवल जीव मात्र का ही होता है। इस संसार में सुख की छाया भी नहीं है। यह संसार दुखों का घर है, क्योंकि माया सब जीवों पर छाई रहती है। यह माया केवल मात्र भगवद् के चिंतन से ही दूर हो सकती है अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समस्त कर्मों को समर्पित कर देना, इस संसार के तीन तापों को दूर करने की एकमात्र औषधि है। जितने भी कर्म हैं, यदि वे भगवान् के निमित्त नहीं किए जाएंगे, तो वे जन्म–मरण के चक्कर में डालते रहेंगे। तन से या मन से यही कर्म, जब भगवान् के निमित्त किए जाते हैं, तो इन कर्मों का कर्तापन ही नष्ट हो जाता है।

तीन प्रार्थनाओं में साधकों को बोला है कि प्रातः काल नींद से जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है, ''हे मेरे प्राणनाथ! आज मेरे द्वारा इस तन, मन से जो भी कर्म हो वह आप के निमित्त हो। मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें, कि जब मैं कर्म समर्पण करने की भूल

कर बैठूँ, तो आप मुझे याद करवाने की कृपा करें।" भगवान् दयालु हैं। जब साधक ऐसी प्रार्थना करेगा तब उसका ऐसा स्वभाव बन जाएगा कि उसका कर्तापन ही नष्ट हो जाएगा और उसे सहज में ही भगवद् शरणागति उपलब्ध हो जाएगी। जब साधक को भवरोग आक्रांत करता है, सताता है, तो ऐसा इंजेक्शन भगवान् को देना पड़ता है। जब साधक उपरोक्त साधन करता है, तो उसका मन हरिनाम में सहज लगना आरंभ हो जाता है और जब मन हरिनाम में लगने लग जाता है तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आ कर रुक जाती हैं, एकाग्रता आ जाती है। तब इन्द्रियों का संसारी व्यापार समाप्त हो जाता है। तब भगवद् व्यवहार उदय होकर विरहाग्नि प्रकट कर देता है, जब विरहाग्नि प्रकट हो जाती है, तब भगवान् को सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करना ही पड़ता है। जब साधक को सम्बन्ध ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, तो उसे सहज में ही गोलोक धाम मिल जाता है। कभी–कभी भक्तगण मुझे कहते हैं, कि हम तो गोलोक धाम जाएंगे, "भैया! गोलोक धाम तो जाओ, लेकिन तुम्हारी ऐसी अवस्था होनी चाहिए कि भगवान् का नाम लेते ही आप तड़पने लगो। आपकी नींद, खाना–पीना सब हराम हो जाए।" तब जाकर भक्तों को गोलोक धाम मिलेगा और यह मिलेगा केवल हरिनाम से। कोई दूसरा साधन नहीं है, नहीं है, नहीं है। अब बताओ इसमें कौन सा श्रम करना पड़ता है? कौन सी मेहनत करनी पड़ती है? सहज में ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है।

हम कितने भाग्यशाली हैं, कि हमारा जन्म कलियुग में हुआ है और हमारा जन्म इस भारतवर्ष में हुआ है। हम कितने भाग्यशाली हैं इस काल में भगवान् के ग्राहक नहीं के बराबर हैं, इसीलिए यदि थोड़ा सा भी मन हरिनाम में लग जाता है, भगवान् बड़ा अहसान मानते हैं। भगवान् में लग जाने का मेरे गुरुदेव ऐसा सरल उपाय बताते हैं, फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। कितने दुख की बात है। यह समय निकल जाएगा, यह समय फिर नहीं आएगा, बुढ़ापा आ जाएगा तो कितने ही रोग आकर तुमको आक्रांत करने लग जाएंगे।

गोलोक धाम उपलब्ध करने वाले साधक का स्वभाव सरल, शंका–रहित, सबका हित करने वाला, दूसरों के दुख में दुखी होने वाला, परहित करने में आतुर रहने वाला, जीव मात्र का प्यारा आदि गुणों का भंडार होता है। इन लक्षणों से समझा जा सकता है। वह एकांतसेवी व भगवद् नाम में रत रहने वाला होता है। कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा की छाया भी उसे छू नहीं सकती। ऐसा जो मानव है, वह दूसरों को भी ले जा सकता है। उसे हर समय मस्ती छाई रहती है। वह तो अलौकिक आनंद का भंडारी होता है। वह प्रत्येक प्राणी में भगवद् दर्शन के भाव में ओतप्रोत होता रहता है। कण–कण में उसको भगवान् दिखाई देते हैं। हिंसक प्राणी की भी सदा रक्षा पालन करता है। दुश्मन को भी अपनाता है। संत सेवा तो उसका जन्मजात स्वभाव ही होता है। निद्रा अवस्था में भी नाम स्मरण और जप करता रहता है तथा भगवद् अभाव में अश्रुपात करता रहता है, रोता रहता है।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी प्रेरणा करके कह रहे हैं कि बहुत दुख की बात है कि एक प्रसिद्ध संन्यासी, उसका नाम लेना उचित नहीं है, वे साधकों को भ्रमित करते रहते हैं, कि एक लाख हरिनाम करने की क्या जरूरत है। केवल 16 माला ही करना चाहिए, वह भी स्पष्ट, मन सहित होनी चाहिए। वे संन्यासी, साधकों को 16 माला करने को कहते हैं। वे इसलिए कहते हैं कि 16 माला से अधिक करना व्यर्थ है क्योंकि वे कहते हैं कि महाप्रभु ने एक लाख हरिनाम करने की बात जो कही है, उसका अर्थ है एक लक्ष, अर्थात् एक लक्ष्य। वह गलत अर्थ करते हैं। यह किसी संन्यासी ने ही अर्थ का अनर्थ कर दिया। जो लोग एक लाख हरिनाम नहीं करते, या करना नहीं चाहते या जिनका एक लाख हरिनाम होता ही नहीं, वे ही ऐसा कहते हैं। वे एक लाख हरिनाम करने वालों को भी भ्रमित करते रहते हैं। हरिनाम तो सदा ही करते रहना चाहिए। खाते–पीते, चलते–फिरते नाम करते रहना चाहिए। मैं किसी की बुराई नहीं करता हूँ, पर चैतन्य महाप्रभुजी के आदेश को तो मानना चाहिए। उन्होंने एक लाख नाम के लिए बोला है। साफ–साफ बोला है। शुरू में 16 माला

से अधिक अर्थात् एक लाख हरिनाम करने को वह इसलिए नहीं कहते क्योंकि वह जानते हैं कि यह साधक अभी नया है यदि वे उसे एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करने को कहेंगे और यदि यह न कर सका तो गुरु आदेश का पालन नहीं होगा, इसलिए गुरु अवज्ञा होने से उसको अपराध बन जाएगा। इसलिए शुरू में 16 माला के लिए ही कहते हैं।

शुरू शुरू में गुरुदेव अपने शिष्यों को लालायित करने को बोलते हैं। कुछ साल में गुरुदेव अपने शिष्यों को एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करने का आदेश बीच–बीच में देते रहते हैं कि, "तुम अब एक लाख नाम करो। एक लाख या उससे अधिक हरिनाम करना तुम्हारे लिए अच्छा होगा। ऐसा करने से कुछ हरिनाम शुद्ध भी होने लगेगा। जब ज्यादा हरिनाम करोगे, तो कुछ तो शुद्ध हरिनाम निकलेगा।" महाप्रभुजी का यह स्पष्ट आदेश है कि नित्य एक लाख हरिनाम करना परम आवश्यक है। महाप्रभुजी भी दिन–रात माला पर हरिनाम इसलिए करते थे कि सभी उनके आचरण के अनुसार करेंगे।

एक बार महाप्रभुजी ने नित्यानन्द प्रभु से बोला, "मैं अकेला वृन्दावन जाऊँगा।" तब नित्यानन्द प्रभुजी बोले, "आपके एक हाथ में हरिनाम की माला रहेगी और दूसरे हाथ में झोला रहेगा, तो फिर अपना संन्यास दंड कैसे पकड़ेंगे? इसलिए आपको एक व्यक्ति को संग ले जाना पड़ेगा।" तब महाप्रभुजी बोले, "आप ने ठीक ही कहा है, मैं एक व्यक्ति को ले जाऊँगा।" इससे स्पष्ट हो गया कि महाप्रभु भी हरदम माला जपा करते थे। महाप्रभुजी ने हम सबको यह शिक्षा दी है कि हर क्षण नाम जपना है। कभी भी नाम को छोड़ना नहीं है।

धर्म शास्त्रों में भी नाम की महिमा के अनंत उदाहरण मौजूद हैं। देवऋषि नारद ने बाल्मीकिजी को सदा 'राम' नाम जपने को बोला था। इसी जप को करके वह त्रिकालदर्शी बन गए और रामावतार से बहुत काल अर्थात् हजारों साल पहले ही उन्होंने वाल्मीकि रामायण

लिख दी थी। शिवजी ने 100 करोड़ रामायण में से एक 'राम' नाम चुना और पार्वतीजी को संग में बिठा कर हर क्षण 'राम' नाम जपते रहते हैं। त्रिदंडी श्रील भक्तिवेदांत स्वामीजी महाराज ने वृन्दावन के श्री राधा दामोदर मंदिर में 100 करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था। नारदपुराण में नारदजी कहते हैं कि कलियुग में भगवद् प्राप्ति का साधन एकमात्र हरिनाम ही है। इसके सिवाय कोई भी साधन भगवत्प्राप्ति कराने वाला नहीं है।

dfy;x doy uke vèkkjkA
lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

ufg dfy dje u Hkxfr fccdA jke uke voycu ,dAA
dkyufe dfy diV fuèkkuA uke lefr lejFk gqekuAA

(मानस, बाल. दो. 26 चौ. 4)

केवल हरिनाम, केवल हरिनाम जपो, हरिनाम से उद्धार हो जाएगा। कुछ करने की जरूरत नहीं है। नहाने की जरूरत नहीं है। आप हरिनाम लेते ही अंदर बाहर से पवित्र हो जाते हैं और नाम में मन लगे, चाहे न लगे, तब भी भगवत्प्राप्ति हो जाएगी, वैकुण्ठ प्राप्ति हो जाएगी। तभी तो कहा है –

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

बिना मन लगाए जप से ही जब दसों दिशाओं में मंगल हो गया, तो वह तो स्वतः ही वैकुण्ठ में पहुँच गया। हरिनाम सदा जपते रहना चाहिए। इसके अनेक उदाहरण हैं। हरिभक्ति विलास में स्पष्ट लिखा है कि यदि जल्दी–जल्दी में नाम अधूरा हो, खंडित हो, तो भी कोई नुकसान नहीं है। मेरी समझ से वह 713 पेज पर है।

ukeSd ;L; okfp Lej.kiFkxr Jk=ey xr ok]
'kq) ok-'kq)o.k O;ofgrjfgr rkj;R;o lR;eA
rPpsíqgæfo.kturkykHkik[k.Meè;s]
fuf{klr L;kUu Qytud 'kh?keoks= foç%AA

(श्रीहरिभक्तिविलास, एकादश–विलास, श्लोक 527)
(श्रील सनातनगोस्वामिकृत दिग्दर्शिनी टीकोपेतः,
श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामिविलिखितः श्रीहरिभक्तिविलासः, पृष्ठ संख्या 713)

"हे प्रिय, केवलमात्र भगवान् का एक नाम, प्रसङ्ग क्रम से जिसके वचनगत, कथान्तरित स्मृति–पथगत, स्मरण–पथगत अथवा श्रोत मूलगत होता है, वह यदि शुद्ध वर्ण, अशुद्ध वर्ण, अथवा खण्डोच्चारित होता है, तो भी वह नाम ग्रहणकारी का उद्धार करता है, यह सत्य है।"

भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम लेने वाले पर सदा प्रसन्न रहते हैं। शुरु–शुरु में नाम खंडित व अधूरा होता है, पर बाद में शुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार कोई शिशु तोतली बोली में अधूरा बोलता है, तो क्या उसके माँ–बाप नाराज हो जाते हैं? इसी प्रकार भगवान् तो हम सबके माँ–बाप हैं। वह हमसे कभी नाराज नहीं होते, वे तो प्रसन्नता की मूर्ति हैं। हम अनुभव करते हैं, कि जब शिशु बड़ा हो जाता है, तो अपने आप शुद्ध बोलने लग जाता है। ऐसे ही अभ्यास होने पर साधक भी शुद्ध हरिनाम करने लग जाता है। भगवान् नामाभासी को भी नरक में व 84 लाख योनियों में नहीं भेजते, यद्यपि नामाभासी में भी नाम अपराध है, तो भी भगवान् उसे वैकुण्ठ देने के बाद सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करने हेतु किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं। जैसे किसी के चार लड़के हैं। एक नालायक है, तो क्या माँ–बाप उसे त्याग देते हैं? माँ–बाप उसे नहीं त्यागते, उसे समझाने की कोशिश करते हैं। उसी तरह भगवान् भी दोबारा जन्म देते हैं। अगर उसने हरिनाम नहीं किया है, या थोड़ा ही किया है, तो उसे दोबारा भक्त के यहाँ जन्म देते हैं तो फिर वह संस्कार के अनुसार हरिनाम में लग जाता है और लगते–लगते उसे भगवान् से प्यार हो जाता है।

सम्बन्ध ज्ञान ही भगवद् प्राप्ति की अंतिम सीढ़ी है, साधन है। इसके बाद कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। इसके बाद जन्म–मरण नहीं होता।

हम तो बड़े भाग्यशाली हैं, कि हम चैतन्य महाप्रभुजी के आश्रय में हैं। उनके चरणों में हैं, हमारा तो उद्धार हो ही गया। चिंता की बात नहीं है, हमारा उद्धार हो चुका है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नारायण के द्वारपाल जय–विजय हैं। उन्होंने सनकादि के चरणों में अपराध कर दिया था। उन्हें तीन जन्म राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा और फिर वह वापिस वैकुण्ठ के द्वारपाल बन गए। भगवान् ने उन्हें नर्क में या 84 लाख योनियों में नहीं भेजा। जिसको भगवान् एक बार पकड़ लेते हैं, उसे जाने ही नहीं देते। जैसे चीता है वह एक बार किसी को पकड़ लेता है तो उसको छुड़ाने में वह टूट जाएगा लेकिन छोड़ेगा नहीं। भगवान् भी अगर किसी को हरिनाम के द्वारा पकड़ लेते हैं तो फिर उसे छोड़ते नहीं हैं। समय लग सकता है, जन्म हो सकते हैं, लेकिन उसको छोड़ेंगे नहीं। इसका निष्कर्ष यही निकलता है, कि भगवान् का नाम लेने वाले का स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। उनका मंगल होने में देर हो सकती है, पर अंधेर नहीं।

uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

मैं तो आपके सामने बैठा हूँ। आप ऐसा मत समझना कि मैं अपनी बड़ाई कर रहा हूँ। मैं तो 89 साल का हो गया। मैं तो हरिनाम की महिमा गा रहा हूँ। हरिनाम से मेरे को क्या–क्या मिल गया। मैंने हरिनाम किया और मुझे एक रत्ती भर भी रोग नहीं है। मुझे बुखार हुए भी 30–40 साल हो गए और मेरे आंखों की दृष्टि 5 साल के बच्चे जैसी है। आज 30–40 साल हो गए, 12–1 बजे जाग कर के सुबह तक हरिनाम करता हूँ। न कमर में दर्द होता है, न घुटनों में दर्द होता है और न मेरे को थकान होती है। दिन में भी नहीं सोता

हूँ। कभी–कभी तो सो लेता हूँ, लेकिन कभी–कभी भक्त मेरे पास आ जाते हैं तो सोने का समय ही नहीं मिलता। फिर मेरा हरिनाम रह जाता है। हरिनाम नहीं हुआ, बहुत देर हो गई, 3–4 घंटे तो मेरे सत्संग में हो गए। अब हरिनाम पूरा हुआ नहीं। क्या करूँ? तब मैं दिन में शाम को 6:00 बजे ही सो जाता हूँ और फिर 11:00 बजे जाग जाता हूँ तो ऐसे हरिनाम में मुझे कोई भी थकान नहीं होती। कोई भी बीमारी नहीं आती। हरिनाम से अमृत बरसता है। अमृत बरस गया, जैसे एक घड़े में शराब रखी है और उसमें आप गंगाजल डालते रहो, डालते रहो, तो शराब निकल जाएगी और गंगाजल रह जाएगा। ऐसे हरिनाम रूपी अमृत भर गया और जहर निकल गया। माया का जहर–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष यह सब अवगुण हैं। यह अवगुण तो निकले और सब सद्‌गुण आ गए। अच्छी चीज आ गई, बुरी चीज निकल गई। यह सब कैसे हुआ? केवल हरिनाम से, केवल हरिनाम से। मैं भी तो एक साधारण गृहस्थी हूँ। बस एक हरिनाम ही तो जपा है। हरिनाम में पूर्ण निष्ठा है।

पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए हरिनाम में, तभी जाकर आपको भी सब कुछ मिल जाएगा। जपने वाले का दसों दिशाओं में मंगल हो जाता है। इस प्रकार माता–पिता जब तक अपने पुत्र को अच्छी तरह पढ़ाई लिखाई करा कर, ऊंची शिक्षा देकर या पी–एच.डी. आदि करवा कर, पास नहीं करवा देते, तब तक वह उस पर, बेपरवाह होकर पैसा खर्च करते रहते हैं या नहीं? क्योंकि पढ़–लिख कर वह अच्छी जगह चला जाएगा। कोई भी माँ–बाप यह नहीं चाहते, कि उसका बेटा अपनी पढ़ाई बीच में ही अधूरी छोड़ दे। वे तो यही चाहते हैं कि उनका बेटा अपनी पढ़ाई पूरी करके अपना रोजगार प्राप्त करे। इसी प्रकार भगवान् हमारे माँ–बाप हैं। सब के हितैषी हैं। जब तक सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक भगवान् उसे कई युगों तक वैकुण्ठ में वास कराते हैं फिर सम्बन्ध ज्ञान उत्पन्न कराने के लिए उसे अपने किसी भक्त के यहाँ जन्म देते हैं। भगवान् भी कसर नहीं छोड़ते, जो उनकी शरण में चला गया, उसको ऐसा पकड़ते हैं कि पकड़ छूटती नहीं है। गोलोक धाम ले जाकर ही रहते हैं।

बचपन से वह भक्ति में लग जाता है और भक्ति में आगे बढ़ता रहता है। उसे भक्त माँ–बाप का सत्संग मिलता रहता है और शुद्ध हरिनाम करने का अवसर मिलता रहता है। यह तो संसारी माँ–बाप ही हैं और वह तो अलौकिक माँ–बाप हैं। वह तो सदा के माँ–बाप हैं, अमर माँ–बाप हैं, वह उसको कैसे छोड़ेंगे? बिल्कुल नहीं छोड़ सकते। इसलिए, हमको तो खूब आनंद में होना चाहिए कि हम भगवान् के प्यारे हो चुके हैं।

भगवान् की कृपा के बिना कोई एक भी हरिनाम नहीं ले सकता। एक नाम भी किसी के मुख से नहीं निकल सकता। यह तो भगवान् की असीम कृपा है कि हमारा, एक–एक, दो–दो लाख नाम हो रहा है। इसलिए चिंता की बात ही नहीं है। जब शुद्ध नाम होने लगता है, तो भगवान् के प्रति छटपट, पुलक होना आरंभ हो जाता है तब उसके मन के अनुसार भगवान् उसे सम्बन्ध ज्ञान प्रदान कर देते हैं। इसलिए चिंता मत करो। सम्बन्ध ज्ञान होने से गोलोक धाम मिल जाएगा। कई–कई लोग तो वैकुण्ठ धाम नहीं जाना चाहते। वैकुण्ठ धाम भी बहुत आनंद का स्थान है। गोलोक धाम जाना चाहते हो, तो हरिनाम करो। वह सखा, पिता, भाई, जमाई, मंजरी आदि का सम्बन्ध ज्ञान प्रदान कर देते हैं। जब उसे सम्बन्ध ज्ञान हो गया, फिर तो उसकी पी–एच.डी. की पढ़ाई पूरी हो गई तो भगवान् उससे सम्बन्ध ज्ञान की डिग्री, सर्टिफिकेट दे देते हैं अर्थात् उसे गोलोक धाम में अपनी सेवा प्रदान कर देते हैं। ऐसे गोलोक धाम भी अनंत हैं और वैकुण्ठधाम भी अनंत हैं। जिसका जैसा भाव हो जाए उसे उसी भाव के स्थान में भेज देते हैं। अनंत ब्रह्मांड हैं। अनंत गोलोक धाम हैं और अनंत ही वैकुण्ठ धाम हैं तो सब जगह भगवान् अवतार लेते रहते हैं। इस प्रकार, माँ–बाप ने अपने बेटे को पी–एच.डी. करवा दी और उसे राजकीय पद मिल जाता है, फिर उसे जीवन भर किसी बात का डर नहीं रहता। पूरी जिंदगी श्रम करके अपने माता–पिता, परिवार का पालन, भरण–पोषण करता है। पूरा जीवन सुखमय हो गया। ठीक उसी प्रकार सम्बन्ध ज्ञान हो जाने पर

सदा–सदा के लिए गोलोक धाम में आनंद लेता रहता है और जब भगवान् का अवतार होता है तो गोलोक धाम से किसी–किसी को भगवान् लीला कराने के लिए साथ में ले आते हैं। अकेले भगवान् लीला नहीं कर सकते, इसलिए साथ में जो चाहता है, उसे ले आते हैं। उनको पूछते हैं पहले कि क्या वह लीला में साथ चलना चाहता है? शामिल होना चाहता है? यदि हाँ। तो ठीक है, उसको ले आते हैं और कोई यह भी कहता है, कि नहीं, वह तो वहाँ आनंद में है और नहीं जाएगा, तो भी ठीक है। भगवान् अपने भक्त की इच्छा के अनुसार ही सब करते हैं।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : यह जो पंचतत्व मंत्र है "जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृंद" यह मंत्र हम हरिनाम जप की हर माला से पहले, एक बार करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप स्वयं क्या इसे तीन बार करते हैं ?

उत्तर : इसका कीर्तन किया जाता है। जैसाकि चैतन्य महाप्रभुजी ने किया, हमें वैसा ही करना चाहिए । महाप्रभु के आश्रित जैसे स्वरूप दामोदर, राय रामानंद, इस मंत्र का, "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद" का कीर्तन किया करते थे। माला में इसे नहीं जपते थे। माला में केवल हरिनाम जपना पड़ेगा। हर माला पर इसे जपने की जरूरत नहीं है। जब माला हाथ में लोगे तब एक बार इस मंत्र को ध्यान से बोलो और फिर हरिनाम करो। इस तरह उनकी कृपा मिलेगी। नहीं तो समय लगेगा और माला पूरी नहीं होगी। शुरू में एक–दो बार इसका कीर्तन कर लो। फिर हरिनाम करो।

'हरिनाम' नामक एक प्रसिद्ध चोर

13

30 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

आज बहुत अंदरूनी, गहरी एवं गूढ़ चर्चा होगी। जिस की सुकृति होगी वही समझ सकेगा। कृपा करके ध्यान देकर सुनें! यह चर्चा नवयुवकों के लिए होगी। भगवान् ने जब सृष्टि रची, तब चार युग प्रत्येक ब्रह्मांड में सृजन किए। उनके नाम रखे, सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। सतयुग में चराचर का स्वभाव, सच्चाई धारण करता था। स्वभाव, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के प्रभाव से होता है। भगवान् भी जब अवतार लेते हैं, तो इन तीनों गुणों को अपनाना पड़ता है। योगमाया द्वारा ही भगवान् हर ब्रह्मांड में लीलाएँ करते रहते हैं।

कलियुग से बचने का एक ही उपाय है, केवल भगवान् का नाम। हरिनाम एक ऐसी दवा है कि समस्त रोग शरीर में आने से डरेंगे। रोग पहले से यह विचार करेंगे कि शरीर में जाएंगे तो हमारा कल्याण नहीं होगा। हम सदा के लिए नष्ट हो जाएंगे। अब देखिये! आप सोचोगे कि अपनी बड़ाई कर रहा है। लेकिन मुझे देखिए कि अब मैं 90 साल का होने वाला हूँ। मेरे अंदर कोई रोग नहीं है।

श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है कि एक बार शिवजी व कृष्ण का आपस में युद्ध हुआ, क्योंकि शिवजी बाणासुर के गुरु थे।

बाणासुर को शिवजी ने वरदान दिया था कि वे उसकी रक्षा करेंगे। इसीलिए कृष्ण से युद्ध करना पड़ा और कृष्ण ने एक रोग शिवजी पर भेजा। जिससे शिवजी को उबासी पर उबासी आने लगी, तो शिवजी को ऐसी उबासी आई कि शिवजी एकांत में जाकर बैठ गए, लड़ना बंद कर दिया, लेकिन वह रोग हमेशा के लिए नष्ट हो गया क्योंकि शिवजी पार्वतीजी के संग हरिनाम करते रहते हैं। अतः वह उबासी वाला रोग समस्त ब्रह्मांडों से सदा के लिए समाप्त हो गया। अब इसका नाम निशान ही नहीं है। जब शिवजी को थोड़ा उबासी आना बंद हुआ, तब शिवजी ने भी एक ज्वर कृष्ण पर भेजा, तो कृष्ण ने भी ज्वर को भेजा, तो दोनों में मुक्का–मुक्की हो गई। बड़े जोर से आपस में लड़ाई करने लगे तो कृष्ण के ज्वर ने शिवजी के ज्वर को खत्म कर दिया। अब शिवजी ने कृष्णजी के चरणों में माफी मांगी कि उनसे गलती हो गई।

यह श्रीमद्भागवत पुराण में, एक उदाहरण के रूप में, लिखा हुआ है। किसान रूपी बाप, बाजरा रूपी बीज दरबासे (माँ) रूपी जमीन में डालता है। बड़े ध्यान से सुनोगे तभी समझ में आएगा, कि किसान रूपी बाप, बाजरा रूपी बीज, दरबासे (माँ) रूपी जमीन में डालता है, तो उससे बाजरे का अंकुर निकलेगा। फिर कुछ दिन बाद, एक बालिश्त का यानि एक हाथ का सिरा, बाजरे के रूप में, जिसमें कई बाजरे के बीज होंगे, आता है अर्थात् बाजरे के बीज से बाजरा ही पैदा होता है। इसी प्रकार मानव या पशु पक्षी का अपने शरीर का बीज भी होता है। वह स्वयं भी जन्म लेता है। लेकिन अपने स्वभाव के अनुसार ही लेता है।

जिस समय बोता है, उस समय सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का स्वभाव अर्थात् जैसा मन रहेगा, वैसा ही स्वभाव का मानव जन्म लेगा। इस कलिकाल में अधिकतर लोग तामस, राजस स्वभाव के हैं। अतः जब मानव बीज बोता है, उस समय जैसा उसका स्वभाव होता है, जैसे यदि तामसिक है तो वह मानव तामसी बच्चे के रूप

में जन्म लेकर, पूरी उम्र–भर तामसिक स्वभाव का ही होगा। जिस प्रकार बाजरा बोने पर बाजरा ही जन्म लेता है। इसी प्रकार तामसी व राजसी स्वभाव वाला मानव, जैसा बीज उस समय बोएगा, वैसा स्वभाव होगा, वैसा ही बोने वाले से जन्म लेगा। वह पूरी उम्र–भर तामसी, राजसी स्वभाव में ही अपना जीवन बसर करता रहेगा। अतः जैसा स्वभाव होगा, वैसा ही बीज बोएगा तो बच्चा भी वैसा ही जन्म लेगा। बाप ही बच्चे के रूप में आता है। जैसे बाजरे के रूप में बाजरा ही आया था। वैसे ही बाप ही बेटे के रूप में पैदा होता है। यह सब श्रीमद्भागवत में भी लिखा है। जो तामसी और राजसी स्वभाव का जन्म लेगा, वह पूरी उम्र–भर हाय–हाय ही करता रहेगा। माँस, मदिरा खाएगा, अभक्ष्य खाएगा और पैसे के पीछे भागेगा। यह चर्चा इसलिए की है कि नवयुवक इस मार्ग को समझकर भविष्य का जीवन सुखमय बना सकें। तब ही तो मेरे गुरुदेव ने मनमाफिक संतान के लिए 21 दिन तक तीन लाख हरिनाम का आदेश दिया है ताकि उनमें सात्विकता आ सके और तब जो शिशु जन्म लेगा, वह साधु स्वभाव का ही होगा। जिन्हें यह सब नहीं पता था, उन्होंने जैसा किया वैसा पाया, क्योंकि उनको रास्ता मालूम नहीं था। इसमें उनका कोई भी दोष नहीं है।

भगवान् कलियुग में इसी जन्म में मिल जाते हैं। कलियुग में बहुत जल्दी मिल जाते हैं क्योंकि कलियुग में भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। यह प्रत्यक्ष सिद्धांत है कि जिस चीज की कमी होती है, उसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। बहुत कम भक्त होते हैं इसीलिए भगवान् जल्दी मिल जाते हैं। जो जीव भगवान् को थोड़ा बहुत भी चाहता है, तो भगवान् उस जीव पर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन प्रसन्न क्यों नहीं होते हैं? इसका एक खास कारण है, कि मानव भक्तों की पाठशाला में भर्ती नहीं होता। जो भक्त ही नहीं हुआ, उसे भक्ति से वैकुण्ठ जाने का टिकट कैसे मिल सकता है? भक्त की पाठशाला में भर्ती ही नहीं हुआ और वह चाहता है कि वह वैकुण्ठ एवं गोलोक जाये।

मानव ने वैकुण्ठ जाने की पहली सीढ़ी पर ही पैर नहीं रखा तो आगे कैसे जा सकता है? पहली सीढ़ी है, अपने माता–पिता की सेवा। जिन्होंने 20–25 साल तक अपने पुत्र की तन, मन, वचन तथा धन द्वारा सेवा की है। इसका ऋण पुत्र कभी भी नहीं उतार सकता। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि सौ साल तक भी अगर उनकी सेवा करे तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता। यह भक्ति पथ का पथिक, माँ–बाप की सेवा बिना कभी भी भगवान् का प्यार प्राप्त नहीं कर सकता। माँ–बाप यदि नास्तिक हों, दुराचारी भी हों, तब भी पुत्र के लिए तो पूजनीय ही हैं। यही है भक्ति–पाठशाला की एल.के.जी. में भर्ती होना। जो मानव ऐसी पढ़ाई नहीं करेगा उसे पी–एच.डी. अर्थात् वैकुण्ठ प्राप्ति, स्वप्न में भी उपलब्ध नहीं हो सकती। जिसकी फाउंडेशन (नींव) ही कमजोर है वह आगे कैसे बढ़ सकता है? आगे उसका कुछ भी साधन सफल नहीं हो सकता।

बहुत से भक्तों की समस्या यही है कि उनका मन हरिनाम में लगता नहीं। लगेगा कैसे? उसने माँ–बाप के हृदय में बैठी आत्मा को सताया है। तीसरी प्रार्थना यही तो है कि "चर–अचर, जीव मात्र में आपका दर्शन हो।" जिसने जड़ में ही जहर घोल रखा है तो भविष्य का तो नाम निशान ही मिटा दिया। सुख कैसे हो सकता है?

आप देख सकते हो, श्रीमद्भागवत पुराण में 10वें स्कंध के 45वें अध्याय में लिखा है कि सौ साल तक माँ–बाप की सेवा करें तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो स्त्री पति परायण नहीं होती, जो शिष्य गुरुदेव की आज्ञा का पालन नहीं करता, जो मानव संत का सम्मान नहीं करता, जो भक्त का सम्मान नहीं करता, इन सबको स्वप्न में भी भगवत्प्रेम नहीं मिलेगा। यह है फाउंडेशन (नींव)। इसे एल.के.जी. में भर्ती होना पड़ेगा क्योंकि इसने प्रेम में जहर घोल रखा है इसलिए नींव कमजोर है। अतः अपने स्वभाव को सुधारो, तब कहीं आगे जा सकोगे तब संसार का सुख होगा अगर भगवान् की ओर पीठ हुई तो दोनों तरफ से हाथ धो बैठोगे। न संसार का सुख

मिला, न भगवान् का प्यार मिला। भक्ति पथ बहुत सरल भी है और बहुत कठिन भी। मानव जन्म दुबारा नहीं मिलने वाला। कितनी बार मानव जन्म मिल गया है परंतु सही मार्ग पर चले ही नहीं। अतः समय व्यर्थ में ही चला गया। मानव जन्म भगवत्कृपा से मिलता है, उसे व्यर्थ के कामों में लगा दिया तो भगवान् उसे दुबारा मानव जन्म, अनंत अरबों चतुर्युगी के बाद दया करके देते हैं।

कितना मुश्किल है। मानव जन्म सुदुर्लभ है। इस दुर्लभ मानव जन्म को उसने यूँ ही गवाँ दिया। मानव भूल जाता है और माया में फँस जाता है। अहंकार में चूर रहता है, दुख पर दुख भोगता रहता है, फिर भी आँख बंद रहती है। बार बार डंकाल आते हैं, फिर भी समझता ही नहीं। बाल सफेद हो जाते हैं फिर भी कोई परवाह नहीं, दांत गिर जाते हैं, घुटनों में दर्द होने लगता है, बुढ़ापा आ कर खसखस करने लगता है, फिर भी कहता है कोई बात नहीं। पहले पहली क्लास (कक्षा) तो पास करो, पी–एच.डी. तो बहुत दूर की बात है। अभी भक्ति पथ पर पैर ही नहीं रखा और चाहते हो कि सुखधाम वैकुण्ठ मिल जाये। कैसी मूर्खता है? सुनने पर हँसी आती है। ऐसी कहावत है :

del deMh vkj eu jktkA

कैसे नैया पार होगी? यदि अपने तन की चमड़ी की जूती भी माँ–बाप को पहना दो तो भी उऋण नहीं हो सकते। अधिकतर हम कलियुग में ऐसा ही देखते आ रहे हैं कि बच्चे की शादी हुई नहीं और अलग जगह चले जाते हैं। माँ–बाप को छोड़ कर चले जाते हैं। माँ–बाप की तरफ देखते भी नहीं और फिर चाहते हैं भगवान् को। भगवान् कैसे मिलेंगे? मर्यादा तो है ही नहीं। कोई मर्यादा में नहीं रहा। जब मर्यादा रहेगी, तभी भगवान् मिल सकते हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराम ने मर्यादा रखी है, उस मर्यादा पर चलना चाहिए।

देखिए! समस्त धर्मग्रंथों का सार है, केवल हरिनाम। कृष्ण और राम से बड़ा है, हरिनाम।

gfj l cMk gfj dk uke] vir e fudyk ;g ifj.kkeA gfj u rkj Hkä egku vkj uke u rkj vur tgkuA

नाम इतना बड़ा है और प्रभावशाली है कि चैतन्य महाप्रभुजी, जो कृष्ण के अवतार थे, स्वयं अपना नाम जपते थे। सभी धर्म ग्रंथ भगवान् की साँसों से निकले हैं। उनके धर्म ग्रंथों में जो भी लिखा है, सार रूप में हरिनाम का महत्व ही दृष्टिगोचर हो रहा है। उदाहरण के तौर पर जैसे दूध को जामन देकर जमाया जाता है, फिर उसे मथानी द्वारा मथा जाता है, उस मंथन से मक्खन निकलता है। यह मक्खन ही सारतत्व है। इस मक्खन को खाने से शरीर पुष्ट होता है। ऐसे ही शास्त्रों का निचोड़ है – हरिनाम। इससे मन भी खुश और शरीर भी खुश। सभी धर्म ग्रंथों का पठन–पाठन करने से, केवल हरिनाम रूपी सारतत्व ही उपलब्ध किया जाता है। यह हरिनाम ही आत्मा का खास भोजन है।

जिसके हृदय में हरिनाम बसा हुआ है, रोग उससे डरते हैं। रोग उसके अंदर नहीं आ सकते। रोग राक्षस हैं और हरिनाम भगवान् से भी बड़ा शक्तिशाली है तो उसके तन में आते नहीं है, डरते हैं। रोग ऐसा सोचते हैं कि वे वहाँ जाएंगे तो नष्ट हो जाएंगे। इसलिए हरिनाम को अपना लो, सुख ही सुख है। जो भी मानव इसका अनुभव करता है, वह परमात्मा स्वरूप में बदल जाता है। वह सांसारिक दुखों को छोड़ कर हमेशा के लिए स्वतंत्रता उपलब्ध कर लेता है। अखिल ब्रह्मांडो में, भगवद् प्राप्ति का इससे बड़ा और सरल साधन और कोई नहीं है, जिससे मानव को सर्वोत्तम उपलब्धि हो सके। सभी धर्मशास्त्र इस बात के साक्षी हैं। सार रूप में मेरे गुरुदेव ने तीन प्रार्थनाएं बताई हैं। मन में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास जमाने हेतु, मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुन कर अपने हृदय में बैठा लो ताकि आवागमन रूपी दारुण कष्ट से दूर हो सको। आवागमन का यह कष्ट, चींटी से लेकर हाथी तक सभी को सहन करना पड़ता है। हरिनाम हेतु श्रीमद्भागवत पुराण बोल रहा है, "हे, परीक्षित्! ये कलि दोषों का भंडार है। पर इसमें एक महान्

गुण है। इसमें कृष्ण के नामों का कीर्तन करने मात्र से, मानव परम पद को प्राप्त कर लेता है। सतयुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजन से साधक जिस फल को प्राप्त कर लेता है, वही फल कलियुग में केवल सतत नाम जप करने से प्राप्त कर सकता है।

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम ही केवल जीवन है, कलियुग में इसके सिवाय अन्य कोई गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है। भगवद् प्राप्ति का दूसरा कोई साधन नहीं है। हर समय हरिनाम करते रहना ही सुख का साधन है।

मनुष्य में वह सौभाग्यशाली तथा निश्चिंत है जो कलियुग में स्वयं हरिनाम स्मरण करते हैं और दूसरों को हरिनाम में लगाते रहते हैं। भगवान् कहते हैं कि उनसे प्यारा मेरा कोई नहीं है, वह मेरा सबसे प्यारा है, मेरे हृदय का टुकड़ा है और कलियुग में जो मानव हरिनाम का जप करता है, वही कृतकृत्य है। कलियुग उन्हें बाधा नहीं देता। जो हरिनाम का जप करता है, वही सुखी है, अन्य सभी कलि की चक्की में पिसे जा रहे हैं।

भगवान् कह रहे हैं कि जो कलियुग में उनके नाम का जप करता है, वही धन्य है, वही कृतार्थ है। उन्होंने ही पुण्य कर्म किए हैं तथा उन्होंने ही मानव जन्म की योग्यता प्राप्त की है। इस कलियुग में इस दुर्लभ हरिनाम का, जो एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वह तर जाते हैं, इसमें तिल मात्र भी संशय नहीं है।

fcclg tkl uke uj dgghA
tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

यदि जबरदस्ती भी कोई हरिनाम ले लेता है, जबरदस्ती नाम निकल जाता है, तो उसके अनेक जन्मों के जो रचे–पचे पाप हैं, वे

जलकर भस्म हो जाते हैं। कलियुग एक प्रज्ज्वलित पापाग्नि है, उससे भय न करें क्योंकि गोविन्द नाम रूपी मेघ के समूह के जलबिंदु से यह नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई विवश होकर भी भगवद् नाम का उच्चारण करता है, तो उसके समस्त पाप, ठीक उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाते हैं जैसे सिंह की दहाड़ से सभी गीदड़ भाग जाते हैं।

इसी पृथ्वी पर 'हरिनाम' नामक एक प्रसिद्ध चोर बताया गया है, जो कानों के रास्ते से अंदर जाने पर अनेक जन्मों की कमाई पाप–पुण्य राशि को चुरा लेता है। यह ऐसा नाम है। भक्तिभाव या बिना भक्ति भाव के भी यदि भगवद् नाम उच्चारण कर लें, तो यह नाम, समस्त पापों को उसी तरह दग्ध कर देता है जैसे युगांत काल में प्रज्ज्वलित हुई प्रलय अग्नि, सारे जगत् को जला डालती है। इस पृथ्वी पर कोई भी भगवद् नाम लेने से प्रसिद्ध हो जाता है और उसके द्वारा नाम का उच्चारण करने पर, पापों के सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं।

जैसे अनिच्छा से छूने पर भी अग्नि जला डालती है, उसी प्रकार किसी भी बहाने से यदि भगवद् नाम मुख से निकल जाए, तो समस्त पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। भगवद् नाम के उच्चारण करने पर समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाते हैं, जैसे दिन निकल आने पर अंधेरा खत्म हो जाता है। हरिनाम कैसे भी लो, संकेत में लो, चाहे कैसे भी लो, हरिनाम पापों को जलाकर भस्म कर देता है। जाने अनजाने में भी किसी के मुख से भगवद् नाम निकल जाए, तो उसका दसों दिशाओं में कल्याण हो जाता है।

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

तो दसों दिशाओं में उसका मंगल हो गया। दसों दिशाओं में तो वैकुण्ठ भी है, गोलोक धाम भी है, तो इसका मतलब है कि वह वहाँ चला जाएगा। दसों दिशाओं में मंगल हो गया, इसका मतलब वैकुण्ठ

मिल गया। तो भगवद् नाम में पाप नाश करने की इतनी अपार शक्ति है, कि इतना पाप मानव जिंदगी भर भी नहीं कर सकता।

vP;|rkuUr xkfoUn ukekPpkj.kHk"k tkrA
u';fUr ldyk% jkxk% lR;| lR;| onkE;geAA

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

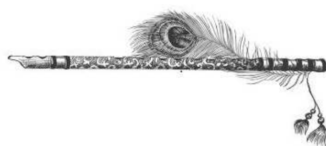
धन्वन्तरि कह रहे हैं, "भगवान् के जो अच्युत, अनन्त और गोविन्द नाम हैं, सब रोगों को नाश करने वाले हैं, मैं सच सच बोल रहा हूँ।" नाम वह अमर औषधि है, जिसको जपने से मानव के अंदर, बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अंदर के रोग हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेष इत्यादि और बाहर के यानि शरीर के समस्त रोग, दुख दर्द, बुखार आदि सब नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सच कह रहा हूँ, इसीलिए कहते हैं, "हे मानव ! मेरा नाम जप कर।" हरिनाम करते, करते, सब माया का जहर निकल जायेगा और हरिनाम रूपी अमृत भर जायेगा। अंदर से एक परमानेंट (स्थायी) खुशी होती है, ऐसा आनंद आता है। अंदर आनंद की लहरें उठती रहती हैं। जिसको अनुभव होता है, वह स्वयं ही जान सकता है कि अंदर क्या आनंद आता है उसको। बता नहीं सकता। ऐसा अंदर से आनंद फैलता रहता है।

नहाने की भी कोई जरूरत नहीं है। कहीं बैठकर के किसी भी समय, कैसे भी करते रहो और कान से सुनते रहो। धीरे–धीरे कान से सुनते रहो, इसका ज्यादा प्रभाव होता है क्योंकि कान से न सुनने पर मन इधर–उधर भाग जाता है। सबको सहारा चाहिए। सहारे बिना कोई टिक कर नहीं रह सकता। मन को भी सहारा चाहिए, कान से सुनने का सहारा चाहिए। पेड़ को जमीन का सहारा चाहिए। बच्चे को माँ–बाप का सहारा चाहिए। शिष्य को गुरु का सहारा चाहिए। संसार सहारे के बिना टिक नहीं सकता। सबको सहारा चाहिए। मन को भी सहारा चाहिए। कान से सुनो और हो सके तो लीलाओं का भी चिंतन करो। फिर मन कहीं नहीं जाएगा। इस तरीके से हरिनाम जपना चाहिए। यह एक अमर औषधि है। इसे जपने से मानव के अंदर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

नाम का प्रभाव बता रहा हूँ। सभी जानते हैं, सभी ने सुना भी है, कि हमारे बैंक के एक रिटायर्ड मैनेजर थे, कक्कड़ साहब। चंडीगढ़ के हैं, उनके दोनों वाल्व बहुत खराब थे। डॉक्टरों ने कहा, "अब तो आप का ऑपरेशन होगा और खूब पैसा लगेगा और कोई गारंटी नहीं है कि आप मरोगे या जिओगे।" उन्होंने मुझसे पूछा कि वह क्या करे? तो मैंने कहा, "तुम हरिनाम करो।" मैंने पूछा, "कितना करते हो?" उन्होंने बोला, ''आधा लाख करते हैं।" तो मैंने कहा, "आधा लाख और करो।" आधा लाख और किया और उसके दो महीने बाद में चेक करवाया, तो वाल्व एकदम ठीक थे और अब तो 15 साल हो गए हैं उनको, अच्छी तरह जी रहे हैं। यह तो प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मैं इसलिए उदाहरण दे रहा हूँ कि आप को हरिनाम में श्रद्धा हो जाए। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, मैं आपको कितने उदाहरण बताऊँ? बहुत सारे उदाहरण हैं। इसलिए हरिनाम करो। चाहे मन लगे चाहे न लगे। फिर भी करो। जो भी एक लाख नाम करेगा, उसकी गारंटी है कि उसे वैकुण्ठ तो मिल ही जाएगा। गोलोक धाम तो नहीं मिलेगा, लेकिन उसे वैकुण्ठ मिल जाएगा। जो एक लाख नाम नहीं करेगा, तो उसको भी मानव जन्म दुबारा मिल जाएगा। जैसे दसवीं पास कर लेते हैं फिर हमको कॉलेज में जाना पड़ता है और यदि कॉलेज नहीं गए तो पढ़ाई अधूरी रह गई। इसी तरह भक्ति में वे अधूरे रह गए। इसलिए दूसरा जन्म उनको किसी भक्त के यहाँ देंगे और वह फिर धीरे–धीरे हरिनाम करेगा और इस तरह वो पी–एच. डी. कर लेगा। तो उसको भगवान् मौका देते हैं। वह चाहे कितना भी अपराधी हो, फिर भी उसको भगवान् अपनाते हैं। अपराधी को भी अपनाते हैं भगवान्। जैसे किसी के चार बच्चे हैं। एक नालायक है, माँ–बाप उसे निकाल थोड़े ही देते हैं। उसको भी शिक्षा देते हैं कि किसी तरह से यह सुधर जाए। ऐसे ही भगवान् भी, अपना नाम लेने वाले को कभी भी त्यागते नहीं हैं। उसको दुबारा मौका देते हैं।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि एक लाख हरिनाम तो करना ही चाहिए। एक लाख नाम में तीन घंटे, पौने तीन घंटे लगते हैं। पर एक दम से तो नहीं। शुरु–शुरु में तो ज्यादा टाइम लगेगा। तीन–चार–पांच घंटे भी लग सकते हैं। पर धीरे–धीरे करने से, और प्रैक्टिस होने से 3 घंटे में भी एक लाख हो सकता है। अब यह देखो कि क्या हम 24 घंटे में अपने उद्धार के लिए 3 घंटे भी नहीं दे सकते? 24 घंटों में से क्या तीन घंटे भी भगवान् के लिए नहीं दे सकते हैं। अपने फायदे के लिए तो दे ही सकते हो। यह तो आत्मा का भोजन है। आत्मा के लिए 3 घंटे तो दे ही सकते हो। एक लाख हरिनाम तो सबको करना ही चाहिए। चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है। चैतन्य महाप्रभु स्वयं भी हरिनाम करते थे, अपनी माला में करते थे। चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण के अवतार थे। उन्होंने भी अपना नाम जपा। इसीलिए नाम को जपना चाहिए। मनुष्य जन्म फिर बहुत मुश्किल से मिलेगा। कितने अरबों–खरबों सालों के बाद मिलेगा। इसीलिए हरिनाम करो।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अपने मन को 100% नाम सुनने में नहीं लगा पाते तो क्या हम अपने मन को वृंदावन धाम या राधा कुंड धाम में लगा सकते हैं ? क्या यह शुद्ध नाम में माना जाएगा ?

उत्तर : हाँ! हाँ बिल्कुल लगा सकते हैं। लीलाचिंतन में, धामचिंतन में मन को लगा सकते हैं। वह शुद्ध नाम ही होगा।

भक्ति की नींव

14

6 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

प्रथम में भक्ति की मजबूत नींव डालो, तभी भविष्य में भक्ति महल खड़ा हो सकता है। भक्ति की नींव मजबूत होनी चाहिए। नींव कैसे मजबूत होगी वह मेरे गुरुदेव बता रहे हैं।

देखिए! शरीर तीन प्रकार के होते हैं – स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। कारण शरीर, आदतों का शरीर, स्वभाव का शरीर कहलाता है। देखिए! शरीर पंचभौतिक होता है इस में मन द्वारा शुभ–अशुभ कर्म होते रहते हैं। फिर इन कर्मों के द्वारा अगला शरीर उपलब्ध होता है। दूसरा शरीर है जो साथ में जाता है, वही भोग भोगता है। जिस शरीर से भोग भोगे जाते हैं उसे लिंग शरीर कहते हैं, सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं और स्वभावमय शरीर भी कहते हैं, भोगमय शरीर भी कहते हैं। इस शरीर से ही अच्छे बुरे कर्म होते हैं।

उदाहरण के लिए जैसे जो मांस, मदिरा खाते हैं उनको नर्क में भोग भोगना पड़ता है और जो मांस मदिरा नहीं खाते और भगवान् का भजन भी नहीं करते हैं उनको 84 लाख योनियों में जाना पड़ता है। लेकिन हरिभजन एवं हरिनाम करते हुए जब यह सूक्ष्म शरीर खत्म हो जाता है, तब दिव्य शरीर मिलता है। दिव्य शरीर अलौकिक शरीर कहलाता है। इसके बाद जन्म–मरण से छुट्टी मिल जाती है।

यह शरीर केवल मात्र कलियुग में हरिनाम से उपलब्ध होता है अन्य कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

सोते समय, प्रातः जगते समय और स्नान के बाद की तीन प्रार्थनाएँ ही भक्ति प्राप्ति की मजबूत नींव हैं। इसको रोज बोलना चाहिए। केवल 2 मिनट लगते हैं। यह भक्ति की मजबूत नींव है। इन तीन प्रार्थनाओं में समस्त धर्मशास्त्रों का निचोड़ है, यह बीज है, शास्त्रों का बीज है। दिव्य शरीर पंचभौतिक नहीं होता। इन प्रार्थनाओं से भगवद्प्राप्ति के भाव प्रकट हो जाते हैं जैसे जीव मात्र को कण–कण में भगवान् दिखाई देने लगता है। न ही भगवान्, भक्त से दूर होता है और न ही भक्त, भगवान् से दूर होता है। इन प्रार्थनाओं से, लिंग शरीर जो कर्म भोगने हेतु होता है, वह समाप्त हो जाता है एवं दिव्य शरीर मिल जाता है अर्थात् इस दिव्य शरीर के मिलने से मृत्युलोक से छुट्टी हो जाती है एवं वैकुण्ठ धाम या गोलोक धाम में पदार्पण हो जाता है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

भक्ति पथ केवल हरिनाम से ही मिलता है। मृत्युलोक के असुर स्वभाव, मूल सहित समाप्त हो जाते हैं। शास्त्रीय वचन है :

ftUg dj uke yr tx ekghA
ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

"कि जो हरिनाम करता है उसके जितने भी दुख हैं वह जड़ सहित खत्म हो जाते हैं।" जिसका जड़ ही खत्म हो गया वह फिर कैसे अंकुरित होगा? इसलिए हरिनाम करो और कान से सुनो।

देखो! चींटी से लेकर हाथी तक सभी सुख चाहते हैं, लेकिन सुख की जगह दुख ही उपलब्ध होता है। जो चाहते हैं, वह मिलता ही नहीं। इसका खास कारण है कि जो बोओगे वही तो मिलेगा। सुख बोते नहीं तो सुख कहाँ से और कैसे मिल सकता है?

तो सुख कहाँ है? कहते हैं, केवल भगवद् चरणों में। भगवद् चरण कहाँ हैं? जहाँ पर दया का भाव, सेवा भाव है। दया का, सेवा भाव कहाँ पर है? जहाँ भगवान् की संतान रूपी सृष्टि है। जब भगवान् की संतान को जीव दुखी करेगा तो दुख ही हाथ में आएगा क्योंकि इसने दुख ही बोया है। जो बोओगे वही तो पाओगे। कोई किसी को दुख नहीं देता है। अपना किया हुआ कर्म ही दुख देता है। सुख का काम करोगे तो सुख मिलेगा, दुख का काम करोगे तो दुख मिलेगा। यह ध्यान रखो, कभी किसी को दुख मत दो।

जीव भगवद् सृष्टि को दुखी करता रहता है। उदाहरण के तौर पर जैसे घर में एक कुत्ता आया, कुछ लेने हेतु ही आया है। एक तरह का भिखारी है। इस बेचारे को भूख लगी होगी इसीलिए हमारे पास आया है। भिखारी को खाली हाथ लौटाना घोर अपराध होता है, वह भी भगवान् की संतान ही तो है। बस यही कारण है कि जीव दुख सागर में पड़ा–पड़ा दुख भोगता रहता है। कुत्ते पर ध्यान नहीं देता कि कुत्ता क्यों आया है? उस को डंडा मार कर बाहर भगा देता है। ऐसे ही सूक्ष्म कर्म हैं जिनको साधारण जीव समझ नहीं सकता। कुत्ता भूखा है, कुछ खाने हेतु डालना चाहिए। फिर वह बेचारा वापिस चला जाएगा। यह मैंने एक छोटा सा उदाहरण ही दिया है। हर किसी जीव की सहायता करो, किसी को सताओ नहीं तो फिर भगवान् आपको छोड़कर नहीं जा सकते हैं। भगवान् जीव से ओझल रहते हैं। यदि भगवान् को अपने सामने रखो तो ऐसी सूक्ष्म बातों से अवगत रहोगे। संसार में सुख ही सुख है, दुख का तो नाम निशान ही नहीं है लेकिन जीव सदा दुख की ओर भागता रहता है इसमें भगवान् क्या करे? उसके कर्म ही ऐसे हैं।

देखिए! भगवान् ही सब सृष्टि बनाने वाले भी हैं और बनने वाले भी हैं। भगवान् के अतिरिक्त इस जगत् में कुछ भी नहीं है। सर्वत्र भगवान् ही भगवान् की लीलाएँ चलती रहती हैं लेकिन हमें दिखाई नहीं देती क्योंकि हमारे आंखों पर सत, रज, तम के माया का पर्दा पड़ा रहता है। यह पर्दा हट सकता है, केवल हरिनाम से। केवल

हरिनाम से और हमारे सामने से इस पर्दे को भगवान् का प्यारा भक्त ही हटा सकता है। भगवान् भी हटाने में असमर्थ हैं। भगवान् का प्यारा ही हमारे अज्ञान को ज्ञान में बदल सकता है।

len'kh çHkq uke frgkjk

(मीरा बाई)

यदि जीव दुख में सुख महसूस करे। जीव समदर्शी बन जाए तो दुख का नाम निशान ही नहीं रहेगा। समदर्शी हो जाएगा। यह अवस्था कैसे आएगी? इस अवस्था का एक ही रास्ता है भगवान् का नाम। इस नाम से समस्त शास्त्रों के सुख का सार हृदय मंदिर में प्रकट हो जाएगा क्योंकि शास्त्रों का सार भगवद् श्वाँस से प्रकट हुआ है जो जीव मात्र का सुख विधान करता है।

गीता में, अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने संपूर्ण सार से अवगत कराया है। गीता को वही समझ सकता है जिसने श्रीमद्भागवतम् का कई बार अध्ययन किया हो। ऐसा नहीं है तो कोई भी मानव गीता को नहीं समझ सकता। जो गीता प्रचार करते हैं उनमें भी ईर्ष्या–द्वेष आ जाता है। जब ऐसा है तो गीता से क्या लाभ हुआ? केवल परिश्रम ही हाथ लगा। भगवान् कलियुग में बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। कहा भी है –

dfytx le tx vku ufg tk uj dj fcLoklA
xkb jke xu xu fcey Hko rj fcufg ç;klAA

(मानस, उत्तर, 103 (क))

बिना प्रयास के भगवत्कृपा मिल जाती है। भगवान् को पाना कोई मुश्किल नहीं है। जीव को ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। यदि जीव समझ बूझ कर रास्ता चले। मेरे गुरुदेव बारम्बार, पुकार–पुकार कर रास्ता बता रहे हैं, फिर भी मानव सुनता नहीं है, बहरा बना हुआ है।

हरिनाम 64 माला नित्य जपो और कान से सुनो तथा जिसको बोल रहे हो उसको साथ में रखो। तुम किस से बात कर रहे हो?

कोई तुम्हारे पास है ही नहीं और बकबक करते जा रहे हो। तो यह क्या हुआ? पागलपन। पागलपन ही तो हुआ, जो सुनने वाला है, वह है ही नहीं और तुम चिल्ला–चिल्ला कर बोल रहे हो। यह पागलपन ही है। जैसे हम किसी को फोन करते हैं तो उसका जो चेहरा है वह हमारे सामने आ जाता है और हमारा चेहरा उसके पास चला जाता है तो हम हरिनाम करते हैं तो ठाकुरजी हमारे सामने रहने चाहिएँ न। उसमें भी होगा, फायदा तो होगा। ऐसा नहीं है कि उसमें फायदा नहीं होगा। नामाभास हो जाएगा। परंतु यदि भगवान् निरंतर पास में रहेंगे तो प्यार हो जाएगा। फिर कहते हो हमें वैकुण्ठ नहीं जाना, हमें तो गोलोक धाम चाहिए, यह बोलना भी पागलपन ही तो हुआ। यह कहावत चरितार्थ होती है कि:

de! deMh vkj eu jktk

पहले योग्य बनो, फिर मुख से कोई बात निकालो। यह पागलपन के सिवाय और क्या हो सकता है? भक्ति पथ की पहली सीढ़ी अर्थात् पौढ़ी पर पैर रखा ही नहीं और भक्ति महल की छत पर जाना चाहते हो, कैसी मूर्खता है? पहले अपने स्वभाव, आदत को ठीक करो, तब आगे कुछ बोलो। यह जीवन, सब व्यर्थ की बातों में, व्यर्थ के कामों में, यूँ ही चला जा रहा है। अंत में रोते हुए यहाँ से जाओगे, जहाँ जाओगे वहाँ भी अंतकाल तक रोते ही रहोगे। अब यह समझ जाओ तो भला है, वरना नष्ट तो होना ही है। अब तक माँ–बाप की सेवा ही नहीं की, समाज की सेवा ही नहीं की, फिर भगवान् की सेवा के लिए चल पड़े, कैसे हो सकता है? क्या फिर भगवद् सेवा होगी? केवल कपट, केवल अंधापन। जब तुम एल.के.जी., यू.के.जी. में नहीं बैठे तो तुम बी.ए. में कैसे बैठ सकते हो? अभी दूसरे के कहने पर भी कुछ आदत ठीक करो तो सन्मार्ग पर चल सकते हो वरना दुख सागर तो सामने लहरा ही रहा है। सुकृति बिना कुछ होने वाला नहीं है और सुकृति इकट्ठी होगी केवल हरिनाम जप से, अन्य कोई साधन कलियुग में नहीं है। जिसने भी हरिनाम को अपनाया है, वही दुख सागर से पार हुआ।

हमारे यहाँ सूरदासजी हुए हैं परम भक्त हुए हैं उन्होंने भविष्य का लिख दिया है। ध्यान पूर्वक सुनें!

vj! eu èkhjt D;k u èkj]
lor nk gtkj l Åij
ijc if'pe mÙkj nf{k.k] pg fnf'k dky ij
vdky eR;q lc txe 0;kfi] ijtk cgr ej
lgl o"k rd lr;x 0;kfi] n[k dh n'kk fQj
Lo.k Qy cu iFoh Qy] èke dh cy cM
vj! eu èkhjt D;k u èkjA
vj! dky 0;ky l ogh cpxkA
tk gfj dk uke dj] tk x# dk è;ku èkjA
ljnkl! ;g gfj dh yhyk] Vkj ukfg VjA

तो अब क्या है? 2000 के ऊपर 74 आ रहा है, ...तो हम सामने देख रहे हैं कि कैसे–कैसे अकाल मृत्यु हो रही है। ऐसे कलियुग से कौन बचाएगा?

सूरदासजी ने मोहर लगा दी कि टाली नहीं जा सकती। यह तो आएगी। ध्यान से सुनो! भगवान् ने कलियुग का समय रचा है यह तो अपना प्रभाव दिखायेगा ही, लेकिन बचने का रास्ता भी बता दिया है कि हरिनाम की शरण में चले जाओ तथा नरसिंह भगवान् की शरण में चले जाओ। हरिनाम और नरसिंह भगवान्, तो कलियुग रूपी हिरण्यकशिपु तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा? स्वयं ही खत्म हो जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है। कलियुग कौन है? हिरण्यकशिपु और हरिनाम कौन है? नरसिंह भगवान्। देखिए! यह संवत् 2074 चल रहा है। इसके ऊपर सतयुग आ रहा है और सब समय बता रहा है कि संसार में हरिनाम खूब हो रहा है। यह देखा जा रहा है और अकाल रोग भी काफी हो रहे हैं। कहीं सुनामी आती है, कहीं भूकंप आ रहे हैं, कहीं तूफान आ रहे हैं, कहीं सूखा पड़ रहा है तो कहीं चारों तरफ बहुत वर्षा हो रही है। अतः मेरी सब से हाथ

जोड़कर प्रार्थना है कि कम से कम हरिनाम की 64 माला तो सभी करो और अन्य से भी करवाओ, तो स्वयं का भला और अन्य का भी भला होगा। न पैसे का खर्च है न ही कहीं आने जाने का खर्च है। घर बैठे सब कोई कर सकते हो। साधारण से साधारण मानव भी यह कर सकते हैं।

पहले युगों में आश्रमों में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी और इस कलियुग में केवल कमाने की शिक्षा दी जाती है। यहाँ लड़के और लड़की जब युवावस्था के होते हैं, साथ–साथ पढ़ते हैं, तो कितनी गलत संस्था बनी है? यह किसने बनाई? यह कलियुग ने बनाई है। जहाँ घी, आग पास में होगा तो वहाँ पिघले बिना कैसे रह सकता है? धर्म की शिक्षाओं से खून की धारा सात्विक हो जाती है तो संतों का आविर्भाव होने लगता है। संत जन्म लेते हैं। यहाँ कोएजुकेशन (सहशिक्षा) होती है, खून की धाराएं राजसी बहेंगी तो राक्षस प्रवृत्ति की संतानें होंगी जो अपने माँ–बाप को तथा पड़ोसियों को तंग करेंगी, नर्क में ले जाएंगी, वर्णसंकर पैदा हो जाएंगे। कईयों की शिकायत होती है कि उनका पुत्र उनका कहना नहीं मानता तो इसमें पुत्र का क्या दोष है? माँ–बाप ने बुरे समय पर कर्म किया है। यह शिक्षा प्रवचनकारियों को जरूर देनी चाहिए परंतु ऐसी शिक्षा देते नहीं हैं। यही तो फाउंडेशन (नींव) है भक्ति की, यही तो मुख्य शिक्षा है। शुरुआत में इस को देते नहीं हैं और पहले ही कॉलेज की पढ़ाई पढ़ा देते हैं, तो कैसे हो सकता है? भक्ति की नींव के प्रथम में ही यह शिक्षा परम जरूरी है। भक्ति शिक्षा तो बहुत दूर की बात है, प्रथम ही पी–एच.डी. क्लास में बिठा देते हैं। वह सबको नर्क में ले जाएगा। पी–एच.डी में बैठाने से उसको कुछ नहीं मिलेगा। सर्वप्रथम तो घर ही पाठशाला है। जब भक्त को घर में ही रहना नहीं आया तो भविष्य में क्या उन्नति कर सकेगा? अंधे होकर रास्ते में भटक रहे हैं। भटकन में भी सुख मिल सकता है क्या? समय बर्बाद हो रहा है, कुछ मिलने वाला नहीं है। केवल परिश्रम ही हाथ में आएगा।

गृहस्थी भी ब्रह्मचारी है, यदि सही समय का ध्यान रहे तो केवल संतान का ही उद्देश्य ले कर संग करें और दोनों भजन में लगे रहें तो फिर घर में ही वैकुण्ठ है। इससे शरीर स्वस्थ रहेगा। भजन में मन लगेगा। इसलिए सोच–विचार कर अपना जीवन बिताओ। यह समय का ही दोष है कि जैसा अन्न वैसा मन। हर वस्तु में जहर भरा पड़ा है। पैसे के पीछे सब बिक रहे हैं। पैसा ही पाप का मूल है लेकिन फिर भी मानव चाहे तो बच सकता है। हरिनाम करने से अमृत बरसता है तो जो जहर खा रहे हो, धीरे–धीरे निकलता रहेगा। यदि हरिनाम नहीं हुआ तो क्या होगा? 10 साल के बच्चे को चश्मा लग जाता है, सिर के बाल सफेद हो जाते हैं, पढ़ते समय आंखों में दर्द होता है, जल्दी थकान हो जाती है, बार–बार रोग आक्रमण करके दुखी करते हैं। सुंदरता में कुरूपता आ जाती है, सफलता में सुस्ती आ जाती है। इस सबका कारण है कि अमृतरस शरीर में नहीं आ रहा है।

धीरे धीरे याद्दाश्त ही खत्म हो जाएगी, शरीर में सुस्ती आ जाएगी, किसी काम में मन नहीं लगेगा, अच्छाई का नाम–निशान ही नहीं रहेगा भगवत्प्रेम तो बहुत दूर की बात है। मानव जीवन तो केवल भगवद् कृपा से ही मिला था, मिट्टी में मिल जाएगा, भविष्य दुखदायक होगा। टी.वी. (टेलीविजन) मत देखो, टी. बी. (घातक बीमारी) हो जाएगी।

देखो! सब हमारी सेवा कर रहे हैं, फिर भी हम ऐसा नहीं मानते हैं। देखें! 84 लाख योनियों में जो पेड़–पौधे हैं, वे हमको क्या–क्या दे रहे हैं? सब कोई देख रहे हैं कि चील, कौए, जो गंदगी खा जाते हैं, वे हमारी सहायता कर रहे हैं। जब कोई पशु मर जाता है तो चील, कौए उसको बिल्कुल साफ कर देते हैं, नहीं तो सड़ने से बीमारियां फैल जाएंगी। सभी मानव की सेवा ही करते रहते हैं और इनका भी खून लाल और हमारा भी खून लाल है तो यह हमारे भाई ही तो हैं, ऐसा मन होना चाहिए, ऐसा स्वभाव बनना चाहिए, फिर

भगवान् दूर नहीं हैं। आप भगवान् को दूर भी करना चाहो तो भगवान् की शक्ति नहीं है कि दूर हो जाएँ। फिर भी मानव, इनका कोई अहसान नहीं मानता। इसका मतलब है कि मानव में मानवता नहीं है। मानव की भी मानव ही सेवा करता रहता है। देखिए! ब्राह्मण हमको धर्म शिक्षा देता है। क्षत्रिय मानव की रक्षा पालन करता है। वैश्य हमें खाने हेतु खाद्य पदार्थ देता है। शूद्र सब की सेवा करता है। दर्जी हमें कपड़े सिल कर देता है। खाती हमको खटिया देता है। चमार हमको जूतियां देता है। ऐसे सभी हमारी सेवा कर रहे हैं लेकिन हम इतने लोभी हो रहे हैं कि उनका किसी का अहसान नहीं मानते। आप सभी जानते हो कि हर इंसान और हर योनियां हमारी हर प्रकार की सेवा करती रहती हैं। फिर भी इंसान ऐसा नहीं मानता, अतः दुखी रहता है। अहसान नहीं मानेगा और शास्त्र के विरुद्ध चलेगा तो उसे कहाँ से सुख मिलेगा? क्योंकि उसने मर्यादाएं खत्म कर दी हैं, खंडित की हैं, इसलिए दुख मिलेगा। कभी सुखी नहीं रह सकता तो ऐसा दुख आना स्वाभाविक है। मर्यादाएं सुख के लिए ही बनाई हैं और मर्यादाओं को भंग करना, दुखों को मोल लेना है। फिर मानव बोलता है कि हमें भगवान् मिल जाए।

ck;: cht ccy dk] vke dgk l: gk,AA

(संत कबीर जी)

यह कहावत यथार्थ है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हुआ है। भगवद् कृपा के बिना जन्म नहीं हो सकता है, वह भी भारतवर्ष में हुआ है एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु की शरण में भी हो गए। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का अवतार 27 बार चारों युग चले जाने पर होता है। 28वां द्वापर जब आता है तब द्वापर के अंत में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी, राधाजी की अंगकांति लेकर, राधाभाव में भावित होकर विरह अवस्था की चरम सीमा को भी उलांघ कर हमको भक्ति का रास्ता बता रहे हैं, जो रास्ता अन्य संप्रदायों में नहीं है। स्वयं कृष्ण भगवान्, कृष्ण चैतन्य रूप में अवतरित हुए हैं। एकदम प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की शरण में आ गए।

अनंतकोटि अरबों खरबों वर्षों के बाद अब वैकुण्ठ या गोलोक धाम की प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि प्राप्ति करवाने के लिए ही श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का अवतार हुआ था। उन्होंने स्वयं अपना नाम जपा और हम को शिक्षा दी कि, "तुम भी जपो।" स्वयं चैतन्य ने अपना एक लाख नाम नित्य, इसी कारण किया और सब से भी 64 माला करवाईं कि अब इनका उद्धार करना मेरा धर्म है। अतः 64 माला करने वाले का अभी से वैकुण्ठ का रिजर्वेशन करवा दिया। कितनी खुशी की बात है। कोई भक्त 25–30–40 वर्ष जियेगा, परंतु रिजर्वेशन तो आज ही हो गया। कितनी खुशी की बात है। खुशी का तो अंत ही नहीं है अन्यथा इसमें न जाने कितनी बार जन्म लेना पड़ता और दुख सागर में गोते खाने पड़ते। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं अपना नाम जपा इसलिए कि अगर वह नहीं जप करेंगे तो दूसरे भी नहीं जपेंगे। खुद का आचरण ही अन्य को करा सकता है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है।

देखो! भगवान् को प्राप्त करने का एक ही रास्ता है कि किसी को सताओ मत और जहाँ तक हो सके सबकी तन, मन, वचन से सेवा करो। धन हो, तो धन से करो, धन नहीं हो तो तन से करो, मन से करो तो फिर भगवान् आपसे दूर नहीं हैं। भगवान् इसलिए ही तो नहीं मिल रहे हैं हमको, क्योंकि हमारे स्वभाव बहुत खराब हो चुके हैं। हम किसी की परवाह नहीं करते हैं। परवाह करो। मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा, बड़ी मुश्किल से भगवान् की कृपा से मिला है और वह भी भारतवर्ष में और हमारे श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की शरणागति में। तो हम इतने भाग्यशाली इसलिए हैं कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का करुणा अवतार है, इसलिए सब हरिनाम कर रहे हैं और अभी पूरा संसार ही नाम कर रहा है। भगवान् की कितनी बड़ी कृपा हुई है। इतना हरिनाम पहले नहीं हुआ था, अब तो पूरा संसार हरिनाम में लगा हुआ है, क्योंकि मेरे पास फोन आते रहते हैं कि हम पर कृपा करो। मैंने कहा, "भाई! कृपा क्या करें? आप तो हरिनाम करते रहो। मेरे को भी फायदा, आपको भी फायदा।" इसलिए मैं तो

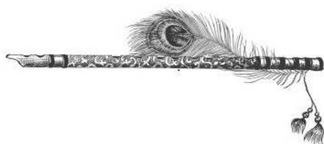
सबको हरिनाम करने के लिए प्रेरित करता हूँ। बस हरिनाम करो, हरिनाम से सब आनंद हो जाएगा।

मन को एकाग्र करके हरिनाम किया करो। देखो! इधर उधर नहीं जाए, इससे नामाभास हो जाएगा।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

प्रेम से हरिनाम करो और कानों से सुनो

अगर आप ऐसे प्यार से करोगे तो आपके अंदर विरह उत्पन्न हो जाएगा, जब विरह हो जाएगा तो भगवान् को भी सहन नहीं होता। भगवान् कहते हैं कि, "जैसे भक्त मेरा भजन करते हैं, मैं भी वैसे ही करता हूँ।" अगर भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। फिर भगवान् उसको कोई सम्बन्ध दे देते हैं। जैसे हमारी लड़की हमारे पास 25 साल तक रही। अब उसकी शादी किसी नवयुवक से कर दी। जो 25 साल तक माँ–बाप के पास रही, वह उस माँ–बाप को छोड़ देगी। अब नवयुवक उसको नहीं छोड़ेगा और लड़की भी उसको नहीं छोड़ेगी। इसी तरह भगवान् भी ऐसे भक्तों को नहीं छोड़ेंगे, न ही भक्त उनको छोड़ेगा और भगवान् उसे कोई न कोई सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे और फिर गोलोक धाम ले जाएंगे। वैसे तो वैकुण्ठधाम हरिनाम से ही मिल जाएगा।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

हरिनाम रूप में भगवान् का आविर्भाव

15

13 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

आप सब भक्तगण मेरी बात कृपया करके ध्यान से सुनें। मैं तो एक तरह से एक माइक हूँ। कोई दिव्य शक्ति गुरुदेव या बाबा पीछे से बोलते हैं। न मैं एक हेड मास्टर था, न मैं लेक्चरार था, उनको तो लिखने पढ़ने का, भाषण देने का अभ्यास होता है। मैं तो एक छोटी सी टेक्निकल पोस्ट पर कार्यरत था। अतः मुझे बोलने का अभ्यास नहीं। न मैं इतना ज्ञानी हूँ। मैं तो केवल माइक हूँ, पीछे से मेरे गुरुदेव या भगवान् ही बोलते हैं, जो माइक से आवाज बाहर आ जाती है उसे आप भक्त सुनते हो। आप विचार करें कि "इस जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक जो एक ही विषय पर केवल 'हरिनाम' पर लिखी गई हैं, सात पुस्तकें कैसे लिखी जा सकती थीं? यह भगवान् ने ही लिखाई हैं। मैं तो अल्पज्ञ हूँ। ऐसा समझकर श्रद्धा पूर्वक सुनने से आप को हरिनाम में रुचि और भगवान् से प्यार उदय हो जाएगा। कोई ऐसा न समझे कि यह सब जो कुछ हो रहा है, अनिरुद्ध दास के द्वारा हो रहा है। यह तो हरिनाम के द्वारा ही हो रहा है, क्योंकि द्वारकाधीश के रूप में, श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने यह सत्संग शुरू

किया है। जो इस सत्संग को सुनेगा, उसे वैकुण्ठ धाम अथवा गोलोक धाम उपलब्ध होगा।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

अब मैं आप भक्तों को जो एक मार्मिक बात बता रहा हूँ, कृपया कर ध्यानपूर्वक सुनें! भगवान् की माया की, तीन गुणमयी धाराएं, सभी भक्तों में तथा नास्तिकों में हुआ करती हैं। यह धारा ही नरक में ले जाती हैं अथवा भगवान् से मिलाती हैं। वह धाराएं हैं – तामसिक धारा, राजसिक धारा और सात्त्विक धारा। यह माया का परिवार है जो मानव मात्र के स्वभाव में रहता है।

मायिक तामसिक धारा के स्वभाव वाला मानव कैसा होता है? सुस्त पड़ा रहता है, मेरा क्या कर्तव्य है, नहीं जानता है। भक्ष्य, अभक्ष्य, मांस, मदिरा का सेवन करना, विषय वासनाओं में फंसे रहना, मानवमात्र से झगड़ा करके तंग करना, मूर्खता में लिप्त रहना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार में जकड़े रहना आदि आदि दुर्गुणों में फँसे रहना। कैसे फँसे रहना? दयाहीन, क्रोध और अपनत्व में डूबे रहना। यह है तामसिक माया वाले का आचरण, स्वभाव। आगे इसका क्या फल होगा? यह सीधा नर्क में जाएगा और अनंत कोटियुगों तक दुख भोगता रहेगा। अब राजसिक स्वभाव वाला कैसा होता है? यह भी शुभ कर्म से अंधा होता है। शुभकर्म इससे नहीं हो सकते। कमाने हेतु इसकी हाय–धाय कभी मिटती नहीं, यह कर लूँ, वह कर लूँ। इसी में सारी जिंदगी खत्म कर देता है। तामसिक वृत्ति के अवगुण भी इसमें रहा करते हैं। सूक्ष्म रूप में ही मेरे गुरुदेव बता रहे हैं। अब सात्विक धारा वाले का आचरण (स्वभाव) कैसा होता है? यह देवी–देवताओं को पूजता है। भगवान् की तरफ इसका मन 5% ही जाता है, ज्यादा नहीं जाता। राजसिक, तामसिक अवगुण इसमें कम होता है।

तीनों गुणों से ऊपर, निर्गुण स्वभाव वाला मानव, देवी–देवताओं को मानता जरूर है, लेकिन यह कृष्ण और राम का उपासक होता

है। इसमें अहंकार नहीं होता है। इसमें बहुत गुण होते हैं। परमहंस अवस्था का होता है। दिव्यता को लिए हुए होता है। इसका स्वभाव है कि यह भगवान् को प्राप्त कर लेता है। यह वैकुण्ठ में जाता है। गोलोक में जाता है।

श्रीमद्भागवत पुराण में लेख है कि भक्ति की शुरुआत है, प्रथम में, माँ–बाप की तन, मन, प्राण, वचन और धन से सेवा करनी चाहिए। यही है भक्ति क्लास की एल.के.जी., यू.के.जी. में भर्ती होना। यदि पुत्र 100 साल तक भी माँ–बाप की सेवा करता रहे तो भी वह माँ–बाप की सेवा करके उऋण नहीं हो सकता। ऐसा श्रीमद्भागवत में लिखा है। माँ–बाप का अपने बेटे को आशीर्वाद देना, भगवान् के आशीर्वाद से भी बढ़कर है। जो भक्ति का साधक, माँ–बाप की सेवा नहीं करता, उसे भक्ति में लगना ऐसे ही है, जैसे अंधा होकर रास्ते में चलना। उसको हरिनाम करने पर भी और अधिक से अधिक माला करने पर भी, हरिनाम में रुचि नहीं आएगी। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है क्योंकि माँ–बाप की सेवा ही भक्ति उपलब्ध करने की पहली सीढ़ी पर पैर रखने जैसी अवस्था है। धीरे–धीरे ऊपर चढ़ता–चढ़ता वह उच्चतम सीढ़ी पर पहुँच सकेगा अर्थात् उसे परमावस्था उपलब्ध हो सकेगी अर्थात् उसे तुरीय अवस्था उपलब्ध हो सकेगी। तब वह संसार से पूर्ण वैरागी बन सकेगा और पूर्ण रूप से भगवान् की ओर झुक सकेगा। उसको जन्म–मरण अवस्था से छुट्टी मिल सकेगी। यही भक्ति उपलब्ध करने का सही और सर्वोत्तम साधन तथा रास्ता है।

जब माया के घर में ही रहना नहीं आया तो चिन्मय (सुपर नेचुरल) भक्ति के घर में कैसे रहना आएगा? माया के घर में रहने का अर्थ है कि प्रथम में साधक ने, तन, मन, वचन से अपने माँ–बाप को खुश नहीं किया। अरे ! जब माँ–बाप को ही खुश नहीं किया, तो भगवान् को कैसे खुश कर सकते हो? दूसरा, जो परिवार में चाचा–चाची हैं, बहन–भाई हैं, भतीजे हैं, आदि से प्यार से रहना ही नहीं आया। फिर भगवान् से प्यार कैसे होगा? इसका मतलब है कि

यदि एल.के.जी., यू.के.जी. पाठशाला में ही भर्ती नहीं हुए तो शुरुआत में ही भक्ति महारानी की उत्तम पाठशाला में भर्ती होने का कुछ सवाल ही नहीं अर्थात् उस स्थिति तक नहीं पहुँच सकते। स्थिति का अर्थ है जो आखिरी है, विरहावस्था, अष्ट विकार, वही पी–एच.डी. है। कहने का तात्पर्य है कि आरंभ में मर्यादा में रहना सीखो। जो मर्यादा भगवान् राम ने बनाई है, उसको अपनाये बिना भक्ति पाठशाला में भर्ती होने का कोई प्रश्न नहीं उठता। जब मायिक घर वालों से ही नहीं बनती, तो समाज में बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। भक्ति पथ पर जाना तो बहुत दूर की बात है। इस कारण हरिनाम जपने से लाभ नहीं होगा।

अब प्रश्न उठता है कि बहुत से बच्चों के माँ–बाप का स्वर्गवास हो चुका है, तो वे भक्त उनकी कैसे सेवा कर सकेंगे? उनकी सेवा यही होगी कि नित्य दो माला, उनके प्रति जप कर, उनका उद्धार करें। यदि वे 84 लाख योनियों में भटक रहे हैं या नरकों का भोग भोगे जा रहे हैं और यदि उनका बेटा, नित्य दो हरिनाम की माला उनके प्रति कर ले, तो उनका उद्धार निश्चित रूप से हो जाएगा एवं वह उच्चतम सुखकारी लोकों में चले जाएंगे। इससे भक्ति पथ के मार्ग की शुरुआत बन जाएगी एवं उसे हरिनाम में रुचि होने लगेगी। हरिनाम ही उस साधक को, हर प्रकार से अपने परिवार को प्यार से देखने की दृष्टि दे देगा। इसके बाद समाज की ओर भी, उसकी दृष्टि सुख देने की बन जाएगी तथा हर प्राणी की ओर सेवा की दृष्टि जागृत हो जाएगी। यह गुण अपने आप उसमें आने लगेंगे। जैसे धीरे–धीरे अवगुण उसमें भर गए थे, वैसे ही धीरे–धीरे गुण उसमें भरते जाएंगे। वह किसी भी जीव को बुरी नजर से नहीं देखेगा। उसमें माया का सतोगुणी भाव जागृत हो जाएगा, धीरे–धीरे उसके अशुभ संस्कार, विलीन होने लगेंगे और शुभ संस्कार उदय होने लग जाएंगे। अतः उसका मानव जीवन सुखमय बनने लगेगा। दुख का तो सदा के लिए जड़ सहित नाश हो जाएगा।

भगवान् की माया भी दो तरह की होती है। एक माया होती है। जो संसार में फँसाती रहती है और दूसरी माया को, भगवान् की योगमाया कहते हैं। भगवान्, इस योगमाया को अपनाकर ही लीलाएँ करते रहते हैं। योगमाया के बिना भगवान् भी लीला नहीं कर सकते। अपना आचरण ठीक करो। मर्यादा से रहना सीखो। फिर तो भक्ति संयोग बनने में देर नहीं होगी। जीवमात्र पर दया करना सीखो। अपराध से बचना आदि उच्चस्थिति का आचरण है। पहले नीचे से चलो, तब ही पहाड़ की चोटी पर आनंद प्राप्त कर सकोगे।

तीन–तीन लाख हरिनाम करने वाले भक्त, पर फिर भी भगवद् प्रेम जागृत नहीं हुआ। क्या कारण है? कारण है कि उनको एल.के. जी., यू.के.जी. में ही रहना नहीं आया, घर में ही रहना नहीं आया, जगत् में ही रहना नहीं आया। अरे! वह भगवान् के पास कैसे रहेगा? इतना तीन–तीन लाख नाम करने पर भी विरहावस्था नहीं आई। अश्रुपात ही नहीं हुआ। क्या कारण है? अष्टसात्विक विकार होना चाहिए। यह अवस्था तो स्वतः ही उदय हो जाएगी, यदि आचरण के उक्त लेख को अपनाओगे तो। यदि ऐसा न हो तो मेरा बोलना सब व्यर्थ हो गया। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, 100% सत्य होगा। कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जो भी मेरे गुरुदेव या मेरे बाबा प्रेरणा करते हैं, उसी प्रेरणा को भक्त समुदाय, प्रत्यक्ष देखकर अनुभव भी कर रहे हैं। जैसे, यह तीन प्रार्थनाएं, जो सभी धर्म शास्त्रों का सार हैं। यह तीन प्रार्थनाएं कहीं भी, शास्त्रों में नहीं लिखी हैं। यह ऐसे इंजेक्शन हैं, तीन प्रार्थनाएं, कि इनसे भगवान् की प्राप्ति बहुत शीघ्र हो जाती है।

दूसरी है–तुलसी माला जपने पर सुमेरु हाथ में क्यों आता है? यह भी कहीं लिखा हुआ नहीं है, लेकिन मेरे बाबा ने बताया है। अन्य उदाहरण प्रत्यक्ष सामने आ रहे हैं। कइयों की मौत तक टल चुकी है, आदि आदि। कहते हैं :

dfy;x doy uke vèkkjkA
lfej lfej uj mrjfg ikjkA

"केवल" क्यों लिखा है? इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा रास्ता नहीं है। फिर कहते हैं :

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

कलियुग में केवल हरिनाम है, हरिनाम है, हरिनाम है, तीन बार बोला है कि दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है और हमारे हरिनाम करने वाले जो गुरुवर्ग, पीछे हो गए हैं, उन्होंने हरिनाम करके भगवद् प्राप्ति की और भगवान् उनके पास आते थे, बोलते थे। इसलिए हरिनाम करो, चाहे मन लगे, चाहे न लगे।

Hkko dHkko vu[k vkyIgA
uke tir exy fnfl nIgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, प्यार से लो, आप बिना प्यार के लो, सोते हुए लो, चलते–फिरते लो, गुस्से में लो, कैसे भी लो, आपका उद्धार निश्चित ही है। मर्यादाओं का पालन करते हुए ही, भक्ति पथ से भगवत्प्रेम उपलब्ध कर सकोगे। जैसे, किसी बाप के पांच बेटों में से कोई एक बेटा नालायक हो गया तो क्या माँ–बाप उसे घर से निकाल देते हैं? नहीं, उसको सुधारने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार उस नालायक भक्त, क्योंकि उसने पूरा हरिनाम नहीं किया, 64 माला, एक लाख नाम नहीं किया और वह मर गया तो उसको मनुष्य जन्म ही मिलेगा। भगवान् दोबारा जन्म देकर सीधे मार्ग पर लाकर छोड़ देंगे। उसको 80 लाख योनियों में, पशु, पक्षी, पेड़ आदि में नहीं जाना पड़ेगा। उसको भगवान्, अपनी गोद में आने का मौका देते हैं क्योंकि यह अनंत अरबों चतुर्युगों से भगवान् से बिछुड़ा हुआ है। भगवान् चाहते हैं कि अब तो इस दुख सागर से पार हो कर वह मेरी गोद में आ जाए। तभी तो भगवान् का नाम दयालु है। लेकिन मानव दुर्भाग्य से, उनकी दया की

तरफ देखता ही नहीं है और उम्र भर दुख पाता रहता है। पहले अपने स्वभाव को सुधारो जिसे शास्त्र कारण शरीर कहता है तो भगवान् के लोक पहुँच जाओगे अर्थात् भगवान् के वैकुण्ठ व गोलोक धाम में चले जाओगे। शुरू में एल.के.जी., यू.के.जी. में बैठो तब ही तो पी–एच.डी. की क्लास में बैठ सकोगे। कोई चाहे हम को तो अभी वैकुण्ठ मिल जाए, तो कितनी बड़ी मूर्खता है। कितना बड़ा अज्ञान है। जब वैसा स्वभाव बन जाएगा तो बड़ी सरलता से, सुगमता से भगवत्प्रेम मिल जाएगा और संसार से वैराग्य होकर सुख सागर में तैरने लगोगे। जब भक्ति की नींव ही जहरीली है, तो अमृतपान तो बहुत दूर की बात है। धीरे–धीरे अपने स्वभाव को सुधारो। यह स्वभाव ही नर्क में ले जाता है, यही वैकुण्ठ में ले जाता है। इसमें मन ही राजा है, अन्य इंद्रियां तो मन की नौकरानियाँ हैं। बेचारी नौकरानियाँ क्या कर सकती हैं? मन ही सब कुछ है। मन को सुधारो।

देखिए ! शास्त्रों में दस अपराध लिखे हैं। लेकिन 94 अपराध होते हैं। कौन से? 10 शास्त्र के प्रति तथा 84 लाख योनियों के प्रति हैं, भगवान् उनके भी तो हृदय मंदिर में बैठे हैं, लेकिन शास्त्र में यह दस अपराध ही लिखे हैं। लेकिन हमारे गुरुजी कहते हैं कि अपराध 94 होते हैं, उनसे बचो। फिर भगवान् बहुत जल्दी मिल जाएंगे। चींटी को भी मत सताओ, उसमें भी भगवान् बैठे हुए हैं। भगवान् हर एक के हृदय में बैठे हुए हैं।

यह दस अपराध कौन से हैं?

गुरु अवज्ञा – गुरु का कहना न मानना। शास्त्र की निंदा करना। नाम में अर्थवाद करना और हरिनाम के बल पर पाप करना। श्रद्धाहीन को शिक्षा देना। श्रद्धाहीन को शिक्षा अच्छी नहीं लगेगी। नाम को, अन्य शुभ कर्मों के समान समझना और अहंभाव (घमंड) करना और भगवान् का नाम लेते हुए मन का अन्य तरफ, इधर उधर चले जाना, यह भी अपराध है और साधु की निंदा करना, यह भी अपराध है। पाप करते रहना। और कुछ सेवा अपराध होते हैं।

उदाहरण तौर पर जैसे पाठशाला हैं, स्कूल हैं, मुसलमान मदरसा कहते हैं। वहाँ, एल.के.जी., यू.के.जी. से शुरू होकर पी–एच.डी. तक कक्षाएँ होती हैं। तो प्रथम में, बच्चे को एल.के.जी. में बिठाना पड़ता है, तभी समय से पी–एच.डी. क्लास में बैठ सकेगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि शुरू में ही पी–एच.डी. की क्लास में बिठा देंगे। सीढ़ी दर सीढ़ी, पैरों से चढ़कर ही, छत पर जा सकोगे। क्या बिना चढ़े ही छत पर चले जाओगे? शुरू में दास्य–भाव से भक्ति करेगा, तब समय से मधुर–भाव बन जाएगा। शुरू में ही मधुर–भाव दे दिया गया तो कामना स्वप्न में भी पूरी नहीं हो सकती, उल्टा नीचे मुँह करके गिरना पड़ेगा। न संसार का आनंद मिलेगा, न भगवान् का ही आनंद मिलेगा। दोनों तरफ से ही खड्डे में गिर जाएगा। ऐसी मूर्खता भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। क्रम–क्रम से आगे पैर रखना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया तो धड़ाम से नीचे गिरना पड़ेगा।

भक्तगण! देखिए! सुनिए! हम शुरू से भगवान् से ही आए हैं। सृष्टि के पहले कुछ भी नहीं था। केवल भगवान् ही थे। भगवान् में इच्छाशक्ति की हरकत हुई, स्फुरणा हुई। जैसे जन्म लेते ही मानव का शिशु बच्चा कुछ भी नहीं जानता, लेकिन धीरे–धीरे जब बड़ा होने लगता है तो इसे खेलने की स्फुरणा होती है। तब इसमें तोड़फोड़ करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, तोड़फोड़ करता है। इस इच्छा को पूरी करने हेतु शिशु के माँ–बाप, इसके लिए तरह–तरह के खिलौने लाकर, उसे उसमें लगा देते हैं। अब यह इन खिलौनों में व्यस्त हो जाता है। अब, जब यह बड़ा हो जाता है, इसको थोड़ा–थोड़ा संसार का ज्ञान होने लगता है, अब माँ–बाप इसे धर्म पर चलने हेतु किसी आश्रम में, पाठशाला में, गुरु के पास भेज देते हैं। वहाँ जीवन को कैसे चलाया जाता है? यह शिक्षा पढ़ता है। मानव की लगभग सौ साल की उम्र होती है, लेकिन इसके कर्मानुसार इसको यह उम्र मिलती है। कोई जन्म लेते ही मर जाता है, कोई दस साल का मरता है, कोई बीस साल का, कोई चालीस साल का, कोई साठ और कोई सत्तर का, कोई नब्बे का और कोई सौ का।

यदि धर्मानुसार जीवन चलाता है तो सौ से भी ऊपर उम्र में मरता है। जो भगवान् की व्यवस्था के अनुसार अपना जीवन बिताए, उसकी उम्र बढ़ जाती है। आचार–विचार जिसका शुद्ध है, उसको न तो कोई रोग आता है और न वह जल्दी मरता है। जो इस प्रकार जीवन नहीं चलाता, वह जल्द ही मर जाता है। भगवान् को यह मानव की देह ही ज्यादा पसंद आई, अन्य देह उन्हें ठीक नहीं लगी। ऐसी देह में भगवान् प्रकट हुए हैं, अतः इसी को भगवान् अच्छी समझते हैं और मानव सुख अर्जित कर सके, इसके हेतु भगवान् ने पुस्तकें दीं, जिन्हें धर्म शास्त्र कहते हैं। इनके अनुसार मानव को अपना जीवन बिताना चाहिए। लेकिन मानव, इनको न मानकर स्वेच्छाचारी बन गया और धर्म शास्त्र के विरुद्ध अपना जीवन बिताने लग गया।

भगवान् ने अपनी शक्ति से योगमाया को प्रकट किया। भगवान् ने सोचा, "इस प्रकार से मेरी सृष्टि सुचारु रूप से नहीं चलेगी।" माया शक्ति से मानव अपना जीवन यापन करेगा। जैसा कर्म करेगा वैसा ही इसे जीवन उपलब्ध होगा। माया क्या है? माया है – अँधेरा, अज्ञान, अस्थिरता, अनित्यता। इस माया की तीन शक्तियां हैं। सत, राजस और तामस। इनके द्वारा ही मानव का स्वभाव बनता है। इनके ऊपर है – निर्गुण शक्ति। जो भगवान् से युक्त रहती है। उसमें गुण नहीं होता, भगवान् इस शक्ति से युक्त रहते हैं, यह स्वतंत्र शक्ति है। बाकी तीनों में गुण होते हैं। इन गुणों से ही मानव 84 लाख योनियाँ भोगने को जन्म लेता है। भगवान् भी योगमाया को अपनाकर संसार में अपना खेल आरंभ करते हैं तथा उनको ही भगवान् की लीलाएँ बोला जाता है। लेकिन भगवान्, यह लीलाएँ अकेले नहीं कर सकते, अन्य शक्तियों को संग अपनाकर लीला करते हैं। जैसे बच्चा, खिलौनों से खेल खेलकर आनंद अनुभव करता है, इसी प्रकार भगवान् भी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव बनकर लीलाएँ रचते हैं। तीनों से ही संसार में अपना कर्म रचाते रहते हैं। ब्रह्मा बनकर संसार रचते हैं, विष्णु बनकर संसार की रक्षा और पालन करते हैं और शिव बनकर

संसार का नाश करते हैं। यदि ऐसी लीला न करें तो संसार का अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

भगवान् ने विचार किया कि स्थूल रूप में कुछ लीला करें, अर्थात् लीला की सामग्री भी हो तो भगवान् ने तीन सामग्री इकट्ठी की। यह सामग्री क्या है? पहला है स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर, इसको लिंग शरीर भी कहते हैं। तीसरा है कारण शरीर अर्थात् स्वभाव का शरीर। इन तीनों शरीरों से ही भगवान् की सृष्टि बनती है, स्थिर रहती है एवं नाश को प्राप्त होती है। यह तीनों शक्तियाँ ही इसका संचालन करती हैं। यह तो भगवान् की अलौकिक माया है। लेकिन प्रेम शक्ति ऐसी उच्चतम भाव शक्ति है कि भगवान् भी इस शक्ति से, वश में हो जाते हैं। वह है, मानव (जीव) का भगवान् के प्रति धारा प्रवाहित भगवत् स्मरण। स्मरण में ऐसी शक्ति है कि राक्षस भी मुक्त हो जाते हैं। पूतना राक्षसी, भगवान् को जहर पिला कर मारने आई थी, लेकिन उसको धात्री के समान गति दी क्योंकि उसने मरते समय स्मरण किया था कि, "मुझको छोड़ दे! मेरे को छोड़ दे! छोड़ दे!" ऐसा स्मरण करते हुए मरी थी, इसलिए उसको धात्री के समान गति दी।

इसके लिए भगवान् ने जगत् में अपना आविर्भाव किया, जो है हरिनाम। इसके अभाव में भगवत् स्मरण हो ही नहीं सकता। स्मरण के लिए हरिनाम करना जरूरी है। स्मरण कमजोर क्यों होता है? क्योंकि इसके पीछे गुणमाया लगी रहती है। गुणमाया है – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन गुणों से मानव के स्वभाव में निकृष्टता आ जाती है, अतः लगातार भगवत् स्मरण हो नहीं सकता। इसके लिए चाहिए, सच्चा सत्संग एवं धर्म शास्त्र के कहे अनुसार अपना जीवन यापन करना। इसके विपरीत जीवन यापन से कर्मानुसार 84 लाख योनियों में जन्म लेना पड़ेगा जो एक तरह से यम यातनाएं ही होती हैं। लेकिन भगवान् की माया ही ऐसी है कि जीव इन में ही सुख मानता है, जो वास्तव में दुख के हेतु हैं। फिर भी भगवान् दया करके जीव को अपने पास बुलाने हेतु, मानव का जन्म देते हैं क्योंकि मानव

में अपने दुख के निवारण की बुद्धि होती है, परंतु अन्य 80 लाख योनियों में केवल खाना–पीना और भोग करना ही होता है। वे अपना उद्धार नहीं कर सकते क्योंकि वे अज्ञान अंधकार में पड़े रहते हैं, उनको सुख पाने का रास्ता मालूम नहीं है। यह भगवान् की ही माया है।

गर्भाशय के बिना कोई भी जीव जन्म नहीं ले सकता। गर्भाशय भी एक प्रकार की घोरमय यातना है, यह भी नर्क है, जिसमें जीव कितना दुख पाता है। जो दुख पाता है, वही उसको अनुभव कर सकता है। जन्म लेने पर भी, उसके पीछे दुख पर दुख लगा ही रहता है, फिर भी जीव इतना अज्ञानी है, अंधा बना रहता है कि उसे ही सुख मानता रहता है।

उदाहरण के लिए पेड़ को ही देख लीजिए। सर्दी में, गर्मी में, बरसात में, आंधी में, पानी में झकझोड़ा जाता है। तूफान से आक्रांत रहता है और उम्र भी इसकी बहुत ज्यादा रहती है एवं मानव उसे काट–काट कर कैसा दुखी करता रहता है। बेचारा बोल नहीं सकता, दुखी होता रहता है। मानव अपने सुख के लिए तरह–तरह से उसे दुखी करके पाप करता रहता है। अतः उसको (मानव को) 84 लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। सत्संग के अभाव में मानव, अनंत कोटि योनियों में जन्म लेकर दुखी होता रहता है। यही तो भगवान् की माया है। नालियों में कीड़ा बनकर, सड़ा हुआ दुर्गंध युक्त पानी पीकर अपना जीवन यापन करता है और फिर बड़े कीड़े उसको खा जाते हैं। फिर से उनके गर्भ से जन्म पाकर, फिर उसी गंदी नाली में पड़ कर भोग भोगता रहता है। इसीलिए धर्मशास्त्र मानव को ज्ञान नेत्र देकर, समझा रहे हैं कि अब भी हमारे कहे अनुसार अपना जीवन बिताओ वरना दोबारा यह मानवदेह नहीं मिलेगी। मानव देह, अनेक चतुर्युगी अरबों, खरबों वर्षों के बाद मिलती है। अतः धर्मशास्त्र बोलते हैं कि मानव जन्म अति दुर्लभ से भी अति दुर्लभ है। अतः इसे बेकार मत करो। नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा। कुछ नहीं मिलेगा।

vc iNrk; gkr D;k tc fpfM;k px xb [krA
ekuo tUe cdkj gvk vkj vr e fey xb jrAA

कुछ नहीं मिलेगा। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के स्वभाव से बचने हेतु भगवान् ने, मानव को सलाह दी और बोले, ''मेरा नाम ही कलियुग में उद्धार करने वाला है।'' वह है :

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

जैसे अमृत, बिना जाने पीने वाले को, अमर बना देता है और जहर, बिना जाने पीने वाले को मार देता है। इसी प्रकार से भगवान् के नाम का स्वभाव है कि वह मंगल कर देगा। भगवान् का नाम जो मंगलकारी है, उसमें आपको सदा चारों तरफ से सुख ही सुख मिलेगा। इसका स्वभाव मंगल करने का है। उद्धार करने का है। जैसे अजामिल ने तो अपने लड़के को पुकारा था केवल, 'नारायण'। अजामिल तो इतना दुष्ट, पापी था लेकिन उसके मुख से 'नारायण' निकल गया। नारायण उसका छोटा बच्चा था, जिसमें, उसका प्यार था। इसलिए जब यमराज के दूत आए तो वह घबरा गया और नारायण उच्चारण हो गया। उसके नारायण उच्चारण होते ही वैकुण्ठ से भगवान् के पार्षद आकर उसको वैकुण्ठ ले गए। बताइए! एक नाम में कितना प्रभाव है।

कृष्ण ने दया करके श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार लिया है। उन्होंने सबका उद्धार करने का बीड़ा उठाया है। एक दिन तो जन्म–मरण से पिंडा छूट ही जाएगा। यह 100% सत्य वचन है। वह बहुत भाग्यशाली है, जो श्री चैतन्य महाप्रभुजी के शरणागत हो गया, उसका उद्धार निश्चित रूप से होगा। जब 28वें चतुर्युगी के अंत में कलियुग का पदार्पण होता है, तब कृष्ण ही चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधाजी का अंग लेकर और राधाजी का भाव लेकर अवतरित होते हैं। राधा, कृष्ण के अभाव में कैसे बिलखती है? इसी स्वाद को चखने के लिए कृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु का अवतार लिया था। यह भी श्रीमद्भागवत पुराण में गर्गजी ने नंदबाबा को बताया था कि कभी

पीत वर्ण से भी भगवान् प्रकट होते हैं। पीतवर्ण, चैतन्य महाप्रभुजी का वर्ण है। जीवनभर अपार दया मूर्ति, इस अवतार का उद्देश्य है कि जो हरिनाम बेमन से भी करेगा, एक दिन वैकुण्ठवासी बन जाएगा, गोलोक वासी बन जाएगा। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमारा जन्म भारत में हुआ है और गौरहरि का आविर्भाव हुआ है। इससे बड़ा भाग्य क्या होगा? 'प्रेम' ही भगवान् का पर्यायवाची शब्द है। प्रेम ही भगवान् का हृदय है। भगवान् यशोदा की मार भी खाते थे। गोपबालक उनके कंधे पर चढ़ जाते थे। भीष्म पितामह ने भगवान् को हथियार उठाने पर मजबूर कर दिया था जबकि भगवान् ने कहा था कि, "मैं कभी भी हथियार नहीं उठाऊंगा।" भगवान्, भक्त से हार जाते हैं। भक्त ही भगवान् को नचाता है। काल और महाकाल भगवान् से थर–थर कांपते हैं, लेकिन भगवान्, भक्त से थर–थर कांपते हैं। यही तो भगवान् की अलौकिक कृति है। यशोदा के भय से कृष्ण, नंदलाला माखन से सना अपना मुंह साफ कर देते हैं।

देखिये! भगवान् भक्त से कितना डरते हैं। भगवान् की कृति को केवल भक्त ही समझ सकता है। ब्रह्मा और शिवजी भी नहीं समझ सकते। ऐसा श्रीमद्भागवत पुराण में पढ़ने को मिलता है। इसलिए यदि किसी को सुख पाना हो, इस दुष्ट कलियुग में, तो हरिनाम करो। हरिनाम करने से आपको यहाँ भी सुख और आगे भी सुख मिलेगा, क्योंकि मनुष्य जन्म फिर मिलने वाला नहीं है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : 'कलियुग केवल नाम अधारा सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा' तो नाम और मंत्र में क्या अंतर है।

उत्तर : महामंत्र "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" यह कलियुग का महामंत्र है। नाम और मंत्र में कोई अंतर नहीं है।

नामनिष्ठ का संग तीव्र गति का साधन है

16

20 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

किसी भगवद् प्रेमी का प्रवचन किस महत्त्व से लाभप्रद होता है, जिस प्रवचन से माया दूर हो और भगवान् से प्यार हो जाए, संतों से प्यार हो जाए, संसार से वैराग्य हो जाए। जिस प्रवचन से दुख सागर से पिंडा छूट जाए तथा सुख सागर में तैरने लग जाए। इसका भगवान् ने सरल, सुगम रास्ता बताया है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। चाहे मन लगाकर करो, चाहे बेमन से करो। मानव का जीवन सफल कर लो और ऐसा सरल, सुगम साधन भगवान् ने क्यों बताया? इसका कारण है कि उन युगों में, सतयुग में, त्रेता में और द्वापर युगों में मानव बलशाली था। तब वातावरण भी शुद्ध था। अब कलिकाल में वातावरण अत्यंत गंदा होता है, खानपान जहरीला होता है तथा सतीत्व का अभाव होता है। पूरे संसार में नास्तिकता का साम्राज्य फैला रहता है। माया का परिवार जीवमात्र पर हावी रहता है। माया का परिवार क्या है? यह है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार। सतोगुण का नामोनिशान नहीं रहता। तमोगुण, रजोगुण दसों दिशाओं में फैला रहता है। दुष्ट

मानव सुखी दिखता है और सीधा मानव दुखी दिखता है। क्यों है ऐसा? सरल मानव इस युग में बहुत कम होते हैं और दुष्ट मानवों की भरमार रहती है। कोई किसी को नहीं मानता। केवल पैसे के पीछे सभी दौड़ते रहते हैं। इस समय स्वार्थ का संसार है। बिना स्वार्थ के तो अपने माँ–बाप को भी बेटे, पोते नहीं मानते, अन्य की तो बात ही क्या है। चारों ओर अराजकता फैली रहती है।

कोई न किसी का रक्षक है, न किसी का पालन कर्ता है। सभी मानव दुराचारी बन जाते हैं। न किसी का डर है, न किसी का भय है। वास्तविकता तो यह है कि बिना दंड नीति के न घर चल सकता है, न देश चल सकता है। तभी तो संसार में जेलखाने का आविष्कार हुआ तथा परलोक में नरकों का आविष्कार हुआ। अतः डर की वजह से ही मानव अपनी सीमा में रहता है। डर से तो सर्कस में, बब्बर शेर भी काबू में रहता है। मानव से थर–थर कांपता है। जैसे मानव उसे नचाता है, शेर नाचता रहता है। जबकि शेर जंगल का राजा है, फिर भी उसकी कैद हो जाती है। बिना दंड के शांति नहीं बन सकती।

जब तक मानव मात्र को एल.के.जी., यू.के.जी. में भर्ती नहीं किया जाता, तब तक उसको पूरा ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। ज्ञान क्या है? ज्ञान, वह अमृत है जिससे मानव अमर बन जाए। इसकी मंदबुद्धि में यह बात बैठ जाए कि मेरा इस रास्ते पर चलने से ही भला हो सकता है और मेरा सब बुरा टल सकता है। यह साधन है, धर्मशास्त्र का अवलोकन। धर्मशास्त्र है, मानव को सुखी करने का प्राण। जब तक मानव के पास प्राण है, तब तक मानव की संज्ञा है। प्राण न हो तो मानव मृत ही है। धर्मशास्त्र बड़ा विचित्र है। इसका पार पाना मानव के बस की बात नहीं। अतः भगवान् ने कृपा कर, मानव को उन धर्मों का प्राण दे दिया। वह है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम! भगवान् ने कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभुजी के रूप में आकर हरिनाम का प्रचार किया है। हरिनाम, उसका स्वभाव है कि दुख से पिंडा छूट जाए। जन्म–मरण छूट जाए।

हरिनाम मानव को उपलब्ध हो जाये तो अमरता भी मानव के हाथ में आ जाये एवं उसका सारा दुख मूल सहित नष्ट हो जाये। ब्रह्मा की सृष्टि का वास्तविक ध्येय यही है और अन्य सब बेकार है।

मानव की सबसे बड़ी दुश्मन है माया। इसके पास तीन हथियार हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इसमें मन फँसा रहता है। माया भी दो प्रकार की है। एक है, संसार में फँसाने वाली माया। दूसरी है, योगमाया, इसको भगवान् अपनाते हैं। इस योगमाया के बिना भगवान् कोई भी लीला नहीं कर सकते। माया का परिवार है– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार। इनका प्राकट्य कैसे होता है? माया के तीन हथियार हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन तीनों हथियारों से मानव मात्र को कुचलती रहती है। इस माया से पिंडा कैसे छूटे? इससे छूटने का सरल सुगम साधन है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। यह हरिनाम का हथियार, ऐसा बलवान और तेज धार का है कि माया को काट कर दूर फेंक देता है। माया इसके पास नहीं आती है। दूर से ही थर थर काँपती रहती है। अगर भूल से आ भी जाती है तो अपना अस्तित्व खो देती है एवं हरिनाम जापक, साधक के साथ संधि कर लेती है और जितना साधक का भला हो सकता है, माया उसकी मदद करने लग जाती है। यह है सात्विक माया। यह भगवान् के पीतवस्त्र की पोशाक पहनकर और खतरनाक लाल वस्त्र को उतार कर नाम जापक के पास आती है। जो हरिनाम के आश्रित नहीं है, लाल वस्त्र पहनकर उनको सताती रहती है। सताने का अर्थ है कि जो भी मानव अच्छे रास्ते से जाता है, उसके रास्ते में काँटे बिखेरती रहती है, जिससे मानव को काँटे चुभते रहने से वह बड़ा दुखी जीवन बिताता रहता है।

अब ऐसा मानव दुखी होकर हरिनाम जापक के पास आकर रो–रो कर पूछता है, "मेरा रोना कैसे बंद हो? कृपा कर बतायें।" तो हरिनाम जापक उसे बोलता है, "तू हरिनाम जप शुरू कर। हरिनाम ही तेरा दुख दूर करेगा।" अतः अब वह हरिनाम करने लगता है तो आलस्य दुश्मन, उस में बाधा (अड़चन) डालता है। हरिनाम करने

बैठता है तो निद्रा उसे परेशान करती है। दुख का निवारण करने हेतु जबरन हरिनाम करने लगता है, तब देखता है कि यह दुश्मन उसे हरिनाम करने नहीं देते तो फिर अपने दुख के साथ हरिनाम जापक के पास आकर, अपनी परेशानियाँ बताता है।

तो हरिनाम जापक उसे कहता है, "शुद्ध कमाई कर, भूख से कम खा, सत्य बोल एवं किसी का भी दोष मत देख, अपराध से बच, जीवमात्र को भी मत दुख दे और हो सके तो जीवमात्र की मदद कर, क्योंकि जीवमात्र भगवान् का ही अंश है। जब ऐसा करेगा तो हरिनाम, जो स्वयं भगवान् है, तुम्हारी मदद करेगा।" ऐसी शिक्षा मानकर वह उपरोक्त के अनुसार जीवन बिताएगा तो उसको दुखों का शमन होते हुए दिखेगा। फिर उसे कुछ–कुछ हरिनाम में श्रद्धा विश्वास होने लगता है, तब फोन द्वारा बोलता है, "अब मेरा हरिनाम अधिक होने लगा है।" तब फोन द्वारा ही हरिनाम प्रेमी उसे बोलता है, "अब एक लाख नाम रोज करने का यत्न कर, चाहे मन लगे चाहे न लगे। नामजप ही उसके दुख के नाश का कारण बनेगा।" अब सत्संग में आने का भी उसका मन करने लगता है। धीरे–धीरे उसका जीवन शुभ कार्यों में झुकता जा रहा है और दुष्कर्म, उससे धीरे–धीरे छूटते जा रहे हैं। यह है हरिनाम की कृपा। अब वह भक्त की श्रेणी में आ जाता है, पहले वह साधारण मानव था। कहते हैं :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k uklfg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"जो सन्मुख होगा, मेरे सम्बन्ध से, मेरी तरफ सम्बन्ध करने लगेगा, मेरी तरफ आने लगेगा तो उसके अनंत कोटि जन्मों के पापों का, एक क्षण में नाश कर दूँगा।" फिर कह रहे हैं :

ftUg dj uke yir tx ekghA
ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

"अरे! जो भी भगवान् का नाम ले रहा है, उसके जो रचे–पचे पाप हैं, जैसे पक्का रंग होता है जो उतरता नहीं है। ऐसे जो रचे–पचे पाप हैं वो सब जलकर भस्म हो जाएंगे।" एक नाम ही भगवान् का इतना प्रभावशाली है कि उतना पाप मानव कर ही नहीं सकता। भगवान् कह रहे हैं :

tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कितने दयानिधि हैं। "जो डर कर के भी मेरी शरण में आ गया, दुख पा कर मेरी तरफ आ गया, वह मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्यारा है।" भगवान् कितने दयालु हैं, लेकिन मानव एकदम सो रहा है। फिर कह रहे हैं, "अरे! तुम कुछ न सोचो। तुम कैसे भी नाम ले लो।"

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

अरे! नाम में मन लगे, चाहे नहीं लगे। कैसे भी लो, सोते–जागते, चलते–फिरते, खाते–पीते। नाम ले लो तो तुम्हारा दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। वैकुण्ठ और गोलोक धाम भी कोई ग्यारहवीं दिशा में तो होते नहीं है। दसों दिशाओं में मंगल का मतलब है कि वैकुण्ठ पहुँच जाओगे, गोलोक धाम पहुँच जाओगे।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा क्योंकि संसार तो दुखालय है। तो सुखालय कहाँ है? गोलोक धाम में है। इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है। दसों दिशाओं में आनंद ही आनंद बन जाएगा।

देखो! एकदम से तो आज तक कोई भी उच्चतम स्थिति प्राप्त नहीं कर सका है। जिसने भी जो कुछ उपलब्ध किया है, नीचे से ऊपर चढ़ा है। एकदम से ऊपर, जिसने भी चढ़ने की कोशिश की है नीचे आकर गिरा है अर्थात् सीधे, ऊपर चढ़ना असंभव ही है। किसी भी पल साधक, खड्डे में बीज बोकर बोले, "इस बीज से मुझे तो अभी

ही फल चाहिए।" तो क्या उसे फल मिल जाएगा? केवल मूर्खता की बात है। गर्भाधान होने पर कोई भी जीव बोलेगा, "मुझे तो अभी बच्चा चाहिए?" तो क्या उसे बच्चा उपलब्ध होगा? समय पर ही, जो कुछ चाहेगा, मिल सकेगा। कोई भी साधन धीरे–धीरे सफल होता है। जल्दी करने से नुकसान हो जाता है। कलियुग में सुख सुविधा उपलब्ध करने का केवल एक ही साधन है कि मन से या बेमन से, किसी भी तरह भगवान् का स्मरण होता रहे। उसके जीवन का सफल होना, केवल हरिनाम जप ही है, अन्य कोई साधन है ही नहीं। यह साधन भी सत्संग से ही उपलब्ध हो सकता है। बिना सत्संग तो कुछ भी नहीं उपलब्ध कर सकते अर्थात् नामनिष्ठ का संग तीव्र गति का साधन है। इसका प्रभाव शीघ्र हो जाता है। कथा श्रवण से देर हो सकती है। लेकिन इस काल में नामनिष्ठ उपलब्ध होना असंभव ही है। हरिकृपा से मिल भी सकता है, जैसी जीव की सुकृति हो। नामनिष्ठ उसी को बोलते हैं जो चौबीस घंटे नाम की ही सेवा में रत हो। जिस जीव को मक्खन मिल जाए तो उसे छाछ, दूध, दही की क्या जरूरत है तथा जिस को शुद्ध चुंबक (पारस) मिल जाए उसे कमाने की क्या जरूरत है? वह तो लोहे को छू–छू कर सोना बना लेगा। अपना जीवन आसानी से बसर कर लेगा। जब उसे हरिनाम रूपी चुंबक या मक्खन मिले तो न तो उसे कहीं जाने की जरूरत है, न मंदिर जाने की जरूरत है, न उसे संत ढूंढने की जरूरत है। उसे तो किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है। वह तो अपना हरिनाम, अष्ट प्रहर जप कर मग्न रहेगा, उसे तो घर बैठे अमृत पीने को उपलब्ध हो गया।

यह जो अमृत बाँटा जा रहा है, किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही बाँटा जा रहा है। अनिरुद्ध दास तो इस को छू भी नहीं सकता, पीना तो बहुत दूर की बात है। यह मैं भक्तों को सच–सच बोल रहा हूँ। भक्तों को गलत बोलना जघन्य अपराध है, इसलिए अपराध से ऐसे ही डरना होता है जैसे कि विषधर सर्प से अथवा बब्बर शेर से होता है। उस जीव का उद्धार तो निश्चित है, क्योंकि यह जन्म मरण और दुख को हटाने वाले श्री चैतन्य महाप्रभुजी के दिये हरिनाम का आश्रय है।

इसमें यदि कोई भी जीव अश्रद्धा करेगा तो वह घोर अपराधी बन जाएगा और दुख सागर में डूब जाएगा।

यह जो बोला जा रहा है, कोई दिव्य शक्ति द्वारा बोला जा रहा है। जो कि, अनंत धर्म शास्त्रों का सार ही है। इससे साधक बड़ी आसानी से अपना जीवन बसर कर सकता है। इस सत्संग की चर्चा सुनने से भगवद् कृपा बरसेगी। बीमारी भी डर की वजह से भाग जाएगी। मैं तो आपके सामने ही बैठा हूँ। क्या मुझे कोई बीमारी है? इसे मेरी बड़ाई न समझें, यह केवल मात्र हरिनाम की ही कृपा का फल है, क्योंकि शक्तिशाली के पास कोई भी रोग आने से डरता है।

रोग है राक्षस और हरिनाम है भगवान्। तो क्या भगवान् से बढ़कर कोई भी अनंत कोटि ब्रह्मांडों में शक्तिशाली है? अतः जो भी हरिनाम की शरण में होगा। वह रोगों से निवृत्त रहेगा। अभी, मैंने, पहले भी बोला था, कि शिमला में एक भक्त थे। जिसको दिल में कैंसर था। उनका कैंसर, हरिनाम करने से खत्म हो गया। अतः जो भी हरिनाम की शरण में होगा, वह रोगों से निवृत्त होगा। मुझे तो बुखार हुए भी 30–40 साल हो गए। कोई भी रोग आने से डरता है क्योंकि हरिनाम शक्तिशाली है। मेरे रोम रोम में रमा हुआ है। मुझ में 20 साल के युवक जैसी ताकत है। रात में 12 बजे जागकर प्रातः 6–7 बजे तक हरिनाम, फिर श्रीमद्भागवत एवं चैतन्य चरितामृत पठन करता रहता हूँ। दिन में भी भक्तों के साथ, धर्मशास्त्र की चर्चा होती रहती है तथा समय मिलने पर धर्मशास्त्र पढ़ता हूँ और केवल हरिनाम करता रहता हूँ। आप भक्तगण ऐसा न समझें कि अनिरुद्ध दास अपनी बड़ाई कर रहा है।

अपनी बड़ाई कौन चाहेगा? जिसको कुछ लेना या पाना होगा। मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं। रागी को कामना होती है, वैरागी को क्या कोई कामना होती है? वह तो निष्काम होता है। मैं सब भक्तों को सतर्क कर रहा हूँ। मैं तो गोलोक धाम का निवासी हूँ। मेरे पास गोलोक धाम का सर्टिफिकेट है। सर्टिफिकेट क्या है? मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के 6–7 चिह्न हैं। क्या यह चिह्न मैंने बना

लिए? दूसरी ओर आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ कि मेरी वजह से किसी को मुझ पर अश्रद्धा होने से अपराध न बन जाए। मुझे तो सबका उद्धार करने हेतु, भगवान् ने गोलोक धाम से यहाँ भेजा है और मेरे प्रति अपराध होने से मेरा जो ध्येय है, पूरा न हो सकेगा। इसकी मुझे तीव्र चिंता है। अपने बारे में, मैं आपको अवगत करा देता हूँ।

मुझे चंद्र सरोवर पर साक्षात् द्वारकाधीश का दर्शन हुआ, अन्य 8–10 भक्तों को भी दर्शन करवा दिया। ऐसा तो हो सकता है कि कोई खुद दर्शन कर सकता है पर दूसरों को दर्शन नहीं करवा सकता, लेकिन मैं अन्यों को दर्शन क्यों करवा सका? क्योंकि मैं भगवान् का डेढ़ साल का पोता हूँ। मैं रूठ जाता हूँ, अतः मेरे रूठने से मेरे बाबा डरते रहते हैं। जो मैं बोलता हूँ, तो बाबा को वैसा करना ही पड़ जाता है। अतः सबको दर्शन हो गया। दूसरी बार, मैं ट्रेन में वृंदावन जा रहा था तो एकादशी की वजह से भगवान् ने स्वयं मुझे रबड़ी खिलाई। हनुमानजी ने दो बार मिलकर मुझे दर्शन दिए। आप सबको भी दर्शन हो सकता है। मैं तो एक साधारण गृहस्थी हूँ। अतः मुझे पहचानना बड़ा मुश्किल है। भगवत्कृपा के बिना मुझे कोई भी पहचान नहीं सकता। यही तो भगवान् की माया है। जैसे कौरवों के घर में 24 घंटे भगवान् कृष्ण रहा करते थे, कौरवों में कोई भी उन्हें पहचान नहीं सका क्योंकि वे, भक्त पांडवों के विरोधी थे। मुझे भी भगवद् कृपा के बिना कोई भी नहीं पहचान सकेगा। मैं सबको सतर्क कर देता हूँ, मेरे चरणों में किसी का अपराध न बन जाए। अतः आज मैंने, भगवद् दिव्य शक्ति द्वारा जैसा मैं हूँ, वैसा सब को अवगत करा दिया है। कोई भी इस चर्चा को स्वप्न–सम न समझे, इसमें सबकी भलाई है।

यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, कोई पीछे से दिव्यशक्ति बोल रही है। मैं तो माइक हूँ माइक। मेरी जीवन चर्या, मैंने इस कारण से वर्णन की है, कि भक्त मेरे ऊपर पूर्ण रूप से श्रद्धा विश्वास करके रहे तो मेरे बाबा (द्वारकाधीश) उन पर कृपा वर्षण करते रहें। उनका मानव

जीवन सफल हो जाये। मेरे बाबा बोलते हैं, "अनिरुद्ध मेरा प्यारा बेटा है, जो इसका प्यारा होगा वह इससे अधिक मेरा प्यारा होगा। यह मैं प्रत्यक्ष घोषणा कर रहा हूँ। मेरे पोते अनिरुद्ध दास की चिंता की तरफ देखकर मुझे अभी से 64 माला करने वाले भक्त का रिजर्वेशन कराना पड़ा। जो मैंने भूतकाल में किसी का, कभी नहीं किया लेकिन मैं पोते की रुसाई से हरदम डरता रहता हूँ। इसलिए मुझे इसकी आज्ञा, आदेश मानना पड़ रहा है। मैं भी मजबूर हूँ क्योंकि इसने मुझे खरीद लिया है। मेरे प्रति इसके प्यार की कोई सीमा नहीं है। अतः मैं इसकी राय बिना कुछ भी नहीं कर सकता। इसकी राय बिना तो मैं किसी को गोलोक में भी वापिस नहीं ले जा सकता। इसकी मर्जी से ही सब कुछ होगा। मेरी मर्जी से कुछ नहीं हो सकेगा। मुझे शास्त्र के विरुद्ध भी, इसकी मर्जी की वजह से यह करना पड़ जाता है। इसकी रुसाई बड़ी खतरनाक है। इसी कारण मैं बेबस हूँ। यह कर दो। वह कर दो। इस कारण से मैं भी परेशान हूँ। यह मुझे चैन से बैठने नहीं देता। क्या करूँ? मुझसे काल और महाकाल थर–थर कांपते हैं लेकिन मैं भक्त से थर थर कांपता रहता हूँ। मेरी योगमाया भी इससे हार जाती है।" मैंने सबको सत्य से अवगत करा दिया है। अतः सोच विचार कर आगे कदम रखो।

देखो! अपराध बहुत खतरनाक होता है। कैसा खतरा होता है? अब ध्यान पूर्वक सुनें!

bæ dfyl ee ly fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA lkèk ækg ikod lk tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी कह रहे हैं कि इंद्र का तो वज्र और मेरा त्रिशूल, यमराज का दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरता, वह साधु को दुख देने से पावक के समान जल जाता है। पावक कैसा होता है? जो लोहे को पानी बना दे। ऐसा पावक और वह उसी समय नहीं मरता। वो तड़प–तड़प कर मरता है। जल–जल कर मरता है। इसलिए इतना खतरनाक है यह अपराध।

tk lkèkq lax b";k djfgA ------ ikod lk tjbA

जो साधु से ईर्ष्या करता है, उसका ही ऐसा हाल होता है। अतः साधु की निंदा करना बहुत ही खतरनाक है। इसलिए बचो। देखो! व्यक्तिगत किसी साधु की निंदा न हो। आजकल साधु पैसे के भक्त हैं, इसमें निंदा नहीं है। आजकल कैसा–कैसा वातावरण चल रहा है। कैसे–कैसे साधु हो रहे हैं और पकड़े भी जा रहे हैं। आपको सबको मालूम है।

देखिए। अपराध कैसा होता है? किसी साधु की व्यक्तिगत निंदा न करें कि अमुक साधु ऐसा है, वैसा है तो अपराध होगा ही, और इस तरह से बोलो कि आजकल सच्चे साधु मिलते ही नहीं। जो मिलते हैं उनकी बुद्धि पैसे की तरफ या अपनी मदद की तरफ होती है। आजकल साधु स्वयं ही शिष्य बटोरने को चलते रहते हैं। कहते हैं, "मेरे शिष्य बन जाओ।" यह शास्त्र के विरुद्ध विचार है। होना चाहिए कि शिष्य बोले, "मुझे आप अपने चरणों का सेवक तथा अपना शिष्य बना लो।" इस विषय पर बोलने से अपराध नहीं होता। अपराध होता है, किसी साधु का नाम लेकर उसको बुरा भला बताना। समय, काल, स्थिति के अनुसार बोलने से अपराध कैसे हो सकता है?

श्रीमद्भागवत के 6वें स्कंध में अंकित है, इंद्र को भगवान् कहते हैं, "यदि मेरा नाम उच्चारण हो जाए तो ब्राह्मण, पिता, गौ माता और आचार्य की हत्या करने वाला, कुत्ते का मांस खाने वाला, चांडाल, कसाई भी शुद्ध हो जाता है। करोड़ों सिद्ध पुरुषों में एकमात्र भगवान् का भक्त मिलना बहुत कठिन है। जो भगवान् के ही आश्रित है।" श्रीमद्भागवत में लिखा है कि वृत्रासुर कह रहा है, "भगवन्! मैं, जहाँ भी जन्म लूँ, वहाँ मुझे आपके भक्तों का संग मिले।"

सच्ची शरणागति का रूप क्या है? अब सुनिए, जैसे बच्चा बहुत ऊधम करता है। कीमती चीजों को तोड़ता फोड़ता रहता है, क्योंकि बच्चे को मालूम नहीं है कि यह कीमती वस्तु है तो बच्चे की माँ उसे मारती है। जब बच्चा रोता है तब बच्चे का पिता तो उसे बाहर ले जाना चाहता है लेकिन बच्चा मार खाकर भी, माँ की गोदी में ही

चिपक जाता है। पिता, बच्चे को प्यार भरा चुंबन देता है, फिर भी बच्चा पूर्ण शरणागत होने की वजह से मार खाकर भी, माँ की ही शरण, उसको अच्छी लगती है। यह है सच्ची शरणागति का असली रूप। इसी प्रकार हर भक्त को भगवान् की शरणागति होनी चाहिए। जब इस प्रकार की शरणागति होगी तो भगवान् उस शरणागत से एक पल भी दूर नहीं रह सकते। ऐसी शरणागति, उसे सुख सागर में डुबो देगी। दुख की तो उसको हवा भी नहीं लगेगी।

भगवद् स्मरण बहुत जरूरी है। स्मरण कैसे होगा? केवल हरिनाम से होगा। केवल हरिनाम से। कहते हैं :

lknj lfeju t: uj djghA Hko ckfjfèk xkin bo rjghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

जो सादर, प्यार से स्मरण करता है, उसका संसार ऐसे चला जाता है जैसे गऊ के खुर को उलांघना। इसमें कितनी सरलता है। छोटा सा खुर होता है, कोई भी उसको उलांघ जाए। फिर कहते हैं :

lfefjv uke :i fcu n[kA vkor ân; lug fcl"kAA

(मानस. बाल. दो. 20 चौ. 6)

हमने भगवान् को देखा तो है नहीं, लेकिन सुमिरिअ नाम... भगवान् का नाम सुमिरन करो। सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे... रूप भी हमने देखा नहीं है, तो आवत हृदय सनेह विशेषे...कैसे आएगा? वह प्यार से हृदय में प्रगट हो जाएगा। भगवान् कृष्ण हृदय में प्रकट हो जाएँगे।

भक्ति सिद्धांत सरस्वतीजी, गौरकिशोर दास बाबाजी के पास कोई 20 बार गए और कहा, "मुझे शिष्य बना लो। मुझे शिष्य बना लो।" लेकिन गौरकिशोर दासजी बोलते हैं, "नहीं बनाऊँगा। नहीं

बनाऊँगा।" लेकिन अंत में जब विचार कर लिया तब उनको दया आ गई तो गौरकिशोर दास बाबाजी ने, केवल एक शिष्य बनाया। ऐसे ही मेरे गुरुदेव ने पूरे राजस्थान में सिर्फ मेरे कुटुंब को ही शिष्य बनाया और किसी को नहीं बनाया। मुझे बना दिया और मेरे बेटों को, जो तब दस–दस साल के थे, एक साथ ही पूर्ण दीक्षा दी। केवल हरिनाम ही नहीं दिया अपितु पूर्ण दीक्षा ही उनको मिली और पूर्ण दीक्षा ही मुझे मिली। गुरु देखता है कि ऐसा शिष्य होना चाहिए कि जो भजन करने वाला है, तो शिष्य ही गुरु को तार देता है।

ij fgr lfjl èke ufg HkkbA ij ihMk le ufg vèkekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अरे! सबका हित करो। हित करो। मैं बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। मैं जो बोल रहा हूँ सच्चाई की वजह से बोल रहा हूँ। हरिनाम में श्रद्धा की वजह से बोल रहा हूँ। मुझे तीस हजार रुपये पेंशन मिलती है। वह सब मैं सभी प्राणियों की सेवा में लगा देता हूँ, लेकिन मैं ठाकुरजी को राजी (खुश) करने के लिए करता हूँ सब कुछ। ऐसा काम इसलिए करता हूँ कि मेरे से भगवान् खुश रहें। भगवान् मेरे कर्म से खुश ही रहें। जैसे गोपियाँ। गोपियों ने भगवान् को खुश रखने के लिए ही पूरा जीवन दिया था। ऐसे ही मेरा भी यही प्रयास है कि भगवान् मेरे से खुश ही रहें। मुझे कोई और परवाह नहीं है लेकिन भगवान् मेरे से खुश रहें।

हम सब भगवान् के प्यारे हैं, चींटी भी, पेड़ भी इसके बेटे हैं, हाथी भी इसके बेटे हैं। इनकी सेवा करने से भगवान् खुश होता है। मैं कहता हूँ जितना मेरे से हो सके, आप जितना भी हो सके, मेरे पास जो कुछ है आप लेते रहो। मैं तो बहुत आनंद में हूँ। आपको देकर मेरे को बड़ी खुशी होती है। इसलिए मैं सबको कह रहा हूँ कि देखो हरिनाम से सब कुछ मिलेगा और कहीं जाने की जरूरत नहीं है। केवल हरिनाम करो। हां! हरिनाम करो और किसी की चर्चा मत करो। निंदा स्तुति मत करो क्योंकि यह तो गुणों का प्रभाव है

सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ही पीछे से व्यक्ति को प्रेरित करते रहते हैं स्वभाव में। उसका क्या दोष है? यह तो माया का प्रकोप है। इसलिए क्यों चर्चा करते हो कि वह अच्छा है, वह बुरा है। यह करने से क्या होगा कि तुम नीचे गिर जाओगे। कुछ भी, किसी का दोष मत देखो। दोष देखोगे, तो खुद में वह दोष आ जाएगा। सब में गुण देखो। गुण देखो, तो तुम्हारे अंदर गुण अपने आप ही आ जाएंगे।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : भौतिक संसार में रहते-रहते कई बार ऐसी स्थितियाँ आ जाती हैं कि उसमें हमें प्रतिक्रिया देनी पड़ती है। प्रतिक्रिया कर बैठते हैं, तो यह हमारी भक्ति में कैसे बाधा बनती है। यह भक्ति के प्रतिकूल तो नहीं है ?

उत्तर : प्रतिक्रिया करो तो ऊपर से करो। किसी का बुरा मत सोचो। प्रतिक्रिया गहराई से मत करो। केवल ऊपर-ऊपर से बोलो। पहले प्रेम से समझाओ उसको कि ऐसा नहीं करना चाहिए। अगर अंदर से करोगे तो उसमें आत्मा दुखी हो जाएगी। आत्मा दुखी हो जाये तो भजन नीचे गिर जाता है। ऐसे तो बड़े-बड़े महात्मा भी क्रोध कर बैठते हैं। क्रोध से शिष्य को बोलते हैं, लेकिन ऊपर से ही बोलते हैं, अंदर से नहीं बोलते। अंदर से बोलने पर आत्मा को टच (स्पर्श) हो जाएगा और भजन गिर जाएगा।

कहते हैं न कि किसी की आत्मा मत सताओ। आत्मा अगर सताई जाती है तो उसका भजन नीचे गिर जाता है। अगर भगवान् को दुखी कर लोगे तो आपको शांति कैसे मिलेगी। गीता में भी कहते हैं कि "मुझे दुःख देते हैं" ऐसे बोलो कि वह शब्द आत्मा तक नहीं पहुँचे। जैसे माँ-बाप बच्चों को ऊपर से डाँटते हैं, अंदर से नहीं डाँटते। ऊपर से डाँटते हैं ताकि गलत काम न करे। ऊपर से डाँटना और अंदर से डाँटने में रात-दिन का अंतर होता है।

चर–अचर में भगवद्दर्शन

17

27 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

प्रथम में हमारे माँ–बाप हैं जिन्होंने हम को जन्म दिया है। उनकी सेवा करना ही भक्ति उपलब्ध करने की प्रथम सीढ़ी है। इसके बाद दूसरे हमारे अमर माँ–बाप हैं राधागोविंद भगवान्। जन्म देने वाले माँ–बाप की सेवा के बाद भगवान् की सेवा करना हमारा विशेष धर्म है, खास कर्म है। तभी हम चिन्मय स्थिति में अर्थात् परमहंस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। यदि जिनके माँ–बाप ने शरीर छोड़ दिया है तो वह उनके लिए दो–दो माला करें। यदि वह नरक भोग रहे हैं या 84 लाख योनियों में कष्ट भुगत रहे हैं तो बेटे के दो–दो माला करने से उनका उद्धार निश्चित रूप से हो जाएगा। इसलिए शास्त्र कहता है कि पुत्र ही माँ–बाप का उद्धार करता है। नाम में वह शक्ति है कि जिसका चिंतन होता है, वहीं पर नाम चला जाता है। नाम नरक में या 84 लाख योनियों में भी चला जाएगा। यमराज भगवान् का ही रूप है। अंतर्यामी है। उस जीव का भी उद्धार कर देगा। यह शत प्रतिशत सच है। निश्चित रूप से माँ–बाप का दुख से पिंडा छूट जाएगा।

मैं तो निमित्त बोल रहा हूँ पीछे से कोई दिव्य शक्ति सब की आँखें खोल रही हैं। हरिनाम स्वयं भगवान् हैं। भगवान् का अर्थात्

नाम का जहाँ भी कहीं भी चिंतन करेंगे, वहाँ नाम प्रकट हो जाएगा। जिसके लिए चिंतन होगा, उसका उद्धार निश्चित रूप से हो जाता है। भगवान् समय नहीं देखते हैं, भगवान् मन का भाव देखते हैं। भाव ही भगवान् को खुश कर देता है। हृदय की व्याकुलता ही भगवान् को द्रवित कर देती है। कैसे होता है यह? यह हरिनाम से होता है। यह हरिनाम जप से होता है। यह सभी स्थिति हरिनाम से ही आएगी। माँ अपने बेटे को शक्ति अर्पण करने हेतु स्तन से दूध पिलाती है, नौ माह तक अपने पेट में रखती है, जब तक शिशु रूप में रहता है, हर प्रकार से उसका ध्यान रखती है। पिता हर प्रकार का खर्च करता है। उसकी मनोकामना पूरी करता है। फिर युवक उसको भूल जाता है। ऐसा साधक तो भगवान् को सपने में भी खुश नहीं कर सकता। भगवान् की भक्ति शुरू होती है, केवल माँ–बाप से।

देखिये, राक्षस और देवता दोनों ही भाई हैं पर आपस में लड़ते रहते हैं। कश्यप जी इन दोनों के पिता हैं। दिति राक्षसों की माँ है, अदिति देवताओं की माँ है। यह दोनों कश्यपजी की पत्नियाँ हैं। दोनों भाइयों में कभी नहीं बनती। सदा ही लड़ते रहते हैं। देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी हैं और राक्षसों के गुरु शुक्राचार्यजी हैं। गुरु नाराज हो गया है यह पता लगते ही देवता, राक्षसों के ऊपर चढ़ाई कर देते हैं क्योंकि गुरु शुक्राचार्य राक्षसों से नाराज हो चुके हैं। अब क्योंकि गुरु का हाथ उनके सिर से हट चुका है तो वे देवताओं से जीत नहीं सकते। अब देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी हैं, अगर वह नाराज हो जाते हैं और राक्षसों को यदि इसका पता पड़ जाता है तो राक्षस, देवताओं पर चढ़ाई कर देते हैं। शुक्राचार्यजी भी मदद करते हैं। भगवान् तो दोनों ओर समान दृष्टि से देखते रहते हैं। उनके लिए दोनों बराबर हैं। जिनका समय अनुकूल रहता है, उधर ही भगवान् उनकी मदद करने चले जाते हैं। जब देवता, इंद्र के साथ ब्रह्माजी के पास जाते हैं, "हमें राक्षस परेशान करते हैं और हमारे शुभ दिन कब आएंगे?" ब्रह्माजी एकांत में जाकर मन की एकाग्रता द्वारा जब

भगवान् की याद तथा स्मरण करते हैं, तो स्मरण करने पर भगवान् हृदय से आकाशवाणी करते हैं, ब्रह्माजी को बताते हैं कि, "अभी देवताओं को लड़ाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनके दिन खराब हैं। जब समय अनुकूल होगा तभी यह राक्षसों को हरा सकेंगे। इसलिए चुपचाप बैठे रहो। यदि ऐसा न करोगे तो देवता, राक्षसों से हार जाएँगे। इतने दिन बाद समय इनके अनुकूल है। इतने दिन के बाद देवता असुरों से जीत सकते हैं।"

ब्रह्माजी एकांत से बाहर आकर इंद्र आदि देवताओं को पूरी बात बता देते हैं और देवता चुपचाप बैठ जाते हैं। शुभ समय का इंतजार करते हैं एवं देवता अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं। अग्नि, वरुण, सूर्य और चंद्रमा धैर्य धारण करके अनुकूल समय का इंतजार करते रहते हैं। इस चर्चा का सारांश क्या है? गुरु ही सब कुछ है। गुरुदेव की सेवा से ही देवता, राक्षस आनंदपूर्वक रह सकते हैं। यदि गुरुजी नाराज हो गए तो दोनों को आफत ही आफत आ जाती है। अब प्रश्न उठता है कि भगवान् से भी गुरु बड़ा कैसे हो गया? भगवान् तो सबसे बड़ा है फिर गुरु भगवान् से भी बड़े कैसे हो जाते हैं? गुरु को भगवान् सिरमौर कैसे महसूस करते हैं? इसका कारण है भगवान् का स्मरण। स्मरण किस विधि से लगातार हो सकता है। स्मरण लगातार होने का एक ही साधन है– केवल हरिनाम। दोनों तरफ (लोक–परलोक) से गुरुदेव भगवद् स्मरण से भगवान् को जीत लेते हैं तभी तो कहते हैं :

x#cãk x#fo".k% x#nok eg'oj%A
x#% lk{kkRij cã rLe Jhxjo ue%AA

(श्रीगुरुगीता प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

इस प्रकार कोई भी जीव अर्थात् मानव भगवान् को हरिनाम द्वारा स्मरण करते रहें तो भगवान् उस से बँध जाते हैं। जिस पर भगवान् की कृपा हो जाती है तो सभी जीवमात्र उस पर कृपा कर देते हैं। कह रहे हैं कि सभी जीवमात्र में आत्मा के रूप में भगवान् सबके हृदय मंदिर में विराजते हैं।

tk ij Ñik jke dh gksbA
rk ij Ñik djfg lc dksbAA

ऐसों को बिच्छू और सर्प भी नहीं खाता। शेर भी उसे प्यार करेगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जयपुर के राजा माधौ सिंह की पटरानी चंद्रलेखा का है। भक्तमाल में भक्त नाभाजी द्वारा उसकी कथा लिखी गई है। उसका वर्णन है कि लगभग 200–250 वर्ष पहले की बात है, उस जमाने में पर्दा प्रथा (सिस्टम) बहुत सख्त थी। रानियाँ महल के बाहर भी नहीं जा सकती थीं। राधागोविंद भगवान् के मंदिर के सामने चंद्र महल है, वहाँ से ही रानियाँ, राधागोविंद का दर्शन किया करती थीं। स्वयं राजा माधौ सिंह ने मंदिर के पीछे, भगवान् हेतु फूलों का बगीचा बनवा रखा था। माली बगीचे की देखभाल करते थे कि भगवान् की सेवा के सिवाय, कोई भी फूल तोड़कर नहीं ले जाये। फूल भी उच्च कोटि के सुगंधित थे। एक बार क्या हुआ कि भगवान् स्वयं जाकर फूल तोड़ कर राधाजी की झोली में डाल रहे थे। माली को चेत हो गया और सोचने लगा, "इस बगीचे में पैरों की छम–छम की आवाज कहाँ से आ रही है?" तो माली उठा और बगीचे में प्रवेश किया। क्या देखता है कि एक सांवला सा लड़का, फूल तोड़कर एक गोरी सी लड़की की झोली में डाल रहा है। माली ने सोचा कि, "अरे! कुछ दिन से मैं भी देख रहा हूँ कि कोई फूल तोड़ कर ले जाता है। लेकिन मालूम नहीं पड़ा। आज पकड़ा गया।" उसको मालूम नहीं था कि यह राधागोविंद हैं। तो उसने शोर मचाया, "चोर! चोर!" राधागोविंद, यह सुनते ही, वहाँ से भागे। माली भी उनके पीछे भागा तो मंदिर का जो पश्चिमी द्वार है, वे उसमें घुसने लगे।

भगवान् तेजी से दौड़ लगाकर अंदर घुसने लगे तो पीताम्बर फट कर माली के हाथ में आ गया। माली की खुशी का कोई छोर नहीं था कि आज उसका जन्म सफल हो गया। राधाजी, तो गोविंद से भी अधिक पहले, फुर्ती से दौड़कर अंदर मंदिर में घुस गईं। प्रातः काल राजा माधौ सिंह मंगला दर्शन करने के लिए आया तो माली ने

राजा से बोला, "महाराज! आज बगीचे में एक फूल तोड़ता चोर पकड़ा गया है। यह चोर का दुपट्टा है, देख लो।" पीताम्बर देखकर राजा देखता ही रह गया, दंग रह गया। राजा पत्थर की तरह बुत हो गया, समाधि सी लग गई। प्रजागण देख रहे हैं कि राजा को क्या हो गया, न तो हिलता है, न तो बोलता है। थोड़ी देर बाद पुजारी बाहर आया और बोला, "मैं ही तो माला बनाता हूँ पर मुझे मालूम नहीं, भगवान् को क्या सूझी जो स्वयं फूल तोड़ने चले गए।" राजा माधौसिंह, माली के चरणों में गिर गया और बोला, "तुझको राधागोविंद ने दर्शन दिया है। मुझ पर भी कृपा करो। मुझे भी भगवान् की कुछ सेवा प्रदान करो।" माली बेचारा चुप, क्योंकि राजा माधौसिंह का प्रभाव इतना अधिक था कि सभी भारत के राजा उससे डरते थे। राजा की बड़ी जोर की धाक थी।

अब दूसरी चर्चा करता हूँ। सख्त पर्दा सिस्टम (प्रथा) होने पर भी राजा की रानी पटरानी, अर्थात् सभी दूसरी रानियों से जो बड़ी होती है, उसे पटरानी कहते हैं, भगवान् की कथा कीर्तन सुनने हेतु साधुओं का संग करती थी। सभी राजाओं को, जो सारे भारतवर्ष के थे, इस रानी की यह बात पसंद नहीं थी। राजा सबका माननीय था। राजा ने अपनी पटरानी को खूब समझाया था कि, "मेरी बदनामी मत करो। यह तुम्हारी आदत ठीक नहीं है। साधुओं को मत बुलाओ। भगवान् का भजन तो एकांत में बैठ कर भी हुआ करता है। तुम्हारे भजन में मैंने कभी रोड़ा नहीं अटकाया है। पूरे हिंदुस्तान में मेरी बदनामी हो रही है।" लेकिन रानी ने एक नहीं सुनी। अब तो राजा की नींद और भूख उड़ गई। न भूख लगती थी, न ही सोता था। क्या करे? क्या न करे? पूरे हिंदुस्तान के राजा, उससे थर्राते थे पर रानी को उसकी कोई परवाह नहीं थी और वह साधुओं को बुला बुलाकर सत्संग करती रहती थी और हमेशा तुलसी माला अपने हाथों में लेकर जपती रहती थी। शरीर पर भी धारण करती थी। हरदम भगवान् का नाम माला पर जपती रहती थी। गले में झोली लटकाए रहती तो राजा को बहुत शर्म आती।

ऐसा देखकर राजा बहुत दुखी रहता था। राजा ने अपने मंत्रियों से परामर्श किया कि क्या करना चाहिए? "क्या है कि रानी तो मानती नहीं है। रात दिन हाथ में माला लेकर घूमा करती है। रिश्तेदार आते हैं, मुझे बड़ी शर्म आती है। क्या उपाय करूँ? माला को एक पल भी दूर नहीं रखती है। मैं क्या करूँ?" मंत्री बोले, "आप सब राजाओं को बुलाओ और मीटिंग (सभा) करो। उनसे राय लेकर इसका कुछ करो।" राजा ने सभी राजाओं को बुलाया और अपना सब संकट उनसे निवेदन किया। सभी राजा बोले, ''महाराज! आपको निवेदन करना हमारे अनुकूल नहीं है। हम तो आपके सेवक हैं। आपकी कृपा से ही हमारा राज्य बना हुआ है। आगे जैसा आप कहिए, हम करने को तैयार हैं।" राजा ने सब समस्या राजाओं को बता दी। वैसे राजा लोग जानते तो थे ही। तो किसी राजा ने कहा, "रानी को जहर दे दो, मर जाएगी।" राजा ने कहा, "इससे तो बड़ी बदनामी होगी।" फिर किसी दूसरे ने कहा, "इससे अच्छा तो उसे बाहर निकाल दो।" किसी ने कहा, "यह भी बदनामी का कारण बन जाएगा।" किसी एक ने कहा, "इसे महल में बंद कर दो।" तो अन्य राजाओं ने कहा, "यह जोर जोर से विलाप करने लगेगी, तो आपका मन अशांत हो जाएगा।" तब एक राजा ने कहा, "जब यह चंद्रमहल के पास भगवान् की पूजा करने जाती है तो वहाँ बादल महल है वहाँ पर एक बब्बर शेर का पिंजरा रख दो। जब वह पूजा करने जाये तो पिंजरे वाले को बोल दो कि वह शेर का पिंजरा खोल दे, शेर इसको खा जाएगा।" यह बात सबको जँच गई कि इसमें हमारी बदनामी नहीं होगी। अतः माधौ सिंह ने बब्बर शेर, जो बड़ा खूंखार था, उसका पिंजरा रखवा दिया। सब राजा बोले, "हम दोनों तरफ दीवारों पर बैठकर देखेंगे कि शेर रानी को कैसे खाता है।" माधौ सिंह राजा ने कहा, "ठीक है। आप सब लोग दोनों दीवारों पर बैठकर देख सकते हो और मैं भी पास में बैठ जाऊँगा।"

रानी को इस षड्यंत्र का मालूम नहीं हुआ। रोज की तरह ही चंद्रमहल से अपनी सखियों के साथ पूजा करने के लिए चल दी। रानी के हाथ में सोने की थाली थी, जिसमें पूजा की सामग्री थी।

राजा लोग दीवारों पर बैठ कर देखने लगे कि क्या होता है। जब रानी रास्ते से जा रही थी, तो पिंजरे वाले ने पिंजरे का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोलते ही बब्बर शेर ने ऐसी दहाड़ मचाई कि धरती हिल गई और उसकी गूंज दसों दिशाओं में फैल गई। जिससे जयपुर की जनता डर गई कि यह डरावनी आवाज कहाँ से आई है? सब मकान के बाहर आ गए कि भूकंप आ गया होगा, कहीं मकान के नीचे दब न जाएं। राजा जो दीवार पर बैठे थे, वह डर की वजह से कांपने लगे और धड़ाम से छत की ओर लुढ़क गए। धीरे–धीरे उठकर दीवार पर बैठे। अब इधर से रानी जा रही थी, उधर से शेर आ रहा था।

शेर आता देख कर रानी की सहेलियां तो डर के मारे भाग गईं और रानी ने देखा तो सोचा कि, "आज तो मैं निहाल हो गई। आज तो मेरे प्राणनाथ नरसिंह भगवान् स्वयं, मेरी पूजा लेने के लिए आ रहे हैं।" रानी डरी नहीं। शेर, रानी के पास आकर बैठ गया। रानी ने शेर को पहले छींटे मार के स्नान कराया। पानी तो था ही, सिर पर थोड़ा डाल दिया। फिर रोली से माथे पर तिलक लगाया, गले में माला डाली और आरती उतारी। शेर बैठा रहा। फिर प्रसाद, शेर के मुख में डाला तो शेर ने अपना मुख खोल दिया। रानी दण्डवत् करने लगी तो शेर ने अपना पंजा रानी के सिर पर रख दिया और आशीर्वाद दिया। रानी खड़ी हुई तो शेर ने इतनी जोर से दहाड़ लगाई कि पृथ्वी हिल गई और राजा लोग दोबारा छत पर गिर गए। शेर जाकर वापिस पिंजरे में घुस गया। यह है हरिनाम का प्रत्यक्ष प्रभाव।

मैं यह हरिनाम का ही प्रभाव बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता। हिंसक पशु भी नहीं खा सकते क्योंकि उनमें भी मेरा प्यारा परमात्मा के रूप में बैठा हुआ है। तो हरिनाम करने वाले का पूरे अखिल ब्रह्मांडों में कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। सभी हिंसक जीव उसके मित्र बन जाते हैं। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सबके सामने है। पूर्ण निष्ठा, विश्वास होना चाहिए।

gj¦ Ñ".k gj¦ Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj¦ gj¦A
gj¦ jke gj¦ jke jke jke gj¦ gj¦AA

अब तो सब राजाओं ने राय की कि यह रानी तो दुर्गा का अवतार है। इसको मत छेड़ो वरना सबके राज्यों का विध्वंस कर देगी। तब से राजा माधौ सिंह ने रानी को आदेश दे दिया कि, "जैसा चाहो, वैसा करो। मैं भी तुम्हारी मदद करता रहूँगा।" अतः जयपुर में राजा लोग भक्त हुए हैं। तभी तो 5–6 ठाकुर जयपुर में आकर विराजते हैं। वृंदावन तक छोड़ कर आ गए राधागोविंद, राधामाधव, राधाविनोद और राधागोपीनाथ। भगवान् कहाँ जाते हैं? जहाँ उनका भक्त होता है, वहीं जाते हैं भगवान्। वहीं वृंदावन बस जाता है। जयपुर को सभी गुप्त वृंदावन कहते हैं।

राधागोविंद की अपने भक्तों के संग लीलाएँ होती रहती हैं। मुझे भी राधागोविंद के चरणों में ही गुरुदेव के दर्शन हुए थे। श्री गुरुदेव ने मुझे और मेरे परिवार को ही दीक्षा देकर शरण में लिया है जबकि गुरुदेव, जयपुर में ही विग्रह हेतु 60–70 बार आए हैं लेकिन किसी को शिष्य नहीं बनाया। बड़े बड़े सेठ उनके पीछे पड़े परंतु गुरुदेव टालते ही रहे। किसी को शिष्य नहीं बनाया क्योंकि सन् 1950 के बाद ही मठों का निर्माण हुआ था। अतः श्रीगुरुदेव जी को गोविंद विग्रह लेने तो आना ही पड़ता था।

जो भक्त निष्कामता से अर्थात् केवल भगवान् की प्रसन्नता के लिए हरिनाम करता है और भगवान् के समस्त जीवों को तन, मन, वचन से प्यार करता है उस पर हरिनाम भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। उसके शरीर में रोग आते हुए ही डरते हैं। रोग कौन हैं? यह राक्षस हैं, माया के साथी हैं, लेकिन हरिनाम के कारण यह डरते रहते हैं कि बलशाली के नजदीक जाएंगे तो हम जल जाएंगे, नष्ट हो जाएंगे। हर प्रकार से ऐसा भक्त तन, मन, आनंद में ओत–प्रोत रहता है। माया उससे दूर रहती है तथा उसकी मदद करती रहती है क्योंकि माया भगवान् के आश्रित होती है और हरिनाम स्वयं भगवान् है। जैसे छोटा

सा बच्चा माँ–बाप के आश्रित रहता है तो आप विचार करिए कि बच्चा तो बेफिक्र होकर मस्ती में घूमता रहता है।

ऐसे भक्त का उद्धार निश्चित ही होगा। समय लग सकता है। लेकिन उसका अच्छा होगा। यह मैं अपनी ओर से नहीं लिख रहा हूँ भगवद् शास्त्र ही बोल रहा है अर्थात् स्वयं भगवान् की वाणी है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि पुत्र ही माँ–बाप को नरकों से बचाता है। इसका उदाहरण है, चित्रकेतु महाराज, जिनका कोई पुत्र नहीं था। चिंता में रहते थे कि पुत्र के बिना उनका उद्धार कैसे होगा। कहते हैं कि यदि माँ–बाप की सौ साल भी सेवा की जाए तो भी माँ–बाप से उऋण नहीं हो सकते। यही हाल गुरु के शिष्य का है जो गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, उसका उद्धार कभी स्वप्न में भी नहीं होगा क्योंकि भगवान् ही गुरु रूप से आकर शिष्य का उद्धार करते हैं। लेकिन गुरु आचरणशील होना चाहिए वरना तो गुरु डूबेगा और शिष्य को भी ले कर डूब जाएगा। शिष्य और गुरु दोनों ही आचरणशील होने चाहिएँ, तब तो निश्चित ही उद्धार होगा।

भगवान् कहते हैं कि, "मैं सत्संग से मिलता हूँ। सत्संग ही मुझे खींच लाता है। सत्संग बहुत बड़ी चीज है।

इसीलिए हमारे चैतन्य महाप्रभुजी ने मुझे आदेश किया है कि तुम प्रवचन किया करो। नाम की महिमा गाया करो। मैं करीबन छह माह से हर शुक्रवार हरिनाम की महिमा कहता हूँ। मैं नहीं बोलता। मैं कैसे बोल सकता हूँ? न तो मैं हैड मास्टर था, न मैं लेक्चरार था क्योंकि उनको तो लिखने–पढ़ने की, बोलने की आदत होती है। मैं तो छोटा सा टेक्निकल इंजीनियर था। टेक्निकल (तकनीकी) को तो लिखना–पढ़ना आता नहीं है न ही बोलना आता है। लेकिन जो कुछ मैं बोलता हूँ, पीछे से कोई दिव्य शक्ति बोलती है। तभी तो "इस जन्म में भगवद् प्राप्ति" की पुस्तकें बनी हैं। मैं नहीं बना सकता था। किसी दिव्य शक्ति ने प्रेरणा करके मुझसे लिखवाई हैं। इसीलिए यह न समझें कि अनिरुद्ध दास ने लिखी हैं। अनिरुद्ध दास तो कुछ नहीं लिख सकता। मैं तो केवल गुरुदेव की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

सत्संग का प्रभाव

18

3 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस
दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें
और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

"हे मेरे प्राणनाथ! कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपके चरणारविन्द?"
"हे मुरलीवदन! हे यशोदानंदन! हे कंसनिसूदन!"
"कोई ठिकाना है नहीं, हे जीवनधन!
सब कुछ किया चरणों में अर्पण, हे मेरे प्राणजीवन!"

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

भगवान्, श्रीमद्भागवत पुराण में कहते हैं कि, "मैं सत्संग से ही मिलता हूँ।" अतः मुझे आदेश दिया है कि सबको सत्संग सुनाओ। भगवान् ने सृष्टि रचना करने हेतु माया को स्वीकार किया। माया दो प्रकार की होती है। एक माया इस संसार में फंसाती है। दूसरी योगमाया को भगवान् अंगीकार करके लीलाओं का प्रादुर्भाव करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहंकार आदि माया के हथियार हैं। जो जीव को संसार सागर में डुबोते रहते हैं जो कि दुखों का घर है। काम, क्रोध – यह दो हथियार तो ऐसे तेज हैं कि बड़े–बड़े महानुभावों को अपने वश में कर लेते हैं। ब्रह्मा, शिवजी भी इनसे बच नहीं सके अन्यों की तो बात ही क्या है। माया के घर हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। सभी जीवों को इसमें फँसा रखा है।

अगर जीव इन तीनों गुणों से दूर हो जाएँ तो भगवान् के दर्शन हो जाएँ। लेकिन यही तीन परदे जीव की आँखों के सामने रहते हैं। भगवान् से नजदीक तो कुछ भी नहीं है, जो आत्मा रूप से इस तन में छिपे हुए हैं लेकिन इन पर्दों से दिखाई नहीं देते। भगवान् गीता में अर्जुन को बोल रहे हैं, "अर्जुन! यह तीन गुण ही भगवान् को मिलने नहीं देते हैं।" भगवान् के मिलने का कलियुग में एक ही साधन है केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। धर्मशास्त्र बोल रहा है :

dfy;x doy uke vèkkjkA lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

नाम को कैसे भी जपा जाए। दसों दिशाओं में मंगल हो जाता है। ऐसा है :

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो गया तो फिर वैकुण्ठ की प्राप्ति तो हो ही गई। दसों दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो होती ही नहीं हैं। उन दसों दिशाओं में गोलोक धाम और वैकुण्ठ धाम आ ही गया। इसलिए, कैसे भी भगवान् का नाम लो। भगवान् अंतर्यामी हैं, समझ लेते हैं, सुनते रहते हैं।

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

कलियुग में केवल और केवल हरिनाम ही, तीन बार बोला है, कोई साधन नहीं है, कोई साधन नहीं है, कोई साधन नहीं है। केवल हरिनाम। इस कलियुग में कोई अन्य रास्ता है ही नहीं। केवल हरिनाम जप ही भगवान् का स्मरण करवाता है। राक्षस भी दुश्मनी से स्मरण करते हैं तो उनका भी उद्धार हो जाता है। स्मरण यानि भगवान् की याद। यह भगवद् प्राप्ति का खास साधन है। इस विषय में बार–बार बोलता हूँ कि बात हृदय में जम जाए। कहते हैं :

Ñr ;qx =srk }kij iwtk e[k v# tkxA
tks xfr gksb lks dfy gfj uke rs ikcfga ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

देखो! सतयुग, त्रेता, द्वापर, इन युगों में पूजा थी, यज्ञ था, योग था। पर कलियुग में कुछ करने की जरूरत नहीं है। केवल हरिनाम ही, केवल हरिनाम जपो। बस कुछ नहीं करना है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

lqfejv uke :i fcuq ns[ksA vkor ân; lusg fcls"ksAA

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

हम ने भगवान् को देखा नहीं है, लेकिन आप नाम को स्मरण करो तो वह प्यार से हृदय में प्रगट हो जाएगा। हमने भगवान् को थोड़ी (नहीं) देखा है लेकिन भजन करते–करते भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। भगवान्, हृदय में धीरे–धीरे प्रकट हो जाते हैं ।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में तो बहुत नियम होते हैं। कलियुग में कोई नियम ही नहीं है। कैसे भी हरिनाम करते रहो। अवहेलना पूर्वक भी हरिनाम करो क्योंकि भगवान् झटपट खुश हो जाते हैं। ऐसा मौका हम सबको भगवान् की कृपा से उपलब्ध हो गया है। कितने भाग्यशाली हैं हम कि हमको, भारत में जन्म दिया है। सत्संग का सहारा दिया है। अनुकूल वातावरण दिया है। खाने पीने को सब कुछ दिया है। भक्ति का सच्चा रास्ता दिया है। सच्चा सत्संग दिया है। फिर भी मानव जन्म को बेकार कर दिया तो कितना बड़ा नुकसान मोल ले लिया। बाद में, अरबों खरबों चतुर्युगी के बाद भी मानव जन्म उपलब्ध हो जाए तो भगवत्कृपा मानो। चतुर्युगी अर्थात् चार युग जिसमें कलियुग

चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का है। द्वापर इससे दुगना रहता है। त्रेता, कलियुग से तिगुना होता है और सतयुग, कलियुग से भी चौगुना। अब बताइए कितना समय लगेगा? इस अवसर को खो दिया तो अपनी आत्मा का हनन कर दिया।

भगवान् को प्राप्त करने का सहज साधन यही है कि हम 94 अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहें। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं और हमारे गुरुवर्ग को मिले हैं। मेरे को भी मिले हैं और मैंने दस अन्यों को भी दर्शन करवा दिए। भगवान् का दर्शन मुझे हुआ और मेरे साथ जो खड़े थे, उनको भी हुआ। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। बाद में इस अवसर को खो दिया तो अपनी आत्मा का हनन हो गया। भगवान् को प्राप्त करने का सहज साधन यही है कि हम 94 अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहें। शास्त्रों में तो केवल दस अपराध ही लिखे हैं जैसे गुरु की अवज्ञा करना, नाम के बल पर पाप करना, धर्म शास्त्रों को न मानना, हरिनाम को सब साधनों से छोटा मानना आदि आदि दस अपराध हैं। परंतु केवल दस अपराध ही नहीं होते। 84 लाख योनियों में भी भगवान्, परमात्मा रूप से विराजते हैं। चींटी में, चिड़िया में, हाथी में, पेड़ में भी भगवान् आत्मा रूप से रहते हैं। इनके प्रति किए अपराधों की तरफ तो कोई नजर ही नहीं करता। इनको जीव सताता रहता है। इनकी तन, मन से सेवा करो।

ij fgr lfjl èke ufg HkkbA
ij ihMk le ufg vèekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे को दुख देने के बराबर कोई पाप नहीं है और दूसरे का हित करने के बराबर कोई धर्म नहीं है।

शिवजी को भगवान् ने आदेश दिया कि, "ऐसा आगम शास्त्र बना लो ताकि जीव इनमें ही फँसता चला जाए। मेरे पास न आ सके। नहीं तो मेरी सृष्टि कैसे चलेगी?"

सभी भक्तों की एक बड़ी समस्या है कि हरिनाम में मन नहीं लगता। क्षण–क्षण में मन भटकता रहता है। मन एकाग्र हुए बिना भगवान् में प्रेम प्रकट नहीं हो सकता। अतः कोई उपाय है? हाँ, बहुत सरल उपाय बता रहा हूँ ध्यान देकर सुनें! बहुत सरल उपाय है, आपका मन रुक जाएगा। कहते हैं जैसा अन्न वैसा मन। एक तो शुद्ध कमाई का पैसा होना चाहिए। जब हम भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद पाते हैं और जब हमारे सामने प्रसाद की थाली आती है। हम प्रसाद पाना आरंभ करते हैं। इस समय हमारा मन इधर–उधर जाता ही रहता है जैसे बाजार में, खेत में तथा और कहीं चला गया। तो खाद्य पदार्थ का जो रस बनेगा, वह तामसिक और राजसिक होगा। उस रस में मन चंचल रहेगा। तो हम को भोजन कैसे करना चाहिए? अब यह मन चंचलता कैसे छोड़ेगा? वह बता रहा हूँ ध्यान देकर सुनें! जब हमारे सामने भगवान् की भोग की थाली आये तो हम उसे नमस्कार करेंगे। फिर मन में विचार करेंगे कि भोग को हम खाएंगे तो हमारा मन सात्विक वृत्ति या निर्गुण वृत्ति का हो जाएगा क्योंकि इस भगवद् भोग को मेरे गुरुजी ने तथा भगवान् ने पाया है। मैं पाऊँगा तो मेरे प्रसाद पाने से खाद्य पदार्थ का जो रस बनेगा, वह सात्विक और निर्गुण वृत्ति का बनेगा। फिर हम हर ग्रास में मन ही मन में हरे कृष्ण महामन्त्र बोलते रहेंगे। जितनी देर हम हरिनाम करते हुए ग्रास खाते रहेंगे तो हमारा मन कहीं नहीं जाएगा। नाम में ही लगा रहेगा और जो रस बनेगा, उससे मन की चंचलता समाप्त हो जाएगी क्योंकि जो रस बनेगा, उससे मन में स्थिरता प्रकट होगी। वह स्थिरता ही भगवान् में प्रेम प्रकट कर देगी। देखिए! जब थाली सामने आए तो दाहिने हाथ में जल लेकर चार बार थाली पर घुमाओ, तो यह प्रसाद की चार परिक्रमा हो गई। महाप्रसाद का आशीर्वाद मिलेगा। यह एक माह तक करना होगा तब मन पर प्रभाव हो सकेगा। मन एकाग्र हो जाएगा। ऐसा हो भी रहा है। मैंने पहले कई बार बताया है, ऐसा भक्त लोग कर भी रहे हैं और उनको बहुत फायदा हुआ है। आजमा कर देख सकते हो। बहुत भक्तों ने अपनाया है और सफलता मिली है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के 6वें स्कंध के 13वें अध्याय में भगवान् कह रहे हैं कि, "हे इंद्र! मेरे नाम से ब्राह्मण, पिता, गौ माता, आचार्य आदि की हत्या करने वाला महापापी, कुत्ते का मांस खाने वाला, चांडाल और कसाई भी शुद्ध हो जाता है। करोड़ों सिद्ध और मुक्त पुरुषों में मेरा नामनिष्ठ मिलना बहुत कठिन है। शांत चित्त वाला संत बहुत कठिन है।"

अपना धन धर्म में लगाओ। इससे धन शुद्ध हो जाता है। यदि धर्म में नहीं लगता तो धन, कुरीतियों में फँसा देता है, गलत आदतों में फंसाता है। धर्म, पुण्य में लगाने से धन बढ़ता है कम नहीं होता। सुपात्र को धन से मदद करने से उससे पुण्य हो जाता है। धन को छह भागों में बांट सकते हैं। धर्म करने के लिए, कर्म करने के लिए, कुछ यश के लिए, धन की वृद्धि के लिए, कुछ भोगों के लिए, कुछ अपने स्वजनों हेतु। जो ऐसा करता है उसे सदा सुख रहता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार जो कुछ मिल जाए, उसमें संतोष करने वाला सदा सुखी रहता है।

tc vko lrk"k èku] lc èku èkfj lekuA

(संत कबीर जी)

शास्त्रों में, श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि मानव ऐसी जगह झूठ बोल सकता है, तो उसे पाप नहीं लगेगा। किसके लिए? स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए झूठ बोल सकते हैं। हास–परिहास –मजाक में झूठ बोल सकते हो। विवाह के योग्य कन्या आदि की प्रशंसा करते वक्त झूठ बोल सकते हैं। अपनी जीविका की रक्षा हेतु झूठ बोल सकते हैं और प्राण संकट में हों, ब्राह्मण के लिए, गौ आदि के लिए, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए आप झूठ बोल सकते हैं। यह असत्य भाषण उतना निन्दनीय नहीं है।

भगवान् बोलते हैं कि, "दुर्वासाजी! नाम का उच्चारण करने से तो नारकीय जीव भी मुक्त हो जाते हैं। अतः माँ–बाप जो नरक में चले गए हैं यदि उनके लिए दो माला जप करें तो, माँ–बाप का उद्धार हो जाएगा। यह श्रीमद्भागवतपुराण बोल रहा है।

कलियुग में नाम का प्रभाव बहुत बड़ा है। इसलिए कलियुग में भगवान् का नाम लो और कैसे भी लो। बिना स्नान किए लो, कहीं बैठ कर लो, कोई पैसा वैसा नहीं लगता।

देखो! पिछले जन्मों के अनंत कोटि सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के स्वभावानुसार ही अगला जन्म, किसी भी चर–अचर प्राणी की योनि में हुआ करता है। जिसे धर्मग्रंथ 'कारण' शरीर कहते हैं। स्वभाव का शरीर भी कहते हैं। सूक्ष्म शरीर ही अगले जन्म का हेतु है। जब साधक का निर्गुण वृत्ति का स्वभाव बन जाता है तो उसका सूक्ष्म शरीर समाप्त हो जाता है। सूक्ष्म शरीर तो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से संग में ही रहता है। निर्गुण वृत्ति का स्वभाव तो परमहंस तथा दिव्य महात्माओं का हुआ करता है। इनको दिव्य शरीर प्राप्त हो जाता है।

संसारी आसक्ति वाले साधकों का स्वभाव गुणों से ही लिप्त रहता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणों से युक्त रहता है। गुणों से ही जन्म होता रहता है। भगवान् के भक्त के संग से ही इन गुणों का अंत हो सकता है क्योंकि भक्त से ही सच्चा ज्ञान उपलब्ध होता है। भक्तों के संग में सदा भगवद् चर्चा होती रहती है। अतः साधक पर भक्त का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है क्योंकि भक्त स्वयं आचरण शील होता है। जो स्वयं आचरण में रहता है उसका प्रभाव चुंबक की तरह से पड़ जाता है। जैसे चुंबक है। अच्छा चुंबक होगा तो जंग लगे लोहे को भी खींच लेगा। संसार में फंसा हुआ साधक शुद्ध आचरण में रंग जाता है। वह भगवान् को उपलब्ध करके आवागमन से, जो कि जघन्य दुख का कारण है, सदा के लिए मुक्ति पा लेता है। सूक्ष्म शरीर के बाद ही दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर पिछले जन्मों के शुभ अशुभ संस्कारों का पुंज होता है। वह केवल मात्र साधु संग से ही हटता है और साधु संग भी भगवत्कृपा से ही मिल सकता है। भगवत्कृपा मानव पर कब होती है? जब मानव हरिनाम नामाभासपूर्वक करने लग जाता है। नामाभास किसे कहते हैं? कि मन बिल्कुल लगता नहीं है। इधर उधर भाग

जाता है। उसको नामाभास कहते हैं। इससे ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। जैसे अग्नि को हम जान कर छुएं या अनजान से छुएं तो उसका स्वभाव है जलाने का, तो वह जलायेगी। इसी तरह हरिनाम का स्वभाव है चाहे जैसे भी करो, बेमन से करो तो भी कल्याण करेगा। उससे संत सेवा बन जाती है। तभी तो शास्त्र घोषणा कर रहे हैं :

Hkko d|Hkko vu[k vkylg|A uke tir exy fnfl nlg|AA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। कैसे भी भगवान् का नाम लो। कलिकाल में भगवद् प्राप्ति का कोई दूसरा साधन है ही नहीं। जिसका अनुष्ठान करने में कोई कठिनाई भी नहीं है। किसी भी समय, कहीं भी बैठ कर और बिना कुछ खर्च किए सुगमता और सरलता से हरिनाम कर सकते हैं। लेकिन मानव माया जाल में इतना फँसा पड़ा है कि हरिनाम जपने में उसका जी घबराता है। कितना अज्ञान, कितनी मूर्खता इस में समाई हुई है। यह दुख को ही सुख मानकर अपना जीवन काट रहा है। इसे यह पता नहीं है कि अब भविष्य में इसे मानव जन्म नहीं मिलेगा। यह दुख सागर में गिर जाएगा। शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ों मानव में कोई एक ही अपना उद्धार करता है। मेरे गुरुदेवजी कितनी कृपा कर रहे हैं और बता रहे हैं कि कितनी सुगमता से मानव, भगवान् के धाम में सदा सुख पाने हेतु जा सकता है। फिर भी मानव गुरुदेव की कृपा की अवहेलना करता जा रहा है।

मानव का अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से गठित है। यह अहंकार ही बंधन का कारण है। इसमें मैं–मेरा भरा पड़ा है। अगर इसका तू–तेरा भाव बन जाए तो इसका सारा दुख ही विलीन हो जाए। इसी कारण मेरे गुरुदेवजी ने सभी साधकों को बोला है कि रात–दिन जो कोई भी कर्म करो तो उसे भगवान् का ही समझ कर करो। भगवान् के निमित्त करो। निष्काम करने से कर्म भोग भोगना नहीं पड़ेगा। सकाम कर्म ही केवल मात्र दुख का कारण है। यह

भाव, केवल हरिनाम जपने से ही आता है, जपते रहने से ही उदय होगा। हरिनाम को छोड़ा नहीं और माया के बंधन में पड़ा नहीं। हरिनाम करने से यह माया दूर रहेगी, अन्य कोई साधन, माया को दूर रखने का नहीं है। त्रिगुण ही जन्म का कारण है – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। मन भगवान् का है जो अंतःकरण का ही हिस्सा है अतः अहंकार भी भगवान् को देना है। इन दोनों को भगवान् को सौंपने से बुद्धि तथा चित्त सुगमता से भगवान् की ओर मुड़ जाएँगे। जब पूरा अंतःकरण ही भगवान् की ओर मुड़ जाएगा, तब शरीर का महत्त्वशील हिस्सा ही भगवान् का बन गया। फिर बचा ही क्या? मानव जन्म का उद्देश्य ही सफल हो गया।

इसमें महत्वपूर्ण चर्चा यह है कि साधक अपने अंतःकरण से, हृदय से, केवल भगवान् को ही उपलब्ध करना चाहे, तभी पूरी सफलता हाथ में आ सकती है, वरना तो श्रम ही हाथ में लगेगा। कुछ भी हाथ में नहीं आएगा।

आजकल कलियुग में दुष्ट स्वभाव के बच्चे क्यों जन्म ले रहे हैं? इसका खास कारण है कि मानव का स्वभाव तामसिक गुणों से भरा पड़ा है। उनको संतान की आवश्यकता तो है नहीं। उसे तो मन की तृप्ति होनी चाहिए। मन ही कामुक स्वभाव का बना हुआ है, फिर जो बच्चा होगा, वह तामसिक स्वभाव का ही होगा। वह माँ–बाप का कहना नहीं मानेगा, खानपान दूषित करेगा, कर्म भी अशांति करने वाला करेगा, पड़ोसी को सताएगा, निर्दयी स्वभाव का होगा, लोभी होगा, माँ–बाप को पैसे हेतु मार भी देगा। ऐसा हो भी रहा है। माँ–बाप शिकायत करते हैं कि हमारा बच्चा हमारा कहना नहीं मानता। बच्चे का क्या दोष है? बच्चे का कोई दोष नहीं है। तुम्हारा ही दोष है। मैं तो यही बताता हूँ कि हरिनाम के आश्रित हो जाओ। हरिनाम ही इसे सुधार सकता है। दूसरा उपाय नहीं है। सत्संग से कौन नहीं सुधरा? पशु–पक्षी तक सत्संग से सुधर जाते हैं।

तो गलती बच्चे की नहीं है, गलती मानव की है। मानव उचित समय नहीं देखते, जब चाहे इंद्रिय तर्पण करते रहते हैं। शास्त्रों की

मर्यादा का उल्लंघन करना और दुख कष्ट मोल लेना अवश्यंभावी है। शास्त्र बोल रहा है कि दिति–कश्यपजी का उदाहरण मौजूद है, जिनकी संतान हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ने जन्म लिया। जो उचित समय नहीं देखता, उसे दुख का भोग भोगना ही पड़ेगा। मेरे गुरुदेव कितनी बार साधकों की आँखें खोलते रहते हैं परंतु फिर भी साधकों की आँखें बंद रहती हैं जो इनका दुर्भाग्य है। धर्मशास्त्र भगवान् के मुखारविंद से, साँस से प्रकट हुआ है जो मानव के सुख के लिए ही बनाए गए हैं। शास्त्र मर्यादा जो तोड़ेगा, वह स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता। अतः –

ck;s cht ccy dk] vke dgk¡ ls gks,AA

(संत कबीर जी)

यह सच्ची कहावत है। बो दिया जौ और चाहेगा चावल। कैसे मिलेगा? सही रास्ते चलो फिर गिरने का डर नहीं है। हनुमानजी क्या कह रहे हैं? जीव को समझा रहे हैं :

dg guqear fcifr çHkq lkbZA
tc ro lqfeju Hktu u gkbZAA

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

जब साधन–भजन छूट जाता है तो विपत्ति आ जाती है और अगर साधन–भजन नहीं छूटता तो विपत्ति दूर खड़ी रह कर डरती रहती है। आती नहीं है। जब हरिनाम स्मरण कम होने लगेगा तो समझना होगा कि मनुष्य को कुछ न कुछ दुख आने वाला है। जब हरिनाम स्मरण अधिक संख्या में होने लगेगा तो समझना होगा कि अब सुख के दिन आने वाले हैं क्योंकि मानव का सम्बन्ध केवल भगवान् से है न कि माया से। जिसका जिससे सम्बन्ध होगा, उसीके संग से आनंदवर्धन हो सकता है और जिसका जिससे सम्बन्ध ही नहीं होगा तो उसके संग से आनंदवर्धन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कबूतर, कभी कौवे के पास जाकर नहीं बैठता। यदि कौवे के पास बैठेगा तो वहाँ उसका मन सुखी नहीं रहेगा क्योंकि स्वभाव में

रात–दिन का अंतर है। कहने का मतलब यही है कि आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। जब आत्मा परमात्मा के पास बैठेगा तो सुखी बन ही जाएगा और जब माया के पास आत्मा बैठेगा तो दुखी रहेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है। संसार में हम सब देखते हैं कि शराबी, शराबी के पास बैठता है। सत्संगी, साधु के पास बैठता है। सुखी कौन है? यह सभी जानते हैं। इसलिए मानव को असली आनंद की उपलब्धि करनी हो तो साधु का संग करो। ग्राम चर्चा से दूर रहो। हरिनाम की शरण में अपना जीवन यापन करते रहो तो दुख कोसों दूर भागेगा। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ रात कैसे आ सकती है? उनकी आपस में कभी बनती नहीं। दुख–सुख आपस में दुश्मन हैं। जहाँ सुख है, वहाँ दुख कैसे आ सकता है और जहाँ दुख है वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह पक्का नियम है। भगवद् नाम की शरणागति उपलब्ध हो जाए तो यह माया का प्रभाव, सत्, रज, तम गुण समाप्त हो जाएँ और निर्गुण वृत्ति अंतःकरण में उदय हो जाए। मन से सच्ची शरणागति होती नहीं है अतः दुख का साम्राज्य छाया रहता है। भगवद् नाम के पास दुख आ ही नहीं सकता।

भगवद् नाम कैसे सिमरन करना चाहिए? इसके लिए गुरुदेव जपने का तरीका बता रहे हैं। जब माला हाथ में आए तथा नाम करना आरंभ हो, तो शरीर में एक तरंग व्याप्त होने लगेगी। इस तरंग में संसार विलीन होता हुआ चला जाएगा। यह है सुचारु रूप से, सत्यरूप से हरिनाम जप। फिर प्रेम उदय होकर विरहावस्था प्रकट हो जाएगी। पतिव्रता का उदाहरण दिया जाता है। उसका सारा कर्म ही पति की सेवा के लिए होता है। इसी प्रकार भक्त का कर्म केवलमात्र अपने इष्टदेव भगवान् के लिए हो, तो अन्य के लिए भक्त को अवकाश ही नहीं होगा। उसका तो सारा समय भगवान् के लिए होगा।

सत्संग प्राप्त होने का लाभ अकथनीय है। शास्त्र बोल रहा है

rkr Lox vicx l[k èkfjv ryk ,d vxA
ry u rkfg ldy fefy tk l[k yo lr lxAA

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

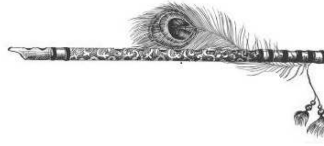
सत्संग से सम्बन्धित एक अलौकिक कथा है। एक पोता अपने दादा अर्थात् बाबा से बोला, "सत्संग का क्या प्रभाव होता है?" तो दादा बोला, "अमुक जगह चला जा। वहाँ बड़ का पेड़ है, उसमें एक कीड़ा रहता है। वह तुझे सत्संग का प्रभाव बताएगा।" सत्संग का मतलब भगवान् का संग। सत् माने भगवान्। वह बतला सकता है। पोता बोला, "आप तो बताते नहीं, फिर कीड़ा कैसे बता सकेगा?" दादा बोला, "वही बताएगा।" पोता सही जगह पर पहुँच गया और बड़ में जो कीड़ा था, उससे पूछने लगा, "कीड़े महाराजजी! सत्संग का क्या प्रभाव होता है?" इतना पूछने पर कीड़ा मर गया। भगवान् की सत् की आवाज कान में चले जाने से उसकी मुक्ति हो गई। पोता बाबा के पास जाकर बोला, "बाबा! मैं कीड़े से पूछने लगा, तो कीड़ा ही मर गया। आप ही क्यों नहीं बता देते?" बाबा बोला, "अमुक जगह पर एक ब्राह्मण की गाय ब्याही है, उसके बछड़ा हुआ है। अभी दो दिन का ही हुआ है। वह सत्संग का प्रभाव बता सकेगा।" पोता पूछता–पूछता वहाँ भी गया और बछड़े से पूछने लगा कि, "सत्संग का प्रभाव कैसा होता है?" इतना पूछते ही बछड़ा भी मर गया। अब तो वह डर गया कि ब्राह्मण उसे मारेगा। बिना बताए वहाँ से खिसक गया। ब्राह्मण उसे जानता नहीं था कि वह कहाँ चला गया। फिर बाबा के पास आकर पूरी घटना बता दी कि वह बछड़ा भी पूछते ही मर गया तो बाबा बोला, "अब की बार अमुक राजा के बीस साल बाद पुत्र हुआ है, वह तुझे सत्संग का प्रभाव बता देगा।" पोता बोला, "आप भी कैसी बातें करते हो। राजा का बेटा भी मर गया तो मुझे फांसी लग जाएगी। मैं तो वहाँ नहीं जाता।" बाबा बोला, "यदि तुझे सत्संग का प्रभाव पूछना हो तो वहाँ जाना पड़ेगा।" पोते को सत्संग का प्रभाव पूछना था। इसे पूछे बिना उसका खाना–पीना, सोना सब हराम हो गया था।

अतः उसने सोचा कि जैसा भगवान् चाहेंगे वैसा करेंगे। मारेगा तो मार देगा और क्या। अब तो वह वहाँ भी पहुँच गया। वहाँ पर पहरेदार थे। अतः उसने साधु का वेश बना लिया। साधु को तो कोई

रोकेगा नहीं। वह पहरेदार से बोला, "मैं राजा के पुत्र से मिलना चाहता हूँ। उसे आशीर्वाद देने आया हूँ कि वह चिरंजीव रहे।" पहरेदारों ने सोचा कि हमारे राजा के बीस साल बाद संतान हुई है और यह साधु है तो इससे बुरा तो हो नहीं सकता। तो इसे जाने देने में भलाई है। पहरेदारों ने कहा, "तुम जा सकते हो।" तो वह महल में गया। साधु वेश देखकर सभी ने निर्णय किया और मिलने की आज्ञा दे दी। बच्चा शैया पर सो रहा था। साधु वेश में पोता डर रहा था कि यदि पूछते ही यह मर गया तो सब उसकी तो मार–मार कर बुरी हालत कर देंगे, बेहोश कर देंगे। लेकिन हिम्मत करके उसने बच्चे से पूछा, "सत्संग का क्या प्रभाव है?" अब तो बच्चा बैठ गया और कहने लगा कि, "अरे! सत्संग की वजह से ही मैं राजा का पुत्र बन गया। देखो! तुमने सत्संग के बारे में पूछा था, तब मैं कीड़ा था। तो मैं कीड़े की योनि से विदा हो गया। दोबारा मैं बछड़ा बना। तुमने पूछा तो मैंने बछड़े की योनि से छुट्टी पा ली। अब मैंने राजा का लड़का होकर जन्म लिया है। यही है सत्संग की करामात, कि मैं इतने बड़े राज्य का मालिक बनूँगा। सत्संग ही सुख का भंडार है। सत्संग बिना सब जीवन बेकार है।" तब पोते ने अपने बाबा से सारी कहानी बता दी तो बाबा भी खुश हो गया। सत्संग से क्या उपलब्ध नहीं होता। सत्संग से ऊँचा कुछ भी नहीं है।

एकाग्रता की भी एक वार्ता है। सारगर्भित बहुत प्रभावशाली भी है और महत्व के लिए भी है। ध्यान से सुनो! एक सुंदरी अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। उसका मन उस तरफ इतना तल्लीन था कि उसको अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। रास्ते में एक मौलवी अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था। इबादत कर रहा था अर्थात् नमाज पढ़ रहा था। वह सुंदरी भागी–भागी जा रही थी। अन्य कोई रास्ता नहीं था, तो मौलवी पर चढ़ गई और शीघ्रता से चली गई। मौलवी ने सोचा कि कैसी अंधी औरत है, उसे वह नहीं दिखा। अंधी है। कामांध की दशा ऐसी ही होती है। मौलवी ने सोचा कि वापस इसी रास्ते से तो आएगी क्योंकि दूसरा रास्ता तो है नहीं। मौलवी

उसकी बाट में बैठा रहा। जब वह सुंदरी वापस आई तो मौलवी बोला, "तू मेरे ऊपर क्यों चढ़ गई? क्या तुझे दिखा नहीं? क्या तू अंधी है?" सुंदरी बोली कि, "जब तू अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था, तो तुझे कैसे महसूस हुआ कि मैं तेरे ऊपर चढ़ गई। तेरी इबादत ढोंग है। तेरा परवरदिगार तुझे क्या देखेगा? ध्यानपूर्वक सुन! मैं अपने प्यारे से मिलने जा रही थी। मेरा मन इतना तल्लीन था कि रास्ते में क्या–क्या है, मेरा उस ओर ध्यान ही नहीं गया और तेरी इबादत सब धूल में मिल गई।" अब तो मौलवी के ज्ञान के नेत्र खुल गए कि सुंदरी बात तो बिल्कुल ठीक कह रही है। उसका इबादत करना फिजूल ही है कि उसका मन तो तल्लीन ही नहीं हो पाया। उसने प्रण किया, "अब मैं तल्लीनता से परवरदिगार की इबादत करूँगा।" मौलवी को एक वेश्या ने ज्ञान–नेत्र दे दिए। कहने का भाव है कि शिक्षा तो निम्न श्रेणी से भी मिल सकती है।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

जैसा अन्न वैसा मन

19

10 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भक्त समझें! ध्यान से श्रवण करें! कोई भी विषय जो गुरुदेव के द्वारा श्रवण कराता हूँ उसका मुख्य उद्देश्य होता है, हरिनाम जप, जो कान से सुनो। कलियुग में केवल भगवद् नाम से भगवत्कृपा उपलब्ध होकर अंत में वैकुण्ठ जाना होता है। कोई भी भगवद् चर्चा बार–बार दोहराई जाती है इसका आशय है कि भक्तों के हृदय में यह बात जम जाए। यदि व्यावहारिक रूप से जीवन में उतर जाए तो श्रवण करने का 100% लाभ उपलब्ध हो जाएगा। भगवान् श्रीमद्भागवत महापुराण में बोल रहे हैं, "मैं केवल सत्संग सुनने से ही उपलब्ध हो सकता हूँ।" लवमात्र का सत्संग भी मन को बदल सकता है, यदि सत्संग सुनाने वाला शुद्ध हो। यह हरिनाम का सत्संग यदि घर बैठे उपलब्ध हो जाए तो समझना होगा कि यह भगवान् की असीम कृपा का फल है, जो घर बैठे सत्संग मिल रहा है। कोई दिव्य शक्ति ही मेरे माध्यम से हरिनाम का सत्संग करवा रही है। चाहे वह किसी संप्रदाय का क्यों न हो, यहाँ तक कि मुसलमानों के कुरान का ही क्यों न हो, सिक्खों के गुरु ग्रंथ साहिब का ही क्यों न हो। हरिनाम के बिना तो कोई संप्रदाय है ही नहीं। सभी संप्रदाय केवल हरिनाम का ही प्रताप बोल रहे हैं। हरिनाम के अभाव में तो कोई धर्म के संप्रदाय अनंत कोटि ब्रह्मांडों में हैं ही नहीं। यहाँ तक कि सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग

में हरिनाम के अलावा कुछ भी नहीं है। अपना नाम तो भगवान् को भी प्यारा लगता है। तो अन्य किसी की तो बात ही क्या है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

देखिए! भगवान् तीन शक्तियाँ धारण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा सृष्टि रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि की रक्षा, पालन करते हैं। महेश सृष्टि का नाश करते हैं अर्थात् मृत्यु के देवता हैं। ग्रह, जैसे मंगल ग्रह, शनि ग्रह, बृहस्पति ग्रह, शुक्र ग्रह आदि महेश के ही परिवार हैं तथा अनंत रोग भी महेश के ही गण हैं।

हमारे पुरखे जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, उनका उद्धार करने हेतु उनके परिवार वाले आसोज (आश्विन) माह में, उनके नाम से श्राद्ध करते हैं। जिस दिन वह गए हैं, उस तिथि को ही श्राद्ध करते हैं। शुद्ध ब्राह्मण को न्योता देकर स्वादिष्ट भोजन करवाते हैं ताकि परिवार के सदस्य, जो मर चुके हैं यदि नरक में दुख पा रहे हैं या 84 लाख योनियाँ भुगत रहे हैं तो इस श्राद्ध से उन्हें सुख प्राप्त हो जाता है। यह तो है निम्न कोटि का कर्म, जो मरे हुए परिवार के सदस्यों के लिए किया जाता है। यह इसलिए किया जाता है कि मरे हुए परिवार के सदस्यों का आशीर्वाद उपलब्ध होता रहे। जैसे किसी की अचानक उन्नति हो जाती है, कभी कभी अचानक से कोई शुभ कर्म हो जाता है, यह सब मरे हुए सदस्यों के आशीर्वाद का प्रतीक है। मरे हुए परिवार के सदस्य का अब सर्वोत्तम भला हो इसके लिए उसके प्रति, जो परिवार का सदस्य वर्तमान में जीवित है, वह यदि मरे हुए के प्रति भगवद् नाम करता है तो उस मरे हुए सदस्य का, जो चाहे नरक में दुख भोग रहा हो चाहे 84 लाख योनियों में दुख भोग रहा हो उसका निश्चित रूप से उद्धार होगा। यदि ऐसा नहीं हो तो फिर तो भगवद् नाम का कोई महत्व ही नहीं है। भगवद् नाम के अलावा अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई भी ऐसा शक्तिशाली नहीं है, जो भगवद् के नाम से अधिक बलवान हो। अन्यथा नाम के बारे में, जो धर्मशास्त्र में लिखा है (शास्त्र जो भगवान् की साँस से प्रकट हुए हैं)

उसका क्या मूल्य होगा? तथा धर्मशास्त्र बेकार हो जाएँगे। अर्थात् भगवान् की भक्ति के मार्ग में वही आगे उन्नत हो सकेगा, जो परिवार का भला चाहेगा, वरना भक्ति कपटमय होगी।

यहाँ शास्त्र के विरुद्ध मन माफिक कुछ नहीं बोला जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। ऐसी–ऐसी चर्चाएँ प्रकट हैं जो धर्म शास्त्र में भी नहीं हैं और प्रत्यक्ष सामने होती जा रही हैं और भक्तगण स्वयं महसूस कर रहे हैं।

जो मानव का भला नहीं कर सकता तो संसार का भला करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। जो एल.के.जी. क्लास में नहीं बैठा वह पी–एच.डी क्लास में कैसे बैठ सकता है? जो भगवद्भक्ति की जड़ में नहीं बैठा, वह पेड़ के स्वादिष्ट फल कैसे खा सकता है? भगवान् ने मानव को जन्म इसी कारण दिया है कि बिछुड़ा हुआ प्राणी, जो दुख सागर में पड़ा दुख पा रहा है, वह इस दुख से छूट कर मेरी सुख सागर गोद में आ जाए। इसका गर्भाशय का दारुण दुख छूट कर यह जन्म मरण से छुट्टी पा जाए। भगवान् तो दयानिधि हैं। सब कुछ करते हैं, इस कारण भगवान् को दयानिधि कहा जाता है। लेकिन माया से जीव मोहित हो जाता है और माया में फँसकर सब कुछ भूल जाता है और फिर से चक्कर ही काटता रहता है। जिसका कोई अंत है ही नहीं। देखो! हमारे चैतन्य महाप्रभुजी श्राद्ध करते थे और अद्वैताचार्य तो श्राद्ध में हरिदास ठाकुर, जो मुसलमान थे, लेकिन तीन लाख नाम रोज करते थे, को स्वादिष्ट भोजन करवाते थे। अतः भक्तों को श्राद्ध करना परम आवश्यक है। बहुत से परिवारों में श्राद्ध करते ही नहीं है। तो क्या वह भक्ति पथ पर अग्रसर हो सकेंगे? केवल कपट पूर्ण भक्ति होगी।

भगवान् का धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है, "जो जीव हरिनाम अर्थात् मेरा नाम उच्चारण करता है उसका मूल सहित दुख जल जाता है और सुख का भंडार भर जाता है।"

ftUg dj uke| yr tx ekghA ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

अरे! जो भगवान् का नाम लेता है, उसके अमंगल की जड़ ही खत्म हो जाती है। यह शास्त्र का वचन जीव के सामने घोषित हो रहा है। अतः अब उदाहरण सहित विचार करने से यह तथ्य हृदय में गहराई से अंकित हो जाएगा। जैसे कोई भी जाने–अनजाने अग्नि में हाथ डालेगा तो अग्नि का स्वभाव है जलाने का। अतः हाथ जल जाएगा। यह तो स्वयं आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं कि यह स्वभाव अग्नि का है। इसी तरह से यदि कोई भी जानकर या अनजान में जहर पी लेगा तो उसका स्वभाव है मारने का, तो वह उसे मार ही देगा। ऐसे ही यदि कोई भी जाने या अनजाने में अमृत पी लेगा तो इसका स्वभाव है अमर करने का, तो उसे अमर कर देगा। इसी प्रकार भगवद् नाम, जान कर लो, अनजाने में लो, किंतु जब मुख से उच्चारण हो जाएगा तो जीव को सुखी कर देगा। शास्त्र बोल रहा है :

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, मन से लो, बेमन से लो और क्रोध से लो, आलस से सोते हुए लो, चलते फिरते लो, खाते पीते लो, तो उससे दसों दिशाओं में उसका मंगल हो जाएगा। ग्यारह दिशा तो होती नहीं है। दस दिशा ही हैं तो दस दिशाओं में वैकुण्ठ भी है और गोलोक धाम भी है। चलते–फिरते, खाते–पीते जैसे भी किसी के मुख से नाम निकल जाए, तो उस जीव को 100% सुख विस्तार कर देगा। वैकुण्ठ व गोलोक धाम, जो सुख के अथाह समुद्र हैं, वह जीव को उपलब्ध हो जाएंगे। इस कलिकाल में कोई विधि विधान या नियम नहीं है। जैसे भी, जिस तरह की अवस्था के जीव, भगवद् नाम उच्चारण कर लें तो उस जीव का उद्धार 100% निश्चित है। न स्नान करने की जरूरत है, न समय देखने की जरूरत है, न अच्छे स्वभाव की जरूरत है। केवल भगवद् नाम की जरूरत है। वैसे संसार में मानव हर क्षण बक–बक करता ही रहता है, जिसका कोई मतलब नहीं होता है। लेकिन भगवद् नाम लेने में मुख पर ताला लगा रहता है। भगवद् नाम नहीं निकलता। क्यों?

fcu gfjÑik feyfg ufg lrk

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

बिना हरि कृपा के जीव को संत नहीं मिल सकते।

देखो! भगवान् स्वयं नहीं आते हैं। अपने प्यारे साधु को ही, सुख पाने का सही रास्ता बताने हेतु उस जीव के पास भेजते हैं, जिस जीव की सुकृति होती है। सुकृति के अभाव में जीव को साधु का दर्शन नहीं हो सकता। बस माया में पड़ा–पड़ा तथा अंधेरे में, अज्ञान में पड़ा–पड़ा जिंदगी भर रोता ही रहता है। इसको कभी शांति का अवसर मिलता ही नहीं है। अंत में 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। मानव जन्म का अवसर मिल जाने पर भी दुख के रास्ते पर अग्रसर होता रहता है। बार–बार परिवार संरक्षित करता रहता है और परिवार को छोड़ता रहता है। नए–नए परिवार बनाता और छोड़ता जाता है। इसका यह रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। बस यही तो भगवद् माया है। इस दुष्कर माया से पिंडा छूटना बहुत मुश्किल है। केवल भगवान् का प्यारा साधु ही, सुकृति होने से, इस जीव का दुख का रास्ता, सुख में बदल सकता है। अन्य कोई भी साधन है ही नहीं।

देखिये! जैसा अन्न होता है वैसा ही मन होता है। अगर शुद्ध कमाई का पैसा होता है तो उसका भगवान् के नाम में मन लगता है। दो नंबर का पैसा होगा तो भगवद् नाम में मन कभी नहीं लगेगा।

तीस–चालीस साल पहले की बात है। एक कृष्ण दास बाबा थे, जो मेरी जान पहचान के थे। परम भक्तों की श्रेणी में गिने जाते थे। कई लोग शास्त्रार्थ करने हेतु उनके पास आया करते थे। हर समय हरिनाम करना तथा अन्य को हरिनाम करने की प्रेरणा देना, उनका सर्वोत्तम कर्म था। वह सदा ही हा–राधा! हा–राधा! हा–कृष्ण! हा–श्यामसुंदर! पुकारा करते थे। दिन में एक बार केवल मात्र दो घरों से मधुकरी लाकर, भगवान् को भोग लगाकर पा लिया करते थे। ऐसे संत थे वो कि न जाने दिन–रात में कितनी बार हा–राधा! हा–राधा! हा–श्यामसुंदर! हा–श्यामसुंदर! पुकारा करते थे और

रोया करते थे। कोई बोलता कि, "आप इतना क्यों रोते हो।" तो कहते कि, "तुमको इससे क्या मतलब है?" जब कोई पीछे ही पड़ जाता तो कहने लगते कि, "यह दोनों (राधा–कृष्ण) मुझे रुलाते रहते हैं।" कोई पूछते, "तो आप उनसे क्यों नहीं बोलते कि तुमको मुझे रुलाने में क्या मजा आता है।" तो बाबा बोलते, "मैं कहता हूँ तो जवाब देते हैं कि हमें भी आपके साथ रोने में मजा आता है। हमको रुलाने वाला कोई मिलता ही नहीं है और बाबा! इस रोने में कितना मजा है। क्या तुमको पता नहीं है?" तो बाबा बोलते, "हाँ! पता तो है।"

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

एक दिन एक वेश्या शाम को उनके पास आई और बोली, "मेरा जीवन तो बेकार हो गया। मैं क्या करूँ बाबा?" बाबा बोले, "मेरे पास बैठकर हरिनाम क्यों नहीं करती हो?" वेश्या बोली, "बाबा! मैं वेश्या हूँ।" बाबा बोले, "तू वेश्या है तो मैं क्या करूँ। यदि तुम्हें अपना जीवन सुधारना है, तो मेरे पास बैठ कर हरिनाम क्यों नहीं करती?" वेश्या बोली, "बाबा तू बदनाम हो जाएगा।" बाबा बोले, "मैं बदनाम हो जाऊँगा तो मेरा क्या बिगड़ेगा। तुझे मेरे साथ बैठकर हरिनाम करना हो तो कर, वरना मेरा माथा मत खा। भाग जा यहाँ से।" वेश्या ने सोचा कि ऐसा संत तो उसने अब तक नहीं देखा, न ही सुना। इसको किसी बात की चिंता ही नहीं है। इस बाबा से उसका कल्याण हो सकता है। अब तो वह रोज रात–दिन बाबा के पास रहकर हरिनाम करने लगी। दुनिया में चर्चा होने लगी कि बाबा इतना सिद्ध था, परंतु माया ने किसी को नहीं छोड़ा। अब तो बाबा के पास किसी का भी आना जाना बंद हो गया। एक दिन बाबा वेश्या से बोला, "तुम्हारे आने से मेरा भजन कितनी तरक्की पर चला गया। लोग आकर मेरा माथा खाते थे, भजन के लिए तो कोई पूछता ही नहीं था। अपना रोना रोकर मुझे सुनाते थे। इससे तो पिंडा छूटा। अब कितने आनंद से हमारा तुम्हारा हरिनाम सुचारु रूप से हो रहा

है।" वेश्या बोली, "हाँ बाबा! अब तो मेरा भी उद्धार निश्चित हो ही जाएगा।" बाबा बोले, "क्यों नहीं होगा? होगा ही।"

तब वेश्या बोली, "मेरे पास लाखों रुपया कमाया हुआ है। आपको देना चाहती हूँ।" बाबा बोला, "ऐसा कभी मत सोचना। देना हो तो भगवान् के मंदिर में चढ़ा आओ।" वेश्या ने पूछा, "क्या गुसाईंजी मेरा पैसा ले लेंगे?" बाबा बोला, "जा कर पूछ लो, क्या कहते हैं?" दूसरे दिन वेश्या मंदिर में गई और गुसाईंजी से प्रार्थना की कि उसके पास बहुत पैसा है, उसे ठाकुर जी के लिए ले लो। गुसाईंजी बोले, "तू वेश्या है तेरा पैसा ठाकुर जी नहीं ले सकते।" फिर क्या था। इतना सुनते ही वह ठाकुरजी के सामने चिल्लाने लगी, "आपने मुझे वेश्या का कर्म सौंपा। मेरा इसमें क्या दोष है? अब मैंने जो कमाई की है आपको लेनी पड़ेगी, नहीं लोगे तो मैं पांच–सात दिनों में तुम्हारे चरणों में प्राण दे दूँगी। बोलो! क्या कहते हो?" गुसाईं भी उसका उलाहना सुनकर हैरान हो रहा था कि यह कैसी वेश्या है? बोली, "गणिका भी वेश्या ही तो थी। उसको आपने कैसे अपनाया? और मैं भी वेश्या ही हूँ। यह भेदभाव क्यों? तुम कैसे भगवान् हो? तुम तो पत्थर के बने बैठे हो। भक्तों को धोखा दे रहे हो।" इस प्रकार वह जोर–जोर से चिल्ला–चिल्ला कर दहाड़ मार कर रोने लगी। तब गुसाईं ने देखा कि ठाकुरजी के गले की माला खिसक कर सिंहासन पर गिरी। गोसाईं समझ गया कि वेश्या की प्रार्थना ठाकुरजी ने सुन ली है। लेकिन विचार करने लगा कि जब ठाकुर, उसे स्वप्न में आदेश देंगे तभी वह उसका पैसा लेगा। उस धन से बार–बार संतों का भंडारा भी कर सकता है। अब तो ठाकुरजी भी फँस गए। यह वेश्या तो प्राण त्याग देगी और अब तो गुसाईं जी को स्वप्न देना ही पड़ेगा। रात में ठाकुरजी ने गुसाईं को स्वप्न दिया कि, "जैसा वेश्या बोले, निसंकोच होकर उसकी बात मान लेना। यह मेरा आदेश है।" अब गुसाईं को चिंता हो गई। वेश्या को बुलाने हेतु पुजारी को भेजा। पुजारी बोला, "मैं वेश्या के दरवाजे पर कैसे जा सकता हूँ? उसका दरवाजा तो बाजार के बीच में है।

बाजार में दोनों ओर सुनारों की दुकानें हैं और वे मेरे रिश्तेदार हैं। वे क्या सोचेंगे?" गुसाईंजी ने बोला, "जब दुकानें बंद हो जाएं तब उसके कमरे पर चले जाना। तुम्हारा जाना तो बहुत जरूरी है।" बेचारा पुजारी, उनके आदेश से मजबूर होकर गया और वेश्या से बोला, "गुसाईंजी ने तुमको बुलाया है। लेकिन गुसाईं के घर पर मत जाना, उन्होंने मना किया है। मंदिर में जाना।" वेश्या बोली, "क्यों बुलाया है? कोई खास काम है?" पुजारी बोला, "ठाकुरजी ने गुसाईंजी को आदेश दिया है।" ऐसा सुनते ही वेश्या जोर जोर से रोने लगी। पुजारी ने कहा, "मेरा क्या हाल होगा। मुझे यहाँ से निकल जाने दो। बाद में जैसा चाहो, रो लेना। मेरी बदनामी कराओगी क्या? तुम अभी चुप रहो।" वेश्या के पास जाने से सभी डर जाते हैं। समाज का भी डर लगता है। आँख मिलाना भी दूभर हो जाता है। वेश्या गुसाईं के पास जाकर बोली, "क्या बात है?" गुसाईं बोला, "तुम्हारा जितना धन है मंदिर में चढ़ा दो। मैं स्वीकार कर लेता हूँ।"

वेश्या के पास लाखों रुपया तथा सामान भी बहुत था। स्वयं का मकान, दुकान भी थी। उसने मकान और दुकान बेचकर सब पैसा भगवान् को सौंप दिया और सिर मुंडवाकर, कृष्णदास बाबा के पास आ कर उनकी चेली बन गई। वैराग्य धारण कर अलग से आश्रम बनाकर भजन में लीन रहने लगी तथा रात–दिन हरिनाम जपती रहती। अब तो उसके पास साधु महात्मा तक आने लगे और सत्संग का परामर्श करने लगे। वेश्या इतनी बदल गई कि नामीगिरामी संत के पथ पर अग्रसर हो गई।

वृद्धावस्था आने पर हरिद्वार में जाकर अपना अंतिम जीवन विरहावस्था में ही बिताया। अंत में भगवान् को प्राप्त हो गई। यह श्री गुरुदेव ने ऐसी मार्मिक वार्ता सुनाकर अंकित करवाई थी। जब गुसाईंजी ने वेश्या के धन से भंडारा करना आरंभ किया और संतगण भंडारा पाने लगे तो उनको रात में बुरे स्वप्न आने लगे, स्वप्नदोष होने लगा। वे गुसाईं जी को आकर पूछने लगे कि, "जो आपने भंडारा किया है वह किसके अन्न का किया है?" गुसाईंजी ने कहा,

"यह वेश्या के अन्न से भंडारा हुआ था।" संतगण आकर ठाकुरजी को उलाहना देने लगे कि, "आपने वेश्या का धन क्यों लिया?" तो ठाकुरजी ने सिद्ध संतों को स्वप्न में कहा, "मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा। वेश्या ने मुझे उलाहना दे दे कर परेशान कर दिया था कि यदि आप मेरा धन नहीं लोगे तो मैं पांच–सात दिनों में तुम्हारे मंदिर में आकर प्राण त्याग दूँगी। अतः मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा।" संत बोले, "आपने धन तो ले लिया, ठीक है परंतु भंडारा करके हमारा धर्म क्यों बिगाड़ा? हमें तो शादी करने का रोग लग गया।"

भगवान् बोले, "मैं तो वेश्या का अन्न पचा सकता था, आप नहीं पचा सकते। आपको तो ऐसे अन्न को सिर से लगाकर और कणी मात्र लेकर सेवन करना चाहिए था। अब तुम सब तीन दिन का उपवास कर लो ताकि वेश्या के अन्न से तुम्हारा आमाशय खाली हो जाए फिर तुमको काम वासना नहीं सताएगी। तुमको तो मधुकरी का अन्न ही खाना उचित है। भंडारे में नहीं जाना ही तुम्हारे लिए ठीक होगा क्योंकि भंडारे में अधिकतर अन्न दूषित ही आता है। वह आप के लिए नुकसानकारक होता है। मधुकरी भी नित्य, एक घर से नहीं मांगना। नित्य नए–नए घर में जाकर भिक्षा करना उचित है। एक ही घर में जाने से भी तुम्हें माया पकड़ लेगी। जाओ भी, तो ऐसे समय में जब घरवाले खा चुके हों क्योंकि कम भोजन होने से कोई न कोई घर वाला भूखा रह जाएगा। इससे वह मधुकरी, अमृत से वंचित रह जाएगी।" मधुकरी सेवन अमृत सेवन ही होती है जिससे भजन में मन लगता है, नहीं तो मन उचाट हो जाता है। अब तो भविष्य में संतों ने भगवान् की शिक्षा ग्रहण कर मधुकरी से अपना जीवन यापन करना आरंभ कर दिया तो भजन में मन लगने लग गया। ठाकुरजी ने जब से भंडारे में जाने से मना किया तब से भंडारे में संतों का जाना बंद हो गया।

देखो! कलिकाल में अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम पर ही आश्रित रहना उचित है। जितने भी हमारे पिछले गुरुवर्ग हुए हैं, सभी रात–दिन हरिनाम किया करते थे।

उनके अनुगत में रहकर ही अपना जीवन यापन करना श्रेयस्कर है। केवल नाम अपराध से बच कर रहना परम आवश्यक है। नाम अपराध होने से भजन में गहरा नुकसान हो जाता है। नाम अपराध स्वयं करने से या अन्य से सुनने से भी हो जाता है। मन में सोचने पर भी नामापराध बन जाता है। भगवान् को सब कुछ सहन हो जाता है लेकिन नाम अपराध सहन नहीं होता। यद्यपि वह ब्रह्मा, शंकर ही क्यों न हों उनको भी दंड का भागी होना पड़ेगा। जिसने आज ही गुरुदेव से हरिनाम लिया है उस साधक का भी अपराध बन जाता है क्योंकि गुरुदेवजी ने नए साधक का हाथ ठाकुरजी के हाथ में सौंप दिया है अतः वह साधक अब ठाकुरजी का हो गया। माया के चंगुल से वह साधक छूट गया। ब्रह्मा का जन्म समाप्त हो गया और उस जीव का जिस दिन श्री गुरुदेव से हरिनाम हुआ, उसी दिन से उसका नया जन्म होता है। ऐसा धर्म शास्त्र का वचन है।

एक आश्चर्यजनक घटना है। ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक बुड्ढा व्यक्ति था। उसके पाँच पुत्र थे तथा पाँच बहुएँ थीं। बुड्ढे की पत्नी का स्वर्गवास हो गया था अतः वह बूढ़ा घर में बहुत परेशान होता था। उस बुड्ढे को पुत्र तथा पुत्रों की बहुएँ बहुत परेशान करती थीं। गालियाँ देती थीं, कहती थीं कि, "बुड्ढे! तुझे शर्म नहीं आती, चाहे जहाँ थूक देता है, मूत देता है, खे–खे करता रहता है, हमें सोने भी नहीं देता है, तू मर जाये तो इस घर का सुखी दिन आ जाए।" कई बार बोलने पर ही उसे खाने को देती और कभी भूखा ही रह जाता बेचारा। पानी के लिए बोले तो झिड़क दें बोलें, "मरता ही नहीं है हमें परेशान करता रहता है। तू यहाँ से निकल जा। हमें मुँह मत दिखा।" पहनने का कपड़ा भी फटा पुराना समाज के भय की वजह से देना पड़ता। एक दिन बुड्ढा बहुत परेशान होकर रात में ही घर से निकल गया। एक साधु के आश्रम में पहुँचा। अपनी सब परेशानी साधु को बताई कि वह घरवालों से परेशान है, तो साधु बोला, "घरवाले तेरे अनुकूल नहीं होने का कारण, उनके पूर्व जन्म के संस्कार हैं और तेरे भी पूर्व जन्म के संस्कार हैं। यह दर्पण ले जा। इस दर्पण से पूर्व जन्म में कौन किस योनि में था, मालूम हो जाएगा।

अतः तू एक बार अपने घर पर जाकर देख कि तेरा परिवार पिछले जन्म में किस योनि में था और तू किस योनि में था?" उसने वहीं पर साधु से दर्पण लेकर अपने को देखा तो देखता है कि वह पिछले जन्म में हिरण था। तो साधु बोला, "तू अपने परिवार को देखना, वे पिछले जन्म में कुत्ते होंगे। वह आपस में लड़ते होंगे और कुत्ते और हिरण की आपस में दुश्मनी रहती है। कुत्ते हिरण के पीछे पड़े रहते हैं।" वह बोला, "महात्माजी! वे दिन–रात आपस में लड़ते ही रहते हैं।

साधु बोला, "तो तेरा उनसे मेल कैसे खा सकता है? हिरण के पीछे कुत्ते तो स्वाभाविक ही भोंकते रहते हैं। अतः तेरी उनसे कभी नहीं बन सकती। तू एक बार घर पर जाकर इस दर्पण से जाँच कर ले फिर मेरे पास आ जा।" बुड्ढा घर पर गया तो सब उसे देखते ही मिलकर पीटने को तैयार हो गए। बोले, "गया हुआ वापस क्यों आया तू?" उसने दूर से ही दर्पण में देखा तो सारा परिवार कुत्ते–कुतिया ही नजर आये। अब तो वह अपनी जान बचाकर साधु के पास आया और आकर सारा हाल बता दिया। साधु ने कहा, "अब तू कहीं भी जा सकता है क्योंकि मैं तो किसी को अपने पास रखता नहीं हूँ।" बुड्ढा भूखा–प्यासा किसी गाँव से गुजर रहा था और एक घर पर जाकर पीने को पानी माँगा। दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। बुढ़िया बोली कि, "बाबा तुझे क्या चाहिए?" बुड्ढा बोला, "मैं प्यासा हूँ, थोड़ा पानी पिला सकती हो?" बुढ़िया ने कहा, "हाँ, क्यों नहीं, पानी पियो और कुछ खा भी लो।" बुढ़िया का परिवार भी बड़ा था। बेटे, पोते, बेटों की बहुएँ और बूढ़ी का पति भी मौजूद था। इतने में बूढ़ी का पति बाहर आया और बुड्ढे से पूछने लगा, "तू कहाँ का है? कहाँ जा रहा है?" बुड्ढे ने अपनी स्वयं बीती बता दी कि वह तो परिवार से बहुत परेशान है। बूढ़ी का पति बोला, "यार, तुम हमारे घर पर ही रहो। कुछ करना नहीं है। मौज से खाओ, पियो और हमें अच्छी–अच्छी शिक्षा दो क्योंकि तुम ने संसार को देखा है। हम भी तुम्हारी शिक्षा लेकर खुश रहेंगे।" बाबा तो चाहता ही था कि कहीं आसरा मिल जाए तो आगे का जीवन खुशी से बसर हो जाए। अतः हाँ कर दिया

कि वह उनके घर में रह जाएगा। बूढ़ी के पति ने बोला, "खुशी से रहो।" अब बाबा ने सोचा कि साधु ने जो दर्पण दिया है, उससे देखता हूँ कि ये परिवार वाले पिछले जन्म में किस योनि में थे। तो बाबा ने दर्पण से देखा कि पूरा परिवार ही हिरण–हिरणी है। वह सब हिरण–हिरणी की योनि में थे। अतः बाबा ने सोचा कि वह भी पिछले जन्म में हिरण ही था इसलिए यहाँ उसका गुजारा हो जाएगा।

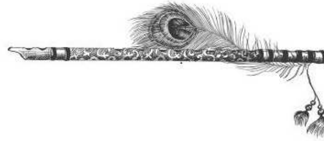
यही है संसार में माया का तीर। आपस में परिवार में क्यों नहीं बनती है। न जाने किस–किस योनि से आपस में जीव इकट्ठे हो जाते हैं। एक जाति न होने से आपस में बनने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए संसार दुखालय कहलाता है।

पशु, पक्षियों का भी एक साथ निर्वाह नहीं होता। कोई शरीफ होता है और कोई बदमाश होता है। ऐसा हम देखते हैं। इसलिए जन्मों के स्वभाव बदलते नहीं हैं। स्वभाव केवल भगवद् नाम के सत्संग से ही बदल सकता है। इसका अन्य कोई साधन नहीं है। केवल हरिनाम। जब तक माया के तीन गुण– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण पिछले संस्कार वश मौजूद रहेंगे, तब तक वह सूक्ष्म शरीर, जो इंद्रियों का पुंज है, मौजूद रहेगा। यही कर्मानुसार अगला जन्म करवाता रहेगा।

जब हरिनाम करते–करते यह गुण समाप्त हो जाएगा। निर्गुण वृत्ति अंतःकरण में जागृत हो जाएगी तथा सूक्ष्म शरीर की जगह दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जाएगा, तब इसके संग में प्रेमावस्था, विरहावस्था अंतःकरण के भाव में प्रगट हो जाएगी। यही क्रम है भगवत्प्राप्ति का तथा आवागमन हटने का। आवागमन ही जघन्य दुख का कारण बनता है लेकिन यह क्रम फलीभूत केवल सच्चे साधु के संग से ही होगा। साधु संग के अभाव में यह क्रम होगा ही नहीं। साधु की सेवा इसमें सम्मिलित है। साधु की सेवा से ही साधु की प्रशंसा प्राप्त कर साधक पर कृपा होगी। सेवा के अभाव में साधु के संग से भी कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। माया का प्रभाव ब्रह्मलोक तथा शिवलोक तक भी है। ब्रह्मा, श्री कृष्ण के बछड़े और ग्वालबाल

चुरा कर ले गया तथा अपनी पुत्री के पीछे–पीछे दौड़ पड़ा। इसी प्रकार शिवजी मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े थे। यदि ब्रह्मलोक और शिवलोक में माया नहीं होती तो यह अवगुण वहाँ कैसे आ सकते थे। माया केवल गोलोक और वैकुण्ठ लोक में नहीं है। वहाँ भगवान् का ही आधिपत्य है। वहाँ सुख ही सुख है। वहाँ जाकर साधक संसार में वापस नहीं आता है।

सम्बन्ध ज्ञान की वजह से, जिसको सम्बन्ध ज्ञान नहीं मिला, उसे वैकुण्ठ से वापिस आना पड़ जाता है। उसको भगवान्, किसी उच्च स्थिति वाले भक्त के घर में जन्म देते हैं। वहाँ वह आरंभ से ही यानि बचपन से ही मन से भजन करके सम्बन्ध ज्ञान उपलब्ध कर लेता है। तब उसे भगवान्, भगवद् गोलोक की प्राप्ति करवा देते हैं। वहाँ से साधक वापस नहीं आता है। तभी आता है जब भगवान् स्वयं धरातल पर अवतरित होते हैं। उनके संग लीला वर्धन करने हेतु सम्बन्ध ज्ञान वाला साधक धरातल पर अवतरित होता है और साधारण साधक इन लीलाओं का स्मरण करके भक्ति में उन्नत होता रहता है। कलियुग में हरिनाम स्मरण के अलावा दूसरा कोई साधन है ही नहीं। इस साधन से ही साधक गोलोक धाम पहुँच जाता है।



गुरु महिमा

20

17 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भगवद्कथा करो! वही स्वरूप सर्वोत्तम है। वह चर्चा सुनो, जिससे संसार का लगाव और आसक्ति, शत प्रतिशत निर्मूल हो जाए एवं बिछुड़ा हुआ जीव फिर से भगवान् की गोद में चला जाए। यह अवस्था ही परमहंस अवस्था कहलाती है। इसे तुरीय अवस्था भी बोला जाता है। यह अवस्था कब उदय होती है? जब जीव का मन 100% संसार से हट जाए। यह अवस्था, तब ही उदय होती है जब मन परमानंद चिंतन में डूब जाता है। इस अवस्था से प्राणी को चिन्मय शरीर उपलब्ध हो जाता है। सूक्ष्म शरीर, जिसमें अनंत जन्मों के संस्कार भरे रहते हैं, पुंज होते हैं, संस्कारों का स्टोर होता है, मूल सहित खत्म हो जाते हैं। तभी इसका जन्म–मरण के दारुण दुखों से पिंडा छूट जाता है तथा वैकुण्ठ या गोलोक धाम में पहुँच जाता है। इसका भगवान् से ही नाता जुड़ जाता है और जड़ सहित दुख का नाश हो जाता है। यह संसार क्या है? दुखालय है। दुख सागर है। धनवान भी दुखी और गरीब भी दुखी है। दुखी क्यों है? दुखी इस कारण से है कि मानव अपने अमर माँ–बाप, जो भगवान् हैं, उनसे बचपन में बिछुड़ गया है। जो माँ–बाप से बिछुड़ जाता है क्या वह कभी सुखी रह सकेगा? उसको कोई भी साथ में नहीं बैठने देगा। विचार करेगा कि न मालूम यह कैसा आदमी है? चोर है? डकैत है?

दुष्ट स्वभाव का है? बातचीत करने से मुँह मोड़ लेगा। न इसे सोने की ठौर मिलेगी न खाने की व्यवस्था रहेगी। न कोई इज्जत करेगा तथा सभी तरफ से संसार से दुखी रहेगा। जो अपने अमर माँ–बाप से बिछुड़ा नहीं है, वह माँ–बाप की संपत्ति का मालिक बन जाएगा। सभी इसकी इज्जत करेंगे। अतः हर प्रकार से सुखी रहेगा। माँ–बाप इसके रक्षक, पालक रहेंगे तो यह बेफिक्र होकर अपना जीवन बसर करता रहेगा। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब इसको हस्तगत हो जाएँगे।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भक्त प्रह्लाद है, जो पाँच साल का ही था। उस पर कोई आंच नहीं आई क्योंकि उसकी रक्षा स्वयं भगवान् कर रहे थे। उसको मारने में उसके पिता हिरण्यकशिपु ने कोई कसर नहीं छोड़ी परंतु अंत में स्वयं ही मारा गया। हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु पूर्व जन्म में भगवान् के यहाँ जय एवं विजय नामक द्वारपाल थे। सनकादिकों को अंदर जाने से रोकने से इन्हें श्राप मिल गया। अतः ये तीन जन्म तक राक्षस हो गए। द्वारपाल होते हुए भी उनकी राक्षस प्रवृत्ति प्रकट हो गई।

एक जन्म में तो हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए, दूसरे जन्म में रावण और कुंभकरण हुए, तीसरे जन्म में शिशुपाल और दंतवक्र। बाद में श्राप भोग कर वापिस अपने स्थान पर आकर भगवान् के द्वारपाल बन गए। यह सब भगवद् प्रेरणा से ही, लीला रचने हेतु हुआ। भगवान् ही प्रेरणा देकर, लीला की इच्छा हेतु, किसी भक्त से श्राप दिला देते हैं। लीला किये बिना भगवान् का मन नहीं लगता है। उनको लीला करने की आदत है। तो भगवान् की प्रेरणा के बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिलता।

भगवद् माया के तीन स्वभाव होते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। त्रिगुणी माया के बिना तो भगवद् सृष्टि चल ही नहीं सकती। दूसरी है योगमाया, जिसको भगवान् स्वयं अपनाकर संसार में अनंत लीलाएँ करते रहते हैं। इन लीलाओं को याद कर, स्मरण कर मानव अपना जन्म सफल कर लेता है। भगवान् से बिछुड़ा हुआ प्राणी भगवान् की गोद में चला जाता है। यह त्रिगुणमयी माया इतनी

दुष्कर है कि इस को जीतना बहुत मुश्किल है। यह माया कब जीती जा सकती है? जब मानव भगवद् नाम को अपनाता है तो भगवद् नाम से जीव का स्वभाव बदल कर सभी गुण उसके हृदय में आकर जम जाते हैं और दुर्गुण हृदय से दूर हो जाते हैं। तब ही तो हमारा धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है :

dfy;x doy uke vèkkjkA lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

कलियुग में केवल नाम है। नाम के अलावा कुछ भी नहीं है। केवल नाम। मानव को जगा रहे हैं :

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

इस कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार बोल दिया। मोहर लगा दी। तीन बार बोला कि कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कलियुग में दूसरा कोई रास्ता नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में जो भक्ति की जाती है, वह केवल हरिनाम से ही अब यहाँ मिल जाएगी। मानव इसको प्राप्त कर अपना उद्धार कर सकता है। दुखों से अपना पिंडा छुड़ा सकता है। गर्भाशय से लेकर मरण अवस्था तक दुख ही दुख भोग करता रहता है लेकिन इसको कोई सुख का रास्ता बताने वाला नहीं मिलता है। जब किसी मानव की सुकृति, किसी साधु के संग से बन जाती है तो दयानिधि भगवान् उसके पास सच्चा साधु भेज देते हैं। भगवान् स्वयं ही साधु के रूप में आकर उसे अपनाते हैं। सुख पाने का अन्य कोई रास्ता अनंतकोटि ब्रह्मांडों में नहीं है। भगवान् बोलते हैं कि, "मानव, तुम कैसे भी मेरा नाम लो। मैं तुम्हें इस दुष्कर माया से छुड़ा दूँगा।" भगवान् बोलते हैं :

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

"तो मन से लो, बेमन से लो, सोते लो, चलते–फिरते लो कैसे भी लो, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दसों दिशाओं में तो वैकुण्ठ भी है, गोलोक धाम भी है। मेरा नाम ही ऐसा प्रभावशाली है कि जो भी किसी प्रकार से मेरा नाम जपता है उसके अनंत जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं।" भगवान् बोलते हैं :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k uklfg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"करोड़ों जन्मों के पाप भस्म हो जाएँगे। सन्मुख का मतलब है कि अभी संसार की तरफ मुड़ा हुआ है, मेरी तरफ आ जाए। संसार में जो झुकावट है वो झुकावट मेरी तरफ हो जाये। बस, फिर उसका कल्याण हो गया। सन्मुख का मतलब है जब तू मेरा नाम लेगा तो तेरे अनंत जन्मों के पाप उसी समय जलाकर भस्म कर दूँगा।" फिर भगवान् बोल रहे हैं :

tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो दुखी होकर मेरे नाम की शरण में आ जाता है तो मैं उसे प्राणों से भी प्यारा रखता हूँ।"

नाम तो भगवान् को बहुत प्यारा लगता है। कहते हैं :

gfj l cMk gfj dk uke] vr e fudyk ;g ifj.kkeA
gfj u rkj Hkä egku vkj uke u rkj vur tgkuAA

कोई भी भगवान् का नाम उच्चारण करता है तो भगवान् उसी समय प्रकट हो जाते हैं। लेकिन मानव को भगवान् दिखाई नहीं देते। इसका कारण है कि माया के सत, रज, तम के यह तीन परदे भगवान् के और मानव के बीच में लगे रहते हैं। जब मानव

भगवान् का हरिनाम लगातार करता रहता है तो यह माया के तीनों पर्दे आँखों के सामने से हट जाते हैं और भगवान् दिख जाते हैं। यह सब शास्त्र की वाणी है। मैं अपने मन से नहीं बोल रहा हूँ। यह श्रीमद्भागवत महापुराण में है। माया के अँधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता। जब माया दूर हो जाती है तब उजाला होने से सब कुछ दिखने लगता है।

भगवान्, मानव को कितनी सरलता से मिल सकते हैं। फिर भी मानव की आँखें खुलती नहीं हैं।

fcclg| tkl|uke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

कोई जबरदस्ती भी अगर किसी से नाम उच्चारण करवा दे, जबरदस्ती भी भगवान् का नाम किसी के मुख से निकल जाए तो उसके लिए कह रहे हैं कि उसके गहरे रचे–पचे पाप, जो अनेक जन्मों से गहरे जमें हुए हैं, भगवान् बोलते हैं कि, "मैं उन पापों को जलाकर भस्म कर देता हूँ।"

myVk uke| tir tx| tkuk] ckyehfd Hk;| cã lekukA

(मानस, अयोध्या. दो. 193 चौ. 4)

वाल्मीकि तो घोर पापी था। वह तो जंगल में भोले भाले जानवरों को मारकर अपने परिवार को खिलाता रहता था। वह भी राम नाम को उल्टा जप कर त्रिकालदर्शी बन गया। रामजी का अवतार तो हजारों साल बाद में हुआ था। वाल्मीकि ने रामायण पहले ही रच दी थी कि भगवान् ऐसी ऐसी लीलाएँ करेंगे। सीताजी को राम ने वनवास दे दिया तो सीताजी वाल्मीकि आश्रम में ही रही थीं। लव–कुश वहीं पर जन्मे क्योंकि वनवास के समय सीता को गर्भ था। भगवान् ने जगत् की बातें सुनकर सीता को वनवास दिया था। वहीं पर लव–कुश ने शस्त्र चलाना सीखा। राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। इस यज्ञ को करने पर पूरे संसार को जीतना पड़ता है। अतः घोड़े को चारों ओर जाने को छोड़ा जाता है। यह

नियम है कि यदि कोई घोड़े को पकड़ लेगा तो उसे युद्ध करना पड़ता है। जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम की तरफ गया तो दोनों बच्चे, लव–कुश, धनुष विद्या सीख रहे थे। घोड़े को देखकर उन्होंने उसे पेड़ से बांध दिया। जब घोड़ा अयोध्या नहीं पहुँचा तो राम ने गुरु वशिष्ठजी से इस बारे में सलाह ली। राम ने कहा, "घोड़ा अभी तक आया नहीं।" वशिष्ठजी ने कहा, "घोड़े को छुड़ाना होगा, लगता है कि किसी ने पकड़ लिया है। हनुमानजी को भेजो। तलाश करें कि घोड़ा किसने पकड़ा है।" तो हनुमानजी ने देखा कि घोड़ा तो वाल्मीकि आश्रम में बँधा पड़ा है। लव–कुश बाण विद्या सीख रहे थे तो हनुमान जी ने लव कुश को बोला, "यह घोड़ा तुम्हारे पिताजी का है। इसे छोड़ दो। मैं ले जाऊँगा।" तो लव–कुश ने बोला, "हम क्षत्रिय हैं। युद्ध किए बिना हम घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" जब हनुमानजी ने जबरदस्ती की तो दोनों भाइयों ने हनुमानजी को भी पेड़ से बाँध दिया।

अब बहुत देर हो गई। रामजी, गुरु वशिष्ठ को बोले, "घोड़ा अब तक नहीं आया।" फिर बारी–बारी से लक्ष्मण को, भरत को, शत्रुघ्न को भेजा। फिर भी घोड़ा नहीं आया क्योंकि, उन्होंने लव–कुश पर बाण चलाए लेकिन बाण लव–कुश को लगते नहीं थे, वह वापिस जा कर चलाने वाले को ही लग जाते थे। अतः सब घायल हो गए। गुरु वाल्मीकि ने उनको गुरु कवच पहना रखा था। गुरु कवच को कोई तोड़ नहीं सकता। नारायण कवच टूट सकता है, विष्णु कवच टूट सकता है, राम कवच टूट सकता है, लेकिन गुरु कवच कभी भी टूट नहीं सकता। तो फिर वशिष्ठजी ने कहा, "राम तुम स्वयं ही जाओ। अब तक कोई वापिस नहीं आया है। क्या बात है? अब तुम स्वयं जाकर देखो।" जब रामजी गए तो देखा कि सभी वहाँ बँधे पड़े थे। राम ने कहा, "मैं तुम्हारा पिता हूँ।" दोनों भाइयों ने कहा, "देखिए! हम क्षत्रिय हैं, हमारा धर्म है कि कोई भी हो, युद्ध के बिना घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" तो युद्ध शुरू हुआ। राम ने तीर चलाना शुरु किया और उधर से लव–कुश ने भी तीर चलाना शुरु किया तो वह तीर कवच

की वजह से लव–कुश को तो लगता नहीं था और वापिस जाकर रामजी को लगता। लव–कुश को गुरु ने गुरुकवच पहना रखा था। राम ने वाल्मीकिजी से प्रार्थना की तो वाल्मीकिजी दोनों भाइयों को बोले, "अब तुम्हारी जीत हो गई। अब मेरे कहने से घोड़ा छोड़ दो।" तब लव–कुश ने घोड़ा छोड़ दिया। तब सब लोग जो घोड़ा छुड़ाने गए थे, रामजी के साथ अयोध्या वापिस चले गए और वशिष्ठजी ने अश्वमेध यज्ञ पूरा किया। इसमें श्री गुरुदेव की महिमा बताई गई है। भगवान् ने भी गुरुजी की तरफदारी होने से हार मान ली है। यह शास्त्र वचन है। कहते हैं :

dop vHksn x# in iwtk] ,fg le fct; mik; u nwtkA

(मानस, लंका. दो. 79 चौ. 5)

गुरु कवच अभेद होता है। कोई नहीं तोड़ सकता। राम ने हार मान ली। वाल्मीकिजी से प्रार्थना की और घोड़े को छुड़वा लिया।

ऐसा है कि कलिकाल में जीव को भगवान् बड़ी सरलता से, सुगमता से मिल जाते हैं। हमारे गुरुवर्ग को मिल चुके हैं तथा चंद्रसरोवर, गोवर्धन में मुझे भी साक्षात् द्वारकाधीश ने छः–सात फुट साइज में दर्शन दिया है और मेरे साथ जो आठ–दस भक्त थे, उनको भी वहाँ दर्शन हुआ। जिनको भी दर्शन हुआ है, उनका नाम, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक में लिखा हुआ है। ऐसे सभी को दर्शन हो सकता है। मैं भी साधारण गृहस्थी ही तो हूँ।

कलिकाल में यह साधन है – केवल हरिनाम, केवल हरिनाम।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

इस मंत्र को रोज जपना चाहिए। रोज 64 माला करनी चाहिए। 64 माला करने में तीन घंटे लगते हैं। शुरु–शुरु में ज्यादा समय लगेगा लेकिन बाद में तीन घंटे में या पौने तीन घंटे में हो जाएगा। इस महामंत्र की कम से कम 64 माला नित्य जपने से अर्थात् एक

लाख हरिनाम से भगवान् का दर्शन हो सकता है। छद्म रूप में हनुमानजी के दर्शन भी मुझे हुए हैं।

आप सोचोगे कि अनिरुद्ध दास तो अपनी बड़ाई करता रहता है। तो बड़ाई तो वह करेगा जिसे कुछ चाहिए। मैं तो निष्काम विचार का हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। यह चर्चा इस कारण से कर रहा हूँ कि कलिकाल में भगवद् दर्शन बहुत सुलभ है क्योंकि इस युग में भगवान् के ग्राहकों की कमी है। इस युग में भगवान् के ग्राहक न के बराबर होते हैं। जहाँ किसी वस्तु की कमी होती है उस वस्तु की कीमत अधिक हो जाती है। भगवद् नाम ही भगवान् को खींचकर भक्त के नजदीक ला देता है।

अतः धर्मशास्त्र यह बता रहे हैं कि फिर मानव को भगवद् दर्शन क्यों नहीं होता। इसका खास कारण है कि साधक हर प्रकार से भगवान् को दुखी करता रहता है। कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसे तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। वह अपने अश्लील वचनों से सामने वाले को दुखी करता रहता है। दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। शरीर तो आत्मा का घर है और घर तो जड़ होता है। जड़ को दुख कैसे हो सकता है? मान लो कोई मेरे मकान की खिड़की को तोड़े तो क्या मकान रोएगा? नहीं, मकान में रहने वाला रोएगा। इसी प्रकार हम दूसरे की आत्मा को सताते रहते हैं तो भगवान् हम पर राजी (खुश) कैसे रहेंगे। जिसका रिजल्ट (परिणाम) क्या होगा कि माया हमको दुख देती रहेगी। शरीर रोगी हो जाएगा, मन अशांत रहेगा, कोई काम में सफलता नहीं मिलेगी अतः जिंदगी भर रोता–रोता ही मरेगा, 84 लाख योनियों में चला जाएगा, घर में आपस में कलह होता रहेगा तो माया ऐसे ही साधक को दुखी करती रहेगी जैसा कि हम प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। कहने का मतलब है अपने स्वभाव के अनुसार ही मानव दुख पाता है। कोई किसी को दुख नहीं देता। अपना स्वभाव ही दुखी करता है। यही तो माया है। यही तो अज्ञान है। यही तो अंधकार है। यही तो मूर्खता है। यह तो हुई भक्त, साधक की चर्चा।

अब आगे भी मानव 84 लाख योनियों को दुखी करता रहता है। जिनमें भगवान् परमात्मा रूप से उनके हृदयमंदिर में विराजमान हैं, इनको भी मानव सताता रहता है। तो क्या भगवान् कभी इससे सुखी रह सकेंगे? जब भगवान् को ही मानव सताता रहता है तो क्या ऐसा मानव स्वप्न में भी सुख का दर्शन करेगा? वह तो दुख सागर में डूबा रहेगा। अतः शास्त्र बोल रहा है कि मानव जन्म दुर्लभ से भी सुदुर्लभ है। अनंत अरबों, खरबों चतुर्युगी के बाद भी मिल जाए तो गनीमत है। मानव जन्म कई जन्मों की सुकृति से मिलता है। जब किसी जीव द्वारा भगवान् के प्यारे साधु की सेवा बन जाए क्योंकि साधु भगवान् का सबसे प्यारा है।

धर्मशास्त्र बता रहे हैं कि कैसे मानव 84 लाख योनियों को परेशान करता रहता है। उदाहरण से बताया जा रहा है जैसे कोई सांप रास्ते से जा रहा था और वहाँ बहुत से लोग बैठे थे। उनकी नजर सर्प पर गई तो बोलते हैं, "मारो! मारो! दुश्मन जा रहा है।" तो किसी बूढ़े ने कहा, "यह अपने रास्ते से जा रहा है। इसे क्यों मारते हो? यह भाग कर तो किसी को मारता नहीं है, खाता नहीं है। दबने पर अपनी जान बचाने के लिए ही मारता है। इसे मत मारो।" उस सांप की कुल उम्र हजार वर्ष की थी। इस समय उसकी उम्र दो सौ वर्ष थी। एक नवयुवक ने लाठी से उसको मार डाला तो जिस नवयुवक ने उसको मारा, वह हजार साल तक सांप की योनि भुगतेगा। जिसको मारा है, वह भी आठ सौ साल तक फिर से सांप की योनि भोगेगा। भगवान् बोलते हैं कि, "मैंने जीव को उसके कर्मानुसार ही उस योनि में जीवन यापन करने के लिए जन्म दिया है तो इसको मारने का किसी को हक नहीं है। यदि कोई भी किसी भी योनि को मारेगा तो उसे उसी योनि में जन्म लेना पड़ेगा।" भगवान् कहते हैं कि, "जिसको जो स्वभाव मैंने दिया है वह उसी स्वभाव के अनुसार अपना जीवन बिताएगा। जब किसी को जीवन देने की सामर्थ्य नहीं है तो मारने का अधिकार कैसे हो सकता है?" जैसे बिच्छू काटता है, मच्छर काटता है, खटमल काटता है तो उनके जीवन को बचाओ, उन्हें मारो मत। वरना मारने वाले को उसी की

योनि में जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि भगवान् सभी के हृदय मंदिर में विराजमान रहते हैं। आत्मा (हृदय में बैठा परमात्मा) सबके कर्मों को देखती रहती है। उसके कर्मानुसार उसको उस योनि में जाना पड़ता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् ने बोला है कि मानव जन्म होना सुदुर्लभ से भी सुदुर्लभ है।

भगवान् की माया इस कारण से सबको दुखी करती रहती है क्योंकि शुभ मार्ग पर कोई चलता नहीं है। माँ–बाप अपने पुत्र से कहते हैं कि, "तू शराब मत पी।" लेकिन मानता नहीं है और फिर शराब पीकर उसके फेफड़े खराब हो जाते हैं और वह छोटी उम्र में मर कर नरक को चला जाता है। यही तो माया है।

धर्मशास्त्र बने हैं मानव को सुखी करने के लिए, लेकिन मानव उन्हें न मान कर उल्टे रास्ते चलता रहता है और दुख मोल लेता है तो सुख की हवा भी कैसे लगेगी? इसलिए धर्मशास्त्र का क्या दोष है ? दोष है गलत रास्ता चलने वाले का। मानव भी क्या करे? उसके पिछले संस्कार उसको बुरे काम करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। अतः सुखी रहने का केवल एक ही रास्ता है। वह है सत्संग।

भगवान् श्रीमद्भागवत पुराण में बोल रहे हैं, "उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ। सत्संग भी सुकृति के अभाव में नहीं मिलता है।"

fcu gfjÑik feyfg ufg lrk

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

संत से ही सत्संग मिलता है स्वयं भगवान् नहीं आते हैं। संत को भेजकर सुकृतिशाली को सत्संग का लाभ उठवाते हैं। कुछ ऐसे पिछले संस्कार वाले होते हैं कि जब तक संसार की बातें होती हैं तो वहाँ बैठे रहते हैं और जैसे ही सत्संग की बात शुरू होती है तो वह उठ कर चले जाते हैं क्योंकि पिछले कुछ संस्कार के कारण, उन्हें सत्संग अच्छा नहीं लगता। सत्संग उनके कान में पड़ जाए तो उनका जी घबराता रहता है। उठ कर चले जाते हैं। इस प्रकार का

वातावरण मैंने खूब अनुभव किया है। मैंने कहा, "थोड़ी देर बैठो न, सत्संग सुनो।" तो कहता है, "अमुक काम बहुत जरूरी है। अतः मैं बैठ नहीं सकता।"

संसार में जो हरकत होती रहती है उसे भी मुझे बोलना जरूरी होता है। इसको बोलने से थोड़ी आँखें खुलती हैं। सुनने वाला महसूस करता ही है कि वास्तव में हम गलत रास्ते पर हैं लेकिन मजबूरी है, मन चाहता ही नहीं है। सब मन पर निर्भर है। बस यही तो माया है। मानव मुट्ठी बाँधकर आता है लेकिन खाली हाथ जाता है। प्रश्न आता है कि मुट्ठी बाँधकर क्यों आता है? अपने पुराने अच्छे–बुरे कर्म, संस्कार मुठ्ठी में बाँधकर लाता है, जो जीवन को चलाने हेतु उसके काम आएँगे। उन्हें भोग लेने पर जब खाली हो जाता है तो मरने पर मुट्ठी खोलकर जाता है।

अब जो इस जन्म में शुभ–अशुभ कर्म किए हैं वह अगले जन्म में काम आएँगे। यह चक्कर कभी खत्म होने वाला नहीं है। जब कभी किसी सच्चे संत की कृपा होगी, तभी इस चक्कर से पिंडा छूटेगा।



कलियुग का सर्वश्रेष्ठ गुण : हरिनाम से भगवद् प्राप्ति

21

24 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् चर–अचर प्राणियों का अमर बाप है। विचार करने की बात है कि बाप अपने बेटे को कितना चाहता है लेकिन बेटा ही ऐसा नालायक बन गया कि बाप के आदेश को ही नहीं मानता, अतः माया जो भगवान् की शक्ति है, उस बेटे को अनेक प्रकार से दुख कष्ट देती रहती है। दुख कष्ट किस प्रकार का होता है? माया उसे रोगी बना देगी, कोई काम में सफलता नहीं होने देगी, आपस में कलह करवा देगी, मन में सदैव अशांति फैला देगी, नींद आने नहीं देगी, कंगाल बना देगी आदि–आदि अनंत दुख सागर में डाल देगी। पूरी उम्र भर रोता रहेगा और अंत में, संसार में आसक्ति, मोह होने से नर्क या 84 लाख योनियों में डाल देगी, तो सर्दी, गर्मी, बरसात से दुखी होता रहेगा। जब तक उसे अपने बाप भगवान् की गोद नहीं उपलब्ध होगी, तब तक यह दुख सागर में गोता खाता रहेगा। यही तो भगवान् की माया है।

कलियुग में भगवान् बहुत ही सरलता से मिल जाते हैं क्योंकि कलिकाल में अधिकतर भौतिक साम्राज्य संसार में फैला रहता है

अतः ऐसे–ऐसे आविष्कार होते रहते हैं जिससे मानव यह सोचता एवं बोलता है कि वह सब मानव की ही देन है। भगवान् कहीं नहीं है। भगवान् को किसने देखा है। यह सब अंधविश्वास है। शास्त्र भी मानव ने ही रचे हैं। भगवान् को मानने वाले बिल्कुल मूर्ख हैं, भावुक हैं, इनमें सोचने समझने की बुद्धि ही नहीं होती, कमाया तो जाता नहीं, निठल्ले बैठकर खाना चाहते हैं। मानव तो चांद पर पहुँच गया है। मानव ही भगवान् है। वैज्ञानिक ही भगवान् है। जबकि इन नास्तिकों को मालूम नहीं है कि चंद्रमा तो सूर्य से लाखों योजन ऊँचा है, दूर है जैसा कि हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है। यह कहते हैं कि मानव ही कृत्रिम गर्भाधान करता रहता है, इसमें भगवान् क्या करेगा? लेकिन आस्तिक पूछता है, "तुम मौत को तो रोक लो।" इनके पास इसका कोई जवाब नहीं है। कलियुग भगवान् का दुश्मन है। अतः कलियुग में भगवान् को कोई मानेगा नहीं।

भगवान् इस कलियुग में इस कारण जल्दी मिलते हैं कि भगवान् के ग्राहक गिने–चुने होते हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है कि जिस चीज की कमी होती है उसका महत्व बहुत ज्यादा होता है। भगवान् का मन भक्तों के बिना लगता नहीं है अतः यदि थोड़ा बहुत भी कोई मानव भगवान् को चाहता है तो भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर उसको दर्शन दे देते हैं। 500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग को दर्शन हुआ है। मुझको भी तो 2012 में चंद्रसरोवर, गोवर्धन में भगवान् के दर्शन हुए हैं, और जो मेरे साथ में कुछ विदेशी एवं कुछ भारत से भक्त थे, उनको भी भगवान् के दर्शन हुए हैं जो 'इसी जन्म में भगवत्प्राप्ति' पुस्तक में लिखा हुआ है कि किस–किस को दर्शन हुए हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है। तभी तो प्रत्यक्ष होने से विदेशी और भारत के भक्त मेरे घर पर प्रत्येक इतवार (रविवार) को आते रहते हैं। नहीं तो किसी को समय कहाँ है जो मेरे पास आए? लेकिन बोलते हैं, कि इनके पास आने से हमारा जीवन ही बदल गया है। जहाँ मीठा–मीठा होता है वहाँ चीटियां अपने आप चली जाती हैं, उनको बोलना नहीं पड़ता। शुद्ध चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी

ओर खींच लेता है, वह यह नहीं देखता कि इस लोहे में जंग लगी हुई है।

भगवान् ने जब कलि महाराज को राज्य दिया तो कहा, "तुझे चार लाख बत्तीस हजार वर्ष तक धरातल पर राज्य करना है तो कलि महाराज बोले, "जैसा आपका आदेश है वैसा पालन करता रहूँगा।" यह ध्रुव सिद्धांत है कि जैसा राजा वैसी प्रजा होती है। कलि महाराज धर्म को मानता ही नहीं है, तो प्रजा कैसे मान सकती है। भगवान् ने कलियुग से पूछा, "तू किस प्रकार से राज्य करेगा?" कलियुग महाराज बोला, "मैं तो तामसिक स्वभाव का हूँ। मैं तो तामसिक वृत्ति से ही राज्य करूँगा कि सब से पहले तो आपकी सब मर्यादाओं को नष्ट कर दूँगा। समय असमय मौसम बदलने लगेंगे। प्रकृति को क्षोभ करता रहूँगा। कहीं पर सूखा लाऊँगा और कहीं पर सुनामी लाऊँगा जिससे लाखों जनता नष्ट हो जाये। देश–देश में लड़ाई करवाता रहूँगा। कहीं भूकंप लाकर पृथ्वी को हिला कर शहरों को पहाड़ों के तह में नष्ट कर दूँगा। कहीं तूफान लाकर हर जगह को तहस–नहस कर दूँगा। इतनी बीमारियों का आविष्कार कर दूँगा जो कभी सुनी नहीं हैं। इससे जनता दुखी होती रहेगी और भी न जाने मैं, क्या–क्या दुखों और कष्टों का आविष्कार करता रहूँगा। जिसकी कोई गिनती नहीं है।"

तो इसके लिये सूरदास जी बोल रहे हैं, ध्यान से सुनना! सूरदास जी त्रिकालदर्शी थे। वह बता रहे हैं कि कलि महाराज से कैसे बचा जा सकता है।

vj! eu èkhjt D;k u èkj]
lor nk gtkj l Åij
ijc if'pe mÙkj nf{k.k] pg fnf'k dky iM
vdky eR;q lc tx e 0;kis] ijtk cgr ej
lgl o"k rd lr;x 0;kis] n[k dh n'kk fQj
Lo.k Qy cu iFoh Qy] èke dh cy c<
vj! eu èkhjt D;k u èkjAA

vjs! dky 0;ky ls ogh cpsxkA
tks gfj dk uke djs] tks x# dk è;ku èkjsA
lqjnkl! ;g gfj dh yhyk] Vkjs ukgha VjsA

यह मुहर लगा दी कि ऐसा जमाना आने वाला है इसलिए हरिनाम करो, हरिनाम से बच जाओगे। कलियुग कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

मानव दुखी क्यों है? इस कारण है कि वह परमात्मा की सृष्टि को, जिसमें आत्मा के रूप से परमात्मा विराजमान है, को दुखी करता रहता है। दुख शरीर को नहीं व्यापता है, आत्मा को व्यापता है। शरीर तो आत्मा का घर है। जिस प्रकार, यदि मेरे कमरे की खिड़की को कोई तोड़े तो क्या कमरा रोएगा? कौन रोएगा? जो इस में रहता है, वह रोएगा। अतः कहावत है :

'किसी की आत्मा मत सताओ', ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। ऐसा कहते हैं कि किसी का जी मत दुखाओ। यह किसके लिए बोला जाता है? यह 84 लाख योनियों के लिए बोला जाता है। चींटी को भी मत सताओ। चींटी चलती है क्योंकि परमात्मा उसमें बैठा हुआ है। इसमें भगवान्, आत्मा रूप से विराजमान है। पेड़ में भी भगवान् है, हाथी में भी भगवान् है। भगवान् ने उनके कर्मानुसार उनको योनियां दी हैं। इनको दुख देने से आत्मा अर्थात् परमात्मा दुखी हो जाता है। जिस जीव ने भगवान् को दुखी कर दिया तो क्या भगवान् उसे सुख देंगे? कभी भी सुख नहीं मिलेगा।

जो भक्त मेरे गुरुदेव द्वारा बताई गई तीन प्रार्थनाएँ रोज करता है उसे भगवान् स्वयं लेने आते हैं। इसमें केवल दो मिनट लगते हैं। ऐसा भक्त जब मरता है तो भगवान् वैकुण्ठ धाम में या गोलोक धाम में उसका भव्य स्वागत करवाते हैं। भगवान् तो दयानिधि हैं। थोड़ा सा भी जीव याद कर ले तो भगवान् बहुत बड़ा अहसान मानते हैं क्योंकि सब चर–अचर भगवान् के बेटे हैं। भगवान् यदि प्रसन्न हो

जाए तब ऐसी दृष्टि हो जाएगी कि वह जीव मात्र से प्यार करेगा, तो ऐसे को तो बिच्छू भी नहीं काटता क्योंकि सब में आत्मा रूप में वह बैठा है। सांप भी नहीं खाएगा, शेर भी नहीं खाएगा। शास्त्र का वचन है कि :

tk ij Ñik jke dh gksbA rk ij Ñik djfga lc dksbAA

देखो! आत्मा रूप से भगवान् भक्तों को चेता रहे हैं। तुम प्रह्लाद भाव में बन जाओ तो हिरण्यकशिपु रूपी कलि महाराज से बच जाओगे। स्वयं कलि महाराज का कोई जोर नहीं चलेगा। स्वयं ही मारा जाएगा। प्रह्लाद नामनिष्ठ था अतः नाम भगवान् ने उसकी रक्षा और पालन किया। प्रह्लाद की रक्षा स्वयं भगवान् ने की। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मार नहीं सका। अंत में जीत प्रह्लाद की हुई। मैं साधारण शब्दों में बोलता हूँ जिससे सबको समझ आ जाए। किसी को कठिनाई न हो। मैं सरल भाषा में ही बोल रहा हूँ।

शास्त्र बोल रहे हैं कि एक व्यक्ति अपने जीवन में इतने पाप कर ही नहीं सकता, जितना भगवान् का एक शुद्ध नाम समस्त पापों को जलाकर भस्म कर देता है। जैसे हमारे यहाँ पड़ी एक क्विंटल घास को माचिस की एक तीली से आग लगाओ तो एक तीली से ही सारा घास जलकर राख का ढेर हो जाएगा।

प्रश्न उठता है जब मानव सारा दिन हरिनाम लेता रहता है तो भी सुखी नहीं होता। क्या कारण है? बात तो ठीक है। व्यक्ति के हृदय में तीन धाराएं बहती रहती हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन धाराओं की वजह से हृदय से शुद्ध नाम नहीं निकलता है। शुद्ध नाम, निर्गुण धारा बहने पर ही निकलता है। जैसे द्रौपदी ने निर्गुण धारा से 'गोविंद' को पुकारा था और भगवान् ने द्रौपदी की रक्षा की। द्रौपदी का वस्त्र अनन्त गज लंबा हो गया जिससे दुश्शासन हार मान कर अलग से बैठ गया, थक गया।

शुद्ध नाम कब निकलता है? जब अपनी शुद्ध कमाई का पैसा हो? अपने पसीने की कमाई ही शुद्ध नाम मुख से निकाल सकती है

एवं प्रसाद ग्रहण करते समय भगवन् नाम का जप या स्मरण होता रहे तो जो रस बनेगा, वह निर्गुण होगा। निर्गुण रस ही भगवान् से अटूट सम्बन्ध करवा देगा। अटूट सम्बन्ध होते ही हृदय में भगवान् के लिए तुरंत छटपट हो जाएगी। जब अष्टविकार शरीर में उदय हो जाएँगे तो भगवान् भक्त से दूर नहीं रह पाते। तुरंत अदृश्य में आकर, उसे अपनाकर सुख विधान करते हैं। भगवन् नाम की ही कीमत है। समस्त धर्मशास्त्र को पढ़ने का एक ही उद्देश्य है कि भगवन् नाम में भक्त का मन लग जाए। जब ऐसा होगा तो भगवान् के लिए तड़पेगा। न भूख लगेगी, न नींद आएगी और कहेगा, "मेरे को कब मिलोगे? हे प्राणनाथ! मुझे आप कब मिलोगे? मैं कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? मैं कहाँ जाऊँ?" यह अवस्था आ जाएगी। जैसा शास्त्र बोल रहा है उसके अनुसार अपने मन को लगाना चाहिए। तीर्थ यात्रा, मंदिर जा कर दर्शन एवं संत समागम का केवल एक ही उद्देश्य है कि हरिनाम में मन लग जाये।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

देखिए धन्वन्तरि, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। क्या बोल रहे हैं? ध्यान पूर्वक सुनने की कृपा करें।

vP;qrkuUr xksfoUn ukeksPpkj.kHks"ktkr~A
u';fUr ldyk% jksxk% lR;a lR;a onkE;ge~AA

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

यह प्रत्यक्ष है। "मैं सत्य–सत्य कह रहा हूँ कि मानव, तू अच्युत, अनंत और गोविंद का नाम ले। कोई भी रोग तेरे पास आने से डरेगा।"

'रोग राक्षस हैं और नाम है 'हरि का बलिष्ठ'। बलवान के पास कोई भी नहीं जाता। कमजोर को ही सब सताते हैं। मैं तो आपके सामने हूँ। कुछ महीनों बाद मैं 90 साल का हो जाऊँगा। मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है। यह मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा। हरिनाम की

बड़ाई कर रहा हूँ। 20 साल के नवयुवक जैसी मेरे शरीर में ताकत है और पाँच साल के बच्चे जैसी दृष्टि है। हरिनाम करने हेतु 40–45 साल से रात में 12–1 बजे उठ कर प्रातः 6–7 बजे तक हरिनाम करता हूँ। यह मैं सबको केवल हरिनाम की शक्ति एवं कृपा वर्णन कर रहा हूँ। अपनी बड़ाई करना न पचने वाला जहर है। जो अपनी बड़ाई करता है, वह नरक में जाता है। बड़ाई कौन चाहता है जिसको कोई कामना हो। मैं तो निष्काम, एक साधारण गृहस्थी हूँ। तभी तो भगवान् मेरे सानिध्य में रहते हैं। भगवान् सबके सानिध्य में रह सकते हैं, यदि कोई भी भगवान् के बनाए हुए चर–अचर प्राणियों को दुख न दे। उन्हें दुखी न करे। जितना हो सके तो उनकी सेवा करे। दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। शरीर तो आत्मा का पहनने का कपड़ा है। जब कपड़ा फट जाता है तो आत्मा नया कपड़ा पहनती है। यही तो मानव को समझ नहीं आती। बस यही माया है।

भगवान् की यह माया कब हटती है? जब किसी नामनिष्ठ संत का संग मिल जाए अर्थात् सत्संग से ही माया हटती है। तभी तो श्रीमद्भागवतपुराण में भगवान् बोल रहे हैं, "उद्धव! मैं निर्मल सत्संग से ही मिलता हूँ। निर्मल सत्संग कहाँ मिलेगा? शुद्ध संत की कृपा कहाँ उपलब्ध होगी? इस कलिकाल में शुद्ध संत मिलना खांडे की धार है। जिस जीव की पिछले जन्मों की सुकृति होगी, उसे ही भगवान् सच्चे संत से मिला देते हैं। सच्चे संत की क्या पहचान है? उसके आचरण से तथा प्रभाव से उसके कुछ दिन के संग से, जीवन में बदलाव दिखाई देने लगेगा। जो किसी भी विषय का स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) होगा, वही किसी को स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) बना सकेगा। जो स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) ही नहीं है, तो वह कितना भी चाहे बकबक करे, सामने वाले पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाएगा। शुद्ध चुंबक ही जंग लगे लोहे को खींच सकता है। कमजोर चुंबक तो अच्छे लोहे को भी नहीं हिला सकता, खींचना तो बहुत दूर की बात है। स्कन्ध पुराण में भगवान् बोल रहे हैं कि वे मेरे सब से प्यारे हैं जो स्वयं हरिनाम करते हैं और दूसरों को करवाते हैं।

r lHkkX;k eu";"k ÑrkFkk u i fuf'preA
LejfUr Lekj;Ur ; gjukekfu o dykAA32AA

(गर्गसंहिता/खण्ड 10 (अश्वमेधखण्ड)/अध्याय 61, गर्गमुनि)

"मनुष्यों में वे ही सौभाग्यशाली हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं जो कलिकाल में हरिनाम का स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरों को भी स्मरण करवाते हैं। यह स्कन्ध पुराण में लिखा है। अठारह पुराणों में से स्कंद पुराण एक पुराण है। तीखी दाढ़ वाले कलिकाल दुष्ट सर्प का भय अब दूर हो जाएगा क्योंकि गोविंद नाम के दावानल से दग्ध होकर शीघ्र ही वह राख का ढेर हो जाएगा।"

जो इस कलिकाल में नित्य हरिनाम करते हैं वे ही कृतकृत्य हैं, भाग्यशाली हैं। कलि उनसे थर्राता रहता है, उनके पास तक नहीं आता।

vo'kukfi ;UukfEu dhfrZr loZikrd%A
iqeku foeqP;r l|% flag=Lrk e`xk ;FkkA
c)% ifjdjLrsu ek{kk; xeua çfr AA

(गरुड़पुराण– 1.228.12)

"विवश होकर भी भगवान् का नाम उच्चारण करने पर मनुष्य सब पापों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है जैसे सिंह से डरे हुए हिरण भाग जाते हैं।"

lueq[k gksb tho eksfg tcghaA
tUe dksfV v?k uklfga rcghaAA

(मानस. सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरा नाम लेते हुए मानव के अनेक जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। 'सन्मुख' का अर्थ है मेरी तरफ आ जाए अर्थात् मेरा नाम ले। बस, फिर आगे का जीवन मैं सँभाल लूँगा। चिंता की कोई बात नहीं है।"

lo`ekekUifjR;T; eked 'kj.k oztA

(श्रीगीता 18.66)

"मेरी शरण में आ जा। मैं सब सुख का विधान कर दूँगा।"

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir eaxy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अरे! बेमन से, जबरदस्ती भी, लालच से भी भगवान् का नाम ले लो तो दसों दिशाओं में आनंद हो जाता है। ग्यारह दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी आ गया तो वैकुण्ठ और गोलोक मिल जाएगा। कैसे भी लो। भाव से, कुभाव से, नामाभास से भी। नामाभास उसे कहते हैं कि भगवान् में मन नहीं लगता है। मन इधर–उधर भागता रहता है। उसे ही नामाभास कहते हैं, तो ऐसे भी हरिनाम करने से वैकुण्ठ तो शर्तिया मिल ही जाएगा। अतः उसका उद्धार होना निश्चित ही है। यह शास्त्र का वचन है।

तो हम कितने भाग्यशाली हैं और फिर भगवान् ने हमको अच्छा सत्संग दे दिया। हम कितने भाग्यशाली हैं! यह सत्य है कि जो हरिनाम करता है वह अवश्य ही वैकुण्ठ जाएगा। वैकुण्ठ का क्या अर्थ है जहाँ कोई कुंठा नहीं हो, जहाँ कोई दुख नहीं हो, जहाँ कोई कष्ट नहीं हो। देखो! अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में सभी चर–अचर, भगवान् की संतानें हैं। भगवान् अपनी संतानों को अपनी गोद में लेना चाहते हैं, लेकिन ये संतानें माया के खेल में इतनी मस्त हैं कि अपने पिता की तरफ नजर ही नहीं करते। भगवान् बोलते हैं "मैंने संसार में अनंत धर्मग्रंथों को बनाया और उनका विस्तार किया है, लेकिन यह मानव उनकी तरफ दृष्टिपात ही नहीं करता अर्थात् देखता नहीं है। इनमें बताए नियमों के अनुसार जीवन नहीं चलाता है।" केवल कुछ गिने चुने लोग ही इन धर्मग्रंथों के अनुसार अपना जीवन चलाते हैं। भगवान् कहते हैं "इस सृष्टि में मुझे चाहने वाले संत कुछ ही गिनती के हैं। मेरी कृपा के बिना ऐसे संत किसी को नहीं मिल सकते। जिन पर मेरी कृपा होगी, उन्हीं को सच्चा संत मिलेगा।"

अतः अरबों–खरबों मानवों में से कोई एक मेरी गोद में आता है। यह अवसर भी सबको उपलब्ध नहीं होता। जो मेरे प्रिय, सच्चे संत की सेवा करते हैं, यह सुकृति भी उसी मानव की होती है अन्य किसी कर्म से यह सुकृति नहीं होती क्योंकि साधु भगवान् का प्यारा बेटा है। जो साधु से द्वेष करता है, वह तड़प–तड़प कर मरता है। कहते हैं –

bæ dfyl ee lly fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA lkèkq æksg ikod lks tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

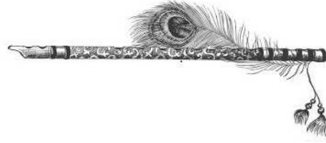
शिवजी कह रहे हैं कि जो इंद्र के वज्र से, मेरे त्रिशूल से, यमराज के दंड से और भगवान् के सुदर्शन चक्र से भी नहीं मरता, वह साधु से द्रोह होने से पावक (अग्नि) में तड़प–तड़प कर मरेगा। वह जल्दी नहीं मरेगा, बहुत दुख पा कर मरेगा। पावक अग्नि कैसी होती है? जो लोहे को पानी बना देती है। साधु को दुख देने पर ऐसी आग में दुखी होकर मरेगा। इसलिए साधु से डरो। साधु अगर मार भी दे तो हाथ जोड़कर उनके चरणों में पड़ जाओ। कभी भी साधु से द्रोह मत करो। न उनकी कोई चर्चा करो कि वह ऐसा है, वैसा है। तुमको क्या लेना देना। अपने भगवान् की भक्ति करते रहो। अपने रास्ते चलते रहो। तुम्हें इससे क्या लेना देना कि वह अच्छा है या बुरा है। कभी भी ऐसा मत करो।

अरे! कलियुग में भगवान् मिल जाएँ तो हम कितने भाग्यशाली हैं! कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। भगवान् से बिछुड़े हुए हमें कितना समय हो गया। अरबों, खरबों चतुर्युगी निकल गए, भगवान् तक नहीं पहुँच सके, परंतु अब हमें ऐसा समय, अवसर मिला है कि हमने भारतवर्ष में जन्म लिया है। भगवान् ने कितनी कृपा की है। हमको सच्चा सत्संग मिल गया है। भगवान् ने हमको सब कुछ खाने को दिया है, सब कुछ दिया है। अभी भी अगर हमने भगवान् को प्राप्त नहीं किया तो कितना बड़ा नुकसान होगा। फिर 84 लाख योनियों में भटकते रहेंगे। गर्भाशय भी कितना दुखदायी स्थान है।

हरिनाम से हम भगवान् को सहज में प्राप्त कर सकते हैं। इस कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है।

केवल हरिनाम करो। केवल हरिनाम करो। हरिनाम करने से ही आपको सब सुविधाएँ मिल जाएँगी। सब सुख मिल जाएँगे। प्रह्लादजी ने तो केवल हरिनाम ही किया था। वाल्मीकिजी ने भी तो सिर्फ हरिनाम ही किया था और त्रिकालदर्शी बन गए। इतने उदाहरण हैं हरिनाम के और नारदजी तो हमेशा हरिनाम करते रहते हैं और कुछ नहीं करते। इसलिए हरिनाम करो। यदि कलि से बचना हो तो हरिनाम करो। बस, केवल हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम। भगवान् कहते हैं, "स्वयं हरिनाम करो और दूसरे से भी हरिनाम करवाओ। उससे प्यारा मेरा कोई नहीं है।" चैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं कि, "गाँव–गाँव में जाओ और सबसे हरिनाम करवाओ। खुद भी हरिनाम करो और सबसे करवाओ।" यह भगवान् की कृपा हमें मिली है। हम कितने भाग्यशाली हैं! इसलिए हरिनाम करो।

gfj cksy! gfj cksy! gfj cksy! gfj cksy!
furkbZ xkSj gfjcksy!



भगवद् नाम का प्रभाव

(22)

3 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

देखिए! इस कलिकाल में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं क्योंकि इस समय में भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। ग्राहकों की कमी है। इसलिए भगवान् का थोड़ा बहुत भी भजन करने से भगवान् बड़े खुश हो जाते हैं। देखिए! मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। दुर्लभ नहीं सुदुर्लभ है। मानव जब से अपने अमर पिता भगवान् से बिछुड़ा है तब से मानव अभी तक भगवान् की गोद में नहीं पहुँचा। इसका कारण क्या है? मानव अपने माँ–बाप को भूल गया है और भगवान् की माया में फँस गया है। माया भगवान् की शक्ति है जिसको आदेश है कि वह मानव को फँसाती रहे, जिससे मानव भगवान् के पास न आ सके। टीवी और फोन कलि महाराज के अमोघ हथियार हैं। यह भगवान् से दूर करते हैं। भगवान् ने शिवजी को भी आदेश दे रखा है, "तुम आगम शास्त्रों का आविष्कार कर दो ताकि मानव गलत मार्ग में पड़ कर चक्कर ही काटता रहे।" शिवजी को ऐसा आदेश भगवान् ने क्यों दिया? भगवान् ने इस कारण से दिया क्योंकि इसके बिना उनकी जगत् सृष्टि नहीं चल सकेगी। दूसरा कारण है कि भगवान् को चाहने वालों से उन्हें बँधना पड़ेगा। अनंत अरबों–खरबों चतुर्युगी से जीव भगवान् से बिछुड़ा हुआ है। जीव को भगवान् की माया अपने

चंगुल में फँसाये रहती है। इसका कारण धर्मशास्त्र बोल रहे हैं कि माया बड़ी दुष्कर है। माया से छूटना बहुत मुश्किल काम है।

जब भगवान् की कृपा होगी, तभी माया से छुटकारा हो सकता है। प्रश्न यह उठता है कि भगवान् की कृपा कब होगी? भगवान् की कृपा तब होगी, जब मानव से भगवान् के आश्रित किसी साधु की, किसी प्रकार की सेवा बन जाएगी तो वह साधु, मानव को भगवान् की गोद में जाने का मार्ग बता देगा।

जब मानव साधु की कृपा से भगवद्भक्ति शुरू करेगा तब निष्काम कर्म करने से माया उससे बहुत दूर हो जाएगी तथा उसे भक्ति मार्ग में चलने की मदद करती रहेगी क्योंकि भगवान् ने माया को आदेश दे रखा है, "जो मानव मेरे आश्रित हैं उन्हें मत सताना।"

कलियुग में भगवान् को प्राप्त करने का एक ही केवल, एक मात्र साधन है, भगवान् का हरिनाम जप। अनंत जन्मों से भटकने से मानव का मन स्थिर नहीं रह सकता। फिर भी भगवान् ने इतनी कृपा की है कि अगर मानव का मन न भी लगे तो भी उसका उद्धार कर देंगे, लेकिन नित्यप्रति 64 माला अर्थात् एक लाख नाम जप करना होगा। चाहे मन लगे चाहे नहीं लगे तब भी जपना बहुत जरूरी है। अधिक जपो फिर तो सोने पर सुहागा है, सोने में सुगंधी है। फिर तो कहना ही क्या है। हमारे धर्म शास्त्र में इतनी सहूलियत दी हुई है कि –

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

"आप भाव से लो, मन से लो, बेमन से लो, आलस्य से लो, सोते, चलते–फिरते कैसे भी लो तो भी दसों दिशाओं में तुम्हारा मंगल हो जाएगा।" जो बेमन से या जबरदस्ती भी नाम जपेगा, किसी भी समय में, कहीं पर भी बैठ कर जपेगा या चलकर, खाते–पीते, सोते–जागते हरिनाम जपेगा तो उसका इस जीवन में उद्धार होना निश्चित ही है अर्थात् वह वैकुण्ठ में चला जाएगा। उसका दुखों से पिंडा छूट

जाएगा। कोई नियम नहीं है, स्नान करो या न करो। जैसी भी अवस्था हो भगवान् का नाम लेते रहो।

हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है कि भगवान् के नाम में भगवान् से भी अधिक शक्ति है। भगवान् ने तो, जो उनके संपर्क में आया, उसका ही उद्धार किया लेकिन नाम ने तो अनगिनतों का उद्धार कर दिया। शास्त्र बोल रहा है कि मानव सारी जिंदगी भर, रात–दिन पाप करता रहे तो भी वह इतना पाप नहीं कर सकता जितना भगवान् का केवल एक शुद्ध नाम ही उसके सारे पापों को एक क्षण में जलाकर भस्म कर देता है। यह पद्मपुराण में लिखा हुआ है। मैं अपने मन से नहीं बोल रहा हूँ। फिर प्रश्न उठता है कि मानव तो बहुत नाम लेता रहता है फिर उसका प्रभाव क्यों नहीं होता? इसका कारण है कि मानव के अंदर तीन धाराएँ बहती रहती हैं। तीन धाराएँ क्या हैं? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। ये धाराएँ संग से तथा खान–पान से बनती रहती हैं तथा मन इन धाराओं से चंचल रहता है। हरिनाम में मन नहीं लगता। कहावत है :

jke&jke lc dkb dg] n'kjFk dg u dk;A
,d ckj n'kjFk dg] dkfV ;K Qy gk;AA

दशरथ का मतलब है, पांच कर्मेन्द्रियाँ, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन। अगर यह एकाग्र हो जाएँ तो हरिनाम का एक नाम ही मानव के उद्धार का कारण बन जाए लेकिन जापक का ऐसा नाम होता नहीं है और साथ ही अपराध भी होता रहता है। लेकिन निराश होने की आवश्यकता नहीं है। धीरे–धीरे सफलता मिल ही जाती है। उदाहरण के लिए क्या कोई एल.के.जी में बैठे बिना पी–एच.डी में जा सकता है? क्या खड्डे में बीज बोने पर, उसी समय फल मिल सकता है? गर्भाधान करते ही क्या शिशु प्रगट हो जाएगा? अतः तसल्ली से ही कुछ मिलेगा।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवान् ने हमें भारतवर्ष में जन्म दिया। यहाँ भगवान् अवतार लेते रहते हैं, साधु संग मिलता रहता है, सतगुरु की शरणागति उपलब्ध होती रहती है। तभी तो विदेशी,

शांति प्राप्त करने हेतु अपने देशों को छोड़कर भारत में आते रहते हैं। विदेशों में शांति का नामोनिशान नहीं है।

gj¡ Ñ".k gj¡ Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj¡ gj¡A
gj¡ jke gj¡ jke jke jke gj¡ gj¡AA

जब कोई कार्यक्रम किया जाता है, कोई आयोजन होता है तो पहले स्टेज (मंच) आदि का प्रबंध किया जाता है, कार्यकर्ताओं का प्रबंध किया जाता है। भगवान् कृष्ण के अवतार से पहले योगमाया ने मृत्युलोक में धरातल पर सभी देवी देवताओं को समुद्र, नदियों, पहाड़ों के रूप में स्थित किया ताकि भगवान् कृष्ण को सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाएँ। वैकुण्ठ में अजनाभवर्ष नाम का एक ही हिस्सा था। उसे योगमाया ने मृत्युलोक में धरातल पर लाकर स्थापित कर दिया। पूरे संसार में और दूसरी जगह ऐसा प्रबंध नहीं है जैसा प्रबंध भारतवर्ष में है। इसीलिए भारतवर्ष की उपाधि भी अजनाभवर्ष के तुल्य ही रखी गयी है। अतः इसे भारतवर्ष कहते हैं। इसे भरतखंड भी कह सकते थे। वहाँ (वैकुण्ठ में) अजनाभवर्ष है तो यहाँ भी भारतवर्ष है। राजा भरत के नाम से ही इसका नाम भारतवर्ष रखा गया है। इसे हिंदुस्तान भी बोला जाता है क्योंकि यहाँ पर हिंदू जाति अधिक थी। जब अंग्रेज यहाँ आए तो उन्होंने इसका नाम इंडिया रख दिया। यहाँ की नदियाँ वैकुण्ठ की देवियाँ हैं, पहाड़ देवता हैं, समुद्र भी देवता हैं। हिमालय की पुत्री पार्वती, शिवजी को ब्याही गई है कि नहीं? हिमालय पहाड़ ही तो है। गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा, गोदावरी आदि देवियाँ, नदियों के रूप में आकर, जो भी इनमें स्नान करते हैं, उनके पाप धोती रहती हैं। महाराज सगर के पुत्रों का उद्धार भी तो गंगा ने ही किया है। यमुना का दूसरा नाम कालिंदी है जो भगवान् कृष्ण की पत्नी है। अब क्या शक रह गया? इन नदियों के किनारे–किनारे आश्रम बनाकर साधु, भगवान् का भजन करते रहते हैं। समुद्र भी देवता हैं। नदियों में स्नान करने से, पाप नष्ट हो जाते हैं, पहाड़ों की गोद में जाकर मानव तप करता है, समुद्र मानव को रत्न देता है जैसे रामजी को सेतुबंध, रामेश्वरम् में

पुल बाँधने के समय समुद्र ने दिए। पुल बाँधने में देर होने से राम ने समुद्र के लिए अग्निबाण का संधान किया, "अभी तुझे जलाकर राख कर दूँगा।" तब समुद्र ने डर के मारे, अमूल्य रत्न, सोने की थाली में लाकर राम को भेंट दिए और कहा, "मैं पुल बाँधने में सहायता करूँगा। मुझे क्षमा करना।"

इसी प्रकार कृष्ण ने समुद्र को बोला, "मैं यहाँ द्वारका बसाऊँगा, नगर बसाऊँगा तो तुम 48 कोस तक जगह खाली कर दो।" तो समुद्र ने सब जगह खाली कर दी थी। जब कृष्ण अपने धाम में पधारने लगे, तो समुद्र को कहा, "तुम सात दिन में द्वारिका को डुबो देना। हमारी प्रजा सात दिन में शहर खाली कर देगी।" ये सब श्रीमद्भागवत में लिखा हुआ है। इसी प्रकार से नदियों के, पहाड़ों के, समुद्रों के, अनेक अलौकिक उदाहरण हैं। अतः यह सिद्ध हो गया कि देवी–देवता, नदियों, पहाड़ों और समुद्र के रूप में इस धरातल पर प्रकट हैं अन्य जगहों में विदेशों में इनका पदार्पण नहीं हुआ है क्योंकि भगवान् का अवतार यहीं पर हुआ करता है। इसी स्थान पर भगवान् की लीलाएँ होती रहती हैं।

भारतवर्ष में ही भगवान् की लीलाओं के अलग–अलग स्थान प्रसिद्ध हैं जैसे वृंदावन, गोकुल, बरसाना, नंदगाँव, गोवर्धन, द्वारिका, 12 वन तथा 24 उपवन। यह सब स्थान भगवान् की लीला के लिए ही योगमाया ने रचित किए हैं। इसी स्थान अर्थात् भारतवर्ष में मानव का जन्म होना हँसी–खेल नहीं है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा जन्म यहाँ हुआ। यही तो भगवान् की असीम कृपा का फल है। फिर भी मानव सोता रहता है। अपना जीवन यूँ ही बर्बाद कर देता है तथा नरकों में तथा 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। कितना बड़ा नुकसान कर रहा है। यही तो माया का विस्तार है। इस माया से पिंडा छुड़ाना बहुत मुश्किल है। केवल कलियुग में हरिनाम ही ऐसा सरल, सुगम साधन है कि मानव इसको जपकर अपना उद्धार कर सकता है। इस साधन में कोई नियम भी नहीं है। किसी भी दशा में इसको अपना सकता है। न कोई खर्च है न कोई

बाधा है। लेकिन बिना सत्संग के इस मार्ग पर चलना नहीं हो सकेगा। जिसको सुकृति उपलब्ध हो वही इस मार्ग में आ सकता है। भगवान् के प्यारे साधु की सेवा करने से ही सुकृति हो सकती है। तन, मन, वचन से ही साधु की सेवा की जा सकती है। भगवान् बोल रहे हैं किः

tkS lHkhr vkok ljukbZA jf[kgmÅ rkfg çku dh ukbZAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो डर कर भी मेरी शरण में आ जाता है उसे मैं प्राणों से भी ज्यादा प्यारा रखता हूँ।" भगवान् उसकी रक्षा पालन करते हुए उसे हृदय से चिपकाए रखते हैं। माया भी उसका साथ देती रहती है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसी जन्म में शरणागत को उपलब्ध हो जाते हैं। गीता में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि :

lo/kekZUifjR;T; eke~da 'kj.ka oztA

(श्रीगीता. 18.66)

जैसे शिशु माँ की शरण में रहता है, वह किसी और को कुछ नहीं जानता और केवल माँ की पूर्ण शरणागति में रहता है, तो माँ उसकी कितनी देखभाल करती है। इसी प्रकार भगवान् भी अपने शरणागत की पूरी देखभाल करते हैं, जैसे पाँच साल के प्रह्लाद को, हिरण्यकशिपु ने, जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, कितना दुख दिया। वह तो उसे गला घोंटकर मार देता लेकिन प्रह्लाद भगवान् के नाम की पूर्ण शरणागति में था अतः हिरण्यकशिपु उसका बाल भी बाँका नहीं कर सका और स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया। इससे बढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है?

देखिए ! कलिकाल के मानव को हर तरह से कमजोर समझ कर भगवान् ने अति दया की है, "तू मेरा नाम किसी भी तरह से उच्चारण कर। मैं तुझे दुख सागर से पार कर दूँगा। तुझे कहीं जाने

की आवश्यकता नहीं है, न ही योग करने की आवश्यकता है, न ही धर्म करने की आवश्यकता है, न ही ज्ञान मार्ग पर जाने की आवश्यकता है। गृहस्थी में, गृहस्थी को निभाते हुए किसी भी तरह केवल मात्र मेरा नाम लेता रह। चाहे मन लगे, चाहे न लगे। इसकी परवाह मत कर। मैं तुझे अपने धाम वैकुण्ठ ले जाऊँगा।" अपनी गृहस्थी को निभाते हुए, सच्ची कमाई करते हुए अपना जीवन बसर करता रह। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिनाम लेने के लिए जबरन प्रेरित किया। उन्होंने कहा, "जो एक लाख अर्थात् 64 माला नहीं करेगा, न तो मैं उससे बोलूँगा, न मैं उसके घर जाऊँगा, न ही उसके हाथ का प्रसाद पाऊँगा।" यह सब उन्होंने इसलिए बोला कि जबरन भी नाम लेने से वे सब दुख सागर से पार हो जाएँगे। जितने भी संप्रदाय हैं चाहे वह मुसलमानों के हों, चाहे सिक्खों के हों या ईसाइयों के हों। सभी संप्रदायों में केवल मात्र नाम को ही सर्वोत्तम बताया गया है। भगवद् नाम के अभाव में तो कोई संप्रदाय है ही नहीं। चलते–फिरते, खाते–पीते, कहीं भी बैठ कर, किसी भी समय, किसी भी अवस्था में, मेरा नाम ले सकता है। अपना काम करो और मेरा नाम करो। हाथों से काम करो, जीभ से नाम करो। तो क्या आपत्ति है? यदि सुखी रहना हो तो मेरा नाम करो वरना दुख तो संसार में भरा पड़ा है, कोई भी सुखी नहीं है। करोड़पति भी दुखी और कंगाल भी दुखी। चर–अचर प्राणियों में कोई भी सुखी नहीं है। दुखी क्यों है? जहाँ सुख नहीं, वहाँ दुख ही तो प्रकट होगा। सुख है केवल भगवद् शरण में। शरण कैसे मिलेगी? केवल भगवद् नाम में ही सुख सागर लहरा रहा है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

कहते हैं :

Ñr ;qx =srk }kij iwtk e[k v# tkxA
tks xfr gksb lks dfy gfj uke rs ikcfga ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कितना सरल, सुगम रास्ता है। फिर भी हरिनाम नहीं करते हो? वेद–पुराण चिल्ला–चिल्लाकर मानव को समझा रहे हैं कि भगवान् के चरणों में ही सुख है। न ही धन में सुख है, न मन में सुख है, न घर में सुख है, न तन में सुख है, न वन में सुख है, कहीं भी सुख नहीं है। केवल भगवद् स्मरण में ही सुख है। सुख कौन नहीं चाहता? सभी चर–अचर प्राणी सुख के लिए दौड़ रहे हैं। दुख कोई नहीं चाहता, फिर भी दुख सागर में डूब रहे हैं। यही तो भगवद् माया है। तभी तो भगवान् कृष्ण श्रीमद् भागवतपुराण में बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं सत्संग से ही मिलता हूँ। बिना सत्संग मैं नहीं मिल सकता। मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और कोई मार्ग नहीं है और सत्संग मिलेगा, मेरे प्यारे साधु के पास ही। साधु ही मेरा साक्षात् रूप है। मैं स्वयं नहीं आता। मैं सन्त के रूप में आकर ही सत्संग का लाभ देता हूँ। कोई विरले भाग्यशाली को ही संत मिलते हैं। संत ढूँढने से नहीं मिलते। मैं ही भाग्यशाली के पास संत को भेजता हूँ।" जिसको भगवान् के दर्शन हो जाते हैं वह परमहंस अवस्था उपलब्ध कर लेता है। इस अवस्था को तुरीय अवस्था भी कहा जाता है। यह पागल नहीं होता। इसके समस्त दुर्गुण तन–मन से हट जाते हैं तथा समस्त गुण हृदय में भर जाते हैं।"

जिसको भगवान् का दर्शन हो जाता है, वह जीव मात्र का भला चाहता है। वह सब के हृदय में भगवान् को देखता है, दया की मूर्ति होता है, अन्य की भलाई में ही लगा रहता है। ऐसे अनेक गुण इस भक्त में आ जाते हैं। पांडव तो 24 घंटे भगवान् के पास ही रहते थे। क्या वह पागल हो गए थे? उनमें सभी गुण आ गए थे। वे सभी गुणों से ओतप्रोत हो गए थे। कौरव उन्हें तरह–तरह के दुख दिया करते थे लेकिन फिर भी पांडव उनका भला चाहते थे। उनकी बुद्धि सुधारने के लिए प्रार्थनाएँ किया करते थे। जिनको भगवान् के दर्शन हो जाते हैं, उनके हृदय में समता आ जाती है और समस्त शास्त्र भी प्रकट हो जाते हैं। हमारे गौर किशोरदास बाबा बिल्कुल अनपढ़ थे। अपना नाम भी लिखना नहीं जानते थे किंतु नित्य तीन लाख हरिनाम

किया करते थे, इसलिए सब शास्त्र उनके हृदय में प्रकट हो गए। जो भी कोई कुछ पूछता, वह उसका उत्तर दे देते थे।

एक मानव को किसी ने बोला, "यार! तू एक बार हरिनाम उच्चारण कर ले। राम बोल दे।" लेकिन वह इतना जिद्दी था। उसने कहा, "मैं नहीं बोलूँगा।" उसे बार–बार कहते रहे तो हार कर उसने एक बार राम बोल दिया। फिर वह बोला, "बताओ इसकी क्या कीमत है? इस राम नाम का क्या प्रभाव है?" उन्होंने कहा, "यह तो मैं भी नहीं जानता। चलो! शिवजी से पूछ लेते हैं कि राम नाम का क्या प्रभाव है?" वह शिवजी के पास पहुँचे और पूछा, "राम नाम का क्या प्रभाव है?" शिवजी बोले, "मैं भी नाम का प्रभाव नहीं जानता।" तो उसने पूछा, "कौन बता सकता है।" तो शिवजी ने कहा कि उनके पिता ब्रह्माजी राम नाम का प्रभाव बता सकते हैं। उसे लेकर ब्रह्माजी के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि, "यह राम नाम का प्रभाव जानना चाहता है। कृपया करके बताएँ।" ब्रह्माजी बोले, "राम नाम का प्रभाव और कीमत तो मैं भी नहीं बता सकता।" उन्होंने पूछा, "कौन बता सकता है?" ब्रह्माजी बोले, "यह केवल विष्णु भगवान् ही बता सकते हैं।"

अब उस मानव ने कहा कि देखो! मैं तो थक गया हूँ, मुझे ले कर चलो, तो उसके लिए पालकी मँगवाई। उसे पालकी में बैठा दिया और एक तरफ ब्रह्माजी जुते और एक तरफ शिवजी और एक तरफ वह आदमी। उस पूछने वाले को पालकी में बैठाकर ब्रह्माजी, शिवजी और वह आदमी, तीनों भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और पूछा, "राम नाम का क्या प्रभाव है?" तब विष्णु जी बोले, "आपको राम नाम का प्रभाव नहीं मालूम। इसी नाम के प्रभाव से ही तो यह मेरी गोद में आ गया है।" फिर सभी राम नाम के प्रभाव को जानकर आनंदमग्न हो गए और सभी को शिक्षा देने लगे कि राम नाम जपा करो जिससे भगवान् की गोद में जा सको। भगवान् की गोद में सुख का समुद्र लहरा रहा है। दुख तो मूल सहित समाप्त हो जाता है।

अब सब लोग हरिनाम में लग गए। उस व्यक्ति ने देखो कैसी शिक्षा दी सबको? अब सब लोग भगवान् का नाम लेने लगे।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

जिसका स्वभाव ऐसा (निम्नलिखित) होगा, भगवान् उसको एक पल के लिए भी नहीं छोड़ेंगे और उसके पीछे छाया की तरह रहेंगे। इसलिए ध्यानपूर्वक सुनो। ऐसा स्वभाव बना लो तो भगवान् एक पल के लिए भी आपको नहीं छोड़ेंगे। यह मैं बता रहा हूँ। मानव का एक फंडामेंटल (मूल) स्वभाव होता है जिसके द्वारा भगवान् का साक्षात् दर्शन एवं स्पर्श शत प्रतिशत होता है। इसे मैं पहले भी बता चुका हूँ परंतु फिर से बता रहा हूँ।

पहला है :

r`.kknfi l|uhpsu rjksjfi lfg".k|ukA
vekfuuk ekunsu dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् 3)

जिसका ऐसा स्वभाव होगा। वही सतत हरिनाम कर पाएगा। कीर्तनीयः सदा हरिः। वही कीर्तन करने के लायक है जिसका ऐसा स्वभाव है कि अपने को तृण से भी बहुत नीचा समझे। यह समझे, "मैं तो बिल्कुल मूर्ख हूँ, मैं तो बिल्कुल नीच हूँ, मेरे अंदर कोई गुण नहीं है।" जो ऐसा विचार रखेगा उसे अहंकार नहीं आ सकता। ऐसा स्वभाव होना चाहिए तभी भगवान् मिल सकते हैं।

दूसरा है : नित्य तीन प्रार्थनाएँ करना परम आवश्यक है। सोते समय, सुबह प्रातः जगते समय और स्नानादि के बाद करनी हैं। यह सभी भक्त समुदाय को मालूम भी है। इन तीन प्रार्थनाओं में अनंत धर्म शास्त्रों का बीज तथा प्राण भरा पड़ा है। नींद आने लगे तो प्रार्थना करो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और आप मेरे तन से मेरे प्राणों के साथ बाहर निकलो तब मुझे अपना नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।" भगवान् को बाँध दिया। भगवान् नहीं भूलते

हम भूल जाते हैं। सुबह जब उठो तो प्रार्थना करो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! मैं अब से लेकर जब तक सोऊँ तब तक जो भी काम करूँ वह सब आपका ही समझकर करूँ।" तो यह निष्काम कर्मयोग हो गया। "अगर मैं भूल जाऊँ तो आप मुझे याद करा देना।" तीसरी प्रार्थना सुबह स्नान आदि के बाद बोलो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी दृष्टि बना दीजिए, मेरी ऐसी निगाह बना दीजिए कि मैं कण—कण में और जीव मात्र में आपका दर्शन करूँ क्योंकि आप परमात्मा रूप में सब के हृदय में बैठे हुए हो और अगर मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।" जो ऐसा करेगा उसको भगवान् एक सैकंड भी नहीं छोड़ेंगे और मरने पर भगवान् पार्षद नहीं भेजेंगे, स्वयं लेने के लिए आएँगे। श्री गुरुदेवजी गारंटी ले रहे हैं कि जो कोई अनपढ़ हो, गँवार हो, जिसका कोई सहारा न हो, जिसमें कोई गुण भी न हो, जिसे जगत् ने त्याग दिया हो, यदि वह मेरे कहे अनुसार नित्य ही शरणागति के ये तीन साधन अपने जीवन में अपनाता रहे तो ऐसे साधक को, ऐसी कोई शक्ति नहीं जो वैकुण्ठ धाम जाने से रोक सके। स्वयं परमात्मा भी नहीं रोक सकते। परमात्मा से बड़ा तो अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई है ही नहीं। यह साधन दो मिनट का ही तो है।

भगवान् हमारे निष्किंचन महाराज को लेने के लिए स्वयं आए थे। निष्किंचन महाराज ने तो पहले ही बता दिया था कि आज वह जायेंगे। भगवान् आज उन्हें लेने आएँगे। मठ में नीचे से मंगला करके आए थे और ऊपर आकर बोले, "आज मैं जाऊँगा।" वहाँ सब को शिक्षा दी कि हरिनाम करो। हरिनाम से भगवान् की कृपा मिलेगी और बात करते—करते कुर्सी पर लुढ़क गए। यह तो साक्षात् अभी की बात है।

तीसरा क्या है? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहे। दसों दिशाओं में फिर सुख ही सुख है। कंचन में पैसा, दुकान, मकान, वैभव इत्यादि सब आता है। कामिनी में आता है कि सब स्त्री जाति को, नारी जाति को माँ समझे और प्रतिष्ठा अर्थात्, जब बड़ाई हो तो

यह समझे कि यह उसकी बड़ाई नहीं हो रही, यह तो हरिनाम की वजह से बड़ाई हो रही है। ऐसा सोचने पर कि हरिनाम की वजह से बड़ाई हो रही है, अहंकार नहीं आएगा।

चौथा है कि संग्रह–परिग्रह इतना ही रखें जिससे जीवन चल जाए। ज्यादा संग्रह परिग्रह रखोगे तो मन उस में फँस जाएगा और मन फँसेगा तो भगवान् में कैसे लगेगा? अगर संग्रह–परिग्रह कम होगा तो फिर भगवान् की तरफ मन झुक जाएगा। जिसको पैसे का मोह नहीं है, वह बिल्कुल भगवान् का प्यारा है। यह उस पर भगवान् की बड़ी कृपा है कि उसे पैसे का मोह नहीं है, नहीं तो 99% लोगों को पैसे से मोह रहता है। 100 में से केवल एक व्यक्ति ऐसा होगा, जिसको पैसे से मोह नहीं होगा। पैसा, यह है खास माया। यही झगड़ा कराता है। पैसा सबसे बुरा है।

पाँचवाँ, जब हम हरिनाम कर रहे हैं तब हम ऐसा सोचें कि भगवान् हमारे सामने खड़े हैं या हमारे पास बैठे हुए सुन रहे हैं। ऐसा अनुभव करो कि भगवान् मेरे पास हैं। मेरे को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। भगवान् मेरे पास ही रहते हैं।

छठा है कि जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखें। हाय–धाय न करें।

tc vko lrk"k èku rk lc èku èky lekuA

कहें कि जो कुछ मिला है भगवान्, आपकी कृपा से बहुत कुछ मिला है। बच्चा जब जन्म लेता है मुट्ठी बाँधकर आता है लेकिन जब जाता है तो मुट्ठी खोल कर जाता है। मुट्ठी बाँधकर क्यों आता है? क्योंकि जो वह पीछे से कमाई करके लाया है पूरी जिंदगी में उसे खर्च करेगा।

सातवाँ है कि किसी में गुण–दोष नहीं देखें। देखेगा तो वह गुण–दोष उसके हृदय में आ जाएगा। गुण–दोष क्यों होते हैं? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से प्रेरित होकर ही गुण–दोष उसमें आते हैं। उसमें उस बेचारे का क्या दोष है। पिछले जो भी कर्म किए

हैं उसके अनुसार सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की धाराएँ बहती हैं। उसका स्वभाव उन्हीं से प्रेरित होता है इसलिए गुण–दोष देखने की कोई जरूरत नहीं है। दूसरों के गुण–दोष देखने से वह तुम में आ जाएँगे। इसलिए गुण–दोष मत देखो।

ऊपर बताए नियम के अनुसार जिसका स्वभाव और जीवन होता है उसे भगवान् एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते। छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं। जब भगवान् उसके पास में हैं फिर दुख तो पास आ ही नहीं सकता। उसके पास तो सुख का भंडार भरा पड़ा है। इसके अलावा समस्त धर्मशास्त्रों में भगवद् उपलब्धि का कोई भी साधन है ही नहीं। लेकिन यह स्वभाव प्रकट होगा केवल भगवद् नाम से ही, केवल हरिनाम से ही प्रकट होगा। हरिनाम से ही ऐसा स्वभाव बन जाएगा। भगवद् सत्संग करने से ही सब कुछ मिल जाएगा।

देखिए! आयुर्वेद के जो प्रवर्तक थे। धन्वन्तरि, वह बोल रहे हैं

vP;qrkuUr xkfoUn ukekPpkj.kHk"ktkr~A
u';fUr I dyk% jkxk% IR;a IR;a onkE;geAA

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

"वह कह रहे हैं भगवान् का नाम लेने से कोई भी रोग पास ही नहीं आएगा। सर्वरोगाः नश्यन्ति। सब रोग नष्ट हो जाएँगे। भगवान् का नाम ऐसा है कि सारे रोगों का नाश करने वाला है। मैं सच–सच बोल रहा हूँ।" आप समस्त भक्तों को मैं कैसे समझाऊँ? हरिनाम नित्य करने से शरीर में कोई रोग नहीं आएगा। सदा स्वस्थ रहोगे। धन्वन्तरि भगवान् के अवतार बोल रहे हैं, "मैं सच सच कह रहा हूँ। हरिनाम करो। हरिनाम करो।"

मैं भी आपके सामने हूँ। 89 साल का हो गया हूँ। मैंने बचपन से हरिनाम किया है। मेरा शरीर बिल्कुल स्वस्थ है। कोई रोग नहीं है। सभी इंद्रियां बच्चे की तरह स्वस्थ हैं। मेरी आँखों की दृष्टि पाँच साल के बच्चे की तरह है। मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। हरिनाम

में आपकी रुचि हो जाए, इसके लिए ही बोल रहा हूँ। हरिनाम से अधिक शक्तिशाली अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई नहीं है और शक्तिशाली के पास आने में हर कोई डरता है। शक्तिशाली के नजदीक कोई भी नहीं आ सकता और कमजोर को सब सताते रहते हैं। अतः ये रोग शरीर में आने से डरते रहते हैं। ऐसा मौका भविष्य में मिलने वाला नहीं है। इसलिए रात–दिन हरिनाम में लग जाना ही सर्वोत्तम होगा।

ऐसा मुझे भगवान् का आदेश है कि स्वयं हरिनाम करो और दूसरों को भी हरिनाम में लगाओ। जहाँ तक हो सकता है, मैं सबको हरिनाम के लिए बोलता हूँ। अरे! हरिनाम में कुछ लगता नहीं है। शाम का भोजन कम करो और सुबह जागकर ब्रह्ममुहूर्त में हरिनाम करो क्योंकि दिन में मन नहीं लग सकता। रात में शांत वातावरण होता है, इसलिए हरिनाम रात में ही होता है, ब्रह्म मुहूर्त में आप जाग कर हरिनाम करो।

यह मौका फिर नहीं मिलेगा। मनुष्य जन्म फिर नहीं मिलेगा। इसलिए अभी से सतर्क हो जाओ और हरिनाम करो।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : क्या हर एक जीव आत्मा ने भगवद् धाम वापस जाना है ?

उत्तर : हाँ! जीवात्माओं की तो गिनती नहीं है, अनंत हैं। जैसे पृथ्वी के कण अनंत हैं, जैसे तारे अनंत हैं, वैसे ही जीव भी अनंत हैं। लेकिन जब साधु संग मिलेगा तब वह भगवान् के पास जा सकेगा। साधु संग के बिना असंभव है। बिल्कुल असंभव है। साधु संत के संग बिना नहीं जा सकता।

केवल 'एक नाम' ही पर्याप्त

23

10 मार्च 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

सभी मानव पैसों के पीछे दौड़ते रहते हैं। राजा भी इसी प्रकार के कर पर कर लगाकर जनता को लूटते रहते हैं। दया नाम की कोई चीज नहीं है। जो चाहे जिसे मार दे। कोई रक्षक पालक नहीं है। अदालतों में पैसे वालों की जीत होती है और गरीब मारा जाता है। स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी एवं उच्छृंखल वृत्ति की हो जाती हैं। शर्म बिल्कुल नहीं होती। स्त्रियों का ही बोलबाला रहता है। पुरुष स्त्रियों से दबे रहते हैं। इससे आप मुझसे नाराज नहीं हों। मैं तो केवल जो शास्त्र में लिखा है, वैसा बोल रहा हूँ। सती स्त्रियों के तो नामोनिशान ही नहीं हैं।

भविष्य में ऐसा जमाना आएगा जो भी भगवान् का नाम जपेगा उसे जेल में ठूँस दिया जाएगा या कड़ी सजा दी जाएगी। ऐसी हवा अभी भी कहीं–कहीं चल रही है लेकिन गुप्त रूप में है। अभी मालूम नहीं पड़ता। विदेशों में तो सामने ही हो रहा है। कोई भी जोर से भगवान् का कीर्तन नहीं कर सकता।

कलि महाराज तो हिरण्यकशिपु का प्रतीक है। भगवद् नाम से सख्त घृणा करता है। अभी तो कलि महाराज की संध्या ही आरंभ हुई है। जैसे सूर्य तो बाद में उदय होता है लेकिन आसमान में

उसकी ललाई पहले से दिखती है, बाद में सूर्य सब की आँखों के सामने दिखाई देता है। इसी प्रकार कलि महाराज अभी इस धरातल पर आया नहीं है, उसकी छाया ही अभी तक आई है, उसकी आभा ही अभी आई है। जब स्वयं आएगा तब देखना कि चर–अचर प्राणियों का क्या हाल होगा। न जिएँगे, न मरेंगे। तड़पते रहेंगे। मेरे गुरुदेव सबको चेता रहे हैं कि तुरंत हरिनाम आरंभ कर दो। हरिनाम आपकी कलि से रक्षा और पालन करता रहेगा। 64 माला नित्य, बेमन से भी करने पर, वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि शत–प्रतिशत होगी। यह गारंटी है। साथ–साथ में अपने स्वभाव को भी सुधारने की कोशिश करे। किसी भी तरह के प्राणी को दुख न दें। दुख शरीर को नहीं होता है, आत्मा को होता है। शरीर तो आत्मा के पहनने का कपड़ा है। जब कपड़ा फट जाता है तब नया पहनना पड़ता है अर्थात् जब शरीर जीर्ण–शीर्ण हो जाता है तो आत्मा दूसरा नया शरीर धारण करती है। बार बार मानव शरीर क्यों देते हैं? इस कारण देते हैं कि भगवान् कहते हैं, "तू दुख सागर में डूब रहा है। मेरे पास आ जा। मेरे पास सुख ही सुख है। दुख का तो नामोनिशान ही नहीं है।" अतः बोला गया है कि मानव जन्म मिलना बहुत ही दुर्लभ है। अरबों, खरबों चतुर्युगों में भगवान् की कृपा से मानव शरीर मिला करता है। फिर मानव इसे हाय–धाय में खर्च कर देता है। हीरा हाथ में आया और पत्थर समझ कर गंदी नाली में फेंक दिया। कितना अज्ञान है। कितनी मूर्खता है। कौन इसे समझाए? केवल भगवान् का प्यारा साधु ही इसकी आँखें खोल सकता है वरना तो बंद आँखों से ही इस मृत्यु लोक से कूच कर जाता है। फिर उसी दुखसागर में पड़ा–पड़ा कराहता रहता है। गर्भाशय से लेकर मृत्युपर्यंत केवल दुख ही दुख इसको हस्तगत होता रहता है। वैकुण्ठ में जाना और भगवान् का आना बहुत ही सरल है, केवल मन को सुधार लो।

मन में ये तीन हलाहल विष न हों तो भगवान् तुरंत मिल जाएँ– कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा। इन तीनों से मुँह मोड़ लो तो भगवान् मिलने में देर नहीं लगती। कंचन में क्या क्या है? कंचन में धन है,

जो भी वैभव है, खेती–बाड़ी, मकान, दुकान जो भी है, सब कंचन में आता है। कामिनी जो स्त्रीजाति को अपनी माँ समझे। छोटी हो चाहे बड़ी हो, युवती हो, सबको अपनी माँ समझे। प्रतिष्ठा जब हो तो समझे कि यह तो हरिनाम की वजह से हो रही है। इसमें मेरा क्या है? इससे उसे अहंकार नहीं आएगा। जिसका ऐसा स्वभाव होगा भगवान् उससे छाया की तरह चिपके रहेंगे। भगवान् तो हाथ फैलाए खड़े हैं क्योंकि हम सब भगवान् के बच्चे हैं। बाप किसको नहीं चाहता? लेकिन पुत्र ही नालायक हो जाए तो बाप क्या करे? बाप का क्या दोष है? विचार करें माया इसके पीछे पड़ी हुई है। अगर जीव का भगवान् के प्यारे साधु से संग बन जाए तो माया इसका पीछा छोड़ देगी। वह साधु इसे माया को हटाने का मार्ग बता देगा तो इसे सुख हस्तगत हो जाएगा।

कुछ नहीं करना होगा। केवल 64 माला नित्य हरिनाम की करनी होंगी। चाहे मन लगे चाहे न लगे। जैसे अनजान में, बेमन से कोई अमृत पी जाए तो वह उसे अमर बना देगा। इसी प्रकार बिना जाने जहर पी जाए तो उसे मार देगा क्योंकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। ऐसे ही आग में जाने से या अनजाने से हाथ लगा दो, तो जला देगी। इसी तरह से हरिनाम को बेमन से भी लेंगे तो वह हरिनाम भगवद् चरण में पहुँचा देगा। शास्त्र बोल रहा है :

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

तो, बिना मन से भी, भगवान् का नाम लोगे, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दस दिशाओं के अलावा ग्यारह दिशा तो होती नहीं और दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक धाम भी आ गया। वैकुण्ठ तो मिल ही जाएगा। हमारे पुराण कह रहे हैं कि एक ही हरिनाम में इतनी शक्ति है जितना पाप कोई जिंदगी भर में कर नहीं सकता। एक नाम ही काफी है। जैसे हमारे यहाँ क्विण्टल घास पड़ा हो और एक माचिस की तीली लगा दो तो तुरंत जलकर राख का ढेर हो जाएगा।

धर्मशास्त्र भगवान् के साँस से प्रकट हुए हैं। मैं जो कुछ भी बोलूँगा, शास्त्र सम्मत ही बोलूँगा ताकि किसी को एतराज न हो सके। एक शब्द भी शास्त्र के बाहर नहीं बोलूँगा।

चर–अचर प्राणियों के पीछे भगवान् की शक्ति माया पड़ी रहती है। इस की तीन शक्तियाँ हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इनके स्वभाव पर ही चर अचर प्राणियों का जीवन निर्भर है। इसमें प्राणियों का कोई वश नहीं है। अतः परतंत्र अवस्था में रहते हैं। आत्मा सबकी एक ही है, सब की समान है। अतः चर अचर प्राणी अबले हैं। इसीलिए कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ क्योंकि जो कुछ असर होता है, वह आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। क्योंकि शरीर तो जड़ है। यह तो कपड़ा है। जब कोई किसी से द्वेष करता है तो वह अपने से ही द्वेष करता है। वह तो अपना ही दुख मोल लेता है। कोई किसी को दुख नहीं देता, स्वयं ही मोल लेता है। दुख कौन चाहता है? सभी सुख की ओर दौड़ रहे हैं। फिर भी प्राणी का जबरन दुख से पाला पड़ जाता है। यह है अज्ञान, मूर्खता, अनभिज्ञता। ब्रह्मा किसी प्राणी को दुख–सुख नहीं देते। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। इसमें ब्रह्मा, विधाता क्या करेगा?

As you sow, so shall you reap

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

हम सब दुखी क्यों हैं? हम दुखी इसलिए हैं क्योंकि यह ज्ञान हमसे दूर है। यह ज्ञान कैसे उदय होगा? केवल हरिनाम से। हरिनाम निष्ठा कैसे होगी? केवल नामनिष्ठ महात्मा से ही आएगी और नामनिष्ठ महात्मा कैसे मिलेगा? जिस जीव की सुकृति होगी उसे ही भगवद् कृपा से नामनिष्ठ संत मिलेगा और सुकृति कहाँ से मिलेगी? भगवान् के प्यारे साधु की सेवा से। साधु कहाँ मिलेगा? भगवान् की कृपा से ही साधु संग प्राप्त होगा।

fcu| gfjÑik feyfg| ufg| l|rk

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

देखो! जो बोओगे वही मिलेगा। बाजरा बोओगे तो बाजरा मिलेगा, चावल नहीं मिलेगा। इसी तरह मानव के शरीर में तीन धाराएँ बहती हैं। सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। इन धाराओं के अनुसार मानव का स्वभाव हो जाता है। जैसा स्वभाव होगा तो संतान भी उसी स्वभाव की प्रकट होगी। कहते हैं कि, "हमारा बेटा हमारा कहना नहीं मानता।" मानेगा कैसे? तुम्हारा दोष है। बच्चे का कोई दोष नहीं। स्वभाव को सतोगुणी या निर्गुणी बनाने हेतु सतयुग, त्रेता, द्वापर में गुरु आश्रम खोले जाते थे। पच्चीस साल बच्चे वहाँ रह कर धर्मशास्त्र की चर्चाएँ सुना करते थे तो बच्चों का खून सात्विक या निर्गुण हो जाया करता था तो उनके बच्चे देवता स्वभाव के जन्म लेते थे। क्रोधी मानव का क्रोधी बच्चा जन्म लेगा। लोभी मानव का लोभी बच्चा जन्म लेगा। प्रेमी मानव का प्रेमी बच्चा जन्म लेगा। यह तो ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इसमें राई मात्र भी फर्क नहीं है। इसी कारण कलियुग में बच्चे राक्षस स्वभाव के हो रहे हैं। जैसा माँ–बाप का स्वभाव होता है वैसा ही संतान का स्वभाव होगा। इसमें कोई दो राय नहीं है।

भगवान् दयानिधि कहलाते हैं लेकिन मानव भगवान् को चाहता ही नहीं है अतः वह दुखी रहता है। जहाँ सुख का भंडार भरा पड़ा है, अज्ञानतावश वहाँ इसका मुख होता ही नहीं है। मानव अपनी ही आत्मा को सताता रहता है। सभी चराचर प्राणियों की आत्मा एक ही है। जिस प्रकार मानव की एक उंगली में दर्द हो जाता है तो पूरे शरीर में ही दर्द व्याप्त हो जाता है, केवल उंगली दुखी नहीं होती। इसी प्रकार जब मानव सामने वाले को सताता है तो वह स्वयं को ही सता रहा है। इसको यह ज्ञान ही नहीं है। मूर्खतावश जानता नहीं है। जिस प्रकार टट्टी खाने की वस्तु नहीं है लेकिन सूअर उसे बड़े चाव से खाता है। इसका कारण है कि यह गलत रास्ते से जा रहा

है। उसको सही रास्ता बताने वाला कोई नहीं है। सूअर के सामने मिठाई रख दो तो वह नहीं खाएगा।

इसी प्रकार मानव का स्वभाव बिगड़ा हुआ है। इसे धर्मशास्त्र की चर्चाएँ सुहाती नहीं हैं जो कि सुख का रास्ता है और उसे सांसारिक चर्चाएँ, जो दुख का रास्ता है, बहुत मीठी लगती हैं क्योंकि इसका स्वभाव सूअर से भी कम नहीं है। सूअर तो फिर भी अज्ञानी है लेकिन मानव में तो भगवान् ने बुद्धि दी है। अच्छा बुरा सोचने की शक्ति दी है। जानबूझकर गलत, दुखदायी रास्ते पर जाता है।

tkdk çHkq nk#.k n[k nghA rkdh efr igys gj yghAA

कर्म ही ऐसा कर रहा है तो दुख ही पाएगा। भगवान् किसी को दुख नहीं देते क्योंकि भगवान् सबके बाप हैं। क्या बाप अपने बच्चों को, अपने बेटों को दुख देता है? अगर बेटा ही नालायक हो और बाप का कहना नहीं मानता हो तो इसमें बाप का क्या दोष है?

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

As you sow, so shall you reap

भगवान् ने सुख पाने हेतु धर्मशास्त्र रचे हैं लेकिन मानव का दिमाग खराब है, उधर उसकी रुचि होती ही नहीं। संसार की बातों में तो सोना भी छोड़ देगा। सारी रात गप–शप में बिता देगा जो कि निरर्थक है। यही तो माया है। भगवान् को दया आई तो जीव को मानव देह दे देता है लेकिन यह मानव इस देह का दुरुपयोग करता है, फिर 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। कलियुग में भगवान् ने मानव को अपनी गोद में पहुँचने का ऐसा सरल, सुगम रास्ता, दया करके दिया है, "तू मेरा नाम ले। नाम लेने में कोई कष्ट नहीं। कहीं पर भी बैठकर किसी समय भी ले ले। कहीं जाने की जरूरत भी नहीं है। जहाँ पर है वहीं पर मेरा नाम ले। मेरे नाम में ही सुख है अन्य कहीं भी सुख नहीं है। कोई पैसा नहीं लगेगा। केवल नाम ले। नाम हर प्रकार से तेरी मदद करेगा। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष घर बैठे ही उपलब्ध हो जाएगा। तेरा रक्षा, पालन भी मेरा नाम

ही करेगा।" हमें, हमारे गुरुवर्ग के पदचिह्नों पर चलना चाहिए। उन्होंने केवल नाम लिया और भगवान् उनके पास उनके लिए दूध लेकर आते थे, उनसे मिलते थे। बस किसी भी चर–अचर प्राणी को सताना नहीं है। ऐसा स्वभाव बना लो। भगवान् कहते हैं, "फिर मैं तुम्हें एक पल के लिए भी छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। सदा तेरे पास ही रहूँगा। छाया की तरह चिपका रहूँगा। सब तरह से तुम्हारी देखभाल करूँगा। तुम्हें सुख ही सुख उपलब्ध होगा। दुख का तो नामोनिशान भी नहीं रहेगा। जिसने भी मेरा नाम लिया है वह हमेशा के लिए सुखी हो गया और जिसने मेरा नाम नहीं लिया वह दुख सागर में गोता खाता रहा।"

भगवान् ने स्वयं सृष्टि रची है और सृष्टि के रूप में भी स्वयं ही हैं। जिस मानव की ऐसी दृष्टि बन गई उसके लिए भगवान् दूर नहीं हैं। वह सदा भगवान् की गोद में खेलता है लेकिन यह अवस्था केवल मात्र हरिनाम जपने से ही उपलब्ध हो सकेगी अन्य कोई भी साधन और मार्ग नहीं है। नाम की महत्ता तो चारों युगों में ही है लेकिन कलियुग में अधिक इसलिए भी है क्योंकि मानव हर प्रकार से कमजोर है, शक्तिहीन है। अतः घर बैठे ही भगवान् मिल जाएँ। प्रह्लाद तो पाँच साल का बच्चा था। घर बैठे ही हरिनाम ने उसे सर्वसमर्थ बना दिया। उसकी रक्षा पालन किया। उसका बाल भी बाँका नहीं हो सका। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सामने मौजूद है। अब भगवान् अपने हरिनाम को जपने का तरीका बता रहे हैं। कह रहे हैं :

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

और शिवजी क्या कह रहे हैं?

Iknj I|feju t: uj djghA
Hko ckfjfèk xkin bo rjghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

मन लगाकर हरिनाम जपने से मानव का सारा जीवन ऐसे चला जाएगा, जैसे कोई गाय के खुर को उलांघ जाए। चार इंच के खुर को तो एक बच्चा भी उलांघ सकता है। यह भगवान् का ही कहना है। मन लगाकर कैसे जपें? जो जपें उसे कान से सुनते रहो और ऐसा अनुभव करो कि भगवान् आपके पास में बैठे हैं और अपना नाम सुन रहे हैं। भगवान् को अपने पास से दूर जाने मत दो। जब इस प्रकार से जप होगा तो भगवान् के मिलने में देर नहीं होगी। मिलने में देर होने पर भक्त को रोना आ जाएगा। रात की नींद और दिन की भूख गायब हो जाएगी। दिन का एक क्षण भी भगवान् से दूर नहीं होगा। इस रोने में जो आनंद सागर लहराएगा उसे भक्त ही जान पाएगा। अन्य को बताने में असमर्थ होगा जैसे कोई मिठाई का स्वाद किसी को नहीं बता सकता। भक्त ऐसा ही हो जाता है।

भक्त की ऐसी स्थिति क्यों नहीं आती? इस का कारण है संसार की ओर अधिक झुकाव है। अतः हरिनाम जपते हुए मन एकाग्र नहीं होता। मन संसार की ओर भागता रहता है। जहाँ मन की हलचल रहेगी, वहाँ भगवान् के लिए द्रवता कैसे आएगी? संसार का कोई भी काम मन की एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता। तो फिर भगवान् के नाम का काम कैसे बन सकता है। सारी उम्र ऐसे ही रोते–रोते चली जाएगी और फिर भविष्य में मानव जन्म कब मिलेगा, इसका कोई पता नहीं। फिर इस दुख सागर में गोता खाता रहेगा। कितना अज्ञान है। कैसी मूर्खता है।

tkuk pgfg x< xfr tÅA uke thg tfi tkufg rÅAA

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

शास्त्र बोल रहा है कि नाम का प्रभाव अगर जानना चाहते हो तो उसे जीभ से जपो तो तुम को मालूम पड़ेगा कि नाम में कितनी शक्ति है। शास्त्र बोल रहा है –

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

देखो! हरिनाम में कितनी सरलता है। कलियुग में जन्म केवल भाग्यशालियों का होता है। देवता भी तरसते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए। हमारा भारत वर्ष में जन्म हो जाए। तो हम भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। जो लाभ सतयुग, त्रेता और द्वापर में मानव को अत्यंत कठिनता से उपलब्ध होता है वह इस कलियुग में हरिनाम को जीभ से जप कर तथा कान से सुनकर उपलब्ध हो जाता है। कितना सरल, सुगम साधन मानव को हस्तगत हो गया है फिर भी कर्मफूटा मानव इसका लाभ नहीं उठाता। इसका कारण है कि –

tkdks çHkq nk#.k nq[k nsghA rkdh efr igys gj ysghAA

ऐसा अवसर हाथ आने पर भी भगवान् उसकी बुद्धि बिगाड़ देते हैं ताकि दुखों पर दुख भोगता रहे क्योंकि उसके कर्म ही ऐसे हैं। भगवान् इसमें क्या करेगा? क्योंकि उसके पिछले जन्मों के संस्कार खराब हैं अतः उसे इस तरफ सुमार्ग पर आने नहीं देते। सारी उम्रभर हाय–धाय और अंत में रोता–रोता ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। बस यही माया का प्रकोप है। कहते हैं –

fcuq lrlax fccsdq u gksbZA jke Ñik fcuq lqyHk u lksbZAA

(मानस, बाल. दो. 2 चौ. 4)

संत के बिना सत्संग नहीं हो सकता। कहते हैं :

rkr Lox Z vicx Z lq[k èkfjv rqyk ,d vaxA
rqy u rkfg ldy fefy tks lq[k yo lrlaxAA

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लवमात्र का सत्संग ही मन को बदल देता है। क्षण भर का सत्संग ही मानव को सुमार्ग पर चला देता है।

देखिए! गुरु नानक देव जी बोल रहे हैं :

ik¡Lr] Mk¡Mk] Hkk¡x] èkrqjk mrj tk, ijHkkrA
vjs uke [kqekjh ukudk p<h jgs fnu jkrAA

ऐसा नाम होना चाहिए। हर समय नाम का चिंतन होता रहे। इस प्रकार का मन जिस भक्त का बन गया, वह परमहंस अवस्था में पहुँच जाता है, तुरीय अवस्था उसे उपलब्ध हो गई। उसका जीवन पूर्ण रूप में वैरागी बन गया। अब वह कठपुतली की तरह से जीवन यापन कर रहा है। वह भगवान् के कर कमलों में पहुँच गया है, जैसे जड़भरत हुए हैं। जैसे शराबी को पता ही नहीं होता कि मेरे शरीर का कपड़ा शरीर से हट कर नीचे गिर गया है या मैं गंदी नाली में पड़ा हुआ हूँ। ऐसी स्थिति परम भक्त शिरोमणि की हो जाती है। यह अवस्था सुपरनेचुरल (अलौकिक) है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से बोला, "हे अर्जुन! अभ्यास एवं वैराग्य ही मुझे प्राप्त करने का साधन है। अभ्यास मतलब हरिनाम की 64 माला नित्य करो।" भगवान् ने अर्जुन को बोला, "इस काम वैरी को मार।" काम का अर्थ है इच्छाओं का दमन कर। कामनाओं का नाश कर, तभी वैराग्य उदय हो पाएगा। इच्छाएँ मन पर हावी रहेंगी तो वैराग्य मन में नहीं आ सकता। संग्रह–परिग्रह बिल्कुल कम रखो, नहीं तो उसमें मन फँसता रहेगा और अंत में भगवान् ने 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में बोला है :

lokekUifjR;T; ekeda 'kj.ka otA

(श्रीगीता– 18.66)

"सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब तरह से सुखमय कर दूँगा।" शरण कैसी होनी चाहिए? यह शिशु के रूप में समझा जा सकता है जैसे एक शिशु अपनी माँ की ही पूर्ण शरणागति में रहता है। यह अपने बाप को भी नहीं जानता। माँ इस शिशु का अष्टयाम ध्यान रखती है। 24 घंटे ध्यान रखती है। उसका पालन–पोषण बड़े प्रेम से करती है। भार नहीं समझती, प्यार से करती है, वात्सल्य से करती है। इसके लिए रात भर जागती है। बच्चा जब बीमार हो जाता है तो बाप अपने सुख से नींद में सोता है लेकिन माँ रात भर गोदी में लेकर उसे सुलाती रहती है।

ध्यान से सुनिए! जब मानव मरता है तब ऐसी अशुभ घटनाएँ होने लगती हैं। क्या होती हैं? स्वप्न में गधे पर या ऊँट पर चढ़कर चलता है, स्वप्न में तेल में स्नान करता है, नंगा होकर चलता है। और कान को बंद करने से अंदर की घू–घू की आवाज सुनाई नहीं देती। साँस रुक–रुक कर आने लगता है और नसों में खिंचाव होने लगता है। जब यह लक्षण होने लगते हैं तब आँखों से कम दिखाई देता है। कभी दिखता है कभी नहीं दिखता तो ऐसे में समझना होगा कि आत्मा 24 घंटे के अंदर शरीर से निकल जाएगी। उस समय घरवालों को रोना नहीं चाहिए। जब ऐसी हालत दिखने लगे तो जोर–जोर से हरिनाम कीर्तन करना चाहिए। श्रवण से भगवान् का कीर्तन सुनाई देगा और सुनते–सुनते उसकी मौत हो जाएगी तो भविष्य में जन्म–मरण नहीं होगा और उसकी मुक्ति हो जाएगी। अगर घरवाले रोएंगे तो मरणशील का ध्यान घर वालों की तरफ जाएगा और अंत में इसी भाव में मौत आ जाएगी तो मरणशील मानव वहीं पर कीड़ा, मकोड़ा, छिपकली आदि बन कर जन्म लेगा। घरवालों ने इसका कितना बड़ा नुकसान किया। भविष्य में अगले अरबों–खरबों युगों में भी मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। जब मरणशील को श्मशान में ले जाएं तो उसके बाद खूब रो लो। तब रोने में नुकसान नहीं होगा। रोना तो आएगा ही। लेकिन उसके जीते जी मन को अंदर से सख्त रखो। अंदर ही अंदर रो लो ताकि उसको सुनाई न दे।

मरते समय जो आवाज कान में जाएगी, उसी आवाज के भाव में वह मर जाएगा। मन का भाव ही अगला जन्म देता है। इसका ध्यान रखना परम आवश्यक है। चाहे मरने वाला कितना ही प्यारा और नजदीक का हो, रोने को बिल्कुल बंद रखो। इसमें मरने वाले का ही भला है। रोने से तो दुश्मनी जैसा काम हो जाएगा। इसलिए रोना कभी नहीं। जब वह मर जाये, उसे श्मशान में ले जाएँ तो बारह दिन तक खूब रोओ। लेकिन उसके सामने कभी मत रोओ। उसके सामने रोने से तो उसके दुश्मन की तरह हो जाओगे, क्योंकि अंत में जो भाव होता है उसी में ही उसका जन्म होगा तो संसार में उसका

जन्म हो जाएगा। अगर संकीर्तन करोगे तो उसको नाम सुनाई देगा। अंदर से ही नाम को सुनने से उसका कल्याण हो जाएगा।

एक महात्मा थे। उन्होंने खूब भजन किया। उनसे कुछ गलत काम भी हो गए। मृत्योपरांत उनसे पूछा गया कि पहले पाप का फल भोगेंगे या पुण्य का फल भोगेंगे। उसने कहा कि उसका पाप थोड़ा ही है तो पहले वह नरक जायेंगे। नरक में जाकर उसने देखा कि वहाँ पर सब कराह रहे हैं, दुखी हो रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं, उसे दया आ गई और जैसी उसकी कीर्तन करने की आदत थी उसने तो वहीं हरिनाम करना शुरू कर दिया। हरिनाम करते ही उन सब को हरिनाम कान से सुनाई दिया तो सबके लिए विमान आ गए। उसने एक नहीं सारे नरकों का उद्धार कर दिया। यमराज बोले, "अच्छा आया तू! तूने तो मेरा पूरा साम्राज्य ही खत्म कर दिया।" वह बोले, "यमराजजी! आप देखिए, कल से ही यह वापिस भर जाएगा। आप चिंता क्यों करते हो।" यमराज बोले, "तू तो सबको ही वैकुण्ठ ले गया।" उन्होंने कहा, "यमराजजी! क्या आप जानते नहीं, नाम में कितनी शक्ति है?" यमराज भी तो भगवान् का रूप ही हैं।

नाम की बहुत शक्ति है, इसलिए सबको नाम करना चाहिए। चाहे मन लगे या न लगे, तो भी भगवान् का नाम करना चाहिए। देखो! अभी तो तुम जवान हो, बुढ़ापे में तो नाम निकलेगा ही नहीं क्योंकि बुढ़ापे में कई रोग आ जाएँगे और मन रोगों में चला जाएगा, दुख में चला जाएगा। इसलिए शुरू से ही हरिनाम करना चाहिए। जब ताकत है तब से ही हरिनाम करना चाहिए। जब हरिनाम करोगे और बुढ़ापा आएगा, तब हरिनाम का अभ्यास रहेगा। तब खाट में पड़े–पड़े भी हरिनाम करोगे, फिर तुमसे कोई पाप नहीं होगा। जब खटिया में पड़े पड़े ही हरिनाम करोगे तो तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। इसलिये हरिनाम करते रहो।



समस्त धर्मशास्त्रों का प्राण : केवल हरिनाम

(24)

17 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भक्तजन सुनें। प्राणी मात्र कैसे अपना बनता है? कैसे अपने वश में आता है? एक तो भय से आता है। दूसरा प्यार से आता है। सर्कस में शेर मालिक के भय से उस के कहे अनुसार नाचता है और प्यार से भगवान् भक्त के आश्रित हो जाते हैं, जैसे भक्त बोलता है, भगवान् प्रेम के वश वैसा ही उसका आदेश पालन करते रहते हैं।

चारों युगों का अलग–अलग वातावरण रहता है। सतयुग में सच्चाई अधिक होती है। धीरे–धीरे त्रेता में, द्वापर में सच्चाई का वातावरण चौथाई कम होता जाता है एवं कलियुग में तो सच्चाई का नामोनिशान ही नहीं रहता है। यह युग कलह प्रधान है, इसमें बचने का केवल एक ही रास्ता है, भगवान् से नाता जोड़ लो। नाता कैसे जुड़ सकेगा? केवल मात्र हरिनाम जपने, कीर्तन करने से एवं साधु के संग से। कलि महाराज, हिरण्यकशिपु का प्रतीक है और भक्त, प्रहलाद का प्रतीक है। हरिनाम की शरण में चले जाओ तो कलि महाराज भक्त पर कोई प्रभाव नहीं कर पाएगा।

कलियुग केवल स्वार्थ का साम्राज्य फैला देगा। 'प्रेम' नाम का वातावरण बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। नारियां स्वेच्छाचारिणी स्वभाव की बन जाएँगी और नर, नारियों के आश्रित हो जाऐंगे। यह शास्त्र कह रहा है, मैं नहीं कह रहा हूँ। नारियों का जो गहना है शर्म, वह उच्छृंखलता में बदल जाएगा। शर्म मूल सहित गायब हो जाएगी।

जो नारी उल्टे आचरण की नहीं है यह समझना होगा कि उस पर प्रभु की असीम कृपा है। परिवार से कोई सलाह मशवरा न ले कर, ससुराल से सलाह लेने लगेंगे, जिसके पास पैसा रहेगा वह अदालतों से अपनी जीत करवा लेगा। पैसे वाला जितना भी दुष्ट चरित्रवान हो उसे लोग पंडित समझेंगे। संन्यासी, वानप्रस्थी घर–गृहस्थी जुटाते रहेंगे, जो पैसे देगा वही शिष्य बन सकेगा। गरीब कितना ही चरित्रवान हो, आस्था वाला हो, उसे कोई शिष्य नहीं बनाएगा, इस युग में पैसा ही भगवान् का स्थान बना लेगा। नीची जातियों के लोग भगवा कपड़ा पहनकर, ऊँचे सिंहासन पर बैठकर मनमाना आचरण करने लगेंगे।

जो मैं बोल रहा हूँ यह श्रीमद्भागवत और रामायण में लिखा हुआ है। धर्मशास्त्र का उसे नाममात्र का भी ज्ञान नहीं होगा। भोली–भाली जनता उसके चंगुल में फँसती जाएगी, स्वयं भी डूबेगा और आश्रितों को भी डुबो देगा। चारों ओर लूट–खसोट का साम्राज्य बनता रहेगा, सज्जन परेशान रहेगा और दुष्टों का बोलबाला रहेगा लेकिन अंत में भला सज्जन का ही होगा। भगवान् तो सबके ही हृदय में बैठे हैं तो मानव में दुष्टपना कैसे हो सकता है? यह प्रश्न सबके सामने उठना स्वाभाविक ही है। इसका उत्तर है कि मानव के संस्कार और स्वभाव पिछले जन्म के होते हैं। स्वभाव, भगवान् के भजन के बिना अच्छा नहीं होता। कलियुग में भगवान् ने अच्छा स्वभाव बनाने हेतु अपना नाम यानि हरिनाम संकीर्तन हेतु, नाम जपने हेतु धर्मशास्त्र में बोला है जिसके अपनाने से मानव के स्वभाव, पिछले बुरे संस्कार बदलकर अच्छे बन जाते हैं। बुरे स्वभाव वाला मानव कभी शांति उपलब्ध नहीं कर सकता, वह तो जन्म भर

हाय–हाय में रोता हुआ ही जीवन काटता रहता है। अब जैसा स्वभाव होता है, तामसिक, राजसिक वैसे ही अंदर बैठा परमात्मा उसे प्रेरित कर तामसिक, राजसिक कर्म में संलग्न करता रहता है इसलिए पिछले कर्मानुसार ही स्वभाव व संस्कार उसे प्रेरित कर कर्म करवाते रहते हैं। इसमें इसका क्या वश है? जबरन उसे माँस–मदिरा में लगा देते हैं। इसमें परमात्मा का क्या दोष है? परमात्मा तो केवल देखता रहता है कि यह क्या कर रहा है? जैसा करता है उसका भोग स्वयं भोगता है। अच्छा करेगा तो सुख पायेगा और बुरा करेगा तो दुख भोगेगा। बस यही तो माया है।

संसार रूपी एक पेड़ है। इस पर दो पक्षी बैठे हैं। एक जीव और दूसरा परमात्मा, परमात्मा भोक्ता है और जीव भोग्य है, लेकिन जीव भोक्ता बन बैठा है अतः परमात्मा की वस्तु लेने से उसे कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। इसमें परमात्मा का क्या दोष है? जैसा करो वैसा भरो। तभी तो धर्मशास्त्र, इससे बचने हेतु बोल रहा है।

जो भी कर्म करो भगवान् का ही समझ कर करो। क्यों करूँ? यह प्रश्न उठता है। इसका उत्तर यह है कि सब कुछ भगवान् का ही तो है। जीव कहाँ से कुछ लाया है? जो कुछ उसे मिला है वह भगवान् ने ही तो दिया है। फिर भी मानव इस पर अपना कब्जा करता है, यह अन्याय ही तो है। अब अन्याय की सजा तो इसे भुगतनी ही पड़ेगी। मानव जन्म लेता है तो मुट्ठी बंद करके आता है। इसका मतलब यह है कि पिछले जन्मों में जो कर्म किया और भविष्य में जो करेगा, उसे अपने संग में मुट्ठी में बाँधकर लाता है, जिसे वह इस जीवन में काम में लेगा। जब मृत्यु का समय आता है, तब हाथ पसारकर जाता है अर्थात् जो कर्म वह पीछे से लाया था, वह सब खत्म करके जा रहा है। अब उसने जो शुभ–अशुभ कर्म किए हैं उसे अगले जन्म में भोगेगा। संस्कार के पुंज हुआ करते हैं। यह संस्कार के पुंज, नित्य हरिनाम करने से जलकर भस्म हो जाते हैं। इसलिए हरिनाम करना चाहिए। धर्मशास्त्र यह बोल रहा है। कहते हैं :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k uklfg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरी माया सबको दुख सागर में डुबाती रहती है, अतः माया से मुख मोड़ कर मेरी तरफ मुख कर लो अर्थात् मुझे याद कर लो। इसका साधन है हरिनाम की नित्य 64 माला करो। एक लाख नाम करो। तुमने जो अनंत जन्मों के पापकर्म किए हैं उन्हें मैं जलाकर भस्म कर दूँगा।" शास्त्र बोल रहा है। "लेकिन तुम मेरी तरफ आते ही नहीं हो। तो दुख सागर में गोते खाते रहो। मैंने सुख पाने का मार्ग बता दिया है फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं, इसमें मैं, भगवान् भी क्या कर सकता हूँ?" पिता पुत्र को समझा समझा कर थक गया परंतु पुत्र ने पिता का कहना नहीं माना तो पिता का क्या दोष है? अपना किया स्वयं भोगो। यही तो माया है। कलियुग में अनेक मर्यादाएँ समाप्त हो चुकी हैं। संक्षेप में बताया जा रहा है कि प्राकृतिक मौसम आदि समय पर नहीं होते हैं, कहीं अधिक वर्षा और कहीं सूखा, कहीं अधिक सर्दी, कहीं तूफान, कहीं भूकंप। यह सब कलि महाराज के प्रकोप के कारण हैं। ऐसा सुना गया है कि भविष्य में महायुद्ध होगा इससे प्रजा बहुत कम हो जाएगी। जो भक्त होगा वही बचेगा। भगवान् तो बचाएँगे ही जैसे प्रह्लाद को बचाया था। वह तो बेचारा पाँच साल का ही था और उसका पिता हिरण्यकशिपु, जिसके पास दस हजार हाथियों का बल था, वह तो गला दबा कर ही मार देता लेकिन नहीं मार सका।

tkdk jk[k lkb;k ekj ld u dk;A
cky u ckdk dj ld] tk tx cjh gk;AA

(संत कबीर जी)

इस कलिकाल में बहुत सारे जानवरों की नस्लें खत्म होती जा रही हैं, फलों के पेड़ भी नष्ट होते जा रहे हैं, कँटीले पेड़ सारे संसार में हो जाएँगे।

उदाहरण के तौर पर अगर हम से कोई दुखी होता है तो हम कैसे सुखी रह सकते हैं? अब ध्यान से सुनिए!

आत्मा, परमात्मा का पुत्र है। जीवमात्र की आत्मा, सभी की समान है। तभी तो बोला जाता है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं बोला जाता कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का पहनने का कपड़ा है, जब फट जाएगा तो नया कपड़ा पहनना पड़ जाता है जैसे किसी के दाँत में दर्द हो गया। अब ध्यान दीजिये! दाँत तो शरीर से जुड़ा हुआ है। केवल दाँत में ही दर्द होना चाहिए, पर नहीं, पूरे शरीर में दर्द महसूस करेगा। शरीर के दुख को महसूस करेगा। इसी प्रकार सबकी आत्मा एक है। हम किसी को दुख देंगे तो हम कैसे सुखी रह सकते हैं? हमको भी दुख महसूस होगा ही क्योंकि सब का खून लाल होता है और हमारा भी खून लाल है। इसका मतलब है कि वह हमारा भाई है। तो क्या हम भाई को दुख देंगे? तो परमात्मा भी कैसे सुखी रह सकता है? बताओ! परमात्मा को भी दुख महसूस होगा क्योंकि परमात्मा के बेटे को सताया है। बस इसी कारण से जीव सदा दुखी रहता है क्योंकि जो बीज बोओगे, वही तो हाथ में आएगा। दुख का बीज बोया है, तो दुख ही हस्तगत होगा। सुख कैसे आ सकता है? जब गहरे दिमाग से सोचेंगे, तभी यह चर्चा समझ में आएगी वरना कुछ भी हस्तगत नहीं होगा। जैसे दाँत शरीर से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार आत्मा, परमात्मा से जुड़ी हुई है तो आत्मा को दुख होगा ही। आत्मा, परमात्मा का पुत्र होने से परमात्मा कैसे सुखी रहेगा? कोई किसी के बेटे को सताए, तो बाप कैसे सुखी रह सकता है? निष्कर्ष यह निकलता है कि जीव के सुखी रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः सब को सुखी करने के लिए तथा अपने को सुखी करने के लिए तन, मन, वचन से सेवा की जाए, तब जीव को दुख आने का सवाल ही नहीं उठता।

संत भगवान् का प्यारा क्यों है? संत के दर्शन से ही जीव का कल्याण हो जाता है। संत भगवान् के बेटों का सदा भला चाहता

रहता है। सभी चर अचर प्राणी, भगवान् की संतानें हैं। किसी भी बाप की संतानों को कोई प्यार करेगा तो बाप स्वतः ही उससे प्यार करेगा। खुश हो जाएगा। संत के हृदय में भगवद् नाम सदा ही रमा रहता है। कहावत है–

lfefjv uke :i fcu n[kA vkor ân; lug fcl"kAA

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

देखो! भगवान् को किसी ने देखा नहीं है लेकिन उनका नाम लेने से वह हृदय में प्रकट हो जाएँगे। प्यार से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। जब हृदय में प्रकट हो जाएँगे तब स्वतः ही हृदय के अवगुण चले जाएँगे, सब गुण हृदय में प्रकट हो जाएँगे क्योंकि भगवान् के नजदीक में अवगुण रहने का प्रश्न ही नहीं होता।

मन से हम भगवान् का उच्चारण करते हैं। भगवान् कण–कण में व्याप्त हैं तुरंत आ जाएँगे। थोड़ी देर भगवान् हमारे पास रहेंगे। जापक का मन फिर बाजार में या अन्य कहीं चला जायेगा तो भगवान् जापक को कहेगा कि, "तुमने मुझको बुलाया और अब उठ कर कहाँ चला गया?" ऐसे स्मरण से भगवान् से प्यार नहीं होगा। भगवान् का नाम लेते हुए, भगवान् को पास में रखना पड़ेगा। आपने किसी दोस्त को बुलाया और बातचीत कर रहे हो और फिर बीच में ही आप उठ कर चल दिए और फिर आए ही नहीं, तो फिर दोस्त तो बोलेगा कि आपने उसे क्यों बुलाया था। इसी तरह से भगवान् बोलते हैं। सुकृति तो इकट्ठी हो जाएगी, श्रवण बेकार नहीं जाएगा। कल्याण अवश्य होगा क्योंकि भगवद्नाम का स्वभाव ही ऐसा है, कल्याण करने का। जैसे जाने–अनजाने में अग्नि से हाथ छू जाए तो अग्नि का स्वभाव है, जलाने का, अतः जला देगी। इसी प्रकार अनजाने में हम जहर पी जाएँ, उसका स्वभाव है मारने का, अतः मार देगा। इसी प्रकार अनजाने में, हम अमृत पी जाएँ तो उसका स्वभाव है अमर बनाने का, तो वह अमर बना देगा क्योंकि अमृत का स्वभाव ऐसा ही है। इसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव मंगल विधान कर देगा क्योंकि हरिनाम का स्वभाव ही मंगल करने का है।

जीव दुखी क्यों है? दुखी इस कारण से है क्योंकि यह गलत रास्ते पर जा रहा है। इसको पता भी नहीं है, कि सुख का रास्ता कैसा है? कहाँ पर है? इसी कारण सत्संग की बहुत जरूरत रहती है जो धर्मशास्त्रों में तथा साधु के पास उपलब्ध हो सकेगा। जीव को सत्संग और साधु के पास संग तभी उपलब्ध होगा, जब जीव की सुकृति होगी। सुकृति कैसे उपलब्ध होगी? सुकृति तब उपलब्ध होगी जब धर्मशास्त्र एवं संत समागम होगा, वरना मानव जीवन व्यर्थ के कामों में ही चला जाएगा। फिर मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। अनंतकोटि चतुर्युगी, अरबों–खरबों चतुर्युगी के बाद मिल जाए, तो गनीमत है नहीं तो नहीं मिलेगा।

सत्संग की यह बहुत अच्छी चर्चा है। सुन लीजिए। एक बार वशिष्ठजी में और विश्वामित्रजी में आपस में बहस हो गई। क्या बहस हुई? वशिष्ठजी कहते हैं कि सत्संग बड़ा है और विश्वामित्र कहते हैं कि तपस्या बड़ी है। अब इसका निर्णय कौन कर सकता है? विश्वामित्र बोले कि इसका निर्णय शिवजी कर सकते हैं, उनके पास चलते हैं। अब दोनों भक्त शिवजी के पास पहुँचे। शिवजी ने पूछा, "आप दोनों का यहाँ कैसे आना हुआ?" दोनों ने कहा, "हम आपसे एक निर्णय करवाने हेतु, आपके चरणों में आए हैं।" शिवजी बोले, "आदेश करो, क्या निर्णय करवाना चाहते हैं?" वे बोले, "हम आदेश नहीं करते हैं, हम प्रार्थना करते हैं।" शिवजी ने कहा, "बोलो! क्या बात है?" तो वशिष्ठजी बोले, "मैं तो सत्संग को बड़ा बताता हूँ और यह तपस्या को बड़ा बताते हैं। आप निर्णय करके बताओ कि तपस्या बड़ी है या सत्संग बड़ा है। "शिवजी तो मुसीबत में फँस गए। सोचने लगे कि किसको बड़ा बताएँ, जिसको बड़ा बताएँगे, दूसरा नाराज हो जाएगा। शिवजी ने यह कह कर टाल दिया कि, "मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता।" दोनों ने पूछा, "तो फिर इसका निर्णय कौन कर सकता है?" तब शिवजी ने कहा, "मेरे पिता ब्रह्माजी के पास चले जाओ, वह निर्णय कर देंगे।" अब दोनों ने ब्रह्माजी के पास जाकर निवेदन किया। वशिष्ठजी ने कहा, "मैं तो सत्संग को बड़ा बोलता हूँ और विश्वामित्र तपस्या को बड़ा कहते हैं तो आप

हमारा निर्णय कर दो। इन दोनों में से कौन बड़ा है तपस्या या सत्संग?" अब तो ब्रह्माजी भी फँस गए, सोचने लगे कि किस को बड़ा कहें? यदि एक को बड़ा बताते हैं तो दूसरा नाराज हो जाएगा। दोनों ही महान् भक्त हैं। ब्रह्माजी बोले, "इसका निर्णय तो मैं भी नहीं कर सकता।" दोनों ने पूछा, ''फिर हमारा निर्णय कौन कर सकता है?" ब्रह्माजी ने कहा, "मेरे पिता विष्णु हैं। आप उनके पास चले जाओ। वह निर्णय कर देंगे।" अब दोनों विष्णुजी के पास पहुँचे और निवेदन किया कि, "हमारा निर्णय करें कि सत्संग बड़ा है या तपस्या।" अब तो विष्णुजी भी दुविधा में फँस गए सोचने लगे कि अगर एक को बड़ा बताएँगे तो दूसरा नाराज हो जाएगा।

अब विष्णु भगवान् बोले, "हे महात्माओ! यह तो बड़ी कठिन समस्या है। इसका निर्णय तो मैं भी नहीं दे सकता।" यह सुनकर वे दोनों बोले, "जब आप तीनों ही इसका निर्णय नहीं दे सकते तो फिर इस संसार में इसका निर्णय कोई नहीं दे पाएगा।" विष्णुजी ने कहा, "मुझे एक विचार आया है कि इसका निर्णय भगवान् शेषनागजी दे सकेंगे क्योंकि शेषनाग ने, इस पृथ्वी को धारण कर रखा है। उनके पास चले जाओ। वह इसका निर्णय अवश्य देंगे।" अब दोनों ने बोला, "जब आप इतने बड़े होकर, इसका निर्णय नहीं दे सके, तो वह कैसे देंगे? उनके सिर पर तो पूरी पृथ्वी का भार रखा है। उस भार को उठाए हुए, वह कैसे हमारा निर्णय कर सकेंगे?" विष्णु ने कहा, "शेषनाग ने कभी भी, किसी को, उसके प्रश्न का उत्तर दिए बिना वापिस नहीं लौटाया है। उन्हीं के पास जाकर, अपनी समस्या बताओ, वह जरूर इस समस्या का समाधान कर देंगे।"

अब दोनों महात्मा पाताल में शेषनाग के पास गए। शेषनाग ने देखा कि आज भगवान् के भक्त, मुझे दर्शन देने आ रहे हैं। शेषनाग ने अपने हजार फनों से झुककर उनका आदर सत्कार किया और बोले, "आप भले आए। आपके दर्शन से तो मैं निहाल हो गया। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" उन्होंने शेषनाग से प्रार्थना की कि, "हमारी एक समस्या है। अपनी समस्या लेकर, हम शिवजी,

ब्रह्माजी और विष्णुजी के पास भी गए थे, परंतु वह हमारी समस्या का हल नहीं बता पाए और आपके पास भेजा है। आप ही हमारी समस्या का हल बता दीजिए।" शेषनागजी ने कहा, "क्या समस्या है? बताइए? मुझे क्या करना है? दोनों ने अपनी समस्या बताई कि, "वशिष्ठजी कह रहे हैं कि सत्संग बड़ा है और विश्वामित्रजी कहते हैं कि तपस्या बड़ी है, तो दोनों में से कौन बड़ा है? आप इसका निर्णय कर दो।" अब तो शेषनाग भी फँस गए, सोचने लगे किसको बड़ा बताऐं? दोनों ही उच्च कोटि के भक्तराज हैं, जिसको बतायेंगे दूसरा नाराज हो जाएगा। फिर बोले, "आप थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए, मेरे ऊपर भार है। मैं थोड़ी देर विश्राम कर, आपको बताता हूँ।"

शेषनाग ने सोचा कि वह तो बहुत बड़ी समस्या में फँस गये। इसका उपाय त्रिलोकीनाथ से ही पूछा जाए। त्रिलोकीनाथ को स्मरण किया तो हृदय में आकाशवाणी हुई कि, "इन्हें बोलो कि मेरे सिर पर पृथ्वी का भार पड़ा हुआ है। आप दोनों में से कोई इस पृथ्वी के भार को सँभाल लो तब मैं आराम से इसका समाधान कर सकता हूँ।" दोनों ने पूछा, "आप ही बताओ कि हम दोनों में से कौन पृथ्वी का भार ले।" अब शेषनागजी बोले, "हे विश्वामित्रजी! आप ही इस पृथ्वी का भार सँभालो।" विश्वामित्रजी बोले, "मैं कैसे सँभालूँ?" शेषनागजी ने कहा, "बिना भजन की ताकत के पृथ्वी ऊपर रुक नहीं सकती इसलिए आप अपनी तपस्या, पृथ्वी को अर्पण कर दो।" विश्वामित्र ने पृथ्वी को अपने दस हजार वर्ष की तपस्या देकर कहा, "हे पृथ्वी मैया! मैं अपनी दस हजार वर्षों की तपस्या, आपको अर्पण कर रहा हूँ। आप मेरे हाथों में रुक जाना।" शेषनागजी बोले, "मैं नीचे होता हूँ, अब आप अपने हाथों से पृथ्वी को रोक लीजिए वरना पृथ्वी रसातल में चली जाएगी।" विश्वामित्र जी ने दस हजार वर्षों की तपस्या देकर पृथ्वी को अपने हाथों में लिया लेकिन पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्रजी घबरा गए कि वह दब जायेंगे। शेषनागजी ने कहा, "आप अपनी पूरी तपस्या की शक्ति पृथ्वी को दे दो।" तब विश्वामित्रजी बोले, "अच्छा! मैं अपनी साठ हजार वर्ष की तपस्या का

फल देता हूँ।" और फिर जब हाथों पर पृथ्वी को लिया, तब पृथ्वी फिर से खिसकने लगी। विश्वामित्रजी घबरा गए कि वह पृथ्वी के नीचे दब जायेंगे, वह तो चकनाचूर हो जायेंगे, बोले, "आप ही इसे सँभालो।" शेषनागजी ने वशिष्ठजी से कहा, "आप ही अपना कुछ सत्संग का प्रभाव, पृथ्वी को दे कर देखो कि आपके सत्संग की शक्ति से पृथ्वी रुकती है या नहीं।" वशिष्ठजी ने कहा, "जब साठ हजार साल की तपस्या से पृथ्वी नहीं रुकी, तो फिर मेरे सत्संग से कैसे रुकेगी? ठीक है। फिर भी मैं आपके आदेश का पालन करता हूँ।"

वशिष्ठजी ने पृथ्वी से कहा, "हे पृथ्वी माँ! यदि क्षण भर की भी सत्संग की महिमा हो तो आप मेरे हाथ पर रुक जाना।" वशिष्ठजी के ऐसे कहने पर पृथ्वी उनके हाथ पर आ कर रुक गई। एक इंच भी नीचे नहीं आयी। इस तरह से शेषनागजी, उन दोनों की नाराजगी से बच गए। त्रिलोकीनाथ ने हृदय–आकाश में वाणी सुनाकर, शेषनागजी को बचा लिया। विश्वामित्रजी नीचे सिर करके बैठ गए। शेषनागजी बोले, "विश्वामित्र जी! आप सत्संग के प्रभाव से ही तो तपस्या के रास्ते पर गए थे। सत्संग किया तभी आपको तप मिला। बिना सत्संग के कोई शुभ मार्ग पर जा ही नहीं सकता।" विश्वामित्रजी ने कहा, "यह बात तो बिल्कुल ठीक है। मैं सत्संग से ही बड़ा हुआ हूँ। सत्संग उपलब्ध हुए बिना तपस्या हो ही नहीं सकती।"

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ।" वशिष्ठजी, विश्वामित्रजी के चरणों में पड़ कर बोले, "मेरी वजह से ही आपको दुख हुआ है।" संत तो ऐसे ही होते हैं। उन्हें घमंड नहीं होता। वशिष्ठजी चरणों में पड़कर क्षमा माँगने लगे। तब विश्वामित्रजी ने कहा, "आपका कोई दोष नहीं, मुझे अहंकार हो गया था कि मैं सबसे बड़ा तपस्वी हूँ। भगवान् ने, मेरा अहंकार का छेदन करके मुझे ज्ञान दिया है।" दोनों रसातल से बाहर आकर पृथ्वी पर प्रेम से आलिंगनबद्ध हो गए और सबको बता दिया कि लवमात्र का सत्संग ही, मानव का मन बदल सकता है।

श्रीरामचरितमानस भी यही बता रही है कि सत्संग से भगवान् मिलते हैं। कह रहे हैं :

rkr Lox vicx lq[k èkfjv rqyk ,d vxA
rqy u rkfg ldy fefy tks lq[k yo lrlxAA

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लवमात्र का सत्संग भी बहुत प्रभावशाली है तो सत्संग की बहुत महिमा है।

जब बुरा समय आता है, तब नीचे लिखे लक्षण प्रकट होने लगते हैं। परिवार के सदस्यों में लोभ, क्रोध, असत्य आकर घुस जाता है। सारा व्यवहार ही कपटपूर्ण होने लगता है। यहाँ तक कि भाई से सलाह–मशविरा नहीं करते और ससुराल वालों से सलाह–मशविरा करने लगते हैं। माता–पिता, सम्बन्धी, पति–पत्नी में झगड़ा–टंटा शुरू हो जाता है। जब समय बुरा हो, तब बाएँ अंग फड़कने लगते हैं, हृदय धड़कने लगता है, सियार दिन में बोलने लगते हैं, कुत्ता घर की तरफ मुँह करके चिल्लाता रहता है, गाय आदि पशु बाएँ ओर से चलने लगते हैं। जब ऐसे अशुभ लक्षण होते हैं तब गधे दाएँ ओर करके चलते हैं, कौवा रात भर काँव–काँव करता रहता है, मन में शांति नहीं रहती, मन उखड़ा–उखड़ा रहता है तो समझना होगा कि भविष्य में कोई दुर्घटना होने वाली है। इसका निवारण करने हेतु भगवान् के हरिनाम का कीर्तन करने से एवं जप करने से दुर्घटना टल जाती है व मामूली होकर चली जाती है।

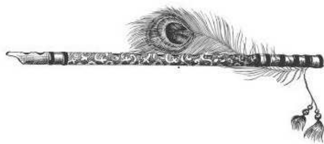
हरिनाम चिंतामणि, हरिभक्तिविलास जो गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का प्रमुख ग्रंथ है, रामायण तथा नारदीय पुराण इन सब में लिखा है, "भगवद् नाम कैसे भी लो तो उस जीव का निश्चित रूप से उद्धार होकर वह जन्म मरण से छुट्टी पा जाएगा। भगवान् ने इतना सुगम और सरल रास्ता जीवों को दिया है। इसका कारण है कि अनंत अरबों–खरबों युगों से जीव चर–अचर प्राणियों में अपना जीवन काट कर मनुष्य जन्म में आया है अतः इसका मन चंचलता में रहना

स्वाभाविक ही है। अतः मेरे नाम में इसका मन स्थिर नहीं रह सकता अतः किसी भी हालत में, बेमन से भी मेरा नाम लेगा तो उसका उद्धार निश्चित है। नाम लेने में कोई नियम भी नहीं है।" देखिये! मुसलमान एक वाक्य का उच्चारण किया करते हैं हरामी! हरामखोर!. ... तूने ऐसा काम क्यों किया? तो इस में "राम" शब्द उच्चारण हो गया। तो उस मुसलमान का भी उद्धार हो गया। अब प्रश्न यह उठता है कि मानव तो बहुत नाम जपता है तो उसका उद्धार होना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि इसका उद्धार होना निश्चित है। फिर अधिक नाम क्यों लिया जाए जब एक ही नाम से उद्धार हो जाएगा? इसका उत्तर यह है कि मुसलमान ने जो नाम हरामी बोला, वह गहरे अंतःकरण से बोला था। इसलिए एक नाम ने ही उसका उद्धार कर दिया।

मानव यदि अंतःकरण से नाम ले तो उसको भी अष्ट विकार प्रकट हो जाएगा। अष्ट विकार क्या है? अष्ट विकार है, रोना, शरीर पसीने से लथपथ होना, जुबान तुतलाना, शरीर थर्राना, विकलता आ जाना, बेहोश हो जाना इत्यादि। इस तरह के लक्षण शुद्ध भक्त को ही प्रकट होते हैं। जैसे बिना समझे कोई जहर की एक बूँद पी ले तो एक बूँद ही मार देगी क्योंकि जहर में मारने की शक्ति है। इसी प्रकार कोई एक बूँद अमृत की पी ले तो वह एक बूँद भी अमर बना देगी। इसी प्रकार कोई बिना समझे अनजाने में अग्नि में हाथ लगाए तो अग्नि जला देगी। इनको कहना नहीं पड़ता कि तुम अपना प्रभाव दिखाओ। अपने–अपने गुण अनुसार अपना प्रभाव स्वतः ही दिख जाएगा। इसी प्रकार भगवद् नाम का प्रभाव है। भगवद् नाम कैसे भी मुख से उच्चारण हो जाए तो नाम अपना प्रभाव दिखाकर ही रहेगा। जैसे समाज में एक चलन है कि एक दूसरे से मिलने पर राम–राम जी ! सियाराम जी ! जय गोपीनाथ जी ! क्यों बोलते हैं कि किसी तरह से तो मानव के मुख से भगवद् नाम निकल सके। लेकिन किसी मानव को इतना ज्ञान नहीं है कि ऐसा भगवद् नाम का उच्चारण क्यों करते हैं वह इसलिए करते हैं कि जिंदगी में कभी तो

भगवद् नाम का उच्चारण हो जाए। यदि यह बात समझ में आ जाए तो मानव तुलसी माला पर हरिनाम जपना शुरु कर देगा। ऐसा नहीं होता इसका कारण है कि इनको नाम का सत्संग कहीं पर नहीं मिलता है। अतः नाम के प्रति अनभिज्ञ हैं।

अपना नाम तो भगवान् को भी प्यारा लगता है जो भी कृष्ण बोलता है तो राधा उसके पीछे हो जाती हैं। अतः वृन्दावन में रिक्शेवाला हटो–हटो न बोलकर राधे–राधे बोलता है तो सामने वाला हटकर चलने लगता है, तो उसके पीछे कृष्ण हो जाते हैं। मैं धर्म शास्त्रों की ही बात बोलता हूँ। मैं अपने मन से कभी नहीं बोलता यदि बोलूँ तो अपराध हो जाए या विरोधाभास हो जाए। मेरा बोलना इतना ही तथ्य रखता है कि सभी मानव भगवद् हरिनाम 24 घंटे में आधा घंटा ही कर लें। इतना समय तो सभी को मिलता है। गपशप में घंटों बिता देते हैं। गपशप से क्या मिलेगा? समय की बर्बादी होगी, जीवन बेकार चला जाएगा। बाद में मानव जन्म नहीं होगा। अरबों खरबों युगों तक चराचर प्राणियों की योनियों में चक्कर काटते रहो और दुखी जीवन बिताते रहो। अतः जब तक शरीर में शक्ति, बल है कुछ समय हरिनाम करना सुखकारक होगा। बुढ़ापे में कभी भी हरिनाम नहीं होता। कहीं जाने की जरूरत नहीं। घर में ही सब कुछ हो सकता है। सर्दी लगे तो ओढ़ कर बैठ जाओ, गर्मी लगे तो पंखा कर लो। पर हरिनाम अवश्य करो।



भक्तिजननी एकादशी

(25)

24 मार्च 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव भगवान् को प्राप्त करने के रास्ते बता रहे हैं। चार साधन ऐसे हैं जिनसे भगवान् बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। अब मैं बताता हूँ कि चार साधन क्या हैं?

एक तो हरिनाम, दूसरा एकादशी, तीसरा साधुसेवा और चौथा है, सांड की सेवा। इन सब साधनों से भगवान् बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। यह चार साधन सबको जरूर करने चाहिएँ। इससे भगवान् बहुत खुश होते हैं। आपके ऊपर कोई दुख संकट नहीं आने देंगे। जब भगवान् खुश हो जाएँगे तो फिर क्या बात है।

tk ij Ñik jke dh gkbA rk ij Ñik djfg lc dkbAA

जिस पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। उसे बिच्छू भी नहीं खाता, साँप भी नहीं खाता क्योंकि सब में भगवान् परमात्मा रूप से बैठे हुए हैं।

एकादशी भक्ति की जननी है। एकादशी भक्ति की माँ है। एकादशी व्रत न करने से भक्ति नष्ट हो जाती है। भगवद् नाम और एकादशी ही भक्ति को जागृत करते हैं अतः जो इन दोनों का पालन करता है वह शत–प्रतिशत वैकुण्ठ में पदार्पण करता है।

एकादशी पालन करने का नियम है कि दशमी को एक समय भोजन करें। दूसरे दिन एकादशी को निर्जल रहें। यदि सामर्थ्य न हो तो फलाहार करें। द्वादशी पर सूर्य उदय के बाद ठीक समय पर पारण करें ताकि एकादशी खंडित न हो। ऐसा करने से शुद्ध उपवास होता है। निभे, तो ज्यादातर उपवास करना ही उत्तम होगा लेकिन एकादशी करना परम आवश्यक है। तभी मानव का जन्म सार्थक होगा। शास्त्र कहता है 8 साल की उम्र से लेकर 80 साल की उम्र तक एकादशी करनी चाहिए। 80 साल की उम्र के बाद बहुत कमजोरी आ जाती है पर अगर किसी से हो सके तो करना चाहिए, अच्छा होता है। इसका उदाहरण है कि एक बार एक गाय बहुत तड़प रही थी तो किसी भक्त ने गाय के कान में कहा, "मैं अपनी एकादशी का फल आपको देता हूँ।" तो वह गाय पाँच मिनट में ही मर कर दुख से छूट गई। दूसरा उदाहरण है, अभी कुछ दिन पहले की बात है, एक कुत्ते के शरीर में खुजली और घाव हो गए थे। वह तड़प रहा था परंतु उसके प्राण नहीं निकल रहे थे। एक भक्त ने पानी में हरिनाम जप कर, उस पानी का छींटा, उस पर मारा। छींटा मारते ही दो मिनट में उसके प्राण छूट गए। इसका बहुत बड़ा प्रभाव होता है।

एकादशी को यह खाद्य पदार्थ प्रयोग कर सकते हैं। सेंधा नमक, काली मिर्ची, कोई ताजा फल, अदरक, हल्दी काम में लेना सर्वोत्तम होगा। एकादशी को संभव हो तो कोई दवा न लें एवं पेस्ट या चूर्ण से दंत–मंजन न करें। द्वादशी तिथि को कभी भी तुलसी चयन न करें। उस दिन तुलसी माला भगवान् को पहनाने से, तुलसी और भगवान् दोनों ही असीम कृपा करते हैं।

मृत्युलोक से वैकुण्ठ और गोलोक जाने की एक ऐसी गाड़ी है जिसके दो पहिए हैं। एक है भगवद्नाम, दूसरा है एकादशी उपवास। इस गाड़ी में बैठकर साधु लोग, मृत्युलोक से रवाना होते हैं। इस गाड़ी को सतगुरु द्रुतगति से ले जाते हैं। इसको खींच कर ले जाने

वाले आठ घोड़े होते हैं। वे हैं, अष्ट विकार जैसे अश्रु, पुलक आदि यह आठ घोड़े ले जाते हैं। जो भी इस गाड़ी में बैठ गया वह चाहे कितना ही बड़ा पापी हो, सीधा सुख सागर के किनारे पहुँच जाएगा और दुख से उसका पिंडा छूट जाएगा। सीधा वैकुण्ठ पहुँच जाएगा।

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukl fga rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। सन्मुख होय...जब इस गाड़ी में बैठ जाओगे तो सीधे वैकुण्ठ चले जाओगे। जन्मकोटि...अनंतकोटि जन्मों के पाप जलकर उसी समय भस्म हो जाते हैं। यह तो गाड़ी में बैठना हुआ। वैकुण्ठ और गोलोक धाम जाने का रास्ता कौन सा है? जिस पर यह गाड़ी चलती है वह कौन सा रास्ता है? तुलसी का मार्ग। यदि तुलसी मार्ग नहीं है तो गाड़ी नहीं जा सकती। रास्ता न हो तो कोई गाड़ी चल नहीं सकती। इस रास्ते को किसने बनाया? स्वयं भगवान् ने बनाया।

संक्षेप में एक कथा सुनिए। एक बार नारदजी शादी करना चाहते थे। भगवान् अपने भक्तों को माया में फँसाना नहीं चाहते। नारद जी ने भगवान् से कहा, "आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिए। मैं एक स्वयंवर में जा रहा हूँ क्योंकि मैं शादी करना चाहता हूँ।" नारदजी ने कहा, "हे हरि! मुझे सुंदर हरि स्वरूप दो। हरि के रूप से वह कन्या/लड़की मुझे वरण कर लेगी।" भगवान् ने सोचा कि नारद माया में फँस रहा है इसलिए ऐसा रूप देना होगा जिससे वह लड़की इसकी तरफ देखे भी नहीं। भगवान् बोले, "हाँ ! मैं तुम्हें हरि का ही रूप दूँगा।" नारद भगवान् की बात को नहीं समझ पाया और खुश होकर स्वयंवर में जाकर बैठ गया और सोचने लगा कि उसके जैसा सुंदर स्वरूप तो किसी का होगा ही नहीं। इसलिए लड़की झट से उसे पसंद करके उसके गले में वरमाला डाल देगी क्योंकि भगवान् ने उसे अपना रूप ही तो दिया है। नारद को मालूम नहीं था

कि भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया है। 'हरि' बंदर को भी कहते हैं। नारद के बगल में स्वयंवर में बैठे हुए दो राक्षस मन ही मन मुस्कुरा रहे थे कि कितना खुश हो रहा है। उचक–उचक कर अपना चेहरा आगे की ओर लड़की को दिखा रहा है। लड़की ने नारद की तरफ देखा तक नहीं और भगवान् के गले में माला पहना दी क्योंकि इस स्वयंवर में भगवान् भी उपस्थित थे। वह लड़की वास्तव में लक्ष्मी थी। बगल में बैठे राक्षस राजाओं ने हँस कर नारद से बोला, "जरा जाकर अपना मुख तो देखो। आपका कैसा सुंदर मुखड़ा है। ऐसा मुखड़ा संसार में किसी का भी नहीं है।" उनके पास एक छोटा सा दर्पण था जो उन्होंने नारद को दे दिया। सब ठहाका मार कर हँसने लगे। नारद ने अपना चेहरा देखा तो उसको क्रोध आ गया। नारद ने क्रोध में राक्षसों से कहा, "जाओ तुम ब्रह्मराक्षस बन जाओ।" भगवान् ने राक्षसों से भी लीला की है। भगवान् अपने भक्त से ही श्राप दिलवाकर लीला रचते हैं। उन्हें भी नारद से श्राप दिलवा दिया। स्वयंवर का विसर्जन हो गया। सब राजा स्वयंवर से बाहर आ गए। अब तो नारदजी की आंखें क्रोध से लाल हो गईं और वह हुंकार भरने लगे, "अब मैं भगवान् को नहीं छोडूँगा। उन्होंने मुझको धोखा दिया है।"

"अरे! मुझे बंदर का रूप दे दिया।" नारद ने जो माँगा था, भगवान् ने तो वही रूप दिया था। नारद ने भगवान् से कहा था कि, "आप मुझे भी हरि का रूप दे दो।" अब चलते–चलते नारदजी ने भगवान् को याद किया तो भगवान् प्रकट हो गए। भक्त के बुलाने पर भगवान् आ जाते हैं। भगवान् ने नारद को प्रणाम किया और बोले, "नारद ! इतने उग्र रूप में कहाँ जा रहे हो?" नारद को और तेज गुस्सा आ गया और चिढ़ कर बोला, "आपके ऊपर तो कोई समर्थ नहीं है। आप मनमानी करते रहते हो। इसका मजा मैं आपको चखाता हूँ।" क्योंकि क्रोध से बुद्धि खराब हो जाती है, सोच विचार खत्म हो जाते हैं। नारदजी ने भगवान् से कहा, "आप ने मुझे बंदर का रूप दिया है। अब आप भी मेरी तरह स्त्री वियोग में रोते रहोगे

और बंदर ही आपकी सहायता करेंगे। भविष्य में आप किसी संत को धोखा मत देना वरना दुख पाओगे।" इतने में भगवान् अप्रकट हो गए। अब नारद की आँख खुली और पछताने लगा कि उससे बहुत बड़ी गलती हो गई। भगवान् को श्राप दे दिया, यह तो अच्छा नहीं किया। अब वह क्या करे? इस अपराध से कैसे बचे? अतः विचार आया कि भोले भाले महादेवजी से ही इसका उपाय पूछना चाहिए। महादेवजी के पास जाकर पूछा, तो महादेवजी बोले, "जो श्राप तुमने दिया वह तो मिट नहीं सकता। इस अपराध से बचने का एक ही उपाय है कि तुम अष्टप्रहर हरिनाम करो।" नारद ने पूछा, "कितना करूँ?" महादेव बोले, "कम से कम अष्टप्रहर में जितना होता है उतना करो। हरिनाम तो जरूरी है, तभी तुम इस अपराध से उऋण हो सकोगे वरना इसका भोग तुम्हें भोगना ही पड़ेगा।"

भगवान् ने मानव को हर प्रकार से स्वस्थ रखने के लिए धर्म शास्त्रों में भी बताया है जिससे मानव स्वस्थ रह सके और वापिस भगवान् तक जाने के लिए प्रयास कर सके। इसके लिए भगवान् धन्वन्तरि ने अवतार लिया। मानव रात–दिन आहार लिया करता है। भक्ष्य–अभक्ष्य खाता रहता है जिससे इसके पेट को कभी आराम नहीं मिलता। पेट शरीर की जड़ है अगर जड़ स्वस्थ रहेगी तभी शरीर स्वस्थ रहेगा। कभी सिर दर्द, कभी बुखार, कभी दस्त, कभी नींद आना बंद हो जाता है, कभी भूख नहीं लगती है आदि–आदि बीमारियाँ आकर मानव के तन को आक्रांत करती रहती हैं। पेट को स्वस्थ रखने हेतु सप्ताह में एक बार इसे आराम की जरूरत होती है। इसके लिए भगवान् ने उपवास का प्रादुर्भाव किया है। जैसे राजकीय कर्मचारियों को त्योहारों की तथा इतवार (रविवार) की छुट्टी दी जाती है। मानव के शरीर को आराम और विश्राम मिलता है। शरीर ताजा होने से कर्म भी सुचारु रूप से और अधिक होता है, मन से होता है। मानव को खाने पीने से अपच हो जाता है। पेट को आराम नहीं मिलता है जिससे शरीर में विष की मात्रा बढ़ जाती है और विष से शरीर में कई तरह की बीमारियों का प्राकट्य हो जाता

है। आजकल तो वैसे भी खाद्य पदार्थ जहरीले होते हैं अतः अधिक जहर शरीर में प्रवाहित होता रहता है। ऐसे–ऐसे रोग प्रकट होते हैं जिनका पिछले समय में नाम भी नहीं सुना था। ऐसे रोग उभर कर आ गए हैं जिनसे मानव आक्रांत रहता है। अगर शरीर स्वस्थ नहीं है, तो भगवान् का भजन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गरीबी भी अधिक है। डॉक्टरों की फीस भी आसमान छू रही है। दवा खरीदना भी असंभव हो गया है। इसीलिए संसार को दुखालय बोला जाता है। धनवान भी दुखी है और गरीब भी दुखी है। धनवान को अपच की वजह से नींद नहीं आती, कई तरह की चिंताएँ घेरे रहती हैं। जो भगवान् का सहारा लिए हैं वह थोड़े कम परेशान हैं। जो पूरी तरह भगवान् में रत हैं, उन्होंने शांति से सुख का रास्ता ले रखा है।

एकादशी व्रत करना मानव भक्तों के लिए बहुत जरूरी है। एक तो भक्ति बढ़ेगी, दूसरा शरीर निरोग रहेगा और निर्जल एकादशी करना तो सर्वोत्तम है ही। निर्जल एकादशी करने से जो खाने–पीने से शरीर में विष फैला है, पानी न पीने से वह जहर को सोख लेगा। जो भगवान् ने नियम बनाए हैं वह मानव के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही बनाए हैं। इन नियमों पर मानव ध्यान नहीं देता है। भगवान् कहते हैं, "मुझे उपलब्ध करने हेतु शरीर स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है। शरीर स्वस्थ रहेगा तभी तो मुझे याद कर पाएगा।"

भगवान् दो प्रकार की सेवा करने से बहुत प्रसन्न होते हैं। एक तो साधु की सेवा और दूसरी सांड की सेवा। सांड की सेवा से गायों की जनरेशन (संख्या) बढ़ती है और साधु की सेवा तन, मन, वचन तथा धन से होती है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जो मर्यादा बाँधी है उसका उल्लंघन जो मनुष्य करता है वह स्वप्न में भी सुखी नहीं रह सकता। प्रथम में भक्ति की नींव माँ–बाप से स्थापित होती है। जो माँ–बाप के आदेश का पालन नहीं करता वह भक्ति की क्लास में बैठ ही नहीं सकता, फिर चाहे कितना भी जप, तप करे, सब निरर्थक होगा। जो अपने

माँ–बाप की अवहेलना करता है उसकी संतान उससे भी बुरी होगी। ऐसी संतान होगी जो माँ–बाप की सेवा से दूर रहेगी। माँ–बाप को पीट भी सकती है। इसका कारण है कि अंदर बैठा परमात्मा इसका कर्म देख रहा है, जैसा कर्म करेगा वैसा ही इसे भुगतना पड़ेगा। भक्ति की पहली सीढ़ी है, पहली क्लास है, एल.के.जी. है, माँ–बाप की सेवा। यदि मानव अपना सुख चाहे तो प्रथम में माँ–बाप की सेवा कर आशीर्वाद ले, भक्ति पथ पर बिना बाधा के अग्रसर होता रहेगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इस कलिकाल में माँ–बाप को कोई पूछता ही नहीं है। उन्होंने अपनी संतान के लिए क्या–क्या कुर्बानियाँ नहीं कीं? उसको संतान भूल जाती है अतः दुख पाती है। यदि मानव को घर में ही रहना नहीं आया तो समाज में क्या रहना आएगा।

आजकल स्वार्थ का साम्राज्य फैला हुआ है। यदि मतलब होगा तो बात करेगा नहीं तो उधर देखेगा भी नहीं। अभी तो कलियुग की संध्या ही आई है। भविष्य में क्या हाल होगा, भगवान् ही जाने। अतः हरिनाम की शरण में जाना ही सर्वोत्तम होगा। यही मार्ग मानव को सुख का मार्ग दिखाएगा। जीवन को बेकार मत करो वरना फिर पछताना पड़ेगा। देखो! दसों दिशाओं में दुख की हवा बह रही है। इससे बचने का केवल एक ही उपाय है केवल हरिनाम की शरण। हरिनाम करो।

dfy;x doy uke vèkkjkA lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
t xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम से सब कुछ मिल जाएगा।

कलिकाल में हरिनाम जपने वाले की सभी निंदा करते रहते हैं। और जो मांस–मदिरा भक्षण करता है, झूठ, कपट करता है, उसकी कोई चर्चा नहीं करता। भगवान् ने इसका भी उत्तम उपाय बता दिया है।

fuind fu;j jkf[k;] vkxu dVh Nok;A
fcu ikuh lkcu fcuk] fuely djs lHkk;AA

(संत कबीर जी)

भगवान् कहते हैं, "चिंता मत करो। कोई तुम्हारी चर्चा करता है तो करने दो।" वह आपके पाप ले रहा है, आपको खुश होना चाहिए। जो भक्त की निंदा करता है वह तो अच्छा है। निंदक के पास उसके सब पाप चले जाते हैं। इसलिए निंदक को हमेशा अपने पास में रखो। यदि उसके लिए मकान भी बनाना पड़े तो बना दो, वह तुम्हें निर्मल, शुद्ध कर देगा। निंदक भक्त को निर्मल कर देगा। भगवान् निंदक पर दारुण कष्ट भेज देगा। भक्त अपराध तो बहुत खतरनाक होता है लेकिन मानव अज्ञानवश करता रहता है।

tkds fç; u jke&cnghA
rft;s rkfg dkfV oSjh le] ;|fi ije lusghAA

(गो. तुलसीदास कृत विनय–पत्रिका, पदाङ्क 174, दो. 1)

जो भगवान् के भजन में बाधा करता हो, वह कितना भी प्यारा हो उसे तुरंत छोड़ दो। जो भगवान् के भजन में रोड़ा अटकाता है उससे बात मत करो। कितना ही प्यारा हो, उसे छोड़ देना चाहिए, चाहे माँ–बाप हो, चाहे पति–पत्नी हो, चाहे भाई हो, चाहे अपनी संतान हो, उनसे बोलना बंद कर दो। उससे कोई लेना देना नहीं है। मेरे गुरुदेव ऐसा मार्ग बता रहे हैं जिस पर चलने वाले को भगवान् एक क्षण के लिए भी छोड़ नहीं सकते, छायावत चिपके रहेंगे। लेकिन जो भक्त इस मार्ग पर चलेगा उसे ही भगवान् हृदय में दर्शन देकर, उसके हृदय में आकाशवाणी करते रहेंगे। यह मार्ग ध्यानपूर्वक श्रवण करें। किसी एक के अपनाने से ही उसकी 21 पीढ़ी वैकुण्ठ में चली जायेंगी।

मेरे पास पंजाब से लोग आते हैं जिन्हें अपने कुल और गोत्र का ही पता नहीं है। अपने कुल में शादी नहीं करते। किसी भी जाति की लड़की से शादी कर लेते हैं तो विपरीत स्वभाव होने की वजह से

आपस में बनती नहीं है। तलाक की नौबत आ जाती है। जो संतान होती है, वह वर्णसंकर होती है अतः जो मेरे पास आते हैं, मैं उन्हें बताता हूँ कि आप अपनी संतान की शादी अपने कुल में ही करें जिससे कि आपस में प्यार हो। जब खून ही मेल नहीं खाता तो सुख शांति कैसे होगी? बस इतना ही देख लेते हैं कि लड़की भक्त है, चाहे वह किसी भी जाति की हो, सम्बन्ध कर लेते हैं। ऐसे कई परिवार मेरे पास आते रहते हैं, जिनमें आपस में मनमुटाव रहता है। अगर कबूतरी की शादी कौवे से कर दी जाए तो कैसे बनेगी? उनका खून ही अलग–अलग है। आप देखते हो कि अस्पताल में भी जब तक खून नहीं मिलता, खून नहीं चढ़ाया जाता। गलत खून चढ़ाने से रोगी मर जाएगा।

मैं पूछता हूँ आपका गोत्र कौन सा है? तो कहते हैं कि गोत्र तो पता नहीं। ये जन्मपत्री भी नहीं मिलाते और सम्बन्ध कर लेते हैं। राजस्थान में ऐसा नहीं है। जब तक अपना कुल गोत्र नहीं मिलता तब तक शादी नहीं करते। जब लड़का–लड़की की जन्मपत्री मिल जाती है तभी शादी करते हैं। पंजाब में ब्राह्मण सरदारनी से शादी कर लेता है या किसी भी जाति में कर लेता है। ऐसा मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तलाक की नौबत आ जाती है। पंजाब वाले कहते हैं कि उन्हें उनका कुल और गोत्र किसी ने नहीं बताया। इस कारण हम क्या करें। शादी तो समय पर करनी ही पड़ती है। आपके यहाँ 'जागे' (जो वंशावली का रिकॉर्ड रखते हैं) नहीं हैं जो कुल गोत्र बताते हैं? हमारे राजस्थान में तो 'जागे' हैं जिन्हें सभी पीछे की पीढ़ियों का कुल गोत्र पता रहता है। उनके पास लिखा हुआ रहता है। वे अब तक सब के कुल गोत्र का हाल बताते रहते हैं। ऐसा पंजाब में नहीं है। इस कारण यहाँ पर मायावाद फैला हुआ है। हरियाणा और पंजाब में शादी के रिश्ते में कुल, गोत्र कोई नहीं देखता। अतः वर्णसंकर संतान होती हैं, जो भारत वर्ष देश को अराजकता में बदल रही हैं। यह समय ही ऐसा है जहाँ कलि महाराज का शासन है। कलि महाराज सभी मर्यादाओं को खत्म करता जा रहा है, धीरे–धीरे राजस्थान भी इसकी चपेट में आ रहा है। इसमें

भगवान् भी क्या करें। भगवान् ने ही तो कलि महाराज को ऐसा करने का आदेश दिया है। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग सब भगवान् ने ही तो रचा है। इसमें समय का क्या दोष है। ऐसा तो होगा ही।

शेर इतना खतरनाक नहीं होता, जब बहुत भूखा होता है तब ही मनुष्य को खाता है, वरना जानवरों को ही अधिकतर खाता है। लेकिन दोगला बघेरा अधिक खतरनाक होता है। यह पेड़ पर चढ़े आदमी को भी नहीं छोड़ता। यह उल्टे पैरों से पेड़ पर चढ़ जाता है। यह वर्णसंकर जाति का है। वर्णसंकर अधिक खतरनाक होता है। शेर पेड़ पर नहीं चढ़ता चाहे वह किसी भी जाति का हो। हमारे यहाँ बकरी चराते हैं, ग्वालों के पास लोहे का खंडा होता है, जिससे हिंसक प्राणी डरता है। यह दोगला बघेरा बकरियों के साथ–साथ चलता है। बघेरा पहाड़ की तलहटी में चलता है और अंत में बकरी को ले ही जाता है ग्वाल नहीं बचा पाते। हमारे पहाड़ में 9 बघेरे हैं, ऐसा ग्वाल बोलते हैं।

पैसा ही खास शक्तिशाली माया है। जिसको पैसे का लोभ नहीं, समझो उस पर भगवान् की असीम कृपा बरस रही है। पैसे के पीछे ही देश से देश लड़ रहे हैं। पैसे के पीछे राजा से राजा लड़ रहा है। पैसे के पीछे बेटा–बाप लड़ रहे हैं। पैसे के पीछे पूरा संसार आपस में लड़ रहा है। पैसे के रूप में भगवान् ने अपनी शक्तिशाली माया संसार में फैला रखी है ताकि कोई मेरे पास न आ सके। पैसे में ही अटका रहे। पैसा ही बुरे से बुरा कर्म करवाता है। गरीब बुरे काम से बच जाता है क्योंकि उसे तो दो समय की रोटी मिलना भी दूभर होता है। उसकी इंद्रियाँ पैसा न होने की वजह से काबू में रहती हैं और धनवान की इंद्रियाँ उसे हर प्रकार से सताती रहती हैं। बुरे आचरण में धनवान मजबूर हो जाता है, चाहते हुए भी वह अपनी आदतें नहीं छोड़ पाता क्योंकि उसके ऊपर गहरा रंग चढ़ गया है। अतः पैसा न होना ही अच्छा है। जो मिल जाए, उसी में संतोष रखें तो सुखी रहेंगे। और धनवान का तो सुख बहुत दूर भाग जाता है। हम प्रत्यक्ष

देखते भी हैं कि धनवान को रात में नींद नहीं आती। दिन में चिंताओं से भयभीत रहता है। भूख न जाने कहाँ चली गई। उसे तो दूध भी पचता नहीं फिर ऐसे पैसे का क्या फायदा हुआ । टैंशन पर टैंशन (परेशानी) लगी रहती है और ऊपर से रोग लगे हुए हैं। गरीब का ऐसा नहीं होता। जो पैसे का लोभी है वह भगवान् को कैसे प्राप्त कर सकता है?

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जब हरिनाम जप करते हैं तो भाव अवस्था या विरह अवस्था प्राप्त होने पर उसे अन्यों के सामने प्रकट नहीं करते हैं, तो इसमें कोई दोष तो नहीं। इसको दबा कर रखना उचित है या नहीं है।

उत्तर : दबा के इसलिए रखा जाता है ताकि अभिमान न आए। जब सबके सामने रोएगा तो इज्जत होगी, यही अवगुण है। इसमें अगर हमारे रोने से दूसरों को प्रेरणा मिले कि उन्हें रोना क्यों नहीं आ रहा, हम भगवान् के लिए रोए, ऐसी भावना आये तब तो ठीक है। और यदि यह भावना हो कि मेरी इज्जत होगी, मुझे पूजेंगे, तो वह खराब है। इसीलिए छिपकर रोना चाहिए। यह तो आपके मन के ऊपर है कि आपका मन कैसा है ? दोनों तरह से फायदे हैं। अगर सब के सामने रोते हैं तो उन्हें भी प्रेरणा मिलेगी कि हम भी रोएँ।

मुझे तो मेरे गुरुदेव ने आज्ञा दी है कि मैं किसी से कुछ न छिपाऊँ इसलिए मैं सब कुछ खुलासे में बता देता हूँ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1-7) किताब में सब बताया है, जैसे कि मुझे दो बार भगवान् के दर्शन हुए। यह गुरुजी की आज्ञा से ही मैंने सब बताया है। वैसे बताना नहीं चाहिए। दो बार हनुमानजी के दर्शन हुए। मैं इतना, इतना हरिनाम करता हूँ। गुरुजी की आज्ञा से, मैं सब बता देता हूँ, जिससे सब दूसरों को फायदा हो। उन को प्रेरणा मिलेगी कि जब इतना बुड्ढा आदमी कर सकता है, तो हम जवान क्यों नहीं कर सकते ?

निर्गुणता में ही भगवान् मिलते हैं

(26)

31 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भगवान् ने कलि महाराज को, चार लाख बत्तीस हजार साल का राज्य दिया है। यह कलि, हिरण्यकशिपु का प्रतीक है। वैसे यह धर्म का शत्रु है। अशुभ कर्म करने वाले का दोस्त है। अशुभ कर्म करने वाला सुखी दिखेगा और शुभ कर्म करने वाला दुखी दिखेगा लेकिन, अंत में भला शुभ कर्म करने वाले का ही होगा। अभी तो कलि महाराज की संध्या ही दृष्टिगोचर हुई है, स्वयं तो वह अभी आया ही नहीं, जब आएगा तब देखना क्या हाल होगा। 30–40 साल पहले एक टिड्डी नाम का उड़ने वाला जानवर, इस पृथ्वी पर था। वह इतनी बड़ी संख्या में था कि आकाश में उड़ कर आकाश को ढक लेता था। यह जानवर, पेड़ों के पत्तों को खाकर पेड़ों को नंगा कर देता था। फसल का नामोंनिशान मिटा देता था। यह कलि महाराज की ही मेहरबानी थी। कुछ साल पहले चील, गिद्ध जैसे जानवर होते थे, जो मरे हुए जानवरों को खाकर वातावरण को शुद्ध कर दिया करते थे। अब उनकी भी नस्लें एवं ऐसे अन्य जानवरों की नस्लें भी खत्म होती जा रही हैं क्योंकि यह कलि का जमाना है। अब मानव की नस्ल भी समाप्त होती जाएगी, ऐसा ही समय आएगा। ऐसा रोग आया है जिसे डेंगू बुखार बोला जाता है। यह एक प्रकार के मच्छर की जाति से होता है। जिसको यह मच्छर काट लेता है, वह मर भी

जाता है और जीने की स्थिति में, शरीर को दो–तीन माह के लिए तोड़ देता है, ऐसा जहरीला मच्छर है। आजकल कई प्रकार के बम बनाए गए हैं। इनमें एक जीवाणु बम भी है। ये जीवाणु बहुत जहरीले एवं खतरनाक हैं। यह जीवाणु, जिस मानव को या जीवधारी चर–अचर प्राणी को काटेगा, तो वह तुरंत ही मर जायेगा। डॉक्टर भी इसका इलाज नहीं कर सकेंगे। जब यह बम पृथ्वी पर छोड़ दिया जाएगा, तब कोई भाग्यशाली ही इससे बच पाएगा। भगवान् का भक्त ही केवल बच पाएगा क्योंकि भगवान् उसकी हमेशा रक्षा करते रहते हैं। सुकृतिवान ही इससे बच पाएगा। सुना भी है कि एक बार महायुद्ध होगा। एक देश दूसरे देश पर बम डालेंगे। यह बम बड़े विनाशकारी रहेंगे। यह लीला सब भगवान् ही कराते हैं।

जब अधिक अत्याचार, विप्लव, अराजकता फैलेगी, तब भगवान् ही एक दूसरे को प्रेरणा देकर, पृथ्वी को बहुत कुछ, खाली करा देंगे जैसे भगवान् ने प्रेरणा देकर, प्रभास क्षेत्र में, अपने कुटुंब को ही, एक प्रकार की सुरा पिलाकर, आपस में एक दूसरे को मरवा दिया। बेटे ने बाप को मार दिया, भाई ने भाई को, ससुर ने जमाई को आदि–आदि। आपस में क्रोध करके, एक दूसरे को मार दिया था। यह श्रीमद्भागवत में ही लिखा है। जब भगवान् ने अपने परिवार वालों को ही नहीं छोड़ा, तो जो संसार की जनता दुष्टपना करने लग गई है, उसे कैसे छोड़ सकते हैं? बीमारी भी भगवान् भेजते हैं। सौ साल पहले एक बार चूहे से एक बीमारी फैली थी, तब एक दिन में ही, एक परिवार में कई सदस्य मर जाते थे। उस समय भी काफी जनता बेमौत मारी गई थी। इसीलिए गुरुदेव सबको चेता रहे हैं कि हरिनाम की शरण में चले जाओ। एक लाख हरिनाम नित्य करो ताकि भगवान् आपकी रक्षा–पालन करेंगे जैसे प्रह्लाद की रक्षा व पालन किया।

कहावत है कि जो ऊँचा चढ़ता है तो उसे एक दिन नीचे गिरना ही पड़ता है। भगवान् की सृष्टि में ऐसा होता ही रहता है। इतिहास इसका प्रमाण है। राजसिक, तामसिक जनता पैदा हो रही है।

जिसका विनाश की ओर जाना स्वाभाविक ही है। बहुत साल पहले, जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका ने बम डाला था, परंतु अभी भी उस जमीन पर कुछ पैदा नहीं होता। वहाँ की जमीन जल गई, वहाँ से पेड़ पौधे मूल सहित चले गए। ऐसी विनाशकारी घटना तभी होती है, जब भगवान् के नाक में दम आ जाता है, तब भगवान् को ऐसा करना ही पड़ता है। कहावत है :

fouk'kdky foijhrcf)%A

(संस्कृत सुभाषितानि–04, चरक, सुभाषित 285)

जब विनाश का समय आता है, तब बुद्धि विपरीत हो जाती है। कहते हैं –

tkdk çHk nk#.k n[k nghA rkdh efr igy gj yghAA

तो वह पहले ही गलत काम करने लग जाता है। जब मानव सिर पर चढ़ जाता है, उसे सजा देकर ही ठीक किया जाता है। ऐसे यह कभी मानेगा नहीं। बिना मारे तो भूत भी नहीं मानता। बिना मारे तो सर्कस का शेर भी मास्टर के अधीन नहीं होता, अपनी आदत नहीं छोड़ता।

ध्यान से मेरी बात सुनो। जो दूसरों में दोष देखता है, वह कभी सुधर नहीं सकता। सुधारना हो तो स्वयं अपने में दोष देखो, तो वह भगवान् का प्यारा हो जाएगा। अपने में दोष देखने से उसे कभी दोष नहीं आएगा। पहले अपने को सुधारो। दूसरा तो अपने आप ही सुधर जाएगा। देखा गया है कि दूसरों को सुधारने की कोशिश करते हैं तो दूसरा स्वप्न में भी सुधर नहीं सकता। पहले स्वयं योगी बनो, फिर दूसरे पर प्रभाव पड़ेगा, वरना बकबक करते रहो कुछ प्रभाव नहीं होगा।

इस दुनिया में सभी दुखी हैं। दुखी क्यों हैं? क्योंकि दुख का ही काम करते रहते हैं तो दुख ही हस्तगत होगा।

जो बोओगे वही तो मिलेगा।

As you sow, so shall you reap.

ij fgr lfjl èke ufg HkkbA ij ihMk le ufg vèkekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

अरे! सुख दोगे, तो सुख ही मिलेगा। तन, मन, वचन से सब को सुखी करो। इसमें चर–अचर सब प्राणी आ गए हैं। भगवान् सबके हृदय में बैठे देख रहे हैं, कि अमुक क्या कर रहा है? वैसा ही फल भगवान् उसे देते हैं। कोई किसी को दुख–सुख नहीं दे सकता, अपना कर्म ही सुख–दुख का कारण है। कहावत है :

dje çèkku fcLo dfj jk[kkA
tk tl djb lk rl Qy pk[kkAA

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

मनुष्य जन्म भगवत्कृपा से पाया है, इसे बुरे रास्ते से बर्बाद मत करो। फिर ऐसा अवसर हस्तगत नहीं होगा। हीरा मिला है, गंदी नाली में फेंक दिया तो फिर पछताना पड़ेगा।

vc iNrk, gkr D;k tc fpfM;k px xbZ [ksr

यह तेरा, मेरा ही दुख का कारण है। इसी को माया कहते हैं। जिस दिन यह तेरा–मेरा, दिल से चला जाएगा। उस दिन सुख का समुद्र उमड़ जाएगा। उस दिन भगवद् प्राप्ति हो जाएगी। जब आए थे, तब क्या कुछ लेकर आए थे? खाली हाथ आए थे। ऐसा सोचना चाहिए कि जो मिला है, वह मेरे पूर्व जन्मों के कर्मों से मिला है। अब दूसरे से लेने की इंतजार क्यों करते हो। यदि दुखी किया है, तो दुख आएगा।

श्रीमद्भागवत महापुराण से उद्धृत यह शब्द ब्रह्म, साक्षात् श्रीकृष्ण है। शब्द ब्रह्म है। जब भगवान् जाने लगे तो वे श्रीमद्भागवत में प्रवेश कर गए। उसे ही शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह साक्षात् कृष्ण है।

अब देखिए! संख्या 'सात' का महत्व –

- सात दिन में ही जीव जन्म लेता है और सात दिन में ही मरता है। आठवाँ दिन तो होता ही नहीं है। सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, और रवि। इन्हीं सात दिनों में जन्म लेता है और इन्हीं सात दिनों में मरता है।
- सात साल की उम्र में भगवान् कृष्ण ने, सात दिन के लिए गिरिराज गोवर्धन उठाया था।
- सात दिन का ही श्रीमद्भागवत सप्ताह होता है।
- ब्रह्मा के पुत्र, सप्त ऋषि भी सात ही हुए थे। यह सप्त ऋषि आकाश में ध्रुव लोक की परिक्रमा किया करते हैं।
- युधिष्ठिर महाराज ने अर्जुन को द्वारिका का हाल जानने के लिए भेजा था तो वह भी सात माह में वापिस आया था।
- जब शादी होती है, तो दूल्हा—दुल्हन भी अग्नि के सात फेरे लेते हैं, परिक्रमा करते हैं।
- मनु के पुत्र, प्रियव्रत ने पृथ्वी की सात परिक्रमा की थीं। उन्होंने सोचा कि, "मैं रात को दिन कर दूँगा।" उन्हें रात पसंद नहीं थी। श्रीमद्भागवत में लिखा है, सात समुद्र बन गए और सात ही द्वीप बन गए। उन्होंने अपने सात पुत्रों को द्वीपों का राजा बना दिया।
- सात कोस की ही गिरिराज जी की परिक्रमा हुआ करती है और संगीत के भी सात ही स्वर होते हैं।
- बरसात के दिनों में जो इंद्रधनुष आकाश में बनता है उसमें भी सात रंग होते हैं।

तो देखा, सात की कितनी कीमत है।

मेरे गुरुदेव कह रहे हैं कि अपने स्वभाव को सुधारो। मनुष्य जन्म बार—बार नहीं मिलेगा। स्वभाव को सुधारो। भगवान् की लीला

को तो ब्रह्मा और शिवजी भी नहीं समझ सकते। भगवान् बोलते हैं कि, "मेरा भक्त कुछ–कुछ समझता है।" भक्त किसे कहते हैं? "जो जीव मेरे ही पास में रहता है।" जैसे जादूगर की बात कोई नहीं समझता लेकिन उसका जमूरा उसकी करामात समझ लेता है। ऐसे ही भक्त का आचरण होता है। भक्त ही समझता है कि भगवान् की क्या लीला है? जैसे एक साल के शिशु का आचरण अपनी माँ के प्रति होता है। शिशु, माँ से एक पल भी दूर रहना नहीं चाहता। जैसे माँ शिशु की हर हरकत को पहचानती है। ऐसे ही भगवान् भी भक्त की हर इच्छा को जानते हैं और भक्त भी भगवान् की हर लीला को पहचानता है। अतः अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवान् और भक्त ही सर्वोपरि और प्रमुख आश्चर्यमय पदार्थ हैं और अन्य समस्त मायामय पदार्थ हैं। अनपढ़ भक्त भी समस्त शास्त्रों का ज्ञाता है। इसमें विद्वान्जन की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, हमारे गौरकिशोरदास बाबाजी हैं, जो बिल्कुल अनपढ़ थे। वैराग्य की मूर्ति थे। सभी धर्मशास्त्र उनके हृदय में जागृत थे।

सभी भक्तों की समस्या है कि हरिनाम करने के लिए माला लेकर जब बैठते हैं तो मन एक मिनट में इधर–उधर चला जाता है, टिकता नहीं। तो मन को कैसे लगाया जाए कि भगवान् हमारे पास में रहे? मन को रोकने का एक तरीका है कि जब हमारे सामने प्रसाद की थाली आए, फिर प्रसाद वाली थाली को नमस्कार करो और बोलो, "इस प्रसाद को मेरे गुरुदेव ने और भगवान् ने पाया है और अब इसे मैं पाऊँगा तो मेरे प्रसाद का रस निर्गुण बन जाएगा।" निर्गुणता में ही भगवान् मिलते हैं। तो मेरा मन सिर्फ हरिनाम–मय हो जाएगा। इसके बाद दाहिने हाथ में जल लेकर थाली के चारों ओर चार बार घुमा लो। पानी को अपने सामने गिरा दो। ये महाप्रसाद की परिक्रमा हो गई। अब प्रसाद पाना आरंभ करो। एक–एक ग्रास में आठ–आठ बार मन ही मन में हरिनाम करते रहो। फिर मन कैसे जाएगा, इधर उधर? तो मन हरिनाम में लगता रहेगा। 20–25 ग्रास तो पेट में जाएगा ही। इसके एक माह के अभ्यास के बाद जापक का मन 50% तक स्थिर होने लगेगा। आजमा कर देख सकते हो।

बहुत से भक्त कहते हैं कि इसके पहले हम प्रसाद पाते थे तो हम प्रसाद को नमस्कार नहीं करते थे। न हम खाते समय हरिनाम जप करते थे। न हम पानी, थाली के चारों तरफ घुमाते थे तो हमारा मन चंचल रहता था। प्रसाद पाते वक्त हमारा मन चारों ओर भाग जाता था। प्रसाद का रस बनता था, तामसिक और राजसिक। अतः मन का चंचल रहना स्वाभाविक ही है। अतः नाम का जप आनंदपूर्वक नहीं होता था। आजमा कर देखो कि रिजल्ट क्या आता है। बहुत भक्तों ने कर के देखा है, उनका मन रुकने लग गया है।

tSlk vUu oSlk euA tSlk ikuh oSlh ok.khA

यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। शुद्ध कमाई होना परम आवश्यक है। वरना रिजल्ट (नतीजा) गलत होगा। सच्चाई में ही सफलता मिल सकती है। पानी पियें तो भगवान् का नाम स्मरण करते हुए पियें तो यह भगवद् चरणामृत बन जाएगा। रिजल्ट यह होगा कि वाक्सिद्धि हो जाएगी और झूठ बोलना रुक जाएगा। सच बोलना तो है ही, क्रोध आना भी बंद हो जाएगा। पानी पीना अमृत में बदल जाएगा। जहाँ अमृत भरा होगा वहाँ जहर आएगा ही नहीं क्योंकि यह आपस में दुश्मन हैं। जहाँ रात होती है, वहाँ दिन नहीं होता। जहाँ दिन होता है, वहाँ रात नहीं होती क्योंकि दोनों में दुश्मनी है। जहाँ सुख होता है, वहाँ दुख नहीं आता और जहाँ दुख है, वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है।

कृष्ण की आत्मा राधा है। यह श्रीमद्भागवत में लिखा है, पर जो भक्त अकेली राधा की उपासना करते हैं, वह गलत रास्ते पर जा रहे हैं। उन्हें अष्टसात्विक विकार नहीं आ सकते। उन्हें अश्रु पुलक उदय नहीं हो सकते। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो वही राधा का उपासक हो सकता है, पर युगल सरकार की उपासना में किसी नैष्ठिक ब्रह्मचारी की आवश्यकता नहीं होती है। कई भक्त प्रत्यक्ष में देखते भी हैं कि मंदिर, मठों में अकेली राधा का विग्रह नहीं होता है और न ही अकेले कृष्ण होते हैं। युगल सरकार के विग्रह ही भक्तों को सर्वप्रिय होते हैं। अकेले कृष्ण की उपासना भी उचित नहीं है।

;xy mikluk gh lokÙke gA

मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि संन्यासी, बाबाओं के पास अकेली राधा का ही चित्रपट रहता है। शास्त्रीय विचार करने से तो यह अनुचित ही है क्योंकि राधा, कृष्ण के बिना नहीं रह सकती और कृष्ण भी राधा के बिना नहीं रह सकते। अकेली राधा की उपासना केवल नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही कर सकते हैं। परमहंस अवस्था हो, तुरीय अवस्था हो तो वह राधा की उपासना कर सकते हैं। जहाँ कृष्ण अकेले किसी भक्त को दर्शन देते हैं, वहाँ राधा जी आत्मा के रूप में कृष्ण के संग में रहती हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि राधा, कृष्ण की आत्मा है। आत्मा के अभाव में शरीर कुछ नहीं कर सकता। ऐसे ही द्वारिका में भगवान् कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं, जिनमें भौमासुर द्वारा कैद की गई राजकुमारियाँ भी थीं। लेकिन राधाजी के बिना कृष्ण एक पल भी नहीं रह सकते। आत्मा के रूप में राधाजी, कृष्ण के संग में थीं। द्वारका की रानियाँ कहती थीं कि कृष्ण रात को अपनी शैया पर स्वप्न में रोते रहते हैं। जब पूछा गया कि, "वे क्यों रोते रहते हैं?" तो उन्होंने कहा, "वे गोपियों की अनुपस्थिति से रोते रहते हैं।" राधा के लिए नहीं बोला। गोपियाँ उन्हें प्राणों से प्यारी हैं। उन्होंने ये नहीं बोला कि वे राधा की अनुपस्थिति से रो रहे हैं। यह बोले कि वे गोपियों की अनुपस्थिति से रोते हैं और गोपियों की याद में रोते हैं, वे गोपियों के ऋणी हैं। राधा तो आत्मा रूप से उनके अंदर विराजमान रहती हैं। जो ब्रह्म था, उसी ने दो रूप प्रकट किए हैं। एक प्रेमिका और एक प्रेमी का। एक राधा और दूसरा कृष्ण। राधा के वपु से सब देवियाँ प्रकट हुई हैं और कृष्ण के वपु से ग्वाल–बाल प्रकट हुए हैं।

भगवान् कृष्ण ही स्वयं बनने वाले हैं और बनाने वाले भी वही हैं। भगवान् कृष्ण के बिना तो इस संसार में कुछ है ही नहीं। उदाहरण देता हूँ कि जब ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण के बछड़े, गाय और ग्वाल–बाल चुरा कर ले गए, तब भगवान् कृष्ण हूबहू वैसे ही ग्वाल–बाल, बछड़े और गाय स्वयं बन गए। यहाँ तक कि ग्वालबालों

के छींके, लकुटी और गाय हाँकने वाली लकड़ी, स्वयं ही बन गए थे। अतः यह सिद्ध हो गया कि भगवान् ही संसार में सब कुछ हैं। भगवान् कृष्ण के बिना तो संसार में कुछ है ही नहीं। राधा, भगवान् की पत्नी नहीं है, प्रेमिका का अवतार है।

भगवान् की खास पत्नी वृंदा देवी है। तुलसी माँ है।

èkU; rqylh eS;k] i.kZ ri fd;s]
Jh&'kkyxzke&egk&iVjk.kh uekS ue%

(तुलसी आरती)

यह तुलसी महारानी के लिए बोला गया है। रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवंती आदि भी भगवान् को इतनी प्यारी नहीं, जितनी प्यारी वृंदा देवी है। वृंदा देवी, तुलसी मैया को राजी (खुश) किये बिना भगवान् भक्त को बिल्कुल दर्शन नहीं देते, न मिलते हैं।

तुलसी माँ की हर प्रकार से सेवा करना परम आवश्यक है। समय पर पानी देना होगा, गर्मी और सर्दी से बचाना होगा, आरती करना होगा, चार परिक्रमा करनी होंगी, पवित्र जगह पर तुलसी माँ को रखना होगा, कीड़े लगने पर हल्दी का पाउडर ऊपर से पत्तियों पर छिड़कना होगा, छह माह में, थोड़ा गाय का गोबर, जड़ में डालना होगा। इससे जड़ में कीड़े नहीं लगेंगे। द्वादशी के दिन तुलसी पत्र चयन नहीं करना चाहिए। तुलसी मंजरी और पत्रों को भगवान् को भोग लगाना और भगवान् के चरणों में अर्पित करना एवं तुलसी माला बनाकर भगवान् को गले में धारण कराना। तुलसी मैया को दण्डवत् करना, तुलसी मणियों पर भगवद्नाम जपना, तुलसी माला को नंगा नहीं रखना। गोमुखी (माला झोली, जपमाला थैली) में तुलसी माला को रखना। समय–समय पर तुलसी माला की झोली को धोते रहना, तुलसी माला झोली को स्वच्छ जगह पर रखना। तुलसी माला झोली को गले में रखकर भगवान् को दण्डवत् नहीं करना। मल–मूत्र त्याग करते समय तुलसी माला झोली को पास में न रखना आदि यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

तुलसी माँ की सेवा करने से भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। तुलसी माँ हमारी जन्म–जन्म की अमर माँ है। यही हमको अपने पति परमेश्वर से मिला देगी। तुलसी माँ की कृपा बिना भगवान् स्वप्न में भी नहीं मिलेंगे। जप माला में सुमेरु स्वयं भगवान् कृष्ण हैं और दोनों ओर की मणियाँ, गोपियों की प्रतीक हैं। जब हाथ में जप माला लेते हैं तो पहले तुलसी माला को सिर से लगाओ, फिर हृदय से लगाओ। तुलसी माँ के चरणों का चुंबन करो, इसके बाद एक से चार बार हरिनाम जप करो, फिर झोली में हाथ डालो तो तुलसी माँ अपने पति सुमेरु को ही उँगलियों में पकड़ा देंगी। करके देखो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। ये शास्त्र में भी नहीं लिखा है। यह स्वयं गुरुदेव ने लिखा है। आजमा कर देख सकते हो। यदि जप करते समय बुरा भाव मन में आ गया तो तुलसी माला उलझ जाएगी या उँगलियों से छूट जाएगी या टूट जाएगी और शुभ भाव आएगा तो सुमेरु ही उँगलियों में पकड़ा देगी। यह कहीं शास्त्रों में नहीं लिखा है। यह स्वयं भगवान् ने ही बताया है। कुछ प्रभावशाली शास्त्रों में कहीं नहीं है, भगवान् प्रेरणा करके बताते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता नहीं हिलता। जिस जीव की जैसी आदत होती है, भगवान् वैसी ही प्रेरणा करते रहते हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के अनुसार प्रेरणा होती रहती है। अतः किसी में गुण–दोष देखना व्यर्थ की चेष्टा है। इससे भक्ति नष्ट होती है। जो भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखने में सुख ही सुख है। दुख का तो नामोनिशान ही नहीं है। तभी तो कहावत है :

lrk"kh lnk l[khA

जीव के हृदय में चार कोष्ठ होते हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यह मेरा–तेरा भगवान् को नहीं सुहाता है। अतः भक्त के अहंकार को नष्ट करते रहते हैं। जो निरहंकारी होता है, वही भगवान् को उपलब्ध करता है।

r`.kknfi luhpu rjkjfi lfg".kukA
vekfuuk ekunu dhrluh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जिसका ऐसा आचरण होता है वही भगवान् का नाम जप सकता है।

भक्त किसे कहते हैं? भक्ति का अर्थ है भगवान् में आसक्ति। भगवान् में आसक्ति किस तरह हो सकती है? यह हो सकती है गुरु आश्रम में भर्ती होने से। भक्ति किसलिए होती है? भक्ति होने का परम लाभ क्या है? भक्ति इस कारण होती है कि सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो अर्थात् ऐसा ज्ञान उपलब्ध हो जाए कि यह संसार स्वप्न के समान है। जैसे रात को सोने में स्वप्न आता है और सुबह जागने पर गायब हो जाता है। कोई प्रभाव नहीं रहता। बस ऐसा ही ज्ञान गुरु आश्रम से मिल जाता है। पहला गुरु आश्रम माँ—बाप का घर है, घर ही आश्रम है। शिशु को जन्म से ही माँ—बाप से ज्ञान उपलब्ध होता है यही है एल.के.जी. में भर्ती होना। एल.के.जी. से चौथी क्लास तक माँ—बाप से ही ज्ञान मिलता है। माँ—बाप के आदेश का पालन करना ही सबसे सच्चे ज्ञान की उपलब्धि है। अगर इसी आश्रम में ही भर्ती नहीं हुई तो भक्ति की उच्चतम स्थिति, भगवत्प्राप्ति का सर्टिफिकेट (प्रमाण—पत्र) भी प्राप्त नहीं हो सकता। पहले भक्ति होगी माँ—बाप की। इसके बाद आध्यात्मिक गुरु के आश्रम में भर्ती होना आवश्यक है। यहाँ ज्ञान होगा, धर्मशास्त्रों का, जो भगवान् के साँस से प्रगट हुए हैं और भक्त का भगवान् के पास पहुँचने का मार्ग गुरु ही प्रदर्शित करते हैं। इन शास्त्रों को हृदय में धारण करके भक्त सब से सुखकारक मार्ग पर चलता है। इसके संपर्क में जो भी जीव आता है, उसे भी ज्ञान होने से, वह भक्त और भगवान् का अनुगमन करता है। यही है मानव देह उपलब्ध करने का सच्चा सुखकारक रास्ता। जो मानव माँ—बाप की सेवा नहीं करता, वह भगवान् और भक्त की सेवा स्वप्न में भी नहीं कर सकता। उसकी भक्ति केवल श्रम मात्र ही होगी।

जो एल.के.जी. में भर्ती नहीं हुआ वह पी—एच.डी. का सर्टिफिकेट कैसे प्राप्त कर सकता है? जो माँ—बाप के आश्रम में भर्ती नहीं हुआ, वह भगवान् के पास कैसे जा सकता है? मर्यादा पुरुषोत्तम राम जी

ने जो मर्यादा बांधी है, उसे जो मानव नहीं अपनाता, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। ऐसे मानव का जीवन व्यर्थ चला जाता है, उसे सुख की हवा भी नहीं लगेगी। दुखी होकर हाय–हाय करता हुआ मर जाएगा। अंत में अगली योनि दुखदायक उपलब्ध होगी। मानव जन्म अनंतकोटि चतुर्युगी के बाद ही उपलब्ध होगा। अतः शिशु काल से ही हरिनाम करते हुए भगवान् की शरणागति लेनी चाहिए। हरिनाम ही सद्बुद्धि दे कर भगवद् मर्यादाओं से बाहर नहीं जाने देगा और सुख का जीवन प्रदान करता रहेगा। माँ–बाप को अपनी संतान को तीन साल की उम्र से ही भगवद् शिक्षा देना आरंभ कर देना चाहिए ताकि बाहर का वातावरण उस पर हावी न हो सके। प्रह्लाद, ध्रुव ने तो पाँच साल की उम्र में ही भगवद् प्राप्ति कर ली थी।

कलिकाल का वातावरण बहुत खराब है। अतः छोटे बच्चों पर इसका प्रभाव तुरंत पड़ जाता है। टीवी तो बच्चों को बिगाड़ रहा है। बच्चों को टीवी से दूर रखना चाहिए। बच्चों का हृदय स्वच्छ होता है जिसपर गंदगी तुरंत चढ़ जाती है। अतः माँ–बाप को इस का ध्यान रखना चाहिए। यह बहुत जरूरी है, वरना बच्चा बिगड़ कर राख हो जाएगा। फिर माँ–बाप इसे सुधार नहीं सकेंगे। गहरा रंग चढ़ने से उतरना असंभव हो जाता है। कहते हैं कि हमारा बच्चा, हमारा कहना नहीं मानता। इसमें बच्चे का कोई दोष नहीं है, माँ–बाप का दोष है। उन्होंने बच्चे पर नजर नहीं रखी। किसी चीज को अगर हम नहीं देखेंगे तो वह चीज मैली हो जाएगी। फिर उसका मैल छूटना मुश्किल हो जाएगा।

प्रत्येक चर–अचर प्राणी में तीन धाराएँ सदा बहती रहती हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन धाराओं से प्रेरित होकर मानव कर्म करता रहता है। इसी कारण सतयुग, त्रेता, द्वापर में गुरु आश्रम होते थे जिनमें प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी। पच्चीस साल तक युवा शिक्षा ग्रहण करता था। शादी के बाद सात्विक खून होने से संतान सात्विक आचरण की होती थी। इस कलियुग में मानव की धारा

तामसिक और राजसिक हो गई है, अतः संतान का आचरण भी तामसिक और राजसिक होता जा रहा है, जो सबको दुख देता रहेगा क्योंकि इस समय की शिक्षा केवल पैसा कमाने की ही दी जाती है। धार्मिक शिक्षा का तो नामोनिशान नहीं है, अतः सभी दुखी जीवन काट रहे हैं। यह कलियुग के प्रभाव से ही है। इसमें किसी का दोष नहीं है। जो कुछ हो रहा है कलियुग की वजह से हो रहा है।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : मंदिर में भक्त 64 माला नहीं करते हैं तो क्या उनके हाथ का प्रसाद नहीं पाना चाहिए ?

उत्तर : जो पुजारी 64 माला नहीं करते हैं, भगवान् उनके हाथ का भोग नहीं खाते हैं। जब भगवान् ने भोग ही नहीं लगाया तो प्रसाद कैसे हुआ ? तो इसीलिए मंदिर में रहने वाले भक्तों को प्रसाद नहीं मिलता। प्रसाद न मिलने से कलह होगा। कलह होगा तो आपस में लड़ाई झगड़े होंगे, राग-द्वेष हो जाते हैं, क्योंकि प्रसाद तो हृदय को निर्मल बनाता है और वहाँ प्रसाद मिलता नहीं है। इसलिए वहाँ पर माया का साम्राज्य बन जाता है। जब पुजारी 64 माला करेगा तभी भगवान् अरोगेंगे। जो 64 माला नहीं करते, भगवान् उनके हाथ से नहीं खाते। वहाँ भगवान् भूखे रहते हैं। इसलिए जो 64 माला नहीं करता है उसके हाथ से कुछ नहीं खाना चाहिए। नहीं तो आपको हरिनाम में नुकसान होगा।

हरिनाम जप अर्थात् भगवान् का सानिध्य

(27)

7 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

आज एकादशी है। एकादशी 8 साल की आयु से 80 साल तक की आयु तक सब को करनी चाहिए।

भगवान् किस कर्म से खुश होते हैं? एकादशी व्रत पालन करने से, हरिनाम करने से तथा सांड को दलिया खिलाने से, भगवान् अधिक खुश होते हैं।

शुद्ध एकादशी का नियम है कि दशमी को एक बार खाओ, और एकादशी को निराहार रहो और द्वादशी को पारण करके, शाम का भोजन मत करो। अगर किसी से नहीं निभे, तो एकादशी को फलाहार कर सकते हो।

धरातल को दुखी देखकर, कृष्ण ही, 28 बार द्वापर बीतने के बाद, चैतन्य महाप्रभु का अवतार लेते हैं। इस अवतार में स्वयं चैतन्य महाप्रभुजी ने हरिनाम जप किया है, स्वयं ने आचरण किया है तथा सभी जीवों को एक लाख यानि 64 माला करने का आदेश दिया।

एक लाख नाम करने को क्यों बोले? क्योंकि जो एक लाख नाम नित्य जपेगा, वह इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति कर लेगा, जो एक लाख नाम नहीं करेगा, या 16 माला, या 32 माला करेगा, उसका अगला जन्म मनुष्य का ही दिया जाएगा, ताकि अगले जन्म में, वह एक लाख नाम नित्य करके वैकुण्ठ में चला जाए।

जैसे जगत में, पाठक पाठशाला में पढ़कर, अगली आठवीं की पाठशाला में भर्ती होता है, जब आठवीं की पाठशाला पास कर लेता है, तो दसवीं पाठशाला में जाता है और दसवीं में जब पास हो जाता है, तो अगली पाठशाला (कॉलेज) में जाना पड़ता है। इस पाठक को एक पाठशाला से दूसरी पाठशाला में जाना ही पड़ता है। तब ही वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके राजकीय सर्टिफिकेट उपलब्ध करता है। सर्टिफिकेट से फिर, जीवन चलाने का रोजगार मिल जाता है। इसी प्रकार, भगवान् को प्राप्त करने हेतु एक लाख हरिनाम नित्य करना चाहिए। जो भक्त इस पाठशाला में भर्ती नहीं हुआ, वह माया की पाठशाला में भर्ती होता है, जहाँ दुख, कष्ट के अलावा, सुख का नाम निशान ही नहीं है। अतः कहने का मतलब है कि केवल मात्र हरिनाम करते रहना चाहिए, कलियुग में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम करो, चाहे मन लगे चाहे नहीं लगे, तो दुखालय रूपी संसार से, निश्चित रूप से नैया पार हो जाएगी। फिर शास्त्र बोल रहा है –

dfy;x doy uke vèkkjkA lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

'केवल' क्यों लिखा है? क्योंकि दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है।

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

अर्थात् कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार बोला है, इसलिए हरिनाम करो।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

अब कोई संशय करे कि चैतन्य महाप्रभुजी, कृष्ण के अवतार नहीं हैं तो उसका शास्त्रीय प्रमाण, मेरे गुरुदेव दे रहे हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं बोल रहे हैं। कहाँ बोल रहे हैं? कूर्म पुराण में बोल रहे हैं:

dfyuk n°îekukuk m)k;l ru&Hkr]
tUe çFke lè;k;k Hkfo";fr f}tky;sAA

(कूर्म पुराण)

अर्थात्, मैं इस पृथ्वी पर ब्राह्मणकुल में कलिरूपी दावानल से जलते हुए भक्तों के उद्धार के लिए, कलियुग की प्रथम संध्या में, अवतीर्ण होऊँगा। कौन कह रहे हैं? यह भगवान् कृष्ण कह रहे हैं। अच्छा! दूसरा प्रमाण, संशय निवारण करने हेतु बताया जा रहा है :

uke fl)kr lifÙk çdk'ku ijk;.k%A
Dofpr Jh Ñ".k p rU; ukekykd Hkfo";frAA

(देवी पुराण)

क्या कह रहे हैं? देवी पुराण में, एक प्रसंग में महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती को कह रहे हैं, "हे, पार्वती! हरिनाम संकीर्तन से, भगवान् के नाम से ही, जीवों का परम कल्याण होगा।" श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं जपकर, अन्य सभी जीवों को भी, जबरन नाम में लगाया है, ताकि अनंत कल्पों से, उनसे बिछुड़े हुए प्राणी, वापस उनके पास आ जाएँ। जन्म–मरण के दारुण दुख से छुट्टी पा जाएँ।

शिवजी फिर पार्वती को कह रहे हैं, "यह हरिनाम से ही, सभी जीवों की सारी इच्छा पूर्ण हो जाएँगी। इस महान् सुखकारी संपत्ति का प्रसार करने हेतु, भगवान् स्वयं, श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी के रूप में, नवद्वीप नामक धाम में प्रकट होंगे। यह बोला कि होंगे, तो बाद में हुए। सनातन धर्मावलंबी भक्त, अपने परिवार के किसी व्यक्ति का देहांत होने पर, गरुड़ पुराण का आयोजन करते हैं, उसमें स्पष्ट

रूप से लिखा है, कि भगवान् कृष्ण ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में नदिया में प्रकट होंगे। यह गरुड़ पुराण में लिखा है।

"वृंदावन में जैसे गोपियों के संग में, कृष्ण नाचते हैं, उसी प्रकार कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु जी के रूप में, संकीर्तन में, जगन्नाथपुरी धाम में नाच कर सभी भक्तों को, प्रेम प्रदान करेंगे।" इस विषय में, इस शास्त्र में, तीन जगह अवतार का वर्णन है।

dfyuk n°îekukuk ifj=k.kk; ru&Hkr A
tUe çFke l è;k;k dfj";kfe f} tkfr"kAA

(गरुड़ पुराण)

यह गरुड़ पुराण में आया है कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "कलि द्वारा तापग्रस्त जीवों के परित्राण हेतु कलियुग की प्रथम संध्या में, द्विज जाति यानि ब्राह्मण के यहाँ जन्म लूँगा।"

vg i.kk Hkfo";kfe] ;x l èkk fo'k"kr%A
ek;kij uo}hi] Hkfo";kfe 'kph lr%AA

(गरुड़ पुराण)

फिर और क्या कहते हैं? अर्थात् भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "द्वापर युग की समाप्ति तथा कलियुग के प्रारंभ में ही, मायापुर नवद्वीप धाम में, शची देवी के पुत्र रूप से, पूर्णावतार के रूप में, मैं प्रकट होऊँगा।" यह वचन, शास्त्र कह रहे हैं।

dy% çFke lè;k;k] y{ehdkrk Hkfo";frA
nk#cã lehiLFk% lU;klh xkj foxg%AA

(गरुड़ पुराण)

यह पुराण क्या कह रहे हैं? "कलियुग की प्रथम संध्या में, षड् ऐश्वर्यपूर्ण भगवान् ही, दारुब्रह्म, श्री जगन्नाथजी के समीप, श्री गौरांग रूप धारण करके संन्यास वेश में अवतीर्ण होंगे। संन्यास के पहले वे लक्ष्मीकांत होंगे अर्थात्, उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी प्रिया होगा।"

गोकुल में, नंद महाराज ने, गर्गाचार्य से प्रार्थना की थी कि इन दोनों बच्चों के नामकरण कर दो, तो गर्गाचार्य बोले, "कंस बहुत दुष्ट है, उसको मालूम हो जाएगा, यह ठीक नहीं है।" तब नंद महाराज बोले, "अरे! गौशाला में एकांत है। कोई भी वहाँ नहीं जा सकता। वहाँ किसी को मालूम नहीं पड़ेगा और आप गौशाला में नामकरण कर दो।" तब गर्गाचार्य ने गौशाला में नामकरण किया। गर्गाचार्य ने नंदबाबा को बोला, "यह तुम्हारा बच्चा, यह कभी–कभी पीतवर्ण भी धारण करता है।" यह चैतन्य महाप्रभु की तरफ ही इशारा है।

"कलियुग का साम्राज्य, चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष का होगा। इसमें कलि महाराज, धर्म–कर्म को समूल नष्ट कर देंगे। तब भगवान् विष्णु, ब्राह्मण के यहाँ अवतार लेकर, दुष्टों का नाश करेंगे। इतना अत्याचार होगा, इतना अधिक उपद्रव होगा, इतनी अधिक अराजकता फैलेगी कि भगवान् को सहन नहीं होगा। तब भगवान् को अवतार लेना ही पड़ेगा। इस कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर, स्वयं कृष्ण दया पारावार होकर चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे।"

भगवान् को दया क्यों आती है? भगवान् को दया इस कारण से आती है कि चर–अचर, सभी प्राणी भगवान् की संतान हैं। जब संतान, भगवान् का कहना नहीं मानती तो उनको भगवान् सतयुग, त्रेता, द्वापर में खूब समझाते हैं कि, "तुम अच्छे मार्ग पर चलो।" माँ–बाप, संतान को समझाते ही हैं कि यह उनका काम ठीक नहीं है, अच्छे रास्ते पर चलो। जब माँ–बाप की नहीं मानते, तो माँ–बाप परेशान हो जाते हैं और ऐसी संतान से मुख मोड़ लेते हैं। अब संतान के पाप का घड़ा भर जाता है।

tkdk çHk nk#.k n[k nghA rkdh efr igy gj yghAA

fouk'kdky foijhrcf)%AA

(संस्कृत सुभाषितानि–04, चरक, सुभाषित 285)

फिर क्या होगा? नहीं मानेंगे, तो विनाश होगा। जब विनाश होने का समय आता है तो उसके विचार, शास्त्र के विरुद्ध हो जाते हैं। तो ऐसे मानव को सुधारने के लिए इस जगत में, थाने का, या कोर्ट का प्रबंध किया जाता है। जहाँ, इनको बड़ी सजाएँ दी जाती हैं। मार से तो भूत भी काँपता है, मार से तो सर्कस का बबरी शेर भी मानव के कहे अनुसार नाचता है, बंदर भी मदारी के कहे अनुसार, समाज को सभी तरह से, नाच के दिखाते हैं। रीछ बड़ा खतरनाक जानवर होता है, जो पेड़ पर चढ़ कर भी मानव का भक्षण कर जाता है। जब इस प्रकार के हिंसक, खतरनाक जानवर भी, मार के आगे सीधे हो जाते हैं, तो मानव की तो क्या चलेगी? भगवान् ने, इसी कारण से, नरकों का आविष्कार किया। जैसे यहाँ थाना (जेल) है, वहाँ नर्क का आविष्कार किया, वहाँ, मानव जाति को बहुत ही खतरनाक घोर कष्ट में डाला जाता है। भगवान् ने मानव को अनुशासित करने हेतु ही अनेक धर्म शास्त्र दिए हैं जो उनकी साँस से प्रकट हुए हैं कि जिनको पढ़कर सुधर जाए। तब भी नहीं सुधरते, तो भगवान् ने सतयुग, त्रेता, द्वापर, के बाद खतरनाक कलियुग का आविष्कार किया। बहुत खतरनाक है कलियुग। भगवान् ने सोचा कि इसमें तो मानव सुधरेगा ही, लेकिन फिर भी नहीं सुधरता। तब भगवान् ने दया करके, एक सुगम, सरल मार्ग बता दिया, "मेरी संतानो! मेरा नाम लेकर ही सुधर जाओ। अरे! सतयुग, त्रेता, द्वापर में तो ऐसे कठिन नियम, तपस्या है कि कलियुग का मानव तो उसकी छाया को भी नहीं पकड़ सकता। जंगल में जाकर, हजारों साल तक बिना जल के, बिना खाए, एक पैर से खड़े होकर, भगवान् को याद करो। तब कहीं भगवान् को दया आने से, आकर दर्शन देते हैं। यह तो सतयुग की भक्ति हुई व त्रेतायुग में, सभी राष्ट्रों को अधीन करो, अश्वमेध यज्ञ करो और भी बहुत तरह के यज्ञ हैं जिनमें अनाप–शनाप खर्च होता है तब कहीं भगवान् आते हैं। अरे! द्वापर में निर्मल व शुद्ध हृदय से, भगवान् का अर्चन–पूजन करो, तब कहीं भगवान् प्रसन्न होते हैं तथा पूजन में गलती होने का बहुत डर रहता है तथा स्वच्छता के साथ

पूजन होना भी अनिवार्य है। लेकिन कलियुग में तो कुछ करना ही नहीं पड़ता। शुद्ध–अशुद्ध का कोई ध्यान ही नहीं है, कोई नियम भी नहीं है, कैसे भी भगवान् का नाम ले लो, तो भगवान् खुश हो जाते हैं और बिना माँगे, सब कुछ दे देते हैं और धर्म का मूल हस्तगत हो जाता है। दर्शन सुगमता से मिल जाता है, जैसे हमारे गुरुवर्ग को दर्शन हुआ है। भगवान्, इनडायरेक्ट (अप्रत्यक्ष) रूप से तो, थोड़ा हरिनाम करने पर ही, दर्शन दे देते हैं।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कितना सरल रास्ता है।

ftUg dj uke yr tx ekghA ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

अरे! नाम लेने से, जड़ सहित दुख मिट जाते हैं।

अरे भगवान् के नाम की गूढ़ गति जानना चाहते हो :

tkuk pgfg x< xfr tÅA uke thg tfi tkufg rÅAA

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

अरे! जीभ से नाम जप करके देख लो, नाम का कितना प्रभाव होगा। एक शुद्ध नाम, इतना शक्तिशाली है कि जन्मभर, पाप करता रहे, तो भी मानव, उतना पाप नहीं कर सकता। एक नाम ही, उसका उद्धार कर देगा। और भगवान् धन्वन्तरि जो, अमृत का कलश लेकर आए थे। जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। वह कह रहे हैं :

vP;rkuUr xkfoUn ukekPpkj.kHk"ktkrA
u';fUr ldyk% jkxk% lR; lR; onkE;geAA

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

"मैं सच सच कह रहा हूँ कि नाम रूपी औषधि से सभी रोग नष्ट हो जायेंगे।"

मैं आपको बता रहा हूँ। देखो! हरिनाम की कृपा। हरिनाम की कृपा, कितनी कृपा है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। अब मैं 90 साल का होने वाला हूँ। हरिनाम की कृपा से कोई रोग नहीं है, रत्तीभर रोग नहीं है। आँखों की नजर भी मेरी 5 साल के बच्चे जैसी है और मुझे 30–40 साल हो गए कभी बुखार हुआ ही नहीं। मुझे याद भी नहीं है कि कब चढ़ा था? मेरे पैरों में लड़खड़ाहट जरूर है क्योंकि 30–40 साल से, मैं बस एक तख्त पर बैठा हुआ हूँ, कहीं घूमा नहीं हूँ, इसलिए। मेरे पैरों में कोई दर्द नहीं है। यह क्या है? हरिनाम की कृपा। रात को 12–1 बजे जग जाता हूँ और सुबह तक हरिनाम करता हूँ। इतने बूढ़े आदमी को तो, कमर में दर्द हो जाए, घुटनों में दर्द हो जाए। मुझे कुछ नहीं होता, यह मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, यह हरिनाम की चर्चा कर रहा हूँ।

हरिनाम में क्या है? अमृत बरस गया। अरे! शरीर में अमृत भर गया और जो जहर था– काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष सब निकल गया। अतः स्वाभाविक है, हरकत के बिना इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती हैं। 20 साल के युवक की तरह ताकत है, पैरों में दर्द का नाम निशान नहीं है, केवल लड़खड़ाहट है। बिना बैंत के चलता रहता हूँ। जब अधिक कहीं दूर जाना पड़ता है तब मैं बैंत का सहारा लेता हूँ। इसे मेरी बड़ाई नहीं समझें, यह तो मैं हरिनाम की वजह से ही बोल रहा हूँ। भक्त लोग कहते हैं कि, आपका हरिनाम अब तक कितना हो चुका है? कोई कहते हैं 800 करोड़ हो गया है। भाई! मैं नहीं जानता, मुझे मालूम नहीं है। लेकिन लोग कहते हैं कि जबसे आप कर रहे हो, तब से कैलकुलेशन (गणना) किया तो 800 करोड़ हो चुका है, और अब भी करते ही रहते हो। 5 लाख भी किया है आपने, और 3 लाख तो करते ही रहते हो। क्योंकि हरिनाम के अलावा मेरे पास कोई काम नहीं है। 30–40 साल से 9 बजे से पहले सो जाना, और 12–1 बजे उठ जाना, फिर अपने हरिनाम में लग

जाना। यह सब मेरे गुरुदेवजी की कृपा और भगवान् की कृपा से ही हो रहा है। इसमें मेरी कोई शक्ति विशेष नहीं है। नित्य ही श्रीमद्भागवत, चैतन्य चरितामृत और तुलसीदासकृत रामायण का पठन होता रहता है। अतः मुझे एक पल की भी फुर्सत नहीं है।

ij fgr lfjl èke ufg HkkbA ij ihMk le ufg vèkekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

अरे! दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव तथा देवता तक, भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हमारा जन्म, कलियुग में व भारतवर्ष में हो जाए तो हम सुगमता से वैकुण्ठ की प्राप्ति कर लेंगे। हम कितने भाग्यशाली हैं कि ऐसा शुभ अवसर हमको मिला है, फिर भी हम सोते रहते हैं।

भविष्य में कई कल्पों में भी ऐसा शुभ अवसर नहीं मिलेगा।

कलियुग में भगवान् को कोई मानता ही नहीं है। भगवान् के ग्राहक बहुत कम होने से, विरले भक्त होने से, भक्तों की कीमत बढ़ गई। कलिकाल में, भगवान् इस कारण ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, जहाँ किसी वस्तु की कमी हो जाती है, तो उसकी चाहना ज्यादा होने से कीमत बढ़ जाती है। भगवान् ने कलियुग इसी कारण बनाया है कि मेरी संतान, मुझे सरलता से उपलब्ध कर ले तथा केवल मेरा नाम संकीर्तन करके तथा नित्य एक लाख नाम जप कर, अपना मनुष्य जन्म सफल कर ले। इस समय में उमर भी कम होती है, मानव अनेक रोगों से ग्रस्त रहता है, खान पान भी दूषित रहता है, पीने का पानी तक शुद्ध नहीं मिलता। ऐसे कमजोरी महसूस करके ही, भगवान् ने दया करके, अपने को उपलब्ध करने का सरल, सुगम मार्ग, अपनी संतानों को दिया है।

इस युग में चारों ओर उपद्रव ही उपद्रव होते रहते हैं, कहीं सूखा पड़ता है, पानी के लिए मानव तरसता रहता है, कहीं पर सुनामी लाकर गाँव के गाँव डूब जाते हैं, कहीं इतनी बरसात हो जाती है कि सब चर–अचर परेशान हो जाते हैं, कहीं पर तूफान

आकर, सब को तहस नहस कर देता है, कहीं भूकंप आने से गाँव के गाँव जमीन में धँस जाते हैं।

यह सब क्या है? यह कलियुग के तमाशे हैं। समय पर मौसम नहीं होते, स्वार्थ का बोलबाला हो गया है। माँ–बाप को कोई नहीं मानता, तो वृद्धावस्था बड़ी मुश्किल से निकलती है, घर–घर में कलह होता रहता है, भाई–भाई से सलाह नहीं लेता, सालों से सलाह लेने लगता है। मैं यह सब शास्त्रीय बात कह रहा हूँ। अपने मन से नहीं कह रहा हूँ। कहने का मतलब है कि मर्यादाओं का नामोनिशान ही खत्म हो जाता है।

अब ऐसी कुछ बात बता दूँ कि आजकल जो जन्मपत्री बनती है, वह 99% गलत होती है। अब जैसे ही बच्चा पेट से बाहर आता है, नर्स उसी समय को जन्म का समय बता देती है, यह समय बताने से टेवा (जन्मपत्री) गलत बन जाता है। जब तक बच्चा, पेट की नाल से जुड़ा रहता है, तब तक वह पिछले जन्मों से जुड़ा हुआ रहता है। जब नाल काटा जाता है, वही समय ही सही जन्म का समय होता है, इस समय से बनी जन्मपत्री सही होती है। जैसाकि श्रीमद्भागवत महापुराण बता रहा है कि इस समय बच्चे के हेतु दान इत्यादि का संकल्प मन में बोल देना चाहिए। उससे बच्चा शरीर से स्वस्थ रहेगा, बुरे ग्रह नहीं आएंगे, बच्चे के लिए बहुत से लाभ हैं। इसका शुभ प्रभाव माँ पर भी पड़ेगा। माँ भी स्वस्थ रहेगी। जैसाकि नंदबाबा, कृष्ण के लिए करते थे, ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ दान देते थे क्योंकि ब्राह्मण ही भगवान् के इष्टदेव हैं।

जैसा श्रीमद्भागवत पुराण में बोल रहे हैं कि मानव के शरीर में चार कोष्ठ होते हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। अहंकार ही तेरा–मेरा का भाव उत्पन्न करता है। यही भाव जन्म–मरण का कारण होता है। मन संकल्प–विकल्प करता है, जो माया से सम्बन्धित है। बुद्धि निर्णय करती है कि ये ठीक है, ये ठीक नहीं है। चित्त में चिंतन जन्म लेता है। चिंतन, शुभ–अशुभ दोनों प्रकार का है। यदि चिंतन होते ही, उसको हटा दिया जाए तो यह मन तक नहीं आएगा, मन तक आने

पर ही अपना प्रभाव दिखा देगा, मन पर आने के बाद इन्द्रियाँ इस चिंतन को पकड़ लेंगी, जब इन्द्रियाँ पकड़ लेंगी, तो कर्म करवाकर ही छोड़ेंगी। चिंतन अच्छा भी हो सकता है तथा बुरा भी हो सकता है। बुरा चिंतन होने पर फौरन उस जगह को छोड़ दो और किसी श्रेष्ठ, वृद्ध मानव के पास जा बैठो या ज्ञानी पुरुषों के पास जा बैठो, थोड़ा ठंडा पानी पीना भी इसमें सहायक होगा। ठंडे पानी से स्नान कर लो तो शीघ्र खत्म हो जाएगा। बुरे चिंतन का यही सही सुगम उपाय है। करके देखो, कितना सही रिजल्ट (नतीजा) आपके हाथ में आता है।

मानव में पाँच कोश होते हैं – उसे अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोश कहते हैं। आत्मा, आनंदमय कोश में विराजमान रहती है। इसका कनेक्शन (सम्बन्ध) चारों कोशों से जुड़ा रहता है। जब यह कनेक्शन टूट जाता है, तो आत्मा अन्नमय कोश से निकल कर कर्मानुसार दूसरे शरीर में चली जाती है। लिंग शरीर, कभी खत्म नहीं होता, यही कर्म भोगने का शरीर है, जब यह समाप्त हो जाता है, तो दिव्य शरीर मिल जाता है।

यह दिव्य शरीर मिलता है सत्संग से, जैसे यमलार्जुन, पेड़ की योनि में नंदबाबा के आंगन में खड़े थे, कृष्ण को इनका उद्धार करना था, तो ओखल से बँधे हुए दोनों पेड़ों के बीच में से, निकलने से, ओखल अटक गया, कृष्ण ने जोर लगाया तो दोनों उखड़कर जमीन पर गिर गए। उनमें से दिव्य शरीर लेकर, दोनों खड़े हो गए और कृष्ण को नमस्कार किया। जब दिन में पेड़ गिरने से जोर का शब्द हुआ तो सब इकट्ठे हो गए, वहाँ जो बच्चे खेल रहे थे, उन्होंने, सबको कहा, "इन पेड़ों में से दो चमत्कारी पुरुषों को निकलते हुए हमने देखा है।" बच्चे कभी झूठ नहीं बोलते, तब सबको विश्वास हो गया कि ये नारदजी के श्राप के कारण वृक्षयोनि में अपना कर्म भोग रहे थे। यह प्रसंग श्रीमद्भागवत महापुराण में पढ़ने को मिलता है। दिव्य शरीर, तब तक नहीं मिलता, जब तक पिछले संस्कारों वाला लिंग

शरीर, समाप्त नहीं होता। भगवान् की भक्ति से ही, दिव्य शरीर उपलब्ध होता है। दिव्य शरीर से जीव भगवान् के वैकुण्ठ आदि अनेक धामों में जाकर आनंद भोगता है।

वैकुण्ठ धाम तथा गोलोक धाम भी अनंत हैं, जिसका जैसा भाव, भगवान् के प्रति होता है, वह उसी भाव से उस धाम में जाता है, ऐसा धर्मशास्त्र बोल रहे हैं। भगवान् की उपलब्धि का स्थान कहाँ है। चित्त है, यह मन से जुड़ा रहता है। जैसे चित्त में अच्छी–बुरी स्फुरणा हो जाती है मन इसे पकड़ लेता है। अच्छी स्फुरणा से भगवद् प्राप्ति होती है, और बुरे से संसार का बंधन हो जाता है।

अब ध्यानपूर्वक मेरे भगवद्स्वरूप श्रीगुरुदेव की बात सुनने की कृपा करें! आप भगवान् की गोद में शीघ्र चले जाओगे। भगवान्, आपको एक सैकंड नहीं छोड़ेगा। भगवान् आपके पीछे छायावत चिपका रहेगा। भगवान् अपने भक्तों को कह रहे हैं कि, "इस स्वभाव वाले, मेरे प्यारे भक्त को मैं छोड़ना चाहूँ, तो भी नहीं छोड़ सकता क्योंकि इसने मुझे मजबूर कर दिया। मेरे में ताकत नहीं कि मैं इसे छोड़ दूँ। इसे त्याग दूँ।" आपको भगवान् को कैसे याद करना है जो नीचे लिखा जा रहा है। जिस प्रकार से भरतजी, अपने बड़े भाई को याद करते थे, इसी प्रकार आप भी याद करो।

i|yd xkr fg;| fl; j?kch: A thg uke| ti ykpu uh: AA

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

हरिनाम करते हुए भगवान् को पास में रखो और जैसे भरतजी ध्यान कर रहे हैं, "मेरे प्यारे बड़े भाई राम और माता सीता ऐसी चिलचिलाती धूप में नंगे पाँव काँटों भरे रास्ते से जा रहे हैं। लक्ष्मण सहित इन तीनों के पाँव जल रहे होंगे। काँटों से पग छलनी हो गये होंगे, तो रोने के सिवाय उनकी क्या सहायता करूँ?" भरतजी इस जीभ से हरिनाम करते कह रहे हैं, "हा मैया! हा राम! हा लक्ष्मण भईया! मेरा हर एक पल युग के समान बीत रहा है।" इस तरह से हरिनाम करना चाहिए। इस प्रकार से हरिनाम जपो तो भगवान्

आपको 100% दर्शन देंगे तथा आपको छोड़कर जाने में असमर्थ हो जाएँगे।

ऐसी अवस्था क्यों नहीं आती? ऐसी अवस्था इस कारण से नहीं आती है कि एक तो आप भगवान् को चाहते ही नहीं हो। दूसरा कारण है कि आपका झुकाव 80% घर–गृहस्थी में है और आपने मनुष्य जन्म का महत्त्व ही नहीं समझा कि मनुष्य जन्म भी बार बार मिलेगा या नहीं। मनुष्य जन्म कितना कीमती है, इसको आपने नहीं जाना। मनुष्य जन्म, फिर अनेक कल्पों तक भी नहीं मिलेगा। 84 लाख योनियों में चक्कर काटते रहोगे। अतः हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवान् ने भारत में हमें जन्म दिया है और इस अवसर को खो देने से बहुत बड़ा नुकसान है। मौत का कोई ठिकाना नहीं है कि एक साँस आये, दूसरी नहीं आये। मौका चूक गए तो पछताओगे। सीता भी इसी तरह भगवान् को याद करती थी। सुनो :

tfg fcfèk diV djx lx èkkb py JhjkeA
lk Nfc lhrk jkf[k mj jVfr jgfr gfjukeAA

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

जैसे भगवान् रामजी, हिरन को मारने के लिए गए थे, वही छवि, याद कर करके सीता 'राम! राम!' कर रही है। जीभ से हरिनाम रट रही है। 'राम! राम!' कर रही है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव कहते हैं कि हमें भगवान् कलियुग में जन्म दे दे तो वे हरिनाम जप करके अपना उद्धार कर लें। इसी प्रकार देवता भी तरसते हैं, "हमारा कलियुग में जन्म हो जाए तो हम सुखी हो जाएँ।" और कलियुग के मानव तो दुष्कृति की वजह से अपना जीवन माया की गोदी में काट रहे हैं जो दारुण दुख का भंडार है। कलियुग में भगवान् का उपलब्ध होना, कितना सरल और सुगम है। जब भक्त सात तरह के आचरण का पालन करने का स्वभाव बना लेता है तो भगवान् उसे छोड़ना ही नहीं चाहते हैं, छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं, चिपके रहते हैं।

सब मन का ही खेल है

28

15 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य मन, वाणी और शरीर से पाप करता रहता है। यह पाप क्यों करता है? जबकि मानव जानता भी है कि इस पाप से नरक की उपलब्धि होगी, तब भी करता है। इसका कारण है, इसके पिछले जन्म के कर्म संस्कार। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इसे प्रेरित करके अशुभ पाप कर्म में अग्रसर करते रहते हैं। इसमें इसका कोई वश नहीं है। करे भी क्या? न चाहते हुए भी करना पड़ रहा है। इन पाप कर्मों को हटाने हेतु साधु संग व धर्म शास्त्र ही केवल मात्र उसके सहायक बन सकते हैं, अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। साधु संग भी तब ही मिलेगा जब भगवान् की कृपा होगी।

fcu gfj Ñik fey ugh lrk

(मानस, सुन्दर. दो. 6, चौ. 2)

यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। सच्ची कहावत है।

शक्ति रहते तथा बुढ़ापा आने से पहले यदि सुकृतिवान को साधु–संग उपलब्ध हो जाए तो मानव पाप करने से बच सकता है। योग से, तीर्थ सेवन से, ज्ञान से, यज्ञ से पाप करने की वासना नहीं जाती, केवल भगवद् नाम से ही जाती है। भगवान् का नाम चाहे अवहेलना पूर्वक ही क्यों न लिया जाए, पाप वासना की गंध समाप्त

हो जाती है। एक शुद्ध नाम में ही वह शक्ति है कि इतना पाप जन्म भर में मानव कर ही नहीं सकता। अजामिल कितना पापी था। कुल्टा पत्नी से दस पुत्र उत्पन्न किए और अनाचार में लीन था। उसका अपने बेटे के मोह के कारण, जिसका नाम नारायण था, मरते समय 'नारायण' नाम मुख से निकल गया तो उसे वैकुण्ठ की उपलब्धि हो गई। जैसे बिना जाने अमृत पी जाएँ या बिना जाने जहर खा जाएँ तथा बिना जाने अग्नि छू जाएँ तो वह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहते। ऐसे ही हरिनाम बिना जाने ही गिरते, पड़ते भी उच्चारण हो जाय तो अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता। अतः गुरुदेव सब भक्तों से प्रार्थना कर रहे हैं कि मेरी बात मान लो। तुम नित्य एक लाख नाम अर्थात् 64 माला उच्चारण पूर्वक करो ताकि वैकुण्ठ की उपलब्धि हो जाए।

अंत समय में जब मौत आए तो मन भगवद् चिंतन में लगना चाहिए। इसका लक्षण मेरे भगवद् स्वरूप गुरुदेव बता रहे हैं। पाँच कर्म इंद्रियों में खिंचावट महसूस होगी। साँस लगातार न आ कर रुक रुक कर आने लगेगी। आँखों में धुँधलापन आने लगेगा। कान में बहुत गहराई से ऊंडा आवाज सुनाई देगी जैसे कोई गहरे कुएँ में आवाज दे रहा हो। हाथ पैरों की नसों में खिंचावट महसूस होने लगेगी। जो उम्र भर काम में व्यस्त रहा होगा वह कर्म बार–बार चिंतन में आने लगेगा, जैसे कि किसी ने उम्रभर बकरियाँ चराई हैं तो उसे मरते समय बकरियाँ ही बार–बार याद आती रहेंगी। इस याद में प्राण निकल जाएँगे तो अगला जन्म बकरी का ही होगा अर्थात् कहने का मतलब है जो अपने जीवन में जिस कर्म में संलग्न रहा है वही मरते समय याद आएगा। अंत समय के भावानुसार अगला जन्म उसे उपलब्ध होगा। मरते समय, इसे इतनी पीड़ा होने लगेगी कि जैसे हजार बिच्छू काटते हैं, डरावने यमदूत लेने आते हैं, लेकिन जो भगवान् की शरण में रहकर जीवन भर हरिनाम करता रहता है उसे अंत में स्वयं भगवान् लेने आते हैं। मरने के समय इसका चित्त भगवान् का ही चिंतन करता है, इसे जरा भी कष्ट नहीं होता,

आसानी से प्राण शरीर से निकल जाते हैं। आत्मा आनंदमय हो कर भविष्य में संत के सानिध्य में चली जाती है। जैसे हाथी के गले से माला टूट जाती है और हाथी को इसका पता ही नहीं पड़ता कि गले से माला टूट गयी है। जैसे मेरे गुरु भाई निष्किंचन महाराज बोलते बोलते चले गए हैं। बिल्कुल स्वस्थ थे, भगवान् की मंगला आरती करके अपने कमरे में आए थे और जब ब्रह्मचारी दूध देने आया तो महाराज बोले, "ओ मुंडे! आज मैं जा रहा हूँ।" सभी कमरे में इकट्ठे हुए और महाराज बोलते–बोलते लुढ़क गए। भगवान् स्वयं लेने आए थे। अभी थोड़े दिन की ही बात है। मुझे बहुत प्यार करते थे। कभी कभी छींड की ढाणी भी आ जाते थे।

जो मानव माया में लिप्त है उसे मरने से पहले दस दिन में बुरे सपने आने लगते हैं। तेल में स्नान करता दिखाई देगा, गधे या ऊँट पर चढ़ता हुआ दिखाई देगा, डरावने स्वप्न, भूत आदि दिखाई देंगे, भैंसे पर यमराज दिखाई देगा, अपने पैरों की तरफ देखेगा तो काले दिखाई देंगे आदि–आदि लक्षण दस दिन में दिखाई देंगे।

जो भगवान् का भक्त होगा उसे आध्यात्मिक स्वप्न आएंगे, जैसे गुरु दर्शन होगा, मंदिर में ठाकुर दर्शन करता हुआ, मंदिर की परिक्रमा करता हुआ, दण्डवत् करता हुआ तथा सत्संग सुनता हुआ, तीर्थ में स्नान करता हुआ, संतोष से बातें करता हुआ, गरीबों की हर प्रकार से सेवा में रत होता हुआ, भगवान् उसकी ओर देख कर मुस्कुरा रहे हैं। स्वप्न में नाम जप करता हुआ, अष्ट सात्विक विकार उदय होते हुए गहरी निद्रा में अनुभव करेगा आदि–आदि लक्षण दस दिनों में होंगे, तो समझना होगा कि अब तू संसार से विदा हो रहा है एवं अलौकिक संसार में पदार्पण कर रहा है। यह सब लक्षण धर्म शास्त्रों में अंकित हैं। मेरे गुरुदेवजी साक्षात् भगवान् के रूप हैं। सब भक्तों को स्वप्न सुनाकर सावधान कर रहे हैं। आप भक्तजन मानें न मानें जो कुछ लिखा जा रहा है वह किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही प्रेरणा करके लिखा जा रहा है। इसमें साधारण मानव की शक्ति नहीं है। जो एक ही विषय पर इतना विस्तार से लिख सकता है। जो केवल

भगवद् नाम, हरिनाम से ही सम्बंधित है। हरिनाम की क्या शक्ति है? कैसा प्रभाव है? कैसे जपना चाहिए? जपने पर क्या–क्या लक्षण सामने आते हैं? आदि–आदि वर्णन होता है।

कपिल–देवहूति संवाद अनुसार इस मानव के बंधन और मोक्ष का कारण केवल मात्र मन ही है। कुसंग में अपना जीवन बिताने पर यह बंधन का कारण हो जाता है। सत्संग में अपना जीवन बिताने पर यह मोक्ष का कारण हो जाता है। मन अनंत कल्पों से उस कुसंग में ही पड़ा रहता है। सत्संग तो भगवत्कृपा बिना मिल नहीं सकता। अतः मानव का मन कुसंग की वजह से चंचल रहता है। मन की स्थिरता ही मोक्ष का कारण बनती है, यह स्थिरता सच्चे साधु के संग से ही मिल सकती है। साधु संग भगवत्कृपा बिना नहीं मिल सकता।

rkr Lox vicx l[k èkfjv ryk ,d vxA
ry u rkfg ldy fefy tk l[k yo lrlxAA

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

सच्चे साधु का लव मात्र का संग ही मोक्ष का कारण बन जाता है। कलियुग में सच्चा साधु मिलना खांडे की धार है। जिसकी बहुत ही सुकृति होगी उसे ही सच्चा साधु भगवान् की कृपा से मिल सकेगा। शिवजी पार्वती को कह रहे हैं :

fxfjtk lr lekxe le u ykHk dN vkuA
fcu gfj Ñik u gkb lk xkofg cn ijkuAA

(मानस, उत्तर. दो. 125 ख)

वाल्मीकि को सच्चा साधु नारदजी मिले तो वाल्मीकि त्रिकालदर्शी हो गए। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम राम तो हजारों साल बाद में प्रकट हुए और वाल्मीकिजी ने रामायण पहले ही रच दी कि भगवान् इस प्रकार से लीला करेंगे। कहने का मतलब है कि सच्चा साधु किसी भाग्यशाली को ही उपलब्ध होता है। सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में सच्चे साधु बहुतायत से होते थे, लेकिन कलियुग में तो ढोंगी साधुओं की भरमार रहती है। संन्यासी भी घर बसाने लगते हैं। भगवान्

मानव पर कितनी कृपा कर रहे हैं, फिर भी मूर्ख मानव समझता नहीं है।

fcclg tk luke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

भगवान् बोल रहे हैं, "हे मेरी संतान मानव! तू जबरदस्ती ही मेरा नाम कर। मैं तेरे अनंत जन्मों के गहरे रचे–पचे पाप को जलाकर भस्म कर दूँगा।" इससे ज्यादा भगवान् की दया और क्या होगी?

tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

मानव को भगवान् की शरण होने में क्या बाधा है? केवल किसी जीव मात्र को सताओ नहीं, बस भगवान् राजी (खुश) हो जाएंगे। यदि हो सके तो तन, मन, वचन तथा धन से सहायता करो। जब ऐसा मानव का स्वभाव बन जाएगा तो दुख कष्ट उसके पास आ ही नहीं सकता। क्यों नहीं आ सकता? क्योंकि उसने अच्छा कर्म किया है। कहावत है :

dje çèkku fcLo dfj jk[kkA
tk tl djb lk rl Qy pk[kkAA

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

अमृत बीज बोओ तो सुख का फल मिलेगा। जहर बीज बोओगे तो दुख का फल हस्तगत होगा। कोई किसी को दुख दे ही नहीं सकता। अपना कर्म ही दुख का कारण होता है। भगवान् बोलते हैं कि, "जो कुछ तुझे मेरे द्वारा प्राप्त हुआ है उस कर्म को तू मेरा समझ के कर, तो तुझे उस कर्म का फल नहीं भुगतना पड़ेगा। यदि तू अपने लिए अपना समझकर करेगा तो इस कर्म का फल तुझे अवश्य ही भुगतना पड़ेगा। ऐसा करने से तुझे कौन सा श्रम होगा? कितना सरल, सुगम रास्ता बता दिया फिर भी तू समझता क्यों नहीं है। न समझेगा तो दुख भोग करता रह। अरे! तेरे जो भी सम्बन्धी हैं, यह सब तेरे लुटेरे हैं। यह तेरी कमाई खा रहे हैं, तू उन्हें पालता पोसता

है, खाना–पीना देता है, पढ़ाता है, नौकरी के हेतु भगवान् से प्रार्थना करता है, फिर शादी में अनाप–शनाप खर्चा करता है, पुत्र को पत्नी ला कर देता है, फिर बेटा–बहू, तुझे पूछते भी नहीं हैं कि हमारे माँ–बाप कहाँ पर पड़े हैं। यह क्या है? लुटेरे हैं या प्यारे हैं? फिर इनमें फँसकर तू मुझे भूल जाता है जो कि मैं तुम्हारा जन्म–जन्म का साथी हूँ। सच्चे अमर साथी को भूल गया और नए–नए साथी बनाता रहता है। यह क्या तेरी समझदारी है?"

भगवान् की माया भी विचित्र ही है। उदाहरणस्वरूप चिड़ा–चिड़ी अपने अंडों को पंखों के नीचे सेते हैं। बच्चे हो जाने पर, दोनों कहीं से चुग्गा लाकर उनके मुख में देते हैं। थोड़े दिनों में उन बच्चों के पंख निकल आते हैं, बच्चे घोंसले में फुदकते हैं तो चिड़ा–चिड़ी आनंदमग्न हो जाते हैं। थोड़े दिनों में बड़े हो जाते हैं, उड़ने लग जाते हैं। एक दिन ऐसा आता है कि जंगल में उड़ जाते हैं, फिर माँ–बाप को कभी भी आकर मिलते नहीं हैं। यही माया है। इस मानव को भगवान् ने बुद्धि दी है। यह भी चिड़ा–चिड़ी से कम नहीं है। मानव से तो चिड़ा–चिड़ी अच्छे हैं जिन बेचारों को कोई ज्ञान ही नहीं है। खाना–पीना और भोग करना, इतना ही जानते हैं। मानव से तो सभी जीवमात्र मर्यादा में रहते हैं। मानव समझदार होकर भी हर वक्त गलत रास्ते में चलता है। फिर कहता है कि वह बहुत दुखी है। दुखी तो रहोगे ही जबकि तुम दुख ही बो रहे हो। जो बोओगे वही तो उपलब्ध होगा।

As you sow so shall you reap.

जैसा करोगे वैसा भरोगे। इसमें किसका दोष है? दोष है तो स्वयं का।

श्रीमद्भागवत महापुराण बता रही है कि पहले भगवान् एक ब्रह्म के रूप में ही था। सब जगह सुनसान ही सुनसान था। सृष्टि बिल्कुल नहीं थी। तब भगवान् ने दक्ष प्रजापति को सृष्टि करने का आदेश दिया। पहले मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में दक्ष को

भगवान् ने आदेश दिया कि अब से स्त्री–पुरुष के संसर्ग से सृष्टि उत्पन्न करो। दक्ष ने सृष्टि उत्पन्न की, लेकिन नारदजी ने उनकी संतान को बोला, "गृहस्थ होने में क्या रखा है? भगवान् का भजन ही सर्वोपरि है।" और उनको भजन में लगा दिया, तो दक्ष ने नारदजी को श्राप दे दिया कि, "तुम सबको बिगाड़ते फिरते हो अतः तुम कहीं पर भी अधिक देर तक ठहर नहीं सकोगे।" पर नारदजी ने श्राप को सिर माथे पर स्वीकार किया कि जैसी भगवद् इच्छा हो उसी में खुशहाल रहना चाहिए। नारदजी जानते थे कि भगवान् की इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। अतः भगवान् की इच्छा है कि उन्हें श्राप दिला कर एक जगह रुकने का अवसर नहीं दिया। भगवान् किसी को प्रेरणा करके श्राप, वरदान दिलवाते रहते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी लगभग 536 साल पहले बंगाल में, मायापुर के, नदिया धाम में अवतरित हुए थे। स्वयं कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में इस धरातल पर प्रकट हुए हैं। इनकी संतानें चर–अचर प्राणी, भगवान् कृष्ण से अनेक अनगिनत कल्पों से बिछुड़े हुए हैं। भगवान् को दयानिधि बोलते हैं, अतः दया परवश होकर 28 द्वापर के अंत में जब कलियुग की संध्या उदय हुई तब चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधा भाव भावित होकर, चर–अचर प्राणियों पर कृपा करने हेतु भगवान् कृष्ण ही इस मृत्युलोक के धरातल पर पधारे। जो भी भक्त इनके शरणागत होकर हरिनाम करेंगे उनका उद्धार इसी जन्म में होकर वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि कर लेंगे। ऐसा क्यों किया? क्योंकि कलियुग में जीव हर प्रकार से दुखी रहते हैं, अनंत रोगों के शिकार बन जाते हैं, खाद्य पदार्थ दूषित हो जाते हैं, पानी तक दूषित रहता है, कोई भी शुद्ध वस्तु उपलब्ध नहीं होती, मानव में स्वार्थ भर जाता है, प्रेम तो मूल सहित गायब हो जाता है, कोई किसी का रक्षक पालक नहीं होता, मक्खियों की तरह मानव, मानव को मार देते हैं, जगह–जगह कसाईखाने खुल जाते हैं, जानवरों के मांस से पेट श्मशान बन जाता है, अधिकतर मांसाहारियों का साम्राज्य फैला रहता है। इस कलिकाल में हर ठौर दुख ही दुख है। दुख क्यों है? दुख इस कारण से है कि प्रत्येक देश

में विनाशकारी बम आदि बनाए जा चुके हैं, अतः इनका परीक्षण समूह में होता रहता है, जिससे जहरीली बरसात होती है। जहरीली बरसात से चराचर प्राणियों पर बुरा प्रभाव पड़ता रहता है। कलियुग में कोई मर्यादा नहीं रहती, समय पर न बरसात होती है, न गर्मी पड़ती है, न सर्दी होती है। कहीं सुनामी विनाश का कारण बन जाती है तो कहीं तूफान से सब ठौर अस्त–व्यस्त हो जाता है। कहीं सूखा पड़ता है, कहीं पर पीने का पानी नहीं मिलता। अन्न तक की असुविधाएँ दसों दिशाओं में चक्कर काट रही हैं। रामसुखदासजी एक विरक्त संत हुए हैं, उन्होंने कहा था कि तीस–चालीस साल बाद पीने को पानी नहीं मिलेगा।

अतः भगवान् को दया आ गई तो चैतन्य महाप्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। इसके प्रमाण नीचे लिखे जा रहे हैं। भविष्यवाणी करते हुए स्वयं भगवान् कूर्म पुराण, देवी पुराण, गरुड़ पुराण, आदि पुराण एवं बृहद् नारदीय पुराण में कहते हैं कि, "कलियुग के प्रारंभ में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में संसार के जीवों के कल्याण हेतु नवद्वीप धाम, मायापुर में पवित्र गंगा जी के किनारे शची माता के पुत्र के रूप में प्रकट होंगे एवं हरिनाम का प्रचार करेंगे। जिससे जीव मात्र मेरा नाम सुन–सुनकर परमसुख उपलब्ध करेंगे।"

कूर्म पुराण कह रहा है :

dfyuk n°îekukuk m)k;! ru|&Hk'r]
tUe çFke lè;k;k Hkfo";fr f}tky;AA

(कूर्म पुराण)

कूर्म पुराण के अनुसार, "मैं इस पृथ्वी पर ब्राह्मण कुल में कलिरूप दावानल से जलते हुए भक्तों के उद्धार के लिए कलियुग की प्रथम संध्या में अवतीर्ण होऊँगा।"

uke fl)kr lifÙk çdk'ku ijk;.k%A
Dofpr Jh Ñ".k p\rU; ukekykd Hkfo";frAA

(देवी पुराण)

देवी पुराण के प्रसंग में महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती को कहते हैं कि, "हे पार्वती! श्री हरिनाम कीर्तन व भगवान् के नाम से ही जीवों का कल्याण होगा तथा सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। इनके लिए स्वयं कृष्ण ही चैतन्य नाम से, नवद्वीप नामक धाम में प्रकट होंगे।"

किसी के मरने के बाद उसके घर में गरुड़ पुराण पढ़ी जाती है। इसमें लिखा है "भगवान् कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होंगे। वृंदावन में जैसे गोपियों के संग में नृत्य करते हैं उसी प्रकार नवद्वीप धाम में, जगन्नाथपुरी धाम में नृत्य संकीर्तन करेंगे। सभी को प्रेम प्रदान करेंगे।" इसी प्रकार से पुराणों में बहुत से श्लोक हैं जिनमें सूक्ष्म रूप में बताया गया है :

dfyuk n°îekukuk ifj=k.kk; ruq&Hkr A
tUe çFke l è;k;k dfj";kfe f}tkfr"kAA

(गरुड़ पुराण)

"कलि द्वारा ताप ग्रस्त जीवों के परित्राण हेतु कलियुग की प्रथम संध्या में द्विज जाति के मध्य, मैं जन्म ग्रहण करूँगा।"

vga i.kkZ Hkfo";kfe] ;qx lèkkS fo'ks"kr%A
ek;kiqj uo}hi] Hkfo";kfe 'kphlqr%AA

(गरुड़ पुराण)

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "द्वापर युग की समाप्ति तथा कलियुग की शुरुआत में, मैं ही श्री मायापुर नवद्वीप धाम में शची देवी के पुत्र रूप से पूर्णावतार के रूप में प्रकट होऊँगा।" फिर कृष्ण बोल रहे हैं, "मैं संन्यास वेश में, एक हाथ में दंड तथा दूसरे हाथ में कमंडल धारण करके इस पृथ्वी तल पर श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित होऊँगा।"

dy% çFke lè;k;k] y{ehdkrk Hkfo";frA
nk#cã lehiLFk% lU;klh xkSj foxg%AA

(गरुड़ पुराण)

"कलियुग की प्रथम संध्या में षड्–ऐश्वर्य परिपूर्ण भगवान् ही दारु ब्रह्म, श्री जगन्नाथ जी के समीप, श्रीगौरांग रूप धारण कर, संन्यास वेश में अवतीर्ण होऊँगा। संन्यास लेने के पहले लक्ष्मी प्रिया का पाणि–ग्रहण करूँगा अर्थात् शादी करूँगा।"

कृष्ण ने अपना नाम चैतन्य महाप्रभु क्यों रखा? इसका कारण यह है कि 'चैतन्य' का अर्थ है कि सभी चर–अचर जीवों को चैतन्य करना, जागृत करना, सावधान करना। 'महा' शब्द इस कारण से रखा है कि महा का अर्थ है कि भगवत् अवतारों में इतना करुण हृदय अवतार कोई नहीं है। श्री नित्यानंद नाम क्यों रखा? इस कारण से रखा कि जो जीव उनकी शरण में हरिनाम नित्य करेगा वह प्रत्येक क्षण आनंद ही आनंद में डूबा रहेगा। श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अपना नाम 'हरि' इस कारण रखा है कि जीव मात्र कलिकाल में हर प्रकार से दुखी रहता है। दुखों को सुखों में बदलने हेतु कृष्ण ने अपना नाम इस प्रकार से रखा है। स्वयं अपना नाम नित्य, थैली में माला रखकर, जप किया है ताकि मेरे देखा देखी सभी हरिनाम की नित्य 64 माला अर्थात् एक लाख मेरा नाम लें जिससे इनका उद्धार हो जाए। इस दारुण दुखी संसार से पार हो कर मेरे धाम वैकुण्ठ में चले जाएँ। ऐसा दयालु अवतार न कभी हुआ है न आगे होगा। संसार में जो प्राणी इधर नहीं आ सका वह तो निरा भाग्यहीन है। उसके हाथ में कीमती हीरा आ गया था, गंदी नाली में पत्थर समझ कर फेंक दिया। अब अनंतकाल तक इतना कीमती हीरा हस्तगत नहीं होगा।

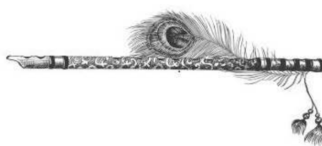
अतः हम महान् भाग्यशाली हैं कि चैतन्य महाप्रभु की शरण में चले गए एवं अजनाभवर्ष में, जो वैकुण्ठ का टुकड़ा है, भारतवर्ष में हमारा जन्म, भगवान् ने कृपा कर दिया है। जीवन को चलाने की सभी सुविधा साथ में दी है तथा वैकुण्ठ में जाने का सरल, सुगम रास्ता बताने वाले सच्चे गुरु से मिला दिया है। यह मार्ग ऐसा है जिसमें काँटे आदि कुछ भी नहीं हैं, नरम–नरम बालू मार्ग में फैली हुई है, जिस पर चलना भी सुख कारक है। अनेक कल्पों से भगवान्

की गोद से बिछुड़े हुए दुख सागर में डूबे हुए थे, कृष्ण ने कृपा कर हमें सुख सागर में पहुँचा दिया है। हमने पूर्व जन्मों में शुभ कर्म किए होंगे, भगवान् के प्यारे साधुओं की सेवा की होगी, तब ही भगवान् ने हम पर असीम कृपा की है। पूरी दुनिया की जनसंख्या देखते हुए, भगवान् के शरणागत 0.01% भी नहीं हैं।

चर–अचर प्राणी का शरीर एक घड़ी समान है, जब आत्मा रूपी सैल, इस शरीर रूपी घड़ी से निकल जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी की टिक–टिक शब्द ध्वनि नष्ट हो जाएगी, फिर शरीर रूपी घड़ी किस काम की होगी? अतः इस शरीर रूपी घड़ी को फेंक दिया जाएगा क्योंकि यह जीव के लिए बेकार है। प्राणी का प्राण, शरीर रूपी घड़ी से अलग हो जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी कोई काम की नहीं होगी। घड़ी का टिक टिक शब्द क्या है? यह है प्राणी के साँस का आना जाना। जब साँस का आना जाना बंद हो जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी बेकार हो जाएगी, फिर इसको घर में कमरे में रखना जगह को घेरना ही है। अतः शीघ्र से शीघ्र घर से बाहर निकालकर इसकी जगह दूसरी चीज को उपयोग करो। जिस प्रकार से अनजाने में अमृत पी जाएँ, जहर पी जाएँ, अनजाने में अग्नि छू जाएँ तो यह तीनों अपना प्रभाव दिखाए बिना रह नहीं सकते, इसी प्रकार हरिनाम अनजाने में मुख से निकल जाए तो प्राणी का कल्याण हुए बिना रह नहीं सकता। अमृत, जहर, अग्नि माया की है लेकिन नाम तो स्वयं भगवान् का है, इसका प्रभाव तो भगवान् भी नहीं जानते।

dgkS dgk¡ yfx uke cM+kbZA
jke u ldfga uke xq.k xkbZAA

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)



कलियुग में दयावतार : हरिनाम

29

21 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

पहले धरातल पर प्रजा बहुत कम थी, तो ब्रह्मा ने प्रजापति दक्ष को संतान उत्पन्न करके सृष्टि को बढ़ाने का आदेश दिया। दक्ष ने अपनी पत्नी से दस हजार पुत्र उत्पन्न किए और उन्हें आदेश दिया कि सृष्टि को बढ़ाओ। दक्ष के पुत्रों ने सिंधु नदी और समुद्र के संगम पर नारायण नामक तीर्थ में जाकर के स्नान किया तो उनका हृदय शुद्ध हो गया और वे तपस्या में लीन हो गए और सोचा कि संतान बाद में उत्पन्न करेंगे।

आजकल कलियुग में तपस्या का नामोनिशान ही नहीं है, तो संतानें होती हैं राक्षस। पहले सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में पच्चीस साल तक प्रजा की संतानें गुरु आश्रम में धर्मशिक्षा उपलब्ध कर, बाद में अपने कुल की लड़की से शादी करते थे तो संतानें देवता आचरण की उत्पन्न होती थीं। अब कलियुग में न कोई कुल देखते हैं, न जन्मपत्री मिलाते हैं, किसी भी जाति से शादी कर लेते हैं, तो संतानें राक्षस प्रवृत्ति की पैदा होती हैं। वर्णसंकर संतानें पैदा होती हैं जो माँ–बाप को तथा अन्य को सताती रहती हैं। तामसी स्वभाव होने से संतानें भी तामसी स्वभाव, राक्षस प्रवृत्ति की होती हैं। कहने का मतलब है कि शादी तभी करो जब शुद्ध संग करके हृदय

को सात्विक गुणों से ओत–प्रोत कर लो, तो संतान सब को सुख देने वाली होंगी। जैसा कि "इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति" में श्री गुरुदेव ने लिखा है कि मन माफिक संतान कैसे हो सकती है? उसको पढ़ो तो संतान देवता स्वभाव की होगी।

तो जब दक्ष की दस हजार संतानें, नारायण तीर्थ में तपस्या कर रहे थे, तो नारदजी ने उन्हें उपदेश देकर संन्यासी बना दिया। दक्ष को बड़ा दुख हुआ। फिर दक्ष ने दोबारा दस हजार पुत्र उत्पन्न किए, फिर नारदजी ने उन्हें भी संन्यासी बना दिया, तो दक्ष को बड़ा गुस्सा आया और नारदजी को श्राप दिया कि, "अब आगे तुम अधिक देर कहीं नहीं ठहर सकोगे।" नारदजी ने श्राप अंगीकार कर लिया। संत की यही तो पहचान है कि वह भी श्राप दे सकते थे, परंतु सहर्ष श्राप को स्वीकार कर लिया। नारदजी का दर्शन कभी असफल नहीं होता। बड़े भाग्य से नारदजी का दर्शन किसी को होता है।

पहले मानसिक सृष्टि हुआ करती थी, तो सृष्टि बढ़ नहीं रही थी इसके बाद पुरुष–स्त्री संग का क्रम बना दिया गया। ब्रह्माजी ने सोचा कि ऐसे सृष्टि अधिक बढ़ेगी। भगवान् ने ब्रह्मा को इसी काम में नियुक्त किया है कि सृष्टि कम नहीं होनी चाहिए। अतः ब्रह्माजी ने पति–पत्नी संग का नियम शुरू कर दिया। यह सब श्रीमद्भागवत में लिखा है।

शिवजी को भगवान् ने आदेश दिया कि, "यदि सृष्टि अधिक बढ़ने लगे तो तुम संहार करते रहो" एवं एक आदेश और दिया कि, "तुम आगम शास्त्रों को लिख–लिख कर प्रचार करो ताकि प्रजा उसी में उलझती रहे। मेरी भक्ति की तरफ न आ सके। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ– अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष दे सकता हूँ, परंतु भक्ति को छिपा कर रखता हूँ किसी को नहीं देता। ऐसा इसलिए करता हूँ कि भक्त के पीछे मुझको बिकना पड़ जाता है। मैं भक्त के अधीन हो जाता हूँ। काल और महाकाल मुझसे थरथर काँपता है लेकिन मैं भक्त से थरथर काँपता हूँ। भक्त से मेरी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती

है। इसलिए मैं अपनी भक्ति सरलता से किसी को नहीं देता हूँ।" भगवान् ने विष्णु को आदेश दिया है, "ब्रह्माजी की सृष्टि का पालन पोषण तथा रक्षा करते रहो। यदि न करोगे तो ब्रह्मा की सृष्टि चलेगी नहीं। 'जीवो जीवस्य भोजनम्।' जीव के जीव को खाने से सृष्टि कम होती रहेगी। मैंने माया को सब तरह का अधिकार दे रखा है। वह सृष्टि को संतुलन में रखेगी।

यमराज को आदेश दिया है, ''जो ब्रह्माजी की सृष्टि को परेशान करे, उसे नरक यातना देना तुम्हारा काम है।" इंद्र को आदेश दिया कि, "ब्रह्मा की सृष्टि में देवता, दानव दोनों होंगे उनसे तुम निपटते रहो। कभी मैं देवताओं की ओर से मदद करूँगा और कभी राक्षसों की ओर से मदद करूँगा क्योंकि यह दोनों ही मेरी संतानें हैं। अच्छे बुरे दिन इन दोनों के ही आते रहते हैं। यह देख कर मैं दोनों की ही सहायता करता रहता हूँ। जब तुम मेरे पास आकर अपना दुख निवेदन करते हो तो मैं कहता हूँ कि अभी तुम चुप रहो, यह दिन राक्षसों के अनुकूल है। तुम्हारे दिन इस समय खराब हैं, अतः चुप रहना ही श्रेयस्कर होगा। दोनों के प्रति वात्सल्यता मेरे हृदय में रहना परमावश्यक ही है, लेकिन शुभ काम जो करेगा उसकी तरफ मेरा मन खिंच जाता है तो उसके लिए मैं कोई उपाय सोचता हूँ। जैसे मैंने वामन अवतार लेकर बलि से छीनकर, स्वर्ग, इंद्र को दे दिया। बलि भी कोई छोटा–मोटा धर्मशील नहीं था, परंतु वह राक्षसों का मालिक था। राक्षस सदा ब्रह्मा की सृष्टि को परेशान करते रहते हैं अतः मुझे उनकी ओर से मुख मोड़ना ही पड़ता है।"

कश्यपजी की दो पत्नियाँ हैं एक दिति और दूसरी अदिति। इन दोनों की ही संतानें भाई–भाई हैं। अदिति के देवता हैं एवं दिति के राक्षस हैं। एक सुपात्र संतान है तो दूसरी कुपात्र संतान है। लेकिन माँ–बाप को, वात्सल्यभाव से दोनों ही प्रिय हैं। कुपात्र संतान को माँ–बाप बाहर थोड़े ही निकाल देते हैं। उनको समझाते रहते हैं, नहीं समझते हैं तो यमराज की यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं। दोनों भाई–भाई सदा लड़ते ही रहते हैं। यहाँ प्रत्यक्ष में देख ही रहे हो कि

सगे भाई–भाई में कहाँ बनती है? आपस में लड़ते ही रहते हैं जैसे कौरव और पांडव। यहाँ तक कि कौरव जड़ मूल से ही पांडवों को खत्म करना चाहते थे। पांडव देवता रूप में थे, दूसरी ओर कौरव, राक्षस रूप में। धृतराष्ट्र भी अपनी संतान को, समझाना तो दूर रहा उनका पक्ष लेकर पांडवों को दुखी करवाता रहता था।

यह संसार है यह दो भावों से ही रचा गया है वरना आनंद की अनुभूति कैसे होगी? सुख–दुख का जोड़ा है, नर–नारी का जोड़ा है, शिष्य–गुरु का जोड़ा है, माँ–बाप का जोड़ा है, भाई–बहन का जोड़ा है। दो से ही यह संसार बनता है। सूर्य न हो तो अंधेरा कहाँ से जाएगा? रात–दिन का जोड़ा है, स्वर्ग–नर्क का जोड़ा है। भक्त–अभक्त का जोड़ा है। देवता–राक्षस का जोड़ा है, श्राप–वरदान का जोड़ा है, गर्मी–सर्दी का जोड़ा है, राधा–कृष्ण का जोड़ा है। यदि ऐसा न हो तो खेल अर्थात् लीलाएँ कैसे उद्भूत हो सकेंगी? राधा से सभी देवियाँ प्रकट हैं और कृष्ण से सभी ग्वाल–बाल प्रकट हैं। नर–नारी के बिना, चाहे वह पक्षी हो, चाहे जलचर हो, चाहे थलचर हो, सृष्टि हो ही नहीं सकती। सूरज–चंद्रमा का जोड़ा है। सूर्य गर्मी का तथा चंद्रमा शीतलता का प्रतीक है। एक से एक दूसरे का जोड़ा रहता है।

हरिनाम का प्रत्यक्ष उदाहरण, मेरी दिव्य शक्ति बता रही है। ध्यान से सुनने की कृपा करें! जैसे अनजान में अमृत पी लिया जाए या अनजान में जहर पी लिया जाए, अनजान में अग्नि में हाथ लगा लिया जाए तो यह तीनों अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार अनजान में भी हरिनाम मुख से निकल जाए तो यह अपना प्रभाव दिखाए बिना रह नहीं सकता। जापक का कल्याण करके ही रहेगा, जैसे अजामिल ने अनजान में अपने बेटे को पुकारा था। उसका नाम 'नारायण' था, तो अजामिल को वैकुण्ठ की उपलब्धि हो गई। ऐसे कहते हैं :

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दस दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में मंगल होगा अर्थात् वैकुण्ठ मिलेगा। मन से करो चाहे बेमन से करो, लेकिन नित्य एक लाख करना पड़ेगा। निश्चित रूप से वैकुण्ठ मिलेगा। दसों दिशाओं में नाम–जापक का कल्याण होना निश्चित हो जाएगा। फिर बोलते हैं :

ftUg dj uke| y|r tx ekghA
ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

जितने भी दुख हैं, वह जड़ सहित खत्म हो जाते हैं। अगर किसी चीज की जड़ ही नहीं रही तो दुख कैसे पनपेगा? दुखों की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा?

gj| Ñ".k gj| Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj| gj|A
gj| jke gj| jke jke jke gj| gj|AA

प्राणी के कर्मानुसार 84 लाख योनियाँ, इस संसार में बनाई गई हैं। इनमें भगवान् परमात्मा रूप से विराजमान रहते हैं। परमहंस भक्त, आत्मा रूप से भगवान् को देखता है, अतः किसी जीव को दुख नहीं देता, ऐसे भक्त के पीछे भगवान् छायावत् चिपके रहते हैं।

भूतकाल में, नामदेव, एक सच्चे संत हुए हैं। वह स्वयंपाकी थे, कहीं से माँग कर मधुकरी नहीं लाते थे। एक दिन चार रोटी बनाकर रखी और घी से चुपड़ने हेतु अंदर गए, इतने में एक कुत्ता रोटी लेकर भागा, तो नामदेवजी बोले, "भगवान्! रोटी चुपड़ी नहीं है।" अतः उसके पीछे भागे। बोले, "थोड़ा ठहर जाओ! अभी रोटी चुपड़ देता हूँ। सूखी रोटी अच्छी नहीं लगेगी।" तो भगवान् उस कुत्ते में ही प्रकट हो गए और बोले, "नामदेव! तुम सब जीवों में मुझे देखते हो, मैं तुम्हारी आँखों से दूर नहीं रह सकता।" अतः हरिनाम जापक की ऐसी वृत्ति होनी चाहिए, तब भगवान् दूर नहीं। ऐसा भक्त कैसे किसी प्राणी को दुख देगा? उल्टा वह तो हर प्रकार से सेवा में संलग्न रहेगा। चींटी में भी भगवान् है, हाथी में भी भगवान् है। ऐसों के लिए

भगवान् कहाँ नहीं है? ऐसा प्राणी सदा सुखी रहेगा, दुख की छाया भी उसे नहीं छुएगी। भगवान् ने जो कुछ दिया है उसमें संतोष रखो तो कभी दुख नहीं आ सकता।

बच्चा मुट्ठी बाँधकर जन्म लेता है। मुट्ठी बाँधकर क्यों आता है? भूतकाल में जो शुभ–अशुभ कर्म किया है, इस जन्म में भोगेगा। जब जाता है अर्थात् मरता है, तब हाथ पसारे जाता है। अब तक जो किया, भोग कर जा रहा है, उसने जो शुभ–अशुभ कर्म किया है भविष्य में भोगेगा। गहराई से सोचो! जो भी तुम्हारे संगी, साथी, कुटुंबी हैं, यह सब लुटेरे हैं। इनके हेतु खाना–पीना, पहनना, शिक्षा देना, उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करना, फिर काफी धन खर्च कर शादी करना, माँ–बाप, सब कुछ न्योछावर करते हैं। जब बूढ़े हो जायेंगे और कुटुंब के काम लायक नहीं रहेंगे, खटिया पर पड़ जाएंगे, तब देखना! क्या हाल होगा? पानी पीने को भी तरसोगे। समय पर खाना भी मिल जाए तो गनीमत है। इस समय में हम देख भी रहे हैं परिवार वाले भी कहने में नहीं चूकेंगे कि, "बूढ़ा मरता भी नहीं है। हर वक्त खसखस करता रहता है। सोने भी नहीं देता।" पोते को बूढ़ा बोलेगा कि, "अरे बेटा, संतोष! थोड़ा पानी लाकर पिला दे।" तो पोता, जहाँ बूढ़ा सो रहा होगा, वहाँ से दौड़ लगाएगा, कि बाबा बोल न दे। यह हाल हो रहा है। जब मर जाएगा, तब बड़ा मोच्छा (भंडारा) करेगा। अरे! जब जीवित था तब तो पूछा भी नहीं, अब मरने के बाद मोच्छा कर रहा है। यह है संसार का दिखावटी नाटक। बाद में बूढ़े को कोई याद भी नहीं करेगा। जब बूढ़ा खाट में पड़ जाएगा तो कोई आकर बूढ़े को कहेगा कि, "अब तो जाना ही अच्छा है।" तो बूढ़ा उत्तर देगा कि, "बात तो ठीक ही है, परंतु पोती की शादी देख कर जाऊँ तो अच्छा ही है।" फिर भी इसकी आशा दूर नहीं हुई। "अरे बूढ़े! तुझको किसी ने पूछा तक नहीं, तुझे अभी भी वैराग्य नहीं हुआ, अब भी आशा में फँसा पड़ा है।" यही तो भगवान् की माया है। वर्तमान में सब देख ही रहे हो। युवक की शादी हुई नहीं कि माँ–बाप से कोई लेना–देना नहीं। अलग जाकर आनंद भोगेंगे। बुढ़ापे में सबका यही हाल होने वाला है। क्यों कल्पना के

महल बनाते हो? यही भगवान् की माया है। 'जीवन के दिन चार हैं, भज लो हरि का नाम।' पर हरि का नाम बहुत मुश्किल से निकलता है वैसे सारे दिन बक–बक करता रहता है। एक दूसरे की चुगली करता रहेगा।

vj! vc iNrk, D;k gkr g tc fpfM;k px xb [kr

संसार में दसों दिशाओं में कुसंग का बोलबाला है। सत्संग का तो नाम निशान ही नहीं है। जो शराब, मांस भक्षण करता है उसकी कोई चर्चा नहीं करता है पर जो भगवान् का भजन करता है उसको सब चिढ़ाते हैं कि, "देखो! भक्त हो गया।" परंतु यह भी अच्छा ही है। कहावत है :

fund fu;j jkf[k;] vkxu dVh Nok;A
fcu ikuh lkcu fcuk] fuey dj lHkk;AA

(संत कबीर)

जो नामनिष्ठ की निंदा करता है, तो जापक के पाप, निंदा करने वाले के पास चले जाते हैं। अतः जापक को तो खुश होना चाहिए। निंदक को तो पास में रखना चाहिए, अपने पास, मकान बना देना चाहिए उसके लिए, तो वह उसके (जापक के) पाप ले लेगा।

कलिकाल में ऐसा ही होता है। सभी काम उल्टे होते हैं। शगुन भी बेकार हो जाते हैं। मौसम भी समय पर नहीं होते। खान–पान भी दूषित होता है, अतः मानव का स्वभाव भी दूषित हो जाता है। स्वार्थ का संसार हो जाता है, प्रेम नाम की कोई चीज ही नहीं होती, पशु पक्षियों की नस्लें ही खत्म होती रहती हैं, पहाड़ों में फल आदि समूल नष्ट होते जा रहे हैं। कलियुग का जमाना, दुख का भंडार होता है। अतः हरिनाम की शरण में चले जाना ही श्रेयस्कर होगा। जो 64 माला नित्य करेगा तो उसे वैकुण्ठधाम निश्चित रूप से उपलब्ध हो जाएगा। यह शास्त्र का वचन है:

ftUg dj uke yr tx ekghA ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

दुखों की जड़ ही खत्म हो जाएगी।

हमारे जमाने में एक टिड्डी दल आता था, वह पेड़ों का एक पत्ता तक नहीं छोड़ता था। इतनी गहरी उड़ान भरता था कि सारा आसमान ढक जाता था। चालीस साल से पहले के जन्मे मानव ही उसे जानते हैं। आजकल एक जीवाणु बम बनाया गया है, यदि उसे छोड़ दिया गया तो वह टिड्डियों की तरह संसार में तहलका मचा देगा। वह कीट जानवर ऐसा खतरनाक होगा कि जिसको काट लेगा, वह तुरंत मर जाएगा। इतना जहरीला होगा।

हमारे जमाने में, प्लेग नाम की बीमारी चूहों से पैदा हुई थी। एक दिन में, एक ही परिवार के चार–पाँच सदस्यों की मौत हो जाया करती थी। उनको जलाने हेतु न लकड़ी मिलती थी न जगह मिलती थी। उस समय ज्यादा दवाइयों का आविष्कार नहीं हुआ था। वैद्यों की भरमार थी। एलोपैथिक डॉक्टरों की संख्या कम थी। जीवाणु में भी भगवान् परमात्मा रूप से रहते हैं अतः जो भगवान् का भक्त होगा, जीवाणु मच्छर उसे काटेगा नहीं। सब प्रेरणा, भगवान् की आत्मा से ही होती है। भगवान् के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिलता अतः हरिनाम करना ही बचने का उपाय है, अन्य कोई उत्तम उपाय नहीं है। जैसे हिरण्यकशिपु, जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, प्रह्लाद को गला घोंट कर मार सकता था, परंतु नहीं मार पाया क्योंकि भगवान् ने अंदर से प्रेरणा नहीं की।

प्राणी मात्र का शरीर क्या है? यह है मल–मूत्र का भंडार। प्रत्येक इंद्री में से घृणित मल निकलता ही रहता है। इसी को प्राणी सजाता रहता है। कितनी मूर्खता है। मल–मूत्र में पड़े कीड़े में और इसमें क्या अंतर हुआ? कहते हैं, "इस देवी का कितना सुंदर मुखड़ा है। इस के बाल कितने काली–काली अलकों वाले हैं। कमर तो इतनी पतली है कि टूट ही जाएगी। पैरों की तो पूछो ही नहीं, ठुमक ठुमक कर कितना मनमोहक डांस (नाच) करती है।" लेकिन इस प्रशंसा करने वाले को पूछो, कि इसके अंदर कितनी घृणित वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। तो क्या वह अब उससे प्रेम करेगा? बस यही तो माया

है। नाली के कीड़े में और इस मूर्ख मानव में कोई अंतर नहीं है। यह भी नाली के कीड़े की तरह ही मग्न हो रहा है। बस यही तो भगवान् की माया है। मरने पर राख का ढेर बन जायेगा, गाड़ देने पर कीड़ों का झुंड बन जायेंगे और पेड़ पर लटकाने पर पक्षियों का खाना बनेगा, जल में बहाने पर जल जंतुओं के खा जाने से हड्डियों का ढेर बन जाता है। इसके अलावा इस शरीर का अंत क्या है? केवल कंकाल।

अरे! स्वयं की इंद्रियाँ भी लुटेरी हैं। आँख अच्छे–अच्छे दृश्य देखने को परेशान करती है। मन की आँख कहती है, "मुझे सिनेमा दिखाकर लाओ।" सिनेमा कोई मुफ्त में देखा जाता है? उसके लिए पैसा खर्चा करो, साथ में पत्नी को भी ले चलो। बेचारे बच्चे कहाँ अकेले रहेंगे, इनको भी ले चलो। पैसा पास में है नहीं। फिर भी इधर उधर से लाकर, सिनेमा दिखाना पड़ता है। अब सोचो, यह मन की आँख, लुटेरों की सरदार है कि नहीं? कान कहता है, "मुझे ऐसी जगह ले चलो, जहाँ मेरे कान को सुनने का आनंद आए। अमुक जगह बहुत मनमोहक गाने हो रहे हैं।" कान कहता है, "मुझे वहाँ ले चलो, ताकि कान तृप्त हो जाएँ।" मन कहता है, "यह तो बहुत दूर है, वहाँ पर जाना असंभव है क्योंकि पैसा पास में है नहीं। सौ रुपए का टिकट है। मोटर का भी पचास रुपये लगेगा। तो रुपये बिना वहाँ नहीं जा सकते।" कान की इंद्री दबाव डालती है, "कहीं से लाओ, मुझे तो सुनना बहुत जरूरी है।" अब मन कहता है, "अमुक के पास जाओ, उससे रुपया लेकर आओ।" फिर मन कहता है, "पांच सौ रुपये ले तो आओगे फिर चुकाओगे कैसे? कोई धंधा–पानी भी नहीं है।" कान कहता है, "अभी लाओ, बाकी आगे देखा जाएगा। तुम तो अभी पाँच सौ रुपये ले कर आओ।" अतः सभी इंद्रियों का यही हाल है। बेचारा मानव क्या करे? हर प्रकार से परेशान है। यह तो हुआ अपनी इंद्रियों का लुटेरापन जो प्रत्क्षय में हो रहा है। अब परिवार का लुटेरापन देखो। बेटा कहता है, "मुझे तो डॉक्टरी करनी है।" बाप कहता है, "इतना पैसा मैं कहाँ से लाऊँगा? मेरे पास तो कुटुम्ब पालने की भी मुसीबत रहती है।" बेटा बोलता है, "मैं कुछ नहीं

जानता। मुझे तो नौकरी नहीं करनी है। चाहे खेत बेचो चाहे मकान बेचो। मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।" अब वह क्या करे? क्षण मात्र के आनंद के लिए कितनी बड़ी मुसीबत ले ली। सब कुछ बेच कर डॉक्टरी करवाई। अब कहता है, "मुझे अमुक लड़की से शादी करनी है।" बाप कहता है, "अरे! वह अपने कुल, गोत्र की नहीं है।" बेटा कहता है, "मैं कुछ सुनना नहीं चाहता, मुझको तो उससे ही शादी करनी है।" मजबूरी से शादी कर दी। अब खून अनुकूल न होने से आपस में अनबन शुरू हो गई। अब तो जीवन ही दुख सागर बन गया। बेटे की पत्नी बोलती है, "मैं तुम्हारे माँ-बाप के पास नहीं रहूँगी, अलग से फ्लैट किराए पर लेना है।" बड़ी मुश्किल आ गयी। पति कहता है, "माँ-बाप की सेवा कैसे होगी?" पत्नी बोलती है, "मैं कुछ नहीं जानती। मैं जैसा कहूँ वैसा करो, वरना मैं अपने पीहर जाती हूँ।" अब बेचारा क्या करे? हारकर, माँ-बाप से अलग रहता है, फिर भी चैन नहीं। "मेरे लिए अमुक गहना ला कर दो, मुझे सिनेमा देखने की आदत है, मुझे सिनेमा दिखाना पड़ेगा।" पति आस्तिक है और पत्नी को इसकी आदत पसंद नहीं है। अब तो घर नरक बन गया। सोना महँगा है, गहना बनाना भी जरूरी है। तो पैसा इतना कहाँ से लाऊँ? डॉक्टर होने के कारण क्लीनिक खोलता है और अनाप-शनाप गरीबों से पैसा लूटता है। दवाएँ भी ऐसी देता है कि रोगी दोबारा आए और पैसा देकर जाए। अब माँ-बाप बूढ़े हो गए। उनको सँभालने वाला कोई नहीं। तो पत्नी बोलती है, "यदि आपको माँ-बाप पर दया आती है तो उन्हें वृद्धाश्रम में भर्ती करवा दो।" विचार करने की बात है कि यह परिवार भी लुटेरे हैं। बेटे को पाला पोसा, कमाने हेतु योग्य बनाया, बाद में माँ-बाप की दशा कैसी हुई? यही तो माया है। यह तो मेरे गुरुदेव ने बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया है। इसका विस्तार तो बहुत अधिक है।

यह सभी लुटेरे हैं। अतः हरिनाम करना ही सुखी होने का सर्वोत्तम साधन है। यही अगला जीवन सुखमय बनाएगा वरना तो नरक भोग करना पड़ेगा। इसके बाद 84 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। जन्म पर जन्म एवं मृत्यु पर मृत्यु। यह चक्कर कभी खत्म

होने का नहीं है। जो मांस, मदिरा खाता है उसको निश्चित रूप से नरक भोगना पड़ेगा, फिर 84 लाख योनियों में चक्कर काटना पड़ेगा। हम प्रत्यक्ष देख भी रहे हैं कि परिवारों में क्या बुरी दशा हो रही है। बुड्ढे को पानी पीने तक नहीं मिलता, प्यासा तड़पता रहता है। परिवार वाला कोई पूछता तक नहीं है। खाना तो बहुत दूर की बात है। फिर भी बुड्ढा मरना नहीं चाहता, कहता है, "मेरे पोते का दर्शन हो जाए, तब भगवान् मुझे ले जाना।" फिर बोलेगा कि, "मेरे पोते के बच्चे का दर्शन हो जाए, तब मरना ठीक होगा।"

djk gfjuke ti euok mej rjh chrh tkrh g]
ekr r> ;kn u vkrh g] ekr r> ;kn u vkrh gA
çHk Ñik ls ekuq"k ru ik;k fQj fo"k;k es Hkjek;k]
ekr r> ;kn u vkrh g ekr r> ;kn u vkrh gA
ckyiu [ky e [kk;k] tokuh dke cl gk;k]
c<kik [kkV ij lk;k]
fQj Hkh vk'kk eu lrkrh g] vk'kk eu lrkrh gA
dVEc ifjokj lr nkjk Lolu le n[k llkjk]
;gk ek;k dk foLrkjk]
dkbl ugh lkFk tkrh g r> tkuk vdyk g AA
tk gfjuke djrk g og Hko ls ikj gkrk g]
;g onok.kh crkrh g ;g onok.kh crkrh g]
djk gfjuke ti euok me rjh chrh tkrh gA

(अनिरुद्ध दास)

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

श्री गुरुदेव बार–बार आँखें खोल रहे हैं। फिर भी मानव चेत नहीं करता। जब मौत सिर पर आएगी, तब रोता रोता जाएगा, बाद में कोई याद भी नहीं करेगा। यही तो भगवान् की माया है। सच्चे संत के बिना, यह माया दूर नहीं होती है।

ब्रह्मा के हजार चौकड़ी का एक दिन होता है। हजार बार सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग निकल जाते हैं, इतनी ही रात होती है। इस प्रकार सौ साल होते ही ब्रह्मा भी शांत हो जाते हैं। इसे ही कल्प बोला जाता है। श्रीमद्भागवत कहती है कि ऐसे अनेक कल्पों के बाद ही, भगवान् की कृपा से मनुष्य जन्म उपलब्ध होता है। उसको भी मानव यूं ही व्यर्थ खो देता है। कलियुग में दसों दिशाओं में कुसंग का बोलबाला रहता है। सत्संग का तो नाम–निशान ही नहीं होता। किसी विरले को ही भगवद् कृपा से सत्संग उपलब्ध होता है। भगवान् भी, श्रीमद्भागवत पुराण में कहते हैं कि, "उद्धव! मैं केवल मात्र, सत्संग से ही मिलता हूँ।" जो यह सत्संग सुनेगा, उसे हरिनाम में रुचि बनेगी। जो एक लाख नाम जप यानि 64 माला नित्य करेगा तो उसका निश्चित रूप से वैकुण्ठवास होगा। आज संसार इस सत्संग का लाभ उठा रहा है। मेरे गुरुदेव का एक ही उद्देश्य है कि दुखी मानव कैसे भी हरिनाम जप कर वैकुण्ठ की उपलब्धि कर ले, अन्य दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जब हरिनाम धीरे–धीरे से करते हैं तो कृष्ण नाम अच्छा सुनाई देता है, प्रीति भी होती है और आनंद भी आता है। पर ऐसा करने से संख्या नहीं होती ?

उत्तर : जल्दी–जल्दी करके भी हरिनाम कान से सुना जा सकता है। लेकिन इनको आदत (अभ्यास) नहीं है। आदत हो गई तो उतना ही जल्दी हो जाएगा और सुनाई भी देगा।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

हरि से बड़ा हरि का नाम

30

28 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य जन्म का सबसे उच्चतम, सर्वोत्तम महत्व क्या है? सर्वोत्तम महत्व है भगवान् जिस कर्म से खुश हों। किस कर्म से खुश होंगे? जिस कर्म से गोपियों ने भगवान् को भी ऋणी बना दिया था। भगवान् ने अपने मुखारविंद से बोला है, "मैं, गोपियों का ऋण अनेक जन्मों तक भी उतार नहीं सकता।" अब प्रश्न उठता है कि गोपियाँ ऐसा कौन सा कर्म करती थीं कि भगवान् उस कर्म से उनके ऋणी हो गए? ऋणी होने का कारण यह था कि गोपियाँ प्रातः से लेकर शाम तक जो भी काम करती थीं, भगवान् हेतु ही करती थीं कि भगवान् इस कर्म से कैसे खुश रहें। गोपियाँ गृहस्थ थीं, उनके संतान भी थीं, पति की सेवा भी करती थीं, घर का सभी काम करती थीं, लेकिन इन कामों में व्यस्त होते हुए भी, एक क्षण भी कृष्ण को भूलती नहीं थीं।

इसीलिए कलियुग में भगवान् ने हमको हरिनाम दिया है। अगर हम 64 माला करेंगे तो भगवान् को भूलेंगे नहीं। भगवान् की याद ही सर्वोत्तम है। उनका भगवान् के प्रति चिंतन तैलधारावत् चलता ही रहता था, यही है उच्चतम भक्ति का स्वरूप। इस अवस्था को लाने का एकमात्र उपाय है केवल हरिनाम श्रवण। नाम श्रवण से एक

प्रकार की लहर सी हृदय में दौड़ती है जो लहर भगवान् के वियोग को सहन नहीं कर सकती और सात्विक अष्ट विकारों को उदय करा देती है, जिससे भक्त की भूख, नींद गायब हो जाती है, बेचैन रहता है, हर एक क्षण युग के समान बीतने लगता है। तब भगवान् का दिल भी बेचैन हो जाता है। भगवान् गीता में भक्तों को बता रहे हैं कि, "जैसे भक्त मुझे चाहता है, मैं भी उसी प्रकार से भक्त का बन जाता हूँ। भक्त नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ। भक्त चिंता में हो जाता है तो मैं भी चिंता में हो जाता हूँ अर्थात् मैं भक्त की कठपुतलीवत् हो जाता हूँ, मैं भक्त का खरीदा हुआ गुलाम बन जाता हूँ।" यह सब शास्त्र की बातें हैं। "मैं किसी का आदेश नहीं मानता परंतु भक्त का आदेश मानने के लिए मैं मजबूर हो जाता हूँ। काल और महाकाल मुझ से थर–थर काँपते हैं। लेकिन मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ।" कैसी लीला है? "क्योंकि भक्त का जीवन ही मेरे लिए है एवं मेरा जीवन ही भक्त के लिए है। मुझे मेरी आत्मा भी इतनी प्यारी नहीं है जितनी प्यारी मेरे भक्त की विदीर्ण करने वाली वृत्ति विशेष है।" यह अवस्था भक्त को कैसे उदय हो सकती है? इसका उपाय है भक्त का स्वभाव। इसे ही कारण शरीर बोला जाता है। कलियुग में भगवान् को प्राप्त करने का उपाय कीर्तन है। इसलिए कीर्तन करना होगा।

भक्त का स्वभाव कैसा होना चाहिए?

r`.kknfi lquhpsu rjksjfi lfg".kqukA
vekfuuk ekuns dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

ऐसा स्वभाव जिसका होगा वही कीर्तन करने योग्य है अर्थात् अहंकार की गंदगी नहीं हो। अपने आपको नीचा समझे, अपना मान नहीं चाहे और दूसरों को मान दे। जिसका ऐसा स्वभाव होगा, उसी से शुद्ध नाम हो सकेगा वरना अशुद्ध नाम होगा। परंतु अशुद्ध नाम भी सुख का विस्तार कर देगा क्योंकि नाम का प्रभाव ही ऐसा है कि केवल मुख से भगवद् नाम निकलना चाहिए। जैसे अमृत का, जहर

का, अग्नि का स्वभाव ही ऐसा होता है कि अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता। अनजान में इनका संग हो जाए तो इसके प्रभाव को भगवान् भी रोक नहीं सकते क्योंकि भगवान् ने ही इनको अपनी शक्ति दे रखी है। अतः भगवान् अपनी दी हुई मर्यादा को कैसे दूर कर सकते हैं? कैसे हटा सकते हैं?

दूसरा स्वभाव भक्त का कैसा होना चाहिए? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से वैराग्य हो, इनको जहर समान समझे। कंचन में आता है पैसा, मकान, जमीन, दुकान, रोजगार का धंधा आदि। इनमें भक्त का मन न हो, इसमें आसक्ति न हो। यही भक्त को फँसाती है एवं भगवान् से दूर रखती है। कामिनी का अर्थ है नारी, जो बड़े बड़े महान धुरंधरों को भी पैरों नीचे कुचल डालती है। यही है भगवान् की शक्तिशाली माया। यह किसी बहाने से आती है, जिससे भक्त अंधा हो जाता है और इस को अंगीकार कर लेता है। हजारों साल की तपस्या या भक्ति एक क्षण में समाप्त कर देती है। इससे बचने का उपाय है केवल मन से हरिनाम को जपना। हरिनाम क्या है? यह है भगवान् की असीम शक्ति जो माया को पास में आने से रोकती है। यह माया भी भगवान् की ही है। लेकिन माया से अधिक शक्तिशाली भगवद् नाम है, जो भगवान् को भी हरा देता है। इसके आगे भगवान् भी शक्तिहीन बन जाते हैं। हाथ ऊपर खड़ा कर देते हैं। कहावत है :

Þgfj l cMk gfj dk ukeß

भगवान् ने तो उसी को सुख दिया जो उनके पास में आया लेकिन भगवद् नाम ने तो अनगनित जीवों को अपनाया है एवं भविष्य में भी अपनाते रहेंगे। नाम के आगे भगवान् ने भी हाथ ऊपर कर दिए, नाम से तो भगवान् भी हार गए। नाम के बिना तो सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। नाम बिना सब कुछ बेकार है। जब तक किसी भी वस्तु, चीज का नाम उच्चारण नहीं होगा तो वह काम हो ही नहीं सकता।

श्रीराम ने विजय करने हेतु लंका जाना था। बीच में समुद्र पड़ता था अतः बंदरों को आदेश दिया कि इस समुद्र पर पुल बाँधना होगा,

तब ही हमारी सेना लंका में जा सकती है। तब जाम्बवंत आदि भगवान् के सेवकों ने पुल बाँधना आरंभ कर दिया और सभी बंदर, पहाड़, पेड़ आदि समुद्र में डालने लगे। भगवान् बैठे–बैठे सब देख रहे थे। एक गिलहरी भी समुद्र में अपने शरीर को भिगो कर आती और माटी में लोट कर समुद्र में उस माटी को छोड़ रही थी। यह देख कर जाम्बवंत ने भगवान् से बोला, "यह गिलहरी भी हमारी सहायता कर रही है।" तब भगवान् को उस पर इतनी दया आ गई और जाम्बवंत को बोले, "इस गिलहरी को मेरी गोदी में रखो। मैं उसको प्यार करूँगा।" जाम्बवंत ने गिलहरी को हाथ में पकड़कर रामजी की गोद में रख दिया तो रामजी ने प्रेम भरा करकमल उसके शरीर पर फिरा दिया, वही रामजी की उंगलियों के चिह्न धारा रूप में गिलहरी के शरीर पर बन गए। जाम्बवंत ने रामजी को बोला, "जब पुल बनाने की सहायता एक अनजान जानवर भी कर रहा है तो आप भी कुछ मदद करो।" भगवान् बोले, "क्या मदद करूँ?" जाम्बवंत बोले, "आप भी तो कोई पत्थर पानी पर रखो।" राम बोले, "ठीक है मुझे कोई पत्थर का टुकड़ा हाथ में दे दो। मैं भी पुल बनाने की सहायता करूँगा और मुझे करना भी उचित है।" जामवंत ने पत्थर का टुकड़ा रामजी के हाथ में दिया तो रामजी ने उसे पानी पर रखा तो पत्थर पानी पर रखते ही डूब गया। रामजी ने बोला, "जाम्बवंत! यह पत्थर तो डूब गया।" तो जाम्बवंत ने बोला, "रामजी! जिसको आप छोड़ दोगे वह तो डूबेगा ही।" रामजी ने पूछा, "तो मैं क्या करूँ? जाम्बवंत!" भगवान् कैसे भक्त के पीछे भोले बन जाते हैं।

जाम्बवंत ने कहा, "मैं दूसरा पत्थर लाता हूँ, उसे पानी पर रखना।" तो रामजी बोले, "लाओ, परन्तु वह भी डूब जाएगा, फिर मेरी सहायता करने से क्या लाभ?" जाम्बवंत हँसने लगा और बोला, "रामजी! आप में कोई शक्ति नहीं है।" रामजी बोले, "जाम्बवंत! तुम कैसी बेकार की बातें कर रहे हो? मेरे में कोई शक्ति नहीं है। ऐसा कैसे कहते हो?" जाम्बवंत ने कहा, "हाँ! आप में कोई शक्ति नहीं है। आपके नाम में शक्ति है।" राम बोले, "मेरे नाम में शक्ति है, तो अब मुझे क्या करना है?" जाम्बवंत बोले, "अबकी बार मैं दूसरा पत्थर का

टुकड़ा लाता हूँ उस पर मैं आपका नाम लिखता हूँ, तब आप उसे पानी पर रखना।" रामजी ने कहा, "ठीक है ! दूसरे पत्थर पर मेरा नाम लिख कर दो फिर मैं पानी पर रखता हूँ।" जाम्बवंत ने राम के हाथ में 'राम' नाम लिखा पत्थर दिया और कहा, "अब इसको पानी पर रखो।" जब राम ने उस पत्थर को पानी पर रखा तो पत्थर तैरता हुआ दूर चला गया। तो जामवन्त ताली बजाता हुआ नाचने लगा तो रामजी अचंभे में पड़ गए। यह क्या बात हो गई? "मैं तो वास्तव में कमजोर ही हूँ। मेरा नाम ही शक्तिशाली है।" जाम्बवंत तब हास्यपूर्वक बोला, "देख लिया रामजी! आप में कुछ शक्ति नहीं है। आपके नाम से ही आप पुज रहे हो।" तब जाम्बवंत बोला कि :

dgk dgk yfx uke cMkbA
jke u ldfg uke xu xkbAA

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)

अर्थात् "कहाँ तक बड़ाई करें। नाम की शक्ति तो भगवान् भी नहीं जानते हैं।" सब बंदर इकट्ठे होकर तालियाँ बजा–बजा कर उछल कूद रहे थे और उच्चारण कर रहे थे, "हमारे राम का नाम ही सबसे बड़ा है। हम राम! राम! राम ही जपा करेंगे।" राम चुपचाप सिर नीचा कर बैठ गए कि वास्तव में उनका नाम ही उनसे अधिक प्रभावशाली है। जब पुल बाँधने में बहुत समय लग गया तो राम ने सोचा कि यह समुद्र ही इसमें बाधा दे रहा है तो हाथ में धनुष ले कर और तीर का संधान किया और राम बोले, "हे समुद्र! तुझे मैं अभी अग्निबाण से जला कर सुखा दूँगा।" तो समुद्र डर गया और अमूल्य थाली में रत्न आदि लेकर राम के चरणों में पड़ गया और बोला, "क्षमा करो भगवन्! मैं भी अब पुल बाँधने में सहायता करूँगा। आपके चरणों में यह अर्पित कर रहा हूँ।" भगवान् तो दयालु होते ही हैं। रामजी ने कहा, "समुद्र! तुम शीघ्र से शीघ्र पुल बाँधने में सहायता करो।" तो समुद्र ने मगरमच्छ, व्हेल मछली आदि को आदेश दिया कि वे भी पुल बाँधने की मदद करें वरना राम सब को मार देंगे। तब समुद्री घोड़े आदि पुल के नीचे इकट्ठे हो गए और अपनी पीठ पर पहाड़, पेड़

आदि रख लाए। समुद्र पर पुल शीघ्र बन गया। इससे पता चलता है कि समुद्र भी देवता है।

अगर भक्त की प्रतिष्ठा होती है तो उसे समझना होगा कि यह प्रतिष्ठा मेरी नहीं हो रही है। यह प्रतिष्ठा तो भक्ति की वजह से हो रही है। भक्ति में हरिनाम की हो रही है। जब वह जन्म लेकर इस धरातल पर आया तो उस समय किसी प्रकार की प्रतिष्ठा का नामोनिशान ही नहीं था। अब उसकी प्रतिष्ठा कैसे हो गयी? यह तो जब भक्ति को अपनाया अर्थात् भक्ति की शरण में आया, तब भक्ति ने ही मुझे कृपा कर प्रतिष्ठा प्रदान की है। तब अहंकार आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। प्रतिष्ठा शूकर विष्ठा है, शूकर का भोजन कैसा गंदा होता है। इसी प्रकार प्रतिष्ठा उससे भी अधिक गंदी होती है। यह भगवान् की कृपा के बिना दूर नहीं होती। इसमें दुष्ट अहंकार, घमंड, गर्व, गंध स्वरूप से छिपा रहता है। इसको महसूस करना टेढ़ी खीर है, बड़ा ही असंभव है। अहंकार भगवान् को सुहाता नहीं है, अतः अहंकारी पर भगवान् की कृपा, स्वप्न में भी नहीं उपलब्ध होती।

कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं, अपने स्वभाव ठीक करो। जिसके आचरण ठीक होंगे, भगवान् उसके पीछे छाया की तरह चिपके रहेंगे।

जब हरिनाम आरंभ करें तो हमारी जन्म–जन्म की माँ वृंदा महारानी को याद करें। जप माला रूपी वृंदा माँ को सिर से लगाएँ, हृदय से लगाएँ, फिर वृंदा माँ के चरणों का चुंबन करें। इसके बाद पांच बार हरिनाम करो, तब अपना हाथ माला झोली में डालो तो सुमेरु जो भगवान् का स्वरूप ही है, जापक के हाथ में आएगा। तब हरिनाम जपना आरंभ करें। हरिनाम कौन है ? साक्षात् कृष्ण। जापक का जप आरंभ होते ही कृष्ण उसके पास में आ जाएंगे। यह माला की चर्चा शास्त्रों में नहीं है, यह तो श्री गुरुदेवजी ने प्रेरणा कर बताई है।

हरिनाम करते ही भगवान् उपस्थित हो गए। नाम जपते हुए कृष्ण को मन की आँखों से देखते रहो कि अब कृष्ण मेरे पास खड़े

हैं, कैसा सुंदर इनका पीतांबर है, कैसी घुंघराली अलकें हैं जो ऐसी चमक रही हैं कि आँखें चुंधिया जाती हैं, कैसा मुस्कुराता हुआ मुखड़ा है कि देखते ही रहो। कैसा मनमोहक मुखारविंद है जिसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। दंतावली की तो पूछो ही नहीं, लाल होठों के बीच सूर्य की चमक को भी मात कर रही है। इस प्रकार ऊपर मोरपंख मुकुट से लेकर चरणों तक मन की आँखों से देखते रहो और हरिनाम जपते रहो तो मन संसार में जा ही नहीं सकता। जो नित्य ही इस प्रकार से हरिनाम जपता रहता है उसे लगभग एक माह में सात्विक अष्ट विकार आना आरंभ हो जाता है। अश्रु–पुलक आदि प्रकट होने लगते हैं।

अधिकतर ऐसा होता है कि जापक हरिनाम आरंभ करता है तो भगवान् केवल एक पल मन की आँखों से नजर आते हैं, बाद में मन इधर–उधर बाजार में, खेत में, सब्जी मंडी में अन्य–अन्य जगह चला जाता है। तो भगवान् बोलते हैं कि, "तूने मुझे बुलाया ही क्यों था? अब कहाँ चला गया?" ऐसा जप भी सुकृति तो इकट्ठी करता है लेकिन असली अवस्था आने में देर हो जाएगी। एक उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हैं कि किसी मानव ने फोन करके किसी साथी को घर पर बुलाया। वह घर पर आ गया, अब दोनों पास में कुर्सी पर बैठकर अपनी बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद बुलाने वाला, आगंतुक को बिना पूछे ही उसे वहाँ छोड़कर चला गया और फिर उसके पास आया तक नहीं, तो आने वाला क्या कहेगा? "कैसा आदमी है मुझे कह कर भी नहीं गया और उठ कर चला गया।" वह कितना दुखी होगा, फिर दोबारा बुलाने पर वह उसके पास कभी नहीं आएगा और बोलेगा कि ऐसे बेकार आदमी के पास जाना, मुसीबत मोल लेना है। बस यही हाल हरिनाम जपने वाले पर शत प्रतिशत उतरता है। जापक शिकायत करते रहते हैं कि हम इतना जप करते हैं लेकिन कोई प्रभाव नजर नहीं आता। आएगा कैसे? मन में तो संसार बसा पड़ा है, संसार का फायदा हो जाएगा, परंतु भगवान् में प्रेम नहीं होगा। ऐसा जप करना भी उत्तम ही है। शास्त्र घोषणा कर रहा है :

Hkko dHkko vu[k vkyIgA uke tir exy fnfI nIgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

"ऐसे जप से भगवान् से प्रेम होने में देर हो जाएगी लेकिन जप से लाभ ही लाभ है।"

और कहते हैं :

ftUg dj uke yr tx ekghA Idy vexy ey uIkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

"जो भगवान् का नाम लेते हैं उसके जितने भी दुख हैं, झट से खत्म हो जाते हैं। जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा। यह शास्त्र के कथन हैं।"

fccIg tkIuke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

"जबरदस्ती भी अगर किसी के मुख से हरिनाम निकल जाए तो अनेक जन्मों के रचे–पचे पाप भी उसी समय जलकर भस्म हो जाते हैं।" यह शास्त्र बोल रहा है।

असली बात तो यह है कि परिवार में मरने वाले के लिए कोई नहीं रोता है। अपने सुख के लिए रोता है क्योंकि मरने वाले से इसे सहायता मिलती थी। इसलिए रोता है कि अब उसे सहायता नहीं मिलेगी और अब सहायता से वंचित हो गया। वह इसलिए रोता है। यदि कोई दूर का मरता है तो जूँ भी नहीं रेंगती। कहते हैं, "मर गया होगा।" तो अपना कौन है? अपना है भगवान्। भगवान् से प्यारा कोई नहीं है। जो अंदर बैठा है वही सबसे प्यारा है।

एक कल्प में भगवान् की क्या व्यवस्था होती है? एक कल्प की ब्रह्मा की उम्र होती है। अनंत ब्रह्मा तथा अनंत शिव, अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवान् के द्वारा कार्यरत रहते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी के पुत्र हैं। ब्रह्माजी अपने जीवन काल में भगवान् के आदेश का पालन करते हैं। हजार चौकड़ी का ब्रह्माजी का एक दिन होता है। हजार

बार सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग बीत जाता है इसे ही चौकड़ी बोला जाता है। ब्रह्माजी के जीवनकाल में 14 मनु अपने जीवन काल में भगवान् के आदेश का पालन करते हैं। एक मनु के काल को मन्वंतर बोला जाता है। प्रत्येक मनु के जीवन काल में एक इंद्र होता है और सात ऋषि होते हैं। प्रत्येक मनु के जीवन काल में भगवान् का अवतार होता है। मनु और शतरूपा के दो पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए एवं तीन पुत्रियाँ देवहूति, अकूति एवं प्रसूति हुईं। भूतकाल में संकल्प से संतानें हुआ करती थीं। जब सृष्टि का अधिक विस्तार रुक गया तो बाद में नर–नारी संग से होने लगा। इन तीनों पुत्रियों से संसार भर गया। जब एक कल्प अर्थात् ब्रह्माजी के (देवताओं के) सौ वर्ष खत्म हो जाते हैं तो ब्रह्मा भी शांत हो जाते हैं तथा सब चर–अचर प्राणी ब्रह्माजी में समा जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी का निवृत्ति काल भी एक कल्प का अर्थात् (देवताओं का) सौ वर्ष तक का सोने का समय होता है।

यह श्रीमद्भागवत महापुराण में बताया गया है कि जो जीव सौ साल तक सद्गृहस्थ रहता है उसे ब्रह्मा की पदवी उपलब्ध होती है। इसी प्रकार जो भी सौ वर्ष तक भगवद् भजन में लीन रहता है तो उसे शिवजी की पदवी दी जाती है। इसे ही जीव कोटि ब्रह्मा और जीव कोटि शिव बोला जाता है। वैसे तो भगवान् स्वयं ही ब्रह्मा तथा शिव रूप बन कर जाते हैं एवं अनंत कोटि ब्रह्मांडों का संचालन करते रहते हैं। इसी प्रकार से अनंत कोटि ब्रह्मांडों का संचालन स्वयं भगवान् ही करते हैं। भगवान् स्वयं सब कुछ बनते भी हैं और बनाने वाले भी हैं। यदि किसी जीव की ऐसी दृष्टि हो गई तो भगवान् उस जीव से एक निमेष मात्र भी दूर नहीं होते। ऐसे जीव में अवगुण जन्म ही नहीं लेता। अतः भगवान् ऐसे भक्त के पीछे–पीछे चलते रहते हैं।

राधा कौन है? यह कृष्ण की आत्मा ही है जैसाकि श्रीमद् भागवत पुराण बोल रहा है कि पहले इस ब्रह्मांड में कुछ नहीं था केवल ब्रह्म ही ब्रह्म था। सभी ठौर शून्य ही शून्य था। सुषुप्ति ही सुषुप्ति थी। अंधेरा ही अंधेरा था। जब भगवान् को लीला स्फूर्ति होने

लगी तब एक से तो लीला हो नहीं सकती अतः योगमाया का उपयोग किया तो अपने शरीर से ही दो भाग प्रकट हो गए। एक प्रिया राधा और दूसरा प्रियतम कृष्ण। राधा के वपु से देवियाँ प्रकट हुईं और कृष्ण के वपु से उनके पार्षद प्रकट हो गए।

कश्यपजी की दो पत्नियाँ थीं। एक थी दिति और दूसरी थी अदिति। दिति से राक्षस, दानव प्रकट हुए तथा अदिति से देवताओं का प्राकट्य हुआ। दोनों भाई–भाई होते हुए भी सदा आपस में लड़ते रहते हैं। इसका कारण स्पष्ट नजर आता है कि भगवान् की लीलाओं का प्रादुर्भाव कैसे होता है? भगवान् भक्त से ही श्राप और वरदान दिला कर अपनी लीलाओं को जन्म देते रहते हैं। दो के बिना लीला हो नहीं सकती। यह संसार ही दो से बना है। जैसे अंधेरा–उजाला, श्राप–वरदान, दिन–रात, शुभ–अशुभ, शांति–अशांति, दुख–सुख आदि–आदि युगल से ही भगवान् की सृष्टि का प्रादुर्भाव होता रहता है। भक्त भगवान् का प्यारा होता है। अभक्त अर्थात् नास्तिक भगवान् का वैरी होता है लेकिन भगवान् के लिए दोनों सम हैं। भगवान् कभी राक्षसों की सहायता करके इनकी वृद्धि करते रहते हैं तो कभी देवताओं की खुशहाली करते रहते हैं। भगवान् ने, जय–विजय को, जो भगवान् के द्वारपाल थे, सनकादिक ऋषियों से श्राप दिलाकर अपनी लीलाओं का प्राकट्य किया। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, एक बार इनसे लीलाएँ रचीं। दोबारा रावण, कुंभकरण हुए तो राम अवतार लेकर लीलाएँ रचीं। तीसरी बार शिशुपाल और दंतवक्र से कृष्ण ने लीला रची। बिना श्राप–वरदान के अभाव में भगवद् लीला हो नहीं सकती।

यह सब भगवान् के लिए खिलौने हैं। जैसे एक छोटा शिशु मिट्टी का घर बनाता है और बनाकर उसी समय मिट्टी में मिला देता है। भगवान् भी योगमाया को अंगीकार कर खेल खिलौने बनाते रहते हैं एवं नष्ट करते रहते हैं। इन लीलाओं को ब्रह्मा और शिव भी समझ नहीं सकते, लेकिन नामनिष्ठ भक्त समझ जाता है। जो हरिनाम की 64 माला नित्य करता है, भगवान् की लीलाएँ उससे

अदृश्य नहीं होतीं। जैसे बाजीगर के तमाशे को कोई समझ नहीं सकता लेकिन उसका जम्बूरा सब कुछ समझता है। अतः इस कलिकाल में यदि परम सुख चाहते हैं तो भगवद् नाम नित्य करो। 64 माला किया करो।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

कृष्ण ने दया परवश होकर श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधा भाव लेकर अवतार लिया और नित्य, स्वयं, 64 माला, अपने ही नाम की जप कर, अपने आचरण से सिखाया और अन्यों को भी 64 माला नाम जप में संलग्न किया। इसका कारण है कि जो भक्त नित्य 64 माला हरिनाम की करेगा, उसे निश्चित रूप से वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाएगी। कृष्ण अर्थात् चैतन्य को अपने नाम को जपने की क्या जरूरत थी? क्योंकि स्वयं के आचरण से ही अन्यों का भाव जागृत होता है, अतः भगवान् ने स्वयं ही आचरण किया।

20 अप्रैल 2017 रात में लगभग 10:00 बजे गौड़ीय मठ के आचार्य ने अपने जड़ शरीर से विदा होकर भगवद्धाम में पदार्पण किया है। श्री 108 श्री तीर्थ गोस्वामी जी हमको छोड़कर चले गए अतः दुख का कारण तो बन गया है। जो आया है एक दिन जाना तो सभी को होता है। कपड़ा फट जाता है तो नया कपड़ा पहनना पड़ता है। इसमें दुख करने की क्या बात है? सच्चा ज्ञानी इसमें दुख से अलग रहता है। फटे कपड़े को उतारने से क्या दुख होगा? और नये कपड़े पहनने से क्या सुख होगा? उसके लिए तो सब ही सम अवस्था है।

श्री भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज, रामनवमी को इस धरातल पर पधारे थे और वैशाख नवमी को ही अपने पुराने पोशाक को छोड़कर नई पोशाक पहन ली है अर्थात् मायामय शरीर को छोड़ दिव्य शरीर को धारण कर लिया है। जो चर–अचर प्राणी एक दिन आया है तो उसका एक दिन जाना परम आवश्यक है। न कोई रहा है न कोई रहेगा। यही है भगवद् लीला का प्रकरण। इसे कोई भी बदल नहीं

सकता, जिसे सच्चा ज्ञान है वह जाने वाले का शोक नहीं करता। जिसको अधूरा ज्ञान है वह जाने वाले का शोक इस कारण करता है कि इससे मुझे बहुत मदद मिलती थी। यही उसका स्वार्थ है जिससे मरने वाले का शोक होता है, अन्य कोई कारण है ही नहीं। मरने वाले के दुख के लिए कोई नहीं रोता। रोता है अपने सुख के लिए। रोना अपने स्वार्थ के लिए है। कोई भी किसी का नहीं है। केवल भगवान् ही अपने हैं। यही जन्म जन्मों से चर–अचर प्राणियों के माँ–बाप हैं।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को बोला है, "तुम नर हो और मैं नारायण हूँ।" तब भी अर्जुन को विश्वास नहीं हुआ तो अंत में कृष्ण को विराट् रूप दिखाना पड़ा। तब अर्जुन जान सका कि कृष्ण नारायण ही हैं। इसी कारण से गुरुदेव, अनिरुद्ध दास के बारे में बता रहे हैं। यह शास्त्रों में नहीं है।

गुरुदेव माधव महाराज बोल रहे हैं, "यह अनिरुद्ध दास, राजस्थान में मेरा एक ही शिष्य है तथा केवल उसका परिवार शिष्य है।" गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया, "तुम यहाँ के नहीं हो। भगवान् ने तुम्हें गोलोकधाम से भेजा है। तुम यदि कुछ बात छिपाओगे तो संसार का उद्धार नहीं कर सकोगे। तुम्हारे हाथों में भगवान् के आयुधों के सात चिह्न हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला तथा शिवजी के दो त्रिशूल। तुम्हारी वजह से लगभग सारा संसार हरिनाम कर रहा है। यदि कोई तुम्हारी बड़ाई समझेगा तो नीचे गिर जाएगा। तुम्हारा शरीर चिन्मय हो चुका है। अब 90 साल की उम्र में गुजर रहे हो। तब भी तुम्हारी आँखें, नजर 5 साल के शिशु की तरह है। तुम्हारे शरीर में रत्ती भर भी कोई रोग नहीं है। लगभग 40 साल से 12–1 बजे जाग कर 6 बजे तक एक आसन पर बैठकर हरिनाम करते रहते हो। लगभग 30 साल से बुखार आया ही नहीं है।" मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, "अनिरुद्ध दास के आदेश का पालन जो भी करेगा। वह निश्चय रूप से इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति तथा वैकुण्ठ वास कर लेगा। गुरुदेव कह रहे हैं कि, "मेरा शिष्य अनिरुद्ध निष्काम है।"

केवल भगवान् ही अपने हैं

31

5 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भगवान् के पास वैकुण्ठ में जाने का कितना सरल, सुगम तरीका है एवं वर्तमान में भी जब भगवान् को याद करोगे, भगवान् तुरंत बढ़िया स्वभाव वाले के पास आ जाएँगे। जैसे किसी को फोन द्वारा अपने पास बुलाते हैं, वह आगुंतक थोड़ी देर बाद में बुलाने वाले के पास आ जाता है। इसी प्रकार भगवान् तो इतनी देर लगाते ही नहीं हैं, एक निमेष मात्र में आ जाते हैं। निमेष का अर्थ है 1 सैकंड का 100 वाँ भाग। भगवान् के प्रकट होने का क्या मार्ग है? क्या उपाय है? कलियुग में केवल मात्र हरिनाम। न तप करने की जरूरत है, न योग करने की जरूरत है, न दान करने की जरूरत है, न तीर्थ करने की जरूरत है, न स्नान की जरूरत है। जरूरत है केवल, कान से सुनकर हरिनाम उच्चारण की।

शास्त्र बोल रहा है कि ध्यान से श्रवण करें!

tkuk pgfg x< xfr tÅA uke thg tfi tkufg rÅAA

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

अर्थात् जीभ से नाम जप कर देख लो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जापक को स्वयं मालूम पड़ जाएगा। रामजी के भाई, भरतजी कैसे जपते थे? इसी प्रकार से जपना जरूरी है।

iyd xkr fg; fl; j?kch:A thg uke ti ykpu uh:AA

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

यह उस समय की चर्चा है, जब रावण सीताजी का हरण करना चाहता था तो उसने मारीच राक्षस को, हिरण बनने का आदेश दिया। मारीच, रावण के भय की वजह से पंचवटी के पास, चमकीला सोने जैसा रूप धरकर हिरण बन गया। जब सीताजी ने देखा कि हिरण तो बहुत सुंदर मनमोहक है तो वह रामजी से बोलीं कि, "हे प्राणनाथ! देखिए न उधर, कैसा सुंदर हिरण खड़ा है! आपकी ओर देख रहा है। मैं चाहती हूँ कि इसकी मृगछाला पर भजन करने में अद्‌भुत आनंद आएगा। आप उसे मार कर ले आओ।" राम तो सब जानते ही थे, लेकिन रामजी को लीला करनी थी अतः बोले, "मैं इसे अभी मार कर लाता हूँ।" जब रामजी उसके पीछे दौड़े, तो मारीच राक्षस कभी कहीं दुबक कर दिखाई नहीं देता और कभी कहीं दिखाई दे जाता। अतः इस प्रकार वह रामजी को दूर ले गया और बाण लगने पर जोर से बोला, "हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण!" सीताजी बोलीं, "लक्ष्मण! मेरे प्राणनाथ पर कोई विपत्ति आ गई है। जल्दी चले जाओ।" लक्ष्मण ने कहा, "माताजी! ऐसा नहीं हो सकता।" लेकिन सीताजी जबरदस्ती भेजने के लिए मजबूर हो गईं। अब लक्ष्मण भी क्या करें? लक्ष्मण को माँ का आदेश पालन करना पड़ा। लक्ष्मण ने कहा, "अच्छा! मैं जाता हूँ। मैं कुटिया के आगे एक रेखा खींच कर जाता हूँ। इस रेखा को लाँघकर कुटिया के बाहर मत आना।" सीताजी बोलीं कि, "मैं इस रेखा को नहीं उलांघूँगी, तुम जल्दी जाओ।" अब सीताजी अकेली थीं तो रावण साधु के वेश में आकर बोला, "भिक्षां देहि!" सीताजी ने देखा कि एक साधु बाहर खड़ा है और भिक्षा माँग रहा है। भिक्षा लिए बिना यह कैसे जा सकता है तो बोली कि, "महात्माजी! मैं अभी भिक्षा लाती हूँ। आप थोड़ी देर ठहरो!" सीताजी भिक्षा लेकर आईं और रेखा के अंदर से भिक्षा देने लगीं तो रावण बोला, ''मैं ऐसे भिक्षा नहीं लूँगा। बाहर आकर जहाँ मैं खड़ा हूँ, वहीं भिक्षा दो।" सीताजी भूल गईं कि रेखा के बाहर जाना नहीं चाहिए। फिर क्या था?

रेखा के बाहर आते ही रावण उन्हें पकड़कर आकाश मार्ग से लेकर चला गया। यह असली सीता नहीं थी वरना रावण वहीं पर जलकर राख का ढेर हो जाता। रामजी ने पहले ही सीता को कह दिया था कि, "मुझे लीला करनी है, तो तुम अग्नि की गोद में चली जाना।" अतः यह सीता नकली सीता थी। जब राम, लक्ष्मण कुटिया पर आए तो वहाँ सीता नहीं मिली तो राम ने लक्ष्मण को कहा, "लक्ष्मण! अकेली सीता को छोड़कर, तुमको मेरे पास नहीं आना चाहिए था।" तो लक्ष्मण बोला, "भैया! मैं क्या करता? माँ मुझ पर बहुत गुस्सा करने लगी थी। अतः मजबूरी से आना पड़ा क्योंकि आपने हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! बोला तो माँ समझी कि प्राणनाथ पर कोई विपत्ति आ पड़ी है। तो माँ का भी दोष नहीं है। फिर माँ क्या करती? मुझे आना ही पड़ा।" रामजी बोले, ''लक्ष्मण! इन राक्षसों की माया को तुम नहीं समझ सकते। इस दुष्ट मारीच ने ही हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! बोला था, मैंने नहीं बोला।" राम सब जानते हुए भी लक्ष्मण से अपना दुख बोल रहे हैं कि न जाने सीता को कौन उठा ले गया। चलो पता लगाते हैं। राम चिल्ला रहे हैं, "हा सीते! हा सीते! मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ?" जंगल के पेड़ पौधों से पूछ रहे हैं, "हे अशोक, हे बरगद, हे जामुन, तुमने इधर से सीता को जाते हुए देखा है? गुलाब, जूही आदि फूलों के पौधों से पूछ रहे हैं कि सीता को तुमने देखा है?" यह सब लीलाएँ नारदजी के श्राप से प्रकट हो रही हैं। नारदजी शादी करना चाहते थे। लेकिन रामजी ने शादी करके नारद को गृहस्थ में फँसने से रोक दिया था। अतः नारदजी ने श्राप दे दिया कि वे भी अपनी पत्नी के लिए रोते फिरेंगे। रामजी, संसारी स्त्री में आसक्त लोगों के लिए ही लीला के माध्यम से विलाप कर रहे हैं। जब जटायु ने रावण को सीता को ले जाते हुए देखा तो अपने पंखों से रावण को घायल कर दिया। रावण ने अपने कटार से जटायु का एक तरफ का पंख काट डाला, वह जमीन पर आ गिरा। तब राम! राम! कहते प्राण छोड़ दिए। कथा को संक्षेप से ही मेरे गुरुदेव बता रहे हैं।

वैसे रामकथा तो सभी को मालूम है लेकिन बार–बार सुनने में आनंद आता ही है। जैसे सती स्त्री, अपने पतिदेव की चर्चा बार–बार सुनने में आनंद का अनुभव करती है। तो रामजी के वियोग में सीताजी, रामजी की वही छवि कि रामजी हिरण के पीछे भाग रहे हैं, हृदय में धारण करती हुई रोते–रोते राम का नाम जप रही हैं। सीता माँ, रामजी की धर्मपत्नी कैसे जपती थीं?

tfg fcfèk diV djx lx èkkb py JhjkeA
lk Nfc lhrk jkf[k mj jVfr jgfr gfjukeAA

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

श्रीमद्भागवत पुराण में आता है कि अदिति देवताओं की माँ थी। कश्यप मुनि, अदिति के पतिदेव थे। एक बार अदिति बोली कि "दिति के पुत्र राक्षसों ने मेरे परिवार को घर से बाहर निकाल दिया है। पतिदेव कोई उपाय बताएँ।" तो कश्यपजी ने एक व्रत बताया। कथा लंबी है तो संक्षेप में बताया जा रहा है। व्रत पूरा हुआ तब भगवान्, अदिति के समक्ष प्रकट हुए और कश्यपजी के द्वारा वामन अवतार लेकर बलि महाराज को हराकर अदिति के परिवार को अपना स्थान दिलाया। राक्षस एवं देवता आपस में भाई–भाई हैं, लेकिन सदैव लड़ते रहते हैं। भगवान् के लिए दोनों ही सम हैं, लेकिन कहीं–कहीं तरफदारी भी कर जाते हैं। इसका भी कोई उत्तम कारण ही होता है।

अब मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि भगवान् जल्दी कैसे मिलते हैं? जिस प्राणी का सात तरह का स्वभाव होगा, उसके पीछे भगवान् छायावत् चिपके रहते हैं एवं आदेश का पालन करते रहते हैं। ध्यान पूर्वक सुनें।

1- r`.kknfi luhpu rjkjfi lfg".kukA
vekfuuk ekunu dhrZuh;% lnk gfj%AA

प्राणी को तृण से भी नीचे स्वभाव का होना चाहिए। पेड़ की तरह सहनशील होना चाहिए। पेड़ मानव की कितनी सेवा करता है,

फल, फूल, छाल आदि देता है। अन्य को मान दे, इज्जत दे, अपना मान न चाहे, ऐसा स्वभाव, जिसका होगा वही हरिनाम जप कर सकता है, वरना हरिनाम जप होगा नहीं।

2. कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहे, घृणा करे। कंचन में घर–गृहस्थी की सभी वस्तुएँ आ जाती हैं जैसे मकान, दुकान, खेत आदि तथा ऐश आराम की वस्तुएँ, गाड़ी आदि। इन सब में जिसका मन आकृष्ट न हो। उपरोक्त सामग्रियों में जिसकी आसक्ति न हो। यह सभी कंचन में आती हैं। कामिनी– सभी को माँ समझे। वह नारी जाति के विषय में बोला गया है। यही खास माया है। यह बड़े बड़े महान् धुरंधरों को अपने पैरों के नीचे कुचल डालती है। ब्रह्माजी तथा शिवजी तक इन से नहीं बच पाए तो साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या है। इनसे बचने का एक ही उपाय व साधन है, हरिनाम की शरणागति अर्थात् हरिनाम की 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम नित्य ही करें, तो भगवान् की कृपा ही इस दुष्कर माया से बचा लेती है।

भगवान् ही प्रेरणा के स्रोत हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है प्रह्लाद जो केवल पाँच वर्ष का ही था। भगवन् नाम की शरण में था, तो उसका पिता हिरण्यकशिपु जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, उसे मारने की भरसक कोशिश की, परंतु प्रह्लाद का बाल भी बाँका न कर सका। वह तो उसे गला घोटकर ही मार सकता था। क्यों नहीं मार सका? इसका खास कारण है कि हिरण्यकशिपु में भी परमात्मारूप से भगवान्, उसके हृदय में विराजित थे। भगवान् की प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। भगवान् ने उसके हृदय में ऐसी प्रेरणा ही नहीं दी। दूसरे उपायों से ही प्रह्लाद को मार देने के लिए राक्षसों को आदेश दिया तो राक्षसों ने प्रह्लाद को ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से नीचे गिराया, समुद्र में डाला, धरती में दबाया, आग में जलाया आदि–आदि यातनाएँ दी, परंतु हरिनाम ने प्रह्लाद की रक्षा की। अंत में जब हिरण्यकशिपु ने व्यक्तिगत रूप से प्रह्लाद को

मारना चाहा, तब स्वयं ही नरसिंह भगवान् के द्वारा मारा गया, तो कहने का मतलब है कि हरिनाम ने ही उसकी रक्षा की है। अतः सभी को हरिनाम नित्य करना चाहिए ताकि दुख समूल ही नष्ट हो जाए। शास्त्र वचन है :

ftUg dj ukek| y|r tx ekghA ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

तीसरी माया है प्रतिष्ठा अर्थात् बड़ाई। इसे शास्त्र बोल रहा है प्रतिष्ठा – शूकर विष्ठा। शूकर विष्ठा से गंदा तो कोई संसार में है ही नहीं। यह प्रतिष्ठा, ऐसी झीनी माया है कि इसका मन में पता तक नहीं चलता। ऐसा भक्त अनुभव करे कि यह बड़ाई उसकी क्यों हो रही है? इसका खास कारण है उसका हरिनाम जप, अर्थात् हरिनाम की ही बड़ाई हो रही है। तब भक्त को अहंकार नहीं होगा। अहंकार ही भक्त का खास दुश्मन है, जो हरिनाम की कृपा बिना दूर नहीं होता है, अर्थात् भगवान् इससे भक्त की रक्षा करते रहते हैं। यदि यह तीनों माया भक्त से दूर रहें तो भगवान् भक्त के पीछे छायावत् चिपके रहते हैं। भगवान् की भी ताकत नहीं कि ऐसे भक्त से दूर रह सकें। भगवान् स्वयं बोल रहे हैं, "काल और महाकाल मुझसे थरथर काँपता रहता है, परंतु मैं भक्त से थर–थर काँपता रहता हूँ क्योंकि भक्त ने मुझे प्रेम रस्सी से बाँध रखा है। यह प्रेम रस्सी ऐसी अटूट है कि इसे तोड़ना बिल्कुल असंभव है।"

3. दो ही मिनट में भगवान् की उपलब्धि हो सकती है। यदि नित्य ही ऐसी प्रार्थना जीव करे तो। भगवान् जितनी शीघ्र सुनते हैं अन्य कोई नहीं सुनता। यह प्रार्थना वेदों का सार, पुराणों का सार तथा छह शास्त्रों का सार है। यह किसी दिव्य शक्ति ने, प्राणियों पर दया करने हेतु बताया है। इन तीन प्रार्थनाओं को जो प्राणी, नित्य ही करेगा, वह इस जन्म में तथा अगले जन्म में सुख सागर में डूबा रहेगा। भगवान् ऐसे प्रार्थना करने वाले के पीछे छायावत् चिपके रहते हैं। इसमें दो राय नहीं है, 100% सत्य अटल साधन है।

igyh çkFkZuk gS %& जब रात में सोने लगे, नींद आने लगे, तब बोलना है, “हे मेरे प्राणनाथ ! अंत समय में जब मुझे मौत आने लगे एवं आप मेरे तन से परमात्मारूप में बाहर निकलने लगो तो कृपा कर अपना नाम उच्चारण करा देना तथा बेहोशी में आपका नाम तथा आप की छवि हृदय में अंकित करवा देना। भूल मत करना।”

nwljh çkFkZuk %& जब ब्रह्म मुहूर्त में जागे, तब बोलना है, “हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात में नींद आने लगे तब तक, जो भी मैं कर्म करूँ, आपका ही समझ कर करूँ। चाहे मन से करूँ या तन से करूँ, आपका ही समझ कर करूँ एवं भूल जाऊँ तो कृपा कर याद दिला देना। भूल नहीं करना।” हम भूल सकते हैं, भगवान् कभी नहीं भूलेंगे। यह गीता के अनुसार निष्काम कर्मयोग हो गया। अब नुकसान होगा तो भगवान् का होगा, यदि फायदा होगा तो भगवान् का होगा। हम निर्लिप्त रह गए।

rhljh çkFkZuk %& जब भक्त व्यक्ति प्रातः स्नान करके संध्या वंदन करे तो भगवान् से प्रार्थना करे कि, “हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी निगाह या दृष्टि बना दो कि मैं प्रत्येक प्राणी मात्र में तथा कण–कण में आपको ही देखूँ, तो आप मुझसे एक क्षण भी ओझल कैसे रह सकते हो? मैं किसी का भी बुरा कैसे कर सकता हूँ?” चींटी से लेकर हाथी तक में भगवान् ही दिखाई देंगे। यह तीन प्रार्थनाएँ ऐसी प्रभावशाली हैं कि भगवान् भी चाहें कि, “मैं इससे दूर हो जाऊँ, तो उनमें शक्ति ही नहीं कि वे दूर हो सकें।” इसी जन्म में तथा अगले जन्म में ऐसा भक्त भगवान् से अलग रह नहीं सकता, न ही भगवान् उससे अलग रह सकेंगे। भगवान् बँध जाएँगे। इस बन्धन को भगवान् भी तोड़ नहीं सकते।

कुछ चर्चाएँ शास्त्रों में नहीं हैं। यह तो किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही प्रेरित होकर सबके समक्ष बताई गई हैं। इसका लाभ लेना श्रेयस्कर होगा। मौका छूटने पर पछताने के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा। कुछ चर्चाएँ बार–बार बोलनी पड़ जाती हैं ताकि भक्तों के हृदय में अंकित हो सकें।

4. जितना संग्रह–परिग्रह अधिक रखोगे तो भक्त का मन उस में फँसा रहेगा जो कि संसार की आसक्ति का कारण होगा। हरिनाम में मन कम लगेगा। अपने पास इतनी ही वस्तु रखो, जिससे जीवन यापन हो सके। जब भगवान् ने अंगुलियाँ दी हैं तो चम्मच की क्या आवश्यकता है? जब हाथ दिए हैं तो तकिए की क्या आवश्यकता है? इस छोटे से उदाहरण से समझा जा सकता है। जितनी चीजें बटोरोगे, उनमें मन तो फँसेगा ही। अतः सोच समझ के काम लेना श्रेयस्कर होगा। हमारे गुरुवर्ग दो करवे रखते थे। एक से शौच जाते थे, दूसरे से मधुकरी ला कर काम में लेते थे एवं एक झोपड़ी में ही रहा करते थे, तो भगवान् उनके पास ही रहा करते थे। कहने का मतलब है कि ऐसा स्वभाव बनाओ ताकि पापिन चिंता से दूर रह सको।

5. भगवान् की सन्निधि : व्यक्ति फोन से अपने मित्र को अपने घर पर बुलाता है। मित्र आ कर कमरे में बैठ जाता है, तो बुलाने वाला भी बैठकर आपस में कुछ विषयों पर चर्चा करते हैं। थोड़ी देर बाद बुलाने वाला उठकर बिना पूछे चला जाता है तो आने वाला क्या कहेगा कि उसे बुलाया ही क्यों था? फिर बुलाने वाला आया तक नहीं तो आने वाला कितना दुखी हो जाएगा? दुबारा बुलाने पर आएगा ही नहीं। बस इसी प्रकार से भक्त नाम जापक, हाथ में माला झोली लेकर, अपने कुशासन पर बैठकर हरिनाम आरंभ करता है, तो भगवान् अपने नाम के पीछे तुरंत आ जाते हैं। थोड़ी देर तक जापक मन की आँखों से भगवान् को देखता रहता है, बाद में बाजार की ओर, खेत की ओर, सब्जी मंडी की ओर इत्यादि–इत्यादि जगह चला जाता है तो भगवान् क्या कहेंगे कि, "मुझे क्यों याद किया? अब मुझे छोड़ कर कहाँ चला गया?" इस काम से भगवान् तो दुखी नहीं होंगे लेकिन जापक का शुद्ध नाम नहीं होगा।

जापक की शिकायत होती है कि मैं इतना हरिनाम करता हूँ, परंतु कुछ प्रभाव नजर नहीं आता। जापक को अपनी गलती दिखाई नहीं देती और हरिनाम पर दोषारोपण करता है। ऐसे जापक की

अवस्था भी लाभप्रद होगी, लेकिन समय अधिक लग जाएगा। भगवत्प्रेम नहीं होगा। सात्विक अष्ट विकार, पुलक, रोना, पसीना आदि से दूर रहेगा। नाम का उच्चारण तो अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकता। जिस प्रकार अनजाने में अमृत पी जाए या अनजाने में जहर खा जाए तथा अनजाने में अग्नि में अगर अंग छू जाए तो यह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार भगवन् नाम, कैसे भी मुख से निकल जाए, तो जापक का दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। शास्त्र बोल रहा है।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

जैसे भरत या सीता जपती थी, इसी प्रकार भक्त को जपना चाहिए। भरत का जपना है :

iyd xkr fg; fl; j?kch:A thg uke ti ykpu uh:AA

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

सीता का जपना हैः

tfg fcfèk diV djx lx èkkb pyA JhjkeA
lk Nfc lhrk jkf[k mj jVfr jgfr gfjukeAA

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

इस प्रकार जापक को भगवान् को साथ में रखना जरूरी है। भगवान् की सन्निधि परमावश्यक है तब ही शुद्ध नाम होगा। शुद्ध, अशुद्ध कृष्ण, राम शब्द की आवश्यकता नहीं है। मुसलमानों में गाली है हरामी। इसी से मुसलमान तर गए। बाल्मीकि मरा–मरा जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गए। शुद्ध नाम इसे बोला जाता है कि जिसका नाम उच्चारण कर रहे हो, वह आपके पास में रहना चाहिए।

6. किसी के गुण दोष न देखो।

7. जो मिला है, उसी में संतोष करो।

यह सात आचरण अपनाओ तो हरिनाम तैलधारावत् होता रहेगा और भगवान् छायावत् संग में चिपके रहेंगे।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में चार कोष्ठ रहते हैं : मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इन चारों में अहंकार ही सबसे अधिक खतरनाक है। अहंकार का मतलब है "मैं–पना" यही जन्म–मरण का आविष्कार करता है। यदि यह दिल से दूर हो जाए तो भगवान् उससे एक क्षण भी दूर नहीं रह सकते। इस जन्म–मृत्यु वाले संसार में कोई, किसी का नहीं है। जो भी परिवार में आता है, भाई, बहन, नाती–पोते अपना कर्जा चुकाने आते हैं। जब कर्जा चुक जाता है तब जहाँ से आए थे, वहीं पर चले जाते हैं। यह एक मार्मिक बात है, जो भगवान् की कृपा के बिना समझ में नहीं आ सकती। कोई ऊँट बनकर कर्जा चुकाता है। कोई कुत्ता बनकर कर्जा चुकाता है। यहाँ जो भी अपना सम्बन्ध है, अपना कर्जा चुकाने के बाद, इस मृत्युलोक से रवाना हो जाते हैं। हम प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं कि बेटा बनकर, ऐसा रोगी हो जाता है कि उसके माँ–बाप लाखों रुपया रोग को हटाने हेतु लगा देते हैं। जब कर्जा चुक जाता है तो बेटा, जहाँ से आया था, वहीं पर चला जाता है। कोई मानव ही मानव को मार देता है। क्यों मार देता है? उसने भी उसे गला घोटकर मारा था। साँप बनकर, खाट पर चढ़कर प्राणी को काट लेता है, वैसे दब कर भी नहीं काटता। शास्त्रों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। परिवार में कोई मर जाता है तो दहाड़ मार–मार कर चिल्लाते हैं। क्यों चिल्लाते हैं? इसलिए रोते हैं कि मरने वाले से बहुत सहायता मिलती थी। कहता है, "मेरा जीवन ही बेकार हो गया। इसके बिना मैं कैसे जीवन काटूँगा?"

अखबार या टीवी पर सुना गया या देखा गया कि ट्रेन टकरा गई जिससे 150 लोग मारे गए, तो सुनने वालों पर जूँ भी नहीं रेंगी अर्थात् कोई दुख नहीं हुआ क्योंकि उनसे, इस व्यक्ति का कोई लेन–देन नहीं था। अतः यह निष्कर्ष निकला कि यह स्वार्थ का संसार है, स्वार्थ ही रुलाता है। देखा गया है कि शिशु के जन्म लेते ही माँ–बाप की मौत हो गई। फिर इस शिशु को कौन पालता है?

यही शिशु, बूढा हो कर मरता है। प्रत्यक्ष उदाहरण है, प्रह्लाद तो पांच साल का ही था, उसका दुनिया में कोई नहीं था। बाप हिरण्यकशिपु भी दुश्मन बन गया, मारने की भरसक कोशिश की। परंतु मार न सका। कौन प्रह्लाद को बचाता रहा? केवल भगवान् ही अपना खास निजी है, अन्य सब कर्जा चुकाने आते हैं। जब प्राणी का जी घबराता है, तो उसे कोई याद आता है। 'जी' भी एक प्रकार से आत्मा है अर्थात् अनुभव कहता है कि आत्मा ही अपना खास साथी है, अन्य सब पराए हैं। कोई भी किसी का दुख–कष्ट नहीं बांटते हैं, सभी दिखावटी हैं, स्वयं को ही कष्ट भोगना पड़ता है।

dje çèkku fcLo dfj jk[kkA

जैसा शुभ–अशुभ कर्म करता है, स्वयं को ही भोगना पड़ता है। अन्य इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

जो सिपाही देश की ओर से, अपने तन, मन, जीवन को झोंक देता है ऐसा मिल्ट्री (सेना) का सेवक मानव जन्म को सफल कर लेगा। जो राजा अपने देश की जनता को बच्चों के समान समझता है, निस्वार्थ जीवन यापन कर रहा है, ऐसे धार्मिक राजा होते थे।

श्रीराम के काल में अर्थात् त्रेता युग में एक चकवा बैन राजा था। रावण ने सभी राजाओं को जीत लिया था। एक चकवा बैन ही स्वतंत्र रह गया था। रावण ने विचार किया कि चकवा बैन को जीतना बहुत ही जरूरी है। अतः रावण ने अपने राज्य लंका से, एक दूत भेजा कि जाकर चकवा बैन राजा से बोल दे, "रावण आप से युद्ध करना चाहता है। यदि युद्ध नहीं करना है, तो रावण की पराधीनता को स्वीकार करो।" ऐसे रावण ने दूत को कह कर भेजा। शायद उज्जैन उसकी राजधानी थी। दूत वहाँ पर गया और पूछने लगा कि, "चकवा बैन कहाँ मिल सकता है?" किसी शहर वाले ने कहा कि इस समय तो वह घर पर नहीं मिल सकता, तो दूत ने बोला, "तो कहाँ मिलेगा?" तो शहर के व्यक्ति ने कहा, "इस समय तो चकवा बैन अपने खेतों में पानी दे रहा होगा।" दूत ने कहा, "कैसी पागल जैसी बातें करते हो। राजा होकर खेत में पानी देगा?" वह

व्यक्ति आगे चला गया तो दूत ने दस, बारह साल के बालक से पूछा, "तुम्हारा राजा चकवा बैन कहाँ मिल सकता है?" बच्चों को अधिक मालूम रहता है, तो बालक बोला, "महाशयजी! इस समय तो चकवा बैन अपने खेत में पानी दे रहा होगा। वहाँ आपको मिल जाएगा।"

दूत ने पूछा, "चकवा बैन का महल कहाँ पर है?" बालक ने कहा, "वह तो एक कच्चे मकान में रहता है।" दूत को बड़ा अचंभा हुआ कि बालक झूठ नहीं बोल सकता। अब तो दूत उससे मिलने के लिए उत्सुक हो गया। सोचने लगा कि ऐसा उसने आज तक कभी सुना नहीं कि कोई राजा होकर कच्चे मकान में रहे और अपने खेत में पानी दे, लेकिन उसको मिलना बहुत अच्छा होगा। खेत का पता पूछा और बताये अनुसार खेत पर गया तो एक बुढ़िया घास खोद रही थी। दूत ने उससे पूछा, "माई ! चकवा बैन कहाँ है?" तो बूढ़ी ने कहा, "तुम को दिखाई नहीं देता? वह खेत में पानी दे रहा है।" दूत ने बोला, "क्या वही चकवा बैन है?" बूढ़ी ने कहा, "हाँ! वही चकवा बैन है।" "अचंभा! अचंभा!" कहकर बुढ़िया के पास ही बैठ गया। बुढ़िया ने कहा, "यहाँ क्यों बैठ गए? जाकर मिलते क्यों नहीं हो?" दूत ने कहा, "जाता हूँ।" दूत ने देखा कि चकवा बैन, सिर पर एक मैली कुचैली, फटे पुराने कपड़े की पगड़ी को लपेटे है और नीचे की ओर एक कपड़ा लपेटे, पानी दे रहा है। अब तो दूत को पास जाने में भी भय हो रहा था, सोचने लगा कि, "मैं इसको कैसे बोलूँ कि रावण आपसे युद्ध करना चाहता है?" लेकिन रावण के डर की वजह से हिम्मत बांधकर, पास में जाकर खड़ा हो गया और बोला कुछ नहीं। तब चकवा बैन बोला, "तुम कौन हो? क्या लेने आए हो?" तो दूत घबराया सा बोला, "मैं लंका से आया हूँ और रावण ने मुझे भेजा है।"

चकवा बैन बोला, "रावण क्या चाहता है? जो चाहिए मैं देने को तैयार हूँ।" दूत बोला, "रावण कुछ नहीं चाहता, आप से युद्ध करना चाहता है।" चकवा बैन बोला, "बहुत ठीक है।" अब चकवा बैन पानी देना बंद करके, उसके पास ही खेत में बैठ गया और दूत से बोला, "उस पेड़ से लकड़ी का एक टुकड़ा लाओ।" दूत ने समझा कि

लकड़ी के टुकड़े से उसे ही मार न दे, लेकिन आदेश पालन तो करना ही पड़ेगा। पास ही में पेड़ था, उससे तोड़कर लकड़ी का टुकड़ा चकवा बैन के हाथ में दिया तो चकवा बैन बोले, "तुम लंका की चारदीवारी का नक्शा, इस खेत की जमीन पर बनाओ।" दूत ने नक्शा बना दिया। चकवा बैन ने उसी लकड़ी के टुकड़े से एक तरफ की कंपाउंड वॉल (दीवार) को ढाह (गिरा) दिया और दूत से बोला, "अपने राजा से बोल देना कि जब चाहो तब युद्ध के लिए तैयार रहे।" लंका में जाकर दूत ने देखा कि एक ओर की कंपाउंड दीवार ढही पड़ी है। रावण ने भी देख लिया था और दूत से बोला, "मैं मुहूर्त निकाल कर लड़ूँगा।" वैसे रावण डर गया कि चकवा बैन से जीतना असंभव है। ऊपर से डींग हांक रहा है ताकि दूत न समझे कि रावण डरा हुआ है, या डर गया है। ऐसे पुण्यवान् राजा होते थे। झोपड़ी में रहते थे। ऐसा ही अम्बरीष, पूरी दुनिया का राजा था लेकिन कोई आसक्ति नहीं थी। यह आसक्ति ही सबसे खतरनाक है। आसक्ति होनी चाहिए संतों में। आसक्ति होनी चाहिए भक्तों में, भगवान् में। संसार में आसक्ति रहेगी तो दुख ही दुख हस्तगत होगा। तो आसक्ति सबसे खतरनाक है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : एक माताजी कहती हैं कि शुरु-शुरु में हम नीम की माला पर जप करते थे, ताकि कोई अपराध न हो जाए तो क्या हमारा वह जप भगवान् तक पहुँचता है ?

उत्तर : भगवान् सब जानते हैं। भगवान् से कोई बात छिपी हुई नहीं है। अब महिलाएँ हैं, चार दिन अशुद्ध रहती हैं तो उस समय नीम की माला पर ही जपना चाहिए और फिर स्नान के बाद ही तुलसी माला पर करें, ऐसा शास्त्र में भी लिखा है। नीम की माला या और किसी लकड़ी की माला से जप कर सकते हैं।

अलौकिकता का प्रतीक : भगवद् नाम

(32)

12 मई 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

यह स्वार्थ का संसार है। प्राणी मात्र का केवल भगवान् ही है। भगवान् ही प्राणी मात्र के रक्षक और पालक हैं। भगवान् का किसी से स्वार्थ नहीं है क्योंकि भगवान् के सभी चर–अचर प्राणी जन्म लेने से उनके पुत्र के समान हैं। माँ–बाप, संतान को निस्वार्थ होकर पालते हैं क्योंकि इन्होंने उनको जन्म दिया है। भविष्य में संतान इनकी माने या न माने परंतु पालन करना इनका धर्म है। बस यही तो माया है। माया का मतलब है जो न अब है, न आगे रहेगी, न पीछे थी। जैसे स्वप्न टूट जाने पर क्या वह दृश्य रहता है? सदा के लिए अदृश्य हो जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् ही अपने हैं अन्य सब माया का विस्तार है। यह समझ में आ जाए तो स्वार्थ की जड़ ही कट जाए। मतलब की जड़ ही कट जाए क्योंकि स्वार्थ माया का ही प्रतीक है। माँ–बाप कैसे खुश होते हैं कि उनका बेटा अब पाँच साल का हो गया। माँ–बाप को यह पता नहीं कि उनका बेटा मौत की ओर अग्रसर हो रहा है। बस यही तो माया है। जानबूझकर रोज देखते हैं कि धीरे–धीरे मानव, श्मशान की ओर जा रहे हैं और एक दिन उन्हें भी श्मशान में जाना पड़ेगा, लेकिन सोच रहा है कि वह तो अमर ही रहेंगे। यही अज्ञान, माया का रूप है। इस माया बंधन से छूटने का एक ही उपाय है, एक ही, केवल, हरिनाम

जप और कीर्तन। इससे माया दूर हो जाती है और ज्ञान का पर्दा खुल जाता है। हरि का नाम तो तीनों युगों में ही है परंतु कलियुग में विशेष रूप से प्रभावशाली होता है। कहते हैं :

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम से ही कलियुग में उद्धार हो जाता है, हरिनाम करो। इसी से उद्धार हो जाएगा। केवल हरिनाम। कहीं भी बैठकर कर सकते हो।

f'k'k g xkj gfj e vkfn tUe dk rEgkjk
luk g n;k dk r g HkkMkjk
tk fut de l gkrk rju dk lgkjkA
rk fQj D;k <<rk lgkjk rEgkjkAA
bl ikej dh utjk e tc re vk,A
mlh {k.k e rju dk gk x;k lgkjkAA
bl n[kh nfu;k dh fourh luk ej ckiA
vj! vfu#) nkl f'k'k g l;kjk rEgkjkAA
f'k'k g xkj gfj e vkfn tUe dk rEgkjkA
luk g n;k dk r g HkkMkjkAA

श्री चैतन्य महाप्रभुजी के प्राकट्य को लगभग 532 साल हुए हैं। श्री चैतन्य महाप्रभुजी के जैसा दया का अवतार न अभी तक हुआ है न कभी भविष्य काल में होने की संभावना है। वैसे तो भगवान् दयानिधि कहलाते ही हैं, लेकिन चैतन्य महाप्रभुजी का दयानिधि अवतार सबसे विशेष रूप से है क्योंकि उन्होंने अपना नाम स्वयं जप कर मानव जाति का उद्धार किया है। इनको अपना नाम जपने की क्या आवश्यकता थी? इसलिए थी क्योंकि इस दुख सागर में मानव कितना दुख भोग रहा है, अब तो इसे इस दुख सागर से सुख सागर

के किनारे पर लाना चाहिए। अतः उन्होंने, सभी मानव जाति को बोला है, "जो लखपति होगा मैं उसके घर पर जाकर प्रसाद पाऊँगा।" चैतन्य महाप्रभुजी कौन हैं? साक्षात् कृष्ण अवतार हैं। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जो लखपति नहीं है, मैं उस के घर पर नहीं जाऊँगा और उससे बात भी नहीं करूँगा एवं प्रसाद भी नहीं लूँगा।" तो सभी असमंजस में पड़ गए कि हमारे पास लाख तो क्या, दो रुपये भी नहीं हैं। लाख तो उनके पास पूरे जीवन में भी नहीं होगा। अतः वे तो चैतन्य महाप्रभुजी से वंचित ही रहेंगे। जब महाप्रभु अपनी माला पर हरिनाम कर रहे थे, तब सभी उनके चरणों में बैठ गए। महाप्रभुजी ने पूछा, "आप क्यों आए हो? कुछ पूछना है?" तो आने वाले बोले, "हम तो इस जन्म में लखपति नहीं हो सकते, अतः आपके संग से वंचित ही रहेंगे।" तब महाप्रभुजी ने बोला, "लखपति पैसे से नहीं होता, भगवद् नाम से होता है। पैसा तो किसी के पास रुकता ही नहीं है। आज मेरे पास है, कल दूसरे के पास चला जाएगा, लेकिन भगवद् नाम ऐसा है जिसको कोई चोर नहीं चुरा सकता, न कभी कम होता है। जितना खर्च होता है, उतना ही बढ़ता रहता है। पैसा तो माया का प्रतीक है और भगवद् नाम अलौकिकता का प्रतीक है। अतः मैं तुमको यह अमर बूटी दे रहा हूँ, उसे तुम अपनाकर अमर बन जाओ। तुमको नित्य ही एक लाख नाम करना है अर्थात् 64 माला, वृन्दा माँ की शरण में हो कर, माला से करना है। माला, तुलसी मणियों की होनी चाहिए अन्य किसी काष्ठ माला से भगवद् नाम नहीं हो सकता। जब तुम रोज 64 माला जपोगे, चाहे तुम्हारा मन लगे या न लगे तो तुम इस दुख सागर संसार से निश्चित रूप से तर जाओगे। तुम देख नहीं रहे हो कि मैं स्वयं भी 64 माला नित्य कर रहा हूँ। समय होने पर इससे भी अधिक करता रहता हूँ।" सब ने पूछा, "हमने सुना है कि जब अट्ठाइसवें द्वापर का अंत होता है और कलियुग की संध्या शुरू होती है, तब आप अवतार लेते हो। ऐसा क्यों करते हैं? आपको तो शीघ्र अवतार लेना चाहिए। आप इतनी देर से अवतार क्यों लेते हैं?"

तब महाप्रभुजी बोले, "मैं स्वयं कृष्ण ही हूँ, लेकिन मैंने जब कृष्ण अवतार लिया था तब दुष्टों का संहार सुदर्शन चक्र से किया था। अब इस अवतार में, जो अंदरूनी (आंतरिक) शत्रु हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष इत्यादि भगवद् नाम की दावाग्नि में जल मरेंगे। अब मुझे सुदर्शन चक्र की जरूरत नहीं पड़ेगी। केवल भगवद् नाम ही सुदर्शन चक्र का काम करेगा। मेरे कृष्ण के अवतार में तो मैंने सुदर्शन चक्र से दुष्टों को मारा था तो उनकी मुक्ति हो जाती थी। जैसे समुद्र का जल भाप से बने बादलों के माध्यम से बरस कर वापिस समुद्र में आ जाता है उसी प्रकार मुक्ति का मतलब है कि जो बूँद किनारे पर बाहर थी अब वह बूँद समुद्र में मिल गई। इसका अस्तित्व अलग नहीं रहा। परंतु अब मैं चैतन्य महाप्रभु का अवतार लेकर, मानव मात्र को भक्ति देकर समुद्र में मिलाना नहीं चाहता, इसकी सेवा लेकर आनंद भोग करना चाहता हूँ। अतः मैंने यह अवतार लिया है।"

तो मुक्त मानव वैकुण्ठ में या गोलोक धाम में नहीं जाता, लेकिन भक्त मानव का शरीर अलग रहता है। अतः भगवान् से सम्बन्ध बनाकर भगवान् और भक्त दोनों मिलकर आनंद का अनुभव करते रहते हैं। मान लो कि पानी भरकर कोई बर्तन रख दिया कुछ समय बाद आप देखोगे कि बर्तन का पानी कम हो गया। क्यों कम हो गया? पानी भाप बनकर आकाश में उड़ गया। इसी प्रकार सूर्य भगवान् अपने किरणों रूपी हाथों से समुद्र का पानी आकाश में ले जाते हैं और वह बादल बन जाता है। बादल कौन बनाता है? बादल सूर्य भगवान् ही बनाते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा हुआ है। जैसे राजा, महाराजा प्रजा से कर वसूल करते रहते थे। जब अकाल पड़ जाता है तो उसी पैसे को किसी भी रूप में प्रजा में बाँट देते थे। इसी प्रकार सूर्य भगवान्, समुद्र से जल को कर के रूप में आकाश में स्थिर करके इसे फिर जल रूप में प्रजा में बरसा देते हैं अर्थात् बरसात रूप में बाँट देते हैं। लेकिन यह जल रूपी कर सूर्य भगवान् नहीं बाँटते। यह अधिकार स्वर्ग के राजा, इंद्र को सौंप रखा है। वही

बादलों को आदेश देकर प्रजा को बरसात के रूप में बाँटा करता है। सब के अधिकार अलग–अलग होते हैं।

जब कृष्ण ने गिरिराज की पूजा की, तब इंद्र को गुस्सा आया कि कृष्ण ने उसकी पूजा बंद करवा दी तो इंद्र ने बादलों को आदेश दिया कि, "तुम वृंदावन जाकर जल बरसा कर उन्हें परेशान कर दो।" लेकिन कृष्ण ने सात साल की उम्र में सात दिन तक, गिरिराज पर्वत को अपनी तर्जनी उंगली पर धारण किया, तब इंद्र की आँख खुली और कृष्ण के चरणों में पड़ कर माफी माँगी। तो भगवान् को पहचानना बहुत ही मुश्किल है। इंद्र ही नहीं पहचान सका तो साधारण मानव क्या पहचानेगा। भगवान् की सब लीलाएँ तो खेल खिलौने जैसी हैं।

24 अवतारों में भगवान् ने अलग अलग लीलाएँ की हैं जिनको मानव सुन–सुनकर, अपना जीवन सफल करता रहता है। वैसे तो प्रत्येक मन्वंतर में भगवान् एक बार अवतार लेते ही हैं, लेकिन इनमें भगवान् का अंश थोड़ा ही होता है। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु अवतार लेते हैं। एक मनु के काल को मन्वंतर बोला जाता है। ब्रह्माजी की हजार चौकड़ी (चतुर्युगी) का एक दिन होता है, जिसे कल्प कहते हैं। मानव जन्म कई कल्पों के बाद मिलता है। अतः शास्त्र कहते हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ है, इसे बेकार कामों में मत लगाओ। यही तो माया का कारागार है। माया, मानव को दुख देती रहती है क्योंकि मानव शास्त्र के विरुद्ध चलता रहता है और शास्त्र, मानव को सुखी रास्ता बताने हेतु ही भगवान् की साँस से प्रकट हुआ है। परंतु मानव शास्त्र को मानता ही नहीं है अपने मनगढ़ंत मार्ग पर चलता रहता है, तो माया इसे तरह–तरह के दुख देती रहती है। बाद में दंड के लिए 28 नर्क बनाए हैं वहाँ यातनाएँ दी जाती हैं। वैसे तो अनंत नर्क हैं, खास 28 नरक हैं। इसमें चरम सीमा की यातनाएँ जीव को भोगनी पड़ती हैं। सभी प्राणी भगवान् के बेटे हैं। पिता होने के नाते भगवान्, सबको अपने पास बुलाना चाहता है लेकिन प्राणी भगवान् के पास जाना ही नहीं चाहता। क्यों नहीं जाना चाहता?

क्योंकि प्राणी जिस योनि में होता है, उसी में आनंद का अनुभव करता रहता है। यही तो माया है। वैसे किसी योनि में आनंद नहीं है, फिर भी मायावश इसमें आनंद मानता है, यही अज्ञान है।

एक बार नारदजी वैकुण्ठ में भगवान् के पास गए। भगवान् ने पूछा, "नारद! तुम तो सभी ओर जाते रहते हो। संसार का क्या हाल है?" तो नारदजी ने भगवान् से बोला, "भगवन्! संसार में कोई सुखी नहीं है। सभी अनंत काल से दुखी रहते हैं। आपके तो सब पुत्र समान हैं। आपको इन पर दया करनी चाहिए।"

तब भगवान् बोले, "दया तो मैं बहुत करता हूँ, परंतु जीव मेरे पास आना ही नहीं चाहता।" नारदजी बोले, "वैकुण्ठ में कौन नहीं आना चाहेगा? सब आने को तैयार हैं।" तो भगवान् बोले, "जाओ, जो वैकुण्ठ में आना चाहे उसे जाकर ले आओ।" नारद बोले, "अभी जाता हूँ। मैं लेकर आता हूँ।"

यह बोलकर नारद मृत्युलोक में आ गए। एक सत्तर, अस्सी साल का बूढ़ा, खटिया में पड़ा हुआ, खस–खस कर रहा था। तो नारदजी भी उसके पास ही बैठ गए और बोले, "बाबा शरीर से बहुत दुखी हो।" बाबा बोला, "बुढ़ापा तो सब को दुखी करता ही रहता है। बुढ़ापे में न तो कोई बेटा पूछता है, न बहू पूछती है, न पोता पूछता है। पानी तक पीने को भी तरसता ही रहता हूँ। खाना पीना तो बहुत दूर की बात है।" बाबा ने पूछा, "नारदजी! आपका दर्शन होने से मुझे बहुत सुख मिला है। आप मेरे पास कैसे आए हो?" नारदजी ने बोला, "बाबा! मैं तुम्हें वैकुण्ठ ले जाना चाहता हूँ।" तो बाबा बोला, "वैकुण्ठ तो बहुत सुख का स्थान है। मैं भी जाना चाहता हूँ। आपकी बड़ी कृपा होगी, मैं जाने को तैयार हूँ।" नारदजी बोले, "तो चलो, मैं तुम्हारे लिए अभी साधन लाता हूँ।" बाबा बोला, "अभी नहीं, आप अगली बार आना। मैं अपनी पोती की शादी देखना चाहता हूँ। अभी तो मैं नहीं जाना चाहता।" नारदजी अचरज में पड़ गए कि भगवान् ने कहा था कि कोई नहीं आना चाहता तो सामने प्रत्यक्ष में देख लिया। अब वह

भगवान् को क्या जवाब देंगे? लेकिन अब वह कहीं और जाकर किसी से पूछते हैं। सूअर सबसे गंदा होता है, नालियों के पानी पीता रहता है, भोजन भी विष्ठा खाता है, शायद वह वैकुण्ठ जाने को जरूर तैयार हो जाएगा।

नारदजी, एक रोगी सूअर, जो बुढ़ापे में अग्रसर हो रहा था, उसके पास बैठ गए। नारदजी ने पूछा, "सूअर! क्या हाल है?" सूअर कहने लगा कि, "मैं बहुत दुखी हूँ। चलना फिरना तो होता नहीं। भूख से प्राण निकल रहे हैं। पड़ा–पड़ा दिन गिन रहा हूँ। नाली में जो कुछ बह कर आता है, वही खा लेता हूँ। अब कब मौत आए और मैं इस दुख से छूट जाऊँ।" नारदजी बोले, "अरे! मैं तुझे वैकुण्ठ ले जा सकता हूँ।" सूअर बोला, "मैंने भी सुना है कि वैकुण्ठ तो बहुत सुखों का घर है। मैं चलने को तैयार हूँ।" नारदजी बोले, "तो चलो।" तो सूअर बोला, "क्या मेरा भोजन विष्ठा, वहाँ मिलेगा?" नारदजी बोले, "अरे दुष्ट! क्या कहता है? नारदजी चुप रह गए कि वास्तव में कोई भी वैकुण्ठ नहीं जाना चाहता। भगवान् ने सच ही बोला था कि उनके पास कोई नहीं आना चाहता। उन्होंने भगवान् की बात नहीं मानी और प्रत्यक्ष में देख भी लिया। अब वह भगवान् को क्या उत्तर देंगे? डरते डरते वह भगवान् के पास वैकुण्ठ में गए। भगवान् ने पूछा, "हे नारद! अनमने होकर कैसे बैठे हो? क्या बात है?" अब नारदजी क्या उत्तर देते? भगवान् ने पूछा, "क्या किसी को ले आए हो?" नारदजी बोले, "मैंने आपका कहना नहीं माना, इसी का दुख भोग रहा हूँ।" भगवान् बोले, "नारद! मेरी माया सभी जगह भ्रमण कर रही है, सब ओर अंधकार है।"

ध्यान से सुनिए! जो भक्त अपना सुख चाहे, वह भक्ति की छाया में रहे और जो अन्यों का सुख चाहे वह सर्वोत्तम भक्ति का प्रतीक है। इस प्रकार प्रह्लाद ने भगवान् से बोला, "सब का दुख मुझे ही दे दीजिए। मैं किसी का दुख नहीं देख सकता।" गोपियाँ, भगवान् के सुख के हेतु ही अपना जीवन धारण करती थीं तो भगवान् ने बोला, "हे गोपियो! मैं सदा ही तुम्हारा ऋणी रहूँगा। मैं तुम्हारा ऋण कभी किसी भी जन्म में, नहीं चुका सकता।"

जो अपना सुख चाहता है, उसमें मानवता का अंश नहीं है, वह तो पूरा ही मतलबी है, वह किस का भला कर सकता है? जिंदगी भर रोएगा तथा रोता हुआ ही इस संसार से चला जाएगा। भक्ष्य–अभक्ष्य खाता है तो पहले अनंतकाल तक नर्क भोगेगा और नर्क के बाद 84 लाख योनियों में दुख पाता रहेगा। भगवत्कृपा से कई कल्पों में जाकर मनुष्य जन्म मिल सकेगा। फिर भी मानव जन्म पाकर भी गलत रास्ते पर ही जाकर, अपना जीवन काटता रहेगा। बस यही तो माया है। यह माया का जंजाल है। मकड़ी अपने ही मुख से जाला निकालती है और उसी में फँस जाती है और उसी में मर जाती है। यही हाल मानव का है। क्षणभर के आनंद के लिए पूरा जाल बिछा लेता है और पूरी उम्र, उसी सेवा में फँसकर, दुनिया से कूच कर जाता है। कितना अज्ञान है। कितनी मूर्खता है। यही तो भगवान् की माया है, नहीं तो भगवान् की सृष्टि का विस्तार कैसे हो? जब किसी सच्चे संत का समागम उपलब्ध हो जाता है, तो उसका मानव जन्म सार्थक हो जाता है। यह अवसर भी भगवान् की कृपा के बिना उपलब्ध नहीं हो सकता। सच्चा संत वही है जिसकी संसार में आसक्ति नहीं है। संसार से वैराग्यवान हो, भगवान् व संत सेवा के अलावा कुछ नहीं चाहता हो।

यह पैसा ही सर्वशक्तिमान माया है। पैसे से इसका वैराग्य हो, ऐसा ही सच्चा संत का लक्षण है। कैसे कोई संत को पहचान सकता है? उसकी पहचान है कि उसके पास बैठने से शांति महसूस हो, उठने का मन न करे वह सच्चा संत है। संत के पास बैठने वाले पर उसकी वाइब्रेशन पड़ती हैं, वह एक आनंद का अनुभव करता है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह कपटी संत है। कपटी संत के पास बैठने से बार–बार घर की याद आने लगेगी और उठ जाने को मन करेगा। लेकिन सभ्यता के नाते उठ नहीं सकते। तो वह दोबारा, उस संत के पास ही नहीं जाएगा। कलिकाल में ऐसे कपटी संतों की भरमार है जो सभी देख भी रहे हो। शुभ अवस्था केवल हरिनाम से प्रकट होगी। हरिनाम स्वयं भगवान् है। हरिनाम ही सच्चे संत को मिला सकेगा लेकिन यदि हरिनाम जापक, केवल यही चाहे कि हरिनाम में मेरी रुचि बन जाए। भगवान् मुझे कब दर्शन देंगे? यह लालसा जब

जागृत होगी, तब समझना होगा कि हरिनाम ठीक तौर से हो रहा है, वरना तो भार रूप में हो रहा है। भार रूप में होना भी लाभप्रद ही है। समय लगेगा, नैया तो पार हो ही जाएगी।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "हे उद्धव! यह मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। जब यह संसार में आसक्त हो जाता है तो जीव के बंधन का कारण बन जाता है और जब संत और भगवान् में आसक्त हो जाता है तो मोक्ष का कारण बन जाता है। अतः मन ही सब कुछ है।"

मैंने जो भक्त के स्वभाव और आचरण बताए थे, उसके अनुसार स्वभाव को ठीक करो तो भक्त के उद्धार होने में देर होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। जो मैंने पहले सात तरह के स्वभाव बता रखे हैं। बार–बार बोल रहा हूँ कि भक्तों के हृदयगम्य हो जाएँ। इसलिए बार बार बोलना पड़ता है कि इन्हें सुनकर भक्त विचार करेगा कि मेरा अमुक स्वभाव बिगड़ा हुआ है तो अपने स्वभाव को सुधारने की कोशिश करेगा। धीरे–धीरे ही स्वभाव सुधर सकेगा। जल्दी में कोई काम फलीभूत नहीं होता, बिगड़ जाता है। अपना स्वभाव अगर बिगड़ा हुआ है और वह दिखता ही नहीं है तो स्वभाव सुधर नहीं सकता। जब भक्त अपने स्वभाव को देखेगा कि यह ठीक नहीं, गंदा है, तो उसे सुधारने की कोशिश करेगा। कहावत है :

èkhj&èkhj j euk] èkhj lc dN gk;A
ekyh lhp lk ?kMk] _r vk, Qy gk;AA

(कबीरदास जी)

जब समय आएगा, तब ही फल प्राप्त होगा। जल्दी करने से कुछ होने वाला नहीं है। माँ–बाप अपने शिशु को एल.के.जी., यू.के. जी. में भर्ती करवा देते हैं और यदि माँ–बाप सोचे कि बच्चा अभी ही पी–एच.डी. पास कर ले, तो कितनी बड़ी मूर्खता है। समय पर ही कुछ हस्तगत होगा। भक्तों के लिए भगवान् प्राप्ति के निमित्त सर्व आत्मा श्रीहरि के प्रति की हुई सेवा के समान कोई भी मंगल मार्ग

नहीं है। संग और आसक्ति ही इसका खास कारण है। जब संग और आसक्ति, संतों के प्रति बन जाती है तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है और जब आसक्ति, संसार के प्रति बन जाती है, तो यही बंधन का हेतु बन जाता है और जन्म मरण के चक्कर में फँस जाता है। भगवान् कहते हैं, "जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियों के अकारण हेतु, किसी के प्रति भी शत्रु भाव न रखने वाले, शांत, सरल स्वभाव, सबका सम्मान करने वाले होते हैं, और मुझ से अनन्य भाव से प्रेम करते हैं, मेरे लिए ही संपूर्ण कर्म, यहाँ तक कि अपने सम्बन्धियों का भी त्याग कर देते हैं, मेरे परायण हो कर, मेरी कथाओं का श्रवण करते रहते हैं तथा मुझ में ही चित्त लगाए रहते हैं जैसे गोपियाँ, हर क्षण मुझे याद करती रहती थीं। ऐसे स्वभाव वालों को, मैं एक क्षण भी छोड़ नहीं सकता क्योंकि वह भी मुझे एक क्षण को भी छोड़ने को तैयार नहीं। ऐसे भक्त को यह संसार के ताप कोई कष्ट नहीं दे सकते। जिनका मैं ही प्रिय हूँ, आत्मा हूँ, उनका मित्र, गुरु, सुहृद और इष्टदेव हूँ। मेरे आश्रय में रहने वाले भक्त, सीधे मेरे वैकुण्ठ धाम में चले जाते हैं। उन्हें मेरा कालचक्र रत्ती भर भी बाधा नहीं दे सकता। मेरी दुष्कर माया भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती तथा हर समय इसकी सहायता करती रहती है। मेरी माया उन पर ही धाक जमाती है जो भगवान् से दूर रहते हैं, संसार में फँसे रहते हैं।" संसार में मनुष्य के लिए सबसे बड़ा कल्याण का साधन है कि उनका चित्त भक्ति द्वारा स्थिर हो जाए। यह भक्ति ही, कलियुगी जीवों के लिए एकमात्र साधन है। यदि एक लाख अर्थात् 64 माला नित्य करता है, तो अन्य कोई भी साधन करने की आवश्यकता नहीं है। इसी से, इसी जन्म में ही, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की उपलब्धि हो जाएगी। अंत में भगवान् स्वयं आकर ऐसे भक्त को विमान में बिठाकर वैकुण्ठ धाम में ले जाएँगे। वहाँ पहुँच कर भक्त का भव्य स्वागत होगा। वहाँ के सभीजन उससे असीम प्रेम करेंगे। वहाँ पर सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाएँगी।

Ñr ;qx =srk }kij iwtk e[k v# tksxA
tks xfr gksb lks dfy gfj uke rs ikcfga ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

इसलिए हरिनाम करो !

ftUg dj uke ysr tx ekghaA ldy vexy ewy ulkghaAA

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

सकल अमंगल मूल नसाहीं....अरे! दुखों की जड़ ही खत्म हो जाएगी। सुख ही सुख का साम्राज्य फैल जाएगा। जब दुख की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा?

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध में लिखा है कि मकड़ी अपने मुख से जाला फैलाकर, उसी में फँस जाती है। ध्यान से सुनिए! इसी प्रकार से मानव, क्षण मात्र के सुख के लिए, माया का जाल फैला कर, उसमें ही फँस जाता है। प्रत्यक्ष देख रहे हो, कहने की क्या जरूरत है? प्रथम में शादी करता है, फिर संतानें करता है, अपना सारा पाप की कमाई का धन, संतानों के लिए पढ़ाई में, शादी में और भात भरने में खर्च करता रहता है। अरे! पाप की कमाई का धन तो निश्चय ही दुख देगा। दुखी रहेगा, कोई सुख नहीं पायेगा। यह दुख देगा। उसने पाप की कमाई लगाई है। पाप की कमाई का उसे ही भोग भोगना पड़ेगा। इस झमेले के कारण वह अपने खास ध्येय भगवद् प्राप्ति को भूल जाता है और अंत में मरकर नर्क में जाता है। वहाँ से आकर 80 लाख योनियों में, सर्दी, गर्मी, बरसात में आक्रांत होकर सारा जीवन व्यर्थ में ही व्यतीत कर देता है।

अच्छा! 80 लाख योनियाँ कौन सी हैं? 30 लाख तो पेड़ पौधे हैं, तो इन 30 लाख तरह के पेड़ पौधों में जन्म लेना पड़ेगा और सब कुछ बनना पड़ेगा तो कई युग तो पेड़ पौधों में ही लग जाएँगे। 20 लाख, आकाश में उड़ने वाले जानवर हैं, अब उनमें भी एक–एक में जन्म

लेना पड़ेगा। कमेरी, कबूतर, पपीहा, कौआ बनना पड़ेगा। उसमें भी कई युग बीत जाएँगे। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, श्रीमद्भागवत कह रही है। फिर 20 लाख जलचर हैं। जलचरों की आयु बहुत लंबी है। जो बड़ी–बड़ी व्हेल मछलियाँ हैं, उनकी 50 हजार साल की आयु है। कछुए की 10 हजार साल की आयु है तो इसमें ही कई युग बीत जाएँगे। अब बताओ? और 10 हजार चार पैर वाले, चौपाये हैं। वह पृथ्वी पर घूमते हैं उनमें भी जन्म लेना पड़ेगा। कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस, हाथी बनना पड़ेगा, सब कुछ बनना पड़ेगा और चार लाख मनुष्य नहीं, चार लाख जातियाँ हैं। उनमें सब कुछ बनना पड़ेगा। कंजर, भंगी बनना पड़ेगा, ब्राह्मण, राजपूत, बनिया बनना पड़ेगा। जंगली जातियों में भी जन्म लेना पड़ेगा। अब आप सोचिए कि इतने युगों तक तो यूँ ही भटकता रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य अपना जीवन बिता देता है। अरे! यह मनुष्य जन्म किस लिए मिला है? अब भी आँखें खोल लो। मनुष्य जन्म मिलने वाला नहीं है। भगवान् की बड़ी कृपा होगी, तभी मिल सकेगा। वह भी कृपा तब होगी जब किसी संत की सेवा, सहायता हो जाएगी, क्योंकि संत भगवान् का प्यारा बेटा है। तो संत की कृपा से ही तुम को मनुष्य जन्म मिल सकेगा। तो ऐसा अवसर तुमको कहाँ मिलेगा? बड़ा मुश्किल है, ऐसा अवसर मिलना। इसलिए अपने जीवन को भगवान् से प्यार में लगाओ। हरिनाम करो। हरिनाम से तुम्हारा उद्धार होगा।

इसी प्रकार जन्म से मरण तक का चक्कर, इसके पीछे लगा ही रहता है, तो जीवन का क्या मूल्य है? आदि से अंत तक दुख ही दुख भोग करता रहता है, यही मूल्य है। दुख के सिवा सुख नहीं है। यह दुख है सुख की केवल छाया दिख रही है। एक काम किया उसमें थोड़ा सुख मिला और फिर दूसरी बार में दुख आ गया। यह तो आता रहता है, तो क्या सुख मिला? सोचता है, "अरे! कार खरीद लूँगा और बड़े आनंद से सैर करूँगा।" उसने कार खरीदी और लेकर जंगल की तरफ चला गया। बीहड़ जंगल, जहाँ हिंसक पशु रहते हैं।

अब शाम हो गई। कार खराब हो गई। अब खड़ा–खड़ा रो रहा है। "अब क्या करूँ? अब तो रात को मुझे कोई जानवर खा जाएगा। यहाँ शेर है, बगीरा है, बाघ है। मैं रात भर क्या करूँगा अब? हे भगवान्! मेरी रक्षा करो।" अब भगवान् को याद करता है। भगवान् तो बहुत कृपालु हैं। भगवान् को याद किया तो एक ट्रक, जो लकड़ियों का भरा हुआ था, उसको रोका। ट्रक वाले को बोला, "अरे भैया! मेरी इस गाड़ी को ले चलो, मेरी गाड़ी खराब हो गई है। मैं रात को क्या करूँगा?" ट्रक वाले ने कहा, "नहीं मेरे पास समय नहीं है।" फिर से ट्रक वाले को बोला, "अरे भैया! जो पैसा लोगे, मैं दूँगा।" ट्रक वाला बोला, "मैं दो हजार रुपए लूँगा।" तो बोलता है, "मैं तीन दे दूँगा। ठीक है!" गाड़ी को रस्सी से ट्रक के साथ बाँध के ले आए। सुख मिला? क्या कार में सुख मिला? दुख ही दुख है, चारों तरफ। इसलिए कोई सुख नहीं है। यही है माया। यह भगवान् की माया है। भगवान् की दुष्कर माया से चारों तरफ दसों दिशाओं में अंधकार ही अंधकार फैला हुआ है। जहाँ ऐसा हो वहाँ भला सुख हो सकता है? मानव जीवन सुख के लिए मिला था जो व्यर्थ में गवाँ दिया। जिससे जीव को सच्चा मार्ग उपलब्ध हो जाता है, इसी को सत्संग बोला जाता है। यही मेरे ठाकुरजी ने बोला है, "तुम रोज सत्संग करो। इससे सबका भला होगा।" इसीलिए मैं उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। तभी बोला है।

rcfg gkb lc llkjh ekg HkxkA
tc cg dky dfjv lrlxkAA

बहुत काल तक सत्संग होगा तभी संसार का मोह भंग होगा। तभी तो मन बदलेगा। दो मिनट में मन नहीं बदलता है, काफी दिनों तक सत्संग करना पड़ता है। इसलिए मैं जो बोलता हूँ, उसे सब को सुनना चाहिए। मैं तो कुछ नहीं चाहता। मैं तो भगवान् की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, तभी तो संसार से मोह–ममता, आसक्ति दूर हो सकेगी। भगवान् श्रीमद्भागवत में बोलते हैं कि, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और किसी दूसरे साधन से नहीं मिलता हूँ।"

कलियुग का सहारा : केवल हरिनाम

33

19 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मैं आपको बता रहा हूँ कि इस कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। बस स्वभाव को ठीक करना है। सात स्वभाव जिसके ठीक होंगे, उनको भगवान्, दर्शन दिए बिना रह नहीं सकते।

सभी भक्तों की एक समस्या है कि हमारा मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। एक पल नहीं टिकता। टिकेगा कैसे? कोई सहारा ही नहीं। सहारे के बिना तो संसार का काम चल ही नहीं सकता। सबको सहारा चाहिए। पृथ्वी को भी सहारे की जरूरत थी, अतः शेषनागजी ने अपने फनों पर पृथ्वी को रखा हुआ है। शेषनागजी को पृथ्वी का बोझ ऐसे महसूस हो रहा है, जैसे एक सरसों का दाना सिर पर रखा हो। शेषनागजी भी अपने हजारों मुखों से भगवद् नाम लेते रहते हैं क्योंकि भगवद् नाम लिए बिना मन को शांति मिल ही नहीं सकती। हरिनाम की बड़ी कीमत है। जैसे प्राणीमात्र साँस के बिना एक पल भी नहीं रह सकता, ऐसे ही हरि का नाम भी साँस का प्रतीक है। हरिनाम के बिना जीव मात्र जीवित रह ही नहीं सकता। अतः कलियुग में हरिनाम का ही सहारा है जिसके अभाव में जीव मात्र को किसी प्रकार की सुख शांति मिल ही नहीं सकती। शिवजी भी हरिनाम के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। तो भक्तगण को

चाहिए कि नित्य ही हरिनाम जप का सहारा लें ताकि जीवन सुखमय व्यतीत हो सके। आसमान के तारे भी एक दूसरे के आकर्षण के सहारे ही एक जगह पर रहते हैं। देश भी आपस में एक दूसरे के सहारे अमेरिका, रशिया, यूरोप, एशिया आपस में सहारे से ही टिके हुए हैं। अनंत कोटि ब्रह्मांड भी एक दूसरे के आकर्षण के सहारे से टिके हुए हैं। यह हुई उच्च कोटि की वार्ता। अब निम्न कोटि की वार्ता भी सुनने के योग्य है। मानव को सभी जातियों का अर्थात् सभी कर्मकांडियों का सहारा लेना पड़ता है। जैसे बढई हमें फर्नीचर बना कर देते हैं, कुम्हार हमें मिट्टी के घड़े आदि देते हैं। जिसका जो भी कर्म है, उससे प्रत्येक मानव जाति को सहारा लेना ही पड़ता है। कंपनी हमें कपड़ा बनाकर देती है, किसान हमें खाद्य पदार्थ देते हैं आदि–आदि। इसी तरह सहारा लेना पड़ता है। शिशु को माँ–बाप का सहारा है। पढ़ने वाले को अध्यापक का सहारा लेना पड़ता है। आध्यात्मिक गुरु हमें धर्म मार्ग पर चलाते हैं अर्थात् बिना सहारे के संसार का काम चल ही नहीं सकता तो मन को भी तो सहारा चाहिए। यह बड़े महत्व की चर्चा का प्रसंग है कि मन बिना सहारे के कैसे रह सकता है? किसी न किसी का सहारा चाहिए। मन को चाहिए साधु संत का सहारा। गुरुदेव का सहारा। धर्मशास्त्र का सहारा। मंदिर का सहारा आदि–आदि। बहुत विस्तार है। अतः समझने के लिए संक्षेप में ही कहना उचित रहेगा।

जब हरिनाम करने बैठे तो हृदय की आँख से गुरुचरण देखते हुए हरिनाम जपना चाहिए। जब हरिनाम करने बैठे हैं जैसे हृदय की आँख है, अंदर में, हृदय में भी आँख, नाक, कान सब कुछ होता है। उसकी आँख से गुरुचरण देखते हुए हरिनाम जपना चाहिए। इससे मन को भी सहारा मिल गया। मन की आँखों से भगवद् चरण का चिंतन करना चाहिए। मन की आँखों से हम अमेरिका चले जाते हैं। कहने का मतलब यह है कि हमें संसार याद नहीं आए। जब हरिनाम करने बैठे हैं तो भगवद् सम्बन्धी लीलाएँ ही हमारे मन में आएँ तो इससे हमारा मन निर्मल हो जाएगा और मन को सहारा मिल गया

तो मन कहाँ जाएगा? 'चेतो दर्पण मार्जनम्' चित्त के दर्पण का मार्जन हो जाता है।

साधकों का एक बहुत बड़ा प्रश्न होता है कि हमारा मन स्थिर नहीं होता। मन में एकाग्रता नहीं आती। इसका भी सरल से सरल हल हो सकता है। कहावत है :

tSlk vUu oSlk euA tSlk ikuh oSlh ok.khA

इससे मन स्थिर हो जाएगा। भक्तगण करके देखें। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। एक तो शुद्ध कमाई का अन्न हो तथा भोजन भी सात्विक होना चाहिए। सात्विक भोजन का मतलब है जिसका भगवान् को भोग लगा हो। कम मसाला हो। मिर्च कम, खटाई कम, स्वादमय, तथा अमणिया (भोग) हो।

जब भगवान् को भोग लगाएँ तो कम से कम पाँच मिनट तो पर्दा लगाकर भगवान् को भोग रखो और जो भोग बनाने वाला है, अगर हरिनाम करते हुए भोजन बनाए तो निर्गुण वृत्ति आ जाती है, तो उसको खाने वाले का मन स्थिर हो जाएगा। इसलिए भोजन बनाते समय हरिनाम करते रहना चाहिए।

यह मैं सभी माताओं को बोल रहा हूँ इससे सब को फायदा होगा। भोग लगाते हुए चिंतन करो कि भगवान् अब खा रहे हैं, अब दही खा रहे हैं, अब मीठा खा रहे हैं, अचार खा रहे हैं, ऐसा ध्यान करो कि अब तो खा चुके, अब आचमन कर रहे हैं। तब यह प्रसाद 100% भगवान् का ही खाया हुआ हो जाएगा। ऐसा एक दिन में तो नहीं होगा, एक माह करके देखो। भगवान् अवश्य ही खाते हुए नजर आएँगे। मानो, चार चपाती रखें तो पर्दा हटा कर देखोगे और दो चपाती गायब हो गई। खीर के प्याले से थोड़ी खीर भी नीचे गिर गई। देखोगे! ऐसा भगवान् भक्त की श्रद्धा बढ़ाने के हेतु ही करते हैं। भगवान् पागल नहीं हैं जो खीर नीचे गिरा देंगे या कहीं गिरा देंगे। यह केवल भक्त को प्यार ही दिखाने हेतु ऐसा करते हैं। भगवान् का चित्रपट ऐसी लीलाएँ करेगा। चित्रपट में अपराध होने का डर नहीं रहता, मूर्ति में डर रहता

है। लेकिन भगवान् किसका भोग खाते हैं? जो 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करता है। उसका भोजन भगवान् आकर खाते हैं। जो एक लाख हरिनाम नहीं करते उसका अर्पित भोग भगवान् नहीं खाते हैं। इसलिए माताओं से प्रार्थना है कि जब आपका भोजन बनाने का काम है तो एक लाख हरिनाम जप कर ही लिया करो तो भगवान् खाएँगे। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है, "जो एक लाख हरिनाम करेगा उसके यहाँ आकर भोजन करुँगा। जो एक लाख हरिनाम नहीं करेगा तो मैं उसके यहाँ, न जाऊँगा, न भोजन करूँगा, न ही उससे बात करूँगा।" चैतन्य महाप्रभुजी स्वयं कृष्ण का अवतार हैं। कलियुग में इस आदेश को कौन मानता है? मंदिरों में पुजारी से कुछ भजन होता नहीं है, तब भगवान् के आदेश की अवहेलना हो जाती है। वहाँ कलि महाराज का शासन हो जाता है।

श्री गुरुदेव चर्चा में फिर से बता रहे हैं कि क्यों हरिनाम में मन नहीं लगता? इसी को खोलकर बता रहे हैं कि जब महाप्रसाद थाली में सामने आए, पत्तल पर आए तो भक्त महाप्रसाद को नमस्कार करें और प्रार्थना करें, चिंतन करें कि इस प्रसाद को मेरे गुरुदेवजी ने पाया है, मेरे ठाकुरजी ने पाया है, अब मैं भी पाऊँगा तो मेरा मन स्थिर हो जाएगा। निर्गुण हो जाएगा और पूर्व जन्म के जो संस्कार हैं, वह जलकर भस्म हो जाएँगे।

इसके बाद दाएँ हाथ में जल लो और प्रसाद की थाली के चारों तरफ चार बार परिक्रमा करो। फिर एक–एक ग्रास के साथ आठ–आठ बार मन में हरिनाम करते रहो। इस प्रकार करने से मन कहीं नहीं जाएगा, मन भगवद् विषय में ही रहेगा। इस प्रकार आप प्रसाद के, 20–25 ग्रास तो पेट भर कर खाएँगे ही। पेट भर जाएगा और चिंतन सात्विक धारा में हो गया। इससे जो भोजन का रस बनेगा, वह निर्गुण बनेगा और इससे संसारी आसक्ति कम होती चली जाएगी और आध्यात्मिक आसक्ति उदय होती जाएगी। यह प्रत्यक्ष करके देखो। तब मन हरिनाम में स्थिर होने लगेगा। लेकिन यह एक दिन में नहीं होगा, एक माह तक करके देखो कि क्या लाभ होता है?

इसके पहले भक्त भोजन को न तो भगवान् को भोग लगाता था, न थाली को नमस्कार करता था। ग्रास खाता था तो मन इधर उधर चला जाता था, कहीं बाजार में गया, कहीं सब्जी मंडी में, कहीं ऑफिस (दफ्तर) में, कभी और कहीं चला गया, संसार में चला जाता था। इसलिए जो भोजन कर रहा था वह तामसिक, राजसिक धारा में ओतप्रोत रहता था। धारा में मन चंचल रहेगा ही। फिर स्थिर होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसमें मन की गलती नहीं है, इसमें स्वयं की गलती है। जैसा अन्न वैसा मन। दूषित अन्न से तो दूषित मन होगा ही। इसमें गलती स्वयं की है। लेकिन जब उक्त प्रकार से भक्त, भगवद् महाप्रसाद का भक्षण करेगा तो पिछले जन्मों के कुसंस्कार जलकर भस्म हो जाएँगे। यही तो बाधा कर रहे हैं, भगवान् के दर्शन में। कहावत है :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

करोड़ों जन्मों के पाप उसी समय जलकर भस्म हो जाएँगे। जैसा गुरुदेव बता रहे हैं, करके देख लो कि क्या लाभ मिलता है?

मन भगवान् में क्यों नहीं लगता? इसका खास कारण है खान–पान तथा संग। जैसा संग होगा वैसा ही रंग चढ़ेगा। भगवान् के मिलने में देर नहीं, लेकिन साधक भगवान् को चाहता ही नहीं है। यह तो अपनी सुख–सुविधा ही चाहता है। मेरे मकान बन जाए, मेरे कार आ जाए, मेरी पोती की नौकरी लग जाए, मेरी फैक्ट्री चल जाए। भगवान् उसकी भी मनोकामना पूरी कर देते हैं लेकिन यह तो लेनदेन का व्यापार हुआ। इसमें भगवान् का क्या दोष है? जो मांगा वह दे दिया। भगवान् से प्यार तो माँगा नहीं था। भगवान् को चाहे तो भगवान् मिल जाएँ। जब साधक भगवान् को चाहता है, तो भगवान् उसे सच्चे संत से मिला देते हैं। खुद नहीं आते, सच्चे संत से मिला देते हैं। सच्चा संत, उसे भगवान् के मिलने का मार्ग बता

देता है जिससे साधक का सुख का विधान बन जाता है। कलियुग में सच्चा संत मिलना बहुत मुश्किल है। फिर भी भगवान् अंतर्यामी हैं, सच्चा संत ढूँढ–ढूँढ कर भगवान् साधक को मिला देते हैं। भगवान् से क्या सुपीरियर (श्रेष्ठ) है। संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। जो चाहो वह मिल ही जाती है, लालसा होनी चाहिए, चाह होनी चाहिए। भगवान् के पास क्या कमी है? भगवान् सर्व समर्थ हैं, सभी उन्हीं का है और सभी में वही विराजते हैं। यह सिर्फ साधक की कमजोरी है। अगर चाहे, तो सफलता उपलब्ध हो ही जाती है। उच्च कोटि के साधक, भगवान् को चिंतन द्वारा, हृदय में रखकर, हर क्षण मस्त रहते हैं तो भगवान् सदा के लिए उनके ऋणी बन जाते हैं। ऐसे संत विरले ही होते हैं जो गोपियों की तरह के स्वभाव से भगवान् के लिए तल्लीन रहते हैं, लेकिन इनका दर्शन, किसी सुकृतिवान को ही हुआ करता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में ऐसे संत अधिक थे। अब कलियुग में तो गिने चुने ही होते हैं। जिनको पहचानना बहुत मुश्किल है। भगवान् जब किसी पर कृपा करते हैं तो वही उनको पहचान सकता है। पास का भले ही नहीं पहचाने, लेकिन दूर का पहचान लेगा।

अरे! कौरवों के घर में भगवान् कृष्ण रहते थे, लेकिन कौरव उन्हें नहीं पहचान सके क्योंकि उन पर भगवान् की कृपा नहीं थी। वे भगवान् के भक्तों अर्थात् पांडवों के प्रति अपराधी थे। भीष्म पितामह ने कौरवों को बार–बार बोला था कि, "श्री कृष्ण स्वयं त्रिलोकीनाथ हैं।" लेकिन अपराध के कारण वे समझ नहीं सके।

भगवान् ने संसार को दो से ही बनाया है, वरना भगवान् की लीला हो ही नहीं सकती। राक्षस और देवता दोनों भाई–भाई हैं, पर भाई होने पर भी लड़ते रहते थे। शुभ और अशुभ, रात और दिन यानि यह संसार दो से ही बना है। धर्म और अधर्म, भक्त और अभक्त, इसी प्रकार, इस जगत् को भगवान् ने, अच्छे–बुरे से ही रचा है, तभी तो भगवान् लीला करते हैं। यदि दो से संसार नहीं बनाते तो उनकी लीलाओं का प्रादुर्भाव हो ही नहीं सकता था।

यह सब भगवान् के खेल खिलौने ही हैं। जैसे शिशु मिट्टी का कुछ बनाता रहता है और उसी समय मिट्टी में ही मिला देता है। इसमें शिशु को आनंद आता है। यही हाल भगवान् का है। खुद ही जगत् को रचता है और खुद ही जगत् को मटियामेट कर देता है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' जीव ही जीव का भोजन है। दोनों में आत्मा रूप से भगवान् विराजमान हैं और दोनों को ही आपस में टकरा कर नष्ट कर देते हैं। यही तो भगवान् की दुष्कर माया है। सब जगह अँधेरा ही अँधेरा है। आँख होते हुए भी कुछ नहीं दिखता। मानव जानता है कि एक दिन यहाँ से मुझे सब कुछ छोड़कर, अकेला ही जाना है, यह जानते हुए भी अनजान बना हुआ है। यही तो भगवान् की माया है। यदि माया न हो तो भगवान् की रचना हो नहीं सकती। भगवान् को भी योगमाया का सहारा लेना पड़ता है, तभी भगवान् कर्म कर सकते हैं। यदि योगमाया का सहारा न लें तो भगवान् कुछ भी नहीं कर सकते। इसी कारण कहा है :

dje çèkku fcLo dfj jk[kkA
tk t l djb lk r l Qy pk[kkAA

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

जैसा करोगे वैसा फल मिलेगा। कोई भी कर्म किए बिना एक क्षण भी रह नहीं सकता। उसके कर्म निरंतर होते ही रहते हैं। मरने के बाद भी जीव को कर्म करवाते रहते हैं। बिना कर्म तो भगवान् भी नहीं रह सकते। कर्म ही भगवान् का प्रतीक है। कोई बोले, "समाधि में कर्म नहीं होता।" तो समाधि में भी कर्म होता है। वहाँ, चिंतन द्वारा कर्म होता रहता है।

हमारे शरीर में चार कोष्ठ होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। चित्त में चिंतन होता ही रहता है, चिंतन के बिना चित्त का अस्तित्व ही नहीं है। अहंकार, मैं और मेरा का प्रतीक है, तू और तेरा का प्रतीक है। जब अहंकार भगवान् के प्रति हो जाए, तब जन्म–मरण रूपी दारुण दुख से पिंडा ही छूट जाए, परंतु अधिकतर यह अहंकार, माया का साथी बन जाता है। दुख पर दुख भोगता रहता है, कभी

इसे सुख की हवा भी नहीं मिलती। जीव जानते हुए भी अनजान बना रहता है। पूरा दिन जुए की ताश खेलते रहते हैं। ऐसा कहते हैं कि जो हारेगा, चाय पिलाएगा। यह समय की बर्बादी करना है। मनुष्य जन्म को मिट्टी में मिलाना है।

प्रत्येक प्राणी तीन धाराओं से प्रेरित रहता है। यह धारा, संग तथा खान–पान से प्रकट होती है। सात्विक धारा, राजसिक धारा और तामसिक धारा। जिस धारा में मन बहता है, मन वैसा ही तन, मन, वचन से कर्म करता है। यह धाराएँ ही करवाती हैं। ध्यान से सुनिए! तामसिक धारा जब बहती है, तो प्राणी मूढ़ता में डूबा रहता है, भक्ष्य–अभक्ष्य खाता है, बेढंगा बोलता है, अज्ञानता में पड़ा रहता है, इसे पागलपन का आवेश रहता है। इस धारा में जो भी कर्म करेगा, उसी प्रकार का रिजल्ट (परिणाम) सामने आएगा। जब किसान बाजरा बोयेगा तब उसे चावल कैसे उपलब्ध होगा? अर्थात् जो बोएगा वही तो फल प्राप्त होगा। अरे! ताश पत्ती खेलकर समय को नष्ट क्यों कर रहे हो? फिर शिकायत करते हैं कि हमारा पुत्र बिल्कुल कहना नहीं मानता, हम तो बहुत दुखी हैं। अरे! पुत्र का इसमें क्या दोष है। दोष तो तुम्हारा है। धर्मशास्त्र आँखें खोल रहा है। आँखें बंद रखोगे तो सुख का रास्ता कैसे उपलब्ध होगा? यह तामस वृत्ति की ही पैदाइश है। बच्चे का क्या दोष है। अब सुनें कि राजसिक वृत्ति, कैसा प्रभाव डालती है? इसको बढ़िया–बढ़िया खाना चाहिए, खूब पैसे होने चाहिएँ। जो कुछ करेगा, पैसों के लिए करेगा। यह आराम के लिए बुरे से बुरा काम करने के लिए तैयार रहेगा, हिचकेगा नहीं। एकदम स्वार्थ में रत रहेगा। अपने माँ–बाप का ही कहना नहीं मानेगा अन्य की तो बात ही क्या है। इसके पास शर्म नाम की तो चीज ही नहीं होगी। लोभी तो इतना होगा कि पैसों के पीछे किसी को मारने में भी नहीं चूकेगा। क्रोध इसके ऊपर हमेशा सवार रहेगा। मीठा बोलना तो उसे आता ही नहीं। परिवार वालों से भी और आसपास वालों से भी सदा झगड़ा करता रहेगा। इससे कोई भी खुश नहीं रहेगा। सभी इसका अनिष्ट सोचते रहेंगे। यह एक तरह का राक्षस ही होगा। अंत में, मर कर नरक भोगेगा। उसके बाद

80 लाख योनियों को भोगेगा। पेड़–पौधों में, पक्षियों में, जलचर जानवरों में, थलचर जानवरों में, इसका जन्ममरण होता ही रहेगा। इसको मनुष्य जन्म, कल्पों तक नहीं मिलेगा।

अब सात्विक धारा का क्या प्रभाव होता है? इसे सुनिए। इसमें अधिकतर देवगुण होते हैं। देवताओं के गुण होते हैं। कम बोलेगा, जितना व्यवहार होगा उतने से ही जीवन बसर कर लेगा। बस, सबका भला चाहेगा। जितना होगा, उतना मन, कर्म, वचन से जीवमात्र की मदद भी करेगा। देवताओं को और धर्मशास्त्र को मानेगा, शुभ शिक्षा भी देगा, स्वयं भी भजन करेगा और अन्य को भी भजन में प्रेरित करता रहेगा। यह किसी प्राणी को दुख नहीं देगा, दुखी प्राणी को देखकर स्वयं दुखी हो जाएगा। इसका स्वभाव निर्मल वृत्ति का होगा। इसका मन परोपकार भाव का होगा। सात्विक भोजन में इसकी रुचि होगी। गरम मसालों में इसकी रुचि कम होगी, संतोषी स्वभाव का होगा। इसमें सात्विकी वृत्ति के साथ निर्गुण वृत्ति भी होगी। झगड़े से बहुत डरेगा, शांत वातावरण चाहेगा। अपने से बड़ों का सम्मान करेगा और साधु–महात्माओं से मेलजोल रखेगा। मठ–मंदिरों में, तीर्थों में जाने की अभिलाषा भी इसमें रहेगी। इसमें ऐसे बहुत से गुण रहते हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते। यह गुण इसमें कहाँ से आए? यह गुण इसमें अपने माँ–बाप से ही आए हैं। माँ–बाप ही बेटे के रूप में जन्म लेते हैं। जैसे जो बोऐंगे सो ही तो आएगा। चावल बोऐंगे तो बाजरा तो नहीं आएगा। जैसा माँ–बाप का स्वभाव होगा, बेटा भी वैसा ही होगा। परंतु हरिनाम से सभी स्वभाव, तामस, राजस तथा सात्विक बदल सकते हैं। एक ही अमर औषधि है जो स्वभाव को बदल देती है, वह है– हरिनाम।

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dksfV v?k ukl fga rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

इस मृत्यु लोक में, पृथ्वी पर, भारतवर्ष, एक अलौकिक स्थान है। यह लौकिक नहीं है, अलौकिक है। इस कारण भगवान् यहाँ पर

प्रत्येक मनु के कार्यकाल में एक बार अवतार लेते हैं। मनु के शासनकाल को मन्वंतर नाम से बोला जाता है। ब्रह्माजी के कार्यकाल में चौदह मनु होते हैं, एक इंद्र होता है और सात ऋषि होते हैं। जब ब्रह्माजी की आयु के सौ साल पूरे होते हैं तो ब्रह्माजी भी शांत हो जाते हैं। इतनी बड़ी ही ब्रह्माजी की रात होती है। इसे कल्प बोला जाता है।

राजा भरत पूरी पृथ्वी के सम्राट थे। भरत, सब कुछ छोड़कर भगवान् की भक्ति में अग्रसर हो गए, फिर भी एक मृग में आसक्ति होने से, भगवान् की भक्ति हृदय से दूर हो गई और अगले जन्म में मृग बन गए। अतः शास्त्र सतर्क कर रहा है कि मन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। इस मन ने शिवजी तक को नीचे गिरा दिया था, जब भगवान् ने मोहिनी रूप धारण किया था। इस मन का एक क्षण भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

धर्मलेख में पढ़ने को मिला है कि एक मानव ने एक ब्रह्मराक्षस को पाल लिया। ब्रह्मराक्षस इस मानव के आदेश का पालन करने लगा। ब्रह्मराक्षस किसी भी काम को करने में एक क्षण लगाता था और फिर पूछता था कि कोई काम बताओ। तो मानव के पास कोई काम नहीं रहता था। वह परेशान हो गया, "इसे मैं क्या काम बताऊँ?" ब्रह्मराक्षस ने बोला, "तुमने मुझे पाला है और अगर तुमने मुझे काम नहीं बताया तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा।" अब तो पालने वाले की नींद हराम हो गई, न भूख लगे, न एक क्षण भी चैन पड़े। "अब क्या करूँ? यह मुझे मारेगा। क्या करूँ? यह तो मुझे एक दिन मार कर ही रहेगा।" उसने सोचा कि इससे उसका पिंडा तो कोई साधु ही छुड़ा सकता है। साधु ही कोई उपाय बता सकता है। यह सोचकर वह एक सच्चे संत के पास गया और अपनी सारी चिंता का हाल उसे बताया, "यह ब्रह्मराक्षस तो मुझे एक न एक दिन खाकर ही रहेगा।" प्रार्थना करने लगा, "महात्मा! कृपा करके मुझे कोई उपाय बताइए।" महात्माजी बोले, "तुम ऐसा करो कि एक दस फुट का लबा बाँस, आँगन के बीचों बीच गाड़ दो, खड़ा कर दो। जब यह

सामने आए तो इसे बोलो कि उस बाँस के ऊपर चढ़ते रहो, उतरते रहो। तो ब्रह्मराक्षस थक कर हार मान जाएगा और तुम्हारे पैरों में गिर जाएगा और बोलेगा कि तुम जैसा चाहोगे, मैं वैसा ही करूँगा।" उसने महात्मा के कहे अनुसार, वही युक्ति की। तब उस ब्रह्मराक्षस से पिंडा छूटा। कहने का तात्पर्य है कि सच्चा संत ही मानव की परेशानियों से उसका पिंडा छुड़ा सकता है। यह ब्रह्मराक्षस कौन है? महात्माजी बोले, "यह तुम्हारा मन ही है। इसे खाली बिल्कुल मत छोड़ो। यह तुम्हें गड्ढे में डाल कर रहेगा। इसको किसी न किसी काम में लगा कर रखो। तब तुम इसे जीत सकते हो।"

भगवान् की याद के लिए ही हरिनाम है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी ने प्रत्येक मानव को एक लाख हरिनाम नित्य करने हेतु आदेश दिया है अर्थात् 64 माला में एक लाख नाम हो जाता है। एक लाख नाम करने में पांच, छह घंटे तो लग ही जाएंगे। घर गृहस्थी के काम में पांच, सात घंटे लग जाते हैं। रात में छह, सात घंटे सोने में लग जाते हैं। कम से कम दो घंटे किसी मेहमान के आने पर, बात करने में लगेंगे और यदि कोई नौकरी करता है तो वहाँ भी आठ, दस घंटे लग जाते हैं, तो मन को फुर्सत ही नहीं मिली। यदि भागवत कथा करने का शौक लग गया है तो दो घंटे तो कथा करने में लग जाएँगे। कुछ शिकायत करते हैं कि उनके यह गर्मी के दिन निकलते ही नहीं हैं। बहुत लंबे होते हैं। क्या करें? मैंने बोला, "मेरा तो यह गर्मी का दिन इतना जल्दी भागता है कि सुबह से शाम होते देर नहीं लगती। मुझे समय मिलता ही नहीं है।" मैं इसलिए सबको बता रहा हूँ कि काम बिना तो दस मिनट भी हैरान कर देते हैं। मैंने तो अपना समय बाँट रखा है। रात में 8–9 बजे सोना एवं 12–1 बजे उठकर हरिनाम करना और उसके बाद श्रीमद्भागवत पुराण पढ़ना। फिर दोबारा हरिनाम करते रहना, इसी में 4 बज जाते हैं। शौच, स्नान करने में आधा घंटा लग जाता है, फिर कुछ समय तक व्यायाम भी करता हूँ। इसके बाद लगभग 5–6 बजे फिर हारमोनियम पर हरिनाम कीर्तन कर लेता हूँ। इसके बाद वृंदा माँ की सेवा करता हूँ,

जल देना, परिक्रमा करना। हरिनाम में मन लगने हेतु वृंदा देवी से प्रार्थना करता हूँ, तो वृंदा माँ मेरी सुनती हैं और जब जप माला झोली हाथ में लेता हूँ तो वृंदा माँ मुझे अपने पति सुमेरु को मुझसे मिला देती हैं। सुमेरु स्वयं कृष्ण भगवान् हैं। मुझे सुमेरु ढूँढना नहीं पड़ता, जब भी माला झोली हाथ में लेता हूँ तो सुमेरु ही हाथ में आता है। अन्य भक्तों से भी सुना है कि यह तो प्रत्यक्ष ही प्रकट रूप में हो रहा है। प्रातः लगभग 10 बजे भगवद् प्रसाद पाता हूँ। हरिनाम करते हुए प्रसाद पाने में हरिनाम में मन लगा रहता है। दिन में हरिनाम तथा कथा पठन होता है तो बताओ कि मेरे मन को कहाँ फुरसत मिलेगी। भगवान् बोलते हैं :

ij fgr lfjl èke ufg HkkbA ij ihMk le ufg vèkekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

"दूसरे का हित करना सबसे बड़ा धर्म है। यही साथ जाएगा और कुछ साथ नहीं जाएगा।" सबका हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। किसी को दुख देना ही सबसे बड़ा पाप है। मैंने अपनी दिनचर्या, इस कारण वर्णन की है कि तुम सब भी ऐसा करो। दिन–रात फटाफट निकल जाएगा। गपशप में क्या रखा है? बिना मतलब की बात क्यों करते रहते हो? समय क्यों बर्बाद करते हो?

देखिये! सभी 18 पुराण, 6 शास्त्र, 4 वेद और उपनिषदों का सार है कि भगवान् किस कर्म से खुश रहते हैं? इन में क्या लिखा है कि भगवान् किस कर्म से खुश होंगे? जो मानव इनके (शास्त्र) अनुसार कर्म करके भगवान् को खुश रखता है उसके लिए यहाँ पर ही पृथ्वी पर वैकुण्ठधाम हो जाता है या गोलोक धाम है। वैकुण्ठ धाम या गोलोक धाम कैसा स्थान है? वहाँ पर माया की छाया भी नहीं है। माया है जादूगर का खेल, जिसमें रत्ती भर भी सच्चाई नहीं है।

मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि सब जीवों का हित करो। किसी जीव को दुख मत दो। कौन से कर्म से भगवान् सबसे अधिक खुश हो जाते हैं? भगवान् का प्यारा साधु होता है जो सबको छोड़कर

भगवान् की शरण में ही रहता है। अतः सबसे बड़ा पुण्य है, साधु की सेवा करना। शास्त्र कह रहे हैं।

i|.; ,d tx e ugh ntk] eu de opu lkèk in itk

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

इसके करने से भगवान्, उस भक्त से अनन्य प्यार करते हैं। दूसरा है सांड की सेवा करने से। क्योंकि सांड, गाय की जनरेशन (संख्या) बढ़ाता है। 33 करोड़ देवता, गाय के रग–रग में बसे रहते हैं। गाय के मुख से ऑक्सीजन (प्राणवायु) ही निकलता है और अन्य पशुओं के मुख से कार्बनडाईऑक्साइड (विषैली गैस) ही निकलता है। गाय की सेवा से मानव के अनंत रोग दूर हो जाते हैं। गाय का हर कण आरोग्य प्रदान करता है। जब कोई मरता है तो गरुड़ पुराण पढ़ी जाती है, इसमें भगवान् कहते हैं कि जो मरने वाले पर सांड छोड़ता है, वह स्वयं वैकुण्ठ जाता है और मरने वाला भी वैकुण्ठ जाता है। तो मानव को जीते जी ही सांड की सेवा करनी चाहिए। वह सेवा क्या है? वह सेवा है, दलिया खिलाना, जिसमें चौथाई शक्कर मिला लो जैसे 11 किलो में 3 किलो गुड़िया शक्कर मिला दो। इसी अनुपात में, जितनी शक्ति हो खिलाओ। जितना दलिया हो उसके हिसाब से गुड़ या शक्कर मिलाओ। भगवान् बहुत खुश होंगे परंतु एक बार में, सवा किलो से ज्यादा, एक सांड को नहीं खिलाना वरना उसका पेट खराब हो जाएगा तो पाप लग जाएगा।

अब खिलाने का तरीका ध्यान से सुनें। जितना सूखा दलिया, किसी भी अनाज का हो, उसको परात में रख लो और ऊपर से एक चौथाई शक्कर, दलिया में मिला दो। दलिया में तुलसी दल छोड़ दो ताकि वह भगवान् को अर्पण हो जाए। जिसके लिए दलिया खिलाया जा रहा है, उससे इसकी चार परिक्रमा करवाओ। फिर दण्डवत् करें। फिर सवा किलो एक सांड को खिला दें। इसे खिलाने की अच्छी तिथियाँ हैं– अष्टमी, नवमी, पंचमी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या, पूर्णमासी तथा प्रदोष। इन दिनों में करोड़ों गुना फल मिलता है। इससे भगवान् बहुत खुश होते हैं। खिलाने वाले को अर्थ, धर्म, काम,

मोक्ष तथा अपनी भक्ति भी देने को तैयार रहते हैं। इसके अलावा अन्य दिनों में भी खिला सकते हैं, जिनको जैसी सुविधा उपलब्ध हो। इन तिथियों में खिलाने से अक्षय पुण्य होता है। गाय जाति का प्रत्येक अंग ही सुख विधान करता है। यशोदाजी, कन्हैया पर गाय की पूँछ का झाड़ा दिया करती थीं। शिशु जन्म पर गोमूत्र से स्नान कराना उत्तम रहता है, कभी चमड़ी रोग नहीं होगा, कभी ऊपर का राक्षसी प्रभाव नहीं होगा आदि–आदि लाभ होता है। सांड से गौओं की जनरेशन बढ़ती है अतः सांड को खिलाने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। इससे नीचे गायों को चारा आदि देने से भी भगवान् प्रसन्न होते हैं। संत सेवा एवं गौ सेवा भगवान् को प्रसन्न रखती है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जो 64 माला करके वैकुण्ठ प्राप्ति करेगा, क्या उसे ठाकुरजी की सेवा वहाँ मिलेगी ?

उत्तर : वैकुण्ठ प्राप्ति का तात्पर्य क्या है कि भगवान् के सिवाय उसे कुछ याद ही नहीं रहेगा। यह संसार है न, यहाँ तो सब माया है। सब संसार ही संसार घुसा हुआ है अंदर। और वहाँ भगवान् ही भगवान् घुसेगा अंदर। वही सेवा हो गई उनकी। वैकुण्ठ का मतलब है– कोई कुंठा नहीं है वहाँ, कोई दुख नहीं, कोई कमी नहीं। वैकुंठ, वहाँ आनंद ही आनंद है । भगवान् ही भगवान् याद रहेगा। कुछ ऐसी बातें हैं जो बिना भगवद् की कृपा के समझ में नहीं आतीं। वह अकथनीय हैं। इन इंद्रियों से बताई भी नहीं जा सकतीं। बस मोटी सी बात बता सकते हैं, कि वहाँ कोई दुख नहीं है, वहाँ सुख ही सुख है।

हरिनाम : कलियुग का महामंत्र है

34

26 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भक्तगण ध्यान से सुनें! एकादशी को भूल कर भी कभी शादी का मुहूर्त न करें क्योंकि एकादशी के दिन अन्न में पाप का वास रहता है। जो ज्योतिषी, एकादशी के दिन का शादी का मुहूर्त निकालते हैं, वह अनेक युगों तक नरक में जाते हैं क्योंकि उसके द्वारा ही सभी ने उस एकादशी के दिन अन्न रूप में पाप भक्षण किया। इसका भार उस ज्योतिषी पर पड़ा क्योंकि एकादशी के दिन पाप अन्न में रहता है और शादी में सब अन्न खाते हैं इसलिए उसका पूरा दोष उस पर पड़ेगा। ज्योतिषी तो धर्मशास्त्र जानते नहीं हैं। अधिकतर एकादशी का मुहूर्त निकाल देते हैं। यह भार दूल्हा–दुल्हन पर भी पड़ेगा। पाप का भार, जिसकी शादी हो रही है, उस को भोगना पड़ता है। दोनों पूरी उम्र भर शरीर से, धन आदि से दुखी रहेंगे एवं उनकी संतान भी दुखी ही रहेगी क्योंकि शास्त्र के अनुसार कर्म नहीं किया। जो लोग शादी में आते हैं वह सब अन्न का भोजन करते हैं। उससे उनका मन एवं शरीर, तीन दिन तक स्वस्थ नहीं रहता, जब तक वह खाद्य पदार्थ उनके पेट से निकल नहीं जाता, उनका मन भी चंचल रहेगा क्योंकि उन्हें पाप का भोजन करना पड़ा।

एकादशी के दिन शादी करना धर्मशास्त्र के विरुद्ध है। मेरे गुरुदेव जी ने पहले भी भक्तगणों को सतर्क किया था। मेरे गुरुदेव धर्म के अलावा सामाजिक कर्म का भी वर्णन करते रहते हैं ताकि मानव जाति जीवन में खुश रह सके। कई चर्चाएँ बार–बार भी करते रहते हैं ताकि सभी के हृदय में बैठकर, गलत मार्ग पर न जाएँ। प्रत्यक्ष में देख भी सकते हो कि जिनकी शादी एकादशी के दिन हुई, वह अपना जीवन सुख से बसर नहीं कर सकते हैं।

भगवान् मानव से सबसे ज्यादा रुष्ट कब होते हैं? जब मानव साधु को दुख देता है, सताता है। तब भगवान् दुखी हो जाते हैं और उस पर क्रोध करते हैं। शास्त्र कह रहा है :

bæ dfy l ee ly fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA lkèk ækg ikod lk tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

इंद्र का वज्र, शिवजी का त्रिशूल, यमराज का काल दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरता है वह साधु को दुख देने से पावक की तरह जल जाता है। पावक कैसी होती है? पावक वह अग्नि है, जो लोहे को पानी बना देती है। वह एकदम से नहीं मरेगा, धीरे–धीरे तड़प–तड़प कर मरेगा। बहुत दुख पाकर मरेगा। आगे कहते हैं :

tk vijkèk Hkxr dj djbA jke jk"k ikod lk tjbAA

(मानस, अयोध्या. दो. 217 चौ. 3)

पावक ऐसी प्रचंड अग्नि होती है कि पावक से मानव तड़प–तड़प कर मरता है। आसानी से नहीं मरता है, बहुत दुख पाकर मरता है। फिर घोर नरक भोगकर, कई युगों तक दुख भोगता रहता है।

हनुमानजी भक्त की किस सेवा से खुश होते हैं? यह भी ध्यान से सुनिए!

हनुमानजी को रामायण सुनाएँ और हनुमानजी को सिंदूर का चोला चढ़ाएँ तो इस कर्म से हनुमानजी भक्त के आभारी हो जाते हैं। चोला चढ़ाने से हनुमानजी खुश क्यों होते हैं? इसकी चर्चा मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं।

एक दिन हनुमानजी माँ सीता के पास बैठकर अपने पिता रामजी का पाठ कर रहे थे। इतने में रामजी आ गए। रामजी ने पूछा, "माँ, बेटा मिलकर आज क्या–क्या बातें कर रहे हो?" इतने में हनुमानजी ने माँ सीता से पूछा, "माँ! यह लाल–लाल सिर में क्या लगा रखा है?" सीता बोली, "बेटा! यह सिंदूर की माँग सिर में भरी जाती है।" हनुमानजी ने पूछा, "इस से क्या होगा?" तब सीताजी ने कहा, "इससे तुम्हारे पिता की उम्र बढ़ जाएगी।" तो हनुमानजी ने अचरज से पूछा, "क्या इससे मेरे पिता, श्रीराम की आयु बढ़ जाएगी?" सीताजी ने कहा, "हाँ बेटा! बढ़ जाएगी।" अब सीताजी अपने काम में लग गईं। रामजी महल से बाहर निकल कर किसी काम से चले गए। अब हनुमानजी ने क्या किया? हनुमानजी ने सोचा कि सीता माता के सिंदूर का झारा कहीं अंदर ही रखा होगा। तुरंत अंदर जाकर ढूँढा तो देखा कि उसमें सिंदूर भरा पड़ा था। हनुमानजी तो मच्छर समान रूप भी हो जाते हैं। अब तो हनुमान जी, छोटा सा रूप बनाकर आनंद से उस में डुबकी लगाने लगे और विचार करने लगे कि, "जब मेरी माँ सीता, सिंदूर की एक रेखा सिर पर लगाती है जिससे रामजी की उम्र बढ़ जाती है तो जब मैं, अपने पूरे शरीर को ही इस सिंदूर से ओत–प्रोत कर लूँगा तो मेरे पिताजी की उम्र बहुत ज्यादा बढ़ जाएगी।"

फिर तुरंत माँ के पास जाकर बोले, "देखो माँ! देखो! अब तो मेरे पिता की उम्र कितनी बढ़ जाएगी।" सीताजी उनका रूप देखकर हँस–हँस कर लोटपोट होने लगीं और बोलीं कि, "अरे बेटा! तूने यह क्या किया?" तो हनुमानजी बोले, "माँ! तुम तो सिर पर केवल एक ही रेखा लगाती थी। मैं तो पूरा ही सिंदूर में डूब कर आ गया हूँ। अब तो मेरे पिताजी की उम्र अमर हो जाएगी।" सीताजी की खुशी

का कोई ओर–छोर नहीं रहा और नौकरानी से बोली कि, "जल्दी से जाकर इनके पिताजी को ले आओ।" इतना कहना था कि भगवान् राम प्रकट हो गए। सीताजी बोली, "अपने बेटे की करामात देखिए।" रामजी हनुमानजी को देखते ही रह गए और हँस–हँस कर उनको हृदय से चिपका लिया और बोले, "बेटा! यह तूने क्या किया?" हनुमानजी बोले, "माँ की सिर की एक रेखा और मेरा पूरा शरीर सिंदूर में हो गया और अब तो आपकी उम्र अमर हो गई।" राम हँस–हँस कर लोटपोट हो गए और बोले, "हाँ बेटा! ठीक है। ठीक है। ऐसा ही है।" हनुमानजी ने पूछा, "माँ! सिंदूर की वजह से आयु बढ़ती है, यह आपको किसने बताया?" तो सीताजी बोलीं कि, "जब मेरी शादी हुई थी और मेरी माँ सुनैना, मुझे विदा करने लगी तो मुझे उपदेश दिया था कि बेटी! यह सिंदूर का पात्र है, इसे ससुराल में ले जाओ और स्नान के बाद रोज ही इससे सिर में मांग भरना, इससे तुम्हारे पतिदेव की आयु चिरंजीव बनेगी, तो मैं अपनी माँ का आदेश मानकर ऐसा करती हूँ।"

सीताराम, हनुमानजी से बोले, "बेटा! जो भी तुम्हारे शरीर पर सिंदूर का चोला चढ़ाएगा, उस पर मैं और तुम्हारी माँ और स्वयं तुम, चोला चढ़ाने वाले पर खुश हो जाओगे और उसकी मनोकामना पूरी कर दोगे।" तब से हनुमानजी को मानव मात्र सिंदूर का चोला चढ़ाते रहते हैं।

अब गुरुदेवजी बता रहे हैं कि शिवजी, हरिनाम जप करने वाले से सबसे अधिक खुश होते हैं। शिवजी स्वयं पार्वतीजी को पास में बिठाकर 'राम' नाम जपते हैं। जो हरिनाम जपता है तो शिवजी अपना भाई समझ कर उसे प्यार करते हैं क्योंकि वह भी उनके अनुसार ही जीवन धारण कर रहा है। हरिनाम नित्य करने वाले पर शिवजी की कृपा से ग्रह, गोचर, जो शिव जी की सेना है और रोग, दोष, मृत्यु जो शिवजी की ही शक्ति है, यह दारुण दुख नजदीक नहीं आते हैं। महामृत्युंजय मंत्र शिवजी का अमोघ हथियार है। हरिनाम और महामृत्युंजय मंत्र में कोई अंतर नहीं है। महामृत्युंजय मंत्र

सतयुग, त्रेता और द्वापर का मंत्र है और हरिनाम महामंत्र कलियुग का मंत्र है। जो इस महामंत्र को नहीं अपनाता, उसे शिवजी के गण दुखी करते रहते हैं, भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि शिवजी के ही साथी हैं जो सभी को दुखी करते रहते हैं। दक्ष यज्ञ में, जब सती ने प्राण त्याग दिया था तब इन भूत–प्रेतों ने ही शिवजी के क्रोध करने से, तहलका मचा दिया था। कथा लंबी है इसलिए संक्षेप में वर्णन किया है।

यह सभी धर्म शास्त्रों की देन है। जो संतों से उपलब्ध हुई है। धर्मशास्त्र के अभाव में कोई भी कर्म संसार में प्रकट नहीं होता। भगवान् ने शिवजी को आदेश दे रखा है, "महादेवजी! आप ऐसे आगम शास्त्रों का निर्माण कर दो जिससे मानव भ्रमित ही होता रहे और मेरी भक्ति से दूर रहे। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ लेकिन भक्ति को छिपाकर रखता हूँ। किसी विरले भाग्यशाली को ही मेरी भक्ति उपलब्ध होती है क्योंकि मैं भक्त के अधीन हो जाता हूँ। जो कर्म मैं नहीं कर सकता, मेरा भक्त कर लेता है।

जैसे उदाहरण स्वरूप, इस कलियुग में गायों की बड़ी दुर्दशा हो रही है लेकिन मैं स्वयं, इसको मिटा नहीं सकता क्योंकि मैंने ही कलियुग में विधान गोचर किया है। मैं इस विधान को रद्द नहीं कर सकता परन्तु मेरा भक्त रद्द कर सकता है।" जैसेकि एक विरक्त, वैरागी महात्मा श्रीराजेंद्रदासजी, गायों की रक्षा हेतु अपने सभी श्रवणकारियों को कृपापूर्वक प्रार्थना करते रहते हैं कि 4–4 माला, भगवान् की गायों की रक्षा के लिए किया करें।" कई साल पहले उन्होंने श्रवणकारियों को बोला था और अब इसका प्रभाव प्रत्यक्ष सामने नजर आ रहा है कि सरकार कत्लखानों को धीरे–धीरे बंद करती जा रही है। अतः जो काम भगवान् करने में असमर्थ रहते हैं, उसे भक्त करते रहते हैं। भगवान् ने अपने मुखारविंद से बोला है, "काल और महाकाल मुझ से थर–थर काँपता रहता है लेकिन मैं भक्त से काँपता रहता हूँ। मैं भक्त से क्यों डरता रहता हूँ कि भक्त ने मुझे प्रेम डोरी से बाँध रखा है। इस डोरी को मैं तोड़ नहीं सकता।"

इस कलिकाल की एक विशेष कल्याणकारी व्यवस्था है। इस युग में भगवान् जल्दी मिल जाते हैं, क्योंकि विरला ही कोई एक है, जो भगवान् को चाहता है। अधिकतर सभी इस कारण से भक्ति करते हैं कि हमें सब तरह की सुख सुविधाएँ उपलब्ध होती रहें, भगवान् से हमको क्या लेना देना। लेकिन जब कोई भाग्यशाली, ज्ञानी जीव, भगवान् को ही चाहता है तो भगवान् उसे शीघ्र ही मिल जाते हैं। छह माह में ध्रुव को मिले। कुछ ही समय में प्रह्लाद को मिले और माधवेंद्रपुरी, ईश्वरपुरी, रूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, मीरा, नरसी सबको मिले हैं। लेकिन जो भगवान् को चाहेगा उसी को तो मिलेंगे। जो भगवान् को चाहेगा ही नहीं तो उसको क्यों मिलेंगे?

जिसका सात प्रकार का शुद्ध आचरण स्वभाव होगा उसे भगवान् गारंटी से मिल जाएँगे। मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि यह श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान् घोषणा कर रहे हैं, "मैं तो सब जीवों से मिलना चाहता हूँ क्योंकि सभी जीव मात्र मेरी संतानें हैं। वात्सल्य भाव होने से कोई भी माँ–बाप अपनी संतान को दूर नहीं रख सकता लेकिन जीव मुझे चाहता ही नहीं।" यह तो विचार करने की बात है। अब भी भगवान् संतों को मिलते रहते हैं। लेकिन भाग्यशालियों को ही ऐसे संतों के दर्शन हो सकते हैं। कलिकाल में ऐसे संत गिने चुने ही हुआ करते हैं और असंतों की तो इस काल में भरमार रहती है। जीव, जीव को दुख देता है तो दुखी कौन होता है? आत्मा, परमात्मा का अंश है। कहावत है कि किसी की आत्मा को मत सताओ। ऐसा तो कोई नहीं बोलता कि किसी के शरीर को मत सताओ। किसी शरीर से राग–द्वेष करने से शरीर को कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। दुख होता है आत्मा को। तो भगवान् ऐसे प्राणी से कैसे मिल सकते हैं? अतः भगवान् से मिलने हेतु सात आचरण अपने अंतःकरण में लायें तो भगवान् के मिलने में देर नहीं।

जीव भगवान् को नहीं चाहता। इस कारण ही दुखी है क्योंकि संसार तो दुखों का घर है। भगवान् की माया भगवान् को न चाहने वालों को दुख देती रहती है। यह संसार एक प्रकार का जेलखाना

है। जैसे जेलखाने में किसी की मनोकामना पूरी नहीं होती। अतः जेलखाना दुख का भंडार है। इस संसार में मनुष्यों के बनाये जेलखाने से तो कभी छुट्टी मिल भी जाती है, परंतु संसार रूपी जेलखाने में कुकर्म करने के कारण, फिर से जेलखाने की हवा खानी पड़ती है, जन्म–मरण, जन्म–मरण होता ही रहता है। यह आवागमन चलता ही रहता है। मरने वालों को रोज देखते ही रहते हैं लेकिन माया से आँखों में धूल जमी रहती है। यह सोचता है कि मुझे थोड़े ही मरना है, मैं तो अमर हूँ। यही तो भगवान् की दुष्कर माया का खेल है। ब्रह्मा, शिवजी को भी माया ने नहीं छोड़ा। साधारण जीव की तो बात ही क्या है?

इससे स्वतंत्रता पाने के लिए एक ही उपाय है कि संत मिलन। जिससे इससे छूटने का उपाय मिल जाता है। वह है कलिकाल में हरिनाम कीर्तन एवं स्मरण। भगवद् नाम मुख से निकलना चाहिए, कैसे भी निकले। गिरते–पड़ते, सोते–जागते, चलते–फिरते। तो एक दिन जीव का उद्धार होकर ही रहेगा। समय तो हर कर्म में लगता ही है लेकिन सफलता जरूर मिल जाती है। नाम लेने में कोई भी नियम नहीं है। जैसी अवस्था हो, लिया जा सकता है। सभी कर्म एकांत में ही सफल होते हैं। इधर उधर फिरने से कुछ हस्तगत नहीं होता। एक जगह बैठकर हरिनाम करो। विद्यार्थी भी जब एक जगह ही बैठकर पढ़ता है, तभी तो पास होता है।

मनुष्य मन, वाणी से, शरीर से पाप करता रहता है। मन से, शरीर से और वाणी से किसी को कड़वा न बोले। अगर इन पापों का प्रायश्चित्त नहीं करेंगे तो मरने के बाद भयंकर नरक यातनायें भोगनी पड़ेंगी। अतः प्रायश्चित्त के रूप में अपने जीवन में, हरिनाम जप कर पापों का क्षय कर लेना चाहिए। ऐसा भगवान्, उद्धव को बता रहे हैं कि, "हे उद्धव! कलियुग का मानव कमजोर होता है। अतः केवल हरिनाम ही पापों को क्षय करने हेतु सरलतम उपाय है। केवल हरिनाम ही प्रायश्चित्त है। कलियुग के मानव का मन भी काबू में नहीं

रहता, अतः केवल मेरा नाम, कान से सुनकर करता रहे। हरिनाम ही जप कर इस मानव जीवन को सार्थक बना ले।"

मैंने जो बोला, उसे ध्यान से सुनिए!

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukIfg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"सन्मुख होइ जीव, सन्मुख का मतलब है कि जीव मेरा नाम ले। मेरी तरफ मन लगाए। 'अघ' का अर्थ पाप है। करोड़ों जन्मों के पाप नाम लेते ही जलकर भस्म हो जाते हैं। मेरे नाम में मुझसे भी अधिक शक्ति है। मेरे नाम के लिए कोई नियम नहीं है। संसार सुगमता से पार हो जाता है। कलियुग में मेरे नाम लेने में कोई भी नियम नहीं है, जैसे बन सके वैसे नाम लेते रहो।"

Hkko dHkko vu[k vkyIgA uke tir exy fnfI nIgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

पापी पुरुष की जैसी शुद्धि, भगवान् में आत्मसमर्पण करने से तथा भक्तों का संग करने से होती है, वैसी शुद्धि अन्य कर्म से नहीं हो सकती। तपस्या करने से नहीं होती। तीर्थ सेवन से नहीं होती। जिसने कलियुग में हरिनाम अपना लिया, उसके लिए इससे बड़ा प्रायश्चित्त करना कोई रहा ही नहीं।

इस शरीर में जीव और परमात्मा दोनों सखा हैं। लेकिन जीव अपने सखा को भूल गया और मेरे–तेरे के चक्कर में, मायावश पड़ गया। यह अहंकार ही तो इसका दुश्मन है। यदि यह अहंकार भगवान् की ओर झुक गया तो जीव का मंगल हो गया। अहंकार का मतलब है तेरा–मेरा। यही जीव को संसार में फँसाता है। वैसे देखा जाए तो सभी भगवान् के हैं। जीव ने जब जन्म लिया था तब क्या कुछ लेकर आया है? जो पूर्व में किया है उसी को जन्म लेकर अब चुकाने के लिए आया है, तभी तो जब जन्म लेता है, तो मुट्ठी बाँध कर

आता है। बाँधकर क्यों आता है? "क्योंकि मैं जो कुछ कर के आया हूँ, उसको मैं यहाँ भोगूँगा।" इसलिए मुट्ठी बाँध कर आता है। जब मृत्यु होती है तो मुट्ठी खोल कर जाता है। "पीछे का किया यहाँ मैंने चुका दिया और जो वर्तमान में जो मैंने अच्छा–बुरा किया, अगले जन्म में चुका लूँगा।" इससे छुटकारा पाने हेतु ही हरिनाम है। जन्म–मरण छुड़ाने के लिए ही तो हरिनाम है। हरिनाम नित्य करो और जो कुछ कर्म करो भगवान् का ही समझ कर करो तो कर्म में बँधोगे नहीं क्योंकि जो कुछ अपने लिए किया जाता है वह बंधन का कारण होता है। जब अपने लिए करोगे ही नहीं, सब कुछ भगवान् के लिए किया जाएगा, तो तेरा–मेरा रहा ही नहीं। मैंने जो कुछ किया भगवान् के लिए किया और मेरा इसमें क्या लेना–देना। मैं स्वतंत्र बन गया, सिर का भार भगवान् को सौंप दिया। यह ज्ञान जब जीव को हो जाता है तो जीव बिल्कुल हल्का हो जाता है, माया इससे कोसों दूर रहती है।

ध्यान से सुनो! यह इंद्रियाँ हमें लूट रही हैं। दूसरा कोई डाकू नहीं है। आँख है कि सुंदर–सुंदर लुभावने दृश्य की ओर जाना चाहती है। कान मनमोहक शब्द सुनने को कहता है कि चलो चलें! जहाँ मीठा गाना होता है। जिह्वा स्वादिष्ट मीठा, खट्टा, भक्ष्य, अभक्ष्य खाने की ओर खींच रहा है। नाक सुगंध की ओर खींच रही है। जैसे किसी पुरुष की बहुत सी पत्नियाँ हैं और सभी पत्नियाँ, उस पुरुष को अपनी–अपनी ओर खींच रही हैं, तो पुरुष बेचारा क्या करे? किस तरफ जाए? दुखी होने के अलावा क्या करे?

अब इंद्रियाँ इतनी दुष्कर हैं कि जितना ही इनको, इनका विषय देते रहो, उतना ही और माँग करती रहेंगी, कभी तृप्त नहीं होंगी, कभी संतोष नहीं करेंगी। तो बेचारा जीव क्या करे? जीव कैसे सुखी रह सकता है? जीव किस–किस की माँग पूरी करता रहेगा? अंत में माँग पूरी करते–करते मर ही जाएगा। कुछ भी तो साथ ले जा नहीं सकते, अपना शरीर भी यहीं छोड़ जाएगा। जो किया है वही लेकर जाएगा और अगला जन्म पाएगा।

मानव अपने सात आचरणों को सुधार ले तो मानव को परम सुख उपलब्ध हो जाए। अपने 'मैं–पने' को जिसे अहंकार बोलते हैं, 'तू–पने' में बदल दे तो परम सुखी बन जाए अर्थात् भगवान् को सौंप दे।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में चार कोष्ठ होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यह अहंकार ही मानव को जन्म–मरण कराता रहता है। अहंकार माने "मैं–पना।" यह ही मानव को माया में फँसाता रहता है। इस अहंकार को संतों को और भगवान् को सौंप दे तो परम शांति से जीवन बसर करने लग जाए। यह अहंकार क्या बला है? अहंकार, तेरा–मेरा की अटूट सांकल है जो मानव को जकड़े रहती है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जप के अलावा हम और क्या–क्या करें जिससे भगवान् बहुत जल्दी खुश हो जाएँ ?

उत्तर : सबसे जल्दी प्रसन्न होंगे नाम से। नाम जपो। कान से सुनकर।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

इससे ज्यादा होगा। अब जितने भी गुरुवर्ग हुए हैं उन्होंने नाम से ही भगवान् को प्राप्त किया है। शिवजी भी नाम जपते हैं। अरे! वाल्मीकि तो नाम जप के प्रभाव से त्रिकालदर्शी हुए कि नहीं। वाल्मीकि 'नाम' से ही तो हुए। सबकुछ नाम से मिलेगा और किसी से नहीं मिलेगा। नाम करो। केवल नाम।

कृष्णस्तु भगवान् स्वयं

35

2 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्राप्ति का आशीर्वाद करें।

भक्तगण बड़े ध्यान से सुनें! ऐसा धर्मशास्त्र बोलते हैं कि ब्रह्माजी का एक दिन हजार चौकड़ी का होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, जब यह हजार बार व्यतीत हो जाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी रात होती है। इस प्रकार से जब ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की पूरी हो जाती है तो ब्रह्माजी भी शांत हो जाते हैं और सभी जीव उनके अंदर समा जाते हैं। ब्रह्माजी के सौ वर्षों के समय को कल्प के नाम से पुकारा जाता है, इतनी ही बड़ी कल्प की रात्रि होती है। उसके बाद दूसरे ब्रह्माजी नियुक्त किये जाते हैं। ऐसा भी है कि भगवान् स्वयं ही ब्रह्मा के पद पर आसीन हो जाते हैं अथवा जीव कोटि ब्रह्माजी को नियुक्त किया जाता है। जीव कोटि ब्रह्माजी कैसे नियुक्त होते हैं। जो जीव सौ वर्ष तक उत्तम गति से गृहस्थ जीवन पालन करता है उसे ही भगवान् ब्रह्माजी की पदवी दे देते हैं। यह तो हुई सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी की चर्चा।

इसी तरह भगवान् स्वयं शिवजी की पदवी पर आसीन हो जाते हैं एवं शिवजी का कर्म अपने हाथ में ले लेते हैं। कभी कभी जीव कोटि शिवजी भी पदासीन होते हैं। जब जीव हरिभक्ति में लीन हो जाता है, तब भगवान् उसे शिवजी की पदवी सौंपते हैं। अनंत

ब्रह्माण्डों में अनंत ही ब्रह्मा, अनंत ही शिव होते हैं। लेकिन कृष्ण, राम एक ही होते हैं, नारायण एक ही होते हैं। नारायण में से ही अवतार प्रकट होते हैं, लेकिन नारायण में लीलाओं की कमी रहती है। कृष्ण, राम आदि अवतारों में लीलाओं का प्रादुर्भाव रहता है।

कृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं। उन से बड़ा कोई भगवान् न तो है और न हो सकता है। जिन्होंने ऐसी लीला करके दिखाई जिनको देखकर मानव चक्कर खा जाता है। सात साल की उम्र में गिरिराज को सात दिन तक उठाए रखा। ऐसा करने पर किसी को विश्वास कैसे हो सकता है? ब्रह्माजी को भी माया हावी हो गई तो ग्वाल–बाल और गायों को उठाकर ले गए। तब कृष्ण स्वयं, उतने ही, वैसे के वैसे ग्वाल–बाल व गायें बन गए। यहाँ तक कि ग्वालों के छींके, बैत और छड़ी भी, एक साल तक बने रहे। किसी ने उन्हें पहचाना ही नहीं कि ये ग्वाल–बाल व गायें असली हैं या नकली हैं। ऐसी–ऐसी अजनबी आश्चर्यमय लीलाएँ, कृष्ण ने ब्रजवासियों को करके दिखाई हैं। सभी मायावश इन्हें पहचान नहीं सके। स्वयं यशोदा, नंद बाबा जिन्होंने इनको पाला है, भी इन्हें पहचान नहीं सके कि यह परमपिता परमेश्वर हैं, त्रिलोकीनाथ हैं। यहाँ तक कि उन्होंने कृष्ण की पिटाई भी की है एवं कृष्ण डर की वजह से रो भी देते थे, थर–थर काँपते थे। यहाँ तक कि मुँह खोलकर, मुख में सारी सृष्टि का, यशोदा को दर्शन करवा दिया, तब भी यशोदा, नंदबाबा इन्हें समझ नहीं सके, क्योंकि कृष्ण माया का पर्दा डाल देते थे। अतः सभी भूलभुलैया में पड़ जाते थे। कृष्ण कहते थे कि, "मैया! मुझे हव्वा से डर लगता है, यह मुझे खा जाएगा।" तब यशोदा, इन्हें समझा कर अपनी छाती से चिपका कर सो जाती थी और कहती थी कि, "कान्हा! मैंने हव्वा को मारकर भगा दिया है, तू मेरी छाती से लगकर निर्भय होकर सो जा।" कृष्ण कहते कि, "मैया! मुझे बलदाऊ भैया डराता रहता है कि तुझे हव्वा खा जाएगा। मैया! तू भैया को डाँटना कि मुझे डराये नहीं।" मैया से चिपक कर कृष्ण गहरी नींद में सो जाते थे।

देखिये! मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। कई कल्पों के बाद भगवद् कृपा से भगवान्, जीव को मनुष्य जन्म देते हैं। कल्पों का मतलब है कि अनंत युगों के बाद मानव जन्म मिलता है। यदि बीच में किसी संत की सेवा उपलब्ध हो गई तो भगवान् उस जीव को जल्दी ही मनुष्य का जन्म दे देते हैं। भगवान् के लिए साधु से बड़ा कोई नहीं है क्योंकि साधु ने भगवान् की पूर्ण शरणागति ले रखी है।

loèkekUifjR;T; ekedi 'kj.k oztA
vga Rok loikiH;k ek{kf;";kfe ek 'kpAA

(श्रीगीता. 18.66)

गीता में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में शरणागत होने की बात बोली है, "तू सब कुछ छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। मैं तेरी रक्षा और पालन करूँगा। मेरे आश्रित हो जा।" जैसे शिशु माँ की शरण में रहता है, तो माँ उसका 24 घंटे ध्यान रखती है। इसी प्रकार ऐसे शरणागत जीव का भगवान् हरदम ध्यान रखते हैं।

हमारे धर्म शास्त्र भगवान् के मुखारविंद की साँस से निकले हैं। शास्त्र हमें चेतावनी दे रहा है, मानव को अपने कमाई में से कुछ धन, धर्म में भी लगाना चाहिए। यदि धर्म में पैसा नहीं लगाता है तो वह धन ही उसे गलत आदतों में डाल देगा अर्थात् उसकी आदत, शराब पीने में हो जाएगी, जुआ खेलने में हो जाएगी, वेश्यागमन में हो जाएगी, लड़ाई झगड़ों में, केस लड़ने में हो जाएगी अर्थात् वह धन, शास्त्र के विरुद्ध कर्मों में खर्च हो जाएगा और उसे नर्क में ले जाएगा, बाद में 84 लाख योनियों में ले जाकर, दुख सागर में डुबो देगा। इस धन का नाम होगा, राक्षसी लक्ष्मी। एक लक्ष्मी होती है, नारायण लक्ष्मी, जो मानव जन का उद्धार कर देगी।

धन कहाँ खर्च होना चाहिए? जहाँ सुपात्र को दिया जाता है। सुपात्र कौन है? सुपात्र वह है जो धर्मशास्त्र के अनुसार कर्म में लगे। यदि कुपात्र की धन से सेवा की जाएगी, तो देने वाले को भी, उस कुकर्म का भोग भोगना पड़ेगा। जैसे मानव ने किसी भिखारी को पैसे

देकर सेवा की है और भिखारी जाकर उस पैसे की शराब पी ले अथवा वेश्यागमन कर लिया, या लड़ाई–झगड़े में लगा दिया तो दानदाता को उसका आधा भोग भोगना पड़ेगा। सुपात्र की सेवा करने से दानदाता को हजार गुना सुख का विधान हो जाएगा, उदाहरण स्वरूप जैसे किसान एक दाना बाजरा, चावल, गेहूँ या कोई भी अनाज, पृथ्वी माँ को दान करता है अर्थात् इनको बोता है, तो केवल एक दाने से, जो प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं कि एक दाने से हजार दाने, दानदाता को मिलते हैं। अतः दान से धन घटता नहीं है, दान से अक्षय पुण्य होता है। अक्षय पुण्य किसे कहते हैं? जैसे किसी ने किसी को हजार या एक लाख रुपए ब्याज पर दे दिया तो मूल रकम वैसी की वैसी रहेगी और ब्याज से ही जीवन निर्वाह होता रहेगा। इसे ही अक्षय पुण्य बोला जाता है।

तो सोच समझ कर सुपात्र को दान करना श्रेयस्कर होता है। जैसे कोई भिक्षुक, एकादशी को घर पर भिक्षा माँगने आ गया तो उसे कभी अन्न भिक्षा नहीं देना चाहिए। वापस भी लौटाना धर्म के विरुद्ध है तो उसे अन्य वस्तु देना ठीक होगा जैसे कि कोई कपड़ा दे दिया, बर्तन आदि देना लाभप्रद होगा। अन्न देने से पाप लगेगा क्योंकि एकादशी को अन्न में पाप बसता है। न किसी को अन्न दें और न ही स्वयं अन्न भक्षण करें, तो एकादशी ही व्रत करने वाले का निश्चित उद्धार कर देगी। शादी तो एकादशी को भूलकर भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि शादी में जो लोग बारात में आते हैं उनको अन्न भोजन कराना ही पड़ता है एवं स्वयं के रिश्तेदारों को भी अन्न भोजन कराना ही पड़ेगा तो यह पाप का भार दूल्हा–दुल्हन पर पड़ता है। जिससे दूल्हा–दुल्हन जीवन भर दुखी ही रहेंगे और उनकी संतानें भी दुखी ही रहेंगी क्योंकि भूतकाल की जैसी जहरीली बेल बोई गई है, वह भविष्य के लिए भी जहर फैला देगी। मुहूर्त निकालने वाले धर्मशास्त्र से अनभिज्ञ होते हैं अतः एकादशी तिथि को सर्वोत्तम मानकर मुहूर्त निकाल देते हैं। इसमें इनका भी क्या दोष है? दोष तो है जो इसको जानते हैं फिर भी अनदेखी करते रहते हैं, तो इसका दुख भोग करेंगे दूल्हा–दुल्हन। इन

बेचारों को जबरदस्ती ही दुख सागर में पड़ जाना पड़ता है। यही तो संसारी माया का खेल है। बाजीगर का तमाशा है। बाजीगर का जमूरा, बाजीगर की करामात को जानता और समझता है। दर्शकगण को क्या मालूम है कि यह सब खेल तमाशा झूठा है। ऐसे ही भगवान् की माया को सच्चा भक्त ही समझता है। ब्रह्माजी तक भी भगवान् की माया को समझ नहीं सकते।

पिछला प्रसंग जो बीच में रह गया है उसे मेरे गुरुदेव खोल कर बता रहे हैं कि अपनी कमाई का धन सुपात्र को देना चाहिए। सुपात्र कौन है? जो धर्म शास्त्र के अनुसार अपना जीवन चलाता रहता है। उदाहरणस्वरूप श्रीवेद व्यास जी ने 18 पुराण, 4 वेद, 6 शास्त्र, उपनिषद् आदि मानव के कल्याण हेतु लिखे जो कि हजारों साल पहले लिखे गए थे, आज भी मानव समाज का उद्धार कर रहे हैं। ऐसी जगह अपनी कमाई से पैसा देना उद्धार का कारण बन जाता है। आज भी श्रीगुरुदेव की कृपा स्वरूप भगवान् की कृपा से ही इस कलिकाल में, हरिभजन करने हेतु, श्रीहरिनाम प्रेस वृन्दावन से, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तकें कई भाषाओं में छापी जा रही हैं एवं जो छप चुकी हैं वह निशुल्क बाँटी गई हैं। मानव समाज का कितना उद्धार कर रही हैं। आज सारा संसार इन पुस्तकों को पढ़ पढ़कर हरिनाम में जुट रहा है। जिससे मन, तन में सुख का विस्तार हो रहा है। सुख शांति प्रत्येक घर गृहस्थी में प्रकट हो रही है। यह पुस्तकें भी कितने साल तक मानव समाज का उद्धार करती रहेंगी, जैसे व्यासजी की पुस्तकें आज तक मानव समाज का उद्धार कर रही हैं और भविष्य में भी करती रहेंगी, तो इस जगह, अपनी कमाई का पैसा देना श्रेयस्कर होगा। इन पुस्तकों के लिए दिया हुआ पैसा तुरंत भगवद् चरणों में जा पहुँचता है। जो इसके लिए दान में पैसा देता है, उससे भगवान् असीम प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। इसे भगवान् बहुत बड़ा अहसान मानते हैं और दानदाता को हर प्रकार की सुख–सुविधा का विधान करते हैं क्योंकि भगवान् के नाम की पुस्तकें भगवान् से भी बड़ी होती हैं। भगवान् से, भगवान् का नाम बड़ा है। कहावत है:

^gfj l: cMk gfj dk uke*

भगवान् ने तो केवल उसे ही तारा (उद्धार किया) है जो उनके संपर्क में आया, लेकिन नाम ने तो अनंत जीवों का उद्धार किया है और करते रहते हैं। यह जो पुस्तकें, आज, श्रीहरिनाम प्रेस से छप रही हैं वह केवल हरि के नाम के प्रचार हेतु ही छप रही हैं। इन्हें मानव समाज पढ़–पढ़ कर कई भाषाओं में छाप रहा है क्योंकि इन पुस्तकों से प्रत्यक्ष में प्रैक्टिकल रिजल्ट (व्यावहारिक परिणाम) सामने आ रहे हैं, तो दुनिया भर से भक्त, इन पुस्तकों से प्रभावित होकर दान के रूप में अपना धन शुद्ध करते जा रहे हैं। पुस्तकों के अलावा एक पैसा भी दूसरे काम में नहीं लिया जा रहा है, केवल पुस्तक ही छपेगी। कोई भी दानदाता कुछ भी, अपनी सामर्थ्य के अनुसार दे सकता है। इससे अक्षय पुण्य होता है। मैं इसलिए आग्रह कर रहा हूँ कि प्रत्येक जीव का कल्याण हो। पैसा तो आता है और चला जाता है, इस से कुछ लाभ उठा लिया जाए तो स्वयं का भी उद्धार और अन्य का भी उद्धार होगा। जो भी पुस्तकें पढ़ेगा तो भगवद् चरणों में उसके मन की वृत्ति जायेगी। एक बात ध्यान दें कि जो भी दानदाता पैसा दे तो मेरे नॉलेज (जानकारी) में आना चाहिए ताकि पैसे के बैलेंस (बकाया) के अनुसार पुस्तकें अधिक या कम छप सकें। पैसा सीधा मुझे न देकर श्रीहरिनाम प्रेस, वृंदावन में ही दें। आप सभी जानते हैं कि मैं पैसे को दुश्मन समझता हूँ। यही पैसा सबसे बड़ी अचूक माया है जो अपने श्रम साधन से जीव को नीचे गड्ढे में डाल देगी। दस, बीस रुपये देने से भी लाभ होगा। अपनी शक्ति अनुसार दान देना है। आप सभी जानते हैं कि मुझे तीस हजार के लगभग हर माह पेंशन मिलती है, उसमें से मैं सुपात्र कर्म में खर्च करता रहता हूँ। ऐसा ध्रुव सिद्धांत है कि जो बोओगे, वही काटोगे। 90 साल का होते हुए भी शरीर में कोई रोग नहीं है। मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। यह मैं हरिनाम की बड़ाई कर रहा हूँ। 40 साल से, रात में 12–1 बजे जगना, फिर प्रातः 6 बजे तक हरिनाम करना होता है। न कमर में दर्द, न ही घुटनों में दर्द है। यह क्यों नहीं हैं? इसका

कारण, प्रत्यक्ष हरिनाम में अमृत बरसता है। जहाँ अमृत शरीर में भर जाएगा, वहाँ जहर कैसे रह सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग–द्वेष, अहंकार मूल सहित जलकर राख हो गया। मैं हरिनाम का प्रभाव वर्णन कर रहा हूँ ताकि सभी को इसका लाभ हो सके। जहाँ सूर्य उदय हो, वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? असंभव।

अब ध्यान से सुनिए। भगवान् ब्राह्मण जाति को कितना मानते हैं। अतः हमें भी मानना बहुत जरूरी है।

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru loA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc noAA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"जो मानव ब्राह्मणों का आदर सत्कार व सेवा करता है, उससे मैं, ब्रह्मा, शिव एवं सब देवता खुश रहते हैं।" जहाँ यह सब खुश रहेंगे वहाँ दुख का तो नाम रहने का सवाल ही नहीं है। श्राप देता हुआ, मारता हुआ, गाली देता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है क्योंकि मैं ब्राह्मणों को सबसे अधिक मानता हूँ। ब्राह्मण गुणों से हीन हो, दुर्गुणी हो तो भी ब्राह्मण पूजनीय ही है एवं शूद्र यदि गुणवान हो, सब तरह से श्रेष्ठ हो तो भी पूजनीय नहीं है।

lkir rkMr i#"k dgrkA fcç iT; vl xkofg lrkA
iftv fcç lhy xu ghukA læ u xu xu X;ku çchukAA

(मानस, अरण्य. दो. 33 चौ. 1)

lkro le ekfg e; tx n[kkA ekr lr vfèkd dfj y[kkA
vkBo tFkkykHk lrk"kkA liugq ufg n[kb ijnk"kkAA

(मानस, अरण्य. दो. 35 चौ. 2)

जो मेरे गुरुदेवजी ने सात तरह के स्वभाव, आचरण बताए हैं वही शास्त्र में लिखे हुए हैं। श्रीमद्भागवत से लिये हुए हैं, "चर–अचर में मुझे ही देखे एवं मेरे से भी अधिक साधु को आदर दे। जितना

भगवान् ने दिया है, उसी में संतोष रखे एवं किसी में भी गुण–दोष नहीं देखे, तो उसे मैं एक पल भी नहीं छोड़ सकता। यह मुझे ब्रह्मा, लक्ष्मी और बलराम से भी ज्यादा प्यारा है।" भगवान् बोल रहे हैं, "जिनसे मुनि और तपस्वी दुख पाते हैं वह मानव बिना अग्नि के जल जाता है एवं इनके क्रोध करने से करोड़ों कुल भस्म हो जाते हैं।" भगवान् बोल रहे हैं, "सोच–विचार उस ब्राह्मण के बारे में करना चाहिए जो अपना धर्म छोड़ चुका है, जो विषय भोगों में फँसा हुआ है। परंतु फिर भी ब्राह्मण आदर का पात्र ही है। ब्राह्मण से तो हाथ ही जोड़ते रहना चाहिए।"

भगवान् बोलते हैं कि, "उद्धव! सब कवच तोड़े जा सकते हैं लेकिन गुरु कवच तोड़ने की किसी की शक्ति नहीं है।" शास्त्र बोलता है।

dop vHkn x# in itk] ,fg le fct; mik; u ntkA

(मानस, लङ्का. दो. 79 चौ. 5)

वाल्मीकि आश्रम में, सीता सहित सीता के बेटे लव–कुश रहा करते थे, उन्होंने वाल्मीकिजी का गुरु कवच पहन रखा था। एक बार वे आश्रम के बाहर धनुष विद्या सीख रहे थे। सार में मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं। लव–कुश के पिता रामजी ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए, गुरु वशिष्ठजी से आज्ञा ली थी। इसमें घोड़ा छोड़ा जाता है। उस के सिर पर एक पत्र बाँध दिया गया कि जो रामजी की अधीनता स्वीकार नहीं करेगा, उसे रामजी से युद्ध करना पड़ेगा। यह घोड़ा भारतवर्ष में चारों दिशाओं में चक्कर काटता रहा, जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम के पास गया तो लव–कुश, जो रामजी के पुत्र थे, घोड़े का पत्र पढ़कर आवेश में आ गए कि, "हम क्षत्रिय हैं, हम अश्वमेध यज्ञ करने वाले से लड़ेंगे" अतः उन्होंने घोड़े को पेड़ से बाँध दिया। जब घोड़ा बहुत दिनों बाद तक भी अयोध्या नहीं पहुँचा तो रामजी बोले, "घोड़ा तो आया नहीं है। लगता है कि किसी ने घोड़े को बाँध लिया है।"

तो गुरु वशिष्ठ बोले, "राम! हनुमानजी को घोड़ा ढूँढने के लिए भेजो कि घोड़ा कहाँ है? वे ही तलाश करके घोड़े को ला सकते हैं।" रामजी, हनुमानजी से बोले, "हनुमान! हमारे यज्ञ के घोड़े को किसी ने बाँध रखा है। अतः जल्दी जाओ और घोड़ा लेकर आओ।" हनुमानजी ने कहा, "जो आज्ञा। मैं अभी घोड़े को लेकर आता हूँ।" जब हनुमानजी भारतवर्ष में प्रत्येक जगह घोड़े को ढूँढने के लिए निकले तो देखा कि वाल्मीकि के आश्रम के बाहर 10–10 साल के दो बच्चों ने, जो धनुष चलाना सीख रहे थे, घोड़े को पेड़ से बाँध रखा है। हनुमानजी ने उन दोनों बालकों से पूछा, "क्या तुम लव–कुश हो?" बालक बोले, "हाँ! हमारा नाम लव–कुश है। क्या बात है?" हनुमानजी बोले, "यह घोड़ा तुम्हारे पिता का है। वह अश्वमेध यज्ञ करेंगे। अतः शीघ्र ही इसे पेड़ से खोल दो।" लव–कुश बोले, "हम क्षत्रिय हैं। बिना युद्ध किए हम घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" हनुमानजी बोले, "यह तो तुम्हारे पिताजी का है।" तो दोनों बोले, "हम कुछ नहीं सुनना चाहते, चाहे पिता का हो, चाहे किसी का हो। हमसे जीत कर ही घोड़े को ले जा सकते हो।" हनुमानजी निरुत्तर हो गए और घोड़े को पेड़ से खोलने लगे तो दोनों भाइयों ने हनुमानजी को ही पेड़ से बाँध दिया। हनुमानजी कुछ भी नहीं कर सके। बहुत देर तक घोड़ा नहीं पहुँचा तो गुरुदेव वशिष्ठ ने बोला, "हनुमान भी अभी तक नहीं आए हैं। मेरा अनुमान है कि किसी बलशाली ने घोड़े को बाँध लिया है और हनुमान भी घोड़े को लाने में असमर्थ हो गए हैं। अतः राम! लक्ष्मण को भेजो।" लेकिन लक्ष्मण भी हार गए। फिर भरत, शत्रुघ्न भी गए और हार गए और वापिस भी नहीं लौटे। अब रामजी बोले कि, 'हे गुरुदेव! जो भी जाता है वापस आता ही नहीं है। क्या बात है?" तो गुरुदेव वशिष्ठ बोले, "कोई बड़ा बलशाली है, जिसने घोड़े को बाँध लिया है अतः अब आपको ही जाना होगा।" जब राम गए तो लव–कुश आश्रम के बाहर ही मिल गए। राम उनसे बोले, "बेटा! मैं तुम्हारा पिता हूँ। घोड़े को पेड़ से खोल दो। मुझे अश्वमेध यज्ञ करना है।" लव–कुश बोले, "पिताजी! आप हमारे

पिताजी हो। परंतु क्षत्रियों का धर्म है कि चाहे कोई भी हो, क्षत्रिय, केवल हारकर ही अपना कर्म छोड़ सकता है। आप हमें मारकर घोड़ा ले जा सकते हैं।" रामजी बोले, "पिता का धर्म नहीं है कि अपनी संतान को मारे।" लव–कुश ने कहा, "आप हम पर बाण चलाओ तो सही और देखिये, क्या होता है?" राम ने झूठा बाण चला कर देखा तो बाण ने वापस आकर रामजी को ही घायल कर दिया तो राम समझ गए कि वाल्मीकिजी ने इन शिष्यों को गुरु कवच पहना रखा है अतः इन पर बाणों का असर नहीं हो सकता।

अतः वह वाल्मीकिजी से प्रार्थना करके ही घोड़े को ले जा सकेंगे। तब रामजी वाल्मीकि आश्रम में गए और वाल्मीकिजी के चरण छूकर प्रणाम किया और प्रार्थना की, "मुझे अश्वमेध यज्ञ करना है। आप के शिष्यों ने मेरा घोड़ा बाँध रखा है। अतः कृपाकर घोड़े को खुलवा दीजिये ताकि मैं यज्ञ पूरा कर सकूँ।" तो वाल्मीकिजी ने लव–कुश के पास आकर आदेश दिया कि, "मेरे शिष्यो! तुम्हारी जीत हो गई। अब घोड़ा रामजी को दे दो।" जब गुरुजी बोले तो लव–कुश ने घोड़ा पेड़ से खोलकर रामजी को सौंप दिया। यही है गुरु कवच का प्रभाव जिसे भगवान् भी नहीं तोड़ सके। गुरु भगवान् से भी शक्तिशाली होता है।

x#cãk x#fo".k% x#nok eg'oj%A
x#% lk{kkRij cã rLe Jhxjo ue%AA

(श्रीगुरुगीता, प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

जो गुरुदेव को नहीं मानता उसे बड़ी भारी सजा मिलती है।

t xj pju ju flj èkjghA
r tu ldy fcHko cl djghA

(मानस, अयोध्या. दो. 2 चौ. 3)

jk[kb xj tk dki fcèkkrkA
xj fcjkèk ufg dkm tx =krkAA

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

Jh xqj in u[k efu xu tksrhA
lqfejr fnC; –f"V fg;¡ gksrhAA

(मानस, बाल. गुरु वंदना, सो. 5 चौ. 3)

m?kjfga fcey fcykspu gh dsA
feVfga nks"k nq[k Hko jtuh dsA
lw>fga jke pfjr efu ekfudA
xqir çxV tgZ tks tsfg [kkfudAA

(मानस, बाल. गुरु वंदना, सो. 5 चौ. 4)

xqj fcuq Hko fuf/k rjb u dksbZA
tkS fcjafp ladj le gksbZA

(मानस, उत्तर. सो. 92 (ख) चौ. 3)

शास्त्र वचन है कि जो गुरु से विरोध करता है उसकी क्या गति होती है?

tsa lB xqj lu bfj"kk djghA
jkSjo ujd dksfV tqx ijghAA
f=tx tksfu iqfu èkjfga ljhjkA
v;qr tUe Hkfj ikofga ihjkAA

(मानस, उत्तर. दो. 106 (ख) चौ. 3)

भगवान् के लिए कैसी अवस्था होनी चाहिए? भगवान् स्वयं बता रहे हैं।

ee xqu xkor iqyd ljhjkA xnxn fxjk u;u cg uhjkAA

(मानस, अरण्य. दो. 15 चौ. 6)

tks lHkhr vkok ljukbZA jf[kgmQ rkfg çku dh ukbZAA

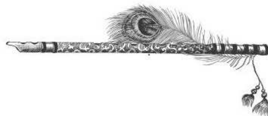
(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

जैसे शिशु माँ की शरण में ही रहता है तो माँ उसका कितना ध्यान रखती है, वैसे भगवान् तो सबसे बड़ी माँ हैं। वह भक्त का ध्यान कैसे नहीं रखेंगे। भगवान् को भक्त बहुत प्यारा है।

एक दृष्टांत सुनिए। एक धन्ना जाट हुए हैं। एक दिन, धन्ना जाट के पिता जी ने उसे बोला कि तू जाकर खेत में बीज बो आ। धन्ना जाट ने कहा, "मैं अभी जाता हूँ।" खेत जाते समय, उसे रास्ते में दो साधु मिल गए तो उसने दोनों साधुओं का चरण स्पर्श किया और बोला, "महात्माजी! आपको क्या चाहिए?" साधु बोले, "बेटा! हम भूखे हैं।" तो धन्ना जाट बोला, "आप मेरे साथ बाजार में चलिए। मैं आपको दुकान से कुछ खरीद कर खिला देता हूँ।" भक्त का आचरण ही ऐसा होता है। उसने दुकान वाले से कहा, "मेरे पास बीज का अनाज है। आप इस अनाज को लेकर इनको कुछ खाना खिला दो।" दुकानदार, जो हलवाई का काम करता था, उसने कहा, "अनाज की कीमत तो ज्यादा है।" धन्ना बोला, "कोई बात नहीं। आप इन्हें भरपेट खिला दीजिए।" गरम गरम जलेबी थी और नमकीन था। हलवाई ने साधुओं को खाना दे दिया। साधु ने तुलसी डाल कर भोग लगाया और प्रसाद पा लिया। दोनों तृप्त हो गए। जब धन्ना जाट शाम को घर पहुँचा तो पिताजी ने पूछा, "खेत में बीज डाल दिया? खेत में किसी चीज की कमी तो नहीं थी?" धन्ना जाट ने कहा, "मैं अच्छी तरह बीज डाल आया हूँ, खेत जैसा था, वैसा ही पड़ा हुआ है।" सच्ची बात बता दी पर पिता समझ नहीं पाया। भगवान् को चिंता हो गई कि धन्ना जाट उनकी पूर्ण शरणागति में है, खेत में कुछ फसल नहीं होगी तो धन्ना जाट का पिता उसकी पिटाई कर देगा। पास के खेत वाले इसके पिता को बता देंगे कि धन्ना जाट खेत पर आया ही नहीं था। अतः भगवान् ही जाकर खेत में अनाज बो कर आ गए। किसी ने कहा, "धन्ना के पिताजी! अबकी बार तो तुम्हारे खेत में ऐसी फसल उगी है कि आसपास में भी ऐसी फसल कहीं पर नजर नहीं आ रही है।" तो धन्ना जाट को उसके पिता बोले, "चलो खेत पर चलते हैं। देख कर आयें कि कैसी फसल है?" अब तो धन्ना डर गया कि खेत तो खाली पड़ा होगा, उसकी पिटाई जरूर होगी क्योंकि किसान तो फसल पर ही निर्भर करता है। साल भर क्या खाएगा? इतना डर गया कि पिताजी बोलेंगे कि, "तूने बीज बोया ही नहीं।" अब तो धन्ना भगवान् से प्रार्थना करने

लगा कि, "हे भगवान्! मेरा क्या होगा? आप ही मेरी रक्षा करो।" जब धन्ना अपने पिता के साथ खेत पर गया तो देखता है कि खेत में तो फसल लहलहा रही थी। धन्ना अंदर ही अंदर भगवान् की कृपा महसूस कर रहा है कि भगवान् के समान कोई दयालु है ही नहीं। बिना उसके फसल बोए ही, यह फसल कहाँ से हो गई? लेकिन उसने अपने पिता को कुछ नहीं बताया और घर पर आकर एकांत में खूब फूट–फूट कर रोने लगा। माँ ने उसका रोना सुना और पूछा, "धन्ना क्या हो गया? क्या तेरे पेट में दर्द हो रहा है?" देखा तो आँसुओं से उसकी कमीज भीग रही थी। माँ ने पूछा, "कहाँ दर्द है, जो तू इतना तड़प रहा है?" धन्ना बोला, "माँ! मेरे सिर में दर्द हो रहा है।" माँ ने पूछा, "तो कैसे मिटेगा? डॉक्टर के पास चलो।" धन्ना बोला, "अब तो कुछ फायदा है, बाद में देखा जाएगा।" धन्ना ने भाव को छिपा लिया।

कहने का अर्थ है कि जब भगवान् की पूर्ण शरणागति हो तो भगवान् भक्त से दूर नहीं होते। अपने भक्त की हमेशा चिंता करते रहते हैं।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अगर कोई आपको पूछे कि आपकी नाम संख्या क्या है तो हमें क्या जवाब देना चाहिए ?

श्रील गुरुदेव : जवाब यह देना चाहिए कि हमारे गौरहरि ने बोला है कि, "जो 64 माला करेगा उसके यहाँ ही मैं प्रसाद पाऊँगा, इसका मतलब है कि मैं उसके घर में रहूँगा।" इसलिए 64 माला करो और 4 माला और अधिक, अर्थात 68 माला करो तो आपका अपराध से बचाव हो जाएगा। 4 माला आपको अपराध से बचाती रहेंगी और आप का रास्ता साफ हो जाएगा।

सच्चे साधु की सेवा का फल

(36)

9 जून 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

सभी मानवों की समस्या है कि गुरु किसको बनाया जाए? इस कलिकाल में गुरु मिलना बहुत मुश्किल है। मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि गुरु के, प्रथम लक्षण में देखना चाहिए कि :

- यह गुरु हरिनाम कितना जपता है?
- दिन–रात में शिष्य की शंकाओं का समाधान करता है कि नहीं?
- गुरु लालची तो नहीं? जो मिला हुआ है उसमें संतोष है कि नहीं?
- सदाचारी, सत्यवान है कि नहीं?
- इसकी भावना परहित करने की है कि नहीं? दूसरों को दुख देकर दुखी होता है कि नहीं?
- अहंकारी स्वभाव का तो नहीं है?
- प्रसाद सेवन में इसकी कैसी रुचि है? सात्विक भोजन भगवान् को भोग लगाकर खाता है कि नहीं?
- दुश्मन का भला चाहता है कि नहीं?
- अन्य में दोष दर्शन करने का स्वभाव तो नहीं है?

इस प्रकार से कुछ समय तक गुरु के पास रहकर स्वभाव, आचरण की परख करना बहुत जरूरी है। यदि सभी गुण दिखाई देते हैं तो हरिनाम दीक्षा ले सकते हैं, मंत्र दीक्षा की अधिक जरूरत नहीं होती। वाल्मीकिजी ने नारदजी से केवल चलते–चलते हरिनाम ही लिया था जिससे वे त्रिकालदर्शी हो गए। हजारों साल पहले ही वाल्मीकि रामायण रच दी जबकि राम अवतार बहुत साल बाद में हुआ है।

श्री चैतन्य चरितामृत में भी 15वें परिच्छेद में नाम के लिए निर्देश दिया गया है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी से किसी ने पूछा, "हम गृहस्थ हैं, हमारे लिए क्या कर्तव्य है? कृपा कर बताएँ।" तो महाप्रभुजी ने बोला, "तुम्हारा कर्तव्य है कृष्ण सेवा, संत सेवा तथा हरिनाम कीर्तन करें।" उन्होंने पूछा, "हम संत को कैसे पहचानें?" तो महाप्रभुजी बोले, "जिसके मुख से कृष्ण नाम निकले, वही वैष्णव है, वही संत है।" नामापराध छोड़कर एकमात्र कृष्ण नाम करे तो वह सर्व पापों से छूट जाता है। केवल हरिनाम करने से ही नवधा भक्ति उपलब्ध हो जाती है। कृष्ण नाम, दीक्षा तथा पुरश्चरण करने की आवश्यकता नहीं समझता। जीभ से जपने मात्र से ही चांडाल पर्यंत सभी का उद्धार हो जाता है। मंत्र सिद्धि के लिए पुरश्चरण की आवश्यकता है, नाम में पुरश्चरण की कोई आवश्यकता नहीं है। हरिनाम करने से ही पुरश्चरण के द्वारा प्राप्त फल उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण नाम अपने मुखारविंद से जरा भी निकल जाए तो संसार का नाश कर देता है तथा भविष्य में कृष्ण प्रेम प्रदान कर देता है एवं अनंत सुख का विस्तार कर देता है। श्री चैतन्य महाप्रभु सभी संगी–साथियों को बता रहे हैं कि दीक्षा तथा पुरश्चरण की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है, आगे बोल रहे हैं, "मंत्र दीक्षित व्यक्ति वैष्णव प्रायः है किंतु जिसने निरपराध होकर एक बार कृष्ण नाम किया है, वह सबसे कनिष्ठ अर्थात् छोटा होने पर भी शुद्ध वैष्णव है। ऐसे नामनिष्ठ की सेवा करना गृहस्थ को उत्तम है।" यह चैतन्य चरितामृत ग्रंथ में लिखा है। हरिनाम से ही नवधा भक्ति पूर्ण हो जाती है।

पुरश्चरण किसे कहते हैं? इसका क्या विधान है? यह श्री चैतन्य महाप्रभु बता रहे हैं कि, "प्रातः काल से ही तीनों कालों में नित्य पूजा करें। नित्य जप, नित्य तर्पण, नित्य होम एवं नित्य ब्राह्मण भोजन करायें।" इन पाँच अंगों को पुरश्चरण विधि बोला जाता है। इस कलिकाल में पुरश्चरण होना असंभव है। केवल हरिनाम करें। इसमें कोई विधि–विधान व नियम नहीं है, कहीं पर बैठकर, किसी भी समय, बिना स्नान के भी कर सकते हैं।

संसार में दो ही जबरदस्त शक्तिशाली माया हैं, एक तो है नारी, दूसरी है पैसा। जिनके पास यह दोनों माया नहीं हैं, वह भगवान् के चरण में हैं। भगवान् उसको एक क्षण छोड़ नहीं सकते। यह दोनों माया ही संसार को कुम्हार के चक्के की तरह घुमा रही हैं। झगड़े का उदय ही इन दोनों से आरंभ होता है। जिन पर भगवत्कृपा है वही इन दोनों से दूर रह सकता है।

भगवान् को प्रसन्न करने के दो ही साधन हैं, एक है साधु सेवा, दूसरा साधन है सांड सेवा। शास्त्र बोल रहा है।

iU; ,d tx eg ufg ntkA
eu Øe cpu lkèk in itkA
lkudy rfg ij efu nokA
tk rft diV djb lkèk lokA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

फिर शास्त्र बोल रहा है :

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru lokA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc nokA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

जो जन निष्कपट होकर साधु सेवा करता रहता है, उसको भगवान् इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष उपलब्ध करा देते हैं, उसके घर पर कोई संकट नहीं आते, उसके घर पर कोई ग्रह

चक्कर नहीं हावी होते, कलियुग का प्रकोप उस घर से दूर रहता है। कलि महाराज का काम ही है आपस में कलह करवाना। भाई–भाई की न बनने देना, पति–पत्नी में द्वेष कराना, बाप–बेटे में न बनने देना आदि–आदि दुख का विस्तार करवाना इस कलि महाराज का काम है, परंतु जो जन हरिनाम करता है वहाँ कलि महाराज की दाल नहीं गलती। कलि महाराज हिरण्यकशिपु का प्रतीक है और हरिनाम भक्त प्रह्लाद का प्रतीक है। अंततः भक्त की जीत होती है एवं कलि की हार होती है।

धर्मशास्त्र बोल रहा है कि अपनी कमाई में से कुछ धन धर्म में खर्च करते रहने से धन शुद्ध रहता है। यह धन, धन वालों को शुभ मार्ग में ले जाता है। जो धन, धर्म में नहीं लगता, वह धन गलत मार्ग में ले जाता है। शराब पिलाता है, जुआ खिलाता है, लड़ाई झगड़े में खर्च होता है, मन को अशांत रखता है, सदा बेचैन रखता है, नींद हराम करता है, पेट को खराब रखता है, रोगी बनाकर रोगों में खर्च करता है। अतः अपनी आय का कुछ अंश, धर्म में खर्च होना श्रेयस्कर होता है। धन भी ऐसी जगह खर्च होना चाहिए जहाँ सुपात्रता हो। कुपात्रता में धन खर्च होने से उसके कर्म का भोग देने वाले को भी भोगना पड़ता है, अतः सोच विचार से पुण्य करना होगा। जो शुद्ध कमाई का पैसा होगा, वही धर्म करने योग्य होता है। दो नंबर का पैसा पुण्य में नहीं लगता। यदि लगता है तो जिसका पैसा हाथ में आया है, उसे ही लाभ होगा। पुण्य करने वालों को कुछ नहीं मिलेगा। भगवान् तो अंतर्यामी हैं। जिससे उसने पैसा ऐंठा है, उसे ही पुण्य होगा। दो नंबर वाले को कुछ भी नहीं मिलेगा, उल्टा नुकसान करके रहेगा। डॉक्टर, वैद्य आदि छीन लेंगे, अदालतों में वकील छीन लेंगे, दो नंबर से कुछ भी लाभ नहीं होगा। महल, मकान बना लेगा, कार खरीद लेगा, ऐश आराम कर लेगा, लेकिन गहराई से देखा जाए तो वह अंदर ही अंदर जहर फैला देगा। आपस में कलह बाजी करवा देगा, रोगी बना देगा, इससे सुख तो स्वप्न में भी नहीं होगा। थोड़ी देर के लिए चैन की बंसी बजेगी, फिर सौ गुना दुख–कष्ट आकर आक्रांत करेगा। कहीं अँधेरे में भी क्या सुख होता है? सच्चाई

में, उजालों में ही सुख होता है। झूठ ही अंधेरा है और सच्चाई उजाला है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। लेकिन स्वार्थ अंधा होता है, तृष्णा अंधी होती है जो नरक का द्वार खोलती है, दुख सागर में डुबोती है। यही तो माया की फाँसी है। सत्संग के बिना यह फाँसी खुलती नहीं है। कलिकाल में हरिनाम का सत्संग ही सर्वोपरि है, अन्य सब गौण है।

पुराण में एक कथा आती है कि यदि किसी चर–अचर प्राणी से भी साधु सेवा बन जाती है, तो इनको भी भगवान् मानव–देह प्रदान कर देते हैं। कथा इस प्रकार से है। वैशाख–जेठ माह में, मई–जून के महीने में एक साधु रेगिस्तान से जा रहा था। साधु इतना विरक्त था कि सिर पर न कोई कपड़ा था, न पैरों में जूती थी। ऊपर से सूर्य तप रहा था, नीचे से रेत जल रही थी। साधु सोच रहा था कि कहीं पेड़ की छाया मिल जाए तो कुछ देर सुस्ता ले। जिस रास्ते से जा रहा था, उस रास्ते में सामने कोई पेड़ नजर नहीं आ रहा था। जब उसने एक तरफ नजर दौड़ाई तो उसे कुछ दूर एक पेड़ दिखाई दिया, तो साधु अपना रास्ता छोड़ कर, उस पेड़ की तरफ चल दिया ताकि उस पेड़ की छाया में कुछ देर विश्राम कर सके। वह पेड़ था बड़ का अर्थात् बरगद का। बड़ के पेड़ की छाया भी गहरी होती है। अतः वह उस पेड़ के नीचे बैठ गया। इस समय उसे प्यास भी लग रही थी एवं भूख भी लग रही थी। रेगिस्तान में गाँव भी दूर–दूर हुआ करते हैं, मकान कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहे थे। साधु भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि, "भगवान् कोई मकान भी नहीं दिख रहा है, प्यास से बेचैन हो रहा हूँ।" जब उसने एक तरफ नजर दौड़ाई तो उसे बरगद के पेड़ से कुछ दूर ही में एक कुआँ दिखाई दिया। वह सोचने लगा, "कुआँ तो है परंतु कुएँ से पानी कैसे निकालूँगा?" साधु कुएँ के पास में गया तो उसे कुएँ की बगल में एक खेल दिखाई दी। खेल उसे कहते हैं जिसमें पशु पानी पीते हैं। उधर उसे खेल के पास एक बाल्टी नजर आई और बाल्टी में रस्सी दिखाई दी। अब तो उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा। कहने लगा कि, "भगवान्! आपने मेरी जिंदगी बचा दी। अब तो मैं कुएँ से पानी खींच कर पी

लूँगा।" उसने कुएँ से पानी खींचा और भरपेट पानी पिया और बड़ के नीचे चित्त होकर लेट गया। अब विचार करने लगा कि पास में कोई गाँव तो है नहीं जिससे कुछ टुकड़े माँग कर खा लेता। ऐसा विचार कर ही रहा था कि उसकी छाती पर एक मालपुआ आकर गिरा। अब तो उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा कि भगवान्, कितने दयालु हैं। सब जगह सभी मनोकामनाएँ पूरी कर देते हैं। वह उनको कैसे भूल सकता है। वह मालपुआ, एक चील कहीं से लेकर आई थी। वह उस पेड़ की चोटी पर आकर बैठ गई और उसे खाने के लिए तैयार हुई तो उसकी चोंच में से मालपुआ निकल कर नीचे साधु की छाती पर जा गिरा। अब तो साधु को सब कुछ मिल गया।

भगवान्, जो भी साधु की सेवा करता है उसका बड़ा अहसान मानते हैं। अतः जिसने भी बड़ का पेड़ लगाया था, उसको और बड़ को, दोनों को मानव देह प्रदान कर दी। यह दोनों 84 लाख योनियों में भटक रहे थे, भगवान् ने तूफान भेजा और बड़ को उखाड़ दिया तो बड़ की योनि छूट गई और मानव देह उसे दे दी। अब कुआँ, जिसने खुदवाया था, वह भी किसी 84 लाख योनियों में भटक रहा था, उसे भी भगवान् ने मनुष्य की योनि दे दी। जिसने बाल्टी, रस्सी कुएँ पर रखी थी, उसे भी भगवान् ने मनुष्य योनि दे दी। चील भी जो योनियों में भटक रही थी, उसे भी भगवान् ने मानव योनि दे दी, यानि साधु की जिसने भी सेवा की, चाहे वह चर–अचर प्राणी हो उसका उद्धार भगवान् कर देते हैं।

ऐसे ही जो मानव, सांड की या गाय की रक्षा, पालन करता है, उसे भगवान् 84 लाख योनियों में नहीं गिराते, उसे मानव जन्म ही प्रदान करते हैं। अतः यदि मानव भगवान् को अपने अनुकूल करना चाहे अर्थात् खुश देखना चाहे तो साधु और गौ–जाति की सेवा व रक्षा करें, तो वह इस जन्म में भी खुश और अगले जन्म में भी खुश रहेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, यह भगवान् के शास्त्र बोल रहे हैं। धर्म शास्त्र भगवान् की साँस से निकले हैं, जिससे जीव मात्र दुखी न होकर सुख का विधान बना सके, लेकिन जो जीव शास्त्र को

मानता ही नहीं है, वह नरक व 84 लाख योनियों में भटकता रहता है। किसी सच्चे संत की कृपा बन जाए या संग बन जाए, तो मानव को सुख पाने का सच्चा मार्ग उपलब्ध हो जाए। संत का तो दर्शन ही सब कुछ सुख विधान कर देता है, अन्य सुख विधान होने में तो देर हो जाती है परंतु संत मिलन से देर नहीं होती। कहावत है कि भगवान् की कृपा बिना सन्त मिलता भी नहीं है।

fcu gfjÑik feyfga ufga lark

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

जब किसी जीव की सुकृति बन जाती है तो उस पर भगवान् कृपा कर देते हैं। भगवान् से जीव को बिछुड़े हुए अनंत, अरबों–खरबों युग बीत गए हैं अतः यह जीव दुख सागर में गोते खा रहा है। सुख तो दिखता है, पर सुख है नहीं। पूरी सृष्टि का राज भी एक जीव को दे दिया जाए तो भी तृप्ति नहीं हो सकती। यही तो भगवान् की अलौकिक चमत्कारिता है। इसको भगवान् के भक्त के सिवाय कोई भी समझ नहीं सकता। ब्रह्मा व शिव भी इससे दूर ही रहते हैं। ब्रह्मा, शिव को भी माया मोहित करती रहती है। एक भक्त ही भगवान् का प्यारा है एवं बाकी सभी प्यारे (भगवान्) से दूर रहते हैं।

rcfga gkb lc lal; HkxkA tc cga dky dfjv lrlxkAA

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ. 2)

काकभुशुंडीजी भगवान् के वाहन गरुड़ को कह रहे हैं, "गरुड़ जी! थोड़े समय का सत्संग प्रभाव नहीं करेगा क्योंकि मायाजाल का अंत नहीं है। कितना फैला रहता है कलियुग में यह मायाजाल, हरिनाम के बिना सुलझता नहीं है।"

dfy;qx dsoy uke vèkkjkA lqfej lqfej uj mrjfga ikjkAA

gjsuke gjsuke gjsukSo dsoye~
dykS ukLR;so ukLR;so ukLR;so xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17.21)

भगवान् को, कलिकाल में राजी (खुश) करने का सरल, सुगम रास्ता हरिनाम ही है। शेषनागजी हजारों मुखों से हरिनाम जपते रहते हैं। शिवजी अपनी धर्मपत्नी पार्वती के साथ हरिनाम जपते रहते हैं। हनुमानजी हर वक्त 'श्रीराम! जै राम! जै जै राम! जपते रहते हैं। हमारे जितने गुरुवर्ग हुए हैं हरिनाम जप कर ही आनंद सागर में डूबे हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी का आदेश है कि ग्राम चर्चा से दूर रहो, लेकिन भक्तगण अखबार घर पर मँगा कर पढ़ते हैं। यह तो ग्राम चर्चा से भी अधिक नुकसान कारक है तथा टीवी से समाचार आदि सुनते हैं। टीवी देखते हैं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु जी का आदेश कहाँ माना? फिर शिकायत करते हैं कि हमारा मन हरिनाम में लगता नहीं है। स्वप्न में भी मन लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सब ग्राम चर्चाएँ हैं जो चिंतन में आएँगी तो भगवान् की चर्चाएँ इनसे नीचे दब जाती हैं। कई जगह मानवों का जमघट लगा रहता है, जहाँ पर गपशप होती रहती है। वहाँ जाकर बैठना भक्त के अनुकूल नहीं है। इसी कारण से शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ों में से कोई एक ही इन आदेशों को मानता है। सभी प्रकार से मनमानी करते रहते हैं। मानव भगवान् को नहीं चाहता। चाहता है तो केवल संसार को। महाप्रभुजी का आदेश है कि लकड़ी की स्त्री से भी दूर रहो। लेकिन भक्तगण इसको बिलकुल नहीं मानते, तो भजन कहाँ से होगा? केवल कपटमय आचरण है। मठ–मंदिर इसी में आकृष्ट हैं, सभी जगह कलियुग घुस गया है। वातावरण विपरीत बन गया है। सभी विपरीत गति से चल रहे हैं, फिर कहते हैं, हमें गोलोक चाहिए। कैसी मूर्खता है?

वेद मंत्रों का माइक से कीर्तन हो रहा है जबकि वेद मंत्र गुप्त रखे जाते हैं। ब्रह्मगायत्री आदि वेदमंत्र हैं जो मानसिक ही जपे जाते हैं। कीर्तन करने से अनाचार होता है। कलिकाल में सभी मर्यादाएँ समाप्त होती जा रही हैं, जिनको बताना उचित नहीं है। वैसे सभी जानते भी हैं। जो कुछ हो रहा है, भगवान् के आदेश से ही हो रहा

है। कोई, कौन क्या कर सकता है? यह युग का ही प्रभाव है। भगवान् की लीलाएँ शुभ तथा अशुभ दो तरह की हुआ करती हैं वरना लीलाओं का सामंजस्य ही क्या है?

भगवान् सूर्य 8 माह तक समुद्र से जल खींचते रहते हैं एवं 4 माह में जीवमात्र को बादलों द्वारा वर्षा कर जीवनदान देते रहते हैं। बादल सूर्य के द्वारा ही प्रकट होते हैं तथा इंद्रदेव को इसका चार्ज दिया है। जहाँ भगवान् का आदेश होता है, वर्षा कर सुख प्रदान करते रहते हैं। जिस प्रकार राजा कर के रूप में जनता से पैसा वसूल करता रहता है एवं जब जरूरत पड़ती है तो जनता को ही वितरण कर देता है। इस प्रकार से भगवद् आदेश से सूर्य भगवान् जीवमात्र की प्रसन्नता का कारण बनते रहते हैं।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हम 'वांछा कल्पतरु' मंत्र करते हैं जिसमें हम वैष्णवों से अपराध के लिए क्षमा माँगते हैं। फिर 'अनंतकोटि वैष्णव वृंद' प्रार्थना वैष्णव-अपराध के लिए अलग से क्यों है ?

उत्तर : 'वांछा कल्पतरु' यह प्रार्थना भजन गीति में है। उसे सब अंतःकरण से नहीं बोलते। वह तो ऊपर से ही बोल देते हैं, इसीलिए भक्तों की प्रार्थना 'अनंतकोटि वैष्णव वृंद' बताई गई है। भक्तों की इस प्रार्थना से भगवान् की कृपा मिल जाएगी। वैसे तो रोज ही 'वांछा कल्पतरु' बोलते रहते हैं, परंतु फिर भी अपराध होते रहते हैं। फिर अपराध तो नहीं होने चाहिएँ। इसका मतलब है कि उनके हृदय में नहीं बैठा। कोई भी अपराध करते हैं, इसका अर्थ है कि कठपुतली की तरह बोलते हैं। ऐसा गुण भी तो आना चाहिए, उनमें गुण तो आया नहीं है।

वासुदेव सर्वं इति

37

16 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्राप्ति का आशीर्वाद करें।

सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुनें! मेरे गुरुदेव मानव के शरीर की रचना के बारे में जीवमात्र को संबोधन कर रहे हैं।

शरीर में चार कोष्ठ होते हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। मन से मानव में संकल्प–विकल्प उठते रहते हैं, यह विचारों का पुंज है। मन रात–दिन एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। सोते रहने पर भी मन कहीं–कहीं जाता रहता है। ऐसी जगह मन चला जाता है जिसको मानव ने कभी देखा तक नहीं है, लेकिन पूर्व जन्मों में मन से ग्रहण किया है। जो ग्रहण नहीं होता वह मन में नहीं आ सकता। यह मन का शरीर में कर्म है।

बुद्धि का कर्म है निश्चय करना। कर्म शुभ है तथा अशुभ है। बुद्धि कहती है कि यह कर्म करना उचित नहीं है, फिर भी मन उससे कर्म करवा कर रहता है और फिर पछताता है कि यह काम मुझे नहीं करना चाहिए था। बुद्धि उसे कहती है कि :

vc iNrk, gksr D;k tc fpfM+;k pqx xbZ [ksrA

क्योंकि मन से सूक्ष्म है बुद्धि और बुद्धि से सूक्ष्म है चित्त एवं चित्त से सूक्ष्म है अहंकार। अहंकार इतना बारीक है, इतना हवा के समान है कि इसे पकड़ना बहुत ही मुश्किल है जैसे हवा को कोई

पकड़ नहीं सकता। यह हरिनाम से पकड़ में आ जाता है क्योंकि हरिनाम अहंकार का झुकाव बदल देता है। अब तक इस का झुकाव संसार की ओर था, अब हरिनाम इसे अध्यात्म की ओर कर देता है। मानव का सबसे बड़ा दुश्मन है अहंकार। अहंकार, भगवान् को बिल्कुल सुहाता नहीं है। जिसको भी अहंकार हुआ है, उसे भगवान् ने पैरों नीचे कुचल दिया है। ब्रह्मा, शिव, हनुमान, अर्जुन आदि को इस दुश्मन ने आक्रमण करके नष्ट करना चाहा लेकिन :

tkdk jk[k lkb;k ekj ld u dk;A
cky u ckdk dj ld] tk tx cjh gk;AA

(संत कबीर जी)

भगवान् ने इन शरणागतों की अहंकार से रक्षा की है एवं भविष्य में भी करते रहते हैं। अब श्रीगुरुदेव चित्त का कर्म बता रहे हैं चित्त में चिंतन होता है। प्रथम में, चित्त में कोई भी संकल्प–विकल्प विचार की स्फुरणा उठती रहती है। स्फुरणा का मतलब है विचार की हरकत होती है। यदि शुभ स्फुरणा होती है तो तुरंत ही मन को बुद्धि द्वारा आदेश हो जाता है कि इस कर्म में देर न करो और यह आनंदवर्धन कर देगा, लेकिन अशुभ प्रेरणा अथवा स्फुरणा जगे तो उसी समय इस स्फुरणा को दबा देना उचित होगा। यदि दबा न सके तो यह प्रेरणा मन को हो जाएगी, मन को पकड़ लेगी एवं शक्तिशाली होने पर शरीर की किसी इंद्रिय पर चली जाएगी तो वह कर्म होकर ही रहेगा। इसको कोई हटा नहीं सकेगा। यही है चार कोष्ठ, जो मानव के शरीर में हरकत करते रहते हैं।

मानव के शरीर में तीन शरीर होते हैं, पहला है स्थूल शरीर, जो इन पंचतत्वों से बना हुआ रहता है–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। जब इनमें किसी की कमी हो जाती है तो मानव मर जाता है या रोगी हो जाता है। स्थूल शरीर इन पाँच तत्वों से ही चलता–फिरता है, इसमें थोड़ी बहुत कमी हो जाती है तो मानव शरीर रोगी हो जाता है। शरीर में बारह नमक होते हैं। जिस नमक की कमी हो जाती है तो उसे बायोकेमिस्ट दवा द्वारा पूरा किया जाता है। इसकाआविष्कार

डॉ. सछलर (Dr. Schuessler) ने किया है। होमियोपैथी का आविष्कार डॉ. हैनेमन (Dr. Hahnemann) ने किया है। आयुर्वेद का आविष्कार धन्वन्तरि जी ने किया है। एलोपैथिक आविष्कार का पता बुद्धि में नहीं आ रहा है।

हरिनाम ही एक ऐसी रामबाण औषधि है जो इन रोगों को दूर बैठा देती है। रोग नाम–जापक के पास आने में डरते हैं। रोग कौन हैं? यह एक प्रकार के राक्षस हैं। राक्षस देवता से डरते हैं। हरिनाम सर्वशक्तिमान् है। यह तो राम, कृष्ण भगवान् से भी शक्तिशाली है। राम स्वयं अपने मुखारविंद से बोल रहे हैं :

dgk dgk yfx uke cMkbA jke u ldfg uke xu xkbAA

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)

रामजी अपने नाम का महत्व नहीं बता सकते। राधा का नाम लेने वाले के पीछे कृष्ण दौड़े आते हैं और कृष्ण का नाम लेने वाले के पीछे, राधा दौड़ी आती हैं। श्रीमद्भागवत पुराण में बोला है कि राधा कृष्ण की आत्मा है। आत्मा कृष्ण से अलग कैसे रह सकती है एवं कृष्ण आत्मा के बिना कैसे जीवित रह सकते हैं?

हरिनाम की महिमा तो कोई बता ही नहीं सकता। शेषनागजी पृथ्वी को धारण करते हुए भी हजार फनों के मुख से नाम उच्चारण करते रहते हैं। कृष्ण जब संध्या करने बैठते हैं तो भगवद् नाम जपते रहते हैं। शिवजी पार्वती के साथ बैठकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। हनुमानजी सदा ही 'श्रीराम जैराम जैजैराम' जपते रहते हैं, कीर्तन करते रहते हैं। हनुमानजी सब को जगा रहे हैं और श्रीरामजी से कह रहे हैं :

dg guer fcifr çHk lkbA
tc ro lfeju Hktu u gkbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

जब भगवान् को भूल जाते हैं तो विपत्ति आ जाती है। अतः हनुमानजी कह रहे हैं कि सभी, सदा हरिनाम जपते रहो। कलियुग

के जीवों का, भगवान् ने कैसा, कितना सरल, सुगम उपाय बताया है। मन लगे चाहे न लगे। हरिनाम उच्चारण करते रहो और कान से सुनते रहो।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओ में मंगल हो जाएगा चाहे आप मन से जपो चाहे बेमन से जपो, तब भी नाम मंगल कर देगा। नाम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता जैसे बिना जाने अमृत पी जाएँ तो यह अमर बना देगा, बिना जाने जहर खा जाएँ तो वह मार देगा। अपना प्रभाव जरूर दिखायेगा। बिना जाने आग में हाथ लगा देंगे तो आग जला देगी। अपना–अपना प्रभाव करे बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार भगवान् का नाम जाने में, अनजाने में लेने से सुखी कर देगा।

मानव के पाँच कोश होते हैं। एक अन्नमय कोश, दूसरा प्राणमय कोश, तीसरा है मनोमय कोश, चौथा है विज्ञानमय कोश, पाँचवाँ कोश है आनंदमय कोश। पहला अन्नमय कोश, खाद्य पदार्थों पर निर्भर है। खाद्य पदार्थ भी तीन प्रकार के होते हैं। तमोगुणी खाद्य पदार्थ, जो भक्ष्य–अभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। राजसिक एवं सात्विक खाद्य पदार्थ।

प्राणमय कोष, जो साँस पर निर्भर है। साँस का आना जाना होता रहता है। जब साँस रुक जाता है तो जीवमात्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यही प्राण को धारण करता है। मनोमय कोश से कर्म का संचालन होता रहता है। मन के बिना कोई कर्म हो नहीं सकता। कर्म शुभ तथा अशुभ होते रहते हैं। इनके द्वारा जीवमात्र को शुभ–अशुभ योनियों में जाना पड़ता है, वहाँ सुख की हवा भी नहीं है, केवल सुख दिखता है पर वहाँ दुख का साम्राज्य है।

इसके आगे है विज्ञानमय कोश, यह अच्छा–बुरा कर्म का आभास करवाता है। इसे ज्ञानमय कोश भी बोला जाता है। ज्ञान सब को होता है, जैसे झूठ बोलना पाप है, चोरी करना बुरा है, दूसरे को

दुखी करना अधर्म है, लेकिन जानते हुए भी झूठ बोलते हैं, जानते हुए भी चोरी करते हैं। इसे ज्ञान नहीं बोला जाता, इसे अज्ञान ही बोला जाता है क्योंकि इसके ज्ञान नेत्र अभी खुले नहीं है। जिसके ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं उससे अशुभ कर्म होता ही नहीं है। ज्ञान नेत्र किसे बोला जाता है? जो नेत्र हर जगह, हर जीवमात्र में भगवान् को ही देखता है, इसे ज्ञान नेत्र कहते हैं जैसे उदाहरण देकर गुरुदेव बता रहे हैं कि नामदेवजी ने अपनी झोपड़ी में रोटी बना कर रखी थी और झोपड़ी के कोने में घी का डिब्बा रखा था। जब घी का डिब्बा उठकर लेने गए, इतने में एक कुत्ता आया और रोटियों को मुँह में दबाकर भागा। जब नामदेवजी ने देखा कि कुत्ता 'भगवान्' बिना चुपड़ी रोटी लेकर भाग रहा है तो नामदेवजी घी का बर्तन लेकर उसके पीछे दौड़े और जोर–जोर से पुकारने लगे कि, "भगवान्! रोटी चुपड़ी नहीं है। सूखी रोटी कैसे खाओगे? जरा ठहर जाओ। रोटियों को चुपड़ देता हूँ।" कुत्ता भूखा था, बैठकर खाने लगा। इतने में नामदेवजी कुत्ते के पास आकर बोलने लगे कि, "रोटी चुपड़वा लो, भगवान्! फिर खा लेना।" बस फिर क्या था? कुत्ते में भगवान् प्रकट हो गए और नामदेवजी को छाती से चिपका कर बोले, "नामदेव! तू तो सब में मुझे ही देखता है अतः मैं तुझसे दूर नहीं और तू मुझसे दूर नहीं है।" ऐसा गीता में भगवान् ने बोला भी है जब यह दृष्टि किसी सुकृतिवान की बन जाती है तो उसके लिए वैकुण्ठ व गोलोक धाम दूर नहीं है।

इसी कारण से मेरे गुरुदेवजी ने तीन प्रार्थनाएँ भक्तों को करने का आग्रह किया है। ये तीन प्रार्थनाएँ ही भगवान् को मजबूर कर देती हैं। भगवान् कहते हैं, "ऐसे भक्त से मैं कैसे दूर रह सकता हूँ? इस भक्त ने तो मुझे खरीद लिया है। मैं उसका हूँ और वह मेरा है।" मेरे गुरुदेवजी ने सात स्वभाव, आचरण वाले जिस मानव की चर्चा की है, अनंत कोटि ब्रह्मांडों में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे भगवान् से अलग कर सके, दूर कर दे। वह निश्चित रूप से भगवान् की सन्निधि में चला जाता है। यह सात स्वाभाविक चर्चाएँ, इस कारण बताई गई हैं कि मानव, जिस स्वभाव से दूर है, उसे सुधारने

का प्रयास करे। बिना मालूम हुए अपना स्वभाव कैसे सुधरेगा? अतः मेरे गुरुदेवजी ने मानव के लिए कितनी कृपा की है। अंधों को आँखें दी हैं।

इस कलियुग में भगवान् को कौन चाहता है? जो भी भगवान् की साधना करते हैं, वे इसलिए करते हैं कि हमारा घर सुख–समृद्धि से पूर्ण हो जाए, कोई आफत न आ जाए, हमारा नाम संसार में मशहूर हो जाए। इसलिए अपना भला चाहते हैं, भगवान् को कोई नहीं चाहता है।

करोड़ों में कोई एक ही भगवान् को चाहता है कि भगवान् मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल, भगवान् आपके चरणों में मेरा मन लगा रहे, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, बस केवल आप चाहिएँ। ऐसा करोड़ों में कोई एक मानव होता है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

गोपियाँ भगवान् से कुछ नहीं चाहती थीं, केवल भगवान् को सुखी देखना चाहती थीं। प्रातः चक्की पीसतीं, तब भी भगवान् कृष्ण के सम्बन्धित गीत गाती रहती थीं, झाड़ू निकालते समय भी भगवान् में ही मन रखती थीं, भोजन बनाते समय भी कृष्ण का गुणगान करती रहती थीं। भगवान् के स्मरण का बहुत अधिक महत्व है। स्मरण तो भगवान् के दुश्मन राक्षस भी करते थे और उनकी मुक्ति हो जाती थी। किसी भाव से भी भगवद् स्मरण हो जाए तो जीव का कल्याण निश्चित है। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने इस स्मरण हेतु ही हरिनाम करने का सर्वजनों को आदेश दिया है और स्वयं भी माला झोली में हरिनाम जपते थे। हरिनाम जपना महाप्रभु ने कभी छोड़ा ही नहीं।

यदि गृहिणी भोजन बनाते समय हरिनाम जपती हुई भोजन बनाए तो जो भी इस भोजन को खाएगा, उसका मन हरिनाम में स्थिर रहेगा। क्योंकि भोजन में नाम का प्रभाव घुस जाता है भोजन करते समय यदि नाम लेते हुए खाया जाए तो भोजन का रस निर्गुण

या सात्विक बनेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमा कर देख सकता है कि मन चंचलता छोड़कर स्थिर होने लगा है। भोजन करते समय मन संसार में भटकता है तो रस बनेगा तामसिक और राजसिक। इसमें मन चंचलता में भटकेगा। बहुतों ने करके देखा है तो कहते हैं कि सचमुच मन रुका है। कुछ साधन शास्त्रों में भी नहीं हैं लेकिन अनुभव से प्रत्यक्ष सामने आ रहे हैं। अपना अनुभव भी भगवद् कृपा से हृदय में प्रकट हो जाता है।

भगवान् तो सबका बाप है। बाप, बेटे से स्वाभाविक ही मिलना चाहता है। लेकिन बेटा बाप की तरफ देखता तक नहीं है तो बाप का क्या दोष है। बाप ने मिलने हेतु गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत, 18 पुराण, उपनिषद्, वेद आदि शास्त्र अपने साँस से प्रकट किए हैं उनको पढ़कर भगवान् की गोदी में जाने का मार्ग बता रखा है। मानव पढ़ता ही नहीं है। पढ़ता भी है लेकिन उनके अनुसार चलता नहीं है और गलत रास्ता अपना लेता है तो निश्चित जगह पर कैसे पहुँचेगा? शास्त्र कहता है कि झूठ बोलना पाप है, लेकिन झूठ बोलता है। किसी की आत्मा को मत सताओ, लेकिन सताता है। अपनी कमाई में से कुछ धर्म में पैसा लगाओ, लेकिन धर्म में पैसा नहीं लगाता तो पैसा गलत रास्ते से खर्च होगा। धर्म में लगाने से पैसा शुद्ध हो जाता है। धर्म में न लगाने से पैसा शराब पिलाएगा, जुआ खिलाएगा, भक्ष्य–अभक्ष्य खिलाएगा, मुकदमा लगाएगा, चोरी करायेगा। वेश्यावृत्ति में घुमायेगा आदि दुर्गुणों में फँसाता रहेगा, तो ऐसा जीव कैसे कभी सुखी रह सकता है। हाय–हाय करता ही मर जाएगा और अगली योनियों में भी दुखी ही होता रहेगा। यही तो माया है। यह माया यशोदा मैया की कोख से प्रगट हुई है जो सबको फँसाती रहती है। कंस ने मारना चाहा परंतु उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई। कंस देखता ही रह गया।

आज इस कलियुग में उपरोक्त लिखा काम ही हो रहा है। दुनिया की जनसंख्या देखते हुए केवल .001% पैसा ही धर्म में खर्च होता है। जो पैसा खर्च हो रहा है वह भी अपनी बड़ाई व ख्याति हेतु

हो रहा है। गुप्तदान तो न के बराबर ही है। सारा संसार दुख के गर्त में जा रहा है। कोई ऐसा समय आएगा जब दुनिया खाली हो जाएगी। ऐसे–ऐसे विनाशकारी यंत्र बन गए हैं जो कभी न कभी विनाश के कारण बन जाएँगे।

अतः मेरे गुरुदेव सभी को सतर्क कर रहे हैं कि भगवान् का नाम ही बचाएगा, जैसे प्रह्लाद को बचाया है। वह भी बचेगा जिसको सुकृति बल से सच्चे संत का संग मिलेगा। सच्चा संत पैसा तथा नारी से बहुत दूर रहता है। चैतन्य महाप्रभुजी ने लकड़ी की नारी से भी दूर रहने की सलाह दी है।

हमारे सच्चे संगी–साथी हैं केवल धर्म ग्रंथ तथा साधु। अन्य सब गर्त में ले जाने वाले हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण कह रही है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, किसी भी कारण विशेष से, यदि भगवद् नाम निकल जाए तो उसका शुभ का रास्ता खुल जाए। जो जन तुलसी माला पर हरिनाम करता है वह तो इस कलिकाल में उच्च कोटि का भाग्यशाली है। इस काल में इसका तो इसी जन्म में बेड़ा पार हो जाएगा। इसकी गारंटी चैतन्य महाप्रभुजी ले रहे हैं। नाम जब कहीं पर भी किसी भी समय मन से या बेमन से, कैसे भी किया जाए, वह सुख विधान करके ही रहेगा।

भगवान् राम बोल रहे हैं :

lxqu mikld ijfgr fujr uhfr –<+ ueA
r: uj çku leku ee ftUg d: f}t in çseAA

(मानस, सुन्दर. दो. 48)

विभीषण! जो सगुण भगवान् के उपासक हैं एवं दूसरों के हित में लगे रहते हैं, नीति और हद में हैं, जिन्हें ब्राह्मण के चरणों में प्रेम है, ऐसे मानव मेरे प्राणों के समान हैं।

फिर भगवान् राम विभीषण को कह रहे हैं :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k uklfg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"जो पाप में रत हैं, विभीषण! उसे मेरा भजन नहीं सुहाता है। यदि किसी ने करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या भी की हो एवं मेरी शरण में आ गया तो मैं उसे भी कभी नहीं दूर करता। मैं उसे छाती से लगाकर रखता हूँ।"

फिर शिवजी बोल रहे हैं :

lkèk voX;k rjr Hkokuh dj dY;ku vf[ky d gkuhAA

(मानस, सुन्दर. दो. 41 चौ. 1)

"उस मानव के कल्याण की तुरंत ही हानि हो जाती है अतः हे भवानी! साधु को स्वप्न में भी दुखी नहीं करना चाहिए।"

विभीषण रावण को बोल रहा है :

lefr defr lc d mj jgghA
ukFk iqjku fuxe vl dgghAA
tgk lefr rg lifr ukukA
tgk defr rg fcifr funkukAA

(मानस, सुन्दर. दो. 39 (ख) चौ. 3)

"पुराण बोल रहा है कि अच्छा बुरा भाव सभी के हृदय में रहता है, जहाँ अच्छा भाव होता है, वहाँ सुख ही सुख है एवं जहाँ बुरा भाव है वहाँ दुख ही दुख है।"

रावण की पत्नी रावण को समझा रही है, "हे नाथ! शरण आए हुए को राम भगवान् कभी नहीं त्यागते हैं, चाहे उसे समस्त जगत् से द्रोह का पाप लगा हो। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है वही राम मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। अतः सीता को उन्हें सौंप दीजिए।"

dke Økèk en ykHk lc ukFk ujd d iFkA
lc ifjgfj j?kchjfg Hktg Hktfg tfg lrAA

(मानस, सुन्दर. दो. 38)

रावण की पत्नी रावण को कह रही है, "हे नाथ! परस्त्री को चौथ के चंद्रमा की तरह त्यागने में ही भलाई है।"

भगवान् राम बोल रहे हैं :

fuely eu tu lk ekfg ikokA
ekfg diV Ny fNæ u HkkokAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

"निष्कपट भक्त ही मुझे प्यारा लगता है, पंडिताई मुझे नहीं सुहाती।"

r'.kknfi luhpu rjkjfi lfg".kukA
vekfuuk ekunu dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जो ऐसे अहंकारहीन स्वभाव का मानव होता है, वही मेरा नाम उच्चारण कर सकता है।

सीताजी कह रही हैं :

nhu n;ky fcfjn lHkkjhA gjg ukFk ee ldV HkkjhAA

(मानस, सुन्दर. दो. 26 चौ. 2)

अशोक वृक्ष के नीचे ऐसा स्मरण करके दुखी हो रही हैं।

आचरणशील भक्त के पीछे भगवान् छायावत रहते हैं। कहते हैं:

jke&jke lc dkbZ dgs n'kjFk dgs u dk;A
,d ckj n'kjFk dgs dkfV ;K Qy gk;AA

यहाँ दशरथ का मतलब है दस इंद्रियाँ। दसों इंद्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से, उनमें केंद्रित करने से भगवान् सरलता से खिंचे चले आते हैं। यह बात निश्चित है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कह रहे हैं, "जो दुख पाकर मेरे चरणों में आ जाता है तो मैं उसे प्राणों के समान रखता हूँ।" जो साधक सुखी रहना चाहता है, वही इस संसार रूपी दुखालय से डरकर भगवान् को याद करता है और भगवान् उसे अपने हृदय से चिपकाए रहते हैं। भगवान् कहते हैं, "जीवात्मा मेरा शिशु है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु को छाती से चिपकाए रहती है, उसी प्रकार मैं भी अपने भक्त को हृदय से चिपकाए रखता हूँ क्योंकि मेरे भक्त ने केवल मेरा ही आसरा ले रखा है, मेरे सिवाय उसका इस संसार में और कोई नहीं है इसलिए उसकी चिंता मैं, स्वयं करता हूँ। जिसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया है, जो हर पल मेरा चिंतन कर रहा है, जिसके रोम–रोम में हरिनाम की दिव्य ध्वनि गूँज रही है, जिसके हर साँस में हरिनाम का उच्चारण होता हो, अपने शरणागत उस भक्त को मैं कैसे त्याग सकता हूँ?" भगवान् तो सब जीवों की माँ है और वात्सल्य भाव की असीम मूर्ति हैं, फिर अपने शरण में आये जीवों को कैसे त्याग सकते हैं? ऐसे भक्त को जिसने अपना मन सब ओर से हटाकर भगवान् के चरण कमलों में लगा दिया है, भगवान् अपने से दूर कैसे रख सकते हैं? इसलिए भगवान् की प्राप्ति का सबसे पहला साधन है मन का संयम। जब सब इंद्रियों का संयम हो जाता है तब भगवान् दूर नहीं रहते। भगवान् से नजदीक तो कोई है ही नहीं और जो असंयमी है, भगवान् उससे जितना दूर है, उतना कोई दूर नहीं। जो शरणागत रहता है, उसकी भगवान् स्वयं रक्षा करते रहते हैं।

धर्मग्रंथों में बिल्ली तथा बंदरिया का उदाहरण मिलता है। बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुख से उठाकर कहीं भी इधर उधर ले

जाती है। उसका बच्चा उसके मुँह से कभी भी गिरता नहीं है, क्योंकि माँ की शरण में है और उसकी माँ ने उसको कसकर अपने मुख में पकड़ रखा है। अतः वह सुरक्षित है क्योंकि वह उसकी माँ है तो उसके दाँत नहीं गड़ते हैं। वह मुलायम से उसको पकड़ती है।

दूसरी और बंदरिया का बच्चा अपने बल से अपनी माँ को पकड़े रहता है और शरणागत नहीं होता और जब बंदरिया, एक स्थान से दूसरे स्थान पर छलाँग लगाती है तो बच्चा छाती से अलग हो जाता है और नीचे गिर जाता है और उसकी मौत हो जाती है। यह फर्क है। यह इसलिए क्योंकि वह पूर्णरूप से शरणागत नहीं था और अपने बल से उसने माँ को पकड़ रखा था।

कहने का मतलब यह हुआ कि हम अपने बल से भगवान् को नहीं जान सकते। हाँ! भगवान् की शरण लेने पर वह स्वयं अपनी दया से, हमें अपना लेंगे, अपने चरणों में रख लेंगे और हमारी रक्षा करेंगे। शरणागत की रक्षा, पालन भगवान् स्वयं करते हैं। शरणागत किसी भी बात की चिंता नहीं करता, वह तो केवल भगवान् का चिंतन करता रहता है और उसकी सब चिंता भगवान् करते रहते हैं। अतः सबसे पहली बात है शरणागति। जैसे शिशु माँ की शरणागति में रहता है तो उसे कोई चिंता नहीं रहती। इसी प्रकार जो शरणागत है तो भगवान् को उसकी चिंता रहती है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

दूसरी बात जो भगवान् को आकर्षित करती है, कि वह हर एक प्राणी में भगवान् को ही देखता है। जो जीवमात्र में उसका दर्शन करता है, भगवान् उससे दूर है ही नहीं। ऐसा साधक, किसी को दुखी नहीं देख सकता। किसी को कष्ट नहीं पहुँचा सकता। ऐसे साधक के लिए भगवान् खिंचे चले आते हैं, पर, यह स्थिति एक दिन में नहीं आएगी। भगवान् से हर रोज प्रार्थना करो, "हे भगवान्! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो कि हर जीव में मैं आपका ही दर्शन करता रहूँ।" यह तीन प्रार्थनाएँ जो मेरे गुरुदेव ने किताबों में लिखी हैं, उसे

रोज करना चाहिए। उसको करने से भगवान् स्वयं, मरते समय, उनको लेने के लिए आते हैं। पार्षदों को नहीं भेजते हैं। नामनिष्ठ को स्वयं भगवान् लेने आते हैं। बार–बार प्रार्थना करने से, कुछ समय बाद, भगवत्कृपा से ऐसी स्थिति अपने आप आ जाएगी। जब भक्त को सबकुछ कृष्णमय दिखने लगेगा तो उसके इर्द–गिर्द का सारा वातावरण कृष्णमय हो जाएगा। उसका मन श्रीधाम वृंदावन बन जाएगा, उसमें वह मुरलीमनोहर श्यामसुंदर अपनी आह्लादिनी शक्ति, श्रीमती राधिकारानी के साथ विराजमान होकर आनंद से बंसी बजाएँगे।

तो भक्त को चाहिए कि वह जो कुछ भी करे, भगवान् का काम समझ कर करे। मन से, वचन से या फिर कर्म से किया हुआ हर काम, जब भगवान् के लिए होगा तो वह भक्ति बन जाएगा। और साधक बुरे कर्मों से बच जाएगा। पाप कर्म उससे होगा ही नहीं। जब उसका उठना–बैठना, खाना–पीना, सोना–जागना, पढ़ना–लिखना, पूजा करना, मंदिर जाना, जप करना, श्रीविग्रह सेवा करना, फूलमाला बनाना, भोग लगाना तथा श्रृंगार करना इत्यादि सभी काम भगवान् के लिए होने लगेंगे तो उसका 24 घंटे भगवान् का ही भजन हो जाएगा। जिसका हर काम भगवान् के निमित्त है, भगवान् की प्रशंसा के लिए है तो उनके लिए तो भगवान् को आना ही पड़ता है। भगवान् छाया की तरह उसके साथ में रहते हैं। एक क्षण भी उससे दूर नहीं होते हैं। जिस भक्त का मन पूर्ण रूप से भगवान् में लग गया। भगवान् की सेवा में रम गया, फिर संसार की आसक्ति उसका क्या बिगाड़ सकेगी? ऐसा भक्त साक्षात् वैराग्य की प्रतिमा बन जाता है। जो शिष्य, अपने गुरुदेव के वचनों पर अमल करता है, उसकी आज्ञानुसार भजन करता है, उसका मन हर क्षण भगवान् में लगने लगेगा। जो मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर हरिनाम करता है, भगवान् उसकी ओर बहुत शीघ्र आकर्षित हो जाते हैं क्योंकि उसकी पुकार सुनकर, उसकी तड़प देखकर भगवान् रुक

नहीं सकते। ऐसे भक्त के रोम–रोम से हरिनाम की ध्वनि निकलती रहती है तथा संसारी वासनाएँ उसके हृदय से मूल सहित समाप्त ही हो जाती हैं और वह श्रीकृष्ण भगवान् की भावना से भावित रहने लगता है।

एकादशी व्रत सभी व्रतों का राजा है। एकादशी व्रत करने वाले को भगवान् का प्रेम बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है। विशेष रूप से जो भक्त नियम से एकादशी का व्रत करते हैं। एकादशी को कम से कम एक लाख हरिनाम, हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला करनी चाहिएँ। जो गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी की माला पर जप करता है, उसका भगवान् कभी त्याग नहीं करते। एकादशी व्रत का नियम है कि दशमी तिथि को एक बार प्रसाद का सेवन करें। एकादशी को निराहार रहें, न रह सकें तो फलाहार करें और द्वादशी को पारण करें और दूसरी बार शाम को प्रसाद नहीं पायें। त्रयोदशी को दो बार प्रसाद पा सकते हैं। यह कलिकाल है अगर इतना न हो सके, तो एकादशी को केवल फलाहार किया जा सकता है। आजकल भक्तों में इतनी शक्ति नहीं है कि नियम से एकादशी व्रत का पालन कर सकें। कर सकें तो बहुत अच्छी बात है। जो खाए बिना नहीं रह सकते तो कम से कम एकादशी के दिन फलाहार करके एक लाख हरिनाम अवश्य करें। जो एक लाख हरिनाम करता है उसे 100% निश्चित रूप से वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी। भगवान् बहुत दयालु हैं, जानते हैं कि मेरा भक्त इतनी कठोर तपस्या नहीं कर सकता, अतः वह सामान्य रूप से रखे हुए व्रत को भी स्वीकार कर लेते हैं, पर एक लाख हरिनाम करने में छूट नहीं होगी। एक लाख हरिनाम तो करना ही पड़ेगा, चाहे कैसे भी हो। एकादशी को 64 माला करना तो बहुत जरूरी है, वह तो करना ही पड़ेगा।

gj¦ Ñ".k gj¦ Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj¦ gj¦A
gj¦ jke gj¦ jke jke jke gj¦ gj¦AA

कहते हैं :

i|; ,d tx eg| ufg| n|tkA
eu Øe cpu lkèk| in i|tkAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

भगवान् कहते हैं कि, "जो बिना किसी कपट के, तन तथा मन से भगवान् के सच्चे सेवक, वैष्णव संत की सेवा करता है, मैं उसे कभी नहीं त्याग सकता और मैं सदा उसके पास ही रहता हूँ। ऐसे भक्त के बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? क्योंकि सच्चे संत के रूप में वह मेरी ही सेवा कर रहा है और मैं उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसकी ओर आकर्षित हो जाता हूँ, उसके पीछे–पीछे चलने लगता हूँ। मेरे अंदर शक्ति नहीं है कि मैं उससे हट जाऊँ। जो सभी जीवों पर दया करता है, किसी भी प्राणी से ईर्ष्या नहीं करता, सभी से प्रेम करता है, उसके हृदय कमल पर मैं सदा विराजमान रहता हूँ क्योंकि वह प्रत्येक जीव में मुझे ही देख रहा है। वह छोटी सी चींटी से लेकर हाथी तक में, मेरी उपस्थिति का ही अनुभव कर रहा है। ऐसे भक्त से किसी का बुरा नहीं हो सकता। बुरा कैसे होगा? यदि वह सब में भगवान् देखेगा। मेरा भक्त हरक्षण मुझे साथ में महसूस करता है, मेरे पास रहता है। वह हरपल मुझमें और मैं उसमें विराजित हूँ। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? वह तो मेरा प्राण बन जाता है।" जो भक्त इंद्रियों का संयम करता है उसके पास ही भगवान् विराजते हैं। इंद्रियों के संयम के अभाव में पंचम पुरुषार्थ प्रेम रस रुक जाता है और अंत में सूख जाता है।" मेरा भक्त संसार को दुख रूप अनुभव करते हुए वैराग्य को धारण करता है। मेरे से कभी अलग नहीं होता और मैं भी उससे कभी अलग नहीं हो सकता। ऐसे भक्त की संसारी आसक्ति मूल रूप से नष्ट ही हो जाती है। जो मेरे शरणागत हो जाता है वह किसी में दोष नहीं देखता। वह नाम अपराध से ऐसे डरता है, जैसे कोई विषधर सर्प, सामने फन फैलाए खड़ा हो या फिर बबरी शेर सामने आकर खड़ा हो। ऐसे वह डरता है अपराध से। ऐसे भक्त से किसी वैष्णव के चरणों में अनजाने में अपराध हो भी जाए तो वह उनके चरणों में लोट कर क्षमा याचना

करता है। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं तो उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ क्योंकि उसने मुझे प्रेम की रस्सी में बाँध रखा है।" यह बात श्रीमद्भागवत पुराण के जय, विजय के प्रसंग में मिलती है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

उपरोक्त प्रवृत्तियाँ भक्त में तभी उदय हो सकती हैं जब उसे किसी सच्चे वैरागी संत का सानिध्य प्राप्त हो जाए। सत्संग के बिना, सतगुरु के बिना, किसी वैष्णव संत की कृपा के बिना कुछ भी नहीं मिलेगा। यह अकाट्य सिद्धांत है। सच्चे संत की कृपा होगी, उसका संग मिलेगा, उसका दर्शन मिलेगा, तभी उक्त प्रवृत्तियाँ हृदय में प्रकट हो जाएंगी, अन्यथा नहीं होंगी। भक्तजन अक्सर कहा करते हैं कि हम भगवान् से बातें करते हैं, उन्हें बुलाते हैं। वह हमारी किसी भी बात का जवाब नहीं देते, वह हमसे नहीं बोलते। मैं कहता हूँ कि, "नहीं! आप झूठे हो, भगवान् बोलते हैं यदि बोलने वाले की योग्यता हो तो। देखो! जब तक मन, बुद्धि भगवान् में नहीं लग जाते तब तक कुछ नहीं होने वाला। मन, बुद्धि तथा कर्म भगवान् को दे दो, उन्हें अर्पित कर दो तो भगवान् आपसे बातें करेंगे। जब यह तीनों ही अनुकूल नहीं हैं तो भगवान् आपसे क्यों बातें करने लगे? देखो! भगवान् को जिस अनुपात में आप बुलाओगे, जिस अनुपात में भजन करोगे, उसी अनुपात में आपको उनका प्रेम प्राप्त होता रहेगा। भगवान् को जितना तुम चाहोगे, भगवान् भी आपको उतनी ही मात्रा में चाहेंगे।"

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण अर्जुन को बोलते हैं :

; ;Fkk ek çi|Ur rkLrFko HktkE;geA
ee oRekuqorUr euq";k% ikFkZ loZ'k%AA

(श्रीगीता. 4.11)

भगवान् कह रहे हैं कि, "हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार भजता हूँ क्योंकि सभी मनुष्य हर प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।"

इसमें भगवान् का क्या दोष है? दोष तो हमारा है। भगवान् कहते हैं कि, "मैं अंतर्यामी हूँ। मैं सबके हृदय की बात जानता हूँ। लोग मेरे साथ कपट करते हैं। मेरे मंदिर में आकर भक्त होने का ढोंग करते हैं। मेरे विग्रह के सामने लेट कर लंबे–लंबे हाथ जोड़ते हैं, परिक्रमा लगाते हैं, दण्डवत् करते हैं पर मेरे ही भक्तों से द्वेष करते हैं, वैर–विरोध करते हैं। मंदिर से बाहर निकलते ही अपने साथियों का गला घोटते हैं। फिर मैं उनसे कैसे मिलूँगा? यह सब कपटवाद है, वे कपट का खेल करते हैं। ऐसे साधक से मैं क्या बोलूँ? वह किसी और से नहीं, मुझ से ही द्वेष करते हैं क्योंकि शरीर तो आत्मा का कपड़ा है या घर समझो।" घर को कोई दुख थोड़ी होता है, अंदर में रहने वाले को दुख होता है। जैसे मेरे कमरे की कोई खिड़की तोड़े तो क्या कमरा रोएगा? इसमें रहने वाला रोएगा। तो आत्मा रोती है। गीता में कहते हैं कि, "यह मुझे कृश करते हैं। कृश अर्थात् मुझे दुख देते हैं। ऐसे साधक से मैं कैसे मिलूँगा? कैसे बोलूँगा? वह किसी और से नहीं, मुझसे ही द्वेष करता है। मेरा ही विरोध करता है। मुझसे ही बैर करता है और फिर कहता है कि भगवान् दयालु नहीं हैं, उनके हृदय में दया नहीं है। मैंने जिंदगी भर भगवान् का भजन किया और उसने मेरा क्या किया और भगवान् को दोष देते हैं।" उन्हें अपना दोष तो नहीं दिखता है और भगवान् को दोष देते हैं। क्या तुम्हारी आँखें अपना चेहरा देख सकती हैं? दर्पण होगा तभी तो दिखेगा, तो तुम्हें अपना दोष तो मालूम नहीं पड़ता है और भगवान् को दोष लगाते हो और फिर तुम भगवान् से मिलना चाहते हो। भगवान् तुमसे बोलेगा? ऐसे अंधे हो तुम! तुम्हारा आचरण तो इस तरह का है कि भगवान् को दुख देते हो। कहते हैं न, किसी की आत्मा मत सताओ। यह तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। तुम आत्मा को सताते रहते हो फिर भगवान् तुमको प्यार देगा? तुमको सुख देगा? देखो! ऐसा भक्त कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् से द्वेष करने वाला व्यक्ति कैसा मूर्ख है। अपने दोषों को तो नहीं देखता, अपने अवगुणों को दूर नहीं करता और भगवान् को दोष देता है कि भगवान् निर्दयी हैं, उनका नाम

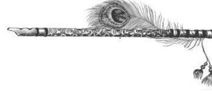
बेकार है। दयानिधि बोलते हैं उनको। इनका दयानिधि नाम, किसी ने झूठा रखा है। अरे! अपना दोष नहीं देखते और भगवान् पर दोषारोपण करते हैं। लोगों को तो छोड़ो, भगवान् को भी दोषी बना दिया। ऐसा मूर्ख स्वयं ही गड्ढे में गिरेगा, नरक के गहरे गड्ढे में स्वयं तो गिरता ही है, दूसरों को भी साथ में ले डूबेगा। ऐसे मूर्खों से दूर रहने में ही भलाई है, उनके संग में नहीं रहना चाहिए वरना इनका रंग तुम पर भी चढ़ जाएगा।

श्री श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने अपने एक पद में भी कहा है, "ऐसे व्यक्ति से तुम बात भी मत करो।"

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

अरे मूर्ख! तुझे मालूम नहीं है कि मानव जीवन कितनी मुश्किल से मिलता है। मनुष्य का जन्म तभी मिलता है, जब भगवान् की अति कृपा होती है। भगवान् यह सुदुर्लभ अवसर इसलिए प्रदान करते हैं ताकि जीवात्मा, जो उनसे बिछुड़ कर असीम दुख सागर में गोता खाता रहता है, माया के विषय जाल में फँसकर सारी जिंदगी बेकार के कर्मों में खर्च कर देता है, इस भवसागर से बाहर निकल सके और उनकी गोद में आ सके। भगवान् ने बिना किसी कारण जीव पर कृपा की है और उसे अपने पास बुलाने का शुभ अवसर दे भी दिया है परंतु इस दुर्भागे जीव ने इस अति दुर्लभ अवसर को भी गवाँ दिया और जब उसने सुदुर्लभ मनुष्य जीवन गवाँ दिया तो अपनी सूक्ष्म देह को लेकर वह करोड़ो युगों तक 28 प्रकार के नरकों का भोग भोगता रहेगा। ऐसे नरक जहाँ दुखों का कोई अंत नहीं है। करोड़ों युगों तक नरक भोगने के बाद, वह 84 लाख योनियों को भोगेगा। कितना मुश्किल है! मानव जन्म पाकर भी उसका उपयोग नहीं किया। कितना बड़ा नुकसान किया है इसने, अनंतकोटि युगों तक इन 84 लाख योनियों को भोग करता रहेगा। जरा विचार तो करो कि 28 प्रकार के नरक और 84 लाख योनियों को भोगने में कितना समय लगेगा? कल्पों लग जाएँगे।

कल्प किसे कहते हैं? हजार चौकड़ी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। हजार चौकड़ी की ही रात होती है। इसी तरह, जब ब्रह्मा सौ वर्ष के हो जाते हैं तो ब्रह्मा भी शांत हो जाता है। उसे कहते हैं कल्प। एक कल्प नहीं, कितने कल्पों के बाद मनुष्य जन्म मिलेगा। अब भी थोड़ा विचार करो। अरबों–खरबों वर्ष बीत जाएँगे। इतने समय के बाद भी कोई गारंटी नहीं है कि मनुष्य जन्म मिल जाए।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : कभी–कभी स्कूल, कॉलेज की परीक्षा आ जाती है और जप करने के लिए समय नहीं मिलता तो इस समय हमें क्या करना चाहिए क्योंकि माला छूट जाती है ?

उत्तर : कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। उसका प्रधान कर्म है परीक्षा देना, ऐसा नहीं है कि वह कहे कि मैं तो हरिनाम करूँगा, परीक्षा नहीं दूँगा। ऐसा करने से भगवान् बिल्कुल भी राजी (खुश) नहीं होगा। अपना कर्म करो। अर्जुन को कहा था कि, "तुम क्षत्रिय हो, तुम्हें लड़ना पड़ेगा और इस प्रकार तू अपना कर्म कर और मुझे याद भी कर।" तो वह परीक्षा भी देगा और हरिनाम भी, बाद में करेगा। उस समय नहीं करके बाद में कर ले, परंतु छोड़ेगा नहीं। परीक्षा जरूर देगा। परीक्षा देना उसका कर्म है, तो पहले कर्म करो। कर्म प्रधान विश्व रचि राखा... भगवान् कहते हैं अर्जुन को कि, "मेरे को भी कर्म करना पड़ता है। अगर मैं कर्म नहीं करूँ तो यह सृष्टि खत्म हो जाए।" इसलिए कर्म प्रधान विश्व रचि राखा... इसलिए कर्म करो। इसका कर्म क्या है ? परीक्षा देना, तो परीक्षा दे और पढ़े और उसको याद भी करे। अगर आपको समय कम मिलता है, तो कम माला फेरो। यह बात नहीं है कि वह तीन लाख ही करे।

केवल कृष्ण ही हैं अपने

38

23 जून 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भगवान् की अजनबी, आश्चर्यमयी माया की लीला सुनकर श्रवणकारियों को एक दुख का अनुभव होगा। माँ–बाप बच्चों के लिए क्या–क्या, कितनी–कितनी कुर्बानी करते हैं, फिर बुढ़ापे में माँ–बाप भार रूप हो जाते हैं। संसार स्वार्थी है। यही तो माया है। एक परिवार में माँ–बाप के दस बेटे हैं जो अपने रोजगार पर लगे हुए हैं। बाप की मृत्यु हो गई, अब केवल माँ बची है। माँ, भी साठ–सत्तर साल की उम्र में है। यह दस बेटे अपने परिवार का भरण पोषण कर रहे हैं लेकिन एक, केवल एक माँ की खाने पीने, पहनने की सेवा नहीं कर सकते। वह बेचारी आसपास वालों से माँग कर अपना जीवन बसर करती है। कैसा अचंभा है! कैसा आश्चर्य है! यही तो माया है। जिस माँ ने अपने शरीर की शक्ति दूध, अपने पुत्रों को पिला कर बड़ा किया, वही माँ, संतानों के लिए भार रूप हो गई। अंत में माँ को वृद्धाश्रम में भर्ती करवा दिया, बाद में कोई भी बेटा उसकी सँभाल नहीं करता। जब कोई ज्ञानी, किसी बेटे को बोलता है, ''तुम ही माँ की सेवा करो।" तो जवाब मिलता है, "क्या मेरा ही कोई ठेका है, जो मैं माँ की देखभाल करूँ?" भगवान् की माया है। इसीलिए संसार को दुखालय कहा गया है। अब भविष्य में इन संतानों का हाल भी श्रवणकारी सुनें! भगवान् आत्मा रूप से सभी संतानों के

हृदय गुहा में बैठकर देख रहा है कि उन्होंने माँ की सेवा नहीं की है तो भगवान् इनकी संतानों को भी ऐसी प्रेरणा देंगे और इनकी संतानें भी माँ–बाप की सेवा नहीं करेंगी। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है और संसार में प्रत्क्षय में देख भी रहे हो, क्या हाल हो रहा है माँ–बाप का। इसी प्रकार से दूसरे परिवार में माँ की तो मौत हो गई तो बाप का भी संतान यही हाल करेंगे। बाप खटिया पर पड़ा है। 80 साल की उम्र में कई रोग भी हो गए हैं, खस–खस करता रहता है। जब पोता या पड़पोता पास होकर गुजरता है तो बुड्ढा बोलता है, "अरे बेटा अशोक! मुझे प्यास लग रही है, मुझे पानी तो पिला दो।" इतना सुनते ही अशोक, जब भी उसकी ओर से गुजरता है, तो दौड़ लगाता है कि कहीं बाबा कुछ बोल न दे। जब भूख लगती है तो बोलता है तो कोई सुनता ही नहीं। यही तो भगवद् माया है।

अरे! कृष्ण ही अपना है। कोई किसी का नहीं है। केवल कृष्ण है अपना, अब भी समझ जाओ।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

संतान समझती है कि बुड्ढा परेशान करता रहता है। अगर इसे वृद्धाश्रम में भर्ती कर दें, तो आफत मिटे।

चिड़ा–चिड़ी प्रसव के समय या पहले घोंसला बनाते हैं और कुछ समय बाद अंडा दे देते हैं। उन अंडों को सेते रहते हैं, अंडे से बच्चे निकल आते हैं। अब दोनों इधर उधर जाकर, कुछ दाना आदि लाकर, उनकी चोंच में अपनी चोंच डालकर, उनका पेट भरते रहते हैं। कुछ समय बाद चिड़िया के बच्चों के पंख आ गये। अब वह फुदक फुदक कर इधर उधर चलते हैं। चिड़ा–चिड़ी इनकी हरकत देखकर आनंदमग्न होते रहते हैं। इनको मालूम नहीं है कि ये हम से बिछुड़ने वाले हैं। अब तो इनके पंख बड़े हो गए तो यह बच्चे अचानक से, बिना बोले ही उड़ जाते हैं। अब चिड़ा–चिड़ी इनको मोह के कारण आसपास में ढूँढते रहते हैं, कि कहाँ चले गए? कहाँ

चले गए? परंतु इनका कुछ पता नहीं चलता तथा जिंदगी भर अपने माँ–बाप से मिलते ही नहीं है। बस यही है भगवान् की माया। मानव फिर भी नहीं समझता कि यही हमारा हाल है। हम किससे मोह करें? मोह करना निरर्थक है। मोह उससे करना चाहिए जो सदैव स्थिर रहे। वह है भगवान्। भगवान् जीव से कभी बिछुड़ता ही नहीं है। बस यही तो अज्ञान है। इस अज्ञान के पीछे जीव भटकता रहता है एवं दुख सागर में गोता खाता रहता है।

भगवान् श्रीमद्भागवत में उद्धव को कह रहे हैं, "अरे उद्धव! मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। न योग से मिलता हूँ, न दान से मिलता हूँ। किसी भी युक्ति से नहीं मिलता। मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ।"

ठाकुरजी ने मुझे यह सत्संग करने की आज्ञा दी है और गुरुदेव करवाते हैं। मैं तो केवल एक माइक हूँ, माइक से वही आवाज बाहर आती है। यदि इसकी कोई सुकृति उदय हो जाए तो इसे भगवद् कृपा से साधु का सानिध्य हो जाए तो इसका अज्ञान का नेत्र, ज्ञान में परिणत हो जाए।

मानव, यदि साधु की सेवा करे तो उसका तो कहना ही क्या है क्योंकि साधु सभी तरह से भगवान् के आश्रित रहता है। आश्रित को भगवान् कैसे दुखी देख सकते हैं? कहावत है :

iU; ,d tx eg| ufg nltkA
eu Øe cpu lkèk| in iltkAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru loA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc noAA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

कृष्ण भगवान् क्या कह रहे हैं, "जो कपट छोड़ कर साधु की सेवा करता है तो मेरे समेत ब्रह्मा, शिवजी और सभी देवता उसके पीछे रहते हैं।"

‘जो साधु संग ईर्ष्या करहिं’ मतलब साधु का अपराध बहुत खतरनाक होता है। कैसा खतरनाक है?

bæ dfyl ee ly fclkykA dkynM gfj pØ djkykAA
tk bUg dj ekjk ufg ejbA lkèk ækg ikod lk tjbAA

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी बोल रहे हैं कि ″इंद्र का वज्र, मेरा त्रिशूल, यमराज का काल दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र। उनसे भी जो नहीं मरे, वह पावक अग्नि से जल कर मरता है। जो साधु को दुख देता है वह पावक अग्नि से.... पावक अग्नि कैसी होती है? पावक वह होती है जो लोहे को पानी बना देती है। फिर वह तड़प–तड़प कर मरता है, बहुत धीरे–धीरे मरता है, तुरंत नहीं मरता, बहुत दुख पाकर उसका जीवन निकलता है।

सब कुछ कृष्ण ही हैं। ऐसी दृष्टि, निगाह किसी साधक की, भक्त की बन जाए तो कृष्ण उनसे दूर नहीं हैं और भक्त भी इनसे दूर नहीं, यदि ऐसी दृष्टि किसी की हो जाये। लेकिन यह कैसे होगी? यह हरिनाम से होगी। हरिनाम करते–करते हो जाएगी। हरिनाम करो। यह मेरे गुरुदेवजी ने तीन प्रार्थनाएँ दे कर सबको बोला है। यह तीन प्रार्थनाएँ समस्त शास्त्रों का सार हैं। इन प्रार्थनाओं के अतिरिक्त धर्म शास्त्रों में कुछ नहीं है। इनको नित्य करने से मरने पर भगवान् स्वयं लेने आते हैं, पार्षदों को नहीं भेजते हैं। जो नामनिष्ठ नहीं हैं, उनको लेने को भगवान् अपने पार्षद ही भेजते हैं परन्तु नामनिष्ठ को स्वयं लेने आते हैं तथा वैकुण्ठ में ले जा कर भव्य स्वागत करवाते हैं।

अतः मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को प्रेम से आग्रह कर रहे हैं कि कलियुग में केवल हरिनाम ही कृष्ण को प्रसन्न करने का एकमात्र साधन है। कहीं जाने की जरूरत नहीं है, एकांत में बैठ कर हरिनाम जप, कान से सुनकर, करते रहो तो इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति निश्चित ही हो जाएगी। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि सतयुग, त्रेता

और द्वापर के सब लोग यह कहते हैं कि अगर उनका कलियुग में जन्म हो जाए तो उनका उद्धार हो जाये। कितना सरल रास्ता है, कहीं भी बैठ कर हरिनाम कर लो, आप बेमन से कर लो, फिर भी वैकुण्ठ मिल जाएगा। इससे ज्यादा क्या होगा? श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने गारंटी ली है कि मन लगे चाहे न लगे, उद्धार होना निश्चित है।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

जब दसों दिशाओं में मंगल हो गया तो पार होने में क्या कसर है? जाने अनजाने में अमृत या जहर पी जाओ तो वह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार भगवद्नाम अपना प्रभाव दिखाए बिना कैसे रहेगा? अग्नि में जाने–अनजाने में हाथ छू जाए तो क्या अग्नि जलाए बिना छोड़ेगी? अर्थात् नहीं, वह तो जला देगी। इसी तरह आप हरिनाम, मन से लो, बेमन से लो तो वह अपना प्रभाव किये बिना नहीं रहेगा। वह मंगल कर देगा, कल्याण कर देगा, खुशी कर देगा।

कलियुग में सच्चा गुरु मिलना बड़ा मुश्किल है। गुरु का स्वभाव एवं आचरण कैसा होना चाहिए? यह श्रीमद्भागवत महापुराण में अंकित है। जो मेरे गुरुदेव सभी श्रवणकारियों को बता रहे हैं कि गुरुदेव ऐसा होना चाहिए जो शिष्य के संशयों का अर्थात् प्रश्नों का समाधान कर सके अर्थात् उनको समझा सके। शिष्य के हृदय में अच्छी तरह बैठा सके जैसे परीक्षित् के प्रश्नों का शुकदेवजी ने समाधान किया है।

- गुरुदेव ऐसे हों, जो धर्म शास्त्रों के ज्ञाता हों। अपने अनुभव के द्वारा प्रत्यक्ष कुछ साधन भी बता रहे हों और वे साधन प्रत्यक्ष में सामने प्रकट हो जायें। अपने अनुभव के अनुसार कुछ ऐसे साधन जो शास्त्र में नहीं हों, वे भी बता सकें।
- रसनेन्द्रिय व उपस्थ इन्द्रिय के वश में न हों।
- अन्य का हित करने के भाव में रत हों।

- अष्टप्रहर हरिनाम में रत हों। ब्रह्म मुहूर्त में जागकर अपना साधन करने में जीवन का सार मानें।
- खानपान में अधिक रुचि वाले न हों।
- सब को मान देना चाहें और अपना मान न चाहें।
- संग्रह–परिग्रह अधिक न रखने का स्वभाव हो। जितने से जीवन यापन हो जाए उतना ही अपने पास वस्तुएँ रखें।
- जिनके पास बैठने से स्वतः ही मन भगवान् की ओर खिंचे एवं वहाँ से उठने का मन न करे और जबरदस्ती उठना पड़े, तो समझो कि यह सच्चा संत है।
- साधारण स्थिति में रहे। बन ठनकर रहने का स्वभाव न हो।
- जिनमें छल–कपट न हो।
- मौन व्रत रखें, जहाँ बोलना जरूरी हो वहाँ भगवद् चर्चा ही बोलें।
- सत्य पर आरूढ़ रहें। ऐसे गुरु होने चाहिएँ। सरल स्वभाव के हों।
- किसी शिष्य से सेवा लेने का स्वभाव न हो। पैर न धुलवाएँ।
- फोटो न खिंचवाएँ और माला न पहनवाएँ, किसी प्रकार की भेंट न लें। ऐसे निर्लोभी, गुरु बनने योग्य होते हैं।

बलिष्ठ माया इस दुनिया में दो ही हैं। एक है पैसा, दूसरा है नारी। इन दो से जो दूर है वही गुरु होने योग्य है। कहते हैं मठ–मंदिर, बिना पैसे कैसे चल सकता है? तो भगवान्, जो मठ–मंदिर में विराजमान हैं, क्या उसके आँख नहीं है? बहरा है? उसको चिंता नहीं है? वह प्रेरणा करके मठ–मंदिर का काम निश्चित रूप से चलाएगा। मतलब है भगवान् पर पूर्ण शरणागति नहीं है। स्वयं अपनी शक्ति से भगवान् का पालन पोषण करना चाहता है। क्या ऐसा हो सकता है? फिर पूर्ण शरणागति कहाँ हुई? हमारे यहाँ गाँव

में नारायणदास जी विराजित हैं। करीब 80—90 साल के होंगे। बहुत बड़ी गौशाला है, नारायणदास जी ने आजतक, कभी किसी से एक पैसा नहीं मांगा। गौओं के लिए चारा भी बहुतायत में आ रहा है, पैसों की भी कमी नहीं है, भंडारे होते ही रहते हैं। यह सब कौन करा रहा है? भगवान् ही प्रेरणा करके सारी व्यवस्था कर रहे हैं। आप मत करो, देखो भगवान् करते हैं कि नहीं? कोई किसी चीज की कमी ही नहीं है क्योंकि नारायणदास जी पूर्ण भगवद् शरणागत हैं।

हम देखते, सुनते हैं कि डेढ़ साल के अपने बच्चे को माँ—बाप छोड़ कर मर जाते हैं। फिर कौन उनकी रक्षा पालन करता है? ये तो सोचो। भगवान् ही किसी हृदय में प्रेरणा करके उनका जीवन यापन करते हैं एवं वे बूढ़े होकर मरते हैं। तो पूर्ण शरणागति होनी चाहिए। जहाँ शरणागति होती है वहाँ भगवान् को उसकी चिंता हो जाती है।

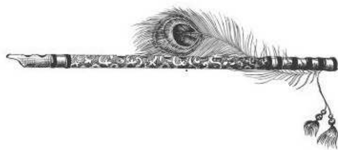
lc d eerk rkx cVkjhA ee in eufg ckèk cfj MkjhAA
lenjlh bPNk dN ukghA gj"k lkd Hk; ufg eu ekghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 47 चौ. 3)

गृहस्थ की जितनी भी ममता है वह भगवान् के चरणों में बाँध दो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। जितनी भी ममता की डोरी जो गृहस्थी में फंसी हुई है, उसे भगवान् के चरणों में बाँध दो तो ठीक हो जाओगे।

lenjlh bPNk dN ukghA gj"k lkd Hk; ufg eu ekghAA

"कुटुंब का, सबका, माया, मोह, लोभ मेरी ओर झुका दो तो मंगल ही मंगल है।"



कलियुग का प्रकोप

39

30 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

अब तक तो, श्री गुरुदेवजी ने सब श्रवणकारियों को बताया था कि गुरु कैसा होना चाहिए? गुरु शास्त्रानुसार स्वभाव का होगा तो स्वयं भी तर जाएगा एवं शिष्यों को भी तार देगा। इस भवसागर से पार कर देगा। अब श्री गुरुदेव बता रहे हैं कि शिष्य कैसा होना चाहिए? यदि शास्त्रों के अनुसार स्वभाव का शिष्य नहीं होगा तो उसका दोष श्री गुरुदेव को भोगना पड़ता है। अतः समझ सोचकर शिष्य बनाना चाहिए वरना स्वयं शिष्य भी डूबेगा और श्री गुरुदेव को भी साथ में डुबा कर रहेगा। यह सब श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध में उद्धव ने भगवान् से पूछा, "हे भगवान्! मैं, भक्त के लक्षण जानना चाहता हूँ। कृपया बताने की कृपा करें।" भगवान् बोल रहे हैं, "उद्धव! मेरा भक्त कृपा की मूर्ति होता है, सबका हित चाहता है, दुश्मन का भी कभी बुरा नहीं चाहेगा, किसी भी प्राणी से वैरभाव नहीं रखता, अचर प्राणी अर्थात् पेड़ को भी दुख नहीं देता। घोर से घोर दुख भी सहन कर लेता है। उसके जीवन का सार है सत्य। उसके मन में किसी प्रकार की पाप वासना नहीं आती, समदर्शी स्वभाव का होता है, संग्रह–परिग्रह से बहुत दूर रहता

है। जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखता है, किसी वस्तु हेतु कोई चेष्टा नहीं करता, प्रसाद भोजन करता है एवं शांत रहता है, सदा सबसे मीठा बोलता है और मीठा व्यवहार करता है। इसे केवल मेरा ही भरोसा रहता है, यह आत्मचिंतन में सदा लगा रहता है। यह प्रमाद रहित, गंभीर स्वभाव का व धैर्यवान होता है, किसी में गुण–दोष देखना बिलकुल इसके स्वभाव में नहीं होता। भूख, प्यास, शोक और जन्म–मरण, इसके वश में रहते हैं। यह कभी किसी से सम्मान नहीं चाहता एवं अन्य को सम्मान देता रहता है। पैसे का एवं नारी का निर्लोभी होता है, न किसी से पैसा माँगता है, न अधिक देर नारी से बातें करता है। अकेला तो नारी जाति से मिलता ही नहीं है।"

"मेरे सम्बन्धित बातें समझाने में कुशल रहता है, सभी से प्रेम भाव का नाता रहता है। इसके हृदय में करुणा भरी रहती है, मेरे तत्व का इसे यथार्थ ज्ञान रहता है। बहुत कम सोता है, रात भर जाग कर हरिनाम करता है या मेरा स्मरण करता रहता है। ग्राम चर्चा से बहुत दूर रहता है, मेरी कथा–वार्ता सुनने में श्रद्धावान होता है। अपराधों से बचा रहता है। जो कुछ घर में लाता है उसे प्रथम में, मुझे अर्पण करता है। स्वयं अपना भोजन बनाकर मुझे अर्पण करता है। कोई भी, बिल्ली या कुत्ता आ जाए तो उसे भगवान् समझकर, अपना बनाया हुआ खाद्य पदार्थ उन्हें भी डालता है क्योंकि वह समझता है कि इनमें भी मेरे प्राणनाथ परमात्मा के रूप में विराजमान हैं। भूखे हैं, इस कारण मेरे पास आए हैं। उद्धव! ऐसे आचरण वाला भक्त मुझे प्राणों से भी प्यारा है। मैं इसे एक पल भी छोड़ नहीं सकता, न ही मुझ में छोड़ने की शक्ति है। ऐसे भक्त से ही मेरा मन लगता है, भक्त के बिना मेरा जीवन ही बेकार है। मैं, भक्त के कारण ही अवतार लेता हूँ, अन्य कर्म, तो मैं, भौहों के इशारे से ही कर सकता हूँ। प्रत्येक ब्रह्मांड में मेरा अवतार भक्त के कारण ही होता है।" भगवान् कह रहे हैं :

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru loA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc noAA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"संत का कितना महत्व है। जो संतों की सेवा करता है, तो मैं, ब्रह्माजी और देवता उसके वश में रहते हैं।"

"हे उद्धव! मैं, ब्राह्मण को, दिन में तीन बार नमस्कार करता हूँ। मैं किसी साधन से नहीं मिलता, केवल सत्संग ही मुझे खींच कर ले आता है। जगत् की जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। इसका कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वश में कर लेता है, वैसा साधन न योग है, न सांख्य है, न धर्म पालन, न स्वाध्याय, न तपस्या, न त्याग है। इष्ट पूर्ति एवं दक्षिणा से भी मैं, वैसा प्रसन्न नहीं होता। उद्धव! कहाँ तक कहूँ? व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ एवं यम–नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं। उद्धव! यह एक युग की बात नहीं है, सभी युगों की बात है। गोपियों ने कौन सी तपस्या की थी, केवल सत्संग से मुझे प्राप्त हो गईं। कोई साधन मुझे वश में नहीं कर सकता, केवल सत्संग से तो मैं, सुगमता से वश में आ जाता हूँ।"

यह सब श्रीमद्भागवत कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। मेरे गुरुदेव कह रहे हैं। इसी कारण से, द्वारिकाधीश ने सत्संग की यह पाठशाला खोली है। इसमें जो भर्ती होगा, निश्चय ही वैकुण्ठ में पदार्पण कर सकेगा क्योंकि इसके संचालक स्वयं द्वारकाधीश अर्थात् चैतन्य महाप्रभुजी हैं। अतः सभी को इसमें भर्ती होना चाहिए। ऐसा अवसर भविष्य में मिलने वाला नहीं है। मौका छूटने से गहरा पछताना पड़ेगा। कोई खर्चा नहीं, सात दिन में केवल एक घंटे का सत्संग ही भगवान् से मिला देगा। सात दिन में मानव केवल एक घंटे भगवान् के लिए व अपने उद्धार होने के लिए, नहीं दे सकता? यदि नहीं दे सकता तो बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है। यह पाठशाला केवल सत्संग हेतु ही खोली गई है, जिसके सुनने से हरिनाम में रुचि बनेगी, माया धीरे–धीरे दूर होती जाएगी, शांति का साम्राज्य फैलेगा। जहाँ–जहाँ

भक्त भगवान् का नाम करता है, वहाँ वहाँ भगवान् को प्रकट होना पड़ता है। हरिनाम चुंबक है, वह भी शुद्ध चुंबक है, जो लोहे रूपी कृष्ण, राम को अपने पास आकर्षित कर लेता है। मुसलमान एक गाली निकालते हैं 'हरामी!' तूने ऐसा काम क्यों किया? ऐसा करना चाहिए था। हरामी...बस इसमें 'राम' आ गया तो इस शब्द से बोलने वालों का उद्धार हो गया। भगवान् का नाम आ गया।

कलियुग को सब युगों से सर्वोत्तम बताया गया है। इस युग में सरलता से जीव का उद्धार होना संभव है। इस युग में पवित्रता और अपवित्रता की आवश्यकता नहीं है, कहीं पर भी बैठकर, किसी भी समय, किसी भी हालत में, गिरते–पड़ते, खाते–पीते, चलते–सोते, जीव हरिनाम कर सकता है, कोई नियम का विधान नहीं है। यही शास्त्र घोषित कर रहा है।

Ñr ;qx =srk }kij iwtk e[k v# tkxA
tks xfr gksb lks dfy gfj uke rs ikcfga ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कलियुग में कुछ नहीं करना पड़ता, केवल हरिनाम करो। मन लगे चाहे न लगे, तब भी। नाम जापक प्रह्लाद का स्वरूप है और कलि महाराज हिरण्यकशिपु का स्वरूप है। कलियुग में नाम जापक, कलि महाराज से बच सकता है। कलि महाराज नाम जापक का बाल भी बाँका नहीं कर सकता। जब कलि महाराज को भगवान् ने शासन करने हेतु आदेश दिया, "तुझे चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष का राज्य करने का आदेश देता हूँ।" और पूछा, "तू कैसे राज करेगा? मुझे बता तो दे।" तब कलि महाराज बोला, "मैं तो स्वभाव से चांडाल हूँ। जब कोई भी जीव दुख पाता है, तो मैं नाचता हूँ, बड़ा खुश होता हूँ। मैं किसी जीव को सुखी नहीं देख सकता क्योंकि मेरा स्वभाव ही तामसी, राजसी प्रकृति का है।" स्वभावानुसार ही, कोई भी प्रेरित होकर कर्म करता है। इसमें जीव का क्या दोष है? क्या वश है? भगवान् ने पूछा, "यह बता, तू अपने कार्यकाल में संसार का कैसे संचालन करेगा?"

कलि महाराज बोला, "हे मेरे प्राणनाथ! जब आप मुझसे पूछ ही रहे हो तो मैं जैसा मेरा स्वभाव है उसी प्रकार संसार को चलाऊँगा।" कलि बोला, "प्रभु! कहीं पर इतनी बरसात करूँगा कि गाँव के गाँव बहा दूँगा। तो कहीं पर कई सालों तक बरसात को रोककर जीवों को प्यासा मारूंगा। गर्मी, इतनी करूँगा कि रोगों की भरमार मचा दूँगा, जिससे गरीब जनता इलाज करने वालों से इलाज नहीं करा सकेगी और वह बेमौत मारी जाएगी। खानपान इतना दूषित कर दूँगा कि अनगिनत रोगों की भरमार हो जाएगी। जीवों में इतनी कमजोरी हो जाएगी कि स्वयं का जीवन चलाना भी दूभर हो जाएगा। घर–घर में कलह का वातावरण बना दूँगा, बाप–बेटे की बनने नहीं दूँगा, पति–पत्नी में झगड़ा करा दूँगा, भाई–भाई में झगड़ा टंटा रहेगा। भाई, भाई की कोई नहीं मानेगा, ससुराल वाले सलाहकार होंगे। अपनी जाति वालों से मेल न होकर कुजाति से मेल होगा। मानव अभक्ष्य–भक्ष्य खाने लगेगा, प्रभुनाम का नाम–निशान तक नहीं रहेगा। सब जगह स्वार्थ का संसार बन जाएगा। पत्नी, पति को मरवा देगी। बेटा, बाप को मार देगा। न्यायालय में सच्चा न्याय नहीं मिल सकेगा। सब ओर पैसा नाचेगा, पैसे वालों की जीत होगी। असली माया ही पैसा व नारी होगी। मेरे राज्य में नारी का स्वामित्व रहेगा, नर उसका गुलाम बन जाएगा। बहुत सारा वातावरण बदलेगा। कहाँ तक गिनाऊँ, कोई अंत नहीं है। हर काम औजार मशीनें करेंगी। कोई भी आपका नाम, भक्ति नहीं कर सकेगा। जो करेगा उसको सख्त सजा दी जाएगी।" भगवान् बोले, "मैं समझ गया और क्या–क्या दुष्टता करेगा?" कलि बोला, "अब और भी बता रहा हूँ, आप भी डर जाओगे।"

कलि बोला, "मैं कहीं पृथ्वी को हिला लूँगा तो गाँव के गाँव, शहर के शहर पृथ्वी के अंदर घुस जाएँगे। कहीं ऐसा तूफान लाऊँगा कि सभी बनी बनाई सृष्टि नष्ट–भ्रष्ट हो जाएगी। ऐसे ऐसे खतरनाक शस्त्र बम बनाऊँगा कि फूटने पर पृथ्वी भस्मीभूत हो जाएगी, जल जाएगी। वहाँ कुछ नहीं बचेगा, जलकर राख बन जाएगी। वहाँ पर कई युगों तक सुनसान का वातावरण बन जाएगा। पहाड़ों पर बर्फ बनाना बंद कर दूँगा तो बड़ी बड़ी नदियाँ सूख जाएँगी। इनका

अस्तित्व पृथ्वी में घुस जाएगा। पहाड़ों का पहाड़पना नहीं रहने दूँगा। आपने मुझसे पूछा है तो मैंने संक्षेप में बता दिया है। कहने का मतलब है कि आप की शास्त्रीय मर्यादा का नाम निशान मिटा कर रहूँगा, आपका अस्तित्व ही मिटा दूँगा। आपको कोई नहीं मानेगा, मानव कहेगा कि जो कुछ होता है, वह मानव करता है। कहेगा कि भगवान्–वगवान कुछ नहीं होता, सब ढकोसला है। जो कुछ करता है मानव ही करता है। आप का अस्तित्व ही नहीं रहने दूँगा।" अब भगवान् बोले, "तू तो बड़ा दुष्ट, दुराचारी है। तू तो जीवमात्र का दुश्मन है।" अब कलि महाराज हाथ जोड़कर बोला, "भगवान्! मुझे किसने बनाया है? आप इसे दया कर बता दें।" अब भगवान् के पास कोई उत्तर नहीं था।

अंत में भगवान् बोले, "जो कुछ अनंतकोटि ब्रह्मांडों में बना हुआ है वह मेरे द्वारा ही बनाया गया है और जो कुछ भी ब्रह्मांडों में है, स्वयं मैं ही इस रूप में विराजित हूँ। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। मेरी प्यारी से प्यारी गायें भी, मेरे अधिकार से बाहर हो गईं। संत, गाय और ब्राह्मण हेतु ही मेरा अवतार होता है। अन्य जो भी प्रभावशाली संसार में हैं वह तो मेरी भौहों के इशारे से ही नष्ट हो जाती हैं। जो कुछ भी मैं करता हूँ वह लीलाओं के प्रादुर्भाव हेतु ही करता हूँ। मुझे इसमें आनंद की अनुभूति होती है। मैं भक्तों से श्राप दिला देता हूँ और भक्तों से ही वरदान दिला देता हूँ। जो कुछ लीलाएँ रचनी होती हैं, वह मेरे प्यारे भक्तों द्वारा ही प्रकट हुआ करती हैं। मैंने सनकादिक को रोकने पर जय–विजय को श्राप दिला दिया था ताकि तीन बार लीलाएँ कर सकूँ। हिरण्यकशिपु–हिरण्याक्ष, रावण–कुंभकर्ण, शिशुपाल एवं दंतवक्र। इनके द्वारा तीन बार मेरी लीलाओं का प्रादुर्भाव हो सका। यह युग भी मैंने ही बनाए हैं, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। इनमें वास करने वालों के स्वभाव भी मेरे द्वारा ही रचे गए हैं। इसी प्रकार कलि, तुम्हारा स्वभाव भी मैंने ही बनाया है, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। जैसा राजा वैसी प्रजा का स्वभाव बन जाता है। कलि, अब पूरे इतिहास का निचोड़, मुझसे सुन लो।" कलि हाथ जोड़कर, घुटनों के बल बैठ कर

बोला, "प्रभु! आदेश करो! मुझे आगे भविष्य में क्या करना है?" भगवान् बोले, "अब कान खोलकर, ध्यानपूर्वक मेरे आदेश को सुनो! जो भी मेरा नाम तेरे शासनकाल में लेगा, उसको तूने जरा भी दुख दे दिया तो मेरा सुदर्शन चक्र तुझे जलाकर भस्म कर देगा।" कलि बोला, "आपके आदेश का पालन मुझे करना होगा। और पूछने लगा कि, "जो मानव कपट से आपका नाम लेगा, क्या, उसका भी मैं कुछ नहीं कर सकता?" भगवान् बोले, "कैसा कपट? मुझे समझा कर बताओ।" तो कलि बोला, "जो आपका नाम लेगा और बाहर मेरी प्रजा को सताएगा तो क्या उसको भी मैं दुख नहीं दूँगा?" भगवान् बोले, "तुम्हें दुखी करने की आवश्यकता नहीं है। वह आपस में ही झगड़ा करके दुखी होते रहेंगे। भाई–भाई की नहीं बनेगी, पति–पत्नी में खटपट रहेगी, भाई–भाई लड़ता रहेगा, आपस में मार देगा, तो कोई रक्षक–पालक नहीं होगा। थोड़े दिन जेल काट लेगा, फिर पैसा देकर छूट कर वापिस घर आकर मौज करेगा। क्या फर्क पड़ता है? जेल में भी तो मुफ्त की रोटी खाने को मिल ही जाएगी।" भूतकाल में ऐसा शासन होता था कि दुष्ट को फाँसी लगा दी जाती थी तो कोई दुष्टता नहीं करता था। अब कोई डर, भय है ही नहीं, चाहे जिस को मार देते हैं, कोई पूछने वाला तक नहीं रहता। कलि महाराज कहता है, "अभी तो मेरी छाया ही जगत् में आई है। मैं जब प्रेक्टिकल रूप में आऊँगा तो मेरा तमाशा देखकर दंग होना पड़ेगा। सबके सामने मानव को जला दिया जाएगा।" कलि महाराज भगवान् से हाथ जोड़ कर बोला, ''हे प्रभुजी! जो कपट छोड़कर आपका सच्चा नाम लेगा तो उसकी तो मैं भी मदद करूँगा। किसी मार्ग में रोड़ा नहीं अटकाउँगा। जो भी काम करेगा, फौरन हो जाएगा क्योंकि माया भी उसकी मदद करेगी। इसलिए माया भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। आप ने शास्त्र में मोहर लगाकर मेरी आँखें खोल दी हैं। वह है, शास्त्र का आपका सत्य वचन।"

iU; ,d tx eg ufg ntkA eu Øe cpu lkek in itkAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

और है :

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru loA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"उपरोक्त आचरण वाले भक्त के, मैं स्वयं भी आश्रित रह कर हर प्रकार से सहायता करता रहूँगा। आपके आदेश का शत–प्रतिशत पालन करता रहूँगा।"

तभी तो शास्त्र बोल रहा है कि कलियुग में बचना हो तो हरिनाम का आसरा ले लो तो कलि महाराज आपका कुछ नहीं बिगाड़ेगा और उल्टा आपकी मदद करेगा। श्रील हरिदास ठाकुरजी ने हरिनाम चिंतामणि (श्री चैतन्य गौड़ीय मठ, चण्डीगढ़) में 210 पेज पर बोला है कि 16 माला से आरंभ कर के 3 लाख नाम जप करना अति उत्तम है तथा हरिभक्ति विलास में जो श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी की रचना है, जो गौड़ीय सम्प्रदाय का उच्चतम ग्रंथ है, उसमें बोला है कि हरिनाम होठों पर आना चाहिए तो एक दिन उसका जन्म–मरण का दारुण दुख मिट जाएगा। सतयुग, त्रेता, द्वापर की प्रजा तथा स्वर्ग के देवी देवताओं की कामना है कि उनका जन्म भारतवर्ष में कलियुग के समय में हो जाए तो वे अपना उद्धार हरिनाम के आश्रित होकर कर सकते हैं। जिन्होंने इस समय में हरिनाम का आसरा नहीं लिया, वह बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। वह आत्मघाती हैं। कलि भगवान् से बोला, "भगवान्! मैं भी तो आपका भक्त ही हूँ। आपके नाम लेने वाले की मदद नहीं करूँ तो आपके चरणों में मेरा घोर अपराध हो जाएगा। जो आपका भक्त नहीं होगा, उसके लिए मैं भरसक दुख का साम्राज्य पैदा कर दूँगा। मैं उसके लिए यमराज का रूप बन जाऊँगा। जो आपके नाम का विश्वभर में प्रचार करेगा, मैं उसका आभारी रहूँगा और उसकी कृपा चाहूँगा। उसकी हर प्रकार से, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की व्यवस्था करता रहूँगा तथा उसका शरीर निरोग रखूँगा। आपकी माया भी उसकी हर प्रकार से मदद करती रहेगी क्योंकि ऐसा भक्त समस्त जीवों का कल्याण चाहता है, दया की मूर्ति होता है, अपने आप को

तृण के समान समझता है। दुखियों का दुख उससे देखा नहीं जाता है। चाहता है कि सबका दुख मैं, कैसे दूर कर सकता हूँ? दुख को दूर करने में संलग्न हो जाता है, दुख दूर करने का उपाय बताता रहता है। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? ऐसा भक्त सुख का समुद्र होता है, सभी को सुखी देखना चाहता है। चर–अचर का भी मित्र होता है तो उसे हिंसक जीव जंतु भी नहीं खाता। साँप, बिच्छू भी नहीं खाता क्योंकि उनमें भी परमात्मा रूप से भगवान् विराजमान है क्योंकि ऐसे भक्त की दृष्टि ही ऐसी होती है कि सभी में उसे अपने प्यारे की मूर्ति नजर आती है।" तीन प्रार्थनाएँ इनका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जो इनको करेगा बहुत ही आसानी से भगवान् को प्राप्त कर लेगा।

हमारा धर्म शास्त्र घोषणा कर रहा है कि प्रत्येक मानव को अपनी कमाई का पैसा धर्म में लगाना चाहिए। धर्म में कहाँ लगाना चाहिए? जहाँ जिस समय सुपात्र मिल जाय। यदि वे धर्म में नहीं लगाते तो वह जहरीला बन जायेगा। धर्म में सत्पात्र को दी हुई आय अमृतमय बन जाती है, वह पैसा अमृतमय बन जाता है। यह रकम शुभ मार्ग में खर्च होगी, गरीबों में लगेगी, धर्मशाला आदि में खर्च होगी जिससे पुण्य इकट्ठा होगा। पुण्य सुख का प्रतीक है। जो पैसा, धर्म में नहीं लगता, वह शराबी बना देगा। जुआरी बना देगा, लड़ाई झगड़े में लगा देगा, बीमारियों में लग जाएगा, अदालत में खर्च होगा, चोरी हो जाएगा, अग्नि में जल जाएगा अर्थात् गलत मार्ग में ले जाएगा। मानव मात्र का एकमात्र धर्म है शुभ काम में पैसा खर्च करना। तब ही सुख का विस्तार हो सकेगा वरना तो दुख सामने दिख ही रहा है। मानव जन्म बहुत दुर्लभ से दुर्लभ होता है और कल्पों के बाद में मिलता है। इसे बेकार के कामों में लगाना कितनी बड़ी मूर्खता है। यह जन्म विफल होता है, कुसंग में बैठने से। सत्संग तो इन्हें स्वप्न में भी नहीं मिलता, तो सही रास्ते कैसे चल सकते हैं?

जो मनुष्य अपने धन को पाँच भागों में बाँट कर रखता है। वह सदा सुखी रहता है। कुछ धर्म के लिए, कुछ यश के लिए, कुछ धन

की वृद्धि हेतु, कुछ भोगों के लिए एवं कुछ अपने सज्जनों के लिए। वही इस लोक में तथा परलोक में सुखी रहता है।

वैसे तो सदा सत्य ही बोलना चाहिए। लेकिन कुछ समय झूठ बोलना भी बुरा नहीं है। यह भी ध्यानपूर्वक सुन लो! श्रीमद्भागवत कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। जैसे स्त्रियों से हँसी मजाक में, कन्याओं के विवाह में झूठ बोलना बुरा नहीं है। अपनी जीविका की रक्षा के लिए, प्राण संकट पर आ जाये तो झूठ बोलना बुरा नहीं है। गौ और ब्राह्मण के हित के लिए और, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए झूठ बोलना बुरा नहीं है। इन सब में झूठ बोलना बुरा नहीं माना गया है।

श्रीमद्भागवत कह रही है। यह 11वें स्कन्ध में बोल रहे हैं, "हे उद्धव! ईश्वर के द्वारा नियंत्रित माया के गुणों ने सूक्ष्म एवम् स्थूल शरीर का निर्माण किया है। जीव को शरीर और शरीर को जीव समझने के कारण ही स्थूल शरीर में जन्म–मरण और सूक्ष्म शरीर में आवागमन का आत्मा पर आरोप किया जाता है। जीव को जन्म–मृत्यु रूप संसार इसी भ्रम अथवा अभ्यास के कारण प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान होने से उसकी जड़ ही कट जाती है।

प्यारे उद्धव! इस जन्म–मृत्यु रूप संसार का और कोई दूसरा कारण नहीं, केवल अज्ञान ही मूल कारण है। अपने वास्तविक स्वरूप, आत्मा को जानने की इच्छा करनी चाहिए। धीरे–धीरे स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर आदि में जो सत्य बुद्धि हो रही है, उसे क्रम से मिटा देना चाहिए।"

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

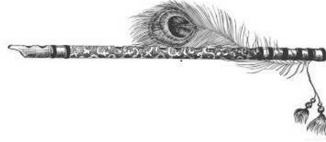
जो भगवान् का नाम लेता है उसके अनंत कोटि जन्मों के पाप क्षण में भस्म हो जाते हैं। ये सब स्वभाव बदलेंगे, केवल हरिनाम करने से ही। हरिनाम अनेक जन्मों के संस्कारों को नष्ट करके

भगवान् के चरणों में प्रीति करवा देगा। कलियुग में अन्य कोई रास्ता नहीं है। हरिनाम में मन लगे, चाहे न लगे नाम का उच्चारण करते हुए कान से सुनते रहो।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

प्रेम से हरिनाम जपो और कान से सुनो।

ऐसा करने से सब कुछ हस्तगत हो जाएगा। सुख ही सुख हो जाएगा। दुख का नामनिशान मिट जाएगा।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : एक माताजी पूछ रही हैं कि मैं सोलह माला करने का प्रयत्न करती हूँ, लेकिन कभी दस, कभी बारह, कभी चौदह माला ही हो पाती हैं। वैसे मैं सारा दिन हरिनाम मुख से लेती रहती हूँ, पर माला पर नहीं कर पाती। आप कृपया मार्गदर्शन करें।

उत्तर : देखो! माला पर करना जरूरी है। चैतन्य महाप्रभु भी माला पर, संख्या पूर्वक नाम जप करते थे। और हमको आदेश दिया है कि माला पर नाम जप करो और उसकी संख्या रखो। साक्षी रखो। केवल मन–मन में नहीं कर सकते। वैसे करते रहो, पर जप को माला पर करना जरूरी है। चैतन्य महाप्रभुजी का यही आदेश है। चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण भगवान् थे।

भक्तिदायिनी
'वृन्दादेवी महापटरानी'

(40)

7 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

अब मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, भक्तगण ध्यान पूर्वक सुनें! मेरे गुरुदेव, श्रीमद्भागवत महापुराण से ही बोल रहे हैं। भगवान् उद्धव को कह रहे हैं, "उद्धव! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पंचभूत ही ब्रह्मा से लेकर सभी प्राणियों के शरीरों के मूल कारण हैं। इस प्रकार सब, शरीर की दृष्टि से तो सामान्य हैं, सबकी आत्मा भी तो एक ही है, फिर राग–द्वेष किससे करोगे? यदि करोगे तो जन्म–मरण में फँस जाओगे और यदि करते हो तो स्वयं से ही राग–द्वेष हो रहा है। यही तो अज्ञान है। ज्ञानी पुरुष ऐसा कभी नहीं करते हैं। "उद्धव मेरी प्राप्ति के तीन ही मार्ग हैं – भक्ति योग, ज्ञान योग और कर्म योग। जो इनको छोड़कर मनमानी करते हैं, वह जन्म–मरण के चक्कर में दुखी होते ही रहते हैं। अपने–अपने अधिकार के अनुसार धर्म में निष्ठा रखनी गुण कहा गया है, इसके विपरीत चेष्टा करना दोष कहा गया है। गृहस्थी के लिए अपनी स्त्री का संग करना गुण है और संन्यासी के लिए जघन्य अपराध है। इससे यह लाभ भी है कि मनुष्य अपने सहज वासना मूलक स्वभाव के जाल में न फँस कर शास्त्र अनुसार अपने जीवन को काबू में कर, मन को वश में कर

सके। प्रिय उद्धव! यद्यपि सबके शरीरों में पंचभूत समान हैं, फिर भी वेदों ने इनको वर्णाश्रम आदि अलग–अलग नाम और रूप दिए हैं ताकि यह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को वश में करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थों की सिद्धि कर सके। कोई भी मनमानी न कर सके, मर्यादाओं को भंग न कर सके। गुरु मुख से भलीभांति हृदयगम्य कर लेने से मंत्र की और मुझे स्मरण करने से कर्म की शुद्धि हो जाती है।"

इस प्रकार इनके देश, काल, पदार्थ, मंत्र और कर्म शुद्ध होने से धर्म तथा अशुद्ध होने से अधर्म हो जाता है। कहीं–कहीं शास्त्र विधि से गुण, दोष हो जाता है और दोष, गुण हो जाता है जैसे ब्राह्मण के लिए संध्या वंदन, गायत्री जप गुण है परंतु शूद्र जाति के लिए दोष है, लेकिन कलियुग में इसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता, अतः दोषी होने से नरक में जाते हैं। हमें शास्त्र के अनुसार चलना चाहिए। अपनी मनमानी क्यों करते हैं?

"प्रिय उद्धव! विषयों में कहीं भी गुणों का आरोप हो जाता है तो उसमें आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होने से उसे पास में रखने का मन करता है, यदि मन को इस में अड़चन मालूम होती है तो लोगों में कलह उत्पन्न हो जाता है, कलह से न सहने योग्य क्रोध आ जाता है, क्रोध आने पर हित और अहित का बोध नहीं रहता, अज्ञान छा जाता है और अज्ञान से न करने योग्य कर्म कर बैठता है। फिर मानव में मनुष्यता नहीं रहती, पशुता आ जाती है तो मानव पागल के समान हो जाता है।"

भगवान् श्रीमद्भागवत पुराण के 11वें स्कन्ध के 23वें अध्याय में भगवान् उद्धव को जो बृहस्पति का शिष्य है, समझा रहे हैं कि, "प्रत्येक जीव में अलग–अलग सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का प्रभाव रहता ही है। प्रत्येक प्राणी के स्वभाव में भी भिन्नता रहती है, अंतर रहता है। जो गुण जिसमें हावी रहता है उसी स्वभाव के अनुसार कर्म करता है।"

जिस समय सात्विक स्वभाव चल रहा हो तो जीव इंद्रियों पर संयम रखेगा, सहनशील रहेगा, विवेक से रहेगा। सत्य, दया, स्मृति, संतोष, त्याग, विषयों में वैराग्य, लज्जा और पाप करने में अरुचि होगी। यह सात्विक गुण का स्वभाव है। जब रजोगुण की वृत्ति चल रही होगी तब उसमें इच्छानुसार प्रयत्न, घमंड, तृष्णा, असंतोष, अहंकार, अकड़ आदि होगी। जब तामसी वृत्ति होगी तो क्रोध, लोभ, हिंसा, कपट, पाखंड, मद, कलह, शोक, मोह, विषाद, निद्रा, असत् आदि का प्रभाव रहेगा।"

"यह मैं हूँ एवं यह मेरा है, इसमें तीनों गुण कार्य वृत्तियों का समावेश रहता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रहते हैं। जब मनुष्य धर्म, अर्थ और काम में लगा रहता है तब वह सतोगुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन की ओर अग्रसर होता है।"

वृंदा महारानी की अथवा तुलसी माँ की कृपा के बिना भगवान् नहीं मिलते। इसका एक प्रत्यक्ष प्रसंग, मेरे गुरुदेव, सब भक्तों को सुना रहे हैं। ध्यान पूर्वक सुनें! तुलसी के बिना भगवान् कभी नहीं मिलेंगे, स्वप्न में भी नहीं मिलेंगे। तुलसी भगवान् को सबसे प्यारी है।

एक बार नारदजी द्वारका धाम में कृष्ण से मिलने गए। वहाँ कृष्ण की बहुत सी रानियाँ आपस में बात कर रही थीं कि हमारे प्राणनाथ कृष्ण किस को अधिक प्यार करते हैं। कोई कहती, "रुक्मिणी को प्यार करते हैं।" कोई कहती, "सत्यभामा को प्यार करते हैं।" कोई कहती, "उस अमुक को प्यार करते हैं।" यह चर्चा नारदजी भी सुन रहे थे तो उन रानियों में से सत्यभामा बोल उठी, "नारदजी! आपने बहुत दिनों के बाद आकर दर्शन दिया है। आपका क्या आदेश है जिससे हम आपको खुश कर सकें।" नारदजी बोले, "तुम मुझे खुश करोगी?" सत्यभामा बोली, "हाँ! क्यों नहीं। आप बोलो।" नारदजी बोले, "जो मैं चाहूँगा, क्या तुम मुझे दे दोगी?" सत्यभामा बोली, "जो चाहोगे, अगर मैं दे सकी तो दे दूँगी। बताइये। आप को सोना, चाँदी, इससे अधिक क्या चाहिए? हमारे यहाँ पर तो

सोना, चाँदी ढेरों के ढेर हैं। हमारे यहाँ इतने महल हैं। लाख–लाख महल हैं। हमारे यहाँ क्या कमी है, सोना–चाँदी की? आप कितना ही माँग लो।" नारदजी ने बोला, "वचन भरो, प्रण करो।" सत्यभामा बोली, "हाँ! मैं वचन देती हूँ, जो माँगेंगे, मैं आपको दे दूँगी। रुक्मिणी बोली, "अरी बहन सत्यभामा! वचन मत भरो। यह संन्यासी न जाने क्या माँग लेगा और अगर तुम वह सब कुछ न दे सकोगी तो यह हमें, श्राप देकर चला जाएगा। संन्यासियों की गति कोई नहीं पहचान सकता। तुमने वचन भर लिया यह ठीक नहीं किया अब यह बाबा मालूम नहीं क्या माँगेगा।" सत्यभामा (हँसते हुए) बोली, "बहन! हमारे यहाँ पर किस चीज की कमी है? हम सब कुछ दे सकते हैं।"

"यह जो माँगेगा, हम दे देंगे। तुम चिंता क्यों कर रही हो? पूछो इससे। महात्माजी आपको क्या चाहिए?" नारदजी बोले, "तो तुमने वचन भर लिया है न, दोगी। तो जानती हो, मैं नारद हूँ। क्या से क्या कर दूँगा।" अब तो सारी रानियाँ डर गईं कि बाबा न जाने, क्या माँगेगा? थर थर काँपने लगीं। सभी कहने लगीं कि, "सत्यभामा! पूछो इस बाबा से, उसे क्या चाहिए?" सत्यभामा ने पूछा, "महात्माजी! आपको क्या चाहिए? नारदजी बोले, "अरे! मुझे कृष्ण चाहिए।" बस अब क्या था। रानियों के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई और सत्यभामा को सब रानियाँ बुरा–भला कहने लगीं कि महात्मा की गति कौन जान सकता है? उसने यह ठीक नहीं किया। अब तो नारदजी उनके प्राणनाथ को लेकर चले जाएँगे, उन सब के तो प्राण ही निकल जाएँगे। सत्यभामा ने यह क्या मुसीबत मोल ले ली। सत्यभामा बोली, "मैं नारदजी से बात करती हूँ। आप चिंता मत करो। सब ठीक हो जाएगा।" तो सत्यभामा, नारदजी के चरणों में पड़ गई और प्रार्थना करने लगी, "आप मेरे प्राणनाथ के अलावा और कुछ माँग लो। मैं आपके चरणों की धूल हूँ। कृपा करो महात्माजी!" संत तो दयालु होते हैं। अतः नारदजी बोले, "ठीक है! मुझे कृष्ण के बराबर सोना तोल कर दे दो।" सत्यभामा बोली, "हाँ! हाँ! क्यों नहीं, यहाँ सोने की तो कोई कमी नहीं है। अभी तराजू मँगाती हूँ।" और सत्यभामा अपनी बहन

रुक्मिणी को बोली, "काम बन गया है। तुम जल्दी से एक बड़ी तराजू मँगवाने का प्रबंध करो वरना यह महात्मा हमारे प्राणनाथ को लेकर चला जाएगा। जल्दी करो!" रुक्मिणी ने किसी को कहा, "अरे! जल्दी तराजू लेकर आना और तराजू बड़ी लेकर आना, जिसके पलड़े बहुत बड़े हों क्योंकि हमको सोना तोलना है।"

सत्यभामा बोली, "महात्माजी! आप इस कुर्सी पर विराजमान हो जाओ, मैं अभी तराजू मँगा रही हूँ।" महात्माजी एक तरफ बैठ गए, सब देखते रहे कि अब आगे जाने क्या होने वाला है? तराजू आ गई, नारदजी ने कृष्ण को आवाज दी, "कृष्ण! जल्दी आओ।" कृष्ण आ गए तो नारदजी बोले, "कृष्ण! इस पलड़े में विराजो।" कृष्ण को इस बात का पता नहीं था कि क्या समस्या हो रही है। रानियों ने क्या आफत कर दी है। अतः कृष्ण बोले, "मैं तराजू में क्यों बैठूँ।" नारद बोले, "तुम्हारी प्यारी सत्यभामा ने तुम्हारे बराबर सोना देने को वायदा किया है। मैं तुम्हारे बराबर सोना लेकर, अपने आश्रम जाऊँगा।" कृष्ण का तो साधु–आज्ञा पालन करने का स्वभाव ही है अतः कृष्ण पलड़े में बैठ गए। अब दूसरे पलड़े में रानियाँ सोना ला ला कर चढ़ाने लगीं। पलड़े में सोना भर गया। अब पलड़े में और सोना नहीं आ सकता था पर कृष्ण का पलड़ा जमीन पर ही टिका रहा, ऊपर उठा ही नहीं। रानियाँ घबरा गईं कि उनके प्राणनाथ में इतना बोझ कहाँ से आ गया जो इतना मनों सोना तोलने पर भी पलड़ा उठा ही नहीं है। भगवान् तो बहुत हल्के हैं, अब इतने भारी कैसे हो गए? अतः चिंता में डूब गईं। अब तो सब रानियाँ अपना श्रृंगार का सोना भी उतार–उतार कर चढ़ाने लगीं। सोचने लगीं कि अब तो उनके श्रृंगार का सोना भी चढ़ा दें नहीं तो वह कृष्ण को ले जाएगा। परंतु अभी भी कृष्ण का पलड़ा उठा तक नहीं। नारदजी बोले, "और सोना है?" रानियाँ बोली, "सोना तो बहुत है, पर पलड़ा उठता ही नहीं है और अब तो पलड़ा भी छोटा पड़ गया है, हम कहाँ से उसमें डालें, कहाँ रखें।" कई मन सोने से भी कृष्ण नहीं तुल सके तो अब और सोने से कहाँ तोलेंगे? नारदजी बोले, "सत्यभामा! तुम्हारा देना बेकार हो गया, तुम्हारा वचन झूठा हो गया। अब तो मैं कृष्ण को साथ लेकर जा रहा हूँ।"

सब रानियाँ जोर–जोर से रोने लगीं, "हाय! हम क्या करें? हम प्राणनाथ के बिना जीवित नहीं रह सकेंगी। महात्माजी! कुछ और माँग लो।" नारदजी बोले, "अब तुम यह नहीं दे सकीं तो और क्या माँग सकता हूँ? कुछ नहीं, मैं कृष्ण को लेकर जा रहा हूँ।" रानियाँ बहुत ज्यादा रोने लगीं, पैरों में पड़ गईं, पैर पकड़ लिए, कहने लगीं, "हम नहीं जाने देंगे आपको। आप हम पर कृपा कर दो। हमारे प्यारे प्राणनाथ को मत ले जाओ।" संत तो दयालु होता ही है। नारदजी ने बोला, "सत्यभामा! ऐसा करो, एक तुलसीजी का पत्ता लेकर आओ।" सत्यभामा बोली, "तुलसी के पत्ते से क्या करना है?" तो रुक्मिणी बोली, "बहन! ज्यादा बहस मत करो। यह बाबा, हमें मार कर जाएगा। जैसा बोल रहा है, तुम जल्दी तुलसी पत्र मँगा लो।" अब तो सत्यभामा ने किसी को नहीं बोला और स्वयं ही लेने भागी। तुलसी का एक पत्ता लेकर आई और नारदजी को बोली, "महात्माजी! यह लो तुलसी का पत्ता।" नारदजी बोले, "सोने को पलड़े से उतारो और यह पत्ता इस पलड़े में रखो।" तो सत्यभामा बोली, "बाबा आप तो बड़े भोलेभाले हो, जब मनों सोने से प्राणनाथ नहीं तुल सके तो एक तुलसी के पत्ते से कैसे तुलेंगे?" फिर रुक्मिणी बोली, "अरे बहन! तू ज्यादा बहस मत कर, जिद मत कर। यह बाबा, मालूम नहीं, हमको क्या करके चला जाएगा, इससे पिंडा छुड़ा। जैसे बाबा बोलता है, वैसा करो।"

सत्यभामा ने तुलसी पत्र पलड़े में डाला और कृष्ण का पलड़ा ऊपर डंडी तक लगकर रुक गया और तुलसी के पत्ते वाला पलड़ा, धरती से स्पर्श हो गया। अब रानियाँ ताली बजा–बजाकर नाचने लगीं और बोलीं, "बाबा! अब तो आप जा सकते हो।" नारदजी बोले, "ठीक है! मुझे तो जाना ही है। कृष्ण को तुम रानियाँ इतनी प्यारी नहीं हो, जितनी प्यारी वृंदा महारानी है। वृंदा माई जन्म–जन्म की सब की माँ है। यही आपके पति कृष्ण को, भक्तों से मिलाती है।" तुलसी सेवा ही सर्वोत्तम है। तुलसी प्रसन्न तो भगवान् प्रसन्न, ऐसा मन में धार लो और तुलसी की सेवा करो।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

धर्मशास्त्र में प्रसंग आता है कि जालंधर नामक एक राक्षस था। यह तुलसी उसी की स्त्री थी, यह सती थी, इसी कारण जालंधर किसी से डरता नहीं था। भगवान् ने ऐसी लीला की थी जिससे वह मर गया। प्रसंग बहुत बड़ा है और रहस्यमय भी है अतः सूक्ष्म में ही गुरुदेव ने बता दिया है। सभी इस प्रसंग को सुनने के अधिकारी भी नहीं हैं अतः यहीं पर विश्राम कर दिया है। तुलसी जी ने भगवान् से बोला, "कि मेरी कृपा के बिना आपके भक्त नहीं बन सकते और मेरी कृपा के बिना आपका भक्त आपसे नहीं मिल सकता।" ऐसी ही घटना घटी तथा भगवान् को भी तुलसीजी का आदेश पालना पड़ा।

कहावत है :

èkU; rqylh i.k ri fd;k]
Jh&'kkyxzke&egk&iVjk.kh uek uek%A

(तुलसी आरती)

तुलसी महापटरानी है। न सत्यभामा, न रुक्मिणी, और न कोई और रानी महापटरानी है। तुलसी की सेवा ही सबसे ऊपर है। भगवान् की सेवा तो इससे निम्न कोटि की है। मेरे गुरुदेव ने "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक में तुलसी की सेवा के बारे में लिखा है उसको पढ़ कर, आप देख सकते हो।

इसी प्रकार माँ–बाप की सेवा ही सर्वोपरि है। भगवान् की सेवा तथा साधु की सेवा तो निम्न कोटि की है। माँ–बाप चाहे अनुकूल नहीं हैं तो भी माँ–बाप की सेवा के बाद ही भक्ति पथ में जाना होगा, माँ–बाप की सेवा के बिना भक्ति पथ पर नहीं जा सकते। जो माँ–बाप की सेवा नहीं करता, वह भक्ति पथ में जा नहीं सकता, यदि जाता है तो उसे भक्ति में सफलता नहीं मिलेगी। एक अपवाद जरूर है कि जो माँ–बाप भगवद् पथ में रोड़ा अटकाते हैं तो फिर बेटा माँ–बाप को छोड़ सकता है।

कहावत हैः

tkds fç; u jke&cSnsghA
rft;s rkfg dksfV oSjh le] ;|fi ije lusghAA

(गो. तुलसीदास कृत विनय–पत्रिका, विषय–विनयावली, पदाङ्क 174, दो. 1)

कितना भी प्यारा हो, अगर वह भगवान् की तरफ जाने में रोड़ा अटकाता है, तो उसको छोड़ देना चाहिए, उससे मुँह मोड़ लेना चाहिए, यह शास्त्र कहते हैं। हाँ! ठीक है, अगर माँ–बाप भजन नहीं करते हों तो न करें, लेकिन उनकी सेवा तुमको करनी है। अगर रोड़ा अटकाते हैं तो माँ–बाप को आप छोड़ सकते हो। कोई भी हो, माँ, बाप, भाई, कोई भी हो, उसको छोड़ सकते हो, पति को छोड़ सकते हो, स्त्री को छोड़ सकते हो यदि भगवान् में रोड़ा अटकाता है। जितना भी प्यारा हो जो भगवान् की तरफ जाने में रोड़ा अटकाता है तो उससे मुँह मोड़ लो, इसमें कोई आपत्ति नहीं है, कोई दोष नहीं है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

मानव सोचता है कि भगवान् मिलना असंभव है। भगवान् मिलना उसके लिए मुश्किल है जिसका स्वभाव खराब है। गीता में भगवान्, अर्जुन को बोल रहे हैं, "हे अर्जुन! मुझे मनुष्य कृश करता रहता है। कृश का मतलब है, मुझे दुखी करता रहता है। यह स्वाभाविक ही है कि जिसके द्वारा प्राणी दुखी होता है उसे वह मिलना नहीं चाहेगा। वह तो उसके मन से ही उतर जाएगा। उदाहरण श्री गुरुदेव समझा रहे हैं जैसे अशोक को राजू दुखी करता रहता है। वास्तविकता तो यह है कि अशोक के शरीर से राजू घृणा करता है, शरीर को सताता रहता है, यह सताना अशोक के शरीर का नहीं है। अशोक के शरीर में जो आत्मा परमात्मा का अंश है, उसे ही राजू सता रहा है। शरीर को नहीं सताया जाता, आत्मा को सताया जाता है। शरीर तो आत्मा का मकान है, कपड़ा है। मकान और कपड़े को क्या दुख होगा? यह तो जड़ वस्तु है। दुख होगा

सजीव वस्तु, आत्मा को, जो परमात्मा का अंश है, तो परमात्मा इस मानव को कैसे मिल सकता है? दुख देने वाले को कैसे मिल सकता है? कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ, ऐसा तो नहीं कहते कि किसी के शरीर को मत सताओ। इसी कारण भगवान् मानव से मिलना नहीं चाहते हैं, नहीं तो भगवान् तो बहुत जल्दी मिल जाते हैं।

मेरे गुरुदेव ने बताया है कि जिसके 7 तरह के स्वभाव अच्छे हैं, तो भगवान्, उसके पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं। उन 7 स्वभावों को सँभालो, जो खराब है उसे सुधार लो, फिर भगवान् आपके पास में हैं। बस फिर भगवान् दूर नहीं जाते। उदाहरण है कि जैसे कोई भी मेरे कमरे की खिड़की को तोड़े तो कमरा रोएगा क्या? नहीं! जो इसमें रहता है वही रोएगा। इसी प्रकार मानव का शरीर नहीं रोएगा, शरीर में रहने वाला आत्मा रोएगा। बस निष्कर्ष यह निकलता है कि मानव भगवान् के अंश आत्मा को दुखी कर रहा है। यदि यह समस्या मन में हल हो जाए तो भगवान्, परमात्मा दूर नहीं है। देखो! सतयुग, त्रेता, द्वापर और देवता लोग कहते हैं कि अगर हमारा कलियुग में जन्म हो जाए तो हम भगवान् को बहुत सरलता से प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि इसमें कोई नियम नहीं है। केवल भगवान् का नाम लो, कोई नियम नहीं है और सतयुग में तो जंगलों में जाकर तपस्या करो, सर्दी गर्मी सब सहो। तब भी भगवान् कहेंगे कि दस हजार वर्ष के बाद मिलूँगा। त्रेता में बड़े–बड़े यज्ञ करो, सबको जीतो, बहुत पैसा लगाओ तब जाकर भगवान् मिले तो मिले। द्वापर में बहुत सच्चे दिल से निर्मल हृदय से पूजा करो, तब भगवान् मिलेगा और यहाँ कलियुग में तो भैया! कपट से भी भगवान् मिलेगा। कपट से ही हरिनाम करो, तब भी भगवान् मिल जाएगा। कोई नियम नहीं है, कैसे भी करो, कहीं बैठकर करो। कितना सरल रास्ता है, इसलिए सब देवता भी प्रार्थना करते हैं, "हे भगवान्! हमको कलियुग में, भारतवर्ष में जन्म दे दो। भारतवर्ष में जो नदियाँ हैं, वे वैकुण्ठ की देवियाँ हैं, जो नदी रूप में आई हैं, नदियों में स्नान करके हम पवित्र हो जाएँगे। पहाड़ हैं, वह देवता हैं, उनकी गोद में बैठकर हम हरिनाम करेंगे"। तो ऐसा है कि हम को कलियुग में जन्म दे दो।

भगवान् उसके लिए मुश्किल हैं, जिसका स्वभाव खराब है।

अंदर ही आत्मारूप में परमात्मा विराजमान है। संसार की अन्य वस्तुएँ दूरी पर हैं, परंतु परमात्मा से नजदीक कुछ भी नहीं है। जो सबसे नजदीक होगा, उसके आने में देर कैसे हो सकती है? यह मानव का वहम है। संसार में अन्य सामग्री, वस्तु पाने में देर हो सकती है, लेकिन परमात्मा को पाने में देर नहीं होगी। केवल मानव का स्वभाव बुरा होने की वजह से परमात्मा दूर रहता है अतः मानव दुख सागर में गोता खाता रहता है क्योंकि संसार तो दुखालय बताया ही गया है। सुख तो केवल भगवान् के चरणों में है। कृष्ण से अन्य कहीं सुख की हवा भी नहीं है। इस सुख को पाने का उपाय है कि कलिकाल में, 24 घंटे में केवल एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करना परम आवश्यक है। जो मानव 64 माला नित्य करता रहता है, उसको भगवान् स्वयं आकर वैकुण्ठ में ले जाते हैं। उसके लिए सुख का समुद्र उपलब्ध हो जाता है। हरिनाम में मन लगे चाहे न लगे। वह तो वैकुण्ठवास करा ही देगा, लेकिन सच्चे संत का संग होने से ही ऐसा हो सकता है।

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir eaxy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

आप मन से करो चाहे बेमन से करो। बस भगवान् का नाम लो तो दसों दिशाओं में सुख का साम्राज्य उपलब्ध हो जाएगा। विचार करने की बात है कि दसों दिशाओं के अतिरिक्त ग्यारहवीं दिशा तो होती नहीं है, अतः दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी है। बेमन से हरिनाम होने से भी वैकुण्ठ वास हो जाएगा। जैसे बिना जाने अमृत पी लिया जाए तो अमर बनाए बिना नहीं रहेगा इसी प्रकार बिना जाने, अगर जहर पी लिया जाए तो वह मारे बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार बिना जाने आग में हाथ लग जाए तो वह जलाए बिना नहीं रहेगी। ऐसे ही भगवान् का नाम, आप बिना जाने, कैसे भी लो तो भगवान् की कृपा मिल जाएगी, भगवान् वैकुण्ठ ले जाएँगे। हमारा

धर्म शास्त्र बोल रहा है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, किसी भी अवस्था में हरिनाम मुख से निकल जाए, बस, तो सुख विधान हो जाएगा। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु जो कृष्ण के अवतार हैं, उन्होंने 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करने के लिए जोर दिया है। प्रत्येक मानव को नित्य इतना हरिनाम करना परम आवश्यक है ताकि उसका जन्म मरण का दुख दूर हो जाए और भविष्य में सुख का साम्राज्य बन जाए। इसी कारण मेरे गुरुदेवजी सभी को बारंबार बोल रहे हैं कि इस दुष्ट कलि महाराज से हरिनाम करके बच जाओ। केवल हरिनाम करो। उसमें आपको क्या परिश्रम होगा? हरिनाम करो।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

हरिनाम करने वाला समझो कि प्रह्लाद का प्रतीक है और कलि महाराज हिरण्यकशिपु का प्रतीक है। अतः कलि महाराज जापक का बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा, स्वयं ही हार कर भाग जाएगा। यदि मानव केवल अहंकार को मन से दूर कर दे, तो भगवान् मिल जाएँगे। यह अहंकार ही माया का प्यारा दोस्त है और हथियार है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है :

r`.kknfi lquhpsu rjksjfi lfg".kqukA
vekfuuk ekunsu dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् 3)

तृणादपि...अपने आप को बहुत छोटा समझे, बहुत नीचा समझे, तभी अहंकार से दूर रह सकते हो। जब अहंकार होगा तो वह कीर्तन करने लायक नहीं है। वह कपट से कीर्तन कर रहा है। इस दुष्ट अहंकार को दूर रखे और अपना मान नहीं चाहे, दूसरों को इज्जत दे, वही कीर्तन कर सकता है। जो अहंकार को मारेगा, वह ही भगवद् नाम ले सकेगा, वरना भगवद् नाम कपटमय होगा और भगवान् को कपट नहीं सुहाता है।

भगवान् क्या कहते हैं :

fue'y eu tu lks ekfg ikokA
ekfg diV Ny fNæ u HkkokAA

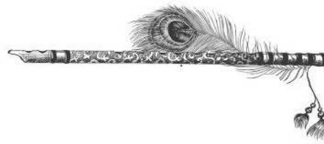
(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

अहंकार में ही संसार बसा हुआ है। अहंकार मरा नहीं और भगवान् आया नहीं। भगवान् को आने में यह अहंकार ही रोड़ा अटकाता रहता है। यही माया का प्रबल हथियार है और यह अहंकार सब में भरा पड़ा है, इसलिए भगवान् नहीं मिलेगा। शिवजी मृत्यु के देवता हैं और जो भी दुख की सेना है वह शिवजी की ही है। नींद भी इन्हीं की ही है, ग्रह–गोत्र भी शिवजी के ही हैं, रोग–दोष भी शिवजी के ही हैं। जो हरिनाम करता है, शिवजी उसे अपना भाई मानते हैं क्योंकि शिवजी, पार्वती को पास में बिठाकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। हरिनाम करने वाले पर शिवजी प्रसन्न रहते हैं, अतः शिवजी दुख के गण, जापक के पास भेजते ही नहीं हैं, लेकिन जापक निस्वार्थ होना चाहिए। कपटी होने से दुख से नहीं बचेगा। कहते हैं कि हम तो बहुत हरिनाम करते हैं, फिर भी दुखी रहते हैं। तो प्रत्यक्ष है कि तुम हरिनाम दिखावटी करते रहते हो, सच्चाई से नहीं करते। अतः कपटी के पास तो दुख आएगा ही। मन में तो द्वेष भरा पड़ा है और बाहर से हरिनाम करना दिखा रहे हो। कैसे भगवान् आपके पास आएगा? कभी नहीं आएगा।

देखो! भगवान् तो अंतर्यामी हैं। किसी के मन का भाव, उनसे छिपा नहीं है। दिखावट से कुछ नहीं होने वाला। जहाँ सच्चाई है, वहाँ भगवान् है। वहाँ सुख–विधान है। छिप–छिपकर कुछ भी करते रहो, दुख तो तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है। फिर कहते हो हम तो भगवान् को बहुत चाहते हैं, पर फिर भी दुखी रहते हैं। यह तुम्हारा छल कपट भगवान् से सहनीय नहीं है। ऐसे ही रोते रहोगे और एक दिन यहाँ से कूच कर जाओगे और साथ में अपना किया कराया, अच्छा–बुरा कर्म लेकर जाओगे। दुनिया से छिपा लोगे, लेकिन भगवान् से नहीं छिपा सकते। मानव जन्म बहुत दुर्लभ है। बेकार कर्म करके मानव जन्म को

नष्ट कर दिया तो बाद में नर्क भोगोगे तथा 84 लाख योनियों को भोगते रहोगे। कई कल्पों के बाद मनुष्य जन्म मिल जाए तो गनीमत है। वह भी यदि किसी संत की कृपा से मिल जाए तो।

जीवमात्र में 3 धाराएँ बहती रहती हैं सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। जब यह धाराएँ समाप्त हो जाती हैं, तो अंत में निर्गुण धारा बहती है जो भगवान् से सम्बन्धित है। धारा अनुसार ही भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। जिसको जैसी धारा प्रभावित कर रही है, उसके अनुसार ही भगवान्, उसे प्रेरित करके कर्म में नियुक्त करते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिलता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जय–विजय। जो भगवान् के वैकुण्ठ के चौकीदार थे। इन्होंने सनकादि को अंदर जाने से रोका जिससे उनका श्राप लेना पड़ा। अतः तीन जन्म तक राक्षस योनि में जाना पड़ा। भगवान् की प्रेरणा से ही तो जय–विजय को सनकादिक को रोकना पड़ा। यह भगवान् की प्रेरणा से ही हुआ जैसाकि जब भगवान्, जय–विजय के पास आए और सनकादि ने बोला, "इस श्राप को हम वापस ले लेते हैं।" तब भगवान् ने कहा, "मैंने ही मेरी प्रेरणा से इन्हें श्राप दिलाया था क्योंकि मुझे लीला करनी थी।" तो निष्कर्ष यह निकलता है कि मानव का जैसा प्रभाव होता है, जैसा भाव होता है, स्वभाव होता है, तामसी, राजसी या सात्विक, वैसे ही प्रेरणा भगवान् के द्वारा होती है। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो शेर, सर्प, बिच्छू भी नहीं खाता। भगवान् के प्यारे साधु को कोई जीव भी नहीं सताता है।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

कलियुग का सुदर्शन चक्र : हरिनाम

41

14 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

**अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।**

भक्तगण ध्यान पूर्वक सुनें! भक्ति का अर्थ क्या है? भक्ति का अर्थ है कि भगवान् और भक्त में मन की फँसावट अर्थात् भक्त और भगवान् में आसक्ति। अभी हमारी संसार में आसक्ति है। माया की तीन शक्तियाँ हैं, जो जीव मात्र को भगवान् से दूर रखती हैं। वह हैं– सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। यह गुण पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारणवश जीवमात्र को प्रेरित करते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा से ही जीव अपने कर्म में आसक्त रहते हैं। जीवमात्र के अंतःकरण में, इन तीनों धाराओं में से जो भी धारा बहती है, उसी के अनुसार भगवान् के द्वारा प्रेरित कर्म होते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिल सकता। जब तक जीवमात्र में परमात्मा रूपी आत्मा उसके अंतःकरण में विराजित है, तब तक वह प्रेरित होता रहता है। जब शरीर से आत्मा रूपी सैल निकल जाता है तो शरीर रूपी घड़ी बंद हो जाती है। भक्ति का प्राण क्या है? वह है शरणागति। गीता का सार, आदेश, उपदेश क्या है? वह है शरणागति।

loèkekUifjR;T; eked: 'kj.k oztAA

(श्रीगीता 18.66)

"सभी धर्मों को छोड़कर केवल मुझ में ही आसक्त हो जा, मुझ में ही मन को बसा ले, तो तेरा सारा दुख जड़ सहित खत्म हो जाएगा अर्थात् सुख ही सुख का साम्राज्य फैल जाएगा।" सूर्य जब उदय हो जाता है तो क्या अँधेरा रह सकता है? जब ज्ञानांजन आँखों में लग जाता है तो क्या अज्ञान रह सकता है? कभी नहीं। अब गुरुदेव सभी भक्तगणों को स्पष्ट करके शरणागति का क्या रूप है, बता रहे हैं। जो भी गुरुदेव कह रहे हैं वह श्रीमद्भागवत पुराण से ही बोल रहे हैं कि शरणागति किसे बोला जाता है? यह कैसा साधन है? हमारे धर्म शास्त्र में बिल्ली के बच्चे, बंदरी के बच्चे का तथा मानव के शिशु का उदाहरण देकर समझाया गया है। बंदरी अपने बच्चे को छाती से चिपका कर रखती है लेकिन अपने हाथों से पकड़ती नहीं है। बंदरी का बच्चा अपनी माँ बंदरी को अपने हाथों से पकड़ कर रखता है। जब बंदरी दूसरी जगह जाने हेतु उछलती है तो अधिक हरकत होने से बच्चा नीचे जमीन पर गिर जाता है, और बच्चा कोमल होने से मर जाता है।

उदाहरण देने से अच्छी तरह समझ में आ जाता है। इसलिए शास्त्र में उदाहरण दिया है, बंदरी का बच्चा शरणागत न होकर अपनी शक्ति से ही अपनी माँ बंदरी को पकड़े रहता है। अपनी शक्ति से आज तक किसी को सफलता नहीं मिली है। जीवमात्र को किसी न किसी का सहारा लेना ही पड़ता है। पेड़ को पृथ्वी का सहारा लेना पड़ता है वरना पेड़ खड़ा नहीं रह सकता, शिशु को अपनी माँ का सहारा लेना पड़ता है वरना शिशु भविष्य में कुछ नहीं कर सकता, पाठक को मास्टर (अध्यापक) का सहारा लेना पड़ता है, शिष्य को गुरु का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार जीवमात्र को अपने जन्मदाता भगवान् का सहारा लेना पड़ता है। भगवान् के सभी बच्चे ही तो हैं। भगवान् ने ही तो सबको पैदा किया है। यदि भगवान् का सहारा नहीं लेता तो सारा जीवन दुख में ही कटेगा। बिना सहारा लिए कोई भी सुखी रह नहीं सकता। अतः सहारा लेना सभी को आवश्यक है। बंदरी के बच्चे ने अपनी माँ का सहारा न लेकर अपनी

शक्ति का सहारा लिया, तो नतीजा यह निकला कि अपना जीवन बर्बाद कर लिया, मर गया। भगवान् की शक्ति का सहारा, भगवान् ने सबको दिया है तभी तो जीवमात्र हरकत करता रहता है। जब शक्ति निकल जाती है तो जीवमात्र जड़ हो जाता है, निष्क्रिय बन जाता है। अब बिल्ली की चर्चा को मेरे गुरुदेव बता रहे हैं। बिल्ली अपने बच्चे को स्वयं अपने मुख में पकड़े रहती है, क्योंकि बिल्ली का बच्चा कोमल होता है तो अपने बच्चे को इस प्रकार से पकड़ती है कि उसके दाँत बच्चे को न चुभें, लेकिन हर प्रकार से मुख में पकड़े रहती है। अब बिल्ली भी उछलती रहती है तो बिल्ली का बच्चा गिरता नहीं है क्योंकि जिम्मेदारी बिल्ली की है। बच्चा निर्भय होकर माँ के मुख में पड़ा घूमता रहता है। इसी प्रकार यदि मानव भगवान् का सहारा ले तो मानव को कोई चिंता नहीं रह सकती। मानव निर्भय होकर अपना जीवन यापन कर सकता है।

मानव शिशु को भी माँ का सहारा है। शिशु तो अनजान है, भोला–भाला है। कुछ जानता नहीं है, तो पूरी जिम्मेदारी माँ की है। माँ इसका 24 घंटे ध्यान रखती है। शिशु जो हाथ में आए, चाहे कोई तिनका हो या कुछ भी हो, मुँह में डालेगा, वह अपने मल को भी खा सकता है, वह साँप को भी पकड़ सकता है तो समझना होगा कि माँ उसका हर क्षण ध्यान रखती है। शिशु का पिता तो घर के बाहर रहता है और घर में जरूरत की चीज को अपनी धर्मपत्नी को सौंपता रहता है। अतः शिशु केवल माँ को ही जानता है पिता को नहीं। कई बार माँ शिशु को थप्पड़ लगा देती है, डाँटती है फिर भी शिशु माँ के कपड़ों में ही आकर चिपकता है। माँ चाहे मारे, चाहे प्यार करे शिशु माँ के अलावा कुछ जानता नहीं है। लेकिन पिता यदि उसको डाँटता है या थप्पड़ मार देता है तो शिशु दौड़कर माँ के ही पास जाता है पिता के पास नहीं जाता। यह है शरणागति का असली रूप। इस तरह की शरणागति होनी चाहिए।

कितना ही कष्ट आये तो भगवान् की तरफ ही दौड़े, कितना भी कष्ट आये तो भगवान् को ही याद करे, यही असली शरणागति है।

इसी तरह मानव मात्र को भगवान् की शरणागति परम आवश्यक है। यदि शरणागति है तो उस का यहीं पर वैकुण्ठ वास हो गया। फिर चिंता भगवान् को होगी, शरण्य को नहीं। इसीलिए कहा गया है कि भगवान् को पाने में कोई परिश्रम नहीं है, केवल भगवान् में मन होना चाहिए।

भगवान् कलियुग में बहुत जल्दी मिल जाते हैं। सारी करामात मन की है क्योंकि मन तो संसार में फँसा पड़ा है तो फिर भगवान् में कहाँ से होगा? मन को कैसे सुधारा जा सकता है? मात्र सत्संग से। श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान् ने बोला है कि "हे उद्धव! मैं सत्संग से ही मिलता हूँ, न योग से मिलता हूँ, न तपस्या से मिलता हूँ, न तीर्थयात्रा से मिलता हूँ, न ज्ञान से मिलता हूँ, मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ।" इसी कारण से कहा गया है कि भगवान् को पाने में कोई अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, केवल मन भगवान् में होना चाहिए। मन को भगवान् में फँसाने हेतु चैतन्य महाप्रभुजी ने एक ही सरल सुगम साधन बता रखा है। चैतन्य महाप्रभुजी ने इसे स्वयं करके सबको शिक्षा दी है कि नित्य ही हरिनाम का सहारा ले लो। एक लाख हरिनाम जपो तो धीरे–धीरे मन संसार से हटता जाएगा और भगवान् और भक्त में आता रहेगा। हरिनाम जपने में शुद्धि–अशुद्धि का कोई विचार नहीं है। कैसे भी हो, हरिनाम जपते रहो, भगवान् पकड़ लेंगे। जापक को कुछ करना नहीं है लेकिन निस्वार्थता से नाम जपना जरूरी है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

यदि मानव का आचार–विचार सात्विक हो तो मानव कभी बीमार होगा ही नहीं। आचार का मतलब है कि जिह्वा को स्वाद लेने से दूर रखो। जिह्वा यदि वश में है तो सब इंद्रियाँ वश में हो जाती हैं। यह शास्त्र बोल रहा है जो विरक्त महात्मा होते हैं वह प्रसाद पाते समय साग, चटनी, दही, खीर, दाल को एक साथ मिलाकर खाते हैं जिससे जिह्वा कंट्रोल में रहे। इंद्रियों का स्वभाव

है कि इनको इनका विषय अर्पण करोगे तो यह बेकाबू हो जाएँगी। मानव के मन को खींचकर अपने विषय पर ले जाएँगी। एक ही इन्द्रिय, मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है अतः जितना भोग इन्द्रिय को दोगे उतना ही अधिक वह मन को अपनी ओर खींच लेगी। जिस प्रकार आग में जितना घी डालोगे तो आग उतना ही प्रचंड रूप धारण कर लेगी। जब अग्नि को घी देना बंद कर दोगे तो आग अपने आप ही बुझ जाएगी। इसी प्रकार किसी इन्द्रिय को उसका खाना देना बंद कर दोगे तो इन्द्रिय सो जाएगी। इसका उदाहरण श्रीमद्भागवत महापुराण में है– ययाति महाराज जब बूढ़े हो गए तो उन्होंने अपने बेटे से जवानी ले ली और बेटा बूढ़ा हो गया। लेकिन हजारों वर्ष भोग भोगने के पश्चात् भी राजा को तसल्ली नहीं हुई, फिर भगवद् कृपा से उन्हें वैराग्य हो गया तथा ज्ञात हुआ, "मैं अज्ञानवश गलत मार्ग में चला गया था, अब मैं सचेत होकर अपना जीवन यापन करूँगा।" इसी मन ने ययाति को सुखकारक मार्ग पर चलने का अवसर प्रदान कर दिया। ययाति के वंश में ही कृष्ण का जन्म हुआ था। यदु इनका ही बेटा था। मन पर कंट्रोल (नियंत्रण) है तो सब ही कंट्रोल में हो जाता है। मन ही नर्क में ले जाता है तथा मन ही वैकुण्ठ में ले जाता है। मन वश में है तो दुनिया वश में है। मन वश में नहीं है तो कोई वश में नहीं हो सकता। मानव अन्य को वश में करने का प्रयास करता रहता है तो मानव का यह प्रयास निरर्थक है। जब स्वयं का मन वश में नहीं है तो अन्य को वश में करना असंभव है।

देखो! मन को वश में करने का एक ही साधन और रास्ता है – केवल सत्संग। जब भगवान् ही उद्धव को कह रहे हैं कि वे केवल सत्संग से मिलते हैं। अतः शुक्रवार को सप्ताह में एक दिन, केवल एक घंटा ही तो सत्संग होता है। जो 1 घंटा भी सत्संग नहीं सुनता तो उसके बराबर कोई नुकसान नहीं है। सबसे बड़ा नुकसान है। अरे! सच्चा सत्संग कहाँ मिलता है? यह मेरे गुरुदेव, सच्चा सत्संग करा रहे हैं और श्रीमद्भागवत महापुराण से ही करा रहे हैं। कहावत है :

rcfg gkb lc l;l; HkxkA tc cg dky dfjv lrlxkAA

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ. 2)

तभी संशय दूर होगा। संसार हट जाएगा और भगवान् मिल जाएगा, लेकिन सत्संग भी भगवत्कृपा के बिना नहीं मिलता है क्योंकि पिछले जन्मों के संस्कार खराब हैं। यदि किसी भगवान् के प्यारे साधु की सेवा का अवसर उपलब्ध हो गया फिर भगवत्कृपा उसके पीछे भाग कर आती है। भगवान् मानव को क्यों नहीं मिलते? भगवान् मानव को इस कारण नहीं मिलते क्योंकि मानव भगवान् को सताता रहता है। जितने भी चर–अचर प्राणी हैं, उनमें भगवान् का अंश आत्मा विराजमान रहता है। मानव तो सब जीवमात्र का रक्षक होता है लेकिन मानव रक्षक न होकर भक्षक बन गया है। तो भगवान् मानव को कैसे मिल सकते हैं? उदाहरण स्वरूप जैसे वृक्ष से फूल पत्ते ले सकते हो, सूखी लकड़ी ले सकते हो लेकिन मानव उसको जड़ से ही काट देता है तो पेड़ तो मर गया। भगवान् ने उसके कर्मानुसार, उसको पेड़ की योनि दी थी, उस योनि को मानव ने नष्ट कर दिया तो जिसने नष्ट किया है, उसको वही पेड़ बनना पड़ेगा। हाँ! भगवान् की योनि को नष्ट किया है, इसलिए उसको वही बनना पड़ेगा। इसलिए किसी जीव को मत मारो। अगर तुम बिच्छू को मारोगे तो तुम्हें बिच्छू बनना ही पड़ेगा। किसी को मत मारो। भगवान् ने तो उसके कर्मानुसार उसको पेड़ की योनि दी थी लेकिन मानव ने उसको नष्ट कर दिया। जब यह भगवान् को दुख देता रहता है तो जीवनभर कभी सुखी नहीं रह सकता। भगवान् की माया उसको दुखी करती रहेगी। ऐसे ही अनंत चर–अचर जीवों को भगवान् ने पृथ्वी पर, उनके कर्मानुसार योनियाँ दी हैं। उन योनियों को मानव दुख देता रहता है तो उसके सुखी होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। सुखी हो ही नहीं सकता क्योंकि उसने दुख बोया है तो दुख का ही फल मिलेगा। सुख बोता तो सुख मिलता। कलियुग में सबकी बुद्धि उल्टी हो गई है। भगवान् की चर–अचर सब संतान हैं। यदि कोई किसी की संतान को दुखी करता है तो क्या उसका जन्म देने वाला

उसका दुश्मन नहीं होगा? दुख का बीज बोयेगा तो दुख ही तो मिलेगा, सुख के फल कैसे मिलेंगे? दुख का पौधा, दुख का ही तो फल देगा। उसमें सुख का फल कैसे मिलेगा? तो जो बोओगे वही तो काटोगे।

As you sow, so shall you reap.

कोई किसी को दुख नहीं देता, अपना कर्म ही दुख देता है। यह 100% सिद्ध सिद्धांत है। अच्छा कर्म करो तो अच्छा फल मिलेगा।

भगवान् चर–अचर प्राणियों को मानव जन्म इसीलिए देते हैं कि इसका जन्म–मरण का दुख–कष्ट हट जाए, लेकिन मानव अंधा होकर चलता है, अतः मरने के बाद दुखदाई योनियों में फिर से जा गिरता है। इसके दुख का अंत कभी होता ही नहीं है। इस कलिकाल में धर्म तो मूलसहित नष्ट हो रहा है लेकिन इसमें सबसे बड़ा गुण यह भी है कि बेमन से भी हरिनाम करते रहो तो सुख का मार्ग हस्तगत हो जाएगा। यह ऐसी रामबाण औषधि है कि जड़ सहित दुख का नाश कर देगी। कहते हैं समय नहीं मिलता, समय तो मिलता है करना नहीं चाहते। काम तो हाथ–पैर से ही करते हो, जीभ से तो नहीं करते, जीभ तो 24 घंटे फुर्सत में रहती है। जीभ से हरिनाम जपने का अभ्यास करो, समय ही समय है। यह सब बहानेबाजी है और ऐसे ही धीरे–धीरे काल आकर तुमको निगल जाएगा। फिर क्या करोगे? फिर वहीं जाकर गिर जाओगे तो यह बहानेबाजी चलने वाली नहीं है। हमारा धर्मशास्त्र बोल रहा है कि जो मानव गाय का माँस खाता है, गुरु–स्त्री–गामी होता है, पाप करने में लगा ही रहता है, अनेक जन्मों के संस्कार अत्यंत खराब हैं, यदि वह भी हरिनाम की शरण में चला जाए तो वह शुद्ध हो सकता है। अतः जो रात–दिन भगवद् सत्संग करता रहता है, सत्संग का मतलब है कि हर समय भगवद् नाम उसकी जिह्वा पर नाचता रहता है तो उसका उद्धार होना निश्चित ही है।

कुछ कहते हैं कि हमने तो कुल में शादी नहीं की, हमारे तो वर्णसंकर पैदा होंगे, हमें तो नर्क में ले जाएँगे। तो शास्त्र कहता है कि तुम हरिनाम करो। हरिनाम कोई भी, कैसा भी पाप हो, अपराध हो, उसको जलाकर भस्म कर देगा। इसलिए चिंता की बात नहीं है। अनजान में ऐसा हो गया है। अब तुम हरिनाम की शरण में चले जाओ। एक तो हरिनाम और एक एकादशी, यह दो ऐसे बलिष्ठ हथियार हैं, जो माया को काट देते हैं। संसार को काट देते हैं तथा रात–दिन भगवद् सत्संग करते रहो। सत्संग का मतलब है कि हर समय भगवद् नाम उसकी जिह्वा पर नाचता रहे तो उसका उद्धार होना निश्चित है। इसी वाक्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस मानव ने अपने कुल में शादी नहीं की है अतः उसकी संतान को श्रीमद्भगवद्गीताजी ने वर्णसंकर का शब्द दिया है। अतः वर्णसंकर संतान के धर्म के विरुद्ध होने से नरकगामी होना पड़ेगा, तो इसका इलाज और इसकी दवाई है कि केवल हरिनाम करो और एकादशी व्रत करो।

शुद्ध एकादशी व्रत ऐसे करना चाहिए कि दशमी को एक समय खाओ और एकादशी को निराहार रहो, शक्ति न हो तो फलाहार कर लो और द्वादशी को पारण कर लो और उसके बाद शाम का भोजन मत करो, शाम को फलाहार कर लो या दूध पीकर सो जाओ तो वह शुद्ध एकादशी हो गई। और ऐसे ही हरिनाम करो तो निश्चित ही उद्धार हो जाएगा। भगवद् नाम ऐसा अमोघ हथियार है कि अपने कुल में शादी न होने से भी, उसका उद्धार निश्चित रूप से होगा। यदि दंपति हरिनाम की शरण में हो जाए, हरिनाम से उनके गलत कर्म भी शुद्ध हो जाते हैं। उनके शुद्ध होने का अब हरिनाम के सिवाय और कोई साधन नहीं है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

हरिनाम ही एक ऐसा सरल, सुगम एवं बलिष्ठ साधन है। मानव ने यदि गलत मार्ग पकड़ रखा हो, हरिनाम उस गलती को देखता

ही नहीं है। ऐसे मानव के उद्धार करने में कोई कसर ही नहीं छोड़ेगा। अतः मेरे गुरुदेव, ऐसे सब गलत मार्गियों को शांति प्रदान कर रहे हैं कि डरने की कोई बात नहीं है। डरो नहीं। हरिनाम तुम्हारा उद्धार करने में चूकेगा नहीं। बस हरिनाम करते रहो। पाप–अपराध, तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा, निश्चिंत रहो। यह सब शास्त्र कह रहा है कि जो हरिनाम करोगे तो स्वयं भगवान् कृष्ण, तुम्हें अपने धाम में ले जाने के लिए आएँगे और वहाँ तुम्हारा भव्य स्वागत कराएँगे।

अक्सर नास्तिक मानव बोलते रहते हैं कि अरे! बड़े बड़े महात्मा वृद्धावस्था आने पर खटिया में पड़कर, दुख पाते हुए मरते हैं, भगवान् का भजन करने का क्या लाभ हुआ? और जो भगवान् की तरफ देखते भी नहीं हैं, वे बैठे–बैठे तुरंत मर जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी भजन व भक्ति में थोड़ी कमी रहने पर भगवान् उन्हें खटिया में विश्राम दिलाते हैं ताकि पूर्वाभ्यास होने से वह, वहाँ निश्चिंत होकर मेरा स्मरण कर सकें। मन, कर्म, वचन से उनका कोई अपराध होता नहीं है। सभी संसारी झंझटों से बचे रहते हैं। एक प्रकार से समाधि अवस्था में ही पड़े रहते हैं और गुरुदेव, अपने शिष्यों को सेवा का अवसर प्रदान करते हैं। वैसे तो उच्चतम गुरु अपने शिष्यों से कोई सेवा लेना नहीं चाहते हैं, क्योंकि उनका भाव बहुत ऊँचा रहता है, "मेरा शिष्य होने से क्या हो गया, मैं कौन सा बड़ा हो गया? अरे! मेरे शिष्य में भी तो मेरा प्यारा परमात्मा रूप में बैठा हुआ है। आत्मारूप से तो शिष्य भी मेरा पूजनीय है। उच्च कोटि के गुरु ऐसे होते हैं, जो मानते हैं कि शिष्य पूजनीय है, इसके हृदय में भी मेरे प्यारे भगवान् परमात्मा रूप से विराजते हैं। मैं इनसे सेवा कैसे ले सकता हूँ? मेरी आत्मा और मेरे शिष्यों की आत्मा एक ही तो है। कोई छोटी बड़ी नहीं है, अतः शिष्यों की सेवा लेने से मुझे अपराध लगेगा।" लेकिन खटिया में पड़ने पर, असमर्थता होने से, शिष्यों की सेवा लेनी ही पड़ जाती है। यह भगवान् ही प्रेरित करके सब करते रहते हैं। अंत में ऐसे महात्मा, भगवान् द्वारा ही गोलोक में पदार्पण करते हैं, भगवान् उनको स्वयं ले जाते हैं।

जो भगवान् का भजन नहीं करते हैं उन्हें भगवान् अपनी याद नहीं करवाते हैं अतः तुरंत ही मर जाते हैं। उनके हृदय से आत्मा रूप में निकल जाते हैं, उनको मरते समय भगवान् की कभी याद आ ही नहीं सकती। नास्तिक ने जैसा जीवन भर कर्म किया है उस कर्मानुसार उसको योनियाँ प्रदान करते रहते हैं। जैसे जन्म भर किसी ने बकरियाँ चराई हैं और बकरों को बेच देते हैं या बकरे काटते हैं तो उसको बकरा ही बनना पड़ेगा और फिर नर्क में जाना पड़ेगा। जो कम पापी होते हैं उनको 80 लाख योनियों में यातनाएँ भुगतनी पड़ती हैं।

शास्त्र बोलता है कि मानव जन्म बहुत ही दुर्लभ है। मानव जन्म हो गया तो भगवान् की भक्ति तो और भी दुर्लभ है और जन्म–मरण हटना तो कितना ही दुर्लभ है, कोई बता नहीं सकता है।

देखो! हरिनाम के लिए, भक्ति चंद्रिका बोल रही है –

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

यह महामंत्र 32 अक्षरों से युक्त है, समस्त पापों का नाशक है, सभी प्रकार के दुख वासनाओं को जलाने के लिए प्रचंड अग्नि का स्वरूप है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाला है और हर दुख को हटाने वाला है, सभी का आराध्य, सेवनीय है। सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, इस मंत्र को करने का सभी को अधिकार है। यह सभी का भाई है, बांधव है, दीक्षा विधि की अपेक्षा नहीं रखता है, दीक्षा लेने की कोई जरूरत नहीं है, बाहर की पूजा की भी कोई जरूरत नहीं है, केवल जीभ से हरिनाम स्पर्श होना चाहिए। देशकाल आदि से भी मुक्त है। इतना सरल, सुगम साधन होने पर भी मानव का दुर्भाग्य है कि इसको अपनाता नहीं है।

किसी मानव से जो भी बुरे से बुरा शास्त्र विरुद्ध कर्म हो गया हो तो उसको मिटाने के लिए यह भगवान् का सुदर्शन चक्र है। ऐसा कोई बुरा कर्म नहीं, जिसका फल हरिनाम नष्ट न कर सके। भगवान्

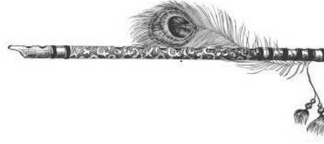
ने हर मानव को ऐसी शक्ति प्रदान की है, हथियार दे रखा है फिर भी मानव क्यों घबराता है? निश्चिंत होकर अपना जीवन यापन करता रहे। कलियुग में इसके अलावा कोई भी सरल, सुगम साधन है ही नहीं। यह भक्ति चंद्रिका कह रही है। यदि जाने अनजाने में भी मरते वक्त मुँह से हरिनाम निकल जाए तो उसका उद्धार निश्चित है जैसे अजामिल का हो गया। उसने अपने बेटे को पुकारा था परंतु बेटे का नाम नारायण होने से अजामिल वैकुण्ठ पहुँच गया। अतः अपनी संतान का नाम भगवद् नाम पर ही रखना चाहिए क्योंकि बार–बार उसे माँ–बाप जब बोलेंगे, तो उनके पाप कटते रहेंगे। आजकल कैसे कैसे नाम रखते हैं जैसे चुन्नी, मुन्नी आदि, निरर्थक नाम निकालते रहते हैं। मूर्ख मानव पशुओं से भी गया बीता है। पशु भी मानव से उत्तम है जो मर्यादा में रहता है। मानव की कोई मर्यादा ही नहीं है। मानव उच्छृंखल गति का बन गया है, अतः दुखी है। दुख का कारण सामने दिखाई दे ही रहा है। इस मूर्ख मानव को कौन समझाए?

एक बार, एक 80 साल के वृद्ध संत को पानी के दस्त हो गए, 5–7 लंगोटी थीं जो खराब हो गईं। बेचारा नंग–धड़ंग अपनी कुटिया में बैठकर विचार करने लगा, "अब क्या करूँ?" भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि, "भगवान्! अब मैं क्या करूँ?" भगवान् ने प्रेरणा की तो उसने सोचा कि यहाँ न तो पानी है और न ही लंगोटी है। "मैं अगर नदी के किनारे चला जाऊँ तो वहाँ शुद्ध हो सकता हूँ।" उसकी झोंपड़ी जंगल में थी, वहीं पर भजन करता था और वहाँ से दूर के एक गाँव से ही मधुकरी माँग कर अपने पेट की अग्नि बुझाता था। अब बेचारा जैसे–तैसे नदी के किनारे पहुँचा। दस्त होने पर वहीं शुद्ध करता रहता। एक दिन, 8–10 साल का एक लड़का आया और बोला, "बाबा! तुम्हें दस्त हो रहे हैं। तुम नंगे क्यों बैठे हो?" संत बोला, "बेटा! मेरे पास जो लंगोटी थी सभी खराब हो गईं। अब लंगोटी है नहीं, तो नंगा ही बैठना पड़ रहा है।" लड़का बोला, "बाबा! मैं लंगोटी लेकर आता हूँ। मेरा गाँव पास में ही है।" बाबा ने कुछ नहीं बोला और लड़का वहाँ से चला गया और थोड़ी देर में 10 लंगोटी लेकर आ

गया और दस्त की दवा भी लेकर आया और बाबा से बोला, "बाबा! मैं दस्त की दवाई लेकर आया हूँ। बाबा, पानी से इस दवा को निगल जाओ और यह लंगोटी भी बाँध कर बैठ जाओ।" बाबा ने बोला, "बेटे! तुम क्या करते हो?" लड़का बोला, "बाबा! मैं यहाँ पर पशु चराता हूँ। अभी दवा दी है तो मैं इंतजार करूँगा कि दस्त मिटते हैं कि नहीं।" उसके बैठे रहने पर ही बाबा को 3–4 दस्त लग गए और लड़के ने बाबा को स्वयं शुद्ध किया।

बाबा बोला, "अरे बेटा! इस गंदगी से तुमको घृणा नहीं होती है?" लड़का बोला, "मुझे आदत है बाबा, मेरा छोटा भैया है, उसकी टट्टी मैं ही साफ करता रहता हूँ क्योंकि मेरी माँ बीमार रहती है और मेरे छोटे भैया की देखभाल भी मैं ही करता हूँ। अतः मुझे आदत है। टट्टी से मुझे घृणा नहीं होती।" बाबा संत को शक हो गया कि यह कोई साधारण बच्चा नहीं है। संत ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "सच बता, तू कौन है?" लड़का बोला, "मैं पशु चराने वाला ग्वाला हूँ।" संत ने कहा, "तू सुबह से मेरे पास बैठा है तो तेरे पशु कहाँ होंगे, शाम होने वाली है। तूने पशुओं को सँभाला भी नहीं है। अब तक तेरे पशु न जाने कहाँ चले गए होंगे।" लड़के ने कहा, "हाँ बाबा! मैं तो भूल ही गया। पशुओं की तो याद ही नहीं रही।" संत ने हाथ पकड़कर कहा, "अरे! सच्ची बता। तू कौन है?" लड़का हाथ छुड़ाने लगा और बोला, "बाबा! मेरा हाथ छोड़, मेरे पशु पता नहीं कहाँ चले गए होंगे।" संत बोला, "नहीं छोडूँगा। अब मैं नहीं छोडूँगा। सच्ची बता। तू कौन है?" अंत में लड़के को बताना ही पड़ा कि, "बाबा! मैं वही हूँ जिसको तूने जिंदगी भर याद किया है।" संत बोला, "अरे! तू कन्हैया है? तू कान्हा है? गोपाल है?" लड़का बोला, "हाँ बाबा! मैं गोपाल हूँ।" संत ने पूछा, "तो तूने ऐसा घृणित काम क्यों किया? मेरी टट्टी क्यों साफ की?" गोपाल ने उत्तर दिया, "बाबा! मेरे भक्तों का सब कुछ करने में मैं अपना भाग्य समझता हूँ।" संत ने पूछा, "तू तो भगवान् है, तो तूने मेरी टट्टियाँ बन्द क्यों नहीं कीं?" लड़का बोला, "बाबा! क्योंकि नहीं तो तुमको दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। मेरे को सेवा का मौका मिल गया, मुझे भक्त की सेवा मिलती ही नहीं है, बड़ी

मुश्किल से उपलब्ध होती है। बाबा! अब तो तू जाने वाला है, थोड़ी देर में तू मर जाएगा। अतः इसी इंतजार में बैठा हूँ।" थोड़ी देर में बाबा का शरीर छूट गया। अब तो भगवान् ने अपनी गोदी में लेकर, नदी के गहरे तेज बहाव में जाकर, बाबा को बहा दिया। भगवान् कहते हैं कि वे अपने भक्तों से कभी उऋण नहीं हो सकते क्योंकि वे भक्त की सेवा से वंचित रहते हैं। भक्त उन्हें सेवा करने का मौका देते ही नहीं है। अनजान में कभी–कभी सेवा का मौका उन्हें मिल जाता है।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : कुछ लोग कहते हैं कि अगर ध्यान पूर्वक हरिनाम का श्रवण भी किया जाए पर हृदय भगवान् के लिए न रोए तो हरिनाम भी कुछ फायदा नहीं कर पाएगा। क्या यह बात सही है ?

उत्तर : अजामिल को नामाभास से ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई। ध्यानपूर्वक सुनना, वह तो नामाभास से भी ऊँचा हुआ। जो कह रहे हैं कि हरिनाम में प्यार नहीं होता और हम हरिनाम करते हैं। तो वह तो नामाभास से भी ऊँचा है। सुपीरियर (श्रेष्ठ) हुआ। इससे उनका उद्धार तो हो ही गया। तुम भगवान् को ही तो पुकार रहे हो। अजामिल ने तो अपने पुत्र को पुकारा था।

हरिनाम कान से सुनो

42

21 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति का आशीर्वाद करें।

हमारे धर्म शास्त्र और संत बोलते हैं कि माया बड़ी बलिष्ठ है, यह सभी को लुभाती रहती है। जब तक्षक सर्प परीक्षित को डसने हेतु जाने लगा तो उसे मार्ग में कश्यप मुनि मिल गए। तक्षक ब्राह्मण का वेश लेकर जा रहा था तो तक्षक ब्राह्मण ने कश्यप मुनि से पूछा, "महात्माजी! आप कहाँ जा रहे हो?" कश्यप ने बोला, "आज तक्षक परीक्षित को डसेगा। अतः मैं तक्षक का विष उतार कर आऊँगा, जिससे परीक्षित मरेगा नहीं।" कश्यप को मालूम नहीं था कि यह ब्राह्मण ही तक्षक है। तो ब्राह्मण बना हुआ तक्षक बोला, "तुमको मैं धन दे देता हूँ, तुम वहाँ मत जाओ, वापस चले जाओ।" देखो! माया। कश्यपजी को लोभ आ गया। वह धन की वजह से वापिस चले गए। यह श्रीमद्भागवत में लिखा है। तब तक्षक ने जाकर परीक्षित को डस लिया और परीक्षित उसी जगह जलकर भस्म हो गया। यह है माया की करामात। माया ही जन्म और मरण का कारण होती है। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, इस माया के अमोघ हथियार हैं जो समस्त जीवमात्र को मार रहे हैं। इनसे बचना हो तो केवल मात्र हरिनाम से ही बचा जा सकता है।

dfy;qx doy uke vèkkjkA lqfej lqfej uj mrjfga ikjkAA

कलियुग में कोई दूसरा रास्ता नहीं है केवल भगवान् का नाम जपते रहो। माया, हरिनाम के नजदीक नहीं आ सकती, दूर ही रहती है। मानव मात्र में जैसा तामसी, राजसी और सात्विक गुण प्रवाहित हो रहा है वैसा ही भगवान् प्रेरित करके कर्म करवाते रहते हैं। अब मानव बोलता है कि उनका बच्चा कहना ही नहीं मानता। इसमें बच्चे का दोष नहीं है, इसमें माँ–बाप का ही दोष है। बाजरा बोओगे तो बाजरा ही तो उपलब्ध होगा, चावल कैसे मिल सकता है? जिस भावना से कर्म किया है उसी भाव का प्राणी प्रकट होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में 25 साल तक बच्चे, गुरु आश्रम में धर्म शिक्षा ग्रहण करते थे तो बच्चों का खून सात्विक बनता था। आज कलियुग में कोएजुकेशन (सहशिक्षा) हो गई है जिससे बच्चों का खून तामसी, राजसी बनता जा रहा है, अतः दुख का वातावरण बनता जा रहा है।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k] Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsA

भक्तगण ध्यान से सुनें कि पूर्ण शरणागत के लक्षण क्या हैं? शरणागत कैसे हुआ जाता है? शरणागत के चिह्न क्या हैं? बच्चे को माँ मारती है, दूर भगाती है फिर भी बच्चा पिता के पास न जाकर माँ के कपड़ों में ही चिपकता है। यह आप सब देख ही रहे हो। बच्चे की माँ के प्रति पूर्ण शरणागति है। यही है पूर्ण शरणागति का प्रतीक। इसी प्रकार भक्तों को कितने ही कष्ट आयें भक्त तो भगवान् को ही बोलेगा।

भगवान् की प्रेरणा के बिना तो संसार में किसी जीव की कोई हरकत नहीं होती। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीमद्भागवत पुराण में अंकित है। भगवान् कृष्ण ने सोचा कि उनके भगवद् धाम वापस जाने के बाद उनका ही परिवार संसार को दुख देगा, इस कारण इसे समाप्त करके ही जाऊँ, तो ठीक रहेगा। एक दिन भगवान् कृष्ण के परिवार के बच्चे खेल रहे थे, बच्चों की आदत होती है कि वह अजनबी खेल खेला करते हैं। भगवान् की प्रेरणा से बच्चों ने साम्ब

के पेट पर कपड़ा लपेट कर पेट मोटा कर दिया जैसाकि गर्भवती माँ, बहनों का होता है। ऐसा मालूम होता है कि इस माता के गर्भ से बच्चा जन्म लेगा। भगवान् के परिवार के बच्चों को भगवद् प्रेरणा से यह सूझा कि वहाँ पर बहुत महात्मा भजन कर रहे हैं, उनकी परीक्षा करके देखें कि वे महात्मा क्या जवाब देते हैं? अतः उनके पास जाकर हम पूछें कि इस महिला के गर्भ में जो बच्चा है, वह लड़का होगा या लड़की होगी? देखें तो, महात्माजी क्या बताएंगे? अतः चलो पूछते हैं। बच्चों ने खेल खेल में महात्माओं के पास जाकर दण्डवत् किया और पूछा, "यह महिला शर्म के मारे बताती नहीं है, बोलती नहीं है और हम पूछने आए हैं कि इस का लड़का होगा या लड़की होगी? तो महात्माओं को इनकी छल विद्या का पता चल गया।

महात्मा पहचान गए कि यह हमको छलने आए हैं और भगवान् की प्रेरणा से उनको गुस्सा आ गया और बोले, "बच्चो! इसके पेट से लोहे का मूसल प्रकट होगा, जो तुम्हारे परिवार को नाश कर देगा।" इतना सुनते ही बच्चे घबरा गए, कि यह तो उन्होंने बहुत बुरा किया जो महात्माओं की परीक्षा ली। अब घर जाकर क्या कहेंगे? महात्माओं से अलग हटकर जहाँ खेल रहे थे, वहाँ पेट खोलकर देखा तो अंदर से लोहे का एक मूसल निकला। यह कथा श्रीमद्भागवत में है। बच्चे घबराए हुए घर गए और डर रहे थे कि उनको परिवार वाले डाँटेंगे कि उन्होंने महात्माओं से छल क्यों किया? लेकिन इस मूसल को तो ले जाकर दिखाना ही पड़ेगा। बच्चों ने जाकर अपने परिवार वालों को मूसल दिखाया। वह भी डर गये कि अब क्या होगा? लेकिन कृष्ण से इस बारे में छिपा कर रखा, यह सोच कर कृष्ण को नहीं बताया कि कृष्ण को कहना उचित नहीं है। वह सीधा राजा उग्रसेन को दिखा दिया और उग्रसेन ने उस मूसल को घिसवाकर प्रभास क्षेत्र के समुद्र में फिकवा दिया और अंत में जो टुकड़ा बचा उसे भी वहीं पर समुद्र में फेंक दिया। उस टुकड़े को मच्छ निगल गया। एक बहेलिया ने मच्छ को काटकर, उस टुकड़े को अपने बाण में लगा लिया। तो इसी बाण से कृष्ण के पैर को जरा नाम के व्याध (शिकारी) ने मारकर घायल कर दिया। उसने सोचा कि यह

लाल–लाल, किसी हिरण का मुख है। घबरा गया, पास में आया तो कृष्ण पीपल के पेड़ के नीचे जांघ पर हाथ रखकर बैठे थे और घायल थे, पैरों से खून निकल रहा था। वह काँपने लगा, तो कृष्ण बोले, "यह तो तूने मेरे मन की बात की है। अब तू स्वर्ग जा और आनंद कर। मुझे भी तो परिवार के साथ ही जाना है, मैं भी तो परिवार का ही हूँ।" भगवान् को अपने परम धाम जाना था अतः जब सुधर्मसभा चल रही थी, कृष्ण, द्वारिकावासियों को बोले, "अब 7 दिन में समुद्र द्वारिका को डुबो देगा। अतः सभी प्रभास क्षेत्र में चले जाओ, वहाँ ब्राह्मणों को भोजन कराएँगे, दान दक्षिणा देंगे।" भगवान् को तो अपने परिवार को नाश करना ही था। अतः द्वारिका के सब स्थान को खाली कर दिया, केवल कृष्ण का महल रहने दिया जिसको 'बेट द्वारिका' बोला जाता है। यहीं पर सुदामा ने भगवान् कृष्ण से भेंट की थी।

सभी द्वारिकावासी प्रभास क्षेत्र चले गए, उसी जगह पर समुद्र लहराता रहता है। किनारे पर बैठकर भगवान् कृष्ण की प्रेरणा से एक वारुणी मदिरा थी, पीना शुरू कर दिया जो पीने में तो स्वादिष्ट होती है परंतु परिणाम इसका बहुत बुरा होता है। बुद्धि को नष्ट कर देती है, आपस का सुहृद–पना नहीं रहता। क्रोध का पारा चढ़ जाता है, भाई–भाई को मार देता है, बेटा–बाप को मार देता है, मामा–भांजे को मार देता है। इस प्रकार से कृष्ण के परिवार में मारकाट मच गई। वे कृष्ण, बलराम को भी मारने को दौड़े तो कृष्ण, बलराम ने भी मारना शुरू कर दिया। जब इन के हथियार समाप्त हो गए तो जो मूसल का चूरा समुद्र में फेंका हुआ था वह समुद्र के किनारे पर आकर जमा हो गया और उससे एरका नाम की घास खड़ी हो गई थी, उससे एक दूसरे को मारने काटने लगे। वह ऐसी घास थी जो तलवार का काम करती थी। इस प्रकार से कृष्ण का सारा परिवार समाप्त हो गया।

इसी कारण बोला जाता है कि जो शराब पीता है उसका घर निश्चित रूप से बरबाद हो जाता है। फिर भी मानव समझता नहीं

है, शराब पीते हैं। अब बलरामजी वहीं पर आसन लगाकर मन को एकाग्र करके धाम पधार गए। भगवान् भी वहीं पर पीपल के नीचे आकाश से आए रथ में बैठकर अपने धाम गोलोक पधार गए। उद्धव ने बोला, "मैं आपके बिना जीवन कैसे धारण करूँगा।" तो कृष्ण बोले, "मैं श्रीमद्भागवत पुराण के रूप में शब्द ब्रह्म के रूप में पृथ्वी पर विराजमान रहूँगा। इसी के सहारे रह कर जीवन यापन करते रहना। मेरे चले जाने के बाद कोई तो मुझे प्राप्त करने का साधन होना चाहिए। सत्संग देने वाला होना चाहिए। कौन सत्संग करेगा? इसलिए उद्धव तुम यहीं रहो।" वृंदावन में कुसुम सरोवर के इर्द–गिर्द में ही उद्धव झाड़ियों के रूप में विराजते हैं कि इससे गोपियों की चरण धूलि उन पर पड़ती रहे जिससे वह शुद्ध होते रहेंगे।

तो कृष्ण के परिवार ने जिस प्रकार अपना शरीर छोड़ा था, उसी प्रकार कृष्ण को भी छोड़ना पड़ा था। कृष्ण की दो गतियाँ बताई जाती हैं। एक तो कि अंत में आकाश से रथ आया उस में बैठकर कृष्ण अपने धाम पधार गए, और दूसरा है कि अर्जुन ने कृष्ण का दाह संस्कार किया। अर्जुन ने तो वहाँ पर, सभी का दाह संस्कार किया था, इसलिए अर्जुन ने कृष्ण का भी दाह संस्कार समुद्र के किनारे पर किया। दाह संस्कार से शरीर तो जलकर राख हो गया पर कृष्ण का हृदय नहीं जला, तो अर्जुन ने उस हृदय को समुद्र में बहा दिया। वह हृदय, समुद्र में बहता–बहता नीलांचल समुद्र पर पहुँच गया। इंद्रद्युम्न जो वहाँ के राजा थे, उनको स्वप्न हुआ कि मैं आत्मा रूपी ब्रह्म नीलांचल समुद्र के किनारे आ गया हूँ, मुझे आकर सँभालो और वही जगन्नाथजी हैं जो प्रेम के अवतार हैं, दारु ब्रह्म कहलाते हैं। समुद्र से बहकर पेड़ आया, उससे जगन्नाथजी प्रकट हुए। आज भी नए दारु ब्रह्म से नए जगन्नाथजी रूप धारण करते हैं। वही ब्रह्म जो कृष्ण की आत्मा है जिसे ब्रह्म नाम से बोला जाता है, नए जगन्नाथजी के हृदय में रखा जाता है। जो पंडा रखता है उसकी काले कपड़े से आँखें बाँध दी जाती हैं, हाथों पर भी कपड़ा लपेट दिया जाता है और उस समय जगन्नाथ मंदिर में केवल दो ही पांडे रहते हैं। जब ब्रह्म रखा जाता है तो साथ ही अलौकिक चंदन

तथा तुलसी का पत्ता भी रखा जाता है। नवकलेवर के समय, 18–20 साल बाद भी वह तुलसी पत्ता बिल्कुल नया और ताजा होता है जैसे आज ही पेड़ से तोड़ा गया हो। यह है जगन्नाथजी की अलौकिक रहस्यमयी गाथा। हर समय जगन्नाथजी नई–नई लीला प्रदर्शित करते रहते हैं जिससे भक्तगणों को पूर्ण श्रद्धा, विश्वास बना रहता है।

i|U; ,d tx eg| ufg| n|tkA
eu Øe cpu I|kèk| in i|tkAA
I|ku|d|y r|fg ij e|fu n|okA
tk rft diV| djb I|kèk| I|okAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

भगवान् कृष्ण, उद्धव को अपने मुखारविंद से कह रहे हैं, "हे उद्धव! संत सेवा से बढ़कर कोई सर्वोत्तम पुण्य नहीं है।" बोला है :

eu Øe cpu diV rft tk dj I|Uru I|oA
ek|fg I|e|r fcj|fp f|o c|I r|kd| I|c n|oAA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"तो मैं, ब्रह्मा, शिव सब देवताओं के वश में रहते हैं।" कृष्ण बोल रहे हैं, "ऐसा प्राणी मुझे बहुत प्यारा लगता है।" फिर भगवान् बोल रहे हैं :

tk| IHk|r vkok I|jukb|A jf[kgm| rkfg çku dh ukb|AA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो डर कर के, दुख पा करके शरण में आता है ऐसे प्राणी को मैं प्राणों से भी प्यारा लगता हूँ।"

श्रीमद्भागवत पुराण जो कृष्ण का शब्द ब्रह्म है, जो बोल रहा है कि नारायण अनेक अवतारों का अक्षयकोष है। कृष्ण तो स्वयं ही अवतारी हैं।

जिस प्रकार बाजरा, गेहूँ आदि बोने से गेहूँ और बाजरा ही अधिक संख्या में उपलब्ध होता है इसी प्रकार बाप ही पुत्र रूप में

जन्म लेता है। जैसे उसके भाव होंगे वैसा ही जन्म होगा। अब देखिए किसान के उदाहरण से हरिनाम जपने का स्पष्ट उदाहरण प्रदर्शित हो जाएगा। जैसे किसान अपनी जमीन को उर्वरा करता है अर्थात् जमीन को पानी दे कर हल द्वारा 2–4 बार जोत देता है ताकि खेत सुचारु रूप से नरम हो जाए तो बीज बोने में आसान हो जाएगा। इसके बाद झोली में कोई भी बीज भरता है और हल में नीचे की ओर लोहे की कुछ लगी रहती है जिससे जमीन को चीरा जाता है जिसको उमरा बोला जाता है, खाई होती है वह हल के पीछे पाइप लगा रहता है, उसमें थोड़ा थोड़ा बीज मुट्ठी से छोड़ा जाता है वह बीज उस खाई में गिरता रहता है, हल के हिलने से उस बीज पर मिट्टी पड़ जाती है। उमरे के अंदर पानी की नमी रहती है, अतः 5–6 दिन में वह बीज अंकुरित हो जाता है और 3–4 महीने में उस बीज से हजार गुना अन्न उपलब्ध हो जाता है। हल हिलने से कोई बीज खाई में न जाकर किनारे पर पड़ जाता है तो वह बीज अंकुरित नहीं होता क्योंकि न उस बीज को मिट्टी में ढका, न पानी की सिंचाई मिली। अतः उस बीज को चिड़िया एवं चीटियाँ खा जाती हैं। अतः किसान को वह उपलब्ध नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार से मानव हरिनाम करता है तो मन इधर उधर भागता रहता है।

यदि कान रूपी खाई में वह हरिनाम नहीं गिरा तो जापक को इसका पूरा लाभ नहीं मिलेगा, केवल सुकृति इकट्ठी होती रहेगी अर्थात् इस हरिनाम बीज से उसके संसारी काम तो होते रहेंगे। अतः माया में ही फँसा रहेगा, न संत सेवा होगी, न आध्यात्मिक सेवा होगी। अधिक सुकृति होने से वह उसे सच्चे संत से मिला देगी लेकिन इसमें उसे कई जन्म लग जाएँगे। उसका उद्धार होने में देरी होती रहेगी। अतः हरिनाम को कान से सुनना बहुत जरूरी है। कान से न सुनने से तो कोई संसारी काम भी नहीं हो सकते। उदाहरण स्वरूप अगर कोई व्यक्ति बाजार जा रहा है। उसे किसी ने कहा कि एक साबुन का पैकेट लेकर आना। उसका मन कहीं और उलझन में फँसा हुआ था, अतः उसने सुना नहीं। जब बाजार से लौट कर आने लगा तो याद आया कि उसके मित्र ने कुछ मँगाया था, परंतु

उसने सुना ही नहीं और अब विचार करने लगा कि नील का पैकेट मँगाया होगा? घर पर आकर मित्र को नील का पैकेट सौंपा तो मित्र बोला, "इस से कपड़े धुलेंगे क्या? मैंने तो साबुन का पैकेट मँगाया था।" तो व्यक्ति बोला, "उस समय, मैं डॉक्टर के पास जा रहा था और सोच रहा था कि कौन से डॉक्टर के पास जाऊँ, जिसे अपने बेटे को दिखा सकूँ। बेटे को बुखार आ रहा था। अतः मेरे मन का झुकाव डॉक्टर की तरफ था, इस कारण मैंने सुना नहीं।" मित्र बोला, "इसको वापस करके आओ और साबुन का पैकेट लेकर आ जाना।" उस व्यक्ति ने कहा, "वह दुकानदार ठीक नहीं है, वापिस नहीं लेगा।" मित्र ने बोला, "कपड़े गंदे पड़े हैं वह किससे धोऊँगा?" तो बिना ध्यान से सुने, कितनी असुविधा हो गई। दोनों ही परेशान हो गए। अतः हर बात सुनना परम आवश्यक है। इसी प्रकार हरिनाम को कान से सुनना बहुत जरूरी है। जब हरिनाम बीज कान द्वारा हृदय रूपी जमीन में गिरेगा तो अंकुरित होगा तो उसमें से कौन अंकुरित होगा? कृष्ण भगवान् अंकुरित हो जाएँगे।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

जैसे किसान लहलहाती खेती देखकर आनंद मग्न हो जाता है, इसी प्रकार भक्त हृदय में कृष्ण को देख कर आनंद मग्न होगा। हरिनाम को कान से न सुनने से नाम रूपी बीज चारों ओर बिखर जाएगा और जापक को कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। केवल संसारी कामना पूरी हो जाएगी। भक्ति की ओर से तो दूर ही रहेगा।

संसार में सभी को सहारा जरूरी होता ही है। पेड़ को पृथ्वी का, शिशु को माँ का, शिष्य को गुरु का, पढ़ने वाले को मास्टर का, इसी प्रकार मन को कान से सुनने का सहारा परम आवश्यक है वरना हरिनाम से जो लाभ होता है, वह लाभ बहुत समय बाद मिल सकेगा। किसान का बीज खाई में न पड़ कर खाई के किनारों पर पड़ गया तो वह अंकुरित नहीं होगा क्योंकि न तो उसको पानी की तराई मिली न उस पर मिट्टी पड़ी। अतः उसको चिड़िया और रेंगने

वाले कीट खा जाएँगे। उसे सुकृति तो हो गई कि उसे किसी ने खाया। इसी प्रकार हरिनाम का बीज अगर कान रूपी खाई में नहीं पड़ा और इधर–उधर बिखर गया तो उससे सुकृति तो हो गई क्योंकि उसे किसी ने तो सुना होगा इसलिए सुकृति तो हो गई, परंतु भगवान् से प्यार नहीं होगा क्योंकि हरिनाम बीज हृदय रूपी जमीन में नहीं गया तो कृष्ण वहाँ अंकुरित नहीं हुआ, कैसे होगा? अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम उच्चारणपूर्वक होना चाहिए जो कान सुन सके।

जपने के 3 तरीके होते हैं – वाचिक, उपांशु तथा मानसिक।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears.

तो कान से सुने बिना तो कोई काम सफल होता ही नहीं। वाचिक जप, बहुत दिन करने के बाद उपांशु जप में उतर जाता है, उपांशु जप के बाद मानसिक जप में उतर जाता है। आरंभ में मानसिक जप निरर्थक होता है। आरंभ में कभी भी मानसिक जप नहीं हो सकता। शुरु–शुरु में एल.के.जी. में बैठना पड़ेगा, सीधा पी–एच.डी में कोई बैठ सकेगा क्या?

श्रीमद्भागवत पुराण में एक लेख है। एक चक्रवर्ती सम्राट था उसका नाम था चित्रकेतु। उसकी एक करोड़ रानियाँ थी परंतु सभी रानियाँ बाँझ थीं, किसी को एक भी संतान नहीं हुई। सम्राट चित्रकेतु सभी प्रकार से समृद्ध था परंतु संतान न होने से सदा उदास रहता था, "संतान के बिना मुझे नर्क में जाना पड़ेगा।" एक दिन श्राप और वरदान देने में समर्थ अंगिरा ऋषि चित्रकेतु के महल में जा पहुँचे। चित्रकेतु ने अंगिरा ऋषि का खूब आदर सत्कार किया। जब ऋषि आराम से बैठ गए तो ऋषि ने पूछा, "आप सब प्रकार से आनंद से तो हो? गुरु, मंत्री, राष्ट्र, सेना और मित्रों के साथ सकुशल तो हो? बात तो यह है कि जिसका मन वश में है, सभी उसके वश में रहते हैं। जिसका मन वश में नहीं है, उसके कोई भी वश में नहीं रहता। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि आप किसी कमी के कारण उदास दिख

रहे हो।" चित्रकेतु ने कहा, "महात्माजी! मैं सभी प्रकार से आनंद में हूँ लेकिन मेरे पुत्र नहीं है। शास्त्रानुसार, गृहस्थ में जिसको पुत्र नहीं होता, वह नरकगामी होता है। आप समर्थ हैं, तो मुझे पुत्र दे दीजिए।" अंगिराजी ने कहा, "तुम्हारे भाग्य में पुत्र है ही नहीं अतः शांति से राज करो।" चित्रकेतु ने कहा, "आप तो सर्वसमर्थ हो। मुझे पुत्र दे दीजिए, मुझे जरूर दीजिए।" अंगिराजी ने कहा, "ठीक है यह चरु (खीर) अपनी बड़ी रानी कृतदुति को खिला दीजिए तो पुत्र तो होगा परंतु वह पुत्र सुख–दुख दोनों देगा।" चित्रकेतु बोले, "मुझे तो पुत्र चाहिए, दुख–सुख होगा तो उसको बाद में देखा जाएगा। मुझे तो पुत्र चाहिए।" चित्रकेतु को पुत्र हो गया। अब तो राजा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। खूब दान दक्षिणा दी, खूब गाना बजाना हुआ, खूब आनंद किया।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

जैसे किसी कंगाल को बड़ी कठिनाई से धन मिल जाए तो उसमें उसकी आसक्ति हो ही जाती है, इसी प्रकार चित्रकेतु की अपने पुत्र में गहरी आसक्ति हो गई। पुत्र को अपनी गोदी से उतारता ही नहीं था। बच्चे की हरकत से सब कुछ भूल गया। चित्रकेतु अपनी बड़ी रानी कृतदुति से प्यार करे और जो करोड़ रानियाँ थीं, उनकी तरफ देखे ही नहीं। अतः उन रानियों को ईर्ष्या हो गई कि हम तो दासियों से भी गई बीती हो गईं, इसका कारण केवल यह पुत्र ही है। अतः आपस में सलाह करके बच्चे को जहर दे दिया। यह कथा श्रीमद्भागवत में है। कृतदुति ने देखा कि बच्चा बहुत देर से सो रहा है, भूख लगी होगी तो दासी को बोला, "जाओ! बच्चे को मेरे पास ले आओ। मैं उसको स्तनपान करा दूँगी।" जब दासी बच्चे के पास गई तो देखती है कि बच्चे की जीभ बाहर निकली पड़ी है। दासी चिल्लाई और वहीं धरती पर गिर गई। अब कृतदुति दौड़ कर गई और देखती है कि बच्चा मरा पड़ा है। यह देख कर कृतदुति बेहोश हो गई। इतने में चित्रकेतु आ गया और वह भी बच्चे को देख कर

बेहोश हो गया। फिर सभी रानियाँ भी आकर झूठ–मूठ में हाय–हाय करने लगीं कि यह ब्रह्मा भी कैसा दुष्ट है। बुढ़ापे में तो बच्चा हुआ और उसको भी ले लिया। भगवान् तो बड़ा निर्दयी है। बुढ़ापे में तो पुत्र हुआ, उसको भी ले लिया। इतने में अंगिरा ऋषि भी आ गए और चित्रकेतु उनके चरणों में पड़कर चिल्लाने लगा, "महात्माजी! मेरे पुत्र को जिन्दा कर दो।" तो अंगिरा बोला, "तुम बहुत दुखी हो, जिन्दा कर देता हूँ।" तो मंत्र से छींटा दिया और बच्चा जी गया। अंगिरा ने बोला, "बेटे! तू पूरे साम्राज्य को भोगेगा इसलिए जाओ मत।" तो बच्चा बोला, "अरे! कौन किसका बाप है और कौन किसका बेटा? जहाँ से आया था वहीं मुझे जाना है, मुझे सम्राट नहीं बनना।" अंगिरा ने बोला, "मैंने पहले ही कहा था कि बेटा सुख–दुख दोनों देगा।" जब चित्रकेतु ने बेटे की निर्मोही बात सुनी तो उसके ज्ञान नेत्र खुल गए कि वास्तव में कोई किसी का नहीं है। केवल भगवान् ही अपने हैं। यह चर्चा बहुत बड़ी है लेकिन सूक्ष्म रूप में बताई गई है।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्नः अगर कोई कोमा में हो और इस स्थिति में यदि वह अपनी देह छोड़ देता है, तो क्या कोई संभावना है कि कृष्ण नाम लेकर उसका देहांत हो ?

उत्तर : अगर देहांत हो रहा है और हम जानते हैं कि वह मरने वाला है, तो उसको जोर–जोर से कृष्ण नाम सुनाओ। उस समय कुछ और तो वह सुनेगा नहीं, कृष्ण नाम कान से अंदर जाएगा तो उसका उद्धार हो जाएगा। चाहे वह खुद कुछ भी न बोले लेकिन कान से सुनने पर उसका उद्धार हो जाएगा।

कृष्ण ही बनने वाले एवं बनाने वाले हैं

(43)

28 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव जी असंभव को भी संभव कर के दिखाते हैं। लोग कहते हैं भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते, लेकिन मेरे गुरुदेव कहते हैं कि भगवान् के दर्शन बहुत सुलभ हैं, बहुत सरल हैं। इसके लिए अपने स्वभाव को सुधारो। स्वभाव बिगड़ा हुआ है। अगर स्वभाव सुधर गया तो भगवान् एक क्षण उसको नहीं छोड़ेंगे। दुनिया कहती है कि भगवान् का दर्शन अति दुर्लभ है, मेरे गुरुदेव बोलते हैं कि भगवान् का दर्शन अति सुलभ और सरल है। भगवान् के तो सभी चर–अचर पुत्र हैं। सभी महसूस करते हैं कि बाप पुत्र को स्वाभाविक ही चाहता है। पुत्र बुरा हो सकता है लेकिन बाप कभी बुरा नहीं हो सकता। न तो हमने कभी सुना है न हमने कभी देखा है। भगवान् मानव को क्यों नहीं मिलते हैं? इसका खास कारण है कि अपने बाप भगवान् को, भगवान् की संतान को मानव दुखी करता रहता है। इसलिए भगवान् अंदर बैठे आत्मा रूपी आँखों से व मन से अनुभव करते रहते हैं कि अमुक मानव ने उनकी संतान को कभी सुख से नहीं रहने दिया, हर समय दुखी करता रहता है।

इसलिए किसी से राग–द्वेष मत करो। जो राग–द्वेष करेगा, उससे भगवान् बहुत दूर रहेंगे। अरे! राग–द्वेष में क्या रखा है? सबकी जितनी हो सके, सेवा करनी चाहिए। जो भी आपको ज्ञान मिला है उस ज्ञान से सब की सेवा करनी चाहिए। किसी को सताएँ नहीं।

मानव का स्वभाव पिछले जन्मों से बिगड़ा हुआ है। इसका खास कारण है सत, रज, तम की धाराएँ जो क्षण–क्षण बदलती रहती हैं एवं क्षण–क्षण में प्रवाहित होती रहती हैं। अतः मानव विवश होकर इनके वश में रहता है। ये धाराएँ कैसे कमजोर हों? इसलिए खास प्रसंग की जरूरत है। श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण भगवान्, उद्धव को बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और किसी दूसरे साधन से नहीं मिलता। पिछले जन्मों में मानव को सत्संग तो मिला नहीं, कुसंग का रंग चढ़ता गया। इसी में ओतप्रोत होता रहा तो अच्छा स्वभाव कैसे हो सकता है?" इसी स्वभाव से, वह भगवान् की संतान को दुखी करता रहता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर युगों के मानव अपनी संतान को जो पाँच साल की उम्र का हो जाता था, उसे धार्मिक शिक्षा लेने हेतु, अच्छा स्वभाव बनाने हेतु, पच्चीस साल तक के लिए गुरुकुल में भेजा करते थे। वहाँ पर सभी बच्चे प्रातः से लेकर रात तक, गुरुदेव द्वारा शुभ आचरणशील मार्ग पर जीवन यापन किया करते थे। वहाँ पर कुसंग का तो नाम–निशान ही नहीं था। क्षण–क्षण में केवल सत्संग ही सत्संग का ज्ञान दीपक जला करता था।

संग ही मानव के मन को सुधारता है व संग ही मानव के मन को बिगाड़ता है। जब भगवान् कृष्ण अपने धाम, वैकुण्ठ जाने लगे तो इस मृत्युलोक में कलियुग महाराज का पदार्पण हो गया। कलि महाराज तामस वृत्ति के सिरमौर हैं। तामस व राजस वृत्ति ही इस युग में धड़ाधड़ बहती रहती है। सात्विक वृत्ति का तो नाम–निशान ही नहीं रहता। राजसिक व तामसिक वृत्ति ही दुख सागर का प्रतीक

है। पिछले युगों में गुरु आश्रम हुआ करते थे। अब इस युग में लड़की व लड़के के लिए को–एजुकेशन (सहशिक्षा) पाठशालाएं स्थापित कर दी गई हैं। जवान लड़के, जवान लड़की एक साथ बैठ कर पढ़ते रहते हैं। एक ओर अग्नि, दूसरी ओर घी पात्र रखा हुआ है तो अग्नि के ताप से घी तो पिघलेगा ही। यह तो स्वाभाविक ही है तो सुख का साम्राज्य कैसे बन सकता है? यह सब प्रत्यक्ष देख रहे हो। आप सब जानते हो। मानव पैसे का इतना दास हो चुका है कि हर खाद्य पदार्थ में जहर मिला–मिला कर जहरीला पैसा कमा रहा है। जहरीला पैसा है और इंसान में जहर फैला रहा है। केवल स्वार्थ का साम्राज्य सभी ओर फैल रहा है। बाप–बेटे में भी मतलब का व्यवहार रहता है। पति–पत्नी में भी मतलब का व्यवहार होता है, एक दिन ऐसा आता है कि तलाक की नौबत आ ही जाती है और उनसे जो संतान होती है वर्णसंकर होती है। वर्णसंकर का मतलब है कि राक्षस, नास्तिक वृत्ति की, मर्यादाहीन। मनमानी करना उनका कर्म होता है तो सुख कहाँ से आएगा? अनन्त रोगों से ग्रसित रहते हैं, स्वभाव में लूट–पाट, निष्क्रियता रहती है अर्थात् बिना कमाए धन मिल जाए, कुछ करना नहीं पड़े। पैसों से खान–पान दूषित हो जाता है। ऐसे स्वभाव के मानव प्रकट होते हैं। पैसे के पीछे बुरा से बुरा व्यापार (कर्म) करते हैं जो शर्मनाक है। अतः नर्क इतना भर जाता है कि जगह ही नहीं मिलती। यमराज को नए नर्क बनाने पड़ते हैं।

सभी जगह ईर्ष्या–द्वेष का साम्राज्य फैला रहता है, अपने परिवार को कोई नहीं भाता है और नीच परिवार से दोस्ती हो जाती है। अपना भाई दुश्मन बन जाता है और ससुराल वाले प्यारे हो जाते हैं। यह है कलियुग का तमाशा। जैसा अन्न वैसा मन। जहरीला खाना और जहरीला मन बन जाता है। जाहिर ही है 99% राक्षस वृत्ति के ही होंगे, केवल 1% देवता वृत्ति के होंगे। अतः देवता वृत्ति वालों को असुविधा तो होगी ही। लेकिन उनका अंत बहुत अच्छा रहेगा अर्थात् शुभ होगा एवं राक्षस वृत्ति वालों का अंत इतना खराब होगा कि हाय–हाय करके जीव निकलेगा। जीव भी धीरे धीरे नहीं निकलेगा, बड़ी मुश्किल से निकलेगा। तड़प–तड़प के जीव निकलेगा।

शरीर में जगह–जगह पर ऑपरेशन होते रहेंगे। शरीर ऑपरेशनों से पिंजरा बन जाएगा। अभी प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि जो मानव गलत काम कर रहा है उसके जगह–जगह ऑपरेशन होते रहते हैं। पैसा कभी सुखी नहीं कर सकता क्योंकि किसी की आत्मा को दुखी करके कमाया गया है। वह सुखी कैसे कर सकता है? दूसरे का हक छीन कर कमाया गया है तो कैसे सुखी रह सकता है? अपनी कमाई का पैसा ही सुख का साधन बनता है। जहाँ दीपक जल गया वहाँ अँधेरा कैसे रह सकता है? कलियुग अज्ञान का ही काल है। अज्ञान में उजाला कैसे हो सकता है? अज्ञान तो ठोकरों का ही मार्ग है। ठोकर खाते रहो और दुख पाते रहो क्योंकि दूषित खान–पान से बुद्धि बिगड़ जाती है, दूषित हो जाती है, बुरा सोचती रहती है। अच्छा तो कभी सोचती ही नहीं। अच्छे की तो कुछ छाया ही नहीं आती, अच्छा तो कभी सूझता ही नहीं है क्योंकि उसके हृदय में तो जहर भरा पड़ा है। इन दुखों से अगर बचना हो तो हरिनाम की शरण में चले जाओ।

भगवद् नाम से शक्तिशाली अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई नहीं है। यह सुख का साम्राज्य फैला देगा। कलिकाल की छाया भी नहीं आएगी। भगवान् किस को मिलते हैं और किसको मिले हैं? जो भक्त, चर–अचर प्राणियों में भगवान् को देखता है। कोई भी जो इन ब्रह्मांडों में अपने भगवान् को देखता है उससे भगवान् दूर कैसे रह सकते हैं और वह भी भगवान् से दूर कैसे रह सकता है? ये बिलकुल सत्य सिद्धांत है। जब सब में भगवान् को देखेगा तो किससे बैर करेगा? भगवान् उसको छोड़ कर कहीं नहीं जा सकते, भगवान् वहीं उसके पास थम जाते हैं। भगवान् कहते हैं, "अगर मैं चाहूँ भी कि इससे दूर हो जाऊँ तो मेरे अंदर इतनी शक्ति नहीं है कि मैं ऐसे भक्त से दूर हो जाऊँ।" जिसकी दृष्टि व निगाह इस प्रकार की होगी तो वह किससे वैर करेगा, राग–द्वेष सपने में भी नहीं कर सकता। इसमें स्वतः ही अहंकार का नाश हो जाएगा। इनके स्वभाव में ही ऐसा परिवर्तन आ जाएगा कि वह तो कुछ भी नहीं है, वह तो तुच्छ, अज्ञानी, मूर्ख प्राणी है।

r`.kknfi lquhpsu rjksjfi lfg".kqukA
vekfuuk ekunsu dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

तृणादपि सुनीचेन... यानि अहंकार, मूल से ही खत्म होना चाहिए कि, "मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो सबसे नीचा हूँ, गया बीता हूँ, मेरे पास कोई गुण नहीं है।" तो उसको अहंकार नहीं आएगा। यह भाव उसमें आ जाएँगे तो अहंकार तो बहुत दूर की बात है।

ऐसा स्वभाव वाला संसार में आसक्तिहीन होगा, कहीं आसक्ति नहीं रहेगी। जो भगवान् ने दिया है, उसमें संतोष रखेगा। अधिक झंझटों से दूर रहेगा, मान–अपमान तो इसमें होगा ही नहीं, सब से प्रेम का व्यवहार करेगा, सब को अपना ही समझेगा। इसके लिए कोई दूसरा है ही नहीं। आत्मा सबकी एक ही बराबर तो होती है। यह सब गुण उसमें स्वतः ही आकर बस जाएँगे।

संसार दुखों का घर है, इसमें कोई भी सुखी नहीं है क्योंकि प्राणी सुख की ओर जाता ही नहीं है। यह माया का संसार है, माया दुख की देवी है। माया से छूटने का केवल एक ही उपाय है कि भगवान् से नाता जुड़ जाए, क्योंकि सुख है तो केवल भगवान् के चरणों में है। भगवान् तो सुख के सागर हैं। जहाँ सूर्य होगा वहाँ अँधेरा कैसे रह सकता है? लेकिन यह नाता भगवान् से कैसे जुड़े? किसी सच्चे संत की कृपा उपलब्ध हो जाए तो जुड़ जाएगा क्योंकि सच्चा संत सुख का डॉक्टर होता है। डॉक्टर उस प्राणी को सुख का इंजेक्शन (सुई) लगा देगा तो दुख का रोग नष्ट हो जाएगा क्योंकि सच्चा संत भगवान् का गहरा नाती है। वह भगवान् से मिला देगा। भगवान् तो बहुत जल्दी मिल जाते हैं। कौन कहता है भगवान् नहीं मिलते? भगवान् उद्धव को कह रहे हैं, "उद्धव! मैं न योग से मिलता हूँ, न तप से मिलता हूँ, न दान देने से मिलता हूँ। मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। सत्संग किसे बोलते हैं? सत् भगवान् है। भगवान् वर्तमान में, भूतकाल में, भविष्यकाल में सदा अटल रहता है। भगवान् का अभाव कभी होता ही नहीं। काल सबको खा जाता है, लेकिन

भक्त का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। काल और महाकाल भगवान् से थर थर काँपता है, लेकिन भगवान् कहते हैं, "मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ। भक्त मेरे को ऐसा वश में कर लेता है कि मैं गतिहीन बन जाता हूँ, क्योंकि भक्त ही रक्षक, पालक, सर्वसमर्थ है।"

अरे! भगवान् है वो। भगवान् से बड़ा तो अनंतकोटि ब्राह्मांडों में कोई है ही नहीं। भगवान् ही सभी प्राणियों के जन्मदाता हैं। भगवान् ही स्वयं प्राणी बन जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीमद्भागवत महापुराण में अंकित है। ब्रह्माजी पर भी माया हावी हो गई जब भगवान् कृष्ण अपने ग्वाल–बालों के साथ वन भोजन कर रहे थे। तब ब्रह्मा जी ने देखा कि कृष्ण ने अपने ग्वाल के मुख से जूठा अचार निकाल कर अपने मुख में रख लिया। ब्रह्मा सोचने लगा कि, "अरे! यह कौन सा भगवान् है जो ऐसे किसी का जूठा खाता है।" ब्रह्माजी ने सोचा कि, "जो ऐसा निकृष्ट काम करता है, तो वह भगवान् कैसे हो सकता है?" जब वन भोजन हो रहा था तो बहुत समय हो गया। ग्वालों को बछड़ों का ध्यान आया कि, "ओ हो! बहुत समय हो गया। हमारे बछड़े न जाने कहाँ चले गए होंगे। उनको ढूँढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाएगा।" तब कृष्ण ने कहा, "अरे! तुम बेफिक्र हो कर भोजन करते रहो, मैं बछड़ों को ढूँढ के लाता हूँ।" जब भगवान् कृष्ण ढूँढने जा रहे थे तो उसके पहले ही ब्रह्मा बछड़ों को अपने धाम ले गए। जब कृष्ण ने वन में बछड़ों को नहीं देखा तो कृष्ण अचम्भा करने लगे कि, "अरे! बछड़े कहाँ चले गए?" अंत में वापिस भोजन के स्थान पर पहुँचे तो देखा कि ग्वाल–बाल भी नहीं हैं। कृष्ण ने विचार किया कि, "ग्वाल–बाल भी कहाँ चले गए? मैं तो यहीं पर छोड़ कर गया था। कहाँ चले गए?" अब कृष्ण, अनमने हो कर पत्थर पर बैठ गए और सोचने लगा, "अरे! न तो बछड़े मिल रहे हैं, न हमारे ग्वाल–बाल मिल रहे हैं। क्या करूँ?" चिन्तन में मालूम हुआ कि यह करतूत ब्रह्मा की है। उसने मेरी परीक्षा ली है कि कृष्ण भगवान् नहीं हो सकता। जो ऐसा कर्म करता है, वह कैसे भगवान् होगा? भगवान् नहीं है यह। यह तो ग्वाला है ग्वाला।"

अब घर जाने से पहले, भगवान् कृष्ण ही सब ग्वाल–बाल बन गए और सभी तरह के बछड़े भी बन गए। बिल्कुल वैसे ही ग्वाल और बछड़े बने कि जिससे कोई पहचान न सके कि यह उनके बच्चे और बछड़े नहीं हैं। बिलकुल वैसे के वैसे बन गये। प्रत्यक्ष में कोई अंतर नहीं रहा। कृष्ण 1 साल तक सब कुछ बने रहे। ग्वाल बाल, छींके, जो हाँकने की लकड़ी, जिस कपड़े से खाना पीना बाँध कर लाते थे, वह सब कुछ खुद ही बन गये। कोई पहचान नहीं सका कि यह कौन है? कृष्ण है या और कोई है। जब फिर ब्रह्माजी ने देखा कि ग्वाल–बाल व बछड़े, अब भी वन में कृष्ण के संग में हैं, तो उसे अचंभा हुआ कि, "यह यहाँ कैसे आ गए? यह सब तो मेरे यहाँ रखे हुए हैं।" तो फिर से देखने गए तो वहाँ भी बछड़े और ग्वाल–बाल और यहाँ भी बछड़े और ग्वाल–बाल। अब तो ब्रह्मा हैरान हो गया। पैरों के नीचे से धरती खिसक गई कि उससे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। अब कृष्ण को क्या जवाब देगा? थर–थर काँपने लगा और जाकर कृष्ण के चरणों में पड़ गया कि, "मुझ से गलती हो गई। मुझे क्षमा करो।" भगवान् का तो स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो शरण में आ जाता है वह कितना ही अपराधी हो, दयानिधि क्षमा कर ही देते हैं। ब्रह्मा बोला, "मैं क्या करूँ? आपकी माया ही ऐसी है कि मुझे अंधा बना दिया, मैं भी मजबूर हो गया, मुझे क्षमा करो। मैं आपका जन्म–जन्म का किंकर हूँ।" भगवान् ने क्षमा कर दिया और बोले, "यह भी मेरी लीला ही थी कि प्राणी समझ सके कि कृष्ण ही सब कुछ है। कृष्ण के अलावा संसार में कुछ भी नहीं है।" संसार का पत्थर भी भगवान् ही है। पत्थर में जो सॉलिडपना (ठोसता) है, वह भगवान् का ही है। भगवान् कण–कण में समाया हुआ है। भगवान् के बिना तो कुछ है ही नहीं। जिसकी ऐसी दृष्टि हो जाती है उसका उद्धार तो निश्चित ही है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

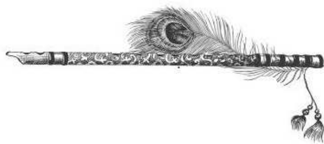
एक बार भगवान् सो रहे थे और नींद में मुख से हा गोपी! हा राधा! बोल रहे थे। जब गोपी नाम निकला, तो भगवान् की पटरानियों, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि को ऐसा लगा कि भगवान् को हमसे अधिक गोपियाँ प्यारी हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? इसका खास कारण है कि गोपियाँ अपना सुख न चाहकर केवल कृष्ण का सुख चाहती हैं और हम सब अपना सुख चाहते हैं। इसी कारण से राधा और गोपियों से कृष्ण का अटूट प्यार हो गया, अतः हम को भी ऐसा ही करना चाहिए। बस जो कुछ करें, भगवान् के सुख के लिए करें। कृष्ण के लिए करें। अतः रुक्मिणी, सत्यभामा ने रोहिणी जी से, जो भगवान् की मैया है, प्रार्थना की, "क्या आप हमें गोपियों के प्रेम की बात बताओगी?" और मैया ने हामी भर दी और कहा, "हाँ! बता दूँगी।" लेकिन बोली, "मैं एकांत में बैठ कर बताऊँगी। जहाँ कृष्ण, बलराम न सुन सकें।" इसके लिए सुभद्रा को गेट पर खड़ा कर दिया कि कृष्ण, बलराम को अंदर मत आने देना। लेकिन जहाँ भगवान् का कीर्तन, गुणगान होता है, वहाँ भगवान् आए बिना कैसे रह सकते हैं? तो कृष्ण, बलराम आ गए और अंदर जाने लगे तो सुभद्रा बोली, "नहीं! मैया की आज्ञा है कि आप अंदर नहीं जा सकते।" वे दोनों बोले, "यहाँ तो खड़ा रहने दे।" सुभद्रा बोली, "हाँ! यहाँ खड़े रह सकते हो।" थोड़ी देर में रोहिणी ने कथा कहना शुरू कर दिया। अब दोनों बाहर खड़े होकर ही कथा सुनने लगे। कथा सुनते–सुनते कृष्ण और बलराम व सुभद्रा का ब्रज के प्रति अति अद्भुत प्रेम प्रकट हो गया। उस प्रेम भाव से उनके हाथ पैर सिकुड़ने लगे और मुख भी विकराल हो गया, आँखें भी निकल गईं और बड़ी हो गईं। इतने में नारदजी आ गए। ऐसा रूप देखकर नारदजी चकित रह गए, बोले, "अरे! क्या बात हो गई।" वह देखते ही रह गए। नारदजी ने भगवान् से प्रार्थना की, "हे प्रभु! मैंने जो रूप आज देखा है, आप को सब भक्तजनों को पृथ्वी पर ऐसा ही रूप दिखाना होगा।" तो भगवान् ने कहा, "ऐसा ही होगा। कलिकाल में मैं नीलांचल क्षेत्र में अपना यही रूप प्रकट करूँगा।" कलियुग के आने

पर प्रभु की प्रेरणा से मालवा के महाराजा इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ मंदिर में ऐसी ही प्रतिमाएँ स्थापित कराईं।

शिल्पी को बुलाया गया और प्रतिमा बनाने के लिए बोला। शिल्पी खुश होकर बोला, "मैं प्रतिमा बना दूँगा।" फिर राजा इन्द्रद्युम्न ने शिल्पी से पूछा कि प्रतिमा बनाने के लिए उसकी क्या शर्त है? शिल्पी ने कहा, "मैं मूर्तियों का काम अंदर एकांत में 21 दिन में करूँगा और जब तक मैं यह काम करूँ, तब तक कोई भी दरवाजा नहीं खोले। जितने दिन तक काम पूरा नहीं होता, तब तक मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा, पियूंगा।" अतः उसको 21 दिन के लिए बंद कर दिया और उसने काम शुरू कर दिया और भीतर से खट–खट की आवाज आती रहती। राजा की रानी जो गुंडिचा थी, वह दरवाजे के बाहर कान लगाकर खट–खट की आवाज सुनती रहती थी। अब 15 दिन के बाद खट–खट की आवाज बंद हो गई तो गुंडिचा महारानी अपने पति से बोली, "लगता है कि बुड्ढा तो मर गया। अब खट–खट की आवाज ही नहीं हो रही है तो अब दरवाजा खोल दें?" तो राजा बोला, "हाँ भाई! खट–खट की आवाज तो आ नहीं रही है, बुड्ढा मर ही गया लगता है। दरवाजा खोल दो।" तो चिंता होने से दरवाजा खोल दिया तो शिल्पी वहाँ से अदृश्य हो गया। शिल्पी अंदर नहीं मिला। अरे! कहाँ चला गया? और देखा कि मूर्ति का काम अधूरा ही रह गया, हाथ–पैर पूरे नहीं हुए थे, अधूरे ही रह गए। शिल्पी कहाँ चला गया? वह शिल्पी, विश्वकर्मा था। देवताओं ने विश्वकर्मा को ही मूर्ति बनाने के लिए भेजा था, वो दैत्यपति कहलाते हैं। इनके वंशज ही आज तक पूजा करते आए हैं। जगन्नाथ ऐसे प्रेम के अवतार हैं कि इनके यहाँ कोई छुआछूत नहीं है। अंदर जाकर कोई भी इनके चरण छू सकता है और जगन्नाथजी तो बीमार भी हो जाते हैं, इनको बुखार भी चढ़ता है और दवाई भी दी जाती है। ऐसी–ऐसी इनकी लीलाएँ हैं। अब तो समय से कुछ नियम बदल गये हैं। मंदिर में हिंदू जाति ही केवल दर्शन करने जा सकती है। मुसलमान और अंग्रेज अंदर नहीं जा सकते। यह लोग जगन्नाथ जी के ध्वज के दर्शन से ही प्रसन्न हो जाते हैं। इनको विराजमान जगन्नाथजी के दर्शन

बाहर से ही हो जाते हैं। जगन्नाथजी बहुत शीघ्र प्रार्थना सुन लेते हैं।

रोग कौन है? रोग हैं राक्षसों के प्रतीक और दवाई कौन है? यह देवताओं की प्रतीक है। जो भगवान् के आश्रित हैं उनको रोग बहुत कम परेशान करते हैं और जो माया के आश्रित हैं उनको शरीर में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं और कई ऑपरेशन भी किए जाते हैं और सब इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। जो भी काम करते हैं, उनको असफलता ही मिलती है क्योंकि माया का प्रकोप तथा सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मारूप से भगवान् विराजमान हैं। भगवान् की प्रेरणा बिना तो चर–अचर प्राणियों में कोई हरकत हो ही नहीं सकती। माया की प्रेरणा से हर तरफ सत्, रज, तम की धाराएँ बहती रहती हैं। उन से प्रेरित होकर चर–अचर प्राणी कर्म में प्रवृत्त होते रहते हैं। अतः भगवान् का भक्त जो भगवान् में पूर्ण आश्रित है उसका काल भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता। काल भी भगवान् का ही प्रतीक है। संसार में सब कुछ ही भगवान् हैं। पत्थर में ठोसपना भगवान् का ही है, जल में तरलपना भगवान् का ही है। जो भी किसी में गुण है, वह भगवान् के अंश से है। ऐसी जिसकी निगाह बन जाती है तो भगवान् उससे दूर कैसे रह सकते हैं? वह तो हर क्षण सुख की लहरों में तैरता रहेगा, दुख तो उसके पास आ ही नहीं सकते। जब ज्ञान रूपी दीपक हृदय में जल जाता है तो अज्ञान रूपी अँधेरा कैसे रह सकता है? यह तो पक्का सिद्धांत है।



हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

एक नया उपाय

44

1 अगस्त, 2017 की रात
छींड़ की ढाणी

साधक कहता है कि मैंने भगवान् को तो देखा नहीं है, पर मैंने तो परम भक्त को देखा है। शास्त्र लिखता है कि अंत में मरते समय, मानव भगवान् का ध्यान करके मरे, भगवान् की याद करते हुए प्राण त्यागे। मैंने मेरे बाबा (ठाकुर जी) से पूछा कि आपको तो किसी ने देखा नहीं, आपके परम भक्त को ही देखा है, तो इसलिए मरते हुए उसी भक्त की ही याद आएगी।

ठाकुर जी उत्तर में जो बोल रहे हैं, यह बात शास्त्र में नहीं लिखी है लेकिन जो ठाकुर बोलते हैं, वो भी तो शास्त्र ही है। ठाकुर जी बोलते हैं, "ठीक बात है कि साधक ने मुझे तो देखा नहीं है। उसने तो हमेशा अपने दीक्षा या शिक्षा गुरु के रूप में मेरे भक्त का संग किया है। तो अगर मरते हुए उस भक्त की याद भी आ गयी तो उसका निश्चित रूप से उद्धार हो जायेगा। जैसे किसी ने सारी उम्र बकरी चराई है तो अंत समय उसको बकरी ही याद आएगी।"

भगवान् की वाणी है कि :

Hkko dHkko vu[k vkylgA
uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अगर आप बेमन से भी बिना अपराध किए, एक लाख नाम करो, तब भी आपको वैकुण्ठ प्राप्ति होगी। क्यों होगी? क्योंकि भगवान् ने बोला है कि दसों दिशाओं में मंगल होगा। तो दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक धाम नहीं है क्या? ग्यारह दिशा तो होती नहीं है। इससे यह निश्चित हो गया और मोहर लग गयी कि उसका तो उद्धार हो ही गया। अब आप ने (भगवान् ने) (1 अगस्त की रात को) और भी कह दिया, "अगर मेरा भी चिंतन न हो और मेरे प्यारे भक्त का चिंतन हो जाए तो उसका (साधक का) उद्धार तो निश्चित है ही क्योंकि भक्त तो मुझ से भी श्रेष्ठ है। भक्त मेरे सिर का मुकटमणि है। मेरा चिंतन हो या मेरे परम भक्त का चिंतन हो। क्योंकि मेरा भक्त मेरे से बड़ा है तो मेरे भक्त का चिंतन करने वाले को मैं कैसे नीचे गिराऊँगा? कैसे नीचे की योनि दूँगा? भक्त मेरा मुकटमणि है। मेरे भक्त का चिंतन मेरे से भी उच्च कोटि का है।

egRoi.k %& लेकिन भक्त भी सच्चा होना चाहिए, भक्त हृदय से होना चाहिए, वेश भूषा से नहीं। सच्चा महापुरुष भगवान् की खुशी के लिए ही सब कुछ करता है, स्त्री और पैसा उसके लिए मिट्टी होता है। वह मुक्ति भी नहीं चाहता है, ऐसे महापुरुष का चिंतन अगर हो जाए तो वैकुण्ठ वास तो हो जायेगा, परन्तु गोलोक धाम नहीं मिलेगा, गोलोक धाम उसको मिलता है, जो भगवान् के लिए तड़पता है।

इसमें एक अपवाद है कि अगर साधक का भक्त–अपराध होता है (दुर्वासा ऋषि की तरह) तो मेरे भक्त के चिंतन से भी सद्गति नहीं मिलेगी और उस साधक को दूसरा जन्म, मनुष्य का जन्म मिलेगा और फिर वह दुबारा एक दम स्वच्छ हो जायेगा।

'kdk o Inng dk lekèkku %& बाबा (भगवान् कृष्ण) ने बोला है, "1 अगस्त को मैंने तुम्हें बताया था कि अंत समय में यदि साधक को तुम्हारा चिंतन या मेरे सच्चे भक्त का चिंतन हो जाएगा तो उसका उद्धार निश्चित है, फिर वह मेरा नाम उच्चारण करे या न करे।" उन्होंने कहा कि "पूतना ने केवल मेरा चिन्तन ही किया था, नाम उच्चारण नहीं किया, फिर भी उसको धात्री (माँ) की गति मिल गई। शिशुपाल ने भी मेरा नाम उच्चारण नहीं किया था और मुझे गालियाँ निकाली थीं, उसका भी उद्धार हुआ था।" जितने भी राक्षस थे उन्होंने भगवान् को दुश्मनी से याद किया था। दुश्मनी और प्यार भगवान् के लिए एक ही है, याद या चिंतन मुख्य है। राक्षसों ने मरते वक्त नाम कभी नहीं लिया, केवल चिंतन ही किया।

यह बहुत महत्वपूर्ण बात है : बाबा ने बोला है, "जो तुम पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं उनको तो विश्वास होता है और वे समझते हैं कि यह बाबा ने ही बोला है, परन्तु जिनको तुम पर अधूरा विश्वास है, वे कहते हैं कि अनिरुद्ध दास तो अपने मन से बोलता है इसलिए बाबा (मैंने) ने रात को यह लेख लिखवाया है, जिस का शीर्षक है "शंका" और यह लेख सबको बाँटना भी है।"

किसी को शंका हो सकती है कि मृत्यु के समय शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु में से किसी का भी चिंतन हो जाये तो वैकुण्ठ या गोलोक की प्राप्ति हो जाएगी, इसको हम कैसे मानें कि यह भगवान् ने बोला है?

इसका उत्तर या समाधान नीचे लिखा जा रहा है, ध्यानपूर्वक भक्तगण पढ़ें :

श्रीमद्भागवत महापुराण में लेख है, जो सभी भक्त समुदाय को मालूम भी है कि अजामिल, जो महा–पापी और अपराधी था, उसको मरते समय अपने बेटे का चिंतन हुआ पर उसका बेटा तो भक्त नहीं था। लेकिन बेटे के निमित्त 'नारायण नाम' निकल गया तो उसका उद्धार हो गया और भगवद् पार्षद आ गये और उसे वैकुण्ठ ले गए।

अब खास बात है कि राक्षसगण भी तो भगवद् चिंतन ही करते हैं पर वे दुश्मनी भाव से करते हैं तो उनका उद्धार होता है कि नहीं? वे कभी नाम तो नहीं लेते, केवल चिंतन करते हैं। चिंतन ही मुख्य है, चिंतन में नाम शामिल है, नाम चिंतन के अन्दर घुसा हुआ है। भगवान् के नाम उच्चारण की जरूरत नहीं है। इसी प्रकार मरते समय यदि भक्त को, अपने शिक्षा गुरु या दीक्षा गुरु का चिंतन हो जाए तो क्या उसके उद्धार होने में रत्ती भर भी शक होगा? चाहे भगवद् नाम उसके मुख से निकले या न निकले क्योंकि चिंतन में ही नाम का समावेश है। भगवान् तो अंतर्यामी है तो वह जान लेगा कि मेरे प्यारे भक्त का चिंतन इस जीव ने किया है जो कि मेरा सिरमौर है। मैं इसका उद्धार कैसे नहीं करूँगा? इसको अधोगति में कैसे पहुँचा

सकता हूँ? इससे यह स्पष्ट हो गया कि चिंतन ही मुख्य है। नाम ज्यादा मुख्य नहीं है, हरिनाम उच्चारण हो चाहे न हो। इसलिए कहते हैं:

Hkko dHkko vu[k vkyIgA
uke tir exy fnfl nIgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अगर हमारा भाव निरंतर चिंतन का हो जाए, तो सब कुछ मिल गया, इसका उदाहरण स्पष्ट है कि राक्षसों ने कभी नाम उच्चारण नहीं किया केवल दुश्मनी का भाव रख कर ही चिंतन किया और उनका उद्धार हो गया, पर भक्त तो गुरु का चिंतन भी करता है और भगवान् का भी। इसलिए भक्त के तो दोनों हाथों में लड्डू है, एक गुरु की कृपा का लड्डू और दूसरा भगवान् की कृपा का लड्डू। परन्तु राक्षस सिर्फ भगवान् का ही चिन्तन करते हैं और वह भी दुश्मनी से। तो उनके केवल एक ही हाथ में लड्डू है इसलिए भक्त की ही जीत होगी, दो लड्डू से ज्यादा पेट भरेगा। मरते–मरते भक्त का गला रुँध जाता है क्योंकि गले में कफ अटक जाता है तो नाम उच्चारण नहीं कर सकता लेकिन मन का चिंतन तो कर सकता है, उस चिंतन में ही नाम घुसा हुआ है, इसलिए कहते हैं:

lfefjv uke :i fcu n[kA
vkor ân;; lug fcl"kAA

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

"सुमिरिअ" का मतलब है "चिंतन" और ऐसा करने से हृदय में भगवान् बड़े प्यार से प्रकट हो जाता है। "रूप

बिनु" का मतलब है कि भगवान् को देखा नहीं है, लेकिन फिर भी सुमिरन से भगवान् हृदय में प्रकट हो जायेगा (आवत हृदय सनेह विशेषे)। चिंतन में भगवान् की लीला, धाम, नाम सब कुछ आ जाता है।

भक्त के चिंतन में भगवान् का चिंतन भी है क्योंकि भगवान् भक्त के हृदय में बैठा है, भगवान् अंतर्यामी है और जानता है कि यह मेरे प्यारे का चिंतन कर रहा है। भक्त जब मरेगा तो उच्चारण तो होगा नहीं उससे, पर गुरु का चिंतन तो करेगा ही क्योंकि मन तो चिंतन के बिना एक क्षण भी रुकता नहीं है, सोने के बाद भी चिंतन चलता रहता है, चिंतन तो निरंतर रहता ही है और जब मरेगा तो उसको अपने गुरु का चिंतन होगा और उसका उद्धार निश्चित रूप से भगवान् करेंगे।

गुरु भी ऐसा होना चाहिए जो पैसे और स्त्री से घृणा करता है, जो इन दोनों चीजों से दूर है वही भगवान् का प्यारा है पर ऐसा गुरु विरला ही मिलता है। साधारण गुरु, जो पैसे का दास हो, स्त्री का दास हो, उससे कोई उद्धार नहीं होगा क्योंकि वह भगवान् को तो चाहता ही नहीं है, केवल पैसे को चाहता है। 99 प्रतिशत ऐसे ही संत हैं, कोई 1 प्रतिशत ही ऐसा होगा जो पैसे को और स्त्री को नहीं चाहता।

भगवान् जानते हैं कि मेरे चिंतन से श्रेष्ठ, मेरे प्यारे भक्त का चिंतन है इसलिए भगवान् ने आज रात (11 सितम्बर, 2017) को यह लेख लिखाया है। इसको पढ़ने से उसकी भी शंका खत्म हो जाएगी जो बिलकुल नास्तिक होगा।

माया का प्रभाव

45

4 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव श्रीमद्भागवत महापुराण से ही अधिकतर बोला करते हैं। कहते हैं सृष्टि के पहले कुछ भी नहीं था, केवल भगवान् ही थे। क्षीरसागर में "नारायण" नाम से शेष–शैय्या पर भगवान् लेट रहे थे, जब भगवान् को खेल रचने की स्फुरणा हुई तो नारायण की नाभि से कमल नाल प्रकट हुआ। उस पर ब्रह्माजी प्रकट हुए। नारायण ही सारे अवतारों का कोश है। जब ब्रह्माजी को मालूम हुआ कि वह कहाँ से आये हैं तो उन्होंने चारों ओर मुस्कराकर देखा तो ब्रह्माजी के चार मुख प्रकट हो गये। सोचने लगे कि अब उन्हें क्या करना है? तो आकाशवाणी से आवाज सुनाई दी कि, "तुम सृष्टि रचो।"

ब्रह्माजी को विचार हुआ कि इस नाल में वह कहाँ से आये हैं? तो ब्रह्माजी नाल में यह जानने के लिए घुसे कि नाल का अंत कहाँ तक है? ब्रह्माजी को नाल का अंत नहीं मिला तो वापिस आकर कमल पर बैठ गये और सोचने लगे कि यह आकाशवाणी तो सृष्टि रचने हेतु बोल रही है तो वह सृष्टि रचें। पहले मानसिक रूप से ही सृष्टि होती थी। नर–नारी के संग से तो मनुजी के अवतार के बाद ही होने लगी। अब ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना शुरू की, तो सृष्टि से

प्रकट हुए जीव, ब्रह्माजी को ही खाने को दौड़े। ब्रह्माजी ने अदृश्य से प्रार्थना की, "ये सृष्टि तो मुझे ही परेशान कर रही है। मैं ऐसी सृष्टि नहीं रच सकता।" तो फिर आकाशवाणी सुनाई दी कि, "तप करो.. तप करो.. तप–तप" शब्द सुनाई दिए। ब्रह्माजी ने मन में सोचा कि अदृश्य द्वारा जो आवाज आई है उसका मतलब है, "तू मुझको याद कर, मेरा स्मरण कर अर्थात् भजन कर।" ब्रह्माजी ने तपस्या करने के बाद में फिर सृष्टि रचना शुरू की तो भजन के फलस्वरूप, प्रथम में, सनक, सनातन, सनत, सनंदन, यह चारों भाई प्रकट हो गये। ब्रह्माजी ने इनको आदेश दिए कि तुम सृष्टि रचना करो, लेकिन चारों ने सृष्टि रचना उचित नहीं समझा।

तो ये चारों भाई भजन में लग गये। पहले ज्ञान मार्ग द्वारा भजन करने लगे। चारों भाई केवल पाँच साल की उम्र के ही रहते हैं। ये अग्रज संतान के रूप में हैं। सबसे पहले, इन्होंने जन्म लिया, नारद जी ब्रह्माजी के मन से प्रकट हुए। इसके बाद में ब्रह्माजी ने सप्त ऋषियों को जन्म दिया, उनको सृष्टि रचने का आदेश दिया तो वे कुछ अनमने से हो गए तो ब्रह्माजी को क्रोध आ गया तो इनकी भौहों से रुद्र भगवान् प्रकट हुए, वह जन्म से ही रोने लगे तो इनका नाम रुद्र हो गया। अब ऋषियों ने भी सृष्टि रचना आरम्भ कर दिया, परन्तु सृष्टि बढ़ नहीं रही थी तो ब्रह्माजी के शरीर से दो टुकड़े प्रकट हुए। ये थे मनु तथा शतरूपा। मनु–शतरूपा से दो पुत्र हुए उत्तानपाद और प्रियव्रत एवं तीन कन्याएँ प्रकट हुईं– देवहूति, प्रसूति और आकूति। इनसे सृष्टि बढ़ने लगी। लेकिन फिर भी मन माफिक सृष्टि बढ़ी नहीं तो मनु के काल से नर–नारी के संग से सृष्टि बढ़ना आरम्भ हो गया एवं कामदेव को आदेश दिया कि सृष्टि बढ़ाना उसका काम है। सभी को प्रेरित कर के सृष्टि बढ़ाने में सहायक बनो। जब भगवान् ने कामदेव को आदेश दिया तो कामदेव ने सृष्टि बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। चर–अचर प्राणियों को काम ने मोहित कर दिया। हमारे धर्म–शास्त्र में काम को अंधा बताया है और बोला है कि कोई भी माँ, बहन और बेटी के साथ एकांत में मत रहो वरना गलत कर्म बन जाएगा।

कश्यपजी बहुत बड़े उच्च कोटि के संत थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं, एक का नाम दिति तथा दूसरी पत्नी का नाम अदिति। दिति राक्षसों की माँ थी और अदिति देवताओं की माँ थी। यह काम इतना शक्तिशाली व बलवान है कि उसने राक्षसों की माता दिति को परेशान कर दिया। संध्या का समय था। कश्यपजी भजन में लीन थे। दिति ने प्रार्थना की, "मुझे यह काम सता रहा है, मैं बेबस हो गयी हूँ अतः आप कृपा करो।" कश्यपजी बोले, "दिति! यह समय काम के अनुकूल नहीं है। थोड़ी देर ठहर जाओ।" लेकिन दिति ने जबरन उनके कपड़े पकड़ लिए। शास्त्र कहता है कि नर से नारी को कामदेव उन्नीस गुना अधिक सताता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण सामने आ गया, जो शास्त्र बोल रहा है। प्रत्यक्ष देखते भी हैं कि जब गाय का काम उग्र हो जाता है तो गाय गले की रस्सी को तोड़कर साँड को ढूंढ़ने के लिए भाग जाती है, फिर वापिस अपनी जगह आ जाती है।

यह सब भगवान् की ही माया है। इसको जीतना किसी के भी बस में नहीं है। ब्रह्मा, शिवजी को भी इस माया ने नहीं छोड़ा तो साधारण जीव की तो बात ही क्या है। गरुड़ तो भगवान् के वाहन हैं। जहाँ भी भगवान् जाते हैं, गरुड़ पर चढ़ कर जाया करते हैं। एक बार भगवान् ने समुद्र मंथन का आयोजन, इसलिए करवाया कि समुद्र से अमृत निकलेगा जिसको पीने से जीव अमर हो जाएगा। लेकिन समुद्र को मथना बड़ी टेढ़ी खीर थी। अकेले देवता समुद्र मंथन नहीं कर सकते थे। देवताओं का सिरमौर (राजा) इंद्र होता है। अतः भगवान् ने कहा, "इंद्र! तुम अकेले देवताओं के साथ समुद्र मंथन नहीं कर सकते, अतः राक्षसों को साथ में लेना उचित होगा। तब देवता और राक्षस मिलकर समुद्र मंथन सुगमता से कर सकते हैं।" भगवान्, इंद्र को बोले, "तुम राक्षसों के राजा बलि के पास चले जाओ और ये प्रस्ताव रखो कि समुद्र में से 14 रत्न निकलेंगे तो उसमें से, तुम्हारा भी हिस्सा होगा और फिर सभी अमर हो जाएँगे, अमृत आपको भी मिलेगा।" तो इंद्र ने भगवान् के कहने पर बलि

महाराज को समझा दिया तो बलि महाराज राजी हो गये और बोले, "यह प्रस्ताव तो सोने पर सुगंध कर देगा और हम राक्षस समुद्र मंथन के लिए तैयार हैं, आप योजना तैयार करो।"

भगवान् ने देवताओं को समझा दिया कि जो भी राक्षस कहें तो उसमें वे हाँ कर दें। भूलकर भी न मत करें, वरना काम बिगड़ जाएगा। देवता बोले, "ठीक है, जैसा आप कहोगे, वैसा ही हम करेंगे।" भगवान् बोले, "देखो! मथनी बनाने हेतु मंदराचल पर्वत को समुद्र पर लाना होगा।" राक्षस व देवता दोनों लाने हेतु तैयार हो गये। दोनों दलों ने हाँ कर दी। अब दोनों दलों ने मंदराचल पर्वत को उखाड़ लिया, लेकिन मंदराचल पर्वत तो बहुत भारी है, उसे कैसे ले जाएँगे? दोनों दल हिम्मत करके बोले, "उठाओ, ले जाने में क्या मुश्किल है? उठाओ!" अब तो राक्षस और देवता दोनों ही दल जुट गए और उठा कर लाने लगे परंतु थोड़ी दूर में ही हाँफने लगे, पसीना–पसीना हो गये और ले जाने हेतु हार गए। बोले, "भई! हम नहीं ले जा सकते, इतनी दूर ले जाना मुश्किल है।" मंदराचल को नीचे धरती पर उतारने लगे तो दोनों दल के अनेक राक्षस और देवता दब कर चकनाचूर हो गये। जो शेष बचे थे, वे एक जगह बैठ कर सोचने लगे कि काम तो बिगड़ गया। इसको ले जाना तो असंभव ही है। सोचने लगे कि क्या किया जाए? तो उनमें जो वृद्ध थे, बूढ़े थे, उन्होंने कहा, "भई! इसका इलाज तो भगवान् ही कर सकते हैं। भगवान् को याद करो, वे ही इसका उपाय बता सकते हैं।" भगवान् को याद किया तो भगवान् गरुड़ पर सवार होकर आ पहुँचे और बोले, "क्या बात है? पहाड़ को धरती पर क्यों रख दिया?" दोनों दल बोले, "इसने तो बहुत से राक्षस और देवताओं को चकनाचूर कर दिया है, मार डाला है। हम इसे समुद्र तक नहीं ले जा सकते।" भगवान् गरुड़ से उतरे, जो देवता दब के मर गए थे, उन्हें अपनी दृष्टि से ही जिला (जीवित करना) दिया, राक्षस मरे पड़े रहे।

भगवान् बोले, "अरे! तुम सब दूर हो जाओ, मैं इस पर्वत को ले जाता हूँ।" दोनों दल वाले बोले, "हम लाखों से नहीं उठा तो आपसे कैसे जा सकता है?" भगवान् बोले, "शांति रखो। अभी उठा लेता हूँ।" भगवान् ने हाथ लगाया और पर्वत को गरुड़जी की पीठ पर रख दिया और स्वयं सवार हो गये और ले जाकर समुद्र के किनारे रख दिया। अब देखिये! गरुड़ कितने शक्तिशाली हैं, पूरा भार सहन करके ले गये लेकिन उसी गरुड़ को भी माया व्याप गयी। गरुड़ भी अछूता नहीं रहा। अब भक्त ध्यान से सुनिये! जो गरुड़, भगवान् का वाहन है, इतने भारी भार को आकाश मार्ग से ले गया। जिस मंदराचल पर्वत को राक्षस और देवता दोनों मिलकर भी नहीं ले जा सके, उसे गरुड़ ने कुछ नहीं समझा और उठा कर समुद्र के किनारे रख दिया। भगवान् की माया बड़ी प्रबल है। गरुड़जी को भी माया व्याप गयी। गरुड़ ने देखा, "ओ! हो! राम, नागपाश में बन्ध गए। यह भगवान् नहीं हो सकते, यह तो राजा दशरथ के पुत्र हैं, जो रावण से युद्ध करने, इस कारण से आए हैं, कि रावण ने इनकी पत्नी सीता को चुरा कर अपनी लंका में रख लिया है। अतः सीता को छुड़ाने आए हैं।"

बस क्या था, माया से अज्ञान का पर्दा, मंद बुद्धि पर पड़ गया और मन में चिंता की बाढ़ आ गयी। मन अशांत हो गया। सोचने लगा, "अब यह माया कैसे दूर हो? किसी सच्चे संत के पास जाने से ही मेरा दुख दूर हो सकता है।" तो शिवजी की प्रेरणा से गरुड़जी, काकभुशुण्डिजी के यहाँ गए। काकभुशुण्डि पर्वत पर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर राम की कथा सुनाया करते थे जिसको सब पक्षी बैठ कर सुना करते थे। गरुड़ के जाने से काकभुशुण्डि को बड़ा हर्ष हुआ और बहुत आदर–सत्कार करके उन्हें उच्च आसन पर बिठा दिया। गरुड़ ने प्रार्थना की, "मैं मायावश नीचे गिर चुका हूँ। अब आप ही मुझे उठा सकते हो।" काकभुशुण्डि बोले, "आपकी सेवा करना मेरा उच्च कोटि का धर्म है, आदेश करो, मैं क्या सेवा करूँ?" प्रसंग में तो काकभुशुण्डिजी ने, गरुड़ को अपनी जीवन–बीती बातें सुनाई जो

बहुत लम्बी हैं, यहाँ वर्णन करना असम्भव है, परन्तु संक्षेप में है कि काकभुशुण्डिजी अंत में लोमस ऋषि के पास गए।

तो लोमस ऋषि ने, गरुड़जी को, ज्ञान मार्ग की, निर्गुण उपासना बताई, जो गरुड़जी को अच्छी नहीं लगी क्योंकि गरुड़जी को 'अस्ति' अच्छी लगती थी। लोमस ऋषि बोले, "समुद्र व समुद्र तरंग में क्या फर्क है?" अर्थात् जीव और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। "अहम् ब्रह्मास्मि, अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ।" ऐसी बात सुनकर गरुड़जी को क्रोध आ गया, कथा बहुत लम्बी है अतः संक्षेप में ही गुरुजी बता रहे हैं। अंत में लोमस ऋषि ने गरुड़जी को वरदान दे दिया, "प्रलय होने पर भी वह मरेगा नहीं, सदा अमर रहेगा और सगुण उपासना में तेरा मन सदा रमण करता रहेगा।"

काकभुशुण्डि को 27 कल्प व्यतीत हो चुके थे। कल्प किसे कहते हैं वह भी गुरुजी बता रहे हैं कि हजार चौकड़ी का ब्रह्मा का एक दिन होता है अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग हजार बार निकल जायें, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है, इतनी ही लम्बी रात होती है। जब ब्रह्मा की आयु के 100 वर्ष बीत जाते हैं, तब ब्रह्मा शांत हो जाते हैं और समस्त सृष्टि ब्रह्मा में समा जाती है। इसको ही एक कल्प बोला जाता है।

इस प्रकार काकभुशुण्डि को 27 कल्प हो गए। वह इस कारण गरुड़जी को बताने लगे कि भगवान् की सगुण उपासना से मृत्यु भी इसका (भक्त का) कुछ बिगाड़ नहीं सकती। काल और महाकाल भगवान् से थर–थर काँपता है लेकिन भगवान् बोलते हैं, "मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ।" जब भगवान् ही भक्त से काँपते रहते हैं तो मौत का क्या ठिकाना, मौत तो उसके आदेश की बाट देखती रहती है कि जब मुझे बुलाएगा तभी मैं जा कर उस पर हावी होउँगी।

काकभुशुण्डि गरुड़जी से बोल रहे हैं, "गरुड़जी! जब–जब राम–अवतार होता है, तब तब मैं वहाँ जाकर रामजी की बाल लीलाओं का दर्शन करता रहता हूँ।" ये सब रामायण में अंकित है जो

मेरे गुरुजी भक्त समुदाय को बता रहे हैं। काकभुशुण्डि अब कलियुग के समय का वातावरण बताने जा रहे हैं। काकभुशुण्डिजी बोल रहे हैं, "कलियुग तामसिक और दुष्ट स्वभाव का समय होता है, 'जैसे राजा वैसी प्रजा' हुआ करती है।" यह ध्रुव सत्य सब जानते हैं कि इस समय दुष्ट स्वभाव की संतानें हुआ करती हैं। न माँ–बाप की बात को मानती हैं न कुलगुरु को मानती हैं। मर्यादाहीन हुआ करती हैं। उग्रवाद का साम्राज्य चारों ओर फैला रहता है, इसको कोई हटा नहीं सकता है। यह सब समस्याएँ भगवान् की फैलाई हुई हैं। ऐसी–ऐसी दुर्घटनाएँ देखनी पड़ेंगी कि सज्जनगण बेहोश हो जाएँगे। दूसरों का मन, हृदय पत्थर जैसा बन जाएगा। कोई किसी को मानेगा नहीं, हर जगह स्वार्थ की बीन बजेगी। प्रेमनाम की जड़ ही उखड़ जाएगी। यह ऐसा कलियुग का समय होता है।

विभीषण, जो रावण का भाई था, उसे भाई ने ठोकर मार कर भगा दिया। अतः विभीषण रामजी के पास आ गया और रामजी को बोला, "हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि अच्छी बुद्धि या बुरी बुद्धि सबके हृदय में रहती है। जहाँ सुबुद्धि होती है, वहाँ सब प्रकार की संपदाओं और सुख का विस्तार रहता है और जहाँ बुरी बुद्धि है वहाँ परिणाम में दुख ही दुख आ जाता है। रावण के हृदय में बुरी बुद्धि बस गयी है अतः यह मेरा भाई होते हुए भी मेरा दुश्मन बन गया, यह भविष्य में हमारे कुल का नाश कर देगा।" विभीषण रामजी को ऐसे बोल रहे हैं। भगवान् रामजी बोले, "विभीषण! तुम्हारे ऊपर लात मारी है तो रावण का नाश ही समझो।" शिवजी पार्वती को बोल रहे हैं कि जो साधु का अपमान करता है, वह नष्ट हो जाता है क्योंकि साधु भगवान् का प्यारा पुत्र होता है। भगवान् राम बोले, "जो मानव मन से निर्मल होता है, कपटहीन होता है वह मुझे प्राणों से भी प्यारा होता है।

विभीषण बोले, "हे राम! जीव की कुशल तब तक नहीं होगी, न मन में शांति हो सकती है, जब तक वह विषय वासना को छोड़कर,

आपका भजन नहीं करता। भजन आप का नाम ही है।" जो नाम की शरण में है, साकार भगवान् को भजता है, दूसरे के हित में लगा रहता है और नीति और नियम में रहता है, जिनको ब्राह्मण के चरणों में प्रेम है। भगवान् कहते हैं, "ऐसा मानव उन्हें प्राणों से भी प्यारा लगता है।" फिर रामजी बोले, "विभीषण! जो शिवजी को नहीं मानता और मेरा भक्त है वह मुझे स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। जो मेरे स्थापित किए हुए शिवजी का दर्शन करेगा तथा शिवजी पर गंगा जल चढ़ाएगा, वह मेरे वैकुण्ठ लोक में जाएगा।"

भगवान् राम नागपाश में बँध गये तो भगवान् के वाहन गरुड़जी को भी माया व्याप्त हो गयी कि वे भगवान् नहीं हो सकते, जो साधारण जीव की तरह बँधे पड़े हैं। भगवान् की कृपा के बिना माया किसी को भी नहीं छोड़ती। गरुड़ को एक बार अहंकार हो गया था कि भगवान् को वही लेकर जा सकता है और अन्य कोई पक्षी नहीं। अतः गरुड़ पर माया हावी हो गयी।

शिवजी बोल रहे हैं, "हे उमा! अनेक प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भगवान् नहीं मिलते, जिस प्रकार भगवद्–नाम–जप से सरलता से मिल जाते हैं। कलिकाल में यह कितना सरल–सुगम उपाय बताया गया है। चाहे मन से जपो, चाहे बेमन से जपो। शास्त्र कह रहे हैं कि दसों दिशाओं में जीव का कल्याण निश्चित रूप से हो जाता है अर्थात् अन्त में वैकुण्ठ वास हो जाता है, लेकिन शर्त यह है कि नित्य 64 माला होनी चाहिएँ। चाहे बेमन से हों, चाहे मन से हों।"

भरत, रामजी के भाई हैं, वह कैसे हरिनाम जपा करते थे?

cfB nf[k dlklu tVk edV ÑI xkrA
jke jke j?kifr tir lor u;u tytkrAA

(मानस, उत्तर. दो. 1 (ख))

आँखों से आँसू बह रहे हैं और भगवान् का नाम जप रहे हैं। भरतजी कुशासन पर बैठ कर राम नाम जपते थे और हृदय में रामजी की छवि के दर्शन करते हुए, आँखों से आँसू बहाते रहते थे। इसी प्रकार से भक्त को नाम जप करना चाहिए।

राम बोले ,"विभीषण! जो दूसरों से द्रोह करते हैं, दुख देते हैं, परायी स्त्री व पराये धन पर दृष्टि रखते हैं, पराये लोगों की निंदा करते रहते हैं, ये पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए साक्षात् राक्षस ही होते हैं। ऐसे अधम, अनुज, अल्प राक्षस कलियुग में बहुत सारे होते हैं।" फिर राम बोलते हैं :

,l vèke eut [ky Ñr tx =rk ukfgA
}kij dNd cn cg gkbgfg dfy tx ekfgAA

(मानस, उत्तर. दो. 40)

cM Hkkx eku"k ru ikokA lj nyHk ln xUFkfUg xkokAA
X;ku vxe çR;g vudkA lkèku dfBu u eu dg VdkAA

(मानस, उत्तर. दो. 42 चौ. 4)

djr d"V cg ikob dkÅA
Hkfä ghu ekfg fç; ufg lkÅAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 2)

iU; ,d tx eg ufg ntkA
eu Øe cpu lkèk in itkAA
lkudy rfg ij efu nokA
tk rft diV djb lkèk lokAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

अब विभीषण कहते हैं : "हे रामजी! सब साधनों का अंतिम फल यह है कि आपमें प्रेम बन जाए, जो केवल आपके नाम जपने पर ही हो सकता है।

गरुड़जी बोल रहे हैं :

Hko cèku r! NVfg uj tfi tk dj ukeA
[kc! fu l kpj ckèkm ukxik l l kb jkeAA

(मानस, उत्तर. दो. 58)

जिसका नाम लेने से जीव जन्म–मृत्यु से छूट जाता है, वह रामजी एक तुच्छ राक्षस से बँध गए? यह क्या बात है? यह भगवान् कैसे हो सकते हैं?" यह माया गरुड़जी को व्याप्त हो गयी। नागपाश में बँधना भगवान् की लीला थी। मर्यादा को रखने हेतु रामजी, नागपाश में बँध गये थे। गरुड़ पर माया हावी होने से उनका मन अशांत हो गया। सोचने लगे कि मन कहीं लगता नहीं, अब क्या किया जाए? यह माया, गरुड़ को इसलिए लगी क्योंकि गरुड़ को घमंड था। यह पीछे लिखा जा चुका है अतः अब गरुड़जी नारदजी के पास गये और नारदजी को बोले, "मुझे माया व्याप्त हो गयी है।" नारदजी बोले, "गरुड़! माया बड़ी बलवान है, ये किसी को नहीं छोड़ती। केवल शरणागत भक्त पर इसका जोर नहीं चलता। तुम ब्रह्माजी के पास चले जाओ। ब्रह्माजी के पास जाकर अपना सारा दुख उनको कहो।" गरुड़ ब्रह्माजी के पास पहुँचे तो ब्रह्माजी बोले, "इस माया ने तो मुझे भी बहुत नचाया है। तुम शिवजी के पास जाओ, वही कुछ उपाय बता सकते हैं।" गरुड़ को शिवजी रास्ते में ही मिल गए। शिवजी सत्संग सुनने के लिए जा रहे थे तो शिवजी बोले, "रास्ते में तो कुछ उपाय नहीं बता सकता, तुम काकभुशुण्डिजी के पास चले जाओ। वहाँ रोज भगवान् की कथा हुआ करती है, वहीं पर तुम्हारा संदेह दूर हो जाएगा।"

rcfg gkb l c l l ; HkxkA tc cg dky dfjv l r l xkAA

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ 2)

"बहुत काल तक सत्संग करते हैं तभी संशय का नाश होता है। पक्षी, पक्षी की बोली समझता है, अतः काकभुशुण्डिजी के यहाँ पशु,

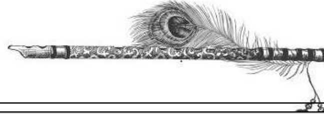
पक्षी रोज कथा सुनने आते रहते हैं, आप भी वहीं पर कथा सुनो।" अब तो गरुड़जी ने काकभुशुण्डि के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम किया, तो काकभुशुण्डि ने उन्हें छाती से लगा लिया।

काकभुशुण्डिजी बोले, "मैं निहाल हो गया। आप आये, अत्यन्त आनन्द हो गया।" गरुड़जी ने विस्तार से अपनी व्यथा सुनाई। बहुत समय तक गरुड़जी काकभुशुण्डिजी की कथा सुनते रहे, जो संशय था, वह दूर हो गया, परन्तु कथा में आनंद होने से बहुत समय तक काकभुशुण्डिजी के पास ही रहे, वापिस नहीं गये। काकभुशुण्डिजी राम के जन्म से लेकर और राम ने वन से आकर अयोध्या पर 13000 वर्ष तक राज किया, तब तक की सारी कथा सुनाते रहे।

भगवान् ने आगे कहा, "शिक्षा गुरु कैसा होना चाहिए?" अतः बता देता हूँ। "ऐसा महापुरुष, जिसका स्वभाव ऐसा बन गया हो कि वह प्रत्येक जीव मात्र में व कण–कण में मुझे ही देखता हो। वह फिर किससे बैर करेगा? उसको सब ही प्यारे लगेंगे। उसे सब जगह अपना प्यारा भगवान् अर्थात् मैं ही तो दिखूँगा। इसलिए वह सबको प्यार करता है। प्रत्येक जीव मात्र में और कण–कण में मुझे ही देखता है। जो भी कर्म करता है, वह समझता है कि इस कर्म से मेरे भगवान् सुखी होंगे। इस तरह वह मुझको ही सुखी देखना चाहता है। उसके पीछे मैं छाया की तरह चिपका रहता हूँ। मैं चाहूँ तो भी, मैं उससे दूर नहीं रह सकता। यदि ऐसे (भक्त) शिक्षा गुरु का मरते समय चिंतन हो गया तो वह चिंतन मेरे चिंतन से भी ज्यादा उत्तम होगा। जैसे अगर किसी ने अपने पूरे जीवन में बकरी चराई हो तो उसे मरते समय बकरी का ही चिंतन होगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। जिसका मन पूरी उम्र भर जिस काम में फँसा हुआ है, मरते समय वही काम जरूर उसके दिमाग में आएगा और उसका ही चिंतन होगा। जो जिन्दगी भर जो करता है उसका ही चिंतन होता है।"

इसलिए शास्त्र बोलता है कि हर क्षण भगवान् को याद रखो। शास्त्र भगवान् की साँसों से ही निकले हैं, उनका पठन–पाठन करते रहो और संतों से मेल–मिलाप करते रहो तो संतों की कृपा से संसार

का वैराग्य हो जाएगा और भगवान् में मन लगता रहेगा। इसलिए सदा सत्संग में रहो। श्रीमद्भागवत में भगवान् कह रहे हैं कि, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। दूसरा मेरा कोई रास्ता नहीं है।" इसलिए, हम कितने भाग्यशाली हैं अगर हमें ऐसा कोई शिक्षा गुरु मिल जाए, उत्तम पुरुष मिल जाए और उनकी शरण में हम चले जाएँ तो हमारे दोनों हाथों में लड्डू होंगे। या तो भगवान् का चिंतन होगा या हमारे गुरु महाराज का हो जाएगा। इसलिए हमारे दोनों हाथों में लड्डू आ गये।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अगर कोई व्यक्ति अभी पैसा कमाने के लिए हरिनाम करता है, ताकि आगे जाकर उसे पैसा कमाने की चिंता न हो और सिर्फ हरिनाम ही करे। उसको इधर उधर की कोई टेंशन न हो। क्या यह ठीक है ?

उत्तर : बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत! उसको मालूम है क्या कि एक साँस आया, दूसरा साँस आयेगा कि नहीं आएगा। पहले तो पैसा कमाने के लिए हरिनाम करेगा। भगवान् पैसा तो दे देगा, लेकिन क्या उसे मालूम है कि उसकी कितनी उम्र है ? क्या पता, एक साँस आने के बाद दूसरा साँस आए कि न आए। और सारी जिंदगी पैसे के लिए हरिनाम करता रहा। उसी में मर जाएगा। बाद में ऐसी आदत पड़ जाएगी कि निष्काम हरिनाम कर ही नहीं पाएगा। उसकी कामनाएँ करने की आदत हो जाएगी, कामनाएँ बढ़ती जाएँगी। पहले पैसा मिल जाये, फिर बेटे की शादी हो जाए, अब मेरे पोता हो जाए, अब मेरे बेटे की नौकरी लग जाए। उस की कामनाएँ कभी खत्म नहीं होंगी। ऐसा भक्त, भगवान् को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

जो बोओगे सो पाओगे

46

11 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भक्तगण सुनिये! कोई किसी को दुख–सुख नहीं देता। जैसा मानव कर्म करता है वैसा ही उसे दुख–सुख उपलब्ध होता है। तभी तो हमारा धर्मशास्त्र यह घोषणा कर रहा है कि :

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा.... कर्म प्रधान है।

विश्व की रचना ही कर्म से होती है। यदि कर्म का जन्म न हो तो जगत् की सृष्टि हो ही नहीं सकती। संन्यासी तो खुलकर कुछ कह नहीं सकता, मैं तो गृहस्थी हूँ। मैं खुलकर सब बात बता सकता हूँ, कह सकता हूँ। जैसे किसान खेत में बाजरा बोता है, तो जो बीज बोएगा, वही तो हस्तगत होगा, वही तो मिलेगा, अर्थात् बाजरा ही उपलब्ध होगा। किसान चाहे कि मुझे बाजरे की जगह चावल मिल जाए तो यह असंभव है। जो बोयेगा, वही मिलेगा। ऐसे ही मानव गृहस्थी भी किसान का प्रतीक ही है। यह भी सृष्टि को बढ़ाने हेतु सत्, रज, तम बीज बोता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन बीज हैं, इसमें से कोई सा भी बीज बो सकता है। जो सतोगुण स्वभाव से बीज बोयेगा तो अच्छे स्वभाव का बच्चा होगा, स्वयं ही बच्चे के रूप में जन्म लेता है। जैसा बीज बोयेगा उसी का तो जन्म

होगा। जैसे मानव नीम या आम का बीज, पृथ्वी माँ में बोता है तो जिस पेड़ का बीज बोया है, वही पेड़, पृथ्वी माँ के उदर से तथा वही फल, पेड़ से पैदा होगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि बीज बोये आम व नीम का और पृथ्वी माँ के गर्भ, पेट से निकले बरगद या पीपल। यह तो नियम के विरुद्ध बात हो गयी। जो बोएगा, वही हस्तगत होगा, वही पा सकेगा। भक्त सदा चाहता है कि साधारण रूप से ही हमें भगवान् का दर्शन हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि भौतिक आँखों से भगवान् का दर्शन होना बिलकुल असंभव बात है। चिन्मय नेत्र होने चाहिएँ, भगवान् का दर्शन तभी होगा। दिव्य चक्षुओं से दर्शन हो सकता है। यह दर्शन केवल उन भाग्यशालियों को ही उपलब्ध होता है जिनका मन केवल भगवान् को ही चाहेगा और कुछ नहीं चाहेगा। वह जो भी कर्म करेगा, भगवान् के सुख के लिए करेगा। जैसे गोपियाँ करती थीं।

जिसे मायामय विषयों से वैराग्य हो और वह केवल भगवान् को ही चाहे। जिस प्रकार गोपियाँ घर–गृहस्थी को छोड़कर केवल भगवान् के सुख के लिए ही कर्म करती थीं। उनका मन भगवान् में रम गया था। ऐसे भक्तों को भगवान् दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं, जैसे अर्जुन को भगवान् ने दिव्य चक्षु देकर अपना विराट् रूप दिखाया था। ये पक्का ध्रुव सत्य सिद्धांत है कि जो भी उम्र भर जिस काम को करता है, उसे मृत्यु के समय वही विषय याद आता है। जैसे जिसने उम्र भर बकरियाँ चराई हैं, उनमें ही घुल मिल गया है, तो उसे मरते समय बकरियाँ ही याद आयेंगी और वह बकरी के पेट से ही जन्म लेगा।

तो धर्मशास्त्र की घोषणा है कि :

iU; ,d tx eg ufg nitkA
eu Øe cpu lkèk in itkAA
lkudy rfg ij efu nokA
tk rft diV djb lkèk lokAA

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

फिर भगवान् कृष्ण, स्वयं अपने मुखारविंद से बोल रहे हैं कि :

eu Øe cpu diV rft tk dj lUru loA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc noAA

(मानस, अरण्य. दो. 33)

अर्थात् जो सच्चे दिल से संत की सेवा करता है तो मैं, शिव और सब देवता उसके अनुकूल रहते हैं, ऐसे भक्त से प्यार करते हैं। भक्त पर जहाँ भी दुख कष्ट आया, भगवान् ने उसको हर प्रकार से बचाने की कोशिश की है। अर्जुन को कई बार बचाया है। नरसी भक्त के उलाहना देने पर, उसका अलौकिक भात भरा था। मीरा को कई बार जहर देकर, जहरीला साँप भेज कर मारने की कोशिश की, तब भगवान् ने मीरा को बचाया। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, प्रह्लाद को मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी परंतु प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हो सका। जिसने भी भक्तों को सताया है, वही मारा गया है। यही तो भगवान् की लीला है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

देखिए, मानव जन्म अत्यंत ही दुर्लभ है, सुदुर्लभ है। इसको बेकार के काम में लगाकर मानव अपना नाश कर रहा है। दुख सागर में गोते खा रहा है। धर्मशास्त्र व संत मानव के पीछे पड़ कर, उसकी आँखें खोलते ही रहते हैं, लेकिन दुर्भागा मानव अचेत होकर सोता रहता है। कितने दुख की बात है। अरे मानव! तुझको भारतवर्ष में जन्म मिला है, जहाँ देवियाँ पवित्र नदियों के रूप में तुम्हारा उद्धार करने आ रही हैं, जिनमें स्नान करने से पापों का नाश हो जाता है। भगवान् यहाँ हर मनु के मन्वंतर में जन्म लेकर मानव की आँखें खोलते रहते हैं परंतु दुर्भागा मानव सुख की ओर देखता भी नहीं है। कितने आश्चर्य की बात है। अनंत कल्पों से मानव दुख सागर में डूबा हुआ है, सुख का तो नामोनिशान नहीं है। यही तो भगवान् की माया है जो सदा मानव को अंधा रखती है। यह भी आदेश भगवान् का ही है कि जिस आदेश का पालन बेचारी माया को करना ही पड़

रहा है। माया भी बेचारी क्या कर सकती है? लेकिन कलियुग में जन्म होना भी बड़े भाग्य की बात है। देवता और सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव भी कलियुग में जन्म लेने के लिए तरसते रहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो जावे तो सदा के लिए हमारा भी उद्धार हो जाये।

Ñr ;x =rk }kij itk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r ikcfg ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम में कुछ करना ही नहीं पड़ता। शुद्धि–अशुद्धि की भी कोई आवश्यकता नहीं, चाहे मन से, चाहे बेमन से हरिनाम करो तो भी जीव का उद्धार होना निश्चित है। इसलिए सब चाहते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए और भारतवर्ष में हो जाए तो सोने में सुगंध हो जाए। भगवान् बोल रहे हैं :

Hkko dHkko vu[k vkylgA uke tir exy fnfl nlgAA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

यदि मानव बेमन से भी 64 माला करेगा, तो उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित रूप से होगी। क्यों हो जाएगी? इसका कारण है कि 10 दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो है ही नहीं। इन दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी आते हैं। अतः कलियुग में मानव को कुछ नहीं करना पड़ता, जब चाहो तभी हरिनाम जपते रहो। 24 घंटे में 64 माला तो बड़ी आसानी से हो जाती हैं। इसमें क्या मुश्किल है? क्या परेशानी है? जो बिल्कुल ही कर्मफूटा होगा उसके मुख से एक हरिनाम भी नहीं निकल सकता। अतः उसके लिए नर्क व 84 लाख योनियाँ तैयार हैं। एक उदाहरण है कि जैसे किसी ने पूरी उम्र बकरियाँ चराई हैं, तो अंत समय, जब उसको मौत आएगी तो बकरी की ही याद आएगी और बकरी से ही उसको जन्म लेना पड़ेगा। इसी प्रकार भक्त, शिक्षा गुरु के पास नाम महिमा सुनता रहा है। पूरी उम्र भर शिक्षा गुरु के पास आता रहा है तो उसे अंत समय में जब मौत आएगी तो उसे शिक्षा गुरु की याद अवश्य आएगी क्योंकि सदा ही

उसका, शिक्षा गुरु से संपर्क रहा है। भगवान् को उसने न देखा है, न वह भगवान् के पास में रहा है। अतः महापुरुष की याद से ही उसका उद्धार निश्चित है।

लेकिन महापुरुष कैसा होता है? उसका उल्लेख, धर्मशास्त्रों में अंकित है। महापुरुष को कैसा होना चाहिए?

महापुरुष को कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से तो कोई मतलब ही नहीं है। धन, मकान, दुकान, खेत, जो भी वैभव है, वह कंचन में आ जाता है। उससे जो भी कर्म होगा, वह भगवान् की खुशी हेतु ही होगा। निस्वार्थ कर्म होगा। वह सब का भला चाहेगा, किसी से भी द्वेष नहीं करेगा। जो भगवान् ने उसे दिया है, उसी में संतोष रखेगा। सब प्राणियों में, उसे अपना प्यारा भगवान् ही नजर आएगा। किसी में गुण–दोष नहीं देखेगा, उसको बुरे स्वभाव में भी गुण ही नजर आएगा। जिसका बुरा स्वभाव है, उसमें भी गुण ही दिखता है क्योंकि उसका चश्मा ही ऐसा हरा–हरा है कि सब चीज उसको हरी–हरी ही दिखेगी। एकांत में रहना पसंद करेगा, ग्राम चर्चा से दूर रहेगा, सबसे मीठा बोलेगा, दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुखी हो जाएगा। ऐसा शिक्षागुरु होना चाहिए। ऐसे बहुत से गुण महापुरुष में होते हैं। ऐसे स्वभाव का भक्त, भगवान् को, हृदय से भी अधिक प्यारा होता है। न भगवान् उसे छोड़ेंगे, न वह भगवान् को छोड़ेगा। रात–दिन, उसका ही स्मरण, उसके मन में चलता ही रहेगा। मौत के समय, ऐसे भक्त का स्मरण, उसे वैकुण्ठ पहुँचा देगा।

इस कलिकाल में ऐसा भक्त मिलना बहुत मुश्किल है। जो भगवान् का प्यारा होगा, उसे ही भगवान् ऐसे महापुरुष से मिला देंगे, वैसे तो ढूँढने से भी नहीं मिलेगा। सुकृतिशाली ही महापुरुष को पा सकेगा। कलियुग में कपटी संतों की कोई कमी नहीं है, बहुत से होंगे। ऐसा हमारे धर्मशास्त्र भी बोल रहे हैं।

यदि मानव के केवल 2 स्वभाव बन जायें, तो भगवान् उसे एक क्षण भी नहीं छोड़ते। सिर्फ 2 स्वभाव बस। पहला है कि जो भी कर्म

करें, भगवान् के सुख के लिए करें। भगवान् की खुशी हेतु करें। दूसरा है कि मानव कण–कण में तथा जीव मात्र में भगवान् को ही देखे। ऐसा करेगा तो वह किस से दुश्मनी करेगा? किसे दुख देगा? बस यह 2 स्वभाव हो जाएँ तो सब गुण स्वतः ही उसमें आ जाएँगे, उसके हृदय में बस जाएँगे। प्रयास करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होगी। गोपियों का ऐसा ही भाव था।

संसार में देखा जाता है कि कई साधक मंजरी भाव में रत हैं, लेकिन मंजरी भाव बहुत खतरनाक है। इसमें कामवासना की गंध भी नहीं होनी चाहिए, नहीं तो नरक की तैयारी हो जाएगी। ब्रह्माजी, शिवजी भी इस दुष्कर काम से नहीं बच सके। मायामय जीव इससे कैसे बच सकेगा? मेरे गुरुदेवजी ने मुझे बोला था कि तुम श्रीमद्भागवत पुराण में जो रासपंचाध्यायी है, उसे कभी मत पढ़ना। दूसरा, न कभी रासमंडल में जाकर रास देखना। केवल रामलीला, जहाँ हो रही हो वहाँ जरूर जाना। हरिनाम जपते–जपते हरिनाम से ही जीव को, भाव का रंग चढ़ आता है। क्योंकि हरिनाम भगवान् जानते हैं कि अमुक जीव किस भाव का ग्राहक है। अपने मन से स्वयं भाव लेना केवल कपट है। मैंने देखा है कि एक लड़की, मंजरी भाव में रंगी हुई थी तो मेरे पास आकर रोती रहती थी, "मैं तो राधेजी की गोद में रहती हूँ, इसलिए रोती रहती हूँ।" फिर पता चला कि एक पुजारी के साथ भाग गई। ऐसा भाव था उसका। वह पुजारी भी मंदिर में, भगवान् का गहना–वहना, सब लेकर भाग गया। सब जगह कपट ही कपट फैला हुआ है, सच्चाई तो ढूँढने से भी नहीं मिलेगी।

अभी तो जीव एल.के.जी. का विद्यार्थी भी नहीं है और पी–एच. डी. में जाकर बैठ गया। कितनी मूर्खता है! भेड़ चाल की तरह सभी राधा भाव में भावित हो गए, सभी राधा की मंजरी बन गई हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि राधा कृष्ण की आत्मा है। क्या कृष्ण के बिना राधा (आत्मा) रह सकती है? कैसी मूर्खता है। पहले अपने मन को टटोलो, मन तो राग–द्वेष में रँगा हुआ है। कितने अवगुण इसमें भरे पड़े हैं। मंजरी, गोपियों जैसा क्या तुम्हारा स्वभाव

है? क्या तुम भगवान् के लिए रात–दिन रोते हो? क्या, तुम्हें रात को सोने पर आध्यात्मिक स्वप्न आते हैं? नहीं आ सकते, केवल कपट की ही भक्ति है। यह अधिकतर नारी जाति में है।

fue'y eu tu lks eksfg ikokA
eksfg diV Ny fNæ u HkkokAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

मैं स्पष्ट कहने वाला हूँ, कोई नाराज हो तो हो जाओ, मुझे कोई परवाह नहीं है। सच्ची बात कहने में क्या बुराई है? नारी जाति करती कम है और दिखाती ज्यादा है क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा होता है। ब्रह्माजी कह रहे हैं कि नारी को मैं भी नहीं समझ सकता। मेरे लिए 16 साल की लड़की से लेकर 20 साल की नारी तथा 60 साल की नारी को, माँ का दर्जा ही भगवान् की कृपा से प्रेरित है। सभी मेरी माँ हैं।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' में पढ़ कर देखें कि एक ही विषय पर कितने अधिक और विस्तार में भगवान् ने पुस्तक लिखवाई हैं? मेरे बाबा ने प्रेरणा करके लिखाई हैं और अब भी शुक्रवार को हर हफ्ते में ही लिखाते रहते हैं। मैं तो एक माइक (ध्वनि विस्तारक–माइक्रोफोन) का काम ही करता रहता हूँ। टेक्निकल (तकनीकी) राजकीय सेवा करने वाला लेखन कार्य कैसे कर सकता है? मैं तो टेक्निकल सर्विस (तकनीकी नौकरी) में था। ये तो विचार करने की बात है।

माँ अपने बेटे को ही थप्पड़ मार सकती है अन्य को नहीं। फिर भी शिशु, माँ के पास जाकर उसके ही कपड़ों में चिपकता है, पिता के पास नहीं जाता। पिता रोज उसे डाँटता है वह फिर माँ के पास जाएगा और माँ अगर डाँटती है फिर भी माँ के कपड़ों में ही चिपकेगा। तो शिशु माँ से नाराज होता है? कदापि नहीं। यदि नाराज होता है तो सच्चा प्यार नहीं है, सच्ची शरणागति नहीं है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इसी प्रकार अपने प्यारे भक्तों को भगवान् दुख कष्ट में डाल देते

हैं, तो वह भगवान् से नाराज नहीं होता है और कितना भी कष्ट दे, वह भगवान् से ही चिपकेगा। भगवान् से कभी दूर नहीं होगा। सच्चा प्यार उसी का है जो मरने पर भी उसी की शरण में जाये। यदि ऐसा नहीं है तो कपट का प्यार है इसलिए मैं परीक्षा करता रहता हूँ कि कौन कैसा है? मैं नाराजगी से नहीं डरता। उसके नीचे गिरने से, उसका अमंगल होने से मैं बोल देता हूँ। मानव की थोड़ी–सी भी योग्यता नहीं है और चाहता है कि मैं गोलोक धाम चला जाऊँ।

de! deMh vkj eu jktk

सब झूठी कामना है। गोलोक धाम कैसे स्वभाव वाला जाता है? धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है। अब ध्यान से सुनें, कृष्ण बोल रहे हैं कि ऐसा स्वभाव है किसी का? एल.के.जी. में पड़ा है और बैठना चाहता है पी–एच.डी. में। कैसी मूर्खता है? सुनने से भी हँसी आती है। उससे पूछना चाहिए कि तेरे को स्वप्न कैसे आते हैं? क्या तू रोता है स्वप्न में? झूठा! शिवजी बोल रहे हैं :

fxfjtk lr lekxe le u ykHk dN| vkuA
fcu| gfj Ñik u gkb lk xkofg cn i|jkuAA

(मानस, उत्तर. दो. 125 ख)

ज्यादातर प्राणियों का जन्म दाता तो भगवान् ही है। पशु–पक्षी तो खाना, पीना और मैथुन करना ही जानते हैं। इनको अपने उद्धार करने का मालूम नहीं है। इन्हीं पर कृपा करके ही भगवान्, मानव जन्म देते हैं। मानव अपना बुरा भला जानता है, लेकिन माया के वशीभूत होकर उसे अपने उद्धार होने का सच्चा मार्ग मालूम नहीं है। जो अपने माँ–बाप से बिछुड़ जाता है, उसे जीवन भर ठोकरें खानी पड़ती हैं। अतः सदा दुखी रहता है।

अब किसी विरले को संत की सेवा का मौका मिल जाए तो भगवान् ऐसे मानव को सच्चे संत से मिला देते हैं। यह संत बिछुड़े हुए मानव को इसके बाप से मिला देते हैं, लेकिन यह मौका मिलना बहुत कठिन है। भगवान् बोलते हैं :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dksfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

जब सुकृति वश, भगवान् का नाम, संत द्वारा प्राप्त कर लेता है, उसे जप कर वह अपना उद्धार कर लेता है। इसके बीच में बहुत से रोड़े भी आ जाते हैं, जिनसे पार होना बहुत मुश्किल है। जो संत में अवगुण देख लेता है तो अपराध बन जाता है, भगवान् रुष्ट हो जाते हैं तो इसका हरिनाम जपना रुक जाता है। कलिकाल में सच्चा संत मिलना बहुत मुश्किल है और मिल भी गया तो उसमें भी साधक दोष देख लेता है क्योंकि साधक का मन निर्मल नहीं होता। इसका कारण, इसके पिछले जन्मों के बुरे संस्कार, इसे शुद्ध मार्ग पर जाने नहीं देते हैं। भगवद् माया इसे सताती रहती है। यह माया ब्रह्मा, शिव को ही नहीं छोड़ती तो साधारण मानव की तो बात ही क्या है। अतः शास्त्र कहता है कि करोड़ों प्राणियों में कोई ही भगवान् की शरण में पहुँचता है। केवल हरिनाम ही कलियुग का नाश करता है, ऐसे भी हरिनाम करता रहे तो उसका उद्धार निश्चित है। यदि यह किसी में दोषारोपण करेगा तो दोष देखना सबसे खतरनाक है। हरिनाम करने में यह बहुत बड़ा रोड़ा है। पूर्ण निष्ठा और विश्वास का होना बहुत जरूरी है। कोई किसी को दुख–सुख नहीं देता, अपना शुभ–अशुभ कर्म ही प्राणी को दुख–सुख देता है।

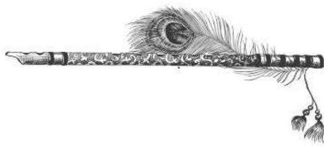
del çèkku foLo jfp jk[kk --

तो भगवान् को भी कर्म करना पड़ता है। बिना कर्म किये भगवान् भी नहीं रह सकते। एक प्रकार से कर्म भगवान् का ही प्रतीक है। जैसा प्राणी करता है, शुभ–अशुभ, उसका ही प्रत्यक्ष फल भोगता है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुख किसी को अच्छा नहीं लगता। फिर भी शास्त्र विरुद्ध कर्म करते रहते हैं। इसका खास कारण है, माया के हथियार। सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण। इनसे ही सृष्टि का विस्तार होता रहता है। जिस धारा में जो गुण हावी होता है, उसी धारा का प्राणी का स्वभाव बन जाता है। दुख कोई नहीं चाहता, लेकिन

तामसिक गुणों में कर्म करता है तो दुख का बीज उसका स्वतः ही बोया जाता है। इसमें प्राणी मजबूर है। इस धारा में स्वभाव उग्र तथा क्रोधवृत्ति में हो जाता है। अच्छा कर्म करने का इसका मन करता ही नहीं है, बुरे से बुरे कर्म करने में मन को खुशी होती है। कोई इसे समझा दे तो उस पर क्रोध होता है। इसी प्रकार सतोगुण के मन में गंगा बहती है तो उसे अच्छा कर्म करने में आनंद अनुभव होता है। मीठा बोलेगा, सबका भला चाहेगा, मन दान–पुण्य करने में होगा। भगवान् की तरफ वाले कर्मों में इसकी रुचि होगी। जब रजोगुण की मन में धारा बहेगी तो प्राणी की यह वृत्ति होगी कि यह कर लूँ, वह कर लूँ, इतना कमा लूँ, अमुक काम कर लूँ। पैसा किसी भी प्रकार से आ जाए, गलत–सलत करने में भी नहीं सोचेगा। तीनों धाराओं में ही प्राणी संतान उत्पन्न करता है, फिर शिकायत करता है कि उसका पुत्र उसका कहना नहीं मानता। भक्ष–अभक्ष खाता है, गुंडा गर्दी करता रहता है। इसमें पुत्र का कोई दोष नहीं है। दोष है दंपत्ति का। इन्होंने न समय देखा, न शास्त्र की बात मानी। अब क्रियाकर्म भोगो, इसमें दूसरा क्या करेगा? कलियुग में ऐसी ही संतानों की भरमार है जो माँ–बाप को तथा आसपास वालों को सताते रहते हैं। अब दुष्टों को तो कोई फर्क नहीं पड़ता, सज्जन हैरान हो जाते हैं। यह सब पिछले कुल का ही प्रभाव है। माँ–बाप का पिछला कुल ही बदमाश था।

जैसे पिछली बेल होगी, वैसा ही फल लगेगा। श्रीमद्भागवत महापुराण में आता है कि राजा वेन बहुत बुरा शासक था। अपनी मनमानी से राज करता रहता था। संतों ने बहुत समझाया, परंतु उसने किसी की एक नहीं मानी, अतः संतों को गुस्सा आ गया, श्राप दे दिया तो वह मर गया। संसार में राजा के बिना अराजकता फैल गई। डाकू सब को परेशान करने लगे। संतों ने सोचा कि अब क्या किया जाए? तो सभी संत बोले, "यह वेन तो दूषित प्रकृति का है लेकिन इसके पुरखे, अच्छे स्वभाव वाले थे। अतः इसमें उनका जरूर प्रभाव होगा, उनका असर है। अतः इसकी जाँघ को मथो।" जब जाँघ को मथा तो पृथु महाराज प्रकट हुए, जो भगवान् के ही अंश

अवतार थे। इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि पिछली पीढ़ी जैसी होती है तो अगली पीढ़ी में उसका प्रभाव रहता है। पिछली पीढ़ी दुराचारी थी तो अगली पीढ़ी इससे भी अधिक दुराचारी प्रकृति की होगी। यदि पिछली पीढ़ी सत्य पर आरूढ़ हो तो अगली पीढ़ी उससे भी अधिक सत्यवान होगी। इसका खास कारण है खून। जैसा खून होगा वही प्राणी का स्वभाव होगा। सभी देखते हैं कि हॉस्पिटल में मरीज को जब खून की जरूरत होती है तो मरीज के खून से खून मिलाकर ही उसको खून चढ़ाया जाता है। यदि विपरीत खून चढ़ गया तो मरीज मर जाता है। किंतु प्रत्यक्ष आप सभी देख ही रहे हैं कि खून का कितना प्रभाव है। कबूतरी की शादी कौवे से कर दी जाए तो उनमें कैसे बनेगी? क्योंकि खून ही अलग–अलग गुण वाला है।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : नाम जप करते हुए विरह नहीं हो पाता है, तो क्या किया जाए कि विरह भाव आ जाए ?

उत्तर : विरह क्यों नहीं आता है। वह इसलिए नहीं आता है क्योंकि 80 प्रतिशत मन, संसार में घूम रहा है। अगर 80 प्रतिशत मन भगवान् में हो तो अपने आप, न चाहते हुए भी विरह हो जाएगा। अभी तो मन संसार में फँसा हुआ है। पहले तुम सात आचरण सीखो। जो सात आचरण, मेरे गुरुदेव ने बताए हैं। ऐसा स्वभाव बना लो तो अपने आप भगवान् में मन लगेगा, हरिनाम में मन लगेगा। हमारा स्वभाव गंदा है, इसलिए आपको विरह कैसे हो सकता है। विरह नहीं होगा।

भक्ति का मतलब है भगवान् में आसक्ति

47

18 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

देखो! हमारे, पिछले जन्मों के ऋण होते हैं। मानव पर 5–6 ऋण होते हैं। यदि नहीं चुकाया तो उसको चुकाने हेतु भले ही अगला जन्म लेना पड़े परंतु चुकाना ही पड़ेगा। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि वह ऋण कौन–कौन से हैं। पहला है माता–पिता का ऋण। आरंभ में ही माता–पिता कारण हैं। माता–पिता ने, हम पर 20–25 साल तक तन, मन, धन, वचन, सब तरह से, सब कुछ न्योछावर किया और हमने माता–पिता का ऋण नहीं चुकाया तो वापिस हमको जन्म लेना ही पड़ेगा। माता–पिता के आदेश का पालन करना चाहिए। माँ–बाप की सेवा से ही भक्ति मार्ग आरंभ होता है। यदि माँ–बाप की सेवा से मानव वंचित रहता है तो भक्ति मार्ग उसके लिए सदा के लिए बंद हो जाता है। चाहे करो लेकिन वह कपट ही होगा, उसमें कोई रस नहीं आएगा, आनंद नहीं आएगा। करते रहो, देखा–देखी करते रहो, कुछ नहीं मिलेगा। यदि माँ–बाप भक्ति के लिए अनुकूल नहीं तो भी पुत्र का कर्तव्य है कि माँ–बाप की सेवा करता रहे, तो उसको सुख का मार्ग स्वतः ही उपलब्ध हो जाएगा। फिर है पितृ ऋण। यह हमारे बड़ों का ऋण है, बड़ों का ऋण

चुकाना पड़ता है। हम कहीं भी तीर्थ पर जाते हैं तो तर्पण वगैरह करते हैं। उनका (अपने पितरों का) श्राद्ध समय पर करता रहे। श्राद्ध आते हैं, तो उनका श्राद्ध जरूर करना चाहिए। हमारे श्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी श्राद्ध किया करते थे।

फिर तीसरा ऋण है भूत ऋण। भूत अर्थात्, जितने जानवर वगैरह हैं हम पर उनका ऋण है। जिसको भूत समुदाय कहा जाता है। जो हमें स्वस्थ रखने में सहायता करते रहते हैं। गंदी चीजों का भक्षण करके जल, वायु को शुद्ध बना देते हैं। सभी प्राणी मानव के लिए पुत्र समान होते हैं, उनका भरण–पोषण करना जैसे कबूतरों को दाना डाल दें, ऐसे ही चीटियों को तिल और आटा, उनके बिलों में डाल दें और जो दोपाये या चौपाये जानवर हैं, उनको घास आदि भोजन डाल दें, मछलियों को गीला आटा करके गोलियाँ बनाकर डालें तो मछलियों को खाना मिल जाएगा। यह भूत ऋण है क्योंकि ये मरे हुए जीवों को खा कर सफाई करते हैं। यह वातावरण शुद्ध करके हमको बहुत सहायता करते हैं तो इनका ऋण हो जाता है। गंदगी को खा जाते हैं, हमको स्वस्थ रखना चाहते हैं आदि आदि। फिर देव ऋण, देवताओं का ऋण होता है। जो हमको सभी तरह के सुख–साधन जुटाते हैं। सूर्य भगवान् धूप देते हैं, हमारी पृथ्वी माँ अन्न देती है, हवा देते हैं, अग्नि देते हैं, आकाश देते हैं, पानी आदि–आदि देते हैं। यह उनका कर्जा है। हमें उतारना है। यानि देवताओं को मनाना पड़ेगा। हमें उन्हें त्योहारों पर मनाना चाहिए। उनको भोग लगाना चाहिए। भोग कैसे लगेगा? तुलसीदल डाल के पहले भगवान् को भोग लगाओ तो उसके बाद देवताओं को भोग लगाओ। भगवान् का प्रसाद पाकर देवता बहुत प्रसन्न होते हैं। हमारे पर्व आते हैं, त्योहार आते हैं। अगर हम उनको नहीं मनाते हैं तो हम पर ऋण चढ़ जाता है फिर हमको दोबारा जन्म लेना पड़ता है। ऋषि ऋण, ऋषियों का ऋण है। आचार्य हमारे गुरुजी हैं, कुल परंपरा है। सत्संग का रास्ता दिखाकर अच्छे अवसर प्रदान करते हैं। एक कर्जा है आचार्यगण का। जो हमें भवसागर से पार लगाते रहते हैं। दीक्षा और शिक्षा देकर हमें माया शक्ति से छुड़ाते रहते हैं। गुरु

दो तरह के होते हैं। एक होता है दीक्षा गुरु, दूसरा होता है शिक्षा गुरु। लेकिन दोनों समान होते हैं। दीक्षा गुरु तो दीक्षा देकर चले जाते हैं, तो शिक्षा गुरु, उस हरिनाम रूपी पौधे को बढ़ाते हैं। इसलिए समान हैं। यह ऋण हमको चुकाना बहुत जरूरी है। संत महात्माओं का समागम करता रहे। उनके लिए वस्तु की आवश्यकता हो, उनको अर्पण करता रहे। अगर हम नहीं चुकाएँगे तो हम कितनी भी भक्ति करें, हमें ऋण चुकाने के लिए आना ही पड़ेगा चाहे बार–बार भक्त बनकर ही आना पड़ेगा लेकिन हमें चुकाना जरूर पड़ेगा। जो कर्म किया है उसका भुगतान करना ही पड़ता है। यदि मानव इन ऋणों को नहीं चुकाता तो यह भक्ति मार्ग पर कभी नहीं जा सकता। पहले यह ऋण चुकाना पड़ेगा तभी आपको भक्ति मार्ग मिलेगा, नहीं तो भक्ति मार्ग में आपको रुचि नहीं होगी। भगवान् के चरणों में रुचि नहीं होगी। आप कितनी भी भक्ति करो, फिर भी तुम्हारी संसार में आसक्ति बनी रहेगी। भक्ति मार्ग क्या है? भक्ति वह मार्ग है, जहाँ दुख–कष्ट की छाया भी नहीं है। सुख का वातावरण, सुख का साम्राज्य फैला रहता है। भक्ति का मतलब है भगवान् में आसक्ति। जैसे हमारी संसार में आसक्ति है, उसी तरह मानव की भगवान् में आसक्ति हो और मानव की संतों में आसक्ति हो। इस तरह से संत–समागम से ऋषि ऋण चुक जाता है।

आप बड़े ध्यान से सुन लो! अगर यह ऋण नहीं उतारे तो तुम्हारा जन्म, चाहे कितनी भी भक्ति करो, दुबारा होगा और वापिस आना ही पड़ेगा।

de! çèkku foLo jfp jk[kk---

कर्म प्रधान है, जैसा कर्म किया है उसका भोग तो भोगना ही पड़ेगा लेकिन संत और आचार्य, संसार से उसकी फँसावट को दूर करते हैं। वे भगवान् को पाने का मार्ग बताते रहते हैं। जिनको तन, मन से तथा धन से सेवा करनी चाहिए। तब सब ऋण चुकाने से तुम्हें दोबारा जन्म नहीं होगा। ऋण चुकाने के बाद मानव स्वतंत्र हो जाता है। इसको सुगमता से, बहुत ही सरलता से सुख का विधान

बन जाता है। इसका मानव जीवन सफल हो जाता है, इसको भगवान् की माया परेशान नहीं करती क्योंकि यह धर्मशास्त्र अनुसार सभी कर्म कर चुका है, ऋण उतार चुका है। जो इनको नहीं करता उसे माया सताती रहती है क्योंकि उसने धर्म को नहीं माना। इसलिए माया उसको सताती रहती है। घर में कलह होता रहता है, रोगों की भरमार हो जाती है, आसपास में झगड़े शुरू हो जाते हैं, हर प्रकार की असुविधाएँ बनी रहती हैं, सदा दुख का साम्राज्य फैला रहता है, नास्तिकता का भाव बना रहता है, प्रेम नाम का कोई भाव नहीं रहता, हर जगह स्वार्थ का वातावरण बना रहता है।

एक बहुत रोचक कथा है। इसको ध्यान से सुनिये। वह है एक जैमिनी महात्मा की, जो बहुत उच्च कोटि के महात्मा थे। यह कथा पुराणों में आती है कि जैमिनी ऋषि एकदम एकांत में, जंगल में, पहाड़ों के बीच में झोंपड़ी बनाकर, अपने भजन में लीन रहते थे। जहाँ वह रहते थे, वहाँ से शहर कोई 20–25 किलोमीटर दूर था। महात्मा इतनी दूर इस कारण रहते थे कि उन्हें नारी जाति का कभी दर्शन नहीं हो। वह जीवन–भर नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहेंगे। उनको घमंड हो गया था कि वह तो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्माजी, शिवजी भी काम को जीत नहीं सके लेकिन उन्होंने काम को अपने पैरों के नीचे कुचल रखा है। यह घमंड बहुत बुरा होता है। अहंकार करना अच्छा नहीं है। अहंकार भगवान् को बहुत बुरा लगता है। जिस किसी को अहंकार हुआ उसी का नाश हुआ है। यह घमंड जिसको आ जाता है उसे माया आकर दबा लेती है।

गाँव व शहर इनकी कुटिया से काफी दूर पड़ते थे। अतः जैमिनी ऋषि के पास कोई नहीं आता था। न ही इनके पास कोई शिष्य था, अकेले रहते थे और वहाँ जंगली जानवर, पक्षी इनके साथी थे। उनको यह प्यार से देखा करते थे अतः इनका मन वहाँ पर खूब लगा रहता था। एक दिन, शाम का समय था। सूर्य देव अस्त होने वाले थे और अँधेरा थोड़ा–थोड़ा होने लगा था। ध्यान से सुनिए! तो लगभग 20 साल की एक लड़की इनकी कुटिया पर आई और कुटिया के बाहर बैठ गयी और इंतजार करने लगी कि कब महात्मा

जी कुटिया के बाहर आएँ तो वह उनसे प्रार्थना करे कि अब रात हो गई है, अब वह यहाँ से दूर नहीं जा सकती क्योंकि इस वीरान जंगल में हिंसक जानवर इधर–उधर फिरते रहते हैं, वह उसे खा जाएँगे, तो क्या आज रात वह उनके पास ही, कुटिया के बाहर में सो जाए? उनको कोई परेशान नहीं करेगी। ऐसा सोचकर वह लड़की कुटिया के बाहर बैठी रही। एक घंटा हो गया फिर भी महात्माजी बाहर नहीं निकले। उसने सोचा कि कुटिया में महात्माजी हैं कि नहीं। अतः वह कुटिया के दरवाजे के पास गयी तो देखती है कि महात्माजी आसन लगाए माला जप रहे हैं। जब आहट हुई तो महात्माजी का ध्यान टूटा तो दरवाजे की ओर नजर गई तो उन्होंने देखा कि एक 20 साल की जवान लड़की हाथ जोड़े खड़ी हुई है। महात्माजी उठे और कुटिया के बाहर आकर एक पत्थर की शिला पर बैठ गए और लड़की से बोले, "तुम यहाँ क्यों आई हो? मैं किसी को यहाँ पर रहने की आज्ञा नहीं दूँगा।" लड़की बोली, "महात्माजी! मैं तो आपकी बेटी के बराबर हूँ। रात हो गई है, कहीं ठहरने को स्थान नहीं है तो मैं आपकी कुटिया देख कर आ गई हूँ।" जैमिनी महाराज बोले, "तुम इस समय क्यों आई, तेरा आने का क्या कारण है?" तो लड़की बोली, "मैं गरीब घराने की हूँ और जंगल से सूखी लकड़ी ले जा कर बेचा करती हूँ। मेरे माँ–बाप बूढ़े हैं। कोई कमाने वाला नहीं है अतः मैं लकड़ी बेच कर अपना गुजारा चलाती हूँ। मुझ पर कृपा करें, यहीं पर रहने का स्थान दें।" महात्मा जी बोले, "नहीं! नहीं! तुम यहाँ नहीं रह सकती। कहीं पर भी जाओ। मुझे कुछ नहीं मालूम।" लड़की बोली, "अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरा घर यहाँ से 20 मील दूर है। रास्ता पहाड़ी है। रास्ते में हिंसक जानवर शेर, चीते, बाघ मुझे खा जाएँगे।" महात्मा बोले, "मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, तुम कहीं भी जाओ, भागो यहाँ से। तुमको कोई हिंसक जानवर खाये, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है।"

अब तो लड़की महात्मा जी के पैरों में लिपट कर जोर–जोर से रोने लगी। तब महात्माजी बोले, "ठीक है! मेरा उस सामने वाले पर्वत पर, तुलसी माँ का बगीचा है। जो यहाँ से 2 मील दूर है। तुम वहाँ

जाकर रह सकती हो। वहाँ भी मेरी छप्पर की कुटिया है। उस कुटिया में जाकर सो सकती हो।" लड़की बोली, "रात हो गई है, मैं अकेले कैसे जाऊँ? मुझे डर लगता है। आप ही कृपा करके मुझे वहाँ छोड़ आओ।" महात्माजी बोले, "ठीक है! मेरे साथ चलो। मैं वहाँ तक पहुँचा कर अपनी कुटिया में वापिस आ जाऊँगा।" अब जैमिनी महाराज, उस लड़की को वहाँ तक ले गए और कहा, "इसका दरवाजा बंद रखना। यहाँ पर पानी पीने हेतु शेर, बाघ आते रहते हैं। भालू वगैरह भी बहुत आते हैं। बहुत खूंखार होते हैं तुम्हें खा जाएँगे। अतः दरवाजा बिल्कुल मत खोलना।" लड़की बोली, "मैं सुबह तक दरवाजा नहीं खोलूँगी आप आओगे, तभी दरवाजा खोलूँगी।" जैमिनी ऋषि बोले, "मैं तो इस कुटिया पर बहुत देर से आऊँगा क्योंकि सुबह मेरा भजन का समय होता है।" लड़की बोली, "जब तक आप नहीं आओगे, मैं बाहर ही नहीं आऊँगी। दरवाजा खोलूँगी ही नहीं, क्योंकि मुझे डर लगता है।" महात्माजी ने कहा, "ठीक है! मैं अपनी कुटिया पर जा रहा हूँ।" लड़की बोली, "हाँ बाबा! आप जा सकते हो।" महात्मा बोले, "लेकिन एक बात, मैं और कह देता हूँ कि यदि मैं भी रात में यहाँ पर आऊँ तो दरवाजा कभी भी नहीं खोलना।" लड़की बोली, "रात में आप क्यों आने लगे यहाँ पर?" महात्मा बोले, "हाँ! मैंने वैसे ही बोल दिया है। वैसे तो मैं आऊँगा नहीं।" अब जैमिनी ऋषि अपनी कुटिया पर आ गए। काफी रात हो गई थी। 10:00 बज गए थे, सोचने लगे कि अब सोना चाहिए, बहुत समय हो गया क्योंकि लड़की को ले जाने में बहुत टाइम लग गया। सुबह कैसे उठेंगे? इसलिए जल्दी सोना चाहिए। सोने लगे तो नींद ही नहीं आ रही और आँखों के सामने वह लड़की ही लड़की दिखाई दे रही है। बड़ी मुश्किल बात हो गई।

भगवान् से बहुत प्रार्थना की कि भगवन्! यह क्या मुसीबत आई। वह लड़की उनके पास से दूर होती ही नहीं थी। ऐसे बहुत प्रार्थना करता रहा। लगभग 2 घंटे प्रार्थना करता रहा, लेकिन अब लड़की उसे बिना कपड़ों के दिखाई देने लगी। अब तो महात्मा का मन काबू से बाहर हो गया। काम ने महात्मा को अंधा बना दिया,

सोचने लगे कि अब लड़की के पास जाना ही पड़ेगा लेकिन तुलसी का बगीचा तो 2 मील दूर है। रास्ता खतरनाक है, यदि शेर मिल गया तो खाए बिना नहीं रहेगा। फिर सोचने लगा कि नहीं जाऊँगा। लेकिन लड़की आँखों से ओझल होती ही नहीं थी, अब तो विकल हो कर जाने को मजबूर हो गया, सोचने लगा कि अब शेर खाये चाहे कुछ करे वह तो जाएगा। बड़ी मुश्किल से डरते–डरते, वहाँ तक डेढ़ घंटे में जाकर पहुँचा और कुटिया का दरवाजा खटखटाया। लेकिन कुछ नहीं हुआ। फिर जोर–जोर से खटकाने लगा, परंतु लड़की का कोई जवाब नहीं मिला। अब सोचने लगा कि क्या करना चाहिए? फिर याद आया इस छप्पर को छत से काटकर अंदर घुस जाऊँगा। लेकिन छप्पर काटना बहुत मुश्किल है, यदि गिर गया तो पैर टूटे बिना नहीं रहेगा। अब हैरान हो गया और कुटिया के बाहर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करूँ? सोचा कि अपनी कुटिया पर एक सीढ़ी रखी है, उसे दीवार पर लगाकर छप्पर पर चढ़ सकता हूँ। लेकिन जाऊँगा कैसे? अभी तो बहुत रात हो गयी है। अंधेरी रात है और कोई जानवर उसे खा जाएगा। क्या करे? वापिस जाकर, सीढ़ी लाने में डेढ़ घंटा लग जाएगा। लेकिन लाना तो जरूर पड़ेगा। काम अंधा होता है, कुछ नहीं दिखता उसको। वापिस गया और सीढ़ी लाकर जैसे–तैसे छप्पर पर चढ़ा तो सोचने लगा, "अरे! मैं तो इसको काटने के लिए, छेद करने के लिए कुछ लाया ही नहीं। अरे! वहाँ पर दराँत पड़ा हुआ था, लेकिन मुझे याद नहीं रहा। दराँती के बिना छप्पर नहीं कटेगा। अब क्या करूँ?" हाथ से लकड़ियों से तोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन छप्पर बहुत मजबूत था। कुछ नहीं हुआ। फिर नीचे उतरा और सोचने लगा कि जाकर दराँती लाना ही पड़ेगा। ओह हो! समय भी बहुत ज्यादा हो गया। रात को हिंसक जानवर पानी पीने आते हैं, जरूर खाएँगे। फिर भी नहीं रहा गया। फिर वापिस गया और दरांती लेकर आया। इतने में सुबह 4:00 बज गए। सारी रात हाय–धाय करता रहा, सारी रात उधेड़ बुन में ही लगा रहा। अब ऊपर चढ़ कर छेद किया। बड़ी मुश्किल से कुटिया से नीचे उतरा तो क्या देखता है कि अंदर उसके गुरुदेव बैठे हैं।

अब तो महात्माजी, अपने गुरुदेव, व्यासजी के चरणों में पड़ गया। महात्माजी पानी–पानी हो गया और गुरुदेव के चरणों को पकड़कर हा गुरुदेव! हा गुरुदेव! करके दहाड़ें मार कर रोने लगा। गुरु व्यासजी ने बोला, "कभी भी किसी चीज का घमंड नहीं करना चाहिए। मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ। मैंने काम पर विजय प्राप्त कर ली है। इसी अहंकार के कारण माया तुम पर हावी हो गई। यह मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली है। भविष्य में ऐसा घमंड कभी नहीं करना। ऐसा समझना चाहिए कि जो कुछ भी जीत हो रही है, यह भगवान् की कृपा से ही हो रही है। अपने मन से कुछ नहीं होता है, भगवान् की कृपा से ही होता है। अपना बल करोगे, तो घमंड आये बिना नहीं रहेगा।" निष्कर्ष यह निकलता है कि काम कैसा अंधा होता है। अतः हमारा शास्त्र बोल रहा है कि अकेले में तो अपनी माँ के पास, बेटी के पास और बहन के पास भी नहीं रहना चाहिए। महात्मा को देखो, काम ने कैसा अंधा बनाया कि सारी रात उधेड़बुन में ही चली गई और प्रातः हो गई।

जो कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहता है, उसको भगवान् अपना लेते हैं। जो प्राणी मात्र में मुझे ही देखता है, वह मेरा प्यारा है और उच्च कोटि का भक्त है। भगवान् बता रहे हैं कि देखो! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान हैं। बड़ी प्रबल होती हैं। इनको जितना भोग अर्पण करोगे, उतना ही यह बेकाबू हो जाती हैं। इनका भोग अर्पण बंद कर दो तो यह सो जाती हैं, कमजोर पड़ जाती हैं। अगर जीभ, वश में हो गई तो सभी इंद्रियाँ वश में हो जाती हैं। यह बात हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है। जीभ को वश में करना बहुत ही मुश्किल, खण्डे की धार है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी सभी भक्तों को बोल रहे हैं :

: [kk l[kk [kkok rk dke dk Hkxkvk]
cf<;k cf<;k [kkok rk dke dk cykvkA

चैतन्य महाप्रभु बोल रहे हैं कि लकड़ी की नारी से भी दूर रहो वरना कामवासना पकड़ लेगी।

भगवान् कह रहे हैं कि, "जिसका चित्त मेरे में ही लग गया है ऐसे मानव की वेद विहित कर्मों में लगी हुई कर्म इन्द्रिय तथा विषय का ज्ञान कराने वाली ज्ञान इन्द्रिय, दोनों प्रकार की इन्द्रियों की जो मेरे प्रति स्वाभाविक रुचि है, यही मेरी अहैतुकी भक्ति है। कामना रहित भक्ति है। यह मुक्ति से भी बढ़कर है। यह कर्म संस्कारों के भंडार को, अर्थात् लिंग शरीर को तत्काल भस्म कर देती है। जब तक लिंग शरीर रहता है, चिन्मय शरीर की उपलब्धि नहीं हो सकती है। चिन्मय शरीर ही ऊपर के दिव्य लोकों में जाता है। मेरे ही चरण सेवा में रुचि रखने वाले, मेरे ही प्रसन्नता के लिए कर्म करने वाले, कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक दूसरे से मेरे ही पराक्रम की चर्चा किया करते हैं, वह मेरे ही आश्रय में रहने वाले भक्तजन शांति से वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं व सभी प्रकार के दिव्य भोग उनको प्राप्त हो जाते हैं। न ही उन्हें मेरा कालचक्र ग्रसता है। मृत्यु भी वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है। वे अपनी मर्जी से ही अपना शरीर छोड़ते हैं।"

ऐसा भगवान् कृष्ण, उद्धव को बोल रहे हैं, "मेरे अलावा यदि दूसरे का आश्रय लोगे तो मृत्युरूप महाभय से छुटकारा नहीं मिल सकता। मेरे भय से वायु चलती है, मेरे भय से सूर्य तपता है, मेरे भय से इंद्र वर्षा करता है और मेरे भय से अग्नि जलाती है, मेरे भय से ही मृत्यु अपना काम करती है। संसार में मनुष्य के लिए सबसे बड़ी कल्याण प्राप्ति यही है कि उस का चित्त, भक्ति योग द्वारा मुझमें लग कर, स्थिर हो जाए। यह सारा जगत् जिस प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है वह आत्मा स्वयं मैं हूँ।

इस मानव ने वैष्णवी माया को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। इसके गुण भौतिक सृष्टि करने लगे यह देख मानव आत्मज्ञान को आच्छादित करने वाली उसकी आवरण शक्ति से मोहित हो गया एवं अपने स्वरूप को भूल गया और माया में फँस गया। अपने को ही करने–धरने वाला मानने लगा। कर्ताधर्ता बन गया, अतः उसका भोग स्वयं को भोगना ही पड़ेगा। जो कुछ करता हूँ, मैं ही करता हूँ जैसे

जिसका स्वभाव होता है उसी प्रकार की प्रेरणा देकर कर्म में प्रवृत्त कराता रहता हूँ। परंतु वह तो स्वयं कर्म का मालिक बन गया अतः कर्म का भोग, इसे भोगना ही पड़ेगा।

जब सूर्य, इंद्र, अग्नि, हवा, भगवान् के भय से अपने काम में लगे रहते हैं तो मानव अपने मन से सब कुछ करता रहता है। भगवान् को कुछ नहीं समझता तो इसका यही हाल होगा, 84 लाख योनियों में यातनाएँ भुगतनी पड़ेंगी तथा निर्दयी काम करने से नर्क की भी भीषण यातना को कई कल्पों तक भोगना पड़ेगा। यही अज्ञान है। यही माया का प्रकोप है। ऐसे मन का यह चक्कर चलता ही रहता है। इसका कभी अंत नहीं होता। किसी बड़ी सुकृति से अर्थात् सौभाग्य से, किसी संत, महात्मा की सेवा का अवसर हस्तगत हो गया तो भगवान् की कृपा से इसे मानव जन्म मिल जाता है। फिर भी यह माया में फँस जाता है तथा यही चक्कर इसके पीछे पड़ा रहता है। बार–बार गर्भाशय का कष्ट इसे भोगना पड़ता है, फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता। संसार–सागर में गोते खाता रहता है। करोड़ों में से कोई एक मानव ही इससे छुटकारा पाता है और वैकुण्ठ जा पाता है।

मेरे गुरुदेवजी ने भक्तों को सात स्वभाव सुधारने हेतु बोला है। यदि यह स्वभाव सुधर जाये तो इसी जन्म में दिव्य लोकों में जाने का अवसर उपलब्ध हो जाये। दुख–कष्ट से पिण्डा छूट जाये। इतना सरल, सुगम साधन बता रहे हैं, फिर भी भक्तगण कोई ध्यान नहीं देते। ऐसा अवसर फिर हाथ आने वाला नहीं है।

vc iNrk, gkr D;k tc fpfM;k px xb [kr

यदि मानव का ठीक स्वभाव बन जाए तो भगवान् उसके परिवार का सदस्य ही बन जाए लेकिन मानव, भगवान् को सताता रहता है। यदि किसी को दुख दिया तो वह दुख आत्मा को ही होता है चाहे वह हाथी हो या चींटी हो। एक समान ही दुख देना होता है क्योंकि सभी प्राणियों की आत्माएँ समान हैं, बराबर हैं। एक सच्चा संत ही ऐसा स्वभाव का होता है कि जिसकी दृष्टि सब पर समान होती है। भगवान् ऐसे संतों से खेला करते हैं।

ज्यादातर प्राणियों में कोई भी दुख नहीं चाहता, फिर भी दुख क्यों आता है? दुख इस कारण आता है कि इसका कर्म ही दुख बोता है। जो बोओगे वही तो सामने आएगा। सुख बोओगे तो सुख सामने आएगा। धर्म बोल रहा है :

de! çèkku foLo jfp jk[kk---

कर्म ही भगवान् है यदि वह ज्ञान उन्हें हो जाए तो दुख आने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'बोओगे पेड़ बबूल के तो आम कहाँ से खाए?' असंभव! यह संभव कैसे हो सकता है? कोई किसी को दुख नहीं देता। केवल अपना कर्म ही दुख देता है। मानव की कलियुग में ऐसी दृष्टि हो गई है कि यह खुश नहीं रहता है? इसको दुख आना चाहिए। दूसरों के रास्ते में काँटे बिखेर कर राजी (खुश) होता है। लेकिन यह खुशी थोड़ी देर के लिए होती है और अंत में ऐसा दुख आएगा कि रात–दिन की भूख और नींद उड़ जाएगी। जैसा कि प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। जहरीला खाद्य पदार्थ का भक्षण हो रहा है तो मन भी जहरीला ही होगा, दया नाम की कोई बात ही नहीं है, थोड़े से लोभ के लिए मानव की हत्या की जा रही है। अरे! मारने वाले को पता नहीं है कि अगले जन्म में यह तुझे मार कर ही छोड़ेगा। तू बच नहीं सकता। हरे पेड़ को जो काटता है, उसे फिर पेड़ की योनि में ही आना पड़ेगा। जो साँप को मारता है, उसे अगले जन्म में साँप की योनि ही मिलेगी।

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

As you sow, so shall you reap.

सत्संग के बिना मानव सुधर नहीं सकता। सत्संग भी भगवान् की कृपा से मिलता नहीं। मिल भी जाए तो उसमें भी बहुत सी अड़चनें आएँगी। सब जगह माया का साम्राज्य है। मानव तो पशु से भी गया बीता है। मानव किसी को भी सुखी देखना ही नहीं चाहता। पशुओं में ये भाव नहीं है। मानव तो पागल राक्षस वृत्ति का हो गया, बुरा काम करने में उत्साहित रहता है, अच्छे काम को कोसता है। अतः दुखी रहना स्वाभाविक ही है। भगवान् ने मानव के लिए सुखी रहने हेतु धर्मशास्त्र रचे हैं लेकिन इनको देखने में ही घबराता रहता

है। शास्त्र को देखना ही नहीं चाहता। जहाँ शास्त्र चर्चा होती है वहाँ से उठ कर चला जाता है। यह उसका दुर्भाग्य है। जीव के बंधन और मोक्ष का कारण क्या है ? केवल मन ही है। मन ही विषयों में फँसावट हो जाने पर बंधन का कारण बन जाता है पर परमात्मा में अनुरक्त होने से मोक्ष का कारण बन जाता है। लेकिन परमात्मा में अनुरक्त होना, सच्चे संत के बिना नहीं हो सकता। संत ही इसे भगवान् में फँसाएगा। तभी तो बोला है :

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

भक्त संत के बिना, जीव भगवान् की तरफ आ ही नहीं सकता। यह भी भगवान् की कृपा से ही ऐसा संयोग बनता है। संसार में कुसंग तो है 95% और सत्संग है 5%। अतः इस जीव का दोष भी कैसे कह सकते हैं। जहाँ दसों दिशाओं में गर्मी पड़ रही हो तो जीव को सर्दी कैसे व्याप्त हो सकती है? बेचारा जीव सब प्रकार से असमर्थ है। जिस समय यह मन 'मैं' और 'मेरे–पन' के कारण होने वाले काम, क्रोध आदि विकारों से मुक्त व शुद्ध हो जाता है, उस समय, यह सुख–दुख से छुटकारा पाकर शरण में आ जाता है, तब जीव को ज्ञान व वैराग्य भाव होने से संत और परमात्मा में अनुराग हो जाता है। भगवान् कहते हैं, "जो मुझे अनन्य भाव से प्रेम करने लगते हैं, मेरे लिए सभी कर्म तथा सगे–सम्बन्धियों का त्याग कर देते हैं और मेरे परायण होकर, संत द्वारा मेरी कथा आदि का सत्संग करते रहते हैं, उन भक्तों को संसार की असुविधा व्याप नहीं सकती। और वह इसी देह से मुझे प्राप्त कर लेते हैं।"

tk ij Ñik jke dh gkbA rk ij Ñik djfg lc dkbAA
tk lHkhr vkok ljukbA jf[kgm rkfg çku dh ukbAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो जीव दुखी होकर, मेरी शरण में आ जाता है, उसे मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। जैसे शिशु की माँ, हर समय शिशु की देखभाल करती है, उसी प्रकार मैं भी उसकी देखभाल करता रहता हूँ।"

भगवान् कह रहे हैं, "आत्मा निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है। किंतु जब आत्मा सत्, रज, तम के गुणों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो अहंकार से मोहित होकर, मैं करता हूँ, ऐसा मान लेता है और इसी अभिमान के कारण कि मैं करता हूँ व देह से किए हुए पुण्य–पाप रूप कर्मों के दोष से अपनी स्वाधीनता और शान्ति को खो बैठता है।" ध्यान से सुनने से समझ में आएगा। "तब जीव, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ योनियों में उत्पन्न होकर संसार के चक्कर में घूमता रहता है। जैसे स्वप्न में दुख–सुख के न होने पर भी स्वप्न में दुख–सुख होने के कारण, दुख–सुख अनुभव होता ही है, जाग जाने पर कुछ नहीं रहता। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि विषयों में फँसे हुए चित्त को तीव्र भक्तियोग और वैराग्य द्वारा धीरे–धीरे अपने वश में लाये तो कुछ ही दिनों में सच्चा ज्ञान और नेत्र खुल जाते हैं। चित्त को बारंबार एकाग्र करते हुए, मुझ में सच्चा भाव रखने, मेरी कथा–वार्ता में सत्संग करने, सभी जीव मात्र में मेरा ही दर्शन करने, किसी से द्वेष न करने, आसक्ति का त्याग करने, मौन व्रत रखने, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी उपलब्ध हो जाए उसी में संतोष रखने, परिमित भोजन करने, सदा एकांत में रहने आदि से स्वतः ही संसार की आसक्ति छूट जाती है। ऐसा भाव रखने से अन्ततः मेरे तथा संत में चित्त रम जाता है।" यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। जो बोओगे, वही काटोगे।

मैं 90 साल में चल रहा हूँ। मेरी नजर 5 साल के शिशु की जैसी है और मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है और ताकत भी 20 साल के युवक जैसी है। यह हरिनाम करने का प्रभाव है। हरिनाम की ही कृपा मुझ पर बरस रही है।

ij fgr lfjl èkel ufg HkkbA ij ihMk le ufg vèkekbAA

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे को दुख देना ही सबसे बड़ा पाप है और दूसरे की भलाई करना ही सबसे बड़ा धर्म है। इसलिए मैं जो बो रहा हूँ, वही पा रहा हूँ। आपको प्रत्यक्ष दिखा रहा हूँ। आपके सामने ही तो हूँ, देख लो, लोग तो 90 साल में खटिया पर पड़ जाते हैं।

रोग क्या हैं? रोग हैं राक्षस और दवाइयाँ क्या हैं? ये हैं देवता। ये दोनों आपस में लड़ते ही रहते हैं और रोग और दवाइयाँ भी लड़ते ही रहते हैं। ऐसा स्वाभाविक ही है। हरिनाम करने से दोनों ही शांत हो जाते हैं। क्योंकि हरिनाम से अमृत पूरे शरीर में सरक्यूलेट (घूमता) होता रहता है तो राक्षस भी तथा देवता भी संतुष्ट हो जाते हैं। दोनों को अमृत मिल जाता है। दोनों को हरिनाम से अमृत उपलब्ध हो जाता है। तो हरिनाम ही अनंत कोटि ब्रह्मांडों में एक शुद्ध रामबाण अमृत है जो सृष्टि के रचयिता भगवान् को भी खुश कर देती है। केवल हरिनाम! अन्य कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हमारे भजन का लक्ष्य क्या होना चाहिए वैकुण्ठ प्राप्ति या ठाकुरजी की सेवा ?

उत्तर : हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए, भगवान् आप में हमको प्रीति होती रहे और हमें साधु संग मिलता रहे, बस! पूरे शास्त्रों का सार यही है कि, "प्रभु मैं आपको भूलूँ नहीं और संतों का संग मुझको मिले।" जिसने भी माँगा है, यही माँगा है। इससे बढ़कर क्या कुछ कीमती वस्तु है कि साधु का संग मिले और मैं आपको स्मरण करता रहूँ और मैं भूलूँ नहीं। आपका स्मरण होता रहे।

केवल भगवान् ही भोक्ता हैं

(48)

25 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे गुरुदेव शुरू से बता रहे हैं कि एक तो लक्ष्मी–नारायण क्षीर–सागर में शेष–शैय्या पर सोते हैं और दूसरा कि भगवान् एक बड़ के पत्ते पर लेटे रहते हैं और अपना पैर का अँगूठा मुख में चूसते रहते हैं। यह दोनों शास्त्रों में अंकित है। जब इन्हें खेलने की स्फुरणा हुई, लीला रचने की मन में इच्छा हुई तो अपने नाभि से एक कमल प्रकट किया, उस पर ब्रह्माजी का प्राकट्य किया।

नारायण ही सब अवतारों का कोश है। इसी से सब अवतार प्रकट होते हैं। गुरुदेव बता रहे हैं कि एक गंधमादन पर्वत है। इसके बीच में ही बद्रीनाथ धाम है। इस धाम में नर–नारायण संसार के कल्याण हेतु तपस्या करते रहते हैं। नर है अर्जुन और नारायण हैं कृष्ण। अर्जुन है जीव और कृष्ण हैं परमात्मा। दोनों ही आपस में सखा हैं, मित्र हैं। कृष्ण तो हैं भोक्ता एवं जीव है भोग्य, लेकिन जीव भोक्ता बन गया और भगवान् को भोग्य निर्णय कर दिया, अतः जीव इस कारण दुख में पड़ गया। माया भगवान् की बलवती शक्ति है। योगमाया से ही सत्, रज, तम गुण अंगीकार करके संसार की लीला हेतु रचना करके, जीव से खेलते रहते हैं। इसमें भगवान् का आनंदवर्धन होता है। भगवान् को भी खाली रहना पसंद नहीं है, अतः

कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। सब जीवों को इनके कर्म के अनुसार संसार की रचना में लगा देते हैं। ये जीव अन्धकार में फँसे रहते हैं अर्थात् माया में फँसे रहते हैं। माया का मतलब है जो नहीं है। उसे नहीं मानने के कारण जीव भटकता रहता है।

वृन्दावन में तो अपराध होने का डर रहता है, परंतु बद्रीधाम में यह नहीं है। इसी से बद्रीधाम बोला जाता है कि यह नर और नारायण का तपस्या का स्थान है। यहाँ पर अपराध नहीं होता क्योंकि यहाँ अपराध होने का अवसर ही उपलब्ध नहीं है। तभी तो पाण्डव अंत में, जब कृष्ण अपने धाम में पधार गये तो पाण्डव वृन्दावन में नहीं गए, बद्रीधाम में ही गये हैं। वहाँ निश्चिन्तता से भगवद् चिंतन रूपी तपस्या हो सकती है। ऐसे जो सारी पृथ्वी के सम्राट थे, अंत में अपनी संतान को पृथ्वी का हिस्सा बाँट कर, अपनी पत्नी के संग में वृन्दावन नहीं जाते, और न अयोध्या गए, अंत में बद्रीनाथ धाम में ही जाकर शरीर छोड़ते थे। यहाँ पर पाप, अपराध होने का अवसर ही नहीं है। अतः मैं भी (चिंतन में) गुरुजी को साथ लेकर बद्रीधाम में ही जाकर कुंड स्नान करवाता हूँ और मन्दिर में जाकर परिक्रमा आदि कर नर–नारायण के चरणों में बैठकर हरिनाम करता रहता हूँ।

पाप–अपराध दोनों राक्षस हैं और उस तपो भूमि में नहीं जाते कि तप इनको जलाकर भस्म न कर दे और राख में परिणत न होना पड़े। वृन्दावन व अयोध्या धामों में जाने से या वहाँ पर रहने से अपराध से बच नहीं सकते क्योंकि कृष्ण के जमाने में ही बड़े–बड़े राक्षस वहाँ मौजूद थे। लेकिन नर–नारायण आश्रम में ऐसा कुछ नहीं है। अब विचार करने की बात है कि पाण्डव वृन्दावन क्यों नहीं गए तथा राजा, महाराजा वृन्दावन क्यों नहीं गए? इस कारण नहीं गए कि भजन में बाधा डालने हेतु, पाप–अपराध राक्षस वहाँ विराजमान हैं। नर–नारायण आश्रम में ये पाप–अपराध जा नहीं सकते। केवल भगवान् कृष्ण ने गोपियों की वजह से अपने सखा उद्धव को वृन्दावन में रहने का आदेश दिया है ताकि कोई तो रास्ता बताने वाला हो और किसी को वृन्दावन रहने का आदेश नहीं दिया क्योंकि कृष्ण के जाने

के बाद वहाँ राक्षस रूपी पाप–अपराध विराजमान हो जाएँगे तो भजन नहीं हो सकेगा। अतः चाहे कोई घर में रहे या वन में रहे, भजन सर्वोत्तम वहीं पर ही होगा। आप सभी देख भी रहे हैं जो बाहर से आकर वहाँ (वृन्दावन इत्यादि में) भजन करते हैं, उनका भजन बिलकुल नहीं हो रहा है। जिसने वहाँ जन्म लिया है उनकी बात तो अलग है। उनका भजन हो न हो वे कृष्ण से जुड़े ही हुए हैं। कृष्ण ने उनको वहाँ जन्म दिया है, जैसे अयोध्या में जिसने जन्म लिया था, उनको मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने धाम में ले गए हैं। क्या वे सभी भजन करते थे? नहीं। धाम के प्रभाव से ही उनका उद्धार हो गया। कहीं पर भी जन्म लेना अपने हाथ की बात नहीं है। जन्म भगवान् ही देते हैं अतः जो वृन्दावन में जन्म लेकर रहते हैं, उनका उद्धार धाम की वजह से हो जाता है। यह धाम की ही करामात है कि उनका उद्धार निश्चित हो जाता है। बद्रीनाथ में संसार की हवा तक नहीं जाती, एकदम एकांत धाम है। वहाँ पर वेदव्यास जी ने श्रीमद्भागवत लिखी थी क्योंकि वहाँ अपराध नहीं होता।

जीव परमात्मा का अंश है। पेड़ पर दो पक्षी बैठे हैं एक है जीव पक्षी और दूसरा है परमात्मा पक्षी। जीव भोग्य है और परमात्मा भोक्ता है लेकिन जीव भोक्ता बन गया। अतः नियम विरुद्ध होने से जीव, परमात्मा का दोस्त होते हुए भी उसने परमात्मा का अधिकार छीन लिया और स्वयं ने ले लिया। साधारण सी बात है कि दूसरे का अधिकार लेना उचित बात नहीं है। इसकी सजा मिलना उचित ही है अतः दुखसागर में डूब गया। फिर भगवान् ने माया को आदेश दिया कि जो भी मेरा हक छीनता है अर्थात् मैं ही केवल भोक्ता हूँ व अन्य भोग्य है, तो वह माया द्वारा सजा पाने का हकदार बन गया।

उदाहरण द्वारा भी गुरुदेव सभी मानवों को खुलासा करके समझा रहे हैं। जैसे अशोक नाम के व्यक्ति ने अपने खेत में मूली बो दी। अब मूली का भोक्ता अशोक है न कि अन्य कोई। लेकिन राजेश चोरी से बिना पूछे खेत से मूली लाकर खा रहा है तो अनधिकारी भोक्ता बन गया। अतः नियम विरुद्ध होने से सजा का जिम्मेदार होगा

ही। इसी प्रकार से जीव परमात्मा का हक छीनकर स्वयं भोक्ता बन गया अतः सजा का जिम्मेदार होगा। जो भी संसार में जीव व अन्य जीव मात्र हैं, सभी भगवान् के हैं। अब भगवान् के कहे बिना, जो भी इस पर अधिकार जमाएगा अथवा भोग्य होते हुए भोक्ता बन बैठेगा, सजा का हकदार होगा ही।

मानव को पृथ्वी माँ द्वारा अन्न उपलब्ध होता है। पृथ्वी माँ भगवान् की पत्नी है। इस पत्नी द्वारा मानव को स्तन रूपी जमीन से अन्न रूपी दूध उपलब्ध हो रहा है तो यह भगवान् के ही हक की वस्तु है एवं भगवान् के आदेश से ही मानव अपने काम में ले सकता है। बिना आदेश के लेता है तो सजा का हकदार होगा। माया तो भगवान् की शक्ति है अर्थात् पत्नी है तो माया कैसे सहन करेगी? ऐसे जीव को सजा देगी ही, रोगी बना देगी, कोई संकट पैदा कर देगी, किसी तरह का दुख लाकर रखेगी। कहने का मतलब है संसार भर में जो भी पदार्थ हैं वह सब भगवान् के ही हैं। उनको भगवान् के बिना कोई भी न भोगे। इनको अर्पण करके ही अपने काम में ले। जैसे अन्न भोजन से ही प्राणी का जीवन चलता है तो भगवान् को भोग अर्पण करके ही जीव भक्षण करे और जो जीव भगवान् को भोग लगाए बिना खाएगा, वह पाप का ही भक्षण करेगा। जब पाप से जीवन यापन करेगा तो जीवन सुखमय कैसे बन सकता है?

ck;: cht ccy dk] vke dgk; l: gk,AA

(संत कबीर जी)

बिना हक का कोई भी पदार्थ जीव अपने काम में लेगा तो वह पाप अर्थात् जहर को ही अपनाएगा। तो मानव को यदि कोई भी पदार्थ चाहिए तो भगवान् को अर्पण करके ही अपने काम में लेना चाहिए जैसे कि तन को ढकने हेतु कपड़ा चाहिए तो कपड़े को भगवान् को अर्पण करो, फिर अपने तन को ढको क्योंकि कपड़ा बाजार में दुकान से आया। दुकान में कहाँ से आया? दुकान में कपड़ा कारखाने से आया और कारखाने से कपड़ा किसने पैदा किया? वहाँ के कामदारों ने कपड़ा मशीनों से पैदा किया। कामदारों

के हृदय में किसने प्रेरणा की? अब ध्यान से सुनें कि कामदारों के हृदय में भगवान् बैठा हुआ है और वही प्रेरणा करता है तो आत्मा रूपी परमात्मा ने प्रेरणा दी। अतः निष्कर्ष यह निकला कि मूल पदार्थ भगवान् का ही है। भगवान् की प्रेरणा बिना जगत् का काम चल ही नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ब्रह्माजी। जब ब्रह्माजी ने वृन्दावन से, भगवान् के बछड़ों और ग्वालों को चुरा कर अपने धाम में छिपा लिया तो क्या देखते हैं कि वही बछड़े और ग्वाल–बाल वृन्दावन में हैं। ब्रह्मा जी ने सोचा कि यह तो मेरे धाम में थे, यहाँ कैसे आ गए? फिर जाकर देखा कि वहाँ पर भी बछड़े और ग्वाल–बाल मौजूद हैं। ब्रह्माजी चकरा गए। वास्तव में कृष्ण, उतने ही बछड़े, वह जिस–जिस रंग के थे, स्वयं ही बन गए और ग्वाल–बाल भी जैसे–जैसे थे, वे स्वयं बन गए। यहाँ तक कि बछड़ों को हाँकने की छड़ी अर्थात् लकड़ी भी स्वयं ही बन गए। छींके भी बन गए और बजाने की बाँसुरी भी बन गए, सब कुछ बन गए। निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् ही सब कुछ हैं। भगवान् के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह सिद्ध हो गया। अतः भगवान् की सभी सामग्री पदार्थ होने से, उनको अर्पण किए बिना जो भोगता है, वह सजा का हकदार होता है। घर में कोई भी पदार्थ लाओ, तुलसीदल डालकर भगवान् को अर्पण करो। तुलसीदल क्यों डालें इसका भी गूढ़ अर्थ है। वृंदा माँ भगवान् की प्यारी पत्नी हैं। तभी कहा गया हैः

èkU; r|ylh i.k ri fd;]
Jh'kkyxke&egkiVjk.kh uek ue%

(तुलसी आरती)

रुक्मिणी, सत्यभामा आदि भगवान् की इतनी प्यारी नहीं हैं, जितनी प्यारी वृंदा माँ है। वृंदा देवी की प्रसन्नता बिना भगवान् किसी से भी मिलते नहीं हैं। अतः तुलसी की सेवा ही सर्वोपरि है।

श्रीगुरुदेव एक रोचक वार्ता सभी भक्तों को समझने हेतु बता रहे हैं, ध्यान से सुनने की कृपा करें। किसी पहाड़ की जगह में एक वैरागी महात्मा भजन में रत थे। उनके यहाँ पर 15–20 ब्रह्मचारी भी

थे और बहुत सी गायों की सेवा भी थी। उन ब्रह्मचारियों में एक भोला नाम का ब्रह्मचारी, निष्कपट, पागल जैसा, बाहर पड़ा रहता था। उसकी तरफ न गुरुजी का ध्यान था और न ब्रह्मचारियों का ध्यान था। वह अकेला ही आश्रम के बाहर पड़ा रहता था। 10–15 दिनों में तो वह नहाता था। कभी गुरुजी कह देते, तो स्नान कर लेता था वरना बिना स्नान के ही पड़ा रहता था। जब ब्रह्मचारी प्रसाद पाकर उसके नजदीक ही पत्तलें फेंक देते थे तो वह सरल ब्रह्मचारी, उन पत्तलें को चाट कर अपना पेट भर लिया करता था। 15–20 पत्तलों को चाटने से उसका पेट भर जाता। ऐसे ही वहाँ पर गायों के पानी की खेल भरी रहती थी, वह उसी में से पानी पी लेता था। अतः गायों का जूठा पानी पी कर, रात दिन वहीं पड़ा रहता था।

एक दिन रात में गुरुजी ने सभी ब्रह्मचारियों को बुलाया तो सभी ब्रह्मचारी गुरुजी के चरणों में इकट्ठे हो गए। जब सब ब्रह्मचारी बैठ गए तो गुरुदेव ने उनको बोला, "मेरे मन में उत्तराखंड के बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा करने की इच्छा है लेकिन एक बड़ी समस्या है कि भगवान् की सेवा, पूजा कौन करेगा? तुम में से किसी एक को यहाँ पर रहना जरूरी है। बोलो! कौन यहाँ पर रहेगा?" तो सभी ब्रह्मचारी चुप साध गए। कोई भी रहना नहीं चाहता था। तब गुरुदेव को कहना पड़ा, "भाई! अमुक ब्रह्मचारी यहाँ पर रहकर भगवान् और गायों की सेवा करे। मैं और सभी ब्रह्मचारी एक माह में लौट के आ जाएँगे।" तो जिसको बोला, वह ब्रह्मचारी गुरुजी के चरणों में पड़ कर रोने लगा और बोला, "मुझे यहाँ पर मत छोड़ो, मैं भी चलूँगा" तो संत तो दयालु होते ही हैं। गुरुजी बोले कि ठीक है, वह भी चले। तो अब गुरुजी ने पूछा, "तुम में से यहाँ पर कौन रुक सकता है?" जब किसी ब्रह्मचारी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो गुरुजी बोले, "मैं चार धाम यात्रा को स्थगित करता हूँ। अब नहीं जायेंगे, बाद में देखा जाएगा।" तो सब ब्रह्मचारियों के सिर पर जैसे पत्थर पड़ गया हो। सुन्नता छा गयी।

उनमें से एक ब्रह्मचारी खड़े होकर बोला, "जो ब्रह्मचारी बाहर है, गुरुदेव! उसे बुलाकर पूछें कि क्या वह सेवा कर लेगा?" श्रीगुरुदेव बोले, "तुम भी पागल हो क्या? एक तो पागल बाहर पड़ा है और दूसरा पागल यहाँ खड़ा होकर बोल रहा है। सब जानते ही हो कि वहाँ बाहर पड़ा हुआ ब्रह्मचारी कैसा है। 15–20 दिन में तो नहाता है। वह गायों की तथा भगवान् की सेवा कैसे कर लेगा?" तो सभी ब्रह्मचारी बोलने लगे, "गुरुदेव! उसको बुलाकर पूछने में क्या हर्ज है।" तो गुरुदेव बोले, "मैं नहीं समझता कि वह सेवा करने हेतु हाँ करेगा, फिर भी जाओ! उसे यहाँ बुला कर ले आओ। उससे पूछते हैं, वह क्या जवाब देता है?" गुरुजी ने एक ब्रह्मचारी को बोला, "जाओ! उसे बुलाकर ले आओ।" ब्रह्मचारी बाहर गया और पागल को बोला, "ओ भोलाराम! तुझे गुरुजी बुला रहे हैं, जल्दी चलो।" उसने कहा, "चलता हूँ, क्या मैं पेशाब कर सकता हूँ?" ब्रह्मचारी बोला, "हाँ! कर लो।" वह वहीं पर पेशाब करने लगा। पागल तो था ही। पेशाब करने के बाद बोला, "मुझे छींक आ रही है, मुझे छींकने दो। छींक आना शुभ होता है।" ब्रह्मचारी बोला, "जल्दी छींक लो।" तो भोला बोला, "तुम जल्दी क्यों करते हो? "थोड़ी देर बैठ जाओ। छींक आने दो, फिर चलूँगा।" अब तो ब्रह्मचारी परेशान हो गया और इस डर से कि, यह चलने से मना न कर दे वरना हमारी यात्रा बंद हो जाएगी, वहाँ बैठ गया और उसकी छींक का इंतजार करने लगा। एक साथ दो छींक आ गईं। फिर भोला बोला, गुरुदेव ने क्यों बुलाया है? गुरुदेव ने अभी तक तो कभी मुझे नहीं बुलाया। कभी मुझ से बात ही नहीं की। अब क्या जरूरी काम आ गया?" ब्रह्मचारी बोला, "जरूरी काम ही है अतः जल्दी चलो।" भोला बोला, "क्या काम है मुझे बताओ?" तब ब्रह्मचारी बोला, "गुरुदेव ही बताएँगे, तुम जल्दी चलो। एक घंटा हो गया है, गुरुदेव इंतजार कर रहे होंगे।" भोला बोला, "अभी चलता हूँ, अभी चलता हूँ।" अब तो भोलाराम ने दौड़ लगाई और ब्रह्मचारी को बहुत पीछे छोड़ दिया।

गुरुजी के पास पहुँचा और बोला, "गुरुदेव! क्या काम है?" गुरुदेव बोले, "अरे! वह ब्रह्मचारी कहाँ रह गया?" तब भोला बोला, "मैं तो देर होने की वजह से दौड़कर आ गया और वह पीछे ही आ रहा होगा। अब गुरुदेव! बताओ, मुझसे क्या काम है?" इतने में वह ब्रह्मचारी भी आ गया। गुरुदेव ने पूछा, "तुमने एक घंटा क्यों लगाया?" ब्रह्मचारी बोला, "मेरा क्या दोष है, पहले तो इसने कहा कि मुझे पेशाब लग रहा है, फिर कहता है कि मुझे छींक आ रही है, बैठ जाओ, जब दो छींक आएगी, तभी चलूँगा। मैंने पूछा, "क्यों?" तो यह बोला कि मैं छींक कर ही गुरुदेव के पास जाऊँगा। दो छींक शुभकारक होती हैं तो मैं इसकी छींक की बाट देखता रहा। इसने एक साथ में दो छींक मारीं, तब इसने ऐसी दौड़ लगाई कि मैं तो बहुत पीछे रह गया। अतः मुझे आने में देर हो गयी।" गुरुदेव बोले, "ठीक है। ठीक है। बैठ जाओ।" भोलाराम बोला, "गुरुदेव! क्या काम है? मेरे को जल्दी बताओ।" गुरुदेव बोले, "इतनी जल्दी क्यों मचाते हो?" भोला बोला, "गुरुदेव! मुझे बहुत जल्दी–जल्दी पेशाब आता रहता है। तो यदि पेशाब आ गया तो मैं यहाँ रुक नहीं सकूँगा। जब आएगा तो मैं भाग जाऊँगा। आप बताओ, क्या काम है?" गुरुजी बोले, "भोला! काम यह है कि हम सब तीर्थ यात्रा करने जा रहे हैं तो क्या तुम भगवान् की व गायों की सेवा और देखभाल करोगे?" भोला बोला, "यह भी कोई काम है?" गुरुजी बोले, "हाँ! यही तो काम है।"

भोले ने पूछा," तो बताओ, मुझे कैसे–कैसे सेवा करनी है? गुरुजी बोले, "तो ध्यान से सुनो। तुझे सुबह 3:00 बजे उठना है और गायों को चारा डालना है।" भोला ने पूछा, "चारा कैसे डालते हैं?" तो गुरुदेव बोले, "पहले तो चारे को छलनी से छानना है फिर बाँट (कांकड़ा, मेथी, दलिया आदि) मिलाना है और फिर नाँद में डाल देना है।" भोला बोला, "तो छलनी क्या होती है?" गुरुदेव ने समझाया, "देख! छलनी लोहे की तारों की बनी होती है, उसमें चारा डाल कर हिलाना होगा, मिट्टी निकल जाएगी और चारा साफ हो जाएगा।"

भोला बोला, "चारा कितना लेना होगा।" गुरुजी बोले, "वहाँ एक छाबड़ी है। 8 छाबड़ी छान कर डालनी है।" भोला बोला, "कहाँ डालनी है।" गुरुजी ने उत्तर दिया, "जहाँ गायों की नाँद है वहाँ डालनी है। उनके सामने नाँद बनी है, उसमें डालनी है।" भोला बोला," गुरुदेव! बड़ी मुसीबत है।" गुरुजी ने कहा, "तो मना कर दो।" अब तो सब ब्रह्मचारी डर गए कि यदि भोला ने मना कर दिया तो तीर्थयात्रा बंद हो जाएगी। भोला बोला, "गुरुदेवजी! पूरी उम्र भर आपने एक भी काम नहीं बताया, मैं कैसे मना करूँ? जैसा आपने बोला वैसे ही करूँगा और अब यह भी बताओ कि गायों को पानी पिलाना है, गोबर डालना है। तो गुरुदेव! मुझे सब बता दो, मैं सब कर लूँगा।" गुरुजी बोले, "दोनों समय गायों की सेवा करनी है।" भोला ने उत्तर दिया, "हाँ! कर लूँगा।" गुरुदेव बोले, "यह तो हुई गायों की सेवा। अब भगवान् की सेवा बता रहा हूँ।" भोला बोला, "भगवान् कहाँ रहते हैं?" गुरुजी बोले, "अरे! भगवान् आश्रम में रहते हैं। मैं चलकर तुम्हें बता दूँगा। क्या भगवान् की सेवा कर लोगे?" भोला बोला, "हाँ! क्यों नहीं करूँगा। करूँगा!"

गुरुजी बोले, "यह गायों की सेवा और देखभाल में तुझे एक घंटा लग जाएगा। तो 4:30 बजे स्नान करना और आश्रम में जाकर भगवान् को जगाना।" भोला बोला, "भगवान् कब उठते हैं? कब जागते हैं?" गुरुदेव बोले, "तुम वहाँ जाकर, जो घंटी रखी है, उसे जोर–जोर से बजाना।" भोला बोला, "हाँ! समझ गया, बजाने से नींद खुल जाएगी, फिर क्या करना है?" गुरुजी बोले, "फिर शैया से भगवान् को उठाकर आसन पर बिठाना और पर्दा बंद कर देना।" भोला बोला, "क्या भगवान् नहाएँगे नहीं?" गुरुदेव बोले, "पर्दे के बाहर से बोलना कि भगवान्! आप नहा लो। मैं आपके लिए मक्खन–मिश्री बना कर लाता हूँ, तो भगवान् स्वयं ही नहा लेंगे, तुम तो बोल देना उनको।" गुरुजी ने बोला, "उन्हें जल्दी भूख लग जाती है अतः सूर्य उदय होने के पहले तुम्हें भगवान् को मक्खन–मिश्री खिलानी पड़ेगी। भगवान् को बोलना, "इतने में आप स्नान करके धुले

कपड़े पहन कर तैयार रहना, मैं माखन मिश्री खाने हेतु लाऊँगा। आपको अपने आप तिलक वगैरा करना तो मुश्किल होगा इसलिए मैं ही खाने के बाद, तिलक और आरती कर दूँगा।" इतने में 5–6 बज जाएँगे।" भोला सोचने लगा कि 4:30 बजे स्नान करना बड़ी मुश्किल है, बड़ी मुसीबत है, वह तो 15–15 दिन में कभी–कभी नहाता था, अब तो रोज ही नहाना पड़ेगा।" भोला बोला, "अब गुरुदेव! आगे का काम बता दो।" गुरुदेव बोले, "मैं भूल गया था, भगवान् को जगाने से पहले मंदिर में झाड़ू–पोछा करना, फिर ही भगवान् को जगाना।" भोला बोला, "हाँ गुरुजी! ठीक है, तो भगवान् को जगाने के पहले अगरबत्ती जलाना होता है क्या?" गुरुजी बोले, "हाँ! भगवान् को अच्छी तरह सुगंध आये। हाँ! हाँ! ऐसा ही करना और इसके बाद भोग लगाना।"

भोला बोला, "गुरुदेव! भोग क्या होता है?" गुरुजी बोले, "अरे! पागल! रोटी बनाकर, सब्जी बनाकर, दही तैयार करके भगवान् को खिलाने को ही भोग बोला जाता है।" भोला ने पूछा, "तो गुरुदेव! भगवान् कितनी रोटियों में थक जाते हैं?" गुरुजी बोले, "देखो! दो रोटी तो कान्हा की और दो रोटी राधा की और दो रोटी सखा की, कभी कभी कान्हा का सखा भी आ जाता है तो भगवान् भूखे रह जाते हैं और दो रोटी तेरी।" भोला बोला, "तो हो गयी, 6 रोटी भगवान् की और दो रोटी मेरी अपनी। तो बनाकर उनके पास रख दूँगा। ठीक है तो रोटियाँ अकेली कैसे खाएँगे तो लगान भी तो होना चाहिए।" गुरुजी बोले, "हाँ भोला! लगान के बिना तो रोटी अच्छी नहीं लगती तो कभी कभी कढ़ी बना लेना, कभी सब्जी बना लेना, कभी दही रख देना।" भोला बोला, "गुरुदेव! अभी याद आया कि रात में तो दही भगवान् के पेट को खराब कर देगा तो रात में खाने को क्या देना है?" गुरुजी बोले, "अरे भोला! रात में तो गाय का दूध देना है, सब्जी रोटी तो देना ही है। ठीक है।" भोला बोला, "मैं समझ गया। अब गुरुदेव! भगवान् को भोजन करने में कितनी देर लगती है?" गुरुजी ने कहा, "भोला! पर्दा करना जरूरी है क्योंकि सबके सामने भगवान्

खाने में शर्माते हैं। अतः पर्दा कर के पास बैठकर खिलाना। लगभग आधा घंटा तो खाने में लग ही जाता है।" भोला ने कहा, "हाँ! लग जाता होगा।" "गुरुदेवजी! पानी भी देना पड़ेगा? गुरुजी बोले, "हाँ! पानी भी रखो। पानी तो जरूरी है ही, कभी–कभी रोटी का टुकड़ा गले में अटक जाए तो पानी की घूँट लेने से टुकड़ा नीचे उतर जाता है।" भोला ने पूछा, "हाँ! गुरुदेव! पानी कितना रखना है? तो गुरुजी ने समझाया, "अरे! यहाँ झारी रखी है, उसे भर कर रख देना। झारी तो भारी है उसके पास गिलास भी रखना।" भोला ने उत्तर दिया, "हाँ! हाँ! रखूँगा! अब गुरुदेव तीर्थ यात्रा पर जा सकते हो। मैं सब सेवा व देखभाल कर लूँगा।"

सुबह उठते ही गुरुदेव व सारे ब्रह्मचारी आश्रम से चले गए और आश्रम में गाय, भोला और भगवान् ही रह गए। ब्रह्मचारियों की पत्तलें चाटने से तथा गायों का झूठा पीने से भोले का मन स्वच्छ और निर्मल हो गया था। भोला सोचने लगा कि अब तो गुरुदेव तथा सब ब्रह्मचारी यात्रा पर चले गए हैं, अतः सब उसे ही करना है। ऐसे रात में सोचता रहा कि सुबह उसे जल्दी जागना है, वरना भगवान् भूखे मर जाएँगे। उठते ही सुबह तो गायों की देखभाल करनी है, चारा, पानी, दूध निकालने में देर न हो जाए और फिर दही बिलोना, उसमें बहुत समय लगेगा। भगवान् तो भूखे मर जाएँगे। ऐसे ही उधेड़बुन में सोचते सोचते ही रात में 2:00 बज गए।

घड़ी की तरफ देखा कि अब तो सोना बेकार है। यदि सो जाऊँगा और जाग नहीं पाया तो बहुत बुरा हाल हो जाएगा। अतः अभी गायों के गुवाड़े (गौशाला) में चलकर गोबर उठा लूँ, झाड़ू निकाल लूँ, चारा छान लूँ, नाँद को साफ कर लूँ तो इतने में 3:00 बज ही जायेंगे। ऐसा सोचकर गायों के गुवाड़े में गया और काम में लग गया। जब काम कर चुका तो घड़ी की तरफ नजर दौड़ाई तो देखा कि सुबह के 4:30 बज गए, अतः घबराया। अब तो मुश्किल हो गयी, भगवान् को समय पर कैसे खिलाऊँगा? शीघ्र ही नहाया फिर मंदिर का झाड़ू–पोछा लगाया और घड़ी पर नजर गयी तो देखा कि

6:00 बज गये। माखन मिश्री खिलानी थी। अब तो तैयारी करने में 7:00 बजेंगे। जल्दी–जल्दी माखन दही से निकाला और मिश्री ढूँढने लगा तो मिश्री मिली नहीं। फिर घबराया और गुरुजी को याद किया तो गुरुकृपा से याद आया कि अमुक जगह पर कुल्हड़ में मिश्री है। जल्दी से गया, मिश्री को कूटा और मक्खन में रखा और जल्दी से मंदिर के पास जाकर और ताली बजाई, "भगवान् आज तो देर हो गई, आप जल्दी से हाथ मुँह धो लो, जल्दी से माखन–मिश्री लाकर देता हूँ।" घड़ी की तरफ देखा तो 7:00 बज गए। सोच रहा था कि भगवान् उसे क्या कहेंगे कि उसने तो उन्हें भूखा मार दिया। जल्दी से पर्दा हटाया और मक्खन मिश्री रख दी और बोला, "नाराज मत होना, पहला दिन था सो देर हो गई।" पर्दा बंद किया और पास में बैठकर सोचने लगा कि चप–चप की आवाज तो आ नहीं रही है, भगवान् खा नहीं रहे हैं। आधे घंटे बाद पर्दा खोला तो देखा, जैसी कटोरी रखी थी, वैसी ही भरी पड़ी है। सोचने लगा कि जल्दी–जल्दी में स्नान ठीक नहीं हुआ होगा, अतः गंदे तन से भगवान् कैसे खा सकते हैं? और नाराज भी हो गए होंगे। अतः बोला, "भगवान्! मैं अभी अच्छी तरह से स्नान करके आता हूँ तब तक आप दूध पी लेना।"

चने का बेसन, हल्दी, गाय के दूध में मिला कर, मल–मल के नहाने लगा। मलमल के नहाने लगा कि वह गंदा था इसलिए भगवान् ने नहीं खाया होगा। उसने रगड़–रगड़ के दूध का स्नान किया जैसे शादी में दूल्हा–दुल्हन को नहलाते हैं। ऐसे ही उसने स्नान किया। जल्दी से कपड़े पहने और भगवान् के पास जाकर बोला, "आपने दूध तो पी लिया होगा? अब दही में माखन–मिश्री मिलाकर खा लो। 10:00 बजे तक रोटी बनाकर खिला दूँगा।" दही, माखन–मिश्री पर्दे के अंदर रखकर, पर्दे के बाहर बैठ कर इंतजार करने लगा कि अब तो भगवान् खा लेंगे। आधे घंटे बाद पर्दा खोला तो कटोरी से कुछ नहीं खाया। अब सोचने लगा, लगता है कि भगवान् नाराज हो गए हैं। अब भी खाया नहीं क्योंकि गलती उसकी

ही है, उसने समय पर कुछ किया नहीं। लेकिन भगवान् भूखे हैं अतः जल्दी से रोटी बनाकर खिलाये। सब्जी बनाने में तो देर लगेगी अतः मीठा दही ही रोटी के साथ खा लेंगे। दो रोटी कान्हा की, दो रोटी राधा की, दो रोटी सखा की और दो रोटी उसकी, अतः 8 रोटी बनाकर रखना है। फिर भी 9:00 बज गए, पर्दा खोला तो याद आया कि आज आरती तो की ही नहीं। यह तो बहुत गलती हो गई, न जाने आरती किए बिना रोटी खाएँगे कि नहीं। अब तो रोटी रख देता हूँ, भूख में किवाड़ भी पापड़ होते हैं। वह भी भूखा मर रहा है और यह भी भूखे मर रहे हैं। भूख के मारे खा लेंगे। पर्दे के बाहर बैठ कर इंतजार करने लगा और बोलने लगा, "भगवान्! जल्दी खालो। मैं भी भूख के मारे मर रहा हूँ और कल से तुम भी भूखे हो।" पर्दा खोला तो रोटी वैसी की वैसी रखी हैं। क्या किया जाए? गलती तो बहुत बड़ी हो गई, अब वह भी कैसे खाये? जब भगवान् भूखे हैं तो वह कैसे खाये? इन रोटियों को गाय को दे आया।

अब तो दिनभर सोचता रहा और शाम हो गयी। शाम की आरती उतारी और दूध–चावल का भोग रखा और परदे के बाहर बैठ गया। बोला, "भगवान्! खा लो, मैं भी भूखा, तुम भी भूखे हो, 3 दिन हो गये।" और पर्दा खोला तो दूध–चावल में से एक तिनका भी नहीं खाया था तो विचार किया कि भगवान् तो खाए बिना मर जाएँगे तो गुरुदेव और सब ब्रह्मचारी उसकी खाल उधेड़ देंगे। बोला, "अरे! मर जाओगे। खाओ, खाओ, खाओ नहीं तो मर जाओगे। अरे भगवान्! आप गुरुदेव के हाथ से तो खा लेते थे, मेरे हाथ से नहीं खाते तो मुझे बताओ, मेरी क्या गलती हो गई? क्या कमी रह गई? रात–दिन चिंता में हैरान हो रहा हूँ। अब तो भगवान् बताओ क्या करूँ?" अब सोचने लगा कि मार के आगे तो भूत भी काँपता है। अब तो भगवान् की डंडी से खबर लेनी पड़ेगी। क्योंकि राजी–बाजी से कोई मानता नहीं है। भूख के मारे वह और भगवान् भी मर जाएँगे। उसने सुना था कि मार के आगे भूत भी सीधा हो जाता है। अतः कल बहुत बढ़िया–बढ़िया भोजन बनाकर भगवान् से बोलेगा कि 3 दिन से वह

भी भूखा और भगवान् भी भूखे हैं, अतः कढ़ी, खीर, मालपुआ कई तरह की चटनी खा लेना वरना भगवान् की अच्छी तरह से बैंत से खबर ली जाएगी। नहीं खाएँगे तो उनकी चमड़ी–चमड़ी उधेड़ देगा। ऐसा सोचते हुए सो गया।

अगले दिन सब भोग भगवान् के सामने रख कर, पर्दे के पीछे बैठ गया। क्या देखता है कि चप–चप खाने की आवाज सुनाई दे रही है। तो सोचने लगा कि राजी–बाजी कौन मानता है, अब डर के मारे खा रहे हैं। बोला, "3 दिन से भूखे हो। सब मत खा लेना। मैं भी 3 दिन से भूखा हूँ। मेरे लिए भी छोड़ देना।" पर्दा खोला, तो भोजन का एक कण भी नहीं छोड़ा था। बोला, "कोई बात नहीं। भूख में किवाड़ भी पापड़ हो जाते हैं। अब सो जाओ। मैं जाकर दोबारा भोजन बनाकर खा लेता हूँ।" अब उसे शांति आई कि सब काम ठीक हो गया।

एक माह बाद गुरुदेव और ब्रह्मचारी आए और भोला से पूछा कि क्या उसने अच्छी तरह गायों और भगवान् की सेवा की? भोला बोला, "गुरुदेव! गायें तो बेचारियों ने कोई परेशानी नहीं करी परंतु तुम्हारे भगवान् तो 3 दिन तक खुद भी भूखे रहे और मुझे भी भूखा मारा। फिर मैंने सोचा कि राजी–बाजी कौन मानता है? अब तो गुस्से से ही काम करना पड़ेगा। अतः मैंने आपके भगवान् से बोला कि 3 दिन मुझे बहुत परेशान किया है। अतः अब लकड़ी से तुम्हारी खबर लूँगा, मार–मार के कचूमर बना दूँगा। अतः खा लेना।" तबसे डर कर, गुरुदेवजी! भगवान् समय–समय पर खा लेते हैं। बाद में कोई परेशानी नहीं हुई।" सभी सोचने लगे कि अरे! इतने साल तक में, वे भगवान् को नहीं खिला पाए और भोला ने 3 दिन में ही भगवान् को खिला दिया। गुरुदेव बोले, "हमारे सामने खिला कर दिखाओ।" भोला बोला, "क्यों नहीं! आज ही खिला कर दिखा देता हूँ। आओ, सब बैठो, भोग लाओ, अंदर रखो।" सब बाहर बैठ गए। तब भोला बोला, "भगवान्! आज मेरे गुरुदेव आपको भोजन खाता हुआ देखना चाहते हैं तो खा लेना वरना जानते हो न, मैं कैसा आदमी हूँ?" पर्दा

खोला तो भोजन का एक तिनका मात्र भी नहीं छोड़ा, सारा का सारा खा गए। गुरु जी बोले, "भोला! तू मेरा गुरु।" लेकिन भोला को गुरुजी यह नहीं बोले कि वह 70 साल से नहीं खिला सके, क्योंकि भोले का भाव टूट जाएगा, हट जायेगा। गुरुजी बोले, "कभी–कभी मेरे से भी रूठ जाते थे, नाराज हो जाते थे।" कहते हैं :

fuely eu tu lks ekfg ikokA
ekfg diV Ny fNæ u HkkokAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

भोला बोला, "गुरुदेव! इसमें भगवान् का कोई दोष नहीं था। मैं ही ठीक समय पर भगवान् को खिला नहीं सका। क्योंकि मैं अकेला क्या–क्या काम करता? गायों का बहुत काम था, फिर सफाई करना, मल–मल कर नहाना। इसमें आधा घंटा हो जाता था, फिर भोजन बनाने में बहुत देर हो जाती थी। बरसात का मौसम था, लकड़ी गीली थी, चूल्हा जलता नहीं था, धुँआ–धूल हो जाता था, मेरी आँख लाल हो जाती थी। तो गुरुदेव! बताओ मैं भगवान् को समय पर कैसे खिला सकता था? तो भगवान् तो नाराज होंगे ही। रोज काम करने वाले को तो जल्दी–जल्दी काम करने की आदत हो जाती है। मैंने कभी काम किया नहीं अतः शुरु–शुरु में काम करने में बहुत मुश्किल होती ही है। जब मैं 3 दिन से भूखा मरने लगा तो मुझे क्रोध आ गया, आना ही था। तो मैंने भगवान् को डराया, तो भगवान् ने डर के मारे भोजन खाना शुरु कर दिया। 3 दिन के बाद तो कोई परेशानी ही नहीं हुई। ठीक समय भोजन नहीं खिलाने पर भी भगवान् ने कुछ भी क्रोध नहीं किया और भोजन आराम से करने लग गए। पानी की झारी भी रोज रख देता था। भगवान् को प्यास लगेगी, तब शाम को झारी खाली होने से, मैं रात को फिर भर देता था। अतः मेरी सेवा सुचारु रूप से खूब चल गई थी।"

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

लवमात्र साधुसंग

49

1 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

"हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे जीवनधन! आप कहाँ हो ? आप कहाँ हो ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ ? हे, मुरलीवदन! हे यशोदानंदन! हे कंसनिकन्दन! कोई ठिकाना है नहीं, हे मेरे जीवनधन! सब कुछ किया चरण-अर्पण, हे मेरे प्राण जीवन!"

"हे मेरे प्राणनाथ! आप कहाँ हो ? हे मेरे प्राणनाथ! आप कहाँ हो ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपको ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ पाऊँ आपकी गोद।"

Þjk&jk dj Hkb vk[k yky
jk&jk dj Hkb vk[k yky
; eu gvk cMk cgky
vkid fcuk luk cu x;k g ;g f=Hkou
vc jgxk ugh ejk thouß
gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA
dje çèkku fcLo dfj jk[kkA
tk tl djb lk rl Qy pk[kkAA

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

यह संसार ऐसा ही बना हुआ है। जैसा करोगे, वैसा भरोगे। कर्म किए बिना तो संसार का काम हो ही नहीं सकता। मन तो एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रहता है। सोने के बाद भी मन जागता ही रहता है। भगवान् को भी योगमाया का सहारा लेकर सत्, रज, तम का भाव लेकर, कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है। तो मानव का क्या वश है? कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। एक, जो शास्त्र के अनुसार कर्म किया जाए। दूसरा अकर्म यानि निषेध कर्म, जो शास्त्र के विरुद्ध है। तीसरा है विकर्म, जो मनमाने ढंग से कर्म करते हैं, जिनकी इंद्रियाँ वश में नहीं हैं, वह मनमाने ढंग से वेदों का परित्याग कर देता है। शास्त्र के अनुसार कर्म न करके विकर्म रूप अधर्म ही करता रहता है। इस कारण वह मृत्यु के बाद मृत्यु को प्राप्त होता ही रहता है। सत्संग के बिना इंद्रियों के वश में न होने से जीव कर्म करता रहता है। सत्संग बहुत जरूरी है, इसीलिए द्वारकाधीश ने यह सत्संग के लिए ही बोला है और आदेश दिया है कि प्रत्येक शुक्रवार सत्संग करो। शास्त्र बोल रहा है :

rkr Lox vicx lq[k èkfjv rqyk ,d vxA
rqy u rkfg ldy fefy tks lq[k yo lrlxAA

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लव मात्र का सत्संग, यानि एक पल के 100वें हिस्से का सत्संग भी बहुत बड़ा लाभ दे सकता है। एक पल, एक क्षण का सत्संग, जैसे सुखांचल होता है और स्वर्ग एवं ऊपर के लोकों के सुख भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। अतः श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान् बोलते हैं कि, "उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही प्राप्त होता हूँ।" सच्चा सत्संग संसार में मिलना बहुत मुश्किल है क्योंकि यह कलियुग का समय है। किसी भाग्यशाली को ही सच्चे संत का संग उपलब्ध हो सकता है। कलियुग में, सब ओर कपट साधु विस्तृत रूप से होते हैं। साधु के बिना, केवल शास्त्र पढ़ने से इतना प्रभाव नहीं पड़ सकता, जितना प्रभाव सच्चे साधु के पास बैठने से मिल सकता है। गुरु की कृपा होगी, तभी सच्चा सत्संग मिल सकेगा।

x#cãk x#fo".k% x#nok eg'oj%A
x#% lk{kkRij cã rLe Jhxjo ue%AA

(श्रीगुरुगीता प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

गुरु ब्रह्मा है, यानि सृष्टि रचैया। भगवान् को देने वाले गुरु हैं। गुरु विष्णु हैं, गुरु रक्षा करते हैं एवं बुरे रास्ते पर जाने से रोकते हैं। गुरुदेव महेश्वर हैं, सच्चा ज्ञान देते हैं। शिवजी के बराबर कोई भक्त नहीं है। शिवजी उसको भगवान् को प्राप्त करने का सच्चा ज्ञान देते रहते हैं। इसलिए तीनों ही गुरु के रूप में आसीन हैं। गुरु तीनों का रूप ही हैं।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ...हरिनाम करना चाहिए। गुरु के चरणों का ध्यान करते हुए उनके चरणों में बैठकर भजन करना चाहिए। अतः गुरु जी की कृपा मिलेगी। उनकी वाइब्रेशन (तरंगें) आपके ऊपर गिरेंगी तो आपका मन लगेगा।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्... गुरुदेव के चरणों की पूजा करो और मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं... जो गुरु बोलता है, वह एक तरह का मंत्र होता है उसको अपनाओ।

मोक्षमूलं गुरोः कृपा...जब गुरु की कृपा हो जाएगी तो मोक्ष होने में कोई देर नहीं लगेगी। गुरु की कृपा को कोई नहीं रोक सकता, भगवान् भी नहीं।

x#Ñik fg doy] x#Ñik fg doy] x#Ñik fg doyeA

गुरु की कृपा के बिना, कोई भी आज तक भक्ति नहीं कर सका। गुरु होना बहुत जरूरी है। लेकिन गुरु सच्चा होना चाहिए।

राखइ गुरु जौं कोप विधाता...ब्रह्मा जी, विधाता भी यदि नाराज हो जाए तो गुरु रक्षा कर सकता है।

jk[kb xj tk dki fcèkkrkA
xj fcjkèk ufg dkm tx =krkAA

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

यदि गुरु नाराज हो जाए तो उसको सँभालना किसी के हाथ में नहीं। शुक्राचार्य जी, जब राक्षसों से नाराज हो गए, तो राक्षस, देवताओं से हार गए। ऐसे ही जब बृहस्पति जी, जो देवताओं के गुरु थे, वो नाराज हो गए तो देवताओं को राक्षसों ने हरा दिया। गुरु की कृपा बहुत जरूरी है। गुरु की कृपा हो गई तो कल्याण हो गया। ब्रह्माजी अगर नष्ट करने पर उतारू हो जाएँ तो गुरुदेव रक्षा कर लेंगे, बचा लेंगे, लेकिन यदि गुरु से ही विरोध हो जाए तो अनंत कोटि ब्रह्मांडों में जीव को कोई बचाने वाला नहीं है, उसको भगवान् भी नहीं बचा सकते।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई...गुरु के बिना संसार रूपी दुख, नहीं हट सकेगा।

x|j fcu| Hko fufèk rjb u dkbA
tk| fcj|fp l|dj le gkbA

(मानस, उत्तर. सो. 92 (ख) चौ. 3)

चाहे कैसा भी हो, लेकिन गुरु के बिना कोई भी संसार सागर से, दुख सागर से पार नहीं पा सकता।

t| lB x|j lu bfj"kk djghA
jk|jo ujd dkfV t|x i|jghAA
f=tx tkfu i|fu èkjfg| l|jhjkA
v;|r tUe Hkfj ikofg| i|hjkAA

(मानस, उत्तर. दो. 106 (ख) चौ. 3)

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या, द्रोह करता है वह करोड़ों युगों तक रौरव नरक, जो इतना खतरनाक है, उसमें पड़ा रहेगा। गुरु अगर नाराज हो जाएगा, तो फिर क्या होगा?

v;|r tUe Hkfj ikofg| i|hjk

अनंत जन्म तक दुख भोगता रहेगा, बार–बार शरीर धारण करेगा और दुख भोगता रहेगा। जो गुरु से लड़ता है, करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़ा रहेगा। फिर पशु–पक्षी होकर जन्म लेता है,

लाखों जन्म तक दुख आता ही रहता है। इसलिए गुरु को नाराज करना बहुत खतरनाक है। गुरु को कभी भी नाराज मत करो। गुरु अगर तुम्हें पीट भी डाले तो भी हाथ जोड़ दो और गुरु के चरणों में लिपट कर रोओ। लेकिन गुरु से कभी भी लड़ाई मत करो। क्या कहते हैं कि :

xj d cpu çrhfr u tghA
liug lxe u l[k flfèk rghAA

(मानस, उत्तर. दो. 79 चौ. 4)

पार्वतीजी, शिवजी को कह रही हैं कि पतिदेव! गुरु से जिसकी प्रीति नहीं है, वह सपने में भी कभी सुखी नहीं रह सकता।

नानकजी बोल रहे हैं :

dkbl ru n[kh] dkbl eu n[kh]
vkj dkbl èku fcu fQj mnklA
vj! FkkM FkkM lHkh n[kh ,d l[kh jke dk nklAA

सुखी कौन है? जो भगवान् का प्यारा है, जो राम का दास है, जो कृष्ण का प्यारा है, वही सुखी है और बाकी सब दुखी हैं। नानकजी फिर कह रहे हैं :

ikLr MkMk Hkkx èkrjk mrj tk, çHkkr---

ये खाने के कुछ देर बाद इसका नशा उतर जाएगा।

vj! uke [kekjh ukudk p<h jg fnu jkr

जिसको नाम का प्यार बन गया, उसे रात–दिन नशा चढ़ा ही रहेगा, उतरेगा नहीं। रात दिन उसको बस नाम में ही आनंद मिलता रहेगा। उसको नींद भी नहीं आएगी, भूख भी नहीं लगेगी।

ऐसा आनंद आएगा जो सुपरनैचुरल (अलौकिक) है, जिसको मिलता है, वही जानता है। वह उस आनंद को बता नहीं सकता।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात, 24 घंटे चढ़ी रहती है।

भक्त समुदाय को अपना हरिनाम कैसे जपना चाहिए? जैसे सीता जपती थी।

tfg fcfèk diV djx lx èkkb py JhjkeA
lk Nfc lhrk jkf[k mj jVfr jgfr gfjukeAA

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

वह छवि, जब भगवान्, मारीच के पीछे भागे थे। मारीच, कपट से सोने की चमक वाले हिरण का रूप धर कर आया था। ऐसा रूप देख कर सीता बोली कि, "राम! देखो कितना सुंदर हिरण है। इस मृगछाल पर हम बैठकर भजन किया करेंगे तो उसको मार कर मृगछाल ले आओ।"

जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाय चले श्री राम...वह ध्यान कर रही है, चिंतन कर रही है। सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम। वह चिंतन हृदय में धारण करके और भगवान् का नाम ले रही है। ऐसे हरिनाम करना चाहिए। फिर भरत जी कैसे करते थे?

iyd xkr fg; fl; j?kch:A
thg uke tí ykpu uh:AA

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

भरतजी हृदय में अपने भैया राम का ध्यान कर रहे हैं। भैया राम ने कभी पाँव धरती पर भी नहीं रखे थे। इतने कोमल चरण हैं उनके और वे ही अब जंगल में घूम रहे हैं, ऊपर से सूर्य तप रहा है और नीचे से बालू जल रही है। उनके चरणों में फफोले हो गए होंगे। वो ध्यान करके ...पुलक गात हिय सिय रघुबीरू, जीह नामु जप लोचन नीरू... राम! राम! राम बोल रहे हैं और आँखों से आँसू गिर रहे हैं। ऐसे नाम जपना चाहिए जैसे सीता जी और भरत जी जपते थे। जीभ से भरत जी नाम जप रहे हैं और भैया राम का चिंतन कर रहे हैं और आँखों से अश्रुधारा बहा रहे हैं।

शास्त्र बोल रहा है कि सबसे बड़ा दुख क्या है? और सबसे बड़ा सुख क्या है?

ufg nfjæ le n[k tx ekghA

दरिद्रता सबसे बड़ा दुख है।

lr feyu le l[k tx ukghAA

संतों का मिलन ही सबसे बड़ा सुख है।

(मानस, उत्तर. दो. 120(ख) चौ. 6, गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर)

कलियुग में जो शराब पीते हैं, भक्ष्य–अभक्ष्य खाते हैं। उनकी जनता चर्चा नहीं करती। यह कलियुग है, और इसमें जो भगवान् का नाम जपता है, उसे जनता चिढ़ाती रहती है। "ओहो! भक्त बन गया है।" उन्हें चिढ़ाने दो। चिढ़ाना तो अच्छा है। जापक का पाप चिढ़ाने वाले के पास चला जाता है। इसके लिए शास्त्र बोल रहा है :

fund fu;j jkf[k;] vkxu dVh Nok;A
fcu ikuh lkcu fcuk] fuey dj lHkk;AA

(संत कबीर जी)

कहते हैं कि जो निंदा करते हैं, उन्हें मकान बनाकर अपने पास में रखना चाहिए। इससे क्या फायदा होगा? जितने भी तुम्हारे पाप होंगे उसके (निंदक के) यहाँ, उसके हृदय में चले जाएँगे। आप एकदम निर्मल हो जायेंगे। अब आपको कुछ करना ही नहीं पड़ेगा। सब कुछ उसके पास चला जाएगा। इसलिए जब कोई निंदा करे, तो आपको खुश होना चाहिए कि मैं तो निर्मल बन जाऊँगा। अभी तक तो मेरा स्वभाव निर्मल नहीं है, अब अपने आप ही मेरा स्वभाव निर्मल हो जाएगा और मैं भगवान् का नाम बड़े प्यार से लूँगा। शास्त्र कह रहा है ऐसे निंदक को पास में रखने से ही बड़ा लाभ है, चाहे पास में मकान ही बना कर देना पड़े। जब वह भक्त की निंदा करेगा तो भक्त से जो पाप, अपराध बन गए हैं, वह निंदक के पास जाकर, उसके स्वभाव में आ जाएँगे। उसके हृदय में जाकर घुस जाएँगे और आपका हृदय साफ हो जाएगा। बिल्कुल निर्मल बन जाएगा। कितना सरल, सुगम साधन शास्त्र ने हमें भगवान् के पास जाने का बता दिया है। जो शराब और अभक्ष्य लेते हैं उनको कोई कुछ नहीं

बोलता। लेकिन जो भगवान् का नाम लेगा, उसकी चर्चा होती है। तो यह अच्छा है। बहुत जल्दी फायदा होगा।

वेदों ने इस बात को बार–बार दोहराया है, "भगवान् चर–अचर प्राणियों में आत्मारूप में विराजमान हैं। यही अपनी आत्मा और प्रियतम हैं परंतु मूर्ख मानव इस वेदवाणी को सुनता ही नहीं है और मुझको (भगवान् को) सताता रहता है। बिना मतलब आपस में द्वेष करता रहता है। यह मुझसे ही द्वेष करता है क्योंकि यह शरीर तो आत्मा का कपड़ा है। द्वेष किससे होगा? द्वेष तो आत्मा से होगा और आत्मा दुख पाएगा। आत्मा सबकी बराबर है।" इसलिए तो कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। जैसे कोई किसी के मकान की खिड़की तोड़े तो क्या मकान रोयेगा? मकान में रहने वाला रोएगा। इसी प्रकार आत्मा का शरीर तो एक कपड़ा है, जब गंदा हो जाएगा, तब नया कपड़ा पहनना ही पड़ता है।

शरीर के सब अवयव कमजोर व शक्तिहीन हो जाते हैं, तो एक दिन शरीर गिरने लगता है। आत्मा रूपी 'सैल' को उसे (पुराने शरीर को) छोड़ना ही पड़ेगा और दूसरे शरीर में आत्मा रूपी 'सैल' चला जाएगा। दूसरा शरीर धारण कर लेगा। दूसरे शरीर में चला जाएगा, तो इसमें क्या परेशानी है? जब मानव एक फटा कपड़ा उतार कर दूसरा कपड़ा पहन लेता है तो मानव को इसमें क्या परेशानी होती है? सारी परेशानी अज्ञान के कारण होती है। जब ज्ञान हो जाएगा तो उसे कोई दुख नहीं होगा। ठीक है, एक शरीर खराब हो गया तो क्या हुआ, दूसरा शरीर मिल जाएगा। मानव को तो खुश होना चाहिए। नए कपड़े से तो मानव का मन खुश होता ही है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gjA
gj jke gj jke jke jke gj gjAA

ध्यान दीजिए! शास्त्र का कहना है कि धन का एकमात्र फल है धर्म। धन, धर्म में लगाना चाहिए। लेकिन धन केवल कुटुंब में लग जाता है। उससे कोई फायदा नहीं। धर्म में लगेगा तो वह धर्म

तुम्हारा साथ देगा क्योंकि धर्म से ही मानव का स्वभाव, भगवान् की ओर अग्रसर होता है। धन से सुख, साधन स्वतः ही होता रहता है। जहाँ धन, धर्म में लगता रहता है वहाँ लक्ष्मी विराजमान रहती है। वहाँ पर सब प्रकार की रिद्धि, सिद्धि और सुख सुविधाएँ विराजमान रहती हैं। जहाँ पर मानव धन को धर्म में नहीं लगाता है, वह धन उसे बुरे काम में लगा देता है। शराब पीता है, जुआ खेलता है, अदालतों में चक्कर काटता है, वेश्यागमन करता है आदि–आदि कुकर्मों में वह धन लग जाता है और अंत में नरक की प्राप्ति करा देता है। ऐसा कलियुग में अक्सर होता रहता है। क्योंकि कलियुग में संतानें राक्षस प्रवृत्ति की होती हैं। 99% राक्षस होते हैं केवल 1% ही सदाचारी प्रवृत्ति के होते हैं। कलियुग में खानपान जहरीला होता है। मानव, मानव को जहर खिला रहा है। लोगों का जैसा मन, वैसा कर्म होता है। दया नाम की कोई चीज भी नहीं होती। बिना कारण ही मानव, मानव को मार देता है। जिसकी राज्य में कोई सुनवाई भी नहीं है। पैसा देकर स्वतंत्र हो जाते हैं। गरीब मारा जाता है। स्त्रियाँ उच्छृंखल वृत्ति की हो जाती हैं, किसी का कहना नहीं मानती हैं। मनमाने ढंग से जीवन चलाती रहती हैं। पुरुष उसका गुलाम बन जाता है। स्त्रियाँ मेरे से नाराज नहीं हो, जैसा शास्त्र में लिखा है, वही बता रहा हूँ। हमारा शास्त्र ही ऐसा बोल रहा है अतः कोई नाराज न हो। सती स्त्री गहने बिना रहती है और कुलटा स्त्री, गहनों से लदी रहती है।

यह कलियुग का ही प्रभाव है। कोई क्या कर सकता है? जो हो रहा है, भगवान् की प्रेरणा से ही हो रहा है। किसी का भी इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि कलियुग को तो भगवान् ने ही बनाया है। कलियुग में ऐसा ही होगा। भाई, भाई को नहीं चाहता। आप स्वयं देख लो, ससुराल में सालों की सलाह से कर्म होते हैं पर भाई से सलाह नहीं लेंगे। परिवार दुश्मन बन जाता है और अन्य सभी सगे बन जाते हैं। कलियुग में सभी मर्यादाएँ समाप्त हो जाती हैं। यहाँ तक कि मौसम भी बदल जाते हैं।

भगवान् बोल रहे हैं, "जिस प्रकार देह दृष्टि से जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज यह चारों प्रकार के प्राणी पंचभूत मात्र हैं, अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश से निर्मित हैं। उसी प्रकार संपूर्ण जीवों में आत्मा को एवं आत्मा में अनन्य भाव से अनुगत देखें तो सब में भगवान् की आत्मा है। सब बराबर हैं। कोई छोटा बड़ा नहीं है। जिस प्रकार एक ही अग्नि पृथक्–पृथक् आश्रयों में उनकी विभिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न आकार की दिखाई देती हैं। उसी प्रकार यह देव मनुष्यादि शरीरों में रहने वाला, एक ही आत्मा अपने आश्रयों के गुण भेद के कारण, भिन्न–भिन्न प्रकार का दिखाई देता है। भैंस में भी आत्मा है। उसका आकार अलग है। गाय में भी आत्मा है, उसका आकार अलग है। ऊँट में भी आत्मा है, हाथी में भी आत्मा है, चिड़िया में भी आत्मा है, एक कीड़े में भी आत्मा है। लकड़ी जैसे जलती है, वैसा ही लकड़ी का रूप बन जाता है। उसी तरह आत्मा बन जाती है। अतः भक्त, भगवान् की कृपा से, इस माया को जीतकर अपने स्वरूप, आत्मा में स्थिर हो जाय।"

भगवान् कहते हैं, "हे उद्धव! जो लोग अपने संपूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़ कर, मेरी उपासना करते हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार मुझे ही अपने चित्त और कर्म समर्पण करने वाले अकर्ता एवं समदर्शी पुरुष से बढ़कर कोई प्राणी नहीं दिखता है। अतः यह मानकर कि जीव रूप अपने अंश से साक्षात् भगवान् ही सब से अनुगत है, इन समस्त प्राणियों को मन से प्रणाम करें क्योंकि सभी में भगवान् ही आत्मा स्वरूप बैठे हैं। सभी का आदर करते हुए छोटा बड़ा न समझें। हाथी भी वही है, चींटी भी वही है। सभी को समान दृष्टि से देखें क्योंकि सब में मैं ही आत्मा रूप में विराजित हूँ। यह भेदभाव ही जीव को अधोगति में गिराता है।" यही तो सत्संग है, जिससे आँखें खुलती हैं। जो कुछ भाग्य से भगवान् ने दिया है, उसी में संतोष रखकर अपना जीवन यापन करता रहे तो इसके पास दुख की छाया भी नहीं आ

सकती है। भगवान् कह रहे हैं, "जो किसी जीव को सताता है, वह मुझे ही सताता है।" तभी तो कहा जाता है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा कोई नहीं कहता कि शरीर को मत सताओ।

जो सब का आश्रय होने के कारण, समस्त प्राणियों में रहकर प्राणियों द्वारा, प्राणियों का संहार करता है वह जगत् का शासन करने वाला, ब्रह्मा, शिव का भी प्रभु, भगवान् 'काल' किए का फल देने वाला विष्णु है। इसका न कोई मित्र है न कोई शत्रु है। न तो कोई सगा–सम्बन्धी है। यह सदा सजग रहता है। जो धर्म शास्त्रों को नहीं मानता है, उन प्रमाद में पड़े हुए प्राणियों पर आक्रमण करके इनका संहार करता रहता है। ऐसे आदमी मारे जाते हैं, एक्सीडेंट (दुर्घटना) से चकनाचूर हो जाते हैं। इसी के भय से वायु चलती है, इसी के भय से इंद्र वर्षा करता है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से तारे चमकते हैं और इसी के भय से पृथ्वी स्थिर रहती है। इसी के भय से नदियाँ बहती हैं, इसी की वजह से समुद्र अपनी मर्यादा के बाहर नहीं आता। पृथ्वी पर तीन भाग जल है और एक भाग धरती है। इसी के भय से औषधियों के सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय–समय पर फल–फूल धारण करती हैं। ऐसे भगवान् कहते हैं, "मेरे डर से काल और महाकाल भी थरथर काँपते हैं लेकिन मैं भक्त से थरथर काँपता हूँ। भक्त मेरा शिरोमणि है, मैं भक्त से बहुत छोटा हूँ, भक्त मेरा पूजनीय है।" कहने का अर्थ यह है कि भगवान् काल के डर से सभी अपनी–अपनी मर्यादा में रहते हैं। यह अविनाशी काल स्वयं अनादि है, किंतु दूसरों का आदि कर्ता है। स्वयं अनंत होकर भी दूसरों का अंत करता रहता है। यह पिता से पुत्र की उत्पत्ति करवाता है। सारे जगत् की रचना करता रहता है और अपनी संहार शक्ति मृत्यु के द्वारा, यमराज को भी मरवा कर, उसका भी अंत कर देता है।

लेकिन भगवान् से तो यह काल थरथर काँपता रहता है। भगवान् केवल भक्त से ही काँपते हैं, अन्य किसी प्राणी से नहीं काँपते। अतः जगत् में सबसे बड़ा महत्वशील भगवान् का भक्त ही

है। भक्तों से लीला हेतु ही भगवान् धरातल पर अवतार लेते हैं और दूसरा कोई कारण नहीं है। वह तो भौहों (भृकुटि) मात्र के इशारे से ही सबको मार सकते हैं, भौहों के इशारे से ही भूकंप ला देंगे। सब पृथ्वी के अंदर घुसा कर छिपा सकते हैं। भौहों मात्र से ही भगवान् चर–अचर सभी प्राणियों का संहार कर सकते हैं।

जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़ाया जाने वाला बादल समूह, इसके बल को नहीं जानता। उसी प्रकार जीव भी बलवान काल की प्रेरणा से भिन्न भिन्न अवस्थाओं तथा योनियों में भ्रमण करता रहता है, किंतु उसके प्रबल पराक्रम को नहीं जानता। प्राणी जिस–जिस अभिलाषा को पूरा करने की कोशिश करता है, उसे काल नाश कर देता है। जिसके लिए प्राणी को बहुत दुख होता है। इसका कारण है कि यह प्राणी मंदमति है, मूर्ख है। अपने नाशवान शरीर को ही सदा सँवारता रहता है, जो कि अनित्य है। अपने सम्बन्धियों के घर, खेत, धन आदि को मोह के कारण नित्य मानता है। जिस जिस योनि में जन्म लेता है, उसी में मग्न रहता है। यही तो इसका अज्ञान है।

एक बार नारदजी वैकुण्ठ में भगवान् के पास गए। भगवान् ने पूछा, "नारदजी! तुम सभी जगह जाते रहते हो तो जगत् का क्या हाल है?" नारद जी बोले, "भगवान्! कोई सुखी नहीं है, सभी दुखी ही दुखी हैं।" भगवान् ने कहा, "नारद! अपने कर्मों से सभी दुखी ही रहेंगे। कोई किसी को दुख नहीं देता, अपना किया हुआ शुभ–अशुभ कर्म ही दुख का कारण है।" नारद जी बोले, "भगवान्! आप तो दयानिधि हो। सब को वैकुण्ठ में ले आओ न।" भगवान् बोले, "नारद! कोई भी वैकुण्ठ में आना नहीं चाहता।" नारद जी बोले, "भगवान्! ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि वैकुण्ठ में कोई न आना चाहे, यह तो सुख का प्रधान स्थान है। कौन नहीं आना चाहेगा?" तो भगवान् ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें विश्वास नहीं है, तो जाओ। जो यहाँ आना चाहे, उसे लेकर आ जाओ।"

नारदजी ने उत्तर दिया, "मैं अभी जाता हूँ।" नारदजी पृथ्वी पर आए, सोचा कि जो अधिक दुखी हो, उसे जाने में क्या परेशानी

होगी? वह तो जाना ही चाहेगा और नारद एक 80 साल के बूढ़े के पास गये, जो खटिया पर पड़ा–पड़ा खाँस रहा था। नारदजी ने सोचा कि यह तो मना नहीं करेगा। यह तो अवश्य जाएगा, क्योंकि बड़ा ही दुखी हो रहा है। इसे ही बोलते हैं। नारदजी ने पूछा, "बाबा! वैकुण्ठ चलोगे?" बूढ़ा बोला, "अरे! वहाँ कौन नहीं जाना चाहेगा, मैं जरूर चलूँगा। वैकुण्ठ तो समस्त सुखों का स्थान है।" नारदजी बोले, "अभी चलो, मैं तुम्हारे लिए विमान लेकर आता हूँ। तुम तैयार रहना।" बूढ़ा बोला, "नारदजी! सुनो, मेरी बात सुनो। अभी तो मैं नहीं जा सकता, क्योंकि, मैं अपनी पोती की शादी करके ही जा सकता हूँ और मेरे पोते के संतान होने वाली है। उसका मुख देखकर ही मैं जाऊँगा। नारदजी! अभी विमान मत लाना। मैं अभी नहीं जाऊँगा। 6 साल के बाद में आना, मैं चलूँगा।" नारदजी बोले, "अरे! कैसा मूर्ख है जो वैकुण्ठ नहीं जाना चाहता। फिर तू रोता रह यहाँ पर।"

नारदजी सोचने लगे कि भगवान् ने सच ही कहा था, कोई नहीं आना चाहता। तो अब वह भगवान् को क्या मुँह दिखलायेंगे? अब तो बड़ी मुसीबत में फँस गये। बैठ कर विचार किया कि प्राणियों में सूअर सबसे गंदा होता है। सदा विष्ठा खाता रहता है, वैकुण्ठ के लिए राजी हो जाएगा। फिर नारदजी, एक बूढ़े सूअर के पास गये, जो एक गंदे गड्ढे में पड़ा हुआ था। पूरा शरीर गंदगी और मिट्टी में सना हुआ था। नारदजी ने उसके पास जाकर बोला, "सूअर महाशय! मैं तुम्हें वैकुण्ठ ले जाने आया हूँ। भगवान् ने तुम्हें लेने भेजा है। तो बताओ, वैकुण्ठ चलोगे?" सुअर गड्ढे से उठा और अपने शरीर को थरथर करके झाड़ा। नारद जी के भी सारे कपड़ों को छींटों से भर दिया और उनके कपड़े खराब कर दिए। नारदजी मन में नाराज तो हुए कि इसने उन्हें पूरी तरह गंदा बना दिया लेकिन भगवान् का आदेश है, इसे ही वैकुण्ठ ले जायेंगे, यह सोच कर नारदजी बोले, "अभी तुम्हारे लिए विमान लाता हूँ, तुम स्नान करके तैयार हो जाओ।" सूअर बोला, "नारदजी! मैंने भी सुना है कि वैकुण्ठ जैसा सुख का स्थान कहीं पर नहीं है। पर क्या मुझे वहाँ पर खाने हेतु विष्ठा मिलेगी?" नारद जी बोले, "अरे! गंदे, बदमाश! वहाँ ऐसी गंदी

चीज नहीं मिल सकती।" तो सूअर बोला, "नारदजी! फिर मैं नहीं जा सकता।" अब नारदजी तो बहुत परेशान हो गए। सूअर बोला, "आप जाओ। मुझे आपसे कोई मतलब नहीं है। अब मेरे पास मत आना।"

अब तो नारदजी हैरान हो कर सोचने लगे कि अब वह वापस कैसे जायें? भगवान् उन्हें क्या कहेंगे? उन्होंने, भगवान् की बात पर विश्वास नहीं किया तो अब क्या जवाब देंगे?

भगवान् की माया ही ऐसी है। नाली का कीड़ा भी अपने को खुश ही मानता है। जैसे मल का कीड़ा, मल में ही मग्न रहता है। अपनी योनि में कोई दुख महसूस नहीं करता। गंदी चीजें खाकर भी शरीर में खून संचारित रहता है क्योंकि भगवान् ने जगत् की सभी खान–पान की वस्तुओं में अपनी–अपनी योनि के अनुसार खाद्य पदार्थ बनाकर रख छोड़े हैं।

गिजाई (कीड़ा), गिंडार (कीड़ा), मेंढक आदि मिट्टी ही खा कर जीवन धारण करते हैं। मिट्टी खाने वाले अनंत जीव पृथ्वी से जन्म लेते रहते हैं। इनकी आयु लगभग एक सप्ताह की होती है। साँप भी मिट्टी खाकर ही जीवन धारण करता है।

इस मूर्ख मानव की दशा पर ध्यान देकर सुनने की कृपा करें। यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशुधन और बंधुओं से अपने को बहुत बड़ा भाग्यशाली समझता है। यह है मानव की दशा। उनके पालन–पोषण की चिंता से, इसके सम्पूर्ण अंग जलते रहते हैं, अर्थात् दुर्वासनाओं में शराब, माँस–भक्षण एवं दूषित पदार्थ खाने से, दूषित हृदय होने के कारण उन्हीं के लिए, निरंतर पाप की कमाई करता रहता है। स्त्रियों के कपट–पूर्ण व्यवहार में, बच्चों की मीठी–मीठी तोतली बोली में, मन और इन्द्रियाँ फँस जाने से, गृहस्थ पुरुष घर के दुख–प्रधान कपट–पूर्ण कर्मों में लिप्त हो जाता है। किसी कारणवश, किसी काम में सफलता मिल भी गई तो फूला नहीं समाता। हिंसावृत्ति से कर्म करता रहता है। अपने परिवार हेतु तो इसे घोर, दुखदाई नरकों में जाना ही पड़ता है। कोई इसके साथ में नहीं

जाता। अकेला ही जाता है। यमदूत इसके शरीर पर कोड़े बरसाते हैं, तो बेहोश हो जाता है। बार–बार प्रयत्न करने पर भी इसकी जीविका नहीं चलती, तो चोरी करता है। जिससे इसे राजकीय दंड भोगना पड़ता है।

जब परिवार वाले इसे असमर्थ समझते हैं, तो कोई भी इसकी इज्जत, आदर नहीं करते, जैसे बैल बूढ़ा हो जाता है तो किसान भी उसे घर से बाहर निकाल देता है, घर वाले बूढ़े मानव को वृद्धाश्रम में डाल आते हैं, फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता। यही तो माया है। बुढ़ापे में इस का रूप बिगड़ जाता है। आँखों से दिखाई नहीं देता, दाँत उखड़ जाते हैं, खाया नहीं जाता, घुटने जवाब दे देते हैं, भूख खत्म हो जाती है, अग्नि मंद पड़ जाती है, रोग इसे घेर लेते हैं। परिवार वाले इलाज तक नहीं कराते हैं, क्योंकि पैसा खर्च होता है। कुत्ते की तरह से अपमान पूर्वक टुकड़े खाकर जीवन चलाता है।

श्वास–प्रश्वास की क्रिया कफ से रुक जाती है। साँस लेना मुश्किल हो जाता है, बोल सकता नहीं। अंदर ही अंदर दुखी होता रहता है, फिर भी इसको कोई वैराग्य नहीं होता। कोई पानी भी नहीं पूछता। गला सूख जाता है, बड़ी मुश्किल से खाँसता है। आँखों से दिखाई नहीं देता। बिस्तर में ही पेशाब और गंदे में पड़ा रहता है। बिस्तर से बदबू आती रहती है, कोई भी इसके पास बैठता नहीं है। अंत में इसको लेने हेतु दो यमदूत आते हैं, जो इतने भयंकर होते हैं कि यह डर की वजह से मल–मूत्र कर देता है। इसके गले में फाँसी लगाकर घसीटते हैं, ऊपर से कोड़े मारते हैं तो यह चिल्लाता है। अंत में बेहोश हो जाता है। तब तपती हुई बालू से इसे जाना पड़ता है। प्यासा होने पर इसे गर्म तेल पिलाते हैं। बड़ी मुश्किल से यह यमलोक पहुँचता है जो निन्यानबे हजार योजन दूर है। जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मर जाता है। अपनी करनी–धरनी का, पाप–पुण्य का फल भी अकेला ही भोगता है।

जिस परिवार को जीव अपना समझता है, जिनके लिए जीव पाप से कमाई करता है, उसके परिवार वाले उसके धन को लूटते

रहते हैं और अपना काम बनाते रहते हैं। कोई भी पाप का भाग नहीं लेता। स्वयं को ही भोगना पड़ेगा। मूर्ख मानव पुत्र होने पर खूब पैसा खर्च करता है। फिर दष्टौन (पुत्र होने के बाद समारोह) में पैसा लगाता है, पढ़ाई में पैसा लगाता है, फिर शादी में अनाप–शनाप पैसा खर्च करता है। घर पर बेटे की बहू लेकर आता है। थोड़े दिन बाद बहू इसके बेटे को काबू कर लेती है और माँ–बाप से अलग कर देती है। अलग जा कर रहती है और आनंद भोगती है। बेटा इतना नहीं समझता कि उसके माँ–बाप ने उसके लिए क्या–क्या न्योछावर नहीं किया, भूल जाता है। यही तो भगवान् की माया है। लेकिन ऐसी संतान कभी सुखी नहीं रह सकती। इसके बेटे इसकी, इससे भी बुरी गति करेंगे क्योंकि हृदय में अंदर बैठा परमात्मा सब कुछ देख रहा है। जैसा उसने अपने माँ–बाप के साथ किया है, उससे भी अधिक इसकी संतान उसके साथ बुरा करेगी क्योंकि जो भी प्रेरणा होती है, आत्मा–परमात्मा के बिना नहीं हो सकती। जैसा करोगे वैसा भरना पड़ेगा। आज हँस रहा है तो कल ही रोना पड़ेगा। जो अपने धर्म से विमुख है, सच पूछिए तो वह अपना निजी स्वार्थ ही नहीं जानता। उसे स्वप्न में भी संतोष नहीं होने वाला।

साधु की पहचान है, जो पैसे से तथा स्त्री जाति से दूर रहता है। वही सच्चा साधु है। कहते हैं कि मठ मंदिर के लिए पैसा चाहिए। भगवान् देखते नहीं हैं क्या? जो पैसे का प्रबंध नहीं करेंगे। पूर्ण श्रद्धा नहीं होने से ही ऐसा सोचते हैं। वरना पैसे की कमी नहीं है। हमारे यहाँ बिना पैसे खूब काम चलता है। भगवान् अपने आप किसी को प्रेरणा करके दे देते हैं। उनको पैसे माँगने की कोई जरूरत ही नहीं है, हमारे यहाँ कई साधु संत हैं, जो कुछ नहीं माँगते हैं। दुनिया अपने आप ही देकर चली जाती है। ट्रक के ट्रक बिना माँगे भरे हुए आते हैं, और गायों की सेवा होती रहती है। और पैसे की भी कोई कमी नहीं रहती है। अगर पूर्ण श्रद्धा भगवान् में होती है, तो किसी चीज की कमी नहीं रहती।

हरिनाम : एक अमर औषधि

50

8 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति का आशीर्वाद करें।

जिन महात्माओं के प्राण, इंद्रिय, मन, बुद्धि समस्त चेष्टाएँ बिना संकल्प के होती हैं, वह देह में रहकर भी सत्, रज, तम गुणों से मुक्त रहते हैं। उन ज्ञानवान पुरुषों को चाहे हिंसक प्राणी पीड़ा पहुँचाएँ, चाहे पूजा करें। न तो सताने से दुखी होते हैं, न ही पूजा करने से सुखी होते हैं। ऐसे उच्च कोटि के महात्मा होते हैं। वह समदृष्टि महात्मा सत्, रज, तम गुण से ऊपर उठ गए हैं। वह न अच्छे काम करने वाले की बड़ाई करते हैं और न बुरा काम करने वाले की बुराई करते हैं। क्योंकि उनको मालूम है कि प्राणी के अनेक जन्मों के कर्म प्रेरित करके अच्छा–बुरा कर्म करवाते रहते हैं। उनकी ज्ञान–दृष्टि सब कुछ बता देती है। महात्मा न तो कोई अच्छा काम करने वाले की प्रशंसा करते हैं, न ही बुरा काम करने वाले को झिड़कते हैं। यह व्यवहार में समान दृष्टि रखकर आनंदमग्न रहते हैं। इन महात्माओं का स्वभाव होता है, जड़ के समान, जैसे कोई पागल हो। इस प्रकार विचरण करते रहते हैं जैसे कि जड़भरत थे। जो श्रीमद्भागवत में लिखा है। ऐसी अवस्था उच्चकोटि के संतों की होती है। माया इनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। यह भगवान् से हृदय से एक हो गए होते हैं। भगवान् से एकनिष्ठ होते हैं। यह साधारण जनता को बोलते हैं कि हरिनाम ही यह अवस्था प्रकट करता है।

यदि हरिनाम का प्रभाव अनुभव करना चाहो तो :

l|fefjv uke :i fcu| n[kA vkor ân;| lug fcl"kAA

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 4)

आप नाम को जपोगे, आपने भगवान् को तो देखा नहीं है। मन से जपोगे तो प्रेम से वह हृदय में प्रकट हो जाएगा। फिर कहते हैं कि यदि हरिनाम का प्रभाव जानना चाहते हो तो :

tkuk pgfg| x< xfr t\ÅA uke thg| tfi tkufg| r\ÅAA

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

जीभ से नाम जप करके देख लो। हरिनाम का प्रभाव तुम्हें मालूम पड़ जाएगा। कितनी सरलता और सुगमता से हरिनाम में लगने की शिक्षा देते रहते हैं। कहते हैं :

Ñr ;|x =rk }kij i|tk e[k v# tkxA
tk xfr gkb lk dfy gfj uke r| ikcfg| ykxAA

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

सतयुग, त्रेता, द्वापर में पूजा होती है, यज्ञ होते हैं, योग होते हैं, तपस्या होती है। लेकिन कलिकाल में तो कुछ नहीं करना पड़ता। घर बैठकर के हरिनाम जपते रहो। सर्दी लगे तो ओढ़ लो। गर्मी लगे तो पंखा चला लो। भगवान् ने सब सुविधाएँ दे रखी हैं। बाकी युगों में प्राणी को कितना प्रयास करना पड़ता था। लेकिन कलियुग में तो कुछ नहीं करना पड़ता। शुद्धि–अशुद्धि का भी कोई ध्यान नहीं है, कोई नियम नहीं है। हरिनाम में मन लगे या न लगे तो भी जापक का उद्धार तो निश्चित है। बोला भी है :

Hkko d|Hkko vu[k vkyl g|A uke tir exy fnfl n lg|AA

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

चारों दिशाओं में मंगल हो जाएगा, आनंद हो जाएगा। कलियुग में कितना बड़ा गुण है। अन्य युगों में सब तरह के नियम हैं। उनकी अवहेलना करने से कुछ उपलब्धि नहीं हो पाती। कलियुग में कितना

सरलतम उपाय भगवान् ने बताया है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "प्यारे उद्धव! जो मानव वेदों का पारगामी विद्वान् हो, परंतु परब्रह्म ज्ञान से शून्य हो तो उसके परिश्रम का कोई फल नहीं होता। वह तो वैसा ही है जैसे बिना दूध देने वाली गाय को पालने वाला। बिना दूध देने वाली गाय, व्यभिचारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, दुष्ट पुत्र, सुपात्र उपलब्ध होने पर भी न दिया हुआ दान, धन, मेरे गुणों से रहित वाणी व्यर्थ है। इनकी रखवाली करने वाला दुख पर दुख भोगता रहता है।" भक्त लोग ध्यान से सुनें! यह श्रीमद्भागवत महापुराण की वाणी है। इसलिए, "हे उद्धव! जिस वाणी में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप मेरी पावन लीलाओं का वर्णन न हो, वह वाणी बेकार है। बुद्धिमान मानव को ऐसी वाणी का आदर नहीं करना चाहिए न श्रवण करें। न ही उच्चारण करें। हे उद्धव! जैसे कि ऊपर बोला गया है, विचार के द्वारा आत्मा में जो अनेकता का भ्रम होता है, उसे दूर कर दे और प्यारे परमात्मा में अपना मन लगा दे तथा संसार के व्यवहार से दूर हो जाए।"

"उद्धव! यदि तुम मेरे में मन को न लगा सको, तो सारे कर्म निस्वार्थता से मेरे लिए करो। तीन प्रार्थनाएँ पहले भी बता रखी हैं कि निस्वार्थता से सारे काम भगवान् के लिए करो। मेरी कथाएँ समस्त लोकों को पवित्र करने वाली हैं। श्रद्धा के साथ उन्हें सुनना चाहिए। बार–बार मेरे अवतार और लीलाओं का गान, स्मरण और चर्चा दूसरों के साथ करते रहना चाहिए। मेरे आश्रित रहकर, मेरे लिए ही सारे कर्म करते रहना चाहिए। किसी में गुण–दोष नहीं देखे। जो भगवान् ने दिया है, उसी में सब्र रख कर जीवन यापन करता रहे। जो ऐसा करता है, उसे मेरी प्रेममय भक्ति उपलब्ध हो जाती है। वह मेरी सन्निधि को अनुभव करता है। जो सोचता है कि मेरी बात भगवान् सुन रहे हैं, उसका अंतःकरण शीघ्र शुद्ध हो जाता है। यह सब उद्धव को भगवान्, भगवद् प्राप्ति के रास्ते बता रहे हैं।"

अब उद्धव ने पूछा, "कृष्ण भक्त को कैसे पहचानें? उसका क्या लक्षण होता है? उसका स्वभाव कैसा होता है? और ऐसे भक्त की

सेवा कैसे करनी चाहिए? यह मुझे बताइए। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ। मुझे भक्त का तथा भक्ति का रहस्य खुलासा करके बता दीजिए कि भक्त किस प्रकार जीवन यापन करता है। आप ही भक्त का लक्षण बता सकते हैं।" भगवान् कृष्ण ने कहा, "हे प्यारे उद्धव! भक्त का पहला लक्षण है कि उसके पास बैठने से अंतःकरण में आनंद का अनुभव होने लगता है, वहाँ से उठने का मन नहीं करता, ऐसा भक्त किसी प्राणी को दुख नहीं देता। संकट आने पर घबराता नहीं है क्योंकि उसकी समस्त वृत्ति भगवान् के चरणों में ही रहती है। उसके जीवन का सार है सत्य। उसका मन कपट रहित होता है। उसके अंतःकरण में कभी भी पाप वासना नहीं आती। सब को आदर देता है। दया की मूर्ति होता है। सबका भला चाहने वाला होता है। निर्लोभी होता है। सब कुछ देना चाहता है, लेने की किंचित् मात्र भी भावना नहीं होती। कुछ नहीं लेना चाहता, केवल देना चाहता है। सरल, कपट रहित स्वभाव का होता है। समदर्शी स्वभाव का होता है। उसकी बुद्धि कामनाओं से दूषित नहीं होती। संयमी और मीठा बोलने वाला होता है। और संग्रह–परिग्रह से सदा दूर रहता है।

जितनी जरूरत है, उतने में ही संतोष रखता है। किसी भी वस्तु के लिए कोई चेष्टा नहीं करता। जो कुछ उसके पास है, उसी में जीवन यापन करता रहता है। सदा सच बोलता है। खुशामद नहीं करता, स्पष्ट बोलने वाला होता है, चाहे उससे कोई भी नाराज क्यों न हो जाए। उसे कोई परवाह नहीं रहती। सच और स्पष्ट बोल देता है। थोड़ा भोजन करता है। नारी जाति से बहुत दूर रहता है। नारी जाति को माँ समझता है। उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। उसको मेरा ही पूरा भरोसा रहता है।" यह भक्त के लक्षण, भगवान्, बता रहे हैं। "जो उसका बुरा करता है या बुरा सोचता है, उसका भी वह कल्याण ही चाहता है। भूख–प्यास, शोक–मोह और जन्म–मृत्यु सब उसके वश में रहते हैं। काल, महाकाल भी उससे डरता रहता है, क्योंकि वह भगवान् का शरणागत भक्त है। ऐसा भक्त किसी से अपना सम्मान नहीं चाहता। अन्य को सदा सम्मान देता रहता है। मेरे

सम्बन्ध में बातें दूसरों को समझाने में बड़ा कुशल और निपुण होता है एवं सभी के साथ मित्रता का व्यवहार करता रहता है। इसके हृदय में करुणा भरी रहती है। मेरे गूढ़ तत्व का, इसे पूरा ज्ञान होता है।"

तो प्रिय उद्धव! मैंने जो यह शास्त्रों के रूप में, मानव को धर्म का उपदेश दिया है, उसको पालन करने से मन शुद्ध हो जाता है और न मानने से नरक की उपलब्धि होती है। अतः मेरा सच्चा भक्त मन में विक्षेप समझकर ऐसे न मानने वाले से दूर रहता है और मेरे भजन में लगा रहता है। हे उद्धव! ऐसे ही को परम संत समझो। ऐसे को सच्चा संत समझो। ऐसे भक्त का, जो अनिष्ट करना चाहता हो, उसकी 28 पीढ़ियां नरक में जाती हैं।"

"मैं कौन हूँ? कितना बड़ा हूँ? कैसा हूँ? इन बातों को जाने या न जाने, किंतु जो अनन्य भाव से मेरा भजन करता रहता है, हे उद्धव! मैं ऐसे भक्त के आश्रित रहता हूँ। उसकी आदेश की इंतजार करता रहता हूँ कि यह मुझे कोई सेवा करने के लिए बोलें। यदि कभी बोल भी देता है, तो मैं अति प्रसन्नता से उसके आदेश का पालन करता हूँ। मैं, किसी से नहीं डरता, पर ऐसे भक्त से तो मैं थरथर काँपता हूँ। प्यारे उद्धव! काल और महाकाल मुझसे थरथर काँपता है, जो मेरे भक्तजनों का दर्शन, स्पर्श, पूजा सेवा, सुचर्चा, स्तुति और प्रणाम करें, साक्षात् दण्डवत् करें, उसे मैं हृदय से प्यार करता हूँ। मेरी कथा सुनने में श्रद्धा और विश्वास रखे एवं निरंतर मेरा नाम जपता रहे, जो कुछ मिले, वह मुझे भेंट करे। मेरे दिव्य जन्म और कर्म की चर्चा अन्य को सुनाएँ। मैं, ऐसे भक्तों से आनंदमग्न होता हूँ। लक्ष्मी और बलराम जी भी मुझे इतने प्यारे नहीं हैं, जितना प्यारा मुझे यह भक्त होता है। मैं ऐसे भक्त का चिंतन एक पल भी नहीं छोड़ सकता। मैं भक्त का ही चिंतन करने बैठता हूँ। न ही मुझ में ऐसी सामर्थ्य है कि मैं इसे छोड़ सकूँ। मेरे पास कोई शब्द नहीं है। ऐसे भक्त ने मुझे प्रेम की रस्सी से बाँध रखा है। मैं उसके आश्रित रहता हूँ। और किसी के आश्रित नहीं हूँ।"

यह देखा जाता है कि देवताओं में और राक्षसों में लड़ाई और युद्ध होते ही रहते हैं। कलियुग में रोग ही राक्षस हैं और दवाइयाँ ही देवता हैं। यह दोनों आपस में लड़ते ही रहते हैं। लेकिन इस युग में देवता कमजोर रहते हैं। इनके ऊपर काल, समय अनुकूल नहीं है और राक्षस रूपी रोग, इनका समय अनुकूल है। दमा, ब्लड प्रेशर, गठिया, कैंसर आदि शक्तिशाली राक्षस हैं। इससे शक्तिशाली देवता भी हार जाते हैं। इसको जीतने की एक ही रामबाण औषधि है, केवल हरिनाम। हरिनाम बड़ा शक्तिशाली है। इसीलिए हरिनाम के पास आने से डरते रहते हैं, कि हम इसके शरीर में जाएँगे तो यह हरिनाम हमें जला कर भस्म कर देगा। इसलिए रोग, हरिनाम के पास नहीं आते हैं। कहा गया है।

gjuke gjuke gjukeo doyeA
dyk ukLR;o ukLR;o ukLR;o xfrjU;FkkAA

(चै. च. आदि 17/21)

तीन बार बोला है, कलियुग को जीतने का एक ही बलिष्ठ देवता है वह है हरिनाम। दूसरा बोला गया है :

dfy;x doy uke vèkkjkA lfej lfej uj mrjfg ikjkAA

fcclg tkluke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

जबरन में भी जिसके मुखारविंद से हरिनाम निकल जाए तो अनेक जन्मों के रचे–पचे, गहरे रंग के पाप समूल जलकर भस्म हो जाते हैं।

lue[k gkb tho ekfg tcghA
tUe dkfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

भगवान् कहते हैं कि, "जो मेरा नाम लेता है, उसके अनेक जन्मों के पाप समूह भस्म कर देता हूँ।" अतः कलियुगी राक्षस रूपी रोगों

का नाश करने हेतु, बलिष्ठ भगवद् नाम है क्योंकि भगवान् ने गारंटी ली है कि "चिंता मत करो। मेरे नाम की शरण में आ जाओ।" क्यों? कलियुग रूपी दारुण दुख से छुटकारा मिल जाएगा। संसार की रचना ही दो से रची गई है वरना संसार हो ही नहीं सकता। जैसे सुख–दुख है, गुण–अवगुण हैं, दिन–रात है, शुभ–अशुभ है, जन्म–मरण है आदि–आदि, दो से बने हैं। जिस मानव को अपने को आनंद में रखना हो तथा भगवान् को प्रसन्न करना हो तो भक्ति की पहली क्लास में बैठना होगा। भक्ति की पहली क्लास एल.के.जी. है, जिसमें भर्ती माँ–बाप की सेवा से होती है। माँ–बाप चाहे विरोधी हों, आपके मन, भाव के विपरीत हों तो भी माँ–बाप की सेवा, भक्ति के लिए परमावश्यक है। क्यों परमावश्यक है? क्योंकि तुम माँ–बाप के कर्जवान हो, माँ–बाप ने तुम्हारे लिए तन, मन, वचन और धन न्योछावर किया है। उनका कर्जा, जब तक तुम नहीं चुकाओगे, तब तक तुम स्वप्न में भी सुखी नहीं रह सकते। क्या, कर्जवान कभी सुखी रह सकता है? सदा दुखी रहता है। शास्त्र बोल रहे हैं :

ufg nfjæ le n[k tx ekghA
lr feyu le l[k tx ukghAA

(मानस, उत्तर. दो. 120(ख) चौ. 6, गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर)

संत के मिलने पर कितना सुख होता है, इस के बराबर कोई सुख नहीं और जो गरीब होता है, उसके बराबर कोई दुख नहीं। भगवान् की तो सभी संतान हैं, देवता भी और राक्षस भी। राक्षस धर्म का नाश करते हैं। भगवान् से दुश्मनी करते रहते हैं। फिर भी भगवान् राक्षसों की जीत करवाते रहते हैं। कुपात्र बेटे को कोई माँ–बाप क्या घर से बाहर निकाल देता है? उसको भी घर में ही रखते हैं। माँ–बाप की सेवा करना संतान का सबसे बड़ा धर्म है। तभी शास्त्र बोलता है कि जिसको पुत्र नहीं होता, वह माँ–बाप नरक में कष्ट भोगता है। जैसे चित्रकेतु का वर्णन, श्रीमद्भागवत में आता है। चित्रकेतु की करोड़ रानियाँ थीं, लेकिन सभी बाँझ थीं। महात्मा की कृपा से पुत्र भी हुआ। किंतु राजा के पास रहा नहीं। राजा पूरे

संसार का मालिक था, परंतु पुत्र बिना गहरी चिंता में था कि अब भविष्य में उसे नर्क जाना पड़ेगा। अतः गृहस्थी में संतान होना परमावश्यक है। शादी होने के बाद संतान शीघ्र होने से, संतान का भार जल्दी टल जाता है, अतः मानव को भजन का समय मिल जाता है।

gj Ñ".k gj Ñ".k Ñ".k Ñ".k gj gj A
gj jke gj jke jke jke gj gj AA

बुढ़ापे की संतान मानव जन्म को व्यर्थ सा बना देती है। मानव उसी में फँस जाता है और भजन से वंचित रहता है। अतः मनुष्य जन्म बेकार चला जाता है। भगवान् राम बोल रहे हैं कि

ee xu xkor iyd ljhjkA xnxn fxjk u;u cg uhjkAA
dke vkfn en nHk u tkdA rkr fujrj cl e rkdAA

(मानस, अरण्य. दो. 15 चौ. 6)

djm lnk frUg d j[kokjhA ftfe ckyd jk[kb egrkjhAA

(मानस, अरण्य. दो. 42(ख) चौ. 3)

लेकिन यह ऊपर लिखी अवस्था कब आएगी? जब अपराध रहित, तीन लाख, हरिनाम नित्य होगा। तब मन, अहंकार रहित बन जाएगा। अपने आपको दिव्य (तुरीय) अवस्था का आनंद मिलने लगेगा, जिससे अच्छे स्वभाव स्वतः ही उदय हो जाएँगे। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा मन से भाग जाएगी। जितना भगवान् द्वारा कर्मानुसार उपलब्ध हो रहा है, उसी में संतोष रहेगा। किसी में गुण–दोष देखने का स्वभाव नहीं रहेगा। किसी के गुण–दोष नहीं देखेगा। जब हरिनाम करेगा तो भगवान् को अपने पास में रखेगा। मन स्थिर हो जाएगा। तीन प्रार्थनाएँ, उसके हृदय में बैठ जाएँगी। रात को सोते समय की, प्रातः जगने की और तीसरी स्नान करने के बाद की प्रार्थना कि मैं चर–अचर में आपकी मन मोहिनी आकृति देखूँ। सातवाँ स्वभाव होगा, संग्रह–परिग्रह उतना ही रखेगा जितने से उसका जीवन बसर हो जाएगा। उतना ही पास में रखेगा, ज्यादा बटोरेगा नहीं।

जापक कहता है कि मेरा हरिनाम में मन नहीं लगता। लगेगा कैसे? मन का झुकाव तो 80% संसार में है और केवल 20% भगवान् की ओर है। सबमें दोष देखता है। ऐसे स्वभाव का मानव, भक्ति पथ पर आगे नहीं जा सकता। ऐसे ही मृत्यु के पास पहुँच जाएगा। लेकिन प्रभु कृपा से अगला जन्म, मानव का ही होगा। जैसे चौथी क्लास पास करके आठवीं के स्कूल में जाना पड़ता है, फिर दसवीं के स्कूल में जाना पड़ता है। इसी कारण भक्ति में होने के कारण भगवान्, इसको फिर से मानव जन्म देते हैं। जो मानव, जीवन भर कभी भक्ति–पथ पर गया ही नहीं, उसे 80 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। क्योंकि 84 लाख में चार लाख मनुष्य योनियाँ होती हैं। अतः मनुष्य योनियों को कम करके 80 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। उसमें भी, जो मानव माँस, मदिरा खाता–पीता है, उसे नरक में जाना पड़ेगा। वहाँ नरक में पशु उसको खाएँगे। कई युगों तक उसको वहाँ भोग भोगना पड़ेगा। उसके बाद 80 लाख योनियों में आना पड़ेगा। नरक से 80 लाख योनियों में भोग भोगना पड़ेगा।

ऐसे कई कल्पों तक नर्क में भोग भोगना पड़ेगा तो अनेक कल्पों के बाद, केवल भगवद् कृपा से ही, जीव को मानव देह मिल जाये तो गनीमत है। वरना मानव जन्म सुदुर्लभ है। मानव विचार तो करता नहीं है। अंधा होकर सो रहा है। इसको ध्यान ही नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूँ? सारी उम्र उधेड़बुन में ही व्यतीत कर देता है। फिर मर कर, इसी में चक्कर पे चक्कर लगाता रहता है। कितने आश्चर्य की बात है। परंतु यदि, किसी संत की सेवा, अगर किसी जीव को उपलब्ध हो जाए, तब तो शीघ्र ही उसे मानव जन्म मिल जाता है। वरना तो जीव इन योनियों में ही चक्कर काटता रहता है। जो मानव देह में माँस, मदिरा खाता–पीता रहता है, उसे भगवान् मल का कीड़ा बना देते हैं। मल ही खाता रहता है या गंदी नाली में पड़ा–पड़ा, वहाँ का जल व खाद्य पदार्थ खाता रहता है। मायावश, उसी में खुश रहता है। माया भी ऐसे जीव को अंधा बना कर यातना देती रहती है। माया भगवान् की शक्ति है। इसको भगवान् ने यह

अधिकार दे रखा है कि जो मुझे नहीं मानता, उसे इन योनियों में दुखी करती रहो। वहाँ सुख की तो छाया भी नहीं है। मेरा तो आप सबके सामने प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद है। मैं अहंकार से या घमंड से नहीं लिख रहा हूँ। आप सबकी आँख खोलने के हेतु बताता रहता हूँ, ताकि आप सही मार्ग पर अपने जीवन में चल सको।

मैं 90 साल की आयु में चल रहा हूँ। रात में 12 बजे जाग जाता हूँ। न स्नान करता हूँ, न कुल्ला करता हूँ, बैठ कर हरिनाम आरंभ कर देता हूँ। चिंतन में नर–नारायण आश्रम (बद्रीनाथ) में चला जाता हूँ, जिसे उत्तराखंड में बद्रीनाथ धाम बोला जाता है। वहाँ पर, मेरे गुरुजी को साथ में ले जाकर, नर–नारायण कुंड में, श्री गुरुदेवजी को स्नान करवाता हूँ। स्नान के बाद नर–नारायण मंदिर में जाकर दोनों दण्डवत् प्रणाम करते हैं। फिर मंदिर की चार परिक्रमा लगाते हैं। फिर मैं, गुरुदेव के सामने, उनके चरणों में बैठकर, हरिनाम उच्चारण करता हूँ। जो भी भूतकाल में राजा–महाराजा हुए हैं, वे अपनी संतान को पृथ्वी का राज देकर, स्त्री पुरुष दोनों ही, बद्रीनाथ जाकर भजन द्वारा अपना शरीर छोड़ते हैं। पांडवों ने भी वहीं जाकर अपना शरीर छोड़ा था। नर–नारायण संसार के मंगल हेतु, तपस्या करते रहते हैं।

यह हरिनाम की असीम कृपा है जो 90 साल की उम्र में भी, कोई रोग नहीं है। ताकत भी 20 साल के युवक जैसी है। रात में 12 बजे से लेकर सुबह 6–7 बजे तक केवल हरिनाम करता रहता हूँ। न थकान होती है, न सुस्ती आती है, न शरीर में कहीं पर दर्द महसूस होता है। इसके बाद स्नान करता हूँ। 10 मिनट कुछ व्यायाम करता हूँ। इसके बाद हारमोनियम से, 1 घंटा, हरिनाम कीर्तन करता हूँ। फिर श्रीमद्भागवत महापुराण का पठन करता हूँ । श्रीमद्भागवत का 2 घंटे ध्यानपूर्वक पठन होता है। इसके बाद मंदिर में जाकर, संध्या आरती करता हूँ। इसमें अधिक देर नहीं लगती। लगभग, आधा घंटा, मंत्र जप हो जाता है। ब्रह्मगायत्री से लेकर कामगायत्री तक मंत्र जप करता हूँ। इसके बाद चैतन्य चरितामृत का 1 घंटा पठन–पाठन करता हूँ। फिर हरिनाम

जप आरंभ कर देता हूँ। इसके बाद हरिनाम करते हुए, थोड़ा सा महाप्रसाद खा लेता हूँ। फिर मैं अपनी कुटिया में आकर, आधा घंटा विश्राम कर लेता हूँ। इसके बाद हरिनाम और भागवत पठन शाम तक करता हूँ। मुझे 30 हजार पेंशन मिलती है। सारी पेंशन भगवान् की खुशी के लिए, चराचर प्राणियों के लिए खर्च कर देता हूँ। मैं जो भी रात–दिन कर्म करता हूँ, वह मेरे प्यारे भगवान् को सुख पहुँचाने हेतु ही करता हूँ। उनका आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है।

रात में दूध पीकर सो जाता हूँ। मैं बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, मैं बता रहा हूँ कि मेरी दिनचर्या कैसी है? तो आपको भी ऐसी दिनचर्या करनी चाहिए। ऐसी दिनचर्या करने से भगवान् के पास पहुँच जाओगे। हरिनाम करते हुए, श्री गुरुदेव का आदेश है कि अपनी दिनचर्या सबको बताओ, ताकि सभी, आपकी तरह से करने लगेंगे। इसीलिए यह दिनचर्या मैंने आपको बताई है, नहीं तो मुझे क्या जरूरत है बताने की। यह तो गुरुदेव ने कहा है कि सब को बताओ, ताकि तुम्हारे कहने से सभी करने लगेंगे। सबका भला होगा, इसलिए तुम को बताना चाहिए।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हरिनाम जप करने में आसन की क्या महत्ता है ?

उत्तर : आसन के बिना बैठेंगे तो पृथ्वी का आकर्षण जप को ले लेता है। बिना आसन के देवता भी जप को चोरी कर लेते हैं। इंद्र भी चोरी कर लेता है। कुशासन सबसे बढ़िया है, क्योंकि यह वराह भगवान् के बाल हैं। कुश आसन पर बैठकर किया जप, कोई चोरी नहीं कर सकता। भजन के सब चोर होते हैं। उनसे खुद तो भजन होता नहीं, तो दूसरे का भजन चोरी कर लेते हैं। इसके लिए आसन जरूरी है।

निश्छल प्रेम

51

15 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति प्राप्त होने का आशीर्वाद करें।

मेरे प्रिय भक्तगणो, ध्यान देकर सुनो! भक्तों को रूपक के द्वारा समझाया जा रहा है। रूपक से अच्छी तरह समझ में आ जाता है। यह संसार, यह जगत् क्या है? यह लेनदेन की दुकान है। बहुत ध्यान से सुनोगे, तब समझ में आएगा। यह लेनदेन की दुकान है। यहाँ कर्मों का व्यापार होता है। जैसा कर्म करोगे, वही मिलेगा। दुकान में उधार भी चलती है और नकद भी सौदा खरीदा जाता है। यहाँ पर सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के बीज माया द्वारा मिलते हैं। इस दुकान की स्वामिनी मायादेवी हैं। यहाँ भगवान् के खेल की सामग्री उपलब्ध होती है। इसे भगवान् की लीला बोला जाता है। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे उसी प्रकार का भोग उपलब्ध होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। यह कर्म इंद्रियों द्वारा उदय होते हैं। इनका आदेश मन द्वारा होता है। बुद्धि द्वारा कर्म करने में आग्रह उपलब्ध होता रहता है। अहंकार सभी का अधिकारी है। इसी से मेरा–तेरा का आविष्कार होता रहता है। यही भगवान् की माया है। ध्यान से सुनने से समझ में आएगा। स्वप्न का खेल है, तमाशा है। स्वप्न टूटने पर यह खेल समाप्त हो जाता है। हमारा शरीर जाने के बाद सब खेल खत्म। जब तक शरीर है तब

तक खेल है। यह सपना है। स्वप्न टूटने पर खेल खत्म। हमारे मरने के बाद खेल खत्म। इसी में जीव रम जाता है, अतः दुख का साम्राज्य बन जाता है। इसी को लिंग देह, सूक्ष्म देह, कारण देह, पुंज आदि बोला जाता है। यह देह जब तक नष्ट नहीं होता है, तब तक जीव को नित्य देह, चिन्मय देह नहीं उपलब्ध होता। जब तक यह लिंग देह है, यह दुख–सुख मिलता है। जब तक चिन्मय देह नहीं मिलता तब तक लिंग देह से जन्म–मरण होता ही रहेगा। इसी देह से अगली योनि, जो दुख से भरी हुई है, मिलती रहती है।

यह अल्पबुद्धि जीव का द्योतक है। यह अज्ञान अँधेरा तभी समाप्त होगा, जब तक किसी सच्चे संत का जो भगवान् का प्यारा होता है, संग नहीं मिलता। इसी से यह अज्ञान अँधेरा, उजाले में अर्थात् ज्ञान में परिणत होगा। संत द्वारा ही भगवद् नाम की महिमा सुनकर, उजाले के मार्ग से इसकी यात्रा शुरू होगी। तब इसकी बुद्धि गलत व सही मार्ग का निर्णय कर सकेगी। धीरे–धीरे उसका दुख, सुख में बदलता जाएगा।

gjs Ñ".k gjs Ñ".k Ñ".k Ñ".k gjs gjsA
gjs jke gjs jke jke jke gjs gjsAA

एक बहुत बढ़िया, आनंद की बात ठाकुरजी ने बोली है, बता रहा हूँ क्योंकि भक्तों को रूपक के द्वारा अच्छी तरह समझ में आता है इसका हैडिंग क्या है– संदेह का समाधान। 14 जुलाई 2017 और 1 अगस्त 2017 को मेरे बाबा द्वारकाधीश ने घोषणा की थी कि जो एक लाख नाम नित्य करेगा या करता है, उसका अभी से वैकुण्ठ या गोलोक का रिजर्वेशन कर दिया गया है। कितनी खुशी की बात है! लेकिन बहुत से भक्तों को इस पर कोई विश्वास नहीं है कि ऐसा हो सकता है क्या? यह जो अनिरुद्ध दास है, अपने मन से भक्तों को विश्वास दिला रहा है ताकि अधिक से अधिक हरिनाम करने में लग जाएँ। हम इस घोषणा को सत्य कैसे मानें कि एक लाख हरिनाम जापक का अभी से वैकुण्ठ या गोलोक का रिजर्वेशन हो गया? हम कैसे मानें? मानना पड़ेगा। हम नहीं मान सकते। अतः भगवान् को इसकी चिंता

हो गई कि मेरे प्यारे भक्त, अनिरुद्ध दास की बात का विश्वास नहीं करते। अतः अब ऐसा लेख लिख रहा हूँ ताकि जिसको सुनकर नास्तिक से नास्तिक भी पूर्ण विश्वास करने लगेगा। क्या लिखाया है?

वह 11 तारीख को लिखवाया है। इसका समाधान, भक्तगण तथा जीवमात्र ध्यानपूर्वक श्रवण करें! यह तो सभी को मालूम है कि एक पापी, अपराधी अजामिल ने मरते समय अपने बेटे को पुकारा था, जिसका नाम नारायण था। लेकिन बेटा तो भक्त नहीं था। वह तो भयानक यमदूतों को देखकर, डर की वजह से उसने अपने बेटे को पुकारा था। लेकिन भगवद् नाम नारायण की वजह से भगवद् पार्षदों ने आकर उसे भयानक दूतों से छुड़ा लिया। अब ध्यान से श्रवण करें! राक्षसगण, भगवान् को दुश्मनी से चिंतन या याद करते हैं कि नहीं? भगवान् का नाम नहीं लेते वह। दुश्मनी से उनको याद करते हैं और भगवान् के मारने पर भगवद् नाम भी उच्चारण नहीं करते। केवल भगवान् की याद में प्राण त्यागते हैं तो उनकी मुक्ति होती है कि नहीं? आप ही सोच लो। शिशुपाल ने भगवान् को गाली के माध्यम से याद किया तो भगवान् ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर उड़ा दिया तो भगवान् की याद की वजह से उसका उद्धार हुआ।

याद ही मुख्य है। स्मरण ही मुख्य है। अच्छा! अब पूतना, अपने स्तनों पर हलाहल जहर लगाकर, भगवान् को मारने के लिए आई थी लेकिन भगवान् की याद में उसने प्राण त्याग दिए। वह बोल रही थी कि, "अरे छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! मेरा जी घबरा रहा है!" तो नाम तो नहीं लिया भगवान् का, उसने। उसको भगवान् ने धात्री की गति दी। यह आप सभी जानते हैं। अर्थात् स्मरण, चिंतन, याद ही मुख्य है। यानी remeberence मुख्य है। इसमें भगवान् का नाम स्मरण में घुसा हुआ है। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम याद में समाए हुए हैं। जैसे आप मेरे को फोन करो तो मैं आपके दिल में आऊँगा कि नहीं और मेरा घर भी आएगा, तो धाम भी आ गया। और जो मैं बात करता हूँ, वह लीलाएँ भी आ गईं तो स्मरण में सब कुछ समाए हुए हैं। इसीलिए मैं समझा रहा हूँ, आपको कि मरते समय भक्त के गले में कफ अटक जाता

है, तो भगवद् नाम नहीं निकलता। लेकिन मन का चिंतन तो सदा चलता ही रहता है। 24 घंटे मन कभी फुर्सत में नहीं रहता। सो जाने के बाद भी वह तो कुछ न कुछ देखता, सुनता रहता है। आप जानते ही हैं कि सोते वक्त भी मन जाने कहाँ–कहाँ चला जाता है। क्या–क्या करता रहता है। तो यह मन का स्मरण, चिंतन ही लगातार होता रहता है। यह सबसे मुख्य है। और बाबा आगे लिखा रहे हैं कि भगवान् बोलते हैं कि यदि मरते समय मेरे प्यारे भक्त को शिक्षा गुरु व दीक्षा गुरु की याद, स्मरण, चिंतन हो जाए तो उसका इस भवसागर से उद्धार निश्चित है। यह निश्चित क्यों है? इसको जो भी अविश्वास करेगा, उसका निश्चित रूप से घोर अपराध बन जाएगा और अनंत काल तक नर्क में वास करेगा। यह तो शास्त्र कह रहा है। मैं नहीं कह रहा हूँ। अतः इस बात को 100% सत्य मानकर भगवद् नाम लेते रहें। भक्त के दोनों हाथों में लड्डू हैं। कैसे हैं? एक हाथ में तो शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु हैं और दूसरे हाथ में भगवान् हैं और राक्षसों के तो एक ही हाथ में लड्डू है, राक्षसों के पास भगवद् याद ही एक लड्डू है बस। अतः भक्तगण भाग्यशाली हैं।

lfefjv uke :i fcu n[k

हमने भगवान् को थोड़ी देखा है। सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। सुमिरिअ माने याद, रिमेम्बरेंस। रूप बिनु देखें आवत हृदय सनेह विशेषे। हृदय में वो प्रेम से प्रगट हो जाएगा। तो स्मरण, चिंतन, याद ही मुख्य है। उच्चारण की कोई खास जरूरत नहीं है। स्मरण में ही उच्चारण घुसा हुआ है। स्मरण में ही नाम घुसा हुआ है।

इसने भगवान् को न देखा है न ही इसने भगवान् का संग किया है। अतः मरते समय भगवान् की याद असंभव है। लेकिन शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु को तो देखा भी है और संग भी खूब किया है। अतः इनकी याद आना संभव है। तो भगवान् बोलते हैं कि, "सच्चा शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु मेरे सिर का सिरमौर है।" यह तो श्रीमद्भागवत भी कह रही है। उसकी याद से निश्चित रूप से जीव का उद्धार हो ही जाएगा। इसमें कोई शक न करें वरना नर्क में जाएगा। नीचे गिरेगा।

"मैंने ही 11 सितंबर, रात को यह लेख लिखवाया है। इसे सुनकर सभी भक्तगण आनंदमग्न हो जाना। ऐसा अवसर न सतयुग में, न त्रेता में, न द्वापर में उपलब्ध होगा, जो आज कलियुग में, सबको हस्तगत, हो रहा है।" लेकिन शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु का आचरण उत्तम होना चाहिए। कैसा आचरण होता है? सच्चा गुरु कौन होता है? उसका लक्षण क्या होता है? उसका लक्षण नीचे लिख रहे हैं। उसी का संग करो नहीं तो मत करो।

जो पैसे का दास नहीं है। पैसे की कोई परवाह नहीं करता। जो नारी जाति से बिलकुल दूर रहता है। यह दो खास माया हैं– पैसा और नारी। इसी में सब फँसे पड़े हैं। और जिस पर भगवान् की कृपा होगी, उस गुरु को ये सतायेंगे नहीं। ये उस गुरु से दूर रहेंगे। वही सच्चा संत है। इसके विपरीत याद होगी तो उद्धार नहीं होगा। ऐसी चर्चा मेरे बाबा द्वारकाधीश ने सुनाई है, जिसे आप हृदयंगम कर लें। तो भगवान् बोल रहे हैं, "मैं खुलकर उच्च स्वर में घोषणा कर रहा हूँ कि काल और महाकाल मुझसे थरथर काँपता है। शास्त्र बोल रहा है। लेकिन मैं अपने प्यारे भक्त से थर–थर काँपते रहता हूँ। यह सभी को मालूम है। अतः मेरे भक्त का चिंतन मरते समय अवश्य उद्धार कर देगा। मरते समय मेरे भक्त का चिंतन हो गया तो मैं कैसे उसका उद्धार नहीं करूँगा? यदि नहीं करता तो भक्त मुझे छोड़ेगा नहीं। अतः डर की वजह से, उसका उद्धार करना मेरा कर्तव्य है। मुझे कोई नहीं मार सकता लेकिन केवल मेरा प्यारा भक्त मुझे दंड दे सकता है। इसका जो अविश्वास करेगा, उसको दंड का भागी होना पड़ेगा।" यह बात बड़े ध्यान से सुन लो।

यह तो आप सबको मालूम हो ही गया है कि आप सब का वैकुण्ठ और गोलोक धाम का रिजर्वेशन हो ही चुका है। अपराध से बचकर कम से कम एक लाख हरिनाम तो नित्य करना ही है। अन्य साधन हो या न हो। इसकी जिम्मेदारी साधक की होगी।

संत द्वारा ही नाम की महिमा सुनकर उजाले के मार्ग से इसकी यात्रा शुरू होगी तब इसकी बुद्धि गलत व सही मार्ग का निर्णय कर

सकेगी। धीरे–धीरे उसका दुख, सुख में बदलता जाएगा। संत इसे हरिनाम का अमूल्य हीरा समर्पित करेगा जिससे उसके उजाले से अंधेरा रूपी अज्ञान नहीं रहेगा। लेकिन भगवान् की आज्ञा बिना, संत (गुरु) हरिनाम रूपी हीरा नहीं दे सकता। लेकिन जो जीव अंधा है वह इस हीरे की कीमत न जान कर इसे जमीन पर फेंक देगा एवं फिर अँधेरे में भटकता फिरेगा। अब भगवान् का दूसरा संत, शिक्षा गुरु, भगवान् की आज्ञानुसार फिर उसे अँधेरे से उजाले में लाने का प्रयत्न करेगा। लेकिन इसके अज्ञानी साथी इसे इस मार्ग में आने से रोकेंगे और जीव को शिक्षा गुरु का मार्ग अच्छा नहीं लगेगा और पिछले साथियों का संग इसे अच्छा लगने लगेगा तो शिक्षा गुरु की भरसक कोशिश करने पर भी यह जीव सुख का मार्ग नहीं अपनाएगा। अतः जन्म–मरण के चक्कर में भटकता फिरेगा। बस यही है भगवान् की माया का खेल, तमाशा। क्योंकि जिस पर भगवान् के प्यारे संत का हाथ है, वह इस मार्ग की कक्षा में बैठकर लगातार शिक्षा उपलब्ध करता रहेगा और एक दिन जहाँ से वह पिता की गोद से बिछुड़ा हुआ था, उसी गोद में जाकर बैठ जाएगा। उसका सारा का सारा दुखड़ा यहीं पर समाप्त हो जाएगा। भगवान् अपनी लीला का प्रादुर्भाव करने के लिए अपने प्यारे संत से ही श्राप और वरदान दिला कर लीला करते रहते हैं। उनके बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो कोई जीव हिल भी नहीं सकता। इन्हीं की प्रेरणा से सच्चे ज्ञान की पुस्तकें लिखी जा रही हैं। इन्हीं की प्रेरणा से राक्षस अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इन्हीं की प्रेरणा से देवता अपने कर्म में लगे रहते हैं।

एक बहुत अच्छी कथा है। एक बार, नारदजी वैकुण्ठ में, भगवद् धाम में आए तो क्या देखते हैं कि भगवान् लक्ष्मी की गोद में लेटे हुए हैं और जोर–जोर से चिल्ला रहे हैं कि, "मैं मरा! मैं मरा!" नारदजी घबराए। लक्ष्मी जी से पूछा, "भगवान् को क्या हो गया है जो इतनी जोर–जोर से चिल्ला रहे हैं? रो रहे हैं? मैंने तो मेरी उम्र में, भगवान् को ऐसे चिल्लाते हुए कभी नहीं देखा। तो ऐसे क्यों दुखी हो रहे हैं?

माताजी! इसका क्या कारण है?" तो लक्ष्मीजी बोलीं कि, "आप ही उनसे पूछ लीजिए न।"

नारदजी ने भगवान् से पूछा, "भगवान्! आपको क्या हो गया है? जल्दी से बताओ मैं क्या करूँ?"

भगवान् बोले, "मुझे बहुत जोर से सिर का दर्द हो रहा है। नसें फटी जा रही हैं। एक पल का भी चैन नहीं है।" नारदजी ने पूछा, "तो बताओ न, मुझे क्या करना है? कौन सी दवा लाऊँ जो आपका सिर दर्द मिट जाए।" तो भगवान् बोले, "मेरा दर्द कोई दवा से ठीक नहीं होगा। अगर कोई भक्त अपने चरणों की रज मेरे माथे पर रगड़ दे तो मेरा सिर दर्द ठीक हो सकता है।" तो नारद ने पूछा, "कौन से भक्त की चरण रज लाकर दूँ? आप बता दो।" भगवान् बोले, "मैं किस का नाम बताऊँ? कोई भी भक्त दे दे।" नारदजी बोले, "मैं अभी जाता हूँ। मैं अभी मृत्युलोक में जाता हूँ। वहाँ पर बहुत भक्त समुदाय विराजते हैं, उनसे लेकर अभी आता हूँ।" भगवान् बोले, "तुम जल्दी जाओ। मैं व्याकुल हूँ। सिर दर्द बहुत जोर से हो रहा है और उल्टी सी आ रही है। एक पल भी चैन नहीं है।"

नारद के पास क्या चरणरज नहीं थी? लेकिन नारद ने अपने मन में सोचा, "अरे! मैं अपनी चरणरज भगवान् के सिर में कैसे लगा सकता हूँ? यह तो बहुत बड़ी समस्या मेरे सामने आ गई।" अतः नारद ने जल्दी से मृत्युलोक में जाकर देखा। उन्हें देखकर भक्तगण उनके पास आकर इकट्ठे हो गए और कहने लगे कि, "आज तो हमारा जन्म सफल हो गया नारद जी! आपके दर्शन हो गए। आप कैसे आये हो?" नारद बोले, "बात तो बाद में करना। एक महान् समस्या आ गई है। मैं वैकुण्ठधाम से आ रहा हूँ। भगवान् को बहुत जोर से सिर में दर्द हो रहा है। भगवान् दर्द की वजह से तड़प रहे हैं।"

"तो भगवान् ने मुझे बोला कि मृत्युलोक में जाओ और किसी भी भक्त की चरणरज तुरंत लेकर आ जाओ और मेरे माथे पर मल दो।

तो मेरा सिर दर्द मिट सकता है। अतः तुम जल्दी ही मुझे किसी की चरणरज ला कर दो ताकि मैं जाकर तुरंत उनके माथे में लगा दूँ।" नारद ने देखा कि सभी भक्तगण एकदम चुप हो गए। कुछ उत्तर नहीं दिया। नारद जी बोले, "आप कैसे चुप हो रहे हो? जल्दी दो।" उनमें से एक बोला, "नारदजी! आप भी कैसी बात करते हो? कौन ऐसा भक्त होगा जो अपने चरणरज, पैरों की मिट्टी भगवान् के सिर पर लगाने को देगा। यह तो नरक जाने की समस्या आ गई। पूछ लो, नारदजी! कोई दे, तो ले जाओ।" एक ने फिर पूछा, "नारदजी! आपके पास भी तो आपके चरणों की रज थी। आपने क्यों नहीं दी? हम कैसे दे सकते हैं। आप भी कैसी बात करते हो।" अब नारद चुप। किसी भक्त ने पूछा, "नारदजी! अब आप कैसे चुप हो? कैसे चुप साध ली, बोलो न।" अब नारद वहाँ से भागे और वैकुण्ठ में भगवान् के पास आए। लक्ष्मी जी ने पूछा, "भक्तों की चरणरज ले आए?" नारद जी बोले, "मैं मृत्यु लोक में गया। बहुत भक्त, मुझे देखकर इकठ्ठे हुए। मैंने सारा हाल भगवान् का बताया पर सब भक्त चुप रहे, किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने पूछा कि तुम चुप क्यों हो? चरणरज देते हो या नहीं। तो उन्होंने तुरंत जवाब दिया कि कोई भी चरणरज देने को तैयार नहीं है। अतः मैंने देर नहीं लगाई और तुरंत आ गया। अब मुझे क्या करना है?"

तब भगवान् बोले, "अरे! किसी ने भी चरणरज नहीं दी तो तुम वृंदावन जाओ न और गोपियों को मेरा हाल बता दो। वह तुम्हें चरणरज जरूर दे देंगी।" नारद जी बोले, "जब मृत्यु लोक में किसी ने नहीं दी तो गोपियाँ कैसे दे देंगी? इतनी देर से आप तड़प रहे हो। अब और भी देर हो जाएगी तो मैं क्या करूँ?" भगवान् बोले, "ज्यादा देर मत करो। जल्दी गोपियों के पास जाओ।" नारदजी ने सोचा कि बड़ी समस्या है। जब किसी ने चरणरज नहीं दी तो गोपियाँ कैसे दे देंगी? तो लक्ष्मी बोलीं कि, "जैसा पतिदेव कह रहे हैं। उसका पालन शीघ्र करो और वृंदावन जाकर गोपियों से भगवान् का सब हाल बता दो तो शायद गोपियाँ चरणरज दे सकती हैं।" नारदजी बोले, "तुरंत

जाता हूँ।" नारदजी वृंदावन पहुँचे तो गोपियाँ इकट्ठी हो गईं और नारदजी से पूछने लगीं कि, "आप कहाँ से आए हो? आप वैकुण्ठ भी गए होंगे। हमारे गोपाल का क्या हाल है? क्या गोपाल ने हमारे लिए पूछा?" नारदजी बोले, "अधिक बात करने की जरूरत नहीं है। भगवान् को, तुम्हारे गोपाल को सिर में बहुत दर्द है। वह चिल्ला रहे हैं। तड़प रहे हैं।" तो गोपियों ने पूछा, "बोलिए, हमें उनके लिए क्या दवाई देनी है?" तो नारदजी बोले, "उन्होंने कहा है कि यदि कोई भक्त अपने चरणों की मिट्टी दे दे, तो उसको मलने से मेरा सिर दर्द मिट सकता है।" तो गोपियों ने कहा, "नारदजी! हमारे चरणों, हमारे पैरों की मिट्टी जल्दी से ले जाओ।" गोपियों ने अपने पैरों की मिट्टी मलमल के पोटलियाँ बाँध दीं, और कहा, "जल्दी जाओ, जल्दी जाओ! और कुछ चाहिए तो बोलो। हम सब कुछ दे देंगे उनके लिए।" नारदजी बोले, "तुम अपने चरणों की मिट्टी गोपाल के सिर में लगाने के लिए दे रही हो, तुम्हें मालूम है कि तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा।" गोपियाँ बोलीं कि, "हमारा गोपाल ठीक हो जाए। हमें नरक की परवाह नहीं है। हम तैयार हैं जाने को। आप जल्दी जाकर उसके सिर में यह लगाएँ और हमें आकर उसका हाल जल्दी बताना।" ऐसा कहा, "जरूर आ जाना।" नारदजी ने कहा, "मैं जरूर आऊँगा। गोपाल का हाल बता दूँगा। आप चिंता मत करना।" गोपियाँ बोलीं कि, "ज्यादा बात मत करो, जल्दी जाओ और हमारी चरण धूल उनके माथे में लगा दो ताकि गोपाल ठीक हो जाएँ। हमें नरक जाने की परवाह नहीं है। हमारा गोपाल ठीक होना चाहिए और जल्दी आ कर, हमें बताना, भूल मत करना। जल्दी आना।" नारदजी बोले, "हाँ! मैं जल्दी ही आऊँगा।"

नारदजी वैकुण्ठ गये और माँ लक्ष्मी को बोला, "गोपियों ने अपने पैरों की मिट्टी मलमल कर दे दी है। आप जल्दी से भगवान् के सिर पर मल दो।" लक्ष्मी ने मिट्टी ली और भगवान् के सिर में गोपियों के चरणों की मिट्टी लगा दी। लगाते ही भगवान् हँसने लगे, बोले, "अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ।" भगवान् ने पूछा, "गोपियों से क्या–क्या

बात हुई?" नारदजी बोले, "कि भगवान् गोपियों जैसा तो संसार में कोई नहीं है। अनंत कोटि ब्रह्मांड में भी कोई भक्त नहीं है। क्योंकि मैंने गोपियों को बोला, कि गोपियो! तुम अपने पैरों की मिट्टी भगवान् के सिर में लगाने के लिए दे रही हो तो तुम्हारा नरक में वास होगा। तो गोपियाँ बोलीं कि हमारा कान्हा ठीक होना चाहिए। हमें नरक जाने की कोई परवाह नहीं है। न हमें कोई भय है। नारदजी! आप जल्दी जाओ और हमारी मिट्टी गोपाल के सिर पर लगा दो और आकर जल्दी से हमें उनका समाचार दो कि उनका सिर दर्द ठीक हुआ कि नहीं। हे नारदजी! आप जो बोलोगे हम करने को तैयार हैं।" भगवान् ऐसा सुनकर जोर–जोर से रोने लगे और हा गोपी! हा गोपी! कहने लगे और भगवान् बेहोश हो गये। लक्ष्मी गहरी चिंता में डूब गईं। जब भगवान् को कुछ होश आया तो नारदजी से बोले, "जल्दी जाओ और मेरा हाल गोपियों को जल्दी जाकर के बताना। मेरे बेहोश होने की बात मत बताना वरना गोपियाँ बेहोश हो जाएँगी। मेरे सिर दर्द की बात ही बता देना कि तुम्हारा गोपाल बिल्कुल ठीक हो गया है।" नारदजी ने वृंदावन जाकर गोपियों को भगवान् का सारा हाल बता दिया। गोपियाँ सुनकर नाचने लगीं और बोलने लगीं कि, "हमारा गोपाल ठीक हो गया, हमारा गोपाल ठीक हो गया।" तब नारदजी ने कहा, "मैं अब वापस वैकुण्ठ ही जाता हूँ।" तो गोपियाँ बोली कि, "हाँ! जाओ और गोपाल से कहना कि गोपियाँ तुमको बहुत याद कर रही हैं। उनके पास कब आओगे? रात–दिन तड़प रही हैं, न उनको भूख लगती है न नींद आती है। ऐसा जरूर कह देना कि वह हमसे आकर मिले।" नारदजी बोले, "ठीक है, कह दूँगा।"

नारदजी भगवान् के पास वैकुण्ठ में गए और गोपियों की खुशी की बात बताई। कहा, "मैं आपको क्या कहूँ? वह तो आपके ठीक होने की बात सुनकर नाचने लगीं और उन्होंने कहा कि भगवान् से पूछना कि हमारे यहाँ कब आओगे? आपके दर्शन के बिना हम तो बेहाल हो गईं। न रात में नींद आती है न दिन में भूख लगती है। दिनभर बेचैन रहती हैं। मैं, उनके पास जाकर क्या बोलूँ? जैसा आप

बोलो, मैं जाकर शांति प्रदान करूँ।" भगवान् बोले, "नारद! तुम उन्हें कह देना कि मैं तुम्हारे हृदय मंदिर में सदा ही विराजमान रहता हूँ। यह याद ही मेरी आपके पास उपस्थित है। ऐसे दिल में धारण कर लें, तो मैं एक क्षण भी तुमसे अलग दिखाई नहीं दूँगा।"

नारदजी ने विचार किया कि द्वारका धाम में नौ लाख महल हैं। सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ हैं। द्वारकाधीश इन्हें कैसे सँभालते होंगे? जरा देखना तो चाहिए। नारदजी, सबसे पहले रुक्मिणी के महल में गए। तो क्या देखते हैं कि भगवान् अपने पोते अनिरुद्ध को गोद में लेकर दुलार रहे हैं, कपोलों का चुंबन कर रहे हैं और रुक्मिणी से हँस–हँस कर बातें कर रहे हैं। भगवान् नारद से पूछ भी रहे हैं कि, "नारद! कहाँ से आ रहे हो?" नारद बता रहे हैं कि, "मैं वृन्दावन जा कर आ रहा हूँ।" भगवान् ने पूछा, "गोपियों का क्या हाल है?" नारद कह रहे हैं कि, "गोपियाँ आपको हर क्षण याद करती रहती हैं।" नारद दूसरे महल में सत्यभामा के यहाँ गए तो भगवान् सत्यभामा के यहाँ चौपड़ खेल रहे हैं, तो भगवान् ने नारद से पूछा, "नारद! आप द्वारिका में कब आए?"

अभी भगवान् से मिलकर, रुक्मिणी के यहाँ से आ रहे हैं। फिर भी पूछ रहे हैं कि कब आये। यही तो भगवान् की अजब लीला है। अब नारदजी जामवंती के महल में गए। वहाँ भगवान् अपनी पोती को ससुराल के लिए रवाना कर रहे हैं। पोती भगवान् से लिपट कर रो रही है और भगवान् भी उसे अपने हृदय से चिपका कर रो रहे हैं। अब नारद, लक्ष्मणा के महल में गए तो क्या देखते हैं कि भगवान् स्नान की तैयारी कर रहे हैं और नारद से कह रहे हैं कि, "मेरे बच्चे को आशीर्वाद करो कि यह बड़ों की मन से सेवा करें। मैं अभी नहा कर आता हूँ, तुम यहाँ बिराजो।" नारद ने सोचा कि भगवान् एक ही समय में सभी महलों में कुछ न कुछ करते रहते हैं। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ उनके नए–नए कर्म देखता हूँ। भगवान् स्नान करके आए और बोले, "नारद! मैं संध्या कर लूँ। तुम कुछ कलेवा कर लो। मैं संध्या करके आता हूँ।" तो नारदजी ने पूछा, "भगवान् तुम किस की

संध्या करते हो?" भगवान् बोले, "तुम जैसे मेरे प्यारे भक्तों की याद करके मैं संध्या करता हूँ। अब तुम तो पुराने भक्त हो गए। अब मैं नए–नए भक्तों को याद करके मग्न होता हूँ और संध्या करता हूँ।

भक्त ही मेरे इष्ट देव हैं। भक्तों से बड़ा तो अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भी मेरा प्यारा नहीं है। भक्तों का चिंतन मेरे से भी उच्च कोटि का होता है। यदि किसी को अंत में मरते समय, मेरे भक्त का चिंतन बन जाए तो वह मेरे वैकुण्ठ धाम में या गोलोक धाम में निश्चित रूप से चला जाता है। उसे मैं स्वयं लेने आता हूँ और मेरे धाम में उसका भव्य स्वागत करवाता हूँ। वहाँ पर इसे किसी भी चीज की कमी महसूस नहीं होती है। वहाँ के आनंद की बात तो मैं भी पूर्ण रूप से नहीं बता सकता। जो वहाँ जाता है उसे ही वहाँ की खुशी महसूस होती है। वहाँ न सूर्य है न चंद्रमा है। वह लोक स्वयं ही चमकता रहता है। वहाँ पर मन को भाने वाली सुगंधित वायु बहती रहती है। वहाँ की जमीन कोमल स्पर्श से मन को मोहने वाली होती है, और वहाँ की प्रत्येक वस्तु ही आकर्षणकारी होती है। यह लोक उसको प्राप्त होता है, जो चर–अचर में मुझे ही देखता है। जीव मात्र का भला करने वाला होता है। सब में समदृष्टि रखता है। जिसमें प्यार का स्वभाव होता है। दूसरे के दुख में दुखी हो जाता है। ऐसे अनेक गुण, उस प्राणी में हुआ करते हैं। हर इंसान को मेरा सानिध्य मिलना बहुत मुश्किल है और बहुत आसान है यदि वह सम रहे, अर्थात् सबको समान दृष्टि से अवलोकन करे क्योंकि सब चर–अचर मेरे ही तो पैदा किए हुए हैं। अतः सभी मेरे पुत्र समान हैं। पुत्र को पिता दूर कैसे रख सकता है?"

लेकिन यदि पुत्र ही नालायक हो तो पिता का क्या दोष है? आसक्ति इसका मुख्य कारण है। एक आसक्ति होती है संसार की, और दूसरी आसक्ति है संसार से ऊपर अर्थात् साधु, महात्माओं की व भगवान् की। एक आसक्ति दुख सागर में गोते दिलाती है, दूसरी आसक्ति चैन की बंसी बजाती है। केवल इतना ही फर्क है। ज्ञान होने पर चैन और अज्ञान होने पर बेचैन। यही एक स्थिति है। लेकिन यह

आसक्ति कैसे बदले? यह आसक्ति सत्संग से बदल जाती है। संसारी आसक्ति भी कुसंग मिलने से ही तो रमी (हुई) है तो यह आसक्ति सत्संग से भगवान् के प्रति बदल जाती है। लेकिन सत्संग भी पवित्र होना जरूरी है। जो किसी सच्चे संत से ही उपलब्ध हो सकता है। कलियुग में ऐसे भगवा कपड़े वाले संत होते हैं, जो माया से लिप्त हैं। माया क्या है? पैसा और नारी। जो इनसे दूर है वही सच्चा संत है, ऐसा मानिए। हमारे पूर्वकाल में गुरु वर्ग इन दोनों से बहुत दूर रहते थे।

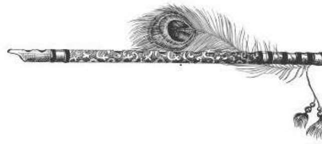
उनको भजन से ही फुर्सत नहीं होती थी। 18—20 घंटे भजन में रहते थे। जिनमें माधवेंद्रपुरी, ईश्वरपुरी, रूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, नरोत्तमदास, लोकनाथ गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी आदि—आदि भजनशील महात्मा थे। अपनी भजन कुटी बनाकर भजन करते थे। आश्रम बनाने से भगवान् खुश नहीं होते। कलियुग में गृहस्थी ही अधिक भजनशील होते हैं। इनमें ईर्ष्या, द्वेष नहीं होता। जो भजन अधिक करते हैं, उनसे प्यार का नाता जोड़ते रहते हैं। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि मानव मन, वाणी और शरीर से पाप करता रहता है। मानव सभी जीवमात्र को दुख देता रहता है। चींटी, मच्छर, खटमल आदि। इनका तो स्वभाव ही ऐसा है, भगवान् ने उनका स्वभाव ही ऐसा बनाया है कि यह कहीं पर भी जा कर अपना पेट भरते रहते हैं। इनकी तरफ मानव देखता ही नहीं है, इन्हें मार देता है। मन से भी पाप करता है। बुरा चिंतन करके जीवमात्र को सताता रहता है। यह सताना आत्मा रूपी परमात्मा को सताना ही होता है। अपनी जबान से कड़वा बोलता है। इससे आत्मा को ठेस पहुँचती है। गाली देना, किसी को अपशब्द कहना, उचित नहीं है। इस जिह्वा से हरिनाम उच्चारण करना चाहिए। सत्संग अन्य को सुनाना चाहिए तो शुभ का विस्तार होगा। बुरा बोलने से स्वयं भी दुखी होगा और दूसरे को भी दुखी करेगा।

यदि मानव इस जन्म में हरिनाम जप कर प्रायश्चित्त न कर ले तो इसे नर्क यात्राएं भोगनी पड़ेंगी। अतः बड़ी सावधानी से रोग तथा

मृत्यु से पहले ही हरिनाम जप कर अपना सुधार कर लेना चाहिए। कलियुग में यह सबसे सरल, सुगम साधन भगवान् ने बताया है। चाहे मन से करें या न करें। माला पर या बिना माला के। खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते हरिनाम 'हरे कृष्ण हरे राम' बोलते रहना चाहिए तो अंत समय मृत्यु आने पर भगवान् जापक का उद्धार निश्चित रूप से कर देंगे। इसमें दो राय नहीं हैं। मानव जानता भी है कि पाप करने से दुख निश्चित रूप से आएगा। फिर भी पाप करने में चूकता नहीं है। इसका मुख्य कारण है कुसंग। इसके दो तरफ कुसंग ही कुसंग की हवा बह रही है। सत्संग की तो छाया भी नहीं है। मानव जन्म से ही कुसंग में पला है। इसी प्रकार अगर मानव, जन्म से ही सत्संग में पला हो तो दोनों ओर सत्संग का रंग उसके स्वभाव पर चढ़ जाता है। यह जिम्मेदारी माँ–बाप की होनी चाहिए कि संतान पर गौर करके ध्यान रखें कि वह किसका संग कर रहा है? अच्छा कर रहा है या बुरा कर रहा है? यह गलती माँ–बाप की होती है। संतान के प्रति बेपरवाह रहता है। अतः ऐसी संतान से वह स्वयं दुखी होगा और अन्य को भी दुखी करता रहेगा। अज्ञान रहते पाप, वासनाएँ नहीं मिटतीं। ज्ञान होने पर ही पाप वासनाएँ दूर हो जाती हैं। यह होगा सत्संग से। सत्संग में रहने से मानव सुपथ्य का सेवन करता है। उसे रोग नहीं सताते। जैसे धर्मज्ञ और श्रद्धावान् महान पुरुष, तपस्या, ब्रह्मचर्य, इंद्रिय दमन, मन की स्थिरता, दान, सत्य और अंदर बाहर की पवित्रता, यम नियमों की साधना से बड़े–बड़े पापों को भस्म कर देता है। भगवान् की शरण में रहने वाले भक्तजन जो बहुत कम होते हैं केवल भक्ति के द्वारा ही सारे पापों को भस्म कर देते हैं। जैसे सूर्य उगने पर कोहरा गायब हो जाता है। जैसी शुद्धि उसकी भगवद्पूर्ण आत्मसमर्पण करने पर होती है और भक्तों की सेवा करने से होती है वैसी तपस्या आदि के द्वारा भी नहीं होती है।

ऐसा भगवान् उद्धव को बता रहे हैं कि उपासक लोग कहते हैं कि हमारे प्रभु हाथ पैर वाले हैं और सांख्यवादी कहते हैं कि हमारे प्रभु तो हाथ पैर से रहित हैं। निराकार हैं। अतः एक ही भगवान् के

एक दूसरे के विरोधी धर्म अपनाते हैं। फिर भी विरोध नहीं है। भगवान् दोनों तरह से ही हैं। लेकिन भक्तों के लिए भगवान् अनेक लीलाएँ करने हेतु अवतार लेते हैं। भगवान् बोलते हैं कि, "तपस्या मेरा हृदय है। जब यह सृष्टि नहीं थी। जब केवल मैं ही मैं था। न कोई दृश्य था। चारों तरफ मानो, सन्नाटा ही सन्नाटा छा रहा था। तब गुणमयी माया से ब्रह्मांड शरीर प्रकट हुआ तो इसमें ब्रह्मा प्रकट हुआ। यह आदि पुरुष था। जब मैंने उसमें शक्ति संचार की, सृष्टि रची तो ब्रह्मा ने अपनी असमर्थता प्रकट की, तब मैंने कहा कि तप करो। जब तप किया, मेरा भजन किया, तब सृष्टि होने लगी। अब तक मानसिक सृष्टि होती थी। अब गृहस्थों से, स्त्री–पुरुष सहवास से धर्म को स्वीकार कर सृष्टि करो। तब से नर–नारी संग से सृष्टि होने लगी है।"



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : यह कैसे संभव है कि हरिनाम साध्य भी है और साधन भी है ?

उत्तर : हरिनाम साध्य भी है और साधन भी है। साध्य क्या है ? हरिनाम क्या है ? हरिनाम स्वयं कृष्ण हैं। कृष्ण हैं मतलब साध्य है। और हम साधन कर रहे हैं। हम साधन को जप रहे हैं। भगवान् अपने नाम से स्वयं हैं और उनका नाम स्मरण करने से वह साधन हो गया।

कलियुग में केवल हरिनामाश्रय

52

22 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम
इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें
और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

कलियुग में जिसका जन्म हो गया वह बड़ा भाग्यशाली है, भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। भगवान् सभी चराचर प्राणियों के बाप हैं। बाप कभी बुरा नहीं होता, बेटा ही बुरा होता है। भगवान् बाप होने के कारण अपने बेटे को अपने पास रखना चाहते हैं, परंतु बेटा नालायक है। वह बाप के पास आना ही नहीं चाहता। अतः माया इसको कई प्रकार से दुखी करती रहती है। माया भगवान् की शक्ति है, जिसको आदेश है कि जो मेरी सृष्टि को सताता रहता है, उसे दुखी किया करे। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। क्योंकि कलियुग में भगवान् के भक्त, ग्राहक बहुत कम होते हैं। यह नियम ही है कि जिस चीज की कमी होती है, उसकी चाहना अधिक हुआ करती है। यदि मानव भगवान् की चाह करे तो भगवान् इसे बहुत जल्दी मिल जाएँ। लेकिन मानव, भगवान् को चाहता ही नहीं है। यह तो भगवान् से अपनी सुख सुविधा चाहता है। अतः भगवान् इसे उसकी इच्छित वस्तु दे देते हैं क्योंकि यह भगवान् का पुत्र है लेकिन स्वयं भगवान् इससे दूर रहते हैं। भगवान् इसे नहीं मिलते। माया बड़ी प्रबल है। यह जीव विषय सुख को खोजते खोजते बहुत दुखी हो गया है। जहाँ पर सुख दिखता है, सुख है नहीं। ये बाण की तरह चित्त में

चुभते रहते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसा कौनसा रसिकरस का विशेषज्ञ पुरुष होगा, जो बार–बार पवित्र कीर्ति भगवान् श्री कृष्ण की मंगलमय लीलाओं का श्रवण करके भी उनसे ऊब जाएगा? जो वाणी, भगवान् के गुणों का गान करती है, वही सच्ची वाणी है। वह हाथ सच्चे हाथ हैं जो भगवान् की तथा संतों की सेवा के लिए काम करते हैं। वही सच्चा मन है जो चराचर में निवास करने वाले भगवान् का स्मरण करता है। वही कान सच्चे कान हैं जो भगवान् की पुण्यमयी कथाओं को श्रवण करते हैं। वही सिर, सिर हैं, जो चराचर जगत् को भगवान् की चल–अचल प्रतिमा समझ कर नमस्कार करता है। जो सब जगह भगवान् का दर्शन करता है, वे ही नेत्र वास्तव में नेत्र कहलाने वाले हैं, जो भगवान् व भक्तों के दर्शन करते हैं, वही अंग, अंग कहलाते हैं, जो संत और भगवान् के काम आते हैं। वही गृहस्थ सच्चे गृहस्थ हैं।

जो संग्रह–परिग्रह से दूर रहता है। जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रख कर जीवन यापन करता रहता है, वही गृहस्थ सच्चा गृहस्थ है। जो भगवान् व संत से ही संपर्क रखता है एवं ग्राम चर्चा से दूर रहता है। गृहस्थ की रक्षा करने वाला केवल श्री गुरुदेव ही होता है। यदि गुरुदेव रुष्ट हो जाएँ तो बहुत बड़ा संकट गृहस्थ पर आ जाता है।

dop vHkn x# in itk] ,fg le fct; mik; u ntkA

(मानस, लङ्का. दो. 79 चौ. 5)

ब्रह्मा जी यदि नाराज हो जाएँ तो गुरुदेव रक्षा कर लेते हैं और गुरुदेव नाराज हो जाएँ तो भगवान् भी रक्षा नहीं कर सकते।

jk[kb xj tk dki fcèkkrkA
xj fcjkèk ufg dkm tx =krkAA

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

t xj pju ju flj èkjghA
r tu ldy fcHko cl djghAA

(मानस. अयोध्या. दो. 2 चौ. 3)

सच्चा संत वही है जो कंचन, कामिनी को जहर समझता है। जो इन में लिप्त है वह कपटी साधु है। वह खुद भी नर्क में जाएगा और शिष्यों को भी नर्क में ले जाएगा। कंचन में संसार की सभी विषय वासनाएँ शामिल हैं और कामिनी जाति को जो साधु, माँ का दर्जा देता है, वही सच्चा साधु है। जो मठ, मंदिर, आश्रम बनाता रहता है वह एक प्रकार का गृहस्थ धर्म ही अपना रहा है। वह संन्यासी नहीं है। केवल संन्यासी का बहाना बना रखा है। ऐसे साधु से दूर रहना ही उचित है। ऐसे साधु तांत्रिक होते हैं जो सबको फाँस लेते हैं। कुछ चमत्कारी होते हैं तो भोले–भाले मानव फँस जाते हैं।

शास्त्रों में महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री संगी कामियों के संग को नरक का द्वार बताया है। महापुरुष वही हैं जो समान चित्त, दयालु, परोपकारी, सदाचार संपन्न हों अथवा मुझ परमात्मा में ही रमे रहते हों। जो ग्राम चर्चा अथवा परिवार में आसक्त न हों। जो लौकिक कार्यों में इतना ही संपर्क रखते हों, जिनसे जीवन यापन हो जाए।

मनुष्य प्रमाद वश कुकर्म करने लगता है। इनकी यह प्रवृत्ति केवल इंद्रियों की तृप्ति करने की होती है जब तक लौकिक वैदिक कर्मों में ही फँसा रहता है इससे इसकी आत्म विस्मृति बनी रहती है एवं इसका पतन होना निश्चित है।

भगवान् कहते हैं कि, "मानव मेरे ही लिए कर्म करने से, मेरी कथाएँ सुनने से, मेरे भक्तों का ही संग करने से, वैरभाव त्याग से, घर गृहस्थी की आसक्ति के त्याग से, एकांत में रहने से धीरे–धीरे मानव को सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो जाता है।"

"जो पिता अपनी संतान को भक्ति मार्ग की शिक्षा नहीं देता, वह पिता, पिता नहीं। गुरु, गुरु नहीं। सम्बन्धी, सम्बन्धी नहीं। पति, पति नहीं।"

ब्रह्माजी बोल रहे हैं, "मेरे पुत्रों में रुद्र अर्थात् महादेव श्रेष्ठ हैं।" भगवान् कहते हैं, "महादेव ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं। अतः ब्रह्माजी

महादेव से भी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजी मेरे से उत्पन्न हुए हैं अतः ब्रह्माजी मेरी उपासना करते हैं। अतः मैं ब्रह्माजी को श्रेष्ठ मानता हूँ। लेकिन ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि मैं ब्राह्मणों को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ। जो ब्राह्मणों को दुख देता है, मुझे बर्दाश्त नहीं होता, उसका नाश होना निश्चित है।"

"जो श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उससे मैं तृप्त हो जाता हूँ। अग्नि में हवन करने पर मैं इतना तृप्त नहीं होता।"

"भक्त तो इतने निस्पृह होते हैं कि मुझसे कुछ नहीं माँगते। ऐसों को मैं कैसे त्याग सकता हूँ? मैं इनके लिए ही अवतार लेकर धरातल पर आता हूँ, एवं इनसे लीला वर्धन करता रहता हूँ।"

ध्यान से सुनिए! हमारा धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है कि जो मानव ब्राह्मण, गोविंद तथा गौ को मानता है, उसका स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। ब्रह्मा जी ने दक्ष प्रजापति को आदेश दिया कि, "प्रजा की वृद्धि करो।" तब दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी से 60 कन्याओं को जन्म दिया। जो धर्म को, कश्यप जी को, चंद्रमा को आदि–आदि को समर्पित कीं। इनसे सारी पृथ्वी पशु–पक्षी, रेंगने वाले जानवर अर्थात् पृथ्वी पर जितने भी चर–अचर प्राणी हैं, इनसे अर्थात् 60 कन्याओं से पृथ्वी लबालब भर गई। अच्छी–बुरी जीवमात्र से प्रजा भर गई। पहले मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में शरीर से सृष्टि होने लगी, नर–मादा से सृष्टि होने लगी।

ब्रह्माजी बोल रहे हैं, "हे अजन्मा प्रभु! जिन योगियों ने अपनी इंद्रियों एवं प्राणों को वश में कर लिया है वे भी यदि गुरुदेव की शरण न लेकर प्रमादवश अपने मन को वश में करने का प्रयत्न करते हैं, तो ये अपने प्रयास में सफल नहीं होते। बार–बार काँटों का सामना करना पड़ता है। केवल श्रम व दुख ही हस्तगत होता है। उसकी वैसी ही दशा होती है, जैसे समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर यात्रा करने वाले की होती है। तो कहने का मतलब है कि गुरु की परमावश्यकता होती है। वे संत पुरुष ही इस पृथ्वी तल पर

असली तीर्थ हैं क्योंकि उनके हृदय में सदा आप विराजमान रहते हैं। यही कारण है कि इन संत पुरुषों का चरणामृत समस्त पाप तापों को जड़ सहित सदा के लिए नष्ट कर देता है। आप आनंद स्वरूप सब के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं जो आप में मन लगा देते हैं, घर गृहस्थी में नहीं फँसते जो जीव विवेक, वैराग्य, धर्म, क्षमा, शांति, आदि गुणों को अपनाते हैं वे भी आप में रम जाते हैं।"

श्रीमद्भागवत महापुराण के 9वे स्कंध में बोला है कि भारत वर्ष भी एक अलौकिक स्थान है। यह पृथ्वी का टुकड़ा नहीं है। यह वैकुण्ठ का टुकड़ा है। जिसे अजनाभवर्ष बोला जाता है। इसमें जिस जीव का जन्म हो गया, उसके भाग्य की कोई सीमा नहीं है। जहाँ भगवान् प्रत्येक मनु के राज्यकाल में जन्म लेते हैं। जहाँ, वहाँ की देवियाँ नदियों के रूप में इस धरातल को पवित्र करती रहती हैं। जिनमें स्नान करने से जीवों के सभी पाप–ताप नष्ट होते रहते हैं। यहाँ के सभी पहाड़ देवता हैं, जिनकी गोद में बैठकर मानव तपस्या करता रहता है। पार्वती हिमालय की बेटी है जो शिवशंकर भोलेनाथ को ब्याही है। गंधमादन पर्वत जिसको उत्तराखंड बोला जाता है, उसके बीच में नर–नारायण लोक हितार्थ तपस्या करते रहते हैं जिसको बद्रीनाथ या बद्रीविशाल नाम से बोला जाता है। वहाँ वृद्धावस्था होने पर पांडवों आदि ने जाकर तपस्या में लीन होकर शरीर को छोड़ा है। भगवान् ने उन्हें वृंदावन में जाने की अनुमति नहीं दी क्योंकि वृंदावन में वही रह सकता है, जिसकी आँखें चिन्मयी हैं, वरना पग–पग पर अपराध होने का डर है। बद्रीनाथ धाम में अपराध का विचार नहीं है। अतः बड़े–बड़े पृथ्वी के सम्राट् बद्रीनाथ में जा कर ही दंपत्ति सहित तप करके शरीर छोड़ते हैं। अजनाभवर्ष के सभी पहाड़ देवलोक से आकर बसे हैं। समुद्र भी वहीं की देन है, तभी तो समुद्र, भगवान् को रत्नादि लाकर समर्पित करते हैं। प्रभास क्षेत्र में, द्वारिका क्षेत्र में, जो 84 कोस में बसा हुआ था, भगवान् के आदेश से समुद्र ने जगह दी। वहाँ कृष्ण ने द्वारिका नगरी बसाई। बाद में जब धाम पधारने लगे, तो आदेश दिया कि अब वहाँ वह

अपना स्थान वापिस ले ले तो वहाँ समुद्र वापिस आ गया। समुद्र भी देवलोक से आकर ही यहाँ पर बसा है।

भारत वर्ष में ऐसे–ऐसे तीर्थ हैं जहाँ संतगण भजन करते रहते हैं। यहाँ बिंदुसार तीर्थ है, जहाँ भगवान् के आंसू गिरे हैं। आंसुओं के बिंदु से यह तीर्थ प्रसिद्ध है। यहाँ पर कर्दम महात्मा तपस्या में लीन थे। मनुजी ने अपनी बेटी देवहूति, इनको ब्याही थी। उनके पुत्र के रूप में ही कपिल भगवान् का अवतार हुआ है। देवहूति की 9 कन्याएँ हुई हैं, जो बड़े–बड़े महात्माओं को ब्याही गई हैं। उनसे सृष्टि का विस्तार हुआ है। ब्रह्माजी के आदेश से मनुजी के उत्तानपाद, एवं प्रियव्रत दो पुत्र थे। जो पूरे संसार के सम्राट थे। एक बहन देवहूति थी।

कलियुग में भगवान् का नाम कितना प्रभावशाली है। शास्त्र बोलता है :

fcclg tkluke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

यदि जबरन भी हरि का नाम मुख से निकल जाय, तो उसके रचे–पचे पाप, जो किसी साधन से दूर नहीं हो सकते, वे दूर ही नहीं होते वरन् जल जाते हैं। जो पदार्थ जल जाए, वह दोबारा किसी काम का नहीं हो सकता। जिसे इस बात का पता नहीं है कि भगवान् ही सब का नियंत्रण करते हैं, वही इस परतंत्र जीव को कर्ता, भोक्ता मान बैठता है। स्वयं भगवान् ही प्राणियों की रचना करते हैं और उन्हीं के द्वारा मरवा भी देते हैं। जिस प्रकार इच्छा न होने पर, समय विपरीत होने पर मनुष्य को मृत्यु व अपयश मिलते रहते हैं, वैसे ही समय अनुकूल होने पर मनुष्य को आयु, यश, समृद्धि इच्छा न होने पर भी मिल जाते हैं। इसलिए सब समय में मनुष्य को सम रहना चाहिए। जैसा बिना बुलाए दुख आता है, वैसे ही बिना बुलाए यह सुख भी आता ही है। सत्, रज, तम गुण प्रकृति के हैं। आत्मा के नहीं, अतः जो मनुष्य इसका साक्षी मात्र होता है, उसे दुख होने का अवसर ही नहीं आ सकता। ऐसा ज्ञान मानव को सच्चे संत से

तथा धर्म शास्त्रों से उपलब्ध होता है। भगवान् बोल रहे हैं, "जब जीव मेरे स्वरूप को भूल जाता है, तब वह अपने को अलग मान लेता है। इसी से उसको संसार के चक्कर में पड़ना पड़ता है, क्योंकि मैं तो उसके हृदय में आत्मा रूप से बैठा हूँ और वह मुझे दूर ढूँढता है। तीर्थ में जाता है, मंदिर में जाता है, साधुओं के पास जाता है। मेरे से नजदीक तो कुछ है ही नहीं।

यह मनुष्य योनि ज्ञान एवं विज्ञान का मूल स्रोत है। इसे पाकर भी अपने प्रिय आत्मा को जो नहीं जानता, उसे किसी भी योनि में शांति नहीं मिल सकती।" यह मनुष्य योनि सुदुर्लभ है। कई कल्पों के बीतने के बाद, भगवद् कृपा से उपलब्ध होती है। इसको घर गृहस्थी के झंझटों में ही खर्च कर देता है। फिर वही जन्म मरण के चक्कर में फँस जाता है। कोई किसी का नहीं है। सभी अपना लेनदेन चुकाने के लिए आते हैं और धोखा देकर चले जाते हैं। अपना है तो केवल परमात्मा ही है। जीव परमात्मा का ही दोस्त है। लेकिन परमात्मा से दोस्ती न करके अनात्मा से दोस्ती करके अपना मार्ग भूल जाता है। जाना था परमात्मा के पास और चला जाता है दुश्मन के पास।

परमात्मा के अलावा सभी लुटेरे हैं, जो उसका सब मालमत्ता लूट कर चले जाते हैं। आँख बड़ा सुंदर दृश्य देखना चाहती है। कान बहुत सुंदर मधुर गाना सुनना चाहता है। नाक सुंदर मनमोहक सुगंध सूँघने हेतु आतुर रहती है। उपस्थ इन्द्रिय सुंदर नारी को भोगना चाहती है, अर्थात् दसों इंद्रियाँ लुटेरी हैं। जो इसको लूट कर चली जाती हैं। इसमें तन, मन, धन, खर्च करना होता है। पाप कर्म में पूरा कमाया हुआ धन खर्च करना पड़ता है और जो धन, धर्म में होना चाहिए, वह बेकार के मार्ग से चला जाता है। धर्म से तो सुख साधन इकट्ठा करेगा, वह खर्च होता नहीं। पाप कर्म में खर्च हो कर दुख का बीज बोकर चला जाता है। यही तो भगवान् की माया का नाटक है। इसी से संसार का खेल होता रहता है। सब जगह अँधेरा ही अँधेरा है। उजाला तो देखने को भी नहीं मिलता।

भक्तगण ध्यान से सुनिए! माया बड़ी प्रबल है यह ब्रह्मा, शिव को भी नहीं छोड़ती। ऋषभदेवजी, जो भगवद् अवतार थे, उनके सौ पुत्र हुए। जिनमें भरत सबसे बड़े थे। भारतवर्ष उनके नाम से ही जाना जाता है। पहले इसका नाम अजनाभवर्ष था। यह एक अलौकिक स्थान है। भरत ने एक करोड़ वर्ष तक राज्य शासन किया। इसके बाद अपने बेटों में इसे बाँट कर भजन करने हरिद्वार क्षेत्र में चले गए। वहाँ गंडकी नदी के तीर पर, आसन जमाकर भजन में लीन रहते थे। गंडकी नदी में शालिग्राम शिलायें हैं। जिसमें दोनों ओर चक्राकार चिह्न हैं। उस दिन नदी के किनारे संध्या कर रहे थे, तो अचानक से एक हिरणी जिसके गर्भ में बच्चा था, वहाँ आई और नदी किनारे पानी पीने लगी। इतने में उसने शेर की गर्जना सुनी एवं चौकन्नी होकर नदी में भय की वजह से, छलांग लगाई, तो गर्भ से हिरण शिशु नदी में गिरकर बहने लगा तो भरत को दया आई और वह उसे निकाल लाये और उसे आश्रम पर ले आए। अब तो भरत का मोह इस हिरण के शावक में फँस गया तो उनका भजन धीरे–धीरे छूट–सा गया। जब मौत आई तो इनका मन अंत समय में हिरण शावक में फँस गया तो अगला जन्म हिरण का ही हुआ। एक करोड़ साल तक पृथ्वी का राज करके, केवल भजन के लिए राज को त्याग दिया। फिर भी मन हिरण शावक में फँसने से अगला जन्म हिरण का हुआ। यह है भगवान् की प्रबल माया का तमाशा। भगवान् ही माया से दूर रख सकते हैं, अन्य उपाय से माया नहीं जा सकती है। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। अगला जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। अतः भक्ति फिर से उदय हो गई और इस जन्म में भगवान् के वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि हो गई। अतः माया से मानव को प्रार्थना करते रहना चाहिए, ताकि हावी न हो सके एवं भगवान् से तो माया से बचने की प्रार्थना करना जरूरी है ही।

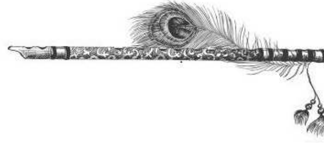
यह प्रसंग श्रीमद्भागवत पुराण में अंकित है कि एक बार सरस्वती नदी के पावन तट पर यज्ञ आरंभ करने के लिए बड़े–बड़े ऋषि–मुनि इकट्ठे होकर बैठे थे। उनमें इस विषय पर वादविवाद

चला कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव में कौन सबसे बड़ा है? किसकी आराधना करना उचित है? तो यह तय हुआ कि ब्रह्माजी के पुत्र भृगुजी को इन तीनों की परीक्षा हेतु भेजा जाए। भृगुजी सर्वप्रथम ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी, अपने पिताजी के पास गए। ब्रह्माजी अपने आसन पर विराजे हुए थे, तो भृगु जी अपने पिता को बिना प्रणाम किए ही अपने आसन पर बैठ गए तो ब्रह्माजी को गुस्सा आ गया कि, "बेटा! तुझे सभ्यता नहीं है? तू कैसा मेरा पुत्र है? तुझे मुझे प्रणाम करना तो दूर रहा, मेरे बिना पूछे जाकर आसन पर बैठ गया। यह कहकर भृगुजी को मारने को खड़े हो गए तो भृगुजी अपनी जान बचाकर भागे। फिर भृगुजी शिवजी के पास कैलाश पर्वत पर पहुँचे, तो शिवजी अपने भाई से मिलने को उठे कि उनका भाई बहुत दिनों के बाद आया है। अपने हाथ फैलाकर भृगु को छाती से लगाना चाहा तो भृगुजी ने अपने भाई शिवजी से मिलना नहीं चाहा। शिव जी को क्रोध आ गया और त्रिशूल हाथ में लेकर भृगुजी को मारने दौड़ पड़े। अब तो भृगुजी ने देखा कि वह उन्हें त्रिशूल से मार ही देंगे तो अपनी जान बचाकर भागे। पीछे–पीछे शिवजी भागने लगे तो भृगुजी कैलाश पर्वत से नीचे दौड़कर आ गए। शिवजी के हाथ से बड़ी मुश्किल से बचे। अब भृगुजी सोचने लगे कि विष्णु तो अपने सुदर्शन चक्र से उन्हें जला ही देंगे। लेकिन महात्माओं ने उन्हें भेजा है, इसलिए जाना तो जरूर पड़ेगा ही। विष्णु भगवान्, लक्ष्मी की गोद में सिर रखकर लेट रहे थे तो भृगुजी ने अचानक जाकर अपने पैर की लात, विष्णु की छाती में जाकर जमा दी, तो विष्णु भगवान् को ध्यान आया कि ब्रह्माजी का पुत्र आया है, और उन्हें मालूम नहीं पड़ा, क्योंकि वे अपने भक्त के ध्यान में मग्न थे। लक्ष्मी को विष्णु ने बोला, "तुमने भी मुझे नहीं बताया कि ब्रह्मा जी का बेटा आ रहा है।" लक्ष्मीजी बोलीं कि, "मैं आपके सिर की मालिश कर रही थी। मेरा ध्यान भी आपके सिर की ओर था। तो ब्रह्मा जी के बेटे को मैंने देखा ही नहीं, कब अचानक से आ गया।" तब विष्णु और लक्ष्मी जल्दी से शैया से उतरे और भृगुजी के पैरों को सहलाने लगे। भगवान् बोले,

"मेरी कठोर छाती से, आपके पैर में चोट लगी होगी मैं सहला देता हूँ। मुझे आपके आने का जरा भी मालूम नहीं पड़ा, वरना मैं आपकी अगवानी करने को आता। मुझे क्षमा करें, मेरे से गलती हो गई।" अब तो भृगुजी तीनों की परीक्षा कर चुके कि कौन बड़ा है और सभा में आकर तीनों की, जो स्थिति बनी थी, सबको खुलासे में वर्णन कर दिया। संत बोले, "ब्रह्माजी और शिवजी तथा देवता सभी जल्दी खुश हो जाते हैं और जल्दी ही नाराज हो जाते हैं। भगवान् विष्णु ने आज तक किसी को श्राप नहीं दिया, वरदान जरूर दिए हैं कि जाओ, तुम्हें मेरी भक्ति उपलब्ध हो जाएगी। श्राप, स्वयं कभी किसी को नहीं दिए। अपने भक्तों से ही दिलाए हैं। अतः विष्णु ही सर्वोच्च हुए।"

जैसे नारद को प्रेरणा करके, रामरूप में, भगवान् को पत्नी के लिए रोने का श्राप दिया है, जिससे वे सीता के लिए जंगल–जंगल में रोते फिरे हैं। जय–विजय को जो, वैकुण्ठ धाम के द्वारपाल थे, उनको सनकादिकों से श्राप दिलवा दिया। जो तीन जन्म तक राक्षस योनि में भगवान् से दुश्मनी करते रहे। हिरण्याक्ष–हिरण्यकशिपु, रावण–कुंभकरण, शिशुपाल–दंतवक्र। यह तीन जन्म तक भगवान् से दुश्मनी करके भगवान् की लीला में सहायक बनते रहे। भगवान् ही लीला हेतु प्रेरणा कर भक्तों से श्राप दिला दिया करते हैं। भगवान्, किसी को श्राप इस कारण नहीं देते क्योंकि सभी उनकी संतानें हैं। यह नियम है कि बाप कभी संतान को श्राप नहीं देता। संतान खराब हो जाती है परंतु बाप कभी बुरा नहीं होता। तो सब संतानों ने मिलकर यह ही निश्चय किया कि विष्णु भगवान् की शरण में होकर भजन करना सबसे सर्वोत्तम है। शिव, स्वयं वैरागी हैं फिर भी इनके भक्त धनी होते हैं एवं विष्णु भगवान् धनी होते हुए भी इनके भक्त निर्धन होते हैं। इसका कारण है भगवान् विष्णु धन, वैभव में जीव को फँसाते नहीं हैं। इन में फँसने से जीव का कभी दुख से छुटकारा नहीं हो सकता। भगवान् किसी को धन, वैभव नहीं देते। जिसके पास होता है, उसे भी छीन लेते हैं ताकि जीव निर्धन रहे तो उसे

कोई भी न सम्मान दे और न उससे बात करे। तो उस जीव का मन, केवल संत की तरफ व भगवान् की ओर, एक तरफ ही झुका रहेगा। संसारी जीवों से उसका मन हट जाएगा। मन का स्वभाव है कि मन एक तरफ ही अधिक झुकता रहता है, या तो संसार की ओर या भगवान् की ओर। अतः भगवान् जिसे अपनाना चाहते हैं, उसे निर्धन बना देते हैं ताकि ऐसे जीव को कोई चाहे ही नहीं और न ही वह किसी को चाहेगा।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : लीला स्मरण नाम जप से ऊपर है या नाम जप में उत्तम रस है? अर्थात् नाम जप में रस ज्यादा है या लीला स्मरण में रस ज्यादा है?

उत्तर : सभी में रस है। बीज नहीं होगा तो लीला स्मरण कैसे होगा? कहाँ से होगा? अगर बीज ही नहीं होगा, नाम ही नहीं होगा, तो लीला कहाँ से आएगी? मान लो जैसे हम कोई बीज बोते हैं। बीज बोने के ऊपर ही तो पेड़ आता है। बीज ही नहीं होगा, तो पेड़ कहाँ से आएगा। वही रस बीज में है और वही रस लीलाओं में है। लेकिन अभी हम इसमें घुले नहीं हैं, इसलिए हमको मालूम नहीं पड़ता।

हरेर्नामैव केवलम्

53

29 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं प्रार्थना है कि हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

जब महाभारत की तैयारी होने लगी तो अर्जुन तथा दुर्योधन भगवान् के पास पधारे। तब भगवान् अपनी शैया पर लेटे हुए थे। थोड़ी–थोड़ी नींद–सी आ रही थी। जब दोनों ही की आहट सुनी तो भगवान् कृष्ण को चेत (आभास) हो गया। अर्जुन तो भगवान् कृष्ण के चरणों की तरफ बैठ गए और दुर्योधन, भगवान् कृष्ण के सिरहाने की तरफ बैठ गए। जब भगवान् कृष्ण की आँख खुली तो प्रथम में अर्जुन की ओर नजर गई और भगवान् अर्जुन से बोले, "पार्थ! आज तुम कैसे आए हो?" इतने में दुर्योधन बोल उठा कि, "कृष्ण! पहले मैं ही आया हूँ। अर्जुन तो मेरे बाद में आया था।" भगवान् बोले, "दुर्योधन! मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा है। तुम तो सिरहाने बैठे थे। अतः मैं तुम्हें कैसे देख सकता था? मैंने तो शुरु–शुरु में अर्जुन को ही देखा है। खैर कोई बात नहीं, तुम दोनों किस वजह से मेरे पास आए हो? अपने आने की वजह बताओ?" तो दुर्योधन बोल उठा कि, "मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।" अर्जुन बेचारा चुपचाप रहा। भगवान् बोले, "तुम्हें कैसी सहायता चाहिए?" भगवान् बोले, "मैं दोनों की सहायता तो एक साथ में कर नहीं सकता। एक तरफ तो मेरी सेना है, दूसरी तरफ मैं हूँ। लेकिन मैं बता देता हूँ कि मैं लड़ूँगा नहीं। मेरी सेना जरूर लड़कर सहायता करेगी। अब तुम दोनों सलाह मशविरा

कर लो कि कौन किसको लेना चाहता है।" तो दुर्योधन बोला, "मैं तुमको लेकर क्या करूँगा? तुम तो चुपचाप बैठे रहोगे, मैं तो तुम्हारी 18 अक्षौहिणी सेना ही लूँगा।" अब अर्जुन बोला, "जब दुर्योधन ने आपकी सेना ले ली तो स्वतः ही उत्तर मिल गया। अतः आप मेरी तरफ हो जाना।" भगवान् बोले, "अर्जुन! मैं लडूँगा नहीं। केवल तुम्हारा सारथि बन जाऊँगा। जहाँ तुम आदेश दोगे, वहाँ रथ को ले जाऊँगा।" अब तो दुर्योधन को आनंद का खजाना मिल गया कि कृष्ण लड़ेगा ही नहीं तो उसकी जीत, शर्तिया होगी ही। अर्जुन ने मन में विचार किया कि, "बहुत अच्छा हुआ कि भगवान् मेरी तरफ हो गए।" मन में सोचा कि, "अब तो मुझे कोई परवाह नहीं है। कृष्ण अपने आप सँभाल लेंगे। मुझ पर से बोझ हट गया। विधाता ने मेरी सहायता कर दी।" अब तो कौरवों के पास जाकर दुर्योधन नाचने लगा। "भाइयो! अब तो हमारी जीत शर्तिया होगी ही। मैंने कृष्ण की 18 अक्षौहिणी सेना ले ली है। कृष्ण अर्जुन की तरफ हो गया और जबकि कृष्ण ने बोला है कि मैं अर्जुन का रथ ही हाकूँगा, लडूँगा नहीं, तो मैं उस ग्वाले को लेकर क्या करता?" ऐसा सुन कर, सब कौरवों ने हाथों से ताली बजाना शुरू कर दिया कि विधाता ने उनकी ओर से सहायता कर दी। भीष्म पितामह तो जान गए कि कृष्ण, जिसके पक्ष में होगा, अर्जुन की जीत निश्चित है। चाहे कृष्ण लड़े या न लड़े। लेकिन वह कौरवों के सामने चुप ही रहे। भीष्म पितामह को कौरवों की तरफ से लड़ना ही पड़ेगा, वह भी बेमन से, क्योंकि वह दुर्योधन का नमक खा रहे थे।

जब महाभारत आरंभ हुआ तो कृष्ण ने अपना रथ कौरव और पांडवों की सेना के बीच में खड़ा कर दिया तो अर्जुन देखता है कि वह अपने गुरुजनों को तथा परिवार वालों को कैसे मारेगा? वह तो पाप का भागी बन जायेगा। अतः शोकमग्न होकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया और कृष्ण से बोला, "मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं अपने ही परिवार वालों को तथा गुरुजनों को कैसे मारूँगा?" तब कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि, "तू क्षत्रिय है। तेरा स्वभाव ही तुझे युद्ध

करने में लगा देगा। अतः तुझे युद्ध करना परमावश्यक है। इन सब की आत्मा तो सदा अमर रहती है। यह आत्मा का आवरण जो शरीर है, वही तो नष्ट होगा। देशहित के लिए शरीर को न्योछावर कर देने से पाप नहीं लगता। यह क्षत्रिय का धर्म है। अतः युद्ध के लिए खड़ा हो जा।" बस इसी परिवेश को लेकर भगवान् कृष्ण ने गीता को आधार बनाकर, अपने मुखारविंद से मानव का सच्चा उद्धारकारक उपदेश दिया जो भगवान् के भक्तों को शुभ मार्ग दिखला रहा है। गीता समस्त धर्म ग्रंथों का सार है। इसमें मक्खन ही मक्खन है। इसमें छाछ, दूध, दही नहीं है। जिससे सार वस्तु निकली है, मक्खन। जब मक्खन की उपलब्धि हो जाए तो अन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता ही क्या है। इसमें भगवान् कृष्ण ने कई मार्ग बताए हैं। कर्म करो, ज्ञानवर्धन करो, योग करो, अंत में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में गीता का प्राण अर्थात् सार है।

loèkekZUifjR;T; ekesda 'kj.ka oztAA

(श्रीगीता 18.66)

"अर्जुन तू सब धर्म कर्म को छोड़ कर केवल मेरी शरण ले ले। तुझे कुछ करने की जरूरत नहीं है। मैं तुझे समस्त दुखों से पार कर दूँगा। जिस प्रकार एक शिशु, जो एक, डेढ़ साल की उम्र का होता है वह समस्त मन से, माँ की शरण में रहता है। बाप को तो वह जानता ही नहीं है। जब चंचलता करता है तो उसे कभी माँ तो कभी बाप पीट देता है तो शिशु कहीं किसी की तरफ नहीं जाता, केवल माँ के कपड़ों में ही जाकर चिपकता है। माँ बार–बार झिड़कती है, दूर हटाती है, परंतु कितना ही उसे पीटे, फिर भी माँ के पास ही जाकर कपड़ों में चिपकता है। इसी प्रकार भगवान् के भक्त का स्वभाव भी ऐसा ही होता है कि कितना भी दुख कष्ट भक्त पर आए तो भी भक्त, भगवान् के पास ही जाएगा और किसी देवता आदि की तरफ देखेगा तक नहीं। शास्त्र भगवान् के साँस से प्रकट हुए हैं। भक्त उन शास्त्रों के अनुसार ही अपना जीवन यापन करेगा। सभी देवताओं से यही माँग करेगा कि उसका मन श्री कृष्ण में लगा दे

और कुछ माँग नहीं करेगा। भगवान् की प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। यह प्रेरणा होती है सत्, रज, तम के भावानुसार। तमोगुणी व्यक्ति को भगवान् तमोगुण की ही प्रेरणा देते हैं। रजोगुणी व्यक्ति को रजोगुण की तथा सतोगुणी व्यक्ति को सतोगुणी प्रेरणा देकर, इसका जीवन चलाते रहते हैं। भगवान् की माया ही जीवमात्र को परतंत्रता प्रदान करती है। इस माया के पर्दे से भगवान् ढके रहते हैं। जब माया हट जाएगी तो भगवान् का दर्शन स्वतः ही हो जाएगा। भगवान् को भी योगमाया को अपनाना पड़ता है जिससे भगवान् की लीलाओं का प्रादुर्भाव होता है।

राजसी और तामसी वृत्ति को दूर करने हेतु सच्चे भक्त का संपर्क बहुत जरूरी है, ताकि सतोगुण की वृत्ति, इसमें जागृत हो जाए। भक्त के यहाँ सदा भगवान् की ही चर्चा होती रहती है, तो संसार की चर्चा धीरे–धीरे दबती रहती है। एक दिन संसार की आसक्ति नष्ट हो जाती है, तो मानव को सुख विधान उपलब्ध हो जाता है। दुख का आविर्भाव, संसार की आसक्ति ही है। संसार की आसक्ति हटी नहीं कि सुख का उदय स्वतः ही हो जाता है। संसार की आसक्ति क्या है? घर, खेत, कुटुंब में मन की फँसावट ही संसार की आसक्ति कहलाती है। यह आसक्ति कलियुग में केवल हरिनाम जप से ही दूर होती है। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं आचरण करके मानव को शिक्षा दी है। स्वयं थैली में वृंदा माँ की माला रखकर हरिनाम जप करते रहते थे। तीन युगों के मानव तथा देवता तक कलियुग में जन्म लेने की कामना करते रहते हैं। इतना सरल, सुगम साधन तीन युगों में नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में भगवान् को पाना बहुत कठिन होता है।

धन का एकमात्र फल है कि धर्म में खर्च करना। लेकिन मानव घर–गृहस्थी में खर्च करता रहता है। इसे मालूम नहीं है कि यह शरीर क्षणभंगुर है। धर्म करेगा तो परलोक में सुख देगा। धर्म करने से परम तत्व का ज्ञान और निष्ठा अनुभूति सिद्ध होती है एवं जो पैसा धर्म में नहीं लगता, वह जहरीले कर्मों में ही खर्च होता है।

शराब, जुआ आदि बुरे कर्मों में ही खर्च होता है। जिसका दुख अगले जन्म में भोगना पड़ता है। यज्ञ में भी शराब को सूँघने का ही विधान है पीने का नहीं। लेकिन अपनी जीभ की तृप्ति हेतु पीते हैं। यज्ञ में पशुओं का स्पर्श ही माना गया है लेकिन पशुओं के माँस का भक्षण करते हैं। यही पशु, अगले जन्म में खाने वाले को खाते हैं। इसी प्रकार विषय भोग के लिए, अपनी धर्म पत्नी से मैथुन की आज्ञा भी नहीं है, केवल संतान की प्राप्ति के लिए ही है। संतान, नरक से माँ—बाप का उद्धार करती है। लेकिन जो लोग विषयी हैं, उन्हें विशुद्ध धर्म का ज्ञान ही नहीं है।

जो शास्त्रीय बात को नहीं जानते, वे घमंडी तथा दुष्ट ही हैं लेकिन समझते हैं अपने को पंडित। उनको मालूम होना चाहिए कि तुम्हारे सामने ही सभी मर—मर कर जा रहे हैं। क्या तुम यहाँ पर जिंदा रहोगे? जो लोग इस शरीर से तो प्रेम करते हैं और दूसरे शरीरों में रहने वाले, अपनी ही आत्मा एवं सर्वशक्तिमान भगवान् से द्वेष करते रहते हैं, ऐसों का नरक—वास निश्चित है। जो लोग आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष के मार्ग पर नहीं गए हैं, जो पूरे—पूरे मूढ़ भी नहीं हैं, वे अधूरे हैं, न इधर के हैं, न उधर के हैं। वह अर्थ, धर्म, काम इन तीनों पुरुषार्थों में फँसे रहते हैं। एक क्षण के लिए भी इन्हें शांति नहीं मिलती। यह अपने हाथों से ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। ऐसों को ही आत्मघाती कहा जाता है। काल भगवान्, इनके मनोरथों पर पानी फेरते रहते हैं। इनके हृदय की जलन, विषाद कभी मिटने वाली नहीं है। इसी भाव से मर जाएँगे। यह अत्यंत परिश्रम करके गृह, पुत्र, मित्र एवं धन संपत्ति इकट्ठी करते हैं, लेकिन इनको अंत में यहीं छोड़कर जाना होता है एवं न चाहने पर भी घोर यातनामय नर्क में जाना पड़ता है। भगवान् को न मानने वालों की यही गति होती है। यह पापी लोग भगवान् के भक्तों की हँसी उड़ाया करते हैं। यह मूर्ख, बड़े, बूढ़ों की नहीं, स्त्रियों की उपासना करते रहते हैं। यही नहीं, यह एक जगह बैठकर बड़े—बड़े मंसूबे बाँधते रहते हैं। इन्हें संसार का सबसे बड़ा सुख स्त्री सहवास में ही होता

है। इनकी सारी उम्र, व्यर्थ के कामों में व बातों में ही कट जाती है। मनुष्य जन्म जो बहुत महत्वशील है, यूँ ही बेकार में गवाँ देते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण बोल रही है कि जो मनुष्य ब्राह्मण, गो और गोविंद को अपना सर्वस्व मानते हैं, उनपर कभी अमंगल, दुख, कष्ट नहीं आ सकता है। देवता भी भारतवर्ष अर्थात् अजनाभवर्ष की महिमा गाते हैं। "आहा! जिन जीवों ने भारतवर्ष में भगवान् की सेवा के योग्य, मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा कौन सा शुभ कर्म किया है अथवा स्वयं हरि ही प्रसन्न हो गए हैं। इसमें जन्म के लिए हम ही तरसते रहते हैं।"

हमने कठोर तप, यज्ञ, व्रत, दानादि करके, इस तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त किया है। इससे क्या लाभ हुआ? भोगों के भोगने में भगवान् को भूले रहते हैं। यह स्वर्ग तो क्या, जहाँ निवासियों की एक–एक कल्प की आयु होती है। फिर इस संसार चक्र में आना पड़ता है। उन ब्रह्मलोक आदि की अपेक्षा, भारत में थोड़ी आयु होने पर जन्म लेना सर्वोत्तम है क्योंकि यहाँ पर संपूर्ण कर्म, भगवान् को अर्पण करके, अभय पद प्राप्त हो जाता है। जहाँ कथामृत की नदियाँ बहती रहती हैं, जहाँ साधु जन निवास करते हैं, जहाँ यज्ञों का विस्तार होता रहता है। कलियुग के समय भगवान् सरलता से मिल जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि फिर भी क्यों नहीं मिलते? इस कारण से नहीं मिलते कि मानव, भगवान् को दुखी करता रहता है। चर–अचर प्राणियों में भगवान् आत्मा रूप से विराजते हैं। मानव दूसरे प्राणियों से राग–द्वेष करता रहता है। राग–द्वेष आत्मा से ही होता है। यह शरीर तो आत्मा का कपड़ा है। कपड़ा तो जड़ होता है, निर्जीव होता है। कष्ट होगा तो आत्मा को होगा। कहावत है कि किसी की आत्मा को मत सताओ। ऐसा कोई नहीं बोलता कि किसी के शरीर को मत सताओ। मानव हरे पेड़ को तने में से काटता है तो पेड़ तो मर जाएगा। तो दुखी हुई आत्मा। आत्मा के अभाव में पेड़ सूख कर गिर जाएगा। आत्मा तो प्यार का टुकड़ा है, क्योंकि भगवान् कृष्ण का

अंश है। भगवान् कृष्ण ही बनाने वाले हैं और भगवान् कृष्ण ही बनने वाले हैं। देखा जाए तो सभी संसार भगवान् का ही है। ऐसी दृष्टि मानव की जब हो जाएगी तब हरिनाम एकाग्रता से जपा जाएगा। नाम भगवान् को जप रहे हैं और मन जा रहा है बाजार में, खेत में, कार्यालय में तो यह नामाभास हुआ, शुद्ध नाम नहीं है। शुद्ध नाम उसी को बोला जाएगा, जब जापक के पास में भगवान् मौजूद हो। 99% जापक नामाभास ही कर रहे हैं।

जगत् का काम ही मन के रुके बिना नहीं हो सकता तो हरिनाम शुद्ध कैसे हो सकेगा? इतना ही नहीं है, जापक को 10–20 साल हरिनाम जपते हुए हो गए, फिर भी नाम में रुचि नहीं, अश्रुपात नहीं, पुलक नहीं तो क्या कहना होगा कि नामापराध हो रहा है। जगत् में आसक्ति फँसी पड़ी है। मन से हरिनाम नहीं हो रहा है। टी.वी. देख रहे हैं और हरिनाम कर रहे हैं। कितनी बड़ी भूल हो रही है। बातें कर रहे हैं और हरिनाम कर रहे हैं। जब तक जिज्ञासा नहीं होगी, न कथा में रुचि होगी, न हरिनाम में रुचि होगी। एक तरह से घास काट रहे हैं। घास काटने से भगवान् नहीं मिलेगा। न सुख मिलेगा। कहते रहते हैं कि हम इतना जप कई सालों से कर रहे हैं, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। होगा भी नहीं। अपने मन से पूछो कि मन हरिनाम करता है क्या? मन तो संसार को जपता है। हरिनाम तो कोसों दूर बैठा है। अपना दोष तो देखते नहीं हैं और हरिनाम में कमी निकालते रहते हैं।

मानव अपना धंधा करता है। वह होना चाहिए, धर्म के लिए। परंतु होता है धन, परिवार के लिए जो इसे कोई सुख नहीं देगा। पुत्र के दष्टौन (पुत्र होने के बाद समारोह) में खूब पैसा लगा देगा। फिर पढ़ाई में खूब खर्च कर देगा। इसके बाद शादी में खूब खर्च कर देगा। इसके बाद पोते के दष्टौन आदि–आदि में खर्च कर देगा। जो इसको 1% भी सुख नहीं देगा। यह सब लुटेरे का धन लूट रहे हैं। सैर–सपाटे के लिए प्रेरित करके पैसा खर्च करवाएँगे। लेकिन धर्म में एक पैसा नहीं लगेगा। लाखों रुपया मकान में खर्च कर देंगे, जो

यहीं पर छोड़ कर संसार से कूच कर जाएगा। अगले जन्म में भूखा मरेगा क्योंकि धर्म करने से ही भविष्य में पेट भरता है। धर्म तो किया नहीं। अधर्म में पैसा खर्च हुआ तो अगला जन्म, भीख माँगकर पेट भरना होगा। शास्त्र कहता है कि कमाई होनी चाहिए धर्म के लिए, एवं होती है अधर्म के लिए। जो जैसा किया वैसा भोगो। किसका दोष है? दोष खुद का है। जैसा बोया, वैसा काटो। इसमें दूसरे को दोष क्यों देते हो?

श्रीमद्भागवत पुराण में श्रीकृष्ण उद्धव को समझा रहे हैं कि, "साधक को चाहिए कि सब तरह से मेरी शरण में रहकर, शास्त्र के द्वारा, मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मों का सावधानी से पालन करें। साथ ही जहाँ तक विरोध न हो, वहाँ तक निष्काम भाव से अपने वर्णाश्रम और कुल के अनुसार सदाचार का अनुष्ठान करें। किसी जीव को दुखी न करें। निष्काम होने का उपाय यह है कि स्वधर्मों का पालन करने से, शुद्ध हुए अपने चित्त में, यह विचार करें कि जगत् के विषयी प्राणी शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषयों को सत्य समझ कर, उनकी प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न करते हैं, उनमें उनका उद्देश्य तो सुख पाने का होता है परंतु मिलता है दुख। जैसे स्वप्न अवस्था में व जागृत अवस्था में चित्त में कितने संकल्प–विकल्प आते रहते हैं। लेकिन उनका सारा चिंतन सारहीन ही होता है, कुछ प्राप्ति नहीं होती। जो पुरुष, मेरी शरण में है, उसे अंतर्मुख करने वाले निष्काम अथवा नित्यकर्म ही करने चाहिएँ। उन कर्मों को त्याग देना चाहिए जो बहिर्मुख करने वाले हैं तथा सकाम हैं। जब आत्मज्ञान की इच्छा जाग उठे, तब तो कर्म विधि विधान का आदर भी न करें। अहिंसा आदि नियमों का ही पालन, आदर सहित करना चाहिए। परंतु शौच अर्थात् पवित्रता का आदर तो शक्ति अनुसार ही करना उचित है।

"उद्धव! यदि ऐसा भी मान लिया जाए कि लोग सुख की प्राप्ति एवं दुःख के नाश का उपाय जानते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि उसको भी सुख पाने का उपाय मालूम नहीं है क्योंकि उनके सिर पर मृत्यु खड़ी है। तो कौन सी सुख की सामग्री है, जो उन्हें सुखी कर

सके? जैसे किसी को फाँसी पर लटकाने को ले जाया जा रहा है, तो क्या उसे जगत् की वस्तुएँ सुखी कर सकेंगी? यहाँ की सभी वस्तुएँ नाशवान हैं तो जिस पदार्थ का नाश सामने दिख रहा है, क्या वह पदार्थ उसे सुखी कर सकेगा? प्यारे उद्धव! लौकिक सुख के समान पारलौकिक सुख भी बेकार ही है क्योंकि वहाँ भी बराबरी वालों से ईर्ष्या, द्वेष चलता रहता है। सुख है तो उसी को है, जो मन का शांत है। नानक जी कह रहे हैं।

dkb ru n[kh] dkb eu n[kh]
vkj dkb èku fcu fQj mnkl A
vj! ukudk FkkM FkkM lc n[kh
,d l[kh jke dk nklAA

राम के दास का मन स्थिर रहता है। संसारी संकल्प–विकल्प उसको उठते नहीं हैं। केवल भगवान् में ही चित्त लगा रहता है। जितने भी रोग हैं, वह राक्षस हैं। यह भी भगवान् ने ही जगत् में भेजे हैं। यह सब दवाईयाँ, देवता हैं, यह भी भगवान् ने ही धन्वन्तरि का अवतार लेकर, जड़ी–बूटियाँ पहाड़ों में प्रकट करके, देवताओं के रूप में, राक्षस रोगों से लड़ने हेतु प्रकट की हैं। कुछ राक्षस लोग इस प्रकार के होते हैं, जो दवा रूपी देवताओं से जीते नहीं जाते। वे रोग हैं गठिया अर्थात् शरीर के प्रत्येक जोड़ में दर्द होता है। दमा, जो साँस लेने में अटकाव करता है। इसमें चलना फिरना दुविधाजनक होता है। साँस फूलता रहता है। कई दमा इस प्रकार के होते हैं, जो बैठे–बैठे ही साँस का आना जाना मुश्किल से होता है। कैंसर रोग, एक प्रकार का फोड़ा होता है, जिसकी जड़ें चारों और फैलती रहती हैं। इस रोग से मानव का बचना बहुत मुश्किल है। जलोदर रोग, पेट में पानी भरता रहता है। बुखार भी कई तरह के होते हैं, जो अधिकतर मच्छरों से व गंदा पानी पीने से फैलता है। इसमें अधिकतर मौतें होती रहती हैं। एक होता है दिमागी बुखार, इसमें भी बचना मुश्किल से होता है। लकवा, जिसे पक्षाघात भी बोला जाता है। इस प्रकार से कुछ असाध्य रोग होते हैं, उनसे देवता हार जाते हैं। देवता

रूपी दवा असर नहीं करती और चर–अचर प्राणी मर ही जाता है। कुछ रोग रूपी राक्षस, देवता रूपी दवाओं से हार जाते हैं। जैसे सादा बुखार, दस्त, सिर दर्द, जुखाम, वातरोग, पेट दर्द, प्रमेय, प्रदर आदि–आदि राक्षस रोग, देवता रूपी दवाइयों से हार जाते हैं।

लेकिन एक रामबाण दवा ऐसी है, जो असाध्य रोगों को भी अपने पैरों नीचे कुचल डालती है। वह है शक्तिशाली हरिनाम जप। जिसके शरीर में रम जाता है, राक्षस रूपी रोग उसके पास आने में डर जाते हैं, यदि हम इसके शरीर में घुस जाएँगे, तो यह हरिनाम रूपी शक्तिशाली देवता, हमें जलाकर भस्म कर देगा। अतः सभी को हरिनाम का सहारा लेना परमावश्यक है। हरिनाम से रोगों से बचना हो जाएगा और जन्म–मरण रूपी जघन्य दुखदाई रोग भी हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। गर्भाशय रूपी गुफा में 8 से 10 माह घुसा नहीं रहना पड़ेगा। यह भी एक नरक का ही भाग है। फिर 6–7 माह तक हिलना डुलना नहीं होगा। खटमल, मच्छर कोमल त्वचा को खाते रहेंगे। कुछ कर सकते नहीं। दुख पाते रहो। बड़े होने पर तरह तरह के दुष्ट–कष्ट आते रहेंगे। सुख की तो हवा भी नहीं लगेगी। अतः हरिनाम ही इससे बचने का एकमात्र उपाय है। उसी का सहारा लेना ठीक होगा।

पिछले अनेक बुरे कर्म मानव से होते रहते हैं। उनका अच्छा–बुरा फल मानव जीवन में अवश्यमेव मिलता रहता है। भीष्म पितामह काँटों की शैया पर क्यों सोये? क्या उनके लिए सेजों की कमी थी? कोई कमी नहीं थी। कई जन्म पहले भीष्म पितामह कहीं रथ पर बैठकर जा रहे थे, तो मार्ग में एक साँप पड़ा हुआ था। उसको बचाने हेतु भीष्म पितामह ने अपने चाबुक से उसे उठाकर फेंका, वह साँप एक काँटों की झाड़ी पर पड़ गया, जिससे उसका शरीर काँटे गड़ने से छलनी हो गया। उसका फल, नतीजा इस जन्म में मिला। उनको भी काँटों पर सो कर ही देह त्यागनी पड़ी, जैसे साँप को देह त्यागनी पड़ी थी।

आजकल देख रहे हो, कितनी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। यह भी पूर्व जन्मों के कुकर्मों के ही नतीजे हैं। कौन किस को मारता है?

जिस ने, जिस को मारा है, वही उसे किसी भी कारणवश मार देता है। नाम होता है ट्रोला से मारा गया, बस से मारा गया, ट्रक से मारा गया, ट्रेन से मारा गया, जल में डूब कर मर गया, आग में जलकर मर गया। जिसने जगत् में जन्म लिया है, वह एक दिन अवश्य मरेगा ही। प्रत्येक मनु के राजकाल में भगवान् अवतार ले कर, अपना काम करके जाते हैं। काल व महाकाल, सब चर–अचर की आयु को अपने गाल में धर दबाता है। किसी को छोड़ता नहीं है। केवल भगवान् के भक्तों पर उसका वश नहीं चलता है। यह अपनी मर्जी अनुसार देह छोड़ते रहते हैं क्योंकि इनको हरिनाम, शक्तिशाली का आसरा रहता है। हरिनाम ही इन से पूछ कर, अपनी आत्मा, इनके तन से बाहर करता है। भक्त परमात्मा का सिरमौर है। अतः भक्त के आदेश बिना, आत्मा शरीर से बाहर नहीं आता।

भक्तगण ध्यान से सुनिए! भगवान् स्वयं अपने मुखारविंद से घोषणा कर रहे हैं कि –

lue|[k gkb tho ekfg tcghA tUe dkfV v?k ukl fg rcghAA

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरा नाम ऐसा शक्तिशाली सुदर्शन चक्र है कि मेरा नाम जिसके मुख से निकल जाए तो मरते समय वह एक ही नाम, अनंत कोटि जन्मों के पापों को भस्मीभूत कर देता है। फिर कह रहे हैं :

ftUg dj uke| y\r tx ekghA ldy vexy ey ulkghAA

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

जड़ सहित ही दुख नाश हो जाते हैं। दुख की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख आने का सवाल ही कहाँ होगा।

फिर कह रहे हैं :

fcclg| tkl|uke uj dgghA tue vud jfpr v?k ngghAA

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

करोड़ों जन्मों के रचे–पचे गहरे पाप जलकर भस्म हो जाते हैं।

गंभीर व मार्मिक प्रश्न

54

30 अक्तूबर, 2017
छींड़ की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

(गंभीर प्रश्न का मतलब है जो साधारण व्यक्ति नहीं बता सकता, कितना बड़ा महात्मा भी हो वह भी नहीं बता सकता। गंभीर प्रश्न केवल भगवान् ही बता सकते हैं।)

पंचभौतिक शरीर से एक दिन आत्मा निकल जाती है फिर सजा कौन से शरीर को भोगनी पड़ती है?

प्रथम में कोई सृष्टि नहीं थी सभी जगह सुनसान स्थिति थी, भगवान् को खेलने की अर्थात् लीला रचने की स्फुरणा हुई तो भगवान् को योगमाया के सत्, रज, तम गुणों को अपनाना पड़ा और उनके चिन्मय शरीर से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

जीव भगवान् का अंश है। जीव शुभ–अशुभ कर्म करता है, इस कर्म से ही जन्म–मरण अवस्था प्रकट हुई। शुभ कर्म करने से सुखकारी उच्चतम लोक प्राप्त हुए और अशुभ कर्म करने से दुखमय नरक लोकों की उपलब्धि हुई। अब सभी का प्रश्न है कि जब शरीर से आत्मा निकल

जाती है तो शरीर जड़ अवस्था में हो जाता है तो सजा आत्मा के बिना कौन से शरीर को मिलती है ? घड़ी का सैल (Cell) निकल गया तो घड़ी कैसे चलेगी तो आत्मा जब निकल गयी तो आत्मा के बिना नरक में जा के, जो बुरा काम किया है, उसको जीव कैसे भोगेगा? यह प्रश्न बहुत गंभीर है जो ठाकुरजी ने ही बताया है।

आत्मा के निकलते ही यमदूत आते हैं और जिसने पाप किये हैं उसके गले में फाँसी लगा कर उसको कोड़ों से पीटते हुए ले कर जाते हैं।

पीटते किसको हैं अब? यह प्रश्न है। यह यातनामय शरीर आत्मा के निकलने पर मिलता है जिसे लिंग शरीर, सूक्ष्म शरीर, स्वभाव का शरीर, आदत का शरीर तथा इन्द्रियमय शरीर भी बोला जाता है। आत्मा एक दम स्वच्छ पदार्थ होता है इसको आग जला नहीं सकती, हवा सुखा नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, इसको दुःख–सुख अनुभव नहीं होता, यह तो जीव का कर्म देखता रहता है। आत्मा भोक्ता है, जीव भोग्य है लेकिन जीव भोक्ता बन जाता है तो उसको सजा दी जाती है, इस सजा का रूप है यातनाएँ, कष्ट, दुख आदि। जब शरीर में कोई भी कष्ट होता है तो वह जीव को होता है न कि आत्मा को। आत्मा तो निर्लिप्त है आत्मा शरीर से निकलने पर तुरन्त दूसरा शरीर धारण कर लेती है अर्थात् कर्मानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है, आत्मा कहीं पर भी क्षण भर भी नहीं रुकती। सुख–दुख जीव को महसूस होता है, लिंग शरीर से, जिसके अन्दर की आँखों से हम दूर की वस्तु देख लेते हैं, जिसके अन्दर के कान से सुन लेते हैं, बस उस शरीर को ही नरक में जाना पड़ता है। लिंग

शरीर से ही नरक–स्वर्ग मिलता है। उदाहरण के तौर पर, एक शराब पीता है और एक उसको शराब पीने से मना करता है, एक चोरी करता है और एक कहता है चोरी मत किया करो, एक माँस खाता है और एक कहता है माँस मत खाया करो, एक तो कहता है अच्छी बात है और एक कहता है बुरी बात है तो यह आदत ही तो हुई जिसको लिंग शरीर, स्वभाव शरीर और कारण शरीर आदि बोलते हैं।

भगवान् भगवद्गीता में कहते हैं, "इन्द्रियों में, मैं स्वयं ही मन हूँ।" तथा मरने के बाद मन भी साथ जाएगा तो मन सब कुछ बता देगा कि इसने क्या–क्या कर्म किए हैं और फिर उसके अनुरूप ही जीव को कष्ट दिया जाता है। मन (भगवान्) केवल देखता रहता है और सजा जीव (भगवान् के अंश) को दी जाती है। जैसे अगर हमारी उंगली में दर्द हो तो पूरे शरीर में दर्द होता है लेकिन आत्मा को दर्द नहीं होता, दर्द केवल जीव को ही होता है। शरीर में एक आत्मा है और एक जीव है, दुख हमेशा जीव को ही होता है।

चिकित्सक (Surgeon) ऐसा इंजेक्शन लगाता है कि मन को सुला देता है, मन सो जाता है तभी तो दर्द नहीं होता, जब दवा का असर खत्म हो जाए तो मन जग जायेगा तो फिर दर्द महसूस होगा। एक पेड़ पर दो पक्षी बैठे हैं एक परमात्मा है और दूसरा पक्षी है जीव। सब कुछ है तो उस परमात्मा का, पर जीव ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। अधिकार परमात्मा का है, परन्तु जीव अपना अधिकार जमाता है, तो उसको दण्ड मिलेगा या नहीं? जैसे मेरे पास 100 रुपए हैं और आपने जबरदस्ती ले लिए, तो आपको सजा तो मिलेगी ही। दूसरे का अधिकार छीनना ही सजा

का कारण है। जब भजन कर– कर के भगवान् में पूर्ण रूप से मन लग जाता है, तो यह लिंग शरीर खत्म हो जाता है और दिव्य शरीर मिल जाता है।

शरीर पंचतत्त्व से बना हुआ है, पंचतत्त्व के बिना किसी का भी शरीर बनता नहीं है। ये पंचतत्त्व हैं : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनमें से एक का भी अभाव होने पर शरीर समाप्त हो जाता है अर्थात् आत्मा शरीर को छोड़ देती है। अन्नमय शरीर तो खत्म हो जाता है पर सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर, स्वभाव शरीर, इन्द्रियमय शरीर) तो खत्म नहीं होता वो खत्म तब होगा जब हमारा स्वभाव एक दम स्वच्छ हो जाएगा। स्वभाव जीव से ही जुड़ा रहता है, जीव परमात्मा का अंश है, इस अंश को ही सुख–दुख भोगना होता है। अनंत जन्मों से, स्वभाव गन्दा हो जाता है तो भगवान् को याद करने से स्वभाव स्वच्छ हो जाता है, इसे ही भजन कहते हैं। हम भजन इसलिए करते हैं कि हमारा मन अभी ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में घुसा हुआ है और यह सब मैल के रूप में मन पर जमें हुए हैं। हरिनाम करने से यह मन शुद्ध हो जायेगा तो लिंग शरीर खत्म हो जायेगा और दिव्य शरीर उपलब्ध हो जायेगा, यह शरीर पंच भौतिक नहीं होता, यह अप्राकृतिक शरीर होता है, इसको दुख की छाया भी नहीं होती, यह आनन्दमय शरीर होता है जो भगवान् के भजन से उपलब्ध होता है। जैसे अन्नमय शरीर खत्म हो जाता है उसी प्रकार लिंग शरीर को खत्म करने के लिए स्वभाव अच्छा बनाना चाहिए, भजन करना चाहिए, हरिनाम करना चाहिए। लिंग शरीर के खत्म होते ही हमें एक दिव्य शरीर मिलेगा

और वह शरीर भगवान् के पास ले जाता है जब तक वह नहीं होगा तब तक जीव इस संसार में ही रहेगा, लिंग शरीर में ही रहेगा। लिंग शरीर खत्म होगा तो ही जन्म–मरण छूटेगा, जितनी देर लिंग शरीर रहेगा तब तक जन्म–मरण होता ही रहेगा और हम दुख पाते ही रहेंगे, कभी नरक में जायेंगे, कभी स्वर्ग में जायेंगे और कभी कहीं चले जायेंगे परन्तु ठाकुर नहीं मिलेगा। जब स्वभाव ठीक हो जायेगा व पूरा निर्मल हो जायेगा तब दिव्य शरीर अपने आप मिल जाएगा। जब रात खत्म हो जाती है तो सूर्य का दर्शन हो जाता है। रात खत्म होने का मतलब है जब अवगुण खत्म हो जायेंगे, तो भगवान् का दर्शन हो जायेगा।

जीव नरक भोगने के बाद 84 लाख योनियों में जाकर दुख, कष्ट भोगता है, अनन्त चतुर्युगी के बाद अर्थात् अनन्त कल्पों के बाद भगवान् दया करके दुख से छूटने हेतु मानव शरीर देते हैं फिर यह जीव अशुभ कर्म करके इसी माया की चक्की में पिसने को चला जाता है। किसी सच्चे संत की कृपा से ही वह जीव वापस भगवान् की गोद में जा सकता है दूसरा कोई रास्ता नहीं है सुख पाने का। कलियुग में तो सच्चा संत मिलना टेढ़ी खीर है यदि किसी जीव को मिलता है तो उस पर भगवद्कृपा ही है, भगवद्कृपा भी तब ही होगी जब जीव को किसी सच्चे संत की सेवा करने का अवसर मिल जाए। सच्चे संत की पहचान है कि पैसा व नारी उसके लिए शत्रु का काम करें। उसके लिए पैसा मिट्टी तथा नारी माँ के समान हो। इसके पीछे अहंकार तो विलीन ही हो जाता है। पैसा व नारी ही खास माया का रूप हैं जो जीव को माया में फँसाते हैं, भगवद्कृपा के बिना यह जीव से दूर नहीं होते।

भगवत् प्रसाद

55

22 अप्रैल 2018
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे गुरुदेव कह रहे हैं कि भगवान् हाथ फैलाए खड़े हैं। अरे! मेरे पुत्र! मेरे पास आ जा। लेकिन जीव ऐसा मस्त हो रहा है कि उसकी तरफ देखता ही नहीं है। आप बहुत ध्यान से सुनो! गुरुदेव बहुत जल्दी भगवान् से मिला देंगे। मैं बताता हूँ, बहुत जल्दी भगवान् मिल जाएँगे। हरे कृष्ण! ध्यान से सुनो! गुरुदेव भक्तगणों को बता रहे हैं कि भगवान् जल्दी कैसे मिल सकते हैं? अतः ध्यान से सुनो! भगवान् मिले मिलाए हैं केवल, बस थोड़ी सी कसर है। भक्तगण ध्यान से सुनें ! जिसको सुनने से, साधन करने से, भगवान् में प्रीति स्वतः ही हो जाती है एवं सांसारिक आसक्ति स्वतः ही दूर भाग जाती है। यही सबसे बड़ा रोड़ा है। संसारी आसक्ति का ही रोड़ा है। इस रोड़े को हटाने के लिए, मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, ऐसी युक्ति मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि खानपान व पानी शुद्ध होने से माया की दाल, उस साधक पर हावी नहीं हो सकती।

खानपान और पानी शुद्ध होने से माया की दाल, उस साधक पर हावी नहीं हो सकती। पहला साधन है कि कमाई अपने पसीने की हो। दूसरे के हक की कमाई जहरीली होती है। दूसरे के हक की कमाई घर में आ गई तो कलह करा देगी, झगड़े करवा देगी।

भगवान् की भक्ति का जन्म तब होता है कि जैसे जब माताएँ गेहूँ आदि अनाज को छानकर साफ करती हैं, तो इसके पहले माताएँ हाथ पैर धोएँ। ध्यान से सुनिए! सभी माताएँ हाथ पैर धोएँ और कुल्ला करके मुँह साफ करें। फिर हरिनाम मन–ही–मन अथवा धीरे–धीरे उच्चारण करते हुए अनाज को साफ करती रहें। इसके बाद पिसाई करते समय भी हरिनाम को छोड़ें नहीं। फिर रसोई बनाने की तैयारी करती हैं तो भगवद् नाम लेते हुए सब्जी को छीलें। रसोई–घर में जाकर पहले रसोई को झाड़ू से अथवा पानी से साफ करें और सब्जी अग्नि पर चढ़ा कर तैयार करें और हरिनाम न छोड़ें। साथ–साथ हरिनाम करती रहें। फिर आटा गूँधकर चपाती आदि चूल्हे पर तैयार करती रहें और हरिनाम करती रहें, हरिनाम को छोड़ें नहीं। यह हुआ माताओं का कर्म, जिससे भक्ति का जन्म हुआ।

भगवद् नाम–जप करते हुए वे कर्म करती रहें। अब अमणिया को प्रसाद हेतु तुलसीदल डालकर भगवान् को भोग हेतु अर्पण करें। भोग को अमणिया कहते हैं, फिर बाद में प्रसाद हो जाएगा। दो थालियों में अर्पण करें। एक गुरु का और एक भगवान् का। केवल 5 मिनट ही ऐसा ध्यान करें कि गुरुजी और भगवान् बड़े प्यार से खा रहे हैं। केवल 5 मिनट, ज्यादा देर नहीं क्योंकि भगवान् तो भाव के भूखे हैं। इतना भाव करते ही भगवान् खाने के लिए आ जाएँगे। यह चिंतन करते रहें कि भगवान् खा रहे हैं।

फिर से बता देता हूँ कि जब प्रसाद बनाने के लिए जाएँ तो हाथ, मुँह, पैर धो कर रसोई घर में घुसते ही हरिनाम का स्मरण आरंभ कर दिया जाए। रसोईघर में घुसते ही हरिनाम का स्मरण आरंभ कर दें तो भगवान् और उनके पार्षद रसोई घर में घुस जाएँगे और उनके घुसते ही रसोईघर में शुद्ध वातावरण हो जाएगा। वही रसोईघर स्वच्छ हो जाएगा। हरिनाम जप एवं स्मरण टूटना नहीं चाहिए। अब सब्जी बनेगी या जो भी खाद्य पदार्थ बनेगा, उसमें निर्गुण रस घुसता रहेगा। जैसे रोटी बनेगी, जैसे रबड़ी बनेगी, चटनी बनेगी, ककड़ी, खीरा, टमाटर, मूली के टुकड़े आदि एक प्याले में या तश्तरी में रखते जाएँ।

हरिनाम क्रमबद्ध होता रहे, हरिनाम को नहीं छोड़ें। अब प्रसाद भगवान् को भोग लगाकर घर के मेंबर (सदस्य) खाने को बैठे हैं तो थाली के प्रसाद को नमस्कार करें और अनुभव एवं स्मरण करें कि इसको मेरे गुरुदेवजी और भगवान् ने आरोगा है, खाया है और अब मैं पाऊँगा तो मेरा मन शुद्ध बनता जाएगा। मेरा अंतःकरण शुद्ध हो जाएगा। मेरे अंतःकरण से निर्गुण धारा बहेगी।" सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तो माया की धाराएँ हैं और निर्गुण धारा भगवान् की धारा है। निर्गुण धारा से भगवान् मिल जाते हैं। निर्गुण धारा से विरह हो जाता है, छटपट हो जाती है। निर्गुण धारा बहाने के लिए ही तो यह सब बताया है, जो ऊपर लिखा हुआ है। फिर तो, अपने आप बहुत जल्दी होगा। आप लोग करो।

ऐसा करके फिर दाहिने हाथ में जल लो और चार बार थाली के चारों तरफ घुमाओ ताकि प्रसाद की परिक्रमा बन जाए। फिर जल को अपने पास सामने छोड़ दो। प्रसाद चिन्मय होता है। फिर एक–एक ग्रास खाते हुए कम से कम आठ–आठ बार हरिनाम मन–ही–मन करते रहो, तो खाने वाले का मन इधर–उधर जाएगा ही नहीं। मन इधर–उधर जाने से जब हम खाते हैं तो तामसिक, राजसिक धारायें अंतःकरण में बहती रहती हैं, तो मन में बुरे भाव उदय हो जाते हैं। अब, जब निर्गुण धारा बह रही है तो तामसिक और राजसिक धारा कहाँ से आएगी? फिर प्रत्येक ग्रास के साथ धीरे–धीरे मन में हरिनाम करते रहो। 20–25 ग्रास लेते हुए, हरिनाम करने से मन इधर उधर भटकेगा ही नहीं, रस ज्यादा बनेगा तो रोगों का आना बंद हो जाएगा। कोई रोग आएगा ही नहीं। जब अमृत अंदर जा रहा है तो रोग कैसे आएँगे क्योंकि अमृत रोग का भक्षण कर देगा। इस तरह से जो भी यह अभ्यास एक माह करेगा तो 90% मन स्वच्छता को प्राप्त कर लेगा। हृदय स्वच्छ हो जाएगा, अवगुण जलते जाएँगे और गुणों का रस शरीर में भरता जाएगा। ऐसे कोई करता ही नहीं है, करके देखो! अंतःकरण शुद्ध होता जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, आजमा कर कोई भी देख सकता है। 100% उपलब्धि होगी। 20–25 ग्रास तो कोई खाएगा ही, तभी

तो पेट भरेगा। 20–25 बार ग्रास खाने से बहुत बार भगवत् नाम हो जाएगा। फिर जब पानी पिये तो भी भगवान् का नाम मन ही मन जपें, तो भगवान् का चरणामृत बनकर पेट में जाएगा। तो उससे अंतःकरण में शुद्ध विचारों का ताँता बँध जाएगा। ऐसा जिस घर में होगा वहाँ पर भक्ति महारानी नाच पड़ेगी और भक्ति के पीछे भगवान् होते हैं। इससे दुख का साम्राज्य जड़ सहित नाश हो जाएगा। दुख का तो नाम ही नहीं रहेगा, जड़ ही खत्म हो जाएगी। इससे दुख साम्राज्य का जड़ सहित नाश हो जाएगा और भगवान् की माया भी उसकी मदद करेगी। अच्छी मदद करेगी, दुखी नहीं करेगी।

हो सकता है अभ्यास न होने से बीच में भूल हो जाए तो 2 माह में तो अवश्य ही अभ्यस्त हो जाओगे। अभ्यास करते–करते समय लग सकता है, एक महीना लग सकता है, सवा महीना लग सकता है, ऐसा मेरे गुरुदेव ने स्पष्ट कृपावर्षण की है और यदि आलस्य–प्रमाद करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। यह सबसे बड़ा दुश्मन है यदि आलस्य–प्रमाद करोगे तो।

सबसे अनंतकोटि दुखी जन्मों का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि संसार की फँसावट अर्थात् आसक्ति स्वतः ही बड़ी आसानी से भगवान् व संतों में जाकर मुड़ जाएगी। अभी माया की तरफ है फिर अध्यात्म की तरफ मुड़ जाएगी। इससे दुखों का जड़ सहित नाश हो जाएगा।

आप सब भक्तगण विचारपूर्वक महसूस भी करो कि वास्तव में यह युक्ति 100% सही और सत्य है। ऐसा आपको भी अनुभव हो रहा है, ऐसा आपका अंतःकरण ही बता देगा कि ऐसा शर्तिया होगा ही। यह सब ऊपर लिखी शास्त्रीय चर्चा है, गुरुजी अपने मन से नहीं बोल रहे हैं। चैतन्य महाप्रभुजी की माँ शची माता तथा पिता जगन्नाथ ऊपर लिखे अनुसार ही रोज जीवनयापन किया करते थे। यह शास्त्रीय बात है, तथा चैतन्य महाप्रभुजी प्रसाद सेवन ऊपर लिखे अनुसार ही किया करते थे। हाथ–पैर धोते थे, मुँह धोते थे, फिर आसन लगाकर ऊपर बैठते थे, फिर थाली की चार परिक्रमा

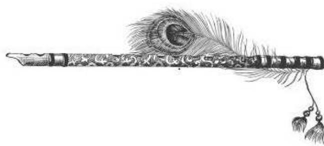
करते थे, फिर हरिनाम करते हुए प्रसाद को पाते थे। जो भक्त इसको अपने जीवन में उतारेगा, वह 100% इसका लाभ उठाएगा। जिसको संशय होगा, दुर्भाग्य होगा, वह इस अमृत को नहीं पी सकेगा।

ध्यान से सुनो! रजस्वला महिला के हाथ का भोजन खाने से गर्भ का बच्चा निश्चित रूप से बाप को मारेगा। इस समय के गर्भ का बच्चा माँ–बाप को निश्चित रूप से मारेगा। माँ–बाप को दुख सागर में डुबोता रहेगा। यह स्वभाव को इतना बिगाड़ता है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा जो बच्चा प्रकट होगा, इतना खराब स्वभाव का होगा कि किसी को चैन नहीं लेने देगा। इससे तो मरना ही अच्छा है। जहरीली मदिरा से भी करोड़ गुना ज्यादा नुकसान कारक होगा।

यह मेरे गुरुदेव ने कृपा करके आप सब को सुनाया है। इसको आप आजमा कर देखो। ऐसा करोगे तो 24 घंटे का ही आनंद हो जाएगा और निर्गुण धाराएँ बहने लगेंगी। हम इससे वंचित हैं इसीलिए तो हम दुखी हैं क्योंकि कोई बताता ही नहीं है।

हमारा श्रीमद्भागवत क्या कह रहा है, कृष्ण भगवान् कह रहे हैं, "उद्धव! मैं किसी चीज से नहीं मिलता मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। उद्धव! जो सत्संग करता है सुनता है, वह तो इसी जन्म में भगवान् को प्राप्त कर लेगा।" जब आप ऐसा करोगे तो भगवान् आपको दर्शन देंगे। ऐसा नहीं है जो कहते हैं कि कलियुग में दर्शन ही नहीं होता है, कभी ऐसा हुआ ही नहीं है। हमारे गुरुवर्गों को भगवान् के दर्शन होते थे। माधवेंद्रपुरीजी को, रूप–सनातन को, सबको हुआ है। मीराजी को तो, अभी की बात है। मीराजी को, सूरदासजी को हुए हैं। सभी को हुए हैं और हमें भी हो सकते हैं। इसलिए यह लेख गुरुदेव ने लिखवाया था जो मैंने आपको सुना दिया है। अब आप इसको प्रेक्टिकल रूप में आजमाओ और करो और यह तो आपका हृदय भी कह रहा है कि हाँ! ऐसा करने से होगा। होगा कैसे नहीं यह 100% होगा।

उपरोक्त लेखों में बताई गईं तीन प्रार्थनाएँ एक करोड़ हरिनाम के बराबर हैं क्योंकि ये पूरे 18 पुराण, 6 शास्त्र और 4 वेदों का सार है। इसलिए ठाकुर जी ने इन तीनों प्रार्थनाओं का इतना प्रभाव बताया है। पूरे शास्त्रों में, भगवद् गीता, भागवत, रामायण आदि में इन तीन प्रार्थनाओं के अलावा कुछ है ही नहीं। इन तीन प्रार्थनाओं को करने वाले का उद्धार निश्चित है क्योंकि इसमें लिखा है कि आप (भगवान्) भूल मत करना, जब मरूँ तब अपना नाम उच्चारण करवा लेना तो भगवान् उसको भूलते नहीं हैं हम भूल जाते हैं। और इन तीन प्रार्थनाओं में लिखा है कि सब में मैं भगवान् ही भगवान् देखूँ तो हरिनाम भी तो यही करता है कि तुम्हारा हृदय एकदम स्वच्छ हो जाए और यह तीन प्रार्थनाएँ तुम्हारे हृदय में बैठ जाएँ। हरिनाम और यह तीन प्रार्थनाएँ करने से रोगी निरोगी हो जाएगा। इन तीन प्रार्थनाओं की बहुत वैल्यू (मूल्य) है।



संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जिसको नाम में रुचि नहीं आ रही है ऐसे भक्त को क्या करना चाहिए ? क्या कारण है कि रुचि नहीं आ रही है ?

उत्तर : रुचि तो इसलिए नहीं आ रही है कि उसका झुकाव–आसक्ति इस संसार की तरफ ज्यादा है। सभी जानते हैं, विचार करके देखो। जिसकी रुचि संसार की तरफ ज्यादा है उसको हरिनाम में रुचि कैसे आएगी ? और अपराध भी हो जाते हैं। अपराध की वजह से भी रुचि नहीं होती।

भगवान् के साक्षात् दर्शन करने का स्वच्छ दर्पण

<u>सात आचरण के स्वभाव वाले भक्त के पीछे, श्रीकृष्ण छायावत् चिपके रहते हैं।</u>

श्रीमद् भागवत महापुराण से उद्धृत
श्रीमद् भागवत पुराण शब्द ब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्ण

<u>पहला है</u>

r`.kknfi lquhpu rjksjfi lfg".kqukA
vekfuuk ekunsu dhrZuh;% lnk gfj%AA

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जिसका ऐसा स्वभाव होगा वह ही नाम का कीर्तन कर सकता है। तृणादपि यानि अपने आपको तृण से भी नीचा समझे और पेड़ से भी सहनशील हो। पेड़ को हम पत्थर मारते हैं तो भी हमें फल देता है। ऐसा सहनशील होना चाहिए और दूसरे को इज्जत दो, अपनी इज्जत की अपेक्षा मत करो। दूसरों को मान दो अपने मान की अपेक्षा मत करो। ऐसा स्वभाव होना चाहिए।

nl jk कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से वैराग्य हो। कंचन में सब आ गया जैसे पैसा, मकान, दुकान, वैभव जितना भी है। इसमें उसकी आसक्ति न हो। कामिनी, जो सभी स्त्रियों को, नारियों को अपनी माँ समझे। प्रतिष्ठा, जब प्रतिष्ठा हो या बड़ाई हो तो समझे कि यह तेरी बड़ाई नहीं है। यह तो हरिनाम की बड़ाई हो रही है। यह तो हरिनाम की वजह से बड़ाई है, इससे उसको अहंकार नहीं आएगा।

rhl jk है– तीन प्रार्थनाएँ हैं। ये प्रार्थनाएँ क्या हैं?

रात को सोते समय प्रार्थना करो, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आए और मेरे तन से आत्मा रूप में आप बाहर निकलो तो आप अपना नाम उच्चारण करा देना और भूल मत करना।" भगवान् को बाँध दिया। भगवान् भूलेंगे नहीं। हम भूल सकते हैं।

जब सुबह जागो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! अब से लेकर रात में जब तक मैं सोऊँ तब तक, जो भी काम करूँ वह आपका ही समझ कर करूँ और भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।" भगवान् नहीं भूलेंगे।

फिर स्नानादि करके बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! कृपया मेरी ऐसी दृष्टि बना दो, ऐसी निगाह बना दो कि मैं कण–कण में और हर प्राणी में आपका दर्शन करूँ और भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।"

इन तीन प्रार्थनाओं के सिवा शास्त्रों में कुछ भी नहीं है। फिर वह किससे दुश्मनी करेगा? सबमें भगवान् को

देखेगा। ऐसी आदत बना लो, ऐसा स्वभाव बना लो, तो तुमको इसी जन्म में, भगवद् प्राप्ति, अभी हो जाएगी।

pkFkk है जब हरिनाम जपो तो भगवान् को पास में रखो। ऐसा नहीं कि हरिनाम जपते हैं और एक मिनट में ही मन स्कूल में, बाजार में, खेत में, दुकान में चला जाए और भगवान् को छोड़ दिया। भगवान् कहते हैं कि, "मुझे बुलाया क्यों था और अब तू कहाँ भाग गया, यहाँ से?" जैसे आप किसी को फोन करके बुलाओ। बात करने लगो और फिर थोड़ी देर बात करके आप उठ कर बिना बताए चले जाओ और फिर आओ भी नहीं तो वह बेचारा क्या बोलेगा कि, "मुझे क्यों बुलाया था तुमने? मुझे बुलाया क्यों?" ऐसे ही भगवान् कहते हैं कि, "पहले मुझे बुलाते हो फिर कहाँ चले जाते हो?" इसलिए भगवान् को पास में रखो।

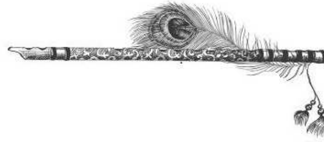
ikpok है कि किसी में गुण दोष मत देखो। किसी में अगर गुण–दोष देखोगे तो वह आप में आ जाएगा। गुण दोष तो पिछले जन्म के संस्कारवश सत्, रज, तम के द्वारा होते हैं। इसमें उसका क्या वश है बेचारे का? गुण–दोष तो सभी में होते हैं। गुण–दोष तो हम में भी हैं, लेकिन किसी और में मत देखो।

गुण भी मत देखो, दोष भी मत देखो।

NBk है कि भगवान् ने जो कुछ तुमको दिया है, उसी में संतोष रखो कि हमें भगवान् ने बहुत दे दिया।

tc vko lrk"k èku rc lc èku èky lekuA

lkrok है कि संग्रह–परिग्रह इतना ही रखो जिससे आपका जीवन चल जाए। जीवन बसर हो जाये। ज्यादा संग्रह–परिग्रह रखोगे तो मन उसमें फँस जाएगा। मन इसमें फँसेगा, तो भगवान् में कम लगेगा। इसी कारण से भगवान् में कम लगता है। हमारे गुरुवर्ग तो एक झोंपड़ी में रहते थे और दो करवे रखते थे, एक शौच के लिए और एक खाने–पीने के लिए और हाथों से खाते थे। कोई बर्तन भी नहीं रखते थे, तो ऐसे वैराग्यवान बनेंगे, तभी तो होगा। गृहस्थी भी ऐसा वैराग्यवान हो सकता है, जैसे राजा अम्बरीष पूरी दुनिया के राजा थे, लेकिन उनको आसक्ति नहीं थी। वह बिल्कुल निर्लिप्त थे। ऐसा कर सकते हो, अगर करना चाहो तो। मनुष्य जन्म फिर दोबारा नहीं मिलेगा। यह सब मैंने श्रीमद्भागवत से लिया है, अपने मन से नहीं लिया।



विशिष्ट उपाय - भगवान् को सदा पास में ही रखो

भक्तों के आत्यंतिक सुख के लिए सदैव उत्सुक रहता हूँ और साथ ही उन्हें शीघ्र–अति–शीघ्र भगवद्–दर्शन हों, इसके लिए 'मेरे बाबा' से उपाय पूछता रहता हूँ। 'मेरे बाबा' ने पहले भी अनेक उपाय बताये हैं, परन्तु भक्तों ने उन सब उपायों को मुश्किल बताते हुए कहा था कि 'हम से यह उपाय नहीं हो पाता।' तब 'मेरे बाबा' को मैंने कहा था कि 'ऐसे जटिल साधन मत बताओ। कोई सरल–सा साधन बता दो क्योंकि आप जो उपाय बताते हैं, वो भक्त कर नहीं पाते हैं!'

तब कई उपाय बताने के बाद अन्त में 'मेरे बाबा' ने बताया था कि रसोईघर में माताएँ बिना चप्पल पहने ही जायें और रसोई का काम करते हुए मुख से अनवरत हरिनाम करती रहें। ऐसा करने से हरिनाम, भोग की प्रत्येक सामग्री में प्रवेश कर जायेगा, और तब परिवार के सभी सदस्य जो उस प्रसाद को पाएँगे, उनकी निर्गुण वृत्ति जागृत हो जाएगी। किन्तु कुछ समय के बाद माताओं ने इस उपाय पर भी अपनी असमर्थता ही व्यक्त कर दी थी!

अब बहुत अनुनय–विनय करने के बाद 'मेरे बाबा' ने एक बहुत ही सरल व सुगम उपाय बता दिया है, जो सभी भक्त थोड़े समय के अभ्यास के साथ निश्चित ही कर सकते हैं। उपाय है– भगवान् को सदा अपने साथ में रखो। एक मिनट भी भगवान् को अलग नहीं करो। जो भी काम करो– भगवान् को सदा साथ में रखकर करो। कार में बैठो, तो भगवान् को भी बिठा लो। कभी दुर्घटना नहीं हो सकती। प्रसाद पावो, तो भगवान् से कहो कि 'आप भी पा लो।' यहाँ तक कि अगर वॉशरूम में जाओ, तो भी भगवान् को कहो, ''चलो मेरे साथ।'' भगवान् तो परम–पवित्र हैं, उन्हें किसी भी स्थान पर कोई कठिनाई नहीं है। भगवान् तो भक्तों के लिए सब करने को तैयार हैं, बस मुश्किल यह है कि उन्हें कोई चाहता ही नहीं है!

इस उपाय को कुछ दिन करके तो देखो, कितना फायदा होता है! यदि भूलें, तो भक्त आपस में एक दूसरे को याद कराते रहें कि 'भगवान् साथ में तो हैं ना!' इस तरह एक दूसरे की सहायता करके इस उपाय को शीघ्र–अति–शीघ्र अपने जीवन में अपना लेने से परम कल्याण निश्चित ही होगा। भगवान् ने भगवद्गीता में कहा भी है कि 'भक्त जैसा आचरण करता है, जैसे मुझे भजता है, मैं भी वैसा ही करता हूँ।' अर्थात् 'अगर भक्त मुझे नहीं छोड़ रहा है, तो मैं उसे कैसे छोड़ सकता हूँ?' इस तरह से कभी भी भगवान् और भक्त का बिछोह नहीं होगा और सुख ही सुख व्यापता रहेगा। शास्त्र का यही तो सार है

कि भगवान् को सदा याद रखो। यदि भगवान् सदा साथ में रहेंगे तो उनका स्मरण तो स्वयं बना ही रहेगा। भगवान् साथ में ही रहेंगे तो दुख आ ही कैसे सकता है? यह विशिष्ट उपाय है – 'भगवान् को सदा साथ में रखो।

& vfu#) nk l vf/kdkjh



ukV% भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध–ज्ञान की दृष्टि से पोते होने के कारण अनिरुद्ध प्रभुजी भगवान् को 'मेरे बाबा' कहकर सम्बोधित करते हैं।

सरल से भी सरल अन्तिम दो साधन–भगवान इसी जन्म में दर्शन दे देंगे

कुछ समय पहले ठाकुरजी ने उत्तम साधन बताया था कि भक्त, भगवान् को हमेशा अपने साथ में रखें। कहीं भी जाएँ, कहीं भी बैठे हों, नहा रहे हों या भोग बना रहे हों, हर क्रिया में भगवान् को भी साथ में लगा लें। मैंने सभी भक्तों को यह बता दिया और भक्तों ने यह करना प्रारम्भ कर दिया परंतु कुछ समय अभ्यास करने के बाद यह पाया कि बहुत सारी क्रियाओं में वे भगवान् को साथ में रखना भूल ही जाते हैं इसलिए उन्होंने मुझसे कहा कि आप हमें इससे भी कोई सरल साधन बता दीजिये। मैंने जैसे ही ठाकुरजी को बताया कि इससे सरल साधन बता दो तो ठाकुरजी ने कहा कि इससे सरल साधन और कोई नहीं है अतः मेरा समय बरबाद मत करो क्योंकि मैं तुम्हें पहले ही बहुत साधन बता चुका हूँ और हर बार तुम बोल देते हो कि इससे भी सरल साधन बताओ। मैंने कहा कि आपके पास तो बहुत रास्ते हैं इसलिए इस बार सरल से भी सरल रास्ता बता दीजिये। पर इस बार भगवान् नहीं माने और कहा कि मेरे पास कोई और रास्ता नहीं है अब।

यह सुनने के बाद मैंने ठाकुरजी से कहा कि क्या आपने नहीं कहा कि जो संतों की सेवा करता है उसकी सेवा के लिए स्वयं आप, ब्रह्मा व महेश उसके सामने हाथ जोड़ कर खड़े रहते हैं और कहते हैं कि हे भक्तराज मुझे भी कोई सेवा बता दीजिए? तो भगवान् बोले कि हाँ मैंने यह कहा है –

eu Øe cpu diV rft tk dj lru loA
ekfg ler fcjfp flo cl rkd lc noAA

तो मैं आपके प्यारे संतों की हमेशा सेवा करता रहता हूँ और अब जब मैंने आपको सेवा बता दी तो आप कह रहे हो कि मेरे पास कोई और रास्ता नहीं है? आप मुझे टाल रहे हो, आपके पास हजारों रास्ते हैं। यह बात सुनते ही भगवान् चुप हो गए और उनके पास कोई उत्तर न रहा। फिर उन्होंने हार मान के नीचे दिये दो साधन बताए–

अगर यह दोनों साधन सिद्ध हो जाएँ तो भगवान् इसी जन्म में दर्शन दे देंगें।

1) जो भी काम करो भगवान् की प्रसन्नता के लिए करो। अगर बर्तन साफ कर रहे हो तो यह सोचो कि मैं बर्तन साफ कर रही हूँ और इससे मेरे भगवान् प्रसन्न हो जाएँगे। मैं नहा रहा हूँ, इससे मेरे भगवान् प्रसन्न हो जाएँगे।

2) चराचर प्राणियों में भगवान् को ही देखो। अगर भगवान् पेड़ में न हो तो पेड़ हरा नहीं रह सकता। चींटी चल नहीं सकती। मक्खी उड़ नहीं सकती।

बस यह दो साधन करलो और दूसरा कुछ करने की जरूरत नहीं है।

यह हरिनाम भी किस लिए करते हैं हम? हम हरिनाम इसलिए करते हैं कि यह दोनों साधन हमारे हृदय में बैठ जाएँ। अगर यह दोनों साधन आपके हृदय में हैं तो भगवान् इसी जन्म में अवश्य ही दर्शन दे देंगे। भगवान् के दर्शन इसी जन्म में पाने हेतु यह दोनों साधन आपके हृदय में कच्चे (Temporary) रूप से नहीं बल्कि ठोस (Permanent) रूप से होने चाहिएँ। मेरे गुरुदेव के सिवाय ऐसा साधन कोई नहीं बताता है कि भगवान् को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। जब भगवान् मिल जाएँगे तो फिर क्या कोई दुख रहेगा हमें? दुख रह ही नहीं सकता। जहाँ सूर्य उग गया, वहाँ अँधेरा कैसे रहेगा।

अब ये दोनों साधन हृदय में गंभीरता पूर्वक कैसे बैठें? इन साधनों का हृदय में पूर्ण रूप से बैठना मामूली बात नहीं है। हर वक्त इनका स्मरण करो, जैसे कि यह मक्खी उड़ रही है इसमें भी भगवान् है, यह चींटी चल रही है, इसमें भी भगवान् हैं। ऐसे स्मरण करो जैसे बच्चे किताबों की पढ़ाई करते हैं। ऐसा नहीं है कि एक बार अभ्यास करने से ही यह हो जाएगा बल्कि, इसका निरंतर स्मरण

करना होगा। स्मरण कर–कर के इन साधनों को पक्का कर लो, और कुछ करने की जरूरत नहीं है परंतु स्मरण तो बार बार करना ही पड़ेगा। कोई भी चीज देखो तो इस प्रकार देखो कि इसमें भगवान् बैठा है, चिड़िया भी देखो तो सोचो कि इसमें मेरे भगवान् बैठे हैं इसलिए बोल रही है। कर्म भी ऐसा करो जिससे भगवान् खुश हों। भगवान् की कृपा व गुरु की कृपा से यह दोनों साधन हृदय में जल्दी बैठेंगे। भगवान् की कृपा बाद में है, पहले गुरु की कृपा है।

बस यह दो साधन करलो और मैं कहता हूँ कि यह करने से हरिनाम करने की भी जरूरत नहीं है क्योंकि इन दो साधनों से ऊँचा कोई साधन है ही नहीं। गोपियाँ यह दोनों साधन ही करती थीं बस, उन्होंने कभी हरिनाम नहीं किया। हरिनाम क्यों करते हैं हम? इसलिए करते हैं कि हमें ये दोनों साधन मिल जाएँ। लेकिन ये कई जन्मों के बाद मिलते हैं, इतनी आसानी से नहीं मिलते। परंतु जैसे नींद लेना जरूरी है और नींद के बिना आदमी नहीं रह सकता, उसी प्रकार से हरिनाम तो लेना जरूरी है ही। अगर हरिनाम को छोड़ दोगे तो यह जो दोनों साधन बताए हैं वे दोनों स्मरण में आ ही नहीं पाएँगे और हृदय से यह साधन बिल्कुल गायब हो जाएँगे। इसलिए कलियुग में हरिनाम का प्रभाव है। हरिनाम से ही यह दोनों साधन निकलते हैं और हरिनाम के बिना नहीं निकलेंगे। जो हरिनाम नहीं करता और केवल प्रवचन करता है उसका कोई प्रभाव नहीं होता। यह दोनों साधन भगवान् ने उद्धव

जी को खुद ग्यारहवें स्कन्ध में बोले हैं और कहा है कि मेरी लीला खत्म हो चुकी और मैं धाम जा रहा हूँ, अब तुम बद्रीनाथ चले जाओ और वहाँ पर जाकर यह दोनों साधन करते रहना।

जब आप सब काम भगवान् के लिए करोगे तो भगवान् दूर कहाँ से होंगे? और जब हर जगह भगवान् ही को देखोगे तो भगवान् आपसे दूर कैसे रहेंगें? इन दोनों साधनों की वजह से भगवान् तो हर क्षण आपके पास में ही रहेंगें। दोनों साधन ऐसे हैं जिनसे कि भगवान् दूर होते ही नहीं है। जो इतना स्मरण करेगा, उसको इसी जन्म में स्थूल रूप से भगवान् का दर्शन हो जाएगा। अभी इन साधनों के माध्यम से हमें अप्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं परंतु धीरे–धीरे प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जायेंगे। कोई भाग्यशाली ही प्रत्यक्ष दर्शन कर पाएगा। हम बताते तो सभी को ही हैं परंतु कोई विरला ही भगवान् के दर्शन कर सकता है क्योंकि सब संसार को चाहते हैं, भगवान् को कोई नहीं चाहता।

भगवान् की प्रसन्नता के लिए कार्य करना शुद्ध भक्ति मार्ग है और चराचर में भगवान् को देखना ज्ञान एवं भक्ति मार्ग है क्योंकि जब भगवान् में प्यार होगा तब ही सभी में भगवान् दिखेंगे। भक्ति के बिना पूर्ण रूप से ज्ञान हो ही नहीं सकता। मुझे भी तो इन दोनों साधनों से ही भगवान् मिले हैं। कर्म मार्ग से कभी भी भगवान् नहीं मिलता।

हरिनाम जप का अन्तिम व सर्वोपरि साधन

पंचभूत शरीर -	पाँच तत्त्वों (जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी) से बना हुआ जड़ शरीर, जिसमें कोई चेतना नहीं अर्थात् जो विनाशी है।
जीव -	भगवान् का अंश (अविनाशी अथवा नित्य) जो संसार में फँस गया - (ईश्वर अंश जीव अविनाशी)
परमात्मा -	भगवान् का साकार रूप (योगियों के लिए)
भगवान् -	भगवान् का साकार रूप (भक्तों के लिए)

यह शरीर जीव का मकान है और पंच–तत्त्व से बना हुआ है। जीव को ही कर्मों का भोग भोगना पड़ता है, परमात्मा को नहीं। इसलिए जीव को परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए। हम जब किसी से बात करते हैं तो कोई सामने होता है तब ही तो बात करते हैं, अगर कोई नहीं होगा तो किस से बात करेंगे? इस प्रकार हम परमात्मा को बोलते हैं – "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।" मतलब जीव, परमात्मा को बोल रहा है जिसको कान भी सुनेगा। जिह्वा हरिनाम करती है तो भगवान् को थोड़ी न सुनाती है, स्थूल कान

सुनता है बस। कई बार तो यह कान भी नहीं सुनता है, जैसे कि हम हरिनाम कर रहे हैं और मन बाजार में चला गया तो हरिनाम करते हुए बाजार याद आ रहा है, स्कूल याद आ रहा है, खेत याद आ रहा है। पर याद कौन आना चाहिए? परमात्मा। अगर परमात्मा को आप बोलोगे तो कान तो सुनेगा ही। जप करने का यह एकदम शुद्ध तरीका है। यानि शुद्ध नाम जपने का यह सबसे उत्तम साधन है।

समझने हेतु, जीव की जगह आप शिष्य समझ लो व परमात्मा की जगह आप गुरु समझ लो। अब शिष्य गुरु को बोल रहा है कि गुरुदेव कृपा करो मेरे पर, कृपा करो। तो जब हम हरिनाम कर रहे हैं, तो हम हरिनाम के माध्यम से परमात्मा को बोल रहे हैं। जब ऐसा करेंगे तो जल्दी विरह हो जाएगा। जब हम किसी से बार–बार प्रार्थना करेंगे तो रोना आएगा ही। जैसे शिष्य बार–बार गुरुदेव से प्रार्थना करता है तो अंत में उसको रोना तो आता ही है। जीव तो माया में फँसा हुआ प्राणी है और परमात्मा है भगवान्। इसी प्रकार जीव अपने परमात्मा को बोल रहा है– "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे" और परमात्मा उसकी सुन रहा है, तो ऐसा करने से एकदम समाधि लग जाएगी। एकाग्रता इतनी ज्यादा हो जाएगी कि वो समाधि में चला जाएगा और समाधि में ही भगवान् मिलता है। यह एक बहुत गहरी बात है और जड़बुद्धि से इसको नहीं समझा जा सकता। जिसकी भक्ति गहरी है, वह जल्दी समझ सकता है और जिसकी भक्ति कच्ची होती है, उसके समझ में कम आता है।

उदाहरण के तौर पर जब जीव रूपी शिष्य, परमात्मा रूपी गुरु को बोल रहा है और उनसे प्रार्थना कर रहा है (हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे) कि मैं संसार में फँसा हुआ प्राणी हूँ और मुझे यहाँ से निकालो, अगर ऐसी भावना आपकी धीरे–धीरे बन गयी तो फिर रोना आ जाएगा। विरह की प्रथम अवस्था यही है। ऐसे हरिनाम करना चाहिए, परंतु शुरू शुरू में तो अभ्यास नहीं है, तो मन इधर उधर भागेगा। फिर धीरे–धीरे मन जमने लगेगा। मन को जमाने का यह अति उत्तम तरीका है। बार–बार जब जीव, परमात्मा को बोलेगा तो एकाग्रता हो जाएगी, विरह अग्नि प्रकट हो जाएगी व निर्गुण अवस्था आ जाएगी।

जैसे एक 8–9 महीने का बच्चा माँ की गोदी में हो और कोई आकर उसको अपनी गोदी में ले ले, तो वो रोएगा। वो अपनी माँ को नहीं छोड़ना चाहेगा। ऐसे ही शिष्य (जीव) का समझ लो कि अगर संसार उसको अपनी गोदी में लेने की कोशिश करेगा, तो वो संसार में जाना नहीं चाहेगा और अपने भगवान् के पास ही रहना चाहेगा क्योंकि संसार नश्वर है और उसको संसार में कुछ नहीं मिला। इसको समझने की जरूरत है बस। यह सब ज्ञान भागवत से प्रकट हुआ है। इसका बार–बार चिंतन करने से यह समझ में आ जाएगा। भगवान् व गुरु से कृपा माँगने से यह स्वतः ही समझ में आ जाएगा, परंतु अपनी शक्ति से समझ में नहीं आएगा। अपनी शक्ति से तो अहंकार आ जाएगा और अहंकार भगवान् को अच्छा ही

नहीं लगता, इसलिए भगवान् और गुरु पर छोड़ दीजिये, अपने आप समझ में आ जाएगा। यह नाम जप का अंतिम व सर्वोपरि साधन है और मुझे यह 'मेरे बाबा' (भगवान्) ने ही बताया है।

इसलिए आप परमात्मा को नाम सुनाओ और अंदर से उस नाम का भाव है कि मैं जो संसार में फँसा हुआ हूँ, वहाँ से मेरे को निकालो। चाहे आप शुरू में 1 माला ही ऐसे करो और उसको इस तरीके से परमात्मा को सुनाओ और फिर धीरे–धीरे बढ़ाओ। ऐसे धीरे–धीरे ही पी–एच.डी (Ph.D.) होगी, एक दम से पूरा एक लाख नाम जप थोड़ी परमात्मा को सुनाने लग जाओगे! जैसे मेरी पूरे एक लाख में समाधि ही लगती है, क्योंकि मुझे 80 साल हो गए हरिनाम करते हुए। मेरा मन तो कहीं जाता नहीं है। इसलिए जो एल.के.जी (LKG) में बैठा है उसको मैं कैसे कह दूँ कि अभी से एक लाख हरिनाम परमात्मा को सुना!

एक माला से शुरू करके धीरे धीरे बढ़ाने से आपकी समाधि लगने लग जाएगी व संसार दूर होने लग जाएगा और केवल भगवान् रहेगा। जब मन और हृदय में संसार न रहे व केवल संत और भगवान् ही रहें तो उसे समाधि कहते हैं। यह केवल इस रास्ते से ही होगा, दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जब आप परमात्मा को 'हरे कृष्ण' सुनाओगे तो फिर संसार कहाँ रहेगा? यह 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष है और मैंने स्वयं करके देखा है। ऐसे ही प्रह्लाद महाराज करते थे। जब वे भगवान् का चिंतन करते और भगवान् आ

जाते तो वे खूब नाचते, परंतु जब भगवान् चले जाते तो वे रोते। यह भाव धीरे–धीरे आ जाते हैं।

जैसे बच्चे को माँ की गोद के अलावा कुछ अच्छा नहीं लगता, अगर बाप भी उसको गोदी में लेता है तो भी वह माँ के लिए रोता है और बाप के पास भी नहीं जाना चाहता। इसका मतलब वह बच्चा माँ के पूर्ण आश्रित है व माँ के प्रति उसकी पूर्ण शरणागति है। ऐसे ही भक्त की पूर्ण शरणागति उस परमात्मा के प्रति है जिसको वो नाम सुना रहा है और अगर वह इस परमात्मा की शरणागति कर लेगा तो इसी से ही उसको भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी। जिस प्रकार बच्चा अपनी माँ को नहीं छोड़ना चाहता उसी प्रकार भक्त भगवान् को नहीं छोड़ना चाहता। भक्त भगवान् के पास ही रहना चाहता है, क्योंकि उसको वहीं सुख मिलेगा और कहीं सुख नहीं मिलेगा। कई बार माँ बच्चे को थप्पड़ मारती है और फिर भी वह अपनी माँ से ही चिपटता है और पास में खड़े बाप के पास नहीं जाता है। ऐसे ही भक्त है, चाहे जितना मर्जी कष्ट आ जाए फिर भी वह भगवान् की ओर ही भगेगा और संसार में किसी दूसरे का सहारा नहीं लेगा, केवल भगवान् का ही सहारा लेगा। जैसे एक बिल्ली का बच्चा इतना आश्रित रहता है कि वो उसकी छाती से चिपका रहता है और बिल्ली उसको पकड़े रहती है। जब बिल्ली उछलती है तो उसको पकड़ कर ही उछलती है और बंदरी का बच्चा जो होता है वो अपने बल से चिपकता है और उसकी माँ उसको पकड़ती नहीं है। जब बंदरी उछलती है तो वो बच्चा गिर भी

सकता है। इसी प्रकार, बिल्ली के बच्चे की तरह एक भक्त भगवान् के आश्रित रहता है और भगवान् उसको नहीं छोड़ते। जो भक्त संसार में किसी का सहारा नहीं लेता और केवल भगवान् का सहारा ही लेता है, वही सच्चा भक्त है, नहीं तो बाकी सब कपटी भक्त हैं। कपटी भक्त कष्ट आने पर संसार में किसी सेठ, राजा के कर्मचारी या राजा आदि का सहारा लेगा। वे तो खुद ही दुखी हैं, उनका सहारा लेने से वह सुखी कैसे हो सकता है? सहारा उसका लो जिससे हमेशा के लिए सुख हो जाए, मानव का सहारा लेने से क्या फायदा? जैसे बच्चा माँ–माँ करता है, वैसे ही हम हरिनाम करते हैं। माँ–माँ करके पुकारने का मतलब है कि 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' बोलकर पुकारना। जो यह परमात्मा है वह भक्त के लिए एक प्रकार की माँ ही है। हम इस परमात्मा को करुण हृदय से पुकारते हैं। ऐसे हृदय से पुकारते–पुकारते हमें रोने का मन करने लगेगा तो इस स्थिति में आकर संसार हृदय से भग जाएगा। जब तक रोना नहीं आता है तब तक संसार, हृदय पर अपना अधिकार जमा के रखता है। यह भक्ति में ऊपर चढ़ने की सीढ़ी है, भगवान् को प्राप्त करने की सीढ़ी है। क्योंकि हम कभी भी समाधि में जाते ही नहीं हैं, तो इसलिए भगवान् क्यों आएँगे? जब समाधि लगती है तो संसार निकल जाता है और केवल भगवान् ही रहते हैं हृदय में। यह सब चीजें भागवतम् से मिलती हैं, इसलिए भगवान् ने कहा कि मेरे जाने के बाद भागवतम् का सहारा लो और मैं मिल जाऊँगा।

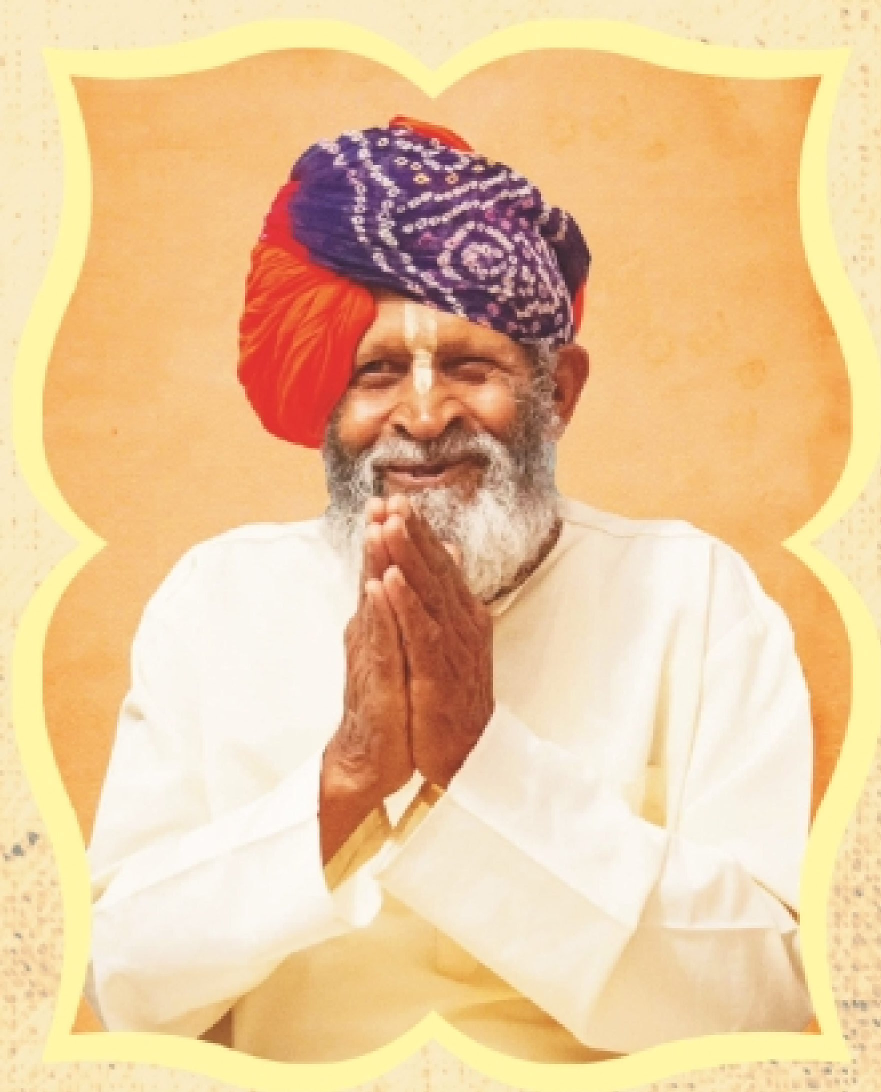
हर चराचर प्राणी में परमात्मा ही बैठा हुआ है। हमें शुरू–शुरू में यह कल्पना करनी है कि हम परमात्मा को हरिनाम सुना रहे हैं। आध्यात्मिक स्तर पर कल्पना भी सत्य होती है। परमात्मा को करुण हृदय से पुकारने से अंदर का कान सुनेगा तथा हमारे संस्कारों के अनुसार शीघ्र ही या फिर कुछ समय के बाद, अंतर्दृष्टि परमात्मा को भगवत्–प्रकाश (भगवान् की कान्ति) के रूप में देखेगी। शुरू–शुरू में परमात्मा, भगवत् प्रकाश के रूप में ही दिखेगा परंतु फिर धीरे–धीरे इस प्रकार हरिनाम करते–करते यह भगवत्–प्रकाश हटने से, भगवान् के मनमोहक रूप का दर्शन होगा। यह भगवत् प्रकाश ही भगवान् का दिव्य शरीर धारण कर लेगा। भागवतम् में जब भगवान् ब्रह्मा को दर्शन देने के लिए प्रकट हुए तो भगवान् की तेज कान्ति (भगवत् प्रकाश) के सामने उनकी आँखें चौंधिया गयीं और वे देख नहीं सके। इसलिए अंदर की आँख से पहले भगवत् प्रकाश के दर्शन होंगे और बाद में वही भगवत् प्रकाश भगवान् का दिव्य शरीर धारण कर लेगा। जैसे शरीर की ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं उसी प्रकार यह ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर के अंदर भी होती हैं। जैसे कि हम विचार से ही अमेरिका चले जाते हैं और हमें अंदर की आँखों से अमेरिका दिखने लग जाता है।

भक्त सही रास्ते से हरिनाम नहीं जप रहे हैं। जो जप रहे हैं, वे गलत रास्ते से जप रहे हैं, इसलिए उनको कृपा नहीं मिल रही है, केवल छायावत् कृपा ही मिल रही है। भगवान् की कृपा तो तब मिलेगी, जब इस बताए हुए रास्ते

से हरिनाम जपोगे। गलत रास्ते से हरिनाम जपने से एकाग्रता नहीं आती है व इस रास्ते से एकाग्रता आएगी। एकाग्रता आने से ही मन एक जगह रहता है, नहीं तो इधर–उधर भग जाता है।

आज तक हम केवल स्थूल कान को ही हरिनाम सुना रहे थे, परंतु कान को सुनाने का सही मतलब है कि परमात्मा को नाम सुनाओ, केवल कान को नहीं। स्थूल कान को सुनाने का रास्ता निम्न स्तर का है, परंतु परमात्मा को सुनाने का रास्ता उच्च स्तर का है। अभी अंधेपन (अंधकार में) से जप हो रहा है और इस रास्ते द्वारा ज्ञान (प्रकाश में) से जप होगा व रोना आने लग जाएगा और धीरे–धीरे एकाग्रता बढ़ने से समाधि लगने लग जाएगी। जब रोना भगवान् को बर्दाश्त नहीं होता है, फिर वे अपनी गोदी में ले लेते हैं, जिसको आखिरी स्तर या पी–एच.डी का स्तर बोलते हैं। फिर भगवान् साक्षात्, मानव के स्वरूप जैसे, बहुत ही सुंदर व मनमोहक दिखेंगे और आपका मन इस मोहिनी व लुभावने रूप को छोड़कर दूसरी ओर देखने को करेगा ही नहीं व इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति हो जाएगी और दूसरा जन्म लेना ही नहीं पड़ेगा। इसलिए इस तरह से हरिनाम करते हुए इस साधन का अभ्यास करो, नहीं तो मनुष्य जन्म बेकार चला जाएगा। अगला जन्म मनुष्य का तो मिल ही जाएगा, परंतु इस जन्म में तो उद्धार नहीं होगा और उद्धार तो इसी जन्म में ही होना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि जो मुझ पर श्रद्धा करते हैं, उनका इसी जन्म में जन्म–मरण छूट जाए।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।



चाहे भाव से लो,
चाहे कुभाव से लो,
चाहे मन लगे,
चाहे नहीं लगे,
हरिनाम दसों दिशाओं में मंगल कर देगा।
ग्यारहवीं तो कोई दिशा होती ही नहीं है।
दसों दिशाओं में वैकुण्ठ भी आ गया और गोलोक भी।

अनिरुद्ध दास अधिकारी